ईश्वर, जीव, माया और संसार

भक्त और भगवान का इतिहास

श्रीमद् महाभागवत महापुराण कथा

* संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकिम

* छायांकन :- श्री सुधीर वासुदेवराज लिंगायत
आर्टटेक ग्राफीक्स, ७८९/९०, गुरुवार पेठ, पुणे- मो. ९४२२३६३३११

* सौजन्य :- पार्टस् कॉटेज, ६-ए, ताडीवाला रोड, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, पुणे- ४११००१

* संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री अशोक चांदमल सिंहल

* प्रेषक व्यवस्था :- १) श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

२) श्री रामगोपाल केडिया (स्पीडमॅन एक्सप्रेस) फोन नं. २२०८७७५०,
१९१-बी, पहिला मजला, नाइन्थ कॅवेल एक्स-लेन,
डॉ. वेगाज स्ट्रीट, कालबादेवी रोड, मुंबई-४००००२

* सहयोगी छायांकन :- रश्मि हीरा - संजय हीरा

* पॅकिंग श्री ओमप्रकाश बलभद्रदास अग्रवाल

* भागवतकार :- श्री अनन्तसुत मणिरत्नम् महेन्द्रकुमार पाटोदिया

कोनार्क इन्क्लेव्ह, बी-८, बंड गार्डन रोड, पुणे - १

फोन नं. - २६१६२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९

* प्रकाशन नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट
श्री नारायणी धाम, सर्व्हे नं. ७४/१-बी, प्लॉट नं. १७-१८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड, पुणे-४११०४३ फोन- २४३६५१५१

शुभ कर्म करनेवाला कभी डरता नहीं, अश्रु उसकी आंख से गिरता नहीं है।
सत्कर्म करनेवाले को युग भूलता नहीं, संसार की निगाहों में वह मरता नहीं है॥

* मूल्य - कृष्ण भक्ति

ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

जिन्दगी मोहताज है मंजिलों की, वरना जिन्दगी का अर्थ ही क्या है?
जीता नहीं कोई अपनों से जुदा होकर, पर दिखाया नहीं हर किसीको रोकर।

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अग्रवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) श्री एस. सी नागपाल (आर्य समाज)
आर्य समाज, ए-१/१०१, ऑक्सफर्ड व्हिलेज,
वानवडी, पूना-४११०४० फोन नं. २६८५१६९०

५) श्री जगदीश बाघमल अग्रवाल
हॉटेल टूरिस्ट, मंगलवार पेठ, पुणे- २

६) श्री शाम ग्यानीराम अग्रवाल
आज का आनंद, शिवाजीनगर, पुणे-५
फोन ऑ. २५५३४८८८

७) श्री विजय चौधरी
आशिष, विमान नगर, खामगांव-४४४३०३
फोन नं. (०७२६३) २५२४०३ ऑ. २५३११६

८) श्री सुशीलजी अग्रवाल
एस-३, जनता कॉलनी, जयपूर-३०२००४
फोन नं. ऑ. ०१४१-२६०६७४६, मो. ९८२९०६०६७४

९) श्री प्रेमप्रकाश सूतवाला
नवशील अपार्टमेंटस्, ब्लॉक नं. ५, फ्लॅट नं. २, ५६ कॅन्टोंनमेंट,
कानपूर (उ.प्र.)- २०८००४ फोन नं. २३८११७०

१०) श्रीमती शारदा नेमीचंद अग्रवाल
फ्लॅट नं. ४२०, सेक्टर २८ए, नेमिशा बंगलो,
प्राधिकरण-निगडी, पुणे- ४११०४४
फोन नं. ऑ. २७४७५२८४ घर-२७६५५३३७

११) श्री राधेलाल पाटोदिया (राधामंडल)
कोरेगांव पार्क, कृष्णकुंज,
पिंगळे गार्डन के सामने, पूना-४११००१
फोन नं. घर-६६२०५३६९, मो. ९८९००१०३३०

१२) श्री राधेश्याम गोयल
सिनर्जी इन्स्टिट्यूट ऑफ मॅनेजमेंट
फडके हॉल के ऊपर, सदाशिव पेठ,
खजिना विहार चौक, पुणे- ४११०३६
फोन २४४९७८४७, २४४९७१३० मो. ९८२२०८६४४२

१३) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम,२९बी-२ रा मजला, ३२/१बी,
रामकृष्ण समाधी रोड, कलकत्ता-७०००५४
फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१४) श्री मोतीलाल डेंगला
अरुणोदय, ११८९/ए, १३-मेन हॉल, दूसरा स्टेज
बेंगलोर- ५६०००८ फो. २५२६४२०५, मो.९३४१२६२४९३

१५) श्री सुनील गर्ग (दर्शना)
गुरुकृपा कॉम्प्लेक्स,
विश्रांतवाडी, पुणे- ४११००१
मो. ९८९०४५६९२८, ९९६०२६०६६१ (दर्शना)

१६) श्री राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल
श्री खाटू श्याम मित्र मंडल, पूना
सी.एम.ई. पुणे- ४११०३१ मो. ९७६४४५५८५५

✲ विशिष्ट सहयोग ✲ १) श्री. कृष्णा वाडेकर, २) श्रीमती क्लेयरा गुडविन,
३) अरीफ इनामदार, ४) लेटीसीया कोलॅको

✲ सहयोगी दल ✲ १) श्री राजकुमार बन्सीलाल अग्रवाल, २) श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल,
३) श्री श्यामसुंदर बांकेलाल गोयल, ४) श्री राधेश्याम गोयल, ५) राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल, ६) नन्दकिशोर अग्रवाल

ईश्वर, जीव, माया और संसार

भक्त और भगवान का इतिहास

श्रीमद् महाभागवत महापुराण कथा

पृथ्वी का कागज करूं, लेखनी करूं बनराय / सात समुंदर स्याही करूं, हरि गुण लिख्यो न जाय //

विषय सूची

१)	श्री गणेश	६
२)	प्रार्थना	१२
३)	माता-पिता	२२
४)	भूमिका	३९
५)	भागवत प्रस्तावना	४३
६)	भागवत वेत्ता की कलम से	४६
७)	जिनकी मधुर स्मृति में यह ग्रन्थ समर्पित	४९
८)	भागवत क्या है?	५१
९)	भागवत का माहात्म्य	६० से ९३
१०)	प्रथम स्कन्ध	९४ से २२७
११)	द्वितीय स्कन्ध	२२८ से २८२
१२)	तृतीय स्कन्ध	२८३ से ४३१
१३)	चतुर्थ स्कन्ध	४३२ से ५९३
१४)	पंचम स्कन्ध	५९४ से ६८६
१५)	षष्ठम स्कन्ध	६८७ से ७७३
१६)	सप्तम स्कन्ध	७७४ से ८५३
१७)	अष्टम स्कन्ध	८५४ से ९४४

जिसके जीवन में मर्यादा नहीं, संयम नहीं; वह मनुष्य कहलाने योग्य नहीं है।

१) श्री भागवत भगवान की है आरती

श्री भागवत भगवान की है आरती। पापियों को पाप से है तारती।।
ये अमर ग्रन्थ ये मुक्ति पंथ, ये पंचम वेद निराला।
नव ज्योति जगाने वाला, हरि नाम यही हरि ध्यान यही।
जग के मंगल की आरती, पापियों को पाप से है तारती।।

ये शान्ति गीत पावन पुनीत, पापों को मिटाने वाला।
हरि दर्शन कराने वाला, ये सुख करणी, ये दु:ख हरणी।
श्री मधुसूदन की आरती, पापियों को पाप से है तारती।।

ये मधुर बोल जग पंथ खोल, सत् मार्ग बताने वाला।
बिगड़ी को बनाने वाला, श्रीराम यही घनश्याम यही।
प्रभु महिमा की है आरती, पापियों को पाप से है तारती।।

२) आरती श्री भागवत जी की

आरती श्री भागवत जी की। करत पवित्र भावना हिय की।
श्री नारायण मुख की वाणी। पढ़ते ब्रह्मा और ब्रह्मानी। शंकर पार्वती सुख मानी।
कृष्ण कथा सुखधाम हरी की। आरती श्री भागवतजी की।।१।।

सनकादिक सै शेष बखानी। नारद मुनी परम सुख मानी। व्यास सुनी सर्वोपरि जानी।
लिखी पुराण तिलक की टीकी। आरती श्री भागवतजी की।।२।।

श्री शुकदेव व्यास ते सुनि कै। कही परीक्षित नृप से गुनि कै। गंगा तट सन्तन कौं चुनि कै।
ज्ञान-विराग भगति मुक्ति की। आरती श्री भागवतजी की।।३।।

कथा भागवत जो नित गावै। आप सुनै और को सुनावै। निश्चय कृष्णचन्द्र पद पावै।
प्रेमसिन्धु रस बिन्दु अमी की। आरती श्री भागवतजी की।।४।।
करत पवित्र भावना हिय की।

३) आरती श्री भागवत जी की

आरती अतिपावन पुराण की। धर्म-भक्ति-विज्ञान-खान की।।
महापुराण भागवत निरमल। शुक-मुख-विगलित निगम-कल्प-फल।।
परमानन्द-सुधा-रसमय कल। लीला-रति-रस-रस-निधान की।।
कलि-मल-मथनि त्रिताप-निवारिनि। जन्म-मृत्युमय भव-भय-हारिनि।।
सेवत सतत सकल सुखकारिनी। सुमहौषधि हरि-चरित-गान की।।
विषय-विलास-विमोह-विनाशिनी। विमल विराग विवेक विकासिनि।।

भगवत्तत्त्व-रहस्य प्रकाशिनि। परम ज्योति परमात्म-ज्ञान की।।
परमहंस-मुनि-मन उल्लासिनि। रसिक-हृदय रस-रास-विलासिनि।।
भुक्ति, मुक्ति, रतिप्रेम सुदासिनि। कथा अकिञ्चनप्रिय सुजान की।।

४) श्रीमद् भागवत स्तुति

जय भगवती भागवत माता। व्यास विनिर्मित्-भगवद्वाणी, ब्रह्मानन्द प्रदाता।
परमानन्द-सुधारस धारा, विमल-विराग विवेक विचारा।।
भगवत्तत्व रहस्य अपारा, ज्ञनमयी विज्ञान विधाता। जय भगवती भागवत-माता।।१।।
शुक आनन, बिगलित सुखखानी, ताप त्रय नाशिनीभवानी।
कामधेनु दु:ख हर कल्याणी, जन्म-मृत्यु भय हर सुखदाता।। जय भगवती भागवत-माता।।२।।
विषय-विलास मोह-मद हरनी, अति पावन-मुंगल-मृदु-करनी।
कलिमल कलुषहारा भव तरनी, रसिक-हृदय-पीयूष-प्रदाता।। जय भगवती भागवत-माता।।३।।
सुर नर मुनि मन मानष तोषिणि, धर्ममयी सन्तन तन पोषिणि।
शोक-कोप-विभ्रम भय-शोषिणि, भुक्ति-मुक्ति तव-सेवकपाता।। जय भगवती भागवत-माता।।४।।
सद्गति-सत्संगति-मति, दैनी, ज्ञान-भक्ति-सत्कर्म त्रिवेनी।
अमर मोक्षदा-स्वर्ग नसैनी, अमर-उभय लौकिक-तुम-माता।। जय भगवती भागवत-माता।।५।।

५) श्रीमद् भागवत की आरती

जय भागवत पुरान जयतिजय, सकल सुमंद-दान जयतिजय।
ज्ञान, भक्ति, वैराग्य निरूपण, निगमागम, पुरान अभिभूषन।
भरन विवेक, हरन भव दूषन, आत्मा-रूप प्रमान जयति जय। जय भागवत पुरान जयति जय।।
जती बार जग हरि-अवतारू, तिनकै लीला कर यह सारू।
गाथा रस लहि ब्रह्म विचारू, उभय लोक फल मन जयति जय। जय भागवत पुरान जयति जय।।
चार पदारथ करतल करनी, भव-हरनी मुद-मंगल करनी।
सन्त-सरोरुह हृदय विहरनी, श्रीहरि-गाथा निधान जयति जय। जय भागवत पुरान जयति जय।।
त्रिभुवन पूज्य हीय हुलसावन, जय जिय हरण, भक्त-मन भावन।
हरि-पद प्रीति-प्रतीति बढ़ावन, जनविनती हित प्रान जयति जय। जय भागवत पुरान जयति जय।।

*** हर गरुर मिटता है, हर किसी को जाना है, फिर नशें में डूबा क्यों आज ये जमाना है।**
कृष्ण की कहानी हो चाहे कंस का फसाना है, कितना भी उडे इन्सान, जमीन पर तो उसे आना है।।
*** तकदीर से कभी लडा नहीं जाता, किस्मत पर कभी रोया नहीं जाता,**
भले ही हो सारी दुनिया खिलाफ, दामन उम्मीद का छोडा नहीं जाता,
होती रहे भले ही दु:खों की बरसात, जीना किसी भी हाल में छोडा नहीं जाता।

श्री गणेश

श्री गणपति वन्दना

सिद्धि विनायक गणपति हे, सर्व ऋद्धि सिद्धि दाता।
आपकी कृपा के बिना देव, कोई काज न पूर्णता पाता।।
आपके चरण में सीस झुका, कार्य यह था आरम्भ किया।
सम्पन्न हुआ निर्विघ्न यह, आपने ही कीनी कृपा।।
प्रभु शंकर के सुत हैं आप, वरदान उन्होंने ही दिया।
सब देवों के पूजन से, पूर्व हो पूजन आपका।।
आपका पूजन किये बिना, नहीं पूजन सफल कोई होए।
श्री भोले नाथ ने स्वयं ही, विधान हैं ऐसे कर दिये।।
श्री वेदव्यास का कथन सभी, आपने लेखनी बद्ध किया।
अति विस्तृत महाभारत और, श्रीमद्भागवत इतिहास लिखा।।
श्री व्यासदेव के वचनों को, कौन लेखनी करती बधित?
निज दन्त को ही कर में लेकर, प्रयोग किया लेखनीवत्।।
एकदन्त दयावन्त, नाम तभी से है पाया।
मैंने भी अपने जीवन में, इस दया का दर्शन है पाया।।
हे गौरी नन्दन गणपति, क्या चरण चढ़ाऊँ आपके?
नहीं पास मेरे कुछ भी प्रभु, जो चरण में लाऊँ आपके।।
आपका कृपा प्रसाद पा, बस केवल सीस निवा सकूँ।
तन मन बुद्धि का वाद्य यन्त्र, यह आपके हाथों ही सौंपू।।
अज्ञान आवरण मम दूर करें, हृदय में ज्ञान प्रकाश हो।
आपकी कृपा से करुणामय, आत्मज्ञान यह सम्भव हो।।

हिंदू धर्म में किसी भी शुभ कार्य को आरंभ करने से पूर्व गणेशजी की पूजा करना आवश्यक माना गया है। क्योंकि उन्हें विघ्नहर्ता व रिद्धि-सिद्धि का स्वामी कहा जाता है। इनके स्मरण, ध्यान, जप, आराधना से कामनाओं की पूर्ति होती है व विघ्नों का नाश होता है, वे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले बुद्धि के अधिष्ठाता और साक्षात् प्रणव रूप हैं।

ऋषियों ने गणपति को प्रधान व प्रथम पूज्य देवता माना है। विवाह का प्रसंग हो या लक्ष्मी पूजन का, शिलान्यास हो या कुंभ, मंदिर में भगवान की प्राणप्रतिष्ठा भी करनी हो तो प्रथम पूजन गणपति का ही होता है। गणपति की मूर्ति न हो तो सुपारी का गणपति बनाकर पूजन किया जाता है। श्री गणेशाय नम: इसी उच्चारण के साथ हिन्दू धर्म का कोई भी धार्मिक कार्य प्रारंभ होता है। हिंदू धर्म में तैंतीस कोटि देवता हैं किन्तु प्रत्येक देवता की पूजा में अग्रस्थान श्रीगणेश का ही है।

श्रीगणेश साधारण देवता नहीं है। वह साक्षात अनंत कोटि ब्रह्माण्डनायक परात्पर ब्रह्म हैं। हम भारतीय सनातन धर्मी हिन्दुओं के तो वे प्राणाधार ही हैं। भगवान राम का जब विवाह हुआ तो उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे श्रीगणेश जी की पूजा

की। श्री गणेश का स्मरण-पूजन करने से समस्त विघ्न, बाधाएं तत्क्षण दूर हो जाती हैं। वह करुणा के सिंधु है।

गणेश चतुर्थी की कथा- एक बार कैलाश में पार्वती स्नान कर रही थीं। अचानक शिवजी बाहर से आ गए, उन्हें देखकर पार्वती लजा गई। पार्वती ने अपनी सखियों से सलाह कर अपना स्वयं का द्वारपाल गण बनाने का निश्चय किया। उन्होंने अपने अंग राग से मैल उतारकर एक पुतला बनाकर फिर शिव की प्रार्थना कर उसमें प्राण संचार किया और उसे गण बनाकर द्वार पर पहरेदार बना दिया। हाथ में एक छड़ी दे कर कहा बेटे। तू किसी को भी मेरी आज्ञा के बिना अंदर मत आने देना। इतने में शंकर भगवान अपनी लीला करने हेतु द्वार पर आ गए। पार्वती के इस गण ने उनको रोक दिया।

शिवजी ने अपने गणों को बुलाकर उसे हटाने को कहा। शिव गणों के कहने पर बालक हटा नहीं, उनमें और गणों में आपस में युद्ध होने लगा। युद्ध में देवगण भी आए और सभी परास्त हो गए। बाद में स्वयं शिव ने अपने त्रिशूल से बालक का मस्तक काट डाला। इस पर पार्वती रोने लगीं। वह रुष्ट भी हो गई। पार्वती ने कोप करके त्रिलोक में रौद्र शक्तियों द्वारा उत्पात मचाया। देव-ऋषि-मुनि सभी भयभीत हो गए। तब सभी देवगण शंकर जी के पास गए। उन्होंने भी पार्वती जी को मनाया तो पार्वती बोलीं पहले मेरे पुत्र को जीवित करो। इस पर भगवान शंकर ने कहा- उत्तर दिशा की ओर चलने पर जो जीव प्रथम मिले उसी का सिर काटकर इस बालक के धड़ से जोड़ दो। तत्पश्चात् देवता उत्तर दिशा की ओर चले। वहां मार्ग में एक हथिनी अपने पुत्र की तरफ पीठ करके सो रही थी। उसका पुत्र हाथी का बच्चा (गज) एक दांत वाला था। देवताओं ने उस हाथी के बच्चे का मस्तष्क शिवजी को लाकर दे दिया। तत्पश्चात् शिवजी द्वारा चैतन्य शक्ति प्राप्त होते ही बालक पुन: जीवित हो गया तब उस सुन्दर बालक का नाम विनायक से गजानन हुआ।

पार्वती-पुत्र को जीवित देखकर खुश हो गई। पुत्र प्राप्ति की प्रसन्नता से वहां आनन्द उत्सव मनाया गया जो दस दिन तक चलता रहा। महादेव ने विघ्ननाशक होने का वर दिया। भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी से चतुर्दशी तक दस दिन जो कोई तेरी जयन्ती का उत्सव मनायेगा, वह परम सुखी होगा।

मंदर पर्वत पर भगवती गौरी (पार्वती) स्नान करने के विचार से शुद्धिशाला में गईं। सुंदरी मालिनी सुगंध युक्त मुलायम उबटन लेकर देवी के सोने जैसे कांतियुक्त शरीर में लगाने लगी। उबटन लगाते समय पसीने से मिला उबटन का मैल देखकर पार्वतीजी अपने मन में विचार करने लगीं- दूख के इस पसीने में क्या गुण है। इसी बीच मालिनी स्नान की तैयारी के लिए पहले स्नानगृह में गई। उसके चले जाने पर शैलपुत्री ने उस मैल से गजवदन को बनाया। चार भुजा वाले, विशाल वक्ष, सुंदर लक्षणों से युक्त पुरुष को बनाकर उन्होंने भूमि पर रख दिया। इसके बाद वे पवित्र आसन बैठकर स्नान करने लगीं। स्नान के पश्चात् पार्वतीजी ने भगवान शंकर की अर्चना की।

कुछ समय के पश्चात् भगवान शंकर ने भी उसी आसन पर बैठकर स्नान किया। उसी आसन के नीचे मैल से बनाया हुआ वह पुरुष पड़ा था। उमा के स्वेद एवं जल तथा भस्म से युक्त शंकर के स्वेद का सम्मिश्रण होने से वह उत्तम शुंड से फुत्कार करते हुए उठा। उसे अपना पुत्र जानकर भगवान शंकर प्रसन्न हो गए।

स्नान करने के बाद शिवजी ने देवताओं तथा पितरों की अर्चना की। इसके बाद भगवान शंकर उमाजी के पास गए और हँसते हुए बोले- शैलजे। तुम अपने गुणवान पुत्र को देखो। पार्वती ने भी यह आश्चर्य देखा कि उनके शरीर के मैल से अलौकिक सुंदर हाथी के मुखवाला पुरुष हो गया है। पार्वती ने प्रसन्नतापूर्वक उस पुत्र का आलिंगन किया। पुत्र के सिर को सूंघकर शिव ने पार्वती से कहा- देवि। तुम्हारा यह पुत्र बिना नायक के उत्पन्न हुआ है, अत: इसका नाम विनायक

होगा। यह देवादिकों के सहस्त्रों विघ्नों का हरण करेगा।

गणपति मंदिर में गणेशोत्सव पूर्ण उत्साह से मनाया जाता है। गणपति आगमन यानी चतुर्थी को हजारों भक्त भगवान गणेश के दर्शन करने आते हैं। इसके अलावा संकष्टी एवं अंगारिका चतुर्थी को मंदिर में भी भारी भीड़ होती है। गणेशोत्सव के दौरान यहां २ से ४ किलोमीटर तक लम्बी कतारें देखी जाती है। प्रथमेश के दर्शन के लिए अपार भीड़ होती है। गणेशोत्सव के दौरान सुरक्षा व्यवस्था कड़ी कर दी जाती है। आज भी लोगों में टिटवाला के गणपति के प्रति वही आस्था एवं विश्वास नजर आता है जो कण्व मुनि के काल में था।

हिंदू धर्म में तैंतीस करोड़ देवता हैं। वे सभी भक्तों के निजी देवता हैं। लोग उनकी पूजा, आराधना और साधना अपनी शक्ति और समृद्धि के लिए करते हैं। लेकिन गणेश की पूजा व्यक्तिगत उत्थान के लिए नहीं की जाती, वह हमेशा परिवार और समाज के लिए की जाती है। वे व्यक्ति के नहीं, परिवार के देवता हैं। वे ऐसा वरदान नहीं देते, जो सिर्फ एक व्यक्ति के काम आए। वे ऐसी समृद्धि देते हैं, जो पूरे परिवार के लिए हो।

हिंदू धर्म के ज्यादातर देवता भक्त की कठिन तपस्या के बाद ही पसीजते हैं। उन्हें प्रसन्न करने और बुलाने के लिए अलग से अनुष्ठान करना होता है। लेकिन गणेश की पूजा के नाम पर सिर्फ उनका आह्वान भी पर्याप्त होता है। इतनी सी आराधना से वे आ जाते हैं और पूरे कार्यक्रम को निर्विघ्न समापन तक ले जाते हैं। गणेश को देव समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हैं। समस्त मांगलिक कार्यों में सर्वप्रथम भगवान गणेश की पूजा का प्रावधान है। वे सबका हित चाहते हैं। वे सब का कल्याण करते हैं। वे ज्ञान शक्ति और कर्म शक्ति दोनों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इसके बावजूद सिर्फ गणेश के नाम पर बने मंदिर कम देखने को मिलते हैं। ज्यादातर मंदिरों में उनकी मूर्ति शिव परिवार के साथ ही रहती है। सिर्फ गणेश के लिए कोई अनुष्ठान अलग से नहीं किया जाता। यज्ञ दूसरों के लिए होता है, उसके पहले विपत्तियों से रक्षा के लिए हम गणेशजी का आह्वान करते हैं। इसके बाद अन्य देवताओं की तरफ ध्यान लगा लेते हैं। महाराष्ट्र का गणेश उत्सव यज्ञ की तरह नहीं, एक सामाजिक त्यौंहार की तरह मनाया जाता है।

गणेश को उनके हाथी के सिर वाले रूप में ही पूजा जाता है। उनका यह रूप हमें निराकार ब्रह्म की ओर ले जाने के लिए हैं। वे उस परम चेतना के प्रतीक हैं, जो सर्वव्यापी है। गणेश वह शक्ति हैं, जिस कारण इस ब्रह्माण्ड का सृजन हुआ, जिससे सब कुछ प्रकट हुआ और जिसमें सब कुछ विलीन हो जाना है।

जब हम भगवान गणेश की पूजा करते हैं तो हमारे भीतर भी यही हाथी वाले गुण आ जाते हैं। गणेश का बड़ा पेट उदारता और पूर्ण स्वीकृति का प्रतीक है। गणेश का इस मुद्रा में उठा हुआ हाथ, संरक्षण का प्रतीक है- उनका दूसरा हाथ नीचे की तरफ है और हथेली बाहर की ओर है- जो कहती है कि वह निरंतर हमें दे रहे हैं। वह इस तथ्य की तरफ भी इंगित करती है कि एक दिन हम सभी को इस पृथ्वी में समा जाना है।

गणेश जी का एक ही दंत है जो कि एकाग्रचित होने का प्रतीक है। वे अपने हाथों में अंकुश लिए हुए हैं, जो सजगता का प्रतीक है और पाश नियंत्रण का प्रतीक है। हाथी के सिर वाले गणेश की सवारी इतने छोटे से चूहे पर संगत सी लगती है। यहां भी एक प्रतीक है जो बहुत गहरा है। जो बंधन बांध कर रखते हैं, उसे चूहा कुतर कर समाप्त कर देता है। चूहा उस मंत्र की भांति है जो धीरे-धीरे अज्ञान की एक-एक परत को काट देता है, और उस परम ज्ञान की ओर ले जाता है जिसका प्रतिनिधित्व गणेश करते हैं।

HHH (८) HHH

हमारे प्राचीन ऋषि बहुत बुद्धिमान थे। उन्होंने दिव्यता को शब्दों के बजाय प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त किया, क्योंकि समय के साथ शब्द बदल जाते हैं, परंतु प्रतीक समयातीत होते हैं। इन गहरे प्रतीकों को हम भी मन में रखें, क्योंकि गणेश हमारे भीतर ही हैं। गणेश उत्सव मनाते समय हमें इसी ज्ञान को जगाना चाहिए।

जब हम गणपति के चित्र को अनुकूल रीति से देखते हैं। निम्नलिखित भाव स्पष्ट रूप से हमें आते हैं। हाथी का सिर- मनुष्य को जितने पशु पक्षियां का ज्ञान है उनमें से हाथी (गज) ऐसा जीव है, जिसे बुद्धिमान माना जाता है। वो अपने महावत को भलीभांति जानता है और उसे परख सकता है। जो परमात्मा के प्रति निश्चयवान एवं श्रद्धावान भी हो उसे सिर जो कि बुद्धि का स्थान है, को भी हाथी ही के सिर के रूप में चित्रित करना युक्ति युक्त है। इसी प्रकार ज्ञानवान व्यक्ति भी अपनी स्थूल आदतों को भी जड़ों से उखाड़कर फेंकने में समर्थ है तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को भी धारण करने के लिए और दूसरों को सम्मान, स्नेह तथा आदर देने में कुशल होता है। अपने पुराने संस्कारों को मूल से पकड़कर निकाल फेंकने के लिए भी हाथी अथवा उसकी सूंड जैसी आध्यात्मिक शक्ति चाहिए। बड़ा मस्तक होने से सोच भी बड़ी होती है।

गजकर्ण- जब हम किसी को आवश्यक एवं महत्वपूर्ण बात बताते हैं कि कान खोलकर सुनो। गुरु भी जब अपने शिष्य को मंत्र देता है तो उसको कान ही में उच्चारण करता है। भगवान ने जब गीता ज्ञान दिया तो अर्जुन ने कानों के द्वारा ही उसे सुना अत: बड़े-बड़े कान श्रवण के प्रतीक हैं। इससे स्पष्ट और काफी मात्रा में सुना जाता है।

हाथी की आंखे- गणपति की आंखों को हाथी जैसी आंखों के समान चित्रित करने के पीछे राज है। हाथी के नेत्रों की ये विशेषता है कि उसे छोटी चीज भी बड़ी दिखाई देती है। वह एकाग्रता और सूक्ष्मदर्शन का प्रतीक है। गजवदन- इस प्रकार बड़ा मुख अच्छे कर्मों के कारण निर्भयता का और आत्मिक शक्ति के कारण सामर्थ्य (दुर्बलता के अभाव) का प्रतीक है। यह गणेशजी की महाकाय साधना का पुरस्कार है। एकदंत- हाथी के दो दांत बाहर निकले हुए होते हैं। जो दिखाने के होते हैं। बल्कि यह एक नीति है। नीति निपुणता भी कुशल व्यक्ति का एक गुण है। नीति से कुटनीति नहीं है। मन को कुटिलता नहीं बल्कि सुज्ञ, दूरदर्शिता और चतुराई है। इसका अर्थ है कि अच्छा संग्रह करो और बुरा फेंक दो। महोदर- आम बोलचाल में जब कोई व्यक्ति अच्छी बुरी सब बातों को अपने में समा लेता है, तब उसके लिए कहा जाता है कि उसका तो बड़ा पेट है। एक हाथ में कुल्हाड़ा- ज्ञानवान व्यक्ति मोह-ममता के बंधन को काटने और पुराने संस्कारों का उन्मुलोद्दन करने की क्षमता होती है। आसुरी संस्कारों को मार मिटाने के लिए यह ज्ञान रूपी कुल्हाड़ा जिसके पास है, वह आध्यात्मिक योद्धा ही ज्ञानी है। फरसा से मोह माया के बंधन काटे जाते हैं।

दूसरे हाथ में बंधन (रस्सी)- गणपति के दूसरे हाथ में बंधन दियाखा जाता है। जो इस बात का प्रतीक है कि दैही बंधनों को तो ज्ञानरूपी कुल्हाड़ों से काटना है। परंतु स्वयं को दिव्य नियमों रूपी बंधनों में बांधना भी है। यह शुभ बंधन है। अपने लक्ष्य को सर्वोच्च स्थिति में हासिल करना ही इसका अर्थ है। एक हाथ में मोदक- स्वयं भी खुश रहता है और दूसरों को भी खुशी बांटता है। इसके साथ लड्डू संगठन का भी प्रतीक है। एक हाथ की वरदमुद्रा- वह दूसरों को भी निर्भयता और शांति का वरदान देने के सामर्थ्यवाला हो जाता है। गणपति का आसन- यह इस बात का सूचक है कि यह व्यक्ति इस बात को मानता है कि संसार बना हुआ है (अर्थात यह स्वप्न मात्र नहीं है) और कि हमें यहां रहते हुए यहां कि समस्याओं को हल करना है न कि इससे आंख मूंद लेनी है। वाहन मूषक- गणपति का वाहन है। गणपति विवेकवान एवं तर्क संपन्न हैं, परंतु वह तर्क को कुतर-कुतर करने के लिए स्वच्छन्द छोड़ नहीं देते। उनका वाहन चूहा विवेक को अविवेक पर विजय

का सूचक है। रिद्धि-सिद्धि- गणेश जी के दोनों ओर रिद्धि और सिद्धि नामक उनकी दो पत्नियां दिखाई जातीं हैं ये भी क्रमश: ज्ञान और उद्धार होनेवाली सफलता की प्रतीक हैं। जो बुद्धिमान होगा अर्थात् सोच समझकर कार्य करेगा, दूरदर्शिता का प्रयोग करेगा उसको सिद्धि अथवा सफलता तो होगी ही। गणपति का छोटा मुंह इस बात का निर्देष करता है कि कम बोलना चाहिए। गणपती का एक हाथ आशीर्वाद की मुद्रा प्रदान करता है। गणेश जी का महोदर इस बात का प्रतीक है कि अच्छा और बुरा शांतिपूर्वक पचा जाओ। गणपति का प्रसाद इस बात को इंगित करता है कि पूरा संसार आपके कदमों में है। एकदंत इस बात का प्रतीक है कि अच्छे को अपने पास रखो और बुरे को फेंक दो। गणेश जी की सूंड इस बात का संकेत देती है कि ऊंची क्षमता रखो और सबको स्वीकारो।

गणेशोत्सव यानी आस्था, विश्वास एवं भक्ति के संगम का उत्सव। पौराणिक कथाओं के अनुसार गणेश के स्मरण एवं पूजन से सभी सफलताएं प्राप्त हो जाती हैं, इसलिए सबसे पहले गणेश की पूजा होती है। यही कारण है कि इन्हें गणों का स्वामी, विघ्नहर्ता कहा जाता है।

गणेश के अनेक स्वरूप हैं। उनकी विशेषताएं भी अलग-अलग हैं। इन्हीं स्वरूपों की प्रतिमाएं विभिन्न मंदिरों में स्थापित हैं और उनके बारे में अनेक कथाएं प्रचलित हैं। ऐसा ही एक अद्‌भुत मंदिर है टिटवाला में। महाराष्ट्र में गणेशोत्सव पर भक्ति का सैलाब उमड़ता है। भाद्रपद की कृष्ण चतुर्थी को मंडपों में गणपति बप्पा मोरिया की हर्ष ध्वनि के बीच गणेश प्रतिष्ठित किए जाते हैं और ११ दिनों तक भक्ति का सागर उमड़ता रहता है। बावजूद मंदिरों के प्रति लोगों में आस्था कम नहीं होती है। लोग गणेश मंदिरों में जाकर पूजा अर्चना करते हैं।

टिटवाला के गणपति मंदिर को महाभारत काल का माना जाता है। इस मंदिर के बारे में पौराणिक कथा भी प्रचलित है। बताया जाता है कि यहां कण्व नामक ऋषि का आश्रम था। कण्व के साथ उनकी दत्तक पुत्री शकुंतला भी रहती थी। एक समय राजा दुष्यंत कण्व के आश्रम में आए और शकुंतला से उनका प्यार हो गया। शकुंतला-दुष्यंत का प्यार विवाह में बदल गया। यानी दोनों का गंधर्व विवाह टिटवाला में ही हुआ था। विवाह के बाद दुष्यंत हस्तिनापुर चले गऐ और उनके पुन: आगमन का कोई संकेत नहीं मिला। शकुंतला का मन विचलित होने लगा। तदुपरांत कण्व मुनि ने शकुंतला को एक गणपति प्रतिमा दी और उसकी नियमित पूजा करने को कहा। शकुंतला गणेश की स्तुति में ध्यानमग्न हो गई। परिणामस्वरूप दुष्यंत वापस लौट के आए। माना जाता है कि शकुंतला ने जिस प्रतिमा की पूजा की थी वही प्रतिमा टिटवाला में प्रतिष्ठापित की गई है। टिटवाला के गणपति के बारे में अनेक किवंदतियां प्रचलित हैं। शकुंतला-दुष्यन्त की शादी के बाद लोग इन्हें वर विनायक भी कहते हैं। भक्तों की हर मुराद पूरी होती है यहां आने पर। आम धारणा है कि शादी एवं पुत्र की प्राप्ति के लिए लोगों की कामनाएं पूरी होती है।

भादौ (भाद्रपद) माह की चतुर्थी यानी गणेश चतुर्थी। इस दिन से १० दिवसीय गणेशोत्सव का प्रारंभ होता है। भगवान मंगलमूर्ति बुद्धि के देवता तो हैं ही, साथ ही उन्हें सौंदर्य का देवता भी कहा जाता है। गणेशजी के बारे में यह बात निर्विवाद रूप से कही जाती है कि आप गणेशजी को मन में स्मरण कर कहीं कैसी भी आड़ी-तिरछी रेखाएं खींच दें तो उनका ही चित्र आकार लेने लगता है और उनको किसी भी कोण से देखिए- वे सुंदर ही लगते हैं। उनकी मूरत है ही मनमोहक।

गणेशजी को कर्ता भी कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि किसी भी मंगल कार्य का आरंभ उनको प्रथम पूजकर किया जाता है, क्योंकि वे सुखकर्ता हैं और दुखहर्ता भी हैं। श्री गणपत्यथर्वशीर्षम् में यहां तक बताया गया है कि भगवान विष्णु

और शंकर तक उनका पूजन कर सम्मान करते हैं। जब कभी देवलोक में संकट के बादल छाने लगते, तब देवताओं के राजा इन्द्र तक ने गणेशजी की वंदना कर उन्हें संकटमोचन बनने की विनती की, क्योंकि वे संकटों में रक्षा करनेवाले गणनायक देवता हैं। उनकी निरंतर आराधना करने पर वे भक्त की सारी इच्छाएं (मनोरथ) पूरी करते हैं और भगवान शंकर की ही तरह वे भी शीघ्र ही प्रसन्न होकर मनोकामनाएं पूरी करते हैं। हर माह की चतुर्थी को गणपति स्त्रोत (स्तोत्र) या श्री गणपत्यथर्वशीर्ष का पाठ करनेवालों की हर मनोकामना पूरी होती है। श्री गणेशजी केवल बुद्धि के दाता ही नहीं हैं, बल्कि वे शक्तिस्वरूप भी हैं। उन्होंने कई क्रूर राक्षसों का वध कर अपनी वीरता का परिचय भी दिया है।

गणेशजी समस्त कला आराधकों के प्रिय देवता हैं इसीलिए हर एक कलाकार के मन में गणेशजी का चित्र और प्रतिमा (मूर्ति) बनाने की उत्सुकता बहुत होती है, फिर चाहे वे झूले पर लेटे हुए गणपति हों, नटेश्वर रूप हो या कोई भी रूप। गणेशजी हर रंग-रूप में दर्शनीय ही लगते हैं।

गणेश चतुर्थी से अनंत चौदस तक गणेशोत्सव के १० दिन यानी समूची भरत भूमि का हर्षोत्सव। गणेशजी की दस दिनों बाद बिदाई भी बहुत धूमधाम के साथ होती है। गणपति बप्पा मोरया, अगले बरस तू जल्दी आ की हर्षगूंज के साथ वे हमारे घरों में आनंदोत्सव का वातावरण बना देते हैं।

भारत में काफी बड़ी संख्या में लोग गणपति की पूजा, अर्चना व साधना करते हैं। अन्य बहुत से लोग जिनके वे इष्ट नहीं है, मुहूर्त अथवा अन्य उत्सवों एवं अन्य शुभ अवसरों पर सभी धार्मिक आयोजनों का प्रारंभ गणपति की ही स्तुति से करते हैं। लाखों करोड़ों व्यापारी बही खातों के प्रारंभ में अथवा अपने व्यापारी गद्दी के निकट स्वस्तिक का चिन्ह अंकित करते हैं, जिसे वे गणपति का सूचक, शुभ तथा लाभप्रद मानते हैं। गणपति के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए उनसे संबंधित जो प्रतीक हैं उनकी व्याख्या करना आवश्यक है। भारतीय साधना एवं उपासना प्रणाली में परमपिता परमात्मा के जो विभिन्न गुण हैं, उनकी भारतीय मूर्तिकारों तथा चित्रकारों ने विभिन्न प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त किया है।

*** चांद सूरज के जो है खुद मोहताज, भीख न मांगों उनसे उजालों की,**
बंद आंखों से भी ऐसे करो काम, कि आंख खुल जाये आंखवालों की।
*** जिन्दगी की राह में आगे चलते जाना, हर पल मुडके ना देख, बीते हुये पल।**
जो नहीं था तेरा तुझे नहीं मिला जो मिल गया उसके साथ गुजार अपना हर पल।।
*** आज ही क्या पुराने जमाने से यह हो रहा है, भाग्य को बोझ आदमी ढो रहा है,**
बस इसे ही जिन्दगी का खेल कह लो, आदमी कुछ पा रहा, कुछ खो रहा है।
*** आदमी और कौवा दोनो समझदार होते है, एक कौवा मुसीबत में हो तो बाकी सब उसे उबार लेते है,**
और अगर एक आदमी मुसीबत में हो तो बाकी के लोग उसके कपड़े उतार लेते हैं।
*** कण कण में तुझे ढुंढे फिरे है तेरे इन्सान, फिर भी न तेरी आंख खुले क्या मेरे भगवान,**
मिट जायेगा तेरा यह सब नाम और निशान, हर बार अगर जीत गया धरती पर बेइमान।।
*** जीवन का सच तो है कृष्ण का सहारा, तेरी मेरी जिन्दगी का महाभारत एक बहता हुआ पानी**
संसार सागर में सबकी कहानी, लिखी हुई कुछ और कुछ है जुबानी।

प्रार्थना

प्रार्थना धर्म का निचोड है। प्रार्थना साधना नहीं है। वह आत्मा की आवाज है। प्रार्थना दैनिक दुर्बलताओं की स्वीकृति है, वह हृदय के भीतर चलनेवाले अनुसन्धानों का नाम है।

जगत में समस्त प्राणी समान हैं। यहां पर घटनेवाली समस्त गतिविधियों में प्राकृतिक दिव्यता व्याप्त है। संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे चमत्कार कहें। प्रार्थना में ऐसी अद्भुत शक्ति है जिसे चमत्कार स्तर का तो कहा जा सकता है, पर चमत्कार नहीं। प्रार्थना की शक्ति शुद्ध अंत:करण की शक्ति है। जिस हृदय में शुद्धता होगी वहां की हर पुकार प्रार्थना बन जाएगी। वास्तव में केवल शब्द को दोहराते भर रहना प्रार्थना नहीं है। वह अंत:करण की भाव संवेदनाओं से सिक्त होनी चाहिये। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनुसार प्रार्थना अंतराल की निर्मिति नहीं, दिव्य अंत:करण का सृजन है। जहां दिव्यता होगी वहां का हर शब्द प्रार्थनामय होगा। अत: व्यक्ति को अपना अंतस उच्च स्तरीय बनाकर अंत:करण की सामर्थ्य विकसित करनी चाहिये। प्रार्थना नि:शब्द भी होती है। नि:शब्दता की स्थिति अभ्यास से संभव होती है। यह अंत:करण की पुकार पूर्ण सरलता और अकृत्रिमता में प्रकट हो तो दिव्यता का यही भाव प्रार्थना बन जाता है। भक्त और भगवान की जोड़ी, प्रार्थी और प्रार्थना का युग्म है। प्रार्थना जब प्रार्थी के विह्वल अंत:करण से निकलती है तो यह पूरी हुए बिना नहीं रहती। ऐसे अनेक अवसरों पर देखा जाता है कि आदमी बार-बार इच्छा करता है और वह पूरी हो जाती है। वह प्रार्थना नहीं संकल्प है। संकल्प में भी इतनी शक्ति होती है कि वह अभीष्ट की पूर्ति कर दे। संकल्प और प्रार्थना, दो भिन्न चीजें हैं। संकल्प भी प्रार्थना के समान अंतस् का उपार्जन है। दोनों में मौलिक अंतर यह है कि संकल्प आत्मा का बल है, जबकि प्रार्थना उसकी पुकार। इस प्रकार दोनों ही विशेषताएं शुद्ध आत्मा की हैं। पूर्ण शुद्ध आत्मा ही पूर्ण सिद्ध होती है और संकल्प के रूप में, प्रार्थना के रूप में ऐसे चमत्कार दिखाती है जो साधारण स्थिति और अवस्था में दिव्यता को, जो आत्मा का स्वाभाविक गुण है उसे प्रकट करे। ऐसी स्थिति में उसकी साधारण सी प्रार्थना भी संकल्प बनकर उभरेगी और व्यक्ति को असाधारण बना देगी। अत: हम निष्कपट बनें तो हम हदय से उस शक्ति को उत्पन्न करने में सक्षम व सफल होते हैं जिसे प्रार्थना कहते हैं।

बिना भावना के उद्देश्य प्राप्ति संभव नहीं। अत: हमारी भावना भी शब्दों के अनुरूप हो। जो बोलें वही चाहें। यदि न बोलें तो भी कोई बात नहीं, क्योंकि भावना से ही उद्देश्य पूर्ति संभव है। अपने मन के भावों को प्रार्थना के अनुरूप रखें। यदि हमें भावना का पोषण करना आ गया तो प्रार्थना के शब्दों की भी आवश्यकता नहीं। यही प्रार्थना की सफलता का मूल है।

कई बार हम नहीं जानते कि क्या प्रार्थना करें। हम शब्दों के जाल में उलझ जाते हैं। भाव शब्दों के जाल में उलझ जाते हैं। भाव शब्दों का साथ नहीं दे पाते। भाव और शब्दों में साम्य बना रहे, इसके लिए सरल से सरल प्रार्थना का चयन करना अनिवार्य हैं। सरल प्रार्थना और सरल भाव मन में लाने के लिए आदर्श और उत्तम प्रार्थना क्या होगी?

यही नहीं, प्रार्थना रोगियों और दु:खी-परेशान लोगों के हृदय में भी नयी आशा का संचार करती है और उनकी जीवनधारा में सकारात्मक बदलाव लाने में भी सक्षम होती है। मुक्ति हेतु प्रार्थना करते हैं वे स्वयं अपनी परेशानियों से उबर जाते हैं। वस्तुत: प्रार्थना समस्याओं के समाधान के लिए उपयुक्त क्षमता के उपयोग द्वारा आत्मविश्वास विकसित करने में सहायक होती है। ईश्वर हमारे लिए जैसा चाहते हैं उसे हमें सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। नि:संदेह वह किसी न किसी रूप में हमारे लिए हितकर ही होगा।

HHH (१२) HHH

ईश्वर से तादात्म्य के दो रास्ते हैं- प्रार्थना और पूजा। प्रार्थना और पूजा दोनों ही समर्पण भाव से किए जानेवाले ऐसे विनम्रतापूर्ण कार्य हैं जो हमें ईश्वर के निकट ले जाते हैं और ये ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली माध्यम हैं, परंतु बुरी नीयत से या छल-कपटपूर्ण प्रार्थना का प्रभाव निश्चय ही अपेक्षित नहीं होगा। यह कार्य निर्विवाद रूप से दुभार्ग्यशाली है। यह प्रार्थना नहीं अपितु औरों का अहित चाहने का पापपूर्ण कार्य है। प्रार्थना के मामले में स्वविवेक का उपयोग किया ही जाना चाहिए। सर्वशक्तिमान से अनुरोध या निवेदन ही किया जा सकता है, उससे अधिकार पूर्वक मांग नहीं की जा सकती। वह हमारा खरीदा हुआ या वेतनभोगी सेवक नहीं है जो जी मालिक कहकर आदेशानुसार कार्य कर देगा। उसके और हमारे बीच इस मामले में किसी प्रकार का अनुबंध भी नहीं है। हम विनम्र प्रार्थना कर सकते हैं, शेष ईश्वराधीन। हम उस ईश्वर को पहचान नहीं पाते। प्रार्थना के उपरांत जब भी ईश्वर हमें जो कुछ देता है हमारे लिए चाहे जैसा भी हो, उसे हमें अपने लिए हितकर मानकर स्वीकार करना चाहिए।

हम जो भी प्रार्थना अपने इष्ट से करते हैं उसमें आस्था और विश्वास की भूमिका की स्वीकृति के बाद ईश्वर ने जो भी आपको दिया उसके लिए आभार व्यक्त करना नहीं भूलना चाहिए। ईश्वर की दिव्य शक्ति हम सभी के भीतर उपस्थित रहती है। तमाम मानवीय कष्ट-परेशानियों को ईश्वर से प्रार्थना और उसकी कृपा पाकर ही कम या समाप्त किया जा सकता है। परंतु अपनी इच्छा-अभिलाषाओं को ईश्वर की इच्छा से बड़ा नहीं मानना चाहिए। वह जो कुछ दे, उसे ईश्वरीय इच्छा और अपने लिए हितकर मानकर विनम्रता से स्वीकार करना चाहिए।

प्रार्थना परेशान व्यक्ति को आंतरिक रूप से आत्मविश्वास उत्पन्न कर शांति प्रदान करती है जिससे समस्या समाधान में पर्याप्त सहायता मिलती है। यह सर्वविदित है कि ईश्वर उसी की सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करने को तत्पर रहता हो। आस्था, विश्वास और गम्भीरता के अभाव में प्रार्थना निष्फल हो सकती है।

वैज्ञानिक दृष्टि से भी प्रार्थना का प्रभाव स्वीकार किया गया है। प्रार्थना न करनेवालों की अपेक्षा प्रार्थना करनेवाले लोगों ने राहत का अनुभव किया। प्रार्थना का प्रभाव मनुष्यों पर ही नहीं चूहों, बिल्लियों तथा बैक्टीरिया, फंगी आदि पर भी पड़ता है। किसी अन्य के लिए प्रार्थना करने के मामलें में दूरी या धर्म कोई बाधा नहीं है। प्रार्थना का प्रभाव सार्वभौमिक और मानवीय है।

इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि सबसे परे एक ऐसी सक्षम शक्ति यानी ईश्वर है जो सर्वश्रेष्ठ है। वही सभी का पर्याप्त ध्यान रखता है। कोई शिक्षित हो या अशिक्षित, अमीर हो या गरीब, छोटा हो या बड़ा, उसकी विनम्रता और प्रेमपूर्वक की गयी प्रार्थना ईश्वर अवश्य स्वीकार कर उपयुक्त व्यवस्था करता है। निजी स्वार्थ भाव से ऊपर उठकर किसी अन्य के लिए दूर से की गयी प्रार्थना भी अपना प्रभाव दिखाती है। इसके बीच किसी व्यक्ति की धार्मिक प्रतिबद्धता या विश्वास आड़े नहीं आता। इस प्रकार प्रार्थना सर्वभौमिक और मानवीयता से परिपूर्ण होती हैं। प्रार्थनाओं का अतीत से भविष्य तक पर असर पड़ता है।

एकाग्रता प्रार्थना और संकल्प शक्ति को ऊर्जा प्रदान करती है। इसी से वास्तविक आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति सहज होती है। लक्ष्य को पाने का प्रयास इसी तरह सुगम होगा। यों एक इच्छा पूर्ण होती है तो वह दूसरी इच्छा या आवश्यकता को जन्म देती हैं। इच्छाओं का कहीं अंत नहीं होता। अपने इष्ट देव के प्रति ईमानदार रहेंगे तो वह आपका खुद पर्याप्त ध्यान रखेगा। आप जैसै हैं वह आपके विचारों के कारण ही है अत: अपने विचारों को निर्मल बनाए रखिए और अपने प्रत्येक विचार को ईश्वर के प्रति प्रार्थना बनाकर देखिए।

HHH (१३) HHH

ईश्वर से समर्पण और विश्वास के साथ सिर्फ प्रार्थना कीजिए और शेष उसी पर छोड़ दीजिए। प्रार्थना को मात्र आवश्यकता या इच्छापूर्ति का माध्यम न मानिए। प्रात: और सायंकालीन प्रार्थना को अपनी दिनचर्या में शामिल करें। मानसिक शांति तथा हृदय के लिए की गई प्रार्थना सकारात्मक भूमिका निभाती है। यह तन और मन दोनों के लिए सर्वश्रेष्ठ उपाय है। सामूहिक रूप से की गयी प्रार्थना को विशेष रूप से उपयोगी और प्रभावशाली माना जाता है। अकेली प्रार्थना अधूरी है। प्रार्थना के साथ प्रयत्न भी अनिवार्य है।

भगवान मेरी नैया

भगवान। मेरी नैया उस पार लगा देना। अब तक तो निभाया है आगे भी निभा लेना। भगवान.....
दल बल के साथ माया, घेरे जो मुझे आकर। तो देखते न रहना झट आ के बचा लेना। भगवान.....
सम्भव है झंझटों में मैं तुमको भूल जाऊँ। पर नाथ कहीं तुम भी मुझको न भुला देना। भगवान.....
तुम देव मैं पुजारी, तुम इष्ट मैं उपासक। यह बात अगर सच है सच करके दिखा देना। भगवान.....

धार्मिक दृष्टिकोण से भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में प्रार्थना का आज भी महत्व बरकरार है। आज भी यह माना जाता है कि प्रार्थना किए बिना ईश्वराधना अधूरी है परन्तु अब तमाम शोधों से ये भी स्पष्ट कर दिया है कि प्रार्थना का औषधीय महत्व भी है अर्थात् ये रोगों के निवारण में भी अचूक औषधि का काम करती है।

जर्नल आफ अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन (जामा) की एक रिपोर्ट में बताया गया है कि प्रार्थना से रोगियों की दशा में सुधार आता है। मिडा अमेरिका हार्ट इंस्टीट्यूट में हाल में भरती हुए कोरोनरी यूनिट के १००० से अधिक हृदयरोगियों पर यह अध्ययन किया गया। इनमें से ४८४ रोगियों को प्रार्थना करनेवाले दल को सौंपा गया। लगभग ५२९ रोगियों को सामान्य देखभाल करनेवाले दल को सौंपा गया था। प्रार्थना वाले दल को रोगियों का केवल नाम बताया गया था, जाति नहीं। वे चार सप्ताह तक उनके लिए प्रार्थना करने वाले थे प्रार्थना करनेवाले व्यक्तियों को उनके दृढ़ विश्वास के आधार पर चुना गया था। उपरोक्त जर्नल के मुताबिक अध्ययन में प्रार्थना वाले दल के रोगियों को कम समस्याओं का सामना करना पड़ा। उन्हें तेजी से अपने रोगों में लाभ भी मिला। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में शल्यक्रिया के एडीशनल प्रोफेसर डा. अनुराग श्रीवास्तव बताते हैं कि हर बार आपरेशन करने से पहले मैं हर संभव समस्या के लिए प्रार्थना करता हूं कि यह न हो। अक्सर इससे नतीजे अच्छे रहते हैं और शल्यक्रिया के बाद होनेवाली अधिकांश समस्याएं खड़ी नहीं होती। निदान चिकित्सा की विशेषज्ञ डा. अंजली मिना का कहना है कि अपने अनुभवों के आधार पर उन्हें विश्वास हो गया है कि यदि प्रार्थना पूर्ण विश्वास से की जाए तो प्रार्थना का सकारात्मक प्रभाव होता है। वे आगे कहती हैं कि मुझे नहीं पता कि प्रार्थना किस तरह कार्य करती है पर यदि आप इसमें ऊर्जा लगायें और ध्यान केंद्रित करें तो मदद मिलती है। अध्ययन में नतीजों के बारे में कोई यांत्रिक स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है लेकिन आध्यात्मिक गुरुओं के पास एक संभव स्पष्टीकरण है। आध्यात्मिक गुरु विकास मलकानी कहते हैं कि प्रार्थना दरअसल अपनी सकारात्मक ऊर्जा को बाहर भेजता है। इसे किसी की ओर विशेष रूप से केंद्रित किया जा सकता है। दिल्ली के चिन्मयानंद मिशन के प्रमुख स्वामी ज्योतिर्मयानंद भी ऐसा ही मानते हैं। प्रार्थनाओं और विचारों का संप्रेषण निश्चय ही संभव है। यह निर्भर इस पर होता है कि आपकी संप्रेषण शक्ति कितनी सशक्त है। पहले आपको अपने माध्यम को तैयार करना और तीव्र बनाना होगा। ऐसा हो जाएगा तो प्रार्थनाएं संप्रेषित भी की जा सकेंगी और वांछित रोगमुक्ति के वांछित परिणाम भी पाये जा सकेंगे।

ईश्वर से ध्यान, योग और समर्पण भावना के साथ की गई प्रार्थना मन के गहन अंधकार को दूर कर प्रकाश लाएगी। अच्छे काम यह सोचकर कीजिए कि इसके लिए प्रभु ने आपको चुना है।

एक कमरे में हजारों वर्षों से अंधेरा छाया हुआ है और एक दिन उसमें प्रकाश कर दिया जाए तो अचानक ही अंधेरा गायब हो जाएगा। ऐसा ही मन के साथ में होता है कि हम उसके अंदर से गलत विचारों को निकालकर बाहर नहीं फेंक पाते हैं जैसे की कमरे में छड़ी घूमाकर अंधकार को दूर कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में मन के विचारों पर दृढ़ता के साथ नियंत्रण किया जाना आवश्यक है।

मन में ईश्वर के अलौकिक प्रकाश की अलख जगाना जरूरी है। मन कहता है कि गलत काम करने में पाप है और ईश्वर हमें प्रत्येक क्षण देख रहा है। अगर हमसे गलती हुई तो ईश्वर हमसे नाराज हो जाएगा और हमें इसके लिए दंड भुगतना होगा क्योंकि हमारे सही और गलत कामों के बारे में फैसला करना प्रभु के हाथ में है। परंतु ईश्वर हमारे अपने हैं और हम उनकी संतान हैं फिर वह हमारे कामों को क्यों देखेंगे ? जितने भी कामों के बीच हमसे गलतियां होती हैं उनके लिए क्षमा भाव रखनेवाला सिर्फ ईश्वर है। ईश्वर से कभी नहीं डरना चाहिए और बेहिचक अपनी गलतियों को उसके सामने स्वीकार कर लेना चाहिए।

ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभु मैं पापी हूं और मुझसे यह गलती हुई है लेकिन जबसे मैंने प्रभु को जाना है। उसके बाद कोई गलत चीज मुझे अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती है कृपा कर मुझे क्षमा कीजिए। ईश्वर से सिर्फ अपनी भलाई की नहीं वरन् बुराई की भी बात भी कीजिए। जब आप गलत कामों को बुरा मानेंगे जब जाकर कहीं मन से बुराई दूर होगी। अगर आप अपनी मदद स्वयं नहीं करेंगे, तो एक दिन, यही आदतें स्थाई रूप धारण कर लेंगी। प्रत्येक इंसान में कमियां होती हैं और अगर हम उन कमजोरियों के लिए ईश्वर को दोषी माने तो यह उचित नहीं है क्योंकि आपने अपनी कल्पना में जो भ्रम पाल रखे हैं वे एक दिन जरूर टूटेंगे। ईश्वर के प्रति मन में सही धारणा रखने के लिए ईश्वर से अपनी गलतियों को क्षमा करने के प्रार्थना भाव के साथ नतमस्तक होना आवश्यक है।

प्रार्थना उसकी सफल है, जिसकी आत्मा शुद्ध है। निरभिमानिता के लिए अत्यंत प्रभावशाली माध्यम है। इस से मानव में अंतर्निहित ऊर्जा एवं योग्यता, क्षमता के बेहतर उपयोग से सर्वांगीण विकास होता है।

दुआये कबूल होती है। कुछ बाज लोगों को यह तजुर्बे भी हुये है कि दुआ कबूल नही हुई। अव्वल तो यह है कि कुछ दुआये ईश्वर फौरन कबूल कर लेता है। कुछ दुआओं के बदले ईश्वर आनेवाली मुसीबतों को टाल देता है।

दुआये व्यक्तित्व मे निखार लाती है। दुआओं से आदमी के बर्ताव पर अच्छा असर होता है। दुआओं से आदमी की पसन्द व नापसन्द के मायने बदलते है। दुआओं से आदमी की सोच निखरती है। दुआये आदमी को ईश्वर के करीब ले जाती है। दुआ मांगने से मुसीबतों से मुकाबला करने की ताकत हासिल होती है।

आप मेरे मन-मन्दिर में पधार जाइये। मेरे जीवन के समस्त दु:ख, दोष व पाप एक झटके में ही भाग जायेंगे, ऐसी मुझे पूर्ण श्रद्धा है।

मनुष्य का जीवन उसकी शारीरिक एवं प्राणिक सत्ता में नहीं, अपितु उसकी मानसिक एवं आध्यात्मिक सत्ता में भी आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए और कामनाओं का है। जब उसे ज्ञान होता है कि एक महत्तर शक्ति संसार को संचालित कर रही है, तब वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, अपनी विषय यात्रा में सहायता के लिए,

अपने संघर्ष में रक्षा के लिए आश्रय प्राप्त करने के लिए प्रार्थना द्वारा उसकी शरण लेता है। प्रार्थना द्वारा भगवान की ओर साधारण धार्मिक पहुँच, अपने को ईश्वर की ओर मोड़ देने के लिए यह हमारी प्रार्थनारूपीविधि हमारी धार्मिक सत्ता का मौलिक प्रयत्न है, और एक सार्वभौम सत्य पर स्थित है- भले ही इसमें कितनी भी अपूर्णताएँ हों और सचमुच अपूर्णताएँ है भी। प्रार्थना के प्रभाव को प्राय: संदेह की दृष्टि से देखा जाता है और स्वयं प्रार्थना निरर्थक तथा निष्फल समझी जाती है। वैश्व संकल्प सदैव अपने लक्ष्य को ही कार्यान्वित करता है। वह सर्वज्ञ होने के कारण अपने वृहत्तर ज्ञान से कर्त्तव्य पहले ही जान लेता है, परंतु यह व्यवस्था यांत्रिक नियम से नहीं, बल्कि कुछ शक्तियों एवं बलों के द्वारा कार्यान्वित होती है। यह मानव संकल्प, अभीप्सा और श्रद्धा का एक विशेष रूप मात्र है। प्रारंभ में प्रार्थना निम्न स्तर भी हमारे संबंध को तैयार करने में सहायता पहुँचाती है। मुख्य वस्तु इस प्रकार का साक्षात संबंध, मनुष्य का ईश्वर से संपर्क, संचेतक आदान-प्रदान न कि पार्थिव वस्तु की प्राप्ति। अपनी मानसिक रचना के निर्माण के बाद यदि व्यक्ति अपने को ईशकृपा पर समर्पित कर देता है, और इसमें भरोसा रखता है, तो उसको अवश्य ही सफलता मिलेगी। यदि कोई ईश्वर की कृपा का मात्र आह्वान करता है, तो अपने को उसके हाथों में सौंप देता है, तो वह विशेष अपेक्षा नहीं करता। प्रार्थना को सूत्रबद्ध करके किसी वस्तु के लिए निवेदन करना होगा। यदि सचाई के साथ सच्ची आंतरिक भावना के साथ याचना की जाए तो संभव है- वह स्वीकृत हो जाए।

दैनिक प्रार्थनाएँ इस प्रकार हों- हे प्रभु, मुझ पर वह शांत विश्वास प्रदान कर जो सभी कठिनाइयों को जीत लेता है, मुझे भय और चिंता से मुक्त कर ताकि मैं अपनी सर्वोत्तम क्षमता के साथ तेरी सेवा कर सकूँ। हे प्रभु, मुझे समस्त गर्व से मुक्त कर मुझे विनीत और सच्चा बना।

प्रार्थना करने से ईश्वर नहीं बदलता, लेकिन जो कोई भी प्रार्थना करता है उसमें अवश्य बदलाव आ जाता है। प्रार्थना एक नया जीवन देती है। प्रार्थना जीव की असमर्थता का प्रतीक है। जीव प्रभु के सामने अपनी कमजोरी को स्वीकार करता है। प्रार्थना नयी चेतना प्रकट करती है। नया जीवन देती है, पाप से मुक्ति दिलाती है। प्रार्थना शब्द से नहीं होती, हृदय से होती है। प्रार्थना भाषा से नहीं होती, आंसू से की जाती है। प्रभु बिना कान के सुनते हैं और बिना पैर के चलते हैं। इस जगत् में केवल परमात्मा ही सत्य है। जो कुछ दिखाई देता वह स्वप्न है, मिथ्या है। प्रार्थना करने के लिये किसी स्थान विशेष की आवश्यकता नहीं होती लेकिन प्रार्थना से मन एकाग्र होता है। आंसू रूपी तुलसी का दल जब तक प्रार्थना में नहीं, तब तक उसको स्वीकार नहीं होता। प्रार्थना पापियों के लिए स्नान करने की गंगा है। प्रार्थना से भगवान के प्रति प्रेम पैदा होता है, इसलिए प्रार्थना में विशुद्धता है। प्रार्थना एक अतुलनीय पारस मणि है, जिससे भक्त भगवान की तरफ आकर्षित होते हैं। प्रार्थना एक लक्ष्य है कि अपने भीतर गुण और अनुशासन लाना।

तेरे दर। किसके दर? ईश्वर का दर। परवर दिगार का दर। छोड़कर कहां जाऊं? और कोई ऐसा दर नहीं है संसार में- जहां कुछ वक्त के लिए सुकून मिल सके। अपनापन महसूस हो सके। सिर्फ केवल एक उस खुदा की मोहब्बत ही तो है जो जीवन को आनंद देती है। एक भक्त का भाव है, जिसे हम भी आत्मसात करके अपनी प्रार्थना प्रभु चरणों मेंरखते हैं। कहा है प्रार्थना में-

तेरे दर को छोड़कर, किस दर जाऊं मैं। सुनता मेरी कौन है, किसे सुनाऊं मैं।।
जब से तुम्हारा नाम भुलाया, लाखों कष्ट उठाए हैं। ना जानूं इस जिंदगी में, कितने पाप कमाये हैं।।
हूं शरमिंदा आपसे, अब क्या बतलाऊं मैं।।

कौन सुनेगा? संसार के स्वार्थी लोग? जिस चीज में स्वार्थ है- उस चीज के पीछे भागनेवाला यह संसार भला मेरी बात क्या सुनेगा? और आपका पावन नाम, आपकी महिमा को भूलकर मैंने लाखों कष्ट उठाए हैं; तब कहीं जाकर आपके दर पर नतमस्तक हूं। शरमिंदा हूं, कैसे बतलाऊं? दुनिया की ठोकरें खायी, दर-दर भटका और सिवाय दु:ख के कुछ नहीं मिला।

निरगुन सगुन रूप तुम्हारा, ऋषि-मुनि सब गाते हैं। राम नाम की बैठ नाव में, भव सागर तर जाते हैं।।
छींटा दे दो ज्ञान का, होश में आ जाऊं मैं। तेरे दर को छोड़कर, किस दर जाऊं मैं।।

ऋषि-मुनि निर्गुण-सगुण रूप की महिमा गाते हैं। परंतु मैं तो निरा मूरख, अभिमानी-अज्ञानी समझ नहीं पाता। राम-नाम की नौका में बैठकर भवसागर भी तर जाते हैं और मेरा बेहाल है, अज्ञान-अंधकार में भटक रहा हूं। कृपा कर ज्ञान का छींटा दे दो, ज्ञान सागर में गोता लगवा दो, जिससे मैं भी तर जाऊं। मोह-माया की बेहोशी भरी गहरी नींद में सोया हुआ हूं और यदि आप कृपा कर ज्ञान के छींटें दोगे तो मैं जाग जाऊं, होश में आ जाऊं जिससे जीवन यह मेरा सफल हो सके। कितनी सुंदर बात होगी यह कि मेरा भी उद्धार हो जाए और इसलिए हे प्रभु। मैं तेरी दर पर आया हूं, मेरी अर्ज को सुन लेना।

सज्जनों, कितनी सुंदर भाव यात्रा है यह। हमारे पाषाण हृदय को पिघलने दें और हमारी भी यह प्रार्थना हकीकत बन जाए। ऐसा ज्ञान प्राप्त हो जाए जिससे बेहोशी की नींद टूटे और होश में आ जाए, जीवन ज्ञान प्रकाश से जगमगा जाए। आगे कहते हैं-

काम-क्रोध की गहरी नदिया, यह नहीं तरने देती है।
ध्यान आपका धरता हूं, तो ये आगे अड़ जाती है। स्वामी दरशन आपका, किस बिध पाऊं मैं।

सचमुच में काम-क्रोध की नदी गहरी है, अज्ञानता का अंधकार भी गहरा है जिसमें प्रत्येक मनुष्य फंसा है और प्रभु मार्ग पर बढ़ने के लिए इनका अवरोध आगे आता है। परंतु ज्ञान द्वारा ये बाधाएं दूर होती हैं और सद्गुरु कृपा से दर्शन होता है अपने ही घट में।

बीती सो बीत गई, बाकी उमर संभालूंगा। ज्ञान का साबुन लगाकर, अज्ञान का मैल उतारूंगा।।
अब संकट काटो जल्दी से, जीवन सुफल बनाऊं मैं। तेरे दर को छोड़कर, किस दर जाऊं मैं।।

सच्चाई को स्वीकार करना बहुत बड़ी बात है। लोग संसार की सच्चाई से दूर भागते हैं। लेकिन निर्मल हृदय हो जिसका ऐसा भक्त सच्चाई को कबूल करता है और अपने प्रभु के सामने सब कुछ सही-सही कह देता है। कहता है- हे प्रभु जो उमर बीत गयी सो बीत गई, लेकिन शेष उमर को संभालना है। ज्ञान का साबुन लगाकर अज्ञानता के मैल को धो डालना है। हे प्रभु। अब संकट दूर करो और यह जीवन मेरा सफल करो। तो प्रश्न यह है कि क्या हम अपने ईश्वर के दर पर जाने को तैयार हैं? जैसा कि उपरोक्त पंक्तियों में भक्त ने निवेदन किया है, क्या हम भी वह निवेदन रखना चाहते हैं, या नहीं? कहां है ईश्वर का दर? ऊंची पहाड़ी पर। गंगा-यमुना नदियों पर? मंदिर-मस्जिद-गिरजाघर-गुरुद्वारा है - परवरदिगार का दर? इन दरों पर, इन द्वारों पर तो कई बार गए हैं, लेकिन क्या अपने ही अंदर विराजमान ईश्वर के दर पर कभी गए? नहीं, न। कभी इस बात को समझा ही नहीं, कि ईश्वर का दर हमारे अंदर भी है। और जब तक अंदर के द्वार को नहीं खोलेंगे तब तक बात समझ में नहीं आएगी और वही दर छूटा हुआ है, जिसके लिए कहा- तेरे दर को छोड़कर जाऊं कहां मैं। प्रार्थना उसकी सफल है जिसकी आत्मा शुद्ध हो।

शंकराचार्य ने प्रार्थना करी- हे प्रभु। मुझे ऐसी शक्ति देना कि मैं परिस्थिति को बदल सकूँ पर ऐसी शक्ति न देना चाहे तो मुझे ऐसी परिस्थिति को स्वीकार कर लेने की सदबुद्धि अवश्य ही देना। प्रभु मेरा हृदय प्रेममय बना रहे, मेरे हाथ

परोपकारमय बने रहें, मेरा रुख सकारात्मक बना रहें, इन तीन चीजों की भेंट तू मुझे जरूर देना।

प्रार्थना प्रभु से जुड़ने का एक कारगर तरीका है। लोग विभिन्न प्रकार की प्रार्थनाएं करते हैं। कुछ लोग इस संसार की वस्तुओं के लिए प्रार्थना करते हैं। उदाहरण के लिए, आप एक बेहतर नौकरी की तलाश में हो सकते हैं। आप एक नया घर या नई कार की इच्छा कर सकते हैं। कुछ लोग स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करते हैं ताकि वे या उनका परिवार स्वस्थ हो जाए। कुछ ऐसे हैं जो प्रार्थना करते हैं कि उनके व्यक्तिगत संबंध बेहतर हो जाएँ। फिर भी, अधिकतर लोग सांसारिक वस्तुओं के लिए ही प्रार्थना करते हैं।

आमतौर से, जब हम प्रार्थना करते हैं तो हम प्रभु से अपने लिए कुछ मांगते हैं। हम हमेशा उन वस्तुओं के लिए प्रार्थना करते हैं, जिनके बारे में हम सोचते हैं कि वे फायदेमंद होंगी। उस समय, अपने जीवन के बारे में हमारी जानकारी सीमित होती है। कई बार, हम ऐसी चीज के लिए प्रार्थना कर सकते हैं जो हमारे अनुसार फायदेमंद हो पर अंत में वह चीज हमारे लिए फायदेमंद साबित नहीं होती। हम प्रार्थना करके कोई चीज प्राप्त कर सकते हैं, पर लंबे समय बाद देखते हैं कि वह हमारे लिए उचित नहीं है।

प्रार्थना का सही तरीका यह है कि हम प्रभु की इच्छा को अपने जीवन में घटित होने दें। इसलिए, कई धर्मों में यह कहावत है, मेरी इच्छा नहीं, बल्कि आपकी इच्छा पूर्ण हो। क्योंकि प्रभु हमारे जीवन में घटनेवाली हर एक चीज से अवगत है। वह जानता है कि सचमुच हमारे लिए सर्वोत्तम क्या है। हम सोच सकते हैं कि एक करोड़ रुपये की लाटरी जीतना बहुत अच्छा होगा। पर हम यह नहीं समझते कि इतना पैसा मिलने के बाद, वो चीजों की खरीददारी में इतना ज्यादा व्यस्त हो सकते हैं कि हमारा ध्यान प्रभु से दूर हो जाए। या फिर हो सकता है कि हमारे सभी दोस्त इस धन में से कुछ हिस्सा लेना चाहें और अगर हम वह उन्हें ना दें तो हमारी दोस्ती खत्म हो सकती है और हम अकेले पड़ सकते हैं। इसलिए, हम वास्तव में यह नहीं जानते कि हमारे लिए अच्छा क्या है। अपने सीमित दृष्टिकोण से, हम वह कुछ मांगते हैं जो हमारे विचार में अच्छा हो। पर अगर हम यह प्रभु पर छोड़ दें कि जो कुछ हमारे लिए सर्वोत्तम हो, वही वह दें, तब हम सच्ची प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना का सर्वोच्च रूप है प्रभु को जानना और प्रभु में लीन हो जाना। बाकी प्रार्थनाएं सच्ची हो सकती हैं, पर अक्सर वे ऐसी वस्तुओं की प्राप्ति के लिए होती हैं जिनसे हमारा भौतिक अस्तित्व बेहतर हो सके। प्रभु को जानने की प्रार्थना करने का अर्थ है, उस शक्ति का आह्वान करना जिसने हमें पैदा किया। प्रभु को जानने की प्रार्थना करने का अर्थ है, अपना मुंह उस ओर मोड़ना जो हमारे अस्तित्व का कारण है। जब प्रभु को जानने की इच्छा हमारे दिल में घर कर जाती है तो वह एक अविरल प्रार्थना बन जाती है जो तब तक नहीं रुकती, जब तक हम प्रभु को पा नहीं लेते। प्रभु को जानने की ऐसी ही प्रार्थनाएं ध्यान-अभ्यास या ध्यान कहलाता हैं। ध्यान-अभ्यास प्रार्थना का सर्वोच्च रूप है। प्रार्थना के दौरान हम प्रभु को बताते हैं कि हम क्या चाहते हैं। ध्यान-अभ्यास के दौरान हम प्रभु को सुनते हैं कि वह क्या चाहता है।

ध्यान-अभ्यास का अर्थ मात्र शांत होकर बैठना नहीं है। इसके दौरान हम अपना पूरा ध्यान प्रभु की खोज में लगा देते हैं। हम जीवन के बाकी सभी लक्ष्यों को भूल कर इस तैयारी से बैठते हैं कि प्रभु की दया धारा हममें प्रवेश कर जाए। ध्यान-अभ्यास कोई मशीनी काम नहीं है, हालांकि कुछ प्रार्थनाएं मशीनी होती हैं। यह प्रभु में लीन होने के लिए हमारे मन, दिल और आत्मा में उठी तीव्र चाहत और बेताबी की अवस्था है। प्रार्थना जीव का ईश्वर को कृतज्ञतापूर्वक याद करने का एक प्रयत्न है। प्रार्थना का अर्थ होता है झुकना। समर्पण, समग्र भाव से समर्पण। प्रेम से गाए गीत ही केवल प्रार्थनाएं हैं और ऐसी प्रार्थनाएं ही केवल सुनी जाती हैं। प्रार्थना एक बड़ा चमत्कार है। प्रार्थना बुराई से बचाती है, अंत:करण की ताकत बढ़ाती है, ईमान को सुरक्षित रखती

है और ईश्वरके करीब लाती है। प्रार्थना जीव का ईश्वर को कृतज्ञापूर्वक याद करने का एक प्रयत्न है।

प्रार्थना धर्म का निचोड़ है। प्रार्थना याचना नहीं है, यह तो आत्मा की पुकार है। प्रार्थना दैनिक दुर्बलताओं की स्वीकृति है, यह हृदय के भीतर चलनेवाले अनुसंधानों का नाम है। भगवान से अष्टसिद्धि या मोक्ष की कामना मत करो। यही एक प्रार्थना करो कि समस्त प्राणियों के अंत:करण में स्थित होकर उनके समस्त दु:खों को सह लें। बारिश का परिणाम शरीर पर और उसके द्वारा मन पर होता है तो प्रार्थना का परिणाम हृदय के द्वारा आत्मा पर होता है।

केवल प्रेम से करने से ही प्रार्थना सत्य व सार्थक हो सकती है। जो होना तय है, उसे सहजता से सहन करने की कोशिश करो। प्रार्थना इस ढंग से करनी चाहिए-

हे प्रभु, मुझे शांति दो उन चीजों को स्वीकार करने की, जिन्हें मैं बदल नहीं सकता, जिन चीजों को मैं बदल नहीं सकता हूं, उन्हें बदलने का साहस दो और दोनों के फर्क को पहचानने की बुद्धि दो। इससे पहले की चिंता आपको खत्म कर दे, चिंता को खत्म करने का तरीका है, अवश्यंभावी के साथ सहयोग करें और ईश्वर में आस्था रखें।

अगर प्रार्थना करने के लिए आपके पास समय नहीं है, तो सिर्फ इतना ही कहें, भगवान मुझे तुम पर श्रद्धा है और मुझे भरोसा है कि मैं जो कर रहा हूं उस सब पर तुम नियंत्रण स्थापित करोगे। जब भी तुम खाली रहोगे, इसे खुद से दोहराते रहना; चीजें अपनी जगह पर आने लगेंगी। किताबों के माध्यम से अंधे की तरह प्रार्थना करने के बजाय अपनी समस्याओं के बारे में सीधा भगवान से बातें करना सीखें सुबह घंटों तक मंत्र पठन करने से पहले उसे समझने का प्रयास करें।

प्रार्थना व आस्था को व्यक्त करने के तरीके भले ही अलग-अलग हों लेकिन सभी अपने चारों तरफ मौजूद हताशा के घने गहन जंगल में प्रकाश, समझ और मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए प्रार्थना करते हैं। यह प्रार्थना कुछ ईश्वर से करते हैं तो कुछ खुद अपने अंतर्मन से। प्रार्थना को अनेक महान विभूतियों ने गुरुत्वाकर्षण की शक्ति जितना ही वास्तविक माना है। चिंताओं को खत्म करने का तरीका है प्रार्थना। क्योंकि प्रार्थना किसी के द्वारा उत्पन्न ऊर्जा का सबसे सशक्त रूप है। यह शक्ति गुरुत्वाकर्षण जितनी ही सशक्त है। प्रार्थना में इंसान समस्त ऊर्जा के अनंत स्त्रोत्र के संपर्क में आकर अपनी सीमित ऊर्जा को बढ़ा सकते हैं। प्रार्थना मांग नहीं है। ज्यादा उचित हो कि कहें, प्रार्थना धन्यवाद है, मांग नहीं। जो नहीं मिलता है, उसकी मांग नहीं है प्रार्थना; जो मिला है, उस अनुग्रह का धन्यवाद है।

प्रार्थना का रूप भले ही अलग हो लेकिन सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना इंसान को उस शक्ति से जोड़ देती हैं जो पूरे ब्रह्माण्ड को चलाती है। जब हम दिल से प्रार्थना करते हुए ईश्वर को संबोधित करते हैं तो हम अपनी आत्मा और शरीर दोनों को बेहतर बना लेते हैं। प्रार्थना और दृढ़ धार्मिक आस्था से चिंताएं, परेशानियां दबाव और डर हमसे दूर भागने लगते हैं, जो कि हमारी आधी समस्याओं का कारण है।

प्रेम ही तो अपनी अंतिम उड़ान में प्रार्थना बन जाती है। प्रेम का ही निचोड तो प्रार्थना है। प्रार्थना अंत है, प्रार्थनापूर्ण हृदय इस जगत का अंतिम खिला हुआ फूल है। वह आखिरी ऊंचाई है, जो मनुष्य पा सकता है। वह अंतिम शिखर है। उसके पार कुछ है नहीं। प्रार्थना अज्ञात ईश्वर के पास पहुंचने की इच्छा है। भगवान की शरणमें जाये यह भावना प्रार्थना में होनी चाहिये। प्रार्थना का परिणाम हृदय के द्वारा आत्मा पर होता है।

सब कुछ ईश्वर करता है यह, नित्य सूर्योदय होने जैसा निश्चित होने पर भी परमानंद की प्राप्ति के लिये परमावश्यक साधन-प्रभु से प्रार्थना-विनय करने जितना अहंकार जीव के लिये परम उपादेय होता है।

प्रार्थना साधन का कोई अन्त नहीं। वह तो जीवन का अंग बनकर स्वाभाविक हो जाती है। परमात्मा आनंदस्वरूप है। वह परम दयामय है परंतु आवश्यकता है पूर्ण विश्वास की। भवतापतप्त जीव प्रार्थना रूप सुधा के झरने की शीतल जलधारा को पाकर ही शांति को प्राप्त होता है। सांसारिक सुख वास्तव में मृगमरीचिकावत् है। इससे त्राण पाने के लिये एक मात्र प्रार्थना ही सरल, सुगम एवं अमोघ साधन है। प्रार्थना पर्वतों को भी हिला सकती है। अति असंभव दीखने वाला कार्य भी प्रार्थना के बल पर सिद्ध होता है। जीवन में अनेकानेक संकटों-विषम प्रसंगों के उपस्थित होने पर, धैर्य व सान्त्वना देकर मन को विवेक की ओर मोड़कर एक मात्र प्रार्थना ही उसकी बागडोर सम्हाले रहती है।

साधारण जीव प्रार्थना द्वारा धन, बल, सत्ता आदि सांसारिक नाशवान भोग्य विषयों की इच्छा करते हैं परंतु विचारवान, आत्मविषयक प्रेम, भक्ति, ज्ञानादि सात्विक व दैवी संपदा के भावों की कामना करते हैं। धीरे धीरे उनकी यह वृत्ति भी प्रभु-इच्छा में लय हो जाती है।

संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं होगा जिसके जीवन में कभी प्रार्थना करने का प्रसंग नहीं आया हो। शोक, चिन्ता, भय, दु:ख, व्याधि आदि संकट जब जीव को घेर लेते हैं तब तो वह त्राहि त्राहि होकर प्रभु को सच्चे भाव से पुकारता है। प्रार्थना के लिये बाह्याडंवर या भाषा का कोई महत्त्व नहीं। किसी भी स्थान पर तथा किसी भी समय किसी भी भाषा में प्रार्थना की जा सकती है। यह तो हृदय का विषय है। सच्चे हृदय की पुकार ही प्रभु तक पहुँच पाती है। वे कोई दूर नहीं। वे अंतर्यामी हैं। हृदय में यह दृढ़ श्रद्धा जम जाने पर ही प्रभु कृपानुभव का द्वार खुलता है। प्रार्थना के मूल में आत्मविश्वास होना परम आवश्यक है।

प्रार्थना से शनै: शनै: हृदय में प्रेम और प्रतीति प्रकट होकर मन भगवद्भक्ति की ओर अधिकाधिक झुकता जाता है। प्रार्थना के अभ्यास की परिपक्व स्थिति को प्राप्त होने पर फिर तो प्रार्थना स्वयमेव होती रहेगी।

प्रार्थना द्वारा अन्त:करण को नम्रता भरे भावों का पोषण मिलता है और आत्म निरीक्षण होकर विवेक के उदय से ज्यों ज्यों आत्मशुद्धि होती जाती है त्यों हृदय में अपूर्व शान्ति और विलक्षण सुख का अनुभव होता जाता है। सच्चे शरणागतिभाव से और पूर्ण श्रद्धापूर्वक की गई प्रार्थना कभी विफल नहीं जाती। प्रार्थना में अद्भुत बल है।

अपनी परतंत्र व पराकाष्ठा की अल्पता का ज्ञान होने पर ही जीव उस अज्ञेय, अनंत व अनादि शक्ति की शरण चाहता है। उसे कोई ईश्वर तो कोई प्रकृति, कोई भगवान तो कोई राम या कृष्ण, कोई शिव तो कोई शक्ति और कोई रहीम, ईसा तो कोई बुद्ध या महावीर कहते हैं। वास्तव में चराचर सृष्टि के लिये वही एक मात्र परमात्मा है, नामों में भले ही भेद हो। उसकी प्रार्थना चाहे कोई सगुण अथवा निर्गुण भाव से करे या संगीत के साथ कीर्तन द्वारा अथवा अन्त:करण पूर्वक (मानसिक) स्मरण द्वारा, पर वह होनी चाहिये हृदय से। प्रार्थना अकेले अथवा सामूहिक तथाधार्मिक स्थान अथवा घर या बन में भी की जा सकती है। कैसी भी प्रार्थना हो, अंत में एक मात्र उसी परमात्मा को प्राप्त होती है।

महात्मा गांधीजी का प्रार्थना पर पूर्ण विश्वास था। प्रात: सायं नित्य दोनों समय प्रार्थना का कार्यक्रम उनके जीवनक्रम में अंतिम क्षण तक अनिवार्य रूप से होता रहा। बहुत से पाश्चात्य विद्वान भी प्रार्थना में बहुत श्रद्धा रखते हैं। कहीं-कहीं, युद्ध-विजय की कामना से अथवा रोग-शांति आदि हेतु से भी सामूहिक प्रार्थना की जाती है। प्रार्थना नित्य की जानी चाहिए। प्रार्थना के फलस्वरूप अभीसिप्त फल प्राप्ति करनेवालों के अनेकों दृष्टांत शास्त्रों में भरे पड़े हैं तथा आज भी नित्य व्यवहार में इसका अनुभव श्रद्धावान हृदय को मिल जाता है। भारतीय संस्कृति की निदर्शक एवं निष्काम भावनात्मक ऋषि-मुनियों की प्रार्थना का यह भव्य एवं उदार आदर्श हमारे सन्मुख उपस्थित है।

सृष्टि के सारे जीवों में मानव श्रेष्ठ हैं क्योंकि उसे बुद्धि कावरदान प्राप्त है। वह बुद्धि के द्वारा निर्णय का अर्थ है दो या दो से

अधिक विकल्पों में से एक को चुनना। बुद्धि चयन की शक्ति के कारण ही मानव सतत विकास करता रहा है। अपने विचार तथा कर्म की स्वतंत्रता के कारण ही मानव को सद्गति या अधोगति प्राप्त होती है। सद्गति का आधार प्रयत्न तथा प्रार्थना है। प्रार्थना का अर्थ है प्रकृति में स्थित सकारात्मक ऊर्जा को मन द्वारा अपने अंदर आकर्षण करना। प्रकृति सकारात्मक तथा नकारात्मक इन दोनों प्रकार की ऊर्जा का अक्षय भंडार है। अपने मन में जिस प्रकार की वैचारिक लहरें उठती है, उसी प्रकार की प्राकृतिक ऊर्जा हमारी ओर आकर्षित होती है। विश्व के सारे धर्मों में प्रार्थना का अत्यंत महत्व है। शुद्ध मन से की गई प्रार्थना पूर्ण होती है। एक प्रकारके पक्षी या जानवर एक साथ नहीं रहते। मानव ही धर्म, भाषा, सम्प्रदाय या अन्य समानता के कारण एकत्र आता है यही सिद्धांत ऊर्जा को भी लागू होता है। समानता की ओर ऊर्जा का आकर्षण होता है। प्रार्थना करते समय जिस प्रकार की वैचारिक ऊर्जा मन में होती है, उसी प्रकार की ऊर्जा प्रकृति से मन की ओर आकृष्ट होती है। अत: प्रार्थना के समय मन में उत्पन्न होनेवाली सकारात्मक ऊर्जा के अनुसार प्रकृति में स्थित उसी प्रकार की सकारात्मक ऊर्जा को खींचकर जीवन में मंगल तथा कल्याण का आविर्भाव करती है। प्रार्थना का आधार केवल धार्मिक ही नहीं अपितु वैज्ञानिक भी है।

सुखी बसे संसार सब, दुखिया रहे न कोय। यह अभिलाषा हम सबकी, भगवन् पूरी होय।।
विद्या, बुद्धि, तेज, बल सबके भीतर होय। दूध-पूत धन-धान्य से वंचित रहें न कोय।।
आपकी भक्ति-प्रेम से, मन होवे भरपूर। राग-द्वेष से चित्त मेरा, कोसों भागे दूर।।
मिले भरोसा नाम का, हमें सदा जगदीश। आशा तेरे धाम की, बनी रहे मम ईश।।
हमें बचाओ पाप से, करके दया दयाल। अपना भक्त बनायकर, हमको करो निहाल।।
दिल में दया उदारता, मन में प्रेम अपार। धैर्य हृदय में वीरता, सबको दे करतार।।
नारायण तुम आप हो, पाप-विमोचनहार। क्षमा करो अपराध सब, कर दो भव से पार।।
हाथ जोड विनती करूँ, सुनिये कृपानिधान। साधु-संगत सुख दीजिए, दया नम्रता दान।।

*** * * * ***

*** समझो जिन्दगी को तो जीना बडा आसान है, जहां पर है समस्या, वही पर समाधान है।**
*** मनुष्य होने का उसे सम्मान मिलना चाहिये। इस दुनिया में इन्सान सबसे खुशनसीब प्राणी है,**
क्योंकि उसके दिल को ही ईश्वर ने अपना आशियाना बनाया है।
जिसमें न हो किसी प्रकार का भेद उसे इन्सान कहना चाहिये।
*** जिन्दगी की असली उडान बाकी है, जिन्दगी के कितने इम्तिहान बाकी है,**
अभी तो नापी है थोडी सी जमीन, अभी तो पूरा आसमान बाकी है।
*** वक्त की हर सजा अन्तिम होती है, वक्त की पुकार कब कही सुनाई होती है,**
आस्था का एक दीप जलता है तो रोशनी मीलों मील बड़ी दूर तक होती है।
*** चिरागों को महफूज रखना आखों मे, बडी दूर तक अन्धेरी रात होगी,**
मुसाफिर हूं मैं भी, मुसाफिर हो तुम भी, फिर कही किसी मोड पर मुलाकात होगी।

माता-पिता क्या है?

⁂ मां के लबों पर बिछड़ने की फरियाद नही, बेटे को तो अब मां का चेहरा भी याद नहीं।

⁂ औरत में ही बसी आदमी की जान है, दुनिया भर की वह मां है; महान है।

मां निरादर, अपमान, जली कटी, घुडकी, झिडकी सब कुछ औलाद के लिये सह लेती है।

मां एक सुखद अनुभूति है। वह एक शीतल आवरण है जो हमारे दु:ख, तकलीफ की तपिश को ढंक देती है। उसका होना, हमें जीवन की हर लड़ाई को लड़ने की शक्ति देता रहता है। शब्दों से परे है मां की परिभाषा।

मां शब्द के अर्थ को उपमाओं अथवा शब्दों की सीमा में बांधना सम्भव नहीं है। इस शब्द की गहराई, विशालता को परिभाषित करना सरल नहीं है क्योंकि इस शब्द में ही संपूर्ण ब्रह्माण्ड, सृष्टि की उत्पत्ति का रहस्य समाया है। मां व्यक्ति के जीवन में उसकी प्रथम गुरु होती है, उसे विभिन्न रूपों-स्वरूपों में पूजा जाता है। कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में मातृ ऋण से मुक्त नहीं हो सकता भारतीय संस्कृति में जननी एवं जन्मभूमि दोनों को ही मां का स्थान दिया गया है।

मानव अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति जन्मभूमि यानि धरती मां से, तो जीवनदायी आवश्यकता की पूर्ति जननी से करता है। मनुष्य से लेकर पशु एवं पक्षियों तक को आत्मनिर्भर, स्वावलंबी एवं कुशल बनाने के लिए उनकी मां उन्हें स्वयं से अलग तो करती है परंतु उनकी सुरक्षा के प्रति हमेशा सचेत रहकर अपने ममत्व को बनाए रखती हैं। परंतु ठीक इसके विपरीत कई बार मानव स्वयं अपने बढ़ते बुद्धि विकास के कारण अपनी सुरक्षा एवं आवश्यकता के प्रति स्वार्थी होकर मां और उसकी ममता के प्रति उदासीन हो जाता है। फिर वह अपनी पूर्ति के लिए जननी और जन्मभूमि दोनों का दोहन तो करता है परंतु उनके प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करना भूल जाता है। जो व्यक्ति अपने इन कर्त्तव्यों का पालन करता है वो स्नेह, ममत्व की छांव में रहकर सद्‌गुण, संस्कार, नम्रता को प्राप्त करता है। वह अपने जीवन में समस्त सुखों और जीवन लक्ष्यों को प्राप्त कर ऊंचाइयों को पा लेता है। वहीं ऐसे व्यक्ति जो अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में मातृशक्ति को, उसके स्नेह, ममत्व को उपेक्षित कर उन्नति का मार्ग ढूंढने का प्रयास करते हैं, वे जीवन भर निराशा के अलावा कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाते।

मां अनंत शक्तियों की धारणी होती है। इसीलिए उसे ईश्वरीय शक्ति का प्रतिरूप मानकर ईश्वर के सदृश्य माना गया है। मां के समीप रहकर उसकी सेवा करके, उसके शुभवचनों, शुभाशीष से जो आनंद प्राप्त किया जा सकता है वह अवर्णनीय है। अपने दिए स्नेह के सागर के बदले मां बच्चों से कुछ नहीं चाहती। वह हर हाल में केवल बच्चों का हित सोचती है, खुद को मिटाकर भी। इसलिए अपनी ओर से हम उसे कभी दु:ख न दें।

मनुष्य के विकास में माता-पिता की अहम भूमिका होती है। वे बच्चों को पाल-पोसकर अपने पैरोंपर खड़ा करने योग्य बनाते हैं। जिससे वे जीवन संघर्ष में सफलता प्राप्त कर सकें। मृत्युपर्यंत वे अपने बच्चोंके कल्याण की कामना करते हैं। दुनिया में जितने भी भगवान, पैगंबर, साधु-संत और महापुरुष हुए हैं, सभीने माता-पिता की सेवा को पुण्य कर्म बताया है। महात्मा बुद्धने भी इस सत्य का अनुभव किया और उन्होंने भी अपने उपदेशों में माता-पिता की सेवा करने को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। जो व्यक्ति अपने माता-पिता का पोषण नहीं करता उसका पतन निश्चित है। माता-पिता की सेवा करना यह उत्तम मंगल है और वह मनुष्य देवलोक में उत्पन्न होता है। माता-पिता का स्थान बहुत ऊँचा होता है। माता-पिता बच्चोंको पाल-पोसकर बड़ा बनाती है और उन्हें जीवन में आगे बढ़ने के लिए अपने आशीर्वाद से उनको समर्थ बनाती है। माता-पिता के वृद्ध व असहाय होनेपर बच्चोंका नैतिक कर्त्तव्य बन जाता है कि वे उनकी सेवा करके उनके ऋणसे उऋण हो और पुत्र धर्मका

पालन करे। ऐसा न करने पर वह अधर्म का भागी होता है और समाज में उसकी निन्दा होती है।

प्राचीन भारत में माता-पिता की सेवा सबसे बड़ा मूल्य माना जाता था। इस मूल्य के प्रचार प्रसार के लिए पुराणों व धम्मो पीढ़ में अनेक प्रसंग मिलते हैं जिसके माध्यम से इसे अधिक व्यावहारिक बनाया गया। श्रवणकुमार की कथा इसका ज्वलंत उदाहरण है। अनेकों लोककथाएं और लोकगीत ऐसे हैं, जिनमें माता-पिता की सेवा की बात कही गई है। आज कुछ लोग अपने माता-पिता को सड़क पर आकाश के नीचे मरने के लिए छोड़ देते हैं। कुछ उनकी चल-अचल संपत्ति हड़प कर उन्हें वृद्धाश्रमों में छोड़ आते हैं। वे यह नहीं जानते कि उनकीसंतानें भी भविष्य में उनके साथ यही व्यवहार करेंगी।

वेदोंमें मां को पूज्य, स्तुति योग्य और आह्वान करने योग्य कहा गया है। वेदोंमे प्रार्थना की गयी है कि मां रसमयी, स्नेहमयी और संतानों के हितार्थ समर्पण करनेवाली होती है। वह त्यागमयी, दयामयी, क्षमामयी, सत्यमयी और धर्ममयी है। जल के समान हमें शुद्ध करनेवाली माता ही है। महर्षि दयानंद कहते हैं वह संतान अति सौभाग्यशालिनी है जिसके माता-पिता धार्मिक और विद्वान है। जितना माता से संतानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है, उतना किसी अन्य से नहीं। मातृमान वही होता है, जिसकी माता गर्भाधान भी रहकर गर्भ के शेष विधान पूरे करे तब तक उसे साथ संयत और सुशील व्यवहार करे। मातृ गर्भ में संस्कारित होने का सबसे बड़ा उदाहरण महाभारत में अभिमन्यु का मिलता है, जिसने अपनी मां के गर्भ में ही चक्रव्यूह तोड़ने की विधि सीख ली थी। कुरान में मां का स्थान पिता के मुकाबले से तीन गुना ऊँचा है। अपने मां-बाप का हक्क पहचानना, उनके साथ अच्छा बर्ताव करना, उनकी सेवा करना, खुदा की निगाह में महत्त्वपूर्ण है। मां का अनादर या उनकी बात न मानना, उन्हें कष्ट पहुँचाना बहुत बड़ा गुन्हा है। हजरत महम्मद के अनुसार, जन्नत मां के कदमों में है। माताका गौरव विश्वमें सबसे महान हैं।

माता-पिता का स्नेह अपने पुत्र के प्रति सर्वोत्कृष्ट होता है। माता के हृदय का टुकड़ा ही पुत्र के रूप में प्रकट होता है। उसका रक्त ही दूध बनकर बच्चे का पोषण करता है। माता के मनमें जो अमूर्त स्नेह हैं, वही मूर्तिमान दूध बनकर बच्चे के पेट में जाता है। माता का जितना स्नेह पुत्र के प्रति होता है, उतना स्नेह दुनिया में और किसी का किसी के प्रति नहीं होता। जो पुत्र शक्ति रहते अपने माता-पिता की सेवा नहीं करता वह कभी भी कल्याण भाजन नहीं हो सकता।

सबकी मां अच्छी होती है। इस दुनिया में मां का रिश्ता हर रिश्ते से भारी है। जातक माता-पिता के पुण्य-पाप तथा अपने प्रारब्ध को भोगता है। अत: प्रत्येक माता-पिता का धार्मिक कर्त्तव्य है कि वे धर्मपरायण बनें। एक मां ही दूसरी माँ की अंतर हृदयवेदना को समझ सकती है। सच्चा पिता पुत्र से पराजित होना चाहता है। अपनी संतान को श्रेष्ठ बनाना चाहता है। पुत्र पिता की आत्मा से ही उत्पन्न होता है और आत्मा से ही शिष्य बनता है। माता-पिता, गुरु, स्वामी, भ्राता, पुत्र और मित्र का कभी मन में क्षणभर के लिए भी विरोध या अपकार नहीं करना चाहिए।

हमारे सजीव देवों में मुख्य है माता, पिता और गुरु-आचार्य। महाभारत में माता को पृथ्वी से भी भारी व पिता को आकाश से ऊंचा बताया गया है। ज्योतिष शास्त्र में पिता को सूर्य और मां को चन्द्रमा माना है। माता में ईश्वर को देखो, उसके पश्चात पिता में ईश्वर को देखो। माता-पिता का पूजन ही उपवास, व्रत, देवता आराधन और तीर्थ हैं। उनके प्रयाण करने पर प्रतिवर्ष बहुत से ब्राह्मणों को भोजन करायें तथा गया में जाकर पिण्डदान करें इन्हीं तीन कामों से पुत्र की पुत्रता सिद्ध होती हैं। पूरी सृष्टि मातृस्वरूप है। सम्पदा में लक्ष्मी के समान, विद्या में सरस्वती, भाषा में हिंदी, शक्ति में दुर्गा भद्रकाली है, विजयनी है, सरिता में गंगा, यमुना, सरयू है, पशु में गो, तीर्थों में काशी, अयोध्या, द्वारिका, वनस्पति में तुलसी, देवपूजन में भी मातृशक्ति सबसे आगे हैं। जैसे गौरी गणेश, सीताराम, राधेश्याम, भवानी-शंकर, उमा-महेश,

लक्ष्मी विष्णु, लक्ष्मी नारायण, नवदुर्गा, गायत्री, सरस्वती, महाकाली। बिना मातृशक्ति के शिव भी शव है। पृथ्वी को भी हम माता मानते हैं। पंचभूतों में पृथ्वी को माता के रूप में पूजते हैं। मानव तो स्वयं प्रथम माँ शब्द के समावेश से ही बना है। संतान के माता-पिता की स्वाभाविक हित कामना, कल्याण करने की कामना अतुलनीय है।

एक ही तुलना देखने को मिलती है तो वो ईश्वर से ही है, अन्य किसी से माता-पिता की तुलना नहीं मिलती। माता-पिता का सर्वश्रेष्ठ उपहार सन्तान को कल्याण पथ पर लगाना सर्वसम्मत है। माता द्वारा रक्षा और पिता द्वारा हित में नियुक्त करना सर्वसम्मत और विश्वप्रसिद्ध है। शास्त्र कहते हैं विद्या माता की तरह व्यक्ति की रक्षा करती है और पिता की तरह हितकारी कार्यों में नियुक्त करती है। जीवन के अन्धेरे में सूरज बनकर रोशनी फैलानेवाले मां-बाप सुख अपने बच्चों पर न्योछावर करते हैं और दु:ख अपने ऊपर ले लेते हैं। संसार में वही व्यक्ति सफल हो पाता है जिसे शुभ गुण वाले माता-पिता और गुरु मिले।

पाश्चात्य संस्कृति पत्नी-प्रधान है, प्रेयसी-प्रधान है, भोग-प्रधान है। वहाँ ब्याह करके पत्नी लाये और माता-पिताको छोड़कर अलग हो गये। किन्तु हमारे देशकी संस्कृति भोग-प्रधान, काम-प्रधान नहीं है। धर्म-प्रधान है। इसीलिए यहाँ मातृदेवो भव, पितृदेवो भव की भावना है। जहाँ भोग मिले, उसीसे प्रेम करनेकी पद्धति हमारे देशमें नहीं है। यहाँ जिसने जन्म दिया, स्नेह दिया और पालन-पोषण किया, उससे प्रेम करनेका मतलब ईश्वरसे प्रेम करना है। हमारे देशमें माता-पिता ईश्वरके समान ही माने जाते हैं।

पुत्र-पुत्र क्या होता है? पुत्र माने मां का विचार और पिता का आचरण। पिता का आचरण कैसा है? उनकी संगति, उनका व्यवहार, उनका सोचना, बोलना ये जो हैं, पुत्र इनका प्रतीक है। मां जो कुछ विचारती है, सोचती है ये उदरस्थ शिशु में असर करता है। सदाचारी पुत्र अपने पुण्य का प्रतीक होता है और दुराचारी पुत्र अपने ही पाप का पुंज होता है।

पिता की आज्ञा का पालन ही इस लोक और परलोक में पुत्र की सत्कीर्ति का कारण बनता है।

दुष्ट सन्तान माता या पिता के बुरे विचारों से, निन्दित आचरणों से होती है।

पुरुष तो कठोर हृदय के होते हैं। देर में प्रसन्न होते हैं, देर में क्रुद्ध होते हैं। किन्तु मातृहृदय में कभी क्रोध भी आ जाता है तो शीघ्र प्रसन्नता भी आ जाती हैं।

जिसके प्रसाद, आशीर्वाद, कृपा से कुल एवम् रूप में वृद्धि होती है, धन-धान्य एवम् कीर्ति प्राप्त होती हैं, उन माता-पिता के चरणोंमें भक्ति से भरकर प्रणाम करना चाहिए। माता-पिता की सेवा करना प्रत्येक व्यक्ति का परम धर्म है। उनके प्रसन्न रहने पर उनके उचित मार्गदर्शन द्वारा ही सुख समृद्धि सदैव आपके साथ रहेगी।

पिता की स्नेहिल छत्र छाया में मानव जीवन पल्लवित व पुष्पित होता है।

जन्मदाता, पालनकर्ता, विद्यादाता, अन्नदाता तथा भयत्राता ये भी पिता ही कहे जाते हैं। पिता के संरक्षण व मार्गदर्शन में मनुष्य जीवन पथ पर अग्रसर होकर अपने लक्ष्य पर पहुंचता है। पिता के वरद हस्त नहीं होनेपर जीवन में रिक्तता आ जाती है। अत: प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि माता-पिता का ऋण आभार स्वरूप माने और उनकी सेवा जीवन पर्यंत करें। जब तक पिता है, उनका कहना-मानना चाहिए।

माता-पिताकी सेवा करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। उनके प्रसन्न होनेपर उचित मार्गदर्शन के द्वारा ही सुख-समृद्धि प्राप्त होती है। उत्तम पिता वो ही है जो अपने पुत्रको अपने से महान् बना सकता है। पिता भरण-पोषण और अध्यापन करने के कारण पुत्रका प्रधान गुरु है। वह कुछ भी आज्ञा दे उसे धर्म समझकर स्वीकार करना चाहिए। पुत्र पिता का स्नेह पात्र है। किंतु पिता पुत्र का सर्वस्व है। एकमात्र पिता ही पुत्र को शरीर आदि सब कुछ देता है। इसलिये कोई भी सोच-विचार के बिना

पिताकी आज्ञा माननी चाहिए जिससे उसके समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं। गर्भाधान और सीमन्तोन्नयन संस्कार के द्वारा पिता ही पुत्र को उत्पन्न करता है। वही अन्न-वस्त्र देता, पढ़ाता-लिखाता और समस्त लोक व्यवहारों का ज्ञान कराता है। पिता ही धर्म है, पिता ही स्वर्ग है, पिता ही सबसे बड़ा तप है। पिता के प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होते हैं। पिता जो कुछ भी कहता है, यदि पुत्र उसका अभिनन्दन करे तो वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। वृक्ष अपने फूल और फलों को छोड़ देते हैं किन्तु पिता बड़े से बड़े संकट में भी स्नेह के कारण अपने पुत्र को नहीं छोड़ता। अत: पुत्र के लिये पिता का स्थान बहुत ऊंचा है। मातृ-पितृ भक्त श्रवण कुमार, महावीर मुनि, परशुराम, नारद, भक्त प्रह्लाद, पुंडलीक, नचिकेता, अष्टावक्र मुनि तथा शनिदेव आदि अनेक मनीषियोंने माता-पिता की सेवा को सार्थक व साकार किया है।

भगवान शंकर कहते हैं- कोई चाहे कितना ही ऊंचा उठ जाएं लेकिन उसको अपने माता-पिता का सम्मान करना चाहिये नहीं तो उसकी कीर्ति नष्ट हो जायेगी। शनिदेव भी अपने पिता सूर्यकी परिधि में ही रहते है। जो गुरु, पिता-माता या पूज्य राजा या पति-पुत्र को अथवा प्रजा को सुखी नहीं कर सकता, उसे आत्मा की अमरता का उपदेश नहीं करता और उसमें उत्तम संस्कार नहीं डालता वह पुरुष सच्चा हितैषी नहीं है। ईश्वर देव महान है, मातु, पिता, आचार्य। देव अतिथि विद्वान हैं, सिद्ध करें सब कार्य। हर जनम में हमको तू ममतामयी माई मिली, तेरी सेवा और तेरी परछाई मिली। मां-बाप के आशीष से डर नहीं, फिर राह में चाहे पर्वत मिले या खाई मिले। पिता को जन्मदाता कहा गया है क्योंकि वही जीवों को उनके शुभाशुभ कर्मों के अनुसार उपयुक्त शरीर प्रदान करता है। वह जीवों का पालन कर्ता होने से पिता है।

संतान को उत्पन्न करनेवाला पिता ब्रह्मा है और संतान को विधिवत पालन करनेवाला होने की दृष्टि से वही पिता विष्णु रूप भी है। पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह पिता का आज्ञाकारी हो माता का आदर करें। सृष्टि कर्ता ब्रह्माने सद् और असद् दोनों भाव की सृष्टियाँ सम्पन्न की। न्यायत: वही धर्म मनुष्य में प्रकट है। सन्तानोत्पत्ति कर वह अपने वंश की वृद्धि करता है। इस महत्वपूर्ण कर्म में नर के साथ नारी भी सहभागी है, तथापि प्रजोत्पादन में बीज रूप से प्रधान होने के कारण, पिता ही कूटस्थ प्रतीक है। रजोगुण से आविष्ट होकर हिरण्यगर्भ रूप से चराचर संसार को उत्पन्न करनेवाले को ब्रह्मा कहा गया है। कुल और राष्ट्र की उन्नति, पुत्रों के द्वारा होती है। मोक्ष का एक साधन पुत्र है। इस आलोक में पुत्रोत्पत्ति कर्म को यज्ञ-समान कहा गया है। लोक में पुत्रैष्णा सभीको व्याप्त है। यज्ञ से श्रेष्ठ संतति प्राप्त करने की लोकोपकारी भावना भी ध्वनित होती है जिसका अनुसरण कर सर्वोत्तम सन्तान प्राप्त की जाती है। अज्ञ प्राणी के लिये सांसारिक सुखों में सर्वोत्तम सुख प्रिय-प्रियतम, परिष्वंग- मैथुन में है; किन्तु विद्वान पुरुष इस क्रिया को यज्ञ की भावना से केवल श्रेष्ठ संतति प्राप्त करने के लिये संकल्प से ही सम्पन्न करती है और शेष समय संयमपूर्वक ब्रह्मचर्य को धारण करते हैं। संतति में श्रेष्ठ संस्कारों का आधान करना है। पुत्र स्वयं की आत्मा का अंश और उसी से प्रादुर्भूत आत्मज है। धार्मिक सुसंस्कारित और शिक्षित सन्तान, पिता का सर्वोच्च सुख है। पिता का महत्वपूर्ण धर्म सन्तान के सम्यक पालन-पोषण में है। संतान को अराजिक मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ पिता द्वारा श्रेष्ठ शिक्षा और संस्कार देने की प्रवृत्ति भी सम्मिलित है। पिता परिवार का मुख्यजन (मुखिया) है। सभी परिजनों के प्रति, उसका कल्याण-भाव रहता है। वह प्राप्त संसाधन से बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से सम्पूर्ण परिवार का पालन-पोषण करता है। आहार आदिकी मौलिक आवश्यकताएं, प्राणी को संजीवनी और सुरक्षा प्रदान करते हैं। पिता के द्वारा इनकी प्राथमिक उपलब्धता होती है। तत्पश्चात् श्रेष्ठ शिक्षा और संस्कार देनेमें पिता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उसकी संतानें यह ग्रहण कर उसका अनुसरण करती है। इस प्रकार परंपरागत श्रेष्ठ व्यवसाय और संस्कार प्रचलित होते हैं तथा कुल और राष्ट्र की उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है।

सुन जननी सोई सुत बडभागी। जो पितु, मातु, चरण अनुरागी।

माता को संसार का सबसे प्रथम एवं सबसे बड़ा विश्व विद्यालय कहा गया है। जो संतान को शिक्षा और संस्कार देती है वह कोई भी संस्कार या विद्यालय नहीं दे सकता। माता के गर्भ से यह शिक्षा प्रारम्भ हो जाती है और निरन्तर जारी रहती है। माता द्वारा दी गई शिक्षा से सन्तान को अद्वितीय उपलब्धियाँ प्राप्त होती है। वीर अभिमन्यु ने माता के गर्भ में ही चक्रव्यूह भेदन की विद्या सीख ली। माता कौशल्या ने अपने पुत्र राम को मर्यादा पुरुषोत्तम राम बना दिया, शुकदेव मुनि को सारा ज्ञान माता के गर्भ में ही प्राप्त हो गया और गर्भ से बाहर आते ही वे सच्चे वैरागी एवं ज्ञानी होकर घर से चल दिये। अष्टावक्रने वेदों का सारा ज्ञान अपनी माताके गर्भ में ही सीख लिया। तात्पर्य यह है कि सन्तान के निर्माण में संस्कारों के सृजन में माता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। माता की दी हुई संस्कार शिक्षा शिशु के अन्त:करण में प्रविष्ट होकर उसके जीवन को गतिशील बनाती है।

हर व्यक्ति को सद्ज्ञान का पात्र बनाते है उसके संस्कार। यही संस्कार प्राप्त होते हैं माता-पिता से। हर बच्चे को अपने पिता से जहां उसके जैविक गुण प्राप्त होते हैं वही माता से उसका व्यक्तित्व, चरित्र तथा अन्य गुण भी मिलते है। बचपन से अपने पिता को देखनेवाले बच्चों के मन में उन्हीं के जैसा बनने की भावना प्रबल होती है। इस प्रकार हर बच्चे के भविष्य की दीक्षा काफी हद तक उसके पिता से प्रभावित होती है। यही वजह है कि भारतीय समाज में पिता का बहुत महत्व है। पुत्र के मन में पिता का ऐसा आदर और सम्मान भारतीय संस्कारों का ही परिचायक है। माता-पिता को ही अखिल विश्व मानने की परम्परा रही है। आधा विश्व पिता में है और शेष आधा विश्व माता में। इसलिए देवताओं ने विश्व की परिक्रमा करने में गणेश को कार्तिकेय से श्रेष्ठ माना है। क्योंकि कार्तिकेय जब काफी समय के बाद विश्व की परिक्रमा करके आये तब गणेश ने एक ही क्षण में अपने माता-पिता की परिक्रमा कर ली और कहा मेरे लिये तो यही विश्व है और मेरी विश्व परिक्रमा हो गई। हिंदु धर्म ईश्वर को सर्वप्रथम मां के रूप में देखता है, फिर पिता के रूप में। माता-पिता की कृपा से ही हम मानव योनि में जन्म लेते हैं। जन्म से पूर्व गर्भ में भी हमारा समुचित पालन उन्होंने किया है तथा जन्म के बाद हमारी हर प्रकार से देखभाल उन्होंने ही किया। यदि हमारे पालन-पोषण में तनिक भी उपेक्षा कर दी होती तो संभवत: हमारा जीवित रहना भी संभव नहीं हो पाता। इन सबके लिये मां-बाप ने क्या-क्या कष्ट सहे हैं इसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते। हमारी शिक्षा-दीक्षा में, व्यापार-नौकरी में, चारों दिशाओंकी प्रगति में उन्होंने अपनी समस्त प्रतिभा व क्षमता का समर्पण किया है। स्वयं अनेक कष्ट सहते हुए हमारी सुविधाओं का ध्यान रखा है। उनके इस ऋण के मुक्त नहीं हो सकते।

इस पार्थिव शरीर के साथ ही जीवात्मा के इस नश्वर संसार में प्रवेश करने की घड़ी से ही हर व्यक्ति कर्जदार हो जाता है और वह ऋण तरह-तरह के होते हैं। सबसे पहले परमात्मा का ऋण- जिसने ८४ लाख योनियों के बाद हमें यह मनुष्य चोला दिया। दूसरा ऋण माताका। जिन्होंने नौ मास उदर में रखकर तरह-तरह के कष्ट उठाकर, सब पीड़ा सहकर जन्म दिया, लालन-पालन किया। तीसरा ऋण पिताका। जन्म प्रक्रिया के सहभागी होकर, अपनी गोद में संरक्षण देकर, पढ़ा लिखाकर योग्य बनाया। संसार सागर में गोता लगाकर गुणों के मोती चुनने का हुनर सिखाया, इंसान बनाया। चौथा ऋण गुरु का है। जिसने ईश्वर से भी बड़ा स्थान वाले गुरुके मार्गदर्शन से ही जीवन में निखार दिया। पांचवा ऋण- इष्ट मित्र, संबंधी इत्यादि का। जिनसे जीवन में विशिष्ठ योगदान मिला। पिता तो धृतराष्ट्र भी थे जिसके अविवेकी पुत्र प्रेम की महाभारत के विनाशकारी महायुद्ध में परिणिति हुई, अन्त में उनके कुल में कोई नहीं बचा। क्या दुर्योधन पितृऋण से मुक्त हो सका। एक पिता दशरथ भी थे जो पुत्र वियोग में स्वर्ग सिधार गये अपने वचन का अनुपालन करके। वनगमन करके श्रीराम पितृऋण से उऋण हुए। पिता की ऊँगली पकड़कर हमने चलना सीखा। जिन्होंने जीवन संघर्ष का सामना किया।

संतान के लिये कभी अपने मुँह का निवाला भी संतान को दिया। संस्कार दिये। सन्तान को अपने पैरोंपर खड़ा होने योग्य बनाया। संकट की आंधी, तूफान, झंझावात, परेशानी की धूप से बचाया। माता-पिता के ऋण से उऋण होना बहुत ही कठिन है। हमारे जन्म के समय उन्होंने कहा-

तुझे सूरज कहूं या चन्दा, तुझे दीप कहूं या तारा, मेरा नाम करेगा रोशन, जग में मेरा राजदुलारा। आज ऊँगली पकड़कर तेरी तुझे मैं चलना सिखलाऊँ, कल हाथ पकड़ना मेरा, जब मैं बुढ़ा हो जाऊं, तू मिला तो मैंने पाया जीने का नया सहारा, मेरा नाम करेगा रोशन, जग में मेरा राजदुलारा।

पता नहीं कौन पुत्र, पिता के ऋण से उबर पाता है। लेकिन प्रयास तो सभी को करना चाहिए। जीवन भर उनकी सेवा में तन मन धन न्यौछावर करने में तनिक संकोच नहीं करना चाहिए। उनके आदर्शों और आदेशों का सदैव सम्मान करना और पालन करना चाहिए। पिताश्री के आशीर्वाद स्वरूप ही हमारा अस्तित्व है। उनकी आत्मा सदैव हमें आशीष देती रहती है।

स्मरण जब भी मैं करता हूँ उनका कुछ दूर नजर चली जाती है,
प्रभुकी मूरत में मुझे अपने पिताश्री की छवि नजर आती है।
बचपन में छोटी-छोटी खुशियां थी और गम भी छोटे-छोटे थे।
मन भाया अगर न मिल पाये तो हिचकी भरभर रोते थे।
जिद करे अगर हम वो ही लें तो तुरंत पा जाते थे।
अब समझ में आता है कैसे वो सब कुछ होता था,
चाहे मुश्किल हो बड़ी मगर, हम जो चाहे वो होता था।
उपकार का यह ऋण न उतरेगा, हम सदा ही ऋणी रहेंगे,
उपदेश आपने हमें दिया, वो ही हमारे जीवन के गहने होंगे।
जिस लोक में पिताश्री गये, वो तो प्रभुधाम कहलाता है,
जुड़ा आपसे पल-पल में ऐसा वो गहरा नाता है।
सांसों का क्या भरोसा, रुक जाये कब कहीं पर।
फिर भी आपका आशीर्वाद साथ होता है।

हमारे माता-पिता के हमारे ऊपर अनन्त उपकार हैं। घर में वृद्ध मां-बाप से जो नहीं बोलता, उनका सम्मान नहीं करता, उनको सम्भालता नहीं और वृद्धाश्रम और जीवदया में दान नहीं करता ऐसे व्यक्ति को दयालु कहना दयाका अपमान है।

पिता धर्म है, पिता स्वर्ग ही और पिता ही सर्वोत्कृष्ट तपस्या है। पिता के प्रसन्न हो जाने पर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जिसकी सेवा और सद्गुणों से माता-पिता संतुष्ट रहते हैं, उस पुत्र को प्रतिदिन गंगास्नान का फल मिलता है। माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप हैं, इसलिये सब प्रकार ये यत्नपूर्वक माता-पिता की जो प्रदक्षिणा करते हैं, उसके द्वारा सातों द्वीपों से युक्त समूची पृथ्वी की परिक्रमा हो जाती है। जो जन्म देता है, भय से बचाता है तथा जो जीविका देता है वे तीनों पितर (पिता) कहलाते हैं। माता में सभी तीर्थों का अधिष्ठान है अथवा सभी तीर्थों का जो पावनत्व है, उससे भी अधिक पवित्र माता है, इसी प्रकार पिता में सभी देवता प्रतिष्ठित हैं। अत: सभी प्रकार के प्रयत्न से माता-पिता की सेवा पूजा करनी चाहिये।

यदि पिता पतित भूख से व्याकुल, वृद्ध, सब कार्यों में असमर्थ रोगी और कोढी हो गये हों तथा माता भी इसी अवस्था में

हो, उस समय में भी जो पुत्र उनकी सेवा करता है, उस पुत्र पर नि:संदेह भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं। पुत्रों के लिये माता-पिता से बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। वे इस लोक और परलोक में भी श्रीनारायण के समान हैं। माता पूज्यनीय है, सम्माननीय है, सत्कार के योग्य है। संसार में ईश्वर के पश्चात् यदि कोई सबसे अधिक पूजा के योग्य है तो वह मां है। माता के उपकार अनन्त हैं, अवर्णनीय है। मनुष्य के उत्पन्न होने में जो क्लेश माता-पिता सहन करते हैं, उसका बदला सौ वर्षों के उपकार करने से भी नहीं दिया जा सकता। माता-पिता की सेवा करनेवाले मनुष्य के लिए स्वर्ग, धन-धान्य, विद्या, पुत्र और सुख कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है।

संतान को प्रात:काल उठते ही माता-पिता के चरणस्पर्श और अभिवादन करके उनके आशीर्वाद लेने चाहिए। ऐसा कोई भी कष्ट नहीं होना चाहिए, जिससे माता-पिता का हृदय आहत हो, उनका अनादर हो या दु:ख पहुंचे। वृद्धावस्था में मां-बाप की उपेक्षा करना बहुत बड़ा पाप है। इस अवस्था में संतान उनकी लाठी होती है। इसलिए माता-पिता के भोजन और उनकी प्रत्येक आवश्यकता का पूरा ध्यान रखना चाहिए। वृद्धावस्था में माता-पिता को प्राय: अकेलापन महसूस होता है। इसलिये अपने व्यस्त जीवन में से कुछ समय निकाल कर उनके पास अवश्य बैठें। इससे उनका हृदय प्रसन्न होगा, आपको आशीर्वाद मिलेंगे। वृद्ध माता-पिता के लिए फल, मिठाई, वस्त्र तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं उन्हें अवश्य भेंट करें। जिसने अपने मां-बाप का हृदय जीत लिया, उसीने प्रभु को प्रसन्न कर लिया।

माता-पिता को अपनी कमाई में से कुछ धनराशि अवश्य भेंट करें ताकि वे उसे अपनी इच्छानुसार व्यय कर सकें। याद रखें वह भेंट आपको कई गुना होकर प्राप्त होगी। आपकी कारोबार में उससे वृद्धि होगी। जीवित माता-पिता का श्राद्ध-तर्पण शास्त्रों के अनुसार केवल जीवित माता-पिता की सेवा ही सच्चा श्राद्ध-तर्पण है। माता-पिता का आशीर्वाद बिना किसी शर्त के सदैव साथ चलता है। माता-पिता आपके मनको मलिन करनेके प्रभाव से बचा सकता है। आपको हर तनाव से बचायेगा और रास्ता ढूँढने की समस्या भी आपकी सुधारेगा। पुत्रके सोलह वर्ष होनेपर उससे मित्रवत व्यवहार करता है, अपने से भी ज्यादा यशस्वी बनानेकी कोशिश करता है। पुत्र से पराजय पाने की, पुत्र को अपने से ज्यादा योग्य शक्तिशाली एवं यशस्वी बनाने की इच्छा करता है। पुत्री की जिंदगी में पहला पुरुष आपका पिता ही होता है। पिता ही अपनी पुत्री को सिखाता है कि व्यक्तिकी पहचान उसका चेहरा नहीं उसके कर्तापन पर निर्भय करता है। माता-पिता हमारे जनक हैं। माताकी सेवा करके धरती, भवन, सम्पत्ति व सब सुख प्राप्त होते हैं। जो माता-पिता की सेवा करते हैं उन्हें यश, धन, पद, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। उनके आशीष से फलदायी कोई वरदान नहीं है। जिन्हें इस तीर्थ को हर दिन करने का सौभाग्य मिला है, वे स्थल आधारित तीर्थ की चिन्ता छोड़ अपने माता-पिता का तीर्थ करें। मनुष्य को अपनी आत्माके सुधार और कल्याण के लिये जितना भी बन पड़े अधिक से अधिक उनकी सेवा करनी चाहिए। अर्थात्- तन, मन, धन से उनको सुख पहुँचाना, उनकी आज्ञा का पालन करना और उनके संकेत, मन की रुचि के अनुसार आचरण करना। बालक के पालन-पोषण और विवाह (शादी) आदि कार्यों में माता-पिता को महान क्लेश उठाने पड़ते हैं तथा मरने पर अपना सर्वस्व पुत्रों को देकर जाते हैं। माता-पिता की सेवा से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। उनकी सेवा से उन्हें तीनों कालों का ज्ञान भी होने लगता है। माता-पिता ही संतान की नींव हैं, बुनियाद है, इनकी सहनशीलता, लग्न, धैर्य, समाज में प्रशंसित होने की चाह, देश के प्रति निष्ठा एवं अपनी संस्कृति एवं संस्कार के प्रति समर्पण ही बुनियाद के ऐसे अमूल्य भावमय पाषाण खंड है। जो इस इमारत की मजबूती सालों-सालों ही नहीं सदियों तक बनाये रखती है। बुनियाद के मजबूती में ही इमारत की मजबूती छिपी होती है। पिता के प्रसन्न हो जाने पर सारे देवता प्रसन्न हो जाते हैं। इससे बढ़कर

अन्य कोई धर्माचरण नहीं है। हम लोगों के गुरु, राजा और पिता होने के साथ ही वयोवृद्ध माननीय पुरुष है। वे क्रोध से, हर्ष से अथवा किसी कारण से प्रेरित होकर यदि किसी कार्य करने का आदेश दें तो धर्म समझकर उसे करना चाहिए।

पुत्र सदा वही कार्य करे जिससे पिता सन्तुष्ट और प्रसन्न हो। जिस कर्म से पिता को थोड़ा सा भी कष्ट हो उसे कदापि न करें। जिस पुत्र के उत्पन्न होने से मनुष्य पितृऋण से मुक्त हो जाता है और जिस पुत्र से मनुष्यों को अनन्त सुख मिलता है, वह पुत्र धर्मपुत्र कहलाता है और अन्य पुत्र कामजन्य है। एक चन्द्रमा अन्धकार का नाश कर देता है और सब तारे मिलकर भी अन्धेरे का नाश नहीं कर सकते। इसलिये गुणी पुत्र एक ही श्रेष्ठ और मूर्ख बहुत भी हो तो किसी काम के नहीं। यदि घर में सती-साध्वी स्त्री हो, पुत्र विनयशील और बुद्धिमान हो, तथा पौत्र भी हो, तो फिर स्वर्ग में भी इससे बढ़कर और क्या सुख हो सकता है। माता मूर्त्तिमर्यी पूजनीय देवता। पिता सत्कर्त्तव्य देव। आचार्य विद्या का देनेवाला, अतिथि भी देवता है। स्त्री के लिए पति और पुरुष के लिए स्वपत्नी पूजनीय है। पुत्र वही है जो पिता का भक्त हो। पितृ वह है जो पुत्रों का पोषण करे। मित्र वह है जिसपर विश्वास हो और पत्नी वो है जो सदा सुख देती है। पुत्र सदैव पिता के वश में रहे। ऐसे पुत्र के गुणवान होने पर कुटुम्ब स्वर्ग बन जाता है। पिता को अपने पुत्रको सब विद्याओं में पारंगत विद्वान बनाना चाहिए। दुर्गति से माता-पिता को बचानेवाला ही सत्पुत्र होता है। सत्पुत्र ही कुल को विख्यात करता है।

पुत्र ऐसा होना चाहिए जो आनन्द देनेवाला हो, सहस्त्रों का भरण-पोषण करने की क्षमतासे युक्त हो जिसके घरसे कोई भूखा न जाए। बहुतोंका प्रिय हो वह क्रूर स्वभाव का न होकर सौम्य स्वभाव का हो। उसका यश दूर-दूर से फैला हुआ हो। बड़ों का भी पराभव कर सकता हो। वह सत्य के लिए मर मिटनेवाला हो। सदा प्रसन्न रहनेवाला हो। विषय कामनाओंसे रहित, सूर्य के समान दीप्त एवं प्रकाशमान, धीर, वीर, साहसी, पराक्रमी, निर्भय और निडर होना चाहिए। वह जंगल में मंगल करनेवाला हो। चट्टान की भांति अडिग हो। निष्पाप और क्रीड़ाशील हो, सुखों की वृद्धि करनेवाला हो, उन्नति करनेवाला हो। जो पुत्र ओर मनुष्यों के लिए जीता हो। जीवन के आदर्श से, अपनी विद्यासे, अपने आचार और विचार से, अपने व्यवहार से मनुष्योंको प्रकाश और प्रेरणा देनेवाला हो। ज्ञानज्योति जगानेवाला हो। पिता पालन करने में प्रजापति की मूर्त्तिरूप हो। पालक, पोषक और रक्षण करनेवाले को पिता ही कहते हैं। पुत्र जो पिता का भक्त हो।

संतानोंने माता-पिता की आज्ञाओं का पालन किया, उनकी सेवा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। भारत एक पुण्यभूमि है। इस भूमि पर भगवान राम ने अपने माता-पिता के सम्मान को गौरव प्रदान किया। भीष्म ने अपने पिता की प्रसन्नता के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की। श्रवणकुमार ने यौवनावस्था में कांवड़ लेकर माता-पिता को उसमें बिठाकर तीर्थों की यात्रा करायी। भक्त पुंडलिक ने पिता की सेवा और सुमिरन से प्रभु दर्शन किये। नचिकेता ने यम को प्रसन्न करके पिता की प्रसन्नता का वरदान पाया। आज के कलियुग में इस पतनोन्मुखी दौर में हरेक की इस मान्यता में ऱ्हास होता आया है। बच्चों के बुद्धि विकास में उनके पिताओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बच्चों की बुद्धि का स्तर बढ़ता है, बच्चे समझदार बनते हैं। बच्चों की सामाजिक सक्रियता अधिक होती है। तेरा वैभव बना रहे मां, हम दिन चार रहे ना रहे।

माता और पिता का कर्ज कभी भी नहीं चुकाया जा सकता। मनुष्यों के पैदा होने में उनके माता-पिता को जो कष्ट होते हैं उसका बदला सैकड़ों वर्षों या अनेक जन्मों में भी नहीं चुकाया जा सकता। माता-पिता बच्चों को जन्म ही नहीं देते उनका पालन-पोषण करते, पढ़ाने-लिखाने व समर्थ बनाने में भी अपार कष्ट सहन करते हैं, बच्चे कभी भी उनका बदला चुका नहीं सकते। बच्चों का कर्त्तव्य है कि वे अपने माता-पिता को सदा याद रखें और उनकी आज्ञा मानें और उनकी सेवा करें। माता-पिता ने उन्हें उंगली पकड़कर चलना सिखाया तथा उत्तम राह दिखलाई जिस पर चलने से यश, कीर्ति,

धन, वैभव व ज्ञान आदि की प्राप्ति होती है। इस दुनिया में अगर हमारे सबसे करीब कोई होता है तो वो होते हैं हमारे माता-पिता। जो बिना किसी स्वार्थ के हमारी परवाह करते हैं और हमें दुनिया की हर खुशी देना चाहते हैं।

पिता का स्थान मानव के जीवन में सर्वोत्तम है। भगवान ने हमारे लिए सम्पूर्ण जगका निर्माण किया है; ऋषि मुनियों ने हमें ज्ञान दिया है; पितरों ने कुल की पीढ़ियों को जन्म दिया है। समाज के प्रत्येक घटक से हमें सहायता मिलती है, यानी एक प्रकार से सभी का हम पर ऋण है। इन्हीं को क्रमश: देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण, समाजऋण कहते हैं। पितृपक्ष में श्राद्धविधि कर हम पितृऋण से मुक्त हो सकते है।

पंच देवों तथा शारीरिक पंच तत्त्वों की तरह पिता भी पांच तरह के होते हैं- जन्मदाता पिता, जीवनदाता पिता- पालन-पोषण करने वाला पिता, विद्या देनेवाला पिता, गुरु, भय से छुपानेवाला पिता तथा कन्यादान करनेवाला पिता। धर्म शास्त्रों में पिता को विष्णु माना गया है। पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है, पिता ही परमं तप है। पितृहि प्रीत मापन्न:, प्रीयन्ते सर्वदेवता:। अर्थात् मनुष्य के लिए पिता ही धर्म, स्वर्ग एवं परम तप है। इसलिए पिता की प्रीति और उनकी सेवा से सब देवता प्रसन्न होते हैं। महाराष्ट्र के पंढरपुर स्थित विश्व प्रसिद्ध श्री रुक्मिणी विठ्ठल मंदिर का अस्तित्व ही माता-पिता की सेवा की महत्ता पर आधारित है। भगवत भक्त श्री पुण्डलीक अपने माता-पिता की सेवा में तल्लीन थे। उसी समय भगवान स्वयं अपने भक्त के द्वार पर आए। श्री पुण्डलीक ने भगवान को वहाँ पड़ी हुई एक ईंट पर प्रतीक्षा करने का इशारा किया। माता-पिता की सेवा से निवृत्त होने के बाद पुण्डलीकजी भगवान से मिलने आये, तब तक भगवान ईंट पर ही खड़े रहे। महराष्ट्र में ईंट को विट कहते हैं- इसके ऊपर खड़े रहने के कारण भगवान का नाम विठ्ठल पड़ा और विठ्ठल भगवान के नाम से जाने लगे।

माता-पिता की पूजा जिनका कर्ज चुका न सकेगे, लेकर जन्म भी दूजा।
सहकर कितने ही कष्टों को, उन्होंने हमको पाला, पेट भरा पहले बच्चों का फिर खुद लिया निवाला।

माता पिता हर पल सोचते रहते हैं कि हमारे बच्चों में कोई कमी न रह जाएं। कहीं बार खुद भूखे रहकर भी जीवन व्यतीत किया और हमें पाला। धर्म कहता है उनकी सेवा ही सबसे बड़ी सेवा है। हमें हर वक्त फूलों पर सुलाया और खुद कांटों पर सोये। हमें हंसाने की खातिर खुद खून के आँसू रोये। हमें आँचल की घनी छांव दी, पर धूप में खुद को जलाया। हमें बनाने की खातिर, अपना सर्वस्व लुटाया। हमको सब कुछ दिया पर अपने लिये कुछ भी नहीं रखा। मां की गोद में खेलने के लिए ईश्वर ने भी अवतार लिया। माता-पिता का स्नेह क्या होता है यह कृष्ण ने पाया। माता-पिता भगवान तुल्य है यह राम से सीखने को मिलता है। श्रवण जैसे पुत्र ने यह सब सच कर दिखलाया। जीवन उसीका धन्य है जिन्होंने माता पिता में प्रभु को देखा।

माता पिता से बढ़कर जग में, है कोई भगवान नहीं। माता-पिता की सेवा से बढ़कर जग में कुछ काम नहीं।।
माता-पिता को जो दु:ख देता, वो पाता सम्मान नहीं, माता-पिता का करे अनादर, वह पापी है इंसान नहीं।।
परिक्रमा ब्रह्मांड की जो कर आए, पहले पुजे वहीं। सभी देवता दौड़ पड़े, पर गणपति वाहन पर न चढ़े।।
माता-पिता की परिक्रमा कर, सबसे पहले हुए खड़े। हुए विजेता घोषित, सबसे पहले पुजते सदा वही।।
माता पिता है पूजनीय, इससे बढ़कर कुछ ज्ञान नहीं। जो छूता है माता-पिता के नित्य चरण सुख पाता है।।
मिलती हैं आशीषें उसको, भवसागर से वह तर जाता है। माता-पिता का जो करता उपहास, चैन उसे न आता।।
माता-पिता सबसे महान है, धर्म ग्रंथ भी यह कहते हैं। स्वर्ग बसे उनके चरणों में, और मिलेगा कहीं नहीं।।
खुद गीले में सोकर माँ ने तुमको सूखे में रक्खा। तुम्हें खिलाया पूरा भोजन अगर बचा तो खुद खाया।।
माँ का दूध कर्ज है तुम पर, कभी न चुका पाओगे। तुमको नरक भोगना पड़ेगा अगर मां को सताओगे।।

माता-पिता को दु:ख देने से, मिलते परमानंद नहीं। उन्हें सुखी रक्खे बिना, प्यार पाओगे, आनंद नहीं।।
माता पिता गुरु प्रभु चरणों में दंडवत बारंबार, उन्होंने हम पर किया बड़ा उपकार।।
माता ने दी ममता की शीतल छाया। माँ की गोदी में पलकर, हम कहलाते होशियार।।
पिता ने हमें सुयोग्य बनाया, कमा-कमा कर के हमें खिलाया।
पढ़ा लिखा विद्वान बनाया, जीवन पथ पर चलना सिखाया।
जोड़ जोड़ कर अपनी सम्पत्ति का हकदार बनाया।
सत्य मार्ग गुरु ने दर्शाया, अन्धकार सब दूर हटाया।
हृदय में भक्ति दीप जलाकर, हरि दर्शन का मार्ग बताया।
प्रभु कृपा से नर तन पाया, संत मिलन का साज सजाया।
बल और बुद्धि विद्या देकर, सब जीवों से श्रेष्ठ बनाया।
माता-पिता की छत्रछाया में वे कर देते सबका उद्धार।

जीवित माता पिता की छत्र छाया में स्नेह से दो बोल बोलके निरख लेना। होठ आधे बंद हो जाने के बाद गंगाजल के क्या करना।। अंतर्मन से आशीर्वाद देनेवाले को, सच्चे हृदय एक पल मिल लेना। जीवित नहीं होंगे तब नतमस्तक से, फोटो को नमन करके क्या करना।। काल के ग्रास में जाकर अलविदा यहां से हो जायेंगे, प्रेमका हाथ फिर कभी आप पर नहीं फिरेगा।। लाख कोशिश करके भी वात्सल्य का लाव्हा नहीं मिलेगा, फिर घर में तस्वीर लगाकर क्या होगा।। माता-पिता का खजाना भाग्यशाली संतान को ही मिलता है। अड़सठ तीर्थ जिनके चरणों में हैं, फिर दूसरे तीर्थों में क्यों फिरना।। स्नेह का बहाव पल में आकर चला जायेगा, फिर किनारे पर सीप ढूंढने से क्या फायदा।। जीवित रहें तब तक हृदय उनका तृप्त रखना, पतझड में बसंत आवे, ऐसा व्यवहार रखना। पंचभूतों में यह देह मिल गया तो बाद में, अस्थी को गंगा में बहा कर क्या करना।। श्रवण बन के बुढापे की लकड़ी बनना, श्रद्धा से हाथ पकड़कर कभी, तीर्थ साथ में फिरना। यही सनातन सत्य है, फिर तो राम नाम सत्य है बोलके क्या करना।। पैसा खर्च करके सब कुछ मिलेगा, मां-बाप नहीं मिलेंगे। गया वक्त फिर लौटकर नहीं आयेगा फिर लाखों कमाकर भी क्या करोगे।। प्रेम से हाथ फिरा कर के बेटा कहनेवाला नहीं मिलेगा, फिर मांगा हुआ प्रेम लेकर, आंसू बहा कर क्या करोगे।।

माता-पिता की सेवा ईश्वर की पूजा है। अपने माता-पिता का कृतज्ञ बनो वही आपके अस्तित्व का कारण है। अपनी माता का अनुगृहीत रहो, क्योंकि उन्होंने तुम्हें नौ महीने पेट में ढोया है। तुम भूल गये होगे कि तुम्हारी माता ने तुम्हारे लिये कितने कष्ट सहें हैं। उसने रातों जागकर तेरी सेवा की है। प्रत्येक राहत के लिए वह सब कुछ करती रही है। अपनी छाती की शक्ति को लुटाकर बूँद-बूँद दूध के लिए न्यौछावर रही है। तुम्हारे बचपन में भरण-पोषण के लिए उसने कितनी तकलीफें उठायी होंगी। तुम्हारे पैदाइश से पूर्व उसने न जाने कितने पीरों-फकीरों और देवताओं की मन्नते मांगी होगी। तुम्हारे पिताने तुम्हारे लिए कम त्याग नहीं किया। न जाने कितने कष्ट उठाकर परिवार पालने के लिए वह रोटी जुटाता रहा। अच्छा तो यही होता कि तुम उसका कुछ बदला चुका देते और बुढापे में उन्हें राहत देकर कुछ शांति देते। अपने जीवित माता-पिता के लिए अभी भी कुछ कर सको तो करो कुछ भी शेष मत रखो। उनकी सेवा करके उनको सुविधा एवं शांति दो। मत भूलो यह बुढापा तुम्हे भी आनेवाला है। माता-पिता के द्वारा सर्वथा प्रदत्त वरदान रूप सृष्टि, सुरक्षा, सम्पोषण, सुशिक्षा और सुसंस्कार हेतु ही, उनमें देव बुद्धि रखना चाहिये। संतान को उत्पन्न करनेवाला पिता ब्रह्मा है। संतान को

विधिवत पालन करनेवाला वही पिता विष्णु रूप भी है। पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह पिता का आज्ञाकारी हो और माता का आदर करे। मनुष्य धर्म है कि संतान्तोत्पत्ति कर वह अपने वंश की वृद्धि करें। इस महत्वपूर्ण कर्म में नर के साथ नारी भी सहभागी है, प्रजोत्पादन में बीज रूप से प्रधान होने के कारण पिता ही कूटस्थ प्रतीक है। कुल और राष्ट्र की उन्नति पुत्रों के द्वारा ही होती है। मोक्ष का एक साधन पुत्र है। पुत्रोत्पत्ति कर्म यज्ञ-सदृश कहा गया है। लोक में पुत्रैष्णा सभी को व्याप्त है। पिता का अन्य महत्वपूर्ण धर्म सन्तान का सम्यक पालन पोषण हैं। इसके अन्तर्गत संतान को आहारादि मौलिक-आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ उसमें पिता द्वारा श्रेष्ठ शिक्षा और संस्कार देने की प्रवृत्ति भी सम्मिलित है। पिता परिवार का मुख्यजन (मुखिया) है। सभी परिजनों के प्रति उसका कल्याण भाव रहता है। वह प्राप्त संसाधन से बुद्धिमत्ता पूर्ण ढंग से सम्पूर्ण परिवार का पालन पोषण करता है। पिता स्वयं इस सन्दर्भ में अपना आदर्श परिवार के लिए उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसे उसकी सन्तानें ग्रहण कर उनका अनुसरण करती हैं। इस प्रकार परम्परागत श्रेष्ठ व्यवसाय और संस्कार प्रचलित होते हैं तथा कुल और राष्ट्र की उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता हैं। पिता के इन प्रणम्य स्वरूपों को गौरव प्रदान करने के लिए विभिन्न ग्रंथों में अनेक प्रकार की वचन और सूक्तियां, आख्यान कहें गये हैं। माता-पिता की सेवा से इहलोक, परलोक और ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती हैं।

इस लोक में इस पुण्यकर्म में संलग्न होकर मनुष्य महान यश और श्रेष्ठ लोक पाता है। माता, पिता और गुरु तीनों ही लोक हैं, ये ही तीन आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्नियाँ हैं। पिता गार्हपत्य, माता दक्षिणाग्नि और गुरु आह्वनीय अग्नि है। लौकिक अग्नियों से माता, पिता, गुरु इन तीनों अग्नियों का गौरव अधिक है। यदि इन तीनों की सेवा में कोई भूल न करोगे तो तुम तीनों लोकों को जीत पाओगे। पिता की सेवा से इह लोक को, माता की सेवा से परलोक तथा गुरु सेवा से ब्रह्मलोक भी प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा करने से तुम्हें उत्तम यश, परम कल्याण और महान फल देनेवाले धर्म की प्राप्ति होगी। जिसने इन तीनों का आदर कर लिया उसके द्वारा सम्पूर्ण लोक पूजित हो गये और जिसने इनका अनादर कर दिया उसके सम्पूर्ण शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं। मनुष्य जिस धर्म से पिता को प्रसन्न करता है उसीके द्वारा प्रजापति ब्रह्मा भी प्रसन्न हो जाते हैं तथा जिस बर्ताव से वह माता को प्रसन्न कर लेता है, उससे सम्पूर्ण पृथ्वी की पूजा हो जाती है। परतु जिस व्यवहार से शिष्य अपने गुरु को प्रसन्न कर लेता है, उसके द्वारा परब्रह्म परमात्मा की पूजा सम्पन्न होती है। जो लोग मन, वाणी और क्रिया द्वारा गुरु, पिता, माता से द्रोह करते हैं उन्हें गर्भहत्या का पाप लगता है। जगत में उनसे बढ़कर कोई पापी नहीं है। मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्री-हत्या व गुरुघाती इन चारों के पाप का प्रायश्चित कहीं सुनने में नहीं आया है।

माता ममता की मूरत है, करुणा की निशानी है। कितने ही दर्द सहे और इंसान को जन्म दिया। अपने ही खून से माता ने हमको सींच दिया। संसार में तुझ जैसा, कोई और प्राणी नहीं है। तुम्हीं से संस्कार, शिक्षा और ज्ञान प्राप्त हुए। बच्चों की खुशी के लिए तुमने हर सुख का त्याग किया। गुरुओं की गुरु तू ही है, तेरी अजब कहानी है। ममता का रस पीने, प्रभु ने अवतार लिया। तेरी गोद में खेलें अमृत रस का पान किया। तेरे तप की महिमा को, वेदों ने बखान किया। दुनिया इक हाट है, हर चीज यहां बिकती है। सब कुछ मिल सकता है पर एक माँ नहीं मिल सकती। ब्रह्मांड में दूजा कोई नहीं माँ का सानी है। माँ से बड़ा कोई नहीं है। रिश्ते में छोटे सभी माँ की अनुकम्पा बिना कोई बड़ा नहीं होता। दुनिया में सारे रिश्ते झूठे है पारदर्शी फरिश्ते तक माँ के चरणों में झुकते हैं। भगवान संत गुरुजन माता के गुणगान गाते हैं।

जो माँ की गोदी में सुख है सारे जग में कहीं नहीं। आकर्षित कर सकते हमको चाँद सितारे कहीं नहीं।।

माँ जन्म ही नहीं देती जीवन भी देती है। एक शाश्वत जीवन अत: जननी व जन्मभूमि और स्वर्ग से भी महान हैं। माँ

चन्द्र सी शीतल गंगा सी पावन, सुमेरू सी अडिग, हिम सम उज्ज्वल, दया, करुणा, प्रेम का सागर। माँ भगवान व गुरु से बढ़कर है, धरती से बड़ी व हिमालय से ऊँची, सागर सी विशाल और नदी सी निर्मल। जिस आत्मा का अंत नहीं वो माँ है। जग में सबसे न्यारी जीवन ज्योति जलानेवाली।

कुछ त्याग नहीं करते हम, बस तेरा कर्ज चुकाना है तेरे श्री चरणों में हमें कुछ श्रद्धा सुमन बिछाना है।

मां तू चांद से भी महान है क्योंकि चांद में तो दाग है लेकिन माँ तेरा आँचल पाक है। माँ तू सूरज से भी महान है क्योंकि उसमें आग है लेकिन माँ तेरी गोद में शीतलता है और सूर्य की भाँति प्रकाश फैलाती है। अंगुली पकड़कर चलना सिखाती है। देवी से भी महान है जो दान की बजाय वरदान देती है। समुद्र से भी महान है क्योंकि उसका पानी जो खारा होता है लेकिन माँ तेरे आँचल का दूध तो मीठा होता है। तू ब्रह्मा, विष्णु, महेश से महान है क्योंकि तीनों तेरे गर्भ में समाये हुए हैं।

माँ से तो यह संसार है। उसके उपकारों की गिनती भी नहीं हो सकती।

बचपन से आज तक पाला, परेशानियों में भी संभाला। सदा प्रेरणा बनकर हमको, विजयी होना सिखलाया।।
हमें दिए स्वादिष्ट व्यंजन पर, खुद ने रुखा-सूखा खाया। ममता की मूरत माँ को मेरा प्रणाम है।।
माँ से बढ़कर कोई नहीं है, माँ तो है बड़ी महान्। माँ की वाणी में गंगा की धार, सेवा में तीरथ हजार।।
चरणों में स्वर्ग का द्वार, आदर्शों में गीता का सार। ममता में वेदों का द्वार, आंचल में शीतलता का सार।।
माँ ही तीरथ, माँ ही धर्म और कर्म। माँ से ही इज्जत, माँ से ही परिवार।।
माँ की सेवा में ही सुखों का आधार। माँ की सेवा में ही स्वर्ग का द्वार।।

माँ वो है जो हमको इतना प्यार करती है, कि कभी-कभी खुद हम उस प्यार को समझ नहीं पाते, जो हमको अहसास दिलाती है कि हम कितने अच्छे हैं, हमसे अच्छा कोई और है ही नहीं। माँ वो है जिसकी खुशी हमारी हँसी से है, जिसका दु:ख हमारे दुख से है, जिसके बिना हम जी नहीं सकते, माँ सब कुछ है। मां ही हमारा शब्दकोष है, शब्द सम्पदा है। माँ सब पूर्ण गहन विशद-रहस्यगर्मी शब्द है। माँ से छोटा कोई शब्द नहीं है पर वह भी इतना महिमामय, अर्थपूर्ण शब्द है। बच्चा जब भी बोलना सीखता है तो पहला शब्द उसके मुंह से माँ निकलता है। माँ मोक्षगामी होती है। माता को मोक्ष के लिए संन्यास की आवश्यकता नहीं। अपनी संतान की सेवा, ईश्वर भाव व सेवा करना मोक्षदायक है। अपनी माँ को देवता समझना यह अर्थपूर्ण है। उसे कभी साधारण मानवी या प्राकृत नारी न समझना। वह न केवल जननी मात्र, प्रसूति मात्र नहीं वो साक्षात मूर्तिमती देवी है। माँ यानी करुणा, प्रेम, स्नेह, त्याग, उत्सर्ग, सहिष्णुता की अजस्रधारा है। माँ साक्षात् ईश्वर है। त्रिमूर्ति का निवास है, जहां ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन और शिव संहार करते हैं। माँ हमे जन्म देती है इसलिये वह ब्रह्मा है, माँ पालन-पोषण करती है तब विष्णु है, और माँ हमारी दुष्प्रवृत्तियों को मिटाती है इसलिये वह रुद्र है। वह नित्य प्रतिदिन हमारे मंगल में रहती है, अत: शिव है। माँ ही हमारी गुरु है। धर्मग्रन्थों में माँ की महिमा का अनन्त गान किया है। पुत्र के लिये माता का स्वरूप पिता से बढ़कर है क्योंकि वह इसे गर्भ में धारण करती है। माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है। पुरुष पत्नी का आश्रय लेकर स्वयं ही पुत्र रूप में जन्म लेता है, पिता का आश्रय भी माता ही होती है। पिता ही धर्म है। पिता स्वर्ग है और पिता ही सर्वोत्कृष्ट तपस्या है। जिसकी सेवा और सद्गुणों से माता-पिता संतुष्ट हो जाये उस पुत्र को प्रतिदिन गंगा स्नान का फल मिलता है। माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है इसलिये माता-पिता की चरण वन्दना नित्य करनी चाहिए। जो उनकी प्रदक्षिणा करता है उसके द्वारा सातों द्वीपों से युक्त समूची पृथ्वी की परिक्रमा हो जाती है। जो गर्भाधान द्वारा शरीर का निर्माण करता है, अभयदान देकर प्राणों की रक्षा करता

है, जिसका अन्न भोजन किया जाता है यह क्रमश: तीनों पुरुष पिता ही कहे गये हैं। माता में सभी तीर्थों का अधिष्ठान है। सभी तीर्थों का जो पावन तत्व है उससे भी अधिक पवित्र माता है। यदि पिता पतित भूख से व्याकुल, वृद्ध, सब कार्यों में असमर्थ रोगी और कोढ़ी हो तथा माता भी इसी अवस्था में हो, उस समय में जो पुत्र सेवा करता है उसपर नि:संदेह भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं। संतान के लिये माता-पिता से बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। जो पुत्र अंगहीन, दीन, वृद्ध, दु:खी तथा रोग से पीडित माता-पिता का त्याग कर देना है, वह कीड़ों से भरे हुए नरक में पड़ता है। जो पुत्र कटु वचनों द्वारा माता-पिता को दु:खी करता है, वह पापी नरकों की यातना में जन्म लेकर घोर दु:ख उठाता है।

वृद्ध माता-पिता का अभिवादन करनेवाले संतान की आयु, विद्या, यश तथा शक्ति में वृद्धि होती है। महाभारत में कौशिक ब्राह्मण को व्याध ने सीख दी कि माता-पिता ही मेरे प्रत्यक्ष धर्म और परम देवता है। इन्ही की सेवा के प्रभाव से उन्हें यह सिद्धि प्राप्त हुई। समस्त संसार के लिये इन्द्र आदि देवता जैसे पूजनीय है उसी प्रकार उसके लिये वृद्ध माता-पिता आराधनीय है। व्याध ने कहा- मैं नाना प्रकार के उपहार, फल-फूल, रत्न आदि से अपने माता पिता को संतुष्ट करता हूँ। चारों वेद, अग्नि और यज्ञ सब कुछ मेरे लिये माता-पिता ही है। मेरे प्राण, स्त्री, पुत्र और सुहृद सब इन्हीं की सेवा के लिये हैं। मैं स्वयं इन्हें परोसकर भोजन कराता हूँ, नहलाता हूँ और उनके चरण धोता हूँ। सदा इनके मन के अनुकूल बोलता हूँ और कभी अप्रिय नहीं बोलता। यदि इनको प्रिय हो तो इनके लिये मैं अधर्म भी कर सकता हूँ। इनकी गलत आज्ञा का पालन भी कर सकता हूँ। इस प्रकार माता-पिता के सेवारूप धर्म को ही महान् मानकर मैं सदा इनकी सेवा में रहता हूँ। उन्नति चाहनेवाले पुरुष के यह पाँच गुरु है- माता, पिता, अग्नि, परमात्मा और गुरु। जो इन सबके प्रति उत्तम आचरण करेगा, उस गृहस्थ के द्वारा सब अग्नियों की सेवा सम्पन्न होती रहेगी यही सनातन धर्म है। जिस पुत्र से माता-पिता सदा संतुष्ट रहें वह यह लोक में शाश्वत यश और धर्म प्राप्त करेगा। एकमात्र सेवा संस्कार के बलपर प्राणी अपने जीवन का सर्वोच्च तत्व नि:श्रेयस प्राप्त कर सकता है।

माताको संसार का सबसे प्रथम एवं सबसे बड़ा विश्व विद्यालय माना गया है। संतान को जो शिक्षा माता देती है वो कोई भी संस्था या विश्व विद्यालय नहीं दे सकता। माता के गर्भ में ही उसका शिक्षण प्रारंभ हो जाता है और नियमित वह जारी रहता है। माता द्वारा दी गयी शिक्षा से संतान को अद्वितीय उपलब्धियां मिलती है। हमारे शास्त्रों में इसके अनेक प्रमाण है। अभिमन्यु ने माता के गर्भ में चक्रव्यूह भेदन विद्या सीख ली। माता कौशल्या ने अपने पुत्र राम को मर्यादापुरुषोत्तम राम बना दिया। शुकदेव मुनि को सारा ज्ञान माता के गर्भ में ही प्राप्त हुआ और गर्भ से बाहर आते ही सच्चे वैरागी, एवं ज्ञानी होकर घर से चल दिये अष्टावक्र मुनि ने वेदों का सारा ज्ञान अपनी माता के गर्भ में ही प्राप्त कर लिया। सन्तान के निर्माण में सृजन में माता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। माता की गोद धर्म और संस्कृति का पालना है, जिससे सुसंस्कृत महापुरुषों का निर्माण हुआ है। शिवाजी का शौर्य अपनी माता जीजाबाई की ही देन है मातृ संस्कृति का हमपर भारी ऋण है। हर जीव जन्म से पशु है, संस्कार उसे मानव बनाते है। भारतीय संस्कृति में संस्कार गर्भाधान में ही मिलने शुरू हो जाते है और जैसे जैसे बालक बड़ा हो जाता है यह प्रक्रिया सतत चलती रहती है।

माता की सेवा करनेवाला सत्पुरुष दीर्घायु, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुण्य, बल, लक्ष्मी, पशु, सुख, धन, धान्य सब कुछ प्राप्त करता है। गर्भधारण करने और पोषण करने के कारण माताका पद ऊँचा है। माँ के ममत्व की एक बूँद भी अमृत के समुद्र से भी ज्यादा मीठी है। पितरोंको पिण्डदान करनेवाला गृहस्थ दीर्घायु, पुत्र-पौत्रादि, यश, स्वर्ग, पुष्टि, बल, लक्ष्मी, पशु, सुख-साधन तथा धन्य-धान्यादि की प्राप्ति करता है। यही नहीं, पितरों की कृपा से ही उसे सब प्रकार की समृद्धि, सौभाग्य और राज्य तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। आश्विन मास के पितृपक्ष में पितरों को यही आशा रहती है कि हमारे पुत्र-पौत्रादि

हमें पिण्डदान तथा तिलांजलि प्रदान कर हमारा श्राद्ध करेंगे, हमें संतुष्ट करेंगे इसी आशा से वे पितृलोक से पृथ्वीलोक पर आते हैं। अत: प्रत्येक हिन्दू सदगृहस्थ का कर्त्तव्य है कि वह पितृपक्ष में अपने पितरों के निमित्त श्राद्ध एवं तर्पण अवश्य करें तथा अपनी शक्ति के अनुसार फल-मूल जो भी सम्भव हो, पितरों के निमित्त प्रदान करें। पितृपक्ष पितरों के लिये पर्व का समय है, अत एव इस पक्ष में पार्वण श्राद्ध किया जाता है। माता-पिता के ऊपर अकारण अविश्वास करना यह महान अधर्म है, वे जितना हित हमारा कर सकते हैं, उतना दूसरा कोई नहीं कर सकता। हमारे कल्याण सुख की अधिक चिंता तो उन्हें ही है। वे जो कुछ करेंगे, हमारे हित के ही लिये करेंगे।

माता पिता के चरण छुए जो, चार धाम तीर्थ फल पाये। जो आशीर्वाद वो दिल से दें, भगवान से भी न टाला जाये।।

दूसरा सभी कुछ भूल जाना, लेकिन मां बाप को भूलना नहीं। अगणित है उपकार उनके, यह बात कभी बिसारना नहीं।।

भाई मेरे चल मुझसे प्यार ना करना, मगर घर के बीच में कभी दीवार ना करना।

मालमत्ता धन मुझसे ले लो तुम सब मेरा, मगर मां को मुझे देने से इन्कार ना करना।

माता की भी एक कसौटी होती है। केवल सन्तान को पैदा करना ही मातृत्व के लिये पर्याप्त नहीं है। संतानों द्वारा माता-पिता की उपेक्षा सर्वथा अनुचित है। उस सेनापति के बारे में हमारा क्या ख्याल होना चाहिए जो अपने राजा को कठिन परिस्थिति में पाकर मैदाने जंग से भाग खड़ा हो। संयुक्त परिवार में यदि किसी कारणवश रहना कठिन हो जाय तो परिवार की शांति और सुख-चैन के लिए अलग रहा जा सकता है परंतु फिर भी संतानें माता-पिता के प्रति अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नही हो सकती। किसी भी हाल में उन्हें उनका ध्यान रखना होगा। संतान अपने कर्त्तव्य से मुक्त नहीं हो सकती। हमारी मौजूदा न्यायिक व्यवस्था ने भी बूढ़े माता-पिता के उदर-पोषण व अन्य जिम्मेदारियों को संतान पर ही डाला है। जरूरी है कि हम सब मिलकर पीढ़ियों के अन्तर को कम करने का प्रयास करें और पुन: मानवता की धरोहर की ओर चलें, जहां माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य निभाना सर्वोपरि है। पुण्यात्मा पुत्र के पुण्य प्रताप से माता-पिता परम पद प्राप्त कर लेते हैं। माता-पिता का आहार-व्यवहार कुशल हो तो संतान भी योग्य उत्पन्न होती है। संतान पर माता-पिता के द्वारा वंशानुगत विचार-विकार का प्रभाव पड़ता है। अनमेल विवाह संस्कारवान् बालक के लिए घातक सिद्ध होता है। माँ-बाप का अपमान मत करो। उनका आदर करो यही ईश्वर की पूजा है।

जब हम बच्चे थे, आपस में लड़ते थे, मां मेरी है, मां मेरी है।

अब हम जवान हो गए, तब भी आपस में लड़ते हैं, कहते हैं, मां तेरी है, मां तेरी है।

कभी-कभी पिता और पुत्र बिल्कुल विपरीत प्रकृति के होते हैं। पिता जैसा बेटा होता ही नहीं। माता-पिता के तो लक्षण बहुत कम आते हैं। माता-पिता का स्वरूप आता है। शास्त्रों में बताया गया कि ऐसा पुत्र कैसे आया? वह पिता पर आश्रित है, माता पर आश्रित, जीव पर आश्रित और वंश पर भी आश्रित है। यदि मां का दोष हो, तो दुष्चरित्र बुरे आचरणवाला पुत्र आयेगा। बाप का दोष हो तो मूर्ख बनकर आयेगा और यदि वंश ठीक नहीं तो भीरु, पलायनवादी, कृपण पुत्र आयेगा और यदि जीवात्मा का खुद का दोष हो तो वह दरिद्र होगा। दरिद्र के तो बहुत से अर्थ हो सकते हैं, शारीरिक भी हो सकता है, मानसिक भी होता है। ये सब रसायन है। पुत्र एक प्रकार का रसायन हैं। इसीलिए बार-बार कहते हैं कि मां प्रधान पात्र है जीव के लिए। उदरस्थ शिशु हो तो मां जो सोचती है, देखती है, बोलती है, खाती है, पीती है, वह सब बालक भीतर अनुभव करता है और मां जैसे चाहे पुत्र को जन्म दे सकती है।

पिता भी पुत्र के प्रतिस्नेह करता है। भाई भी भाई से स्नेह करता है। पति-पत्नी भी एक-दूसरे को स्नेह करते हैं किन्तु

किसी में भी यह शक्ति नहीं है कि वह अपने भावात्मक स्नेह को बाहर ठोस द्रव्य के रूप में प्रदर्शित कर सके। इन सबका स्नेह इनके मन-ही-मन में रह जाता है।

किन्तु माता के स्नेह की स्थिति इन सबसे अलग है, विचित्र है। माँ का स्नेह जब बालक के प्रति उमड़ता है, तब वह केवल भावात्मक ही नहीं रहता, ठोस द्रव्य के रूप में परिणत हो जाता है। माता का स्नेह अपने बालक के प्रति दूध बनकर प्रकट होता है। यह विशेषता संसार के किसी प्राणी के स्नेह में नहीं है। भाव का ठोस वस्तु दूध बन निकलना यह केवल माता के ही दूध की विचित्रता है।

मां शब्द जबान पर आते ही दिल दुनिया में मुहब्बत, उल्फत, प्रेम का समुद्र हिलोरे लेने लगता है जिसकी नेमत से शरीर का रोम-रोम शान्ति और राहत की दौलत से भर जाता है। मां निस्वार्थ त्याग और भाव की मूर्ति है। मां अपनी सन्तान के लिये फरिश्ता है। मां का दिल वह सरिता है जहां से नफरत और अदावत की तपन से दु:खी दिलों और जेहन में प्यार और मुहब्बत का पवित्र प्रवाह होता है। मां का दर्जा बुलन्द है, उसके चरणों में बैठने से खुशनसीबी मिलती है और उसके होठों से निकली हुई दुआयें और आशीर्वाद कामयाबी की कुंजी है। मां की प्रार्थना, पुकार सन्तान के लिये शीघ्रता से सुन लेता है। माता-पिता के आशीर्वाद आयु बढ़ाते हैं और मृत्यु को टालने की क्षमता रखते हैं। माता-पिता की सेवा करनेवाला उच्च गति, परम गति और सद्गति को प्राप्त होता है। अपने माता-पिता से नेकी करो तुम्हारी सन्तानें भी तुम्हारा अनुसरण कर तुम्हारे साथ नेकी करेगी। माता-पिता केआज्ञाकारी पुत्र को समाज में ऊंचा दर्जा हासिल होता है, यश, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। जो माता-पिता की आज्ञा नहीं मानता, उनके साथ दुर्व्यवहार करता है वह अपने जीवन में कष्ट भोगता है।

माँ के लबों पर बिछड़ने की फरियाद नहीं, बेटे को तो अब मां का चेहरा भी याद नहीं। माँ-बाप की सच्ची विरासत पैसा और प्रासाद नहीं प्रामाणिकता और पवित्रता है। माँ-बाप से सुविधा के लिये अलग होना तो कोई बात नहीं किंतु स्वभाव के कारण अलग होना वो तो सबसे बडी शर्म है। माता-पिता क्रोधी हैं, पक्षपाती हैं, शंकाशील हैं ये सारी बातें बाद की है पहली बात तो ये हैं की वे माँ-बाप हैं। जीवन के अंधेरे पथ में सूरज बनकर रोशनी करनेवाले मां-बाप की जिंदगी में अंधकार मत फैलाना। संसार की दो बड़ी करूणता माँ बिना का घर और घर बिना की माँ। जिसके प्रेम को कभी पतझड स्पर्श न करे उसका नाम माँ है। प्रभु को पाने की पहली सीढ़ी माँ। जो तलहटी की अवगणना करे।

वो शिखर को प्राप्त करे यह शक्य नहीं। ऐसी माँ की अवगणना करके, हजारों माला गिनकर।

हम प्रभु को प्राप्त करें यह बात बहुत ही दूर हैं। यदि कोई मनुष्य सौ वर्ष की पूरी आयु पाकर भी माता और पिता की सेवा करता रहे तो भी वह उनके उपकार से उऋण नहीं हो सकता। जो पुत्र समर्थ होते हुए भी अपने माँ-बाप की शरीर और धन से सेवा नहीं करता, उसके मरने पर यमदूत उसे उसके अपने शरीर का मांस नोंच-नोंच कर खिलाते हैं। जो पुरुष समर्थ होकर भी वृद्ध माता-पिता, सती पत्नी, बालक, सन्तान, गुरु, ब्राह्मण और शरणागत का भरण-पोषण नहीं करता-वह जीते जी मुर्दे के समान है। यदि व्यक्ति ईश्वर के बाद सर्वाधिक ऋणी है तो माता का, ईश्वर जीवन देता है, माता शक्ति संस्कारों द्वारा पोषित कर हमें जीने योग्य बनाती है। माता स्नेह एवं सौजन्य की देवी है। सुसंस्कृत परिवारों का निर्माण माता से ही संभव है। सृजन उत्पादन में संलग्नता विश्व की सबसे बड़ी विशेषता है। यह क्षमता धरती और जननी में है।

जिस प्रकार अन्न का प्रभाव मन पर पड़ता है, उसी प्रकार माता का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है, माता यदि सुविकसित है, तो बच्चा संस्कारवान होगा। माता के संस्कार से बच्चों को ऐसा पराक्रम मिलता है जिससे अन्याय और अत्याचार का दमन होता है। विश्व में जितनी भी विभूतियां हुयी हैं या होती हैं उनमें बचपन से ही आदर्श संस्कार डालकर उनकी अच्छी

भावना को बलवती बनाया जाता है। भरत जिसके नाम पर हमारे राष्ट्र का नाम भारत वर्ष पड़ा, माता शकुन्तला की आदर्श प्रेरणा से प्रतापी सम्राट हुआ। भारतीय संस्कृति रक्षक शिवा को शिवाजी बनाने में माता जीजाबाई की शिक्षा चर्चित है। ध्रुव अपनी माता के उपदेश से ही आज उत्तर दिशा में ध्रुव तारा के रूप में स्थिर एवं देदीप्यमान है।

जब माता समुन्नत नहीं होगी तो संस्कारित संतान का जन्म मात्र कल्पना होगी।

माता जन्मदात्री है। राष्ट्र का प्रत्येक भावी सदस्य उसकी गोद में पलकर विश्व में खड़ा होता है। मां राष्ट्र की आवश्यकता के अनुरूप संतान देना अपना परम पावन कर्त्तव्य समझती है। मां चाहे तो बालक को सन्त बना दे, मां चाहे तो उसे ज्ञानी बना दे, माँ चाहे तो उसे भक्त बना दे और माँ चाहे तो उसे जेबकतरा चोर, डाकू बना दे।

ब्रह्माजी ने मातृ हृदय किस प्रकार बनाया उसमें पुत्र के लिये कितना ममत्व, कितना वात्सल्य, कितना अनुराग भर दिया था- यह कहा नहीं जा सकता। अपने प्यारे पुत्र को देखकर माता का हृदय स्वयं ही उसी प्रकार द्रवीभूत होने लगता है, जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रकान्तमणि द्रवीभूत हो जाती है। माता अपने पुत्र के लिये दु:ख सह सकती है, उसके सुख के लिये कठिन-से-कठिन, दुष्कर-से-दुष्कर काज कर सकती है, भारी-से-भारी आपत्तियों को झेल सकती है। अपने को दुखी बनाकर उसको सुख पहुँचाने में उसे आत्मतोष होता है, आनन्द आता है। अपने तनय के लिये सब कुछ सहने की शक्ति होने पर भी वह उसके अपमान को देखकर क्षुभित हो जाती है।

बच्चों का स्वभाव अनुकरण शील होता है, बच्चे माता-पिता को जो करते हुए देखते हैं, उसी को पहिले खेल-खेल में करते हैं, फिर वैसा करने की उनकी आदत पड़ जाती है। कुछ संस्कारी बालक इसके अपवाद भी होते हैं, किन्तु प्राय: ऐसा ही देखा गया है कि बच्चों के हृदय पर माता-पिता के कार्यों का ही प्रभाव पड़ता है। इसीलिये तो हमारे यहां बात-बात पर कुलीनता का ध्यान रखा जाता है। कुलीन पुरुषों से व्यवहार करो। विवाह सम्बन्ध करना हो तो दोनों कुल देखकर करो। जैसे कुल में सम्बन्ध होगा सन्तान में उसके थोड़े बहुत संस्कार अवश्य ही आ जायँगे। जो माता संतान को नाना कष्ट सहकर ९ महीने उदर में धारण करती है, जो पिता पाल-पोसकर स्वयं कष्ट सहकर बच्चे को इतना बड़ा बनाते हैं, उन माता-पिता के ऋण से कोई भी पुत्र कभी भी सेवा करके उऋण नहीं हो सकता। जीवन भर भृत्य के समान सेवा करने पर भी उनके उपकारों का बदला नहीं चुका सकता। पिता पुत्र के द्वारा पुण्य लोकों की प्राप्ति करता है।

माताका स्नेह अपने पुत्रके प्रति सर्वोत्कृष्ट होता है। माताके हृदयका टुकड़ा ही पुत्रके रूपमें प्रकट होता है। उसका रक्त ही दूध बनकर बच्चेका पोषण करता है। माताके मनमें जो अमूर्त स्नेह है, वही मूर्तिमान् दूध बनकर बच्चेके पेटमें जाता है। माताका जितना स्नेह पुत्रके प्रति होता है, उतना स्नेह दुनियामें और किसीका किसके प्रति नहीं होता। सन्तानोत्पत्ति के समय माता को कितनी असह्य पीड़ा होती है, उस पीड़ा को कुछ भी न समझकर मातायें स्वेच्छा से पुन: पुन: सन्तानों की उत्पत्ति करती हैं। जिनके सन्तान नहीं होती, वे सदा दुखी बनी रहती हैं और सन्तानों के लिये यन्त्र-मन्त्र जादू टौना टोटका जाने कौन-कौन से उचित-अनुचित कार्य करती रहती हैं। पुरुष भी जहाँ तेरह चौदह वर्ष के हुए स्वत: ही सन्तति वृद्धि के परम पुण्य कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं। भला बुरा सिखानेवाली, अच्छा बुरा संस्कार डालनेवाली मातायें ही होती है। पुत्र को वे जैसी सीख देंगी वैसा ही वह करेगा।

मां की गोद बच्चे का प्रथम पाठशाला होता है। बच्चे को अच्छे आचरण में ढालना, अच्छे संस्कार की शिक्षा देना माता-पिता का परम कर्तव्य होता है। छोटे बच्चे के सामने माता-पिता जैसा व्यवहार करेंगे, बच्चा वैसा ही बनेगा।

भारतीय संस्कृति में माता-पिता, गुरू आराध्य देवता के रूप में माने जाते हैं। भारत के सभी महापुरुषों ने अपना संपूर्ण

जीवन अपने माता-पिता की सेवा में समर्पित किया है। अपने बुजुर्ग माता-पिता की सेवा अपना कर्त्तव्य समझकर करना चाहिए। उनकी अपेक्षाओं को पूर्ण करना चाहिए। उनके गुणों का गौरव समर्पण भावना से करना चाहिए।

भारतीय संस्कृति में मां का दर्जा सर्वोपरि है, प्रात: उठते ही सर्वप्रथम मां को नमन करते हैं और माता के ऋण से कभी उऋण नहीं हुआ जा सकता। **प्रात:काल उठिकर रघुराई, प्रथम मातु-पितु शीश नवाई।**

यह परंपरा आज भी सभ्य घरानों में है। मातृदेवो भव देवता की भांति मां पूज्यनीय है। एक बार किसी युवक ने स्वामी विवेकानंद से सहज ही पूछा कि जगत में मां की महिमा इतनी क्यों है? स्वामी जी ने एक किलो वजन का पत्थर मंगवाया और उसके पेट पर बांधकर कहा कि ऐसा ही पूरे चौबीस घंटे रख रहो और कल आ जाना इस समय। जब वह युवक दूसरे दिन आया तो कहने लगा, यह तो मेरे लिए बहुत कष्टदायक रह, मैं इसे अब सहन नहीं कर सकता। तब स्वामीजी ने समझाया- इसी बात को समझना है कि वह माता नौ माह तक अपने पेट में बच्चे को किस तरह कष्ट सहते हुए भी सुरक्षित रख पाती है? जबकि घर परिवार का सारा काम भी करती है और इस बात का ध्यान भी रखती है कि पेट में पलनेवाले बच्चे को किसी प्रकार का कष्ट न हो, इससे बढ़कर जगत में बच्चे का हित चिंतन व उपकार करनेवाला कोई नहीं हो सकता। मां की ममता-वात्सल्य की बराबरी कोई वैकल्पिक मां नहीं कर सकती, इसलिए मां का कोई विकल्प नहीं है यह कहने में कोई संकोच नहीं। वेदों में तो मां को सुंदर शब्दों में निरुपित किया है, कहा है- मां तुम जननी हो, त्यागमयी वात्सल्य की मूरत हो, श्रद्धा व प्रेम से पूज्यनीय हो, सहनशीला हो तथा हर वक्त वंदनीय हो। धरती पर मां शब्द नहीं होता तो करुणा, वात्सल्य, त्याग, बलिदान शब्द अधूरे लगते। मां और जननी ये दोनों शब्द पूरक हैं।

मां यानि वात्सल्य का दरिया। जिसे अपने माता-पिता का आशीर्वाद प्राप्त होता है उस पर प्रभु अवश्य ही कृपा करते हैं क्योंकि उनका आशीष मात्र दिखावा न होकर हृदय से निकला हुआ अमृत होता है। मां क्या है? मां तो बस मां है। चंद्र सी शीतल, गंगा सी पावन, यदि कोई है तो बस मां है। सुमेरु सी अडिग, हिम सम उज्ज्वल, दया, करुणा, प्रेम का सागर यदि कोई है तो बस मां है। मां परिवार का मेरुदंड है। जिस तरह शरीर का आकार, गठन, उसकी दृढ़ता मेरुदंड (रीढ़ की हड्डी) पर निर्भर करता है उसी तरह किसी भी पारिवारिक स्थिति उस घर की बुजुर्ग नारी पर निर्भर करती है। पृथ्वी से भारी मां होती है। मां अपने बच्चों को जितना प्रेम देती है और उसका हित चाहती है उतना अन्य कोई नहीं। सागर से भी विशाल है मां का करुणामयी, वात्सल्य, स्वरूप हृदय। मां को सर्वतीर्थमयी बताया है क्योंकि सारे तीर्थों का भ्रमण करने का फल मात्र मां की सेवा-वंदना में है। **चाहे लाख करो तुम पूजा और तीर्थ करो हजार, यदि मां का दिल दुखाया तो सब कुछ है बेकार।**

जीव की उत्पत्ति के समय जो कष्ट माता सहती है, उसका ऋण सौ वर्षों की सेवा से भी नहीं चुकाया जा सकता। अगणित कष्ट सहकर जिसने हमें जीवन दिया, ऐसी प्यारी मां का दिल कभी दुखाया नहीं जा सकता। जब धरती पर प्रथम श्वास लिया तब माता साथ में थी, जन्म और जीवन के मध्य में है मां। मां रचती है, सृजन करती है इसलिए सृजक कहा, रची नहीं जाती। मां वात्सल्य का विग्रह है, ममता का मर्म है, गूंगे की मिठास जैसी अपरिभाषित, अव्यक्त अनुभूति है मां। मां से ही महापुरुषों ने, वीर योद्धाओं ने, दानवीरों ने जन्म लिया और लोककल्याण हेतु आजन्म सुकृत्य करने का बीड़ा उठाया जिसके पीछे मां की प्रेरणा और संस्कार ही तो थे उनका संबल। जिसके बारे में जितना लिखा जाए उतना ही कम है। अफसोस है, आज की युवा पीढ़ी मां को तिरस्कृत करने में लेश मात्र भी शर्म महसूस नहीं करती और यही कारण है कि आज समाज परिवार, राष्ट्र समस्याओं से जूझ रहा है। वैश्वीकरन के इस युग में मां की महिमा को भूला दिया गया है। कितना अंधा और स्वार्थी हो गया है आज का इंसान कि वह अपनी जननी मां की करुणा, प्रेम व वात्सल्य को भूल गया। ईश्वर ऐसे लोगों को सद्‌बुद्धि दें और मातृ देवो भव का सम्मान हर मां को मिले यही प्रार्थना है।

भूमिका

दु:ख और वेदना का आगमन जीवनमें होता है। कठिनाइयाँ जीवनमें आती हैं। दुर्दिन आते हैं। परंतु दु:ख सत्य नहीं है, वेदना सत्य नहीं है। इनके बीच भी जीवन पनपता है। मृत्यु और दु:खपर जीवनकी विजय ही सत्य है। निराशाओंके बीच आशा सत्य है। विनाशके बीच भी जीवन अंकुरित होता और बढ़ता है। प्रकृति में देखो, बिना सुखी हुए मनुष्य रह नहीं सकता। सुख प्राप्त करना ही मानवका चरम पुरुषार्थ है। आनन्दकी साधना ही जीवनका लक्ष्य है। आपके पास बीमारियाँ भी आयेंगी, मृत्युके दंशसे आपका जीवन क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो जायगा, प्रेमकी उमंगे निराशाकी शुष्क ठंडी हवाओंसे शिथिल हो जायेंगी, स्नेहीजन बिछुड़ जायेंगे, अवाञ्छनीय जनोंका आगमन होगा; पर इन सबके बीच भी मानव जीता है, उगता है, बढ़ता है- इससे कौन इनकार करेगा?

कठिनाइयाँ तुम्हारा दम तोड़ न सकेंगी, निराशाएँ तुम्हारा उत्साह भंग न कर सकेंगी। दु:ख तुम्हें पराजित न कर सकेगा और तुम अपने मन और जिह्वापर पूर्ण नियन्त्रण रखकर, अपनेको प्रतिहिंसात्मक और मूर्च्छित न होने देकर जीवनको माङ्गल्यका दान देओ।

अपने कार्यों से सभी का मन जीतना ही जीवन की सफलता है। अहंभाव की तुष्टि के लिए हीन कर्म करने को तैयार हो जाना पाप के पंक में गिरने के समान है। कर्म की महानता ही मानव को महान बनाती है। यदि महान बनना है तो उसका एक ही रास्ता है। कर्म को उच्च बनाओ, कर्म आपको उच्च बना देंगे।

अपनी आत्मा को शुभ कर्म की ओर उन्मुख करो। सत्कर्म की ओर मन को मोड़ना चाहिए। अच्छे कर्म ही आत्मा को शान्ति प्रदान करके उच्च सोपान पर चढ़ा सकते हैं। कर्म ही श्रेष्ठ है, उच्च कुल या मानव-भव मिलने पर भी यदि हमारे कर्म हीन हैं तो जीवन का कोई महत्व नहीं है। यदि कर्त्तव्यों की ओर आप सजग हैं तो कर्म भी निश्चित रूप से उत्तम ही होंगे। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है- माँ तथा गुरु। माँ अपने बच्चे का लालन-पालन अपने सुखों का परित्याग करके करती है, यह उसका कर्त्तव्य है। अब गुरु अपने शिष्य को योग्य बनाने हेतु प्रति पल सजग रहता है। शुभ कर्म की प्रेरणा देता है। यह उसका कर्त्तव्य है। शुभ कर्मों की ओर ध्यान दो, यही मानव के भाग्योदय का कारण बनेगा। यही तुम्हें सफलता की ऊंचाई प्रदान करेगा। दूसरों का अहित कभी मत सोचो। यदि सोचा और किया तो उसका परिणाम भी तुम्हें ही भोगना पड़ेगा।

आप सभी को जागना है, दूसरों के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए। यह संसार, कर्मक्षेत्र है। अच्छे कर्म करके सभी को अपना बनाओ। अहंभाव को त्यागकर संसार का भला हो वैसा कर्म करो।

कोई भी मनुष्य जन्म से ऊंचा या नीचा नहीं होता। कर्म से ही वह ऊंचा या नीचा बनता है। आपके सत्कर्म ही आपको राम बना सकते हैं और आपके दुष्कर्म रावण बना सकते हैं। कर्म का अभिप्राय है क्रिया-कार्य करना। ये कर्म ही हमें समाज में ऊंच और नीच का स्थान प्रदान करते हैं। यदि हम अच्छे कार्य करेंगे तो उसका फल भी अच्छा ही होगा। अब हमें यह विचार करना है कि कर्म क्या है ? क्या कर्म के कारण ही मनुष्य उच्च-नीच, धनिक-निर्धन, सुन्दर-कुरूप, रोगी-निरोगी बनता है ? जीव का जो परतन्त्र करते हैं, वे कर्म कहलाते हैं। स्वयं के अच्छे और बुरे का निर्णय व्यक्ति के कर्म पर ही निर्भर है। हम जैसे कर्म करेंगे, उसका फल आज नहीं, कल नहीं, परन्तु भविष्य में अवश्य प्राप्त होगा। संसार के सभी प्राणी अपने कृतकर्मों से कष्ट उठाते हैं। कर्म आदमी को कहां से कहां पहुंचा देता है। वाल्मीकि जन्म से ब्राह्मण थे परन्तु कर्म से वे डाकू-लुटेरे और हत्यारे

थे। जीवन में मोड़ आया, परिवर्तन आया, सुकर्म की ओर जीवन मोड़ा तो वे सभी के पूज्य बन गये।

विधाताने ऐसा ही नियम बना दिया है कि सृष्टि द्विलिङ्गात्मक हो। इन्हीं दोनोंके अनवरत उद्योग एवं अनिवार्य समन्वयसे ही जीवन-नाटककी रचना होती है। यह भी एक दैवी विधान है कि प्रकाशके बाद अन्धकार और ग्रीष्मके बाद शीतका आगमन होता है। शक्ति और अविवेकपूर्ण यौवनके बीत जानेपर दुर्बल और सिद्ध अनुभूतियोंसे युक्त जरा आती है। एकके बाद दूसरा आता ही जाता है, क्रम टूटने नहीं पाता। इसी प्रकार द्विलिङ्गात्मक सृष्टि भी इसीलिये हुई कि इसका विस्तार होता रहे, इसलिये नहीं कि मनमानी स्वच्छन्दता अथवा स्वकल्पित महत्ताकी स्थापनाके लिये निरर्थक परिश्रम किये जायँ। प्रत्येक क्रिया जो हितप्रद और फलदायिनी है, भगवदीय आयोजनाको बढ़ानेवाली होती है और हमको निकट ले जाती है उस ईश्वरके, जो हमारी गति, मति, गुरु, आदि और अन्त सब कुछ है।

हमारी संस्कृतिके लिये बड़ा ही विकट समय यह आया है। हमें भय दूसरोंसे उतना नहीं, जितना अपनेसे है। अपनेसे इसलिये कि हम आत्मदीप्तिसे शून्य हो गये हैं। हम अपने अन्तरको भूलकर बाहर प्रकाशके लिये भटक रहे हैं। आँखें बंद किये हुए सूर्यके न उगनेका यह उलाहना व्यर्थ है। एक सर्वग्राही नास्तिकतासे हमारा मानस आच्छन्न होता जा रहा है। चारों ओरसे तेज हवाएँ आ रही हैं और इसके बीच हमें अपने दीपककी रक्षाका कोई उत्साह नहीं रह गया है।

मनुष्य का शरीर सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों से बना है। जब सत्त्वगुण की वृद्धि होती है तो विषयों से वैराग्य, परमार्थ चिन्तन की अभिलाषा होती है। सब ओर से प्रकाश दीखता है। संसारी विषयों से वैराग्य होता है। योगभ्रष्ट कोई विरले ही होते हैं। उनका वैराग्य कभी उतरता नहीं। वैराग्य क्षीण होने पर कोई संसार असत्य रहता नहीं, फिर तो उसके सभी पदार्थ सत्य प्रतीत होते है। सबको नचानेवाले श्रीहरि ही हैं सभी जीव को उन्ही के संकेत पर नाचना पड़ता है। जीवों का अभिमान व्यर्थ है। वे जिस समय जिससे जो कराना चाहते हैं वैसे ही उसकी बुद्धि कर देते हैं। वे प्रभु ही सब कुछ करा रहे हैं, उनकी प्रेरणा के बिना प्राणी कर ही क्या सकता है।

पतन का कारण-ममत्व ही है। घर की बिल्ली चूहों को खाती है तो दु:ख नहीं होता, किन्तु जब पिंजडे के तोते को खा जाती है तो दु:ख होता है। यद्यपि चूहे और तोते दोनों ही घर के ही जानवर हैं, किन्तु तोते में ममत्व है चूहों में नहीं।

सभी सांसारिक वस्तुएँ परिवर्तनशील, नाशवान् और क्षणस्थायी हैं; किसी भी वस्तुकी स्थिरता नहीं। मनुष्यके बिना जाने ही प्रत्येक वस्तुकी स्थिरता नहीं। मनुष्यके बिना जाने ही प्रत्येक वस्तुकी स्थितिमें परिवर्तन होता रहता है या वह वस्तु नष्ट होती रहती है। इस कारण इन स्नेह, प्रेम और श्रद्धाके लौकिक आधारोंका भी नाश या परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इस परिवर्तन या नाशका असर मनुष्योंके अन्त:करणको उथल-पुथल करनेवाला होता है, वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी और असह्य हो जाता है। अन्त:करणके ऐसे अनेक घात-प्रतिघातजनित निराशा और दु:खके पश्चात् किसी भाग्यशाली व्यक्तिको ऐसे प्रेमपात्रकी खोज होती है, जो नित्य, निरामय, अविनाशी और परम प्रेममय और परमानन्दमय हो। ऐसा प्रेमपात्र एकमात्र परमात्मा ही है, जो प्रेममय है, जिसको प्रेम करनेसे कभी निराशा होती ही नहीं। इस तत्त्वको जानकर जब मनुष्य अपने हृदयके प्रेम-प्रवाहको अपने उस परम प्रियतम चिरसखा प्रभुके चरणोंकी ओर प्रवाहित कर देता है, तब उसी प्रेमको भक्ति कहते हैं। इस प्रकार लौकिक सब प्रकारके प्रेमको श्रद्धा, प्रेम और स्नेह कहते हैं।

प्रेम के द्वार केवल उसके लिए ही खुलते हैं जो अपनी मैं को छोड़ने को तैयार हो जाता है। किसी एक व्यक्ति के प्रति यदि कोई अपनी मैं को छोड़ देता है, तो वही प्रेम बन जाता है। वैसा प्रेम ही भक्ति है।

यह संसार नश्वर है। इस संसार में कुछ भी सार नहीं दिखाई देता। ईश्वर को पाने की इच्छा रखो। रामानुज जी ने एक शिष्य से पूछा क्या तुमने किसी को प्रेम किया है? युवक बोला मेरा तो किसी से भी प्रेम नहीं है। मुझे इस संसार से कोई राग नहीं। किससे प्रेम करूं। मैं तो भगवान को पाना चाहता हूँ। आचार्य बड़े मीठे शब्दों में बोले- बेटा, भगवान को पाने की तो एक कसौटी है और वह है प्रेम। जिसके हृदय में प्रेम नहीं वह ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। प्रेम यदि सांसारिक है तो उसे शुद्ध किया जा सकता है। परंतु जिसने प्रेम की कसक अनुभव नहीं की वह भला परमात्मा को कैसे पा सकता है?

आचार्य रामानुज जैसे महान आध्यात्मवादी के मुख से प्रेम को परमेश्वर के तुल्य ले जाना कोई आश्चर्य नहीं है। शुद्ध प्रेम ही तो परमेश्वर है। प्रेम ही जीवन की सर्वोच्च प्रेरणा है। प्रेम प्रेरित कर्मों से संसार की रचना होती है, अन्य तो उसके विनाश और बुराई बढ़ाने का कारण बन सकते हैं। हमारे मनीषी बार-बार कहते हैं कि जीवन को समृद्ध बनाने, उसे परम ध्येय की मंजिल तक ले जाने का एक ही मार्ग, एक ही नियम है- वह है प्रेम। आत्मा का प्रकाश प्रेम ही है। जो इसे जीवन में श्रेष्ठता देता है, उसके लिए संसार ही स्वर्ग है, प्रभु का मंदिर है, जीवन एक सुंदर क्रीड़ा उपवन की तरह लहलहाता है। प्रेम कोई सौदा नहीं है, प्रेम कुछ पाने की इच्छा से नहीं किया जाता बल्कि देने की भावना से किया जाता है।

प्रेम पुरस्कार भी नहीं लेता, बदला नहीं चाहता। प्रेम दान का नियम है जो निरंतर देता रहता है यदि लेता है तो केवल प्रेम ही। प्रेम, प्रेम के लिए, न कि किसी स्वार्थ भावना के लिए, कीजिए। प्रेम किसी सीमा, मर्यादा, समय, रूप-रंग, जाति-वर्ण आदि के नियमों में बंधा नहीं रहता। प्रेम के आगे सारे तर्क निरर्थक हैं।

प्रेम हर समय एक रस, अचल सब के लिए होता है। प्रेम साधना का दूसरा नियम है। मंदिर में भगवान की मूर्ति के सामने आंसू बहानेवाला प्रेम यदि दुखी-क्लांत बंधुओं को देख कर द्रवित न हो तो वह प्रेम नहीं, ढोंग है। दूसरों के साथ धोखेबाजी, चालाकी, कूटनीति, छल कपट बरतने वाले व्यक्ति किसी से प्रेम नहीं कर सकते। सच्चा प्रेम वह है जो घर बाहर, मंदिर, मस्जिद पूरी जाति वर्ण में एक रस, एक समान व्याप्त होकर हमारी नस-नस में समा जाए और जीवन का अंग बन जाए, वही प्रेमी कहलाने का अधिकारी है। इस कसौटी पर उतरनेवाले प्रेम पुजारियों की संख्या देश और विश्व में बढ़ जाए तो यह धरती स्वर्ग बन जाए।

प्रेम आत्मा का सहज प्रकाश है, जो प्रत्येक जीवन में स्थित है। उसे प्राप्त करने के लिए धन-संपत्ति कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता। प्रेम का अथाह समुद्र हमारे चारों ओर बाहर-भीतर उमड़ रहा है, हम अपनी हृदयनगरी में जो मल, अहंकार, स्वार्थ, पद-प्रतिष्ठा आदि भरे पड़े हैं, उन्हें निकाल कर इस प्रेम समुद्र का मधुर अमृत भर लें। यह एक सहज और स्वाभाविक क्रिया है। पीड़ित मानवता के बीच दिल खोलकर आने की जरूरत है। यहां कोई निर्बल, सबल, गरीब, अमीर, ऊंच-नीच नहीं है। प्रभु के समान पुत्र हैं। भौतिक आवरण रखते हुए भी हम प्राणी मात्र से प्रेम कर सकते हैं। यह हमारा कर्त्तव्य भी बनता है कि सबके साथ सहानुभूति सहयोग करें। प्रेम के लिए अपने आप को उत्सर्ग करनेवाला जीवन ही सच्चे अर्थों में जीवन कहलाने का अधिकारी है। जीवन में सभी कुछ बदलता रहता है। अवस्थज्ञ, विचार, परिस्थितियाँ, हमारा विश्वास बदलने के साथ देह भी बदलती है। इस परिवर्तनशील संसार में यदि कुछ अजर-अमर रहता है तो वह है प्रेम। प्रेमी हृदय उदार होता है, वह दया और क्षमा का सागर है। ईर्ष्या और दम्भ के नाले उसमें मिलकर उसे विशाल बना देते हैं। प्रेम की परीक्षा प्रेम से ही होती है। प्रेम से परिवार बनता है और प्रेम के विकास से परिवार बड़ा होता जाता है, फिर जब उस परिवार के बाहर कुछ भी नहीं रह जाता है, तो वही प्रभु हो जाता है। प्रेम ही परमात्मा का द्वार है; प्रेम स्वयं ही

परमात्मा है। प्रेम जहां है वहां सफलता, समृद्धि, संतोष, शांति, शालीनता, सुख और सौभाग्य है। प्रेम और अहंकार एक साथ कभी नहीं रह सकते। पाप के पंजे में फंसा हुआ मन पतझड़ का पत्ता है, जो हवा के जरा-से झोंके से गिर पड़ता है।

अहंकार से दूर रहें- इस संसार में मानव जाति को एक-दूसरे के करीब लाने का कार्य मनुष्य का प्रेम ही करता है। मनुष्य का प्रेम ही इस संसार में सबसे बड़ा खजाना है। प्रेम, आत्मीयता, संवेदना जिस क्षेत्र में भी प्रयुक्त होगी, वहीं सुफल सामने आएंगे, जबकि अहंकार की प्रत्येक क्षेत्र में आक्रामक प्रतिक्रिया ही होगी। अत: हमें अहंकार को नहीं बल्कि प्रेम को चुनना होगा। दुनिया में धर्मों का झगड़ा नहीं है- अहंकारियों का झगड़ा है। धर्म के नाम पर अहंकारियों का बाजार है, कोई गिरजा घर के नाम पर, कोई मस्जिद के नाम पर, कोई गुरुद्वारे के नाम पर, कोई मंदिर के नाम पर; लेकिन सब झगड़े अहंकार के हैं और अहंकार से बड़ी कोई मादकता, या नशा नहीं है।

हर इंसान यह सोचता है कि वह सबसे ताकतवर है, सब कुछ जानता है और उसमें महान होने की सभी खूबियाँ मौजूद हैं। इसी कारण हम अहंकार से भर जाते हैं। अहंकार की वजह से हम अपनी असलियत और प्रभु दोनों से परे रहते हैं।

अहंकार अपने आपको अलग-अलग रूपों में दर्शाता है। आमतौर पर हम अहंकार को अपने आप पर गर्व करना समझते हैं। हमें अपने ज्ञान, अपनी ताकत और अपनी सम्पत्ति पर गर्व हो सकता है। घमंड से अभिप्राय है कि हम सोचते हैं कि हम अपनी उपलब्धियों के कर्ताधर्ता खुद हैं। हम इतराते हैं कि हम जो कुछ हैं अपने बलबूते पर हैं और जो कुछ हमने किया है अपने प्रयत्नों द्वारा किया है। हम सोचते हैं कि कई तरह से दूसरों के मुकाबले में हम बेहतर हैं। अगर हम पूरी सृष्टि को ध्यान में रखते हुए अपने आपको देखें तो हमें अपनी क्षुद्रता का एहसास होगा।

सूफी संतों ने हमें बताया है कि जहाँ मैं होगा, वहाँ अहंकार होगा, लेकिन तब वहाँ परमात्मा नहीं होगा। अहंकार के विसर्जन के लिए जरूरी है कि हर जगह उसे ही देखा जाए। उसे देखने का मतलब है उसकी सत्ता को महसूस करना। जब हम उसकी सत्ता, उसकी सृष्टि की जगह सिर्फ अपने वजूद को देखते हैं, तो असल में हम क्या देखते हैं ? उस समय हम अपने आपको सिर्फ दिमाग और शरीर ही समझते हैं। हम भूल जाते हैं कि यह भी उसी की एक तुच्छ रचना है। हम इस मानव चोले को असली मान लेते हैं। फिर हम उसे नाम, धर्म और राष्ट्रीयता जैसी बाहरी विशेषताओं से महत्वपूर्ण बनाने की कोशिश करते हैं।

सृष्टि की विभिन्नता मायिक है। जगत् की प्रत्येक विचित्रता भगवान के कौशल का स्मरण कराती है। भक्ति की पराकाष्ठा ज्ञान है, ज्ञान की पराकाष्ठा भक्ति है। पराभक्ति और परमज्ञान एक ही वस्तु है। दोनों दृष्टियाँ जगत् की आसक्ति और जगत् का चिन्तन छोड़कर परमात्मामय हो जाने में है। मनुष्य क्या और कैसी साधना करता है। परमात्मा का चाहे भाव से, चाहे विचार से चिंतन करो, उसका स्मरण रहने से उसके स्वरूप की उपलब्धि होती है। हृदय में नारायण का जगना, प्रकट होना यही मुख्य है। भागवत के भावों को समझना बड़े-बड़े विद्वानों के बस की बात नहीं।

भागवत मुख्यत: भावप्रधान है। भक्तिभाव से ईश्वर से भिन्न प्रतीत होनेवाली वस्तुओं से वैराग्य और ईश्वर-तत्त्व का अधिकाधिक अनुभव होता जाता है। जब तक नारायण का स्वामित्व हृदय पर नहीं होता, तब तक वासनाग्रस्त मन के कारण मनुष्य के अपने ही बनाये दुख उसे भोगने पड़ते हैं। जगत्, स्त्री-पुरुष, पुत्र, धन आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। वासना, तृष्णा और अपेक्षा ही आपको दुखी करते हैं और इसके मूल में है अहंता और ममता। चित्त विषयों के लिए द्रवित होता है और फिर उस विषय के साथ तदाकार होता है। किन्तु यह तदाकारता स्थायी नहीं होती, क्योंकि विषय ही अस्थायी है। इसलिए यह रसानुभूति अस्थायी है, यर रसाभास ही है। यह संसार-चक्र है।

भागवत प्रस्तावना

जीवन को उत्सव कैसे बनायें- अगर यह सीखना है तो गीता के पास जाओ और मृत्यु को महोत्सव कैसे बनायें- अगर यह सीखना है तो भागवत के पास आओ। भागवत कहते हैं- मृत्यु मातम नहीं, महोत्सव है। मृत्यु को महोत्सव बनाने के लिए जीवन में पुण्य और धर्म का संचय करते चलो। जीवन में पुण्य नहीं होगा तो मौत बिगड़ जायेगी और धर्म नहीं होगा तो परलोक बिगड़ जाएगा। धर्म जीवन को संवारता है, पुण्य मौत को संवारता है।

माया को नहीं परमात्मा को जानो। माया का अंत पाना बड़ा कठिन है। दरअसल चिंतन करने योग्य तो परमात्मा है, संसार नहीं। संसार के चिंतन का फल तो मोह व शोक ही है। परंतु यह बात मनुष्य को बहुत सी ठोकरें खाने के बाद ही समझ में आती है। संसार नश्वर, मायामय है। यह जानने के बाद भी बारंबार उसमें प्रवृत्ति हो ही जाती है। यह जानते हुए भी कि धन किसी का नहीं मनुष्य उसके लोभ में पाप करता है। भगवान की शरण में जाने वाले ही माया, भोग-विलास से बच पाते हैं। निरंतर भगवान का चिंतन ही इससे बचा सकता है। जब हम कोई बड़ी चीज पकड़ेंगे तो छोटी चीज अपने आप छूट जाएगी। जब भक्ति का रस मिलेगा तो संसार का रस फीका लगने लगेगा। हमारे जीवन में कोई महान निष्ठा होनी चाहिए। चाहे वह ज्ञान, भक्ति या सेवा की हो। जिसके जीवन में कोई निष्ठा नहीं वह माया पर कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकता है।

श्रीमद्भागवत भगवान् की अन्तरंगा शक्ति द्वारा प्रदर्शित उनके स्वरूप का आख्यान है और यह अन्तरंगा शक्ति हमारे अनुभवगम्य दृश्य जगत को उत्पन्न करने वाली बहिरंगा शक्ति से भिन्न है। प्रकट होने वाली अंतरंगा शक्ति वास्तविक है जब कि भौतिक जगत के रूप में प्रकट होने वाली बहिरंगा शक्ति अनित्य है और मृग-मरीचिका जैसी है। मृगमरीचिका में वास्तविक जल नहीं रहता, केवल जल का आभास (प्रतीति) रहता है। वास्तविक जल तो कहीं अन्यत्र रहता है। यह दृश्य जगत एक वास्तविकता प्रतीत होता है, किन्तु वास्तविकता तो आध्यात्मिक जगत में होती है और यह तो उसकी छाया (प्रतिबिम्ब) मात्र है। परम सत्य तो वैकुण्ठलोक (चिदाकाश) में हैं, भौतिक आकाश में नहीं। भौतिक आकाश में प्रत्येक वस्तु सापेक्ष सत्य है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह सत्य किसी अन्य पर आश्रित है। यह दृश्य जगत प्रकृति के तीनों गुणों की अन्त:क्रिया से बनता है और यह अनित्य जगत बद्धजीव के मोहग्रस्त मन को वास्तविकता का भ्रम प्रस्तुत करनेवाला होता है। बद्धजीव अनेकानेक योनियों में प्रकट होते हैं जिनमें ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र जैसे उच्चतर देवता भी सम्मलित हैं। वास्तव में प्रकट जगत में कोई वास्तविकता नहीं है। किन्तु यह वास्तविक-जैसा प्रतीत होता है। वास्तविकता का अस्तित्व तो वैकुण्ठलोक में है, जहाँ भगवान् अपनी दिव्य सामग्री के साथ नित्य विद्यमान रहते हैं।

सुख का स्वरूप क्या है, अधिकतम धन, सम्मान, अधिकार और इनकी प्राप्ति के लिए चाहे जिस साधन का प्रयोग करना पड़े, चाहे जिस उपाय से काम लिया जाए। काम होना चाहिए सफलता मिलनी ही चाहिए। आश्चर्य तो इस बात का है कि यह नश्वर शरीर दूसरों को कष्ट पहुँचाकर स्वयं सुख शांति से जीवन जीना चाहता है, लेकिन मनुष्य यह सब भ्रमवश कर रहा है और करता रहेगा, जब तक उसे यथार्थ का ज्ञान नही हो जाता। आज चारों तरफ अधिकारों की लड़ाई छिड़ी हुई है। लोगों के जीवन दु:खमय बन गए है कोई अधिकार प्राप्त करने के लिए व्याकुल है, तो कोई अधिकारों की रक्षा के लिए।

किसी समय परमात्मा की प्राप्ति के लिए तप हुआ करते थे और आज मनुष्य तपस्या या पूजा केवल निज स्वार्थ के लिए करता है। पहले प्रभु प्राप्ति के लिए मनुष्य पूजा, व्रत व अन्य तमाम उपाय करने के साथ ही प्रभु के प्रति आत्म-समर्पण करता था और आज लोगों के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। इंद्रिय सुख का परिणाम लोगों मे द्वेष, हिंसा-प्रतिहिंसा का प्राबल्य,

घोर अशांति और सुख के नाम पर दु:ख पूर्ण जीवनयापन है। जहां सुख है ही नहीं, वहाँ सुख को खोजना वैसा ही है जैसे तप्त मरुभूमि में जल समझकर भटकना। परमात्मा ने तो इस जगत को अनित्य और असुख, जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि, दु:ख दोष देखकर इससे विरक्त रहने की सलाह दी है। आज संसार में जो कुछ भी हो रहा है इसके अधिकांश में न ज्ञान है न निष्काम कर्म और न भक्ति है। ज्ञान प्राप्ति में प्रधान बाधा है देहाभिमान की। निष्काम कर्म में प्रधान बाधक है स्वार्थ। भक्ति में बाधक है समर्पण की कमी। सच्चा भक्त कभी छल, कपट, दंभ, असत्य और हिंसा आदि का अवलंबन नहीं कर सकता।

कोई फर्क नहीं पड़ता कि हम किस धर्म या राष्ट्र से ताल्लुक रखते हैं। प्रभु सृष्टि का कर्ता है। उसी की ताकत से सारी सृष्टि का अस्तित्व है। इस हकीकत को जानने के बाद हमें अहसास होना चाहिए कि हम इस विशाल सृष्टि के कितने छोटे हिस्से हैं। इसके बावजूद हम में से बहुत कम लोग इस बात का अहसास करते हैं। हम में से कितने लोग प्रभु को कितनी बार याद करते हैं। हम इस मानुष चोले के लिए कितनी बार शुक्राना करते हैं। हमें कितनी बार अहसास होता है कि हमें सब कुछ उस की बदौलत प्राप्त होता है।

हमारे शास्त्रों में यह क्यों कहा गया कि बड़े भाग मानुष तन पावा। और स्वर्ग में वास करने वाले देवगण भी इस दुर्लभ मानव तन के लिए तरसते हैं। इसे सुनकर दुविधा हो जाती है कि मानव योनि श्रेष्ठ है या देव योनि? मनुष्य योनि में ऐसा क्या है जो देवगण इस योनि की कामना करते हैं ?

वैसे देखा जाए तो देव योनि ही मानव योनि से श्रेष्ठ नजर आती है। यही कारण है कि मनुष्य सुख-समृद्धि के लिए देवताओं की पूजा-अर्चना करता है। इस मानव तन से किए गए पुण्य कर्मों का जब पर्याप्त संचय हो जाता है, तभी उसे श्रेष्ठ देव योनि प्राप्त होती है। देव योनि में सब प्रकार के सुख, भोग और ऐश्वर्य सहज ही मिल जाते हैं। पर ये सभी सुख क्षणभंगुर है। एक निश्चित समय के बाद देवताओं को दोबारा भिन्न-भिन्न योनियों में आना पड़ता है।

चिरस्थायी सुख, पूर्व आनंद और परमात्मा की प्राप्ति का केवल एक ही साधन है, और वह है मानव तन। यही वह तत्व है जो देवों को सुलभ नहीं। वे मनुष्य की तरह अपनी इच्छा से सुख त्याग तपस्या और साधना नहीं कर सकते। केवल मनुष्य ही इसे प्राप्त कर सकते हैं। मान लीजिए कि मनुष्य योनि लोहे और देव योनि चाँदी के समान है। ऐसे में तत्वज्ञान पारस पत्थर के समान है। सामान्य तौर पर चाँदी, लोहे से अधिक कीमती है, ठीक जैसे देव योनि मनुष्य योनि से श्रेष्ठ है। परन्तु यदि इन दोनों धातुओं को पारस के संपर्क में लाया जाए, तो लोहा सोने में बदल जाता है, परन्तु चांदी नहीं। चांदी में इस गुण का अभाव है। पारस का संपर्क भी उसकी कायाकल्प नहीं कर पाता। यही कारण है कि देवगण भी सदैव मानव तन को प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं।

लेकिन यहाँ भी एक दुविधा है। मनुष्य परम आनंद का इकलौता वारिस होते हुए भी उसे प्राप्त कहाँ कर पाता है ? वह जीवन-जगत के अच्छे-बुरे कर्मों और उनके फलों में ही उलझा रहता है। शास्त्रों के अनुसार परमात्मा प्रत्येक जीव के भीतर निवास करता है। यदि यह सत्य है तो वह अन्त:स्थित ईश्वर हमें बुरे कर्म करने से रोकता क्यों नहीं ?

इसे भी एक उदाहरण से समझिए। हम सभी जानते हैं कि प्रत्येक लकड़ी के टुकड़े के भीतर अग्नि विद्यमान होती है। परन्तु यह भीतरी अग्नि उस टुकड़े को जलाती नहीं। क्यों ? क्योंकि लकड़ी में वह अग्नि सुप्त अवस्था में है। पर ज्यों ही इस लकड़ी को बाहर से अग्नि का सम्पर्क मिलता है, वह भी धधककर जल उठती है। ठीक इसी प्रकार जीव के भीतर परमात्मा है, परन्तु वह अप्रकट रूप में है। जब-जब जीव किसी बुरे कर्म की ओर बढ़ता है, तब अंत:स्थित यह ईश्वरीय सत्ता उसे जरूर रोकती है, चेतावनी देती है। पर अप्रकट होने के कारण यह दैवी निर्देश इतना धीमा होता है कि मनुष्य

अपने मन की अनंत इच्छाओं के शोरगुल में उसे अनसुना कर देता है। लेकिन जब ज्ञान-अग्नि प्रज्वलित होती है तो हृदय में स्थित परमात्मा भी प्रकट हो जाता है। तब इस प्रकट परमात्मा का स्वर इतना स्पष्ट होता है कि ज्ञानी मनुष्य उसको अनसुना नहीं कर पाता और इस प्रकार दुष्कर्म करने से बच जाता है।

अच्छा मान लिया कि आत्मज्ञान पाकर ही हम दुष्कर्मों से बचेंगे और आनंद को प्राप्त कर पाएँगे। लेकिन जब समय आएगा, तब क्या ईश्वर स्वयं हमें इसके लिए प्रेरित करेगा ? यह तो बिल्कुल बालोचित विचार है। शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है- हे जीव। तुझे मनुष्य जीवन प्राप्त हो चुका है। यही है मौका अपने ईश्वर के साक्षात्कार का। मनुष्य जीवन का मिलना ही ईश्वर द्वारा एक खुला निमंत्रण है। अब और किस निमंत्रण और अवसर का इंतजार ? इसलिए हम इस दुर्लभ अवसर को चूके नहीं। यही हमारे उपनिषद भी हमें सिखाते हैं।

जबसे हम भारतीयोंने शास्त्रका आधार छोड़कर मनमाना आचरण शुरू कर दिया, तभीसे हमारे दु:खके दिन प्रारम्भ हो गये। और यदि हमारी चाल ऐसी ही रही तो पता नहीं अभी हम अवनतिके किस गर्तमें जाकर गिरेंगे। वर्तमान युग विचार-स्वातन्त्र्यका युग है। आजका मनुष्य अपनी बुद्धिपर किसी भी प्रकारका अनुशासन या नियन्त्रण स्वीकार नहीं करता। आज हमें मोहग्रस्त मनुष्योंके चारों ओर यही आवाज सुनायी देती है- शास्त्रको न मानो, धर्मका अनुशासन मानना गुलामी है, ईश्वरमें विश्वास बुद्धि-पारतन्त्र्यका द्योतक है। भारतवर्षमें भी पश्चिमसे एक ऐसी लहर आयी है, जिसने हमारी बुद्धिको विचलित कर दिया है, हमारे विश्वासको हिला दिया है। आज हम भी पागलोंकी भाँति चिल्लाने लगे हैं- पोथियोंको फाड़ दो, मनुस्मृतिको जला दो, धर्म ही विघटनमें हेतु है, वर्णव्यवस्था एकतामें बाधक है, इत्यादि-इत्यादि।

इस संसारमें जन्मके साथ मृत्यु, मिलनके साथ विरह, सृष्टिके साथ ध्वंस, सुखके साथ दु:ख, यौवनके साथ जरा, स्वास्थ्यके साथ व्याधि, प्रेमके आत्मदानके साथ हिंसाके बीभत्स हत्याकाण्ड, ज्ञानके सत्यानुसन्धानके साथ मोहका अनृत-सेवन-सभी एक सूत्रमें ग्रथित हैं, एक ही प्राणके द्वारा संजीवित हैं। ये सब मानो परस्पर हाथ-से-हाथ मिलाकर, परस्परको आलिङ्गन करके कालकी तरंगोंमें नाचते हुए चल रहे हैं। कितने नवीन साम्राज्योंका निर्माण होता है, कितने सुप्रतिष्ठित साम्राज्य देखते-ही-देखते श्मशानमें परिणत हो जाते हैं। कितने असुर-दैत्य-दानव साधना-तपस्याके द्वारा अपरिमित ऐश्वर्य प्राप्त करके, बहुविध-जागतिक ज्ञान-विज्ञानको हस्तगत करके स्वग-मर्त्य-पातालके ऊपर-जल-स्थल-आकाशके ऊपर एकाधिपत्यका विस्तार करते हैं, फिर दूसरे ही क्षण अप्रत्याशितरूपसे समस्त सम्पदासे वञ्चित होकर नितानन्त नि:सहाय क्षुद्रातिक्षुद्र दुर्बल कीटकी तरह प्राण-त्याग करते हैं। इस जगत्में कहीं प्रलयकी अग्नि अपनी सर्वग्रासी लंबी जिह्वाको लपलपाती हुई भीषण आकारमें प्रज्ज्वलित है; कहीं ध्वंसके विकट चीत्कारसे आकाश-वायु, जल-स्थल प्रकम्पित हो रहे हैं; कहीं आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ज्वाला-यन्त्रणाओंका हृदयभेदी आर्तनाद हो रहा है; एवं कहीं प्रभुत्व-प्रतिष्ठाका उल्लास, भोगप्राचुर्यका आनन्द-कोलाहल और विलास-व्यसनका उद्दाम नृत्य चल रहा है। यह वैचित्र्य ही संसार है। भागवत का अर्थ है- त्याग, समर्पण, बलिदान।

परमतत्त्व को अपने-आपके स्वरूप में न जानना ही अज्ञान है। इस अज्ञान को मिटा देना ही ज्ञान है। ज्ञान और अज्ञान का इसके सिवा कोई अर्थ नहीं। ज्ञान का आविर्भाव शुद्ध अन्त:करण के सिवा नहीं होता। श्रवण किया हुआ तत्त्व शुद्ध अन्त:करण के सिवा हृदय में प्रवेश नहीं करता। शुद्ध अन्त:करण यानी पूर्ण निष्कामता। यह तभी सम्भव है, जब सारे कर्म भगवान के लिये होने लगें, भगवत्-प्राप्ति की कामना में सारी कामनाएँ समा जाँय। निरालम्ब निष्कामता टिकती नहीं। निष्कामता के लिए आधार की जरूरत है और भगवान् से बढ़कर और कौन बलवत्तम आधार नहीं हो सकता।

⁂ भागवतकार की कलम से

नहीं जानते क्यों मेरे ये भाव भटकते हैं, नहीं मानते फिर भी ये भाव भटकते हैं।

लिखने को जब कलम उठाएं विचार भटकते है और अगर कुछ कहना चाहूं तो बोल अटकते हैं।

सूना हो जाता है तन-मन जाल सुलझते हैं, ठण्डी पवन झकोरों से क्यों पात खड़कते हैं।

हाथ में लेखनी हो तो अकारण ही कुछ लिखने की इच्छा होती है। वैद्य सम्मुख हो, तो बिना रोग के ही नाड़ी दिखाने को चित्त चाहता है, हाथमें अस्त्र-शस्त्र लाठी-डण्डा हो तो पेड़, पौधे, पत्ती, कुत्ता-बिल्ली पर ही चला देते हैं।

एक जन्म का नहीं, अनेक जन्मों के भाग्य जब उदय होते हैं, तो ही श्रीमद्भागवत कथा श्रवण में रूचि हो पाती है, अन्यथा नहीं हो पाती। ऐसे सुन्दर ये भक्तिपूर्ण अनुष्ठान गोविन्द की कृपा से ही होते हैं।

भाग्योदयेन बहुजन्म समर्जितेन। सत्संगमं च लभते पुरूषो यदा वै।
अज्ञान हेतुकृत मोह मदान्धकारनाशं विधाय हि तदो दयते विवेक:।।

मुझे भी पूर्वजों की कृपा स्वरूप भागवत सप्ताह श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। भगवत चर्चा ही सत्संग है। सत्संग साधन और साध्य नहीं है। यह भगवत कृपा होनेपर ही प्राप्त होता है। भगवत स्मरण से सम्पन्नता आती है। जिस सम्पन्नता के लिए लोग भौतिक आधारोंका आश्रय ले रहे हैं वे निर्बल हैं, अपर्याप्त हैं। भागवत सफल साधन का आश्रय सबल साधन हैं भगवन्नाम, सत्संग।

इस ग्रन्थ में ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति के साथ-साथ निवृत्ति मार्ग को भी प्रकाशित किया गया है। जो पुरुष इस ग्रन्था का भक्तिपूर्वक श्रवण, पाठ एवं मनन करता है वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। पता नहीं कौनसी प्रभु कृपा से मुझे भागवत् कथा लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई। मैं उस प्रभु का धन्यवाद अदा करता हूँ जिसने मुझसे यह गौरवान्वित कार्य करवाया।

श्रीमद्भागवत के गायन का, जानो ऐसा प्रभाव हो। कलिकाल के सब दोषों का, तत्क्षण ही अभाव हो।।

गत २५ जनवरी २०१० में महाभारत भाग दो और तीन का प्रकाशन हुआ जो श्री आचार्य वागेशजी और पुलिस आयुक्त सत्यपाल सिंह के द्वारा हुआ। यह महाग्रन्थ विशाल ज्ञान की भूमिका है जिसे प्रकाशित कर मेरा मन अभिमान से भर गया और मुझे कुछ नया लिखने की जिज्ञासा हुई। पाठकों ने भी इसे बहुत सराहा।

आज सारे संसार में जीवन की जटिलतायें बढ़ती जा रही है। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में संलग्न है। वे अपने क्षुद्र स्वार्थों की सिद्धि के लिए दूसरों का, यहाँ तक की देश का अहित करने में भी कोई संकोच नहीं करते। कलि का प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। भौतिक मूल्य प्रखर हो रहे हैं और नैतिक मूल्यों का ऱ्हास हो रहा है। मानवता लुप्त होती जा रही है तथा सद्भावना खत्म होती जा रही है।

इस विषम स्थिति का समाधान है आध्यात्म जागरण जो कि मनुष्य को कर्त्तव्य परायणता का आभास कराके कल्याण पथ पर अग्रसर करता है। मूल्यपरक सदसाहित्य इसमें अत्यन्त उपादेय है जो जीवन के मूल्यों को उजागर करके ज्ञान वर्धन व चरित्र विकास करता है जिससे मनुष्य अपने जीवन में मानवोचित गुणों का समावेश करके अपने कर्त्तव्यों को पहचान कर उसका निष्ठापूर्वक पालन कर सके। नैतिक मूल्यों का प्रचार-प्रसार मानव जीवन को नई चेतना तथा नवीन,

स्वस्थ और मनोरम दिशा दर्शाता है ताकि वह अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति में उन मूल्यों का समावेश कर सके और लोक कल्याण व राष्ट्रकल्याण में अपना योगदान दे सके। गांधीजी का नया सिद्धान्त- सत्य ही ईश्वर है आज भी उतना ही प्रासंगिक है। आध्यात्मिक मार्ग ही ऐसा मार्ग है, जिस पर चलकर इन्सान देवता व भगवान भी बन जाता है।

सत् साहित्य देशवासियों में जीवन मूल्यों के प्रति आस्था जगाकर देशभक्ति की ओर प्रेरित करता है तथा जीवन के सकारात्मक पक्ष को रेखांकित करके सकारात्मक जीवन की ओर अग्रसर करता है।

वर्तमानकाल में किशोर और बालकों को सदाचारी व संस्कारी बनाने की महती आवश्यकता है। भौतिकवाद की चकाचौंध एवं आकर्षण के इस युग में जब भारतीय धर्म व संस्कृति के तत्त्वदर्शन मेघाछन्न हो रहे है, धर्म संस्कार लुप्तप्राय हो रहे हैं तब नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा एवं सद्वृत्तियों से सुसंस्कृतिक संस्कारों की महती आवश्यकता प्रतीत होती है और आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक अभ्युत्थान जरूरी हो जाता है तथा समाज में सात्विकता जागृत करनेवाले साहित्य की मांग बढ़ने लगती है। अपने मन को सद्वृत्तियों में संलग्न कर अमृतत्व-प्राप्ति की ओर सतत् सचेष्ट होना जन-मानस का कर्त्तव्य है, सुकर्मों में ही जीवन का साफल्य है।

नारायणी धाम पिछले एक दशक से सद्साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य कर रहा है। ताकि समाज को भगवत्तोन्मुखी बनाकार जनमास को ऊर्ध्वोन्मुखी विकास तथा लोककल्याण के लिए प्रेरित कर सके तथा सामाजिक समरसता बनायी रखी जा सके। इससे मनुष्य को सकारात्मक जीवन जीने की भी प्रेरणा मिलती है। किसी भी जाति, समाज या राष्ट्र की उन्नति चरित्रवान मानवों पर ही निर्भर करती है। संस्कारित व्यक्ति राष्ट्र व समाज की धरोहर होती है। हम उच्च आदर्शों एवं मानवीय मूल्यों को आत्मसात करके ही लोकमंगल व लोककल्याण के प्रति समर्पित हो सकते हैं।

आध्यात्मिक साहित्य सम्यक मानवता को आध्यात्मिक प्रकाश एवं संस्कृतिक पुनर्रूथान के अलावा व्यवहारिक संदेश देने में समर्थ होता है। उसे कर्त्तव्य ज्ञान, धर्म, पुण्य और भक्ति के पथ पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं तथा अपने व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाने के लिए भी निरंतर प्रेरित करते रहते हैं।

जीवन को सफल बनाने के लिए आध्यात्मिक, ज्ञान, सद्व्यवहार, सुसंस्कार व सदाचार की महती आवश्यकता है। समाज के आध्यात्मिक सांस्कृतिक व चारित्रिक उत्थान के लिए सद् साहित्य प्रकाश स्तम्भ की तरह उपयोगी सिद्ध होते हैं। ज्ञान, भक्ति व अध्यात्म के बिन्दुओं का संयोजन कर जीवन को अध्यात्म की ओर प्रेरित करने के उद्देश्य से सद्साहित्य का प्रकाशन तथा उसका प्रचार-प्रसार नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन न्यास द्वारा किया जाता है।

साहित्य वह है जिसे पढ़ने से प्रतीत हो कि लेखक ने अपना सब कुछ इसमें प्रस्फुटित कर दिया है। जिसकी बुद्धि ही खोटी हो उसे शास्त्र भी कुछ भला बुरा नहीं सीखा सकता। सत्य की अभिव्यक्ति ही साहित्य है। अच्छी पुस्तक वही है जो आशा से खोली जाये और लाभ से बन्द की जाये। विभिन्न पुस्तकोंसे तथ्योंका संकलन करते समय विविध एवं विभिन्न लेखन और प्रमाणोंका सहारा लिया गया है, इसीके साथ मौखिक साक्ष्योंका सहयोग भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। महापुरुषोंके जीवन के अनेक प्रेरक प्रसंग सत्चर्चाके रूपमें भागवत कथाओंके श्रवण से व जन-जनसे वर्णनान्तरित-मुखान्तरित-हस्तान्तरित होते रहनेसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी उतरते-सरकते लिया गया हैं।

मेरे मन में यह विचार आया कि कुछ ऐसा पढ़ने योग्य लिखा जाए कि जिसे लोग पढ़े या फिर कुछ ऐसा किया जाए कि पढ़ने लायक लिख डालें या ऐसा कुछ करें जिसपर कुछ लिखा जाएं। यही सब बातें मनुष्य की कीर्ति को अमर बना सकती है। हिन्दी साहित्य हमेशा के लिये आबाद रहे इसकी आवश्यकता है। साहित्य में जो शक्ति होती है, वह तोप, तलवार और बमों में नहीं पाई जाती है। इसका मतलब साहित्य सबसे ज्यादा शक्तिशाली होता है। इसी के द्वारा समाज में परिवर्तन लाया जाता है। किसी भी राष्ट्र के निर्माण में साहित्य का एक अलग महत्व होता है, क्योंकि उसके माध्यम से ही समाज की भावनाएं अभिव्यक्ति पाती हैं। शायद यही वजह है कि साहित्य को समाज का दर्पण भी कहा जाता है। साहित्यकार का मुख्य लक्ष्य समाज का

कल्याण होता है न कि किसी वर्ग विशेष के आग्रहों पूर्वाग्रहों को उभारना। यदि कोई साहित्यकार किन्हीं पूर्वाग्रहों को उभारने लगे, तो समझो कि वह अपने रास्ते से भटक गया साहित्यकार ही समाज को श्रेष्ठ बनाने का काम कर सकते हैं।

अमोस ओज का कहना है एक लेखक को मारना भी मुश्किल नहीं, लेकिन एक किताब को नहीं मारा जाता। उसे नष्ट करने का कितना भी प्रयत्न किया जाय फिर भी यह संभावना बनी रहती है कि दुनिया में किसी निर्जन कोने में, किसी पुस्तकालय के किसी खाने में, उसकी एक प्रति तब भी बची रह जायेगी।

ये सर्व जग नियन्ता जब जिससे जो चाहें करवा लेते हैं। भक्त की इच्छा भगवद् इच्छा होती है। यह कथा लेखन का परम पवित्र कार्य इनकी प्रेरणा से ही आरम्भ हुआ। लेखन के द्वारा यही अनुभव होता रहा कि एक अलौकिक अदृश्य शक्ति की चेतना ही इस लेखनी की पृष्टभूमि में कार्यरत है। आज हृदय में अपार हर्ष हो रहा है। मुझ जैसे मतिहीन अल्पज्ञ को भगवान द्वारा प्रदत्त सद्बुद्धि से उनकी जीवन लीला लेखन कर रहा हूँ। यह सच्चिदानन्द धन परमात्मा का वाङ्मय विग्रह है। भगवान के मधुरतम प्रेम रसका छलकता हुआ सागर है। महापुरुष के प्रेममय हृदय से बहता हुआ स्त्रोत है।

साहित्य शास्त्र की दृष्टि से भी भागवत की कमनीयता, श्लोकों की मंजुल प्रासादिकता एवं सभी अलंकारों, रसों का समुचित समावेश इसमें मिलता है। यह ग्रंथ भक्तों एवं साहित्य रसिकों दोनों के लिए पठनीय है।

हमारे ऋषि-महर्षि इसलिए लिखा करते थे कि पाठक समझ जायें और उसके अनुसार आचरण करें पर आजकल लोग इसलिए लिखते हैं कि पाठक समझे यह बहुत बड़ा भारी विद्वान, बुद्धिमान है। आजकलके लोग अपना महत्व प्रकट करनेके लिए लिखते हैं, बातको समझाने और जीवनमें उतारनेके लिये नहीं लिखते। लेखकर, चित्रकार, विद्वान, शास्त्र ज्ञान-विज्ञान में पारंगत होता है।

समाज की समस्या सुलझाने में साहित्य का बड़ा योगदान है। क्योंकि वैचारिक, चिंतनशीलता, ज्ञान से साहित्य की निर्मिती होती है। सिर्फ भावना से साहित्य की निर्मिती नहीं की जा सकती। साहित्य से समाज की समस्या सुलझाने में मदद मिलती है। साहित्य से विभिन्न समस्याओं पर मार्गदर्शन मिलताहै। संतसाहित्य ने समाज को मजबूत किया और समाज को एक नई दिशा दी। इससे क्रांति व विद्रोह मार्ग मिला। भक्ति से अच्छे संस्कार पनपते हैं और समाज का विकास होने में मदद मिलती है। चीजों को नापने की जरूरत हमेशा पड़ती है, इसलिए तरह-तरह के नपने हर घर में हुआ करते हैं। इंसानों को नापने की जरूरत आम पर नहीं पड़ती, इसलिए उन्हें नापने का कोई स्थूल पैमाना कहीं नहीं रखा जाता। लेकिन कोई-कोई समय ऐसा भी आता है, जब इंसान की विकृतियां उजागर होने लगती हैं। सिलसिला किसी एक से शुरू होता है, फिर हर किसी पर एक-दूसरे की गड़बड़ियां सामने लाने और यहां तक कि जो लोग ठीकठाक हैं, उन्हें भी विकृत कर देने का जुनून सवार हो जाता है। हालात यहां तक पहुंचते हैं कि किसी का भी कद्दावर, साफ-सुथरा जीवन लोगों को बर्दाश्त नहीं होता। वे उन आइनों को भी तोड़ डालने पर उतारू हो जाते हैं, जो उन्हें उनकी बर्बादी का एहसास कराते हैं। उन तस्वीरों को भी, जो उन्हें अच्छे इंसान, अच्छे जीवन, अच्छे समाज की याद दिलाती हैं। ऐसे समयों में समझदार लोगों को इक्का-दुक्का छवियों का मोह छोड़कर आदर्शों और मानदंडों को बचाना चाहिए। कभी बड़ा, कभी छोटा होना इंसान की फितरत है, लेकिन इसका असरअगर उसको नापने के पैमानों पर पड़ने लगा तो उसके लिए वापसी करना असंभव हो जाएगा।

यह भागवत कथा मैंने निम्नलिखित भागवत का अध्ययन कर लिखी है। पूज्य डोंगरे महाराज, गीताप्रेस गोरखपुर, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, स्वामी अखण्डानन्दजी, योगेश ब्रह्मचारी, शारदा देवी, कृष्णचन्द्र ठाकुर व संत किरीटभाई, पंडित ज्वालाप्रसाद चतुर्वेदी.

यह ग्रन्थ मैं श्री रमनकांत जी मुंजाल की स्मृति में समर्पित कर रहा हूँ। ईश्वर उन्हें चिरशांति प्रदान करें।

- महेन्द्रकुमार पाटोदिया

जिनकी मधुर स्मृति में यह ग्रन्थ समर्पित

प्रस्तुत वेदभाष्य के प्रकाशन में एक दिवंगत आत्मा की भी पावन स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं, जो भारत के औद्योगिक आकाश में अपनी धवल कीर्ति के नये कीर्तिमान स्थापित करके चिर-स्मरणीय हो गया। देश और विदेश में जहाँ-जहाँ हीरो होंडा पर सवार होकर लोग हवाओं से बातें करेंगे, उसके निर्माता को प्यार और प्रशंसा से स्मरण करेंगे।

१९४९ की दो जुलाई को मुंजाल परिवार में एक शिशु ने आगरा में जन्म लिया, जिसका नाम रक्खा गया रमनकान्त। किशोरावस्था से ही यह बालक बहुमुखी प्रतिभाओं से सम्पन्न था मेधावी होने के साथ-साथ कठोर परिश्रमी भी था। मणिपाल टैक्नॉलॉजी संस्थान से मैकेनिकल इंजिनीयरिंग में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। चार सुपुत्रों के पिताश्री बृजमोहनलाल मुंजाल का **हीरो साइकल उद्योग** समूचे देश में पहले से प्रतिष्ठित था। अग्रज सन्तान रमनकान्त ने लुधियाना में हाइवे साइकल उद्योग लि. को १९७१ में सम्भालते ही, ऐसी निष्ठा के साथ अपने सहयोग से हीरो होंडा की रचना द्वारा देश को पवन गति प्रदान करके, पिता द्वारा स्थापित व्यवसाय को रमनजी ने देश की सीमाओं के पार फैलाकर सिद्ध कर दिया कि वह योग्य पिता की सुयोग्य सन्तान थे। उद्योग की लोकप्रियता का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि ३१ मई १९९१ के दिन कम्पनी ने हीरो होंडा सी. डी. १०० की पाँच लाख मोटर-साइकल्स के उत्पादन का लक्ष्य पूरा करके नया कीर्तिमान स्थापित किया। हमारे शास्त्रों में सत्य ही कहा गया है- उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी। सचमुच रमनजी उद्योग कानन के सिंह पुत्र निकले।

किन्तु, लक्ष्मी केवल धन-वैभव का नाम ही तो नहीं है। सच्ची दौलत तो मनुष्यता है। रमनजी वस्तुत: मनुष्यता के उपासक थे। जिनके सहयोग से उन्होंने सफलताएँ और उपलब्धियाँ प्राप्त कीं, उन श्रमिकों के पसीने की बूँदों से भी उन्हें प्यार था। उनके हितों का सरंक्षण करने में रमनजी सदैव तत्पर रहे। जरूरतमन्दों को भरसक सहयोग देने में वह निरन्तर अग्रणी रहे। दरिद्र ग्राम-बन्धुओं को उन्होंने तन-मन-धन से सहयोग दिया। अनेको विकलांगों को उनकी कार्यक्षमता के अनुसार उनके पाँवों पर खड़ा किया। देश की युवा पीढ़ी को आधुनिक शिक्षा सुलभ कराने हेतु, संगणकीकृत तकनीकी विधियों का संयोजन कराया और देश को आधुनिक शिक्षितों की एक सर्वगुण-सम्पन्न पीढ़ी उपलब्ध कराने में पहल की।

यह सब वही कर सकता है जो सेवाभावी पवित्रात्मा हो, जिसे एक वैभवशाली उद्योगपति होने का दम्भ और दर्प न हो, जो दैवी उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत हो, जो दया-ममता का अजस्र निर्झर हो, जिसके मन में दलितों और मजदूरों के प्रति सच्ची सहानुभूति हो, जिसमें उद्योग की स्पर्धा तो हो किन्तु ईर्ष्या-द्वेष न हो, जो ईश्वर-परायण हो और आस्तिकता में रचा-बसा हो। रमनजी सचमुच सबके सखा थे। उनके मित्रों का दायरा विशाल और विस्तृत था। उनके अधीनस्थ, उनके कर्मचारी और सेवक भी उन्हें अपना सखा और बन्धु ही मानते थे, तभी तो हर कोई उन्हें प्यार से रमनजी पुकारता था।

समय के एक-एक पल को पूरे उत्साह और कर्मठता से जीना, हर महफिल में अपने ठहाकों और चुटकुलों से रंगीनियाँ भर देना, दूसरों की पीड़ाओं को मुस्कानों में बदल देना, सोच-समझकर वचन देना और दिये हुए वचन को हर हाल में निभाना, बेरोजगारों को रोजगार के साधन उपलब्ध कराना, हर काम का प्रारम्भ ईश्वर के स्मरण और अग्न्याधान-यज्ञादि से करना, दु:खों और दु:खों में समभाव से रमण करना- यही तो वे गुण हैं जो रमनजी को प्रिय थे। तभी तो वे रमनकान्त थे। स्वनाम-धन्य लोग सचमुच विरले ही होते हैं और रमनकान्त विरले ही थे परतु,

परिवर्तिनि संसारे मृत: को वा न जायते।

देहधारी चाहे कितना ही पुण्यात्मा हो, भगवान श्रीराम हो या भगवान श्रीकृष्ण, देहत्याग तो होगा ही।

धन्य हैं वे लोग, जो देहधारी होते हुए भी अन्तरात्मा के आदेश पर चलते हैं और जीवन के अन्तिम क्षणों में भी कर्मठता के प्रतीक बने रहते हैं। १८ जून १९९१ को रमनजी ने हमेशा की तरह अपने कार्य-कक्ष में बैठकर स्वभाविक शैली में काम निपटाया। शाम को सहसा स्वयं को असहज पाया। तुरन्त अस्पताल पहुँचाया गया। किन्तु दूसरों के लिए ममता के मारे धड़कनेवाला दिल सारी मोह-ममता के बन्धन तोड़ गया। शरीर तो पंचतत्व में विलीन हो गया किन्तु अपनी सुखद स्मृतियों से हजारों-लाखों को रूला गया।

ईश्वर से यही प्रार्थना है कि प्रभो। मुंजाल-परिवार के सभी सदस्यों को पर्याप्त शक्ति, धैर्य और संयम प्रदान करें। संसार में जन्म लेना उसी का सार्थक माना जाता है जिसके द्वारा वंश की समुन्नति होती हो। इस परिप्रेक्ष्य में रमनकान्तजी की सुखद-स्मृतियों को हम श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं। मरणोपरान्त भी मनुष्य को सम्मान से स्मरण किया जाय तो उसी का जीवन सार्थक है वह जीवित है। हमारा पूरा समाज व नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन न्यास के सभी सदस्य भावभीनी अश्रुपूर्ण श्रद्धांजली अर्पित करते है।

*** तेरे आने का आज भी, इन्तजार किया करते हैं। लोग कहते हैं जानेवाले, कभी नहीं आया करते।।**

*** आरजू के महल बनते है और बिखर जाते हैं, रेत पर लिखे नाम, लहरों से मिट जाते है,**
ये जन्मों का बन्धन है टूटता ही नही, लाखों रिश्ते यहां जुडते है, बिगड जाते हैं।

भागवत क्या है?

नाम प्रभु का जप नहीं पाया, व्यर्थ गंवा दी कंचन काया।

हर मानव में राम-राम है, सद्ग्रन्थों से पता चला है। फिर भी मानव समझ न पाया।

जब श्रीकृष्णभक्ति में समासक्त भक्तों के चित्त में भगवद्माधुर्य को प्रकाशित करनेवाले प्रभु के नाम, रूप, लीला, धाम की चर्चा, परिचर्चा, सत्संग, वार्ता, कथा, प्रवचनादि में जो कुछ वाक्य निकलता है, वही भागवत है वही हरिकथा है, वही जीवन का वास्तविक सार सर्वस्व है।

श्रीमद्भागवत महापुराण में उपनिषद् वेदान्त आदि सभी शास्त्रों का सार समाया हुआ है। वेद वेदान्त, इतिहास पुराणों का सार लेकर शुकदेवने राजा परीक्षित को सुनाया था। जब सब का सार ही मिल गया, तब फिर अन्य शास्त्रों में श्रम करना केवल भ्रम मात्र ही है। श्रीमद्भागवत सर्व शास्त्रों का सार है। स्मृति, धर्म शास्त्र, व्याकरण, शिक्षा, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त छन्द आदि वेदांगों का विषय श्रीमद्भागवत में इनका सन्निवेश है। दर्शनों का प्रतिपाद्य विषय है। न्याय दर्शन का मुख्य तत्त्व है। योग शास्त्र का अन्तिम लक्ष्य है। सांख्य का संक्षिप्त सिद्धान्त बताया है। इसी तरह वैशेषिक, पूर्वमीमांसा का सार सिद्धान्त बताकर श्रीमद्भागवत में इन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। ब्रह्मसूत्रों का संक्षिप्त विवरण बताया है। वेदान्त का अभिप्राय समझाया है। वेदान्त सूत्रों से अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत सिद्ध किया है। श्रीमद्भागवत में तो सभी वैदिक आस्तिक आचार्यों को मान्य है, उसका आदर सभी सम्प्रदाय में समान भाव से है। श्रीमद्भागवत में ब्रह्मपुराण की कथाएं अनेक रूप में ग्रहण की गयी हैं। इसमे सर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय है। इनका विस्तृत विवरण किया है। सृष्टि के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न पुराणों में मत-मतान्तर का, सृष्टि की उत्पत्ति व लय का वर्णन पूर्ण उल्लेख से किया है। भक्ति मार्ग के जितने भेद हैं, श्रीमद्भागवत में उनका जहाँ-तहाँ वर्णन आया है। भक्त सब समय, सब अवस्था एवं सब वस्तुओंमें प्रभुको ही देखता है, प्रभुसे भिन्न और कोई वस्तु उसे दिखायी नहीं देती। अत: वह समदृष्टि हो जाता है। यही जीव और शिवका, भक्त और भगवान्का, आत्मा और परमात्माका अनन्त मधुर मिलन है। यही भक्तिकी पराकाष्ठा, यही ज्ञानकी पराकाष्ठा है। इसके अनन्तर और कुछ प्राप्तव्य अवशेष नहीं रहता। अनन्तकालका प्रेमका प्यासा, आनन्दका भूखा जीव परम प्रेममय परमानन्दमय प्रभुके साथ एक होकर अनन्त आनन्द और परम शान्तिको प्राप्त कर कृतार्थ हो जाता है।

मानव-जीवनका मुख्य ध्येय है भगवत्प्राप्ति। भगवत्प्राप्तिके लिये जीवनका, संयमित, पवित्र तथा साधन-सम्पन्न होना अत्यन्त आवश्यक हैं। इस परमार्थ-साधनमें सर्वप्रधान विघ्न है- विषयसंग। इसमें भक्तों का चरित्र आया है।

भगवान् तथा उनके नाम, यश, गुण सभी अभिन्न हैं। भगवान की उपस्थिति के कारण कलि पृथ्वी की सीमा में प्रवेश नहीं कर पा रहा था। इसी प्रकार यदि भगवान् के पवित्र नाम, गुणों आदि के सतत कीर्त्तन का प्रबन्ध हो तो कलि के प्रवेश के लिए अवसर नहीं मिल पायेगा। संसार के कलि को भगाने की यही युक्ति है। आधुनिक मानव-समाज में भौतिक विज्ञान के कारण बड़े-बड़े विकास हुए हैं, लोगों ने वायु में ध्वनि विस्तार के लिए रेडियो ईजाद कर लिया है। अतएव इन्द्रिय भोग के लिए किसी भद्दे स्वर को प्रसारित न करके, यदि राज्य भगवान् के पवित्र नाम, यश तथा उनके गुणों की दिव्य वाणी को, जिस तरह से वे भगवद्गीता या भागवत में प्राप्त हैं, प्रसारित करने की व्यवस्था करे, तो उचित वातावरण उत्पन्न होगा, संसार मे धर्म की पुन: स्थापना होगी और इस प्रकार प्रशासक लोग, जो संसार से भ्रष्टाचार के उन्मूलन को लेकर इतने उत्सुक हैं, विजयी होंगे। कोई

भी वस्तु बुरी नहीं है, यदि उसका उपयोग भगवान् की सेवा के लिए किया जाय।

श्रीमद्भागवत भगवान् के कार्य-कलापों का इतिहास है। भगवान् के कार्य-कलाप भगवद्-भक्तों को लेकर ही सम्पन्न होते हैं। अतएव भक्तों का इतिहास भगवान् कृष्ण के कार्य-कलापों के इतिहास से भिन्न नहीं है। भगवद्-भक्त भगवान् तथा उनके शुद्ध भक्तों के कार्य-कलापों को एक-सा मानता है, क्योंकि ये सभी दिव्य होते हैं।

आधुनिक पीढ़ी के मानसिक रोग शारीरिक रोगों से अधिक गम्भीर हैं, अतएव यह उपयुक्त समय है कि देर लगाये बिना, संसार भर में श्रीमद्भागवत के प्रचार का कार्य प्रारम्भ कर दिया जाय। महत्तमानाम् अभिधान का अर्थ है महान् भक्तों का शब्दकोश या महान् भक्तों की वाणी से युक्त पुस्तक। महान् भक्तों की तथा भगवान् की वाणी का ऐसा कोश, वेद तथा अन्य सम्बद्ध ग्रंथ, विशेष रूप से श्रीमद्भागवत में है।

श्रीमद्भागवत् भगवान का वाङ्मय स्वरूप है। श्रीमद्भागवत् स्वयं भगवान के श्रीमुख से निसृत ग्रन्थ है। श्रीमद्भागवत् पंचम वेद है। श्रीमद्भागवत् में समस्त वेदों और उपनिषदों का सार है। श्रीमद्भागवत् रस-सिन्धु है। श्रीमद्भागवत् ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का समुच्चय है। श्रीमद्भागवत् सभी पुराणों में सर्वोपरि है, इसलिए श्रीमद् शब्द के तिलक से इसे अलंकृत किया गया है। श्रीमद्भागवत् सभी भगवतत्त्व को प्रकाशित करने वाला अलौकिक प्रकाश-पुंज है। मृत्यु को मंगलमय बनाने वाला ग्रन्थ है- श्रीमद्भागवत्, विशुद्ध प्रेम शास्त्र है श्रीमद्भागवत्। मानव जीवन को भगवत्परायण बनाने वाला ग्रन्थ है श्रीमद्भागवत्। श्रीमद्भागवत् आध्यात्मिक रस वितरण की सार्वजनिक प्याऊ है। व्यक्ति को शांति एवं समाज को क्रांति देने वाला शास्त्र है- श्रीमद्भागवत्। श्रीमद्भागवत् परम सत्य की अनुभूति कराने वाला ग्रन्थ है। काल के भय से मुक्त कराने वाला ग्रन्थ है- श्रीमद्भागवत्। श्रीमद्भागवत्-कथा का श्रवण, मनन एवं चिन्तन भक्तिप्रदाता है। भगवान के अवतारों का इतिहास है-श्रीमद्भागवत्। नर को नारायण पद प्राप्त कराने के लिए उत्तम सोपान है- श्रीमद्भागवत्।

एकं भागवतंशास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति।

भागवत गर्जना कर रही हैं। यदि तुझे मुक्ति चाहिए तो मैं मुक्ति देती हूं। मुक्ति मांगने की जरूरत नहीं, क्योंकि मुक्ति भक्ति की दासी है। जिसके जीवन में भक्ति आ गई, मुक्ति अपने आप आ गयी समझो। मुक्ति भक्ति के पीछे-पीछे चलेगी। मुक्ति के लिए भीख नहीं मांगनी पड़ती, लेकिन यदि भक्ति जीवन में आ जाए। जितना आवश्यक है उतना कीर्तन करो। श्रीमद्भागवत मनुष्य की कृति नहीं है। भगवत: इदम् भागवतम्- भगवताम् प्रोक्तं भागवतम्- साक्षात नारायण की वाणी है यह। लोग यह न समझ लें कि भागवतसे केवल मोक्ष-ही-मोक्ष मिलता है। मोक्ष चाहनेवाले तो बहुत थोड़े होते हैं। अत: यदि मोक्षके लिए ही भागवत होता हो तो कोई भागवत सुनेगा ही नहीं या बहुत थोड़े लोग सुनेंगे। असलमें भागवत सुननेसे धर्म होता है, कामनाकी पूर्ति होती है, धन मिलता है और फिर मोक्ष भी मिलता है। यह चतुर्वर्गका साधन है, चारों पुरुषार्थ इससे सिद्ध होते है- धन चाहिए तो धन लो, भोग चाहिए तो भोग लो, धर्म चाहिए तो धर्म लो- सर्वपापहरां पुण्यां मुक्तिभुक्तिप्रदायिनीम्।

यह कोई धरती का अमृत नहीं है, स्वर्ग का अमृत नहीं, वनस्पतियों का अमृत नहीं।

अमृत तीन प्रकार के बताये गये हैं-

१) समुद्र मंथन से जो धन्वंतरि लाये और जिस अमृत को देवताओं ने पान किया और वे अमर हो गये। यह अमृत तो हमारे हाथ में आयेगा नहीं, वह तो देवता ले गये। २) दूसरे प्रकार का चन्द्रमा में अमृत है। वह वनस्पतियों में प्रकट हुआ और आयुर्वेद में उसकी औषधि बनी। वह कुछ लोगों को मिलेगा। ३) कलियुग में एक प्रकार का अमृत सबको मिलता है। गोपी ने कहा- **तव कथामृतं, तव कथामृतं, तप्त जीवनम् तप्त जीवनम्।**

कलियुग में जिन व्यक्तियों ने इस कथामृत का आश्रय ले लिया उनके त्रैलोक्य में जो तीन ताप हैं वे मिट गये। जो पीड़ित लोग हैं, उन्हें पीड़ा से मुक्ति मिली। एक नाम का अमृत है। दूसरा कथा का अमृत। जो इसका पान करता है वह तीनों तापों से बचेगा और इस सृष्टि में जीवन में कोई ऐसा जीव नहीं जो जीवन में इन तीन तापों से पीड़ित न हो- आध्यात्मिक, आधि दैविक, आधि भौतिक। संसार में जो तीन ताप हैं, इनसे वह मुक्ति करवा देती है। यह साक्षात् परमात्मा की कृति है, प्रभु की वाणी है। श्रीमद्भागवत केवल एक सरिता के रूप में नहीं अपितु समुंदर के रूप में है। किसी की क्षमता नहीं जो उसे सम्पूर्णत: पी सके। यह मानव जाति का ग्रंथ है। आज तक कृष्ण के चरित्र को कोई समझ नहीं पाया। कृष्ण के साथ श्रीभाव है, सख्यभाव है, वात्सल्यभाव है, दास्य भाव हैं।

श्रीमद्भागवत हमें जागृति देती है। जो स्वरूप की विस्मृति हुई है वह स्वरूप ज्ञान कराती है। भगवान और भक्त की एकता करनेवाला यह ग्रंथ जो भी सुनेगा उसे वैराग्य की प्राप्ति होगी।

भागवत हमें वैराग्य सिखाती है। अर्थात् मनुष्य के सामने उसकी मनपसंद की चीज आ जाये और फिर भी स्पर्श करने का मन न हो तो यह वैराग्य है। तुम्हें जो प्रिय है चाहे विषय हो, वस्तु हो या व्यक्ति हो, अच्छा-बुरा कुछ और, फिर भी मन तुम्हारा उसमें न फंसे वह वैराग्य है। वैराग्य तो भीतर से फूटता है। वैराग्य अपने जीवन में यदि लाने की चेष्टा करोगे तो अहंकार प्रकट होगा कि वैराग्य अपने जीवन में आ गया। पर जो स्वयं फूटता है वह अहंकार नहीं है। भगवान भक्त और भक्ति के अधीन रहते हैं। भक्ति बड़ी सुलभ है। अगर प्राप्त हो गई तो भगवान अवश्य प्राप्त होंगे।

यह भागवत कथा कलियुग में पापों से मुक्त करवा देती है। इस सृष्टि का सर्जन, उसका पालन और विसर्जन भगवान का कार्य है। विषय-वस्तु और व्यक्ति का अभाव ही दु:ख उत्पन्न होने का कारण है। श्रीमद् भागवत मृत्यु से बचाती नहीं है वह मृत्यु के भय को दूर करती है। भागवत धर्म है, भागवत पुरुषार्थ है। भागवत मानव बनना सिखाती है। आज मानवता कम है। संसार में मनुष्य दिखाई देते हैं मानव कम हैं।

नाम माहात्म्य का वर्णन किया है। श्रीमद भागवत वेद वृक्ष का पका हुआ फल है। श्रीमद भागवत कामनाओं की पूर्ति करते हुए अन्त में चित्त को निष्काम कर देता है। श्रीमद्भागवत में सिर्फ अध्यात्मज्ञान ही नहीं, राजकीय, सामाजिक, कौटुम्बिक क्षेत्र के विशेष प्रसंगों में, उलझनों में, कैसे उपाय और निर्णय करने चाहिए, इसका भी निर्देश है। संसार में प्राप्त समस्त वस्तुओं को प्रभु के श्री चरणों में समर्पित कर देना ही पूर्ण भागवत धर्म है।

वेदरूपा कल्पतरु का, पका हुआ फल है भागवत। शुक के मुख से संयोग हुआ, अमृत रसपूर्ण है भागवत।।
रस ही रस है बरस रहा, मानो रस का घर है भागवत। अन्दर बाहर इसके भरा, है केवल बस रस ही रस।।
जब लग घट में प्राण हैं, पुन: पुन: रसपान करो। ऐसा सौभाग्य न फिर मिले, केवल इस लोक में सुलभ यह हों।।

निम्नगानां यथा देवानामच्युतो यथा। वैष्णवानां यथा शम्भु: पुराणानामिदं तथा।।

बहने वालों में जैसे गंगा श्रेष्ठ है, देवताओं में अच्युत कृष्ण श्रेष्ठ हैं, वैष्णवों में शंकर श्रेष्ठ हैं, वैसे पुराणों में श्रीमद्भागवत सबसे श्रेष्ठ है, सर्वोत्तम है।

क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्युनत्तमा:। तथा पुराणब्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजा:।।

क्षेत्रों में जैसे काशी श्रेष्ठ है, वैसे पुराणों में भागवत सर्वोत्तम है। भागवत पुराणों का तिलक है, वैष्णवों का परम धन है। परमहंसों की संहिता है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य की इसमें त्रिवेणी बहती है। ऐसी भागवत रूपी त्रिवेणी में जो अवगाहन करे, उसे गोविन्द मिल जाते हैं।

महाभारत का सार-सिद्धान्त दिया हुआ है। महाभारत की कथाओं के साथ भागवत का जो सामंजस्य है वह एक दस प्रतिशत महाभारत की कथा ही है। श्रीमद् भागवत में स्थान-स्थान पर आयी हुई स्तुतियों का विशेष महत्व है। श्रीमद् भागवत पुराण वेद-सम्मत है। इसमें उत्तम श्लोक भगवान श्रीकृष्ण के चरित हैं। इसकी रचना महर्षि वेदव्यास ने की है। भागवत श्रीकृष्ण का साकार वाङ्गमय विग्रह है। भागवत भगवान और भक्त के अनन्त अवतारों की कथा है। यह भक्त और भगवान का इतिहास है।

भागवत् मृत्यु को महोत्सव बनाती है, मृत्यु सुधारती है। ज्ञानदेवजीने भैंसे के मुख से सबके सामने वेद पाठ कराया। रैदासने समस्त ब्राह्मण पंक्ति में अपने को बिठाकर सबके सामने भगवन्मूर्ति को अपने पास बुलाया। भगवान के भक्त ही असम्भव बातों को सम्भव बना देते हैं। ब्राह्मण अपने मन्त्र शक्ति से पाषाण प्रतिमा में प्राण प्रतिष्ठा करके उसे देव बना देते हैं। जब भक्तों में इतनी सामर्थ्य है, तो भगवान् तो जो भी चाहे करा सकते हैं। बालक से बालक को भी बुद्धि योग देकर बड़े-बड़े शास्त्र उसके मुख से कहला सकते है। पाँच वर्ष के ध्रुव में स्तुति करने की क्या सामर्थ्य थी, किन्तु भगवान की कृपा से उसने वेदशास्त्र सम्मत पूर्ण स्तुति की। भक्त भगवान को अपने वशीभूत कर लेता है और भगवान उसके पीछे-पीछे फिरते हैं।

भगवान की वाणी ही नारायण, शिव, शेष, ब्रह्मा, नारद, व्यास, शुकदेव और सनकादिकके द्वारा श्रीमद्भागवतके रूपमें प्रकट हुई है। यह वाणी न केवल मनुष्यों के लिए, बल्कि पशु-पक्षी, लता-वृक्ष आदि सबके लिए, यहाँ तक कि प्राणिमात्र के लिए कल्याणकारी है।

यह श्रीमद्भागवत मुख्य रूपसे भगवत्पुराण नहीं है- भागवत पुराण है। भागवतानां पुराणं भागवतपुराणम्- जिसमें भगवान्से भी अधिक उनके भक्तोंकी महिमाका वर्णन होता है उसका नाम भागवतपुराण होता है। स्वयं भगवान्ने श्रीमुखसे अपने भक्तोंकी महिमा कही है, इसलिए भगवता प्रोक्तं से भी भागवतम् बनता है। इसलिए भगवान्के द्वारा कहा हुआ भक्तोंकी महिमा-रूप यह श्रीमद्भागवत है।

श्रीमद्भागवतका मुख्य प्रतिपाद्य विषय यह है कि यह सृष्टि भगवान्से हुई है, भगवान्में है और भगवान्में मिल जायेगी। जो वस्तु जिससे पैदा होती है, जिसमें रहती है और जिसमें लीन हो जाती है, उसके अलग नहीं होती। श्रीमद्भागवतका तात्पर्य है कि यह प्रपञ्च परमात्मासे पृथक् नहीं है, परमात्माका स्वरूप है, परमात्माका विलास है, परमात्माका उल्लास है, परमात्माकी लीला है।

असलमें हमलोगोंके हृदयमें जो राग-द्वेष आता है, वह क्या है? रागके कारण पक्षपात होता है। जिससे राग हो जाता है, उसके लिए हम बेइमानी भी करते हैं, अन्याय भी करते हैं। राग हमारे हृदयको पक्षपातसे दूषित करता है और जब हमारे जीवनमें किसीसे द्वेष आता है तो उसके प्रति क्रोध आता है, हिंसा होती है, विद्रोह आता है। द्वेष हमारे हृदयको दग्ध कर देता है। जब हम संसारमें किसीसे राग-द्वेष करेंगे तब हमारा मन कलुषित हो जायेगा। फिर हमको शत्रु दिखेगा, मित्र दिखेगा।

श्रीमद्भागवत हमें इस धर्मका उपदेश करता है कि सभी वस्तुओंमें सभी व्यक्तियोंमें, सभी स्थानोंमें जो भगवान् विद्यमान हैं, उनका दर्शन करो और अपने हृदयको पवित्र बनाओ। इस संसारमें कोई भी डण्डेके बलपर, सिपाहीके बलपर, फौजसे डराकर, कानूनसे डराकर सद्भावकी स्थापना नहीं कर सकता। लोगोंके मनमें यह उलझन है कि संसारमें इतना दोष क्यों है, इतना दु:ख क्यों है और इतना वैमनस्य क्यों है? जो सृष्टिका मूल कारण परमात्मा है, उसको लोग भूल गये हैं और जब परमात्मा को भूल जाता है तो धर्मके टिकनेका कोई भी स्थान अपने हृदयमें नहीं रहता।

श्रीमद्भागवतका मुख्य प्रश्न है धर्म: कं शरणं गत:? आज धर्म कहाँ है? आज धर्म किसकी शरणमें है? इसका उत्तर है कि

धर्मके प्रेरक, धर्मके रक्षक, धर्मके परम फल स्वयं भगवान् हैं। उन्हीं भगवान्‌के प्रति जब लोगोंके हृदयमें प्रीति नहीं रही, भक्ति नहीं रही, श्रद्धा नहीं रही, तब उनकी दृष्टि संसारमें इधर-उधर बिखर गयी।

संसारकी ओर दृष्टि करनी चाहिए। इसीसे श्रीमद्भागवत माहात्म्यमें बताया गया है कि जो लोग अपने हृदयको शुद्ध करना चाहते हैं, उनके लिए इससे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है- **एतस्मात् अपरं किंचिन्मन:शुद्धयै न विद्यते।**

तो यह श्रीमद्भागवत हमारे हृदयको शुद्ध करनेके लिए आया है। जब हमारा हृदय शुद्ध होगा, तब हमारी इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ शुद्ध होती हैं और इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ शुद्ध होती हैं तो हमारा व्यवहार शुद्ध होता है। इस तरह एक-एकका व्यवहार शुद्ध हो जाये तो सम्पूर्ण प्रपञ्च, सम्पूर्ण संसार ही सुखसे, आनन्दसे भर जाये।

श्रीमद्भागवत इसी आनन्दका सन्देश लेकर आया है। वह मनुष्यके हृदयमें ज्ञान जाग्रत करके उसके पापसे, तापसे मुक्त करता है। यह केवल पापको ही निवृत्त नहीं करता, उसके फल तापको भी निवृत्त करता है। श्रीमद्भागवतके प्रारम्भमें ही यह बात कही गयी है- **तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुम:।**

पाप तो साधन हैं, कारण हैं, जिनसे दु:खकी उत्पत्ति होती है। दु:खके साधनका नाम पाप है। हम पाप करेंगे तो आगे हमको ताप मिलेगा। भागवत सुननेके लिए बैठ गये तो पाप नहीं होगा। उससे पापकी निवृत्ति हो गयी, लेकिन पहलेके किये हुए पापसे जो ताप उत्पन्न होता है, उसका क्या होगा? यह होगा कि वह ताप ही शान्त हो जायेगा जिस समय आप श्रीमद्भागवतका श्रवण करेंगे।

प्रविष्ट: कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरूहम्। धुनोति शमलं कृ्ण: सलिलस्य यथा शरत्॥

जो सत्य का साक्षात् करादे, जो हमारे हृदय में पाप और ताप है और जिसके निवारणका उपाय हम नहीं जानते, उसको निवृत्त कराने का उपाय श्रीमद् भागवत श्रवण से ही होता है।

जिस समय आपके मनमें भगवान की लीला श्रवण करने की होगी उस समय भगवान आपके हृदयमें आकर बैठ जायँगे। भागवत कहती है- **सद्यो हृद्यवरुध्यतेत्र कृतिभि: शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्।**

कथा श्रवणसे बढ़कर कोई साधन नहीं, कोई पात्र नहीं। कथाश्रवण मात्रसे ही भगवान आकर हृदयमें प्रकट हो जाते हैं। आँखोंमें आँसू आता है, शरीरमें रोमांच होता है, कंठ गद्‌गद होता है और प्रत्यक्ष, इसी समय, अभी-अभी यहीं बैठे-बैठे, इसी रूपमें हमारे हृदयमें आकर भगवान् क्रीड़ा करने लगते हैं। यह श्रीमद्भागवत निगमसार-सर्वस्व है।

व्यासजीने कहा- पिबत भागवतं रसामालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुका:। संसारके रसिक- जो इसीसमय सुख चाहते हैं, उनको निमन्त्रण है और जो परलोकमें सुख चाहते हैं उन भावुकोंको भी निमन्त्रण है। धर्म अदृष्ट फल देता है, लेकिन भक्ति दृष्टादृष्ट फल देती है। इस लोकमें भक्ति करनेका सुख, भगवान्‌को याद करनेका सुख, पूजा करनेका सुख, नाम लेनेका सुख, स्मरण करनेका सुख- इस प्रकार भक्ति तत्काल सुख देती है और इससे अन्त:करणका ऐसा निर्माण होता है कि परलोकमें भी सुख मिलता है। ज्ञान तत्काल अभिमानकी निवृत्ति कर देता है और भक्ति लोक-परलोकमें सर्वत्र साथ जाती है। भक्ति ऐसी है, जो परमात्माके मिलनेसे पहले भी होती है, परमात्मासे मिलते समय भी होती है, परमात्मासे मिलनेके बाद भी होती है। जीवनको रसमय बनानेके लिए ही भगवान्‌की भक्ति है। भागवत लौकिक कल्याणकी दृष्टिसे, पारलौकिक कल्याणकी दृष्टिसे भगवततत्वका साक्षात्कार कराती है।

श्रवण करते समय ही आपके हृदयमें आकर भक्ति बैठ जायेगी और जब भक्ति बैठ जायेगी तब पिछली बातोंको याद कर-करके आप शोकग्रस्त नहीं होंगे। अगली बातोंकी कल्पना कर-करके आप भयभीत नहीं होंगे और वर्तमानमें जिनसे

मोह है वह सब छूट जायेगा। इसलिए अन्त:करणको तत्काल शुद्ध करनेके लिए श्रीमद्भागवतसे बढ़कर, श्रीमद्भागवतके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है। लोकहितके चिन्तनक अग्र हैं, व्यासजी। उन्होंने वेदोंका विभाग किया। उपनिषदोंका अभिप्राय, स्पष्ट करनेके लिए ब्रह्मसूत्रका निर्माण किया। जिनके द्वारा साधारणसे साधारण लोग भी जीवनका रहस्य, धर्मका रहस्य, कामका रहस्य, अर्थका रहस्य, मोक्षका रहस्य समझ जायँ। इसलिए उन्होंने महाभारतकी रचना की- सर्वार्थपरिबृहितम्। ऐसी कोई बात नहीं, जो महाभारतमें छूट गयी हो- **यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्**। इसलिए कहा गया कि **व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम**। महाभारत जैसा ग्रन्थ विश्वसृष्टिमें न हुआ, न है और न आगे होनेवाला है।

मानव की सबसे बड़ी भ्रांति हैं कि वो चिन्ता ज्यादा करता है चिन्तन नहीं करता। जीवन में चिन्ता को मिटाओ और चिन्तन को बढ़ाओ। यह मुक्ति का साधन है। श्रीमद्भागवत मुक्ति प्रदान करनेवाला सद्ग्रंथ है। चिंतन बढ़ने से चिंता से मुक्ति मिलती है।

भगवत्प्राप्ति में जो सुख मिलता है उससे तन और मन निर्मल होता है तथा सही अर्थों में मान, प्रतिष्ठा, यश-कीर्ति का भी प्रादुर्भाव होता है। जीवन का अर्थ है गुण, कर्म और स्वभाव के साथ अपनी अंतरात्मा को प्रतिपल उत्कृष्ट बनाने का प्रयास करना। जिससे संस्कृति का ज्ञान बढ़े और मानव की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भौतिक, व्यावहारिक, नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति हो।

श्रीमद्भागवत अद्भुत ग्रन्थ है। यह आपको अर्थोपार्जनकी भी विधि बताता है, कामोपभोगकी भी विधि बताता है, धर्मानुष्ठानकी भी विधि बताता है और सबसे मुक्त होनेकी भी विधि बताता है। यह आपको भगवान्की भक्ति बताता है, भगवानका मिलना बताता है, भगवान्के प्रेममें डूब जाना बताता है। यह समग्र पुरुषार्थोंको, परम पुरुषार्थको, पंचम पुरुषार्थको सिद्ध करनेवाला है।

भग छ: प्रकार के होते हैं- ज्ञान, वैराग्य, धर्म, ऐश्वर्य, यश और श्री। ये छ: जिसमें सम्पूर्ण होते हैं, अथवा नित्य निवास करते हैं, उसको भगवान कहते हैं। इसी भगवान का प्रतिपादन होने के कारण इस महापुराण का नाम भगवत् है। प्रथम दो स्कन्धों में ज्ञान, तीसरे चौथे में वैराग्य, पाँचवे छठे में धर्म के दो निरुपण स्थान और पोषण, सातवें आठवें में प्रह्लाद, मनु आदि के चरित्रों द्वारा ऐश्वर्य, नवमें दशमें में यश, ग्यारहवें में श्री का निरुपण है। प्रथम स्कन्ध अधिकार का ज्ञान है। द्वितीय स्कन्ध- साधन, तृतीय स्कन्ध- सर्ग, चतुर्थ स्कन्ध- विसर्ग, पंचम स्कन्ध- स्थिति का ज्ञान कराता है। षष्ठम स्कन्ध- पुष्टि, सप्तम स्कन्ध- ऊती, अष्ठम स्कन्ध- मन्वन्तर, नवम स्कन्ध- ईश कथा, दशम स्कन्ध- मन का निरोध, एकादश स्कन्ध- मुक्ति और द्वादश स्कन्ध तत्वोंका ज्ञान कराता है।

प्रथम स्कन्ध को अधिकार स्कन्ध कहा गया है। अधिकारी उसे कहते है जो वस्तु को चाहता हो, उसको ग्रहण करने में समर्थ हो, समझदार हो और संवैधानिक हो।

लोक पावनी गंगा जैसे सबको पवित्रता प्रदान करती है, उसी प्रकार भगवान की कथा हृदय के कलिमल का नाश करके पवित्र कर देती है।

श्रीमद्भागवत पुराण मोक्ष प्रदान करने का सरलतम तथा सर्वोत्तम साधन है। इसका पाठ श्रवण तथा अर्थश्रवण, मानव जीवन में ऐसा परिवर्तन ला देता है कि मनुष्य स्वभावत: परमार्थ चिंतन में प्रवृत्त हो जाता है। इसके पाठ श्रवण मात्र से अनेक प्रकार के पापियों की शुद्धि हो जाती है।

श्रीमद्भागवत में तो स्थान-स्थान पर सत्संग की महिमा बतलायी गयी है। बालक नारदजी को परमात्म-स्वरूप का

ज्ञान सन्त या महापुरुषों की संगति से ही होता है। श्रीव्यासजी को भी मन:शान्ति की प्राप्ति नारदजी की सत्संगति से ही होती है। ध्रुवजी के परमात्माराधन का मार्ग आचार्य नारद ही प्रशस्त करते हैं। अतएव आचार्य की प्राप्ति अथवा सत्संगति की प्राप्ति तो बड़े ही सौभाग्य से होती है।

भागवतसे व्यस्त एवं अशान्त मन सुस्थिर हो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति में अग्रसर होता है एवं मनुष्य लौकिक तथा पारलौकिक अभीष्ट प्राप्तकर जीवन साफल्य का भागी बनता है।

श्रीमद्भागवतमें यह भी बताया गया है कि यदि आपके मनमें कोई कामना है और आप उसकी पूर्तिके लिए अलग-अलग देवताओंका ध्यान कर रहे हैं, इससे आपकी कामना पूर्ण होगी। लेकिन यदि आप भगवान्की भक्ति करे तो पूर्णकी प्राप्ति होगी। मन को शुद्ध करता है भागवत पाठ। श्रीमद् भागवत साक्षात् भगवान का स्वरूप है इसीलिए श्रद्धापूर्वक इसकी पूजा-अर्चना की जाती है। इसके पठन एवं श्रवण से भोग और मोक्ष दोनों सुलभ हो जाते हैं। मन की शुद्धि के लिए इससे बड़ा कोई साधन नहीं है। सिंह की गर्जना सुनकर जैसे भेड़िए भाग जाते हैं, वैसे ही भागवत के पाठ से कलियुग के समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं। इसके श्रवण मात्र से हरि हृदय में आ विराजते हैं।

भागवत में कहा गया है कि बहुत से शास्त्र सुनने से क्या लाभ हैं? इससे तो व्यर्थ का भ्रम बढ़ता है। भोग और मुक्ति के लिए तो एकमात्र भागवत शास्त्र ही पर्याप्त है। हजारों अश्वमेध और वाजपेय यज्ञ इस कथा का अंशमात्र भी नहीं हैं। फल की दृष्टि से भागवत की समानता गंगा, गया, काशी, पुष्कर या प्रयाग कोई भी तीर्थ नहीं कर सकता।

सम्मान के साथ सेवा का अवसर दिलाने में सहायक-जनमानस में भागवत का विशिष्ट स्थान है, अत: भागवत के ज्ञाता के लिए रोजगार की समस्या आड़े नहीं आती। आज लाखों लोग भागवत प्रवक्ता बनकर स्वयं धन कमा रहे हैं और दूसरों को भी जीवन-यापन का अवसर प्रदान कर रहे हैं। इस प्रकार भागवत का ज्ञान प्राप्त करके तथा प्रवचनकार बनकर कोई भी व्यक्ति धन के साथ-साथ सम्मान और यश भी अर्जित कर सकता है।

कितना और कब करें पाठ-क्योंकि बहुत दिनों तक चित्तवृत्ति को वश में रखना तथा नियमों में बँधे रहना कठिन है, इसलिए भागवत के सप्ताह श्रवण की विधि उत्तम मानी गई है। भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़ और श्रावण मास के शुभ मुहूर्त में कथा सप्ताह का आयोजन होनाचाहिए। तथापि भागवत में स्पष्टत: कहा गया है कि इसके पठन-श्रवण के लिए दिनों का कोई नियम नहीं है। इसे कभी भी पढ़ा-सुना जा सकता है। मात्र एक, आधे या चौथाई श्लोक के अर्थ सहित नित्य पाठ से अभीष्ट फलों की प्राप्ति हो सकती है।

जिस घर में नित्य भागवत कथा होती है, वह तीर्थरूप हो जाता है। केवल पठन-श्रवण ही पर्याप्त नहीं- इसके साथ अर्थबोध, मनन, चिंतन, धारण और आचरण भी आवश्यक है।

इस प्रकार त्रिविधि दु:खों के नाश, दरिद्रता, दुर्भाग्य एवं पापों के निवारण, काम-क्रोध आदि शत्रुओं पर विजय, ज्ञानवृद्धि, रोजगार, सुख-समृद्धि भगवतप्राप्ति एवं मुक्ति यानी सफल जीवन के संपूर्ण प्रबंधन के लिए भागवत का नित्य पठन-श्रवण करना चाहिए, क्योंकि इससे जो फल अनायास ही सुलभ हो जाता है वह अन्य साधनों से दुर्लभ ही रहता है। वस्तुत: जगत में शुककथा (भागवत शास्त्र) से निर्मल कुछ भी नहीं है। इसलिए भागवत रस का पान सभी के लिए सर्वदा हितकारी है- सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद् भागवती कथा होनी चाहिए।

है पुराणों में अतिश्रेष्ठ, भाल पे सोहे तिलक समान। वैष्णव जन के लिये कहें, सर्वोत्तम धन अति मूल्यवान।।
परमहँस के योग्य जो, वर्णित है यहां विशुद्ध ज्ञान। वैराग्य और भक्ति सहित, निवृत्ति मार्ग का यहाँ है गान।।

भक्ति भाव हृदय में धर, जो पठन श्रवण और मनन करे। शीघ्र ही वह भव बन्धन त्यज, मोक्ष धाम की ओर बढ़े।।
श्रीमद्भागवत पुराण की, महिमा अब हम गाते हैं। श्रवण मात्र से ही जिसके, कर में मुक्ति पा जाते हैं।
अनेकों शास्त्र पुराण पढ़ी, केवल भ्रम जाल ही बढ़ता है। मुक्ति दान करे पल में, श्री भागवत गर्जन करता है।।
दुर्लभ है इस संसार में, मिले श्री हरि की कथा यह। हों कोटि जन्म के पुण्य उदय, तो ही हो अमृत प्राप्त यह।।
आस्वादन करना चाहिये, सदा करें इस कथा का पान। इसे सुनते ही हृदय भवन में, होंगे श्री हरि विराजमान्।।
नित्य कथा हो जिस घर में, तीर्थ ही वह बन जाये। उसके वासी गण के कहें, पाप नष्ट सब हो जायें।।
कोई तीर्थ पावनता में, शुककथा समान न हो सके। गंगा गया काशी पुष्कर, प्रयाग भी पीछे रह जाएं।।
इसका श्रवण तुम जान लो, अरियन् पर विजय दिलाता है। काम क्रोध मोह लोभ अहं, सबको दलित कर जाता है।।
इसके आश्रित श्रोता वक्ता, दोनों ही कृष्ण के प्रिय बनें। सो इसको त्यज कर अब कहो, क्या किसी भी अन्य धर्म से करें।।

सारे वेदोंका अध्ययन, यज्ञ, तप, दान यह सब मिलकर एक ओर और एक जीवको अभयदान दे देना दूसरी ओर अन्य जितने भी पुण्य हैं वे सब एकसाथ मिलकर भी अभयदानके पुण्यकी बराबरी नहीं कर सकती। जो भगवानकी लीला-कथाका दान करता है वही सबसे महान है, उसके समान दूसरा कोई दाता नहीं। दूसरे दाताओंमें कोई भूख मिटानेवाला होता है, कोई जाड़े से ठंड मिटानेवाला होता है, कोई रोग मिटानेवाला होता है किन्तु भगवान की यह रसीली भागवत कथा हृदयके भयको मिटानेवाली है। जब तक मनुष्य भगवान के चरणारविन्दका वरण नहीं कर लेता तभी तक उसे धन, घर और सम्बन्धियोंके कारण उत्पन्न होनेवाले भय, शोक, स्पृहा, दीनता तथा लोभ आदि सताते हैं। मैं, मेरा भी तभीतक है, दु:ख भी तभीतक है जबतक मनुष्य भगवानके चरणोंकी शरण ग्रहण नहीं करता। जो भगवानके चरणारविन्दके भक्तोंका सत्संग नहीं करता, उनसे विमुख रहकर सृष्टिमें पापकर्म करता है।

भागवत कथा श्रवण से ही भगवान में निष्ठा, श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होती है। अत: भगवत् कथा श्रवण से श्रेष्ठ कोई कर्म नहीं है। भगवान के ज्ञान का लोप न हो तो किसी देश विशेष में न हो, न किसी काल विशेष में न हो, किसी अवस्था में न हो, न किसी के निमित्त विशेष के कारण हो। जिसप्रकार भगवान की माया का संबंध कैसे संभव होता है? सम्पूर्ण शरीरों में अन्तर्यामी रूप से भगवान विद्यमान रहते हैं उनको क्लेशोंकी प्राप्ति कैसे होती है? श्रीमद् भागवत में यही सिखाया है। भगवान श्रीकृष्ण के गुणोंका वर्णन समस्त क्लेश समूह को विनष्ट कर देनेवाला होता है। यदि मनुष्य के मन में भगवान के चरणकमलों में अनुराग और उनकी सेवा की अभिलाषा जग पड़े तो इसमें उसका कल्याण है।

व्यास मुनि ने १८ पुराणों की रचना की, जिसमें कुल श्लोकों की संख्या लगभग ३,८२,००० है। इनमें श्रीमद्भागवत पुराण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यह ग्रंथ भक्ति और ज्ञान-विज्ञान के ताने-बाने से बुना गया है। इसमें वेदों के मंत्रों की व्याख्या प्रतीकों के माध्यम से की गई है- जैसे पुरंजन आख्यान के माध्यम से जीव और ब्रह्म का वर्णन किया गया है। चित्रकेतु और वृत्तासुर का आख्यान चित्रवृत्तियों का निरूपण करता है। पूतना का वर्णन माया की विषद व्याख्या है। इस ग्रंथ में भक्ति और ज्ञान की दोनों धाराएँ समानांतर बहती हैं।

भागवत कथा को सुनना भगवान से प्रेम करना है। जो लोग यह कहते हैं कथा सुनने की कोई आवश्यकता नहीं है वे हमें संसार में प्रवृत करते हैं। भगवानका प्रेम एकान्तमें नहीं बढ़ता। भगवानका माहात्म्य, उनके अपार गुण, उदारता, शील जितना सुनेंगे, उतना ही उनमें प्रेम दृढ़ होगा। भगवान की कथा निर्मल होती है। जो तुम्हारे मन को गन्दगी से निकालकर निर्मल बना दे, वही सत्कथा है।

श्रीमद् भागवत में प्रगाढ़ भक्ति का उत्कृष्ट विवेचन मोक्ष जीवन मुक्त सांसारिक प्रपंचोंसे आत्यन्तिक निवृत्ति का विस्तार से वर्णन किया गया है।

जीवन्मुक्त तो अनेक होते हैं, परन्तु उनमें नारायण-परायण कोई-कोई होते हैं। भक्ति भगवदाकार वृत्ति होनेके कारण प्रारब्धजन्य सुख-दु:खोंका भान नहीं होने देते, नवीन वासनाओं और दोषोंको आने नहीं देती, संसारमें होनेवाले राग-द्वेषको काटती है, संचित कर्मराशिको भगवान्‌की ओर उन्मुख करती है, क्रियमाण और आगामी कर्मको सुधारती है, वैराग्य और शमदमादि साधन-सम्पत्तिको बढ़ाती है। पदार्थ-शोधनमें स्पष्टता लाती है और विद्याकी उत्पत्ति होकर अविद्याकी निवृत्ति होनेपर अनन्त तृप्तिके रूपमें यावज्जीवन निवास करती है। भक्तिरूप अपूर्वताके द्वारा धर्म, क्रियायोग, अष्टांगयोग, बुद्धियोग आदि सभी साधनोंको परमात्माकी अनुभूतिमें सहायक बना देना और स्वर्गादि रूप फलकी ओर ले जानेवाली उनकी गतिको परमात्माकी ओर मोड़ देना यह श्रीमद्भागवतकी अपनी विशेषता है।

सभी धर्मों के अनुष्ठान से श्रम होता है किन्तु भगवत्कथा श्रवण में श्रम नहीं होता, इसलिए कलियुग में भगवत्कथा का श्रवण ही बिना परिश्रम के संसार बंधन से मुक्ति देनेवाला है।

भागवत संहिता में १२ स्कन्ध हैं, १८ हजार श्लोक हैं, ३३५ अध्याय और २५१ स्तुतियां है। श्रीमद्भागवत भगवान की वाङ्मय मूर्ति है। भागवत के प्राकट्य का कारण कारुण्य है। भागवत का अर्थ है भगवान की अनन्य भक्ति और सर्वत्र उन्हें देखना। हृदयमें बैठे हृदयेश्वर भगवान को मिलने के लिए भागवत का निरूपण है। भागवत-परायण अमृत-जीवन का निमन्त्रण है। जीव का सबसे बड़ा स्वार्थ और परमार्थ केवल यही है कि वह आत्मा और परमात्मा के एकत्व का, परम सत्य का साक्षात्कार कर ले। श्रीमद्भागवत का यही परम तात्पर्य निर्णय है। भागवत वेदान्त का सार है। इसकी एक-एक कथा में वैराग्य, ज्ञान और भक्तियुक्त नैष्कर्म्य का उपदेश दिया गया है, यही इसकी अपूर्वता है। परम तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, जन्म-मृत्युरूप संसार से मुक्ति का मार्ग बताने के लिए श्रीमद्भागवत है। सर्व उपनिषदों का सार है ब्रह्म और आत्मा का एकत्वरूप अद्वितीय सद् वस्तु यही भागवत का प्रतिपाद्य विषय है और निर्माण का प्रयोजन है एकमात्र कैवल्य मुक्ति। भागवतधर्म गिरे हुए को उठाने में पिछड़े हुए को आगे बढ़ाने में, बेसहारा को सहारा मिले यही तात्पर्य है।

शुकदेव जैसे अवधूत, व्यास जैसे मुनि, देवर्षि नारद और मनु वगैरह राजाओं के लिये तो है ही दूसरी ओर वृत्रासुर जैसे दैत्य, गोपियों जैसी अबोध स्त्रियां, गाय जैसे पशु और वृक्ष जैसे जड़ माने गये जीवों के लिए प्रकट हुआ है। दीन-हीन के परिपालन में भागवत की भवगत्ता सफल होती है। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति भगवान की करुणा भागवत के रूप में अवतीर्ण हुई। भगवान अपने निर्बल पतित जीव को स्वयं अपने हाथों से सम्भालते हैं। मनुष्य या पशु, देवता और दानव, ब्राह्मण और शूद्र, स्त्री और पुरुष, दुराचारी हो या सदाचारी, मूर्ख हो या पण्डित सभी के लिए भागवत है। जगत् की प्रत्येक विचित्रता भगवान के कौशल का स्मरण कराती है और लोग इसको देखकर इसके आश्रयभूत भगवान की खोज करलें और अपने हृदय में उसकी स्थापना करें। उन सत्यस्वरूप भगवान का ही भजन करें अन्य किसी वस्तु में आसक्ति नहीं करें। आसक्ति ही जीव के अध:पतन का कारण है। जीवन तत्त्व जिज्ञासा के लिए है, बहुत कर्म करने के लिए नहीं। बहुत विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए नहीं। यह तत्त्व एक ऐसी वस्तु का ज्ञान है, जो सर्वदा, सर्वत्र एकरस रहता है। यही स्वयंप्रकाश, परम सत्य, अद्वय तत्त्व है। इसे ही भागवत में भगवान, आत्मा, परमात्मा कहा है। बहिर्मुख इन्द्रियों के कारण वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इत्यादि धर्म से युक्त पदार्थों के रूप में प्रतीत होता है और भ्रान्ति से वे पदार्थ सत्य मानें जाते है।

भागवत का माहात्म्य

विषय सूची

१) वन्दना ६१

२) देवर्षि नारद की भक्ति से भेंट और उसके कष्ट का निवारण ६६

३) गोकर्णोपाख्यान ७७

४) सप्ताह यज्ञकी विधि ८८

❊ बड़प्पनका निवास तो विनयमें, निरभिमानतामें और सद्‌गुणोंमे होता है।
❊ कत्ल करते जर जमीनों, माल के खातिर यहां। सिरफिरे कुछ लोग हैं, दीवानगी के वास्ते।
दीन का हक खा रहा, मजदूर का मजलूम का, आदमी मरता नहीं अब आदमी के वास्ते।।
❊ वक्त कभी रूकता नहीं किसी के रुकाने से, आसमां कभी झुक नहीं सकता किसीके झुकाने से।
आंधी की रफतार को कोई रोक नहीं सकता, टूटा हुआ शीशा कभी जुड नहीं सकता जुडाने से।।
❊ वक्त बदलता है जिन्दगी के साथ, जिन्दगी बदलती है मोहब्बत के साथ,
मोहब्बत नहीं बदलती अपनों के साथ, बस अपने बदल जाते है वक्त के साथ।
❊ उम्र भर सब कहानी सुनाते रहे, सबकी हमने कहानी सुनी उम्र भर।
हम तो मन्दिर बने सोमनाथ के मगर हमको लूटता रहा वो गजनवी उम्र भर।।
❊ ये अन्धेरे तो डरते थे उससे, फिर उजाले ने क्यू खुदकशी की,
मै समझता था इसे मेरी ही है लेकिन ये कहानी तो हर किसी की है।
❊ भगवान को ढुंढते ढुंढते आदमी शैतान बन गया है,
समाज बदला है जो बाजारों में आदमी सामान बन गया है।
अब भी भीतर को टटोल ले तो राज जिन्दगी का खोल ले,
झूठ और सच के तराजू में आदमी खुद को आज तौल ले।।
❊ इच्छा होती है बडी बलवती, मनमें मचाती खलबली,
नित नित लेती है जन्म, घुमाती जीवन भर गली गली।
❊ जुल्म से लड़ने का जब जब सवाल आयेगा, मेरी रगों के खून में तब तब बबाल आयेगा।
भूल गई है ये कंस और रावण की वजीद औलादे, यहां कोई अमर नहीं है कि सबका काल आयेगा।।
❊ न जहर बांटने के लिये और न पीने के लिये, यह जिन्दगी मालिक ने दी है हमे जीने के लिये।

भागवत का माहात्म्य

१) वन्दना- जिससे इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं- क्योंकि वह सभी सद्रूप पदार्थों में अनुगत है और असत् पदार्थों से अलग है, वह जो ब्रह्मा तथा हिरण्यगर्भ नहीं प्रत्युत उन्हें अपने संकल्प से ही जिसने उस वेदज्ञान का दान किया है। वह जड़ नहीं चेतन है। परतन्त्र नहीं स्वयंप्रकाश हैं। जिसके सम्बन्ध में बड़े-बड़े विद्वान भी मोहित हो जाते हैं। जैसे तेजोमय सूर्यरश्मियों में जल का, जल में स्थल का और स्थल में जल का भ्रम होता है। वैसे ही जिसमें यह त्रिगुणमयी जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति रूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी अधिष्ठान सत्ता से सत्यव्रत प्रतीत होती है। इस अपनी स्वयंप्रकाश ज्योति से सर्वदा और सर्वथा माया और मायाकार्य से पूर्णत: मुक्त रहनेवाले परम सत्यरूपा परमात्मा का हम ध्यान करते हैं।

प्रकृति के तीन गुण होते हैं, सत्व, रज और तम। इनको स्वीकार करके इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संसार के लिये एक अद्वितीय परमात्मा ही विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र- ये तीन नाम ग्रहण करते हैं। फिर भी मनुष्य का कल्याण तो सत्व गुण स्वीकार करनेवाले भगवान् श्रीहरि से ही होता है। भगवान् की ही सूक्ष्म भूत चिन्मात्रा, इन्द्रिय और अन्त:करण आदि गुणों के विकारभूत भावों के द्वारा नाना प्रकार की योनियों का निर्माण करते हैं और उनमें भिन्न-भिन्न जीवों के रूप में प्रवेश करके उन-उन योनियों के अनुरूप विषयों का भोग करते और कराते हैं। वे ही सम्पूर्ण लोकों की रचना करते हैं और देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि योनियों में लीला अवतार ग्रहण करके सत्व गुण के द्वारा जीवों का पालन-पोषण करते हैं।

यह पंचीकृत ब्रह्माण्डात्मक जगत में पांचों महाभूत, पंच तन्मात्रा, गगन, समीर, अनल, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये एक दूसरे से मिले-जुले से असत् होते हुए भी सत् की तरह प्रतीत होते हैं। जिन परमात्मा की सत्ता से वास्तविक इनकी स्वतंत्र सत्ता कुछ भी नहीं है उनकी सत्ता से सत्तावान हैं। उस परम सत्य स्वरूप परमात्मा का हम ध्यान करते हैं, जिनने अपने धाम के प्रकाश से माया जन्य अज्ञान को, अन्धकार को बहुत दूर रख रखा है। जैसे सूर्य के पास अन्धकार जा ही नहीं सकता, जैसे अग्नि के पास ठंडक जा ही नहीं सकती, उसी तरह परमात्मा के पास माया जन्य अंधकार जा ही नहीं सकता। ये सहज प्रकाशस्वरूप है।

जो सब में बसा हुआ है अन्तर्यामी बनकर के और जो सबको अपने में बसाये हुए है विभु होकर के विराट होकर के, रोम-रोम गत कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों में सबको प्रश्रय दिये हुए हैं, वही वास्तव वस्तु है वही जानने योग्य है, (एतावदेव जिज्ञास्यम्) वही सत्यस्वरूप परमात्मा है। जैसे अग्नि के पास ठंड नहीं टिक सती, सूर्य के सामने अन्धकार नहीं टिक सकता सुखसागर के निकट दु:ख सन्ताप नहीं आ सकते। वह क्या है? श्रीमद्भागवत है। इसमें भगवान की सत्ता का, महत्ता का, भगवत्ता का वर्णन किया गया है निष्काम भक्ति का वर्णन है।

लेकिन वेद नाम का एक कल्पवृक्ष भी है। वेदरूपी कल्पवृक्ष से आप धर्म मांगो तो वह धर्म दे देगा। काम मांगो तो कामनाओं की पूर्ति कर देगा। वेद रूपी कल्पवृक्ष दिव्य है। इसके नीचे आकर आप जो चाहो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष वही ले सकते हो। यह आपके द्वारा मांगा हुआ फल है। तो कहते हैं कि इस वेदरूपी वृक्ष में अपना भी कोई फल लगता होगा? वही श्रीमद्भागवत है। वेदरूपी कल्पवृक्ष का अपना निजी फला हुआ फल है, यह कच्चा नहीं, खट्टा नहीं, कसैला नहीं है और खारा नहीं हैं बल्कि मधुर है। और-और जो फल होते हैं, उनमें छिलका भी होता है, गुठली भी होती है, तो उसका छिलका उतारो, गुठली फेंको तब कहीं बाकी अंश उसका ग्रहण करने लायक होता है। लेकिन वेदरूपी कल्पवृक्ष में फला हुआ यह भागवतरूपी फल है, यह तो परम मधुर है, परिपक्व है। (सुष्ठुप्रकारेण परिगलितम्) परिपक्व फलम् इसमें रस ही रस है।

कल्पवृक्ष की सन्निधि में पहुँचा हुआ पुरुष जो-जो कामना करता है उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। वेद रूपी कल्पवृक्ष भी ऐसा ही है। संसारी मनुष्यों की सारी कामनाओं को पूर्ण करने के उपायों का निर्देश वेद करते हैं। लौकिक एवं पारलौकिक समस्त कामनाओं की पूर्ति वेदार्थों के अनुष्ठान से संभव है। वेदों की दृष्टि में संसार के समस्त प्राणियों का कल्याण आवश्यक है। वह किसी व्यक्ति विशेष अथवा जातिविशेष को अपना विषय नहीं बनाता है। वेद यदि आस्तिक पुरुषों को स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्ति के साधनों का निर्देश स्वर्गकाम अश्वमेधेन यजेत इत्यादि वाक्यों के द्वारा करता है तो वह किसी भी नास्तिक व्यक्ति के लिए मारण-मोहन-उच्चाटन जैसे अभिचारकर्मों की पूर्ति के साधनों को बतलाकर तथा अभिचार कर्मजन्य पापादृष्ट का निर्देश करके उन्हें सन्मार्ग पर प्रवृत्त करने का सफल प्रयास करता है। अर्थात् वेद सम्पूर्ण जगत के कल्याण का उपदेश करते हैं। श्रीवैष्णव विद्वानों का मानना है कि वेद के कर्मकाण्ड भाग में श्री भगवान की आराधना का प्रकार बतलाया गया है तथा उसके उत्तरभाग में जीवात्मा के स्वरूप, परमात्मा के स्वरूप, परमात्मा की प्राप्ति के साधन, परमात्मा की प्राप्ति में बाधक तत्व तथा परमात्मा की प्राप्ति के फल का निर्देश किया गया है। अतएव मानव शरीर प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य ने यदि इन पाँच बातों को जान लिया तब तो उसका जीवन सफल हो गया और इस जीवन में मानव इन बातों को जाने बिना ही केवल सांसारिक भोगों में ही सारा समय बिता दिया तब तो उसका जीवन व्यर्थ चला गया।

इसमें आत्मोज्जीवन के सर्वोत्तम साधनों का निर्देश किया गया है। यद्यपि धर्म, अर्थ एवं काम ये त्रिवर्ग जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं क्योंकि इनके बिना सामान्य मानव की जीवन यात्रा नहीं चल सकती है। किन्तु मोक्ष तो मानव जीवन का चरम पुरुषार्थ है। मानव जीवन एक ऐसा जीवन हैं जिसमें मोक्ष प्राप्ति के साधनों का अनुष्ठान अत्यन्त सरल है। मानव जीवन प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त किए बिना अपना जीवन समाप्त कर देना मानव जीवन की सबसे बड़ी क्षति है।

यह भागवत कथा सबसे पहले शिव ने पार्वती को सुनायी थी। यह कथा आयी कहाँ से। यह कथा जब सृष्टि में कुछ भी नहीं था। सृष्टि सिर्फ पृथ्वी ही नहीं है। इसमें जितने जीव-जंतू सागर, भूत-प्रेत, साकिनी, डाकिनी जितने तरह के जीव इस सृष्टि में है- परोक्ष, अपरोक्ष, दृश्य, अदृश्य सभी जीवोंको मिलाकर इस सृष्टि का मतलब है सात लोक। सात लोक ऊपर सात लोक नीचे, उच्च लोक, अध: लोक, तल, अतल, सुतल, वितल और पाताल, रसातल यह अधोलोक में जाते है। सुतललोक, जनलोक, तपलोक, महलोक यह सात ऊपर के लोक गिने जाते है। यह पूरी सृष्टि जो बनी कुछ भी नहीं थी। तो क्या था? हम लोगोंने क्यों जन्म लिया। हम क्यों इस पृथ्वी पर आये। आपके मन में बहुत सारे प्रश्न आते होंगे। यह आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? यह जीव क्या है? यह ईश्वर है या नहीं या नहीं या सिर्फ यह पेड़, पौधे जितनी सब चीजें बनी है वो हमारे किस काम की है? किसलिये है? किसने बनायी है? वह बनानेवाला कौन है? यह सब जितने पशु-पक्षी, चर-अचर जितनी चीजें बनी है पर्वत, नदी, नालें, नक्षत्र यह सब आपने नहीं बनाये हैं। आपसे पहले भी विद्यमान थे। और आप चले जायेंगे उसके बाद भी विद्यमान रहेंगे। और यह भी मिट जायेंगे इनकी भी एक निश्चित अवधि है। तो यह किसलिये बना? क्यों बना? किसलिये बनाया है?

भगवन आपका गुण-कर्म-स्वभावादि, धर्म, जन्म और प्राप्ति का साधन सब त्रिकालाबाधित सत्य हैं। अत: भगवान सत्य के बिना तो चेतन भी अचेतन है और आनन्द निरानन्द है। इस बारे में एक ही सत्य है जिसको वेदोंने प्रतिपादित किया है एक सत्य है वो सत्य क्या है? आप सत्य किसको कहते है? आप जो कुछ बोली बोलते हो वो सत्य है? आप जो कुछ है वो सत्य है? उस सत्य का परिभाषित कि जो आदि था, जो अन्त में भी है, जो अन्त में है और जो आदि में है वो निश्चित रूप से मध्य में है। वो कभी वो सत्य जो कभी मिट नहीं सकता। उस सत्य की आराधना जानते है। सत्य का रास्ता कठिन है। इस रास्ते पर हजार चलने की सोचते हैं मगर सौ ही चल पाते हैं। नौ सौ तो सोचकर ही रह जाते हैं और

जो सौ चल देते हैं, उनमें केवल दस ही पहुँच पाते हैं। नब्बे तो रास्ते में ही भटक जाते हैं और जो दस पहुँचते हैं, उनमें भी सिर्फ एक ही सत्य को उपलब्ध हो पाता है, नौ फिर भी किनारे पर आकर डूब जाते हैं। तभी तो कहते हैं कि सत्य एक है और याद रखें- सत्य परेशान तो हो सकता है, लेकिन पराजित नहीं। आप देखेंगे भागवत के मंगलाष्टक में कहीं भी किसी भी देवता की गणेश की, गंगा की, सूर्य की, कोई नक्षत्र की किसी भी देवी-देवताकी स्तुति नहीं की है। सिर्फ सत्य की स्तुति की गई है। सत्यम अनृत वेदोंमें कहा सत्यम अनृत जो ऋक्त शब्द है वेदोंमें कहा गया सत्य है उसकी व्याख्या की गई है। वो सत्य जो हमेशा अटल है वो बदल नहीं सकता। उसके अनेकों, हजारों नाम है। उस सत्य को आप ईश्वर के लिये, उस सत्य को आप सर्वाधार कर लीजिये, सर्वात्मयामी कर लीजिये, जो कभी भी नहीं मिटता उसके बाद जितनी भी अभिव्यक्तियाँ हुई है वो सब-के-सब उस ईश्वर से हुई है और वो सब मिटनेवाली है। चींटी से लेकर ब्रह्मा तक की योनियाँ, ब्रह्मा तक के जितने जीव है सब विनाशवान हैं। यदा दृष्टम, तदा नष्टम। जो कुछ दिखता है वो आज नाश होनेवाला है, सर्वनाश होनेवाला है। कोई स्थिर नहीं रहेगा, सिर्फ एक सत्य जिसको हम भगवान हरि कहते हैं वो सत्य है। परमात्मा जो कुछ है वह सत्य ही है। उसी सत्य को जानो। उसी सत्य की आराधना करो। सत्य की पहचान तब तक नहीं मिलेगी, जब तक साधु-संत की संगति नहीं करोगे। इनकी सेवा करो। जंगल में, वन्य प्रदेश में, तीर्थ स्थान में, जहां भी हो उनकी खोज कर, तलाश करो। हमारे उपनिषद कहते हैं- हे जीव उत्तिष्ठ खड़े हो जाओ, जाग्रत हो और जो प्राप्य बोध है उसका सार ग्रहण करो। श्रीमद्भागवत कहता है कि सत्यं परं धीमहि- हम परमसत्यका ध्यान करते हैं। कोई भी साम्प्रदायिक यह निषेध नहीं कर सकता कि वह अपने इष्टदेवताको सत्य नहीं मानता। सबको स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारा इष्टदेवता सत्य है।

सत्य धर्म का प्राण है। सत्य के अभाव में धर्म निरर्थक हो जाता है। सत्य ही परमात्मा है, सत्य असीम है और अखंड है। उसकी प्राप्ति नहीं होती अनुभव होता है। वह निर्गुण निराकार वेद का विषय है। लोग निर्गुण की उपासना, आराधना करते है। लेकिन केवल सत्य हो और उसमें चैतन्य न हो तो सत्य जड़ हो जाता है। जब सत्य में चैतन्य प्रकट होता है तो परमात्मा लीला कर सकते हैं। ब्रह्म निर्गुण है, ईश्वर चैतन्य है। यही ब्रह्म और ईश्वर में फरक है। ब्रह्म यानी निर्गुण, निराकार, अभिन्न तत्व और चैतन्य तत्व जब आ गया तो वह शुभ बन गया, वही ईश्वर का आकार ले सकता है। निर्गुण निराकार तो आकार ले नहीं सकता। क्योंकि इसमें तो गुण भी नहीं है। परमात्मा का स्वरूप आनंदमय है। यह जीव उन्हीं का अंश है।

यही कारण है कि सत्य को तप से कहीं अधिक महत्वपूर्ण कहा गया है और इसीलिए कबीर तो यहां तक कहते हैं कि जाके हिरदय सांच है, ताकि हिरदय आप अर्थात सत्य को जीवन में धारण कर लेने पर तो स्वयं परमात्मा ही हृदय में प्रकट हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति को फिर परमात्मा को कहीं अन्यत्र खोजने की आवश्यकता नहीं रहती है। सत्य का मनुष्य के लिए यह महत्व ऋषियोंने हजारों साल पहले जान लिया था; इसीलिए पुराणों में अनेक आख्यान जीवन में सत्य के महत्व को समझाने के लिए प्राप्त होते हैं। आखिर धर्म का यह लक्षण सत्य क्या है? सामान्य रूप से हम जिस वस्तु, व्यक्ति, स्थान, भाव, संबंध अथवा घटना को जैसा जानते हैं वैसा ही कहें तो वह सत्य कहलाता है। किन्तु बहुत बार मनुष्य भय या प्रलोभन के कारण सत्य न कहकर असत्य का सहारा लेता है। इससे आत्मा की स्वाभाविक शक्ति क्षीण हो जाती है और हम धर्म से हट जाते हैं। हम मन में जो सोचें वही बोलें और जो बोल रहे हैं उसी का स्वयं आचरण करें यही सत्य पालन की मांग है। हमारे मन, वचन और आचरण में बहुधा एकरूपता नहीं हो पाती है। हम मन में सोचते एक बात हैं किन्तु बोलते ठीक उसके विपरीत हैं। इसी प्रकार हम दूसरों को समझाने अथवा प्रभावित करने के लिए जो कुछ कहते हैं उसका स्वयं अपने जीवन में पालन नहीं करते हैं। इसीलिए कहा गया है, पर उपदेश कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे। यह स्थिति सत्य से सर्वथा भिन्न होती है। सत्य को जीवन में धारण करने के लिए जीवन में कितनी कठोर परीक्षाओं का

सामना करना पड़ता है उसे समझाने के लिए राजा हरिश्चंद्र का दृष्टांत है। महात्मा गांधी ने तो अपने संपूर्ण जीवन को ही सत्य के साथ प्रयोग करने में लगा दिया और अपनी आत्मकथा को सत्य के प्रयोग नाम दिया। वो सत्य को परमात्मा और परमात्मा को सत्य मानते थे। यह सत्य, धर्म के लिए कितना महत्वपूर्ण है यह आचरण करने का उपदेश देने के पूर्व उनसे सत्यम् वद कहकर सत्य बोलने और सत्य को जीवन में धारण करने के लिए कहते आ रहे हैं, क्योंकि वे जानते थे और जानते हैं कि सत्य के बिना जीवन में धर्म हो ही नहीं सकता है। जो सहजस्फूर्त है, वही सुंदर है, वही सत्य है, वही शिव है।

सत्य ही संसार का सार है। तो यह सत्य ही भागवत है क्या? उसके बारे में जो है उस भगवान के बारे में जानकारी, इस प्रकृति के बारे में जानकारी, इस पृथ्वी के बारे में जानकारी, इन सब जीवोंकी जानकारी, आप और हमारी जानकारी, आनेवाले समय की जानकारी, आनेवाले काल, हर व्यक्ति, हर प्राणी, देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, घटना, नक्षत्र, अडोस-पड़ोस, पूर्वजन्म इन सबके जीव है उसका जीवन इसीसे बना है सिर्फ आप भाग्यकी रेखा देख लेंगे। जन्म समय मिलाकर जन्मकुंडली देख लेंगे उससे सिर्फ आपका जीवन नहीं बना है न आपका सिर्फ जीवन चलता है। यह सब उसमें एक हेतु है इसलिये कहा गया है सबसे पहले आप यह जानो कि आप क्या है? आत्मज्ञान प्राप्त करो। अपने बारे में सोचो। मैं कौन हूँ, क्या हूँ? कहाँसे आया हूँ? मेरे बाद में क्या है? हमारा जो आज मन, तन, धन, स्त्री, पुत्र इनमें मोह लगा पड़ा है क्या यह वे सुख देंगे? कितना सुख देंगे? कहाँतक का सुख देंगे? कहाँतक हमारे साथ रहेंगे? इन सब बातोंका विवेचन, निरूपण इस ग्रंथ में बहुत विस्तार से दिया गया है। इसलिये भागवत के जो दस लक्षण है वो आगेके विषय में आयेगा। भागवत में चार चीजों का निरूपण किया गया है। काल, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति।

सच्चिदानन्द भगवन। आपके संकल्प मात्र से विश्व का सृजन और विसर्जन होता है। आपके इस लीलामाधुरी को समझना सामान्य बुद्धि का खेल नहीं है। कृष्ण द्वैपायन व्यासजी ने आपके पावन चरित्र का वर्णन किया।

दिन-प्रतिदिन गृहकारज नाना जंजाल में फँसकर प्राणी दु:खी रहता है। प्राणी सुखी कैसे हो? इसके लिए शास्त्रों ने अनेक मार्ग बताये हैं। कर्मयोग एवं भक्तियोग का विशेष महत्त्व है। अपने-अपने जाति-धर्मानुसार सत्संग, स्वाध्याय और इष्ट में अभीष्ट निष्ठा रखते हुए परम ब्रह्मनिष्ठ वेदपारगामी गुरु के कृपाप्रसाद से अभ्युदय नि:श्रेयस को प्राप्त कर लेना सम्भव है।

परमात्मा की इच्छा शक्ति मात्र से ये पूरा विश्व प्रपंच बनता है, पालित होता है और लय हो जाता है। वह परब्रह्म हिरण्यगर्भ नहीं है, बल्कि ब्रह्माजी को जिसने स्वयं वेदार्थज्ञ ज्ञान का प्रतिपादन करके बताया, वो कैसा है? बोले स्वराट्-जो अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित रहता है और अपने प्रकाश से सारी दुनियाँ को प्रकाशित करता है, ऐसा वो परब्रह्म है। जिस वेदार्थज्ञ ज्ञान को समझने में बड़े-बड़े शूर लोग भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं, वही वेदार्थज्ञ ज्ञान जिसने सबसे पहले ब्रह्मा जी को प्रतिपादित किया, जैसे तेजोमय सूर्य रश्मियों में कभी-कभी जल की भ्रांति हो जाती है, जल में भी हमें कभी स्थल का भ्रम हो जाता है, वैसे ही यह जाग्रत स्वप्न, सुषुप्तारूपा जो सृष्टि है, उस परमात्मा की अधिष्ठा सत्ता की वजह से सत्यव्रत प्रतीत होती है। माया और माया के कार्यों से जो सर्वथा परे है, सर्वथा अलग है, ऐसे परम सत्य की हम वंदना करते हैं। **सत्यं परं धीमहि।**

जो है वह भी परमात्मा, जो था वह भी परमात्मा और जो होगा वह भी परमात्मा। यदि कोई परमात्माको जुदा मानता है तो केवल भ्रमसे मानता है। परमात्मासे भिन्न प्रपंच है, मृषा है, झूठा है।

जीनेका अर्थ यह नहीं है कि बहुत-सा काम किया जाय। सबसे बड़ा काम सत्यको जानना है। सत्यका ज्ञान ही जीवनका फल है। सत्यका ज्ञान प्राप्त किये बिना आप जो-कुछ बोलते हैं, उसके बारेमें स्वयं आपको पता नहीं कि आपका बोला हुआ झूठ है या सच है? जब आपको सत्यका ज्ञान ही नहीं है तब आपका बोलना अन्ध-परम्परा ही तो है। आप जो-कुछ भी करते हैं, उसमें क्या पुण्य है, क्या पाप है, आपको मालूम है? जबतक सत्यका ज्ञान नहीं होगा तबतक

पाप-पुण्यका ज्ञान नहीं होगा। इसी तरह परलोकका, जीव-ईश्वरका ज्ञान सत्यका ज्ञान हुए बिना नहीं हो सकता। जब हम सत्य बोलेंगे तब सत्यका पालन करेंगे तब सत्यको प्राप्त करेंगे। यदि हमारे जीवनमें सत्यका ज्ञान नहीं हुआ तो हमें समझना चाहिए कि हम अन्धकारमें भटक रहे हैं। इसलिए जीवनको सत्यमय बनाना आवश्यक है, अनिवार्य है।

सत्य अन्ध-परम्पराका सत्य नहीं होता। जो सुन लिया, सोच लिया और मान लिया, वही सत्य नहीं होता। सत्य वह है, जो ईश्वरकी दृष्टिमें सत्य है। उसी सत्यको जान लेना, प्राप्त कर लेना जीवनकी सफलता है। ईश्वरकी दृष्टिसे सत्य क्या है, इसको जाननेके लिए ईश्वरकी आँख-से-आँख मिलाइये। जिस आँखसे ईश्वर दीखता है, उसी आँखसे देखनेपर सत्य दिखाई देता है। ईश्वरकी पहचान यह है कि वह सबको अपनेमें देखता है, अपनेसे देखता है और अपना स्वरूप देखता है। ऐसे ईश्वरकी आँखसे जब आपकी आँख मिलेगी तभी आप सत्यको पहचानेंगे, अन्यथा आपको अन्धकारमें ही भटकना पड़ेगा। आपको यह पता नहीं चलेगा कि आप जो कुछ कर रहे हैं, वह सत्य है या झूठ है? जो बोल रहे हैं, वह सत्य है या झूठ है? जो सोच रहे हैं, वह सत्य है या झूठ है? अपने आप सच-झूठका पता नहीं चलता है। महात्माओंने उसका जो स्वरूप बताया है, उसको जाननेका प्रयास करना चाहिए।

तत्वज्ञानी महापुरुष सत्यको तत्त्व कहते हैं। तत्त्वका ही दूसरा नाम सत्य है। उस तत्त्व या सत्यके ज्ञानका स्वरूप यह है कि ज्ञानीपनेका तो अभिमान न हो और जो-जो ज्ञेय वस्तु संसारमें मालूम पड़ती है, वह परमात्मासे भिन्न नहीं दिखायी दे।

वस्तुत: न ज्ञानी भिन्न है और न ज्ञेय भिन्न है। एक परमात्मा ही सर्वस्वरूप है, सर्वातीत है, सर्वसाक्षी है, सर्वधिष्ठान है, उसके सिवाय और कुछ है ही नहीं। उसीका नाम है ब्रह्म, उसीका नाम है परमात्मा, उसीका नाम है भगवान। उस सत्यको यदि जान लिया जाय तो जीवन सफल हो जाता है। इसीमें जीवनकी सफलता है।

काल के विषय में कहा है- जो सबका आश्रय होनेके कारण समस्त प्राणियोंमें अनुप्रविष्ट होकर भूतोंद्वारा ही उनका संहार करता है, वह जगत्का शासन करनेवाले ब्रह्मादिका भी प्रभु भगवान् काल ही यज्ञोंका फल देनेवाला विष्णु है। इसका न तो कोई मित्र है न कोई शत्रु और न तो कोई सगा-सम्बन्धी ही है। यह सर्वदा सजग रहता है और अपने स्वरूपभूत श्रीभगवानको भूलकर भोगरूप प्रमादमें पड़े हुए प्राणियोंपर आक्रमण करके उनका संहार करता है। इसीके भयसे वायु चलता है, इसीके भयसे सूर्य तपता है, इसीके भयसे इन्द्र वर्षा करते हैं और इसीके भयसे तारे चमकते हैं। इसीसे भयभीत होकर औषधियोंके सहित लताएँ और सारी वनस्पतियाँ समय-समयपर फल-फूल धारण करती हैं। इसीके डरसे नदियाँ बहती हैं और समुद्र अपनी मर्यादासे बाहर नहीं जाता। इसीके भयसे अग्नि प्रज्वलित होती है और पर्वतोंके सहित पृथ्वी जलमें नहीं डूबती। इसीके शासनसे यह आकाश जीवित प्राणियोंको श्वास-प्रश्वासके लिये अवकाश देता है और महत्तत्त्व अहंकाररूप शरीरका सात आवरणोंसे युक्त ब्रह्माण्डके रूपमें विस्तार करता है। इस कालके ही भयसे सत्त्वादि गुणोंके नियामक विष्णु आदि देवगण, जिनके अधीन यह सारा चराचर जगत् है, अपने जगत्-रचना आदि कार्योंमें युगक्रमसे तत्पर रहते हैं। यह अविनाशी काल स्वयं अनादि किन्तु दूसरोंका आदिकर्ता (उत्पादक) है तथा स्वयं अनन्त होकर भी दूसरोंका अन्त करनेवाला है। यह पितासे पुत्रकी उत्पत्ति कराता हुआ सारे जगत्की रचना करता है और अपनी संहारशक्ति मृत्युके द्वारा यमराजको भी मरवाकर इसका अन्त कर देता है। <u>विषयोंका रूपान्तर (बदलना) ही कालका आकार है</u>।

जो काल समस्त प्राणियोंको सुख और दु:ख देनेकी सामर्थ्य रखता है- उसे यदि कोई पुरुष चाहे कि मैं अपने प्रयत्नोंसे दबा दूँ, तो यह उसकी शक्तिसे बाहर है। बल, मन्त्री, बुद्धि, दुर्ग, मन्त्र, ओषधि और सामादि उपाय- इनमेंसे किसी भी साधनके द्वारा अथवा सबके द्वारा मनुष्य कालपर विजय नहीं प्राप्त कर सकता।

सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान कृष्णको नमस्कार करते है जो जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और विनाशके हेतु आध्यात्मिक,

आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकारके तापोंका नाश करनेवाले हैं।

सूतजी कहते है शौनकजी, गुरुदेव कुछ भी अपने शिष्य से छिपाव नहीं करते। अधिकारी शिष्य से गुरुदेव छिपाते नहीं।

कृपा कृपा सब कोई कहे, पर कृपापात्र नहिं कोय। कृपापात्र सोइ जानिये जो आज्ञावर्ती होय।।

पात्र कौन कहलाता है- जो आज्ञा पालन करता है किसकी-

हम महर्षि कृष्ण द्वैपायन बादरायण व्यास को नमस्कार करते हैं जिन्होंने इस महापुराण की रचना की और उन्हीं के पुत्र रत्न परमहंस वितरागी नैष्टिक ब्रह्मचारी स्वामी शुकदेव की चरण वन्दना करते हैं जिन्होंने यह परमसंहिता चक्रवर्ती सम्राट परीक्षित को सुनायी।

२) देवर्षि नारद की भक्ति से भेंट और उसके कष्ट का निवारण

जिस समय शुकदेवका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर नहीं आया तथी शुकदेवजीको सन्यास लेने के लिये घरसे जाते देखकर पिता व्यास विरह होकर पुकारने लगे, बेटा। तुम कहाँ जा रहे हो। उस समय वृक्षोंने तन्मय होकर उत्तर दिया- और सूतजी बोले मैं तुम्हें ऐसी कथा सुनाऊंगा जो जन्म-मृत्युके भयका नाश करे, भक्तिके प्रावहको बढ़ायें। शुकदेवजीने कलियुगमें जीवोंके कालरूपी सर्पके मुखका ग्रास होनेके त्रासका आत्यन्तिक नाश करनेके लिये भागवतशास्त्रका प्रवचन किया। मनकी शुद्धिके लिये इससे बढ़कर कोई साधन नहीं है। जब मनुष्य जन्म-जन्मान्तरका पुण्य उदय होता है, तो उसे भागवतशास्त्रकी प्राप्ति होती है। जब शुकदेव राजा परीक्षितको यह कथा सुना रहे थे तभी उस सभा में सभी देवतालोग उनके पास अमृतकलश लेकर आये। देवता अपना काम बढ़ाने में कुशल होते है। उन्होंने शुकदेवमुनिको नमस्कार करके कहा, आप यह अमृत कलश लेकर बदले में हमें कथामृतका दान करें। इसप्रकार अदला-बदली हो जानेपर राजा परीक्षित अमृतका पान कर लें और हम सब श्रीमदभागवतरूप अमृत का पालन करेंगे। शुकदेव ने कहा, कहाँ काँच और कहाँ महामूल्य मणि, कहाँ अमृत और कहाँ कथा? और शुकदेवजी हँस पड़े। देवताओंको भक्तिशून्य जानकर कथाका अमृत दान नहीं किया। इस प्रकार यह श्रीमद्भागवत कथा देवताओंको भी दुर्लभ हुई।

देवताओंने शुकदेवसे कहा-

एवं विनिमये जाते सुधा राजा प्रपीयताम्। प्रपास्यामो वयं सर्वे श्रीमद्भागवतामृतम्।।

शुकदेवने कहा- कहां स्वर्ग का अमृत और कहां श्रीमद्भागवत। अमृत का पान करने के बाद भी व्यक्ति को स्वर्गसे गिरना पड़ता है।

देवताओं तुम लोग बहुत स्वार्थी हो जो स्वर्गके अमृतके साथ हमारे भागवतामृतका परिवर्तन करना चाहते हो। लेकिन इस भागवतामृतका अधिकारी भक्त है। अभक्त इसका अधिकारी नहीं। तुम लोग अर्थी हो, समर्थ हो, विद्वान हो, परन्तु अधिकारी नहीं हो। जो संसारके तापसे संतप्त प्राणी हैं, उन्हें ही श्रीमद्भागवत प्राप्त है। देवताओं के लिए दुर्लभ है यह।

पुनरपि जन्मं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनं।

अभक्तास्तांशच विज्ञाय न ददौ स कथामृतम। श्रीमद्भागवतीवार्ता सुराणामपि दुर्लभा।।

श्री शुकदेवजीने देवताओंको अभक्त समझा और भागवत कथामृत का दान नहीं किया।

पूर्वकाल में राजा परीक्षितकी मुक्ति देखकर ब्रह्माजीको बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने सत्यलोक में तराजू बाँधकर सब साधनों को तोला। अन्य सभी साधन तोलमें हलके पड़ गये। भागवत कथा ही सबसे भारी रही। यह देखकर ऋषियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने निर्णय लिया कि कलियुग में यह भागवत शास्त्र ही पढ़ने-सुनने से तत्काल मोक्ष मिलनेवाला

है। सबसे पहले इसे नारायणने हंस अवतार में ब्रह्माको उपदेश दिया। ब्रह्मासे सनत्कुमार ऋषियोंको प्राप्त हुआ और सनत्कुमार ऋषियों ने देवर्षि नारदको सुनाया। इसकी श्रवणविधि सनकादिक ऋषियोंने की। शौनकजीने पूछा- नारदजीका व सनकादिक ऋषियों का संगम कहाँ हुआ और सनकादिक ऋषियोंने भागवत कथा कैसे सुनाई? सूतजी बोले- एक दिन बद्रीनारायण (विशालापुरी) में यह चारों ऋषि सत्संग के लिये आये। वहाँ उन्होंने नारदजी को देखा तब सनकादिक ऋषि देवर्षि नारदसे बोले, आप उदास क्यों है? आप किसी चिन्तामें लग रहे है। इतनी शीघ्रता से कहाँ जा रहे हैं, आप कहाँसे आ रहे है? आप तो ऐसे लग रहे हैं जैसे किसीका पूरा धन लूट गया हो। अपनी चिन्ता का कारण बताइये।

नारदजीने कहा- भगवन्, मैं चिन्तित हूँ, उदास हूँ, व्यग्र हूँ, लेकिन मेरे लिये नहीं, रोटी, कपड़ा, मकान के लिये नहीं, पद-प्रतिष्ठा के लिये नहीं, स्वर्ग और मोक्ष के लिये भी नहीं। मैं चिन्तित हूँ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य के लिये भक्ति की तुष्टि, पुष्टि और उसकी प्रतिष्ठा कराके जीवों का कल्याण करने के लिये बेचैन हूं। बोले, तब तो ठीक है। तब उन्होंने पूछा- नारद, तुमको भक्ति, ज्ञान, वैराग्य की तुष्टि, पुष्टि और प्रतिष्ठा की चिन्ता कहां से हो गयी।

नारदजी बोले- मैं पृथ्वीलोक में गया था। वहाँ पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, नाशिक, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, रामेश्वर इत्यादि तीर्थोंमे घूमता फिरता रहा परंतु मुझे कहीं भी मनको संतोष देनेवाली शान्ति नहीं मिली। इस समय कलियुग ने सारी पृथ्वीको पीड़ित कर रखा है। जहां भी देखो सत्य, तप, सोच, दया, दान आदि कुछ भी नहीं रहा है। कलियुग के जीव बिता रहे केवल अपना पेट पालने में लगे हैं। वे असत्यभाषी हो गये, आलसी हैं, मन्दबुद्धि, भाग्यहीन और कलहप्रिय हो गये हैं। जो साधुसंत कहे जाते हैं वे पाखण्डी हो गये और धन, स्त्री आदिका परिग्रह करने लगे। घरोंमें स्त्रियाँ स्वच्छन्द हो गयी और घरकी मालकिन बन गई। स्त्रियोंके मायकेवाले सलाहकार बन गये। लोभसे लोग कन्याओं का विक्रय करने लग गये। महात्माओंके आश्रमपर, तीर्थोंपर और नदियोंपर विधर्मियोंका अधिकार हो गया। बहुत-से मंदिर नष्ट कर दिये गये। यहां कोई न योगी है, न ज्ञानी है, न सिद्ध है और न ही कोई सत्कर्म करनेवाला है। सब कलिसे ग्रस्त है। ब्राह्मणलोग पैसा लेकर वेद पढ़ाते है और स्त्रियाँ काम वशीभूत होकर वेश्यावृत्तिसे निर्वाह करने लगी है। इसतरह कलियुग का प्रवास देखता हुआ, पृथ्वीपर विचरता हुआ मैं यमुनाके तटपर पहुँचा जहाँपर भगवान कृष्णने अपनी अनेक लीलायें करी।

देवर्षि नारद जो देवोंसे मिलते हैं ऐसे तीन-चार ही ऋषि हुए हैं नारद उनमें बहुत बढ़िया ऋषि गिने गए हैं उनको वरदान मिला है दक्ष से। वह हर लोक में घूमता ही रहेगा, वो कहीं ठहर नहीं सकता। इसको श्राप बोलो, वरदान बोलो नारद को। वैसे देवर्षि की श्रेणी में नारद है, असित है और देवल है। यह तीन देवर्षि है। एक बार देवर्षि नारद स्वर्गलोक से मर्त्यलोक में घूम रहे थे। घूमते-घूमते वो वृंदावन में पहुँचे। उस कृष्ण की भूमिपर। वहाँ देखते है एक सुन्दरी दो बूढ़े नौजवानों के साथ बैठी हुई है वह नौजवान लेटे हुए हैं और बड़े दु:खी, चिंतित रो रहे हैं। उनकी दशा देखकर लेटे हुए अर्धमूर्छित अवस्था में कभी नींद खुलती है, कभी नहीं। नारदजी ने देखा यह युवती कौन है जो रो रही है? नारद कौन है? नारद एक ऐसे है- सबका कल्याण करते है, तीनों लोकोंमें घुमते है। **नारं ज्ञान ददाति इति नारद:**। नारद ज्ञान देता है, नारद जिसकी कोई प्रार्थना रद्द ही नहीं होती। नारद जो नर से नारायण को मिलाता है वो नारद। ऐसे नारद उस सुन्दर युवती के पास पहुँचे और बोले- माताजी। आप मुझे कुछ दु:खी, चिन्तित, परेशान मालूम पड़ती हैं। क्या बात है? यह दो नवयुग लेटे हुए है, शरीर पूरा जर्जर है और आप बैठी रो रही है, क्या बात है, क्या माजरा क्या है? हालात क्या है?

मैंने वहाँ एक बड़ा आश्चर्य देखा, वहाँ एक युवती खिन्न मनसे बैठी हुई थी। उसके पास दो वृद्ध पुरुष अचेत अवस्थामें बड़े जोर-जोर से सांस ले रहे थे। वह तरुणी स्त्री उनकी सेवा करती हुई उन्हें होश में लानेका प्रयत्न कर रही थी और रो रही थी। बार-बार उन्हें पंखा झल रही थीं। मैं कुतूहुल होकर उनके पास गया और उनसे पूछा कि आप कौन है और क्यों रो रही है।

उस युवती ने जवाब दिया- नारद मैं भक्ति हूँ, मेरा नाम भक्ति है। यह मेरे दो पुत्र ज्ञान और वैराग्य। यह बीमार, जर्जर अवस्था, निद्रा, मूर्धनी, अचेतन्य अवस्था में पड़े हैं। मैं बार-बार जगाती हूँ लेकिन यह उठ नहीं पाते, इनकी शक्ति क्षीण हो गयी है। नारदजी बोले- क्या हुआ, बीमारी क्या है? कुछ दवाई क्यों नहीं देती। उस युवती ने कहा मैंने सब कुछ करके देख लिया है लेकिन ये स्वस्थ ही नहीं हो पा रहे हैं। नारद बोले- माता आप तरुणी हैं और यह बूढ़े हैं। क्या हुआ? नारद हुआ क्या यह कलियुग आ गया जब से भगवान श्रीकृष्ण इस धरा को छोड़ स्वधाम पधार गये हैं तब से मेरा यह हाल हुआ। चेन्नई, मद्रास और दक्षिण भारत में मैं जन्मी हूँ, पश्चिम में आयी कर्नाटक में पली, महाराष्ट्र में भी मेरा पोषण हुआ। भक्ति बोलती है महाराष्ट्र में भी मुझे लोग मानते है, विठोबा, ज्ञान भक्ति। गुजरात में मैं क्षीण हुई लेकिन मेरे ज्ञान और वैराग्य दो पुत्र है इनको कोई नहीं पूछता। न कोई आज ज्ञान की बात सुनना चाहता है न किसीको वैराग्य है। इस कलियुग के जीवोंको पान-सुपारी, मसाला नहीं छूटता। तो यह संसार की आसक्ति, पत्नी, पुत्र धन को वह क्या छोडेंगे तो वैराग्य और ज्ञान को लेना नहीं चाहता। मेरे दोनों पुत्र क्षीण हो गये।

तब उस युवती ने कहा- महात्मा। आप क्षणभर यहाँ ठहरकर मेरी चिन्ता को मिटाइये। आपका दर्शन तो अमोघ है, सभी पापोंको सर्वथा नष्ट करनेवाला है। आपके दर्शन होते ही मुझे मेरे दु:खोंसे शान्ति हो जायगी। मेरे बड़े भाग्य जो आपके दर्शन हुए। नारदजी बोले- हे देवी। तुम कौन हो? ये दोनों पुरुष कौन है? विस्तारसे अपने दु:खका कारण बताओ। तब युवतीने कहा- मेरा नाम भक्ति है, ये ज्ञान और वैराग्य मेरे दो पुत्र है। समयके फेरसे ही ये ऐसे जर्जर और बूढ़े हो गये है। इनकी ऐसी अवस्था से मुझे सुख-शांति नहीं प्राप्त हो रही है। मैं द्रविड़ देशमें उत्पन्न हुई, कर्नाटक में बढ़ी, महाराष्ट्र में कहीं-कहीं सम्मानित हुई किन्तु गुजरात में बुढ़ापे ने मुझे आ घेरा। कलियुग के प्रभाव से पाखंडियोंने मुझे छिन्न-भिन्न कर दिया। बहुत लंबे समय तक यह अवस्था रहनेके कारण मैं अपने पुत्रोंके साथ दुर्बल और निस्तेज हो गयी। अब मैं जबसे यमुना तटपर वृंदावन आयी हूँ तबसे परम सुन्दरी रूपवती, नवयुवती हो गयी हूँ। किन्तु यह मेरे दोनों पुत्र थके-माँदे दु:खी हो रहे है। यह दोनों असमयमें बुढ़े हो गये है। इसी दु:खसे मैं दु:खी हूँ। इनकी इस अवस्था पर मैं शोक करती हूँ। आप परम बुद्धिमान् है मेरा उद्धार कैसे हो बताइये। नारदजी बोले- साध्वि। मैं अपनी ज्ञानदृष्टि से तुम्हारे दु:ख का कारण समझ सकता हूँ। तुम्हें विषाद नहीं करना चाहिये। श्रीहरि तुम्हारा कल्याण करेंगे। इस समय दारुण कलियुग है। इसीसे इस समय सदाचार या योगमार्ग और तप आदि सभी लुप्त हो गये है। लोग मूर्खता और दुष्कर्म में लगकर पाप कर रहे हैं। संसारमें जहाँ देखो वहीं सत्पुरुष दु:खसे दु:खी है और दुष्ट सुखी है। जिस पुरुष का धैर्य बना हुआ है वह बुद्धिमान्, बड़ा ज्ञानी और पंडित है। पृथ्वीपर दिन-प्रतिदिन पापका भार बढ़ रहा है और कहीं भी मङ्गल नहीं है। विषयानुरागके कारण सभी जीवोंसे उपेक्षित होकर तुम जर्जर हो रही हो। वृन्दावनमें वास करने से तुम तरुणी हो गयी हो। यह वृन्दावन धाम धन्य है जहां भक्ति सर्वत्र नृत्य करती है। पर तुम्हारे इन दोनों पुत्रोंका ज्ञान और वैराग्यको कोई नहीं पूछता इसलिये यह जर्जर, विवश सोते हुए जान पड़ रहे है। भक्ति बोली- राजा परीक्षित्ने इस पापी कलियुगको अपने साम्राज्य में क्यों रहने दिया? कलियुग के आनेसे ही सारी वस्तुओंका सार न जाने कहाँ चला गया? भगवान से भी यह अधर्म कैसे देखा जा रहा है? नारदजी बोले- मैं तुम्हें उपाय बताऊंगा जिससे तुम्हारा दु:ख दूर हो जायगा। जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण इस धरा को छोड़कर अपने परमधामको पधारे, उसी दिनसे यहां कलियुगका प्रवेश हो गया। परीक्षित को देखने पर कलियुग दीनके समान उनकी शरणमें आ गया। जो फल तपस्या, योग एवं समाधि से नहीं मिलता कलियुगमें वही फल हरि कीर्तन से भलीभाँति मिल जाता है। इसीलिये उन्होंने कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सुखके लिये अपने साम्राज्य में जगह दी। इसके आनेपर सभी वस्तुओंका सार निकल गया और पृथ्वीके सारे पदार्थ निर्जीव हो गये। ब्राह्मण लोग अन्न-धन के लोभमें घर-घर भागवत

कथा सुनाने लगे, इसलिये भागवत कथा का सार भी नहीं रहा। तीर्थोंमे नाना प्रकारके अत्यन्त पापकर्म करनेवाले, नास्तिक और नारकीय पुरुष रहने लगे इसलिये तीर्थोंका प्रभाव भी जाता रहा। जिसका मन निरन्तर काम, क्रोध, लोभ और तृष्णामें व्याप्त है वे भी तपस्याका ढोंग करने लगे, इसलिये तपमें भी सार निकल गया। ध्यानयोग का भी कोई फल नहीं रहा। पण्डित और विद्वान लोग अपनी पत्नियों के साथ पशुओं की तरह रमण करने लग गये और असभ्य व असंस्कृत संताने पैदा करने लग गये जो मुक्ति साधनमें सर्वथा अकुशल है। इस कलियुग के स्वभाव में किसीका दोष नहीं है।

तपस्यासे, योगसे, समाधिसे, जिस फलकी प्राप्ति नहीं होती, वह फल कलियुगमें केवल भगवन्नामसे मिल जाता है। बस; यही एक गुण कलियुगमें है, अन्यथा यह तो बिलकुल नीरस है। क्योंकि इसमें कुकर्माचरणसे वस्तुका सार चला जाता है। जैसे चावल निकाल लेनेपर भूसी होती है, वैसे ही स्थिति वस्तुओंकी हो जाती है। बड़े-बड़े विद्वानोंने तो भागवत-कथाकी कीमत तय कर दी कि इतना हमें दोगे तो हम तुमको भागवतकी कथा सुना देंगे। इस तरह जब भागवत-कथाका मूल्यांकन हो गया तब कथाने कहा कि ये तो हमारा अपमान करते हैं और फिर कथाका सार निकलकर चला गया। अगर आप कभी हीरा खरीदने लगें तो समझें कि असली हीरा होता तो सस्तेमें थोड़े मिलता? सस्ता हीरा तो वही मिलेगा जो चोरीका होगा या नकली होगा।

नारदजी बोले- माता। इनको फिर भगवान दर्शन कराओ, वेदपाठ कराओ। माता बोली- हे नारद मैंने सब कुछ किया कुछ भी नहीं बचा। सब उद्योग कर लिये।

नारद बोले- हे देवि। चिंता मत करो। तू तो सदा से हरिप्रिया है। जिसपर तेरी दृष्टि हो वह तो धन्य है।

भक्ति बोली- देवर्षि आप धन्य हैं, मेरा बड़ा सौभाग्य है। संयोगसे आपका दर्शन हुआ। आपका दर्शन ही समक्ष सिद्धियोंका परम कारण है। ध्रुवने आपकी कृपासे ही ध्रुवलोक प्राप्त किया। कयाधुपुत्र प्रह्लादने मायापर विजय प्राप्त करी। आप सर्वमंगल और ब्रह्माजीके पुत्र हैं मैं आपको नमस्कार करती हूँ।

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य यह सब अमूर्त भाव है। इनकी मूर्ति नहीं, इनके भावका ही दर्शन होता है। हृदयमें ही भक्ति आती है, ज्ञान आता है, वैराग्य आता है। लौकिक दशामें इन अलौकिक देवताओंका साक्षात्कार किसीको नहीं होता। संसार से मनको हटाकर भगवान की भक्ति की जाती है, उसके प्रति वैराग्य नहीं है। यदि भगवान्से प्रेम हो, ममता हो तो संसारसे समस्त बन्धन मोह इत्यादि से वैराग्य होगा। नारदजीको न तो वहाँ जाग्रतावस्थामें वैराग्य दिखा और न ज्ञान। ये दोनों भक्तिके पुत्र हैं, फल हैं। जब भक्तिभाव हृदयमें आता है तब भजनीय भगवान्का ज्ञान होता है और उसके सिवाय किसी दूसरेसे राग-द्वेष नहीं होता। राग-द्वेषकी शिथिलता, राग-द्वेषके अभावका नाम ही वैराग्य है। हम किसी एकसे तो प्रेम करें और दूसरेसे द्वेष करें तो इसका फल यह होगा कि हम जिससे राग-द्वेष करेंगे वह आकर भगवान्की जगह हमारे हृदयमें बैठ जायेगा। फिर भगवान् नहीं दिखेंगे, हमारे हृदयमें वह शत्रु दिखेगा- जिससे द्वेष है, वह मित्र दिखेगा- जिससे राग है। इस प्रकार भगवान्के स्थानपर संसारकी वस्तुएँ दिखेंगी। इसलिए भक्तिके साथ संसारकी मुहब्बत और संसारकी नफरत, दोनों नहीं चलती। वहाँ तो हृदयमें शुद्ध रूपसे भगवान होने चाहिए।

नारद बोले- देवि। तुम व्यर्थ ही चिंतित हो रही हो। भगवान कृष्ण के चरण कमलोंका चिन्तन करो। उनकी कृपा से तुम्हारा दु:ख दूर हो जायेगा। जिन्होंने कौरवोंके अत्याचारों से द्रौपदी की रक्षा की। फिर तुम तो भक्ति हो सदा उन्हें प्राणोंसे भी प्यारी हो, तुम्हारे स्मरण करने से तो वे भगवान नीचोंके घरोंमें चले जाते है। सत्य, त्रेता और द्वापर- इन तीन युगोंमें ज्ञान और वैराग्य मुक्ति के साधन थे किन्तु कलियुग में तो ब्रह्म का दर्शन करानेवाली भक्ति ही है। भगवान ने तुम्हें यही आज्ञा दी थी कि मेरे भक्तों को प्रसन्न करो और तुमने भगवान की आज्ञा स्वीकार कर ली। तुम्हारी सेवा के लिये मुक्ति को तुम्हें

दासीके रूपमें दिया और ज्ञान, वैराग्य को पुत्र के रूप में। जब तुम मुक्ति, ज्ञान और वैराग्य को लेकर इस पृथ्वीपर आयी तब सतयुग से द्वापर तक बड़े आनन्द से रही। ज्ञान, वैराग्य को तुमने अपना पुत्र मानकर अपने पास रखा, कलियुग में इनकी उपेक्षा होनेपर तुम्हारे यह पुत्र उत्साहहीन और वृद्ध हो गये हैं। कलियुग के समान कोई भी दूसरा युग नहीं है। इस युग में घर-घर में प्रत्येक पुरुषके हृदय में तुम्हारा वास होगा। इस कलियुग में जो जीव तुमसे युक्त होकर भक्ति करेंगे वे पापी होनेपर भी भगवान के अक्षयधाम को प्राप्त होंगे। जिसके हृदय में भक्ति निवास करेगी वे स्वप्नमें भी यमराजको नहीं देखेंगे। जिसके हृदय में भक्ति का संचार है उन्हें प्रेत, पिशाच, राक्षस, या दैत्य आदि स्पर्श भी नहीं कर सकेंगे। भगवान तप, दान, वेदाध्ययन, ज्ञान और कर्म से वशमें नहीं किये जा सकते है पर वे भक्ति के वशीभूत है। प्राणियों का हजारों वर्ष के जन्म के पूर्ण प्रताप से भक्ति में अनुराग होता है। कलियुग में केवल भक्ति ही सार है। जो लोग भक्ति से द्रोह करते हैं वे तीनों लोकमें दु:ख ही दु:ख पाते हैं। पूर्वकाल में दुर्वासा ऋषि को भक्तोंका तिरस्कार करने पर बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। एकमात्र भक्ति ही मुक्ति देने वाली है। नारदजीके इसप्रकार कहने पर भक्ति पुष्ठ हो गयी और वो कहने लगी- आप धन्य है नारदजी। आपकी मुझमें निश्चय भक्ति है मैं सदा आपके हृदय में रहूँगी। आपने मेरा सारा दु:ख दूर कर दिया। परन्तु अभी तक मेरे पुत्रोंमें चेतना नहीं आयी है। आप इन्हें शीघ्र ही सचेत कर दीजिये। भक्ति के यह वचन सुनकर नारदजी को बड़ी करूणा आयी और वे अपने हाथ के स्पर्श से हिला-डूलाकर उन्हें जगाने लगे और उनके कानमें कहा- ओ ज्ञान वैराग्य जल्दी जाग पड़ो। उन्होंने उनको वेदध्वनि गीतापाठ करके जगाया। जैसे-जैसे वे बहुत जोर लगाकर उठे। लेकिन आलस के कारण वह उपासि लेते रहे पर आँखोंसे देख नहीं सके। उनके सभी अंग निर्बल हो गये। वे भूख-प्यास के मारे अत्यन्त दुर्बल होनेके कारण फिरसे सो गये। तब नारदजी सोचने लगे इनकी यह नींद और वृद्धावस्था कैसे दूर हो?

तेरे आश्रय जो रहते हों सच्चिदानन्द को पाते हैं।
तेरे प्रेमसूत्र बंध कर हरि शबरी के घर भी जाते हैं।।
कलि के आर्विभाव काल में मुख तेरा कुछ म्लान हुआ।
प्रबल अधर्म हुआ बल पाकर कलि का धर्म प्रधान हुआ।
किन्तु खेद मत करो रंच भी मैं कुछ यतन विचारूंगा।।
चाहे जैसे हो तेरा भीषण ये कष्ट निवारूंगा।।
घर घर तेरी करूँ प्रतिष्ठा रहे तुम्हें कुछ त्रास नहीं।
जो न करूं ऐसा तो मैं श्रीहरि का सच्चा दास नहीं।।

अपने स्व-स्वरूप का ठीक-ठीक अनुसंधान करना भक्ति है। स्व-स्वरूपानुसंधान का साधन ज्ञान-वैराग्य है। ज्ञान-वैराग्य से आचार-विचार शुद्ध होता है तथा भक्ति का श्रीगणेश होता है।

अब नारद ही सबका कल्याण करनेवाले चिंतित हो गये बोले माता मैं ही कुछ उद्योग करता हूँ। वो कहीं ठहरते नहीं मर्त्यलोक में आये हुए चले जयराम, जयराम कहकर पहुँचे ब्रह्माके लोकमें। उन्होंने ब्रह्माजी से पूछा- ब्रह्माजी बोले- तुम विष्णुसे बात करो, तुम तो वहाँ जा सकते हो हमको तो फिर भी प्रार्थना करनी पड़ता है फिर वो दर्शन देते है। उद्योग करते-करते आकाशवाणी हुई ब्रह्मलोक में हे नारद तू जिस रास्तेपर हो वह सही है। तुझे संत मिलेंगे और जैसा संत कहे वैसा तुम कर लेना। तेरी समस्या का निदान होगा।

किनारे मेरी नैया, लगादे ओ कन्हैया।
निरत जपूँ तेरा नाम आजा नरसी के श्याम, कोई तुझसा ना और खिवैया। किनारे.....

तेरे मित्र सुदामा की भाँति मैं भी तो गमों से चूर बड़ा।
क्या मुँह से कहूँ तुझे सब है पता बलहीन हूँ मैं मगरूर बड़ा।।
सूखे खुशियों के फूल, बिछे राहों में शूल। मेरी दु:ख काँटों पे शैया। किनारे.....
रथ हांका जैसे अर्जुन का वैसे मेरे भी रथवान बनो।
जग का विष अमृत बन जाय प्रभु ऐसे कृपा निधान बनो।।
तेरे होते ओ दयाल क्यों मुसीबतों के जाल। मेरे तन को जलाय पुरवैया। किनारे.....
हो सकता है संकट में घिर के मैं भक्ति से तोबा कर बैठूं।
या ध्रुव भगत के जैसे ही प्रभु मैं भी जिद पर अड़ बैठूं।।
कभी देख मेरी ओर काहे बना है कठोर, तू तो करुणा रस सरसैया। किनारे.....

अपबल तपबल और बाहुबल चौथे है बल दाम। सूर किशोर कृपा ते सब बल (अन्त में) हारे को हरिनाम।

मेरे मन की धारा मोड़े ऐसा कोई सन्त मिले, मेरी प्रीति प्रभु से जोड़े ऐसा कोई सन्त मिले।

अब नारदजी घूम रहे संत कहा मिलेंगे, कब मिलेंगे, मन उद्विग्न है क्योंकि वो काम तो करना है- ज्ञान, वैराग्य और भक्तिका। घूम रहे, घूम रहे चिंतित।

सनत्कुमारों ने कहा- नारदजी उद्योग करो। उनको भागवत कथा सुनाओ। भगवान की चरणों का आश्रय दे दो। भागवत् कथा का अमृत पिलाओ। **पुण्य कभी खरीदा नहीं जाता, कमाया जाता है। वहां तो खुद कमाई करनी पड़ती है।** नारदजी बोले मैंने सबकुछ किया। सनत्कुमार बोले इसका अनुष्ठान कराओ।

नारद बोले- मैंने वेद वेदान्त से और गीता पाठ करके उन्हें बहुत जगाया फिर भी उनमें संज्ञा नहीं आयी। फिर भागवत सुनानेसे वे कैसे जग जायेंगे? सनकादिक बोले- श्रीमद्भागवत कथा वेद और उपनिषद की सारभूत है, उत्तम है। यह भागवत पुराण वेदोंके समान है। महर्षि व्यासने इसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की स्थापना के लिए प्रकाशित किया है। आपने भी तो चतु:श्लोकी भागवत सुनी थी और महर्षि व्यासको उपदेश दिया था जिससे उनकी सारी चिंता दूर हो गयी। आपको उनका शोक और दु:ख का निवारण करने के लिये श्रीमद् भागवत पुराण सुनाना चाहिये।

नारदजी बोले- आपका दर्शन जीव के सम्पूर्ण पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है। मेरे अनेक जन्मोंके पुण्योंका उदय होनेसे सत्संग मिला। मेरा अज्ञानजनित मोह और अन्ध:कार का नाश हुआ विवेक का उदय हुआ। अब मैं भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को पुष्टि करने के लिये शुकशास्त्र भागवत की कथा का ज्ञानयज्ञ करूँगा। यह यज्ञ मुझे कहां करना चाहिये इसके लिये उचित स्थान बताइये और यह किस तरह करनी चाहिये इसकी सुननेकी विधि क्या है?

आप स्मरण करें उस समय को जब वेद-वेदान्त के पारगामी और गीता की रचना करनेवाले व्यास महाराज अज्ञान-सागर में डूबकर खिन्न हो रहे थे तब आप ने ही उन्हें चतु:श्लोकी भागवत का उपदेश देकर उनके मोह को दूर किया था। उसे सुनते ही उनकी सारी चिन्ता दूर हो गई थी फिर आज उस की महत्ता में आप को सन्देह क्यों हो रहा है? आप भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को श्रीमद्भागवत कथा सुनाइये। इससे उनका सारा कष्ट दूर हो जायेगा। नारदजी बोले कहाँ कराऊ? कैसे कराऊ? कैसे किया जायँ मुझे मालूम नहीं। सनत्कुमारजी बोले- आनन्दघाट आश्रम। हरिद्वार वहां पर एक भागवत कथा का अनुष्ठान कराओ।

सनकादिक ऋषि बोले- हरिद्वार के पास आनंद नाम का एक घाट है। वहांपर अनेक ऋषि और देवता, सिद्ध लोग रहते है। वहांपर सघन वन है, वह घाट बड़ा ही सुरम्य है। वहां के रहनेवाले हिंसात्मक पशुओंमें विरोधी जीवोंका भेदभाव नहीं है।

वहीं अपना ज्ञान यज्ञ आरम्भ करें।

उस स्थानके आस-पास रहनेवाले वन्य जन्तुओंमें भी वैर नहीं रहता। किसीके प्रति हृदयमें वैर रखकर कथा सुननेसे भगवान्‌की याद नहीं आती। वह व्यक्ति ही याद आता है जिसके प्रति वैर है। जब दिलमें दुश्मन बैठा रहेगा तो भले ही उसका नाम दुश्मन है, लेकिन वह तुम्हारे मनको दुष्ट बनाता रहेगा। दुश्मन कौन है? वह है या जो तुम्हारे मनको दुष्ट बनानेवाला है- दूषितं मनो येन स दुष्मन:। इसलिए अपने मनमें वैर-विरोध लेकर कथा नहीं सुननी चाहिए।

अब भागवत कथा की अनुष्ठान की तैयारियां हुई आनन्दघाट पर हरिद्वार में। सनत्कुमार वहांपर वक्ता बनकर बैठे हैं। नारदजी श्रोता बनकर बैठे हैं। तीन आसन खाली है। वक्ता, श्रोता और जैसेही यह खबर मिली कि भगवान् के पावन पुण्य चरित्र का चिंतन किया जायगा, कथा होगी, उसके श्रवण के लिये दूर-दूरके ऋषि-मुनि, वशिष्ठ, पराशर, व्यास, मार्कंडेय, अगत्स्य जितने ऋषि-मुनि थे वो भागवत कथा सुननेको वहांपर आये और वहांपर आये प्रह्लादजी मंजिरा बजाते हुए, उद्धवजी- चमचम, ढोल बजाते हुए और बड़े आनन्दपूर्वक भागवत कथा का यज्ञानुष्ठान किया।

इस कथा के करने से अपूर्व रस प्रकट होगा। भक्ति अपने निर्बल और जीर्ण अवस्थाओंमें पड़े हुए ज्ञान और वैराग्य पुत्रोंको साथ लेकर वहाँ आयेगी और तीनों की पुष्टि हो जायेगी। सूतजी शौनकादि ऋषियोंसे बोले- नारद वहांपर सनत्कुमार की आज्ञा मानकर तुरंत गंगा तटपर चले आये। नारद भागवत कथा करा रहे हैं यह सुनकर भूलोक-देवलोक और ब्रह्मलोक उस भागवत् कथा का पान करने के लिये सभी भक्त लोग आने लगे। भृगु, वशिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि,देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, पिप्पलाद, योगेश्वर व्यास और पराशर, छायाशुक, जाजलि और जह्नु आदि सभी प्रधान-प्रधान मुनिगण अपने-अपने पुत्र, शिष्य और स्त्रियोंसमेत बड़े प्रेमसे वहाँ आये। इनके सिवा वेद, वेदान्त (उपनिषद), मन्त्र, तन्त्र, सत्रह पुराण और छहों शास्त्र भी मूर्तिमान होकर वहाँ उपस्थित हुए। गङ्गा आदि नदियाँ, पुष्कर आदि सरोवर, कुरुक्षेत्र आदि समस्त क्षेत्र, सारी दिशाएँ, दण्डक आदि वन, हिमालय आदि पर्वत तथा देव, गन्धर्व और दानव आदि सभी कथा सुनने चले आये।

इसके अतिरिक्त समग्र वेदशास्त्र, तीर्थ, नदियाँ आदि ने मूर्तिमान होकर यथा-यथास्थान ग्रहण कियें। जो लोग अपना बड़प्पन सोचकर नहीं आये थे उन्हें भृगु मुनि विनम्र भाव से ले आये। आप्त पुरुषों का सुवचन है कि श्रीमद्‌भागवत कथादि सत्संग में अपने अभिमान को त्यागकर जाने में ही कल्याण है। भागवत कथा साररूप होने से अत्यन्त मधुर है। इसका निर्माण ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की स्थापना के लिये हुआ है।

इसके बाद नारदजी अपने गुरु सनकादिकोंकी शरणमें गये। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार- ये चारों श्रुति-प्रसिद्ध मुनीश्वर हैं। इन्होंने तत्त्वोपदेश करके नारदजीका शोक दूर किया। सनकादिकोंने भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको जाग्रत करनेके लिए यह उपाय बताया कि श्रीमद्‌भागवतका श्रवण करो। फिर उन्होंने स्वयं ही श्रीमद्‌भागवतका श्रवण कराया और उसके फलस्वरूप भक्ति, ज्ञान, और वैराग्य पुष्ट-तुष्ट हो गये।

इस प्रकार सनकादिक ऋषियों के ज्ञान कराने से नारद जी को श्रीमद्‌भागवत का महत्व स्मरण हुआ। क्योंकि सत्संग में ही मोह भंग करने की शक्ति है।

नारदजी एक ओर तो संसारकी अशान्तिसे, संघर्षसे, वैमनस्यसे, तीर्थादि पवित्र स्थानोंमें भी काम-क्रोधकी अधिकतासे दु:खी थे ही, दूसरी ओर भक्तिकी अपूर्णता, अस्वस्थता तथा अप्रसन्नता देखकर और भी दु:खी हो गये। नारदजीने भक्तिकी प्रार्थनापर उसे सुखी करनेका उपाय सोचा, ध्यान किया। इतनेमें आकाशवाणी हुई कि तुम्हारे मनमें जो दु:ख है, भक्तिको जो क्लेश है, ज्ञान-वैराग्यकी जो मूच्छा है, उसके निवारणका उपाय जब तुम्हें सन्त मिलेंगे तब बतायेंगे।

आकाशवाणी ने कहा- सत्कर्म करो इससे ज्ञान-वैराग्य का उद्धार होगा। सनकादिक ऋषियोंने कहा- ज्ञान-यज्ञ का अभिप्राय श्रीमद् भागवत कथा से है। इसके पठन-पाठन एवं श्रवण से कलियुग से समस्त दोषों का निवारण हो जाता है। नारद ने ऋषियों से कहा- अहो। बड़े भाग्य से आज आपके दर्शन हुये। भगवन्। वह कौन-सा कर्त्तव्य है जिसके द्वारा भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को सुखी कर सकूँगा। सनकादि मुनि बोले- देवर्षे। इस विषय में वेदसम्मत सुखसाध्य साधन श्रीमद्भागवत की कथा है। व्यासजी को चतु:श्लोकी भागवत सुनाकर धन्य किया था। क्या इस प्रयोजन को आप भूल गये? ऐसी बात सुनकर नारदजी सचेत हुए और भगवान् व्यासजी की प्रशंसा करते हुए उन्हें प्रणाम किया- शरणं गतोऽस्मि।

नारदजी भगवान का स्मरण करने लगे उसी समय आकाशवाणी हुई हे मुनि। तुम्हारा यह उद्योग सफल होगा। देवर्षि तुम इसके लिये सत्कर्म करो। तुम्हें संत मिलेंगे वो ही इसका उपाय बतायेंगे। सत्कर्म का अनुष्ठान करने से उनकी नींद और वृद्धावस्था चली जायेंगी। सब जगह भक्ति का प्रसार होगा। नारदजी सोचने लगे- वे संत कहा मिलेंगे और क्या साधन बतायेंगे? नारदजी ज्ञान, वैराग्य को वहीं छोड़कर प्रत्येक तीर्थ में जा-जाकर मार्ग में मिलनेवाले मुनियोंसे पूछने लगे पर कोई भी इस विषय में निश्चित उत्तर नहीं दे पाया। जब कोई-कोई मुनि कहने लगे जब वेदध्वनि वेदांत को गीतापाठ सुनानेपर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य सुनानेपर चेतना नहीं आयी और तो कोई दूसरा उपाय नहीं है। स्वयं नारद भी जिसे नहीं जान सके उसे दूसरे लोग कैसे बता सकते है।

यह सत्कर्म क्या है? वे सन्त कहाँ मिलेंगे जो इस साधन को बतलायेंगे। ऐसा सोच कर वे उन तीनों को वहीं छोड़कर तीर्थो। में घूम-घूम कर सत्कर्म के विषय में महात्माओं से पूछने लगे। किन्तु किसी ने भी नारद के प्रश्न का सन्तोषप्रद उत्तर न दिया। प्रश्न सुनकर कुछ लोग मौन हो जाते थे। कुछ लोग इसे असाध्य बतलाते थे और कोई-कोई वहाँ खिसक ही जाते थे। इस चर्चा को लेकर चारों ओर महान् हा-हाकार मच गया। लोग आपस में कानाफूसी करने लगे कि- जब वेदघोष, वेदान्तध्वनि और गीतापाठ से ज्ञान-वैराग्य का कल्याण नहीं हो सका तो अब और कोई उपाय नहीं है। कुछ लोग यह भी कहते थे कि- जब महर्षि नारद को ही इसका अभिप्राय नहीं विदित है तो फिर दूसरे लोग क्या बतला सकेंगे। नारदजी बद्रिकाश्रम में आये और तप करने का निश्चय किया। उसी समय वहांपर सनकादिक ऋषि मिले।

नारद को ऋषि वाक्यों में भ्रम हो गया। देवर्षि को उन्होंने बताया- कि मैंने वेद मन्त्र, गायत्री मंत्र, गीता-उपनिषद आदि सब कुछ उन्हें सुनाया तो क्या यह सत्कर्म में नहीं आते हैं। अब उनके श्रवण से ज्ञान-वैराग्य में जागृति नहीं आई तो केवल भागवत श्रवण से उनमें चेतना आ जायेगी। सनक ऋषि बोले- भक्त शिरोमणि। आपको त्रेता में भी ऐसा भ्रम हुआ था- आप संदेह शून्य होकर यह समझें कि श्रीमद्भागवत वेदवेदांग, उपनिषद आदि का सारभूत अंश हैं- जैसे आम के वृक्ष से ही आम में रस का संचार होता है किन्तु पत्ते या डाल का भक्षण करने से आम का स्वाद नहीं आता- जब वही रस डालों में होकर आम्रफल में समाहित हो जाता हैं तो वह सुस्वादु बन जाता है। जैसे दुग्ध में मक्खन, गन्ने में शक्कर है किन्तु दूध पीने से या गन्ना खाने में मक्खन या शक्कर का स्वाद नहीं आता। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत समस्त वेदवेदान्तों का साररूप होने के कारण परम मधुर ज्ञान, भक्ति और वैराग्य उत्पन्न करनेवाली एवं समस्त भौतिक तथा आदि-भौतिक तापों को समाप्त करनेवाली मोक्ष प्रदायिनी कथा है। हे मुनिश्रेष्ठ। आपने ही यह चतु:श्लोकी भागवत सरस्वती नदी के तटपर वेद मर्मज्ञ ऋषि व्यास को सुनाई थी- अत: इसके महत्व में आपका संदेह- आश्चर्य की बात है।

सनकादि कुमारों ने कहा- देवर्षे, आप चिन्ता न करें, मन प्रसन्न रक्खें। आप कृष्णदासों के अग्रणी और भक्ति के भास्कर हैं। भक्ति की सर्वत्र स्थापना करना आप जैसे भक्तशिरोमणि के लिये उचित ही है। जिस सत्कर्मरूप साधन को आकाशवाणी ने बतलाया है वह तो अत्यन्त सरल और सुख-साध्य है। वैसे तो संसार में इसके लिये ऋषियों ने बहुत से उपायों को बतलाया है किन्तु वे सभी श्रमसाध्य और स्वल्पफल देनेवाले है। अभी तक तो भगवान की प्राप्ति करानेवाला

मार्ग तो प्राय: गुप्त ही है। उसका उपदेश करनेवाला पुरुष बड़े भाग्य से ही मिलता है। आपको आकाशवाणी ने जिस सत्कर्म का संकेत किया है, हम बतला रहे हैं, आप प्रसन्नचित्त से सावधान होकर सुनें। पण्डितों ने ज्ञानयश को ही सत्कर्म (मुक्तिदायक कर्म) बतलाया है। यह ज्ञानयज्ञ श्रीमद्भागवत का परायण है, जिसका गान शुक आदि महानुभावों ने किया है। श्रीमद्भागवत के पारायण मात्र से ज्ञान-वैराग्य को बल मिलेगा, जिससे उनका कष्ट समाप्त हो जायेगा और भक्ति को परमानन्द की अनुभूति होगी। सिंह के गर्जन से जैसे भेड़िये भाग जाते हैं, वैसे ही भागवत की ध्वनि से कलियुग के सारे दोष नष्ट हो जायेंगे। तब भक्ति ज्ञान और वैराग्य को साथ लेकर प्रत्येक प्राणी के घर और मन में क्रीड़ा करेगी। नारदजी यह सुनकर गद्गद् हो गये और ऋषि सत्संग की महिमा का बखान करने लगे।

ज्ञान-यज्ञ प्रमेय वस्तुके अनुरूप होता है और जो कर्मका फल होता है वह कर्ताके अनुरूप होता है।

नारदजीने उनसे कहा- महात्माओं। इस समय आप बड़े भाग्यसे मिले हैं। आप बड़े योगी, बुद्धिमान और विद्वान है। आप सदा ही पाँच वर्ष की आयु के हैं। फिर भी पूर्वजों के पूर्वज हैं। सदा हरी कीर्तन में लगे रहते हैं। हरि शरणम् का पाठ करते हैं। आप कालके अधीन भी नहीं हैं। आपने पर्वकालमें विष्णुके द्वारपाल जय और विजय को श्राप देकर पृथ्वीपर गिराया। आप मुझपर कृपा करें। आकाशवाणी ने कहा है, तुम्हे संत मिलेंगे और साधन बतायेंगे। उस सत्यम् का अनुष्ठान करो। तो आप मुझे कृपा करके बतायें वह कौनसा साधन है जिससे भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को सुख मिल सके। सनकादिक ऋषियोंने कहा, देवर्षि। आप चिंता ना करें, मन से प्रसन्न हो। आप भक्ति के लिये जो उद्योग कर रहे हैं वह निश्चय ही श्रीकृष्ण के दास का शाश्वत पथ है। भक्त के लिये तो भक्ति की स्थापना करना ही उचित है। संसार में अनेकों मार्ग हैं किन्तु वे सभी कष्टसाध्य हैं और परिणाममें प्राय: स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले हैं। भगवान की प्राप्ति करानेवाला मार्ग तो पुरुष को प्राय: भाग्यसे मिलता है। आकाशवाणीने जिस सत्कर्मका संकेत किया है उसे हम बताते हैं। द्रव्य यज्ञ, तपोयज्ञ और स्वाध्यायरूप, ज्ञानयज्ञ यह सब सत्कर्म मुक्तिदायक, स्वर्गादि प्राप्त करानेवाले कर्म हैं। श्रीमद्भागवत का पारायण ही एक ऐसा मार्ग है जिसका गान शुकादि ऋषियोंने किया है। उसके सुनने से ही भक्ति, ज्ञान, और वैराग्य की पुष्टि होगी उनका कष्ट मिट जायगा और भक्ति को आनन्द प्राप्त होगा। श्रीमद्भागवत की कथा से ही कलियुग के सारे दोष नष्ट होंगे। यह कथा प्रेमरस प्रवाहित करनेवाली, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को साथ में रखकर प्रत्येक व्यक्ति और घरमें आनन्द देगी।

एक दिन चार महा सनत्कुमार, सनंजय, सनातन यह ब्रह्मके मानसपुत्र सदैव पाँच वर्ष के रहनेवाले ये कभी बढ़ते नहीं, ये ब्रह्माके भी ब्रह्मा। ऐसे ही हरिओम शरणम्, हरिओम शरणम् का पाठ करनेवाले। एक पाठ करता है तीन बैठ जाते हैं सुननेको। निरन्तर चौबीस घंटे, तीनसौ पैंसठ दिन बरसों-बरसों तक यह पाठ चलनेवाला। नारदजीने निवेदन किया- भगवन्। मैंने यहां पर कहीं सत्य नहीं देखा। सत्य का ऱ्हास हुआ जा रहा है। सत्य का नाश कभी नहीं होता है। सत्य असीम है, अखंड है, अंतहीन है। कुछ समय तक झूठ अपना काम कर सकता है। पर सदा के लिये असत्य शाश्वत नहीं रह सकता। लोक संग्रह करते हैं। दान कोई नहीं देता कलियुग में। भोग में से भोगवृत्ति होती है और भोग में से संग्रह बन जाती है। ऐसे-ऐसे ज्ञान, वैराग्य, भक्ति इस पृथ्वीलोकसे लुप्त होते जा रहे हैं। कलियुग आ गया है और उन ज्ञान, वैराग्य, भक्तिके जो पुत्रोंको वृद्धावस्था आ गयी। क्षीण होते जा रहे हैं।

ज्ञान यज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्वलम्। भक्तिज्ञान वैरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नत: ।।

सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा। यस्या: श्रवण मात्रेण हरिश्चितं समाश्रयेत ।।

नारदजी यजमान के आसन पर दीक्षित हुए। नारदजी श्रोता बनें और अन्य श्रोताओंने उनकी वंदना की। श्रोताओंमें वैष्णव, विरक्त, संन्यासी और ब्रह्मचारी लोग बैठै। एक ओर ऋषिगण, एक ओर देवता, एक ओर वेद और उपनिषदादि

तथाएक ओर तीर्थ बैठे, और दूसरी ओर स्त्रियाँ बैठीं। तब सनकादि ऋषियोंने महात्मा नारदको श्रीमद्भागवत का शास्त्र सुनाया। सनकादिक मुनियोंने कहा- इसके श्रवणमात्रसे मुक्ति हाथ लगती है। भागवत कथाका सदा सर्वदा सेवन करना चाहिये इसके श्रवणमात्रसे हरि हृदयमें आ विराजते हैं। इस ग्रन्थ में १८ हजार श्लोक १२ स्कंद है। शुकदेव और राजा परीक्षितका संवाद है। यह जीव तभी तक अज्ञानवश इस संसारचक्रमें भटकता है, जबतक इसके कानोंमें यह कथा नहीं पड़ती। बहुत- से शास्त्र और पुराण सुननेसे कोई लाभ नहीं, क्योंकि इससे तो व्यर्थकी शंका-कुशंका बढ़ती है। मुक्तिके लिये तो यही एक शास्त्र है। जिस घरमें नित्य-प्रतिदिन श्रीमद्भागवत की कथा होती है वह घर तीर्थरूप बन जाता है औ जो लोग उसमें रहते हैं, उनके सारे पाप-ताप नष्ट हो जाते है। हजारों अश्वमेध यज्ञ और वाजपेय यज्ञ इस महाभागवत की समानता नहीं कर सकते। फलकी दृष्टि से यह सभी तीर्थोंके फलसे श्रेष्ठ है। भागवत का द्वादश मन्त्र ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। काल, ब्रज्ञह्मण, अग्निहोत्र, गो, द्वादशी तिथि, तुलसी और भगवान पुरुषोत्तम इन सबसे भी श्रेष्ठ है इनमें कोई अन्तर नहीं है। जो श्रीमद् भागवत कथा पाठ करते हैं उनके करोड़ों जन्मों का पाप नष्ट हो जाता है। जो पुरुष अपने मृत्युकाल में भागवत सुन लेता है उसे वैकुण्ठधाम की प्राप्ति होती है और भगवान का सायुज्य प्राप्त होता है। जिसने अपने जीवन काल में श्रीमद् भागवत का थोड़ासा भी रस नहीं लिया उसका जन्म चाण्डाल और गीधके समान व्यर्थ ही है। वह पापात्मा तो जीते हुए भी मरी हुई लाश के समान है।

शौनक ने सूतजी से पूछा- भगवन्। मोक्ष साधनों में श्रीमद्भागवत ही क्यों प्रधान है? सूतजी बोले- शौनक। जब श्रीकृष्ण स्वधाम प्रस्थान करने लगे तभी भक्त उद्धव ने निवेदन किया- हे भगवन्। आपके भक्त कलियुग के कुठार से घायल होकर इस संसार में कैसे रहेंगे? भक्त उद्धव की बात पर विचार करके भक्तवत्सल भगवान् ने भक्तों के हित में अपने समस्त तेज को श्रीमद्भागवत में स्थापित कर दिया।

संसारमें श्रीमद् भागवत कथा की प्राप्ति कठिन है। जब कोई करोड़ों जन्मों का पुण्य उदय होता है तभी इसकी प्राप्ति होती है। इसे सुनने के लिये दिन और वार का कोई नियम नहीं है। इसे तो सब समय सुनना ही अच्छा है। कलियुग में बहुत दिनोंतक चित की वृतियों को वश में रखना किसी पुण्य कार्य के लिये दीक्षित रहना कठिन है, इसलिये भागवत कथा को एक सप्ताह में सुनने की विधि है। माघ महीने में भागवत कथा सुननेकी विशेष विधि है। मन के असंयम, रोगोंकी बहुलता और आयुकी अल्पताके कारण भागवत सप्ताह श्रवणका विधान बनाया गया है। जो फल तप, योग और समाधिसे नहीं मिल सकता वह इस कथाके सुनने से सहज में ही मिल जाता है। यह सब ज्ञानसे बढ़कर है। भागवत कथा में जब श्रीकृष्ण इस धरा को छोड़कर जाने लगे तब उद्धवजीको ज्ञानोपदेश दिया कि ११ वे स्कन्द में उद्धवजीने पूछा- हे भगवन्। आपतो अपने भक्तोंका कार्य करके परमधामको जाना चाहते है पर मेरे मनमें एक शंका है इसका समाधान कीजिये। अब घोर कलिकाल आ गया है। अब अनेक दुष्ट प्रकट हो जायेंगे। उनके संसर्गसे अनेक सत्पुरुष भी उन्हींके प्रकृतिके हो जायँगे और यह पृथ्वी किसकी शरण में जायेगी। इसकी रक्षा करनेवाला कौन होगा? आपका वियोग होनेपर आपके भक्त इस पृथ्वीपर कैसे रहेंगे? आपकी निर्मल उपासना में जो बड़ा कष्ट है वह किसप्रकार होगी? तब कृष्ण भगवान उद्धवसे बोले- मैं अपनी सारी शक्ति भागवत में रखकर उसमें प्रवेश करूँगा। इसलिये वह भगवान की वाङ्गमयी मूर्ति है। इसीको सुनकर कलियुग के सब पाप-ताप नष्ट होंगे। यही प्रधान कलिकाल का धर्म बताया। जो दु:ख, दरिद्रता, दुर्भाग्य और पापोंको निकाल देता है। भगवान की माया से पीछा छुड़ाता है। जब सनकादिक मुनि नारदजीको बता रहे थे उस समय एक बड़ा आश्चर्य हुआ। वहाँ तरुणावस्था को प्राप्त हुए भक्तिके दोनों पुत्र ज्ञान, वैराग्य और विशुद्ध प्रेमरूपा भक्ति बार-बार श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव। आदि भगवन्नामोंका उच्चारण करती हुई नाचते हुए अकस्मात प्रकट हुई।

भक्तिदेवी ने सनत्कुमारोंसे कहा मैं कलियुगमें नष्टप्राय हो गयी थी, अब आपकी कथा अमृत से आपने मुझे पुष्ट कर दिया। अब यह बताइये कि मैं कहाँ रहूँ? तब सनकादिक ऋषि बोले- हे भक्ति। तुम भक्तोंको भगवान का स्वरूप प्रदान करनेवाली, अनन्यप्रेमका सम्पादन करनेवाली, संसार के लोगोंको निर्मूल करनेवाली, अत: तुम भगवान के भक्तोंके हृदय में निवास करो। यह कलियुग के दोष भले ही सारे संसार पर अपना प्रभाव डालें। सनत्कुमार की आज्ञा पाकर भक्ति तुरंत ही भक्तोंके हृदय में जा बैठी। उसी समय भगवान भी भक्तोंके वशमें होकर वहाँ साक्षात दर्शन देनेके लिये आये और आश्वासन दिया कि जहाँ कहीं भी श्रीमद् भागवत कथा का पठन होगा मैं स्वयं वहाँ उपस्थित रहूँगा और मेरे भक्तोंका वहाँपर कल्याण होगा फिर इस कथाको छोड़कर अन्य धर्मोंसे क्या प्रयोजन।

प्रभु के प्रकट होते ही चारों ओर जय-जय की ध्वनि होने लगी। उस सभा में जो भी बैठे थे उन्हें अपने देह, ज्ञेय, आत्माकी कोई शुद्धि नहीं रही। ऐसी तन्मयता देखकर नारदजी बोले- यहाँ जो बड़े मूर्ख, दुष्ट और पशु-पक्षी हैं वे आपकी कथा सुनकर निष्पाप हो गये। नि:सन्देह कलिकाल में चित्तकी शुद्धिके लिये भागवत कथाके समान मर्त्यलोकमें पापका नाश करनेवाला कोई दूसरा पवित्र साधन नहीं है। कृपा करके बतलाइये यह सप्ताह यज्ञ सुननेके द्वारा संसारमें कौन-कौन लोग पवित्र हो जाते हैं। सनकादिक ऋषियोंने कहा- जो लोग सदा तरह-तरह के पाप करते हैं, निरन्तर दुराचारमें और उलटे मार्गोंसे चलते हैं, क्रोधाग्निसे जलते, कुटिल और कामपरायण हैं वे सभी इस कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। जो सत्यसे च्युत, माता-पिता की निंदा करनेवाले, तृष्णासे ग्रसित, आश्रमधर्मसे रहित, दम्भी, दूसरोंको दु:ख देनेवाले वे सब इस कलियुगमें भागवत कथा सुननेसे पवित्र हो जाते हैं। मदिरापान, ब्रह्महत्या, स्वर्ण की चोरी, गुरू स्त्री गमन, विश्वासघात करनेवाले, छल-छद्मपरायण, क्रूर, निर्दयी, ब्राह्मणोंके धनसे पुष्ट होनेवाले, व्यभिचारी कलियुगमें भागवत कथा सुननेसे पवित्र हो जाते हैं। जो दुष्ट, मन, वाणी और शरीरसे पाप करते हैं, दूसरोंके धन से पुष्ट हो जाते हैं, वे भी कलियुग में इसके श्रवण से पवित्र हो जाते हैं।

भागवत कथा का ऐसा अलौकिक प्रभाव देखकर नारद गद्गद् हो कहने लगे कि चित्त शुद्धि एवं आत्मोत्कर्ष का इससे अच्छा कोई साधन नहीं है।

नारदजी पूछते सनत्कुमार से- भागवत सुननेसे क्या लाभ होगा? सनत्कुमार बोले- नारद। इससे त्रितापों का नाश होगा। मनकी शांति, भगवद् प्राप्ति होगी। नारद बोले- महाराज। एक बात बताओ यदि यह सब तो एक साधनभूत आदमी करेगा उसको होगा, पर उसका क्या जो कोई चाण्डाल है, जो कोई पाप योनिमें है, जिसने तरह-तरह के नारकीय काम कर दिये हैं।

ये मानवा: पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगा:।
क्रोधाग्निदग्धा: कुटिलाश्च कामिन: सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते।।

सनत्कुमार बोले- नारद। उनका पहले उद्धार होता है यदि यह भागवत कथा उनको सुनाइ जायँ।

जिस मनुष्य ने जीवन में कभी सत्कर्म नहीं किया, दुराचार परायण जिसकी मनोवृत्तियां बनी रहीं, क्रोध रूपी अग्नि में जो हमेशा जलता रहा, ऐसा दुराचारी पापी व्यक्ति भी किसी के द्वारा सात दिन तक यदि भागवत कथा सुन ले, निश्चित रूप से उसके जीवन में परिवर्तन आता है। जिसका जीवन सत्य से हीन है, जो सत्य संभाषण नहीं करता, जो माता-पिता की सेवा नहीं करता, जो वर्णसंकर पद्धति से उत्पन्न है, वर्णसंकर पद्धति का मतलब है, मां किसी बिरादरी की और पिता किसी दूसरी बिरादरी का, ऐसी परिस्थिति से भी जो व्यक्ति उत्पन्न है, पांच प्रकार के उग्र पापों में जिसकी प्रवृत्ति रही है, वो भी सात दिन तक भागवत सुन ले, तो उसका मन पवित्र हो जाता है। जिसने जीवन पर्यन्त पापकर्म किया और पापकर्म करते-करते जिसकी मृत्यु हो गयी और मरने के बाद यदि भूत, प्रेत, पिशाच भी बन जाये, उसके नाम से भी हम भागवत

करावें, तो उसका जीवन पवित्र हो जाता है और वो मुक्त हो जाता है।

मनुष्य जो सदा विभिन्न प्रकार के पाप किया करते हैं निरन्तर दुराचार में तत्पर हैं- कुमार्गगामी हैं, क्रोधी, कुटिल और कामी हैं वे भी इस कथा के प्रभाव से पवित्र हो जाते हैं तथा प्रभु के चरणारविन्द का आश्रय प्राप्त कर लेते हैं। इसके प्रभाव से पाँच प्रकार के महापातकी-मदिरापान करनेवाले, ब्रह्म हत्या करनेवाले, सुवर्णचोरी करनेवाले, गुरुपत्निगमन करनेवाले तथा विश्वासघात करनेवाले भी पवित्र हो जाते हैं।

भागवत से तो दुराचारी, कुमार्गगामी, क्रोधाग्निदग्ध, कुटिल, कामी सब पवित्र हो जाते हैं। असलमें संस्कारकी आवश्यकता ही विकार दूर करनेके लिए होती है। जिस साधनमें विकार दूर करनेका सामर्थ्य नहीं, वह साधन साधन नहीं। विकारको दूर करके साधन अविकृत वास्तविक स्वरूपमें स्थित कर देता है। भागवतसे झूठे लोग, माता-पिताको दोष लगानेवाले तृष्णाकुल, आश्रमधर्मरहित, दाम्भिक, मत्सरी, हिंसक भी पवित्र हो जाते हैं। पञ्चमहापापी-छलछद्मकारी, क्रूर पिशाचके समान निर्दय, ब्रह्मस्वपुष्ट, व्यभिचारी सबको यह पवित्र करता है। जो जानबूझकर पाप करते हैं वे भी इससे पवित्र हो जाते हैं। परस्वपुष्ट दुराशय भी इससे पवित्र हो जाते हैं। नारद बोले- मैंने आज तक नहीं सुना। सनत्कुमार बोले- इसके बारेमें आख्यान है। मैं तुमको भागवत कथा सुनाता हूँ।

३) गोकर्णोपाख्यान

इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है वो आपको सुनाते है। पूर्वकाल में तुंगभद्रा नदीके किनारे सत्कर्मोंमें तत्पर रहनेवाला, समस्त वेदोंका विशेषज्ञ और श्रौत-स्मार्त कर्मोंमें निपुण एक आत्मदेव ब्राह्मण रहता था। धनी था पर वह भिक्षाजीवी था।

नारदजी एक आख्यान सुनते हैं आत्मदेव गोकर्ण नामका। तुंगभद्रा नदी पुलस्त्य ऋषि का आश्रम। दक्षिण भारत में हरिहर नामका एक क्षेत्र आता है।

तुंगभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम्। यत्र वर्णा: स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्परा: ।।

वहां पुलस्त्य ऋषि का आश्रम है वहीं पर तुंगभद्रा नाम की एक नदी है। उस नदी के तट पर उत्तम नामक एक नगर था। उसमें आत्मदेव नामके एक तेजस्वी ब्राह्मण निवास करते थे। वह ब्राह्मण बड़ा ही वैदिक, निष्ठ ब्राह्मण, सदाचारी, सब व्रतका पालन करनेवाला ब्राह्मण, योगनिष्ठ, धनसम्पन्न। पूजा, पाठ, कर्मकाण्ड करनेवाला।

उनकी पत्नी जिनका नाम है धुंधली देवी। जैसा नाम तथा गुण- धुंधली। अपने आपको दिखानेमें बड़ी पतिव्रता। पति पूजा पाठ के कामपर चले जावें। उसका काम क्या पड़ोसियोंके घरमें जाना, उल्टी-सीधी बहका देना, किसीकी निन्दा, चुगली कर देना, किसको दबा देना, हँसी-मजाक कर लेना, अपना जीवनयापन करना, पैसे में कोई कमी नहीं। लेकिन नि:सन्तान। कोई सन्तान ही नहीं ऐसी धुंधली देवी। एक गाय पाल रखी थी। गाय भी बाँझ। गाय को भी कोई बछड़ा नहीं था। आत्मदेवजी दिन-प्रति-दिन चिंतित। मैं सब तरह के सब कर्मकांड करता हूँ, भगवान की आराधना करता हूँ, सब कुछ करते हुए भी मुझे कोई संतान नहीं। मेरी गायको भी कोई संतान नहीं। पड़ोसी कहने लगे- बोले आत्मदेव। तुम्हारे यहाँ तो कुछ गड़बड़ है। तुम हो तो बड़े अच्छे, ज्ञानी पंडित हो पर तुम्हारे यहां संतान क्यों नहीं होती। अरेरे फिर वो गायको बच्चा क्यों नहीं होता। अब अपना मन काटता है गाँववाले भी कहने लगते हैं कि संतान नहीं। आत्मदेव बोला मेरे पूर्वजन्म में ही कोई खराबी है। क्या हुआ? क्यों नहीं होता? तुलसी का बिरवा घरमें उसको भी पानी रोज देता हूँ पर वो भी हरा नहीं होता। तुलसी भी सूख जाती है। एक दिन इसी विचार में मग्न आत्मदेव ब्राह्मण विचार करते हुए घरसे उस नदीके किनारे

जाकर बैठे सोच रहे थे और रो रहे थे और निश्चय कर लिया अब मैं किसके लिये जी रहा हूँ मैं आत्महत्या करूंगा।

उसकी पत्नी धुन्धली बड़ी सुन्दर थी और जिद्दी स्वभाव की थी, अड़ियल थी। लोगोंकी निन्दा करनेमें उसे सुख मिलता था। क्रूर स्वभाव की थी। कृपण थी और झगड़ालू भी। विलासप्रेमी थी। आत्मदेव ब्राह्मण को दम्पत्ति सुख नहीं था। उनके कोई सन्तान नहीं थी, उम्र भी बहुत बड़ चुकी थी। सन्तान प्राप्ति के लिये तरह-तरहके पुण्यकर्म किये, दीन-दु:खियोंको गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, वस्त्र आदि दान करने लगे फिर भी सन्तान की उत्पत्ति नहीं हुई। इसलिये वह ब्राह्मण बहुत ही शोक और चिंतातुर रहने लगा।

एक दिन दुखी होकर ब्राह्मण देवता अपने घरसे निकलकर वनको चले गये और नदी किनारे आ गये। दोपहरका समय था, बहुत गरम हो रहा था सन्तान के अभाव से दु:खी होकर शरीर से कष्ट पाने लग गया इसलिये थकान आनेके कारण जल पीकर वहीं बैठ गया।

थोड़ेही देरमें एक सन्यासी महात्मा वहांपर आये। वह आत्मदेव ब्राह्मण सन्यासी के पास गया और रोकर कहने लगा- तभी उस सन्यासी ने पूछा- ब्राह्मण देवता किसलिये रो रहे हो। तुम्हें ऐसी क्या चिन्ता है। **कथं रोदिषि विप्र तवं का ते चिन्ता बलीयसी। वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दु:खस्य कारणम।।** तब आत्मदेव ब्राह्मण बोला- मेरे पूर्वजन्मोंके पापोंसे संचित दु:खका किसतरह मैं वर्णन करूँ? मेरे पितर मुझसे जलांजलि नहीं ग्रहण करते। देवता और ब्राह्मण मेरा दिया हुआ अन्न ग्रहण नहीं करते। मेरे लिये पूरा संसार सूना है। मैं सन्तानहीन हूँ। मुझे सारा संसार सूना-सूना दिखाई दे रहा है। अब मैं आत्महत्या करने के लिये यहाँ आया हूँ। सन्तानहीन जीवन धिक्कार है। संतानहीन धनको धिक्कार है और संतानहीन कुलको धिक्कार है। मैंने गायका पालन किया और वह भी हमेशा से बाँझ ही है। जो पेड़ लगाया है उसपर भी फल-फूल नहीं आती। मैं अभागा पुत्रहीन हूँ, इसलिये इस जीवन को रखकर मुझे क्या करना है? ब्राह्मण दु:खसे व्याकुल होकर फूट-फूटकर रोने लगा।

ऐसे में ही एक साधु घूमते-धामते वहांपर आये। अब आपका चेहरा देखा तो मालूम पड़ता है कि यह बहुत दु:खी है। उनको लगा कि यह पंडितजी दु:खी है। उनके पास गये। आत्मदेवने देखा- एक बड़े सुन्दरसे साधु यहाँ आये हुए है। हाथ रखा सिर पर बेटा क्या बात है मुझे लगता है तुम रो रहे हो, कुछ चिंतित हो? आत्मदेव बोले- पंडितजी इस दुनिया में कोई दु:खी है तो वो मैं हूँ। पंडितजी बोले- क्या बात है? आत्मदेव बोले, पंडितजी मैं विद्वान हूँ, कर्मकाण्डीत हूँ, पंडित हूँ, सब तरह के उपाय जितने यज्ञ होने चाहिये यज्ञ-अनुष्ठान सब करकर देख लिये मुझे कोई संतान नहीं। मेरी गाय को कोई बच्चा नहीं है। मैं तुलसी के पौधे को पानी देता हूँ वो बिरवा भी सूख जाता है। मेरे लिये कुछ समझमें नहीं आता है कुछ उपाय कीजिये।

संत बोले- आत्मदेव। पिण्डदान का सही अर्थ न समझ पाने के कारण भ्रम में पड़े हो। इस शरीर को पिण्ड कहते हैं। इसे प्रच्छन्न मन से भगवान को अर्पण करना ही सच्चे अर्थों में पिण्डदान है। यदि आटे के पिण्ड से मुक्ति मिल जाती है तो मोक्ष का मार्ग बतानेवाले ऋषि-मुनि ध्यान-धारणा आदि योगसाधनों का निर्देश क्यों करते? यदि प्राणी अपना कल्याण अपने हाथों नहीं कर सकता तो पुत्रादि का क्या भरोसा? अत: अपना पिण्डदान अपने हाथों से ही करना उत्तम है। अर्थात समय रहते सन्यास ग्रहण करना जीवन के हित में है। सन्यास में सब प्रकार से सुख-ही-सुख है।

तब उस योगनिष्ठ संत के हृदयमें बड़ी करूणा उत्पन्न हुई और उसकी अवस्था देखकर संतने कहा- ब्राह्मण। संतान प्राप्तिका मोह त्याग दो। कर्मकी गति प्रबल है। अपने ज्ञानसे संसार की वासना छोड़ दो। मैंने तुम्हारा प्रारब्ध देख लिया है। सात जन्म तक तुम्हें कोई संतान नहीं होगी। पूर्वकालमें राजा सगर एवं अङ्गको भी सन्तानके कारण दु:ख भोगना पड़ा। मोक्ष में ही सब प्रकारका सुख है। संसारी माया सब झूठी है, जगत् में सिवाय दु:ख के सुख नहीं मिलता व कलियुग में पुत्र

से सबको सुख प्राप्त नहीं होता, बेटामाता पिता की सेवा नहीं करता, अपनी स्त्री व साले व श्वसुर की आज्ञा में रहकर माता-पिता को दु:ख देता है। पुत्र व भाई आदि सब अपने मतलब के साथी होते हैं।

संत का अर्थ है साधना करनेवाला। जो बिगड़े हुए साधे, वह साधु है। क्या करोगे पुत्र लेकर? पुत्र यदि घर में नहीं होता तो हम दो-चार वर्ष रोते हैं। फिर सोचते हैं भाग्य में नहीं है, छोड़ो काहे को रोवें। पुत्र होकर मर जावे, तो भी मन में पीड़ा दो-चार महीने होती है- भाई हुआ तो था, लेकिन मर गया हम करें क्या? लेकिन पुत्र होने के बाद यदि नालायक हो जाय, पुत्र होने के बाद यदि कुपुत्र हो जाय, तो जीवन भर रूलाता है।

साधु महात्मा देखकर बोले- तुम ऐसा करो जो आत्मा जन्म नहीं लेना चाहती है उसको जन्म मत दो, मत चिंतित हो। ऐसे ही ठीक है, चिंता छोड़ो पुत्र तुम्हारे भाग्य में नहीं लिखा, संतान का सुख नहीं है, तुम भूल जाओ। जिस परिस्थितिको भगवान ने तुम्हें दिया है उसे स्वीकार करो।

अब ब्राह्मण जोर-जोरसे रोने लगा और साधु महात्मा का पैर पकड़कर बैठ गया और बोला मैं आपके पैर छोड़ूँगा नहीं जब तक आप मुझे पुत्र प्राप्तिका वरदान न दो तब तक। मुझे किसी भी कीमत पर पुत्र चाहिए। जब तक पुत्रका वरदान न देकर जाओगे तो मैं इस नदीमें डूबकर आत्महत्या करूंगा। साधु देखते है- यह तो कुछ माननेवाला नहीं है। उन्होंने झोली में से एक फल निकाला और बोले यह तुम तुम्हारी पत्नी को खिला देना। इसके बाद गर्भ ठहर जायेगा और आपको पुत्रकी प्राप्ति होगी।

ब्राह्मण बोला- महात्मा। इन सब बातोंसे मुझे क्या। मुझे तो किसी भी प्रकार पुत्र चाहिए। नहीं तो मैं प्राण त्यागने के लिये विवश हूँ। जहां पुत्र, स्त्री आदिका सुख नहीं है तो फिर ऐसा मोक्ष लेकर क्या करूँगा। गृहस्थाश्रम जब पुत्र-पौत्रादिसे भरा पूरा हो तो ही सरस है। महाराज केवल थोथा उपदेश देने से क्या लाभ? ज्ञान से जीवन सरस नहीं होता। गृहस्थ जीवन का आनन्द सन्तान से है। इसीसे पितृऋण, देवऋण, भूमिऋण चुकाया जा सकता है। आप बड़े दयालु हैं, कृपा के सागर हैं, आप मेरा उद्धार कर सकते हैं।

ब्राह्मणका इस प्रकार आग्रह देखकर उस संन्यासी ने कहा- विधाताके लेखको मिटानेका हठ नहीं करना चाहिए इससे बड़ा कष्ट होगा। राजा चित्रकेतुको भी बड़ा कष्ठ उठाना पड़ा। इसलिये तुम्हें पुत्र सुख नहीं मिल सकेगा। अपने हठ को छोड़ो। जब उस सन्यासी ने देखा यह ब्राह्मण किसी प्रकार अपना आग्रह नहीं छोड़ रहा है तब उन्होंने झोली में से एक फल निकालकार उसको दिया और कहा इसे तुम अपनी पत्नी को खिलाना जिससे पुत्र की प्राप्ति होगी। तुम्हारी पत्नी गर्भावस्थामें सत्य, शौच, दया, दान और आहार का नियम रखे। इसप्रकार कहकर सन्यासी वहाँसे चले गये और ब्राह्मण अपने घर लौट आया।

जब तक प्राणी में सच्चा वैराग्य नहीं आता तब तक उसे समुचित उपदेश अनुचित लगता है। जीव अपनी जिजीविषा की पूर्ति के निमित्त बारम्बार आग्रह करता है, दयालु सन्त विवेक रूपी फल देकर उसका मार्ग प्रशस्त कर देते हैं। जिसे जिज्ञासु प्राणी आत्मसात् करता है। लेकिन जिज्ञासा विहीन जीव भगवन्नाम स्मरण और सदाचार का अनुपालन करने में कोसों दूर भागता है। यह कुबुद्धि का ही काम है। कुबुद्धि जीवात्मा के गठबन्धन के अर्थ को सार्थक करना तो चाहती है लेकिन जीवात्मा द्वारा प्राप्त सद्गुरु का कृपाप्रसाद उसे स्वीकार नहीं है।

घर आकर उसने वह फल अपनी पत्नी को दिया और यह कहकर कि इस फलको खा लेना जिससे संतान प्राप्ति होगी और चला गया। उसकी पत्नी धुन्धली बड़ी कुटिल स्वभाव की थी और सहेली को बुलाकर कहने लगी मैं तो बहुत चिंतित हूँ। यह फल खानेसे मुझे गर्भ रह जायेगा और गर्भसे मेरा पेट भर जायेगा। फिर कुछ खाया भी नहीं जायेगा और मैं दुर्बल हो जाऊंगी। घर गोरख धंधा कैसे करूंगी और कहीं आ-जा भी नहीं सकूंगी। प्रसव के समय मुझे बड़ी पीड़ा होगी। ननदरानी घरमें आकर पूरा

मालमत्ता ले जायगी। मुझसे तो सत्य-शौचादि का पालन होना भी कठिन है। बच्चे के लालन-पालन में बड़ा कष्ट होगा। मेरे मन से तो बांझ या विधवा स्त्रियाँ ही सुखी है, इसलिये मैं यह फल नहीं खाऊंगी। धुन्धली ने वह फल नहीं खाया।

सदाचारशून्य धुन्धुली को पुत्रप्राप्ति की मनसा है किन्तु बिना सत्कर्म किये। यह जड़ जीव का स्वभाव है कि बबूल के पेड़ लगाकर उसमें आम के फल की कल्पना करता है। प्राणी पुण्य करने से कतराता है फिर भी पुण्य के फल की इच्छा करता है और पाप करता है, लेकिन पाप के फल को नहीं चाहता है। ईश्वर की गति न्यारी है, कर्मफल से कोई बच नहीं सकता।

आत्मदेव वह फल लेकर आये और पत्नीको धुन्धलीको बुलाया और बोले- एक महात्मा ने मुझे एक फल दिया है इसे तुम खानेसे पुत्र उत्पन्न होगा। धुंधली देख रही है मनमें सोच रही है- पुत्र मुझे नहीं चाहिए, मेरा पेट बड़ जायेंगा, मैं चल कैसे सकूंगी, मैं दौड़ूंगी कैसी, मुझे खाना पकानेमें कैसे आयेगा, अकेले घरमें कैसे रहूंगी, मुझे तो कष्ट होगा, प्रसव वेदना सहना पड़ेगा, मुझे पुत्र चाहिये ही नहीं तो यह फल ले आया। उसको बोल दिया फल दे दो मैं बादमें खाऊंगी। अब उस धुंधलीने फल खाया ही नहीं और चली गयी अपनी सहेली के पास। देख सखी पतिदेवने फल लेकर आये यह फल खानेसे मुझे पुत्र होगा। मुझे तो कोई पुत्र नहीं चाहिए, कौन उसका लालन-पालन करेगा और मैं भरपेट खाना नहीं खा सकूँगी। मेरेसे यह तकलीफ सहन नहीं होगा इससे अच्छा मैं बिना पुत्रके ही सुखी हूँ।

सखी बोली- तेरी बहन को पुत्र होनेवाला है। वो गरीब है। उसके यहां छ: पुत्र है। वो उसका पुत्र जो सन्तान होगा वह पुत्र तू ले लेना। उसको कुछ पैसे की जरूरत है तो पैसे दे देना और तेरे पतिको कह देना मेरे पुत्र हो गया सन्तान पैदा हो गयी और बोलना मेरे स्तनोंमे दूध नहीं है मेरी बहन पुत्रको पालेगी, मेरी बहन दूध पिलायेगी। सखी सहेलियां क्या-क्या सिखा देती है। एक माता का कर्त्तव्य, एक युवती, एक स्त्री का कर्त्तव्य उसके मातृत्व ग्रहण करने में है। माता पुत्र को जन्म दे तो ही उसका जीवन सार्थक होता है। ऐसी स्त्रियाँ मिल गयी जो यह सिखा रही है ठीक है ऐसे कर दे पुत्र दूसरे का ले लेंगे। पुत्र पैदा ही मत कर। उसको घरवालों की बात समझमें नहीं आती लेकिन पडोसवालोंकी, सखी-सहेलियोंकी बात समझमें आयी। दोनोंने मिलकर वह फल अपनी गौको खिलाती है।

धुंधली की बुद्धि तर्क-वितर्क कर रही है। जीव को स्वतंत्रता नहीं मिलनी चाहिए। जब अधिक स्वतंत्रता मिलती है तो वह पाप करता है। इससे आदमी असुर बन जाता है।

आत्मदेव ब्राह्मण ने पूछा- क्या फल खा लिया? धुन्धली बोली- हां खा लिया। पर उस दिन उसकी दूसरी बहन उसके घर आयी थी और यही वृत्तान्त उसने अपनी बहन को सुनाया। उसकी बहन ने कहा- मेरे पेटमें बच्चा है और प्रसव होनेपर वह बालक मैं तुझे दे दूँगी तब तक तू गर्भवती के समान मेरे घरमें गुप्तरूप से सुखसे रह और तू मुझे कुछ धन दे दे तो मेरे पति अपना बालक तुझे दे देंगे और हम दुनियावालोंको कहेंगे कि मेरा बालक छ: महीने का होकर मर गया और मैं नित्यप्रति तेरे घर आकर मेरे बालक का पालन-पोषण करती रहूँगी। यह फल तू हमारे घरके गायको खिला दे। धुन्धली ने वैसा ही किया जैसा उसके बहन ने कहा था। थोड़े दिन के बाद उसके बहन के एक पुत्र हुआ उसके पतिने चुपचाप लाकर उसे धुंधली को दे दिया। धुंधलीने अपने पतिदेव को सूचना दी कि उसके एक बालक की उत्पत्ति हो गयी। आत्मदेव ब्राह्मण ने उसके जात, कर्मसंस्कार कराये और ब्राह्मणोंको दान दिया। अनेक प्रकारके मांगलिक कार्य करवाये। धुंधलीने अपने पतिसे कहा- मेरे इन स्तनोंमें अभी दूध नहीं उतरा है, मेरी बहिनके अभी एक बालक हुआ वह मर गया है, उसे बुलाकर अपने यहां रख लेती हूँ जिससे इस बच्चेका पालन-पोषण हो जाएगा। आत्मदेवने वैसा ही किया। आत्मदेव बोला इसका नाम परमात्मदेव रखेंगे पर धुंधली अड़ गयी और बोली इसका नाम मैं स्वयं रखुंगी और उस बालक का नाम धुन्धुकारी रखा। तीन महीने पश्चात गाय को भी एक बच्चा हुआ जिसका मुख और कान गौके समान थे। सुन्दर, दिव्य,

निर्मल, सुवर्णकी-सी कान्तिवाला था। आत्मदेव ब्राह्मण ने स्वयं ही उसके सब संस्कार किये। उस गौके भी ऐसा दिव्यरूप बालक उत्पन्न हुआ। आत्मदेवने उस बालकके गौके-से कान देखकर उसका नाम गोकर्ण रखा।

कुबुद्धि से सम्बन्ध रखनेवाला जीवात्मा उसके चरित्र को नहीं समझ सकता। अत: प्राणी को मनमौजी नहीं होना चाहिए। भगवान के किसी भी एक रूप पर निष्ठा रखते हुये तत्सम्बन्धी कथा का अनुकरण करते रहना चाहिए, इसीसे अभ्युदय-नि:श्रेयस पद की प्राप्ति सुगम है।

छ:-आठ महीने रूक गये। धुंधली अपनी बहन के पास गयी। मुझे तो यह गर्भ नहीं चाहिये, मैंने यह फल खाया नहीं। तेरा बच्चा मुझे दे दे। मैं पालूंगी और तू उसके बदले में मेरे पतिसे धन ले ले। मेरे पति पूछेंगे तो कह देंगे कि मेरी बहन को बच्चा हुआ वह मर गया और तेरे स्तनों मे दूध है उसको दूध पिलाकर बड़ा कर दे। मैं मेरे पतिको बोलकर आऊंगी मैं तेरे पास ही रहूंगी। बच्चा उसकी बहन का, उसको धन भी चाहिए, बच्चा भी चाहिए। बहन बोली, बच्चा रख लेना मुझे उसकी कोई जरूरत नहीं। समय आया बहन को प्रसव हुआ, बच्चा पैदा हुआ, पतिदेव को कह दिया मेरेको पुत्र हुआ। बहन का बच्चा मर गया धुंधली बोली अब मेरी बहन इस बच्चेको पालेगी मेरे स्तनों मे दूध नहीं है दूध सुख गया। आत्मदेव ने विश्वास कर लिया। पत्निमें अविश्वास तो कोई नहीं करता। अब आत्मदेव घरमें, पत्नी इधर। नामकरण करना है- पतिदेव बोले मेरा नाम आत्मदेव इसका नाम परमात्मदेव। धुंधली बोली बच्चा मैंने पैदा किया है। नहीं बच्चेका नाम धुंधकारी होगा। जैसा माता का आचरण, जैसा काम वैसा पुत्र। बड़े लाड़-प्यार में पला। न पाठशाला भेजा, न पढ़ाया, पंडित का बेटा, स्वच्छन्दता। आत्मदेव के घरमें बच्चा पल रहा है। तीन-चार महिने के बाद गायने भी एक बच्चा दिया। गायको बछड़ा हो गया। आत्मदेव बड़े प्रसन्न हो गये। भाग्य ही खुल गया। महात्मा बोलते थे कि तेरे भाग्य में नहीं लिखा। इसको एक बच्चा पैदा हुआ उसके कान गाय के जैसे और शरीर मनुष्य के जैसा। पंडितजी ने उसका नाम रख दिया गोकर्ण। गाय के कान जैसेवाला गोकर्ण। यहां आत्मदेव का यह पुत्र धुंधकारी और यह गोकर्ण। गोकर्ण को पंडितजी पढ़ाते हैं। धुंधली बेटेको पढ़ाती नहीं, पढ़ने देती नहीं।

धुंधकारी बड़ा होता है। सबसे पहले कंचा, गोटियां खेलने का खेल गलियोंमें होता है वो खेलने लगा। ताश के पत्ते खेलने का, जुआ खेलने लगा, चौसर खेलने लगा। धीरे-धीरे शौक पूरे होते-होते मयखाना आ गया। अब आत्मदेवजी दिन-प्रतिदिन उसकी क्रिया देखकर चिंतित थे कि यह क्या हो रहा है। यह बच्चा बिगडते जा रहा है। आत्मदेव कुछ समझाते बच्चेको तो धुंधली खड़े हो जाती। बच्चा है क्यों डाँट रहे हो, बड़ा होगा सब समझ जायगा। यह मां का लाड़ला। बच्चेको अधोगत में डालने को। न कोई सही शिक्षा। अब धुंधकारी धीरे-धीरे बड़े हुए वेश्यागमन करने लग गये। जैसे ही आत्मदेवजी को मालूम पड़ा आत्मदेवजी बड़े चिंतित हो रोने लग गये। यह कैसे पुत्र हो गया इससे पुत्र न होता तो अच्छा था। महात्मा बोले थे तुम संतान पाकर दु:खी हो जाओगे। तुम्हारे कर्म में, भाग्यमें सन्तान सुख लिखा नहीं। यह पैदा होते ही मर जाता तो अच्छा था। इससे अच्छा उसके बहन का पुत्र न मरा होता यही मरा होता। लेकिन यह तो धुंधली के बहन का पुत्र ही था।

धुन्धुकारी मनमौजी है। ब्राह्मण जाति में उत्पन्न होकर भी ब्राह्मण कर्म से विरक्त होकर वेश्याओं की अदा में सदा फिदा रहता है। अपनी इच्छापूर्ति के निमित्त पैतृक सम्पत्ति को स्वाहा कर डाला। पिता के अंकुश लगाने पर उन्हें मारता, पीटता, घसीटता; इस प्रकार पुत्र के कुचाल से विचलित होकर पण्डित आत्मदेव प्राण उत्सर्ग करने चले।

थोड़े दिनोंमें दोनों बालक जवान हो गये। गोकर्ण तो बड़ा पंडित हुआ किन्तु धुन्धुकारी माँ के लाड़-प्यार से बड़ा ही दुष्ट निकला। **गोकर्ण: पण्डितो ज्ञानी धुन्धकारी महाखल:।** स्नान-शौचादि ब्राह्मणोचित कार्योंमें धुन्धुकारी अनभिज्ञ था, न भक्ष्य-अभक्ष्य को कोई परहेज था। बहुत क्रोधित था। अमंगल बुरी वस्तुओंका संग्रह करता था, मुर्देके हाथसे स्पर्श किया हुआ

अन्न भी खा लेता था। दिन-रात चोरी करना और लोगोंसे द्वेष बढ़ाना उसका स्वभाव ही था। वह आततायी हो गया था। दूसरोंके बालकोंको कुएँ मे फेंक देता था, हिंसा करना उसका नित्य-प्रतिदिन का व्यसन हो गया। सारे दिन अस्त्र-शस्त्र धारण किये रहता, असहाय दीन-दु:खियोंको सताये रहता। चाण्डालोंके कर्म करने में उसका विशेष प्रेम हुआ, हाथमें रस्सी का फंदा लिये कुत्तोंकी टोली तथा शिकार ढूँढ़ते रहता। वेश्याओंके चक्कर में पड़कर उसने अपने पिताकी सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी। शरारत, चोरी करने लगा और माता-पिता को कष्ट देने लगा। दुराचारी था, और वेश्या-गामी भी। संसार का ऐसा कोई दुष्कर्म न था जिसे वह न करता रहा हो। दीन-हीन, अन्धों को सताना, दूसरों का घर, खलिहान फूँकना उसकी आदत थी। उसने बहुत-से कुत्तों को पाल रक्खा था। दूसरों के बच्चों को खेलाने के लिये गोद में उठाकर वह उन्हें कुएँ में डाल देता था। वह महान चाण्डाल निकला। वेश्याओं के संग में पड़कर उसने पिता का सारा धन बर्बाद कर डाला।

माँ-बाप को मार-पीटकर घरके सब बर्तन-भाँड़े बेच आया। घरकी सारी सम्पत्ति स्वाहा हो गयी तो पिता आत्मदेव फूट-फूटकर रोने लगा और बोला- इससे तो निपुत्र रहना ही अच्छा था। कुपुत्र तो बड़ा ही दु:खदायी होता है। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊं। मैं इस विपत्तिसे कैसे पार होऊंगा। मुझे तो अब कैसे भी प्राण छोड़ने पड़ेंगे।

गोकर्णजी एक दिन देख रहे हैं कि पिताजी घरमें बैठे रो रहे है। गोकर्णजी ज्ञानी हो गये, पंडित हो गये, विद्वान हो गये। गायका पुत्र- बड़ा सुशील, निष्ठ। गोकर्णजी पूछते है- पिताश्री। आप रो क्यों रहे है? क्या बात है? आत्मदेव कहते है- पुत्र। मुझे पुत्र मांगकर बड़ी ग्लानि हुई। यह ना होता तो ज्यादा अच्छा होता। मैंने पुत्र किसलिये माँगा? पुत्र क्या है? बोले पु-नामक नरक से त्राण देनेवाला पुत्र। यह पुत्र किसलिये चाहते है कि हमको नरकों से मुक्ति दिलावें, हमारा उच्चलोक तक क्रियाएं करावे, पिण्ड दे, तिल दें, हमें स्वर्ग की प्राप्ति कराये, हमें नरकोंसे छुड़ाये, इसलिये पुत्र की कामनायें रहती है। अगर पुत्र ऐसा हो जायं, वर्णसंकर संताने पैदा करें वह पुत्र ऊँचे चढ़े पुत्रोंको भी नीचे ले आता है। बोले पिताश्री अगर आप इतने दु:खी है तो आप वनको क्यों नहीं चले जाते। छोड़ दीजिये घर का, पुत्र का, पत्नी का मोह। आत्मदेव बोले- गोकर्ण मैंने भी कई बार सोचा कि घरको त्याग दूँ लेकिन मैं सोचता हूँ तुम्हारा, गायका, पत्नीका, पुत्रका कितना भी अनिष्ट हो जाय इनका पालन कैसे होगा। यह घर कैसे चलेगा। मैं जब तक हूँ पूजा-पाठ करके पैसे ले आता हूँ, घर चला लेता हूँ। इसके बाद तो घर चलेगा नहीं। क्योंकि यह धुंधकारी महाखल:। इसके भरोसे तो न पत्नी पलेगी, न गाय पलेगी, न तुलसी का विवाह होगा।

अब पण्डितजी माथा ठोंक रहे हैं। छाती पीट रहे हैं और बैठकर रो रहे हैं। जब कोई आकर पूछता- पण्डितजी, क्यों रो रहे हो तो इधर-उधर ताकते कि धुन्धुकारी कहीं देख तो नहीं रहा हैं। सुन तो नहीं रहा है। क्योंकि धुन्धुकारी कहता था- खबरदार, मेरे नाम से किसी के सामने दु:खड़ा रोये तो-

न तड़पने की इजाजत है न फरियाद की, घुटके मर जाऊं ये मर्जी मेरे सय्याद की।

उसी समय परमज्ञानी पुत्र गोकर्ण अपने पिता के पास आये और वैराग्य का उपदेश करके कहने लगे- पिताश्री आप क्यों चिंतित है? यह संसार तो असार है। अत्यन्त दु:खरूप और मोह में डालनेवाला है। यहां कोई किसी का पुत्र नहीं और यह धन भी किसीका नहीं। सुख न तो इन्द्रको है न चक्रवर्ती राजाको ही, सुख तो केवल विरक्त, एकान्तजीवी मुनिको ही है।

दीन कहे, धनवान सुखी, धनवान कहे सुख राजा को भारी। राजा कहे, महाराजा सुखी, महाराज कहे सुख इन्द्र को भारी। इन्द्र कहे चतुरानन को सुख, ब्रह्मा कहे सुख विष्णु को भारी। तुलसीदास विचार करे, हरि भजन बिना सब जीव दुखारी।

पिताजी। आप विद्वान हैं, विचार करें- यह संसार ही माया का पुत्र है। जब माया ही मिथ्या है तब संसार सत्य कैसे हो सकता है? और इस संसार में लौकिक धर्म का पालन करना, अयोग्य पुत्र-कलत्र-समाज आदि के हित में संलग्न रहना दिव्य जीवन के प्रति और भी मिथ्या है। अत: लौकिक धर्म से मुख मोड़ लेना ही हितकर है। अपना भ्रम हटाइये संसार में न सुख है, न शान्ति।

यह मेरा पुत्र है इस अज्ञानको छोड़ दीजिये। आपको मोह हो गया है। यह शरीर नाशवान है, मोहसे नरककी प्राप्ति ही होगी। इसीलिये आप सबकुछ छोड़कर वैराग्य धारण करकर वनमें वानप्रस्थ आश्रम धारण कीजिये। **बिगड़ी बात बने अब भी यदि बात हमारी मानो तो, वर विराम सन्तोष, ज्ञान और भक्ति, भाव उर आनो तो।**

पंच विषय तजि मन, इन्द्रिन, से प्रभु की सेवा ठानो तो, नारायण घट घट व्यापक अन्तर्यामी को पहचानो तो।

कौन कहता है मुलाकात नहीं होती है, रोज मिलते हैं, मगर बात नहीं होती हैं।।

पिताजी आंख मूंद जाने पर कोई अपना नहीं रहेगा। इसलिये आप भगवद् भक्ति में अपने को लगाइये। इसके लिये क्या करना होगा? (धर्मं भजस्व त्यज लोकधर्मान्) त्याज लोक धर्मान्-लोक धर्म क्या है। शरीर की सेवा करना। धर्म समझकर ही जिसका पाणिग्रहण किया उस पत्नी का निर्वाह करना, पुत्र का लालन-पालन करना धर्म है। शरीर के नाते सगे-संबंधियों का परिवार का धर्म निभाना यह तो बहुत करके देख लिया, अब इसका परित्याग करके (धर्म भजस्व) सच्चे धर्म का सेवन करो, साधु पुरुषों की सेवा करो, आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को निभाकर देखो। जिस प्रभु ने सूर्य का प्रकाश दिया, चन्द्रमा की चांदनी दी। श्वांस लेने के लिये मुफ्त में ऑक्सीजन दिया, पीने के लिये शीतल मधुर जल दिया, इतना सुन्दर शरीर दिया, जगत को देखने के लिये आंखें दी, सुनने के लिये कान दिये, इतना दिया उस जगत पिता के प्रति अभी तक क्या निभाया, उसका कितना उपकार माना? उसके प्रति निभाना परम धर्म है। अत: अब उस परमात्मा के प्रति कृतज्ञ होइये। लोकधर्म से ऊपर उठकर भागवत धर्म का सेवन कीजिये।

गोकर्णने कहा कि संसारमें दु:ख रागके कारण ही है। असलमें जब कोई कहीं फँस जाता है तो उसको न ईश्वर मालूम पड़ता है न गुरु मालूम पड़ता है, न धर्म मालूम पड़ता है, न अपना कर्त्तव्य मालूम पड़ता है। जिसके चित्तमें किसीके प्रति राग नहीं, उसके चित्तमें किसी प्रकारका दु:ख भी नहीं। राग-द्वेषसे हृदय जब कलुषित हो जाता है तब उसमें सम्पूर्ण दु:ख, भय, अन्धकार और मृत्यु आते हैं। पिताजी, लोकधर्मका परित्याग करो, सच्चे धर्मका सेवन करो। साधु पुरुषकी सेवा करो, कामतृष्णाका परित्याग करो। दूसरेके दोष और गुणके चिन्तनमें क्या रखा है? इनको छोड़ दो, छोड़ दो, तुरन्त छोड़ दो। क्योंकि गुणोंका चिन्तन करोगे तो उनसे राग हो जायेगा और दोषोंका चिन्तन करोगे तो उनसे द्वेष हो जायेगा। जिसके हृदय में राग-द्वेष आकर बस जाता है, दुश्मन-दोस्त आकर बस जाते हैं, उसके हृदयमें ईश्वरका दर्शन नहीं होता। इसलिए भगवत्सेवाके, भगवत्कथाके रसका हमेशा पान करो।

पिताजी इस ढांचे में जीवन को ढालिये। आपको पूर्ण शान्ति मिलेगी। अब आप दूसरों के गुण दोष चिन्तन को छोड़कर, कामना और वासनाओं से मुक्त होकर सन्तों की कायिक, वाचिक, मानसिक सेवा करके निरन्तर कथा रस का पान करते रहोगे तो इस जगत की संसार की आपको विस्मृति हो जायेगी, आपके हृदय में भगवान नारायण का वास हो जायेगा। आपको भगवत् साक्षात्कार हो जायेगा। आप आनन्द सागर में निमग्न हो जाओगे। इस प्रकार आत्मदेव शर्मा के हृदय में भक्ति का बीजारोपण कर दिया।

गोकर्ण की बात सुनकर आत्मदेव वनमें जानेके लिये तैयार हो गया और गोकर्ण से पूछा वन में रहकर मुझे क्या करना चाहिये। मैं बड़ा मूर्ख हूं जो घर-गृहस्थी के जंजाल में पड़ा हूँ और अन्धेरे कुएंमें पड़ा रहा हूँ। तुम बड़े ज्ञानी हो मेरा उद्धार करो। गोकर्ण बोला- पिताजी यह शरीर हड्डी, माँस और रक्तका पिण्ड है। स्त्री-पुत्रादिमें अपना मोह छोड़ दे। यह संसार रात-दिन क्षणभंगुर है। इसमें कोई भी स्थायी नहीं है इसमेंसे आसक्ति का त्याग करें। एकमात्र वैराग्य ही ऐसा हो जो भगवान की भक्तरसमें लगा सकता है। भगवतधर्म ही सबसे बड़ा धर्म है। सब प्रकार के लौकिक धर्मोंसे मुख मोड़कर उसीका आश्रय ले। संत साधुजनोंकी सेवा करें, भोगोंकी लालसा न रखें, भगवत सेवा और भगवत कथाओंका रसपान करें। गोकर्ण के उपदेश से

आत्मदेवने घर छोड़ दिया और साठ वर्ष की आयुमें वन चले गये। वहाँ एकान्त निष्ठा से श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का पाठ करते-करते श्री वैकुण्ठ धाम को पधारे और वहांपर भगवान की सेवा कर परमगति प्राप्त की।

गोकर्ण ने देखा पिताजी के जाने पर भी इन दोनों माँ-बेटे की आदत में कोई सुधार नहीं है, इसलिये अब यहाँ रहने से कोई लाभ नहीं, यह विचार कर वे तीर्थयात्रा को चले गये।

सूतजी बोले- शौनकजी। आत्मदेव के वन चले जानेपर एक दीन धुंधुकारीने अपनी माताको बहुत पीटा और कहां मुझे धन दे नहीं तो अभी तुझे जलती हुई लकड़ीसे मार डालूंगा। धुंधुकारीके उपद्रवोंसे दु:खी होकर रात्रिके समय कुएँमे कूदकर धुंधली ने आत्महत्या कर ली।

धीरे-धीरे वहां तपस्या में योगाग्नि में जाकर उन्होंने अपने शरीर को भस्म कर दिया। अब देखिये पिताश्री चले गये। धुंधकारी के तमाशे क्या-क्या करता है वह रोज रातको पीकर, वेश्यागमन करके आता है। मां को मारता है। धुंधकारी रोज पैसे मांगता है। माँ बोलती है मेरे पास अब पैसे खत्म हो गये। वो अपनी माँ का गला पकड़ता है। घरमें जो कुछ था धन, जेवरात, बर्तन सब कुछ बेचकर वेश्याओंके पास दे दिया। एक दिन वह वेश्याओंको घरमें लाकर रख दिया। बोला इनके साथ ब्याह करूंगा यह घरमें ही रहेगी। माताश्री बोली- यह ब्राह्मण का घर है। धुंधकारी बोला- यह क्या ब्राह्मण का घर है। मेरे लिये पिताश्री ने क्या कर दिया। इस तरह से तिरस्कार, अनादर पा-पाकर माता दु:खी हो गयी और एक दिन कुएंमें जाकर कूद पड़ी। अब तो वो बहुत ही स्वच्छंद हो गया। रोज दारू पीनेका, मयखाने में रहनेका, निन्ददिय कर्म करनेका, अघोरी कर्म करनेका, यह कोई पण्डित का बेटा नहीं। रोज डाका डालने का, लूटकर लानेका और वेश्याओंको प्रसन्न करने के लिये पापकर्म करनेका। एक दिन पांचों वेश्याओंने मिलकर यह सोचा- यह तो महाचोर डाकू है, रोज लूटपाट करकर लाता है, राजाका भी धन लूटकर ले आया। एक-न-एक दिन पकड़ा जायगा। यह तो मरेगा तो मरेगा साथ में हम भी जायेंगे। हम धन तो भोग नहीं पायेंगे और चोरी के इल्जाम में पकड़े जायंगे, बेमौत मारे जायेंगे। यह धन भी जायगा। पाँचों ने मिलकर रातमें एक योजना बनाई कि इसको मार ही डालेंगे। रातको पाँचों ने मिलकर रस्सी का फंदा लिया और उसके गलेमें डाल दिया और मार दिया और पाँचों धन लेकर भाग गई। न रहेगा बाज, न रहेगी बांसुरी। धुंधकारी स्वर्ग सिधार गये।

उस समय योगनिष्ठ गोकर्ण तीर्थयात्रा पर गये हुए थे। गोकर्णजी समभाव थे, उनके लिये न कोई मित्र था न शत्रु। उन्हें इस घटनाओंसे कोई सुख-दु:ख भी नहीं होता था। धुन्धुकारी पाँच-पाँच वेश्याओंके साथ उस घरमें रहने लगा। भोग विलास की सामग्री जुटाने की चिन्तामें उसकी बुद्धि नष्ट हुई और वो अनेक प्रकार के क्रूर कर्म करने लगा। चोरी करने लगा, डाका डालने लगा। एक दिन वह वेश्याओंने उसे बहुत से गहने और धन माँगा तो वह कामसे अन्धा होकर मौत की परवा न कर धन जुटाने के लिये घरसे निकल पड़ा चोरी और डांका डालकर घर लौट आया। तथा: सुन्दर वस्त्र और आभूषण लाकर उन वेश्याओंको दिये। उन वेश्याओंने विचार किया कि यह तो चोर है और नित्य चोरी करेगा, कोई दिन तो राजा इसे अवश्य पकड़कर निश्चय ही इसे प्राणदंड देगा। एक दिन इसे तो मरना ही है हम भी इसके साथ पकड़ी जायेगी। क्यों न इसको मार डालें। इसके मारकर हम इसका धन और माल लेकर कही अन्यत्र चली जायेंगी। ऐसी मन्त्रणा कर उन्होंने धुंधुकारी को रस्सियोंसे कस दिया और गलेमे फाँसी लगाकर उसे मारने का प्रयत्न किया। उसके मुखपर जलती हुई आग डाली, अग्निकी लपटोंसे झुलसकर वह छटपटाकर मर गया। तब उन वेश्याओंने उसके शरीरको वहीं एक गड्ढेमें डाल दिया। यह अक्षरश: सत्य है कि वेश्या किसी की मित्र नहीं होती, पहले द्रव्य लेकर पीछे प्राण लेती है। स्त्रियाँ प्राय: बड़ी दु:साहसी होती है। बुद्धिमान पुरुष को दुष्टा स्त्रियोंका कभी विश्वास नही करना चाहिये। जो मूर्ख इनका विश्वास करता है, उसे दु:खी होना पड़ता है। स्त्रियोंकी वाणी कामियोंके हृदयमें अमृतके समान होती है। उनका हृदय

छूरेकी धारके समान तीक्ष्ण होता है। स्त्रियोंका धनके सिवाय कौन प्यारा है? जो व्यक्ति दूसरे को दु:ख देकर सुखी बनने का मनोरथ करता है तो उसका सुख ही उसके दु:ख का कारण बनता है।

सूतजी कहते हैं- शौनक। घर से पण्डित आत्मदेव के चले जाने पर धुन्धुकारी जब चाहता तभी अपनी माता को मारता, पीटता, गला दबाकर पूछता- बता धन कहाँ रखा है? इस तरह पुत्र से दु:खी होकर धुन्धुली कुएँ में कूदकर दु:ख से निवृत्त हो गयी। जिन माताओं में कुशल व्यवहार नहीं होता है और पुत्र को संस्कार में नहीं ढालती हैं उन्हें कभी सुख नहीं मिल सकता। वैभव सम्पन्न धुन्धुली को कभी सुख नहीं मिला।

वे वेश्याएं धन और सम्पत्ति लेकर वहाँसे चली गयी और धुंधुकारी अपने कुकर्मों के कारण एक भयंकर प्रेत हो गया। उसकी शान्ति कही नहीं हुई। वह बवंडर के रूप में दसों दिशाओंमें भटकता रहा। शीत और गर्मीसे संतप्त भूख-प्याससे व्याकुल होनेके कारण दैव, दैव चिल्लाते रहता था। परन्तु उसे कहीं भी कोई आश्रय नहीं मिला।

धुन्धुकारी ऐसे शुभ कर्मों से हीन था तथा दुष्कर्मों में प्रवीण था। शव (अपवित्र) हाथों से भोजन करता था। संसार में आकर सच्चे अर्थों में धर्म-कर्म न किया, वैराग्य का आलम्बन नहीं किया, भगवन्नाम का स्मरण नहीं किया, तीर्थों का सेवन नहीं किया- ऐसा प्राणी जीवित ही मुर्दा है। धुन्धुकारी इसी श्रेणी में रहा। सन्ध्या-वन्दन आदि नित्यकर्मों से हीन प्राणी रस, रूप, शब्द, स्पर्श और गन्ध रूपी पाँच वेश्याओं के वश में सहज हो जाता है। यही विषय-विकार धुन्धुकारी की दुर्दशा का कारण बना। अपने दुष्कर्मों के परिणामस्वरूप धुन्धुकारी मौत के बाद प्रेत बना; उसे रात में नींद नहीं, दिन को चैन नहीं तथा रात-दिन बेचैन दशों दिशाओं में घूमा करता था।

गोकर्णने भी लोगोंसे धुन्धुकारी की मृत्यु का समाचार सुना। उन्होंने उसके लिये गया श्राद्ध किया कि धुंधुकारी की मुक्ति हो पर धुंधुकारी के पाप भारी थे इसलिये उसकी मुक्ति नहीं हुई।

एक दिन गोकर्णजी रातके समय अपने नगरमें आये। वे घरके आंगन में सोनेकी तैयारी करने लगे। वहां अपने भाई धुन्धुकारी को प्रेत बना हुआ सोया हुआ देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। आधी रातके समय प्रेत धुंधुकारीने अपना विकट रूप दिखाया। वह कभी भैंसा, कभी भेड़ा, कभी हाथी, कभी इन्द्र और कभी अग्निका रूप धारण कर लेता। अंत में वह प्रेत के रूप में आकर प्रकट हुआ। ये विपरीत अवस्थामें देखकर गोकर्णने निश्चय किया यह कोई दुर्गतिको प्राप्त हुआ जीव है और मुक्ति नहीं होनेसे अन्य योनियोंमें भटक रहा है। गोकर्णने पूछा- तू कौन है? रात्रिकेसमय ऐसे भयानक रूप क्यों प्रकट कर रहा है? तू कोई प्रेत, पिशाच या कोई राक्षस है? तेरी यह दशा क्यों हुई? तब वह प्रेत धुंधुकारी जोर-जोरसे रोने लगा।

अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धकारीति नामत:। स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया।।

गोकर्णने अंजलिमें जल लेकर उसे अभिमंत्रित कर उसपर छिड़का। उसके पापोंका कुछ शमन हुआ और वह बोला- मैं तुम्हारा भाई धुंधुकारी हूँ। मैंने अपने दोषोंके कारण अपना ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया। मेरे पापोंकी और कुकर्मोंकी गिनती नहीं की जा सकती। मैंने लोगोंकी बड़ी हिंसा की। अन्तमें कुछ कुलटा वेश्याओंने मुझे तड़पा-तड़पाकर मार डाला। इसीसे अब मैं प्रेत-योनिमें प्राप्त होकर इस दुर्दशा में पड़ा हूँ। आप तो दयाके सागर है किसी प्रकार मुझे इस योनिसे मुक्त कराओ। उसकी बात सुनकर गोकर्ण बोले- मैंने तुम्हारे लिये विधिपूर्वक गया में पिण्डदान किया फिर भी तुम उस प्रेतयोनिसे कैसे मुक्त नहीं हुए। मुझे तो और कोई दूसरा उपाय दिख नहीं रहा। तब धुंधुकारी प्रेतने कहा- मेरे पाप इतने है कि मेरी मुक्ति सैंकड़ो बार गयाश्राद्ध कराने से नहीं होती। तुम उसका कोई उपाय सोचकर जो करना है वह प्रयत्न करो।

मेरी मुक्ति असंभव है। गोकर्ण बोले- अभी रात को तुम अपने स्थानपर चले जाओ कल प्रात: कोई उपाय सोचेंगे।

गोकर्णजी तीर्थयात्रा गये हुए थे। लौटकर आये रातमें तो बोले मेरे पिताश्री कहा है? आत्मदेव ब्राह्मण की खबर सुन लिया था। धुंधकारी मारा गया। उसके अपने कर्मोंसे पाँच-पाँच वेश्याएं थी। उन्होंने मार डाला और वह मर गया। गोकर्णजी ने उसका श्राद्ध कर्म करा दिये। रातको घर आये गोकर्णजी सो गये। जैसे ही शौचक्रिया सब खत्म करके बिस्तर पर सोने लगे तभी डरावनी आवाजें, कभी भेड़ें की, कभी मेंढ़े की, कभी हाथी, कभी भूत-प्रेत और पिशाच दिख रहा है। पंडित गोकर्णजी उठे देखे तो कभी कोई रूप जैसे ही उसमें झाँके अन्तर्ध्यान, विचलित। एक बार मेढ़ा का रूप, एक बार हाथी का रूप दिखा। पंडितजीने गंगाजल लिया और उसपर छड़के मारें। है कौन तू मुझे इतनी देरसे परेशान कर रहा है। धुंधकारी प्रेत बनकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला- भैया। मैं तो सबसे बड़ा नीच हूँ इतना नीच हूँ कि मैं क्या बताऊं। मेरे साथ तो यह हुआ और मैं अभी मुक्ति नहीं पा रहा हूँ। भूत, प्रेत, पिशाच बना रहता हूँ। मैं अतृप्त आत्मा हूँ। दिनभर मेरी आत्मा भटकते रहती है। मैं बड़ा तकलीफ पा रहा हूँ मेरे कल्याण का कोई उपाय बताइये। मेरे लिये कुछ साधन करिये। गोकर्ण कहते है- मैंने तुम्हारे लिये गया श्राद्ध कराया था फिर भी तुम्हारी मुक्ति नहीं हुई। बोले भैया मेरे इतने निकृष्ट कर्म है तुम करोड़ों बार गया श्राद्ध कराओ फिर भी मेरी मुक्ति नहीं होगी। गोकर्ण बोले- फिर धुंधकारी तुम्हारे लिये क्या करूं। अभी तुम जाओ मैं सुबह विचारता हूँ, पंडित लोगोंसे पूछता हूँ, ज्ञानियोंसे पूछता हूँ कि क्या करूं। दूसरे दिन प्रात: हुई। धुंधकारी चला गया।

दूसरे दिन प्रात: गोकर्णने रातमें जो कुछ हुआ वह सब गाँववालों को सुनाया। उनमें से जो लोग विद्वान, ज्ञानी और वेदज्ञ थे सब शास्त्रोंकी सम्मति देखी तो भी उन्हें उसकी मुक्ति का उपाय नहीं मिला। सभीने यह निश्चय किया सूर्यनारायण जो आज्ञा करें, वही करो। गोकर्णने अपने तपोबलसे सूर्यकी गति रोक दी और उनकी स्तुति की- मैं आपको नमस्कार करता हूँ आप मुझे कृपा करके धुंधुकारी की मुक्ति का साधन बताइये। आपको बारम्बार प्रणाम है। देव। प्रेत योनि में पड़े मेरे भ्राता के निस्तार का कोई उपाय बतावें।

सूर्यदेव ने कहा- एकमात्र श्रीमद्भागवत की कथा से ही मुक्ति सम्भव है। इसलिये तुम उसका सप्ताह पारायण करो। श्राद्ध कर्म से जिसे मुक्ति नहीं मिलती उसे श्रीमद्भागवत कथा मुक्त करता है। अत: श्रीमद्भागवत की विधि-विधान से सप्ताह कथा करो।

गोकर्णजी उठे ब्रह्मचारी, पंडित, ज्ञानी आये। धुंधकारी का ऐसा हो गया है अब मुझे बताइये क्या करूं। कोई बोले गंगा श्राद्ध कराओ। गोकर्ण बोले यह सब मैंने करके देखा है। इतने में सूर्य से एक वाणी आयी और सूर्य बोले- ऐसे पापीको मुक्ति पाने के लिये भागवत कथा का अनुष्ठान करना चाहिए। उसी समय गोकर्णजीने भागवत कथा का अनुष्ठान करवाया। गोकर्णजी भागवत के वक्ता बनते है। पंडित लोग आते है भागवत कथा का व्याख्यान होता है। पहिले दिन जैसे ही भागवत कथा हुई बांस की एक गाँठ टूटी ऐसे करते-करते सात दिन तक सातों गाँठे टूट गई और धुंधकारी एक पार्षद के रूप में प्रकट हो गया। धुंधकारी गोकर्णजी को बोला- भगवान आज मैं पार्षद बन गया। जो इतना चांडाल, जिसके आचरण अच्छे नहीं, जिसके कर्म अच्छे नहीं वो भगवान का पार्षद बन गया। भैया यह आपकी वजह से हुआ जो आपने भागवत पाठ कराया। सनत्कुमार कहते है नारदजी ऐसे चांडाल का आख्यान है। जिसके कर्म अच्छे नहीं है, जो पापकर्मोंमे लिप्त है ऐसे आदमी की मुक्ति हुई। भागवत कथा जो कोई सुनेगा उसकी तो मुक्ति अवश्य ही है। उसके सब तापोंकी, पापोंकी और उसके मनवांछित फल पाने से भागवत की मुक्ति है।

सूर्यका वह वचन सबने सुना और गोकर्णने तदनुसार निश्चय करके कथा सुनानेके लिये तैयार हुए। देश और गाँवके अनेकों लोग कथा सुननेके लिये आये। लूले, अंधे, बूढ़े और मन्दबुद्धि पुरुष भी अपने पापोंकी निवृत्तिके लिये वहाँ पहुँचे। गोकर्णजी व्यासगद्दीपर आसीन हुए वहांपर एक सात गाँठवाला था उसपर जाकर वह प्रेत धुंधकारी भी कथा सुननेके लिये बैठ गया। वासना ही बाँस का स्वरूप हैं जिसमें जीव विराजमान है। जीव को इस विषयविकार से मुक्तसंग होने का प्रयत्न करना है।

गोकर्णने एक ब्राह्मण के मुख की स्वधा बनाया और कथा आरम्भ की। पहले ही दिन सायंकाल को जब कथा को विश्राम दिया तब सबके देखते-देखते उस बांस की एक गाँठ तड़-तड़ करते टूट गई। इसीप्रकार दूसरे दिन सायंकाल को भी हुआ और सात दिनोंमें सात गाँठ तोड़कर धुंधुकारी प्रेतयोनि से मुक्त होकर सबके सामने प्रकट हुआ। उसने तुरंत गोकर्णको प्रणाम करके कहा- भ्राताश्री। आपने कृपा करके मुझे प्रेतयोनिकी यातनाओंसे मुक्त किया। प्रेतप्रजाका नाश करनेवाली यह भागवत कथा धन्य है। कृष्णके धामकी प्राप्ति करानेवाला इसका सप्ताह पारायण है। इसके श्रवण से सब पाप थर्रा उठते हैं। यह सप्ताह यज्ञ श्रवण, मन, वचन और कर्मद्वारा किये हुए सभी छोटे-बड़े पापोंका नाश कर देता है। यह शरीर तो वृद्धावस्था और शोकके कारण परिणाममें दु:खमय ही है, रोगोंका घर है। यह सदा कोई-न-कोई कामना से पीड़ित रहता है। इसको रखना तो भार ही है। इसके रोम-रोममें दोष भरे हुए है और नष्ट होनेमें एक क्षण भी नहीं लगता। अन्तमें यह गाड़ दिया जाता है या पशु-पशुओं को खिला दिया जाता है, या जला दिया जाता है। जो अन्न प्रात:काल पकाया जाता है वह सायंकाल तक बिगड़ जाता है; फिर उसीके रससे पुष्ट हुए शरीरकी नित्यता कैसी। सब प्रकारके दोषोंकी निवृत्ति के लिये एकमात्र यही साधन है। इसके श्रवण से चित्त और हृदयकी गाँठें खुल जाती है। समस्त संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और सारे कर्मफल का नाश करता है और इससे मनुष्यकी मुक्ति निश्चित है। ये सात गांठे काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या, मद, लोभ और अज्ञान की हैं। सब गांठ टूठ जाने पर मुक्ति मिलती है।

कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकार के पाप भागवत-सप्ताह श्रवण से, उसी प्रकार भस्म हो जाते हैं, जैसे आग से शुष्क काष्ठ जलकर राख बन जाते हैं।

उसी समय धुंधुकारी को लेने के लिये भगवानके पार्षदोंसहित एक विमान उतरा, धुंधुकारी उस विमान पर चढ़ गया। तब गोकर्णने भगवान के पार्षदोंसे पूछा- हमारे यहां तो अनेकों श्रोतागण है उनके लिये विमान क्यों नहीं आया। यहांपर जितने लोग थे सभीने समानरूपसे कथा सुनी है, फिर फलमें इस प्रकारका भेद क्यों हुआ?

भगवानके पार्षदोंने कहा- गोकर्णजी। यह फलभेद का कारण इनके श्रवण का भेद है। श्रवण तो सबने किया किन्तु मनन सबका एकसमान नहीं था। इस प्रेत ने सात दिन तक निराहार रहकर कथाका श्रवण किया। स्थिरचित्तसे निदिध्यासन किया। अर्जित ज्ञान पर दृढ़ रहा। किसी तरह की शंका नहीं रही और चित्तको इधर-उधर नहीं भटकने दिया। वैष्णवहीन देश, अपात्रको कराया हुआ श्राद्ध, अश्रोत्रियको दिया हुआ दान एवं आचारहीन कुल- इन सबका नाश हो जाता है।

बिना दृढ़ हुआ ज्ञान, प्रमाद से सुनी कथा, संदिग्ध मन्त्र, व्यग्रचित्त से किया गया जप निरर्थक है। सबको अहसास हुआ कि हमने एकान्त निष्ठा से कथा नहीं सुनी। श्रीमद्भागवत कथा पूर्ण मनोयोग से सुनने पर जीवन का कल्याण निश्चित है। श्राद्ध में यदि श्रीमद्भागवत का पाठ हो तो पितर तृप्त हो जाते हैं।

भक्तवत्सल भगवान कृष्ण कथाश्रवण से प्रसन्न होकर गोकर्ण को अपने साथ लेकर गोलोक धाममें चले गये। जिस लोकमें सूर्य, चन्द्रमा और सिद्धोंकी कभी गति नहीं हो सकती, वे सब श्रीमद्भागवत श्रवण करनेसे भगवान के लोकको चले गये। यह कथा बड़ी पवित्र है। एकबार के श्रवणसे ही समस्त पाप-राशिको भस्म कर देती है। इसके श्रवण से

पितृगणको बड़ी तृप्ति होती है और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

धुंधकारी की मृत्यु हुई उसको पुण्यगति प्राप्त हुई। नारदजीने सनकादिक ऋषियोंसे पूछा- भगवन्। गोकर्ण ने जब यह कथा सुनायी और धुंधकारी की परमगति हुई। धुंधकारी एक पार्षद बन गया। कथा तो वहांपर बैठे हुए सभी लोगोंने सुनी फिर अकेले धुंधकारी के लिये ही भगवान का विमान क्यों आया? और बाकी लोगोंको भगवान की गति क्यों नहीं प्राप्त हुई। गोकर्णजी तो कथा सुना चुके उसके पश्चात् सनत्कुमारजी कहते है- नारद वहां सुननेवालों में और धुंधकारी ने जो कथा सुनी उसमें कथा श्रवण का अन्तर है। धुंधकारी ने जो कथा सुनी वह तन्मय होकर, भगवान के चरणोंमें आश्रित रहकर कथा सुनी। बाकी लोगोंने जो कथा सुनी सिर्फ कथा को मनोरंजन के लिये, कथा को कथा सुननेके लिये, भगवान में अनन्य भक्ति न होनेके कारण उस कथा सुननेका फल अलग-अलग तरीकोंसे प्राप्त हुआ। फल तो सभी को मिला लेकिन अलग-अलग तरीकोंसे मिला।

जहाँ मन्त्रमें सन्देह हो मन्त्र मारा जाता है। जपमें चित्त व्यग्र हो तो जप मारा जाता है। जहाँ भगवान के भक्त न मिलें, वह स्थान मारा जाता है। जिस श्राद्धमें शास्त्र न मिले, वह श्राद्ध मारा जाता है; अश्रोत्रियको दिया हुआ दान मारा जाता है। जिस वंशमें अनाचार आ गया वह वंशमारा जाता है। इसलिए अपने गुरुके वचनमें विश्वास रखना चाहिए, अपनेमें दैन्यकी भावना लानी चाहिए, मनके दोषोंपर विजय प्राप्त करना चाहिए और कथामें मतिको निश्चय करना चाहिए। ये सब जब किये जाते हैं तब भगवान्की प्राप्ति होती है।

गोकर्ण ने जब दूसरी बार सावन मास में श्रीमद् भागवत यज्ञ किया तब सब नारियों तथा पुरुषों ने प्रेम से कथामृत पान किया। इस कारण भगवान द्वारा अनेकों विमान वहाँ आये और सब नर नारी श्रीमद् भागवत के श्रवण करने से श्रीकृष्ण के रूप को धारण करके भगवान को प्राप्त हो गए।

इस इतिहास का पाठ शाण्डिल्य मुनि भी चित्रकूट में निवास करते हुए, आनन्द में निमग्न होकर, सर्वदा किया करते हैं। यह कथा परम पवित्र है। एक बार के श्रवण से भी यह व्यक्ति के समस्त पाप-राशि को भस्म कर देती है। श्राद्ध के समय इसके पाठ से पितरों को परम सन्तुष्टि होती है। जो व्यक्ति इस का नित्य पाठ करता है, उसे मुक्ति अवश्य मिलती है।

भक्तों के घर भी साँवरे, आते रहा करो। दर्शन के नैन बाँवरे, दर्शन दिया करो।।
सूरत सलोनी आप की आँखों में बस गई। ऐसी मिली झलक हमें, दिवाना कर गई।।
बढ़ती रहे दिवानगी, ऐसी कृपा करो। भक्तों के घर.....
कुछ ना कहेंगे आपको, आकर तो देखिये, पलकें बिछाये राह में, मोहन तेरे लिए।
खाली पड़ा है दिल मेरा, इस में रहा करो। भक्तों के घर.....
भक्तों की शान आप हो, भक्तों का मान हो, भक्तों की जिन्दगी तुम्हीं, तन मन हो प्राण हो।
अपने ही नाम की हमें, मस्ती दिया करो। भक्तों के घर.....
माना कि तेरे चाहने वाले अनेक हैं, उन पागलों की भीड़ में, हम भी तो एक है।
हम जैसे गरीबों की भी, सुध लिया करो। भक्तों के घर.....

४) सप्ताह यज्ञकी विधि

नारदजी पूछते हैं हे भगवन। यह कथा श्रवण का फल किस तरह के विभिन्न लोगोंको मिला, क्यों मिला? इस कथा श्रवण की विधि क्या है? सप्ताह यज्ञ विधि क्या है? हमको क्या करना चाहिये और क्या नहीं? तब सनत्कुमारजी उत्तर देते हैं- नारद।

कथाश्रवण विधि कोई खास विशेष नहीं है। भगवान का भजन, कीर्तन, कथा आप सब जी चाहे तब कर सकते है फिर भी इसके लिये उपयुक्त मास श्रावण, भादो, कोई अतिरिक्त मास जो होता है उसको ज्येष्ठ मास कहते है या अधिक मास और माघमास। पौषमें कथा कम करवानी चाहिए, कमी अशुद्धि की कथा मानते है। भगवान की कथा जब भी करो बहुत अच्छी है, जब चाहें तब करवाओ। इसके लिये किसी विद्वान पंडित से कथा का मुहूर्त निकलवा ले। अगर मुहूर्त नहीं भी निकला हो किसी भी दिन से आप कथा शुरू करे। नारदजीने पूछा- कथा सुननेके नियम और विधि क्या है? सनत्कुमार बोले- नारदजी आप इस झंझट में क्यों पड़ना चाहते हो? आप तो सन्यासी है। नारदजी कहते है- भगवन् कि मैं मेरे लिये नहीं पूछता हूँ, मैं तो आनेवाले इन गृहस्थाश्रमोंके लिये, इनके कल्याणके लिये पूछता हूँ अगर यह सप्ताह विधि करवाना चाहे तो यह किस तरह से करवायें। सनत्कुमार कहते है- नारद। भगवान की कथा जिस समय भी करने की इच्छा जाग्रत हो उसी समय समझ लो कोई पुनर्जन्म का उदय हो गया है, कोई तो भी आपका कल्याण होनेवाला है, आपके मन में ऐसा विचार आया यही बहुत है कि भागवत कथा भगवान के गुणगानों की कथा यहां हो इस बारेमें एक बहुत पुण्य विचार है। इसके लिये आप अपने सभी रिश्तेदारों को, सभी नजदीक के सम्बन्धियोंको, मित्रोंको, पूरे गाँवभर में आप यह ढिंढोरा पिटवायें, सूचनाएं दे कि हमारे यहां, इस जगह, इस दिन, ऐसी-ऐसी भागवत कथा का आयोजन किया है आप सभी उस कथा का परम लाभ लें।

नारदजीने सनकादिक ऋषियोंसे पूछा- मुनिवर। इसके सप्ताहश्रवणकी विधि क्या है? सनकादिक ऋषियोंने कहा- पहले तो ज्योतिषी को बुलाकर इसका मुहूर्त पूछना चाहिये और धनकी उचित व्यवस्था करनी चाहिये। कथाके लिये भाद्रपद, आश्विनी, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़ और श्रावण यह छ: महीने उत्तम है। अपने मित्र व रिश्तेदारोंको सहायक बनाना चाहिए। सब जगह सूचित करना चाहिए कि यह कथा आपके कोई करोड़ो पुण्य उदय होनेपर हो रही है इसलिये आप अपने मित्रों, संबंधियोंसहित सपरिवारसहित पधारे। स्त्री, निम्नजाति, शूद्र आदिको इसकी सूचना करनी चाहिए। देश-देशमें जो विरक्त वैष्णव और हरिकीर्तनके प्रेमी हों, उनको निमंत्रण अवश्य भेजे। उनको सूचित करे महानुभावो। हमारे यहाँ सात दिनतक सत्पुरूषोंका बड़ा दुर्लभ समागम होगा और रसमयी श्रीमद्भागवत कथा होगी। आपलोग भगवद्रसके रसिक हैं, अत: इस कथाका अमृतपान करनेके लिये प्रेमपूर्वक शीघ्र पधारनेकी कृपा करनी चाहिए। हमारा विनयपूर्वक निमन्त्रण स्वीकार करे। आपके यथोचित निवासस्थान व आहार का उचित प्रबंध किया जायगा। कथाका श्रवण किसी तीर्थमें, वनमें अथवा अपने घरपर भी करा सकते हैं। भूमिका शोधन, मार्जन और लेपन करें। केलेके खम्भोंसे सुशोभित एक मंडप तैयार करें और व्यासपीठ बनायें। उस मंडप में कुछ ऊंचाई पर सात विशाल लोकोंकी कल्पना करके वृद्ध ब्राह्मणोंको बुलाकर बैठाये और उनके लिये यथोचित आसन तैयार करें।

इस कथा में सुननेके लिये वक्ता बड़ा ही विदुषी, जानकार, विद्वान, शास्त्रोंका निष्णात इस तरह का वक्ता हो। जो हर श्लोक, हर बात का अर्थ, भागवत की कहानियोंका, लीलाओंका आपको श्रवण करा सके इस तरह का वक्ता हो। अनेक भाषाओं का विद्वान हो, पण्डित हो, लेकिन जिन्हें भगवान के प्रति आस्था न हो, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य को जिनके हृदय में किंचित भी स्थान न हो, भगवद् भक्ति से रहित हो केवल वाक् चातुरी वाला हो, वैष्णवता से रहित हो, ऐसे वक्ता को श्रीमद्भागवत कथा कहने का अधिकार नहीं है।

भागवत का वक्ता विद्वान होना चाहिए। शास्त्रों का, वेद वेदान्त का ज्ञाता होना चाहिए। आचरणशील हो, सदाचारी हो, सन्ध्या वंदन, गायत्री मंत्र जाप करनेवाला हो। भागवत की कथा कहते समय कुछ भी नहीं खाना चाहिए, मुख उच्छिष्ठ नहीं करना चाहिए। कथा के समय मुंह में पान-सुपारी खाना अपराध है। व्यास मंच पर बैठकर वक्ता को इधर-उधर के फालतू

प्रसंग नहीं कहने चाहिए। कोई दृष्टांत भी हो, तो शास्त्र का ही हो। संसार की बातें ज्यादा वक्ता को नहीं कहनी चाहिए।

यदि वक्ताका मुख उत्तरकी ओर रहे, तो श्रोता पूर्वाभिमुख होकर बैठे, अथवा श्रोता और वक्ता पूर्वमुख होकर बैठना चाहिए। वक्ता विष्णुभक्त, वेद-शास्त्रकी स्पष्ट व्याख्या करनेवाला समर्थ हो। विवेकी हो, तरह-तरहके दृष्टान्त दे सकता हो ऐसे ब्राह्मणको वक्ता बनाना चाहिये। श्रीमद्भागवत के प्रवचन में कोई ऐसा वक्ता नहीं होना चाहिए जो अनेक धर्मोंके चक्कर में पड़ा हुआ हो, स्त्रीलम्पट हो या पाखण्ड प्रचारक हो। कथा-प्रारम्भके एक दिन पूर्व वक्ताको ब्रह्मचारी व्रत शुरू कर देना चाहिए तथा छोर करा देना चाहिए। कथाके दिन शौचसे निवृत्त होकर स्नान कर गणेशजी का पूजन करे। पितृगणका तर्पण करे, पूर्व पापोंकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे और भगवान कृष्णको लक्ष्य करके मंत्रोच्चारणपूर्वक षोषशोपचारविधिसे पूजन करे। उनकी प्रदक्षिणा तथा नमस्कारादि कर स्तुति करे। फिर श्रीमद्भागवत की बड़ी उत्साह और प्रीतिपूर्वक विधि-विधानसे पूजा करे क्योंकि श्रीमद्भागवत के रूप में साक्षात श्रीकृष्णचन्द्र ही विराजमान है। अपने कल्याणके लिये प्रसन्नतापूर्वक सात दिनोंतक यथाशक्ति नियमोंका पालन करे। कथामें विघ्न न हो इसके लिये द्वादशाक्षर मन्त्रद्वारा भगवानके नामोंका जप करें। बुद्धिमान वक्ताको चाहिये कि सूर्योदयसे कथा आरम्भ करे तीन पहरतक कथा पढ़े, दोपहरके समय दो घड़ीतक कथाका विश्राम रखे। अल्पाहार करे और सभी श्रोता व्रत रखके एक समय ही हविष्यान्न का भोजन करे। यदि शक्ति हो तो निराहार रहकर कथा सुने अथवा केवल घी या दूध का सेवन का कथा श्रवण करे, या फलाहार या एक समय ही भोजन करे।

सनत्कुमार बोले- नारदजी। कथा श्रोताको विष्णुकी दीक्षा लेनी चाहिये। विष्णुभक्तिकी दीक्षासे रहित पुरुष कथाश्रवणका अधिकारी नहीं है। यजमान को ब्रह्मचर्यसे रहकर, भूमिपर सोना और नित्यप्रति तथा समाप्त होनेपर पत्तलमें भोजन करना चाहिये। दाल, मधु, तेल, गरिष्ठ अन्न, भावदूषित पदार्थ और बासी अन्न- इन सबका त्याग करना चाहिये। कथा सुनने के सात दिन तक काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह और द्वेषको तो अपने पास भी नहीं फटकने चाहिये। नियमसे कथा सुननेवाले को रजस्वला स्त्री, अन्त्यज, म्लेच्छ, पतित, गायत्रीहीन द्विज, ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले, नास्तिक, वेदोंको न माननेवाले पुरुषोंसे दूर रहना चाहिए। सर्वदा सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय और उदारताका बर्ताव करना चाहिये। धनहीन, क्षयरोगी, अन्य रोगोंसे पीड़ित, भाग्यहीन, पापी, पुत्रहीन और मुमुक्षु को भी यह कथा श्रवण करनी चाहिये। जो बाँझ स्त्री हो, जिसकी एक संतान होकर रूक गयी हो या मर गई हो अत: गर्भ गिर जाता हो वह भी इस कथाको सुने। विधिवत् कथा सुनने से अक्षयफलकी प्राप्ति होती है। करोड़ों यज्ञोंका फल देनेवाली है। कथा समाप्त होनेपर सप्ताह यज्ञकर्म में जो भूलें हुई हो उसकी शान्तिके लिये दूसरे दिन गीतापाठ करें, गृहस्थ हो तो हवन करे तथा खीर, मधु, घृत, तिल और अन्नादि सामग्रियोंसे आहुति दे। गायत्री मन्त्रद्वारा हवन करे, ब्राह्मणोंको खीर और मधु आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ खिलाये, हो सके तो विष्णुसहस्त्रनामका पाठ करें, तथा व्रत पूर्तिके लिये अपने सामर्थ्यके अनुसार गो और सुवर्णका दान करे। फिर वक्ताको दक्षिणा समर्पण कर दे। ऐसा करनेसे यजमान पाप बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। यह सप्ताहपारायणकी विधि सब पापोंकी निवृत्ति करनेवाली है। इससे अर्थ, धर्म, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

सप्ताह के लिए चैत्र और पौष को छोड़कर सभी मास शुभ बताये गये हैं। मलमास, शुक्रास्त एवं गुरु-चन्द्र के अस्त में, गुर्वादित्य (खरमास-मीन और धन की संक्रान्ति अर्थात चैत्र और पौष) में, क्षय तिथि में सप्ताह करने का विधान नहीं है। वारों में मंगल तथा शनि त्याज्य हैं। नित्य कथा में द्वादशी तिथि को कथा सुनाना वर्जित है, क्योंकि सूतजी के देहावसान के कारण उस दिन सूतक मनाया जाता है। सप्ताह-कथा में द्वादशी तिथि वर्जित नहीं है, ऐसा व्यासजी का कथन है।

नान्दीश्राद्ध कर मण्डप का निर्माण कराये। चारों दिशाओं में श्रीफल सहित कलशों की स्थापना करें। गणेश, नवग्रह, षोडश मातृका एवं पौराणिक आचार्यों का प्रतिदिन पूजन करें। मण्डप में शालिग्रामशिला अवश्य रखे।

श्रोता, एकदम ध्यानस्थ, पूरी बात सुननेपर अन्दर उतारे, बाहर नहीं जावे इस तरह का श्रोता उसको हृदयंगम करें, उसपर अमल करे, विवेचन करे वही सही श्रोता। श्रोता तीन प्रकारके होते हैं- एक- एकदम ध्याननिष्ठ श्रोता जो सुनते है और विचार करते, मनन करते हैं। दूसरा- सरोता बीचमें कथामें कोई इनको मनोरंजन नहीं, ध्यान नहीं है। बीचमें अपनी बात लेकर बैठ जाएंगे। जैसे सुपारी काँटते समय वैसा सरोता। तीसरा- कथा में आता है सोता है इससे बढ़िया स्थान कोई नहीं। वक्ता बोलता है उसकी कथा में आनन्द आ रहा है या नहीं आ रहा एक अलग बात है। नहीं आ रहा तो बहुत ही बढ़िया और आ रहा है तो उसको नहीं आ रहा है लोगोंको आ रहा है इससे उसको क्या लेना। घरमें सोने नहीं देते होंगे, बच्चे तंग करते होंगे। आराम से बल्ली के पीछे सिर लगाया सो गये शाम तक कथा हुई जब आरती की तैयारी होते ही ऊठ जाते है तो पूछा तो पंडितजी बहुत बढ़िया बोलते है। क्या बोले। अरे भगवान की सब बातें पंडितजी बताते है। इसलिये श्रोता को भी पूरे ध्यानमग्न होकर कथा सुननी चाहिये। पहली पंक्ति सत्यलोक बतायी गयी है, जिसमें संन्यासी बैठें, दूसरी पंक्ति तपोलोक है, जिसमें वानप्रस्थ बैठें, तीसरी पंक्ति को जनलोक कहा है, जिसमें ब्रह्मचारी बैठे, चौथी पंक्ति महर्लोक है, जिसमें ब्राह्मण, पाँचवीं पंक्ति स्वर्गलोक है, जिसमें क्षत्रिय, छठी पंक्ति भुवर्लोक जिसमें वैश्य और सातवीं पंक्ति भूलोक है, जिसमें शूद्र बैठकर कथा का श्रवण करें। स्त्रियाँ बायीं तरफ बैठें और कथा के समय आनेवाले श्रोता दक्षिण की ओर बैठें। वक्ता के ऊर्ध्व भाग में नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि उसका निषेध है।

वेदान्तमें श्रवणका बड़ा भारी माहात्म्य है। शब्दकी शक्ति इतनी अचिन्त्य है कि गाली अथवा प्रशंसा चाहे कितनी भी झूठी हो, लेकिन लोग गाली सुनते हैं तो बौखला जाते हैं तिलमिला उठते हैं और प्रशंसा सुनते हैं तो प्रसन्न हो जाते हैं। परन्तु परमात्माका निरूपण करनेवाले शब्द तो इतने विलक्षण होते हैं कि श्रोत्रवृत्तिके सुषुप्त होनेपर भी उनको जाग्रत करके अपने ज्ञानके भीतर भर देते हैं- इसीलिए श्रवणकी भारी महिमा है।

नारदजी पूछते है- सनत्कुमारजी भगवान वक्ता का आसन कैसा हो? श्रोता का आसन कैसा हो? वक्ता का आसन बोले व्यासपीठ बनानी चाहिये जिसमें सब तरह का आनन्द उपलब्ध हो कि वो आसन लगाकर ठीक तरह से बैठ सके, अपना मन्तव्य पूरी अच्छी तरह से आप लोगोंको सुना सके और भगवान में उसका नित्य-प्रतिदिन आरती हो, भगवान का मनन-चिन्तन हो, सांसारिक बातोंसे वह कथा ओतप्रोत न हो। सुननेवाले के लिये श्रोता एक ही हो तो भी बहुत अच्छा है। बहुत संसारिक श्रोता हो सुनना चाहे बहुत अच्छेसे सुने लेकिन एकनिष्ठ श्रोता जिसका पूरा ध्यान भगवान की लीलामय कथाओं को सुननेका ऐसा श्रोता हो।

श्रोताको बैठने का सही आसन हो। आसन पर मृगछाला बिछायी हो ऐसे ऊपर बिठाकर कथा सुनानी चाहिये। निर्ग्रन्थी सर्वश्रेष्ठ श्रोता होता है। अर्थात् जिसको ग्रन्थ में कहीं कोई शंका न हो अथवा जिसने ग्रन्थ का आद्योपान्त अध्ययन कर लिया हो, समझ लिया हो, उसका रस प्राप्त कर लिया हो। यह हुआ आध्यात्मिक दृष्टिकोण। भौतिक दृष्टिकोण में इसका तात्पर्य होगा जिसे कोई बाधा, रुकावट, कष्ट न हो, कोई चिन्ता न हो, किसी जिम्मेदारी के बोझ से व्यथित न हो या काम, क्रोध, लोभ, मोह के कारण उसका मन कहीं अटका न हो अर्थात् निष्कलंक, निर्द्वन्द्व, निश्छल व्यक्ति ही इनके सुनने का श्रेष्ठ अधिकारी है।

दरिद्र, रोगी, सन्तानहीन और अपराधी के अलावा उन स्त्रियों को जिन्हें मासिक पीड़ा नहीं होती हैं, जिन्हें कभी प्रसव नहीं हुआ हो या एकबार ही प्रसव पीड़ा हुई हो, गर्भपात हो जाता हो या उत्पन्न होकर शिशु मर जाते हों- ऐसी महिलाओं को यह

कथा नियमपूर्वक सुननी चाहिए। इससे उनके दोषों का निवारण होकर मनवांछित फल प्राप्त हो सकता है। वे जीव भी सुनने के अधिकारी हैं जिन्हें प्रभु पद पाने की आकांक्षा है। वे मनुष्य भी जिनकी कोई कामना, वासना या आसक्ति नहीं हैं- सभी ओर से तृप्त हैं ऐसे आत्माराम भी सुनने के अधिकारी हैं। गृहस्थ में रहकर भी निर्लेप-जैसे जल में कमल हों वे भी सुनने के श्रेष्ठ अधिकारी हैं। भूत-प्रेत आदि बाधाओं के निवारणार्थ भी नियमित रूप से सप्ताह श्रवण करना श्रेष्ठ उपाय है।

कथा सुननेके नियम यह है कि मंच के पीछे कभी बैठकर कथा नहीं सुननी चाहिये क्योंकि यह ब्रह्मविद्या की चोरी है। मंच के पीछे बैठकर सुननेवाले को अपराधी माना गया है। इसलिये कथा हमेशा सामने की ओर सुननी चाहिये। कथा के लिए स्थान बड़ा सुन्दर होना चाहिए। बाहर की आवाज से विक्षेप वक्ता और श्रोता दोनों को होता है। भागवत को सुन्दर शब्दों में गाया जाये, ज्ञानपूर्वक सुना जाये। श्रोता भी उसको एकाग्र होकर, मन लगाकर सुने।

नारदजी पूछते है- श्रोता को किस तरह बैठना चाहिए? सनत्कुमारजी कहते है- श्रोता को व्यासके ठीक सामने बिठावे या व्यासके दाहिने ओर बिठाये तो ज्यादा अच्छा है। मंडप देखकर बनावें जिसमें सब श्रोताओंको अच्छी तरह से सुनाई सके। शादी-ब्याह के जैसा मंडप हो, भगवान की वैसी आराधना की जावें और जब भी यज्ञ समाप्त हो तो योग्य दक्षिणा वक्ता को दी जाएं। कथा सुननेका अपराध न हो, इसके लिये मैंने जो इस यज्ञ सप्ताह विधि में लिखा है, जो आपको बताया है और कम से कम कथा आप सुन रहे है। कथा अन्तिम दिन जब भी हो आपकी श्रद्धासे कम-से-कम रूपये दो रूपये का घास गौओंको जरूर चढ़ा दें जिससे कथा सुननेका अपराध न लगे बाकी आप लोगोंकी अपनी इच्छा यह इसमें लिखा है। कथा समाप्ति के बाद आप कथा का एक यज्ञ करें, एक हवन करें, तप करें और उसमें यज्ञ भगवान की पूजा करके उसका प्रसाद करें वो प्रसाद सभी भक्तजनोंमे बांटें। रोज का रोज भी भागवत कथा का प्रसाद दिया जावें और वो यज्ञान्त अमृत भोज जो है वह ग्यारह ब्राह्मणों को बुलाकर उनके साथमें उनको यज्ञ करवाकर उनको भोजन करवाएं जाएं। खीरमिश्रित भोजन उनको खिलाया जाएं यह इसमें लिखा हुआ है। इसतरह से यह यज्ञान्त पूरा होता है। इस यज्ञ भोज को यज्ञ अवशिष्ट अमृत प्रसाद कहते है। इसके बाद एक गीता पाठ का आयोजन किया जावें इसका पाठ सभी करें यह सप्ताह यज्ञ की विधि है और इसप्रकार से यह सप्ताह यज्ञ विधि बतायी। अब नारदजी चले जाते है। कथा समाप्त होती है।

नारदजीने कहा- मुनिश्वर। आप लोगोंने करुणा करके मुझे कथा सुनायी। मुझे श्रीहरि की प्राप्ति हो गयी। मैं सब धर्मोंसे श्रीमद्भागवत को ही श्रेष्ठ मानता हूँ। उसी समय योगेश्वर शुकदेवजी वहाँ आ गये। सोलह वर्षकी आयु, ज्ञानरूपी महासागर, श्रीमद्भागवत का पाठ कर रहे थे। शुकदेवजी बोले- रसिक एवं भावुक जन। यह श्रीमद्भागवत वेदरूपी कल्पवृक्षका पका हुआ फल है। शुकका मुख लगनेसे यह अमृतरससे परिपूर्ण है। यह रस-ही-रस है इसमें न छिलका है न गुठली। यह इसी लोकमें सुलभ है और इसी युगमें सुलभ है। जबतक शरीरमें चेतना रहे, तबतक इसका बार-बार पान करना चाहिए। व्यासदेव मुनिने श्रीमद्भागवत पुराणकी रचना की है जिसमें निष्काम परमधर्मका निरूपण है। जिससे तीनों तापोंमे शान्ति होती है। इसका आश्रय लेनेपर दूसरे शास्त्र और साधनकी आवश्यकता नहीं होती। जब भी मनमें इस कथा श्रवणकी इच्छा होती है। तभी ईश्वर उन सबके हृदयमें अविलम्ब स्थित हो जाता है। यह परमहंसोंके प्राप्य विशुद्ध ज्ञानका ग्रन्थ है। यह ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके सहित निवृत्तिमार्गको प्रकाशित करनेवाला है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक इसके श्रवण, पठन और मनन में तत्पर होगा वह नि:संदेह ही मुक्त हो जायेगा। यह रस किसी अन्य लोक में नहीं है।

सूतजी कहते हैं- शौनकादि ऋषियों। शुकदेवजी जब इसप्रकार कह रहे थे उसी सभाके बीच भक्त प्रह्लाद, बलि, उद्धव और अर्जुन आदि पार्षदोंके सहित साक्षात् भगवान प्रकट हो गये। देवर्षि नारदने उनकी यथोचित पूजा की और उन्हें एक

सिंहासनपर बैठा दिया और उनके सामने संकीर्तन करने लगे। उस संकीर्तन को देखने के लिये बाबा भोलेशंकर, पार्वती, ब्रह्माजीके साथ वहांपर आये। प्रह्लाद करताल बजाने लगे, उद्धवने झाँझें बजायी, देवर्षि नारद वीणाकी ध्वनि करने लगे, गन्धर्व होने के कारण गानविद्या में कुशल तथा अर्जुन स्वरविज्ञान में कुशल राग अलापने लगे, इन्द्रने मृदङ्ग बजाना आरम्भ किया और सनकादि ऋषियोंने जयघोष शुरू किया। इसी बीच भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नृत्य करने लगे। तब हरि प्रसन्न होकर बोले- मैं तुम्हारी कथा और कीर्तनसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुमने मुझे अपने वशमें कर लिया। तब नारदजी बोले- भगवन। हमारी यह अभिलाषा है कि भविष्य में जहाँ-कहीं भी आपकी भागवत् सप्ताह कथा हो, वहाँ आप अपने इन पार्षदोंके सहित अवश्य पधारें। उसी समय भगवान तथास्तु कहकर अन्तर्धान हो गये। फिर सब लोग अपने-अपने स्थानपर चले गये। जो लोग दरिद्रताके दु:खज्वरकी ज्वालासे दग्ध हो रहे हैं, जिन्हें माया-पिशाचीने रौंद डाला है, जो संसार समुद्रमें डूबे हुए है, उनका कल्याण करनेके लिये श्रीमद्भागवत कथा है।

जिस समय कथा समाप्त हो रही है उसी समय भगवान हरि प्रकट हो गये। यज्ञकुण्ड में से भगवान हरि प्रकट हो गये और सब भक्त लोग नाचने लग गये सबको बड़ी खुशी हुई। ज्ञानवैराग्य की पुष्टि हो गयी। भक्तिदेवी स्वरूपा हो गयी। सब करताल लेकर नाचने लगे। ऐसा नाच-ऐसा नाच हरि। आखिर में भक्त प्रह्लाद ने और ध्रुवजी ने उनकी स्तुति करी। इतनी सुन्दर स्तुति। भगवान आप आये हमारे यज्ञ में आये। नारदजीने कहा- भगवान की हरिकथा हुई आपकी कृपा हुई। जब भी कोई हरिकथा, भागवत कथा हो आप उसमें आयेंगे पधारेंगे जब भी भागवत सप्ताह यज्ञ होगा। भगवान हरिने तथास्तु कहकर आशिर्वाद दिया और यह वचन दिया जब कहीं, जहां कहीं भी मेरी भागवत कथा होगी मैं वहांपर भक्ति, ज्ञान, वैराग्य सहित आऊंगा। इसतरह से सनत्कुमार का यज्ञानुष्ठान पूर्ण हुआ। उसी सभा में सूत ऋषि भी वहीं थे जिन्होंने यह कथा ज्ञान श्रवण किया।

सूतजीने बताया- भगवान श्रीकृष्णके स्वधामगमनके बाद कलियुगका प्रवेश हुआ और उसके तीस वर्षसे कुछ अधिक बीत जानेपर भाद्रपद मासकी शुक्ला नवमीको शुकदेवजीने यह कथा शुकताल (हरिद्वार के पास) पर आरम्भ की थी। और उसके २०० वर्ष बीत जानेपर आषाढ़ मासकी शुक्ला नवमीको गोकर्णने यह कथा धुंधुकारी को सुनाई। कलियुगके तीस वर्ष बीत जानेपर यह कथा सनकादिक मुनियोंने नारदजीको सुनायी। यह श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय लगनेवाली, सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला, मुक्तिका एकमात्र कारण और भक्तिको बढ़ानेवाला है। लोकमें अन्य कल्याणकारी साधनोंका और तीर्थोंका सेवन करनेसे कोई लाभ नहीं। जहाँ कही भागवत कथा हो रही हो वहांपर यमके दूत दूर रहते है। यमराज औरोंको ही दण्ड देनेकी शक्ति रखते है पर वैष्णव भक्तोंको नहीं। शुकदेवने प्रेमरसके प्रवाहमें बहकर इस कथाको राजा परीक्षितको सुनाया था। इस कथाको वक्ता और यजमान, जो सुनाते और सुनते है दोनोंका ही कल्याण है और त्रैलोक्यमें उनके लिये कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता।

सूतजी बोले- शौनकादि। कलिकाल के ३० वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद श्री शुकदेव ने भाद्रपद की नवमी तिथि को राजा परीक्षित को सुनाना आरम्भ किया था। इसके २०० वर्ष बाद गोकर्ण ने आश्विन शुक्ल नवमी से यह कथा वाँची। इसके ३० वर्ष बाद कार्तिक शुक्ली नवमी को सनकादिकों ने देवर्षि नारद जी को सुनाया।

नारदजी हमेशा घूमते रहते हैं। उन्होंने घूमते-घूमते देखा कि लोग अज्ञान से, अभिमान से, डर से, राग-द्वेष से ऐसे कामों में लगे हैं, जिनसे उन्हें अशान्ति होती है। लोगों में न सत्य है, न तप है, न शौच है, न दान-दया। जीवन में रस नहीं है; परन्तु ये सब लोग उद्योग कर रहे हैं। शान्ति के लिए चाहते हैं, रस। ऐसे सब को नारदजी ने दुखी देखा।

प्रथम स्कन्ध

विषय सूची

१) सूतजीसे शौनकादि ऋषियोंका प्रश्न ९५

२) सनकादिक ऋषियों का प्रथम अवतार (ज्ञानावतार) १०७

३) भगवान के अन्य अवतार १०९

४) महर्षि व्यासका परिचय और उनकी व्याकुलता ११४

५) नारद का चरित्र १२८

६) संक्षिप्त महाभारत १४०

७) अश्वत्थामाद्वारा द्रौपदीके पुत्रोंका वध और उसका अपमान १५३

८) उत्तरा के गर्भ की रक्षा, परीक्षित का जन्म और परिचय १५८

९) कुन्तीकी प्रार्थना और कृष्णकी स्तुति १६०

१०) भीष्म द्वारा कृष्ण की स्तुति और उनका परलोक प्रयाण १६५

११) श्रीकृष्णका द्वारकागमन १७१

१२) कृष्णका स्वधाम गमन १७३
उद्धव और मैत्रेय मुनिको उपदेश

१३) विदुर, धृतराष्ट्र और गान्धारी का वान:प्रस्थ १७७

१४) महाराज युधिष्ठिरको अपशकुन और अर्जुनका द्वारकासे लौटना व पाण्डवोंका महाप्रयाण १८२

१५) परीक्षितकी दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वी का सम्वाद व कलियुगका दमन १९५

१६) परीक्षितको शृंगी ऋषि का श्राप और परीक्षितका आमरण अनशनव्रत व शुकदेवजीका परिचय और आगमन २०६

प्रथम स्कन्ध

१) सूतजीसे शौनकादि ऋषियोंका प्रश्न

गंग यमुन गोदावरी सिन्धु सरस्वति संग। सकलतीर्थ तहँ बसत हैं जहँ हरिकथा प्रसंग।।
नरनारायण गिरा अरु व्यासमुनिहिं परणाम। आशा मेरी पूजि हैं सब गुण पूरण धाम।।
गूँग वेद को उच्चरै पंगु लाँघि गिरि जाय। जासुकृपा बन्दौं तिन्हैं माधव होयँ सहाय।।
गुरुपदपंकज हृदयधरि सप्तऋषिन शिरनाय। कहौं कथा श्रीभागवत यदुपति होयँ सहाय।।
गुणावाद गोविन्द के काटत सब जंजाल। याते भाषा भागवत विरचत वेदव्यास।।

भृगुवंश में एक परम तेजस्वी गृत्समद् नामक ऋषि हुए। उनके पुत्र शुनक हुए। महर्षि शुनक के पुत्र महातेजस्वी, नियम व्रत परायण, ऋषियों के अग्रणी, ऋषि श्रेष्ठ शौनक मुनि हुए। ये जन्म से ही त्यागी विरागी, तथा संसारी भोगों से उदासीन थे। इनके पिता ने इनके विधिवत् उपनयन और वेदारम्भादि संस्कार कराये। वेदाध्ययन के अनन्तर जब समावर्तन संस्कार का समय आया, तो इन्होंने समावर्तन कराना अस्वीकार कर दिया। संसार में तपस्या ही सार है, ये संसारी सुख भोग तो क्षणिक सुख देनेवाले नश्वर हैं और बन्धनकारक हैं, ऐसा जानकर अपने पिता की आज्ञा लेकर ये तपस्या के लिये वन में निकल पड़े। उनके निश्चय को जानकर बहुत से ऋषिकुमार उनके साथ वहीं पवन-पावन पुण्यभूमि में यज्ञ यागादि करने के लिये कृष्ण-कथा श्रवण करने हेतु हृदय से प्रफुल्लित होकर सभी संसारी सुखों की ओर से मुख मोड़कर तप को ही परमधन समझनेवाले ऋषिकुमार पृथ्वी के तीर्थों में भ्रमण करने लगे।

सूतजी कौन? शौनकजी शुनक ऋषिके पुत्र हैं। पूर्वरा और इला से उत्पन्न आयु नाम का एक पुत्र हुआ। आयु से श्रोद्र हुआ- श्रोद्र से सुनक नाम के ऋषि हुए उसीमें काश्य नामका पुत्र हुआ जिसके रोमपाद हुए और रोमपाद के पुत्र हुए अधिरथ। अधिरथ एक राजा धृतराष्ट्र का सारथी था, सूत था। सूत रथ हांकनेवाला शूद्र जाति का, विलोम जाति का। विलोम जाति किसको कहते है जिसकी माता उच्च वर्ण की हो और पिता नीच वर्ण का हो। सूतजी रोमहर्षण इनकी माताश्री ब्राह्मणी थी और पिताश्री उनके रथ हांकनेवाले शूद्र जाति के थे। इसलिये रोमहर्षण एक सूत थे और विलोम जाति के थे। इन्होंने शास्त्रमें निष्णात, वेद, पुराण, स्नातक यह सब पढ़कर स्नातक की उपाधि प्राप्त करी। पुराणोंके, इतिहास के आचार्य थे उनके पुत्र हुए उग्रश्रवा। उग्रश्रवा सूतजी का नाम है। जिन्होंने यह कथा श्रवण की, ज्ञान प्राप्त किया और यहांपर शुनक ऋषि उनके शौनक नाम के पुत्र थे और शौनक के साथ में ८८ हजार ऋषि थे उसको कहते है शौनकादि ऋषियां।

ब्राह्मणी के योनि से, क्षत्रिय के वीर्य से उत्पन्न होनेवाली जाति को सूत कहते हैं। यह विलोम जाति है। इस सूत जाति को इतिहास पुराण की कथाएँ कहने का अधिकार है। यह देवता, ऋषियों और राजाओं के वंशों की पौराणिक कथाएँ कहते हैं। वेदोंके पठन का इन्हें अधिकार नहीं दिया गया है। सूत जाति का सनातन धर्म इतिहास पुराणों की कथा करना ही है।

नैमिषारण्य उत्तर प्रदेश में सीतापुर से २० किलोमीटर दूरी पर स्थित है। यह बड़ा पवनपावन तीर्थ है जहां कलियुग का प्रवेश नहीं है। यहाँ ८८ हजार मुनि शौनक के साथ रहते हैं। ये सब ऋषि बद्धजीव नहीं हैं नित्यजीव हैं। इनकी आयु एक कल्प है और रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा सूतजी वहाँ नित्य प्रति कथा सुनाते हैं। वे सब ब्रह्मज्ञानी ऋषि हैं इन सबके कार्य, लोककल्याण के ही निमित्त विशेष कर होते हैं। वे सर्वज्ञ हैं। इन सर्वज्ञ ऋषियों को तो भूत, भविष्य और वर्तमान की कोई भी बात अज्ञात नहीं है। एक समय वैष्णव क्षेत्र में नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियोंने स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति के लिये एक हजार वर्ष में समाप्त होनेवाले

यज्ञ को आरम्भ किया। जिसे स्वर्ग पाने की इच्छा हो वह यज्ञ करे। इसी प्रवृत्ति को लेकर अट्ठासी हजार ऋषि दीर्घकाल से यज्ञ क्रिया में संलग्न थे। किन्तु मनन करने पर उन्होंने अपने आपको वासना और आसक्ति परक अहंकार के घेरे में पाया। अनन्तकाल तक यज्ञ करने के कारण अहंकार की मात्रा, मैं याज्ञिक हूँ- मैं तपस्वी हूँ अत्यधिक प्रबल हो गई थी।

जो आदि अन्त से रहित श्रीमन्नारायण हैं, जो पृथ्वी वैकुण्ठ और बद्रिनारायण (विशालापुरी) में सदा निवास करते हैं जो चराचर जगत् के स्वामी हैं। जिनके श्वास प्रश्वास से प्रतिक्षण असंख्य ब्रह्माण्डों की स्वत: ही रचना हो जाती है। उन सर्वाधार, लक्ष्मीकान्त, अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक, श्रीमन्नारायण भगवान के पाद-पद्मों मे कोटि-कोटि प्रणाम। जिन्होंने दक्ष की पुत्री, धर्म की पत्नी जन्मदाता मूर्ति देवी के गर्भ से अवतार लिया है। जो जन्म से ही त्यागी, विरागी तपस्वी है। जिन्होंने नैमिषारण्य पुष्करक्षेत्र आदि पावन तीर्थों को अपनी स्थिति से तपस्या करके परम पावन क्षेत्र बना दिया है, देवराज इन्द्र की भेजी हुई असंख्य अप्सराओं तथा कामदेव, वसंत, समीर आदि को जिन्होंने अपनी तपस्या में विघ्न करते हुए देख आदि क्रोध नहीं किया। काम और क्रोधपर जिन्होंने विजय प्राप्त करी, जिन्होंने अपने उरू से उर्वशी जैसी असंख्य अप्सराओं को उत्पन्न करके देवताओंको विस्मित किया। जो तपस्या में निरन्तर लीन रहते है उन तपस्याओं की जाज्वल्यमान प्रत्यक्ष मूर्ति मैं नारायण दोनों ऋषियों को नतमस्तक होकर बारंबार नमस्कार।

जिनके बिना विश्व में वर्णों का विभाग नहीं, अस्तित्व नहीं, जो सम्पूर्ण ज्ञान की प्रदात्री हैं, जिनकी वाणी की झंकार से ही सप्तस्वरों सहित सम्पूर्ण संगीत की उत्पत्ति हुई है, जिनके जगज्जननी, कुमारी आदि अनेक रूप हैं, उन भगवती सरस्वती देवी के चरणों में विनम्रता से श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

जो भागवती सत्यवती में भगवान पराशर के वीर्य से उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने एक वेद के चार विभाग करके संसार के कल्याणार्थ उन्हें सरल, सुगम बना दिया है, जिन्होंने स्त्री, शूद्र तथा द्विजबन्धु- जो वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं हैं- उन पर कृपा करके पञ्चम वेद, महाभारत की रचना की है, जो भरतवंश की रक्षा करनेवाले और उसे उच्छेद से बचानेवाले हैं, जिन्होंने वेदों के सम्पूर्ण अर्थों को पुराणों के द्वारा कथन किया है, जिससे सर्वसाधारण पुरुष उस दुष्कर ज्ञान को सुगमता के साथ समझ सकें। जिन्होंने विविध धर्मों का संक्षेप और विस्तार के साथ वर्णन किया है, जो धर्म के रक्षक और प्रतिपालक हैं, जिन्होंने ब्रह्मसूत्रों की व्याख्या करके उपनिषद् के वेदान्त वाक्यों की- जो परस्पर में विभिन्न से प्रतीत होने के कारण एकवाक्यता की है, जिन्होंने समस्त ज्ञान को उच्छिष्ट कर दिया है। (सभी लोग उसी उच्छिष्ट ज्ञान को भाँति-भाँति से अपनी-अपनी भाषा में कथन करते हैं) जो साक्षात् श्रीहरि के अवतार हैं, जो एक मुख के प्रजापति और दो बाहु वाले विष्णु तथा द्विनेत्रवाले महेश हैं, जिन्होंने मानसिक खेद के व्याज में देवर्षि भगवान नारद से भागवत ज्ञान प्राप्त किया है, जिन्होंने कलिकाल के अल्पमति, अल्पायु पुरुषों को अज्ञान सागर में डूबते देखकर श्रीमद्भागवत रूपी दृढ़ नौका बनाकर, स्वयं ही कर्णधार बनकर, उनके उद्धार के लिये प्रयत्न किया है। जिन्होंने सम्पूर्ण ज्ञान को सदाचारी ऋषियों में विभक्त करके लोप होने से उसकी रक्षा की है। श्रीमद्भागवत रूपी त्रैलोक्य पावन महान् स्वाद रस को बिना भेदभाव के वितरण करने के लिये अपने परम ज्ञानी, परम विरक्त सुत शुकदेव को उत्पन्न किया है। उत्पन्न होते ही जो संसार त्यागकर वन में चले गये थे, उन्हें बड़े कौशल से बुलाकर जिन्होंने अधिकारी समझकर उन्हें ही भागवतामृत वितरण करने के लिये नियुक्त किया है। जो ऋषियों में परम सम्माननीय हैं, जिनका ज्ञान सदा अकुंठित है, जो त्रिवर्ग साधन तथा मुक्ति साधन, सभी में समान रूप से निष्णात हैं। जिनकी दृढ़ नौका के सहारे अनेकों भूले भटके डूबते हुए जीव संसार-सागर से सदा के लिये पार हो गये हैं, उन शक्ति लोक पितामह पराशरजी के पौत्र ब्रह्माजी के सपौत्र, वसिष्ठजी के प्रपौत्र, भगवान्

व्यासदेव के चरणों में श्रद्धाभक्ति सहित प्रणाम है।

मनुष्य अल्पायु, विषयी, अश्रद्धालु तथा मन्दबुद्धि होंगे। अत: उन्होंने वेद को चार खण्डों में विभक्त किया तथा चार योग्य शिष्य क्रमश: पैल, वैशम्पायन, जामिनी, सुमन्तु बनाये तथा पुराण के पाँचवे शिष्य श्रीलोमहर्षण जी बने। अन्तिम ग्रन्थ महाभारत की रचना करने पर भी उनके मन में शान्ति नहीं हुई।

हे ज्ञान निधि। हे जगदुद्धारक। हे परम गुरुदेव। हे विश्ववन्द्य। इन क्षुद्र जीवोंपर कृपा करो। आपके पवन-पावन पद चिन्हों का अनुसरण करते हुए मैं इस भागवत तथ्य को लिख रहा हूँ। हे व्यासनन्दन। आपकी कृपा के बिना कोई भागवत-तत्त्व को नहीं समझा सकता। आप तो जन्म से ही नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त है। आपका अवतार तो जगजाल में जकड़े जीवों की रक्षा के लिये ही हुआ है। आपने इस भागवत का मधुराति मधुर रस का स्वयं अनुभव किया है। इस दिव्यातिदिव्य मधुर रस के सच्चे अधिकारी तो आप ही हैं।

महर्षि व्यास ने जब एक वेद को अत्यन्त संक्षिप्त बनाकर उसकी भी चार छोटी-छोटी संहिताएँ बना दी, तब उन्होंने पुराणों का भी विभाग किया। पुराण करोड़ों की संख्या में थे। उनमें से महर्षि व्यास ने चार लाख श्लोक निकालकर उन्हें १८ भागों में विभक्त कर दिया। वेद की ऋग्, यजु:, साम और अथर्व इन संहिताओं को क्रमश: अपने पैले, जैमिनि, वैशम्पायन और सुमन्तु इन चारों शिष्यों को पढ़ाया। इतिहास और पुराणों की शिक्षा भगवान् व्यासने सूत जाति के अपने प्रिय शिष्य लोमहर्षण को दी।

लोमहर्षण बड़े धर्मात्मा सूत थे। व्यासजीके परमप्रिय शिष्य थे। जब शौनकादि महर्षियोंने नैमिषारण्य में अपना यज्ञ आरम्भ किया तब लोमहर्षण को बुलाकर कथा-वाचक के प्रधान पद पर नियुक्त किया। ये ऋषि वेद-मंत्रों से पाषाण की प्रतिमा में प्राण प्रतिष्ठा करके उसमें देवत्व स्थापित कर देते हैं। उनकी आज्ञा आर्ष-वचन मानकर सर्वत्र उसका पालन होता है। ऋषियों ने नैमिषारण्य के यज्ञ में लोमहर्षण सूत को ब्रह्मासन प्रदान किया। समस्त ऋषि मुनि बैठकर कथा सुनने लगे। उसी समय तीर्थयात्रा करते-करते कृष्ण अग्रज बलराम वहाँ आ पहुँचे। सब ऋषिमुनियों ने बलरामजीका सत्कार किया पर सूतजीने उनका सत्कार नहीं किया। इसपर बलराम को क्रोध आ गया और हाथमें कुशाग्रा उठा लिये उसमें से एक कुशा उठाकर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर सूतजी पर प्रहार किया। तत्क्षण सूतजी निष्प्राण होकर गिर पड़े। ऋषियों मे हाहाकार मच गया और सभी कहने लगे इसे आपने क्यों मार डाला। अब आपको ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। आपको इसके लिये प्रायश्चित करना चाहिये। बलरामने कहा, आत्मासे उत्पन्न होने के कारण पुत्र को पिता का ही स्वरूप बताया है। लोमहर्षण के समस्त ज्ञान, गुण, समस्त वरदान इनके पुत्र उग्रश्रवा में विद्यमान होंगे। वे ही अब आपको समस्त इतिहास पुराणों की कथा सुनायेंगे। तभी से उग्रश्रवा पुराणोंके वक्ता बने। जब शुकदेवजी राजा परिक्षित को गंगा तट पर भागवत सुना रहे थे। तब परम बुद्धिमान के उग्रश्रवा वहाँ उपस्थित थे। इनकी श्रवण करने की शक्ति बहुत ही उग्र थी इसलिये इसका नाम उग्रश्रवा पड़ा। तब शौनकादि ऋषियों ने उग्रश्रवा सूतसे कहा, हे सूतजी। आप दीर्घायु हो, हमें भगवान की अमृतोपम कथा सुनावें। हम जो यज्ञ कर रहे है वह सांगोपांग विधि से निर्विघ्न समाप्त हो। हमारी भगवान गोविन्द के पादपद्मों में भक्ति हो।

वे सब महान तीर्थराज प्रयाग की प्रशंसा सुनकर मन-ही-मन प्रणाम करके तीर्थराज प्रयाग में चले गये और गंगा-यमुना के सुन्दर संगम के दर्शन कर मन से प्रफुल्लित हो स्नान संध्या वंदन कर, देवर्षि-पितृ तर्पण कर महर्षि भरद्वाज के आश्रम में गये। वहाँपर उनकी चरणवन्दना की। महर्षि ने भी उन सब ऋषि कुमारों का यथोचित आदर-सत्कार किया और रहने के लिये पर्णकुटी और विविध प्रकारके कन्दमूल फल दिये और पूछा ऋषिकुमारों बड़े हर्ष की बात है कि तुम लोग यहाँ

आये। तुम सब तीर्थयात्रा के उद्देश्य से यहाँ आये हो तुम सबका कल्याण हो। तुम्हारा यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है स्पष्ट कहो। ऋषिकुमारों का हृदय प्रेमाश्रु बहाते हुए उमड़ आया। तब शौनकजी महर्षि भरद्वाज से बोले- आपके वात्सल्य स्नेह को प्राप्त होकर हम सब परम अनुगृहीत हुए। आज हम सब कृतार्थ हुए। आप तो दूसरे प्रजापति हैं। आप तो सर्वज्ञ हैं। भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों के ज्ञाता हैं, सब के मन की बात जाननेवाले हैं। तो भी हम आपको बताते है हमें संसारिक व्यवहार में फँसने की रूचि नहीं है। हम अपने सम्पूर्ण जीवन को तप करते हुए श्रीकृष्ण कथा में व्यतीत करना चाहते हैं। इसके लिये हमें कोई उचित स्थान बतावें। आपकी जो आज्ञा होगी वहीं हम सदा यज्ञ-याग करते हुए भगवत कथा कीर्तन के द्वारा आयु के शेष समय को बितायेंगे। इन सब ऋषियों का विचार जानकर भरद्वाज बोले तुम लोग धन्य हो इस युवावस्था में तुम्हारी ऐसी निर्मल बुद्धि हुई। भगवत कथा कीर्तन में रूचि करोड़ों जन्मों के पुण्यों से होती है। साधारण जीव तो इसी संसार में मरते और जन्म लेते रहते हैं। पशु, पक्षी, कीट, पतंगों की तरह आहार, निद्रा, भय तथा मैथुनादि में ही उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति बनी रहती है। जो अनुग्रह सृष्टि के जीव होते हैं, जिन्होंने करोड़ों जन्म यज्ञ, याग, तीर्थ, व्रत, जप, तप, ध्यान, समाधि आदि शुभ साधन किये हैं उनका ही मन नियमपूर्वक कथा कीर्तन में लगता है। प्रयाग से बढ़कर संसार में पुण्य प्रदेश दूसरा कौनसा होगा। तुम यहाँ आनंद से रहो। यज्ञ, जप, तप जो भी करना चाहो करो। यहाँ यथेष्ट फल वाले वृक्ष हैं। अमृतोपम श्रीत्रिपथगामिनी गंगा का सुमधुर जल है। जिसका सेवन सिद्ध, चारण, गन्धर्व, राजर्षि, देवर्षि, महर्षि आदि का निवास स्थान है। यह परमपावन भूमि है। यह तुम्हारे लिये उपयुक्त होगी।

सबने कहा, महर्षि आपके वचन यथार्थ है। प्रयाग से बढ़कर न कोई तीर्थ है, गंगा से बढ़कर कोई नदी नहीं है। गंगा-यमुना का संगम बड़ा पवित्र है और आपके आश्रम से बढ़कर न कोई पुण्य स्थली है। हम यहीं निवास करेंगे। फिर सभी ने महर्षि भरद्वाजके चरणों की वन्दना करके ऋषि के बताये हुए स्थान में वहीं अपनी पर्णकुटी बनाकर निवास करने लगे और घोर तपस्या करने लगे। सूर्य मकर राशि में आया। माघ के महीने में प्रयाग में स्नान करने का बहुत महत्व है। अनेक राजा-महाराज अपनी सेना और सेवकों के सहित दूर-दूर से आकर गंगा-यमुना की पावन भूमि में माघ महीने के स्नान के लिये वहां आये। हजारों-लाखों गाड्यिों से ऋषि-मुनि आये। महर्षि भरद्वाज के आश्रम में तिल रखने को भी जगह नही रही। ऐसे महर्षि का आश्रम ऋषि, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यज्ञ, राक्षस, किंपुरुष तथा मनुष्यों से भर गया। उसमें वेदध्वनि होती रहती, सैकड़ों-हजारों नर-नारी राजा राजपुत्र, महर्षि के दर्शनों के लिये आते रहते। शौनक ऋषि भारी भीड़ भाड़ से घबराने लगे। वे इतने जन-समूह को देखकर व्यथित होने लगे। उनका मन शान्त एकान्त चाहता था। उनके साथ सैकड़ों और भी ऋषि-मुनि थे। वे सोचने लगे- तीर्थराज तो महान् क्षेत्र है। इसमें तो चारों दिशाओं के सदा मनुष्य आते-जाते ही रहेंगे व कोलाहल रहेगा। हमें तो एकान्तवास चाहिये। इसी विचार से वे महर्षि भरद्वाज के पास गये। भरद्वाज बोले, शौनक आप सब ऋषियोंके अग्रणी हो। मुझे लगता है कि तुम मुझसे कुछ कहना चाहते हो। अपना प्रयोजन कहो। शौनकजीने कहा, हम आपकी चरण-वन्दना के निमित्त हम सब चले आये। यहाँ इस अनन्त सागर के समान भीड़ को देखकर हम चकित हो रहे हैं। इतने लोगोंके आने-जानेसे आपके हृदयमें कोई क्षोभ नहीं, कोई उद्वेग नहीं। आपका धैर्य भी अचल है। भरद्वाज मुनि बोले, लगता है तुम इस भीड़-भाड़ से उकता गये हो। तुम्हें यह भीड़-भाड़ अच्छी नहीं लगती क्या? शौनक संकोच स्वर में बोले- धर्मात्मा लोगों के दर्शन होना बड़े भाग्य की बात है, किन्तु इस भीड़-भाड़ में हम जैसा साधन चाहते हैं वैसा नहीं हो पाता। हम लोग एक ऐसा स्थान चाहते है चाहे वो बहुत प्रसिद्ध नहीं हो, छोटा हो, एकान्त हो, परम पावन हो, साधन में सहायक हो। भरद्वाज मुनिने ध्यान करने के पश्चात् कहा- शौनक तुम्हारा संकल्प सुन्दर है। तुम

दीर्घ सत्र के लिये शान्त, एकान्त, रमणीय, निरापद, कन्द मूल फलों से परिपूर्ण, निरुपाधिक, परम-पवित्र यज्ञीय स्थान चाहते हो। यहांपर भगवान माधव अपने १२ रूप बनाकर वास करते हैं। तुम त्रिवेणी तट पर जाकर उनकी तपस्या करो। वे स्वयं प्रकट होकर तुम्हारे हित का उपदेश करेंगे और तुम्हें उपयुक्त पावन स्थान बता देंगे।

जो आज्ञा कहकर समस्त ऋषि प्रयाग संगम के समीप भगवान माधव की आराधना करने लगे। थोड़े समय के बाद भक्त भयहारी, वांछा-कल्पतरु घट-घट-व्यापी, भगवान माधव शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि आयुधों सहित शौनकादि ऋषियों के सम्मुख प्रकट हुए। सब ऋषियोंने विधिवत भगवान की पूजा की और दिव्य श्लोकोंसे उनकी स्तुति की। महात्मा भगवान बोले- मैं तुमसे प्रसन्न हूँ और तुम्हें जो चाहिये अपना अभीष्ट वर मुझसे मांग लो। शौनक ऋषि बोले- हे प्रभो। हमने आपके दर्शन किये फिर अन्य वांछा ही क्या रह जाती है। हम जीवन यापन के लिये शेष आयु आपकी आराधना में लगा सके इसके लिये हमे कोई परम-पावन, शान्त, एकान्त, मनोरम स्थान बताने की कृपा करें। शौनकजी के ऐसे विनययुक्त वचन सुनकर भगवान बोले- मेरा यह अत्यन्त जाज्वल्यमान कोटि-सूर्य-सम-प्रकाशवाला चक्र तुम्हारे आगे-आगे चलेगा और जिस स्थान में जाकर इसकी नेमि गिर जाय, उसी स्थान को परम पवित्र समझकर हजारों वर्षोंवाला यज्ञ आरम्भ कर दें। शौनकजी के पास हजारों ऋषि-मुनि आये और कहने लगे हम भी आपके साथ चलेंगे और आपके साथ यज्ञ में भिक्षा लेंगे। शौनक बोले जिन्हें संसारिक भोगने की इच्छा न हो, जो जीवन भर ब्रह्मचारी रहकर ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुए हमारे साथ चलें। गृहस्थ मुनि वहाँ कृपाकर जाने का विचार न करें। नैष्ठिक बह्मचर्य का पालन करते हुए ८८ हजार ऋषि हो गये। आगे-आगे भगवान का धर्मचक्र चला और उसके पीछे-पीछे वे ऊर्ध्वरिता ऋषि चले। वह चक्र लक्ष्मणपुर में सीतापुर होता हुआ पुण्यतोया भगवती गोमती के तट पर एक घोर जंगल में जाकर रुक गया। धर्मचक्र की नेमि गिर गयी। तभीसे उस अरण्य का नाम ऋषियोंने नैमिषारण्य रख दिया। तब भगवान की आज्ञा समझकर ऋषियोंने उसी स्थान को यज्ञके लिये परमपावन स्थली समझकर दीर्घ सत्र करने का निश्चय किया। भूमि को समतल किया और शास्त्रीय विधि से वेदी बनायी और उस वेदीके चारों ओर अपनी पर्णकुटियाँ बनाईं। महर्षि शौनक सबके प्रधान कुलपति बन गये। उन्होंने एक हजार वर्ष में समाप्त होनेवाले महायज्ञ की दीक्षा ली। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देवता, यक्ष, राक्षस सभी उस महायज्ञ को देखने आये। इसी परम पावन स्थान को नैमिषारण्य नामसे जाना गया। यहाँ समस्त कथा, वार्ता, इतिहास-पुराणों की संसार में प्रसार करनेवाली पावन भूमि बन गई। यहांपर नेमिश्राद्ध किया जाता है। मनुष्य की नाभि का श्राद्ध यहाँ किया जाता है। इसे नाभिश्राद्ध भी कहा जाता है। कपालश्राद्ध बद्रिकाश्रम में किया जाता है, चरण श्राद्ध प्रयाग में किया जाता है तथा सर्वांग श्राद्ध गया में किया जाता है।

एक बार एक ब्रह्मसत्र इन ८८ हजार ऋषियोंने आयोजन किया नैमिषारण्य में। यह नैमिषारण्य क्या है। यह नैमिषारण्य सीतापुर उत्तर प्रदेश से २० किलोमीटर की दूरी पर एक बहुत बड़ा क्षेत्र है जो भगवान से वरदान पाया हुआ है। इस क्षेत्र में कलियुग प्रवेश नहीं कर सकता है। कलियुगका प्रवेश करना वर्जित है। वहांपर ८८ हजार ऋषियोंने एक हजार वर्षतक तपस्या करी है। वहांपर यह तपस्या होनेसे वह क्षेत्र इतना पवित्र हो गया है कि वहां कलियुग का प्रवेश नहीं है। इस नैमिषारण्य को नाभि गया भी कहा जाता है। जहांपर नाभि श्राद्ध कराया जाता है। हमारे यहां श्राद्ध कराने की चार विधि है चार जगह की है जो की बड़ी परम पवित्र मानी गयी है यह करवाना चाहिए। जिनके पिताश्री नहीं हो उसे कपालश्राद्ध बोलते है वह बदरिकाश्रम में करायी जाती है। जिनके साधारण मुक्तिश्राद्ध कराये जाते है वह गया में करेाये जाते है सर्वांगअंग श्राद्ध इसको कहा जाता है। नाभिश्राद्ध- नाभि गया यह नैमिषारण्य का नाम है। नैमि किसको बोलते है नाभिको।

यह नाभि का श्राद्ध नैमिषारण्य में कराया जाता है। चरणश्राद्ध यह इलाहाबाद (प्रयाग) में कराया जाता है। इस तरह से यह चार विधि हमारे वेदोंने शास्त्रकी बतायी है। यह वो श्रेत्र है नैमिषारण्य जहां पर ८८ हजार ऋषियोंने एक सत्र किया और यह शौनकजी वहांपर बैठे है सूतजी आ रहे है। जैसे ही सूतजी आते है सब ऋषि लोग अभिवादन करते है और कहते है भगवन्, आप आये हमारे इस बड़े महायज्ञ में। आप हमें यह बताइये आप हमारे यज्ञका संचालन करें।

नैमिषारण्य- प्रसिद्ध पुण्यस्थली, पावन तीर्थ। अपने तपोवन के क्षेत्र में दानवों के उपद्रव से पीड़ित गौरमुख मुनि ने भगवान हरि का चिंतन-स्मरण किया। गरुड़ासन पर स्थित पीतांबरधारी भगवान विष्णु मुनि के सम्मुख प्रकट हो गए। मुनि को आश्वासन देते हुए भगवान हरि ने कहा- मुनिवर। मैं तुम्हारा कौन-सा हित-साधना करूं?

दंडवत प्रणाम करके मुनि ने पुरुषोत्तम से कहा- प्रभो। इन दुष्ट दानवों का आप संहार कर दें। भगवान हरि ने चक्र द्वारा उस समस्त असुर-सेना का संहार कर दिया निमेष मात्र में ही पूरा दानव-कुल समाप्त हो गया।

दानवों का संहार करने के पश्चात् हरि ने गौरमुख मुनि से कहा- मैंने निमेष मात्र में इस अरण्य के भीतर दानव-सेना का संहार किया है। अत: यह अरण्य (वन) नैमिषारण्य के नाम से प्रसिद्ध होगा।

प्राचीन काल में मरीचि, अत्रि, वसिष्ठ, क्रतु, भृगु तथा अंगिरा के वंश में उत्पन्न ऋषियों ने लोकपितामह ब्रह्मा से प्रश्न किया- भगवन्। कृपा करके आप हमें उपाय बताएं जिससे हम भगवान शंकर के दर्शन कर सकें। ब्रह्मा ने मुनियों को उत्तर देते हुए कहा- आप पूर्ण भक्ति-भावना से सहस्त्र-यज्ञ-सत्र संपन्न करें। मैं आपको वह पवित्र स्थान बतलाता हूं, जहां आप यह यज्ञ संपन्न करेंगे।

फिर ब्रह्मा ने एक मनोमय चक्र की सृष्टि करने के पश्चात् उन ऋषियों से कहा- आप इस चक्र का अनुगमन करें जिस स्थान पर इस चक्र की नेमिशीर्ण होगी (गिरकर टूट जाएगी)। वही स्थान तपस्या और यज्ञ के लिए शुभ होगा।

ऋषियों ने ब्रह्मा द्वारा छोड़े गए चक्र का अनुगमन किया। चलते-चलते जिस स्थान पर चक्र की नेमि शीर्ण हो गई, वही स्थान नैमिशारण्य नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सब शौनकादि ऋषियों ने एक अत्यन्त ही जनकल्याण हितार्थ अद्‌भुत प्रश्न किया।

पढ़े शास्त्र इतिहास पुराणादिक सब तुमने। कही कथा अति मधुर सुनी श्रद्धातें सबने।।
सब शास्त्रनिको सार सूतजी शीघ्र सुनाओ। कृष्ण-चरित कहि पुण्य प्रेम पीयूष पिलाओ।।
शास्त्र-ज्ञान पय दधि करहु, मथि तिहि सार जनाइदें। खट्टो मट्ठो पृथक करि, मक्खन मधुर चखाइदें।।

हे आयुष्मन सूतजी। आपने सब शास्त्रों में मनुष्यों के कल्याण के लिये, जो सर्वोत्कृष्ट कभी भी व्यर्थ न होने वाला अमोघ साधन सरलता के साथ सर्वसम्मत समझा हो उसी सर्वश्रेष्ठ साधन को हमसे कहिये। लोमहर्षण आपके पिताश्री के ज्ञान की थाह नहीं थी। वे भगवान के अवतार व्यासजी की चिरकाल तक सेवा करके, उनसे ज्ञान अर्जित किया। बलरामजी की कृपा से और इन ऋषियों के अनुग्रह से, अनायास ही वह ज्ञान आपको प्राप्त हो गया। आपने सब शास्त्रों को पढ़ा और सुना। शास्त्र अनन्त है उसका कोई वारापार नहीं। ज्ञान भंडार अथाह है, कोई भी प्राणी उसका पार नहीं पा सकता। ऋषि अनेक हैं, सभी ने अपनी-अपनी अनुभूति के अनुसार अनेक सुन्दर साधनों का कथन किया है। कभी बहुत-सी बातों को सुनकर चित्त विभ्रम में पड़ जाता है। समस्त शास्त्रों को पढ़कर आपने जो सर्वश्रेष्ठ सार समझा हो, आज हमें वही बता दो। अनधिकारी के सम्मुख कभी भूलकर भी उपदेश न करना चाहिये और बिना पूछे किसीसे भी नहीं कहना चाहिये। विशेषकर कलियुगी जीवों के पास समय नहीं है। कलियुग के मनुष्य बड़े क्रूरकर्मा और मन्दमत्ति होंगे। दिन-रात्रि संसारी प्रपंचों में व्याप्त रहेंगे। उन्हें परमार्थ-चिन्तन के

लिये समय भी नहीं रहेगा। सभी जीव अल्पायु रहेंगे। अधिकांश समय शरीर के भरण-पोषण में तथा कुटुम्ब की चिन्ता में ही बीत जायगा। वे लोग शास्त्रों का श्रवण-मनन करके अपनी बुद्धि से अपने कल्याण का निर्णय नहीं कर सकेंगे। इन कलियुगी जीवों की बुद्धि बहुत विशाल व विस्तृत नहीं होगी और किसी बात का सर्व-सम्मति से निर्णय भी नहीं कर पायेंगे। इस कठिन कलिकाल को पार करना बड़ा ही दुष्कर है। इसे साधारण लोग पार नहीं कर सकते। विषयों की ओर जीवों की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसलिये मनुष्य का परम कल्याण किसमें है वो ही बताये।

जीव को शुद्ध करने का सर्वश्रेष्ठ साधन कौनसा है? भक्ति ज्ञान वैराग्य से विवेक की वृद्धि किस प्रकार होती है?

जिसकी प्राप्ति भक्ति-ज्ञान एवं वैराग्य से होती है, उस विवेक की वृद्धि किस प्रकार से होती है? श्रीवैष्णव जन किस प्रकार से माया एवं मोह का विनाश कर देते हैं?

जगत् नियन्ता जगदीश्वर ने वसुदेव-देवकी के द्वारा क्यों जन्म लिया? भगवान की कथा कैसी विलक्षण होती है जिसे जिज्ञासु श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर सुनते हैं। हम यह जानना चाहेंगे कि लीला नटवर के उदार कर्म क्या-क्या है? भागवत कथा में कौन-सा रस है जिसे पाने के निमित्त भक्तजन सदा लालायित रहते हैं? माया मनुष्य रूप धारण करनेवाले भगवान् मानव-शक्ति से परे गोवर्धन उठाने आदि कौन-कौन से महान् कार्य किये? जब लीलानागर भगवान धराधाम से स्वधाम चले गये तब धर्म बेचारा किसके शरण में गया?

हम तो यह जानते हैं श्रीकृष्ण कथा ही जीवन का सार है। यह सत्य है कि भगवान कृष्ण प्रकृति नाम-रूपों से परे हैं। वे मायिक जगत् की सीमा में आबद्ध नहीं। वे ही इस समय नर-रूप में अवतरित हुए है। उनके अचिन्त्य और दिव्य कर्म सर्वदा होते हैं अलौकिक होते हैं वे ही सबको कृष्ण चरित्र सुनने पर कलियुगी जीव इस संसार सागर को पार करने में समर्थ होते है। स्वयं साक्षात् श्रीहरि ने इस धराधाम पर देवकी-वासुदेव के यहाँ अवतरित होकर मानवीय लीलाएं की है। उनकी कमनीय क्रीड़ाओं का कथन हमें सुनायें। श्रीकृष्ण की लीलाओं का स्वाद और माहात्म्य तो अनन्त हैं। उनके नाम में ही इतनी शक्ति हैं कि अनिच्छा से भी कोई उनके नामों का उच्चारण करे और वे सभी प्रकार के पापोंसे मुक्त होकर परम पद को प्राप्त हो जाता है। वे हरिकाल के भी काल, मृत्यु के भी मृत्यु और भय को भी भय देनेवाले हैं। गंगा के जल के स्पर्श-मात्र से महान् से महान् पाप क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं। शास्त्रों में गंगाजी की महिमा का बड़े विस्तारसे वर्णन किया गया है। कहीं कोई परदेश में मर जाएं उसकी अस्थि किसी तरह आकर गंगा में विसर्जित हो जायँ तो वे सब पापों से छूटकर स्वर्ग में चला जाता है। गंगाजी की जब इतनी महिमा है वो गंगाजी तो भगवान् के चरणों के नख से निकली हुई है। उस भागीरथी की इतनी भारी महिमा है। फिर उन प्रभु के त्रैलोक्य-पावन यश को पापी मनुष्य क्यों नहीं सुनेगा?

निर्गुण का ज्ञान होता है किन्तु भगवान् के सगुण रूप में तो भक्ति होती है। उसकी श्रद्धा से सेवा पूजा करते हैं, प्रेम से उनके दिव्य गुणों का गान करते हैं, उनके त्रैलोक्य-पावन नामों का उन्मत्त होकर प्रेमपूर्वक उच्चारण करते हैं। इससे हृदय की समस्त ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, सब संशय दूर हो जाते हैं। सभी प्रकार के पुण्य-पाप कर्म क्षीण हो जाते हैं। इसीलिये उन आत्माराम, लोकाभिराम, सर्व-ऐश्वर्य-सम्पन्न भगवान वासुदेव की कथाओं को आप हमें सुनाइये। कृष्णकथा ऐसा रस है कि जितना पिया जाएँ उतनी ही सुनने की और इच्छा बढ़ती है। संसारिक विषयों का बार-बार भोगने पर भी तृप्ति नहीं होती है। फिर उसको बार-बार भोगने की इच्छा होती है। फिर यह तो परममधुरातिमधुर रस है। इससे भला तृप्ति कैसे हो सकती है? भगवत श्रीकृष्ण की प्राप्ति किस प्रकार हो? आप बताये कि मनुष्य का परमकल्याण किसमें है? और कृष्णकी प्राप्ति हमें कैसे होगी?

ये मानवा: पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगा:।
क्रोधाग्निदग्धा: कुटिलाश्च कामिन: सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते।।

धर्म की रक्षा करनेवाले तो श्रीहरि हैं। जब-जब धर्म की हानि होती है तब-तब साधु पुरुषों के परित्राण के लिये और दुष्ट प्रकृति के पुरुषों के विनाश के निमित्त, वे नाना रूपों में अवतरित होते है। भगवान के स्वधाम पधारने पर धर्म की क्या दशा हुई यह भी आप हमें बतायें। मनुष्य का परम धर्म क्या है? मनुष्यों का वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है, जिससे अधोक्षज भगवान् श्री वासुदेव में अहैतुकी और अव्यभिचारिणी भक्ति हो, जिससे अपनी अन्तरात्मा प्रसन्न हो जाती है।

सूतजी बोले-चिन्तामणि के द्वारा केवल लौकिक सुख की प्राप्ति होती है, कल्पतरु स्वर्गीय सम्पत्तियों को प्रदान करने में समर्थ है। किन्तु जब गुरुदेव प्रसन्न हो जाते हैं तो वे अपने शरणागत शिष्यों को परमात्मा की प्राप्ति करा देते हैं। परमात्मा की प्राप्ति तो योगियों के लिए भी दुर्लभ है; किन्तु आचार्य की कृपासे वह शिष्य के लिए सुलभ हो जाती है। अतएव आचार्य की महिमा सर्वोपरि है। आचार्य अपने शिष्यों के लिए परम उदार होते हैं और शिष्यों का सर्वाधिक कल्याण करते हैं। आपका प्रश्न बड़ा मार्मिक है। जिससे अभ्युदय नि:श्रेयस की प्राप्ति हो वह ही धर्म है। सत्य, दया, क्षमा, दान सहयोग, परमार्थ, अहिंसा इत्यादि धर्म के परिचायक हैं। इसमें समय, काल परिस्थिति वश जो गुरु-श्रुतिसम्मत है वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। ऐसे धर्म के अनुपालन में कष्ट नहीं होता। सूतजी कहते हैं- मनुष्य के लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिससे भगवान के प्रति अहेतुकी भक्ति मूर्तिमान हो उठे, क्योंकि इसी के साथ वैराग्य तथा फलेच्छा रहित ज्ञान उत्पन्न होता है। इसप्रकार के धर्म से भगवत्परक तत्त्वज्ञान सहज प्राप्त होता है। तत्वज्ञान से सम्भव-असम्भव आदि संशय; संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म नष्ट हो जाते हैं।

सूतजी कहते हैं- ऋषियों आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। लोककल्याण के लिये किया है। और आपका यह प्रश्न सर्व मंगलकारी है। मैं आपको भागवत कथा और भक्ति का माहात्म्य बताता हूँ। भक्ति का माहात्म्य यह है कि भगवान कृष्ण की भक्ति करनी चाहिए, जिससे सब तापों का नाश होता है, जीवका कल्याण होता है और इनके लीला, श्रवण, गुणगान, कीर्तन गानेसे भगवत कथा का आयोजन समय समापन करना चाहिए। यह भगवत कथा क्या है? शौनकादि ऋषि पूछते है भगवन हम किसका श्रवण करें, क्या श्रवण करें?

किं श्रेय: शास्त्रसार: क: स्वावतार प्रयोजनम्। किं कर्म केऽवताराश्च धर्म: कं शरणं गत:।।

सूतजी ने बताया कि जीव का मुख्य श्रेय भगवान श्रीकृष्ण में निश्छल भक्ति उत्पन्न करना है। संसार में धर्म का प्रयोजन मोक्ष है- अर्थोपार्जन नहीं- अर्थ का उद्देश्य धर्म प्राप्त करना है सांसारिक सुख संग्रह करना नहीं। शास्त्र का सार भगवत् आराधना करना है। इसके फलस्वरूप भगवान के प्रति अनन्यता होती है जिससे बन्धन का हेतु अहंकार स्वत: ही नष्ट हो जाता है। अब जो भागवत सूतजी ने शौनकादि ऋषियोंको सुनाई है कि यह भागवत क्या है, कैसे की जाती है, कैसे सुनाई जाती है? भागवत के चरित्र क्या है? भागवत के लक्षण क्या है? और भगवान के उन चौबीस अवतारों का वर्णन क्या है? भागवत में भगवान के चौबीस अवतारों का वर्णन किया गया है और जितने उनके भक्त हुए है सदना कसाई, रांका-वांका महर, नामदेव, ज्ञानदेव, चांगदेव उन सबका वर्णन इस कथामें आया है।

सूतजी बोले, आपने ऐसा अद्भुत अलौकिक प्रश्न किया है, जिसे आपके सिवाय कोई कर ही नहीं सकता। मैं अपनी अल्पबुद्धि से जो कुछ बन पायेगा भगवान की कृपा से आपने जो पूछा वह बताऊंगा। मेरे पिता रोमहर्षण ने महर्षि व्याससे समस्त पुराणों और इतिहासों का अध्ययन किया। मैंने उसे अपने पितासे तथा व्यासनन्दन शुकसे सुना। मैं जो कुछ भी

कहूँगा उन्हींकी कृपाप्रसाद से कहूँगा। गुरु-कृपा से मनुष्य सब कुछ कर सकता है। मूक भी वक्तृता दे सकता है। पंगु भी गिरिलंघन कर सकता है। मेरे गुरु श्रीशुकदेवजी हैं। उनके चरणों की वन्दना करने के बाद भगवान नर, नारायण, नरोत्तम, सरस्वती देवी और गुरु भगवान् व्यासकी वन्दना करके आपके प्रश्नोंका यथामति उत्तर देता हूँ। सूतजी ने कहा- ऋषियों आप सब शास्त्रों में निष्णात है। सारासार के मर्म को भलीभाँति जानते हैं। आपने यह प्रश्न लोककल्याण के निमित्त किया है। और मेरे मुख से इसे संसार के सम्मुख प्रकट कराना चाहते हैं। आप मेरे मुख से कृष्णकथा कहलाना चाहते हैं। मुनियों कृष्णकथा ही सब शास्त्रोंका सार है। कृष्ण के चरणों में अहैतुकी निष्काम भक्ति हो, तो सभी इहलोक परलोक के कार्य बन जाते हैं। काम क्रोध आदि असुरों का नाश होता है। दु:खों का मूल कारण है काम। पहिले हृदय में विषयों के भोगों की कामना रहती है। विषय भोग संसार में इतने अपर्याप्त हैं, कि सभी विषय की सामग्रियाँ यदि एक ही पुरुष को दे दी जायँ, तो वे भी एक व्यक्ति की तृप्ति के लिये अपर्याप्त हैं फिर असंख्य पुरुषों की सभी वासनाएँ नित्य पूरी होती रहें यह असम्भव है। जब हमें मनोइच्छित वस्तुओंकी प्राप्ति नहीं होती तो हृदय में क्षोभ उत्पन्न होता है। वह क्षोभ ही चित्त की सभी प्रसन्नता को नष्ट कर देता है। संसार में इसीसे लोगों का चित्त सदा क्षुब्ध रहता है। सभी किसी-न-किसी चिन्ता के वशीभूत होकर चिन्तित बने रहते हैं। यदि हृदय भक्तिभाव से भरा हुआ हो, तो फिर कोई चिन्ता नहीं रहती। भगवान के भक्त सदा प्रफुल्ल चित्त बने रहते हैं। कृष्णको कोई परतत्व बताते हैं, कोई अविनाशी, अव्यक्त, अलख, अगोचर बताते हैं। ज्ञानी उन्हीं को ब्रह्म बताते हैं, योगी परमात्मा के नाम से पुकारते हैं, भक्त उन्हीं को भगवान मानकर पूजा करते हैं। वे ही धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति करा सकते हैं। यही मोक्ष से भी बढ़कर परम पुरुषार्थ है। भगवान को प्रसन्न करना वर्णाश्रम धर्म का मुख्य प्रयोजन है। जैसे मनुष्य योनि पाने के बाद जैसे भी बने, जिस उपाय से भी हो, सब ओर से मन को बलात् हटाकर एकान्त भाव से, उन भगवान कृष्णकी लीलाओं का और गुणों का निरन्तर श्रवण करें। उनके ही मधुरातिमधुर नामों का त्रैलोक्य पावन यश का कीर्तन करें। एकान्त में बैठकर, सब ओर से चित्त हटाकर, उन्हीं का ध्यान करें।

यह भगवतस्वरूपका अनुभव करानेवाला और समस्त वेदोंका सार है। संसारमें फँसे हुए जो लोग इस घोर अज्ञानान्धकारसे पार जाना चाहते हैं, उनके लिये आध्यात्मिक तत्त्वोंको प्रकाशित करानेवाला यह एक अद्वितीय दीपक है। मनुष्योंके लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति हो। जिसमें भक्ति में किसी प्रकारकी कामना न हो और आनन्दस्वरूप परमात्माका स्मरण बना रहे, उनकी भक्ति से निष्काम ज्ञान और वैराग्य का आविर्भाव हो जाता है। धर्म का ठीक-ठीक अनुष्ठान करने पर भगवान के प्रति प्रेम न हो तो निरा श्रम-ही-श्रम है। धर्मका फल मोक्ष है। अर्थ केवल धर्मके लिये होता है भोगविलास उसका फल नहीं है। भोगविलास का फल इन्द्रियों को तृप्त करना नहीं है। जीवन का फल भी तत्त्वजिज्ञासा है। बहुत कर्म करके स्वर्गादि प्राप्त करना भी उसका फल नहीं है। इस तत्वको जानने के नाम को कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा कोई भगवान के नामसे पुकारते है। अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके अनुसार मनुष्य धर्मका अनुष्ठान करते है। एकाग्र मन से भगवान का नित्य निरंतर श्रवण, कीर्तन करना चाहिए। शौनकादि ऋषियों। पवित्र तीर्थोंका सेवन करनेसे, श्रवणकी इच्छासे, श्रद्धासे भगवान कथा में रुचि होती है। यह हृदयक अशुभ वासनाओंको नष्ट कर देते है और भगवान कृष्णके प्रति स्थायी प्रेमकी प्राप्ति होती है। संसार की समस्त आसक्तियाँ मिट जाती है और हृदय आनन्दसे भर जाता है। तब भगवान्के तत्त्वका अपनेआप अनुभव होने लगता है। सब संशय मिट जाते हैं और कर्मबन्धन क्षीण हो जाते हैं। जो कृष्ण के प्रति प्रेमभक्ति करते है उसे आत्मप्रसाद की प्राप्ति होती है। प्रकृति के तीन गुण- सत्व, रज, तम इनको स्वीकार करके संसार की

स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके लिये ब्रह्मा, विष्णु और महेश यह तीन रूप है। मनुष्य का परम कल्याण तो सत्य गुण स्वीकार करनेवाले हरि से ही होता है। जो रजोगुणी अथवा तमोगुणी भक्त है वे धन, ऐश्वर्य और संतान की कामना से भूत, पितर और प्रजापतियोंकी उपासना करते है। वेदोंका तात्पर्य श्रीकृष्ण से ही है। समस्त योग कृष्णके लिये ही किये जाते है और समस्त कर्मोंकी परिसमाप्ति भी श्रीकृष्णमें ही है। तपस्या भी श्रीकृष्णकी प्रसन्नता से ही होती है और कृष्णके लिये ही धर्म का अनुष्ठान होता है। सब गतियों का अवसान श्रीकृष्ण में ही होता है। कृष्ण प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत है फिर भी अपनी माया से इस संसारकी रचना की है। प्रकृति के तीनों गुण उनकी माया के विलास हैं। कृष्ण ही समस्त योनियोंका निर्माण करते हैं और भिन्न-भिन्न रूप में प्रवेश करके उनके अनुरूप विषयोंका उपभोग करते हैं। वे ही सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करते हैं और देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि योनियोंमे लीलावतार ग्रहण करके सत्वगुणके द्वारा जीवों का पालन-पोषण करते हैं। वेद, यज्ञ, जप और तप आदि सारी क्रियाएँ इन्हीं वासुदेव का आश्रयण करती हैं, इन्हीं का प्रतिपादन करती हैं। सारे धर्मों की विश्रान्ति वासुदेव श्रीकृष्ण में ही होती है। ये ही सम्पूर्ण लोकों की रचना करते हैं और देवता, पशु-पक्षी मनुष्य आदि योनियों में लीला के लिये अवतार धारण करके सत्त्वगुण के द्वारा जीवों का पालन-पोषण करते हैं।

शौनक ऋषिने पूछा, सूतजी। सब पाप ताप भागवत सेवा से नष्ट हो जाते हैं तो भागवत सेवा से आपका तात्पर्य क्या है? भागवत सेवा किस प्रकार की जायँ? भागवत किसे कहते हैं? सूतजी बोले- भागवत से मेरा अभिप्राय है, जिसका सम्बन्ध भगवान् से हो। चराचर विश्व उनका ही रूप है। तृण से लकर पर्वत पर्यन्त, विन्दु से लेकर सिन्धु पर्यन्त, चींटी से लेकर ब्रह्म पर्यन्त, परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यंत सभी में भगवान समान रूप से व्याप्त हैं। उसके बिना किसी की सत्ता नहीं। सामान्य रूप से तो सभी के साथ भगवान का सम्बन्ध है। जो भगवान की भक्ति करते हैं वे भागवत कहाते हैं और जिन कथाओं में, जिन ग्रन्थों में, भगवान के भक्तों के तथा भगवान् के अवतार, नाम, रूप लीला धाम आदि का वर्णन है, वे भी भागवत हैं। भगवान अनेक रूप धारण करके, अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं। उनकी लीलाओं में जो उपकरण, सामग्री और जो भक्त उनकी विशेष कृपा लाभ पाते हैं, जिन परम पावन धामों में भागवत लीलायें होती हैं, अनेक दिव्य गुणों, लीलाओं के कारण भगवान् के जो जगत् पावन नाम प्रकट होते हैं, भगवान् अपने भक्तों के ऊपर अनुग्रह करके जो अनेक रूप धारण करते हैं, ये सभी भागवत हैं। इनकी कथाएँ जिस ग्रन्थ में भी हो वे भी भागवत हैं भगवान के रूप ही हैं। भक्ति ग्रन्थोंमें बहुत से अभक्तों की कथाएं भी आती हैं जैसे राजा बैंन, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कुम्भकर्ण, शिशुपाल, दन्तवक्त्र, कंस आदि। यद्यपि ये सब आचार भ्रष्ट थे, किन्तु वे सब भगवल्लीलाओं से जुड़े हुए हैं। वे परमदुष्ट भी अपनी महान दुष्टता से भगवान को अवतार लेने के लिये बाध्य कर देते हैं। उसे निमित्त बनाकर भगवान भाँति-भाँति की क्रीड़ाएँ करते हैं। उनकी दुष्टता ही लीलाओं के आधेय के लिये आधार बनती हैं। ये अपने अत्यन्त क्रूर कर्मोंसे, अत्यधिक अत्याचारोंसे अनादि, अव्यक्त, अचिन्त्य प्रभु को सर्वसाधारण के सम्मुख प्रकट करा देते हैं। इसलिये उनका चरित्र भागवत चरित्र से भिन्न नहीं हैं। भागवत-चरित्र ही है और उसका भी नाम भागवत ही हैं। भक्त अथवा भगवान का जिससे भी विशेष सम्बन्ध हो गया, उन सबके चरित्र भागवत-चरित्रों के अन्तर्गत है। बैन यद्यपि दुष्ट था, किन्तु वह भगवान के अंशावतार महाराज पृथु का पिता था। उसने ऋषि-मुनियों के साथ दुष्टता की उनके द्वारा मारा गया। पर उसका चरित्र भी भागवत-चरित्र ही है। भगवान से भक्त को श्रेष्ठ ही माना गया है। भक्त का अपना कोई संकल्प होता ही नहीं। चराचर के स्वामी उसके हृदय में बैठकर जैसी भी प्रेरणा करते हैं, जैसा भी संकल्प कराते हैं, वह तो वैसा ही करता है। भक्त भगवान से भिन्न नहीं होता। रावण, कुम्भकर्ण, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, शिशुपाल, दन्तवक्त्र यह भगवान के नित्यपार्षद थे और जय-विजय के नाम से वैकुण्ठवासी थे। ये भगवान

के यंत्र है और भगवान के शक्ति से वे प्रबल और बड़े हुए है इसीलिये उनके चरित्र भागवत-चरित्र हुए।

भागवत का मुख्य आधेय है अवतार- अवतार कथा में भक्ति-भक्त-भागवत सभी का एक साथ समावेश हो जाता है। भगवान् का अवतार दुष्टों के संहार के ही निमित्त नहीं होता। यह तो एक निमित्त मात्र है। सत्य तो यह है कि भगवान् केवल भक्तों के निमित्त ही अवतार धारण करते हैं। भगवान् का प्राकट्य केवल भक्तों को सुख देने के लिये ही है। भक्तों के भी बहुत भेद हैं। भगवान् को जो भक्त जिस भाव से भजता है, भगवान् भी उसकी उसी भाव से इच्छा पूर्ति करते हैं। भगवान् के अवतार केवल मनुष्य-योनि में ही या पृथ्वी पर ही नहीं ये देवता, तिर्यक, पशु, पक्षी सभी योनियों में अवतार धारण करते हैं। उनकी अवतार पृथ्वी पर, स्वर्गमें, ऊपर के लोकों में तथा पृथ्वी के नीचे के लोकों में भी होता है। हंसावतार, हयग्रीव अवतार सत्यलोक में हुआ। शूकरावतार महलोक में हुआ। भगवान का अनुग्रह जीव मात्र पर है। वे देशकाल के बन्धन से मुक्त हैं। सभी जीव उनके लिये समान हैं। जब जिस जाति में जन्म-ग्रहण करने की आवश्यकता अनुभव करते है तथा उसी जाति में प्रकट होकर वहाँ के जीवोंको अपनी अद्भुत दिव्य लीलाओं के द्वारा आनन्द प्राप्त कराते हैं।

वे प्रभु भूतभावन हैं, चराचर के स्वामी हैं, सबके त्राता है। ब्रह्मा रूप बनाकर वे ही प्रलय में लीन हुई प्रजा का सृजन करते हैं। वे ही विष्णु रूप धारण करके राजाओं में, देवताओं में, ऋषियोंमें अपनी शक्ति प्रदाह करके तथा नाना अवतार धारण करके, इस चराचर जगत का पालन करते हैं। अन्त में वे ही साक्षात् शिव रूप से समस्त संसार का संहार भी करते हैं। उनकी शक्ति की कोई सीमा नहीं, उनके पुरुषार्थ की कोई परिधि नहीं, उनके अवतारों की कोई गणना नहीं। वे अनादि अनंत प्रभु के अनेक रूप से कलावतार अंशावतार आवेशावतार, युगावतार आदि विविध भेदों से अवतीर्ण होते हैं। उनकी कथाओं का श्रवण ही भागवत सेवा है। इनके समस्त चरित्र भक्त और भगवान् के अवतारों के ही होंगे।

अवतार के कई भेद होते हैं जैसे- व्यूहावतार, विभु अवतार, अन्तर्यामी अवतार, अर्चावतार। इनमें मुख्य अवतार विभु अवतार होता है। इसके दो भेद हैं- मुख्य और गौड। गौड के तीन भेद होते हैं- शक्ति अवतार, आवेशावतार और विभूति अवतार। मुख्य अवतार के भी तीन भेद होते हैं- पूर्णावतार, अंशावतार और कलावतार। कृष्ण पूर्णावतार थे- कृष्णास्तु भगवान स्वयम्। ऊपर के लोक से नीचे के लोक में उतरने को अवतार कहते हैं। जैसे वाष्प आदि के रूप में अनन्त सागर से निकला जल अन्त में जाकर सागर में ही समाहित हो जाता है, विलीन हो जाता है, ऐसे ही नारायण से निर्गत सारे अवतार, प्रयोजन पूर्ण कर, नारायण में ही विलीन हो जाते हैं।

तव कथामृतं तत्पजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्। श्रवणं मंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना:।।

(आपकी कथा जीवन को अमर बनाती है, अमरत्व प्रदान करती है, तमोगुणों को दूर करती है। ये बात हम नहीं कहती हैं, बड़े-बड़े कवियों ने गाया है कि आपकी कथा सभी कल्मषों को नष्ट करती है।)

साधुजनों के सुहृद्, पुण्य श्रवण कीर्तन श्री भगवान् वासुदेव अपनी कथा सुननेवाले भक्तों के हृदय में विराजमान होकर उनकी समस्त अशुभ वासनाओं को नष्ट कर देते हैं। यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र सभी बिना प्रक्रिया समझे निष्पल हो जाते हैं।

शौनकजीने पूछा भागवत की कथा का श्रवण कैसे करना चाहिये? कहाँ करना चाहिये? किसके साथ करना चाहिये? शौनकजीके ऐसा कहनेपर सूतजीने कहा- आपने अत्यन्त उपयोगी प्रश्न पूछा। जिस पुरुष को भागवत धर्म की जिज्ञासा हो, उसको सबसे पहिले उसमें अत्यन्त रूचि का होना आवश्यक है। बिना रूचि के जो कार्य किया जाता है, उसमें रस नहीं आता और नीरस कार्य बहुत दिन तक नहीं हो सकता। विषय के भोगों को कोई शिक्षा नहीं देता। लोग उसे बिना सीखे ही जन्म-जन्मातरों के संस्कारों के अधीन होकर करने लगते हैं और धर्म की तथा जप, उपवास, सन्ध्या-वन्दन की इतनी

शिक्षा देते हैं, प्रशंसा करते हैं, पर उनमें रूचि नहीं होती। जिज्ञासु को सबसे पहिले ऐसे साधु सन्तों की सेवा करनी चाहिये, जिनका आहार ही कथा कीर्तन हो। जो कथा कीर्तन के बिना रह ही न सकें। सज्जनों की यही मोटी पहिचान है कि वे मिलकर जहाँ भी बैठेंगे, संसारी बातें नहीं करेंगे। भगवत् चर्चा करेंगे। भगवत् चर्चा किसी पुण्य प्रदेश में अनेक गुनी फलवती होती है। सब वस्तुओं पर देश का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस देश में जिस विचारों के अधिक लोग रहते हैं उस देश का वायुमण्डल भी वैसा ही बन जाता है। तीर्थ में अनादिकाल से लोगों की पवित्र भावनायें रही हैं। अधिकांश शुद्ध धार्मिक भावना ही लेकर आते हैं। निरन्तर पवित्र तीर्थों के सेवन से भी भगवत् कथाओं में रुचि बढ़ती है।

भगवान की कृपा में रूचि न होना यह पूर्व जन्म के पापों का फल है। संतोंके बीच में बैठकर बेमन से भी, बिना समझे भी कथा सुननी चाहिये। इससे धीरे-धीरे कथा में रुचि बढ़ती है और विषय भी समझ में आने लगता है।

कथा नियम से सुनना चाहिये। उसमें कभी भी प्रमाद न करें, भूल न करें। अकेले सुनने की अपेक्षा बहुत से लोगों के साथ मिलजुलकर सुनने से अधिक लाभ है। महान पुरुषों के समीप बैठकर कथा सुननी चाहिये उसका अनन्त फल हो जाता है। जिसके हृदय में भगवान् की भक्ति है उसके हृदय में सभी सद्गुण स्वत: ही आकर निवास करते हैं। दुर्वासनाओं के द्वारा मलिन हुआ मन भगवान का नाम हृदय में पहुँचने से शुद्ध होने लगता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह सब चले जाते है। सत्संग करना चाहिये इससे हृदय स्वच्छ होता है। भगवत कथा रूपी अमृत से उसका सिंचन करना चाहिये और भगवतरूपी बीज उसमें बोना चाहिये। इससे प्रेमरूपी फल उत्पन्न होगा। इससे उत्पन्न फल कितना मधुर और सुस्वाद है। इसके सेवन से चित्त में निर्मलता और प्रसन्नता रहती है। हृदयमें भगवत साक्षात्कार होनेपर सभी शोक, मोह दूर हो जाते है। सभी प्रकार के संशय छिन्न हो जाते है। जितने पापकर्म अपने आप भस्मीभूत हो जाते है। घोर अंधकार का नाश हो जाता है, पुण्यप्रकाश दशों दिशाओं में छा जाता है। किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं, परिधि नहीं, कोई दु:ख नहीं, कोई चिन्ता नहीं, कोई अप्राप्य वस्तु नहीं।

जो ज्ञान वंशकुलीन है वह वर्णाश्रम धर्म में आदरणीय होता है। अज्ञात कुलशील, परम्पराहीन ज्ञान प्राय: उपेक्षणीय समझा जाता है। जो ज्ञान का अनाधिकारी हो उसके समक्ष ज्ञान प्रकट नहीं करना चाहिए। जो जितनी योग्यता का अधिकारी हो उतना ही ज्ञान प्रकट करना चाहिये। जिस ज्ञान को सुनकर श्रोता की जिज्ञासा बढ़े वही बात उसको विस्तारपूर्वक बतानी चाहिये। भगवान वासुदेव की कथा का स्वाद जिसे एक बार लग गया, वह दूसरी कुत्सित कथाओं के बारे में नहीं सुनेगा। फिर वह संसारी विषयों का चिन्तन नहीं करेगा। संसार के समस्त प्राणी अपने पाप और पुण्य के कर्मानुसार सुख और दु:ख भोग रहे हैं। संसार में बहुत से प्राणी पूर्व जन्मोंके पापोंसे निर्धन हैं, दु:खी हैं, नाना व्याधियों से ग्रस्त हैं, भयंकर रोगोंसे पीड़ा पा रहे हैं। बहुत से सुकृत, पुण्यात्मा पुरुष उनकी पीड़ा से दु:खी होकर दयावश उनके दु:ख अन्न, वस्त्र का प्रबन्ध करते है। औषधि उपचार आदि की व्यवस्था करते हैं। दु:खियों के दु:ख दूर करने के निमित्त स्वयं कष्ट उठाते हैं और उन्हें सुखी बनाते हैं। वेदव्यास का हृदय द्रवीभूत हो गया। वे सोचने लगे इन प्राणियों का उद्धार कैसे हो। समस्त इन्द्रियों के विषय जड़ हैं। यदि ये जीव इसी प्रकार जड़ की चिन्ता में निमग्न रहा तो अन्त में उसे पशु-पक्षी, कीट, पतंग, लता, वृक्ष आदि जड़ योनियों में जाना पड़ेगा। जड़ योनियों में स्वयं साधन करने की सामर्थ्य नहीं रहती। साधकयोनि तो मनुष्य योनिमें ही है। साधन इसी मानव शरीर से हो सकता है। उन्होंने जीवन पर कृपा करके भक्ति के मार्ग को बतानेवाले इस अनुपम भागवत शास्त्र की रचना की। इसमें समस्त शास्त्रों का सार भर दिया। यह शास्त्र लिख देनेपर उन्हें चिंता हुई कि यह किसको पढ़ाया जाये। अनाधिकारी को पढ़ाना व्यर्थ है। उनके सभी शिष्योंने कहा, हमें पढ़ाइये पर व्यासजीने किसी की प्रार्थना स्वीकार नहीं की और कह दिया तुम

इसके अधिकारी नहीं हो। इसी बीच उनके पुत्र शुकदेव प्रकट हुए और राजा जनक से प्रमाणित परीक्षण कर उसे उत्तम अधिकारी मानकर व्यासजीने कृष्ण कथा को उन्हें पढ़ाया।

एक बार महर्षि व्यासने अपने पुत्र शुक को अंतिम दीक्षा के लिए राजा जनक के पास भेजा। शुक आए और राजभवन के द्वार पर निर्विकार भाव से खड़े हो गए। काफी देर बाद एक व्यक्ति ने एक आसन रख दिया। शुक उस पर बैठ गए। दो दिन तक बाहर ही बैठे रहे। किसी ने उनसे यह तक नही पूछा कि किससे मिलना है, क्या काम है। पर शुक इत्मीनान से बैठै रहे। तीसरे दिन एक मंत्री आया और उन्हें राजभवन के अंदर ले गया। वहां भी उन्हें कई दिनों तक अकेले रहना पड़ा। वहां उन्हें सभी राजसी सुख-सुविधाएं दी गईं तब भी उनके व्यवहार में कोई अंतर दिखाई नहीं दिया। जैसे पहले थे वैसे अब भी थे। अंत में एक मंत्री उन्हें राजा जनक के पास ले गया। जनक ने उन्हें पानी से लबालब एक कलश देते हुए कहा, इसे लेकर राजभवन के सात चक्कर लगाओ। एक बूंद भी छलकने न पाए। शुक ने कलश लेकर राजभवन का चक्कर लगाया, फिर जनक के पास जाकर कहा, महाराज, आप के आदेशानुसार एक बूंद भी पानी नहीं छलका। उनके चेहरे पर संतोष का भाव दिखाई दिया। जनक ने कलश लेते हुए कहा- बेटा, व्यास मुनि ने जिस दीक्षा के लिए तुम्हें भेजा है, वह पूरा हो गया है। तुम्हें अब और ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। शुक ने कहा, पर मैंने तो ऐसा कुछ किया ही नहीं जिससे आपको मेरा आकलन करने का अवसर मिलता। जनक ने कहा- मैं एक सप्ताह से तुम्हारी परीक्षा ही ले रहा था। मैंने देखा कि कुछ और सुख दोनों दशा में तुम्हारे अंदर किसी तरह का भाव उत्पन्न नहीं हुआ। तुमने अपने व्यवहार से सिद्ध कर दिया कि मोह-माया, क्रोध, लोभ, अहंकार और सुख-दुख आदि सभी विकारों पर तुमने विजय प्राप्त कर ली है। मन की एकाग्रता ही अंतिम दीक्षा है। मुझे विश्वास है कि तुम भी अपने पिता की तरह समाज की सेवा अच्छी तरह करोगे।

अवधूत शुकदेवजीने सारातिसार रहस्य शास्त्र को गंगा के किनारे दुखी बैठे हुए राजर्षि महाराज परीक्षित को सात दिन में सुनाया। ब्राह्मण के शाप से शापित अन्न जल का परित्याग किये हुए महाराज परीक्षित ने यह शास्त्र श्रद्धा और संयम के साथ सुना। सम्राट परीक्षित ने ही नहीं बल्कि उनके साथ सभी देशोंसे जो ऋषि-मुनि पधारे थे उन्होंने भी धर्मात्मा राजा के साथ बैठकर सुने। उसी समय यह शास्त्र सूतजीने भी शुकदेवजीसे सुना। वही शास्त्र, वही कथा भागवत कथा मैं आप सब ऋषियों के सामने निवेदन करूँगा।

बिना भागवत के तथा उनके भक्तों के चरित्रों का श्रवणगान किये कोई इस भवसागर से पार नहीं जा सकता, यह सर्व सम्मत सिद्धान्त है। भगवान् की अवतार कथाएँ मनुष्य के हृदय को स्वच्छ, मल रहित बना देती है। सूतजी बोले, हे ऋषियों। आप धन्य है। जो संासर सभी विषयों से पराङ्मुख होकर इस परम पावन पुण्य भूमि में बैठकर श्रीकृष्ण-कथा श्रवण करने में लगे हुए हैं। भगवान के अवतारों की लीलाओं का प्रश्न करनेवाला और कथन करनेवाला दोनों ही धन्य है। इस जिव्हा की यही एक सबसे बड़ी सार्थकता है, कि यह श्रीकृष्ण-कथा का श्रवण करें और हरि की लीलाओं का श्रद्धा के साथ श्रवण करें।

२) सनकादिक ऋषियों का प्रथम अवतार (ज्ञानावतार)

दिव्य, दिगम्बर फिरें सबहिं सम जगमें जिनकूँ। पाँच पर्षकेसदा जरा व्यापे नहिं तिनकूँ।।
राग द्वेषतें दूरि ऊर्ध्वरिता व्रतधारी। अव्याहत गति रहें सकल जीवन हितकारी।।
सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार कुमार वर। मन तिन पद पंकजनिकी, रज श्रद्धातें धारि सिर।।

सबसे पहले उन्होंने अज्ञानकी पाँच वृत्तियाँ- तम (अविद्या), मोह (अस्मिता), महामोह (राग), तामिस्र (द्वेष) और अन्धतामिस्र (अभिनिवेश) रचीं। किंतु इस अत्यन्त पापमयी सृष्टिको देखकर उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई। तब उन्होंने अपने

मनको भगवान्‌के ध्यानसे पवित्र कर उससे दूसरी सृष्टि रची। सृष्टिके प्रारम्भ में ब्रह्माजीने जैसे ही रचनाका प्रारम्भ करना चाहा, उनके संकल्प करते ही उनसे चार कुमार उत्पन्न हुए- सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार। ब्रह्माजीने सहस्त्र दिव्य वर्षोंतक तप करके हृदयमें भगवान शेषशायीका दर्शन पाया था। भगवान्‌ने ब्रह्माजीको भागवतका मूलज्ञान दिया था। इसके पश्चात ही ब्रह्माजी मानसिक सृष्टिमें लगे थे। ब्रह्माजीका चित्त अत्यन्त पवित्र एवं भगवान्‌में लगा हुआ था। उस समय सृष्टिकर्ताके अन्त:करणमें शुद्ध सत्त्वगुण ही था, फलत: उस समय जो चारों कुमार प्रकट हुए, वे शुद्ध सत्त्वगुणके स्वरूप हुए। उनमें रजोगुण तथा तमोगुण था ही नहीं। न तो उनमें प्रमाद, निद्रा, आलस्य आदि थे और न सृष्टिके कार्यमें उनकी प्रवृत्ति ही थी। ब्रह्माजीने उन्हें सृष्टि करनेको कहा तो उन्होंने सृष्टिकर्ताकी यह आज्ञा स्वीकार नहीं की। विश्वमें ज्ञानकी परम्पराको बनाये रखनेके लिये स्वयं भगवानने ही इन चारों कुमारोंके रूपमें अवतार धारण किया था। कुमारोंकी जन्मजात रुचि भगवान्‌के नाम तथा गुणका कीर्तन करने, भगवान्‌की लीलाओं का वर्णन करने एवं उन पावन लीलाओंको सुननेमें थी। भगवान्‌को छोड़कर एक क्षणके लिये भी उनका चित्त संसारके किसी विषयकी ओर जाता ही नहीं। ऐसे सहज स्वभावसिद्ध विरक्त भला कैसे सृष्टिकार्यमें लग सकते थे?

उनके मुखसे निरन्तर हरि:शरणम् यह मंगलमय मन्त्र निकलता रहता है। वाणी इसके जपसे कभी विराम लेती ही नहीं। चित्त सदा श्रीहरिमें लगा रहता है। इसका फल है कि चारों कुमारोंपर कालका कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे सदा पाँच वर्षकी अवस्थाके ही बने रहते हैं। भूख-प्यास, सर्दी-गरमी, निद्रा-आलस्य कोई भी मायाका विकार उनको स्पर्श तक नहीं कर पाता। कुमारोंका अधिक निवास-धाम जनलोक है- जहाँ विरक्त, मुक्त, भगवद्भक्त, तपस्वीजन ही निवास करते हैं। उस लोकमें सभी नित्यमुक्त हैं। परन्तु वहाँ सब-के-सब भगवान्‌के दिव्य गुण एवं मंगलमय चरित सुननेके लिये सदा उत्कण्ठित राहते हैं। वहाँ सदा-सर्वदा अखण्ड सत्संग चलता ही रहता है। किसीको भी वक्ता बनाक वहाँके शेष लोग बड़ी श्रद्धासे उसकी सेवा करके नम्रतापूर्वक उससे भगवान्‌का दिव्य चरित सुनते ही रहते हैं; परतु सनकादि कुमारोंका तो जीवन ही सत्संग है। वे सत्संगके बिना एक क्षण नहीं रह सकते। मुखसे भगवन्नामका जप, हृदयमें भगवान्‌का ध्यान, बुद्धिमें व्यापक भगवत्तत्त्वकी स्थिति और श्रवणोंमें भगवद्गुणानुवाद बस, यही उनकी नित्यकी दिनचर्या है।

चारों कुमारोंकी गति सभी लोकोंमें अबाध है। वे नित्य पंचवर्षीय दिगम्बर कुमार इच्छानुसार विचरण करते रहते हैं। पातालमें भगवान शेषके समीप और कैलासपर भगवान शंकरके समीप वे बहुत अधिक रहते हैं। भगवान शेष एवं शंरकजीके मुखसे भगवान्‌के गुण एवं चरित सुनते रहनेमें उनको कभी तृप्ति ही नहीं होती। जनलोकमें अपनेमेंसे ही किसीको वक्ता बनाकर भी वे चरित-श्रवण करते हैं। कभी-कभी किसी परम अधिकारी भगवद्भक्तपर कृपा करनेके लिये वे पृथ्वीपर भी पधारते है। महाराज पृथुको उन्होंने ही तत्त्वज्ञानका उपदेश किया। देवर्षि नारदजीने भी कुमारोंसे श्रीमद्भागवतका श्रवण किया। अन्य भी अनेक महाभाग कुमारोंके दर्शन एवं उनके उपदेशामृतसे कृतार्थ हुए हैं। भगवान विष्णुके द्वाररक्षक जय-विजय कुमारोंका अपमान करनेके कारण वैकुण्ठसे भी च्युत हुए और तीन जन्मोंतक उन्हें आसुरी योनि मिलती रही।

सनकादि चारों कुमार भक्तिमार्गके मुख्य आचार्य है। सत्संगके वे मुख्य आराधक हैं और कीर्तनके परम प्रेमी हैं। श्रवणमें उनकी गाढतम निष्ठा है। ज्ञान, वैराग्य, नाम-जप एवं भगवच्चरित्र सुननेकी अबाध उत्कण्ठाका आशर्द ही उनका स्वरूप है।

इस बार ब्रह्माजीने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार- ये चार निवृत्तिपरायण ऊर्ध्वरेता मुनि उत्पन्न किये। अपने इन पुत्रोंसे ब्रह्माजीने कहा, पुत्रों। तुमलोग सृष्टि उत्पन्न करो। किंतु वे जन्मसे ही मोक्षमार्ग (निवृत्तिमार्ग) का अनुसरण

करनेवाले और भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर थे, इसलिये उन्होंने ऐसा करना नहीं चाहा। जब ब्रह्माजीने देखा कि मेरी आज्ञा न मानकर ये मेरे पुत्र मेरा तिरस्कार कर रहे हैं, तब उन्हें असह्य क्रोध हुआ। उन्होंने उसे रोकनेका प्रयत्न किया। किंतु बुद्धिद्वारा उनके बहुत रोकनेपर भी वह क्रोध तत्काल प्रजापतिकी भौंहोंके बीचमेंसे एक नील-लोहित (नीले और लाल रंगके) बालकके रूपमें प्रकट हो गया। वे देवताओंके पूर्वज भगवान् भव (रुद्र) रो-रोकर कहने लगे- जगत्पिता। विधाता। मेरे नाम और हरनेके स्थान बतलाइये।

३) भगवान के अन्य अवतार

सनक सनंदन सनातन, चौथे सनत्कुमार, ब्रह्मचर्य धारण किया, हुआ प्रथम अवतार।
वराहरूप धरके प्रभु, हिरण्याक्ष को मार, पृथ्वी लाये दाढ़ पे, हुआ द्वितीय अवतार।
नारदमुनि के रूप में भक्ति करी प्रचार, ब्रह्मचर्य व्रत में रहे, हुआ तृतीय अवतार।
नर नारायण रूप धर, उत्तराखंड मंझार, अटल तपस्या कर रहे, हुआ चतुर्थ अवतार।
कपिल रूप में आपने, करा साँख्य विस्तार, माता की मुक्ति करी है, है पंचम अवतार।
दत्तात्रेय के रूप में, नृप, यदु को उद्धार, चौबीस गुरु वर्णन किये, ले षष्टम अवतार।
स्वयज्ञ होय त्रैलोक्य की पीड़ा हरी अपार, हरि नाम तब से हुआ, है सप्तम अवतार।
ऋषभ रूप धरके प्रभु, परमहंस व्रत धारे, बन अग्नि में तन तज्यो, है अष्टम अवतार।
हयग्रीव हो स्वांस से, कीन्हे वेद तैयार, वेद-प्राणी प्रगट करी, हुआ नवम अवतार।
पृथु रूप में पृथ्वी को, वश में की करतार, सकल वस्तु दोहन करी, हुआ दशम अवतार।
मच्छ रूप को धार के, शंखासुर को मार, सत्यव्रत को ज्ञान दे, एकादश अवतार।
कच्छप हो प्रभु पीठ पे, मन्दराचल को धार, हुआ समुद्र मंथन तभी, है द्वादश अवतार।
धनवन्तरी के रूप में, अमृत घट कर धार, क्षीर समुद्र प्रगटे हरि, त्रयोदश अवतार।
मोहनी रूप धारण किया, देवों के हितकार, अमृत दिया पिलाय के, चतुर्दशा अवतार।
नृसिंहरूप धरि भक्तिहित, हिरणाकुश को मार, राज दिया प्रहलाद को पंचादश अवतार।
वामन हो बलिराज का, गर्व किया संहार, तीन लोक दिये इन्द्र को, है षोडश अवतार।
हंस रूप प्रगटे स्वयं ब्रह्मा के हितकार, ब्रह्मचर्य, तप, धर्म, कह सप्तदशा अवतार।
परशुराम हो क्षत्रि को मारा इक्कीस बार, कुरुक्षेत्र तीरथ किया, अष्टादश अवतार।
व्यासरूप में वेद का ग्रहण किया तब सार, पुराण अठारह है रचे, उन्नीसा अवतार।
रामचन्द्र रावण हन्यों, खलदल कर संहार, रहे धर्म मर्याद पर, हुआ विंश अवतार।
कृष्ण रूप में धर्म रख, हरा सकल भूभार, अर्जुन को गीता कही, एकविंश अवतार।
बलभद्र ने मारयो द्विविद, खेंची यमुना धार, तीरथ व्रत सबही किये, द्विविंश अवतार।
बुद्ध होय मोहित किये, देव शत्रु संहार, करा खंड पाखंड को, त्रयोविंश अवतार।
कल्कि रूप में धर्म हित, लेंगे प्रभु अवतार, दुष्ट नृपति मारे हरि, चतुर्विंश अवतार।
भगवद् अवतारावली, पठन करे चित धार, सुख सम्पत्ति पावै सदा, उतरे भव से पार।

अवतारके कई भेद होते हैं- कोई पूर्ण होता है, कोई अंश होता है, कोई कुछ कला होता है, कोई आवेश होता है, कोई स्फूर्ति होती है, कोई गुणावतार होता है, कोई वेदावतार होता है और कोई अर्चावतार होता है।

वे अमोघ लीलाधारी श्रीहरि इस अखिल विश्व ब्रह्माण्डों को रचते हैं, पालन करते हैं और अन्त में संहार भी कर लेते हैं, किन्तु स्वयं उसमें तनिक भी आसक्त नहीं होते। वे अपने आप में ही स्वाधीनता से स्थिर रहनेवाले आत्मतन्त्र भगवान् सब प्राणियों के अन्त:करण में स्थित होकर, ज्ञानेन्द्रिय और मन के जो ६ विषय हैं उनका अनासक्त भाव से भोग करते हैं, क्योंकि वे उन सबके नियन्ता हैं। भगवान अवतार कब लेते हैं, जब उनके भक्तों पर विपत्ति पड़ती है, भक्तों के दुखी होने से भगवान दुखी होते हैं, क्योंकि भक्त तो उनकी आत्मा हैं। भगवान और सब कुछ सह सकते हैं, किन्तु भक्तों के दु:खसहन करने में वे असमर्थ हैं। भक्तों के सन्ताप से उनका नवनीत के सदृश कोमलातिकोमल हृदय पिघल जाता है। उस समय उन्हें भी सन्ताप होता है। भगवान के सन्तप्त होने पर विश्व सन्तप्त हो जाता है, क्योंकि वे विश्वमय हैं, विश्व उनसे भिन्न नहीं, चराचर की अन्तरात्मा में वे ही रम रहे हैं। अवतार भक्त की भावना का साकार सजीव व्यक्त रूप हैं।

मनुष्य का ईश्वर को पाने का भक्ति भाव से हृदय भरा हुआ हो जब उन्हें करुण भाव से पुकारता है उस समय ईश्वर अवतार धारण करते है।

भाव बिना सूनी पुकारें, मैं कभी सुनता नहीं। भावपूरित टेर ही, करती मुझे लाचार है।।
भाव बिना सब कुछ भी दे डाले, तो मैं लेता नहीं। भाव से इक पत्र भी, होता मुझे स्वीकार है।।
भाव का भूखा हूँ मैं, और भाव ही इक सार है। भाव से मुझको भजे, तो भव से बेड़ा पार है।।

वे पालते समय विष्णु बन जाते हैं, संहार करते समय शिव हो जाते हैं। अपने कार्यों के लिये ये ही देव जब विशेष-विशेष अवसरों पर विशिष्ट रूप रखते हैं, तब ये ही अवतार कहलाते हैं। सामान्यतया जितने मनु आदि प्रजापति हैं, सभी सृष्टि बढ़ाने के निमित्त ब्रह्माजी के अवतार हैं। इन्द्र, देवता, ऋषि, मनुष्य, मनुपुत्र आदि रूपों से सृष्टि का पालन करते हैं, अत: ये सब विष्णु के अवतार हैं तथा मन, काल आदि संहार करनेवाले सब रूद्र के अवतार हैं। फिर भी भगवान् भक्तों के निमित्त और भी अनेक रूप धारण करते हैं, अत: वे सब विष्णु भगवान् के अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार, युगावतार आदि नामों से विख्यात हैं। जैसे जीव अनन्त हैं, ब्रह्माण्ड अनन्त हैं, वैसे ही अवतार भी हैं। सब अवतारों का कारण धर्म का संस्थापन ही है। सृष्टि की जो अधिष्ठात्री देवी पृथ्वी उसे तो असुर पाताल में ले गयी। अत: उसकी रक्षा के लिये ब्रह्माको विष्णु की शरण में जाना पड़ा। पृथ्वी की रक्षा करने के लिये भगवान् ने सूकर रूप धारण किया और पाताल से पृथ्वी का उद्धार करके उसे जल पर स्थापित किया। इसी कारण यह वाराह अवतार हुआ।

बन्धन के कारण कर्म ही हैं। नैष्कर्म्म की प्राप्ति अकाम निष्काम होने से होगी। मनुष्य एक क्षण भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। इसलिये हरिने देवर्षि नारद के रूप में अवतीर्ण होकर पञ्चरात्र भक्तिशास्त्र का प्रचार-प्रसार और प्रवचन किया। जो कर्म बन्धन के कारण न होकर संसार से मुक्त होने का कारण होता है उनके द्वारा भगवद्-भक्ति की प्राप्ति होती है।

संसार मे कामदेव को विश्व विजयी कहा गया है। शिवजी ने इसको भस्म किया पर विजय करके नहीं। क्रोध के द्वारा उसे अशरीरीभर कर दिया। बिना क्रोध के तो निरन्तर तपस्या में रत रहने से प्रबल पराक्रमी शत्रु भी जीता जा सकता है। इसी आदर्श को संसार के सामने रखने के लिये भगवान ने धर्म की पत्नी मूर्ति के गर्भ से नर और नारायण दो रूपों से अवतार, मन और इन्द्रियों के निग्रह का मार्ग बताया तथा कठिन तपस्या करके काम पर विजय प्राप्त की।

इस विश्व-ब्रह्मांड में जितने तत्व है उनका सांख्यशास्त्र भगवान ने कपिल रूप से अवतार लेकर विश्व में प्रचार किया। वह कृतयुगावतार हैं। प्रत्येक सतयुग में अवतीर्ण होकर ज्ञान का प्रसार करते हैं।

परम अवधूत रूप से भगवान ने महर्षि अत्रि की पत्नी अनुसूया के गर्भ से उत्पन्न होकर प्रह्लाद, अलर्क आदि को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया। सहस्त्रार्जुन को विद्या और वरदान दिये। दत्तात्रेय अवतार में अनसूया के ही तप से वर माँगने प्रकट हुए। स्वायंभुव मन्वन्तर में भगवान यज्ञ नाम से प्रकट हुए। रुचि प्रजापति की पत्नी आकूति के गर्भ से अवतीर्ण होकर मनु पद पर प्रतिष्ठित होकर पूरे मन्वन्तर तक त्रिलोकी का शासन किया।

जब लोग गृहस्थ धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ समझकर उसी में आसक्त हो गये और परमहंस मार्ग की ओर से लोगों की रुचि कम हो गई, तब स्वयं श्रीहरि ऋषभ रूप में अवनि पर अवतरित हुए। उन्होंने दिगम्बर रहकर जीवनमुक्त दशा को सब के सम्मुख दर्शाया और प्राचीन परमहंस मार्ग की प्रतिष्ठा की। यह अवतार अज्ञजनों को भ्रम में डालनेवाला तथा विज्ञ जनों को मोक्ष मार्ग बतानेवाला हुआ।

राजा वेन के अधर्म से ऊबकर पृथ्वी ने समस्त बीज व औषधि अपने गर्भ में छिपा लिये। संसार भूख से दु:खी होने लगा। पृथ्वी भी ऊबड़-खाबड़ सम-विषम थी। तब भगवान ने पृथु रूप धारण करके पृथ्वी को अपने पराक्रम से समतल बनाया। उसमें से अन्य औषधियों को दुहकर प्रजा का पालन किया। पृथ्वी उर्वरा हो गयी। पृथु की पुत्री होने से यह धरा पृथ्वी कहलायी। उन्होंने इस पृथ्वी पर ग्राम, मण्डल, नगरोंका निर्माण किया।

जब वेदों को असुर हर ले गये तब भगवान ने जलचर जीव का रूप धारण करके सत्पर्षियों और मनु को प्रलय की बाढ़ से बचाया। असुरोंको मारकर हयग्रीव अवतार धारण किया और वेदों का उद्धार किया। मनु सत्यव्रत को महा प्रलयका दृश्य दिखाया और उस समय हरिने मत्स्यावतार लिया।

एक बार देवता श्रीविहीन हो गये। उस समय प्रभु ने क्रीडा के लिये मनोरंजन के लिये अपनी भक्तवत्सलता के लिये बड़ी-बड़ी माया रचीं। यह लीला इतनी अद्भुत हुई कि उसने चार अवतार धारण किये। असुरों को राजनीति से समयानुकूल सन्धि करके समुद्र मथने की सम्मति दी। गरुड़ पर चढ़कर मन्दराचल को मथानी बनाकर क्षीरसागर में मंथन किया और मन्दराचल के आधार के लिए कछुए का रूप धारण कर कच्छप अवतार धारण किया। क्षीरसागर से अमृत मंथन हुआ और उसमें से अमृत निकाला। धन्वतरि के रूप में अमृत कलश लेकर प्रभु निकले और धन्वतरि का अवतार धारण किया और अपनी युक्ति से प्रमदा का ऐसा रूप बनाया और सुर-असुरों को अमृत का विभाजन किया। उन्होंने मोहिनी रूप अवतार धारण किया।

ब्रह्मा के वरदान को सत्य करने के लिये तथा अपने भक्त प्रल्हाद की रक्षा करने के निमित्त प्रभु आधे शरीर से नर और आधे शरीर से सिंह का रूप बनाकर नृसिंह रूप में अवतरित हुए।

राजा बलि बड़े धर्मात्मा थे। असुरों में विजयी होकर इन्द्रासन पर बैठ गये। इन्द्र को शासन दिलाने के लिये भगवान वामन बन गये। वामन अवतार से बलि को पाताल का राजा बनाया और इन्द्रको स्वर्ग का।

बहुत से क्षत्रिय ऐश्वर्य पाकर मदोन्मत्त हो गये और वे अपनी मानवता को भूल गये। क्षत्रिय अत्याचार करने लगे। भगवान ने फरसा हाथमें उठाकर परशुराम अवतार धारण किया और क्षत्रिय उनके भयसे काँपने लगे। उन्होंने २१ बार पृथ्वीको क्षत्रिय विहीन कर दिया।

प्रत्येक त्रेता में धर्म की रक्षा के लिये और असुरों का संहार करने के निमित्त भगवान् रामरूप से अवतरित हुए हैं। यह त्रेता का युगावतार इतना सौम्य, सरल, सच्चा, सुन्दर, साहसी, सतोगुणी, स्नेहभरित है।

द्वापर के अन्त में मनुष्य अल्पायु, अल्पज्ञान, शौच सदाचार से हीन हो जाते हैं तथा महान् ज्ञान को धारण करने में असमर्थ हो जाते हैं तब हरि प्रत्येक द्वापर के अन्त में व्यासरूप से अवतीर्ण होते हैं। वेदों का व्यास करते हैं। पुराणों की रचना करते है। समस्त ज्ञान को सरलता के साथ लौकिक भाषा में प्रकट करते हैं। ऐतिहासिक कथाओं का ज्ञान कराते है। इन्हीं व्यासने पंचमवेद महाभारत का निर्माण किया।

वृष्णि-वंश में रामकृष्ण रूप से दोनों अवतार साथ-ही-साथ हुए। बलराम तो पृथ्वीपर शेषके अंशावतार हैं। कृष्ण को नर-नारायण का अवतार कहा जाता है। कृष्ण तो साक्षात् परब्रह्म है। उनका अवतार पूर्णअवतार है। अपने नित्यलोक में जो लीला करते थे, उन्हीं सब लीलाओं को अपने समस्त परिकर के साथ आकर प्रकट रूप से कुछ क्षणों के लिये श्रीवृन्दावन धाम में किया।

जब अधर्म को धर्म की आड़ में असुर करने लगे, पाप को पुण्य की पोशाक पहिनाकर इन्द्रियों की तृप्ति में मनुष्य लगने लगे, ब्राह्मणों का वेष बनाकर दैत्य मान-प्रतिष्ठा और इन्द्रिय लोलुपता के लिये मिथ्या यज्ञ में प्रवृत्त होने लगे, तब भगवान ने बुद्ध नाम से अवतार धारण किया। बुद्ध के युग में पाली भाषा में ईश्वर को इस्सर कहा जाता था। इसका अर्थ सबका स्वामी। बुद्धने ब्रह्म, आत्मा व उसके पुनर्जन्म को स्वीकार नहीं किया, उसी प्रकार उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व को भी नहीं माना। बुद्ध के अनुसार ज्ञान प्राप्त करनेके प्रत्यक्ष व अनुमान दो ही प्रमाण होते हैं। इन दोनों से सिद्ध नहीं होता कि वेदोंका रचयिता ब्रह्म था। पर बुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिसे आस्तिक थे, क्योंकि वे जगत के अस्तित्व पर विश्वास करते थे और हमेशा इसके कल्याण के बारेमें सोचते थे। उन्होंने देखा कि प्रत्यक्ष व अनुमान से जगत्, प्रकृति, मनुष्यों आदि को देखा जा सकता है, उनके अस्तित्व पर विश्वास किया जा सकता है। वे जगत के कल्याण के लिए अपना पूर्ण जीवन समर्पण किये। उन्होंने वेदांतियों की तरह जगत को मिथ्या व स्वप्नवत बताकर उनकी अवहेलना नहीं कि बल्कि जीवों को हिंसा से बचाने, उनके विकास व संरक्षण एवं प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने के लिए जीवन भर प्रयास किया। बुद्ध ने मानव कल्याण का प्रयास जीवन भर किया। महात्मा बुद्ध अनुभवीत चार आर्य सत्य- १) संसार दु:खमय है, २) दु:ख का कारण-तृष्णा। ३) दु:ख का विनाश संभव है- तृष्णा का निरोध, प्रतिकार। ४) दु:ख विनाश का उपाय- सम्यक मार्ग, उचित दृष्टि, उचित संकल्प, उचित वचन, उचित कर्म, उचित जीविका, उचित प्रयत्न, उचित स्मृति, उचित समाधि।

जब घोर कलियुग आता है, धर्म का लेश भी नहीं रहता, सर्वत्र अधर्म, अत्याचार, स्वार्थ और व्यभिचार का बोलबाला है, तब उस अधर्म का नाश करने के निमित्त भगवान कल्कि-रूप धारण करते हैं। वह कलियुग का युगावतार है।

इसके अतिरिक्त ध्रुव पर कृपा करनेवाले ध्रुव विष्णु, गज को ग्राह से छुड़ानेवाले हरि विष्णु, हंसावतार विष्णु हयग्रीवावतार, इस प्रकार भगवान के अनंत अवतार है। जितने ऋषि, मनु, देवता, मनुपुत्र, पराक्रमी राजा, प्रजापति सभी भगवान के अंशावतार हैं। सभी में उन्हीं हरि का अंश प्रविष्ट होकर त्रैलोक्य में पालन कार्य कर रहा है।

जहाँ से ये कला और अंश निकलते हैं, वे श्रीकृष्ण तो परात् पर परिपूर्ण स्वयं भगवान हैं। उनकी अवतारों में गणना नहीं, वे तो सब अवतारों केअवतारी हैं। उनके अंश और कला से प्रकट हुए अवतार दैत्यों को दमन और असुरों का संहार करते हैं। ये अवतार प्रत्येक युग में, प्रत्येक मन्वन्तर में उत्पन्न होते हैं। सब अवतारों के कार्य पृथक् होते हैं। अपने कार्य को करके वे अन्तर्धान हो जाते हैं। कई कार्यों के लिये कभी-कभी कई अवतार एक साथ भी प्रकट होते हैं। महाभारत के

समय कई अवतार एक साथ हुए- नर अवतार, नारायण अवतार, बलराम अवतार, व्यासावतार, श्रीकृष्णावतार। इनके अतिरिक्त परशुराम, कपिल, नारद, कुमार- ये सब विद्यमान थे, अब भी हैं। सबका कार्य-क्षेत्र पृथक है, किन्तु श्रीकृष्ण का कोई कार्य नहीं। वे तो क्रीड़ा करते रहते हैं। कभी-कभी अनुग्रह सृष्टि के जीव इस पृथ्वी पर अत्यधिक हो जाते हैं, तो उनके ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त स्वयं साक्षात् रूप से इस धराधाम पर अपनी लीला को प्रकट करके दिखा देते हैं। सब उसे देखने के अधिकारी भी नहीं। जिनका कर्म बन्धन कट गया है, जो उनकी नित्य लीला में सम्मिलित होने के अधिकारी हो गये हैं, जिन्हें उनके परिकर में प्रवेश करने की योग्यता प्राप्त हो गयी हैं, वे ही महाभाग इस प्रकट लीला के दर्शन के अधिकारी होते हैं। वैसे उनके अपने लोक में तो ये लीलाएँ नित्य ही होती हैं। भावुक भक्त भगवद्-अनुग्रह से भावना द्वारा भगवान् की इन लीलाओं का नित्य ही आस्वादन करते हैं।

हैं कुमार, बाराह, कपिल, नारद अवतारा। नर नारायण, ऋषभ, दत्त, पृथु, यज्ञ अपारा।।
धन्वन्तरि, नरसिंह, मत्स्य, कच्छप, वामन, हरि। परशुराम, श्रीराम व्यास, बलराम, रूपधारी।।
कला अंश सम्भव सकल, शुभ अवतार महान् हैं। कृष्ण स्वयं भगवान् हैं, सबके आदि निधान हैं।।

भागवत कथा में भगवान के चौबीस अवतारों का पहला अवतार भगवान का ज्ञानावतार सनकादिक ऋषियोंका हुआ है। चार सनकादिक ऋषि पांच-पांच वर्षकी उमर में हरिओम शरणम का नित्यप्रतिदिन पाठ करते है, ब्रह्माके मानस पुत्र है, यह ज्ञानावतार है, इनका पहला ज्ञानावतार सनकादिक ऋषियोंका हुआ है।

दूसरा अवतार भगवान का वाराह अवतार हुआ। तीसरा अवतार उनका यज्ञ भगवान का हुआ। चौथा अवतार नारद का हुआ। पाँचवा अवतार उनका ऋषि दत्तात्रय का हुआ। इस तरह से उनके विभिन्न-विभिन्न चौबीस अवतार नरसिंह, वामन, राम अवतार, कृष्ण अवतार, वेदव्यास, कला, युगावतार, अंशाअवतार है इस तरह के अवतारों का सूतजीने वर्णन किया है। यह अवतार कैसे, कब, किस प्रकार हुए है। इस तरह से चौबीस अवतारोंकी कथा है।

सृष्टिके आदिमें भगवानने लोकोंके निर्माणकी इच्छा की और उन्होंने महतत्त्व आदिसे पुरुष रूप ग्रहण किया। इसमें दस इन्द्रिया, एक मन और पाँच भूत ये सोलह कलाएँ हुए। जलमें शयन करते हुए योगनिद्राका विस्तार किया और नाभिके सरोवरसे कमल प्रकट हुआ। उस कमलसे प्रजापतियोंके अधिपति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उन्होंने विराट रूप धारण किया और उनके अंग-प्रत्यंग में समस्त लोकोंकी कल्पना की गयी। भगवान्का विशुद्ध सत्त्वमय श्रेष्ठ विराट रूप भी है। भगवानके रूपमें हजारों पैर, जाँघें, भुजाएँ और मुखोंके कारण अत्यन्त विलक्षण है। भगवान का यह नारायण स्वरूप अनेक अवतारोंका अक्षय कोष है। इसी रूपसे भगवान के सभी अवतार पशु-पक्षी, मनुष्य योनियों की आदि सृष्टि होती है। उसी प्रभुने पहले कौमारसर्गमें सनकादि विषयोंके रूपमें अवतार ग्रहण किया। दूसरी बार संसारके कल्याणके लिये उसी प्रभुने रसातलने गयी हुई पृथ्वीको उबारने के लिए सूकररूप ग्रहण किया। तीसरा अवतार देवर्षि नारद के रूप में ग्रहण किया। उनके ज्ञानसे कर्मबन्धनसे मुक्ति मिलती है। चौथा अवतार उन्होंने मूर्तिदेवीके गर्भसे नर-नारायण के रूपमें ग्रहण किया। इस अवतारमें उन्होंने ऋषि बनकर इन्द्रियोंका संयम करकर बड़ी कठिन तपस्या की। पाँचवा अवतार स्वामी कपिल के रूप में प्रकट हुए और तत्त्वोंका निर्णय करनेवाले सांख्यशास्त्रोंकी स्थापना करी। छठे अवतार में अनसूयाके वर माँगनेपर अत्रिके सन्तान दत्तात्रय हुए और उन्होंने अलकएवं प्रल्हादको ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया। सातवा अवतार रूचि प्रजापतिकी कन्या आकूतिसे यज्ञके रूपमें ग्रहण किया और स्वायम्भुव मन्वन्तरकी रक्षा की। आठवां अवतार नाभिकी पत्नी मेरु देवीके गर्भसे ऋषभदेवके रूपमें ग्रहण किया और उन्होंने जैन धर्मकी स्थापना की। नवां अवतार राजा पृथुके

रूपमें हुआ। इस अवतार में उन्होंने समस्त औषधियों और बीजोंका दोहन किया और पृथ्वीको समतल बनाया। दसवां अवतार चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें महाप्रलय हुई तब मत्स्यके रूपमें मत्स्यावतार ग्रहण किया और पृथ्वीरूपी नौकापर बैठकर अगले मन्वन्तरके अधिपति वैवस्वत मुनिकी रक्षा की। ग्यारहवां अवतार जिस समय देवता और दैत्य समुद्र-मंथन कर रहे थे, उस समय भगवान ने कच्छपरूप धारण कर मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया। बारहवां अवतार समुद्र मन्थन के समय धन्वन्तरिके रूपमें अमृत लेकर समुद्रसे प्रकट हुए और तेरहवां अवतार मोहिनीरूप धारण करके दैत्योंको मोहित किया। चौदहवें अवतार में उन्होंने नरसिंहरूप धारण किया और दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी छाती फाड़कर उसका वध किया। पंद्रहवा अवतार वामन रूप धारण करके भगवान दैत्यराज बलिके यज्ञमें गये और तीन पग पृथ्वी मांगी। सोलहवां अवतार परशुराम अवतार हुआ जो २१ बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया जो क्षत्रिय ब्राह्मणोंके द्रोही हो गये और उनपर अत्याचार करने लगे। सत्रहवें अवतार में निशाद कन्या सत्यवतीके गर्भसे पराशरजीके पुत्र श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासके रूपमें अवतीर्ण हुए और वेदोंकी स्थापना करी। अठारवां अवतार रामावतार हुआ और बहुतसे लीलाएं कर मर्यादाओंकी स्थापना की। उन्नीसवां और बीसवां अवतार उन्होंने यदुवंशमे बलराम और श्रीकृष्णके नामसे प्रकट किया। २१ वां अवतार बुद्ध अवतार हुआ। कलियुगके अन्त में विष्णुयश नामक ब्राह्मणके घर में कल्किरूपमें २४ वां अवतार लेंगे। इसी परमब्रह्मने हंस और हयग्रीव अवतार भी लिये।

ऋषि, मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र जितने भी है वे सब भगवान के ही अंश है जब यह पृथ्वी अत्याचार से व्याकुल हो उठती है तब-तब युग-युगमें अनेक रूप धारण करके भगवान उनकी रक्षा करते है। पंचभूतोंका स्थूल रूप जिसमें आत्माका प्रवेश होता है वह जीव कहलाता है और इसीका बार-बार जन्म होता है। सूक्ष्म और स्थूल शरीर में ही अविद्या से ही आत्मा आरोपित होती है। जिस समय आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाता है यह आरोप दूर हो जाता है और ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। जिस समय परमेश्वरकी माया निवृत्त हो जाती है उस समय जीव परमानन्दमय हो जाता है और अपने स्वरूप को पहचान लेता है। भगवान का वास्तव में जन्म भी नहीं है और कर्म भी नहीं है, इसलिये इस तत्त्वज्ञान को जानना जरूरी है। भगवानकी लीला अमोघ है। वे अपनी लीलासे ही संसारका सृजन, पालन और संहार करते हैं, किंतु स्वयं इसमें आसक्त नहीं होते। मनके नियंता के रूप में ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंसे विषयोंको ग्रहण करते है पर उनमें लिप्त नहीं होते। भगवान को तर्कसे नहीं जाना जाता उनकी शक्ति और पराक्रम अनन्त है जिसका कोई पार नहीं पा सकता। वे जगतके निर्माता होनेपर सर्वथा परे हैं। भगवान व्यासने ही भागवत नामका पुराण बनाया है। इसकी रचना की और अपने पुत्रको ग्रहण कराया। इसमें सारे वेद और इतिहासोंका सार संग्रह किया गया है जो शुकदेवजीने राजा परीक्षितको सुनाया।

उन्हीं भगवान् ने प्रथम सनकादि कुमारों के सर्ग में स्थित होकर ब्राह्मण वेष बनाकर अखण्ड ब्रह्मचर्य वाले दुष्कर व्रत का पालन किया।

४) महर्षि व्यासका परिचय और उनकी व्याकुलता

शौनकादि ऋषिने पूछा- हे सूतजी। यह भागवती कथा किस युग में प्रकट हुई, किस स्थान पर प्रकट हुई, किस कारण से प्रकट हुई। महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास ने किसकी प्रेरणा से इस संहित की रचना की। सूतजी ने कहा- ऋषियों, सबसे पहले यह कथा श्री व्यासने बनायी और अपने पुत्र शुकदेव को पढ़ायी। शुकदेव मुनिने विप्र शाप से ग्रसित राजा परीक्षित को उसके कल्याण के लिये सुनायी। शौनकजी बोले, सूतजी आप तो सभी वक्ताओं में विशारद है। वक्तृत्व शक्ति भी आपमें

प्रबल है। आप कुशल वक्ताओं में से हैं। आपके पिता समस्त पुराण और शास्त्रों के वक्ता थे, बुद्धिमान थे, अत: आपका विन्दु-कुल बड़ा ही पवित्र है। आप योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। शुकदेव मुनि स्वयं परम विरक्त, महान ज्ञानी और अद्वितीय भागवद् भक्त है। आप शुकदेवजी के शिष्य हैं, इससे आपका नाद कुल भी परम पावन है। इन दोनों सम्बन्ध से आप कुलीन है। कुलीन पुरुष चाहे धनहीन और गुणों से रहित भी क्यों न हो वह वन्दनीय होता है। शील ही मनुष्य की शालीनता का द्योतक है। शील गुण अधिकांश से वंश-परम्परा से प्राप्त होता है। कुलीन पुरुष के सम्मुख की हुई याचना विफल नहीं होती। इसलिये हमें आप हितकारिणी, श्रीकृष्ण स्वरूप धारिणी, कलिमलहारिणी बद्ध प्राणियों को तारनेवाली विरक्त ज्ञानी मुनियों के भी मन को हरनेवाली भागवती कथा विस्तृत रूप से सुनाएं। इसकी रचना कहांपर हुई, क्यों हुई, कब हुई और किसलिये हुई। वैसे तो सभी कार्य ईश्वरेच्छा, दैवेच्छा से ही होती हैं। भगवत इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता, स्वेच्छा से किया हुआ कर्म, परेच्छा से किया हुआ कर्म और दैवेच्छा से किया हुआ कर्म अलग-अलग होते हैं। दुर्योधन ने स्वेच्छा से जुआ खेला और वनवास की अवधि समाप्त होनेपर पाण्डवोंका राज्य नहीं लौटाया। यह उसकी स्वेच्छा से की हुई कार्य थी। अर्जुन युद्ध करना नहीं चाहता था। वह अपने कुल परिवार का विनाश नहीं चाहता था और राज्य की अपेक्षा भिक्षा वृत्ति को स्वीकार करने को तैयार था परन्तु कृष्ण की प्रेरणा ने उसे युद्धमें प्रवृत्त किया। महाभारत का युद्ध कराया, शत्रुओं का संहार कराया, पाण्डवों को एकछत्र सम्राट बनाया। जो कार्य दूसरों के द्वारा प्रेरित करने पर किये जाये वे परेच्छा कर्म कहलाते हैं। जिस कर्म को हम स्वयं तो करना नहीं चाहते किन्तु परिस्थितियों से विवश होकर हमें करना पड़े, प्रारब्धवश उसमें प्रवृत्त होना पड़े, उन कार्योंको दैवेच्छा कर्म कहते हैं। वैसे कुमारीअवस्था में कुन्ती गर्भ धारण करना नहीं चाहती थी, किन्तु दैवेच्छा से गर्भ धारण करना पड़ा।

शुकदेव मुनि तो अवधूत थे, त्यागी-वैरागी थे। जन्म से ही संसारी विषय-वासनाओंसे उदासीन, परमहंस वृत्ति के थे। वे १६ वर्ष के उम्र तक इस संसार के बन्धनों से भयभीत होकर गर्भ में ही रहे और उस गर्भस्थ शिशु शुक को भगवान ने आश्वासन दिया कि तुम्हें संसार की माया व्याप्त न होगी। तभी शुकदेव मुनि गर्भसे बाहर निकले। गर्भसे निकलते ही वानप्रस्थ की ओर प्रस्थान कर गये। व्यासजी उनके लौकिक, वैदिक संस्कार करना चाहते थे किन्तु शुकदेव ने उन कर्मोंका अनुमोदन नहीं किया। वे उन सभी संस्कारों को बिना कराये ही, नग्नावस्था में वन को चले गये। और व्यासजी पुत्र-शोक से दु:खी होकर हा पुत्र, हा पुत्र कहकर उनके पीछे-पीछे चले गये किन्तु उन्होंने मुड़कर भी नहीं देखा। फिर उन्होंने भागवत कथा कैसे पढ़ी?

जब वे नग्नावस्था में, स्वान्त सुख में मग्न हुए वन की ओर प्रस्थान कर गये तब महर्षि व्यास भी उनके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। उन्होंने गंगा मे स्नान करते हुए स्वर्ग की ललनाओं को देखा। वे संपूर्ण वस्त्र उतारकर पुण्य तोया अलकनन्दा केकिनारे नग्न होकर स्नान कर रही थी। जब उनके सामने से परम रूप यौवन सम्पन्न १६ वर्षीय दिगम्बर शुक निकले, तो वे उसी तरह हँसती हुईं, नाना भाँति की जलक्रीड़ा करती हुई बिना किसी शील-संकोच के स्नान करती रही। शुकदेवने देवांगनाओं को भी देखा पर उनके मन में कोई विकार नहीं उठा और आनन्द में मग्न होकर आगे निकल गये। पर जब महर्षि व्यास उधर से निकले तो उन रमणियों ने लज्जा से अत्यन्त ही अस्त-व्यस्त अवस्था में अपने वस्त्र धारण किये और अपने सभी अंगों को ढक लिया। व्यासजी यह दृश्य देखकर परम चकित हुए और वे सोचने लगे- यह स्त्रियाँ मेरे पुत्र परम रूप यौवन सम्पन्न को नग्नावस्था में देखकर भी स्नान करती रहीं और मुझ वृद्ध को वस्त्र पहने हुए देखकर ये बड़ी लज्जावाली बन

गयी। यह उनके लिये अपमान था। उन्होंने उस रमणियों से पूछा- इधर से मेरा पुत्र गया। क्या तुमने उधर जाते हुए उसे देखा? तब वे सब ललनायें लज्जा के साथ बोली- हां महर्षि। हमने उन महाभाग को जाते हुए देखा है। थोड़ी दूर आगे गये होंगे। महर्षि व्यासने पूछा- पुत्रियों यदि तुम बुरा न मानो तो एक बात पूछूँ? मेरा पुत्र परम रूपवान है, युवावस्था सम्पन्न हैं, उसके सभी अंग सुड़ौल है, नग्नावस्था में है। जब वह तुम्हारे सामने से निकला, तब तुमने किसी प्रकार का शील संकोच नहीं किया। अनावृत स्नान करती रही, जलक्रीड़ा करती रही और जब मैं वृद्ध पुरुष सब वस्त्रोंसे परिपूर्ण आपके सम्मुख आया तो आप लोगोंने मुझसे लज्जा की इसका क्या कारण है? मैं तो वृद्ध तुम्हारे पिता के समान हूँ। सत्शास्त्रों में पारंगत, धर्म का व्यवस्थापक हूँ, मुझपर भी तुम लोगोंने संदेह किया इसका क्या कारण है मुझे बताओ? तब उन रमणियों ने कहा- हमने जो कुछ किया महर्षि वह नारी सुलभ स्वाभाविक लज्जा के ही वशीभूत होकर किया। स्त्री कैसी भी क्यों न हो? उसमें शील, संकोच, लज्जा होनी ही चाहिए। लज्जा होती है, विकार की सम्भावना में। जहाँ विकार की सम्भावना नहीं वहाँ कैसी लज्जा। आप में और आपके पुत्र में इतना ही अन्तर है, कि आपने जो सांसारिक सुख भोगा है। आप जानते है कि स्त्री भोग्या होती है। किन्तु आपका पुत्र संसारी सुखों से सर्वथा अपरिचित है। उसके मन में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है। आप जानते हैं कि स्त्रियाँ किसी-न-किसी की पत्नियाँ होती है। और पर पत्नी से संसर्ग करना पाप है। जब किसीको स्त्री-पुरुष का भेद होने लगता है फिर चाहे वह सगा पुत्र या भाई क्यों न हो स्त्रियाँ उससे लज्जा करने लगती है। आपका पुत्र तो स्त्री-पुरुष का भेदभाव ही नहीं जानता इसलिये हम नि:शंक स्नान करती रही। उनके आँखों में और मन में कोई विकार और भेदभाव नहीं था। इसी कारण हमने आपके पुत्रसे लज्जा नहीं की। व्यासजी सोचने लगे- मेरे पुत्र के हृदय में कोई उद्वेग नहीं। समस्त प्राणियों के हृदय में समत्व भाव देखता है। मेरा पुत्र कितना निर्विकार है। भेदभाव से रहित, समदृष्टि है। मेरा पुत्र सर्व भूतात्मा, सभी प्राणियों में अपने को देखता है। समस्त भूतोंके अन्तरात्मा, ज्ञान-वैराग्य से सम्पन्न है।

शौनकादि ऋषियोंने पूछा- परीक्षित और शुक का सम्वाद कहाँ और कैसे हुआ? शुकदेवजी एक ही स्थान पर सारा दिन कैसे बैठे रहे वो तो गृहस्थियों के घरोंमें केवल भिक्षा लेने जाते हैं और वहाँ भी उतनी ही देर ठहरते है जितनी देर में एक गो दुही जाती है। इन गृहस्थियोंके घरमें आधि-व्याधि का तांता लगा रहता है। यदि इन घरोंमें महात्मागण, सिद्ध पुरुष, अवधूत और ज्ञानी भिक्षाके लिये न आवें तो यह कैसे पवित्र हो। नहीं तो पृथ्वी नरक के समान बन जाएं। सूतजी बोले, गृहस्थियोंपर दया करके ही शुकदेव उनके द्वारपर जाते हैं कोई उनका सत्कार करें कोई तिरस्कार। दोनोंमें समान भाव रखकर नारदजीकी तरह घूमते रहते है।

शौनकजीने पूछा- महाराज परीक्षित पाण्डवोंके पौत्र, अभिमन्यु पुत्र गंगा किनारे आमरण अनशन करके बैठे थे। राजा बड़े धर्मात्मा, कुलीन, वंशानुरूप थे। उन्होंने पाण्डवोंकी कीर्ति को देश व्यापिनी बनाया था। उन्होंने अश्वमेध आदि बड़े-बड़े यज्ञ किये, चारों दिशाओं को विजयी किया और अपने साम्राज्य को बढ़ाया। उनका शरीर सुन्दर, निरोग, रूपवान और दिव्य था। उनकी रानी इरावती पतिव्रता, वीर, कुलीन और सत्स्वभाव की थी। उनके पुत्र जनमेजयादि सभी सुयोग्य, पितृभक्त, सर्वगुण सम्पन्न, शूर और सच्चरित्र थे। वे परोपकारी थे। उनका राज्य समुद्र पर्यंत, कलियुग के वे शास्ता थे। उनका एक छत्र साम्राज्य था, सर्वत्र अप्रतिहत आज्ञा थी। इन सब पदार्थों के मोह को तृणवत तोड़कर इस सर्वगुण सम्पन्न, सर्वोपयोगी शरीर को उन्होंने त्याग दिया। उनका जन्म किस प्रकार हुआ? वे तो ब्राह्मणोंके परम भक्त थे। श्रृंगी ऋषिने उन्हें क्यों श्राप दिया? यह सब हमें सुनानेकी कृपा करें? आप तो धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास और जो भी आख्यान है उन सबमें आप भलीभाँति निष्णात् हैं।

सुत-अभिमन्यु नृपाल उत्तराके सुखदाता। पांडुवंशके बीज, दीन दुखियनके त्राता।।
चिन्तामणिके सरिस सबनिकी चिन्ता नासत। कल्पवृक्षकी भाँति सबनिकूँ पोषत पालत।।
भरत खंडकी प्रजाको, सुत समान पालन किये। न्यासभूत निज देहकूँ, तृण समान ज्यों तजि दियो।।

यह कथा महाभारत के इर्द-गिर्द घूमती है। कृष्णद्वैपायन महर्षि व्यास है। महर्षि व्यास का परिचय, यह महर्षि व्यास कौन है? गुरु वशिष्ठ ब्रह्मा के मानस पुत्र है। इनका एक जन्म ब्रह्माके मानस पुत्र में हुआ और दूसरा जन्म इनका मित्र और वरूण नामके दो ऋषियोंसे, उर्वशी के मोहवश वीर्य स्खलन हो जाने पर इनका एक कुंभ के अन्दर जो वीर्य स्खलन हुआ उनसे कुंभस्थ अगस्त्य मुनि का जन्म हुआ इसके बाहर जो उर्वशी को देखकर वीर्य स्खलन हुआ उससे वशिष्ठ का जन्म हुआ। इनके दो जन्म की कथा आती है। क्योंकि इनके एक जन्म में निमि का श्राप लग गया था इनको। इस तरह के इनके दो जन्म है। यह महर्षि वशिष्ठ पहले जन्म के। जो त्रेता युग में रामजीके पुरोहित रहे। कुल पुरोहित जिनको कहते है उनके एक पुत्र हुए शक्ति। इस शक्ति को जंगल में किसी घूमते हुए एक शेर ने पकड़ लिया और उनकी मृत्यु हुई। वशिष्ठजी के सौ अन्य पुत्र थे जिनको राजर्षि विश्वामित्र ने मार दिया। आपसकी लांगडाँट लेकिन शक्ति मरने के पहिले उनकी पत्नी उर्जस्वी (अदृष्यंती) से एक पुत्र उत्पन्न हुआ पराशर मुनि। यह पराशर मुनि तपोबल, तपोनिष्ठ इतना देश तप कि सूर्य की गति को रोक दे ऐसे थे पराशर मुनि। पर काम इतना बुरा है देखिए जिसने विश्वामित्र की तपस्या भंग कर दी मेनका के आने से। मोहिनी रूप धारण कर लिया था भगवान नारायण ने शंकर की तपस्या भंग कर दी। जिसने कामको जीत लिया था वह कामसे मोहित होकर और एक नादानोंकी जैसी लीलाका उद्घाटन किया ऐसा रहस्य किया। एक यह पराशर मुनि जिनका तपोबल इतना उनकी अपनी पत्नी उसी एक योनिमें से विधाताका जन्म हरिका जन्म होता है और उसी योनिसे एक ऐसे-ऐसे राजाओंका जन्म हुआ। दूषित राजाओंका जो कलंक बन गया कुरुवंशका।

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग- इस चतुर्युगी के तीसरे द्वापर में पराशर मुनि के वीर्य से वासवी (सत्यवती देवी) से भगवान् विष्णु के अंशभूत योगिवर्य महर्षि व्यास का जन्म हुआ। शुकजी बोले- शौनकादि ऋषियों यह जीव अपने ही किन्हीं कर्मों के अनुसार ऊंच-नीच योनियों को प्राप्त होता है। प्रारब्ध का यही चक्र है। दैव की यही विडम्बना है, लीलाधारी की यही लीला है, मायापति की यही माया है। अचिन्त्यनीय प्रभु की क्रियाएं समझ में नहीं आती। वे ऐसे कुतूहल पूर्ण संसार का निर्माण क्यों करते हैं? यह कर्म चक्र ही संसार को चला रहा है। ये पाप पुण्य ही अनेक योनियों में जीव को भ्रमा रहे हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक तीन तरह के पाप पुण्य प्रद होते हैं। उनका परिणाम सुख-दु:ख में होता है। संसार बनता है, बिगड़ता है। सृष्टि की उत्पत्ति होती है, उसका विनाश होता है। फिर नई सृष्टि आती है। इसी तरह यह सृष्टिका चक्र चल रहा है। यह सृष्टि संकल्प के द्वारा ही बनी है। संकल्प से ही बढ़ती है और संकल्प से ही विलीन होती है। देवता, पितर, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य सभी संकल्प से उत्पन्न होते हैं। वही संकल्प जब स्थूल रूप धारण करके प्रकट होता है, तो उसे काम कहते हैं। काम संकल्प का ही पुत्र है। पहिले सृष्टि बिना मैथुन के संकल्प मात्र से ही होती थी। अब प्राणी काम के वशीभूत होकर मैथुन में प्रवृत्त होकर मैथुनी सृष्टि करने लगे।

वेदव्यास- भगवान विष्णु के अवतार। भगवान विष्णु सत्रहवें अवतार में सत्यवती के गर्भ से महर्षि पराशर के द्वारा व्यास के रूप में अवतीर्ण हुए। उस समय लोगों की समझ और धारणाशक्ति कम देखकर उन्होंने वेदरूपी वक्ष की कइ शाखाएं बना दीं।

मुनिवर पराशर ने मैत्रेय मुनि से कहा- हे महामुने। वेदरूपी वृक्ष के सहस्त्रों शाखा- भेद हैं। उनका विस्तार से वर्णन करने में तो कोई भी समर्थ नहीं है। अत: प्रत्येक द्वापरयुग में भगवान विष्णु व्यास के रूप में अवतरित होते हैं और संसार के कल्याण के लिए एक वेद के अनेक भेद कर देते हैं। मनुष्यों के बल, वीर्य और तेज को स्वल्प और सीमित जानकर वे समस्त प्राणियों के हित के लिए वेदों का विभाजन करते हैं। जिस शरीर के द्वारा प्रभु एक वेद के अनेक विभाग करते हैं, भगवान मधुसूदन की उस मूर्ति का नाम वेदव्यास है।

पराशरनंदन ने देखा कि प्रत्येक युग में धर्म का एक-एक पाद लुप्त होता जा रहा है, मनुष्यों की आयु और शक्ति क्षीण होती जा रही है, क्रमश: युग की दयनीय अवस्था होती जा रही है- ऐसा देखकर उन्होंने वेद और ब्राह्मणों पर अनुग्रह करने की इच्छा से वेदों का विस्तार (व्यास) कर दिया। अत: व्यास नाम से उनकी प्रसिद्धि हो गई।

वैशंपायनजी कहते हैं- जनमेजय। तुम कृष्ण द्वैपायन व्यास को इस भूतल पर नारायण का ही स्वरूप समझो। भला, भगवान के अतिरिक्त दूसरा कौन महाभारत का कर्ता हो सकता है?

पितृलोक में बहुत से नित्य पितर हैं, उन्हीं पितरों में अग्निष्वात्ता नाम के पितर थे। उन पितरों का अच्छोद नामक पितर था। उसी पितर से एक मानसी कन्या उत्पन्न हुई। वह बड़ी रूपवती, गुणवती और धर्मपरायणा थी। पितरों ने उसका नाम अच्छोदा रखा। अच्छोदा ने यह समझकर अपना मन तपस्या में लगाया। संसार में तप ही सार है। अनेक दिव्य वर्षों से हजार वर्ष तक तपस्या करती रही। उनमें एक अमावसु नाम के पितर अत्यन्त रूपवान थे। उनके दिव्य रूप को देखकर अच्छोदा के मन में विकार उत्पन्न हुआ। विकार उत्पन्न होने के कारण वह योग से भृष्ट हो गयी। उसका दिव्यलोक से पतन हुआ, किन्तु वह वहाँ से गिरकर अन्तरिक्ष में ही ठहर गयी। उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम अमावस्या हुआ। यह अमावस्या का दिन पितरों के निमित्त किया जाता है और इस दिन श्राद्ध करनेपर श्राद्ध का फल अक्षय होता है। ब्राह्मण लोग अमावस्या के दिन पितरों के निमित्त दर्श-यज्ञ करते हैं।

अन्तरिक्ष में स्थित उस अच्छोदा कन्या ने अपने उद्धार के लिये पितरों से उपाय पूछा- पितरों ने कहा, चाहे मानसिक कर्म हो या शारीरिक इसका फल तो तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा। अत: तुम्हें अठाइसवें द्वापर के अन्त में पृथ्वीपर हीनयोनि में जन्म लेना पड़ेगा। एक मत्स्य के उदर से तेरा जन्म होगा, अकुलीन वंश में तेरा पालन-पोषण होगा। फिर तेरे गर्भ से भगवान के अंशावतार व्यासका जन्म होगा। सो वही अच्छोदा कन्या आगे चलकर सत्यवती के नाम से इस धराधामपर उत्पन्न हुई। द्वापर युग में एक बड़े ही धर्मात्मा, पराक्रमी, वसु नाम के राजा से उत्पन्न हुई। ऋतुस्नान के पश्चात्त सन्तान की कामना करनेवाली रानी अपने पतिके अनुरूक्ता थी। राजा भी उसे बहुत चाहते थे। उसी दिन दैवयोग से राजा को कर्त्तव्यवश घोर वनमें जाना पड़ा। राजा वनमें तो चले गये पर उनका मन अपनी रानी में लगा रहा। वनमें वे थक गए और एक वृक्ष की छाया में विश्राम कर रहे थे। अपनी रानी की चिन्ता करते-करते कुछ निद्रित से हो गये। उसी अवस्था में उनका वीर्यस्खलित हो गया। उन्होंने अपने वीर्यको एक दोना में रख दिया। पास में ही एक श्येन पक्षी बैठा था। श्येन पक्षी उसे उड़ा ले चला। जब वे पक्षी उस दोने को लेकर आकाश मार्गमें उड़ रहा था वह दौना यमुना के जलमें गिर पड़ा और एक मछली उसे निगल गयी। राजऋषि का वीर्य तो अमोघ था। वह मछली के पेट में एक कन्या बन गया। दैवगति से होनहार से वह मछली मल्लाहों के जाल में फँस गयी और उसके गर्भ से उसे एक सुन्दरी दिव्य कन्या प्राप्त हुई। मल्लाहों के राजा निषाद दासराज ने उसे अपनी पुत्री मानकर पाला-पोसा और उसका नाम सत्यवती रखा। इसीसे वह दासराज की पालिता पुत्री कहलायी। सत्यवती सभी को बड़ी प्रिय थी। उसका स्वभाव सरल संकोची था। उसका रूप-लावण्य

अद्वितीय था। वह मृत्युलोक की कन्या प्रतीत नहीं हो रही थी। लगता था कि पुण्यक्षीण होने पर कोई देवलोक की कन्या या विद्याधरी पृथ्वी पर गिरायी गयी है। उम्र के साथ-साथ उसका सौन्दर्य, यौवन और भी निखर पड़ा।

अद्रिका नाम से प्रसिद्ध एक सुंदर अप्सरा ब्रह्मा के शाप से मछली होकर यमुना के जल में रहती थी। नरेश उपरिचर वसु के सत्त्व को संयोगवश उसने ग्रहण कर लिया था। एक दिन उसे एक मछुआरे ने पकड़ लिया। उसके उदर से दो मानव शिशु उत्पन्न हुए। दो बच्चों को जन्म देकर और शापमुक्त होकर मछली पुन: सुंदर अप्सरा का रूप धारण करके स्वर्गलोक को चली गई। एक बालक बाद में मत्स्य नामक प्रसिद्ध राजा हुआ। दूसरी संतान कन्या थी। राजा के आदेश से उस मछुआरे ने ही उसका पालन-पोषण किया। मत्स्यरूपधारिणी अप्सरा की पुत्री होने के कारण उस कन्या के शरीर से मछली की गंध आती थी। मछुआरों के आश्रय में रहने के कारण वह पवित्र मुसकानवाली कुछ काल तक मत्स्यगंधा नाम से ही प्रख्यात रही।

मुनिवर पराशर के वरदान से सत्यवती के शरीर से जो उत्तम सुगंध निकलती थी, एक योजना दूर के मनुष्य भी उस दिव्य सुगंध का अनुभव करते थे। इसी कारण सत्यवती का एक नाम योजनागंधा भी हो गया।

पिता निषादराज चाहते थे यह संसार में अद्वितीय रूप-लावण्यमयी है। किसी सम्राट की राजरानी होने योग्य है। उसकी एक मात्र यही कामना थी, पिता चिंता मे मग्न था। पुत्री को धन मिले, सुख मिले, सन्तान मिले, सुन्दर पति मिले-सब मिले; किंतु शील पहिले मिले। सब न मिले और शील मिले तो भी उसे स्वीकार है। वह दिन-रात नौका खेती थी। वह यमुना के पावन पुलिनों में नौका चलाती थी। निभृत निकुंजों में बैठकर पक्षियों के साथ खेलती। उसका अह्लड़ स्वभाव और भी अधिक अह्लड़ हो गया। उसका मन कुछ अव्यक्त भाषा बोलना चाहता था। यमुना के इस पार से उस पार यही उसका संसार था। यमुना किनारे फूस की झोपड़ी और उसका वृद्ध पिता यही उसका समस्त परिवार था। एक दिन सायंकाल वशिष्ठ पौत्र घाट पर पराशर मुनि आये। दासराज ने मुनिका यथोचित सत्कार किया। पराशर मुनिने कहा मैं यमुना पार करना चाहता हूँ। दासराज निषाद ने अपनी पुत्री को आज्ञा दी कि ऋषिवर को पार पहुँचाओ। अपने पिता की आज्ञा मानकर वह ऋषिको यमुना पार उनके आश्रम में पहुँचाने चली। उसके सौन्दर्य को देखकर ऋषि मन-ही-मन मुग्ध हो गये और मनमें विकार आ गया और पूछने लगे- बालिके। लोगोंको पार उतारने में तुम्हें बड़ा श्रम करना पड़ता होगा। सत्यवती बोली- महर्षि। यह हमारा पैतृकधंधा है। मुनि थोड़ी देर चुप रहे और फिर सोचकर बोले- इसमें श्रम बहुत है और परिणाम थोड़ा। मैं तो तुम्हें एक ऐसा पुत्र प्रदान करूँगा जो लोगों को सदा-सर्वदा के लिये संसार सागर से पार उतारता रहे। सत्यवती का मुख लज्जा से गड़ गया और हाथ जोड़कर बोली- प्रभो। मैं तो कुमारी कन्या हूँ और अपने पिता के अधीन हूँ फिर पुत्र कैसा? महर्षि बोले- तुम डरो मत। हमारा कहा अमोघ होता है। मेरे तप के प्रभाव से तुम्हारा कन्याभाव दूषित नहीं होगा। सत्यवती ने डरते-डरते कहा- कन्या भाव न भी दूषित हो तो लोकापवाद तो होगा ही। मुनि बोले- तुम्हारा पुत्र भगवान का अंशावतार होगा। तुम यशस्विनी और जगत्वन्द्या लोकमाता कहलाओगी। उसी समय मुनिने यमुना के बीच एक टापू में कमलवन में सत्यवती के साथ गर्भाधान संस्कार किया। मुनिकि शक्ति अपरिमित थी। वे सत्य संकल्प थे। उसी द्वीप में महर्षि वेदव्यासजीका अवतार हुआ। व्यासजी के शरीर कृष्णवर्ण का था इसलिये उनका नाम कृष्ण हुआ। और द्वीप में उत्पन्न होने से द्वैपायन कहलाये। वेदोंका विस्तार करने से वेदव्यास कहलाये। उत्पन्न होते ही उन्होंने अपनी माता से कहा- मेरी रूचि तपस्या में है। आपकी आज्ञा हो तो मैं तपस्या के लिये गन्धमादन पर्वत पर जाऊँ। माता बोली- मैं जानती थी कि तुम संसार के मोहबन्धन में नहीं फँसोगे। तुम प्राणियों का उद्धार करोगे, बहुसागर से पार उतारोगे। चूहे का पुत्र बिल ही खोदेगा। तपस्वी का पुत्र तपस्या में ही लगेगा। भगवती गंगा तुम्हारी माता के समान

रक्षा करे। देवी सरस्वती तुम पर स्नेह प्रकट करें। तुम्हारा मंगल हो। सभी वन के देवी-देवता तुम्हारी रक्षा करें। पर जाते समय मुझे एक वरदान दे जाओ मैं जब भी तुम्हें स्मरण करूँ तुम सब-कुछ छोड़-छाड़कर मेरे पास चले आओगे। महर्षि व्यासने कहा- मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आप जिस समय भी मुझे स्मरण करेगी मैं अपने योगबल से उसी समय आपके समक्ष आपकी सेवामें उपस्थित रहूँगा और वे अपनी जननी की चरणवन्दना करके गन्धमादन पर्वत पर नर-नारायण के सान्निध्य में सम्याप्रास के आश्रम में घोर तपस्या करने चले गये। इसप्रकार वासवी सत्यवती देवी को भगवान् व्यासजीकी जननी होने का जगत्वन्द्य पद प्राप्त हुआ। मछली के गर्भ से उत्पन्न होनेसे वह मत्स्यगन्धा कहलायी। पद्मवनमें भगवान पराशर के साथ गर्भाधान किया कमलों की विद्य सुगन्ध आने से पद्मयोजन गन्धा नामसे भी प्रसन्न हुई। सत्यवती का विवाह कालान्तर में महाराज शान्तनु के साथ हुआ। उसी योनि से शान्तनु से चित्रांगद, विचित्रवीर्य इन दो कुमारों का जन्म हुआ। यही व्यासजीका कथा वृत्तांत है।

लोक विश्वास के अनुसार भारत में ज्यादातर ऋषियों और मुनियों का जन्म पूर्णिमा को ही हुआ है। जैसे श्रावणी पूर्णिमा को वेदमाता गायत्री का जन्म, आश्विन पूर्णिमा को महर्षि वाल्मीकि का जन्म, कार्तिक पूर्णिमा को नानक का जन्म, माघ पूर्णिमा को संत रविदास जयंती, चैत्र पूर्णिमा को हनुमान जयंती, वैशाख पूर्णिमा को बुद्ध जयंती, ज्येष्ठ पूर्णिमा को कबीर का जन्म। इसी प्रकार आषाढ़ पूर्णिमा को वेदव्यास की जयंती मनाई जाती है।

इसी दिन महर्षि पाराशर के संकल्प और माता सत्यवती के गर्भ से वेदव्यास का जन्म हुआ था। किसी द्वीप पर पैदा होने के कारण तथा कृष्ण (काला) वर्ण होने के कारण उनका नाम द्वैपायन कृष्ण पड़ा। लेकिन कृष्ण का एक अर्थ साहित्य की भाषा में गुप्त भी होता है; जैसे जन्म के पश्चात उन्होंने किस स्थान पर तप किया, किस मंत्र का जाप किया, इस विषय में कुछ भी जानकारी नहीं है। या संभव है कि पाराशन और सत्यवती के समागम, व्यास के गर्भाधान और उनके जन्म की बात सामान्य जनों को मालूम नहीं रही हो और इस अर्थ में उन्हें गुप्त (कृष्ण) कहा गया हो।

द्वैपायन कृष्ण के जन्म का प्रसंग दूसरे कई अर्थों में भी अर्थपूर्ण है। उनकी माता सत्यवती एक दलित कन्या थी, एक मल्लाह की बेटी। और पाराशर ब्राह्मण थे। दोनों के संसर्ग से उत्पन्न संतान जैसा विद्वान हिंदू ऋषि परंपरा में दूसरा नहीं हुआ। यह वर्ण व्यवस्था का नकार था, क्योंकि वेद व्यास को महानत्म प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, और आज भी गुरु के रूप में उन्हीं की पूजा की जाती है। वेदव्यास जी का जन्म हीन जाति में हुआ। मदद करनेवाला, पढ़ानेवाला कोई नही था। अपनी प्रज्ञा से, तपस्या से, पौरुष से अनन्त ज्ञान प्राप्त कया। दूसरों के लिए ज्ञान के स्रोत बन गये। वे इतने उन्नत, ज्ञानी और पूज्य महात्मा हैं, इसलिए अनुवर्ती महात्मा जन, ज्ञान या भक्ति की कोई भी चर्चा शुरू करें तो पहले उन्हें नमस्कार करते है।

व्यास का अर्थ है जो सूत्रों का आख्यान रूप में वर्णन करे अर्थात विस्तार से वर्णन करे। व्यास का एक दूसरा अर्थ है- जो केंद्र से ब्रह्माण्ड रूपी व्रत की परिधि के दोनों किनारों को स्पर्श करता है, अर्थात् जो माया और ब्रह्म दोनों को जानता है। दोनों क्षेत्रों में अर्थात लोक और वेद, निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्ग में, विरक्त और गृहस्थ में जिसको समान रूप से महारत प्राप्त हो उसे व्यास कहते हैं।

कहीं-कहीं शास्त्रों में व्यासजी को वादरायण के नाम से भी संबोधित किया गया है। इससे ऐसा आभास होता है कि वेदव्यास उनका वास्तविक नाम नहीं था, उन्हें यह उपाधि मिली थी।

उन्होंने वेद की संहिताओं को चार भागों में विभक्त किया था। महाभारत उनकी सामाजिक एवं राजनैतिक घटना प्रधान

एक कालजयी रचना है। एक लाख श्लोकों वाला यह महाकाव्य एक इसे पंचम वेद भी कहते हैं। मानव व्यवहार का कोई ऐसा पक्ष नहीं है, जिसे इस कृति में नहीं हुआ गया हो। इसीलिए राजनीति, मनोविज्ञान और समाज के अध्ययन के लिए महाभारत आज भी उतना ही प्रासंगिक है।

वेदव्यास का साहित्य उपदेश की वस्तु नहीं है, वह तो जीवन जीने की कला है, जीवन पद्धति है, एक चिंतन धारा है। श्रीमद्भागवत पुराण, महाभारत का शांतिपर्व, विष्णु सहस्त्रनाम और श्रीमद्भगवद गीता इसके उदाहरण हैं। इसलिए हम व्यास जयंती को गुरुपर्व के रूप में मनाते हैं। गुरु का अर्थ है- भारी या महान। यानी सूर्य की किरणों के समान जिसके वचन हमारे अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर देते हैं।

अपने पिता दासराज की सेवा के लिए सत्यवती यमुना में नाव चलाया करती थीं। एक दिन तट पर विचरनेवाले महर्षि पराशन ने उन्हें देखा। उकने अनिंद्य सौंदर्य से मुनिवर मुग्ध हो गए। उन्होंने सत्यवती के साथ समागम की इच्छा प्रकट की। सत्यवती ने कहा- भगवन्। देखिए नदी के आरपार दोनों तटों पर बहुत-से ऋषि खड़े हैं। सत्यवती के ऐसा कहने पर मुनिवर ने घने कुहरे की सृष्टि कर दी। इसके पश्चात् महर्षि से गंधवती होने का वरदान पाकर सत्यवती ने उनका संयोग स्वीकार कर लिया। तत्काल ही उन्होंने एक शिशु को जन्म दिया। यमुना के द्वीप में अत्यंत तेजस्वी पराशरनंदन व्यास प्रकट हुए। व्यासजी का जन्म यमुना नदी के एक द्वीप में हुआ था। बाल्यावस्था में ही उनको वहीं छोड़ दिया गया, इसलिए वे द्वैपायन नाम से प्रसिद्ध हुए।

एक कथा है- सत्यवती नाम की एक कन्या, राजकन्या हस्तिनापुरकी गंगामे बहते-बहते आयी है और दासराज नामके एक मल्हार को वहांपर प्राप्त हुई। कन्या बड़ी तेजस्वी थी। ग्रह उसके तेज थे। दासराज मल्हार यह पूरी महाभारत आप जो सुनते है तो उस समय आपको मालूम पड़ेगा कि आप क्या बोलते है कि महाभारत होनेका कारण धृतराष्ट्र, आप बोलते है महाभारत होनेका कारण दुर्योधन, द्रौपदी है। कोई कहता है भीष्म पितामह है, एकने यहांतक कहा है कि श्रीकृष्ण है। अगर श्रीकृष्ण चाहता तो महाभारत का युद्ध नहीं होता था। अगर मूलमें जायेंगे तो महाभारत का युद्ध होने का एक ही कारण है यह दासराज नाविक, मलाह। जिसकी बढ़ती हुई आकांक्षाएं, अपने नियम, प्रेम में नियम भंग नहीं होते है इसने भंग किये है। हुआ यह कि दासराज को वह कन्या मिली और उसकी किस्मत अपने हाथोंसे लिखना चाहा ब्रह्माके हाथसे लिखी हुई किस्मत से नहीं अपने हाथसे लिखी हुई। दासराज कन्या नाविक, मलाह की कन्या हुई थी उसको मिली हुई थी उत्पन्न कन्या नहीं थी। उसने उसका भाग्य बनाना चाहा। उसने देख लिया इसके लक्षण राजकन्या के है। मैं इसे किसी चक्रवर्ती राजाके साथ ही ब्याह कराऊंगा। जब तक कुँवारी रहेगी कोई बात नहीं। कन्या बडी हुई और बढ़ते-बढ़ते एक दिन वो बोली मैं नाव चलाऊंगी। मैं पिताके साथ-साथ रोज जाती हूँ मैं क्यों नहीं यह नाव अलग चलाऊंगी। उसने नाव चलानेका, लोगोंको पार उतारनेका कार्यक्रम शुरू किया और धन अर्जित इस धन अर्जित की लालसा, लोलुपता में दासराज भी सहमत हो गया।

एक दिन की बात है- प्रात:काल का वक्त दासराज नाविक अपने घरमें सोया हुआ था। कन्या वहां घाटपर लोगोंको पार करा रही थी। सुबह-सुबह कोई गंगा पार कराने आते नहीं। पराशर मुनिको अपने आश्रम में जाना था वो आये और देखा नांव में बैठ गये उस कन्यापर बड़े आसक्त हुए। सत्यवती नाम की जो कन्या थी जो दासराज को मिली थी आसक्त हो गये। काम पर किसीका नियंत्रण नहीं है चाहे छोटा हो, बड़ा हो, जवान हो, बूढ़ा हो। मन विचलित हो जाता है। उस सौंदर्य को देखकर। पराशर मुनि अपने नियंत्रण में नहीं रह सके उन्होंने प्रस्ताव किया- बालिके। तुम कौन हो? कहां रहती हो? यह आप इस तरह का

उद्योग क्यों करती है? सत्यवती ने बताया- मेरे पिता मलाह है। मैं उनकी औरस कन्या हूँ। मेरी तो यही जीविका है। पराशर मुनि बोले- तुम बड़ी सुन्दर कन्या हो यदि तुम अनुमति दो तो मैं तुम्हारे साथ गन्धर्व विवाह करना चाहता हूँ। उसने कहा- नहीं। मैं अपने पिताके अनुमति के बिना कुछ भी नहीं कर सकती। आप मेरे पिताश्री से इस बारे में बातचीत कर लीजिये। पराशर मुनि दूसरे दिन दासराज मलाह को मिलने गये। दासराज ने स्पष्ट शब्दोंमें इनकार कर दिया। नहीं। इस कन्या का मैं किसी ऋषि, साधुसे विवाह नहीं करूंगा, मैं तो इसके लिये कोई राजा चक्रवर्ती के साथ ही विवाह करूंगा। लेकिन सत्यवती के मन में भी पराशर ऋषि के प्रति आकर्षण हो गया। जब पराशर मुनि दासराज के घर से निकलकर फिर अपने आश्रम की तरफ जाने लगे तब कन्या देख रही है। कन्या आकर पूछती है- मुनिवर। आपको घाट पार करवा दूं। मुनि तो चाहते ही थे। नाव डौलती-डौलती एक घंटे आधे घंटे की सफर होती है और दो घंटे में नाव घाटपर पहुंची। मुनिवर बोले- कन्या, मेरा आतिथ्य ग्रहण नहीं करोगी, मेरे आश्रम में नहीं आओगी। अब मुझे छोड़ने आयी हो तो मेरे आश्रम में चलो। दोनों आश्रम में चले। वहां कमल का बड़ा अच्छा सरोवर, बाग था। बड़ी खुशबू थी, दोनों उन्मत्त हो गये, दोनोंने एक-दूसरेका आलिंगन कर लिया, एक-दूसरे को चाहते थे। यह प्रणय प्रलाप कई दिन तक चलता रहा। दासराज वहां कोनेसे देखता था। कन्याकी माँ को पता नहीं था। दासराज जानता था यह बात। एक दिन सत्यवती के गर्भ ठहर गया। वह बता नहीं पा रही थी। पराशर मुनि आये दासराज को मिलने। दासराज ने कहा- अब तुम कुछ भी मत करो अब तुम इसका साथ छोड़ दो। इसका जो होना है वह मै देखूंगा। तुम्हें कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। न उन्होंने अपनी पत्नी को बताया और कन्या का गर्भ पैदा करवाकर उन्होंने उसको कहीं और जगह पालकर और पराशर मुनिके यहां उनके आश्रम में भेज दिया। उस बालक की शिक्षा पढ़ाई लिखाई एक मुनिके आश्रम में हुई। यह मुनि वेदव्यास मुनि हुए। जिन्होंने वेदोंका विस्तार किया है।

कृष्ण द्वैपायन मुनि है। जो चार वेद ब्रह्माके मुख से निकले हुए है। जिन्होंने सृष्टिकी व्यवस्था चलाने के लिये जो वेद लिखे है उन वेदोंका विस्तार करनेवाले यह कृष्ण द्वैपायन मुनि हुए। यह पराशर मुनिके पुत्र हैं और इन्हींके पुत्र हैं शुकदेव। वेदव्यास बड़े होते है, उनका जो पराशर ऋषि तो अपने वर्तन से गिर गये जिनमें इतना तपोबल था लेकिन वेदव्यास परमकर्त्तव्य निष्ठ वेदपाठी और सृष्टिके ज्ञानका भगवान के अंशिक अवतार रूप में अवतीर्ण हुए यह है वेदव्यास। एक योनि सत्यवती की योनिसे हरिका अंश उत्पन्न हुआ है उसी योनिमेंसे दूसरा अंश जो हुआ है वह कथा महाभारत में आयेंगी। वेदव्यास इनका आश्रम सम्यकआश्रम- बद्रिकाश्रम में सरस्वती नदीके तट पर केशव प्रयाग में है और वहांपर यह अपनी पत्नी विटकादेवी, पिंगलादेवी दो नाम है उनके। यह जाबालि ऋषि की पुत्री। यह जाबालि कौन थे? जाबालि ऋषि एक वेश्याके पुत्र थे। जिनका नाम उनकी माँने पिता का पता नहीं था माताने इनका नाम रखा सत्यकाम ऋषि। यह गौतम ऋषि के पास शिक्षा लेनेके लिये गये। वहांपर ऋषिने पूछा कि आपका नाम, आपके पिताका नाम, आपका गोत्र। उस बालकने जवाब दिया कि मुझे माता सत्यकाम के नाम से बुलाती है। पिता मेरे कौन है मुझे पता नहीं। मां मेरी व्यभिचारिणी है। बोले माता का नाम क्या है। बोले- माता का नाम जाबाला। महर्षिने कहा- सत्यकाम। तुम सत्य बोलते हो, तुम्हारा नाम आजसे सत्यकाम होगा और तुम्हें दुनिया तू जाबाला का पुत्र है जाबालि ऋषि के नाम से जाना जायगा। वह जाबालि ऋषि बहुत विद्वान थे उनकी पुत्री है विटकादेवी - वेदव्यास की पत्नी। यह महर्षि वेदव्यास का परिचय है।

एक दिन बैठे हैं बद्रिकाश्रम में सरस्वती नदी के तट पर। मनमें बड़ी खिन्नता है चार वेद लिख दिये। सत्रह पुराण लिख डालें। लेकिन मन में किसी प्रकार की बेचैनी, संतोष नहीं। सुस्त ऐसा लगता है कि मैंने कुछ ठीक से किया नहीं। मन से

बड़े असन्तुष्ट। कोई चरित्र-चित्रण जब शिक्षा देने के उद्देश्य से वर्णन किया जाता है तब उसका नाम पुराण हो जाता है और जब उसी घटना का यथार्थ वर्णन होता है तब इतिहास कहलाता है।

व्यासदेव अपने मन में तर्कना कर रहे है- मैंने निष्कपट भाव से समस्त नियमों का पालन किया है, वेद, गुरुजन और अग्नियों की सम्मानपूर्वक सेवा की है, उनकी आज्ञाओं को माना है, तो भी ब्रह्मतेज सम्पन्नों में सर्वश्रेष्ठ मेरा देहाभिमानी आत्मा असन्तुष्ट-सा क्यों है, मुझे कुछ खटका क्यों लगा हुआ है?

जनहित में वेद, पुराण, महाभारत आदि ग्रन्थ रचना के बाद भी व्यासजी निश्चिन्त नहीं हुये। अपने दोष को ढूँढना विद्वानों का लक्षण है, अपना दोष न देखकर दूसरों में दोष देखना अज्ञानता का प्रतीक है। अपने दोषों का अन्वेषण करते हुये व्यासजी की समझ में आया कि अभी तक मैंने परमहंसों के धर्म का विशेष वर्णन नहीं किया। भक्तवत्सल भगवान् भक्त के उत्तम श्लोक से प्रसन्न होते हैं। व्यासजी ऐसा सोच रहे थे उसी समय हरि गुणगाते वीणा बजाते देवर्षि नारद जी पधारे।

बदरीवनमें बसैं कसैं तनु व्यास महामुनि। नित्य हवन करि वेद शास्त्र इतिहास पढ़ें पुनि।।
ऋक्, यजु, साम, अथर्व एकके चारि बनाये। चारिहुँ शिष्य बुलाइ, वेद क्रम यथा पढ़ाये।।
शूद्र नारि व्रतहीन द्विज, हित भारत रचना करी। तऊ शान्ति मन नहिं लही, अन्तरातमा नहिं भरी।।

श्रीकृष्ण गुणगान से ही शाश्वती शान्ति की उपलब्धि होती है। धर्म-कर्म से यश ऐश्वर्य, लक्ष्मी की ही प्राप्ति होती है किन्तु भगवान् वासुदेव के पाद-पद्मों में की हुई भक्ति तो प्राणियों को कृत्य-कृत्य कर देती है। फिर मनुष्य के लिये कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता। फिर उसे निर्वेद करने का अवसर ही नहीं मिलता। वह तो आनन्द सागर में मग्न हो जाता है। जप, तप, यज्ञ, पूजा, पाठ, दान, धर्म तथा और भी समस्त शुभ कर्म जो भक्ति से विहीन हैं, वे सब व्यर्थ हैं। उनका फल लौकिक या दिव्य सुखों का भोग मात्र ही है।

मुनि विचार कर रहे थे कि लोगों की प्रवृत्ति अधर्म की ओर बड़ रही है। समस्त दैव शक्तियोंका ऱ्हास हो रहा है। लोग बड़े नास्तिक श्रद्धाहीन हो रहे है। उनका वेद, ब्राह्मण और परलोक का श्रद्धा, विश्वास डिग रहा है। वे पुरुषार्थ से हीन हो गये है। पहिलेके युगोंके समान बल-पराक्रम नहीं रहा। उनकी बुद्धि मलीन हो गयी सभी पापाचरण में प्रवृत्त हो गये। बहुत से अकाल में ही काल के विवश हो गये। वे भाग्यहीन, सदाचारहीन होकर दुष्कर्म करने लगे। उनका उद्धार कैसे हो?

लोगोंका जिसमे कल्याण हो वही बात मुनि सोचने लगे। अपने शरीर-सुख के लिये जो सभी प्रयास करते है पर दु:ख से दु:खी होकर उसे दूर करने की उत्कंठा जिसमें हो वही संसारवासना का उच्छेदन कर सकता है। उन्होंने सोचा जिन्हें वेदोंके प्रत्यक्ष पढ़ने का अधिकार नहीं है जैसे शूद्र, वो ज्ञान से वंचित रह जायंगे। उनके उद्धार की बात सोचनी चाहिए। कलियुग के द्विजाति लोग १६ संस्कारों के नाम भी नहीं जानेंगे। वे संस्कारों से हीन, शौच सदाचार से रहित, संध्या अग्निहोत्र से शून्य होंगे। शूद्र और अन्त्यज तथा म्लेच्छों के साथ सभी प्रकार का संसर्ग करेंगे। कोई ऐसा उद्योग करो जिससे इनका उद्धार हो। यह सब सोच समझकर वेदव्यासने महाभारत की रचना की। तीनों लोकोंमे इतनी प्रसिद्धी हुई, करोड़ो श्लोकोंमें ग्रन्थ बना। पृथ्वीपर इसके एक लाख श्लोकोंकी रचना हुई। देवता, गन्धर्व सभी महाभारत की स्तुति करने लगे। वेदव्यासजी की यश, कीर्ति बढ़ी। सबने मिलकर धर्म के विषय में वेदव्यासको प्रमाणभूत माना। सब शंकाओं का समाधान व्यासजीके वचन से ही होने लगा। व्यास कह दे वो ही धर्म हो गया। महाभारत की प्रतिष्ठा पंचमवेद के समान हो गयी। फिर भी वेदव्यासको संतोष नहीं हुआ और कुछ कमी उनके मनमें खटकती रही। अपनेआपको जिसमें सन्देह हो,

संशयप्रद कार्य हो वह निर्माण श्रेष्ठ नहीं हो सकता। अपने आपको जिससे संतोष हो वही सर्वश्रेष्ठ है। व्यासजी सोच रहे थे कि मेरेमें कौनसी कमी रह गयी है। मैंने तो शुद्धचित्त से सब नियमों का पालन किया है। विधिवत वेदादि शास्त्रोंका अध्ययन किया है। गुरुजनोंकी सेवा-सुश्रूषा की है। अग्निहोत्र संध्यावंदन किये है और जीवन की नियमित व्यवस्था में रहा हूँ जिससे पापकर्मोंमे प्रवृत्ति नहीं हुई और परोपकार भावनाओंसे किया हुआ ब्रह्मचर्यसे समस्त नियमों का मैंने विधिवत् पालन किया। स्त्री, शूद्र तथा अन्य सभी जातियों के लिये महाभारत की रचना की, जिसमें ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो उस ग्रन्थ में न हो। समस्त वेदोंका, समस्त शास्त्रों का सारतत्व भर दिया है। मनुष्यों के करने योग्य सभी काम मैंने किये है। वर्णाश्रमधर्म का भी संक्षेप व विस्तारके साथ सब धर्मोंका वर्णन किया है। मैंने महाभारत और पुराणों में भागवत-धर्म का भी निरूपण किया है। इसी सोच विचार में व्यासजी अपनी चिन्ता का कारण निश्चित नहीं कर सके।

मनुष्य जब अपनी व्यथाका कारण बाहर खोजता है, तो बाहर तो इन्द्रियों के विषय ही हैं, जिनका परिणाम विष के समान प्राणान्तक ही है। जो लोग अपनी चिन्ता को अपने भीतर ही विचरते हैं, जो बाहर से दृष्टि हटाकर अन्तरात्मा से पूछते हैं, तो उसी समय समस्त प्राणियों के मन की जाननेवाले, मन के अधिष्ठातृदेव नारदजी आकर उनकी समस्त शमाओं का समाधान कर देते हैं। इसप्रकार व्यासदेव अपने आपको हेय मानकर खेद कर ही रहे थे कि उनके पूर्वोक्त आश्रम पर नारदजी आ पहुँचे।

एक दिन वेदव्यास सूर्योदय के समय सरस्वतीके पवित्र जलमें अपने एक स्थानपर बैठे थे और भूत और भविष्य को जाननेवाले थे, सोच रहे थे समय के फेरसे प्रत्येक युगमें धर्मसंमरता और उसके प्रभावसे जगत्की वस्तुओंका सार ऱ्हास हो रहा है। संसारके लोग श्रद्धाहीन और शक्तिहीन हो गये है। उनकी बुद्धि कर्त्तव्यका ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पा रही है और आयु भी कम हो रही है। उन्होंने वेदोंका निर्माण किया और चार वेद लिखें। ऋक्, यजु:, साम और अथर्व। इतिहास और पुराण लिखे। अपने शिष्य पैल को ऋग्वेद, जैमिनी को सामवेद और वैशम्पायन को यजु:वेद पढ़ाया और सुमन्त मुनिको अथर्व वेद। वेदोंको अनेक शाखाओं में विभाजित कर दिया। स्त्री, शूद्र और पतित द्विजाति यह वेदोंके अधिकारी नहीं है। यह शास्त्रोक्त कर्मोंके आचरणमें भूल कर बैठते है। इनका कल्याण कैसा हो यह सोचकर महामुनि व्यासने महाभारत इतिहास की रचना की फिर भी उन्हें अपने हृदय में संतोष नहीं हुआ और मन खिन्नसा हो रहा था। उसी समय सरस्वती नदीके तटपर बैठकर व्यासजी मन-ही-मन विचार कर रहे थे कि महाभारत की रचना के बाद मैंने वेदके अर्थोंका स्पष्टीकरण किया जिससे स्त्री, शूद्र आदि सभी वर्ण अपने-अपने धर्म-कर्मका ज्ञान प्राप्त कर ले। पर मेरा हृदय कुछ अपूर्णकाम-सा जान पड़ता है। श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास इसप्रकार अपने अपूर्ण मन को खिन्न देखा उसी समय देवर्षि नारद वहां आ पहुंचे। महर्षि व्यासने उनकी विधिवत् पूजा की और उनका सम्मान किया।

सहसा क्या देखते हैं, कि उनके कानों में तन्त्री की सुमधुर झंकार सुनायी दी। साथ ही प्राणों को प्रसन्नता प्रदान करनेवाले श्रीहरि के सुमधुर नामों का संकीर्तन भी सुनायी दिया। दृष्टि उठाकर देखते हैं तो सामने मुस्कराते हुए भगवान नारदजी खड़े हैं। मानों ये नूतन जलधर मेघ के समान इन्द्रधनुष और विद्युत केसहित आकाश से प्रेम-वारि बरसाते हुए व्यासजी पर कृपा करने को साकार शरीर से उतर आये हों। अपने सामने देवर्षि नारदजी को स्वरब्रह्ममयी वीणा को बजाते देखकर व्यासजी बड़ी शीघ्रता से संभ्रम के साथ सहसा उठ खड़े हुए। उन्होंने श्रद्धासहित देवर्षि का स्वागत किया।

नारदजीने व्यासजी के आश्रम के वृक्षों की, शिष्यों की, गौओं की, अग्नि की, समीपस्थ मुनियों की उनके शरीर की कुशल पूछी। उत्तर में व्यास कहने लगे- प्रभो।आज आपने अपने देव-दुर्लभ दर्शनों से मुझे कृतार्थ बना दिया। आज मैं धन्य हुआ,

मेरी तपस्या सफल हुई, मेरा वेदाध्ययन, गुरुओं और अग्निकी सेवा सार्थक हुई, आपका शुभागमन कहांसे हो रहा है।

नारद बोले- मैं ब्रह्मलोकसे इन्द्रलोक होता हुआ नर-नारायणके दर्शन कर बद्रीनारायण के दर्शन करता हुआ आपके आश्रम में आ गया। आपकी सर्वत्र प्रशंसा सुनी। आपने महाभारत की रचना करके एक अद्‌भुत कार्य किया। देवलोक में भी महाभारत की बातें हो रही थी। गन्धर्व और विद्याधर सभी इसकी प्रशंसा कर रहे थे। आपका मुख तो मानसिक विचारों का दर्पण है। महर्षि बड़े खिन्न दिख रहे है आप। चितमें कोई चिंता व्याप्त है। लगता है आपका मन स्वस्थ नहीं है।

नारदजीने कहा- महर्षि, महाभारत की जो रचना की है वह बड़ी अद्‌भुत है। धर्म आदि सभी पुरुषार्थोंसे परिपूर्ण है। सनातन ब्रह्मतत्त्वका निरूपण आपने बडी बखूबीसे किया है आपकी खिन्नता का क्या कारण है? व्यासजीने कहा- आप ब्रह्माजीके मानस पुत्र है। मेरा हृदय संतुष्ट नहीं हो पा रहा है इसका क्या कारण है मुझे पता नहीं? आप सब गोपनीय रहस्योंको जानते हैं। आपने पुराणपुरुषकी उपासना की है। सूर्य की भांति तीनों लोकोंमे भ्रमण करते हैं। योगबलके प्राणवायुसे सबके अन्त:करण में प्रवेश करते हैं। मेरे में क्या कमी रह गयी है कृपा कर बताइये।

नारदजीने कहा- व्यासजी आपका भाव बहुत ही सुन्दर है। लेकिन भाव से अधिक कर्म को प्रधान बताया है। कर्म श्रेष्ठ है। कर्म करो, आपको फल अवश्य मिलेगा। आपने जो कुछ लिखा है वह ऐतिहासिक बात लिखी है। ज्ञान की, कर्म की, योग की। कुछ योग जो वेद से अलग हो गये थे, उनका अर्थ तो आपने महाभारत में दे दिया। लेकिन अब तक भगवान कृष्ण की प्रेममयी, भक्तिमयी कथा आपने नहीं लिखी। जब तक आपकी कलम कृष्ण कथा पर न चले तब तक वह कर्म अधूरा है। व्यासजी आपने भगवान के निर्मल यशका गान नहीं किया। जिस शास्त्र और ज्ञानकी रचना करी है वह अधूरी है। आपने धर्म और पुरुषार्थोंका जैसा निरूपण किया है वैसा श्रीकृष्णकी महिमाका निरूपण नहीं किया। जगत्‌को पवित्र करनेवाले भगवान् कृष्णका यश नहीं गाया। जिस ग्रन्थ में उनकी सुन्दर रचना नहीं की है फिर उस ग्रन्थका क्या उपयोग। जिस ग्रन्थमे भगवान का नाम न हो उसके श्रवण से क्या उपयोग? वह ग्रंथ जो निर्मल ज्ञान से मोक्षप्राप्तिका साधन हो पर भगवान भक्तिसे रहित हो फिर वो साधन और सिद्धि दोनोंमें ही अमंगल रूप है। वह काम्य कर्म जो भगवानको अर्पण नहीं किया गया वह निष्काम कर्म कैसे हो सकता है। आप सत्यपरायण एवं दृढ़व्रत है। सम्पूर्ण जीवोंको बन्धनसे मुक्त करनेके लिये समाधिसे भगवान की लीलाओंका स्मरण कीजिये। जो मनुष्य भगवान् की लीलाके अतिरिक्त और कुछ कहनेकी इच्छा करता है वह अपनी उस इच्छासे अपने नाम और रूपोंके चक्कर में पड़ जाता है, उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती। संसारी लोक तो स्वभावसे ही विषयोंके जाल में फंसे हुए है। धर्म के नाम पर सकाम कर्म करते हैं। उनका तो यही मुख्य धर्म है। भगवान अनन्त हैं। आपके जैसा कोई विचारवान ज्ञानी पुरुष ही संसारकी ओरसे निवृत्त होकर उनके स्वरूपभूत परमानन्दका अनुभव कर सकता है। इसलिये आप भगावनकी लीलाओंका सर्वसाधारण हितकी दृष्टिसे वर्णन कीजिये। संसारके विषयसुख तो बिना प्रयत्नके भी मिलते है। वे भगवान ही सिर्फ जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण है, वही विश्वके रूपमें भी है। भगवान के अवतारोंका वर्णन कीजिए जिन्होने अजन्मा होकर भी जगत्‌के कल्याणके लिये जन्म ग्रहण किया है। मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है कि वह कृष्णके गुणों और लीलाओंका वर्णन करें।

नारदजी कहते हैं- व्यासजी। संसाराब्धिनिमग्न प्राणी आपके द्वारा सम्पादित वेदान्तादि ग्रन्थों का मूलार्थ नहीं समझ सकेंगे बल्कि मनमाना अर्थ करके ग्रन्थ का अनादर करेंगे। अत: यह उत्तम होगा कि आप सच्चिदानन्द धन की लीला का ऐसा वर्णन करो जिसका अर्थ योगी-भोगी दोनों को ब्रह्मपरक ज्ञान मिलें और दोनों ही ग्रन्थों का बराबर सम्मान करें; साथ-

ही-साथ जिज्ञासु बने रहें।

महर्षि बोले- भगवन् आप यहां आये आपने मुझसे बहुत सही प्रश्न किया है। प्रश्न यह है कि मैंने चार वेदोंकी रचना करी, उपनिषदोंकी रचना करी, मैंने सत्रह पुराण लिखें लेकिन मुझे कुछ मनसे संतोष नहीं हो रहा है।

नारद बोले- आपकी कमी का मुझे पता है। व्यासने कहा- आपकी तो अव्याहत गति है, आप तो सभीके अन्त:करण की बातें जानते है। वैकुण्ठ से लेकर रसातल तक सभी लोकोंमें आप स्वेच्छासे विचरण करते है। हे सर्वज्ञ आप ही बताईये कि किस कार्य से मुझे शान्ति मिले। आपसे बढ़कर मेरा कोई हितैषी नहीं है।

नारदजीने कह्यो- व्यास। तुम सब गुण आगर। वेद-पुराण प्रवीण सबहिं शास्त्रनिके सागर।।
ब्रह्मज्ञानी आप अज्ञवत् क्यों पछतावें। का कारण है कहो? भेद क्यों नहीं बतावें।।
बोले व्यास विनीत है- मुनि। मन मैल मिटाइ दें। काज कौन कीयो नहीं, सच्ची बात बताइ दें।।

नारद बोले- मैं समझता हूँ, जानता हूँ। आपने संसारिक बातें लिखी है, संसारिक बातोंका विवेचन किया है। आपने जिससे यह संसार बना है, जिससे यह सृष्टि बनी है उसका गुणगान तो कभी नहीं किया है, कही नहीं किया है, उनके चरित्र, उनका लीलावतार, माधुर्य तो उसमें है यह सब सांसारिक बातोंमे क्या माधुर्य है। आप उनका चरित्र गान कीजिये। उनकी लीलाओंका वर्णन कीजिये।

नारदजीने कहा कि व्यासजी, आपने भगवद्दृश्यका वर्णन नहीं किया। भगवद्-गुणानुवादके बिना दो ही बात हो सकती हैं- या तो संसारका गुणानुवाद करे या अपना गुणानुवाद करे, क्योंकि गुणानुवाद करना मनुष्यका स्वभाव है। यदि संसारका गुणानुवाद करेगा तो रागद्वेष होगा और अपना करेगा तो अस्मिता बढ़ेगी। किन्तु यदि भगवान्का गुणानुवाद करेगा तो संसारमें रागद्वेष नहीं होंगे और अपनी अस्मिता भी नहीं बढ़ेगी। सीधी बात है, इस बातको सब समझ सकते हैं, यहाँ तक कि बालक भी समझ सकते हैं। दुनियाका गुण-दोष-वर्णन राग-द्वेषकी सृष्टि करता है, स्वयंका गुण-दोष वर्णन अस्मिता बढ़ाता है और परमेश्वरके गुणानुवाद वर्णन द्वारा सांसारिक राग-द्वेष तथा अस्मिताकी ओरसे दृष्टि हटकर परमेश्वरमें डूब जाती है। अत: अन्त:करणकी शुद्धिके लिए भगवद्-गुणानुवादके अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं है। इसके बिना आत्मतुष्टि नहीं हो सकती। जहाँ आत्मतुष्टि नहीं, वहाँ धर्म नहीं। यदि तुम इसके सिवाय किसी दूसरेका वर्णन करोगे तो नाम रूपके चक्करमें पड़ जाओगे। संसारमें नाम, रूप अनेक होते हैं। उसमें तुम्हारी बुद्धि नहीं डूबेगी। जैसे समुद्रमें नाव भटक जाती है वैसी ही गति तुम्हारे मनकी हो जायगी। एक दो टूक बात और सुन लो। महात्मा लोग संकोचसे नहीं बोलते। उन्हें जब किसीसे कुछ लेना-देना हो तब संकोच करें।

बोले नारद सबहिं आपने धर्म बताये। किन्तु कृष्णके ललित चरित अति विषद न गाये।।
भक्ति भावतें हीन कुकवि जो कविता करि हैं। काकतीर्थ सम समुझि हंस मुनि नहिं आदरिहैं।।
अब सब तजि मुनि। भक्तिको, प्रेम प्रवाह बहाइ दें। भक्ति भाव दरशा बंदे, भगवत चरित सुना दें।।

मनुष्यों के तप, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, सत्कथन, ज्ञान और दान आदि समस्त शुभकर्मों का एक मात्र अक्षय फल बुद्धिमान् पुरुषों ने इतना ही बताया है, कि इन सबके द्वारा भगवान् उत्तमश्लोक के गुण वर्णनों में रुचि उत्पन्न हो।

गंगा नदी तो सर्वदा सबको सब स्थानोंमें दुर्लभ है, किंतु कृष्ण कथा भागवत रूपी गंगा सभी काल में सर्वत्र सुलभ है। नारदजीने कहा- व्यासजी आपने जो भी कुछ किया वो सब उचित किया। इन संसारी लोगोंको अधर्म से हटाकर धर्म में लगानेकी शिक्षा दी। किन्तु आपने भगवद् यश का वर्णन नहीं किया। जिस ज्ञान से भगवान वासुदेव प्रसन्न न हो, वह ज्ञान

व्यर्थ-अत्यन्त तुच्छ ही है। आपने जितना सकाम कर्मोंपर विशद व्याख्या की है उतना बल भगवत लीलाओंपर नहीं दिया। भगवत् भक्ति के बिना ये धर्म-कर्म किस कामके हैं। वाणी की सार्थकता केवल भगवान के नाम और गुणोंके गान में ही है। जिस सरोवर में मोती ना हो उसमें हंस नही ठहरते। जो कर्म केवल कामना के लिये ही किये गये हैं, जिनके करने का एकमात्र कारण इस लोक और परलोक दिव्य सुखोंकी प्राप्ति कराना ही है वो कर्म प्रभु के अर्पण किये बिना शोभा नहीं दे सकते। इसलिये आप सुख देनेवाली, जगत् को पावन बनानेवाली कृष्ण की कमनीय कथाओंका ओर लीलाओंका संकलन करो, उन्हींका वर्णन करो। व्यासजीने कहा- मैंने महाभारत में तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, प्रेम, भक्ति सभी विषयों का निरूपण किया है। नारद बोले- आपने महाभारत में तो काम्य कर्मों की आवश्यकता से अधिक प्रशंसा कर डाली है। किन्तु कर्मों में तो प्राणियों की स्वत: ही प्रवृत्ति है। सभी तो विलक्षण बुद्धिवाले व्यक्ति नहीं है। संसारी पुरुषोंमे ऐसा कौन है जो धनी बनना नहीं चाहते हो। ये तो इन्द्रियों के विषय तो प्रारब्धानुसार प्राप्त होते ही है। सभी तो धनी नहीं होते? वृद्धावस्था कौन चाहता है? किन्तु न चाहने पर भी वह आ जाती है। मृत्यु की इच्छा कौन करता है? पर यह अटल सत्य है। कोई व्यक्ति बीमारी को स्वेच्छासे वरण नहीं करता। न चाहने पर भी रोग प्रारब्धानुसार सभीके शरीर में अपने-आप ही उत्पन्न हो जाते है। सुख-दु:ख तो सभी योनियों में ये होते है। व्यास बोले- संसारी लोगोंके पास दो ही काम है। श्रम से या स्वत:ही प्राप्त हो गये हो उनकी रक्षा करना और उन वस्तुओंको सँभालकर सावधानीसे रखना। नारद बोले- यह कोई अकर्मण्यता नहीं बता रहा हूँ मैं तो ऐसा कर्म बता रहा हूँ जो चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने पर भी पुरुष को प्राप्त नहीं हो सकता। वही महान कर्म है, उसी के लिये किया हुआ प्रयत्न सार्थक है। वही पुरुष का परम पुरुषार्थ है। उसी का आश्रय लेकर मनुष्य निश्चिन्त हो सकता है। भगवान के अतिरिक्त कुछ नहीं है, अणु-परमाणु में वे ही व्याप्त हैं। सभी प्रकारके राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञोंका, यहाँ तक ज्ञान, ध्यान, कथा, वार्तासभी का एकमात्र फल भगवान वासुदेव के चरणोंमें भक्ति ही होना है। जिस वाणीसे वासुदेव के गुणों का वर्णन न हुआ, वह वाणी नहीं है। आप भगवान के और भक्तोंका यश का गान करों। आपकी लोकमें बड़ी ख्याति होगी, संसारी लोगोंका बड़ा उपकार होगा।

नारदजीने कहा- बहुत सीधी सी बात है, आपने ग्रन्थों की रचना तो की। संसार के कार्यों में फंसे रहनेवाले जो लोग है; उनके लिए वो ग्रन्थ सब अच्छे हैं। पर हंसों के समान राम-कृष्ण के जो परम भक्त हैं, उनके लिए जब तक भागवत की रचना नहीं करोगे, आपके मन में संतोष नहीं हो सकता। भागवत को वैष्णवजन पढ़ते हैं, भक्तजन पढ़ते हैं, उसको लिखे बिना तुम्हारे मन में संतोष नहीं हो सकता। मन को निराश मत करो। मेरे पिता ब्रह्माजी को नारायण भगवान ने भागवत जी का दान दिया था, चार मंत्रों की भागवत नारायण ने मेरे पिताजी के कान में कही थी और मेरे पिता ब्रह्मा ने कृपा करके वो भागवत मुझे प्रदान की। वही भागवत मैं आपको देता हूँ। उसमें चार मंत्र है, उन चार मंत्रों को आप विस्तार से लिखो, उनकी व्याख्या करो। उसको संसार के लोग पढ़ेंगे तो मन में संतोष होगा, उन सबका कल्याण होगा।

चार वेद एवं १७ पुराण की रचना के बाद भी उन्हें मानसिक शान्ति नहीं मिली- श्रीनारद मुनि ने चतु:श्लोकी भागवत का श्रवण कराया तथा यह निर्देश दिया कि आप भगवान् श्रीकृष्ण की माधुर्यमयी लीलाओं का विस्तृत वर्णन कर श्रीमद्भागवत का अभ्युत्थान करें- अब तक आपने राजसी-तामसी वृत्तियों से परिपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की है। इसमें सात्विकता की प्रधानता रखते हुए मधुर बाल लीलाओं का चित्रण करेंगे तो आपको मानसिक शान्ति और आनन्द का अनुभव होगा। देवर्षि के आज्ञानुसार व्यासजी ने श्रीमद्भागवत की रचना बारह स्कन्धों में की। इसमें ३३५ अध्याय तथा अठारह हजार श्लोक हैं। इस ग्रन्थ को महापुराण के दस लक्षणों- सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति,

आश्रय से भी विभूषित किया गया है। अत: इसे महापुराण एवं पंचम वेद की संज्ञा भी दी गई है।

महर्षि बोले- मुझे इसके बारेमें कुछ भी पता नहीं मैं क्या लिखूं? कैसे लिखूं? अब तो उम्र भी बढ़ते जा रही है। इस उम्रमें लिखा भी नहीं जायेगा। नारदजी ने कहा- तुम गणेश जी का आह्वान करो। गणेशजी को बुलाओ। कथा मैं सुनाऊंगा, तुम विवेचन करोगे और गणेशजी लिखेंगे। गणेशजी का आह्वान हुआ इधर व्यासजी बैठे है, पंडित, महापंडित, विद्वान यहांपर आ गये। नारद वही चतु:श्लोकी भागवत का, भगवान के गुणानुवाद का चरित्र चिंतन करके वेदव्यास ने लिखवायी है, गणेशजी ने लिखी है। गणेशजी ने वेदव्यासजी, नारदजीको एक शर्त यह करी थी कि मैं लिखते जाऊंगा, पर जहां वेदव्यास जी रूक गये और श्लोकोंका विवेचन नहीं कर पायें, संस्कृत का विवेचन नहीं हो पायें, इसका अर्थ नहीं दे पाएं तो मेरी कथा वहीं रूक जायेगी मैं उसके आगे नहीं लिखूंगा। इसतरह से कथा भगवान वेदव्यास ने लिखी। यह भागवत पुराण बना, अठारह पुराण पूरे हो गये। भागवत की कथा में जो रस दिया है वो आपके अत्यन्त आनन्द, इतना अनुभवानन्द, आनन्दमय कोश का आनन्द यह आनन्द और सुख आपको प्राप्त हुआ। यह वेदव्यासकी कथा और भागवत की कथा है।

५) नारद का चरित्र

व्यासजीको सत्रह पुराणोंकी रचना करके भी यह सन्तोष नहीं हुआ कि मैंने अपना काम पूरा कर लिया। अत: उन्होंने लोकहितके लिए श्रीमद्भागवतकी प्रवृत्ति की। धर्म पूरा करनेके लिए श्रीमद्भागवत है। बिना भागवतके धर्म पूरा नहीं होता।

श्रीमद्भागवतके बिना लोकहित पूर्ण नहीं होता, मनुष्यके हृदयको शान्ति नहीं मिलती-यह बात बतानेके लिए नारद और व्यासका संवाद है। नारदजी भगवान्‌के ही प्रेमी हैं, साक्षात् भक्त हैं, बल्कि भगवान्‌के ही रूप हैं। भगवान् सृष्टिका निर्माण करनेके लिए, इसमें विधान प्रवृत्त करनेके लिए, वेदोंके विस्तारके लिए ब्रह्माजीको बनाते हैं। इसका अर्थ हुआ कि ब्रह्माजीके रूपमें भगवान् स्वयं आते हैं, ब्रह्माजीके ही अवतार हैं। फिर वही भगवान् भक्तिका, प्रेमका प्रचार-प्रसार करनेके लिए नारदजीके रूपमें आते हैं। वही भगवान वाङ्मयके रूपमें धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका उपनिबन्धन करनेके लिए व्यासजीके रूपमें आते हैं और वही भगवान् अपनी शब्दमयी, वाङ्मयी भागवती मूर्तिको प्रकट करनेके लिए शुकदेवके रूपमें आते हैं। जो परब्रह्म ब्रह्मामें है, नारदमें है, व्यासमें है, शुकदेवमें है, वही श्रीमद्भागवतके रूपमें प्रकट हुआ है। एक चैतन्यके ही, एक चित्तत्त्वके ही अनेक नाम हैं- नारायण, ब्रह्मा, नारद, शुकदेव, भागवत। जब व्यासजीने श्रीमद्भागवतकी रचना की तब उनको शान्ति मिली। नारदजी ने सम्पूर्ण विश्व के दुख को दूर करने का संकल्प किया। नर के हृदय में जो अज्ञान है उसका नाश करे, उसे नारद कहते हैं। अधिकारी शिष्य को गुरु के पास जाना नहीं पड़ता, सद्‌गुरु स्वयं उसके पास आते हैं। जिसकी कोई बराबरी न कर सके इतने धर्म-कार्य करने पर भी व्यास नारदजी से बोले मुझे आत्मतुष्टि नहीं है।

नारदने कहा कि व्यासजी, तुमने अनेक शास्त्र बनाये, उनमें लोगोंकी मनोवृत्तिका अनुवाद तो किया। पति कैसा हो, पत्नी कैसी हो, राजा कैसा हो, प्रजा कैसी हो, उसका व्यवहार कैसा हो, उनमें संघर्ष कैसा, व्यंग्य कैसा, इनका समाधान कैसा- इन सबका वर्णन किया। परन्तु भगवान्‌की महिमाका जैसा वर्णन करना चाहिए, वैसा वर्णन नहीं किया - आप भगवान का गुणानुवाद करिए। संसार के गुण-दोष का वर्णन, अपने गुण-दोष का वर्णन करने से संसार से राग-द्वेष बढ़ेंगे और अपनों से अस्मिता।

न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णित:।

इसलिए व्यासजी, अब तुम भगवान्‌का स्मरण करो- समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्।

वेदव्यासजीने पूछा- भगवन आपने यह चरित्र लिखवा दिया। यह आपको कैसे मालूम, आपने कहां सुना, आपने लिखवा दिया यह प्रमाण कैसे होगा? अब वेदव्यासजी को जब संतोष हुआ।

भगवान श्रीनारायण की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माने सृष्टि के लिए संकल्प किया, तब सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार के पश्चात् उनके दस पुत्र और उत्पन्न हुए।

उनसे लोक की बहुत वृद्धि हुई। उनके नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद थे। अनावृष्टि का समय चल रहा था, कुछ समय अवशेष रहने पर उस बालक का जन्म हुआ। उसके जन्म के समय वृष्टि हुई, इसलिए नार (जल) देने के कारण उसका नाम नारद हुआ, महाज्ञानी वह बालक दूसरे बालकों को नार (ज्ञान) देता था, इससे भी उसका नाम नारद हुआ। कल्पांतर में ब्रह्मा के कंठ से अनेक नरों की उत्पत्ति हुई उनके कंठ ने नर का दान किया था, इसलिए वह नारद कहलाता था। नरद (कंठ) से उत्पन्न इस बालक का जन्म हुआ, अत: ब्रह्मा ने उनका नारद मंगलमय नामकरण किया। नारद सदा भ्रमण करते रहते हैं। अपनी वीणाकी मनोहर झंकारके साथ भगवानके गुणों-कीर्तनों का गान करते हुए सर्वत्र घूमते रहते है। ये कीर्तनके परमाचार्य है, भागवतधर्मके प्रधान बारह आचार्योंमें एक है और भक्तिसूत्रके निर्माता भी है। उन्होंने संकल्प कर रखा है कि सम्पूर्ण पृथ्वीपर घर-घर एवं जन-जनमें भक्तिको जागृत करना। वे निरंतर भक्ति के प्रचार में लगे रहते है। सर्वत्र उनकी अर्बेहयात गति है। पूर्व जन्म में इन्होंने गन्धर्व योनि में उत्पन्न उपबर्हण नामके गन्धर्व थे। ये शरीरसे बड़े सुन्दर थे। इन्हें अपने रूपका बड़ा गर्व था। एक बार ब्रह्माके यहाँ सभी गन्धर्व, किन्नर आदि भगवान्का गुण-कीर्तन करनेके लिये आमंत्रित किये गये उस समय उपबर्हण भी अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर उस सभा में गये। वहाँपर स्त्रियोंको लेकर श्रृङ्गारके भावसे गये और कामियोंकी भाँति हाव-भाव दिखाने लगी। यह बहुत बड़ा अपराध है। ब्रह्माने उपबर्हण का यह प्रमाद देखकर उसे शूद्र योनि में जन्म लेनेका शाप दे दिया। ब्रह्माजी के शाप से उपबर्हण गन्धर्व ही सदाचारी, संयमी, वेदवादी, ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाली शूद्रा दासीके पुत्र रूपमें उत्पन्न हुए। ब्रह्माकी कृपासे बचपनसे ही उनमें धीरता, गम्भीरता, सरलता, समता, शील आदि सद्गुण आ गये।

नारदजी बोले- हे मुने। पूर्व कल्पमें मेरा जन्म वेदवादी ब्राह्मणों की एक दासी के गर्भ से हुआ था। मेरे पिता का नाम द्रुमिलगोप का स्वर्गवास हो गया और माता का नाम कलावती था। भरण-पोषण के निमित्त वो दासी का कार्य करती थी। उसी समय हमारे यहां चतुर्मास्य व्रत के लिये टिकने को कुछ महात्माओं की टोली आई। मैं उन्हीं सबकी सेवा में बालकपन में ही नियुक्त कर दिया गया था। भगवान नारायण का बारंबार स्मरण-भजन एवं लीला का अनुकरण करते रहने से भोगी भी योगी बन जाता है। व्यासजी उस समय मैं बहुत छोटा था, फिर भी मुझमें चंचलता नहीं थी। मैं जितेन्द्रिय था। दूसरे सब खेलोंको छोड़कर साधुओंके आज्ञानुसार उनकी सेवामें लगा रहता था। वे संत भी मुझे भोला-भाला शिशु जानकर मुझपर बड़ी कृपा करते थे।

तन्त्री के तारों में सप्तस्वरों की सुमधुर ध्वनियाँ विद्यमान हैं, किन्तु जब तक उन्हें कोई छेड़नेवाला न हो, तब तक उनमें से हृदय को आल्हादित करनेवाले संगीत की सृष्टि नहीं होती। नारदजी जैसे वक्ता और व्यास जैसे वेद वेदांगों के वेत्ता परम रसिक श्रोता, फिर भी रस का समुद्र न उमड़े तो यह असम्भव है। नारदजी पहले उपवर्हण नाम के गन्धर्व थे और अपने कामान्ध होनेसे गन्धर्व योनिसे इस मृत्युलोक में शूद्र योनि से दासीके गर्भसे उत्पन्न हुए। नारदजी ब्रह्माके संकल्पसे प्रकट हुए इसलिए ब्रह्मपुत्र भी जाने जाते हैं। चौदहों भुवनों में इनकी अव्याहत गति है। मन के वेग के समान ये जहाँ चाहें वहीं पलक मारते पहुँच सकते हैं। ये तूमड़िया बाबा सर्वगुण संपन्न, ज्ञानियों के भी गुरु, भक्तिशास्त्र के भी आचार्य, संगीत

विद्यामें पारंगत और प्रचारकों के तो शिरोमणि है। देवता, असुर, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्यों तथा सभी प्राणियों द्वारा ये पूजित है, अपने शिष्य बनाने में माहिर है, सभी इनका सम्मान करते हैं। किसी के मन में ज्ञान का अंकुर देखते हैं, भक्ति की जिज्ञासा पाते हैं, उसी के सम्मुख अनेक रूप रखकर प्रकट हो जाते हैं और जैसे तैसे उसे भगवानसे मिला देते हैं। असुरों को उल्टी पट्टी पढ़ाने में निपुण हैं, भगवान से वैर करा देते हैं, भगवान से मरवाकर उन्हें मुक्ति दिला देते हैं। ज्ञानियों को ज्ञान सिखाते हैं, भक्तों को भक्तिमार्ग की शिक्षा देते हैं। लोग तो इन्हें कलह प्रिय कहते हैं, किन्तु उनकी कलह में सदा परोपकार छिपा रहता है। प्राणियों का जिस बात से हित हो वैसी कलह कराकर विश्व का कल्याण करते हैं।

एक समय की बात है नारदजी देवराज इन्द्रकी सभा में जहांपर समस्त ऋषि, मुनि, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर तथा देवतागण बैठे थे। वे उपवर्हण गंधर्व गोलोक की लीला प्रदर्शन के लिए वहांकी अप्सराओं और रमणियोंके साथ वहां गये। देवताओंकी जितनी योनिया है उसमें गन्धर्व और विद्याधर सौंदर्य में अद्वितीय है। गन्धमादन पर्वत पर गन्धर्व और विद्याधर युवतियां विहार करती है। गन्धर्व संगीत में भी ही प्रवीण होते है। उस सभामें गोलोक के सभी दृश्योंका प्रदर्शन कराया गया। सब ऋषि-मुनि वहां आकर बैठ गये थे। यौवन के मद से मदमाती स्वर्ग की असंख्य अप्सरायें वहां विद्यमान थी। मेरा मन भी कुछ अत्यन्त सुन्दरी गंधर्व कन्याओं में आसक्त हो गया और मैं कामके वशमें हो गया और चित्त में कुछ चंचलता आ गयी। इस विकारजन्य भाव से मैं अपने आपको भूल गया। इससे ऋषियोंके आनन्द में विघ्न आ गया और इससे उन्होंने क्रोधित होकर दु:ख के आवेश में मुझे श्राप दिया- कि तुम पृथ्वीलोक में जाओ और शूद्र हो जाओ। तब मैंने दीनता से ऋषियोंके पैर पकड़कर अपने उद्धार का उपाय पूछा। इसपर ऋषियोंने कहा- तुम सत्संग और कृष्ण कीर्तन के प्रभाव से नारद को प्राप्त होंगे। कालान्तर में मुझे शूद्र योनि में दासीका पुत्र बनना पड़ा। सौन्दर्य का मद मनुष्य को सत्पथ से भ्रष्ट कर देता है। स्त्रियोंके हृदयकी रचना अत्यंत ही कोमल तन्तुओंसे हुई है। सौंदर्य के अभिमान ने मेरे विनय, सदाचार और लोकलाजों को भी नष्ट कर दिया। रूपवान पुरुष संसार में अपने समान किसी को समझता नहीं। अपनी आभा से दशों दिशाओं को प्रकाशित करनेवाली गान गानेवाली श्यामा गन्धर्वियों के साथ गाता हुआ मैं उस सभामें चला गया। न तो मैंने सभासदों को प्रणाम किया और न देवता, ऋषि तथा प्रजापतियों के प्रति सम्मान ही प्रदर्शित किया। उस समय मेरे सिरपर सौंदर्य का भूत चढ़ा हुआ था, उससे मेरा सम्पूर्ण विवेक नष्ट हो गया। लोक-लाज, विनय, शिष्टाचार तो कामी पुरुषों को त्यागकर चले ही जाते हैं। तब प्रजापतिने क्रुद्ध होकर मुझे श्राप दिया- अरे, तू अविनीत की भाँति हमारी अवज्ञा करता हुआ इस सत्र में आ गया तू जा, तू शूद्र हो जा। पृथ्वी पर तेरा जन्म कोई शूद्र योनिसे हो। मेरा सौन्दर्यमद उतर गया और मैंने प्रजापतिसे मेरे उद्धार का उपाय पूछा। प्रजापतियोंने कहा- हमारा श्राप तो अन्यथा हो नहीं सकता पर तुम्हें बहुत दिनोंतक शूद्र योनिमें नहीं रहना पड़ेगा। महात्माओंके सत्संग के प्रभाव से तुम्हें फिर देवर्षि का पद प्राप्त होगा। पृथ्वीपर एक शूद्रा के गर्भ से मेरा जन्म हुआ और इसी कारण मुझे सत्संग की प्राप्ति हुई। मुझे अपने पिता का तो पता नहीं वह कौन था, किस गोत्र का था किन्तु मेरी मां ब्रह्मवादि मुनियोंकी दासी थी उन्हींकी सेवामें रहती थी। वह कुछ पढ़ी-लिखी भी नहीं थी। वह इन संसारी सुखोंको ही सर्वश्रेष्ठ समझती थी। उसकी समस्त मोह-ममता मेरे ही उपर सीमित थी। सदा मेरे लालन-पालन की चिंता में लगी रहती। धीरे-धीरे मैं पाँच वर्ष का हो गया। व्यासजी संसारी माता-पिताओंकी सर्वश्रेष्ठ कामना रहती है कि हमारा पुत्र बड़ा हो जाय तो उसका विवाह हो जाय, बच्चे हो जाय, बहू आ जाय यही उनकी जीवन की अन्तिम अभिलाषा है। यह बातें मुझे तनिक भी अच्छी नहीं लगती थी। मैं पिंजड़े की पक्षी की तरह अपने को बंधा हुआ समझता रहता था। मुझे सांसारिक बातोंसे विरक्ति थी। माता-पिता के साथ-साथ मेरा बाल्यकाल बीता।

भयो यज्ञ इक विशद सबहिं गन्धर्व बुलाये। विश्व सृजनकी आयसुतें हम सबहूं आये।।
मृगनैननितें धिरत्यो रूप मदमें मतवारो। अविनय मेरी निरखि शाप सबने दै डारो।।
जा, पृथिवीपै अबहिं तू, शूद्र योनिमें प्रकट हो। मेरी अनुनयपै कह्यो- संत समागम निकट हो।।

नारदजी कहते हैं- वेदव्यास, मेरे पूर्वचरित्र को तुम सुनो। मैं कौन था? क्या था? नारदजी एक उपवर्हण नाम के एक गन्धर्व थे। गन्धर्व- जो गायन करते है और वह बड़े सुन्दर होते है। वीणा बजाते और तीनों लोकोंमे घूमते रहते है। स्वर्ग लोक के यह गन्धर्व है। हाहा, तुम्बरु, चित्ररथ यह कई गन्धर्व है उनमें नारदजी उपबहरण नामके एक गन्धर्व थे, बड़े सुन्दर थे, श्रेष्ठ थे और ब्रह्मा की सभा में गायन किया करते थे। और रमणियां इनके साथ में रहती थी, अप्सराएं इनके साथ विहार करती थी। एक दिन ब्रह्माकी सभा में यह रमणियों को लेकर पहुंच गये। सनकादिक ऋषियोंने सभामें उनको देखा तो श्राप दे दिया- ये एक गन्धर्व का ब्रह्म सभामें आनेका तरीका नहीं है। जाओं तुम शूद्र बन जाओ और वेदव्यासजी मुझे शूद्रयोनि का अवतार दिया। मेरा दूसरा जन्म अभी एक शूद्र दासी के गर्भ से उत्पन्न हुआ।

संसार में सर्वत्र स्वार्थ का ही साम्राज्य है। सभी अपनी-अपनी घात में बैठे हैं। सभी स्वार्थ सिद्धि के लिये लालायित हैं। लोभी पुत्र सोचता है, पिता का परलोकवास हो तो मेरे मनोरथ सिद्ध हों। स्वार्थी पिता सोचता है, पुत्र कुछ सयाना हो तो कमाकर खिलावे यही दशा सबकी समझनी चाहिये। सच्चा स्नेह करनेवाले सम्बन्धी तो विरले ही कोई होते हैं।

व्यासजी, यह सम्पूर्ण जगत् अपने-अपने कर्मोंके अधीन होकर चेष्टा कर रहा है। मनुष्य पूर्व जन्मों के संस्कारों से विवश होकर सभी चेष्टाएँ करता है। जिससे पूर्व जन्मों में कभी किसी प्रकार का सम्बन्ध हुआ है, वही आकर इस जन्म में अपना सम्बन्धी बनता है। बिना पूर्व जन्मों के सत्कारों के किसी से सम्बन्ध जुटता ही नहीं। इसी तरह संसार में पद, प्रतिष्ठा सर्वप्रियता की दशा है। जिसने पूर्व जन्मों में यथेष्ट अन्न दान दिया है इस जन्म में उसी की प्रसिद्धि तथा प्रशंसा होगी। बिना अन्न दान के प्रसिद्धि होती ही नहीं। जिसने पूर्व जन्मों में जितने लोगों के प्रति समदर्शिता प्रकट की होगी, वह उतना ही सब लोगोंका प्रिय होगा। पूर्व जन्म में जिसने जितना ही व्रत, तप किया होगा, उसे अगले जन्म में उतना ही शारीरिक सुख प्राप्त होगा। व्रत तप से आन्तरिक शान्ति की प्राप्ति होती है। वैराग्य से संसार के सभी सम्बन्धों में उदासीनता होती है। यही दशा पुत्र आदि सम्बन्धियों के विषय में है।

मेरा माता के साथ किसी पूर्वजन्म का तो लेन-देन का सम्बन्ध था ही नहीं। होगा भी तो उसी का होगा। मेरी रुचि तो आरम्भ से ही साधु संग में थी। घर में मेरा मन ही न लगता। जिनके यहाँ हमारी माँ दासी थी, वे अच्छे विद्वान ब्राह्मण थे, किन्तु उनसे खुलकर बात मैं नहीं कर सकता था। उनके सामने संकोच होता था। हम लोग उनके दास ठहरे, वे हमारे स्वामी ठहरे। व्यासजी। सभी लोग प्यार चाहते हैं। सभी किसी से प्यार पाने के लिये या किसी को प्यार करने के लिये तड़पते रहते हैं। वे लोग धन्य हैं, जिन्हें किसी का सच्चा प्यार प्राप्त है, या जिसे वे ही हृदय से प्यार करते हैं। मेरी माँ तो माया में ही पड़ी रहती। मेरा मन साधु संग के लिये तड़पने लगा। मैं बाल्यकाल से ही गम्भीर चतुर, सुशील और सर्वप्रिय था मुझे खेल-कूद लड़ाई-झगड़ा तनिक भी प्रिय न था। सोचता था- कोई महात्मा मिलें तो उनके चरणों में बैठकर खूब रोऊँ और अपने हृदय की ज्वाला को शान्त करूँ।

सच्ची वासना कभी-न-कभी अवश्य ही पूरी होती है। इसी प्रकार मेरी भी यह सद्वासना पूरी हुई। एक बार ज्येष्ठ के महीने में कुछ महात्मा हमारे ग्राम में चातुर्मास्य व्रत करने आये। वे आठ महीने तो भ्रमण करते रहते थे, चार महीने वर्षा में एक जगह रहकर नियम व्रत करते। हमारा ग्राम श्रीगंगाजी के तट पर था ब्राह्मणों की बस्ती थी। इस वर्ष मुनियों ने वहीं

चातुर्मास्य करने का निश्चय किया। ग्राम से बाहर भगवती भागीरथी के तट पर एक विस्तृत बगीचे में उन मुनियों की कुटियाँ बनाई गईं। ग्राम के लोगों ने उनकी भिक्षा आदि का समुचित प्रबन्ध कर दिया।

मेरी माता कोई पढ़ी लिखी नहीं थी, संत महात्मा गृहस्थोंके यहां काम कर लिया करती थी। उनके बर्तन मांज देना, उनके घर झाड़ू-बुहार कर देना। मैं बहुत छोटा बालक था मैं मां के साथ-साथ रहता था। मुझे कुछ झूठन खानेको मिल जाती थी। क्योंकि मैं तो कोई काम नहीं करता था। वह गृहस्थ जो कुछ झूठन छोड देते थे वह मैं खा लेता था। उन ब्राह्मण संतोंकी अनुमति से उनके झूठे बर्तनोंमें लगा हुआ अन्न दिनमें एक बार खा लिया करता था। इससे मेरे हृदयका सब कल्मष दूर हो गया और मेरा चित्त शुद्ध हो गया।

दासीको हौं पुत्र किन्तु शुभ कर्मनिमहँ रुचि। साधुसंतें बुद्धि भई मेरी कछु कछु शुचि॥
चातुर्मास्य निमित्त वहाँ बहु मुनिवर आये। सेवा सौंपी मोइ सुने हरि चरित सुनाये॥
सीथ प्रसादी पाइकें, पाप पहाड़ ढये सकल। जग सूनो सूनो लगत, रहत कृष्ण बिनु चित विकल॥

नारदजी व्यासजीसे कहते हैं- हे परम प्रेमास्पद व्यासजी। जब मेरी माँ ने मुझे चतुर्मास में एक स्थान पर निवास करने वाले मुनियों की सेवा में नियुक्त कर दिया, तो मैं वहाँ नित्य प्रति कृष्ण कथा सुनने लगा। वे महात्मा नित्य नियम से बड़ी ही मधुर मनोहर कथा कहा करते थे। उन कथाओं के एक-एक पद को मैं बड़े ही ध्यान से श्रद्धासहित सुनता था। उनके सुनते-सुनते ही जिनका श्रवण कीर्तन अत्यन्त ही मनोहर है, उन श्यामसुन्दर की मनमोहिनी मूर्ति में मेरा मन फंस गया। प्रभु के पादपद्मों में भक्ति उत्पन्न हो गयी।

व्यासजी एक दिन उन गृहस्थाश्रम में एक बड़े ऋषियों की टोली आयी चतुर्मास करने। वो तीन महिने तक वहां ठहरी। नित्यप्रतिदिन वहां कीर्तन, सत्संग होते थे। सत्संग का क्या फायदा। मैं चार वर्ष के उम्र का था। मैं भी उन ऋषि मुनियों के साथ कीर्तन में जाकर बैठ जाता। कीर्तन करता, सत्संग सुनता, तालियां बजा लेता। मेरा धीरे-धीरे उस कीर्तन, सत्संग में मन लगने लगा। जो कुछ ऋषि लोग खाते थे उनके झूठन का प्रसाद जो बचता था वो मैं खा लेता था। सत्संग, कीर्तन में जाना और उसका प्रसाद लेना दोनों कल्याणकारी। झूठन, प्रसाद जो भी मिलता था वह प्रसाद भगवान का और सत्संग दोनों चीज में मेरा मन लगने लग गया। संत जो परस्पर भगवान की चर्चा करते थे, उसे सुननेमें मेरी रुचि हो गयी।

एक दिन मुझे मालूम पड़ा कि ऋषि लोगोंका चौमासा खत्म हो गया और ये भी यहांसे चले जायंगे। मेरा मन उनमें इतना अनवृत हो गया। मैंने ऋषियोंसे प्रार्थना की कि आप लोग नहीं जाएं और यदि जाएं तो मुझे भी साथ लेकर जाएं। मैं आपके साथ चलूंगा। उन्होंने मेरा नाम हरिदास रख दिया। ऋषि बोले- हरिदास ऐसे कैसे हो सकता है। हमें तो आपकी मातासे पूछना पड़ेगा। उन्होंने माताको पूछा, माताको जब मालूम पड़ा कि मैं उनके साथ जा रहा हूँ। माता बोली- नहीं। मैं जाने नहीं दूंगी मेरे पुत्र को। माँ कहती है लेकर मत जाना पुत्र बोलता है मुझे ले चलो। प्रिय संयोग में ही दु:खद वियोग छिपा हुआ रहता है, वह कहीं से आता नहीं। चार मास समाप्त हो गये। शरद की पूर्णिमा का निर्मल प्रकाश फैल गया। क्वार बीतने पर कार्तिक लगा। अब महात्माओं के डेरे उठने का समय आ गया। साधु-मण्डली में चलने की चर्चा आरम्भ हुई। सभी का चित्त चंचल हो उठा आनन्द के सागर में एक वियोग की हिलोर ही आ गयी। उसने समस्त आश्रम में एक निराशा की-सी घटा घेर दी।

मेरी मां से हमारे स्वामी ब्राह्मणदेव ने कहा- कृष्णदासी। देख तेरे बच्चे को हम वहाँ साधुओं की सेवा में रखते हैं। वे बड़े भजनानन्दी महात्मा हैं। उनके यहाँ भोजन आदि की तो कुछ कमी ही नहीं। सुन्दर-से-सुन्दर भगवान् का प्रसाद नित्य

मिलेगा। फिर उन महात्माओं के सत्संग से इसका कल्याण भी हो जायगा।

मेरी मां ने बड़ी प्रसन्नता से कहा- आपका ही बच्चा है, जहाँ चाहें रखें। महात्माओं की सेवा से क्या नहीं हो सकता। उनकी कृपा हो जाय और वे आशीर्वाद दे दें। यह बच्चा है, सुशील है, आपके चरणों में रहेगा। आपकी सेवा सुश्रूषा करेगा। उन महात्मा ने मुझे देखा। मेरे ऊपर कृपा दृष्टि करते हुए मधुर वाणी से बोले- अच्छी बात है, यहाँ भगवान् की सेवा में सहयोग देगा, कुछ भाग्य का कार्य करेगा।

बचपनमें ही मैं उनकी सेवामें नियुक्त कर दिया गया था। मैं यद्यपि बालक था, फिर भी किसी प्रकारकी चंचलता नहीं करता था, जितेन्द्रिय था, खेल-कूदसे दूर रहता था और आज्ञानुसार उनकी सेवा करता था। मैं बोलता भी बहुत कम था। मेरे इस शील-स्वभावको देखकर समदर्शी मुनियोंने मुझ सेवकपर अत्यन्त अनुग्रह किया। उनकी अनुमति प्राप्त करके बरतनोंमें लगा हुआ जूँठन मैं एक बार खा लिया करता था। इससे मेरे सारे पाप धुल गये। इस प्रकार उनकी सेवा करते-करते मेरा हृदय शुद्ध हो गया और वे लोग जैसा भजन-पूजन करते थे, उसीमें मेरी भी रुचि हो गयी। व्यासजी- उस सत्संगमें उन लीलागानपरायण महात्माओंके अनुग्रहसे मैं प्रतिदिन श्रीकृष्णकी मनोहर कथाएँ सुना करता। श्रद्धापूर्वक एक-एक पद श्रवण करते-करते प्रियकीर्ति भगवान्‌में मेरी रुचि हो गयी। महामुनि। जब भगवान्‌में मेरी रुचि हो गयी, तब उन मनोहरकीर्ति प्रभुमें मेरी बुद्धि भी निश्चल हो गयी। उस बुद्धिसे मैं इस सम्पूर्ण सत् और असत्‌रूप जगत्‌को अपने परब्रह्मस्वरूप आत्मामें मायासे कल्पित देखने लगा। इस प्रकार शरद् और वर्षा- इन दो ऋतुओंमें तीनों समय उन महात्मा मुनियोंने श्रीहरिके निर्मल यशका संकीर्तन किया और मैं प्रेमसे प्रत्येक बात सुनता रहा। अब चित्तके रजोगुण और तमोगुणको नाश करनेवाली भक्तिका मेरे हृदयमें प्रादुर्भाव हो गया। मैं उनका बड़ा ही अनुरागी था, विनयी था; उन लोगोंकी सेवासे मेरे पाप नष्ट हो चुके थे। मेरे हृदयमें श्रद्धा थी, इन्द्रियोंमें संयम था एवं शरीर, वाणी और मनसे मैं उनका आज्ञाकारी था।

मेरा भाग्य खुल गया। मैं उन महात्माओं के चरणों की शरण में रहने लगा। उन चार महीनों में जैसा सुख मिला, अब १४ भुवनों में घूम-घूमकर देखता हूँ, वैसा सुख कहीं देखने में नहीं आता। वे महात्मा सब कितने महान् थे, कितने त्यागी थे, कैसे भजनानन्दी थे, कुछ कहते नहीं बनता। उनका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता था। कोई क्षण ऐसा नहीं जाता था जिसमें परमार्थ चर्चा न हो। उनके सब कार्य कृष्णार्पण बुद्धि से, बड़े नियम तथा संयम से समय पर होते। कभी किसी कार्य में प्रमाद या आलस्य नहीं होता था। यद्यपि मेरी देखने में अवस्था छोटी थी, किन्तु पूर्व जन्मों के संस्कार से मुझे सब बोध था। मैं समझता था, मेरे जीवन में यह स्वर्णावसर बड़े भाग्य से आया है। इसका उपयोग बड़ी सावधानी के साथ दत्तचित्त होकर करना चाहिये। यद्यपि उन साधुओं को किसी से राग द्वेष या ममता मोह तो था ही नहीं, वे सभी समदर्शी थे, किन्तु मेरी सरलता, सत्यता, सेवापरायणता, संयम और सदाचार के कारण मुझपर विशेष कृपा रखते। मैं भी अव्यग्र होकर उनकी सेवा सुश्रूषा में सदा तत्पर रहता।

कृष्ण कीरतन कथामाहिं आसक्त भयो चित। सेवा श्रद्धा सहित करूं संतनिकी हौं नित॥
सुनत मनोहर चरित मैल मनको सब छूट्यो। श्रीपति-पद रति मई जगततें नातो टूट्यो॥
चित्त भ्रमर सतसंग मधु, श्रीहरि गुन गावन लग्यो। मनमें मोद महा भयो, हृदय प्रफुल्लित है गयो।

ऋषि बड़ी दुविधा में फंस गये। ऋषियोंने हरिदासको बुलाया बोले पुत्र तुम्हारी मां है और पीछेसे इसकी देखभाल। वह बोला मां मे मेरा मन ही नहीं लगता अब मुझे ले चलो।

ऋषि बोले- हठ नहीं किया करते तू अभी बच्चा है समझता नहीं तेरी माँ बूढ़ी हो चुकी तू एकमात्र सन्तान है उसकी सेवा करनी चाहिए। माता-पिता सबसे श्रेष्ठ तीर्थ हैं। तू यहां रह हम फिर आयेंगे। जब तू बड़ा हो जाय तब हमारे साथ चलना। मन को छोटा मत बनाओ। भगवान सर्वत्र हैं। यहीं रहकर भगवान का भजन करो। तुम्हारी सभी मनोकामनायें पूर्ण होंगी।

ऋषि बोले- तुम थोड़े दिन और ठहरो। हरिदास बोला- मेरा मन कैसे लगेगा। ऋषि बोले- हम तो जायेंगे तू मां की देखभाल कर। तुम्हे एक मंत्र दे देते है वह मंत्र के सहारे तुम अपनी जिन्दगी जी लेना। जब भी तेरा मंत्र सफल होगा तुझे भगवान के दर्शन होंगे। उन्होंने एक मंत्र दे दिया- ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। बारह अक्षरोंका द्वादश मन्त्र नारद को दे दिया। उन्होंने मन्त्र दिया **श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ, नारायण वासुदेव।** ऋषि लोग चले गये।

मुझ दासीके बालककी दीनता, नम्रता आदि देखकर मुझपर उन्होंने कृपा की। मुझे उन्होंने भगवानके स्वरूपका ध्यान तथा नामके जपका उपदेश किया। उन दीनवत्सल महात्माओंने जाते समय कृपा करके मुझे उस गुह्यतम ज्ञानका उपदेश किया, जिसका उपदेश स्वयं भगवानने अपने श्रीमुखसे किया है। उस उपदेशसे ही जगत्के निर्माता भगवान श्रीकृष्णकी मायाके प्रभावको मैं जान सका, जिसके जान लेनेपर उनके परमपदकी प्राप्ति हो जाती है।

नारदजी पहले गन्धर्व थे, फिर दासी-पुत्र हुए और इसके बाद ब्रह्माजीके पुत्र हुए। इस प्रकार नारदजीके तीन जन्मोंकी कथा श्रीमद्भागवतमें है। उन्होंने बताया कि जब मैं दासी-पुत्र था, तब जिन ब्राह्मणोंके घर मेरी माता काम करती थी, उनके यहाँ महात्मा लोग चातुर्मास्य कर रहे थे। वहाँ मुझे उन महात्माओंको सत्संग मिला। उनसे धर्ममें रुचि हुई। मैंने भजन किया। मुझे भगवान्के दर्शन हुए।

मुझे ज्ञानोपदेश करनेवाले महात्मागण जब चले गये, तब मैंने इस प्रकार अपना जीवन व्यतीत किया- यद्यपि उस समय मेरी अवस्था बहुत छोटी थी। मैं अपनी मां का इकलौता लड़का था। एक तो वह स्त्री थी, दूसरे मूढ़ और तीसरी दासी थी। मुझे भी उसके सिवा और कोई सहारा नहीं था। उसने अपनेको मेरे स्नेहपाशसे जकड़ रखा था। वह मेरे योगक्षेमकी चिन्ता तो बहुत करती थी, परन्तु पराधीन होनेके कारण कुछ कर नहीं पाती थी। जैसे कठपुतली नचानेवालेकी इच्छाके अनुसार ही नाचती है, वैसे ही यह सारा संसार ईश्वरके अधीन है। मैं भी अपनी माके स्नेहबंधनमें बँधकर उस ब्राह्मण-बस्तीमें ही रहा। मेरी अवस्था केवल पाँच वर्षकी थी; मुझे दिशा, देश और कालके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञान नहीं था। अब नारद का मन लगे नहीं दिन-प्रतिदिन वह ॐ नमो भगवते वासुदेवाय का पाठ करने लगा।

एक दिनकी बात है मेरी मा गौ दुहनेके लिये रातके समय घरसे बाहर निकली। रास्तेमें उसके पैरसे एक काला साँप छू गया, उसने उस बेचारीको डस लिया। उस साँपका क्या दोष, कालकी ऐसी ही प्रेरणा थी। मैंने समझा, भक्तोंका मंगल चाहनेवाले भगवान्का यह भी एक अनुग्रह ही है। मेरी मां का निधन हो गया। मैंने अपनी माता की मृत्यु को भी भगवान की कृपा समझा। माताका वात्सल्य भी एक बन्धन ही था, जो भगवत्कृपा से दूर हो गया।

नारद को मालूम पड़ा, नारद रोया। खुश भी हो गया, हँसने भी लगा और बोला बहुत अच्छा हुआ। मां के लिये रोया इसलिये कि मां में आसक्ति थी, मेरी मां थी। प्रसन्न यह हुआ कि मेरे भगवान भजन में सिर्फ यही एक बाधा थी जो आज टल गयी, चली गयी। अब तो मै स्वच्छन्द होकर भगवान का भजन करूंगा, भगवान में मन लगाऊंगा। अन्त्येष्टि क्रिया हुई माताश्री चले गयीं अब नारदजी अकेले हो गये। मुझे न देशका पता था और न कालका। वह गांव जिसमें रह रहे थे वह गांव छोड़कर उत्तराखण्ड की तरफ चले गये। इसके बाद मैं उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा।

प्रारब्ध कर्मों के अनुसार, तप आदि के प्रभाव से यदि आपको ऐश्वर्य की प्राप्ति हो जाय, तो उससे आपको शान्ति नहीं

मिलती और अशान्ति बढ़ जाती है। सच्चे हृदय से भगवान् की शरण लेकर, मनुष्यों से कुछ भी आशा न रखकर, जो भगवत् चिन्तन में लगा रहता है, उसकी सभी चिन्तायें प्रभु अपने ऊपर ले लेते हैं। उसके सभी कामों को वे स्वयं अपने हाथों से करते हैं।

उत्तर दिशाके मार्गमें मुझे अनेकों धन-धान्यसे सम्पन्न देश, नगर, गाँव, अहीरोंकी चलती-फिरती बस्तियाँ, खानें, खेड़े, नदी और पर्वतोंके तटवर्ती पड़ाव, वाटिकाएँ, वन-उपवन और रंग-बिरंगी धातुओंसे युक्त विचित्र पर्वत दिखायी पड़े। कहीं-कहीं जंगली वृक्ष थे, जिनकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ हाथियोंने तोड़ डाली थीं। शीतल जलसे भरे हुए जलाशय थे, जिनमें देवताओंके काममें आनेवाले कमल थे; उनपर पक्षी तरह-तरहकी बोली बोल रहे थे और भौंरे मँडरा रहे थे। यह सब देखता हुआ मैं आगे बढ़ा। मैं अकेला ही था। इतना लंबा मार्ग तय करनेपर मैंने एक घोर गहन जंगल देखा। उसमें नरकट, बाँस, सेंठा, कुश, कीचक आदि खड़े थे। उसकी लंबाई-चौड़ाई भी बहुत थी और वह साँप, उल्लू, स्यार आदि भयंकर जीवोंका घर हो रहा था। देखनेमें बड़ा भयावना लगता था। चलते-चलते मेरा शरीर और इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। मुझे बड़े जोरकी प्यास लगी, भूखा तो थी ही। वहाँ एक नदी मिली। उसके कुण्डमें मैंने स्नान, जलपान और आचमन किया। इसे मेरी थकावट मिट गयी। उस विजन वनमें एक पीपलके नीचे आसन लगाकर मैं बैठ गया और ध्यान लगाया। उन महात्माओंसे जैसा मैंने सुना था, हृदयमें रहनेवाले परमात्माके उसी स्वरूपका मैं मन-ही-मन ध्यान करने लगा। भक्तिभावसे वशीकृत चित्तद्वारा भगवान्के चरणकमलोंका ध्यान करते ही भगवत्-प्राप्तिकी उत्कट लालसासे मेरे नेत्रोंमें आँसू छलछला आये और हृदयमें धीरे-धीरे भगवान् प्रकट हो गये। प्रेमभावसे अत्यन्त उद्रेकसे मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। हृदय अत्यन्त शान्त और शीतल हो गया। उस आनन्दकी बाढ़में मैं ऐसा डूब गया कि मुझे अपना और ध्येय वस्तुका तनिक भी भान न रहा। भगवान्का वह अनिर्वचनीय रूप समस्त शोकोंका नाश करनेवाला और मनके लिये अत्यन्त लुभावना था। सहसा उसे न देख मैं बहुत ही विकल हो गया और अनमना-सा होकर आसनसे उठ खड़ा हुआ। ध्यान करते समय एक क्षणके लिये सहसा हृदयमें भगवान प्रकट हो गये परन्तु दिव्य झाँकी विद्युत की तरह आयी और चली गयी। मैं व्याकुल होकर उस झाँकी को पुन: पाने का प्रयत्न करने लगा।

उत्तराखण्ड में भयंकर जंगल बाघ, हिरन, सब तरह के हिंसक जानवर थे। एक पेड़ के नीचे, एक सरोवर के नीचे जाकर नारदजीने तपस्या शुरू की। वायु पीकर, जल पीकर एक पैर पर खड़े रहकर। एक दिन नारदजीके हृदय में तपस्या करते-करते एक अद्भुत झाँकी आ गयी जिसने दर्शन दिये। नारदजी कुछ समय तक सोचते रहे यह ऐसा स्वरूप है एकबार किसीको दिख जावें तो दूसरा स्वरूप देखने की इच्छा नहीं रहती। अगर जिसने दूसरे स्वरूप देखने की इच्छा की तो उसने उस स्वरूप के दर्शन ही नहीं किये। ऐसा अद्भुत स्वरूप। ऐसे भगवान की झाँकी एक टक मन में लग जावे। देखिये आपका मन खानेमें लगता है, आपको बहुत अच्छा खाना लगता है वो खाना अगर नित्यदिन कोई परोसा जाएं तो डटके भूख लगी हुई है खिलाया जाएं एक ऐसा समय भी आता है आधा खाना होनेके बाद अरुचि होती है। किसी ऐसी स्त्री की भोग की लालसा भोगने के बाद आपका मन भर जाता है। ऐसा धन- कभी-कभी धन इतना आने लगता है तभी आदमी को लगता है कि बारह बजे तक काम करने का झंझट। क्या करूं, क्या नहीं और भी विश्वमान होता है दुनियाके जितने ऐश्वर्य और भोग है वो आदमी भोग भी ले तो भी तृप्त नहीं होता और इतना ऊबता है उनसे। लेकिन एक सत्यस्वरूप एक बार भोग लिया, एक बार देख लिया, एक बार जान लिया यह रंग पहले तो चढ़ता नहीं है और चढ़ गया तो ऐसा चढ़ता है कि उतरता नहीं है। यह ऐसा रंग है। नारदजी बोले- मैं देखता हूँ- देखता हूँ वह रूप अन्तर्ध्यान। अब नारदजी विह्वल

छटपटा रहे है वह रूप कैसा है? मैंने क्या देखा?

मैंने उस स्वरूपका दर्शन फिर करना चाहा; किंतु मनको हृदयमें समाहित करके बार-बार दर्शनकी चेष्टा करनेपर भी मैं उसे नहीं देख सका। मैं अतृप्तके समान आतुर हो उठा। इस प्रकार निर्जन वनमें मुझे प्रयत्न करते देख स्वयं भगवान्ने, जो वाणीके विषय नहीं हैं, आकाशवाणी करी। बड़ी गंभीर और मधुर वाणीसे मेरे शोकको शान्त करते हुए कहा। खेद है कि इस जन्ममें तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकोगे। जिनकी वासनाएँ पूर्णतया शान्त नहीं हो गयी हैं, उन अधकचरे योगियोंको मेरा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। निष्पाप बालक। तुम्हारे हृदयमें मुझे प्राप्त करनेकी लालसा जाग्रत करनेके लिये ही मैंने एक बार तुम्हें अपने रूपकी झलक दिखायी है। मुझे प्राप्त करनेकी आकांक्षासे युक्त साधक धीरे-धीरे हृदयकी सम्पूर्ण वासनाओंका भलीभाँति त्याग कर देता है। अल्पकालीन संतसेवासे ही तुम्हारी चित्तवृत्ति मुझमें स्थिर हो गयी है। अब तुम इस प्राकृतमलिन शरीरको छोड़कर मेरे पार्षद हो जाओगे। मुझे प्राप्त करनेका तुम्हारा यह दृढ़ निश्चय कभी किसी प्रकार नहीं टूटेगा। समस्त सृष्टिका प्रलय हो जानेपर भी मेरी कृपासे तुम्हें मेरी स्मृति बनी रहेगी। इस जन्म में तुम मुझे देख नहीं सकते। जिनका चित्त पूर्णतया निर्मल नहीं है, वे मेरे दर्शनका अधिकारी नहीं है।

आकाशके समान अव्यक्त सर्वशक्तिमान महान परमात्मा इतना कहकर चुप हो रहे। उनकी इस कृपाका अनुभव करके मैंने उन श्रेष्ठोंसे भी श्रेष्ठतर भगवान्को सिर झुकाकर प्रणाम किया।

आकाशवाणी होती है- नारद, तुम्हे इस जन्म में मेरा यह रूप देखने को नहीं मिलेगा। तुम्हारी वासनायें सीमायें अभी तक शमित नही हुई है। कुछ समय और लगेगा। तुम्हे अगले जन्म में मैं मिलूंगा। अब नारदजी अगले जन्म की प्रतीक्षा में और जिस समय नारदजी का यह शूद्र योनिका जन्म था उस समय महाप्रलय होने जा रही थी। नारदजी उस प्रलयमें ब्रह्मा के अन्तर्लीन हो गये ब्रह्मा के मुख में चले गये।

मैं लज्जा-संकोच छोड़कर भगवान्के अत्यन्त रहस्यमय और मंगलमय मधुर नामों और लीलाओंका कीर्तन और स्मरण करने लगा। स्पृहा और मद-मत्सर मेरे हृदयसे पहले ही निवृत्त हो चुके थे, अब मैं आनन्दसे कालकी प्रतीक्षा करता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा।

मनुष्य को तभी तक भय रहता है, जब तक वह मरने से डरता है। जिसने मृत्यु को अवश्यम्भावी समझकर उसके भय का परित्याग कर दिया है। जिसने अपने सिर को हथेली पर रख लिया है, जिसे जीने का व्यर्थ मोह नहीं है, वह मृत्यु से न डरनेवाला- हर समय उसके लिये तैयार बैठा रहनेवाला पुरुष-संसार में सब कुछ कर सकता है। अब मुझे शरीर का मोह तो रहा नहीं। यही नहीं, यह शरीर मुझे भार-सा प्रतीत होने लगा। भगवत् दर्शन में अन्तराय दिखाई देने लगा। मैं मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगा। कब काल आवे और कब मैं उसका स्वागत-सत्कार करके उसके कण्ठ में जयमाला पहिनाऊँ और उसके साथ-ही-साथ उसके निर्दिष्ट लोक में जाऊँ। काल की शंका निवृत्त हो गई, जीवन का एक मात्र कर्त्तव्य परम मधुर भगवान के नामों का गान करना, उनकी दिव्य ललित लीलाओं का चिन्तन करना और उनके परम माधुर्यमय, आनन्दमय लोकोत्तर गुणोंका स्मरण करना ही है। इस बात का निश्चय हो गया। अब तो मद, मत्सर से शून्य, प्रसन्न चित्त तथा निस्पृह होकर पृथ्वी पर इधर-से-उधर भ्रमण करने लगा।

चितचोर ने चित्त चुराया मेरा, हरे कृष्ण गया फिर भाग कहां।
व्रजमण्डल के युवराज बिना, सुख का सब साज समाज कहां॥
अब और सुहाता कुछ भी नहीं जब लाग गई तो अब लाज कहां।

दु:खिया पर हाय दया करिके, बतला दे कोई व्रजराज कहां ।।

इसप्रकार भगवान्‌की कृपासे मेरा हृदय शुद्ध हो गया, आसक्ति मिट गयी और मैं श्रीकृष्णपरायण हो गया। कुछ समय बाद, जैसे एकाएक बिजली कौंध जाती है, वैसे ही अपने समयपर मेरी मृत्यु आ गयी। मुझे शुद्ध भगवत्पार्षद-शरीर प्राप्त होनेका अवसर आनेपर प्रारब्धकर्म समाप्त हो जानेके कारण पांचभौतिक शरीर नष्ट हो गया। कल्पके अन्तमें जिस समय भगवान् नारायण एकार्णव (प्रलयकालीन समुद्र) के जलमें शयन करते हैं, उस समय उनके हृदयमें शयन करनेकी इच्छासे इस सारी सृष्टिको समेटकर ब्रह्माजी जब प्रवेश करने लगे, तब उनके श्वासके साथ मैं भी उनके हृदयमें प्रवेश कर गया। एक सहस्र चतुर्युगी बीत जानेपर जब ब्रह्मा जगे और उन्होंने सृष्टि करनेकी इच्छा की, तब उनकी इन्द्रियोंसे मरीचि आदि ऋषियोंके साथ मैं भी प्रकट हो गया। तभीसे मैं भगवान्‌की कृपासे वैकुण्ठादिमें और तीनों लोकोंमें बाहर और भीतर बिना रोक-टोक विचरण किया करता हूँ। मेरे जीवनका व्रत भगवद्भजन अखण्डरूपसे चलता रहता है।

पुन: सृष्टि होनेपर मैं ब्रह्माजी का मानस पुत्र हुआ और तब से अब तक भगवान का गुणानुवाद करता हुआ जीवों के कल्याण कार्य में संलग्न हूँ। नारदजी ने वीणा सम्भाला और हरि गुण गाते चले गये। व्यासजी भी अपने आश्रम में एकाग्रचित्त होकर प्रभु का स्मरण करने लगे।

अगला जन्म नारद का देवर्षि देवताओंके ऋषि, वीणा बजाना यह समझ लो अगर भगवान हरि हैं तो उसके बाद देवर्षि नारद हैं। जो तीनों लोकोंमे घूम सकता है और हर घरका कल्याण कर सकता, जहां झगड़ा हो वहाँ शान्ति करा सकता यह है नारदजी। बोले मेरा तो भगवान के साथ उठना बैठना। व्यासजी मैंने यह सब भगवान के मुख से जाना। जो कुछ जाना ब्रह्मासे जाना, भगवान हरिसे जाना वो मैंने आपको बताया है।

भगवानकी दी हुई इस स्वरब्रह्मसे विभूषित वीणापर तान छेड़कर मैं उनकी लीलाओंका गान करता हुआ सारे संसारमें विचरता हूँ। जब मैं उनकी लीलाओंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनके चरणकमल समस्त तीर्थोंके उद्‌गमस्थान हैं और जिनका यशोगान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, बुलाये हुएकी भाँति तुरन्त मेरे हृदयमें आकर दर्शन दे देते हैं। जिन लोगोंका चित्त निरन्तर विषय-भोगोंकी कामनासे आतुर हो रहा है, उनके लिये भगवान्‌की लीलाओंका कीर्तन संसार-सागरसे पार जानेका जहाज है, यह मेरा अपना अनुभव है। काम और लोभकी चोटसे बार-बार घायल हुआ हृदय श्रीकृष्ण सेवासे जैसी प्रत्यक्ष शान्तिका अनुभव करता है, यम-नियम आदि योग-मार्गोंसे वैसी शान्ति नहीं मिल सकती। आप निष्पाप हैं। आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब अपने जन्म और साधनाका रहस्य तथा आपकी आत्मतुष्टिका उपाय मैंने बतला दिया। भगवान्‌ने मुझको यह वीणा दी और मैं उनकी कीर्तिका गान करने लगा।

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वन: । गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ।।

मैंने भगवान से यही वरदान माँगा कि मैं सदा आपका गुणगान करता रहूं। एक क्षण भी ऐसा व्यतीत न हो जिस समय आपके मंगलनामोंका उच्चारण ना हो। भगवन बड़े प्रसन्न हुए और मुझे वर दिये बोले- मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ। यह वीणालोक सात स्वरोंसे संयुक्त है इसे बजाकर तुम मेरे गुण गाया करो। तुम्हें मेरे दर्शनों के लिये प्रयास नहीं करना पड़ेगा। जहां तुम प्रेम से गाओगे मैं क्षीरसागर, वैकुण्ठ, लक्ष्मी सभी को छोड़-छाड़कर चला आऊँगा। व्यासजी इसीसे मैं हरिका गुणगान गाता हुआ चौदहों भुवन में बिना रोक-टोक घूमते रहता हूँ।

कल्पान्त में प्रलयकालीन समुद्र (एकावर्णव) मैं शयन को उद्यत नारायण के हृदय क्षेत्र में प्रवेश को तत्पर ब्रह्माजी के भीतर श्रावस द्वारा प्रविष्ट और एक सहस्त्र चतुर्युगी उपरान्त सृष्टि सृजनकाल में उनकी इन्द्रियों से प्रकट हुए।

हरि को नाम सदा सुखदाई। जाको नाम सुमर भव तर गई भक्त अहिल्याबाई।।
गणिका ने जब टेर लगाई आये कुंवर कन्हाई। पाण्डव पत्नी नग्न करता जब दु:शासन दुखदाई।।
निरालम्ब हो द्रुपद सुता ने कृष्ण नाम धुन गाई।
आतुर धाय देवकीनन्दन सती की लाज बचाई। हरि प्रपन्न भजन कर हरि को जनम सुफल होई जाई।।

सनकादिमुनीश्वरों द्वारा वर्णित विरक्त शिरोमणि, श्रीकृष्ण दासों में अग्रगण्य व भक्तियोग के भास्कर देवर्षि नारद, सृष्टिकर्ता साक्षात् ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण में उल्लेख है ब्रह्माजी के कण्ठदेश (नरद) से उत्पत्तिवश नारद नामकरण हुआ। सृष्टि विस्तार हेतु नारद की अवज्ञा से कुपित ब्रह्माजी ने उन्हें ज्ञान लुप्त होने व पचास कामिनियों का पति होने का शाप दिया। निरपराध नारद ने भक्ति में बाधक ब्रह्माजी को तीन कल्प व्यतीत होने तक तीनों लोकों में अपूज्य रहने का शाप दिया। गन्धर्व योनि पाकर अधिक पूज्य होने के कारण अभिशप्त नारद का गुरु वशिष्ठ द्वारा नामकरण हुआ उपबर्हण। उन्होंने दीर्घकाल तक चित्ररथ गन्धर्व की पचास कन्याओं के साथ विहार किया। रम्भा अप्सरा का नृत्य देख, सम्मोहित होने के कारण क्रुद्ध ब्रह्माजी ने उन्हें शूद्र-योनि प्राप्त होनेका शाप दिया। जिससे गोपराज द्रुमिल की पत्नी कलावती के गर्भ से उत्पन्न हो दासी पुत्र कहलाए। तदनन्तर वैष्णवों की जूठन (सीथ प्रसादी) के पुण्य प्रभाव से ब्रह्मा के पुत्र हुए और नर-नारायण से प्राप्त ज्ञान (नार) का दाता होने के कारण नारद कहलाए। नारं ददातीतिनारद: ५ वर्ष की बाल्यावस्था में सनक, सनन्दन व सनातन द्वारा तत्वज्ञान और सनत्कुमार द्वारा कल्पवृक्ष स्वरूप श्रीकृष्ण मन्त्र ॐश्रीनमोभगवतेरासमण्डलेश्वरायश्रीकृष्णायस्वाह) प्राप्त हुआ तथा सर्पदंश वश माता की मृत्यु पश्चात गृह त्यागकर निराहार कठोर तप के प्रभाव से भगवान श्रीकृष्ण की दिव्य झांकी के दर्शन हुए। कल्पान्त में प्रलयकालीन समुद्र (एकावर्णव) मैं शयन को उद्यत नारायण के हृदय क्षेत्र में प्रवेश को तत्पर ब्रह्माजी के भीतर श्रावस द्वारा प्रविष्ट और एक सहस्त्र चतुर्युती उपरान्त, सृष्टि सृजनकाल में उनकी इन्द्रियोंसे प्रकट हुए। भगवान द्वारा वैकुंठ अथवा योगियों के हृदय में न रहकर मात्र भक्तों के कीर्तन-स्थल पर निवास करने की बात सुनकर प्रभु के गुणगान की ओर प्रवृत्त हुए। दक्ष के हर्यश्व नामक १० हजार पुत्र व तदनन्तर शवलाश्व नामक एक हजार पुत्र नारदजी के उपदेश के प्रभाववश प्रजासृष्टि के लक्ष्य से विरत हुए। तब क्रुद्ध दक्ष प्रजापतिने इन्हें वंश परम्परा उच्छेद का दोषी मान लोक लोकान्तरों में सदा भटकते रहने व कहीं ठौर न होने का शाप दिया। वे जन्म-मृत्यु से रहित नित्यरूपधारी हैं, जिनका निज इच्छा से अविर्भाव अथवा तिरोभाव संभव है। वे भगवत्प्रेमी परिव्राजक है, जिनका समस्त लोकों में स्वच्छन्द विचरण है। भगवान के विशेष कृपापात्र व लीला सहचर हैं। वे तत्वज्ञ, नीतिज्ञ, शास्त्रज्ञ, दिव्य स्मृतिवान त्रिकालज्ञ ज्योतिषी, वैद्यक शास्त्र व व्याकरण पण्डित, अखंड ब्रह्मचर्य व्रतधारी, प्राणियों को भगवद्भक्ति की ओर उन्मुख करनेवाले, कल्याणार्थ विवाद भी उत्पन्न करानेवाले परम हितैषी है। श्रीमद्भगवत के अनुसार वे भक्ति के द्वादश आचार्यों में प्रमुख हैं। श्रीवृन्दावन धाम में भक्ति देवी व उनके ज्ञान-वैराग्य पुत्रों के कष्टों से द्रवित हो सनकादिकी आज्ञानुरूप हरिद्वार के निकट आनन्द घाट पर श्रीमद्भगवत कथा द्वारा ज्ञान यज्ञ कर कष्ट निवृत्ति की। उन्होंने अद्वितीय कलियुग में घर-घर व जन-जन में भक्ति की स्थापना करने की प्रतिज्ञा की है।

नारदजी बोले- सत्यसंकल्प व्यासजी, पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रति समस्त कर्मोंको समर्पित कर देना ही संसारके तीनों तापोंकी एकमात्र औषधि है, यह बात मैंने आपको बतला दी। प्राणियोंको जिस पदार्थके सेवनसे जो रोग हो जाता है, वही पदार्थ चिकित्साविधिके अनुसार प्रयोग करनेपर क्या उस रोगको दूर नहीं करता? इसी प्रकार यद्यपि सभी कर्म मनुष्योंको जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें डालनेवाले हैं, तथापि जब वे भगवान्‌को समर्पित कर दिये जाते हैं, तब उनका

कर्मपना ही नष्ट हो जाता है। इस लोकमें जो शास्त्रविहित कर्म भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किये जाते हैं, उन्हींसे पराभक्तियुक्त ज्ञानकी प्राप्ति होती है। उस भगवदर्थ कर्मके मार्गमें भगवान्‌के आज्ञानुसार आचरण करते हुए लोग बार-बार भगवान श्रीकृष्णके गुण और नामोंका कीर्तन तथा स्मरण करते हैं। प्रभो आप भगवान श्री वासुदेवको नमस्कार है। हम आपका ध्यान करते हैं। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षणको भी नमस्कार है। इस प्रकार जो पुरुष चतुर्व्यूहरूपी भगवन्मूर्तियोंके नामद्वारा प्राकृत-मूर्तिरहित अप्राकृत मन्त्रमूर्ति भगवान यज्ञपुरुषका पूजन करता है, उसीका ज्ञान पूर्ण एवं यथार्थ है। ब्रह्मन। जब मैंने भगवान्‌की आज्ञाका इस प्रकार पालन किया, तब इस बातको जानकर भगवान् श्रीकृष्णने मुझे आत्मज्ञान, ऐश्वर्य और अपनी भावरूपा प्रेमाभक्तिका दान किया। व्यासजी। आपका ज्ञान पूर्ण है; आप भगवान्‌की ही कीर्तिका-उनकी प्रेममयी लीलाका वर्णन कीजिये। उसीसे बड़े-बड़े ज्ञानियोंकी भी जिज्ञासा पूर्ण होती है। जो लोग दु:खोंके द्वारा बार-बार रौंदे जा रहे हैं, उनके दु:खकी शान्ति इसीसे हो सकती है, और कोई उपाय नहीं है।

देवर्षिकी कृपासे ही गर्भमें प्रह्लादजीको उपदेश सुनाया। उसी ज्ञानके कारण प्रह्लादजीको इतना दृढ़ संकीर्तन-प्रेम तथा भगवद्विश्वास हुआ। वे सदा राम-राम, नारायण का जाप-कीर्तन करते रहते हैं। नारदने ही ध्रुवको मन्त्र देकर उपासनाकी पद्धति सिखायी और ध्रुवने भी नाम-कीर्तनसे अचल पद प्राप्त किया। नारद सभी शास्त्रोंके ज्ञाता है। नारदने श्रीकृष्णकी पत्नियोंकी दीर्घकाल तक सेवा कर संगीत-कीर्तनका ज्ञान प्राप्त किया। भक्तिका विश्वव्यापी प्रचार करना इनका प्रधान लक्ष्य रहा। इन्होंने अनेक भक्तिग्रंथोंकी रचना की है जिनमें नारद-पाञ्चरात्र, नारद-भक्ति-सूत्र, नारद स्मृति और नारदपुराण मुख्य है।

भागवत कथा। सूतजी शौनकादि ऋषियोंको कहते हैं यह नारद का पूर्व वृत्तान्त इस तरह हुआ और यह कथा परीक्षित ने शुकदेव ऋषिसे सुनी, वेदव्यास के पुत्र से सुनी। शौनकादि ऋषि पूछते है- यह शुकदेव कौन? यह परीक्षित कौन? अगर आप उचित समझे तो हमें यह कथा सुनाइये? हमने पूछा कि मनुष्योंका कल्याण कैसे हो? वह आपने बताया कि भगवान की भक्ति करने से होगी, भागवत कथा सुननेसे होगी। लेकिन भागवत कथा करी किसने? वो बताया वेदव्यास ने उसने लिखी। इसके पात्र जो है इसने कथा क्यों करी? यह किसने सुनायी? किसको सुनायी? इसके बारेमें हमें ज्ञान प्राप्त करना है। यह कथा महाभारत के इर्दगिर्द घूमती है।

करि नारद उपदेश व्यास तें बोले बानी। कृष्ण कथा-सत्संग जनित निज कही कहानी।।
तुम हू संशय त्याग भक्त भगवत गुन गाओ। कृष्ण कथा के कहत शान्ति सुख सागर न्हाओ।।
यों कहि ले वीणा चले, राम कृष्ण गुन गावते। व्यास विचारें धन्य मुनि, ये सबके मन भावते।।

जिन लोगों के हृदय को विषयों की वासनायें बार-बार व्याकुल बनाती रहती हैं, उनके लिये श्रीकृष्ण चरणविन्द की कमनीय कथा ही अगाध संसार सागर से पार करनेवाली दृढ़ और सुनिश्चित नौका है। वे उसी के द्वारा बिना प्रयास पार जा सकते हैं।

ये जो आदिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन प्रकार के ताप हैं, ये ही मनुष्य को सदा पीड़ा पहुंचाते रहते हैं। वे ही जीवों को दु:ख देते हैं। इनके ही संताप से संतापित हुआ पुरुष सदा जलता रहता है। जब तक इन भीषण रोगों की सावधानी से, लगकर चिकित्सा न की जाय तब तक ये रोग दूर नहीं हो सकते।

देवर्षि नारदजीने कहा जिन लोगों का चित्त सतत रूप से विषय कामनाओं के लिए आतुर हो रहा है उनके लिए भगवान की लीलाओं का कीर्तन भवसागर से पार जाने के लिए जहाज के समान है।

इसीलिये सब कर्म करते हुए, निरन्तर श्रीकृष्ण के नाम और गुणोंका कीर्तन करते रहना चाहिये। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध- इस चतुर्व्यूहरूप से श्रीहरि का पूजन करें, नमस्कार करें। मन्त्र ही जिनकी मूर्ति है, ऐसे अव्यक्त

अच्युत का सदा चिन्तन करता रहे, यह सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है, यही परम पुरुषार्थ है, यही मुख्य कर्त्तव्य है।

यह संसार आतुर, मरणासन्न व्यक्तिकी भाँति मृत्युग्रस्त हो रहा है। धन्य हैं देवर्षि नारद, जो भगवान्‌की कीर्तिका गान करते हुए स्वयं तो मस्त रहते ही हैं, दूसरोंको भी आनन्द देते हैं।

धनि नारद मुनि धन्य-धन्य वर बीना इनकी। हरि यश गावें नित्य सुरसना धनि-धनि तिनकी।।
सब जग दुख संतप्त, फिरें जे हरि गुन गावत। दुख को मेटत मूल शान्ति को पाठ पढ़ावत।।
धनि अवनी निज चरणकी, पद पराग परसत विमल। दै ई दूरि करें दुरित, संत-संग सुरसरि सलिल।।

६) संक्षिप्त महाभारत- महाभारत और भागवत् कथा में अन्तर है। महाभारत की कथा ऐतिहासिक है, जो भिन्न-भिन्न कल्पोंमें हुई और भागवतकी कथाका उद्देश्य है कि मनुष्यके मनमें भजनकी प्रेरणा मिले। मनमें भक्ति करने की इच्छा उदय हो और ईश्वर को जाने।

महाभारत के पहले और महाभारत के बाद मनुष्यता भारी संकटों से गुजरती रही महाभारत के पहले आदमीयत एक शिखर और एक ऊंचाई पर थी। करीब-करीब वैसे ही शिखर और ऊंचाई पर, जैसा आज पश्चिम है, ऐसा पूरब भी था। जितने अस्त्र-शस्त्रों की हम आज खोज कर रहे हैं, करीब-करीब उनकी चर्चा महाभारत में है। बस नाम उनके अलग हैं, पर उनके गुणधर्म यही हैं। महाभारत के पूर्व की जो संस्कृति थी और मनुष्य का जो विकास था, वह शिखर पर पहुंच गया था और महाभारत के बाद उस शिखर को भारत फिर कभी नहीं छू सका। महाभारत के साथ जो पतन हुआ, जिससे संस्कृति, सभ्यता और विज्ञान का जो विनाश हुआ, वह फिर आज तक पूरा नहीं किया जा सका।

भरत वंश में भूप, भये शन्तनु सुखदाता। विदुर, पांडु, धृतराष्ट्र, पौत्र तिनके विख्याता।।
पाण्डव पाँचों पांडु तनय धृतराष्ट्र पुत्र शत। पाण्डव परम प्रसिद्ध, किन्तु कौरव अति निन्दित।।
राज्य हेतु भारत भयो, पाण्डु-पुत्र विजयी भये। भीम सुयोधन, जाँघकूँ, तोरि छोरि निज घर गये।।

इस कथा से जीवके शोक, मोह, भय नष्ट हो जाते है। वेदव्यासने भागवत संहिताका निर्माण और पुनरावृत्ति करके अपने अवधूत पुत्र शुकदेवको पढ़ाया। जो सदा ही आत्मामें रमण करते है। भगवान के गुण ही ऐसे मधुर है, जो सबको अपनी ओर खींच लेते हैं।

सत्यवती का एक चरित्र मैंने आपको वेदव्यास के रूप में बताया। दूसरा चरित्र कुरुवंश से सम्बन्धित है। कुरुवंश क्या है? यह कुरुवंश महाराज सूर्यकी विवस्वान सूर्य उसकी पुत्री तपती संवरण को ब्याही गयी। संवरण से एक पुत्र उत्पन्न हुआ कुरु। जिसने तपस्या करी उस क्षेत्र का नाम है कुरुक्षेत्र। जहांपर महाभारत का युद्ध भी लड़ा गया। उस कुरु के कुल में संतानों का आते-आते एक रैभ्य पुत्र दुष्यन्त नाम के छठवें पीढ़ी में हुए। दुष्यन्त नाम के राजा हुए। उस दुष्यन्त का विवाह विश्वामित्र की पुत्री शकुन्तला के साथ हुआ। महर्षि कण्व के पिता कण्व के आश्रम में हुआ। कण्वमुनि जिसने शकुन्तला जिसकी पालिता पुत्री थी। एक समय कण्व ऋषि कहीं तीर्थाटन पर गये थे और दुष्यन्त शिकार खेलते-खेलते कण्व ऋषि के आश्रम में पहुंचे। वहां उसने इस सुन्दर कन्या शकुंतला को देखा। दुष्यन्त उस कन्या को देखकर मोहित हो गये। दुष्यन्त की आत्मा यह बार-बार कह रही थी यह ऋषिकन्या नहीं हो सकती। यह कोई क्षत्रिय कन्या होनी चाहिए। इसमें क्षत्रिय का तेज है। शकुंतला के पास गये और दुष्यन्त ने पूछा- बालिके आप कौन है। शकुंतला बोली मेरा परिचय यह है मैं महर्षि कण्वकी पालिता कन्या हूँ। दुष्यन्त बोला- मैं आपसे गंधर्व विवाह का प्रस्ताव करता हूँ। शकुंतला बोली- जब तक महर्षि कण्व नहीं आते उनकी आज्ञा के बिना मैं आपका प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकती। मैं अनुमोदन

करती हूँ। शकुंतला ने उनका आतिथ्य किया। दुष्यन्त रात्रिभर वहां ठहरे। दुष्यन्त ने कहा- शकुंतले। मैं इन्तजार की घड़िया बर्दाश्त नहीं कर सकता और मुझे जाना है। उन्होंने गन्धर्व विवाह किया। दुष्यन्त ने पहचान के बतौर अपनी एक अंगूठी शकुंतला को दी। शकुंतला के समय आनेपर एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बड़ा वीर, तेजस्वी पुत्र जिसका नाम भरत रखा गया। उस जंगलमे शेरों के साथ वह बालक खेलता था। हमारे देश का नाम पहले अजानाभ वर्ष था जिसका नाम उस बालक के नाम से भारत वर्ष पड़ा, वह शकुंतला का पुत्र भरत। भरत का आगे वंश में कोई पुत्र नहीं हुआ। बड़े विलासी, आलसी, जिन्हें उसने योग्य नहीं समझा, उसने मन्यु के पुत्र को, उसके चचेरे भाई के पुत्र को गोद ले लिया और उस पुत्र को अपना वारिस बनाया, राजगद्दी दी। मन्यु पुत्र से उत्पन्न महाराज हस्ति हुए, हस्ति के प्रतीप हुए और प्रतीप के पुत्र शान्तनु हुए। शान्तनु ने हस्तिनापुर बसाया इस हस्तिनापुर को पुराना मेरठ कहते हैं। उस हस्तिनापुर के नरेश थे शान्तनु। शान्तनु की कथा शुरु होती है जो महाभारत से शुरु होती है। शान्तनु एक बड़े अच्छे प्रजापालक, एक अच्छे राजा थे। एक दिन शिकार खेलते-खेलते हस्तिनापुर की नदी गंगा तीरपर गये और गंगापर मानव वेश में उस गंगाको देखा। अत्यन्त सुन्दर। शान्तनु का मन उस कन्यापर आया। वो कन्या अपने श्राप भोगने को यहां पृथ्वीपर आयी हुई थी। शान्तनु ने प्रस्ताव किया- गंगे। मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ। गंगाने कहा- मुझे स्वीकार है लेकिन यह शर्त है कि मैं जो कुछ भी करूंगी तुम उसके बारेमें मुझे कुछ भी नही पूछोगे, न मना करोगे, न रोक सकोगे, न जानकारी प्राप्त करोगे और यदि इस कार्य में तुमने कोई व्यवधान कर दिया तो मैं उसी दिन तुमको छोड़कर चली जाऊंगी। आदमी कामान्ध होता है। कैसी-कैसी शर्त मंजूर करता है। पूरा शान्तनु का चरित्र यह दो पत्नियों के बीचमें कैसा-कैसा दर्दमय, दु:खमय बना। उसने यह मंजूर कर लिया। समय पाकर जैसेही गंगा के पुत्र उत्पन्न हो गया। जैसे पुत्र उत्पन्न हुआ गंगाने उसको बहती गंगा नदीमें छोड़ दिया। शान्तनु पीछे-पीछे जा रहा है कुछ बोल नहीं पा रहा है। क्यों यह शर्त और डर था कि गंगा मुझे छोड़कर चली जायेगी। एक पुत्र, दो पुत्र, तीन पुत्र ऐसे करते-करते छ: पुत्र गंगा मे बहा दिये। तब राजपुरोहित ने आकर ललकारा- राजन्। आप अन्याय कर रहे हो। प्रजा पर अन्याय हो रहा है। यह अधिकार आपको किसने दिया। आप प्रजा पालक हैं, आप राजा हैं। इस बालकों की हत्या कर देना आपको यह अधिकार है क्या? पुत्र पैदा कर दिया एक अलग बात है पुत्रपर अधिकार आपका नहीं है। राजद्रोह हो जायगा अगर आपने पुत्रको मारा। आपको यह अधिकार किसने दे दिया उसके जिन्दगी के मालिक तो आप नहीं हो। फिर सातवां पुत्र हुआ फिर वो वैसे ही भागकर चली आयी। अब शान्तनु से रहा भी न जाये, कहा भी न जाये विचलित, फिर वही और प्रजाका विरोध हुआ। शान्तनु ने प्रजा से क्षमा मांगी। आठवां पुत्र हुआ- भीष्म पितामह। द्यौ नामका वसु था। वो भी यह जो सात पुत्र गंगा मे बहां दिये। यह आठ-के-आठ वसु हैं। हमारे आदि देवता ३३ हैं और अन्य देवता ३३ करोड हैं। आदि देवता १२ आदित्य, ११ रुद्र, ८ वसु और २ अश्विनीकुमार। यह वसु- शोम, अनल, द्यो, अन्तरिक्ष इस तरह से आठ वसु है। यह देव है हमारे। इन देवोंको भी श्राप मिला ब्रह्माकी सभा में और इन्होंने कहा कि इनको मर्त्यलोक प्राप्त हो। उन्होंने विनंती की तुम कुछ काल के लिये, कुछ क्षण के लिये ब्रह्माके लोक के कुछ क्षणके लिये मर्त्यलोक में आओगे लेकिन यह द्यो नाम जो वसु है यह बड़ा बेशरम है। यह ब्रह्मसभा में एक स्त्री के साथ नग्न अवस्था में बैठा है उस समय वशिष्ठ मुनि ने कहा, मैं यह श्राप देता हूँ कि इसको स्त्री सुख नहीं मिलेगा, मर्त्यलोक में इसको रहना पड़ेगा। वह द्यो नामक वसु ने वह जन्म लिया आठवां। गंगा वह आठवां पुत्र लेकर चली। शान्तनु ने अपना मर्दाना रूप दिखाया- हे गंगे। यह सब क्या हो रहा है? मैं इसको बहाने नही दूंगा। गंगा बोली- मैंने तुमको उसी समय कहा था और अब तुम मुझे टोक चुके हो, यह पुत्र मैं मेरे साथ लेकर जाती हूँ और मैं तुम्हे छोड़कर जाती हूं।

लेकिन यह पुत्र तुमको उचित समय आनेपर लौटा दूंगी जब तक यह पुत्र मेरे साथ रहेगा। गंगा पुत्र को ले जाती है। शान्तनु बिना पत्नि के विरह में व्याकुल हो जाते हैं, राजकाज सम्भाल नहीं पाते हैं। ११-१२ वर्ष हो गये गंगाको गये। शान्तनु एक दिन ऐसे ही घूमते-घूमते गंगा नदीके किनारे पर चित्त-विचलित है। उसी समय गंगा प्रकट होती है और पुत्र देवव्रत को लेकर आती है। गंगा बोली- महाराज शान्तनु यह है आपका पुत्र इसको सम्भालिये। मैंने कहां था जब यह योग्य होगा उचित समय पर मैं आपके इस पुत्रको लौटा दूंगी। उस पुत्र को लेकर आती है। गुरु बृहस्पति का, परशुराम का शिष्य। बाणविद्या में निपुण, कुशल, योग्य राजकुमार, युवराज। हस्तिनापुर को एक सही युवराज मिल गया। गंगा चली जाती है। देवव्रत अपने पिताके साथ राज्य संचालन करता है। राज्य के अधिकारी सब प्रसन्न हैं, सुखी हैं। देवव्रत बड़ा हो गया है, राज संचालन करता है, युवराज है।

देवदत्त- राजा शांतनु और देवनदी गंगा के पुत्र। वसुओं को शापमुक्त करने के लिए देवनदी गंगा एक अलौकिक सुंदरी के रूप में पृथ्वीपर प्रकट हुईं। एक दिन राजा शांतनु ने उन्हें देखा तो उनके सौंदर्य से मुग्ध होकर उन्होंने उनके साथ विवाह का प्रस्ताव रख दिया। इस पर देवनदी ने कहा- राजन् इसके लिए मेरी यह शर्त है कि मैं भला या बुरा जो कुछ भी करूं, आप मुझे नहीं रोकेंगे, मुझसे अप्रिय वचन भी नहीं कहेंगे। यदि कभी ऐसा हुआ तो मैं आपका साथ छोड़ दूंगी। शांतनु द्वारा सहमति प्रकट करने पर देवी जाह्नवी राजा शांतनु की पत्नी हो गई।

यह सुनते ही परम सुंदरी गंगा ने कहा- राजन्। मैं इस पुत्र को नहीं मारूंगी, किंतु मेरा आपके साथ रहने का समय पूरा हो गया है। यही मेरी शर्त थी। मैं राजर्षि जह्नु की पुत्री गंगा हूं। देवताओं का कार्य करने के लिए ही मैं आपके साथ रही थी। आपके ये आठों पुत्र महातेजस्वी वसु देवता हैं। मुनि वसिष्ठ के शाप से इन्हें मानवयोनि में आना पड़ा था। आपका यह आठवां पुत्र सब वसुओं के पराक्रम से संपन्न हैं। मैंने आपके लिए वसुओं से प्रार्थना की थी कि आपका एक पुत्र जीवित रह। राजन्। आपका यह पुत्र अभी शिशु अवस्था में है, बड़ा होने पर आपके पास आ जाएगा। आप जब मुझे बुलाएंगे, तभी मैं आपके सामने उपस्थित हो जाऊंगी। ऐसा कहकर गंगादेवी उस नवजात शिशु को साथ लेकर अंतर्धान हो गईं। देवनदी गंगा ने राजा शांतनु से कहा- राजन्। मेरा यह पुत्र देवव्रत और गंगादत्त इन दो नामों से विख्यात होगा, आपका यह बालक गुणों में आपसे भी बढ़कर होगा।

देवनदी गंगा ने आठ पुत्रों को जन्म दिया। किंतु सात पुत्रों को वह गंगाजल में यह कहकर फेंक देती थीं- चल, इस प्रकार शाप से मुक्त किया। राजा शांतनु को दुःख तो होता था किंतु वचनबद्ध होने के कारण वे कुछ भी नहीं कर पाते थे। जब देवी गंगा के आठवां पुत्र हुआ और उन्होंने उसे भी जल में फेंकना चाहा, तभी राजा शांतनु ने कहा- देवी। आप इस पुत्र का वध न करें। मुझे यह तो बताइए कि आप हैं कौन? अपने ही पत्रों को आपने क्यों मार डाला?

शान्तनु एक दिन गंगा तीर पर शिकार खेलने गये थे और उन्हें गंगा के उस पार जाना था। नाव सत्यवती खे रही थी। शान्तनु का मन कामान्ध होकर मचल गया। उनको कही गंगा पार नही जाना था बोले- अकेली नांव थी, सत्यवती थी। शान्तनु बोले- बालिके, मुझे गंगा पार कराओ। बैठ गये नांव में गंगा का पार आ गया। सत्यवती बोली- महाराज पार आ गया है। शान्तनु बोला- चलो, अब उस पार चलो। वापस फिर इस पार आ गये। पैसेवाला क्या देखता है वो पैसा ही तो लेगी और क्या है? यह पार आ गया, चलो फिर उस पार चलो। सत्यवती बोली- महाराज आप अभी तो उसपार से आये। इसपार-उसपार। शान्तनु ने सत्यवती को प्रस्ताव कर दिया। सत्यवती तुम्हारे रूप पर मैं मोहित हूं और मैं तुम्हे राजरानी बनाना चाहता हूं। सत्यवती ने कहा- इसके बारे में आप मेरे पिता दासराज से ही बात कीजिये। शान्तनु दासराज के पास गये- बोले

दासराज, मैं आपकी कन्या का हाथ मांगने आया हूं। दासराज कहते हैं महाराज, आप यहां आये है बडे भाग्य है मेरे घर पधारे। आप कन्या का हाथ मांग रहे हो वह राजरानी बने मैं भी यही चाहता हूं। पर एक मुश्किल है क्योंकि आपकी उम्र बहुत बढ़ गयी है। मेरी पुत्री क्या सुख भोगेगी। आप विवाहित थे और आपके पुत्र भी है। वह युवराज है। मेरी पुत्री कैसे सुख भोग पायेगी आपके पुत्र होते हुए आपको कुछ हो गया। क्या आप मुझे वचन दे सकते हो कि आपका आपके पुत्रके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा, तथा वह युवराज का अधिकार नहीं रखेगा। शान्तनु ने विचारा, नहीं, नहीं। यह तो गलत हो जायगा, यह मेरे पुत्र के प्रति अन्याय होगा। मैं ऐसा नहीं कर सकता। शान्तनु निराश होकर दासराज के यहांसे लौट आये। नहीं मैं अपने पुत्र की बलि नहीं चढ़ा सकता। लेकिन मन सत्यवती में अनुरक्त हो गया। दिनभर राजकाज से जाते, राजमहल से चले जाते, सुबह से शाम एक पेड के पीछे छिपकर सत्यवती को देखते रहते। सत्यवती भी देखती थी शान्तनु आया है। कभी-कभी नांव में बैठकर चले जाते हैं। गुमसुम। अब महल में आते कामकाज में मन नहीं लगता, महल छूट गया, कामकाज छूट गया। मन्त्रीगण देखते है कि क्या बात है, महाराज को क्या हो गया।

देवव्रत शान्तनु के पास गये और उनकी चिंताका कारण जानना चाहा। शान्तनु बोले- ऐसी कोई बात नहीं है- कभी-कभी मैं सोचते रहता हूँ कि तुम मेरे अकेले पुत्र हो और कभी तुमको कुछ हो जावे, युद्ध है, लडाई है तो मैं नि:सन्तान हो जाऊंगा। हस्तिनापुर का क्या होगा? तो ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं है ऐसा मेरे मन में है कि यदि गंगा तुम्हारी मां तो रही नहीं। मैं एक और शादी करूं वैसे राजघराने में होती है तो मैं समझता हूँ कि उचित होगा। फिर भी मैंने ऐसा कोई निर्णय नहीं लिया है। जब तक देवव्रत यह जान नहीं पाये पिताश्री के मन में क्या है और शान्तनु यह चाहता है कि मैं अपने पुत्रको उसकी शर्तपर बलि चढ़ा दूं। ऐसे दिन ऐसे रोज-रोज पिताश्री को अस्वस्थ देखकर मंत्रियोंसे मालूम पड़नेपर उसने सारथी को बुलाया और बोले- सच बताओ पिताश्री रोज महलसे निकलकर कहां जाते है मैं जानना चाहता हूँ। सारथी बोला- महाराज मैं बहुत कुछ तो नहीं जानता हूं लेकिन वह रोज मृगया के लिये निकलते है गंगा नदीके तीर पर जाते है कहीं देरतक पेड़ की ओट में खड़े रहते हैं और कई देरतक नांव की सैरसपाटा करते है। बताया नहीं बस यही दिनचर्या है और शामको लौटकर आ जाते हैं लेकिन कुछ खिन्न मनके लगते हैं। मैं जान नहीं पाया। देवव्रत बोले आज मैं चलूंगा साथमें। तुम रथको आगे बढ़ाओ मैं पीछेसे आता हूं। सारथी शान्तनु को लेकर जा रहा है और देवव्रत पीछे-पीछे जा रहे हैं पिताश्री क्या करते है देखने के लिए। दिनभर की दिनचर्या देख ली। देवव्रत समझ गया कि मेरे पिताश्री इस सत्यवती पर आसक्त हैं और यह शायद मुझसे स्पष्ट नहीं कह पाते। हो सकता है मैं इसमें कई अड़चन हूं। मुझे देखकर मैं इतने बड़े उम्र का हूं उन्होंने यह बात मुझे स्पष्ट नहीं कही थी क्योंकि मुझे कुछ हो जाएं तो यह राजगद्दी सम्भालने को दूसरा पुत्र तो होना चाहिये। महल में आया। विचार किया मंत्री से पूछ लिया कि यह किसकी कन्या है। मंत्री बोला- दासराज मल्लाह की कन्या है। बिना पिताश्री को बताये दासराज मल्लाह के घर पर चला गया। बोले दासराज। दासराज बोला- आओ युवराज। आप आये बडा अच्छा लगा लेकिन आपका आना कैसे हुआ? यह दास आपका हाजिर है मुझे बुला लेते राजमहल में। देवव्रत बोले नहीं- <u>जब किसीसे मांगना पड़ता है तो समर्थ आदमी को भी उसके पास जाना पड़ता है याचना करने को</u>। जैसे भगवान हरि समर्थ होते हुए भी याचना करनेके लिये बलिके पास गये थे। मैं आपके पास कुछ याचना करने आया हूं। दासराज बोला- बताइये महाराज। देवव्रत बोला- मैं सत्यवती का हाथ आपसे मांगने आया हूं। दासराज बोला- आपके लिये। देवव्रत बोला- नहीं। मेरे पिताश्री के लिये। दासराज बोले- कुछ दिन पहले आपके पिताश्री भी आये थे। देवव्रत बोला- फिर क्या ऐतराज है। दासराज बोला- आपका हमारा क्या मेल है न पैसे में बराबर है, न अधिकारों

में बराबर है, और न ही उम्र से बराबर है यह उम्र का भी तो तकाजा है। देवव्रत बोले, अगर फिर भी मैं चाहूं तो। दासराज बोला- यही ना की तुम अपहरण कर लोगे। यह तो राजाओंका काम है करते हैं, करते आये हैं। देवव्रत बोला- नहीं दासराज। तुम देवव्रत को गलत समझ रहे हो। अपहरण करना होता तो कभी का कर लेते अब तक सत्यवती हमारे महल में होती। आपसे आज्ञा और अनुमति की इजाजत नहीं लेते। देवव्रत फिर बोले- अड़चन क्या है? दासराज बोला- अड़चन तो तुम हो। देवव्रत बोला- वह कैसे? दासराज बोला- मैं चाहता हूं कि इस कन्याका विवाह किसी राजर्षि राज चक्रवर्ती सम्राट से करूंगा और इसका पुत्र चक्रवर्ती सम्राट हो। देवव्रत बोले- मैं वचन देता हूं कि इसके बाद हस्तिनापुर का राज्य-महाराज के बाद मैं नहीं भोगूंगा सत्यवती का पुत्र रहेगा। दासराज बोले- देवव्रत, ऐसा नहीं होता। देवव्रत बोला, मैं यह प्रतिज्ञा कर देता हूं। दासराज बोले- तुम्हारा तो ठीक है कि प्रतिज्ञा कर दोगे। लेकिन तुम्हारे आनेवाली संतानों का क्या होगा वो अपना अधिकार कैसे छोड़ेंगी ? अब देवव्रत की आँखे खुली यह मुझतक नहीं आगेतक पहुंच गया है। अब पिताश्री को खुश करना, उनकी आज्ञा का पालन करना। शांतनु ने कोई आज्ञा नहीं दी है, पुत्र पिताका फर्ज निभा रहा है। मन में सोच रहा है, अपनी जिन्दगी को दांव पर लगा रहा है। देवव्रत बोले- दासराज यदि तुम्हारी यही मुश्किल है तो मेरी प्रतिज्ञा भी अटल है- यह चांद, सूरज, अग्नि, सबके सामने नक्षत्र, जितने लोग हैं देवव्रत यह प्रतिज्ञा करता है कि यह आजन्म ब्रह्मचारी रहेगा। अब बोले आपको इस प्रतिज्ञा से संकोच है? दासराज बोला- महाराज यह प्रतिज्ञा बदल नहीं जावे। देवव्रत बोला- जो बदल जावे प्रतिज्ञा नहीं होती है। मेरी प्रतिज्ञा आजके बाद भीष्म के नाम से जानी जायेगी और जबसे इसका नाम भीष्म प्रतिज्ञा, भीष्म पड़ा। भीष्म प्रतिज्ञा और भगीरथ प्रयास जो मेहनत, जो कर्म, जो प्रयास भगीरथ ने किया ऐसा आज तक किसीने नहीं किया। इसलिये वो गंगा लानेका प्रयास भगीरथ प्रयास का जाना जाता है, देवव्रत ने यह प्रतिज्ञा करी ऐसी प्रतिज्ञा आज तक किसीने नहीं कि है इसलिये यह भीष्म प्रतिज्ञा जानी जाती है। सत्यवती को दासराज ने बुलाया बोले मैंने वाक्दान कर दिया है अब हस्तिनापुर तुम्हारा नहीं हो। भीष्म बोला- मैं महारानी को ले जाता हूँ। उनकी धूमधाम से शादी होगी हस्तिनापुर में। ६० किलोमीटर दूर है हस्तिनापुर से नदी किनारा। दूसरा रथ आया पूरी सेना साथ में थी। सत्यवती को बिठाया। पिताने वाक्दान कर दिया। जब पिता अपनी पुत्री को विदा करता है, माता अपनी पुत्री को विदा करती है तो कैसे-कैसे समझाती है, और इसने क्या समझाया वह देखिये। उसका जीवन कैसे खराब होता है। माता समझाती है- पुत्री तू जा। दोनो कुलोंकी लाज रखना, पतिकी सेवा करना, वहांके तेरे देवर, जेठ, जेठानी, पुत्र उनकी सेवा करना, उनके साथ मिल-जुलकर रहना। पिता पुत्री को बिठा रहा है और बोल रहा है- देख, आगे जो है ना भीष्म पितामह। इसका पत्ता साफ करते रहना। यही तेरे जीवन का एक कंटक है। कहीं भी यह रस्ते में आड़े आये ना तो यही एक है उस भीष्म पितामह ने जो इस हस्तिनापुर की, सत्यवती की मदद करी पूरी नक्शा बदल दी। इसके साथ सीधी मत चलना यह शिक्षा दासराज ने पुत्री को दी। कुटिल चाल जिसे एक बाप अपनी पुत्री को देता है घर बरबाद करनेवाली।

सत्यवती महारानी बन गई। सत्यवती को लेकर भीष्म राजमहल में जाता है और पिताको बताता है कि हे पिताश्री। यह मेरी माता है। मैं आपके लिये लाया हूं। आपने एक दिन कहा था ना कि एक सन्तान हो तो शायद कभी कुछ भी हो सकता है। शान्तनु यह देखकर चौंक गया और जो मालूम पड़ा कि भीष्मने यह प्रतिज्ञा करके लाया है शान्तनु रोने लगा। एक पुत्रने कैसे अपनी बलि चढ़ायी है, बापके लिये एक बलि दी है। वाह रे वाह पुत्र सच में तू महान है। लेकिन दु:ख था कि मेरे कारण इसको बलि चढ़नी पड़ी है। एक बलि भीष्म पितामहने दी है एक बलि राजा पुरुने दी है। शांतनु ने कहा पुत्र मैं तुमसे एक और निष्ठा चाहता हूं जब तक जीवित रहोगे तब तक हस्तिनापुर में भले ही बच्चे हो जाए, युवराज हो जाएं, मैंने

तुम्हे युवराज के पदसे वंचित किया है यह कर्म मेरा गिना जायेगा उसका नहीं। लेकिन उत्तराधिकारी से भी वंचित कर दिया है। तुमने आगेकी पीढ़ी को भी बन्द कर दिया है। तुम्हारी इस प्रतिज्ञा ने। प्रसन्न होकर तुम्हें इच्छा मृत्यु का वरदान देता हूं कि तुम जिस दिन इस लोकको छोड़ना चाहो उस दिन इस लोकको छोड़ सकोगे और तुम हस्तिनापुर से बन्धे रहोगे जो कोई भी राजा आ जावे मेरे बाद में। भीष्मने दूसरी प्रतिज्ञा वहांपर करी भीष्मकी यह सत्यनिष्ठा रहेगी चाहे धर्म या अधर्म में, हस्तिनापुर की मान-मर्यादा और निष्ठा के प्रति वह कर्त्तज्ञवान रहेगा। प्रतिज्ञा में धर्म या अधर्म से हो यह भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा होगी। अब सत्यवती राजमहल में आ गयी और दिन-प्रतिदिन भीष्म माता कहता था। सत्यवतीने भीष्म को कहा कि तुम मुझे माता नहीं कहोगे और तुम मेरे महल में नहीं आओगे। एक दिन मालूम पड़ा की महाराज अस्वस्थ है। भीष्म मिलने को गया बाहर बिठा दिया और बोली नहीं मिलने का, वह ठीक हो जायेंगे। भीष्म कहते हैं राजवैद्य बुला दूं। माता बोली- आवश्यकता नहीं पड़ी जरूरत होगी तब बुला लेंगे। सत्यवती के कुछ इस तरह के निष्ठुर व्यवहार से शान्तनु चिंतित रहने लग गये। उनको यह लगा कि मैंने अपने घर में आग का दीपक जला दिया है। यह आग किसी दिन मेरे घरको जलायेगी। मुसाफिर गया था खुशियोंका सौदा करने, गम खरीदकर ले आया। विडंबना भाग्य की। जब इसने महल से निष्कासित कर दिया तब भीष्मने महल में गंगा नदीके तीरपर एक छोटी कुटिया बनाकर वहा अपना रहना अलग शुरू किया। महाराज को मालूम पड़ा- महाराज भी इसके कृतकृत्य देखते रहे थे किसी भी बात में भीष्म से सलाह नहीं लेने देती थी, मिलने नहीं देती थी। महाराज के दो पुत्र हुए एक का नाम हुआ-विचित्रअंगद, दूसरे का - विचित्र वीर्य। जब यह बड़े हुए तो महाराज ने प्रस्ताव किया कि इन दोनोंको किसी राजगुरु के पास भेज देते है जो इनको पढ़ायेगा, इनको राजाओंकी शिक्षा देगा। महारानी बोलती है-नहीं। क्या जरूरत है अभी पढ़ाने की। पढ़ायेंगे नही तो क्या हम राजा नहीं है। राजगुरु यहीं आयेंगे और पढ़ायेंगे। गुरुके आश्रम में ये नही जायेंगे। शान्तनु बोलता है हम तो खुद गुरुके आश्रम में जाकर पढ़े है। रानी बोली- कोई जरूरत नहीं मैं अपने पुत्रोंको अलग नहीं जाने दूंगी। शान्तनु को अपना मन मारकर रहना पड़ा। वह राजगुरुसे विद्या सीखने नहीं जाते थे। राजगुरु आते थे। अपने विलासितापूर्ण जीवन, नौकर-चाकरोंसे, सेवकोंसे भी सीधी बात नहीं करते थे। सबका अपमान करते थे। एक दिन की जो कथा है विचित्रआंगद जो बड़ा पुत्र है १५-१६ वर्ष का हो गया और राजबाग में घूमने लगा। वहां घोड़ेका रथ अन्दर लेकर जाने लगा तो प्रहरी ने रोक दिया। महाराज, क्षमा करें रथ को यहां खड़ा कीजिये। शान्तनु महाराज भी आते हैं तो रथको यहीं खड़ा करते हैं। उठाकर उसने थप्पड मार दिया और बोला तेरी यह औकात की तुमने मुझे रोक दिया, मैं राजकुमार हूं। विष्णुदत्त मन्त्रीने देख लिया। मन्त्रीने यह शिकायत शान्तनु को करी। मन्त्रीने यह शिकायत सत्यवती और भीष्म पितामह को करी। भीष्म पितामहने कहा- गलत हुआ। ऐसा नहीं होना चाहिए। जो कि भीष्म पितामह कुछ कर नहीं सकते थे। शान्तनु पत्नीके मुंह को देख रहे हैं। भीष्म पितामह महल में मिलने आया। सत्यवती कहती है तुमको भी मालूम पड़ गया होगा इसीलिये आये हो। भीष्म बोले- नहीं माता, लेकिन अच्छा नहीं हुआ। सत्यवती बोली- इसमें क्या हुआ, एक राजपुत्र का इस तरह से अपमान कर देना उसको शोभा देता है? उसको मालूम होना चाहिए, इसतरह से पुत्रोंको बिगाड़ने में बढ़ावा, जो अनुचित हुआ उसका प्रतिकार नहीं। छोटा विचित्रवीर्य छोटी उमर में ही मयखाने मे। महल की दासियोंके साथ रंगरेलिया मना रहा है। न भीष्म पितामह कुछ कर सकते है। शान्तनु देख रहे है कि मेरे साम्राज्य का सितारा डूब रहा है। एक दिन भीष्म की कुटिया में गये और जाकर रोने लग गए और बोले भीष्म, यह क्या हो गया है? मैं क्या करूं? बोले- महाराज, आपकी जो इच्छा थी वो हो गया। अब तो आप ही कुछ कर सकते है दूसरा कोई कुछ नहीं कर सकता। इसी चिंतामे व्याकुल होकर शान्तनु इस किनारे तक आ गये आखिरी समय पुकारने लग गए, जीर्ण होते गये।

सत्यवती के महल में राजवैद्य आ गये। शान्तनु बोल रहे है भीष्म पितामह को बुलाओ मुझे बात करनी है। सत्यवती ने सेवकों को मना कर दिया भीष्म पितामहको यहां मत बुलाओ। क्योंकि यह जानते थे कि आखिरी समय में बोल गये राजा यह रहेगा तो मेरे बच्चों का क्या होगा अपना स्वार्थ, अपना डर।

इधर दूसरे देश काशीदेश यक्षोंका देश आक्रमण करने की तैयारी में कमजोर राज्य जानकर दूसरे राजालोग कोई साथ देनेको तैयार नहीं। भीष्म पितामह को नहीं बुलाया। महाराजने फिर सेवकोंपर दबाव दिया भीष्म पितामह आये उस समय महाराज आखरी सांस ले रहे थे कुछ बोले तो वह कोई भी नही सुन सका, समझ सका और महाराज शान्तनु ने अपने प्राण त्याग दिये।

जैसेही भीष्म पितामह पहुंचे पूछे क्या हुआ अब इनकी अन्त्येष्टि क्रिया करने की व्यवस्था करनी चाहिये। विचित्रांगद बोल उठा- हम देख रहे है ना, हमें करना है वो हमें ज्ञात है। सत्यवती मूर्च्छित हो रही थी भीष्म पितामहने माताको पकड़ना चाहा विचित्रांगद ने धक्का दे दिया बोले मैं मेरी मां को सम्भाल रहा हूँ। भीष्म उसी दिन चले गये। अब यह दोनों पुत्र और बिगड़ते जा रहे है। विचित्रवीर्य और विचित्रांगद। भीष्म पितामह शांतिसे बैठे देख रहे थे। कमजोर राज्य। हमला हुआ उस युद्ध में विचित्रांगद यक्षोंके हाथसे मारा गया। अब रह गया विचित्रवीर्य, मदिरापान करनेवाला, दासियोंसे खेलने वाला, कम उम्रवाला, न सिखा हुआ, न पढ़ा हुआ। राज्य संचालन नहीं जानता। अब सत्यवती का मन अन्दरसे हिलने लग गया। मेरे पुत्र तो काबिल है नहीं, भीष्म पितामह को बुलाऊं तो कैसे? राज्य की बागडोर भी कैसे सम्भालना? वह भीष्मसे सम्भलवाना भी नहीं चाहती। ऐसा कुछ हो कि राज्य की बागडोर मेरे हाथमें रहे और मेरे इशारोंपर भीष्म नाचता रहें। भीष्मको बुलाया और बोली भीष्म, तुझे पता है महाराज चले गए, विचित्रांगद मारा गया काशी नरेश के हाथों। हस्तिनापुर का साम्राज्य कमजोर पड़ते जा रहा है। ऐसेमे अपना क्या फर्ज बनता है? विचित्रवीर्य के कोई संतान हो जावे इसके लिये कोई योग्य कन्या ढूँढो। भीष्म पितामह जानता था कि यह बड़ा बदनाम है विचित्रवीर्य। विलासी है और जब भीष्म पितामह बैठे थे तो विचित्रवीर्य वहाँ आया, नशेमे धुत था। माताने कहा साष्टांग प्रणाम करो तुम्हारे बड़े भैया हैं, तुम आदर दो। माताके कहनेसे तिरछी नजरसे देखते हुए हाथके इशारे से पैर की तरफ इशारा कर दिया। भीष्म पितामह ने भी देख लिया इसकी कोई मेरेमें श्रद्धा नहीं है, प्रीति नहीं है। न ही इसकी माताश्री पर है। फिर भी मैंने पिताको वचन दिया कि हस्तिनापुर की निष्ठा से बन्धा रहूंगा। शादीके लिये इसको कोई लड़की नहीं मिलती। एक दिन काशी नरेश की कन्याओंका स्वयंवर आया। सब जगह निमन्त्रण भेजे गये लेकिन कौरवोंके पास हस्तिनापुरमें निमन्त्रण नहीं दिया गया क्योंकि यह इनके जातबाहर गिनते थे, इनको इनके अनुरूप नहीं गिनते थे, अपने बराबरवाले नहीं गिनते थे। कमजोर साम्राज्य, पड़ती के सभी दुश्मन हो जाते है। भीष्म पितामह को मालूम पड़ा कि तीन कन्याएं उसके यहां है। यह विचित्रवीर्य जो दासियोंके साथ खेलता है इससे तो अच्छा यह किसी रानियोंके साथ तो बंधा रहे हो सकता है -राजा का गुण आ जायेंगे नही तो उनके होनेवाले पुत्र जो होंगे वो तो कमसे कम राजा होंगे। यह नीच, शूद्र हो गया है। भीष्म पितामहने कहा- महारानी सत्यवती यह हमारा अपमान है जो काशी नरेश ने जो हमको निमन्त्रण नहीं भेजा आज उनका स्वयंवर है। आप मुझे आज्ञा दीजिये मैं उन कन्याओंको उठा लाता हूं। मैं उनसे युद्ध करूंगा। महारानी सत्यवती बोली- भीष्म कह रहा तो ठीक ही है कुछ कम-ज्यादा हो गया तो ये ही है। सत्यवती बोलती है- ठीक है। भीष्म तो भीष्म ही है वो हारनेवाला नहीं है। भीष्म चला गया। काशी नरेश के यहाँ तीन कन्याएं है- अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका। इनका स्वयंवर चल रहा है। वहां अनेक राजाएं आ गये हैं। सबसे युद्ध करके तीनों कन्याओंको स्वयंवर मंडप पर से जबरन रथमें बिठा लिया और ले आया। तीनोंको वरण करने के लिये बोल दिया यह विचित्रवीर्य के साथ इनका वरण हो गया। तब अम्बा नाम की कन्याने भीष्म पितामहसे

कहा- हे भीष्म, मेरा प्रणय किसी शाल्व राजाके साथमें है। मैं विचित्रवीर्य को नहीं चाहती तुम मुझे छोड़ दे। भीष्मने सोचा अगर इसका प्रणय चल रहा है तो इसको बाईज्जत रथमे बिठाकर वापिस भेज दिया और बोला जा तू शाल्व नरेश के पास चली जा और उन दो कन्याओंका अम्बिका और अम्बालिका का पाणिग्रहण विचित्रवीर्य के साथ कर दिया। विवाह हो गया। यहा अम्बा शाल्व नरेश के पास गयी, शाल्व नरेश ने ग्रहण करने से इनकार कर दिया कि मैं तुम्हारे साथ शादी नहीं कर सकता। तुम हरण कर ली गयी हो, अपहरण हो गया है तुम्हारा। तुम भीष्म के साथ चली गयी हो मैं तुम्हारा त्याग करता हूं, मैं तुम्हे शादी के काबिल नहीं समझता। इस क्रोधमें जल-बूझकर अम्बाने अपने आपको जला लिया और श्राप दे दिया भीष्मको की अगले जन्म में मैं तुमसे बदला लूंगी। यह अम्बा ही अगले जन्म में जाकर शिखंडी बना है। अब दो कन्याओंका विवाह हो गया विचित्रवीर्य के साथ। कुछ दिन तक प्रणय चला। कोई संतान नहीं हुई। विचित्रवीर्य को क्षयरोग हो गया और विचित्रवीर्य मर गया।

हस्तिनापुर का साम्राज्य फिर खतरे में। माताने भीष्मको बुलाया और बोली- भीष्म, जो प्रतिज्ञा तुमने मेरे कारण की थी वो प्रतिज्ञा अब तुम तोड़ दो और तुम शादी करो, संतान उत्पन्न करो नहीं तो यह कन्याएं हैं इनसे विवाह करो। कन्याएं विचित्रवीर्य की पत्नियां। भीष्म बोला, माता। यह प्रतिज्ञाएं तोड़ने के लिए नहीं की जाती है एक बार कर ली और एक बार तोड़ दी। भीष्म की प्रतिज्ञा तो भीष्म की प्रतिज्ञा ही कहलायेगी। अब क्या करना है। भीष्म बोले- जब तक मैं हूं हस्तिनापुर की निष्ठा से बंधा हूं राजरानी आप है। रानी बोली- इनकी संतानें तो हो मेरा वंश तो चले। बोली वेदव्यास को बुलाओ। वेदव्यास को बुलाया गया। वेदव्यास से मन्त्रणा करी और कहा कि तुम इन दो रानियोंके अयोनिज संताने पैदा करो। अम्बिका और अम्बालिका। वेदव्यास के पास अम्बालिको समागम के लिए भेजा गया उनका बलिष्ठ और तेजरूप देखकर अम्बिका डर गयी और उसने आंखोंपर पट्टी बाँध लीया। अम्बिका को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जन्मांध धृतराष्ट्र। दूसरी को भेजा तो वे गयी ही नहीं डरसे। उसने अपनी दासीको भेज दिया। दासी बड़ी प्रसन्नचित्त से गई वेदव्यास के साथ समागम हुआ दासीका पुत्र हुआ बड़ा विद्वान, वेदव्यासके जैसा विद्वान उस पुत्र का नाम हुआ विदुर। चार ही आज तक विद्वान गिने गये हैं- सत्युग में राजा जनक यह सीताके पिता नहीं उनके वंश में राजा निमि के पुत्र जनक के जैसा आज तक कोई ज्ञानी पंडित नहीं हुआ। त्रेतामें रावण- वह कामान्ध में मारा गया लेकिन उसके जैसा ज्ञानी, राजनितिज्ञ, विद्वान कोई नहीं हुआ। यह रावण अभी जिसको हम दुराचारी कहते है, संज्ञा देते है। बहुत बड़ा पंडित और ज्ञानी था और यह जैनियों में जैसे २४ तीर्थंकर होते हैं २४ वें महावीर स्वामी थे, २६ वाँ तीर्थंकर रावण होगा। इतना महान यह त्रेता का विद्वान पण्डित, द्वापर का विद्वान पंडित विदुर और कलियुग के अंदर चाणक्य इनके जैसा विद्वान पंडित राजनीतिज्ञ में कोई नहीं हुए। अब अम्बालिका के पास वेदव्यासको भेजा गया। वो डर गई, वेदव्यासके स्वरूप को देखकर डर गयी, पीली पड़ गई। उसके पांडु नामका पुत्र हुआ। वो पीलिया रोगसे ग्रसित हो गया। इस तरह से धृतराष्ट्र, पांडु, विदुर की उत्पत्ति हुई।

धृतराष्ट्रके सौ पुत्र उत्पन्न हुए, गान्धारीसे उत्पन्न हुए उनका नाम- दुर्योधन, दु:शासन व अन्य पुत्र, पांडुके पाँच पुत्र हुए पांडु पीलिया रोगसे ग्रसित होनेके कारण सहवास करने में समर्थ नहीं था। उसकी एक पत्नी हुई कुंती।

पृथा- महारानी कुंती। यदुवंशियों में श्रेष्ठ महाराज शूरसेन (वसुदेव के पिता, वासुदेव श्रीकृष्ण के दादा) के एक कन्या हुई, जिसका नाम पृथा रखा गया। इस भूमंडल में उसके रूप की तुलना में दूसरी कोई स्त्री नहीं थी। महाराज शूरसेन ने अपने फुफेरे भाई संतानहीन कुंतिभोज से पहले ही यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हें अपनी पहली संतान भेंट कर दूंगा। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार महाराज शूरसेन ने पुत्री पृथा राजा कुंतिभोज को सौंप दी। राजा कुंतिभोज ने देवताओं के पूजन तथा

अतिथियों के सत्कार का कार्य पुत्री पृथा पर छोड़ दिया था।

एक समय महर्षि दुर्वासा राजा कुंतिभोज के यहां कुछ काल तक निवास के लिए पधारे। राजकुमारी पृथा ने अपनी सेवा से उन्हें पूर्ण संतुष्ट कर लिया। प्रसन्न होकर महर्षि ने पृथा को एक वशीकरण मंत्र दिया और उसके प्रयोग की विधि भी बता दी। तत्पश्चात् महर्षि ने पृथा से कहा- शुभे। तुम इस मंत्र द्वारा जिस जिस देवता का आवाहन करोगी उसी उसी के अनुग्रह से तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा। राजकुमारी पृथा यद्यपि अभी कुमारी थी, तो भी कौतूहलवश उसने मंत्र की परीक्षा के लिए सूर्य देवता का आवाहन किया। आवाहन करते ही भगवान भास्कर वहां प्रकट हो गए। भगवान सूर्य की कृपा से राजकुमारी पृथा (कुंती) ने एक ऐसे पुत्र को जन्म दिया, जो जन्म से ही दिव्य कुंडल और कवच धारण किए हुए था। इस प्रकार राजकुमारी पृथा ने सूर्यपुत्र कर्ण को जन्म दिया।

नवजात शिशु को देखकर राजकुमारी पृथा के मन में अत्यंत दु:ख हुआ। उसने कुटुंबी जनों के भय से महाबली कुमार कर्ण को जल में छोड़ दिया। जल में छोड़े हुए उस शिशु को सूतपुत्र अधिरथ ने, जिसकी पत्नी का नाम राधा था, ले लिया और पुत्रवत् उसका पालन पोषण किया।

कुन्तीभोज के यहां दत्तक आयी हुई, शूरसेन की पुत्री। उसका नाम कुन्ती पड़ा और उससे पाँच पुत्र हुए। उसको दुर्वासा ऋषि से एक वरदान मिला था उनकी बड़ी सेवा की थी। सूर्यसे एक पुत्र प्राप्त हुआ। दुर्वासाने एक वरदान दिया था कि तुम जिस किसी भी देवता को आह्वान कर लोगी तुम्हे वरदान मिलेगा। उनका परीक्षण करने के लिए उसने सूर्यदेवता का आह्वान कर लिया एक दिन। कुमारी कन्या थी और वह मंत्र पढ़ने से सूर्यदेवता आ गये और बोले- आपने याद किया।

कुंती बोली- महाराज मैंने दुर्वासा ऋषि की सेवा की तब उन्होंने मुझे एक वरदान दिया था की तुम जिस किसी भी देवता को आह्वान कर लोगी तो तुम्हें वरदान मिलेगा। मैंने ऐसे ही इसका परीक्षण करने के लिए आपको बुला लिया। सूर्यदेव बोले अभी तुमने बुलाया है तो कुछ मांगो नहीं तो मैं तुझे कुछ देकर जाऊंगा। कुन्ती ने कुछ मांगा नहीं लेकिन सूर्यदेव उसको अवनीच अवस्था में एक पुत्ररत्न दे दिया। तुम्हें एक पुत्र होगा, मेरे समान पुत्र होगा। सूर्य के अंश से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका नामकरण हुआ कर्ण। लेकिन लज्जाके मारे उसने अपने पितागृह में बताया नहीं और अपनी दासीके साथमें उस पुत्र को लेजाकर गंगाके अन्दर उस पुत्र को संदूक में बन्द करके नदीमें बहा दिया। वह पुत्र बहता-बहता अधिरथ नामके एक सारथी के यहां जिसकी पत्नीका नाम राधा था उसको मिला। वही उस पुत्र कर्ण का लालन-पालन हुआ और उसका नाम राधेय रखा गया। यह कर्ण धनुषधारी, द्रोणाचार्य का शिष्य नहीं था पर छुप-छुपके द्रोणाचार्य की विद्याओंको सिखता था। परशुरामका शिष्य बना। महान धनुर्धर लेकिन उसको किसी राज्यकी संज्ञा प्राप्त नहीं हुई, किसी राजाने स्वीकार नहीं किया, उसकी मां ने स्वीकार नहीं किया वह सूतपुत्र कहलाया। क्योंकि वह एक सारथी के यहां पला। वसुषेण- कुमारी अवस्था में सूर्यदेव से उत्पन्न नवजात शिशु को कुंती ने कुटुंबी जनों के भय से एक मंजूषा में रखकर जल में छोड़ दिया। उस बालक को अधिरथ नामक सूत ने जल से निकाल लिया और अपनी पत्नी राधा को दे दिया। जन्म के समय कवच और कुंडल जैसी वसु (विभूति) धारण करने के कारण दंपती ने उस बालक का नाम वसुषेण (विभूति) धारण करने के कारण दंपती ने उस बालक का नाम वसुषेण रख दिया। वसु (सुवर्ण) मय कवच धारण किए तथा सोने के ही कुंडल पहने हुए उस बालक को देखकर ब्राह्मणों ने उसका नाम वसुषेण रखा।

कुंती की शादी पांडु के साथ हुई पांडु सहवास नहीं कर सकने के कारण उसके तीन पुत्रोंकी उत्पत्ति एक धर्म से, एक वायु और एक इन्द्रसे। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन की हुई। अर्जुन का एक नाम वीभत्सु भी है। बृहन्नलारूपधारी अर्जुन ने

विराटकुमार उत्तर को अपने नामों का निहितार्थ बताते हुए कहा- युद्ध करते समय मैं किसी प्रकार भी वीभत्स (घृणित) कर्म नहीं करता। इसीलिए देवताओं और मनुष्यों में मेरी वीभत्सु नाम से प्रसिद्धि हुई है।

किरीटी- अर्जुन का नाम। बृहन्नलारूपधारी अर्जुन ने विराटकुमार उत्तर को अपने नामों का निहितार्थ बताते हुए कहा- पूर्वकाल में बड़े-बड़े दानव वीरों के साथ युद्ध करते समय देवराज इंद्र ने मेरे मस्तक पर सूर्य के समान प्रकाशित होनेवाला किरीट (मुकुट) रख दिया था, इसीलिए मुझे किरीटी कहा जाता है।

एक बार पांडु विश्वविजय करने के लिये मद्रदेश जिसको कहते है दक्षिण भारत में गये और वहां मद्रदेश के राजा को जीतकर वहां उनकी कन्या थी माद्री उसपर बड़े मोहित हो गये। उस कन्याके साथ विवाह कर लिया और उसको ले आये चूंकि पांडु असमर्थ था सन्तान उत्पन्न करने में। एक दिन ऐसे ही अपने पुत्रों और पत्नियों को लेकर जंगल विहार में गये। कामअग्निसे उदित्त हो गये अपनी पत्नी माद्री को देखकर उसको सहवास का प्रस्ताव किया और किन्दम ऋषि के श्राप से जो हिरण बना हुआ था शिकार कर रहा था पांडु तब ऋषि मर गये। ऋषि का वध हो गया। ऋषिने उसी समय श्राप दे दिया। जिस तरह से मेरे हिरन और हिरनी सहवास करते हुए मर गये हैं वैसे ही तू भी अपनी पत्नीके साथ सहवास करते हुए मर जायेगा। इसी बीच माद्रीसे दो पुत्र अश्विनीकुमार से उत्पन्न किये गये। जिनका नाम नकुल और सहदेव हुआ। उसके बाद पांडु की मृत्यु हुई। माद्रीने कुंतीसे कहा कि अब यह तीन पुत्र तुम्हारे, दो पुत्र मेरे यह तुम सम्भालो। क्योंकि मैं छोटी हूं और मेरे साथ सहवास करते समय यह घटना घटी है। अब आप मुझे सती होने दो और आप इन पुत्रोंकी माता हो। माद्री पांडुके साथ सती हो गयी और इसतरह से पांडु चला गया।

पांडु वंश असहाय हो गया। पांडवोंकी उत्पत्ति, कौरवोंकी उत्पत्ति एक साथ राजघराने में शिक्षा पाते थे। यह पांडव और कौरव, दुर्योधन छोटे थे दोनों साथ-साथ गुरु द्रोणाचार्य के यहां शिक्षा लेते थे। राजगुरु द्रोणाचार्य इनके राजपुरोहित थे कृपाचार्य जोकि द्रोणाचार्य के बहनोई यानि इनकी बहन कृपी इनको दी हुई उनके पुत्र हुए अश्वत्थामा।

द्रोणाचार्य- अस्त्र-शस्त्र विद्या के प्रख्यात आचार्य, महर्षि भरद्वाज के पुत्र। गंगाद्वार में कठोर व्रतों का पालन करनेवाले भरद्वाज प्रसिद्ध महर्षि थे। एक दिन जब वे गंगा में स्नान करने के लिए गए, तो उन्होंने देखा कि वहां घृताची नामक परम सुंदरी अप्सरा पहले से ही स्नान करके, नदी के तट पर खड़ी वस्त्र बदल रही थी। मुनिवर भरद्वाज ने कुमारावस्था से ही दीर्घ काल तक ब्रह्मचर्य का पालन किया था। घृताची के अमित सौंदर्य को देखकर महर्षि भरद्वाज का मन विचलित हो गया। परिणामत: उनका तेज स्खलित हो गया। महर्षि ने उसे एक द्रोण (यज्ञकलश) में रख दिया। उसी से उन बुद्धिमान महर्षि को जो पुत्र प्राप्त हुआ, वह द्रोण से जन्म लेने के कारण द्रोण नाम से ही विख्यात हुआ। उसने संपूर्ण वेदों और वेदांगों का अध्ययन करने के साथ ही भगवान परशुराम से शस्त्रास्त्र कौशल की भी शिक्षा प्राप्त की।

महाभारत का युद्ध हुआ। जब पांडव और कौरव आपसमें एक जगह थे तो कौरवोंने उनसे बड़ा द्वेष किया, लाक्षागृह में जलानेका प्रयत्न किया। भीमको विष के लड्डू दे दिया, क्या-क्या इन्होंने नहीं किया और यहांतक की एक बार जब बड़े हुए इनको लाक्षागृह में जलाते समय पांडव लोग अज्ञातवास में वनमें छुपकर रह रहे थे। वहां महाराज पांचाल द्रुपद की कन्या का स्वयंवर रचा गया था। उसमें ब्राह्मण का वेश बनाकर द्रौपदी को ब्याहा गया था। उसमें कर्ण, दुर्योधन, जयद्रथ भी गया था। जब कर्णने मत्स्यभेदन के लिए तीर उठाया, द्रौपदी जानती थी द्रौपदी देख रही थी क्योंकि द्रौपदी को कर्ण नहीं चाहिए था, यह मत्स्यभेद कर पाएगा और उसी समय द्रौपदीने उठकर कहा यह सूतपुत्र है मैं किसी सूतपुत्र के साथ शादी नहीं करूंगी, मैं राजपुत्र के साथ ही शादी करूंगी। कर्ण का यह अपमान सूतपुत्र, एक चिंगारी की तरह लग गया और उसने

प्रतिशोध लेनेकी ठान ली। कहते है यह तो मर्द था, पुरुष था जिसमें इतनी अपमान सहने की, आप किसी स्त्रीका अपमान करते हुए देखो वह चण्डी बनकर बदला देती है। कहा गया है कि घायल शेरनी, अपमानित स्त्री, पैरोंतले कुचली हुई नागिन यह अपना बदला कभी नहीं छोड़ती, यह जीवन में अपना बदला लेकर ही रहती है।

अब पांचाली अर्जुनद्वारा जीत ली गयी। दुर्योधन भी उठा लेकिन दुर्योधन ने अपने-आपको महसूस कर लिया कि मैं मत्स्यभेदन नहीं कर पाऊंगा। बैठ गया, उसने प्रयत्न नहीं किया। पांडव एक ब्राह्मण के वेश में थे। अर्जुनने मत्स्यभेदन किया और द्रौपदी को ले गए घर में। कुंती वहां जंगल में ब्राह्मण के घरोंमें लाये और बोले माता। माता बोली- ले आये भिक्षा। यह जो भिक्षा है आप पाँचों आपस में बाँट लो। माता ने देखा नहीं था इस प्रकार से द्रौपदी पांचो पांडवों की पत्नी हुई। माता को मालूम पड़ा तो लगा अरेरे क्या अनर्थ हो गया। वेदव्यासजी आये कुंतीने उसी समय पूछा- भगवन् आपके रहते यह क्या अनर्थ हो गया है। बोले- माता, यह अनर्थ नहीं यह होनहार है। यह होगा, इसके आगे बहुत कुछ कहानी इसमें है। द्रुपद ने बहुत सारा धन-सम्पत्ति दी, शादी-ब्याह हो गयी।

कृष्णके एक बहन थी सुभद्रा। उसका अर्जुन से विवाह हो गया। अर्जुनके पुत्र हुआ- अभिमन्यु, जो महाभारत की लड़ाई में मारा गया उसकी पत्नी थी उत्तरा। उसके गर्भ में एक पुत्र था। यह उत्तरा रानी सती दादी जो है यह उत्तरा का ही अवतार है। इस तरह से पांडव वंश चला। महाभारत होनेके समय में महाभारत नहीं हो कृष्णने बड़े प्रयत्न किये। युधिष्ठिरने भी कहा कि महाराज यह महाभारत का युद्ध होगा, भाई-भाइयोंका युद्ध है। दुर्योधन कहता है कि मैं एक सुई की नोक के बराबर का अंश जमीन नहीं दूंगा। **सूच्य ग्रे नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव:।** इस मतमंदि को आप जाकर समझावें। कृष्ण शान्तिदूत बनकर धृतराष्ट्र के पास हस्तिनापुर में शान्ति प्रस्ताव लेकर जाते है। जब भगवान कृष्ण शांतिदूत बन के गये, और समझा रहे थे कि पाण्डव अपने शर्त के अनुसार बारह वर्ष का वनवास एक वर्ष का अज्ञातवास पूरा करके आये हैं। अब आप अपने वचन के अनुसार उनका राज्य उन्हें लौटा दो। तब दुर्योधन ने कहा- कृष्ण। मांगने से भिक्षा मिलती है, अधिकार नहीं मिलता। ठाकुर ने समझाया, चल राज्य ना दे तो ना सही, तुम्हारे सगे चाचा के बेटे हैं, पांच भाइयों को पांच गांव ही दे दो। पांच गांव में पांचों भाई गुजारा कर लेंगे। कितनी सहूलियत का प्रस्ताव था।

राजा मानहुं बचन हमारो, भीष्म द्रोण कर्ण दुर्योधन सब मिली मतो बिचारो।
केवल पांच गाँव पाण्डव को दीजै और सब राज्य तुम्हारो।।

लेकिन अभागा उसे भी स्वीकार नहीं किया।

शूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव

पांच गांव तो बहुत दूर सूई के नोक के बराबर भी नहीं दूंगा।

भूमिन दैहों सूई की नोक- रणसंग्राम विचारो, क्षत्रिय कुल को यही धर्म है कोई जिते कोई हारो।।

अकड़ कर बोल रहा था अभागा क्षत्रिय कुल का धर्म सिखा रहा है किसको? जिसको दुनियाँ कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम समझ कर वन्दन करती है। ठाकुन ने बिना रोष आक्रोश के फिर शान्ति से समझाया- दुर्योधन। महाभारत युद्ध ठानने की सोच रहे हो?

महाभारत नाय भलो दुर्योधन मन में सोच विचारो, कटि कटि शिश धरणी पर जब खांड़ा चले दुधारो।।

इसके बाद रोष में भरकर इतना रूखा उत्तर दिया अभागे ने-

इतनी सुन बोला दुर्योधन कौन कियो उपचारो, राजनीति को मर्म न जाने तूं तो गउ चरावन हारो।

जा जा नन्द की गाय चरा ग्वारिया गंवार। तू राजनीति का मर्म क्या जानेगा।

कृष्ण ने कहा- दुर्योधन। गनीमत है कि मैं शान्तिदूत बनकर आया हूं, नहीं तो अभी बता देता ग्वारिया गंवार राजनीति से अनभिज्ञ कौन है? साधारण पुरुष हूं या उत्तम श्लोक परमात्मा तत्त्व हूं। अगर शान्ति दूत बनकर नहीं आया होता तो तेरी जबान खींच लेता। लेकिन अभी मैं क्षमाशीलता का परिचय दे रहा हूं। कृष्णने दुर्योधन का आतिथ्य स्वीकार नहीं किया और विदुर के घर प्रेम से भोजन किया।

सबसे ऊँची प्रेम सगाई, साग विदुर घर खाई। दुर्योधन की मेवा त्यागी, सबसे ऊँची प्रेम सगाई।।
झूठे फल शबरी के खाये, प्रेम विवस रघुराई। प्रेम बिवस अर्जुन रथ हाँकयो, भूल गये ठकुराई।।
ऐसी प्रीत बढ़ी वृन्दावन, गोपियन नाच नचाई। सूरदास इस लायक नाँहि, केहि लग करौं बड़ाई।।

अधर्मी लोग धर्म की बात सुनना भी पसन्द नहीं करते। यदि अधर्मी लोग धर्म को ग्रहण करें, अपने जीवन में परिवर्तन लाएं तभी धर्म प्रचार का लाभ है।

सर्वेश्वर सर्वनियामक प्रभु के बचनों को ठुकराने के कारण, सत्य की अवहेलना करने के कारण, धर्म और कर्त्तव्य को ठुकराने के कारण, धर्मनिरपेक्ष होने के कारण, द्रौपदो को अपमानित करने के कारण, पाण्डव जैसे भक्तों को सताने के कारण, आज यह अभागा दुर्योधन अपने सौ भाई गंवा चुका है, बेटे पोतों को गवां चुका है।

कृष्ण वहांपर जाते हैं दुर्योधन के महल में खबर भेज दी जाती है कि मैं आ रहा हूं। बड़े राजोचित्त ठाठ-बांट से तैयारी की जाती है कृष्णकी और दुर्योधन बुलाता है आओ महाराज, धृतराष्ट्र के पास बैठते है। कृष्ण कहते है कि महाराज यह युद्ध टालने का कोई प्रयत्न कीजिए यह ठीक नहीं हो रहा है। दुर्योधनको बोल दीजिये। आधा राज्य न सही, पांच गांव भी अगर अपने पांडवों को दे दिये तो फैसला कराने की जिम्मेदारी मेरी होगी। भीष्म पितामह भी बैठे हैं धृतराष्ट्र तो कह देता है अरे महाराज आजकल के बच्चोंपर क्या नियंत्रण रखे बच्चे मानते तो नहीं अब जो है वो होगा। होने दीजिये जैसा है प्रयत्न तो मैं करता हूं आप भी करने आए आप दुर्योधन को समझा सको तो ठीक है। कृष्ण बोले- दुर्योधन। आप जानते हो इसके महाभारत का अंजाम क्या होगा। दुर्योधन बोला- छोड़ो इन बातोंको। आपके लिये भोजन तैयार है। आप भोजन कीजिए बात बाद में करेंगे। कृष्ण बोले, दुर्योधन एक बात सुनना। भोजन कहां किया जाता है, मैं दूत बनकर आया हूं या तो दूत का काम हो जावें या मैं भूखा हूं या मुझमें तुम्हारे से प्रीति हो और मेरी तुझमें प्रीति हो। भूखा मैं हूं नहीं दूत का काम हुआ नहीं। तुमने मेरेको भी पहचाना नहीं है उन्होंने अपना विराट स्वरूप दिखलाया। वह विराट स्वरूप देखनेवाले कौन थे विदुर, भीष्म पितामह, धृतराष्ट्रकी तो आंखे नहीं थी, वेदव्यास उसी सभा में थे।

दुर्योधन क्या बोलता है ऐसे यह विराट स्वरूप सब तो बाजीगर, यह डुगडुगी बजानेवाले सब करते है इसमें क्या यह नटका खेल है और अपने सैनिकोंको आज्ञा देता है कि यह कृष्णको बन्दी कर लो। धृतराष्ट्र और भीष्म पितामह बोले, कृष्ण चलो आप खाना तो खा लो, आप रोषमें आ गये। कृष्णने बोला- आज मेरा निमन्त्रण विदुर के घर है। दुर्योधन बोलता है आप तो सीधा यहां आये द्वारिका से विदुर आपको कहां मिले। कृष्ण बोले- विदुर मेरा है, विदुरने मुझे बुलाया है आज मैं विदुर के घर जाऊंगा।

आज हरि आये विदुर घर पाहुणा.....

विदुर वहींपर राजसभा में थे, कृष्णका विराट स्वरूप देख चुके थे, कृष्णको जानते थे। कृष्ण वहींसे उठकर अपना अपमान समझकर सीधे विदुर के घर चले गये और विदुर पत्नी पारसंवी के पास केलेके छिलके खाएं प्रेमसे। विदुर अभी तक वहींपर है पहुंचे नहीं है। जैसे कृष्ण चले गये विदुर ने धृतराष्ट्र को समझाया। अरे तेरे घरमें यह सांप बैठा है, सांप। घरका दीपक, अपने घरके दीपक से आग लगा रहा है तू। दुर्योधन का त्याग कर नहीं तो तेरा घर जल जायगा। तू किस

भ्रम में बैठा है? जैसे ही दुर्योधन ने सुना, दु:शासन, शकुनि सब-के-सब तनके खड़े हो गये बोले- आज यह हमारे चाचाश्री नहीं रहते तो आज ही इनको हम समाप्त कर दिये होते। यह कुत्ता हमारे ही रोटीपर पलता है और हमारे साथ खड़ा ही मैं मैं कर रहा है। विदुरजीने उसी समय अपना अपमान महसूस किया राजरोचित वस्त्र त्यागके घरमें आये श्रीकृष्णका यथोचित स्वागत, सत्कार किया। विदुर की और कृष्णकी बात होती है बोले- कृष्ण मैंने बहुत समझानेका प्रयत्न किया। कृष्ण बोले- विदुर तुम्हारे, मेरे, वेदव्यासके समझाने से यह दुष्ट समझ जाता तो यह महाभारत की रूपरेखा ही नहीं बनती। महाभारत की रूपरेखा क्यों बनी? वनवास के समय यदि सीता बोल जाती तो रामायण नहीं होती अगर यह राजसूय यज्ञ में चुप रह जाती द्रौपदी तो महाभारत नहीं होता था। यह कुटिल बुद्धि कब समझेगा। अब तो विदुर यह महाभारत के प्रसंग से ही समझेगा। बहुत बड़ा संहार होने जा रहा है न तुम चाहो तो टाल सकते हो न मैं। कृष्ण वहांसे विदा हुए। द्वारिका लौट गये। विदुरने भी समझ लिया अब यहां रहकर कोई फायदा नहीं। उसी समय विदुर तीर्थयात्रा निकले।

विदुराईन वहां रही हस्तिनापुर में और कुन्ती फिर वहीं आकर रहने लगी। जब पांडवों को वनवास हुआ बारह वर्ष का द्यूत में हरा दिया, द्रौपदी को निर्वस्त्र किया गया, धृतराष्ट्र देख रहे, भीष्म पितामह देख रहे, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य देख रहे है निर्वस्त्र किया जा रहा है कोई कुछ नहीं बोला। पांडव सिर झुकाये बैठे है। बहुत अपने पतियोंपर भरोसा था, अपने हाथ ऊपर कर दिये और उस कृष्णको पुकारा, चिरावतार, वस्त्रावतार उस कृष्णने धारण किया और द्रौपदी की लाज बचाई। द्रौपदी भीष्म पितामह को आगे चलके पूछती है।

महाभारत का युद्ध ठनने जा रहा है। कृष्ण अपने शयनकक्ष में है। किसी प्रकार का समझौता हुआ नहीं है। अर्जुन मिलने गया है इसके पहले दुर्योधन ने भी कृष्णको मिलना चाहा और सबसे पहले आकर। किसीने कह दिया कृष्ण अपने शयनकक्षमें सो रहे है। दुर्योधन शयनकक्षमें उनकी सिरकी तरफ जाकर बैठ गया है। अर्जुन, उनका प्रिय सखा आया उसको भी यह बताया गया कि कृष्ण शयन कर रहे हैं। वो भी आया देखा दुर्योधन बैठा है। पांव की तरफ जाकर अर्जुन बैठ गया। कुछ समय में निद्रा पूरी हुई तो भगवान उठकर चौंके अरे बोले अर्जुन तुम। तुम कब आये, कैसे आए, क्या बात है? दुर्योधन बीचमें बोल उठा- भगवन पहले मैं आया हूं अर्जुन तो मेरे बादमें आया है। कृष्ण बोले- ठीक है मैंने अर्जुन को पहले देखा है। बोले अर्जुन क्या बात है, क्या चाहते हो? मांगलो तुम क्या चाहते हो। दुर्योधन बोले- महाराज अभी समझौता तो किसी भी हालत में नहीं होनेवाला है युद्ध होना अनिवार्य है। हम दोनों आपकी शरण में आये है और आपकी सहायता चाहते है। कृष्ण बोले- मैं क्या सहायता करूंगा? मेरे पास है भी क्या मैं तुम दोनोंको दे सकूं? एकतरफ अकेला निहत्था मैं हूं और एकतरफ मेरी एक अक्षुण्ण सेना। एक अक्षुण्ण बोले तो २१ हजार हाथी, २१ हजार घोड़े, ६५ हजार रथ और १ लाख ६० हजार पैदल सैनिक। बस एक तरफ यह एक अक्षुण्ण सेना है एक तरफ मैं हूं। एक ये ले ले और दूसरा यह ले ले। इसके सिवा मेरे पास कुछ नहीं है। लेनेमें पहल अर्जुन की रहेगी। क्योंकि मैंने पहले उसको देखा चाहे वो सेना ले ले चाहे मुझे। अर्जुन बोलो तुम क्या चाहते हो? अर्जुन बोले- भगवान मुझे तो सिर्फ आप चाहिये आप हो तो मेरे लिये सब कुछ है। दुर्योधन हंसा। यही है उस मन्दबुद्धि आदमी की। कृष्ण करेगा क्या उसने भी यह कह दिया कि वह शस्त्र नही उठायेंगे, निहत्था। अभी करेंगे भी क्या। दुर्योधन बोला- अर्जुन जो मांगता है वो दीजिये मुझे कोई तकलीफ नहीं मुझे एक अक्षुण्ण सेना दीजिये। दुर्योधन चला गया। कृष्ण अर्जुन को पूछते हैं अर्जुन, तूने क्या मांग लिया है मुझे क्यों मांग लिया मैं क्या दे पाऊंगा। निहत्था हूं अभी, शस्त्र मैं उठाऊंगा नहीं, न गाण्डीव धनुष मेरे पास है तेरे जैसा। तू इतनी बड़ी अक्षुण्ण सेना मांग लेता। अर्जुन बोला- भगवन् जिसको आपका सहारा हो उसे जरूरत क्या है कुछ मांगने की। जिसका क्षेम वहन भगवान स्वयं कहते है मैं करूंगा। चलो हो गया फैसला। महाभारत का युद्ध जोरोंमे छिड़ गया।

भीम का एक पुत्र हिडिम्बा राक्षसी से हुआ। घटोत्कच- पांडुनंदन भीम एवं राक्षसी हिडिंबा के पुत्र राक्षसियां जब गर्भ धारण करती हैं, तो तत्काल ही उसको जन्म दे देती हैं। वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली होती हैं। उस महान धनुर्धर बालक ने जन्म लेते ही पिता और माता के चरणों में प्रणाम किया। उसके सिर में बाल नहीं उगे थे, इसलिए हिडिंबा ने भीम से कहा- इसका घट (सर) उत्कच है- अर्थात् केशरहित है। इसी कारण माता और पिता ने बालक का नाम घटोत्कच रख दिया।

कृष्ण अर्जुन की तरफ है। भीष्म पितामह दुर्योधन का सेनापति। बड़ा वीर। अर्जुन के बाण चल सकते थे। पर अपने भीष्म पितामह क्योंकि उनकी गोदमें खेला हुआ अर्जुन उनपर बाण नहीं छोड़ता था। कृष्ण देख रहे थे कि अर्जुन यह क्या हो रहा है मैं देख रहा हूं भीष्म पितामह पर तुम बाण नहीं चला रहे हो। अर्जुन बोला- भगवन चलाता तो हूँ लेकिन उनके बाणोंसे मैं ही ढक जाता हूँ। कृष्ण बोले- तुम नहीं चलाओगे झूठ रथ से कूदे टूटा हुआ पहिया रथ का हाथ में ले उठाया। भीष्म पितामह हाथ जोड़ने लगे बोले- भगवन मैं यही तो चाहता था जो **आज जो हरि कर शस्त्र न गहाऊ तौ लाजों गंगा जननी कौ ना ही मैं शान्तनु सुत कहाऊं**। आपने प्रतिज्ञा की थी की मैं अस्त्र नहीं ऊठाऊंगा। मैंने यह प्रतिज्ञा कर दी थी कि आज भगवान से अगर अस्त्र नहीं उठवा दूं तो इसके आगे मैं शान्तनु पुत्र नहीं कहाऊंगा मैं युद्ध छोड़ दूंगा। आपने मेरी प्रतिज्ञा रखने के लिए अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी, भक्त की प्रतिज्ञा रखने के लिए भगवान ने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी।

यह युद्ध महाभारत का धर्मयुद्ध। उस धर्मयुद्धमें अभिमन्यु मारा गया, सात महारथियोंकी गलत मंत्रणा से, गलत विचारोंसे और कूटनीति से कर्ण, शकुनि, दुर्योधन, दु:शासन, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, बडे-बडे वीर जो धर्मयुद्ध के नामपर महाभारत खेल रहे थे और भोले-भाले बालक को अपने चंगुल में फंसाकर वो भी इतना वीर बालक चक्रव्यूह में जाना, प्रवेश करना सीख गया था प्रवेश कर गया लेकिन बाहर निकलनेका रस्ता मालूम नहीं था। यह चक्रव्यूह विद्या अपनी माताके गर्भ में सीखी थी। धोखेसे मार दिया उस बालक को, पीछे से वार किया। पुत्र मारा गया। पत्नी उत्तरा सती होनेके लिये तैयार हुई। कृष्णने उसको सती होनेसे रोक दिया। बोले नहीं उत्तरा, सती नहीं होनेका। तुम्हारे गर्भमें बालक है और गर्भवती स्त्रीको सती होनेका वरदान नहीं है। वर्जित है। तुम इस बालक को जन्म दो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा। उस बालक को जन्म दिया। उसका नाम परीक्षित था।

महाभारत का युद्ध लड़ा गया एक-एक करके कौरव मारे गये। दुर्योधन और भीम का बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। कृष्णने छलसे, कपटसे भीमसे दुर्योधन की जंघा तुड़वा दी। बलरामने देख लिया बलराम कृष्णपर क्रोधित हो गये। बोले कृष्ण तुमने यह चालबाजी करी। गदा युद्धमें छल करी। मेरा शिष्य। अब कृष्ण हमेशा अपने बड़े भाईका सम्मान करते थे। बोले आप इसको धर्मयुद्ध कहते हो, आप इसको छल कहते हो। क्या कौरवोंने जो कुछ किया वो धर्मके अनुसार था। भीम को विषके लड्डू खिलाएं, लाक्षागृह भेजा गया यह क्या धर्म है? इनके कर्त्तव्य धर्मके अनुकूल थे? द्रौपदी का चीरहरण हुआ यह धर्मके अनुकूल था? बलराम वहांसे लज्जित होकर चले गए। दुर्योधन अब एक सरोवर में जाकर छिप गया।

७) अश्वत्थामाद्वारा द्रौपदीके पुत्रोंका वध और उसका अपमान

आज कुरुकुल में कोई पानी देनेवाला पिण्डदान देनेवाला नहीं बचा। दुर्योधन पड़ा-पड़ा अफसोस कर रहा है। आज कुल में पिण्ड देनेवाला कोई नहीं बचा। कारण को नहीं देख रहा है। भगवद् विमुख की गति यही होती है, सोचता है मेरे शत्रु पांचों मौजूद हैं, एक को भी मरा देख लेता तो मुझे शान्ति मिल जाती। मेरी छाती ठण्डी हो जाती। इस तरह अफसोस कर ही रहा था। उसी समय द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा उसके पास आया और कहा- राजन्, तुम्हारी भूल के कारण ऐसा हुआ। क्या भूल हुई। जो असली भूल हुई जीवन में उनको नहीं बता रहा है।

भीमकी गदाके प्रहार से दुर्योधनकी जाँघ टूट चुकी थी, तब अश्वत्थामाने अपने स्वामी दुर्योधनका प्रिय कार्य समझकर द्रौपदीके सोते हुए पुत्रोंके सिर काँटकर उसे भेंट किया।

मायासे मोहित होकर यह जीव तीनों गुणोंसे अतीत होनेपर भी अपनेको त्रिगुणात्मक मान लेता है और इस मान्यताके कारण होनेवाले अनर्थोंको भोगता है।

अश्वत्थामा गुरु द्रोणाचार्यका पुत्र कितना निकृष्ट आदमी, जलील आदमी। कौरवोंकी तरफ से सेनापति बनाया गया। अश्वत्थामा दुर्योधन को मिलने आया बोले- मित्र तुम बोलो मैं क्या करूं? बोले- अगर मित्र कुछ कर सकते हो तो पांच पांडवों के सिर तुम उतारकर लादो आज की रात। तो मेरे हृदय को शान्ति मिलेगी नहीं तो मैं यूं ही मर जाऊंगा। अश्वत्थामाने उसी समय प्रण किया हे दुर्योधन, मैं तेरा सच्चा मित्र हूँ। तेरा गुरुपुत्र हूँ और मैं वचन देता हूँ कि आज शामको मैं इन पांच पांडवों को मारकर उनके सिर उतारकर ले आऊंगा। करीब-करीब आखिरी दिन था युद्ध का। सत्रह दिन बीत चुके थे, अठारवें दिन का युद्ध चल रहा था, युद्ध समाप्ति की ओर था। भावावेश में की गई प्रतिज्ञा तथा किसी की आज्ञा भविष्य में हानिकर हो सकती है। जिसे जगदीश बचानेवाला हो उसे कोई कैसे मारेगा। मारनेवाले के दो हाथ हैं, बचानेवाले के हजार हाथ हैं।

दोय हाथन वारो सके जन को कहा बिगार। नारायण रखवार है जाके भुजा हजार।।

पांच पांडव अपने रणक्षेत्र के जो शिबिर बनाये रहते है उसमें रह रहे थे। कृष्ण उस दिन बोले तुम लोग युद्धसे शान्त हो गये हो यहांसे चलो किसी और जगह बैठेंगे बातें करेंगे और वहीं सो जायेंगे। उनको किसी और जगह ले गये गंगा नदी के किनारे पर देर राततक बातें करते रहें और वही किसी जगह पड़ाव डालकर सो गये। यहां द्रौपदी के पाँच पुत्र पाँचों पांडवों से वो देखे आज युद्ध का शिबिर खाली पड़ा है क्यों न आज यही सो जाएं विश्रांति कर ले। पाँचों पांडव पुत्र वहां सो गये। अश्वत्थामा अश्वपर चढ़कर वहां आ गया तलवार लेकर सोएं हुए बालकोंके गर्दन काट डालें।

अश्वत्थामा चल्यो पाप मति मनमहँ आई। पितृ मृत्यु करि यादि धर्म गति दई मुलाई।।
पाण्डव कुल को बीज नाश कैसे हूँ होवे। प्रति हिंसामहँ धर्म, सत्य सब ही नर खोवे।।
द्रुपद सुता के सुत सभी, सोवत सुख तें शिबिर में। तुरत तीक्ष्ण तरवारि तें, सिर काटे निशि तिमिर में।।

पांचोंके सिर लेकर दुर्योधन के पास गया और बोला मित्र लो आज मैंने तुम्हारी इच्छा पूरी करीं। न द्रोणाचार्य, न कृपाचार्य, न भीष्म पितामह किसी एक पांडव को मार सकें लेकिन मैंने आज पांच पांडव तुम्हारे सामने ला दिये। अश्वत्थामा ने अपने स्वामी दुर्योधनका प्रिय कार्य समझकर द्रौपदीके पुत्रोंका सिर काटकर उसे भेंट दिया। कपड़े से ढके हुए शव थे जैसे ही दुर्योधन ने वह कपड़ा निकालकर देखा बोले अश्वत्थामा धिक्कार है तुझे यह तुमने क्या किया यह पांच पांडव नहीं है यह तो द्रौपदीके पांच पुत्र है। अरे तूने यह क्या कर दिया तू तो हमारे वंश को निर्बिज कर देगा, कौरव वंश को। बोले- मित्र ऐसी बात है मुझे मालूम नहीं। दुर्योधन को भी बड़ा क्षोभ हुआ। यह घटना दुर्योधनको अप्रिय लगी क्योंकि ऐसे नीच कर्मकी सभी निन्दा करते है।

दुर्योधन ने प्राण त्याग दिये। उन बालकोंकी माता द्रौपदी अपने पुत्रोंका निधन सुनकर अत्यन्त दुःखी हो गयी। अर्जुनने उसे सान्त्वना देते हुए कहा- मैं उस ब्राह्मण अधम का सिर गाण्डीव-धनुषसे काटकार तुम्हें भेट करूँगा और पुत्रोंकी अन्त्येष्टि क्रिया करने के बाद तुम उसपर पैर रखकर स्नान करना। अश्वत्थामा आततायी है। आग लगानेवाला, जहर देनेवाला, बुरी नीयतसे शस्त्र चलानेवाला, धन लूटनेवाला, खेत और स्त्रीको छीननेवाला यह सब आततायी कहे जाते हैं।

भगवान शिव त्रिशूल हाथमें लेकर सूर्यपर क्रोधित होकर उसकी ओर दौड़े तो सूर्य भागते-भागते पृथ्वीपर गिर गया और वह लोलार्क (काशी तीर्थ) नामक स्थान में गिरा।

एक राक्षस था। उसका नाम था- विद्युन्माली। वह भगवान् रुद्र का महान भक्त था। रुद्र उसकी तपस्या से प्रसन्न हो उठे। उन्होंने उसे एक सोने का चमचमाता हुआ रथ दिया। वह रथ पर बैठकर सूर्य के पीछे-पीछे चलने लगा। उसके रथ की प्रभा से रात्रि समाप्त हो गई। यह देखकर सूर्य क्रुद्ध हो गये। उन्होंने अपने तीव्र तेज से विमान को गला कर भूतल पर गिरा दिया। इस बात के ज्ञात होने पर शंकर कुपित हो उठे। वे त्रिशूल लेकर सूर्य की ओर दौड़े। भय के मारे सूर्य भागे। हड़बड़ी में वे पृथ्वी पर गिर पड़े। जहाँ सूर्य गिरे थे वहाँ एक विशाल गड्ढा बन गया। यह स्थान वाराणसी में लोलार्ककुण्ड के नाम से विख्यात है। यह वाराणसी के एकदम दक्षिण में है।

उसी तरह कृष्ण और अर्जुन अश्वत्थामाके पीछे गये। अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा- आपकी शक्ति अनन्त है। तुम भक्तोंको अभय देनेवाले हो। जो संसारकी धधकती हुई आगमें जल रहे है उन जीवोंको उबालनेवाले एकमात्र तुम ही हो। तुम्हारा यह अवतार पृथ्वीका भारहरण करने के लिए और तुम्हारे अनन्य प्रेमी भक्तजनोंके लिये हुआ है।

पुत्र शोक तें दुखी द्रौपदी अति बिलखाई। मूर्च्छित ह्वैकें गिरी पार्थ प्रिय कहि समुझाई।।
त्यागहु चिन्ता शोक तीर ले तुरतहि जाऊं। जे काटे सुत शीश, काटि सिर ताको लाऊँ।।
केशव कूँ करि, सारथी, चले शत्रु पीछो कियो। ब्रह्म अस्त्र निज अस्त्र तें, काटि पकरि गुरुसुत लियो।।

एक प्रकाश अर्जुन की ओर दौड़े आ रहा था। अर्जुनने बोला भगवन् यह क्या है? कृष्णने कहा- कि यह अश्वत्थामा का चलाया हुआ ब्रह्मास्त्र है। प्राण संकट उपस्थित होनेसे उसने इसका प्रयोग तो कर दिया है, परन्तु वह इस अस्त्रको लौटाना नहीं जानता। किसी भी दूसरे अस्त्रमें इसको दबा देनेकी शक्ति नहीं है। तुम शस्त्रास्त्र विद्याको भलीभाँति जानते ही हो, ब्रह्मास्त्रके तेजसे ही इस ब्रह्मास्त्रकी प्रचण्ड आगको बुझा दो।

द्रौपदीके पुत्रोंका वध हुआ। द्रौपदी बड़ी चीत्कार करती है और अर्जुन जब आता है, प्रतिज्ञा करता है द्रौपदी को कि द्रौपदी तुम्हारे इन पुत्रोंको मारनेवालों को मैं जब तक तुम्हारे पास लाकर नहीं डाल दूंगा, जब तक मैं वध नहीं कर दूंगा मैं घर नहीं आऊंगा अग्निमें जलकर मर जाऊंगा। कृष्ण भी साथमें जाते है और जाकर अश्वत्थामाको पुकारते है। अश्वत्थामा ब्रह्मास्त्र चलाता है, अर्जुन ब्रह्मास्त्र चलाता है। अश्वत्थामाको ब्रह्मास्त्र शमित करने की विद्या नहीं आती है। कृष्ण बोले- बड़ा अनर्थ हो रहा है तीनों लोक जल रहे है। अर्जुन पूछता है- भगवन् मैं क्या करूं। कृष्ण बोले- अर्जुन ब्रह्मास्त्र लौटाओ। सृष्टिका संहार हो जायेगा। ब्रह्मास्त्र लौटाओ।

अर्जुनने ब्रह्मास्त्र का निवारण किया और अर्जुनने उन दोनों ब्रह्मास्त्रको लौटा दिया। अर्जुनकी आँखे क्रोधसे लाल हो गई और उसने झपटकर उस क्रूर अश्वत्थामाको पकड़ लिया। जैसे कोई रस्सीसे पशुको बाँध ले, वैसे ही उसे बलपूर्वक बाँधकर अपने शिबिर की ओर ले गये। कृष्ण बोले- अर्जुन इस ब्राह्मण अधम को छोड़ना ठीक नहीं है इसको तो मार डालना चाहिए। उसने रातमें सोए हुए निरपराध बालकोंकी हत्या की है। धर्म ज्ञानी पुरुष, असावधान, मतवाले, पागल, सोएं हुए, बालक, स्त्री, मूर्ख, शरणागत, रथहीन और भयभीत शत्रुको कभी नहीं मारते परन्तु जो दुष्ट और क्रूर, आततायी दूसरोंको मारकर अपने प्राणोंका पोषण करता हो उसका वध करना कल्याणकारी है। कोई भी धर्म का जानकार अपने, मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, सोये हुए बालक, स्त्री, जड़, शरणागत, रथहीन तथा भयभीत शत्रु को भी नहीं मारता है। जो निर्दयी व्यक्ति दूसरों के प्राणों से अपने प्राणों का पालन करता है वह अपने ही पापों के कारण नरकगामी हो जाता है।

इस पापी कुलांगार आततायीने तुम्हारे पुत्रोंका वध किया है इसलिए अर्जुन उसे मार डालो। पर अर्जुन के मन में गुरुपुत्र को मारनेकी इच्छा नहीं हुई। वे अपने सारथी कृष्णके साथ अश्वत्थामाको पकड़कर खींचकर द्रौपदी के सामने लाते है और बोले द्रौपदी, यह रहा तुम्हारा अपराधी। जैसे कोई पशु को बांधकर लाया जाता है। बोलो इसका क्या करना है? वध कर दूं। दूर से ही द्रौपदी ने देखा। द्रोण पुत्र अश्वत्थामा को अर्जुन पशु की तरह रस्सी से बाँधकर ला रहे हैं। पाप कर्म करने से जिसकी श्री नष्ट हो गई है, अपमान के कारण जिसका मुख मलिन हो गया है, जो लज्जा के कारण सिर को ऊपर नहीं उठाता है। ऐसी दशा में अपने गुरुपुत्र को देखकर द्रौपदी रो पड़ी। नारी सुलभ करुणा के कारण पांचाली के दोनों कपोल भीग गये। वह पुत्रों के मृत्यु को भूल गई। दौड़कर उसने बँधे हुए अश्वत्थामा के सम्मुख घुटने टेक दिये। अपने वस्त्रों को सम्हालकर अंचल को पसारकर उसने पृथ्वी पर सिर टेककर अश्वत्थामा को प्रणाम किया। उसके दोनों कमल नेत्रों से निरन्तर अश्रु बह रहे थे। गला भर आने के कारण वह कुछ कह भी न सकी। जिनके पाँच पुत्रों का हत्यारा सामने खड़ा है एवं जिसके पांच सबल पति उससे प्रतिशोध लेने को तत्पर रहें, वह माता हत्यारे का वध न करेगी। वह तो धैर्य तथा क्षमा की चरम सीमा है।

अपना अनिष्ठ करनेवाले गुरुपुत्र अश्वत्थामाको इसप्रकार अपमानित और घृणित देखकर द्रौपदीका कोमल हृदय कृपासे भर आया और बोली- छोड़ दो, यह ब्राह्मण है हमलोगोंके पूजनीय है। जिनसे आपने रहस्य सहित धनुर्वेद तथा समस्त अस्त्र-शस्त्र तथा उनका प्रयोग उपसंहार सीखा है, ये वे ही भगवान द्रोण साक्षात् पुत्र रूप से, आपके सम्मुख उपस्थित हैं। आप इन्हें उन्हींका स्वरूप समझकर पूजें। कृष्ण आप तो बड़े धर्मज्ञ है। जिस गुरुवंशकी नित्य पूजा और वंदना करनी चाहिए उसको कष्ट देना हमारे योग्य नहीं है।

एक तो मैं स्वयं ही पुत्र शोक से दु:खी हूँ, फिर ब्रह्मशाप से मुझे और दु:खी क्यों बनाते हो? इन्हें मारने से अथवा इनका अपमान करने से, मेरे पुत्र जीवित तो हो नहीं जायँगे। वे तो अपने कर्मानुसार मारे गये। अब एक नया पाप करके अपने सम्पूर्ण कुल को कलंकित क्यों करें? तुम पुरुषों की छाती तो बज्र की होती है। तुम्हें पता नहीं, पुत्र शोक से माताओं को कितना कष्ट होता है। उसे मैं ही भोग रही हूँ। इन्हें मारकर उन देवी गौतमी- द्रोण पत्नी- को भी मेरी ही भाँति दुखी क्यों बनाते हो। अपने पति के परलोक गमन के अनन्तर वे पतिव्रता कभी भी जीवित नहीं रह सकती थीं, किन्तु अपने इसी पुत्र का मुख देखकर वे किसी प्रकार प्राणों को धारण किये हुई हैं। अब इन्हें भी तुम मार दोगे, तो निश्चय ही वे अपने प्राणों का परित्याग कर देंगी। इस प्रकार दो ब्रह्म हत्याओं का पाप हमारे सिर पर लगेगा।

मैं अपने बच्चोंके मर जानेसे दु:खी होकर रो रही हूँ वैसे ही इसकी माता गौतमी रोयें यह मैं बर्दाश्त नहीं कर पाऊंगी। कुपित ब्राह्मणकुल राजाओंको सपरिवार श्राप देकर शीघ्र ही भस्म कर देता है। द्रौपदीकी बात धर्म और न्यायसे अनुकूल थी। उसमें कपट नहीं था, करूणा और ममता थी। द्रौपदीके वचनमें धर्म है, न्याय है, करुणा है, निष्कपटता है और समता है। मनुष्य जब कभी बोले तो सोच ले कि जो वह बोल रहा है, उसमें ये गुण हैं या नहीं।

पशु समान दृढ़ बाँधि लाइ पत्नीकूँ दीन्हों। गुरु-सुत सम्मुख समुझि, चरन बन्दन उठि कीन्हों।।
दया दृष्टि में देखि, द्रौपदी बोली बारी। छोड़ो इनकूँ अबहिं दण्ड दें, होगी हानी।।
कृष्ण कृष्ण कनिष्ट बड़, सबई को कहनो कर्‌यो। मूँड़ि बार बाहिर कर्‌यो, माथे को मुक्ता हर्‌यो।।

पशु के समान बाँधकर लाये हुए अश्वत्थामा को देखकर, जो अपने नीच कर्म के कारण लज्जा से नीचा मुख किये खड़ा है, देख द्रौपदी दया से द्रवीभूत हो गई। यद्यपि वह महान् अपराधी था, फिर भी गुरु का पुत्र है, यह सोचकर द्रौपदी ने अपने नारी सुलभ कोमली स्वभाव के कारण उसे नमस्कार किया।

द्रौपदी कहती है- भैया, यह गुरुपुत्र है। इसके पितासे अर्जुन ने विद्या सीखी है। इसने मेरे पुत्रोंको मार दिया ठीक है इसने काम गलत किया है लेकिन इसको छोड़ देना चाहिए। गुरुपुत्र का वध करके मैं सुखी नहीं होऊंगी और मेरी गुरुमाता कृपी अश्वत्थामा की माता वह निपुति होगी। इससे क्या फायदा होगा। मेरे पुत्र तो जीवित नहीं हो जाएंगे। नहीं इसे छोड़ दो।

भीम बोला- दुष्टों पर कहीं दया की जाती है? क्रूरकर्मा कृपा के पात्र नहीं होते। नीचों पर क्षमा करने से उनका उत्साह और बढ़ता है। नीचों को दण्ड देना ही उनके साथ कृपा करना है। खलों का नाश करना ही संसार का कल्याण करना है। हमारे नन्हें-नन्हें बालकों को मारकर इस नीच ने कौन-सी वीरता का कार्य किया? दुर्योधन को ही इसे प्रसन्न करना था तो हमें मारता। हमारे मरने पर दुर्योधन प्रसन्न भी होता, हमसे ही उसकी शत्रुता थी। इन बालकों के मरने से उसे भी तो हर्ष नहीं हुआ। इसलिये अर्जुन, तुम अभी इसका सिर काटकर इसके पाप का प्रायश्चित्त कर दो। जिस लोक को हमारे बच्चे गये हैं, उसी में इस दुष्ट को भी पहुँचा दो।

भीम बोलता है- नहीं। छोड़ दो किसलिए यह आततायी है, इसको अर्जुनने नहीं मारा तो मैं मारूंगा। भीम बड़ा क्रोधी था। वह कृष्णसे बड़ा था। लेकिन वह जो बोल लेता तो कृष्ण कुछ बोलते नहीं थे। भीम कहता है मारो, द्रौपदी कहती है छोड़ो। अर्जुन बड़े असमंजस्य में थे मारूं या छोडूं। अर्जुन कृष्ण को पूछते हैं भगवन्, ऐसेमें मैं क्या करूं, आपकी क्या आज्ञा है। कृष्ण बोले- शास्त्र और नीति कहती है बालक के वध के हत्यारे को कभी छोड़ना नहीं चाहिए मारना ही चाहिए यह नीति कहती है। वह क्षमा करने योग्य नहीं होता है और ब्राह्मण का कभी वध नहीं करना चाहिए। अर्जुन बोल रहा है- यह क्या बोल रहे है आप। एकतरफ मारो भी बोलते है एक तरफ छोड़ो भी। मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूं। युधिष्ठिर से पूछे- बोले महाराज आप क्या कहते है? युधिष्ठिर बोले- शास्त्र सम्मति क्या है?

यद्यपि इसने काम तो बुरा ही किया, फिर भी ब्राह्मण तो ब्राह्मण ही है। हमारी सम्मति में इसे मारना उचित नहीं। फिर भगवान वासुदेव जैसा कहें।

कृष्ण बोले- पतित ब्राह्मणका भी वध नहीं करना चाहिये और आततायीको मार ही डालना चाहिये शास्त्रमें यह दोनों बातें कही है। द्रौपदीको सान्त्वना भी दो और भीमको जो अप्रिय हो वह करो। वासुदेव अर्जुन से बोले- इसी समय तुम्हारी बुद्धि की परीक्षा है। देखो द्रौपदी जो कह रही है, यद्यपि वह नारी सुलभ कोमलता और दया के वशीभूत होकर कह रही है, फिर भी उसका वचन धर्म सम्मत है। ब्राह्मण सभी दशा में अवध्य बताया गया है। उसका शारीरिक बध शास्त्रकारों ने वर्जित किया है। इसके विरुद्ध भीम जो बात कह रहा है, वह शास्त्र सम्मत ही है। क्योंकि शास्त्रकारों ने अग्नि लगानेवाला, जहर देनेवाला, शस्त्र लेकर लड़ने को आनेवाला, पर धन हरण करनेवाला, खचेत तथा स्त्री छीननेवाला इन छ: को आततायी बताया है। आततायी यदि वेदज्ञ ब्राह्मण भी हो तो बिना विचार के मार डालें। इसने अपना ब्राह्मणत्व छोड़ दिया है। यह वध करने योग्य है। अब दोनों को ही तुम सन्तुष्ट कर सकते हो तो करो।

अभी सभी असंमजस्य में है कुछ जल्दी फैसला कराना चाहिए। बड़े लोगोंका अपमान कर देना, ब्राह्मण का सर्वस्व छीनकर सिर मूड़कर, उसे देश से निकाल देना, पत्नी को शैया से पृथक् कर देना और राजा की आज्ञा को भंग कर देना शास्त्रकारों ने इन तीनों के ये शस्त्र रहित वध ही बताये हैं। अत: इसका भी ऐसा ही वध कर दें। इससे द्रौपदी और धर्मराज की भी बात रह जायगी, भीम का कहना भी हो जाएगा और कृष्ण भी इससे सन्तुष्ट हो जायँगे। कृष्ण बोले- इसके सिर मुंड दो, मूँछे मुंड़ दो, इसके सिरपर जो मणि है वह काट डालो यह वध के बराबर ही है। ब्राह्मण का इतना अपमान हो जायेगा, कि ब्राह्मण मुंह दिखाने योग्य नहीं रहेगा, इसका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जायेगा। यही ब्राह्मण का वध है। अर्जुनने अपने तलवार से अश्वत्थामा के सिर की मणि और उसके बालोंको उतार लिया। अश्वत्थामा मणि और ब्रह्मतेज से रहित हो गया। इतना

क्रूरकर्मी जिसको भगवान ने कल्पजीवी बननेका वरदान दिया, देखो अश्वत्थामा आज भी कल्पजीवी है इस युगमें है, दिखता है और रहता है वो अश्वत्थामा। इतना निकृष्ट होनेपर भी इसको पूर्वजन्म और पुण्य संचित होंगे। कहते हैं कि इटावा में एक मन्दिर है डाकूओं का और वो मंदिर इटावा और मैनपुरी इलाके में है वहां नवरात्रके समय वह आता है हर दिन-रातको वो उस मंदिर में पूजा करने आता है। रातको जब पुजारी मंदिर बन्द करके चले जाते है। लेकिन दूसरे दिन सुबह ताला खोलने के पहले उसमें पूजा की हुई दीपक और फूल रोज मिलते है और आज भी मिलते है ऐसा सुननेको आया है- वो अश्वत्थामा। सबने सर्वसम्मतिसे निश्चय किया कि बाल उड़ा दो, मणि काट दो, मूँछ मुंड़ा दो और यह सब करके उसको धक्के मारकर निकाल दिया।

गुरुसुत विप्र विचारि पुत्र घाती नहिं मार्‌यो। अति अपमानित भयो युद्ध करि सम्मुख हार्‌यो।।
मैल न मन को गयो हिये प्रतिहिंसा धारी। पाण्डुवंश को नाश करूँ यह बात बिचारी।।
घाव पूरे गड़हा भरै, नर अपमान न भूलहीं। खल मन मोती दूध ये, फटिकें फिरि जुरते नहीं।।

८) उत्तरा के गर्भ की रक्षा, परीक्षित का जन्म और परिचय

संसारके सभी प्राणी कालके अधीन हैं, मौतसे कोई किसीको पहचान नहीं सकता।

अश्वत्थामा ने प्रतिज्ञा कर दी या तो पांडवों को मारूंगा या फिर इनका एक बीज उत्तरा के गर्भ में है उस बीजको समूल नष्ट कर दूंगा। अश्वत्थामा जाता है और प्रसंगवश एक ब्रह्मास्त्र छोड़ता है। परीक्षितकी मृत्यु हुई। परीक्षित जन्म लेनेवाला है एक अस्त्र छोड़ देता है, ब्रह्मास्त्र। उत्तरा आर्त-आर्त कहती है। श्रीकृष्ण उसके मामा श्वसुर हैं। बोली- हे माधव आपने तो मुझे सती होनेसे रोक लिया था और इस ब्रह्मास्त्र से मेरा गर्भ जल रहा है। मेरी रक्षा करो। यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है उसके निवारणका कोई उपाय नहीं है।

ब्रह्मास्त्र से विह्वल हुई उत्तरा भगवान से प्रार्थना करती है- हे स्वामिन, देखिये। वह तपाये हुए लोहे के समान लाल बाण मेरी ही ओर आ रहा है। हे विभो। यह मुझे भले ही जला डाले, किन्तु नाथ। मेरे इस गर्भस्थ बालक की रक्षा आप कीजिये। यह किसी प्रकार इस अस्त्र से नष्ट न होने पावे।

हे दीनबन्धों। यह बाण चाहे मुझे मार दे। किन्तु मेरे इस गर्भस्थ बालक की आप रक्षा करें। इसे किसी तरह इस विपत्ति से बचावें। भगवान ने अपनी योगमाया से उत्तरा के गर्भ को ढक लिया। जैसे अग्नि सबको भस्म कर सकती है पर जलके सामने आते ही शान्त हो जाती है। क्षत्रिय सबका संहार कर सकता है, किन्तु स्वधर्म निष्ठ ब्राह्मण के सम्मुख उसका तेज कुण्ठित हो जाता है। उसी प्रकार वैष्णव तेज सुदर्शन चक्र के सामने ब्रह्मास्त्र निर्वीय हो गया।

जिसके रक्षक राम, उसको सभी करें प्रणाम

कृष्ण संसारकी सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं। उसी समय कृष्णने अपना सुदर्शन चक्र घुमाया और गर्भमें प्रवेश किया, खुद प्रविष्ठ हो गये। यह पहला बालक है जिसने गर्भमें भगवान के दर्शन किये हैं। उस बालक ने जन्म लिया।

अश्वत्थामा अपने अपमानसे घृणित होकर चला गया। लेकिन प्रतिशोध की भावना रही। उस प्रतिशोध से उसने उत्तरा के गर्भको नष्ट करने की कोशिश करी। ब्रह्मास्त्र चला दिया भगवान कृष्णने उसको शमित किया। भगवान ने यह प्रत्यक्ष दिखा दिया कि जो सर्व आश्रय छोड़कर एकमात्र मेरा ही आश्रय लेते हैं, उनके लिये मैं सब कुछ करने को, सब कुछ बनने को, सदा सर्वदा प्रस्तुत रहता हूँ। ईश्वर ऐसी करुणामूर्ति, कृपामूर्ति हैं, जहाँ हम कुछ नहीं कर पाते, असहाय हैं वहाँ वे मदद करते हैं।

जैसे ही परीक्षितने जन्म लिया भगवान तो उसकी गर्भमें रक्षा करके चले गये द्वारिका की तरफ। लेकिन जैसे ही परीक्षितने जन्म लिया चारों तरफ दृष्टि घूमाकर देख लिया कि वह आदमी कहां है, वो स्वरूप कहां है जिसने मेरी जान बचायी, जिसने मुझे गर्भमें दर्शन दिये। बालक बड़ा हुआ। जन्मते ही बैठ गया और चारों तरफ आंख घूमाकर देख रहा है। कृष्णको द्वारिका में खबर मिली। कृष्ण आये बालक उनकी गोदमें गया। बालक हंसने लगा, बालक में प्राण आ गये। यही बालक राजा परीक्षित हुए। समस्त सद्गुणोंको विकसित करनेवाले शुभ समयमें पाण्डुके वंशधर परीक्षितका जन्म हुआ। जन्मके समयमें वह बालक इतना तेजस्वी दीख पड़ता था मानो स्वयं पाण्डुने ही फिरसे जन्म लिया हो। युधिष्ठिर मनमें बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने धौम्य, कृपाचार्य आदि ब्राह्मणोंसे मंगलवाचन और जातकर्म-संस्कार करवाये और प्रजातीर्थ नामक कालमें ब्राह्मणोंको सुवर्ण, गौएं, पृथ्वी, दान, हाथी-घोड़े, उत्तम वस्त्र और अन्नदान किया। ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिया कि भगवान विष्णुने यह बालक देकर वंशकी रक्षा की इसलिये इसका नाम विष्णुरात होगा। यह बालक संसारमें बड़ा यशस्वी महापुरुष होगा। ब्राह्मणोंने कहा- धर्मराज यह इक्ष्वाकुके समान अपनी प्रजाका पालन करनेवाला, श्रीरामके समान ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ होगा। उशीनर नरेश शिबिके समान शरणागत वत्सल होगा और दुष्यन्तके पुत्र भरतके समान अपने वंशका यश फैलानेवाला होगा। यह सहस्त्रबाहु अर्जुन ओर अपने पार्थके समान अग्रगण्य होगा। यह अग्निके समान दुर्धर्ष और समुद्रके समान दुस्तर होगा। सिंहके समान पराक्रमी, हिमाचलकी तरह अड़िग और पृथ्वीके समान धैर्यवान व सहनशील होगा। यह कृपालु और सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेमें युधिष्ठिर समान होगा। समस्त सद्गुणोंकी खान और श्रीकृष्णका अनुयायी होगा। रन्तिदेवके समान उदार और ययाति के समान धार्मिक होगा। निष्ठामें प्रह्लादके समान होगा और अश्वमेध-यज्ञ करनेवाला वृद्धोंका सेवक होगा। मर्यादा का उल्लंघन करनेवालोंको दण्डित करेगा और धर्म की रक्षा के लिए कलियुग का दमन करनेवाला होगा। भगवानके चरणोंकी शरण लेगा। समुद्र की लहरोंका आदि नहीं अन्त नहीं। उसी प्रकार भगवान का चरित्र अपार है। संसार में सुख के कारण धन-सम्पत्ति, पुत्र, पत्नी, परिवार, राज्य, ऐश्वर्य, यश और पुण्य कार्य आदि इतने ही बताये जाते हैं। राम जैसा संत बनेगा, समुद्र जैसा गंभीर, पृथु के जैसा सहिष्णु, चक्रवर्ती सम्राट होगा। यह बालक एक द्विज के शाप के कारण तक्षक इसको डसेगा तब इसकी मृत्यु होगी। विष्णुरात- पांडुवंशधर परीक्षित। पौत्र के जन्म की बात सुनकर राजा युधिष्ठिर मन में बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने विनयपूर्वक सभी को संतुट कर दिया। परम प्रसन्न विद्वान पंडितों ने राजा युधिष्ठिर से कहा- पुरुवंशशिरोमणे। काल की दुर्निवार गति से यह पवित्र पुरुवंश मिटना ही चाहता था, परंतु तुम लोगों पर कृपा करके भगावन विष्णु ने यह बालक देकर इस वंश की रक्षा कर दी। इसीलिए इसका नाम विष्णुरात होगा। नि:संदेह यह बालक संसार में बड़ा यशस्वी, भगवान का परम भक्त और महापुरुष होगा।

महाराज युधिष्ठिरके पास सब ऐश्वर्य था और उन्होंने उसका सदुपयोग किया और परीक्षितके जन्म पर सभी विप्रवर को विविध प्रकारके दान दिये।

राजा परीक्षित केवल धर्म के ज्ञाता ही नहीं थे, वे धर्म के साक्षात् स्वरूप थे। वे संपूर्ण जगत के प्रेमपात्र थे। जब कुरुवंश परिक्षीण, सर्वथा नष्ट हो चला था, उस समय उत्तरा के गर्भ से उनका जन्म हुआ। इसीलिए वे महाबली अभिमन्यु कुमार परीक्षित नाम से विख्यात हुए- ऋषि वैशंपायन राजा जनमेजय से कहते हैं- महाराज। सत्यप्रतिज्ञ भगवान श्रीकृष्ण ने तुम्हारे पिता का इस प्रकार नामकरण किया- कुरुकुल के परिक्षीण हो जाने पर यह अभिमन्यु का बालक उत्पन्न हुआ है, इसलिए इसका नाम परीक्षित होना चाहिए। नरेश्वर। इस प्रकार नामकरण होने के पश्चात् तुम्हारे पिता परीक्षित कालक्रम से बढ़ने लगे। अश्वत्थामा ने जो अत्यंत तेजस्वी ब्रह्मास्त्र चलाया था, उससे उत्तरा का गर्भ नष्ट हो गया था। परंतु भगवान श्रीकृष्ण ने उसे पुन: जीवित कर दिया। उत्तरा के गर्भ में स्थित वह वीर शिशु जब अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र के दारुण तेज से

जलने लगा, तब उसने देखा कि उसकी आंखों के सामने एक ज्योतिर्मय पुरुष है। वह देखने में तो अंगूठे के आकार का है, परंतु उसका स्वरूप बहुत ही निर्मल है, अत्यंत सुंदर श्याम शरीर है। वह बिजली के समान चमकता हुआ पीतांबर धारण किए हुए है तथा उसके सिर पर मोरपंख का मुकुट झिलमिला रहा है। उसे निर्विकार पुरुष के बड़ी ही सुंदर लंबी-लंबी चार भुजाएं हैं। कानों में सुंदर कुंडल हैं, आंखों में लालिमा है, हाथ में गदा है, जिसे वह निरंतर घूमाता जा रहा है और स्वयं शिशुके चारों ओर घूम रहा है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से कुहरे को भगा देते हैं, वैसे ही वह उस गदा के द्वार ब्रह्मास्त्र के तेज को शांत करता जा रहा था। उस पुरुष को अपने समीप देखकर वह गर्भस्थ शिशु सोचने लगा कि यह पुरुष कौन है? धर्मरक्षक भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्मास्त्र के तेज को शांत करके वहीं अंतर्धान हो गए। समय आने पर पांडु के वंशधर उस शिशु का जन्म हुआ। वह शिशु संसार में परीक्षित नाम से प्रसिद्ध हुआ, क्योंकि वह बालक गर्भ में जिस पुरुष का दर्शन कर चुका था, उसका स्मरण करता हुआ लोगों में उसी की परीक्षा करता रहता था कि देखें इनमें कौन-सा वह पुरुष है।

सुनत परीक्षित जन्म हर्ष चहुँ दिशि में छाये। नगर राज्य सर्वत्र विविध विधि बजत बधाये।।
वेद विज्ञ बहु विप्र युधिष्ठिर वेगि बुलाये। दिये दान बहु ग्राम अन्न धन रतन लुटाये।।
कहें विप्र- ये जगत में, विपुल अमल यश पायँगे। विष्णु वीर्य रक्षित नृपति, विष्णुरात कहलायंगे।

परीक्षित भगवत् प्राप्ति करनेवाला होगा। जीवन का एकमात्र फल भगवद्प्राप्ति ही है। भगवत् प्राप्ति हो जाय, तो क्षणभर का ही जीवन बहुत है। यदि भगवत् प्राप्ति न हो और एक अल्प की आयु हो तो भी निरर्थक है।

प्रेम के भावों से कन्हैया तोल देंगे हम.....

राजनीति संविधान में करूणा नहीं होती है। अश्वत्थामा ऊंच निवास, नीच करतूती। उसने बड़ा प्रयत्न किया परीक्षित को मारनेका, कुरुवंशको निरबीज करने का। लेकिन वह कर नहीं पाया। क्योंकि कहते है **जिसको राखें साईयां मार सके न कोई, बाल न बांका कर सकें जो जग बैरी होय**। पूरा जग भी बैरी हो जाय जिसको वह बताता है उसको मारता तो किसीके हाथमें नहीं है। अश्वत्थामा पकड़ लिया गया, अपमान करके निकाल दिया गया। कृष्णने परीक्षितकी रक्षा करी। परीक्षितने जन्म लिया।

अश्वत्थामा कुपित क्रोध करि सर छै छोड़े। आवत देखे चक्र सुदर्शन से हरि तोड़े।।
दुर्योधन दल दल्यो दुसह दारुण दु:ख दीनहें। करी उत्तरा अभय पांडु-सुत निर्भय कीन्हें।।
पल में जो जग कूँ रचें, करें निमिष में नाश है। दुष्ट दलन भक्तनि भरन, में तिन कवन प्रयास है।

जैसे शुक्लपक्षमें दिन-प्रतिदिन चन्द्रमा अपनी कलाओंसे पूर्ण होता हुआ बढ़ता है, वैसे ही वह राजकुमार भी अपने गुरुजनोंके लालन-पालनसे क्रमश: अनुदिन बढ़ता हुआ सयाना हो गया। परीक्षित सार्वभौम राजा था। बड़े-बड़े देवतालोग उनके चरणोंमें भेंट लाकर अर्पित करते।

९) कुन्तीकी प्रार्थना और कृष्णकी स्तुति

कृष्ण भगवान आये और द्वारिका लौट रहे थे युधिष्ठिरसे अनुमति चाहे। युधिष्ठिर से जब भी कृष्ण अनुमति लेने जाते तो युधिष्ठिर मोहवश उनको जाने ही नहीं देते थे अर्जुन भी नहीं चाहते थे, कुन्ती भी नहीं, सुभद्रा का तो वह भाई था। अब कृष्णने कहा यह तो मोह छोड़ेंगे नहीं। जाना तो अनिवार्य है। उन्होंने समझाया, बुझाया। युधिष्ठिरसे अनुमति ले ली। जानेके लिए खड़े है, कुन्ती आ गयी, द्रौपदी आ गयी है। सब-के-सब वहांपर उपस्थित है। कुंती बोली- कृष्ण तुम जा रहे हो। कृष्ण बोले- हां बुवा मैं जा रहा हूँ। जाना जरूरी है। कुंती बोली- कोई भाई के भतीजे नहीं हो, मेरे लिये तो तुम भगवान

हो। कृष्ण बोले- मैं भगवान नहीं हूँ। आप मुझे अगर भगवान ही मानती हो तो भगवान सही मुझसे मांग ले कुछ आज तक तुमने मुझसे कुछ मांगा नहीं, सुभद्रा से बोले तुम मांग लो। सुभद्रा बोली- अभिमन्यु की देखरेख करना। अभिमन्यु वहीं पला, कृष्ण उसके गुरु बने। युधिष्ठिर बोले- भगवान दर्शन देते रहो, आपका यह राज्यकाल संभालो। कुन्तीको पूछा- बुआ आप कुछ मांगिये। कुंती बोली- नहीं, मैं क्या मांगू। कृष्ण बोले- मैं आपको कुछ देना चाहता हूँ। कुंती कृष्णकी स्तुति करती है- **खूब जाना है कि अनजाना बने बैठे हैं। आप में आप छिपे पर्दा ढके बैठे हैं।।** हे भगवान तू जितना कष्ट देना चाहता है मुझे कष्ट दे, मुझे सुख नहीं चाहिए मुझे कष्ट दे। कृष्ण बोले- बुआ, क्या मांग रही हो तुम। कुंती बोली- कृष्ण, सुख में दु:ख कभी नहीं दिखता सुख में हम भूल जाते है मुझे जब दु:ख रहता तो हम तेरी याद करते है और तू आता भी दु:ख में ही है। जो हरि हृदय से जाए वह सुख किस काम का। जिसमें से हरि हृदय से निकल जाएं अरे बलि हारि वा दु:खकी जो पल-पल नाम जप आवें। इस दु:ख में पल-पल परमात्मा का जाप हो वह दु:ख ही सबसे श्रेष्ठ है वह सुख कोई काम का नहीं। मैंने तुझसे दु:ख मांगा। कुन्ती बोली, कृष्ण मुझे रोज रोज विपत्ति दो। जगद्गुरु गोविन्द। हम पर बराबर विपत्तियां आती रहें। क्योंकि परमपद स्वरूप तुम्हारे दर्शन उनमें बार-बार होते हैं। कृष्ण बोले- बुआजी। भला संसारमें कोई विपत्तिका, दु:खका भी वरदान माँगता है। कुन्ती बोली- गोविन्द, प्रत्येक विपत्तिमें तुम कोई-न-कोई शिक्षा देते हो।

सब लोग सुख चाहते हैं, दु:ख कोई नहीं चाहता। पर कुन्तीने कहां कि हमारे ऊपर रोज-रोज विपत्ति आवे, क्षण-क्षणपर विपत्ति आवे, पद-पदपर विपत्ति आवे, क्योंकि जब-जब विपत्ति आती है तब-तब उससे बचानेके लिए भगवान आकर दर्शन देते हैं। हम कुलके, ऐश्वर्यके और ऊँचे पद आदिके अभिमानमें आबद्ध हो जाते हैं। शास्त्रकारोंने कुलीनता, शासनका, विद्याका मद और रूप-स्वरूप और धनका मद बताया है। मनुष्यमें इन चारों चीजोंका मद आ जाता है, तब उसको भगवानका नाम नहीं भाता। इस मद के कारण उसे कभी शान्ति नहीं मिल सकती। उसीका नाम नशा है। लोग नशा करते हैं शान्तिके लिए, किन्तु उससे मिलती है अशान्ति। विष शरीरको नष्ट करता है और नशा बुद्धिको नष्ट करता है।

चले द्वारिकाधीश पृथा पुनि आगे आई। मातृ पुत्र कूँ पकरि प्रेम तें विनय सुनाई।।
प्रभो। पुत्र परिवार सहित सब भाँति उबारी। किन्तु यह है एक अन्त में भीख हमारी।।
विपति वारि वारिद मरे, बार बार बरसा करें। दर्शन देवें दया वश, छत्र छाँह करि भय हरें।।

हे प्रभो आप सामान्य पुरुष नहीं है। कौन आपकी बहिन, कौन बुआ? आप तो प्रकृति से परे अनादि, ईश्वर और अधोक्षज हैं। समस्त प्राणियों के भीतर बाहर समान रूप से स्थित हैं। किन्तु किसी को दिखाई नहीं देते। हाँ निर्मल चित्त वाले महामुनि परमहंस भक्ति-योग के द्वारा हृदय मन्दिर में आपका साक्षात्कार करते हैं। आप मायारूपी जवनिका से आच्छादित हैं। आपने घूंघट मारकर अपना चन्द्रमुख छिपा लिया है। उसे निर्मल, शुद्ध, माया मोह से रहित, भगवत भक्त ही देख सकते हैं। माया के पाश से आबद्ध, हमारी जैसी अज्ञ स्त्रियाँ भला आपके रहस्य को कैसे जान सकती हैं? आज मुझे अपने आन्तरिक भावों को प्रकट कर लेने दो। तुम वसुदेव देवकी के पुत्र वे कृष्ण नहीं हो, किन्तु सर्वत्र, सब में वास करनेवाले, इन्द्रियों से अतीत परब्रह्म हो। इतना सब होने पर भी आप नन्दनन्दन हो, गोपीजनवल्लभ हो, आपकी नाभिकमल से ही चतुरानन ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं। मैं तुम्हारी अहैतुकी कृपा के बोझ से बहुत अधिक बोझीली हो गई हूँ। अनेक अहैतुक उपकारों के भार ने मुझे आभारी बना दिया है। वैसी दया आपने मेरे ऊपर की है वैसी दया तो आपने अपनी सगी माता के ऊपर भी नहीं की। अपनी माता देवकी को तो आपने सीमित कारागार की सीमा से ही बाहर किया, किन्तु मुझे तो इस असीम संसार के बन्धन से सदा के लिये मुक्त कर दिया। हे ऋषिकेश। भाभी देवकी को तो आपने अकेले ही

उबारा, उसके पुत्र तो दुष्ट पापी कंस के द्वारा मारे ही गये, किन्तु मुझे तो आपने दुष्ट दुर्योधन के दारुण दु:खों से पाँचों पुत्रोंसहित उबारा है। हमारी सभी विपत्तियों में आप स्वयं आकर सम्मिलित हुए, हमारे छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े सभी कार्य अपने हाथों किये, क्या मुँह लेकर हम आपकी प्रशंसा करें? किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करें? एक उपकार हो तो उसका कथन भी किया जाय। हमारी तो पग-पग पर प्रभो। आपने रक्षा की। आपके उपकारों को गिनाऊँ? कहां तक आपके गुण गाऊं? कहाँ तक आपकी अहैतुकी कृपा का वर्णन करूँ? अब मेरी आपसे एक अन्तिम प्रार्थना है। मैं आपसे एक वरदान चाहती हूँ, यदि आप देने का वचन दें, तो मैं माँगू?

भगवन्। आपने जन्म ग्रहण क्यों किया? कोई कहते हैं यदुवंशकी कीर्तिके विस्तारके लिए, कोई कहते हैं देवकी-वसुदेवकी प्रार्थनासे, कोई कहते हैं पृथ्वीका भार उतारने के लिए और कोई कहते हैं कि अविद्या, कर्म और कामनासे उत्पन्न दु:खी लोगोंका दु:ख दूर करनेके लिए आपने अवतार ग्रहण किया। संसारके लोग दु:खी क्यों हो रहे हैं? इसीलिए हो रहे हैं कि वे सबको जानते हैं, पर अपने-आपको, अपने भीतर रहनेवालेको नहीं जानते और उसको न जाननेके कारण बाहरके अनित्य पदार्थोंकी प्राप्तिके लिए काम करते रहते हैं। फिर वे भीतर कैसे लौटें और सुखी कैसे हों, ऐसे ही लोगोंपर कृपा करके भगवान ऐसी-ऐसी लीलाएँ करते हैं कि लोग उनकी याद करके, उनको सुनकर भीतर लौट आयें और सुखी हो जायँ। आपको जहाँ भी वक्त मिले, आप भगवान्की लीलाकथा श्रवण करें। अपने विद्वत्ताके अभिमानको उसमें बाधक न बनने दें। भगवान् अभिमानके घेरेमें कभी नहीं आते। मनुष्य देश, काल और वस्तुके अभिमानमें फँस जाता है। आप इस अभिमानको छोड़नेपर देखोगे कि आप जो आत्मा है, वह सिवाय परमात्माके दूसरी कसी भी वस्तुसे मिलने योग्य नहीं है।

कृष्ण बोले- आप संकोच न करें, जो आप माँगेंगी मैं वही दूँगा। कुंती सिसकियां भरती हुई बोली- हे करुणासिन्धो। तुम्हारा ही तो सहारा है। तुम कृपा न करते, तो आज हम कहीं की भी न रहती। आपको जो करना था सब किया। हम पर सदा ही इसी प्रकार इससे भी अधिक विपत्तियाँ आती रहें। यह मेरा अन्तिम वरदान है। हे दयालु इस समय जाते-जाते मुझे यह वरदान देते जाओ। कृष्ण बोले- बुवाजी। आप उच्च-से उच्च कुल में जन्म की याचना करें, अतुल ऐश्वर्य का वरदान माँगें, समस्त संशयों का उच्छेदन करनेवाली विद्या माँगें, जो लक्ष्मी चञ्चला और चपला कहकर प्रसिद्ध है, वह आपके यहाँ सौम्या, स्थिर और अचला बनकर निवास करे- इसके लिये प्रार्थना करें, तब तो ठीक भी है, विपत्ति आप क्यों माँग रही हैं?

कुन्ती बोली- विपत्तियों ने ही तो हमें आपके दर्शन कराये, जिन दर्शनों को करने पर भी फिर कभी संसार के दर्शन नहीं होते। हम उन अनित्य, क्षणभंगुर, तुच्छ, नाशवान सुखों को लेकर क्या करेंगे जो हमें आपसे अलग कर दें। हम उन विपत्तियों का हृदय से स्वागत करते हैं, जो बार-बार आपके दर्शनों का अवसर देती हैं। हे दयासागर। विपत्तियों ने ही हमें आपकी शरण में जाना सिखाया है। आप ही एक मात्र दु:ख दूर कर्ता हैं, यह बात विपत्तियोंने ही तो हमें बताई है। उन्हें छोड़कर फिर हम सम्पत्ति की चाह क्यों करें? जो हमें आपसे मिलाती है, आपका कृपा पात्र बनाती है, वे विपत्ति ही हमारे लिये सम्पत्ति के समान हैं और जो सम्पत्ति आपसे दूर हटाती है वह हमारे लिये घोर विपत्ति है। अब रही सत्कुल में जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और लक्ष्मी की बात। सो प्रभो। ये तो मादक वस्तुएं हैं। इनके मद में मत्त हुआ प्राणी संसार में सभी का अपमान करता है। किसी को अपने समान नहीं समझता, सभी का तिरस्कार करता है। वह सबके सामने आपके सुमधुर नामों का निर्लज्ज होकर कीर्तन कैसे कर सकता है और बिना संकीर्तन के बिना, उच्च स्वर के पुकारे आप आते नहीं। अत: आपको भुलानेवाले धन, वैभव, विद्या आदि हमें नहीं चाहिये।

जिसे अपने धन का, गुणों का अभिमान है, उनके समीप आप जाते ही नहीं। आपको यदि ऐश्वर्य ही प्रिय होता, वैभव

से ही आप प्रसन्न होते, तो आप दुर्योधन की सुन्दर स्वादिष्ट सामग्रियों को छोड़कर विदुर के घर शाक खाने क्यों जाते? इससे पता चलता है आप अकिंचन प्रिय हैं, दीनों के नाथ हैं, निर्धनों के धन हैं, कंगालों की सम्पत्ति हैं। आपको ऐश्वर्य की, गुणों की सजी हुई सामग्रियों की क्या अपेक्षा होगी। आप तो स्वयं माया प्रपंच से रहित, अपने आप में ही रमण करनेवाले, शान्त स्वरूप तथा मोक्ष के भी स्वामी हैं। दुर्योधनादि दुष्टों ने आपको पकड़ना चाहा, किन्तु आप तो काल के भी काल हैं, नियम के भी नियन्ता हैं। आदि अन्त से रहित और सब में समान रूप से विचरण करनेवाले हैं। आपके लिये न कोई प्रिय है न अप्रिय है। आपकी दृष्टि में सभी एक से हैं। सभी पर समान कृपा दृष्टि रखते हैं। प्राणी अपनी दृष्टि के ही अनुसार आप में गुण दोषों का आरोप करते हैं। विषम दृष्टिवालों को आप विषम से प्रतीत होते हैं, समदृष्टिवालों को सम। आप प्रियता-अप्रियता से पृथक्, विषमता से रहित, निर्विकार, निर्लेप हैं। फिर भी लोग आप में शत्रुता, मित्रता का आरोप करते ही हैं। आप ऐसे-ऐसे कार्य करते हैं कि देखनेवाले आपको साधारण मनुष्य समझकर मोहित हो जाते हैं। वे समझ ही नहीं सकते कि आपकी इस क्रीड़ा का रहस्य क्या है?

वैसे तो अजन्मा होने पर भी आपने जलचर, नमचर, देव, ऋषि, मनुष्य, तिर्यक यहाँ तक की परम निन्दित शूकर योनि तक में अवतार धारण करके अद्भुत-अद्भुत क्रीड़ायें की, किन्तु इस कृष्णावतार में तो आपने सभी को माया मोहित कर दिया। अपने अतुल ऐश्वर्य को छिपाकर भक्तवत्सलता के पीछे आपने अपने महत्व को एकदम भुला ही दिया। आपकी माखनचोरी की हुई लीला मैं कभी नहीं भूल सकती। यशोदा हाथमें छड़ी लेकर रस्सीसे तुम्हें बांधने दौड़ी हे दामोदर तुमने कैसी लीला दिखाई।

कोई-कोई कहते हैं कि आप धर्म की संस्थापना करने के निमित्त, अधर्म को दूर करने के लिये, साधुओं को सुख देने के लिये और दैत्यों का नाश करने के लिये, सदा ही युग-युग में जैसे अवतार धारण करते हैं, वैसे ही यह भी अवतार लिया है। किन्हीं-किन्हीं का मत है कि यह वसुन्धरा दैत्यों के पाप से भारी होकर नौका के समान समुद्र में डूबना ही चाहती थी, उसीके उद्धार के निमित्त चतुर नाविक के समान प्रकट होकर उसे उबारने को अजन्मा होकर भी आप उत्पन्न हुए हैं। आपके अवतार का मुख्य कारण यह समझमें आता है कि एकमात्र अपने भक्तोंको सुखी करने के निमित्त उन्हें संसारी अविद्या, कामना और कर्म बन्धनें से बचाने के निमित्त ही आपकी यह लीला है।

वासुदेव आपकी चेष्टायें संसारी नहीं अलौकिक हैं। आपके चारू चरित्र कर्म नहीं, कर्मों के काटने का अस्त्र है। आपकी ललित लीलायें लोगों के अशुभों को दूर करनेवाली हैं। जो लोग आपकी लीला को बार-बार श्रद्धासहित श्रवण करते हैं, जो गुणी लोग ललित गीतों द्वारा तान मूर्छालय के सहित गुण गान करते हैं, जो सत्पुरुष स्तोत्रों द्वारा आपकी लीलाओं का, गुणों का, स्तवन करते हैं, जो आपके दिव्य कर्मों का स्मरण करते हैं, उन्हें आपके पादपद्मों के देव दुर्लभ दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता है, जिनके दर्शन करने से संसार का आवागमन छूट जाता है।

कृष्ण बोले- बुआजी, मैं सदा के लिये थोड़े ही यहां रह सकता हूँ। एक दिन तो मुझे जाना ही होगा। वियोग का दु:ख तो सहना ही पड़ेगा। मैं आता ही रहूँगा। जब भी आप मुझे स्मरण करेंगी, तत्क्षण मैं उपस्थित हो जाऊंगा। कुंती बोली- हाय, वासुदेव। आप क्या सचमुच हमें छोड़ जायेंगे। हे भक्तवत्सल हमारा आपके सिवाय और सहारा कौन है। हमारे तो संबंधी, भक्तवत्सल सुहृद, स्वामी, सर्वस्व आप ही है। एक मात्र आपके चरणकमलोंका भरोसा है। इस पृथ्वी की एकमात्र शोभा विलक्षण-लक्षणों से युक्त आपके चरणारविन्द ही हैं। जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि की शोभा नहीं, जल के बिना नदी की शोभा नहीं, कमलों के बिना सर की शोभा नहीं, पंखों के बिना पक्षियों की शोभा नहीं, सिन्दूर के बिना सुहागिनी की शोभा

नहीं, उसी प्रकार आपके चरणों के बिना इस हरी-भरी सुपक्व औषधि, लता वृक्षों से सम्पन्न, सब प्रकार के समृद्धि युक्त, वन, पर्वत, नदी और समुद्र सहित पृथ्वी की शोभा नहीं, इन सबकी अभिवृद्धि आपकी दया दृष्टि से ही हो रही है। आप हमें छोड़कर जायँ नहीं। आपके बिना हमारे प्राणों की रक्षा कौन करेगा?

आप समस्त जीवोंके बाहर और भीतर एकरस स्थित हैं। इन्द्रियों और वृत्तियोंसे अनुभव नहीं किये जाते। आप प्रकृतिसे परे आदिपुरुष परमेश्वर हैं। अपनी मायासे अपने आपको आवरण करके रखते हैं। मैं आपको नहीं जान सकी। आप शुद्ध हृदयवाले विचारशील जीवन्मुक्त परमहंसोंके हृदयमें अपनी प्रेममयी भक्तिका संचार करनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। आप श्रीकृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्द के सुत लाड़लने लाल गोविन्दको मेरा बारंबार प्रणाम। जिनकी नाभिसे ब्रह्माका जन्मस्थान कमल प्रकट हुआ, जिनके नेत्र कमलके समान विशाल ऐसे कृष्णको मेरा बारंबार नमस्कार। आपने अपनी शोकग्रस्थ माता देवकीकी रक्षा की वैसे ही मेरे पुत्रोंकी भी आपने बारबार रक्षा की। आप सर्वशक्तिमान चराचर के स्वामी हैं। मेरे पुत्रोंकी विषसे, लाक्षागृहकी भयानक आगसे, हिडिम्बासुर से, द्यूत- सभामें व महाभारत युद्ध में, अभी-अभी अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे आपने हमारी रक्षा की। हे जगत्गुरु हमारे जीवन में सदा पथ-पथ पर विपत्तियाँ आती रहें, क्योंकि विपत्तियोंमे ही आप दर्शन देते हैं और आपके दर्शन हो जानेपर फिर इस जन्म-मृत्युके चक्कर में नहीं आना पड़ता। आपको पानेके लिये ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्तिकी आवश्यकता नहीं। आप तो उन्हींको दर्शन देते हैं जो अकिंचन है। आप निर्जनों के परम धन हैं। शान्तस्वरूप, मायाके विकारोंसे रहित कैवल्य मोक्षके अधिपति आपको मेरा बार-बार नमस्कार। आप अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सबके नियंन्ता, कालस्वरूप परमेश्वर हैं। आप प्रिय और अप्रिय में सम हैं। आप विश्वके आत्मा हैं, आप विश्वरूप हैं। आप अजन्मा हैं और आपके लिये कोई कर्म भी श्रेष्ठ नहीं। आप सभी योनियों के अनुरूप दिव्य कर्म करते हैं। यह आपकी लीला ही है। राजा यदुकी कीर्तिका विचार करनेके लिये ही आपने उनके वंशमें अवतार लिया। कही महानुभाव कहते है सुतपा और पृश्निके वरदान के रूपमें वसुदेव और देवकी आपके माता-पिता हुए। पृथ्वीको जलसे ऊबारा। सभी भक्त आपके चरित्र का श्रवण, मनन, गान, कीर्तन करते हैं। आपके दर्शन बिना यदुवंशी और हमारे वंश के पाण्डव उनका कोई अस्तित्व नहीं है। ये वन, पर्वत, नदी और समुद्र भी आपके दर्शन से ही वृद्धिको प्राप्त हो रहे हैं। आपकी शक्ति अनन्त है। हे गोविन्द, आपका यह अवतार गौ, ब्राह्मण और देवताओंका दु:ख मिटानेके लिये हुआ है। आप विश्वगुरु हैं, आपको नमस्कार।

मेरे चित्त की वृत्तियां आपके चरणों की ही ओर लगी रहें। सब ओर से हटकर मेरा मन आपकी ही ओर दौड़ता रहे। आपको छोड़कर मुझे किसी दूसरे की चिन्ता न हो।

विपद: सन्तु न: शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो। भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

सुख के माथे सिल पड़े जो हरि हृदय से जाय। बलिहारी वा दु:ख की जो पल पल नाम जपाय॥

विपत्ति को विपत्ति नहीं कहते, सम्पत्ति को सम्पत्ति भी नहीं कहते। गोविन्द को भूल जाना ही सबसे बड़ी विपत्ति और कन्हैया की याद बनी रहना ही सबसे बड़ी सम्पत्ति है।

जैसा वरदान कुंती कृष्णसे मांगती है वैसा वरदान सृष्टिमें कभी किसीने मांगा ही नही। उन्होंने कहा- हे प्रभो, हमारे जीवन में बार-बार विपत्ति आती रहे, क्योंकि उस विपत्तिमें आपके दर्शन होते हैं। पाण्डवोंको वनवास हो गया तो आप वहां आये, द्रौपदीको नग्न करने लगे तो आप वहां आये, भीमको विष दे दिया तो आप वहां आये, लाक्षागृहमें जला दिया तो आप वहां आये। इस प्रकार जब-जब हमारे ऊपर विपत्ति आती है, तब-तब आप हमारी रक्षा करनेके लिए आ जाते हैं और वह

विपत्ति हमारे लिए सम्पत्ति एवं सुखका साधन बन जाती है।

कृष्णने कहा- बुआ, ठीक है मैं तुझे यह आश्वासन देता हूँ कि तुम मुझे जब भी याद करेगी मैं तेरे याद करनेपर आ जाऊंगा। कुंती की स्तुति सुनकर भगवान बादमें द्वारिका चले गये। यह भजन, कीर्तन स्तुति क्या है? हम भगवान की प्रार्थना करते है क्या करते है? आप किसी भजन, कीर्तन, प्रार्थना, सत्संग को देखिये हम उसमें उस भजन, कीर्तन, प्रार्थना के उसके स्वरूपका वर्णन करते है कि आप मुकुट ऐसे लगाएं हो, वैजयन्ती माला ऐसे पहने हो, आपका यह तिलक है, आपकी यह आंखे है। यह स्तुतियां उसके स्वरूप का वर्णन करते है। दूसरे तिहाई में आप यह कहते हो कि आपने यह लीला करी है, आपमें यह सामर्थ्य है, उसके इतिहास का, उसके गुणगानोंका वर्णन करते है। तीसरे तिहाई में उपसंहार करते है कि आपमें यह करने की क्षमता है और मुझे यह वर दें यह मेरी आकांक्षा है, मुझे बुद्धि दे, संपन्नता दे, ऐश्वर्य दे इस तरह से प्रार्थना है। यहां जगह-जगह कभी भीष्म, कभी कुन्ती की स्तुतियां आयेगी। कुंतीने दु:खोंकी मांग की है भगवान कृष्ण की स्तुति की।

हे विश्वम्भर। विभो। आप हैं सबके स्वामी। अच्युत अलख अनन्त अगोचर अन्तर्यामी।।
सुरसरि को शुभ सलिल, सदा सागर में जावे। मेरो चंचल चित्त चरन तल तव त्यों धावे।।
बुआ की बिनती सुनी, प्रेम सहित प्रभु हँसि गये। माया मोहित मन भये, वासुदेव मन बसि गये।।

१०) भीष्म द्वारा कृष्ण की स्तुति और उनका परलोक प्रयाण

युधिष्ठिरने जाते-जाते कृष्णको फिर रोक लिया। महाभारत का युद्ध लड़ा गया। बहुत ही क्षत्रियोंका, वीरोंका संहार हो गया। युधिष्ठिर उस शोकसे दु:खी थे। हमने क्या कर दिया। महाभारत का युद्ध किसलिए लड़ा गया। अर्जित क्या हुआ? इतना नरसंहार। किसके लिए, इस क्षुद्र राज्यके लिए। युधिष्ठिरको अपने भाई-बन्धुओंके मारे जानेका बड़ा शोक हो रहा था और विचार करने लगे मैंने बालक, ब्राह्मण, सम्बन्धी, मित्र, चाचा-ताऊ, भाई-बन्धु और गुरुजनोंसे द्रोह किया। कुल में बड़े होनेसे युधिष्ठिर सबका श्राद्ध, तर्पण आदि पारलौकिक कर्म करने चले। मंगल कार्यों में स्त्रियां पीछे-पीछे गाती हुई चलती हैं और मृतक कार्यों में वे रोती-रोती आगे चला करती हैं। युधिष्ठिर सोचने लगे हमने राज्य के लिये कैसा पाप किया। इन स्त्रियों की अन्तरात्मा तो हमें शाप दे रही होगी, कैसे हमारा कल्याण होगा? यह सोचते-सोचते धर्मराम फूट-फूटकर रोने लगे। कृष्णने बहुत समझाया यह क्षत्रिय का धर्म है यह होना ही था इसमें आपका कोई ऐसा नहीं है, आपकी वजह से हुआ ऐसा कुछ नहीं है। लेकिन युधिष्ठिर को किसी तरह की सांत्वना नहीं मिली, मन संतोष नहीं हुआ। कृष्ण बोले मेरे समझानेसे नहीं समझेगा क्योंकि एक तो उम्र में मैं युधिष्ठिरसे छोटा हूं मेरी बात का असर नहीं करेगा।

जब एक सूतजी जो अधम जाति, शूद्र जातिके जिन्होंने पूरी भागवत की कथा करी है और ८८ हजार शौनकादि ऋषियोंको सुनाई है। तो यह कहाँ तक अनुचित है। शुकदेवजी के पास ज्ञान का भंडार है। ब्राह्मण की क्या व्याख्या है? वो ब्रह्म जिसको ब्रह्मका ज्ञान हो, ब्रह्मकी व्याख्या करें, ब्रह्मके बारेमें जानकारी हो वह ब्राह्मण से कहीं ज्यादा श्रेष्ठ है उस चण्डाल से, वह चण्डाल श्रेष्ठ है उस ब्राह्मण से जो अपने आचरण से गिरा हुआ। युधिष्ठिरके समझमें नहीं आ रही कृष्णके कहने से।

मनुष्य के गुण उसके मरने के पश्चात् याद आते हैं। शरीर का अन्त होने के साथ सज्जनों के बैर का भी अन्त हो जाता है।

हूँ पापी अति अधम मोहिं नर नारि न निरखें। पत्नी पति तें पृथक् करीं, विधवा बनि बिलखें।।
सबके सुत पितु मातु करुण क्रन्दन करि कोसें। पांडव पायी परम बन्धु वधि निज तनु पोसें।।
कृष्ण। कहो कैसे करू, रक्त सुरज्जित राज कूँ। कौन करे सुख स्वजन बधि, ऐसे कुत्सित काज कूँ।।

कृष्ण समझ गये इसको अगर उपदेश कराना है तो भीष्म पितामह के पास ही ले चलें। भीष्म पितामह कुरुक्षेत्र में

शरशय्या पर बाणोंपर सोए हुए है अपने आखिरी समय में कृष्ण का चिन्तन कर रहे है।

मैं हूँ शरण में तेरी, संसार के रचैया। किश्ती मेरी लगा दो, उस पार हे कन्हैया।।
मेरी अरदास सुन लीजै, प्रभु सुध आन कर लीजै। दर्श इक बार तो दीजै, मैं समझूँगा श्याम रीझै।।
पतवार थाम लो तुम, मझधार में है नैया। मैं हूँ शरण में तेरी...
तेरी यादों का मन मोहन, दिल में उमड़ा है सावन। बुझेगी प्यास इस दिल की, सुनूँगा जब तेरा आवन।।
पावन पतित को करना, जगदीश हे कन्हैया। मैं हूं शरण में तेरी...

उनको इच्छामृत्यु वरदान है, वह जब चाहे शरीर छोड़ सकते है, छोड़ नहीं रहे है दक्षिणायन चल रहा है। उत्तरायण जब सूर्य मकर रेखा से कर्करेखा में जाता है उसको उत्तरायण कहते है। उत्तरोत्तर ऊपर उठना ही उत्तरायण है। भीष्म का जीवन उत्तरोत्तर उज्ज्वल, उज्ज्वलतर बीता। भीष्म पितामह ने १५ जनवरी को अपने शरीर का त्याग किया है।

अर्जुन सखादि संग में श्रीकृष्ण आये, मधुर मोहनि देखि मूरत सुहाये।
पड़े भीष्म बाणों की शय्या पे गाढ़े, गोविन्द दामोदर माधवेति।।

पूरे पांडवों को, युधिष्ठिर को, द्रौपदी को सबको लेकर कृष्ण भीष्म पितामह के पास जाते हैं। भीष्म पितामह को मिलने वहां सभी तरह के ऋषि-मुनि, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, वेदव्यास वहां पधार जाते हैं। युधिष्ठिर को लेकर कृष्ण जाते हैं और कृष्ण कहते हैं महाराज युधिष्ठिर आये है और आपका दर्शन करना चाहते है। भीष्म पितामह बोले- हे कृष्ण, महाराज युधिष्ठिर मेरा दर्शन करना चाहते हैं, कौरव वंश का सिंहासन अब इनका है। कृष्ण बोले- महाराज युधिष्ठिर को ग्लानि हो रही है महाभारत के युद्ध की और आप ही धर्म की व्याख्या करके आप इनके शोकका हरण कर सकते है। जिसका चरित्र पावन होता है वही विद्वान है। मृत्यु के पहले भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को तत्त्वज्ञान समझाया। मनुष्य के हृदय में जन्मजन्मान्तर से गढ़े शोक और मोह के राज्य को निकालने में तत्त्वज्ञान ही समर्थ है, दु:ख मिटाने की औषधि है।

भीष्म पितामह हाथ जोड़कर कहते हैं- हे नटवर, यह तुम्हारी लीला है। तुम जब इतने सक्षम हो, धर्मकी व्याख्या करने में, युधिष्ठिर का शोक दूर करने, मैं क्या शोक दूर करूंगा यह तो आप बड़प्पन मुझको देते है। बोले- नहीं पितामह इनका शोक दूर करना अनिवार्य है अभी तक युधिष्ठिर विचलित है। आप इनको धर्मका उपदेश दें। भीष्म पितामह से युधिष्ठिरको धर्म का उपदेश कराया। वो धर्म क्या है? कौनसा धर्म? धर्म किसको कहते है? धर्म जो धारण किया जाएं, जो मनुष्य वृत्तियों का संचालन करने के लिए किया जाए वह धर्म।

धर्म-नीति कहि भाँति-भाँति सबने समुझाई। किन्तु काहुकी बात धर्म-सुत मन नहिं भाई।।
कृष्ण कहे- श्रीभीष्म, हमारे अति ही प्यारे। भक्ति भाव सुनि सभी दरसकूँ शीघ्र सिधारे।।
शोभित भीषम शर विंधे, अवनि उतरि जिमि रवि गिरे। पांडव, पुरजन, प्रभु सहित, सबने पद बन्दन करे।।

कुरुक्षेत्र में पाण्डवों ने पितामह भीष्म के समीप जाकर उन्हें शरशैया पर शयन करते हुए देखा। उस समय वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानो कोई स्वर्ग से देवता पृथ्वी पर गिर पड़ा हो। पाण्डवों ने अपने अनुयायियों सहित उन्हें प्रणाम किया और चक्रपाणि वासुदेव ने भी उनकी वन्दना की।

यह धर्म की व्याख्या युधिष्ठिर के पास करवाई। भीष्म पितामह के पास कराई। धर्म किसको कहते है, राज्यधर्म क्या है? क्षत्रिय धर्म क्या है? गृहस्थाश्रम क्या है? इस तरह की धर्म की व्याख्या करायी और युधिष्ठिर को कहा आप इसी तरह से आगेका राज्य सम्भालों शोक करने की कोई आवश्यकता नहीं। यह जो तुमने पालन किया वह क्षत्रिय धर्म था।

ऋषियों की आज्ञा शिरोधार्य करके धर्मराज ने शरशैया पर शयन करते हुए गंगासुत भीष्म पितामह से वर्ण और आश्रमों के धर्म, सभी पुरुषों के स्वाभाविक धर्म, वैराग्य प्रधान निवृत्ति मार्ग, कर्म प्रधान प्रवृत्ति मार्ग, दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्री-धर्म और भगवद् धर्म, इन सभी बातों को पृथक-पृथक संक्षेप और विस्तार के साथ पूछा। भीष्म ने भी भगवान की प्रेरणा से समस्त प्रश्नों का बड़ी ही सुन्दरता और सरलता के साथ किसी को संक्षेप में कहकर, किसी का विस्तार के साथ उत्तर दिया। उन्होंने सब को साधनों सहित और धर्म, अर्थ, काम तथामोक्ष सम्बन्धी अनेक इतिहास सुनाकर दृष्टान्त देकर सभी विषयों को भली भाँति समझाया। सभी शंकाओं का शास्त्रीय युक्तियों द्वारा समाधान किया।

जैसे राजनीति में साम, दाम, दण्ड, भेद आदि के वर्णन, काम्य कर्मों का वर्णन, स्त्रियों का स्वभाव, उनकी बड़ी-बड़ी विलक्षण बातें, उनके कर्त्तव्याकर्त्तव्य आदि-आदि बातों का विस्तार है।

भीष्म बोले- युधिष्ठिर, ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान हैं। ये सबके आदिकारण और परम पुरुष नारायण हैं। अपनी मायासे लोगोंको मोहित करते हुए ये यदुवंशियोंमें छिपकर लीला कर रहे हैं। इनका प्रभाव अत्यन्त गूढ़ एवं रहस्यमय है। युधिष्ठिर। उसे भगवान शंकर, देवर्षि नारद और स्वयं भगवान कपिल ही जानते हैं। जिन्हें तुम अपना ममेरा भाई, प्रिय मित्र और सबसे बड़ा हितू मानते हो तथा जिन्हें तुमने प्रेमवश अपना मन्त्री, दूत और सारथीतक बनानेमें संकोच नहीं किया है, वे स्वयं परमात्मा हैं। इन सर्वात्मा, समदर्शी, अद्वितीय, अहमाररहित और निष्पाप परमात्मामें उन ऊँचे-नीचे कार्योंके कारण कभी किसी प्रकारकी विषमता नहीं होती। युधिष्ठिर। इस प्रकार सर्वत्र सम होनेपर भी, देखो तो सही, वे अपने अनन्यप्रेमी भक्तोंपर कितनी कृपा करते हैं। यही कारण है कि ऐसे समयमें जबकि मैं अपने प्राणोंका त्याग करने जा रहा हूँ, इन भगवान श्रीकृष्णने मुझे साक्षात् दर्शन दिया है। भगवत्परायण योगी पुरुष भक्तिभावसे इनमें अपना मन लगाकर और वाणीसे इनके नामका कीर्तन करते हुए शरीरका त्याग करते हैं और कामनाओंसे तथा कर्मके बन्धनसे छूट जाते हैं। कृष्ण का द्रौपदी के प्रति बड़ा प्यार है। द्रौपदी इनकी प्राण हैं। राधा का अवतार है। युधिष्ठिर को औचित्य बताया महाभारत तो होना ही था नहीं तो पृथ्वी का भार नहीं उतरता।

सारद को गान, वीर अर्जुन को बाण, और वीणा की तान, मुनि नारद को शोर है
भीम पहलवान ज्ञान ज्ञानी शुकदेवजी को गोपिन के प्रेम की प्रशंसा बड़ी जोर है।
भक्ति प्रल्हाद ध्रुव जैसे को शक्तिशाली में बजरंगी शिरमौर है,
लेकिन पाये प्रशंसा सब एक की बदौलत, करो कोई लाख करिया कोउ ओर है।।

भीष्म पितामह कहते हैं मुझे श्रीकृष्णसे बात करने दो। अब मैंने जो तुमको उपदेश देना था जिस समय उपदेश किया उस समय एक बात कहीं जिस समय कभी कोई अन्याय होता हो उस अन्याय को या तो देखना मत हो सके तो मुकाबला करना और नहीं हो तो वह सभा छोड़कर चले जाना। द्रौपदी उस सभामें बैठी थी। यह सत्य है कि भीष्म पितामह के यहाँ कोई जा नहीं सकता, किन्तु साधु, ब्राह्मण, कन्या, सती, स्त्री और दीन-दु:खी जब चाहें पितामह का दर्शन कर सकते हैं। इन सबके लिये उनका द्वार सदा खुला रहता है। उस उपदेशमें द्रौपदी हंस दी। भीष्म पितामह बोले- हे कुलवधू। आज आप जिस तरह से हंस रही है वो हंसी एक कुलवधू की हंसी नहीं है क्या बात है? द्रौपदी बोली- नहीं पितामह कोई ऐसी बात नहीं है। पितामह बोले- फिर भी तेरी हंसीमें कुछ व्यंग है। तुम शायद संकोचवश कुछ कह नहीं पा रही है। तुझे बताना होगा, नहीं सत्य छिप जायेगा अगर कोई ऐसी बात है तो। द्रौपदी बोली- जिस दिन मेरा चीरहरण हो रहा था तब

दुर्योधन, दु:शासन, जिस कर्णने कहा था कि इस वेश्या को मेरी इस जांघ पर बिठाओ अपना अपमान का बदला लेने द्रौपदीने कहा था कि मैं सूतपुत्र से शादी नहीं करूंगी। और मैं रजस्वला थी, दु:शासन मेरे चीर को खींच रहा था। आप भी उस सभा में उपस्थित थे, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य सभी मौजूद थे आपने किसीने भी एक शब्द भी वहां नहीं कहा। आप चाहते तो दुर्योधन, दु:शासन को रोक सकते थे बस इतनी बात थी कि अन्याय होते आपने जो अभी-अभी कहां पर आप कुछ नहीं कर पाएं। उपदेश देना बहुत सरल है, उपदेश का पालन करना बहुत कठिन है। भीष्म पितामह रोने लग गएं। बोले- पुत्री तुमने मेरी आंखे खोली। यह बात सच है कि जो अन्याय हो रहा था मैं उस दिन कुछ नहीं कर पाया क्योंकि मैंने दुर्योधन का वह दूषित अन्न खाया था, मैं उसके प्रभाव में था, कुछ बोल न सका, मैं न्याय कर न सका लेकिन वो अन्याय था।

कृष्णाते यों कहे कृष्ण- कछु बात सुनी है। पाण्डव मारूँ काल्हि प्रतिज्ञा भीष्म करी है।।
कहे द्रौपदी दुखित- दयालो। दया दिखाओ। पावकमें जरि मरूँ नाहिं पति पाँच बचाओ।।
रची चिता फेरीनि मिस, भीष्म द्वारपै ले गये। गंगा सुत आसिस दई, तब पाण्डव निर्भय भये।।

कृष्णने भीष्म के लिए अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी।

कोई कहत है वसुदेव देवकी को लाल और कोई कहें नन्द औरयशोदा को कुमार।
तो जाके एक बाप सोई बचावै निज लाज, मेरी कौन लाज मेरे पिता तो हजार हैं।।

जब होड़ लगी मेरे भक्तन से तब मेरी वहां कुछ भी न चले,
मुझमें और मेरे भक्तन में, मुझसे मेरे भक्त प्रबल निकलें।
यह प्रेम का पंथ निराला है, इस पथ पर जो कोई चल निकले
यह भक्ति का मार्ग अनोखा है, इस मार्ग पे जो कोई चल निकले।
मेरी मर्यादा टले तो टले मेरे भक्त का मान कभी न टले।।

प्रबल प्रेम के पाले पड़कर, प्रभु को नियम बदलते देखा।
अपना मान भले टल जाये, भक्त का मान न टलते देखा।।
जिनकी केवल कृपा दृष्टि से सकल सृष्टि को पलते देखा।
उनको गोकुल के गोरस पर सौ सौ बार मचलते देखा।।

जिन्हें सारथी सुहृद सखा सेवक तुम मानों। उन्हें सगुण साकार सर्व स्वामी करि जानों।।
कैसे-कैसे कठिन काज सब करे तुम्हारे। भाववश्य भगवान् भक्त भय हरिवे वारे।।
कमठ अण्ड सेवै सदा, भाव रखें त्यों दास में। दर्शन दैवे दयानिधि, आए सेवक पास में।

भीष्मपितामह इस प्रकार धर्मका प्रवचन कर ही रहे थे कि वह उत्तरायणका समय आ पहुँचा, जिसे मृत्युको अपने अधीन रखनेवाले भगवत्परायण योगीलोग चाहा करते हैं। उस समय भीष्मपितामहने वाणीका संयम करके मनको सब ओरसे हटाकर अपने सामने स्थित आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया। भगवान श्रीकृष्णके सुन्दर चतुर्भुज विग्रहपर उस समय पीताम्बर फहरा रहा था। भीष्मजीकी आँखें उसीपर एकटक लग गयीं। उनको शस्त्रोंकी चोटसे जो पीड़ा हो रही थी, वह तो भगवान्के दर्शनमात्रसे ही तुरन्त दूर हो गयी तथा भगवान्की विशुद्ध धारणासे उनके जो कुछ अशुभ शेष थे, वे सभी नष्ट हो गये। अब शरीर छोड़नेके समय उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियोंके वृत्ति-विलासको रोक दिया और बड़े प्रेमसे

भगवानकी स्तुति की।

देहान्तकाले तुम सामने हो, मुरली बजाते मन को लुभाते।
यह गीत गाकर तन नाथ त्यागूं, गोविन्द दामोदर माधवेति।।
लग के चित्त मन से बैठो, तुम इस दौर से। कि तेरा पर्दा रहे मुझ को दीदार होवे।।

अब बोले युधिष्ठिर थोड़ी देर एकान्त दो मुझे। कृष्णको हाथ जोड़कर स्तुति करते है बोले- हे कृष्ण मेरी एक विनती है मेरी बेटी मैं आपको देना चाहता हूँ, समर्पित करना चाहता हूँ। कृष्ण बोले बेटी। आप ब्रह्मचारी हो आपको बेटी कहांसे हो गयी है। बोले- हे ब्रह्म मेरी बेटी यह मेरी बुद्धि आपमें समर्पित हो, मेरी गति हो। मेरा जो पूर्वजन्म का जो इतिहास है वो मैं आज समाप्त करके मृत्यु चाहता हूँ। इच्छामृत्यु मुझे मिली हुई है आपके दर्शन हो गये है। आपने कहा था कि मृत्युके समय आप मुझे दर्शन देंगे।

अब मृत्युके समय मैं अपनी यह बुद्धि, जो अनेक प्रकारके साधनोंका अनुष्ठान करनेसे अत्यन्त शुद्ध एवं कामनारहित हो गयी है, यदुवंशशिरोमणि अनन्त भगवान श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित करता हूँ, जो सदा-सर्वदा अपने आनन्दमय स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही कभी विहार करनेकी- लीला करनेकी इच्छासे प्रकृतिको स्वीकार कर लेते हैं, जिससे यह सृष्टि परम्परा चलती है। जिनका शरीर त्रिभुवन-सुन्दर एवं श्याम तमालके समान साँवला है, जिसपर सूर्य-रश्मियोंके समान श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता रहता है और कमल-सदृश मुखपर घुंघराली अलकें लटकती रहती हैं, उन अर्जुन-सखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्कपट प्रीति हो। मुझे युद्धके समयकी उनकी वह विलक्षण छवि याद आती है। उनके मुखपर लहराते हुए घुँघराले बाल घोड़ोंकी टापकी धूलसे मटमैले हो गये थे और पसीनेकी छोटी-छोटी बूँदें शोभायमान हो रही थीं। मै अपने तीखे बाणोंसे उनकी त्वचाको बींध रहा था। उन सुन्दर कवचमण्डित भगवान श्रीकृष्णके प्रति मेरा शरीर, अन्त:करण और आत्मा समर्पित्त हो जायँ। अपने मित्र अर्जुनकी बात सुनकर, जो तुरंत ही पाण्डव-सेना और कौरव-सेनाके बीचमें अपना रथ ले आये और वहां स्थित होकर जिन्होंने अपनी दृष्टिसे ही शत्रुपक्षके सैनिकोंकी आयु छीन ली, उन पार्थसखा भगवान् श्रीकृष्णमें मेरी परम प्रीति हो। अर्जुनने जब दूरसे कौरवोंकी सेनाके मुखिया हमलोगोंको देखा, तब पाप समझकर वह अपने स्वजनोंके वधसे विमुख हो गया। उस समय जिन्होंने गीताके रूपमें आत्मविद्याका उपदेश करके उसके सामयिक अज्ञानका नाश कर दिया, उन परमपुरुष भगवान श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरी प्रीति बनी रहे। मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं श्रीकृष्णको शस्त्र ग्रहण कराकर छोडूँगा; उसे सत्य एवं ऊँची करनेके लिये उन्होंने अपनी शस्त्र ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा तोड़ दी। उस समय वे रथसे नीचे कूद पड़े और सिंह जैसे हाथीको मारनेके लिये उसपर टूट पड़ता है, वैसे ही रथका पहिया लेकर मुझपर झपट पड़े। उस समय वे इतने वेगसे दौड़े कि उनके कंधेका दुपट्टा गिर गया और पृथ्वी कांपने लगी। मुझ आततायीने तीखे बाण मार-मारकर उनके शरीरका कवच तोड़ डाला था, जिससे सारा शरीर लहूलुहान हो रहा था, अर्जुनके रोकनेपर भी वे बलपूर्वक मुझे मारनेके लिये मेरी ओर दौड़े आ रहे थे। वे ही भगवान श्रीकृष्ण, जो ऐसा करते हुए भी मेरे प्रति अनुग्रह और भक्तवत्सलतासे परिपूर्ण थे, मेरी एकमात्र गति हों- आश्रय हों। अर्जुनके रथकी रक्षामें सावधान जिन श्रीकृष्णके बायें हाथमें घोड़ोंकी रास थी और दाहिने हाथमें चाबुक, इन दोनोंकी शोभासे उस समय जिनकी अपूर्व छवि बन गयी थी, तथा महाभारत युद्धमें मरनेवाले वीर जिनकी इस छविका दर्शन करते रहनेके कारण सारूप्य मोक्षको प्राप्त हो गये, उन्हीं पार्थसारथी भगवान श्रीकृष्णमें मुझ मरणासन्नकी परम प्रीति हो। जिनकी लटकीली सुन्दर चाल, हाव-भावयुक्त

चेष्टाएं, मधुर मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे अत्यन्त सम्मानित गोपियाँ रासलीलामें उनके अन्तर्धान हो जानेपर प्रेमोन्मादसे मतवाली होकर जिनकी लीलाओंका अनुकरण करके तन्मय हो गयी थीं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णमें मेरा परम प्रेम हो। जिस समय युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ हो रहा था, मुनियों और बड़े-बड़े राजाओंसे भरी हुई सभामें सबसे पहले सबकी ओरसे इन्हीं सबके दर्शनीय भगवान् श्रीकृष्णकी मेरी आँखोंके सामने पूजा हुई थी; वे ही सबके आत्मा प्रभु आज इस मृत्युके समय मेरे सामने खड़े हैं। जैसे एक ही सूर्य अनेक आँखोंसे अनेक रूपोंमें दीखते हैं, वैसे ही अजन्मा भगवान श्रीकृष्ण अपने ही द्वारा रखित अनेक शरीरधारियोंके हृदयमें अनेक रूप-से जान पड़ते हैं, वास्तवमें तो वे एक और सबके हृदयमें विराजमान हैं ही। उन्हीं इन भगवान् श्रीकृष्णको मैं भेद-भ्रमसे रहित होकर प्राप्त हो गया हूँ।

भये अशुभ सब छीन शुद्ध मनमोहन धारे। शस्त्र शूल सब शान्त भयो प्रभु निकट निहारे।।
इन्द्रिय वृत्ति विलास रुकीं हरि हिय में आये। गद्गद् गिरा गँभीर गीत गोविन्द के गाये।।
मति हो मेरी कृष्ण में, गति हो गोवरधन धरन। चञ्चल चित्त चितवें चरन, रटि रसना राधा रमन।।

भीष्म बोले- हे वासुदेव। मै। इस शरीरका परित्याग कर रहा हूँ। मेरी दृष्टि तुम्हें छोड़कर कहीं अन्यत्र न जाय और दूसरे स्थान में उसके चिन्तन के लिये आपकी ललित लीलाओं से बढ़कर लावण्ययुक्त कौन सा विमल और अत्यन्त लुभावना विषय होगा। आप मेरे सम्मुख है। मेरे नेत्र आपकी माधुरी का पान कर रहे हैं, वाणी आपके गुणानुवाद के गान में लगी है। चित्त में आपकी माधुरी मूरत बसी है, मन आपके ध्यान में मग्न है। अब मैंने सब कुछ पा लिया। अपने मनुष्य जीवन को सफल बना लिया। अब मुझे अपने में लीन कर लीजिये और अन्तमें भीष्म पितामहने प्राण त्याग दिये। बारह जो भागवत हैं उनमें एक नाम भीष्म पितामह का आता है।

हे अनाथ के नाथ। ज्ञान गीता के दाता। हे अर्जुन के सखा। सारथी, दुख के त्राता।।
हे बूढ़े की कठिन प्रतिज्ञा पूरन कर्ता। हे ब्रज बल्लभ। अखिल विश्व के हर्ता भर्ता।।
हरि हिय में धारनर करै, करत विनय विह्वल भये। कृष्ण कृपालो। कृपानिधि, कहत भीष्म सुर पुर गये।।

भगवान से भीष्म पितामह ने क्या कहा था- **इतना तो करना स्वामी जब प्राण तनसे निकले।**

इस गीत के माध्यम से आपने देखा होगा इसका अर्थ देखो जीव की कितनी क्षणभंगुरता है।

चल उड़ जा रे पंछी कि अब ये देस हुआ बेगाना।

जीव किस कर्म के लिये आता है? जीव क्या करता है? इसप्रकार भीष्म पितामह की जीवन लीला समाप्त होती है। भीष्म पितामह ने बड़े सुन्दर स्तुति उस सांवरे की करी है और अपने शरीर का त्याग किया है।

स्वर्गां से आयो टेलीफोन, आयो बुलावो राम को

चल रे हंसा अमर लोक को, यहां कोई नहीं तेरा। जगवालों का हुआ अंधेरा, अपना हुआ सबेरा।।

भीष्म पितामह की अन्त्येष्टि की जाती है।

भये भीष्म जब शान्त कृष्ण पाण्डव पछिताये। दाह-ऊर्ध्व संस्कार करे कुल कर्म कराये।।
सेवक स्वजन समेत हस्तिनापुर में आये। भये युधिष्ठिर भूप विविध विधि हरि समुझाये।।
सबको सब सन्तोष करि, श्याम सकुचि बोले वचन। जाऊँ द्वारिका वहाँ भी, चिन्तित होंगे सब स्वजन।।

११) श्रीकृष्णका द्वारिकागमन

भीष्म पितामहने अपने इच्छामृत्यु वरदान से शरीर का त्याग किया, कृष्ण के दर्शन की, बहुत सुंदर स्तुति की उसके पश्चात् पांडवोंको, युधिष्ठिर महाराज को राज्यपर प्रतिष्ठित कर श्रीकृष्ण द्वारिका की ओर चल दिये। वहांपर बहुत समय के पश्चात् पहुंचनेपर द्वारिकावासियोंने बहुत बड़ा स्वागत किया।

दुखित भये नर नारि नयन ते नीर बहावें। नाथ। अनाथ बनाइ बिलखते तजि घर जावें।।
हाय विधाता बाम श्याम को साथ छुड़ावे। हमकूँ कुटिल कराल कालहू च्यों नहिं आवे।।
भोजन, भाषण, शयन में, साथ श्याम सब के रहे। पांडव पालित प्रेम के, प्रभु वियोग कैसे सहें।।

कोई भी बुद्धिमान पुरुष जिसका सत्संग के द्वारा दु:संग नष्ट हो गया है, वह उस सत्संग को छोड़ने की इच्छा नहीं करता। फिर जिन भगवान का कीर्त्यमान मनोरम यश जिसने एक बार भी सुन लिया है, वह उसे कैसे छोड़ सकता है। उन्हीं पुण्य यशवाले प्रभु के पादपद्मों में जिन्होंने अपना चित्त निरन्तर लगा दिया है। जिसका मन उन्हीं के दर्शन, स्पर्श संभाषण में लगा है, जो उन्हीं के साथ-साथ खाते-पीते तथा उठते-बैठते और शयन करते हैं, वे पांडव भगवान के वियोग को कैसे सह सकते हैं।

विधि का बलवान विधान अनिवार्य न होता, तो कौन अपने प्रियतम से पृथक् होने की इच्छा करता। किन्तु विधाता ने संयोग के साथ ही वियोग को बाँध दिया है। जन्म के साथ पीछे ही मृत्यु सटी हुई है और सुख के साथ ही दु:ख जुटा है। इसलिये प्राणी सभी कर्म करने में विवश है। जब जीव गर्भ में रहता है तभी जाति कर्म, आयु, विद्या और मृत्यु ये सब पहिले से ही पूर्व कर्मानुसार निर्माण हो जाते हैं। उन्हीं के अनुसार प्राणी इच्छा न होने पर भी कार्यों में प्रवृत्त होता है।

कृष्ण द्वारिका के लिये प्रस्थान करने लगे उस समय सुभद्रा लिपटकर रोने लगी और महाराज युधिष्ठिर हस्तिनापुर के बाहर तक पीछे-पीछे चलने लगे। श्यामसुन्दर ने युधिष्ठिर से कहा- राजन्। आप लौट जाइये। शास्त्रकारों ने अपने प्रियजनों को जल तक पहुँचाने का विधान बताया है। जिनके लौटने की शीघ्र आशा हो उन्हें दूर तक पहुँचाने नहीं जाना चाहिये। ये सब लोग नगर से बहुत दूर आ गये हैं। अतिकाल भी हो गया है। वियोग तो अवश्यम्भावी है, अब अधिक नहीं देखा जाता। आप अपने बन्धु बान्धवों और स्वजनों के साथ लौट जायँ।

कृष्णने राजा युधिष्ठिर से द्वारिका जानेकी अनुमति मांग ली। उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, भीम, धौम्य मूर्च्छित हो गये। पाण्डव भला उनका विरह कैसे सह सकते थे। उद्धव और सात्यकि चँवर डुलाने लगे। ब्राह्मणोंके सत्य आशीर्वाद लगने लग गये। हस्तिनापुरकी स्त्रियाँ बातें कर रही थी यही सनातन परम पुरुष है, जो प्रलयके समय भी अपने अद्वितीय निर्विशेष स्वरूपमें स्थित रहते हैं। उस समय सृष्टिके मूल ये तीनों गुण भी नहीं रहते। जगदात्मा ईश्वरमें जीव भी लीन हो जाते हैं और महत्तत्त्वादि समस्त शक्तियाँ अपने कारण अव्यक्तमें सो जाती हैं। उन्होंने ही फिर अपने नाम-रूपरहित स्वरूपमें नामरूपके निर्माणकी इच्छा की, तथा अपनी काल-शक्तिसे प्रेरित प्रकृतिका, जो कि उनके अंशभूत जीवोंको मोहित कर लेती है और सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त रहती है, अनुसरण किया और व्यवहारके लिये वेदादि शास्त्रोंकी रचना की। इस जगत्में जिसके स्वरूपका साक्षात्कार जितेन्द्रिय योगी अपने प्राणोंको वशमें करके भक्तिसे प्रफुल्लित निर्मल हृदयमें किया करते हैं, ये कृष्ण वही साक्षात् परब्रह्म हैं। वास्तवमें इन्हींकी भक्तिसे अन्त:करणकी पूर्ण शुद्धि हो सकती है, योगादिके द्वारा नहीं। सखी। वास्तवमें ये वही हैं, जिनकी सुन्दर लीलाओंका गायन वेदोंमें और दूसरे गोपनीय शास्त्रोंमें व्यासादि रहस्यवादी ऋषियोंने किया है- जो एक अद्वितीय

ईश्वर हैं और अपनी लीलासे जगत्‌की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं, परंतु उनमें आसक्त नहीं होते। जब तामसी बुद्धिवाले राजा अधर्मसे अपना पेट पालने लगते हैं तब ये ही सत्त्वगुणको स्वीकारकर ऐश्वर्य, सत्य, ऋत, दया और यश प्रकट करते और संसारके कल्याणके लिये युग-युगमें अनेकों अवतार धारण करते हैं। अहो। यह यदुवंशय परम प्रशंसनीय है; क्योंकि लक्ष्मीपति पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने जन्म ग्रहण करके इस वंशको सम्मानित किया है। वह पवित्र मधुवन (व्रजमण्डल) भी अत्यन्त धन्य है, जिसे इन्होंने अपने शैशव एवं किशोरावस्थामें घूम-फिरकर सुशोभित किया है। बड़े हर्षकी बात है कि द्वारिकाने स्वर्गके यशका तिरस्कार करके पृथ्वीके पवित्र यशको बढ़ाया है। वहाँकी प्रजा अपने स्वामी भगवान श्रीकृष्णको, जो बड़े प्रेमसे मन्द-मन्द मुसकराते हुए उन्हें कृपादृष्टिसे देखते हैं, निरन्तर निहारती रहती हैं। सखी। जिनका इन्होंने पाणिग्रहण किया है, उन स्त्रियोंने अवश्य ही व्रत, स्नान, हवन आदिके द्वारा इन परमात्माकी आराधना की होगी; क्योंकि वे बार-बार इनकी उस अधर-सुधाका पान करती हैं, जिसके स्मरणमात्रसे ही व्रजबालाएँ आनन्दसे मूर्च्छित हो जाया करती थीं। वे स्वयंवरमें शिशुपाल आदि मतवाले राजाओंका मान मर्दन करके जिनको अपने बाहुबलसे हर लाये थे तथा जिनके पुत्र प्रद्युम्न, साम्ब, आम्ब, आदि हैं, वे रुक्मिणी आदि आठों पटरानियाँ और भौमासुरको मारकर लायी हुई जो इनकी हजारों अन्य पत्नियाँ हैं, वे वास्तवमें धन्य हैं। क्योंकि इन सभीने स्वतन्त्रता और पवित्रतासे रहित स्त्रीजीवनको पवित्र और उज्ज्वल बना दिया है। इनकी महिमाका वर्णन कोई क्या करे। इनके स्वामी साक्षात् कमलनयन भगवान श्रीकृष्ण हैं, जो नाना प्रकारकी प्रिय चेष्टाओं तथा पारिजातादि प्रिय वस्तुओंकी भेंटसे इनके हृदयमें प्रेम एवं आनन्दकी अभिवृद्धि करते हुए कभी एक क्षणके लिये भी इन्हें छोड़कर दूसरी जगह नहीं जाते।

जावेंगे यदुनाथ बात फैली घर-घर में। ब्याप्यो सब थल शोक राज्य रनिवास नगर में।।
सब ही कहिबे लगे- कृष्ण कब दर्शन देंगे। अब पुनि पुण्य पराग पाद पद्मनि की लेंगे।।
नरतनु फल है नयन ये, नन्दनँदन निरख्यो करें। काज करें कर कृष्ण के, मनमोहन मन कूँ हरे।।

श्रीकृष्ण द्वारिकागमन करते है और द्वारिका चले जाते है।

द्वारिकामें देशवासियोंने सुना कि कृष्ण आ रहे हैं तो उनके स्वागतार्थ मार्गपर आ गए।

नगरके फाटकों, महलके दरवाजों और सड़कोंपर भगवान्‌के स्वागतार्थ बंदनवारें लगायी गयी थीं। चारों ओर चित्र-विचित्र ध्वजा पताकाएँ फहरा रही थीं, जिनसे उन स्थानोंपर घामका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था।

पहुँचे प्रभु सन्ध्या समय दिव्य द्वारिका के निकट।
पाञ्चजन्य को शब्द सुन्यो अति भये सुखारे। स्वागत को सामान सजायो सबहिं सिधारे।।
नगर द्वार गृह द्वार मार्ग सब सुघड़ सजाये। दधि, अक्षत फल लाइ, सजल घट दीप जराये।।
रथ में शोभित श्याम सिर, छत्र श्वेत माला गले। नयन सफल सबके करत, हरत चित्त चितवत चले।।
अभिवादन शीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविन:। चत्वारि तस्या वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।

जो अभिवादनशील होते हैं, हमेशा बड़ों को प्रणाम करते हैं, उनकी चार चीजें बढ़ती हैं, आयु, विद्या, यश और बल। बचपन में जो संस्कार हम अपने बच्चों में डालेंगे, वही संस्कार जीवन पर्यंत रहेंगे।

भगवान को चिरकाल में लौटा हुआ देखकर पुरवासी कह रहे हैं- हे कमलनयन। जब आप अपने आत्मीय बन्धुओं से मिलने हस्तिनापुर अथवा मथुराजी चले जाते हैं, तब आपके बिना हमारा एक-एक क्षण कोटि-कोटि वर्षों के बराबर

व्यतीत होता है। क्योंकि हे अच्युत। जैसे नेत्रों के रहते हुए भी यदि सूर्य न हों, तो वे व्यर्थ ही है। उनसे कोई काम नहीं हो सकता। उसी प्रकार आपके बिना हम द्वारावती में रहते हुए भी बेकाम से बने रहते हैं।

द्वारिकावासियों ने कहा- आप आ गये, बड़ा मंगल हुआ। हम सब प्रतिक्षण आपकी प्रतीक्षा करते थे। जिन चरणारविंदो में पितामह ब्रह्मा, दक्षादि प्रजापति, सनकादि, योगीन्द्र, देवराज इन्द्र तथा सभी लोकपाल नतमस्तक होकर अपने मुकुटों की मणियों से आपके अरुण नखों को प्रकाशित करते हुए प्रणाम करते हैं, आज उन्हीं पाद पद्मों से प्रणाम करके हम सब कृत-कृत्य हो गये। हे अशरण शरण। आप ही हमारे शरणदाता हैं। आप ही हमारे सर्वस्व हैं। हम अपने को देवताओं से भी श्रेष्ठ समझते हैं, क्योंकि देवताओं को तो आपके चरणारविन्दों के दर्शन कभी-कभी ही होते हैं और हम सब जब आप द्वारिका में निवास करते हैं तो नित्य ही दर्शन करके अपने नयनों को सफल करते हैं। सभी मारे हर्ष के अपने आपे में नहीं रहे। नाना उग्रसेन, पिता वसुदेव, चाचा अक्रूर, भाई बलदेव- ये सभी बड़े हर्ष के सहित भगवान के स्वागत के लिये नगर द्वार की ओर चले। अपने बन्धु-बान्धवों को व्यग्रता के सहित अपनी ही ओर आते देखकर भगवान रथसे उतर पड़े। उन्होंने पहिले वेदज्ञ वृद्ध ब्राह्मणों को सिर से प्रणाम किया, फिर वसुदेव, उग्रसेन आदि पूज्यजनों के चरण छुये। जो अपने समवयस्क या थोड़े बड़े चाचा आदि थे, उन्हें हंसते हुए वैसी ही वाणी से प्रणाम किया। कृष्णने थोड़े ही काल में ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यन्त, अपने समस्त प्रजा का यथोचित सत्कार किया। गुरुजनों और माता-पिता को प्रणाम करके रानियों को दर्शन दिया। यही अपनी भारतीय संस्कृति है कि प्रथमत: श्रेष्ठ जनों को सम्मान दिया जाये, इसी में वे प्रसन्न हो जाते हैं। उनकी प्रसन्नता से अपना जीवन सुगढ़ बनता है।

कृष्णकी सुन्दर स्त्रियां जिन्हें देखते-देखते अघाती नहीं थी। रूप उसी को कहते हैं जो क्षण-क्षण में नूतन-ही-नूतन दिखाई दे, जिसका सौन्दर्य माधुर्य प्रतिपल बढ़ता ही प्रतीत हो। प्रतीक्षा की घड़ियाँ कितनी मनोहर, कितनी विकलता पैदा करनेवाली, कितनी तन्मयता प्राप्त करा देनेवाली होती हैं। उस समय दृष्टि में वही रहता है जिसकी प्रतीक्षा की जाती है। जो कार्य एक को आनन्द रहा है, परिस्थिति के अनुसार वही दूसरे को निरानन्द बना रहा है। आनन्द किसी वस्तु में नहीं है। वस्तु तो सभी पंचभूतों की ही बनी हुई है। समय में भी आनन्द नहीं, वह तो सदा अपनी एक ही गति से बहता रहता है। आनन्द का स्थान है अपना अन्त:करण और परिस्थिति। परिस्थितियों के अनुसार ही हृदय में आनन्द और निरानन्द की लहरें उठती रहती हैं। बाह्य उपकरणों का समष्टि सुख-दु:ख के साथ कोई स्थाई सम्बन्ध नहीं। कृष्ण सबसे पहले अपने माता-पिता के महल में गये। अपनी माता देवकी आदि सात माताओंके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया। उनका हृदय हर्षसे विह्वल हो गया और आँखे आँसुओंसे भीग गयी। फिर अन्त:पुरमें अपने सखा उद्धव और सात्यकि के पास गये। अपनी १६१०८ राानियोंके महलोंमे गये। जिस नारीका पति विदेश गया हो उसे पतिवियोग के नियमोंका पालन करना चाहिए। उस स्त्री को खेल-कूद में शरीक नहीं होनाचाहिए, श्रृंगार नहीं करनी चाहिए, हँसी-मजाक नहीं करनी चाहिए, और पराये घर नहीं जाना चाहिए। यह कृष्ण के आते ही बड़ी उल्लसित हो गयी। भारतीय नारियों के लिए पतिव्रत धर्म स्वीकार करना उनकी आदर्शवादिता का सूचक है।

१२) कृष्णका स्वधाम गमन (उद्धव और मैत्रेय मुनिको उपदेश)

पूरी लीलायें खत्म होने जा रही थी। उसी समय ब्रह्माजी और अन्य देवता सब मिलकर कृष्ण भगवान के पास द्वारिका में आये। जब देवता लोग आते हैं तो एकान्त में आते हैं। देवता लोगोंकी एक विशेषता है एक तो वो है अग्नि के माध्यम से आते हैं दूसरा उनके पैर जमीन पर स्पर्श नहीं करते। तीसरा उनके शरीर की छाया नहीं पड़ती है। चौथा उनके निमेष

जैसे हमारी आंखे खुलती है बंद होती है उनकी आँखे एकटक रहती है, निमेष। उनकी आँखे एक जैसी रहती है, उनकी पलकें नहीं गिरती है। इस तरह का अगर कोई व्यक्ति आपको दीख जावे या मिल जावें, दर्शन हो जावें तो यह समझना देवताओंके दर्शन हो गये है। यह देवता उस विष्णुकी ही अभिव्यक्ति है, अंश है वह पूर्ण नहीं है। देवताओं के शरीर में दुर्गन्ध नहीं निकलती। उनको पसीना नहीं आता।

यह देवता कभी दर्शन देते तो इसी रूपमें ही देते है अन्यथा देवोंके दर्शन होना दुर्लभ है। ऐसे सब देवता मिलकर व ब्रह्माजी ने भगवान कृष्णके पास आकर स्तुति करी। बोले- आप जिस समय इस धरापर असुरोंका भार उतारने के लिये आपने जो संकल्प किया था वह पूर्ण हो चुका। अब आप हमारे धाम को चलिये। श्रीकृष्णने कहा- यदा यदा यदधर्मस्य ग्लार्निभवति भारत। जब जब धर्म की हानि होती है, असुरोंकी बाढ़ होती है उस समय मैं ब्राह्मणोंका, गायोंका, सज्जन पुरुषोंका उद्धार करने इस धरापर मैं बार-बार, युग-युग अवतार लेता हूँ। उनका परित्राण करने। परित्राणाय साधुनाम् संभवामि युगेयुगे। अब मेरा जितना काम था मैंने वह भार उतार दिया है। यह भार उतारना क्या है। जनसंख्या वृद्धि से पृथ्वी नहीं डरती है, नहीं दबती है, पृथ्वीपर चाहे आज कितना पृथ्वीका वजन देखिये कितने अरबोंमे उनके वृक्ष, पेड़, पौधे, विशाल सागर, सात विशाल सागर से पृथ्वीका आवरण घेरा हुआ है, और कितने लोग, असंख्य प्राणी, असंख्य जीव-जंतु, पशु-पक्षी इससे पृथ्वी कभी भी इसके बोझसे नहीं दबती है। फिर पृथ्वी का बोझ कैसा? पृथ्वी किसके लिये इतनी त्राहि-त्राहि करके भगवान के पास गयी थी कि मेरी रक्षा करो। त्राहि माम, त्राहि माम। सिर्फ एक ही यह असुरोंका पापकर्म बढ़ रहा है, अत्याचार बढ़ रहा है, मानवता लुप्त होते जा रही है, देखो संसारकी क्या हालत हो रही है।

देख तेरे संसार की हालत क्या हो गयी भगवान कितना बदल गया इन्सान।

सूरज न बदला, चांद न बदला, ना बदला रे आसमान, कितना बदल गया इन्सान।

जब-जब आततायी शक्तियां बढ़ जाती है इस पृथ्वीपर अत्याचार होने लगते है तो प्रभु इस धरापर अवतार लेते हैं। पृथ्वी गोरूपणी गोका रूप धारण करके भगवान से प्रार्थना करती है यह ब्रह्माजी प्रार्थना करते है तब जाकर के भगवान इस धरा का बोझ इन आततायी शक्तियों का दमन करने के लिये इस धरा पर अवतार लेते है। लेकिन जब महाभारत का युद्ध हो गया और अत्याचारोंका शमन हो गया, भगवान का प्रयोजन जिस निमित्त यह अवतार लेना था पूरा हो गया तब देवताओंने आकर स्तुति की भगवन हमने जिस कारण के लिये आपसे प्रार्थना, स्तुति की थी हम हमारा कारण पूरा हो गया अब आप हमारे लोकमें पधारिये। श्रीकृष्ण कहते है, ब्रह्माजी, पृथ्वी, सभी देवताओं वह जो काम होना था वो हो गया पर अभी मेरा वंश यदुवंश इतना बड़ा है क्योंकि भगवान के १६ हजार १०८ स्वयं की रानियां थी, उनके एक-एक के दस पुत्र, पुत्रियां अलग १ लाख कितने तो इनके हो गये और पूरे यदुवंश के और बोले यह भी सब मेरे ऐश्वर्य और अहंकार को पाकर, क्योंकि बाप की सम्पत्ति पुत्र को मिलती है। बाप तो मेहनत कर-कर के पैसा जोड़ता है। लेकिन जब पुत्रको संपत्ति मिल जाती है या तो अच्छे काम में लगती है या फिर उन्मत्तता, मादकता, ऐश्वर्य, पागलपना, तरह-तरह की दुषचरण ऐसे होने लगता है। फिर वैसे ही जैसे-जैसे पीढ़ियां बदलती है। मेरा यदुवंश अभी ऐश्वर्य से युक्त है जबतक इसका संहार नहीं करूं, तब तक मेरा प्रयोजन यहां पूरा नहीं होता है। मैं शीघ्र ही आ रहा हूं। यह काम पूरा करने के बाद शीघ्र ही मैं अपने स्वधाम को जाऊंगा। श्रीकृष्ण ने कहा- मेरे यहां से जाने के उपरांत यह यदुवंशी उपद्रव करके संसारी जीवों को बड़ा दु:ख देंगे इसलिये अपने सामने इन लोगोंका नाश कर देना उचित है। पर अपने हाथ उनको मारना अधर्म समझकर कृष्णने दुर्वासा ऋषिवर से उन्हें शाप दिलवा दिया। तब छप्पन करोड़ यदुवंशी इस तरह आपस में लड़कर मर गये जिस तरह समुद्र में बड़े जीव छोटे जीवों

को खा जाते हैं। समय निकला यदुवंशोंको श्राप लगा। भगवान् स्वधाम जानेके लिये तैयारियां करने लगे।

उद्धव को मालूम पड़ गया कि भगवान जा रहे है। यह उद्धव कौन है- वसुदेवजी का छोटा भाई देवभाग , कंसा का पुत्र उनका लड़का। कृष्णका चचेरा भाई। बड़ा ही विद्वान, बृहस्पतिका शिष्य, कृष्णका अन्तरंग सखा। साथ उठने-बैठनेवाला और उग्रसेनके सभामंडल का, राज्य का संचालक और मंत्री। यह उद्धव बड़ा ज्ञानी पुरुष। जब उसको यह मालूम पड़ गया है कि अब कृष्ण जा रहे है, जानेकी तैयारियां होने लगी तो आया एक दिन प्रभासक्षेत्र में। प्रभासक्षेत्र सोमनाथ जहां पर है बेरावल नाम का एक स्थान, गांव है द्वारका में उसको प्रभासक्षेत्र कहते है, सोमनाथ मंदिर भी वहींपर है। भगवान शंकरका बारह ज्योतिर्लिंगों मे से एक। वहींपर कृष्णको जरा नामके व्याध का बाण लग गया और वहींपर कृष्णकी मृत्यु हुई। उस स्थान पर समाधि भी बनी हुई है। उस जगह कृष्ण जहां बैठे है, उद्धव आता है और बोला- भगवान्। मैंने जाना कि आप जानेकी तैयारियां कर रहे है और मैं अकेला यहां नहीं रहूंगा। मैं भी आपके साथ-साथ चलूंगा। मैं किसी भी हालत में अकेला नहीं रह सकता मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। अब कृष्ण बोलते है- उद्धव, इस संसार में न जीव कभी किसीके साथ आया है न कभी किसीके साथ गया है। जीव अकेला आता है, अकेला जाता है। यह संसार एक सराय के जैसा है, यह संसार एक वृक्ष के जैसा है। सराय में जैसे आने-जानेवाले यात्री मिल जाते है, थोड़ी देरका संग रहता है फिर बिछुड़ जाते है। वृक्ष पर- तरह-तरह के पक्षी आते हैं बैठते हैं फिर अपनी- अपनी दिशाओं में उड़ जाते हैं। कभी संजोग से मिल जाते हैं जिसका जन्म हुआ है उसका मरण निश्चित है। जिसका संयोग हुआ उसका वियोग निश्चित है। जिसका उत्थान हुआ है उसका पतन निश्चित है। यह अपरिवर्तनीय नियम है सृष्टिका। उद्धव तुम मेरे साथ तो जा नहीं सकते और तुमको जाना भी नहीं चाहिये, और ऐसा सोचना भी नहीं चाहिये। उद्धव बोला- भगवन् फिर मैं क्या करूं? मेरा क्या आधार है? उद्धव बोला- क्या आप अपने भक्तों का कार्य पूरा करके अपनी अनेक माधुर्यमयी ऐश्वर्यमयी लीलाओं का आनन्द देकर अपने धाम जाने का संकल्प कर चुके हो? कृष्ण बोले, हां उद्धव यह मेरी ही बनायी मर्यादा हैं जो आता हैं, वो जाता भी हैं। उद्धव बोले, लेकिन आने वाले इस कलिकाल में जब जीव अनेक तापों से संतप्त होकर मोहग्रस्त होकर एक ऐसे मोड़ पर खड़े होंगे, जहां अपने कल्याण का कौन सा मार्ग श्रेयस्कर है इसका निर्णय नहीं कर पायेंगे। उस समय आपकी लीलाओं का एवं आपके द्वारा प्रतिपादित धर्म का दर्शन उन्हें कहां हो पायेगा। हे नाथ। वे भवाटवी में भटके जीव किसकी शरण ग्रहण करेंगे और कौन उन्हें आश्रय देगा। कृष्ण ने कहा- हे उद्धव पहले तो मैं अन्तर्धान होता था तो वैकुण्ठ या क्षीरसागर में चला जाया करता था। लेकिन इस बार अन्तर्धान होऊंगा तो वैकुण्ठ या क्षीरसागर में नहीं जाऊँगा। अब तो मैं इस श्रीमद्भागवतरूपी सागर में ही निवास करूँगा। कृष्ण कहते है- उद्धव उस परम प्रभु की भक्ति करो, उसीमें मन लगाओ। उद्धव बोला- भगवन्, आपके चले जानेके बाद यह पृथ्वी किसकी शरण में जायेगी? यह धर्म किसकी शरण में जायेगा? यह कलियुग आयेगा उसका क्या होगा? आनेवाला युग बदल जायेगा। पृथ्वी अनाथ हो जायेगी। तब भगवान ने कहा- उद्धव, मेरे एक स्वरूप से मैं तुमको जो ज्ञान सुना रहा हूं वो ज्ञान भागवत गीता कहलायेगी। वो भागवत क्या है? मैं अपने तेज से उसमें प्रविष्ठ कर जाऊंगा। उसमें प्रवेश कर जाऊंगा। वो भागवत कथा कलियुग में जिस-जिसको सुनायेंगे, जिस-जिसको मालूम पड़ जायेगी, जो पठन करेगा, श्रवण करेगा, सुनायेगा उन सबका कल्याण कलियुगके जीवोंका होगा और मैं वहां प्रतिष्ठित रहूंगा। कलियुगमें दुःख, दारिद्र्य, दौर्भाग्य, आधि-व्याधि सबका नाश करनेके लिए और काम-क्रोधपर विजय प्राप्त करनेके लिए भागवतका श्रवण ही सबसे बड़ा धर्म है, नहीं तो भगवान्की मायासे पार जाना बड़ा कठिन है। उद्धव, अब मैं तुमको वरदान देता हूँ मेरे एक स्वरूप से तुम मेरा स्वरूप प्राप्त

कर करोगे, एक स्वरूप से तुम इस पृथ्वीपर, धरा पर रहोगे। तुम मेरा आदेश पाकर अब बद्रिकाश्रम चले जाओ वहांपर। और मेरा विदुर कहाँ है? उस समय मैत्रेय मुनि आते हैं, कुछ भगवान कृष्ण ज्ञान देते हैं। तत्वका, आत्मतत्वका, परमात्मा का विवेचन क्या है, पाँच कर्मेन्द्रिया, पाँच ज्ञानेन्द्रियां इस सृष्टिका जो भी विवरण, विवेचन हैं वो सृष्टि की उत्पत्तिमें है। वो सब उद्धव को ज्ञान दिया है। जो ज्ञान दिया है अर्जुन को वो भगवद् गीता कहलाया यही ज्ञान उद्धवको दिया है भागवत के माध्यम से दिया है। यह पंचतत्व क्या है? पंच महाभूत क्या है? मृत्यु, जन्म, जीव क्या है? यह सब ज्ञान जो दिया वह उद्धव गीता कहलाया। उद्धव को ज्ञान दिया, उसका शोक मिटाया। उसी समय मैत्रेय मुनि आते है। मैत्रेय मुनि कौन है? वेदव्यास के चाचा के पुत्र है मैत्रेय मुनि। भगवान के पास बैठते है, बड़े ही ज्ञानी पुरुष है और बोले-भगवन्। कृष्ण नहीं चाहते थे कि कोई दूसरा वहां आवे सिर्फ उद्धवको ही ज्ञान देना चाहते थे। भगवान ने देखा ठीक है यह तो ज्ञान विस्तृत करना ही सब जगह इसलिये उद्धवको जो ज्ञान दे रहे थे वही ज्ञान मैत्रेय मुनिको दिया। मैत्रेय मुनि वह ज्ञान धारण करके तीर्थयात्रा में चले गये। कृष्ण पूछते है- उद्धव मेरा विदुर कहाँ हैं? भगवान जिसको कहे मेरा वो उसका। मेरा विदुर कहां है? आखिरी समय में भगवान जानेके कुछ क्षण पहले उस विदुर को याद करते है। विदुर तीर्थयात्रा में गये दुर्योधन ने अपमान कर दिया तब। यहां भगवान अपने स्वधाम जानेकी तैयारी कर रहे है और बोले मेरा विदुर कहाँ हैं? उद्धव बोला- वो यहां नहीं है। बोले- उद्धव, यह जो ज्ञान मैंने दिया है यह मेरे विदुर को जरूर देना। यही महाभागवत उद्धव को सुनायी और कहा।

यह ज्ञान मैत्रेय मुनिको मैंने दिया है विदुर को ज्ञान तुमसे नहीं मैत्रेय मुनिसे दिलवाना क्योंकि तुम विदुर से उम्र में छोटे हो, उस ज्ञानका इतना असर नहीं पड़ेगा। अगर छोटा बड़े को ज्ञान दे तो उसकी महिमा नहीं रहती है। विदुर बड़े है उम्र में यह ज्ञान विदुरको मैत्रेय मुनिसे दिलाना। यह कहकर भगवान अपने स्वधाम को चले गये। उद्धव रोते रह गये उस ज्ञानको धारण कर बद्रिकाश्रम चले जाते है।

ये जो उपाय है, युक्ति है, मार्ग है, इसी का नाम भागवत धर्म है, यह भागवत धर्म जिसमे निरुपण किया गया हैं उसे ही श्रीमद्भागवत कहते हैं।

कानों में प्रविष्ट हो मिलाता भगवान से जो, कौन कहे महिमा महान् भागवत की।
पार करने को शक्तिसाधन अपार लिये, भव जलनिधि का जहाज भागवत है।।

विदुरजी तीर्थयात्रा करके आते हैं मैत्रेय मुनिसे ज्ञान लेते हैं और मालूम पड़ता है कि कृष्ण स्वधाम चले गये हैं। विदुर पांडवों के पास आते हैं। जैसे ही विदुर ने यह ज्ञान धारण किया, तीर्थयात्रा करके आये, युधिष्ठिर महाराज के पास आये।

भगवान अपने स्वधाम चले गये जाते समय उन्होंने अर्जुन से यह कहा कि अर्जुन मैं अपने स्वधाम को जा रहा हूँ। मेरी अन्य पत्नियां यह द्वारिका आजके सातवें दिन समुद्र में डूब जायेगी। यदुवंशियोंका संहार होगा। सब यदुवंशी प्रभासक्षेत्र में आ जायेंगे द्वारिका से। वहांपर ऐरना नामक एक घास है जिसको लेकर वारूणी मदिरापान कर-करके आपसमें झगड़ेंगे सब मारे जायेंगे लेकिन मेरी पत्नियां कुछ लोग द्वारिका में है। मैं दारूकको भेज रहा हूं। दारूक मेरा सारथी है। तुम उन सबको लेकर, मेरी पत्नियोंको लेकर मथुरा जाना। सुरक्षाके लिये उनको मथुरा ले जाता, हस्तिनापुर ले जाना। अर्जुन रो रहा है। वसुदेवजीका दाह संस्कार अर्जुन ने किया। कृष्णका दाहसंस्कार अर्जुन ने किया- बोलते है ऐसे विभूतियोंका दाहसंस्कार नहीं होता। लेकिन कुछ ग्रंथोंमे यह आया है भगवान कृष्ण पार्थिव शरीर से थे। दिव्य आत्माओंका, दिव्य शरीरोंका दाहसंस्कार नहीं होता है लेकिन इनका दाह संस्कार अर्जुन ने किया।

अर्जुन वहां श्रीकृष्णकी पत्नियोंको लेकर जाते हैं। यह अपने स्वधाम लौट गये है। जब अर्जुन कृष्णकी पत्नियोंको लेकर जा रहे है तो यह आदिवासी जाति जिसको कहते है गोधरा और दोहद यह दो स्टेशन है यह दो स्टेशनोंके बीचका जो भाग है अरण्यभाग इसको कहते है दो हद दो प्रांतोंकी हद है गुजरात और मध्यप्रदेश की हद इसलिये इसको नाम दिया दोहद वह यहीं पर बना हुआ है और गोधरा यह द्वारिका से थोड़ासा आगे। यह जो स्थान है यह वह आदिवासी-भील लोग, किरात, लुटेरे ऐसे लोगोंका स्थान है। जहांपर अर्जुन जब गोपीयोंको, कृष्णकी पत्नियोंको लेकर मथुरा जा रहे थे उसी समय भील, किरातोंने कृष्णकी पत्नियोंको लूट लिया। यह भील किरात बनकर कौन आये भागवत कहती है कि यह कृष्णही अपने दूसरे रूपमें वहां अपनी पत्नियोंको लेने आये। और ग्रंथों मे ऐसा विवेचन नहीं मिलता है लेकिन उन्होंने लूट लिया। अब अर्जुन के पास वह गाण्डीव धनुष वहीं है जिस गाण्डीव धनुष की टंकार से अर्जुन एक-एक व्यक्ति को ललकारता था वह गाण्डीव धनुष उठ नहीं रहा है, शिथिल पड़ रहा है, चल नहीं रहा है। अर्जुनने जाना आज मुझे क्या हुआ? शरीर कांप रहा है। वो ही गाण्डीव धनुष मुझसे उठ भी नहीं रहा है। जो मैं इतना बलशाली था, महाभारत का युद्ध लड़ रहा था आज मैं कृष्णकी पत्नियोंकी रक्षा नहीं कर सकता।

१३) विदुर, धृतराष्ट्र और गान्धारी का वान:प्रस्थ

दुष्ट दुर्योधन के दुर्व्यवहार से दु:खित होकर विदुर महाभारत युद्ध के पूर्वही कौरवोंके महामन्त्री पदका त्याग कर सबसे उदासीन होकर तीर्थयात्रा के निमित्त चले जाते हैं। वे महात्मा थे, उन्हें किसी की चाह नहीं थी, मोहमाया नहीं थी। वे पुन: हस्तिनापुरमें लौटना नहीं चाहते थे। लेकिन अपने बड़े अन्धे भाई धृतराष्ट्र की मंगलकामना उन्हें पुन: हस्तिनापुरमें ले आयी। ब्रजकी यात्रामें उन्हें उद्धवजी मिले उनके द्वारा कृष्णकी तिरोभाव लीला का श्रवण किया और उन्हींके द्वारा महामुनि मैत्रेय का समाचार जानकर वे हरिद्वार गये और अपनी शंकाओंका समाधान कराकर हस्तिनापुर लौट आये।

इधर विदुरजी जब तीर्थयात्रामें थे, तब उन्होंने महर्षि मैत्रेयसे आत्माके स्वरूपके सम्बन्धमें श्रवण किया। उन्हें जो कुछ जाननेकी इच्छा थी, वह पूरी हो गयी थी। मनुष्यको जितना आवश्यक हो, उतना ही जानना चाहिए। पण्डितोंको शास्त्रार्थ करना होता है, तब वे दूसरोंको पराजित करनेके लिए अपनी बुद्धिमें अधिक परिग्रह करके रखते हैं। जैसे घरमें धनका आवश्यकतासे अधिक परिग्रह होता है, वैसे ही बुद्धिमें तर्क, वितर्क, युक्तिका परिग्रह होता है। उसके कारण विक्षेप होता है, मन एकाग्र नहीं होता और भगवान्‌की ओर नहीं लगता। विदुरजीने अपने अन्य सब प्रश्नोंको छोड़ दिया और केवल भगवान्‌के ध्यानमें लग गये। वैसे जितने भी प्रश्न हैं, उन सबका अन्त भगवान्‌के ज्ञानमें ही है। उस एकके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान हो जाता है-

विदुरजीके हस्तिनापुरमें आनेका समाचार सुनकर धर्मराज के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। विदुरजी कुन्तीसे बोले- भाभीश्री, हम किसे दोष दे सकते हैं? सबका अपने भाग्य का खेल है। मनुष्य प्रारब्ध के सूत्र में बँधा है। प्रारब्ध जहाँ खींचकर ले जाता है वहाँ प्राणियों को इच्छा न रहने पर भी विवश होकर जाना ही पड़ता है। धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा- चाचाजी, आपकी यात्रा कैसी रही? विदुर बोले- मैं यहांसे जानेके बाद अवधूत हो गया। मैं अकेला ही पृथ्वीपर विचरण करता था। यदृच्छया जो भी प्राप्त हो जाता, उसी को खाकर सन्तुष्ट रहता। भूमिपर शयन करता और पैदल ही पृथ्वी के पुण्यतीर्थ, पर्वत, नद, नदी और देवताओंके स्थानों तथा मंदिरों में दर्शनार्थ भ्रमण करते रहता। मैं कुरुक्षेत्र, इन्द्रप्रस्थ, मथुरापुरी, वृन्दावन, शूकरक्षेत्र, बटेश्वर, नैमिषारण्य, प्रयागराज, अयोध्यापुरी, चित्रकूट, काशी, गया, जगन्नाथपुरी,

वेंकटाचल, काँची, श्रीरंगम, चिदम्बरम्, कुम्भकोणम, श्रीरामेश्वर, पंढरपुर, द्वारिका, प्रभासक्षेत्र गया।

बालापन से हरि भजे जग से रहे उदास। तीरथ आशा करत है कब आवे हरिदास।।

युधिष्ठिरने पूछा- जैसे पक्षी अपने अंडोंकी पंखोंकी छायाके नीचे रखकर उन्हें सेते और बढ़ाते है , वैसे ही आपने अत्यन्त वात्सल्यसे अपने कर-कमलोंकी छत्रछायामें हमलोगोंको पाला-पोसा है। बार-बार आपने हमें और हमारी माताको विषदान और लाक्षागृहके दाह आदि विपत्तियोंसे बचाया है। आप तीर्थयात्रा करते समय द्वारिका भी अवश्य गये होंगे। वहां हमारे सुदृद् एवं भाई-बन्धु यादवलोग, श्रीकृष्ण अपनी नगरी में सुखसे तो है ना? विदुरजी प्रभातक्षेत्रसे आये थे पर यदुकुलके विनाश की बात उन्होंने उद्धवजीसे ब्रजमें सुन ली थी। पर यह दु:खद सम्वाद उन्होंने युधिष्ठिरको स्वयं सुनाना उचित नहीं समझा। उन्होंने यदुकुलके अक्षय के बारे में नहीं बताया। समस्त राज्यकार्योंमे युधिष्ठिर विदुरजीकी मन्त्रणा लेते थे और उनसे पूछकर ही सब कार्य करते थे। राज्य प्राप्त हो जानेपर अपने लोकपाल समान भाइयोंकेसाथ राजा युधिष्ठिर वंशधर परीक्षितको देखकर अपनी अतुल सम्पत्तिसे आनन्दित रहने लगे। इस प्रकार पाण्डव गृहस्थके काम-धंधोंमें रम गये और उन्हींके पीछे एक प्रकारसे यह बात भूल गये कि अनजानमें ही हमारा जीवन मृत्युकी ओर जा रहा है; अब देखते-देखते उनके सामने वह समय आ पहुँचा जिसे कोई टाल नहीं सकता।

महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद युधिष्ठिर हस्तिनापुर कृष्णके साथ आते हैं और धृतराष्ट्रसे मिलते हैं। कृष्ण भी कांसे के बूत को आगे कर देते है और बोले, महाराज यह भीम, यह स्पर्श कर रहे हैं। धृतराष्ट्र को इतना क्रोध (क्रोधकी ज्वालामें शायद ही आप क्रोध कर सको इतना) और उस क्रोधमें इतनी शक्ति आयी कि धृतराष्ट्र ने उस कांसे की मूर्तिको मसल दिया। फिर जब क्रोध शांत हुआ तो बोले महाराज आपने फिरसे भीमके बूतको मसल दिया आप बड़े क्रोधित थे। बोले- कृष्ण यह तुम्हारी चालबाजी। भीम क्यों नहीं आया मेरे सामने। महाराज अगर भीम आज आपके सामने आ जाता तो शायद बड़ा अनर्थ हो सकता था। खैर कृष्णने शांतिवार्ता युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र में करवायी। उनका क्रोध शान्त किया। युधिष्ठिर उनको लेकर अपने महलमें आये, बडे अच्छे ढंगसे रखने लगे, माता-पिताका सम्मान दिया जब जाकर धृतराष्ट्रको यह एहसास हुआ यह तो बड़े महान लोग है, मैंने इनके साथ क्या क्या छल, कपट किया यह बड़े महान है, आदर्श है, व्यक्तित्व ऊंचा है। भगवत है। भागवत तत्व क्या है? भगवत किसको कहते है? एक जो भगवान का भक्त है वह भागवत। एक भगवान का जो धाम है। जो भगवान के लीलाओं का चरित्र करे वो भी भागवत धाम। यह भागवत धर्मवाले। युधिष्ठिर और गान्धारी वहीं पल रहे है।

युधिष्ठिरने कभी अपमानसे उनको भोजन नहीं कराया। भीम रसोईका नियंत्रण करता था और उनको बड़े निरादर से रोटी खिलाता था।

धरम रूप वे विदुर बन्धुतें बोले बानी। राजन्। कुटिल कराल कालकी कछु गति जानी।।
देखो, दौर्‌यो काल सबनिके सम्मुख आयो। चलो, त्यागि तत्काल बिलम च्यौं यहाँ लगायो।।
सगे सबहिं सुरपुर गये, देह जरजरित है गई। जीवन आशा नहिं गई, अन्त समय दुरगति भई।।

विदुरजी अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र से कह रहे हैं- राजन्। अब आप अतिशीघ्र धर से निकल चलिये। वह देखिये, सामने साक्षात् भय ही आ रहा है, जिसकी कोई प्रतिक्रिया यहाँ नहीं है। वही हम सबके कालस्वरूप भगवान यह सामने आ गये हैं।

दु:ख के दिन कटने दुर्लभ हो जाते हैं, सुख के दिन व्यतीत होते हुए प्रतीत नहीं होते। हम अनेक कार्यों के कारण व्यग्र रहते हैं, किन्तु काल सदा अव्यग्र भाव से प्रतीक्षा करता रहता है। हम स्त्री, बच्चे, गृह, कुटुम्ब आदि की चिन्ता में फँसे रहने

के कारण असावधान रहते हैं, किन्तु काल सदा सावधान हुआ अन्त समय की बाट जोहता रहता है।

विदुर यह देखता था। एक दिन नारदजी आये और बोले- विदुरजी, अभी बड़े बूढ़ोंका इस राज्यमें क्या काम है। वान:प्रस्थ की उम्र है, यही की मोह, आसक्ति, लोभ इस राज्यसे जानेके लिये जाते है आप विद्वान हो आप समझाईये धृतराष्ट्र और गान्धारी को। बस नारदजी तो इतना कहकर चले गये। विदुरने धृतराष्ट्रसे कहा- देखिये अब बड़ा भयंकर समय आ गया है, झटपट यहाँसे निकल चलिये। हम सब लोगोंके सिरपर वह सर्वसमर्थ काल मँडराने लगा है, जिसके टालनेका कहीं भी कोई उपाय नहीं है। कालके वशीभूत होकर जीवका अपने प्रियतम प्राणोंसे भी बात-की-बातमें वियोग हो जाता है; फिर धन, जन आदि दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या है। आपके चाचा, ताऊ, भाई, सगे-सम्बन्धी और पुत्र- सभी मारे गये, आपकी उम्र भी ढल चुकी, शरीर बुढ़ापेका शिकार हो गया, आप पराये घरमें पड़े हुए हैं। इस प्राणीको जीवित रहनेकी कितनी प्रबल इच्छा होती है।

भ्राताश्री आप किस मोह आसक्ति में फंसे हो, उम्र कितनी हो गयी है? आपके सौ पुत्र मारे गये, कुलवधूएं मारी गयी हैं, पूरा वंश समूल नष्ट हो गया है। अब भी आप यहां युधिष्ठिरके टुकड़ोंपर पल रहे है। भीम आपको आदर से भोजन नहीं दे रहा है। इसीके कारण तो आप भीमका दिया हुआ टुकड़ा खाकर कुत्तेका-सा जीवन बिता रहे हैं। जिनको आपने आगमें जलानेकी चेष्टा की, विष देकर मार डालना चाहा, भरी सभामें जिनकी विवाहिता पत्नीको अपमानित किया, जिनकी भूमि और धन छीन लिये, उन्हींके अन्नसे पले हुए प्राणोंको रखनेमें क्या गौरव है। आपके अज्ञानकी हद हो गयी कि अब भी आप जीना चाहते हैं। परन्तु आपके चाहनेसे क्या होगा; पुराने वस्त्रकी तरह बुढ़ापेसे गला हुआ आपका शरीर आपके न चाहनेपर भी क्षीण हुआ जा रहा है। अब इस शरीरसे आपका कोई स्वार्थ सधनेवाला नहीं है; इसमें फँसिये मत, इसकी ममताका बन्धन काट डालिये। जो संसारके सम्बन्धियोंसे अलग रहकर उनके अनजानमें अपने शरीरका त्याग करताहै, वही धीर कहा गया है। चाहे अपनी समझसे हो या दूसरेके समझानेसे- जो इस संसारको दु:खरूप समझकर इससे विरक्त हो जाता है और अपने अन्त:करणको वशमें करके हृदयमें भगवानको धारणकर संन्यासके लिये घरसे निकल पड़ता है, वही उत्तम मनुष्य है। इसके आगे जो समय आनेवाला है, वह प्राय: मनुष्योंके गुणोंको घटानेवाला होगा; इसलिये आप अपने कुटुम्बियोंसे छिपकर उत्तराखण्डमें चले जाइये। जिस शरीर को आप इतना पाल-पोस रहे हैं, वह एक दिन आपको अकस्मात त्यागकर चला जायगा। इसलिये आप अपने कल्याणके लिए कुछ करे। राजन्, यह जो शरीर है, कहने को तो लोग इसे श्रेष्ठ कहते हैं, किन्तु यह है मल-मूत्र का थैला। रोम-रोम से सदा इसमें से मल बहता रहता है। फिर इसमें असंख्यों व्याधियाँ भरी पड़ी हैं। इन व्याधियों के कारण विवश हुआ प्राणी अधीर हो जाता है। वह विषयों के अधीन होकर गृह में ऐसा अनुरक्त हो जाता है, जैसे शरीर में। ये प्राणी शरीर को ही आत्मा मानकर उसमें बँध जाते हैं। उसी प्रकार घर में भी ममता हो जाती है। किन्तु घर-बार, कुटुंब-परिवार यहाँ तक कि इस इतने यत्न से पाले-पोसे शरीर को भी त्यागकर जीवात्मा चला जाता है। इसलिये बुद्धिमानी इसी में है कि जब तक अंतिम काल समीप नहीं आता, तभी तक इन सबकी ममता त्यागकर तपोवन में तीर्थस्थान में जाकर आत्मचिन्तन करना चाहिये। अधीरता को भगा देना चाहिये। इस प्रकार जो इस शरीर को अप्रयोजनीय समझकर मोहबन्धन से रहित होकर, विरक्त भाव से कुटुम्बियों से अज्ञात रहकर, इस शरीर का भगवान् चिन्तन करते हुए त्याग करता है, वही धीर कहलाता है। आप ज्ञानी हैं। धीरों के मार्ग को ग्रहण करें, इस गृहस्थी के मोह-जाल को काटकर तपोवन में चलें। बिना त्याग के कल्याण नहीं, आसक्ति बंन्धन का हेतु है। अत: बाह्य वस्तुओं से विरक्त होकर, हृदय से सभी वासनाओं को निकालकर वनकी ओर प्रस्थान करें वही मनुष्योंमे श्रेष्ठ है। धर्मराज

तो आपको कभी अनुमति दे नहीं दे सकते आप उनसे बिना पूछे अज्ञातभाव से निकल जाइये। मैं आपके साथ वनमें चलूँगा। धृतराष्ट्रने कहा- विदुर तुम ही मेरी डगमगाती जीवन नौका के एकमात्र कर्णधार हो।

पहले पापी पाप करत में तनिक नहीं सकुचाते। पाते जब परिणाम दुःखद सिर धुन धुन पछताते।।

धृतराष्ट्र की संज्ञा जाग गयी। बोले विदुर- तुम ही मेरे सुहृदय हो, तुम ही बताओ मुझे क्या करना है सही सलाह दोगे। विदुर बोले- महाराज वानप्रस्थाश्रम लीजिये और वहीं अपनी शरीर की आहुति दीजिये। बस अभी यही काम शेष रह गया, वनमें रहिये, भजन-कीर्तन करिये, हरिको याद करिये। विदुर बोले- मतांतर, पीढ़ियोंका मतांतर,अवस्था। इस अवस्था में हरिनाम लेना चाहिये। पर आदमी की ऐष्णायें नहीं मिटती है। ऐष्णायें क्या है-वासनाएं, तृष्णायें, तमन्नाएं, कामनाएं ये चार होती है। जीव जब जन्म लेता है, जन्मसे लेकर बीस वर्ष तक उसकी ऐष्णा युयुत्सा कहलाती है। उसके हाथ तने रहते है, खून गर्म रहता है। यह बाल्यपन और युवावस्था। न उच्च का विचार न नीच का विचार, न विवेक, न ज्ञान। बीस वर्ष से पैंतीस वर्ष तक की अवस्था, कामेष्णा- वो किसमें रत रहता है-सुन्दर-सुन्दर लड़कियां, पत्नियां, बाल-बच्चे पैदा करना, उनमें मोह रहना, कामेष्णा में बसा रहता है। जब तक मां-बाप खिलाते भी है थोड़ा काम करने लग जाता है पर कामेष्णा में। काम की इच्छा, कामभोग। पैंतीस वर्ष से ५५ वर्ष की अवस्था- उसमें जाग्रत होती वितेष्णा- धन, धन। ढोल भी बजाऊ तो धन की आवाज निकलती है। धन चाहिये, सही तरीके से हो या गलत तरीके से हो, धन आना चाहिए। तरह-तरह की ऐष्णायें, धन कमाना उसके बाद जाग्रत होती लोकेष्णा- ५५ से ७५ वर्ष तक लोकेष्णा। लोगोंमे मेरा नाम हो, मैं इस समाज का अध्यक्ष बनूं, संस्थाका मैं चेअरमन बनूं लोगोंमे मेरा नाम, यश हो, कीर्ति फैले इस तरह की यह लोकेष्णा। फिर आती है वृद्धावस्था ७५ पार हुए कि जीर्णावस्था। यह अवयव, हाथ-पैर, दिल-दिमाग कुछ काम नहीं करते, धीरे-धीरे क्षीण होते। जरा नाम की व्याधा शुरू होती है मनुष्य को। यह हर प्राणीका, हर व्यक्तिका यही हाल है आप देख लीजिये जब तक वो हरिनाम लेता नहीं क्योंकि सांसारिक विषयभोगोंमें फंसा रहता है। ७५ के बाद उस भगवान में मन नहीं लगता जहां लगाना चाहिये था। बुढ़ापे में जब संसार तिरस्कार करने लगता है, परिवार तिरस्कार करने लगता है उस समय यह ज्ञान आता है कि मैंने जिनको जन्म दिया है, मेरे पुत्र, मेरे पोते आज मेरे सामने मेरा अपमान करते है क्योंकि मेरे हाथ-पैर नहीं चलते। अब मैं इनकी रोटी-टुकड़ों पर पल रहा हूं। इस तरह की मन में और फिर भी विचार नहीं आता है कि भगवान का ध्यान करूं। ध्यान करने का विचार आया तो मन नहीं लगता। यह मन एकेंद्रीकरण। भगवान का भजन कर नहीं पाता और एक दिन इस दुनिया को छोड़ देता है। फिर उसके साथ क्या जाता है उसके किये हुए कर्म, उसके किये हुए धर्म, कर्मोंसे नया जन्म लेना पड़ता है कर्म वासनाएं। धर्म- जैसा कर्म किया वैसा धर्म बना। अगर कोई धर्मका काम किया तो धर्म उसके साथ जायेगा। वो धर्म ही उसकी रक्षा कर सकता है परलोक में। परलोक कैसा? तो इस तरह से धृतराष्ट्र चले गये। जब छोटे भाई विदुरने अंधे राजा धृतराष्ट्रको इस प्रकार समझाया, तब उनकी प्रज्ञाके नेत्र खुल गये; वे भाई-बन्धुओंके सुदृढ़ स्त्रोत-पाशोंको काटकर अपने छोटे भाई विदुरके दिखलाये हुए मार्गसे निकल अपनी पत्नी गान्धारीके साथ निकल पड़े। उसी समय कुछ भागवत में तो यही आया है कि धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती गये है। कुछ ग्रन्थोंमे यह आया है कि कुन्ती उसी दिन गिर गयी जिस दिन अर्जुन ने सम्वाद किया कि भगवान स्वधाम चले गये है। उसी दिन कुन्ती बेहोश होकर परमगति को प्राप्त हुई। धृतराष्ट्र और गान्धारी वनमें चले गये है।

सुनत विदुरके वचन बन्धुवर अति हरषाये। गद्‌गद गिरा गम्भीर नीर नयननिमें छाये।।

धन्य-धन्य लघुभ्रात हाथ गहि तात उबार्‌यो। अन्धकूपमें पतित-पतितकूँ पकरि निकारयो।।

सबकूँ सोवत छोड़िके, गान्धारीके साथ में। विदुर बताये मार्गतें, चले हाथ दे हाथ में।।

इस प्रकार अपने छोटे भाई श्रीविदुरजी के समझाने पर आजमीढ़ वंशावतंस श्री राजा धृतराष्ट्रजी अपने बन्धु-बान्धवों में जो स्नेह बन्धन की दृढ़ रस्सी है, उसे बलपूर्वक तोड़कर, विदुरजी के बताये हुए तपोवन के मार्ग को घर से निकल पड़े।

तात ऋषभ सौं होय, मातु मदालसा मानो। पुत्र कपिल सौं मिले मित्र प्रल्हाद ही जानो।
भ्राता विदुर दयाल योषिता द्रुपद दुलारी। गुरु नारद सम मिले, अकिंचन पर उपकारी।
भ्राता नृप अम्बरीष सौं और राजा पृथु सौं मिलै। भगवत् भवनिधि उद्धरे, चिदानन्द सुख में झिलै।।

यहांपर प्रात:काल युधिष्ठिर उठते है और अपने तातश्रीको वहां महल में नहीं पाकर इधर-उधर भटक रहे, घूम रहे है कहां गये। किसीको कुछ पता नहीं है। सारथी संजय को पूछते है तू कहीं छोड़कर आया, कहीं गये। सारथी बोला- मुझे तो मालूम ही नहीं रातोरात जो निकल गये, बोलकर भी नहीं गये। सारथीको भी पता नहीं। चिंतित, व्याकुल है इतने मे नारदजी आते है- युधिष्ठिर बोले, महाराज। मेरे तातश्री कहां चले गये, मुझसे क्यों नाराज हो गये, मेरेसे कोई अपराध बन गया? क्या बात है? मेरे कोई पुराने अपराधोंको स्मरण करके चले गये? नारद बोले- ऐसा नहीं है। जीवकी गति यह है यहां मोह आसक्ति घरमें पड़ा कोई भी जीव वहां बैठे हुए तिरस्कार करते है, खाना जब चाहे परोस दिया, दे दिया, बात सुनते नहीं है, चिड़चिड़ा स्वभाव हो जाता है वृद्ध आदमी का।

धर्मराज तुम किसीके लिये शोक मत करो क्योंकि यह सारा जगत ईश्वरके बसमें है। सारे लोक और लोकपाल विवश होकर ईश्वरकी ही आज्ञाका पालन कर रहे है। वही एक प्राणीको दूसरेसे मिलाता है और वही उन्हें अलग करता है। जैसे संसारमें खिलाड़ीकी इच्छासे ही खिलौनोंका संयोग और वियोग होता है, वैसे ही भगवान्की इच्छासे ही मनुष्योंका मिलना-बिछुड़ना होता है। प्राणियों के संयोग और वियोग का कारण वही है। जो स्वयं ही काल कर्म और गुणों के वश में है वह, अजगर के मुंह में पड़े हुए पुरुष के समान, भला दूसरों की क्या रक्षा करेगा।

तुम लोगोंको जीवरूपसे नित्य मानो या देहरूपसे अनित्य अथवा जड़रूपसे अनित्य और चेतनरूपसे नित्य अथवा शुद्धब्रह्मरूपसे नित्य-अनित्य कुछ भी न मानो- किसी भी अवस्थामें मोहजन्य आसक्तिके अतिरिक्त वे शोक करने योग्य नहीं हैं। इसलिये धर्मराज। वे दीन-दुखी चाचा-चाची असहाय अवस्थामें मेरे बिना कैसे रहेंगे, इस अज्ञानजन्य मनकी विकलताको छोड़ दो। यह पाञ्चभौतिक शरीर काल, कर्म और गुणोंके वशमें है। हाथवालोंके बिना हाथवाले, चार पैरवाले पशुओंके बिना पैरवाले (तृणादि) और उनमें भी बड़े जीवोंके छोटे जीव आहार हैं। इस प्रकार एक जीव दूसरे जीवके जीवनका कारण हो रहा है। इन समस्त रूपोंमें जीवोंके बाहर और भीतर वही एक स्वयंप्रकाश भगवान्, जो सम्पूर्ण आत्माओंके आत्मा हैं, मायाके द्वारा अनेकों प्रकारसे प्रकट हो रहे हैं। तुम केवल उन्हींको देखो। महाराज। समस्त प्राणियोंको जीवनदान देनेवाले वे ही भगवान् इस समय इस पृथ्वीतलपर देवद्रोहियोंका नाश करनेके लिये कालरूपसे अवतीर्ण हुए हैं। अब वे देवताओंका कार्य पूरा कर चुके हैं। थोड़ा सा काम और शेष है, उसीके लिये वे रुके हुए हैं। जबतक वे प्रभु यहां हैं, तबतक तुमलोग भी उनकी प्रतीक्षा करते रहो। युधिष्ठिरको शोक हो रहा है, नारदजी समझा रहे है। नारदजी बोले- इनका जो कर्त्तव्य था वो पूरा हुआ जीवन का शेष भाग बिताने वो चले गये। अब वो आयेंगे नही। कर्म के बन्धन में बद्ध होकर जीव इस भूलोक पर आता है तथा कर्मानुसार भोग करते कर्मक्षय होने पर चला जाता है। अत: उत्पन्न होना और चले जाना दोनों ही ईश्वराधीन हैं इसमें जीव का कोई अधिकार नहीं है। जो भेजता है वही रक्षा और जीवन यापन कराता है। आज से पाँचवे दिन धृतराष्ट्र भगवत् धाम को चले जायेंगे और गान्धारी सती हो जायेंगी, विदुर और विदुरानी तीर्थाटन करेंगे।

इसलिए तुम्हारा उनके लिए चिन्तित होना व्यर्थ है। युधिष्ठिर बोले- मुझे बताइये मैं लेकर आऊंगा।

धर्मराज। हिमालयके दक्षिण भागमें, जहाँ सप्तर्षियोंकी प्रसन्नताके लिये गंगाजीने अलग-अलग सात धाराओंके रूपमें अपनेको सात भागोंमें विभक्त कर दिया है, जिसे सप्तस्त्रोत कहते हैं, वहीं ऋषियोंके आश्रमपर धृतराष्ट्र अपनी पत्नी गान्धारी और विदुरके साथ गये हैं। वहाँ वे त्रिकाल स्नान और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते हैं। अब उनके चित्तमें किसी प्रकारकी कामना नहीं है, वे केवल जल पीकर शान्तचित्तसे निवास करते हैं। आसन जीतकर प्राणोंको वशमें करके उन्होंने अपनी छहों इन्द्रियोंको विषयोंसे लौटा लिया है। भगवान्‌की धारणासे उनके तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणके मल नष्ट हो चुके हैं। उन्होंने अहंकारसे बुद्धिके साथ जोड़कर और उसे क्षेत्रज्ञ आत्मामें लीन करके उसे भी महाकाशमें घटाकाशके समान सर्वाधिष्ठान ब्रह्ममें एक कर दिया है। उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों और मनको रोककर समस्त विषयोंको बाहरसे ही लौटा दिया है और मायाके गुणोंसे होनेवाले परिणामोंको सर्वथा मिटा दिया है। समस्त कर्मोंका संन्यास करके वे इस समय ठूँठकी तरह स्थिर होकर बैठे हुए हैं; अत: तुम उनके मार्गमें विघ्नरूप मत बनना। धर्मराज। आजसे पाँचवें दिन वे अपने शरीरका परित्याग कर देंगे और वह जलकर भस्म हो जायगा। गार्हपत्यादि अग्नियोंके द्वारा पर्णकुटीके साथ अपने पतिके मृतदेहको जलते देखकर बाहर खड़ी हुई साध्वी गान्धारी भी पतिका अनुगमन करती हुई उसी आगमें प्रवेश कर जायँगी।

नारद बोले- अभी-अभी वो मुझे दिख रहे कि वो योगाग्निसे भस्म होकर जल रहे है लेकिन तुम वहां पहुंच नहीं पाओगे। धृतराष्ट्र वनमें चले गये, गान्धारी के साथ में गये है। वहांपर कन्दमूल खाकर जीवन व्यतीत कर रहे है एक दिन जंगल में आग लग गयी और उस आग में धृतराष्ट्र जल रहे है, सांस छोड़ दिया गान्धारी भी अपने पतिके साथ जल रही है।

धर्मराज। विदुरजी अपने भाईका आश्चर्यमय मोक्ष देखकर हर्षित और वियोग देखकर दुखित होते हुए वहाँसे तीर्थ-सेवनके लिये चले जायँगे। देवर्षि नारद यों कहकर तुम्बुरुके साथ स्वर्गको चले गये। धर्मराज युधिष्ठिरने नारदके उपदेशोंको हृदयमें धारण करके सबको त्याग दिया। यहांपर धृतराष्ट्र और गान्धारी का इतिहास खत्म होता है।

नित्य नियम अनुसार युधिष्ठिर गुरु वन्दनकूँ। आये, देखे नहीं, विदुर अरु कुरुनन्दनकूँ॥
सुनि सञ्जयते वृत्त बहुत रोये पछिताये। आये नारद समाचार सब सत्य सुनाये॥
ताऊ, ताई तव चाचा, सप्त स्त्रोत सब जायँगे। पाप पुण्यतें पृथक हैं, पुण्य परम पद पायँगे॥

१४) महाराज युधिष्ठिरको अपशकुन और अर्जुनका द्वारिकासे लौटना व पाण्डवोंका महाप्रयाण

धर्मराज ने सुन्यो जब, कृष्ण गए निज धाम। कियौ हिमालय गमन तब, तज करके सब काम॥

युधिष्ठिरने बोले- भीम, अर्जुन को गये बहुत दिन हुए न कोई समाचार है, न कोई बात है और इन दिनों मुझे कुछ अपशकुन से लग रहा है, मुझे दिनमें तारे दिखाई दे रहे है। गायें मुझे बाएं करके निकल जाती है, गधे मुझे दायें करके निकल जाती है, रोते हुए सियार और कुत्ते दिखते है, लोमड़ियां है वो मुख से आग उगल रही है इस तरह के तरह-तरह के अपशकुन हो रहे हैं। प्रजा मुझे कुछ सही नहीं दिख रही है, अत्याचार बढ़ते जा रहे हैं। दिन-प्रतिदिन अपराधोंकी शिकायतें आती है। पृथ्वीने अपना दाना-अनाज देना कम कर दिया है, अकाल जैसा लग रहा है। मुझे कुछ शान्ति नहीं प्राप्त हो रही है क्या बात है? कोई अपशकुन तो नहीं हो रहे है। सर्वमंगल तो है ना कहीं कुछ उत्पात तो नहीं हो रही है ना, उल्कापात हो रही है क्या बात है? बस चर्चा कर ही रहे थे।

युधिष्ठिरने देखा कालकी गति बड़ी विकट हो गयी है। जिस समय जो ऋतु होनी चाहिये, उस समय वह नहीं होती और उनकी क्रियाएँ भी उल्टी ही होती हैं। लोग बड़े क्रोधी, लोभी और असत्यपरायण हो गये हैं। अपने जीवन-निर्वाहके लिये

लोग पापपूर्ण व्यापार करने लगे हैं। सारा व्यवहार कपटसे भरा हुआ होता है, यहाँतक कि मित्रतामें भी छल मिला रहता है; पिता-माता, सगे-सम्बन्धी, भाई और पति-पत्नीमें भी झगड़ा-टंटा रहने लगा है। कलिकालके आ जानेसे लोगोंका स्वभाव ही लोभ, दम्भ आदि अधर्मसे अभिभूत हो गया है और प्रकृतिमें भी अत्यन्त अरिष्टसूचक अपशकुन होने लगे हैं।

कहें युधिष्ठिर, भीम। भयानक काल भयो है। आयो अर्जुन नहीं, द्वारिकामाहिं गयी हैं।
भये धर्म विपरीति रीत कुलकी सब त्यागे। जाइँ पुत्र, परलोक पिता-माताके आगे।
पिता-पुत्र, भाई सगे, पति पत्नीमें कलह नित। असगुन नित नूतन निरखि, चंचल होवे मोर चित्त।

धर्मराज युधिष्ठिर अपने छोटे भाई भीम से कहते हैं- हे पुरुषसिंह। तुम इन आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक भयंकर उत्पात की ओर तो देखो। ये सब उत्पात निकट भविष्य में आनेवाले किसी ऐसे भय के सूचक हैं, जो कि हमारी बुद्धि को विमोहित करने वाला होगा?

धर्मराज का मुखमंडल मलीन हो गया और यह सब देखकर युधिष्ठिरने अपने छोटे भाई भीमसे कहा।

फरके बाई बाहु हृदयमें कम्पन होवै। करि मुँह मेरी ओर श्वान निरभय हैं रोवै॥
उल्लू और कपीत मृत्युके दूत कहावें। करकश कठिन कराल शब्द करि हृदय हिलावें॥
लीला विग्रह त्यागि का, श्याम धाम गमने कहीं। करूँ कहा चित दुखित अति, अरजुन हू आयो नहीं॥

हे भीम। ये समस्त देश, ग्राम, पुर, उद्यान, धातुओं की खाने और ऋषियों आदि के पुण्याश्रम श्रीहीन तथा आनन्द विहीन हो गये। ये अनेक प्रकार के भयंकर-भयंकर अपशकुन न जाने हमें आगे कौन-सा दारुण दुःख दिखाने की सूचना दे रहे हैं।

युधिष्ठिरने कहा- भीम। अर्जुनको हमने द्वारिका इसलिये भेजा था कि वह वहाँ जाकर, पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण क्या कर रहे हैं- इसका पता लगा आये और सम्बन्धियोंसे मिल भी आये। तबसे सात महीने बीत गये; किंतु तुम्हारे छोटे भाई अबतक नहीं लौट रहे हैं। मैं ठीक-ठीक यह नहीं समझ पाता हूँ कि उनके न आनेका क्या कारण है। कहीं देवर्षि नारदके द्वारा बतलाया हुआ वह समय तो नहीं आ पहुँचा है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने लीला-विग्रहका संवरण करना चाहते हैं? उन्हीं भगवान्‌की कृपासे हमें यह सम्पत्ति, राज्य, स्त्री, प्राण, कुल, संतान, शत्रुओंपर विजय और स्वर्गादि लोकोंका अधिकार प्राप्त हुआ है। भीम। तुम तो मनुष्योंमें व्याघ्रके समान बलवान हो; देखो तो सही आकाशमें उल्कापातादि, पृथ्वीमें भूकम्पादि और शरीरोंमें रोगादि कितने भयंकर अपशकुन हो रहे हैं। इनसे इस बातकी सूचना मिलती है कि शीघ्र ही हमारी बुद्धिको मोहमें डालनेवाला कोई उत्पात होनेवाला है। मेरी बायी जाँघ, आँख और भुजा बार-बार फड़क रही हैं। हृदय जोरसे धड़क रहा है। अवश्य ही बहुत जल्दी कोई अनिष्ट होनेवाला है। यह सियारिन उदय होते हुए सूर्यकी ओर मुँह करके रो रही है। अरे। उसके मुँहसे तो आग भी निकल रही है। यह कुत्ता बिलकुल निर्भय-सा होकर मेरी ओर देखकर चिल्ला रहा है। भीम। गौ आदि अच्छे पशु मुझे अपने बायें करके जाते हैं और गधे आदि बुरे पशु मुझे अपने दाहिने कर देते हैं। मेरे घोड़े आदि वाहन मुझे रोते हुए दिखायी देते हैं। यह मृत्युका दूत पेडुखी, उल्लू और उसका प्रतिपक्षी कौआ रातको अपने कर्ण-कठोर शब्दोंसे मेरे मनको काँपते हुए विश्वको सूना कर देना चाहते हैं। दिशाएँ धुँधली हो गयी हैं, सूर्य और चन्द्रमाके चारों ओर बार-बार मण्डल बैठते हैं। यह पृथ्वी पहाड़के साथ काँप उठती है, बादल बड़े जोर-जोरसे गरजते हैं और जहाँ-तहाँ बिजली भी गिरती ही रहती है। शरीरको छेदनेवाली एवं धूलिवर्षासे अंधकार फैलानेवाली आँधी चलने लगी है। बादल बड़ा डरावना दृश्य उपस्थित करके सब ओर खून बरसाते हैं। देखो। सूर्यकी प्रभा मन्द पड़ गयी है। आकाशमें ग्रह परस्पर टकराया करते हैं। भूतोंकी घनी भीड़में पृथ्वी और अन्तरिक्षमें आग-सी लगी हुई है। नदी, नद, तालाब,

और लोगोंके मन क्षुब्ध हो रहे हैं। घीसे आग नहीं जलती। यह भयंकर काल न जाने क्या करेगा। बछड़े दूध नहीं पीते, गौएँ दुहने नहीं देतीं, गोशालामें गौएँ आँसू बहा-बहाकर रो रही हैं। बैल भी उदास हो रहे हैं। देवताओंकी मूर्तियाँ रो-सी रही हैं, उनमेंसे पसीना चूने लगता है और वे हिलती-डोलती भी हैं। ये देश, गाँव, शहर, बगीचे, खानें और आश्रम श्रीहीन और आनन्दरहित हो गये हैं। पता नहीं ये हमारे किस दुःखकी सूचना दे रहे हैं। इन बड़े-बड़े उत्पातोंको देखकर मैं तो ऐसा समझता हूँ कि निश्चय ही यह भाग्यहीना भूमि भगवानके उन चरणकमलोंसे, जिनका सौन्दर्य तथा जिनके ध्वजा, वज्र अंकुशादि विलक्षण चिन्ह और किसीमें भी कहीं भी नहीं हैं, रहित हो गयी है। इतना कहते-कहते धर्मराज अत्यन्त चिंतात्म होकर आँसू बहाने लगे। उनका मुख मण्डल मलीन हो गया और वे अत्यन्त ही विषादयुक्त होकर लम्बी-लम्बी साँसे छोड़ने लगे।

त्याग्यो सबने धर्म कर्म कछु करें न हितकर। पालें पापी पेट पाप करि सबहिं नारि नर।।
करें नहीं विश्वास परस्पर प्रेम न राखें। तनिक द्रव्यके हेतु हाल मिथ्या सब भाखें।।
निरखि नित्य उतपात अति, मन मलीन मेरो भयो। कपटबन्धु कलिकाल का, धरा धामपै छा गये।।
गैया रोवें नित्य घास घोड़ा नहिं खावें। बहे वायु बीभत्स, रक्त बादल बरसावें।।
पृथिवी, प्रेत, पिशाच, पाप प्राननितें पूरन। भई गई शुभ कान्ति, लड़े नभमें सब ग्रहगन।।
देव मूर्ति मुख मलिन करि, अश्रुबिन्दु बरसावतीं। अति अपशकुन जनावतीं, दुखद दृश्य दिखलावतीं।।

सूतजी बोले- शौनकजी। राजा युधिष्ठिर इन भयंकर उत्पातोंको देखकर मन-ही-मन चिन्तित हो रहे थे कि द्वारिकासे लौटकर अर्जुन आये। युधिष्ठिरने देखा, अर्जुन इतने आतुर हो रहे हैं जितने पहले कभी नहीं देखे गये थे। मुँह लटका हुआ हैं, कमल-सरीखे नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं और शरीरमें बिलकुल कान्ति नहीं है। उनको इस रूपमें अपने चरणोंमें पड़ा देखकर युधिष्ठिर घबरा गये। देवर्षि नारदकी बातें याद करके उन्होंने सुहृदोंके सामने ही अर्जुनसे पूछा।

धर्मराज भयभीत भये अर्जुन तहँ आये। मुखमण्डल अति मलिन दुखित चिन्तित घबराये।।
सबई हर्षित भये नहीं अर्जुन हरषाये। पकरि पैर गिरि परै, बचन नहिं कछू सुनाये।।
बार-बार पूछें नृपति, बन्धु बताओ बात सब। सम्बन्धी सब सुखी हैं? कहो तहाँतें चले कब।।

सूतजी बोले- हे ब्रह्मन। जिस समय महाराज युधिष्ठिर मन-ही-मन दुखित हुए इन उत्पातों को देखकर चिन्तित थे और उनके ही सम्बन्ध में सोच विचार कर रहे थे उसी समय द्वारिकापुरी से लौटकर कपिध्वज श्री अर्जुन वहाँ आ गये।

इतने में अर्जुन आता है- मुख म्लान। रोया हुआ चेहरा। जैसे ही अर्जुन आया युधिष्ठिर बोले- अर्जुन तुम द्वारिका से आ रहे हो बहुत दिन लगा दिये वहां सब कुशल तो है ना, माता देवकी, वसुदेवजी, शूरसेन, सांब, उनके पुत्र प्रद्युम्न, अनिरूद्ध, सब महारानियां सर्व कुशल है ना, ब्राह्मणोंका बराबर स्वागत हो रहा है ना? इतने सब प्रश्न पूछते ही अर्जुन ढांव-ढांव करके जोर-जोरसे रोने लग गया है। युधिष्ठिर बोले- अर्जुन हुआ क्या है? अर्जुन बोलो- अर्जुन बोलो। अर्जुन हिचकियां ले रहा है बोल नहीं पा रहा है। युधिष्ठिर पूछते है- अर्जुन तुमने कोई अन्यायोचित कर्म तो नहीं कर दिया जिसकी वजह से तुम्हारा मुखम्लान है, कोई तुम अगम्या स्त्री के साथ समागम तो नहीं कर गये, कोई तुमने ऐसा कहां हुआ वचन जो तुम पाल नहीं सके ऐसा तो नहीं हो गया? क्या हुआ तुम्हारे साथ? क्यों ऐसा कर रहे हो? किसीको दान देनेका वादा किया और तुम्हारे पास दान देनेके लिये पर्याप्त संपत्ति नहीं रही हो? अर्जुन बोला- नहीं। युधिष्ठिर बोले- फिर हुआ क्या? मुझे तो पहले से ही सब अपशकुन दिख रहे है। मेरे कृष्ण तो स्वकुशल है ना।

युधिष्ठिरने कहा- भाई। द्वारिकापुरीमें हमारे स्वजन-सम्बन्धी मधु, भोज, दशार्ह, आर्ह, सात्वत, अन्धक और वृष्णिवंशी

यादव कुशलसे तो हैं? हमारे माननीय नाना शूरसेनजी प्रसन्न हैं? अपने छोटे भाईसहित मामा वसुदेवजी तो कुशलपूर्वक हैं? उनकी पत्नियाँ हमारी मामी देवकी आदि सातों बहिनें अपने पुत्रों और बहुओंके साथ आनन्दसे तो हैं? हमारी मामियां, धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी ये सातों बड़ी मामी और कंसा, कंसवती, कमा, शूरमू और राष्ट्रपालिका आदि छोटी मामी अपने पुत्र और पुत्रवधुओं के सहित सुखपूर्वक तो हैं।

जिनका पुत्र कंस बड़ा ही दुष्ट था, वे राजा उग्रसेन अपने छोटे भाई देवकके साथ जीवित तो हैं न? हृदीक, उनके पुत्र कृतवर्मा, अक्रूर, जयन्त, गद, सारण तथा शत्रुजित आदि यादव वीर सकुशल हैं न? यादवोंके प्रभु बलरामजी तो आनन्दसे हैं? वृष्णिवंशके सर्वश्रेष्ठ महारथी प्रद्युम्न सुखसे तो हैं? युद्धमें बड़ी फुर्ती दिखलानेवाले भगवान् अनिरुद्ध आनन्दसे हैं न? सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवतीनन्दन साम्ब और अपने पुत्रोंके सहित ऋषभ आदि भगवान् श्रीकृष्णके अन्य सब पुत्र भी प्रसन्न हैं न? भगवान् श्रीकृष्णके सेवक श्रुतदेव, उद्धव आदि और दूसरे सुनन्द-नन्द आदि प्रधान यदुवंशी, जो भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके बाहुबलसे सुरक्षित हैं, सब-के-सब सकुशल हैं न? हमसे अत्यन्त प्रेम करनेवाले वे लोग कभी हमारा कुशल-मंगल भी पूछते हैं?

भक्तवत्सल ब्राह्मणभक्त भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्वजनोंके साथ द्वारिकाकी सुधर्मा-सभामें सुखपूर्वक विराजते हैं न? वे आदिपुरुष बलरामजीके साथ संसारके परम मङ्गल, परम कल्याण और उन्नतिके लिये यदुवंशरूप क्षीरसागरमें विराजमान हैं। उन्हींके बाहुबलसे सुरक्षित द्वारिकापुरीमें यदुवंशीलोग सारे संसारके द्वारा सम्मानित होकर बड़े आनन्दसे विष्णुभगवानके पार्षदोंके समान विहार कर रहे हैं। सत्यभामा आदि सोलह हजार रानियाँ प्रधानरूपसे उनके चरणकमलोंकी सेवामें ही रत रहकर उनके द्वारा युद्धमें इन्द्रादि देवताओंको भी हराकर इन्द्राणीके भोगयोग्य तथा उन्हींकी अभीष्ट पारिजातादि वस्तुओंका उपभोग करती हैं। यदुवंशी वीर श्रीकृष्णके बाहुदण्डके प्रभावसे सुरक्षित रहकर निर्भय रहते हैं और बलपूर्वक लायी हुई बड़े-बड़े देवताओंके बैठने योग्य सुधर्मा सभाको अपने चरणोंसे आक्रान्त करते हैं।

भाई अर्जुन। यह भी बताओ कि तुम स्वयं तो कुशलसे हो न? मुझे तुम श्रीहीन-से दीख रहे हो; वहाँ बहुत दिनोंतक रहे, कहीं तुम्हारे सम्मानमें तो किसी प्रकारकी कमी तो नहीं हुई? किसीने तुम्हारा अपमान तो नहीं कर दिया? कहीं किसीने दुर्भावपूर्ण अमङ्गल शब्द आदिके द्वारा तुम्हारा चित्त तो नहीं दुखाया? अथवा किसी आशासे तुम्हारे पास आये हुए याचकोंको उनकी माँगी हुई वस्तु अथवा अपनी ओरसे कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके भी तुम नहीं दे सके? तुम सदा शरणागतोंकी रक्षा करते आये हो; कहीं किसी भी ब्राह्मण, बालक, गौ, बूढ़े, रोगी, अबला अथवा अन्य किसी प्राणीका, जो तुम्हारी शरणमें आया हो, तुमने त्याग तो नहीं कर दिया? कहीं तुमने अगम्या स्त्रीसे समागम तो नहीं किया? अथवा गमन करनेयोग्य स्त्रीके साथ असत्कारपूर्वक समागम तो नहीं किया? कहीं मार्गमें अपनेसे छोटे अथवा बराबरीवालोंसे हार तो नहीं गये? अथवा भोजन करानेयोग्य बालक और बूढ़ोंको छोड़कर तुमने अकेले ही तो भोजन नहीं कर लिया? मेरा विश्वास है कि तुमने ऐसा कोई निन्दित काम तो नहीं किया होगा, जो तुम्हारे योग्य न हो। हो-न-हो अपने परम प्रियतम अभिन्नहृदय परम सुहृद् भगवान श्रीकृष्णसे तुम रहित हो गये हो। इसीसे अपनेको शून्य मान रहे हो। इसके सिवा दूसरा कोई कारण नहीं हो सकता, जिससे तुमको इतनी मानसिक पीड़ा हो।

अरजुन बोले नहीं, बहुत बिलपें पछितावें। धरमराज पुचकारि, प्यार करि धीर बँधावें॥
दुखको कारन बन्धु। शोक तजि मोई बताओ। यदुनन्दनके सभी सुखद संवाद सुनाओ॥
वचन कठिन काहू कहे, अथवा अपमानित भये। या तनु तजिके भुवनपति, नित्य धाम तो नहिं गये॥

अर्जुन अपने सखा कृष्णके विरह में कृश हो रहे थे। और युधिष्ठिर ने उनको इस शोकग्रस्त मुद्रा में देखकर अनेक प्रकारकी आशंकाएँ करते हुए बार-बार पूछा- अर्जुन उनकी किसी बातका उत्तर नहीं दे सके। उनको बार-बार कृष्णकी याद आ रही थी। उन्होंने शोकको वेग से रोका और अपने ज्येष्ठ भ्राता महाराज युधिष्ठिर से बोले- अर्जुन रोने लगा और बोला- महाराज हम जिनके सहारे थे, जिस गाण्डीव धनुष के बलबौते पर मैं खड़ा था, जो शक्ति मेरे में थी वो आज कृष्ण स्वधाम चले गये। वो अब यहां नही रहे।

पुरुष बली नहीं होत है समय होत बलवान। भीलन लूटी गोपिका वही अर्जुन वही बाण।।

अर्जुन बोले- राजन जिसकी कृपा से, द्रौपदी के स्वयंवर के समय महाराज द्रुपद के यहां एकत्र हुए कामोन्मत्त राजाओं का तेज और प्रभाव मैंने क्षीण कर दिया था और धनुष चढ़ाकर मत्स्यभेद करके त्रैलोक्य सुन्दरी द्रौपदी को हम सबने प्राप्त किया था। यही श्यामसुन्दर हम सबको बिलखता छोड़कर अपने स्वधाम वैकुण्ठ को चले गये।

जिनकी कृपा कटाक्ष पाइ हम भये सुखारे। राजन् कैसे कहूँ श्याम निजधाम पधारे।।
जिनके प्रेम प्रसाद प्रिया कृष्णा सी पाई। यन्त्र मत्स्यकूँ बेधि द्रुपदपुर लही बड़ाई।।
काममत्त सब नृपनिके, सिर पर पैर जमाइकें। द्रुपदसुता हमने वरी, गये अनाथ बनाइकें।।

कुन्ती धड़ामसे गिरी। युधिष्ठिर व्याकुल हो गये। अब युधिष्ठिर ने सोचा- अब कृष्ण चले गये इस जीवन का क्या फायदा है? नहीं, अब जीवन बेकार है। चाहे राजगद्दी क्या, राजपाठ, धन-दौलत क्या, महारानियां।

दुख को वारापार न अर्जुन कितहू पावै। कृष्ण कृपाकूँ सुमिरि, नयनतें नीर बहावैं।।
नाथ। सारथी सदा सुहृद सम्बन्धी बनिकें। नित नित नेह बढ़ाइ, छाँड़ि गमने छल करिकें।।
हाय। प्रभो। अब जायँ कित, इत उत नहिं सन्तोष सुख। अश्रु पौंछि बोले वचन, तात बतातें बढ़्यो दुख।।

अर्जुन अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज से श्रीकृष्ण-वियोग का वर्णन करते हुए कह रहे हैं- राजन्। जिसकी कृपा से, द्रौपदी के स्वयम्बर के समय महाराज द्रुपद के यहाँ एकत्र हुए कामोन्मत्त राजाओं का तेज और प्रभाव मैंने क्षीण कर दिया था और धनुष चढ़ाकर मत्स्य भेद करके त्रैलोक्य सुन्दरी द्रौपदी को हम सबने प्राप्त किया था। (वे ही श्यामसुन्दर हम सबको बिलखता छोड़कर अपने स्वधाम वैकुण्ठ को पधार गये)।

अर्जुन बोले- महाराज। मेरे जिस प्रबल पराक्रमसे बड़े-बड़े देवता भी आश्चर्यमें डूब जाते थे, उसे श्रीकृष्णने मुझसे छीन लिया। जैसे यह शरीर प्राणसे रहित होनेपर मृतक कहलाता है, वैसे ही उनके क्षणभरके वियोगसे यह संसार अप्रिय दीखने लगता है। उनके आश्रयसे द्रौपदी-स्वयंवरमें राजा द्रुपदके घर आये हुए कामोन्मत्त राजाओंका तेज मैंने हरण कर लिया, धनुषपर बाण चढ़ाकर मत्स्यवेध किया और इस प्रकार द्रौपदीको प्राप्त किया था। उनकी सन्निधिमात्रसे मैंने समस्त देवताओंके साथ इन्द्रको अपने बलसे जीतकर अग्निदेवको उनकी तृप्तिके लिये खाण्डव वनका दान कर दिया और मय दानवकी निर्माण की हुई, अलौकिक कलाकौशलसे युक्त मायामयी सभा प्राप्त की और आपके यज्ञमें सब ओरसे आ-आकर राजाओंने अनेकों प्रकारकी भेंटें समर्पित कीं।

राजन्। अति कमनीय कृष्णकी अकथ कहानी। प्रेमामृतमें सनी सरस सुखदायक बानी।।
खाण्डवको करि दाह अग्नि भर पेट अघाये। दोउनिकूँ वर देन देवपति दौड़े आये।।
मैंने माँगे अस्त्र वर, माँग्यो हरि वर हिये भरे। अर्जुनके संग मित्रता, मेरी नित बढ़िबो करे।।

दस हजार हाथियोंकी शक्ति और बलसे सम्पन्न आपके इन छोटे भाई भीमने उन्हींकी शक्तिसे अभिमानी जरासन्धका वध किया था; तदनन्तर उन्हीं भगवान्ने उन बहुत-से राजाओंको मुक्त किया, जिनको जरासन्धने महाभैरव-यज्ञमें बलि

चढ़ानेके लिये बंदी बना रखा था। उन सब राजाओंने आपके यज्ञमें अनेकों प्रकारके उपहार दिये थे।

राजसूयके समय सभी भूपति वश आये। जरासन्ध नहिं नम्यो आप अतिशय घबराये।।
मगधेश्वरके दमन करनकी युक्ति बताई। अभय करत वा समय श्याम सब कहें सुझाई।।
राजन्। अर्जुन, भीम, मैं तीनिहु गिरि ब्रज जायँगे। जरासन्ध कूँ युक्तितैं, मारि मगधतें आयँगे।।

विलाप करते हुए अर्जुन कह रहे हैं- जिस जरासन्ध में दस हजार हाथियों का बल था, जिसके पादों को पूजनीय पाठ मानकर समस्त राजागण उसे शिर से प्रणाम करते थे, उसी को आपके छोटे भाई मेरे पूजनीय भाई-भीमसेन ने जिनके प्रभाव से उसका वध किया। जरासन्ध के द्वारा भैरव यज्ञ में बलि दिये जाने के निमित्त बनाये हुए भूपतियों को जिन्होंने बन्धन मुक्त किया और सब आपके यज्ञ में भाँति-भाँति की भेटें लेकर उपस्थित हुए। (वे ही श्यामसुन्दर हमें त्यागकर स्वधाम पधार गये)।

राजन्। आपकी प्यारी पत्नी की वह पवित्र अलकावली जो राजसूय यज्ञ के समय महाभिषेक मन्त्रपूत जल के द्वारा भिगाई गई थी, उसे दुर्योधनादि दुष्टों की सम्मति से दु:शासन ने खोलकर भरी सभा में पकड़ा था। उस समय स्मरण करते ही श्रीकृष्ण वहाँ पधारे। आँखों में अश्रु भरकर कृष्णा उनके चरण-कमलों पर गिर पड़ी। उस विपत्ति से द्रौपदी को बचाया ही नहीं किन्तु उन दुष्टों की समस्त स्त्रियों को विधवा बनाकर सभी के केश खोल दिये। (वे ही श्यामसुन्दर हमें शोक-सागर में निमग्न करके स्वधाम पधार गये)।

भरी सभामें आइ चीरकूँ अक्षय कीन्हों। दुखित दयानिधि भये, दण्ड दुष्टनिकूँ दीन्हों।।
जिन कच खींचे वधू बनीं विधवा उन सबकी। खोलें डोलें केश, प्रतिज्ञा पूरी तबकी।।
सदा दुखी दुखमें रहे, सुखी सबनि सुख दे भये। किन्तु अकेले अन्तमें, तनु तजि निजपुर चलि गये।।

महारानी द्रौपदी राजसूय यज्ञके महान् अभिषेकसे पवित्र हुए अपने उन सुन्दर केशोंको, जिन्हें दुष्टोंने भरी सभामें छूनेका साहस किया था, बिखेरकर तथा आँखोंमें आँसू भरकर जब श्रीकृष्णके चरणोंमें गिर पड़ी, तब उन्होंने उसके सामने उसके उस घोर अपमानका बदला लेनेकी प्रतिज्ञा करके उन धूर्तोंकी स्त्रियोंकी ऐसी दशा कर दी कि वे विधवा हो गयीं और उन्हें अपने केश अपने हाथों खोल देने पड़े। अर्जुन बोले, हजार शिष्यों के साथ भोजन करनेवाले, क्रोधी दुर्वासा ऋषि हमारे शत्रुओं के बहकाने से द्रौपदी के भोजन के अनन्तर वन में हमारे अतिथि बने। उस महान कष्ट से जिन्होंने वन में पधारकर बटलोई में लगे तनिक से शेष रहे शाक को खाकर समस्त त्रिलोकी को तृप्त कर दिया? इससे जल में स्नान करते हुए समस्त मुनि भी तृप्त होकर चले गये। उस समय जिन्होंने हमारी रक्षा की वे शरणागत रक्षक श्यामसुन्दर सदा के लिये हमें छोड़ गये।

मूर्तिमान जो कोप तपस्वी दुर्वासा मुनि। शाप दिवावन शत्रु पठाये बन वैभव सुनि।।
अक्षय रविको पात्र खाइ मलि कृष्णा निबटी। अतिथि भये ले शिष्य सबनि चित चिन्ता चिपटी।।
दु:खमें, सुखमें, शोकमें, है जाकी गोविन्द गति। श्याम पुकारे करुण स्वर, भई द्रौपदी दुखित अति।।

वनवासके समय हमारे वैरी दुर्योधनके षडयन्त्रसे दस हजार शिष्योंको साथ बिठाकर भोजन करनेवाले महर्षि दुर्वासाने हमें दुस्तर संकटमें डाल दिया था। दुष्टोंको प्रसन्नता पराये सुख के नाश से ही होती है। उस समय उन्होंने द्रौपदीके पात्रमें बची हुई शाककी एक पत्तीका ही भोग लगाकर हमारी रक्षा की। उनके ऐसा करते ही नदीमें स्नान करती हुई मुनिमण्डलीको ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनकी तो बात ही क्या, सारी त्रिलोकी ही तृप्त हो गयी है।

सुनत प्रियाकी टेर बेर नहिं करी पधारे। अति भूखो कछु देहु आइ ये वचन उचारे।।
रोई कृष्णा पात्र लाइ आगे धरि दीन्हों। शाकपत्रकूँ पाइ तृप्त सबरो जग कीन्हों।।

न्हात मुनिनि फूले उदर, लेत डकार पलायँ सब। टारी वृहद विपत्ति जिनि, गये त्याग संसार अब।।

उनके प्रतापसे मैंने युद्धमें पार्वतीसहित भगवान् शंकरको आश्चर्यमें डाल दिया तथा उन्होंने मुझको अपना पाशुपत नामक अस्त्र दिया; साथ ही दूसरे लोकपालोंने भी प्रसन्न होकर अपने-अपने अस्त्र मुझे दिये। उनकी कृपासे मैं इसी शरीरसे स्वर्गमें गया और देवराज इन्द्रकी सभामें उनके बराबर आधे आसनपर बैठनेका सम्मान मैंने प्राप्त किया। उनके आग्रहसे जब मैं स्वर्गमें ही कुछ दिनोंतक रह गया, तब इन्द्रके साथ समस्त देवताओंने मेरी इन्हीं गाण्डीव धारण करनेवाली भुजाओंका निवातकवच आदि दैत्योंको मारनेके लिये आश्रय लिया। महाराज। यह सब जिनकी महती कृपाका फल था, भगवान श्रीकृष्ण इस धराको छोड़कर चले गये।

अर्जुन ने कहा- वनवास के समय किरात वेषधारी उमा सहित महेशजी को जिनकी कृपा से मैंने युद्ध में विस्मित बना दिया था और प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे अपना पाशुपत नामक अस्त्र दिया था यही नहीं अन्य सभी लोकपालों ने आकर अपने-अपने अस्त्र मुझे दिये। इस मनुष्य शरीर से ही जिनकी कृपा से मैं स्वर्ग में इन्द्र भवन में जाकर देवराज इन्द्र के आधे आसन पर बैठा था। वे श्यामसुन्दर हमें निराशा के गर्त में छोड़कर न जाने कहाँ अन्तर्धान हो गये?

महाराज। आप अपने पैतृक राज्य को लौटाने के लिये व्याकुल थे, किन्तु दुर्योधन के दुष्ट स्वभाव को स्मरण करे आप उससे बिना युद्ध किये राज्य लौटाने की आशा नहीं रखते थे। युद्ध का स्मरण आते ही आपके रोंगटे खड़े हो जाते। जब आदान, सन्धान, विसर्ग और संहार इन धनुर्विद्या के चारों चरणों के ज्ञाता भीष्म, द्रोण, कर्ण और अश्वत्थामा के बल, पराक्रम का आप स्मरण करते तो राज्य से सर्वथा हताश हो जाते। इनसे युद्ध में जीतने की आपको आशा नहीं थी। समस्त देवता भी मिलकर इन महाधनुर्धर वीरों को परास्त नहीं कर सकते थे, मनुष्यों की तो बात ही क्या। सिवाय कृष्ण कृपा के वहाँ मेरा और कोई आधार नहीं था। अब मैं लुटे हुए व्यापारी के समान, विष की थैली निकाले हुए सर्प के समान, पंख कटे पक्षी के समान, बल्ली और डाँड़ टूटी नौका के समान, दाँत और पंजे कटे सिंह के समान विवश हो गया। जिस पर देवकीनन्दन की दया है, जिसके ऊपर यदुनन्दन का अनुग्रह है उसके लिये कोई कार्य असम्भव नहीं।

यह सब श्यामसुन्दर की ही कृपा का फल है। वे ही मुझे खर से उतारकर ऐरावत पर चढ़ा सकते हैं, वे ही तृण से सुमेरु बनाने में समर्थ है। जिन पर उनकी कृपा है, उसके लिये स्वर्ग की तो बात ही क्या ब्रह्मलोक भी तुच्छ है। लोक पितामह ब्रह्मा भी उनकी कृपा के लिये सदा उत्सुक रहते हैं।

राजन्। जिन्होंने हमें मनुष्य से देवता बनाया, निर्बल होने पर भी सबल बनाया। राज्य भ्रष्ट होने पर भी चक्रवर्ती पद प्रदान किया, असहाय होने पर भी जिन्होंने सब प्रकार की सहायता दी, अपने ज्येष्ठ भाई बलराम के मना करने पर भी जिन्होंने कौरवों को छोड़कर हमारा पक्ष लिया, नि:शस्त्र रहते हुए भी जिन्होंने मुझे निमित्त बनाकर समस्त शत्रु सेना का संहार कराया, वे ही आज हम सब की नौका को मझधार में डगमगाती छोड़कर न जाने कहाँ विलीन हो गये? अब यह संसार रहने योग्य नहीं रहा।

करत तपस्या भील वेष धरि शिव तहँ आये। जानि जङ्गली जाति, लड़्यो हरि अति हरषाये।।
भयो युद्ध घनघोर, भई नहिं कुठित मो मति। कृष्ण कृपातें उमा सहित, शिव तुप्ट भये अति।।
जिनकी कृपा प्रसादतें, नर तनुतें सुर पुर गयो। अर्ध सिंहासन हरि दयो, अब उन बिनु निरबल भयो।।

अर्जुन कहते हैं कि- राजन्। जब मैं स्वर्ग में कुछ दिन रहा तो वहाँ निवात कवच नामक दैत्य के वध के लिये सम्पूर्ण देवताओं के सहित देवराज ने मेरी गाण्डीव लक्षित भुजाओं का आश्रय लिया। मेरी भुजाओं में बल अपना निजी नहीं था, उन्हीं श्यामसुन्दर के बल से वे बलवती बनी हुई थीं। हे आजमीढ़वंशावतंश प्रभो। आज उन्हीं महामहिम भूमा पुरुष ने मुझे धोखा दिया। मुझे छोड़कर वे चले गये।

महाराज। कौरवोंकी सेना भीष्म-द्रोण आदि अजेय महामत्स्योंसे पूर्ण अपार समुद्रके समान दुस्तर थी, परंतु उनका आश्रय ग्रहण करके अकेले ही रथपर सवार हो मैं उसे पार कर गया। उन्हींकी सहायतासे मैंने शत्रुओंसे राजा विराटका सारा गोधन तो वापिस ले ही लिया, साथ ही उनके सिरोंपरसे चमकते हुए मणिमय मुकुट तथा अङ्गोंके अलंकारतक छीन लिये थे।

अर्जुन बोले- राजन्। जिन सुहृद श्यामसुन्दर की सहायता से अकेले ही रथ पर चढ़कर मैंने समुद्र के समान अत्यन्त दुस्तर अनन्त अपार कौरव सेना को बिना प्रयास ही पार किया था। सहस्त्रों सम्मोहित हुए शत्रुओं के सिर से अत्यन्त मूल्यवान मुकुट और पगड़ी उष्णीश आदि हर लिये थे, वे श्रीकृष्ण हमें छोड़कर चले गये।

कौरव और त्रिगर्त सन्धि करि करी चढ़ाई। करें वास अज्ञात जहाँ हम पाँचों भाई॥
भीष्म, कर्ण, गुरु द्रोण, सुयोधन सब मिलि करिकें। मत्स्य देश पै चढ़े चले गोधन बहु हरिकें॥
बृहन्नलातें सारथी, बन्यो हर्ष हियमें अमित। कहे उत्तरा सुघर पट, लावें मम गुड़ियान हित॥

वे ही भगवान वासुदेव हमें छोड़कर अपने धाम को पधार गये। अब मेरा न वह बल रहा न तेज। न वह शक्ति रही न साहस, अब तो मैं निर्बल और साहसहीन हो गया। राजन्। अब हमें भी उसी पथ का अनुसरण करना चाहिये। इतना कहते-कहते अर्जुन का कण्ठ रुद्ध हो गया।

अर्जुन कह रहे हैं- राजन्। जिन भगवान वासुदेव की भुजाओं के आश्रय में रहने से द्रोण, भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा, सुशर्मा, शल्य, जयद्रथ और बाल्हीक आदि बलवान वीरों के द्वारा छोड़े हुए अमित प्रभाववाले अमोघ अस्त्र, उसी प्रकार स्पर्श नहीं कर सके, जिस प्रकार दैत्यों द्वारा छोड़े हुए अस्त्र-शस्त्र नृसिंह भगवान के दास प्रह्लादजी को स्पर्श नहीं कर सके थे। वे ही श्यामसुन्दर अब मुझे दुर्बल बनाकर स्वधाम पधार गये।

राजन्। भगवान जब तक इस धराधाम पर विराजे तब तक कोई क्षण ऐसा नहीं बीता, जब उन्होंने हमारी सुधि न ली हो, हमें विपत्ति से न बचाया हो, हमें विपत्ति सागर तरने में सहारा न दिया हो। कंस को मारते ही उन्होंने तुरन्त चाचा अक्रूरजी को हमारे पास हमारी सुधि लेने भेजा। तब हम पितृहीन अनाथ बच्चे ही थे, हमने तब तक श्यामसुन्दर के दर्शन भी नहीं किये थे। तभी हम समझ गये, ये ही हमारे सर्वस्व हैं, हमारे सिर पर उन्हीं का हाथ सदा बना हुआ है।

जो मेरे रथ पर बैठकर सदा मेरी रक्षा करते रहे। शत्रुओं के तेज बल को हरते रहे और मुझे बाणों से बचाते रहे, आज वे मुझे बीच मझधार में तड़फता छोड़कर मेरी आँखों से ओझल हो गये। मेरे सामने से अदृश्य हो गये। उनके बिना मुझे सम्पूर्ण संसार सूना-सूना दिखायी देता है।

कौरवोंकी सेना भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य तथा अन्य बड़े-बड़े राजाओं और क्षत्रिय वीरोंके रथोंसे शोभायमान थी। उसके सामने मेरे आगे-आगे चलकर वे अपनी दृष्टिसे ही उन महारथी यूथपतियोंकी आयु, मन, उत्साह और बलको छीन लिया करते थे। द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, भूरिश्रवा, सुशर्मा, शल्य, जयद्रथ और बाल्हीक आदि वीरोंने मुझपर अपने कभी न चूकनेवाले अस्त्र चलाये थे; परंतु जैसे हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंके अस्त्र-शस्त्र भगवद्भक्त प्रल्हादका स्पर्श नहीं करते थे, वैसे ही उनके शस्त्रास्त्र मुझे छूतक नहीं सके। यह श्रीकृष्णके भुजदण्डोंकी छत्रछायामें रहनेका ही प्रभाव था। श्रेष्ठ पुरुष संसारसे मुक्त होनेके लिये जिनके चरणकमलोंका सेवन करते हैं, अपने-आपतकको दे डालनेवाले उन कृष्णको मुझ दुर्बुद्धिने सारथीतक बना डाला। अहा। जिस समय मेरे घोड़े थक गये थे और मैं रथसे उतरकर पृथ्वीपर खड़ा था, उस समय बड़े-बड़े महारथी शत्रु भी मुझपर प्रहार न कर सके; क्योंकि श्रीकृष्णके प्रभावसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी। महाराज। माधवके उन्मुक्त और मधुर मुसकानसे युक्त, विनोदभरे एवं हृदयस्पर्शी वचन, और उनका मुझे पार्थ, अर्जुन, सखा, कुरुनन्दन आदि कहकर पुकारना, मुझे याद आनेपर मेरे हृदयमें उथल-पुथल मचा दी। सोने, बैठने, टहलने और अपने

सम्बन्धमें बड़ी-बड़ी बातें करने तथा भोजन आदि करनेमें हम प्राय: एक साथ रहा करते थे। किसी-किसी दिन मैं व्यंग्यसे उन्हें कह बैठता, मित्र। तुम तो बड़े सत्यवादी हो। उस समय भी वे महापुरुष अपनी महानुभावताके कारण, जैसे अपने मित्रका और पिता अपने पुत्रका अपराध सह लेता है उसी प्रकार, मुझ दुर्बुद्धिके अपराधोंको सह लिया करते थे। महाराज। जो मेरे सखा, प्रिय मित्र- नहीं-नहीं मेरे हृदय ही थे, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान्‌से मैं रहित हो गया हूँ। भगवान्‌की पत्नियोंको द्वारकासे अपने साथ ला रहा था, परंतु मार्गमें दुष्ट गोपोंने मुझे एक अबलाकी भाँति हरा दिया और मैं उनकी रक्षा नहीं कर सका। वही मेरा गाण्डीव धनुष है, वे ही बाण है, वही रथ है, वही घोड़े हैं और वही मैं रथी अर्जुन हूँ, जिसके सामने बड़े-बड़े राजा लोग सिर झुकाया करते थे। श्रीकृष्णके बिना ये सब एक ही क्षणमें नहींके समान सारशून्य हो गये।

अर्जुनने कहा- हाय। जिन पादपद्मों का ध्यान ज्ञानी पुरुष मोक्ष के निमित्त करते हैं। उन्हीं जगत के स्वामी को मुझ मन्दमति ने अपना सारथी बनाया, घोड़ों की रास पकड़कर रथ हँकवाया। जयद्रथ वध के दिन जब मेरे घोड़े थक गये थे, तब जिनकी आज्ञा से बीच युद्ध में दिव्यास्त्रों से सरोवर बनाकर मैं रथ से उतरकर पृथ्वी पर खड़ा हो गया था। उस समय शत्रु पक्ष के महारथी मिलकर मुझे मार सकते थे, किन्तु जिनके प्रभाव से मुग्ध चित्त होकर वे कुछ भी मेरा बिगाड़ न सके, वे ही श्यामसुन्दर आज मुझे छोड़कर चले गये।

वे कितने महान थे, उनकी महानता की बराबरी संसार में कौन कर सकता है। मैंने उन्हें जो बनाया बन गये, जो कराया वही किया। उनके उच्चारण में कितना स्वारस्य था। अब मुझसे इतने प्रेम से कौन बोलेगा? कौन इस प्रकार कह-कहकर मेरे उत्साह को बढ़ावेगा। वे बातें जब याद आती हैं, हृदय चूर-चूर हो जाता है, छाती फटने लगती है।

इस प्रकार हे भरतकुलभूषण, महाराज। भगवान ने कैसे-कैसे स्थानों में मेरी रक्षा की। कैसे-कैसे संकटों से मुझे बचाया। गर्भस्थ बालक की जैसे माता सावधानी से रक्षा करती है, उसी प्रकार वे मेरी सदा रक्षा किया करते थे। ऐसे जगत्पति को मैंने लोभवश, प्रशंसा और प्रतिष्ठा के लिये, क्षणमात्र के सम्मान के लिये युद्ध में सारथी बनाया। किन्तु अब मुझे प्रतीत हो गया कि वह मेरी विजय न होकर श्यामसुन्दर की विजय थी। उनके बिना मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं तो वही हूँ, किन्तु आज मुझे जंगली भीलों ने हरा दिया। श्रीकृष्ण के रहित होने पर मेरे धनुषबाण सब धरे-के-धरे ही रह गये। मेरे सभी अस्त्र-शस्त्र कुण्ठित हो गये। आज उस तपस्विनी का शाप सत्य हुआ। आज मैं नगण्य पुरुषों से पराजित हुआ। आज मेरा भी बढ़ा हुआ अभिमान चूर-चूर हो गया। राजन् अब आगे संसार में अपमान-ही-अपमान देखना हो, पापियों से पराजित होना हो, तब तो इस पृथ्वी पर रहिये, नहीं तो शीघ्र ही उत्तराखण्ड की ओर प्रस्थान करें। अब कलियुग आ गया, अब पृथ्वी रहने योग्य नहीं रही। इतना कहकर अर्जुन रोने लगे।

कहूँ कहाँ तक प्रभो। श्याम मोकूँ अपनायो। घोड़े घायल भये चले नहिं मैं घबरायो।।

अर्जुन कहते हैं- हे राजेन्द्र। जिसने ऐसे-ऐसे पराक्रम के कार्य किये वही मैं आज अपने परम प्रेमास्पद सखा और सुहृद श्रीकृष्ण से रहित होकर शून्यहृदय हो गया हूँ। महाराज। भगवान की स्त्रियों को यहाँ ला रहा था, सो मार्ग में ही मुझे नगण्य जंगली गोपों ने एक अबला स्त्री की भाँति परास्त कर दिया। उनके सामने मेरा कुछ भी पुरुषार्थ न चला।

प्रेम के वशीभूत होकर ही उन्होंने ऐसे आचरण किये, प्रेम में मर्यादा नहीं रहती। वहाँ शिष्टाचार के भी पैर नहीं जमने पाते। प्रेम में जो भी कुछ किया जाय सब उचित ही होता है। वहाँ अनुचित तो कुछ होता ही नहीं।

अर्जुन कहते हैं- राजन्। जिससे महाभारत समर विजय किया था वही मेरा यह गाण्डीव धनुष है, बाण भी वे ही अमोघ हैं और वही रथ तथा वे ही घोड़े हैं। उस रथ में बैठनेवाला वही मैं रथी अर्जुन हूँ, जिसके सम्मुख समस्त भूपति नतमस्तक

होते थे किन्तु केवल अपने सारथी श्यामसुन्दर के अभाव में, मैं उसी प्रकार क्षणभर में व्यर्थ वन गया जैसे राख में, किया हुआ हवन व्यर्थ हो जाता है। अथवा वंचक स्वामी की की हुई सेवा या ऊसर में बोया हुआ बीज जैसे निष्फल हो जाता है उसी प्रकार मैं उनके बिना व्यर्थ हो गया।

राजन्। जैसे धान निकलाने पर भूसी फिर वृक्ष नहीं पैदा कर सकती, जैसे पंख काटने पर पक्षी उड़ नहीं सकता, उसी प्रकार वही रथ, वही घोड़े, वही धनुष, वे ही बाण रहते हुए भी मैं अपने सारथी श्यामसुन्दर के बिना निकम्मा बन गया। मेरे बल, पौरुष, साहस, उत्साह, शौर्य, तेज, प्रभाव सब-के-सब नष्ट हो गये। विजय मुझे छोड़कर चली गयी। उसने मेरा परित्याग कर दिया। संसार को अभय दान देनेवाला मैं अभागा खड़ा-खड़ा इस दृश्य को अपनी आँखों से देखता रहा। उनके बहुत रोने और चिल्लाने पर भी उनकी रक्षा न कर सका। काल की गति कैसी क्रूर है? मैं मन-ही-मन दुःखी होता, वहाँसे चल दिया। जो स्त्रियाँ, बच्चे, सेवक शेष थे- उन सबको लेकर इन्द्रप्रस्थ में आया।

जीत्यो भारत युद्ध दिव्य रथ घोड़ा वे ई। धनुष वही गाण्डीव समय विजयी सर वे ई॥
विश्व विदित हौं रथी साज समान वही है। किन्तु नहीं है श्याम सारथी व्यर्थ सभी है॥
बुझी आगमहँ हवन जिमि, ऊसर बोयो बीज ज्यों। जिमि सेवा कंजूसकी, व्यर्थ होइ है गयो त्यों॥

राजन्। द्वारिका के जिन बन्धु-बान्धवों की आपने कुशल-क्षेम पूछी है, वे तो विप्र शाप से विमूढ़ बनकर, वारुणी नामक मदिरा पी कर और उसके मद में मतवाले होकर, बिना पहिचाने की भाँति परस्पर में मुस्टियों और ऐरकाओंसे एक-दूसरे के ऊपर प्रहार करके, सब-के-सब मर गये। उनमें से अब केवल ४-५ ही शेष रह गये हैं।

राजन पथकी व्यथा बताई सबरी हमने। पूछी जिनकी कुशल नाम ले-लेके तुमने॥
वे सब तो बनि मूढ़ परस्पर लरे बिचारे। मद पीकें मदमत्त भये मरि स्वर्ग सिधारे॥
जैसे जलचर दीर्घ लघु, खायँ बली निरबलनिकूँ। त्यों यदुवंशी लरि मरे, मरवावै हरि सबनिकूँ॥

राजन्। आपने द्वारिकावासी अपने जिन सुहृद् सम्बन्धियोंकी बात पूछी है, वे ब्राह्मणोंके शापवश मोहग्रस्त हो गये और वारुणी मदिराके पानसे मदोन्मत्त होकर अपरिचितोंकी भाँति आपसमें ही एक-दूसरेसे भिड़ गये और घूँसोंसे मार-पीट करके सबके-सब नष्ट हो गये। वास्तवमें यह सर्वशक्तिमान भगवान्‌की ही लीला है कि संसारके प्राणी परस्पर एक-दूसरेका पालन पोषण भी करते हैं और एक-दूसरेको मार भी डालते हैं। राजन्। जिस प्रकार जलचरोंमें बड़े जन्तु छोटोंको, बलवान् दुर्बलोंको एवं बड़े और बलवान भी परस्पर एक-दूसरेको खा जाते हैं, उसी प्रकार अतिशय बली और बड़े यदुवंशियोंके द्वारा भगवान्‌ने दूसरे राजाओंका संहार कराया। तत्पश्चात् यदुवंशियोंके द्वारा ही एकसे दूसरे यदुवंशीका नाश कराके पूर्णरूपसे पृथ्वीका भार उतार दिया। भगवान् श्रीकृष्णने मुझे जो शिक्षाएँ दी थीं, वे देश, काल और प्रयोजनके अनुरूप तथा हृदयके तापको शान्त करनेवाली थी; स्मरण आते ही वे हमारे चित्तका हरण कर लेती है।

कैसी क्रीड़ा करें कौतुकी श्याम खिलारी। विषयवासना बद्ध न समुझति बुद्धि बिचारी॥
जीव जीव सों करें जीवतैं पुनि मरवावें। करहिं परस्पर प्यार शत्रुता पुनि करवावें॥
महाराज। सब काज तजि, चलो विजन वन तनु तजो। राज पाट धनधाम गृह, छोरि मोरि मुख हरि भजो॥

भगवान के स्वधाम गमन और यदुवंशके संहारका वृत्तान्त सुनकर निश्चलमति युधिष्ठिरने स्वर्गारोहण निश्चय किया।

भयो भोर सब ओर शोक घर-घरमें छायो। कुन्ती माता सुनी द्वारिकाते सुत आये॥
स्वामी सरबस सगे बाहिरी प्रान हमारे। वे हरि हमकूँ त्यागि हाय। बैकुंठ पधारे॥

नाश भये यदुवंशको, लरि भिरिकें सब मरि गये। तनु त्याग्यो कुन्ती तबहिं, शोकाकुल सुत सब भये।।

अर्जुन के मुख से जब माता कुन्ती ने यदुकुल विनाश और भगवान् के स्वधाम पधारने की बात सुनी तो अधोक्षज भगवान् वासुदेव की अनन्य भक्ति द्वारा अपना चित्त स्थिर करके उन्होंने संसार से उपरामता ग्रहण कर ली अर्थात उन्होंने अपना पंचभौतिक शरीर त्याग दिया।

सुखकी घड़ियाँ बीतती हुई प्रतीत नहीं होतीं, सुख में समय छोटा हो जाता है, किन्तु दु:ख की घड़ियाँ बिताने पर भी नहीं बीततीं। वे पहाड़ से भी अधिक अगम्य हो जाती हैं, क्षण-क्षण कल्प के समान प्रतीत होने लगता है। रात्रि, प्रलय-रात्रि से भी बड़ी हो जाती है, किन्तु वही समय भगवत् चर्चा और कृष्ण नामगुण कीर्तन में बिताया जाय तो दु:ख भी सुख में परिणत हो जाता है। शोक भी आनन्द के रूप में बदल जाता है और समय सुखपूर्वक व्यतीत हो जाता है।

महारानी कुन्ती ने भी अर्जुनके मुखसे यदुवंशियोंके नाश और भगवानके स्वधाम-गमनकी बात सुनी। प्रेम में पग-पग पर अनिष्ट की ही आशंका होती है प्रेमी हृदय आशंका से भरा रहता है। और सुनकर अपना चित्त श्रीकृष्णमें लगा दिया और धम्से गिर पड़ी और इस जन्म-मृत्युरूप संसारसे अपना मुंह मोड़ लिया।

स्वर्ग सिधारी मातु धर्मसुत नहिं घबराये। धन्य-धन्य मम मातु विरह हरि प्रान गँवाये।।
अज्ञ अभागे हमीं ब्रिज सम हिये हमारे। सुनत श्याम सम्वाद प्रान हरि सँग न सिधारे।।
जलज मीन फणि वारि मणि, बिनु न रहे जीवित अधिक। मातु निबाह्यो प्रेम भल, हम जीवित अस नेह धिक।।

धर्मराजने परीक्षितका राज्याभिषेक करनेका निर्णय लिया। कृष्णके स्वधाम जाते ही कलियुगने राज्यमें प्रवेश किया।

धर्मराजने लख्यो, राष्ट्रमहँ दम्भ कपट अति। कलिकूँ आयो जानि, कीन्ह परलोक गमन अति।।
वन पर्वत नद नदी, ससागर सबरी पृथिवी। के कीन्हें सम्राट् परीक्षित, परम यशस्वी।।
हथिनापुरमहँ परीक्षित, वज्र ब्रजेन्द्र बनाइकें। गुणी पौत्र लखि मुकुटि निज, सिर धरि दयो सिहाइकें।।

इस प्रकार जब अर्जुनने सभी यादवों के संहार का समाचार सुनाया तो धर्मराज बड़े दु:खी हुए। इस पृथ्वी को भगवान के पादपद्मों से शून्य समझकर अब वे उस पर रहना नहीं चाहते थे। उन्होंने अपने आत्मज्ञान से बढ़े हुए शोक को रोका। चित्त को स्थिर किया और फिर सभी भाइयों से सम्मति करने लगे।

सभी सद्गुण तो भगवान के साथ ही उनके धाम को सिधार गये। अब तो सर्वत्र इस धराधाम पर अधर्म का ही साम्राज्य छा जायगा। सर्वत्र कहल का ही बोलबाला होगा। अत: हम सबको अब क्या करना चाहिये? मेरी तो अब एक क्षण भी जीने की इच्छा नहीं होती। मैं तो उत्तराखण्ड में जाकर इस शरीर का परित्याग करना चाहता हूँ। बोलो, आप सब भाइयों की क्या सम्मति है? सबने मिलकर कहा- जो आपकी गति वह हमारी गति। हमारी कोई आपसे पृथक सत्ता तो है नहीं। महाराज हम तो आपके अधीन हैं। जो निश्चय आप करेंगे, वही हम सबके लिये मंगल प्रद होगा।

चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिरने अपने ही समान गुणवाले विनयी, अपने पौत्र परीक्षित को समुद्र पर्यंत समस्त पृथ्वी के राज्य पर हस्तिनापुर में अभिषिक्त किया तथा भगवान के पौत्र अनिरुद्धजी के पुत्र बज्र की शूरसेन देश के राज्य पर मथुरापुरी में अभिषिक्त किया।

उसी समय निश्चय किया, राज पुरोहित को बुलाया, कृपाचार्य को बुलाया। महाराज युधिष्ठिर बोले- मैं अब राजपाठ छोड़ूंगा। जटाएं खोल दी, राजोचित वेश उतार दिया, मुकुट उतार दिया, भाइयोंको बुलाया और बोले मैं राजपाठ छोड़कर हिमालय प्रस्थान करूंगा। सब बोले- महाराज आप ऐसा करोगे तो हम क्या करें? युधिष्ठिर बोले- तुम राजयोग भोगो। सब

बोले- नहीं महाराज हम भी आपके साथ चलेंगे, पांचाली तैयार हो गयी, सुभद्रा द्वारिका में थी। युधिष्ठिर बोले- परीक्षित को बुलाओ। वो परीक्षित बारह-तेरह वर्ष का बालक था। पंद्रह वर्षमें उसकी शादी हो गयी थी। उत्तर अभिमन्युके साले उत्तरकी पुत्री इरावती के साथ में। महापरीक्षित उनके पुत्र हुआ जनमेंजय।

चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिरने अपने ही समान गुणवाले विनयी, अपने पौत्र परीक्षित को समुद्र पर्यंत समस्त पृथ्वी के राज्य पर हस्तिनापुर में अभिषिक्त किया तथा भगवान के पौत्र अनिरुद्धजी के पुत्र बज्र को शूरसेन देश के राज्य पर मथुरापुरी में अभिषिक्त किया।

परीक्षित को बुलाया और बोले इसका राज्याभिषेक करो। हस्तिनापुर का राजा परीक्षित होगा। परीक्षित रोने लगा बोला महाराज मैंने तो कभी राजगद्दी संभाली नहीं, मैं कैसे सम्भालूंगा? पांडव उत्तर दिशामें चले गये परीक्षित भी उत्तर दिशाको प्रणाम करके लौट पड़े।

कहें परीक्षित प्रभो। प्रजा पालन अति दुष्कर। हौं मति मन्द मलीन अज्ञ अतिशय हे नृपवर।।
कृपासिन्धु। करि कृपा काज सब मकोइ सिखावें। आश्रयहीन अनाथ नाथ। अबहीं न बनावें।।
कहु पिपीलिका हिमालय, कैसे निज सिर पर धरे। कस कपोत निज पक्षै, धरणीधर धारण करे।।

महाराज युधिष्ठिरने पृथ्वीके सम्राट पथ पर हस्तिनापुरमें परीक्षितको अभिषिक्त किया और मथुरा मंडल में वज्रनाभ का अभिषेक किया। इसके बाद युधिष्ठिर ने प्रजापत्य यज्ञ करके सभी अग्नियोंको अपने में लीन कर लिया और गृहस्थ धर्म को त्यागकर सन्यास ग्रहण किया। युधिष्ठिर बोले- परीक्षित तू बालक नहीं है जब राज्य संभालेगा पितायोग्य बन जायेगा। परीक्षित को राजगद्दीपर अभिषिक्त किया और राजपाठ छोड़कर पाँचो भाई, द्रौपदी हिमालय की तरफ प्रस्थान कर गये।

किये परीक्षित नृपति चले सब पांडव बनकूँ। राज-पाट परिवार सभीतें खेंच्यो मनकूँ।।
चीर वसन आहार तजे कच कुञ्चित खोलें। जड़ उन्मत्त समान न काहूतें कछु बोलें।।
जैसी बीती यामिनी, नहिं लोटति पुनि जाइकें। उत्तर दिशिकूँ चल दिये, हरि पद हियेमें लाइकें।।

महाराज युधिष्ठिर अपना सर्वस्व त्यागकर हृदय में परब्रह्म का चिन्तन करते हुए उसी उत्तर दिशा की ओर चल दिये, जिस दिशा में सदा से बहुत से महात्मा गये हैं और जहाँ जाकर कोई लौटता नहीं। उनके सब भाइयों ने भी जब देखा कि सभी प्रजा के लोगों पर कलियुग ने अपना आतंक जमा लिया है तो उन्होंने भी महाप्रस्थान का निश्चय करके धर्मराज का अनुगमन किया।

गृह, कुटुम्ब, राज्य, परिवार में जो अहंता ममता थी, उसका भी उन्होंने परित्याग कर दिया। उन्होंने अपनी वाणी को प्राण में प्राण को अपान में, अपान को मृत्यु करानेवाले समान में और उस समान को पञ्चभूतात्मक शरीर में लीन कर दिया। अब उन्हें अपने शरीर के प्राणों में और विश्व में व्याप्त प्राणों में कोई भी अन्तर दिखायी न देने लगा। वे अपने को अनित्य और नाशवान समझने लगे।

युधिष्ठिरने अपने सब वस्त्राभूषण आदि वहीं छोड़ दिये एवं ममता और अहंकारसे रहित होकर समस्त बन्धन काट डाले। उन्होंने दृढ़ भावनासे वाणीको मनमें, मनको प्राणमें, प्राणको अपानमें और अपानको उसकी क्रियाके साथ मृत्युमें, तथा मृत्युको पञ्चभूतमय शरीरमें लीन कर लिया। इस प्रकार शरीरको मृत्युरूप अनुभव करके उन्होंने उसे त्रिगुणमें मिला दिया, त्रिगुणको मूल प्रकृतिमें, सर्वकारणरूपा प्रकृतिको आत्मामें, और आत्माको अविनाशी ब्रह्ममें विलीन कर दिया। उन्हें यह अनुभव होने लगा कि यह सम्पूर्ण दृश्यप्रपञ्च ब्रह्मस्वरूप है। इसके पश्चात् उन्होंने शरीरपर चीर-वस्त्र धारण कर लिया,

अन्न-जलका त्याग कर दिया, मौन ले लिया और केश खोलकर बिखेर लिये। वे अपने रूपको ऐसा दिखाने लगे जैसे कोई जड़, उन्मत्त या पिशाच हो। फिर वे बिना किसीकी बाट देखे तथा बहरेकी तरह बिना किसीकी बात सुने, घरसे निकल पड़े। हृदयमें उस परब्रह्मका ध्यान करते हुए, जिसको प्राप्त करके फिर लौटना नहीं होता, उन्होंने उत्तर दिशाकी यात्रा की, जिस ओर पहले बड़े-बड़े महात्मा जन जा चुके हैं।

भीम, अर्जुन आदि युधिष्ठिरके छोटे भाइयोंने भी देखा कि अब पृथ्वीमें सभी लोगोंको अधर्मके सहायक कलियुगने प्रभावित कर डाला है; इसलिये वे भी श्रीकृष्णचरणोंकी प्राप्तिका दृढ़ निश्चय करके अपने बड़े भाईके पीछे-पीछे चल पड़े। उन्होंने जीवनके सभी लाभ भलीभाँति प्राप्त कर लिये थे। पाण्डवोंके हृदयमें भगवान श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके ध्यानसे भक्ति-भाव उमड़ आया, उनकी बुद्धि सर्वथा शुद्ध होकर भगवान श्रीकृष्णके उस सर्वोत्कृष्ट स्वरूपमें अनन्य भावसे स्थिर हो गयी; जिसमें निष्पाप पुरूष ही स्थिर हो पाते हैं। फलत: उन्होंने अपने विशुद्ध अन्त:करणसे स्वयं ही वह गति प्राप्त की, जो विषयासक्त दुष्ट मनुष्योंको कभी प्राप्त नहीं हो सकती। संयमी एवं श्रीकृष्णके प्रेमावेशमें मुग्ध भगवन्मय विदुरजीने भी अपने शरीरको प्रभास-क्षेत्रोंमें त्याग दिया। नगरवासी सब उनके पीछे-पीछे चलने लगे। तब कृपाचार्यने समझाकर कहा- महाराज युधिष्ठिर परमहंस हो गये हैं। उन्होंने मन से सभी कार्यों का, समस्त सम्बन्धों का परित्याग कर दिया हे। अब उनसे नगरमें लौट चलने की आशा करनी व्यर्थ है। अब इनको सुखपूर्वक जाने दो। इनके मार्ग में विघ्न उपस्थित न करो।

पाण्डव महाप्रस्थान का निश्चय करके नगर से निकले थे। महाप्रस्थान उसे कहते हैं, बिना कुछ खाये-पिये, बिना विश्राम लिये उत्तराखण्ड की ओर चलते ही रहें। जब तक शरीर-पात न हो जाय तब तक बिना किसी की ओर देखे, बिना कोई शारीरिक क्रिया करे, आगे बढ़ते ही जायँ। पाण्डव सभी धर्मात्मा थे। उन्होंने अपनी बुद्धि में पाप को कभी स्थान नहीं दिया था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वे भगवान् वासुदेव के अनन्य भक्त थे। उनकी आनन्द-घन-नन्द-नन्दन श्यामसुन्दर की चरणारविन्दों में अनपायिनी अहैतुकी भक्ति थी, अत: उन्हें महाप्रस्थान में न कोई शारीरिक कष्ट हुआ न मानसिक। वे संसार से उदासीन बने हुए, बिना एक दूसरे की ओर देखे, आगे बढ़े जा रहे थे।

उस समय उन्हें लेनेके लिये आये हुए पितरोंके साथ वे अपने लोक (यमलोक) को चले गये। द्रौपदीने देखा कि अब पाण्डवलोग निरपेक्ष हो गये; तब वे अनन्य प्रेमसे भगवान श्रीकृष्णका ही चिन्तन करके उन्हें प्राप्त हो गयीं।

उस हिमालय के बर्फमें जाते-जाते एक कुत्ता उनके पीछे हो गया। धर्मराज युधिष्ठिरके साथ, जिधर धर्मराज युधिष्ठिर चले ऊधर वह कुत्ता। चलते-चलते सहदेव गिरा। यह सहदेव कौन पांडवोंका पाँचवा भाई माद्रीसे उत्पन्न। और जिस समय पांडव अज्ञातवास में जा रहे थे, वनवास में जा रहे थे चौसर खेलकर दुर्योधन के शर्तके मुताबिक। उस समय कुंतीने एक उपदेश दिया था युधिष्ठिर और द्रौपदी को। युधिष्ठिर को यह उपदेश दिया गृहस्थाश्रम में गृहस्थ चलाने में द्रौपदी बड़ी चतुर और प्रविण है और यदि तुम पाँचों भाई किसी भी समस्या में अटक जाओ, कभी भीं, कहीं भी अटक जाओ कोई बात का निर्णय नहीं कर पावो तो तुम्हारी यह विदुषी पत्नी है इससे पूछना इसकी सम्मति जरूर लेते रहना। कुन्तीने द्रौपदी को उपदेश दिया देख यह सहदेव मेरा सबसे छोटा पुत्र है और माद्री की अमानत और दौलत है और यह सबसे भोला है। और किसीकी देखभाल करना नहीं करना तेरी अपनी मर्जी पर है, इसकी देखभाल जरूर करना, इसका खयाल एक माँके जैसे रखना, एक बच्चेके जैसे रखना। वह सहदेव जाते-जाते सबसे पहले गिरा। जा रहे है- द्रौपदी गिर गयी, नकुल गिरा, भीम गिरा, अर्जुन गिरा। सिर्फ धर्मराज युधिष्ठिर बचे और एक कुत्ता जो उनके साथ-साथ जा रहा है। जैसे ही नरक आया नरक का दर्शन करवाया। बोले कुछ कर्म आपके ऐसे हैं कि आपको नरक भोगना पड़ेगा। नरक दिखाया। आगे चले यह स्वर्ग

है स्वर्ग दिखलाया। बोले आप अन्दर आओ। इन्द्र बोले यह कौन है? युधिष्ठिर बोले यह कुत्ता है। कहांपर आपके राजदरबार का है? युधिष्ठिर बोले नहीं- रास्तेमें मिला। ठीक है इसको वहां छोड़ दो। वह अपने कर्मोंके हिसाब से आयेगा। तुम अन्दर आओ। युधिष्ठिर बोले- मुझे कोई स्वर्गकी चाह नहीं है, मुझे नरक देना नरक देदो, पृथ्वी देनी पृथ्वी दे दो, मर्त्यलोक दे दो। लेकिन यह मेरे साथ आया है मेरे साथ-साथ इसने साथ निभाया है। अगर जायेगा तो यह भी मेरे साथ ही जायेगा नहीं तो मुझे कोई स्वर्गकी या दूसरी कोई चाह नहीं है। उसी समय कुत्तेके वेशसे धर्म प्रकट हुआ। बोले- भगवन, यह तो आपकी परीक्षा थी। आप अपने संगी-साथियोंको, अपने धर्मको, अपनी प्रतिज्ञाओंको कैसे निभाते आये है, आप सत्यकी कैसे महिमा बखान करते है। पाँचों भाई स्वर्गारोहण करके वहांपर चले गये।

इसप्रकार भगवान के स्वधाम पधारने के अनन्तर धृतराष्ट्र और गान्धारी ने दावाग्नि में जलकर, कुन्ती ने महलों में ही भगवत् वियोग में, विदुरजी ने प्रभासक्षेत्र में और द्रौपदी सहित पाण्डवों ने उत्तराखण्ड में, अपने-अपने पाञ्चभौतिक शरीरों को त्याग दिया। ये सभी अपनी तीव्र भक्ति के कारण शुद्ध आत्मस्वरूप से भगवत् गति को प्राप्त हुए।

परीक्षितका राज्याभिषेक कर दिया गया। परीक्षितकी इरावती से शादी हो गई। जनमेजय नामका पुत्र है। बहुत अच्छा सुखपूर्वक, शांतिपूर्वक पांडवोंका राज्य उत्तराधिकारी पांडवोंका राज्य परीक्षित चला रहा है।

तुम करो प्रभुसे प्यार अमृत बरसेगा।

१५) परीक्षितकी दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वी का सम्वाद व कलियुगका दमन

जिनका सम्बन्ध श्रीकृष्ण से है उनके नाम यश गुण-कीर्तन के साथ जो जुट गये हैं उन सबका तो कभी नाश होता नहीं, वे तो सदा सर्वदा एक रस बने रहते हैं। शेष सब तो पानी के बुद्बुदे की भाँति उत्पन्न होते हैं, मरते हैं। अत: श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तों का यश सदा श्रवणीय है।

पूज्य पितामह परमपुण्य परलोक पधारे। भये परीक्षित नृपति सुनत सब सन्त सुखारे।।
यज्ञ याग बहु करे दालन दुखियनकूँ दीन्हें। इरावतीमें चारि गुणी सुत पैदा कीन्हें।।
कृपाचार्यकी कृपातैं, अश्वमेध कैई करे। यों ऋषि-ऋण सुर तिपर-ऋण, तीनों ऋणातें नृष तरे।।

परीक्षित सूत महाराज जनमेजय तो धर्म के स्वरूप ही थे। उनके द्वारा ही संसार में पुराण, इतिहास और महाभारत आदि का प्रचार तथा प्रसार हुआ।

महाराज परीक्षित के जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन ये चार पुत्र थे। चारों स्वरूपवान सुशील धर्मात्मा और पुत्र भक्त थे। महाराज के मन्त्री, अमात्य, सेनापति, कोषाध्यक्ष और भी भृत्य, नौकर-चाकर सभी उनके आज्ञानुवर्ती थे।

सूतजी कह रहे हैं- शौनकादियों इसके अनन्तर विद्वान ब्राह्मणों की शिक्षा के ही अनुसार महाभाग महाराज परीक्षितजी समस्त पृथ्वी का शासन करने लगे। उनके जन्म के फलित ज्योतिष विद्या-विशारद, पण्डितों ने उनकी लग्न को देखकर जी-जी, महान् गुणवाले फल बताये गये, वे सब-के-सब ज्यों-के-त्यों उनमें प्रकट हुए।

पाण्डवोंके महाप्रयाणके पश्चात् भगवद्भक्त राजा परीक्षित पृथ्वीका शासन करने लगे। इनके जन्म के समय ज्योतिषियोंने जो भविष्यवाणी की थी उनमें सभी महानुभाव विद्यमान थे। उन्होंने कृपाचार्य को आचार्य बनाकर गंगा तीर पर तीन अश्वमेध-यज्ञ किये, और ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा दी।

परीक्षित बड़े धर्मात्मा, न्यायपरायण और प्रजावत्सल महाराज थे। उनके राज्य में सिंह और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे, कोई भी बलवान पुरुष निर्बलों को सता नहीं सकता था। उनके राज्य में वायु भी किसी की वस्तु को हरण नहीं कर

सकती थी, फिर चोरी की बात ही क्या। यदि वे सुन भी लेते कि किसीने पर स्त्री-की ओर बुरी दृष्टि से देखा है तो कठिन-से-कठिन दण्ड देते। समय पर वर्षा होती, पृथ्वी यथेष्ट अन्न-धान्य उत्पन्न करती, प्रजा के सभी लोग सुखी थे, केवल दुष्ट -दुर्जन पुरुष ही उनके उग्रशासन से सदा भयभीत बने रहते थे।

महाराज परीक्षित एक चक्रवर्ती सम्राट, बड़े सही ढंगसे राज्यसंचालन कर रहे हैं फिर भी कहते हैं ना ऐष्णाएं, तमन्नाएं कभी शमित नहीं होती है बढ़ते रहती है। कैसे बढ़ती है जैसे आग में घी डालो तो प्रज्वलित होती है अग्नि। वैसे ही **जिन्दगी की गोद में तमन्ना ने सिर रखकर पूछा मैं कब पूरी होऊंगी, जिन्दगी ने हंसते हुए जवाब दे दिया जो पूरी हो जाएं वो तमन्ना ही क्या**। अब परीक्षित के मनमें आई दिग्विजय करने की वो दिग्विजय करने के लिये निकले। परीक्षित एक सुसज्जित रथपर सवार होकर दिग्विजय यात्राके लिये नगरके बाहर निकले। मनमें आयी की मैं दिग्विजय करूं।

परीक्षित भद्राश्व, केतुलाम, भारत, उत्तरकुरु, किम्पुरुष आदि सभी राजाओंको जीतकर दिग्विजयके लिये आगे बढ़ रहे थे। परीक्षितकी भक्ति भगवान कृष्णके चरण कमलोंमे थी। वहांपर देखते हैं कि धर्म बैल का रूप धारण करके एक पैरसे घूम रहा है। बैल की तीन टांगे टूटी हुई है एक टांगपर खड़ा है। वो बैल जिसके चार पैर शोच, सत्य, दया,धर्म। उसकी तीन टांगे टूटी हुई है सिर्फ सत्य का पैर खड़ा है। और एक गाय वहीं खड़ी है रो रही है, वो पृथ्वीरूप से मिली। परीक्षित देख रहा है, एक लम्बा तगड़ा विशाल पुरुष, बड़ी-बड़ी आँखे, बड़ी-बड़ी मूंछे, लम्बी-लम्बी भुजा, नग्न तलवार लिये एक काला कलूटा पुरुष राजोचित वेष धारण किये हुए तलवार हाथमें लिये पैरोंमें इतने बड़े भारी जूते पहने हुए और तड़ातड़ बैल को मारे जा रहा है। परीक्षित देख रहा है गाय रो रही है। परीक्षित गायके पास आते हैं बोलते हैं यह गाय क्यों रो रही है। गाय कौन है पृथ्वीरूपी पृथ्वी-गाय। देखते है दोनोंकी बात सुन रहे है। बड़ा अद्भुत दृश्य, पशुसम्वाद करते हैं। द्वापर का समय था द्वापर खत्म होने जा रहा था, कलियुग का प्रवेश था।

सुन्यो परीक्षित राज्य माहिँ कलियुग घुसि आयो। धावा बोल्यो तुरत सुनत कलियुग घबरायो।।
पूछे शौनक- सूत। कस्यो कलि कैसे वश में। नृपति वेशमें शूद्र गऊ ताड़त किहि थलमें।।
राज वेष धारी वृषल, वृषभ गऊ ताड़न करत। बलपूर्वक कस बश कस्यो, कस नृप सबके दुख हरत।।

सम्वाद चल रहा है। वृषभ रूपधारी धर्म, गौ रूपधारिणी पृथ्वी से पूछ रहा है- हे माता धरणि। आप दुखी क्यों हैं? आपके दु:ख के बहुत से कारणों में से एक प्रधान कारण यह भी हो सकता है कि उन्होंने तुम्हारा महान भार उतारने के लिये ही अवतार लिया था, उनके अन्तर्हित हो जाने से, उनसे रहित होकर उनके अद्भुत चरित्रों को याद कर रही हो क्या, जिन चरित्रों के श्रवण पर मोक्ष अवलम्बित है?

हरि लीला अति मधुर आइ सब नृपहिं सुनावहिं। सब समाजके संग सुनहिं, अति हिय हरषावाहँ।।
तबई शिबिर समीप घटी घटना अद्भुत अति। एक पैरतें धर्म वृषभ वनि चलहिं मन्द गति।।
धेनु रूप धरणी धरे, रोवे सुत बिनु मातु ज्यों। मातु दुखित पूछहि तनुज, धरम धरनितैं कहें यों।।

जब तक राजा की अधर्म में प्रवृत्ति नहीं होती, तब तक प्रजा अधर्म में प्रवृत्ति नहीं होती।

कल्याणी, तुम्हारी कुशल कहां गयी? तुम्हारा मुख कुछ मलीन है। तुम श्रीहीन दिख रही हो। तुम्हारे हृदयमें कुछ-न-कुछ दु:ख अवश्य है। क्या तुम्हारे कोई सम्बन्धित दूर देशमें चले गये जिसके लिये तुम चिंतित हो। सम्भव है तुम इसलिये शोक कर रही हो कि यह शूद्र पुरुष तुम्हारे ऊपर शासन करेंगे। तुम उन देवताओंके लिए दु:खी हो जिनको यज्ञमें आहुति नहीं मिलती या फिर उस प्रजाके लिए जो अकाल एवं दुर्भिक्षसे पीड़ित हो रही है। क्या इसलिये कि विद्या चाण्डालों और कुकर्मी ब्राह्मणोंके चंगुल में फंस गयी है। ब्राह्मण राजाकी सेवा करने लगे हैं। क्या इसलिये कि आजके लोग खान-पान, स्नान, वस्त्र और स्त्री

सहवास आदिमें शास्त्रोंके नियमोंका पालन करते? पृथ्वी आप क्यों रो रही हैं? आपको क्या दु:ख है? आप क्या इसलिये रो रही हो कि मेरे तीन पैर कट गये। आप इसलिए रो रही हो कि भगवान श्रीकृष्ण अपने स्वधाम को चले गए? तुम्हारे पति, तुम्हारे मालिक, तुम्हारे स्वामी, आपका कष्ट क्या है? आप अपने क्लेशके कारण इतनी दुर्बल हो गयी। तुम तो धन-रत्नोंकी खान हो।

आप क्यों नही इस पृथ्वीका पालन करती हो? क्यों नहीं आप दूध देती हो? क्यों नहीं सब औषधियां उत्पन्न होती है? पृथ्वी कहती है- धर्म- बैलका नाम धर्म, गो का नाम पृथ्वी। कृष्ण स्वधाम चले गये इसका तो शोक मुझे ऊबरा भी नहीं है अभी तक। धर्म मैं तेरे तीन पैरोंको देखकर रो रही हूँ तेरे तीन पैर कट गये। जिन भगवान के सहारे तुम सारे संसारको सुख पहुँचानेवाले अपने चारों चरणोंसे युक्त थे, सभी दैवी गुणोंकी सम्पदा थी उन्हीं समस्त गुणोंके आश्रय सौंदर्य धाम श्रीकृष्णने इस समय इस लोकसे अपनी लीला श्रवण कर ली और यह संसार पापमय कलियुगकी कुदृष्टिका शिकार हो गया। इसीसे मुझे शोक हो रहा है। कृष्णने मुझ अभागिनी को छोड़ दिया। कोई मनुष्य कहते हैं कि मेरा मन संसार से विरक्त नहीं होता सो बिना ज्ञान प्राप्त हुए संसारी मोह छूटना बहुत कठिन है। पृथ्वीके ऊपर जब अधर्म छा जाता है तो पृथ्वी दुखी होकर सभी बीजों और धनों को अपने भीतर छिपा लेती है।

धर्म ने पृथ्वी से पूछा- दु:ख-सुख प्रारब्धानुसार ही होता है, फिर भी दु:ख के कुछ कारण होते हैं। माताओं को विशेषकर चार ही कष्ट विशेष होते हैं। या तो उनका कोई बन्धु-बान्धव परदेश चला गया हो, या पुत्र दुखी हो, या आश्रित परिवारवालों पर कोई विपत्ति हो अथवा अपने पति का वियोग हो गया हो। इनमें से तुम्हें कौन-सा कष्ट है? तुम्हारे हितैषी जो सद्गुण हैं, वे कहीं चले गये हैं क्या? या मेरे तीन पैर के कट जाने के कारण तुम्हें दु:ख हो रहा है? या तुम पर अब शूद्रों और म्लेच्छों का आधिपत्य हो रहा है और निकट भविष्य में होनेवाला है, उसके लिये तुम इतनी व्यग्र हो रही हो?

सूतजी शौनकादि ऋषिसे बोले- प्राणी जान-बूझकर भी दु:ख सुख की बात पूछता है। पूछने से उस सम्बन्ध की चर्चा करने से दु:ख कम होता है, सुख की अभिवृद्धि होती है। अपने स्नेही के सम्मुख दु:ख कहने से हृदय हल्का हो जाता है।

पृथ्वी ने कहा- ऐसा कौन जीव जगत में है जिसे श्यामसुन्दर के अन्तर्धान होने से शोक न हुआ हो। जो छत्तीस गुण श्यामसुन्दर में थे उनका वर्णन तुमसे करती हूँ, सत्य बोलना, आचार से रहना, हृदय में धैर्य रखना, क्षमा करना, संसारी मायामोह से विरक्त रहना, जो कुछ परमेश्वर देवे उसमें संतोष रखना, मीठे वचन बोलना, मन और इन्द्रियों को वश में रखना, सब छोटे-बड़ों को बराबर जानकर किसी का अपमान न करना, किसी के दुर्वचन कहने से बुरा न मानना, किसी काम में जल्दी न करना, सुनी हुई बात याद रखना, अपना कहा हुआ वचन न भूलना, ज्ञान को स्थिर रखना, मन में वैराग्य रखकर स्त्री और पुत्रों से अधिक मोह न रखना, धन पाकर किसी से अभिमान की बात न बोलना, बल अधिक होने से घमंड न करना, सबसे श्रेष्ठ होना, सब विद्याओं को जानना दूसरे का दु:ख देखकर दुखित होना, किसी से न डरना, जो कोई अपना दु:ख कहे उसका हाल मन लगाकर सुनना, भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों की बातें जानना, अपने मन का हाल किसी से न बतलाकर समुद्र के समान गम्भीर रहना, धर्म की तरफ से मन नहीं फेरना, धर्म और वेद की रक्षा करना, संसार में ऐसी कीर्ति करना जिसमें सब कोई भला कहे, आँखों में शील रखना, किसी जीव को दु:ख न देना, जो कोई दीन होकर अपना अर्थ कहे उसकी इच्छा पूर्ण करना, परमेश्वर का ध्यान करते रहना, सबसे अधिक बलवान होना, तीनों लोकों में किसी शूरवीर को कुछ न समझना, साधु, ब्राह्मण और महात्मा का आदर करना, परोपकार करना, सो हे बैलरूपी धर्म। श्यामसुन्दर को इन सब गुणों के होने पर भी कुछ अहंकार नहीं था। जिस समय उनके गुणोंको याद करती हूँ मेरा कलेजा फट जाता है। जब द्वापर के अन्त में तुम्हारे दो पैर टूट गये और मैं कंसादिक राजाओं के अधर्म करने से दु:खी हुई तब वैकुंठनाथ ने यदुकुल में अवतार लेकर हमारा और तुम्हारा दु:ख छुड़ाया और अपनी कीर्ति संसार में फैलाई। ऐसे परोपकारी

के वियोग का दु:ख कौन सह सकता है। मैं सिकंदर से लेकर आज तक किसी की भी नहीं हुई हूं।

बोली वसुधा, वत्स। विपतिकी बात बताऊँ। प्राणनाथ पद पदुम परस बिनु अति अकुलाऊं।।
जिनकी कृपा कटाक्ष पाइ पावन सब होवें। मधुर मन्द मुसकान नारि लखि धीरज खोवें।।
तिनु बिनु हौं विधवा भई, सब सुहाग सुख लुटि गयो। शम, दम, बल, तप, तेज, गुण, गये धैर्य मम छुटि गयो।।

जिन भगवान के श्री चरणारविन्द कमल, वज्र अंकुश और ध्वजा आदि चिन्हों से चिन्हित हैं। वे ही चिन्ह जब मेरे अंगों पर विभूषित होते थे तो उस समय मैं अपने को महान् सौभाग्यशालिनी समझकर अत्यधिक सुशोभित होती थी। आज उस सौभाग्य का अन्त हो गया। मुझ अभागिनी को श्यामसुन्दर त्यागकर स्वधाम पधार गये। मुझे दीन दुखी बना गये।

उन्हीं सर्व गुणधाम श्रीनिवास से आज मैं रहित हो गई हूँ। उनके स्वधाम पधारने से कुटिल कलिकाल ने मेरे ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है। अत: देवताओं को भी यज्ञ भाग मिलना बन्द हो गया है। कुछ नास्तिक लोग स्वर्गीय पितरों को मानते ही नहीं, अत: पितरों का पिण्ड तर्पण नहीं करते। इससे पितर भी दुखी है। मनुष्य क्षीण आयु, क्षीण पुरुषार्थवाले हो गये। ऋषि, मुनि मुझको छोड़कर महर्लोक चले गये। जहाँ मेरे एक-एक वनों में हजारों ऋषि, मुनि, साधु, सन्त तपस्या किया करते थे, वहाँ अब एक भी देखने को नहीं मिलते। साधुओं के दर्शन दुर्लभ हो गये हैं। संसारी सुखों को ही सर्वत्र समझने वाले भौतिकवादी आध्यात्मिकता से चिढ़ते हैं, साधु-सन्तों से घृणा करने लगे हैं। सभी के ऊपर अधर्म का आधिपत्य देखकर, मैं अधीर हो रही हूँ। फिर सबसे अधिक दु:ख तो मुझे भगवान वासुदेव के स्वधाम पधारने का है। जब इस मर्त्यलोक में मानुषी शरीर से मेरे ऊपर विराजमान थे, तब उनके अति सुकोमल चरणारविन्द मेरे ऊपर पड़ते थे, तब मेरे सम्पूर्ण शरीर में रोमांच हो जाता, मैं कृतकृत्य बन जाती थी। जिन चरणों मे वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल आदि के चिन्ह सुशोभित थे, जब वे चरण मेरे ऊपर पड़ते तो मैं अपने सौभाग्य पर फूली न समाती। मेरे उसी सौभाग्य का अन्त हो गया। आज श्यामसुन्दर मुझ अभागिनी को बिलखती छोड़कर स्वधाम पधार गये।

आनेवाला कलियुग है- यह कलियुग खड़ा है शूद्र है, यहां क्या होगा? यह तुझे मार रहा है। तेरा चौथा पैर काटने की तैयारीमें है। यह अनाथ, भगवान किस भरोसे मुझको छोड़कर चले गये, किस भरोसे पृथ्वीका त्याग कर दिया मैं इसलिये रो रही हूँ आगे आनेवाला क्या होगा?

आज तिनहिं ते हीन ह्वै, भाग्यहीन अबला भई। श्री, ह्री, लज्जा कान्ति धृति, सुख समृद्धि बिनु ह्वै गई।।

कलियुग आ रहा है। परीक्षित इन दोनोंका संवाद सुनकर बड़े आश्चर्य में पड़ जाते है। वहां पहुंचकर राजा परीक्षितने देखा एक राजवेषधारी शूद्र हाथमें डंडा लिये हुए गाय-बैल के जोड़े को पीटते जा रहा है। शूद्र की इस ताड़ना से पीड़ित होकर, भयभीत होकर बैल भयभीत होकर मल-मूत्र त्याग कर रहा है। वह गाय भी अत्यन्त रो रही है।

जहाँ धरनि अरू धर्म, करें सम्वाद परस्पर। करत दिगविजय तहाँ, परीक्षित् पहुँचे नृपवर।।
बने वृषभवर धर्म, धेनु तनु धरनी धारे। छद्म वेषमें वृषल नृपति बनि तिनकूँ मारे।।
वृषभ एक पगतें व्यथित, कामधेनु लखि दुखित अति। शूद्र हनैं थर-थर कँपे, कस्यो क्रोध बोले नृपति।।

प्रयागराज के समीप प्राची सरस्वती के तटपर पहुँचकर महाराज परीक्षित ने देखा कि एक राज वेषधारी शूद्र हाथ में डण्डा लिये हुए एक अनाथ गौ और बैल के जोड़े को बुरी तरह से मार रहा है।

परीक्षितने कलियुग से कहा- मैं सातों द्वीपों का राजा हूँ तू किस देश का राजा है जो हमारे राज्य में राजाओं का वेष बनाकर मेरी प्रजा को दु:ख देता है। राजाओं का यह धर्म नहीं है कि वह किसी को दु:ख दें।

परीक्षित बोले- माता, परीक्षितके साम्राज्य में यह अन्याय नहीं हो सकता। मैं आपको आश्वासन देता हूँ जब तक परीक्षित

है यह कलियुगका प्रवेश नहीं करने दूंगा, इस दुष्टको मैं मारने नहीं दूंगा और जाते है उस दुष्ट कलियुगके पास। वो तलवार लिये खड़ा है और देख रहा है कि गाय-बैल की जोडी को जूतोंसे मार रहा है। जब परीक्षितको देखकर दूर खड़ा हो गया तो उसके पास जाते हैं बोले हे दुष्ट, तू यहां क्या कर रहा है? अरे तू कौन है? तू बलवान होकर भी मेरे राज्यके इन दुर्बल प्राणियोंको सता रहा है? कर्म से तो तू शूद्र जान पड़ता है। परीक्षितने धर्मसे पूछा- हे प्राणियोंमे श्रेष्ठ ये तीन पैर न होनेपर भी आप एक पैर पर खड़े है यह देख मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है? क्या बैल के रूप में आप कोई देवता हैं? हे धेनुपुत्र आप शोक न करें। इस शूद्र से निर्भय हो जाएं। मैं। दुष्टोंको दण्ड दूँगा, आप रोये नहीं। घोर आपत्ति के समय में तो धार्मिक मर्यादायें शिथिल हो ही जाती है, किन्तु आपत्ति न रहने पर जो कुमार्ग का अनुसरण करता है, उसे दण्ड देना राजा का कर्त्तव्य हो जाता है।

जिस राजाके राज्य में दुष्टोंके उपद्रवसे सारी प्रजा दु:खी रहती है उस राजाकी कीर्ति, आयु नष्ट हो जाती है। राजाओंका परम धर्म यही है कि वे दुखियोंका दु:ख दूर करें। हे सुरभिनन्दन मैं अभी इसे मार डालूँगा। मेरे राज्य में आपको किसी प्रकार का कष्ट न होगा। हे वृषभ, आपका कल्याण हो। आप जैसे निरपराध का अंग-भंग छिन्न करनेवाले किस दुष्टने पाण्डवोंको कलंक लगाया है। जो किसी निरपराध प्राणी को सताता है वो चाहे कहीं भी रहे मेरा भय अवश्य होगा। दुष्टोंका दमन करने से साधुओंका कल्याण होता है। उद्दंड व्यक्ति अगर निरपराध प्राणी को दु:खी करे तो वह दण्डनीय है। बिना आपत्तिकालके मर्यादाका उल्लंघन करनेवालोंको शास्त्रानुसार दण्ड देते हुए अपने धर्ममें स्थित लोगोंका पालन करना राजाओंका परम धर्म हैं। धर्मने कहा- राजन्, आप महाराज पाण्डुके वंशज है और दु:खियोंको आश्वासन देना आपके लिये योग्य है। हम उस पुरुष को नहीं जानते जिससे क्लेशोंके कारण उत्पन्न होते है। इसमें तो प्रारब्ध और कर्म ही कारण है। कुछ लोग तो दु:ख का कारण ईश्वर को मानते हैं। कोई कहते हैं कि मनुष्य अधर्म करने से दंड पाता है। कोई कहते हैं कि दु:ख शत्रु से पहुँचता है, मित्र किसीको दु:ख नहीं देता। इसलिये शत्रुका उत्पन्न होना भी अपने अधीन है। जब तक मनुष्य माता की पेट में रहता है तब तक उसका कोई शत्रु नहीं होता। जब मनुष्य उत्पन्न होकर सयाना होता है तब लोगोंसे विरोध करके अपना शत्रु अपने आप खड़ा करता है। राजर्षि इसमें कौनसा मार्ग ठीक है यह आप अपनी बुद्धिसे ही निर्णय लीजिये।

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा। जो जसि करि सो तस फल चाखा।
कोई न काऊ सुख दुख कर दाता। निजकृत कर्म भोग सबु भ्राता।।

वृषभ रूप धारी धर्म ने जब अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले का नाम न बताया तब महाराज परीक्षित बोले- हे धर्मज्ञ। प्रतीत होता है कि आप वृषभ का रूप धारण किये हुए साक्षात् धर्मदेव ही हैं। धर्म के बिना इतनी विशुद्ध धर्मवाली बात कौन कर सकता है। शास्त्रकारों का मत है कि अधर्म करने वालों के पापों को जो सबके सम्मुख सूचित करता है तो जो नरकादि लोक अधर्म करनेवालेको होते हैं, वे ही उसके अधर्मों को प्रकट करनेवाले सूचक को भी होते हैं।

धर्म कहें हे देव। दु:ख दैवे को काकूँ। होवै कारन एक बताऊँ हौं तब ताकूँ।।
ईश्वर, कर्म, स्वभाव भिन्न मुनि भिन्न जनावें। समझें अपने आप काहि दुख बीज बतावें।।
कहें नृपति-तुम धरम हो, धरम बिना असको कहे। अधकारीके पाप कहि, सूचक हू अधगति लहे।

परीक्षित बोले- धर्मका तत्व जाननेवाले हे वृषभदेव, आप इस समय धर्म का उपदेश कर रहे हैं। अब से ही आप वृषभ रूपमें स्वयं धर्मही होंगे। आपने अपने दु:ख देनेवालेका नाम नहीं बताया। सतयुग में आपके चार चरण थे- तप, पवित्रता, दया और सत्य। इस समय अधर्म के प्रभाव से और आसक्ति, मदसे, आपके तीन चरण नष्ट हो चुके है। अब सत्य ही अकेला रह गया है। असत्य से पुष्ट हुआ यह कलियुग उसे भी ग्रास कर लेना चाहता है। ये गौ माता साक्षात् पृथ्वी है। महाराज परीक्षितने धर्म और पृथ्वीको सान्त्वना दी और अधर्मरूपी कलियुगको मारनेके लिये तीक्ष्ण तलवार उठायी।

पापी का नाम लेने से पाप और धर्मात्मा का नाम लेने से पुण्य होता है।

राजा परीक्षित ने विचार किया सुख-दु:ख मिथ्या तो नहीं हो सकते, क्योंकि उनकी अनुभूति आत्मा में होती है। जीवात्मा भी कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह परतन्त्र है। ग्रह भी कारण नहीं हो सकते, क्योंकि वे कालचक्र के अधीन हैं। कर्म भी कारण नहीं हो सकते हैं, क्योंकि वे जड़ हैं। स्वभाव भी कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह व्यभिचारदूषित है। अत: सुख-दु:ख के कारण ये कोई भी नहीं हो सकते हैं।

राजा परीक्षितने कहा, हे धर्मदेवता। देवता, यक्ष, राक्षस ये सभी स्वार्थी होते हैं। अपने स्वार्थ के लिये ये धर्म को त्याग सकते हैं, असत्य भाषण कर सकते हैं, दूसरों को कष्ट पहुँचा सकते हैं, किन्तु धर्म कभी विपरीत आचरण नहीं कर सकता। इसीसे मालूम पड़ता है कि आप धर्म के स्वरूप हो।

हरिकी माया अमित न पहुँचे मन अरु बानी। शौच, दया, तप, पाद बिना तुमरे मन ग्लानी।।
गऊ रूप ये धरनि पदुम पद प्रभुके सोचति। चरण चिह्नतें रहित दुखित हैं अश्रु विमोचति।।
धरहु धीर धरणी। धरम। क्षत्रिय हौं शर धनु धरूँ। नृप लांछन कलि क्रूरको, सिर धड़तें न्यारो करूँ।।

कलियुग समझ गए कि अब वे उसे मार डालना चाहते हैं। परीक्षित बड़े यशस्वी, दीनवत्सल और शरणागतरक्षक थे और कलियुगसे बोले- परीक्षित के राज्य में यह अन्याय। मैं तेरा अभी दमन कर दूंगा। धनुष बाण उठाते हैं मारने को उद्यत है कलियुग पांव पकड़ता है और बोलता है महाराज, क्षमा करें अपराध। कलियुग बोला- महाराज दंड देना भी आपका धर्म है। और कोई शरणागत आपके पास आ जाए तो उसकी रक्षा करना भी आपका धर्म है। मैं आपकी शरण में आया हूँ मेरी रक्षा करो।

जब कलियुग डर के कारण महाराज परीक्षित के पैरों पर पड़ गया तब उसे अभय देते हुए महाराज बोले- हे अधर्म के मित्र। तू मेरी शरण आ गया है, अत: मैं तुझे मारता नहीं हूँ, किन्तु गङ्गा यमुना के बीच की जो परमपावन भूमि है, जहाँ सत्य और धर्म के ही रहने का स्थान है वहां तू मत रहना क्योंकि इसी देश से यज्ञों की विधि जाननेवाले बड़े-बड़े ऋषि, महर्षि, नाना भाँति के यज्ञों द्वारा भगवान यज्ञ पुरुष की आराधना किया करते हैं।

जब परीक्षितसे क्षमा मांग ली है। जब तू हाथ जोड़कर शरण में आ गया तो तुझे मैं अभय देता हूँ। अर्जुनके यशस्वी वंशमें तुझे किसीसे भी कोई भय नहीं होगा। जहाँ तक राजा युधिष्ठिर और हमारे दादा अर्जुन का राज्य था वहाँ तक तुझे न रहना चाहिए। तू अधर्म करनेवाला पापियों का साथी है, जिस राजा के देश में रहेगा उस राजा का मन अधर्म करने में लगेगा। तुझमें लालच, अहंकार, झूठ, कपट, झगड़ा, काम और मोह भरा हुआ है, इसलिये भरतखंड में जहाँ तक हमारा राज्य है, और सब लोग अपने धर्म व कर्म से हैं, मत रहो। इस भरतखंड में मनुष्य तप, यज्ञ, दान, धर्म, व्रत और परमेश्वर की पूजा करने से अनेक प्रकार के सुख पाकर मुक्त पदवी को पहुंचते हैं। उनको कभी दु:ख नहीं होता। ऐसी जगह तू रहकर विघ्न करेगा और तेरे रहने से पाप अधिक होगा। मेरा कहना मान, नहीं तो तेरा प्राण बचना दुर्लभ है। कलियुग ने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाकर राजा से विनय किया- महाराज। आप तो चक्रवर्ती राजा हैं। सात द्वीप, नौ खंड, इन सबके राजा हैं। मैं जाऊं कहां? और जहां भी जाऊंगा आप मेरा पीछा करोगे। आप सार्वभौम राजा हैं। आप धर्मात्मा और न्याय करनेवाले हैं, मेरी प्रार्थना सुनिये। ब्रह्माजी ने सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चार युगों को बनाकर उनकी अवधि निश्चित कर दी है। सो सतयुग, त्रेता और द्वापर तीनों युग अपना-अपना राज्यभोग चुके। मैं कलियुग हूँ, अब मेरे भोग करने का समय आया। मुझे आप आज्ञा देते हैं कि मैं आपके राज्य में न रहूँ। आपका राज्य तो सातों द्वीपों में है, फिर मैं कहाँ जाकर रहूँ। ब्रह्माजी ने चारों युग की जो अवधि निश्चित कर दी है वह किसी तरह मिट नहीं सकती।

परीक्षित ने कहा- मेरे इस परम पुण्य प्रदेश गंगा यमुना के मध्य की भूमि में जिसे ब्रह्मावर्त या महर्षि देश कहते हैं, वहाँ भूलकर भी पैर न रखो, क्योंकि धर्म के वेत्ता ऋषि महर्षि इसी देववन्दित पावन प्रदेश में निवास करते हैं।

कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार (हरिद्वार) से लेकर काशी प्रयाग तक की भूमि को महर्षि प्रदेश, ब्रह्मावर्त, पावन प्रदेश अथवा यज्ञ भूमि कहते हैं। संसार में इससे पवित्र भूमि और कहीं नहीं है। समस्त ऋषि, महर्षि, अवतार तथा महापुरुषों ने इतनी ही भूमि का आश्रय ग्रहण किया है। इसी को धर्म-अर्जन का विशिष्ट स्थान माना है। श्रीगंगाजी और यमुनाजी के दोनों ही तट परम पावन हैं। दोनों के बीच की भूमि तो सर्वत्र ही पवित्र है, किंतु गंगाजी के पूर्व तट और यमुनाजी के पश्चिम तट की एक योजन पृथ्वी भी उसी प्रकार पावन है। इस भूमि में तो सर्वत्र ही यज्ञ याग आदि करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। कुछ भूमि पूरियों के कारण पावन हैं, कुछ धामों के कारण। जैसे सातों पुरियाँ परम पावन हैं, उत्कल जैसे देश में जगन्नाथपुरी पावन हैं, मगध जैसे कीकट देश में गयाजी परम पावन हैं। कुछ प्रदेश के अनार्यों के रहने के प्रदेश चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, आवटोदा, कृतमाला, कावेरी, वैक्षी, तुंगभद्रा, कृष्णा भीमरथी, गोदावरी, नर्मदा आदि अमृतोपम जलवाली नदियों के कारण पवित्र माने गये हैं। घर के भीतर रहकर भी बिल्ली चूहों पर प्रहार न करे, यह हो नहीं सकता।

कलियुग बोला, हे पृथ्वीनाथ। आप मेरे अवगुणों की तरफ देखते हैं किन्तु गुणों की तरफ ध्यान नहीं देते। मुझमें एक बड़ा गुण है वह आपसे कहता हूँ। सतयुग में जिस राज्य में एक मनुष्य पाप करता था उस राज्य भर के मनुष्य दंड पाते थे। त्रेता में एक मनुष्य के अपराध करने से गाँव भर दंड पाता था। द्वापर में अधर्म करने से परिवार भर को दंड मिलता था, किन्तु कलियुग में जो मनुष्य जिस अंग से पाप करता है मैं उसको पकड़कर उसी अंग को दंड देता हूँ। दूसरे युगों में मानसी पाप करने से मनुष्य को दंड मिलता था किन्तु कलियुग में मानसी पाप नहीं होता, पर मानसी पुण्य का फल मिलता है।

सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग ये चार युग माने जाते हैं। पहले तीन युग सत्य, धर्म, न्याय के प्रतीक माने जाते है और कलियुग को असत्य अधर्म अन्यायकारक माना गया है। लेकिन कलियुग में अल्पकाल में मन:पूर्वक ईश्वर-आराधना से उद्धार होता है। दु:खमय संसार यानी भव और उससे कलियुग में पार होना सुलभ कहा जाता है। मान्यता है कि सतयुग में एकाग्रता व प्रेम से ईश्वर उपासना करने से दस वर्ष में आत्मोद्धार होता है। त्रेतायुग में यह अवधि एक वर्ष तक आई। द्वापर युग में एक महीना और कलियुग में एक दिन में आत्मोद्धार होता है। इसलिए कलियुग को भवतारक माना गया है।

कलियुग सम युग आन नहिं जौं नर कर विस्वास। गाई राम गुण गन विमल भव तर बिनहिं प्रयास।
कृत जुग त्रेतां द्वापर पूजा मख अरु जोग, जो गति होइ सो कलि हरि नामते पावहिं लोग।।

जब यह बात सुनकर राजा परीक्षित को दया नहीं आई, तब फिर कलियुग बोला- हे पृथ्वीनाथ, मुझमें एक गुण और बहुत बड़ा है। सतयुग में जो कोई परलोक बनाने के वास्ते दश हजार वर्ष तप करता था तब उसकी इच्छा पूर्ण होती थी। त्रेतायुग में जब मनुष्य बहुत द्रव्य लगाकर हजारों वर्षों तक यज्ञ करते थे तब उनका अर्थ सिद्ध होता था। द्वापर में सौ वर्ष तक नारायणजी का पूजन व ध्यान करने से मनोकामना मिलती थी। मेरे राज्य में जो कोई एक क्षण भी श्यामसुन्दर का ध्यान सच्चे मन से करे या उनका नाम लेकर कानों से उनकी लीला व कथा सुने वह अपने अर्थ को पहुँचकर अनेक जन्म के पापों से छूट जाता है। परीक्षित ने कलियुग को मारा नहीं। इसमें दुर्गुण बहुत लेकिन एक अच्छा सद्गुण है। कलौकीर्तनाद। कलियुग में केवल कीर्तन से परमात्मा प्राप्त हो सकता है।

सब आशा करते हैं, धनी पुरुष के समीप ही सब धन की इच्छा से जाते हैं। छायादार वृक्ष का ही थके हुए लोग आश्रय करते हैं। जलवाले सरोवर पर ही प्यासे लोग प्यास बुझाने जाते हैं। जो स्वयं भूखा है वह दूसरों को क्या देगा? जिस वस्तु के द्वारा अपने गुणों का विज्ञापन नहीं होता कुशल व्यापारी उससे सम्बन्ध करना व्यर्थ समझता है। जो पृथ्वी पर सोया

हुआ है, उसे पतन का भय नहीं। गिरेगा तो वही जो पृथ्वी से ऊँचा सोया होगा। संसार में किसी भी वस्तु का अत्यन्ताभाव नहीं होता। रहती सब हैं, कभी किसी की वृद्धि हो जाती है, कभी किसी का ऱ्हास हो जाता है। कलियुग भी सदा से है, सदा रहेगा। सत्ययुग में भी वह वर्तमान था, किन्तु उस समय उसका कुछ प्रभाव नहीं था, कहीं इधर-उधर छिपा हुआ, अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा था।

बिना राजाश्रय लिये हुए न तो किसी धर्म का प्रचार होता है, न अधर्म तथा पाखण्ड का। जितने भी धर्म-प्रचारक आचार्य तथा अधर्म और पाखण्ड के प्रचार प्रभावशाली पुरुष हुए हैं, सभी ने राजाश्रय लेकर ही अपने मन का प्रचार किया है। नम्रता से ही श्रेष्ठ पुरुष वश में किये जा सकते हैं।

राजा परीक्षित ने कहा, जा दुष्ट मैं तुम्हे क्षमा करता हूँ, तू अधर्म का सहायक है इसलिये तुझे मैं मेरे राज्यमें नहीं रहने दूँगा। शरीरमें लोभ, चोरी, झूठ, दुष्टता, स्वधर्मत्याग, दरिद्रता, कपट, कलह, दम्भ और दूसरे पापोंकी बढ़ती हो रही है। इसलिये मेरे राज्यमें एकक्षण के लिये भी नहीं ठहरना। क्योंकि मेरे राज्य में धर्म और सत्य का निवासस्थान है। मेरे क्षेत्र में महात्मा लोग यज्ञ पूर्ण भगवान की आराधना करते हैं।

तू मेरे राज्य से निकल जा, मेरे राज्य में नहीं रहने का। कलियुग बोला- हे पृथ्वीनाथ दया करके मुझे जीवनदान दीजिए और आज्ञा करें कहां जाकर रहूं। मैं आपसे बहुत डरता हूँ मैं आपकी आज्ञा में रहूंगा। सार्वभौम, जहां आपकी आज्ञा होगी मैं वही रहूँगा। महाराज मैं जाऊं कहां, मुझे तो आपके राज्यमें स्थान चाहिए। मुझे रहनेका स्थान चाहिए मैं तो असहाय हूं। कलियुग को प्रवेश चाहिए था इस पृथ्वीपर, इस धरापर। क्षमायाचना हो गई बोला मैं इस राज्य में प्रवेश नहीं करूंगा। मैं कहां रहूं। परीक्षितने कहा- हे कलियुग जिस जगह मनुष्य जुआ खेलते हैं या मदिरा बिकती हो, जिस स्थानपर वेश्या रहती हैं, जहांपर जीवहिंसा होती है वहाँ जाकर तुम रहो। कलियुगको परीक्षितने चार स्थान दिये- पहले- हिंसा, व्यभिचार, वेश्याखाना, मदिरा, द्यूतक्रीड़ा इन्हीं स्थानोंमें क्रमसे असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता अधर्म के रूप निवास करते है। **द्यूतं पानं स्त्रिय: सूना यत्राधर्मश्चतुर्विध: ।** कलि का निवास शराब में है। मनुष्य सुध-बुध खो बैठता है। स्त्री में भी कलि का प्रभाव देखा जाता है। यदि शराब में ही नशा होता तो बोतलें क्यों न उछलतीं?

जब तक मनुष्य की सद्-असद् विवेक करनेवाली निर्मल बुद्धि बनी रहती है, तब तक वह पाप कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता। जब बुद्धि पर परदा पड़ जाता है, उसमें उन्माद आ जाता है, मद का मलिन आवरण छा जाता है, तभी पाप कर्मों के करने की इच्छा उत्पन्न होती है। बुद्धि को सबसे अधिक मलिन बना देनेवाली यह सुरा ही है। सुरापान करनेवाले शनै:शनै: सभी पापों को करने लग जाते हैं। मद्य के नशे में मतवाले होकर मनुष्य अण्ट-सण्ट बकते हैं, न करने योग्य काम को करते हैं, काम वासना बढ़ने से गम्या अगम्या का विचार छोड़ देते हैं, सर्वाभिगामी बन जाते हैं। अत: मदिरा में भी कलियुग सदा रहे। इसके रहने से सज्जन पुरुष उसे छूने से भी घृणा करेंगे।

मतवाला होकर मनुष्य अत्यन्त कामी बन जाता है, उसकी कामवासना उत्तेजित हो उठती है, उस समय उसे कामिनी की अभिलाषा होती है। जो सती साध्वी पतिपरायण स्त्रियाँ हैं, उनमें तो अपना पातिव्रत और सत्य धर्म का इतना अधिक प्रभाव होता है कि उनका कोई घर्षण नहीं कर सकता, किन्तु जो अकुलीन, कुटिला, स्वैरिणी स्त्रियाँ होती हैं, वे कामियों की कामवासना में फँस जाती हैं। एक तो उन्हें यौवन का स्वाभाविक ही उन्माद होता है, तिस पर यदि वे मद्य का भी सेवन कर लें तब तो शील, संकोच, लज्जा, कुल, धर्म सभी को तिलांजलि दे देती हैं। जब उन्हें व्यसन पड़ जाता है, तब तो वे सदा अतृप्त ही बनी रहती है। आठों परह उन्हें वही वासना व्यथित करती रहती है। ऐसी स्त्रियाँ यदि किसी की पत्नी हो चुकी हैं तो अपने पतियों को धोखा देती हैं, उसे ठगती हैं, उसके सामने कपट व्यवहार करती हैं और कभी-कभी अपने पुरुष पर

प्रेम से किसी प्रकार उसका अन्त भी करा देती हैं। यदि वे स्वछन्दचारिणी, स्वैरिणी, पण्य स्त्री बन जाती हैं, तब तो निरन्तर पाप बटोरती ही रहती हैं। उनमें यदि कलियुग सदा बसेगा तो धर्मात्मा लोग दूर से ही उनका परित्याग करेंगे। पापी ही उनके समीप जायँगे। सब पापी-पापी एक ओर हो जायँगे। इससे धर्म का सर्वदा लोप न होगा। धर्मात्मा पुरुष सर्वथा उनसे पृथक बने रहेंगे। किन्तु लाभ से सदा लोभ बढ़ता है।

कलियुग की इस प्रकार प्रार्थना करने पर महाराज परीक्षित ने उसे जूआ, मद्यपान, वेश्या और हिंसा- ये चार स्थान दिये। अर्थात् जहाँ-जहाँ ये पाप हुआ करें, वहीं तुम रहा करो। इन्हीं चारों के कारण असत्य, मद, काम और रजोगुण जनित क्रूरता- ये सब अधर्म हुआ करते हैं।

परीक्षित बोले यह सब अपवित्र स्थान है- स्त्री, लम्पट इनमें चले जा। द्यूत कहां होती है वहां चले जा, मदिरामें चले जा, हिंसा में चले जा। वहां रह लेकिन राज्यमें और कहीं नही आयेगा। कलियुग बोला- महाराज यह तो अपर्याप्त है मेरे लिये। इतनी जगह मैं मेरे परिवार और बच्चे सबको लेकर मैं कहा जाऊंगा। यह साम्राज्य तेरा नहीं होगा परीक्षितका होगा।

बोले-नृप-मम द्वार विमुख याचक नहिं जाहीं। वेश्या, हिंसा, द्युत मधमहँ बसहु सदाहीं॥
सोची भूपति यही चार अति निन्दित थल है। आसक्ति मद, झूठ क्रूरताके ये बल हैं॥
गिड़गिड़ायें पुनि कलि कहै, निन्दित अधम सबहिं दये। एक मनोहर नाथ? दैं, तब राजा सोचत भये॥

जब उसने और भी एक सुन्दर स्थान की प्रार्थना की, तब महाराज ने उसे सुवर्ण और दिया जिसमें पिछले चारों- असत्य, सद, काम और रजोगुण के सहित पंचम बैर भी भरे हैं। इन पाँच स्थानों में कलि को रहने की आज्ञा दी।

कलियुग बोला- एक और स्थान दे दो। परीक्षितने उसको कहा- जिस मनुष्य के पास द्रव्य व सोना हो, वह उसमें से दान व धर्म न करें वहां तुम जाकर बसो। तब महाराज परीक्षित जो साक्षात् दयामूर्ति थे, उसने कलि के निवास हेतु चार स्थान बताये- १) द्यूत क्रीड़ा, २) मद्यपान, ३) स्त्री संग, ४) हिंसा। इनमें क्रमश: असत्य, भय, आसक्ति और निर्दयता निवास करती है। कलि ने इन चार स्थानों को अपर्याप्त बताया। तब पाँचवाँ स्थान समर्थ परीक्षित ने सुवर्ण (धन) और दिया। इस प्रकार कलि के पाँच स्थान- झूठ, मद, काम, बैर, रजोगुण हो गये।

तू स्वर्णमें वास कर, न्यायोचित स्वर्णमें नहीं, अन्याय से अर्जित धन, स्वर्ण उसमें तेरा वास होगा। जो अन्याय से आया हुआ धन घरमें हो, वह घर कलुषित होती है, पूरा घर बिखर जाता है, पूरा घर टूट जाता है। कलिसे कलह होता है।

सूतजी ने कहा- शौनकादि ऋषियों तभी से पृथ्वी पर कलियुग ने अपने पैर फैलाने प्रारम्भ कर दिये। इसलिये पुरुषों को द्यूत, मद्यपान, स्त्री प्रसंग, जीव हिंसा और सुवर्ण के लोभ से सदा बचे रहना चाहिये। जिसे परमार्थ पथ का पथिक बनना हो, जिसे उन्नति के ऊँचे शिखर पर चढ़ना हो, जिसे इस संसार सागर को पार करने की इच्छा हो, जिसे जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति पानी हो, उसे भूलकर भी इन पाँचों वस्तुओं में आसक्ति न करनी चाहिये।

कलियुगने हाथ जोड़े और कलियुग चला गया। बोला अब आ जाता हूं इसमें प्रवेश करने। परीक्षितके दिये हुए इन पांच स्थानोंमें अधर्मका मूल कारण कलि उनकी आज्ञाओंका पालन करता हुआ निवास करूँगा। इसलिये आत्मज्ञानी पुरुषको इन पांच स्थानोंका का सेवन कभी नहीं करना चाहिए। धार्मिक राजा, लोकनेता, धर्मोपदेश गुरु इन सबको बड़ी सावधानीसे इनका त्याग कर देना चाहिए। राजाको जिसमें दोष हो वो बातें कभी नहीं करना चाहिए। राजाने अपने शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई भी जीवहिंसा न करे, मदिरा न पीये, जुवा न खेले, परस्त्रीगमन न करे। यथाशक्ति दान देवें। जो कोई देवता, साधु-संत, ब्राह्मण, गौ, वेद और शास्त्र को न मानकर इन पाँचों में से कोई काम करेगा उसका अन्न व धन छीनकर दंड दिया जायेगा। इसके पश्चात परीक्षितने उस धर्मरूपी बैलके तीनों चरण- तपस्या, शौच और दया जोड़ दिये और

आश्वासन देकर पृथ्वीको विदा किया।

स्वर्ण एक संसार माँहि हत्याकी जर है। स्वजन विजन बनिजायँ बैरको यह ही घर है।।
कौरव पांडव लरे नाश सब जगको कीन्हों। दोष खानि लखि नृपति पाँचवां सोनों दीन्हों।।
सुखी स्वर्ण सुनि कलि भयो, अति प्रसन्न ह्वैं हँसि गयो। स्वर्ण मुकुट नृप सिर निरखि, तुरत ताहि महँ धसि गयो।।

कलियुग आया और क्या-क्या लक्षण है देख। कलियुगका स्वरूप इसप्रकार होगा।

यह संसार परिवर्तनशील है इसमें जो वस्तुएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं, वे उसी रूप में सत्य नहीं। सभी असार, नाशवान और क्षणभंगुर हैं, इन सबमें जो समान रूप से व्याप्त भगवान् की सत्ता है वही सत्य है। इस रोग, शोक, चिन्ता और व्याकुलता के निलय रूप संकार की रचना प्रभु क्यों करते हैं? धर्म ग्राह्य है, अधर्म त्याज्य है। काल रूप प्रभु सदा क्षण-क्षण में अपना नूतन रूप धारण करते रहते हैं। कभी भी एक दशा में नहीं रहते। उनकी गति दुर्निवार है। उसे कोई टाल नहीं सकता। महर्षि व्यासने कहा था- कि लोगों की वर्णाश्रम धर्ममें आस्था नहीं रहेगी। अध्ययन में गुरु शिष्य प्रथा नष्ट हो जायगी। शूद्र और अन्त्यज उच्च वर्णोंका कार्य करने लगेंगे। ५ हजार वर्ष बाद कलियुग आ जायगा। उच्च वर्णों के लोग अन्त्यजों के साथ सहभोज, सह विवाह करने में अपना बड़ा गौरव समझेंगे। सदाचार संस्कृति का ऱ्हास हो जायगा। सन्ध्या-वन्दन, देव, ऋषि, पितृ श्राद्ध तर्पण, पूजा, पाठ सभी की हँसी उड़ाई जायगी। स्वेच्छाचार ही श्रेष्ठ धर्म समझा जायगा। सभी लोग सभी वृत्तियों को स्वीकार करके द्रव्य उपार्जन करने लगेंगे। दस्यु धर्मी, विधर्मी राजा बनेंगे। राजा व्यापार करने लगेंगे। स्त्रियाँ लज्जाहीन हो जायँगी। कुलीन स्त्रियाँ एक वस्त्र से, अपने आधे अङ्गों को खोले हुए, निर्लज्ज होकर पुरुषों के साथ पथोंपर, वाटिकाओं में घूमेंगी। कन्या कोई न रह जायगी। अविवाहिता, विवाहिता, विधवा सभी एक-सी हो जायँगी। कोई सौभाग्य चिन्ह आभूषणों को धारण न करेंगी। श्री और क्रान्ति से हीन, वस्त्र आभूषण रहित हो पैरों को विधवाओं की भाँति दिखाती फिरेंगी। एक दो नहीं, घर-घर भ्रूणहत्यायें होंगी। कुमारियों और विधवाओं से उत्पन्न, अधर्म सन्तानों की ही संस्था बढ़ जायगी, वे पापाचरण में प्रवृत्त होंगे। कुलीन महिलाओं और वेश्याओं के वेष, भूषा, आचरण, व्यवहार में कोई अन्तर न रह जायगा। दाम्पत्य भाव नष्ट हो जायगा। स्त्रियाँ, पुरुषों से पृथक् अपनी सत्ता स्थापित करके पुरुषों के साथ संघर्ष करेंगी। पापाचरण की प्रवृत्ति इतनी बढ़ जायगी कि बहुत-सी कामिनी यथेच्छ स्वेच्छाचरण करने के निमित्त और प्रसव पीड़ा से बचने के निमित्त शल्य शास्त्र की सहायता से, अपने गर्भाशय को ही निकलवा दिया करेंगी। ऊपरसे देखने में तो वे मानवी जान पड़ेंगी। उनकी आकृति मानवी होगी, देखने में भी सुंदर होंगी, किन्तु वास्तव में राक्षसी ही स्त्री योनि में जन्म लेंगी। पर धर्मराज तुम्हें यह घृणित पापाचरणपूर्ण कार्य न देखने पडेंगे। लगता है भगवान इस धराको त्यागकर चले गये। तभी तो कलिकाल का चारों ओर प्रभाव दिखाई पड़ रहा है। लड़की पैदा होनेपर उसीके सहारे कर्ज लेके रहेंगे और कर्ज खाते रहेंगे। लड़की सयानी होंगी उसे बेच देंगे। वैसे कन्या विक्रय करनेवाले नीच, अधम, पापी राक्षस पिता, कलिकाल में बहुत होंगे। ऐसी बेची हुई कन्याके जो पुत्र होंगे, वे अपने पितरों को पिण्डदान देनेके भी अधिकारी न होंगे। कन्या को बेचनेवाला, कन्या के धन से आजीविका करनेवाला, सबसे बड़ा पापी है। ऐसे पापी का मुख देना भी घोर पाप है, कलियुग में ऐसे ही पापी बहुत होंगे। कलियुग में वेदशास्त्रों को छोड़कर इतिहास, पुराण का आश्रय त्यागकर, मनमानी ऊटपटांग रचना करके अर्थ का अनर्थ करेंगे। अनुकूल मार्ग को छोड़कर प्रतिकूल मार्ग का आरय लेंगे। मुख से न खाकर अपान मार्ग से खायँगे। कलियुग अधर्म का मित्र है।

रामचंद्र कह गये सियासे ऐसा कलियुग आयेगा... हंस चुगेगा दान तिनका कौआ मोती खायेगा।

परीक्षितके द्वारा कलियुगका दमन हुआ और कलियुगके लिये वास करने के लिये परीक्षितने स्थान निश्चित कर दिये। परीक्षितके सभासदोंने पूछा- बोले महाराज, आपने यह क्या अनर्थ कर दिया। कलियुगको आपने जगह रहने के लिये कैसे दे दी, आपने उसको प्रवेश, अनुमति कैसे दी?

महाराज आपने कलियुग में ऐसा कौनसा गुण देखा कि दयावश अपने राज्य में स्थान दे दिया। धन से लोभ बढ़ता है, लोभ पाप का मूल है, पाप में ही कलियुग का वास है।

परीक्षित बोले- मुझे कुछ पता है, मैंने अपने स्वार्थके वशीभूत उसको अनुमति दी है। उसको भगवान का वरदान प्राप्त है। सभासद बोले- महाराज वो क्या है? परीक्षित बोले- इसको यह वरदान प्राप्त है कि इसके काल में चाहे जितना बड़ा अनर्थ कर देना, जीव हत्या, पापहत्या, कैसा भी अनर्थ चोरी, गुरुपत्नी समागम, चाण्डाल, जो कोई हरि-कीर्तन इस युगमें कर लेगा वह भवसागर पार हो जायेगा। परीक्षित बोले- कलिकाल मैं जानता हूं। कलिकाल के व्यक्ति जब आनेवाले काल में कोई व्यक्ति यह जप, तप, यज्ञ, हवन कुछ नहीं करनेवाले, सब बड़े आलसी होंगे। सुपारी खाना तक छोड़ते नहीं, पान खाना तक छोड़ते नहीं वो क्या भजन-कीर्तन तप करेंगे। क्या मन लगेगा भगवान में। तो सिर्फ भजन-कीर्तन कर लिया तो भी उसका बेडा पार हो जायेगा। इसलिये मैंने कलियुगको स्थान दिया है। पुण्यकर्म तो समल्पमात्रसे ही फलीभूत हो जाते हैं, परन्तु पापकर्मका फल शरीरसे करनेपर ही मिलता है। भगवान के गुणों की समता कोई नहीं कर सकता, उनसे बढ़कर तो कोई हो ही नहीं सकता। ब्रह्माजीने भगवान के चरणोंका प्रक्षालन करनेके लिये जो जल समर्पित किया वही उनके चरणनखोंसे निकलकर गंगाजीके रूपमें प्रवाहित हुआ। वे जल सारे जगत्को पवित्र करता है। परीक्षित अपने राजमहल में लौट आये।

शुभ कर्म तो मन से भी यदि किये जायँ तो उनका फल हो जायगा और पाप कर्मों का फल तभी होगा, जब वे शरीर से किये जायँगे। **कलि कर एक पुनीत प्रतापा, मानस पुण्य होई नहीं पापा।**

मन से किसी की बुराई सोचने का पाप कलियुग में नहीं लगेगा। कलियुग वालों की सुविधा के लिये बताया केवल कीर्त्तन करके भी भगवत् प्राप्ति हो जाय तो बहुत बड़ी सुविधा है। मानस पुण्य तो होगा, मानसिक पाप नहीं होगा, यह भी बहुत बड़ी सुविधा है।

अन्य युगों में ऐसा होता था कि मन में भी कोई पाप करता था तो उसका फल सबको भोगना पड़ता था। सत्ययुग में कोई एक पुरुष पाप करता था, पूरे राष्ट्र को उसका फल भोगना पड़ता था। त्रेता में ऐसा हुआ कि एक व्यक्ति के पाप पुण्य के भागी नगर वासी होते थे, द्वापर में कुल परिवार और सम्बन्धी पाप के भागी होते थे। अब कलियुग में जो पाप पुण्य करे, वही उसका फल भोगे। पाप कर्म यदि भूल से मन में स्वत: ही आ जायँ तो उनका कुछ भी फल नहीं होता, किन्तु पुण्य कर्म मन में भी आ जाय तो वे शुभ फल देनेवाले होते हैं। कलियुग दोषों की खानि है, किन्तु उसमें एक यह भी बड़ा भारी गुण है कि बिना किसी अन्य साधनों की अपेक्षा किये, जो भगवान के नामों का कीर्तन करता है वह भगवद् धाम को प्राप्त हो जाता है। विधिहीन यज्ञ का कर्ता तत्काल ही विनाश को प्राप्त होता है।

जो भगवान के भक्त हैं जिनकी श्रीकृष्ण चरणारविन्दों में अहैतुकी भक्ति है, उनका यदि एक क्षण भी सत्संग मिल जाय तो उस क्षण भर के सत्संग की बराबरी हम स्वर्ग तथा मोक्ष सुख के साथ भी नहीं कर सकते। सूतजी बोले- शौनकादि ऋषियों, जहाँ कई भक्त मिलकर भगवत् चर्चा करते हैं वहां सत्संग रूपी सुरसरि का सुन्दर, स्वच्छ, सुखकर, सर्व हितकारी प्रवाह बहने लग जाता है, जिसमें निमज्जन करने से संसार-ताप से सन्तप्त प्राणी निस्ताप बन जाते हैं। समय की सार्थकता भगवत चर्चा में ही है।

समाधि योग और तप से भी, जो फल साधक नहीं पाता है। कलियुग में हरि कीर्तन से, ही वह उपलब्ध हो जाता है।।

दिग्विजय करते समय परीक्षितने देखा शूद्रके रूपमें कलियुग राजाका वेष धारण करके बैलके जोड़ेको ठोकरोंसे मार रहा है। उसे बलपूर्वक पकड़कर दण्ड दिया। परीक्षितके राज्य में उसके न्यायसे गाय व बाघ एक घाट पानी पीते थे।

१६) परीक्षितको शृंगी ऋषि का श्राप और परीक्षितका आमरण अनशनव्रत व शुकदेवजीका परिचय और आगमन

व्यसन अच्छे एवं बुरे दोनों कर्मों में होता है वैसे व्यसन का अर्थ आदत या अभ्यास से भी लगाया जाता है। शुभ कर्मों का व्यसन मोक्ष प्रदान करता है और अशुभ कर्मों के व्यसन का फल भी अशुभ ही होता है। राजाओं को प्राय: आखेट (शिकार) का व्यसन होता था। राजा दशरथ को भी आखेट के व्यसन के कारण ही राम के वियोग में प्राणों की आहूति देनी पड़ी थी और महाराजा परीक्षित को भी आखेट के कारण ही राजपाट का त्याग करना पड़ा।

एक दिन की बात है- परीक्षितके मनमें शिकार खेलने का शौक आया। वो गये अपने राजभवन के राजकोष में। उसमें तरह-तरह के मुकुट पड़े थे एक मुकुट सोनेका जो कि जरासन्ध को मारकर इसके दादा भीमने, पांडवोंने वो मुकुट लाया था। सहदेवने उनको, (सहदेव जरासन्ध का पुत्र) तोहफे के बतौर दिया था। वह मुकुट लाकर पांडवोंने अपने राजखजाने में रखा था। एक दिन वह राजखजाना खोलते-खोलते परीक्षित ने देखा मुकुट बड़ा अच्छा है, भारी है, मुकुट सिरपर धारण कर दिया और घोड़ेपर सवार होकर आखेट करने के लिए निकल पड़े।

गद्‌गद् ह्वैके सूत ऋषिनितें बोले बानी। कृष्ण कृपाको पात्र बन्यो अब मैंने जानी।।
कृष्ण चरित हैं अमित सबहिं मति सरिस सुनावें। निज बलके अनुसार पक्षि नभ माँहि उड़ावें।।
कीर्तनीय गुण कर्म अति, जिनके परम उदार है। धनि धनि ते नर नितहिं जे, सुनहिं गुनहिं धुनितें कहैं।।

एक दिन राजा परिक्षित धनुष लेकर वनमें शिकार खेलने गये। दिग्विजय करते हुए वे अपने शिबिरसे थोड़ी ही दूर जंगल में निकल गये। मृगों का पीछा करते-करते वे बहुत थक गये और भूख-प्यास से बहुत अधिक व्याकुल हो गये थे। इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने पर भी उन्हें कोई जलाशय दिखाई नहीं दिया। अन्त में समीप ही एक ऋषि के आश्रम में घुस गये। भीतर जाकर उन्होंने देखा कि एक मुनि शान्त भाव से नेत्र बन्द किये हुए बैठे हैं।

हरिणोंके पीछे दौड़ते-दौड़ते वह थक गये और उन्हें बड़े जोरकी भूख और प्यास लगी। जंगल था, बड़ा भयानक जंगल। उस जंगल मे शिकार खेलते-खेलते शिकार कोई मिली नहीं परीक्षित श्रमसे, भूखसे, प्याससे पीडित होकर विश्राम के लिए जगह ढूंढ रहे थे। कहींपर एक आश्रम दिखाई दिया। वह आश्रम शमीक मुनिका था। श्रमिक मुनि अपने ध्यान-समाधि में मग्न थे, ध्यान में बैठे थे। परीक्षितने देखा कि यह मुनि मुझे देखकर आँखे नहीं खोलता है, न ही मेरा आतिथ्य करता है, उस समय बुद्धि खराब कि मुनिसे क्या अपेक्षा करते हो स्वागत की, राजोचित्त सम्मान की। मुझे इसने पानी तक नहीं पूछा, मैं यहां प्यासा मर रहा हूं, कोई फल-मूल भी नहीं पूछा। बड़ा ढोंगी है। दो बार पुकारा हे ऋषे, नाम नहीं मालूम। मुनिने कोई ध्यान नहीं दिया, समाधिष्ठ थे। क्रोधावेश क्योंकि सिरमें कलियुगका प्रवेश था। भूख प्यास के कारण क्रोध ने अपना यथार्थ रूप प्रकट कर दिया। छिपी वस्तु को जानने की लालसा अत्यधिक होती है।

इसी समय कलियुग ने अपना प्रभाव दिखलाया। भूख-प्यास में मनुष्य अपने विवेक को खो बैठता है। उसे धैर्य नहीं रहता। सद्-असद् का निर्णय करने में वह समर्थ नहीं होता।

उन्हें कोई जलाशय नहीं मिला। तब पास ही में एक ऋषि के आश्रम को देखा तो उसमें प्रवेश किया। आश्रम में आँख बन्द करके शान्त भाव से मुनि आश्रम में बैठे थे और तपस्या कर रहे थे। राजा परीक्षितने ऐसी अवस्था में उनसे जल मांगा। जब मुनिने ध्यानमें उनका कोई आदर सत्कार नहीं किया। तो परीक्षित क्रोधित हो गये। वे भूख प्यास से छटपटा रहे थे, इसलिये उन्हें मुनिके प्रति ईर्ष्या और क्रोध आ गया। वहाँसे लौटते समय उन्होंने क्रोधवश धनुषकी नोकसे एक मरा सांप उठाकर ऋषिके गलेमे डाल दिया और अपनी राजधानी में चले आये। बोले धिक्कार है तुझे जो तू आये हुए अतिथि का सत्कार नहीं करता और परीक्षित आश्रम छोड़कर चला गया। उसी समय वहां देखा एक काला सांप मरा पड़ा हुआ है, धनुष बाण से उठाया और मुनिके गलेमें डाल दिया।

प्यासे राजा के जल माँगने पर भी जब मुनि ने उन्हें तृण का आसन अथवा भूमि ही बैठने को नहीं दी और न अर्घ्य तथा मधुर वचनों से उनका सत्कार ही किया तो राजा अपने को अपमानित मानकर क्रोधित हो गये। हे ब्रह्मन। ऐसा पहिले कभी नहीं हुआ था, भावीवश भूख-प्यास के कारण महाराज व्याकुल थे। दैव की गति- उन्हें सहसा मुनीश्वर पर ईर्ष्या तथा क्रोध भी आ गया।

आयो नृपकूं कोह द्रोह मुनिवरतें कीन्हों। मर्‍यो-सांप मुनि नारि डारिकें भूपति दीन्हों।।
कबहुँ न ऐसों कर्‍यो कालकी कैसी गति है। होनी जैसी होय तबहिं तस होवै मति है।।
विधि विधान ह्वैंकें रहै, कबहुँ होय नहिं व्यर्थ वह। पाण्डव नल अरु रामके, चरित बतावें तत्व यह।।

महाराज परीक्षित ने सोचा यह मुनि क्या वास्तव में अपनी समस्त इन्द्रियों से उपरत होकर अपने नेत्र बन्द किये हुये बैठा है अथवा यह सोचकर कि इन नीच क्षत्रियों से हमें क्या प्रयोजन इसने अपनी आंखें मीच ली हैं। इसकी परीक्षा करने के निमित्त ही राजा ने क्रोध में भरकर आश्रम से लौटते हुए एक मरा सर्प अपनी धनुए की नोंक से उठाकर, मुनि के गले में डाल दिया और अपनी राजधानी को लौट आये।

होनहार नहिं होय अन्यथा काहू विधितें। मृत्यु टरै नहिं जोग यज्ञ तप रिद्धि सिद्धितें।।
नृप सोचें- मुनि नेत्र मूँदि का ध्यान लगावे। अथवा देखत मोइ अकड़िकें ढोंग बनावे।।
लैंन परीक्षा मुनि गये, मृत अहि डार्‍यो कुपित अति। आश्रमतें निकसे तुरत, पहुँचे निजपुरमहँ नृपति।।

पास ही कुछ बच्चे खेल रहे थे देखा कि परीक्षित राजा आये हुए हैं और शमिक मुनिके गलेमें मरा हुआ नाग डालकर चला गया। शमीक मुनिका पुत्र श्रृंगी ऋषि उस नदीके किनारे खेल रहा था। बालकोंमे खेल रहा था, बच्चोंने जाकर कहा कि ऐसे-ऐसे एक राजा आया था और वह सम्राट परीक्षित था। श्रृंगी ऋषि आये देखा- पुत्र बोला मेरे पिताके गलेमें मरे हुए साँप। इस राजाकी हिम्मत कैसे हुई। हमारे आशीर्वाद से पलता यह राजा, यह वंश, कुत्ते लोग। ब्राह्मणोंकी रोटियोंपर अपना हाथ फिरा रहे है। श्रृंगी ऋषि कहने लगा- यह राजालोग उच्छिष्टभोजी कौओंके समान संड-मुसंड होकर अन्याय करने लगे हैं। ब्राह्मणोंके दास होकर कुत्तेके समान अपने स्वामीका तिरस्कार करते हैं। क्या एक क्षत्रिय राजा ऐसा साहस कर सकता है? क्या मेरे त्रैलोक्यवंदित पूज्य पिता का मेरे रहते कोई इस प्रकार अपमान कर सकता है? यह विचार हृदय में आते ही उसके ओठ फरकने लगे, दोनों नेत्र अरुण रंग के होकर अग्नि के समान जलने लगे। सब लड़कों को सुनाते हुए वह क्रोध में भर कर बोला- अरे, उस अधम क्षत्रिय का ऐसा साहस? जिस पत्तल में खाय, उसी में छिद्र करे। जिन्होंने इसे राजा बनाया, उन्हीं के साथ ऐसी धृष्टता? अत्यन्त क्रोध में भरकर ऋषिपुत्र ने कहा- उसे रक्षक बनाया किसने? यज्ञ के समय हम ब्राह्मण लोग द्वार की रक्षा के लिये कुत्ता रख देते हैं कि वह द्वार की रक्षा करें। तो इसके माने यह तो नहीं होते कि

वह आकर हमारे हवि को उच्छिष्ठ करें। मनुष्य है तो क्या अधर्म करेगा? अस्त्र-शस्त्र बांधकर क्या अन्याय करेगा? क्या सेवक स्वामी की बराबरी कर सकता है? किसी ने अपने द्वार पर कोई पहरेदार रख दिया कि तुम अस्त्र-शस्त्र बाँधकर घर की रक्षा करते रहो तो क्या वह द्वारपाल भीतर घुसकर स्वामी के आसन पर बैठ सकता है? उसकी शैया का उपयोग कर सकता है अथवा उसके बर्तनों में भोजन कर सकता है? ब्राह्मणों ने ही तो क्षत्रियों को अपना रक्षक, पहरेदार और द्वारपाल बनाया है, उसका काम मर्यादा के अन्दर रहकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना है। उसे जहाँ बैठने को स्थान दिया गया है, वहीं बैठे। वह स्वामी का अपकार नहीं कर सकता। आज उसने यह धर्म विरुद्ध शिष्टता से रहित मनमाना आचरण किया है। भगवान स्वधाम पधार गये तो क्या हुआ? हम में क्या तपस्या का बल नहीं है। अस्त्र-शस्त्र तो दुर्बल क्षत्रिय बाँधते हैं। हमारा बल तो तप है। वाणी ही हमारा अमोघ वज्र है। आज मैं उसी अमोघ वाक्वज्र से अधर्मी राजा का अन्त कर दूँगा। उस अन्यायी नरपति को शीघ्र ही अपने किये का फल भोगना होगा। अविलम्ब उसे यमराज का सदन देखना होगा। जिसने मेरे पिता के गले से मृतक सर्प का आलिंगन कराया है, उसे स्वयं मृत्यु से आलिंगन करना होगा।

मेरा तपोबल देखो मैं इसे आज दण्ड दूंगा। श्रृंगी ऋषि क्रोधित हो गया और गंगाजल हाथ में लिया और बोले आज मैं श्राप देता हूँ कि राजा परीक्षित ने जिस अभिमान में मेरे पिताके गले में सर्प डाल दिया है यहीं सर्प जीवित होकर आजके सातवें दिन तक्षक राजा परीक्षित को डँसेगा और उसकी मृत्यु होगी। कुलाङ्गार परीक्षितने मेरे पिताका अपमान करके मर्यादाका उल्लंघन किया है, इसलिये मेरी प्रेरणासे आजसे सातवें दिन उसे तक्षक सर्प डस लेगा। धर्मकी मर्यादा को तोड़नेवाले, मेरे पिता के साथ व्यर्थ ही द्रोह करनेवाले इस कुल कलंक राजा को मेरी प्रेरणा से आज के सातवें दिन तक्षक नाम का सर्प डस लेगा।

हो मुनिको इक पुत्र संयमी परम तपस्वी। धरम-करममहँ निरत तपोनिधि महायशस्वी।।
पिता अवज्ञा सुनी कोप अति मनमहँ आयो। मुनि पुत्रनिके निकट क्रोध करि बचन सुनायो।।
अरे दुष्ट क्षत्रिय अधम, ऐसो साहस करि सके। गरुड़ गरेमें काटि अहि, कहु को जीवित रहि सके।।

श्रृंगी ऋषि का यह श्राप जो परीक्षित की मृत्युका कारण बना और भागवत बनने का कारण बना यह श्रृंगी ऋषि का श्राप परीक्षितको लग गया। परीक्षित चले गये। जाने-अनजाने में भगवन्निष्ठ साधु-महात्माओं एवं ब्राह्मणों के प्रति किया गया अपराध स्वयं के लिए घातक सिद्ध होता है। जीवन में थोड़ीसी असावधानी और संशय, अज्ञान और मोह की जननी है। जीवमात्र को (तक्षक) काल का भय है।

दुनिया उपर राज हैं, राजा ऊपर सन्त। सन्तन के आधार है, प्रभु अनन्त भगवन्त।।

जीवन में अगर कोई भूल हो गई हो तो उसका सुधार कर लो मार्जन कर लो।

डारि नाग ऋषि कंठ में, नृप ने कीन्हों पाप। होनहार हो कर हुतो, श्रृंगी दीन्हों शाप।।

मुनि की आंखे खुल गई पुत्र को देखकर। देखा सर्प। शमीक मुनिने अपने पुत्रका रोना-चिल्लाना सुनकर धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलीं और देखा कि उनके गलेमें एक मरा साँप पड़ा है। श्रृंगी ऋषि रो रहा है और बोला- इस देश का राजा परीक्षित आया था। आपको समाधि में स्थित देखकर मरा सर्प आपके गलेमें डालकर चला गया। आपका अपमान उस राजाने किया है जिसने मरा हुआ सर्प आपके गलेमें डाल दिया है। क्यों आया यहा वो? शमीक ऋषिने देखा- सर्प निकाला। शमीक ऋषिकी दृष्टि में परीक्षित श्राप के योग्य नहीं थे। श्रृंगी ऋषिने बोला- मैंने उसको ऐसा श्राप दिया है वह जीवनभर याद रखेगा। आजके सातवें दिन उसकी लीला खत्म होगी।

शमीक ऋषि बोले- भला कहीं ऐसे धर्मात्मा राजा को ऐसा भीषण शाप दे दिया जाता है। मूर्ख, यह तुने क्या लड़कपन

कर दिया? तपस्या का क्या यही फल है कि तनिक-सी बात पर वाग्वज्र चला देना। निरपराध प्राणियों पर शाप का प्रहार कर देना। यह तो अपने तप को क्षीण करना है। किसी अन्य साधारण पुरुष पर नहीं, राजा पर जो कि साक्षात् विष्णु भगवान का अंश माना जाता है। उसी के तेज से आज हम यहां घोर जंगल में निर्भय हुए तपस्या कर रहे हैं। उसी के पुरुषार्थ के कारण यज्ञ याग आदि धार्मिक कार्यों में दुष्ट और राक्षस आकर विघ्न नहीं करते।

शमीक ऋषि बोले पुत्र यह क्या किया तुमने। बड़ा अनर्थ हो गया। ओ मूर्ख बालक तूमने बड़ा पाप किया। इनकी तुच्छ गलती पर तुमने उनको इतना बड़ा दण्ड दिया। तेरी बुद्धि अभी परिपक्व नहीं है। तू ऋषि है, तपस्वी है। वो कभी क्रोध नहीं करते। तूने यह क्या कर दिया। वह हमारा राजा है। पहले तो राजा कोई अपराध करता नहीं है। हमसे ही कोई अपराध बना होगा। और फिर भी यदि कोई भूल-चूक में अपराध कर दिया भी तो क्षमा करना चाहिये यह तुमने क्या कर दिया। राजाके दुस्सह तेजसे सुरक्षित और निर्भय रहकर ही प्रजा अपना कल्याण सम्पादन करती है। जिस समय राजा नहीं होगा तो इस पृथ्वीपर चोर बढ़ जायंगे और पृथ्वीका नाश होने लगेगा। क्योंकि राजा के न रहनेपर लुटेरें बढ़ जाते है। पशु,स्त्री और धन सम्पत्ति लूट लेते है। उस समय मनुष्योंका वर्णाश्रमाचारयुक्त वैदिक आर्यधर्म लुप्त हो जाता है। अर्थ, लोभ और कामना के विवश होकर लोग कुत्तों और बंदरोंके समान वर्णसंकर हो जाते है। यह राजा बड़ा धर्मात्मा है। इसके समान सदाचारी, बली, प्रतापी, प्रभावशाली दूसरा कोई राजा नहीं। तुम्हारे शाप से जब यह विष्णु स्वरूप नरदेव मर जायगा तो पृथ्वी पर दस्यु और चोरों का प्राबल्य हो जायगा। जब चारों ओर चोर-ही-चोर हो जायँगे तो सभी स्थानों में लूट मार मच जायगी। एक-दूसरे का धन छीन लेंगे, दूसरे के पशुओं को ले जायेंगे, कन्याओं के साथ बलात्कार करेंगे, स्त्रियों का हरण होगा। प्रजा में हाहाकार मच जायगा, जनता इधर-उधर बिना रक्षित भेड़ों के झुण्डों के समान भागती हुई कुँओं में गिर जायगी। सर्वत्र अनर्थ और अत्याचार का बोल-बाला हो जायगा। ये सब दु:ख हमें भी भोगने पड़ेंगे। हम भी इस पाप के भागीदार बनेंगे, क्योंकि हमारे ही कारण ये सब अनर्थ उत्पन्न हुए हैं। इतना ही नहीं धार्मिक राजा के न रहने से वर्णाश्रम धर्म न रहेगा। वर्णाश्रम धर्म के न रहने से वेद विहित आचार भी लुप्त हो जायँगे। आचार-विचार कुल परम्परागत मर्यादा के नष्ट हो जाने से सभी वर्ण के लोग सभी वर्णों के साथ विवाह सम्बन्ध करने लगेंगे, सभी जहाँ-तहाँ सबके साथ सर्वत्र बिना आचार-विचार के खाने-पीने लगेंगे। काम वासना बढ़ जायगी, लोकमर्यादा नष्ट हो जायगी, लोग कुत्ते और बन्दरों की तरह गम्याअगम्या का विचार न करके सभी वर्ण, सभी प्रकार की स्त्रियों में सन्तान उत्पन्न करने लगेंगे। वे वर्णसंकर सन्तानें धर्म-कर्म से हीन-परलोक कार्यों से रहित-होकर पाप कर्मों में ही प्रवृत्त रहेंगी। महाराज परीक्षित तो बड़े ही धर्मात्मा हैं। वे समस्त भूमंडल के चक्रवर्ती राजा हैं। उन्होंने इस कलिकाल में भी धर्म की कितनी रक्षा की है, उनके भय से ही कोई अधर्म कार्यों में प्रवृत्त नहीं हो सकता, परदारा, परधन का अपहरण नहीं कर सकता। उन्होंने बड़े-बड़े अश्वमेध आदि यज्ञ किये हैं। उनका यश त्रिभुवन में व्याप्त है। इतना ही नहीं वे बड़े यशस्वी हैं, वे भगवान् वासुदेव के अनन्य भक्त भी हैं।

फिर सम्राट परीक्षित तो बड़े यशस्वी और धर्मधुरन्धर हैं। वे राजर्षि हैं। सर्वात्मा भगवान कृपा करके इसे क्षमा करें। महामुनि शमीकके पुत्र श्रृंगी को इसपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। महात्माओंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि जगत्में जब दूसरे लोग उन्हें सुख-दु:खादि द्वन्द्वोंमें डाल देते हैं, तब भी वे प्राय: हर्षित या व्यथित नहीं होते; क्योंकि आत्माका स्वरूप तो गुणोंसे सर्वथा परे है।

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु। समत्त्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति।।

श्रृंगी ऋषि बोले- पिताश्री, विधि का विधान कौन टाल सकता है। मुझे क्रोध में भान नहीं रहा, क्रोधमें आदमी विवेक

भूल जाता है। इसलिए हो वहाँ तक शमित कर दीजिये।

डारयो पितृ उर साप शाप हौं देहौं वाकूँ। डसे साँतवें दिवस महाअहि तक्षक ताकूँ।।
यों देकें सुत शाप पूज्य पितृके ढिग आयो। मरयो साप उर निरखि, बहुत रोयो चिल्लायो।।
जगे महामुनि सुनी सब, बात बहुत दुख मन करयो। धिक्कार्‌यो सुत विविध विधि, नृप सन वृत्त पठै दियो।।

लेकिन जिस स्थितिमें यह हुआ आप उस स्थितिको बदल दीजिये। परिस्थितियां नहीं बदली तो बहुत बड़ा अनर्थ हो सकता है। शमीक ऋषिने दूसरे शिष्योंको बुलाया और बोले, जाओ राजा परीक्षितको कह दो मेरे पुत्रने तुमको यह श्राप दे दिया है यह बड़ा अनर्थ हो गया है अब जो कुछ उचित लगे वो करे।

राजा परीक्षित इस तरह गलेमें सांप डालकर चले जाते हैं और जैसे ही मुकुट उतारकर रखते हैं सोनेका परीक्षितको ज्ञान आता है ओह मुझसे बहुत बड़ा अनर्थ हो गया है, मैंने क्या कर दिया, मैं किस होशों हवाश में था यह क्या हो गया है? मुझ जैसे बुद्धिमान व्यक्ति से एक चक्रवर्ती सम्राट से सन्तोंका अपराध बन गया। मैं इसका प्रायश्चित्त कैसे कर पाऊंगा? मैंने क्यों उनके गलेमें सर्प डाल दिया, वह तो मुनि थे, अपनी तपस्या में थे। मैंने ऐसे कैसे सोच लिया है कि वह ढोंग कर रहा है?

राजधानीमें पहुँचनेपर राजा परीक्षितको अपने उस निन्दनीय कर्मके लिये बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे अत्यन्त उदास हो गये और सोचने लगे- मैंने निरपराध एवं अपना तेज छिपाये हुए ब्राह्मणके साथ अनार्य पुरुषोंके समान बड़ा नीच व्यवहार किया। यह बड़े खेदकी बात है। अवश्य ही उन महात्माके अपमानके फलस्वरूप शीघ्र-से-शीघ्र मुझपर कोई घोर विपत्ति आवेगी। मैं भी ऐसा ही चाहता हूँ; क्योंकि उससे मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जायगा और फिर कभी मैं ऐसा काम करनेका दु:साहस नहीं करूँगा। ब्राह्मणोंकी क्रोधाग्नि आज ही मेरे राज्य, सेना और भरे-पूरे खजानेको जलाकर खाक कर दे- जिससे फिर कभी मुझ दुष्टकी ब्राह्मण, देवता और गौओंके प्रति ऐसी पापबुद्धि न हो। वे इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि उन्हें मालूम हुआ- ऋषिकुमारके शापसे तक्षक मुझे डसेगा। उन्हें वह धधकती हुई आगके समान तक्षकका डसना बहुत भला मालूम हुआ। उन्होंने सोचा कि बहुत दिनोंसे मैं संसारमें आसक्त हो रहा था। अब मुझे शीघ्र वैराग्य होनेका कारण प्राप्त हो गया।

सज्जन पुरुष समझ लेते हैं, विधान ऐसा ही होने वाला था। प्रारब्ध के वशीभूत ही होकर उनके द्वारा ऐसा विपरीत आचरण सम्भव हो सका। होनहार ऐसी थी। यही सब सोचकर और भली प्रकार स्वस्थ होकर अपने आप ही सूतजी कहने लगे- मुनियों। जैसा समय होता है, वैसे ही आसार सिखाई देने लगते हैं। वसन्त आते ही स्वत: वृक्षों के पुराने पत्ते झड़ जाते हैं और उनके स्थान में नूतन छोटे-छोटे कोपल निकलने लगते हैं। वर्षा समाप्त होते ही अपने आप वायु ठण्डी हो जाती है, गर्मी समाप्त होकर सर्दी पड़ने लगती है। युवावस्था में पदार्पण करते ही लड़के लड़कियों के विशिष्ट अंग अपने आप ही बढ़कर यौवनावस्था की सूचना देने लगते हैं। सब संयोग निश्चित हैं। जैसी भवितव्यता होती है वैसे ही बानक बन जाते हैं। जहाँ जीव की मृत्यु होती है, वहाँ वह इच्छा न होने पर भी चला जाता।

पूछें शौनक- सूत। सर्प तहँ किनने डार्‌यो। मुनि आश्रम अति शांत जीव किहि अहिकूँ मार्‌यो।।
सबहिं भाग्यवश करहिं, सूत समझावहिं पुनि पुनि। मारे किनकूँ कौन-कौन जीवन देवें मुनि।।
अजी, कहा पूछहिं प्रभो। विधि विधान अति विकट है। बने बुद्धि वैसे वहीं, मृत्यु जहाँ जिहि निकट है।।

नगर में लौटने पर महाराज को अपने इस कार्य पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे उसी बात की चिन्ता कर ही रहे थे कि इतने में ही उन्होंने तक्षक द्वारा डसनेवाली मुनि के शाप की बात सुनी। यह बात उन्होंने अपने लिये अत्यन्त ही हितकर समझी। वे सोचने लगे- मेरा चित्त संसार में बड़ा आसक्त हो रहा था। यह तक्षक की विषाग्नि उसके लिये वैराग्य का कारण बन गई।

इत नृप पुरमह पहुँचि कनक जब मुकुट उतार्‍यो। आश्रम करयो कुकृत्य चित्तमहँ फेरि विचार्‍यो।।
अरे, बुद्धि मम भ्रष्ट भई, अनुचित यह कीन्हों। योगनिष्ठ ते महा तपस्वी मुनि अब चीन्हों।।
सोचें- अब मुनि कोपतें, मम सरवसु नसि जायगी। ताही छिन सन्देश ले, शिष्य नृपति ढिंग आइगी।।

इतनेमें शमीक मुनिके भेजे हुए गौरमुख शिष्यगण आते है और बोले- महाराज, श्रृंगी ऋषिने आपको यह श्राप दे दिया। मेरे गुरु बन्धुने कौशिकी के जलको स्पर्श करके आपको यह भीषण शाप दिया है कि आज के सातवें दिन तक्षक सर्प आपको डस लेगा। यह श्राप है। मेरे गुरुदेव ने कहा है, आप धर्मात्मा हैं, मेरे पुत्र का भी कोई दोष नहीं, मैंने समाधि द्वारा देखकर यही निर्णय किया है कि भावी ऐसी ही थी। अदृष्ट को दैव अथवा प्रारब्ध को अन्यथा करने में कोई समर्थ नहीं हो सकता। परीक्षितने इसको शिरोधारण किया और बोले बहुत अच्छा किया मेरे जैसे दुष्टको यही सजा मिलनी चाहिए थी। उन्होंने सात दिन का क्यों दिया तत्क्षण का देते कि मेरा सर्वनाश हो, मेरा राज्य भी किसलिए रहे?

इसलोक और परलोकके भोगोंको तो पहलेसे ही तुच्छ और त्याज्य समझते थे। अब उनका स्वरूपत: त्याग करके भगवान कृष्णके चरणकमलोंकी सेवाको ही सर्वोपरि मानकर आमरण अनशन-व्रत लेकर वे गंगातटपर बैठ गये।

लाखों-लाख वर्षों से भारत के मनीषी गंगा के किनारे बैठकर प्रभु को पाने की चेष्टा करते रहे हैं, और जब भी कोई एक व्यक्ति ने गंगा के किनारे प्रभु को पाया है, तो गंगा उस उपलब्धि से वंचित नहीं रही, गंगा भी आच्छादित हो गई है। गंगा का किनारा, गंगा की रेत के कण-कण, गंगा का पानी, सब इन लाखों वर्षों में एक विशेष रूप से आध्यात्मिक रूप से तरंगायित हो गया है।

इधर महाराज परीक्षित फिर लौटकर महलों में नहीं गये। द्वार पर ही उन्होंने अपने बड़े पुत्र कुमार जनमेजय को बुलाया। उसे अपना मुकुट पहिनाया और समस्त बूढ़े-बूढ़े ब्राह्मणों के हाथों में उन्हें सौंपकर, वे पैदल ही नंगे पैरों गंगाजी की ओर चल पड़े। मन्त्री, पुरोहित, अमात्यों ने बहुत आग्रह किया, नाना प्रकार के हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि वाहनों के रहते हुए भी महाराज उनमें नहीं बैठे। इस प्रकार राजाको सर्वस्व त्यागकर भगवती भागीरथी की ओर जाते देखकर नगर के समस्त नर-नारी, राज्य के सभी लोग, सभी वर्ण और आश्रमों के पुरुष रोते-रोते महाराज के पीछे-पीछे चले। वे किसी की ओर न देखते थे और न किसी की बात ही सुनते थे, उन्होंने सभी की ओर से मुख मोड़ लिया था। नन्दनन्दन भगवान श्यामसुन्दर से ही अपने मन का सम्बन्ध जोड़ लिया था, सभी सम्बन्धों से मन को हटाकर उनसे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया था। इस प्रकार बिना कुछ खाये पिये, महाराज हस्तिनापुर के निकट ही गंगा किनारे एक वट वृक्ष के नीचे अनशनव्रत, एकांतव्रत धारण कर शान्त होकर बैठ गये। आवाज की अनुपस्थिति का नाम शान्ति नहीं, अहं की अनुपस्थिति का नाम शान्ति है।

सुन्यो शिष्य आगमन नृपति तहँ तुरतहिं आये। भूप निरखि भयभीत शिष्यने वचन सुनाये।।
राजन्। ऋषि-सुत शाप दयो सो सब सुन लीजे। सात दिवसमहँ होहि मुक्ति सो कारज कीजे।।
सुनी शापकी बात नृप, सौंपि सुतहिं सब राज धन। कृष्ण चरनमहँ चित्त दै, चले गंगतट मुदित मन।।

उसी समय परीक्षितने आमरण अनशन व्रत राजपाट छोड़ा, जनमेंजय को राजगद्दी दी और बोले मैं आज यह राजपाट छोड़कर गंगा तीरपर जा रहा हूं। मुजफ्फरपुर में शुकताल कहकर एक जगह है जहांपर परीक्षितको कथा सुनायी है शुकदेवजी वहां चले जाते हैं। परीक्षित आमरण अनशन पर बैठ जाते हैं सातवें दिन जो होगा वो होगा।

महाराज परीक्षित तो पहिले से ही राज्य पाट और संसारी सुखों को हेय मानते थे, अब शाप सुनकर इहलोक तथा परलोक के सुखों की आस्था को त्यागकर तथा अन्न-जल त्यागकर प्रायोपवेश व्रत लेकर भगवती भागीरथी के तट पर जा बैठे। क्योंकि वे श्रीकृष्ण चरणारविन्दों की सेवा को ही सर्वश्रेष्ठ मनानेवाले थे।

कमल बसै जलमाहिं किन्तु निरलेप रहे नित। त्यों ही नृप सब करत रहे कारज रखि हरि चित।।
शापित सुरसरितीर चले सुनि सबई धाये। ऋषि मुनि त्यागी सन्त विरागी तपसी आये।।
मुनिनिमाहिं सुरपति लसैं, श्रीपृथु सोहें सत्रमहँ। त्यों सन्तनितें घिरे नृप, अतिशय शोभित होयँ तहँ।।

परीक्षित का वैराग्य उसी प्रकार प्रज्ज्वलित हो उठा, जिस प्रकार पुराना जंग लगा हुआ धातु का बर्तन खटाई लगाकर मल देने से चमकने लगता है। अब उन्हें सम्पूर्ण संसार असार दिखाई देने लगा। बिना छेड़खानी के, बिना ठेस लगे माधुर्य आता नहीं। वीणा के जब तक कान नहीं ऐंठते, जब तक उनके तारों को कसते नहीं तब तक विशुद्ध राग उत्पन्न नहीं होता। जमे हुए घृत को जब तक गरमी नहीं पहुँचाई जाती, तब तक वह पिघलता नहीं। चन्दन को जब तक रगड़ा नहीं जाता, तब तक वह सम्पूर्ण रूप में सुगन्ध नहीं पहुँचाता। सुवर्ण को जब तक अग्नि में नहीं तपाया जाता, तब तक वह चमकता नहीं। हीरे को जब तक शान पर नहीं चढ़ाया जाता, तब तक उसकी कान्ति उज्ज्वल नहीं होती, मृदंग को जब तक मार-मारकर चढ़ाया और मिलाया नहीं जाता, तब तक विशुद्ध ताल नहीं देता। इसी प्रकार जब तक कोई बड़ी ठेस नहीं लगती तब तक इन अनित्य और क्षणभंगुर विषयों से सर्वदा के लिये यथार्थ दृढ़ वैराग्य नहीं होता।

महाराज परीक्षितने भी गंगा के तट पर बैठकर अपने जीवन के अन्तिम सात दिन बिना कुछ खाये-पीये बिताने का निश्चय किया। परीक्षितजी वहां अनशन पर जब बैठ जाते हैं पर मनमें एक भाव है कि सात दिन में हमारी मृत्यु निश्चित है तो भगवान के सामने अन्दर-ही-अन्दर में विलाप कर रहे हैं कि कोई ऐसे सद्गुरु मुझे मिल जाएं जिसको मैं पाकर यह सात दिन का जो जीवन है उसको मैं धन्य कर लूं। तो भगवान शुकदेवजी पधार जाते हैं। उनकी विनती सुनकर शुकदेवजी आ जाते हैं तब परीक्षितजी उनको देखकर उछलने लगते हैं और कहते हैं- **सतगुरु जी तुम्हारी जय होवे।**

राजा परीक्षितको श्रृंगी ऋषिका श्राप लग गया। परीक्षित राजपाट छोड़कर आमरण अनुशन के लिये मुझफ्फरपुर के शुकतालाब के पास जाकर बैठ गये। नंग-धड़ंग, राजोचित्त वस्त्रोंका त्याग, सिर्फ उत्तरीय वस्त्र पहनकर बैठे इन्तजार कर रहे हैं सात दिन का।

जब ऋषि-मुनियों को मालूम पड़ा कि परीक्षितने राजपाट त्याग दिया है और उसको श्रृंगी ऋषि का श्राप लग गया है उसी समय अत्रि, च्यवन, शरद्वान, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मवाह, मेधातिथि, देवल आष्टिर्षेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, अगस्त्य, नारद तथा अन्य कहीं सब व्यास, वशिष्ठ, मैत्रेय, कण्वऋषि, सब ऋषि चारों तरफ से आये और बोले- राजन्, हमारे लिये कोई कर्त्तव्य हो तो बताइये। परीक्षित ने कहा- हे मुनिवरों, आपके शील स्वभावके कारण मैं आपकी कृपाका पात्र बन गया। निरंतर देह गेय में आसक्त रहनेके कारण मैं पापरूप हो गया हूँ। मुझे ब्राह्मण का श्राप लग गया है। यह श्राप वैराग्य उत्पन्न करनेवाला है।

मुझे श्राप लग गया इसकी कोई चिन्ता नहीं है। मुझे कर्मवश चाहे जिस योनि में जन्म लेना पड़े मुझे आशीर्वाद दीजिए कि समस्त प्राणियोंके प्रति मेरी ऐसी मैत्री रहे। और इसप्रकार आमरण अनशनका निश्चय करके बैठ गये। परीक्षित ने पूछा- आप सभी विद्वान परस्पर विचार करके यह बताइये। जल्दी मरनेवालेके लिये इस संसार में क्या कर्त्तव्य है? मेरा उस कर्त्तव्य का पालन करना मेरे लिये क्या कर्त्तव्य निश्चित है आप लोग सब निश्चय करके बताइये।

अत: पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम्। पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा।।

त्रिकालज्ञ मुनियों ने जब देखा कि धर्मात्मा राजा परीक्षित जब इस पृथ्वी का परित्याग करके चले जायँगे, तब तो कलियुग का सर्वत्र साम्राज्य हो जायगा। फिर तो यह मनमाने अन्याय, अत्याचार करेगा। ऐसे समय में किस साधन से साधु पुरुष अपना समय बितावेंगे। सभी के पापी हो जाने से पृथ्वी एक दिन भी टिक नहीं सकती। कलि के कुकृत्यों के

कारण धर्मात्मा पुरुष बिना किसी आश्रय के अवनि पर रह नहीं सकते। अत: इन सात दिनों में ही सभी ऋषि, महर्षि मिलकर कोई सरल, सुगम, सर्वोपरि, सुन्दर साधन स्थिर करके उसे सर्वसाधारण के लिये प्रकट करें। यही सब सोचकर और समाधि द्वारा सभी समाचार जानकर, चारों दिशाओं से झुण्ड-के झुण्ड ऋषि, महर्षि हस्तिनापुर के समीप, आनंद तट नामक स्थान में जहाँ महाराज परीक्षित प्रयोपवेश व्रत लेकर बैठै थे, आने लगे। साधु सन्त तो सदा संसारी सन्ताप से सन्तप्त प्राणियों को सुखी बनाने के लिये पृथ्वी पर भ्रमण करते ही रहते हैं। यद्यपि वे यह नहीं कहते कि हम जगत के उद्धार के निमित्त विश्व का कल्याण करने घूमते हैं।

माघ मकरके मध्य मनुज माधव ज्यों धावें। त्यों सब दिशितें सबहिं सन्त गंगा तट आवें।।
उठें, अरध दें नृपति योग्य आसन बैठावें। चरन धूरि धरि शीश विनयतें वचन सुनावें।।
पाप करम करि क्रूर अति, विप्र शाप शापित भयो। किंतु सन्त दरशननितें, धन्य आज हौं ह्वै गयो।।

आये हुए समस्त ऋषियों का सत्कार करके महाराज परीक्षित उनसे विनयपूर्वक पूछने लगे- हे विप्र वृन्द। मैं आप सब पर श्रद्धा विश्वास करके मनुष्य का क्या कर्त्तव्य है इस पूछने योग्य बात को पूछना चाहता हूँ। ऐसा कौन-सा विशुद्ध कर्म है, जो सभी पुरुषों का सम्पूर्ण अवस्थाओं में विशेषकर उन लोगों को जिनकी मृत्यु सन्निकट है, समस्त इन्द्रियों और अन्त:करण के द्वारा करना चाहिये। आप सब लोग आपस में पराशर्म करके इसका उत्तर दें।

बार-बार सिर नाइ नृपति बोले यों सबतें। कस्यो अकारज काज चित्त चंचल मत तबतें।।
मूर्तिमान हैं वेद आपु ऋषि-मुनि तनुधारी। दरशन दैकें सपदि बिपदि चिन्ता मम टारी।।
मुनि प्रेरित अहि डसैं भल, शुभ कर्त्तव्य बताइ दे। भ्रम भय भेद मिटाइ दैं, कृष्ण कथा सुनवाइ दे।।

आप सब ऐसा कोई सर्वश्रेष्ठ सुन्दर सुगम साधन बताइये, जिसे सभी जीवों को सभी अवस्थाओं में सर्वदा करते रहना चाहिये। जिसके करने से आत्यन्तिक कल्याण की प्राप्ति हो और विशेष प्रश्न यह है कि जिसकी मृत्यु अत्यंत ही सन्निकट हो, उसे कौन-सा कर्म करना चाहिए? इस पर वे मुनि बोले- राजन्। यह तो सभी जानते हैं कि सदा शुभ कर्म करते रहना चाहिये, अशुभ कर्मों से बचते रहना चाहिये। परीक्षित बोले-मैं एक ऐसा कर्त्तव्य कर्म जानना चाहता हूँ, जो सर्वथा सब अवस्थाओं में शुभ ही हो। जिसके करने से सभी को सर्वदा सुख की प्राप्ति हो।

जितने विद्वान-विद्वान ऋषि-मुनि उस लोकमें उस समय थे सब-के-सब गंगा तीर पर मौजूद है। कोई यह निर्णय नहीं कर पा रहा है शीघ्राति शीघ्र मरनेवालेके लिये क्या उपाय करना है? परीक्षितने यह नहीं पूछा मेरी मृत्यु टाल दो? यह भी नहीं पूछा कि मुझे कोई दवाई दें, या मैं मरना नहीं चाहता, अपने लिये सिर्फ एक ही बात पूछी शीघ्रातीशीघ्र मरनेवाले के लिये उसके परमकल्याण के लिये क्या उपाय है? कोई-कोई ऋषियोंने कहा यज्ञ करो, जिससे तुम्हारे सब पाप छूट जायेंगे। किसीने कहा कि तीर्थस्नान करना बड़ा पुण्य है। किसी ऋषिने बताया कि तुम्हारे यहां जो द्रव्य हैं उसे ब्राह्मणों को दान कर दो, दान करने से उत्तम कोई दूसरा धर्म नहीं है। किसी अन्य ऋषियोंने कहा, देवताओं का पूजन व मंत्र का जप करने से सब पाप मिट जाते हैं।

महाराज के गूढ़ प्रश्न को सुनकर सभी ऋषि चकित हो गये। अब वे परस्पर में मुख्य कर्त्तव्य के विषय में वाद-विवाद करने लगे। कोई ज्ञान को श्रेष्ठ बताते। कोई कर्म की प्रशंसा करते, कोई उपासना का महत्त्व बताते, कोई दान, धर्म, जप, योग, समाधि, मन्त्रानुष्ठान आदि पर बल देते। सब मिलकर कोई निर्णय न कर सके।

सब मुनि। मोकूँ महामन्त्र दै पार लगावें। कृष्ण चरणमहँ चित्त लगे सो गैल बतावें।।

विद्या, साधन, शास्त्र सबहिं है न्यारे न्यारे। जो जिनकूँ अनुकूल परैं ते तिनकूँ प्यारे।।

सरल सुगम सुन्दर सरस, सब मिलि सुठि साधन कहैं। जिहिं कलियुग नर नारि गहि, भक्ति मुक्ति दोऊ लहैं।।

कोई ऋषि-मुनि निश्चय नहीं कर पाए इतने में १६ वर्षके ऋषि वीतराग परमहंस अवधूत कौपिन पहने हुए यह शुकदेव स्वामी आ रहे हैं। बच्चे पत्थर फेंक रहे हैं, कोई कोयला मार रहा है, कोईको अवधूत पागल जैसे लग रहे हैं कोई कह ही नहीं सकता कि ज्ञानी है। बच्चोंके लिये तो खेल तमाशा लग रहा है। जैसेही सभामें आये उनको बुलाया नहीं गया था। यह संजोग होता है गुरु मिलनेका एक। योग, दैवयोग जिसको कहते है यह है दो। अच्छे संस्कार।

ऋषि मुनि जब परस्पर में साध्य साधन तत्व का विचार कर ही रहे थे कि इतने में स्वच्छन्दता से पृथ्वी पर विचरण करते हुए निरपेक्ष व्यासनन्दन भगवान शुकदेवजी वहाँ आ पहुँचे। उनके शरीर पर किसी वर्ण या आश्रम का कोई चिन्ह नहीं था। वे अवधूत वेश में आत्मलाभ में सन्तुष्ट हुए चले आ रहे थे। बहुत-सी स्त्रियाँ तथा बालक उन्हें पागल समझकर घेरे हुए थे।

मधुर बचन नृप कहे मुनिनिके मनभहँ भाये। ताही छिन निरपेक्ष व्याससुत शुक तहँ आये।।

तरुन अरुन कर चरन कमल सम नयन रंगीले। मनहर लोल कपोल अंग सुकुमार गँठीले।।

कंध सिंह सम विपुल उर, कारे कुञ्चित केश अति। मृदु मुसकावन श्याम तनु, मत्तगयन्द समान गति।।

परीक्षित सभी शास्त्रों के ज्ञाता थे, धर्मात्मा और बहुश्रुत थे। सभी ऋषि मुनि पण्डित विद्वानों का वे सदा सम्मान और सत्संग करते रहते थे। उनकी लोकप्रियता तो इसीसे सिद्ध होती है, कि जहाँ मुनियों ने उनकी मृत्युका सम्वाद सुना, सभी देवर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि, राजर्षि तथा अन्यान्य ऋषि मुनि, सिद्ध अपने-अपने शिष्य-प्रशिष्य, पुत्र-पौत्रों के सहित उनके समीप स्वत: ही दौड आये। जो मुनि बहुत बुलाने पर भी किसी के समीप नहीं जाते थे, वे बिना बुलाये उनके पास अपने आप चले आये।

शुकदेवजी अवधूतशिरोमणि हैं। न तो यह नारायणके समान वैकुण्ठनाथ लक्ष्मीललितपदारविन्द ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हैं और न ब्रह्माके समान सृष्टि-निर्माता। यह न वीणापाणि नारदके समान प्रचारक-प्रसारक हैं और न तो व्यासके समान लोकसंग्रही। ये तो अवधूतशिरोमणि हैं और इतने गूढ़भावसे रहते हैं कि देखनेमें गूढ़ से लगते हैं। इनके वर्णनमें कहा गया है कि शुकदेवजी महायोगी, समदर्शी, निर्विकल्प एवं ब्रह्मनिष्ठ थे। अविद्या-निद्रा उनके पस कभी फटकती नहीं। उन्हें स्त्री-पुरुषके भेदका ज्ञान ही नहीं था। वे उन्मत्त, मूक एवं जड़के समान विचरण करते थे। वे निवृत्तिनिरत, सबकी उपेक्षा करनेवाले, आत्माराम एवं मौनी थे।

कोई-कोई कहता कि व्यास के पुत्र श्रीशुकदेव हैं। जो जन्म से ही त्यागी-वैरागी है। इन्होंने अपना उपनयन संस्कार तक नहीं कराया। माता के उदर से उत्पन्न होते ही अरण्य की ओर चल दिये।

ममता में बंधु हुए वेदव्यास अपने पुत्र को पुकारते-पुकारते उसके पीछे गये और बोले, पुत्र कहां जा रहे हो। शुकदेव जा रहे हैं। कोई ममता नहीं, वह स्वयं जन्म से सिद्ध जीव हैं। संसार के साथ कोई नाता नहीं रखा। दिशाएँ जिनका वस्त्र बन गया, पुरुष-स्त्री का जिनके मन में भेदभाव नहीं है। ब्रह्मज्ञानी है, ब्रह्मदृष्टा है।

महाराज परीक्षित बड़े ही गुणग्राही, शास्त्रों के ज्ञाता और विद्या-व्यासंगी थे। ऐसे तो वे श्रोता थे। उन्हें घेर कर जो ऋषि-मुनि बैठे थे। शुकदेव आये और सभी ऋषि-मुनि उठ खड़े हुए। एक १६ वर्षका बालक ना अता, पता, सौ-सौ ऋषि पुराने, लम्बी आयुवाले ऋषि-मुनि आसन छोड़कर खड़े हैं स्वागत करने। सब देखकर कहते हैं न आयु से आदमी बड़ा होता है न बल से बड़ा होता है, न धन से बड़ा है। किस चीज को कहते हैं हम ६० वर्ष, ६५ वर्षके हो गये। एक-एक आदमी तो

हंसते हैं बोले लगता तो नहीं इतने उम्रके है। क्योंकि आचरण, ज्ञान, ६५ वर्षके जैसा नहीं है। बड़े तो हो गये सब ऋषि-मुनि लेकिन ज्ञान नहीं है।

इसप्रकार शुकदेव के पधारते ही समस्त सभा में एक प्रकार का आनन्द और आश्चर्य छा गया। मानों समुद्र में ज्वार-भाटा आने से उसके जल में बड़ी-बड़ी तरंगे उठने लगी हों।

धूरि भर्‌यो तनु दृष्टि इष्ट चरननिमहँ लागी। रतिपति सम अति सुधर देहकी सुधि बुधि त्यागी।।
वेष दिगम्बर केश खुले सङ्ग बालक भागें। निरखि नारि सौन्दर्य चलीं सब कारज त्यागें।।
ऋषि-मुनि निरखे व्यास सुत, जानि सबनि आदर दयो। बैठे पूजित पीठि पै, नृप-मन अति आनन्द भयो।।
धनवृद्धा बलवृद्धा आयुवृद्धास्तथैव च। ते सर्वेऽपि ज्ञान वृद्धाश्च किंकिरा शिष्य किंकरा।

शुकदेव अपने पिता व्याससे अध्ययन कर रहे थे वे समाधि में थे। शुकदेव का मन कहता है चलो परीक्षित के पास-

तत्राभवद् भगवान् व्यास पुत्रो यदृच्छया गामट मानोऽनपेक्षः।
अलक्ष्यलिंगो निज लाभ तुष्टो वृतश्च बालैरवधूतवेषः।।

शुकदेवमें ज्ञान था कौनसा ज्ञान? अध्यात्म का। उस परम विष्णु, परम हरिका उनसे मिला देनेका। सब के सब मान-सम्मान में खड़े होते है। शुकदेव आते हैं। परीक्षित आसन देते हैं और चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया फिर मधुर वाणीसे पूछा बैठिये महाराज, आसन ग्रहण कीजिये। पूजा अर्चना होती है और बोले- आज मैं बड़ा बड़भागी हुआ कि आपने मुझे संतसमागमका अधिकारी समझा। आप जैसे महात्माओंके स्मरणमात्रसे ही गृहस्थोंके घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं। हे महामुने, अतिथि रूप में पधारे हुए श्रीशुक को देखकर विष्णुरात महाराज परीक्षित ने मस्तक नवाकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी विधिवत् पूजा की। उन दिगम्बर परमहंस की महाराज के द्वारा पूजा होते देखकर उनके पीछे जो स्त्रियाँ और अज्ञ बालक आये हुए थे, वे लौट गये। और राजा द्वारा पूजित होकर श्रीशुकदेवजी सबसे ऊँचे आसन पर विराजमान हो गये। शुकदेव जी के कौपीन का ठिकाना नहीं और इतने आत्मसुखी कि राजा परीक्षित सोने की थाल में उनके चरण धोती है तो भी कोई हर्ष नहीं। और उसके पहले वहां आते समय लोग मजाक उड़ाते हैं तो उसका उन्हें दुख भी नहीं। उनके हृदय में आत्मतृप्ति है।

विधिवत् पूजा करी नृपति यों बचन उचारे। दीये दरशयन देव। दुरति सब हरे हमारे।।
जिनको सुमिरन करत रागयुत होहिं विरागी। तिनको दरशन पाहिं भाग्यशाली बड़ भागी।।
अहो, आज द्विज-द्रोह करि, के हूँ हौं पावन भयो। अतिथि आइ श्रीशुक भये, निन्द्य कृतारथ ह्वै गयो।।

परीक्षित बोले- मुनिवर, जीवों पर दया करना, उन्हें कुपथ से हटाकर सुपथ पर लगाना, यह तो आपका स्वभाव ही है। आपकी प्रत्येक चेष्टा लोक कल्याण के ही निमित्त होती है। अतः आपके लिये जो भी कुछ कहा जाय, जो भी कुछ प्रशंसा की जाय, सब व्यर्थ है। मैं तो आज अपने भाग्य की प्रशंसा कर रहा हूं। मैं कितना भाग्यशाली हूँ जो आज मुझे आपके देव दुर्लभ दर्शन का सर्वोत्तम सौभाग्य प्राप्त हुआ। महाराज। हम अब नाम मात्र के ही क्षत्रिय रह गये हैं, किसी की भी दुःख से रक्षा नहीं करते, उलटे साधु ब्राह्मणों को और दुःख देते हैं। ऐसे होने पर भी आपने हमारे अवगुणों की ओर ध्यान नहीं दिया। अतिथि रूप में पधारकर हमें परम पावन बना दिया। प्रभो। मैं यही पूछना चाहता हूँ कि मनुष्यों के लिये सब कुछ छोड़कर कौन-सा ऐसा कर्त्तव्य है जिसे करना ही चाहिये और विशेषकर उसके लिये जिसकी मृत्यु अत्यन्त सन्निकट आ गई हो। सर्वप्रथम आप यही बताइये कि जिसे यह निश्चय हो गया हो कि अब तो शीघ्र मुझे मरना ही है, उसके लिये क्या करना चाहिये? उसको कौन-सी बात सुननी चाहिये, किस मन्त्र का निरन्तर जप करते रहना चाहिये और किसका भजन करना

चाहिये। इसलिये कर्त्तव्य के साथ-ही-साथ यह भी बताइये कि कौन-कौन से कार्यों का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। जीवमात्र का क्या लक्ष्य है, क्या कर्त्तव्य है? मरणासन्न मनुष्य का धर्म क्या है?

आपकी सन्निधिसे बड़े-बड़े पाप भी तुरंत नष्ट हो जाते हैं। अपने प्रश्न दोहराते हैं। वो ही प्रश्न भगवन सात दिन में मरनेवाले, शीघ्र मरनेवाले व्यक्तिका क्या कर्त्तव्य है और इस जीवका लक्ष्य क्या है? मनुष्यको किसका श्रवण, किसका जप और किसका भजन करना चाहिए? मैं आपसे यह जिज्ञासा करने का साहस कर रहा हूँ कि मरणासन्न पुरुष को क्या करना चाहिए? राजा परीक्षित की मधुर वाणी तथा नम्रता से जिज्ञासा करने पर श्रीशुकदेवजी प्रसन्न होकर समाधान करने लगे।

यह शुकदेव कौन हैं? भागवत सही मायने में अब इसके बाद शुरू होने जायेगी। नारदजी के चरित्रसे आप जान गये कि नारदजी किस व्यक्तित्ववाले आदमी हैं। जिस घर में कलह न हो, कलह करा देते हैं और जहां कलह हो वहां मिलाप करा देते हैं। बड़े ही विचित्र-विचित्र ज्ञानी नारदजी। नारदजीने सोचा ब्रह्मा और सरस्वतीजीका घर फोड़ आये एकबार। वहां तो ठनाठनी कर दी। लक्ष्मी-विष्णुके भी कर आया। चलो शिव-पार्वती के यहां एक बार तमाशा तो कर ही आवे देख लेते हैं। बस पहुंच गये कैलाश- हरि हरि कहते अपनी वीणा बजाते। शिव बैठे हैं बाहर ये घुस गये अन्दर। माता पार्वती घरके काम में लगी बोले- माताजी, माताजी बोली- कैसे आये पुत्र नारद। मां पार्वतीने बैठने व प्रसाद लेने का आग्रह किया। नारद बोले- मैं तो ऐसेही इधर-उधर घूमते-घामते यहां आया हूं। नारदजी ने सोचा शायद इसी में मेरा हित निहित है। अत: बैठ गये। माँ पार्वती ने मृत्युलोक तथा देवलोक के समाचार नारदजीसे पूछे। नारदजी कैलाशपति की कुशलक्षेम पूछने लगे। कुछ मौन रहकर बड़े उदास होकर नारद बोले- आप महान महाराज हिमालय की पुत्री होकर कैसे एकान्त में वास करती हैं। बाबा भी कैसे कठोर हैं कि आपको ऐसे निर्जन पर्वत पर अकेला छोड़कर चले जाते हैं। ऐसा लगता है कि बाबा आपके सान्निध्य से सन्तुष्ट नहीं है।

कैसी चल रही घर-गृहस्थी। पार्वती बोली- नारद, हमारी गृहस्थी बहुत अच्छी चल रही है। बहुत चाहते हैं। पार्वतीने बड़े आश्चर्य से कहा- आप यह क्या कह रहे हैं नारद। मैं पूर्णतया अपने गृहस्थ जीवन से सन्तुष्ट हूं- यहाँ मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है। नारद बोले- लगता तो नहीं लेकिन आप कहती हैं तो मैं मान लेता हूँ। माता बोली- नहीं, नारद मुझे हर बात बताते है। हर बात मुझे मालूम रहती है। वो गुरुमंत्र जो कभी पत्नीको नहीं बताते वो वाला मंत्र भी मुझे बताया है- हरिओम शरणम् वासुदेव। नारद बोले- आपके पारिवारिक जीवन में कोई कटुता तो नहीं। पार्वतीने रूप बदलकर कहा तुम्हारा क्या मन्तव्य है? नारदजी सकुचाकर बोले- मेरा कोई मन्तव्य नहीं। केवल यह जानने की इच्छा थी कि महाराज देवियोंकी चित्र लगे हुए मुण्डोंकी माला पहना रखे हैं। पार्वती माता बोली- यह बात तो मुझे नहीं बतायी देवियोंकी मुण्ड लगी हुई माला। नारद के प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देकर पार्वती क्षुब्ध हो गई।

नारदने कलह लगा दी। अगर आपको मालूम हो तो ठीक है नहीं तो आप अपनी जानो। मैंने तो जो देखा वो आपको बता दिया। अब पार्वतीजीके मनमें शंका आयी। बोली अब आनेदो भोलेनाथको मैं देखती हूँ। नारदजी बाहर निकल रहे हैं भोलेनाथ आ रहे हैं। नारद बोले- बाबाजी आपको माताजीने याद किया है चले जाओ। भोलेनाथ बोले- जब आप आये हो अन्दर से बाहर जा रहे हो तो अब माताजी याद ही कर रही होगी। तुम कुछ-न्-कुछ क्रीड़ा करके आये हो। अब पार्वतीजी रूठी हुई। भोलेनाथ बोले- भाग्यवान, तुम्हारी उदासी का कारण क्या है? हुआ क्या? पार्वती अनमनी सी होकर पूछने लगी- मुझे सब बातें क्यों नहीं बताते? भोलेनाथ बोले- सब बात तो मैंने तुझे बतायी है। पार्वती बोली- आपने जो मुण्डोंकी माला पहने रखे है इसमें किसके चित्र लगे हुए है। भोलेनाथ बोले- आपही के हैं। दुर्भाव तो मेरे स्वभाव में ही नहीं है।

आपको जरूर कोई गलतफहमी हुई है निश्चय ही नारद ने तुम्हारे मन में कोई सन्देह उत्पन्न कर दिया है। त्रियाहठ बड़ा ही अजीब होता है। स्त्री हठ तो विलक्षण होता है। तीन हठ प्रसिद्ध है- १) बाल हठ, २) त्रिया हठ, ३) राज हठ। स्त्री हठ गृहस्थ के लिए अत्यन्त ही दुखद है। कैकई यदि हठ न करती तो राम को राज्याभिषेक के स्थान पर वनवास न मिलता और स्वयं को भी वैधव्य न भोगना पड़ता। केवल त्रियाहठ के कारण ही रघुवंश पर ऐसा प्रकोप हुआ। स्वयं महारानी कैकई को पुत्र भरत एवं प्रजानन का कोप भाजन बनना पड़ा। राजहठ दुर्योधन ने की पाण्डवों को केवल पाँच गाँव देकर सन्तुष्ट न कर सका। यही नहीं सुई अग्रे न केशव: कहकर जगत नियन्ता को चेतावनी देकर सारे कौरव कुल का नाश करा दिया। तीसरी बालहठ पाँच वर्ष के ध्रुव ने की विमाता की शिकायत करने के माध्यम से प्रभु को ही प्राप्त कर सर्वोच्च पद प्राप्त कर लिया।

पार्वती बोली- मेरे। शंकरजी बोले- यह सब आपके हर जन्म के आप जब-जब जन्म में सती हुई है यह एक-एक जन्म के एक-एक मुण्ड लगे हुए है। पार्वती बोली- हर जन्म में मरना मेरेको ही पड़ता है। आपको तो कुछ होता नहीं अमर हो आप तो। आपने ऐसा क्या अमृत पी रखा है। भोलेनाथ बोले- मेरे पास एक अमृत है जो मैंने पी रखा है और उससे मेरी मृत्यु कभी नहीं होती। पार्वती बोली- महाराज वो अमृत हमको भी चखाइये। शंकर बोले- लो, तुम चखोगी मैं तुमको सुनाता हूँ। यह वो भागवतामृत मैं तुमको सुनाता हूँ। जिसको सुनकर तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी, मृत्यु का डर निकलेगा, वह अमृत है। पार्वती बोली- महाराज चखाइये। शंकर बोले- एक शर्त है। कैलाश पर यह सम्वाद चल रहा है। सबसे पहले भागवत जो हुई कैलाश पर हुई शिवने पार्वतीको पूरे विस्तारके साथ सुनायी है। शंकर बोले- मैं कथा कहूंगा, मैं वक्ता हूँ तुम श्रोता हो। मैं जैसे-जैसे कथा बताऊं तुम हूंकारा (हां-हूं) करते रहना तब मुझे लगेगा कि तुम कथा सुन रही हो प्रेमसे और वह कथा मैं प्रवाहमें कहते जाऊंगा अगर आप चुप हो जायेगी सो जायेगी तो मुझे मालूम नहीं पड़ेगा फिर कथाका प्रवाह रह जायेगा। पार्वती बोली- आप शुरू करो, मैं सुन रही हूँ। कथा शुरू होती है।

त्रिया हठ को समझ भोलेनाथ को भी भोले बनकर नरमुण्डमाल का रहस्योद्घाटन करना पड़ा। भगवती पार्वती को जब यह ज्ञान हुआ कि ये समस्त मुण्ड उन्हीं के हैं- जब-जब उन्होंने नर देह का त्याग किया तब-तब ही भोलेनाथ ने स्नेहवश उनके मुण्डों को अपने वक्ष:स्थल पर धारण किया है- उनको मार्मिक पीड़ा होने लगी शरीर में रोमांच हो गया। अश्रुपात होने लगा- भोलेनाथ के चरणों में पड़ गई और प्रार्थना करने लगी प्रभु। क्या ऐसा कोई उपाय नहीं है कि जिससे मैं नित्य निरन्तर आपकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ और आपको मेरे मुण्ड धारण करने का परिश्रम न करना पड़े। पार्वती के आग्रह पर उन्हें अमर करने के लिए भोलेनाथ अमर-कथा सुनाने को तत्पर हुए। चारों ओर पर्यवेक्षण कर यह विश्वास होने पर कि पार्वती के अलावा अन्य कोई इस कथा को नहीं सुन रहा है। समाधिस्थ होकर अमर कथा सुनाने लगे। यह अमर कथा ही श्रीमद्भागवत की कथा है।

शुकदेवजी महाराज राधाके शिष्य हैं। कभी भागवत में कहीं भी उन्होंने राधा का नाम लिया है ना कभी राधाको एक शब्द श्री से भी कहा गया है। और जब भी यह नाम लिये है तो शुकदेवजी समाधि लेते है फिर वो कुछ बोल नहीं पाते हैं प्रसंग वहीं खत्म हो जाती है।

ये श्रीराधारानी जी के लीला शुक हैं। गोलोक धाम में इनका नाम कलविंक है। गोलोक में जो शुक हैं वे कभी राधाजी के पास जाते हैं कभी श्यामजी के पास जाते हैं।

एक बार की बात राधाने कहा हमलोग अभी गोलोक से मर्त्यलोक में लीला करने, रास-विहार करने जा रहे है। तोताजी बोले- (शुकदेव तोताके रूपमें है) मैं भी चलूंगा। राधा बोली- क्या काम है तुम्हारा। बोले- मैं तो आपका शिष्य हूं। गुरु की आज्ञा नहीं हुई।

यह शुक कोई साधारण शुक नहीं है यह राधारानी का लीला शुक था। गोलोक धाम में राधारानी इससे अपना मनोरंजन किया करती तथा श्यामसुन्दर के पास अपना सन्देश भेजने में उपयोग करती थी। मृत्युलोक देखने की इच्छा पूर्ति में इस शुक को पिण्ड के रूप में कैलाश पर स्थापित किया गया था- उसी पिण्ड से यह शुक उत्पन्न हुआ।

एक अण्डेका जन्म हो रहा है। शुका-शुकी दो उस कैलाश पर्वत पर बैठे है। बर्फीली हवाएं चल रही है। शिवजी पार्वती को भागवत कथा सुना रहे हैं। जैसे ही बर्फीली हवाएं चल रही है शुका-शुकी उड़कर भाग गई। उस अण्डेमें से बच्चा निकल रहा है, निकला नहीं है माता-पिता छोड़ गये है। जब संकट आता है तो जीव अकेला रह जाता है, माता-पिता भी साथ छोड़ देते हैं।

एक बार राजा अकबर का दरबार लगा था तो बीरबल से पूछा, बीरबल अपनी जान प्यारी है या औलाद प्यारी। बीरबलने बोला- महाराज, जहांपना यह क्या पूछते हो आप? सबको अपनी जान प्यारी होती है औलाद तो बादमें। अकबर बोले- नहीं, प्रमाण से बताओ, साबित करके दो। अब इस चीज का क्या साबित करना। ठीक है बोले। एक महीने की मोहलत दी। दूसरे दिन पूछ लिया एक महीना होनेपर बोले- बीरबल मेरे प्रश्न का जवाब? बोले- हां, महाराज। बोले एक हौद मंगाइये और एक खाली हौद मंगाई पानी भरा। पानी भरने के बाद एक बंदर और बंदरीका बच्चा उसमें डाल दिया। नल चालू कर दिया पानी बढ़ते जा रहा है। जैसे-जैसे पानी आवे वह बच्चेको चिपका रखी थी जैसे-जैसे पानी भरा जब पानी ठोड़ीतक आ गया, डूबनेजैसी स्थिति में आ गयी छट् बच्चेको ऊपरतक ले गयी जब पानी ऊपर तक आ गया बच्चेको उतारकर हौदमें नीचे डाल दिया और अपनेको बचानेका प्रयत्न किया। इसका मतलब जीवको अपना जीव प्यारा है संतान बादमें। वो तोते के अण्डे को, वह दोनों माता-पिता शुका-शुकी उड़ चले, उड़ गये। वो तोता प्रसव ले रहा है। यहां शिव पार्वतीको कथा सुना रहे है। कथा दसवें स्कन्ध में पहुंच गई है जहां रासलीला प्रारब्ध होती है। अब रासलीला इतनी तन्मयसे थी, कि पार्वतीजीकी उसमें समाधि लग गयी। शिवजी कथा कहते जा रहे है वह तोता जन्म ले रहा है, बाहर आ रहा है, उसको कथामें बड़ा आनन्द आ रहा है वो हाँ-हाँ-हाँ-हा करते कही कथा बंद न हो जावे, पार्वतीजीको नींद लग चुकी है। हा-हा नहीं किया तो कथा क्रम टूट जायेगा। शिवजी को धारा प्रवाह वक्ता कहा गया है। वह कथा बन्द हो गयी तो अमृत मैं नही ले सकूंगा। इसलिये पार्वतीजी की जगह तोता हाँ में हाँ मिला रहा है। जब बारहवां अध्याय नौ योगेश्वरों का सम्वाद आता है। वसुदेवजीको सम्वाद सुनाते है।

दसवें स्कन्ध को सुनते-सुनते माँ पार्वती को निद्रा आ गई। उनके स्थान पर कोई अन्य हुँकारी भरता रहा। प्रसंग पूर्ववत् चलता रहा। १२ वाँ स्कन्ध जब समाप्त होने लगा तब पार्वतीजी की निद्रा टूटी तब बोली भगवन् मैं कृष्ण उद्धव सम्वाद पूरा नहीं सुन सकी- मुझे निद्रा आ गई थी कृपया पुन: सुनाने की कृपा करें। भोलेनाथ को आश्चर्य हुआ कि यदि तुम निद्राधीन थी तो हुँकारी कौन दे रहा था। वे तुरन्त खड़े होकर चारों ओर देखने लगे।

कथास्थल के सन्निकट एक शुक का मृत अण्डा पड़ा हुआ है। स्वस्ति, श्रीमद्भागवत कथा के प्रभाव से वह अण्डा जीवित होकर प्रणव स्मरण करने लगा।

सम्वाद खत्म कर रहे हैं उसी समय पार्वतीजीकी आंख खुलती है। महाराज रासलीला में आगे क्या हुआ आप आये जभी। भोलेनाथ बोले- पार्वती यह दसवें अध्याय का पूर्वार्ध है। मैं अभी बारहवें अध्यायका सम्वाद खत्म करने जा रहा हूँ और आप सो गयी। बोली महाराज क्या करूं नींद लग गयी। शंकर बोले- तो फिर कथा सुनकर हाँ-हाँ कौन कर रहा था। पार्वती बोली- मुझे मालूम नहीं। भगवान शंकर ने देखा कि अदीक्षित शुक ने कथामृत का पान कर लिया। अत: आप अनाधिकारियों को शिक्षा देने के लिये शुक पर त्रिशूल छोड़ दिया।

शंकरजीने पीछे मुड़कर देखा- तोता जन्म ले चुका था। शंकर बोले इसने अपराध किया है, ब्रह्मविद्याकी चोरी की है इसने। पार्वती बोली- महाराज कथा सुनी है तो इसका भी कल्याण होगा। शंकरजीने कहा- बिना बताये, बिना अनुमति के, मंचके पीछे बैठकर, चोरी करके कथा सुनना अपराध है। मैं इसको दण्डित करूंगा। जैसेही उस तोतेने सुना कि यह मुझे दण्ड देंगे उड़ चला। शिवजी पीछे भाग रहे हैं तोता उड़ रहा है भाग रहा है। त्रिशूल के भय से भयभीत होकर शुक प्राणरक्षा के निमित्त भागते-भागते भगवान व्यास की सहधर्मिणी माता पिंगला के गर्भ में प्रविष्ट हो गया।

तोता सीधे उड़ते-उड़ते बद्रीकाश्रम में आया सम्यक आश्रम में जहां वेदव्य मुनि का आश्रम है और वहां विटकादेवी वहां बैठी है जांभई ले रही है मुंह खुला है तोता झट मुंह के अन्दर प्रवेश कर गया। शिवजी खड़े है बाहर। तोता अन्दर मुख में, मुखसे गर्भ में। शिवजी बोले- बाहर आ। तोता बोला- अब नहीं आऊंगा, तुम दण्ड दोगे। शिवजी बोले- मैं तुम्हे दण्ड नहीं दूंगा। शिवजी परेशान होकर कैलाश चले गये। अब धीरे-धीरे विटकादेवी का गर्भ बढ़ रहा है। बढ़ते जा रहा है। पन्द्रह वर्ष हो गये गर्भ बढ़ते-बढ़ते। अन्दर से हरि कथन, कीर्तन की आवाज आती है। पर गर्भ बाहर नहीं आ रहा है। वेदव्यास जी बोले- जो कोई जीवात्मा हो, प्रकट हो क्या बात है। नहीं। ब्रह्माकी स्तुति करी। लोगोंकी श्वास-प्रश्वास बंद होने लग गयी। लोगोंका संतुलन बिगड़ने लग गया। भगवान हरि आये और बोले- शुकदेव अन्दर क्या कर रहे हो? बाहर आओ, प्रकट होओ। तोता बोला- मैं नहीं आऊंगा। सोलह वर्ष हो गये हैं। हरि बोले- क्यों? तोता बोला- मुझे आपकी मायाका डर है? हरि बोले- आ जाओ तुम, जब मैं कह रहा हूं। तोता बोला- आप वचन दो कि मुझे माया व्याप्त नहीं होने दोगे। हरिने आश्वासन दिया शुकदेव प्रकट हुए सोलह वर्षमें गर्भ से निकले हैं और निकलते ही न इधर देखा न उधर सीधे जंगल की तरफ।

व्यासजी भोलेनाथ से बोले- आप बड़े भोले हैं जिस जीव ने अमर कथा सुन ली वह तो अमर हो गया, उसके लिए क्रोधातुर होना कहां तक उचित है। भोलेबाबा की जैसे समाधि टूट गई हो। भंग का नशा उतर गया हो। हक्के-बक्के से रह गये।

बारह वर्ष तक प्रतीक्षा करने के बाद भी जब गर्भस्थ शुक बाहर न निकले तो व्यासजी ने उनके पुत्र के रूप में गर्भ से बाहर आने की प्रार्थना की। शुक ने यह कहकर बाहर निकलने से मना कर दिया कि बाहर मुझे सांसारिक माया लग जायगी। अत: मैं गर्भस्थ रहकर ही प्रभु का चिन्तन करूँगा। भगवान ने प्रसन्न होकर गर्भस्थ शुक को दर्शन दिये साथ ही आश्वासन दिया कि तुम्हे मेरी माया व्याप्त नहीं होगी। तब शुकदेवजी पिंगला के गर्भ से बाहर निकले और बिना किसी संस्कार के सीधे वन की ओर चल दिये।

बारह वर्ष गर्भ में रहि आश्वासन प्रभु से पाये। तुम्हहिं न ब्यापे माया कबहूं सुनि के बाहर आये।
ह्वै गये जात कर्म ते पहिले वन प्रस्थानी।।

वेदव्यास देख रहे हैं पुत्र हुआ वो भी हाथसे जा रहा है- पुत्र, पुत्र कहकर बुला रहे हैं। शुकदेव जवाब नहीं दिया। शुकदेव की तरफ से पेड-पौधोंने जवाब दिया महाराज यह शुकदेव नैष्ठिक ब्रह्मचारी होगा, यह ज्ञानी है, यह गृहस्थाश्रम नहीं पालेगा, यह आपके पास नहीं आयेगा।

शुकदेव चले जाते हैं जंगल में तपस्या करने। जाते-जाते वो अवधूत कन्याएं एक सरोवर में नहा रही हैं, नंग-धड़ंग नहा रही हैं। शुकदेव जा रहे है नंग-धड़ंग। कोई लाज-शरम नहीं। पीछे-पीछे पुत्रको पुकारते ७० वर्षके व्यासदेव पिताश्री जा रहे हैं। देखा मेरा पुत्र गया है इन स्त्रियोंने कोई लज्जा नहीं की। मैं आया हूं तो झट् वस्त्र शरीरपर डाल दिये हैं। व्यासने पूछा उन पुत्रियों को- बोले मेरा पुत्र गया आपको कुछ महसूस नहीं हुआ अब मैं आया हूं आपने मुझसे लज्जा की है क्या बात है? मैं तो आचरण से गिरा हुआ नहीं हूं, योगनिष्ठ हूँ। युवतियों ने बोला- महाराज आपने संसार जाना है, स्त्री-पुरुष क्या है यह जाना है? फिर वो माया जानता ही नहीं है। आप पर मायाका प्रपंच है। व्यासजीने देखा बड़ी अच्छी बात कही है

तुमने। आश्रम लौट आए पुत्रको कैसे बुलावें। पुत्रतो वैसेही विद्वान पैदा हुआ है और जंगल में सीधा समाधिमें चला गया, तपस्या करने चला गया।

मिला एक अलमस्त एक दिन तुम्हें भटकते राह कहीं,
देह गेह परिवार आदि से विरक्त जिसे कुछ चाह नहीं।
शत्रु मित्र सुख दु:ख आदिक द्वद्वों की जिन्हें परवाह नहीं।
मुख प्रसन्न तन पुष्ट हृदय आनन्द सिन्धु की थाह नहीं।।

व्यासजीने अपने शिष्योंको बुलाया और एक श्लोक के चार शब्द सिखाकर भेज दिया। शुकदेवके सामने समाधि में इतना ही गाना इससे ज्यादा मत गाना। शिष्य बोले- ठीक है चार श्लोक में दो-चार शब्द उनको सुनाये। शिष्य गये और शुकदेव के सामने एक श्लोक सुनाते हैं।

बर्हापीड़ं नटवरवपु: कर्णयो: कर्णिकारं, विभ्रदवास: कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै:, वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्ति: ।।

(मोरपंख का जिन्होंने मुकुट पहना है, नटों में जिसका श्रेष्ठ वपु है, ऐसे कृष्ण गऊ चराने के लिए जाते हैं। कृष्ण की झाँकी बहुत मधुर है। कभी-कभी चारों तरफ से गायें घेर लेती हैं। कृष्ण की मुरली को सुनने के लिये गाय एकाग्र हो जाती हैं। गायों के बछड़े दूध पीते हैं, लेकिन मुरली को सुनकर दूध पीना भूल जाते हैं। यमुना जी के जल में बाढ़ आ जाती है, कृष्ण के चरणों का आलिंगन करके जल वापस चला जाता है। यमुना के किनारे खड़े वृक्ष सोचते हैं, कन्हैया तो मुरली दूर बजा रहे हैं, हम उनके चरणों का स्पर्श कैसे करें ?)

आपका मुकुट, आपका सिर, आपका रूप ऐसा है बस शुकदेवकी समाधि टूटती है। बोले- बोलो, और बोलो। शिष्य बोले- हमको तो इतना ही आता है। श्री शुकदेव ऐसे सारगर्भित शय्लोक सुनकर आश्चर्य में पड़ गये। उनके आश्चर्य में आश्चर्य की उपलब्धि होने लगी। यह वाणी किधर से आई। इतने में व्यासजी के शिष्य दीख पड़े। शुकदेव बोले- अरे क्या यह श्लोक सुनाने की कृपा आपने की है? शिष्यों ने कहा- हाँ स्वामीजी। ये तो हमारे गुरु की कृपा का प्रसाद है। आपके गुरु कौन हैं? व्यासजी। व्यासजीका नाम सुनते ही श्रीशुकदेव भाव-विभोर हो गये- आहा। यह तो मेरे पिता है।

शुकदेव बोले- तुमको किसने सिखाया है? शिष्य बोले- तुम्हारे पिता व्यासदेव ने। और नहीं सिखाया। शिष्य बोले- नहीं। तुम चलो तुम्हारे पिताके पास ले चलते हैं वह तुमको सिखा देंगे। शुकदेव बोले- नहीं, नहीं।

फिर शुकदेव समाधिमें लग गये। शिष्य वेदव्यासके पास गये। वेदव्यासजी पूछे- क्या हुआ। आया शुकदेव। बोले- नहीं। व्यास बोले- तुमने सुनाया। शिष्य बोले- चार शब्द सुनाया आपने जितना सिखाया उतना सुनाया। शुकदेव बोले- और बोलो, उस नटवर की स्तुति की। इतना तन्मय हो गया बोले और सुनाओ। हमने बोला पिताश्री के पास चलो। तो वो नहीं आये उन्होंने फिरसे समाधि ले ली। व्यासजी बोले- यह बात है तो उन्होंने पूरा श्लोक सुना दिया। शिष्य फिर गये- फिर वही श्लोक। अबकी समाधि खुल गयी पूरा श्लोक।

ए कन्हैया बेवफा तूं ने कदर जानी नहीं। प्यासी हूं तेरे दरस की पर तूं ने कछु मानी नहीं।।
वो काली घटा किस काम की, जहां प्रेम का पानी नहीं। उस श्याम की शोभा नहीं जहां राधिका रानी नहीं।।
करना न उसकी चाकरी, जिसको दया आती नहीं। श्री रसिक गोविन्द बिनु, रस रीति कछु जानी नहीं।।

भगवान के दर्शन शुकदेव को वहां हो रहे हैं, इतना सुन्दर रूप, इतना बढ़िया, जब दरकार भगवान की होती है तो शुकदेव पीछे-पीछे बोले मेरे पिता कहां है उनके साथ वहां चले और पीछे-पीछे पिताश्री के पास आये।

जब होती है दरकार सांवरा आता है, जब होती है दरकार सांवरा आता है।

अब शुकदेवजीकी समाधि टूटी बहुत अच्छा हुआ हरि दर्शन हुए उस छबि में। अब वो तड़फ रहे हैं ऐसे दर्शन होते हैं।

मन तड़पत हरि दर्शन को ---

उन बालकोंके साथ चले और बोले कहां है मेरे पिताश्री और आगे क्या है उसको जाननेकी इच्छा। शुकदेवजी जब व्यास आश्रम पर पहुँचे तो व्यासजी ने उनका आलिंगन कर स्वागत किया। सम्पूर्ण भागवत का उन्हें शनै: शनै: अध्ययन कराया। अध्ययन पूर्ण होने पर आत्माराम शुकदेवजी पुन: स्वच्छन्द विचरण करने लगे। निवृत्तिपरायण पुत्र की जिजीविषा देखते हुये महाप्राज्ञ व्यासजीने पूर्णरूपेण श्रीमद्भागवत पुराण का अध्ययन कराया। यहाँ निर्ग्रन्थ का अभिप्राय यह है कि जिसे बन्धन युक्त कोई अभिलाषा न हो अथवा जिनकी अविद्या निवृत्ति रूप इच्छा सिद्ध हो गयी है, जिनको ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं वे निर्ग्रन्थ हैं। भगवान का उत्तम श्लोक ऐसा है जो सबको अपनी ओर खींच लेता है। तद्नुरूप बनने के निमित्त ही श्री शुकदेव ने श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया।

व्यास उन्हें गृहस्थ के बन्धन में नहीं बांध सके इसका क्षोम उन्हें बना ही रहा। नारदजी ने उन्हें बताया कि शुकदेव मेरी तरह ही बन्धन रहित होकर निष्काम भाव से भगवद् गुणानुवाद करते हुये लोक कल्याण करेंगे। आप मोह त्याग कर भगवान नन्दनन्दन का स्मरण करें।

शुकदेव बोले, हे पिताश्री। मुझे वो रस दो जो अभी आपने बिखेरा वह रस दो। यह रस भागवत कथा है।

शुकदेव- महर्षी कृष्ण द्वैपायल वेदव्यास के पुत्र। किसी समय मेरू पर्वत के शिखर पर महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास पु-प्राप्ति के उद्देश्य से घोर तपस्या कर रहे थे। उनका संकल्प था- मुझे अग्नि, भूमि, जल, वायु अथवा आकाश के समान धैर्यशाली पुत्र प्राप्त हो। तपस्या में लीन वेदव्यास ने देवेश्वर महादेव से, संकल्पपूर्ति के लिए प्रार्थना की। व्यासजी से कहा- द्वैपायन। तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही पुत्र तुम्हें प्राप्त होगा।

महादेव से वर प्राप्त करके व्यासजी एक दिन अग्नि प्रकट करने के लिए अरणी-काष्ठ का मंथन करने लगे। उसी समय उन्होंने परम सुंदरी घृताची नामक अप्सरा को वहां देखा। अप्सराको देखकर महर्षि का मन क्षुब्ध हो गया। इसी बीच घृताची एक शुकी का रूप बनाकर वहां मुनिवर के सामने पहुंच गई। वे मन को संयमित करने लगे, किंतु फिर भी मंथन करते-करते उनका तेज अरणी-काष्ठ पर गिर गया। अरणी के साथ-साथ शुक्र का भी मंथन होने से महातपस्वी शुकदेव का जन्म हुआ। वे अरणी के गर्भ से ही प्रकट हुए। महातपस्वी तथा महायोगी परम ऋषि शुकदेव के प्रकट होते ही देवनदी गंगा ने अपने जल से उन्हें तृप्त किया। उसी समय आकाश से दंड और काला मृगचर्म शुकदेवजी के लिए पृथ्वी पर गिरे। देवराज इंद्र ने उन्हें दिव्य कमंडल और वस्त्र प्रदान किए। भगवती पार्वती सहित भगवान शंकर ने स्वयं पधारकर शुकदेव का उपनयन संस्कार किया। रहस्य और संग्रह सहित संपूर्ण वेद उसी प्रकार उनकी सेवा में उपस्थित हो गए, जैसे वे व्यासजी की सेवा उपस्थित हुए थे।

एक दिन व्यासजी सोचने लगे- श्रीमद्भागवत पुराण की रचना तो कर ली लेकिन यह शास्त्र अब मैं किसको दूँ। इस ग्रन्थ का प्रचार करने में वही समर्थ होगा जो अतिशय विरक्त हो। संसार का सुख भोगने के बाद तो बहुतों को वैराग्य होता है, परन्तु जन्म से जिसने वैराग्य अपनाया है वही अतिशय विरक्त है। ऐसा कौन मिलेगा? इस प्रकार सोचने हुए व्यासजी को पुत्रैषणा जागी। आपने अपने अभीष्ट कार्य के निमित्त भगवान शंकर से प्रार्थना की- भगवन्। आप वैराग्य के स्वरूप हो। समाधि में जो आनन्द लाभ प्राप्त करते हो वही आनन्द रूपी लाभ से जगत् में अपने अनुगतो को लाभान्वित करने हेतु आप मेरे घर पुत्र रूप में पधारिये। इस प्रकार नित्य-नियमित प्रार्थना करते थे। सहसा एक दिन व्यासजी ने सहधर्मिणी के पेट से वेदध्वनि सुनी। आपने

प्रसन्न मन से गर्भस्थ शिशु से बाह्य जगत् में पधारने के लिये कहा। यह कथा कूर्मपुराण, स्कन्दपुराण में भी आयी है। गर्भस्थ शिशु ने कहा- अदीक्षित रहकर भगवान शंकर के श्रीमुख से दिव्यातिदिव्य ज्ञान प्राप्त करने का अपराध किया। इसी कारण उनका त्रिशूल हमें नष्ट करने के निमित्त उद्यत है। अत: कैसे आऊं? यहाँ त्रिशूल का अर्थ है- त्रि अर्थात् तीन, शूल का अर्थ है दु:ख। आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक ये तीनों संकट अपने आप में पूर्ण हैं, प्रभु प्रेरित हैं।

अब व्यासदेव देखते हैं यह मेरा पुत्र इसका अधिकारी है या नहीं। इस रसका पान करानेका यह अधिकारी है या नहीं। इसको कराऊं या नहीं। यदि मैं कराता हूँ तो यह कहेंगे यह परम्परा चल रही है अपने पुत्रको पाठ करा दिया अपने पुत्रको दिया। ज्ञान का सच्चा वैरागी है कि नहीं, पूरा अधिकारी है कि नहीं यह जब तक निश्चित नहीं हो। इसका निश्चित अगर मैं कर दूंगा कि मेरा पुत्र आत्मजीत है, इन्द्रियजीत है तो दुनिया नहीं मानेगी क्योंकि अपना पुत्र है। इसका प्रमाणपत्र किसी सर्वविदित आदमी से प्राप्त करना चाहिए।

श्री शुकदेव पूर्ण ब्रह्मज्ञानी है। कोई कर्त्तव्य नहीं- न प्रवृत्ति और न निवृत्ति। जो सच्चा संन्यासी है उसका न प्रवृत्ति में आग्रह है और न निवृत्ति में आग्रह है। यहां बालक इतना योग्य है कि ब्रह्मसूत्र के रचयिता एवं १८ पुराणों के कर्ता भगवान् व्यास जी पुत्र के बिना कातर हैं। स्वयं व्यासजी कातरवाणी होकर पुकारते हैं- अरे पुत्र। मुझे छोड़कर कहां जा रहे हो? ब्रह्मनिष्ठ श्री शुकदेव को जगत् सम्बन्ध का भान ही नहीं है? कौन किसका पिता, कौन किसकी माता और कौन किसका पुत्र? जिस पुत्र की अभिलाषा में व्यासजी रात-दिन सपने संजोते रहे वही पुत्र जन्म लेते ही पिता को निराशा के सिन्धु में डालकर सदा के लिये वन की ओर चल पड़ा। श्री शुकदेव वृक्षों के द्वारा उत्तर देते हैं- हे मुनिराज। आपको पुत्र-बिछोह का दु:ख हो रहा है, परन्तु सोचो- पंचभूतों में कोई किसी का बाप-बेटा नहीं होता तब पंचभूत पिण्डरूप शरीर में कौन किसका बाप-बेटा है? पंचभूत की उत्पत्ति तो ब्रह्म से है, अत: सच्चे अर्थों में वही सबका पिता है, उन्हीं को पुकारने में कल्याण है।

उस समय राजा जनक मौजूद थे। सुनयना उनकी पत्नी थी। बोले अगर राजा जनक यह प्रमाण दे दें कि मेरे पुत्रने इन्द्रियोंको जीत लिया, आत्मनिष्ठ हो गया, परमज्ञानी है, क्रोध को जीत लिया, काम को जीत लिया तो यह इस कथाका अधिकारी है, यह अमृतपान करा सकता हूँ। लेकिन राजा जनक कहा हैं? राजा जनक से बात करी कह दिया मेरा पुत्र आ रहा है। परीक्षा ले लेना। ठोक बजाके देख लेना। मैं कह रहा हूँ इसके लिये नहीं, सही लगे तो आप संसार को कहना नहीं सही लगे मेरा पुत्र है यह समझके कभी उसको प्रमाणपत्र नहीं देना। शुकदेवको परीक्षा के लिये भेज दिया। राजा जनकको मालूम पड़ा कि शुकदेव आ रहा है। द्वारपालोंको बोल दिया आ जाय तो बिठा देना। मैं जब तक नही बोलूं अन्दर प्रवेश मत देना। शुकदेव गये द्वारपालोंको निवेदन किया कि मैं राजा जनक से मिलना चाहता हूँ। द्वारपालोंने कहा- ठहरो। हम पूछकर आते हैं। गये राजा जनकको निवेदन किया। जनक बोले- शुकदेव को बोलो वह द्वारपर ही ठहरेगा अभी समय नहीं है परसों बात करेंगे। शुकदेवको कोई निमेष मात्र भी क्रोध नहीं। बैठ गया द्वारपर भूखा-प्यासा। द्वारपाल सब तरह की मिठाइयां लेकर आये। इन्द्रियातीत जिसको कहते हैं, क्यों विषयलोलुप, इन्द्रियलोलुप, जीव्हा लोलुप। हम ज्ञानका त्याग करेंगे, वह ज्ञान की समाधिवाला शुकदेव, पिपासा, हरिदर्शन की इच्छा, अमृतभोग करनेकी इच्छा। यह सांसारिक भोग क्या लेगा। शुकदेव द्वारपर बैठा है, तीन दिन से बैठा है। न भूख, न प्यास, न कोई क्रोध। तीन दिन के बाद फिर द्वारपाल को पूछा, निवेदन किया। द्वारपाल बोला- अभी तीन दिन और लगेंगे। जनक पूछते हैं-यह बताओ मेरेको, उसका कैसा हाल है? बैठा है या सोया है, गुस्सा आया है की नहीं उसको। द्वारपाल बोले- वो तो उसी हाल में है जिस अवस्था में थे, जिस मुद्रा में थे, तनिक भी फरक नहीं है, अन्तर नहीं है। यह क्रोध को जीतने की बात देखना चाहते हैं। चार दिन, पांच, सात दिन बीत गये शुकदेव को बुलाया अन्दर। जनक बोले- शुकदेव मैं क्षमा चाहता हूँ। आप जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी, ज्ञानी

पुरुष को मैंने बाहर खड़ा रखा। लेकिन मेरी परिस्थिति ऐसी थी। शुकदेव बोले- जैसे आपको अवकाश मिला।

यह जनक अष्टावक्र मुनिके शिष्य है। यह मुनि कौन है आठ जगह से मुड़े हुए। एक कथा है- लोग रूपरंग को देखकर आलोचनाएं करते है। मुग्ध होते है। किसी अच्छी युवती को देखो आपका मन उसपर अटक जाता है, अच्छा लगता है। आप किसी कुरूप को देखो, टेढ़े-मेढ़े अपाहिज को देखो तो आपको उसके पास बैठने में भी थोड़ा हिचकिचाहट लगती है। कुब्जा इसकी बड़ी उदाहरण थी। अष्टवक्र मुनिका आठ जगह से वक्ररूप मुड़े हुए हैं। एक बार ब्रह्मसत्र हुआ ज्ञानियोंकी सभामें गये। वहां शंकरजीके दो पार्षद आगे आये थे। अष्टावक्रमुनि आये और लोग खड़े हुए अभिवादन किया। बहुत बड़ा ज्ञानी जो जनक का गुरु है। शुकदेव के गुरु जनक, जनक के गुरु अष्टावक्र मुनि इतने महान। लेकिन यह दो पार्षद बैठे हुए हंस दिए। अष्टावक्रजी भी उनको देखकर और जोरसे हंसे। पार्षद बोले यह आदमी यह जो ऋषि है क्या पागल है क्या यह क्यों हंस रहा है हमारे को देखकर। महाराज, आप हमको देखकर क्यों हंस रहे है। शुकदेव बोले- पहले तुम यह बताओ तुम क्यों हंस रहे हो? पार्षद बोले- हम तो महाराज आपका यह शरीर देखकर हंस रहे है आठ जगह से मुड़ा है यह भी कोई शरीर है। अब आप बताओ आप क्यों हंस रहे हो? अष्टावक्र बोले- मैं इसलिये हंस रहा हूं कि मैं आया तो था ज्ञानियोंकी सभा में पर मुझे लगता है मैं मौचियोंकी सभा में, चर्मकारोंकी सभामें आया हूँ। चर्मकार मतलब जो शरीर की गठन, पठन देखते है, चमड़े को देखते है ज्ञान को नहीं देखते। ऐसे ज्ञानी शुकदेवजी वहांपर जनकके पास। जनक बोले- महाराज एक परीक्षा में तो आप उत्तीर्ण हैं। बिना परीक्षा लिये। बोले अरे- जो मेरी परीक्षा लेनी थी मैं देखूंगा बाकी दूसरे-तीसरे दिन लेंगे। बिठा दिया। एक बहुत सुन्दर बाग, जहां काम का प्रवेश। एक झूला डलवाया गया। बड़े-बड़े अच्छे फूलोंसे सुगन्धित और नारद मुनिको बुलाया, शुकदेवको बुलाया, महारानी सुनयना जनक की पत्नी, सुन्दर, सीताजीकी जननी और कह दिया इनकी परीक्षा लेना। सुनयना बोली- ठीक है। बसन्त ऋतु, यहां शुकदेव बैठा है, बीचमें सुननया जी बैठ गयी है, यहां नारद बैठ गया है। जैसे शुकदेव और नारद बैठे थे बीचमें सुनयना आकर बैठी गयी जैसे बैठ गयी नारद उठ गया। स्त्री स्पर्श, स्त्री स्पर्श मैं ब्रह्मचारी स्त्री स्पर्श। सुनयना गलेमें बाहें डालकर शुकदेवके पास बैठ गयी। काफी समय निकल गया, बैठे रहीं। कामका कोई असर नहीं। इतना बढ़िया मौसम, ऋतु, फूल-पुष्प। काम अपने पूरे वेगसे पूरे बाणोंके सहित वहांपर। उस शुकदेव को नैष्ठिक ब्रह्मचारी कामका कोई असर नहीं, क्रोधका कोई असर नहीं। जनकने कह दिया आप तो स्वयं वेदांत स्वरूप हैं, आप तो वेदांत के सशक्त हस्ताक्षर है। जन-जन में प्रचार कर दिया, काम और क्रोध दोनों को जीता है आचार्य शुकदेव। ब्रह्मा की सृष्टि में केवल एक ही पुरुष ऐसा है आचार्य शुकदेव, जिन्होंने काम को जीता है, क्रोध पर विजय पायी है। शुकदेवजी को जीवन में कभी क्रोध आया ही नहीं। नैष्ठिक बाल ब्रह्मचारी है। यह इन्द्रियजीत है क्रोधको जिसने जीता है, कामको जिसने जीता है परमहंस संहिता को कोई परमहंस ही ग्रहण कर सकता है। <u>सिंहनी का दूध स्वर्णपात्र में ही टिक सकता है</u>।

भगवान व्यासने शुकदेवको भागवत कथा का पाठ कराया वह पाठ भागवत कथा का शुकदेवको ज्ञान हुआ। व्यासजी ने शुकदेव जी को गले से लगाया और बोला, आज मुझे अधिकारी शिष्य मिल गया। यही शुकदेव परीक्षितके सभामें आते हैं और यह शुकदेवका परिचय हो गया।

परीक्षितने कहा- मेरा बहुत बड़ा भाग्य है। आज अतिथि के रूप में स्वयं भगवान शुकदेव पधारे हैं। ऐसा तपस्वी संत, परीक्षित की सभा में स्वयं आ गया। आज उल्टी गंगा बह गयी। कुआं प्यासे के पास आ गया। प्यासा कुएं के पास नहीं गया।

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्य: शुद्धयन्ति वै गृहा:। किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभि:॥

परीक्षित आसन ग्रहण करवाकर, पूजा करता है और यही दो प्रश्न पूछता है भगवन शीघ्र मृत्यु जिसकी सात दिन में होनेवाली हो उसके लिये क्या परम कर्त्तव्य है? और जीवका क्या लक्ष है? इसका मुझे विवेचन करें।

मनुष्यका उसके जीवन और मृत्यु कालमें मुख्य कर्तव्य क्या है? उसे क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए? क्या बोलना चाहिए, क्या नहीं बोलना चाहिए? क्या सोचना चाहिए, क्या नहीं सोचना चाहिए?

इस संसारमें जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनका हृदयकी शुद्धिपर मुख्य ध्यान रहा है। जो मनमें आये वह बोल देना, कर देना और इन्द्रियोंमें जिस भोगकी रुचि हो, उसको भोग लेना-ऐसा तो पशु भी नहीं करते। जिसके जीवनमें संयम नहीं है, वह मनुष्य कहलानेका अधिकारी कहाँ हैं?

शुकदेव मृत्यु टाल सकता था, परीक्षितने मृत्यु टालना नहीं मांगा। परमकल्याण पूछा जीवका। स्त्री-पुत्रों के मोह में फंसे रहने के कारण मैंने कभी मन में इस बात का विचार नहीं किया कि अन्त समय में क्या होगा। जिस तरह कसाई बहुतसी बकरियाँ अपने यहाँ रखकर उनमें से नित्य एक-दो बकरी मारता है, किन्तु दूसरी बकरियों को कभी इस बात का डर नहीं होता कि हमारी भी एक दिन यही गति होगी, वे बड़े हर्ष से प्रतिदिन दाना व घास व पानी खाती पीती हैं, उसी तरह हम संसारी लोग सदा माता पिता, भ्राता व पुत्र का मरना आँख से देखकर कुछ नहीं डरते कि हमको भी एक दिन मरना होगा। यह सब हाल देखते हुए भी अपने मन को स्त्री-पुत्र आदि झूठे व्यवहार और मायामोह में फँसाये रहते हैं।

कथा श्रवण करने-कराने में श्रद्धा पुष्ट होती है। श्री शुकदेव और परीक्षित में अपूर्ण गुण विद्यमान थे। अत: सबके लिये कथा कल्याणकारी सिद्ध हुई।

श्रीशुकदेवके लिये कोई विषय अज्ञात नहीं, वे ही सब धर्मों के ज्ञाता श्रीशुकदेवजी राजा के प्रश्नों का उत्तर देने को उद्यत हुए।

प्रभो। परम पुरुषार्थ कृपा करि मोहि बतावें। मरणशील कस तरहिं तुरत ताकूँ समुझावें॥
सुने सुधासम बैंन नीर नैननिमहँ आयौ। बोले शुक-नृप धन्य जगततें चित्त हटायौ॥
नृपवर। सब चिन्ता तजहु, मनमोहनमहँ मन घरहु। कहूँ भागवत तत्व अब, दत्तचित्त ह्वैकें सुनहु॥
अत: पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम्। पुरुषस्येह यत्कार्य म्रियमाणस्य सर्वथा।

शुकदेव सभामें कहते है परीक्षित तुमने बड़ा ही सुन्दर प्रश्न किया है। तुमने अपने लिये नहीं किया यह भी मैं जानता हूँ। यह जीव कल्याण के लिये इतना सुन्दर प्रश्न किया है। अब मैं तुमको यह कथा सुनाता हूँ। अब वहांपर भागवत कथा शुरू होती है।

महाराज परीक्षित के प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे- हे नरपति। आपने यह अत्यन्त ही उत्तम प्रश्न पूछा। इस प्रश्न से आपका ही नहीं, सम्पूर्ण संसार का परम हित होगा। जितने भी श्रवण, मनन और कीर्तन करने योग्य विषय हैं, उन सब में आपका यह प्रश्न सर्वश्रेष्ठ है। परीक्षित तुम्हारा प्रश्न बहुत उत्तम तथा लोक कल्याणकारी है।

वरीयानेष ते प्रश्न: कृतो लोकहितो नृप। आत्मवित्सम्मत: पुंसां श्रोतव्यादिषु य: पर:॥

राजन्। यह प्रश्न साधारण लोगों को ही नहीं, आत्मज्ञानियों को भी प्रिय है।

तक्षक द्वारा मृत्यु सुनि, कीन्हों अनशन राय। कीन्ह कृपा शुकदेव जी, दियौ कथामृत प्याय॥

मुक्ति के साधन अनेक हैं किन्तु मनुष्य की अल्पायु और उसमें भी आधा समय रात्रि के कारण यूं ही बीत जाता है। शेष समय भोगों में, आसक्तियों में ऐसे ही निकल जाता है। राजन्। मैं स्वयं निर्गुण का उपासक था किन्तु द्वापर के अन्त में इस भगवत् स्वरूप श्रीमद्भागवत महापुराण का अपने पिता श्रीकृष्ण द्वैपायन से मैंने अध्ययन किया। मेरी निर्गुण स्वरूप परमात्मा में अटूट निष्ठा है किन्तु श्रीकृष्ण की माधुर्यपूर्ण लीलाओं ने बलात् अपनी ओर आकर्षित कर लिया वही कथा मैं तुम्हें सुनाता हूँ उसीसे तुम्हारा अनुराग भगवत् चरणारविन्द में हो जायगा और तुम्हें मुक्ति प्राप्त हो जायगी।

इसलिये हे भरतवंशावतंस राजन्। जिसे अभय पद की अभिलाषा हो, उसे तो सर्वात्म स्वरूप, सबके स्वामी, सभी पापों को

हरनेवाले समस्त ऐश्वर्य के स्वामी भगवान वासुदेव का ही श्रवण कीर्तन और स्मरण करना चाहिए। यही सारातिसार तत्व है।

भरतवंश अवतंस। प्रश्न अति उत्तम कीन्हों। मुनिमण्डलके मध्य मोइ आदर बहु दीन्हों।।
भूप। मूढ़जन विषय-भोगमहँ समय बितावें। प्रभु पद प्रेम न करहिं अन्तमहँ पुनि पछतावें।।
नृपवर। नरतनु नाव दृढ़, कृष्ण कथा पतवार है। केशवकूँ केवट करहिं, सो भवसागर पार है।।

बीज जब तक अपने आपे को खोकर धूलि में नहीं मिलता, तब तक अंकुरित होकर पल्लवित, पुष्पित और फलवान् नहीं बन सकता।

मुनि बोले- यह प्रश्न आपने लोकहित के लिये किया है। अर्थात तुम्हारा हित तो तभी हो गया जब तुमने अपना सर्वस्व भगवान वासुदेव के चरणों में तथा उनके अभिन्न रूप श्रीगुरुदेव के चरणों में समर्पित कर दिया। तुम तो कृतार्थ हो चुके। तुम्हारे लिये न कुछ कर्त्तव्य कर्म रहा न पूछने को कोई प्रश्न ही रहा। ऐसे कृतकृत्य हुए पुरुष भी यदि कोई जप, तप, मन्त्रानुष्ठान, प्रश्न, सम्भाषण तथा और कोई शुभ कार्य करते हैं तो वह अपने लिये न होकर लोक-कल्याण के निमित्त होता है। राजन्। जो विषय-वासना से पृथक् होकर परतत्त्व के जिज्ञासु हैं, उनके लिये तो सुनने योग्य एक ही विषय है और जो विषयासक्त माया जाल में फँसे गृहस्थी हैं, उनके लिये तो सुनने को असंख्यों विषय हैं। उनकी कोई गणना ही नहीं।

संसार स्वार्थी हो गया है। धर्म-कर्म लुप्त हो गये है। इसलिये राजन्। जिन्हें अभय पद की इच्छा हो, संसार के भयों से निर्भय बनने की अभिलाषा हो, उन्हे सब-कुछ त्यागकर सदासर्वदा, सर्वत्र सर्वेश्वर श्यामसुन्दर के ही नाम और गुणों का श्रवण कीर्तन और स्मरण करते रहना चाहिये। हर प्रकृति के जीव के लिये परमात्मा से तन्मयता यह जीवन का लक्ष्य है। जीवन ऐसा बना लेना चाहिए कि मृत्यु के समय भगवत्स्मृति अवश्य रहे, यही जीवन का लाभ है। जिसका जीवन में प्रतिक्षण सम्भाला हुआ है उसका मरण भी परमात्मा सम्भालते है।

संसार में सभी मनीषियों ने, ज्ञानी, ध्यानी, विरक्त और सभी शास्त्रकारों ने मनुष्य जीवन का यही एकमात्र परम पुरुषार्थ बताया है कि अन्तकाल में जिस किसी प्रकार भी भगवान का स्मरण बना रहे। यदि स्वधर्म का आचरण करने पर उससे अन्त में भगवत्-स्मृति न हो तो वह दम्भ है। योग साधन से अन्त में योगेश्वर का स्मरण न हो सके तो वह योग कपट योग है। सांख्य शास्त्र का निरन्तर विचार करते रहने पर भी अन्त में भी ब्रह्म साक्षात्कार न हो तो वह एक व्यसन मात्र है। इसीलिये गोविन्द के गुण गान में रमण करते रहना ही मनुष्य का एकमात्र कर्त्तव्य है। ऐसे ज्ञानी, धनी, विरक्त और स्थितप्रज्ञ पुरुष भी हरिगुण गान, कृष्ण कथा कीर्तन में सदा निरत रहते हैं। कर्त्तव्य बुद्धि से नहीं, भगवान के गुणों में माधुर्य ही ऐसा है कि वे त्रिगुणातीत होने पर भी स्वभाववश उन्हीं में निमग्न रहते हैं। द्वापर के अन्त में गन्धमादन पर्वत पर अपने पिताश्री श्रीवेदव्यासजी के आश्रम पर उन्हीं के द्वारा मैंने यह सर्वश्रेष्ठ संहिता बड़े परिश्रम से पढ़ी थी।

संसारी पुरुषों के शतशत फलों का साधन, मुमुक्षु पुरुषों के मोक्ष का साधन, ज्ञानी पुरुषों के जीवन का मुख्य फल, योगीजनों के चरमयोग की परिस्थितियों का फल भगवत् नाम संकीर्तन ही बताया है। इसमें किसी प्रकार का विघ्न बाधा या भय नहीं है यथा-तप, यज्ञादि में अशौच, असमय आदि की त्रुटि रहने से फल नष्ट हो जाता है किन्तु संकीर्तन में ऐसा कुछ भी नहीं है।

जो भी पुरुष इस कथा को श्रद्धापूर्वक सुनेगा और सुनकर भक्तिपूर्वक इसका मनन करेगा, उसको अत्यन्त शीघ्र ही भगवान वासुदेव के चरणारविन्दों में अहैतुकी, अनन्य प्रेम वाली-भक्ति उत्पन्न होगी। उसकी मति मनमोहन की माधुरी में फँस जायगी। जिन पुरुषों को संसार के इहलोक तथा परलोक के सभी संसारी तथा दिव्य भोगों से अत्यन्त वैराग्य भी हो, किन्तु वे अभय पद के इच्छुक हों तो उन योगियों को भी भगवन्नाम संकीर्तन करना ही चाहिये। निरन्तर भगवान की कथा का श्रवण करना, सदा भगवन्नामों का मन से अथवा वाणी से कीर्तन करते रहना- इससे बढ़कर कोई भी श्रेष्ठ कार्य, कोई

उत्तमोत्तम साधन नहीं। राजन्। यही परम पुरुषार्थ है। यही अन्तिम साध्य है। यही चरम स्थिति है। जिन्होंने अपना मन कथा कीर्तन में लगा लिया वे धन्य हो गये, कृतार्थ हो गये, उनके लिये कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं रह गया। यही सभी मनुष्यों के लिये सर्वदा सर्वोत्कृष्ट कर्त्तव्य है।

है प्रपञ्च बहु विषय भोगमहँ फँसे नरनकूँ। हरि लीलातें सुखद और अवलम्ब न मनकूँ।।
आकर्षित अति भयो रूप हरि लीला सुनिकें। भूल्यो निर्गुन ब्रह्म सगुनके गुनकूँ गुनिकें।।
भव्य भागवत भूपवर। तुमहिं सुनावहुँ सरस अति। सुनत श्याम पद कमलमहँ, होहि तुरन्त अनन्य मति।।

जिन्होंने परीक्षित के साथ-ही-साथ श्रीभागवत सप्ताह सुना, वे भी एक से एक ज्ञानी-विज्ञानी, सर्व संशयछेत्ताऋ, ब्रह्मवेत्ता तथा सर्वशास्त्र विशारद थे। भागवत सप्ताह यज्ञ के वे सब श्रोता थे।

शुकदेव जितनी देर में एक गौ दुही जाती है, उतनी देर से अधिक ठहरते ही नहीं, वे भी योगबल से सब जानकर व्यग्रता के साथ दौड़ आये और बिना कहे अपने आप आसन पर जा बैठे और सात दिन तक एक ही स्थान में रहकर कथा सुनाते रहे। न तो शुकदेवजीको कहने में श्रम हुआ और न राजा पीरक्षित को तथा अन्यान्य ऋषि-मुनियों को समझने में ही श्रम हुआ। शुकदेव जी का कोई आश्रम नहीं है। शुकदेव जी के पास पानी पीने के लिए कमण्डलु भी नहीं है। केवल चार अंगुल की लँगोटी पहने हैं, केले के छिलके की। शुकदेव सभा में जाकर बैठे। पांच घरोंसे भिक्षा लेते थे। द्वार पर जाकर ये नहीं कहते थे- माम् भिक्षां देहि.... एक गाय को दुहने में छ: मिनट का समय लगता है। शुकदेव छ: मिनट तक द्वार पर खड़े रहते है। कोई भिक्षा दे देतो तो ठीक, नहीं तो आगे निकल जाते। छठे घर में जाते नहीं। सीधे वन में चले जाते। ऐसा तपस्वी संत, ऐसा कृष्ण का परमप्रिय लाड़ला संत-राजा परीक्षित की सभा में स्वयं आ गया। आज उल्टी गंगा बह गयी। कुंआ प्यासा के पास आ गया। प्यासा कुएं के पास नहीं गया।

जो पैदा होता है, वह म्रियमाण होता है और वह क्षण-क्षणमें भी म्रियमाण होता रहता है। तो, परीक्षितजीने पूछा कि म्रियमाणावस्थामें क्या सुनना चाहिए, क्या जप करना चाहिए, क्या कर्म करना चाहिए, क्या स्मरण करना चाहिए, क्या भजन करना चाहिए और इसके विपरीत क्या होता है?

राधा मेरी स्वामिनी और मैं राधा को दास।
मीठे रस से भरोड़ी राधा रानी लागे, राधा प्यारी लागे, म्हानो जमुनाजी को पानी खारो खारो लागे

महामुनि शुकदेवजी कहने लगे- राजन्। पूर्वकाल में राजर्षि खट्वाङ्ग को जब पता चला कि मेरी आयु का अन्त आ गया है तो वे एक मुहूर्त में ही सर्वस्व त्यागकर श्रीहरि के निर्भय पद को प्राप्त हो गये। फिर आप की तो अभी सात दिन की अवधि शेष है। इसलिए हे कुरुकुल तिलक, आप इसी बीच में अपने परलोक सुधार का उपाय कर लें।

अल्पकालकी कछू आप चिन्ता नहिं करहैं। सात दिवस तो बहुत कथा सुनि छिनमहँ तरिहैं।।
एक मुहूर्तहि माहिं तरे खट्वाङ्ग विरागी। शेष आयु सप्ताह आपु तो सरबसु त्यागी।।
अन्तकालकूँ निकट लखि, गेह देह ममता तजहिं। ते ध्रुव पावहिं परम पद, जे सब तति प्रभुपद भजहिं।।

भागवत का पहला अध्याय पूरा हुआ। इस भागवत में बारह अध्याय हैं और १८ हजार श्लोक हैं। अब परीक्षित बैठे हैं प्रश्न कर लिया है। परीक्षित के शुकदेवजी से प्रश्न- १) मरणासन्न व्यक्ति के लिये क्या कर्त्तव्य है, अर्थात जिसकी मृत्यु काल निकट थोडे ही समय में है। २) मनुष्य मात्र का क्या कर्त्तव्य है ? ३) मनुष्य जीवन का क्या लक्ष है, अपने कल्याण के लिये कौनसा श्रवण, जप, स्मरण, भजन करे और किसका त्याग करे। ४) भगवन इस सृष्टि का सर्जन, पालन और विध्वंस किन-किन शक्तियों का आश्रय लेकर किस प्रकार करते है और क्यों करते है?

शुकदेवजी अभी उनको प्रश्नोंका उत्तर देते है यही भागवत कथा है। शुकदेव कहते है- परीक्षित तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न किया। जनहितके, जनकल्याणके लिये किया है। तुमने अपने मृत्युकाल के लिये नहीं किया। तुम्हारे पूछे हुए प्रश्न का उत्तर संक्षिप्त में यही है। म्रियमाण व्यक्ति जो सात दिन में मरनेवाला है, मृत्युके नजदीक उस व्यक्तिको भगवान में लीन करना, भगवत कथा सुनना, भगवत अमृतपान करना वह जीव का लक्ष्य है जीवनभर यही है कि वह भगवान की प्राप्ति करे। भगवान कैसे प्राप्त हो? बोले परीक्षित- भगवान भक्त, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यसे प्राप्त होंगे। ज्ञान कौनसा? भक्ति कैसी, और वैराग्य कैसे आवे। मन तो लगता ही नहीं यह मन बड़ा चंचल स्वभाववाला है वैराग्य नहीं होता, कभी नहीं होता। फिर वैराग्य संसारसे कैसे आवें? वैराग्य क्या है? यह सृष्टिमें क्यों मन लगता है? यह सृष्टि क्या है? यह वैराग्य क्या है? इससे मुंह कैसे मोड़ा जावें?

यह है वैराग्य जिसका पाठ शुकदेवजीने ज्ञानवैराग्य की कथाके लिये बताया कि मनुष्य को ज्ञान वैराग्य हो। तो उस हरिकी प्राप्ति होगी इस संसार में वैराग्य हो, भगवान की भक्ति हो, भगवान को एकाग्रता से अपना माने तो परीक्षित यह तुम्हारा निश्चित कर्त्तव्य है।

शौनकादि ऋषियों ने कहा, सूतजी। महाराज परीक्षितके पूछने पर शुकदेवजी ने क्या उत्तर दिये।

सूत। सुनाओ सुखद परीक्षित शुक प्रश्नोत्तर। जहाँ सन्त जन मिलहिं तहाँ सम्वाद होय वर।।
गङ्ग यमुन मिलि हरैं महापातक हू भारी। तैसे ही शुक विष्णु-रात बार्वा अघहारी।।
केवल कृष्ण कथा सदा, श्रवननिकूँ श्रवनीय हैं। करें कृष्ण कैंकर्यकूँ, ते ही कर कमनीय है।।

शुकदेव बोले- जिसका समय भगवान उत्तमश्लोक के गुणगान में व्यतीत होता है, उन्हीं की तो आयु सार्थक है, शेष सब अपने दिन व्यतीत कर रहे हैं। भागवत-कथा से विहीन सभी निर्जीव है। कोई वस्तु जो एक को स्वादिष्ट लगती है दूसरे को वही स्वादहीन प्रतीत होती है। जो कान कृष्ण कथा नहीं सुनते, वे तो व्यर्थ के छिद्र है। सर्प, चूहे औरनेवले के रहने के बिल हैं। कान वही हैं जो कृष्ण कथा श्रवण करें। जिव्हा की सार्थकता व्यर्थ की बकवाद में नहीं है। भगवन्नाम संकीर्तन ही उसका मुख्य और प्रधान कर्त्तव्य है। जो जिह्वा कृष्ण नाम संकीर्तन नहीं करती, वह तो मेंढक की जिव्हा के समान है, व्यर्थ में टर्र-टर्र करती है।

पायो पुण्य शरीर मनुष च्यौं पाप बटोरै। अरे अमृतमहँ अधम व्यर्थ च्यौं विषकूँ घोरै।।
पतिनी, पशु, परिवार, पुत्र धन सङ्ग न जावैं। मलि मलि धोवै देह अन्तमहँ गीदड़ खावैं।।
काहे भूल्यो बावरे, मेला जगको द्वै दिवस। कृष्ण कृष्ण रटि कृष्ण जपि, कृष्ण कथा सुनि अहरनिस।।

संसार के लोगों से आशा न किया करना, यहाँ कोंई नहीं अपना सियाराम कहा करना।
जीवन के समुद्र में तूफान भी आते हैं, जो प्रभु को भजते हैं प्रभु आप बचाते हैं।
प्रभु आप ही आयेंगे तुम याद किया करना, यहाँ कोई नहीं अपना सियाराम कहा करना।
मत भूल अरे वन्दे यह देश वेगाना है, इस दुनिया में आकर, वापस भी तो जाना है।
माया के चक्कर से दिन रात बचा करना, यहाँ कोई नहीं अपना सियाराम कहा करना।
यह सोच मेरे प्यारे प्रभु तुझ से दूर नहीं, कोई कष्ट हो भक्तों पर उनको मंजूर नहीं।
भगवान ही आते हैं भक्तों पै दया करना, यहाँ कोई नहीं अपना सियाराम कहा करना।

इति प्रथम स्कन्ध

द्वितीय स्कन्ध

विषय सूची

१) भगवान के विराट स्वरूप का स्थूल व सूक्ष्म स्वरूप का वर्णन २९७

२) क्रममुक्ति और सद्योमुक्तिका वर्णन ३०१

३) कामनाओंके अनुसार देवताओंकी उपासना ३०४

४) राजा परीक्षित के विविध प्रश्न ३०६

५) सृष्टि की उत्पत्ति विषयक नारद को ब्रह्माका ज्ञान ३०९

६) विराट पुरुष की विभूतियों का वर्णन ३१६

७) ब्रह्माको वैकुण्ठ धाम का दर्शन ३२०

८) चतु:श्लोकी भागवत ३२६

९) नारायणके विभिन्न अवतार ३३३

१०) भागवत के दस लक्षण ३४१

* जाति धर्म और वर्ग से बना रहा पहिचान, कितना बौना हो गया कट कट कर इन्सान,
जब तक ईमान पास था, मिली नही पहिचान, गिर कर अपनी आंख से वो भी हुआ महान।
* इन्सान धर्म-पंथ में विभक्त हो गये, ईमान मर्म कर्म से विरक्त हो गये,
अब रहा न शेष कुछ चरित्र देश में, चरित्र हीन ही जब से देश भक्त हो गये।
* खुद अपनी फसल की देखभाल भी न कर सके और दोष लगा दिये सभी आसमान पर।
लिखी है उसने जो तकदीर इन लकीरों मे, लिखे हुये को अब लकीरों से मिटाके दिखा।
* आज भी जाति पाति, ऊंच-नीच है, आज भी सत्ता व पैसे का खेल है,
इन्सान बंटा हुआ है भेदभाव में कहां मुहब्बत, प्रेम और मेल है।

द्वितीय स्कन्ध

ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण तथा मरुद्गण, दिव्य स्तोत्रों द्वारा जिन परमात्मा की स्तुति करते हैं, सामदेव के मर्म को जाननेवाले ऋषि, मुनि, अंग, पद, क्रम और उपनिषदों के सहित वेदों के द्वारा जिन परमात्मा का गायन करते रहते हैं। योगीजन ध्यान के द्वारा चित्त को स्थिर करके जिनका दर्शन करते रहते हैं। इतना सब कुछ करने पर भी देवता, असुर तथा अन्य कोई भी जिनके वास्तविक स्वरूप का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ है, उन स्वयं प्रकाशवान परमेश्वर को नमस्कार है।

१) भगवान के विराट स्वरूप का स्थूल व सूक्ष्म स्वरूप का वर्णन

विराट रूप और ध्यान विधि, कही शुकन्हि समझाय। सुनत परीक्षित चित्त सों, मुनि चरनन शिरनाय।।

जहाँ हम परमार्थ का चिन्तन करते हैं, सबसे पहिले यह नाम रूपात्मक जगत् हमारे सम्मुख आ उपस्थित होता है। नाना रूपों में दीखनेवाला यह चमकीला, भड़कीला, मोहक संसार क्या है, इसे किसने बनाया, क्यों बनाया? ये प्रश्न सीखने नहीं पड़ते, स्वत: ही उत्पन्न होते हैं। प्राय: सभी मुनियों ने विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के सम्बन्ध में विचार किया है और यह विचार आवश्यक भी है। हमारे प्रत्येक अणु-अणु में तो यह संसार घुसा है। जब तक इसका यथार्थ रूप न समझा जाय, तब तक यह मन से कैसे निकल सकता है? हृदय में जब तक संसार बसा हुआ है, तब तक वहाँ श्यामसुन्दर का वास कैसे सम्भव हो सकता है। मनुष्य को यही उचित है कि अन्त समय पर विषय कामना छोड़कर वैराग्य का अवलम्बन करे।

परीक्षितने शुकदेव से पूछा- महाराज। मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जगत् क्या वस्तु है? बड़े-बड़े ब्रह्मादि देवता, लोकपाल, मनु, प्रजापति भी जिस संसार के यथार्थ रूप को नहीं समझ सकते, उसकी रचना भगवान् ने अपनी माया से कैसे खेल-खेल में ही कर डाली? उत्पत्ति करके कैसे वे इसका पालन करते हैं, कैसे फिर नाश कर डालते हैं? जिस-जिस शक्ति को आश्रय बनाकर हँसी-हँसी में बिना प्रयास लीला से ही इस चित्र-विचित्र नाना रूप रंगवाले जगत् को बना देते हैं एक ही भगवान तीन रूप रखकर उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कैसे करते हैं। अवतार कैसे लेते हैं? अवतार धारण करके क्या-क्या क्रीड़ाकरते हैं? आप तो सर्वज्ञ हैं, शब्द ब्रह्म और परब्रह्म-वेद विद्या और अध्यात्म विद्या दोनों में निष्णात हैं। इसलिये उन सबके बारेमें मुझे बताइये।

शुकदेव बोले- लोकहित की दृष्टि से किये हुए तुम्हारे प्रश्न श्रेष्ठ हैं। समस्त श्रोतव्य, ज्ञातव्य, दृष्टव्य और कीर्तितव्य सब में परम श्रेष्ठ हैं। वैसे तो यह संसार है इसका विस्तार है कि मनुष्य की आयु से कोई क्या पार पायेगा? देवताओं सरीखी आयु लेकर सैकड़ों वर्षों तक हजारों जन्मों तक कोई देखता, सुनता, बोलता एवं समझता रहे तो भी पार नहीं पा सकता। लेकिन संसार में दो तरह के लोग होते हैं कुछ असावधान, प्रमादी, प्रपंची, विषयी, जो हजारों हजारों वर्ष की आयु ऐसे ही निरर्थक गंवा देते हैं व्यर्थ प्रपंच में अपना समय बिताते हैं।

रैन गंवायी सोय के दिवस गंवायो खाय। हीरा जनम अमोल थो कौड़ी बदले जाय।

स्वास-स्वास पर कृष्ण भजि, वृथा स्वास जनि खोय। ना जाने या स्वास की, आवन होय न होय।

राजा परीक्षित गृहस्थी, घरके कामधंधों में उलझा रहने से अपने स्वरूप को नहीं पहचानता। धनकी हाय-हाय व कुटुम्ब के भरण-पोषण में ही जीवन समाप्त हो जाता है। उनकी रात नींद या स्त्री-प्रसंगसे कटती है और दिन धनकी हाय-हाय या कुटुम्बियोंके भरण-पोषणमें समाप्त हो जाता है। वे शरीर, पुत्र, स्त्री आदि असत् पदार्थों के मोह में पागल जैसा हो जाता है और मृत्यु का ग्रास बन जाता है। वे धन और परिवार से अपना भला चाहते है। मनुष्य जिस स्त्री-पुरुषोंकी माया-मोह में फंसकर

सब तरह का दु:ख उठाता है और असत्य बोलकर द्रव्य उत्पन्न करता है, जिनको पालता है, उनकी मृत्यु भी अपने आंखोंसे देखकर मन को इस महाजाल से विरक्त नहीं करता। मरने के उपरान्त कोई भी सगा सम्बन्धी उसकी सहायता नहीं करते और वो नरक का भागी होता है। अन्य सासांरिक विषयों में आसक्ति होना ही जीव को पतन की ओर अग्रसर कराता है। जितनी वस्तुएं, पदार्थ संसार में है वो सब परमात्मा का ही रूप है। चंद्रमा और सूर्य में जो प्रकाश है वो उन्हींसे है। मनुष्य के शरीर में ज्ञान रहता है, पर पशु-पक्षी आदि में वो ज्ञान नहीं होता। इसलिए परमेश्वर का स्थूल स्वरूप में चिंतन करो। जब उसमें मन लग जाएं तो सूक्ष्म स्वरुप का ध्यान करो। संसार में मनुष्य को बड़े परिश्रम से प्रयोजन की सब वस्तुएँ मिलती है।

यह परीक्षित जो अभय पद को प्राप्त करना चाहता है उसे भगवान की लीलाओंका भजन, कीर्तन और स्मरण करना चाहिए। चाहे ज्ञान, भक्ति से। जीवको मृत्युके समय भगवान की यह स्मृति बनी रहे। तुम भगवान के परमभक्त हो। तुम्हें मैं भगवान की लीलाओंके बारेमें मैं बताऊंगा। मैंने श्रीमद्भागवत महापुराण मेरे पिता श्रीकृष्णद्वैपायनसे अध्ययन किया। मेरी निर्गुणस्वरूप परमात्मामें पूर्ण निष्ठा थी। योगी और सांख्यवादी लोग कहते हैं गुण तो सब प्रकृति के है आत्मा तो निर्गुण है। महात्मा लोग कहते हैं कि आत्मा निर्गुण है और गुण सब मायापति परमेश्वर के है।

फिर भी भगवान श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंने बलात् मेरे हृदयको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। जो लोक या परलोक में किसी वस्तुकी इच्छा रखते हैं या संसार में दु:खका अनुभव करके जो उससे विरक्त हो गये हैं वो निर्भय मोक्षपदको प्राप्त करना चाहते हैं, उनको भगवानके नामोंका संकीर्तन करना चाहिए।

परीक्षित। अपना परम कल्याण चाहनेवाले व्यक्ति को भगवान के संबंध में ही सुनना चाहिये। भगवान के सम्बन्ध में ही वाणी से बोले, भगवान के संबंध में ही मन से सोचे तो परम कल्याण हो जायेगा। परीक्षित। ये तीन साधन ऐसे हैं, जो कोई भी सुगमता से कर सकता है। बाकी साधन तो अधिकार होने पर ही कर सकता है जैसे किसी को योग साधन के लिये कहो तो जिसको लकवा मार गया है, वह भला आसन आदि की प्रक्रिया क्या अपना सकेगा? क्या प्राणायाम कर पायेगा?

और किसी अनपढ़ को कहो कि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो समस्त वेदों का अभ्यास करो, उसका पाठ करो तो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा तो यह अनपढ़ के लिये संभव नहीं है और जो ये तीन साधन बताये (श्रोतव्यश्च कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्च) इन तीनों साधनों को कोई विद्वान हो या मूर्ख, धनी या गरीब, बालक या बूढ़ा, स्त्री या पुरुष, ब्राह्मण या क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र कहने का तात्पर्य है कोई भी किसी भी अवस्था में कैसे भी हो, सभी तरह के लोग बड़ी आसानी से अत्यन्त सुलभता से कर सकते हैं। जो ये तीन साधन अपनायेंगे, वे परम कल्याण के भागी बन जायेंगे। यज्ञ-यज्ञादि का साधन कोई गरीब कैसे पर पायेगा? जिसके पास पूंजी होगी, व ही कर सकेगा, यज्ञ याज्ञादि को तो धनवान ही कर सकेगा।

भगवान का स्मरण करो, भगवान का कीर्तन करो, भगवान की चर्चा करो, उनका गुणानुवाद गाओ, गा नहीं सको तो जहां कोई गा रहा है, वहां बैठके सुनो, इसमें कोई खर्चा नहीं, घर में बैठके स्मरण करो, इसमें सबका अधिकार है। इसको करने में किसी को कोई कठिनाई नहीं है। कोई योग साधना कर रहा है, कोई सांख्य का विचार कर रहा है, तो उसको भी अन्त में यहीं आना पड़ेगा।

रावण के जीवन में सम्पत्ति थी, पराक्रम था, एक लाख बेटे, सवा लाख पौत्र थे। सोने की लंका थी सब कुछ था। लेकिन राम नाम की इकाई नहीं थी।

राम विमुख अस हाल तुम्हारा, रहा न कोउ कुल रोवनहारा। एक लख पूत सवा लाख नाती, उस रावण घर दीया न बाती। हरिनाम नहीं तो जीना क्या। अमृत है हरिनाम जगत में, छोड़ विषय विष पीना क्या?

राम विहाई मरा जपते बिगड़ी सुधरी कवि कोकिल हूंकी। नामहिते गज की गणिका की अजामिलकी चल गई चल चुकी।।
नाम प्रताप बड़ेकुसुमाज बजाय रही पथ पाण्डुवधू की। ताको भलो अजहूंतुलसी जें ही प्रीति प्रतीति हया कर दूकी।।
यही हरि भक्त कहते हैं यही सद्गुण गाते हैं, न जाने कौन से गुण पर दयानिधि रीझ जाते हैं।।

अयोध्या नरेश राजर्षि खटवांग को अपनी आयु से कुछ क्षणोंमें ही भगवान का अभयप्रद प्राप्त हो गया। तुम्हारे जीवन की अवधि सिर्फ सात दिन बाकी है। मृत्यु आनेपर मनुष्य को डरना नहीं चाहिए और उसको ममता और आसक्ति से सब बन्धनों को काट डालना चाहिए और भक्तियोग की प्राप्ति करनी चाहिए। मृत्यु किसीको समय देकर नहीं आती। किसीके मरने से किसीका कोई काम बन्द नहीं होता। पृथु जैसे बड़े-बड़े महाराजा मर गये, बड़े-बड़े महापुरुष मर गये, लेकिन सृष्टि ज्यों-की-त्यों चलती ही रही। इसलिए मृत्युकी चिन्ता छोड़ो।

किन्तु तुम भाग्यशाली हो कि उसने तुम्हें सात दिन का बहुमूल्य समय दिया है। अन्तकाल के आने पर व्यक्ति को घबड़ाना नहीं चाहिये। उसे चाहिये कि वह अपने शरीर घर और परिवार के प्रति आसक्ति को काट कर फेंक दे।

राजन्। वासुदेव की भक्ति से बढ़कर कोई कल्याण का मार्ग नहीं है। परम कल्याण का मार्ग यही है। जिस साधन के द्वारा भगवान श्री कृष्ण की अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाय, सबसे उत्तमोत्तम साधन वही है। भगवान वासुदेव के चरणों में रति हो, प्रीति हो, सर्वात्मा सर्वेश्वर भगवान के प्रति अनन्य प्रेम प्राप्त हो, वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। इसलिये प्राणीमात्र को चाहिये कि सब समय सभी स्थितियों में सदा-सर्वदा अपनी सम्पूर्ण शक्तियों से प्रभु के श्रीहरि के नाम रूप गुण का श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण करता रहे।

आसक्ति ही बन्धन का कारण होती है। सब का परित्याग कर उसे किसी पुण्य तीर्थ में चले जाना चाहिये। वहाँ तीर्थ के पावन जल में स्नान आदि से शुद्ध होकर पवित्र एकान्त स्थान में बैठकर ओंकार का जप करना चाहिये। जप की बेला में मन को शनै:- शनै: सांसारिक विषयों से हटाकर भगवान के स्वरूप में लगा देना चाहिये। प्राण-वायु को वश में करके मन का दमन करे और एक क्षण के लिये भी प्रणव को न भूले। इस प्रकार स्थिर चित्त से भगवान के श्रीविग्रह में से किसी एक अंग का ध्यान करे। इस प्रकार एक-एक अंग का ध्यान करते भगवान के पूर्ण रूप में मन को ऐसा तल्लीन कर दे कि फिर और किसी विषय का चिन्तन ही न हो, मन और भगवान दो न होकर भगवान ही भगवान रह जायँ।

अत: हे परीक्षित। तुम्हें किसी प्रकार चिन्तित या दु:खी होने का कारण नहीं। अपने मन एवं चित्त को एकाग्र करके भगवान के विराट स्वरूप में लगा दो।

बुद्धि की सहायता से मनके द्वारा इंद्रियोंको विषयोंसे उपराम करना चाहिए और चित्त से भगवानके के श्रीविग्रहमेंसे किसी एक अंगका ध्यान करना चाहिए। वही भगवान विष्णुका परमपद है। जिसे प्राप्त करके मन भगवत्प्रेमरूप आनन्दसे भर जाता है। यही भगवान का स्थूल स्वरूप है।

परीक्षित ने पूछा- ब्रह्म की प्राप्ति किस साधन से हो सकती है? उसका स्वरूप क्या है? शुकदेव बोले- जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महतत्त्व, प्रकृति इन सात आवरणोंसे विराट पुरुष भगवान का एक ब्रह्मांड शरीर घिरा हुआ है वही इस धारणा के आश्रय है। इनका स्वरूप इसप्रकार है-

पाताल विराट पुरुषके तलवे हैं, उनकी एड़ियाँ और पंजे रसातल हैं, दोनों गुल्फ- एड़ीके ऊपरकी गाँठें महातल हैं, उनके पैरके पिंडे तलातल हैं। विश्वमूर्ति भगवान्के दोनों घुटने सुतल हैं, जाँघें वितल और अतल हैं, पेडू भूतल है और परीक्षित्। उनके नाभिरूप सरोवरको ही आकाश कहते हैं। आदिपुरुष परमात्माकी छातीको स्वर्गलोक, गलेको महर्लोक, मुखको

जनलोक और ललाटको तपोलोक कहते हैं। उन सहस्र सिरवाले भगवान्‌का मस्तक समूह ही सत्यलोक है। इन्द्रादि देवता उनकी भुजाएँ हैं। दिशाएँ कान और शब्द श्रवणेन्द्रिय हैं। दोनों अश्विनीकुमार उनकी नासिकाके छिद्र हैं; गन्ध घ्राणेन्द्रिय है और धधकती हुई आग उनका मुख है। भगवान् विष्णुके नेत्र अन्तरिक्ष हैं, उनमें देखनेकी शक्ति सूर्य है, दोनों पलकें रात और दिन हैं, उनका भ्रूविलास ब्रह्मलोक है। तालु जल है और जिव्हा रस। वेदोंको भगवान्‌का ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं और यमको दाढ़ें। सब प्रकारके स्नेह दाँत हैं और उनकी जगन्मोहिनी मायाको ही उनकी मुसकान कहते हैं। यह अनन्त सृष्टि उसी मायाका कटाक्ष-विक्षेप है। लज्जा ऊपरका होठ और लोभ नीचेका होठ है। धर्म स्तन और अधर्म पीठ है। प्रजापति उनके मूत्रेन्द्रिय हैं, मित्रावरुण अण्डकोश हैं, समुद्र कोख है और बड़े-बड़े पर्वत उनकी हड्डियाँ हैं। राजन्। विश्वमूर्ति विराट् पुरुषकी नाड़ियाँ नदियाँ हैं। वृक्ष रोम हैं। परम प्रबल वायु श्वास है। काल उनकी चाल है और गुणोंका चक्कर चलाते रहना ही उनका कर्म है। परीक्षित्। बादलोंको उनके केश मानते हैं। सन्ध्या उन अनन्तका वस्त्र है। महात्माओंने अव्यक्त (मूलप्रकृति) को ही उनका हृदय बतलाया है और सब विकारोंका खजाना उनका मन चन्द्रमा कहा गया है। महत्तत्त्वको सर्वात्मा भगवान्‌का चित्त कहते हैं और रुद्र उनके अहमार कहे गये हैं। घोड़े, खच्चर, ऊँट और हाथी उनके नख हैं। वनमें रहनेवाले सारे मृग और पशु उनके कटिप्रदेशमें स्थित हैं। तरह-तरहके पक्षी उनके अद्‌भुत रचना-कौशल हैं। स्वयम्भुव मनु उनकी बुद्धि हैं और मनुकी सन्तान मनुष्य उनके निवासस्थान हैं। गन्धर्व विद्याधर, चारण और अप्सराएँ उनके षड्‌ज आदि स्वरोंकी स्मृति हैं। दैत्य उनके वीर्य हैं। ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजाएँ, वैश्य जङ्घाएँ और शूद्र उन विराट् पुरुषके चरण हैं। विविध देवताओंके नामसे जो बड़े-बड़े द्रव्यमय यज्ञ किये जाते हैं, वे उनके कर्म हैं। परीक्षित्। विराट् भगवान्‌के स्थूलशरीरका यही स्वरूप है, सो मैंने तुम्हें सुना दिया। इसीमें मुमुक्षु पुरुष बुद्धिके द्वारा मनको स्थिर करते हैं, क्योंकि इससे भिन्न और कोई वस्तु नहीं है। जैसे स्वप्न देखनेवाला स्वप्नावस्थामें अपने-आपको ही विविध पदार्थोंके रूपमें देखता है, वैसे ही सबकी बुद्धि-वृत्तियोंके द्वारा सब कुछ अनुभव करनेवाला सर्वान्तर्यामी परमात्मा भी एक ही है। उन सत्यस्वरूप आनन्दनिधि भगवान्‌का ही भजन करना चाहिये, अन्य किसी भी वस्तुमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये। क्योंकि यह आसक्ति जीवके अध:पतनका हेतु है।

विराट भगवान के पाद मूल पाताल में, ऐड़ी तथा पैर का अग्रभाग रसातल हैं, जंघा तलातल, दोनों जानु सुतल, दो उरु वितल-अतल, जंघा महीतल, नाभि नभ स्थल, वक्ष:स्थल स्वर्गलोक है, मुख जग लोक हैं, ललाट तप लोक है, सिर सत्यलोक है, इन्द्रादि देवता उनकी भुजायें हैं, दिशायें कान, शब्द श्रोत्रेन्द्रिय हैं, नासिका पुट अश्वनि कुमार, अग्नि उनका मुख, शरीर की नाड़िया है, नदियाँ। रोमावली वृक्ष हैं, स्वास वायु, काल गति और संसार ही उनका कर्म है। ब्राह्मण मुख, क्षत्री बाहु। वैश्य जंघायें, शूद्र उनके पैर हैं।

कथा मन की एकाग्रता, हृदय की निर्मलता और मनन करकर तत्व को जानना चाहिए। इसीसे ज्ञान प्राप्त होता है। भक्ति आती है। धर्म आता है और प्रतिभा प्रस्फुटित होती है। दुनिया में कुछ भी है वह सब आत्मा से ही निकलता है। किसीके प्रति दुश्मनी रखकर कथा सुनने से भगवान की याद नहीं आती; वही व्यक्ति याद आता है जिससे वैर है।

योगीजन दो प्रकार की मुक्ति बताते हैं- १) सद्यो मुक्ति, २) क्रमो मुक्ति। सद्यो मुक्ति- को प्राप्त करने के लिए गुदा द्वार को पैर की एड़ी से दबाकर छ: चक्रों का क्रमश: भेदन करते हुए प्राणवायु को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाये और ब्रह्मरन्ध्र का भेदन कर प्राणवायु को परमात्मा में विलीन कर दें। क्रमो मुक्ति- क्रमश: मुक्ति प्राप्त करने को कहते हैं। जैसे स्वर्ग लोक, मह: लोक, जसलोक, तपलोक का अतिक्रमण कर सतलोक में पहुँचना। सतलोक में इस प्रकार की गति मिलती है- कल्प के प्रारम्भ में किसी अधिकारी का पद दे दें, मुक्त हो जाय, उपासना कर विष्णुलोक प्राप्त कर ले। यही क्रम क्रमो मुक्ति कहलाता है। ये मुक्ति के भेद मैंने अवश्य बताये परन्तु प्रेम लक्षणा भक्ति से सरल एवं स्वाभाविक रूप से जो मुक्ति प्राप्त होती है वह सर्वोपरि है।

जब योगी पुरुष इस मनुष्य लोक को त्यागना चाहे, तब देश और काल में मन को न लगाये। सुखपूर्वक आसन पर बैठकर प्राणों को जीतकर मन से इन्द्रियों का संयम करे। तदनन्तर अपनी निर्मल बुद्धि को क्षेत्रज्ञ में और क्षेत्रज्ञ को अपनी अन्तरात्मा में लीन कर दे। फिर अन्तरात्मा को परमात्मा में लीन करके धीर पुरुष उस परम शान्तिमय अवस्था में स्थिर हो जाये। फिर उसके लिये कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता। भगवान ब्रह्मा ने एकाग्र चित्त से सारे वेदों का तीन बार अनुशीलन करके अपनी बुद्धि से यही निश्चय किया कि जिससे सर्वात्म भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम प्राप्त हो, वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। वेदोंकी वर्णनशैली से लोगोंकी बुद्धि स्वर्ग आदि निरर्थक नामोंके फेरमें फँस जाती है। जीव वहाँ सुखकी वासनासे स्वप्न-सा देखने लगता है। किन्तु उन मायामय लोकोंमें कहीं भी उसे सच्चे सुखकी प्राप्ति नहीं होती। यदि संसारके पदार्थ प्रारब्धवश बिना परिश्रमके यों ही मिल जायँ, तब उनके उपार्जनका परिश्रम व्यर्थ समझकर उनके लिये कोई प्रयत्न न करे।

वेदों में विभिन्न कर्मों का वर्णन मिलता है जिससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है किन्तु स्वर्ग भी नश्वर है- **ते तं भुक्त्वा स्वर्ग लोकं विशालं। क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति॥**

शुकदेव मुनि बोले, परीक्षित। जिन्होंने भगवत कथा नहीं सुनी उनके कान कान नहीं है, जिस जीभ ने हरि नाम का संकीर्तन नहीं किया वो जीभ नहीं है, मेंढक की जीभ के समान है। जो मस्तिष्क मुकुन्द के चरणों में नहीं झुका वह मस्तिष्क नहीं है कठोर तुमड़े के समान है। जो हाथ ईश्वर की सेवा के लिये नहीं उठते उन हाथ की कोई शोभा नहीं। जो हाथ दान नहीं देते, वो हाथ मुर्दे समान है। जिस आंखोंने प्रभुके दर्शन नहीं किये वे आंखे तो मोरपंख के समान है। जो चरण परमात्मा की तीर्थयात्रा नहीं करते वो तो वृक्ष के समान है। हे आदि पुरुष। हम आपको नमन करते है।

२) क्रममुक्ति और सद्योमुक्तिका वर्णन

स्थूल सूक्ष्म रूप कौ शुकदेव ने वर्णन कियौ। क्रमयुक्ति साद्योयुक्ति कौ भी ज्ञान राजा को दियौ॥
सुनि के बचन मुनिराय के, नरनाह अति हर्षित भयौ। मग्न परमानन्द में हो लाभ, निज जीवन लह्यौ॥

शुकदेव ने कहा राजा परीक्षित, सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी ने इसी धारणा के द्वारा अपनी उस स्मृति को प्राप्त कर संसार की रचना की थी जो प्रलय-काल में विलुप्त हो गई थी। पंचभूतों का निर्माता तो हिरण्यगर्भ है। किन्तु पंचभूतों के भीतर जो छोटे-छोटे ब्रह्माण्ड होते हैं उनमें स्थित होकर संसार का निर्माण करनेवाला (मनुष्य पशु-पक्षी आदि बनानेवाला) ब्रह्मा होता है। पंचभूतों का प्रादुर्भाव हिरण्यगर्भ से होता है और हिरण्यगर्भ ईश्वर से निकलता है। ईश्वर की प्रतीति परब्रह्म में माया के कारण होती है। वेदों में अनेक प्रकार के यज्ञयागादि का वर्णन मिलता है। उन यज्ञों के फल हैं स्वर्ग के विविध भोग। किन्तु ये स्वर्ग के भोग भी नश्वर हैं, क्षणिक हैं। अत: कल्याणकामी व्यक्ति को उनमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये। इस लोक में शरीर-निर्वाह के लिये जितने भोगों की अपेक्षा है, बस उतने का ही संग्रह करना चाहिये, उससे अधिक का नहीं। माया-निर्मित वस्तुओं से सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं होती। शरीर-निर्वाह के लिये भोग यदि बिना परिश्रम के मिल जायँ तो उससे अधिक के लिये श्रम नहीं करना चाहिये। ब्रह्माजीने पूर्वकाल में सृष्टिविज्ञान को याद किया और पूर्वकल्प के ही समान जगत् की सृष्टि की। मनुष्य को चाहिए कि वह अनावश्यक संग्रही न बने। उसे सांसारिक भोग की वस्तुओं की प्राप्ति के लिए अधिक प्रयास करने की क्या आवश्यकता है। जितना भाग्य में होगा उतना मिलेगा ही। इस तरह आत्मकल्याण की कामना करनेवाले पुरुष को निरन्तर भगवान की आराधना करनी चाहिए।

जीव स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति की वासनाओं में भटकता है उसे कहीं भी सच्ची शान्ति तथा सुख नहीं प्राप्त होता है।

अत: ज्ञानी पुरुषों को चाहिये कि वे सांसारिक वस्तुओं की उतनी ही चाह करें जितनी उन्हें आवश्यकता हो बाकी सब वस्तुओं को नि:सार समझकर उसमें लीन न होवे यदि भाग्यवश ये वस्तु अनायास ही प्राप्त हो जाती है तो उनके अधिक उपार्जन का प्रयत्न न करे।

किसी कर्म में आसक्ति न रखकर जीवन निर्वाह के हेतु जितना आवश्यक हो उतना ही ग्रहण करना अपेक्षित है जो आसानी से मिल जाए। जैसे- पृथ्वी पर शयन, तकिया के स्थान पर बाहु, पात्र के स्थान पर अंजलि और भोजन वृक्षों से प्राप्त करना चाहिए, नदियों से पानी तथा गुफाओं में निवास करना चाहिए। मद त्याग कर अभिमान छोड़कर अविनाशी भक्तवत्सल भगवान श्रीमन्नारायण के चतुर्भुज रूप का ही चिन्तन, ध्यान करते रहना चाहिए। इसी में जीव का कल्याण है।

यदि कोई वस्तु सुगमतासे सुलभ हो तो उसके लिए कठिन तपस्या करनेकी जरूरत नहीं। नींद अगर धरतीपर आजाय तो पलंग इकट्ठा करनेकी जरूरत नहीं, हाथसे तकियाका काम चल जाय तो तकिया बनानेकी जरूरत नहीं, अंजलिसे पानी पी लिया जाय तो बहुत सारे बर्तन रखनेकी जरूरत नहीं, नंगे रहने या वल्कल पहननेसे काम चल जाय तो बढ़िया-बढ़िया कपड़ा इकट्ठा करनेकी जरूरत नहीं। जो लोग संसारमें लगे हुए हैं उनको नंगा बनाने या कौपीन पहनानेका विधान नहीं है। जो अर्थ चाहते हैं, वे अर्थ कमायें, जो भोग चाहते हैं वे भोग भोगें। जो धर्म चाहते हैं वे धर्म करें। अपने-अपने अधिकारके अनुसार कर्म करना चाहिए। लेकिन जो परमार्थ चाहते हैं उनको तो संसारका परित्याग करके इस मार्गपर चलना ही पड़ेगा। क्या मार्गमें पहननेके लिए चीर नहीं मिलते? क्या वृक्ष भिक्षा नहीं देते? क्या नदियों और सरोवरोंसे पीनेका पानी नहीं मिलता? क्या वे सूख गये हैं? क्या रहनेके लिए गुफाएँ नहीं मिलती?

कुछ साधक अपने अन्त:करण में भगवान का ध्यान करते हैं। उनका स्वरूप प्रादेश मात्र हैं, अपनी चार भुजाओं में वे शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किए हुए हैं। वे कञ्जलोचन एवं प्रसन्न मुख मण्डल वाले हैं। भगवान किरीट, मुकुट, कुण्डल आदि अलंकारों से अलंकृत हैं। इसी प्रकार से भगवान के एक-एक अंगों में अपने चित्त को स्थिर करना चाहिए। जैसे-जैसे अन्त:करण शुद्ध होता जायेगा, चित्त स्थिर होता जायेगा। जब संसार त्याग की बेला आये तो योगी को किसी देश-काल का चिन्तन नहीं करना चाहिए। उसे योग की प्रक्रिया से आत्मा को परमात्मा में लीन कर देना चाहिए। योगी को चाहिए कि वह ब्रह्मरन्ध्र का भेदन कर सद्योमुक्ति को प्राप्त करे।

क्रम मुक्ति का वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि यदि विहार करने की इच्छा हो तो योगी को चाहिए कि वह इन्द्रियों तथा मन को साथ लेकर शरीर त्याग करे। उपासना एवं तपस्या करनेवाले योगी को सर्वत्र विहार करने का अधिकार होता है। जब योगी सुषुम्णा मार्ग से ब्रह्मलोक जाने के लिए शरीर त्यागता है तो सर्वप्रथम वह अग्निलोक में जाता है, उसके पश्चात् श्री भगवान के शिशुमारचक्र में पहुँचता है, उसके पश्चात वह महर्लोक में जाता है। इसके पश्चात् वह ब्रह्मलोक में जाता है। यही सत्यलोक कहलाता है। इस लोक में किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं है। इस लोक में रहनेवाले जीवों की आयु ब्रह्माजी की आयु के बराबर होती है और ब्रह्माजी की मुक्ति के समय प्रलय काल के आने पर उस जीव की भी मुक्ति हो जाती है। इसी को क्रम मुक्ति कहते हैं।

जब योगी पुरुष इस मनुष्यलोक को छोड़ना चाहे तब देश और काल मनको आसक्त न करे और मनसे इंद्रियोंका संयम करे। शास्त्रोंकी सम्मति है वही भगवान विष्णुका परमपद है जो अपने सम्बन्धी पदार्थोंमें आत्मबुद्धिका त्याग करके भगवान के परम स्वरूप का हृदयमे ध्यान करें। योगियोंका शरीर वायुकी भाँति सूक्ष्म होता है। उन्हे बाहर और भीतर सर्वत्र स्वच्छन्दरूपसे विचरण करनेका अधिकार होता है। प्रलय के समय वह योगी ब्रह्मलोकमें चला जाता है। वहाँ न शोक है, न

दु:ख, न बुढ़ापा है, न मृत्यु। सत्यलोकमें पहुँचनेके पश्चात् वह योगी निर्भय होकर अपने सूक्ष्म शरीरको पृथ्वीसे मिला देता है और फिर सातों आवरणोंका भेदन करता है। पृथ्वीसे जलको, जलसे अग्निको, अग्निसे वायुरूप आवरणमें आ जाता है वहाँसे ब्रह्मकी अनन्तताका ज्ञान करानेवाले आकाशरूप आवरणको प्राप्त करता है। आकाशरूपी पंचभूतोंके स्थूल-सूक्ष्म आवरणोंको पार करके अहंकारमें प्रवेश करता है। सूक्ष्म भूतोंको तामस अहंकारमें, इन्द्रियोंके राजस अहंकारमें तथा मन और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंको सात्त्विक अहंकारमें लीन कर देता है। इसके बाद अहंकारके सहित कालके साथ जुड़कर महतत्व बनता है। उन महतत्वकी प्राप्ति ही आनन्दस्वरूप शान्त परमात्माकी प्राप्ति है। इस भगवन्मयी गतिकी प्राप्ति होनेपर उसे फिर इस संसारमें नहीं आना पड़ता। इसीको क्रमसे सद्योमुक्ति कहते है। इसके आगे योगी के लिये कोई कर्त्तव्य बाकी नहीं रह जाता। वहाँ सत्त्वादि गुणों का काल, देश आदि का कोई प्रभाव नहीं रह जाता। वहाँ न महत तत्त्व है न प्रकृति है। अब ब्रह्मनिष्ठ योगीको देह-त्याग कैसे करना चाहिए। कहते हैं कि पहले स्थिर आसनमें बैठकर एड़ीसे गुदास्थानको दबाये और फिर नाभि आदिके छह चक्रों अर्थात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र, इनके क्रमसे प्राणवायुको ऊपर ले जाकर ब्रह्मारन्ध्रके भेदन द्वारा देहका परित्याग करे इससे सद्यो मुक्ति हो जाती है। यही सद्योमुक्ति है।

सतयुगमें एक व्यक्ति की उम्र लाख वर्ष की होती थी। त्रेतामें दस हजार वर्ष, द्वापर में एक हजार वर्ष की और कलियुगमें सौ वर्ष ही रह गये। संग को हमेशा त्यागने का प्रयास करो। बुरे आदमी का संग मिले, ऐसा कभी प्रयास मत करो। संग करना है तो विद्वानों का करना, संतों का करना। संत संग ही भवसागर से पार उतारने की एक नौका है, एक औषधि है। चिन्तन को बढ़ाओ और चिंताको मिटाओ। चिन्ता संसार की होती है, चिंतन परमात्मा का होता है। धीरे-धीरे मन परमात्मा में लग जायेगा, मन की चंचलता समाप्त हो जायेगी और देहाभ्यास की निवृत्ति हो जायेगी। इसप्रकार निश्चिंत नित्य भाव से अपने हृदय में चिंतन करे, जिससे जन्म-मृत्यु में डालनेवाला अज्ञान नष्ट हो जाता है फिर परमगति की प्राप्ति हो जाती है। मनुष्य का जीवन एक फूटे हुए घड़े के समान है। उसके छिद्र में से पानी बह रहा है। आयु प्रतिक्षण क्षीण होते जा रही है। बीता हुआ समय वापिस नहीं मिलता। समुद्र में लहर आती है और चली जाती है। लक्ष्मी आती है और जाती है। समय की कीमत समझनी चाहिए। समय स्वर्ण से भी अधिक कीमती है। हे राजर्षि, जिसकी मृत्यु निकट हो उसे अपने घर-परिवार से आसक्ति छोड़ देनी चाहिए। नहीं तो उसकी आसक्ति काल आकर नष्ट करता है।

मानव बड़े-बड़े आयोजन करते हैं, मैं यह करूंगा, मैं वह करुंगा। करते-करते खुद खत्म हो जाता है। मृत्यु की तैयारी नित्य-प्रतिदिन करते रहना चाहिए। मृत्यु को याद करो, पाप से बचोगे। हिसाब देने का दिन है यह। लोग कहते हैं कि मन जाप करते समय भटकता है, लगता नहीं। सेवा में मन लगता नहीं। मृत्यु का भय बताओ तो सेवा में लगेगा।

कंचन, कामिनी और कीर्ति का त्याग करो। किसी भी रूप में भगवान का स्मरण करना चाहिए। स्मरण करने से जगत की विस्मृति हो जाए तब सार्थक है। योग मार्गमें संयम-नियम होना चाहिए। यदि कोई भोगी योगी बनने जायेगा तो रोगी बन जायेगा। ज्ञान मार्ग में यदि वैराग्य नही होगा तो ज्ञान नहीं टिकेगा। भक्ति मार्गमें यदि सफलता चाहिए तो प्रभुसे प्रेम होना चाहिए। प्रभुका विस्मरण होते ही भक्त व्याकुल हो जाए इसीका नाम प्रेम है।

मनुष्य सत्य लोक में तभी तक निवास करता है जब तक कि ब्रह्मा की आयु रहती है। मनुष्य मरने के बाद मन और इन्द्रियोंके साथ ही सूक्ष्म शरीर से स्वर्ग लोक में चले जाता है। और दिव्य भोगों को भोगकर मह:, जन और तप लोकों से होता हुआ सत्य लोक में चला जाता है। जहाँ पर न शोक है, बुढ़ापा, मृत्यु है, न आर्ति और न उद्वेग ही। ब्रह्मा के लोक को ही सत्यलोक कहते हैं। सत्य लोक में भोगों को आनन्द से लेकर फिर वह ब्रह्मा के साथ मुक्त हो जाता है यही क्रममुक्ति है।

राजा परीक्षित, साधनका निर्णय बस यही है कि सर्वत्र, सर्वदा, सर्वात्मा, सब जगह, सब कालमें और समस्त मनसे भगवानका ही कानसे श्रवण करो, वाणीसे कीर्तन करो और मनसे स्मरण करो। इससे त्वचा, आँख, नाक और स्वाद लेनेवाली जीभ- इन चारोंका तो हो जायेगा तिरस्कार तथा वाणी द्वारा नाम, कान द्वारा श्रवण एवं मन द्वारा स्मरण- इन तीनोंमें हो जायेगी निष्ठा। यही मनुष्यके लिए सबसे बड़ा साधन है। असलमें भगवान और आत्मा दो चीजें नहीं है। जो आत्मा है वही भगवान है और जो भगवान है वही आत्मा है। सन्त लोग कथामृतको कानके प्यालेमें डाल देते हैं और उसको प्रेमसे पीते हैं। फलस्वरूप उनके हृदयोंमें विषयोंका, वासनाओंका जो विष रहता है वह दूर हो जाता है। तथा उनको भगवान्के चरणारविन्दकी प्राप्ति हो जाती है। साधक की ज्यों-ज्यों बुद्धि तथा मन भगवत् भक्ति में लगती जावेगी त्यों-त्यों उसका चित्त स्थिर होता जावेगा।

प्रजापति ब्रह्मा ने सम्पूर्ण वेदों को बड़े ध्यान से पढ़ने के पश्चात् यही निश्चय किया है कि सच्चिदानन्द घन परमात्मा के प्रति भक्ति और प्रेम होना ही सर्वोत्तम धर्म है। सम्पूर्ण प्राणियों तथा भूतों में भगवान श्रीकृष्ण ही आत्मा के रूप में विराजमान है। इसलिये हे राजा परीक्षित। मनुष्य को सर्वदा सब स्थितियों में अपनी शक्ति के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण की कथाओं का श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिये। उससे विषय वासनाओं के सम्पूर्ण विषैले मल धुल जाते हैं और भगवान की प्राप्ति हो जाती है।

३) कामनाओंके अनुसार देवताओंकी उपासना

जोइ जोइ मन होय कामना, सोइ सोइ देवन की करे उपासना।
सब देवन के देव ईश, उन्हीं को नवाऔ अपना शीश।।

एकै साधे सब सधे सब साधे सब जाय। गाहि पकड़ो जब मूलको फूले फले अघाय।।

ब्रह्म तेज व बुद्धि के इच्छुक- बृहस्पति की उपासना, इन्द्रियों में विशेष शक्ति की कामना- इन्द्र की, सन्तानोत्पन की, लालसा के लिये- प्रजापतियों, दौलत, वैभव, ऐश्वर्य के लिये- लक्ष्मी व माया देवी की, तेज के लिये- अग्नि की, धन के लिये- वसुओं की, बल बीरता के लिये- रुद्रों की, अन्न के लिये- अदिति की, स्वर्ग की कामना के लिये- देवताओं की, राज्य की अभिलाषा के लिये- विश्व देवों की, प्रजा का प्रिय बनने के लिये- साध्य देवों की, आयु वृद्धि के लिये- अश्विनी कुमार, पुष्टि की इच्छा के लिये पृथ्वी की, प्रतिष्ठा की चाह के लिये- द्यौ (आकाश) का सेवन, सौन्दर्य की चाह के लिये- गन्धर्व, रूप सुन्दरी पत्नी के लिये- उर्वशी अप्सरा की, सबका स्वामी बनने के लिये- ब्रह्मा की, यश की इच्छा वाले को- यज्ञ पुरुष की, खजाने की लालसा वाले को वरुण की, विद्या प्राप्त करने के लिये- शंकर की, पति-पत्नी के प्रेम के लिये- पार्वती की, धर्म में स्थित रहने के लिये- विष्णु की, वंश परम्परा अक्षण्णु बनाने के लिये- पितरों की, कष्टों से बचने के लिये- यक्षों की, बल और शक्ति के लिये- मरुदगणों की, राज्य के लिये मनुओं के अधिपति देवों की, अभिचार के लिये- निर्ऋति की, भोगों के लिये- चन्द्रमा, निष्कामता के लिये- परम पुरुष नारायण की।

अल्पज्ञ मनुष्य जो कामना सिद्धि के लिए प्रभु का यजन करते हैं उनके कल्याणार्थ उपास्य देवताओं का ज्ञान भी कराता हूँ। लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए दुर्गादेवी, इन्द्रिय सुख के लिए इन्द्र, कीर्ति या प्रभाव चाहनेवाले के लिए अग्नि, आयु चाहनेवालों को अश्वनि कुमारों की, सौन्दर्य चाहनेवालों को गन्धर्वों की, विद्या चाहने वाले भगवान शंकर की, सन्तान वृद्धि के लिए दक्ष का यजन करना चाहिए। किन्तु बुद्धिमान लोग सकाम या निष्काम भक्तिभाव से केवल भगवान विष्णु की ही आराधना करते हैं।

बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह निष्काम हो या कामना युक्त तीव्र भक्तियोग के द्वारा परम पुरुष भगवान की ही

आराधना करें। भगवान में अविचल प्रेम प्राप्त कर लें। ऐसा एक उदाहरण है- काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुर्गुणों का प्रतीक डाकू अंगुलिमाल अपने पापों से भयभीत होकर सोचने लगता है- संतों का सुवचन है कि पारस लोहे को सोना बना देता है, गंदी नाली को गंगा सुरसरि बना देते है। तो फिर वह सन्तों के शरण में जाकर धन्य हो गया। अपने जीवन को दिव्य बनाने के लिये साधु-संतों का संग करना चाहिए। शुकदेव बोले- परीक्षित, जो प्राणी भगवन्नाम का स्मरण, भगवासन की कथा आदि में रुचि नहीं रखता और श्री भगवच्चरण में अर्पित तुलसीदल का प्रसाद पाकर सराहना नहीं करता वह मरे हुए प्राणियों के समान है। श्रीदेवीभागवत में तुलसी का विशेष उपाख्यान है। कार्तिक पूर्णिमा को तुलसी जी का जन्म माना गया है।

तुलसी भगवानको बहुत प्यारी है। उसपर भगवान मुग्ध रहते हैं। एक बार भगवानका तुलसी-प्रेम देखकर किसीको क्रोध आ गया कि तुम हमारा नाम तो लेते नहीं और हर वक्त तुलसीका नाम ही लेते रहते हो। जाओ यह तुलसी पौधा हो जाये। भगवानने कहा- अच्छा यह पौधा होकर हरा-हरा रहेगा और मैं पत्थर हो जाता हूँ। भगवान काले-काले शालग्राम बन गये और उसपर तुलसी चढ़ने लग गई।

आठ पहर चौंसठों घड़ी, ठाकुरपर ठकुराइन चढ़ी। तुलसी की बराबरीकी दूसरी कोई चीज नहीं है। संसार में कोई व्यक्ति ऐसा नियम बना ले कि मैं तो अमुकके बिना भोजन नहीं करूँगा, जब वह मिलेगा तो ही भोजन करूँगा, उसके साथ ही भोजन करूंगा तो उसका कितना प्रेम प्रकट होगा उस व्यक्ति के प्रति। भगवान विष्णुने बिना तुलसीके भोजन नहीं करनेका नियम बना लिया।

महापुरुषों के सत्संग से जो भगवान की लीलाएँ सुनने को मिलती है, उससे दुर्लभ ज्ञान की प्राप्ति होती है।

अपनी भलाई के लिए भगवान की उपासना से बढ़कर कोई उपासना नहीं है। भगवान की उपासना करने से उपरोक्त सम्पूर्ण देवताओं की निधियाँ स्वयं अनायास ही प्राप्त हो जाती है।

सकाम भक्ति करते हुए भी यदि जीव संत-संगत, कथा-कीर्तन श्रवण करता रहे तो उसे प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्त हो जाती है जिससे मोक्षपद का अधिकारी बन जाता है। सत्संग से ज्ञान की प्राप्ति, राग द्वेष की निवृत्ति होगी। मन में आनन्द उत्पन्न होगा। प्रभु के प्रति निष्ठा बढ़ेगी और मोक्ष का मार्ग निष्कंटक हो जायगा-

भवसागर से निस्तारण का सबसे सरल एवं उत्तम उपाय, भगवान ब्रह्मा ने समस्त वेदों का सर्वांगी अध्ययन कर सार रूप में भगवान श्रीकृष्ण में प्रेम लक्षणा भक्ति ही बताया है। अत: मनुष्य को सदा सर्वदा भगवान श्रीकृष्ण का ही चिन्तन, मनन और कीर्तन करना चाहिए इससे विषयों से दूषित अन्त:करण, मलिन चित्त एवं विकृत बुद्धि परिशुद्ध हो जाती है और जीव को प्रभु के चरणार्विन्द में स्थान मिल जाता है- **वृजन्ति उच्चरण सरोरुहान्तिकम्।।**

हे राजन्। भगवान श्रीकृष्ण जीव मात्र के परम हितैषी हैं। जीवों का हितचिंतन करना उनका स्वभाव है। वे अविनाशी, अभेद्य, अदृश्य, अलेप, निर्विकार, निरंकुष, निराकार होते हुए भी सब के मन में विराजमान हैं। तुम अपने मन में उनकी धारणा करो, झाँक कर देखो अपने मन मन्दिर में। कैसी दिव्यातिदिव्य उनकी शोभा है। कैसे सुन्दर मणिमाणिक्य से जड़ित झिलमिल करते उनके मुकुट कुण्डल, करीट हैं। कैसी सुन्दर घुंघराली अलकावली, उनके सुघड़ अरुणिम कपोलों पर क्रीडा कर रही है, जैसे मधुप पराग का सिंचन करके मस्त भँवरा मंडराता है। कमल नयन की बांकी चितवन, हास्ययुक्त अधर, विशाल वक्ष:स्थल, आजानुबाहु जिनमें शंख, चक्र, गदा, पद्म शोभित हैं एवं सर्पाकार उत्तरीय उन पर फहरा रहा है। कटि में पीताम्बर, जीव उद्धार के हेतु आतुर अरुण कमल से चरण। चरण से मुखतक उनके एक-एक अंग का अवलोकन कर उनकी अपूर्व

स्नेहमयी चितवन पर अपना चित्त स्थिर कर दो। यही म्रियमाण पुरुष के लिए अपेक्षित है।

जिसके कानमें भगवान श्रीकृष्णकी लीला-कथा कभी नहीं पड़ी, वह नर पशु, कुत्ते, ग्राम-सूकर, ऊँट और गधेसे भी गया बीता है। जो मनुष्य भगवान श्रीकृष्णकी कथा कभी नहीं सुनता, उसके कान बिलके समान हैं। जो जीभ भगवान्‌की लीलाओंका गायन नहीं करती, वह मेंढककी जीभके समान टर्र-टर्र करनेवाली है; उसका तो न रहना ही अच्छा है। जो सिर कभी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें झुकता नहीं, वह रेशमी वस्त्रसे सुसज्जित और मुकुटसे युक्त होनेपर भी बोझामात्र ही है। जो हाथ भगवान्‌की सेवा-पूजा नहीं करते, वे सोनेके कंगनसे भूषित होनेपर भी मुर्देके हाथ हैं। जो आँखें भगवान्‌की याद दिलानेवाली मूर्ति, तीर्थ, नदी आदिका दर्शन नहीं करतीं, वे मोरोंकी पाँखमें बने हुए आँखोंके चिन्हके समान निरर्थक हैं। मनुष्योंके वे पैर चलनेकी शक्ति रखनेपर भी न चलनेवाले पेड़ों-जैसे ही हैं, जो भगवानकी लीला-स्थलियोंकी यात्रा नहीं करते। जिस मनुष्यने भगवत्प्रेमी संतोंके चरणोंकी धूल कभी सिरपर नहीं चढ़ायी, वह जीता हुआ भी मुर्दा है। जिस मनुष्यने भगवान्‌के चरणोंपर चढ़ी हुई तुलसीकी सुगन्ध लेकर उसकी सराहना नहीं की, वह श्वास लेता हुआ भी श्वासरहित शव है। वह हृदय नहीं, लोहा है, जो भगवानके मंगलमय नामोंका श्रवण-कीर्तन करनेपर भी पिघलकर उन्हींकी ओर बह नहीं जाता। जिस समय हृदय पिघल जाता है, उस समय नेत्रोंमें आँसू छलकने लगते हैं और शरीरका रोम-रोम खिल उठता है।

हमें जो कुछ प्राप्त है, सब उन सर्वेश्वर प्रभु से प्राप्त हुआ है। जो कुछ प्रभु से प्राप्त हुआ उसका प्रभु की सेवा में विनियोग करना ही हमारा कर्त्तव्य है। इसीमें इनकी सार्थकता है, नेत्र से देखा जाता है, तो हम नेत्रों से भगवान की झांकी का दर्शन करें, कानों से भगवत् चर्चा ही सुनें। वाणी बोलने का काम करती है तो वाणी से हम भगवान का ही सुयश गावें। पैर चलने का काम करने के लिये प्रभु ने दिये तो उन पैरों से भगवदीय क्षेत्रों में ही विचरण करें। हाथ ठाकुर की सेवा में लगे। इस प्रकार अंग-अंग से हम भगवान की सेवा में लगे रहें।

जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना, श्रवन रंध्र अहि भवन समाना। जो नहिं करइ राम गुन गाना, जीह सो दादुर जीह समाना।।

४) राजा परीक्षित के विविध प्रश्न

सृष्टि उत्पत्ति प्रश्न तब, पूछौ राजा सिहाय। योगीश्वर शुकदेवजी, कहैं सभी समझाय।।

इस सृष्टिके कितने गूढ़ रहस्य है उनकी जानकारीका दावा वैज्ञानिक भी नहीं कर सकते। परीक्षितने ब्रह्माण्ड, प्रमाण, भगवद्‌वतार, वर्णाश्रमधर्म, साधारण धर्म, तत्वोंका परिसंख्यान, लक्षण, हेतुलक्षण, आध्यात्मिक योग इन सब ज्ञातव्य विषयोंके बारेमें पूछा। वैज्ञानिकों के सामने कोयल और कौआ दोनोंके अण्डोंका पानी शीशियोंमें भरकर रख दिया जाय और कहा जाय कि इन दोनोंमें से मीठी आवाज किसमें से आती है। काँव-काँव किसमें है और कुहू-कुहू किसमें हैं? तो वैज्ञानिक भी यह स्पष्ट नहीं कर सकते।

कथा शुरू करने से पहले शुकदेवजीने मंगलाचरण नहीं किया इसलिए अब स्तुति की है हे दीनानाथ, योग और यज्ञ आदि आपकी कृपा के बिना फल नहीं देते। मैं उन परमेश्वर को दण्डवत् करता हूँ जिनके चरणों का ध्यान बड़े-बड़े योगी, सनकादि मुनि, ब्रह्मा व महादेव आदि देवता दिन-रात्रि अपने हृदय में रखते हैं और उनके चरित्र व लीला को नहीं जानते। जिनकी दया व कृपा से शबरी, गिद्ध और गोपियाँ आदि छोटे-छोटे जीव मुक्ति पदवी पर पहुँचे, जो लक्ष्मीजीके पति हैं उनको नमस्कार करता हूँ। वही परमेश्वर अपनी कृपासे मेरी बुद्धि में प्रकाश करके मेरा वचन सत्य करें और उनकी शक्ति से मुझे उनका चरित्र कहने के वास्ते सामर्थ्य प्राप्त हो। हे प्रभु। तुम्हारा स्वरूप कैसा है, वाणी से पकड़ा नहीं जाता, बुद्धि से पकड़ा नहीं जाता। जिनका

सम्पूर्ण विगत कोई बता नहीं सकता कि ईश्वर ऐसा ही है। उसकी पूरी कथा कोई नहीं कर सका। अपार है वह, जिसका कोई अंत ही नहीं। वेदों में ऋषियों ने अपनी बुद्धि लगाई, परमात्मा का वर्णन करने की चेष्टा की जब समझ में नहीं आया तो नेति-नेति कहकर कलम नीचे रख दिया। नेति-नेति का अर्थ महात्माओंने बहुत किया है। किसी ने कहा है कि ये नहीं, ये नहीं, इतना नहीं, इतना नहीं। और बाकी है। जब वेद ही प्रभु को समझ न सके, जब वेद ही परमात्मा की प्राप्ति न कर सके, ब्रह्माजी असमर्थ हुए तो हम लोग कौन? प्रभु को पहचानना है तो एक काम- एक तो शरणागति और दूसरी बात ईश्वर तत्व। परमात्मा स्वयं जिसे चाहे ये जीव मुझे पहचाने उसीको प्रभु जानने की क्षमता देते है। उस समय जीव में और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं रहता। जीव ही मानो बिन्दु बनकर सिंधु बन गया। जब बिंदु सिंधु में अपने आपको विलीन कर लेता है तो बिन्दु अपना अस्तित्व खो बैठता है। जब आकाश में से वर्षा होती है और बिंदु नीचे आता है समुद्र में, तो उस बिंदु को उस समुद्र में से दुबारा नहीं निकाल सकते। ये तो वही पानी है, वही जल है, वही बिंदु है जो अभी-अभी गिरा था।

फिर शुकदेवजी ने अपने पिता वेदव्यासजी व गुरु के चरणों का ध्यान व दण्डवत करके कहा- हे राजन्। श्रीमद्भागवत की कथा जो वैकुंठनाथ ने ब्रह्मा से कही, ब्रह्मा ने नारद मुनि से वर्णन किया, नारद मुनि ने व्यासजी को बतलाया और मेरे पिता व्यासजीने मुझे पढ़ाया। वह सब मैं तुझे सुनाता हूँ।

ब्रह्माजी को भी ज्ञान परमात्माने ही दिया। जिस परमात्माने ही इस सारी सृष्टिका निर्माण किया वो ही परमात्मा हमारी वाणीके अलंकार बने। हमारी वाणीसे केवल भगवच्चर्चा ही हुई। तब परीक्षित यही बात नारायणने ब्रह्माको, ब्रह्माने नारदको और नारदसे व्यासजीको, व्यासजीसे मुझे गुरु परम्परागत प्राप्त हुई। हीन श्रेणी के श्रोता को उच्च श्रेणी का ज्ञान सहसा देना व्यर्थ है क्योंकि वह उसे धारण करने में असमर्थ होता है। उसी प्रकार उच्च श्रेणी के श्रोता को निम्न श्रेणी का ज्ञान दें तो उससे उसकी तृप्ति नहीं होती।

परीक्षितने शुकदेव स्वामीसे सृष्टिके बारेमें विविध प्रश्न किये। यह जीव तो स्वत: पंचभूतों से रहित है, किन्तु जिस देह में रहकर यह सुख-दु:ख का भोग करता-सा दीखता है, वह पंचभूतों का बना है। यह स्वभाव वश ही जीव को प्राप्त होता है अथवा किसी कर्म के अधीन होकर? पुराण पुरुष की नाभि से ही एक कमल उत्पन्न होता है, उसीसे समस्त सृष्टि की रचना होती है तो क्या वह परमात्मा भी जीव के समान ही परिमित अवयवों से परिच्छिन्न ही है या जीव में और ब्रह्म में कुछ अन्तर है? जिनकी कृपा से ब्रह्माजी समस्त लोकोंकी रचना करते है, जिनकी कृपा से ही ब्रह्माजी उनका साक्षात्कार करते हैं, जो समस्त भूतों की उत्पत्ति, स्थिति और लय के आधार हैं, जो माया के नियामक स्वामी हैं, वे सर्वान्तयामी पुराण पुरुष अपनी माया से पृथक् होकर कहाँ शयन करते हैं? उन विराट पुरुष के अंगों से ही समस्त लोक तथा लोकपालों की रचना हुई, समस्त लोक और लोकपालों से ही उनके अंग कल्पित हैं, सो इसका भी रहस्य बताइये? महाकल्प क्या है और उसके अन्तर्गत अवान्तर कल्प कितने हैं? यह भूतकाल है, यह वर्तमान है और यह भविष्य है, इसका अनुमान किस आधार पर किया जाता है? स्वर्गलोक तथा मर्त्यलोक के प्राणियों की आयु का परिमाण क्या है? काल की सूक्ष्म और स्थूल गति किस प्रकार जानी जाती है? किन-किन कर्मों के करने से जीवों को कौन-कौन-सी गतियों की प्राप्ति होती है? त्रिगुणों के परिणामस्वरूप जो देव, मनुष्य आदि योनियों की इच्छा रखनेवाले प्राणी हैं, वे किस कर्म के द्वारा किस-किस योनि की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हैं? ये जितने पृथ्वी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप तथा इन सबमें रहनेवाले सभी प्रकार के जीव किस प्रकार उत्पन्न होते हैं। यह ब्रह्माण्ड भीतर से कितना बड़ा है? बाहर इसका कितना परिमाण है? महापुरुषों के आचरण कैसे होते हैं? उनके चरित्र और गुणों का कथन कीजिये? वर्णाश्रम धर्म का

विभाग किस प्रकार होता हैं? किस वर्ण का, किस आश्रम का क्या धर्म है- यह भी समझाइये? भगवान के परम आश्चर्यमय अवतारों की सुललित कमनीक कथाओं का कथन कीजिये? सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इनका भेद बताइये। कैसे जानें कि अब अमुक युग है? इन युगों का परिमाण बताइये कि कितने दिन तक कौन-सा युग रहता है? चारों युगों के धर्म भी बताइये कि किस युग में कौनसा कर्म करने से शीघ्र ही मुक्ति अथवा भगवत् प्राप्ति हो सकती है? मनुष्यों के साधारण धर्म और विशेष धर्मों का भी कथन करें। भिन्न-भिन्न व्यवसाय वालों का धर्म बताइये? राजर्षियों के भी धर्म का वर्णन करें? आपत् धर्मों का भी कथन करें? संसार में कितने तत्त्व हैं? यह भी बताइये? सभी तत्त्वों के स्वरूप, लक्षण और हेतु लक्षण भी समझाइये? भगवत उपासना का रहस्य विस्तार के साथ वर्णन करें? अध्यात्म योग की भी विधि विस्तार से बतावें? योग के द्वारा योगेश्वरों को जिस ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, उसकी भी गति बताइये? शरीर तीन प्रकार के बताये हैं- स्थूल, सूक्ष्म और कारण। योगी पुरुष सूक्ष्म शरीर का भेदन कैसे करते हैं? इसका भी रहस्य समझावें। वेद का स्वरूप क्या है? उपवेद किनको कहते हैं और किस वेद का कौन-सा उपवेद हैं? धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराण इनका स्वरूप, इनकी संख्या आदि का वर्णन करें। सर्ग, स्थिति और प्रलय का क्रमानुसार रहस्य समझावें। इष्ट कहनेवाले यज्ञादिक वैदिक कर्म कैसे किये जाते है? इनका भी कथन करें। जितने पूर्त कर्म हैं, जैसे वापी, कूप, तड़ाग, आराम और देव मन्दिर आदि का निर्माण उनकी विधि आदि को भी समझावें। स्मार्त, कर्म, काम्य, कर्म तथा धर्म, अर्थ और काम रूप त्रिवर्ग के साधनों की भी विधि बताइये। जिन लोगों को मोक्ष प्राप्त तो नहीं है, पर प्रकृति में लीन हो गये हैं, उनकी फिर किस प्रकार उत्पत्ति होती है, इसे भी बतावें। पाखण्ड धर्म का प्रचार और प्रसार कैसे और क्यों होता है? इसे भी समझावें? आत्मा के बन्धन और मोक्ष का स्वरूप क्या है? आत्मा की स्वरूप में अवस्थिति कैसे होती है? सर्वतन्त्र, स्वतन्त्र, सर्वसमर्थ, सर्वेश्वर अपनी अघटन घटनापटीयसी प्रियतमा के साथ किस प्रकार क्रीड़ा करते हैं? स्वेच्छा से ही अपनी माया को छोड़कर उदासीन भाव से केवल साक्षी रूप होकर कैसे होते हैं। हे महामुनि। इसके अलावा मैंने जो कुछ नहीं पूछा आप मुझे अपना शरणागत जानकर समस्त शंकाओंका समाधान करे। परीक्षितने पूछा- हे मुनि। भगवान अपनी माया के द्वारा इस संसार की सृष्टि कैसे करते है? संसार की रचना रहस्योंसे भरी हुई है? इसका पालन और संहार कैसे करते है? शुकदेव बोले, राजन्। आपकी बहुत सारी शंकाएं है जिसका समाधान करूंगा पर इस बीच आप कुछ फलाहार कर ले। परीक्षित बोले- प्रभु। अमृत पीकर कोई मर सकता है क्या? मुझे तो कृष्ण की ललित कथाओंमें आनन्द आ रहा है। मैं तो अच्युत-पीयूषका पान कर रहा हूँ। मैं मरूंगा भी तो ब्राह्मणने मुझे जो शाप दे दिया है, उसकी रक्षाके लिए मरूंगा, ब्रह्मशापको सफल करनेके लिये मरूँगा। उससे भगवानकी महिमा ही बढ़ेगी, मेरे मरनेका और कोई कारण नहीं हो सकता।

तब शुकदेवने सृष्टि की उत्पत्ति और उसके विषय जिस प्रकार नारदको ब्रह्माने सुनाया था शुकदेव सुनाने को तैयार हुए। इन्द्रियों को विषय भोगों में फँसाये रहने से संसार बन्धन अधिकाधिक जकड़ता जाता है, हमारी स्वधीनता नष्ट हो जाती है, हम पराधीन बन जाते हैं। दूसरे हमें जैसे नचाते है वैसे ही नाचना पड़ता है, जहाँ बिठाते हैं, बैठना पड़ता है। अपनी इच्छा पूर्ण करने की शक्ति उसमें कैसे आ सकती है, जो विषयों के अधीन हो गया है। इसके विरुद्ध जिसने समस्त इन्द्रियों को विषयोंसे हटाकर मन को तपस्या में लगाया है, वही स्वराज्य का अधिकारी हो जाताहै। वह सब कुछ कर सकता है। अत: सार सिद्धान्त हुआ कि विषयों में मन को फँसाना ही बन्धन हैं। विषयों से मन को खींचकर उसे तपस्या में लगाना- यही मोक्ष का मार्ग है।

ये भगवान ही रजोगुणी ब्रह्मा, सत्त्वगुणी विष्णु और तमोगुणी शंकर का रूप धारण कर संसार की सृष्टि करते हैं, उसका पालन तथा संहार करते हैं। यह अनन्त हैं। इनकी लीलाएँ अनन्त हैं, महिमा अनन्त है। हम बारम्बार इनके चरण-कमलों में

प्रणाम करते हैं। यह भगवान सत्पुरुषों को भक्ति और असत्पुरुषोंकी वृद्धि रोकने के लिये उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं। उनके ज्ञान-दाता यही हैं। परमहंसों की सारी कामनाएँ पूरी करनेवाले यही भगवान हैं। संसार के सारे प्राणी इन्हीं की संतानें हैं अत: इनका किसी से पक्षपात नहीं है। इन्हें मेरा बारम्बार प्रणाम है। भगवान बड़े ही भक्तवत्सल हैं। भक्तों पर अनवरत इनकी कृपा-वृष्टि होती रहती हैं। जो हठपूर्वक भक्ति करते हैं ऐसे कुयोगियों से यह बहुत दूर रहते हैं। संसार में न इनके समान कोई है और न कोई इनसे अधिक ही है। यह अपने ही परमात्म-स्वरूप में निरन्तर रमण करनेवाले हैं ऐसे भगवान को मेरा बार-बार प्रणाम है। जिनके नामों का कीर्तन, जिनका स्मरण, जिनकी मूर्ति का अवलोकन, जिनका वन्दन, जिनकी लीलाओं का श्रवण, जिनका पूजन प्राणियों के पापों को तत्काल भस्म कर देता है, उन पुण्यकीर्ति भगवान को मैं पुन: पुन: प्रणाम कर रहा हूँ।

बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी और मन्त्रवेत्ता जब तक अपनी साधनाओं को तथा अपने-आप को उनके चरणों में समर्पित नहीं कर देते तब तक उन्हें कल्याण की प्राप्ति नहीं होती। ऐसे भगवान को मेरा बारम्बार प्रणाम है।

किरात, हूण, आन्ध्र, पुल्कस (कसाई), पुलिन्द (भील), आभीर, कंक, यवन और खस आदि नीच जातियाँ तथा दूसरे भी पापी जिनके शरणागत भक्तों की शरण में जाने मात्र से पवित्र हो जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान भगवान को मेरा बार-बार प्रणाम है। जिनकी दया व कृपा से शबरी, गिद्ध और गोपियाँ आदि छोटे छोटे जीव मुक्ति पदवी पर पहुँचे, जो लक्ष्मीजी के पति हैं उनको नमस्कार करता हूँ। वही परमेश्वर अपनी कृपासे मेरी बुद्धि में प्रकाश करके मेरा वचन सत्य करें और उनकी शक्ति से मुझे उनका चरित्र कहने के वास्ते सामर्थ्य प्राप्त हो। फिर शुकदेवजी ने अपने पिता वेदव्यासजी व गुरु के चरणों का ध्यान व दण्डवत किया।

ब्रह्मन्। यह संसार भूमि, आकाश, नदी नद। बन, परबत, ग्रह, दिशा, स्वरग, पाताल, कमल, ह्रद।।
इन सबकी उत्पत्ति प्रलय रक्षा बतलावें। धरम काम अरु अरथ मोक्षको मार्ग दिखावें।।
बरन धरम आश्रम नियम, भगवत चरित सुनाइकें। शंका नाथ मिटाइदें, शरणागत अपनाइकें।।

५) सृष्टिकी उत्पत्ति विषयक नारद को ब्रह्माका ज्ञान

शुकदेव बोले- परीक्षित। उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में कोटि-कोटि प्रणाम है। जो संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की लीला करने के लिये सत्व, रज और तमोगुण रूप तीन शक्तियों को स्वीकार कर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर का रूप धारण करते हैं और जो समस्त प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विराजते हैं, जिनका स्वरूप और उनकी उपलब्धि का मार्ग, बुद्धि के विषय से परे है, जो अनन्त हैं, उनकी कथा अनन्त है। हम पुन: बार-बार उनके चरणों में नमस्कार करते हैं- जो पुरुषों का दु:ख मिटाकर उन्हें अपने प्रेम का दान देते हैं और दुष्टों की सांसारिक बढ़ती रोककर उन्हें मुक्ति देते हैं। तथा जो लोग परमहंस आश्रम में स्थित हैं, उन्हें उनकी भी अभीष्ट वस्तु का दान करते हैं।

इस पृथ्वी पर मानव जीवन का उद्भव कैसे और कब हुआ? बहुत से ज्ञानी संत-महात्माओं का मत है कि इस चराचर सृष्टि का रचयिता ईश्वर है और वही अपनी प्रकृति द्वारा पूरी सृष्टि का संचालन कर रहा है। लेकिन मानव का जन्म कैसे हुआ? इस बारे में एक बात यह आती है कि विधाता ने इस सृष्टि में सारी चीजों का निर्माण किया, लेकिन फिर भी अपनी रचना से वह संतुष्ट नहीं था। उस समय तक विधाता ने इंसान को नहीं बनाया था। विधाता जब अपनी रचना-कृति पर गौर करता, तो उसे इसमें कोई कमी नजर आती। वह दिन-रात इस सोच में पड़ा रहता कि यह कमी आखिर कैसे पूरी की जाए?

विधाता ने सूरज, चांद और सितारे नक्षत्र नीलगगन में टांग दिए, जिससे रोशनी हो गई। नदी, नाले, सागर बनाए। पानी का अतुल भंडार बनाकर पृथ्वीको शीतल जल से तृप्त कर दिया। अनेक प्रकार के पक्षियों-पशुओं की रचना की, चारों

तरफ प्राकृतिक छटा से भरपूर हरियाली की चादर बिछा दी। फिर भी विधाता को संतुष्टि नहीं मिली। अचानक एक रोज पृथ्वी की कठोर मिट्टी से उसने एक पुतला बनाया और उसमें प्राण फूंक दिए। मिट्टी के इस पुतले में विधाता ने तरह-तरह के गुण भर दिए। इस सुंदर पुतले में प्राणों का संचार होते ही पृथ्वी पर सब ओर रौनक हो गई।

विधाता की इस अद्‌भुत व मनमोहक रचना को देखकर देवदूत आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने विधाता से पूछा, यह क्या है प्रभु? विधाता ने कहा, यह सर्वश्रेष्ठ कृति मानव है और इसमें जीवन है। अब से इस धरती पर इससे जीवन चलेगा। मैं अपनी इस सर्वश्रेष्ठ रचना से संतुष्ट हूं। इससे इस चराचर सृष्टि की रचना का कार्य पूर्ण हुआ है, ऐसा मैं मानता हूं।

विधाता की बात पूरी होने पर देवदूतों ने कहा, क्षमा कीजिए प्रभु। लेकिन यह बात हमारी समझ से परे है कि आपने इतना परिश्रम कर एक मिट्टी को आकार दिया और उसमें प्राण फूंक दिए। लेकिन मिट्टी तो तुच्छ से भी तुच्छ है, जड़ से भी जड़ है। मिट्टी की बजाय यदि आप सोने अथवा चांदी से इसका निर्माण करते, तो ज्यादा अच्छा रहता। देवदूतों की बात पर विधाता मुस्करा कर बोले, यही तो जीवन का रहस्य है।

मिट्टी के शरीर में संसार का सारा सुख-सौंदर्य, सारा वैभव विधाता ने उड़ेल दिया है। जड़ में आनंद का चैतन्य फूंका है। इसका जैसे चाहे उपयोग करो। जो मानव मिट्टी के इस शरीर को परोपकार के संदर्भ में महत्व देगा, वह मिट्टी की जड़ता में व्याप्त चैतन्य को जानकर और इसका अनुभव करके इस जीवन को अनमोल बना सकता है। विधाता ने कहा, यद्यपि मिट्टी जड़ है, लेकिन उसमें अनेक गुण है। मिट्टी में ही अंकुर फूटते हैं और मेहनत करने पर फसल लहलहाती है। इसी प्रकार यदि मनुष्य परिश्रम करेगा तो इस मिट्टी रूपा देह से आनंद पा सकता है। सोने अथवा चांदी में कभी अंकुर नहीं फूट सकते। इसलिए मिट्टी के शरीर को कर्मक्षेत्र बनाया गया है।

पर मिट्टी तो मिट्टी है, अंत में उसे मिट्टी में ही मिलना है। कबीर जी कहते हैं- माटी कहे कुम्हार से तू क्या रौंधे मोय। एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौधूंगी तोय। ईश्वर रूपी कुम्हार ने मिट्टी से हमारी देह रूपी कुंभ की रचना की है। और इसे चैतन्य बनाया। वरना यह स्थूल देह, पंचभौतिक शरीर मिट्टी ही तो है। जगत की चकाचौंध में मिट्टी का यह पुतला भूल जाता है कि उसे वापस मिट्टी में मिल जाना है।

यह भी सबसे बड़ा आश्चर्य है कि मिट्टी में बसी इस चेतना को जानने से हर आदमी कतराता है। बहुत कम सौभाग्यशाली लोग ऐसे हैं, जो अनुभव के मार्ग पर चलकर चैतन्य का आनंद प्राप्त करते हैं। कहा है- साधो। यही घड़ी, यही बेला। कोटि खरच फिर हाथ न आवे मानव जनम दूसरी बार।

यह जीवन तो असल में प्रभु का महाप्रसाद है। जीवन कोई पहेली नहीं है, बल्कि अनंत सुखों का भंडार है। उठो, जागो और अपने अंदर के चैतन्य को जगाओ और समझो। इससे जीवन आनंद से सराबोर हो जाएगा। कर्म ही बन्धन का हेतु है। असत् में सत् की बुद्धि रखकर उसे पाने तथा अपनाने का नाम ही माया, अविद्या है। इस माया से ही जगत् संभव है। यह अनर्थकारिणी माया बीच न पड़े तब तो संसार कुछ हैं ही नहीं। सब खेल ही खेल है। सब सुखी रहें, किसी को कोई चिन्ता ही न रहे। सब आनन्द से खेलें, कूदें, नाचे, गावें, मौज उड़ावें, समस्त आनन्द को निरानन्द में परिणत कर दिया।

परीक्षित ने पूछा- भगवन, यह सृष्टि ऊपरवालेने क्यों बनायी? किसलिये बनाई? कब बनी? यह सृष्टि क्या चीज है? शुकदेव बोले- आज के तीन अरब वर्ष पहले, बहुत वर्षों पहले इसका गणित नहीं लगा सकते क्योंकि आगे काल का समय आयेगा। जब यह सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। किसने करी? हरिने करी? कैसे करी? ब्रह्मासे। किसप्रकार सृष्टि का संहार होता है?

किस तरह की सृष्टि करी? सृष्टिमें क्या-क्या है? बोले- देवता, भूत, पिशाच, डाकिनी, साकिनी, यक्ष, बारह विश्वदेव,

दस साध्यगण, जितने तरह के जीव, तृण, गुल्म, लता, पेड़, पौधे देखते हो, जितने तरह के पशु-पक्षी देखते हो यह सब, जितने तरह के नक्षत्र, ग्रह देखते हो यह सब सृष्टिके अन्तर्गत, यह पर्वत, नदियां देखते हो, यह पृथ्वी देखते हो क्या यह एक ही लोक है। नहीं, नहीं। पृथ्वीके जैसे कई लोक सात लोक ऊपर, सात लोक नीचे उनमें भी लोक, लोकोत्तर पर्वत, सुमेरू, मन्दराचल पर्वत, विन्ध्यागिरी, ऐसे ही तल, तल क्या? जहां सूर्य प्रकाश नहीं जावे, चन्द्रका प्रकाश नहीं जावे ऐसे तल, अतल, पाताल, सुतल, वितल, रसातल इस तरह के लोक। परीक्षित बोला- महाराज यह प्रकाशित कैसे होते हैं? - यह पूरी सृष्टि उस पूरी पृथ्वीका भार, संकर्षण, नागदेव हजारों फणवाला उसने अपने सिरपर एक मटर के दाने के जैसे पृथ्वी रख रखी है। परीक्षित बोले- इस लोककी क्या परिभाषा है? यह पृथ्वी कहां तक की है? शुकदेव बोले- हे परीक्षित, जहां तक सूर्य और चंद्रका प्रकाश जाता है वह पृथ्वी है जहां सूर्य और चंद्रका प्रकाश नहीं जावे वहां लोक बदल जाते है। परीक्षित बोले- यह आकाश कितना ऊंचा इसका विस्तार कितना? जहां तक पृथ्वीका गुरुत्वाकर्षण है वहांतक पृथ्वी है। उस आकाश के ऊपर दूसरा लोक है। पृथ्वीका गुरुत्वाकर्षण क्या है? पृथ्वी कोई भी ऊपर की वस्तु को अपनी ओर खेंचती है, कितनी खेंचती है ३२ फीट प्रति सेकंड, पर सेकंड यह विज्ञान की परिभाषा है। हर एक सेकंड में ३२ फीट वह वस्तु नीचे इस गतिसे गिरती है। तो यह वायुयान वगैरे उड़ते है वह क्यों नहीं खेंचती? इसकी जो गतिसे है उससे ज्यादा हवा का फैलाव वह काटता है। इसलिये वो वायुयान आकाश में टिका रहता है फिर उस गतिसे वह भागता है। वायुयान जिस गति से जाता है और यदि कोई पक्षी टकरा जावे तो पक्षी तो मरेगा ही मरेगा उसके कितने टुकड़े होंगे - अणु, परमाणु उस पक्षीके होंगे पर वो पक्षी वायुयान को तोड़ देगा टुकड़ो-टुकड़ों मे। इसीलिये आकाश में पक्षियोंका मार्ग छोड़कर उतनी ऊंचाई छोड़कर ऊपर वायुयान को ले जाया जाता है जिसपर उड़ाया जा सके कोई तरह का अवरोध नहीं है। वो वायुयान की गति है। न्यूटन का नियम है- क्रिया और प्रतिक्रिया एक ही दिशा में एक ही गुणत्व से, एक ही भार से, एक ही वजन से होती है। इससे उड़ाने के लिये आपको ज्यादा शक्ति चाहिये। पानीका जहाज क्यों तैरता है हजारों टन लिये, आर्किमेडिज का सिद्धान्त। यूरेका करके जिस आर्किमेडिजने इस सिद्धान्त को खोजा कि अपने भार के बराबर पानी हटा दो। आयात बड़ी कर दो। यह विज्ञान इसने जाना। शुकदेव बोले- परीक्षित यह संसार कहां तक का गिनाऊ तुमको, ऊंचे में ऊंचा पर्वत कितना? २९ हजार फूट। यह समुद्र कितना गहरा- ५८ हजार फूट। यह किसने नापा- सुपर साऊंड सोनिक प्रणाली ने। जिसके अन्दर दो हिमालय पर्वत खड़े कर दे। किंचनजंगा यह एवरेस्ट की चोटी- २९ हजार फूट की। उसके बाद क्या। अगर समुद्र को और खोदे तो क्या? परीक्षित ऊस गर्त तक आप जा नहीं सकते और समुद्रको रत्नाकर कहा गया है। रत्नोंकी खान। जो अमूल्य रत्न इस पृथ्वीपर नहीं है वह समुद्रमें आज भी है, विद्यमान है। कोबाल्ट, निकल, तेल।

एक उदाहरण है- पानी आग बुझाता है लेकिन उस समुद्रमें देखो बरसोंतक कुएं जल रहे है आग के, तेल जल रहा है। इतना अपार समुद्र, फिर भी समुंदर के अन्दर के तेल के कुएं बरसों तक जलते रहते है। न विज्ञान इसपर नियंत्रण कर पा रहा है। यह तेल जो है हमारे लिये अमूल्य निधि, रत्न है। क्या विज्ञान नियंत्रण कर पाया? नहीं। हमारा ज्ञान सीमित है, विज्ञानपूर्ण ज्ञान नहीं है। यह ऊपरवाला ही जब चाहता तो वह कुएं बुझ जाते है, वह जब चाहता है तो कुएं में से तेल निकलता है, कुएं में से पानी निकलता है, वह जब चाहता है तो सागर में तरंगे, उर्मियां आती हैं, लहरें आती है, ज्वार आता है, भाटा आता है। यह पानी यहां नीचे है, चांद और सूरज दोनों ऊपर है उनके आकर्षण से ही यह ज्वारभाटा आता है। तिथियां बदलती है, चन्द्रकी कलाएं बदलती है, ज्वारभाटा आता है। आप कभी अपने बलसे ज्वारभाटा लाना चाहो लाइये आपकी हिम्मत है क्या? यह है उसकी देन, ऊपरवाले की देन। परीक्षित बोले, यह समुद्र खोदने में क्या है?

शुकदेव बोले- पहले खुदेगा नहीं, खोदोगे क्योंकि महाराज पृथ्वी ने, महाराज सगर ने खोदा है- सागर कहलाया है। तो क्या निकला? बोले कॅडमियम, कोबाल्ट, इतने-इतने बढ़िया रत्न, तेल, पानी, नमक यह सब उस समुद्रसे निकले हैं। इसलिये समुद्रको रत्नाकर कहा गया है। यह सृष्टि के जीव भूत, पिशाच, डाकिनी, साकिनी, ताल, विताल, यक्ष, साध्यगण, विश्वगण इतने सब इसमें से निकले।

परीक्षित तुम्हे वह ज्ञान बताऊंगा जिसे ब्रह्माने नारदको सुनाया था। उसको सुनकर तुम्हारे मनका तिमिर दूर होगा। जैसे वन में सिंह के प्रवेश करते ही गीदड़ों के झुण्ड इधर-उधर छिप जाते हैं। जैसे बिल्ली के आने पर चूहा बिलों में घुस जाते हैं, गरुड़ के आने पर सर्प सर्र से इधर-उधर भाग जाते हैं। जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार विलीन हो जाता है, वर्षा के दिनों में सभी नदियों का पानी गँदला हो जाता है, वह किसी प्रकार स्वच्छ नहीं होता। एक घड़े के जलको निर्मल बूटा डालकर-फिटकिरी डालकर-उसकी मिट्टी को नीचे बिठाकर निर्मल बना सकते हैं, किन्तु पूरी नदी के जल को किसी भी उपाय से निर्मल बनाने में समर्थ नहीं, किन्तु जहाँ शरद ऋतु ने प्रवेश किया वह सब गँदलापन दूर हो जाता है। जल स्वच्छ काँच की तरह निर्मल बन जाता है।

यह सृष्टि क्रम अनादिकाल से चला आ रहा है। एक सौ वर्ष एक ब्रह्मा के होते हैं, फिर ब्रह्मा भी बदल जाता है। इस समय वह महाकल्प कहते हैं। ब्रह्माजी के एक दिन को कल्प कहते हैं। महाकल्प में महाप्रलय हो जाती है। कल्प में तीनों लोकों का ही प्रलय होता है।

एक बार नारदजी अपनी वीणा बजाते हुए घूमते-घामते ब्रह्मलोक पहुँचे। नारदजी ब्रह्माके मानस पुत्र है। संसार-भ्रमण के क्रम में एक बार महर्षि नारद अपने पिता ब्रह्माजी के पास पहुँचे। ब्रह्माजी आँखे बन्द किये समाधि में बैठे थे। उन्होने ब्रह्माको प्रणाम किया और पूछा आप समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ व सृष्टिकर्ता है। आप मुझे वह ज्ञान दीजिए जिससे आत्मतत्व का साक्षात्कार हो। इस संसार का क्या लक्षण है? इसका क्या आधार है? इसका निर्माण किसने किया? यह किसमें लय होता है? यह किसके अधीन है? यह क्या वस्तु है? आपको इसके बारे में ज्ञान कहाँसे मिला? आप किसके आश्रित हैं? आपका स्वामी कौन है? आपका स्वरूप क्या है? आप किस प्रकार प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं? जैसे मकड़ी अपने मुँहसे जाला निकालकर उसीमें क्रीड़ा करने लगती है वैसे ही आप अपने शक्तिके आश्रयसे जीवोंको अपनेमें उत्पन्न करते है फिर भी आपमें कोई विकार नहीं आता। आपसे भी कोई बड़ा है क्या? आप तो सर्वज्ञ और सर्वेश्वर हैं। आप किसका ध्यान करते हैं? आप कृपा करके मुझे ठीक-ठीक समझाइये और उस तत्वज्ञान का उपदेश दे।

आपके लिए तो यह विश्व करामलकवत् है। वह कौनसी वस्तु है जिसको जानकर एवं जिसके आधारपर रहकर आप इस सृष्टिको बनाते हैं और थकते नहीं। आपको भी कभी-कभी तपस्या करनी पड़ती है। इससे मेरे मनमें ख्याल आता है कि आपसे भी परे कोई है जिसके लिए आपको तपस्या करनी पड़ती है।

ब्रह्माने कहा, लोग परमात्माको समझे इसलिए तुम यह प्रश्न कर रहे हो। तुम जो मुझको ही सबसे परे समझते हो, यह भी झूठ नहीं, क्योंकि मुझसे जो परे है उसको न जाननेके कारण ही ऐसी बात होती है। जिस वस्तुके बारेमें कहा जाय कि यह इतना ही है, इतने ही देशमें है, इतने ही कालमें है, इसी रूपमें हैं, जहाँ एतावत्वं आजाय, वहाँ नारायण परमात्माका पूरा प्रकाश नहीं हो सकता। इसलिए परमेश्वरको किसी सीमा में मत रखो, क्योंकि मैं उन्हींके प्रकाशसे सबको प्रकाशित करता हूँ। माया उनके सामने नहीं जाती। परमात्माके सिवाय दृश्य कर्म, काल कुछ नहीं है, वेद-शास्त्र नारायणका ही प्रतिपादन करते हैं। सारे देवता नारायणके अंगसे ही पैदा होते हैं। सारी गतियाँ नारायणमें हैं। वही हमारे-तुम्हारे सबके स्वामी हैं। वे हैं तो एक ही पर जब नाना

होना चाहते हैं तब काल आदि पदार्थोंको स्वीकार कर लेते हैं। कालसे गुणोंका व्यतिक्रम होता है। स्वभावसे परिणाम होता है और कर्मसे जन्म होता है। पुरुषसे अधिष्ठित होकर ही ये सब-के-सब अपना काम करते हैं।

संसार में हानि, लाभ, यश, अपयश, दु:ख, सुख परमेश्वर की इच्छा से होता है। जो कुछ श्राद्धादिक में पितरों के नाम और यज्ञादिक में देवताओं के नाम पर संसारी जीव देते हैं वह उसी परमेश्वर को पहुँचता है। जड़ और चैतन्य सब जीवों के उत्पन्न, पालन व नाश करनेवाले वही अविनाशी पुरुष हैं, उन पर कोई दूसरा मालिक नहीं है।

हे नारद। जब मुझे संसार के रचने की आज्ञा मिली तब मैंने नारायणजी की दया व कृपा से दक्षप्रजापति को उत्पन्न किया। उससे बहुत से मनुष्योंकी सृष्टि उत्पन्न हुई।

वही परमेश्वर आदि, मध्य व अन्त में सदा एक तरह रहता है, घटने और बढ़ने व पुराने होने से रहित है। कोई संसारी वस्तु उनके रूप से बाहर नहीं है और बुद्धि इतनी सामर्थ्य नहीं रखती जो उनकी स्तुति कर सके। नारायणजी ने अपनी इच्छा से लीला करने और संसारी जीवों को भवसागर पार उतारने के मर्त्यलोक में चौबीस अवतार धारण किये हैं। मनुष्य को चाहिए कि सदा उन अवतारों की लीला की चर्चा करें और परमेश्वर के ध्यान में तथा उनके नाम का स्मरण करने में लीन रहें। तब उनका अन्त:करण शुद्ध व पवित्र होकर उसमें परमेश्वर का प्रकाश चमके और आवागमन से छूटकर भवसागर पार उतर जायँ। उन्हीं परमेश्वर का भजन व स्मरण करने के प्रताप से ऋषीश्वर लोग जो कुछ किसी को शाप या आशीर्वाद देते हैं वह बात उसी समय हो जाती है। ऋषीश्वर व महात्मा लोग मुझसे वेदादिक सीखकर संसार में प्रकट करते हैं। परमेश्वर के वरदान से मेरा वचन झूठा नहीं होता, मेरा मन पाप की तरफ नहीं जाता, मेरी इन्द्रियाँ अधर्म की चाहना नहीं करती, उसी परमेश्वर का ध्यान करने से ये तीनों गुण मुझमें प्रकट हुए हैं।

ब्रह्माने कहा- हे पुत्र, तुमने जीवोंके प्रति उनके कल्याण के लिए बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है। मुझसे भी ऊपर स्वयं परमेश्वर है। जब तक उनको ज्ञान नहीं दिया जाता तब तक ही तुम मुझे सृष्टि के सृजनकार समझते हो। सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह-नक्षत्र और तारे उन्हींके प्रकाश से प्रकाशित होकर जगतमें प्रकाश करते हैं। वे ही भगवान वासुदेव हैं जिन्हें लोग जगद्गुरु कहते हैं। यह माया भी उन्हींकी है जो उनके सामने ठहरती नहीं परन्तु संसारके ज्ञानीजन उसीसे मोहित होकर यह मैं हूँ, और यह मेरा है इस प्रकार बोलते रहते हैं। हे नारद, द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव व जीव वास्तवमें भगवान्से भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है वे भी नारायण में ही करतूत हैं। परमज्ञान के द्वारा नारायण ही जाने जाते हैं। समस्त साध्य और साधनोंका पर्यावसान भगवान नारायण में ही है। वे द्रष्टा होनेपर ईश्वर है, स्वामी है, निर्विकार होनेपर भी सर्वस्वरूप हैं। उनसे ही प्रेरित होकर मैं उनके इच्छानुसार सृष्टिकी रचना करता हूँ। वे परमात्मा माया से रहित अनन्त हैं। सृष्टि, स्थिति और प्रलयके लिये रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण ये आवश्यक हैं। यही तीनों गुण द्रव्य, ज्ञान और क्रियाका आश्रय लेकर जीवको कार्यकारण और अभिमानसे बांध लेते हैं। मेरे भी स्वामी वे ही है।

भगवान तो मायाके परिधे से रहित एवं अनन्त है। सृष्टि, स्थिति और प्रलय के निमित्त रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण ये तीनों गुण उनमें स्वीकार किये जाते हैं। जिससे भगवान की महत्ता-उपादेयता ठीक-ठीक समझ में आ जाय।

यह कथा भी पाद्म कल्प की है। एकबार उन्हीं मायापति ने एक से बहुत होनेकी इच्छा प्रकट करी और अपनी माया से अपने स्वरूप में काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार कर लिया। कालने तीनो गुणों में क्षोभ उत्पन्न कर दिया, स्वभाव ने उन्हें रूपांतरित कर दिया और कर्म ने महतत्त्व को जन्म दिया। मैं एक हूँ अनेक रूपों में व्यक्त हो जाऊं, ऐसा संकल्प नारायण ने किया। सबसे पहले उनसे मूल प्रकृति उत्पन्न हुई। मूल प्रकृति उनकी निजी शक्ति है। प्रकृति के तीन रूप

बताये गये हैं अन्तरंगा प्रकृति, बहिरंगा प्रकृति और तटस्था प्रकृति। अन्तरंगा प्रकृति तो साक्षात् श्री जी हैं और बहिरंगा प्रकृति माया है। जो दृश्य जगत के रूप में आती है। वह तटस्था प्रकृति यह जीव है।

तो प्रभु ने सर्वप्रथम संकल्प करके अपने में से मूल प्रकृति को प्रकट किया और मूल प्रकृति पर दृष्टि डाली तो उसमें क्षोभ होकर के उसमें से महत्तत्व का प्रादुर्भाव हुआ। महत्तत्व दिखाई पड़नेवाला नहीं है लेकिन उसमें शक्ति बहुत होती है। समष्टि जगत में उसको महत्तत्व कहा जाता है। व्यष्टि जगत् में उसे बुद्धि तत्त्व विद्वान लोग कहते हैं। यह सब प्रभु के संकल्प द्वारा होता जा रहा है। जैसे जल में आंच लगने से भाप उड़ती दिखाई पड़ती है, ऊपर उठकर अगर पेड़ की फुनगी पर जम जाती है, तो ओस कहलाता है ज्यादा ऊपर उठकर पूंजीभूत हो गया तो बादल कहलाने लग गया। वही हिमालय से जाकर टकराया तो ठण्डक से बरफ बन गया फिर थोड़ी गर्मी पाकर पिघलकर खिसकने लगा तो ग्लेशियर कहलाया, और वही द्रव होकर बहने लगा तो नदी का रूप ले लिया। अन्त में नदी बहते-बहते अपने ठिकाने पहुंच गयी तो समुद्र उसकी संज्ञा हो गई। इसी तरह एक ही तत्त्व अनेक रूपों में रूपान्तरित होकर दृष्टिगोचर होता है, इसी प्रकार जैसे-जैसे प्रभु संकल्प करते गये वैसे-वैसे जगत् प्रकट होता गया। पहले मूल प्रकृति हुई, मूल प्रकृति से महत्तत्व, महत्तत्त्व में से अहंकार तत्त्व ये सब प्रभु के संकल्प द्वारा रूपान्तरण होता जा रहा है। प्रभु ने अपने संकल्प से अहंकार तत्त्व के तीन टुकड़े किये, बड़े का नाम हुआ वैकारिक उससे छोटे का नाम तेजस और उससे छोटे का नाम हुआ तामस। जिसको सात्त्विक अहंकार, राजसिक अहंकार और तामसिक अहंकार कहा गया।

रजोगुण और तमोगुण की वृद्धि होने पर महत्तत्व का विकार हुआ। वह अहंकार कहलाया और इसी से ज्ञान, क्रिया और द्रव्य रूप तम प्रधान विकार हुआ। विकार को प्राप्त होकर यह तीन प्रकार का हो गया। उसके भेद हैं- वैकारिक, तेजस और तामस। उन्हींकी अचिन्त्य शक्तिसे कालने तीनों गुणोंमे क्षोभ उत्पन्न किया और स्वभावसे उन्हें रूपांतरित कर दिया। क्रियाशक्तिने महतत्त्वको जन्म दिया। रजोगुण और सत्त्वगुणकी वृद्धि होनेपर महतत्त्वमें विकार आया। ज्ञान, क्रिया और द्रव्यरूप तामसिक प्रधान विकार हुआ। वह अहंकार कहलाया।

महत्तत्त्वसे तम: प्रधान अहं होता है, जिसको बुद्धिमान लोग अहंकार कहते हैं। वह तीन रूपोंमें हो जाता है- द्रव्यशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति। यह हड्डी माँसवाला शरीर द्रव्य है। यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह घट है, वह पट है- यह ज्ञान है और मैंने यह किया, वह किया यह क्रिया है। अहं ज्ञानशक्तिमें सात्त्विक है, क्रिया शक्तिमें राजस है और द्रव्य-शक्तिमें तामस है।

अहंकार तीन प्रकार का हुआ- वैकारिक, तेजस और तामस। जो ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्तिसे उत्पन्न हुई। तामस अहंकार में विकार हुआ, तब पंचभूतोंमे आकाशकी उत्पत्ति हुई। आकाशकी तन्मात्रा और गुण शब्द है। इस शब्द के द्वारा ही द्रष्टा और दृश्य का बोध होता है। इन्द्रियों में स्फूर्ति, शरीर में जीवन शक्ति, ओज और बल इसी के रूप हैं।

जब आकाशमें विकार हुआ तो वायुकी उत्पत्ति हुई; उसका गुण स्पर्श है। काल, कर्म और स्वभावसे वायुमें विकार हुआ उससे तेजकी उत्पत्ति हुई। इसका प्रधान गुण स्वरूप है। साथमें ही इसमें आकाश और वायु के गुण भी है। तेजके विकारसे जलकी उत्पत्ति हुई। इसका गुण है रस। इसमें शब्द, स्पर्श और रूप ये गुण भी है। जलके विकारसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई, इसका प्रधान गुण गन्ध है और इसमें शब्द, स्पर्श रूप और रस विद्यमान है। वैकारिक अहंकारसे मनकी उत्पत्ति और इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई। अधिष्ठातृ-देवताओंकी भी उत्पत्ति हुई। दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति। तेजस अहंकार में विकार आनेसे पांच ज्ञानेन्द्रिया और पांच कर्मेन्द्रियां उत्पन्न हुई। श्रोत, त्वचा, नेत्र जिव्हा और प्राण ये ज्ञानेन्द्रिया और वाक, हस्त, पाद, गुदा और जननेन्द्रियां ये पाँच कर्मेन्द्रियां उत्पन्न हुई।

पृथ्वी का आवरण

पृथ्वी से दशगुना जल है, जल से दशगुना अग्नि, अग्निसे दसगुना वायु, वायु से दसगुना आकाश, आकाश से दसगुना अहंकार, अहंकार से दसगुना महत्तत्व और महत्तत्व से दसगुना प्रकृति है। वह प्रकृति भगवान के केवल एक पाद में है।

जिस समय यह सम्पूर्ण तत्व अलग-अलग थे तो सृष्टि रचना नहीं कर सकती थी। परमात्माने अपनी शक्ति के द्वारा चैतन्य बना दिया। इन तत्वोंने कार्यकारण और स्वभाव स्वीकार करके इन सम्पूर्ण सृष्टि की रचना कर दी इसीको ब्रह्माण्ड कहते हैं।

भगवान की शक्ति का संबल पाकर सब तत्वों ने मिलकर एक अण्ड का रूप धारण किया। यह अण्ड एक हजार वर्ष तक निर्जीव रूप से जल में पड़ा रहा फिर ब्रह्म ने उसमें प्रवेश कर उसे चेतन बनाया, जीवित किया। ब्रह्म के मिलने से ही वह अण्ड ब्रह्माण्ड कहलाया।

जब तक जिस समय तक ये पंचभूत, इन्द्रिय, मन और सत्त्व आदि तीनों गुण परस्पर एक नहीं थे, तब अपने रहने के लिये भोगों के साधन रूप शरीर की रचना नहीं कर सके। जब भगवान ने अपनी शयक्ति से इन्हें प्रेरित किया, तब वे तत्त्व परस्पर एक-दूसरे को मिल गये और उन्होंने आपस में कार्य-कारण भाव स्वीकार करके व्याष्टि-समाष्टि रूप पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों की रचना की।

ये सब तत्व परस्पर एक-दूसरे के साथ मिलकर एक पिण्ड रूप में थे। यह ब्रह्माण्डरूप अण्डा एक हजार वर्ष तक निर्जीव रूपसे जलमें पड़ा रहा। फिर काल, कर्म और स्वभावको स्वीकार करनेवाले भगवान ने उसमें क्रिया की और अण्डे का भेदन कर उसमें वही विराट पुरुष निकला जिसकी जंघा, चरण, भुजाएँ, नेत्र, मुख और सिर सहस्त्रोंकी संख्यामें है। भगवान के सारे शरीर शाश्वत हैं, नित्य हैं। वे प्रकृति के कार्य नहीं हैं।

ब्रह्मा बोले, यथार्थ में जगद्गुरु श्रीमन्नारायण ही हैं उन्हीं की माया से मोहित होकर लोग मुझे जगद्गुरु समझते हैं। वस्तुत: परम तत्त्व तो श्रीमन्नारायण ही हैं। मैं तो निमित्त मात्र हूँ जब उनकी इच्छा एकोहं बहुस्याम् की होती है तब उन्हीं के द्वारा सृष्टि का प्रारम्भ होता है। इसी परम पुरुष में काल, कर्म और स्वभाव निहित है। काल से प्रगति के गुणों, स्वभाव से परिणाम और कर्म से महतत्त्व उत्पन्न होता है। महतत्त्व से अहंकार का जन्म हुआ। अहंकार के तीन भेद हैं, सात्त्विक, राजस और तामस। इन्हीं से पांच महाभूत तथा पांच तन्मात्राओं की उत्पत्ति हुई। इन सभी तत्वों से मिलकर एक अंड बना जो बहुत काल तक जल में पड़ा रहा। इसी परम तत्व ने इसमें प्रवेश कर चेतना उत्पन्न की। तब वह अंड ब्रह्माण्ड कहलाया। इस ब्रह्म के अवयवों में समस्त लोक स्थित हैं। चरणों में भूलोक, नाभि में भुवलोक, मस्तक में स्वर्गलोक तथा अन्य चौदह लोक और सात भुंवन भी स्थित हैं तथा मन, बुद्धि, चित्त आदि दस इन्द्रियाँ तथासंसार में जो भी दृष्टव्य है सब इन्हीं में समाहित है। ये निर्गुण निर्विकार होते हुए भी सगुण होकर अवतार धारण करते हैं तथा सृष्टि के संचालन में आनेवाली बाधाओं का विनाश करते हैं तथा प्रलय भी यही श्रीमन्नारायण करते हैं। इन्होंने मुख्यरूप से चौबीस अवतार धारण किये हैं। श्रीशुकदेवजी बोले- राजर्षि। यह कथा ब्रह्मकल्प में भगवान श्रीमन्नारायण ने ब्रह्माजी को सुनाई-

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितम्। ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ।।

ब्रह्माजीने इसका उपदेश नारदजी को दिया। नारदजीने महामुनि वेदव्यासजी को दिया। वेदव्यास जी ने इस महापुराण की रचना की।

राजन्। उस चौबीस तत्वों से बने अंड का भेदन कर श्रीमन्नारायण जब बाहर निकले तो एक हजार वर्ष तक जल पर शयन करते रहे। उनकी नाभि से कमल और उस कमल पर ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। कमलदल पर बैठे ब्रह्मा ने चारों ओर अगाध जलराशि देखकर विचार किया सृष्टि कैसे हो सकती है तब उन्हें तप: तप: शब्द सुनाई दिया। इसका अर्थ हुआ

तपस्या करो। तपस्या करने का निर्देश उन्हें उस परम तत्त्व से मिला। एक हजार वर्ष तपस्या करने के बाद उन्हें उस परम तत्त्व श्रीमन्नारायण का दर्शन हुआ और चतुश्लोकी भागवत के रूप में उन्हें उपदेश मिला और यह निर्देश मिला कि सृष्टि के पूर्व में मैं ही था। सृष्टि में दृष्टिगोचर होता है वह मैं ही हूँ और प्रलय के बाद मैं ही रहता हूँ। सृष्टि से मेरा सदैव अन्वय और व्यतिरेक का सम्बन्ध रहता है अर्थात् मैं सृष्टि हूँ और नहीं भी जैसे माला और धागा अलग भी हैं और एक भी। यही मेरा और सृष्टि का सम्बन्ध है।

श्रीशुकदेवजी बोले- परीक्षित। महात्माओं ने इस प्रकार का वर्णन किया है। भगवान को केवल सृष्टि, स्थिति और संहारकर्ता ही नहीं समझना चाहिए। वे तो अचिन्त्य ऐश्वर्यवान है।

विराट रूप की विभूतियाँ, ब्रह्मा कहीं समझाय। जिहि विधि उत्पन्न होत है, सृष्टि जगत समझाय।।

६) विराट पुरुष की विभूतियों का वर्णन

विराट रूप भगवान को, कह्यो ब्रह्म समुझाय। किहि विधि जग की उत्पत्ति, होइ विराट से आय।।

ब्राह्मण इस विराट पुरुषका मुख है, भुजाएँ क्षत्रिय, जंघा में से वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए। पैरोंसे लेकर कमरतक सातों तल, अतल, वितल, सुतल, पाताल, रसातल तथा भूलोककी कल्पना की गयी है। नाभिसे भुवर्लोककी, हृदयमें स्वर्लोककी और परमात्माके वक्ष:स्थलमें महर्लोककी कल्पना की गयी है। उनके कंठमें जनलोक, दोनों स्तनोंमें तपोलोक और मस्तकमें ब्रह्मलोक, सत्यलोक स्थित है। उस विराट पुरुषकी कमरमें अतल, जाँघोंमें वितल, घुटनोंमें पवित्र सुतललोक और जंघाओंमे तलातलकी कल्पना की गयी है। एड़ीके ऊपरकी गाँठोंमें महातल, पंजे और एड़ियोंमें रसातल व तल में पाताल समझना चाहिए। उन्हीं विराट पुरुष के मुख से वाणी और उसके अधिष्ठातृदेवता अग्नि उत्पन्न हुए। सातों छन्द गायत्री, त्रिष्टुप, अनुष्टुप, उष्णिक, बृहती, पंक्ति और जगती ये सब उन्हींसे उत्पन्न हुए। सब प्रकारके अमृतमें अन्न, सब प्रकारके रस , रसना, वरुण उस विराट पुरुषकी जिव्हासे उत्पन्न हुए। उसके नासके छिन्द्रोंसे प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पाँचों प्राण वायु तथा घ्राणेन्द्रियोंसें अश्विनीकुमार, समस्त औषधियां एवं विशेष गन्ध उत्पन्न हुए। उनकी आँखें रूप और तेज तथा नेत्र के गोलक स्वर्ग और सूर्यकी जन्मभूमि है। समस्त दिशाएँ और पवित्र करनेवाले तीर्थ कानोंसे तथा आकाश और शब्द श्रोतेन्द्रियसे निकले। उनका शरीर संसारकी सभी वस्तुओंका सारभाग सौन्दर्यरूपी खजाना है। सारे यज्ञ, स्पर्श और वायु उनकी त्वचासे निकले है। उनके रोम सभी उद्भिज्ज पदार्थोंके जन्मस्थान है, उन्हींसे यज्ञ सम्पन्न होता है, उनके केश, दाढ़ी, मूँछ और नखोंसे मेघ, बिजली, शिला एवं लोहा आदि धातुएं तथा भुजाओंसे संसारकी रक्षा करनेवाले लोकपाल प्रकट हुए है। उनका चलना-फिरना भू: भुव: स्व: तीनों लोकोंका आश्रय है। जिनके चरणकमल प्राप्तकी रक्षा करते हैं और भयोंको भगा देते हैं तथा समस्त कामनाओंकी पूर्ति उन्हींसे होती है। विराट पुरुषका लिंग जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापतिका आधार है तथा उनकी जननेन्द्रिय मैथुनजनित आनन्दका उद्गम है। विराट पुरुषकी पायु-इन्द्रिय यम, मित्र और मलत्यागका तथा गुदाद्वार हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु और नरकका उत्पत्तिस्थान है। उनकी पीठसे पराजय, अधर्म और अज्ञान, नाड़ियोंसे नद-नदी और हड्डियोंसे पर्वतोंका निर्माण हुआ है। उनके उदरमें मूल प्रकृति, रस नामकी धातु तथा समुद्र, समस्त प्राणी और उनकी मृत्यु समायी हुई है। उनका हृदय ही मनकी जन्मभूमि है। नारद। हम, तुम, धर्म, सनकादि, शंकर, विज्ञान और अन्त:करण सब-के-सब उनके चित्तके आश्रित हैं। मैं, तुम, तुम्हारे बड़े भाई सनकादि, शंकर, देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग, रेंगनेवाले जन्तु, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष, राक्षस, भूत-प्रेत, सर्प, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष और भी नाना प्रकारके जीव- जो आकाश, जल या स्थलमें रहते हैं- ग्रह-नक्षत्र, केतु (पुच्छल तारे), तारे, बिजली और

बादल- ये सब-के-सब विराट पुरुष ही है। यह सम्पूर्ण विश्व- जो कुछ कभी था, है या होगा- सबको वह घेरे हुए हैं और उसके अंदर यह विश्व उसके केवल दस अंगुलके परिणाम में ही स्थित है। जैसे सूर्य अपने मण्डलको प्रकाशित करते हुए ही बाहर भी प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही पुराणपुरुष परमात्मा भी सम्पूर्ण विराट विग्रहको प्रकाशित करते हुए ही उसके बाहर-भीतर-सर्वत्र एकरस प्रकाशित हो रहा है। मुनिवर। जो कुछ मनुष्यकी क्रिया और संकल्पसे बनता है, उससे वह परे है और अमृत एवं अभयपद (मोक्ष) का स्वामी है। यही कारण है कि कोई भी उसकी महिमाका पार नहीं पा सकता। गति, मति, श्रद्धा, प्रायश्चित्त औरसमर्पण भाव के द्वारा यज्ञ करके मैंने उसे प्रसन्न किया। तुम्हारे नौ भाइयों का सृजन किया। वे भी सब उस विराट पुरुष में लीन हो गये। उस विराट पुरुष का ध्यान करने पर दिव्य तेज स्वयं अलौकिक ज्ञानसम्पन्न शतरूपा प्रकट हुयी। यही शतरूपा वेदजननी, सावित्री, गायत्री, सरस्वती आदि नामों से विख्यात है।

इस तामस अहंकारसे शब्द गुणवाले आकाशकी उत्पत्ति होती है। आकाशसे स्पर्शवान वायुकी उत्पत्ति होती है। वायुसे तेजकी उत्पत्ति होती है। तेजसे रसात्मक जलकी उत्पत्ति होती है। और जलसे गन्धवती पृथ्वीकी उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार सात्त्विक अहंकारसे, मन, आदि होते हैं। राजस अहंकारसे दस इन्द्रियाँ पैदा होती हैं। ब्रह्माण-रूप अण्डा हजारों वर्षतक निर्जीव पड़ा रहनेके बाद जब भगवान द्वारा जीवित होता है तब उससे सहस्र ऊरु, सहस्रबाहु, सहस्रनेत्र, सहस्रमुख, सहस्र शिरवाला विराट पुरुष प्रकट होता है। उसीके एक-एक अंगमें चौदह लोकोंकी कल्पना होती है। उसीके मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, ऊरुसे वैश्य, पादसे शूद्र आदिकी उत्पत्ति होती है। उसीके पाँवसे भूर्लोक, नाभिसे भुवर्लोक और हृदयसे स्वर्लोक आदि लोकोंकी कल्पना होती है। जगत्के मूलमें परमात्मा है। यह सृष्टि केवल रूपाभास आदिके रूपमें दिखाई पड़ रही है अथवा उससे पैदा होती है या उसमें कल्पित होती है।

सात्त्विक अहंकार से प्रभु ने पुन: संकल्प किया तो उससे मनस्तत्त्व और इन्द्रियाधिष्टातृ देवताओं का प्रादुर्भाव हुआ। और राजसिक अहंकार के प्रति संकल्प किया तो उसमें से पांच ज्ञानेन्द्रियों एवं पांच कर्मेन्द्रियों का प्रादुर्भाव हुआ। तामसिक अहंकार से संकल्प किया तो उसमें से सबसे पहले शब्द गुण वाले आकाश की उत्पत्ति हुई जो शब्द कान के द्वारा ग्रहण किया जायेगा। फिर आकाश से स्पर्शवान वायु की उत्पत्ति हुई। वायु से रूपवान तेज अग्नि तत्त्व की उत्पत्ति हुई। तेज से रसात्मक जल उत्पन्न हुआ, जल से गन्धवती पृथ्वी की उत्पत्ति हुई इस प्रकार पंच महाभूतों की एवं पंचतन्मात्राओं की उत्पत्ति हुई। ये सभी प्रकट होकर दीर्घकाल तक अलग-अलग निश्चेष्ट पड़े रहे।

पुन: प्रभु ने संकल्प किया और इन समस्त का सम्मिश्रण हुआ जिसको वेदान्ती लोग पंचीकरण कहते हैं। आपस में इनका सम्मिश्रण होकर एक गोलाकार अण्डाकार ब्रह्माण्ड का सृजन हुआ जो विराट पुरुष कहा गया है।

अब परमात्मा ने संकल्प किया तत्तत् इन्द्रियों को तत्तत् इन्द्रिय स्थानों में प्रवेश करने की आज्ञा दी। जहां-जहां जिस-जिस इन्द्रिय की परिकल्पना उस परमात्मा ने की है वे अपने-अपने स्थानों में प्रविष्ट हों। सब इन्द्रियों ने प्रवेश किया। अपने उपयुक्त स्थानों में और इन्द्रियों के प्रवेश करने के बाद इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओं को आज्ञा दी तुम भी प्रवेश करो। सबने प्रवेश किया, लेकिन चेतना नहीं आयी ब्रह्माण्ड में, अन्त में जब हृदय देश में स्वयं नारायण ने प्रवेश किया तो इस ब्रह्माण्ड में चेतना आ गई।

ब्रह्माजी कहते हैं कि नारद। विराट-रूप भगवान्का मुख वाणी और उसके अधिष्ठाता देवता बह्निका उत्पत्ति-स्थान है। उनकी सात धातुओंसे गायत्री आदि सप्त छन्द उत्पन्न हुए हैं। उनकी जिव्हा हव्य, कव्य, अमृतमय अन्न और सब रसोंका आधार है। सारे प्राण और वायु उनकी नासिकामें रहते हैं।

पाँच तत्त्व से सब संसारी जीव उत्पन्न होते हैं। जिस तरह संसार का सम्पूर्ण व्यवहार मेरे विराटरूप में है उसी तरह सबके

तन में ज्योति का प्रकाश, जिसे प्राण कहते हैं, समझो। जब तक वह चमत्कार शरीर में रहता है तब तक चलने, फिरने, खाने, पीने, बोलने और इन्द्रियों के सुख भोगने की सामर्थ्य उसे रहती है, जब वह प्रकाश शरीर से निकल गया तब वही तन मृतक होकर गल-सड़ जाताहै, फिर उस शरीर से कुछ नहीं हो सकता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों में मेरा प्रकाश एकसा है। ज्ञान की दृष्टि से उनमें कुछ भेद न जानकर सब जीवों में नारायण का स्वरूप एकसा समझना चाहिए।

अश्विनीकुमार, सम्पूर्ण औषधियाँ और मोद-प्रमोद उनके घ्राणमें रहते हैं। रूप, तेज, चक्षु, सूर्य ये सब उनकी आँखोंमें रहते हैं। दिशाएँ और तीर्थ आदि उनके कानोंमें रहते हैं। उनका शरीर संसारकी सभी वस्तुओंके सारभाग और भाग्यका स्थान है। उनके रोम सभी उद्भिज्ज पदार्थों अर्थात् वृक्षादिके आवास हैं। उनके केशोंमें मेघोंका निवास है। उनके श्मश्रु, नख आदिमें विद्युत आदि रहते हैं। संसारमें जितने भी प्रकारके भोग-विलास और वस्तु-ज्ञान आदि हैं वे सब उनके शरीरमें निवास करते हैं। यहाँतक कि संसारमें जितने भी पशु, पक्षी, ग्रह, नक्षत्र आदि हैं उन सबका निवास उसी विराट् भगवान्के विग्रहमें हैं। वह परमात्मा सारे विश्वको घेरकर, व्याप्त करके बैठा हुआ है। उसकी स्थिति सूर्यमण्डलके बाहर भी है और भीतर भी है। वही विराट देहको भी प्रकाशित करता है। उसकी महिमा दुरत्यय है। सम्पूर्ण लोक परमात्माके चरणोंमें निवास करते हैं। उनमें जन, तप और सत्य इन तीन लोकोंमें ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी निवास करते हैं। ये लोक त्रिलोकीके बाहर हैं। परन्तु गृहस्थोंका लोक त्रिलोकके भीतर है।

शास्त्रोंमें दो मार्ग बतलाये गये हैं- एक अविद्यारूप कर्म-मार्ग, जो सकाम पुरुषोंके लिये है और दूसरा उपासनारूप विद्याका मार्ग, जो निष्काम उपासकोंके लिये है। मनुष्य दोनोंमेंसे किसी एकका आश्रय लेकर भोग प्राप्त करानेवाले दक्षिणमार्गसे अथवा मोक्ष प्राप्त करानेवाले उत्तरमार्गसे यात्रा करता है; किन्तु भगवान दोनोंके आधारभूत हैं। जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे सबको प्रकाशित करते हुए भी सबसे अलग है, वैसे ही जिन परमात्मासे इस अण्डकी और पञ्चभूत, एकादश इन्द्रिय एवं गुणमय विराट्की उत्पत्ति हुई है- वे प्रभु भी इन समस्त वस्तुओंके अंदर और उनके रूपमें रहते हुए भी उनसे सर्वथा अतीत हैं।

देहादि से अतीत अनुभव स्वरूप आत्मा का माया के बिना दृश्य पदार्थो का कोई संबंध नहीं हो सकता। क्योंकि विविध रूप वाली माया के कारण वह विविध रूपोंवाला प्रतीत होता है और जब उसके गुणों में रम जाता है, तब यह मैं हूँ, यह मेरा है इस प्रकार मानने लगता है। किन्तु जब यह गुणों को क्षुब्ध करने वाले काल और मोह उत्पन्न करने वाली माया- इन दोनों से परे अपने अनन्त स्वरूप में मोहरहित होकर रमण करने लगता है- आत्माराम हो जाता है, तब यह मैं-मेरा का भाव छोड़कर पूर्ण उदासीन-गुणातीत हो जाता है।

शुकदेव कहते हैं- परीक्षित। तीनों लोकों के परम गुरु आदिदेव ब्रह्माजी अपने जन्म स्थान कमल पर बैठकर सृष्टि करने की इच्छा से विचार करने लगे। परन्तु जिस ज्ञानदृष्टि से सृष्टिका निमाण हो सकता था और जो सृष्टि-बढ़ाने के लिये वाञ्छनीय है वह दृष्टि उन्हें प्राप्त न हुई।

यज्ञ, देवता और समस्त प्राणी नारायण में ही कल्पित है। संसार की सृष्टि नारायणसे ही होती है। उन्होंने ही मुझे बनाया है। उनसे ही प्रेरित होकर उनकी इच्छाके अनुसार सकल जगत् का निर्माण करता हूँ।

भगवान हरि जिसको सत्य कहते है। एक बार हरिने एक से अनेक होने की -एकोऽहं बहु स्याम्। उस समय पुरुष में काल, कर्म और स्वभाव ये तीनों उद्भुत होते हैं। उन्होंने जब प्रकट होकर यह लीला करनी चाहीए, सृष्टिको बनाना चाहा तो सबसे पहले उन्होंने अपने नाभि से एक कमल का फूल निकाला। उस फूलपर चतुरानन, ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। यह सृष्टि

का पहला जीव है ब्रह्मा। जो बिना किसी नारी योनि के उत्पन्न हुआ है। सबके सब स्त्री योनिसे पैदा हुए है। वह योनि सिर्फ एक ब्रह्मा है। वह नारायण से पैदा हुआ है। कमल के नाभि पर बैठा हुआ है। वह सृष्टिमें चारों ओर देख रहा है। उसे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। सिर्फ बड़ा क्षीरसागर, कुछ दृष्य, ऊपर प्रकाश, नीचे देखे तो अंधेरा। मैं कौन हूँ, मैं क्यों आया हूँ। किसलिये आया हूँ। ब्रह्माने बहुत बार विचार किया कि मैं कहाँ से उत्पन्न हुआ हूँ? मैं करूँ क्या? बार-बार वह अपने नाभिसे, कमल की नाभिसे तंतू में जाता है, नीचे जाता है। बार-बार ऊपर आता है। पर उसका थाह नहीं पा सका जिसको देखना चाहता था कि मुझे बनानेवाला कौन है। मैं क्यों आया हूँ, किसलिये आया हूँ। मेरा कारण क्या है। ब्रह्मा देखता रह गया। मैं करूँ तो क्या करूँ। इतने में एक आवाज आती है। त-प, त-प, त-प, तप कर, तप कर, ब्रह्मा ने एक हजार वर्ष तक तप किया। उन्होंने दिव्य सहस्र वर्ष स्वाँस रोककर घोर तप किया। उन्होंने अपने प्राण, मन, कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों का निरोध करके मन को परब्रह्म में लगाकर समस्त लोकोंको प्रकाशित करनेवाला घोर तप किया। ब्रह्माजी अपना और अपने संकल्प का कारण ढूँढने को मन का निरोध करके तपस्या करने लगे। मन का निरोध होना ही तप का चरम लक्ष्य है। ब्रह्माजी जब निष्फल हुए। कमल पर आकर बैठ गये और मन ही मन विचार किया कि मैं कौन हूँ? ये कौन है? वह कौन है जिसने मुझे पैदा किया? इस सृष्टि में आनेका क्या प्रयोजन है? तो आकाशवाणी हुई तप-तप-तपं खोज करो। ब्रह्माजी ने पूछा मैं कौन हूँ? तो उत्तर मिला तू वही है जो मैं हूं। शिव है, जीव ही शिव है। यही तेरा असली स्वरूप है। ब्रह्माजीने नारायण की स्तुति की। हे नारायण, आप तो परम देव हैं। जीव मात्र का सर्वस्व हैं। आप तो परम योग हैं। आप तो जीवोंके ज्ञान और जीवोंकी गति आप ही सर्वस्व हैं।

तो जब अनन्त नारायणकी नाभिसे एक कमल निकला और उस कमलपर ब्रह्मा उत्पन्न हुए तब ब्रह्माने चारों ओर देखनेका प्रयास किया। उनके चार मुँह हो गये। उनको यह विचार हुआ कि उनके सिवाय तो और कुछ है ही नहीं। फिर वह कौन है, जिससे मैं प्रकट हुआ हूँ। उन्होंने ढूँढ़नेका प्रयास किया, लेकिन उनको अपना कारण न बाहर मिला और न भीतर मिला। भला, अपने पिताका जन्म कोई कैसे जान सकता है- पिताको जन्म किधौं जाने पूत? ब्रह्माजीको प्रयास करनेपर भी कुछ पता नहीं लगा। इसके बाद ब्रह्मा जब अपनी उत्पत्तिका आधार जाननेके लिए व्यग्र हो गये तब उन्हें यह आकाशवाणी सुनाई पड़ी कि तप-तप-तप। जो व्यापक विश्व-तत्त्व नारायण है, परमेश्वर है वह और कहीं नहीं यही है। ब्रह्माजीको भगवानका दर्शन हो गये।

तब प्रभु हरि प्रकट होते हैं और बोले, हे ब्रह्मा। तू क्या सोच रहा है? क्या सोचनेवाला है? ब्रह्मा ने कहा- मैं आपको जानता नहीं और मैं यहाँ क्यों आया हूँ, किसलिये आया हूँ, मैं कौन हूँ? और आप कौन है? भगवान नारायण ने कहा, ब्रह्मा तुझे पैदा करनेवाला मैं हूँ। ब्रह्मा तुझे उत्पन्न मैंने किया है और तुझे मैने ब्रह्मा बनाया है। आपको सृष्टिका सृजन करना है। उत्पत्ति बढ़ाओ।

आँखों की सिद्धि पहुँचनी चाहिये। ब्रह्मा जो है वह एक जीव की उपाधि है। ब्रह्मा बनने की क्या पात्रता है, क्या बनने की क्या योग्यता है इन्द्र बनने की क्या है यह सब प्रभु की सांसद है। यह इन्द्र हुआ, ब्रह्मा हुआ और यह सब चीज नाशवान है। यह ब्रह्मा कब तक रहेगा। तू मेरा आँचल है। मैं तुझे अपना रूप देता हूँ। और तू प्रजा पालन कर, प्रजा उत्पन्न कर, इस सृष्टि में प्रजा उत्पन्न कर। ब्रह्मा बोला, मैं कैसे करूँ? मुझमें तो ऐसी कोई शक्ति, विभूति, ताकत तो नहीं है। हरिने अपने हाथ का स्पर्श किया और वैकुंठ का अपने लोक का दर्शन कराया। विष्णु लोक में त्रिगुणोंवाला सत्व नहीं है, वहां तो दिव्य सत्व हैं जिसकी कोई उपमा नहीं। यह भगवान का दिव्य गुण है उसीके द्वारा वैकुण्ठधाम शान्त होता है। जिस प्रकार ब्रह्मा

ने नारद को और नारद ने शुकदेव को वैकुण्ठ धाम का वर्णन किया।

नारायण ने कहा, हे ब्रह्मा। तुम इसी तरह सब जगह मुझको जानकर जगत की रचना करो। संसारी माया में फँसकर आनन्द से नहीं रहोगे, तप करने से तुमको मेरा दर्शन होगा। तुम मन में दया रखकर सब जीवों की रचना करो। ऋषीश्वर व ज्ञानी लोग तुम्हारी स्तुति करेंगे। संसार रचने में तुम्हें कुछ परिश्रम व दु:ख नहीं होगा। तुम मेरे चतुर्भुजी छोटे स्वरूप का ध्यान करो, जो महात्मा, ऋषीश्वर, नन्द व सुनन्द आदि दासों में विराजमान है।

यह आकाशवाणी सुनकर ब्रह्मा नारायणजी को मन ही मन प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले- हे दीनानाथ, मुझे यह वरदान दीजिए कि मैं आपको अपना मालिक जानता रहूँ। संसार के उत्पन्न करने में मुझे आसक्ति न होवे। ब्रह्मा का यह वचन सुनते ही परब्रह्म परमेश्वर ने उन्हें इच्छापूर्वक वरदान देकर कहा- हे ब्रह्मा तुम मेरी आज्ञा को याद रखकर संसारी व्यवहार को परछाहीं के समान झूठा समझते रहना, तो तुमको मेरी माया नहीं व्यापेगी।

ब्रह्माजी तपस्वियों में सबसे बड़े तपस्वी हैं, उनका ज्ञान अमोध है, उन्होंने उस समय एक सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त एकाग्र चित्त से अपने प्राण, मन और कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके ऐसी तपस्या की जिससे वे समस्त लोकों को प्रकाशित करने में समर्थ हो गये।

उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ने उन्हें अपना वह लोक दिखाया, जो सर्वश्रेष्ठ है और जिससे परे दूसरा कोई लोक नहीं है। उस लोक में किसी भी प्रकार के क्लेश, मोह और भय आदि नहीं है। जिन्हें कभी एक बार भी उसके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे देवता बार-बार उनकी स्तुति करते रहते हैं।

परीक्षित। ब्रह्माजीने उस तपोबल के प्रभाव से ही उस कमल पुष्प के मध्य भाग के अन्दर उसका मूल आधार, जो परब्रह्म-परमात्मा का नाभि सरोवर (गर्भ) है, उन प्रभु के गर्भ में ही तीनों लोक और चौदह भुवन और उनकी देवता आदि सम्पूर्ण चर और अचर, उन सबसे ऊपर प्रभु का वह वैकुण्ठ लोक देखा।

७) ब्रह्माको वैकुण्ठ धाम का दर्शन

भगवान का यह लोक शुद्ध सत्वमय है। वहाँ पर रजोगुण और तमोगुण का लेश भी नहीं है। वहाँ काल का कोई प्रभाव नहीं होता, वहाँ माया का भी वश नहीं चलता। उस लोक में भगवान के नित्यमुक्त पार्षदों का निवास है। उन सबों की चार भुजाएँ होती है। सब-के-सब कुण्डल आदि अलंकारों से अलंकृत रहते हैं।

वैकुण्ठ धाम कालातीत लोक है। माया का वहाँ लेश भी नहीं, फिर अन्य विकारों की तो बात ही क्या? भगवान के जितने पार्षद हैं सभी चतुर्भुज हैं, सभी के रूप, रंग, रेखा, आकृति, प्रकृति, अस्त्र तथा आयुध भगवान के ही समान हैं। उन विष्णु पार्षदों की सभी देव, दैत्य वन्दना करते हैं। सबका शरीर स्वच्छ, सुन्दर और साँवले रंग का है। सभी के नेत्र विकसित कमल के समान शोभायमान और आकर्षक हैं। सभी के अंगों पर बिजली के समान चमचमाता दिव्य पीताम्बर शोभित होता है। वे बड़े सुकुमार, कान्तिवान, प्रभावान्, ऐश्वर्यवान, शौर्य-वीर्यवान् हैं। सभी मणि-जटित सुवर्ण भूषणों से सदा विभूषित रहते हैं। उनकी ऐसी दिव्य आभा होती है कि उसकी कोई उपमा नहीं। मूँगे की कान्ति फीकी है, कमल की कमनीयता कम है, वैदूर्य मणि विरूप-सी प्रतीत होती है। उनके कानों में कनक के कमनीय कुण्डल चमकते रहते हैं, मस्तक पर मनोहर मुकुट दमकते रहते हैं। कण्ठ में मोतियों की मनभावनी मालायें लटकती रहती हैं। सबके हाथों में तुलसीजी की सुमिरिनी सटकती रहती है। देवलोक की दिव्य देवाङ्गनायें भी जिस रूप को निहारकर भटकती रहती हैं।

मुनियों। वैकुण्ठ में भी कमनीय कान्तिवाली कामिनियों का अभाव नहीं है। वहाँ भी लक्ष्मीजी की सहचरी वैकुण्ठवासिनी असंख्यों अनुपम रूप लावण्यवती अप्सरायें इधर-से-उधर बिजली की तरह चमकती रहती हैं। उनकी चमक-दमक और चाक-चिक्य के कारण वैकुण्ठ सदा जिस प्रकार मेघ-मालाओं से आच्छादित आकाश विद्युत की प्रभा से प्रभासित होता रहता है, उसी प्रकार वैकुण्ठ की शोभा दिखाई देती।

लक्ष्मीजी वहाँ मूर्तिमती होकर सदा निवास करती हैं। वहाँ अपने चंचल स्वभाव को वे त्याग देती हैं। पुराण पुरुष की पत्नी का चंचल होना स्वाभाविक ही हैं, किन्तु वहाँ श्रीहरि सदा किशोरावस्थापन्न रहते हैं। इसलिये लक्ष्मी जी सदा उन्हीं के गुणगान में तल्लीन बनी रहती है। बड़ा दिव्य वहाँ एक उद्यान है। उनमें परम दिव्य-दिव्य अनेक जन्मों से अनन्त पुण्य, विविध आराधनायें करके जो वैकुण्ठ के पक्षी हुए हैं, वे सदा उन वृक्षों पर कूदते रहते हैं। शुक हैं, सारिकायें हैं, पारावत, दादुर, मयूर, चकोर सभी वहाँ संगीत के ही स्वर में बोलते हैं। अनन्त पुण्यों के द्वारा युग युग की आराधना के स्वरूप जो वहाँके वृक्ष बने हैं, उनमें से सदा दिव्य गन्ध निकलती रहती हैं। वहाँके झूले पर बड़ी लीला के साथ अपने हाव-भाव कटाक्षों से वैकुण्ठ को मोहित करती हुई लक्ष्मीजी अपनी सखियों के सहित जाकर झूलती हैं। झूलते समय जो गीत गाती है उनमें अपने प्राणनाथ गोविन्द के ही गुणों का बखान होता है। जब वे गोविन्द के गीत गाती हैं तो वृक्षों पर बैठै शुक, सारिका, मयूर, भ्रमर आदि लक्ष्मीजी का गुणगान करने लगते हैं, इसमें वे लज्जित हो जाती हैं और भौ तानकर प्रेम के रोष से उनकी ओर ऐसे ही देखती हैं, जैसे प्रणयकोप में भरी प्रमदा अपने प्राणनाथ की ओर निहारती है।

ब्रह्माजी ने देखा लक्ष्मीजी के गले में गलबाँही डाले हुए, अपने मुख को मन्द-मन्द मुस्कान को उनकी आँखों में घोलते हुए- किरीट, मुकुट धारण किये, रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान हैं। उनकी चारों भुजाओं में अंगद, कंकण आदि दिव्य आभूषण शोभायमान है। गले में लम्बी वनमाला है, वक्षस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह हैं, जिसमें लक्ष्मीजी सदा लोटती रहती हैं। दमदमाता हुआ रेशमी पीताम्बर धारण किये हैं। चारों ओर मूर्तिमान पुरुष, प्रकृति, महतत्त्व, अहंकार, पाँच कर्मेन्द्रिय- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, पंचतन्मात्रायें, पंचभूत ये सब-के-सब दिव्य रूप से अवस्थित हैं। भगवान पूर्ण षडैश्वर्य सम्पन्न है। किसी ऐश्वर्य का कोई भी अंश उनमें कम नहीं है। वे यथार्थ में भगवत पद वाच्य हैं।

लक्ष्मीजी एक सर्वोत्तम और बहुमूल्य आसन पर विराजमान हैं, पुरुष प्रकृति महत्व, अहंकार, मन, दस इन्द्रिय, शब्दादि पाँच तन्मात्राएँ और पंचभूत ये पच्चीस शक्तियाँ मूर्तिमान होकर उनके चारों ओर खड़ी हैं। समग्र ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, श्री ज्ञान और वैराग्य- इन छः नित्यसिद्ध स्वरूप-भूत शक्तियों से वे सर्वदा युक्त रहते हैं। उनके अतिरिक्त और कहीं भी ये निवास नहीं करती और वे सर्वेश्वर प्रभु अपने नित्य आनन्द स्वरूप में ही नित्य-निरन्तर निमग्न रहते हैं।

ऐसा महाऐश्वर्य पूर्ण, सौन्दर्य की राशि, आनन्द की निधि, शोभा के धाम भगवान के दर्शन करके ब्रह्माजी का हृदय आनन्द से भर गया। हृदय में आनन्द का ऐसा वेग उठा कि उनके शरीर में रोमांच हो आया। नेत्रों से प्रेम के शीतल अश्रु निकलने लगे। वे प्रेम में इतने विभोर हुए कि अपने आपको भूल गये। इन भगवान के दर्शन अनन्त तपस्या से, चिरकाल तक श्रद्धा और प्रेम के सहित यति-धर्म के पालन से, उन्हीं की कृपा होने पर होते हैं। ऐसे भगवान को अपने नेत्रों के सम्मुख देखकर ब्रह्माजी ने अपने को सम्हाला और फिर उन्होंने बड़ी श्रद्धा के साथ भगवान के चरणारविन्दों में प्रणाम किया।

सूतजी कहते हैं- मुनियों। वैकुण्ठ का वर्णन करना वाणी का विषय नहीं है। ऐसे दिव्य वैकुण्ठ धाम के दर्शन ब्रह्माजी को सहस्रों, लाखों वर्ष की तपस्या के अनन्तर हुए। वहाँ ब्रह्माजी ने जाकर देखा कि समस्त संसार के स्वामी, लक्ष्मीजी के जीवनाधार, भक्तों के सर्वस्व श्रीहरि अपने नन्द, सुनन्द, सुबल और अर्हण आदि प्रधान-प्रधान पार्षदों के सहित विराजमान है।

सभी सावधानी से भगवान की सेवा में संलग्न हैं। भगवान तो भक्तवत्सल हैं। उनकी मुद्रा से यही प्रतीत होता है कि वे अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये सदा कातर बने रहते हैं। वे सदा यही चाहते रहते हैं कि जीव मेरी कब शरण में आवें, कब मैं उन पर कृपा करूँ? किन्तु मुनियों। ये जीव तो इन तुच्छ संसारी विषयों में- इन रक्त, मूत्र मल के दुर्गन्धयुक्त स्थानों में- रमण करने में ही अपने को परमसुखी माने बैठे हैं। जीव जब इन तुच्छ विषयों से मन को हटावे, तब वैकुण्ठ के मार्ग की ओर बढ़ सकता है।

परीक्षित उनका दर्शन करते ही ब्रह्माजी का हृदय आनन्द से उद्वेक से भर आया, शरीर उनका पुलकित हो उठा और नेत्रों में प्रेम से आँसू झलक आए, ब्रह्माजी ने भगवान के उन चरण-कमलों में जो परमहंसों के निवृति मार्ग से प्राप्त हो सकते हैं, सिर झुकाकर प्रणाम किया।

श्रीभगवान का दर्शन पाकर ब्रह्माजी आनन्दमग्न हो गये। उनके शरीर में रोमांच हो आया, आंखों में प्रेमाश्रु भर गया। ब्रह्माजी ने भगवान के चरण कमलों में साष्टांग प्रणाम किया। श्रीभगवान के उन चरण कमलों का दर्शन तो परमहंसों के निवृत्ति मार्ग से ही होता है। सृष्टि करने के योग्य ब्रह्माजी को देखकर श्रीभगवान प्रसन्न हुए और उन्होंने ब्रह्मा जी के हाथों का स्पर्श किया।

अपने चरणों में चतुर्भुज ब्रह्माजी को नत मस्तक देखकर, भगवान् ने अत्यन्त स्नेह के साथ, सम्पूर्ण ममता बटोरकर उन्हें प्यार किया और उनका हाथ पकड़कर अपने समीप बैठाया। उन पर कृपा की दृष्टि डाली। उनके चिन्तित मुख को देखकर भगवान हँस पड़े और फिर उनसे बातें करने के लिये उद्यत हुए।

परम दिव्य वैकुण्ठ कान्ति ऐश्वर्य अमित जहँ। सुखासीन परिवार पारषद सह श्रीहरि तहूँ।।
नारायनकूँ निरखि नीर नयननिमें छायौ। पकरि बाँह भगवान पुत्रकूँ ढिंग बैठायौ।।
वेदगरभतें विष्णु वर, बोले बचन सुधासने। वत्स। बताओ बात सब, सृष्टि समय च्यौं अममने।।

जिस समय इस विराट पुरुषके नाभि-कमलसे मेरा जन्म हुआ, उस समय इस पुरुषके अंगोंके अतिरिक्त मुझे और कोई भी यज्ञकी साम्रगी नहीं मिली। तब मैंने उनके अंगोंमें ही यज्ञके पशु, यूप (स्तम्भ), कुश, यह यज्ञभूमि और यज्ञके योग्य उत्तम कालकी कल्पना की। ऋषिश्रेष्ठ। भगवान नारायण की नाभि क्या है? आकाश है, उस अनन्त आकाश में जो कि भगवान की नाभि हैं उसमें एक कमल खिला। उस पर ब्रह्माजी पैदा हुए और उन्होंने उस परब्रह्म परमात्मा की खोज की। जब अपने इष्ट का साक्षात्कार प्राप्त करना हो, वह मनुष्य अपनी कामनाएँ, क्रोध, लोभ और मोह इन्हें त्याग देना चाहिए तो अवश्य ही प्रभु के दर्शन हो जायेंगे। कामनाओं के वशीभूत कर्म नष्ट होता है। क्रोध आने से ज्ञान, बुद्धि का विवेक नष्ट हो जाता है तथा लोभ करने से धर्म नष्ट होता है।

यज्ञके लिये आवश्यक पात्र आदि वस्तुएँ जौ, चावल, आदि औषधियाँ, घृत आदि स्नेहपदार्थ, छः रस, लोहा, मिट्टी, जल, ऋक्, यजुः, साम, चातुर्होत्र, यज्ञोंके नाम, मन्त्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओंके नाम, पद्धतिग्रन्थ, संकल्प, तन्त्र (अनुष्ठानकी रीति), गति, मति, श्रद्धा, प्रायश्चित्त और समर्पण- यह समस्त यज्ञ-सामग्री मैंने विराट पुरुषके अंगोंसे ही इकट्ठी की। इस प्रकार विराट पुरुषके अंगोंसे ही सारी सामग्रीका संग्रह करके मैंने उन्हीं सामग्रियोंसे उन यज्ञस्वरूप परमात्माका यज्ञके द्वारा यजन किया। तदनन्तर तुम्हारे बड़े भाई इन नौ प्रजापतियोंने अपने चित्तको पूर्ण समाहित करके विराट् एवं अन्तर्यामीरूपसे स्थित उस पुरुषकी आराधना की। इसके पश्चात् समय-समयपर मनु, ऋषि, पितर, देवता, दैत्य और मनुष्योंने यज्ञोंके द्वारा भगवान्‌की आराधना की। नारद। यह सम्पूर्ण विश्व उन्हीं भगवान् नारायणमें स्थित है, जो स्वयं तो प्राकृत गुणोंसे रहित हैं, परन्तु सृष्टिके प्रारम्भमें मायाके द्वारा बहुत-से गुण ग्रहण कर लेते हैं। उन्हींके प्रेरणासे मैं इस संसारकी रचना करता हूँ। उन्हींके अधीन होकर रुद्र इसका संहार करते हैं और वे स्वयं ही विष्णुके रूपसे इसका पालन

करते हैं। क्योंकि उन्होंने सत्त्व, रज और तमकी तीन शक्तियाँ स्वीकार कर रखी हैं। भाव या अभाव, कार्य या कारणके रूपमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो भगवान्‌से भिन्न हो।

प्रिय नारद। मैं प्रेमपूर्ण एवं उत्कण्ठित हृदयसे भगवानके स्मरणमें मग्न रहता हूँ, इसीसे मेरी वाणी कभी असत्य होती नहीं दीखती, मेरा मन कभी असत्य संकल्प नहीं करता और मेरी इन्द्रियाँ भी कभी मर्यादाका उल्लंघन करके कुमार्गमें नहीं जाती। मैं वेदमूर्ति हूँ, मेरा जीवन तपस्यामय है, बड़े-बड़े प्रजापति मेरी वन्दना करते हैं और मैं उनका स्वामी हूँ। पहले मैंने बड़ी निष्ठासे योगका सर्वांग अनुष्ठान किया था, परन्तु मैं अपने मूलकारण परमात्माके स्वरूपको नहीं जान सका। (क्योंकि वे तो एकमात्र भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं।) मैं तो परम मंगलमय एवं शरण आये हुए भक्तोंको जन्म-मृत्युसे छुड़ानेवाले परम कल्याणस्वरूप भगवान्‌के चरणोंको ही नमस्कार करता हूँ। उनकी मायाकी शक्ति अपार है; जैसे आकाश अपने अन्तको नहीं जानता, वैसे ही वे भी अपनी महिमाका विस्तार नहीं जानते। ऐसी स्थितिमें दूसरे तो उसका पार पा ही कैसे सकते हैं? मैं, मेरे पुत्र तुम लोग और शंकरजी भी उनके सत्य स्वरूपको नहीं जानते; तब दूसरे देवता तो उन्हें जान ही कैसे सकते हैं। हम सब इस प्रकार मोहित हो रहे हैं कि उनकी मायाके द्वारा रचे हुए जगतको भी ठीक-ठीक नहीं समझ सकते, अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार ही अटकल लगाते हैं।

हमलोग केवल जिनके अवतारकी लीलाओंका गान ही करते रहते हैं, उनके तत्त्वको नहीं जानते- उन भगवान्‌के श्रीचरणोंमें मैं नमस्कार करता हूँ। वे अजन्मा एवं पुरुषोत्तम हैं। प्रत्येक कल्पमें वे स्वयं अपने आपमें अपने आपकी ही सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं और संहार कर लेते हैं। वे मायाके लेशसे रहित, केवल ज्ञानस्वरूप हैं और अन्तरात्माके रूपमें एकरस स्थित हैं। वे तीनों कालमें सत्य एवं परिपूर्ण हैं न उनका आदि है न अन्त। वे तीनों गुणोंसे रहित, सनातन एवं अद्वितीय हैं। नारद। महात्मालोक जिस समय अपने अन्त:करण, इन्द्रिय और शरीरको शान्त कर लेते हैं, उस समय उनका साक्षात्कार करते हैं। परन्तु जब असत्पुरुषोंके द्वारा कुतर्कोंका जाल बिछाकर उनको ढक दिया जाता है, तब उनके दर्शन नहीं हो पाते।

जिस मनुष्य पर नारायणजी बड़ी कृपा करते हैं वो सत्संग करके इस मायाजाल से छूट सकता है, नहीं तो संसाररूपी जाल से छूटना बहुत कठिन है। इस महाजाल से छूटने के लिए परमेश्वर का भजन व उनके नाम का स्मरण और उनके अवतारों की लीला व कथा सुनने के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है। अवतारों की लीला चारों वर्णों को सुनना चाहिए। कई बार मेरे जैसे ब्रह्मा व तुम जैसे नारद संसार में उत्पन्न हो चुके हो, इसका हाल परब्रह्म परमेश्वर के सिवा कोई नहीं जानता।

प्रत्येक कल्प में सब जीव अपने कर्मानुसार फिर जन्म पाते हैं। जिस देश में देवस्थान नहीं होता, परमेश्वर की कथा नहीं होती और जिस घर में कोई यज्ञ और होम नहीं होता वहाँ कलियुग का वास अधिक होता है। वहाँ के मनुष्य क्रोध और लोभ और अहंकारमें भरे रहते हैं। यही क्रोधादिक पाप की जड़ हैं और मनुष्यों से अनेक प्रकार के अधर्म कराते हैं। परमेश्वर की माया को महादेवजी, दक्षप्रजापति, देवता, सनकादिक, भृगु ऋषीश्वर, प्रह्लाद, राजा बलि, अम्बरीष और प्राचीनबर्हिष आदि थोड़ा सा जानते हैं। जिस जीव को अहंकार नहीं होता वही परमेश्वर की माया से छूटकर भवसागर पार उतर जाता है। जो लोग हरिभक्त होते हैं और परमेश्वर की शरण में रहते हैं उन पर माया का कुछ वश नहीं चलता।

परमात्माका पहला अवतार विराट पुरुष हैं; उसके सिवा काल, स्वभाव, कार्य, कारण, मन, पंचभूत, अहंकार, तीनों गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड-शरीर, उसका अभिमानी, स्थावर और जंगम जीव- सब-के-सब उन अनन्त भगवान्‌के ही रूप हैं। मैं, शंकर, विष्णु, दक्ष आदि ये प्रजापति, तुम और तुम्हारे-जैसे अन्य भक्तजन, स्वर्गलोकके रक्षक, पक्षियोंके राजा,

मनुष्यलोकके राजा, नीचेके लोकोंके राजा; गन्धर्व, विद्याधर और चारणोंके अधिनायक; यक्ष, राक्षस, साँप और नागोंके स्वामी; महर्षि, पितृपति, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवराज और भी प्रेत-पिशाच, भूत-कूष्माण्ड, जल-जन्तु, मृग और पक्षियोंके स्वामी; एवं संसारमें और भी जितनी वस्तुएँ ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रियबल, मनोबल, शरीरबल या क्षमासे युक्त है; अथवा जो भी विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूतिसे युक्त हैं; एवं जितनी भी वस्तुएँ अद्भुत वर्णवाली, रूपवान या अरूप हैं- वे सब-के-सब परमतत्त्वमय भगवत्स्वरूप ही हैं। नारद। इनके सिवा परम पुरुष परमात्माके परम पवित्र एवं प्रधान-प्रधान लीलावतार भी शास्त्रोंमें वर्णित हैं।

जिसमें यह सृष्टि उत्पन्न होती है और विलीन होती है उसका नाम परमात्मा है। उसको हम नमस्कार करते हैं। वहा प्रभु सारी सृष्टिको बनाता है। जब अन्त:करण शुद्ध होता है तब परमात्माका साक्षात्कार होता है। काल, स्वभाव आदि परमेश्वरकी शयक्ति हैं। और महत्तत्त्व, पंचभूत और अहंकार उनके कार्य हैं। मेरे साथ-साथ शंकर और विष्णु भी भगवान्के गुणावतार हैं। दक्ष आदि समेत तुम लोग, स्वर्लोक, नृलोक, पाताललोक, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, सूर्य, नाग, ऋषि, पितर, दैत्य, दानव, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, जल-जन्तु, मृग, पक्षी, जो कुछ भी हैं और इनके जो स्वामी हैं वे सब परमात्माके स्वरूप ही हैं। ऐश्वर्य, तेज, ओज, इन्द्रिय, मनकी शक्ति, बल, क्षमा, श्री, ऱ्ही, सम्पत्ति, बुद्धि जो कुछ है, वह सब भगवान्की विभूति है। <u>अनित्यका तो जन्म होता है और नित्यका, जीवका समागम होता है</u>।

नारायण बोले वो ज्ञान मैं तुझे प्रदान करूँगा। करूँगा तो मैं ही सब तू सिर्फ निमित्त मात्र है। तू मेरा प्रतिनिधि है, मेरा प्रतिनिधित्व करेगा। हे परम तपस्वी ब्रह्माजी। तपस्या से ही विश्व का सृजन एवं विसर्जन तथा धारण-पोषण क्रिया सम्पन्न करता हूँ। तप मेरी एक दुर्लङ्घ्य शक्ति है। इसी से प्रसन्न होकर तपस्वी की मन:स्थिति समझते हुए फली प्रदान करता हूँ। ब्रह्माजी जीव के समस्त कल्याण साधना का पर्यवसान मेरे दर्शन में ही है। निष्पाप ब्रह्माजी। अविचल समाधि के द्वारा मेरे इस सिद्धान्त में एकान्त निष्ठा कर लो, फिर तुम्हे कल्प-कल्प में विविध सृष्टि रचना क्रम में व्यामोह नहीं उत्पन्न होगा। ब्रह्मा बोले- प्रभो। मुझे सृष्टि का ज्ञान नहीं है। कृपया आप उसका ज्ञान प्रदान करें। यह भी कृपा करें कि सृष्टि-रचना की प्रक्रिया में मुझे कभी अपने को जन्म-कर्म से स्वतन्त्र मानकर अभिमान न हो जाय।

भगवन्, थोड़ा सा ऐश्वर्य पाकर जीव अभिमानी हो जाता है। कहीं मुझे अहंकार हो गया तो ऊँट तो जब तक पहाड़ के नीचे नहीं जाता, तब तक वह अपने आप को सबसे ऊँचा समझता है, पहाड़ पर से नीचे जाने के बाद उसको अपना स्वरूप समझमें आता है तब उसे लगता है कि मैं बहुत छोटा हूँ।

भगवान ने कहा- ब्रह्माजी। चिंता मत करो। मैं आपको परम ज्ञान देता हूँ जिस ज्ञान के माध्यम से आपको मोह नहीं होगा। मोह कहां से उत्पन्न होता है? अज्ञान के कारण मोह उत्पन्न होता है। वास्तविक स्वरूप विषय-विषयी वस्तु और व्यक्ति का न जानने से मोह उत्पन्न होता है। एक बार विवेक आ गया तो इनमें मोह नहीं रहता। ज्ञानियों को स्वर्ण पत्थर ही दिखाई देता है। वे जानते हैं इसका कोई प्रयोजन तो है ही नहीं। तो चाहे स्वर्ण हो, चाहे पत्थर हो चाहे हीरा माणिक हो, इनकी दृष्टि में तो ये पत्थर ही पत्थर हैं। कोई प्रयोजन नहीं।

स्वर्ण का क्या प्रयोग है? आर्थिक दृष्टि से उसका उपयोग हमारे जीवन में कहां है? श्रृंगार के सिवाय इसका कोई उपयोग है नहीं। खा सकते नहीं। औषधि के रूप में हम ले नहीं सकते। आराम और विराम के लिए इनका उपयोग नहीं हो सकता। केवल श्रृंगार है। ज्ञानी की दृष्टि में इसका कोई मोह नहीं होता क्योंकि उनकी दृष्टि में तो ये पत्थर ही पत्थर हैं।

भगवान बोले, हे वेदगर्भ। तुमने विश्वको रचने की इच्छा से मुझे बहुत प्रसन्न किया। दिव्य सहस्र वर्ष तप किया। यह मेरी इच्छा का प्रभाव है। मेरी ही कही हुई तप-तप वाणी को सुनकर तुमने परम तप किया है। तप मेरा हृदय है। तप साक्षात् मेरी देह है। तप मेरी आत्मशक्ति है। तप से ही मैं इस विश्व को रचता हूँ और फिर तप ही से पालन करता हूँ, तप से विश्व का संहार करता हूँ और परमतप से मेरा पराक्रम है।

श्रीभगवान ने कहा- ब्रह्माजी आपने मुझे देखे बिना ही मेरे शब्दमात्र को सुनकर सृष्टि करने की इच्छा से कठिन तपस्या की है। आपके अन्त:करण में वेदों का ज्ञान विद्यमान है। मैं आप पर प्रसन्न हूँ आप मुझसे वरदान माँगें। तपस्या की महत्ता बतलाते हुए श्रीभगवान ने कहा- तपस्या ही मेरा हृदय है। मैं स्वयं तपस्या की आत्मा हूं। तपस्या से ही मैं जगत् की सृष्टि करता हूँ। तपस्या से ही मैं इसका भरण पोषण करता हूँ। तपस्या से ही इसे मैं अपने में लीन कर लेता हूँ। तपस्या मेरी दुर्लंघ्य शक्ति है। भगवान की बातों को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा भगवान आप अपने सगुण एवं निर्गुण दोनों प्रकार के रूपों का मुझे दर्शन करायें। आप मुझे सृष्टि का ज्ञान करायें। इसके पश्चात् श्रीभगवान ने ब्रह्माजी को चतु:श्लोकी भागवत का उपदेश दिया।

भगवान बोले, ब्रह्मा। संसार की तुम रचना का काम करो, मैंने सर्ग सृष्टि रची है। तुम विसर्ग सृष्टि रचो, अण्ड पिण्ड सब प्रकट करो और मैं चेतना अपने भीतर से जीवों के रूप में उसमें प्रवेश कराऊंगा। यह मेरे देखने लायक दृश्य होगा। वे सब चलेंगे, फिरेंगे, खेलेंगे, खायेंगे, हँसेंगे, बोलेंगें, ये मेरे लिये आनन्ददायक दृश्य होगा। मेरी इच्छा से ही यह सब हुआ है। मेरी इच्छा से ही तुम्हारा प्राकट्य हुआ है। तुम ब्रह्मा हो, मैंने रचना करने के लिये तुम्हें प्रकट किया है।

जब संसार की रचना का समय होता है, तब तपस्वी मरीचि आदि नौ ऋषि और मेरे रूप में देवताओं और राजाओं का रूप धारण करते हैं, तथा जब प्रलय कासमय होता है, तब रुद्र के रूप में अपनी सभी शक्तियों से सम्पन्न होकर दुष्ट-दानवों का संहार करते हैं। तुम्हारे हृदय में तो समस्त वेदों का ज्ञान विद्यमान है। तुमने सृष्टि रचना की इच्छा से चिरकाल तक तपस्या करके मुझे भली-भाँति सन्तुष्ट कर दिया है। मन में कपट रखकर योग-साधन करनेवाले मुझे कभी भी प्रसन्न नहीं कर सकते। तुम्हारा कल्याण हो और तुम्हारी जो भी अभिलाषा हो वही वर मुझसे मांग लो, क्योंकि मैं मुँह माँगी वस्तु देने में समर्थ हूँ मेरे यहां कुछ भी अदेय नहीं है।

ब्रह्माने कहा, आप समस्त प्राणियों के साक्षीरूप से विराजमान हैं और आप सर्वज्ञ हैं, आप यह भी जानते हैं कि मैं क्या करना चाहता हूँ। हे नाथ। आप कृपा करके मुझ याचक की यह माँग पूरी कीजिये कि मैं रूप रहित आपके सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों को जान सकूँ। मुझे कभी भी विस्मृति न हो।

तब हरिने उसको एक चतु:श्लोकी भागवत सुनायी। ब्रह्माने मन में विचार किया किस तरह संसार की उत्पत्ति करूं। तब उन्हीं नारायणकी मायासे सात्विक, राजस, तामस तीनों गुण प्रकट हुए। चतु:श्लोकी भागवत का उपदेश देने के बाद भगवान ने कहा- ब्रह्माजी। इसी के सतत गा से आपको सृष्टि रचना का और मेरा तत्त्वत: बोध हो जायेगा। नारदजी नारायण का यह प्रताप ब्रह्मा से सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और वीणा बजाते व परमेश्वर का गुण गाते हुए चले गये।

सूतजी कहने लगे कि जब परब्रह्म परमात्मा ने सर्वप्रथम सृष्टि रचने की इच्छा की तो महतत्व अहंकार (पाँच महाभूत और ग्यारह इन्द्रियों) से पुरुष रूप धारण किया। जब प्रलय में जल ही जल हो जाता है तब वह भगवान योगनिद्रा से शेष शय्या पर सो जाते हैं। तदनन्तर उनकी नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मा से मरिच आदि ऋषि तथा उनसे देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मा भगवान का दिव्य दर्शन और दिव्य उपदेश पाकर धन्य हुये। वह दिव्य उपदेश दश लक्षणों से युक्त श्रीमद्भागवत पुराण अपने पुत्र नारदजीको चतु:श्लोकी भागवत के रूप में सुनाया। जो लोगों के हृदय को सम्यग् रूप से परिपूर्ण करता रहता है उसका नाम पुराण है।

८) चतु:श्लोकी भागवत

राजा परीक्षित के प्रश्नों का समाधान करते हुए श्रीशुकदेवजी ने कहा- राजन् जीवात्मा का सम्बन्ध इस शरीर से वास्तविक नहीं है अपितु अज्ञानकृत है। आत्मा तो शरीर से भिन्न एवं ज्ञान स्वरूप है। जिस तरह स्वप्नगत शरीरों से जीव का सम्बन्ध अज्ञान के कारण प्रतीत होता है; उसी तरह से जीवात्मा का संबंध अज्ञान के कारण प्रतीत होता है। माया से मोहित जीव शरीर में ही आत्मा की भावना करके अहंकार एवं ममकार से ग्रस्त हो जाता है। जब जीव को स्वस्वरूप का ज्ञान हो जाता है तो वह इस शरीर से उदासीन हो जाता है। ऐसा होने पर ही उसका मोक्ष होता है। जीव से ईश्वर की विशेषता यह है कि जीव का देह से संबंध अज्ञान के कारण होता है और ईश्वर का शरीर से सम्बन्ध योगमाया के कारण होता है। ईश्वराराधन से ही जीव को तत्त्वज्ञान होता है। भगवान की कृपा से ब्रह्माजी को तत्वज्ञान हुआ।

एक समय तप कीन्ह बिचारा। कौन मात और पिता हमारा।।
किसने अमल कमल उपजाया। किसके आश्रय कहाँ से आया।।
गगन गिरा सुनि तप हरषाये। करन लगे तप चित अति लाये।।
भये प्रगट जब जग आधारा। कह्यौ भागवत् धर्म अपारा।।
चार श्लोक विधिहि समुझाये। पाइ भेद ब्रह्मा हरषाये।।

नारायण ब्रह्मा से बोले, हे वत्स। मैं तुम्हें विज्ञान से समन्वित परम गुह्यज्ञान को उसके सभी अंगों और रहस्य के साथ बताता हूँ। उसे मेरे कहे हुए ज्ञान को तुम यथावत् ग्रहण करो। यह कहकर ब्रह्माको चतु:श्लोकी भागवत सुनायी और कहा इसका विस्तार करो।

१) अहम एवं आसम् एवं अग्रे न अन्यत यत सत् असत परम्,
पश्चात् अहम यत एत् च य: अवशिष्येत स: अस्मि अहम्।।३२।।
२) ऋते अर्थम् यत् प्रतीयेत य प्रतीयेत च आत्मनि,
तत् विद्यात आत्मन: मायाम् यथा आभास: यथा तम:।।३३।।
३) यथा महान्ति भूतानि भूतेषु-उच्च-अवचेषु अनु,
प्रविष्टानी अप्रविष्ठानि तथा तेषु न तेषु अहम्।।३४।।
४) एतावत् एवं जिज्ञास्यम् तत्व जिज्ञासुना आत्मन:,
अन्वय वयतिरेकाभ्याम् यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा।।३५।।

चतु:श्लोकी भागवत में चार तत्त्वोंका वर्णन है। पहले श्लोक में परमात्मतत्व है। सत्यका स्वरूप बताया है। परमात्मतत्व से ब्रह्मतत्वका वर्णन है। दूसरे श्लोक में मायातत्वका वर्णन है, तीसरे में जगत तत्वका वर्णन है और चौथे श्लोक में जीव के आत्मतत्त्वका वर्णन है।

सृष्टिके पूर्व केवल मैं-ही-मैं था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण अज्ञान। जहाँ वह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं-ही-मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं हूँ; और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं हूँ। वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मामें दो चन्द्रमाओंकी तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, अथवा विद्यमान होनेपर भी आकाश-मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे मेरी माया समझनी चाहिये। माया वह वस्तु है जो किसी वस्तु के न होने पर भी उसे दिखाये और यदि हो तो उसे ढक दे।

जैसे प्राणियोंके पञ्चभूतरचित छोटे-बड़े शरीरोंमें आकाशादि पञ्चमहाभूत उन शरीरोंके कार्यरूपसे निर्मित होनेके कारण प्रवेश करते भी हैं और पहलेसे ही उन स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किये हुए हूँ और आत्मदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ। यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं- इस प्रकार निषेधकी पद्धतिसे और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है- इस अन्वयकी पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं, वे ही वास्तविक तत्त्व हैं। जो आत्मा अथवा परमात्माका तत्त्व जानना चाहते हैं, उन्हें केवल इतना ही जाननेकी आवश्यकता है। अविद्या के निवृत्त होते ही जीव मुक्त होकर आत्मरूप में विराजमान हो जाता है। जीव को भगवान के भजन से, उनकी उपासना से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है। तत्वज्ञान होते ही जीव मुक्त हो जाता है।

जिसके अन्दर यह सार यही है हे ब्रह्मा मैं सत्य हूँ, बाकी सब असत्य है। हे ब्रह्मा मैं आदि हूँ, मैं अन्त हूँ, मैं मध्य हूँ। मैं जितनी योनियाँ, जितने जीव जो है उन सबमे मैं प्रविष्ट करूँगा उन सबमें मैं प्रविष्ट हूँ। लेकिन वो मुझमें नहीं है। जो कुछ दिखता है जो नहीं होनेपर भी दिखता है और जो होनेपर नहीं दिखता यह सब मेरी माया है। इसीको प्रपंच जान, इसीको संसार जान। इसलिये सत्य की पूजा कर, सत्य का नाम ले। यह काल तो भगवान के अन्दर अपने देहकी दृष्टिसे कल्पित करता है। ईश्वर ज्यों-का-त्यों रहता है। ईश्वर के सिवाय न कोई स्थूल है, न सूक्ष्म है, न चर है, न अचर है। सब में वही है। पहले भी वही है, पीछे भी वही है और जो कुछ बच रहेगा वह अशविष्ट तत्त्व भी वही है। ईश्वर के अतिरिक्त दूसरे किसी वस्तुकी सत्ता ही नहीं है। जिसके होनेसे सब मालूम पड़ता है और सबके बिना भी जो मालूम पड़ता है उस चीजको तुम अच्छी तरह जान लो। उसको जान लेनेपर तुम देखोगे कि वह वस्तु तुम्हारी आत्मासे एक है और उसीसे वहीं सत्यका साक्षात्कार होता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पाँच तत्वों से सब शरीरोंका निर्माण होता है और उसीसे सृष्टि बनती है। **क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंचरचित अति अधम शरीरा ।।**

सृजन केवल परमात्मा कर सकता है, मनुष्य केवल चारी या अनुकरण कर सकता है।

हे ब्रह्माजी, मैं दुनियां में रहकर भी दुनियां से अलग हूँ, और अलग रहकर भी सारी दुनियां में व्याप्त हूँ। आत्मा के तत्वों को समझनेवाले जिज्ञासुओं को यही समझ लेना पर्याप्त है। अनेक रूप से जो सर्वत्र विद्यमान रहे, वो ही दिव्यात्मा है।

नारायण ने ब्रह्मा से कहा- मैं जितना हूँ, मेरा जैसा भाव है, मेरा जैसा रूप तथा गुण कर्म हैं इन सबका तत्त्वत: ज्ञान तुम्हें मेरी ही कृपा से हो जायगा। सृष्टि से पूर्व मैं ही था, उस समय सत् असत् और इनसे परे जो प्रकृति है, ये कुछ नहीं थे। सृष्टि के अन्त में मैं ही रहूंगा यह जो दृश्यमान जगत है वह भी मैं ही हूँ और जो कुछ बचा रहता है वह भी मैं ही हूँ। बिना अर्थ के जो आभास की भाँति प्रतीत होता है। आत्मा में नित्य विद्यमान होने पर भी जो तम की भाँति प्रतीत होता है। आत्मा में नित्य विद्यमान होने पर भी जो तम की भाँति प्रतीत न हो, उसे ही आत्मा की माया समझो। जिस प्रकार छोटे-बड़े सभी जीवों में ये पंचभूत प्रविष्ट हुए बिना भी प्रविष्ट हुए से प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार मैं भी सम्पूर्ण प्राणियों में उनके आत्मस्वरूप से स्थित होता हुआ भी सर्वदा उनसे पृथक ही हूँ। अन्वय और व्यतिरेक दोनों कारणों से यही सिद्ध होता है कि वह सदा और सर्वत्र व्याप्त है। हे ब्रह्मन। बस, आत्मतत्त्व के जानने की इच्छा वालों को इतना ही जानने योग्य है। जिसने इतना जान लिया, उसने सब कुछ जान लिया।

ये आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र इत्यादि दिखाई पड़ रहे हैं, ये पंचमहाभूत से बने अण्ड-पिण्ड ये कुछ नहीं थे। इससे पहले मैंने संकल्प किया (एकोऽम् बहुस्याम) उससे भी पहले ये कुछ नहीं था। समस्त का विलीन हो जाने के बाद जो बचेगा वह भी मैं ही हूं, मैं ही रहूंगा, अर्थात मैं वह तत्त्व हूं जो पहले भी था बीच में विभिन्न रूपों में प्रतिभासित हो रहा

हूँ और अन्त में भी रहूंगा। चतु:श्लोकी भागवत में पहले अपनी अनादिता, अनन्तता, व्यापकता बताई।

जैसे इन पंचीकृत ब्रह्माण्डात्मक जगत में पंचमहाभूत (छिति जल पावक गगन समीरा) ये कार्यरूप से सबमें अनुगत भी हैं और कारणरूप से सबसे पृथक भी है चाहे छोटे-मोटे पिण्ड हो चाहे विशाल ब्रह्माण्ड हो भगवान कहते हैं। मैं अन्तर्यामी रूप से सब में अनुगत भी हूं, प्रविष्ट भी हूं और सबसे परे भी हूं।

परमात्मा को ढकने वाली और अन्त हुए जगत् को दिखानेवाली शक्ति का नाम ही माया है। विषय के न रहने पर भी जो प्रतीति होती है, वही माया है। दूसरे श्लोक में माया का स्वरूप बताया, जो नहीं है, उसमें है का भाव करा देना, जो है उसमें नहीं का भाव करा देना, ये माया का काम है। विमुख जननी माया, जीव और शिव, मुझे और जीव को अलग करनेवाली है, सत्य को असत्य बना दे, असत्य को सत्य बना दे यही मेरी माया है। यहां जो कुछ है, इस सृष्टि में जो ऐश्वर्यमय है, जो सुंदरमर है, जिसमें चेतना है, वह सर्वस्व मैं ही हूं। माया का मौलिक अर्थ है- भ्रांति की कला। माया का मौलिक अर्थ है- जादू। उसका अर्थ है कि जो नहीं है वह भी दिखाई पड़ सकता है, इसकी भी संभावना है। जो है वह छिप सकता है और जो नहीं है वह प्रगट हो सकता है।

यह दृश्यमान जड़चेतनात्मक जगत् कुछ भी नहीं था। इस सृष्टि के पश्चात् भी मैं ही रह जाऊंगा। मैं ही जगत् स्वरूप हूँ।

दो चन्द्रमा नहीं होने पर भी दो चन्द्रमा का आभास करा देना ये माया की वृत्ति है और जो है उसमें नहीं का भाव कर देना, ये भी माया की वृत्ति है। जैसे आकाश में दो चन्द्रमा नहीं होते किन्तु अज्ञानरूपी दोष के कारण दो चन्द्रों की प्रतीति होती है। वह प्रतीति परमात्मविषयणी प्रतीति नहीं है अपितु वह प्रतीति परमात्मा की माया के कारण होती है। जिस तरह आकाश में गन्धर्व नगर नहीं होता फिर भी आकाश में गन्धर्व नगर की प्रतीति होती है। जिस तरह पाँचों भूत महान हैं। वे किसी के भी शरीर में प्रविष्ट नहीं है। फिर भी वे कारण रूप से सबों के शरीर में प्रविष्ट है। इसी तरह मैं सबों से पृथक् होकर भी सबों के भीतर आत्मा रूप से प्रविष्ट हूँ आत्मतत्व के जिज्ञासु व्यक्ति को यही जानना चाहिए कि जो अन्वय व्यतिरेक के द्वारा सर्वदा विद्यमान रहे वही आत्मा है। इसके लिये यथा तम घोर तमोगुणी असुर राहू नवग्रह के रूप में एक है। आकाश में है लेकिन दिखाई नहीं पड़ता। सूर्य दिखता है, चन्द्रमा दिखता है, बृहस्पति तारा, शुक्र तारा सब दीखते हैं। लेकिन राहू होते हुए भी नहीं दिखता, सूर्य, चन्द्र ग्रहण के समय उसका अनुभव होता है। ये पड़ी उसकी छाया सूर्य चन्द्र के प्रतिबिम्ब में जब कटाव दिखता है, तब पता चलता है, राहू है, है मैं नहीं का भाव करा देना सत् में असत् का भाव करा देना नश्वर में अविनाशी का भाव करा देना अविनाशी में नश्वर का भाव करा देना। रज्जु में सर्प का और सर्प में रज्जु का भाव करा देना ये माया की वृत्ति है।

जैसे शरीर मां के पेट में आने से पहले नहीं था। चिता में जाने के बाद में भी नहीं रहेगा। लेकिन बीच में है, का भाव करा देती है। यही माया है। आत्मा सत् चेतन है। फिर भी आत्मा तो कोई चीज नहीं है, ऐसा बताना ये माया की वृत्ति है। सीप में चाँदी नहीं है, पर सीप में चाँदी का आभास करा देना, यह माया की वृत्ति है। अनुभवस्वरूप आत्मा का माया के बिना संसार के पदार्थों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। विविध रूपवाली माया या अविद्या के कारण ही जीव की बाल, युवा आदि अवस्थाएँ प्रतीत होती है।

आओ भक्तों यह ब्रह्मा के उत्पत्ति का मैंने एक प्रसंग बतलाया है। यह जो चतु:श्लोकी भागवत है इसमें उन्होंने बतायी है, यही भागवत उन्होंने हंस का अवतार लेकर ऋषियोंको भी सुनायी है। सबसे पहले हम उस हरि की आराधना करेंगे कि जिसने हम सबको बनाया है, जिसने सृष्टि को बनाया है। इसप्रकार चतु:श्लोकी भागवत में भगवानने ब्रह्माजीको निमित्त बनाकर समस्त जिज्ञासुओंको अपने अनन्त विस्तारका, अपनी मायाके खेलका, सृष्टिकी उत्पत्तिका और जीव-जगत्के अन्तिम ज्ञातव्यका वर्णन किया है। यह जो आप भजन, कीर्तन, भागवत कथा जितना भी जो कुछ करते है यह समझिये

हम उस हरि का धन्यवाद अदा करते है जिसने हमें दुनिया देखने को दी। **ऐ मालिक तेरे बन्दे हम।**

परम तत्व के जिज्ञासु को आत्म कल्याणार्थ के लिए इतनी जिज्ञासा ही करनी चाहिये। इतनी ही जिज्ञासा का समाधान पर्याप्त है। वह कौन सा तत्व है जो अन्वय भाव से सब जगह सबमें उसकी सत्ता सिद्ध होती है। जो सबमें अनुगत भी हो और व्यतिरेक भाव से जो सबसे परे भी हो, (स्यात् सर्वत्र सर्वदा) जो सर्वत्र हो, सर्वदा रहने वाला हो, वही परम तत्व है परमात्म तत्व है। उसी की जिज्ञासा करनी चाहिये। उसी की सर्वत्र अनुभूति करनी चाहिये। आत्मा को परमात्मा से अलग न मानना ही आत्मा का ज्ञान है, क्योंकि ईश्वर ही आत्मा के रूप में है। आत्मा परमात्मा से अलग नहीं है।

ब्रह्माजी को प्रसन्न जानकर नारद जी ने भी उनसे वही प्रश्न किया जिस प्रश्न को तुमने मुझसे किया है और उनका समाधान करते हुए ब्रह्माजी ने उन्हे श्रीमद्भागवत्शास्त्र का उपदेश दिया।

बोले ब्रह्मा-बिभो। जीव जग तत्त्व बतावें। दिव्य भागवत धरम सार संक्षिप्त सुनावें।।
हँसि हरि बोले- मोइ कृपा हीतें सब पावें। आदि अन्त मैं रहूँ, नेति कहि निगम जनावें।।
बिना भये दीखै गुही, माया मेरी मानियो। अन्वय अरु व्यतिरेकतें, सदा मोइ पहिचानियो।।

ये शेषशायी विष्णु, नारायण भी कहे गए हैं। नारायण का अर्थ है नार यानी जल में निवास करनेवाले। नारायण का एक अर्थ है, जिसमें समस्त नरों का अयन यानी आवास है। उनके ये सभी नाम अत्यंत प्रतीकात्मक और गहरे अर्थवाले है।

ऋग्वेद के अनुसार संपूर्ण विश्व और भूत विष्णु के पाद यानी चरण हैं। आकाश का अमर अंश है विष्णु का त्रिपाद यानी तीसरा चरण। ब्रह्मा से विराट उत्पन्न हुए और विराट से अधिपुरुष। गीता में कृष्ण ने अर्जुन को जो विराट रूप दिखाया था, वह समस्त लोकों से युक्त यही रूप था।

पुराणों में ऐसा वर्णन है कि विराट ब्रह्मा के प्रथम पुत्र हैं। ब्रह्मा के दो अंश स्त्री और पुरुष हैं। स्त्री अंश से विराट हुए जिससे अपने आप उत्पन्न मनु से प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई। विष्णु की चौबीस प्रकार की मूर्तियां पाई जाती हैं। इनका वर्णन पद्म पुराण के पाताल खंड में है। विष्णु का अवतार युगों के अनुसार होता है। इसलिए इनकी मूर्ति भी युगानुकूल होती है। पद्मपुराण और रूपमंडल नामक ग्रंथों में इन मूर्तियों की व्याख्या इस प्रकार है- केशव यानी लंबे केश वाले, माधव यानी मायापति और ज्ञानपति, गोविंद यानी पृथ्वी के रक्षक, विष्णु यानी सर्वव्यापक, जनार्दन यानी भक्तों के पालनहार, उपेंद्र यानी इंद्र के भाई, हरि यानी दुख, दरिद्र और पाप का हरण करनेवाले, वासुदेव यानी विश्वात्मा, कृष्ण यानी आकर्षित करनेवाले और श्याम यानी कृष्ण वर्णवाले।

शुकदेव बोले- प्रलयकाल में यह सृष्टि विलुप्त हो गयी थी। यही प्रश्न नारदने ब्रह्मासे किया था कि १) इस संसार का क्या लक्षण है? २) इसका आधार क्या है? ३) यह संसार किसके अधीन है? ४) वास्तव में यह क्या वस्तु है? ५) इसका अवसान किस प्रकार और किसमें होता है? ६) इसका स्वामी कौन है? ७) आपका स्वरूप क्या है?

तब ब्रह्माने नारद को उत्तर दिया- ब्रह्माजीने कहा- पुत्र नारद। जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे उन्हींके प्रकाशसे प्रकाशित होकर जगत्में प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही मैं भी उन्हीं स्वयंप्रकाश भगवान्के चिन्मय प्रकाशसे प्रकाशित होकर संसारको प्रकाशित कर रहा हूँ। उन भगवान वासुदेवकी मैं वन्दना करता हूँ और ध्यान भी, जिनकी दुर्जय मायासे मोहित होकर लोग मुझे जगद्गुरु कहते हैं। यह माया तो उनकी आँखोंके सामने ठहरती ही नहीं, झेंपकर दूरसे ही भाग जाती है। परन्तु संसारके अज्ञानी जन उसीसे मोहित होकर यह मैं हूँ, यह मेरा है इस प्रकार बकते रहते हैं। भगवत्स्वरूप नारद। द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव- वास्तवमें भगवान्से भिन्न दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है। वेद नारायणके परायण हैं।

देवता भी नारायणके ही अङ्गोंमें कल्पित हुए हैं, और समस्त यज्ञ भी नारायणकी प्रसन्नताके लिये ही हैं तथा उनसे जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, वे भी नारायणमें ही कल्पित हैं। सब प्रकारके योग भी नारायणकी प्राप्तिके ही हेतु है। सारी तपस्याएँ नारायणकी ओर ही ले जानेवाली हैं, ज्ञानके द्वारा भी नारायण ही जाने जाते हैं। समस्त साध्य और साधनोंका पर्यवसान भगवान् नारायणमें ही है। वे द्रष्टा होनेपर भी ईश्वर हैं, स्वामी हैं; निर्विकार होनेपर भी सर्वस्वरूप हैं। उन्होंने ही मुझे बनाया है और उनकी दृष्टिसे ही प्रेरित होकर मैं उनके इच्छानुसार सृष्टि-रचना करता हूँ। भगवान मायाके गुणोंसे रहित एवं अनन्त हैं। सृष्टि, स्थिति और प्रलयके लिये रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण- ये तीन गुण मायाके द्वारा उनमें स्वीकार किये गये हैं। ये ही तीनों गुण द्रव्य, ज्ञान और क्रियाका आश्रय लेकर मायातीत नित्यमुक्त पुरुषको ही मायामें स्थित होनेपर कार्य, कारण और कर्तापनके अभिमानसे बाँध लेते हैं। नारद। इन्द्रियातीत भगवान् गुणोंके इन तीन आवरणोंसे अपने स्वरूपको भलीभाँति ढक लेते हैं, इसलिये लोग उनको नहीं जान पाते। सारे संसारके और मेरे भी एकमात्र स्वामी वे ही हैं।

मायापति भगवान्ने एकसे बहुत होनेकी इच्छा होनेपर अपनी मायासे अपने स्वरूपमें स्वयं प्राप्त काल, कर्म और स्वभावको स्वीकार कर लिया। भगवान्की शक्तिसे ही कालने तीनों गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया, स्वभावने उन्हें रूपान्तरित कर दिया और कर्मने महत्तत्त्वको जन्म दिया। रजोगुण और सत्त्वगुणकी वृद्धि होनेपर महत्तत्त्वका जो विकार हुआ, उसने ज्ञान, क्रिया और द्रव्यरूप तम:प्रधान विकार हुआ। वह अहंकार कहलाया और विकारको प्राप्त होकर तीन प्रकारका हो गया। उसके भेद हैं- वैकारिक, तेजस और तामस। नारदजी। वे क्रमश: ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्तिप्रधान हैं। जब पञ्चमहाभूतोंके कारणरूप तामस अहंकारमें विकार हुआ, तब उससे आकाशकी उत्पत्ति हुई। आकाशकी तन्मात्रा और गुण शब्द है। इस शब्दके द्वारा ही द्रष्टा और दृश्यका बोध होता है। जब आकाशमें विकार हुआ, तब उससे वायुकी उत्पत्ति हुई; उसका गुण स्पर्श है। अपने कारणका गुण आ जानेसे यह शब्दवाला भी है। इन्द्रियोंमें स्फूर्ति, शरीरमें जीवनीशक्ति, ओज और बल इसीके रूप हैं। काल, कर्म और स्वभावसे वायुमें भी विकार हुआ। उससे तेजकी उत्पत्ति हुई। इसका प्रधान गुण रूप है। साथ ही इसके कारण आकाश और वायुके गुण शब्द एवं स्पर्श भी इसमें हैं। तेजके विकारसे जलकी उत्पत्ति हुई। इसका गुण है रस, करण-तत्त्वोंके गुण शब्द, स्पर्श और रूप भी इसमें हैं। जलके विकारसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई, इसका गुण है गन्ध। कारणके गुण कार्यमें आते हैं- इस न्याससे शब्द, स्पर्श, रूप और रस- ये चारों गुण भी इसमें विद्यमान हैं। वैकारिक अहमारसे मनकी और इन्द्रियोंके दस अधिष्ठातृ-देवताओंकी भी उत्पत्ति हुई। उनके नाम हैं- दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति। तेजस अहमारके विकारसे श्रोत्र, त्वचा, नेत्र जिव्हा और प्राण- ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं वाक्, हस्त, पाद, गुदा और जननेन्द्रिय- ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। साथ ही ज्ञानशक्तिरूप बुद्धि और क्रियाशक्तिरूप प्राण भी तेजस अहमारसे ही उत्पन्न हुए।

श्रेष्ठ ब्रह्मवित्। जिस समय ये पञ्चभूत, इन्द्रिय, मन और सत्त्व आदि तीनों गुण परस्पर संगठित नहीं थे, तब अपने रहनेके लिये भोगोंके साधनरूप शरीरकी रचना नहीं कर सके। जब भगवान्ने इन्हें अपनी शक्तिसे प्रेरित किया, तब वे तत्त्व परस्पर एक दूसरेके साथ मिल गये और उन्होंने आपसमें कार्य-कारणभाव स्वीकार करके व्यष्टि-समष्टिरूप पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनोंकी रचना की। वह ब्रह्माण्डरूप अंडा एक सहस्र वर्षतक निर्जीवरूपसे जलमें पड़ा रहा; फिर काल, कर्म और स्वभावको स्वीकार करनेवाले भगवान्ने उसे जीवित कर दिया। उस अंडेको फोड़कर उसमेंसे वही विराट् पुरुष निकला, जिसकी जङ्घा, चरण, भुजाएँ, नेत्र, मुख और सिर सहस्रोंकी संख्यामें हैं। विद्वान पुरुष (उपासनाके लिये) उसीके अङ्गोंमें समस्त लोक और उनमें रहनेवाली वस्तुओंकी कल्पना करते हैं। उसकी कमरसे नीचेके अङ्गोंमें सातों पातालकी और उसके पेड़से ऊपरके अङ्गोंमें सातों

स्वर्गकी कल्पना की जाती है। ब्राह्मण इस विराट् पुरुषका मुख हैं, भुजाएँ क्षत्रिय हैं, जाँघोंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं। पैरोंसे लेकर कटिपर्यन्त सातों पाताल तथा भूलोककी कल्पना की गयी है; नाभिमें भुवर्लोककी, हृदयमें स्वर्लोककी और परमात्माके वक्ष:स्थलमें महर्लोककी कल्पना की गयी है। उसके गलेमें जनलोक, दोनों स्तनोंमें तपोलोक और मस्तकमें ब्रह्माका नित्य निवासस्थान सत्यलोक है। उस विराट् पुरुषकी कमरमें अतल, जाँघोंमें वितल, घुटनोंमें पवित्र सुतललोक और जङ्घाओंमें तलातलकी कल्पना की गयी है। एड़ीके ऊपरकी गाँठोंमें महातल, पंजे और एड़ियोंमें रसातल और तलुओंमें पाताल समझना चाहिये। इस प्रकार विराट पुरुष सर्वलोकमय है। विराट् भगवानके अङ्गोंमें इस प्रकार भी लोकोंकी कल्पना की जाती है कि उनके चरणोंमें पृथ्वी है, नाभिमें भुवर्लोक है और सिरमें स्वर्लोक है।

ब्रह्माजी कहते हैं- उन्हीं विराट् पुरुषके मुखसे वाणी और उसके अधिष्ठातृदेवता अग्नि उत्पन्न हुए हैं। सातों छन्द- गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, पंक्ति और जगती- ये सात छन्द है। उनकी सात धातुओंसे निकले हैं। मनुष्यों, पितरों और देवताओंके भोजन करनेयोग्य अमृतमय अन्न, सब प्रकरके रस, रसनेन्द्रिय और उसके अधिष्ठातृदेवता वरुण विराट् पुरुषकी जिव्हासे उत्पन्न हुए हैं। उनके नासाछिद्रोंसे प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान- ये पाँचों प्राण और वायु तथा घ्राणेन्द्रियसे अश्विनीकुमार, समस्त औषधियाँ एवं साधारण तथा विशेष गन्ध उत्पन्न हुए हैं। उनकी नेत्रेन्द्रिय रूप और तेजकी तथा नेत्र-गोलक स्वर्ग और सूर्यकी जन्मभूमि हैं। समस्त दिशाएँ और पवित्र करनेवाले तीर्थ कानोंसे तथा आकाश और शब्द श्रोत्रेन्द्रियसे निकले हैं। उनका शरीर संसारकी सभी वस्तुओंके सारभाग तथा सौन्दर्यका खजाना है। सारे यज्ञ, स्पर्श और वायु उनकी त्वचासे निकले हैं; उनके रोम सभी उद्भिज्ज पदार्थोंके जन्मस्थान हैं, अथवा केवल उन्हींके, जिनसे यज्ञ सम्पन्न होते हैं। उनके केश, दाढ़ी-मूँछ और नखोंसे मेघ, बिजली, शिला एवं लोहा आदि धातुएँ तथा भुजाओंसे प्राय: संसारकी रक्षा करनेवाले लोकपाल प्रकट हुए हैं। उनका चलना-फिरना भू:, भुव:, स्व:- तीनों लोकोंका आश्रय है। उनके चरणकमल प्राप्तकी रक्षा करते हैं और भयोंको भगा देते हैं तथा समस्त कामनाओंकी पूर्ति उन्हींसे होती है। विराट पुरुषका लिङ्ग जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापतिका आधार है तथा उनकी जननेन्द्रिय मैथुनजनित आनन्दका उद्गम है। नारदजी। विराट पुरुषकी पायु-इन्द्रिय यम, मित्र और मलत्यागका तथा गुदाद्वार हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु और नरकका उत्पत्तिस्थान है। उनकी पीठसे पराजय, अधर्म और अज्ञान, नाड़ियोंसे नद-नदी और हड्डियोंसे पर्वतोंका निर्माण हुआ है। उनके उदरमें मूल प्रकृति, रस नामकी धातु तथा समुद्र, समस्त प्राणी और उनकी मृत्यु समायी हुई है। उनका हृदय ही मनकी जन्मभूमि है। नारद। हम, तुम, धर्म, सनकादि, शमर, विज्ञान और अन्त:करण- सब-के-सब उनके चित्तके आश्रित हैं। (कहाँतक गिनायें-) मैं, तुम, तुम्हारे बड़े भाई सनकादि, शमर, देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग, रेंगनेवाले जन्तु, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष, राक्षस, भूत-प्रेत, सर्प, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष और भी नाना प्रकारके जीव- जो आकाश, जल या स्थलमें रहते हैं- ग्रह-नक्षत्र, केतु (पुच्छल तारे), तारे, बिजली और बादल- ये सब-के-सब विराट् पुरुष ही हैं। यह सम्पूर्ण विश्व- जो कुछ कभी था, है या होगा- सबको वह घेरे हुए है और उसके अंदर यह विश्व उसके केवल दस अंगुलके परिमाणमें ही स्थित है। जैसे सूर्य अपने मण्डलको प्रकाशित करते हुए ही बाहर भी प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही पुराणपुरुष परमात्मा भी सम्पूर्ण विराट् विग्रहको प्रकाशित करते हुए ही उसके बाहर-भीतर- सर्वत्र एकरस प्रकाशित हो रहा है। मुनिवर। जो कुछ मनुष्यकी क्रिया और समल्पसे बनता है, उससे वह परे है और अमृत एवं अभयपद (मोक्ष) का स्वामी है। यही कारण है कि कोई भी उसकी महिमाका पार नहीं पा सकता। सम्पूर्ण लोक भगवान्के एक पादमात्र (अंशमात्र) हैं तथा उनके अंशमात्र लोकोंमें समस्त प्राणी निवास करते हैं। भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकके ऊपर महर्लोक है। उसके

ब्रह्माण्ड का विस्तार

(त्रिलोकी का विस्तार)

१४ लोक

ध्रुवलोक

विष्णुलोक

सत्यलोक, ब्रह्मलोक

तपलोक

१) भुव लोक — जनलोक

आकाश — महलोक

ऊर्ध्वलोक — स्वर्लोक

भूर्वलोक, स्वर्ग- नरक, अन्तरिक्ष

२) भूतल, मनुष्य लोक, मृत लोक, भूलोक, पृथ्वी, तल

अतल

वितल

सुतल

३) अध:लोक — तलातल

महातल

रसातल

पाताल (शेष लोक)

भी ऊपर जन, तप और सत्यलोकोंमें क्रमश: अमृत, क्षेम एवं अभयका नित्य निवास है।

जन, तप और सत्य- इन तीनों लोकोंमें ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं संन्यासी निवास करते हैं। दीर्घकालीन ब्रह्मचर्यसे रहित गृहस्थ भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकके भीतर ही निवास करते हैं। शास्त्रोंमें दो मार्ग बतलाये गये हैं- एक अविद्यारूप कर्म-मार्ग, जो सकाम पुरुषोंके लिये है और दूसरा उपासनारूप विद्याका मार्ग, जो निष्काम उपासकोंके लिये है। मनुष्य दोनोंमेंसे किसी एकका आश्रय लेकर भोग प्राप्त करानेवाले दक्षिणमार्गसे अथवा मोक्ष प्राप्त करानेवाले उत्तरमार्गसे यात्रा करता है; किन्तु पुरुषोत्तम भगवान् दोनोंके आधारभूत हैं। जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे सबको प्रकाशित करते हुए भी सबसे अलग हैं, वैसे ही जिन परमात्मासे इस अण्डकी और पञ्चभूत, एकादश इन्द्रिय एवं गुणमय विराट्की उत्पत्ति हुई है- वे प्रभु भी इन समस्त वस्तुओंके अंदर और उनके रूपमें रहते हुए भी उनसे सर्वथा अतीत हैं।

जिस समय इस विराट पुरुषके नाभि-कमलसे मेरा जन्म हुआ, उस समय इस पुरुषके अङ्गोंके अतिरिक्त मुझे और कोई भी यज्ञकी सामग्री नहीं मिली। तब मैंने उनके अङ्गोंमें ही यज्ञके पशु, यूप (स्तम्भ), कुश, यह यज्ञभूमि और यज्ञके योग्य उत्तम कालकी कल्पना की। ऋषिश्रेष्ठ। यज्ञके लिये आवश्यक पात्र आदि वस्तुएँ, जौ, चावल, आदि औषधियाँ, घृत आदि स्नेहपदार्थ, छ: रस, लोहा, मिट्टी, जल, ऋक्, यजु:, साम, चातुर्होत्र, यज्ञोंके नाम, मन्त्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओंके नाम, पद्धतिग्रन्थ, समल्प, तन्त्र (अनुष्ठानकी रीति), गति, मति, श्रद्धा, प्रायश्चित्त और समर्पण- यह समस्त यज्ञ-सामग्री मैंने विराट् पुरुषके अङ्गोंसे ही इकट्ठी की। इस प्रकार विराट् पुरुषके अङ्गोंसे ही सारी सामग्रीका संग्रह करके मैंने उन्हीं सामग्रियोंसे उन यज्ञस्वरूप परमात्माका यज्ञके द्वारा यजन किया। तदनन्तर तुम्हारे बड़े भाई इन नौ प्रजापतियोंने अपने चित्तको पूर्ण समाहित करके विराट् एवं अन्तर्यामीरूपसे स्थित उस पुरुषकी आराधना की। इसके पश्चात् समय-समयपर मनु, ऋषि, पितर, देवता, दैत्य और मनुष्योंने यज्ञोंके द्वारा भगवान्की आराधना की। नारद। यह सम्पूर्ण विश्व उन्हीं भगवान् नारायणमें स्थित है, जो स्वयं तो प्राकृत गुणोंसे रति हैं, परन्तु सृष्टिके प्रारम्भमें मायाके द्वारा बहुत-से गुण ग्रहण कर लेते हैं। उन्हींकी प्रेरणासे मैं इस संसारकी रचना करता हूँ। उन्हींके अधीन होकर रुद्र इसका संहार करते हैं और वे स्वयं ही विष्णुके रूपसे इसका पालन करते हैं। क्योंकि उन्होंने सत्त्व, रज और तमकी तीन शक्तियाँ स्वीकार कर रखी हैं। बेटा। जो कुछ तुमने पूछा था, उसका उत्तम मैंने तुम्हें दे दिया; भाव या अभाव, कार्य या कारणके रूपमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो भगवान्से भिन्न हो।

प्यारे नारद। मैं प्रेमपूर्ण एवं उत्कण्ठित हृदयसे भगवान्के स्मरणमें मग्न रहता हूँ, इसीसे मेरी वाणी कभी असत्य होती नहीं दीखती, मेरा मन कभी असत्य संकल्प नहीं करता और मेरी इन्द्रियाँ भी कभी मर्यादाका उल्लंघन करके कुमार्गमें नहीं जातीं। मैं वेदमूर्ति हूँ, मेरा जीवन तपस्यामय है, बड़े-बड़े प्रजापति मेरी वन्दना करते हैं और मैं उनका स्वामी हूँ। पहले मैंने बड़ी निष्ठासे योगका सर्वाङ्ग अनुष्ठान किया था, परन्तु मैं अपने मूलकारण परमात्माके स्वरूपको नहीं जान सका। (क्योंकि वे तो एकमात्र भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं।) मैं तो परम मङ्गलमय एवं शरण आये हुए भक्तोंको जन्म-मृत्युसे छुड़ानेवाले परम कल्याणस्वरूप भगवान्के चरणोंको ही नमस्कार करता हूँ। उनकी मायाकी शक्ति अपार है; जैसे आकाश अपने अन्तको नहीं जानता, वैसे ही वे भी अपनी महिमाका विस्तार नहीं जानते। ऐसी स्थितिमें दूसरे तो उसका पार पा ही कैसे सकते हैं? मैं, मेरे पुत्र तुम लोग और शमरजी भी उनके सत्य स्वरूपको नहीं जानते; तब दूसरे देवता तो उन्हें जान ही कैसे सकते हैं। हम सब इस प्रकार मोहित हो रहे हैं कि उनकी मायाके द्वारा रचे हुए जगत्को भी ठीक-ठीक नहीं समझ सकते, अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार ही अटकल लगाते हैं।

भगवान के भक्त का नाम भागवत है। भगवान के निवास का नाम भागवत है। भगवान के उपदेश का नाम भागवत है।

भगवान के प्रियजनों का नाम भागवत है। जो कोई भी भगवान से संबंध जोड़ ले वो भागवत हो जाता है।

परीक्षित बोले- मुनिवर, भगवान जल्दी किसको मिलते है? क्या जो दिन में पांच बार स्नान करता है उसको मिलते होंगे? या जिसका आचरण ऊंचा हो, या जो आयुमें वयोवृद्ध हो? या जो बहुत पढ़ा-लिखा हो? या जिसकी जाति, कुल ऊँचा हो? जो अधिक भाग्यवान और पुरुषार्थ करता हो? या जिसका रूप सुन्दर हो? या फिर वो बहुत बड़ा धनी हो?

शुकदेव बोले-

व्याध्यस्याचरणं धुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का, का जातिर्विदुरस्य यादव पते रुग्रस्य किं पौरुषम।
कुब्जाया: किमु तत्र रूप मधिकं किं तत्सुदाम्नो धनं, भक्त्या तुष्यति केवलं परमया भक्तिप्रियो माधव: ।।

परीक्षित बोले, राजन्। यदि बार-बार नहाने से भगवान मिल जाते तो जिन कोल भीलों को रामजी ने गले लगाया, ये कोल भील तो महीनों तक नहाते ही नहीं और विशेषकर जाड़े के दिनों में। अगर भगवान बड़ी उम्रवाले को मिलते तो ध्रुव जी को क्यों मिले। जिनकी आयु सिर्फ पांच वर्ष की थी। अगर भगवान किसी पढ़े-लिखे को मिलते तो जैसे विद्वान हो, शास्त्रों का ज्ञाता हो। तो गजेन्द्र को क्यों मिले? वो तो कोई पढ़ा लिखा नहीं था। उसके पास तो कोई उपाधि नहीं थी। न भगवान किसीकी बिरादरी, जाति या कुल देखते। विदुरजी तो दासीपुत्र थे। उन्होंने तो विदुर के घर में केले के छिलके खाएं। अगर किसी रूपवान को मिलते तो कुब्जा तो स्वरूप में सुन्दर नहीं थी उसको क्यों मिले? भगवान तो अधम से अधम योनि के जीव बन्दरों को (हनुमानजी), शबरी (भील, शूद्र), पक्षियों मे (जटायू, अधम योनि), अपने हर अनन्य भक्तको प्राप्त होते है।

९) नारायणके विभिन्न अवतार

ब्रह्माने वर्णन किये, चौबीस हरि अवतार। कर्म रूप गुण आदि सब, ब्रह्म कीन्ह विस्तार ।।

भगवान अनन्त है, उनके अवतार अनन्त है और उनकी लीलायें भी अनन्त है। हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता।

चेतन तत्त्व ही नहीं, जड़ तत्त्व है और चेतन उसका विमर्श है। वहाँ अवतारका कोई प्रसंग ही नहीं। इसी प्रकार जैन-मतमें तत्पदार्थरूप परमात्मा नहीं, केवल त्वं-पदार्थरूप जीव है। इसलिए उनके यहाँ भी अवतारका कोई प्रश्न नहीं। वहाँ तो जीव अपनेको शुद्ध करके तीर्थंकर, वीतराग, महापुरुष-पदवीपर पहुंचता है। बौद्ध-मतमें भी तत्पदार्थरूप परमेश्वर नहीं तो अवतार कहाँसे होगा? मुसलमान, ईसाई और आर्यसमाजके यहाँ ईश्वर तो है परन्तु वह निराकारतामें ऐसा फँस गया है कि उसमें साकार होनेका सामर्थ्य ही नहीं रहा। फिर वह अवतार कहाँसे लेगा? परन्तु जिनका परमेश्वर सब है वह सब रूपमें प्रकट हो सकता है। क्योंकि उसके अतिरिक्त तो दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। ये सारे के सारे अवतार भगवान विराट की विभूतियाँ है। भगवान अनन्त हैं, भगवान के गुण और नाम अनन्त हैं। शेष सहस्त्र मुखों से उनके गुणों का गान करते आ रहे हैं, परन्तु वे भी उसके अन्त की कल्पना नहीं कर सके।

हमलोग केवल जिनके अवतारकी लीलाओंका गान ही करते रहते हैं, उनके तत्त्वको नहीं जानते- उन भगवान्के श्रीचरणोंमें मैं नमस्कार करता हूँ। वे अजन्मा एवं पुरुषोत्तम हैं। प्रत्येक कल्पमें वे स्वयं अपने आपमें अपने आपकी ही सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं और संहार कर लेते हैं। वे मायाके लेशसे रहित, केवल ज्ञानस्वरूप हैं और अन्तरात्माके रूपमें एकरस स्थित हैं। वे तीनों कालमें सत्य एवं परिपूर्ण हैं; न उनका आदि है न अन्त। वे तीनों गुणोंसे रहित, सनातन एवं अद्वितीय हैं। नारद। महात्मालोग जिस समय अपने अन्त:करण, इन्द्रिय और शरीरको शान्त कर लेते हैं, उस समय उनका साक्षात्कार करते हैं। परन्तु जब असत्पुरुषोंके द्वारा कुतर्कोंका जाल बिछाकर उनको ढक दिया जाता है, तब उनके दर्शन नहीं हो पाते।

परमात्माका पहला अवतार विराट् पुरुष है; उसके सिवा काल, स्वभाव, कार्य, कारण, मन, पञ्चभूत, अहमार, तीनों गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड-शरीर, उसका अभिमानी, स्थावर और जङ्गम जीव- सब-के-सब उन अनन्त भगवान्‌के ही रूप हैं। मैं, शंकर, विष्णु, दक्ष आदि ये प्रजापति, तुम और तुम्हारे-जैसे अन्य भक्तजन, स्वर्गलोकके रक्षक, पक्षियोंके राजा, मनुष्यलोकके राजा, नीचेके लोकोंके राजा; गन्धर्व, विद्याधर और चारणोंके अधिनायक; यक्ष, राक्षस, साँप और नागोंके स्वामी; महर्षि, पितृपति, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवराज; और भी प्रेत-पिशाच, भूत-कूष्माण्ड, जल-जन्तु, मृग और पक्षियोंके स्वामी; एवं संसारमें और भी जितनी वस्तुएँ ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रियबल, मनोबल, शरीरबल या क्षमासे युक्त हैं; अथवा जो भी विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूतिसे युक्त हैं; एवं जितनी भी वस्तुएँ अद्भुत वर्णवाली, रूपवान् या अरूप हैं- वे सब-के-सब परमतत्त्वमय भगवत्स्वरूप ही हैं।

नारद। कर्दम प्रजापतिके घर देवहूतिके गर्भसे नौ बहिनोंके साथ भगवान्‌ने कपिलके रूपमें अवतार ग्रहण किया। उन्होंने अपनी माताको उस आत्मज्ञानका उपदेश किया, जिससे वे इसी जन्ममें अपने हृदयके सम्पूर्ण मल- तीनों गुणोंकी आसक्तिका सारा कीचड़ धोकर कपिल भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको प्राप्त हो गयीं।

महर्षि अत्रि भगवान्‌को पुत्ररूपमें प्राप्त करना चाहते थे। उनपर प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उनसे एक दिन कहा कि मैंने अपने आपको तुम्हें दे दिया। इसीसे अवतार लेनेपर भगवान्‌का नाम दत्त (दत्तात्रेय) पड़ा। उनके चरणकमलोंके परागसे अपने शरीरको पवित्र करके राजा यदु और सहस्रार्जुन आदिने योगकी भोग और मोक्ष दोनों ही सिद्धियाँ प्राप्त कीं।

नारद। सृष्टिके प्रारम्भमें मैंने विविध लोकोंको रचनेकी इच्छासे तपस्या की। मेरे उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर उन्होंने तप अथ्वाले सन नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमारके रूपमें अवतार ग्रहण किया। इस अवतारमें उन्होंने प्रलयके कारण पहले कल्पके भूले हुए आत्मज्ञानका ऋषियोंके प्रति यथावत् उपदेश किया, जिससे उन लोगोंने तत्काल परम तत्त्वका अपने हृदयमें साक्षात्कार कर लिया।

धर्मकी पत्नी दक्षकन्या मूर्तिके गर्भसे वे नर-नारायणके रूपमें प्रकट हुए। उनकी तपस्याका प्रभाव उन्हींके जैसा है। इन्द्रकी भेजी हुई कामकी सेना अप्सराएँ उनके सामने जाते ही अपना स्वभाव खो बैठीं। वे अपने हाव-भावसे उन आत्मस्वरूप भगवान्‌की तपस्यामें विघ्न नहीं डाल सकीं। नारद। शमर आदि महानुभाव अपनी रोषभरी दृष्टिसे कामदेवको जला देते हैं, परंतु अपने आपको जलानेवाले असह्य क्रोधको वे नहीं जला पाते। वही क्रोध नर-नारायणके निर्मल हृदयमें प्रवेश करनेके पहले ही डरके मारे काँप जाता है। फिर भला, उनके हृदयमें कामका प्रवेश तो हो ही कैसे सकता है।

अपने पिता राजा उत्तानपादके पास बैठे हुए पाँच वर्षके बालक ध्रुवको उनकी सौतेली माता सुरुचिने अपने वचन-बाणोंसे बेध दिया था। इतनी छोटी अवस्था होनेपर भी वे उस ग्लानिसे तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने ध्रुवको ध्रुवपदका वरदान दिया। आज भी ध्रुवके ऊपर-नीचे प्रदक्षिणा करते हुए दिव्य महर्षिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं।

कुमार्गगामी वेनका ऐश्वर्य और पौरुष ब्राह्मणोंके हुमाररूपी वज्रसे जलकर भस्म हो गया। वह नरकमें गिरने लगा। ऋषियोंकी प्रार्थनापर भगवान्‌ने उसके शरीरमन्थनसे पृथुके रूपमें अवतार धारण कर उसे नरकोंसे उबारा और इस प्रकार पुत्र शब्दको चरितार्थ किया। उसी अवतारमें पृथ्वीको गाय बनाकर उन्होंने उससे जगत्‌के लिये समस्त औषधियोंका दोहन किया।

राजा नाभिकी पत्नी सुदेवीके गर्भसे भगवान्‌ने ऋषभदेवके रूपमें जन्म लिया। इस अवतारमें समस्त आसक्तियोंसे रहित रहकर, अपनी इन्द्रियों और मनको अत्यन्त शान्त करके एवं अपने स्वरूपमें स्थित होकर समदर्शीके रूपमें उन्होंने

जड़ोंकी भाँति योगचर्याका आचरण किया। इस स्थितिको महर्षिलोग परमहंसपद अथवा अवधूतचर्या कहते हैं।

इसके बाद स्वयं उन्हीं यज्ञपुरुषने मेरे यज्ञमें स्वर्णके समान कान्तिवाले हयग्रीवके रूपमें अवतार ग्रहण किया। भगवान्‌का वह विग्रह वेदमय, यज्ञमय और सर्वदेवमय है। उन्हींकी नासिकासे श्वासके रूपमें वेदवाणी प्रकट हुई।

चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें भावी मनु सत्यव्रतने मत्स्यरूपमें भगवान्‌को प्राप्त किया था। उस समय पृथ्वीरूप नौकाके आश्रय होनेके कारण वे ही समस्त जीवोंके आश्रय बने। प्रलयके उस भयंकर जलमें मेरे मुखसे गिरे हुए वेदोंको लेकर वे उसीमें विहार करते रहे।

जब मुख्य-मुख्य देवता और दानव अमृतकी प्राप्तिके लिये क्षीरसागरको मथ रहे थे, तब भगवान्‌ने कच्छपके रूपमें अपनी पीठपर मन्दराचल धारण किया। उस समय पर्वतके घूमनेके कारण उसकी रगड़से उनकी पीठकी खुजलाहट थोड़ी मिट गयी, जिससे वे कुछ क्षणोंतक सुखकी नींद सो सके।

देवताओंका महान् भय मिटानेके लिये उन्होंने नृसिंहका रूप धारण किया। फड़कती हुई भौंहों और तीखी दाढ़ोंसे उनका मुख बड़ा भयावना लगता था। हिरण्यकशिपु उन्हें देखते ही हाथमें गदा लेकर उनपर टूट पड़ा। इसपर भगवान् नृसिंहने दूरसे ही उसे पकड़कर अपनी जाँघोंपर डाल लिया और उसके छटपटाते रहनेपर भी अपने नखोंसे उसका पेट फाड़ डाला।

बड़े भारी सरोवरमें महाबली ग्राहने गजेन्द्रका पैर पकड़ लिया। जब बहुत थककर वह घबरा गया, तब उसने अपनी सूँड़में कमल लेकर भगवान्‌को पुकारा- हे आदिपुरुष। हे समस्त लोकोंके स्वामी। हे श्रवणमात्रसे कल्याण करनेवाले। उसकी पुकार सुनकर अनन्तशक्ति भगवान् चक्रपाणि गरुड़की पीठपर चढ़कर वहाँ आये और अपने चक्रसे उन्होंने ग्राहका मस्तक उखाड़ डाला। इस प्रकार कृपापरवश भगवान्‌ने अपने शरणागत गजेन्द्रकी सूँड़ पकड़कर उस विपत्तिसे उसका उद्धार किया।

भगवान् वामन अदितिके पुत्रोंमें सबसे छोटे थे, परन्तु गुणोंकी दृष्टिसे वे सबसे बड़े थे। क्योंकि यज्ञपुरुष भगवान्‌ने इस अवतारमें बलिके संकल्प छोड़ते ही सम्पूर्ण लोकोंको अपने चरणोंसे ही नाप लिया था। वामन बनकर उन्होंने तीन पग पृथ्वीके बहाने बलिसे सारी पृथ्वी ले तो ली, परन्तु इससे यह बात सिद्ध कर दी कि सन्मार्गपर चलनेवाले पुरुषोंको याचनाके सिवा और किसी उपायसे समर्थ पुरुष भी अपने स्थानसे नहीं हटा सकते, ऐश्वर्यसे च्युत नहीं कर सकते। दैत्यराज बलिने अपने सिरपर स्वयं वामनभगवान्‌का चरणामृत धारण किया था। ऐसी स्थितिमें उन्हें जो देवताओंके राजा इन्द्रकी पदवी मिली, इसमें बलिका पुरुषार्थ नहीं था। अपने गुरु शुक्राचार्यके मना करनेपर भी वे अपनी प्रतिज्ञाके विपरीत कुछ भी करनेको तैयार नहीं हुए और तो क्या, भगवान्‌का तीसरा पग पूरा करनेके लिये उनके चरणोंमें सिर रखकर उन्होंने अपने आपको भी समर्पित कर दिया।

नारद। तुम्हारे अत्यन्त प्रेमभावसे परम प्रसन्न होकर हंसके रूपमें भगवान्‌ने तुम्हें योग, ज्ञान आत्मतत्त्वको प्रकाशित करनेवाले भागवतधर्मका उपदेश किया। वह केवल भगवान्‌के शरणागत भक्तोंको ही सुगमतासे प्राप्त होता है। वे ही भगवान् स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरोंमें मनुके रूपमें अवतार लेकर मनुवंशकी रक्षा करते हुए दसों दिशाओंमें अपने सुदर्शनचक्रके समान तेजसे बेरोक-टोक- निष्कण्टक राज्य करते हैं। तीनों लोकोंके ऊपर सत्यलोकतक उनके चरित्रोंकी कमनीय कीर्ति फैल जाती है और उसी रूपमें वे समय-समयपर पृथ्वीके भारभूत दुष्ट राजाओंका दमन भी करते रहते हैं।

स्वनामधन्य भगवान् धन्वन्तरि अपने नामसे ही बड़े-बड़े रोगियोंके रोग तत्काल नष्ट कर देते हैं। उन्होंने अमृत पिलाकर देवताओंको अमर कर दिया और दैत्योंके द्वारा हरण किये हुए उनके यज्ञ-भाग उन्हें फिरसे दिला दिये। उन्होंने ही अवतार लेकर संसारमें आयुर्वेदका प्रवर्तन किया।

जब संसारमें ब्राह्मणद्रोही आर्यमर्यादाका उल्लंघन करनेवाले नारकीय क्षत्रिय अपने नाशके लिये ही दैववश बढ़ जाते हैं और पृथ्वीके काँटे बन जाते हैं, तब भगवान् महापराक्रमी परशुरामके रूपमें अवतीर्ण होकर अपनी तीखी धारवाले फरसेसे इक्कीस बार उनका संहार करते हैं।

मायापति भगवान् हमपर अनुग्रह करनेके लिये अपनी कलाओं-भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणके साथ श्रीरामके रूपसे इक्ष्वाकुके वंशमें अवतीर्ण होते हैं। इस अवतारमें अपने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये अपनी पत्नी और भाईके साथ वे वनमें निवास करते हैं। उसी समय उनसे विरोध करके रावण उनके हाथों मरता है। त्रिपुर विमानको जलानेके लिये उद्यत शमरके समान, जिस समय भगवान् राम शत्रुकी नगरी लमाको भस्म करनेके लिये समुद्रतटपर पहुँचते हैं, उस समय सीताके वियोगके कारण बढ़ी हुई क्रोधाग्निसे उनकी आँखें इतनी लाल हो जाती हैं कि उनकी दृष्टिसे ही समुद्रके मगरमच्छ, साँप और ग्राह आदि जीव जलने लगते हैं और भयसे थर-थर काँपता हुआ समुद्र झटपट उन्हें मार्ग दे देता है। जब रावणकी कठोर छातीसे टकराकर इन्द्रके वाहन ऐरावतके दाँत चूर-चूर होकर चारों ओर फैल गये थे, जिससे दिशाएँ सफेद हो गयी थीं, तब दिग्विजयी रावण घमंडसे फूलकर हँसने लगा था। वही रावण जब श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी सीताजीको चुराकर ले जाता है और लड़ाईके मैदानमें उनसे लड़नेके लिये गर्वपूर्वक आता है, तब भगवान् श्रीरामके धनुषकी टमारसे ही उसका वह घमंड प्राणोंके साथ तत्क्षण विलीन हो जाता है।

जिस समय झुंड-के-झुंड दैत्य पृथ्वीको रौंद डालेंगे उस समय उसका भार उतारनेके लिये भगवान् अपने सफेद और काले केशसे बलराम और श्रीकृष्णके रूपमें कलावतार ग्रहण करेंगे। वे अपनी महिमाको प्रकट करनेवाले इतने अद्भुत चरित्र करेंगे कि संसारके मनुष्य उनकी लीलाओंका रहस्य बिलकुल नहीं समझ सकेंगे। बचपनमें ही पूतनाके प्राण हर लेना, तीन महीनेकी अवस्थामें पैर उछालकर बड़ा भारी छकड़ा उलट देना और घुटनोंके बल चलते-चलते आकाशको छूनेवाले यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें जाकर उन्हें उखाड़ डालना- ये सब ऐसे कर्म हैं, जिन्हें भगवान्‌के सिवा और कोई नहीं कर सकता। जब कालियनागके विषसे दूषित हुआ यमुना-जल पीकर बछड़े और गोपबालक मर जायँगे, तब वे अपनी सुधामयी कृपा-दृष्टिकी वर्षासे ही उन्हें जीवित कर देंगे और यमुना-जलको शुद्ध करनेके लिये वे उसमें विहार करेंगे तथा विषकी शक्तिसे जीभ लपलपाते हुए कालियनागको वहाँसे निकाल देंगे। उसी दिन रातको जब सब लोग वहीं यमुना-तटपर सो जायँगे और दावाग्निसे आस-पासका मूँजका वन चारों ओरसे जलने लगेगा, तब बलरामजीके साथ वे प्राणसंकटमें पड़े हुए व्रजवासियोंको उनकी आँखें बंद कराकर उस अग्निसे बचा लेंगें उनकी यह लीला भी अलौकिक ही होगी। उनकी शक्ति वास्तवमें अचिन्त्य है। उनकी माता उन्हें बाँधनेके लिये जो-जो रस्सी लायेंगी वही उनके उदरमें पूरी नहीं पड़ेगी, दो अंगुल छोटी ही रह जायगी। तथा जँभाई लेते समय श्रीकृष्णके मुखमें चौदहों भुवन देखकर पहले तो यशोदा भयभीत हो जायँगी, परन्तु फिर वे सम्हल जायँगी। वे नन्दबाबाको अजगरके भयसे और वरुणके पाशसे छुड़ायेंगे। मय दानवका पुत्र व्योमासुर जब गोपाबालोंको पहाड़की गुफाओंमें बंद कर देगा, तब वे उन्हें भी वहाँसे बचा लायेंगे। गोकुलके लोगोंको, जो दिनभर तो काम-धंधोंमें व्याकुल रहते हैं और रातको अत्यन्त थककर सो जाते हैं, साधनाहीन होनेपर भी, वे अपने परमधाममें ले जायँगे। निष्पाप नारद। जब श्रीकृष्णकी सलाहसे गोपलोग इन्द्रका यज्ञ बंद कर देंगे, तब इन्द्र व्रजभूमिका नाश करनेके लिये चारों ओरसे मूसलधार वर्षा करने लगेंगे। उससे उनकी तथा उनके पशुओंकी रक्षा करनेके लिये भगवान् कृपापरवश हो सात वर्षकी अवस्थामें ही सात दिनोंतक गोवर्द्धन पर्वतको एक ही हाथसे छत्रकपुष्प (कुकुरमुत्ते) की तरह खेल-खेलमें ही धारण किये रहेंगे। वृन्दावनमें विहार करते हुए रास करनेकी इच्छासे वे रातके समय, जब चन्द्रमाकी उज्ज्वल चाँदनी चारों ओर

छिटक रही होगी, अपनी बाँसुरीपर मधुर सङ्गीतकी लंबी तान छेड़ेंगे। उससे प्रेमविवश होकर आयी हुई गोपियोंको जब कुबेरका सेवक शंखचूड़ हरण करेगा, तब वे उसका सिर उतार लेंगे। और भी बहुत-से प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, अरिष्टासुर, आदि दैत्य, चाणूर आदि पहलवान, कुवलयापड हाथी, कंस, कालयवन, भौमासुर, मिथ्यावासुदेव, शाल्व, द्विविद वानर, बल्वल, दन्तवक्त्र, राजा नग्नजितके सात बैल, शम्बरासुर, विदूरथ और रुक्मी आदि तथा कम्बोज, मत्स्य, कुरु, केकय और सृञ्जय आदि देशोंके राजालोग एवं जो भी योद्धा धनुष धारणकरके युद्धके मैदानमें सामने आयेंगे, वे सब बलराम, भीमसेन और अर्जुन आदि नामोंकी आड़में स्वयं भगवान्‌के द्वारा मरे जाकर उन्हींके धाममें चले जायँगे।

समयके फेरसे लोगोंकी समझ कम हो जाती है, आयु भी कम होने लगती है। उस समय जब भगवान् देखते हैं कि अब ये लोग मेरे तत्त्वको बतलानेवाली वेदवाणीको समझनेमें असमर्थ होते जा रहे हैं, तब प्रत्येक कल्पमें सत्यवतीके गर्भसे व्यासके रूपमें प्रकट होकर वे वेदरूपी वृक्षका विभिन्न शाखाओंके रूपमें विभाजन कर देते हैं।

देवताओंके शत्रु दैत्यलोग भी वेदमार्गका सहारा लेकर मयदानवके बनाये हुए अदृश्य वेगवाले नगरोंमें रहकर लोगोंका सत्यानाश करने लगेंगे, तब भगवान् लोगोंकी बुद्धिमें मोह और अत्यन्त लोभ उत्पन्न करनेवाला वेष धारण करके बुद्धके रूपमें बहुत-से उपधर्मोंका उपदेश करेंगे। कलियुगके अन्तमें जब सत्पुरुषोंके घर भी भगवानकी कथा होनेमें बाधा पड़ने लगेगी; ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पाखण्डी और शूद्र राजा हो जायँगे, यहाँतक कि कहीं भी स्वाहा, स्वधा और वषट्‌कार की ध्वनि- देवता-पितरोंके यज्ञश्राद्धकी बाततक नहीं सुनायी पड़ेगी, तब कलियुगका शासन करनेके लिये भगवान् कल्कि अवतार ग्रहण करेंगे।

जब संसारकी रचनाका समय होता है, तब तपस्या, नौ प्रजापति, मरीचि आदि ऋषि और मेरे रूपमें; जब सृष्टिकी रक्षाका समय होता है, तब धर्म, विष्णु, मनु, देवता और राजाओंके रूपमें, तथा जब सृष्टिके प्रलयका समय होता है, तब अधर्म, रुद्र तथा क्रोधवश नामके सर्प एवं दैत्य आदिके रूपमें सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की माया-विभूतियाँ ही प्रकट होती हैं। अपनी प्रतिभाके बलसे पृथ्वीके एक-एक धूलि-कणको गिन चुकनेपर भी जगत्‌में ऐसा कौन पुरुष है, जो भगवान्‌की शक्तियोंकी गणना कर सके। जब वे त्रिविक्रम-अवतार लेकर त्रिलोकीको नाप रहे थे, उस समय उनके चरणोंके अदम्य वेगसे प्रकृतिरूप अन्तिम आवरणसे लेकर सत्यलोकतक सारा ब्रह्माण्ड काँपने लगा था। तब उन्होंने ही अपनी शक्तिसे उसे स्थिर किया था। समस्त सृष्टिकी रचना और संहार करनेवाली माया उनकी एक शक्ति है। ऐसी-ऐसी अनन्त शक्तियोंके आश्रय उनके स्वरूपको न मैं जानता हूँ और न वे तुम्हारे बड़े भाई सनकादि ही; फिर दूसरोंका तो कहना ही क्या है। आदिदेव भगवान् शेष सहस्र मुखसे उनके गुणोंका गायन करते आ रहे हैं; परन्तु वे अब भी उसके अन्तकी कल्पना नहीं कर सके। जो निष्कपट भावसे अपना सर्वस्व और अपने आपको भी उनके चरणकमलोंपर निछावर कर देते हैं, उनपर वे अनन्त भगवान् स्वयं ही अपनी ओरसे दया करते हैं और उनकी दयाके पात्र ही उनकी ओरसे दया करते हैं और उनकी दयाके पात्र ही उनकी दुस्तर मायाका स्वरूप जानते हैं और उसके पार जा पाते हैं। वास्तवमें ऐसे पुरुष ही कुत्ते और सियारोंके कलेवारुप अपने और पुत्रादिके शरीरमें यह मैं हूँ और यह मेरा है ऐसा भाव नहीं करते। प्यारे नारद। परम पुरुषकी उस योगमायाको मैं जानता हूँ तथा तुमलोग, भगवान्, शमर, दैत्यकुलभूषण प्रह्लाद, शतरूपा, मनु, मनुपुत्र प्रियव्रत आदि, प्राचीनबर्हि, ऋभु और ध्रुव भी जानते हैं। इनके सिवा इक्ष्वाकु, पुरूरवा, मुचुकुन्द, जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय, ययाति आदि तथा मान्धाता, अलर्क, शतधन्वा, अनु, रन्तिदेव, भीष्म, बलि, अमर्त्तरय, दिलीप, सौभरि, उत्तम, शिबि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर भूरिषेण एवं विभीषण, हनुमान्, शुकदेव, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर और श्रुतदेव आदि

महात्मा भी जानते हैं। जिन्हें भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका-सा स्वभाव बनानेकी शिक्षा मिली है, वे स्त्री, शूद्र, हूण, भील और पापके कारण पशु-पक्षी आदि योनियोंमें रहनेवाले भी भगवान्‌की मायाका रहस्य जान जाते हैं और इस संसार-सागरसे सदाके लिये पार हो जाते हैं; फिर जो लोग वैदिक सदाचारका पालन करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है।

परमात्माका वास्तविक स्वरूप एकरस, शान्त, अभय एवं केवल ज्ञानस्वरूप है। न उसें मायाका मल है और न तो उसके द्वारा रची हुई विषमताएँ ही। वह सत् और असत् दोनोंसे परे है। किसी भी वैदिक या लौकिक शब्दकी वहाँतक पहुँच नहीं है। अनेक प्रकारके साधनोंसे सम्पन्न होनेवाले कर्मोंका फल भी वहाँतक नहीं पहुँच सकता। और तो क्या, स्वयं माया भी उसके सामने नहीं जा पाती, लजाकर भाग खड़ी होती है। परमपुरुष भगवान्‌का वही परमपद है। महात्मालोग उसीका शोकरहित अनन्त आनन्दस्वरूप ब्रह्मके रूपमें साक्षात्कार करते हैं। संयमशील पुरुष उसीमें अपने मनको समाहित करके स्थित हो जाते हैं। जैसे इन्द्र स्वयं मेघरूपसे विद्यमान होनेके कारण जलके लिये कुआँ खोदनेकी कुदाल नहीं रखते, वैसे ही वे भेद दूर करनेवाले ज्ञान-साधनोंको भी छोड़ देते हैं। समस्त कर्मोंके फल भी भगवान् ही देते हैं। क्योंकि मनुष्य अपने स्वभावके अनुसार जो शुभकर्म करता है, वह सब उन्हींकी प्रेरणासे होता है। इस शरीरमें रहनेवाले पञ्चभूतोंके अलग-अलग हो जानेपर जब- यह शरीर नष्ट हो जाता है, तब भी इसमें रहनेवाला अजन्मा पुरुष आकाशके समान नष्ट नहीं होता।

हे नारद, ब्रह्म का वास्तविक रूप सर्वमय तथा ज्ञान स्वरूप है, वह एक रस तथा शान्तिमय है। वह स्वरूप उनकी माया के मल से रहित है। समल्पसे विश्वकी रचना करनेवाले षडैश्वर्यसम्पन्न श्रीहरिका मैंने तुम्हारे सामने संक्षेपसे वर्णन किया। जो कुछ कार्य-कारण अथवा भाव-अभाव है, वह सब भगवान्‌से भिन्न नहीं है। फिर भी भगवान् तो इससे पृथक भी हैं ही। भगवान्‌ने मुझे जो उपदेश किया था, वह यही भागवत है।

परीक्षितने शुकदेवसे पूछा- महाकल्प और उनके अन्तर्गत अवान्तर कल्प कितने हैं? भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालका अनुमान किस प्रकार किया जाता है? क्या स्थूल देहाभिमानी जीवोंकी आयु भी बँधी हुई है। ब्राह्मणश्रेष्ठ। कालकी सूक्ष्म गति त्रुटि आदि और स्थूल गति वर्ष आदि किस प्रकारसे जाती जाती है? विविध कर्मोंसे जीवोंकी कितनी और कैसी गतियाँ होती हैं। देव, मनुष्य आदि योनियाँ सत्त्व, रज, तम- इन तीन गुणोंके फलस्वरूप ही प्राप्त होती हैं। उनको चाहनेवाले जीवोंमें से कौन-कौन किस-किस योनिको प्राप्त करनेके लिये किस-किस प्रकारसे कौन-कौन कर्म स्वीकार करते हैं? पृथ्वी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप और उनमें रहनेवाले जीवोंकी उत्पत्ति कैसे होती है? ब्रह्माण्डका परिमाण भीतर और बाहर- दोनों प्रकारसे बतलाइये। साथ ही महापुरुषोंके चरित्र, वर्णाश्रमके भेद और उनके धर्मका निरूपण कीजिये। युगोंके भेद, उनके परिमाण और उनके अलग-अलग धर्म तथा भगवान्‌के विभिन्न अवतारोंके परम आश्चर्यमय चरित्र भी बतलाइये। मनुष्योंके साधारण और विशेष धर्म कौन-कौन-से हैं? विभिन्न व्यवसायवाले लोगोंके, राजर्षियोंके और विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके धर्मका भी उपदेश कीजिये। तत्त्वोंकी संख्या कितनी है, उनके स्वरूप और लक्षण क्या हैं? भगवान्‌की आराधनाकी और अध्यात्मयोगकी विधि क्या है? योगेश्वरोंको क्या-क्या ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं, तथा अन्तमें उन्हें कौन-सी गति मिलती है? योगियोंका लिङ्गशरीर किस प्रकार भङ्ग होता है? वेद, उपवेद, धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराणोंका स्वरूप एवं तात्पर्य क्या है? समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कैसे होता है? बावली, कुआँ खुदवाना आदि स्मार्त्त, यज्ञ-यागादि वैदिक, एवं काम्य कर्मोंकी तथा अर्थ-धर्म-कामके साधनोंकी विधि क्या है? प्रलयके समय जो जीव प्रकृतिमें लीन रहते हैं, उनकी उत्पत्ति कैसे होती है? पाखण्डकी उत्पत्ति कैसे होती है? आत्माके बन्ध-मोक्षका स्वरूप क्या है? भगवान् तो परम स्वतन्त्र हैं। वे अपनी मायासे किस प्रकार क्रीड़ा करते हैं

और उसे छोड़कर साक्षीके समान उदासीन कैसे हो जाते हैं? भगवन्। मैं यह सब आपसे पूछ रहा हूँ। मैं आपकी शरणमें हूँ। महामुने। आप कृपा करके क्रमश: इनका तात्त्विक निरूपण कीजिये। इस विषयमें आप स्वयम्भू ब्रह्माके समान परम प्रमाण हैं। दूसरे लोग तो अपनी पूर्वपरम्परासे सुनी-सुनायी बातोंका ही अनुष्ठान करते हैं। ब्रह्मन्। आप मेरी भूख-प्यासकी चिन्ता न करें। मेरे प्राण कुपित ब्राह्मणके शापके अतिरिक्त और किसी कारणसे निकल नहीं सकते; क्योंकि मैं आपके मुखारविन्दसे निकलनेवाली भगवान्‌की अमृतमयी लीला-कथाका पान कर रहा हूँ।

सूतजी कहते हैं- शौनकादि ऋषियो। जब राजा परीक्षित्‌ने संतोंकी सभामें भगवान्‌की लीला-कथा सुनानेके लिये इस प्रकार प्रार्थना की, तब श्रीशुकदेवजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उन्हें वही वेदतुल्य श्रीमद्भागवत-महापुराण सुनाया, जो ब्राह्मकल्पके आरम्भमें स्वयं भगवान्‌ने ब्रह्माजीको सुनाया था। पाण्डुवंशशिरोमणि परीक्षितने उनसे जो-जो प्रश्न किये थे, वे उन सबका उत्तर क्रमश: देने लगे।

शुकदेवने परीक्षितको चतु:श्लोकी भागवत सुनायी जो चतु:श्लोकी भागवत भगवान नारायण ने ब्रह्माको सुनायी थी और आदेश दिया कि तुम सृष्टि की रचना करो और कहा- ब्रह्माजी। तुम्हारे हृदयमें तो समस्त वेदोंका ज्ञान विद्यमान है। तुमने सृष्टिरचनाकी इच्छासे चिरकालतक तपस्या करके मुझे भली-भाँति सन्तुष्ट कर दिया है। मनमें कपट रखकर योगसाधन करनेवाले मुझे कभी प्रसन्न नहीं कर सकते। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी जो अभिलाषा हो, वही वर मुझसे माँग लो। क्योंकि मैं मुँहमाँगी वस्तु देनेमें समर्थ हूँ। ब्रह्माजी। जीवके समस्त कल्याणकारी साधनोंका विश्राम-पर्यवसान मेरे दर्शनमें ही है। तुमने मुझे देखे बिना ही उस सूने जलमें मेरी वाणी सुनकर इतनी घोर तपस्या की है, इसीसे मेरी इच्छासे तुम्हें मेरे लोकका दर्शन हुआ है। तुम उस समय सृष्टिरचनाका कर्म करनेमें किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। इसीसे मैंने तुम्हें तपस्या करनेकी आज्ञा दी थी। क्योंकि निष्पाप। तपस्या मेरा हृदय है और मैं स्वयं तपस्याका आत्मा हूँ। मैं तपस्यासे ही इस संसारकी सृष्टि करता हूँ, तपस्यासे ही इसका धारण-पोषण करता हूँ और फिर तपस्यासे ही इसे अपनेमें लीन कर लेता हूँ। तपस्या मेरी एक दुर्लङ्घ्य शक्ति है।

ब्रह्माजीने कहा- भगवन्। आप समस्त प्राणियोंके अन्त:करणमें साक्षीरूपसे विराजमान रहते हैं। आप अपने अप्रतिहत ज्ञानसे यह जानते ही हैं कि मैं क्या करना चाहता हूँ। नाथ। आप कृपा करके मुझ याचककी यह माँग पूरी कीजिये कि मैं रूपरहित आपके सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपोंको जान सकूँ। आप मायाके स्वामी हैं, आपका समल्प कभी व्यर्थ नहीं होता। जैसे मकड़ी अपने मुँहसे जाला निकालकर उसमें क्रीड़ा करती है और फिर उसे अपने में लीन कर लेती है, वैसे ही आप अपनी मायाका आश्रय लेकर इस विविध शक्तिसम्पन्न जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेके लिये अपने आपको ही अनेक रूपोंमें बना देते हैं और क्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार आप कैसे करते हैं- इस मर्मको मैं जान सकूँ, ऐसा ज्ञान आप मुझे दीजिये। आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि मैं सजग रहकर सावधानीसे आपकी आज्ञाका पालन कर सकूँ और सृष्टिकी रचना करते समय भी कर्तापन आदिके अभिमानसे बँध न जाऊँ। प्रभो। आपने एक मित्रके समान हाथ पकड़कर मुझे अपना मित्र स्वीकार किया है। अत: जब मैं आपकी इस सेवा- सृष्टि-रचनामें लगूँ और सावधानीसे पूर्वसृष्टिके गुण-कर्मानुसार जीवोंका विभाजन करने लगूँ, तब कहीं अपनेको जन्म-कर्मसे स्वतन्त्र मानकर प्रबल अभिमान न कर बैठूँ।

श्रीभगवान्‌ने कहा- अनुभव, प्रेमाभक्ति और साधनोंसे युक्त अत्यन्त गोपनीय अपने स्वरूपका ज्ञान मैं तुम्हें कहता हूँ; तुम उसे ग्रहण करो। मेरा जितना विस्तार है, मेरा जो लक्षण है, मेरे जितने और जैसे रूप, गुण और लीलाएँ हैं- मेरी कृपासे तुम उनका तत्त्व ठीक-ठीक वैसा ही अनुभव करो। सृष्टिके पूर्व केवल मैं-ही-मैं था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण अज्ञान। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं-ही-मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है,

वह भी मैं ही हूँ और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ। वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मामें दो चन्द्रमाओंकी तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, अथवा विद्यमान होनेपर भी आकाश-मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे मेरी माया समझना चाहिये। जैसे प्राणियोंके पञ्चभूतरचित छोटे-बड़े शरीरोंमें आकाशादि पञ्चमहाभूत उन शरीरोंके कार्यरूपसे निर्मित होनेके कारण प्रवेश करते भी हैं और पहलेसे ही उन स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किये हुए हूँ और आत्मदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ। यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं- इस प्रकार निषेधकी पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं, वही वास्तविक तत्त्व हैं। जो आत्मा अथवा परमात्माका तत्त्व जानना चाहते हैं, उन्हें केवल इतना ही जाननेकी आवश्यकता है। ब्रह्माजी। तुम अविचल समाधिके द्वारा मेरे इस सिद्धान्तमें पूर्ण निष्ठा कर लो। इससे तुम्हें कल्प-कल्पमें विविध प्रकारकी सृष्टिरचना करते रहनेपर भी कभी मोह नहीं होगा।

नारायण ब्रह्मासे बोले- चाहे संकल्प हो चाहे विकल्प,चाहे भेदकी प्रतीति हो- चाहे अभेदकी, चाहे कोई अच्छा मालूम पड़े चाहे बुरा, लेकिन तुम अपना काम करते जाओ, मोहका कोई हेतु नहीं, सब परमात्मा है।

परमेश्वरका स्थिर तत्त्व है परमार्थ। वह कभी बदलता नहीं, कभी होता बिगड़ता नहीं और कभी नया बनता नहीं। आदि अवस्थामें उसकी जो अनुभूति है, वही सर्वश्रेष्ठ अनुभूति है। ईश्वर-विषयक ज्ञान गुरु परम्परासे प्राप्त होता है और भौतिक वस्तु-विषयक ज्ञान खोजसे प्राप्त होता है।

जितने भी कार्यकारणात्मक दृश्य प्रपंच है, सब भगवानके रूप है। ये मायासृष्ट अथवा अविद्यासृष्ट रूप हैं। जीवात्मा की ओर से जिसको अविद्या कहे हैं, परमात्माकी ओर उसको माया कहते हैं। जीव अविद्यासे मोहित रहता है और परमात्मा कभी अपनी मायासे मोहित नहीं होता। जो जितना भी कार्य-कारण है सब मायाकी सृष्टि है। वाच्य-वाचकरूपमें वही परमात्मा स्थित है। प्रजापति, मनु, किन्नर, अप्सरा, कूष्माण्ड ये जितने भी हैं और जो परस्पर लड़ते-झगड़ते हैं, टकराते हैं, सब परमात्माके स्वरूपमें ही प्रतीत होते हैं।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- लोकपितामह ब्रह्माजीको इस प्रकार उपदेश देकर अजन्मा भगवान्ने उनके देखते-ही-देखते अपने उस रूपको छिपा लिया। जब सर्वभूतस्वरूप ब्रह्माजीने देखा कि भगवान्ने अपने इन्द्रियगोचर स्वरूपको हमारे नेत्रोंके सामनेसे हटा लिया है, तब उन्होंने अञ्जलि बाँधकर उन्हें प्रणाम किया और पहले कल्पमें जैसी सृष्टि थी, उसी रूपमें इस विश्वकी रचना की। एक बार धर्मपति, प्रजापति ब्रह्माजीने सारी जनताका कल्याण हो, अपने इस स्वार्थकी पूर्तिके लिये विधिपूर्वक यम-नियमोंको धारण किया। उस समय उनके पुत्रोंमें सबसे अधिक प्रिय, परम भक्त देवर्षि नारदजीने मायापति भगवान्की मायाका तत्त्व जाननेकी इच्छासे बड़े संयम, विनय और सौम्यतासे अनुगत होकर उनकी सेवा की। और उन्होंने सेवासे ब्रह्माजीको बहुत ही सन्तुष्ट कर लिया। परीक्षित्। जब देवर्षि नारद ने देखा कि मेरे लोकपितामह पिताजी मुझपर प्रसन्न हैं, तब उन्होंने उनसे यही प्रश्न किया, जो तुम मुझसे कर रहे हो। उनके प्रश्नसे ब्रह्माजी और भी प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने यह दस लक्षणवाला भागवतपुराण अपने पुत्र नारदको सुनाया जिसका स्वयं भगवान्ने उन्हें उपदेश किया था। परीक्षित्। जिस समय मेरे परमतेजस्वी पिता सरस्वतीके तटपर बैठकर परमात्माके ध्यानमें मग्न थे, उस समय देवर्षि नारदजीने वही भागवत उन्हें सुनाया। तुमने मुझसे जो यह प्रश्न किया है कि विराट् पुरुषसे इस जगत्की उत्पत्ति कैसे हुई, तथा दूसरे भी जो बहुत-से प्रश्न किये हैं, उन सबका उत्तर मैं उसी भागवतपुराणके रूपमें देता हूँ।

हे नारद, ब्रह्म का वास्तविक रूप सर्वमय तथा ज्ञान स्वरूप है, वह एक रस तथा शान्तिमय है। वह स्वरूप उनकी माया के मल से रहित है।

१०) भागवत के दस लक्षण

जामें सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊती सब। मन्वन्तर, ईशानुकथा सुनु लक्षण नृप। अब।।
है निरोध पुनि मुक्ति दशम आश्रय बतलावें। दशम तत्त्वकी सिद्धि हेतु नौऊ कहलावें।।
श्रुतितें अरु बहु अर्थतें, साकछात कोई कहे। जापै हरि किरपा करें, भक्ति अहैतुकि ते लहें।।

सूतजीने परीक्षितसे कहा- भागवत के दस लक्षण हैं जो इस प्रकार है- १) ईश्वर की प्रेरणा से गुणों में क्षोभ होकर रुपान्तर होने से जो आकाश, पंचभूत शब्दादि तन्मात्राये, इन्द्रिया, अहंकार और महतत्व की उत्पत्ति को ही सर्ग कहते हैं। २) ब्रह्मा से उत्पन्न विभिन्न सृष्टियों का निर्माण ही विसर्ग कहलाता है। ३) प्रतिपल नाश की और बढ़ने वाली सृष्टि को एक मर्यादा में स्थिर रखने का नाम ही स्थान है। नाशवान सृष्टि को एक मर्यादा में स्थित करने में जो विष्णु भगवान की महत्ता प्रकट होती है उसीको स्थान कहते है। ४) अपने द्वारा सुरक्षित रखने में सृष्टि में भक्तों के उपर कृपा का नाम ही पोषण है। युग-युग के धर्म की रक्षा करने के लिये अवतार ग्रहण करना, भक्तों पर कृपा करना ही पोषण है। अपने भक्तों पर कृपा करके सृष्टि के पालन पोषण तथा वृद्धि को पोषण कहते हैं। ५) मन्वन्तरों के अधिपति मनु जो भगवद् भक्ति और प्रजा का पालन पोषण शुद्ध धर्म का अनुष्ठान करते है उसी का नाम मन्वन्तर है। पृथक-पृथक काल में मनु-देव, मनु-पुत्र, इन्द्र ऋषि और भगवान के अंशावतार इन छ: अधिपतियों का तथा उनके द्वारा युग धर्म प्रवर्तन मन्वन्तर कहलाता है। भविष्यका अन्त किसीने देखा है? वर्तमान में जो बीतता जाता है, उसका नाम भूत हो जाता है। जो आनेवाला है उसका नाम भविष्य हो जाता है। जहाँ मैं है, वहीं कालका अन्त है और वहीं परमात्मा है। यदि वहाँ परमात्मा न हो तो किसी भी कालके आदि अथवा अन्तमें आपकी बुद्धि नहीं पहुंच सकती। इसी प्रकार देशके आदि-अन्तमें आपकी बुद्धि नहीं पहुंच सकती। आप ईश्वरकी दृष्टिसे देखोगे, ईश्वरके साथ एकाकार हो जाओगे, तभी सृष्टिका स्वरूप समझ सकोगे। सृष्टिमें कोई भी अपना और पराया नहीं है, कोई भी मित्र और शत्रु नहीं है। कोई अच्छा और बुरा नहीं है। ईश्वरकी दृष्टिसे देखेंगे तब आप सृष्टिका रहस्य जान पाओगे। ६) जीवों को वासनाये, जो कर्म के द्वारा उन्हे बन्धन में डाल देती है इसी का नाम ऊति है। ७) भगवान के विभिन्न अवतारों और भक्तों के विभिन्न आख्यानों की नाम ही ईश कथा है। ८) जीव का अपने उपाधियों सहित भगवान की योग निद्रा के समय उसमें लीन हो जाना ही निरोध है। ९) अज्ञान कल्पित कर्तृत्व भोगत्व आदि आत्म भाव का परित्याग कर अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा परमात्मा में स्थित हो जाना ही मुक्ति है। १०) आश्रय- इस चराचर जगत की उत्पत्ति, प्रलय जिस तत्व से प्रकाशित हो जाये वही परम ब्रह्म ही आश्रय है और शास्त्रों में वह परमात्मा नाम से जाना गया है।

श्री शुकदेवजी कहते हैं- इस भागवत शास्त्र में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय ये दस विषय हैं। इन सब में से दसवें आश्रय की ही विशुद्धि के लिये, उसी का यथार्थ मर्म जानने के लिये- महात्माओंने शेष नौओं का लक्षण किया है।

एक तो यह कि सृष्टि कैसे हुई? दूसरी यह कि इसमें विविध योनियाँ कैसे बनीं? एक ही तो तत्त्व, एक ही पंचभूत। उसमें मनुष्य, पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़े आदि कैसे बन जाते हैं? विविधता कहाँसे आ जाती है? तीसरी यह कि सृष्टि किस स्थानपर टिकी हुई है? चौथी यह कि इसके सूखनेपर इसको सींचनेवाला कौन है? पाँचवा यह कि इसपर वासनाएँ कैसे-कैसे होती है? छठीं यह कि कालका विभाग कैसे होता है? सातवां भक्त और ईश्वरके चरित्र कैसे होते हैं? आठवां भगवानके प्रेममें

मनका निरोध कैसे होता है? नवीं यह कि मुक्ति का क्या लक्षण है? और दसवां यह सबके अधिष्ठान परमात्मा का स्वरूप क्या है?

श्रीभगवान की प्रेरणा से प्राकृतिक गुणों में क्षोभ होने पर जो महदादि चौबीस तत्त्वों की उत्पत्ति होती है उसे सर्ग कहते हैं। भगवान के द्वारा चराचर की सृष्टि को विसर्ग कहते हैं। भगवान के द्वारा चराचर जगत को एक मर्यादा में रखा जाता है उसे स्थान कहते हैं। भगवान के द्वारा भक्तों पर जो कृपा की जाती है उसे पोषण कहते हैं। मन्वन्तरों के स्वामियों द्वारा की जाने वाली भगवद् भक्ति तथा प्रजापालन रूपी शुद्ध धर्म को मन्वन्तर कहते हैं। जीवों को कर्म के द्वारा बन्धन में डालनेवाली वासनाएँ उक्ति कहलाती हैं। भगवान के अवतारों तथा उनके भक्तों की कथाओं को ईशानुकथा कहते हैं। भगवान द्वारा योगनिद्रा को अपनाकर किया जानेवाला शयन ही निरोध है। जीवों द्वारा की जानेवाली भगवद्भक्ति ही मुक्ति कहलाती है। परम ब्रह्म ही इन सबों के आश्रय हैं। आश्रय को ही परमात्मा कहते हैं।

भागवत है क्या? सर्ग-विसर्ग, मन्वंतर, प्रलय, स्थिति, निरोध, आश्रय, पोषण यह सब क्या है? सर्ग किसका- जब ब्रह्माने सृष्टि की है पंचभूतोंकी, पंच तन्मात्राओंकी, कर्मेन्द्रियोंकी, ज्ञानेन्द्रियोंकी, प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है उसको विसर्ग कहते है। फिर प्रलय जीवोंका अपने कर्मोंके अनुसार ब्रह्ममें लीन हो जानेका नाम प्रलय है, मुक्ति है। उक्ति क्या है- जीव की कर्मवासनाओंका नाम उक्ति है। स्थिति क्या है- वो ब्रह्म इन प्राणियोंको अपने आश्रय में स्थित रखता है, इनका पोषण करता है। यह विनाश की ओर जानेवाली सृष्टि को हमेशा सदैव स्थिर रखना यह स्थिति है। आश्रय क्या है- जो इन प्राणिको संरक्षण देता है वह आश्रय है। यह इशानु क्या है- जब भक्त और भगवान प्राणियोंकी जीवन लीला कथाएं करता है यह इशानु है। मन्वंतर क्या है- प्राणियोंके कर्म विवरण का काल यह मन्वंतर है। एक मनुके शासन में जितनी देर उसका शासन रहता है उस कालमें क्या-क्या गतिविधियां रहती है, उस समय का जो माप है उसको काल, मन्वंतर कहते है। यह भागवत के दस लक्षण है। दस लक्षणों का विस्तार है। काल और मन्वंतरका विस्तार किया।

मूल भागवत का बीज चार श्लोकों में ही है। जिसकाउपदेश भगवान ने सृष्टि के आदि में लोक पितामह ब्रह्मा को किया था। मूल बताकर फिरअपनी परम्परा बताकर यह सिद्ध किया कि मेरा ज्ञान ऐसा नहीं है कि जो वैसे ही इधर-उधर से सुन लिया हो, वह परम्परागत है। सम्प्रदाय पुरस्सर है और हमारे सम्प्रदाय के मूल पुरुष हैं श्रीमन्नारायण। इस प्रकार शास्त्र का विषय, प्रयोजन सम्बन्ध और अधिकारी बताकर लक्षण बताते हैं। जिसमें पुराने आख्यान हों, वेद के संक्षिप्त वचनों की व्याख्या की गयी हो, उन्हें पुराण कहते हैं। पुराण असंख्य है, किन्तु इस समय अठारह महापुराण, अठारह उप पुराण और अठारह ही औपपुराण, इतने प्रसिद्ध है सभी की रचना व्यासजीने की है। दस लक्षण जिसमें हो, उसे पुराण कहते हैं और जिसमें पाँच ही हों वह उपपुराण कहलाता है। वे दस लक्षण ये हैं- सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और दसवाँ आश्रय कहलाता है। आश्रय ही प्रधान है, उसी की सिद्धि के लिये शेष नौ का कथन है।

ब्रह्मा की जो एक अचिन्त्य शक्ति है मूल प्रकृति, उसमें जब काल कर्मों के अधीन लोभ उत्पन्न होता है तो उसमें कुछ क्रिया होने लगती है। सत्त्व, रज और तम जब तीनों समान भाव से रहते हैं तो उसे प्रकृति कहते हैं। उस समय वह कुछ भी करने में समर्थ नहीं होती। साम्यावस्था निश्चेष्ठ होती है।

जब मूल प्रकृति से पृथ्वी, जल, वायु और आकाश ये पंचभूत तथा शब्द, रूप, रस गन्ध और स्पर्श ये पंचतन्त्रमात्रायें, वाक, पाणि पाद, लिंग, गुदा, ये पंचकर्मेन्द्रियाँ, आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, एक मन तथा महत्व और अहंकार ये दो और तीन तत्त्व जब ये सब उत्पन्न होते हैं तो इसे सर्ग कहते हैं।

मकड़ी खूब बारीक रेशे से सुन्दर कलात्मक षट्कोण, अष्टकोण कलापूर्ण जाला बुनती है। कोई भी आदमी ऐसा जाला नहीं बुन सकता। मकड़ी कहीं से इतना बारीक रेशा जाला बुनने के लिए नहीं लाती, वो अपने शरीर से लार टपकाकर

निकालती है, और वह सूख जाने पर बारीक रेशे में परिणत हो जाती है, उसी से वह कलात्मक जाले का सृजन करती है, जाला बुनकर उसमें विहार करती है अन्त में उसी को अपने भीतर समेट लेती है। ये मकड़ी का उदाहरण सर्ग सृष्टि के लिये प्रस्तुत किया जाता है। मकडी ने कोई त्रिकोणमीति ( ) नहीं सीखी। प्रभु कृपा से ही वह करती है।

इसी तरह परमात्मा ने कहीं से कुछ नहीं लिया, अपने संकल्प से अपने भीतर से ही ये सारी सर्ग सृष्टि को प्रकट किया और उसमें विहार करके अन्त में सारी सृष्टि को अपने में भीतर ही समेट लेते हैं।

विराट पुरुष के सम्बन्ध से जो अनेक आकृति वाले, चित्र-विचित्र कर्म करनेवाले नाना जाति के असंख्य जीवों की उत्पत्ति का ही नाम विसर्ग है। विसर्ग सृष्टि में कुम्हार का उदाहरण दिया जाता है। जैसे कुम्हार चाक, मिट्टी, पानी, डण्डा, कील आदि सारा सामान बाहर से लाता है। और पानी से मिट्टी को सानकर लौंदा बना चाक पर चढ़ाता है, मिट्टी को फिर घड़े की आकृति देकर आंवा जलाकर उस घड़े को पकाता है। इस प्रकार वह बर्तन तैयार करता है, लेकिन देकर आंवा जलाकर उस घड़े को पकाता है। इस प्रकार वह बर्तन तैयार करता है, लेकिन अपने आप सब पैदा करके वह कुछ नहीं बना सकता। कुम्हार की तरह ब्रह्माजी भी भगवान के बनाये हुए में से ले लेकरअण्ड पिण्ड गढ़ते हैं। ब्रह्माजी तत्त्वों का निर्माण करनेवाले नहीं हैं। भगवान के बनाये हुए तत्त्वों से मिलावट करके अण्ड पिण्ड गढ़ने का काम अवश्य करते हैं।

उत्पन्न हुए पदार्थों का यथावत मर्यादा में रखना उन्हें मर्यादा से बाहर न होने देना इसी का नाम स्थान है। पोषण और कोई वस्तु नहीं है। भगवान के अनुग्रह को ही पोषण कहते हैं। बिना भगवत् अनुग्रह के न तो साधन आरम्भ हो सकता है, न किसी प्रकार की सिद्धि ही प्राप्त हो सकती है। अत: सृष्टि कार्य पोषण से ही वृद्धि को प्राप्त होता है।

आठ पहर का एक रात्रि दिन कहलाता है। तीस दिनों का एक महीना। बारह महीने का एक वर्ष। मानव का एक वर्ष देवताओं का एक दिन कहलाता है। इसी दिन के परिमाण से तीन सौ साठ दिनों का देवताओं का एक वर्ष होता है। ऐसे हजार दिव्य वर्ष का कलि, दो हजार का द्वापर, तीन हजार का त्रेता और चार हजार का सत्ययुग। इनमें क्रम से दो, चार छ: और आठ सौ वर्ष के सन्धि सन्ध्यांश और होते हैं। इस प्रकार बारह हजार दिव्य वर्षों की एक चौकड़ी कहलाती है। ऐसी चौकड़ी हजार बार जब बीत जाती है तो उसे ब्रह्माजी का एक दिन कहते हैं। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु बदल जाते हैं, एक मनु का काल इकहत्तर चौकड़ी से कुछ अधिक होता है। इसी काल को मन्वन्तर कहते हैं।

मन्वन्तर का वर्णन, मन्वन्तर समय का विभाग है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक दिन है, सूर्यास्त से सूर्योदय तक रात्रि। एक दिन और एक रात्रि मिलकर एक बार होता है। जैसे सोमवार, मंगलवार, इत्यादि ऐसे सात वार मिलकर एक सप्ताह, पन्द्रह दिन का एक पक्ष दो पक्ष का एक महीना, दो महीने की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन उत्तरायन, दक्षिणायन दो अयन का एक साल।

हमारी संस्कृति के अनुसार सनातन धर्म का नूतन वर्ष नववर्ष चैत्र शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है। नवरात्र की प्रतिपदा से साल बदलता है। ऐसे-ऐसे साल से चार लाख बत्तीस हजार वर्ष का कलियुग होता है। कलियुग से दूगुना द्वापर, द्वापर से दूगुना त्रेता, त्रेता से दुगुना सतयुग, इन चारों को मिलकर एक चतुर्युगी कहते हैं। कलियुग के बाद फिर सतयुग, त्रेता, द्वापर की पुनरावृत्ति होती है। इस प्रकार इन चारों युगों की एक हजार बार पुनरावृत्ति हो जाती है। तब उसको एक कल्प कहते हैं। यह एक कल्प ही ब्रह्माजी का एक दिन होता है इतनी ही बड़ी रात होती है। जब तक ब्रह्माजी जगते हैं तब तक उनका सृष्टि क्रम अपने आप सब चलते रहता है और जब ब्रह्माजी सो जाते हैं तब नैमित्तक प्रलय होता है। तत्त्व ज्यों के त्यों बने रहते हैं। चौदह लोकों में तीन लोक भूलोक, भुवर्लोक, और स्वर्ग लोक ये तीन जल में डूब जाते हैं और

इनमें रहनेवाले प्राणी अपने-अपने स्थूल शरीरों का परित्याग करके अपने सूक्ष्म शरीर में अपने कर्मों का फल एवं कर्म वासनाओं के संस्कारों को लेकर सोये हुए ब्रह्माजी के नासा विवर से प्रवेश कर उनके अन्त:करण में निवास करते हैं।

सभी जीव कर्म वासनाओं के अधीन होकर नाना योनियों में जन्म लेते हैं। बिना सृष्टि के कर्म नहीं हो सकते। बिना कर्मों के वासना नहीं बनती। सृष्टि का कोई आदि तो है ही नहीं। इस सृष्टि के पूर्व भी तो सृष्टि हो चुकी है, उन्हीं के कर्मोंसे जीव लिपटे हुए है। जो जिसके कर्म होते है उसी को वे पकड़ लेते हैं। इस कर्म वासना का नाम ही ऊति है। भगवान जब अपने समस्त शक्तियों को समेटकर अपने में लीन कर लेते हैं और योगनिद्रा में चले जाते हैं, उसी का नाम निरोध है।

निरोध अपनी सारी वासनाओं का मल विक्षेप आवरण कषाय आदि का निराकरण करके इन बंधनों से ऊपर उठकर के अपनी चित्तवृत्ति को परमात्मा में लगा देना इसको निरोध कहते हैं। सब प्रकार की उपाधियों से रहित होकर के अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करना मुक्ति है।

जिससे सम्पूर्ण चराचर जगत की उत्पत्ति स्थित और प्रलय होती है, वही परब्रह्म इस सम्पूर्ण विश्व के आश्रयभूत हैं। उसी को परमात्मा कहते है। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन तीनों को जो जानता है, उस आत्मा को ही सबका अनन्य आश्रय समझना चाहिये। जो आध्यात्मिक पुरुष जीव हैं, इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देव सूर्य आदि देवता हैं और ये समस्त आधिभौतिक दृश्य पदार्थ हैं। इन तीनों को जो जानता है वही आत्मा है उसीको परमात्मा कहते हैं। वही सबका अनन्य आश्रय है। वह स्वयं सबका आश्रय होते हुए भी वह किसी का आश्रय नहीं। वह विभु है, सर्वान्तर्यामी और परिपूर्ण नित्य शुद्ध और कार्य कारण से रहित है। समस्त का आश्रय सर्ग हो, विसर्ग हो, स्थान हो, पोषण हो, उती हो, मन्वन्तर हो, ईशानुकथा हो, निरोध हो, मुक्ति हो, इस सब का एकमात्र आश्रय भगवान हैं। जो आश्रय तत्त्व है, उसी का प्रतिपादन करने के लिये पहले वाले नवों तत्त्वों का वर्णन किया गया है। अद्वैत वेदान्त में जिस तत्व को अधिष्ठान कहते हैं उसी को भागवत में आश्रय तत्त्व कहा गया। आश्रय और अधिष्ठान एक ही तत्त्व का नाम है। समस्त शास्त्रों का भी यही लक्ष्य है।

कर्‍यो सृष्टि संकल्प रच्यो जल बसे उदरमहँ। इन्द्रिय, मन, तनु-शक्ति रची पुनि प्राण उदित तहँ।।
भूख प्यास जब लगी कर्ण गोलक सब निकसे। अन्त:करण प्रकाश, अहं, मन, चित्त, घी विकसे।।
कर्ता भोक्ता हरि नहीं, सदा रहे निरलेप हैं। घरें रूप तोऊ विविध, उदासीन रचिकें रहैं।।

जब इस ब्रह्माण्ड को भेदकर विराट पुरुष बाहर निकला तो उसे अपने रहने को निवास स्थान की चिन्ता हुई। वे तो शुद्ध संकल्प थे, अत: शुद्ध जल की रचना की। उस अपने ही रचे हुए जल में वे नारायण पुरुष हजार वर्ष तक रहे। उन परम पुरुष नर से उत्पन्न होने के कारण जल का नाम नीर है। उसमें जिनका अयन हो वे ही नारायण कहलाते हैं।

विराट पुरुष रूप नर से उत्पन्नहोने के कारण ही जल का नाम नार पड़ा और उस अपने पैदा किए हुए नार में वह पुरुष एक हजार वर्षों तक रहा, इसीसे उसका नाम नारायण हुआ। जब उस आदिदेव ने सृष्टि का विचार किया, तब अपने स्वर्णमय वीर्य को तीन भागों में विभाजित कर दिया। आधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत।

जिस प्रकार सृष्टि-स्थिति, प्रलय प्रतिक्षण पिंडों में होती है, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में होती है। सृष्टि के रहस्य को समझना यही परमार्थ पथ की प्रथम और मुख्य सीढ़ी है। जिसने सृष्टि की रचना को समझ लिया उसे कभी-न-कभी सृष्टिकर्ता से भी परिचय हो जायेगा। क्योंकि पुरुष का यथार्थ परिचय उसकी कला ही है। कला में ही कलाकार का हृदय अन्तर्भूत रहता है। जब उस परात्पर पुरुषने एक से अनेक होने की इच्छा की तो उन्होने माया का आश्रय ग्रहण किया। उसने अपने कार्य में माया का सहकारिणी बना लिया। अपने सुवर्ण के समान चमकीले वीर्य, स्थूल, सूक्ष्म व अतिसूक्ष्म, द्रव्य, देवता और

जीव आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ये तीन भाग कर लिये। प्राणों के रहने से ही प्राणी जीवित कहलाते है इसलिये शरीर में प्राण ही मुख्य हैं। प्राण न रहे तो कोई भी इन्द्रिय अपना कार्य नहीं कर सकती। निष्प्राण शरीर की भी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है।

विराट भगवान को प्राणों का संचार होने से भूख-प्यास लगने लगी। क्योंकि बिना प्राण के संचार से भूख-प्यास लगती नहीं। तब पंच प्राण आए प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान। उससे शरीर प्रकट हुआ। अत: उसके अण्ड में एक छिद्र हो गया। वही सबसे पहिले उत्पन्न हुआ। मुख्य होने से उसका नाम मुख हो गया। उस मुख में तालु बिना, रसना इन्द्रिय का मानों घर बन गया। अब सृष्टि बढ़ने लगी। वह विराट खाने-पीने लग गया और वस्तुओं को माँगने के लिये बोलने की इच्छा भी उन विराट देवता को हुई। उन सत्य संकल्प भूमा पुरुष के मुख में अग्निदेव की सहायता से वाक् इन्द्रिय की उत्पत्ति हुई। वाणी उस इन्द्रिय का विषय हुआ। वेद जब निर्गुण से सगुण हुए, अरूप से सरूप बने, जब सुनने की इच्छा हुई तो उस अण्डे में दो छिद्र हो गये। अत: कानों की अधिष्ठातृ दशों दिशायें हैं, श्रोत्र इन्द्रिय है और शब्द सुनना इसका विषय है। कोई दूर की अथवा समीप की वस्तु है यह जानने की इच्छा हुई कि यह कोमल है या कठिन, हलकी है या भारी यह इच्छा होते ही उस विराट के सम्पूर्ण शरीर पर चर्म छा गया। इस प्रकार विराट पुरुष के शरीर में ज्ञानेन्द्रिय का प्रादुर्भाव हुआ। शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये पाँच इन्द्रियों के विषय है। ज्ञान के पश्चात् उसकी कर्म करने की भी इच्छा हुई। तभी कर्मेन्द्रियां प्रकट हुई।

उन विराट पुरुष ने जब विविध कार्य करने की इच्छा की तो उनके दो हाथ निकल आये। उसमें बल हस्त शक्ति इन्द्रिय हुई, इन्द्र उसके देवता हुए, उठाना, धरना, पकड़ना यह विषय हुआ। जब उन्हें इधर-से-उधर अभीष्ट स्थानों में जाने की इच्छा हुई तो उसी क्षण दो पैर निकल आये। उन चरणों के स्वयं भगवान विष्णु देवता है, पाद कर्मेन्द्रियां हैं, गति विषय है। इन्हीं के द्वारा फिरकर मनुष्य यज्ञसाधन सम्बन्धी सामग्रियों को एकत्रित करता है।

सृष्टि की इच्छा रखनेवाला, एक से बहुत बनने की कामना वाला विराट पुरुष ही समस्त सृष्टि का कारण है। सत्यसंकल्प और अमोघ इच्छा होने के कारण वह सृष्टि के लिये अपने शरीर में जिस वस्तु की भी आवश्यकता अनुभव करता है, वह तुरन्त प्रकट हो जाती है। आधिभौतिक वस्तुएँ इन भौतिक चर्मचक्षुओं से दीखती हैं। बहुत-सी नहीं भी दीखती। आधिदैविक और आध्यात्मिक वस्तुओं का बुद्धि द्वारा ज्ञान होता है। जब विराट पुरुष की इच्छा हुई कहीं इधर-उधर घूम-फिरें, अभीष्ट स्थानों में जावें और मन बहलावें। यह इच्छा होते ही दो लम्बे-लम्बे पैर भी निकल आये। पैरों से चलकर ही मनुष्य जीवन, साधन सामग्री, यज्ञीय वस्तुएँ एकत्रित कर सकता है।

फिर अपने समान पुत्र पैदा करने की इच्छा हुई जिनसे इस लोक का भी सुख प्राप्त हो। जो स्वर्ग की प्राप्ति करा सकें। यह सोचते ही विराट अण्डे में उपस्थेन्द्रिय उपस्थित हो गयी जो इसके कामसुख और मूत्रोत्सर्ग विषय है। आँत और कुक्षियों के देवता तो समुद्र हुए और नाडियों की स्वामिनी नदियां हुई। कुक्षियों का विषय तुष्टि और नाडियों का विषय सम्पूर्ण अंगों की पुष्टि करना हुआ।

शुकदेव बोले, राजन्। भगवान सर्वसमर्थ है। उनके यहाँ सम्भव असम्भव कुछ नहीं। वे अपने अचिन्त्य सामर्थ्य से अकर्मा होते हुए भी सुकर्मा से बन जाते हैं। वे अरूप होते हुए भी विराट रूप धारण कर लेते हैं। वे स्वयं ही वाच्य बन जाते हैं और स्वयं ही उसके वाचक हो जाते हैं। अपने आप ही नाम रूप वाले बन जाते हैं, स्वयं ही क्रिया शक्ति से क्रिया बनकर, कर्म करने लगते हैं। एक होते हुए भी अनेक रूपों में विभक्त हो जाते हैं। वे स्वयं ही प्रजापति, मनु देव, ऋषि, पितृगण, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर,असुर, गुह्यक, किन्नर, अप्सरा, नाग, सर्प, किम्पुरुष, उरग, मातृका, राक्षस, पिशाच, प्रेत,

भूत, विनायक, कूष्माण्ड, उन्माद, वेताल, गण, यातुधान, ग्रह, पक्षी, मृग, पशु, वृक्ष, पर्वत, सरीसृप इत्यादि-इत्यादि अनेक नाम रूपों को धारण करते हैं।

संसार में चर और अचर भेद से दो प्रकार के तथा जरायुज, अण्डज, स्वेदज और अद्भिज्ज भेद से चार प्रकार के जितने भी जीव हैं, सबके सब शुभ-अशुभ और मिश्रित कर्मों के अनुरूप फल भोगते हैं। सत्व की प्रधानता से देवता, रजोगुण की प्रधानता से मनुष्य और तमोगुण की प्रधानता से नारकीय योनियाँ उत्पन्न होती हैं।

अपने आप ही स्थावर बन जाते हैं और स्वयं ही जंगम बनकर घूमने फिरने वाले हो जाते हैं। स्वयं ही जरा नाम की झिल्ली में घुसकर जरायुज नाम वाले जीव बन जाते हैं। कहीं पक्षियों के पेट में अंडे के भीतर से पैदा होकर अण्डज तत्त्व कहलाते हैं। कहीं-कहीं पसीने से ही लूलू बाबू बनकर उन्हीं शरीरों को काटते हैं, उन्हीं का रक्त पान करके पुष्ट बन जाते हैं। कहीं पृथ्वी को फोड़कर लम्ब-तड़ंगे सीधे-सादे वृक्ष बन जाते हैं। कहीं ऊपर से खाते हैं, नीचे के अंग पुष्ट होते हैं और कहीं वृक्ष आदि में नीचे से आहार लेते हैं, ऊपर की शाखाओं और पत्र-पुष्पों को रस पहुँचाते हैं। कहीं स्थल में रहते हैं, कहीं जल-जन्तु बनकर जल में ही रहते हैं। वहीं खाते-पीते हैं वहीं सोते हैं। तीक्ष्ण धारवाली नदियों के भीतर कैसे सोते होंगे? कहीं अधर आकाश में रहकर जीवन धारण करते हैं।

निराकार निरलेप निराश्रय नित्य निरंजन। माया आश्रय करत होहिँ साकार सगुन तन।।
उद्भिज अण्डज और जरायुज होवें स्वेदज। स्थावर जंगम रूपजीव बनि प्रविशें हरि अज।।
कर्म रहित कर्ता बनहिं, नाम रूप धारण करहिं। स्वयं बाच्य बाचक नृपति। धरि तनु धरणी दुख हरहिँ।।
अजी सूतजी। यादि बात इक आई अबई। गये विदुरजी तीर्थ भ्रमण हित तजिकें सबई।।
मुनि मैत्रेय समीप ज्ञान पायौ कहँ उननें। का का कीन्हें प्रश्न दयौ का उत्तर तिननें।।
सन्त समागममहँ सदा, कथा कृष्णकी होहि नित। सूत सुनाओ सरस सब, शुभ सम्वाद प्रसन्न चित।।

अकेले परमात्मा ने जब एक से अनेक होने का सत्य संकल्प किया तो उस ब्रह्माण्ड के तीन विभाग हो गए। सृष्टि के लिए संकल्प करनेवाले भगवान के शरीर के भीतर विद्यमान आकाश से तीन शक्तियाँ उत्पन्न हुईं; इन्द्रिय शक्ति, मन: शक्ति और देह शक्ति। उसी से क्रमश: प्राण, महान् तथा असुर उत्पन्न हुए। प्राणों का संचार होने पर विराट पुरुष ने खाने की इच्छा की। तब उस ब्रह्माण्ड में से सर्वप्रथम मुख निकला। उसमें तालु अधिभूत हुआ। उसमें जिह्वा इन्द्रिय हुई। अनेक प्रकार के रस उसके विषय बने। जब विराट पुरुष को बोलने की इच्छा हुई तो मुख में वागिन्द्रिय उत्पन्न हुई। उसके अधिष्ठातृ देवता अग्नि और विषय भाषण हुआ। जब गन्ध ग्रहण करने की इच्छा हुई तो दो नासिका छिद्र अविर्भूत हुए। उसकी इन्द्रिय घ्राण, अधिष्ठातृ देवता अश्विनीकुमार तथा उसका विषय गन्ध हुआ। विराट पुरुष को जब देखने की इच्छा हुई तो दो नेत्र गोलक निकले। इनमें चक्षु इन्द्रिय हुई। उसके अधिष्ठातृ देवता सूर्य तथा विषय रूप हुआ। जब इसे शब्द ग्रहण करने की इच्छा हुई तो दो कान निकले। इनमें श्रोत्र नाम की इन्द्रिय हुई। उसके देवता दिशाएँ हुईं तथा विषय शब्द हुआ। विराट पुरुष की जब स्पर्श करने की इच्छा हुई तो चर्म निकला। इसमें त्वक् इन्द्रिय हुई, उसका विषय स्पर्श तथा अधिष्ठातृ देवता वायु हुआ। जब उसकी कर्म करने की इच्छा हुई तो उसके दो हाथ हो गये। हाथ का देवता इन्द्र हुआ तथा आदान-प्रदान उसका विषय हुआ।

जब विराट पुरुष की चलने की इच्छा हुई तो उसके दो पैर हो गये। उसके अधिष्ठातृ देवता विष्णु हुए तथा गमनागमन उसके विषय हुए। रति करने की इच्छा हुई तो उसको शिश्न (लिंग) हो गया। उसके अधिष्ठातृ देवता प्रजापति हुए रति सुख विषय हुआ। मल परित्याग करने की इच्छा हुई तो उसका मलद्वार आविर्भूत हो गया। इसके देवता भिन्न हुए तथा मल त्याग उसका विषय हुआ। एक शरीर से दूसरे शरीर में जब उसकी जाने की इच्छा हुई तो उसकी नाभि आविर्भूत हो

गयी। इसका देवता मृत्यु तथा मरण विषय हुआ। अन्न ग्रहण करने की इच्छा हुई तो समुद्र देवता से अधिष्ठित एवं अंतड़ी से युक्त कुक्षि आविर्भूत हो गयी। विराट पुरुष की ध्यान करने की इच्छा होने पर मन नामक इन्द्रिय तथा चन्द्रमा देवता से युक्त संकल्प करने वाला मन आविर्भूत हो गया। यही श्रीभगवान का आठ आवरणों से युक्त स्थूल रूप है। परमात्मा का आदि, मध्य तथा अन्त से रहित एक सूक्ष्म रूप भी है। परमात्मा के ये दोनो रूप मायिक हैं।

शौनकजी ने पूछा- सूतजी। आपने पीछे कहा था, कि महाबुद्धिमान परमभागवत श्रीविदुरजी अपने अत्यन्त दुस्त्यज कुटुम्बियों को त्यागकर पृथ्वी के सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा करते रहे। सो, उस समय उनकी भेंट महामुनि श्रीमैत्रेयजी के साथ कहाँ पर हुई? उन दोनों का आत्मज्ञान सम्बन्धी सम्वाद किस स्थल पर हुआ तथा उनके पूछने पर श्रीमैत्रेयजी ने उन्हें क्या-क्या उत्तर दिये?

भ्रम सदा अनजान पुरुष को होता है। जान पहिचानवाले को पहिले तो भ्रम होता ही नहीं, किसी कारण विशेष से हो जाय तो वह भ्रम शीघ्र ही निवृत्त भी हो जाता है। हमारा एक परिचित व्यक्ति है, वह कोई विचित्र रूप बनाकर सबके सामने आया है। जो उसे जानते नहीं, वे तो उसके उसी रूप को यथार्थ मानकर डरते हैं या सम्मान-सत्कार करते हैं किन्तु जो उसे जानते हैं और यह भी अनुभव करते हैं कि यह रूप इसका बनावटी है- यथार्थ नहीं, उन्हें उससे कोई भय नहीं, उस रूप में सजे-बजे होने पर भी वे उसका वही पुराना असली रूप देखते हैं। यह छद्म रूप उनकी दृष्टि में मिथ्या हैं।

राजा परीक्षित बोले- प्रभो। ये नाना योनियाँ किस कारण से बनीं? विराट भगवान ने इन चित्र-विचित्र कर्म करनेवाली इतनी योनियों की सृष्टि किस हेतु से की?

श्रीशुक ने कहा- राजन्। यह सब गुणों का खेल है। प्रकृति के जो सत्व, रज और तम ये तीन गुण हैं, इन्हीं के द्वारा उच्च, नीच, शुभ-अशुभ और बीच की योनियाँ होती हैं। सत्व गुण की प्रधानता से देव आदि योनियाँ उत्पन्न होती हैं, रजोगुण की प्रधानता से कर्म से आसक्त होनेवाले मनुष्य आदि की और तमोगुण की प्रधानता से कीट, पतंग, कूकर, शूकर आदि नारकी योनियाँ उत्पन्न होती हैं। इनमें भी दो गुणों को दबाकर एक कुछ प्रबल हो गया, इस प्रकार तीन-तीन भेद और भी हो जाते हैं। इसी प्रकार ये सब भेद गुणों के द्वारा होते हैं। भगवान इन सबमें समान रूप से व्याप्त हैं। उनके लिये छोटा-बड़ा, उच्च नीच का कोई भेदभाव नहीं। यह सब तो प्रकृति और विकृति के द्वारा भेदभाव उच्च-नीच आदि कल्पित हैं।

वे हरि जब इस जगत की उत्पत्ति करते हैं तो स्वयं ही ब्रह्मा बन जाते हैं। जब रक्षा करनी होती है तो विष्णु बनकर नाना योनियों में अवतार ग्रहण करके अपनी रची सृष्टि की सावधानी के साथ पालन करते हैं। जब प्रलय काल आकर उपस्थित होता है तो त्रिनेत्र रुद्र बनकर अपने ललाट के नेत्र से कालाग्नि प्रकट करके सबको भस्मसात् कर देते हैं। पैदा करते समय हर्ष नहीं, पालन करते समय गर्व नहीं, नाश करते समय दु:ख नहीं, तीनों ही क्रीड़ायें उनकी हैं। हम लोग कर्म बन्धनों के अधीन है। भगवान को तो कर्म बन्धन हैं ही नहीं। वे तो सबसे स्वतन्त्र हैं।

उन भूमा पुरुष के कर्तृत्व का निषेध करने के लिये, माया के द्वारा ही इस जगत प्रपंच का आरोप किया गया है। वास्तव में इस स्वरूप भूत जगत् की उत्पत्ति आदि में उनका कर्तृत्व है ही नहीं। माया के द्वारा वे कर्ता से दिखाई देते हैं।

विधि-विधान को व्यवस्थित रखने के लिए भगवान विष्णु ही धर्म रूप स्वीकार करके देवता, मनुष्य, पशु और पक्षी रूप में अवतार ग्रहण करते हैं। महाकल्प के आरम्भ में प्रकृति से क्रमश: महत्तत्त्वादि की उत्पत्ति होती है और अन्य कल्पों के प्रारम्भ में प्राकृत सृष्टि ज्यों-की-त्यों ही रहती है। चराचर प्राणियों की वैकृत सृष्टि नवीन रूप से होती है।

प्रभु की प्रार्थना करते हुए शुकदेवजी कहते हैं कि प्रभु में ही संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और लीला करने के सभी

तत्त्व, तीनों गुण विद्यमान हैं। प्रभु ही सत्त्व, रज, तम तीनों शक्तियों से ब्रह्मा, विष्णु और महेश का रूप धारण करते हैं। प्रभु की महिमा अनंत है। प्रभु ही दुष्टों का नाश करके भक्तों को उनके अभीष्ट का दान करते हैं। प्रभु ही विवेकी पुरुष को अपनी भक्ति प्रदान करते हैं। बड़े-बड़े तपस्वी और दानी प्रभु के चरणों में स्वयं को अर्पित करके ही कल्याण की प्राप्ति करते हैं।

दुर्योधन की अनीति से असन्तुष्ट होकर श्रीविदुरजी अपने समस्त प्रिय बन्धु-बान्धव और परिवार वालों का परित्याग करके तीर्थ यात्रा के निमित्त निकल गये थे। उसी यात्रा के प्रसंग में उन्होंने महामुनि भगवान मैत्रेयजी से आत्मज्ञान की उपलब्धि की थी।

पहली भक्ति जान ले, संत जनों का संग। सत् संगत से जीव पर, चढ़े हरि का रंग।।
दूजी भक्ति कथा में, श्रद्धा और विश्वास। हरि कथा में रहें मगन, सदा हरि के दास।।
गुरु चरनन की सेवा को, तीजी भक्ति जान। गुरु कृपा बिन जाए नहीं, मोह माया अज्ञान।।
चौथी भक्ति हरि के, गुण गाना दिन रात। हरि महिमा गुनगान से, सभी अमंगल जात।।
पंचम भक्ति नाम का, स्वासों स्वासा जप। सिमरन सम साधन नहीं, क्या तीरथ क्या तप।।
छटी भक्ति विषयों से, सदा रहे वैराग। बहु कर्मों से रहें विरक्त, राम चरण अनुराग।।
रामरूप जन जान कर, सब से करना प्रेम। सप्तम् भक्ति है यही, भक्ति का ये नेम।।
आठवीं भक्ति किसी के, जान पड़े ना दोष। सहज स्वभाव जो मिल जाए, ता में हो सन्तोष।।
राम भरोसे रहने को, नवीं भक्ति मान। नौ में से इक भी मिले, दया साईं की जान।।

शुकदेवजी परीक्षितको भागवत कथा सुनाने लगे- कथा सुननेके बाद यदि आपके जीवन में परिवर्तन न आवे, तो आपने कथा एकाग्र मन से सुनी ही नहीं। कथा सुननेके लिये जिज्ञासा होनी चाहिए कि कुछ सीखना है और जानना है। प्रभु की कृपा प्राप्त करना बहुत ही मुश्किल है लेकिन प्रभु की कृपा मिलने के बाद उस कृपा को बचाना बहुत कठिन है।

इसी ज्ञानको मैत्रेय ऋषीश्वर ने यमुना के किनारे विदुरजी से कहा था। हे राजन्। जो मनुष्य अहंकार से परमेश्वर का माहात्म्य नहीं जानता, वह इस संसार में और परलोक में दु:ख पाता है।

मनुष्य के हरएक अंग में देवता लोग वास करते हैं और यह इच्छा रखते हैं कि हाथ से दान दें, जिह्वा से परमेश्वर का भजन व स्मरण करें, कानों से उनकी कथा व लीला सुनें, पैरों से तीर्थयात्रा करें, देवस्थान पर जाकर आँखों से मूर्ति के दर्शन करें, ध्यान में परमेश्वर का दर्शन करें, जिसमें हम लोगों का भी भला हो। मनुष्य के तन में रजोगुण या तमोगुण अथवा सतोगुण, एक गुण आठों पहर वर्तमान रहता है। एक गुण के समय दूसरा गुण नट के खेल के समान छिप जाता है। यह ब्रह्मकल्प का हाल हमने तुमने कहा, इसी तरह सब कल्पों में संसार की उत्पत्ति होती है।

परीक्षितने पूछा- महात्मन्। विदुर महामन्त्री ने समस्त ऐश्वर्य त्यागकर तीर्थ पर जाने का निश्चय क्यों किया? तथा तीर्थ में मैत्रेय मुनिके साथ समागम किस प्रकार हुआ और मैत्रेय मुनिने क्या उपदेश दिया?

इति द्वितीय स्कन्ध

*** सेवा का फल सुख होता है, दान का फल भोग होता है,**
तपस्या का फल ईश्वर होता है और ज्ञान का फल मोक्ष होता है, भजन का फल शांति होता है।
*** मैं हंसा था कभी वक्त की बात पर, वक्त हंसता रहा मेरे हालात पर।**
वाकया देखिए दिन गुनहगार था, और तोहमत लगाई गई रात पर।।

तृतीय स्कन्ध

१) विदुर की उद्धव से वृंदावन में भेंट २८४

२) विदुर और मैत्रेय मुनिकी हरिद्वार में भेंट और परस्पर संवाद २९४

३) मैत्रेय मुनिद्वारा विदुर के प्रश्नों का उत्तर ३००

४) ब्रह्माकी उत्पत्ति और सृष्टि विषयक ज्ञान ३०५

५) काल का परिमाण ३३७

६) वाराह चरित्र और पृथ्वी का उद्धार ३४१

७) जय-विजय को शाप ३५६

८) हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का जन्म ३६४

९) देवहूति और कर्दम का चरित्र ३७४

१०) कपिलोपख्यान (कपिल गीता, सांख्यशास्त्र) ३९३

** कली-कली रस चूसता मन भंवरा मुसकाये, झूठे जग का झूठा वैभव उसमें ये भरमायें।*
अन्त समय फिर पछताये जब अपने करम टटोले, पंचतत्व का बना ये पुतला जिसको जीव चलाये ।।
** समझकर राख का ढेर, उसको अब न छेड़ो बस। कहीं ये हो न उसके बाद, चिंगारी दबी निकले।*
बहुत रंगीत फूलों से, पडा है साबका लेकिन। थे खली रूह की खुशबू से अक्सर कागजी निकले ।।
** आत्म सन्तोष जिन्दगी में है तो सब कुछ है, वरना क्या रखा है घुट घुट कर जीने में,*
असली मकसद तो जिन्दगी जीने का जानते ही नहीं, उनके लिये क्या है जीने या मर जाने में?
** है उसी की कीर्ति और नाम इस संसार में। दे दिया सर्वस्व जिसने, विश्व के उपकार में ।।*
** होशियारी से बढ़ना हर कदम ये हम सफर, तेरे हर आंज पर है अब रकीबों की नजर।*
गीत मानवता के लिक्खो और गजलें प्यार की, संग दिल अफराद पर भी एक दिन होगा असर ।।
उम्र भर लिपटी रहीं बद बखतियां मुझसे, फिर भी मैंने दाग न लगने दिया किरदार पर ।।

तृतीय स्कन्ध

१) विदुर की उद्धव से वृंदावन में भेंट

परीक्षित जिज्ञासा करते हैं कि प्रभु की आज्ञा पाकर ब्रह्माजी ने कैसे-कैसे सृष्टि का विस्तार किया?

श्री शुकदेव बोले- राजा परीक्षित। यही प्रश्न जो तुमने किया है वही विदुरजी ने ऋषि मैत्रेय से किया था। वही प्रसंग मैं तुम्हें बताता हूँ, किन्तु पहले यह जान लो कि महात्मा विदुर मैत्रेयजी के समीप कैसे पहुंचे और उनका समागम कब और कहाँ हुआ? उन्होंने हस्तिनापुर का त्याग क्यों किया? यह बात उस दिनों की है जब जन्मान्ध धृतराष्ट्र अपने दुष्ट पुत्रों का पोषण अन्याय पूर्वक कर अपने ही अनुज पुत्रों को लाक्षाभवन में भस्म करने तथा अनुज पुत्र युधिष्ठिर महाराज का राज्य भी छल से दुर्योधन ने जुए में जीत महारानी द्रौपदी के वस्त्र दु:शासन ने भरी सभा में खींच, निर्वस्त्र करने की धृष्टता की थी और उन्हें वनवास दिया था। शर्त के अनुसार वनवास से लौटने पर न्यायोचित पैतृक भाग मांगा तो मोहवश धृतराष्ट्र ने वह भी नहीं दिया। दुनिया को पकड़ लेनेवाला, तेरा-मेरा बनानेवाला धृतराष्ट्र है। जगद्गुरु भगवान श्रीकृष्ण जब पाण्डवों के दूत बनकर कौरव सभा में गये और अमृत वचनों से कुरुवंशजों को समझाया किन्तु उन्होंने उनका भी निरादर किया। कृष्णने कहा- युधिष्ठिर आदि का हिस्सा दे दो, वे साधु पुरुष हैं किसी के साथ वैर नहीं करते, सबको अपना मित्र मानते हैं। तुम जो समझते हो कि मेरे सौ पुत्र बड़े बलवान हैं। दुर्योधनादि तुम्हें स्वर्ग नहीं ले जा सकते और न ही युधिष्ठिर आदि तुम्हें नरक में ढकेल देंगे। इसलिये संसारी व्यवहार समझकर युधिष्ठिर को उनका पैतृक राज्य लौटा दो।

हमेशा की तरह अशान्त होते ही धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाया। विदुर ने धर्मज्ञान धृतराष्ट्र को दिया। महामन्त्री विदुर को पूछने पर उन्होंने नीति सम्मत राय दी। जिसे विदुर नीति के नाम से जाना जाता है।

महात्मा विदुर ने धृतराष्ट्र को पाण्डवों के बल, तपस्या और उनके सत्यनिष्ठ होने तथा भगवान श्रीकृष्ण द्वारा उनके सहयोग देने की समस्त परिस्थितियों को अवगत कराते हुए यह भी बता दिया कि अब तक जितने प्रयास पाण्डवों को नष्ट करने के किये गये हैं वे सब निष्फल हुए इससे आपकी निन्दा और पाण्डवों का पक्ष सबल हुआ है। अत: आप दोषस्वरूप दुर्योधन का परित्याग और पाण्डवों को उनका पैतृक राज्य वापिस कर दें। यद्यपि यह न्यायोचित एवं धर्मानुकूल राय थी परन्तु मदान्ध दुर्योधन, दु:शासन और शकुनि को राष्ट्रद्रोह जैसा लगा और दुर्योधन ने महात्मा विदुर को राज्यसभा में समस्त आचार्य, पितामह भीष्म के समक्ष दासीपुत्र कहकर उनका अपमान कर राज्य से निकल जाने का आदेश दिया। विदुरने धृतराष्ट्र से कहा राजा अन्याय की बेल पर कभी अमृत का फल नहीं आ सकता, अन्याय की बेल कभी हरी-भरी नहीं हो सकती। यदि खानदान में एक व्यक्ति को त्यागने से यदि पूरा खानदान बच सकता है तो उस व्यक्ति को छोड़ देना चाहिये। आपके घरमें दुर्योधन-कलंक पैदा हुआ है। ये आपके परिवार को विनाश के कगार पर ले जायेगा। बाहर की आंखे तो आपके जन्म से ही नहीं हैं अन्दर की आँखोंसे आप अन्धे है। धृतराष्ट्र बुद्धि से भी अन्धा था। अधर्म के कारण उसकी ज्ञान शक्ति तथा मति मारी गयी थी। कुरुराज को विदुरके वचन ऐसे लगे जैसे त्रिदोष के मरणासन्न रोगी को औषधि नहीं लगती।

विदुर तो साधु स्वभाव के थे, उन्होंने दुर्योधन के अपालनीय आदेश का भी इसलिए पालन किया क्योंकि धृतराष्ट्र के मौन रहकर उसका अनुमोदन कर मौन सम्मति दी तथा तीर्थाटन का निर्णय लिया। धर्म में कभी पक्ष नहीं होता- धर्म निष्पक्ष है। विदुरजीने अपने मंत्री पद का त्याग किया। परमात्मा के चरणों में जिनकी अनन्य श्रद्धा है, विदुरजी तीर्थयात्रा पर चल पड़े।

महाभारत युद्ध की तैयारी हो रही थी, विदुरजी ने यह सोचकर कि अपने आंखोंके सामने अपने वंश का संहार देखना

अभीष्ट नहीं है, इसलिये युद्ध के पूर्व ही वे तीर्थ यात्रा के लिये निकल गये।

कौरवों का झगड़ा मिटाने के लिए कृष्ण शान्तिदूत बनकर राजा दुर्योधन की सभा में गये। उस समय श्रीकृष्णजी महाराज, भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य ने धृतराष्ट्र को समझाया कि हे राजन्। तुम्हारे बेटों और भाई के बेटों में कुछ भेद नहीं है। जब विदुरजी ने अपने भाई धृतराष्ट्र की मति अधर्म पर देखी तब यथार्थ बात समझाकर कहा कि हे भाई। तुम युधिष्ठिर आदि का न्यायोचित हिस्सा दे डालो, क्योंकि वे साधुपुरुष हैं, किसी के साथ वैर नहीं रखते, सबको अपना मित्र जानते हैं। युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव पाँचों भाइयों में ऐसी सामर्थ्य है कि यदि वे चाहें तो उनमें से एक ही मनुष्य दशों दिक्पालों को युद्ध में जीत सकता है। इसके सिवा श्रीकृष्ण उनके सहायक हैं। तुम जो समझते हो कि मेरे सौ पुत्र बड़े बलवान हैं, सो श्यामसुन्दर के विमुख रहने से उनके किये कुछ नहीं हो सकता। इस अधर्म में तुम्हारा धन और धर्म दोनों नष्ट हो जायँगे। तुम्हारा बेटा दुर्योधन श्रीकृष्ण से वैर रखता है, इसलिए उसके साथ प्रीति करने और उसकी बात मानने से तुम अपने लिये अच्छा न समझो। युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों का न्यायोचित हिस्सा दे दो। दुर्योधन से, जो राज्य और धन के मद में अंधा हो रहा है, राजसिंहासन छीन लो, इसी में तुम्हारे कुल और परिवार का कल्याण है। नहीं तो श्रीकृष्ण से वैर करने के कारण तुम्हारा कहीं पता न लगेगा। जब विदुरजी के समझाने पर भी धृतराष्ट्र कुछ नहीं बोले, तब दुर्योधन ने क्रोध करके आज्ञा दी कि विदुर को मेरी सभा से बाहर निकाल दो। यह हमारे कुल में दासीपुत्र होकर सब बातों में पाण्डवों का पक्ष करता है, यद्यपि इसका पालन हम करते हैं। यह सभा में हमारे बराबर बैठकर हमको ज्ञान सिखलाता है। दुर्योधन की यह आज्ञा सुनकर जब उनके सिपाहियों ने विदुरजी को सभा से निकालना चाहा और धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को ऐसा कहने से मना भी न किया, तब विदुरजी ने समझा कि कदाचित् कोई मुझे सभा से बाँह पकड़कर उठा देगा, तो अधिक अपमान होगा, इसलिए अपने आप यहाँ से उठ जाना उचित है। वृन्दावनविहारी कौरवों का नाश करना चाहते हैं, इसलिए धृतराष्ट्र आदि कौरवों के मन में अधर्म समाया है। अच्छी बात समझाना इनको बुरा मालूम होता है। ऐसा विचार कर विदुरजी वहाँ से उठकर द्वार पर चले आये। उन्होंने धनुष बाण आदि शस्त्र वहीं धर दिया कि शस्त्र समेत चले जाने से दुर्योधन को इस बात का संदेह होगा कि यह पाण्डवों की तरफ जा मिला। विदुरजी ने अपना वस्त्र भी उतार डाला, केवल एक लँगोटी बाँधकर और चादर ओढ़कर हस्तिनापुर से उत्तराखण्ड को तीर्थयात्रा करने के लिये चले गये। विदुरजी का त्याग बेबसीका त्याग नहीं था, वैराग्यपूर्वक था।

मनुष्य घरके लिए नहीं होता, वह तो भगवानकी प्राप्तिके लिए, भगवानका भजन स्मरण करनेके लिए होता है। वर्षा, सर्दी, गर्मी आदिसे सुरक्षित रहकर घरमें भजन करे, तब तो उसकी चरितार्थता है। परन्तु यदि घरके सजाने सँवारनेमें ही सारी जिन्दगी बीत जाये और भगवान ही छूट जायें तो वह घर बन्धन है, नरक है। पहले महात्मा लोग घर इसलिए बनाते थे कि वहीं रहकर भजन करें। घर भगवान्‌के भजनके लिए होता है, विषय-भोगके लिए नहीं होता। विषय-भोगके केन्द्र घरको छोड़ना जरूर कठिन है।

मनुष्य को दु:ख इस बातका नहीं है कि रूपया चला गया या रिश्तेदार मर गया, दु:ख इस बातका है कि हमारे मनमें स्पष्टरूपसे परमात्मा का दर्शन नहीं हो रहा है और हमारी बुद्धि परमात्माको समझ नहीं पा रही है।

विदुरजी ने वर्षभर तक भरतखण्ड की तीर्थयात्रा करते हुए यमुना के किनारे पहुँचकर सब देवताओं का दर्शन किया और मैत्रेय ऋषीश्वर की कुटी के समीप बहुत दिनों तक टिके रहे। उन्हीं दिनों में महाभारत युद्ध हुआ दुर्योधन आदि कौरव मारे गये, राजा युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण की कृपा से राजगद्दी मिली।

कृष्ण कहते है- **भाव का भूखा हूँ मैं, भाव ही एक सार है। जो भाव से भजता है मुझे, भव से बेड़ा पार है।।**

महाभारत युद्ध प्रारम्भ हुआ और समाप्त भी हो गया किन्तु विदुरजी तीर्थयात्रा पर ही रहे। तीर्थयात्रा में घूमते-घूमते वृंदावन में यमुनाजी के किनारे पहुंचे। उन्होंने त्रित, उशना, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गौ, गुह और श्राद्धदेवके नामोंसे प्रसिद्ध ग्यारह तीर्थोंका सेवन किया। इनके सिवा पृथ्वीमें ब्राह्मण और देवताओंके स्थापित किये हुए जो भगवान विष्णुके और भी अनेकों मन्दिर थे, जिनके शिखरोंपर भगवान्‌के प्रधान आयुध चक्रके चिन्ह थे और जिनके दर्शनमात्रसे श्रीकृष्णका स्मरण हो आता था; उनका भी सेवन किया। वहाँसे चलकर वे धन-धान्यपूर्ण सौराष्ट्र, सौवीर, मत्स्य और कुरुजांगल आदि देशोंमें होते हुए जब कुछ दिनोंमें यमुना-तटपर पहुँचे, तब वहाँ उन्होंने परमभागवत उद्धवजीका दर्शन किया। जब उद्धवभक्त श्यामसुन्दर के वैकुंठधाम जाने के उपरान्त द्वारिका से बदरिकाश्रम को जाते थे, तब राह में विदुरजी से भेंट हुई। दोनों परमेश्वर के परमभक्त आपस में गले मिले। विदुरजी उद्धवभक्त से दुर्योधन आदि के मारे जाने और युधिष्ठिर को राजसिंहासन प्राप्त होने का हाल सुनकर पहिले पछिताये, श्यामसुन्दर की इच्छा समझकर उन्होंने संतोष किया।

दु:खी होय धृतराष्ट्र से, विदुर दियो घर त्याग। तीरथ दर्शन को गये, मेटन चित की आग।।
तहाँ उद्धव से विदुर जी, भेंटे कण्ठ लगाय। पूछन लागे कुशल सब, मन में अति हरषाय।।

वहीं पर वृंदावन में ज्ञान गुदड़ी मुहल्ले में उद्धवजी की और विदुरजी की आपसमें भेट हुई। जब वे यमुनातट पर पहुँचे तो परम भागवत बृहस्पति शिष्य उद्धव जी से उनका मिलन हुआ। साधु लोग इकट्ठे होते हैं तो कोई धन-दौलतकी बात नहीं करते। वे आकृतिकी, रूपकी, आभासकी चर्चा नहीं करते, तत्त्वकी, ईश्वरकी चर्चा करते हैं। वे कड़ा-कंगनकी चर्चा न करके उसके भीतरका सोना क्या होता है, उसकी चर्चा करते हैं। उनका इससे कोई मतलब नहीं होता कि इस जगत्‌में क्या-क्या है, कैसा-कैसा है। उनका ज्ञातव्य और वर्ण्य विषय तो यह होता है कि यह जगत् किस धातुसे बना हैं? यही महात्माओंकी विशेषता है। उनकी बुद्धि तत्त्वग्राहिणी होती है- आकृति, रूप और आभासको ग्रहण करनेवाली बुद्धि नहीं होती। आज भी गोवर्धन पर्वत के अन्दर कुसुम सरोवर है जिसमें उद्धव जी लता बेल बने हुए हैं ताकि भक्तों की रज उन पर पड़े और वे पवित्र, धन्य होते रहे।

विदुरजी ने जिज्ञासा की- हे उद्धवजी प्रभु कृष्ण एक बार थोड़ी देर के लिये मेरे घर आये, जब शान्ति दूत बनकर सन्धि का प्रस्ताव लाये तब थोड़ी देर रहे फिर थोड़ी देर के बाद चल दिये। आप तो उद्धवजी बड़े भाग्यशाली हैं। कृष्ण के मथुरापुरी से लेकर द्वारिका तक वर्षों साथ रहे, एक संग खाये, एक संग खेले, एक संग सोये। कृपा करके मुझे भगवान श्यामसुन्दर की लीलाओं का वर्णन करें। उद्धवजी से भगवान कृष्ण बलराम, वसुदेव आदि की कुशलता पूछी- विशेष रूपसे पवित्र कीर्ति श्रीकृष्ण की लीलाओं की जिज्ञासा की तो उद्धव ने अपने परम प्रियतम प्रभु का स्मरण कर विह्वल होने लगे। श्रीकृष्ण के चरणारविन्द मकरन्द सुधा का पान करते दो घड़ी मौन ही रहे, शरीर में रोमांच हो आया, अश्रुपात होने लगा। विदुर उनकी अवस्था देख कृतकृत्य हो गये- कुछ समय बाद जब उद्धवजी कृष्ण प्रेमधाम से उतर कर पुन: संसार में आये तो विस्मित से हो विदुरजी से बोले- महात्मा विदुर। उद्धवने भगवान श्रीकृष्ण के लीलाओं का वर्णन किया।

अवतार लेने और लीला करने का भगवान का प्रयोजन था। संसारी मनुष्य और विशेषकर अधर्मी लोग उस लीला व कथा को आपस में कह सुनकर भवसागर पार उतर जावें।

जिस प्रकार माता देवकीजी के आठवें गर्भ से कंस के कारागार में भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उद्धवजी भाव समुद्र में निमग्न हो गए, उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। श्रीकृष्णस्मरणामृत सिन्धु में डूब गये। उनके हृदय में भक्तियोग का उदय हो गया, नेत्रोंसे आंसू झड़ने लगे और बोले- हे विदुरजी। श्रीकृष्ण रूप सूर्य सदा के लिये अस्त हो गया इससे यादव परिवार को कालरूप अजगर ने खा लिया है तब मैं उनकी कुशल क्षेम क्या सुनाऊँ? कृष्ण इस धराधाम को त्याग गये, अपनी

मानवीय लीलाओं का संवरण करके स्वधाम पधार गये। मानों दर्शन पिपासुओं को नेत्रहीन बना गये। विदुरजी हम तो उस रूप को जितना ही देखते, उतनी ही हमारी तृष्णा बढ़ती थी। आज वह रूप हमारी आँखों से ओझल हो गया। यादव बड़े ही अभागे रहे। कृष्ण के साथ रहते हुए भी उस दिव्य स्वरूप को नहीं जान सके जैसे अमृतमय चन्द्रमा के समुद्र में रहते मछलियाँ उन्हें नहीं पहचान सकी। संसारमें जो चीज ऊँचे चढ़ती है, वह नीचे भी गिर जाती है। यहाँका नियम है कि जो इकट्ठी की जाती है, वह बिखर जाती है और जिससे संयोग होता है, उससे वियोग भी होता है।

एक उदर में से उत्पन्न होने पर भी सबके भाग्य अलग-अलग होते हैं, कोई प्रभावशाली होता है कोई प्रभाव हीन, कोई शक्तिशाली होता है कोई निर्बल, कोई प्रकाशवान होता है, कोई प्रकाशहीन। ये हमसे कुछ अधिक बलवान, अधिक शक्तिशाली हैं। हम तो भाग्यके खिलौने हैं। हमारे भोग भी भाग्यके अधीन हैं।

अब भगवान श्रीकृष्ण अपने त्रिभुवन मोहन श्रीविग्रह को समेटकर अन्तर्धान हो गये हैं। उद्धवजी श्रीकृष्ण की स्मृति होते ही दिव्य लोक में चले गये। आनन्दरस सिन्धु में डूब गये। श्रीकृष्ण चरणारविन्द मकरंद के मादक मधु का पान करके मदमत्त हो गये। उन्हें बाहरी जगत का भान न रहा। अनन्त पराक्रम, अतुल वैभव, अनुपम सौंदर्य, लोकोत्तर दिव्यातिदिव्य गुण, महान् ऐश्वर्य, अद्भुत लावण्य, अभूतपूर्व दया दाक्षिण्य भगवान के इन सब गुणों को यह अल्पज्ञ जीव कैसे समझ सकता है? उन्हें वह इस प्राकृतिक बुद्धि से कैसे समझ सकता है? भगवान प्रकट हुए हमें उनका यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ- जिसका होना अल्पज्ञ जीव को सम्भव ही नहीं- तब उस दर्शन से हम रस का आस्वादन कैसे कर सकते हैं?

धन्य भाग हैं आज भक्त उद्धवजी भेंटे। दर्शन देके देव। दुरित दुख सब ही मेटे।।
भयों तिस्कृत फिरूँ न मनमहँ हर्ष शोक है। विषयभोगमहँ फँस्यो बहिर्मुख अज्ञ लोक है।।
यह हरिकी माया प्रबल, रचे खेल ठगिनी नये। जाते जे जगमहँ बचे, जे हरि शरणागत भये।।

श्रीविदुरजी उद्धवजी से कह रहे हैं- हे सखे। हे उद्धवजी। जो प्रपन्न पुरुषों का, इन्द्रादिक समस्त लोकपालों का और अपनी आज्ञा में अवस्थित अनुचरों का प्रिय करने के निमित्त यदुवंश में उत्पन्न हुए हैं, उन पवित्र कीर्ति, अज, अच्युत भगवान वासुदेव की बातों को सुनाइये। अर्थात् सब कुछ छोड़कर कृष्ण कथा होने दीजिये।

सखे। कहो अब कुशल कुशलके कारण जे हैं। शरणागत प्रतिपाल अवनिके त्राता ते हैं।।
संकर्षण बलराम देवकी कुशल सुनाओ। हैं सुखते वसुदेव सबनिकी बात बताओ।।
उद्धवजी। प्रद्युम्न अनु-रुद्धादिक जे स्वजन हैं। ते यदुवंशी कुशल हैं, जे सब हरिकी शरन है।।

अत्यन्त निराशा के स्वर में उद्धवजी कहने लगे- विदुरजी। क्या आप कुशल पूछ रहे हैं? किसकी कुशल पूछते हैं? यदुकुल की यासंसार की? कुशल तो प्रकाश में होती है, अन्धकार में चारों ओर भय-ही-भय है। सूर्य के अस्त हो जाने पर तम से आवृत साँय-साँय करती हुई भास्कर रूपी भगवान के प्रस्थान कर जाने पर अब कैसी कुशल? अब तो सर्वत्र अकुशल-ही-अकुशल है। जो द्वारावती परम पुण्यवती और स्वर्गादि लोकों को भी तिरस्कृत करनेवाली कही जाती थी, आज अपने स्वामी द्वारकाधीश के बिना वह श्रीहीन विधवा हो गई। उसकी माँग का सिन्दूर पुँछ गया, उसका अतुल वैभव नष्ट हो गया, उसकी अलकावली कट गई, चूड़ी बिछुओं से हीन वह शोभा और श्रृंगार से रहित अप्रिय दर्शन बन गई। यदि आप सम्पूर्ण संसार की कुशल पूछते हैं तो यह संसार अभागा है, यथार्थ में यह दु:ख शोक का आलय है। जैसा पहिले था, वैसा ही हो गया। स्वभाव को कौन मेट सकता है। दु:ख, शोक, आपत्ति, विपत्ति, चिन्ता, ग्लानि, भय, आधि-व्याधि से भरे इस संसार में शांति कहाँ, सुख कहाँ। यह पृथ्वी इसलिये बड़भागिनी मानी जाती है कि इस पर प्राकृत गुणों से रहित

श्रीवृन्दावन धाम हैं जब भगवान अपनी प्रकट लीला में पधारते हैं, तब पृथ्वी श्रीसम्पन्न हो जाती है, वह परम भाग्यशालिनी बन जाती है। जब वे अपनी लीला को संवरण कर लेते हैं, तब यह सम्पूर्ण लोक अप्रिय दर्शन हो जाता है। भगवान जिस जीव की ओर कृपा कर देख दें या जीव ही उन्हें स्नेह भरी दृष्टि से देख ले, तब वह कृतार्थ हो जाता है।

उद्धवजी पुन: भाव विभोर हो कहने लगे- विदुरजी उनकी लीलाओं का तो कोई अन्त ही नहीं। युधिष्ठिर के यज्ञ में जब उनका सौन्दर्य लोगों ने देखा तो स्वयं ब्रह्माजी भी उनकी प्रशंसा करने लगे थे। गोपियाँ जब उन्हें निहारतीं तो देखती ही रह जातीं अपनी सुध-बुध खो बैठती।

हाय। कहाँ वो परम सुखद श्रीहरिकी झाँकी। मन्द मन्द मुसकान चित्तहर चितवन बाँकी॥
आँखिनिकूँ वा छटा पानको चसको लाग्यो। भये न जौ लौं तृप्त, हमें हरि तौ लौ त्यागो॥
उठवनि चितवनि कर परसि, हँसनि अँक भरि-भरि मिलनि। चेष्टा ये सब श्यामकी, परम मधुर बोलनि चलनि॥

विदुरजी। भगवान के दर्शन एक जन्म के पुण्यों से नहीं होते। सहस्त्रों जन्मों तक जो तप, यज्ञ, समाधि के द्वारा उन परमाराध्य प्रभु की आराधना करते हैं, उन महाभाग्यशाली पुरुषों को ही भगवान के देवदुर्लभ दर्शन का सुयोग प्राप्त होता है। एक तो उनका दर्शन ही दुर्लभ है। तिस पर निरन्तर उनकी रूप माधुरी का अनिमेष भाव से पान करते रहना- यह तो उन्हीं की कृपा से सम्भव हो सकता है। सौभाग्य और सौन्दर्य की पराकाष्ठा थी उस रूप में। नेत्रों का साफल्य श्यामसुन्दर की त्रिभुवन कमनीय मूर्ति के दर्शनों में ही है।

इन्हीं अनन्त वीर्य पुरुष ने कंस के कारागार में जन्म लेकर विष पान करनेवाली पूतना को भी मातृगति प्रदान की, उनसे बढ़कर दयालु कौन हो सकता है विदुर। **गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ। मातु की गति दई ताहि कृपालु यादव राय।** उसके बाद अनेक असुर आये तृणावर्त्त, अघासुर, बकासुर इत्यादि असुरों का उद्धार किया कालियामर्दन, माखनचोरी, गोचारण, गोवर्द्धन-धारण रासक्रीड़ा इत्यादि लीलाओं के द्वारा व्रजवासियों को आनंदित करते हुए सुख दिया। ११ वर्ष तक व्रज में रहे। गिरिराज धरण के प्रसंग में इन्द्र की पूजा रुकवा दी और कहाँ ऐसे दुष्ट इन्द्रकी पूजाके स्थानपर हमारे जो वन हैं, पहाड़ हैं, हमारे व्रजकी जो मिट्टी हैं, उसकी पूजा करो। सबसे बड़ा यज्ञ यही है कि धरतीके मनुष्योंको तृप्त करो।

विदुरजी। जिनकी प्रेमपूर्ण हँसी, विचित्र विनोद और लीलामय जीवन में सम्मानित हुई ब्रजाङ्गनायें अपने नेत्रों को और चित्त की वृत्ति को उन्हीं में लगाये रहती थीं, इसी कारण वे अपने घर के काम-काजों को अधूरा ही छोड़कर, उन्हीं का ध्यान करते-करते तन्मय हो जाती थी उनके रूप माधुर्य का क्या वर्णन करें? गोपियाँ जब कभी कार्यवश बाहर निकलतीं तो उनकी दृष्टि भगवान को ही खोजती थी और भाग्यवश जब वे उन्हें देख पातीं, तब वे अपना कार्य छोड़कर निर्निमेष नयनों से भगवान का अद्भुत सौन्दर्य ही निहारती रह जाती थीं।

भगवान के सौन्दर्य-माधुर्य की छटा ब्रज में ऐसी व्याप्त थी कि सजीव निर्जीव बन जाते और निर्जीव सजीव हो जाते। बहुत-सी गोवर्धन की शिलायें मैंने पिघली हुई देखीं। उनमें अब तक श्रीकृष्ण के गोप-गोपी और गौओं के चरण चिन्ह ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं। वृक्षों के रोमांच हो जाते वे पुरुषों की भाँति प्रेमाश्रु बहाने लगते। उनकी वंशी की ध्वनि को सुनकर प्रकृति स्तब्ध हो जाती। उनके रूप को देखकर ब्रजाङ्गनायें भूली-सी, भटकी-सी, जकी-सी, प्रेम में छकी-सी रह जातीं। सो, हे विदुरजी। जिस माधुर्य को देखकर ब्रजांगनायें जलते हुए अंगों का भी ध्यान नहीं करती थीं, जिनके अवलोकन से सजीव शरीर भी निर्जीव-सा बन जाता था, आज वे ही हमें विरह सागर में निमग्न करके स्वधाम को पधार गये। दिव्यरास कर गोपियों के साथ मनोरथ पूर्ण की।

विदुरजी। फिर श्यामसुन्दर अपने भाई बलराम के साथ माता-पिता को सुख देने के निमित्त ब्रज से मथुरा पधारे। वहाँ समस्त शत्रु समुदाय के अग्रणी कंस को उच्च मंच से गिराकर उसकी निर्जीव देह को बलपूर्वक पृथ्वी पर घसीटा। उसके बाद मथुरापुरी में जाकर पापी कंस को मारा, माता-पिता वसुदेव-देवकी को बंदीगृह से छुड़ाया। अपने नाना उग्रसेन को राजगद्दी पर बिठाया। अक्रूर द्वारा मथुरा ले जाने पर कंस का यज्ञ विध्वंस कर, उसके पहलवानों को पछाड़, कंस की चोटी पकड़कर घसीट कर सद्गति प्रदान की। माता-पिता को कारागृह से मुक्त कराके उग्रसेन को राजा बनाया। गर्गाचार्य जी से अपना उपनयन संस्कार कराया। संदीपन गुरु के यहाँ शिक्षा ग्रहण कर दक्षिणा में मृत गुरु पुत्र को यमलोक से लाकर दिया। सान्दीपनीजी के गुरुगृह में अवन्तीपुरी जाकर विद्या प्राप्त की। वहाँ चौसठ कलाओं का अध्ययन किया और चौसठ दिनोंमें ही सब विद्यामें पारंगत हुए। जिस तरह से श्रीराम गुरु वसिष्ठ के गुरुकुल में पढ़ने गये। **गुरु गृह गये पढ़न रघुराई। अल्पकाल विद्या सब आई।**

उद्धवजी कहते हैं- विदुरजी। मथुरा में आने पर कालयवन, जरासन्ध और शाल्व आदि दुष्टों ने जब सेनाओं सहित भगवान की पुरी को घेर लिया तो उन दुष्टों को भगवान ने स्वयं मारा यद्यपि उन्हें मुचुकुन्द भीमसेन आदि से मरवाया था, किन्तु उन अपने भक्तों को उन्होंने मारनेवाला दिव्य तेज स्वयं ही प्रदान किया था, शम्बर, द्विविद, बाणासुर, मुर, बल्वल, तथा दन्तवक्त्र आदि में से किसी को तो स्वयं ही मारा और किसी को अपना तेज देकर दूसरों से मरवा डाला।

द्वारिका में नया राज्य स्थापित कर अनेक कौतुकों से आठ विवाह किये। सत्यभामा की प्रसन्नता के लिये इन्द्र का मान मर्दन करके पारिजात वृक्ष को द्वारिका में ले आये। भौमासुरको मार कर सौलह हजार एक सौ कन्याओं से एक मुहूर्त में विवाह किया। प्रत्येक पत्नी से दस-दस पुत्र उत्पन्न किये। व्रजवासियों के यहां गोपियों के पास सांत्वना देने के लिये मुझे भेजा। विदुरजी। यद्यपि भगवान द्वारावती में रहकर लोक और वेद सम्बन्धी व्यवहारों का अनुसरण अवश्य करते थे। समस्त संसारी विषयों का उपभोग भी करते थे, किन्तु वे स्वात्माराम होने के कारण कभी उनमें आसक्त नहीं हुए। बहुत वर्षों तक दिव्य-दिव्य भोगों को भोगते रहे, रानियों को सुख देते रहे, लड़के-लड़कियों के साथ खेलते रहे, गृहस्थियों का व्यवहार करते रहे। उपनयन, मुंडन, कर्णवेधन आदि-आदि संस्कार करते, लड़के लड़कियों का विवाह करते, उन्हें विदा करते, विदा कराके लाते, यह सब करते हुए आपको अन्त में इन कार्यों से विराग हो गया।

जरासन्ध को सत्रह बार युद्ध में हराए और अठारहवीं बार युद्ध से भागकर द्वारिका चले गये।

कहि कहि निज प्रभु की कथा, उद्धव भये विहाल। जरासन्ध शिशुपाल सब, मारे जिन तत्काल।।
कौरव पाण्डव युद्ध रचि, कीन्हों सब का नाश। शेष बचे यादव बली, कीन्हों तिनहु विनाश।।

सुदामा भक्तपर कृपा करते हुए पाण्डवों पर कृपा की। शिशुपाल, दन्तवक्त्र इत्यादि अनेक असुरों का उद्धार करते हुए महाभारत युद्ध के निमित्त पाण्डवों का पक्ष लेकर समस्त राजाओं का संहार करके पृथ्वी का भार उतारा। कौरवों का संहार करा युधिष्ठिर को सम्राट बनाया। भगवान की इच्छा जानकर ही ब्राह्मणोंने यदुकुल के नाश का शाप दिया। यदुकुल का संहार कराने के निमित्त ऋषियों से श्राप दिलवाया और प्रभाष क्षेत्र में समस्त यदुवंशियों का विनाश कराया।

विदुरजी। सर्वसमर्थ होने पर भी भगवान ने कैसी-कैसी कौमारी क्रीड़ाओं का प्रदर्शन किया। सिंह शावक के समान वे अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में भोलेपन के सहित देखते, कभी हँसते, कभी रोने लग जाते। इसके अनन्तर जब कुछ-कुछ बड़े हुए तब परम शोभायुक्त शुभ्र गौ वृषभ, बछड़ेवाले गोधन को चराते हुए अपने सखा ग्वालबालों को बाँसुरी बजाकर आनन्दित करने लगे।

असंख्यों छोटे-छोटे गोपकुमार उनके सखा थे, बहुत-सी ब्रजबालायें और ब्रजांगनाये उनकी सहचरी थीं। वहाँ इन्होंने अपनी समस्त बाललीला की सुषमा बिखेर दी। वृजबालायें उनकी भक्ति तथा प्रेम में इतनी विभोर थी कि उन्हें भक्ति योग तथा प्रेम योग

के सम्मुख अन्य कोई योग उत्तम नहीं लगा। दिव्य अप्राकृतिक बालक की जो मनमोहिनी चित्ताकर्षिणी लीलायें होती हैं, वे सब उन्होंने व्रज के वनों में प्रदर्शित कीं। वे व्रज के ग्वाल बाल धन्य हैं, वन्दनीय और पूजनीय हैं, जिनके साथ श्यामसुन्दर ने अति मनोहर बालकपन के खेल किये। वे गोप, गोपी, गौएँ तथा ग्वालबाल तो उनके नित्य सहचर ही थे।

नाम जाति कुल कर्म भाव सम्बन्ध न पेखें। कहहु जीव अल्पज्ञ अलखकूँ कैसे देखें।।
कैसे हू आ जाय ताहि श्रीहरि अपनावें। दुर्जनता दु:ख मेटि परम निज धाम पठावें।।
पापी, द्वेषी, गुण रहित, नित निन्दे नित अघ करे। तामस, क्रूर, पिशाच खल, देखि मरे तेहूं तरे।।

हे सखे। श्रीकृष्ण रूपी सूर्य अस्त हो गया और हम सब श्रीविहीन हो गये।

उद्धव लीला कृष्ण की, कही विदुर से आय। गये कृष्ण निज धाम को, दे वियोग दुखदाय।।
गदगद हो रोने लगे, करि करि प्रभु गुणगान। कृष्णचन्द्र के साथ में, पाये सुख महान।।

सरस्वती के तट पर पीपल वृक्ष के नीचे बैठकर मुझे बद्रिकाश्रम जाने का उपदेश दिया और आज्ञा दी- मेरी चरण पादुका लेकर तुम बद्रिकाश्रम में अलकनन्दा का दर्शन करने के लिये चले जाओ। अपना शेष जीवन वहीं बिताओ। उसी समय महामुनि मैत्रेयजी के आने पर मुझे बताया कि यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है इसलिए तुम्हें वह अति दुर्लभ ज्ञान देता हूँ जिसे सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी को दिया था। विद्वान लोग इसे ही श्रीमद्भागवत कहते हैं- हे महात्मन्। मैं उन साक्षात् परम ब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्ण को प्रणाम कर वहाँ से चला आया हूँ और अब बद्रिकाश्रम जाऊँगा। उद्धव बोले- विदुरजी मुझ पर तो प्रतिक्षण उन परम पुरुष भक्तवत्सल कृपामय प्रभु की कृपा बरसा करती थी। जब मैंने देखा भगवान अब मृत्युलोक का परित्याग करके अपने धाम जाना चाहते है तो मैं स्वामी के वियोग को सह न सकने के कारण व्याकुल हो गया और उनके पीछे-पीछे प्रभास क्षेत्र पहुंच गया। उनके वियोग का दु:ख मुझे एक क्षण नहीं भूलता।

जिस समय मुरलीमनोहर अन्तर्धान होना चाहते थे, उस समय मैत्रेय ऋषीश्वर ने प्रभासक्षेत्र में जाकर श्रीकृष्ण को दंडवत किया। तब श्यामसुन्दर बोले- हे मैत्रेयजी। हमने तुम्हारे मन का सब हाल जाना, तुम धैर्य रक्खो मेरी माया तुमको न व्यापेगी; क्योंकि तुम मेरे भक्त, पिछले जन्म के वसुदेवता, इस जन्म में वेदव्यासजी के भाई और पराशर मुनि के पुत्र हो। तुमको मेरी प्रकट व गुप्त सब लीला मालूम रहेगी।

मनुष्य के कल्याण के लिए श्यामसुन्दर के अवतार की कथा व लीला सुनने और परमेश्वर के नाम का स्मरण करने के सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। महाभारत होने के उपरांत श्रीकृष्ण ने पच्चीस वर्ष तक संसार में रहकर राजा युधिष्ठिर से दो बार यज्ञ कराके जगत में उनको यश दिया था।

वहां मैंने सबके आश्रय दिव्य विशुद्ध स्वत्त्वमय अत्यन्त शान्त सुन्दर श्यामस्वरूप का दर्शन किया। आदरपूर्वक चरणों में प्रणिपात किया। विदुरजी, उस समय मेरे दोनों नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। मेरी वाणी गद्गद् हो गई। मैंने कहा- स्वामिन्, अपने स्वरूप का गूढ़ रहस्य प्रकट करने वाला जो श्रेष्ठ एवं समग्रज्ञान है, वह यदि मेरे समझने योग्य हो, तो आप मुझे प्रदान कीजिये, जिससे मैं इस संसार दु:खको सुगमता से पार कर जाऊं। विदुरजी। जब मैंने इस प्रकार अपने हृदय का भाव निवेदित किया तो उन परम पुरुष कमलनयन श्यामसुन्दर ने अपने स्वरूप की परम स्थिति का मुझे उपदेश दिया। उद्धवजी भगवानके उत्सवमूर्ति है। इसीसे श्रीकृष्ण व्रजमें स्वयं नहीं गये, उद्धवको भेज दिया।

उद्धवजीने कृष्णसे प्रश्न किया- भगवन् आपके चौबीस अवतार हुए हैं और आप जगह-जगह प्रसाद पाते हैं। मैं पूछना चाहता हूँ सबसे सुंदर भोग पाने में आपको कहाँ सुख मिला? सबसे ज्यादा मिठास कहाँ के भोग में आयी? गोविन्द के नेत्र सजल

हो गये। उद्धव से बोले- उद्धव। सबसे ज्यादा भोजन का स्वाद मुझे केवल दो जगह आया। एक तो शबरी के घर बेर खाये और एक विदुरानी के घर केले के छिलके मैंने खाये। इन दो जगहों पर मुझे जो आनन्द और सुख मिला वह कहीं नहीं मिला।

श्री भगवान कहने लगे- उद्धव मैं तुम्हारी आन्तरिक अभिलाषा जानता हूँ; इसलिये मैं तुम्हें वह साधन देता हूँ, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। उद्धव। तुम पूर्व-जन्ममें वसु थे। विश्वकी रचना करनेवाले प्रजापतियों और वसुओंके यज्ञमें मुझे पानेकी इच्छासे ही तुमने मेरी आराधना की थी। साधुस्वभाव उद्धव। संसारमें तुम्हारा यह अन्तिम जन्म है; क्योंकि इसमें तुमने मेरा अनुग्रह प्राप्त कर लिया है। अब मैं मर्त्यलोकको छोड़कर अपने धाममें जाना चाहता हूँ। इस समय यहाँ एकान्तमें तुमने अपनी अनन्य भक्तिके कारण ही मेरा दर्शन पाया है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। पूर्वकालमें पाद्मकल्पके आरम्भमें मैंने अपने नाभि-कमलपर बैठै हुए ब्रह्माको अपनी महिमाके प्रकट करनेवाले जिस श्रेष्ठ ज्ञानका उपदेश किया था और जिसे विवेकी लोग भागवत कहते हैं, वही मैं तुम्हें देता हूँ। उन्होंने तत्वज्ञान में मुझसे यह कहा- मुझे जानो, इस संसार को तो नाशवान ही समझो। जीवात्मा कभी नहीं मरता, इसलिए मेरे वियोग का शोक न करो। मरना कैसा होता है, जिस तरह एक कपड़े को उतारकर दूसरा वस्त्र पहन ले उसी तरह यह जीव एक चोले को छोड़कर दूसरे तन में प्रवेश करता है।

भगवन बोले, उद्धव। तुम अभी तक बद्रिकाश्रम नहीं गये। तुम्हारा मैं अभिप्राय समझ गया हूँ। तुम मेरे कहने पर अभी तक मेरे स्नेहवशाय बदरिकाश्रम नहीं गये, यह मुझे मालूम है। इसमें भी तुम मेरी प्रेरणा ही समझो।

मैंने हाथ जोड़कर विनीत भाव से कहा- प्रभो। मैं आपके चरणों के बिना रह नहीं सकता। मेरे मन मधुप के लिये वे ही नीचे अरुण ऊपर से नील, ये दो पाद-पद्म ही रस के आलय और निवास के निकेत हैं मैंने अपने स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन किया, अपराधी होने पर भी मुझे अन्यत्र आश्रय ही नहीं है। इन चरणों को छोड़कर मैं कहीं जाना भी चाहूं तो नहीं जा सकता।

भगवान मन्द मन्द मुस्कराते हुए बोले- जब ब्रह्माका शरीर भी एक दिन गिर जाता है तब ब्रह्माकी बनायी हुई सृष्टिमें किसका शरीर रहेगा। इसलिये तुम मेरे साथ नहीं चल सकते। उद्धवजी। तुम अपने को भूल गये क्या? तुम साधारण जीव नहीं हो। पूर्वकाल में तुम आठ वसुओं में से एक वसु थे। एक बार सृष्टि को बढ़ानेवाले सभी प्रजापतियों ने तथा वसुओं ने मिलकर एक बड़ा भारी यज्ञ किया था। उसमें अन्य वसुओं ने तथा प्रजापतियों ने अपनी कामना के अनुसार वर माँगे। जब मैं तुम्हारे सामने प्रकट हुआ तो तुमने उस समय मुझसे यही वरदान माँगा था कि मुझे आपका सान्निध्य प्राप्त हो और आपकी महामहिमा को प्रकाशित करनेवाला सर्वश्रेष्ठ ज्ञान मुझे प्राप्त हो और आपके चरणों में मेरी निरन्तर अहैतुकी भक्ति बनी रहे। उसी के फलस्वरूप तुम्हें मेरी कृपा से मेरा सान्निध्य और मुझसे ऐसी प्रगाढ़ भक्ति प्राप्त हुई है। अब मैं तुम्हें अपनी प्राप्ति का साधन स्वरूप ज्ञान देता हूँ। यह बहुत ही गोपनीय और रहस्य का विषय है। अन्य जीवों के लिये यह ज्ञान अत्यन्त ही दुष्प्राय है।

मेरे बताये ज्ञान के प्रचार और प्रसार के लिये- पृथ्वी पर कुछ दिन और रहो। तुम घबड़ाओ मत, अब तुम्हें संसार बन्धन न होगा। अब तुम फिर चौरासी के चक्कर में न फँसोगे। यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है। इस शरीर को त्यागकर कर्म बन्धनों से बँध कर, अब तुम्हें पुन: संसार में न आना पड़ेगा। यह भाग्य की बात है, जो एकान्त में स्वधाम पधारते समय तुमने मेरा दर्शन किया। अब मैं तुम्हें उस भागवत तत्व का उपदेश करूँगा, जिसका उपदेश पाद्मकल्प के आदि में मैंने ब्रह्माजी को किया था। इसको लोग भागवत तत्व कहते हैं। जिस तत्व के श्रवण मनन से जीव संसार बन्धन से सदा के लिये छूट जाता है और भगवान के नित्य धाम का अधिकारी बन जाता है।

भगवन बोले, उद्धव। अब इस लोकसे मेरे चले जाने पर संयमीशिरोमणि उद्धव तुम ही मेरे ज्ञान को ग्रहण करनेके सच्चे अधिकारी हो। उद्धव तुम मुझसे अणुमात्र भी कम नहीं हो, तुम आत्मजयी हो, विषयोंसे कभी विचलित नहीं होते। अत:

लोगोंको मेरे ज्ञानकी शिक्षा देते हुए यहीं रहो।

संसारके विषय मनुष्यको रौंद देते हैं, अपने नीचे दबा देते हैं। चेतन हो जाता है नीचे और संसारकी सम्पत्ति बन जाती है। भगवान श्रीकृष्णने सोचा कि मैंने राग तो बहुत प्रकट किया, अब वैराग्य भी प्रकट करना चाहिए। भगवानके जीवनमें राग-वैराग्य, धर्म-अधर्म, ज्ञान-अज्ञान और सुख-दु:ख सबके सब रहते हैं। इसलिए उन्होंने वैराग्य प्रकट किया और विरक्त होकर उद्धवजीको ज्ञान-दान करनेके बाद अन्तर्धान हो गये। वेदोंके मूल कारण जगद्गुरु श्रीकृष्णके इस प्रकार आज्ञा देनेपर उद्धव बदरिकाश्रममें जाकर समाधियोगद्वारा श्रीहरिकी आराधना करने लगे।

विदुरजी। मुझपर तो प्रतिक्षण उन परम पुरुषकी कृपा बरसा करती थी। इस समय उनके इस प्रकार आदरपूर्वक कहनेसे स्नेहवश मुझे रोमांच हो आया, मेरी वाणी गद्गद हो गयी और नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

विदुरजी। भगवान की लीलाओं में कोई कारण नहीं, कोई हेतु नहीं। वे होती हैं, क्योंकि वे आनन्द की राशि हैं। उस राशि में से जो भी निकलेगा वह सुखद ही होगा। अत: उनकी प्रत्येक लीला सुख देनेवाली ही होती है।

उद्धव ने कहा, विदुर। अवतार लेने और लीला करने का भगवान का यह प्रयोजन था कि संसारी मनुष्य और विशेषकर अधर्मी लोग उस लीला व कथा को आपस में कह-सुनकर भवसागर पार उतर जावें।

पृथ्वी का भार उतारने के वास्ते अपनी इच्छा से अवतार लेकर कौरवों और पांडवों से महाभारत कराया। दुर्योधन आदि सब कौरवों का नाश किया। युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई की रक्षा करके उन्हें राजगद्दी दी। छप्पन करोड़ यदुवंशियों को दुर्वासा ऋषीश्वर से शाप दिलवाकर आपस की लड़ाई में मरवा डाला। सो उस बात को याद करके मुझे बड़ा दु:ख होता है। हे विदुर। जब से श्यामसुन्दर यदुवंशियों को नाश करके वैकुण्ठ को पधारे तब से सत्य और धर्म संसार से उठ गया। मैंने बहुत बिनती करके उनसे कहा कि मैं जन्म भर आपकी सेवा व टहल में रहा, मुझे भी अपने साथ ले चलो। पर मुझे न ले जाकर मुझसे बोले- तू बदरी-केदार में जाकर मेरा ध्यान करके मुक्त हो।

तत्व, ज्ञान उन्होंने मुझसे कहा कि मुझको जानकर जब संसार का नाश समझो और जीवात्मा कभी नहीं मरता, इसलिए मेरे वियोग का शोक न करो। मरना कैसा होता है, जिस तरह एक कपड़े को उतारकर दूसरा वस्त्र पहिन लेवे उसी तरह यह जीव एक चोले को छोड़कर दूसरे तन में प्रवेश करता है।

इस प्रकार विदुरजी श्रीकृष्ण से आत्मतत्त्व की उपलब्धि का साधन प्राप्त कर उनके चरणों में वन्दन करते हुए परिक्रमा करके उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर अब मैं उनकी आज्ञानुसार बदरीकाश्रम को जा रहा हूं जहां श्री भगवान नर और नारायण रूप में लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये दीर्घकालीन सुख पहुँचानेवाली कठिन तपस्या कर रहे हैं। उद्धवजी के मुख से भगवान के स्वधामगमन एवं बन्धुओं के विनाश का समाचार सुनकर विदुरजी को अत्यन्त शोक हुआ। लेकिन ज्ञान के द्वारा उन्होंने उसे शान्त किया।

विदुरजी बोले- हे बृहस्पति शिष्य। वह गोप्य ज्ञान जो भगवान श्रीकृष्ण ने तुम्हें दिया था। उसको सुनने की मेरी अत्यंत अभिलाषा है। विदुरजी बोले- उद्धवजी। श्रीभगवान के द्वारा आपने उनके स्वरूप के गूढ़ रहस्य को समझने वाला जो गुह्यातिगुह्य परम ज्ञान प्राप्त किया है, उसकी दीक्षा कृपा करके हमको भी दीजिये। यदि आप हमें उसका अधिकारी समझते हों तो उस ज्ञान का उपदेश हमें भी दीजिये। यह कोई संसारी भोग सामग्री तो है नहीं, जिसे लोभवश संसारी लोग दूसरों को देने में हिचकते हैं। यह तो परमार्थ ज्ञान है। आप जैसे परम भागवत, भगवत् भक्त अपने सेवकों का प्रयोजन सिद्ध करने के ही लिये पृथ्वी पर विचरण करते रहते हैं। अधिकारी देखकर वे गूढ़-से-गूढ़ ज्ञान को भी प्रदान कर देते हैं।

मैं आपका सेवक हूँ, आप में अनुरक्त हूँ। आपके सदृश तो नहीं हूँ पर, भगवान मेरे ऊपर भी यत्किंचित कृपा करते थे। उसी नाते से मैं आपकी कृपा का पात्र होने का अधिकारी हो सकता हूँ।

उद्धव ने कहा कि आपको उपदेशित करने के लिए भगवान ने ऋषि मैत्रेय को आज्ञा दी है। अत: उन्हीं के पास हरिद्वार जाकर ज्ञान प्राप्त करो। विदुर बोले, मेरी और मैत्रेयजी की कोई जान पहचान नहीं है। ये ऋषि लोग अधिकारी को ही ज्ञान छिड़कते है अनधिकारी को नहीं। उद्धव बोले, धन्य हो विदुरजी। दीनता की हद होती है। आपसे बढ़कर और अधिकारी कौन हो सकता है। भगवान की आप पर जितनी कृपा है, उतनी किसी दूसरे भक्त पर भी है, इसे मैं नहीं जानता। भगवान ने प्रभास क्षेत्र में आपके बारे में पूछा था कि मेरा विदुर कहा है? उनको आज्ञा दी थी हे मैत्रेय, यह मेरा ज्ञानोपदेश है मेरा विदुर आवें तो उसे उपदेश करना। अन्तिम समय स्वधाम पधारते समय भगवान ने किसी का स्मरण नहीं किया। केवल आपका ही स्मरण किया। जो लोग शरीर छोड़ने की बेला में भगवान का स्मरण करते हैं वे भाग्यशाली हैं, पुण्यशाली हैं किन्तु धरा-धाम छोड़ने की बेला में भगवान जिनको याद करते हैं, वे अत्यन्त भाग्यशाली हैं, पुण्यात्मा हैं। अन्तिम बेला में भगवान ने विदुर का स्मरण किया इससे उनकी अतिशय महत्ता सूचित होती है। वाह रे विदुर का भाग्य। विदुर बोले- उद्धवजी। क्या श्यामसुन्दर ने मेरा स्मरण किया? किस प्रसंग में उन्होंने मेरा नाम लिया? उद्धव बोले- भागवत तत्व का ज्ञान मुझे सुनाते हुए महामुनि मैत्रेयजीसे कहा था। जब सम्पूर्ण भागवतसार का उपदेश भगवान कर चुके तब उन्होंने मुनिवर मैत्रेय से मेरे सम्मुख ही स्पष्ट शब्दों में कहा- मुनिवर आप इस ज्ञान का उपदेश मेरे परम भक्त विदुरजी को अवश्य करें। वे इसके सर्वथा अधिकारी हैं। वे गंगाद्वार में आपकी सेवा में आयेंगे, उस समय आप उन्हें यह सब ज्ञान दें।

मुनि मैत्रेय समीप कहीं हरिने यह बानी। मोर भक्त है विदुर परम प्रिय अतिशय ज्ञानी।।
तिनकूँ मेरो ज्ञान अवसि मुनिवर उपदेसें। जिनकूँ सुमिरें श्याम सराहें तिनिकूँ कैसें।।
आप पधारें गंग तट, हो। बदरीवन जोइकें। हरि आराधन करौं तहँ, कन्द मूल फल खायकें।।

आपके जाने पर मैत्रेय मुनि अपना भाग्य सराहेंगे। कृष्ण विरह में मालूम होता है समय भी छोटा हो गया। इसप्रकार विदुरजी से कहकर आँसू बहाते हुए उद्धवजी ने कहा- विदुरजी। आपके दर्शन से भगवान का वियोग का दु:ख तो कम हो गया, किन्तु अब एक नया दु:ख उत्पन्न हो गया। भगवान की आज्ञा का तो मुझे पालन करना ही है। बदरीवन तो मुझे जाना ही होगा, किन्तु अब आपके दर्शन कहाँ होंगे? प्रतीत होता है, यह हमारी आपकी अन्तिम भेंट हैं। काल की कैसी कुटिल गति है? दैव प्रेमियों को एकत्रित नहीं रहने देता है। मिलन विछोह के ही लिये होता है। संयोग से सटा ही वियोग बैठा रहता है। अब मैं जाना चाहता हूँ। मेरे ऊपर आपकी इसी प्रकार कृपा बनी रहे। कभी-कभी मुझे अपना सेवक समझकर स्मरण कर लिया करें।

एक है ज्ञानी भक्त, दूसरा है नीतिज्ञ भक्त, दोनों का आपसमें मिलन हुआ।
यही से भागवत प्रसंग आरम्भ हुआ,विदुर और उद्धव का संवाद।।

विदुरजी से बड़ा भाग्यवान संसार में और कौन होगा, जिसकी याद स्वयं परमात्मा करता है। भगवान की याद सब करते हैं और भगवान याद करते हैं विदुर को। इसलिए प्रभु के संदेशवाहक बनकर, श्री उद्धवजीने विदुर जी से सत्संग किया। आदरणीय शुकदेव जी महाराज कहते हैं- उद्धव जी जब विदुर जी से मिले तो विदुर और उद्धव दोनों का कण्ठ अवरुद्ध हो रहा था। दोनों की परिस्थिति भिन्न बन गयी थी, वचन मुख से निकल नहीं रहा था। विदुर कहते हैं उद्धव तुम भाग्यवान हो,

उद्धव कहते हैं आप भाग्यवान हो।

उद्धवजीने कृष्ण की बाललीलायें, कृष्ण का दिव्य किशोर चरित्र श्री विदुर जी को कह सुनाया। सुनकर विदुर उत्कंठित हो गये और कुछ जानने के लिए महात्मा उद्धव ने कहा- हरिद्वार में एक संत रहते हैं नाम है मैत्रेय मुनि। मैत्रेय मुनि ब्राह्मण हैं विदुर जी दासी पुत्र हैं। लेकिन- **जाति पाति पूछहिं नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।**

इतनी बात सुनकर उद्धवजी, विदुरजी एक दूसरे से गले मिलकर अत्यन्त आनंदित हुए। उद्धवजी बदरिकाश्रम को पधारे और विदुरजी हरिद्वार गये।

श्रीशुकदेव बोले- राजा परीक्षित। उद्धव जी को जो भगवत वियोग से मानसिक सन्ताप हो गया था, वह विदुर जी के साथ विश्वमूर्ति भगवान वासुदेव के गुण-कथन-रूपी सुधा के द्वारा शान्त हो गया। भगवत्चर्चा करते-करते यमुनाजी के किनारे दोनों ने वह रात्रि क्षण के समान बिताई। प्रात:काल होते ही उद्धवजी वहाँ से चल दिये।

उद्धवजी के मुख से कृष्ण के प्रशंसनीय कर्म और लीलाएं सुनकर तथा इस प्रकार अन्तर्धान होनेका समाचार पाकर यह जानकर कि भगवानने परमधाम जाते समय विदुर को स्मरण किया था, विदुरजी उद्धवजीके चले जानेपर प्रेमसे विह्वल होकर रोने लगे। इसके पश्चात् विदुरजी यमुनातटसे चलकर कुछ दिनोंमें गंगाजीके किनारे जा पहुँचे, जहाँ मैत्रेय ऋषिका आश्रम था।

श्यामसुन्दर की कृपा व दया के बिना हरिभक्तों का सत्संग नहीं मिलता। इसलिए हम जानते हैं कि हमारे पिछले जन्म के पुण्य सहाय हुए, जो आपका दर्शन मिला। सूतजी शौनकादिक ऋषीश्वरों से और शुकदेवजी, राजा परीक्षित से कहते हैं कि उद्धवजी ये सब बातें करके विदुर से विदा हुए और बदरिकाश्रम में जाकर श्यामसुन्दर के ध्यान में लीन होकर योगाभ्यास करके अपना तन त्याग दिया और वैकुंठधाम को चले गये। विदुरजी तीर्थयात्रा करते हुए मैत्रेयजी से मिलने की इच्छा से रोते और शोक करते हुए हरिद्वार में आकर ठहरे।

यादव कुल का नाश सुनि, तजी विदुर जग आस। दुखी होय मन में चले, मैत्रेयजी के पास॥

२) विदुर और मैत्रेय मुनिकी हरिद्वार में भेंट और परस्पर संवाद

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- हे कुरुकुल तिलक राजन्। जब विदुरजी ने यह सुना कि परमधाम पधारते समय भगवान ने मेरा स्मरण किया था, तब तो वे परम भगवत् भक्त उद्धवजी के चले जाने पर इस बात को स्मरण करके प्रेम में विह्वल होकर रोने लगे। हे भरतवंशावतंस राजन्। इसके अनन्तर वे परमसिद्ध विदुरजी यमुनाजी के किनारे से चलकर कुछ ही दिनों में गंगाजी के किनारे कुशावर्त्तक्षेत्र (हरिद्वार) में उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ महामुनि मैत्रेयजी निवास करते थे।

विदुरजीके मन को बड़ी ठेस लगी। भगवान कृष्ण निर्मोही की भाँति छोड़कर चले गये। उद्धव के वियोग का समस्त शोक-संताप भूल गये। यह संयोग वियोग का विधान विधिना ने कैसा क्रूर बनाया है। अपने परम प्रेमी सुहृदों से मिलना बिछुड़ना कैसा वीभत्स काण्ड है। सभी के कर्म पृथक-पृथक है। प्रारब्धों की विभिन्नता से अनिच्छापूर्वक भी ये दु:ख हृदय पर पत्थर रखकर सहन करने पड़ते हैं।

बड़ी देर तक विदुरजी आँसू बहाते रहे, जब रोते-रोते हृदय कुछ हलका हुआ, प्रेम का वेग कम हुआ, तब वे धैर्य धारण करके उठे। उन्होंने उस उत्तर दिशा को प्रणाम किया जिस ओर उनके परम स्नेही उद्धवजी पधारे थे। फिर उन्होंने ब्रज की धूलि को मस्तक पर चढ़ाया, वृन्दावन की गुल्मलताओं और पशु-पक्षियों को प्रणाम किया, तदनन्तर वे दुखित चित्त से वहाँ से चल दिये।

जिन्होंने लीला से ही मनुष्य शरीर धारण किया है, जो वेदों की उत्पत्ति के स्थान हैं, जो उद्धव के ही नहीं, सम्पूर्ण जगत् के गुरु हैं, वे भगवान स्वधाम पधार गये। बन्धु बान्धवों का विनाश हो गया। अब विदुरजी को जीने की अभिलाषा नहीं रही, किन्तु एक ही लोभ उन्हें जीवित रखने को विवश कर रहा था। स्वधाम पधारते समय प्रभु ने मेरा स्मरण किया है। मुनियों में श्रेष्ठ भगवान मैत्रेय को मुझे भागवत तत्व के उपदेश करने का आदेश दिया है, किसी प्रकार गंगाद्वार चलकर उस भगवदुच्छिष्ट ज्ञान का मैं पान करके कृतार्थ हो जाऊँ। उद्धवजी के सम्मुख भगवान ने जो मुझे ज्ञान-दान का अधिकारी समझा है, उस ज्ञान को पाकर मैं अपने जीवन को सफल बना लूँ। यही सोचकर वे यमुनाजी के किनारे-किनारे कुछ दूर चले। फिर यमुनाजी को पार करके कुछ काल में वे भगवती भागीरथी के तट पर आ गये और उनके तट का आश्रय लेकर थोड़े ही दिनों में अत्यन्त शीघ्रता के साथ वे कुशावर्त क्षेत्र- मायापुरी हरिद्वार में पहुँच गये।

कृष्ण का जन्म मथुरा में हुआ। इसलिये बहुत से कारणोंको लेकर मथुरा बड़ी प्रसिद्ध नगरी है। मथुरा में ही उद्धव गये और वहां उन्होंने सुना कि विदुर यहांपर है। विदुर हस्तिनापुर से अपमानित होकर तीर्थयात्रा में निकले हुए मथुरा में आये है। विदुरने भी जाना की उद्धव आये हुए है। दोनोंकी आपसमें भेंट होती है। विदुर पूछते है- उद्धव, मेरे प्रभु कैसे है? द्वारिका में सही-सलामत, अच्छे है ना? उद्धव रोने लगे, आँखोंसे आँसू बह रहे है, हिचकियाँ मार रहे, उत्तर निकल नहीं पा रहा और बोले- विदुरजी, भगवान स्वधाम चले गये और बोले मैं बद्रिकाश्रम जा रहा हूँ। अब वह यहां नहीं है। विदुर भी बड़े हताश हुए रोने लगे, कुछ क्षणोंमे जब सान्त्वना हुई तो उद्धवजीने भगवान की लीलाओंको बताना शुरू किया कि भगवान बाल्यकाल में छोटे थे, भगवान कृष्णका चरित्र पूरा दु:खोंसे भरा पड़ा है। जन्म ही जिस बालक का जेल में हुआ, पला किसी और के घर में। उस बालक की क्या अवस्था होती होंगी, मां-बाप कोई और, पालनेवाला कोई और है। विषमता होती है। और आये दिन दैत्य-राक्षसोंसे जूझना पड़ा। बड़े हुए, शिक्षण हुआ, अपना जहां पले वह शहर छोड़ना पड़ा। शादी-विवाह भी सुखशांति से नहीं हो पायी वहां भी युद्ध, झगड़े हुए और बादमें महाभारत का युद्ध लड़ाया गया। पूरी जिन्दगी कृष्णकी पूरी की पूरी कष्टमें बीती है। फिर भी कृष्णने कभी यह शिकायत नहीं करी, कभी मुखम्लान नहीं किया कि मैं आज दु:खी हूँ। सदैव मुस्कुराते रहे, हँसते रहे, यह जीवमात्र को यह उपदेश दिया आपके जीवन में हजारों-लाखों विपत्तियां आयेंगी सहना पड़ेगा, विपत्तियां टालना आपके बसमें नहीं है, परिस्थितियोंको बदलना आपके बसमें नहीं है। फिर परिस्थितियोंका मुकाबला करो, स्वीकार करो, उनके लिये प्रयत्न करो, जीवन में मुस्कुराते रहो। आप रोओगे तो कुछ कर नहीं पाओगे। उदाहरण के लिये- जब जीव शरीर छोड़ देता है, उसके परिवारवाले कितना रोते, विलाप करते क्योंकि यह मोह है। उपदेश करना बड़ा सरल है, पालन करना बड़ा कठिन है। लेकिन आपके विलाप करने से, रोने-धोने से कुछ शरीर में जान तो नहीं आ सकती। आप कितना भी करके देखो जो चला गया सो चला गया। परिस्थिति स्वीकार करनी पड़ती है। फिर परिस्थितियां तो बदल नहीं सकते आप। पर वह स्वीकार करो, हंसते हुए करो, रोते हुए क्यों? यह कृष्णके जीवन का तात्पर्य यह है। उद्धवने भगवान कृष्णकी बाललीलाओंका वर्णन, अन्य चरित्रोंका वर्णन किया। विदुरने पूछा- भगवन कृष्ण जब स्वधाम गये उन्होंने मेरे लिये कुछ कहा? उद्धव बोले- विदुरजी, आपको अन्त समय तक याद करते रहे। बोले- मेरा विदुर कहा है? और आपके लिये उन्होंने कहा मैत्रेय मुनिके पास जावें और जो ज्ञान मैंने मैत्रेय मुनिको दिया है वो ज्ञान मैत्रेय मुनि आपको देंगे। विदुरजी प्रात:काल मैत्रेय मुनिके पास जानेके लिये तैयार हो गये मैत्रेय मुनि हरिद्वार में है। विदुरजी हरिद्वार में जाकर मैत्रेय मुनिसे मिले।

विदुर संग नहिं गये चेतना उद्धव सँग ई। गई, चेतना शून्य भये व्याकुल वे तब ई॥

धर्त्यो धीर पुनि उठे शून्य सब देह दिखाई। पुनि कृपालुकी कृपा यदि तबई ह्वै आई।।
मुनि मैत्रेय समीप वे, तुरत तहाँतें चलि दये। सुरसरि तटकी बाट गहि, हरिद्वार पहुँचत भये।।

शुकदेव बोले, परीक्षित। अच्युत भाव से भावित कुरुकुल श्रेष्ठ विदुरजी हरिद्वार क्षेत्र में पहुँच गये। वहां पर उन्होंने बोध सम्पन्न महामुनि मैत्रेयजी को शान्त भाव से चुपचाप बैठे हुए देखा। उसके साधुस्वभाव से सन्तुष्ट होकर वे प्रश्न पूछने को उद्यत हुए।

मैत्रेय मुनि गंगा तट पर बैठे प्रभु का चिन्तन कर रहे थे उसी समय विदुर जी ने जाकर प्रणाम किया। विदुर को देख मुनि बहुत प्रसन्न हुए। परस्पर कुशल क्षेम पूछने के बाद विदुरजी ने पूछा- महात्मन्। मनुष्य सुख के लिए कर्म करता है किन्तु उसका फल उसे दुख मिलता है ऐसा क्यों? व्यासजी से अनेक बार चर्चा हुई है किन्तु मुझे तृप्ति नहीं हुई आप कोई ऐसी भगवत् चर्चा करें जिससे मुझे आत्मानन्द प्राप्त हो।

मैत्रेय मुनिसे पूछे, भगवन आपको मेरे लिये क्या आज्ञा हुई है? मैत्रेय मुनि बोले विदुर- भगवान ने यही बताया है कि विदुर जो कोई प्रश्न करें उसका जवाब दे देना? मैंने जो ज्ञान दिया है वो ज्ञान विदुरको जरूर देना। भगवन मुझे बताइयें भगवन क्यों स्वधाम गये? मेरे लिये क्या आदेश कर गये? मैत्रेय मुनि बोले- मुझे सृष्टि विषयक ज्ञान दिया, सृष्टिकी उत्पत्ति और अपनी लीलाओंका श्रवण करते समय पूरी लीलाएं उन्होंने बतायी, और इन लीलाओंका तात्पर्य क्या है? मनुष्य जीवनमात्र के लिये क्या कर्त्तव्य है? उसे अपने जीवन में क्या कर्त्तव्य करना चाहिए? और उसे भगवत्प्राप्ति कैसे हो? जो ज्ञान अर्जुन को दिया वो ही ज्ञान सूर्य को दिया, वो ही ज्ञान कपिलने अपनी माता देवहूति को दिया। वो ही ज्ञान जड़भरत ने राजा राहुगण को दिया, वो ही ज्ञान अष्टावक्र मुनिने जनक को दिया। इसको कर्मयोग ज्ञान कहते है। कर्म क्या है? ज्ञान क्या है? भक्ति क्या है? अगर आपने गीता पढ़ी है तो यह पूरा जो ज्ञान सबको दिया है, सनकादिक ऋषियोंको भी यही ज्ञान दिया है। ब्रह्माने सनकादिक ऋषियोंको, नारदने और भगवान हरिने गीताका वही ज्ञान कर्मतत्व, ज्ञानतत्व मनुष्य को निष्काम कर्म करने चाहिए, भक्ति करनी चाहिए, ज्ञान किस तरह का- कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, तत्वोंका २८ तत्व है, मेरे में मन लगाओ। बस इतनी गीता है। यह गीता लोगोंको समझमें नहीं आती शुष्क भाषा में है। इसलिये भागवत में उदाहरण और कथाओं के साथ जैसे एक गोली जो होती है कड़वी होती है बालक लेता नहीं है कड़वी होती है, उसको कुनेन में लपेटकर जो चूसने में मीठी हो पर गोलीका काम अन्दर कर देती है इससे उसकी तबियत ठीक हो जाती है। वैसे ही वह गोली बालक को दी जाती है, वैसे ही यह भागवत क्या है, वही गीता का अंश, वही बातें, ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्मयोग, पाप-पुण्य क्या? भक्ष्य-अभक्ष्य क्या? धर्म क्या? अधर्म क्या? सब कहानियोंके माध्यम से दी गयी है। यह कहानियां क्या है भक्त और भगवान के अवतारोंकी कथा जो इसका निरूपण करेगी जो इस कथासे यह मर्म निकलता है। जैसे गजेन्द्रमोक्ष- गज और ग्राह की कथा। जीव कैसे मृत्यु के वश में जाता है। वह मृत्यु और जीव की कथा है जीव कैसे वशमें जाता है। इस तरह से सृष्टिका विवरण, विराट शरीर की उत्पत्ति, ब्रह्माजी की उत्पत्ति, ब्रह्माजीद्वारा भगवान की स्तुति इस तरह का निरूपण मैत्रेयजीने विदुरजी को दिया। विदुरजीके प्रश्न के उत्तर दिये।

प्रभु ने ये कैसी अनोखी अदभुत मकड़ी के जाले की तरह चित्र विचित्र सृष्टि रचा रखी है कि इस जाल में पड़ा हुआ प्राणी कोशिश करता है सुलझने के लिये सुखी होने के लिये इस जाल में से निकलने का प्रयत्न करता है। लेकिन सुख पाने के बजाय निकलने के बदले और दु:ख चिन्ता शोक उलझन में फँस जाता है। सुख के बदले दु:ख को प्राप्त करता है।

शुकदेवजी ने कहा- हे राजन्। विदुर ने जब हरिद्वार में मैत्रेय ऋषीश्वर से भेंट करके उनको दंडवत किया तब मैत्रेयजी ने पूछा

कि हे विदुर, तुम बहुत उदास दिखलाई देते हो, इसका क्या कारण है? विदुर ने उद्धव से मिलने का हाल बताया और श्रीकृष्णजी के अन्तर्धान होने, महाभारत में दुर्योधन आदि कौरवों के मारे जाने तथा यदुवंशियों के नाश होने का हाल जिस तरह उद्धव से सुना था, मैत्रेय ऋषीश्वर से कहा और बोले कि श्यामसुन्दर विहारी के वैकुंठ जाने का हाल सुनकर मेरी यह दशा हुई है।

अच्छा चित्रकार भगवत् भक्त भी हो, यह आवश्यक नहीं। सुन्दर लेखक सदाचारी ही हो, यह आवश्यक नहीं। अच्छा वक्ता व्यवहार पटु भी हो, यह कोई नियम नहीं। किसी कला में निपुण होना और जीवन को संयम के साँचे में ढालकर अपने बाहर-भीतर के जीवन को एक-सा सरल बना लेना- ये दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। सरल सदाचारी सन्त विशेष कला कोविद भी हो सकते हैं और कलाकार शिष्टाचार सदाचार से हीन भी हो सकता है। ऐसे कलाकार की कला के प्रति सम्मान रखने पर भी, कलाकार के निजी जीवन के प्रति हमारा असम्मान बना रहता है। एक वस्त्र से ढके मृग चर्म पर शान्त भाव से महामुनि मैत्रेयजी बैठे थे। वे अपने आपमें तृप्त हुए, ब्रह्मानन्द सुख का अनुभव कर रहे थे। उन्हें देखते ही विदुर के रोम-रोम खिल उठे। उन्होंने भूमि में लोटकर उन महामुनि को साष्टांग प्रणाम किया। मैत्रेय मुनिने बलपूर्वक विदुरजी को भूमि से उठाया और उनका गाढ़ालिंगन किया। विदुरजी से बोले, जिस पृथ्वी को भगवान त्याग गये, उसमें तो अब कलि और अधर्म का साम्राज्य हो गया। उसमें अब अधिक रहना व्यर्थ है। मुझे तो जीनेकी इच्छा भी नहीं है। मुझे एक ही अभिलाषा थी कि भगवान की आज्ञा का पालन कर तुम्हें उस परम पद का ज्ञान उपदेश करूं और विदुरजी का स्वागत किया।

ज्यौं ज्यौं सुलझौं चहत हैं, त्यौं त्यौं उलझत जात।

कोई दु:खी क्यों, कोई सुखी क्यों? परमात्मा किसी को दु:ख नहीं देता, तो परमात्मा किसी को सुख भी नहीं देता। मैत्रेय मुनि बोले ये सुख और दुख तो जीव अपने कर्म के अनुसार भोगता है। **कोउ न काहु सुख दुख करि दाता। निज कृत कर्म भोग सबु भ्राता।**

ये संसार में जो कुछ भी भोगते हैं हम लोग, अपने कर्म और प्रारब्ध के अनुसार भोगते हैं। पहले हम क्या कर चुके, इसकी चिंता मत करो। आगे हमें क्या करना है, उसके बारे में विचार मत करो। वर्तमान में मेरा समय व्यर्थ में न चला जावे, इसका प्रयास करो। वर्तमान का जिसने सदुपयोग किया है- विदुर, उसका भूतकाल भी श्रेष्ठ होगा और भविष्य भी उज्ज्वल होगा, भविष्य भी निर्मल बनेगा। वेद के अनुसार जो व्यक्ति कर्म कर रहा है, वेद के आधार पर जो सत्कर्म कर रहा है, आचरण कर रहा है, उस सत्कर्म करनेवाले व्यक्ति को कोई कष्ट पहुंचाता है, तो ऐसे व्यक्तियों की सुरक्षा करने के लिए परमात्मा अवतार लेकर आता है। जो मनुष्य परमेश्वर से विमुख हैं वे दु:ख के सागर में पड़े रहकर जन्म व मरण से छुट्टी नहीं पाते और जो काम अपने सुख के लिए करते हैं, उसमें उनको दु:ख के सिवा कुछ नहीं मिलता। संसार में मनुष्य जैसा भला या बुरा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जिस तरह मनुष्य अपने पुत्र, कन्या, स्त्री आदि संसारी मोह में फँसकर अपना सुख व भला चाहता है और दु:ख के सिवा सुख नहीं पाता। ईश्वर की कृपा के बिना मनुष्य उनकी माया से छूट नहीं सकता उस मायाके छूटने के लिए परमेश्वर की कथा सुनना और उनके नाम का स्मरण करना मनुष्य को उचित है। संसार के झूठे व्यवहार को सच्चा जानना इसीको ईश्वरकी माया समझनी चाहिए।

जो युक्तिसे सिद्ध ना हो वही ईश्वर की माया है। माया अनिर्वचनीय है, माया ज्ञानसे निवृत्त होती है। ईश्वर तो नित्य-शुद्धबुद्ध मुक्त है। उसमें कार्पण्य नहीं, फिर बन्धन कहाँसे आयेगा? बिना बन्धन के कार्पण्य और बन्धनकी प्रतीति हो इसीका नाम माया है।

यह प्रश्न विदुर का ही नहीं हमारा सबका है कि हम सब मेहनत करते हैं, मजदूरी करते हैं पर कभी-कभी फल विपरीत

मिलता है। आदमी बड़े जोर से, उत्साह से, जोश से व्यापार शुरू करे, लेकिन कभी-कभी यह व्यापार चलता नहीं। घाटा होता है। ज्यादातर लोग इस जन्म में जो भुगत रहे हैं यह पिछले जन्म की कमाई है। बहुत कम लोग हैं जो इस जन्म में कर्म करें और इस जन्म में ही उनको इसका फल मिल जाए। कुछ नैतिक कर्म ऐसे हैं कि कर्म किया और तुरन्त फल मिल गया जैसे भूख लगी, रोटी खा ली। तृप्ति। यह शीघ्र फल है लेकिन ज्यादातर जो प्रारब्ध का हमारा फल होता है वह तो पिछले जन्म का हम भुगत रहे हैं इसीलिए समाज विपरीत दिखाई देता है। जो चोरी कर रहा है, बेईमानी कर रहा है वह तो सुख से जी रहा है, बड़े-बड़े बंगले में रह रहा है और बड़ी-बड़ी गाड़ी में घूम रहा है। और सत्य की राह चलनेवाला तो बेचारा सड़कपति है फुटपाथ पर है। यदि जीव सुखी है तो पिछले जन्म में उसने किसी को दिया है कुछ। यह भिखारी घर-घर में भटक रहा है, रोटी मांग रहा है। वह भीख नहीं मांग रहा। वह हमें संदेशा दे रहा है कि पिछले जन्म में मैंने किसी को दिया नहीं इसलिए मेरी यह हालत हो गयी। एक कहावत है सज्जन पुरुषों का इस संसार में हाल है पर हार कभी नहीं।

सुखाय कर्माणि करोति लोको महाराज। यह सुख के लिए तो हम दिन रात खून-पसीना एक करते हैं फिर भी यह संसार विपरीत क्यों हैं?

इस जगत में सुख तो कही है ही नहीं पर व्यक्ति दूसरे को देखकर यही समझता है कि वो हमसे बड़ा है और सुखी है।

दीन कहे, धनवान सुखी, धनवान कहे सुख राजा को भारी।
राजा कहे, महाराजा सुखी, महाराजा कहे सुख इन्द्र को भारी।।
इन्द्र कहे चतुरानन को सुख, ब्रह्मा कहे सुख विष्णु को भारी।
तुलसीदास विचार कहे, हरि भजन बिना सब जीव दुखारी।।

मैत्रेय मुनि बोले- संसारमें मनुष्य एक तो मायाके कारण भगवानसे विमुख होते हैं और दूसरी अधर्ममें उनकी रुचि हो गयी है। अधर्ममें रुचि होनेपर दु:ख होना अवश्यम्भावी है। मनुष्य जब दु:खी होता है तब घबराता है, लेकिन उसे घबराना तो तब चाहिए जब वह दु:खजनक कर्म करता है। चोरी करते समय मनुष्य घबराता नहीं, जब सजा मिलती है तब घबराता है। इसलिए दु:खसे बचनेका उपाय दु:खजनक कर्मोंका परित्याग है। मनुष्य विषयों के भोगने के माध्यम से सुख पाना चाहता हैं। विषयोंको भोगनेसे वासना और अधिक बढ़ती है।

दुनियाके लोग तो न जाने कितने क्लेश मानते हैं। नासमझी, अभिमान, महोबत, नफरत और अपनी मृत्युसे डरते हैं। इन क्लेशोंके निवारण का उपाय है भगवान का श्रवण और कीर्तन। उनके गुणानुवाद का श्रवण करें। भगवान की कथा सम्पूर्ण क्लेशोंको मिटा देती है।

भूख-प्यास आदि सबको लगे हुए हैं। सबके भीतर कफ, वात, पित्त, गर्मी-सर्दी और कामकी आग जल रही है। संसारकी यह दशा देखकर जीवका मन बहुत दु:खी हैं जबतक जीव भगवानकी शरणमें नहीं जायेगा उसकी भेदबुद्धि शांत नहीं होगी उसे सुख शान्ति नहीं मिल सकती। वह दिनभर तो अपनी इन्द्रियोंको काम में लगाये रखता है, व्यापार की अधिकता से उसकी इन्द्रियाँ श्रान्त हो जाती है। रातको सो जाते हैं, जब जागते हैं तब उसके मनमें नाना मनोरथ होते हैं। कभी-कभी ईश्वरएवं उनका भाग्य भी उनकी अर्थ-रचनाके विपरीत हो जाता है और यदि ऋषि-मुनि भी भगवान और उनके भक्तोंके विमुख हो जायें तो उन्हें भी संसारमें भटकना पड़ता है।

विदुर मैत्रेय मुनिसे पूछते है- भगवन। संसार में सभी लोग सुख प्राप्ति के ही लिये समस्त कर्मों को करते हैं, किन्तु उनसे उन्हें न तो सुख ही होता है और न दु:ख की ही निवृत्ति होती है। यही नहीं उनसे उलटा दुख ही उठाना पड़ता है। इस विषय

में आप जो उचित समझते हों हे प्रभो। उसका उपदेश आप मुझे कीजिये। दु:ख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति कैसे हुई? जीवमात्र चाहता तो सुख है। उसके समस्त यत्न, प्रयत्न सुख के लिये होते हैं, दु:ख कोई नहीं चाहता न चाहने पर भी दु:ख आ जाता है। अत: उस दु:ख की निवृत्ति करना और शाश्वत सुख की प्राप्ति करना किस प्रकार हो। शाश्वत सुख की उपलब्धि ही नहीं होती और परिणाम में मिलता है उलटा दु:ख। संसार में आज तक कितने-कितने प्रबल पराक्रमी नरपति हो गये, कितने शूरवीर, यशस्वी, तेजस्वी और भोगवान पुरुष हो गये, किसीने यह नहीं कहा- हमें इन संसारी पदार्थों से सर्वदा सुख हुआ है। यही नहीं सब ही ने एक स्वर से कहा है- संसार में जितने धान्य हैं, खाने के पदार्थ हैं, जितने सुवर्ण आदि धन हैं, जितने घोड़ा, गौ, मनुष्य के उपयोगी पशु हैं, जितनी मनुष्य की प्रिय दिखाई देनेवाली विषय सुख प्राप्त करानेवाली वरांगनायें सभी एक ही मनुष्य को दे दी जायँ तो भी इन सबसे एक आदमी की भी तृप्ति न होगी। भोग सामग्री जितनी ही बढ़ती जायेगी, तृष्णा भी उससे सतगुणी बढ़ती जायेगी। जिसकी जितनी ही अधिक तृष्णा है, वह उतना ही अधिक दरिद्री है। तृष्णा का अन्त नहीं, वह अनन्त है। इसी प्रकार दु:ख भी अनन्त हैं। इन दुखों से छूटने का उपाय क्या है? कौन सा कार्य करने से मनुष्यों की दु:खों से निवृत्ति और परम सुख शान्ति की प्राप्ति हो सकती है?

तब बोले श्रीविदुर-विभो। इक बात बतावें। काहे ये सब जीव कर्म करि दुख ई पावें।।
दुख निवृत्ति सुख हेतु करहिं शुभ अशुभ कर्म नर। किन्तु न दोनों हायँ क्लेश ही पाहिं निरन्तर।।
नर सुरतरु तर ज्यों मुदित, सन्त दरश त्यों सुख लहें। साधहिं पर कारज सतत, सन्त देह धरि दुख सहें।।

विदुरजी महामुनि मैत्रेयजी से कह रहे हैं- भगवन्। जो पुरुष पूर्व जन्मों के कारण पुण्यमयी पुरुषोत्तम की कथा से विमुख रहते हैं, उन अत्यन्त ही शोचनीय पुरुषों के लिये मुझे बड़ा सोच है, क्योंकि उनकी वाणी के द्वारा, देह के द्वारा तथा मन के द्वारा व्यर्थ ही व्यापार होते रहते हैं और इनको करते-करते ही उनकी आयु के अमूल्य क्षणों को काल भगवान नष्ट करते रहते हैं।

विभो। विशुद्ध चरित्र श्यामके मोहिं सुनावें। पावें शाश्वत शान्ति सुगम सी गैल बतावें।।
धर्म काम अरु अर्थ पिता सन सब सुनि जाने। तृप्ति न तिनतें भई क्षुद्र कैतव युत माने।।
कृष्ण कथाकी लगन ई, विषय विरक्त बनावती। मनमहँ मोद बढ़ावती, सबरे दु:ख मिटवती।।

भगवानके अभिधामसे, नामसे, चरित्रसे, कीर्तनसे भला किसको तृप्ति हो सकती है? बड़े-बड़े सत्संग होते हैं तथा आप-जैसे महात्मा लोग उसका गान करते हैं और जब वह मनुष्योंके कर्णरन्ध्रोंमें प्रवेश करता है तब उनकी संसारआसक्तिको काट देता है। सृष्टिका यह नियम है कि धर्मका फल कर्ताको मिलता है।

विदुर द्वारा पूछे गये प्रश्नों से कोई आश्चर्य नहीं हुआ। मैं तुम्हें सृष्टि होने से लेकर प्रलय तक की समस्त कथायें सुनाता हूँ। भगवान की इच्छा से उनकी मायाशक्ति प्रकट हुई और भगवान के द्वारा वीर्य का आधान किया गया जिससे महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई। महत्तत्त्व से सात्विक, राजस और तामस तीन प्रकार के अहंकार पैदा हुए और इससे पंच तन्मात्रायें, पंच महाभूत, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय तथा मन और इनके अधिष्ठाता देवता उत्पन्न हुए। ये समस्त तत्त्व पृथक-पृथक विचरण करते रहे किन्तु सृष्टि नहीं हुई। इन्होंने भगवान की आराधना की। भगवान ने इन सबको मिला दिया तो एक बड़ा अंड बन गया। हजारों वर्षों तक जल में पड़ा रहा। भगवान ने चेतन स्वरूप इसमें प्रवेश किया तब शनै: शनै: यह पिण्ड विराट पुरुष के रूप में परिणित हो गया।

यह नाना रूप, नाना पदार्थों वाला प्रतिक्षण बदलने वाला संसार कैसे हुआ? इसकी सृष्टि कौन करता है? कौन इसका नियमन करके सुव्यवस्था में रखता है? कौन इसका पालन करता है और अन्त में संहार करता है? जीव कर्म बन्धनों में क्यों भटकता है? इस बन्धन से जीवों की मुक्ति किस प्रकार हो सकती है? इस जगत् के आश्रय कौन हैं- वे अवनि पर अवतरित होकर क्या-क्या

करते हैं? कौन-कौनसी दिव्य क्रीड़ाओं के द्वारा वे प्राणियों को प्रसन्नता तथा प्रेम प्रदान करते हैं? ब्रह्मस्वरूप धारण करके कल्प के आदि में जिस प्रकार सृष्टि करते हैं विष्णुरूप धारण करके उस बनाई हुई सृष्टि का जैसे पालन करते हैं और अन्त में रुद्र रूप से जैसे उसका संहार करते हैं- ये सभी विषय आप मुझे समझावें। भगवान तो अद्वितीय हैं। किस प्रकार वे अनेक रूप धारण करते हैं? इन सबको संक्षेप में सुनाकर फिर हमें भगवान के अवतार की कथायें सुनावें। किस प्रकार वे गौ, ब्राह्मण और साधु पुरुषों की रक्षा के लिये अनेक अवतार धारण करते हैं, उनमें क्या-क्या चरित्र करते हैं?

विदुरजी ने शीघ्र ही प्रश्न किया- महर्षि। यह जीव ब्रह्म का ही अंश है तो यह भी ब्रह्म स्वरूप हुआ फिर इसे कर्मों में क्लेष और आनन्द, सुख और दु:ख क्यों होता है? मैत्रेय जी बोले- कि जो बात तर्क या युक्ति से विरुद्ध होती है उसी को माया कहते हैं। जो जीव प्रभु विमुख अविद्या में लिप्त होता है उसी को बन्धन और मृत्यु भय होता है और सुख-दु:ख का भाव होता है। जब मनुष्य निष्काम होकर भक्तिपूर्वक भगवान का भजन करता है उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है और सुख-दु:ख मिट जाते है। वह मृत्यु भय से अभय हो जाता है तथा भगवान श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं का श्रवण, कीर्तन करने से संसार के समस्त क्लेषों का शमन हो जाता है।

३) मैत्रेय मुनिद्वारा विदुर के प्रश्नों का उत्तर

शुकदेवजी बोले- हे राजन्। विदुर की बात सुनकर मैत्रेयजी ने कहा कि हे विदुर, तुम ज्ञानी हो और तुमको लड़कपन से हरिचरणों में भक्ति हैं तुमसे कोई हाल छिपा नहीं है, पर तुमने मुझसे पूछा है, इसलिए मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुमसे कहता हूँ, जिसमें संसारी जीव भी यह हाल सुनकर भवसागर पार उतर जावें। तुम धर्मराज का अवतार हो, कौरवों के कुल में उत्पन्न हुए हो, परमेश्वर के सब गुण जानते हो। माण्डव्य ऋषीश्वर के शाप से तुमने यह तन पाया है।

जो मनुष्य परमेश्वर से विमुख हैं वे दु:ख के सागर में पड़े रहकर जन्म व मरण से छुट्टी नहीं पाते और जो काम अपने सुख के लिए करते हैं उसमें उनको दु:ख के सिवा कुछ सुख नहीं मिलता।

संसार में मनुष्य जैसा भला या बुरा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जिस तरह मनुष्य अपने पुत्र, कन्या, स्त्री आदि संसारी मोह में फँसकर उनसे अपना सुख व भला चाहता है और दु:ख के सिवा सुख नहीं पाता।

ईश्वर की कृपा के बिना मनुष्य का उनकी माया से छूटना बहुत कठिन है। उस माया से छूटने के वास्ते परमेश्वर की कथा सुनना और उनके नाम का स्मरण करना मनुष्य को उचित है। संसार के झूठे व्यवहार को सच्चा जानना, इसी को ईश्वर की माया समझना चाहिए। जब मनुष्य इन्द्रियों के सुख को छोड़कर अपना मन विरक्त करके परमेश्वर का भजन व स्मरण करे तब उस माया से छूट सकता है।

सच्चा सुख तो श्यामसुन्दर की शरण में जाने से ही मिलेगा। विषयों की आसक्ति को छोड़कर विश्वभर में आसक्ति करने से ही समस्त दु:खों का अन्त हो सकेगा। अनित्य पदार्थों के मोह को छोड़कर नित्यानन्द स्वरूप सच्चिदानन्द घन श्रीनन्दनन्दन के पाद पद्मों में जब प्रेम करेगा, तभी उसे शाश्वत शान्ति की प्राप्ति हो सकेगी। विदुरजी, विषयों में सुख नहीं, शान्ति नहीं, तृप्ति नहीं। वे तो दु:ख, अशान्ति और अतृप्त को ही देनेवाले हैं। इसीलिये जिन्हें यथार्थ सुख की अभिलाषा हो, उन्हें विषयों का मोह छोड़कर भगवान की शरण लेनी चाहिये तभी यथार्थ प्राप्य पदार्थ की प्राप्ति हो सकती है।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी, भगवान स्वयं आपका सदा स्मरण किया करते हैं। अन्त समय में स्वधाम पधारते समय भगवान ने आपका स्मरण किया और मुझे आज्ञा भी दी कि मेरे परम भक्त विदुरजी को मेरे इस गुह्यातिगुह्य ज्ञान का अवश्य

उपदेश करना। सो श्री भगवान ने जो उपदेश मुझे दिया है, उसी के अनुसार मैं आपके प्रश्नों का उत्तर देता हूँ। आपने प्रधानतया दो प्रश्न किये हैं- एक तो यह कि निरंतर सुख के लिये प्रयत्न करने पर भी लोगों को दु:ख क्यों होता है और दूसरा यह कि निर्गुण भगवान से यह सगुण संसार की सृष्टि क्यों और कैसे होती है?

सुख की इच्छा सभी के हृदय में होती है। क्योंकि सुख स्वरूप श्रीहरि के सकाश से ही इस जीव की उत्पत्ति होती है, किन्तु भ्रम वश यह उस वस्तु की खोज करता है संसारी विषयों में। सुख तो नित्य हैं। वह इन अनित्य पदार्थों में कहाँ मिलेगा? सुख तो एक रस है। वह इन नित्य परिवर्तनशील क्षण-क्षण में बदलने वाली वस्तुओं में कैसे मिल सकता है? सुख तो सत्य है। वह असत् पदार्थों का आश्रय कैसे कर सकता है? सुख की आशा से श्रम तो सभी करते हैं, किन्तु वह श्रम उस वस्तु में आशा रखकर करते हैं, जिसमें वह है नहीं।

यदि रुपये पैसे ऐश्वर्य में ही सुख होता तो ये लोग सब के सब सुखी होने चाहिये। जिनके पास जितना ही अधिक धन होगा, उसकी उतनी ही बढ़ी हुई तृष्णा होगी। जिनकी जितनी ही बढ़ी तृष्णा होगी, वह उतना ही अधिक चिन्तित और व्यग्र होगा। जो जितना ही चिन्तित और व्यग्र होगा वह उतना ही अधिक दुखी होगा। धन से भोग जरूर मिलते हैं, किन्तु भोगों में शान्ति नहीं। जितने ही अधिक भोग भोगेंगे उतनी ही अधिक अशान्ति बढ़ेगी, अशान्ति ही दु:ख की मूल है।

महामुनि मैत्रेयजी से विदुरजी शंका करते हैं- ब्रह्मन्। आपने जो भगवान के साथ गुण क्रिया का सम्बन्ध बताया है, वह केवल चिन्मात्र निर्विकार निर्गुण ब्रह्म के साथ लीला से ही सही कैसे सम्भव हो सकता है? उनके सम्बन्ध में क्रीड़ा की कामना कैसे सम्भव हो सकती है?

<u>किसी विषय की पुन: पुन: आवृत्ति का ही नाम अभ्यास है</u>। इस जगत के पदार्थों को परिवर्तन शीलता, अस्थिरता और अनित्यता का बोध हो जाय तो जीव की इन वैषयिक पदार्थों से आसक्ति छूट जाय। कारण कि आसक्ति ही बन्धन का हेतु है। इसलिये समस्त शास्त्र पहिले सृष्टि क्रम का वर्णन करके इस सृष्टि के मूल में नित्य रूप से स्थित उन सर्वेश्वर श्रीहरि का ही बोध कराते हैं।

एक परमात्मा ही ज्ञानस्वरूप होता है। उसी ज्ञानस्वरूपका विलास यह दृश्य-प्रपंच है। जड़से ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती। यदि जड़से ज्ञानकी उत्पत्ति हुई तो ज्ञानकी उत्पत्तिके पूर्व जड़ नामकी कोई चीज थी- यह सिद्ध नहीं होगा। बिना ज्ञानके, यह जड़ है- कैसे सिद्ध होगा? ज्ञानसे ही तो जड़ सिद्ध होता है। ज्ञानको ईश्वरने बनाया कि नहीं बनाया? यदि कहें कि ज्ञानको ईश्वरने बनाया तो ज्ञान बनानेसे पहले ईश्वरमें ज्ञान था कि नहीं? यदि नहीं तो ईश्वर अज्ञानी हो जायेगा। इसलिए ज्ञान ईश्वरने बनाया नहीं; ज्ञान ईश्वरका स्वरूप ही है। ज्ञान चैतन्य है- उसकी सृष्टि ईश्वर नहीं करता। चैतन्यके बिना ईश्वरकी सिद्धि कहाँसे होगी? अज्ञानसे ईश्वरने ज्ञान बनाया, यह बात भी बिना ज्ञानके नहीं मालूम पड़ सकती। इसीसे वैदिक लोग ज्ञानको अपौरुषेय कहते हैं। अपौरुषेय माने ईश्वरका बनाया हुआ भी नहीं और पुरुषकतृक भी नहीं है। यह तो अनादि है, अनन्त है, स्वत:सिद्ध है और जो इस सिद्धान्तको नहीं मानते वे वेदकी अपौरुषेयताको भी नहीं समझ सकते। यही वेद और कुरान-बाइबिलका फर्क है। इसको महापुरुष लोग जानते हैं। कुरान-बाइबिल ईश्वरकी बनायी हुई हो सकती हैं, परन्तु वेद ईश्वरका बनाया हुआ नहीं हो सकता। ईश्वरका जो स्वरूपभूत ज्ञान है, उसीका नाम वेद है। वह ज्ञान है और भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव आदि दोषोंसे रहित है।

नये-नये सत्योंके लिए तो नया-नया ज्ञान होता है, लेकिन जो अद्वितीय अनन्त सत्य होता है, उसके लिए अनादि अनन्त सत्य ही ज्ञान होता है। इस संसारमें जो नये-नये आविष्कार होते हैं, उनके सबसे बादका वैज्ञानिक अविष्कार ही

प्रामाणिक माना जाता है। परंतु जहाँ शाश्वत सत्य का विचार होता है कि अनादि अनन्त: -निर्विकार-निर्धर्मक-निर्विषय परम तत्त्व क्या है, वहाँ वह ज्ञान प्रामाणिक माना जाता है, प्रमाण होता है, जिसमें ज्ञातापनका अभिमान न हो और परिवर्तनशील ज्ञेयका कोई संस्कार न हो। ज्ञानका निर्माण न तो जीव करता है और न ईश्वर करता है। विषयोंकी उत्पत्ति और उनके विनाशको लेकर ही ज्ञानपर उत्पत्ति-विनाशका आरोप होता है। अन्यथा वह अनाद ही होता है।

सृष्टिमें जितने जीवात्मा मालूम पड़ते हैं, ये सब अनेक नहीं; एक होते हैं। असलमें इन सब आत्माओंका आत्मा एक ही है और उसका नाम भगवान है। पहले वही था। उसके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं थी। उसको दूसरा कोई दृश्य दिखाई नहीं पड़ा और ऐसा लगा कि हाय-हाय जब दूसरा कुछ दीखता ही नहीं, तब मैं क्या हूं? उसने सद्-असदात्मिका मायाकी सृष्टि करके उसमें अपने चिदंशका- चिदाभासका आधान किया, जिससे महत्-तत्त्वकी उत्पत्ति हुई। उसको जड़ताकी प्रधानतासे महत-तत्व, चेतनाकी प्रधानतासे हिरण्यगर्भ, बीचकी प्रधानतासे माया और चैतन्यकी प्रधानतासे ईश्वर बोलते हैं तथा बीज-लेश-कलंक-पलंकसे रहित नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त चैतन्यको ब्रह्म बोलते हैं, जहाँ दूसरी कोई चीज ही नहीं। यह भी सर्गका ही वर्णन है। बिना ज्ञानके जड़की सिद्धि नहीं होती। इसलिए अनुभूतिके प्रकरणमें सर्वोपरि ज्ञानका ही महत्त्व है, आत्माका महत्त्व है। मशीनसे होनेवाली जाँचमें हम अपने आपको नहीं देख सकते बल्कि दूसरोंको देखते हैं। महत्तत्त्वसे तीन तरहके अहंकार हुए, फिन मन हुआ फिर कर्मेन्द्रियाँ हुईं। तामस अहंकारसे सूक्ष्म भूत हुए। काल-मायांश योगसे आकाश हुआ, आकाशसे वायु हुआ और वायुसे अग्निकी उत्पत्ति हुई

हम तुम जो शान्त बैठे हुए है यह शान्त आकाश है, दौड़ने लगे तो वायु है, उससे पैदा हुई गर्मी अग्नि है, गर्मीसे पसीना आया वो जल है और शरीरपर जमा हुआ पसीना मिट्टी है।

विदुरजी सृष्टि से पूर्व यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्ममय ही था। एकमात्र श्रीहरि-ही-हरि थे। माया, अहंकार से रहित वे ही श्रीहरि थे। फिर उन्होंने अपनी सद् असद् रूप विलक्षण मायाशक्ति का आश्रय करके इस विश्वब्रह्माण्ड की रचना की। त्रिगुणमयी माया में मायापति ने अपने अंश भूत पुरुष रूप से चेतन रूप बीज को स्थापित किया। कहीं से काल भी आ गया। वह तो जीव के साथ बँधा ही है। गर्भिणी माया ने महत्तत्व रूपी पुत्र को उत्पन्न किया। पुत्र ही अपने सदृश पैदा करके पिता बन जाता है, महत्तत्त्व ने एक पुत्र अहंतत्त्व पैदा किया। वही कार्य, कारण और कर्त्ता रूप होने से बहुत-सी सन्तानें पैदा करनेवाला हुआ। पंचभूत, दस इन्द्रियाँ, मन तथा इन्द्रियों के अधिष्ठातृदेव, तन्मात्रायें ये सब उत्पन्न हुईं। इसी ने अपने तीन रूप बनाकर त्रिगुणात्मक सृष्टि की रचना की।

अब सभी अंगो ने संगठन करके, अपने-अपने अंश को एकत्रित करके मिल-जुलकर विश्व रचना करनेवाले विराट पुरुष को उत्पन्न किया। उसमें असंख्यों जीव भर गये थे। वह विराट पुरुष कच्चे अंडे की भाँति उत्पन्न हुआ था, इसलिये दिव्य हजारों वर्ष पकने को पानी में पड़ा रहा। पकने पर उसके मुख, आँख, कान, नाक ये सब हो गये। वह फूट गया। उन सब स्थानों में ये देवता, इन्द्रिय और अपने-अपने विषयों को साथ लेकर अपना-अपना अधिकार जमाकर बैठ गये। उसी विराट रूपी अंडे से चौदह भुवन तीन लोक उत्पन्न हुए। सब वर्णों ने उत्पन्न होकर अपनी-अपनी वृत्ति स्वीकार कर ली।

काल, कर्म और स्वभाव से युक्त होकर भगवान जो क्रीड़ायें करते हैं तथा अपनी योगमाया के प्रभाव को प्रकट करने वाले इस विराट पुरुष के रूप का यथार्थ वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है?

मैत्रेय मुनि बोले, हे विदुरजी। उन्हें अपने आनन्द सुख के लिये किसी अन्य सामग्री की अपेक्षा नहीं। वे इन मायिक गुणों से सदा रहित हैं उनमें जड़ता का लेश भी नहीं, शुद्ध चैतन्यघन स्वरूप हैं। विकार की उनके सम्बन्ध में कल्पना भी

नहीं की जा सकती। वे निर्विकार, नि:संग, निर्गुण और अक्रिय है। फिर उनका सम्बन्ध इन नाशवान, परिवर्तनशील मायिक गुणोंके साथ कैसे हो सकता है?

माया का स्वरूप इसप्रकार है- जब नहीं होते हुए भी अस्तित्व का प्रतीत करावे तो वह सदा रहनेवाले सत्य स्वरूप भगवान को कैसे मोह सकती है? उन्हीं के अंशभूत जीव को कैसे दु:ख दे सकती है?

जीव को कभी क्लेश नहीं हुआ, भगवान का अंशभूत उनके आश्रय में रहनेवाला जीव सदा सब दु:खों से रहित है। यही माया है जो बिना होते हुए भी उसकी प्रतित करावे।

जिस प्रकार नहीं होने पर उन-उन वस्तुओं की प्रतीति होती है, उसी प्रकार आत्मा में भी सुख दु:खादि अनात्मा के गुण- बिना हुए ही होते हुए से दिखाई देते हैं।

ब्रह्माजी ने आज्ञा पाकर कैसे-कैसे विसर्ग सृष्टि की रचना की इस प्रसंग को श्री मैत्रेयजी विदुरजी को सुना रहे हैं- भगवान की आज्ञा पाकर अपने हृदय में प्रभु का स्मरण कर ब्रह्माजी ने प्रथम पांच प्रकार की अविद्या की सृष्टि की। कौन-कौन सी तामिस्त्रम्, अन्धतामिस्त्रम्, तमो, मोहो, महत्तम और इस पांच प्रकार की अविद्या का सहारा लेकन इन्होंने पहले स्थावर प्राणियों की वृक्ष, लता, पेड़, पौधे, वनस्पति, औषधि इत्यादि की रचना की लेकिन ये जहां पैदा हुए वहीं खड़े रहे। इधर-उधर चलने-फिरने की क्रिया इनमें नहीं हुई। इसको स्थावर सृष्टि कहते हैं। इसके बाद चलने-फिरने वाले जीवों की रचना की कीड़े-मकोड़े अनेक पैर वाले आठ पैर वाले, ६ पैरवाले कीट-पतंग, पशु-पक्षी चौपाये अनेक प्रकार के प्राणियों को प्रकट किये। लेकिन इस सृष्टि से भी ब्रह्माजी को प्रसन्नता नहीं हुई। ब्रह्माजी ने विचार किया इस सृष्टि से मुझे ही प्रसन्नता नहीं हो रही है।

ब्रह्माजी ने विचार किया कि ये कीट-पतंग चौपाये, भेड़ बकरी, भैंसा, गधा आदि की सृष्टि से हम को ही प्रसन्नता नहीं हो रही है तो वे आदि देव नारायण भला कैसे प्रसन्न होंगे। इसलिये जिसमें उनको प्रसन्नता हो ऐसी सृष्टि की रचना करनी चाहिये। तो अब ब्रह्माजी ने अपने अन्त:करण में जिस प्रभु नारायण का दर्शन प्राप्त किया था- उसी स्वरूप का ध्यान किया उनके कमल के समान बड़े-बड़े नेत्र बड़े सुन्दर थे उनकी भौंहें बड़ी सुन्दर थी, काली काली अलकावली बड़ी सुन्दर थी। उनके मुखमण्डल की शोभा बहुत थी उनके हाथ बहुत सुन्दर थे, चरण कमलों की शोभा देखने लायक थी। तो उसी तरह की रचना हो तो ज्यादा आनन्द आयेगा। तब ब्रह्माजी ने अपने मानसिक संकल्प से सर्वप्रथम चार कुमार प्रकट किये। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार।

श्रीमैत्रेयजी विदुरजी से कहते हैं- हे भगवत् भक्तों में अग्रणी विदुरजी। जो पुरुष इन क्षुद्र सुखों की प्राप्ति के लिये बड़े-बड़े क्लेशों को शिरोधार्य कर लेते हैं, उन्हीं पुरुषों के दु:खों की निवृत्ति के लिये श्रीमद्भागवत पुराण आपके सम्मुख कहता हूँ। जिसका उपदेश पूर्वकाल में शेष रूपधारी साक्षात् श्रीभगवान ने सनकादि ऋषियों को किया था।

जब माया सम्बन्धी प्रश्न हो चुका तब विदुरजी ने महामुनि से सृष्टि विषयक और भी अनेक प्रश्न पूछे। उन्होंने कहा- मुनिवर। विराट पुरुष की विभूतियों को आप मुझे बतावें और उनकी सन्तानों का भी वर्णन करें जिससे यह ब्रह्माण्ड भर गया है। सर्ग, अनुसर्ग, प्रजापति, मनु, मन्वन्तर इसकी उत्पत्ति, राजाओं और भक्तों के चरित्र, अंडज, जरायुज, स्वेदज और उद्भिज जीवों की उत्पत्ति, तीनों देवों के कार्य, वर्णाश्रम विभाग, भगवत् प्राप्ति के सभी साधन, त्रिवर्ग तथा मोक्ष आदि समस्त विषयों का आप मुझसे वर्णन करें और यह भी बतावें भगवत् प्राप्ति का, उन्हें प्रसन्न करने का सरल सुगम उपाय कौन-सा है।

अब मैं क्षुद्र विषय सुखों को पाने की कामना से महान् दु:खों को मोल लेनेवाले मनुष्यों की दु:ख-निवृत्ति के लिये वह

श्रीमद्भागवत पुराण प्रारम्भ कर रहा हूँ, जिसे स्वयं भगवान शेषजी ने सनकादि महर्षियों को सुनाया था।

एक समय की घटना है। सनकादि महर्षियों ने आकाशगंगा में स्नान किया। उनके शिर की जटाएँ गंगाजी के निर्मल जल से आर्द्र हो गई फिर वे भगवत्तत्त्व जानने की इच्छा से जा पहुँचे पाताल लोक में शेष जी के पास। उस समय शेषजी भगवान वासुदेव के ध्यान में मग्न थे। उनके फणों पर मणि-जटित मुकुट जगमगा रहे थे। उस समय नाग-कन्याएं मनोवांछित वर की प्राप्ति के लिये श्रद्धा-भक्ति के साथ अनेकों उपहार-सामग्रियों से उनकी पूजा कर रही थी। सनत्कुमार आदि ने भी मन्दाकिनी के जल से भीगे अपने जटा-मण्डल से उनके पाद-पीठपर प्रणाम किया और शुरू किया गद्‌गद् वाणी से उनका स्तवन। उनके स्तवन से शेषजी का ध्यान छूटा। धीरे-धीरे उनके कमल-कोष के समान नेत्र खुले। उन्होंने महर्षियों की जिज्ञासा की शान्ति के लिये यह भागवत सुनाया था। इससे उन लोगों की सारी जिज्ञासाओं का समाधान हो गया था। सनत्कुमार ने उसे फिर सांख्यायन ऋषि को सुनाया था। बाद में सांख्यायन ने उसका उपदेश हमारे गुरु पराशर और बृहस्पति को दिया था। इसके पश्चात् परम दयालु पराशर जी ने पुलस्त्य मुनि के कहने से, वह आदिपुराण मुझसे कहा। वत्स, श्रद्धालु और सदा अनुगत देखकर वही पुराण अब मैं आपको सुनाने जा रहा हूँ। इससे आपकी सारी शंकाओं का अनायास समाधान हो जायेगा।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुर सुनो मैं तुम्हें सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में बताता हूँ। एक दिन की बात है कि ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र सनक, सनन्दन, सनतकुमार और सनातन ये चारों भाई घूमते-फिरते संकर्षण भगवान के दर्शनों के लिये सुमेरु पर्वत से चलकर शरण में आये हुए प्राणियों के कल्मषों को काटनेवाली भागवती त्रिपथगामिनी गंगा की जो धारा भोगवती के नाम से प्रख्यात होकर जिस रास्ते से पाताल में गई है, उसी रास्ते से वे चारों कुमार मुनि पाताल में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने क्या देखा कि एक दिव्य सिंहासन पर भगवान अनन्त अपने प्रकाश से समस्त पाताल को प्रकाशित करते हुए विराजमान हैं। उनके हजारों फणों में हजारों मुकुट शोभा पा रहे हैं, जिनमें असंख्यों बहुमूल्य मणियाँ जगमग-जगमग करती हुई प्रकाशित हो रही हैं। प्रकाशित होती हुई समस्त मणियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो आकाश में एक साथ असंख्यों चन्द्र उदित हो गये हों। नाग कन्याओं ने जिन पाद पद्मों की प्रेमपूर्वक पूजा की है, जिनमें पड़े हुए असंख्यों सुगन्धित पुष्प वहाँ के प्रदेश को सुवासित कर रहे हैं, उन्हीं पाद-पद्मों में जाकर इन चारों कुमारों ने श्रद्धा भक्ति सहित सिर से प्रणाम किया। भोगवती के प्रवाह के साथ-साथ आनेवाले नंग-धड़ंगे मुनियों की सुवर्ण वर्ण की जटायें भीग गई थीं। वस्त्र तो थे ही नहीं, जो भीग जाते। भीगी हुई जटाओं को ही उन्होंने सकर्षण भगवान के चरणों में रखा। चरणों में ठंडी-ठंडी जटाओं के स्पर्श होने से, भगवान शेषजी ने अपने बन्द हुए कमल नयनों को कुछ-कुछ खोला। अर्ध विकसित उनके दो सहस्र नेत्र ऐसे प्रतीत होते थे, मानो आकाश में एक साथ ही अर्धोन्मीलित सहस्रों कमल खिलने को प्रस्तुत हो रहे हों।

भागवत तत्व को श्रवण करके कृतार्थ हुए कुमार, भगवान संकर्षण के पाद-पद्मों में प्रणाम करके वहाँ से चले आये। घूमते-फिरते वे कभी परमव्रत शील, भगवत भक्ति परायण महामुनि सांख्यायन के आश्रम पर आये। उन्होंने अपने आश्रम पर आये हुए कुमारों का श्रद्धा सहित स्वागत सत्कार किया। उनकी सेवा से सन्तुष्ट होकर, तथा उनके श्रद्धा सहित प्रश्न पूछने पर वही भागवत ज्ञान उन्होंने उन सांख्यायन महामुनि को दिया।

उन सांख्यायन महामुनि के प्रधान शिष्य थे, मुनि पराशर। वे बड़े ही व्रत परायण, सदाचारी, सुशील, सेवा प्रिय और आचार्य के अनुगत चलने वाले थे। उनके शील से सन्तुष्ट हुए आचार्य ने उसी ज्ञान का उपदेश महामुनि पराशर और बृहस्पतिजी को दिया। भगवान पुलस्त्य मेरे ऊपर बड़ी कृपा रखते थे।

मुनि की ऐसी कृपा देखकर मेरे हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। मैं उनके साथ महामुनि पराशर के आश्रम में गया। दण्ड, प्रणाम, पाद्य, अर्घ्य और कुशल-क्षेम के पश्चात् पुलस्त्यजी ने पराशरजीसे कहा- मुनिवर यह मैत्रेय आपका शिष्यत्व ग्रहण करके आपसे भागवत तत्व श्रवण करना चाहता है। इसे आप अपना ही पुत्र समझकर प्रेम से पढ़ावें।

मुनि की ऐसी बात सुनकर भगवान पराशर बड़े प्रसन्न हुए और बोले- इस बात से मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ, कि इनकी भागवत धर्मों में रुचि है। मैं इन्हें बड़े स्नेह से सब पढ़ाऊँगा। इतना कहकर उन्होंने मुझे उस गुह्यातिगुह्य भागवत तत्त्व का उपदेश दिया।

मैत्रेय मुनि विदुरजी से कहते हैं- विदुर। जो ज्ञान मैंने अपने गुरुदेव भगवान पराशर से सुना है, उसी को मैं तुम्हें सुनाता हूँ। श्रीशुक कहते हैं- राजन्। इस प्रकार भगवान मैत्रेय विदुरजी से सन्तुष्ट होकर, उनके सामने भागवत तत्व का उपदेश करने लगे। **विविध प्रश्न पूछने लगे, विदुर देव सिर नाय। मैत्रेयजी वर्णन कियो, सृष्टि क्रम हरषाय॥**

४) ब्रह्माकी उत्पत्ति और सृष्टि विषयक ज्ञान

सृष्टिविषयक ज्ञान भगवान हरि जो सबको उत्पन्न करनेवाला वह कभी उत्पन्न नहीं होता, वो अविनाशी है, अजर-अमर है, नित्य है, सर्वांतर्यामी है, सर्वेश्वर है उसको कौन क्या पैदा करेगा। उससे पैदा हुआ ब्रह्मा। इसके बाद अन्य सृष्टियां क्या होती है? पृथ्वी पैदा हुई, सागर पैदा हुआ, पर्वत पैदा हुआ, कैसे हुए? सागर उसका कोई तल अगर यदि है तो पा नहीं पाया है। सबसे गहरा अगर समुद्र है तो जल डमरू मध्य सागर यहांपर दो हिमालय एकसाथ खड़े हो सकते हैं। सबसे ऊंचा अगर पर्वत है विश्व का तो हिमालय है। यह पृथ्वी कितने आवरणोंसे बनी हुई है। सात समुद्रोंके आवरणसे यह पृथ्वी बनी हुई है। यह पृथ्वी कहां थी? कैसे उसकी उत्पत्ति हुई? आज इस विश्वमें सत्तर, एकत्तर प्रतिशत पानी है। २९ प्रतिशत यह जमीन है। इसके अलावा ऊपरवालेने क्या पैदा किया? यह सृष्टि ब्रह्माने और क्या-क्या पैदा की। पूरी सृष्टिकी उत्पत्ति ब्रह्माने की। ब्रह्माने क्या पैदा किया यह सूर्य, नक्षत्र, तारे, चंद्र जो कुछ आप देखते है १२ विवस्वान आदित्य, सब नक्षत्र, वनस्पतियां और जीतने भी तरह के पदार्थ, जीतने भी तरह के वनस्पति, जीतने भी तरह के जीव-जंतू, पशु-पक्षी। आप पशु, पक्षी किसको कहते है, जीव-जंतु किसको कहते है? आप कौनसी चीज को जो प्राणी प्राण रखता है, श्वास लेता है, जिसमें प्राण है वो प्राणी की अलग-अलग संज्ञाएं दी हुई है। आप सांप को पक्षी तो नहीं कह सकते, सांप को आप जानवर तो नहीं कह सकते क्यों चौपाया नहीं है, दौपाया नहीं है। सांप क्या है? सांस लेता है, पृथ्वीपर विचरता है। रेंगनेवाला जीव है। इसलिए सबकुछ जीवकी परिभाषा में सन्निध किया गया है। जो प्राणी प्राण धारण करता है, श्वास-प्रश्वास लेता है वो जीव है। ऐसे जीवोंकी गणना हमारे शास्त्रोंने ८४ लाख योनियां बताई है ब्रह्मा को छोड़कर जलचर, नभचर इस तरह से ८४ लाख योनिके प्राणी जो भी कोई प्राणी श्वास-प्रश्वास लेता है। यह श्वास प्रश्वास क्या है? यह वायु का स्वरूप है। प्राण कितने यह वायु जो है प्राण वायु पांच प्राणोंका उसमें नियत किया गया है। किसी भी जीव में पाँच प्राण होते हैं। प्राण, अपान, समान, उदान, बयान। पाँच उपप्राण होते है- देवदत्त, धनंजय, नृग, कंकर, नाग। इन प्राणोंसे के श्वास-प्रश्वास की क्रियासे ही हमारा यह शरीर जो चलता है, काम करता है इन्हींसे चलता है। जब किसीका भी जीव निकल जाता है तो हम उसे मृत्यु कहते है। शरीर निष्काम हो जाता है। न आपकी आँखे उस समय देख सकती है, न आपका नाक, न आपकी श्रवणेन्द्रियां कान काम करती है। फिर क्या है? ये सब तो फिर जड़ है। प्रकृति है, जड़ है। इसमें चैतन्य नहीं है। चैतन्यांश निकल जाता है। यदि यह आँखें, यह कान, यह नाक, यह पैर, यह हाथ, यह जनेन्द्रियां यह सब काम कर

सकती प्राण भले रहे या न रहे इसके लिये प्राण आवश्यक है। यह प्राण क्या है? चेतना। चेतना कहांसे आयी। यह उस हरिकी अभिव्यक्ति है। यह नहीं है तो न आपकी आत्मा है, न परमात्मा है। यह आत्मा और परमात्मा। अपने परमात्माके अंशिक हैं हम। हर प्राणी उसका अंश है इसीने बनाया है सबको। जब यह आत्मा और परमात्मा का विवेचन कर रहे हैं, सृष्टिके उत्पत्तिके बारेमें विवेचन कर रहे हैं तो इसका अंश जब तक हममें अभिव्यक्त नहीं होता हम कुछ नहीं कर पाते हैं।

मृत्यु- संहार की देवी। सृष्टि के आरंभ में ब्रह्मा ने असंख्य प्राणियों की सृष्टि कर डाली। इससे सभी लोकों में कोई भी स्थान ऐसा नहीं रहा, जहां प्राणियों का वास न हो। उस समय ब्रह्मा के मन में प्रजा के संहार की, उनकी संख्या घटाने की, चिंता उत्पन्न हुई। जब उन्हें कोई भी उपाय नहीं सूझा तो उस समय रोष के कारण उनके नेत्र आदि इंद्रियों से अग्नि प्रकट हो गई। ब्रह्मा के क्रोध से उत्पन्न हुई वह आग संपूर्ण जगत को जलाने लगी। संपूर्ण जगत जलता दग्ध हुआ देखकर भगवान शंकर ब्रह्मा के सम्मुख आए और बोले- प्रभो। आपने ही इस संसार के प्राणियों की सृष्टि की है, अत: आप इन पर क्रोध न करें। इस पर ब्रह्मा ने शंकर से कहा- महादेव। मैं प्रजा पर कुपित नहीं हूं और न मेरी यह इच्छा है कि प्राणियों का विनाश हो। केवल पृथ्वी का भार हल्का करने के लिए ही ऐसे उपक्रम की आवश्यकता प्रतीत होती है। अधिक प्राणियों के भार से पृथ्वी समुद्र में डूबती चली जा रही है। जब मुझे कोई उपाय नहीं सूझा तो मुझे क्रोध आ गया। शंकर ने कहा- आप क्रोध न करें। आप प्रसन्न हो जाएं, मैं यही वरदान आपसे मांगता हूं। आप जगत के सृष्टा हैं। अत: आप ऐसी व्यवस्था कर दें जिससे सारी प्रजा पुनरावर्तनशील हो- मरकर पुन: जन्म धारण करे।

यह सुनकर ब्रह्मा ने क्रोधाग्नि को अपनी अंतरात्मा में ही विलीन कर लिया तथा प्रजा के लिये जन्म और मृत्यु की व्यवस्था कर दी। उस क्रोधाग्नि के उपसंहार से एक मूर्तिमती नारी प्रकट हो गई। ब्रह्मा और शंकरजी ने उस नारी को देख लिया। वह दक्षिण दिशा की ओर जा रही थी। ब्रह्मा ने उसे मृत्यु कहकर पुकारा और निकट बुलाकर कहा- तुम इन प्रजाओं का समय-समय पर विनाश करती रहो। मैंने प्रजा के संहार की भावना से क्रोध में भरकर तुम्हारा चिंतन किया था, इसलिए तुम मेरे आदेश से सामान्यत: सारी प्रजा का संहार करो- इससे तुम्हें परम कल्याण की प्राप्ति होगी। इस संबंध में निम्नलिखित अंश भी द्रष्टव्य है।

संपूर्ण लोकों के आदि और अंत के स्वामी ब्रह्मा ने उस नारी को अपने पास बुलाकर उसे बार बार सांत्त्वना देते हुए मधुर वाणी में मृत्यो (हे मृत्यु) कहकर पुकारा और कहा- तू इन समस्त प्रजाओं का संहार कर देवी। तू संहारबुद्धि मेरे रोष द्वारा प्रकट हुई है, इसलिए मूर्ख और पंडित, सभी प्रजाओं का संहार करती रहे। मेरी आज्ञा से तुझे यह कार्य करना होगा। इससे तेरा कल्याण होगा।

यह यम-नियम क्या है? सोच, आचार, विचार, यम, नियम को समझिये। एक बार धन्वन्तरि अपने शिष्योंको लेकर (भास्कराचार्य चरक इत्यादि कई उनके आयुर्वेदके शिष्य थे) गोष्ठीके लिये कहीं गये थे। एक पेड़ के नीचे सब शिष्य बैठे थे, धन्वन्तरि बैठे थे। कुछ पक्षी ऊपर रो रहे थे बैठे बैठै। आवाज निकाल रहे थे कोरू, कोरू। धन्वन्तरि ने पूछा- भास्कर यह पक्षी क्यों रूदन कर रहे हैं? भास्कर ने जवाब दिया- महाराज, यह रो नहीं रहे हैं यह हमारे शास्त्रको चेतावनी दे रहे हैं, यह बोल रहे हैं कौन है रोगी, कौन है निरोगी? बोले बताओ- कौन है रोगी, कौन है निरोगी छात्रों? छात्र बोले- जो करे नियम का पालन, नहीं आवे यम उसके पास। नियम कौनसा?- बोले- जो नींद आनेपर सोएं और भूख लगनेपर खावें, यह नियम। नियम से चलो आपके लिये आहार निश्चित है, निद्रा निश्चित है, आपके लिये ऊपरवालेने चारों इसी जन्म में दे दिये है- अर्थ, काम, मोक्ष, धर्म। चारों आप प्रतिदिन कर सकते हैं। पूरे जीवन में कर सकते हैं। आपके जीवन के चार ही

लक्ष्य हैं। चौबीस घंटे आपको दिये हैं। हरि कहते हैं नियम में कि सुबह चार बजे प्रात:काल -ब्रह्म मुहुर्त में उठिये। आप शौचादि स्नानादि क्रिया कीजिए, उसके पश्चात् थोड़ा समय मुझे दें। धर्म, हरि स्तवन, पूजा-पाठ, कीर्तन और फिर दस बजे तक के कालको अहरण काल कहते है कलेवा खाना-पीना कीजिए। चार से छ: इस छ: घण्टे का जो कार्यक्रम होगा इसको धर्म कहते है। फिर अर्थ, इस जीवनको निभानेके लिए अर्थ की आवश्यकता है, धन। आप दस बजे अपने कामपर दफ्तर में जाइये और चार बजे तक वहां काम करिए। खाना आपने खा लिया बस भोजन इतना ही नियमित है। आप आराम से अपना व्यापार, काम कीजिए यह चार बजे तक का नियम। शामके चार बजे घरपे आइये कामका सेवन कीजिए। काम कैसे, ४ से १० अपने परिवार में बैठिये, अपने बीवी-बच्चोंके साथ बैठिये रातको दस बजे तक पत्नीके साथ रहकर आप रमण कीजिए, दस बजे के बाद आप शयन कीजिए मुक्ति हो जायेगी। कुछ चिन्ता नहीं चार बजे तक सो जाइये, मोक्ष। तो आप जीवन में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और हमने अपने कलियुगके प्रभाव से आगे पलटे है। चार बजे उठने के बजाय आठ बजे उठते है चार घंटा हर काम आगे कर रहे है। हम ग्यारह-बारह बजे तक दफ्तर जाते हैं, रातको आठ-आठ बजे तक दुकान संभालते हैं। फिर या ना तो काम सेवन करेंगे ना बीवी-बच्चोंके पास बैठने के लिये समय नहीं है। थके-मांदे आते है फिर वो ही बारह-एक बजे तक सोते है राक्षसी जीवन व्यतीत करते हैं।

नारदने पूछा- भगवन आपकी दिनचर्या क्या है? कलियुगी जीव की तो दिनचर्या यह है? भगवन बोले- नारद, मैं रोज प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्त में चार बजे शिवलिंग का रामेश्वरम् में जाकर अभिषेक आराधना करता हूँ। बारह बजे जगन्नाथपुरी में जाकर अटका भोज करता हूँ। शामको छ: बजे बद्रिकाश्रम में जाकर तपस्या करता हूँ। बारह बजे आकर रातको द्वारिका में शयन करता हूँ।

भगवान ने जब सृष्टि बनायी जिस जीवोंको अपने-अपने कर्मोंमें निर्धारित कर दिये, मनुष्य के लिये मनुष्य जीवन कैसा दिया जाएं बाकी योनियां भोगयोनियां बना दी। उसने बनाते समय यह विचार किया कि मैं एकसे अनेक हो जाऊं। उस भगवान ने अपने मन से सबसे पहले महतत्त्व को उत्पन्न किया ये तीन गुण प्रकृतिके है। प्रकृति जो जड़ है, सत्व, रज, और तम। सत्व क्या है- शांतता का गुण, प्रकाश का गुण, निर्मल, स्वच्छ, शुभ्र-धवल। रजस- कर्मोंका गुण, और तमस- अज्ञान, मूढ़त्व और प्रमाद का गुण। यह तीन गुण पृथ्वीके, प्रकृतिके इन तीनों गुणोंसे अभिव्यक्त करके जब तीनों गुण एकसाथ सम अवस्था में रहते है उस समय प्रकृति, पृथ्वी, पूरी सृष्टि लीन रहती है, प्रलयमें रहती है। जब इन गुणोंमे क्षोभ आता है, विकार आता है तब सृष्टिका निर्माण होता है। कहीं ज्यादा होगा जब ३३-३३ गुण तीनों बराबर रहेंगे जब साम्य अवस्था में रहेगी, पृथ्वीमें, जलमें, आकाशमें कोई क्रिया नहीं होती है। पंचमहाभूत कोई क्रिया नहीं कर सकते है। जब इनमें विषमता आती है तभी सृष्टिकी उत्पत्ति होती है, क्रियाएं होती है, विकार आता है। उस विकार का नाम महतत्त्व है। उस महतत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है। यह अहंकार क्या है? यह अहंकार अभिमान का नाम नहीं है, कई लोग इसको गलत समझ जाते हैं। अहम्। मेरे अपने होनेका अनुमान। आप अभिमान को निकाल दीजिये। उसको निकाल दीजिये वो है यह अहंकार। अपना अस्तित्व ऐसा ज्ञान, ऐसा भासना, मैं हूँ इसका नाम है अहंकार। इस अहंकार की उत्पत्ति हुई है जो शरीरोंमें आती है। उस अहंकारसे आकाश, अवकाश की उत्पत्ति हुई। उस अवकाश से वायुकी उत्पत्ति हुई। उस वायुसे अग्निकी उत्पत्ति हुई है। उस अग्निकी उत्पत्ति से जल हुआ। उस जलसे पृथ्वी। जब यह सब तत्वोंकी उत्पत्ति हो रही थी वो नारायण जलमें शयन कर रहा था, क्षीरसागर में, आरणास्व में उसका नाम नार जलको कहते है, उसमें सोनेवाला नारायण। जब यह पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति हुई, एक गोलाकार हिरण्यगर्भ, सोनेके अंडाकार रूपमें फिर भी वो अंडा जिसमें यह पंचमहाभूत आ गये, पंच तन्मात्राएं आ गयी, पाँच उनकी कर्मेन्द्रियां आ गयी,

पाँच ज्ञानेन्द्रियां आ गई फिर भी वो अंड कुछ कर नहीं पाया। कोई क्रिया नहीं कर पाया। तब उस ईश्वर का चेतांश अंश उसमें प्रविष्ठ हुआ वह सोया हुआ पड़ा था। जैसे ही चेतांश अंश प्रविष्ठ हुआ सबके सब अवयव क्रियाशील हुए। उस सृष्टिमें सबसे पहले उस ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई, उस ब्रह्मासे सभी सृष्टिकी भरपूर उसीसे हुई। **ब्रह्मा -** लोकपितामह। बात उस समय की है, जब संपूर्ण चराचर जगत एकार्णव के जल में डूबकर नष्ट हो चुका था। समस्त प्राणी काल के गर्त में चले गए थे। उस समय भगवान विष्णु एकार्णव के जल में शेषनाग की शय्या पर योगनिद्रा का आश्रय लेकर शयन कर रहे थे। उन्हीं भगवान को सिद्ध, मुनिगण, सबकी उत्पत्ति का कारण, लोकसृष्टा, सर्वव्यापी, सनातन, अविनाशी एवं सर्वलोकमहेश्वर कहते हैं। शयन करते हुए भगवान श्रीनारायण की नाभि से एक दिव्य कमल प्रकट हुआ, जो सूर्य के सामान प्रकाशित हो रहा था। उसी कमल से संपूर्ण लोकों के गुरु, साक्षात् पितामह ब्रह्मा प्रकट हुए। चारों वेद, चतुर्विध जीव उन्हीं के स्वरूप हैं। उनके चार मुख हैं। उनका बल और पराक्रम महान है। **चतुर्मुख-** लोकपितामह ब्रह्मा। उस सर्वलोकमय कमल में स्वयं विष्णु भगवान अंतर्यामी रूप से प्रविष्ट हो गए। तब उस कमलकोश से साक्षात् वेदमूर्ति श्री ब्रह्मा प्रकट हुए, जिन्हें स्वयंभू कहा जाता है। कमल की कर्णिका में बैठे हुए ब्रह्मा को जब कोई लोक दिखाई नहीं दिया, तब वे जिज्ञासु नेत्रों से आकाश में चारों ओर गदन घुमाकर देखने लगे। इससे उनके चारों दिशाओं में चार मुख हो गए।

जांबवान- लोकपितामह ब्रह्मा के पुत्र। जब भगवान विष्णु अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के पुत्रभाव को प्राप्त हो गए तब ब्रह्मा ने सब देवताओं से कहा- तुम सभी श्रीराम की सहायता के लिए बलवान, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, सर्वगुणसंपन्न पुत्रों की सृष्टि करो। मैंने तो पहले ही ऋक्षराज जांबवान की सृष्टि कर दी है। एक समय की बात है, जब मैं जंभाई ले रहा था, उसी समय मेरा वह पुत्र सहसा मेरे मुंह से प्रकट हो गया।

ब्रह्माणी - ब्रह्मा के शरीर से समुद्भूत शक्तिस्वरूपा भगवती। असुरों के विनाश तथा देवताओं के अभ्युदय के लिए ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इंद्र आदि देवों की शक्तियां जो अत्यंत पराक्रम और बल से संपन्न थीं, उनके शरीर से निकलकर उन्हीं के रूप में चंडिकादेवी के पास गईं। जिस देवता का जैसारूप, जैसी वेशभूषा और जैसा वाहन है, ठीक वैसे ही साधनों से संपन्न होकर उनकी शक्ति असुरों से युद्ध करने के लिए आईं। सबसे पहलू हंसयुक्त विमान पर बैठी हुई अक्षसूत्र और कमंडल से सुशोभित ब्रह्मा की शक्ति उपस्थित हुईं, जिन्हें ब्रह्माणी कहते हैं। सब तत्त्वोंके अण्ड बना। अण्ड जलमें रहा। उसके भीतर ही अविद्या आदिकी सृष्टि हुई। फिर उस अण्डमें ब्रह्माने प्रवेश किया। ब्रह्मामे पहले छाया थी। उन्होंने अपने उस शरीरका त्याग कर दिया। वह रात्रि हो गयी। उसको यक्ष राक्षसोंने ग्रहण कर लिया।

ब्रह्मा की उत्पत्ति कही, मैत्रेय जी हरषाय। कमल नाभ के रूप की, महिमा कही बनाय ।।

सृष्टि दो प्रकार की होती है- एक तत्त्वक्रमसे होती है, दूसरी कर्मानुसार होती है। व्यक्तियोंकी आकृति, जाति, आयु और उनका विविध योनियोंमें जन्म- इन सबमें भगवानका साथ होना जरूरी है। सृष्टिकी अचिन्त्य रचना परमात्माके बिना सिद्ध नहीं होती। इसमें ऐसे-ऐसे रहस्य भरे हुए हैं कि उनको जाननेके लिए सर्ग-विसर्ग और स्थानके द्वारा परमात्माके स्वरूपको समझना अनिवार्य है।

शाश्वत, अव्यक्त देवपुरुष भगवान नारायण संपूर्ण जगतस्वरूप हैं। वे ही सबके अंतरात्मा और सनातन पुरुष हैं। वे ही कूटस्थ, अविनाशी, अव्यक्त, निर्लेप, सर्वव्यापी, प्रभु प्रकृति से परे और इंद्रियातीत हैं। भगवान नारायण के हृदय में जब सृष्टि-विषयक संकल्प का उदय हुआ तो उन्होंने अपने सहस्त्रांश से एक पुरुष को उत्पन्न किया, जो मानसपुरुष के नाम से प्रसिद्ध है। पूर्वकाल में उत्पन्न यह मानसदेव शाश्वत, जो अक्षय और अविनाशी हैं। उनसे उत्पन्न सब प्राणी जन्मते और मरते हैं।

सृष्टि के आरम्भ में आत्माराम जगत के स्वामी श्रीभगवान सम्पूर्ण जीवों को अपने में लीन करके अपनी माया के सहित अकेले ही थे। उस समय उनके अनेक रूप नहीं थे। यह जगत केवल भगवत रूप ही था। उनकी माया शक्ति सुप्त दशा में और उनकी ज्ञानशक्ति जाग्रत अवस्था में थी। उस समय केवल परमात्मा ही साक्षी रूप प्रकाशमान थे।

सृष्टि के पूर्व की बात है। चतुर्दिक जल-ही-जल व्याप्त था। उस समय श्रीमन्नारायण, योगनिद्रा का आश्रम लेकर क्षीर-सागर में शयन कर रहे थे। सारे जीव, सारे पांचभौतिक पदार्थ, उस समय सूक्ष्म रूप से नारायण की कुक्षि (कोख) में विलीन थे। सृष्टि-काल की बेला उपस्थित होने पर, उन्हें जगाने के लिये, एकमात्र काल-शक्ति जागृत् थी। इस प्रकार एक सहस्र चतुर्युगी पर्यन्त भगवान क्षीर-सागर में शयन करते रहे फिर काल-शक्ति ने नारायण को उद्बोधित किया। उस समय उन्होंने अपने श्रीविग्रह में लीन हुए अनन्त लोकों को देखा। तदनन्तर श्री विग्रह में विलीन सूक्ष्म तत्त्व-गण काल से प्रेरित रजोगुण से क्षुभित होकर, सृष्टि रचना के निमित्त, उनके नाभि-देश से बाहर कमल के रूप में निकला। उस समय कमल की कान्ति से सारा जल देदीप्यमान हो उठा। उस कमल में स्वयं भगवान विष्णु व्याप्त थे। कमल की कर्णिका से वेदमूर्ति ब्रह्मा प्रकट हो उसी पर विराजमान हो गये। चारों दिशाओं में गर्दन घुमा कर देखने के कारण ब्रह्मा चतुर्मुख बन गये-चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि। उस समय वे सोचने लगे मैं कौन हूँ? यह कमल कहाँ से प्रकट हुआ है?

इस अथाह जल राशि में अवश्य कोई आधार है। जहाँ से यह कमल उत्पन्न हुआ ऐसा विचार कर ब्रह्माजी कमल के नाल के सहारे नीचे जल में उतरे।

इस प्रकार की जिज्ञासा होने पर उन्होंने कमल-नाल के सहारे आधार का पता लगाने के लिये जल में नीचे की ओर प्रवेश किया। बहुत काल तक वे नीचे की ओर जाते रहे। किन्तु उन्हें कमल के आधार का पता न लग सका फिर वे लौट आये वहीं कमल-कर्णिका पर जहाँ पहले बैठे थे। वहाँ उन्होंने श्वास रोककर सौ वर्ष तक की अखण्ड समाधि लगाई। समाधि में उन्हें, अपने अन्त:करण में, शेष-शायी श्रीमन्नारायण का दर्शन हुआ। **मधुसूदन -** सृष्टि के आरंभ में भगवान श्रीहरि की नाभि से एक दिव्य कमल प्रकट हुआ, जिससे प्राणियों के पितामह भगवान ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा की उत्पत्ति हो जाने पर वहां तमोगुण से मधु नामक एक महान असुर प्रकट हुआ जो असुरों का पूर्वज था। असुर मधु का स्वभाव अत्यंत उग्र था। वह सदैव भयंकर कर्म करनेवाला था। अत: पुरुषोत्तम भगवान श्रीहरि ने ब्रह्मा का हित करने के लिए असुर मधु को मार डाला। मधु का वध करने के कारण संपूर्ण देवता, दानव और मानव भगवान विष्णु को मधुसूदन कहते हैं।

ब्रह्माजीने देखा कि अथाह जलराशि में शेष भगवान के दस हजार सहस्र फनों के छत्र के नीचे भगवान नारायण लेटे हुए है। कौस्तुभ मणि, पीत-पट तथा अत्यन्त चमकीली प्रभा से मण्डित विविध रत्न भगवान के श्रीविग्रह पर विराजमान थे। उनके वक्ष:स्थल पर सुनहरी रेखावाले श्रीवत्स चिन्ह की अपूर्व शोभा हो रही थी। तब विश्व-रचना की इच्छावाले लोकविधाता ब्रह्माजी ने कमल, जल, आकाश, वायु और अपना शरीर इन्हीं पाँच पदार्थों को देखा। इनके अतिरिक्त और कुछ उन्हें दिखलाई न दिया। रजोगुण से व्याप्त ब्रह्मा जी प्रजा की रचना करना चाहते थे।

आश्चर्य को आश्चर्य बना देनेवाली बात तो यह है कि सम्पूर्ण गुणों को प्रकाशित करनेवाले भगवान विष्णु स्वयं उस कमलकोष में प्रविष्ट हो गये। वही अंश विधाता के रूप में उत्पन्न हुआ। वे विधाता कैसे थे? इसका उत्तर है वेदमय: कहलाये। अपने जन को जानने के निमित्त आप अथक चिन्तन और सतत प्रयास करते रहे। पूरे १०० वर्ष बाद आपके हृदय में वह ब्रह्म अवभाषित होने लगा। भगवान नारायण का दर्शन पाते ही ब्रह्मा के मन में सृष्टि-संरचना की अदम्य अभिलाषा उत्पन्न हुयी। आप स्तुति करने लगे। जब उन्होंने सृष्टि के कारणरूप केवल ये पाँच ही पदार्थ देखे तब उन्होंने

तन्मय होकर भगवान की स्तुति प्रारम्भ की।

ब्रह्माजी ने कहा- प्रभो, आज मैं धन्य हो गया। एकमात्र आपको जानने में ही मानव जीवन की सार्थकता है। निष्काम आराधना से आप शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं।

भगवन्। आप तो सद्भावपूर्वक सकल प्राणियों के शुभचिन्तक बनकर सबके हृदय रूपी सदन में निवास करते हैं। आपकी वह सर्वभूतदया असत् पुरुषों को अत्यन्त दुर्लभ है। हे शरणागत वरदायक प्रभो। अनन्त शक्तिसम्पन्न आपके नाभिकमल से विज्ञानशक्ति के द्वारा अपना जन्म हुआ देखता हूँ। आपकी कृपाशक्ति सामर्थ्य द्वारा जगत के विचित्र रूप का विस्तार करते समय वेदवाणी का उच्चारण लुप्त न हो।

आज बहुत समय के बाद मैं आपको जान सका हूँ। कैसे दुर्भाग्य की बात है कि देहधारी जीव आप के स्वरूप को नहीं जान पाते। भगवन्, आप के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। जो वस्तु प्रतीत होती है, वह भी स्वरूपत: सत्य नहीं है, क्योंकि माया के गुणों के क्षुभित होने के कारण केवल आप ही अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं।

देव, आप की चित्-शक्ति के प्रकाशित रहने के कारण अज्ञान आप से सदा दूर रहता है। आपका यह रूप सैकड़ों अवतारों का मूल कारण है इसी की नाभि कमल से मैं पैदा हुआ हूँ। सत्पुरुषों पर कृपा करने के लिये ही आप ने इसे प्रकट किया है। परमात्मन्, आप का आनन्दमात्र, भेद-रहित, अखण्डतेजोमय स्वरूप इससे भिन्न नहीं है। यह सम्पूर्ण भूतों और इन्द्रियों का भी आश्रय है अत: सृष्टि करने की कामना से मैंने इसकी शरण ग्रहण की है।

हे विश्व के कल्याण-कर्ता, मैं आपका उपासक हूँ। आप ने मेरे हित के लिये ही ध्यान में अपना यह रूप दिखलाया हे। जो पापी विषयासक्त जीव हैं, वे ही इसका अनादर करते हैं। मैं तो आप के इसी रूप को बार-बार प्रणाम करता हूँ। प्रभो, जो भक्त जन अपने कर्ण-कुहरों से आपके कथामृत का निरन्तर पान करते रहते हैं, उनके हृदय-कमल पर स्वयं आकर आप विराजमान हो जाते हैं और फिर वहाँ से कभी नहीं हटते, क्योंकि भक्त लोग आप के चरणों को प्रेम-रूपी रस्सी से कसकर अपने हृदय से बाँध देते हैं।

मेरे स्वामी, जब तक पुरुष आप के अभय-प्रद चरण-कमलों की शरण में नहीं जाता तभी तक उसे धन, घर और बन्धु-बान्धवों के द्वारा प्राप्त होनेवाला भय, शोक, लोभ और दैन्य आदि परेशान करते हैं और तभी तक उसके हृदय में मैं- मेरेपन का दुराग्रह रहता है। व्यक्ति के दु:ख का यही एकमात्र कारण है।

अच्युत, उरुक्रम, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि के कारण और क्रोध, लोभ एवं मोह से होनेवाले प्रजा के दु:खों को देखकर मुझे महान् कष्ट होता है। माया के वशीभूत जीव जब तक अपने को आप से भिन्न मानते हैं, तब तक उनका दु:ख निवृत्त नहीं हो सकता। देव, औरों की तो बात ही क्या- जो साक्षात मुनि हैं, वे भी यदि आप की कथा से विमुख रहते हैं तो उन्हें भी संसार में फँसना पड़ता है। दिन के समय विविध व्यापारों में उनका चित्त विक्षिप्त रहता है और रात्रि में वे अचेत होकर निद्रा में पड़े रहते हैं; उस समय भी विविध मनोरथों के कारण उनकी निद्रा भंग होती रहती है। उनके सारे अर्थ-सिद्धि के उद्योग भी निष्फल हो जाते हैं। न रात्रि में सुख और न दिन में चैन।

नाथ, आप का मार्ग एकमात्र आपके गुणों के श्रवण से ही जाना जाता है। आप निश्चय ही मनुष्यों के, भक्ति-योग के द्वारा पवित्र हुए हृदय-कमल में निवास करते हैं। प्रभो, आपके भक्त जन माता-पिता और पुत्र आदि जिस भावना से आपका चिन्तन करते हैं, उन-उन साधु-पुरुषों पर अनुग्रह करने के लिये आप वही-वही रूप धारण कर लेते हैं।

प्रभो, मन में कामना रखकर विपुल सामग्रियों से पूजा करने वाले बड़े-बड़े देवों के ऊपर आप उतना प्रसन्न नहीं होते

जितना सब प्राणियों पर दया करने से होते हैं। जो कर्म आपको अर्पण कर दिया जाता है, उसका कभी नाश नहीं होता- वह अक्षय हो जाता है, अनन्त बन जाता है। जो लोग प्राण-त्याग की बेला में, विवश होकर भी, गुण एवं कर्मों को सूचित करनेवाले देवकीनन्दन, जनार्दन तथा कंसनिसूदन आदि नामों का उच्चारण करते हैं, वे अनेक जन्मों के पापों को झट ही विनष्ट कर परमधाम ब्रह्म-पद को प्राप्त करते हैं। आप नित्य अजन्मा हैं। मैं आप का शरणागत हूँ।

आप सारे संसार के अकारण मित्र और आत्मा हैं। जो आपकी शरण में आ जाते हैं, आप उन पर कृपा की वर्षा करते हैं। अत: अपने जिस ज्ञान और ऐश्वर्य से सारे संसार को आप आनन्द प्रदान करते हैं, उसी से मेरी बुद्धि को भी प्रकाशित करने की कृपा करें जिससे मैं जगत् की रचना करने में समर्थ हो सकूँ।

हे नाथ। संसार में त्रिविध तापों से तप्त प्राणी आपके चरण कमलों की सेवा के बिना सुख-शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते, अत: हम उन्हीं श्रीचरणों की छाया का आश्रय चाहते हैं।

हे विभों मुनिजन एकान्त में वेद मन्त्रों द्वारा आपके जिन चरण कमलों का अन्वेषण करते हैं, पापहारिणी भगवती गंगा के जो उद्गम स्थान हैं, वे हमें सृष्टि करने का सामर्थ्य प्रदान करें।

हे भगवान। जिनके हृदय में ध्यान कर मनुष्य ज्ञानी होते हैं, स्मरण मात्र से जो अभय प्रदान करते हैं, देह-गेह में आसक्त प्राणियों को जो दुर्लभ हैं, अभक्त जिनकी छाया भी नहीं पा सकते और भक्तों के जो सर्वस्व हैं, उन आपके श्री चरणोंमें हम बार-बार प्रणाम करते हैं।

हे भगवन्। आपने लोकरचना की इच्छा से माया में वीर्य का आधान कर हम लोगों की सृष्टि की है, किन्तु आपके क्रीड़ास्थान ब्रह्माण्ड के निर्माण में हम समर्थ नहीं है, आप ही हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें, जिससे हम ब्रह्माण्ड की रचना कर सकें। हम आपका पुन: सिरसे नमन करते हैं।

काल के अनुसार भगवान की यह त्रिगुणमयी माया अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त हुई। तब भगवान ने विराटरूप से अपने में बीज को धारण किया। तत्पश्चात् काल गति से उस परमात्मा की अव्यक्त माया के द्वारा वह महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ। वह अज्ञान को नष्ट करनेवाला विज्ञान स्वरूप था। उसी महत्तत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति हुई जो अधिदैव, अधिभूत और अध्यात्म तीन रूप होने से मन, भूत और इन्द्रियों का बनानेवाला है। वह अहंकार वैकारिक रूप से सात्विक, राजस और तामस तीन गुणोंवाला है। इसलिए अहंकार तत्व में विकार उत्पन्न होने पर मन और उसके अधिष्ठाता देवता तथा राक्षस अहंकार से कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों तथा तामस अहंकार के द्वारा सम्पूर्ण भूतों का कारण और उनको बोध करानेवाला आकाश प्रकट हुआ। जब विराट पुरुष की दृष्टि आकाश पर पड़ी तब काल, माया और तन्मात्रा उत्पन्न हुई। उसमें क्षोभ उत्पन्न होने पर वायु तत्व उत्पन्न हुआ। वायु और आकाश के विकृत होने पर रूप तन्मात्रा उत्पन्न हुई जिससे तेज उत्पन्न हुआ। फिर आकाश वायु और तेज ने मिलकर रस तन्मात्रा के कार्य रूप जल की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् आकाश, वायु, तेज और जल इन चारों के संयोग से गन्ध गुणवाली पृथ्वी की उत्पत्ति हुई।

ये सब गण पृथक्-पृथक् निकलकर जब ब्रह्माण्ड की रचना करने में समर्थ न हो सके, तब उन्होंने भगवानकी स्तुति की। हे भगवन्। आपके चरणकमल शरणागत भक्तों के त्रिविध तापों का शमन करने में छत्ररूप हैं, योगी जन जिनका आश्रय लेकर सांसारिक दु:ख को दूर से ही त्याग देते हैं, हम आपके उन चरण कमलों में प्रणाम करते हैं।

हे विदुरजी। इन तत्वों के परस्पर मिलने से ही दूसरे तत्व उत्पन्न हुए। जो तत्व उत्पन्न हुए उन तत्वों में पिछले तत्वों का भी गुण होता है। देवताओं ने कहा- हे परमेश्वर। इस जगत में तीनों तापों से सम्पूर्ण जीव व्याकुल रहने लगे हैं अत: हे

भगवन्। उन जीवों के दु:खों के निवारणार्थ आपने वेदों की उत्पत्ति की। श्रेष्ठ गंगाजी की उत्पत्ति की। हम लोग उन सब का सेवन और आपके चरणों की वन्दना नित्य करते हैं, किन्तु वे पापी लोग जो आपके चरणों से दूर रहते हैं, उनका उद्धार किस प्रकार हो सकता है? हे आदि देव। आपने इन देवताओं को त्रिगुणमय उत्पन्न किया है, इस लिए हमारे रूप, स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। हम परस्पर मिल नहीं पाते हैं। आप हमें वह मार्ग प्रदर्शन कीजिए जिससे हम इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना करके आपको समर्पण कर सकें। इन विघ्न बाधाओं से दूर रह सकें, शान्तिपूर्वक अपना यज्ञ भाग ले सकें। आप पुराण पुरुष हैं। सम्पूर्ण सृष्टि के आदि कारण हैं। आपही ने हमको जन्म दिया है। अत: जिस कारण से हमें आपने उत्पन्न किया है उसके विषय में हमें समझाइये कि हम क्या करें? ब्रह्माण्ड रचना के हेतु हमें आप ज्ञान शक्ति दीजिये।

जिहि विधि से उत्पन्न भये, विराट रूप भगवान। क्रम विधि से वर्णन करी, मैत्रेय कथा महान।।

श्री मैत्रेयजी बोले- हे विदुरजी। भगवान ने जब यह देखा कि मेरी महत्तत्त्व आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ परस्पर संगठित न होने के कारण सृष्टि की रचना में समर्थ नहीं हो रही हैं तब उन्होंने काल शक्ति को स्वीकार कर के पंचभूत, महत्तत्त्व, अहंकार, तन्मात्रा तथा मन सहित एकादश इन्द्रियाँ आदि इन तेइस तत्वों में एक साथ ही प्रवेश किया। इन तत्वों में प्रवेश कर के उन्होंने सोये हुये जीवों को शक्ति प्रदान की और उन्हें जागृत किया यह सम्पूर्ण तत्व परस्पर मिला दिये गए। और अंश रूप से उस में परब्रह्म शक्ति में प्रवेश किया और उसीसे विराट पुरुष की उत्पत्ति हुई। उन विराट पुरुष में यह सम्पूर्ण विश्व स्थिति है नर अर्थात् जल के भीतर अयण अर्थात आश्रय लेकर वह अण्डारूप हिरण्य मय विराट पुरुष एक सहस्र दिव्य वर्ष तक सम्पूर्ण प्राणियों को अपने में लीन करके पड़ा रहा वह विराट पुरुष तत्वों को धारण करनेवाला ज्ञानस्वरूप क्रिया तथा आत्मशक्ति से परिपूर्ण था। उसने अपनी शक्तियों से अपने तीन भाग किये।

मैत्रेय जी कहते हैं हे विदुर, भगवान ने देवताओं के निवेदन का अनुमोदन करके अपनी समग्र शक्ति एवं तत्त्वों सहित उनमें प्रवेश किया- अब उनमें कार्य शक्ति क्रियान्वित हुयी। तत्त्वों के गर्भ में प्रविष्ट उस विराट पुरुष ने अपनी देवशक्तियों से अन्त: में स्थित ज्ञान, क्रिया और आत्मशक्ति जो पूर्व से विद्यमान थी, उसे चैतन्य रूप में क्रमश: एक (हृदय) और कर्म शक्ति से प्राण रूपी दस भेद (प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय) और आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक तीन भेद किये।

१) ज्ञानशक्ति के द्वारा चैतन्य स्वरूप, २) दस भाग-प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, क्रकल, देवदत्त और धनंजय, ३) आध्यात्म, अधिदेव तथा अधिभूत ये तीन भाग प्रकट किये। यह विराट भगवान ही आदि जीवन शक्तिवाले होने के कारण जीवात्मा तथा जीव स्वरूप होने के कारण परमात्मा तथा प्रथम अंश रूप होने के कारण आदि अवतार मान गये हैं। यह विराट पुरुष जीव रूप से एक प्रकार का, प्राण रूप से दस प्रकार का तथा आध्यात्म, अधिभूत तथा अधिदैव रूप से तीन प्रकार का माना गया है।

तत्पश्चात् हृदय उत्पन्न हुआ वहाँ मन के साथ चन्द्रमा प्रविष्ट हुए। इसके बाद विराट भगवान में अहंकार तत्व प्रगट हुआ इसमें रुद्रदेव प्रविष्ट हुए। इसमें चित्त उत्पन्न हुआ जिसमें महत्तत्व ब्रह्मा प्रविष्ट हुए। इस चित्त शक्ति से जीवात्मा चेतन शक्ति प्राप्त करता है। इन विराट पुरुष के सिर से स्वर्गलोक, पगों से पृथ्वी तथा नाभि से आकाश की उत्पत्ति हुई। जिनमें सत्वगुण से देवता, रजोगुण से मनुष्य और तमोगुण से राक्षस तथा भूत प्रेतादि उत्पन्न हुए।

इसके बाद साकार रूप आदिपुरुष ब्रह्मा के श्रीमुख से वेद-ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय वृत्ति, जाँघ से वैश्य वृत्ति तथा चरण से सेवावृत्ति प्रकट हुयी। इसी क्रम से वर्णाश्रम व्यवस्था की उत्पत्ति भी हुयी। ये चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,

शूद्र) अपने-अपने धर्म के अनुसार भगवत् आराधना करके जीवन को मंगलमय बनाते हैं। मैत्रेय जी कहते हैं- विदुर। काल कर्म से युक्त भगवान की महिमा का कौन गान कर सकता है?

हे विदुरजी। ब्राह्मण मुख से उत्पन्न हुए हैं, भुजाओं से क्षत्रिय, जाँघों से वैश्य तथा पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं। हे विदुरजी। विराट भगवान के रूप तथा गुणों का वर्णन करना शेष, महेश, गणेश तथा ब्रह्मा की भी शक्ति से परे है तो फिर मेरी तो शक्ति ही क्या है।

ब्रह्माने भगवान विराट की स्तुति की। चिरकाल से आज मैंने आपको जाना। जीव आपको नहीं जानते, यह उनका महान् दोष है। संसार में आपके अतिरिक्त कोई जानने योग्य वस्तु नहीं है, जो है, वह भी शुद्ध नहीं है। माया से नाना रूप धारण कर आपही भासित हो रहे हैं। भक्तों के कल्याणार्थ आपने जो शुद्ध चिन्मय शेषशायी सगुण रूप धारण किया है, जिनके नाभि कमल से मैं उत्पन्न हुआ हूँ, निर्गुण रूप भी इससे भिन्न नहीं है। अत: मैं सृष्टि करने के लिए इसी का रूप आश्रय ले रहा हूँ। हे भुवन मंगल। योगी जन समाधि द्वारा हृदय में जिस रूप का साक्षात्कार करते हैं, वह भी यही है। नारकी जीव, जो नास्तिकता के कारण कुतर्क वश इसका आदर नहीं करते, वे हतभाग्य है।

हे नाथ। जो आपके चरण कमल-मकरन्द का पान करते हैं, भक्ति में आपके चरणों को हृदय में धारण करते हैं, आप उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश कर वहाँ से कभी नहीं हटते।

स्त्री पुत्र, धन तथा कुटुम्ब-परिवार से मनुष्य को तभी तक भय होता है तृष्णा, शोक, लोभ, पराभव भी तभी तक सताते हैं, जब तक मनुष्य आपके निर्भय चरणों का आश्रय नहीं लेता।

संसार में जीवों के नाना प्रकार के कष्ट देखकर मुझे बड़ा दु:ख होता है। इनका संसार कैसे निवृत्त हो? संसार के लोग कुकर्म में लगे रहते हैं और आपका भजन-पूजन नहीं करते। काल उनके जीने की आशा को नष्ट करता है। मैं काल रूप आपको नमस्कार करता हूँ। जो प्राणी मृत्यु के समय विवश होकर एक बार भी मुख से आपके नाम का उच्चारण कर लेते हैं, उनके अनेक जन्मों के पाप कट जाते हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे भगवान। मुझमें सृष्टि का सामर्थ्य नहीं है कि मैं आपकी आज्ञा का पालन कर सकूँ। अत: मेरी बुद्धि में आप ऐसा ज्ञान दो कि मैं पूर्ववत् सृष्टि कर सकूँ और जो भी विधान बनाऊँ उसका अतिक्रमण कोई न कर सके। मुझे सृष्टि जन्य पातक भी न लगे। मैं आपको पुन: प्रणाम करता हूँ।

जगत के निर्माता जगदीश्वर, इस संसार में तीनों तापों से व्याकुल रहने के कारण जीवों को स्वल्प भी शान्ति नहीं मिलती। इसलिये भगवन्, हम आपके चरणों की छाया का आश्रय लेते हैं।

हे विभो। बड़े-बड़े मुनि-जन एकान्त में वेदमन्त्रों के द्वारा जिनका अनुसन्धान करते हैं चिन्तन करते हैं, पापनाशिनी नदियों में सर्वश्रेष्ठ गंगाजी जहाँ से प्रकट होती हैं, वे आपके चरण-कमल हमें संसार की रचना करने का सामर्थ्य प्रदान करें।

जिन पुरुषों के मन में देह, गेह तथा अन्य संसारी तुच्छ पदार्थों में अहंता-ममता का दृढ़ दुराग्रह है उनसे दूर रहनेवाले आप के चरणारविन्दों को हम भजते हैं उन्हीं की शरण में हम जाते हैं।

मेरे प्रभो। आप के कथामृत का पान करने से उमड़ी हुई भक्ति के कारण जिन भक्तों का अन्त:करण निर्मल हो गया है, वे लोग वैराग्यरूपी सार से भरे हुए आत्म-ज्ञान को प्राप्त करके जिस प्रकार अनायास ही आपके वैकुण्ठधाम को चले जाते हैं-

उसी प्रकार धीर पुरुष चित्त- निरोधरूप समाधि के बल से आप की प्रबल माया को जीत कर आप में ही लीन तो हो जाते हैं किन्तु उन्हें श्रम बहुत होता है-

देवाधिदेव, आपने सृष्टि निर्माण की इच्छा से हमारी त्रिगुणमयी रचना की है। हमारा स्वभाव विभिन्न है अत: हम आपस

में मिल नहीं पाते यही कारण है कि हम आपकी लीलास्थली संसार की रचना करने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं। अब आप ही हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें जिससे हम ब्रह्माण्ड की रचना कर आप को समर्पित कर सकें अत: प्रभो। हम पर अनुग्रह कर अब आप ही हमें क्रियाशक्ति के सहित अपनी ज्ञान-शक्ति भी प्रदान कीजिये। हम आपको बार-बार प्रणाम करते हैं।

मैत्रेय मुनि ने कहा- विदुर जी, इस प्रकार महदादि २३ तत्वों ने अलग-अलग भगवान की स्तुति की। कालशक्ति के साथ उनमें प्रविष्ट हुए भगवान ने परस्पर विलग हुए उस तत्त्व-समूह को अपनी क्रियाशक्ति के द्वारा आपस में मिला दिया।

इन तत्वों के मिल जाने से एक अण्ड (विराट शरीर) की रचना हुई। उस अण्ड में हिरण्मय विराट पुरुष, सम्पूर्ण जीवों को साथ लेकर, एक हजार दिव्य वर्षों तक पड़ा रहा। यह विराट पुरुष ही प्रथम जीव होने के कारण समस्त जीवों का आत्मा, जीवरूप होने के कारण परमात्मा का अंश और प्रथम अभिव्यक्त होने के कारण भगवान का आदि अवतार है। सारा संसार इसी में प्रकाशित होता है।

उस अण्ड से (विराट पुरुष से) सबसे पहले मुख प्रकट हुआ उसमें लोकपाल अग्नि वाक् इन्द्रिय के साथ प्रविष्ट हो गया, जिससे यह जीव बोलता है। फिर विराट पुरुष से तालु उत्पन्न हुआ उसमें लोकपाल वरुण ने अपने अंश रसेन्द्रिय के सहित प्रवेश किया, जिससे जीव रस ग्रहण करता है। इसके पश्चात् उसके नथुने प्रकट हुए उसमें दोनों अश्विनीकुमार, अपने अंश घ्राणेन्द्रिय के सहित प्रविष्ट हुए, जिससे जीव गन्ध ग्रहण करता है। इसी प्रकार जब उस विराट देह में आँखें, प्रकट हुई तब उसमें अपने अंश नेत्रेन्द्रिय के सहित लोकपति सूर्य ने प्रवेश किया, जिस नेत्र इन्द्रिय से पुरुष को विविध रूपों का ज्ञान होता है-

पुन: उस विराट विग्रह में त्वचा उत्पन्न हुई, उसमें अपने अंश त्वक् इन्द्रिय के सहित वायु स्थित हुआ, जिससे जीव को स्पर्श का ज्ञान होता है। जब इसके कर्ण छिद्र प्रकट हुए, तब उनमें अपने अंश श्रवणेन्द्रिय के सहित दिशाओं ने प्रवेश किया, जिससे जीव को शब्द का ज्ञान होता है। तदनन्तर चर्म उत्पन्न हुआ उसमें अपने अंश रोम-समुदाय के सहित औषधियाँ स्थित हुईं, जिनसे जीव को खुजली की अनुभूति होती है। इसके बाद उसके लिंग उत्पन्न हुआ। अपने इस आश्रय में प्रजापति ने अपने वंश वीर्य के सहित प्रवेश किया, जिससे जीव संभोगरूप आनन्द का अनुभव करता है। तत्पश्चात् मलद्वार निकला जिसमें मित्र देवता ने पायु इन्द्रिय के साथ प्रवेश किया, जिससे जीव मल-त्याग करता है। इसके बाद दो हाथ निकले, उनमें अपनी ग्रहण और त्यागरूपा शक्ति के सहित देवराज इन्द्र ने प्रवेश किया, इस शक्ति से जीव अपनी जीविका प्राप्त करता है। जब इसके चरण उत्पन्न हुए, तब उनमें अपनी शक्ति के सहित लोकेश्वर विष्णु ने प्रवेश किया जिससे जीव चलता-फिरता है फिर इसी प्रकार बुद्धि उत्पन्न हुई, जिसमें वाणी के देवता ब्रह्मा ने अपने अंश बुद्धि-शक्ति के साथ प्रवेश किया। इस बुद्धि-शक्ति से जीव ज्ञातव्य विषयों को जान सकता है।

आगे इससे हृदय प्रकट हुआ उसमें अपने मन के सहित चन्द्रमा स्थित हुआ। इस मन:शक्ति के द्वारा जीव संकल्प-विकल्प करता है फिर विराट में अहंकार जागृत हुआ इसमें क्रिया-शक्ति के सहित अभिमान (रुद्र) ने प्रवेश किया इससे जीव अहंकार करता है। बाद में चित्त निकला, इसमें वासुदेव ने चेतना-शक्ति के साथ प्रवेश किया, जिससे जीव को विज्ञान की उपलब्धि होती है।

विराट पुरुष के सिर से स्वर्गलोक, पैरों से पृथ्वी और नाभि से अन्तरिक्ष (आकाश) उत्पन्न हुआ। इनमें क्रमश: सत्ता, सत्त्व और तम- इन तीन गुणों के परिणामस्वरूप, देवता, मनुष्य और प्रेत आदि देखे जाते हैं। विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य और पैरों से शूद्र अपनी-अपनी वृत्ति के साथ उत्पन्न हुए। मैत्रेय जी कहते हैं विदुर जी, भगवान की योगमाया के प्रभाव से अस्तित्व में आये इस विराट पुरुष का पूरा-पूरा वर्णन करने का साहस भला कौन कर सकता है? अन्य

सांसारिक विषयों की चर्चाओं से अपवित्र हुई अपनी वाणी को पवित्र करने के लिये भगवान की पावन कीर्ति का वर्णन अपने बुद्धि-विवेक के अनुसार करता हूं। महापुरुषों का कथन है कि पुण्यश्लोकशिरोमणि श्रीहरि के गुणों का वर्णन करना ही वाणी का फल है तथा विद्वानों के द्वारा वर्णित भगवान की कथासुधा का पान करना ही कानों का मुख्य फल है।

भगवान की माया बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित कर देनेवाली है। सहस्रों वर्षों तक समाधि लगाकर ब्रह्मा जी भी जिन भगवान की महिमा को ठीक-ठीक नहीं जान सके, मन और वाणी की पहुँच से भी जो परे हैं, रुद्र आदि देवगण भी जिनके यथार्थ महत्त्व को नहीं जान सकते, उन श्रीभगवान को हम प्रणाम करते हैं।

श्री शुकदेवजी कहते हैं- परीक्षित्। जब विदुरजी ने मुनिश्वर मैत्रेय जी से इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से पुराण विषयक प्रश्न किये, तब भगवच्चर्या के लिये प्रेरित किये जाने के कारण वे बहुत ही प्रसन्न हुए और प्रेमपूर्वक उनसे कहने लगे।

शौनकजी ने पूछा- सूतजी दस प्रकार की सृष्टि कौन-कौन सी है।

सूतजी ने कहा- भू: भूव: स्व:। जीवों के भोगस्थान के रूप में वे तीन लोक हैं। अभयपद के लिये मह:, जन: तप: और सत्यलोक का वर्णन है। मुख्यतया सृष्टि दो प्रकार की है, सूक्ष्म और स्थूल। इसी को प्राकृत और वैकृत कहते हैं। तीनों गुण जब साम्यावस्था में रहते हैं तो उसी का नाम प्रकृति है। अनादि अनन्त मान्यता प्राप्त परमात्मा को आधार मानकर नौ प्रकार की सृष्टि की तथा प्राकृत-वैकृत भेद से दसवीं सृष्टि का भी सृजन किया।

एक होता है ब्राह्मकल्प, दूसरा होता है पाद्मकल्प और तीसरा होता है वाराहकल्प। ये सब कालके भेद हैं। पृथ्वी कभी भगवानकी जाँघसे उत्पन्न होती है और कभी पावोंसे। कभी पानीके मन्थनसे निकलती है और कभी स्वतन्त्ररूपसे परमात्मा द्वारा प्रकट होती है। इसप्रकार पुराणोंमें भिन्न भिन्न कल्पोंकी रीतिसे पृथ्वीके प्राकट्यका वर्णन हेाता है।

जब तीनों गुणों में विषमता होने से जापे एक महान तत्त्व उत्पन्न होता है उसी का नाम महत् तत्त्व है। यह प्रथम प्राकृत सृष्टि है। बुद्धि में अहंकार उदय होने के बाद जो चेतना का उदय होता है वही महत्तत्त्व है। इसमें त्रिगुणों की विषमता के कारण सुख-दु:ख का अनुभव मात्र है अहंकार।

महत्तत्व से अहंकार उत्पन्न होता है यह दूसरी है। सात्त्विक राजस और तामस तीन प्रकार का होने से यही पंचभूत ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों को भी उत्पन्न करता है। भूत सर्ग शब्दाश्रय, रसाश्रय, स्पर्शाश्रय, रूपाश्रय और गन्धाश्रम यह तीसरी सृष्टि है।

पंचतन्मात्राओं की तीसरी सृष्टि है। चौथी सृष्टि इन्द्रियों की है यह ज्ञान और क्रिया है। पाँचवीं इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवों की तथा मन की है। छठी सृष्टि तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह, महामोह यह पंचपर्वा आदि पाँच प्रकार की अविद्या की है, जो जीवों की बुद्धि का आवरण और विक्षेप करती है। ये छ: सर्ग तो प्राकृत हैं, अब चार वैकृत सृष्टि का वर्णन करते हैं। पहले वृक्षादि की स्थावर सृष्टि वनस्पति, औषधि, तला, त्वक्कार (जिसमें छाल नहीं होती है), वीरुध और द्रुम। दूसरी पशु-पक्षी आदि की, यह २८ दोष के रूप में व्यक्त किया गया है। ग्यारह इन्द्रिय, वध और तुष्टि (प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य ये चार तथा आध्यात्मिक पंच ज्ञानेन्द्रिय) तथा अष्ट सिद्धि तुष्ट ये सत्रह बुद्धि वध मुक्ति से पूर्व विघ्न रूप है। तीसरी मनुष्यों की, मोह माया से फँसा हुआ अभिन्न रूप में फँसा जीव मनुष्य है। इसमें रजोगुण सर्वाधिक है। चौथी पृथ्वी से ऊपर के लोक वाले देवता, असुर, गन्धर्व आदि की देव सृष्टि इस प्रकार ६ प्राकृत और चार वैकृत- ये ही दस प्रकार की सृष्टि है। कुमारों का दसवाँ सर्ग है। वह प्राकृत-वैकृत दोनों प्रकार का है।

पृथ्वीको धारिणी शक्ति, जलको आप्यायनी शक्ति, अग्निको तेजस्विनी शक्ति, वायुको गतिमती शक्ति और आकाशको व्यापिनी शक्ति कहते हैं। ये सब आत्मदेवकी शक्तियाँ हैं।

जो पदार्थ के रूप में विदित होता है, जिनके आखिरी टुकड़े का टुकड़ा नहीं किया जा सकता और असंयुक्त रहते हैं, उसे परमाणु कहते हैं। संसार में किसी पदार्थ का खण्ड न हो सके उसी अन्तिम खण्ड को परमाणु कहते हैं। इसी परमाणु के माध्यम से अव्यक्त रूप भगवान काल की भी सूक्ष्मता-स्थूलता का अनुमान किया जाता है। परमाणु से लेकर परम महान् तक सृष्टि चलती है। दो परमाणु मिलकर एक अणु बनता है। तीन अणु के संयोग से एक त्रसरेणु होता है, जो झरोखे से आयी हुई सूर्य की किरणों के प्रकाश में आकाश के सदृश उड़ता दिखाई देता है। ऐसे तीन त्रसरेणुओं को त्रिकुटि कहते हैं। तीन सौ त्रसरेणुओं का एक वेधकाल होता है। २७ वेध का एक क्षण होता है। पाँच क्षणों की एक काष्ठा होती है। इसी प्रकार काल का ज्ञान है।

इस प्रकार सृष्टि के विचार के साथ काल का विस्तार होता है। ब्रह्माजी अपने बहुत से प्रजापतियों के रूप बनाकर इस सृष्टि को बढ़ाते हैं। विष्णु भगवान इन्द्र, मनु, ऋषि, मनुपुत्र, देव तथा अवतार आदि अनेक रूप धारण करके बनाई हुई सृष्टि का पालन करते हैं। अन्त में रुद्रदेव काल रूप से सभी का संहार करते हैं। कल्प के अन्त में तीनों लोकों का संहार करके ब्रह्माजी सो जाते हैं उतनी ही बड़ी रात्रि का अंत होने पर फिर सृष्टि करने लग जाते हैं। उनके एक वर्ष में तीन सौ साठ कल्प होते हैं। ऐसे सौ वर्षों तक ब्रह्मा रहकर बदल जाते हैं। यही सृष्टि का क्रम सनातन से चला आ रहा है। इसका न ओर है न छोर। जैसा यह एक ब्रह्माण्ड है, ऐसे असंख्यों ब्रह्माण्ड उनके एक रोम कूप में फैल फूटकर पड़े हुए हैं वे ही हरि सब कारणों के कारण हैं। उन्हीं की शरण में जाने से जीवों के दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति हो सकती है। चन्द्रमादि ग्रह-नक्षत्र और तारामण्डलों के अधिष्ठाता भगवान सूर्य ने परमाणु से लेकर संवत्सर पर्यंत सृष्टि की।

ब्रह्मा की स्तुति से प्रसन्न हुए परमात्मा ने कहा- वेदगर्भ, आप विषाद-अवसाद के वशीभूत होकर उदास न हों, आलस्य न करें। संसार की सृष्टि के लिये आप उद्योग में संलग्न हो जाइये। आप मुझसे जो कुछ चाहते हैं, उसे तो मैं पहले ही कर चुका हूँ। आप एक बार पुन: तप करें और भागवत का अनुष्ठान करें। इससे आप सम्पूर्ण लोकों को स्पष्टतया अपने अन्त:करण में देखेंगे। सृष्टि क्रिया के प्रारम्भ करने पर मेरी कृपा से आप का मन कभी भी मोहित नहीं होगा। आप सबसे पहले मन्त्र-द्रष्टा हैं। संसार की रचना करते समय भी आप का मन मुझमें ही लगा रहता है। यही कारण है कि पापमय रजोगुण आपको बाँध नहीं पाता है। भगवान ने कहा- देखो ब्रह्मा तन्द्रा-प्रमाद मत करना। उद्यम करो। आपकी जीजिविषा को देखते हुये पहले ही मैं सब कुछ दे चुका हूँ। उसे चेतन रूप में बदलने के लिए मेरा आश्रय लेकर तप करो, अभिलाषा सिद्ध होगी। उसे मैंने पहले से ही सम्पन्न कर दिया है। तुम फिर तपस्या और विद्या का आश्रय करो। उससे तुम अपने हृदय में ही सब लोकों को स्पष्ट देखोगे। सृष्टि करते समय तुम्हें किसी प्रकार का न क्लेश होगा और न रजोगुण से तुम्हारा बन्धन ही होगा। मैं तुम्हारी स्तुति से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम जो भी चाहते हो, वह सब शीघ्र ही पूर्ण हो जायेगा। अब तुम मेरा ध्यान कर मुझमें लीन हुई प्रजा की पूर्ववत् सृष्टि करो। भगवान इस प्रकार ब्रह्माजी को सृष्टि-विषयक ज्ञान प्रदान कर अन्तर्धान हो गये।

विविध प्रश्न कीन्हे विदुर, मैत्रेय को शिर नाय। किहि बिधि क्रीड़ा करत प्रभु, माया निज उपजाय।।
विराट रूप की विभूतियाँ, कहो मुझे समझाय। विधिवत क्रम सृष्टि कहो, मिटे ताप दु:ख जाय।।

विदुरजी बोले- हे मैत्रेयजी। भगवान सत्य स्वरूप, निर्विकार, निर्गुण तथा इच्छा रहित होते हुए भी फिर वे सृष्टि रचने की इच्छा क्यों करते हैं? जो भगवान पूर्ण काम तथा सदैव असंग हैं वे अपनी क्रीड़ा के निमित्त भी सृष्टि रचने का संकल्प क्यों करते हैं? भगवान अपनी त्रिगुणमयी माया से सृष्टि रचते हैं और उसी माया से उसका पालन तथा संहार भी कर देते हैं। जो भगवान कभी माया में लिप्त नहीं होते हैं उनका संयोग उस माया से किस प्रकार हो जाता है। जो भगवान सम्पूर्ण क्लेशों से रहित सत्चित आनन्द घन स्वरूप हैं उन्हें क्लेश और दुर्भाग्य किस प्रकार सताता है? इसलिए हे भगवन्। मेरी इन शंकाओं

को आप दूर कीजिये। यदि सब कुछ ईश्वर की है तो जीवन दु:खी क्यों है? बन्धन में क्यों है? जीव ईश्वर भी हो, बन्धनमें भी हो, परमात्माका स्वरूप भी हो और दु:खी भी हो तथा अपनेको मरनेवाला भी मानता हो, फिर यह सब कैसे?

विदुर जी ने मैत्रेय जी से पूछा- परमात्मा तो निज बोध स्वरूप है, एक ही परमात्मा जब सभी अंश रूप में है तो कहीं दु:ख, कहीं सुख कैसे हो गया है? मैत्रेय बोले- देहाभिमानी जीव में देह मिथ्या धर्मों की प्रतीत होती है, परमात्मा में नहीं। विदुर, जब मनुष्य गुरुजनों की अनुकम्पा प्राप्त करके प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर उन्मुख होता है तो उससे भी यह माया दूर हट जाती है। विदुर ने कहा- विभो। आपकी कृपा से मुझे यह निश्चय हो गया कि अनात्मा पदार्थ वस्तुत: है नहीं प्रतीति मात्र है। भगवन। भगवान की त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) लीला का वर्णन करते हुये यह बतायें कि धर्म के मूल कारण श्री नारायण किस आचरण से प्रसन्न होते हैं।

मैत्रेयजीने कहा- कुलश्रेष्ठ। जो आत्मा सबका स्वामी और सर्वथा मुक्ति स्वरूप हैं, वही दीनता और बन्धन को प्राप्त हो। यह बात युक्ति-विरुद्ध अवश्य है; किन्तु वस्तुत: यही तो भगवान की माया है। इस संसार में दो ही प्रकार के लोग सुखी हैं- या तो अत्यन्त मूढ़ (अज्ञानग्रस्त) हैं या जो बुद्धि आदि से अतीत श्री भगवान को प्राप्त कर चुके हैं। बीच की श्रेणी के संशयापन्न लोग तो दु:ख ही भोगते हैं।

विदुर ने पूछा- मुनिवर। आपने कहा था कि यह विराट ब्रह्मादि प्रजापतियों का भी प्रभु है, उन्होंने किन-किन प्रजापतियों को उत्पन्न किया, तथा सर्ग, अनुसर्ग और मनुओं की भी रचना की। मैत्रेय जी उन मनुओं के वंश और वंशधर राजाओं के चरित्रों का, पृथ्वी के ऊपर और नीचे के लोकों का, तथा भूर्लोक के विस्तार और स्थिति का वर्णन कीजिये तथा यह भी बतलाइये कि तिर्यक, मनुष्य, देवता और सरीसृप (सर्पादि रेंगनेवाले) जन्तु और पक्षी तथा जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज- ये चार प्रकार के प्राणी किस प्रकार उत्पन्न हुए।

शेष आचरण के अनुसार स्वभाव, वर्णाश्रम का विभाग, ऋषियों के जन्म-कर्म आदि वेदों का विभाग, यज्ञों के विस्तार, योग का मार्ग, ज्ञानमार्ग और उसके साधन सांख्यमार्ग तथा भगवान के कहे हुए, नारद पंच-रात्र आदि तन्त्रशास्त्र, विभिन्न पाखण्ड मार्गों से होनेवाली विषमता, नीचवर्ण के पुरुष से उच्चवर्ण की स्त्री से होनेवाली संतानों के प्रकार तथा भिन्न-भिन्न गुण और कर्मों के कारण जीव की जैसी और जितनी गतियाँ होती हैं, वे सब हमें सुनाइये।

हे ब्रह्मन। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के परस्पर अविरोधी साधनों का जैसे वाणिज्य, दण्ड नीति, शास्त्र-श्रवणविधि और श्राद्ध की विधि, पितृगणों की सृष्टि का तथा काल चक्र में ग्रह, नक्षत्र और तारागण की स्थिति का भी वर्णन कीजिये।

मुनिवर, दान, तप तथा इष्ट और पूर्त्त कर्मों का क्या फल है, प्रवास और आपत्तियों के समय मनुष्य का क्या धर्म होता है, निष्पाप मैत्रेयजी। धर्म के मूल कारण श्री जनार्दन भगवान किस आचरण से सन्तुष्ट होते हैं और किन पर अनुग्रह करते हैं।

सर्व जड़-चेतन, प्राणिमात्र में चैतन्य दर्शन होता है, तब जीवन शान्तिदायक, शुभदायक बनता है। जब तब दर्शन नहीं हुआ वहाँ तक भय और शोक का साम्राज्य बना रहता है।

परमात्मा की गति को कोई नहीं जानता। हम सिर्फ उनके अवतार कार्य द्वारा गुणावतारों का, विभूतिचिन्तन का, श्रवण करके, दर्शन, रसास्वादन कर सकते हैं। भगवान को हृदय में प्रविष्ट होने के लिए श्रवण रास्ता है। वे अन्दर प्रविष्ट होकर काम, क्रोध, वगैरह गन्दगी को धो देते हैं।

ब्रह्मा से लेकर कीट तक, प्रकृति से लेकर तृण तक सब भगवान की अभिव्यक्तियाँ हैं। (अथवा सब भगवान की सन्तान हैं) सर्वात्मा भगवान सबके हृदय में अन्तर्यामी रूप से रहते हैं। संसार में काम करते-करते जो हमारा यह मूलभूत तत्त्व है,

शक्ति है, स्रोत है, उससे जुड़े रहेंगे तो उसका ठीक-ठीक अवबोध होगा, अनुभव होगा। जैसे जादूगर माया से अनेक रूप में दिखता है किन्तु है वह एक। उस मायापति जादूगर को जान लेने से राग-द्वेष, क्लेश, दुख आदि सब नष्ट होते हैं और जीवन सुखी और प्रसन्न बन जाता है। भागवत धर्म कहता है, शरीरा से जो भी काम करें यह देखें, यह सर्व अन्तर्यामी के लिए है या नहीं। व्यक्तिगत, जातिगत, सम्प्रदायगत, प्रान्तगत या राष्ट्रगत स्वार्थ भले ही हो परन्तु नारायण साथ जुड़ा हो। नारायण को अर्पण करते हैं ऐसे संकल्प से किया छोटे-से-छोटा या बड़े-से-बड़ा कार्य, धर्म होगा। जीवन को धर्ममय, आनन्दमय बनाने के लिए है श्रीमद्भागवत।

ब्रह्माजी ने सबसे पहले तम, अविवेक, मोह (अन्त:करण में विभ्रम) महामोह (ग्राम्य सुखों की वासना) तामिस्र (क्रोध और अन्धतामिस्र मरण) इन पाँच प्रकार की अज्ञान वृत्तियों को उत्पन्न किया- ब्रह्मा तो सूक्ष्म समष्टिमें चैतन्य-रूपसे विराजमान है उनका शरीर बिल्कुल भावात्मक होता है। इस संसार में कामात्मक, क्रोधात्मक, लोभात्मक अनेक-अनेक प्रकारके जो भाव दिखायी देते हैं वे सब सूक्ष्म सृष्टि में रहते हैं और उनका आविर्भाव हो जानेपर ब्रह्मा उनका परित्याग करते हैं। फिर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इन चार ऋषियों को। चार मुनि कुमार प्रकट किये इन चारों मुनिकुमारों को देखकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले- पुत्रों, तुम बड़े सुन्दर हो। तुम्हारा रूप बड़ा मनोहर है। अत: अब तुम लोग मेरी आज्ञा का पालन करो। तो चारों कुमारों ने कहा- आज्ञा कीजिये, क्या करे? कहा- अभी प्रभु की इच्छा हैं, सृष्टि का विस्तार हो, तो मैं सृष्टि का विस्तार में लग ही रहा हूं तुम लोग भी सृष्टि विस्तार में लगो, प्रजा का विस्तार करो। यद्यपि इन चारों कुमारों के रूप में साक्षात् भगवान ने ही अवतार लिया था लेकिन ब्रह्माजी रजोगुण प्रधान होने के कारण समझ नहीं पाये की ये भगवान के अवतार हैं। इन्होंने समझा मेरे पुत्र रूप में प्रकट हैं। मैं अपने पुत्रों को आदेश दे सकता हूं इसलिये इन्होंने इन चारों कुमारों से कहा कि पुत्रों तुमलोग भी सृष्टि को उत्पन्न करने में मेरा योगदान करो। क्योंकि प्रभु की इच्छा है। सनकादिकजी ने हाथ जोड़ लिया, नहीं प्रभो हमसे यह नहीं होगा। हमें अखण्ड ब्रह्मचर्य का आदर्श प्रतिष्ठित करना है। हम शादी-ब्याह बाल-बच्चे, सृष्टि विस्तार, प्रजा विस्तार आदि झंझट में नहीं पड़ेंगे। ये कुमार शुद्ध सत्व प्रधान थे। सनकादिक चारों कुमार के रूप में साक्षात् प्रभु अवतरित हुए हैं।

अज्ञान की पाँच वृत्तियाँ- तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र सृष्टि की।

योग की भाषा में इन्हें क्रमश:- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश कहते हैं। किन्तु इस पापमयी सृष्टि को देखकर उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई फिर उन्होंने अपने मन से सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार की सृष्टि की। ये ऊर्ध्वरेता मुनि थे। इन्हें ब्रह्मा की मानसी सृष्टि कहा जाता है। ब्रह्माजी ने अपने इन मानसिक पुत्रों से सृष्टि उत्पन्न करने के लिये कहा। किन्तु निवृत्तिमार्ग के अनुयायी होने के नाते उन्होंने प्रपंच में पड़ना उचित नहीं माना, पिता की आज्ञा स्वीकार नहीं की।

इनसे जब सृष्टि बढ़ाने को ब्रह्माजी ने कहा और इन्होंने नहीं स्वीकार किया। सनक सनन्दन सनातन तथा सनतकुमार ये चारों ऊर्ध्वरेता, निवृत्ति परायण पुत्र थे। वे भगवान के भजन और तपस्या को उत्तम मानते थे। इसलिए उन्होंने सृष्टि उत्पन्न करनेसे मना कर दिया। तो ब्रह्मा को रोष आ गया। रोष आ जाने से रुद्र की उत्पत्ति हुई। वह शिशु रो-रोकर कहने लगा। हे सृष्टि के रचयिता आप मेरा नाम और स्थान बताइये। वह बालक रोने के कारण रुद्र नाम से विख्यात हुआ और देवोंके देव महादेव कहलाये। ब्रह्माने उसका नाम रुद्र रखा और उनके रहने को योग्य स्थान बताये। हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा तथा तप इनके नाम मनु, मनु, मनिहस, मनान्, शिव, रितध्वज, उग्ररेता वामदेव, काल भैरव तथा धृतवृत नाम दिये। तथा धी, वृत्ति, उषना, उमा, नियुत, सर्पि, इलाम्बिका, इरावती, सुधा एवं

दीक्षा, ये एकादश रुद्राणियाँ रुद्रकी पत्नियाँ बनेंगी। ब्रह्माने कहा- हे रुद्र। तुम ऊपर कहे हुए स्थानों में निवास करो और अपने पत्नियों से प्रजा की उत्पत्ति करो।

रुद्र- देवाधिदेव भगवान शिव। वह बालक रो-रोकर ब्रह्मा से कहने लगा- जगत्पिता। मेरा नाम और रहने के स्थान बताइए। तब कमलयोनि ब्रह्मा ने उस बालक से कहा- देवश्रेष्ठ। तुम जन्म लेते ही बालक के समान फूट-फूटकर रोने लगे, इसलिए प्रजा तुम्हें रुद्र नाम से पुकारेगी। तुम्हारे रहने के लिए मैंने पहले से ही हृदय, इंद्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा और तप ये स्थान बना दिए हैं। रुद्र को यज्ञमें स्थान नहीं है। रुद्र का तीसरा नेत्र समस्त तृष्णा का नाश करनेवाला, शान्त अद्वैतस्वरूप का दर्शन करानेवाला है। रुद्र को कालाग्नि भी कहते हैं। इस अग्नि का सिर्फ सोम-अमृत द्वारा ही शमन होता है। सोमरस से रुद्र प्रशान्त शिव बनते हैं। इसलिए शिव, सिर पर चन्द्रमा धारण करते हैं।

कल्प के आदि में अपने समान पुत्र के लिए चिंतन करते समय ब्रह्मा की गोद में नील-लोहित वर्ण के एक कुमार का प्रादुर्भाव हुआ। जन्म के अनंतर ही वह जोर-जोर से रोने और इधर-उधर दौड़ने लगा। कुमार को रोता हुआ देखकर ब्रह्मा ने उससे पूछा- तू क्यों रोता है? कुमार ने उत्तर दिया- मेरा नाम रखो। इस पर ब्रह्मा ने कहा- हे देव। तेरा नाम रुद्र है। अब तू मत रो, धैर्य धारण कर। ऐसा कहने पर भी वह सात बार फिर रोया। तब ब्रह्मा ने उसके सात नाम और रख दिए- भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र महादेव तथा उनके स्थान भी निश्चित किए- सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, दीक्षित ब्राह्मण और चंद्रमा।

रुद्रदेव ने सृष्टि को बढ़ाना तो स्वीकार किया, किन्तु अपने ही समान, भूत-प्रेत पिशाचों को बनाया। यह देखकर ब्रह्माजी चिंतित हुये कि यह सम्पूर्ण संसार इन भूत प्रेतों से ही भर जायगा और बोले- हे महादेव। तुम्हारी प्रजा तो मुझे तथा मेरे द्वारा उत्पन्न हुई प्रजा को खा जायेगी। मुझे ऐसी सृष्टि की आवश्यकता नहीं है, तुम तप के द्वारा सौम्य तथा उत्तम प्रजा उत्पन्न करो। इसलिये उन्हें सृष्टि कर्म से रोककर तप करने को आज्ञा दी। रुद्रदेव पिता की आज्ञा पाकर तप में लग गये।

ब्रह्माजी सृजन कर रहे हैं। एक बार ब्रह्माजी बैठे तो ललाट के क्रोध में से एक बालक उत्पन्न हुआ जिसका नाम हुआ रुद्र। जन्म के साथ ही रोने लगा तो रुद्र उनका नाम हुआ।

ब्रह्माजी ने उस बालक को कहा कि पुत्र रुद्र। अब तुम सृष्टि का सृजन करो। तुझे जैसा अनुकूल लगे सृष्टि का सृजन आगे बढ़ाओ। जब रुद्र को मौका मिल गया सृष्टि करने का, तो मानसिक सृष्टि उन्होंने उत्पन्न की- भूत, पिशाचिनी, प्रेत आदि जीव उन्होंने बनाये। कोई पवित्र थे कोई अपवित्र थे, किसी के पास मस्तिष्क था, किसी के पास नहीं था। किसी के पास असुर का मस्तिष्क तो किसी के पास श्वान का। हजारों की संख्या में उन्होंने भूत, पिशाच, प्रेत आदि उत्पन्न किये।

ब्रह्माजी ने कहा, बस कर बेटा। यदि तू ऐसी सृष्टि बनायेगा तो यह धरती जीने लायक नहीं रहेगी। बंद करो।

बहुत प्रतीकात्मक है यह सब। भूत-प्रेत है या नहीं यह तो भगवान जाने पर हमारे मन में जरूर आते हैं हमारे विचार कभी पवित्र होते हैं, कभी अपवित्र होते हैं। कभी अच्छा-भक्षण करते हैं, कभी बुरा, कभी सद्विचार और कभी असद् विचार। और यह संघर्ष चलता रहता है।

यह रुद्र की सृष्टि अपवित्र है। यह और कुछ नहीं हमारा विचार है।

सनत्कुमारों के मना करने पर ब्रह्माको क्रोध आ गया। ब्रह्मा ने क्रोध को रोकने का प्रयास किया किन्तु उनके रोकने का बहुत प्रयास करने पर भी वह क्रोध प्रजापति ब्रह्मा की भौंहों के बीच से एक नील-लोहित बालक के रूप में प्रकट हो गया। वह बालक रो-रोकर ब्रह्मा से कहने लगा- जगत्पिता, विधाता, आप मेरा नाम और मेरे लिये रहने का स्थान बतलाइये।

बालक की बात सुनकर ब्रह्मा ने कहा- जन्म लेते ही तुम बालक की भाँति फूट-फूटकर रोने लगे अत: तुम्हारा नाम रुद्र होगा। तुम्हारे रहने के लिये मैंने पहले से ही हृदय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा और तप ये स्थान बना दिये है। तुम्हारे शिव आदि अनेक नाम होंगे और उमा, अम्बिकादि तुम्हारी पत्नियाँ होंगी। तुम प्रजापति हो अत: प्रजाओं की सृष्टि करो। पिता की आज्ञा मानकर नीललोहित ने अपनी जैसी ही सृष्टि प्रारम्भ की। उनके तेज से सारा संसार सन्तप्त होकर जलने लगा। उन्होंने अपने ही समान, भूत-प्रेत, पिशाचों को उत्पन्न किया। ब्रह्माजी डरने लगे कि सम्पूर्ण संसार इन भूत-प्रेतोंसे भरने लगेगा।

यह देखकर ब्रह्माजी घबराये और रुद्र को आगे सृष्टि करने से रोका और कहा- तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम समस्त प्राणियों को सुख देने के लिये तप करो फिर उस तप के प्रभाव से तुम पूर्ववत् इस संसार की रचना करना। तप के प्रभाव से व्यक्ति अनायास भगवान को प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्माजी के कथन को सुनकर रुद्र ने सृष्टि करना बन्द कर दिया और तप करने के लिये जल में प्रवेश किया।

उनका रोष उनकी भृकुटी के मध्य भाग से एक नीललोहित वर्ण का तेज निकला। क्रोधावेश में भ्रूमध्य से एक बालक प्रकट हुआ उसका नाम रखा रुद्र और उसे एक रुद्राणी दी तथा सृष्टि करने का आदेश दिया। उस बालक ने पूछा यह जगत स्वामी। मेरा नाम बताओ, मेरा काम बताओ, मुझे स्थान दो, तब ब्रह्माजी ने नामकरण किया। प्रकट होते ही तुम बालक की तरह रुदन करने लग गये, इसलिये तुम्हारा नाम रुद्र होगा। दु:खों को द्रव करके पिघला करके समाप्त कर दे, उसका नाम रुद्र है। तुम्हारे लिये ग्यारह स्थान, ग्यारह पत्नियां दे रहा हूँ, ग्यारह नाम दे रहा हूं। ग्यारह रूप से इन ग्यारह स्थानों में रहकर सृष्टि के विस्तार में मेरा योगदान करो ये रुद्र भगवान शंकरजी है। ये भी सनकादिकों की तरह नहीं चाहते थे कि हम सृष्टि विस्तार के झंझट में पड़े। लेकिन सनकादिकजी की तरह साफ इनका नहीं कर सके। आज्ञा का पालन भी कर दूं, लेकिन ऐसी सृष्टि रचूं कि ये स्वयं मना कर दे। रुद्र, भूत, प्रेत, पिशाच, कुष्माण्ड, डाकिनी, शाकनी इत्यादि की रचना करने लगे और रुद्र के द्वारा रचे हुए प्राणी ब्रह्माजी के रचे हुए प्राणियों को पकड़-पकड़ कर खाने लग गये। जैसे बिल्लियाँ चूहा को पकड़कर भोग लगाती है। जैसे नेवला सांप को पकड़कर खाने की नियत रखता है।

रुद्र सृष्टि होने लगी। ये रुद्र ही एक दिन ब्रह्माजी को भक्षण करने लगे। ब्रह्माजी बड़े दु:खी हुए उन्होंने रुद्धों को सृष्टि करने से रोका तथा भगवान का भजन करने का आदेश दिया। तब ब्रह्माजी बोले, तुम्हारी सृष्टि से भर गया मेरा पेट। तुम सृष्टि क्या रचोगे, मेरी रची हुई को समाप्त करने पर तुले हो, नहीं चाहिये तुम्हारी सृष्टि रचना बंद करो। तुम सृष्टि रचना कर रहे हो, या हमारी बनी हुई सृष्टि का संहार कर रहे हो। तुम तो संहार के देवता मालूम होते हो। बस करो और ये भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकनी, योगिनी इत्यादि जो रच चुके हो, इनको अपने नियंत्रण में रखो। जब प्रलय का समय आये तो प्रलय करना तुम प्रलय के देवता हो। जाओ भजन करो और तप करो। संहार के समय अपने गणों के साथ आओ। ब्रह्माजीने जब अपने शरीरसे सृष्टि प्रारम्भ की तो सबसे पहले यक्ष-राक्षसोंकी सृष्टि हुई। सब भूखे-प्यासे होकर ब्रह्माजीके पास दौड़े गये। ब्रह्माजीने बोले- तुम लोग मुझको तो खाओ-पीओ मत, मेरी रक्षा करो। ब्रह्माजीने अपनी प्रभासे देवताओंकी सृष्टि की। असुरोंकी सृष्टि ब्रह्माजीकी जाँघसे हुई। असुर भोगके लिये ब्रह्माजी पर दौड़ पड़े। जो इन्द्रियोंमें ही रम जाये, उसीका नाम असुर है।

आदि प्रजापति ब्रह्मा ने पूर्वकाल में समुद्रगत जल की सृष्टि करके उसकी समुचित रक्षा के लिए अनेक प्रकार के प्राणियों, जल-जंतुओं को उत्पन्न किया। वे सभी प्राणी ब्रह्मा के पास आकर बोले- भगवन्। कृपा करके हमें आदेश दें कि अब हम क्या करें? ब्रह्मा ने हँसते हुए कहा- तुम यत्नपूर्वक इस जल की रक्षा करो ब्रह्मा का आदेश सुनकर कुछ

सृष्टि का विस्तार

नारायण

नारायण की नाभि से ब्रह्मा

(सृष्टि का प्रथम प्राणी कमल योनि से उदभव् बिना नारी से उत्पन्न)

तप से सनकादिक ऋषि उर्द्धरेता मुनि

१) सनातन २) सदान्द ३) सनन्द ४) सनतकुमार

विराट स्वरूप

१) ब्रह्मा की भौहों से रुद्र, २) ब्रह्मा की छाया से कर्दम ऋषि, ३) स्तन से धर्म और पीठ से अधर्म,
४) हृदय से काम, ५) नीचे की ओर से लोभ, ६) मुखसे वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती,
७) लिङ्गसे समुद्र, ८) गुदा से पापका निवासस्थान (राक्षसोंका अधिपति) निर्ऋति) ९) मन से मरिचि।

ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि

मरीचि	अत्रि	अंगिरा	पुलस्त्य	पुलह	क्रतु	भृगु	वशिष्ठ	अथर्वा	दक्ष	नारद
(कला)	(अनुसूया)	(श्रद्धा)	(हर्विभू)	(गति)	(क्रिया)	(ख्याति)	(अरूंधति)	(शान्ति)	(प्रसूति)	(ब्रह्मचारी)

मैथुनि सृष्टि का प्रारंभ

ब्रह्मा

बाया अंग — शतरूपा (नारी) पत्नी

मनु (पुरुष) दाया अंग — पति

देवहूति (कन्या)	आकूति (कन्या)	प्रसूति (कन्या)	उत्तानपाद (पुत्र)	प्रियव्रत (पुत्र)
पति कर्दम	प्रजापति रूचि (पति)	प्रजापति दक्ष (पति)	पत्नी सुनीता, सुरूचि	पत्नी बहिर्ष्मती
			पुत्र ध्रुव, उत्तम	

रुद्रों की उत्पत्ति

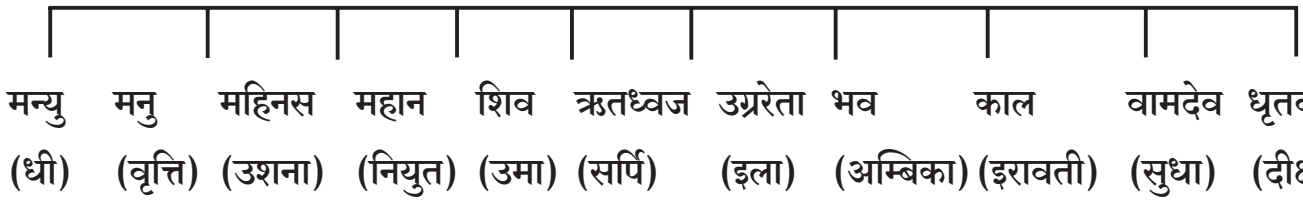

देवहुति-कर्दम का वंश

(नौ कन्याएं और एक पुत्र)

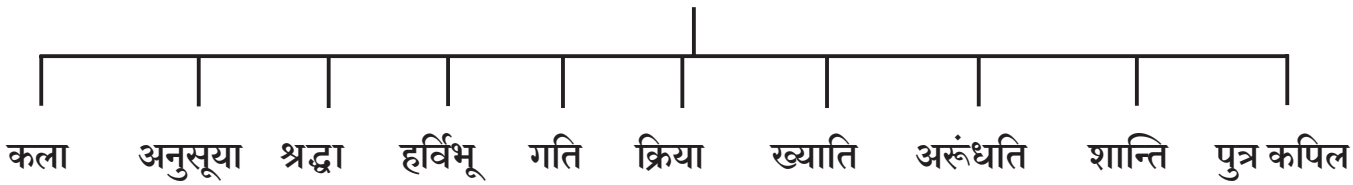

१) कला- (मरीचि)

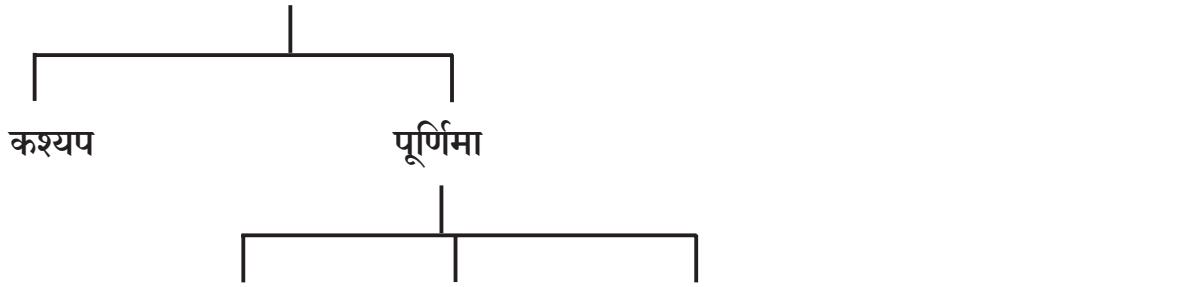

२) अनुसूया- (अत्रि)

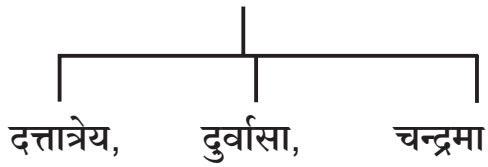

३) श्रद्धा- (अंगिरा)

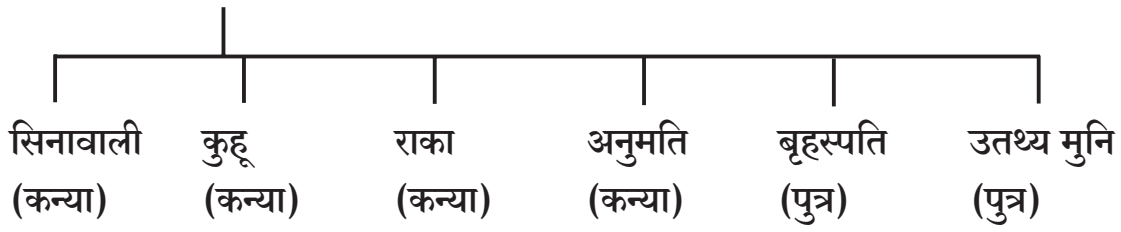

देवहुति-कर्दम का वंश

४) (हर्विभू) - पुलस्त्य मुनि

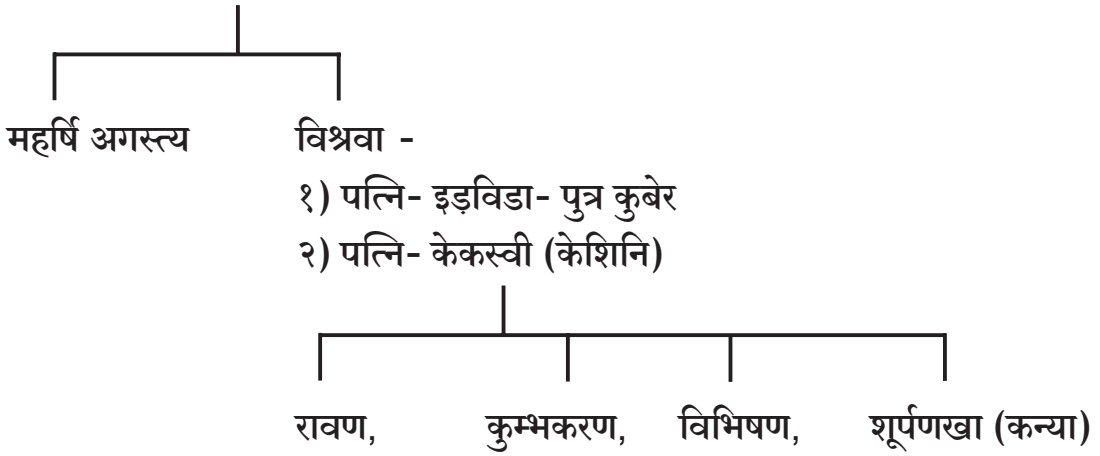

५) वशिष्ठ मुनि

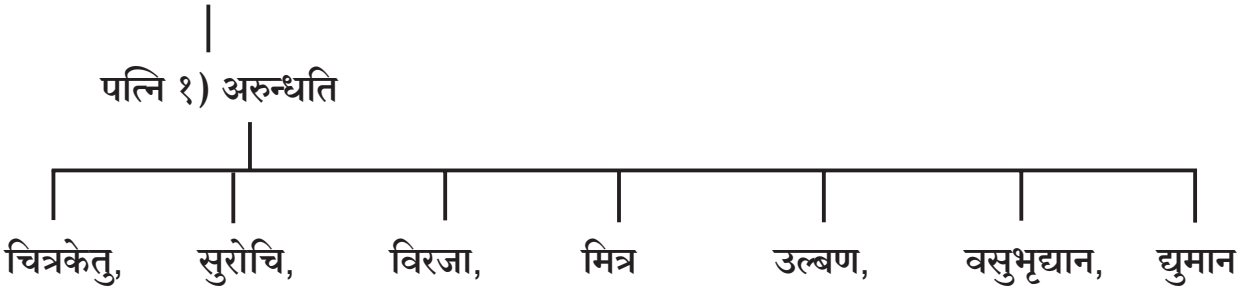

पत्नि २) उर्जा

उसके सौ पुत्र शक्ति, आदि

शक्ति (दृश्यन्ति)

पराशय मुनि (सत्यवती)

कृष्ण द्वैपायन (विटका)

शुकदेव (नैष्टिक ब्रह्मचारी)

६) गति- पुलह

कर्मश्रेष्ठ वरीयान सहिष्ण

७) क्रिया- क्रतु

६० हजार बालखिल्य मुनि

८) शान्ति (चित्ति)- अथर्वा मुनि

धृतब्रत, दधिची ऋषि (अश्वशिरा मुनि) - गभस्थिनी (पत्नी), दग्ध

पिप्लाद मुनि

९) ख्याति- भृगु

धाता (सायति) विधाता लक्ष्मी, श्री (कन्या) शुक्राचार्य (कवि उशना)

मेरु ऋषि की पुत्री आयति मेरु ऋषि की पुत्री नियति पति नारायण भगवान

मृकन्ड द्रोण

मार्कंडेय वेदशिरा

१०) दक्ष प्रजापति- प्रसूति

१६ कन्यायें

१३ कन्याएं धर्म को ब्याही गयी, एक पुत्री स्वधा अग्नि को,

स्वाहा एक पुत्री पितरों के अधिश्वर को और

सती उमा भगवान शिव को

प्राणियों ने कहा- हम इस जल का यक्षण (पूजन) करेंगे। ब्रह्मा ने कहा- तुम लोगों ने इस जल के यक्षण (पूजन) का दायित्व स्वीकार किया है, अत: तुम लोग यक्ष नाम से ही विख्यात होगे।

सृष्टिक्रम में ब्रह्मा ने रजोमात्रात्मक शरीर धारण किया। उसके द्वारा उनसे क्षुधा से काम की उत्पत्ति हुई। तब ब्रह्मा ने अंधकार में स्थित होकर क्षुधाग्रस्त सृष्टि की रचना की। वे प्राणी ब्रह्मा की ओर उन्हें खाने के लिए दौड़े। अत: जिन्होंने कहा- हम खाएंगे- वे खाने की वासना वाले होने से यक्ष कहे गए।

सुर-विरोधी असुर हैं। ब्रह्माजी भगवानके शरण में गये भगवान ने आज्ञा कर दी यह शरीर छोड़ दो। ब्रह्माजीने शरीर छोड़ा उसीसे सन्ध्या हुई। देखने में बहुत ही सुन्दरी थी। लोग उसपर मुग्ध होने लगे और बार-बार उसकी प्रशंसा करने लगे। असुरोंने समझा कि यह कोई बहुत बढ़िया स्त्री हैं इसलिए उसको उन्होंने ग्रहण कर लिया। शिवजी ने संध्या को वरदान दिया- इस कुत्सित शरीर को तो तुम्हें छोड़ना पड़ेगा, दूसरे शरीर से तुम ब्रह्मवेत्ता भगवान वशिष्ठ की पत्नी होगी। तुम्हारा मन सदा धर्म में ही रहेगा। संसार में तुम सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता होगी। इस प्रकार वरदान देकर शिवजी तो वहां से अन्तर्धान हो गये। उसी समय मेधातिथि मुनि का यज्ञ हो हो रहा था। उसी यज्ञ में अलक्षित भाव से संध्या ने अपना शरीर त्याग दिया। शरीर त्याग करके वह सूर्यलोक को प्राप्त हुई। उसके एक अंश से तो ये सांयकाल और दीनों सन्ध्यायें उत्पन्न हुई और एक अंश से मेधातिथि मुनि की पुत्री हुई, जिसका नाम अरुन्धती हुआ। जिसका विवाह वेदवेत्ता भगवान वसिष्ठ के साथ हुआ जिससे शक्ति आदि पुत्रों की उत्पत्ति हुई।

शौनकजी ने पूछा- सूतजी। आपने बताया एक कल्प में तो रुन्धती कर्दम ऋषि की कन्या थी अब बता रहे हो कि वह संध्या ही मेधातिथि की पुत्री अरुन्धती हुई। सूतजी बोले- ये सब तो कल्प भेद से भेद हो जाता है।

ब्रह्माजीने गन्धर्व-अप्सराओंकी सृष्टि की और इस शरीर को भी छोड़ दिया। इसके बाद उन्होंने आलस्यसे भूत-पिशाचोंकी सृष्टि की। जब ब्रह्माजीको जँभाई आयी ओर उसको उन्होंने छोड़ दिया। इस संसारमें जितनी भी सृष्टि देखनेमें आती है वे सब-के-सब यहाँ तक की बिच्छु, साँप, नाग आदि ब्रह्माके शरीरसे ही उत्पन्न होते हैं।

मानसिक सृष्टि, तामसी सृष्टि से असन्तुष्ट ब्रह्मा ने आंगिक सृष्टि करने का संकल्प किया तब उनके विभिन्न अंगों से १० ऋषि पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें नारद जी ब्रह्मा की गोद से, दक्ष अँगूठे से, वसिष्ठ प्राण से, भृगु त्वचा से, क्रतु हाथ से, पुलह नाभि से, पुलस्त्य कानों से, अंगिरा मुख से, अत्रि नेत्रों से और मरीचि मन से उत्पन्न हुए।

वशिष्ठ- कृत्या को अपने नाम का तात्पर्य बताते हुए महर्षि वसिष्ठ ने यातुधानी से कहा- भद्रे। मेरा नाम वसिष्ठ होने के कारण लोग मुझे वरिष्ठ भी कहते हैं। मैं गृहस्थ आश्रम में वास करता हूं, अत: वसिष्ठता (ऐश्वर्य-संपत्ति) और वास के कारण मुझे वसिष्ठ कहा जाता है।

वसिष्ठ ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं। उनकी पत्नी का नाम अरूंधती है। उन्हें देवता भी कभी पराजित नहीं कर सके। काम और क्रोध नामक दोनों शत्रु वसिष्ठ की तपस्या से पराभूत होकर सदैव उनके वश में रहे हैं। इंद्रियों को वश में करने के कारण उन्हें वशिष्ठ कहा जाता है।

विपाशा- पूर्वकाल में मुनिवर विश्वामित्र के कारण क्षुब्ध महर्षि वसिष्ठ अपने शरीर को रस्सी से बांधकर अपने-आपको एक नदी के जल में डुबो रहे थे। परंतु उस नदी के द्वारा पाशरहित (बंधनमुक्त) हो पुन: ऊपर उठ आये। महर्षि वसिष्ठ को पाशमुक्त करनेवाली वह पवित्र नदी उसी दिन विपाशा कहलाने लगी।

महर्षि वसिष्ठ ने जब यह सुना कि मुनि विश्वामित्र ने उनके पुत्रों को मरवा डाला है, तब शोकातिरेक से उन्होंने अपने

शरीर को त्याग देने का विचार कर लिया। उनके मन में यह विचार कदापि नहीं आया कि अपनी तपस्या के प्रभाव से वे मुनि विश्वामित्र का मूलोच्छेद ही कर दें। वे मेरु पर्वत के शिखर पर चढ़ गये और वहां से नीचे एक शिलाखंड पर जा गिरे, किंतु उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो वे रुई के ढेर पर गिरे हों। जब पर्वत से गिरने पर उनका देहावसान नहीं हुआ, तो वे एक बीहड़ वन के भीतर धधकते हुए दावानल में घुस गये। यद्यपि उस समय अग्नि प्रचंड वेग से जल रही थी किंतु फिर भी वह उन्हें जला नहीं सकी। उनके तप के प्रभाव से अग्नि भी उनके लिए शीतल हो गई। शोक से युक्त मुनिवर वसिष्ठ ने सामने उत्ताल तरंगों वाले सागर को देखा। मुनिवर ने अपने कंठ में एक भारी शिला बांध ली और तत्काल जल में कूद पड़े। परंतु समुद्र की लहरों ने महर्षि वसिष्ठ को किनारे पर लाकर डाल दिया। फिर उन्होंने देखा कि एक नदी में जल का प्रबल प्रवाह है। उनके मन में विचार आया कि मैं इसी नदी के जल में डूब जाऊं, अत: उन्होंने अपने शरीर को पाशों (बंधनों) द्वारा कसकर बांध लिया और उस नदी के जल में कूद पड़े। किंतु उस नदी ने उनके बंधन (पाश) काट दिये और उन्हें एक सुरक्षित स्थल पर पहुंचा दिया। इस प्रकार उस नदी ने मुनि वसिष्ठ को विपाशा (बंधन-रहित) करके उनके प्राणों की रक्षा की। पाशमुक्त हो जाने के पश्चात् महर्षि वसिष्ठ ने उस नदी का नाम विपाशा रख दिया।

भगवान श्रीनारायण की शक्ति से संपन्न ब्रह्मा ने सृष्टि के लिए संकल्प किया, तब उनके सनक, सनंदन और सनत्कुमार के पश्चात् दस पुत्र और उत्पन्न हुए। उनसे लोक की बहुत वृद्धि हुई। उनके नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रत, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद थे। जो बालक तत्काल प्रकट होकर प्रजापति ब्रह्मा का वशीभूत शिष्य तथा अत्यंत प्रीतिपात्र हुआ, उसका नाम वशिष्ठ रखा गया।

फिर उनके दक्षिण स्तन से धर्म उत्पन्न हुआ, धर्म की पत्नी मूर्ति थी। मूर्ति के गर्भ से नारायण अवतीर्ण हुए। ब्रह्मा की पीठ से अधर्म का जन्म हुआ, अधर्म का बेटा हुआ मृत्यु। यह संसार के प्राणियों को कँपानेवाला है। इसी प्रकार ब्रह्माजी के हृदय से काम, भौहों से क्रोध, अधरोष्ठ से लोभ, मुख से सरस्वती, लिंग से समुद्र, गुदा से पाप का निवास स्थान (राक्षसों का अधिपति) निर्ऋति और छाया से कर्दम उत्पन्न हुए। इस प्रकार ब्रह्मा के मन और शरीर से सारे संसार की सृष्टि हुई।

विष्णु भगवान इन्द्र, मनु, ऋषि मनुपुत्र, देव तथा अवतार आदि अनेक रूप धारण करके बनाई हुई सृष्टि का पालन करते हैं। अन्त में रुद्रदेव काल रूप से सभी का संहार करते हैं। इस सृष्टि का क्रम सनातन काल से चला आ रहा है। इसका न ओर है न छोर।

सृष्टि बढ़ाने की चिन्ता में बैठे हुए ब्रह्माजी का शरीर सहसा दो भागों में बँट गया। इसीलिये एक ब्रह्मा से होने के कारण इस शरीर का नाम काय हुआ। उन दोनों रूपों के पृथक्-पृथक् हो जाने से, एक स्त्री, एक पुरुष इस प्रकार जोड़ी बन गयी। स्त्री शतरूपा हुई और पुरुष मनु हुआ।

अब ब्रह्माजी ने बड़ी सावधानी से चित्त को एकाग्र करके अपने ही समान दस पुत्र उत्पन्न किये। जिनके नाम मरीचि, (**मरीचि-** लोकपितामह ब्रह्मा के मानसपुत्र। मरीचि शब्द वेदों में तेजोविशेष के अर्थ में कहा गया है। अत: लोकपितामह ब्रह्मा के तेज से जो मानसपुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम मरीचि पड़ा।) अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद हैं। ये सब बिना मैथुन के, संकल्प से ही ब्रह्माजी के पृथक-पृथक अंगों से उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्माजी के स्तन से धर्म और पीठ से अधर्म भी उत्पन्न हुए हैं फिर काम, क्रोध, लोभ, सरस्वती, समुद्र, निर्ऋति तथा छाया से कर्दम ऋषि उत्पन्न हुए। वेद, उपवेद, वर्ण आश्रम यज्ञ आदि सबको उत्पन्न किया। सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने देखा सभी ऋषि मुनि सृष्टि करने में उदासीन हैं तो उन्होंने अपनी आधी देह से स्त्री की रचना की, जिसके द्वारा सभी की बुद्धि भुला गई।

भगवान की इच्छा होनेपर काल कर्म और प्रकृति के संसर्ग से तीनों गुणों में क्षोभ हुआ। इससे महत्तत्व, तीन प्रकार के अहंकार, पंचतन्मात्रायें, पंचभूत, पाँच-पाँच ज्ञान और कर्मेन्द्रियाँ, उनके अधिष्ठातृदेव आदि उत्पन्न होकर अंडाकार बन गये। भगवान के उसमें प्रवेश करने पर उनकी नाभिकमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, उन्होंने पञ्चपर्वा, अविद्या, यज्ञ, राक्षस, देवता, असुर आदि की सृष्टि की। फिर दिन-रात्रि सन्ध्या आदि उत्पन्न करके काल विभाग किया। तदनन्तर अप्सरा, गन्धर्व, भूत, पिशाच, निद्रा, तन्द्रा, उन्माद, पितर, साध्य, किन्नर, किंपुरुष, सर्प आदि की रचना की। यह सब रचना होने पर भी ब्रह्माजी को संतोष नहीं हुआ। तब उन्होंने पुरुषाकार शरीर में मनुष्यों को उत्पन्न किया। मनुष्य शरीर को देखकर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। देवताओं के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। वे बोले- पितामह। यह तो आपने अद्भुत-अनुपम सृष्टि की। हमारे भी अन्न-जल का प्रबन्ध कर दिया। ये लोग यज्ञ-याग करके हमें भी सन्तुष्ट करेंगे और इसी शरीर से मोक्ष लाभ भी कर सकेंगे। मनुओं के अनन्तर तप, विद्या, योग और समाधि से युक्त ऋषियों की रचना की। उसी समय स्वयंभुव मनु और शतरूपा रानी की उत्पत्ति हुई। शतरूपा सृष्टि में सबसे पहिली नारी हुई। उनका विवाह स्वयंभुवमनु के साथ हुआ।

विदुर जी ने पुन: कई प्रश्न एक साथ किये- ब्रह्म का ही अंश जीव है तो ब्रह्म स्वतन्त्र और जीव पराधीन क्यों हैं? ब्रह्मा ने सृष्टि कैसे प्रारम्भ की, मनु कितने हैं तथा काल का स्वरूप कैसा है?

जब सृष्टि करने की इच्छा होती है। तब उनके नेत्र खुलते हैं और नाभि से कमल प्रस्फुटित होता है उस पर ब्रह्माजी प्रकट होते हैं। ब्रह्माजी ने चारों ओर देखा तो उनके चार मुख हो गये। हजारों वर्ष तक उस कमल दल पर ही बैठे रहे। कुछ भी प्रतीत न होने पर सौ वर्षों तक तप किया तब उन्हें भगवान नारायण के दर्शन हुए। ब्रह्माजी ने विभिन्न श्लोकों में भगवान की स्तुति की। भगवान ने चतु:श्लोकी भागवत सुनाकर सृष्टि करने का उपदेश दिया। ब्रह्माजी ने पहले अविद्या उत्पन्न की। पवित्र मन से सनकादिक उत्पन्न किये।

इन्होंने सृष्टि करने से मना कर दिया तब ब्रह्मा क्रोधित हुए। रजोगुण से आच्छादित होने के कारण ब्रह्माजी इनको समझ नहीं पाये, उन्होंने समझा मेरे पुत्र होकर मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रहे हैं, ब्रह्माजी को रोष आया, असह्य क्रोध आया।

ब्रह्माने अपने अंग से संकल्प के द्वारा दस मानसी पुत्र प्रकट किये। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और दसवें नारद। और उनको सृष्टि विस्तार की आज्ञा दी। कहा कि तुम लोग पहले तपस्या करो, तपस्या से शक्ति प्राप्त करके सुयोग्य प्रजा की उत्पत्ति करो। नारदजी सृष्टि विस्तार में नहीं लगे, उन्होंने सनकादिकों के मार्ग का अनुसरण किया। वे निवृत्ति परायण महापुरुष हुए। **पुलस्त्य ऋषि-** पुलस्त्य- लोकपितामह ब्रह्मा के मानसपुत्र। पुल का अर्थ है तप:समूह, अत: जिसके पूर्वजन्मों का तप:समूह विद्यमान था, वह बालक पुलस्त्य कहलाया। ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी भृगु के भाई थे। मुनि निदाध उनका पुत्र था।

पुष्कर द्वीप- सहस्रवदन रावण का निवास स्थान। दधि, मांड तथा जल के सागर से परे स्वादु-जल का सागर है। वह पुष्कर द्वीप को घेरकर वलयाकार स्थित है। उस द्वीप तथा वर्ष के बीच में मानसोत्तर संज्ञावाला, दस सहस्रयोजन आयतन का मर्यादा पर्वत है। उस पर्वत की चारों दिशाओं में इंद्र आदि लोकपालों के पुर हैं, जिनका विश्वकर्मा ने उनकी क्रीड़ा के लिए निर्माण किया है। सहस्रवदन रावण ने मानसोत्तर पर्वत के चारों ओर स्थित पुरों को नष्ट कर दिया, तथा दिकपालों को अपने अधिकार में कर लिया। वहां जो रम्य इंद्रपुरी है, वहीं पर सहस्रवदन रावण निवास करता है। उस राक्षसराज ने तीनों लोकों की सभी रत्नराशियों को एकत्र करके उस पुरी को अलंकृत कर लिया है।

अब पुलस्य वंश। इनको कर्दम ऋषिकी पुत्री हर्विभू को ब्याही गयी। पुलस्य ऋषिका आश्रम हरिहर क्षेत्र में जो दक्षिण में

हुबली के कुछ आगे हरिहर क्षेत्र में है। तुंगभद्रा नदीके पास जो आत्मदेव ब्राह्मण गये थे उनका आश्रम वहीं था। वहींपर यह पुलस्य ऋषिका आश्रम है। इनके विश्रवा और अगस्त्य मुनि नामके यह दो पुत्र हुए। यह अगस्त्य मुनि जठाराग्नि के अधिष्ठाता है। और विश्रवा इनकी इड़वीड़ा नामके कन्यासे शादी हुई। इड़वीड़ा कौन राजा तृडबिन्दु और अलम्बुषा अप्सरा की दोनोंकी शादी होनेसे एक पुत्री उत्पन्न हुई इड़वीड़ा वो कुबेर के साथ में ब्याही गयी। कुबेर यक्षु के राजा है। कौन- यह देवोंके धनापति- वित्तकोश मंत्री है। इस तरह से यह कुबेर है। यह विसर्वा जो है जिनके पुत्र है यह कुबेर। एक और पत्नि विश्रवा की हुई कैकस्वी। उसकी तीन पुत्र और एक पुत्री हुई। तीन पुत्र- रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण और एक पुत्री सुर्पणखा इस तरह से। पुत्री सुर्पणखा विद्युम्न जीवामाली को ब्याही गयी और किसी संग्राम में रावण ने ही अपने हाथसे अपने बहनोई को मार दिया था। और अपनी बहन को प्रसन्न करने के लिये उसको पंचवटी नाशिक खानदेश से लेकर जलगाव से लेकर नाशिक, धुलिया, मनमाड़ तक का साम्राज्य उसको दे दिया कि तु यहांकी अधिष्ठात्री रहेगी मेरे दो चचेरे भाई है खर और दूषण यह सब तेरे संरक्षण में तेरी देखभाल करेंगे ऐसा उनको वहांपर नियुक्त किया। यह पुलस्य ऋषि बड़े महान हुए है।

विश्रवा- पुलस्त्य ऋषि के पुत्र हुए विश्रवा। विश्रवण, प्रसिद्ध तपस्वी मुनि, ब्रह्मर्षि पुलस्त्य के पुत्र, पौलस्त्य। सत्ययुग की बात है। प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र मुनि पुलस्त्य घोर तपोसाधना में लग गए। ऋषियों, नागों, राजर्षियों की कन्याएं वहां प्रतिदिन क्रीड़ा के लिए आती थीं। वह सब वास्तव में अप्सराएं ही थीं। अपनी तपस्या में विघ्न होता देखकर ऋषि पुलस्त्य ने उन कन्याओं से रुष्ट होकर कहा- कल से जो कन्या यहां मेरे दृष्टिपथ में आएगी, वह निश्चय ही गर्भ धारण कर लेगी। राजर्षि तृणबिंदु की कन्या ने यह बात नहीं सुनी थी। दूसरे दिन वह उस आश्रम में गइ तो उसने महातेजस्वी पुलस्त्य को तो देखा, किंतु अन्य कन्याएं वहां नहीं थीं। मुनि पुलस्त्य स्वाध्याय में लगे हुए वेदों का पाठ कर रहे थे। तपोनिधि पुलस्त्य को देखते ही उस राजकुमारी में गर्भ के लक्षण प्रकट हो गए। राजर्षि तृणबिंदु को जब यहा ज्ञात हुआ, तो उन्होंने अपनी कन्या महर्षि पुलस्त्य के लिए पत्नी के रूप में समर्पित कर दी। उस कन्या की सेवा और सदाचारण से प्रसन्न होकर मुनि पुलस्त्य ने कहा- देवी। आज मैं तुम्हें अपने समान पुत्र प्रदान करता हूं, जो माता और पिता दोनों के कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाएगा वह पौलस्त्य नाम से विख्यात होगा। तुम्हें स्मरण होगा कि मैं जहां वेद का स्वाध्याय कर रहा था, उस समय तुमने आकर उसका विशेष रूप से श्रवण किया था, इसलिए तुम्हारा यह पुत्र विश्रवा या विश्रवण कहलाएगा। **वैश्रवण-** महर्षि पुलस्त्य के पुत्र मुनिवर विश्रवा पिता के समान ही महान तपस्वी, जितेंद्रिय एवं स्वाध्याय परायण थे। उनके उत्तम आचरण को जानकर महामुनि भारद्वाज ने अपनी कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया। उनसे मुनिवर विश्रवा को एक अद्भुत और पराक्रमी पुत्र की प्राप्ति हुई। इस समाचार से पितामह पुलस्त्य मुनि बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दिव्यदृष्टि से देखा- इस बालक में संसार का कल्याण करने की बुद्धि है तथा यह आगे चलकर धनाध्यक्ष होगा। उन्होंने बड़े हर्ष में भरकर देवर्षियों के साथ उसका नामकरण-संस्कार किया। विश्रवा का यह पुत्र विश्रवा के समान ही है, इसलिए यह वैश्रवण नाम से विख्यात होगा।

आश्रमवासी महात्मा वैश्रवण ने अनेक वर्षों तक घोर तपस्या की। तपस्या की पूर्ति पर देवताओं सहित लोकपितामह ब्रह्मा ने वैश्रवण को वर देते हुए कहा- वत्स। मैं चौथे लोकपाल की सृष्टि करनेके लिए उद्यत था। यम, इंद्र और वरुण को जो पद प्राप्त हैं, वैसा ही लोकपाल पद तुम्हें भी प्राप्त होगा। तुम अक्षय निधियों के स्वामी बनो। तुम चौथे लोकपाल कहलाओगे। अपनी सवारी के लिए तुम यह दिव्य पुष्पक विमान ग्रहण करो।

अथर्वा मुनि को शान्ति देवी प्रदान की उससे महर्षि दधीचि हुए। पिप्पलाद- महर्षि दधीचि के पुत्र, भगवान रुद्र के लीलावतार। देवकार्य के लिए महर्षि दधीचि ने जिस समय अपनी अस्थियों को सहर्ष दान दिया था, उस समय उनकी

पत्नी देवी गभस्तिनी (लोपामुद्रा की बहन) आश्रम में नहीं थीं। जब वे आश्रम में लौटीं, तो अग्निदेव के उन्हें महर्षि के प्राण-त्याग के हृदय-विदारक वृत्त से देवी गभस्तिनी विह्वल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। चेतना लौटने पर उन्होंने पति के मार्ग का अनुगमन करने का विचार किया, किंतु सहसा उन्हें इस बात का बोध हो गया कि उनके उदर में महर्षि का तेज विद्यमान है। साध्वी गभस्तिनी के मन में इतना गहरा संताप था कि पुत्र की रक्षा का भार वनस्पतियों पर छोड़कर उन्होंने प्राण त्याग करना ही श्रेयस्कर समझा। अपने उदर का योगबल से भेदन करके उन्होंने उदरस्थ शिशु को हाथ में लेकर वनस्पति-जगत् को सौंप दिया और स्वयं पंचतत्त्व में विलीन हो गईं। पीपल के वृक्षों ने उस तेजस्वी शिशु की रक्षा की, औषधीश चंद्रमा से उन्होंने दिव्य दुग्ध तथा अमृत लाकर उसे पिलाया। महर्षि दधीचिकुमार का पालन-पोषण पीपल के वृक्षों ने किया, उन्होंने ही उसे दुग्ध-पान और भक्षण कराया, अत: उस बालक की ख्याति पिप्पलाद नाम से हो गई। पिप्पलाद के रूप में साक्षात् भगवान शंकर ही अवतारित हुए थे।

महर्षि दधीचि की पत्नी सुवर्चा जब आश्रम लौटीं, तब अपने पति को वहां न देखकर अत्यंत विस्मित हुईं। उन्होंने देवताओं के कृत्य को जानकर उन्हें शाप भी दिया। उन्होंने मन में पति के मार्ग का अनुगमन करने की इच्छा की। उसी समय शिवजी की प्रेरणा से आकाशवाणी हुई- हे प्रज्ञे। तेरे उदर में गर्भरूप मुनि का तेज स्थित है, उसको यत्न से उत्पन्न कर। आकाशवाणी सुनकर पतिव्रता सुवर्चा ने योगबल से बालक को जन्म दिया। उस बालक के रूप में साक्षात् शिव ही लीला करने के लिए प्रकट हुए थे। माता सुवर्चा ने बालक से कहा- हे तात। बहुत समय तक इस अश्वत्थ वृक्ष के समीप निवास करो। उस अवसर पर मुनियों सहित सभी देवता वहां आए। प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसका नाम पिप्पलाद रखा। तब महाप्रभु पिप्पलाद नामक शिव पीपल के वृक्ष के नीचे बहुत समय तक तप करते रहे।

दधिमथी- भगवती नारायणी, दधीचि-वंश की अधिष्ठात्री देवी। लोकपितामह ब्रह्मा के मानसपुत्रों में एक है महर्षि अथर्वा। उसकी पत्नी थीं प्रजापति कर्दम की पुत्री शांता। स्वयं भगवती लक्ष्मी ने उनकी पुत्री के रूप में अवतार लिया। उस समय उनका नाम था नारायणी। दैत्यराज विकटासुर ने घोर तपस्या करके ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि स्त्री को छोड़कर वह सभी अवध्य रहे। इस वरदान से दर्पोन्मत्त विकटासुर ने देवताओं पर अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया। देवताओं की प्रार्थना पर महर्षि अथर्वानंदिनी नारायणी ने उन्हें विकटासुर के वध का आश्वासन दिया। भगवती नारायणी को युद्ध के लिए आता देखकर तथा ब्रह्मा के वरदान का स्त्री द्वारा अपने वध का स्मरण करके विकटासुर दधिसागर-तल में छिप गया। भगवती नारायणी ने दधिसागर का मंथन करके विकटासुर का वध कर दिया। दधिसागर का मंथन कर विकटासुर का वध करनेवाली भगवती नारायणी का नाम ब्रह्मा ने दधिमथी रख दिया।

पुलह- लोकपितामह ब्रह्मा के मानसपुत्र। श्रीनारायण की शक्ति से संपन्न ब्रह्मा ने सृष्टि के लिए जब संकल्प किया, तब उनके सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार के पश्चात् दस पुत्र और उत्पन्न हुए। उनसे लोक की बहुत वृद्धि हुई। उनके नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद थे।

वेदों में पुल शब्द तप के अर्थ में स्पष्ट कहा गया है और स्फुट अर्थ में प्रयुक्त है। अत: जिस बालक में स्पष्ट रूप में तप: समूह दिखाई पड़ा, उसका नाम पुलह हुआ।

दूसरे ऋषि हुए है पुलह- इनकी शादी हुई कर्दम ऋषि की गति नाम की कन्या से। इस ऋषिसे साठ हजार पुत्र हुए है। बालखिल्य इनका नाम है। यह सूर्य के रथ को उलटे होकर पीछेसे ढकेलते है। सूर्य का रथ कैसे चलता है जब प्रकाश करता है। सूर्य भगवान बैठे है- सात रश्मियोंवाला घोड़े और अरुण नामका जो गरुड़ का भाई है विनीता से उत्पन्न हुआ है।

गरुड़ और अरुण यह दो भाई विनिता से उत्पन्न हुए है। अरुण के पैर कट जाते है और यह उलटा होकर सूर्यका रथ चलाता है। बालखिल्य मुनि जो साठ हजार है पीछेसे रथको धक्का मारते है और इस तरह से सूर्य का रथ घूमता है।

पुन: ब्रह्माजी ने मन से मरीचि, नेत्र से अत्रि, मुख से अंगिरा, कर्ण से पुलस्त्य, नाभि से पुलह:; कर से कृतु, त्वचा से भृगु, प्राण से वशिष्ठ, अंगुष्ठ से यक्ष और गोद से नारद उत्पन्न किये।

अंगिरा ऋषि- अग्निके प्रवर्तक परम आधेय आराध्य है ये अंगिरा। उसी नाम से अंगिरा पड़ा, अंगिरा की पत्नी श्रद्धा, उसीसे पुत्र हुए अष्ठावक्र, उससे हुए लोमश ऋषि। ऋग्वेद की कई उक्तियों, सप्तर्षियों और दस प्रजापतियों में अंगिरा का नाम उल्लेखनीय है। इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से होने की बात शास्त्रों में बतायी गयी है। ज्योतिषशास्त्र के निर्माण में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लेकिन इनके द्वारा प्रणीत ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। अग्नि से भी इनका संबंध बताया जाता है। अंगिरा की चार शादियां हुयी थीं। इनके एक श्रद्धा कर्दम की पुत्री थी जबकि शेष तीन स्मृति, स्वधा और सती दक्ष पुत्रियां थीं। भागवत पुराण के अनुसार महर्षि अंगिरा ने संतानहीन क्षत्रिय रथीतर की पत्नी से ब्रह्माशक्ति के पंज पुत्र उत्पन्न किये जो आंगिरस के नाम से प्रसिद्ध हुए। क्षत्रिय पत्नी से उत्पन्न होने के कारण आंगिरसों को ब्राह्मण एवं क्षत्रिय दोनों वर्गों में माना जाता है। यज्ञ का अनुष्ठान एवं रक्षा करना इनका कार्य है।

अथर्वा ऋषि- एक हुए है अथर्व ऋषि। वो ब्रह्माके नौवे पुत्र हुए हुए। जिनकी शादी शांति नाम की कन्यासे हुई। उनके पुत्र हुए दधिचि। दधिचि की पत्नी हुई गभत्सिनी और उनके पुत्र हुए पिप्पलाद मुनि।

भगवान ने माता-पिताओं के हृदयों में ऐसा आकर्षण उत्पन्न कर दिया है कि सृष्टि का कार्य अबाधित रूप से बिना किसी कहे, बिना सिखाये-पढ़ाये स्वत: चलता रहता है और सदा चलता रहेगा। कलियुग में कला के नाम पर कुछ माता रूप में राक्षसी पैदा होते ही बच्चे को अपने से पृथक कर देती है।

ब्रह्माने मनुष्योंकी सृष्टि करके उन्हें अपना पौरुष शरीर प्रदान किया। मनुष्योंकी सृष्टि देखकर देवताओंने ब्रह्माकी बहुत प्रशंसा की। इस मनुष्य-शरीरमें ही यज्ञ-यागादि क्रियाएँ तथा नाना प्रकारके निर्माण और आविष्कारकी शक्ति प्रतिष्ठित है। मनुष्यको छोड़कर किसीको निर्माण करना नहीं आता, चित्र बनाना नहीं आता, वस्त्र बनाना नही आता, भोजन बनाना नहीं आता, योजना बनानी नहीं आती इत्यादि। इनको या तो ब्रह्मा बनाये, या प्रकृतिमें जो चेतन है वह मनुष्य बनाये। दूसरे प्राणी भी इसे नहीं बना सकते। इसप्रकार मनुष्यका जीवन लोक-परलोक दोनोंके लिए हितकारी है। इसके बाद ब्रह्माजीने अपनी तपस्या, विद्या और योग-समाधिसे ऋषियोंकी सृष्टि की और उन सबको अपने देहका अंश दिया है।

स्वयम्भुव मनु ने शतरूपा के सकाश से प्रियव्रत और उत्तानपाद दो सुत और आकूति, प्रसूति और देवहूति ये तीन कन्यायें उत्पन्न कीं। इन तीनों कन्याओं का विवाह ब्रह्माजी ने क्रमश: रुचि प्रजापति, दक्ष प्रजापति और कर्दम प्रजापति के साथ कर दिया। दक्ष प्रजापति ने ६० और कर्दम प्रजापति ने ९ कन्यायें उत्पन्न की। उनका विवाह और ऋषियों के साथ हुआ। अब तो सृष्टि बढ़ने लगी। हजारों सन्तानें उत्पन्न होने लगी ब्रह्माजी का लक्ष्य पूरा होने लगा। थोड़े ही दिनों में यह सम्पूर्ण जगत् जीवों से ठसाठस भर गया।

ब्रह्माजी को संतोष नहीं है अभी तक। और मन ही मन विचार करते हुए कमल पर बैठे हैं कि अभी तक जो सृष्टि हुई उससे प्रसन्न नहीं है। अचानक इनके शरीर के दो भाग हुए। कुछ महात्माओं का यह मत है कि परछाई के रूप में से ही एक दाहिना भाग प्रकट हुआ और एक बांया। दायां भाग सौर शक्ति प्रधान हुआ वह पुरुष हो गया और बायां भाग जो चान्द्रशक्ति- सोमशक्ति से प्रधान हुआ, वह स्त्री बन गया। पुरुषका धर्म-त्याग प्रधान होता है। सोमशक्ति और सौरशक्तिका

विभाग प्राकृतरूपसे अलग है। इन दोनोंसे मिलनेसे मैथुन हुआ। इसीसे मनुष्योंकी परम्परा बढ़ी।

बायें भाग से जो प्रकट हुई वह तो वामा हुई और दायें भाग से पुरुष प्रकट हुआ। आदि पुरुष का प्राकट्य हुआ- मनु महाराज का और उनकी पत्नी शतरूपा।

मनु महाराज माने- शुद्ध मन। शतरूपा यानी सौ रूपी बुद्धि जो भोग देनेवाली है। एक पुरुष है, एक प्रकृति है। गीता पाठ से पुरुष की पूजा हो जाती है और दुर्गा सप्तशती का पाठ करने से प्रकृति की पूजा हो जाती है।

परन्तु इतने पर भी जब सृष्टि का कार्य आगे नहीं बढ़ा तो ब्रह्माजी के मन में बड़ी चिन्ता हुई। उसी समय अकस्मात उनके शरीर के दो भाग हो गये। इनमें से एक भाग पुरुष और दूसरा भाग स्त्री बन गया। यही आदि पुरुष, मनु बना जो भारतवर्ष का प्रथम सार्वभौम सम्राट हुआ और जो स्त्री थी, वह उसकी महारानी शतरूपा हुई। तभी से मैथुन-धर्म (स्त्री-पुरुष-सम्भोग) से प्रजा की वृद्धि होने लगी। महाराज मनु ने शतरुपा से पाँच सन्तानें पैदा कीं। उनमें प्रियव्रत और उत्तानपाद- दो पुत्र थे तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति- तीन कन्याएँ थी। मनु ने आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से किया, मझली कन्या देवहूति कर्दम को दी और प्रसूति दक्ष प्रजा पति को। इन्हीं तीनों कन्याओं की सन्तानों से सारा संसार भर गया। मोह, ममता से रहित सन्तानें एक दूसरे के रक्त की प्यासी बन जाती है। धर्महीन विषयभोग, दु:ख, नरक, यातना तथा क्लेशों को देनेवाले होते हैं। उनसे इस लोक में सुख नहीं, शान्ति नहीं, तृप्ति नहीं। परलोक में सुगति नहीं, सुयश नहीं और इनसे भी सुन्दर दिव्य भोगों की प्राप्ति नहीं हो सकती।

फिर ब्रह्माजी ने विचार किया, अभी तक सांकल्पिक सृष्टि हो रही थी। संकल्प के द्वारा कितना विस्तार होगा। इससे ऐसी रचना करो जिससे अपने आप एक दूसरे के द्वारा क्रम से सृष्टि विस्तार होवें। अब नर एवं मादा स्त्री पुरुष के जोड़े से दाम्पत्य जीवन के द्वारा मैथुनी सृष्टि का विस्तार हो तो इससे अपने आप वो उसकी सन्तान वो उसकी सन्तान इस प्रकार इनका विस्तार होता रहेगा। इसके लिये ब्रह्माजी ने अपने दाहिने अंग से एक पुरुष और बायें अंग से एक नारी का सृजन किया।

ब्रह्मा बोले नारद, तुम्हारे अन्य भाई तो धर्म के आश्रय से प्रवृत्ति मार्ग का आदर्श उपस्थित करेंगे। ब्रह्माजी ने अपनी दाहिने अंग से पुरुष प्रकट किया उसका नाम स्वायम्भुव मनु और बायें अंग से जो नारी का सृजन किया उसका नाम शतरूपा। ब्रह्माजी ने आज्ञा करी तुम दोनों दाम्पत्य जीवन के द्वारा पति-पत्नी के रूप में सृष्टि का विस्तार करो। तब से मैथुन धर्म (स्त्री पुरुष सम्भोग) से प्रजा की वृद्धि होने लगी।

ब्रह्माने मनुकी सृष्टि की। स्वस्थ-प्रसन्न मनसे ही मनुकी सृष्टि होती है। मनु मननात्मक है, विचारात्मक है। उसकी पत्नी शतरूपा श्रद्धा है, सृष्टिमें सौ-रूप ग्रहण करती है। मनुष्यकी सृष्टि मनु और श्रद्धाके संयोगसे ही हुई है। मनुष्य केवल श्रद्धालु नहीं, विचारशील भी है। यदि आप श्रद्धा न रखें तो आपको यह नहीं मालूम पड़ेगा कि आपके माता-पिता कौन है? श्रद्धासे माताके वचनपर ही विश्वास करना पड़ता है। आपके पास विश्वासके सिवाय और कौन-सा प्रमाण है?

मैत्रेय जी ने सवाल का जवाब देते हुए कहा कि शुरू में तो कुछ था ही नहीं। परमात्मा एक में से अनेक हुए। जीवों का आपस में समागम हुआ और सृष्टि सा सृजन हुआ। तुम्हारे पूर्वज साधु-संतों की सेवा करने में बहुत तत्पर थे। तुम्हारा सवाल बहुत उत्तम है। ब्रह्माजी कमल पर बैठे थे। उन्हीं को आदेश दिया गया कि आप सृष्टि का सृजन करो। तो उन्होंने तीन प्रकार के जीव बनाये। प्राकृत, विकृत और मिश्र।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुर जी, सृष्टि के प्रारम्भ में यह दृश्य प्रपंच नहीं था, संसार नहीं था। उस समस समस्त आत्माओं के आत्मा एकमात्र पूर्ण परमात्मा ही थे। द्रष्टा दृश्य सबका अभाव था। ऐसी अवस्था में वे अपने को असत् के समान समझने

लगे। वस्तुत: वे असत् नहीं थे क्योंकि उनकी शक्तियाँ ही सोयी थीं। फिर उनकी इच्छा एक से अनेक होने की हुई। द्रष्टा दृश्य के रूप में लीला करने की हुई। परमात्मा की यह इच्छा शक्ति ही कार्य-कारण-रूपा माया है। भावाभावरूप-सदसदात्मिका अनिर्वचनीय माया के द्वारा ही भगवान इस विश्व का निर्माण किया करते हैं। भगवान ने इस माया की सृष्टि करके उसमें अपने वीर्य का (चित् अंश का) आधान किया इससे महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई। इसे जड़ता की प्रधानता से महत्तत्त्व, चेतना की प्रधानता से हिरण्यगर्भ, बीज की प्रधानता से माया और चैतन्य की प्रधानता से ईश्वर कहते हैं। नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त चैतन्य को ब्रह्म कहते हैं। महतत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति हुई। अहंकार सात्त्विक, राजस और तामस-भेद ये तीन प्रकार का होता है। तामस अहंकार से पंच तन्मात्राएँ और उनसे पंच महाभूत उत्पन्न हुए। राजस अहंकार से ज्ञानेनिद्र्याँ और कर्मेन्द्रियाँ हुईं। सात्त्विक अहंकार से मन और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता हुए। किन्तु पृथक-पृथक रहने के कारण जब ये तत्त्व और तत्त्वाभिमानी देवता ब्रह्माण्ड के निर्माण में समर्थ न हो सके, तब हाथ जोड़कर भगवान की स्तुति करने लगे- प्रभो। हम आपके चरण कमल की वन्दना करते हैं जो आप की शरण का आश्रय लेता है, उसका ताप मिटाने के लिये आप के चरण छाते का काम करते हैं। आपके चरणारविन्द की छत्रछाया में सारे दु:ख एक क्षण में दूर हो जाते हैं। योगीजन आपके चरणों की शरण लेने के कारण संसार के अनंत दु:खों को दूर से ही बाहर फेंक देते हैं।

मैत्रेय की बात सुनकर विदुर जी अतिशय प्रसन्न हुए और मधुरवाणी से बोले- प्रीणयन्निव भारत्या विदुर: प्रत्यभाषत। ब्रह्मन, भगवान तो शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, निर्विकार और निर्गुण है उनके साथ लीला से भी गुण और कर्म का सम्बन्ध कैसे हो सकता है? बालक में तो कामना और दूसरे के साथ खेलने की इच्छा रहती है इसीलिये वह खेलने के लिये प्रयत्न करता है; किन्तु भगवान तो स्वत: नित्यतृप्त- पूर्णकाण और सर्वदा असंग है। इस स्थिति में वे क्रीडा के लिये भी क्यों संकल्प करेंगे? भगवान अपनी गुणमयी माया से जगत् का निर्माण, पालन और संहार करते हैं। देश, काल, अवस्था और अन्य निमित्त से भी जिनके ज्ञान का लोप नहीं होता, उनका माया के साथ कैसे सम्बन्ध हो सकता है?

विदुरजी बोले- जीव ब्रह्म का अंश है अत: वह भी ब्रह्मस्वरूप ही है। आनन्द का अंश आनन्द स्वरूप होगा इसलिये उसे कर्मों से क्लेश और आनन्द-विघात क्यों होता है? एक ही परमात्मा जब सब में है, तब कहीं सुख और कहीं दुख कैसे होगा?

मैत्रेय जी ने विदुर के प्रश्नों को सुना और बोले- विदुरजी, जो आत्मा सबका स्वामी है और है सर्वथा मुक्त- वह दीनता और बन्धन को प्राप्त हो- यह बात तो युक्ति और तर्क के विरुद्ध है। किन्तु देखने में साफ आती है इसी का नाम माया है। जादूगर जादू का खेल खेलता है किन्तु उसकी विचित्रता यही है कि आँख से तो वह खेल दिखलाई पड़ता है, किन्तु जब बुद्धि से विचार करते हैं तो कुछ सिद्ध नहीं होता। माया अनिर्वचनीय है, उसका ठीक-ठीक वर्णन नहीं किया जा सकता। परन्तु वह आवरण करती है। वह युक्ति से सिद्ध नहीं की जा सकती। किन्तु ज्ञान से निवृत्त हो जाती है। ईश्वर तो नित्य शुद्ध है, नित्यबद्ध मुक्त है, उसमें दीनता और बन्धन कैसे संभव है? बिना दु:ख दीनता के, बिना बन्धन के, जो दु:ख दीनता और बन्धन की प्रतीति हो रही है इसी का नाम माया है। जैसे हिलता है जल और काँपता हुआ प्रतीत होता है चन्द्रमा। इसी प्रकार जो प्रतीति में कम्पन दीखता है, दु:ख दीखता है, वह आत्मा में आरोपित हो जाता है। वस्तुत: सुख-दु:ख आदि देह के धर्म हैं। ये देहाभिमानी जीव को होते है, ईश्वर को नहीं। जब भगवान की कृपा होती है तब व्यक्ति निष्कामभाव से, फल की अपेक्षा के बिना कर्तव्यभाव से कर्म में प्रवृत्त होता है, फिर धीरे-धीरे इस प्रकार की मिथ्या प्रतीति समाप्त हो जाती है, माया कट जाती है।

श्री मैत्रेयजी मुस्कराते हुए बोले- हे विदुर जी। सर्वात्मा तथा सबका स्वामी मुक्त स्वरूप वह भगवान कभी भी कर्म जनित क्लेश तथा उसके बन्धनों में नहीं बँधता है किन्तु फिर भी अपनी माया से अपने को ऐसा प्रकट करता है, उसे ही

उनकी लीला तथा माया कहते हैं। जिस प्रकार स्वप्न में देखे हुए दृश्य मनुष्य को सत्य प्रतीत होते हैं, किन्तु जाग्रत होने पर वे ही दृश्य असत्य प्रकट होते हैं, उसी प्रकार अज्ञान वश जीव बन्धनादि में न होते हुए भी अपने को बन्धन युक्त देखता है। अब यदि यह कहा जावे कि अपने ही में विराजमान परमात्मा की प्रतीति उसे क्यों नहीं होती है, तो उसका कारण यह है कि अज्ञानवश उस जीवात्मा के ऊपर अज्ञानमयी माया का पर्दा पड़ा हुआ है। इसके साथ ही साथ यह सम्पूर्ण क्लेश, दु:ख, कर्म बन्धन देहाभिमानी जीव को ही लिप्त करते हैं, किन्तु परमात्मा में ऐसा नहीं भासता है। निष्काम भाव से कर्म करने पर उनके फलों का मिथ्या आरोप जीव पर नहीं लगता है, और वह धीरे धीरे भक्ति के द्वारा परमात्मा में लीन हो जाता है। विदुरजी बोले- हे भगवन्। आपकी कृपा से मेरा यह सन्देह दूर हो गया है, मेरी समझ में यह आ गया है, कि जीव को दु:ख क्लेश आदि को प्रतीत करानेवाली केवल भगवान की अज्ञानमयी माया है। वह माया स्वप्न के समान मिथ्या है क्योंकि उस माया से ही यह जगत् बना है। इसलिए वह माया ही जीव को अज्ञान में डाले रहती है। जब यह जीव उस माया को पार कर जाता है, तब उसके परे सत्य स्वरूप भगवान के दर्शन होते हैं। हे भगवन् यह तो मुझे अब निश्चय हो गया कि यह सुख दु:खादि मिथ्या पदार्थ वास्तव में कुछ नहीं है केवल जीव को प्रतीत ही होते हैं। केवल उस प्रतीत के हट जाने पर जीवात्मा दु:ख सुख से मुक्त हो जाता है और यह समत्व भाव को प्राप्त होकर भगवत चरणों में लीन हो जाता है।

जहाँ दु:ख नहीं है, वहाँ दु:ख मालूम पड़ रहा है और जहां सुख है उसको हम जानते ही नहीं। हम लोग तो उस दुनिया में भटक रहे हैं जहाँ अन्धकार ही अन्धकार है और जो प्रकाश की सृष्टि है, उससे हम विमुख हो रहे हैं। भगवान की माया ही ऐसी है, जो विचारसे सिद्ध नहीं की जा सकती। विचार से सिद्ध होनेवाली चीज माया नहीं होती, वह तो स्वाभाविक होती है। वैज्ञानिक रीतिसे जो चीज पैदा की जाये, उसको माया नहीं कहते। माया उसको कहते हैं, जो किसी विज्ञानसे तो सिद्ध न हो, परन्तु मालूम पड़े।

जब प्राणी अपनी इन्द्रियों को अन्त:करण को विषयों से हटाकर भगवान में स्थिर कर देता है तब उसके सारे-के-सारे क्लेश विलीन हो जाते हैं। भगवान की लीलाओं का श्रवण-कीर्तन व्यक्ति के समस्त क्लेशों का शमन कर देता है। यदि हमारे हृदय में उनके चरण-कमल की सेवा की लालसा जग जाय तो फिर कहना ही क्या है।

भगवान के चरण कमलों की सेवा के हृदय में जगते ही दिव्य माधुर्य रस की अनुभूति इसी संसार में होने लगती है।

विदुर ने पूछा- ब्रह्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में किन-किन प्रजापतियों की सृष्टि की? जिनके पुत्र-पौत्रादि के सहित तरह-तरह की प्रजा उत्पन्न हुई और उससे यह सारा संसार भर गया। मनु कितने हैं? भूगोल, खगोल तथा ऊपर नीचे के लोकों का परिणाम क्या है? वर्ण-आश्रम का विभाग किस प्रकार का है? श्राद्ध की विधि का, पितृ-गणों की सृष्टि का तथा काल-क्रम में ग्रह, नक्षत्र और तारा-गण की स्थिति का भी अलग-अलग वर्णन कीजिये। दान, तप, तथा इष्ट और पूर्त कर्मों का क्या फल है? प्रवास और आपत्ति के समय मनुष्य का क्या कर्त्तव्य होता है? भगवान की सन्तुष्टि का उपाय क्या है?

मैत्रेयजी ने कहा- विदुर जी, राजा पुरु का वंश परम पावन और परम प्रशंसनीय है क्योंकि आप का जन्म इसी पुरुवंश में हुआ है। आप कोई साधारण व्यक्ति नहीं अपितु भक्त-शिरोमणि और साक्षात् धर्मराज हैं। आप धन्य है, जोकि अपने विविध प्रश्नों के द्वारा पग-पग पर भगवान की कथा को नित नवीन बना रहे हैं।

प्राकृत माने त्रिगुणमय। प्रकृति- सत्व, तम और रज से पुष्ट यह सृष्टि ब्रह्माजी ने बनाई। विकृत जीवों में उन्होंने चौरासी लाख योनियों को उत्पन्न किया। और इनमें भी प्रकार हैं। चार मुख्य प्रकार- जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भज।

जरायुज वे जीव हैं जिनका वंश यानी उनका बच्चा पेट में जन्म लेता है। ये कौन हैं, किस प्रकार के प्राणी हैं? ये हैं गाय,

शेर, बंदर, मनुष्य। हम सब लोग जरायुज जीव हैं। हमारी नयी चेतना मां के पेट में से जन्म लेती है।

दूसरी प्रकार के जीव ब्रह्माजी ने बनाये- अंडज। जिसकी नयी चेतना, नया बालक अंडे में से प्रकट होता है। पक्षी, कुछ जलचर जीव मछली आदि। थलचर भी हैं कुछ जैसे- सांप, मोर यह अंडे में से जन्म लेते हैं।

तीसरा स्वेदज जीव बनाये ब्रह्माजी ने। स्वेदज यानिकी पसीने में से जो प्रकट होते हैं। गर्मी के बाद जब वर्षा ऋतु आती है तो पसीना के कारण से जीव-जन्तु बहुत दिखाई देते हैं जैसे- मक्खी, मच्छर, जूं।

चौथे जीव हैं उद्भज। उद्भजन यानी जो जीव बीज में से प्रकट होती है। बीज बोया जाता है जमीन में तो इनमें से नयी चेतना प्रकट होती है जैसे-वृक्ष। इसमें भी दो प्रकार हैं। एक तो बीच में से प्रकट होते हैं और दूसरा शाखा में से प्रकट होता है। शाखा को तुम जमीन में डाल दो तो नयी चेतना, नयी शाखा प्रकट हो जाती है।

यह चौरासी लाख योनि की बात कोई अतिशयोक्ति नहीं है। एक प्रकार के ऐसे जीव बनाये जो पानी का प्रवाह ऊपर से नीचे आये। ये कौन हैं?

दूसरे प्रकार के जीव जिनका पानी का प्रवाह नीचे से ऊपर जाए। ये कौन हैं? ये वृक्ष हैं। इनमें पानी का सिंचन नीचे जड़ में करो तो पानी धीरे-धीरे ऊपर आता है। शाखा तक, फल तक, पुष्प तक पानी पहुंच जाता है।

तीसरे प्रकार के वे हैं जिनका पानी का प्रवाह टेढ़ा जाता है। ये कौन हैं? ये पशु हैं।

प्रभु ने जो बनाया, वहां मनुष्य की अक्ल काम नहीं करती। विधाता की चतुराई यह कि बिना पैरवाले बनाये, एक पैरवाले बनाये, दो पैरवाले बनाये और दो से अधिक पैरवाले बनाये।

बिना पैर के कौन चलता है? सांप। एक पैरवाले पक्षी हुआ करते थे मारीशस में। अब नहीं है। मार दिया सबको। दो पैरवाले बनाये- मनुष्य, बंदर आदि। चार पैर वाले बनाये- पशु। अनेक पैर वाले बनाये- जीव, जन्तु होते हैं।

कितनी सृष्टि प्रभु ने बनायी। यह सब चमत्कार है। प्राकृत, विकृत और मिश्र फिर अंत में, तो गन्धर्व, किन्नर, यक्ष ये सब योनि आ गयी। ऐसी सृष्टि ब्रह्माजी ने रची है। अभी तक जो ब्रह्माजी ने बनाया है वह उनको पसंद नहीं। कुछ कमी लग रही है। अभी तक मन में संतोष नहीं है।

ब्रह्माने तपस्या और विद्या (आत्म-ज्ञान) के बल से जल के साथ वायु को पीकर सृष्टिकी रचना की। काल ईश्वर की शक्ति है। यह भगवान में ही लीन रहती है।

इस संसार की सृष्टि नौ प्रकार की होती है। प्राकृत-वैकृत भेद से एक दसवीं सृष्टि और भी है। महत्तत्त्व, अहंकार, तन्मात्रायें, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता, पंचपर्वा अविद्या की सृष्टियाँ ये छ: प्राकृतिक सर्ग कहे गये हैं। पाँचवी सृष्टि सात्विक अहंकार से उत्पन्न तथा देवताओं से अधिष्ठित इन्द्रियों की होती है। छठी सृष्टि अविद्या की होती हैं।

अब वैकारिक सर्गों का वर्णन किया जा रहा है। स्थावर वृक्षों का सातवाँ सर्ग है। इसके छ: भेद किये गये हैं- वनस्पति, औषधि, लता, त्वक्सार (जिनमें छिलका ही सार हो, जैसे गिलोय), वीरुध् और द्रुम। इनका संचर नीचे (जड़) से ऊपर की ओर होता है। इनमें प्राय: ज्ञान शक्ति प्रकट नहीं रहती, ये भीतर-ही-भीतर केवल स्पर्श का अनुभव करते हैं तथा इनमें से प्रत्येक में कोई विशेष गुण रहता है। वनस्पति जो बिना बौर आये फलती है, जैसे गूलर, पीपल, बड़ आदि। जो अन्न पक जाने पर नष्ट हो जाती है जैसे धान, गेहू, चना। लता-जो किसी का आश्रय लेकर बढ़ती है- गिलोय आदि। लक्सार- जिनकी छाल बहुत कठोर होती है जैसे बाँस आदि। बीरुध- जो लता पृथ्वीपर ही फैलती है, जैसे खरबूजा, तरबूजा आदि। सातवी सृष्टि- यह ऊपर की ओर बढ़ती है, यह भीतर ही भीतर स्पर्श का अनुभव करते हैं। प्रत्येक में कोई न कोईन विशेष गुण अवश्य होता है।

आठवीं सृष्टि तिर्यग्योनियों (पशु-पक्षियों) की है। यह अट्ठाइस प्रकार की मानी जाती है। इन्हें काल का ज्ञान नहीं होता। तमोगुण की अधिकता के कारण ये केवल खाना-पीना, मैथुन करना, सोना आदि ही जानते हैं। इन्हें सूँघनेमात्र से वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। इनके हृदय में विचारशक्ति या दूरदर्शिता नहीं होती। पशुओं में कुछ दो खुरवाले (द्विशफ) और कुछ एक खुरवाले (एकशफ) होते हैं। गाय, अजा, महिष, हरिण, शूकर, गवय, रूरू, मेष और ऊष्ट्र ये दो-दो खुरके नौ पशु होते हैं। इनके खुर फटे हुए होते हैं। गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर, शरभ और चमरी- इन छह पशुओंके खुर फटे हुए नहीं होते। इनके एक-एक खुर ही होते हैं। कुत्ता, सिआर, भेड़िया इत्यादि पञ्चनख होते हैं। कंक, गृध्र आदि पक्षी इसी आठवें सर्गमें होते हैं।

विदुरजी, नवीं सृष्टि मनुष्यों की है जो यह एक ही प्रकार की है। मनुष्य रजोगुणप्रधान, कर्मपरायण और दु:खरूप विषयों में ही सुख माननेवाले होते हैं। स्त्री या पुरुष इसके भेद हैं। मनुष्य विषय-भोगसे ज्यादा प्रेम करते हैं और उसमें फँस जाते हैं। मनुष्यको मनुष्य इसलिए कहते हैं कि वे रिश्ते-नाते बना लेते हैं। नासिका के लिए तरह-तरहके इत्र बनाना मनुष्योंके सिवाय दूसरे किसी योनि को नहीं आता। जिह्वाकी तृप्तिके लिए तरह-तरहके भोजनका आविष्कार मनुष्य ही करता है। तस्वीर बनाकर आँखसे देखना मनुष्यके सिवाय और किसीको नहीं आता। राग-रागिनी बनाना, आँख से देखना और कान को तृप्त करना मनुष्यके सिवा किसीको नहीं आता। गन्ध, रूप, स्पर्श, शब्द ईश्वरने जिसे नहीं बनाया होगा उससे भी बेहतर बनानेमें मनुष्य का ही काम है। मनुष्य दु:खमें ही सुख मान लेता है। इनके आहार का प्रवाह मुंह से (ऊपर से नीचे की ओर) होता है। मनुष्य रजोगुणी स्वभाववाले, कर्मपरायण, तथा दु:ख में सुख का अनुभव करनेवाले होते हैं। इनके अतिरिक्त सनत्कुमार आदि ऋषियों का जो कौमार सर्ग है, वह प्राकृत वैकृत दोनों प्रकार का है। यह आठ तरह के होते हैं- देवता, पितर, असुर, गन्धर्व-अप्सरा, यक्ष-राक्षस, भूत-प्रेत-पिशाच, सिद्ध-चारण-विद्याधर और किन्नर आदि।

एक समय की घटना है। ब्रह्माजी की एक पुत्री थी उसका नाम था- सरस्वती। उस सुकुमारी कुमारी का सौन्दर्य अद्‌भुत था। ब्रह्मा उसके सौन्दर्य पर आकृष्ट हुए, विमुग्ध हुए। ब्रह्माजी उसको देखकर अति कामित हो उठे।

इस अधर्म, अनर्थ को देखा ब्रह्मा के पुत्र मरीचि आदि महर्षियोंने, वे चिन्तित हो उठे। ब्रह्माजी का यह अधर्मपूर्ण संकल्प देखकर उनके पुत्रोंने ब्रह्माजी को विविध भाँति से समझाया और भगवान से प्रार्थना की धर्म की रक्षा के लिये पुत्रों की बात सुनकर ब्रह्मा लज्जित हो उठे। उन्होंने अपना वह शरीर त्याग दिया उसे दिशाओं ने ग्रहण कर लिया वही कुहरा हुआ, जिसे अन्धकार भी कहते हैं। इसीलिये अन्धकार कामोद्दीपक होता है अत: यह भी संसार की सृष्टि में सहायक बना। ब्रह्माजी का पुत्री पर कामातुर होने का कारण- असुर तारक के अत्याचार से त्रिलोकी सन्यस्त्र थी। देव, मानव महर्षि सभी शिव की शरण में गये। भगवान शंकर की स्तुति की। प्रसन्न हुए शंकर से सभी तारक के विनाश की प्रार्थना कर रहे थे। उसी समय गरुड की दृष्टिएक सुन्दर हंसिनी पर पड़ी। वे उस पर विमुग्ध हो कामातुर हो उठे। ब्रह्माने इस दृश्य को देखा। वे भरी सभा में हँस पड़े। गरुड़ लज्जित हो गये। उन्होंने ब्रह्मा को शाप देते हुए कहा- आप को अपने जितेन्द्रियत्व का बड़ा अभिमान है। मुझे अपनी सजातीय पक्षिणी के साथ काम-क्रीड़ा की इच्छा हुई, यह कोई विशेष अनुचित कार्य नहीं। आप अपनी बेटी पर ही कामातुर हो मोहित हो जायेंगे। जिससे संसार में आप की बड़ी अपकीर्ति होगी और उसीसे आप का शरीरपात भी हो जायेगा। गरुड के इसी शाप-प्रभाव के कारण ब्रह्मा की यह दुर्दशा हुई है।

एक बार ब्रह्माजी सृष्टि के उपायों को सोच रहे थे। उस समय उनके मन में यह विचार आया कि- कैसे मैं पहले की भाँति जगत् का निर्माण करूँ? इसी समय उनके पूर्वादि चार मुखों से क्रमश: चार वेद प्रकट हुए। वेदों की ही भाँति इतिहास, पुराण, आगम, छन्द, वर्णमाला और स्वर आदि भी उत्पन्न हुए। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और स्थापत्य (शिल्पविद्या)

ये चार उपवेद भी क्रमश: उन पूर्वादि मुखों से प्रकट हुए फिर सर्वदर्शी भगवान ब्रह्मा ने अपने सभी चारों मुखों से इतिहास-पुराणरूप पाँचवें वेद की सृष्टि की। वैदिक धर्म में तो परलोक की बात मिलती है, गान्धर्ववेद और शिल्पवेद ये सब लौकिक शास्त्र ही तो हैं। इतिहास, पुराण, एवं षोडशी, उक्थ आदि याग ब्रह्मासे प्रकट हुए। यज्ञ-दान-तपस्या-सत्य ये धर्मके चार पाद, वानप्रस्थाश्रम इसी प्रकार सभी बालखिल्य, औदुंबर, फेनप, कुटीचक और वैखानस वृत्तियों सहित चार आश्रम भी उन्हींसे उत्पन्न हुए। ये सब तुरीय, प्राज्ञ, तैजस और विश्व इनके साथ मिलते जायेंगे।

प्रजापति ब्रह्मा के पूर्ववाले मुख से ऋग्वेद, दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, पश्चिम मुख से सामवेद तथा उत्तम मुख से अथर्ववेद की रचना हुई। उसी प्रकार शास्त्र, इज्या, स्तुति, स्तोम्ब तथा प्रायश्चित आदि चार कर्मोंकी उत्पत्ति हुई। क्रमश: आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद तथा स्थापत्व शास्त्र (शिल्पविद्या) वेद इन सभी उपवेदोंकी रचना हुई। ब्रह्माजी ने अपने मुख से इतिहास पुराण, पाँचवाँ वेद उत्पन्न किया तथा योग, विद्या, दान, तप, सत्य, धर्म के चार चरण तथा चारों वर्णाश्रम उत्पन्न किये। सावित्र वृत्ति, प्रजापत्य वृत्ति, ब्रह्मवृत्ति तथा बृहत वृत्ति ये चारों वृत्तियाँ ब्रह्मचारी के लिये बनाई गई हैं। वार्ता वृत्ति, संचय वृत्ति, शालीन वृत्ति तथा शिलोच्छ वृत्ति ये गृहस्थियोंके लिये बनाई गयी। वैखानस, बालखिल्य, औदुम्बर तथा फैनप, ये चारों वृत्तियाँ वानप्रस्थों के लिये हैं। कुटीचक्र, बहूदक, हंस तथा परमहंस ये चार वृत्तियाँ संन्यासियों के लिये हैं। आन्वीक्षिकी, त्रया, वार्ता तथा दण्डनीति ये भी ब्रह्माजी के चारों मुखों से उत्पन्न हुई। ब्रह्माजी के हृदय से ओंकार प्रकट हुआ। वर्ण, छन्द, स्वर आदि भी उनके अंगों से प्रकट हुए। ब्रह्माजी के रोम से आष्णिक छन्द, उनकी त्वचा से गायत्री छन्द, माँस से त्रिष्टुपछन्द, उनके स्नायु से अनुष्टुप छन्द, हड्डियों से जगती छन्द, मज्जा से पंक्ति छन्द तथा प्राणों सें बृहती छन्द उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी के जीवसे, शरीर से, इंद्रियोंसे व्याकरण उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी की क्रीड़ा से सात स्वर निषाद, ऋषभ, गान्धार, षडज्, मध्यम, धैवत् पंचम उत्पन्न हुए।

ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम अपनी छाया से तामिस्र, अन्धतामिस्र तम, मोह और महामोह इस प्रकार पाँच प्रकार की अविद्या उत्पन्न की। अविद्या-सर्ग को देखकर ब्रह्मा खिन्न हो उठे अत: उन्होंने अपने उस शरीर को त्याग दिया। त्यागी गई उस तमोमय ब्रह्माके शरीर से रात्रि उत्पन्न हुई। उसे यक्ष और राक्षसों ने ग्रहण किया। यक्ष-राक्षस रात्रिञ्चर हैं। उन्हें रात्रि बहुत प्यारी है। रात्रि में ही उनका बल बढ़ता है। जब उन्हें भूख लगी, तब वे ब्रह्मा जी को ही खाने के लिये उद्यत हो गये और कहने लगे- इस ब्रह्मा को ही खा जाओ। इसकी रक्षा मत करो। जिन लोगों ने कहा रक्षा मत करो, वे राक्षस कहलाये और जिन्होंने कहा खा जाओ (जक्षध्वम्), वे यक्ष कहलाये। जब वे ब्रह्माजी को खाने के लिये दौड़े तो उन्होंने घबराकर कहा यक्ष-राक्षसों तुम मेरी सन्तान हो अत: मुझे खाओ मत, मेरी रक्षा करो फिर ब्रह्माजी ने सात्त्विकी प्रभा से देवताओं की रचना कर वह शरीर भी त्याग दिया। वह प्रकाशमान दिवस बन गया। उसे देवताओं ने ग्रहण कर लिया। इसके बाद ब्रह्माजी ने अपने जघन से कामासक्त असुरों को उत्पन्न किया। उत्पन्न होते ही वे मैथुन के लिये ब्रह्माजी की ओर दौड़े। तब ब्रह्मा ने भगवान के कहने से अपना वह शरीर त्याग दिया। वह सन्ध्यादेवी के रूप में परिणत हो गया। असुरों ने उस सन्ध्या-सुन्दरी के साथ विवाह कर लिया। सन्ध्या के सौन्दर्य पर असुर मोहित थे। बाद में ब्रह्माजी ने अपनी कान्ति से गन्धर्वों और अप्सराओं की सृष्टि कर जो शरीर त्यागा, वह ज्योत्स्नारूपी स्त्री बन गई। उसे विश्वावसु आदि गन्धर्वों ने ग्रहण कर लिया।

इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने अपनी तन्द्रा से भूतपिशाच उत्पन्न किया। उन्हें नंगा और बिखरे हुए केशोंवाला देखकर ब्रह्मा नें अपनी आँखे मूंद ली। ब्रह्माजी के त्यागे हुए उस जँभाईरूप शरीर को भूत-पिशाचों ने ग्रहण किया इसी को निद्रा भी कहते हैं। यह इन्द्रियों को शिथिल बना डालती है। यदि कोई व्यक्ति जूठे मुँह सो जाता है तो उस पर भूत-पिशाचादि आक्रमण करते हैं।

उसी को उन्माद कहते हैं फिर ब्रह्माजी ने भावना की कि मैं तेजोमय हूँ फिर उन्होंने अपने अदृश्य रूप से साध्य-गणों और पितरों को उत्पन्न किया। पितरों ने ब्रह्मा के उस अदृश्य शरीर को ग्रहण कर लिया। श्राद्ध में पितरों को पिण्ड (काव्य) और साध्य-गणों को हव्य अर्पण करने का विधान है। अपनी तिरोधानशक्ति से ब्रह्माजी ने सिद्धों और विधाधरों की सृष्टि की और उन्हें अपना वह अन्तर्धान नामक अद्भुत शरीर प्रदान कर दिया। तदनन्तर सृष्टिकर्ता ने किन्नरों और किम्पुरुषों की सृष्टि कर अपना वह शरीर त्याग दिया। वही उषा बेला हो गई जिसे किन्नरों और किंपुरुषों ने ग्रहण किया।

५) काल का परिमाण

मन्वंतर काल और विवरण- यह काल क्या है? काल स्वरूप भगवान, इसके बिना कोई कुछ नहीं कर सकता। कोई समझता हो मैंने अपने कर्मसे, अपनी योग्यता से मैं कुछ बन पाया हूँ तो यह उसकी भूल है। वक्त किससे क्या करायेगा? कैसे करायेगा? कब करायेगा? यह आप नहीं जानते। फिर यह काल क्या है?

उदारहण- एक सेठजी थे। गल्ले का, अनाज का व्यापार करते थे। पहले वो अनाज की बोरियां सिरपर, पीठपर ढोते थे और उनके पीठपर भी निशान पड़ गये। लेकिन उन्हें अपने उद्यम पर बहुत भरोसा था, मैंने कर्म किया है, मैंने मेहनत करी है। वो मेहनत करते-करते बड़े व्यापारी बन गये, बहुत पैसेवाले बन गये। पर अभिमान यह था कि मुझे बनानेवाला कोई दूसरा नहीं है मेरा कर्म और मेरी मेहनत। एक दिन एक मित्र उनके यहां एक किसी ज्योतिषी को ले आये। सेठजी से मिलवाया। सेठजी यह मेरे मित्र बड़े ज्योतिषी हैं आपकी भाग्यरेखाएं बतायेंगे आगेका, आगे आपका क्या बननेवाला है? मित्र मैं इस ज्योतिष पर विश्वास नहीं करता। मैं जो बना हूँ अपने उद्योग और उद्यम से बना हूं। और शहर का बच्चा-बच्चा जानता है इसके बारेमें। इसपर नसीब क्या करेगा, इसमें वक्त क्या करेगा? भाग्य क्या करेगा? देखना है तो देखो मेरी इस पीठपर यह जो लाल दाग, निशान पड़े हुए है यह मेरी मेहनत के है। नसीब यह सब कहने की बातें है। नहीं माने सो नहीं माने। अब ज्योतिषी देखे यहां तो कुछ पूछ होती नहीं है। ज्योतिषी बोले- लालाजी वह तो ठीक है लेकिन वक्त कब क्या करा देगा यह कुछ पता नहीं। सेठजी बोले- पंडितजी, आप अपनी दुकानदारी और जगह लगाएं? आप आये हो तो आपका स्वागत करना मेरा काम है और चाय पीओ। चाय मंगवाई। पंडितजी बोले- इसने तो मेरा बड़ा तिरस्कार कर दिया। पर यदि मैं इसको शिक्षा नहीं दूं तो मैं फिर सही ज्ञानी और पंडित नहीं। ऐसे ही अगर छोड़ दूं नहीं मानता है तो। लालाजी ठीक है आप विश्वास नहीं करना हो तो मत करो लेकिन वक्त एक इतनी बड़ी शक्ति है कि आप चाहो तो चाय भी नहीं पी सकोगे अगर वक्त आपको इजाजत नहीं दे तो आप यह चाय की प्याली भी नहीं पी पाओगे। सेठजी बोले- वक्त इसमें क्या करेगा? चाय मेरे सामने पड़ी है मैं अभी पीकर बताता हूँ। पंडित बोले- आपकी मर्जी। सेठजी ने झट् चायकी प्याली उठाई, मुंह तक पहुंची नहीं कि धड्धड् भूकम्प। जिस सेठकी यह तमन्ना थी कि मेरे तीन पुत्रोंको मैं यह बनाऊंगा, वह बनाऊंगा और वो भी अपने बाहुबल से, अपने कर्मसे। वक्तने क्या पल्टी मारी, वाह रे वक्त। वक्त को देखेंगे आप करोड़पतियोंको रोड़पति बना देता है। वक्त को देखेंगे कि किसीके पास कुछ नहीं है तो उसके पास क्या क्या होता है। उस वक्तकी महिमा का विवरण कर रहे है। वो वक्त क्या है? वो समय क्या है?

वक्त की हर शै पे है गुलाम...

मैत्रेय बोले- विदुर। सत्व, रज, तम इन गुणों के फल स्वरूप यह महतत्त्व आदि के रूप में प्रगट होनेवाला आदि अन्तरहित ही काल है। ईश्वर उस काल की प्रेरणा से अपनी लीला के साथ इस सृष्टि के रूप में प्रकट होते हैं। यह सम्पूर्ण विश्व भगवान की माया में लीन होकर ब्रह्म के रूप में ब्रह्ममय था। कालने उसी अव्यक्त रूप को व्यक्त कर सृष्टि रूप में प्रकट किया।

ईश्वर इसी काल के द्वारा विश्व का निर्माण करते हैं। काल, परमात्मा की तरह तीनों कालों में रहनेवाला है। संसार की वस्तुओं के रूप-रंग को बदलते रहना ही काल का आकार है। इसमें दिन-रात आदि का कोई भेद नहीं होता। यह अनादि और अनन्त है। जैसे यह विश्व इस समय दिखलाई पड़ता है, वैसे ही यह पहले भी था और आगे भी वैसा ही रहेगा।

विषयों के रूप को परिवर्तित करते रहना ही काल का आकार है। स्वयं वह निर्विशेष, अनादि एवं अनंत है। उसीको उपादान बनाकर भगवान अपनी क्रीड़ा से सृष्टि के रूप में परिणत कर देते हैं।

काल अपनेमें तो निर्विशेष ही है। उसमें न रात है, न दिन है, न घंटा है, न मिनट है, न उत्तरायण, न दक्षिणायन, न संवत्सर, न युग है, न मन्वन्तर हैं और न कल्प है। यह सब कालके अवयव नहीं, अपितु वस्तुओंमें होनेवाली क्रियाके आधारपर कालमें कल्पित हैं। असलमें काल- परमात्मामें अध्यस्त हैं और उस अध्यस्तमें लौकिक दृष्टिसे उसके अवयव कल्पित हैं। परमात्मासे अलग काल नहीं। जब हम दुनियाकी ओरसे देखते हैं तब परमात्मामें काल दीखता है। परमात्मामें गुणोंके परिणाम से ही काल है।

इसका नाप, यह पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, २४ घंटे मे एक बार घूमती है। सूर्य की और पृथ्वी की जो दूरी है १४३ मिलियन किलोमीटर दूर है। सूर्य की पहली किरण पृथ्वीपर पहुंचने में आठ मिनट का समय लगता है। इससे सूर्यकी दूरी मालूम पड़ गयी। प्रकाश की गति क्या है? उसकी गति क्या है? यह निर्धारित करती है। सूर्यकी १ किरणको १ अणुमे से पदार्थ एक छोटेमें छोटा टुकड़ा जिसके सिर्फ दो ही परमाणु बन सकते है ऐसा टुकड़ा उसमें से अगर सूर्यकी एक किरण निकले, उसको जीतना समय लगे उसे त्रस रेणु कहते हैं। ऐसे त्रस रेणुके सौ रेणु उसे वेद कहते हैं। ऐसे १५ वेदका एक लव, १५ लव की एक काष्ठा, ऐसे १५ काष्ठोंका एक वृत। अब यह भाषा हुई वैदिक भाषा। हम उस कालको परिमाण में लाते हैं, हमारी भाषाओंमें एक मुहूर्त बोले तो ४० मिनट, ऐसे एक दिन और रात में ३० मुहूर्त होते है जो २४ घंटे के होते है। तीन घंटेकी एक पहर होती है। आठ पहर का एक दिन होता है, २४ घंटे। ४ पहर की रात होती है, ४ पहर का दिन होता है। १२-१२ घंटे। ऐसे पंद्रह दिन का एक पक्ष होता है। एक मास में दो पक्ष होते है। छ: मास का एक अयन होता है। १२ मास में दो अयन होते है। १२ मास को एक वर्ष कहते है। जो दो अयन है वो छ: महिने उत्तर के छ: महिने दक्षिण के उसको उत्तरायण और दक्षिणायन कहते है। सूर्य की गतिका यह जो समय चलता है सूर्यकी गतिसे चलता है। यह भी भगवान का स्वरूप है। ऐसे एक वर्ष, ऐसे सौ वर्ष हमारी आयु निर्धारित की हुई है। इसमें आप हिसाब लगाइये कितने घंटे, कितने दिन। यह जो मनुष्य जीव है। दिव्य वर्ष- यह जो चार युग जो बताते है यह क्या है? मनुष्य जीवन से कितने बडे है। सत्युग, त्रेतायुग, द्वापर और कलियुग। यह जो है सतयुग की अवधि १७ लाख २८ हजार वर्ष। त्रेता की अवधि मनुष्योंके वर्षोंके बराबर है- १२ लाख ९६ हजार वर्ष। द्वापर की अवधि- ८ लाख ६४ हजार वर्ष और कलियुग की अवधि ४ लाख ३२ हजार वर्ष। यह महाभारत आज के ५२०० वर्ष पहले हुआ। कलियुगका प्रवेश होकर ५१०६ वर्ष हो गये। कलियुग पूरा होने तक ४ लाख २६ हजार ८०० वर्ष और बाकी है। कलियुगके लक्षण क्या-क्या है? हम तो कलियुग के शुरु के चरण में है जो कलियुग देख रहें है इससे तो और अधिक बुरा होगा। यह तो शुरू के चरण में सिर्फ ५००० वर्ष व्यतीत हुए हैं। यह क्रम फिर बदली होगा। सत्युग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। ये चारों युगोंका योग ४३ लाख २० हजार वर्ष है। यह चतुर्युगी जब एक हजार बार बीत जाती है तो ब्रह्माका एक दिन होता है। इसको एककल्प कहते है।

इसमें यह अश्वत्थामा, हनुमान, विभीषण यह कल्पजीवी है, एक-एक कल्पतक जीयेंगे ऐसा शास्त्रोंने कहा है। एक कल्प ब्रह्माके एक दिन में १४ मनु बदलते है। १४ मन्वंतर होते है। मनु का काल। एक मनु ७१.५/१९ चतुर्युगी तक शासन

करता है। उस एक मनुके साथ एक अप्सरा है, सप्तर्षि का एक मंडल, एक इन्द्र है, एक देव उस युगका ऐसे हर समय बदलते रहते हैं। जैसे हमारे भारतीय संविधान में है प्रेसिडेंट, प्राईमनिस्टर, फायनान्स मिनिस्टर, चीफ मिनिस्टर, सेक्रेटरी, अंडर सेक्रेटरी ऐसी एक पार्लियामेंट की बोर्ड बनी हुई है। वैसे ही इस भगवान ने अपनी व्यवस्था नियंत्रित करने के लिए एक व्यवस्था बनायी एक इन्द्र होगा, एक मनु (राजा) होगा और एक अप्सरा होगी, सप्तऋषियोंका मंडल होगा, परामर्श करनेवाले, देनेवाले, विधान को चलानेवाले, धर्मकी स्थापना करनेवाले ऐसे ऋषि। इनकी एक-एक अवधि ७१ चतुर्युगी। अभी इस कल्प का सातवां मन्वंतर चल रहा है। ब्रह्माकी आयुके ५० वर्ष बीत चुके है। २८ वीं चतुर्युगी हैं। हमारा इन्द्र अभी पुरंदर है। अगला इन्द्र राजा बलि होगा सुतल का अधिपति है अभी। इस तरह से यह मन्त्रीमण्डल है। कृष्णने अर्जुन को कहा था- तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं मैं उन सबको जानता हूँ परम भवति जन्मम। तू उनको नहीं जानता। इसीलिए मैं इस भागवत के आधार पर कह रहा हूँ यह भागवत मैं २७ बार पढ़ चुका हूँ यह २८ वां बार मैं यहा पढ़ रहा हूँ। आप नहीं जानते हो यह मैं नहीं जानता हूँ यह भागवत जानती है ऐसी-ऐसी सृष्टि है और ५३ बार मैं और पढूँगा जब जाकर हमारी यह लीला खत्म होगी। ७१ वां बार हमारा मनु बदली होगा हमारे सृष्टिका पृष्ठ बदली होगा। यह काल। इसतरह से यह काल की अवधि चलती रहती है। ऐसे ब्रह्मा का एक दिन उसी ब्रह्मा का तीस दिन का एक महिना, उसी ब्रह्माका ऐसे ही १२ महिने का एक वर्ष, ऐसे ही सौ वर्ष ब्रह्माकी आयु। मैं सोचता हूँ यह गिनती भी आपके जीवन में कभी नहीं कर पायेंगे। जितने शून्य जोड़ते जाओ इसको शास्त्रोंने, विज्ञान ने एक ही शब्द दिया है इंफीनिटी (अनन्त)। जिसकी कोई गणना नहीं है ऐसा यह काल भगवान का

हम सब कालके अधीन हैं। काल हमें कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं लेकर जाता है। काल हमसे क्या-क्या करवाएगा न आप जानते हैं न हम जानते हैं। हम सब कालके अधीन हैं और कालके गात में जाते हैं।

मैत्रेय कहते हैं- विदुर जी, संसार के किसी पदार्थ का खण्डन करते-करते जिसका खण्डन न हो सके, जिसके टुकड़े न किये जा सकें, उसी अन्तिम खण्ड को परमाणु कहते हैं। जिसमें सूक्ष्म अन्य कोई वस्तु नहीं है वही परमाणु है। जो अपनी सम्पूर्ण अवस्था को भोगता है उसको परम महान् कहते हैं। सौ वर्षों की मनुष्य की परमायु कही है।

परमाणु अनेक होते हैं और असंयुक्त होते हैं। उनकी एकता भ्रम ही है। परमाणु जिसका सूक्ष्मतम अंश होता है उस अपने स्वरूप में स्थित पृथ्वी आदि कार्य वर्ग की समग्रता का ही नाम महान है। उसमें प्रलय आदि कार्य के भेद की प्रतीति नहीं होती है। उसमें घट पट आदि कार्यभेद की भी प्रतीति नहीं होती है। इसी प्रकार से काल की स्थूलता तथा सूक्ष्मता का भी अनुमान किया जा सकता है। काल परमाणु आदि अवस्थाओं में व्याप्त होकर व्यक्त पदार्थों का भोग करनेवाला तथा सृष्टि करने में समर्थ होता है। भगवान काल अव्यक्त स्वरूप है। उस काल को परमाणु कहते हैं जो प्रपंच के सूक्ष्म भाग में भी व्याप्त है तथा प्रलय पर्यन्त कार्य वर्ग का समान रूप से भोग करनेवाला वह काल परम महान है।

परमाणु से लेकर उपर्युक्त सभी सम्पूर्ण जगत का एक संवत्सर के अन्त तक चक्कर लगाते हैं। संवत्सर ही सौर मास के अनुसार संवत्सर, बृहस्पति मास के अनुसार परिवत्सर, सवनमास के अनुसार इडावत्सर, चन्द्रमा के अनुसार अनुवत्सर तथा नक्षत्रमास के अनुसार वत्सर कहलाता है। जो भगवान सूर्य अपनी काल नामक शक्ति के द्वारा सृज्य पदार्थों की शक्ति को अनेक प्रकार से समृद्ध करते हैं, वे पंचभूतों में तेजस्वरूप हैं मनुष्यों के भ्रम को विनष्ट करने के लिए वे उनकी आयु को क्षीण करते हैं तथा उनके सकाम यज्ञादि कर्मों का विस्तार करते हैं, ऐसे पाँच प्रकार के वत्सर स्वरूप भगवान सूर्य की पूजा करें।

परमाणु से लेकर परम महान तक सृष्टि चलती है। छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा कार्य परमाणुओं से बनता है। इसी से काल भी नापा जाता है। जितनी देर में सूर्य एक परमाणु को पार करते हैं, लांघते हैं, उसी काल को परमाणु-काल कहते हैं। दो

परमाणु मिलकर एक अणु होता है और तीन परमाणुओं का त्रसरेणु बनता है। त्रसरेणु झरोखे में प्रविष्ट सूर्य की किरणों में उड़ता हुआ दिखलाई पड़ता है, यह धरती पर नहीं गिरता है। तीन त्रसरेणुओं की एक त्रुटि होती है। सौ त्रुटियों का एक वेधकाल होता है। तीन वेध का एक लवकाल होता है। तीन लव का एक निमेष होता है। तीन निमेषों का एक क्षण होता है। पाँच क्षणों की एक काष्ठा होती है। पन्द्रह काष्ठाओं का एक लघु होता है। पन्द्रह लघु की एक नाडिका (दण्ड, घड़ी) कही जाती है। दो नाडिका का एक मुहूर्त होता है। दिन के घटने-बढ़ने के अनुसार (दिन एवं रात्रि की दोनों सन्धियों के दो मुहूर्तों को छोड़कर) छ: या सात नाडिका का एक पहर होता है, इसे याम भी कहते हैं। याम मनुष्य के दिन या रात का चौथा भाग होता है।

चार पहर का एक दिन और चार पहर की रात होती है। पन्द्रह दिन-रात का एक पक्ष होता है। पक्ष शुक्ल और कृष्ण के भेद से दो प्रकार का होता है। दो पक्षों को मिलाकर एक महीना होता है। दो महीने की एक ऋतु होती है। छ: मास का एक अयन होता है। अयन दो होते हैं- उत्तरायण और दक्षिणायन। ये दोनों अयन मिलकर देवताओं के एक दिन-रात होते हैं। हमारे भू-लोक में दो अयन अर्थात् बारह महीने का एक वर्ष होता है। मनुष्यों की पूरी आयु सौ वर्षों की बतलाई गई है। वर्ष के अनेक भेद होते हैं। इन्हीं के आधार पर सूर्य की, ग्रहों की, गति का विवरण किया जाता है। सबकी आयु अलग-अलग होती है। देव, पितर आदि भी अपने-अपने मान से सौ वर्ष की आयुवाले कहे गये हैं। उस प्रभु की आराधना करनी चाहिए जो सबका दृष्टा और सृष्टा है। दृष्टा और सृष्टा दोनोंमे चैतन्य है।

सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग- ये चार युग होते हैं। दिव्यमान से सतयुग का मान ४८०० वर्ष, त्रेता का मान ३६०० वर्ष, द्वापर का मान २४०० वर्ष तथा कलियुग का मान १२०० वर्ष का है। युग के आदि में सन्ध्या होती है और अन्त में सन्ध्यांश। सन्ध्या और सन्ध्यांश का काल १०० वर्ष का है। सन्ध्या और सन्ध्यांश के बीच का काल युग कहलाता हैं सत्ययुग के मनुष्यों में धर्म अपने चारों चरणों से वर्तमान रहता है फिर अन्य युगों में अधर्म की वृद्धि होने से धर्म का एक-एक चरण क्षीण होता जाता है।

त्रिलोकी से बाहर महर्लोक से ब्रह्मलोकपर्यन्त यहाँ की एक सहस्र चतुर्युगी का एकदिन होता है और इतनी ही बड़ी रात्रि होती है। रात्रि में जगत्कर्ता ब्रह्माजी शयन करते हैं। ब्रह्मा की रात्रि के बीतने पर इस लोक का कल्प प्रारम्भ होता है। ब्रह्माजी के एक दिन के बराबर यहाँ का एक कल्प होता है। एक कल्प में चौदह मनु होते हैं। प्रत्येक मनु का काल ७१ चतुर्युगी से कुछ अधिक का होता है। मनु का राज्य-काल मन्वन्तर कहलाता है। मन्वन्तर में मनु, मनुपुत्र, ऋषि, देवता, इन्द्र और भगवान का अंशावतार- ये छ: होते हैं। १४ मन्वन्तरों के नाम इसप्रकार है- स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत:, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रपुत्रसावर्णि, रुचि और भैम। इस समय वराह कल्प दूसरा परार्ध चल रहा है। ५० वां वर्ष वराह कल्प है। ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होने का अर्थ है- उनका दिन चौदह घण्टे का और रात चौदह घंटे का होता है। ब्रह्मा का मन्वन्तर एक घंटा है। चौदह मन्वन्तर चौदह इन्द्र बदल जाते हैं। इन्द्रकी आयु ब्रह्माके एक-एक घण्टेकी है। एक मन्वन्तर में तीस करोड़ पिचासी लाख और बीस हजार वर्ष होते हैं।

इसके दो भेद है- श्वेतवाराह, कृष्णवाराह। इसमें भगवान ने वाराह का रूप धारण किया था।

ब्रह्मा के एक दिन की समाप्ति पर त्रिलोकी का प्रलय होता है। त्रिलोकी की प्रलय की बेला में भगवान जल के भीतर शेष शय्या पर शयन करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा की आयु धीरे-धीरे बीतती है। ब्रह्माजी की आयु के आधे भाग को परार्ध कहते हैं। अब तक पहला परार्ध बीत चुका है, दूसरा चल रहा है। परार्ध का काल श्रीहरि का एक निमेष माना जाता है।

काल से प्रलय होता है उसको नित्य प्रलय कहते हैं। संकर्षण की अग्नि से जो प्रलय होता है उसको नैमित्तिक प्रलय

कहते हैं। अपने-अपने कार्यों को ग्रसनेवाले गुणों से प्राकृतिक प्रलय होती है।

इस प्रकार अनन्तकालमें परमात्माकी नाभिमें से कोटि-कोटि ब्रह्माण पैदा होते और मिटते रहते हैं।

वह चाहे तो कई हजार ब्रह्माण्ड एक क्षण उत्पन्न करके फिर नाश कर देवें। इसका भेद कोई नहीं जान सकता। जब नारायण नहीं होगा तो कोई नहीं होगा वे अविनाशी पुरुष स्थिर रहेंगे। मृत्यु उनके पास नहीं आ सकती।

यद्यपि काल सकल ब्रह्माण्ड पर प्रभावी है, किन्तु भगवान के सामने इसकी कुछ भी नहीं चलती है। वे काल के भी काल हैं। अनेकानेक ब्रह्माण्ड उनके शरीर के रोम-छिद्रों में समाहित रहते हैं। यही भगवान प्रधान आदि सभी कारणों के कारण, अक्षर ब्रह्म कहलाते हैं। इन्हें ही पुराण-पुरुष और परमात्मा श्रीविष्णु कहते हैं। प्रकृति, महत्तत्त्व और अहंकार तथा पंचमात्रा सहित दस इन्द्रियाँ, मन और पंच भूत इन १६ विकारों से मिलकर ब्रह्माण्डकोश बना। यही पुराणपुरुष का श्रेष्ठ धाम है।

रुद्र के ११ रुद्र हुए- मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव और धृतव्रत। इनकी पत्नियों के नाम- धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत, सर्पि, इला, अम्बिका (पार्वती), इरावती, सुधा और दीक्षा। ब्रह्माजी ने सृष्टिसृजन संकल्प से मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद को उत्पन्न किया। मृत्यु, काम-क्रोधादि विकार उनके शरीर से उत्पन्न हुये। ब्रह्माजी के मुख से सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माजी अपनी इस कन्या पर आकृष्ट हो गये थे और उनके पुत्रों ने उन्हें लज्जित करते हुए कहा- आप पिताश्री होकर ऐसा घिनौना कार्य कर रहे है ऐसा कोई ब्रह्मा नहीं करेगा। ब्रह्माजी ने यह सुनकर अपना शरीर त्याग दिया जिसे तम ने ग्रहण किया और वो कोहरा बना। ऋषियों की सन्तान भी जब वृद्धि को नहीं प्राप्त हुईं, तब ब्रह्माजी चिन्ता करने लगे कि बड़ा आश्चर्य है कि मैं नित्य उद्यम कर रहा हूँ जो प्रजा को बढ़ने नहीं देता। जब ब्रह्मा ने देव को दोष दिया, तब उनके शरीर में से दो स्वरूप हो गये जिसको काय कहते हैं।

ब्रह्माजी ने अपने शरीर के दो भाग कर के मनु और शतरूपा की उत्पत्ति की जिन्होंने मैथुनी सृष्टि कर दो पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद तथा और तीन पुत्रियां- आकूति, देवहूति तथा प्रसूति तीन कन्या उत्पन्न की। मनु ने आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से, देवहूति का कर्दम ऋषि से और प्रसूति का दक्ष प्रजापति के साथ किया।

६) वाराह चरित्र और पृथ्वी का उद्धार

जब ब्रह्माजी ने स्वायम्भुव मनु को सृष्टि करने की आज्ञा दी तब मनुजी कहने लगे- हे अधहारी प्रभो। मैं आपकी आज्ञा के अनुसार कार्य करने को तत्पर हूँ, किन्तु आप मेरे तथा मेरी प्रजा के रहने योग्य स्थान तो बता दीजिये पृथ्वी जो सम्पूर्ण प्राणियों को धारण करनेवाली है वह इस समय जल में डूब गई हैं अत: हे देवाधि देव। आप इस पृथ्वी के उद्धार का कोई उपाय सोचिये। **मेदिनी- पृथ्वी-** जल में कमल के पत्ते की भांति श्रीनारायण महासागर में शयन कर रहे थे, तब उनके कान के मल से दो दैत्य (मधु और कैटभ) उत्पन्न हुए। उन दैत्यों ने जल से उठकर ब्रह्मा की हत्या करनी चाही, किन्तु नारायण ने अपनी जंघा पर उनका वध कर दिया। उन्हीं दोनों के मेद (चरबी) से समस्त पृथ्वी निर्मित हुई इसीलिए उसे मेदिनी कहा जाता है। उसी पर समस्त विश्व टिका हुआ है। उसकी अधिष्ठात्री देवी का नाम वसुंधरा है। पूर्वकाल में यह समुद्र तक की सारी पृथ्वी मधु और कौटभ के मेद (चरबी) से भई गई थी, इसलिए मेदिनी नाम से विख्यात है।

ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर जब मनुजी सृष्टि विस्तार करने वाले थे, तब एक समस्या प्रकट हो गयी। उसी समय दैत्य हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को चुराकर रसातल में ले जाकर अवरुद्ध कर दिया, वह मेरी है इसे कोई स्पर्श नहीं कर सकता।

स्वायम्भुव मुनि बोले- हे पिताश्री। आपने सृष्टि विस्तार की जो आज्ञा दी उसका पालन करना मेरा धर्म है। लेकिन ये भावी सृष्टि रखी कहां जायेगी मेरे प्राणी कहां रहेंगे। क्योंकि पृथ्वी तो रसातल में चली गयी। ऋषि लोग तो ऊपर के लोकोंमें जनलोक, तपलोक, महर्लोक आदि में निवास करने लग गये। यह स्थावर सृष्टि पेड़, पौधे, लता, गुल्म-वनस्पति आदि एवं कीड़े-मकोड़े पशु-पक्षी हाथी, ऊंट, गाय, बकरी, भैंस इत्यादि तो दैत्य ने इन सबके समेत पृथ्वी को ले जाकर रसातल में अवरुद्ध कर दिया। अब भगवान सृष्टि को रखा कहां जायेगा? अब आप हमको ऐसी आज्ञा कीजिये, जिससे इस लोकमें हमारी उन्नति हो और परलोकमें भी हमारी सद्गति हो।

जब मनु महाराज ने पिता से पूछा कि मैं क्या करूं तो ब्रह्माजी तो प्रसन्न हो गये कि यह तो कुछ विशेष बन गया।

ब्रह्माजी ने कहा- देखो बेटा। यह जो नारी उत्पन्न हुई है उसको तुम भार्या के रूप में, पत्नी के रूप में स्वीकार करो और आगे मनुष्य की सृष्टि करो। यही मेरा आदेश है। सन्तान का कर्त्तव्य इतना ही है कि वह अपनी शक्तिके अनुसार, प्रमाद और दोष-दृष्टि के बिना, आदरके साथ, पिताके वचनको स्वीकार करे।

जब अपनी भार्या शतरूपा के साथ मनु का जन्म हुआ, तब उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहा- पूज्यपाद आप हमारे पिता हैं। जगत् के जन्मदाता हैं अत: बतलाइये मैं आपकी किस आज्ञा का पालन करूँ? मनु की बात ब्रह्मा ने प्रेम से सुनी और फिर कहना प्रारम्भ किया- बेटा, मैं तुम्हारे ऊपर अतिशय प्रसन्न हूँ, क्योंकि तुमने निष्कपट भाव से मुझसे यह प्रश्न पूछा है और मेरी आज्ञा चाही है। पुत्रों को अपने पिता के प्रति ऐसा ही सम्मान प्रकट करना चाहिये। उन्हें अपनी शक्ति के अनुसार, प्रमाद और दोष-दृष्टि के बिना, आदर के साथ, पिता के वचन को स्वीकार कर लेनी चाहिये।

अब बेटा तुम्हारा एक कर्त्तव्य यह है कि तुम अपनी इस भार्या से अपने ही समान गुणशाली सन्तति उत्पन्न करो। दूसरा कर्त्तव्य यह है कि धर्म के अनुसार पृथ्वी का पालन करो और तीसरा कर्त्तव्य यह है कि यज्ञों के द्वारा परमात्मा की आराधना करो। यह मेरी सबसे बड़ी सेवा है। प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करनेवाले राजा के ऊपर भगवान अतिशय प्रसन्न होते हैं।

सबकी सेवा करते हुए सबको सन्तुष्ट करना यही सर्वेश्वर की सर्वोत्तम उपासना है। जगत् की सेवा करके नारायण को प्रसन्न नहीं किया जा सकता। उसका सभी श्रम व्यर्थ है। उसका यह श्रम राख में हवन करने के समान किया हुआ निष्फल है।

पिता की बात को श्रद्धा के साथ मनु ने सुना और कहा कि- पिताजी, मैं आपके आदेश का पालन करने के लिये तैयार हूँ। किन्तु संसार की आधारभूत पृथ्वी इस समय जल में निमग्न हैं, डूबी हुई है। किस पर मैं सृष्टि का कार्य करूं? देव, आप उसके उद्धार का उपाय करें। पृथ्वी तो पाताल में चली गयी है। इसका उद्धार कैसे हो? रुद्र भगवान के बनाये हुए भूत, पिशाच, डाकिनी, साकिनी, बैताल आदि तो भुवर्लोक में रह सकते हैं। देवता लोग स्वर्गलोक में रह सकते है। महर्षिगण महर्लोक में अपना निवास स्थान बना लेंगे। उर्ध्वरेता ब्रह्मचारी जो भगवान के शरणापन्न अप्रजावान जनलोक में रह सकते हैं। तपस्वी तपलोक में रहकर ध्यानमग्न रह सकते हैं। आपके शरणापन्न सत्य संकल्प लोग, ज्ञानी तथा परम पुण्यात्मा लोग अपने सत्यलोक में रहेंगें किन्तु मनुष्य का आश्रय तो एकमात्र पृथ्वी ही है।

मनु समस्त पुरुषों के आदि पुरुष है। अब तक तो मानसी सृष्टि होती थी। इनसे ही मैथुनी सृष्टि प्रारम्भ हुई। इन्होने ही पृथ्वी पर अपनी राजधानी बनाकर चारों वर्णों को तथा अन्य लोगों को उत्पन्न किया। अन्य ऋषियों ने भी मनुष्यों की सृष्टि की, किन्तु उन्होंने और भी जाति के जन्तु पैदा किये। भगवान की शक्ति सहायता और बुद्धि योग प्रदान किये बिना कार्य होना असम्भव है।

ध्यान करत विधि युगल नयन सरसिज सम विकसे। हरि शिशु शूकर वेष धर्‌यो नासातें निकसे।।

लघु अंगुष्ठ समान यज्ञ तनु वेद बखानें। केवल किरपा प्राप्त मनस्वी जिनकूँ मानें।।

अति अद्‌भुत तनु निरखिकें, विधि विस्मितवत् है गये। तब तक शूकर रूप हरि, हस्ती सम नभमहँ भये।।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुर, पृथ्वी को अगाध जल में डूबी हुई देखकर ब्रह्माजी को बड़ी चिन्ता हुई। वे बहुत देर तक सोचते रहे कि अब क्या करना चाहिये। पृथ्वी का उद्धार कैसे हो?

ऐसा रसातल जहां कोई प्रकाश नहीं। सात लोक ऊपर के, सात लोक नीचे के। यह सात लोक ऊपरके वो स्वयं प्रकाशित लोक है। इनको आकाश, सूर्य, चन्द्रमा प्रकाशित नहीं करता। यह अधोलोक जो नीचेके लोक हैं वो शेषनाग के १ हजार फण उनके मणियोंसे प्रकाशित होते है- तल, अतल, सुतल, वितल, पाताल नागलोक। सिर्फ यह पृथ्वी मर्त्यलोक जिसको कहते है सूर्य और चन्द्रमा, नक्षत्रोंसे प्रकाशित होती है। अगर मुझे सृष्टि करनी है, पृथ्वी बनानी है तो मेरे लोग रहेंगे कहां, उनकी व्यवस्था क्या है? पृथ्वी रसातल में डूबी हुई है, नीचे के लोकोंमें, समुद्र में डूबी हुई है, क्षीरसागर में गयी हुई है। ब्रह्माने जो वेद वाणी निकाली इस पृथ्वीका संचालन करो, सृष्टि करो वो वेद हयग्रीव नामक दैत्य पानी में लेकर भाग गया। मधुकैटभ नामके दो दैत्य जो ब्रह्माके श्वास-प्रश्वास से पैदा हुए उस सृष्टिको बनने नहीं देते, खा जाते। रौद्र रुदन करते है, यह खानेवाले राक्षस बन गये, सृष्टिको बनानी है। एक दिन ब्रह्माने सोचा सृष्टिको बनानी है तो पृथ्वीको रसातल से निकालना पड़ेगा। उसी समय भगवान ब्रह्माकी नाकमें से एक छोटा जीव आया जो और छींक में से निकला गोंगा और वो गोंगा देखते-देखते बड़ा एकदम विशाल सुअर के रूप में नील वाराह बन गया। बोले वाराह भगवान की जय। यह दूसरा अवतार। और सीधा झूमते-झामते इतना बड़ा वाराह क्षीरसागर में गया। जहां रसातल में पृथ्वी डूबी हुई थी अपनी बड़ी-बड़ी दाढ़ोंपे उस पृथ्वी को ऊबारा निकालकर बाहर लाया और उस पानीपर स्थापित किया।

तब ब्रह्माजी को चिंता हुई उन्होंने विचार किया जिस सर्वशक्तिमान प्रभु के संकल्प मात्र से मेरा जन्म हुआ वे ही सर्वेश्वर मेरी रक्षा करें।

मैत्रेय मुनि विदुरसे कहते है- हे निष्पाप। जब भगवान ब्रह्मा इस बात का विचार कर रहे थे तो उसी समय उनकी नासिका के छिद्र से एक वाराह का बच्चा निकल पड़ा, जो आकार में अंगूठे के समान था। सूकर रूप में वे साक्षात् श्रीहरि ही प्रकट हुए थे। वे आकाश में अधर खड़े थे। ब्रह्मा को लगा यह तो कोई विलक्षण ही जीव हैं।

उसी समय उनकी नासिका के छिद्र से अकस्मात् अँगूठे के बराबर आकार का एक शूरक-शिशु (वराह-शिशु) निकला। वह देखते-ही-देखते हाथी के समान विशाल आकार का हो गया, थोड़ी ही देर में वह स्थूल पाषाण के समान बन गया। वाराह भगवान तो बढ़कर वारणेन्द्र की तरह बहुत बड़े डील-डौल के हो गये और क्षणभर में ही उससे भी सौ गुने बढ़कर पर्वताकार बन गये। लोगोंने कहां यह जरूर ईश्वर है। नहीं तो ऐसा वाङ्मनसागोचर रूप तथा लीला और किसकी होती है?

यह देखकर अपने मरीचि आदि पुत्रों के साथ ब्रह्माजी ने सोचा- अहो, मेरी नासिका से यह क्या उत्पन्न हुआ? अवश्य ही यह यज्ञमूर्ति भगवान हैं जो हम लोगों के मन को मोहित कर रहे हैं, यह सुनकर वराह भगवान ने बड़े जोरों से गर्जना की। उनके गर्जन से सारी दिशायें-प्रतिदिशायें प्रतिध्वनित हो उठीं। ब्रह्मा के हर्ष का पारावार न रहा। ब्राह्मणों, मुनियों एवं ऋषियों को भी बड़ा आनन्द आया। सबने मिलकर वराह भगवान की स्तुति की। हे अजित आपकी जय हो, हे यज्ञपते आपको हमारा नमस्कार। आपने पृथ्वी का उद्धार करने के लिए ही यह शूकर रूप धारण किया है, आपको नमस्कार। आपके रोम-कूपों में सर्व यज्ञलीन हैं आपको हमारा बार-बार प्रणाम। आपने ही तो अपनी माया से इस अत्याश्चर्यमय विश्व की रचना की है, आप जगतपिता हैं। हम आपको और इस पृथ्वी माता को बार-बार प्रणाम करते हैं। प्रभो। रसातल

में डूबी हुई इस पृथ्वी को निकालने का साहस भला आपके सिवा और कौन कर सकता है। हे नाथ। चराचर जीवों के सुखपूर्वक रहने के लिये आप अपनी पत्नी इस जगन्माता पृथ्वी को अपनी धारणा शक्ति के द्वारा जल के ऊपर स्थापित कीजिये। इस प्रकार आदिनारायण भगवान ने वराह अवतार लेकर आदिदैत्य हिरण्याक्ष को मारकर पृथ्वी का उद्धार किया। रसातल से पृथ्वी को लाकर यथास्थान प्रतिष्ठित किया। जिस पर सब प्राणी बसे हैं।

पाप के मुखों से नासिका से श्रुवा, उदर से यज्ञीय पात्र, मुख से ब्रह्मपात्र, छिद्र से सोम पात्र प्रकट हुए हैं। आपकी जिह्वा महावीर नाम का कर्म है। सिर होम रहित अग्नि है, प्राण इष्ट का चयन है, वीर्य सोम है। आपकी सातों धातु अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्त्थ, षोडशी, बाजपेय, अतिराज और आप्तोरियाम नाम के सात यज्ञ हैं। शरीर के जोड़ सत्र हैं। आपका सम्पूर्ण शरीर यज्ञमय है।

स्तुति सुनकर भगवान वराह बड़े प्रसन्न हुए। सातों लोकों की रचना हो चुकी थी, भुवर्लोक तक जीव भी बस गये थे, किन्तु पृथ्वी पर जीव नहीं बसे थे। वे अपनी तुण्ड से समुद्र सलिल को फाड़ते-चीरते पाताल तक पहुँच गये। जिस समय वे समुद्र के वक्ष:स्थल को विदीर्ण करके अपने पर्वताकार शरीर से उसमें घुसे तो समुद्र की ऊँची-ऊँची लहरियाँ आकाश तक उछलने लगीं। उत्ताल तरंगों से सम्पूर्ण समुद्र में बड़े वेग का शब्द हो रहा था।

भगवान स्वयं यज्ञपुरुष हैं तथापि वे अपनी घ्राणेन्द्रिय से सूँघ-सूँघ कर पृथ्वी का पता लगा रहे थे। उनकी दाढ़ें बड़ी कठोर थीं। स्तुति करनेवाले मुनियों की ओर बड़ी सौम्य दृष्टि से देखते हुए उन्होंने जल में प्रवेश किया।

पृथ्वी जल में निमग्न थी अत: उसे खोजने के लिये वराह ने जल में प्रवेश किया। पृथ्वी जल में ही डूब सकती है। पृथ्वी की उत्पत्ति जल से ही होने के कारण इसका लय भी जल में ही हो सकता है। सकल कार्य अपने कारण में ही विलीन हुआ करते हैं यह उपनिषदों का सिद्धान्त है। जिस समय भगवान् वराह का वज्र की तरह कठोर शरीर सागर के जल में कूदा उस समय जल फटने से बड़े जोर की ध्वनि हुई। विशाल उत्ताल तरंगे उठने लगीं मानों समुद्र हाथ उठा कर, चिल्ला कर कह रहा हो। वराह के नासिका से प्रकट होने का भाव पृथ्वी का उद्धार करना है, पृथ्वी गन्धवती है। ग्रन्थ ग्रहण करने की शक्ति नासिका में होती है। वराह की घ्राण-शक्ति भी प्रबल होती है। वह सूँघ-सूँघ कर पृथ्वी का पता लगा लेता है अत: भगवान वराह ब्रह्मा की नासिका से प्रकट हुए।

भगवान ने रसातल में जाकर पृथ्वी को देखा और जैसे कोई प्रियतम अपनी प्रियतमा को गोद में उठाता है। ज्यों ही वराह भगवान पृथ्वी को लेकर चले तो उनके मार्ग में भयानक गदा लिये हुए हिरण्याक्ष राक्षस आ गया, वह असह्य-विक्रम दैत्य था। उसे भगवान ने खेल-खेल में मार डाला और उसके रक्त से अपने थूथुन को, तुण्ड को, रंजित कर धरती के साथ बाहर निकले। **माधवी -** पृथ्वी। वाराह कल्प के आरंभ में संपूर्ण जगत जलमय हो रहा था, इसलिए प्रजातियों के स्वामी, नारायण स्वरूप परमात्मा ब्रह्मा ने अनुमान से पृथ्वी को जल के भीतर जानकर उसे बाहर निकालने की इच्छा से वाराह-शरीर धारण किया और जल में प्रविष्ट हो गए। उन्हें पाताललोक में आए देख वसुंधरा ने उनकी स्तुति करते हुए कहा- हे शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले कमलनयन भगवन्। आपको नमस्कार है। आज आप इस पाताल-तल से मेरा उद्धार कीजिए। हे प्रभो। मैं आपका ही रूप हूं और आपके ही द्वारा रची गई हूं, इसलिए मुझे माधवी भी कहते हैं।

विशेष: पराशर मुनि मैत्रेय से कहते हैं- प्रजापतियों के स्वामी नारायण स्वरूप भगवान ब्रह्मा ने जिस प्रकार प्रजा की सृष्टि की थी, वह मुझसे सुनो। वे भगवान नारायण पर हैं, अचिंत्य हैं, ब्रह्मा, शिव आदि ईश्वरों के भी ईश्वर हैं, ब्रह्मस्वरूप हैं, अनादि हैं और सबकी उत्पत्ति के स्थान हैं। तथा भगवान विष्णु ही ब्रह्मा आदि अवस्थाओं द्वारा सृष्टा हैं, सृष्टि हैं, संहर्ता हैं

और स्वयं संतप्त होते हैं।

उस समय महात्माओं ने वराह भगवान की बड़ी दिव्य स्तुति की- भगवान् अजित, आप की जय हो, जय हो। यज्ञों के स्वामी, आप अपने वेदत्रयीरूप विग्रह को कँपा रहे हैं, फटकार रहे हैं; आप को नमस्कार है। आप के प्रत्येक रोम-छिद्रों में यज्ञ लीन हैं। आप ने पृथ्वी का उद्धार करने के लिये ही यह सूकर रूप धारण किया है, आप को बारम्बार प्रणाम है।

आपके रोम-रोम में यज्ञ की सारी सामग्रियाँ और सारे पात्र विराजमान हैं अत: आप यथार्थ में यज्ञमूर्ति हैं। कारणवश आपने इस सूकर रूप को धारण किया है। आपके दाँतों के ऊपर स्थित यह पृथ्वी उसी प्रकार शोभित हो रही है जैसे विशाल पर्वत की चोटी पर मेघ माला हो। आप अपनी पत्नी इस जगन्माता पृथ्वी को अब जल के ऊपर स्थापित कीजिये। जगत् को धारण करने के लिये आपने इसमें अपना तेज स्थापित किया है। आप के साथ इस पृथ्वी माता को हम प्रणाम करते हैं। प्रभो, जल से भीगें हुए विग्रह को जब आप हिलाते हैं, तब हमारे ऊपर आप की गरदन के बालों से शीतल जल की बूँदें गिरती हैं। प्रभो, उससे हम जनलोक, तपलोक और सत्यलोक में रहनेवाले मुनि-जन सर्वथा पवित्र हो जाते हैं। हम लोगों की विनती है कि आप इसी प्रकार सर्वदा जगत् का कल्याण करते रहें। जीवन में वही दिन श्रेष्ठ है, उत्तम है जिस दिन हमलोग शुभ आयोजन सम्पन्न करते हैं। अपने धर्म और परिश्रमपूर्वक धन अर्जन करने का संकल्प कायम रखना चाहिए। परिश्रम से प्राप्त पारिश्रमिक का कुछ अंश भगवत् कार्य में अर्पित करना चाहिए। सत्कृत्य द्वारा लोभ पर विजयश्री मिलती है। पृथ्वी उद्धार कार्य सम्पन्न होने के बाद ऋषियों ने भगवान का दर्शन किया और स्तुति की- हे प्रभो, समस्त मन्त्र, देवता, द्रव्य, यज्ञ और कर्म आपका ही एक स्वरूप है। मन की एकाग्रता से जिस दिव्य ज्ञान की अनुभूति होती है वह आपका ही स्वरूप है। हे विद्यागुरु आपको बार बार प्रणाम।

ऐसी कीन्हीं प्रेरणा ऋषि मुनि गये कुछ आय। स्तुति लागे करन सब प्रभु के गुणगण गाय।।
बोले ऋषिगण सुमन हूं ते सुकुमार नाथ श्रुति गाये। करि अनुमोदन लक्ष्मी बोली सत्य वचन मन भाये।।
प्रभु की कोमलता की कौन होड़ करवैया सेवा में मैया लक्ष्मीजी लगी।

सृष्टि कर्मके बलपर नहीं, ईश्वरके बलपर टिकी हुई है। ईश्वर सर्वसमर्थ है। यदि ईश्वर मुक्तको बद्ध न बना सके, बद्धको मुक्त न कर सके और असृष्टिमें सृष्टि न कर सके तो ईश्वरका सर्वसामर्थ्य प्रकट नहीं होता।

युद्ध के लिये गदा लेकर आये हुए क्रुद्ध हिरण्याक्ष को देखकर पृथ्वी काँप उठी। वह भय-वश वराह से लिपट गई। वराह के शरीर का तेज पृथ्वी पर पड़ा इससे वह गर्भवती हो गई। चूँकि गर्भाधान की बेला में हिरण्याक्ष भयभीत पृथ्वी के सामने और मन में भी था अत: पृथ्वी से राक्षस पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी भूमि-पुत्र का नाम है- भौमासुर, नरकासुर जिसका उद्धार श्रीकृष्ण ने किया था। हिरण्याक्ष मदोन्मत्त होकर दिग्विजय करने के लिए गदा हाथ में लिये चल पड़ा। उसे मृत्यु का भय नहीं था।

एक बार नारद जी ने भगवान से पूछा- प्रभो। आपको मन्द-मन्द मुसकराते तो हम प्राय: देखते हैं पर आप कभी जोर का ठहाका मारकर भी हंसते हो कि नहीं? प्रभु ने कहा हंसता हूं। कब? दो बार हंसता हूं। एक बार तो जब मैं किसी को बचाना चाहता हूं। हजारों हाथों से तो दो हाथ वाला कहता है मैं इसे मार डालूंगा। और दूसरी बार जब मेरी प्रकट की हुई धरती पर मेरी नहीं मान के लोग आपस में टकराते हैं कि ये धरती मेरी हैं, ये धरती मेरी हैं। तब हंसता हूं। जिसने धरती पैदा की उसको तो कोई मानता नहीं हैं, और मेरी मेरी करते हैं। महाराज, ये दोनों महापराक्रमी थे। भगवान के पार्षद थे। तो ये अगर पूरी वृक्षावली समेत पर्वतमाला समेत पृथ्वी को ले जाकर रसातल में छिपा दिया, तो इसमें कौन सी आश्चर्य की बात है।

हिरण्यकशिपु का अनुज हिरण्याक्ष अपने बड़े भाई को बहुत चाहता था। वह उसका सर्वदा प्रिय किया करता था। एक

दिन उसने अपनी लोहे की गदा उठाई और लड़ने का अवसर ढूँढ़ता हुआ स्वर्ग जा पहुंचा। क्रोध के कारण उसकी भौंहे तनी हुई थी। बड़ी-बड़ी बाहुओं से गदा घुमा रहा था, पैरों से पृथ्वी को रौंदता हुआ, अपनी भयंकर दहाड़ से दिशाओं को गुंजाता हुआ, स्वर्ग के नन्दकानन में पहुँचा।

अपने मनोबल, शारीरिक बल और ब्रह्माजी के वर के कारण वह उन्मत्त होकर सर्वत्र निर्भय विचरण करता था। उसे देखते ही भयभीत देवता भाग कर छिप गये। कोई उसके सामने आया ही नहीं। वह बोला यहाँ तो कोई शूरवीर होता तो सामने आता। स्वर्ग में सब नपुंसक ही रहते हैं, शूरवीर तो एक भी देखने में नहीं आया। इस पर हिरण्याक्ष स्वर्ग में अपना शौर्य वीर्य प्रदर्शित करके सुमेरु के समीप आया। उसके तो लड़ाई के लिये हाथ खुजा रहे थे। इसलिये उसने सुमेरू के सुवर्णमय शिखरों को उखाड़-उखाड़कर फेंकना आरम्भ किया। सुमेरु बड़े भयभीत हुए कि यह भूत कहाँ से आ गया। सुमेरु बोले- हे दिति वंशावतंश राजन्, इन शिखरों को तोड़ने से आपको क्या लाभ होगा? आप यह व्यर्थ का कार्य क्यों कर रहे है? हिरण्याक्ष बोला- मैंने सुना है सुमेरु पर्वत सबसे श्रेष्ठ है। इसके बराबर ऊँचा और कोई विशाल नहीं है। इसलिये मैं तुमसे युद्ध करूँगा। मेरे हाथ लड़ाई के लिये खुजला रहे है। सुमेरू हाथ जोडकर डरते डरते बोला- हे शूरवीरों के मुकुटमणि राजन्। मेरा नाम सुमेरू है। मैं सबसे बड़ा हूँ, किन्तु आपके साथ युद्ध करने में मैं अपने आपको असमर्थ मानता हूँ। मेरा क्या साहस जो आपके साथ युद्ध कर सकूँ। हिरण्याक्ष बोला- तो फिर मेरे अनुरूप युद्ध करने का कोई योद्धा बताओ। सुमेरू बोले- राजन्। मेरी समझ में तो समुद्र अगाध है, गम्भीर है, महान है, सम्भव है वह युद्ध में आपको संतुष्ट कर सके।

वहाँ से लौट कर वह समुद्र के पास आया। यहाँ भी उसे देखते ही वरुण के दूत और सैनिक भाग खड़े हुए। अनेक वर्षों तक वह सागर के जल में गदा पीटता हुआ घूमता रहा। अन्त में वह वरुण की राजधानी विभावरी में जा पहुँचा। वहाँ उसने वरुण को देखा। उपेक्षा प्रदर्शित करते हुए उन्हें प्रणाम कर वह बोला- अधिराज, आप हमसे युद्ध करें।

वरुण- जल के स्वामी, लोकपाल। महर्षि कश्यप और देवमाता अदिति के मध्यम पुत्र वरुण हैं। वे लोकपाल हैं। उनकी स्थिति वारुणी दिशा (पश्चिम) में बतलाई जाती है। वे पश्चिम दिशा में पश्चिम समुद्र के तट पर सुशोभित होते हैं। वहां एक सुंदर सुवर्ण पर्वत है, जिनके शिखर रत्नमय है। उस पर्वत की रमणीय गुहाओं में एकांत स्थलों पर सिद्ध और गंधर्व वास करते हैं। जब सूर्यदेव वहां पहुंच जाते हैं तब समस्त संसार अंधकारमय हो जाता है। उसी पर्वत के शिखर पर विश्वकर्मा की बनाई हुई एक भव्य नगरी है, जिसका नाम विश्वावती है। उसी में लोकपाल वरुण का वास है।

मैत्रेय मुनि विदुरजी से कहते हैं- हे तात। महाबली हिरण्याक्ष अनेकों वर्षों तक समुद्र की तरल तरंगों पर अपनी फौलाद की गदा से प्रहार करता हुआ वहीं घूमता रहा। इस प्रकार घूमता-फिरता वह वरुणजी की राजधानी विभावरी नामक नगरी में पहुँचा। वह दैत्य वरुणलोक में पहुँचकर वहाँ के स्वामी, सभी जलचरों के अधीश्वर वरुणको देखकर उसने उपहासपूर्वक हँसते हुए नीच पुरुष की भाँति उन्हें प्रणाम किया और बोला- हे राजेश्वर। मुझे युद्ध की भिक्षा दीजिये।

वरुण ने सोचा, जैसे पत्थरसे टकराना नासझमी है, वैसे ही बलवान शत्रुके साथ भिड जाना भी बेवकूफी है। कौटिल्य के अर्थशास्त्रका कथन है यदि शत्रु बलवान हो तो उससे लड़ाई न छेडकर सन्धि कर लेनी चाहिए। कभी भी अपनेसे बलवानके साथ नहीं टकराना।

उस मदोन्मत्त शत्रु के इस प्रकार बहुत उपहास करने से वरुण को क्रोध तो बहुत आया, पर उसे वे रोककर बोले- दैत्यराज, अब हम युद्ध से विरत हो चुके हैं। भगवान पुराणपुरुष नारायण के अतिरिक्त हमें और कोई दूसरा नहीं दिखलाई पड़ता जो तुम्हारे जैसे रणबाँकुरे को युद्ध में सन्तुष्ट कर सके। तुम उन्हीं के पास जाओ। वे ही तुम्हारी युद्ध-कामना पूरी कर

सकते हैं अत: तुम खोजकर उन्हीं से भिड़ो। वे ही तुम्हारे युद्ध करनेकी अभिलाषा को शान्त करेंगे।

मैत्रेय ने कहा- विदुरजी, भगवान की माया का यथार्थ तत्व कोई मानवीय तर्कों के द्वारा जान नहीं सकता। सभी जीव पूर्व जन्मों के संस्कार वश कार्य करते हैं। जिसके जैसे संस्कार होते हैं, उसके लिये वैसे ही संयोग जुट जाते हैं। नहीं तो भगवान से लड़ने का साहस जीव कर ही कैसे सकता है और भगवान को भी ऐसे-ऐसे रूप रखने की क्या आवश्यकता है?

ऊँच-नीच का भेद तो हम मनुष्यों के लिये है। भगवान के लिये न कोई ऊँचा है न नीचा, न कुछ निन्दनीय है न श्लाघनीय। उनके लिये तो सब समान, एक-सा है।

वरुण के ऐसे वचन को सुनकर मदोन्मत्त दैत्य बड़ा प्रसन्न हुआ। वह वहाँ से चल पड़ा। मार्ग में उसे नारद मुनि मिले।

इधर हिरण्याक्ष खोजता फिरता था कि मुझसे लड़नेवाला कोई वीर मिले, पर कोई नहीं मिला। वह गदा लिये घूम रहा था कि मुझसे लड़नेवाला कोई वीर मिले, पर कोई नहीं मिला। शुद्ध मन की उस वृत्ति के अधिष्ठातृदेव नारद हैं, जो भगवान की ओर ले जाते हैं, जो हमें अपने इष्ट की ओर पहुँचाते हैं। चौदहों भुवनों में नारदजी की अव्याहत गति है। वे सर्वत्र जा सकते हैं। उनके लिये कुछ दुर्ज्ञेय नहीं, अगम्य नहीं। दैत्य हो, दानव हो, यक्ष हो, राक्षस हो, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग कोई भी क्यों न हो, अधिकारी भेद से उसे भगवान के सम्मुख पहुँचा देना यही उनका एकमात्र कार्य है। नाम है, उनका कलह प्रिय। कलह बिना सम्मिलित के योग के होती नहीं। अत: किसी भी प्रकार से कलह कराकर साधक को साध्य से मिला देते हैं। इसीलिये वे जगद्गुरु कहलाते हैं। सभी उनका समान भाव से आदर करते हैं। इनके समस्त उद्योग जीवों को भगवान के सम्मुख करने के लिये होते हैं। कहीं वीणा बजाकर लोगों को रिझाते हैं, कहीं गुण गाकर उन्हें मुग्ध कर देते हैं। कहीं लड़ाई-भिड़ाई का सामान जुटाकर वहाँ से चम्पत हो जाते हैं, कहीं सप्ताह सुनते हैं, कहीं मन्त्र जपते हैं, कहीं दीक्षा देते हैं। जिस कार्य से भी लोक का कल्याण हो उसे करने में इन्हें हिचक नहीं, संकोच नहीं, लज्जा नहीं। आलस्य तो इनके पास फटकने नहीं पाता। सदा घूमते ही रहते हैं। एक जगह पैर टिकते ही नहीं। अभी सत्यलोक में हैं, क्षणभर में मर्त्यलोक में पहुँच गये। हाँ कहीं कथा-कीर्तन भगवान के दर्शन का आनंद होता है तो वहाँ जम जाते हैं। वहां इनका शाप भी बाधा नहीं पहुँचाता। नारदजी की कृपा के बिना जीव न कोई परमार्थ कार्य कर सकता है न ज्ञानी हो सकता है और न भगवान को ही प्राप्त कर सकता है। ये कर्मकाण्ड में भी निष्णात हैं, योगशास्त्र के भी आचार्य हैं, योग के भी प्रवर्तक हैं, भक्तिमार्ग के भी विशेषज्ञ हैं और ज्ञानियों के भी चूड़ामणि हैं। नारदजी ऐसे लोगोंको भी अपना चेला बनाते हैं कि वे जिसको दर्शन देते हैं वह भगवान्का स्मरण करें एवं तदाकार हो जायँ। वह किसी भी निमित्तसे स्मरण करता हो, कामसे, क्रोधसे या लोभसे, वह किसी भी निमित्त भगवत्स्मरण तो करेगा ही, उसकी वृत्ति तो भगवदाकार होगा ही। वे चाहते है कि प्राणीमात्रका उद्धार हो जाय। नारदजीका व्रत लोकोद्धारका व्रत है।

हिरण्याक्ष बोला, ऐ नारद, ये वीणा लिये क्यों फिर रहे हो? नारद बोले- गुणगान करता हूँ। किसका गुणगान करते हो? तो नारदने सोचा, अगर कहता हूँ कि भगवान का गुणगान करता हूँ तो झट खोपड़ी पर गदा चला देगा।

नारद बोले- आपका गुणगान करता हूँ। हिरण्याक्ष बोला- ठीक है, किया करो बहुत अच्छा है। अच्छा मुझसे लड़ो। मेरे हाथ में खुजली चल रही है। कोई लड़नेवाला नहीं मिल रहा है। आवो मुझसे लड़ो। नारद बोले- मैं लड़ना तो बिलकुल नहीं जानता। हिरण्याक्ष ने पूछा तो क्या जानते हो? नारद बोले- लड़वाना बहुत बढ़िया जानता हूं। हिरण्याक्ष ने कहा- अच्छा लड़ नहीं सको तो लड़वा ही दो किसीसे, कोई लड़नेवाला ही बता दो। नारदजी बोले- तेरे खुजली मिटाने के लिए ऐसा लड़नेवाला बता रहा हूं वो है विष्णु, नारायण, हरि। वही तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। उनके समीप जाने पर ही जीव की समस्त इच्छायें परिपूर्ण हुआ करती है। जैसा पुजारी होता है, वैसा ही देवता चाहिए। तुम्हारे लिये भगवान वराह रूपमें

प्रकट हो गये हैं और वे आजकल पृथ्वीका उद्धार करनेके लिए पातालमें गये है।

उसने मुनि को प्रणाम कर उनसे, श्रीहरि कहाँ मिलेंगे? यह पूछा। नारद ने कहा- भगवान वाराह का रूप धारण कर, पृथ्वी का उद्धार करने के लिये इस समय रसातल में गये हुए हैं। श्रीहरि का पता लगाने वह तत्काल रसातल जा पहुँचा।

जब साधु माया के वशीभूत हो जाता है तो अनर्थ का शुभारम्भ हो जाता है। कश्यप साधु पुरुष है, दिति साक्षात् भेदबुद्धिपरक माया है। जब ऋषि कश्यप दिति के वशीभूत हो गये तब अनर्थ प्रारम्भ हुआ। दोनों के संयोग से ही दानव हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का जन्म हुआ। लालच वृत्ति हिरण्याक्ष है और अहंकार वृत्ति हिरण्यकशिपु।

वहाँ जाकर समुद्र के जल में गदा पीटने लगा। वहाँ उसने विश्व-विजयी वराह भगवान को देखा। वे अपनी दाढ़ के अग्रभाग पर पृथ्वी को उठाकर ऊपर की ओर आ रहे थे। वे अपने लाल-लाल नेत्रों से हिरण्याक्ष के तेज का हरण कर रहे थे। उन्हें देखकर वह खिलखिला कर हँस पड़ा और बोला- यह जंगली जानवर जल में कहाँ से आ गया? क्यों रे, पृथ्वी को लेकर भागनेवाला चोर, तू ही विष्णु है। तू तो जंगली जानवर शूकर मालूम होता है। अरे ओ सूअर, यह धरती तो हमारी है। इसे तो ब्रह्माजीने हमको दिया। तू क्यों इसकी चोरी करके लिये जा रहे हो? अरे भुंड, यह धरती तो हमारी है इसे दे दो।

पता नहीं यह बनैला जीव यहां कहां से आ गया। देवताओंने तुझे क्यों पाल रखा है। आज तुम्हें मारकर मैं अपने बन्धुबान्धवों का शोक दूर कर दूँगा। जिसकी मृत्यु निकट पहुँचती है उसको भली-बुरी बात कहनेका विचार नहीं रहता।

वाराह भगवान ने सोचा शत्रु चाहे जितना भी ललकारे, पहले अपने कामको मजबूत कर लेना चाहिए। बुद्धिमान् का काम है कि वह पहले अपना काम बनाये। अपने कामको बिगाड़ लेना मूर्खता है। वराह भगवान ने हिरण्याक्षकी कोई परवाह नहीं की। वाराह ने पृथ्वी को सबसे पहले जल के ऊपर स्थापित किया। पृथ्वी को जल के ऊपर देखकर और वाराह भगवान को प्रसन्न देखकर सभी ऋषि मुनि आनन्द में विभोर होकर वराह की स्तुति करने लगे। हिरण्याक्ष के ललकारने पर वराह भगवान ने उससे कहा- तू ठीक कहता है, हम वन में फिरने वाले मृग ही हैं, किन्तु तुझ जैसे कुत्तों को ढूंढते है। हे अभद्र। जो वास्तव में वीर होते हैं, वे तुझ जैसे अभागे जीव की आत्मश्लांघा की ओर ध्यान नहीं देते, क्योंकि तू तो मृत्युपाश में बँधकर ही ऐसी बातें बक रहा है। सत्कार्य में संलग्न प्राणी के समक्ष नाना व्यवधान उत्पन्न होते हैं। जब तक लक्ष्य की पूर्ति न हो जाये तब तक समर्थ होते हुए भी दुरात्मनों से टकराना अनुचित है। शालीनता के द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेना सरल है। अत: विषम परिस्थिति में शालीनता को नहीं त्यागना चाहिए।

फिर वराह जी से कहा- अरे ना समझ, इधर आ, छोड़ दे पृथ्वी को। विधाता जी ने इसे हम रसातलवासियों के लिये बनाया है। सूकररूपधारी रे सुराधम, मेरे देखते-देखते तू इसे लेकर यहाँ से सकुशल नहीं जा सकता।

हिरण्याक्ष बोला- तू माया से लुक-छिपकर दैत्यों को जीतता और उनका वध करता है इसी से हमारे शत्रुओं ने हमारा नाश करने के लिये ही तुझे पाला है। मूढ़, तेरा बल तो योगमाया ही है। उसके अतिरिक्त कोई पौरुष तुम्हारे में थोड़े ही है। आज मैं तुझे मार कर अपने बन्धुओं का शोक समाप्त करूँगा।

जब मेरे हाथ से चलाई गई गदा के प्रहार से सिर फट जाने के कारण तू मर जायगा, तब तेरी आराधना करनेवाले जो देवता और ऋषि हैं, वे सभी जड़ कटे हुए वृक्ष की भाँति अपने आप ही नष्ट हो जायेंगे। उन्हें मारने का प्रयास नहीं करना पड़ेगा।

हिरण्याक्ष भगवान वराह को दुर्वचन बाणों से छेदे जा रहा था। किन्तु उन्होंने दाँत के अग्रभाग पर विराजमान पृथ्वी को भयभीत देखकर वह चोट सह ली और जल से उसी प्रकार बाहर निकल आये जैसे ग्राह की चोट खाकर हथिनी सहित गजराज बाहर निकल आता है। भगवान वराह आगे-आगे चल रहे थे। हिरण्याक्ष दुर्वचन बोलता हुआ उनका पीछा कर रहा

था। भगवान चुपचाप ऊपर की ओर बड़े वेग से चले आ रहे थे। ऊपर आकर उन्होंने पृथ्वी को जल के ऊपर रक्खा। उसमें अपनी आधार-शक्ति स्थापित की।

देवि पृथ्वी के मन में अभिमान हुआ कि मेरे बिना भगवान का काम नहीं चलता। मैं समुद्र में क्या डूब रही मुझे निकालने के लिए भगवान को सूकर रूप धारण करना पड़ा। पृथ्वी के मान-अभिमान को गर्भ गलित करने के लिये प्रभु ने परम पावन वृन्दावन धाम का दर्शन कराया। पृथ्वी के मन में परम आश्चर्य हुआ, कि बिना मेरे यह कहां से आया? वराह भगवान बोले- हे पृथ्वी, यह मेरा वृन्दावन धाम है। सारी दुनिया का चाहे प्रलय हो जाये लेकिन वृन्दावन का प्रलय नहीं होता। वृन्दावन तीर्थ ही नहीं है भगवान का धाम है। चारों धामों में वृन्दावन का नाम नहीं आता। तीर्थों का राजा है प्रयाग। तीर्थों का गुरु है पुष्कर। इसलिये जितने भी तीर्थ हैं वे प्रयाग को कर देते हैं, भेंट देते है। लेकिन यह छोटा सा वृन्दावन कभी भेंट देने नहीं जाता।

प्रयाग- जहाँ भी दो पवित्र नदियों का संगम हो जाता है वही प्रयाग कहलाता है। उत्तराखण्ड के समस्त प्रयागों में पंच प्रयाग सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके नाम देवविष्णु-प्रयाग, नन्दप्रयाग, कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग और देवप्रयाग इत्यादि। जगदुद्धारिणी श्री गंगा जहाँ आकर यमुना से मिलती है उस परम पावन पुण्य प्रदेश को प्रयागराज कहते है जो सभी तीर्थोंका राजा है। त्रिवेणी, श्रीमाधव, श्रीसोमेश्वर, श्रीभरद्वाज मुनि, श्रीवासुकि, श्रीअक्षयवट, श्रीशेषनाग ऐसे तीर्थनायक प्रयाग में निवास करते है। जहाँ कही भी क्षय न होनेवाला नित्य शाश्वत अक्षयवट प्रतिष्ठित है, जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती की त्रैलोक्य को पावन करनेवाली त्रिगुणमयी त्रिदेवमयी तीन धारायें है। जहाँ शिव अनेक अद्भुत रूप रखकर जिस क्षेत्र के चारों ओर विराजते हैं। यह तीर्थराज समस्त त्रिभुवन के तारक तीर्थों के एकछत्र सम्राट है। उनका अनन्त भण्डार, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों से सदा भरा रहता है। उग्र से उग्र पापों का विनाश करने में सदा सक्षम रहता है। इस तीर्थनायक की इतन पावनता से प्रसन्न होकर लोकप्रजापति पितामह ब्रह्मा ने इसे अपना क्षेत्र बनाया। इसलिये प्रयाग का दूसरा नाम प्रजापति क्षेत्र भी है। कमलयोनि भगवान ब्रह्मा ने यहाँ प्रकृष्ट-प्रकृष्ट यागों की झड़ी लगा दी, इसीलिये इसका नाम प्रयाग नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहाँ नित्य श्रीहरि का निवास है। यहाँ सन्त महन्तों के बहुत से आश्रम और कुटियाएँ श्री गंगाजी के तीर पर बनी हुई है। आसपास में साधु-सन्यासी, विरक्त, ब्रह्मचारी रहते है।

एक बार तीर्थराज प्रयाग सभी देवताओंको लेकर भगवान कृष्णके पास गये और बोले मुझे अपमानित ही करना था तो मुझे तीर्थों का राजा क्यों बनाया? सभी तीर्थ तो आकर मुझे कर देते हैं, लेकिन यह छोटा सा वृन्दावन न मेरे पास आता है और न कर देता है। कृष्ण मुस्कराकर बोले- अरे प्रयाग, मैंने तुम्हें तीर्थों का राजा बनाया था अपने घर का राजा थोड़े ही बनाया था।

धन्य-धन्य वृन्दावन रजधानी, जहां धर्म-कर्म बटत जेवरी, मुक्ति भरे जहाँ पानी।

वृन्दावन- वृन्दावन कोई तीर्थ नहीं है। यदि भौतिक आँखों से देखेंगे तो वहांपर टूटे-फूटे मकान और गंदी नालियों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यदि आध्यात्मिक दृष्टि से वृन्दावन को देखते हैं भक्ति के नेत्रों से देखते हैं तो वृन्दावन की रज के कण-कण में श्रीकृष्ण का वास है। मीराबाई ने सारे तीर्थों में भ्रमण किया। जब मीरा वृन्दावन आयीं तो लोगों ने पूछा, तुम सब तीर्थों में गयी बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगा-यमुना गयीं पर तुम्हें सबसे अच्छा कहां लगा? मीरा ने कहा- **आली री मोहे लागे वृन्दावन नीको।**

व्रजभूमि प्रेमकी भूमि है। लीलाकी भूमि है। वहाँके एक-एक रजकण पूर्णरसमय हैं, वहाँके एक-एक अणुसे अनन्त-अनन्त आनन्दकी धारा प्रवाहित होती है। वहाँकी लताएँ साधारण नहीं हैं। मृदुलताकी लताएँ है। वहाँके वृक्षोंकी पंक्ति रसिकोंकी जमात है। वहाँकी नदियाँ प्रेमके अमृतसे भरी रहती है। वहाँके वायुमण्डलमें श्रीकृष्णके विग्रहकी दिव्य सुरभि

प्रवाहित हुआ करती है। वहाँकी गौएँ साक्षात् उपनिषदें। वहाँका गोरस ब्रह्मरस है वहाँके ग्वाल, गोपियाँ सब श्रीकृष्णके ही अंग हैं। श्रीकृष्ण ही व्रजके रूपमें प्रकट हैं। श्रीकृण व्रजमय हैं। श्रीकृष्णमय व्रज है। वहाँ प्रेम, आनन्द, शान्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वृंदावन पावन स्थान है। इसके सामने मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता, कोई धाम अच्छा नहीं लगता।

उस समय ब्रह्माजी भगवान की स्तुति कर रहे थे और देव-गण उन पर फूलों की वर्षा कर रहे थे। अपना काम पूरा कर लेने के बाद भगवान ने क्रोधपूर्वक हँसते हुए कहा- असुराधम, तुम सच कह रहे हो। हम जंगली जानवर हैं किन्तु हम तुम जैसे ग्राम-सिंहों (कुत्तों) को ढूँढते फिरते रहते हैं। वीर लोग मृत्यु-पाश में बँधे हुए तुम्हारे जैसे अभागे प्राणियों की आत्म-प्रशंसा (डींग) पर ध्यान नहीं देते हैं।

तुझ बली से डरकर भागना भी चाहें तो भागकर कहाँ जा सकते है? बलवान से बैर बाँधकर कोई सुखी कैसे हो सकता है?

तो आ जा तू पैदल चलनेवाले वीरों का सरदार है। मैं तुम्हारे सामने युद्ध के लिये तैयार खड़ा हूं। मुझे मार कर अपने भाई-बन्धुओं के वध का बदला चुकाले। जो अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति नहीं करता वह नारकीय प्राणी है।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुरजी, जब भगवान ने उसे इस प्रकार ललकारा तो वह क्रोध के मारे तिलमिला उठा। उसकी आँखें क्रोध के मारे लाल हो गईं। वह उस समय लम्बी-लम्बी साँसे ले रहा था फिर उसने बड़ी विशाल गदा से भगवान पर प्रहार किया। भगवान तिरछे होकर उसकी गदा से बच निकले। इस प्रकार दोनों में भीषण गदा-युद्ध चल रहा था। वे एक दूसरे को जीतने का प्रयास कर रहे थे। उस समय उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो दो सांड़ भिड़े हों। इस युद्ध को देखने के लिये, उस समय देवों के साथ, ब्रह्माजी आकाश में पधारे। मैत्रेय मुनि कहते हैं- हे कुरुकुलोद्भव विदुरजी। जिन्होंने अपनी माया से सूकर रूप धारण कर लिया है, उन महामना यज्ञ मूर्ति श्रीहरि का पृथ्वी के निमित्त उस दैत्य हिरण्याक्ष के साथ क्रोधपूर्वक युद्ध होने लगा। उस युद्ध के देखने के लिये ऋषि-मुनियों से घिरे हुए ब्रह्माजी भी वहाँ आ पहुँचे।

उन्होंने वराह भगवान से कहा- प्रभो, यह दैत्य गौ, ब्राह्मण, तथा ऋषियों-मुनियों के लिये महान् कष्टदाता है। इसके साथ बालक की भाँति खिलवाड़ न करें। सायंकाल के समय में राक्षसोंका बल बढ़ जाता है अत: उसके पूर्व ही इसका काम तमाम कर देना ही कल्याणकारी होगा। नाथ, इस समय मंगलमय अभिजित मुहूर्त चल रहा है। इसी मुहूर्त में इसका नाश कर संसार का कल्याण करें। हे अशरण शरण। खिलवाड़ का भी समय होता है, हर समय की क्रीड़ा ठीक नहीं। यह दैत्य साधारण खिलौना नहीं। प्रभो। यह बड़ा बली है, इसने अनेकों निरपराध जीवों को मारा है। यह देवता, गौ और ब्राह्मणों का द्वेषी है, यह किसी अन्य से मारा भी नहीं जा सकता। मैंने इसे सभी प्राणियों से अवध्य होने का वरदान दे दिया है। महाराज। यह साधारण बली नहीं। सभी लोकों को परास्त करता हुआ अपने प्रतिद्वन्द्वी की खोज में यह निकला है। यह देवताओं का कंटक महाअभिमानी वीर्य-शौर्य से संयुक्त, मायावी, मदान्ध और निरंकुश दुष्ट दैत्य है। आप क्रोधित हुए बाल सर्प की भाँति इससे खिलवाड़ न करे। इसे शीघ्रातिशीघ्र मार दें। कुछ ही देर में सायंकाल होनेवाला है। यह दारुण वेला दैत्यों के लिये बलवृद्धिकारिणी होती है। सन्ध्या समय के अनन्तर असुर प्रबल हो जाते हैं, अत: जब तक सन्ध्या नहीं होती तभी तक इसे मार दें। हे ब्रह्मण्य देव, हे गोविन्द, हे सुरेश्वर, हे त्रिभुवन पति अब देर करने का काम नहीं। क्रीड़ा तो बहुत हो चुकी। प्रभो। बड़ा सुन्दर मुहूर्त है। अभिजित नाम का योग है। परम मंगलमय मुहूर्त है। इसमें आपकी अवश्य विजय होगी। मुहूर्त को टलने न दीजिये। इसका अन्त कर दीजिये। ये सभी देवता इससे बड़े दु:खी हैं। इसे मारकर विश्व का कल्याण कीजिये, अधर्म का क्षय कीजिये, धर्म की वृद्धि कीजिये और प्राणियों को अभय प्रदान कीजिये।

नीति कहती है कि अपने पास शक्ति हो तो शत्रुके विनाशमें विलम्ब नहीं करना चाहिए। कभी शत्रु को छोटा नहीं

गिनना चाहिए।

भगवान बोले- ब्रह्माजी, बड़े ही पोथी पत्रा बता रहे हो। लगन मुहूर्त बताना बड़ा आसान है। जरा आकर दो दो हाथ करो तो पता लगे। खाली ग्रह, लग्न, नक्षत्र बता देने से कुछ नहीं होता।

मैत्रेय जी ने कहा विदुर जी, कपटरहित अमृतमय वचन सुनकर भगवान ने उनके भोलेपन पर मुस्करा कर अपनी प्रेमभरी चितवन के द्वारा उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। युद्ध में नि:शस्त्र पर वार नहीं करना चाहिए। दुरात्मना प्राणी यदि कोई काम अच्छा करे उसकी प्रशंसा अवश्य करनी चाहिए जिससे वह अपना गौरव समझे।

अब भगवान ने अपनी कौमोदकी गदा उठाकर हिरण्याक्ष के ऊपर मारी, प्रभु की लीला गदा उस असुर के सिर से टकराकर नीचे गिर पड़ी, क्यों? भगवान के अस्त्र तो अमोघ हैं वे व्यर्थ नहीं जानेवाले, कैसे निरर्थक हो गयी। बोले, भगवान ने संकल्प किया कि एक बार मेरी गदा इससे टकरा कर गिर जाय ऐसा क्यों? लक्ष्मीजी को कठोरता दिखानी है? अपनी कठोरता बाद में दिखायेंगे। जिसको मैं मारने जा रहा हूं वह मेरी गदा से भी ज्यादा कठोर है। पहले यह देख लो। संसार की समस्त कठोरता का सार हैं वज्र। और वज्र से ज्यादा कठोर है भगवान की गदा। भगवान की गदा से भी ज्यादा कठोर साबित हुआ हिरण्याक्ष का शरीर, जो भगवान की गदा के प्रहार से उस असुर के शरीर का एक रोआं भी नहीं टूटा। गदा नीचे गिर पड़ी। देवता लोग यह देखकर हाय-हाय करने लगे। भगवान की गदा अमोघ है व्यर्थ नहीं जानेवाली। आज उसके शरीर से टकरा कर नीचे कैसे गिर पड़ी, ये प्रभु के संकल्प से हुआ हैं। हिरण्याक्ष बोला- देख लिया न अपनी गदा का चमत्कार, मेरा एक रोआं भी टेढ़ा नहीं हुआ। मेरे सामने तुम और तुम्हारे हथियार कुछ नहीं कर सकते। हिरण्याक्ष बोला देखा- विष्णु। अभी मैं चाहूं तो तुझे मार डालूं। लेकिन मारूंगा नहीं मैं धर्म युद्ध का नियम जानता हूं जबतक तुम्हारा हथियार नीचे पड़ा है, मैं तुम्हारे ऊपर प्रहार नहीं करूंगा, लज्जा क्यों कर रहे हो उठा लो, उठा लो। अपनी गदा। हिरण्याक्ष भगवान को ललकार रहा है। असुर भाव से भावित है ना? भगवत् पार्षद होकर के प्रभु से वैर भाव ठान रखा है। भगवान लक्ष्मी को अपनी कठोरता दिखाने के लिये उस असुर को मार नहीं रहे हैं। प्रभु ने अपने चरण के अंगूठे से जैसे लोग फुटबाल उछालते हैं, वैसे उछाल कर गदा पकड़ ली, फिर युद्ध आरम्भ हुआ।

उस समय हिरण्याक्ष भगवान के सामने निर्भय होकर विचर रहा था। उसकी ठुड्डी पर भगवान ने गदा से प्रहार किया। किन्तु आश्चर्य यह हुआ कि वह गदा हिरण्याक्ष की गदा से टकरा कर चक्कर काटती हुई जमीन पर गिर पड़ी। उस समय भगवान शस्त्रहीन हो गये। यह हिरण्याक्ष को प्रहार करने का बड़ा अच्छा अवसर था। किन्तु धर्मयुद्ध का पालन करते हुए असुर-राज ने नि:शस्त्र शत्रु पर प्रहार नहीं किया।

भगवान ने उसकी इस बुद्धि की प्रशंसा की और अपने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया। सुदर्शन, तुरन्त उपस्थित होकर भगवान के हाथ में घूमने लगा। भगवान को सुदर्शन से विभूषित देखकर असुर के क्रोध की सीमा न रही। मारे क्रोध के वह अपना होठ दाँतों से बचाने लगा फिर उठ कर उसने वराह भगवान पर जोर से गदा प्रहार किया। उसे भगवान ने अपने बायें पैर से मार कर नीचे गिरा दिया। दूसरी बार जब उसने गदा चलाई तो वराह भगवान ने उसे अपने बायें हाथ से पकड़ लिया। अब असुर का तेज समाप्त हो गया था फिर उसने भगवान पर लपलपाता हुआ त्रिशूल छोड़ा। हिरण्याक्ष ने अपनी माया का भी प्रयोग किया लेकिन भगवान ने अपने सुदर्शन चक्र से उसकी आसुरी माया काट दी उसके बाद भगवान ने उस असुर को गदा से नहीं मारा, तीर तलवार से नहीं मारा, चक्र से नहीं मारा, सारंग धनुष से नहीं मारा, खड्ग से नहीं मारा। सुदर्शन चक्र ने उस त्रिशूल को आकाश में ही काटकर समाप्त कर दिया। अपने त्रिशूल को निष्फल देखकर दैत्यराज कुपित हो

उठा। फिर उसने भगवान की छाती पर मुष्टिका से प्रबल प्रहार किया और अन्तर्धान हो गया।

आकाश में चारों ओर अन्धकार छा गया, बिजली चमकने लगी असमय में ही वर्षा होने लगी। बादलों की गड़गड़ाहट तड़तड़ान से दिशायें फटने लगीं पशु-पक्षी घोसलों से उड़ने लगे, पृथ्वी हिलने लगी, नदियाँ क्षुभित हो गयी, अग्निहोत्र की अग्नियाँ बुझ गई। वायु वेग से चलने लगी। सूर्य चन्द्रादि ग्रह आकाश में लुप्त हो गये। समय बड़ा ही वीभत्स प्रतीत होने लगा। विष्ठा, मूत्र, पीव, रक्त, केश तथा अन्य अमंगल वस्तुओं की भी आकाश से वृष्टि होने लगी। हाथ में खप्पर लिये जीभ लपलपाती जोगिनी नग्न होकर नाचने लगी हूं-हूं शब्द करके कोलाहल करने लगी। राक्षसी त्रिशूल लिये मुँह से अग्नि की लपटें निकालती हुई, मारो काटो आदि शब्द कहकर चारों ओर दौड़ने लगी। भूत, वैताल, डाकिनी, साकिनी, यक्ष, राक्षस चारों ओर भयंकर अमंगलयुक्त वीभत्स शब्द करने लगे। उनमें से सिंहों पर, कोई घोड़ों पर, कोई रथों पर चढ़े थे, कोई-कोई पैदल ही विचर रहे थे।

आकाश में अन्तर्धान होकर वह मायावी भगवान पर माया का प्रयोग करने लगा। भीषण आंधी चलने लगी। हाथ में त्रिशूल धारण की हुई नंगी राक्षसियाँ मारो काटो कहती हुई युद्धभूमि में विचरण करने लगीं। दिशाओं से पत्थर बरसाने लगे। मेघ मल-मूत्र और पीब की वर्षा करने लगे। इस प्रकार प्रकट हुए उस माया-जल का नाश करने के लिये भगवान वराह ने अपना प्रिय सुदर्शन चक्र छोड़ा। सुदर्शन ने सारी आसुरी माया को क्षणभर में विनष्ट कर दिया। इस प्रकार दैत्यों की आसुरी माया से मोहित होकर सम्पूर्ण प्रजा के लोग हाहाकार करने लगे, भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे, सभी ने समझा कि प्रलय काल उपस्थित हो गया। देवता भी डर गये, ब्रह्माजी चक्कर में पड़ गये, वे बार-बार वेद मन्त्रों का पाठ करने लगे। ऋषि-मुनि स्वस्ति-स्वस्ति, कल्याण हो, मंगल हो। वराह भगवान की जय हो ऐसे शब्द का उच्चारण करने लगे।

उस समय अपने पति का कथन स्मरण हो आने से दिति का हृदय काँप उठा और उसके स्तन से रक्त बहने लगा। माया-जाल के विनष्ट कर दिये जाने पर अत्यन्त कुपित हिरण्याक्ष ने चाहा कि यज्ञपति वराह को वह अपनी भुजाओं में भर कर रगड़कर चूर्ण बना दे। किन्तु उस समय उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि वे तो बाहर ही खड़े हैं।

मैत्रेय मुनि कहते है- विदुरजी। अत्यन्त अवज्ञा के साथ जब विश्वजित भगवान ने उस दैत्य पर प्रहार किया तो उसके सम्पूर्ण शरीर में चक्कर आने लगा। आँखें फट गई। हाथ, पैर और बाल छिन्न-भिन्न होकर छितर गये। वह उसी प्रकार पृथ्वी पर मरकर गिर गया, जिस प्रकार वेगवती आँधी से उखड़कर विशाल वृक्ष निर्जीव होकर गिर पड़ता है।

भगवान को पकड़ने में निष्फल हुए हिरण्याक्ष ने उन पर मुक्कों से प्रहारों की झड़ी लगा दी। तब इन्द्र ने जैसे वृत्रासुर पर प्रहार किया था, उसी प्रकार भगवान ने उसकी कनपटी पर एक लात मारा। भगवान ने कहा- देखो लक्ष्मी, ऐसे कठोर हिरण्याक्ष को मैं तमाचा से मारूंगा ताकि तुमको मेरी कठोरता का अंदाज मिल जाय। नहीं तो गदा तीर तलवार से चक्र से मारूंगा तो झट कह दोगी हां कठोरता तो साबित हुई लेकिन आपकी नहीं आपके चक्र की, गदा की एवं तीर तलवार की अब इन शस्त्रों का सहारा नहीं लूंगा। सबके देखते-देखते वराह भगवान ने एक तमाचा जोर से खींचकर उसके गण्डस्थल पर मारा जिसको कपनटी कहते हैं। चक्कर खाकर गिर पड़ा, आँखे बाहर निकल आयीं मुंह से खून उगलता हुआ, दांत पीसता हुआ, प्राणान्त हो गया। वह दैत्य प्राणहीन होकर इस प्रकार गिरा जिस प्रकार अंजन पर्वत का शिखर टूटकर पृथ्वीपर पड़ा हो। विद्वानों का मत है कि जो प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग करे वह असुर है।

विश्वविजयी भगवान ने यद्यपि बड़ी उपेक्षा से थप्पड मारा था किन्तु थप्पड़ लगते ही वह दैत्य भूतल पर गिर पड़ा और भगवान का श्रीमुख देखते-देखते उसने अपने प्राणों का परित्याग किया। उसकी इस प्रकार की दशा देखकर ब्रह्मादिक

देवों ने उसकी बड़ी प्रशंसा करते हुए कहा- अहो, ऐसी दुर्लभ मृत्यु किसको मिल सकती है? बड़े-बड़े योगीजन समाधि के द्वारा जिसका ध्यान करते हैं, उन्हीं के चरण-प्रहार से, उनका मुख देखते-देखते, इस दैत्यराज ने अपना शरीर त्यागा।

निकसे वाकी भुजनितें, एक तमाचो जड़ि दयो। धम्म धड़ाको सो भयो, कटे वृक्ष सम गिरि गयो।।

हिरण्याक्ष के मारे जाने पर देवों ने भगवान की स्तुति की। देखो इस दैत्यराज के भाग्य को, ऐसा सौभाग्य भला किसे प्राप्त हो सकता है, ऐसी मृत्यु प्राप्त होना तो योगियों के लिये भी दुर्लभ है सभी योगी, त्यागी, विरागी इसीलिये भजन, पूजन, जप-तप, नियम, अनुष्ठान आदि करते हैं कि अन्त समय में हमें भगवान की स्मृति हो जाय, किन्तु इसके सम्मुख तो साक्षात् श्रीहरि ही चतुर्भुज रूप से खड़े हैं। इसकी महिमा क्या कही जाय कि भगवान के श्रीमुख में अपनी दृष्टि गड़ाकर इसने पाञ्चभौतिक शरीर का त्याग किया। ये दोनों भगवान के पुराने पार्षद ही हैं। अब ये कुछ काल में अपने पद पर पुन: प्रतिष्ठित होंगे। हे भगवन्। आपकी जय हो। बड़ा अच्छा किया आपने जो इस दुष्ट का वध किया। यह बड़ा नीच था, पापी था, हमें बड़ा दु:ख देता था। इसके कारण हम सब बड़े दु:खी थे, इसने सभी सुरों के नाकों चने चबवा दिये थे। सबको तुच्छ समझता था। भगवान वराह ने उस राक्षस के साथ पचास साल तक युद्ध किया।

हिरण्याक्ष-जैसे भोगी एवं आलसीको मारकर वहाँसे पृथिवीको निकाला- इसका अर्थ यही है कि यह सृष्टि जो प्रकाशमें आयी है, वह भगवानकी लीला तथा भगवान्की क्रियासे ही आयी है। मैत्रेयजी ने कहा विदुर जी, हिरण्याक्ष का वध कर भगवान अपने लोक में चले गये।

सूतजी कहते हैं- शौनक जी, भगवान के द्वारा हिरण्याक्ष के वध की कथा सुनकर विदुर जी आनन्द में निमग्न हो गये। हिरण्याक्ष वध के प्रसंग में किये गये भगवान वराह के पराक्रम को जो सुनता है, जो गाता है और जो अनुमोदन करता है- वह संसार से मुक्त हो जाता है। यह चरित्र अत्यन्त पुण्यप्राद, परम पवित्र, धन-यश की प्राप्ति करानेवाला, आयुवर्धक और कामनाओं की पूर्ति करनेवाला है। जब जीव पर भगवान सन्तुष्ट होते है, तब फिर उसे कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता। वह कृतकृत्य हो जाता है। फिर वह इन संसारी क्षुद्र विषयों की ओर घूमकर भी नहीं देखता। ऐसे व्यक्ति बड़े-बड़े पापों से रहित होकर धन, यश, पद, आयु, शौर्य, विजय इत्यादि के सहित भगवान के चरणों को प्राप्त करते हैं। भगवद् धाम को प्राप्त करते हैं।

योग समाधि लगाइ जिनहिं योगीजन ध्यावहिं। नेति-नेति नित कहें वेदहू पार न पावहिं।।
अन्तकालमहँ अवश नाम ले नर तरि जावहिं। चौरासीतें छूटि जगतमहँ फिरि नहिं आवहिं।।
बड़भागी दितिसुत असुर, हरि निरखत निज तनु तज्यो। प्रभु प्रहारतें ई मर्त्यो, शत्रु भावतें हरि भज्यो।।

जितने विभीषण, प्रह्लाद, ध्रुव, ययाति तथा अम्बरीष आदि भगवतभक्त हुएहैं वे सब हरि कथा के ही प्रभाव से स्वयं भी मृत्यु के सिर पर पैर रखकर परम पद को प्राप्त हुए हैं तथा अपनी अक्षुण्य कीर्ति भी सदा के लिये पृथ्वी पर छोड़ गये हैं, जिसके श्रवण से अब तक संसारी लोग तर रहे हैं और आगे भी तरते रहेंगे।

यह एक प्रसंग है कि पृथ्वी की उत्पत्ति कैसी हुई, पृथ्वीको कैसे रखा। इसके साथ उतारनेमें, लानेमें हिरण्याक्ष महाराज मिल गये। वो महाराज बड़े दैत्य, विशाल थे। उनको युद्ध करनेमें बहुत खुजली थी, जगह-जगह घूम रहे थे। उनको नारदजी मिल गये और हिरण्याक्ष बोले- मेरे साथ युद्ध करो। नारदजी बोले- मैं तो अपने ताल-मजिरे बजानेवाला हूँ। तुझे बहुत ही खुजली है युद्ध करने की तो वरुण सबसे शक्तिशाली है तू वरुण के पास जा। वरुणने बोला- मेरेसे तो शक्तिशाली हिमालय पर्वत है वहां तू अपने आपको रगड। अब वह बोला मैं तो सबसे लड़ूँगा अभी या तो फिर मेरेसे लड़ो कोई। एकने

बता दिया अभी बोले वराह यहां बहुत बड़ा आया हुआ है भगवान का रूप है वो ही तेरी खुजली मिटा सकता है। वह चला गया ढूँढते-ढूँढते क्षीरसागर में, रसातल में चला गया। भगवान पृथ्वी को उबारकर ला रहे थे। वहीं युद्ध हुआ, जोरोंसे युद्ध हुआ। गदा युद्ध। भगवान के पास कौमुद की गदा, हिरण्याक्ष के पास फौलाद की गदा। इतने बड़े-बड़े लोगोंकी गदा भी बड़ी-बड़ी होती होगी। हिरण्यकश्यपु लोभ का अवतार, लोभी राक्षस। उसका मुकुट आकाश को छूता था, और हिरण्याक्षकी भुजाएं दसों दिशाओंको छूती थी। इतने लम्बे हाथ, फिर उसका गदायुद्ध हुआ। गदायुद्धमें लडते-लडते भगवान ने खूब देर तक खेल खेला। ब्रह्माने स्तुति करी कि भगवान इसे जल्दी खत्म कर दीजिए। पृथ्वी बहुत डगमगा रही है। पृथ्वी कही रसातल में ना चली जावे। गदासे उसका सिर तोड़ दिया। हिरण्याक्ष काम में आ गया चला गया। भगवान पृथ्वी ले आये रसातलसे पृथ्वीको स्थापित करी। मनुसत्रूपा के लिए सृष्टि बनी।

हिरण्याक्ष के अत्याचारों से देश को मुक्त कराने का बीड़ा उठाकर जो व्यक्ति सर्वप्रथम खड़ा हुआ उसका नाम वराह था। वराह एक प्रतीक नाम है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह मनुष्य न होकर सूअर था और सूअर के नेतृत्व में हिरण्याक्ष के वध का आंदोलन संपन्न किया गया। वास्तविक बात यह रही होगी कि इस व्यक्ति ने हिरण्याक्ष को नष्ट करने के लिए जिस प्रकार के लोगों तथा जिस पद्धति से उनका संगठन किया वह वराह के गुणों और प्रवृत्ति से मिलती-जुलती होगी। वराह में बुद्धि नहीं होती, वह शक्तिशाली होते हैं, झपट कर हमला करते हैं लेकिन स्वच्छता और संयम से कोसों दूर रहते हैं। वराह तथा उसकी सेना के लोग भी ऐसे ही रहे होगे, उनमें स्पष्ट ही नीति, न्याय और निष्ठा आदि बातों का अभाव रहा होगा। लेकिन इन सब दोषों के बावजूद अपनी उस सेना को लेकर वराह ने हिरण्याक्ष पर हमला किया। दोनों के बीच युद्ध हुआ और अंत में हिरण्याक्ष की सेना को नष्ट कर वराह ने हिरण्याक्ष को भी मार डाला। जिस स्थान पर यह घटनाएं हुई उसका नाम वराहमूलम पड़ा और आज तक वह स्थान कश्मीर में बारामूला के नाम से प्रसिद्ध है। संभव है कि यह हिरण्याक्ष की राजधानी रही होगी, वराह ने वहीं पर हमला करके उसे नष्ट किया हो तथा इस महान घटना की स्मृति में ही वराह के नाम पर उसका नामकरण कर दिया गया हो।

कश्यप ऋषिकी सोलह पत्नियोंमे से एक पत्नी- दिति दैत्योंकी माता। कश्यप ऋषि मरीचि और कलाके पुत्र। उस कश्यपकी पत्नी दिति- दैत्योंको जन्म देनेवाली।

एक दिन कश्यप ऋषि शामके समय किसी तपस्या में बैठे थे। दिति आयी कामातुर थी क्योंकि अदिति के बारह पुत्र हो चुके थे। बोली- भगवान मेरी एक प्रार्थना है। ऋषि बोले- देवि, कहो। सायंकाल का समय था छ: बजे। वह बोली- महाराज अदिति को तो बारह पुत्र हो गये। मेरे तो एक भी पुत्र नहीं है। आपकी मुझमें कुछ प्रीति कम है। ऋषि बोले- नहीं, हो जायेंगे, समय आनेपर हो जायेंगे। वह बोली- महाराज मेरा मन कामातुर हो रहा है। कश्यप तपस्वी थे और बोले इस समय में नहीं फिर थोड़ा समय जाने दो। दिति बोली- फिर कब। ऋषि बोले- यह सांझ का समय है और भगवान शिव अपने नन्दीपर बैठकर अपने गणोंके सहित तीनों लोकोंमे घूमते है। इस कालमें उनकी अवहेलना करना नाशकारक है। आप सायंकाल का समय जाने दो। सायंकाल का समय सम्भोग और गर्भाधान के लिये उचित समय नहीं है। दीति कामातुर थी रहा नहीं गया। कश्यपका वहीं बैठे-बैठै उत्तरीय वस्त्र खिंच लिया। कश्यपने देखा ये माननेवाली नहीं है। गर्भाधान हो गया। दितिको बड़ी लज्जा महसूस हुई भगवान से प्रार्थना करी, भगवन, मैं कामातुर होनेके कारण मेरा अपराध बन गया। लेकिन मुझे पुत्र दो अच्छे चाहिये। ऋषि बोले- दिति तुमने जो किया गलत किया। भगवान शंकर का अपमान हुआ है। गलत समय में गर्भाधान हुआ है। जो होनहार थी हो गयी लेकिन ये तो तुम्हारे दो पुत्र किसी हालत में विद्वान हो नहीं सकते। पर इनका एक पुत्र होगा बड़ेवाले पुत्र का पुत्र। वो बड़ा भगवतवत्सल होगा। भगवान का रूप होगा। वो तुझे

कीर्ति दिलायेगा। ये तो दोनों पुत्र गलत समय में गर्भाधान हो गये। ये वो ही तो जय और विजय नामके राक्षस, पार्षद जो थे वो दितिके गर्भसे जन्म ले रहे हैं। दितिका गर्भ बढ़ते गया, सौ वर्ष हो गये। गर्भ नहीं हुआ। चारों लोक, तीनों लोक त्राही-त्राही कहकर पुकारने लग गये। अंधेरा छाने लग गया। ब्रह्माजी गये भगवान के पास और बोले- भगवन ये क्या हो रहा है? भगवन बोले- कुछ नहीं, जय और विजय अभी बाहर आ जायेंगे। सौ वर्ष हो गये, अन्धेरा छा रहा उसके पहले ही आ जायेंगे। ये पूरा अन्धेरा करनेवाले हैं। सौ वर्षके बाद जय-विजय ने हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु के रूप में इस पृथ्वीपर जन्म लिया। बड़े-बड़े दैत्य एक की भुजाएं इतनी लम्बी, एक लोभ का अवतार, एक कामका अवतार, एक का मुकुट ऊपर चढ़ता है, एक की दिशाएं छूले ऐसे दो हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु का जन्म हुआ। हिरण्याक्ष की दिग्विजय उसने करी सब जगह घूमता रहा आखिर में लड़ाई करके वराह भगवान के साथ युद्ध में मारा गया। इसतरह से यह ब्रह्माजीकी सृष्टिमें जय-विजय का आख्यान है।

देना हो तो दीजिये जन्म-जन्म का साथ।
मेरे सरपर रखदो कान्हा अपने ये दोनों हाथ। देना हो तो...
झुलस रहे है गम की धूप में प्यार की छैया कर दे तू, बिन पानी के नाव चले ना अब पतवार पकड़ ले तू
मेरा रस्ता रोशन कर दो, है अन्धियारी रात। देना हो तो...
इस जन्म में सेवा देकर बहुत बड़ा एहसान किया, तू ही ठाकूर, तू ही कान्हा हमने तुझे पहचान लिया।
तू ही ईश्वर, तू ही अल्लाह हमने तुझे पहचान लिया।
जनम् जनम् तक साथ रहोगे रखलो मेरी बात। देना हो तो...
सुना है हमने शरणागत को अपने गले लगाते हो, ऐसा हमने क्या मांगा जो देनेमें शरमाते हो।
जनम् जनम् तक साथ रहोगे रखलो मेरी बात। देना हो तो...

सृष्टिविषयक प्रश्न में आता है- हंस अवतार और हयग्रीव अवतार भगवान ने लिये। हयग्रीव अवतार जो है हयग्रीव नामका राक्षस, दैत्य वेदोंको लेकर पानीमें चला गया और पानीमें छुपाया। तो भगवान ने विभिन्न अवतार लिये- कूर्म अवतार, मत्स्यावतार, वराह अवतार, नरसिंह अवतार जिसमें मुंह शेर का धड़ आदमी का। यह हयग्रीव अवतार- मुंह घोड़े का बाकी सब आदमी का। ऐसा अवतार लेकर उन वेदोंको पानीमेंसे निकालकर लाये। यह तीसरा अवतार है।

सनकादिक ऋषि ने एक बार अपने पिताश्री ब्रह्माजी से पूछा कि यह सृष्टि बनायी क्यों है? ऐसे प्रश्न जब ब्रह्मासे किये तो जब ब्रह्मा इसका उत्तर नहीं दे पाया कि भगवान सृष्टि क्यों कराना चाहते है ? भगवान हरिने उत्तर दिया- यह तो उनका क्रीड़ा-खेल हैं क्यों कराना चाहते है। तो भगवानने हंसका अवतार, रूप लेकर उन सनकादिक ऋषियोंको, उन ब्रह्माको यह भागवत सुनायी, चतु:श्लोकी भागवत उस भागवत का निरूपण इस भागवत में किया यह सनकादिक ऋषिको बताया यह हंस अवतार यह चौथा अवतार हुआ। इस तरह से भगवान के चार अवतार होते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति होती है, सृष्टि इन उत्पत्तियोंसे धीरे-धीरे बढ़ने लगती है, मनुशतरूपा एक नर और मादाका जोड़ा बन गया है। उनको बताया गया है कि तुम भी अपनी सृष्टि की उत्पत्ति करो। यहां तक शुकदेवने राजा परीक्षितको सृष्टि उत्पत्ति विषयक ज्ञान बताया।

पहली भागवत जो सूतजी शौनकादि ऋषियोंको सुना रहे हैं। दूसरी भागवत शुरू होने जा रही है। दूसरी भागवत जो राजा परीक्षितको शुकदेव सुना रहे हैं। तीसरी भागवत जो उद्धवजी को कहा था कि तुम विदुर को बोलना मैत्रेय मुनिसे मिले और वो तुम्हें मेरा उपदेश देंगे।

७) जय-विजय को शाप

जय विजय हरिदास को, सनकादिक दियो शाप। जाय दुष्ट भू लोक में, भोगों तीनों ताप।।

विदुरने मैत्रेय मुनिको पूछा, यह हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु कौन हैं? इनकी उत्पत्ति कैसे हुई? जिन्होंने भगवान के साथ युद्ध किया। तब मैत्रेय मुनिने कहा- विदुर। यह दोनों भगवान नारायण के पार्षद हैं। यह हिरण्याक्ष प्रजापति भगवान कश्यप का पुत्र है। वह प्रजापति दक्ष कन्या दिति के गर्भ से उत्पन्न हुआ। वह बड़ा शूरवीर और पराक्रमी था। भगवान के अतिरिक्त और कोई भी इसे मारने में समर्थ नहीं था। इसलिये भगवान ने वराह रूप का धारण किया। एक बार उनको सनकादिक ऋषियों से शाप मिल गया उसी कारण वे पृथ्वी लोक पर उत्पन्न हुए। उनका वर्णन इसप्रकार है।

बात बहुत पुरानी है। तुम्हारे पूर्वज और हमारे मानसपुत्र सनत्कुमार आदि समस्त लोकों में भ्रमण किया करते थे। उनके मन में किसी भी प्रकार की स्पृहा न थी, इच्छा न थी। एक बार भ्रमण करते हुए वे भगवान विष्णु के लोक वैकुण्ठ में पहुँचे। यह लोक सारे लोकों से ऊपर है। इसकी आभा-प्रभा विलक्षण है। भगवान लक्ष्मी जी के साथ इस लोक में सदा विराजमान रहते हैं। वैकुण्ठ में कल्प-वृक्षों की विशाल कतारें हैं। इसे नै:श्रेयस वन कहते हैं। वहाँ भ्रमर भी भगवत्कथा का संगीत गुनगुनाते हैं। सुगन्धित विविध पुष्पों की मनोहारिणी गन्ध चारों ओर वातावरण को आकर्षक बना रही है। हंस, कोकिल एवं मयूर आदि पक्षियों की सुमधुर ध्वनि यहाँ सर्वदा निनादित होती रहती है। वहां रहनेवाले सभी लोगों का आकार-प्रकार, वेश-भूषा आदि सब कुछ भगवान् विष्णु के जैसा ही होता है। वे लोग निष्काम भाव से हरि की आराधना में तन्मय रहते हैं। वहाँ के आवास, वहाँ की भित्तियाँ और भूमियाँ सब के सब मणियों से निर्मित हैं। परम सौन्दर्य सम्पन्न लक्ष्मीजी हरिके भवन में चंचलता रूप दोष को छोडकर निवास करती है।

सर्वाधिक ऊँचाई पर स्थित उस वैकुण्ठलोक में वे ही परम भागवत निवास करते हैं; जिनकी आँखों से, भगवत्कथा सुनने पर अविरल अश्रुधार बहती रहती है और जिनका शरीर रोमांच से भरा होता है। वह लोक पुण्यों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। करुणासागर की जिस भाग्यशाली पर कृपा हो जाय, जिसे अनुग्रह करके वे अपना लोक दिखाना चाहते हैं, वही उनके उस लोक के दर्शन करता है। जिन्हें अपने साधन का अभिमान है, अपने बल पुरुषार्थ तथा पुण्यकर्मों का भरोसा है, वे लोग अधिक-से-अधिक मेरे लोक तक आ सकते है। इससे ऊपर नहीं। भगवान के लोक में द्वेष, द्वन्द, ईर्ष्या, मद, मत्सर, काम आदि का कोई भी नाम नहीं है।

भगवान वैकुण्ठनाथ के दर्शन की लालसा से भरे हुए, अत: अन्य दर्शनीय सामग्रियों की उपेक्षा करते हुए, वे सनकादि चारों कुमार छ: ड्योढ़ियाँ पार कर सातवीं पर पहुँचे तो देखा कि दो सुन्दर तरुण अलंकृत व्यक्ति हाथ में गदा लिये हुए खड़े हैं। वैकुण्ठ के उन प्रतिहारों का नाम था- जय और विजय।

सनत्कुमार आदि अवस्था में सभी ऋषियों, मुनियों और देवताओं से बड़े थे किन्तु देखने में वे पाँच वर्ष के बालक जैसे प्रतीत होते थे। जब वे सात ड्योढ़ी पार कर आठवें कक्ष में प्रवेश करने लगे तो जय-विजय ने द्वार पर छड़ी लगाकर उन्हें रोक दिया। यद्यपि वे पूज्य थे, समदृष्टि थे, तत्त्वज्ञ थे और थे दिगम्बर भी। ज्यों इन चारों कुमार वैकुण्ठ द्वार से प्रवेश करना चाह रहे थे। जय-विजय नाम के द्वारपालों ने यों छड़ी लगाकर लाठी आड़े करके इनको रोका और कहा- नंग धड़ंग दिगम्बर वेष में हमसे बिना पूछे कहां जा रहे हो। हम किसलिये खड़े हैं।

सनत्कुमार बोले- हमारे माता-पिता से मिलने से तुम कैसे रोक सकते हो? उन्हे धक्का देकर प्रवेश करने लगे।

अत: जय-विजय के द्वारा किये गये इस प्रकार के धृष्ट व्यवहार के योग्य नहीं थे। कुमारों ने भगवान के दर्शन की लालसा प्रकट की। अत: जय-विजय के द्वारा रोक दिये जाने पर उन्हें कुछ-कुछ क्रोध आ ही गया, उनकी आँखें लाल हो गईं। वे बोले- अरे मूर्खों। हम तो भगवान के परम भक्त है, हमारी गति कहीं भी नहीं रुकती। हम उनके देवाधि देव के दर्शन करेंगे। भगवान का स्वभाव तो परम शांतिमय है। तुम्हारा स्वभाव भी वैसा ही होना चाहिए था। भगवान का तो कोई शत्रु नहीं है। फिर किस शंका से हमें रोक रहे हो? तुमने भेद बुद्धि के कारण ऐसा किया है।

द्वारपाल जय-विजय ने पाँच वर्ष के बालकोंको अन्दर घुसते देखा और उन्हें झट बेंतसे रोक दिया और कहा कि तुम लोग भीतर नहीं जा सकते। भगवन प्राप्तिके लिये ज्ञान भी चाहिए। जय-विजय के रोकनेपर उन्हें रोष आ गया। वे भौहें तानकर बोले- अच्छा तुम्हारे प्रभु को पता लग जाय कि सनकादिक आये हैं तो वे शेषशैय्या छोड़कर आए। हमारे चरणों की धूलि अपने मस्तक पर और किरीट पर लगाकर अपने को धन्य बतावें। और ऐसा शील सिन्धु करुणानिधान स्वामी के सेवक होकर तुम हमें दण्डा दिखा रहे हो। हम दण्ड के अधिकारी हैं? तुमनें दंड दिखाकर उद्दण्डता की है। इसलिये तुम्हें दण्ड मिलेगा। यह तो समदर्शी लोगों के रहने का स्थान है। तुम लोगों का स्वभाव विषम है। जो भगवान की सेवा में रहते हैं, उनको जान लेते हैं उनकी भेद-वृत्ति मिट जाती है। तुम लोग रहते हो भगवान के पास और करते हो इतना भेद? अत: तुम दोनों यहाँ रहने के योग्य नहीं हो। जिसने भली प्रकार भक्तिभाव पूर्वक भगवत् परिचर्या नहीं की है, वह इस लोक में आ ही नहीं सकता और जो भगवतभक्त है, वह कभी किसी के साथ कठोर बर्ताव कर नहीं सकता। दीनता, नम्रता, सरलता, ऋतुजा तथा मृदुता यही तो भक्तों के भूषण हैं। भक्तों में भगवान के सभी गुण आ जाते हैं। यहां तो समदर्शी लोगोंके रहनेकी जगह है। तुम लोगोंका स्वभाव विषम है। जो भगवान्को जान लेते हैं, उनकी भेद-वृत्ति मिट जाती है। तुम लोग भगवान्के पास रहते हो पर इतना भेदभाव करते हो? तुम यहाँ रहने योग्य नहीं हो। इसलिये तुम लोग उस लोक में जाओ जहाँ काम-क्रोध-लोभ रहते हैं। तुम भगवान के पार्षद होकर हमें भगवान से मिलने से वंचित करते हो। इसलिये जाओ तुम दोनों राक्षस हो जाओ। तुम दोनों मन्दमति हो। तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। अत: हम तुम्हारे हित के लिये तुम्हें यह शाप देते हैं कि अब तुम इस लोक में रहने योग्य नहीं रहे। तुम्हारे हृदय में आसुरी भाव आ गया है, अत: तुम अभी आसुरी योनि में प्राप्त होकर उस लोक में गिर जाओ जहाँ के लोग काम क्रोध और लोभ के अधीन रहते हैं, क्योंकि बिना भेद बुद्धि के काम क्रोधादि होते नहीं। अत: तुम्हारा इस लोक से तुरन्त पतन हो जाय।

स्वामी तुम्हारे आदर देवें तुम करते अपमाना। तीन जन्म तक असुर बनोगे द्विज के बचन प्रमाना।
पीछे उभय पक्ष को करन पर्‌यो पछतावा।।

जय-विजय मुनियों के शाप को सुनते ही वे दोनों पार्षद काँपने लगे। हाय, आज हमारी बुद्धि को क्या हो गया? कभी प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते, कभी प्रभु के आदरणीय इन ऋषियों का भी अपमान नहीं करते। अब तो वैकुण्ठ से हमारा पतन होगा। इधर चारों कुमार अफसोस कर रहे हैं। आज हमने क्यों श्राप दिया इतनी सी बात पर क्रोध क्यों आया? इनकी क्या गलती थी? यह बिचारे तो अपना कर्त्तव्य कर रहे थे। द्वारपाल तो होते ही इसलिये कि कोई बिना पूछे प्रवेश करें तो उन्हें टोक देवे। और पूछे की कहां जाना चाहते हो?

उन्हें ज्ञात था कि ब्राह्मणों का शाप अनिवारणीय हुआ करता है। उन्हें यह भी विदित था कि उनके स्वामी ब्राह्मणों से बहुत डरते हैं अत: अत्यन्त कातर भाव से वे दोनों हरि-पार्षद मुनियों के चरणों पर गिर पड़े। बड़ी दीनता से हाथ जोड़कर उन लोगों ने अपने अविचारित कृत्य के लिये क्षमा-याचना की और कहा- भगवान की आज्ञा का ठीक-ठीक अभिप्राय, न जानकर हम

लोगों ने आप का अपराध किया है अत: आपके द्वारा दण्ड देना सर्वथा उचित है। किन्तु प्रभो, हमारी एक प्रार्थना है। कृपापूर्वक आप उसे सुनें। ब्रह्मन, आपके शाप के कारण अधमयोनियों में जाने पर भी हमें भगवत्स्मृति को नष्ट करनेवाला मोह न प्राप्त हो। भगवान का स्मरण हमें सर्वदा बना रहे। हम किसी भी योनि में जाने पर भगवान को नहीं भूलें और मोह को प्राप्त न होवें।

प्रभो। हमें आपका शाप स्वीकार है। शाप क्या है, यह हमारे ऊपर अनुग्रह है। इस दंड से हमारे मद का नाश होगा भेद बुद्धि दूर होगी भगवान की आज्ञा उल्लंघन रूपी पाप का प्रायश्चित्त हो जायगा। इनमें सभी प्रकार हमारा कल्याण-ही-कल्याण है। किन्तु हे करुणा वरुणालय मुनियों। हमारी एक भीख है। वह यह कि हम भले ही आसुरी अधम योनि में जायँ, किन्तु भगवत् स्मृति सदा बनी रहे। किसी भी भाव से सही, हम क्षण भर को भी भगवान को न भूल सकें। कृपा करके यह वरदान हमें और देते जायँ। अपराधवश हमें नरक में भी जन्म लेना पड़े तो ठीक है लेकिन हमारा मन अहर्निश प्रभुके चरणारविन्द में लीन रहे। हमें नित्य भगवान्का स्मरण बना रहे, भगवान्की स्मृति नहीं छूटे।

दोनों पार्षदोंमें विकार आया। विकार कहीं बाहर से नहीं आता। इच्छा की पूर्ति न होने से क्रोध उत्पन्न होता है। सनकादि की स्वतन्त्रता पर जय-विजय ने अवरोध उत्पन्न किया, उन्हें क्रोध आया। इसी क्रोध के कारण सनकादिकों को भगवान के वैकुण्ठ धाम का दर्शन लाभ नहीं मिला।

वैकुण्ठ में वैकुण्ठनाथ लक्ष्मी के साथ विराजमान थे। उनमें परस्पर कुछ हास-परिहास चल रहा था। इसी समय भगवान को ज्ञात हुआ कि द्वारपालों ने सनकादि साधुओं का अनादर कर दिया है। अपने व्यक्तियों के द्वारा ब्राह्मणों का अनादर, साधुओं का असत्कार भगवान को सह्य नहीं अत: वे लक्ष्मीजी के सहित अपने उन्हीं श्रीचरणों से शीघ्र ही वहाँ पहुँचे, जिन्हें परमहंस मुनिजन भी ढूँढते रहते हैं- सहज में पाते नहीं।

द्वारपाल उधर सनकादिक अब जब साधुओं के हृदयघन भक्तवत्सल प्रभु को मालूम हुआ कि मेरे द्वारपालों के द्वारा सनकादिकों का अपमान हुआ हैं, इतने में कृपासिन्धु नारद पधारे।

ब्रह्माजी कहते हैं- देवताओं। इधर श्रेष्ठ पुरुषों के पूजनीय पद्मनाभ भगवान पुरुषोत्तम ने जब सुना कि मेरे सेवकों ने सनकादि मुनियों का तिरस्कार किया है तो उसी समय नंगे पैरों ही लक्ष्मीजी को साथ लिये हुए बिना सवारी ही उन्हीं चरणों से चलकर वहाँ आये, जिनका अन्वेषण परमहंस महामुनि सदा करते रहते हैं।

सनकादि मुनीश्वर निरन्तर ब्रह्मानन्द में निमग्न रहा करते थे। भगवान का दिव्य दर्शन कर मुनियों का क्रोध शान्त हो गया। इतना ही नहीं, वे अपने क्रोध के लिये मन ही मन पश्चात्ताप भी करने लगे। वे भगवान के श्रीचरणों पर गिर पड़े और हाथ जोड़ते हुए प्रभु की स्तुति करने लगे-हे अजित, हे अनन्त, हे अनादि, हे अज-सर्वेश्वर, हे कृपासिन्धु प्रभु। आज हमसे भारी भूल हो गई। आप अपनी कृपा करके उसको सुधार दीजिये। प्रभो इस समय आप विशुद्ध सत्त्वमय श्री विग्रह से हमारे नेत्रों के सामने साक्षात् विराजमान हैं। हमारा चित्त भ्रमरों की तरह आपके चरणकमलों में रमण करता रहे, प्रभो, हम वाणी नेत्र एवं कानों से आपका सुयश गाते रहें, आपके दिव्य स्वरुप का दर्शन करते रहें एवं आपकी कथा सुधा का कानों से श्रवण करते रहें।

हे प्रभो, आप की सृष्टि में आदि मध्य और अन्त है। आपने ही सृष्टिकी रचना की है। आप सब के हृदय में सर्वदा विराजमान रहते हैं किन्तु आज आपका प्रत्यक्ष दर्शन कर हम कृतार्थ हो गये। प्रभो, आप का सुयश अत्यन्त कीर्तनीय और सांसारिक दु:खों को निवृत्ति करनेवाला है। आपके चरणों की शरण में रहनेवाले जो महाभाग आपकी कथाओं के रसिक हैं, वे आपकी परमकृपा से प्राप्त मोक्ष की भी परवाह नहीं करते। फिर तो आपकी भृकुटि के तनिक कुटिल होते ही जो भयाक्रान्त हो उठते हैं, उन स्वर्ग आदि लोकों की बात ही क्या है? आपके दर्शनोंके लिये बड़े-बड़े योगीजन, देवतागण

तरसते हैं। आपका साक्षात्कार प्राप्त करके हमारे नेत्रोंको बहुत बड़ा सुख प्राप्त हुआ।

वैकुण्ठ लोक में और उसमें भी भगवान के भक्तों पर क्रोध करके सनत्कुमार आदि नें गलती कर दी थी, पाप कर दिया था। पाप का फल नरक होता है, नारकीय योनियाँ होती हैं अत: उन्होंने भगवान से प्रार्थना करते हुए कहा- भगवन्, यदि हमारा चित्त भौंरे की तरह आपके चरण कमलों में ही रमण करता रहे, हमारी वाणी, तुलसी के समान, आपके चरण-सम्बन्ध से ही शोभा-सम्पन्न होती रहे और हमारे कान आपकी कीर्ति-सुधा से परिपूर्ण होते रहें तो अपने पापों के कारण भले ही हमारा जन्म नरकादि योनियों में हो जाय- इसकी हमें कोई चिन्ता नहीं है। भगवन् आप तो उदारमना हैं, अपराध तो हमारा है। ब्राह्मण होकर हमें क्रोध नहीं करना चाहिए।

आपने सम्प्रति हम लोगों के समक्ष जो रूप प्रकट किया है, इससे हमारे नेत्रों को परम तृप्ति प्राप्त हो रही है। हम इस रूप को बार-बार प्रणाम करते हैं।

जिनकी चर्चा चतुरानन के श्रीमुख से सुनते आये। अहो भाग्य निज नैनन ते उन प्रभु के दर्शन पाये।।
किन्तु अचानक पहुंच धाम में भूल भई अति भारी। कृपासिन्धु निज सहज कृपा से लीजै आप सुधारी।।

ब्रह्माजी ने कहा- देवों, मुनियों के वचनों को सुनकर भगवान ने उनका अभिनन्दन करते हुए, इस प्रकार बोले- हे ऋषिवन्दों, आपसे क्या भूल हो गई। सनकादिक बोले- प्रभो। आपके द्वारपालों ने हमें प्रवेश करने से रोक दिया इसलिये हमें रोष आ गया जो नहीं आना चाहिये था। हमने इनको श्राप दे दिया कि तुम तीन जन्मों तक असुर बनोगें। हमसे यह भूल हो गई। भगवान बोले- मुनिगणों। ये भूल नहीं हुई, आपने ठीक ही किया है। मैं संतों का इतना आदर करता हूं उनके चरणों की धूलि अपने किरीट पर मस्तक पर लगाकर मैं अपने को धन्य मानता हूं और मेरे जैसे स्वामी के सेवक होकर इन्होंने उद्दण्डता की आपको दण्ड दिखाया। आप जैसे संतों को दण्ड दिखानेवाले और की कौन कहे, मेरी भुजा भी हो तो मैं अपनी भुजा को भी काटकर फेंक सकता हूं। मुनिवर। आपकी कोई गलती नहीं है। जो कुछ हुआ है वह मेरी प्रेरणा से हुआ है।

हे मुनिवरों, गौ, ब्राह्मण और अनाथ प्राणी, ये साक्षात् मेरी मूर्तियाँ हैं। जो इन्हें सताता है, उनकी खाल यमराज गिद्धों से नुचवाता हूँ। गाली देते ब्राह्मणों को भी मेरी ही मूर्ति समझकर जो उनकी पूजा करता है, प्रसन्नचित्त होकर हँसता ही रहता है और प्रेमपूर्ण सम्बोधनों से उन्हें बुलाता है, मैं उसके वश में हो जाता हूँ।

श्री भगवान सनकादिक मुनियों से कह रहे हैं- कुमारों। जो मेरे अमल यशरूपी अमृत रस में श्रवणों द्वारा स्नान करते हैं, वे लोग फिर चाहे चाण्डाल ही क्यों न हो, तुरन्त पवित्र हो जाते हैं, इसलिये मेरा नाम वैकुण्ठ है। किन्तु मुझे यह महान् कीर्ति आप ब्राह्मण के ही द्वारा प्राप्त हुई है। आप ही इस सम्मान के देनेवाले हैं, अत: जो आपके प्रतिकूल आचरण करेगा, उसे मैं तुरन्त काट डालूँगा, फिर चाहे वह मेरे हाथ ही क्यों न हो।

आपको दण्ड दिखाकर आपका अपमान किया, आपने इनको श्राप देकर अच्छा किया। लेकिन मुनियों अभी श्राप अधूरा है क्योंकि सेवक के अपराध के लिये स्वामी को भी जिम्मेदार ठहराया जाता है। क्यों? ऐसे उद्दण्ड सेवकों को स्वामी अपने दरवाजे पर रखा है। इसलिये अभी दण्ड अधूरा है। इनको तो दण्ड दे ही दिया, अब मुझको भी कुछ दण्ड दीजिये, मुझे भी श्राप दीजिये। तब दण्ड सही माना जायेगा? घबड़ा गये सनकादिक, प्रभो, हमें आदर दे रहे यह ठीक है पर प्रभो, भूल तो हम से हुई ही है। तबतक जय-विजय बोले- नहीं, नहीं, भगवन् भूल आपसे नहीं हुई। भूल तो हमसे हुई है। अब ठाकुरजी ने खुलकर बताया - न भगवन्, आपसे भूल हुई न तुमसे भूल हुई। ऐसी आपकी इच्छा क्यों हुई प्रभो। तो भगवान बोले- कि लक्ष्मी मेरी कठोरता देखना चाहती थी।

जय और विजय हमारे पार्षद हैं, सेवक हैं। इन्होंने मेरी कुछ भी परवाह न करके आप का बड़ा अपराध किया है। आप लोग मेरे अनुगत भक्त हैं। भक्त मेरा अपना ही स्वरूप होता है अत: यह आपके प्रति नहीं, अपितु मेरे प्रति अपराध है। ब्राह्मण मेरे परम आराध्य हैं; मेरे अनुचरों के द्वारा आप लोगों का जो तिरस्कार हुआ है, उसे मैं अपने द्वारा ही किया गया मानता हूँ। सेवक का किया हुआ अपराध स्वामी का ही अपराध माना जाता है- इसलिये मैं आप लोगों से क्षमा-याचना कर रहा हूँ।

यह पवित्र कीर्ति मुझे आप लोगों से ही प्राप्त हुई है अत: जो कोई आप के विपरीत आचरण करेगा उसे मैं अवश्य काट डालूँगा, चाहे वह मेरी भुजा ही क्यों न हो। आप ब्राह्मणों की सेवा का ही यह फल है कि मेरे चरणों की धूलि अतिशय पावन बन गई है। उसमें सारे पापों को सद्य: विनष्ट करने का सामर्थ्य आ गया है। ब्राह्मणों की उपासना का ही यह फल है कि मुझे अत्यन्त सुन्दर स्वभाव प्राप्त हुआ है। मेरे इस स्वभाव के कारण ही लक्ष्मीजी मुझे एक क्षण के लिये भी नहीं छोड़तीं। यद्यपि मैं उनकी ओर से उदासीन रहता हूँ। यह वही लक्ष्मी जी हैं जिनकी लेशमात्र कृपा-कटाक्ष प्राप्त करने के लिये ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता अनेक प्रकार के व्रतों एवं नियमों का पालन करते हुए घोर तप में रत रहते हैं।

मुझे अग्नि की अपेक्षा ब्राह्मणों का मुख अधिक पवित्र लगता है। ब्राह्मणों के मुख में डाले गये घी से तर ग्रास से मैं जैसा सन्तुष्ट होता हूँ वैसा यज्ञाग्नि में डाली गई यजमान की आहुति से नहीं होता। मेरी योगमाया का अखण्ड और असीम ऐश्वर्य मेरे अधीन है। मेरे चरण की धोवनरूप गंगाजी, चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करनेवाले भगवान शंकर के सहित समस्त लोकों को पावन बनाती है। इस प्रकार का परम पवित्र और परमेश्वर होकर भी मैं ब्राह्मणों की पावन चरण-धूलि को अपने मुकुट पर धारण करता हूँ फिर तो ऐसे ब्राह्मणों के कर्म को कौन नहीं सहन करेगा? मैं अग्निके मुखसे भोजन नहीं करता, किन्तु ब्राह्मणके मुखसे करता हूँ। ब्राह्मण, गौ और अनाथ ये मेरे शरीर हैं। अविवेकी पुरुष ही इनको मुझसे भिन्न समझते हैं।

ब्राह्मणों, आप महान् हैं। आपका अपराध भला कौन कर सकता है? आप तो हमारे साक्षात् शरीर हैं जो आप को मेरा रूप नहीं समझता उसकी महान दुर्गति होती है। किन्तु जो आप सब महात्माओं की, ब्राह्मणों की, भगवान समझ कर पूजा करता है, वह मुझे वश में कर लेता है। हमें महान कष्ट यह है कि हमारे सेवक होकर भी जय-विजय हमारे अभिप्राय को नहीं समझ सके और इन लोगों ने इस पर भी ध्यान नहीं दिया कि मैं ब्राह्मणों का कितना आदर सम्मान करता हूँ। महात्माओं, आप से मेरी प्रार्थना है कि आप केवल इतनी कृपा कीजिये कि इनका यह निर्वासनकाल शीघ्र ही समाप्त हो जाय, ये अपने अपराध के अनुरूप अधम गति भोग कर शीघ्र ही मेरे पास लौट आयें।

अब इनके हित कर अनेकन मैं लूंगा अवतारा, असुर बने जब करे उपद्रव तब मारि करूं उद्धारा ।।

ब्रह्माजी ने कहा- देवताओं, भगवान की ऐसी वाणी सुनकर सनकादिकों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। भगवान की रहस्यभरी गम्भीरवाणी का अभिप्राय वे न समझ सके। भगवान की जितनी भी लीलायें हैं सभी जगत् के कल्याण के निमित्त, सभी लोकसंग्रह और शिक्षा के ही निमित्त होती है। भगवान के इन मधुर वचनों को सुनकर सनकादिक मुनियों का क्रोध तत्काल उफनते हुए दूध के समान शान्त हो गया।

उनका शरीर रोमांच से भर गया फिर वे हाथ जोड़कर भगवान से कहने लगे- प्रभो, आप सबके अध्यक्ष हैं, स्वामी हैं, सबके आराध्य देव भी आप ही हैं। आप हम लोगों पर कृपा करें। आप का ऐसा कहना शोभा नहीं देता। आप ने कहा है कि- ब्राह्मण हमारे आराध्य हैं, देव हैं। किन्तु देव, ब्राह्मणों के परमाराध्य, परम देवता भी आप ही हैं। यह सारा संसार आप से ही उत्पन्न है। इसके पालक भी आप ही हैं। शास्त्रों के अनुसार धर्म के गुह्य रहस्य भी आप ही हैं। बड़े-बड़े योगीजन आप की कृपा से ही अपार भव-सागर को अनायास ही पार कर जाते हैं फिर आप पर कोई क्या कृपा करेगा? प्रभो, सारे

संसार की परमाराधनीया लक्ष्मीजी भी आपके ही चरण-कमल का आदर ग्रहण करती हैं। ब्राह्मणों का आप जो आदर करते हैं, पूजन करते हैं, वह संसार के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत करने के लिये है, जिसका अनुकरण कर दूसरे लोग भी ब्राह्मणों का आदर-सम्मान करें। सबके स्वामी, इन द्वारपालों को आप जैसा उचित समझें वैसा दण्ड दें अथवा इन्हें पुरस्कृत करें। सभी स्थितियों में हम आप से पूर्ण सहमत हैं। अथवा हमने आपके इन निरपराध अनुचरों को शाप दिया है, इसके लिये हमी को उचित दण्ड दें। हमें वह भी सहर्ष स्वीकार है।

आप चाहें इन द्वारपालों को दण्ड दें, क्षमा कर दें या इनकी वृत्ति, पद प्रतिष्ठा और बढ़ा दें। अथवा हमने अकारण इनका अपमान किया है, इन्हें शाप दिया है तो हमें जो उचित समझें दण्ड स्वयं दें अथवा इनके द्वारा दिला दें। हमें किसी में भी आपत्ति न होगी। आप धर्म की मर्यादा को रखने के कारण ही ब्राह्मणों के लिये इतना आदर देते हैं यदि आप ऐसा न करेंगे तो धर्म की मर्यादा जो कल्याण का मार्ग है नष्ट हो जायेगी।

सनकादि की बात को भगवान ने सुना और फिर कहा- मुनियों, आप ने इन्हें जो शाप दिया है- वह मेरी ही प्रेरणा से हुआ है। अब ये शीघ्र ही दैत्ययोनि में जन्म लेंगे और वहाँ क्रोधावेश के कारण निरन्तर मेरा चिन्तन करते हुए फिर शीघ्र ही मेरे पास लौट आयेंगे। इन लोगों को आसुरी योनि अवश्य प्राप्त होगी इसमें कोई सन्देह नहीं। आपकी वाणी अमोघ है, वह कभी अन्यथा हो ही नहीं सकती।

अभी कड़वे घूंट की तरह यह श्राप लग गया। दोनों पार्षदों को इसे अमृत समझकर पीना पड़ा। भगवन बोले- तुम्हारे तीन बार गिरने से असंख्य प्राणी उठ जायेंगे, मेरे धाम तक पहुंचेंगे, तुम्हारे साथ मैं भी आऊंगा। तुम तीन बार ही आओगे मैं तुम्हारे लिये चार बार आऊंगा। पहले जन्म में तुम हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष बनोगे। मुझे तुम्हारे दोनों के लिये अलग-अलग वराह और नरसिंह अवतार लेना पड़ेगा। दूसरी बार तुम रावण कुम्भकर्ण बनोगे तो मैं राम बनके आऊंगा। तीसरी बार तुम दन्तवक्त्र और शिशुपाल बनोगे तो मैं कृष्ण रूप में आऊंगा और तुम्हारा उद्धार करूंगा। भगवान से पार्षद जय-विजय बोले- हे लीलावतार सर्वेश्वर, आपकी आज्ञा से हमें कहीं भी जाकर कुछ भी बनने में कोई आपत्ति नहीं हैं। लेकिन हे स्वामी हमारी जीवन की डोर आपके कमलों में बन्धी रहें इसे कही छोड़ न देना। आपके स्मृति का तार टूटे नहीं हम कहीं भी रहें, आपके स्मरण में हमारा चित लगा रहे। भगवन्न बोले, जिस समय मैं योग निद्रा में अवस्थित था, उस समय भी तुम लोग मेरे द्वार पर पहरा दे रहे थे। इतने में ही लक्ष्मीजी आईं, वे भीतर जाने लगीं, तुम लोगों ने उन्हें भी यह कहकर रोक दिया कि इस समय भगवान शयन में हैं।

इस पर लक्ष्मीजी को बड़ा क्रोध आया। वे बोलीं- शयन में हैं तो क्या हुआ। घरवाली को भी कोई रोक सकता है? स्वामी शयन में हों या जाग्रत में। भार्या को सब समय, सब दशाओं में उनके यहाँ बिना रोक-टोक जाने का स्वत्व है। इतने पर भी तुमने इन्हें नहीं जाने दिया तो इन्होंने ही पूर्व में कुपित होकर तुम्हें शाप दिया था कि तुम लोग दैत्य हो जाओ। तीन जन्मों को धारण करके पुन: तुम तीसरे जन्म में मेरे द्वारा मारे जाकर इस लोक को प्राप्त करोगे। मेरा स्मरण तुम्हें आसुरी योनि में भी वैर भाव से रहेगा।

एक बार एक दिन लक्ष्मीजी आ रही थी। जय-विजय दरवाजेपर खड़े थे। उन्होंने लक्ष्मीजीको भी प्रवेश से रोक दिया और कहा देवीजी जरा ठहरिये। लक्ष्मीजी ने पूछा- क्यों? जय-विजय बोले- अभी हमारे स्वामी शयन कर रहे हैं, विश्राम कर रहे हैं इसलिये आप बाहर ही ठहरिये, भीतर मत जाइये। इसपर लक्ष्मीजीको बहुत क्रोध आया और मनमें सोचा कि नौकर होकर भी स्वामिनी को रोकते हैं। उन्होंने भगवान विष्णुसे यह सब कुछ कहा। विष्णु बोले, देवी चुप रहो, अगर

तुम्हारी बात मानकर इन्हें निकाल देंगें तो लोग यही कहेंगे कि पत्नीकी बात मानकर अपने सेवकोंको, भक्तोंको संसारमें भेज दिया। लोगोंकी आस्था मिट जायेगी। जब यह किसी सन्तका अपराध करेंगे तब इनको दण्ड देंगे फिर किसीको कोई शिकायत नहीं रहेगी। लोग कहेंगे भगवान कितने भक्तवत्सल है, कितने सन्तसेवी है। तब तुम्हारी मनकी भी हो जायेगी और मेरा भी यश बढेगा। भक्तोंको बड़ा भारी आश्वासन मिलेगा।

जो बनावो सो बन जायेंगे। जहां भेजो वहीं जायेंगे।
किसी देश में रह किसी भेष में रहें। पर तुम्हारी ही कहलायेंगे।।
मेरी डोरी प्रभु तेरे कर में, चाहे जंगल मेंरख लो या घर में।
हौं ठिकाने पै अथवा डगर में रखना बस नाथ अपनी नजर में।।
नाम तेरा सुमिर, तुमको ही यादकर, मन को तुमसे ही बहलायेंगे।। (जहां.... भेजो.....)
मन वचन तन से तुम्हारे रहेंगे। कुछ भी कहेंगे तो तुमसे कहेंगे।
जो सहावो खुशी से सहेंगे। प्रेम सरिता में तुम्हारे बहेंगे।।
चाहे नियरे रहें, चाहे न्यारे रहें, सदा तेरे ही गुण गायेंगे।।
कोई अरजी न कोई उलहना। तेरी रुचि में मगन होके रहना।।
तेरा निर्दिष्ट ही पंथ गहना कुछ भी अपनी तरफ से न चहना।।
लागे तुमको सही हम करेंगे वही जिससे मन को तेरे भायेंगे।

भगवान के पार्षद बोले- तीन जन्म की तो कोई बात नहीं पर हमारे उद्धार का मार्ग भी बता दो। भगवान नारायण ने यह जिम्मेदारी लक्ष्मी, स्वयं और सनकादिक, को एक-एक जन्म के उद्धार की जिम्मेदारी सौंपी।

हिरण्यकशिपु हिरण्याक्ष, भयौ जन्म जग आय। देवन को मारन लगे, स्वर्गलोक में जाय।।

जब ये प्रथम जन्म में हिरण्याक्ष एवं हिरण्याकशिपु बनेंगे तो यही चारों भाई मिलकर संयुक्त रूप से प्रल्हाद के रूप में प्रगट हो उद्धार में निमित्त बनेंगे।

दूसरे जन्म में जब यह रावण और कुम्भकर्ण बनेंगे तो लक्ष्मीजी सीता बनकर उनके उद्धार में निमित्त बन जाएंगी। तीसरे जन्म में जब यह शिशुपाल और दन्तवक्त्र बनेंगे तो स्वयं नारायण कृष्ण बनकर अपने को निमित्त बनाकर उनका उद्धार करेंगे। जब हिरण्याकशिपु और हिरण्याक्ष को माता-पिता की आवश्यकता हुई तो उनके माता पिता कश्यप और दिति हुए।

ब्रह्माजी कहते हैं- देवगण, भगवान की वाणी को सुनकर और नेत्रानन्ददायक भगवान के श्रीविग्रह का दर्शन कर मुनिगण प्रसन्न हो उठे, सनत्कुमार बोले, प्रभो। आज हमारी समस्त इच्छायें पूर्ण हो गयीं। आज हम सचमुच ही कृतार्थ हो गये। अब कोई भी कर्त्तव्य हम लोगों का शेष नहीं रहा। देह धारण करने का परम फल हमें प्राप्त हो चुका। आपके इस अनुपम लोक के दर्शन करके तथा आपकी चरणवन्दना और कृपा प्रसाद पाकर हम सब परम सन्तुष्ट हुए। अब आज्ञा हो तो हम अपने पिता के ब्रह्मलोक में चले जायँ। उन्होंने प्रभु को प्रणाम किया। उनकी परिक्रमा की और फिर उनका आदेश लेकर वैकुण्ठ के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए प्रमुदित हो वहाँ से चले गये।

मुनियों के चले जाने पर भगवान ने जय-विजय से कहा- जाओ, मन में किसी प्रकार का भय मत करो; तुम्हारा कल्याण होगा, यद्यपि मैं ब्रह्म-शाप को मिटाने में समर्थ हूँ किन्तु मैं ऐसा करना नहीं चाहता। यह मुझे अभिमान नहीं है। एक बार की घटना है, मैं योगनिद्रा में स्थित था उसी समय लक्ष्मीजी कहीं बाहर से आईं, तुम लोगों ने उन्हें द्वार पर रोक दिया था फलत:

वे क्रुद्ध हो उठीं। उन्होंने उस समय यही शाप तुम लोगों को दे दिया था। आज का शाप उसी का फल है। जाओ, भय मत करो। शीघ्र ही मेरे पास लौटकर आ जाओगे। ऐसा कहकर भगवान अपने दिव्य भवन में चले गये। तदनन्तर जय-विजय वैकुण्ठ लोक से नीचे गिर कर दिति के गर्भ में प्रविष्ट हुए हैं। देवों, उन्हीं के तेज से इस समय आप लोग निस्तेज हो गये हैं। जो आदि पुरुष परमात्मा संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण हैं। जिनकी योगमाया के प्रभाव को बड़े-बड़े योगिजन भी बड़ी कठिनता से पार पाते हैं। जो विश्व की उत्पत्ति, पालन और प्रलय के कारण हैं, जो आदि पुरुष हैं जिनकी माया योगीजनों के भी द्वारा कठिनाई से पार की जाने योग्य है, वे ही तीनों गुणों के स्वामी हमारा कल्याण करेंगे। फिर इस विषय में हमारे विचार करने से कौन-सा प्रयोजन सिद्ध हो सकता है?

जय-विजय वैकुण्ठ से, गिरे भूमि पर आय। तीन जन्म राक्षस भये, ब्रह्म शाप को पाय।।

जय-विजय प्रतिष्ठा यश के लालची जीव के प्रतीक हैं। यश-प्रतिष्ठा के लिये फँसा जीव पतन के गर्त में जाता है। पतित प्राणी का जीवन कभी यशस्वी नहीं हो सकता, जैसे काले कम्बल को लाख धुलाया जाये फिर भी श्वेत नहीं हो सकता। विषय-वासना का अभिलाषी जीव भगवत्प्राप्ति नहीं कर सकता। काम, क्रोध, लोभ, मोह को त्यागनेवाला प्राणी ही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है।

सनकादिक मुनि चार- सनद, सनत्कुमार, सनंदन, सनातन। चारों मुनि पाँच-पाँच वर्ष के हैं। भगवान विष्णुका दर्शन करने वैकुण्ठलोक को गये। वहांपर उनके जय और विजय नामके दो पार्षद थे। जब प्रवेश कर रहे थे पार्षदोंने छड़ी लगाकर रोक लिया और पूछा कहां चले? प्रवेश निषेध है, बंद है। सनत्कुमार बोले- हमको भगवान के पास जाना है। पार्षद बोले आप नहीं जा सकते, आपने अनुमति नहीं ली है और इतनी सुबह प्रात:काल के समय भगवान मिलते नहीं है जबकि ब्राह्मणोंके लिये, ऋषि-मुनियोंके लिये भगवान का दरबार सदैव-सदैव के लिए खुला, कोई बिना किसी अनुमति के कभी भी जा सकते है पर यह दोनों जय और विजय नामके पार्षद कोई अपने अहम् में, अभिमान में किसी अचेत अवस्था में ऐसे अन्धे बने हुए थे। अपने हाल का भान नहीं था और उन्होंने सनकादिक ऋषि-मुनियोंको जो कि यह स्वयं में ज्ञानावतार हैं। भगवान विष्णुका दर्शन करने जा रहे थे रोक लिया। इसके कुछ क्षणों पहले ब्रह्मलोक के कुछ क्षणों पहले लक्ष्मी गयी थी। लक्ष्मीको भी बड़ी मुश्किल से अन्दर जाने दिया। जाने नहीं दे रहे थे, रोक लिया। लक्ष्मीने जाकर विष्णु भगवान से शिकायत करी कि यह कैसे पार्षद रखे या तो बदली करो, या उनको समझाओ। मैं वैकुण्ठ की स्वामिनी मुझे भी पूछते हैं कि अनुमति पत्र दिखाओ, भगवान विष्णुसे तुम्हारी पूर्व नियोजन हुआ है क्या? हर आये को ऐसा करेंगे तो कैसे? विष्णु बोले- इसका एक अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा, लोकतंत्रपर, साम्राज्य पर, वैकुण्ठ के लोक पर। फिर कभी ऐसा किया तो देखेंगे। कुछ क्षणोंबाद सनकादिक ऋषि आये। बेत से अड़ा दिया। सनकादिक मुनियों को कभी क्रोध नहीं आता पर ऐसा अपमान देखकर उन्हें क्रोध आ गया और बोले, हे दुष्टों। तुम भगवानके काममें रोक रहे हो, भगवान के दर्शन को रोक रहे हो। जाओ, राक्षस बन जाओ। यहां से चले जाओ। वैकुण्ठ लोकसे गिर जाओ और तुम मर्त्यलोक में जाओ। जैसे ही श्राप सुना जय-विजय एकदम पानी-पानी होकर चरणोंमें गिर पड़े। बोले- भगवान यह कैसा श्राप आपने दे दिया। हमसे बड़ी भूल हो गयी। वहां वैकुण्ठलोकमें भगवान विष्णुने सुना बोले आज तो कुछ गड़बड़ दिख रहा है। कुछ कहासुनी चल रही है। विष्णु आये दौड़कर। कभी भी भगवान के दर्शन कोई करना चाहे, कोई दान करना चाहे यह दो काम में कभी मना नहीं करना, रोकना नहीं। इसके तीन उदाहरण है- यह जय-विजय को श्राप भुगतना पड़ा।

एक बार ऐसेही गोलोक में कृष्ण सो रहे थे। राधा बैठी थी। और सुदामा जो अगले जन्म में मर्त्यलोक में राधाका भाई

बना उस समय तो गोलोक में सखा था। श्रीकृष्णका दर्शन करने आया, राधाने बाहर ही रोक दिया। सो रहे हैं अभी नहीं बाद में आओ। पर इसकी उम्र और राधाकी ११२ वर्ष और छ: महिने की उम्र में श्रीकृष्णका दर्शन हुआ वही मिले उसके बाद मिले ही नहीं। यह सौ वर्ष का वियोग।

तीसरा उदाहरण लीजिए- वामन भगवान बलिकी यज्ञशाला में है और बलिको तीन पैर जमीन देनेका वचन दे चुके है। जो सत् और असत की परिभाषा में शुक्राचार्य ने कह दिया- तू क्या कर रहा है बलि यह छलिया है यह छलिया। तुझे लूटकर ले जाएगा तेरे पास कुछ नहीं छोड़ेगा। तूने बोल दिया और तू मुकर जा। मैंने ऐसा नहीं कहा, मैं ऐसे देनेवाला था, करनेवाला था। बातों को बदल दे, शब्दों को बदल दे, देना मंजूर करदे, नामंजूर कर दे। नहीं किया। भगवान आप गुरु होकर क्या शिक्षा दे रहे हैं। बोले- मैं तेरा कल्याण करना चाहता हूँ। बलि बोला- नहीं, मैं ऐसा नहीं करूंगा। मैंने जो कह दिया। देखा कि बलि दुष्ट है। यह शब्द इस्तेमाल किये हैं। पर मैं यह करने नहीं दूँगा बलिको। दैत्योंका नुकसान होगा, यह राजधानी चली जायेगी। संकल्प पात्र में शुक्राचार्य ने प्रवेश किया।

शुक्राचार्य उसमें जाकर बैठ गये। वामन ने देख लिया संकल्प करवा रहे पानी नहीं आ रहा। रूक गया अवरोध। यह संकल्प नहीं होने देनेका। वामन तो भगवान थे उठाये एक दर्भ (तिनका) और वो नली में डाल रहे हैं। सीधा शुक्राचार्य की आँख मे जाकर लगी। आँख फूट गई। जबसे शुक्राचार्य एक आँखके हो गये। भगवान के काम में कभी विघ्न मत करो। यह सनकादिक ऋषियोंको भुगतना पड़ रहा है। भगवान के दर्शन करने जा रहे थे उनको रोक दिया, श्राप मिल गया। जय-विजय ने पैर पकड़ लिये। सनकादिक ऋषि बोले अब श्राप तो दे दिया। इतने में भगवान आ गये और बोले, बहुत अच्छा किया आपने। बोले- महाराज हमसे गलती हो गयी आपके पार्षद आपके दर्शनोंसे रोक रहे थे। हमको थोड़ा क्रोध आ गया। हमारी गलती हो गयी। आप कहे तो श्राप अन्यथा कर दे। भगवान बोले- श्राप अन्यथा हो नहीं सकता। इतना कुछ आजन्म पृथ्वीपर राक्षस बनकर रहे ऐसा नहीं। तीन जन्म ये पृथ्वीपर दैत्य बनकर रहे- राक्षस। तीन जन्म पूरा होनेके बाद ये मेरे पार्षद बनकर फिर यहां आ जायेंगे। जय-विजय ने श्राप स्वीकार किया और दैत्यलोक में आनेके लिये प्रस्तुति करी।

८) हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का जन्म

इक दिन सन्ध्या समय दक्ष दुहिता-दिति देवी। ह्वैकें कामातुरा गई जहँ पति हरि सेवी।।
कजरारे नैनानितें, घूँघटमहँ ते चोट करि। चाहहति पतितें रति तुरंत, शील त्यागि पटुका पकरि।।

मैत्रेय मुनि विदुरजी से कहते हैं- हे क्षत:। दिति कोई साधारण स्त्री नहीं थी। दक्ष की पुत्री है। एक दिन उसने मर्यादाका विचार किये बिना संध्या समय अपने पति कश्यपसे सन्तान प्राप्तिकी इच्छा की। इस सम्बन्धमें देश-कालका विचार करना चाहिए- एकादशी हो, पूर्णिमा हो, ग्रहण हो, सायंकाल-प्रात:काल हो तो मनुष्यको संयमी रहना चाहिए। इसका विचार किये बिना, असंयमसे जिस सन्तानकी उत्पत्ति होती है, वह उच्छृंफ्ल होती है और नास्तिक होती है। दितिने धर्मके वश होकर नहीं, कामके वश होकर सन्तानकी इच्छा की।

एक समय की बात है कि प्रजापति दक्ष की पुत्री कामातुरा होकर पुत्र प्राप्ति की इच्छा से सायंकालीन सन्ध्या के समय अपने पति मरीचि पुत्र भगवान कश्यपजी से रति की प्रार्थना करते हुए कहने लगी- हे विद्वन्। मेरा मन कामसे अत्यन्त व्याकुल हो रहा है और दूसरे मैं सौतोंकी सम्पत्तिसे जल रही हूँ। हे पतिदेव आपके रहते हुए मेरी यह दुर्दशा नहीं होनी चाहिए। मैंने आपसे प्रेमविवाह किया है। आपको निमित्त बनाकर यह महाबली कामदेव, हाथ में बाण-धनुष धारण किये मुझे उसी प्रकार पीड़ित कर रहा है, जिस प्रकार कदली के वृक्ष को मतवाला मातंग मसल डालता है। अत: हे स्वामिन्।

मुझ पर कृपा कीजिये। वह अपनी विभिन्न काम-कलाओं से ऋषिको अपनी ओर आकृष्ट करने लगी। वह ऋषिसे बोली- मैं काम द्वारा तृषित हूँ।

जब जीव भगवान के ध्यान को त्यागकर संसारी क्षुद्र विषयों का ध्यान करने लगता है तो उन विषयों में एक प्रकार की आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। आसक्ति से ही कामवासना उत्पन्न होती है। कामना पूरी होने पर उसमें अत्यधिक राग बढ़ता है, न पूरी होने पर-विघ्न होने से- क्रोध की उत्पत्ति होती है, इसलिये अनर्थ का मूल कारण है, विषयों का ध्यान करना। दूसरों को विषय-सुख में प्रवृत्त देखकर ईर्ष्यावश अपने भी उसे प्राप्त करने के लिये उचित-अनुचित उपायों से प्रयत्न करना। ऐसा करने से जीव का पतन होता है और इससे कैसे-कैसे अनर्थ हो जाते हैं।

कश्यपजी के बहुत-सी पत्नियों में से एक पत्नी दिति थी, उनके पुत्र दैत्य हुए। ये हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यपु इसी दिति के गर्भ से उत्पन्न हुए।

विदुर ने मैत्रेय मुनिसे पूछा- इन दैत्योंकी उत्पत्ति कैसे हुई? मैत्रेय मुनिने हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की उत्पत्ति बताई। दक्ष की बेटी दिति कश्यप की पत्नी थी। एक समय कश्यप जी अग्नि में खीर का हवन कर भगवान का ध्यान करते हुए बैठे थे। उस समय भगवान भास्कर अस्ताचल को जा चुके थे। दितिदेवी ने ईर्ष्यावश पुत्र प्राप्ति के लिये अपने परमात्मा समान पति से असमय में गर्भाधान के लिये आग्रह किया था। कश्यप ऋषि की सब पत्नियों के बहुत सी सन्तानें हुई थी पर दिति के अभी तक कोई सन्तान नहीं थी। वह अपनी सौतों से ईर्ष्या करती थी। वह बार-बार सोचती थी मैं एक अभागिनी हूँ, जो मेरे पति ने मुझे सन्तान प्रदान नहीं की। सन्ध्या की बेला थी। उसी समय पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से, काम से पीड़ित, दिति यज्ञशाला में कश्यप जी के पास पहुँची। उसने अपने पतिदेव कश्यप के कन्धे को पकड़कर हिला दिया और कहा- विद्वन्, जैसे मतवाला हाथी कदली के वृक्ष को मसल डालता है, वैसे ही यह प्रसिद्ध धनुर्धर कामदेव आपके आलिंगन-पाश में बँध जाने के लिये मुझे बेचैन बना रहा है।

मेरी सौतें पुत्रवती हो गयी। उनकी सुख-समृद्धि को देखकर मेरा हृदय ईर्ष्या की आग से जल रहा है। अत: आप मुझ पर कृपा कीजिये, आपका कल्याण हो। बात हम लोगों की तरुणावस्था की है। एक बार मेरे पिताजी ने हम सभी बहनों से अलग-अलग पूछा कि हम लोग किससे विवाह करना चाहती हैं। और जब हम तेरह लड़कियों ने आपका नाम बतला दिया तो उन्होंने हमारा विवाह आपसे कर दिया इसीलिये अब आपको हमारी इच्छा पूरी करनी चाहिये।

आप जैसा पति जिसके गर्भ से पुत्र उत्पन्न होगा वह पत्नी अत्यन्त यशस्विनी होगी। आप जैसे तेजस्वी पुरुषों के सन्निकट में आना कभी व्यर्थ नहीं होता। पुत्र प्राप्त होना ही पतिव्रताओं को बड़ा लाभ है।

यहां दिति ने देश और काल का विचार नहीं किया। वह काम के वेग से विवेकशून्य हो चुकी थी। एकादशी हो, शिवरात्रि हो, रामनवमी हो तो व्यक्ति को संयम से रहनाचाहिये। इसका विचार किये बिना यदि संभोग किया जाता है, फलत: सन्तान उत्पन्न होती है तो वह उच्छृंखल और अमर्यादित होती है। जो पुरुष इस समय पिशाचों का सा आचरण करते हैं वे नरकगामी होते हैं। उस स्त्रीको धिक्कार है, जो स्वयं पुरुषसे रतिकी प्रार्थना करती है। जीव चाहे पुरुष हो या स्त्री उसे कामपरायण नहीं होना चाहिए अर्थात अपने मन को वश में रखना चाहिए।

कश्यप ने दिति की बात सुनी, उसका आग्रह देखा। उस समय वह कामदेव के वेग से अत्यन्त बेचैन और बेवश हो रही थी, उसकी यह स्थिति देखकर समझाते हुए कश्यप ने कहा- दक्ष की पुत्री के लिये ऐसी बातें शोभा नहीं देती। कुलीन महिलायें कभी काम के अधीन होकर ऐसी असामयिक बातें नहीं कहतीं। काम के वश तो अकुलीन अनार्य होते हैं जो क्षुद्र

पुरुष होते हैं, जो धर्म के मर्म को नहीं जानते, जिन्होंने कभी श्रद्धा से सत्पुरुषों की सेवा सुश्रूषा नहीं की है। पति-पत्नी का संग काम के लिये नहीं होता, केवल कुल वृद्धि और पुत्र प्राप्ति के ही निमित्त होता है।

कश्यपजीने समझाया- सूर्यास्त हो चुका है, तारे निकलने बाकी हैं। इस समय शंकर भगवान अपने वाहन वृषभ पर बैठकर घूमते हैं, जिसको दुनियादारी में लगा देखते हैं, उसको श्राप देते हैं, और जिसको सन्ध्या समय भजन में लगा देखते हैं तो आशीर्वाद देते हैं। देवी इस समय तुम गर्भाधान का हठ मत करो, नहीं तो शंकर जी का कोप भाजन होना पड़ेगा।

मैं तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करूँगा किंतु इस समय सूर्यास्त का समय है सूर्यास्त का समय इसके लिये वर्जित हैं।

ऋषियों ने धर्म, अर्थ और काम, इनको त्रिवर्ग कहा है। संसार में ये ही तीन पुरुषार्थ है। पुरुष पत्नी से ही इन तीनों को प्राप्त कर सकता है। पत्नी के बिना सभी यज्ञयाग आदि धार्मिक कृत्य अधूरे हैं, यज्ञ तो पत्नी के बिना हो ही नहीं सकता। धर्म करने से अर्थ वृद्धि होती है। अर्थ का सुख भी पत्नी के ही साथ भोगा जा सकता है। बिना पत्नी के धन किस काम का? काम की तो स्त्री, जननी ही है। इसीलिये उसे कामधुरा, कामिनी और कामप्रसूता कहा गया है। ऐसी पत्नी का आदर भला कौन नहीं करेगा?

गृहस्थ का मुख्य कर्त्तव्य धर्म का पालन करना है। कामभोग तो गौण है। घर में रहते हुए गृहस्थ स्त्री के सहारे से ही धर्मकार्य करता-करता अन्त में मोक्ष तक को प्राप्त कर सकता है। संसार रूपी यह बड़ा भारी अगाध दुस्तर सागर है। गृहस्थ इसे पार करना चाहे तो उसके लिये नारीरूपी दृढ़ नौका ही पार जाने का एकमात्र उपाय है। स्त्री का आश्रय लेकर गृहस्थ बड़ी सुगमता से सुखपूर्वक इस दु:ख सागर को बात-की-बात में हँसते हुए पार कर सकता है। समुद्र को क्या किसी ने अपने बाहुबल से पार किया है। पत्नीसे ही धर्म-अर्थ-काम की सिद्धि होती है और पत्नी के सहारे ही मनुष्य दु:खोंसे पार पा जाता है। पति के लिए बहुत ही सहायक होती है, वज्र है, कवच है। मनुष्य कामके वश में होकर कहीं कुकर्म न कर बैठै।

मेरी भीरु प्रिये, घबड़ाओ नहीं। मैं तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूरा करूँगा। भला, जिसके द्वारा अर्थ, धर्म और काम- इन तीनों की सिद्धि होती है, अपनी ऐसी पत्नी की कामना पूर्ण नहीं करेगा। पत्नी के सहारे पुरुष बड़े-बड़े झंझावातों को सरलता से झेल लेता है। विकराल संसार सागर को पार करने के लिये पत्नी वज्र जैसी सुदृढ़ नैया है। धर्म और मर्यादा की रक्षा के लिये ही विवाह किया जाता है। कामादि शत्रुओं को सरलता से जीतने के लिये पत्नी सुदृढ़ दुर्ग है। उसी के ऊपर गृहस्थी का सारा भार डालकर पुरुष निश्चिन्त रहता है तो ऐसी स्त्री का मनोरथ भला कौन व्यक्ति पूरा नहीं करेगा? मैं तुम्हारे उपकारों से सौ वर्षों में भी उऋण नहीं हो सकता परन्तु अभी तुम थोड़ी देर ठहरो, जिससे लोग मेरी निन्दा न करें। यह सन्ध्या (प्रदोष) की घोर बेला है इसमें भगवान शंकर बैल पर चढ़कर अपने गणों के साथ चारों दिशाओं का भ्रमण किया करते हैं वे तीन नेत्रों से देखते हैं।

शंकर के लिये कोई अपना-पराया नहीं है, हम उन्हींकी इच्छा के वशवर्ती हो व्यवहार करते हैं। बड़ा पवित्र चरित्र है शंकरजी का जो मनीषी-गण अविद्या के पर्दे को फाड़ डालना चाहते हैं, वे शंकर जी के पावन चरित्र की स्तुति करते हैं।

उनसे बढ़कर तो क्या, उनकी बराबरी का भी कोई नहीं है। वे लोग भाग्यहीन हैं जो शंकरजी के पावन चरित्र की हँसी उड़ाते हैं। अत: उनका अनादर मत करो, वे बड़े प्रभावशाली हैं अत: दो घड़ी ठहर जाओ।

अभी तुम थोड़ी देर ठहर जाओ। क्षण भर को धैर्य धारण करो। यह सन्ध्या की बेला है। इस समय यदि मैं तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार कर लूँगा तो संसार में बुरा आदर्श स्थापित होगा। सब लोग हमारी निन्दा करेंगे। हम ही धर्मप्रवर्तक माने जाते हैं। हमारे आचरणों का ही लोग अनुकरण करते हैं। सन्ध्या समाप्त होने दो। भगवती निशा को भली-भाँति आ जाने दो। मैं कुछ समय के अनन्तर ही तुम्हारे समस्त मनोरथों को पूर्ण कर दूँगा। दिति। असमय में तुम अनुचित प्रस्ताव कर रही हो और अपने कुल की ओर ध्यान नहीं दे रही हो। भगवान भूतनाथ शिव के घूमने-फिरने का समय है। वो अपने

नंदीबैल पर चढ़कर संसार का भ्रमण करते हैं और तुम्हें ऐसे कार्य में प्रवृत्त देखकर हसेंगे। इस समय तो सम्पूर्ण आकाश में अपने गण, भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, साकिनी तथा वेतालों के साथ व्याप्त रहते हैं। इस समय जो भी प्राणी उचित अनुचित जो भी कार्य करता है, रुद्रदेव उन सबको देखते हैं। तेरा मनोरथ वे भूतनाथ विफल कर देंगे। उनके विहार बेला में तू अनुचित कार्य करके सुखी न हो सकेगी। जिन्होंने अपने शरीर को, जो कुत्तेका आहार है, आत्मा समझकर देह की सेवा की है और जो देहमें अभिनिविष्ट है वे लोग ही शंकरजीकी निन्दा करते हैं। ब्रह्माजी भी शंकरजीकी मर्यादाका पालन करते हैं और विश्वके भी कारण हैं। माया भी उनकी आज्ञाकारिणी है। पिशाच-चर्या तो शंकरजीका एक खेल है।

कश्यपजी के इतना प्रेम और आदर के साथ समझाने पर भी दिति के ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा। वह काम के आवेग से छटपटा रही थी अत: उसने वेश्या के समान निर्ल्लज होकर महर्षि कश्यप जी का वस्त्र (दुपट्टा) पकड़ लिया।

कश्यपजीने फिरसे समझाया वे ईश्वर हैं, सर्वसमर्थ हैं, भक्तों की इच्छानुसार वर देनेवाले हैं, अद्वितीय हैं, ब्रह्मादिक देवताओं तथा इन्द्रादिक लोकपालों के भी नियामक हैं, माया के वे स्वामी हैं, संसार उनके संकेत से उत्पन्न होता और विलीन होता है। यह सब होते हुए भी उन्होंने स्वेच्छा से प्रेतचर्या ग्रहण की है। जो दुष्ट बुद्धि पुरुष, जान बूझकर अथवा अनजान में उनका अपराध करते हैं, उनकी निन्दा करते हैं, वे अभागे पुरुष कभी सुख-शान्ति के अधिकारी नहीं हो सकते। इसलिये तुम हठ को छोड़ो, भगवान भूतपति रुद्रदेव का अपमान मत करो, बैठै-ठाले विपत्ति मोल मत लो। यदि तुम मेरी बात न मानोगी तो अन्त में घोर दु:ख उठाओगी सदा पछताओगी।

कश्यपजी के इतना समझाने पर भी दिति ने अपनी हठ नहीं छोड़ी। वह अपनी बात पर अड़ी ही रही तब तो मुनि दुखी हुए और क्षण भर मौन होकर सोच में पड़ गये। मुनि बोले- सूर्यास्त के समय भोजन, विषय, निद्रा, स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। यह चारों कार्य करना सूर्यास्त के समय निषेध है। इसका यदि आचरण करने से परिधाम विपरीत होता है। भोजन करने से अस्वस्थ का भय, मैथुन करने से दुष्ट संतान उत्पन्न होती है, शयन करने से धन की हानि, और पठन-पाठन करने से उसकी विस्मृति होती है।

मैत्रेय मुनि विदुरजी से कहते हैं- विदुरजी। कामदेव ने जिसकी समस्त इन्द्रियों को मथित कर डाला है, ऐसी वह कामातुर दिति पति के बहुत समझाने पर भी न मानी। उसने वारांगना की भाँति निर्लज्जतापूर्वक महर्षि कश्यपजी का वस्त्र पकड़ लिया।

मुनि ने सोचा- यदि मैं इस समय इसकी बात नहीं मानता हूँ तो पता नहीं यह क्या अनर्थ कर डाले। स्त्रियों का चित्त बड़ा चंचल होता है चित्त तो सभी का चंचल ही होता है, किन्तु किसी में उसे रोकने का गाम्भीर्य होता है, कोई उसे रोक सकने में असमर्थ होते हैं। मालूम होता है, विधि का ऐसा ही विधान है। इसमें भी मंगलमय भगवान की कोई क्रीड़ा छिपी है। आज तक जो सदा मेरी आज्ञा में चलती रही, आज उसका सहसा स्वभाव बदल जाना, अपनी बात पर दृढ़ता से अड़ जाना, यह अवश्यम्भावी का ही कारण है। जैसी भगवान की इच्छा। ऐसा सोचकर मुनि एकान्त में गये और उन्होंने उसकी मनोकामना पूर्ण की। होनहार को कैसे टाला जाये। जबरन दिति ने कश्यपजी से गर्भाधान कराया। कश्यपजी बोले- दुष्टे, तुने ऐसे समय में गर्भाधान करवाया है कि इस समय तेरे मुख पर कालिख पोतनेवाले बड़े अत्याचारी राक्षस, असुर पैदा होंगे। तुम्हारे पेटसे जो बच्चे पैदा होंगे, वे सारी दुनियाको रुलायेंगे। ऐसे ढंगसे, ऐसे समयमें, जो बच्चे पैदा होते हैं वे क्या-क्या नहीं करते। उनके अन्दर उच्छृंफ्लता जरूर आयेगी। वे निरपराध प्राणी को मारेंगे, दीनोंको सतायेंगे, स्त्रियोंको जेलमें डालेंगे और महात्माओंको अप्रसन्न करेंगे। जब लाचार होकर कश्यपजीने गर्भाधान किया, तो वे दोनों जय-विजय आ गिरे।

वे दोनों निरपराध व्यक्तियों को सतायेंगे और स्त्रियोंका अपहरण करेंगे, मुनियों और ब्राह्मणों को धर्म से विमुख करेंगे।

कश्यप जी ने पत्नी के हठ को देखा, उन्होंने इसे दैव का खेल समझा और उसे (दैव को) नमस्कार किया फिर उन्होंने जप-ध्यान को छोड़कर एकान्त में दिति के साथ काम-क्रीड़ा कर उसके काम से सन्तप्त मन को शान्त किया।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी, जब महामुनि कश्यप ने देखा इसका इस निषिद्ध कार्य में अत्यन्त ही आग्रह है तो उन्होंने भाग्यविधाता की वन्दना की और उसके साथ एकान्त में गये।

अमोघ वीर्य की महर्षि ने उसी क्षण गर्भ में स्थापना की, पुन: स्नान किया, यज्ञशाला में बैठकर तीन आचमन किये और सायंकालीन सन्ध्या में तल्लीन हो गये।

काम-क्रीड़ा कर लेने के बाद कश्यप ने जल में स्नान किया। प्राण और वाणी का संयमन करके वे फिर ज्योतिर्मय ब्रह्म का ध्यान करने लगे। काम की गर्मी शान्त हो जाने के बाद दिति को भी उस निन्दित कर्म के कारण बड़ी लज्जा आई। जप-ध्यान समाप्त कर बैठे हुए महर्षि कश्यप के पास वह गई और लज्जा के मारे सिर नीचा किये हुए पश्चात्ताप कर बोली- हे भगवन्, उस समय मैं काम से व्याकुल थी, विवेक खो बैठी थी अत: मैंने रुद्र का बड़ा अपराध किया। मैं उन्हें बार-बार प्रणाम करती हूँ। आप और भगवान शंकर दोनों ही मुझे क्षमा करें।

इस गर्भाधान होने के अनन्तर दिति का वेग शान्त हुआ। अब उसकी बुद्धि ठीक ठिकाने पर आई। उसे अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हुई- हाय। मैंनें यह कैसी अनर्थकारी हठ की। अपने त्रैलोक्य वन्दित पति की आज्ञा का उल्लंघन किया। उनकी अहंकार के वशीभूत होकर अवहेलना की। उस समय मेरी बुद्धि पर कैसे पत्थर पड़ गये। मैं कैसे विवेकहीन हो गई? अब पता नहीं मेरा कौन-सा अनिष्ट होगा? कही रुद्र भगवान मेरे इस गर्भ को नष्ट न कर दें। इसी प्रकार अपने मन में दु:खी होती हुई, पश्चात्ताप से अत्यन्त ही लज्जित होकर वह अपने पति के पास आई।

सूतजी कहते हैं- सन्ध्या समय चार काम नहीं करने चाहिये। सन्ध्या समय खाना नहीं चाहिये, सन्ध्यासमय खाने से शरीर में रोग होता है। सन्ध्या समय सोना नहीं चाहिये, सन्ध्या समय सोने से घर में आयी हुई लक्ष्मी चली जाती हैं, मनुष्य दरिद्र हो जाता है। सन्ध्या समय पति-पत्नी को समागम नहीं करना चाहिये, उससे आयु नष्ट होती है। अगर गर्भ रहा तो राक्षस सन्तान पैदा होती है। सन्ध्या समय अध्ययन-अध्यापन का काम करने से बुद्धि नष्ट हो जाती है।

मुनियों। पाप हो जाने के पश्चात उसका हृदय से पश्चात्ताप हो, उसको गुरुजनों से कह दे, क्षमा माँग ले, शास्त्रीय विधि से प्रायश्चित कर ले तो बहुत से पाप तो इतने से ही नष्ट हो जाते हैं। बहुत से कम हो जाते हैं। पाप करने के पश्चात् जो मानसिक ताप होता है, उसी का नाम पश्चात्ताप है। जैसे अग्नि में सुवर्ण को तपाने से उसका मैल नष्ट होकर वह शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार हृदय से निष्कपट भाव से किया हुआ पश्चात्ताप मन की मलीनता को धोकर स्वच्छ बना देता है।

दिति ने अपने प्राणनाथ कश्यप से प्रार्थना की- प्रभो। मुझसे बड़ा अपराध हो गया। आप तो दयालु हैं, मेरे प्राणेश्वर हैं, सर्वसमर्थ स्वामी हैं। मैं आपकी दासी किंकरी और चरणसेविका हूँ। आश्रितों से कोई अपराध बन भी जाता है तो स्वामी उसे क्षमा कर देते हैं। मुझे मान दे-देकर आपने मेरा इतना साहस बढ़ा दिया कि मैं आज इस दशा में पहुँच गई कि आपकी आज्ञा का उल्लंघन करने का भी साहस कर बैठी। मेरे इस अपराध से कुपित होकर आप मेरा कोई अनिष्ट करेंगे। इसकी तो मुझे कभी स्वप्न में भी आशा नहीं। किन्तु एक मुझे बड़ा भारी डर लग रहा है। मैं उस समय का स्मरण करके थर-थर काँप रही हूँ, मेरा हृदय फटा जा रहा है। हम स्त्रियों पर व्याध भी दया करते हैं।

आपने कहा था कि यह रौद्री बेला है। रुद्र भगवान कुपित होकर तेरे गर्भ के त्रिशूल से सैकड़ों टुकड़े कर देंगे। सो हे नाथ,

ऐसा न हो। वे कृपा के सागर आशुतोष भगवान मुझ दीना पर अनुग्रह करें, मेरे गर्भ को हानि न पहुँचावे।

दिति काँप रही थी, उसकी पश्चात्तापभरी प्रार्थना को सुनकर कश्यप जी ने कहा- उस समय तुम्हारा चित्त काम से मलिन था, मुहूर्त भी दोषपूर्ण था, मेरी भी बात तुमने नहीं मानी और देवताओं की भी अवहेलना की। अपराधी को दण्ड देना, यह तो धर्म है। तुमने भगवान शंकरका अपराध किया है, इसलिये दण्ड तो भोगना ही पड़ेगा। कुसमय का प्रभाव तो इन बच्चों पर पड़ेगा अत: ये विप्र, धेनु, सुर और सन्तों पर अत्याचार करेंगे पर यह श्री नारायण के करकमलों द्वारा मारे जायेंगे और धराधाम से मुक्त हो जायेंगे। न तो तुमने अपने मन को रोका और न ही नियम का पालन किया। नियम का पालन करने से वासनाका निरोध हो जाता है। समयपर भोजन करने का नियम, अखाद्य का त्याग और खाद्यके भोजनका नियम, स्वच्छ और पवित्र स्थानपर बैठकर भोजन करनेका नियम यह सब नियम हमारी वासनाओंको रोकने में मदद होती है। तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया। बड़ोंकी आज्ञाका पालन करने से अहंकार झुक जाता है। देवताओंका आदर करनेसे हृदयमें श्रद्धा बनी रहती है।

मैत्रेयजी कहते हैं- विदुरजी। इस प्रकार अपनी सन्तान की शुभ कामना यथा इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति की इच्छा चाहने वाली दिति को दु:ख से काँपती पश्चात्ताप से दुखी और शिवजी की विनय करते देखकर कश्यपजी रोष भरी दृष्टि से उसे देखते रहे। उन्होंने अपने शेष कृत्य को समाप्त किया और सायंकालीन नियम से निवृत्त होकर अपनी पत्नी दिति से दु:ख के स्वर में कहने लगे- तुम्हारा एक अपराध होता तो क्षमा किया जा सकता था। तुम्हारे तो बहुत बड़े-बड़े चार अपराध है।

दिति डर गयी और बोली- भगवन्। चार अपराध कौन-कौन से हैं?

कश्यपजी ने कहा- पहिला अपराध तो यह है कि उस समय तुम्हारा चित्त कामाशक्त था। विशुद्ध पुत्र कामना से तुम्हारी प्रार्थना होती तो वह क्षम्य हो सकती थी। किन्तु उस समय तुम्हारे चित्त में समस्त अनर्थों की जड़ मन्मथ विराजमान था। दूसरा अपराध यह कि वह असमय था। सन्ध्या के समय सभी वृत्ति वाले अपनी-अपनी वृत्ति को छोड़कर भगवत् चिन्तन में लग जाते हैं। उस समय जो भूलकर भी लोक निन्दित कर्म करता है उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। तीसरे तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया। पत्नी के लिये पति सबसे अधिक पूजनीय है। उसकी आज्ञा को न मानना सबसे बड़ा अपराध है। चौथे तुमने रुद्र आदि देवताओं का भी अनादर किया है। मेरे बार-बार समझाने पर भी तुमने भगवान भूतनाथ के गणों का सम्मान नहीं किया। ये चार ऐसे अपराध हैं, जिनका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। अत: तुम्हारे दो बड़े क्रूरकर्मा पुत्र होंगे। वे इतने पराक्रमी और तेजस्वी होंगे कि उन पर ब्रह्मतेज का भी प्रभाव नहीं हो सकता। उन दोनों को मारने के लिये तो साक्षात् श्रीमन्नारायण ही पृथक पृथक दो अवतार धारण करेंगे। वे दोनों भगवान के ही हाथों से मारे जायेंगे।

तुमने मेरी बात को नहीं माना। तुम्हारा चित्त काम वासना में लिप्त था। तुमने असमय में भोग किया है।

अत: अमंगलमयी चण्डी, तुम्हारी कोख से दो बड़े ही अमंगलमय और अधम पुत्र उत्पन्न होंगे जो त्रिलोकी को पीड़ित करेंगे निरपराध प्राणियों को सतायेंगे। उनके अत्याचार से ऋषि-मुनि भी सन्त्रस्त हो उठेंगे तब भगवान अवतार लेकर उन दोनों का वध करेंगे। वे दोनों पुत्र सम्पूर्ण लोकोंको अपने अत्याचरों से निरपराध प्राणियों को कष्ट देंगे, धर्म का नाश करेंगे। साधु तथा स्त्रियों को कष्ट देंगे।

मेरा वीर्य अमोघ है। वह कभी भी किसी भी दशा में, कहीं भी रहेगा, वही फलवान होगा। इसलिये गर्भ का नाश तो न होगा। किन्तु तुम्हारे पुत्र असुर होंगे। वे अमंगलमय, अधम, नीच और जनता के द्वेषी होंगे। तुमने मुझे असन्तुष्ट करके, क्रोध उत्पन्न कराके, मेरी इच्छा न रहनेपर भी गर्भाधान कराया है। इसीलिये तो वे क्रोधी और देवता ब्राह्मणों के द्वेषी होंगे।

लोकपालों के भी परम पूजनीय भगवान शंकर का तुमने सम्मान नहीं किया, इसलिये वे सब लोकपालों और प्रजाओं को पीड़ा पहुँचाने वाले पापी होंगे। आसुरी बेला में भूत, प्रेत, पिशाचों के समय में गर्भाधान हुआ, इसलिये आसुरी प्रकृति के दैत्य होंगे। वे निरपराध दीन प्राणियों को सदा दुख दिया करेंगे तुम्हारे मन में अत्यन्त काम का वेग था, इसलिये इस दोष से वे बड़े कामी होंगे। मुझे भी क्रोध हो रहा था, इसलिये वे इतने शूर वीर पराक्रमी होंगे कि संसार में उनके समान दूसरा कोई भी न होगा। कोई उन्हें मार न सकेगा।

अपने पति कश्यप की बात को सुनकर दिति प्रसन्न हो उठी। उसने कहा- प्रभो, यही मैं भी चाहती हूँ कि मेरे पुत्रों का वध केवल भगवान चक्रपाणि के हाथों से ही हो, कुपित ब्राह्मणों के शापादि से न हो। क्योंकि ब्राह्मण के हाथों जिनकी मृत्यु होती है उसका कल्याण कभी नहीं होता।

कश्यपजी ने फिर दिति से कहा- देवि, तुमने अपनी गलती पर शोक और पश्चात्ताप प्रकट किया है। भगवान शिव, विष्णु और मेरे प्रति भी आदर-भावना व्यक्त की है अत: तुम्हारा एक पौत्र भगवान का अनन्य भक्त होगा। सत्पुरुष भगवान के गुणों के साथ उसके यश गान करेंगे। संसार में तुम्हारी कीर्ति प्रलय पर्यन्त व्याप्त हो जायेगी। तुम्हारा समस्त कुल तर जायेगा। तुम्हारा पौत्र ऐसा भक्त होगा जो २१ पीढ़ियों का तारक होगा। दूसरों के दु:ख में दु:खी, दूसरों के सुख में सुखी होनेवाला, सबका सुहृद्, चन्द्रमा के समान सभी को शीतलता प्रदान करनेवाला तथा समस्त गुणों का आकार होगा। वह भगवान वासुदेव के गुणों में ही सदा अनुरक्त होगा। संसार में उसकी कीर्ति भगवान के समान व्याप्त होगी। भगवान के साथ-साथ उसके भी गुण गाये जायेंगे। तुमको सद्विचारका उदय हो गया, पश्चात्ताप हो गया। तुम्हारे हृदयमें भगवानके प्रति सत्कार है और मेरा भी आदर है। जिसकी कृपासे, जिसके सामर्थ्यसे तुम्हारे वंशका उद्धार होगा ऐसा पौत्र उत्पन्न होगा। लोग उसका आदर करेंगे, उसकी कृपासे सम्पूर्ण विश्वमें प्रसन्नत्ता छा जायेगी, वह महाभागवत, महात्मा होगा और भगवानकी भक्ति करने के लिए वनमें जायेगा। उनका पौत्र प्रह्लाद होगा। उसके चरित्रकी एक विशेषता होगी वह सत्य छोड़ सकता है, पर धर्म और शील कभी नहीं छोड़ेंगे।

मैत्रेयजी बोले- विदुरजी, दिति ने जब इन बातों को सुना तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। कृष्ण के द्वारा दोनों पुत्रों के वध की बात जानकर वह महामना हो गई। सत्पात्रों को बुला-बुलाकर दोनों हाथों से दान देना प्रारम्भ कर दिया। विदुरजी, दैत्यों का दमन करनेवाले भगवान विष्णु हमारे देव-द्रोही पुत्र का विनाश कर देंगे इस भय से आशंकित दिति अपने गर्भ को सौ वर्षों तक धारण किये रही। दोनों बहुत दिन तक गर्भ में ही पड़े रहें। दिति ने गर्भ में ही छिपा रखा उन्हें प्रकट नहीं होने दिया।

दिति देवीके पूत भूत सम पल-पल बाढ़े। सिरतें छूयें स्वर्ग होहिँ जब दोनों ठाढ़े।।
सब डरिकें भग जायँ दूरितें दैत्यनि देखें। तेजहीन ह्वै जायँ जिन्हें स्वाभाविक देखें।।
करहिँ उपद्रव नित नये, तीनि लोक वशमहँ करे। कबहुँ न कोई कछु कहे, दुबके देव रहे डरे।।

इधर जब जय-विजय दितिके गर्भमें आ गये तो मर्त्यलोक, आकाश तथा लोगोंके शरीर में अपशकुन होने लगे। बारम्बार भूकम्प होने लगे, चारों दिशाओंमें आग लगने लगी, केतुओंका उदय हो गया, बड़ी तेज वायु चलने लगी, लोग अपनेसे बड़ोंका तिरस्कार करने लगे, गधे रेंकने लगे, गायके थनोंसे दूधकी जगह खून निकलने लगा स्त्रियाँ रुदन करने लगी। जगतमें जब कोई अपशकुन होनेवाला होता है तो प्रकृति भी रोने लगती है। गाय-बैल तथा दूसरे पशु रस्सी तोड़कर इधर-उधर भागने लगे। प्रकृतिसे भावीकी सूचना किसी-न-किसी से आ जाती है। भयंकर उल्कापात होने लगे। बिजलियाँ गिरने लगीं तथा पीव रुधिर

की वर्षा होने लगी, चारों दिशाओं में दाह उत्पन्न हो गया। नदियां तथा जलाशयों के जल सूख गये। गायों के स्तनों से रक्त बहने लगा, उल्लू, स्यार, खर रोने व चिल्लाने लगे।

उस गर्भस्थ तेज से ही लोकों में सूर्य आदि का प्रकाश क्षीण होने लगा, उससे इन्द्र आदि लोक-पाल भी तेजोहीन हो गये फिर उन लोगों ने ब्रह्मा की शरण में जाकर कहा- प्रभो, चारों दिशाओं में अन्धकार के कारण सर्वत्र अव्यवस्था फैल गई है, हम आपकी शरण में आये हैं। अन्धकार के कारण दिन-रात का भेद भी समाप्त हो गया है, अत: सारे सत्कर्मों के अनुष्ठान रुक गये हैं। आप हम सब प्रजा का कल्याण कीजिये। आग जिस प्रकार ईंधन में पड़कर बढ़ती रहती है, उसी प्रकार दिति की कोख में पड़ा हुआ यह कश्यपजी का तेज सम्पूर्ण दिशाओं को अंधकारमय करता हुआ क्रमश: बढ़ रहा है। वे दोनों जब गर्भ में रहे, संसार में भारी-भारी अपशकुन अमंगल होने लगे। पितामह यह क्या हो रहा है? अभी प्रलय का समय भी नहीं आया। ऐसे-ऐसे अशुभ लक्षण क्यों दिखाई पड़ रहे हैं।

प्रजापति भगवान कश्यप के तेजयुक्त गर्भ को, इस आशंका से कि मेरे इन पुत्रों से देवताओं को कष्ट होगा और इनका तेज दूसरों के तेज को नाश करनेवाला होगा। सौ वर्षों तक दिति अपने गर्भ में धारण किये रही। उसी गर्भ के कारण लोक में जितने सूर्यादि आलोक हैं, वे सब आलोक हीन हो गये, इन्द्रादि लोकपाल तेज हीन हो गये। अत: उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओं में फँसते हुए अन्धकार के कारण हुई अवस्था की बात को लोकपितामह ब्रह्माजी के समीप जाकर निवेदन किया।

सती साध्वी दिति देवी ने जो कि पुत्रों के द्वारा शंकाकुला थी, अपने पति की आज्ञा से पूरे सौ वर्ष हो जाने पर दो यमज पुत्र उत्पन्न किये।

उनकी उत्पत्ति के समय में स्वर्ग, भूतल तथा आकाश में नाना प्रकार के उत्पातों, अपशकुनों की झड़ी लग गई। इन्हें देखकर लोग भयभीत हो गये। जहाँ-तहाँ पृथ्वी और पर्वत काँपने लगे। सारी दिशाओं में आग लग गई। स्थान-स्थान पर उल्कापात होने लगा, बिजलियाँ गिरने लगीं और आकाश में अनिष्ट-सूचक पुच्छल तारे दिखलाई पड़ने लगे। वृक्षों को उखाड़ फेंकनेवाली प्रबल आँधी बहने लगी। चारों दिशाओं में धूल से आकाश आच्छन्न हो गया। सूर्य और चन्द्र के न दिखलाई पड़ने से चारों ओर अन्धकार छा गया। सागर में ज्वार-भाटा आ गया। जलाशयों के कमल सूख गये। सियार बोलने लगे। उल्लू चिल्लाने लगे। गधे रेंकते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे। कुत्ते रोने लगे। गायों के थनों से रक्त टपकने लगा। देव-प्रतिमायें रोने लगीं। मेघ पीब की वर्षा करने लगे। कहीं-कहीं बिना वायु के भी वृक्ष जड़ से उखड़कर गिरने लगे। शनि, राहु आदि क्रूर ग्रह प्रबल होकर चन्द्र, बृहस्पति आदि ग्रहों को लांघ कर तथा फिर वक्रगति से वापस होकर उनसे युद्ध करने लगे। इस प्रकार के विविध उत्पातों को देखकर सनकादि के सिवा और सब प्राणी भयभीत हो गये तथा उत्पातों का मर्म न जानने के कारण उन्होंने यही समझा कि अब संसार का प्रलय होनेवाला है। देवता लोग ब्रह्माजी से बोले- आप तो विज्ञान बल से सम्पन्न है। इस अन्धकार के कारण ठीक से दिन एवं रात्रि का विभाग भी नहीं हो पा रहा है। दिशाओं मे अन्धकार बढ़ता ही जा रहा है।

ब्रह्माजी देवताओं से कहते हैं- अच्छी-बुरी सृष्टि हमारी परम्परा है। वैकुण्ठलोक के निवासियोंको सभी लोक नमस्कार करते हैं। अपने सिर पर रखते हैं। वहांके निवासी सबसे ऊँचे और भगवद्भक्त भगवानके समान ही मूर्तिवाले होते हैं उनको सर्वसामग्री प्राप्त है। वे भगवानकी आराधना करते हैं। भगवान किसी अवयव से प्राप्त नहीं होते। वे तो शब्दगोचर है। वे कभी किसीके जीवन में आते हैं तो गरुडपर ही आते है। भगवान का जप करने से भगवान का दर्शन होगा। एक बार सनकादि ऋषि वैकुण्ठ लोकमें पहुंच गये। वहाँ जाकर बहुत आनन्दित हुए। यह चिन्मय लोक है। उन्होंने सात जोड़ी पार कर ली। वहाँ स्त्री-पुत्रादि का मोह नहीं है। उस सातवे दरवाजे पर दो देवता जय-विजय नाम के पार्षद पहरा दे रहे थे।

देवताओं। वे ही दोनों वैकुण्ठपति प्रभु के प्रधान पार्षद जय-विजय वैकुण्ठ से पतित होकर ब्रह्मर्षि कश्यप की पत्नी के उदर में प्रविष्ट हुए हैं। उन्हीं असुरों के तेज से तुम सब तेजहीन हो गये हो। उनके सामने तुम सब लोकपाल मिलकर भी नहीं ठहर सकते। उन्हें कोई अपने बल पौरुष से जीत नहीं सकता।

वे दोनों आदि दैत्य जन्म के अनन्तर शीघ्र ही अपने फौलाद के समान कठोर शरीरों से बढ़कर पर्वत के समान विशाल बन गये उनका पराक्रम महान् था। उनका शरीर प्रतिदिन आश्चर्यजनक ढंग से बढ़ता था। वे इतने ऊँचे थे कि उनके सुवर्ण-निर्मित मुकुटों का अग्रभाग स्वर्ग को छूता था और उनके विशाल शरीरों से सारी दिशाएँ आच्छादित हो जाती थीं। उनकी भुजाओं में सुवर्ण के बाजूबन्द चमचमा रहे थे। उनके चलने पर धरणी डगमगाने लगती थी। खड़े होने पर सूर्य उनके कटि-भाग के नीचे हो जाता था। प्रजापति कश्यप ने उनका नामकरण किया। उनमें से जो उनके वीर्य से दिति के गर्भ में पहले स्थापित हुआ था, उसका नाम हिरण्य-कशिपु रक्खा और जो दिति के उदर से पहले निकला, वह हिरण्याक्ष के नाम से विख्यात हुआ। हिरण्यकशिपु अभिमान का स्वरूप है और हिरण्याक्ष लोभ का स्वरूप। जहाँ भेद बुद्धि होगी, वहां लोभ और अभिमान का प्रादुर्भाव होगा। जहाँ अभेद बुद्धि है वहां देवताओं का प्राकट्य होगा। देवता सत्वगुण के ही प्रतीक है।

हिरण्य का अर्थ होता है सुवर्ण, कशिपु कहते हैं शय्या को। हिरण्य पर जिसकी निरन्तर आँख लगी रहे वह है- हिरण्याक्ष। लोभ की दो वृत्तियाँ होती हैं- १) भोगवृत्ति और २) संग्रह-वृत्ति वाला दूसरों के धन पर आँख लगाये रहता है। उसे लूट-पाट कर लाकर अपने घर में भरता था और उसका बड़ा भाई हिरण्य-कशिपु छककर भोग-विलास करता था, लोभ की कोई सीमा नहीं होती है। यह प्रतिदिन बढ़ता ही रहता है- जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई। लोभ का विस्तार स्वर्गतक ही नहीं, अपितु ब्रह्मलोक तक होता है। सूर्य-चन्द्र उसकी कमर तक ही नहीं, अपितु बहुत नीचे तक आ जाते हैं। इस प्रकार हिरण्यकशिपु है लोभ की भोगवृत्ति का प्रतीक और हिरण्याक्ष है लोभ की संग्रह-वृत्ति का प्रतीक। लोभ मरते दम तक प्राणी का पीछा नहीं छोड़ता। हिरण्यकशिपु बड़ा उद्धत था। उसे मृत्यु का भय नहीं था। उसने ब्रह्मा के वर के प्रताप से, अपने बाहुबल से सकल त्रिलोकी को वश में कर रक्खा था। जो संसार का ज्ञान करानेवाली इन्द्रियोंमें फंस जाय वही असुर है। लोभकी प्रधानतासे हिरण्याक्ष-हिरण्यकश्यपु हुए, कामकी प्रधानतासे रावण हुआ और क्रोधकी प्रधानतासे शिशुपाल हुआ।

सुंद और उपसुंद - प्राचीन काल की बात है। दैत्य हिरण्यकशिपु के कुल में निकुंभ नाम से एक दैत्य था, जो अत्यंत तेजस्वी और बलवान था। उसके महापराक्रमी दो पुत्र हुए- सुंद और उपसुंद। वे दोनों बड़े भयंकर और क्रूरहृदय थे। वे दोनों सदैव साथ-साथ रहते थे और दोनों का आचरण भी एक जैसा होता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो एक ही जीवात्मा दो शरीरों में विभक्त हो। तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से एकमत होकर देवताओं ने उन दैत्यों को लुभाने के लिए अनेक मायावी उपाय किए, किंतु उन दैत्यों पर उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ। तब संपूर्ण लोकों के हितैषी ब्रह्मा स्वयं सुंद और उपसुंद के सामने प्रकट हुए और उनसे मनोवांछित वर मांगने के लिए कहा।

दोनों दैत्यों ने कहा- भगवन्। यदि आप हमारी तपस्या से प्रसन्न हैं, तो हम दोनों संपूर्ण मायाओं के ज्ञाता, अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग में कुशल, बलवान, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले होकर अमरत्व प्राप्त कर लें।

ब्रह्मा ने उत्तर दिया- अमरत्व को छोड़कर तुम्हारी सभी इच्छाएं पूरी हो जाएंगी। तुमने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से ही तपस्या की थी, अत: अमरत्व तुम्हें नहीं मिल सकता।

यह सुनकर सुंद-उपसुंद बोले- पितामह। तब हम लोगों को आप यह वर दीजिए कि हम दोनों में से एक-दूसरे को छोड़कर, तीनों लोकों में अन्य किसी से मृत्यु का ये नहीं हो। ब्रह्मा ने उन्हें वह वर प्रदान कर दिया। अंत में तिलोत्तमा नाम

की देवांगना अपने रूपसे दोनों को मोहित करके आपस में कलह करवा दी और दोनों आपसमें लड़कर मर गये।

ब्रह्माजी ने कहा- देखो, पहिला तो यह है कि भगवान की अनुकम्पा की प्रतिक्षण प्रतीक्षा करता रहे। दूसरा यह कि प्रारब्धानुसार जो सुख-दु:ख आ जाय, उसका उदासीन भाव से भोग करता रहे और तीसरा यह कि निरन्तर हृदय से, शरीर से और वाणी से भगवान को नमस्कार करता है, वह संसार-सागर से सहज में ही पार हो जाता है।

ब्रह्मा ने देवों की बातें सुनी, उन्हें हँसी आ गई फिर देवताओं को अपनी मधुर वाणी से प्रसन्न करते हुए उन्होंने कहा- देवों, इस संकट का पूरा रहस्य बताता हूँ। ब्रह्मा बोले- भगवान वैकुण्ठनाथ के पार्षद दिति के गर्भ में आये हैं। राक्षस गर्भ में आते हैं तो अमंगल अपशकुन होते हैं? हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का जन्म हुआ। हिरण्याक्ष जन्म से बड़ा पराक्रमी और उपद्रवी हुआ। इसने पृथ्वी को उठाया और ले जाकर रसातल में छिपा दिया और बोला, यह पृथ्वी मेरी हैं।

विदुरजी मैत्रेय मुनिसे पूछते है- मैत्रेयजी किन-किन देवोंकी आराधना करने से क्या-क्या फल प्राप्त होते है? मैत्रेय मुनि कहते है- विदुर, भागवत के लक्षणोंमे मैंने बताया भगवान के अनन्य भक्ति से भगवान प्राप्त होते हैं अन्य देवताओंकी भक्ति करने से, सकाम कर्मोंसे आपको भगवत प्राप्ति नहीं होती, आपको ऐश्वर्य, बल, बुद्धि, विद्या, नाम यह सब प्राप्त हो सकते है। कौनसे देवताओंसे क्या-क्या प्राप्त हो सकता है इसके बारेमें विवेचन करें। मैत्रेय मुनिने बताया- यदि आप बृहस्पति की उपासना करोगे आपको बुद्धि प्राप्त होगी, आप दुर्गा की उपासना करोगे आपको बल प्राप्त होगा, आप कुबेर की उपासना करोगे, यक्ष की उपासना करोगे- धन प्राप्त होगा। आप ऊर्वशी की उपासना करोगे- रूप प्राप्त होगा, हरेक अलग-अलग देवताओंका अलग-अलग कार्य निरूपण किया हुआ है। लेकिन वो वहींतक सीमित रहेगा। यदि आयुकी बलवृद्धि चाहते हो तो ब्रह्माकी उपासना करो। आप तेज की उपासना चाहते हो तो शंकरकी, अग्निकी उपासना करो। विदुरजी बोले- भगवान यह अग्नि तेज है, रूप है इसकी उपासना कैसे किया जाए? मैत्रेय मुनि बोले- अग्नि एक ऊंचास भांति की है। विदुर बोले- भगवन इसका संक्षेप से वर्णन करें आपकी सृष्टिमें यह अग्नियां बनी है यह ऊंचास अग्नियां क्या है? अग्निके तीन पुत्र हुए- सूचि, पवन, पावक। इनके तीन और पुत्र हुए- आहवनीय गार्हपस्थ अग्नि, दक्षिणायन अग्नि। फिर प्रत्येक के चौदह-चौदह पुत्र हुए। यह आहवनीय अग्नि क्या है? यह गार्हपस्थ, यह दक्षिणायन अग्नि क्या है? आहवनीय अग्नि- जिससे हवन किया जाता है। यज्ञकुंडोमे अग्नि जलायी जाती है, जिससे देवत्व की पूजा कि जाती है। ऐसे ये अग्नियां हवन के काममें आती है, शुद्ध अग्नि है, सात्विक अग्नि है, यज्ञ अग्नि है। एक दिव्य अग्नि है जो आकाश में बिजली चमकती है यह देवताओंकी दी हुई अग्नि है। यह सबको जला सकती है। कभी गिर जावें तो मौत हो जाती है। जंगल-के-जंगल, शहर-के-शहर जल जाते है। इसका तो उल्कापात न हो तो अच्छा है। नहीं तो पूरी सृष्टि मिटा सकती है। यह दिव्याग्नि, देवोंकी अग्नि। दूसरी गार्हप्रस्थ अग्नि- जो घरोंमे जलाये जाती है। जिससे चूल्हे चलाये जाते है। यह भी बड़ी पवित्र अग्नि मानी गई है। मैत्रेय मुनि कहते है- कि हर घर में यह अन्नपूर्णा का वरदान है, कहना है- कि आपके घरमें दोनों समय अग्नि चूल्हा जलना चाहिए। वैसे तो वैदिक काल में २४ घंटे यज्ञकी अग्नि जलती रहती थी और जो सब जलाया जाता है परम्परा निभाते है हम, पालन नहीं करते। जब घरमें किसी की मृत्यु होती है तो घरसे अग्नि जाती है उसकी अग्निमें मिलाने को। ये नियम है कि जो घरमें हवन हो रहा है, यज्ञ हो रहा है उस यज्ञ होमकुण्ड की अग्नि लेकर वो शवयात्रा में अग्नि ले जाई जाय और वहांकी अग्नि प्रज्वलित करके उस अग्निमें मिलायी जाय यह इसका विधान है। लेकिन परम्परा यह है कि हम घरमें यज्ञकुंड करते नहीं अग्नि २४ घंटे जलती नहीं। बस शवयात्रा के समय मटका लाकर घासफूस से अग्नि लगाकर ले जाते है। हम परम्पराओंको निभाते है, वैदिक नियमोंको नहीं। आज शादी-ब्याह कराते वैदिक नियमोंसे चाहते है कि वैदिक मंत्र पाठ पढाया जाए तो पति-पत्नीका जीवन सुखी हो जाय। या तो ब्राह्मणोंको रूपये देकर आधा घण्टे में यह मंत्र पढ़ाना।

यह हमारी परम्परा है। हम लकीर पीठते है, हम अपने वैदिक मंत्रों को नहीं मानते है। फिर वैदिक मंत्र भी सफल नहीं होते। पहले लोक श्राप देते थे तो वे फलीभूत होते थे। वरदान देते थे तो वरदान फलीभूत होते थे। उन शब्दों, मन्त्रोंमे ताकत थी। आप अब किसीको श्राप देंगे तो कोई फरक नहीं पड़ती। क्योंकि उस शब्दोंमे ही जोश नहीं है, शक्ति नहीं है। वह शब्द ही शाश्वत नहीं है। अब शब्दोंमे ताकत है क्या नहीं? देखिए यह शब्द क्या है? सात सुरोंसे मिले हुए सप्त स्वर षडश, पंचम, देवत, ऐसे सात स्वर और शब्द उससे बने है, संगीत उससे बना है जो गीत के साथ है। संगीत क्या है? जो नृत्य के साथ है। यह संगीत एक कशिश पैदा करता है। शब्द- शादी ब्याह में बाजे बजते है, या कोई अच्छा संगीत बजता है तो आपके पांव थिरकने लगते है। क्यों? यह संगीत का, शब्दोंका प्रभाव, ताल का प्रभाव। कहते है जब तानसेन गाता था, तो जब दीपक राग गाता था तब दीपक जलते थे, मल्हार राग गाता था तब पानी बरसता था। एक बार तानसेन का और बैजू बावरा का मुकाबला हुआ। कहते है **सात सुरोंके मधुर मिलन में जादू आज जगा दे, बैजू के संगीत से दाता जल में आग लगा दे।** पत्थर की मूर्तियां रोने लग गयी थी। यह दोनों के अन्दर की प्रतियोगिता में। इतनी कशिश संगीतमय, यह गीत, संगीत, यह शब्द। ये गीत और संगीत इसकी परिभाषा। अग्नि यह जो तेज की गार्हपस्थ्य अग्नि जो घरोंमे, चूल्होंमे जलायी जाती है। तीसरी दक्षिणायन अग्नि- यह बड़ी अशुद्ध अग्नि। श्मशान घाट में चिता जलाएं जाते है उस अग्निको लाकर क्या आप अपने घरके चूल्हे जलाएंगे। यह अशुद्ध अग्नि है। जो अग्नि जंगल में लग जाती है दावाग्नि जो लगती है, बांसों के रगड़ने से। जो अग्नि समुद्रमें लग जाती है उसे बड़वानल कहते है। तेल के कुएं जलते है, बरसोंतक नहीं बुझते- बड़वानल। यह अग्नियां है। आवाहनीय अग्नियोंमे आपका यह शरीर एक यज्ञ है इसमें पन्द्रह अग्नि है। कामाग्नि- काम जब शरीर में आता है कैसा मार्गदर्शन होता है। मंदाग्नि, जठराग्नि, गर्भाग्नि, क्षुधाग्नि-भूख लगती है। इस देह में भी पंद्रह अग्नि है। गर्भ इसीसे सिकता है। अगर अग्निमें बच्चा हाथ डाले तो जल जानेका डर है। वो ही बच्चा गर्भ में रहता है और उस अग्निके बिना गर्भ पकता नहीं है। उस गर्भ को जहां अग्नि दी जाती है, उसके बाजूमें माताकी जठराग्नि रहती है (उदर) जहांसे अग्नि भट्टी की तरह जलती है वैसी अग्नि अंदर है फिर भी बच्चा नहीं जलता है। इस तरह के १५ अग्नियोंका वर्णन मैत्रेय मुनिने किया। मैत्रेय मुनिने यह बताया कौनसे देवोंकी उपासना करने से क्या प्राप्ति होती है। इसके बाद मैत्रेय मुनिसे विदुरने पूछा- महाराज, ब्रह्मा की जो उत्पत्ति हुई, सृष्टिका वितान हुआ, कैसे हुआ? इसके बारेमें मुझे कुछ ज्ञान करायें। मैत्रेय मुनि कहते है- विदुर, ब्रह्मा हरि के अंश से उत्पन्न हुआ और ब्रह्माने अपनी मानसिक सृष्टियां की। ४ सनत्कुमार, ९ ऋषि, वशिष्ठ अत्रे, जो कि परिक्षित को शुकदेवने बता दी है। परिक्षीत, मरिचि, अंगिरा, अत्रे, वशिष्ठ, अथर्वा, पुलत्स्य, पुलह, क्रतु इस तरह से ९ ऋषियोंका जन्म हुआ। एक प्रजापति दक्षका जन्म हुआ, एक मनु और शतरूपा का जन्म हुआ। विदुर बोले भगवान यह मनु और शतरूपा इनका चरित्र क्या है? इन्होंने कोई सृष्टि बढ़ाई? मैत्रेय मुनि बोले- जब वराह भगवान ने पृथ्वीको रसातल से लाकर समुद्रके जलपर स्थापित किया तब उन्होंने सृष्टि का पालन किया। मन्वंतर काल बढ़ाया और सृष्टि बढ़ी। विदुर बोले- मुझे इसका वर्णन सुनाइये? मैत्रेय मुनि बोले- ब्रह्माकी छायासे एक ऋषिकी उत्पत्ति हुई उसका नाम था कन्दम ऋषि।

९) देवहूति और कर्दम का चरित्र

शौनक पूछे सूत से विदुर यह बात बताओ। पुनि जो कही कथा ताहि अब सौम्य सुनाओ।।
कृष्ण कथा अति विमल गंग सम यह अघ हरनी। भव सागरके पार करनकूँ दृढ़तर तरनी।।
खर, कूकर, सूकर, सरिस, वृथा भार तनुको वहहिं। हतभागी मृतवत् पुरुष, जो न कथा सुनि सुख लहहिं।।

शौनक जी पूछते है- हे सूतजी। स्वायंभुव मनु ने जीवों की आधारभूत पृथ्वी को पाकर फिर आगे होनेवाली सन्तति के

लिये किन-किन उपायों का अवलम्बन किया?

यह जगत् प्रवाह नित्य है। इसका ओर नहीं छोर नहीं, आदि नहीं अन्त नहीं। अनन्तकाल से यह प्रवाह बह रहा है, अनादिकाल तक बहता रहेगा। ब्रह्माजी के मन में जो संकल्प मन से प्रकट होते हैं वही सूक्ष्म सृष्टि कहलाते हैं। जब उस सूक्ष्म-सृष्टि के पदार्थों में वासना का प्राबल्य होने लगता है तो वह स्थूलता का रूप धारण करने लगता है। श्री भगवान, प्रकाश रूप हैं। उनसे जो जितना ही दूर हटता जायगा उतना ही तम की ओर बढ़ता जाएगा। तम की ओर बढ़ना अर्थात स्थूलता को ग्रहण करना है। ब्रह्माजी से ऋषि मुनि, उनके प्रजापति, उनसे मनु, मनु से मनु पुत्र, मनुपुत्रों से मनुष्य, मनुष्यों से पशु-पक्षी और पशु-पक्षियों से वृक्ष-पाषाण आदि। इस प्रकार जो स्थूलता से हटकर सूक्ष्मता की ओर बढ़ेगा वह उतना ही भगवान के समीप जायेगा। यह चक्र निरन्तर चलता है। इसीसे उत्पत्ति, प्रलय और जन्म-मरण का प्रभाव है।

विदुरने पूछा- मुनिवर। ब्रह्माने मरीचादि दस पुत्रों को और मनु शतरूपा को उत्पन्न करके फिर कौन-कौन सी सृष्टि की। मैत्रेय मुनि बोले- हे महाभाग। भगवान की इच्छा होने पर काल कर्म और प्रकृति के संसर्ग से तीनों गुणों में क्षोभ हुआ। इससे महतत्त्व, तीन प्रकार के अहंकार, पंचतन्मात्रायें, पंचभूत, पाँच-पाँच ज्ञान और कर्मेन्द्रियां, उनके अधिष्ठातृदेव आदि उत्पन्न होकर अंडाकार बन गये। उसी विष्णु भगवान के नाभि कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उन्होंने पंचपर्वा, अविद्या, यज्ञ, राक्षस, देवता, असुर आदि की सृष्टि की। फिर दिन-रात्रि सन्ध्या आदि उत्पन्न करके काल विभाग किया। तदनन्तर अप्सरा, गन्धर्व, भूत, पिशाच, निद्रा, तन्द्रा, उन्माद, पितर, साध्य, किन्नर, किंपुरुष, सर्प आदि की रचना की। यह सब रचना होने परभी ब्रह्माजी को संतोष नहीं हुआ। तब उन्होंने पुरुषाकार शरीर में मैथुनी सृष्टि कर मनुष्योंको उत्पन्न किया। उसी समय स्वायंभुवमनु और शतरूपा रानी की उत्पत्ति हुई। शतरूपा सृष्टि में सबसे पहिली नारी हुई जिसका विवाह स्वायंभुवमनु के साथ हुआ।

इस प्रकार सृष्टि आगे बढ़ नहीं रही थी। ब्रह्माजी को इसकी बड़ी चिन्ता थी। फलत: एक दिन उन्होंने शयन की मुद्रा में अपने शरीर का परित्याग कर दिया। इससे जो केश गिरे वे अहि हो गये। प्रसर्पण (सरकना) करने के कारण सर्प कहलाये।

अन्त में सृष्टिकर्ता ने इन्द्रियसंयमपूर्वक तप, विद्या, योग और समाधि से सम्पन्न हो अपनी प्रिय सन्तति ऋषिगणों की रचना की और प्रत्येक को अपने समाधि, योग, ऐश्वर्य, तप, विद्या तथा वैराग्यमय शरीर का अंश दिया।

विदुरजी ने मैत्रेय जी से पूछा- भगवान स्वायम्भुव मनु का वंश बड़ा आदरणीय माना गया है। इस वंश में स्त्री-पुरुष के संयोग से सृष्टि हुई है। मैथुन-धर्म के द्वारा प्रजा की वृद्धि हुई है। बाकी सृष्टि जो है, वह तो मानस है। अब आप मुझे उसी वंश की कथा सुनाइये।

मैत्रेय मुनि बोले, स्वायंभुव मनु के दो धार्मिक पुत्र- प्रियव्रत और उत्तानपाद थे। जो इस पृथ्वी के राजा हुए उन्होंने समस्त वसुन्धरा का पुत्रवत् पालन किया। उनकी तीन कन्याएं थीं- आकूति (आकृति), देवहूति एवं प्रसूति। इस प्रकार स्वायम्भुव मनु की कुल पाँच सन्तानें थी। प्रियव्रत और उत्तानपाद सातों द्वीपवाली पृथ्वी के मालिक थे, शासक थे। देवहूति कर्दम की पत्नी बनी। देवहूति का अर्थ है- सम्पूर्ण देवताओंको अपने पास बुला लेती है। देवोंकी आह्वान कारिणी होनेके कारण उसका नाम देवहूति है। वह बुद्धिरूप है।

वह योग के लक्षण यम आदि से सम्पन्न थी। देवहूति के गर्भ से साक्षात् श्रीमन्नारायण के अंशावतार भगवान कपिल का जन्म हुआ। भगवान रूचि ने आकूति से तथा ब्रह्मपुत्र प्रजापति दक्ष ने प्रसूति से सन्तानें उत्पन्न की। इनके द्वारा जो संताने हुईं उसीसे चराचर विश्व भरता गया।

ब्रह्माके पुत्र हैं प्रजापति कर्दम। ब्रह्माजी हैं सूक्ष्म शरीरके देवता। उनसे जब स्थूल शरीरवाले कर्दमजी हुए तो ब्रह्माने कहा- शरीरसे सृष्टि बढ़ाओ। उस समय परिवार-नियोजन अनावश्यक था। पहले लोग वृद्धोंकी मृत्यु और नये जीवनके आगमनमें विश्वास करते थे। आज विज्ञान कहता है- रोग मिटाओ। वृद्धोंकी आयु बढ़ाओ। हम मरने न पायें। और नयें बच्चे उत्पन्न न होने पायें। सन्तति नियमन करो। उन दिनों सृष्टिकी वृद्धि अभीष्ट थी।

कर्दम ऋषि ने तप कियौ, होय ब्रह्म में लीन। नारायण ने प्रसन्न हो, मुनिवर को वर दीन।।

ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर महर्षि कर्दम तपस्या करने लगे। पुत्र ही उत्पन्न करना है तो योग्य पुत्र पैदा हो, इस योग्य बनें। वह पुत्र पुत्र है, जिसके उत्पन्न होनेसे वंश उज्ज्वल हो। मनुष्य भले ही दो घड़ी ही जाये; किन्तु प्रोज्ज्वल जीवन जीये। सन्तान तो चींटी, मक्खी, जुएँ भी उत्पन्न करते हैं। ऐसी सन्तान क्या उत्पन्न करना।

शौनक मुनिको प्रश्न सूत सुनि हरषे मनमहँ। प्रेम विकल अति भये रोम पुलके सब तनमहँ।।
बोले ऋषियों सुनो। गये मनु शतरूपा सँग। दम्पतिमहँ अति प्रीति प्रेमतें पुलकित अँग-अँग।।
द्वै जनमे अति सुघड़ सुत, प्रियव्रत अरु उत्तानपद। जाई तनया तीन जग, यश छायो जिनतें विशद।।

मैत्रेयजी बोले- विदुरजी, जब ब्रह्मा जी ने कर्दम को आज्ञा दी कि तुम सन्तान की उत्पत्ति करो तो उन्होंने दस हजार वर्षों तक सरस्वती नदी के तट पर तप किया। यह बात सत्ययुग के आरम्भ की है। उनके तप से प्रसन्न हो भगवान उनके समक्ष प्रकट हुए। कर्दम ने ये संकल्प लेकर तपस्या शुरू कर दी कि उनका विवाह किसी परम सुन्दरी नारी से होगा। कोई तपस्या करता है भगवान की प्राप्ति के लिये, कोई तपस्या करता है भक्ति पाने के लिये, कोई तपस्या करता है मुक्ति पाने के लिये। मन की गति बड़ी विचित्र है। मन को जीतना किसी के वश की बात नहीं। विश्वामित्र ने साठ हजार वर्षों तक तपस्या की, मेनका अप्सरा ने विश्वामित्र की तपस्या को भंग कर दिया। कर्दम ने दस हजार वर्षों तक तपस्या की।

कर्दम मुनि की भी तपस्या पूर्ति का समय आ गया। उनके घोर तप से प्रसन्न होकर वर देनेवालों में श्रेष्ठ, भक्तवत्सल भगवान कर्दम मुनि के सम्मुख प्रकट हुए। मुनिवर कर्दम सरस्वती तट के अपने परम रमणीय आश्रम में स्वस्थ्य चित्त होकर सुखासन से विराजमान थे। उन्होंने चित्त की बिखरी वृत्तियों को एकत्रित करके भगवान में लगा दिया। वे धारणा ध्यान से ऊँचे उठकर समाधि में श्यामसुन्दर-श्रीहरि का साक्षात्कार करने लगे। भगवान के सौन्दर्य माधुर्य रूपी-अमृत के पान करने के कारण वे इतने सन्तुष्ट थे, कि उन्हें बाह्य जगत् का भान ही नहीं रहा कि बाहर क्या हो रहा है। भगवान की जिस मनोमयी-मूर्ति का वे ध्यान कर रहे थे, सहसा वह उनके हृदय से अन्तर्हित हो गई। ध्येय वस्तु के विलीन हो जाने से व्याकुल हो गये, उनकी समाधि भंग हो गई, और हड़बड़ाकर उन्होंने आँखें खोल दी। आँखें खोलने पर उन्होंने देखा- शंख, चक्र, गदा और पद्म आदि आयुधों को धारण किये, वनमाला पहिने, कौस्तुभमणि धारण कर, श्रीविष्णु भगवान सशरीर मूर्तिमान खड़े है।

देवहूति जिहि भाँति विवाही कर्दम ऋषितें। कहूँ भयो कस प्रथम व्याह सो वैदिक विधितें।।
विधिकी आज्ञा पाइ चले कर्दम तपके हित। विषयनितें मन रोकि लगायो श्रीहरिमहँ चित।।
वरष सहस्र-दश तप कर्‌यो, तनुतें कृश अति ही भये। भीषण तपतें तुष्ट ह्वै, कमलनयन दरशन दये।।

भगवान को देखते ही कर्दम जी ने उनके समक्ष साक्षात् दण्डवत् प्रणाम किया और कहा- प्रभो, आज हमारे नेत्र सफल हो गये। बड़े-बड़े योगी योग पर आरूढ होकर आपके दर्शन की इच्छा करते हैं। आप का चरण-कमल संसार-सागर को पार करने के लिये पोत है, नैया है। जिनकी बुद्धि आप की माया से मारी गई है, वे ही उन तुच्छ क्षणिक विषय-सुखों के लिये नारकीय सूकर-कूकर योनियों में मिल सकते हैं, आपके उन चरणों का आश्रय लेते हैं। परन्तु प्रभो, आप उन्हें

विषय-भोग भी कृपा कर प्रदान कर देते हैं। थोड़ी सी तपस्या से प्रसन्न होकर आप सबके अभिलाषा पूरी कर देते हैं, आप कितने दयालु है। भगवान चरणारविन्दनिष्ठ उत्तम भक्त कभी भी कोई अभिलाषा नहीं करते, मात्र अनन्य भाव से आज्ञा का प्राणपण से पालन करते हैं। मायासे मारे हुए लोग अपनी कामनाकी पूर्तिके लिए आपकी आराधना करते हैं। लेकिन कामनाएँ तो नरकमें भी मिल सकती है। मेरा हृदय काम-कलुषित है। आप तो कल्पवृक्ष है, आपके चरण समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। मैं अपने समान स्वभाववाली गृहस्थधर्मके पालनमें सहायक शीलवती कन्यासे विवाह करने की इच्छा रखता हूं। आप सम्पूर्ण लोकोंके अधिपति है। नाना प्रकारकी कामनाओंमें फँसा हुआ यह लोक आपकी वेद-वाणीरूप डोरीसे बन्धा हुआ है। हे धर्ममूर्ते, उसीका अनुगमन करता हुआ कालरूप आपको पूजोपहारादि समर्पित करता हूँ।

कर्दम जी ने आगे कहा- मैंने अपने समान एक पत्नी से विवाह करने के लिये आप की आराधना की है। मेरा यह कार्य वैसे ही है जैसे कोई अल्पज्ञ व्यक्ति एक कानी कौड़ी प्राप्त करने के लिये कल्पवृक्ष का सेवन करे। मैं एक कानी-कौड़ी प्राप्त करनेके लिये इस कल्पवृक्षके नीचे नहीं आया हूँ। दुनिया तो आपके वचनोंसे बँधी हुई है। मैं विवाह भी आपकी पूजा करनेके लिये करना चाहता हूँ। जो आपके चरणोंके आश्रय में आ जाते हैं उन्हें कामका भय नहीं होता। भक्तोंपर आपका काल-चक्र कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। आप ही सृष्टि-स्थिति-प्रलयके स्वामी हैं।

महामुनि कर्दमजी ने भगवान से वरदान माँगते हुए उनसे विनय करी- हे प्रभो। जो कामना से उपासना करते हैं उन्हीं के समान मैं दुरात्मा हूँ, कल्पवृक्ष के समान इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले आपके चरणों की शरण में आकर अपने अनुकूल स्वभाव वाली धर्म अर्थ और कामरूपी त्रिवर्ग को प्राप्त करनेवाली गृहस्थ की कामधेनु पत्नी की इच्छा करता हूँ।

हे देव आप काल स्वरूप हैं। ब्रह्मा इसको घुमाने की धुरी है। द्वादशमास इसके अरे हैं। तीन सौ साठ दिन जोड़ हैं षटऋतु नेमि है। क्षण, पल आदि इसमें धारे हैं। तीनों चातुर्मास इसकी नाभि है। यह कालचक्र सम्पूर्ण जगत की आयु को क्षीण करता हुआ सदा घूमता रहता है, किन्तु भगवद् जनों की आयु कभी क्षीण नहीं होती। हे देव, आप भक्तों को विषय सुख प्रदान इसलिए करते हैं कि जिससे हम लोग पितृ ऋण, देवऋण, ऋषिऋण से उऋण होकर मोक्ष प्राप्त कर सके।

भगवान ने कहा- कर्दमजी, मैंने आपके मन की बात जानकर पहले से ही उसकी व्यवस्था कर दी है। प्रजापते, मेरी आराधना तो कभी भी निष्फल नहीं होती फिर एकाग्रचित्त निर्मल हृदयवाले आप जैसे महात्माओं की तपस्या तो और अधिक फलवती होती है।

चतुर्द्वीपा वसुमती के एकछत्र सम्राट् महाराज मनुजी अपनी पत्नी शतरूपा और सुन्दरी बेटी देवहूति के साथ रथ पर आरूढ होकर परसों यहाँ आपके पास आयेंगे। वे रूप-यौवन, शील और गुणों से सम्पन्न अपनी श्यामलोचना बेटी का विवाह आप से करना चाहते हैं। वह राजकुमारी सब तरह से आप के योग्य है। आपकी सेवा-शुश्रूषा वह अपनी शक्ति भर करेगी। उससे आपको नौ बेटियाँ उत्पन्न होंगी। उनका विवाह आप ऋषियों-मुनियों के साथ करें। वे ऋषि-मुनि-जन उनसे बहुतसी सन्तानें उत्पन्न करेंगे। उनकी सन्तान परम्परा से यह सारा जगत् भर जायेगा। अन्त में आप अपने विशुद्ध कर्मों से मुझे ही प्राप्त करोगे। महामुने, मैं भी अपने अंश-कलारूप से आपके वीर्य द्वारा देवहूति के गर्भ में अवतार लेकर सांख्यशास्त्र की रचना करूँगा। तुम संयमी बनोगे, जीवोंपर दया करोगे, सबको अभयदान करोगे और मुझको सबमें और सबमें मुझको देखोगे। मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा और सांख्य-दर्शनका प्रणयन करूँगा।

कीन्हीं बहु विधि विनय बताई इच्छा अपनी। कामधेनु सम सुखद सुन्दरी चाहूँ घरनी।।
हरि हँसि बोले- बहू मिलेगी सरसिज नयनी। मनु पुत्री अति सुघड़ सुशीला कोकिल बयनी।।

नौ कन्याहू होयेंगी, निज यशतें जग भरिंगी। देहुँ ज्ञान तब तनय बनि, आप तरें माँ तरिंगी।।

मैत्रेय जी कहते हैं- विदुरजी, कर्दम ऋषि से इस प्रकार सम्भाषण करके श्रीहरि सरस्वती नदी से घिरे हुए, बिन्दुसर तीर्थ से, जहाँ कर्दम ऋषि तप कर रहे थे, अपने लोक को चले गये। जब भगवान श्रीविष्णु कदर्म ऋषि के पास पहुँचे तो वे तप में संलग्न थे। उनका शरीर अस्थि-पंचरमात्र रह गया था। भगवान ने उनकी यह दशा देखी। करुणा के सागर भगवान की आँखों से अश्रुबिन्दु टपक पड़े। वही परम पावन बिन्दु सरोवर बन गया फिर भगवान ने कर्दम ऋषि के शरीर पर दृष्टि पात किया। इससे उनका शरीर स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट बन गया। यह बिंदु सरोवर गुजरात में है। कर्दम जी का यह आश्रम सिद्धपुर के नाम से विख्यात है। यहाँ कर्दम को सिद्धि मिली थी अत: इसे सिद्धपुर कहते हैं। सिद्धपुर गुजरात में स्थित हैं।

वो कर्दम ऋषि बिंदुसरोवर सरस्वती नदीका तट, गुजरात में सिद्धपुर में वहांपर आश्रम बनाकर कर्दम ऋषि तपस्या कर रहे थे। मनु के यहां पांच सन्ताने हुई। मनुके यहां तीन लड़किया और दो लड़के। एकका नाम था प्रियवर्त, एक का था उत्तानपाद और तीन लड़कियां- प्रसूति, देवहूति, आकुति। यह तीन लड़कियों का जन्म हुआ। अब देवहूति इस कन्याका विवरण करेंगे, इसके वंश का। क्योंकि मनु के वंश का जब मैत्रेय मुनिने पूछा है तब इन पांचों सन्तानों का वर्णन करेंगे। अब देवहूति का वर्णन आता है। देवहूति बड़ी हो गयी है। कर्दम ऋषि सिद्धपुर में एक आश्रम में तपस्या कर रहे है। तपस्या किसलिए कर रहे है। १० हजार वर्ष तक तपस्या करी ये कर्दम ऋषिने कि मेरी शादी हो जाएं और भगवान भी यही चाहते थे कि प्रजा बढ़े। कोई तैयार ही नहीं हो रहा था यह काम करने को। भगवान हरि, विष्णु कर्दम ऋषिके आश्रम में जाते है। आश्रम बढ़िया, सुन्दर अच्छा आश्रम है। पेड़, सरोवर, नदी, पशु-पक्षी और ऐसे पशु पक्षी कि एक घाट पर हिंसक जानवर भी अच्छे सौम्य जानवरों के साथ पानी पीते है। यह बड़ा ही अद्‌भुत समागम है। आप ये सिर्फ शिव परिवार में देखेंगे कि जहां विरोधी स्वभाववाले एक साथ रहते है। ऐसा हर व्यक्ति की क्षमता नहीं है। जो सिद्ध व्यक्ति हो उसीके यहां ऐसी सम्भावनाएं होती है। आप शिवजी के परिवार में जाइये और देखिए शिवजी कितने बड़े परिवारवालों को, विरोधी स्वभाववालोंको पालते है। गणेशजी, कार्तिकेय उनके पुत्र है। विरोधी स्वभावकी पत्नियां है- रिद्धि, सिद्धि, पार्वती, देवसेना, सृष्टि। कार्तिकेयका वाहन है मयूर, केकी। शिव का वाहन है बैल, मुण्डमाला गले में धारण किये रहते। गणेशजीका वाहन है चूहा। यह सब एक परिवारमें रहते है। देखिये कितने विरोधी स्वभावके है। सर्प चूहेको खा जावें। भवानी सिंहपर बैठती है। पार्वती उसकी सवारी जो सबको खा जावें। मयूर सांप को खा जावें। एक-एक विरोधी स्वभाववालोंको पाल रखा है। ऐसे कर्दम ऋषिके आश्रम में विरोधी स्वभाववाले पशु-पक्षी जीव, जन्तु एक घाट पर पानी पीते हैं। यह कर्दम ऋषिकी तपस्या। ऐसा सुन्दर आश्रम वहांपर भगवान पहुंचे। जैसे ही भगवान पहुंचे कर्दमजी तपस्यामें थे तपस्या टूटी और बोले भगवान आप। पधारिये, बहुत अच्छा है कहिये आपकी सेवा में। भगवान बोले- कर्दम तुम तपस्या कर रहे हो? शादी करना चाहते हो? बोले- भगवान करना तो नहीं चाहता था। भगवान बोले- तपस्या क्यों कर रहे हो? कर्दम बोले- आपका आदेश था। भगवान बोले- सुन आजके तीन दिन बाद यहांका राजा मनु अपनी कन्या देवहूति को लेकर आयेगा, शतरूपा साथमें आयेगी उसकी पत्नी। वो तुम्हें देखने आ रहे है और मैंने उनको समझा दिया, तुम्हारे बारेमें सब बता दिया, कैसा परिवार है सब आपके बारेमें बता दिया। कन्या देखकर तुम मना मत करना। कन्या सुन्दर है मैंने देख लिया है। ऋषि बोले- आपने देख लिया है तो भगवान जैसी आपकी आज्ञा। भगवान वहांसे निकले। भक्त की ऐसी स्वीकृति, तपस्या, ऐसी भक्ति देखकर भगवान के नेत्रोंसे आँसू निकले। उन आँसुओं का सिद्धपुर आश्रम में एक सरोवर बन गया उसका नाम हुआ बिन्दु सरोवर। भगवान चले आए।

इत नारद मुनि देवहुति पितुके ढिंग आये। कन्या हित अति खिन्न लखे तब वचन सुनाये।।
कन्या-दान निमित्त जाहु ढिंग कर्दम मुनिके। अति प्रसन्न नृप भये, बैन मुनिवरके सुनिके।।
यदि कर्दम कन्या गहहिं, मन वांछित फल पाउँगा। पुत्री पत्नी संग लै, कालि तहाँ हौं जाउँगा।।
दीन्हों हरि वर बिन्दु अश्रु नयननितें निकसे। बिन्दुसरोवर भयो विमल जल सरसिज बिकसे।।
इत मनु पत्नी सहित संग कन्याकूँ लीन्हें। नारद आज्ञा मानि, बिन्दुसर नृप चलि दीन्हें।।
जहँ कदम्ब, चम्पक, बकुल, कुटज, कुन्द, मंदार नग। पहुँचे मुनि आश्रम निकट, चहुँदिशि कूजहिं वृन्द खग।।

भगवान के चले जाने पर कर्दम जी उनके द्वारा बतलाये गये समय की प्रतीक्षा करते हुए अपने आश्रम में बैठे थे। मैत्रेय मुनि विदुरसे बोले- हे विदुरजी। महाराज मनु भी अपने सुवर्ण जटित रथ पर अपनी भार्या शतरूपा सहित अपनी पुत्री देवहूति को बिठाकर, पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए शान्त मूर्ति- महर्षि कर्दमजी के आश्रम पर उसी दिन पहुँच गये, जिस दिन के लिये भगवान नित कर गये थे।

विनय कीन्ह मनु आय कर, कर्दम ऋषि के पास। देवहूति संग ब्याह करी, पुजवो मम मन आस।।

उन्होंने देखा कि भगवान के स्नेह-भरे अवलोकन से कर्दम जी हृष्ट-पुष्ट होकर शान्त बैठे हैं। ऋषि का आश्रम बड़ा मनोहर था। वृक्ष और लताएँ फलों-फूलों से लदी थीं। विविध प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे थे। मुनि के शरीर से तप के तेज की आभा निकल रही थी। वहाँ झुण्ड के झुण्ड मतवाले पक्षी चहक रहे थे, मतवाले भँवरे मँडरा रहे थे, उन्मत्त मयूर अपने पिच्छ फैलाकर नट की भाँति नृत्य कर रहे थे और मतवाले कोकिल कुहू-कुहू करके एक दूसरेको बुला रहे थे। वह आश्रम कदम्ब, चम्पक, अशोक, करञ्ज, बकुल, असन, कुन्द, मन्दार, कुटज और नये-नये आम के वृक्षों से अलंकृत था। वहाँ जलकाग, बत्तख आदि जलपर तैरनेवाले पक्षी हंस, कुरर, जलमुर्ग, सारस, चकवा और चकोर मधुर स्वरसे कलरव कर रहे थे। हरिन, सूअर, स्याही, नीलगाय, हाथी, लँगूर, सिंह, वानर, नेवले और कस्तूरीमृग आदि पशुओंसे भी वह आश्रम घिरा हुआ था।

उनका शरीर बड़ा ही सुन्दर प्रतीत हो रहा था। वे निकट से देखने पर सान पर, न खरादी गई बहुमूल्य मणि के समान, मलिन प्रतीत होते थे। मनु ने मुनि को सादर प्रणाम किया। मुनि ने उनका यथोचित सत्कार किया और बैठने के लिये तीन आसन बिछा दिये। मनु और शतरूपा भावी श्वसुर तथा सास बननेवाले थे। सास-श्वसुर माता-पिता के तुल्य होते हैं अत: वे दोनों तो कर्दम के द्वारा बिछाये हुए आसनों पर बैठ गये किन्तु देवहूति खड़ी रह गई। उसने सोचा- यह हमारे भावी पति हैं। इसलिये इनके द्वारा बिछाये गये आसन पर मेरा बैठना धर्मविरुद्ध होगा अत: वह न बैठी, किन्तु जब कर्दम ने कहा- देवि, यह तीसरा आसन तुम्हारे लिये ही है। अत: इस पर बैठो तब ऋषि के वचन को सुनकर देवहूति ने सोचा- यदि इनकी आज्ञा न मानूँ तो अधर्म होगा और यदि इस पर बैठती हूँ तो भी अनुचित होगा। ऐसा सोचकर उसने बीच का रास्ता निकाला। आसन पर अपना दाहिना हाथ रखकर जमीन पर बैठ गई। भावी पति के आदेश का पालन भी हो गया और धर्म की भी रक्षा हो गई। देवहूति की यह स्थिति देखकर कर्दम जी मन-ही-मन प्रसन्न हो सोचने लगे- कन्या तो गुणवती है अत: ग्रहण करने के योग्य है फिर उन्होंने निश्चय कर लिया कि इसके साथ अवश्य विवाह करूँगा। यह मेरी परीक्षा में शत-प्रति-शत उत्तीर्ण हुई है।

आसन पर आसीन हो जाने के बाद कर्दम ने कहा- राजन्, आप का पर्यटन तो सत्पुरुषों की रक्षा और दुष्टों के विनाश के लिये हुआ करता है। भगवान की पालन करनेवाली शक्ति आपके भीतर विराजमान रहती है। इसी से वर्णाश्रम की रक्षा और अधर्म की निवृत्ति हुआ करती है। आप का भू-मण्डल पर, सूर्य की भाँति भ्रमण, संसार के कल्याण के लिये हुआ करता है। यदि आप दुष्टोंको दण्ड न दे तो पृथ्वीपर दुष्टता बढ़ जायेगी, डाकू लोग भय नहीं मानेंगे। राजाको तो ऐसा उग्र दण्ड देना चाहिए कि उसके

राज्यमें किसीको उच्छृंखल होनेकी हिम्मत न हो। यदि दण्डनीति शिथिल हो गयी तो वेदका, धर्मका नाश हो जायेगा।

तो भी वीरवर, मैं आप से पूछता हूँ कि इस समय यहाँ आपका आगमन किस प्रयोजन से हुआ है; मेरे लिये आप की जो आज्ञा होगी, उसे मैं निष्कपट भाव से सहर्ष स्वीकार करूँगा। भगवान की पालन शक्ति के अंश से ही आपका अवतार हुआ है, आपके शरीर में सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, धर्म और वायु सभी की शक्ति विद्यमान है। आपके दर्शन, भगवान के दर्शनों के समान ही हैं। आप मुझपर स्नेह रखकर ही यहाँ पधारे हो। आप भगवान की श्रेष्ठ विभूति हैं। आपके दर्शनों से परमपुण्य होता है। आपके पधारने का कोई विशेष कारण हो तो आप विस्तृत कहें।

कर्दम पूछे प्रभो। कहो कस किरपा कीन्हीं। सह परिवार पधारि बड़ाई मोकूँ दीन्हीं।।
मनु बोले- मुनिराज। दयायुत मोहि निहारें। चिन्ता सागर मग्न पकरिके हाथ उवारें।।
परम सुशीला गुणवती, कन्या स्यानी ह्वै गई। चित चिन्ता निसि दिन यही, ब्याह योग तनया भई।।

मैत्रेयजी बोले- विदुर जी, ऋषि कर्दम ने जब इस प्रकार राजा की प्रशंसा की तब कुछ सकुंचित होकर मनु ने कहा- ऋषिवर, ब्रह्माजी ने वेदों की रक्षा के लिये, तप, विद्या एवं योग से सम्पन्न आप ब्राह्मणों को अपने मुख से प्रकट किया है और आप की रक्षा के लिये हम क्षत्रियों को अपनी भुजाओं से उत्पन्न किया है। इस प्रकार ब्राह्मण उनके हृदय तथा क्षत्रिय शरीर कहलाते हैं। ऋषिवर, आप के दर्शन से मैं पवित्र हो गया। आप ने मेरी प्रशंसा के बहाने से प्रजापालक राजा के धर्म का बड़ा ही उत्तम वर्णन प्रस्तुत किया है। मनु बोले- महाराज, ब्राह्मणका शरीर तो वेद, तपस्या और विद्याकी मूर्ति है। भगवानने आपकी रक्षाके लिये ही हमें क्षत्रिय बनाया है।

मुने, यह गृहस्थ आश्रम चिन्ता का सागर है। इसमें निरन्तर एक के पश्चात् दूसरी चिन्तारूपी ऊर्मियाँ उठती ही रहती हैं। गृहस्थी की चिन्ता के प्रधान दो ही कारण होते हैं, धन और संतान। धन न हो तो उसकी प्राप्ति की चिन्ता। यदि हो तो उसे बढ़ाने, रक्षा करने आदि की चिन्ता। सन्तान न हो तो उसकी चिंता, हो जायँ तो उसके पालन-पोषण, योग्य बनाने और उसके विवाह आदि की चिंता। यह मेरी पुत्री है। इस पर मेरा अगाध स्नेह है अत: मैं इसके लिये चिन्तित हो रहा हूँ। आप कृपा कर मेरी प्रार्थना सुनें। यह बेटी प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहन तथा मेरी कन्या है। यह अवस्था, शील और गुण आदि में अपने समान पति को पाने की इच्छा रखती है। जब तक भू-मण्डल के सम्राट के रूप में मैं विराजमान हूँ तब तक इसे धन-वैभव की कमी न होने पायेगी। मेरे बाद सम्राट उत्तानपाद और प्रियव्रत इसकी सुख-सुविधा का ध्यान रक्खेंगे अत: आप को यह नहीं सोचना चाहिए कि इतने उच्च वैभव में पली राजदुलारी सुकुमारी देवहूति का पालन-पोषण मेरे आश्रम में कैसे होगा?

जब से इसने नारदजी के मुख से आप के शील, विद्या, रूप, आयु और गुणों का वर्णन सुना है, तभी से यह आप को अपना पति बनाने का निश्चय कर चुकी है। द्विजवर, मैं अपार श्रद्धा के साथ यह कन्या आपको प्रदान कर रहा हूँ। इसे आप स्वीकार कीजिये। यह गृहस्थोचित कार्यों के लिये सब प्रकार से आपके योग्य हैं, अनुरूप है। जो भोग स्वत: प्राप्त हो जाय उसकी अवहेलना करना विरक्त पुरुष के लिये भी उचित नहीं हैं। जो पुरुष स्वयं प्राप्त हुए भोगका निरादर कर फिर किसी कृपणके आगे हाथ पसारता है उसका बहुत फैला हुआ यश भी नष्ट हो जाता है और दूसरोंके तिरस्कारसे मानभंग भी होता है। आप विवाह करना चाहते हैं- यह बात मुझे विदित है अत: अपनी इस पुत्री को लेकर मैं आपके पास आया हूँ। यदि आप इसे स्वीकार नहीं करेंगे तथा विवाह के लिये दूसरे के सामने हाथ फैलायेंगे तो आप का यश क्षीण होगा। आप का ब्रह्मचर्य एक सीमा तक ही है। यह जानकर ही मैं अपनी इस पुत्री को लेकर आप के पास आया हूँ अत: आप इसे स्वीकार कीजिये।

मुनि नारदते सुनी गृहस्थाश्रमकूँ भगवन। स्वीकारेंगे यही सोचि आयो तब चरनन।।

कन्या तव तनुरूप जाहि मुनिवर स्वीकारें। पुत्री चिन्ता उदधि मग्न मोहि नाथ उबारें।।
मुनि बोले इच्छा हती, पर झंझटते हौं डरूँ। तनया लै आये स्वयं, फिर नाहीं कैसे करूँ।।

महाराज मनु की बात को सुनकर ऋषि कर्दम बोले- महाराज, सो तो ठीक है। मैं विवाह करना चाहता हूँ और आप की यह कन्या भी दूसरे के लिये संकल्पित नहीं है, वाग्दत्त नहीं है अत: हम दोनों का ब्राह्मविधि से विवाह होना उचित ही है। जहाँ तक इसके सौन्दर्य का प्रश्न है, उसके विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है। यह अपनी कान्ति से लक्ष्मीजी को भी मात देनेवाली है। एक समय की बात है। यह अपने महल की छत पर गेंद से खेल रही थी। उस समय इसके शारीरिक सौन्दर्य, नेत्रों की चंचलता को देखकर तथा पैर में झुन-झुनाते हुए पायलों की झंकार को सुनकर, विमान से जाते हुए, गन्धर्व विश्वासु मोहित हो अचेत होकर विमान से गिर पड़ा।

वही इस समय यहाँ स्वयं आकर विवाह की कामना व्यक्त कर रही है। ऐसी स्थिति में कौन समझदार व्यक्ति इसे स्वीकार नहीं करेगा? जिन्होंने कभी लक्ष्मीजी की उपासना नहीं की है उन्हें तो इसका दर्शन भी दुर्लभ हैं।

अत: मैं आपकी इस कन्या-रत्न को अवश्य स्वीकार करूँगा। किन्तु मेरी भी एक शर्त है- जब तक इसके सन्तान नहीं हो जायेगी, तब तक मैं गृहस्थधर्म के अनुसार इसके साथ रहूँगा। इसके बाद मैं परमहंसों को अतिप्रिय संन्यास-मार्ग का ही आश्रय ग्रहण करूँगा। गृहस्थी को त्याग कर संन्यासी बन जाऊँगा। आपके निवेदन का मैं अनुमोदन करता हूँ लेकिन मेरे पास खाने को अन्न नहीं, पीने को जल नहीं, रहने के लिए घर नहीं। भिक्षा वृति पर निर्वाह करता हूँ। वृक्ष के नीचे विश्राम करता हूँ। ऐसी दशा में आपकी पुत्री का जीवन सफल कैसे होगा? फिर सन्तान के बाद सन्यास ग्रहण करूँगा। इतना कहकर कर्दम जी मौन हो गये। उस समय वे अपने हृदय में भगवान् का ध्यान कर रहे थे। उनके मुख-मण्डल पर मधुर मुस्कान की आभा छिटक रही थी। उसे देखकर देवहूति का मन लुभा गया।

मनु ने कर्दम की बात सुनी। उन्होंने अपनी पत्नी शतरूपा से कहा- देखो, अभी विवाह हुआ नहीं और यह संन्यास की बात कहने लगे। सोच लो, और अपनी बेटी से भी पूछ लो, क्या वह ऐसे विरक्त सन्यासी के साथ विवाह करना पसन्द करेगी? विवाह बाद में होगा। दैन्यता और सन्यास की बात पहले की। मनु की बात को सुनकर शतरूपा ने अपनी पुत्री से, एकान्त में, उसका मन्तव्य पूछा। देवहूति ने अपने अलौकिक मुस्कान से व्यक्त किया कि गृहस्थाश्रम ब्रह्मप्राप्ति के लिये होता है न कि संसार सागर में डूबने के लिए। देवहूति ने कहा- वस्तुत: ऐसे ही इन्द्रियजयी से मैं विवाह करना चाहती हूँ। उस देवी का भाग्य सराहनीय है जिसको ब्रह्मनिष्ठ वर मिले। शतरूपा ने बेटी के विचार से अपनी सम्मति व्यक्त की और महाराज को अपना और बेटी का विचार बतला दिया। फिर तो मनु महाराज प्रसन्न हो उठे। उन्होंने सहर्ष अपनी बेटी का दान कर्दम को कर दिया, हाथ पकड़ा दिया।

कर्दम और देवहूति- दोनों ही सुन्दर थे। सारे गुणों के खजाने थे। अत: महर्षि को अपनी कन्या देकर मनु-शतरूपा प्रसन्न हो उठे। उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ।

महारानी शतरूपा ने भी बेटी और दामाद को बड़े, प्रेम पूर्वक़ बहुत-से बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और गृहस्थी के योग्य पात्र आदि दहेज में दिया। इस प्रकार सुयोग्य वर को अपनी कन्या देकर महाराज मनु निश्चिन्त हो गये। विदा होने की बेला में बेटी का वियोग न सह सकने के कारण वे उसे छाती से लगाकर पुत्री-पुत्री कहकर रोने लगे। उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। उनसे उन्होंने देवहूति के सिर के बालों को भिगो दिया। मनुशतरूपा बेटी के विदाई के वियोगजन्य स्नेह से बोले- तुम्हें अब ऋषि जीवन का निर्वाह करना है। हमारी मर्यादा तुम्हारे साथ है। सच है विदाई के समय माता-पिता,

स्वजन-परिजन जो भी समझाते है उसका प्रभाव कन्या के मस्तिष्क पर अवश्य पड़ता है।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। जब महाराज मनु ने समझ लिया कि इस सम्बन्ध में मेरी पत्नी, पुत्री दोनों की ही स्पष्ट अनुमति है, तब उन्होंने सर्वगुणसम्पन्न भगवान कर्दम के साथ उनके अनुरूप ही गुणवाली अपनी पुत्री का विवाह प्रसन्नतापूर्वक कर दिया। उस समय महारानी शतरूपा ने अपनी पुत्री और जामाता को प्रीतिपूर्वक बहुत से बहुमूल्य वस्त्राभूषण तथा गृहस्थोपयोगी और बहुत-सी सामग्रियाँ दी।

तीन दिन के बाद कहे समयानुसार देवहूति शतरूपा और मनु वहांपर पहुंचे। ऋषि बोले- भगवान आईये। मनु बोले- मेरी कन्या देवहूति है। कर्दमजी मैं आपको मेरी कन्या सौंपना चाहता हूँ इसके विवाह के योग्य वर ढूंढ रहा हूँ मैं आपको मेरी कन्याके लिए एक योग्य वर समझता हूँ तो मुझे आपकी स्वीकृति चाहिये। कर्दमने देखा- कन्या सुन्दर, अच्छी, गृहस्थी, घर-घरेलू है। स्वीकृति प्रदान की। मनुने उसी समय वही गान्धर्व विधी से पाणिग्रहण कर दिया और जो कुछ देना चाहते थे सब कुछ अर्पण किया। वहांसे मनु और शतरूपा लौट आये।

अन्त में ऋषि कर्दम से आज्ञा लेकर शतरूपा के साथ, आश्रम से विदा होकर, महाराज मनु ब्रह्मावर्त होते हुए अपनी राजधानी बर्हिष्मतीपुरी में आ गये। बर्हिष्मतीपुरी गंगाजी के पावन तट पर ब्रह्मावर्त में है जो सब प्रकार की सम्पत्ति से सम्पन्न थी। आज का नाम उसे विठूर कहते हैं। वहाँ फिर वे अपने दिव्य भवन में गये। इस भवन में निवास करनेवाले को दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं हुआ करते थे।

भये नृपति निश्चिन्त ब्याह करि मिलि कर्दमतें। दोउनिकूँ समुझाय चले मनु मुनि आश्रमते।।
तनया निरखि वियोग मातु-पितु हिय भरि आयो। छातीतें लिपटाय नेहको नीर बहायो।।
वत्स धेनु बिलगत समय, बार-बार घबराय जस। मनु शतरूपातें लिपट, देवहूति बिललाय तस।।

मनुजी निरन्तर समस्त प्राणियों के हित में लगे रहते थे। मुनियों के पूछने पर उन्होंने मनुष्यों के साधारण एवं विशेष धर्मों की व्याख्या की थी। आदि सम्राट मनु ने सारे संसार को मानवता की शिक्षा दी, उसीसे हम सब मानव कहलाये। मनुष्यों के तथा अनेक प्रकार के मंगलमय धर्मों का वर्णन किया जो मनु संहिता के रूप में अभी भी उपलब्ध है।

महाराज स्वायंभुव मनु एक मन्वन्तर तक पृथ्वीपर शासन करते रहे। ये ही सृष्टि के आदि नियमकर्ता हुए। वे धर्मात्मा और पवित्र चरित्र हृदय के थे, वे बड़े-बड़े त्यागी, विरागी, यती, तपस्वी इनके समीप आकर अपनी शंकाओं का समाधान किया करते थे। सब ऋषि-मुनि की शंका समाधान का जो उत्तर उन्होंने दिया उन उत्तरोंकी स्मृति ही संसार में आज तक मनुस्मृति के नाम से प्रसिद्ध है। सभी वर्णाश्रम धर्मावलम्बी उनके नियमों का आदर करते हैं और यथाशक्ति-यथासामर्थ्य उनको पालने का प्रयत्न करते हैं। संसार में उन्होंने जो नियम बाँध दिये, उन्हीं का पालन उनके पुत्र, पौत्र और वंशधर आज तक करते आ रहे हैं। घोर कलियुग आने पर इन नियमों में शिथिलता आ जायगी- प्राय: लुप्त हो जायेगी, किन्तु फिर सत्ययुग आने पर ऋषि लोग इन नियमों का प्रचार करेंगे। मनु भगवान्‌की कथा सुनते थे और कहते थे। भगवानकी लीला-कथाके संकीर्तनका अधिकार सबको होता है। धर्मोपदेश दूसरी चीज है और भगवानकी कीर्तन-कथा, लीला-कथा दूसरी चीज है। उनका सारा मन्वन्तर भगवानके ध्यानमें बीत गया। भगवान्‌का भक्त, हरिसंश्रयी होता है। उसके जीवनमें किसी भी प्रकारके क्लेश नहीं आते। स्वायम्भुव मनुने भृगु आदि महर्षियोंको धर्मका जो उपदेश दिया, वही आज मनु-स्मृतिके नामसे विख्यात हुआ।

अपनी पत्नी को लेकर कर्दम ऋषि अपने पर्णकुटी पर आये। एकदम नितांत जंगल में घास की पर्णकुटी। देवहूति ने जैसे ही अपने पति की कुटी में प्रवेश किया तो ऊपर की ओर देखा, वहां घोंसले ही घोंसले बने हुए चिड़ियों के। उसमें

सुन्दर-सुन्दर पक्षी कलरव कर रहे है। देवहूति ने पूछा- ये क्या है ऋषिवर। कर्दम मुनि ने कहा- ये चिड़ियाँ इस कुटिया को अपना ही समझती हैं, इसीमें वास करती है। नीचे फर्श की ओर नजर डालकर देखा, कम से कम पचास बिल बने हुए थे उस कुटिया में। किसी बिल में चूहा हैं, किसी में मेंढक, किसी में बिच्छू, किसी में सांप हैं। देवहूति ने पूछा- ये क्या है ऋषिवर। कर्दम बोले- देवि ये साँप, चूहे, मेंढक इस कुटिया को अपनी ही समझते हैं इसलिए सपरिवार यही रहते हैं।

देवहूति के नेत्र सजल हो उठे, इतना बड़ा त्यागी महापुरुष, इतना बडा संत मुझे पति रूप में मिला। देवहूति ने कुटिया की खिड़की से बाहर की ओर झांका, आश्चर्य से उसकी आँखें खुली रह गयीं। सामने झरना बह रहा है, उसके नीचे गाय, हिरन और शेर एक साथ पानी पी रहे हैं। कर्दम ऋषि की तपस्या के प्रताप से वहाँ के जीव-जन्तुओं में भी हिंसा की भावना नहीं है। इधर बिल में सांप, मेंढक, चूहे एकसाथ रह रहे हैं, उधर झरने में गाय, हिरन, शेर एक साथ पानी पी रहे हैं। ये संत की तपश्चर्या का प्रताप है।

मैत्रेयजी बोले- विदुर जी, माता-पिता के चले जाने पर देवहूति ने पूरी तन्मयता के साथ पति कर्दम की सेवा प्रारम्भ की। वह उनके अभिप्राय को समझ कर निरन्तर उनकी परिचर्या किया करती थी। देवहूति में सद्धर्मिणी के लक्षण थे।

देवहूति चाहतीं तो उनके अभिमानका कहीं अन्त नहीं होता। पृथ्वीके एक-छत्र सम्राटकी पुत्री थी, इतना बड़ा वंश और ऐश्वर्य। सौन्दर्य ऐसा कि गन्धर्वतक देखकर मूर्च्छित हो चुके और विवाह दी गयीं एक तपस्वी के साथ, कुटियारहित साधुको; किन्तु सब बड़प्पन छोड़कर सेवामें लग गयी।

देवहूति कर्दम ऋषिकी भार्या बन गई। कर्दम ऋषि उसको अपने आश्रम में ले गये। उस आश्रमकी हालत देखी। जो महलोंमे रहनेवाली आज कर्दम ऋषिके आश्रम में। आश्रम कैसा ऊपर छत ही नहीं, छत भी टूटी हुई। उसमें भी सौं घोंसले। देवहूति बोली- ये क्या है? ऋषि बोले- संगीसाथी इस घर को अपना ही समझ लो। नीचे जमीन में सौ-सौ बिल। किसमें सांप, किसमें चूहा है। वो बोली- ये क्या है? ऋषि बोले- ये भी उनका घर है। ये जो चौकी पड़ी है ना उसपर बैठ जाता हूँ। बाकी। ऋषि बोले- जहां तुम बैठी हो। शादीके समय कर्दम ऋषिने एक शर्त रख दी थी। मनु शतरूपा के पास शर्त रखी थी- मैं शादी करता हूँ, मैं योगनिष्ठ साधु हूँ। गृहस्थ तो मैं बसाऊंगा नहीं, गृहस्थ करूंगा। इसके एक सन्तान होते ही मैं घर छोड़कर चला जाऊंगा। जब भगवान आये थे उस समय यह शर्त भगवान से कर ली थी। भगवान मैं गृहस्थ नहीं करूंगा मुझे माया नहीं लगनी चाहिए लेकिन मुझे आपके जैसा पुत्र चाहिए। भगवान ने कहा- मेरे जैसा तो कोई दूसरा पुत्र हो नहीं सकता, या तो उससे कम होगा, या उससे ज्यादा होगा। ज्यादा कभी होता नहीं है, मैं तो मैं ही हूँ। मैं तुम्हारे यहां पुत्र रूप में अवतीर्ण होकर आऊंगा। यह दोनों शर्ते है। अब कर्दम ऋषि शादी करके आये देवहूतिसे। जैसे ही शादी करके आये बोले- मैं तो अभी समाधि में जा रहा हूँ। तुम इन्तजार करो। कर्दम ऋषि समाधिमें चले गये, तपमें। देवहूति चालीस वर्ष तक उस तपस्यालीन ऋषिके आश्रम में बिना कुछ खाये, जो कुछ मिल जाता, पेड़-पौधों से, पत्तोंसे जो कुछ फल खाकर अपना जीवन गुजार रही है। ऋषि समाधिमें बैठे है। कभी उनका अंग पोंछ देती है, जटाएं सुख गयी है। बालोंकी लटें उलझ गयी है, मलिन वस्त्रोंमे है।

देवहूति ने सोचा मेरे पति समाधि में बैठ गये उनकी सेवा करना मेरा परम कर्त्तव्य है। चालीस वर्ष तक देवहूति ने अपने पतिकी सेवा की। देवहूति प्रभुपरायण पति पाकर अपने जीवन को धन्य मानती है। देवहूति को मालूम था कि उसके पति तेज दिमाग के हैं, क्रोधी स्वभाव के है। वह निरन्तर सावधानी से पूर्ण विश्वास के साथ, शौच, इन्द्रिय-दमन, सुश्रूषा, सौहार्द, आदर और मधुर वाणी के द्वारा अपने पति को सन्तुष्ट करने लगी। देवहूति राजमहल को त्यागकर राजकीय वस्त्र-आभूषण आदि समस्त वैभव जन्य वस्तुओं का परित्याग कर, काम, क्रोध, मोह से निवृत्त हो तपस्विनी की भाँति पति

सेवामें निरत रहने लगी। अपने शुभ आचरणोंसे, मधुर वाणी से और अथक परिश्रम से सेवा कर पति को प्रसन्न रखने लगी। इन सब गुणोंसे देवहूतिने कर्दमजी की सेवा करी। यद्यपि वह राजपुत्री थी और अत्यत लाड़-प्यार में पली थी। कर्दम ऋषिके पास न तो रहनेके लिए घर था, ना सोनेके लिए चारपाई थी, न बिछानेके लिए बिस्तर था, और न ही भोजन के लिए कोई बर्तन था। फिर भी देवहूतिपर उस अभावका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। देवहूति जानती थी कि उसके पति कितने सामर्थ्यवान और कितने तेजस्वी हैं। कर्दम ऋषि तेज मिजाज के थे। जब आदमी दूसरोंके साथ रहता है तो उसे सहनेकी आदत पड़ जाती है। पर कर्दम ऋषि तो अकेले ही रहते थे।

पतिपर विश्वास, स्वयं पवित्र रहना, पतिका सम्मान, अपनी इन्द्रियोंका दमन, सेवा, हार्दिक प्रीति, सम्मानपूर्वक मधुरवाणी, काम-दम्भ-द्वेष-लोभ-पाप और अभिमान छोड़कर नित्य प्रमादहीन सेवामें प्रस्तुत रहकर उन तेजस्वीको देवहूतिने सन्तुष्ट कर लिया। उसने काम-वासना, दम्भ, द्वेष, लोभ, पाप और मदका त्यागकर बड़ी सावधानी और लगनके साथ सेवामें तत्पर रहकर विश्वास, पवित्रता, गौरव, संयम, शुश्रूषा, प्रेम, संयम और मधुरभाषणादि गुणोंसे अपने परम पतिदेव को सन्तुष्ट कर लिया।

मात पिता पुर गये कुँवरिने धीरज धार्‌यो। पति सेवा सर्वस्व सतीको धर्म विचार्‌यो॥
तजे दम्भ, छल, कपट, कामतें चित्त हटायो। संयम शौच समेत धर्म सेवा अपनायो॥
आसन बसन सुधि नहिं रही, मलिन कुटिल कच सब बदन। तन मनतें सेवा निरत, करहिं सदा इंद्रिय दमन॥

उसे सम्राट की बेटी होने का स्वप्न में भी अभिमान न था। देवहूति कर्दम जी की पति सेवा करती थी। उनको अपनी सेवाओंसे सन्तुष्ट किया। चालीस वर्षोंमे देवहूति का शरीर वृद्धा माताओं जैसा हो गया, झुर्रियाँ पड़ गई।

शिव भोले भण्डारी वस्त्र पुराना व्याघ्रचर्म का और बूढ़ा बैल सवारी को।
इस पर भी सेवा करती, धन्य धन्य गिरिजा बेचारी को, है गिरिजा राजा की बेटी ब्याही गई भिखारी को।
ना जाने क्या देखा था, हे नाथ तेरी सरदारी को।

कर्दम समाधि में बैठ गये। उनकी तो विचित्र समाधि लग गयी। चालीस वर्ष तक उनकी समाधि लगी रही। देवहूति के मन में कोई ग्लानि नहीं है कि राजकुमारी होकर पिताजी लाकर इस झोपड़ी में पटक गये। बड़े प्रेम उत्साह और हर्ष उल्लास के साथ उसने अपने तपोधन पति श्री कर्दमजी की सेवा करने लगी। कर्दम की समाधि जैसे टूटी उन्होंने अपनी कुटिया में किसी बुढ़िया माता को बैठे देखा और पूछा देवी आपका परिचय। देवहूति बोली- चालीस वर्ष पहले एक राजा आये थे और अपनी बेटी का विवाह आपसे किया था।

हृदय से वह अपने पति को परमेश्वर मानती थी, कभी मन से उनके प्रति द्वेष नहीं करती थी। पति की इच्छा के विरुद्ध कभी वह आचरण नहीं करती थी। कभी आलस्य नहीं करती थी। अतिंद्रिल-भाव से सदा सावधान होकर सेवा में ही संलग्न रहती। तीनों समय सरस्वती के सुन्दर स्वच्छ सलिल में स्नान करती, शौच और यम के साथ रहती।

सप्तद्वीप सम्राटकी पुत्री; किन्तु मनमें पतिपर अपार विश्वास। सदा पवित्र रहतीं, आदर करतीं, कर्दमके अनुरूप बनकर रहतीं। जानती थीं कि इनके मनमें भोग-वासना नहीं है, अत: इन्द्रियोंको संयममें रखतीं। इसप्रकार उन तेजस्वी को देवहूतिने सन्तुष्ट कर लिया। प्रेम अभिमानीसे नहीं, विनयीके प्रति होता है।

दोनों पति और पत्नी एक कुटिया में रहते थे। साथ-साथ शयन करते थे, उठते-बैठते थे। किन्तु मन एवं शरीर पर इतना प्रबल संयम था कि उन लोगों ने बहुत दिनों १२ वर्षों तक यह जाना ही नहीं कि विवाह का मतलब क्या होता है। विवाह

क्यों किया जाता है। पति की सेवा में देवहूति ने शरीर की चिन्ता न की। वह अत्यन्त दुर्बल हो गई थी। उसकी इस दशा को देखकर कर्दम का हृदय करुणा से भर उठा। देवहूति बोली- मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ। आप समाधि में थे। मैं कभी पत्ते, फल खा लेती। मेरे लिये तो पति का घर ही स्वर्ग है पिता का घर नहीं।

प्रेम कोई भिक्षा नहीं है कि माँगनेसे मिलेगा। इतनी सेवा करो कि सामनेवाला व्यक्ति द्रवित हो जाय। देवहूतिकी सेवामें कभी कहीं कोई भूल नहीं हुई। उन्हें इतना श्रेष्ठ पति मिला तो उन्होंने अपनेको न्यौछावर करके सेवा की।

चालीस वर्ष के बाद कर्दम ऋषिकी तपस्या करते-करते समाधि टूटती है। देखते है एक युवती बड़े मैले-कुचले वस्त्रोंमे सामने बैठी है बोले- माताजी आप कौन है? देवहूति बोलती है- हे ऋषिवर मैं आपकी पत्नी हूँ आप मुझे भूल गये मुझे पहचाने नहीं। आजसे चालीस वर्षके पहले मेरी आपसे शादी हो गयी थी। तुम्हारा यह कैसा रूप, यह कैसा हाल? बोली ऋषिवर चालीस वर्षके बाद तो यही होगा, बुढ़ापा, बाल सफेद, चेहरेपर झुरिया, खाया-पिया नहीं। ऋषि बोले- तुमने कुछ खाया-पिया भी नहीं। वह बोली- भगवन आप जो समाधि में है आपका वृत पालन करना मेरी निष्ठा है ऐसी भार्या। बोले- अब क्या चाहती हो। वो बोली- गृहस्थ, संतति। आपने मेरे पिताश्री से बात कही थी।

कर्दम ने सोचा- यह राजकुमारी मुझसे विवाही गयी, इसने मेरी सेवा की है और इसे कोई सुख नहीं मिला। इसे सुख देना मेरा कर्त्तव्य है।

उन्होंने पत्नी से कहा- हे मनुराजकुमारी, तुमने मेरा बड़ा आदर किया है। मैं तुम्हारी उत्तम सेवा और परम भक्ति से प्रसन्न हूँ। सभी शरीरधारियों को अपना शरीर परम प्रिय होता है। किन्तु तुमने मेरी सेवा के आगे उसके भी क्षीण होने की परवाह न कीं। कर्दम बोले- मैं तुमसे बड़ा प्रसन्न हूँ। मेरे लिये तुमने इतने कष्ट सहे। सूखे पत्ते खाकर तुमने मेरी चालीस वर्ष तक सेवा की। राजकुमारी, तुमने मेरे लिये अपना सुन्दर शरीर सुखा दिया। वल्कल पहनकर रहीं। केश तुम्हारे जटा बन गये। अब मैं तुम्हारी तपस्याका फल देता हूँ। देवहूति का शरीर बुढा जैसे दिखने लगा। शरीर तो प्रकृतिधर्मा है, लेकिन हृदय का उत्साह, प्रेम कम नहीं हुआ। बहुत समय बीत गये तब एकाएक कर्दम ऋषि का ध्यान इस ओर गया और बोले, अरे राजकुमारी, मैंने तुम्हारा पाणिग्रहण किया था। गृहस्थाश्रम की कोई भी सुख सुविधा मैंने तुमको नहीं दी। फिर भी तुम्हारी तरफ से कोई उलाहना, शिकायत नहीं। तुमने मेरी सेवा के पीछे अपने शरीर को सुखा डाला। कर्दम ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और बोले, हे मनुनन्दिनी। तुमने मेरा बड़ा आदर किया, मैं तुम्हारी इस उत्तमसेवा और परम भक्ति से बहुत संतुष्ट हूँ। हे मनुकन्ये, हर व्यक्ति को अपना शरीर अतिप्रिय लगता है। अपने शरीर को सुख पहुंचाने के लिये सुविधा देने के लिए लोग बहुत बडे-बडे पाप कर बैठते है। अपने इस शरीर को मेरी सेवा के पीछे सुखा डाला। मैं आपकी इस प्रेमपूर्ण सेवा से बहुत प्रसन्न, संतुष्ट हूँ। वे देवहूति के शील, स्वभाव, सन्तोष, इन्द्रिय-दमन और श्रद्धापूर्वक की हुई सेवा से सन्तुष्ट हुए और बोले- आप अपनी इच्छा प्रकट करो। देवहूति मुस्कराकर बोली- नाथ। जब से मैं अपने पिता के घर से आयी हूँ तबसे मैंने नहीं जाना कि गृहस्थाश्रम में एक पत्नी को पति से क्या सुख प्राप्त हो सकता है। पहले गृहस्थाश्रम के अनुसार एक पत्नी को पति से जो सुविधायें मिलनी चाहिए उसकी व्यवस्था करिये। कर्दम देवहूति के प्रस्ताव प्रस्तुतीकरण की कला पर मुग्ध हो गये। देवहूति तो मानदा थी। कर्दमजी उसे सम्मान देते थे। सदा भोग-विलास की चाहत करना अच्छा नहीं होता।

मुनि बोले, अपनी तपस्या, समाधि, ज्ञान और योग के द्वारा मुझे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। संसार के शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श सम्बन्धी विषय भोग तो क्षणिक है, तुच्छ है, नाशवान हैं मैंने भगवान की आराधना के प्रभाव से उन भोगों को प्राप्त कर लिया है जो दिव्य है जिनका भोग कल्प-कल्पान्तरों तक करते रहो तो नाश नहीं होता। आज मैं अपनी

समस्त सिद्धियों का उपभोग तुम्हारी प्रसन्नता के लिये करना चाहता हूँ।

मेरी तपस्या, समाधि एवम् उपासना से तुम्हें वे दिव्य भोग प्राप्त हुए हैं जो मनुष्यों को सर्वदा दुर्लभ हैं। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान कर रहा हूँ। उससे उन्हें तुम देखो। मेरी अद्भुत सेवा करने के कारण तुम्हें अलौकिक सिद्धि प्राप्त हुई है। अब तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। पतिदेव की बात को सुनकर तथा उनकी सिद्धियों को जानकर देवहूति की सारी चिन्ता समाप्त हो गई। लज्जा से उसकी दृष्टि नीचे झुक गई और उसका मुख मुस्कान से खिल उठा। उसने कहा- प्रभो, आप सर्वसमर्थ है। आपके लिए कठिन क्या हैं, किन्तु मुझे गृहस्थधर्मके विषयमें कुछ भी पता नहीं, मुझको मेरा कर्त्तव्य बतलाइये। गृहस्थ का कर्त्तव्य गृहस्थ के लिये उपयुक्त संतानोत्पादन।

द्विजश्रेष्ठ, मैं योग के बल से प्राप्त आपके समग्र ऐश्वर्य एवं सामर्थ्य को जानती हूँ किन्तु मेरे प्रभो, आपने विवाह के समय जो प्रतिज्ञा की थी कि गर्भाधान होने तक मैं तुम्हारे साथ गृहस्थ-सुख का उपभोग करूँगा उसकी अब पूर्ति होनी चाहिये क्योंकि श्रेष्ठ पति के द्वारा सन्तान प्राप्त होना पतिव्रता स्त्री के लिये महान् लाभ है।

प्रभो। सेवा का सर्वोत्कृष्ट पारितोषिक यही है कि अपना आराध्य देव प्रसन्न हो जाय। मेरे लिये इससे बढ़कर और श्रेष्ठ वरदान क्या होगा, कि आप सभी सिद्धियों के स्वामी मेरे आराध्यदेव इस दासी की क्षुद्र सेवा से सन्तुष्ट है। आपकी प्रसन्नता ही मेरे समस्त सुखों का मूल है। आपका कृपा-प्रसाद ही मेरे लिये सब कुछ है।

पतिदेव, हम दोनों के समागम के लिये, रति रंग के लिये, शास्त्र के अनुसार जो कर्त्तव्य हो, उसका आप उपदेश दीजिये। भोग में सहायक सामग्रियों को भी जुटा दीजिये जिससे आपके अंगों में लिपट-सिमट जाने के लिए आतुर दुर्बल मेरा यह शरीर आपके साथ सुरति-संग्राम के योग्य हो जाय। आपके द्वारा उत्पन्न की गई काम-वेदना से मैं पीडित हो रही हूँ।

कर्दम बोले- तुम मेरी महिमा को जानो। इन्द्र भी तीनों लोकों के ऐश्वर्य के मूल्य में भी मेरे बल को नहीं खरीद सकता।

दृढ़तर प्रेम कपाट कृपा करि मुनिवर खोले। सेवातें सन्तुष्ट प्रियातें हँसिकें बोले।।
हे मनुनन्दिनि। मोहि कस्यो सेवातें वशयमें। देहुँ अतुल ऐश्वर्य दिव्य सुख भामिनि अब मैं।।
वर माँगों दु:ख भगि गयो, अब आई सुखकी घड़ी। अष्टसिद्धि, नवनिद्धि ये, कर जोरे सम्मुख खड़ी।।

प्राणप्रिया की बात को सुनकर कर्दम जी ने उसी क्षण अपनी योग-शक्ति से एक कामग विमान (इच्छा के अनुसार चलनेवाला विमान) की रचना कर डाली। यह विमान पानी में भी चलता था, धरती पर भी चलता था और आकाश में भी उड़ता था। यह विमान यन्त्र से नहीं इच्छा से चलता था। यह कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि की तरह सब प्रकार के इच्छित भोगों को प्रदान करनेवाला, अत्यन्त सुन्दर, सब प्रकार के रत्नों से युक्त, सब सम्पत्तियों से भरपूर तथा मणिमय खम्भों से सुशोभित था। विश्वकर्मा और कामदेव उसकी कारीगरी तथा विलक्षण पर्यावरण को देखकर लजा रहे थे। यह विमान इच्छानुकूल चलता और रुकता था। इच्छा होने पर भोज्य, पेय, चोस्य, अवलेह पदार्थ लिए दासियाँ उपस्थित हो जाती थी। यह विमान कामधेनु भी था जो अपने-आप मनोनुकूल पदार्थ देता था। उसमें सारी सम्पत्ति थी, श्रृंगार-सामग्री थी, उद्यान था, उसमें ऐसे-ऐसे पक्षी थे, उनको असली समझकर दूसरे पक्षी यहाँ आ जाते थे। विमानमें विहारका स्थान अलग, विश्रामका स्थान अलग, शयन का स्थान अलग, और प्रांगण अलग था। वह विमान सभी ऋतुओंमें सुख देनेवाला अर्थात् उसपर गर्मी-सर्दी वर्षा आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। ऐसा अद्भुत विमान, जिसकी आजके विज्ञानको भी अभी कल्पना नहीं है। वो विमान क्या था, पूरा नगर जिसमें उद्यान, कुण्ड-सरोवर, भवन आदि सब थे। जो इच्छा हो, वह सबमें मिल जाता था और सब समय, सब ऋतुओंमें सुखद था।

मैत्रेय मुनि विदुर से बोले- विदुरजी। जब अपनी प्रिया देवहूति की प्रार्थना पर कर्दम ऋषि ने बात ही बात में अपनी योगमाया की ऐश्वर्य शक्ति से सर्वसुख सम्पत्ति सम्पन्न, इच्छानुसार जहाँ चाहो वहीं जानेवाला दिव्य विमान बना दिया।

देवहूति बोली- हे हृदयेश। तपस्या सिद्धि दिखाओ। गृही सरिस सुख भवन सुभग इक नाथ बनाओ।।
सुनत तुरत मुनि दिव्य योगते भवन बनायो। मणिमय सम्पत्तियुक्त भवन लखि चित्त लुभायो।।
सब सुख उपयोगी जहाँ, विविध वस्तु भवननि भरी। सुन्दर शैया सुखद अति, स्वर्ण जटित चौकी धरीं।।

भवन की भूमियाँ नीलम की बनी थीं। भित्तियों का निर्माण स्फटिक मणियों से हुआ था। लाल-लाल मूँगों से देहलियाँ निर्मित थीं। किवाड़ों में हीरे जड़े हुए थे। नीलमणियों से शिखरों का निर्माण हुआ था। उनके ऊपर स्वर्ण के सुन्दर कलश विराजमान थे। उस विमान में अलग-अलग कार्यों के लिये अलग-अलग कक्ष बने हुए थे। जहाँ-जहाँ बने हुए कृत्रिम पक्षियों को देखकर उन्हें सजीव जानकर उनकी जाति के पक्षी आकर उनके पास बैठते एवं कलरव करते थे। उस विमान की संरचना को देखकर देवों के अभियांत्रिक विश्वकर्मा भी लजा जाते थे। कर्दम के विमान की समृद्धि के समझ इन्द्र का भवन भी झोपड़ी प्रतीत होता था। उसके उपभोग की सामग्रियों को देखकर कुबेर का वास-भवन भी तुच्छ प्रतीत होता था। रत्नों की आभा-प्रभा से सारा भवन सतत जगमगाता रहता था। उसमें सुन्दर-सुन्दर वापियाँ बनी थीं। जलाशयों में विविध प्रकार के रंग-बिरंगे कमल खिले हुए थे। विमान की अद्‌भुत सुन्दरता को देखकर स्वयं कर्दम जी भी आश्चर्य से चकित थे।

गृहस्थाश्रम के नियम के अनुसार उचित आग्रह जानकर श्री कर्दम ऋषि ने एक पवित्र सरोवर दिखाया और कहा इसमे स्नान करो। सरोवर में गोता लगाने से पहिले देवहूति जी का शरीर बुढ़िया सरीखा लग रहा था सारे शरीर में झुर्रियां पड़ी थी, कृशकाय हो रही थी।

ऐसे सुन्दर घर को भी जब देवहूति ने बहुत प्रसन्न चित्त से नहीं देखा तो उसके हृदय के भाव को जानकर कर्दम जी ने कहा- देवि, तुम इस बिन्दुसरोवर में स्नान करके विमान पर चढ़ जाओ। विष्णु भगवान के द्वारा रचा गया यह तीर्थ प्राणियों की सकल कामनाओं को पूरा करनेवाला है। पति की बात को स्वीकार कर देवहूति ने बिन्दु सरोवर में प्रवेश किया। गोता लगाकर जब देवहूति निकली तो उसके शरीर की सारी मैल धुल गई थी। शरीर नवीन चमक-दमक की आभा से मण्डित हो गया था। वह नवीन स्फूर्ति का अनुभव कर रही थी, मानो उसे अभी-अभी अंगड़ाई लेती हुई नई तरुणाई मिली हो। देवहूति जी का शरीर सरोवर से बाहर निकलते ही ऐसे शरीर हो गया जैसे आज ही पिता के घर से गौना कराके आयी हो। उसी समय उसने यह भी देखा कि एक हजार तरुणियाँ हाथ जोड़े उसके सामने खड़ी थीं। उनके शरीर से कमल की सुगन्ध निकल रही थी। वे कह रही थीं- हम आपकी दासियाँ हैं। हमें आज्ञा दीजिये। हम आपकी क्या सेवा करें?

इसके बाद उन किशोरियों ने देवहूति को विविध वस्त्राभूषणों से इस प्रकार सजाया कि काम-पत्नी रति भी उसके सामने तुच्छ प्रतीत होने लगी। उन्होंने अमृततुल्य भोजन-पान से भी देवहूति को पूर्ण तृप्त किया। पत्नी के कामसंग्राम की तैयारी को देखकर कर्दम जी ने भी बिन्दुसरोवर में स्नान किया। अपनी तपोबल से विधि को विस्मय में आश्चर्य में डाल देनेवाला यह वैभव पतिदेव ने अपने योगबल से प्रगट किया है। अपने संकल्प के द्वारा कर्दम ऋषि ने पुन: अपना शरीर भी अपने संकल्प के द्वारा सोलह वर्ष किशोर स्वरूप में परणित कर लिया। दोनों का स्वरूप ऐसा हो गया कि देवराज इन्द्र एवं उनकी पत्नी शची भी लज्जित हो जाती थी। पुन: अपने संकल्प के द्वारा बहुमंजिला विमान तैयार किया, विमान क्या था वह राजमहल ही था। संकल्प से उसमें बैठकर जहां जाना चाहें कर्दमजी अपने परिकरों सहित उसमें जा सकते थे।

स्नान करने से उनके शरीर और बाल निर्मल हो गये फिर उन्होने दासियों से घिरी हुई देवहूति के साथ विमान में प्रवेश

किया। विमान में पहुँचते ही कर्दम और देवहूति की रंगरेलियाँ प्रारम्भ हो गईं। सहस्त्रों विद्याधरियाँ उनके शरीर की सेवा कर रही थीं। पति के इस प्रकार योग के प्रभाव को देखकर देवहूति का मन आश्चर्य और आनन्द से भर गया।

मैत्रेयजी कहते है- विदुरजी। जब देवहूति ने अपने कामद-विमान पर बैठकर पृथ्वी के सभी सुख ऐश्वर्य का अनुभव कर लिया, उसने दसों-दिशाओं के देशों को, उन दर्शनीय स्थानों को देख लिया, तो वह अपने सर्वसमर्थ पति से बोली- प्राणनाथ। मैंने सुना है, सुमेरु पर्वत के ऊपर आठ लोकपालों की दिव्य पुरियाँ हैं। वहाँ के वन उपवन बड़े ही मनोरम हैं। सुना है, उसमें कल्पवृक्ष के बहुत-से अद्भुत वृक्ष हैं, जिनके नीचे बैठने से जो भी इच्छा करो, वही मिल जाता है। समस्त पर्वतों के स्वामी सुमेरु के सुन्दर शिखरों पर सदा संगीत की सुमधुर ध्वनि सुनाई देती है। उसकी कमनीय कन्दराओं में किन्नर, विद्याधर और गन्धर्वों की कामिनियाँ अपने पतियों के साथ सदा क्रीड़ा करती रहती हैं। वहाँ सदा सब ऋतुओं के अनुरूप शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु बहती रहती है। वहाँ से भगवती-अलकनन्दा सदा हर-हर शब्द करती हुई गिरती हैं। वहाँ न शोक है, न ग्लानि। वहाँ पर न पसीना आता है, न आलस्य। वृद्धावस्था का तो नाम ही नहीं। सभी, सदा तरुण बने रहते हैं, सभी दिव्य-सुखों का आस्वादन करते हैं, सभी रूपवान, सुन्दर और दर्शनीय होते हैं। विहार में व्यग्र बने रहना ही वहाँ का व्यापार है। उसे शास्त्रकारों ने भोग भूमि कहा है। मेरी इच्छा उन सभी वन और उपवनों को देखने की है। मैं भी देवांगनाओं की भाँति उन पुण्य प्रदेशों में आपके साथ विहार करना चाहती हूँ। मैं भी अपने अतुल ऐश्वर्य से स्वर्गीय-ललनाओं को लज्जित बनाती हुई उनके हृदय में कुतूहल पैदा करना चाहती हूँ। आप सर्वसमर्थ हैं। अपने संकल्प से ही सब कुछ कर सकते हैं, अत: मेरी इस इच्छा को पूर्ण कीजिये।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी, इतनी सिद्धि प्रकट करने पर भी जिनकी महिमा लुप्त नहीं हुई है, वे ही महामुनि कर्दम अपनी प्राण-प्रिया पत्नी में अनुरक्त हुए तथा विद्याधारियों द्वारा सेवित उसी प्रकार उस विमान पर सुशोभित हुए जिस प्रकार विकसित कुमुद-कु सुम युक्त तारागण से घिरे चन्द्रमा आकाश में सुशोभित होते हैं।

उस विमान में देवहूतिके साथ कर्दमजी बैठकर देवताओं के विहार करने वाले उद्यानों में स्थलों में नन्दन वन, पुषभद्रक, वैश्रम्भक, चैत्ररथ वन ये देवताओं के विहार स्थल उद्यान है वहां गये।

विमान में अपनी प्रियतमा के साथ कर्दम के आरूढ़ होते ही वह वहाँ से उड़ा और जा पहुँचा मेरु पर्वत की घाटियों में। वहाँ वे कुबेर जी के समान दीर्घकाल तक विहार करते रहे। मेरु पर्वत की घाटियाँ आठों लोकपालों की विहारभूमि हैं। इनमें कामदेव को बढ़ानेवाली शीतल, मन्द एवं सुगन्ध वायु बहती रहती है। आकाश-गंगा के कलकल निनाद से वहाँ का वातावरण सर्वदा ध्वनित होता रहता है। उस समय सिद्ध गन्धर्व उनके गुणों का गान कर रहे थे। उसके बाद वे देवों के नन्दन आदि वनों में, कुबेर की भाँति, चिरकाल तक विहार करते रहे, रंगरेलियाँ मनाते रहे।

इसप्रकार कर्दमजी स्वर्ग के सभी वैश्रम्भक, सुरसन, नंदन, पुष्पभद्र, मानस तथा चैत्ररथ आदि दिव्यकाननों में बहुत काल पर्यंत घूमते रहे। देवताओं के विमान, उनका ऐश्वर्य, उनकी प्रभा, कान्ति सभी कुछ महामुनि कर्दम से पिछड़ी-सी जाती। देवगण तो पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में आये है किन्तु ये तो भगवत् उपासना के प्रभाव से आये हैं। जिसके हृदय में भगवान की भक्ति है, जिन्होंने पवित्र-चरित्र, पुण्यलोक, जगतमंगलकारी, भवभयहारी भगवान पुरुषोत्तम के पावन-पादपद्मों का आश्रय ग्रहण किया है, उनके लिये संसार में दुर्लभ वस्तु कौन-सी हो सकती है? उनके सामने स्वर्गीय सुख तुच्छ हैं। मुनिवर जिस लोकपाल की पुरी में जाते, वे ही उनके दर्शनों को आते। लोकपालों की पत्नियाँ, भगवती देवहूति के पादपद्मों में आकर प्रणाम करती। मुनि पत्नी उन्हें गले से लगाती और अत्यन्त स्नेह से कहती- हम तो मृत्युलोक के जीव हैं, आप स्वर्ग की रमणियाँ हैं,

तीनों लोकों के अधीश्वर लोकपालों की पूजनीया-पत्नियाँ हैं आपकी समता संसार में कौन कर सकता है?

महामुनि कर्दम अपनी प्रिया के सहित रमणीक रत्नों के झुण्डों से घिरे हुए उस विमान पर चढ़कर सुमेरु पर्वत की कन्दराओं में, जो आठों लोकपालों की विहार की भूमि है, जहाँ का समीर सुगन्धित हुआ मन्द-मन्द बहता है, जहाँ स्वर्ग से गिरती हुई भगवती सुरसरि की मंगल ध्वनि होती है, उन्हीं रमणीय कन्दराओं में सिद्धगण द्वारा वन्दित होकर कुबेर के समान विहार करते रहे।

उस कान्तिमान और इच्छानुसार चलनेवाले श्रेष्ठ विमान पर बैठकर कर्दमजी, वायु के समान सभी लोकों में विचरते हुए, विमान-विहारी देवताओं से भी आगे निकल गये।

दुनिया में किसी के भी पास ऐसा विमान नहीं था और न आज भी है, जो इसकी तुलना कर सके। कर्दम जी का यह वैभव शंका अथवा आश्चर्य का विषय नहीं है। जिन लोगों ने भगवान के चरणों का आश्रय ले लिया है, उनको संसार का कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं है।

अपनी पत्नी को सारे भू-मण्डल एवं स्वर्ग की विहार-भूमियों में घुमाकर कर्दम जी पुन: अपने आश्रम में लौट आये। काम की महिमा गजब की होती है। इस प्रकार विहार करते हुए उन दोनों के सौ वर्ष मुहूर्त के समान बीत गये।

उन्होंने अपनी प्रियतमा को पृथ्वी के समस्त द्वीपों एवं वर्षों का भ्रमण कराया और फिर वे अपने आश्रम में लौट आये।

चिरकाल तक महायोगी-भगवान कर्दम अपनी प्राणप्रिया पत्नी को, तीनों लोकों की अति आश्चर्यमयी चित्र-विचित्र रचनाओं को दिखाते हुए द्वीप, वर्ष, नद, नदी, समुद्र, कानन, अन्तरिक्ष सभी स्थानों में घूमते-घूमते सरस्वती तट के अपने उसी बिन्दुसरोवर के समीप के आश्रम में आ गये। देवहूति की सभी इच्छायें पूरी हुईं। भूगोल देखने का उनका भारी कुतूहल शान्त हुआ। विद्याधरी और किन्नरियों के द्वारा सेवित वे संसार के उत्तम-से-उत्तम विषयों का भोग करने लगीं। अपने प्राणप्रिय की प्रसन्नता प्राप्त करके वे संसार में अपने को अत्यन्त भाग्यवती नारी समझती थीं। जिस पत्नी के ऊपर उसके प्राणेश्वर प्रसन्न हों उसके लिये संसार में कौन-सी वस्तु दुर्लभ है और उससे बढ़ेकर सुख और हो ही क्या सकता है। इन सबको देख लेने के पश्चात् अब उन्हें सन्तान की सर्वश्रेष्ठ कामना उत्पन्न हुई।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुर, इस प्रकार दोनों ही उस दिव्य विमान पर विहार करते हुए दिव्यातिदिव्य सुखों का उपभोग करने लगे। सुखपूर्वक गृहस्थ धर्म का पालन करने लगे। जिन लोगोंने भगवानके चरणोंका आश्रय ले लिया, उनके लिए संसारका कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं है।

अपने पति के द्वारा दिखाई हुई दिव्य-माया देखकर देवहूति उनसे कहने लगी- हे द्विजवृषभ। आप अमोघ माया के अधिपति हैं। समस्त ऐश्वर्य आपको प्राप्त है यह बात मैं जानती हूँ, सत्य है, किन्तु हे सर्वसमर्थ स्वामिन्। विवाह के समय मेरे पिता के सम्मुख जो आपने प्रतिज्ञा की थी- सन्तानोत्पत्ति तक मेरे साथ आपका अंग-संग होगा, वह प्रतिज्ञा अब पूरी होनी चाहिये। क्योंकि अपने पति के द्वारा पतिव्रता स्त्रियों को पुत्र की प्राप्ति होना परम लाभ है।

उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को संसारी सुख देने में कुछ भी कोर-कसर नहीं छोड़ी। अनेक वर्षों तक वे उसके साथ रमण करते रहे। दोनों ने ही एक दूसरे को अपना हृदय अर्पित कर रखा था। दोनों ही यौवन के मद में मतवालेसे बने हुए थे। कब दिन हुआ, कब रात्रि हुई? उन्हें पता ही नहीं लगता था। इस प्रकार अनुराग में आसक्त हुए उन दम्पति के दिन क्षण के समान बीत रहे थे। क्रमश: मुनि के वीर्य द्वारा देवहूति के गर्भ से नौ कन्याओं का जन्म हुआ।

अत्यन्त सुन्दर पति के साथ काम-क्रीड़ा करती हुई देवहूति को भी समय का कुछ आभास नहीं हुआ। इस अवधि में उन

देवहूति से कर्दम को नौ कन्याएँ हुईं। वे सभी-की-सभी परम सुन्दरी थीं। इस गृहस्थाश्रम में कर्दमजी को काफी समय बीत जाने पर मनसे बड़ी ग्लानि हुई। उन्हें लगा ये गृहस्थी का जाल कैसा है। इसमें उलझने वाला कर्दम सारा भजन तप साधन भूल गया। गृहस्थी के जाल में फंस गया। वो स्वतन्त्र होना चाहते थे। कन्याओं की उत्पत्ति के अनन्तर कर्दम जी वन जाने के लिये तैयार हुए। सब कुछ छोड़कर उनका मन संन्यास लेने का हुआ। जीवन में भोगके साथ वैराग्य और त्याग भी होना चाहिए। ऐसा कभी नहीं समझना चाहिए कि जब दु:ख होगा तभी वैराग्य ग्रहण करेंगे और त्याग देंगे। वैराग्य और त्याग भी जीवनका एक पहलू है। उसके बिना जीवन परिपूर्ण नहीं होता।

कर्दम जी जब संन्यास लेने के लिये तत्पर हुए तो देवहूति का हृदय व्याकुल हो गया। उसका मुख मलिन हो गया उसने अपने पतिसे कहा- आप जैसे पति मुझे मिले। मुक्ति तो संसार से छुटकारा दिलाती है। आप जैसे समर्थ पति को पाकर के भी मैंने संसार के सुखों की याचना की। मुझे नौ कन्याएं प्राप्त हो गयी। अपनी शर्त के अनुसार आप स्वतंत्र है। हे स्वामी, आप जंगल में जा सकते हो, पर मुझे थोड़ी गंभीर चिंता है। जब यह कन्याएं सयानी हो जाएंगी तो मैं योग्य वर की तलाश करने कहां भटकती फिरूंगी। यह कन्याएं अपने ससुराल चले जानेपर मुझ अबला के जीवन का सहारा क्या होगा? मेरे स्वामिन्, आपने सब प्रकार से मेरी इच्छाओं की पूर्ति की है। आपने जो कहा था वह सब किया। किन्तु प्रभो, जाने के पूर्व आप इन कन्याओं का विवाह भी करके जाँय। इसके अतिरिक्त मुझे एक पुत्र भी होना चाहिये जो आपके चले जाने पर मेरा उद्धार करे।

स्वामिन्, आपके परम प्रभाव को न जानने के कारण ही मैंने इन्द्रियों के विषयों में आसक्त रह कर आपसे अनुराग किया। तो भी आप का संग मेरे संसार-भय को दूर करनेवाला होना चाहिये क्योंकि असत्पुरुषों का संग संसार का कारण होता है और सत्पुरुषों का संग, अज्ञान से भी यदि किया जाय तो भी वह मोक्ष का कारण होता है। इस संसार में वह पुरुष जीते जी मुर्दे के समान है, जिसके कर्मों से न तो धर्म का सम्पादन होता है न वैराग्य उत्पन्न होता है और न भगवान की सेवा ही सम्पन्न होती है।

अवश्य ही मैं भगवान की माया के द्वारा ठगी गई हूँ, जो आप जैसे मुक्तिदाता पतिदेव को पाकर भी मैंने संसारबन्धन से छूटने की इच्छा नहीं की, मुक्त होने का प्रयास नहीं किया। देवहूति ने बड़ी आर्द्रवाणी से अनुरोध किया कि इन कन्याओं का विवाह करना भी आपका ही दायित्व है और दायित्व पूरा किये बिना गृहस्थ त्यागना उचित नहीं। हे मुनिश्रेष्ठ, पुत्र उत्पन्न करना ही दायित्व का पूर्ण होना नहीं, उसे ऋणमुक्त कर आजीविका उपार्जन का साधन प्रदान करना तथा कन्याओं का यथा समय विवाह संस्कार सम्पन्न करने के बाद ही गृहस्थ श्रण से उऋण माना जा सकता है। हे स्वामी, मैं तो हमेशा आपकी साधना में सहयोगी रही हूँ फिर आप गृहस्थ त्यागकर वन जानेकी कल्पना क्यों करते हैं? न तो मैंने धर्म आचरण किये, न वैराग्य ही हुआ, न भगवद् सेवा ही करी ऐसा जीवन तो मृतवत है। मैं कैसी हतभागिनी हूं, नदीके किनारे बैठी रहकर भी प्यासी की प्यासी रही। संसार में दुष्टोंका संग किया जाये, तब तो वह बन्धनका कारण बनता है किन्तु सत्पुरुषोंका संग करनेपर असंगता आती है। जिस कर्मसे धर्म न हो, वैराग्य न हो, भगवानकी सेवा न हो, वह कर्म बिलकुल व्यर्थ है। मैं तो मायामें ऐसी फँसी कि आप जैसे पतिको प्राप्त करके भी संसार-बन्धनसे मुक्त नहीं हुई।

नौ कन्याओं के उत्पन्न हो जाने पर वन जाने के लिये जाते हुए अपने पति से देवहूति कहती है- हे प्रभो। आपने जो भी प्रतिज्ञा की थी, वह सब तो आपने पूरी कर दी, फिर भी मैं आपकी शरणागता हूँ, कुछ और निवेदन करना चाहती हूँ उसके लिये आप मुझे अभय दान दें। ब्रह्मन, आपकी ये नौ कन्यायें हैं, इनके अनुरूप आप को वर की खोज करनी चाहिये। इनका विवाह करके और मेरे लिये कुछ आधार छोड़कर ही आप वन जायँ। आपके परिव्राजक होने पर मेरे शोक को दूर करने के लिये कोई योग्य पुत्र भी होना चाहिये।

दीनतापूर्वक देवहूति बोली- स्वामिन्। यह तो सब सत्य है, किन्तु मेरे सर्वस्व तो आप ही हैं। स्त्रियों के तो पति ही परमेश्वर हैं। मैं आपकी शरणागता हूँ, मेरे कोई और अवलम्ब नहीं। अत: प्रभो, आप मुझे इस प्रकार अधर में छोड़कर अभी न जायें।

बाल्यकाल में वे माता-पिता, गुरुजनों के आधीन रहती हैं। विवाह होनेपर पति के आधीन और सन्तान होने पर पुत्र के आश्रय में। आप चले जायेंगे तो मेरे सहारे को भी तो कोई चाहिये। फिर आप तो भगवत् आराधना के प्रभाव से संसार-सागर से तर जायँगे, आपकी सहधर्मिणी और धर्मपत्नी कहा कर भी यदि मैं चौरासी के चक्कर ही में पड़ी रही, यह आपके लिये भी बड़े अपयश की बात है। अत: मेरे उद्धार का भी कोई उपाय सोचें। मेरे आश्रय का प्रबन्ध करके ही जायँ। ये लड़कियाँ तो दूसरे घर के लिये पाली-पोसी जाती है। इनके तो जहाँ पंख निकले कि फुर्र-फुर्र करके उड़ जाती हैं। फिर माता-पिता को भूल-सी ही जाती हैं। स्त्रियों के आश्रय तो पुत्र ही होते हैं जो किसी तरह जीवन भर निभाते हैं, मरने पर श्राद्ध तर्पण करके पुं नामक नरक से उद्धार करते हैं। इसीलिये बहुत नहीं एक पुत्र की और भिक्षा है। तृष्णा कभी शान्त थोड़े ही होती है। धन सन्तानों से आज तक किसी की तृप्ति हुई है? आप जैसे समस्त ऐश्वर्य और सिद्धियों के स्वामी पति को पाकर भी मैं विषय भोगों ही में फँसी रही। आपसे मुक्ति सम्बन्धी प्रश्न भी नहीं किया। फिरभी कैसे भी आपसे सत्संग हुआ। अनजान में भी विष खाने से पुरुष मर जाता है और भूल में अमृत पीने पर भी अमर हो जाता है।

अपने योग, तपस्या के बल से कन्दम ऋषिने एक बहुत बड़ा विमान तैयार किया। देवलोक से एक विमान आया, कितने दरवाजे, पंखे, सब सुविधाओंसे युक्त और एक सरोवर, दास-दासियां। देवहूतिको बोले- तुम इसमें स्नान करो। दास-दासियोंने अंगराग लगाकर उसको इसमे स्नान कराया। खुद कर्दम ऋषिने स्नान किया। कन्दम ऋषि एकदम युवक, देवहूति एकदम सुन्दर युवती। दोनों उस विमान में विहार करने लगे। कई दिन तक विहार करते रहे, विहार करते-करते एक दिन उनको एक कन्याकी प्राप्ति हुई, फिर उद्योग हुआ। ऐसे करते-करते एक-साथमें नौ कन्याओंकी उत्पत्ति हुई। युवतियां, कन्याएं बडी हुई। कर्दम ऋषि देवहूति को बोले- मैंने मेरा काम पूरा कर दिया अब मैं यह संसार छोड़कर जाना चाहता हूँ, वैराग्य लेना चाहता हूँ, मैं जंगल में वानप्रस्थ में जाना चाहता हूँ। देवहूतिने कहा- भगवन, ठीक है आपने कहा था सन्तान होनेका। संतान हो गयी। लेकिन अब मेरा क्या बंदोबस्त करके जा रहे हो। ये सन्तानें तो कन्याएं है अपने-अपने घर चली जाएगी। पहले तो इनके शादी कि फिक्र करो। इनका पाणिग्रहण कराओ इनका और फिर मेरे लिये क्या व्यवस्था है। कर्दम ऋषिको अपने गृहस्थ का ध्यान आया, जिम्मेदारियोंका अहसास हुआ। और फिर उन्होंने उद्योग किया।

कर्दम मुनि तो निवृत्ति धर्म के उपासक थे। प्रवृत्ति को तो उन्होंने लोक संग्रह के लिये स्वीकार किया है।

राजा किनके पाहुने, जोगी किनके मीत।

आये आश्रम लौटि सुरति सुख अतिशय दीन्हों। नवधा करि निज वीर्य यथाविधि स्थापित कीन्हो।।

नौ कन्यायें भई उभय कुल यश विस्तारिनि। कमल गन्धमय देह जनक जननी सुखदायिनी।।

बाल मरालिनिके सरिस, किलकें कूजें सुता सब। कुटुम बढ़त जब मुनि लख्यो, भयो उदित वैराग्य तब।।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुर जी, जब मनु की पुत्री देवहूति वैराग्य की बात करने लगी, तब महात्मा कर्दम जी को बड़ी दया आई। उन्होंने कहा हाँ-हाँ देवि, तुम खेद मत करो। तुम्हें अधीर नहीं होना चाहिए। तुम्हें परम ब्रह्म को मातृत्व का दुलारा देना है तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होकर वे तुम्हारा और जन का कल्याण करेंगे।

काठ की ओट ते काठ बचे नहीं, आग लगे तब दोनों को जारे।

चूहा की ओट से चूहा बचे नहीं, बिल्ली परे तब दोनों को मारे।।
सियार की ओट से सियार बचे नहीं, सिंह परे तब दोनों को फारे।
जीव की ओट से जीव बचे नहीं, ओट बचे हरि नाम पुकारे।।

कर्दम ऋषि बोले- देवहूति, संसार में सबल कौन है? सभी निर्बल है, निर्बल के बल राम हैं। तुम उन्हीं का आश्रय ग्रहण करो। संसारी सम्बन्ध तो क्षणभंगुर है। कौन किस पर कोप करता है, कौन कृपा करता है? करने करानेवाले तो वे श्रीहरि हैं। एक उन्हींका आश्रय ग्रहण करो, वे समस्त चराचर जीवों का असंख्यों ब्रह्माण्डों का योगक्षेम करते हैं।

भगवान ने भी ऐसा ही कहा था कि मैं आप का बेटा बनूँगा अत: वे तुम्हारे गर्भ में आनेवाले हैं। भगवान ने कहा था वे स्वयं अपने यहां पुत्र बनकर आयेंगे और सांख्यशास्त्र का प्रचलन करेंगे।

आई वर की यादि कमण्डलु पुनि धरि दीन्हों। मुनि दयार्द्र ह्वै गये दूरि दयिता दुख कीन्हों।।
बोले- भामिनि। दु:ख शोक चिन्ता तजि डारो। गर्भ माहिँ तव प्रकट होहिँ हरि शुभ व्रत धारो।।
हर्षित ह्वै तप व्रत करहिँ, हरि प्रसन्न अतिशय भये। उपजे अरणीतें अनल, त्यों प्रभु परगट ह्वै गये।।

मैत्रेयमुनि विदुरजी से कहते हैं- विदुरजी। देवहूति ने बड़े गौरव और श्रद्धा सहित प्रजापति कर्दम भगवान की आज्ञा को स्वीकार किया। वह कूटस्य-जगत् गुरु भगवान परम-पुरुष की आराधना करने लगी।

भगवान जिस दम्पती को निमित्त बनाकर अवतीर्ण होना चाहते हैं, वे साधारण दम्पती तो होते नहीं। जन्म-जन्मान्तरों के असंख्यों पुण्यों से शुभ कर्मों से, विविध-धर्मों के आचरणों से ऐसा सौभाग्य प्राप्त होता है। यद्यपि श्रीहरि कर्मों के अधीन नहीं है। न तो कर्म भोगों को भोगने के लिये ही अवतीर्ण होते हैं और न उन्हें कोई पुण्य कर्म विविध-धर्मों के द्वारा प्राप्त ही कर सकता है। उनकी प्राप्ति का एकमात्र कारण तो उनकी कृपा ही है। किस पर वे कृपा कर दें, कहाँ अवतीर्ण हो, किसे दर्शन दें, इन बातों को उनके अतिरिक्त कोई जान ही नहीं सकता। फिर भी शेरनी का दूध सुवर्ण के ही पात्र में टिकता है। भगवान भी तप: पूत, धर्माचरण में निरत, परम पुण्यात्मा, महान संस्कारी, श्रेष्ठ सदाचारयुक्त दम्पति के यहाँ ही अवतरित होते हैं जो उनकी कृपा के भाजन बन चुके हैं। जिस पति-पत्नी को वे अपने जन्म का निमित्त बनाते हैं, उनकी वैसे तो आरम्भ से ही धर्म में प्रवृत्ति होती है, किन्तु अवतरण के समय तो उनका मन सदा श्रीहरि के चरणों में ही लगा रहता है।

प्रभु की प्रेरणा से कर्दम जी ने वन में जानेका निर्णय कुछ समय के लिये स्थगित किया। इधर भगवान पहले कर्दम के वीर्य में और देवहूति के गर्भ में प्रविष्ट होकर दसवे महीने में, काष्ठ में अग्नि की तरह प्रकट हुए। उस समय प्रकृति का सारा वातावरण आल्हाद से भर गया। मेघ जल बरसाते हुए गरज-गरज कर बाजे बजाने लगे, गन्धर्व-गण गान करने लगे और अप्सराएँ आनन्दित होकर नाचने लगीं। आकाश से देव-गण दिव्य पुष्पों की वर्षा करने लगे। जलाशयों का जल निर्मल हो गया। सभी प्राणियों के मन प्रसन्नता से खिल उठे। यह देखकर मरीचि आदि ऋषियों के साथ, सरस्वती नदी के तट पर बसे कर्दम ऋषि के आश्रम में, ब्रह्माजी पधारे। उन्होंने कर्दम जी से कहा- पुत्र, तुम दूसरों को मान-सम्मान देनेवाले हो। तुमने जो मेरी आज्ञा का पालन किया है, यह मेरी सबसे बड़ी सेवा है। इनके स्वभाव और रुचि के अनुसार अपनी कन्याएँ इन्हें समर्पित करो इससे सृष्टि बढ़ेगी और संसार में तुम्हारे सुयश का विस्तार होगा। पुत्रकी सबसे बड़ी सेवा यही है कि वह गौरवके साथ अपने पिताकी आज्ञाका पालन करे।

ब्रह्माजी फिर मुड़े देवहूति की ओर और कहा- राजकुमारी, तेरे गर्भ में साक्षात् कैटभारि भगवान नारायण पधारे हैं। यह अपने इस अवतार के द्वारा न केवल अविवेक की, अपितु अविद्या की गाँठ को भी काट कर भूतल पर विचरण करेंगे। ये

सिद्ध-गणों के स्वामी और सांख्याचार्यों के भी आदरणीय होंगे। लोक में यह तेरी कीर्ति का विस्तार करेंगे, इनका नाम होगा कपिल। तुम दोनोंने तपस्या और वैराग्य के द्वारा इन्हें प्रकट किया है। अत: ये त्यागी वैरागी के स्वरूप में ही विचरण करेंगे। इनके अनन्त नाम होंगे। असंख्यों नामों से पुकारे जाएंगे। ब्रह्मा जी उक्त बातें दोनों से कहकर सनकादि ऋषियों के साथ अपने लोक को चले गये।

कर्दम ऋषि देवहूति से बोले- श्री हरि तुम्हारे गर्भ से प्रकट होंगे और तुम्हारे संशयों का छेदन करेंगे। लोक में तो माता-पिता, पुत्र को उपदेश देते हैं, किन्तु तुम्हारा पुत्र ही तुम्हें उपदेश देगा। वह तुम्हें निमित्त बनाकर संसार भर के लिये उपदेश देगा, उससे तुम तो तर ही जाओगी, उसे श्रवण-मनन करके असंख्यों प्राणियों का भी उद्धार होगा। मैत्रेयजी कहते हैं- विदुरजी। स्त्रियों को सुन्दर सन्तान की प्राप्ति से बढ़कर दूसरा और कौन-सा सर्वश्रेष्ठ सुख है? देवहूति ने अपने पति के सम्मुख अपनी यह इच्छा प्रकट की और भगवान कर्दमजी ने उसके स्नेह के कारण उसकी वह भी इच्छा पूरी की।

प्रकटे प्रभु परमेश। पितामहँ सुनि तहँ आये। अत्रि-अङ्गिरा-पुलह आदि नव ऋषि सँग आये।।
कर्दम निरखे पिता यथा विधि स्वागत कीन्हों। ऋषि सँग पूजा करी सबनिकूँ आसन दीन्हों।।
करहु ब्याह तनयानिके, विधि बोले इन ऋषिनितें। कपिल रूप धरि पुत्र बनि, हरि आये निज बरनितें।।

१०) कपिलोपख्यान (कपिल गीता, सांख्यशास्त्र)

अबके एक बालक का जन्म हुआ। बड़ा तेजस्वी बालक, कपिलमुनि। कपिल भगवान का अवतार। ऐसा वेदनिष्ठ ज्ञानी बालक कुछ बड़ा हुआ। पांच-छ:, आठ वर्ष का। अब कर्दम ऋषि देवहूति को बोलते है- अब तो तुम मुझे वानप्रस्थ आश्रम की आज्ञा दे। मैं अब वन जाऊंगा। देवहूति भी वचनोंसे बन्धी हुई थी। कर्दम ऋषि उसी समय अपने पुत्रको शीश नवाकर क्योंकि कन्दम ऋषि जानते थे कि यह पुत्र जो है भगवान का रूप, हरिरूप आया है। वनको चले गये। देवहूति उस सिद्धाश्रम में बिंदू सरोवर के पास कपिल को पाल रही है। कपिल बोले- दिन-प्रति-दिन माताश्री का स्नेह बढ़ते जा रहा है। नौ कन्याएं, एक अच्छे-अच्छे ऋषियोंको ब्याही गयी। सती अनसूया अत्रे मुनिको, अरूंधती वशिष्ठ मुनिको, क्रती- क्रतु ऋषिको, हर्वी- पुलत्स्य ऋषिको, गति- पुलह ऋषिको, ख्याति- भृगु ऋषिको, शान्ति- अथर्वा ऋषिको, कला- मरिची ऋषिको। इसप्रकार नौ कन्याओंका विवाह इन नौ ऋषियोंसे हुआ जिनसे इस संसार में सब प्रजाओंका विस्तार हुआ।

सृष्टिकर्ता के चले जाने पर कर्दम जी ने उनकी आज्ञा के अनुसार अपनी बेटियों का विवाह मरीचि आदि प्रजापतियों के साथ सविधि कर दिया। उन्होंने अपनी कला नाम की कन्या मरीचि को, अनसूया अत्रि को, श्रद्धा अंगिरा को, हविर्भू पुलस्त्य को, गति पुलह को, क्रिया क्रतु को, ख्याति भृगु को, अरुन्धती वसिष्ठ को और शान्ति अथर्वा ऋषि को प्रदान कर दी। साथ में कर्दम जी ने उन्हें दहेज के रूप में बहुत-सी सामग्री भी प्रदान की। पाणिग्रहण करना भी एकप्रकार का यज्ञ ही है। यज्ञ की सब क्रियाएँ अथर्वण वेद के प्रमाण से होती है। अनुरूप पत्नियों को पाकर मरीचि आदि ऋषि प्रसन्न हो गये और कर्दम की आज्ञा लेकर वे सभी अपने-अपने स्थान को चले गये।

विधि आज्ञा सिर धारि ऋषिनिकूँ कन्या दीन्हीं। वैदिक विधितें ब्याह करे विनती बहु कीन्हीं।।
सब ऋषि पत्नी लई चले हिय हरिकूँ सुमिरत। कर्दम चिन्ता मटी भयो मन अतिशय हरषित।।
गृही बने सब सुख लहे, हरि प्रकटे, कन्या दई। करुणाकरकी कृपातें, सब इच्छा पूरन भई।।

एक दिन की घटना है। कर्दम जी ने देखा कि त्रिलोकी के स्वामी हमारे घर में अवतार लेकर पधारे हैं, तो वे एकान्त में

उनके पास गये और प्रणाम कर स्तुति की- प्रभो, आप भक्तवत्सल हैं। भक्तों पर अहेतुक कृपा करनेवाले हैं। भक्तों का मान बढ़ानेवाले हैं। आपने अपने वचनों को सत्य करने के लिए और सांख्यशास्त्र का उपदेश करने के लिये ही हमारे घर अवतार लिया है। स्वामिन, आप ऐश्वर्य, वैराग्य, यज्ञ, ज्ञान, वीर्य और श्री इन छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। मैं आप का शरणागत हूँ। क्योंकि भगवानसे बात करना हो तो भरी सभामें नहीं एकान्तमें करनी चाहिए। मुसाफिरखाना या बसका अड्डा तत्वज्ञान प्राप्त करनेका स्थान नहीं है।

जो परमात्म स्वरूप, प्रकृति और पुरुष स्वरूप तथा महत्तत्त्व, काल, ब्रह्मा, विविध अहंकार तथा लोकपाल स्वरूप हैं, सम्पूर्ण प्रपंच, चेतनाशक्ति के द्वारा जिनमें समाया हुआ है, ऐसे स्वच्छन्द शक्तिवाले भगवान कपिल को मैं प्रणाम करता हूँ।

आप की कृपा से सम्प्रति मैं सभी प्रकार के ऋणों से मुक्त हो चुका हूँ। मेरे मनोरथ भी पूर्ण हो चुके हैं। सम्प्रति मैं संन्यास लेकर, आपका चिन्तन करते हुए, संसार में निर्लिप्त भाव से विचरण करना चाहता हूँ। इसके लिये आप मुझे आज्ञा दीजिये। कर्दम जी घर में पधारे भगवान का परित्याग कर जंगल में जाकर उनका चिन्तन करना चाहते हैं। इसका कारण यह है कि भगवान के भक्तों को स्वयं भगवान की अपेक्षा भगवान की सेवा, उनका चिन्तन-ध्यान अधिक प्रिय हैं। अब दुनिया की मोहमाया से उपराम होकर तदाकार होने की लालसा है। कपिल ज्ञानकी मूर्ति है। सांख्य शास्त्र के उद्गाता है।

कर्दमजी ने विनीत भाव से कहा- प्रभो। आपका यह अवतार, तत्त्व-जिज्ञासु-विद्वज्जनों के उपदेशार्थ ही हुआ है। आपके पादपद्मों की पावन पीठ की वन्दना बड़े-बड़े ज्ञानी, सांख्यचार्य, योगीगण सदा करते ही रहते हैं। षडैश्वर्य में सदा विद्यमान रहते हैं। आप, प्रकृति और पुरुष के भी नियामक पुरुषोत्तम हैं। महत्तत्त्व, काल, ब्रह्मा, तीनों गुण, अहंकार, देवता, लोकपाल, जड़, चेतन जो भी कुछ है- सबका अस्तित्व आपकी शक्ति में ही है। आप स्वच्छन्द, शक्ति, सर्वज्ञ और अनन्त हैं।

भयो कृतारथ देव पितृ ऋषि ऋणतें छूट्यो। जगके भोगे भोग मोहको नातो टूट्यो।।
एक कृपा अब करो मूर्ति हियमहँ तव धारूँ। विचरूँ ह्वैं निर्द्वन्द तुम्हें सर्वत्र निहारूँ।।
इच्छा द्वेष बिहीन बनि, देह गेह ममता तजहुँ। सुख दुखमहँ सम भाव करि, ह्वै अनन्य तुमकूँ भजहुँ।।

महामुनि कर्दम, भगवान कपिल से प्रार्थना कर रहे हैं- प्रभो। आप सम्पूर्ण प्रजाओं के पति हैं, आपके अवतीर्ण होने से मैं तीनों ऋणों से मुक्त हो गया तथा मेरी समस्त कामनायें पूर्ण हो गईं। अब मेरी इच्छा है कि मैं सन्यासाश्रम को ग्रहण करके हृदय में ध्यान करते हुए शोक रहित होकर विचरण करूँ। इसके लिये मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ।

कर्दम जी की बात सुनकर कपिल जी ने कहा- मुने, तत्त्वज्ञान का सांख्य-मार्ग बहुत दिनों से लुप्त हो गया था उसे फिर से प्रवर्तित करने के लिये ही मैंने यह शरीर धारण किया है। बिना तत्त्वज्ञान के मुक्ति नहीं हो सकती। मुने, मैं आज्ञा देता हूँ, तुम इच्छानुसार जाओ और अपने सारे कर्मों को मुझे समर्पित करते हुए मेरा भजन करो। इससे आप मृत्यु को जीतकर मोक्ष के भागी बनोगे। मैं तुम्हारी आत्मा हूँ, स्वयंप्रकाश हूँ, सर्वगुहाशय हूँ, एक अद्वय ब्रह्मज्योति हूं। तुम अपने आत्मरूपसे मेरा दर्शन करो और विशोक होकर अभय पद प्राप्त करो। जो कुछ है मेरे समर्पण करो, यही पूर्ण सन्यास हैं तभी मोक्ष को प्राप्त हो सकोगे।

मुनि बोले- हे ऋषिवर, तुम्हारी इच्छायें पूरी हुई। जब मनुष्य संसार में जन्म लेता है तब तीन ऋण- देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण उस पर रहते हैं, तुम यज्ञ करके देवऋण, वेद पढ़कर ऋषिऋण और सन्तान उत्पन्न करके पितृऋण, तीनों ऋणों से उऋण हुए। तुम अपना मन संसार से विरक्त करो। जब संसार से प्रेम छूट जाएगा हरिभजन में मन लग जायेगा। इस शरीर को असत्य समझो, यह पानी में बुलबुले के समान है।

पानी केरा बुदबुदा, असमानुष की जात, देखत ही छिप जायेगा ज्यों तारा प्रभात।।

जिस तरह पानी में बुलबुला उठता है उसमें मिट्टी, पानी, आग, हवा व आकाश कोई वस्तु नहीं होती उसी तरह तन को निषिद्ध समझकर इसपर अहंकार मत करो। प्राण निकलने के उपरान्त यह शरीर किसी काम में नहीं आता, इसलिए शरीर से प्रीति करना व्यर्थ है। प्रेम उस वस्तु से करें जो सर्वदा स्थिर रहे, उसका कभी नाश न हो।

यह सत्य है, लौकिक-वैदिक कर्मों में मेरा वचन ही प्रमाण है। मेरी वाणी को ही वेदशास्त्र कहते हैं। प्राचीन सांख्यशास्त्र लुप्तप्राय: हो गया है। जो लोग, लिंग शरीर के मुक्त होने की इच्छावाले हैं उनके लिये सांख्यशास्त्र ही सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, भूत इन्द्रियाँ आदि तत्वों की परिसंख्या करने का और पुरुषोत्तम को इनसे पृथक् करके जानने का नाम ही सांख्य है। उसी शास्त्र का प्रचार और प्रसार अवतार का प्रधान हेतु है। मैं त्यागी विराग होकर संसार के सम्मुख संन्यास-धर्म का महान् आदर्श उपस्थित करूँगा।

अब मैं माता देवहूति को भी सम्पूर्ण कर्मों से छुड़ानेवाला आत्मज्ञान प्रदान करूँगा। इससे यह संसाररूपी भय से सर्वदा के लिये मुक्त हो जायेगी। मेरा यहाँ रहने का और कोई प्रयोजन नहीं। माता मेरी भक्ता है, अनुरक्ता है, अधिकारिणी है, उसे जब पूर्ण रूप से तत्त्वज्ञान हो जायगा तो मैं घर त्यागकर चला जाऊंगा।

पुत्र रूप हरि लखे एक दिन बैठै बनमहुँ। आज्ञा ले घर त्याग चलूँ सोची मुनि मनमहँ।।
करके दण्ड प्रणाम विनय श्रद्धा युत बानी। बोले- हे अखिलेश। तुम्हारी महिमा जानी।।
माया मोहित मूढ़ हौं, तुम महेश, अज, अखिलपति। साधन सुलभ न दरश तव, प्रकटे कीन्हीं कृपा अति।।

कर्दम महाराज कपिल भगवान की परिक्रमा कर वन प्रस्थान करने के लिये उद्यत हुए उसी समय देवहूति आ गई और जब उसे मालूम पड़ा कि प्राण धन, सन्यास धारण कर वन में जा रहे तो वे अधीर होकर बोली-

प्राणनाथ तुम बिनु जग मांहीं। मौकों सुखद कतौं कछु नाहीं।
जिय बिन्दु देह नदी बिन वारी। तैसेई नाथ पुरुष बिनु नारी।।

देवहूति बोली- हे स्वामी, मेरा कितना बड़ा सौभाग्य है। मेरे घर स्वयं भगवान पुत्र बनकर पधारे हैं। जो बहती गंगा में हाथ नहीं धोता, वो समझदार नहीं होता। आपके वन जाने पर मैं अनाथ होकर इस कुटिया में कैसे रह सकूँगी। स्त्री का सर्वस्व तो उसका पति होता है। आपके श्री चरणोंके अलावा मुझे कहीं सुख प्रतीत नहीं होता। पतिके बिना पत्नी का कोई अस्तित्व नहीं। अस्तित्वहीन जीवन निरर्थक है। एकाकी जीवन मेरे लिए असह्य हो जायेगा। कर्दम बोले- अरे सौभाग्यशालिनी। जीव संसार में अकेला आया है और अकेला ही जाता है। पर तुम अकेली कहां हो तुम्हारे साथ तो साक्षात् जगत्पति नारायण कपिल के रूप में उपस्थित हैं। अत: अपने कुलभूषण कपिल के साथ सानन्द भगवत् चिंतन करो। अत: सब मोह त्यागकर भगवान कपिल के उपदेशों को ग्रहण कर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करो। देवहूति बोली- स्वामी **नक्षत्र भूषणं चन्द:, नारीणां भूषणं पति:।।**

भगवान कपिल के वचन को सुनकर प्रजापति कर्दम जी ने उनकी परिक्रमा की, प्रणाम किया और फिर प्रसन्नतापूर्वक वन के लिये चले गये। वहाँ उन्होंने अहिंसामय संन्यास धर्मों का पालन करते हुए अग्नि और आश्रम का भी परित्याग कर दिया। संन्यास माने वह प्रज्वलित अन्तदृष्टि जो किसी देश-विशेष, काल-विशेष, वस्तु-विशेष, व्यक्ति-विशेष में आसक्त न हो। ज्ञान हमारा स्वरूप है। इसमें बाहर से आयी वस्तुएँ हैं, उन्हें छोड़ देना ही संन्यास है। कपड़े बदलनेका नाम संन्यास नहीं है। वे नि:संगभाव से पृथ्वी पर विचरण करते थे। वनमें जाकर कर्दमजी ने सम्पूर्ण अहंकार का त्याग किया। अहंकार

प्राय: होता है। मैं ब्रह्मा का पुत्र हूँ, देवहूति मेरी पत्नी है। कपिलदेव मेरे पुत्र हैं। अनसूया मेरी पुत्री है। मैं इतना बड़ा तपस्वी हूँ। दत्तात्रेय, चन्द्रमा सरीखे मेरे दौहित्र है। पर कर्दमजी को किसी भी बात का अभिमान नहीं था। किसीमें अपना पन नहीं। सब परमात्मा का है। विधाता के प्रापंचित द्वंद से रहित हो गये। समदर्शी भेद दृष्टि से रहित होकर हानी लाभ संयोग वियोग से बिलकुल समभाव में स्थित हो गये, सब द्वदों से ऊपर उठकर अपनी अन्तरात्मा को परमात्मा में मिला दिया। वे सब में भगवान का दर्शन करते थे और भगवान में सकल संसार की भावना करते थे। इस प्रकार इच्छा और द्वेष से रहित, सर्वत्र समबुद्धि और भगवान की भक्ति से सम्पन्न होकर अन्त में श्री कर्दम जी नें भगवान का परमपद प्राप्त किया।

ऋषि कर्दमने जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रियके भोगोंका परित्याग कर दिया। कर्दम निरहंकार, निर्मम, समदर्शी, समुद्रके समान शान्त हो गये। उनको सर्वज्ञ भगवान वासुदेव का परम भक्तिभावसे साक्षात्कार हो गया। उनके बन्धन कट गये। कर्दमजीका अनुभव यह रहा कि आत्मरूप जो भगवान है और भगवद्रूप जो आत्मा है वह सबमें स्थित है। सम्पूर्ण भूत आत्मरूप भगवान्में स्थित है। कर्दमजीको न तो कोई राग, द्वेष है, उन्हें तो समदृष्टि प्राप्त थी। उन्होने भगवद्भक्तियुक्त होकर भागवती गति प्राप्त की।

इत माताने आइ करी हरितें जिज्ञासा। प्रभो, उबारी मोहि लगाई कबतें आसा।।
प्रकृति पुरुषको भेद बताओ संशय नासो। तम अज्ञान मिटाइ हृदय रवि ज्ञान प्रकासो।।
भव भय भंजन करहु प्रभु, भक्त वछल अशरणशरण। पार जगत् जलनिधि करन, तरणि रूप तव शुभचरण।।

पुत्र का सबसे बड़ा मोह होता है सो, पुत्र साक्षात् परमात्मा के अवतार ही हैं। अवतार भी माधुर्य के होते, तो कुछ क्रीड़ायें होती हैं। ये तो ज्ञानावतार हैं। माता सोचने लगी- मेरी एकमात्र गति मेरा पुत्र ही हैं। अब इन्हीं की शरण में जाने से मेरा बेड़ा पार लगेगा। यह संसार कैसा है यह भगवान ही जाने, पर सभी इसे अपनी-अपनी भावना से देखते हैं। भूखे पुरुषों को संसार सूना-सूना दिखाई देगा। जिसका सर्वस्व लुट जाता है उसे संसार लुटा हुआ-सा दीखता है। सुखी को दूसरे का दुख मालूम नहीं पड़ता। दुखी को सर्वत्र दुख-ही-दुख दिखाई देता है। जिसे संसार से वैराग्य हो गया है, उसे हर कण-कण में सर्वत्र वैराग्य ही दिखाई देती है।

देवहूति माता कपिल, कीन्हें प्रश्न अनेक। भक्ति योग महिमा सुनी, कपिल मातु सिर टेक।।

देवहूति बोली- आप सत्पुरुषों के परमधर्म को जाननेवालों में परमश्रेष्ठ है। हे प्रभो। मैं प्रकृति पुरुष का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आपके चरणों में उपस्थित हुई हूँ। मैं भव बन्धन से कैसे छूट जाऊं। हमारी इन्द्रियां बड़ी दुष्ट है, इनसे मैं उकता गयी हूँ। इनकी कभी तुष्टि नहीं होती। इनको खुश करते-करते हम नरक के द्वार पहुँच जाते हैं। पर यह तब भी सन्तुष्ट नहीं होते। इनकी जितनी ही तृप्ति करो, उतनी ही अतृप्त होती जाती है। आप तो अज्ञानान्धकारसे अन्धे हुए लोगोंके लिए सूर्यके रूपमें प्रकट हुए हो इसलिए हमारा मोह दूर करो। इन्द्रियों में आसक्त होकर इनकी लालसा दिन दूनी रात्रि चौगुनी बढ़ती जा रही है। तृष्णा शान्त नहीं होती। भोगों की इच्छा कभी पूर्ण नहीं होती। जैसे जलती हुई अग्निमें जितना ही घृत डालो उतनी ही उसकी ज्वाला बढ़ती है, यही दशा इन्द्रियों की है। भोगों के भोगने से वासना की लपटें और ऊँची उठती जाती है इससे कैसे छुटकारा हो।

हे प्रभो, मेरी परिस्थिति बड़ी दयनीय है। ये जो दस इन्द्रियाँ हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रिया, पाँच कर्मेन्द्रियाँ सब मुझे अपनी-अपनी ओर खींच रही हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूं? आंखे कहती हैं सुन्दर रूप देखो, कान कहते हैं सुन्दर संगीत सुनो, नासिका कहती है सुन्दर सुगंध को सूंघो, रसना, जो खतरनाक इन्द्रिय कहती है रसीले पदार्थोंका सेवन करो। मैं इन्द्रियों को बसमें कैसे करूँ? बंधन मन का होता है, या शरीर का, या आत्मा का। मन को वश में करने का उपाय क्या है? मुझे परमार्थ पथ

का निर्देशन करें। मैं आपकी भक्ता, अनुरक्ता और प्रपन्ना हूँ। आपकी श्रेष्ठ लीला क्या है? आपकी उचित भक्ति क्या है?

सुनिके परम पवित्र मोक्ष हितकर वर वानी। जिज्ञासा ह्वै गई मातु हिय हरिने जानी।।
हरि बोले- अध्यात्मयोग साधन भल सुखकर। जाके आश्रय तरे जगत् जलनिधि अति दुस्तर।।
जो मन विषयनिमहँ फँस्यो, सो बन्धनको हेतु है। हरि चरननिमहँ जो लगै, तो जग तारन सेतु है।।

कपिल बोले- माता, मेरा मत है कि अध्यात्मयोग ही मनुष्योंके आत्यन्तिक कल्याणका मुख्य साधन है, जहाँ सुख और दु:ख की सर्वथा निवृत्ति हो सकती है। अखिलात्मा भगवानमें अपनी प्रीति जोड़ देनेके समान दूसरा कोई कल्याणकारी मार्ग योगियोंके लिए ब्रह्मसिद्धि-आत्मसाक्षात्कारका नहीं है। तुम्हारी प्रीति कहाँ है? एक अपने भाईके लिए रोता है तो दूसरा माईके लिए या ताईके लिए। एक अपनी पत्नीके लिए रोता है तो दूसरी पति या पुत्रके लिए। कोई शरीरके लिए रोता है, तो कोई धनके लिए। क्या प्रेम करनेके लिए ये ही वस्तुएँ रह गयी हैं? भगवान नहीं हैं? वस्तुत: भगवद्भक्तिके समान दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं। भक्ति अपने हृदयमें ही रहती है। जिनको मैं आत्मा के समान प्यारा, पुत्र के समान स्नेहपात्र, सखा के समान विश्वासी, गुरु के समान उपदेशक, भाई के समान हितकारी और इष्टदेव के समान पूज्य हूँ, ऐसे मेरे भक्त कदापि भाग्यहीन नहीं होते और काल भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। सम्पूर्ण भूतों की आत्मा मैं हूँ। जिसमें सत्वादि तीन गुण समानता से रहते हैं और जो अपने आप में निर्विशेष हैं, वही भगवान कहलाता है। जो बाहर-भीतर सबमें विराजमान हैं वही भगवान है।

कुटुम्ब परिवार में आपका कितना प्रेम है। वही प्रेम भगवान से हो जाये तो बस। संसारमें सब स्वार्थके साथी हैं। पत्नी बीमार हो तो २-४ महीने सेवा की जाती है, फिर सब उसका मरना चाहने लगते हैं। लोग पिताके लिए, पुत्रके लिए भी ऐसा ही चाहने लगते हैं, किन्तु परिवारका मोह मनमें बना है। इस मोहको भगवान्में जोड़ दो इसीका नाम भक्ति है। भक्ति और सेवाका समुच्चय है। सेवा प्रत्यय है विश्वास। केवल सेवाका नाम भक्ति नहीं है। स्वामीकी हिमैषितापर सेवकका विश्वास होना चाहिए। सेवक स्वामीके प्रति दुर्भाव करने लगे तो वह क्या सेवा करेगा? अत: भावपूर्वक सेवाका नाम भक्ति है।

भक्ति जीवन की दिव्य-कला है। मनुष्य चाहता तो ईश्वरको है पर ढूँढता है उसे छोटे-छोटे स्थानोंमें।

सूक्ष्म-बुद्धि के द्वारा आत्मा को अपने आप में देखो और विचार करो, जो आत्मा मेरे अन्त:करण में प्रकाशित हो रहा है, वही चराचर-विश्व में व्याप्त है। अपने को सभी भूतों में समान रूप से देखो और सब भूतों को अपने में देखो। सर्वात्मभाव से मेरा भजन करो, मेरा ही चिंतन करो, मेरा ही कीर्तन करो, मेरे लिए ही कर्म करो। ऐसा करने से तुम्हें परमपद की प्राप्ति होगी। माता, मेरे बल-पराक्रम का यथार्थ ज्ञान करानेवाली, हृदय और कानों को रसायन के समान प्रिय लगने वाली; मेरी मनोहर कथायें सज्जनों के सत्सङ्ग में ही कर्ण गोचर होती है। उन कथाओं के श्रवण करने ही से मोक्ष मार्ग में पहिले श्रद्धा; फिर रति तदनन्तर भक्ति का प्रादुर्भाव होता है अर्थात् मोक्ष-मार्ग का सोपान सत्संग ही है।

मैत्रेयजी ने कहा- पिता के वन में चले जाने पर भगवान कपिल जी अपनी माता का प्रिय करने की इच्छा से बिन्दुसरोवर में ही रहने लगे। थोड़ा समय बीत गया गया। एक दिन देवहूति का मन बहुत अशान्त हुआ। एक दिन कपिल भगवान एकांत में आसन पर विराजमान थे। उसी समय उनकी माता बड़ी श्रद्धा के साथ उनके पास आयी और बैठकर शांति का उपाय पूछा भगवान कपिल ने अज्ञानता को ही अशान्ति का कारण बताया। जब तक मनुष्य को आत्मज्ञान हो जाता है, तो उसे दु:ख सुख समान लगते हैं। जब तक विषयों में आसक्त रहता है, कामनाओं में लिप्त रहता है। तब तक मोह वश के बन्धन में रहता है। जब वह मन, बुद्धि और चित्त को प्रभु में लगा देता है तो मुक्त हो जाता है। उसे न दु:ख होता न सुख। इस अवस्था में पहुंचकर उसका देहाभिमान भी नष्ट हो जाता है।

कपिल बोले- मां, आप तो स्वयं ज्ञानी, विदुषी हैं, परम साध्वी हैं। इन्द्रियोंको वशमें करने का एक ही उपाय है- संयम। प्रत्येक इन्द्रिय का मुख परमात्मा की ओर मोड़ दो। अपनी इन्द्रियोंका सम्बन्ध परमात्मा से जोड़ दो तो कोई दोष नहीं रहेगा। जहां तक बन्धन का कारण है आत्मा का कभी बन्धन नहीं होता और जिसका बन्धन नहीं उसकी मुक्ति कैसी। बन्धन और मुक्ति तो केवल मनकी होती है। मन ही बन्धन में डालता है, मन मुक्ति देता है। यदि विषयों के प्रति मन में आसक्ति है, तो मन विषयों से हट गया तो हमारी मुक्ति हो गयी। इसलिये मन को विषयोंसे अनासक्त बनाओ और उसको अनासक्त बनाने के लिये सत्संग करो। जन्म-जन्मातर की वासनाओं की गठरी हमारे चित्त में चिपकी हुई है, कर्मों की गठरी चित्त में चिपकी हुई है। श्रीकृष्ण के चरणों का चिंतन करो जिससे हमारा चित्त निर्मल हो जायेगा।

प्रकृति-पुरुष, जीव और ब्रह्म मनुष्य को जब पृथक् पृथक् दिखाई देने लगे अत: सांसारिक बन्धनों की निवृत्ति के लिए सबसे सरल उपाय भगवद्भक्ति ही है और बिना ज्ञान के भक्ति सम्भव नहीं है। भगवान को भजने के लिये बुद्धि और भाव का समन्वय करना पड़ेगा, जो सत्संग से प्राप्त होता है।

देवहूति बोली- प्रभो, ये इन्द्रियाँ बड़ी दुष्ट हैं। जीवनभर मैंने विषयों को प्रदान कर इनकी लालसा पूर्ण करने का प्रयास किया। किन्तु सब निष्फल सिद्ध हुआ। बकरे के पेट की भाँति इन इन्द्रियों के पेट को भरना अत्यन्त दुष्कर है। मैं अज्ञानरूपी अन्धकार में डूबी हुई हूँ। आप मेरे जैसे संसारी प्राणियों का अज्ञानरूपी अन्धकार समाप्त करने के लिये सूर्य की भाँति उदित हुए हैं। अपने ज्ञान-प्रकाश के द्वारा आप हमारी अहन्ता एवं ममता को काट कर मेरा उद्धार कीजिये।

आप अपने भक्तों के संसाररूप वृक्ष को काटने के लिये कुल्हाड़ी के समान हैं। प्रकृति और पुरुष का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिये मैं आप की शरण में आई हूँ। भागवत-धर्म के जाननेवालों में आप सबसे श्रेष्ठ हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूँ।

मुझे तुम्हारे पिता से यही आज्ञा थी कि मैं तुमसे ज्ञान प्राप्त करूँ।

माता के इस प्रकार वैराग्य भरे वचन सुनकर कपिल जी मुस्कराये और माता की प्रशंसा करते हुए कपिल बोले- माताजी, मैं तो सांख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिये आया हूँ। प्रेमलक्षणा भक्ति से बढ़कर कोई साधन आपके लिए उपयुक्त नहीं होगा। मेरा यह दृढ़ मत है कि अध्यात्मयोग ही अर्थात् आत्मा और अनात्मा का विचार ही मानव के परम कल्याण का मुख्य साधन है। इससे सुख एवं दु:ख दोनों की निवृत्ति हो जाती है, जिससे प्राणी को परम शान्ति की अनुभूति होती है। देवि, मैं वही योग तुम्हें बतला रहा हूँ। शरीर में क्या-क्या है इसका सांगोपांग ज्ञान लेना ही अध्यात्म है। अत: संसार में उपराम होकर सज्जनों की संगति करनी चाहिये। सज्जन सदाचारी होते हैं, माया-मोह एवं राग-द्वेष से परे रहकर सदा-सर्वदा अनन्य भाव से मेरी भक्ति करते हैं। सज्जन दो प्रकार के होते हैं एक तो वे हैं जो अहर्निश मुझे चाहते हैं पर स्वार्थी होते हैं, दूसरे वे है जिन्हें मैं चाहता हूँ पर वे निष्काम भाववाले होते हैं। दोनों प्रकार के भक्त वेदविहित मर्यादा का ध्यान रखते हुए मेरे में एकान्त अनन्य भक्ति रखते हैं यही मोक्ष प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है।

कपिल बोले, माते, जीव के बन्धन और मोक्ष का परम कारण मन ही है। मन के द्वारा ही जीव बँधता और मुक्त होता है। जब मन विषयों में आसक्त हो जाता है, तब वह बन्धन का कारण बनता है और यदि वह परमात्मा में लीन होता है तो वही मोक्ष का हेतु हो जाता है। आत्मा में न बन्धन है, न मुक्ति है। मन विषयोंमें आसक्त हो गया तो बन्ध गया और विषयाशक्ति से रहित हो गया तो मुक्त है। मनमें काम, क्रोध, लोभ कहाँसे आते हैं। मैं और मेरा यह दोनों अहमता और ममता काम, क्रोध लोभ के माँ-बाप हैं। यदि मनसे मैं और मेरा निकल जायँ तो न मनमें दु:ख है और न सुख है। मन शुद्ध है, मन सम है। जब मन सम और शान्त हो जाता है। आत्मा स्वयं ज्योति है, अखण्डित है। ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसे युक्त आत्मामें

ही अपनेको उदासीन और प्रकृतिको निस्तेज देखता है। परमात्माकी भक्तिके अतिरिक्त ब्रह्मसिद्धिके लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं हैं। विवेकीजन संग या आसक्तिको ही आत्माका अच्छेद्य बन्धन मानते हैं किंतु वही संग या आसक्ति जब संतों-महापुरुषों के प्रति हो जाती है, तो मोक्षका द्वार बन जाती है।

जिस समय मानव का मन अहन्ता एवं ममता की आसक्ति से छूट कर, काम-लोभ आदि विकारों से निर्मुक्त निर्मल बन जाता है, उस समय यह सुख-दु:ख से रहित होकर समभाव को प्राप्त हो जाता है। उस अवस्था में प्राणी ज्ञान-वैराग्य से युक्त, भक्ति से भरे हुए मन के द्वारा प्रकृति से परे एक, अखण्ड परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है। उस समय प्रकृति उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। योगियों के लिये भगवान की प्राप्ति के हेतु भक्ति के अतिरिक्त दूसरा कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है। भगवान की भक्ति मानव-मात्र का परम मंगल करनेवाली है। भगवत सम्बन्ध आसक्ति का ही नाम भक्ति है। इसलिये जिसे भक्ति प्राप्त करनी हो वह सत्संग का आश्रय ग्रहण करे। भगवान में सर्वात्म भाव से चित्त की वृत्ति को लगा लेना ही भक्ति है। वह अहैतुकी भक्ति बिना किसी कामना की होनी चाहिए। भक्ति के सम्मुख मुक्ति तो तुच्छ ही है। मुक्ति तो बैर भाव रखनेवाले राक्षसों को भी प्राप्त हो जाती है। जो दूसरों को, किसी भोगको, संसारको राग या द्वेषसे हृदयमें बसाओगे तो हृदयमें भक्ति नहीं आयेगी। सद्गुणोंको हृदयमें बसाओ। काम, क्रोध, लोभ, मोह कम होंगे तभी हृदयमें सद्गुणोंका निवास होगा। जो अनन्यभावसे मेरी दृढ भक्ति करते हैं, मेरे लिए जिन्होंने सब कर्म और स्वजन-बान्धव छोडे हैं, मुझमें चित्त लगानेवालेको संसारके विविध प्रकारके ताप संतप्त नहीं करते। सभी आसक्तियोंसे साधु पुरुष रहित होते हैं। उन्हींके संग सत्संग, प्रार्थना, इच्छा करो ये सब संगके दोष हरनेवाले हैं। भक्ति हृदयकी भावना है। भक्ति दम्भ या दिखावा नहीं है। भक्ति ऐसी दृढ होनी चाहिए कि टूटे नहीं। अपना स्वार्थ सधनेपर जो संसारी लोग बहुत विनयी बन जाते हैं पर ऐसे भक्ति नहीं होती। भक्ति अनन्य भाव से होती हैं। भक्तिमें दृढता चाहिए और अनन्यभाव चाहिए। सबसे प्रेम हटाओ और भगवानसे प्रेम करो। भगवानके लिए दूसरे कर्म, दूसरे मित्र-सम्बन्धी छोड़ना पडे तो छोड दो। भावसे भक्ति होती है। इसलिए जो हृदयके भावको तोडे या दुर्बल करे, वह तुम्हारा शत्रु है। भाव टूटनेसे तुम सुखी नहीं रहोगे। दूसरोंका आश्रय न लेकर भगवानका ही आश्रय ले। दूसरे पदार्थ को मत चाहो। कोई और प्रमाण नहीं मानना, भगवत्कथाको ही प्रमाण मानना। फलके रूपमें भगवानका प्रेम ही चाहना जिससे भक्तिमें दृढ़ता होगी।

शरीर के प्रति अहम् और शरीर के सम्बन्धियों के प्रति मम ये ही बहुत शक्तिशाली बन्धन है। ये ही आगे चलकर काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह इत्यादि का सृजन करते हैं। जिसके प्रति मैं, मेरा और मेरेपन में जिसको अत्यधिक आसक्ति हो जाती है वो ही बन्धन का कारण है। इसलिये सत्संग करना चाहिए। विवेकी पुरुष संग या आसक्ति को ही अच्छेद्य बन्धन मानते हैं। किन्तु वही संग या आसक्ति जब सन्तों, महापुरुषों के प्रति हो जाती है, तो मोक्ष का खुला द्वार बन जाती है। माता, तुम भक्तों का सत्संग करो, भगवान की कथाओं का श्रवण और कीर्तन करो इसीसे तुम लौकिक एवं पारलौकिक विषयोंमें विरक्ति प्राप्त होगी और प्रभु में मन लग जायेगा। शबरी अछूत जाति की अनपढ़ नारी थी किन्तु भगवत् सेवा में निष्ठा तथा भगवान से उसे प्रीति थी-ऋषियों के आश्रम में वह भटकती रही किसी ने उसे अछूत होने के कारण शिष्यत्व प्रदान नहीं किया। मुनि मतंग ने उसकी भक्ति और लगन देखकर अपने आश्रम में उसे स्थान दिया और दीक्षा देकर वैष्णवी बना दिया। शबरी ने निष्ठा से गुरु आश्रम तथा अन्य आश्रमों की भी सेवा की-सेवा मुनि मतंग जब भौतिक देह त्याग भगवद् धाम जाने के लिए भगवत् पार्षदों द्वारा लाये विमान में आरूढ़ हुए तो शबरी ने बिलख, कर, विछोह पीड़ा से त्रषित होकर उस विमान को पकड़ लिया और गुरुजी के साथ जाने के लिए विलाप करने लगी। गुरुने अधीर शबरी को समझाया,

विभिन्न प्रकार से उसे धीरज बँधाया किन्तु शबरी को सन्तोष नहीं हुआ तब मुनि मतंग ने उन्हें यह वरदान दिया कि शबरी मुझे तो भगवान से मिलने के लिए उनके पास जाना पड़ रहा है किन्तु तुम मेरी शिष्या होते हुए भी साधना में मुझसे भी आगे हो अत: धीरज रखो भगवान् तुमसे मिलने के लिए स्वयं चलकर तुम्हें खोजते-खोजते तुम्हारे पास आवेंगे। गुरु शब्दों में अपार श्रद्धावान शबरी शान्त हो गई- और मुनि मतंग चले गये। राम अवतार में भगवान स्वयं शबरी का उद्धार करने उसकी कुटिया पर पधारे तथा नवधा भक्ति का उपदेश दिया।

नवधा भगेति कहऊ तोहि पाही। सावधान सुनु धरू मन माहीं।
प्रथम भगति संतन कर संगा। दूसरी रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भगति अमान। चौथी भगति मम गुन गन करइ कपट जति गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।
छठ दम सील विरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।।
सातवं सम मोहि मय जग देखा। मोते अधिक संत कर लेखा।।
आंठव जथा लाभ संतोषा। सपनेहु नहिं देखइ परदोषा।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।

इन नवधा भक्ति में से यदि एक भी प्राणी के जीवन में यथार्थ में आ जाये तो भगवत् प्राप्ति में उसे कोई बाधा ही नहीं रह जाती- शेष समस्त लक्षण स्वत: ही समाहित हो जायेंगे। पहली भक्ति संतों का सान्निध्य है। संतों से समागम करना ही भक्ति का उदय होना है। सन्तों के साथ रहने पर उनका सत्संग करने पर उनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। संग अच्छा होगा तो गुण उत्पन्न होंगे- कुसंग करोगे तो दुर्गुण पैदा होंगे। सत्संग करने से दुर्गुणों का पलायन हो जाता है। जब दुर्गुण मन से निकल जायेंगे तब रिक्त स्थान पर सद्गुण अवस्थित होंगे। कीर्तन तो बिना भाव के भी करना चाहिए। **भाव कुभाव अनखल आलसहुं। नाम जपत मंगल दिस दसहुं।।** जो मनुष्य मेरी नवधा भक्ति करता है उससे मैं बहुत प्रसन्न रहता हूँ। हे माता, तुम मेरी नवधा भक्ति करो, तुम्हें मुक्ति पद पर पहुँचायेगी। यह अभिमान अपने मन में कभी मत रखो कि मैं राजा स्वयंम्भुव मनु और शतरूपा की पुत्री, कर्दम की पत्नी, राजा प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहिन हूँ। यह शरीर का नाता सब झूठा जानकर हरिभक्तों और साधु-संतों से नाता जोड़ो। इन्द्रियों का जो स्वाद व सुख है, उसकी चाहना परमेश्वर को अर्पण किये बिना मत करो।

कपिल महाराज की बात को सुनकर माता ने कहा- प्रभो, इस संसार में साधुओं की पहचान कैसे की जा सकती है? कैसे जाना जाय कि वह व्यक्ति साधु है, सज्जन है? इस पर कपिल जी ने महात्माओं का लक्षण बतलाते हुए कहा कि- जो लोग सहनशील, दयालु, सभी प्राणियों के अकारण हितकारी, किसी के भी प्रति शत्रुभाव न रखनेवाले, शान्त, सरलस्वभाव, सत्पुरुषों के सम्मानकर्ता, मुझ भगवान में अनन्य दृढ़ भक्ति रखनेवाले, मेरे लिये सम्पूर्ण कर्मों तथा सम्बन्धियों का परित्याग कर देनेवाले, मेरे आश्रित रहकर मेरी कथाओं का जो निरन्तर श्रवण कीर्तन करते हैं, वे ही सज्जन हैं, साधु पुरुष हैं। तुम्हें उन्हीं के संग की इच्छा करनी चाहिये क्योंकि सांसारिक सारी आसक्तियों के दोषों का वे हरण कर लेनेवाले है।

इस प्रकार के साधु जहाँ कहीं एकत्रित होते हैं, वहाँ कानों के लिये सुखदायी मेरी लीला-कथाएँ निरन्तर चला करती हैं। उन कथाओं के सुनने से व्यक्ति की क्रमश:, श्रद्धा, रति और भक्ति मेरे प्रति हो जाती है फिर वह मोक्ष मार्ग का पथिक बन जाता है।

जिसके बिना बेचैनी का अनुभव होने लगे, वो ही आसक्ति का रूप है। जिसमें संग हो उसके बिना हम रह नहीं सकते, अत्यधिक आसक्ति ही बंधन का कारण है। विल्वमंगल चिन्तामणि वेश्या के प्रति आसक्त हो गये। तुलसीदास अपनी पत्नी

रत्नावली के प्रति अत्यधिक आसक्त थे। आसक्ति ही बन्धन का हेतु है। आसक्ति, ममता, अपनापन किसी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति हो जाये तो बंधन का कारण होता है। यह बंधन जितना पुराना पड़ता है उतना ही अधिक मजबूत होते जाता है। जीव का स्वभाव है कि कहीं न कहीं आसक्ति के बिना, ममता जोड़े बिना, अपनापन के बिना नहीं रह सकता।

वही आसक्ति और ममता साधु पुरुषों के प्रति हो जाय तो मोक्ष सम्भव है। मनुष्य का गन्तव्य ईश्वर तक पहुंचना है पर पहले मनुष्य को मानव बनना है, मानव से साधु, साधु से संत। जिसमें यह भावना आ जाये उसे मुक्ति प्राप्त होती है। साधु को धीरज रखना चाहिए। साधु का मन सतत परमात्मा के चरणों में लगा रहे क्योंकि वो उदासीन है। यदि तुम परमात्मा की इच्छा से चल रहे हो तो तुम भी साधु हो। श्रेष्ठ पुरुष का लक्षण यही है कि वह किसी प्रकार के वाद-विवाद में न उलझे। वाद-विवाद तो मूर्ख लोग करते हैं। जिसमें परमेश्वर का भजन व स्मरण होवे, आलस्य नहीं आवे, तीर्थस्थान और ज्ञानियों का अच्छा सत्संग हो वहाँ पर रहे और जहाँ अच्छी संगति न हो वहाँ न रहे। यह संसार झूठा है जो पाप-पुण्य मनुष्य करते हैं उसके बदले सुख और दु:ख अवश्य भोगना पड़ता है। संसारी व्यवहार को तुम झूठा समझो, कभी सत्य मत समझना। जो मनुष्य संसार में सवारी, आभूषण कपड़ा, स्त्री और मकान आदि का सुख पाकर यह समझता है कि यह सब सुख मैं अपने पराक्रम से भोग रहा हूँ। परमेश्वर की दया से वह सुख मिलना नहीं मानता, उसे अवश्य दु:ख भोगना पड़ता है। जो मनुष्य उस सुख को परमेश्वर की इच्छा और दया से प्राप्त हुआ जानकर उसमें अधिक स्नेह नहीं रखता और अपने वर्ण व शरीर का धर्म समझकर उस द्रव्य के अहंकार में किसी जीव को दु:ख नहीं देता उसे पाप का फल नहीं मिलता। जिस तरह पुत्र के भोजन करने से पिता का पेट नहीं भरता, दूसरे के पास रखा हुआ धन समय पर काम नहीं आता उसी तरह शरीर को आत्मा से अलग जाने बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता। हे माता, परमेश्वर की भक्ति व ज्ञान प्राप्त होने और भवसागर पार उतरने के लिए केवल मनुष्य का शरीर मिला है, जिसने इस तन में परमेश्वर को नहीं जाना उसका तो निश्चय पतन है। जो मनुष्य पहिले जन्म में कुछ दान व धर्म नहीं किए रहता वह मनुष्य अधिक कंगाल होकर आठों पहर पेट भरने के लिए चिन्ता व दु:ख उठाता है। जब लड़के उत्पन्न होते हैं तब उनकी प्रीति में फँसकर अनेक तरह से झूठ सत्य बोलकर कमाई करते उनका पालन करता है। जब तक सामर्थ्य रहती है तब तक स्त्री और लड़कों को अपना समझकर उनका पालन करने के लिए सब तरह के दु:ख उठाता है। अपने परिवार में किसी मनुष्य के मरने से इतना रोता है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। अपनी स्त्री के वश में रहकर माता-पिता को कठोर वचन कहकर दु:ख देता है, परलोक का डर नहीं रखता। मनुष्य स्त्री के मोह में फँसकर जैसा नष्ट होता है वैसा और कोई काम उसका परलोक बिगाड़ने के लिए नहीं है।

अहिविष तो काटे चढ़े यह चितवन चढ़ि जाय। ज्ञानध्यान अरूधम को जरामूल से खाय।
नारि पराई स्वप्न में भोगत अति सुख पाय। धर्मरुकान गँवाय के आप रहैं खिसिआय।।

सन्त सगै कै गुरु सगे अन्त समय पर राम। परसुराम या जीव को तीन ठौर विश्राम।।
माया सगी न तन सगो, सगो न यह संसार। परसुराम या जीव को सगो सो सिरजनहार।।

आसक्ति ही आत्मा का अछेद्य बन्धन है। जब मनुष्य की आसक्ति, साधु पुरुषों में हो जाती है तब उसकी मुक्ति का द्वार खुल जाता है। ये साधुजन तितिक्षु करुणा करनेवाले, सबों के सुहृद्, सबों से मित्रता का भाव रखनेवाले तथा शान्त प्रकृति के होते हैं। ये मेरी अनन्या भक्ति करते हैं तथा मेरे लिए ही सम्पूर्ण सांसारिक सम्बन्धों का परित्याग कर देते हैं ऐसे पुरुषों का संग सर्वोत्तम कल्याणकारी रहता है।

कपिलजी ने माता देवहूति से कहा- जिस तरह से जल में प्रतिबिम्बित होने से सूर्य में शीतलता नहीं आ जाती है उसी

तरह प्राकृतिक शरीर में स्थित होने पर भी आत्मा के गुण सुख दु:ख नहीं होते। आत्मा स्वभावत: निर्विकार एवं प्राकृतिक गुणों से रहित है। किन्तु वही आत्मा जब प्रकृति के गुणों से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तो अपने को कर्ता इत्यादि मानने लगता है। उस कर्तृत्वाभिमान के ही कारण उसकी अपनी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है तथा उसे अपने किए हुए पुण्य-पापों के फलस्वरूप अच्छी बुरी योनियाँ एवं सुख-दु:ख की प्राप्ति होती है। जिस तरह स्वाप काल में स्वाप्निक पदार्थों में आस्था हो जाने के कारण कष्ट आदि होते हैं उसी तरह असत् सांसारिक पदार्थों का भी चिन्तन करने से उनमें ममत्व की भावना उत्पन्न हो जाती है।

अपनापन आसक्ति का मिलने का आधार साधु पुरुषों का संग है। जिसे बंधन भी न हो पर साधु किसे कहें। साधु भेष वाचक शब्द नहीं हैं गुण वाचक शब्द है। साधुता के गुण जिसमें हो, साधु के लक्षण जिसमें हो, वो साधु।

जो सहनशील हो, दयालु हो, तितिक्षु हो, जो सहना चाहते हैं। प्रारब्धवश धर्मपूर्वक न्यायानुसार जो भी सुख अथवा दु:ख प्रतिकूल परिस्थिति में आवे उसे शान्तिपूर्वक सह लेवे, सर्दी आवे, गर्मी आवे, सब प्रसन्नतापूर्वक सह ले और विपरित परिस्थितियों में व्याकुल नहीं होवे वे ही साधु है।

पर कसनी साधु सहै, कै हीरा कै हेम। कांच कथीर अधीर नर, कसे न उपजे प्रेम।।

खोद खाद धरती सहे, काठ कूट वन राय। दुष्ट वचन साधु सहैं, और से सहा न जाय।।

बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे, खल के बचन संत सह जैसे।।

दूसरा गुण साधुमें करुणा होनी चाहिए। किसी दु:खी व्यक्ति को देखकर दु:ख दूर करने की भावना मन में उमड़ती हो उस भावना का ही नाम करुणा है। वही भावना अगर क्रियात्मक रूप ले ले तो उसका नाम दया है। जिसके हृदय में दया है वहां परमेश्वर का वास है। स्वास्थ्य बहुतोंको मिलता है, कठोरता बहुतों को मिलती है, लेकिन दया तो सन्तों के संग से ही मिलती है। भगवत्कृपा से मिलती है। दयालुता साधुका लक्षण है।

साधु प्राणीमात्र के सुहृद होते हैं। उपकार करने की भावना, नि:स्वार्थ उपकार करना, अपने पराये का भेद न रखना, दूसरों की भलाई का कार्य करना, अपने स्वार्थ का परित्याग करके जो परोपकार की भावना रखते हैं, उनको सुहृद् कहते हैं। निष्पक्ष एवं निस्वार्थ उपकार करनेवाले को सुहृद कहते हैं। पशु-पक्षियों में भी साधु होते हैं। जटायु परम साधु हैं। सीता की रक्षा के लिये एक विदेशी लंका से आकर अपहरण करके ले जा रहा था। पर जटायु यह अन्याय देख नहीं सका। इस महाप्राणी ने अपने पंख कटवाकर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। धर्म पालन के लिये उपकार के लिये, अपने प्राण दे दिये। चौथा लक्षण साधु का वो अजात शत्रु है। जिसका कोई शत्रु नहीं है। जो हर हालत में शान्त रहता है। साधु को समुद्र की तरह गंभीर प्रशान्त रहना चाहिये। साधु उसको कहते हैं जो दूसरों के बिगड़ते काम को साध दे। ऐसे लोग अगर न हो तो साधुता नहीं रहेगी। वो साधु हैं जो अनन्यभाव से मेरी भक्ति करते हैं दृढ़तापूर्वक मेरी सेवा में लगे रहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर मेरे लिये अपने प्राणोंतक का परित्याग करने के लिये तैयार रहते हैं। अपने प्राप्त भोगों का परित्याग करके कष्ट सहते हैं और निरन्तर मेरे में अपना मन, वाणी, चित्त लगाये रहते हैं। ऐसे साधु पुरुषोंका संग ही बंधन से छुड़ाता है। भगवान शंकर भी यह याचना करते है-

बान्धे को बान्धा मिला छूटे कौन उपाय। संग कीजै निर्बन्ध का जो पल में देय छुटाय।।

सर्वसंग परित्यागी ही महापुरुष साधु होते हैं। उन्हीं के संग इच्छा करनी चाहिये। सत्पुरुषों के समागम से मेरे में प्रीति होती है।

माताजी, मेरी कथाओं, लीलाओं के श्रवण का ही यह माहात्म्य है कि व्यक्ति ऐहिक एवं पारलौकिक- उभयविध सुखों

के प्रति विरक्त हो जाता है। उसकी सांसारिक कामनाएँ मर जाती हैं। इस प्रकार प्रकृति के गुणों से उत्पन्न हुए विषय-भोगों का त्याग करने से, वैराग्ययुक्त ज्ञान से, योग से और मेरे प्रति की गई सुदृढ़ भक्ति से मनुष्य इसी देह में मुझ परमात्मा को प्राप्त कर लेता है, क्योंकि मैं सबके हृदय में अन्तरात्मा बन कर बैठा हूँ। अत: मुझे अन्यत्र अन्वेषण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मेरे मिलते ही प्राणी को परम शान्ति की अनुभूति हो जाती है और यही है जीव का परम लक्ष्य।

पुत्र की बात को सुनकर देवहूति ने कहा- पुत्र, आपकी भक्ति कैसे करनी चाहिए, जिससे कि निर्वाण-पदकी प्राप्ति हो। निर्वाण ही परम निवृत्ति, परम गति है। मेरे करने योग्य जो भक्ति हो वह तुम मुझे बतलाओ, जिससे मुझे तुम्हारे यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो सके। योग का स्वरूप क्या है? उसके कितने अंग हैं? यह सब सरलता से समझाओ।

कपिल मुनि बोले- माताजी, ज्ञान से मनुष्य प्राकृतिक गुणों से छूट जाता है। आत्मज्ञान ही मोक्ष का साधन है। इसीसे अहंकार एवं ममकार की निवृत्ति होती है। आत्मा अनादि, स्वयं प्रकाश तथा प्रकृति से भिन्न है। उसी से यह सारा संसार व्याप्त है। उस परम पुरुष में त्रिगुणात्मिक को तिरोहित करनेवाली शक्ति है। उसको देखकर वह पुरुष मोहित हो गया तथा अपने स्वरूप को भूल गया। वह अपने से भिन्न भी प्रकृति को अपना स्वरूप समझने लगा। वह अपने को ही कर्ता मानने लगा। इस कर्तृत्वाभिमान के ही कारण जन्म-मरण रूपी संसार का बन्धन प्राप्त होता है।

भक्ति तो सभी किसी न किसी की करते है। कोई देवी देवताओं की, कोई ग्रह नक्षत्रोंकी, कोई पत्नी की, कोई पुत्र की, जिसकी जैसी समझ हो वो वैसी भक्ति करता है। कई कई तो भूत-प्रेतों की भी भक्ति करते हैं। कई यक्ष राक्षसों की रिद्धि-सिद्धि पाने के लिये लेकिन ये इधर-उधर की भक्ति श्रेयस्कर नहीं होती। भागवती भक्ति ही भगवान की भक्ति हो और अनिमित्ता भक्ति हो बिना स्वार्थ की भक्ति हो। जिसमें कोई कामना न हो, स्वाभाविक, बिना परिश्रम श्वास चलती रहे, वही अहैतुकी भक्ति है। भगवान की अहैतुकी भक्ति, भक्ति है। यह मुक्ति से भी बढ़कर है। ऐसी भक्ति श्रेष्ठ मानी जाती है। अनिमित्ता भक्ति, बिना स्वार्थ की भक्ति ये रिद्धि-सिद्धि से बड़ी श्रेष्ठ है। जैसे भोजन के स्वाद से संतुष्टि होती है। अन्न से शक्ति आती है और क्षुधा की निवृत्ति होती है। इसी तरह माताजी जिनको मेरी भक्ति प्राप्त हो जाती है। जो मेरी अहैतुकी भक्ति प्राप्त कर लेते हैं, वे तो मेरी एकात्मता को भी पसन्द नहीं करते, मुझमें लीन होना भी पसन्द नहीं करते। मुझसे अलग रहकर मेरी सेवा करना ही पसन्द करते हैं। मेरी चरण सेवा में प्रीति रखनेवाले वे मेरे भक्त मेरी प्रसन्नता के लिये समस्त कार्य करते हैं। उनके सब कार्य मेरी प्रसन्नता के लिये ही होते है। वे बड़भागी भक्त आपस में मिलकर मेरी ही चर्चा करते हैं। मेरी ही लीलाओंको गाते हैं। वे तो सायुज्ज मुक्ति भी नहीं चाहते हैं। मेरे ही रूपों की झाँकी करते हैं। कानोंसे मेरी अमृतमयी कथासुधा का पान करते हैं। सुमधुर वाणी से मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हैं। मेरे आश्रय में रहनेवाले भक्तजन भगवदीय ऐश्वर्य की भी इच्छा नहीं रखते। जिनका एकमात्र मैं ही प्रिय आत्मा, पुत्र, मित्र, गुरु, सुहृद और इष्टदेव हूँ। हे माताजी इस भूतल पर मानव जन्म पाने का चरम लाभ चरम फल यही है। तीव्र भक्तियोग के द्वारा मन-बुद्धि को मेरे में स्थिर करके अनन्य भक्ति से सब प्रकार से मेरा भजन करें। अपने मन, बुद्धि, चित्त आदि को मेरे में समर्पण कर दे। ऐसे भक्तों का योगक्षेम मैं स्वयम् वहन करता हूँ।

निर्वाण शब्दका अर्थ है परम निवृत्ति, परम गति। मनुष्यके जीवनमें तीन प्रकारके बाण हैं- एक तो दु:ख का, दूसरा ज्ञान का और तीसरा मृत्यु बाण है। तीनों ही सच्चिदानन्दके विरोधी हैं। आनन्द के विरोधमें दु:ख बाण है, ज्ञान के विरोध में अज्ञान बाण है और सत्ताके विरोधमें मृत्यु बाण है। ये तीनों बाण जिसमेंसे निकल जायें, उसको ही निर्वाण कहते हैं। योगसे उस निर्वाण पदकी प्राप्ति होती है। योग ऐसा होना चाहिए जो सीधे भगवानको विषय करे। भगवान निर्वाण है और योग बाण है।

संसार में मनुष्यों के लिये सबसे बड़ी कल्याणप्राप्ति यही है कि उनका चित्त तीव्र भक्तियोग के द्वारा मुझमें लगकर स्थिर

हो जाय। मेरे सिवा और किसी का भी आश्रय जीवन को मृत्युरूप महाभय से छुटकारा नही दिला सकता है।

इन्द्रियों के सहित मन की भगवान में जो निश्चल, निष्कारण वृत्ति है, उसे ही भक्ति कहते हैं। इस प्रकार की भक्ति मुक्ति से भी बढ़कर है। शरीर तीन प्रकार का होता है- १) स्थूल शरीर। यह पांचभौतिक शरीर है। २) सूक्ष्म शरीर। यह सत्रह या अट्ठारह तत्वों से बना हुआ होता है। इसी के सहारे आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है। इसके नष्ट होने पर ही मुक्ति मिलती है। और ३) तीसरा है कारण शरीर। इसे अज्ञान शरीर भी कहते हैं। इसके नष्ट होते ही आत्मा पूर्ण ब्रह्म बन जाता हैं। जठराग्नि जिस प्रकार खाये हुए अन्न को गला-पचा डालती है, उसी प्रकार यह अहैतुकी भक्ति कर्म-संस्कारों के भण्डार लिंग शरीर को नष्टकर देती है।

माता, हमारे शरीरमें कुछ द्योतनात्मक देवता निवास करते हैं। आँखमें सूर्य देवता हैं, कानमें दिशा देवता हैं और नासिकामें अश्विनीकुमार देवता हैं। ये सब संसारके विषयोंको प्रकाशित करते हैं। आप इन इन्द्रियोंको आनुश्रविक कर्ममें लगाओ यही भक्तिकी सीढ़ी है। आनुश्रविक का अर्थ है मनमाने काम मत करो। जो वेदमें करनेको कहा गया है, वही करो और जिसको मना किया गया है, उसको मत करो। कर्म वही करना चाहिए जो श्रुति, शास्त्र और गुरुकी आज्ञाके अनुसार हो। मन और इन्द्रियोंकी वासनाके अनुसार कर्म नहीं करना चाहिए। श्रुति-शास्त्रानुमोदित और गुरुपदिष्ट कर्मसे ही मनमें एकाग्रता आती है। सत्यमें स्थिति हो जाती है, वृत्ति स्वाभाविक हो जाती है। वृत्ति ऐसी होनी चाहिए, जो भगवान्‌को विषय करने लगे। यही भक्ति है और यह सिद्धि तथा मुक्तिसे भी श्रेष्ठ है। इसमें इतनी शक्ति है कि यह वासना कोश, संस्कार कोश आदि को भस्म कर देती है। जो भगवानके भक्त होते हैं उनकी भगवानकी चरणसेवामें प्रीति होती है। भगवानकी आज्ञानुसार काम करते हैं। उन्हींके सामने भगवानके दिव्य रूप प्रकट होते हैं। एक तो ऐसे लोग होते हैं जिनको अपना मन भगवान की ओर खींचना पड़ता है दूसरे ऐसे होते हैं जिनका मन भगवान स्वयं खींच लेते हैं। जो लोग सब कुछ छोड़-छाड़कर सबकी ओरसे मुँह मोड़कर, सबसे नाता तोड़कर भगवान का भजन करते हैं, अनन्य भक्ति भगवानमें होती है वह मृत्युसे पार हो जाता है। काल इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। भगवान की भक्तिके बिना तीव्र भयकी निवृत्ति नहीं होती। क्योंकि यह सम्पूर्ण सृष्टि ही भयभीत है। ज्ञान-वैराग्यसे युक्त भक्तियोग ही परमकल्याण-स्वरूप भगवच्चरणारविन्दकी प्राप्तिका साधन हैं। आत्मदेव ही सबके आदि भी हैं और अनादि भी हैं। आत्मदेवके बिना दूसरी किसी भी वस्तुकी सिद्धि नहीं हो सकती। जब ये अपनी उत्पत्तिपर विचार करते हैं तब स्वयं होकर ही अपनी उत्पत्ति सिद्ध करते हैं, इसलिए अनादि है। ये प्रत्यग्धामा हैं, स्वयंज्योति हैं, निर्गुण हैं, प्रकृतिसे परे हैं और इन्हींसे सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित होता है। ये ही लीलासे प्राप्त देवी प्रकृतिको स्वीकार करते हैं। प्रकृतिदेवी भी ऐसी चतुर हैं, ऐसी निपुण हैं तथा इनके भीतर अनादिकालसे ऐसे बीज छिपे हुए हैं कि वे तो तरह-तरहकी प्रजाकी सृष्टि करती हैं और उनकी लीला देखकर ये पुरुष देवता अपने आपको भी भूल जाते हैं, यहाँतक कि प्रकृतिके द्वारा किये हुए कर्मको अध्यास-वश अपना किया हुआ कर्म स्वीकार कर लेते हैं।

जो मेरे भक्त हैं, जो मेरी भक्ति में ही निरत रहते हैं, उन्हें मेरे दिव्य स्वरूप का दर्शन निरन्तर होता रहता है। दिव्य भोग एवम् अणिमा आदि सिद्धियाँ भी स्वयं उनके आगे-पीछे घूमती रहती हैं। काल भी उनका नाश करने में समर्थ नहीं होता। जो साधक इनके चक्कर में नहीं पड़ता वास्तव में वही प्रभुप्राप्ति के निमित्त जागृत है। ऐसे प्राणी को मेरा वह अविनाशी परम पद प्राप्त होता है। जो व्यक्ति सारी सांसारिक बातों को छोड़कर अनन्य भक्ति के द्वारा सर्वव्यापी मेरा भजन-चिन्तन करते हैं, उन्हें मैं इस अपार संसार-सागर से नि:सन्देह पार कर देता हूँ।

सत्संग से स्वयं ही भक्ति का बीज अंकुरित होता है। सद्‌गुण और दुर्गुण प्राणी-मात्र के अन्त:करण में होते हैं जैसा संग

मिल जाता है उसी प्रकार के गुणों की वृद्धि हो जाती है। इसलिए हमेशा सत्संग ही करना चाहिए।

अच्छा संग करने से दूसरी भक्ति भगवत् चर्चा स्वत: ही होती है। संत के पास बैठोगे तो हरि चर्चा ही करेगा राम गुण गान ही करेगा कृष्ण प्रेम रस ही घोलेगा आपके कानों में। अत: भगवत् कथा प्रसंग स्वाभाविक रूप से आपको संत से मिल जायेंगे। जब आप संग करोगे संत का कथा सुनोगे संत से, तो उसके वचनामृत पान करने पर आपके हृदय में उसके प्रति श्रद्धा भी आयेगी- आपकी श्रद्धा आपको यह प्रेरणा देगी कि आप गुरु बनावें- क्योंकि सही ज्ञान प्राप्त तभी होगा जब आप किसी को गुरु बनाकर उसमें श्रद्धा रखकर ज्ञान ग्रहण करेंगे- अत: गुरु में आपकी निष्ठा होगी-निष्ठा जब बन जायेगी तो आप उनकी सेवा करेंगे- तन से, धन से या मन से गुरु की सेवा ही तीसरी भक्ति है। चौथी भक्ति गुरु द्वारा दिये मन्त्र का जाप ही है। अनुष्ठान से मन्त्र जाप करने से भगवान में अनन्य निष्ठा और दृढ़ विश्वास होना ही पंचम भक्ति है।

भगवान में निष्ठा और विश्वास होने पर अनन्यता आती है जब अनन्यता हो जायेगी तो अन्य विषयों से स्वत: ही विरक्ति हो जायेगी-यह विरक्ति होना ही छठी भक्ति है। श्रीराम केवल आपके अनन्य हो जायेंगे अर्थात् न अन्य याति आपके केवल प्रभु हैं- और प्रभु के आप हैं अन्य किसी से कोई सम्बन्ध नहीं तो हर वस्तु में आपको अपने प्रियतम का ही दर्शन होगा- और स्थिति यह बन जायेगी- सियाराम मय जब जग जानी।

सब परिस्थितियों में प्रसन्नतापूर्वक भगवत् चर्चा करते रहना- दूसरों की अच्छी या बुरी स्थिति स्वभाव, गुणों की चर्चा न करना ही आठवीं भक्ति हैं। अत: पर निन्दा से बचना ही भक्ति है। सब प्राणी भगवान के हैं सब में समभाव से भगवान विराजमान हैं। अत: सबसे प्रेमभाव रखना और प्रभु पर भरोसा करके-जैसे जीवन की डोर सोंप हाथ दीनानाथ के रहना ही भक्ति है। अत: सांसारिक प्राणियों का परम पुरुषार्थ यही है कि वे निष्काम भक्ति द्वारा अपना मन भगवत् चरणारविन्द में लगा दें।

भक्ति के मार्ग अनेक हैं। उन भावों का भेद पुरुषों के स्वभाव तथा गुण के भेद के कारण होता है। उन्होंने कहा कि तामसी भक्ति के तीन भेद हैं। १) हिंसा की भावना से की जानेवाली भक्ति, २) दम्भ की भावना से की जानेवाली भक्ति तथा ३) मात्सर्य की भावना से की जानेवाली भक्ति। राजस भक्ति भी तीन प्रकार की होती है। १) विषय प्राप्ति की कामना से की गयी भक्ति २) यश प्राप्ति की कामना से की गयी भक्ति तथा ३) ऐश्वर्य प्राप्ति की कामना से की गयी भक्ति। सात्विक भक्ति के भी तीन भेद होते हैं- १) कर्म क्षय की भावना से की गयी भक्ति, २) परमात्मा की प्रसन्नता के लिए की गयी भक्ति तथा ३) कर्त्तव्य की भावना से की गयी भक्ति।

जो व्यक्ति फलाभिसन्धि से रहित होकर परमात्मा की भक्ति करता है उसकी वह निर्गुण भक्ति है। ऐसे भक्त तो मेरी सालोक्य, सायुज्य, सार्ष्टि तथा सारूप्य भक्ति को नहीं प्राप्त करना चाहते हैं। परमात्मा की सेवा के लिए मुक्ति को नहीं चाहना ही अत्यन्तिक भक्ति है।

हे माताजी। व्यष्टि जगत शरीर में और समष्टि संसार में केवल प्रकृति पुरुष दोनों का खेल हैं। इस पर मिथ्याभिमानी अपने को कर्ता मान लेता है, होता है, सब प्रकृति के द्वारा एवं पुरुष के द्वारा, प्रकृति परमात्मा की शक्ति है। पुरुष उस शक्ति का स्वामी है, परमात्मा है। प्रकृति जड़ होती है। पुरुष प्रकृति दोनों नित्य हैं। एक दूसरे के आश्रय में रहनेवाले हैं। प्रकृति पुरुष के बिना निष्क्रिय हैं, प्रकृति को अंङ्गीकार किये बिना पुरुष चेतन होते हुए भी निष्क्रिय रहता है। अपने इस शरीर में ही देखिये पुरुष जबतक चेतन है, आत्मा है, तब तक यह शरीर सब कुछ कर्ताधर्ता दिखता है, क्रियाशील है, और जब इसमें से पुरुष चेतन आत्मा किनारे हो जाता है, निकल जाता है तो क्या आंख देखने लायक, कान सुनने लायक, वाणी बोलने लायक रह जायगी? हाथ कुछ करने लायक नहीं रहते? पांव चलने की स्थिति में नहीं रहते। ये प्रकृति जड़

हो जाती है, अगर पुरुष इससे अपना संयोग हटा ले तो, और पुरुष को कहिये कि प्रकृतिरूपी शरीर से हटकर किनारे होकर थोड़ा प्रवचन कर दे, तो कुछ भी नहीं कर सकता। इस तरह प्रकृति पुरुष दोनों मिलकर ही इस व्यष्टि शरीर का एवं समष्टि संसार का संचालन करते हैं। यह शरीर क्षेत्र कहलाता है। इसमें रहनेवाली आत्मा क्षेत्रज्ञ कहलाती है।

इसी तरह प्रकृतिके द्वारा जो कर्म हो रहा है, उसपर मुग्ध होकर यह दृष्टा, साक्षी, आत्मा उसको अपना स्वीकार कर लेता है। इसलिए न मैं हूं और न मेरा है। जहाँ अहन्ता-ममता से छूट गये, वहाँ सारा सम्बन्ध छूट जायेगा। अहन्ता-ममता ही संसारका बन्धन है, मायाकृत पारतन्त्र्य है। देह, इन्द्रिय और देवता-वर्गके कारणको प्रकृति कहते हैं तथा सुख-दु:खके, भोक्तापनके कारणको पुरुष कहते हैं।

अपने शरीर में जो हड्डी, मांस, चाम हैं ये मूढ़ हैं, जो क्रियाशीलता है, वह विक्षिप्त है। ज्ञान होना सत्त्व है, क्रिया होना रज है और हड्डी मांस चामका पुतला होना तम है। ये गुण नहीं, गुणके कार्य हैं, परन्तु ये तीन प्रकारके कार्य दिखाई पड़ते हैं, इनसे गुणोंका अनुमान होता है। गुण किसीके अपरोक्ष नहीं होते, गुणोंका प्रत्यक्ष नहीं होता।

महत्तत्वादि वर्णन कियौ, कपिल देव हरषाय। देवहूति सुनने लगी, प्रभु में चित्त लगाय।।

ये अष्ट प्रकृति से निर्मित हमारा शरीर प्रकृति है, इसमें शयन करनेवाला अन्तर्यामी वह पुरुष परमात्मा है। वे चेतन हैं, क्षेत्रज्ञ हैं, यह दृश्य जगत प्रकृति है। इसमें भीतर प्रविष्ट रहकर के अथवा इससे तटस्थ रहकर के इसका संचालन करनेवाला वह पुरुष परमात्मा हैं। माताजी यह सारा खेल, यह दृश्य जगत प्रकृति पुरुष का है, इसके अलावा कुछ नहीं है। इसमें जो अहंकार कर लेता है, वह बंधन में आ जाता है। होता सब प्रकृति पुरुष के द्वारा है, लेकिन मिथ्याभिमानी मान लेते हैं कि ये हमने किया। क्या ये वर्षा हमारे करने से हो रही है? क्या सूर्य का उदय हमारे करने से हो रहा है? नहीं ये प्रकृति पुरुष के द्वारा स्वाभाविक हुआ करता है। प्रकृति और पुरुष से भी परे, सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मा, मुझ भगवान की शरण में गये बिना प्राणियों का मृत्युरूप महाभय से छुटकारा असंभव है।

लेनेवाली सृष्टि सब लेकिन देनेवाला एक। वही एक हो दृष्टि में सांचो यही विवेक।
सबका दाता है वो, सबका मालिक है वो। दरबार आने जाने से क्या फायदा,
वे तलब देने वाले ने सब कुछ दिया, फिर सदायें लगाने से क्या फायदा।
एक ही आस्ताने से अजमत भी हैं, एक का होके रहने में इज्जत भी हैं।
एक ही आस्ताने पै सर झुक गया। तो दर बदर सर झुकाने से क्या फायदा।
जब तक ये मन कुत्ता दर दर फिरे तब तक दर दर दूर दूर होय।
जब एक ही दर का होइ रहे, तो फिर दूर दूर करे न कोय।।

उन एक परमात्मा की और प्रकृति की ओर ध्यान रखो अपने को कर्ता मत मानो नहीं तो बंधन में आ जावोगे। यह सब प्रकृति पुरुष का खेल है। परमात्मा के द्वारा सब कुछ किया हुआ है। हम कौन होते हैं करनेवाले। मिथ्या अहंकार करके जीव बन्धन में आ जाता है।

मेरे भय से वायु चलती है, सूर्य तपता है, इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि जलती है और मृत्यु भी मेरे डर से संसार का भक्षण करती हुई विचरण करती है। काल मेरा ही स्वरूप है। मेरे भयसे सुर, असुर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नर-नारी आदि सब अपना कार्य करते हैं। यह काल सबका अन्त करनेवाला है, अनादि और अनन्त है। इससे बचने के लिए मेरी भक्ति करनी चाहिए। इस कलात्मक भगवान का न तो कोई प्रिय है, न मित्र है, न बन्धु। जिसके भयसे वनस्पति, वृक्ष, लता, औषधि,

फूल-फल प्रकट करती हैं, नदियां बहा करती हैं, समुद्र अपनी मर्यादा को नहीं त्यागते। पृथ्वी जल में नहीं डूबती, आकाश श्वास लेनेवालों को अवकाश देता है। इसीके भय से महतत्व लोकरूप बनाकर विस्तार करते हैं। जिसके भय से ब्रह्मा, महेश, बारम्बार इस जगत को रचते, पालते और संहार करते हैं। पिता पुत्र से आदि जन को उत्पन्न करता है और मृत्यु से अन्त तक को यही मारता है।

शास्त्रों का कथन है कि जीव प्रभु का अंश है, किसी कारण वश उससे बिछुड़ गया है, उससे मिले बिना यह पूर्ण सुखी नहीं हो सकता। ऐसा विचार कर जीव स्वभावत: ईश्वर की ओर आकृष्ट रहता है, पर देखा जाता है कि प्रभु के मार्ग में कोई बिरला ही आगे बढ़ पाता है, शेष जहाँ के तहाँ पड़े-पड़े तड़पते रहते हैं।

यदि तुम्हारा मन किसी भी सांसारिक पदार्थ में आसक्त हो गया तो कितनी ही उछल-कूद क्यों न करो प्रभु के मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकोगे। हमें आगे बढ़ने से रोकनेवाली रस्सी काम, क्रोधादि, मान, प्रतिष्ठा एवं सांसारिक पदार्थों में आसक्ति है। ये अन्त:करण की पुकार को ईश्वर तक पहुँचने नहीं देते इसी कारण हम आगे नहीं बढ़ पाते। यदि आगे बढ़ना हो तो इन्हें छोड़ने का उपाय करो तभी आगे बढ़ सकोगे। वह उपाय मन का निग्रह है। जो भगवत्स्वरूप के चिन्तन से होता है। उसी का अभ्यास करना चाहिए। मन बड़ा ही चंचल है, इसके विषय में महात्माओं का कथन है-

कबीर यह मन लालची समझें नाहिं गँवार। भजन करने को आलसी खाने को हुशियार।।
मनके मारे बन गये बन तजि बसती माँहि।। कहे कबीर क्या कीजिये यह मन ठहरे नाँहि।।
मनके हारे हार है मनको जीते जीत। मनहिं मिलावे राम को मन ही करे फजीत।।
मनके बहुत रंग है छिन-छिन बदले सोय। एक रंग में जो रहे ऐसा बिरला कोय।।
यह तो गति है अटपटी झटपट लखे न कोय। जो मन की खटपट मिटे चटपट दरसन होय।।

योगिजन ज्ञान-वैराग्य से युक्त भक्ति-योग के द्वारा शान्ति प्राप्त करने के लिये मेरे चरण-कमलों का आश्रय लेकर निर्भय बन जाते हैं। संसार में मनुष्य के लिये सर्वाधिक कल्याणकारी यही बात है कि उसका मन तीव्र भक्ति-योग के द्वारा मुझ में लगकर स्थिर हो जाय। जिस साधना उपक्रम से मन को शुद्ध करके निर्गुण आत्मस्वरूप में निष्ठ किया जाता है वह निर्बीज योग है तथा विशुद्ध मन से भगवान का ध्यान करना। सबीज योग है।

यथाशक्ति अपने अपने धर्म का पालन करो, दूसरे के धर्म का अनुकरण मत करो। सबका अपना-अपना धर्म होता है। चेतन पदार्थों का अपना धर्म एवं जड़ पदार्थों का अपना एक धर्म होता है। आग का धर्म जलाना है। पानी का धर्म शीतलता प्रदान करता है। इसी तरह हाथ का धर्म लेन-देन करना एवं पांवों का धर्म चलना-फिरना हैं। आंखों का धर्म देखना हैं, कानों का धर्म सुनना है। ये सब अपने अपने धर्म का पालन करते हैं। इसी तरह ब्राह्मण का काम ब्राह्मण करें, क्षत्रिय का काम क्षत्रिय करें, वैश्य का काम वैश्य करें एवं शूद्र का जो अपना कर्म है वह शूद्र करें। पुरुष अपना काम करे, स्त्री अपना स्वधर्म पालन करें, स्त्री को गृहलक्ष्मी बनाया है तो वे गृह लक्ष्मी का ही काम करे, नारायण का काम न करें। भगवान ने सबके धर्म अलग-अलग बनाये हैं, सबको अलग-अलग सेवा सौंपी है। जैसे गधे का काम बोझा ढोने का है। कुत्ते का काम पहरा देना है, तो कुत्ता बोझा नहीं ढो सकता और गधा पहरा नहीं दे सकता। जिसको जैसा काम मिला वो अपना काम धर्मपूर्वक करें। विपरीत धर्मों से बचने की कोशिश करें। स्वधर्म का पालन करना परम कल्याणकारक होता है, विपरीत धर्म से बचो दूसरों के धर्म का अनुकरण मत करो। प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाये उसी में संतुष्ट रहना, दैवयोग से जो सुलभ हो जाये, उसी से गुजारा करो। दूसरे के आकर्षक पदार्थों को देख के ललचाओ मत थोड़े से काम चले तो विशेष संग्रह मत करो ये है संतोष। जो निरन्तर संतुष्ट है वह योगी है। विद्वान और अज्ञानी दोनों मेरी सर्वज्ञता का

गुणगान करते हैं लेकिन विश्वास नहीं करते। विश्वास जागृत होने पर जीव आनन्दकन्द परमानंद को प्राप्त कर लेता है।

दैवयोग से जो मिल जाये उससे काम चला लूं मैं। नहीं और की चाह थाह भव सिन्धु अगम की पालूं मैं।।
ज्ञान हमारा ज्येष्ठ भ्रात है, जिसकी आज्ञा पालूं मैं, रहूं सदा निर्द्वन्द्व जगत में बैठा हरि गुण गालूं मैं।।

आत्मतत्व को तत्त्वत: जाननेवाले जो महापुरुष हैं। विषय वासनाओं को बढ़ानेवाले कर्मों से दूर रहो। धीरे-धीरे दुनियादारी के व्यवहार से किनारे होते चलो, संसार बन्धन से छुड़ानेवाले धर्मों से प्रेम करना, जिस रास्ते से भवबन्धन से छूटा जा सकता है। उस दिशा में कदम बढ़ावो एवं सत्संग तथा सन्तों की वाणी का श्रवण करो। पवित्र परिमित भोजन करना। मित अदनं, मेध्य अदनं, जो हवनीय हो वही पेट में डालो। अशुद्ध खाद्यान्न पेट में मत डालो क्योंकि यह परमात्मा के द्वारा दिया गया हवनकुण्ड है। इसलिये सदा पवित्र भोजन करने की कोशिश करो। योगी होना चाहते हो तो सीमित भोजन करो। इतना मत खाओ कि उठना-बैठना मुश्किल हो जाएं और कष्टकारक हो जाएं। योगी एकान्त से भी होता है, तभी योग साधना में सफलता मिलेगी। भगवान की सेवा से अन्त:करण शुद्ध होता है। विषयों के तरफ से मन को इन्द्रियों को खींचो। निरन्तर प्रभु की लीला नाम का गुण का चिन्तन करो। मन अगर संसारी विषयों की ओर दौड़ रहा है, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की ओर। तो वहां से हटाकर मन को उनमें मत जाने दो। चित्तवृत्ति बाहर की ओर जा रही है तो उसे भीतर की ओर ले आओ। निरन्तर भगवत् चिन्तन करते हुए मन को समाहित करो। धीरे-धीरे मन को एकाग्र करके परमात्मा में लगावो। योगी को, साधक को, अपने मन को रोकना चाहिये। अपने इष्टदेव की स्वरूप की धारणा करो। संसार को नश्वर जान करके अपने स्वरूप की धारणा एवं अपने इष्टदेव का धारण करो। अपने मन को वश में करो।

मन ही मतंग मतवारो हाथ आवै नाहीं। ताके लिये अंकुश लै धारयो हिये ध्याइए।।

देवहूति ने सन्देह प्रकट करते हुए कहा कि प्रकृति की सत्ता पुरुष के बिना नहीं है और पुरुष का अस्तित्व बिना प्रकृति के नहीं है तब इनका अलग-अलग किया जाना कैसे सम्भव हैं जैसे पृथ्वी से गन्ध, जल से रस, अग्नि से दाहकता, सूर्य से तपन, चन्द्रमा से शीतलता, पृथक् नहीं हो सकती वैसे ही प्रकृति से पुरुष को पृथक् नहीं किया जा सकता है।

प्रकृति मनुष्य के ज्ञान बिन, जीव सहत संताप। माया में फँस कर सदा, करत अनेकन पाप।।

कपिल बोले- माता। यम, नियम आदि साधनों के द्वारा, ज्ञान-वैराग्य और तप के द्वारा, आत्म समाधि तथा निष्काम धर्म के आचरण से मन इतना रम जाता है कि सांसारिक पदार्थों की ओर आकर्षित नहीं कर पाती है और वह स्वत: समाप्त हो जाती है जैसे काष्ठ के अभाव में अग्नि शान्त हो जाती है।

अष्ट योग की व्याख्या करते हुए कपिल ने बताया कि इनके द्वारा भी प्रकृति के पृथक हुआ जा सकता है। योग के आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। देह जबतक रहेगा तब तक प्रारब्ध कर्म बना रहेगा। किन्तु योगी को अपने शरीर का भान नहीं होता है। देव, मनुष्य इत्यादि भेद तो शरीरकृत है। आत्मा इन सबसे भिन्न ज्ञानस्वरूप है।

यम- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। नियम- शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर चिन्तन। आसन-स्थिरता और सुख जिससे प्राप्त हो वही आसन है। प्राणायाम- पूरक, कुम्भक, रेचक द्वारा प्राणवायु को रोकना। यही प्राणायाम है। प्रत्याहार- मन द्वारा इन्द्रियों को विषयों से हटाना। धारणा- भगवान के स्थूल रूप में मन को स्थिर करना। ध्यान- चित्त की निरन्तर एकाग्र प्रवृत्ति ही ध्यान है। समाधि- जब ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों का ज्ञान न रहे वही समाधि है।

इस प्रकार साधक इन साधनाओं के द्वारा निरन्तर ध्यान करके भगवान श्रीहरि का प्रेमी बन जाता है। उसका हृदय भक्ति से द्रवित हो आनन्दातिरेक के कारण रोमांचित हो उत्कंठा जनित प्रेमाश्रुओं की धारा में तरंगित होने लगता है और वह भगवान की

अचिन्त्य शक्तिमयी माया को भी भगवान की कृपा से ही जीत कर अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्म में स्थित हो जाता है।

पतंजलि के योगसूत्र में योग के आठ अंग बतलाये गये हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि। इनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (दान न लेना) ये पाँच यम कहे गये हैं। और शौच (बाहरी-भीतरी पवित्रता), सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान- ये पाँच नियम हैं। तथा जिसमें देर तक सुखपूर्वक बैठा जाय वह आसन है- स्थिरसुखमासनम्। पूरक, कुम्भक और रेचक- ये तीन प्राणायाम के भेद कहे गये है। मन के द्वारा इन्द्रियों को हठात विषयों से हटा कर चित्त में वापस भेजना प्रत्याहार कहलाता है। भगवान के स्थूल रूप में मन को स्थिर कर लगाना धारणा है। भगवान में चित्त के एकाकार प्रवाह को ध्यान कहते हैं। ध्याता, ध्यान और ध्येय की अलग-अलग प्रतीति जिसमें न हो वही समाधि है। भगवान में चित्त के एकाकार प्रवाह को ध्यान कहते हैं। ध्यान और समाधि में अन्तर यह है कि ध्यान में ध्याता और आदि की प्रतीति अलग-अलग होती है। किन्तु समाधि में तीनों में भेद नहीं रह जाता है।

किन्तु माता। आज का मनुष्य उन्मत्त हो इन्द्रिय सुख की कामना करता हुआ धन उपार्जन में लगा रहता है। स्त्री पुत्रादि को ही सत्य मानकर आसक्ति में फँस जाता है। अपने मूल उद्देश्य एवं गर्भ में लिए संकल्प को भूल जाता है किन्तु वृद्धावस्था आनेपर जब इन्द्रियाँ अनासक्त हो जाती हैं, कफ, पित्त, वायु के प्रकोप से रोग ग्रसित हो जाता है। शैय्या पकड़ लेता है फिर भी अपना संकल्प स्मरण नहीं आता। माया से तृषित रहता है, लोभ-मोह की गति और तीव्र हो जाती है।

इस संसार के अंदर परमात्मा की माया ने ऐसा आकर्षण भर दिया है कि मनुष्य उसमें आसक्त हो जाता है। परमात्मा का चिंतन करने से माया नहीं सताती।

माया मरी न मन मरे, मन मर गये शरीर। आशा तृष्णा न मरी, कह गये दास कबीर।।

कपिल ने कहा- माताजी। यह ध्यान इतनी दृढ़ता में आ जाये, इसमें मन इतना रम जाये, कहीं भी इधर उधर न जाय तो साधक की समाधि की स्थिति बन जाती है। संसार भूल जाये, जगत की विस्मृति हो जाय, ध्यान करते-करते केवल ठाकुर के स्वरूप में मन निमग्न हो जाय। सर्वत्र ठाकुर के दर्शन होने लगे वह देह गेह से ऊपर उठ जाता है। योग का असली फल तो भगवान का हृदय में विराजमान हो जाना ही है।

अष्टांग योग वर्णन कियौ, कपिल देव हरषाय। देवहूति माता सुनहिं, भगवत् में चित लाय।।

अब आगे माता देवहूति ने जिज्ञासा की भगवन्। आपने सब कुछ बताया, सृष्टि का उद्गम बताया, सांख्य बताया, प्रकृतिपुरुष का विवेक बताया, भक्ति योग बताया, योग के लक्षण बताये, इनमें मुझे तो भक्तियोग का मार्ग ही सरल और सुदृढ़ मालूम होता है। ईर्ष्या और दम्भ के भाव से जो भक्ति करते हैं वे तमोगुणी भक्त होते हैं। इनसे श्रेष्ठ रजोगुणी भक्त होते हैं जो किसीको नीचा दिखाने के लिये नहीं बल्कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये जैसे धन चाहिये, पुत्र चाहिये, पद प्रतिष्ठा चाहिये, रोग की निवृत्ति हो जाये। ये रजोगुणी भक्त है जो कामना आदि से भक्ति करते हैं। और सतोगुणी भक्त जो उन सबों से ऊपर उठकर है जिसे कुछ भी नहीं चाहिये, वो संसार बन्धन से छुटने की आकांक्षा करता है। इससे भी ऊपर गुणातीत भक्त है। जो मुक्ति भी नहीं चाहता और मुझ परमात्मा में निष्काम भाव से प्रेम करता है और सेवा करता है। भक्ति तो हनुमान और गोपियों जैसी। भक्ति के लिये प्रभु प्रेम की प्राप्ति के लिये मुक्ति का तिरस्कार करनेवाले ऐसे भक्त गुणातीत है। निष्काम भाव से अपने कर्त्तव्य का पालन कर हिंसा रहित अनुष्ठान करते हुए मेरी पूजा स्तुति वन्दना करते हैं। सर्वप्राणियों में मेरी भावना मेरी कथाओं का श्रवण कीर्तन, मेरे नामों का उच्चारण करते हैं। ऐसे भक्त अन्त में मेरे ही स्वरूप को प्राप्त

होते हैं। पाप प्रपंच से कमाई गई सारी की सारी सम्पत्ति हम अपने इन्द्रियों की तृप्ति में, मौजमस्ती में, उदर पोषण में एवं विषय भोगों को लगा देते हैं। धर्म-कर्म दया दान आदि शुभ कर्मों से दूर रहते हैं। ऐसे लोगोंको नरक प्राप्ति होती है। वे नरक यातनाएं भुगत कर नारकीय योनियों में घूमते रहते हैं। उन्हें सूकर, कूकूर, कीट, पतंग आदि चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ता है। इस तरह अनेक जन्मों तक चौरासी लाख योनि में भटकते-भटकते जब परमात्मा को दया आती है तो वे करुणा सागर जब देखते हैं कि यह बेचारा जीव बहुत भटक चुका है, तब कभी प्रभु की कृपा उमड़ती है तो वे कहते हैं यह बहुत भटक चुका, अब इसे एक बार मानव का शरीर दे दो, तो दया करके जब मनुष्य शरीर देते हैं। **गर्भवास समं दु:खं न भूतो न भविष्यति।** धर्महीन किसी भी प्राणी को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष भयंकर यातनाएँ भोगनी पड़ती है।

जीव के निवासार्थ अज्ञाननिर्मित हजारों योनियाँ हैं, जिनमें प्रविष्ट होकर यह अपने स्वरूप को भूल जाता है।

कपिल बोले- माताजी, जो लोग सकाम भाव से गृहस्थी के धर्मों का पालन करता है वह तरह-तरह की कामनाओं से मोहित रहने के कारण भगवद्धर्म से विमुख हो जाता है- और यज्ञों द्वारा श्रद्धापूर्वक देवता तथा पितरों की ही आराधना करता है। देवता और पितर ही उसके उपास्य रहते हैं- अत: वह चन्द्रलोक में जाकर उनके साथ सोम पान करता है। जब उसका पुण्य क्षीण हो जाता है तब पुन: इसी लोक में लौट आता है।

जो विवेकी पुरुष अपने धर्मों का अर्थ, भोग विलास के लिए उपयोग नहीं करते बल्कि भगवान की प्रसन्नता के लिये ही उनका पालन करते हैं, वह अन्त में सूर्य मार्ग (अर्चिमार्ग या देवयान) के द्वारा सर्वव्यापी पूर्ण-पुरुष भगवान को प्राप्त होते हैं। इसलिये माताजी। अब तुम भी अत्यन्त भक्ति भाव से भगवान हरि की चरण शरण में जाओ, अत: समस्त जीवधारियों का हृदय कमल ही उनका मन्दिर है। दुखी जीवन का नाम नरक हैं, सुखी जीवन को स्वर्ग कहते हैं। यहीं नरक और यहीं स्वर्ग है। नरक में होनेवाली पीड़ा यहां भी देखने में आती है और जो धर्म करते हैं उनका स्वर्ग भी यहां ही है। प्राणी के कर्म साथ जाते हैं उसको अपने पाप का फल अकेले ही भोगना पड़ता है। जब पाप क्षीण होते हैं, तब पवित्र होकर उन्हीं पूर्वोक्त कर्मों को करता हुआ फिर उसी गति को पाता है। इसप्रकार यह संसार कभी निवृत्त नहीं होता।

आशा ही परम दु:ख- आशा ही दु:खों का मूल है किन्तु इस मूल कष्ट से निवृत्ति कैसे हो? भागवत श्रवण जिसके सुनने मात्र से भगवान श्रीहरि हृदय में विराजमान हो जाते हैं। जहाँ माया पति विराजमान हैं वहाँ माया का प्रभाव समाप्त हो जाता है। जीव निष्कण्टक हो जाता हैं। लेकिन माँ, प्रभु स्मरण साधन साध्य नहीं कृपा साध्य है। भगवान की अनुकम्पा हो तब ही भजन और साधना बनती है। जीवन भर साधना करने पर भी मुक्ति यदि मिल जाय तो इसे भी प्रभुकृपा ही समझना चाहिए।

जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अन्त राम कह आवत नाहीं।।

और अन्त समय यदि प्रभु का स्मरण करके कहीं आसक्तियों में उलझ गया तो पुन: भोग भोगना ही पड़ेगा।

मैं सर्वात्मा तथा अन्तर्यामी होने के कारण सब भूतों में व्याप्त हूं। मेरी सत्ता के बिना पत्ता तक नहीं हिल सकता मैं कण-कण में समाया हूँ। इसलिये मैं सर्व भूतात्मा हूँ। जो मनुष्य मुझ परमात्मा को सर्व भूत स्थित न समझ कर केवल मूर्ति में ही मुझे मान कर मेरी प्रतिमा की ही पूजा करता है, वह मूर्ख केवल पूजा का स्वांग करता है। जो मनुष्य सभी भूतों में स्थित परमात्मा मुझ परमात्मा का अनादर कर केवल मूर्ति पूजन करता है, वह ज्ञानी मूर्ख मुझे जानता ही नहीं है। उसका यह पूजन कर्म ऐसे ही है, जैसे राख में किया हुआ हवन होता है, जो व्यर्थ तथा निष्काम होता है। जो अहंकारी पुरुष सब प्राणियों से शत्रुता रखता है, तथा उनकी हिंसा करता है और मेरी पूजा करता है, उसे कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। क्योंकि वह मुझ अन्तर्यामी से ही शत्रुता करता है। जो मनुष्य उत्तम उत्तम वस्तुओं से मेरा पूजन करे किन्तु दूसरे प्राणियों

की निन्दा करे तो वह मेरी ही निन्दा करता है, तथा मुझे उसकी पूजा कभी स्वीकार नहीं है। मेरा साधक जभी तक मेरी प्रतिमा की पूजा करे जब तक उसे सर्व भूतों में स्थित मुझ परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान अपने हृदय में प्राप्त न हो। जब उसे तत्व से मेरे स्वरूप का ज्ञान हो जाय तब वह इन सब कामों को त्याग दे। जो प्राणी आत्मा तथा परमात्मा में भेद मानता है, वह मृत्यु चक्कर से कभी मुक्त नहीं हो सकता। तत्त्व जानने वाले मेरे साधक को चाहिये कि मुझे सब भूतों में विराजमान समझकर समत्व भाव से मेरी पूजा करे। मैं और मेरा आदि विषयों को त्याग दें तभी जीव का कल्याण होगा। भोग समाप्त नहीं होते; जीव समाप्त हो जाता है। संसार के विषय सुख तो देते हैं; पर आनन्द नहीं देते। यदि विषयों में आनन्द समाया होता तो सभी को सदा आनन्द मिलता। विषयों में आसक्त हो जाये तब वह बन्धन का कारण बनता है और वही मन यदि परमात्मा में आसक्त हो जाये तो मोक्ष का कारण बन जाता है।

जीव पिता के वीर्य का आश्रय लेकर समय पाकर माता के उदर में प्रवेश करता है। माता का रज पिता का वीर्य दोनों मिलकर माता के उदर में प्रविष्ट जीव एक रात्रि में घोल बन जाता है। पांच रात्रि बीतते-बीतते जैसे पानी में बुलबुल्ला उठता है, ऐसा कुछ गोलाकार जैसा बुदबुदा हो जाता है। बेर के बड़े-बड़े फल होते हैं ऐसा गोल फल जैसा थोड़ी कठोरता आ जाती है। एक महीने में उसके सिर निकल आता हैं, दो महीना होते ही दो हाथ, दो पांव निकल आते हैं। तीसरे महीने से नख, रोम, अस्थि, चर्म और स्त्री पुरुष का चिन्ह सब प्रकट हो जाते हैं। जैसा शरीर मिलने को होता है, चौथे महीने में सप्त धातुओं का निर्माण हो जाता है। अस्थिमेद मज्जा इत्यादि का निर्माण हो जाता है। पांचवे महीना आते ही भूख प्यास लगने लग जाती हैं, छठवां महीना में आते ही पेट में रहनेवाले छोटे-छोटे कीड़े उसे काटते हैं, तो वह कसमसाने लग जाता है, करवट बदलने लग जाता है। सातवां महीना आते ही भगवान अपना मंत्री भेजते हैं, ज्ञान मन्त्री का नाम है। हे ज्ञान, जाओ इस जीव के पास गर्भ में प्रवेश करो और उसका स्पर्श करो जिससे उसको अनेक जन्मों की बात याद आ जाय। कौन सा पाप किया तो कौन नरक में गये, कौन-कौन से नरकों में जाकर कौन-कौन सा कष्ट भोगे। अब परमात्मा ने दया करके मानव का शरीर दिया इसमें क्या करना चाहिये। किधर से बचना चाहिये, किधर से ग्रहण करना चाहिये। ज्ञान का स्पर्श होते ही जीव को अपने अनेक जन्मों की बात याद आ जाती है। फिर वह स्तुति करता है- हे परमेश्वर।

मैं उस परम प्रकाशक परमात्मा की शरण ग्रहण करता हूँ जिन्होंने मुझे इस समय गर्भ में ज्ञान दिया वही प्रभु कृपा करके मुझे इस नरककुण्ड से बाहर निकाले मैं गर्भ में जल रहा हूं। अत्यन्त दु:खी हो रहा हूं। इस अन्धकूप से वे दयामय प्रभु मुझे जल्दी बाहर निकाले मैं उनको नमस्कार करता हूँ। भगवन्। अब मैं समझ गया कि मेरे कुकर्मों का क्या-क्या फल मिला। अब मै। वादा करता हूं किसी की बुराई नहीं करूंगा, जहां तक होगा सबकी भलाई करूंगा। जो कुछ कष्ट आया, जो मैंने बुरा किया वो इसलिये कि मैं आपको भूल गया था। हे प्रभु, अब आप मेरे अपराधों को क्षमा कर दें। प्रभो, इस समय जो मुझे यह ज्ञान हुआ यह भी आपके द्वारा ही दिया हुआ है। हे नाथ। आप बड़े दयालु हैं। हे प्रभो, माँ के उदर के भीतर मलमूत्र और रुधिर के कुएँ में गिरा हुआ उदर की जठराग्नि से जलता हुआ मैं, आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ और अब मैं यह वादा करता हूँ कि जब मैं इस अन्धकूप से बाहर निकल जाऊंगा तब मैं आपका ही भजन करूँगा। आपको एक क्षण भी नहीं भूलूंगा। सदा आपको याद रखूंगा। जिस प्रभु ने मुझे इस गर्भवास में ज्ञान प्रदान किया, स्मृति दी, मैं उनकी शरण में हूं, वे ही मेरा कल्याण करें, मेरी संभाल करें। मैं उनको वन्दना करता हूँ। हे करुणासागर। अब जल्दी मुझे बाहर निकाले। मैं अपना जीवन अब आपकी सेवा में ही लगाऊँगा। इस तरह ऐसी-ऐसी प्रतिज्ञा करता हैं जीव मां के गर्भ में तब उन दयासागर को दया आती है। तो प्रसव की पवन को कहते हैं। धक्का दो इसको बाहर निकालो, देखें कितना वादा

निभाता है यह। और ज्यों बाहर आया- संकीर्ण द्वार से निकलना पड़ा। माँ को प्रसव की पीड़ा हुई सो तो हुई ही, इस जीव को भी इतनी पीड़ा हुई कि एक बार तो मूर्च्छित हो गया और उस मूर्च्छा में ही आधा ज्ञान तो वहीं भूल गया और थोड़ा बहुत रहा, वो भी गर्भ से बाहर आते ही नष्ट हो जाता है। माया लपेट लेती है जब जीव गर्भ से बाहर आता है तो उसका वह गर्भगत ज्ञान नष्ट हो जाता है। जीव जब माता के गर्भ से बाहर आ जाता है तो उसका जन्म हो जाता है और माता के गर्भ में की हुई प्रतिज्ञा को वह भूल जाता है और माया के प्रपंचों में लग जाता है।

कपिल जी ने अपना वक्तव्य जारी रखते हुए कहा- माताजी, नरक भोग कर निकला हुआ जीव पिता के वीर्य द्वारा माता के गर्भ में प्रवेश करता है, वहाँ वह एक रात्रि में स्त्री के रज में मिलकर एकरूप हो जाता है उसे कलल कहते हैं। पाँच रात्रि में बुदबुदरूप हो जाता है। दस दिन में बेर के समान कुछ कठिन बन जाता है। पन्द्रह दिन में माँस-पिण्ड के आकार का हो जाता है। एक महीने में उसे सिर निकल आता है। दो मास में हाथ-पाँव आदि अंग अलग-अलग प्रतीत होने लगते हैं। तीन मास नें नख, रोम, अस्थि, चर्म, स्त्री-पुरुष के चिन्ह (लिंग-योनि) तथा अन्य छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं। चार मास में उसमें मांस आदि सातों धातुएँ पैदा हो जाती हैं और छठे मास में झिल्ली से लिपट कर वह दाहिनी कोख में घूमने लगता है, चलने लगता हैं। उस समय माता के खाये हुए अन्न जल आदि से उसका शरीर पुष्ट होने लगता है। उस समय वह कृमि, मल-मूत्र आदि से भरे हुए गड्ढे में पड़ा रहता है। उसके कोमल शरीर को जब वहाँ के कीड़े काटते हैं तो वह क्षण-क्षण में बेहोश होने लगता है। माता के खाये हुए नमकीन, कड़वे, खट्टे आदि पदार्थों के स्पर्श से उसके शरीर में भयंकर पीड़ा होने लगती है। वह माँ के गर्भ में पिण्ड की भाँति कुण्डली मारे पड़ा रहता है। उस समय वह पिंजरे में बन्द पक्षी के समान पराधीन तथा अंगों को हिलाने-डुलाने में असमर्थ रहता है। इसी समय अदृष्ट की प्रेरणा से उसे स्मरण-शक्ति प्राप्त होती है। उस समय उसे सैकड़ों जन्मों का स्मरण होता है जिसे सोच-सोचकर वह बेचैन बन जाता है। सातवें महीने के शुरु पर उसमें ज्ञान-शक्ति का स्फुरण हो जाता है। उस समय वह अत्यन्त भय-भीत होकर अति दीन वाणी में भगवान की स्तुति करने लगता है। वह कहता है-प्रभो, मैं बड़ा अधम हूं। आपने मुझे जो यह गति दिखलाई है, वह मेरे योग्य ही है। प्रभो, आप इस नश्वर जगत् की रक्षा के लिये बार-बार अवतार धारण करते हैं अत: मैं भी भूतल पर विचरण करनेवाले आपके चरणों की शरण ग्रहण कर रहा हूँ।

प्रभु की वन्दना करने से बन्धन की निवृत्ति होती है। जिसे परमात्मा ने मुझे ज्ञान दिया है वही मेरा कल्याण करे। मैं माता के गर्भ में अत्यन्त सन्तप्त हो रहा हूँ। मेरे दु:खों का पारावार नहीं है इसलिये प्रभु के चरण-कमलों में बार-बार प्रणाम कर रहा हूँ। इन्हीं की माया से अपने सच्चे स्वरूप की स्मृति नष्ट हो जाने के कारण यह जीव इस संसार में नाना प्रकार के कष्टों को झेलता हुआ नाना योनियों में भटकता फिरता रहता है। इन्हीं अन्तर्यामी भगवान को मैं पुन:- पुन: प्रणाम कर रहा हूँ। प्रभो, आप प्रकृति-पुरुष से परे हैं। मैं आप की वन्दना करता हूँ। देव, यदि इस बार आपने मेरा उद्धार कर दिया, इस अन्धकूप से सकुशल बाहर निकाल लिया तो मैं वादा करता हूँ कि आप का भजन ही करूँगा।

भगवन्, अत्यन्त दु:ख से भरे हुए इस गर्भाशय में यद्यपि मैं बड़े ही कष्ट से रह रहा हूँ फिर भी यहाँ से बाहर निकलने की मेरी इच्छा नहीं है क्योंकि यहाँ से निकलते ही आप की प्रबल माया जीव को घेर लेती है अत: वह देहगेह में अहं बुद्धि कर लेता है। इसी का फल है कि वह बार-बार जन्मता-मरता रहता है।

प्रभो, अब मैं व्याकुलता को छोड़कर हृदय में भगवान विष्णु के चरणों को धारण करूँगा, उन्हीं का चिन्तन करूंगा। इस प्रकार मैं अपना उद्धार स्वयं अपनी बुद्धि से करूँगा, जिससे मुझे बार-बार इस संसार में जन्मना मरना न पड़े।

आप मुझ पर अनुग्रह करें। मैं हाथ जोड़कर बार-बार आप को प्रणाम कर रहा हूँ। कपिल जी कहते हैं कि माता जी, वह

दस महीने का जीव गर्भ में ही जब इस प्रकार विवेकसम्पन्न होकर भगवान की स्तुति करता है तब गर्भाशय में नीचे की ओर मुख किये हुए उस बालक को प्रसव-काल की वायु तत्काल बाहर आने के लिये ढकेलती है।

क्षण भंगुर जीवन की कलिका कल प्रात: समय खिली न खिली।
मलयाचल की शुचि शीतल गंध समीर चली न चली।।
कलिकाल कुठार लिये फिरता तन नम्र है चोट झिली न झिली।
रटलै हरिनाम अरी रसना फिर अंत समय में हिली न हिली।।

स्थूल और सूक्ष्म शरीर योग को जन्म कहते हैं, और इनके वियोग को मृत्यु कहते हैं। योगी पुरुष को मृत्यु आदि से कभी भयभीत नहीं होना चाहिए क्योंकि यह जीव कभी नहीं मरता। जीव की उत्पत्ति स्थान वास्तव में वह ब्रह्म ही है।

हमारे हदय में जब चैतन्य ग्रहण करने की शक्ति क्षीण हो जाती है, तब कहते हैं यह प्राणी की मृत्यु हो गयी। जहाँ वासना शरीर दूसरे देहयन्त्र को पकड़ लेता है, वह जन्म कहलाता है। जैसे सूर्योदय और सूर्यास्त जैसे भ्रम हैं, वैसे ही जन्म और मृत्यु भ्रम है।

माताजी। असली मेरा जो स्वरूप है उसे भूल जाता है और दुनिया से मेरा मेरा का नाता जोड़ कर मेरा मेरा करता है। इन्द्रियों के विषयों के वश में आकर मनुष्य सत्य, पवित्रता, दया, मौन, सुबुद्धि, शम, दम, ऱ्हीं, श्री सबकुछ छोड़ देता है, यद्यपि भगवान उसे अनेक तरह की सुविधायें देते हैं, खाने को अन्न, पीने के लिये जल, प्रकाश, श्वास के लिये वायु, स्वाध्याय के लिये कर्त्तव्य ज्ञान के लिये, शास्त्र पुराण आदि ग्रन्थ जिससे वह अपने प्रभु की स्मृति में लगा रहे। सन्तों को महापुरुषों को भेजकर बार-बार उसे उसके स्वरूप का उसके धर्म का उसके कर्त्तव्य का ज्ञान कराते रहते हैं। लेकिन ये सारी सुविधायें प्राप्त होने पर भी जीव अगर कुसंग में पड़ गया, तो अपने स्वरूप को भूलकर विषय भोगों के खिलौने में क्रीड़ामृग बनकर माया के चंगुल में फंसकर उस मायापति को भूल जाता है और चौरासी के चक्कर की तैयारी कर लेता है। अगर मदालसा सरीखी मां मिल गई, फिर तो गर्भ में आने की जरूरत ही नहीं है।

जो भगवान से विमुख हो करके अपना जीवन गुजारते हैं वे पतित हो जाते हैं उनके पतन की सीमा नहीं रहती। मनुष्य भौतिक सुखोंकी लालसा में विनाशी वस्तुओं को अविनाशी मान बैठता है। इच्छापूर्ति के प्रति यदि उसे हिंसा वृत्ति अपनानी पड़े तो उसे भी श्रेयस्कर मानता है। देखा गया है कि हिंसा वृत्ति द्वारा उपार्जित धन स्थिर नहीं रहता। अनीतिपूर्वक उपार्जित धन विष से भी अधिक विषैला होता है। पूत कपूत तो क्या धन सच्चै- पारिवारिक एवं सामाजिक व्यामोह में फंसा शरीर जर्जर अवस्था को प्राप्त होता है लेकिन मन, बुद्धि सदा युवा रहता है। इन्हींकी वासना के वशीभूत जीव अचेत होकर मृत्यु से प्राप्त होता है। अब कहते कुछ लोग सकामभाव से गृहस्थ धर्मों का पालन करते हुए अनेक कामनाओं से मोहित होकर भगवद् धर्मों से विमुख हो जाते हैं, और देवता पितरों की आराधना करते हैं। उनके नाम पर स्वाहा स्वाहा करके ऊपर के लोकों में जाते हैं और वहां स्वर्गादि भोगों को भोग कर उनको फिर नीचे गिरना पड़ता है। जो लोग धर्म, अर्थ, काम में फंसे रहते हैं उनकी बुद्धिरजोगुण के कारण कुण्ठित रहती है हृदय में अनेक प्रकार की कामनाओं का जाल फैला रहता है। वे नित्य देवताओं और पितरों की पूजा में ही लगे रहते हैं। इसीलिये कीर्त्तनीय उन भवभयहारी भगवान मधुसूदन की कथाओं से वे विमुख हो जाते हैं। वैसे संसारी लोगों को यदि भगवान की कथा सुधा परसी जाती है तो भी वे उसे पसन्द नहीं करते। अपने विषयभोगों में ही रमे रहते हैं और जैसे जीव आया था वैसे चला गया। **पुनरपि जन्मं पुनरपि मरणं।**

माताजी, जो ज्ञान मार्ग से भक्ति मार्ग से भगवान की अर्चना करके पूजन करके प्रभु के चरणारविन्दों का आश्रय ले लेते हैं, उन सर्वेश्वर प्रभु की शरण में चले जाते हैं, उनको फिर आना-जाना नहीं पड़ता। वे संसार बंधन से छूट जाते हैं।

भगवान के प्रति जो भक्तियोग होता है उससे जीवन में दो बाते आती हैं। एक वैराग्य दूसरा ज्ञान। जब मनुष्य का मन एकाग्र हो जाता है संकल्प विकल्प से रहित होकर असंग हो जाता है। वैराग्यवान हो जाता है तो उसे परमात्मा का दर्शन हो जाता है और वह सदा-सदा के लिये आवागमन के चक्कर से छूट जाता है। यदि जीव अपने जीवन में भागवत कथा का अनुकरण करता रहे तो उसकी बुद्धि भंग नहीं होती। विवेक, वैराग्य एवं भक्तियोग द्वारा अपने जन्म को धन्य बना सकता है। भक्ति आरम्भ होती है विश्वास से। परमात्मा के प्रति विश्वास करो, बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती।

जिस ज्ञान से आत्मा का दर्शन होता है, वह ज्ञान ही मोक्ष का कारण है और वही अहंकाररूप हृदय की गाँठ को काटनेवाला है। गुणों की साम्यावस्था, समान अवस्था का नाम प्रकृति है। सृष्टि के प्रारम्भिक काल में काल के प्रभाव के कारण प्रकृति में क्षोम उत्पन्न होता है, हलचल पैदा हो जाती है। उस स्थिति में गुणों में कमी-बेशी आ जाती है। इसी को प्रकृति की वैषम्यावस्था कहते हैं। क्षुभित प्रकृति में जब भगवान वीर्य (चित्शक्ति) का आधान करते हैं, तब प्रकृति से महत्तत्त्व का प्रादुर्भाव होता है। महत्तत्त्व को बुद्धि तत्त्व भी कहते हैं। इसी में सारा जगत् अंकुररूप से स्थित रहता है। महत्तत्त्व चित्त भी कहलाता है। चित्त के अधिष्ठाता वासुदेव हैं। बुद्धि में अधिष्ठाता ब्रह्मा और उपास्यदेव प्रद्युस्यदेव प्रद्युम्न है तथा मन के अधिष्ठाता चन्द्रमा और उपास्यदेव अनिरुद्ध है। सांख्यकारिका में प्रतिपादित सांख्य पच्चीस तत्वोंवाला निरीश्वर सांख्य है। पुराणों में प्रतिपादित सांख्य सेश्वर सांख्य हैं। वहाँ ईश्वर को लेकर छब्बीस तत्त्व हैं।

जिस काल के प्रभाव से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होता है, वह काल भी भगवान का ही रूप है। एक ही ईश्वर-प्राणियों के भीतर पुरुष रूप से और बाहर कालरूप से भासता है। जिसे अध्यात्म में चित्त कहते हैं; उसी को अधिभूत में महत्तत्त्व कहा जाता है। चित्त के अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञ और उपास्यदेव वासुदेव हैं। अहंकार के अधिष्ठाता रुद्र और उपास्यदेव संकर्षण है।

चित्त अपने स्वाभाविक रूप में अत्यन्त स्वच्छ, विकाररहित एवं शान्त बतलाया गया है। पुन: महत्तत्त्व के विकृत होने पर उससे क्रियाशक्तिप्रधान अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकार वैकारिक, तेजस और तामस भेद से तीन प्रकार का होता है। अहंकार के अधिष्ठाता देवता संकर्षण हैं अत: अहंकार को ही संकर्षण भी कहते हैं। वैकारिक अहंकार से मन की उत्पत्ति हुई, जिसके अधिष्ठाता देवता अनिरुद्ध है। फिर तैजस अहंकार में विकार होने पर उससे बुद्धि तत्त्व उत्पन्न हुआ। यह बुद्धि तत्त्व ही प्रद्युम्न है।

मन को दर्पण की भाँति अति स्वच्छ बतलाया गया है। मन ही सारे पदार्थों का प्रतिबिम्ब ग्रहण करता है। मन का कार्य है- संकल्प-विकल्प करना। बुद्धि निश्चय करती है तथा अहंकार अभिमान करता है। चित्त, मन, अहंकार और बुद्धि को ही अन्त:करण चतुष्टय कहते हैं।

कपिल बोले- माता अब मैं तुम्हें उस तत्त्व से अवगत कराता हूँ जिसके प्रचार-प्रसार हेतु मैं भूलोक में आया हूँ। सांख्य योग के अनुसार २४ तत्व होते हैं। इनको जाने बिना जीव बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता। इन तत्त्वों की साम्यावस्था को ही प्रकृति कहते हैं और यह तत्व पृथक हो जाते हैं उसी को वैषम्यावस्था कहते हैं। प्रकृति में जब क्षोभ उत्पन्न होता है तब ही भगवान उसमें वीर्य का आधान करते है। उससे महत्तत्त्व उत्पन्न होता है यही चित्त कहलाता है। चित्त से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार के तीन रूप- सात्विक, राजस और तामस। सात्विक अहंकार से मन की, राजस अहंकार से बुद्धि की उत्पत्ति हुई। चित्त ही दर्पण समान यथार्थ का निरूपण करता हैं। मन संकल्प-विकल्प करता है, बुद्धि निश्चय करती है, अहंकार अहं उत्पन्न करता है। चित्त निर्णय करता है। माता, त्रिगुणोंका जो महाप्रलयमें एकीकृत्य रूप है और सृष्टिकालमें जो विभक्त रूप हैं, यही प्रकृतिका रूप हैं, यही चौबीस तत्त्व इसके होते हैं, जिसको प्राधानिक गुण कहा जाता है। पृथ्वी आदि पंचभूत है, गन्धादि पंचतन्मात्रा है, श्रोत्र आदि दस इन्द्रियां है, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त ये चार

अन्त:करण हैं, इन्हींको चौबीस तत्त्व जाना गया है। इन्हींमें सगुण ब्रह्माका सन्निवेश है। आकाश, भूतोंको अवकाश देता है, सबके बाहर-भीतर वर्तमान रहना तथा प्राण, इन्द्रिय और मनका आश्रय होना- ये आकाशके वृत्ति रूप लक्षण हैं। कोमलता, कठोरता, शीतलता और उष्णता, वायुका सूक्ष्म रूप होना ये स्पर्शके लक्षण है। वायुसे वृक्षकी शाखा आदिको हिलाना, तृणादिको इकट्ठा करा देती है, सर्वत्र गमनागमन करना, गन्धादियुक्त द्रव्यको घ्राणादि इंद्रियोंके पास तथा शब्दको श्रोत्रेन्द्रियके समीप ले जाना तथा समस्त इंद्रियोंको कार्यशक्ति देना ये वायुकी वृत्तियोंके लक्षण हैं। तेज और रूपको उपलब्ध कराना ये अग्नितत्त्वकी वृत्तियां है। वस्तुके आकारका बोध कराना, गौण होना, द्रव्यके अहंकाररूपसे आकार-प्रकार और परिमाण आदि हो, उसी रूपमें उपलक्षित होना तथा तेजका स्वरूपभूत होना ये सब रूपतन्मात्रकी वृत्तियाँ हैं। चमकाना, पकाना, शीतको दूर करना, सुखाना, भूख-प्यास पैदा करना, भोजन पकाना ये सब तेजकी वृत्तियाँ हैं। रसतन्मात्र जलकी वृत्ति है जैसे रसको ग्रहण करनेवाली रसेन्द्रिय (जिह्वा) इत्यादि उत्पन्न हुई। वह कसैला, मीठा, तीखा, कड़वा, खट्टा और नमकीन आदि कई प्रकारका अनुभव कराता है। गीला करना, मिट्टी आदिको पिण्डाकार बना देना, तृप्त करना, प्यास बुझाना, पदार्थोंको मृदु करना, तापकी निवृत्ति करना और कूपादिसे जल निकालना ये सब जलकी वृत्तियाँ हैं। पृथ्वीके गन्धको ग्रहण करनेवाली घ्राणेन्द्रिय गन्धतन्मात्र हुआ। इनसे सुगन्ध, दुर्गन्ध, मृदु, तीव्र और आम्ल आदि अनेक प्रकारके वृत्तियों का अनुभव होता है। प्रतिमादिरूपसे ब्रह्मकी साकार-भावनाका आश्रय होना, जल आदि कारण-तत्त्वोंसे भिन्न किसी दूसरे आश्रयकी अपेक्षा किये बिना ही स्थित रहना, जल आदि अन्य पदार्थोंको धारण करना, सम्पूर्ण प्राणियोंके स्त्रीत्व, पुरुषत्व गुणोंको प्रकट करना यह पृथ्वीके कार्यरूप लक्षण हैं।

कोई-कोई कालको पच्चीसवाँ तत्त्व मानते हैं, कोई-कोई भगवानके पराक्रमको ही काल मानते हैं और कोई-कोई ईश्वरकी चेष्टाको काल कहते हैं। इसप्रकार भगवान ही काल है या भगवानका प्रभाव काल है या भगवानकी चेष्टा काल है असलमें कालकी सिद्धि व्यवहारमें ही होती है, परमार्थमें तो काल कहाँ हैं? भगवानने तो ऐसी लीला रची है कि वे भीतर आत्माके रूपमें और बाहर कालके रूपमें बैठे हुए हैं। अगर तुम बाहरकी वस्तुओंके साथ प्रेम करोगे तो वे तुम्हें कालके रूपमें तमाचा मारेंगे, कालके गालमें फँसना पड़ेगा, और यदि आत्मासे प्रेम करोगे तो इससे मुक्त हो जाओगे।

परमात्माकी इच्छाशक्तिका आधान होनेपर प्रकृति महतत्त्वका प्रसव करती है और फिर वह अपने अन्दर सोता हुआ जो प्रलयकालिक तम है, उसको पी जाती है। यह महत्तत्त्वच भगवद्प्राप्तिका स्थान है। अधिभूत-रूपसे उसका नाम महान् है, अध्यात्म-रूपसे उसका नाम चित्त है और उपास्य-रूपसे उसका नाम वासुदेव है। स्वच्छता, निर्विकारता, शान्तता यह चित्तका लक्षण है। फिर उससे जब महत्तत्त्वमें विकृति होती है तब सात्त्विक, राजस, तामस- ये तीन प्रकारके अहंकार होते हैं। इन्हींसे सम्पूर्ण मन, भूत और इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। यह अहंकार ही भूतेन्द्रिय-मनोमय है। उसको उपास्य-रूपसे संकर्षणके नामसे बोलते हैं। देवता, इन्द्रिय, भूत-रूपसे अहंकारका तीन प्रकारसे लक्षण किया जाता है। उसमें भी जब सात्त्विक अहंकारका विकार होता है तो संकल्प-विकल्पात्मक मनस्तत्व होता है। राजस अहंकारसे बुद्धितत्त्व होता है और बुद्धितत्वसे संशय, मिथ्याज्ञान, निश्चय, स्मृति आदिकी उत्पत्ति होती है। यह भागवती अपनी प्रणाली है कि वह राजस अहंकारसे इन्द्रियोंकी उत्पत्ति मानता है। प्राणमें क्रिया-शक्ति है और बुद्धिमें विज्ञान-शक्ति है। तामस अहंकारसे ऐसा अहंकार बनता है, जिसकी मात्रा शब्द है। अर्थका वाचक होना, कोई आड़में-से बोलता हो, तब भी उसको पहचान लेना, स्थूल होना, सूक्ष्म होना यह सब शब्दका लक्षण हैं। प्राणियोंको अवकाश देना, नाड़ियों आदिमें छिद्ररूपसे रहना, मन-प्राण आदिका आश्रय होना, यह सब आकाशका लक्षण हैं। इसी शब्दमात्र नम:से वायुकी उत्पत्ति होती है। मृदु है कि कठिन है कि शीत है कि ऊष्ण

है, यह स्पर्शसे ज्ञात होता है। वायुसे पेड़ोंकी शाखा हिलती है और गन्ध बाहरसे उड़कर नासिकामें जाता है। भगवान की चेतनशक्ति की प्रेरणा से तामस अहंकार के विकृत होने पर उससे पंचतन्मात्राओं अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की उत्पत्ति हुई। इन्हीं तन्मात्राओं से क्रमश: आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी इन पाँच महाभूतों का प्रादुर्भाव हुआ।

राजस अहंकार से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। इनमें श्रोत्रेन्द्रिय, त्वक् इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय और रसनेन्द्रिय- ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके द्वारा क्रमश: शब्द, स्पर्श, गन्ध, रूप और रस का ज्ञान होता है। वाक्, पाणि, पाद (पैर), पायु और उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके द्वारा क्रमश: भाषण, आदान-प्रदान, गमनागमन, मलत्याग और विषयानन्द रूप कर्म किया जाता है। इनमें प्रथम पाँच ज्ञानेन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता क्रमश: इस प्रकार हैं- दिक्, वायु, अश्विनीकुमार, सूर्य तथा वरुण। और कर्मेन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता क्रमश: इस प्रकार हैं- दिक्, वायु, अश्विनीकुमार, सूर्य तथा वरुण। और कर्मेन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता क्रमश: इस प्रकार हैं- वह्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र एवं प्रजापति।

पंच महाभूत, पाँच तन्मात्रा, चार अन्त:करण और दस इन्द्रियाँ- इन चौबीस तत्त्वों के समूह को विद्वान लोग प्रकृति का कार्य कहते हैं।

इन्हीं चौबीस तत्त्वों से अण्ड की संरचना हुई, जो सात आवरणों से आवेष्टित है। सबसे पहला आवरण पृथ्वी का है इसका मान ५० करोड़ योजन है। दूसरा आवरण जल का है इसका मान पहले की अपेक्षा दस गुना अधिक है। तीसरा आवरण तेज का है यह दूसरे आवरण से दस गुना बड़ा है। चौथा आवरण वायु का है यह तेज के आवरण से दस गुना अधिक है। पाँचवाँ आवरण आकाश का है इसका मान चौथे की अपेक्षा दस गुना अधिक है। आकाश से दस गुना अहंकार और अहंकार से दस गुना महत्तत्त्व का आवरण है। अन्तिम आठवाँ आवरण प्रकृति का है यह आवरण अनन्त है।

उक्त अचेतन अण्ड का नाम विशेष है। इसी के अन्तर्गत श्रीहरि के स्वरूपभूत चौदहों भुवनों का विस्तार है।

यह तेजोमय अण्ड बहुत दिनों तक जल में पड़ा रहा। उसमें विराट पुरुष ने पुन: प्रवेश कर इन्द्रियों के लिये छिद्रों की रचना की। इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं ने अपने-अपने स्थानों में प्रवेश कर उसे उठाने का प्रयास किया, किन्तु वह उठा ही नहीं। अग्नि ने वाणी के साथ मुख में प्रवेश किया। परन्तु इससे विराट पुरुष न उठा। वायु ने घ्राणेन्द्रिय के सहित नासिका छिद्रों में प्रवेश किया, फिर भी विराट पुरुष न उठा। सूर्य ने चक्षु के सहित नेत्रों में प्रवेश किया, तब भी विराट पुरुष न उठा। दिशाओं ने श्रवणेन्द्रिय के सहित कानों में प्रवेश किया, तो भी विराट पुरुष न उठा।

इसी प्रकार तत् तत् देवताओं ने तत् तत् इन्द्रियों के साथ तत् तत् स्थानों में प्रवेश किया, किन्तु विराट में कोई हल-चल नहीं हुई, वह उठा नहीं। किन्तु जब चित्त के अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञ वासुदेव ने चित्त के सहित हृदय में प्रवेश किया तो विराट पुरुष उसी समय जल से उठकर खड़ा हो गया।

अति: भक्ति, वैराग्य और चित्त की एकाग्रता से प्रकट हुए ज्ञान के द्वारा उस क्षेत्रज्ञ वासुदेव का इस शरीर में ध्यान करना चाहिए, जिसके बिना यह कुछ भी करने में असमर्थ है। वासुदेव का साक्षात्कार होने पर ही व्यक्ति के सारे बन्धन सर्वदा के लिये समाप्त हो जाते हैं अत: माँ, तुम वासुदेव का ही निरन्तर ध्यान करो, इसी से तुम्हारा परम मंगल होगा।

बिना वैराग्य के ज्ञान शोभायमान नहीं होता। वैराग्य की गद्दी पर ज्ञान विराजमान होता है। दीनता की गद्दी पर भक्ति विराजमान होती है, हीनता पर नहीं। योग के आसन पर सिद्धियाँ विराजमान होती हैं। दीनता जिसके जीवन में आ जाएं तो उसको भक्ति आ जाती है।

वीर्य तो पानी है, उसके एक बूँदमें सौ-सौ पुरुषोंके उत्पादनकी योग्यता होती है। उस पानीमें जो चेतन छिपा हुआ है,

वही शरीरधारी जीव होकर आता है। संसारके समस्त वीर्यको एकमें मिला दो और सब चेतनोंको भी एकमें कर दो। उन सब चेतनोंको अहंके रूपमें जो धारण करनेवाला सर्वात्मा है, वह कहाँ रहता है? वही तो पानीमें छिपा हुआ है। पानीमें छिपे हुए चेतनका नाम ही तो नारायण है। जो सम्पूर्ण जगत्के जड़-चेतन, और चराचर व्यक्ति हैं, उनके समष्टिभूतको कारणवारिमें विद्यमान चेतनको ही नारायण कहते हैं।

श्रीभगवान कपिल जी ने कहा- माताजी, जल में सूर्य की परछाईं पड़ती है। सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में पड़ता है किन्तु जल की शीतलता, चंचलता आदि गुणों का सूर्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसी प्रकार आत्मा प्रकृति के कार्य शरीर में स्थित रहने पर भी उसके सुख-दु:खादि धर्मों से लिप्त नहीं होता है, क्योंकि आत्मा स्वभाव से ही निर्विकार, अकर्ता और निर्गुण है।

किन्तु जब वही जीवात्मा प्रकृति के गुणों से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तब अहंकार से मोहित होकर मैं कर्ता हूँ- ऐसा मानने लगता है। उस अभिमान के कारण वह देह के संसर्ग से किए हुए पुण्य-पापरूप कर्मों के दोष से अपनी स्वाधीनता और शान्ति खो बैठता है तथा उत्तम, मध्यम और नीच योनियों में उत्पन्न होकर संसार चक्र में घूमता रहता है। भय-शोक, अहन्ता-ममता, जन्म-मरणरूप संसार की, कोई सत्ता आत्मा के साथ न होने पर भी, अविद्या के वशीभूत हो सुखी-दु:खी होकर हम संसार के चक्कर में पड़े रहते हैं।

जो चैतन्य आत्मा है, वह देहमें रहकर भी वास्तवमें असंग है, क्योंकि निर्विकार है। यहाँ तो बूढ़े होनेपर भी बच्चे ही रहते हैं। अवस्थाकी कोई बात नहीं। विकारका अर्थ है कि दुनिया बदलती रहती है परन्तु देखनेवाला बदलनेवाली चीजके साथ नहीं बदलता। जाग्रत बदलता है, सुषुप्ति बदलती है, किन्तु आत्मा एक ही रहती है। यह उसकी निर्विकारता हुई। अवस्थाओंमें विकार होता गया, उनके प्रकार और संस्कार अलग-अलग होते गये, परन्तु आत्मदेव एक हैं और बिलकुल निर्विकार रहते हैं। जैसे पानीमें प्रतिबिम्बित सूर्य पानीके हिलनेपर भी नहीं हिलता, वैसे ही इस शरीरमें प्रतिबिम्बित चैतन्य भी ज्यों-का-त्यों रहता है। परन्तु जब यह प्रकृतिके गुणोंको अपना गुण मानकर अपनेको कर्त्ता मान बैठता है कि यह करनेवाला मैं हूँ, तब इसी आसक्तिके कारण प्रकृतिके जो आकार बनते हैं, वे सब इसमें आभासित होते हैं। वस्तुत: आकार-विकार-प्रकार-संस्कार प्रकृतिमें ही होते हैं। आत्मचैतन्यमें नहीं होते। वह तो सबका साक्षी है। उसमें आधि-व्याधि-समाधि-उपाधि कुछ भी नहीं है। वह तो इन सबसे निर्मुक्त है। परन्तु उसमें ध्यानके कारण स्वप्नमें होनेवाली मृत्युके समान इनकी प्रतीति होती है।

इसलिये बुद्धिमान मनुष्य को चाहिये कि वह संसार के विषयों में फँसे हुए चित्त को भगवान की तीव्र भक्ति और वैराग्य के द्वारा धीरे-धीरे अपने मन को वश में लावे। मन को बुरे रास्ते मत जाने दो। हृदयमें भक्ति और बुद्धिमें संसारके प्रति वैराग्य उत्पन्न करके मनको अपने वशमें लाओ। किसीके साथ बैर मत करो। सबमें समताकी दृष्टि रखो और कहीं भी आसक्ति मत करो। मनुष्य को पाने के लिये ही धर्माचरण नहीं करना चाहिए। ब्रह्मचर्य पालन, मौन धारण और निष्काम भाव से कर्म-सम्पादन मनुष्यका परम धर्म है।

यम-नियम का साधन करें। सच्ची श्रद्धा के साथ भगवान की कथा का श्रवण करे। सारे प्राणियों में सम-भाव रक्खे। किसी के साथ भी वैर-भावना न करे। सर्वत्र आसक्ति का परित्याग करे। ब्रह्मचर्य का पालन करे। एकान्तवास करते हुए मौन का अवलम्बन करे। नपा-तुला हुआ मित भाषण करे। भगवद्-इच्छा से जो कुछ प्राप्त हो जाय उससे सन्तोष रक्खे। शरीर-निर्वाहमात्र के लिये स्वल्प भोजन करे। एकान्त में निवास करे। शान्त रहे। सभी के प्रति मैत्री एवं करुणा की भावना रक्खे। धैर्य का अवलम्बन करे। पुत्र-पौत्रादि सम्बन्धियों के सहित इस देह में मैं- मेरेपन का असत् आग्रह न करे। सर्वदा

परमात्मा का चिन्तन करे।

वैसे तो सुख-दु:ख की कोई सत्ता नहीं है और यदि जीव कर्तापन का अभिमान छोड़कर प्रकृति और पुरुष का भेद समझ ले। इन चौबीस तत्त्वों से बना यह शरीर ही प्रकृति है और इसमें बैठी चिद्शक्ति ही पुरुष है।

प्रकृति और पुरुष के विवेक-ज्ञान के बिना इस संसार से मुक्ति नहीं मिल सकती अत: प्रकृति और पुरुष का विचार करे। प्रकृति के गुणों से निर्मित इस संसार और शरीर को अनित्य समझे। अपने हृदयरूपी आकाश में परमात्मा का वैसे ही दर्शन करे जैसे लोग अपने नेत्रों से सूर्य को देखते हैं।

प्रकृति पुरुषका विवेक करना, बुद्धिसे जरा हटकर, साक्षी होकर बैठना, दूसरेके दर्शनको छोड़ देना, अपने-आपको आभाससे बिलकुल मुक्त करके देखना यही सच्चा जीवनदर्शन है।

इसी प्रकार के विचारों से साधक को आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। आत्म-दर्शन हो जाने पर परमात्मा का दर्शन सुलभ हो जाता है। आत्मा परमात्मा का ही अंश है। भगवान की भक्ति करते हुए निरन्तर उनसे कृपा की भीख मांगनी चाहिये। इससे प्राणी का इस संसार से उद्धार हो जाता है। उपासना चाहे निर्गुण (ज्ञानयोग) की हो या चाहे सगुण (भक्तियोग) दोनों का फल भगवत्प्राप्ति है। अधिकारी भेद से दो मार्ग प्रचलित हैं। ईश्वर अर्पण बुद्धि पर जिन सत्कर्मों को अपना लिया जाता है उसी से सगुण-निर्गुण और प्रकाश स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

परमात्माको अपने भीतर ही ढूंढना चाहिए कि परमात्मा किस तरह से प्राप्त हो? जैसे वह जाग्रत अवस्था में रहता है, वैसे ही सुषुप्ति अवस्थामें रहता है।

देवहूति ने पूछा- पुत्र, मेरे मन में एक सन्देह है, उसे मिटाने की कृपा करो। आपके कथनानुसार मुक्ति के लिये प्रकृति और पुरुष का अलग होना, परस्पर छोड़ना, आवश्यक है। प्रकृति एवं पुरुष का स्वतन्त्र ज्ञान मुक्ति के लिये अपेक्षित है किन्तु पुरुष एवं प्रकृति दोनों ही नित्य और एक दूसरे के आश्रय से रहनेवाले हैं इसलिये प्रकृति तो पुरुष को कभी छोड़ ही नहीं सकती।

जिस प्रकार गन्ध और पृथ्वी तथा रस और जल की पृथक्-पृथक् स्थिति नहीं हो सकती, उसी प्रकार पुरुष और प्रकृति भी एक दूसरे को छोड़कर नहीं रह सकते अत: जिनके आश्रय से अकर्तापुरुष को यह कर्म-बन्धन प्राप्त हुआ है, प्रकृति के उन गुणों के रहते हुए उसे कैवल्य-पद कैसे प्राप्त होगा? यदि तत्त्वों का विचार करने से कभी यह संसार-बन्धन का तीव्र भय निवृत्त भी हो जाय, तो भी संसार-बन्धन के कारण प्राकृत गुणों का अभाव न होने से वह भय फिर उपस्थित हो सकता है।

इस तरह से तो प्रकृति और पुरुषका कभी विवेक ही नहीं होगा, क्योंकि दोनों एक दूसरेसे मिले हुए हैं। प्रकृति में पुरुष दिखता है पुरुषमें प्रकृति दीखती है।

कपिल जी ने कहा- माताजी, जिस प्रकार अरणि से अग्नि की उत्पत्ति होती है और फिर वही अग्नि अपने कारणरूप अरणि को जलाकर भस्म कर डालता है उसी प्रकार निष्कामभाव से किये हुए स्वधर्म के पालन द्वारा अन्त:करण के शुद्धहोने से, भगवत्कथा के श्रवण से पुष्ट हुई मेरी भक्ति से, तत्त्व साक्षात्कार करनेवाले ज्ञान से, प्रबल वैराग्य से, व्रत-नियम के सहित ध्यान के अभ्यास से और चित्त की प्रगाढ़ एकाग्रता से पुरुष की प्रकृति (अविद्या) दिन-रात क्षीण होती हुई धीरे-धीरे लीन हो जाती है, असमर्थ हो जाती है फिर वह प्रकृति, पुरुष को अपनी ओर खींच नहीं पाती। इस प्रकार के निर्मल चितवाले साधक को ब्रह्मलोक पर्यंत सभी प्रकार के भोगों से वैराग्य हो जाता है। उसे योग से प्राप्त होनेवाली अणिमा आदि सिद्धियाँ भी अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पातीं। लिंगशरीर के नष्ट हो जाने से वह मृत्यु को जीत कर सीधे मेरे पास पहुँच जाता है। वहाँ पहुँचकर योगी फिर लौट कर नहीं आता है। हमारे लोक में मृत्यु का भी कोई वश नहीं चलता।

अपना कल्याण चाहनेवाले व्यक्ति को चाहिये कि वह अपनी शक्तिभर स्वधर्म का आचरण करे और विधियों से अपने को दूर रक्खे। भाग्यवश जो कुछ प्राप्त हो जाय उसी से सन्तोष कर ले। उसे चाहिये कि वह सदा आत्मज्ञानियों की चरणोपासना करता रहे। विषय-वासनाओं को बढ़ानेवाले कर्मों से दूर रहना, संसारबन्धन छुड़ानेवाले धर्मों से प्रेम करना, पवित्र और परिमित भोजन करना, निरन्तर एकान्त और निर्जन स्थान में निवास करना, मन, वाणी और शरीर से किसी प्राणी को न सताना, सत्य भाषण करना, चोरी न करना, आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, तपस्या करना, बाहर भीतर से पवित्र रहना, शास्त्रों का अध्ययन करना, भगवान की पूजा करना, वाणी का संयम करना, उत्तम आसनों का अभ्यास करके स्थिरता के साथ बैठना, प्राणायाम के द्वारा धीरे-धीरे श्वास को जीतना, इन्द्रियों को मन के द्वारा विषयों से हटाकर अपने हृदय में वापस लाना, एक स्थान में प्राण को समाहित करना, निरन्तर भगवान की लीलाओं का चिन्तन और चित्त को समाहित करके परमात्मा के ध्यान में लगाना चाहिये।

अपने हृदय में कल्याणकामी पुरुष को चाहिये कि वह खड़े हुए, चलते हुए, बैठे हुए, लेटे हुए परमात्मा का, अपनी रुचि के अनुसार ध्यान करे। जब भगवान के समस्त अंगों में, पूरे श्रीविग्रह में, चित्त लग जाय तो फिर वह उनके समस्त अंगों में लगे हुए उस चित्त को विशेषरूप से एक-एक अंग में लगावे। ध्यान के क्रम में भगवान के चरणों का बड़ा महत्त्व है अत: सर्वप्रथम चरणों का ही ध्यान करना चाहिये। वे वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल के मंगलमय चिन्हों से युक्त है तथा अपनी नख-मणि-चन्द्रिका से ध्यान करनेवाले के चित्त के अन्धकार को समाप्त कर देते हैं।

तदनन्तर दोनों घुटनों का, जांघों का, कटिभाग का, नाभिप्रदेश का, प्रशस्त वक्ष:स्थल का, कण्ठ का तथा शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुए चारों बाहुओं का ध्यान करे फिर इसके उपर कौस्तुभ मणि से विभूषित कण्ठ का, पुन: भगवान के मुख-कमल का वंदनारविन्दम्), उनके नेत्रों की प्रसन्न चितवन का तथा अन्त में मधुर मुस्कान से मनोहर उनके मुख का ध्यान करे।

इस प्रकार ध्यान में तन्मय होकर भगवान के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ को देखने की इच्छा न करे। साधक जब इस प्रकार भगवान का ध्यान करता है तब उसका श्रीहरि में प्रगाढ़ प्रेम हो जाता है और हृदय भक्ति से द्रवित हो जाता है, शरीर में आनन्दातिरेक के कारण रोमांच हो जाता है। आँखों से आनन्दाश्रुओं की धारा प्रवाहित होने लगती हैं। वह परमात्मा की अनुपम दिव्य विभूतियों का अनुभव करता है। संसार के सारे दु:खों एवं सुखों से वह ऊपर उठ जाता है। संसार में निवास करते हुए वह जीवन्मुक्त की अवस्था में विचरण करता है। उसे अपने शरीर की सुधि उसी प्रकार नहीं रहती जैसे मदिरा से मदान्ध व्यक्ति को अपने शरीर के वस्त्र का ख्याल नहीं रहता। शरीर के साथ ही पुत्र-कलत्र आदि से भी उसकी अहन्ता एवं ममता समाप्त हो जाती है। संसार उसे स्वप्न की भाँति प्रतीत होता है। अन्त में साधक इस अचिन्त्यशक्तिमयी माया को भगवान की कृपा से ही जीतकर अपने वास्तविक स्वरूप- ब्रह्मरूप में स्थित हो जाता है।

देवहूति ने कहा- प्रभो, आपने सांख्य-शास्त्र के अनुसार प्रकृति, पुरुष और तत्त्वों का स्वरूप निरूपित किया है। भक्ति-योग का भी वर्णन आपने किया है। किन्तु अब आप भक्ति के मार्ग को मुझसे विस्तारपूवर्क वर्णन कीजिये। इसके साथ ही जीवों की जन्म-मरणरूप अनेक प्रकार की गतियों की भी व्याख्या कीजिये, जिसे सुनकर लोगों को वैराग्य हो जाय। संसार के संहारक काल का स्वरूप क्या है? कहते हैं यह काल ईश्वर का स्वरूप है और ब्रह्मा आदि पर भी शासन करनेवाला है। ज्ञान दृष्टि के विनष्ट हो जाने से, देह आदि झूठी वस्तुओं में आत्मा की बुद्धि करनेवाले, अनादि काल से बुद्धि के विविध कर्मों में आसक्ति के कारण, जो श्रान्त होकर चिरकाल से अपार अन्धकारमय संसार में सोये पड़े हैं, ऐसे जीव को जगाने के लिये

आप योग-प्रकाशक सूर्य की भाँति प्रकट हुए हैं।

मैत्रेयजी ने कहा- कुरुश्रेष्ठ विदुरजी, माता के इस प्रकार मनोहर वचनों को सुनकर कपिल जी प्रसन्न हो उठे, उनकी प्रशंसा की और बोले- भक्तों के भाव के अनुसार भक्तियोग का प्रकाश अनेक प्रकार से होता है क्योंकि स्वभाव और गुणों के भेद से मनुष्यों के भाव में भी भिन्नता आ जाती है जो व्यक्ति हृदय में हिंसा, दम्भ और मात्सर्य आदि भाव रखकर मेरा भजन करता है उसकी भक्ति तामसी है और वह तामस भक्त है। जो पुरुष विषय, यश एवं ऐश्वर्य की कामना से मूर्ति आदि में मेरा पूजन करता है, वह राजस भक्त है और उसकी भक्ति राजसी है। जो मानव पापों का क्षय करने के लिये अपना कर्त्तव्य समझकर, अर्पण करने की भावना से, मेरा पूजन करता है, वह सात्त्विक भक्त है और उसकी भक्ति सात्त्विकी भक्ति है, इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है। भक्ति नौ प्रकार की बतलाई गई है- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, बन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन। इसमें प्रत्येक भक्ति तामस, राजस और सात्त्विक भेद से तीन-तीन प्रकार की है। उनमें भी पुन: प्रत्येक तीन-तीन प्रकार की होने से भक्ति के कुल मिलाकर ८१ भेद हो जाते हैं।

भक्ति के पुन: दो भेद होते हैं- निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति। निर्गुण भक्ति सबसे उत्तम भक्ति होती है। यहाँ निर्गुण का अर्थ हैं, जो सत्त्व, रज और तम से रहित है। जो त्रिगुणों से ऊपर है, वह निर्गुण है। इसी बात का प्रतिपादन करते हुए भगवान कपिल कहते हैं- जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखण्डरूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मन की गति तेल की अविच्छिन्न धार की भाँति, मेरी ओर प्रवाहित होने लगती है। उस समय भक्त मुझ भगवान से निष्काम प्रेम करता है। उसके प्रेम में किसी प्रकार की कामना नहीं होती। भगवान भी यदि उसे सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष देना चाहें तो भी वह उन्हें नहीं लेता। वह एकमात्र की निष्काम सेवा करना ही अपना परम कर्त्तव्य समझता है, उसी में परमसुख मानता है। मुक्ति छ: प्रकार की होती है। सालोक्य- भगवान के नित्य धाम में निवास, सार्ष्टि- भगवान के समान ऐश्वर्यभोग, सामीप्य- भगवान की नित्यसमीपता, सारूप्य- भगवान का सा रूप और एकत्व- भगवान के विग्रह में समाजाना, उनसे एक हो जाना या ब्रह्मरूप प्राप्त कर लेना। निष्काम धर्मका पालन करना चाहिए, भगवानके प्रति तीव्र भक्ति करनी चाहिए और उसके सम्बन्धमें सतत सावधान रहना चाहिए।

हमारे एकान्त भक्त सारे संसार के प्राणियों में एकमात्र मेरा ही दर्शन करते हैं। वे महापुरुषों का सम्मान, दीनों पर दया तथा समान स्थितिवालों के प्रति मित्रता का व्यवहार करते हैं। जो सभी प्राणियों में आत्मा के रूप में स्थित मुझे छोड़कर, मेरी उपेक्षा कर केवल प्रतिमा-पूजन में ही लगा रहता है, वह तो मानों राख में ही हवन करता है। ऐसे प्राणियों के मन को शान्ति नहीं प्राप्ति होती। जीवों का अपमान करनेवाला व्यक्ति यदि उत्तमोत्तम वस्तुओं से मेरी मूर्ति में पूजा करता है तो भी मुझे प्रसन्नता नहीं होती, सन्तुष्टि नहीं होती।

काल भगवान विष्णु का ही स्वरूप है। काल ही सारे संसार पर शासन करनेवाला, यज्ञों का फलदाता परमात्मा है। इसका न कोई मित्र है और न कोई शत्रु और न कोई सगा-सम्बन्धी ही है। यह सर्वदा सावधान रहता है। भगवान को भूलकर प्रमाद में पड़े हुए प्राणियों पर आक्रमण कर यह उनका संहार करता रहता है।

इसी के भय से वायु चलता है, इसी के भय से सूर्य तपता है, इसी के भय से इन्द्र वर्षा करते हैं और इसी के भय से तारे चमकते हैं। इसी से भय-भीत होकर लता-वृक्ष आदि समय पर फल-फूल आदि धारण करते हैं। सारी प्रकृति और प्राकृतिक वातावरण इसके द्वारा संचालित होते रहते हैं। यह अविनाशी काल स्वयं अनादि किन्तु दूसरों का आदिकर्ता (उत्पादक) है तथा स्वयं अनन्त होकर भी दूसरों का अन्त करनेवाला है। मृत्यु भी उसीके भय से दौड़ती है।

माताजी, जिस प्रकार वायु के द्वारा उड़ाया जानेवाला मेघ-मण्डल उसके बल को नहीं जानता उसी प्रकार यह जीव भी बलवान काल की प्रेरणा से भिन्न-भिन्न अवस्थाओं तथा योनियों में भ्रमण करता रहता है किन्तु उसके बल-पराक्रम को नहीं जानता। जीव सुख मिलने की कामना से बड़े-बड़े कष्टों को सहकर धन का उपार्जन करता है किन्तु काल भगवान जब उसे नष्ट कर देते हैं तो उसे बड़ा दु:ख होता है, वह उसके लिये रोता है, विलाप करता है। इसका कारण यह है कि यह मन्द मति जीव अपने इस नश्वर शरीर तथा उसके सम्बन्धियों घर, खेत और धन आदि को मोहवश नित्य मान बैठता है।

जीव इस संसार में जिन-जिन योनियों में जाता है, वहाँ भी उसे सुख की प्राप्ति नहीं होती। यह भगवान की माया से ऐसा मोहित हो रहा है कि कर्मवश नारकीय योनियों में जन्म लेने पर भी, वहाँ के विष्टा आदि भोगों में ही, सुख मानने के कारण उसे भी छोड़ना नहीं चाहता। सूअर-कूकर को भी अपना शरीर-परम प्रिय प्रतीत होता है।

यह मूर्ख अपने शरीर, स्त्री, पुत्र, गृह, पशु, धन और बन्धु-बान्धवों में आसक्त रहकर नाना प्रकार के मनोरथों को करता हुआ अपने-आपको बड़ा भाग्यशाली समझता है। इनके पालन-पोषण की चिन्ता से इसके सम्पूर्ण अंग जलते रहते हैं फिर भी दुर्वासनाओं से दूषित हृदय होने के कारण यह मूढ़ निरन्तर इन्हीं के लिये भाँति-भाँति के पाप करता रहता है। स्त्री के साथ एकान्त में उसके हाव-भावों से आकृष्ट होकर तथा शिशुओं की तोतली बोली सुनकर वह अपने आपको परम भाग्यशाली समझता है। बार-बार प्रयत्न करने पर भी जब इसकी कोई जीविका नहीं चलती तो यह लोभ के वशीभूत होकर दूसरों का धन हड़पने की इच्छा करता है। जब भाग्यहीनता के कारण इसका कोई प्रयत्न सफल नहीं होता और यह परिवार के भरण-पोषण में असमर्थ होकर शक्तिहीन होकर पड़ जाता है तब परिवार के स्त्री-पुत्रादि सदस्य पहले की भाँति इसका आदर नहीं करते जैसे कृपण किसान हल खींचने में असमर्थ बूढ़े बैल की उपेक्षा कर देता है वैसे ही परिवार के लोग इसकी उपेक्षा करना शुरू कर देते हैं।

वृद्धावस्था में पहुंचने पर प्राणी का रूप बिगड़ जाता है। शरीर भाँति-भाँति के रोगों से ग्रस्त हो जाता है। जठराग्नि मन्द पड़ जाती हैं। भोजन और पुरुषाथ दोनों ही कम हो जाते हैं। वह मरणासन्न होकर घर में पड़ा रहता है और कुत्ते की भाँति स्त्री-पुत्र आदि के द्वारा अपमानपूर्वक दिये गये रोटी के टुकड़े जाकर किसी-किसी प्रकार जीवन निर्वाह करता है।

सींग झड़े अरु खुर घिसे पीठ न बोझा लेय। ऐसे बूढ़े बैल को कौन बाँधि भुसा देय॥

मृत्यु का समय निकट आने पर वायु के ऊपर चढ़ने से मरणासन्न व्यक्ति की पुतलियाँ चढ़ जाती हैं, श्वास-प्रश्वास की नलिकाएँ कफ से रुद्ध हो जाती हैं तथा कफ के बढ़ जाने के कारण कण्ठ में घरघराहट होने लगती है। भाई-बन्धु मरने की बेला में इसे घेर कर बैठ जाते हैं। यह बुलाने पर भी बोलता नहीं और पूछने पर भी किसी को नहीं पहचानता। इस प्रकार वह रोते-रोते इस घर और शरीर को बड़े कष्ट के साथ छोड़ता है। उस समय दो भयंकर क्रूद्ध, लाल-लाल आँखोंवाले यम-दूत उसके प्राण को हठात् खींच कर ले जाने के लिये वहाँ आ जाते हैं उन्हें देखकर यह भय के मारे टट्टी-पेशाब कर देता है।

वे यमदूत उसे यातना शरीर में डाल देते हैं और फिर जिस प्रकार सिपाही किसी अपराधी को ले जाते हैं उसी प्रकार गले में रस्सी बाँध कर घसीटते हुए उसे यमलोक के लम्बे मार्ग पर ले जाते हैं। भूख-प्यास उसे बेचैन कर देती है। सूर्य के सन्ताप, दवानल एवं लू से वह सन्तप्त हो बेचैन हो जाता है। मार्ग में न कहीं जल मिलता है और न कही विश्राम-स्थल। तपे हुए बालुओं पर जब उससे एक पग भी नहीं चला जाता तब यमदूत उसकी पीठ पर कोड़े बरसाते हैं। स्थूल शरीर से इस पापी जीव को निकाला जाता है तो उसे एक यातना शरीर प्रदान कर दिया जाता है, जिससे वह मार्ग और नरक के कष्टों को भोगता है। बार-बार वह गिरता है कोड़ा लगने पर उठता है फिर गिरता है। इस प्रकार निन्यानबे हजार योजन-मार्ग

लाँघकर २-३ मुहूर्त में उसे यम-लोक में पहुँचना पड़ता है। उसे देखते ही यमराज उसे नरक में डलवा देते हैं, यमदूत कहीं उसके शरीर को आग से जलाते हैं, कहीं तप्त तेल में पकाते हैं, कहीं उसे जहरीले साँप काटते हैं, कहीं बड़े-बड़े बिच्छू डंक मारते हैं, कहीं कुत्ते, गीध आदि उसकी अँतड़ियों को निकालते हैं। जिसने अपने जीवन में पशुओं का वध किया है उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं। पर्वत की चोटियों से नीचे ढकेला जाता है। उसे कहीं जल में डुबाया जाता है। जिसने अपने जीवन काल में धर्म का अर्जन नहीं किया है, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, उसे भयंकर यम-यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। अपने जीवन में पाप की कमाई से ही परिवार का भरण-पोषण करनेवाला जीव अन्त में अन्धतामिस्र नामक नरक में गिरता है, जो नरकों में चरम सीमा का कष्टप्रद स्थान है। पापी प्राणी नरक का कष्ट भोगने के बाद सूकर, कूकर, कीट-पतंग आदि चौरासी सहस्र योनियों में जन्म लेने के बाद फिर मनुष्य योनि में जन्म लेता है। हे माता, यह जीव देवता या मनुष्य या कुत्ता या बिल्ली या शूकर आदि जिस तन में जन्म पाता है, परमेश्वर की माया से उसी योनि में सदा रहने की इच्छा करता है और प्रसन्न रहता है। उसका मन परमेश्वर की कृपा के बिना संसार से विरक्त नहीं होता। सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण तीन तरह के स्वभाव होते हैं जिसमें रजोगुण अधिक हो वह राजसी कर्म करके सत्यलोक को पाता है, तमोगुण के अधिक रहने से पाप करनेवाला मनुष्य पाताल में नरक के बीच पड़ता है और सतोगुणी मनुष्य शुभ कर्म करके देवलोक में पहुँचता है।

मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहकर ईश्वर का भजन करके भवसागरपार उतरना चाहे, वह अपनी विवाहिता स्त्री से, रूपवती हो या कुरूपा, प्रीति रखकर दूसरी नारी का प्रसंग न करे। थोड़ा जितना धन परमेश्वर उसको दे उतने में अपने परिवार का पालन करे। पाप की कौड़ी पर इच्छा न रक्खे। गृहस्थ को उचित है कि नित्य देवकर्म, पितृकर्म करे। यज्ञ, तप, दान, व्रत आदि जो कर्म करे उसे ईश्वर को अर्पण करे, अपने परिवार के लोगों को ऐसा समझता रहे कि संसार में ये सब मेरे जीवन के फंदे है। मुझमें ऐसी कोई सामर्थ्य नहीं जो इनके फंदे से छूट सकूँ। इस जाल से छुड़ानेवाला कोई है तो सिर्फ ईश्वर। इस तरह का विचार हृदय में रखकर उनका पालन करना चाहिये। गृहस्थ को अपना मन विरक्त रखना चाहिए। वैरागी व सन्यासी के लिये संसारी सुख का त्याग करना उचित है। गृहस्थी के बीच रहकर अपना मन संसारी माया से विरक्त रखें, मनको ईश्वर के ध्यान में लगाए रखें ऐसे गृहस्थ मरने के उपरान्त सूर्यमण्डल में से होकर वैकुण्ठ को जाते हैं। जो लोग देवताओं और पितरों की पूजा और दान-पुण्य कुछ नहीं करते, परमेश्वर के भजन-कीर्तन, स्मरण में प्रीति नहीं रखते केवल अपना परिवार पालने और इन्द्रियों को सुख देने में अपना जन्म बिताते हैं ऐसे लोग मरनेके बाद चन्द्रमण्डल से होकर पितृलोक को जाते हैं और उन्हें बार-बार इस संसार में जन्म लेना पड़ता है मृत्यु के आवागमन के चक्र उसे नहीं छोड़ते।

मनुष्य का वैराग्य बलवान होना चाहिए। योग ऐसा होना चाहिए, जिसमें तपस्या हो। समाधि ऐसी होनी चाहिए जिसमें तीव्रता हो। जब प्रकृति-पुरुषका विवेक होगा तो प्रकृति बिलकुल लोप हो जायेगी। प्रकृति अज्ञानीके लिए अनर्थ है। जब मनुष्य जन्म-जन्म के संस्कारोंसे शुद्ध हो जाता है तो उसको ज्ञान हो जाता है। उसको भगवद्भक्तिकी प्राप्ति होती है तत्त्वका अनुभव होने लगता है। उसके सारे सन्देह मिट जाते हैं और उसको अपुनरावर्ती गति प्राप्त होती है।

योग करते समय सिद्धियाँ बहुत आती हैं और दुनियाके लोग सिद्धियोंको बहुत महत्व देते हैं। पर मनुष्य को इन सिद्धियोंमें आसक्ति नहीं करनी चाहिए और न ही अभिमान करना चाहिए। अन्यथा मायाके चक्कर में पड़े रह जाओगे। जहाँ परमात्मा की प्राप्ति होती है वहाँ मृत्यु बिलकुल नहीं होती। सम्पूर्ण संसारमें आसक्तिका अभाव हो जाना बस यही योगियोंके सब प्रकारके योग-साधनका एकमात्र अभिष्ठ फल है।

योग दो प्रकार का होता है एक सबीज दूसरा निर्बीज। निर्बीज योग थोड़ा कठिन और सबीज योग थोड़ा सरल है। सबीज

योग से मन पहले प्रसन्न होता है फिर अपनेआप सन्मार्गपर चलने लगता है। सुगमता, शक्तिके अनुसार अपने धर्मका पालन करने और विधर्मसे निवृत्त होनेसे ही आती है। प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिले, उसीमें सन्तोष करना चाहिए। आत्मवेत्ताओंके चरणोंकी पूजा करनी चाहिए। आत्मवेत्ताओंके चरणका देवता बड़ा जागरूक देवता है। इन्द्रिय ग्राम द्वारा विषयोंके सेवनका जो अभ्यास है उसको छोड़ देना चाहिए। जिस धर्मसे मोक्ष प्राप्त हो उससे प्रीति करनी चाहिए।

महात्मा होने के लिए वैराग्य है, भक्ति है, और भी बहुत साधन है। परंतु परमात्मा होनेके लिए एक ही साधन है वह है तत्त्वज्ञान के द्वारा अविद्या की निवृति। जो लोग व्यक्तित्वके उत्कर्षके लिए साधना करते हैं, उनका दृष्टिकोण ही अलग होता है और जो लोग व्यक्तित्वका उच्छेद करके परमात्मासे एक होनेके लिए साधन करते हैं, उनका दृष्टिकोण ही अलग होगा। परमात्मासे जो एक हो गया है, उसको शरीर है या नहीं, इसका पता नहीं चलता। शरीर तो प्रारब्धके अनुसार अपना काम करता है। ऐसे महात्मा की दृष्टि उसकी तरफ नहीं जाती। ऐसा मनुष्य अपने पुत्र और धनसे अलग होता है जैसे आत्मा शरीर से बिलकुल अलग है। जिस तरह से आग उल्मुकसे, चिंगारी से और धुएँसे अलग है, उसी तरह यह आत्मा दुनियामें मालूम पड़नेवाली अहमता, ममता से अलग है। भूत, इन्द्रिय, प्रकृति, जीव, इन सबसे अलग है। आत्मा ही भगवान है, ब्रह्म है। सबमें आत्मा और आत्मा सबमें ऐसी अनन्य दृष्टि होनी चाहिए। देहादिके भेदसे यह आत्मा नाना स्वरूपवाली मालूम पड़ती है। जो लोग अधिकार भेदसे दम्भ अथवा ईर्ष्या आदि के कारण भक्ति करते हैं वे तमोगुणी होते हैं। जो ऐश, ऐश्वर्यके लिये भक्ति करते हैं वे रजोगुणी होते हैं। जो पापक्षयके लिए भक्ति करते है वे ईश्वरमें अपने समस्त कर्म अर्पण कर देते हैं वे सात्विक होते हैं। हमारा हृदय द्रवित हो जायें, पिघल जाये, दुनियाकी ममता छूट जाये, कठोरता निवृत्त हो जाये और जैसे गंगाजीकी लहरें समुद्रकी ओर चलती हैं, वैसे ही हमारी प्रवृत्ति भगवान की ओर चलती है।

समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्थित आत्माके रूपमें बैठे हुए मुझको छोड़कर जो मूर्खतासे पूजा करता है वह तो राखमें होम करने जैसा है। प्रज्ज्वलित अग्निमें ही होम करनेपर पुण्य होता है। किसी बुद्धि अग्निमें होम करनेपर पुण्यकी उत्पत्ति नहीं होती। जब मनुष्य सबके भीतर परमात्माको देखता है, तब वह निर्भय हो जाता है। प्राणियोंमें श्रेष्ठता-कनिष्ठता का क्रम है। जड़से चेतनावाले श्रेष्ठ हैं, उनमें ज्ञानेन्द्रिय वृत्तिवाले वृक्ष श्रेष्ठ है, उसमें मत्स्यादि जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे उड़नेवाले भँवरे आदि श्रेष्ठ हैं, उनसे रेंगनेवाले जीव, सर्पादि श्रेष्ठ हैं, उनसे पक्षी, कौआ आदि श्रेष्ठ है, उनसे बहुपाद श्रेष्ठ हैं, उनमें से चतुष्पाद श्रेष्ठ है और उन चतुष्पादमें द्विपद मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्योंमें चातुर्वण्य, चातुर्वण्य में ब्राह्मण और ब्राह्मणोंमे वेदज्ञ श्रेष्ठ है। जैसे आग की लौ होती है, वैसे ही परमात्माकी लौ समस्त प्राणियोंके हृदयमें जल रही है। वही प्रत्येक प्राणीके हृदयमें भी आत्मा बनकर बैठा है। इसतरह से साक्षात परमात्माको प्रणाम करना है। भगवान कपिल ने भक्तियोग का वर्णन, परमात्मा स्वरूप, समस्त देश, काल और वस्तुमें परमात्मा प्रविष्ट है, उसका न कोई प्रिय है, न अप्रिय, न कोई भाई-बन्धु है, न शत्रु। सबमें एकसमान है। उसकी शक्तिसे सृष्टिमें सारी क्रियाएं होती है। परमात्माके भयसे ही पेड़ फलते हैं, लताएँ खिलती है, फल-फूल लगते है, नदियाँ बहती हैं, समुद्र स्थिर रहता है, अग्नि प्रज्ज्वलित होती है इत्यादि, इत्यादि। यह सब भगवानकी महिमा है। इसीसे सृष्टिके सब पदार्थ अपना अपना काम स्वयं करते है।

यहाँ गर्भस्थ शिशु को ऋषि कहा गया है। इसका तात्पर्य यही है कि उस स्थिति में शिशु को जो निर्वेद होता है, संसार से जो वैराग्य होता है और भगवान के चरणों में जो तल्लीनता होती है वह किसी ऋषि से कम नहीं होती। पृथ्वी पर माता के रुधिर और मूत्र में पड़ा हुआ वह बालक विष्ठा के कीड़े के समान छटपटाता है। उसका गर्भवास के समय का सारा ज्ञान-वैराग्य समाप्त हो जाता है और वह विपरीत गति (देहाभिमानरूप अज्ञान की दशा) को प्राप्त होकर बारम्बार जोर-जोर से रोता है।

शैशवावस्था में उस जीव को विविध कष्ट होते हैं। खटमल, मच्छर और भूख-प्यास आदि उसे परेशान करते हैं। वह विकल होकर रोने लगता है। लोग समझते हैं इसी प्रकार रो रहा है फिर उसे बहलाने फुसलाने का कार्य करते हैं। इसी प्रकार बाल्य (कौमार) और पौगण्ड अवस्थाओं के कष्ट को भोगकर वह जीव युवावस्था में पहुँचता है। वहाँ वह साथियों के चक्कर में पड़कर कामुक बन जाता है। इस संसार में दो इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं- एक रसनेन्द्रिय (जिव्हा) और दूसरी जननेन्द्रिय, इनको शिश्नोदर भी कहते हैं। इन इन्द्रियों के वशीभूत होकर मनुष्य सत्य, पवित्रता, दया, मौन, सुबुद्धि, श्री, ह्री, शम, दम, सब कुछ त्याग देता है, फिर तो उसके पतन की सीमा नहीं रहती। इसलिये यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहता हो तो उसे विषयभोग के जो खिलौने हैं, क्रीडामृग हैं- उनका साथ नहीं करना चाहिये।

मानव जीवन में जो यौन-आकर्षण है, स्त्री-पुरुष की परस्पर आसक्ति है, वह सबसे अधिक बन्धन का हेतु हैं। किसी दूसरे में आसक्ति से इतना प्रबल बन्धन नहीं होता जितना कि स्त्री के प्रति आसक्ति से होता है, और स्त्रियों के संगियों का संग करने से होता है। संसारमें दो इन्द्रियां बड़ी प्रबल है- एक रसनेन्द्रिय और दूसरी जननेन्द्रिय। इन इन्द्रियोके वशमें आकर मनुष्य सत्य, पवित्रता, दया, मौन, सुबुद्धि, श्री, शम, दम सबकुछ छोड़ देता है। फिर उसके पतनकी सीमा नहीं रहती। इसलिए अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्य को विषय-भोगके जो खिलौने हैं, क्रीड़ामृग है इनका त्याग कर देना चाहिए। मनुष्यके जीवन में यौन आकर्षण है, स्त्री-पुरुषकी परस्पर आसक्ति है, वह सबसे अधिक बन्धनका हेतु है। उसको किसी औरका संग करनेसे इतना बन्धन नहीं होता। स्त्रीमें पुंस्त्व नहीं होता और पुरुषमें स्त्रीत्व नहीं होता। इसलिए दोनों एक-दूसरेको दूसरे के साथ मिलकर सुखी होनेका प्रयास करते हैं किन्तु अन्तमें यहीं बन्धन हो जाता है। दुनियामें जो अनर्थ देखनेको मिलते हैं, वो इसी कारण से है। इसलिए जो मायासे पार जाना चाहे, उनको इन चक्करोंमे नहीं फंसना चाहिए। यह जो स्त्री है वह पूर्वजन्ममें पुरुष रही होगी, अपनी स्त्री-आसक्तिके कारण पुरुष ही स्त्री हो गया। पुरुष आसक्तिके कारण स्त्री ही पुरुष हो गयी। यह कभी नहीं होता जो हमेशा स्त्री है वह स्त्री रहेगी जो पुरुष है वो हमेशा पुरुष ही रहेगा। सनातन धर्म में स्त्री पुरुष हो जाती है और पुरुष स्त्री हो जाता है। आकृति सूक्ष्म शरीरमें भी होती है, पर जीवात्मामें नहीं होती। वासनाके अनुसार सूक्ष्म शरीर बदल जाता है। मनुष्य यदि इसमें फँस जाए तो इस चक्करसे कभी निकल नहीं सकता। माया ही पति बनकर आती है और माया ही स्त्री बनकर आती है। इसीसे मनुष्यको मायासे बचना चाहिए। यही मायाका स्वरूप है।

भगवान की यह माया बड़े-बड़े दिग्विजयी सम्राटों को भी केवल अपनी भौहों के इशारे से पदाक्रान्त करती रहती है। जो व्यक्ति योग के परम पद पर आरूढ होना चाहता हो अथवा जिसे मेरी आराधना के प्रभाव से आत्मा-अनात्मा का विवेक हो गया हो, वह स्त्रियों का संग कभी न करें क्योंकि स्त्रियों को नरक का खुला द्वार बतलाया गया है। यह माया विरचित लोक है।

अत: मुमुक्षु पुरुष को मरण आदि से भय,दीनता अथवा मोह नहीं होना चाहिये। उसे शरीर से निरपेक्ष रहकर उसे धरोहर की भाँति समझकर, उसके प्रति अनासक्त रहते हुए विचरण करना चाहिये और निरन्तर भगवान का भजन करना चाहिये।

कपिलजी कहते हैं- माताजी, जो लोग घर में रहकर सकाम भाव से गृहस्थ धर्मों का पालन करते हैं वे तरह-तरह की कामनाओं से मोहित रहने के कारण भगवान की उपासना से विमुख हो जाते हैं। ऐसे लोग बड़ी श्रद्धा के साथ देवताओं और पितरों की आराधना करते रहते हैं। इसका फल यह होता है कि ऐसे लोग शरीर त्यागने के बाद चन्द्रमार्ग से चन्द्रलोक में जाकर सोमपान करते हैं और फिर पुण्य के क्षीण हो जाने पर इसी लोक में लौटकर आते हैं।

और जो विवेकी जन निष्काम भाव से स्वधर्म का आचरण भगवान की प्रसन्नता के लिये करते हैं, वे अनासक्त, प्रशान्त, शुद्धचित्त, निवृत्ति-धर्मपरायण, ममता से रहित, अहंकार-शून्य और शुद्धचित्त हो जाते हैं। ऐसे लोग अन्त में सूर्यमार्ग

(अर्चिमार्ग या देवयान) से जाकर संसार के नियन्ता श्रीहरि को प्राप्त होते हैं। सकाम भाव से देवों एवं पितरों की उपासना करनेवाले लोग जिस मार्ग से चन्द्रलोक में जाते हैं, उसे चन्द्रमार्ग कहते हैं। ऐसे लोग पुण्य के क्षीण होने पर मृत्युलोक में ही वापस आ जाते हैं और जन्ममरण के चक्कर में पड़े रहते हैं। इसके अतिरिक्त जो निष्काम भाव से स्वधर्म का आचरण करते हुए भगवान की सेवा में लगे रहते हैं वे सूर्यमार्म के द्वारा भगवान श्री हरि के पास पहुँचे हैं। ये ही लोग मुक्ति के भागीदार होते हैं। माताजी, अब तुम भी अत्यन्त भक्ति-भाव से उन्हीं हरि के ही चरण कमल का आश्रय लो, जो सारे प्राणियों के हृदय-कमल पर निवास करते हैं, जो सबके मन-मन्दिर में विराजमान रहते हैं।

जो संसारमें ही रहना चाहता है, जिसकी इसमें आसक्ति होती है, उसको यहाँ बार-बार आना-जाना पड़ता है। जो इससे मुक्त होना चाहता है, वह निष्काम भावसे अपना जीवन व्यतीत करके इससे छूट जाता है। एक चन्द्रद्वार होता है और दूसरा सूर्यद्वार होता है। वासनाका द्वार चन्द्राकार है और ज्ञानका द्वार सूर्यद्वार है। सूर्य प्रकाशका देवता है और चन्द्रमा प्रियता और वासनाका देवता है। मनुष्यको वासनाके वशमें नहीं होना चाहिए। सबके हृदय-कमलपर आसन बनाकर बैठे हुए जो भगवान हैं उनकी शरणमें जाना चाहिए।

भगवान श्रीहरि ही सब के आदि हैं, मूल हैं। जो उनकी शरण का आश्रय लेता है, वह संसार से छूट जाता है। जो लोग धर्म, अर्थ और काम में ही फँसे रहकर भगवान की कथारूपी सुधा का पान नहीं करते, वे भाग्य के द्वारा मारे गये हैं। उन्हें भगवान की कथा-सुधा की अपेक्षा संसार का विषयरूपी विष-वृक्ष ही अधिक शीतल और सुखकर प्रतीत होता है। ऐसे लोग गुबरैल के समान हैं, सूकर के समान हैं, जो शक्कर का परित्याग कर विष्ठा का ही अन्वेषण करता रहता है।

इसलिये माताजी, जिनके चरण-कमल सदा उपासना के योग्य हैं, भजने के लायक हैं, उन्हीं का तुम भजन करो, उन्हीं के गुणों का सतत चिन्तन करो। इससे निश्चय ही तुम्हारा परम कल्याण हो जायेगा। भगवान वासुदेव के प्रति किया हुआ भक्तियोग संसार से वैराग्य और ब्रह्मसाक्षात्काररूप ज्ञान की प्राप्ति करा देता है।

यही सार है कि आप भगवान की शरण में जाओ वही सबके आदि हैं। जो उनकी शरणमें जाता है, वह संसारसे छूट जाता है। भगवान की प्रीति होनेपर दूसरेसे प्रीति छूट जायेगी इसीका नाम वैराग्य है। यह परमात्मा एक है और इन्द्रियोंके कारण अनेक रूपोंमे भास रहा है। जब मनुष्यका मन एकाग्र असंग और वैराग्यवान होगा तो उस परमात्माका दर्शन होगा।

कपिल बोले- माता, मैंने तुमको ब्रह्मज्ञान बताया, प्रकृति-पुरुषका तत्त्व बताया, मेरे स्वरूपमें जिससे निष्ठा हो उसका ज्ञान कराया और गुणातीत भक्ति बतायी। ज्ञान और भक्ति में कोई अन्तर नहीं है। सुननेपर इसमें कोई अन्तर आ जाता है तो वह सम्प्रदाय भेद है। जैसे गुरु शिष्यको प्राप्तव्य वस्तुके अलग-अलग उपाय बताता है, वह अलग-अलग नहीं उसके मार्ग अलग-अलग हो सकते है। ज्ञानयोग हो चाहे निर्गुण भक्ति दोनोंका एक ही अभिप्राय है प्राप्तव्य भगवान। जैसे एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंद्वारा भिन्न-भिन्न गुणवाली और नाना दिखाई पड़ती है, वैसे एक ही परमात्मा बहुतसे शास्त्र-सम्प्रदायोंकी रीतिसे अनेक रूपोंमें दिखाई पड़ता है। वास्तवमें परमात्मा एक ही है, शास्त्रके मार्ग अलग-अलग हैं जैसे कर्ममार्ग, दान, तप, स्वाध्याय, सकाम-निष्काम धर्म, वैराग्य। इन सभी मार्गोंके भेदसे परमात्मा अलग-अलग दिखाई देते हैं।

भक्ति, पूजा, योग आदि के मार्ग पृथक्-पृथक् है किन्तु सब मार्गों से पहुँचनें की मंझिल ईश्वर ही है। हे माता, गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी, योगी, यती कोई भी हो, जिसे ईश्वरके चरणों मे प्रीति है वह मुक्ति पाता है। कुकर्मी लोगों को सत्संग नहीं सुहाता।

जिस प्रकार किसी ग्राम अथवा नगर तक जाने के अनेक मार्ग होते है उसी प्रकार अनेक शास्त्रों में मेरे तक पहुँचने के

भिन्न भिन्न मार्गों का निरुपण किया गया है। अनेक प्रकार के कर्म, यज्ञ, दान, तप, ज्ञान, वेदाध्यन, इन्द्रियों के संयम आदि सभी सकाम और निष्काम कर्म, ज्ञान, तथा वैराग्य ये सभी साधन मुझ सगुण तथा निर्गुण परमात्मा को प्राप्त करने के हैं। जो किसीसे द्वेष करता, मैं इससे सन्तुष्ट नहीं होता। मैं पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता सबके हृदयमें हूँ। द्वेष और शान्ति एक साथ नहीं रह सकते। प्राणीमात्र मैत्री की दृष्टि रखे यही मेरी सबसे बड़ी पूजा है।

तत्व ज्ञान और मोक्ष विधि, कही कपिल समुझाय। सुन कर महिमा ईश की, गई मातु हरषाय।।

माताजी, मैंने तुम्हें ब्रह्म का साक्षात्कार करानेवाला यह ज्ञान सुनाया है। इससे प्रकृति और पुरुष का यथार्थ बोध हो जाता है। देवि, ज्ञानयोग और भक्तियोग में कुछ अन्तर नहीं है। दोनों का प्रयोजन एक ही है- भगवान की प्राप्ति। देवि, अविद्याजनित कर्म के कारण जीव की अनेक गतियाँ होती हैं, उनमें जाने पर वह अपने यथार्थ रूप को नहीं समझ पाता।

इसलिये अब तुम एकान्त में मेरे द्वारा कही गई बातों का मनन करो। इससे तुम्हारे सारे सन्देह समाप्त हो जायेंगे। तुम्हें अपने यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो जायेगा और सब से बड़ी बात यह है कि तुम्हें भगवान की प्राप्ति हो जायेगी। मेरे इस ज्ञान का उपदेश दुष्ट, दुर्विनीत, घमण्डी, दुराचारी और धर्मध्वजी पुरुषों को कभी न देना जो विषयी हो, गृहासक्त हो, मेरा भक्त न हो अथवा मेरे भक्तों से द्वेष करनेवाला हो, उसे भी इसका उपदेश कभी भी न करना। जो भक्त, सदाचारी, विनयी, दयालु और परोपकारी हो, वही मेरे इस उपदेश का सच्चा पात्र है, उसे ही इसका उपदेश देना। माँ, जो पुरुष मुझ में चित्त लगाकर इसका श्रद्धापूर्वक एक बार भी श्रवण या कथन करेगा, वह मेरे परमपद को प्राप्त करेगा।

जिनके पास बुद्धि तो बहुत है परन्तु ईश्वर प्राप्तिकी इच्छा नहीं है, कहीं लोगोंमे इच्छा तो बहुत है परन्तु बुद्धि नहीं है इसलिये मेरा यह ज्ञान जो अर्थी हो, समर्थ हो, विद्वान हो और शास्त्र पारंगत हो, अधिकारी हो, यज्ञ-यागादिको ठीकसे जाननेवाला हो उसीको देना। यह ज्ञान विद्या दुष्टोंके लिये नहीं है, अभिमानियोंके लिये नहीं है, नास्तिकोंके लिये नहीं है। जो बाहरसे धर्मात्मा होनेका धंदा लेकर चले और वास्तवमें धर्मात्मा नहीं हो उनके लिये भी यह विद्या नहीं है। यह लोभी आदमी के लिये भी नहीं है जो घर-गृहस्थी में घूसे रहना चाहता उसके लिये भी नहीं है। भक्त-द्वेषी और अभक्त के लिये नहीं है। इसका अधिकारी श्रद्धालु हो, जो अपने हृदयमें सत रखता हो यह विद्या उसीके लिये है, जो शास्त्र-वेद-पुराणकी बातोंको तथ्य मानकर अनुभवके मार्गमें चलना चाहता हो वो इन्द्रियोंसे ज्ञान प्राप्त कर अनुभव प्राप्त करना चाहता हो उसके लिये है। जो विनयी हो, दूसरेके गुणमें दोष न निकाले, जो असूया नहीं करता हो यथाशक्ति सबकी सेवा करता हो, वही ज्ञान-दान के योग्य है। इस ज्ञानकी प्राप्ति के लिये विनयसे, श्रद्धासे, जिज्ञासासे, मुमुक्षासे सद्गुरुकी शरण ग्रहण करनी चाहिए।

इसी ज्ञान-उपदेश को कहे सुनै चितलाय। भवसागर से पार ह्वै अंत मिलैं यदुराय।।

मैत्रेयजी ने कहा- विदुरजी, भगवान कपिलजी के इस उपदेश को सुनकर कर्दम की प्रिय पत्नी माता देवहूति के मोह का आवरण हट गया। वे सांख्य-शास्त्र के उपदेष्टा कपिलजी को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगी।

आपके नाभि-कमल से उत्पन्न स्वयं ब्रह्माजी भी प्रलयकालीन जल में शयन करनेवाले आपका ही ध्यान करते रहे किन्तु दर्शन न पा सके। आप ही अपनी शक्तियों को विभक्त कर सारे संसार का सर्जन, पालन एवं संहार करते हैं। नाथ, यह कैसी विचित्र बात है कि प्रलय काल की बेला में यह सारा विश्व-प्रपंच जिनके उदर में लीन हो जाता है और जो कल्प के अन्त में मायामय बालक का रूप धारण कर अपने चरण का अँगूठा चूसते हुए अकेले ही वटवृक्ष के पत्ते पर शयन करते हैं, उन्हें मैंने अपने उदर में धारण किया है।

विभो, आप पापियों का दमन और अपने आज्ञाकारी भक्तों का कल्याण करने के लिये स्वेच्छा से देह-धारण किया करते

हैं अत: जिस प्रकार लोक-कल्याण के लिये आपके वराह आदि अवतार हुए हैं, उसी प्रकार यह कपिलावतार भी मुमुक्षुओं को ज्ञान का मार्ग दिखलाने के लिये हुआ है। भगवन्, आपके नामों का श्रवण या कीर्तन करने से तथा भूले-भटके, यदा, कदा, आपका वन्दन या स्मरण करने से ही कुत्ते का मांस खानेवाला चाण्डाल भी सोमयाजी ब्राह्मण के समान पूजनीय हो सकता है फिर आपका दर्शन करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाय- इसमें तो कहना ही क्या है?

आज कल के समाज-सुधारक कहते हैं कि जो श्वपच हैं, चाण्डाल हैं, वे यज्ञ के अधिकारी नहीं हैं। ऐसी व्यवस्था से उनके साथ बड़ा अन्याय हुआ हैं। किन्तु ब्राह्मण आदि को जो फल बड़े-बड़े कष्ट-साध्य यज्ञों से मिलता है, वही फल चाण्डाल को भगवान का नामकीर्तन करने से मिल जाता है।

वह चाण्डाल भी इसी से सर्वश्रेष्ठ हैं कि उसकी जिह्वा के अग्रभाग में आपका नाम विराजमान है। जो श्रेष्ठ पुरुष आप के नामों का कीर्तन करते हैं, उन्होंने तप, हवन, तीर्थस्थान, सदाचार-पालन और वेदाध्ययन सब कुछ कर लिया है उसके लिये कुछ भी बाकी नहीं है।

माता देवहूति ने सब उपदेशों को सुनकर अन्त में यही निचोड़ निकाला कि प्रभो, हमको तो आपका भक्तिमार्ग ही सबसे सरल सुगम और सुदृढ़ लगा। आपके चरणों की भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ लगी। इससे बढ़कर और दूसरा कोई सरल साधन नहीं है। आप ही साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। आपकी सत्ता से ही जगत की सत्ता है। आप इस आत्मज्ञान दान करने के लिये मेरे पेट से अवतीर्ण हुए हैं। भगवन्, आपकी भक्ति जिसके हृदय में आ जाती है, वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की कौन कहे, वह अगर श्वपच भी हो, अथवा चाण्डाल भी हो, तो भी वह धन्य है, और परम पवित्र हैं। आपके नाम के श्रवण करने कीर्त्तन करने एवं आपके चरणों की वन्दना करने से जो फल मिलता है, वह फल यज्ञ यागादि के बड़े भारी परिश्रम करने पर भी नहीं मिलता, वह चाण्डाल भी धन्य है, जिसकी जिह्वा पर आपका नाम रहता है।

जो श्रेष्ठ पुरुष आपका नाम उच्चारण करते हैं, उन्होंने तप, हवन, तीर्थस्थान, सदाचार का पालन और वेदाध्ययन सब कुछ कर लिया।

नाम लिया जिन सब किया जोग यज्ञ आचार। जप तप तीरथ परशुधर सबै नाम की लार।
तुलसी भक्त श्वपच भलो जो जपै रैन दिन नाम। ऊँचों कुल केहि काम को जहां न हरि को नाम।।

एक नाम के लेने से ही उसे भगवान मिल जाते हैं, जिसकी जिह्वा पर प्रभु का नाम नृत्य करता है, भले वह चाण्डाल के घर में पैदा हुआ है तो भी वह सबसे श्रेष्ठ है। नाम लेनेवाला परम पद का अधिकारी हो जाता है। माता की बात का भगवान कपिलदेव ने भी समर्थन किया।

चाण्डाल आदि को चाहिये कि वह स्वधर्म का पालन करते हुए भगवन्नाम-कीर्तन के द्वारा अपना परम कल्याण कर लें। वह ब्राह्मण की समानता करने का प्रयास न करे नहीं तो निम्नजाति का वह पुरुष नरक की घोर यातनाओं को भोग कर अन्त में सूकर-कूकर आदि की निकृष्टतम योनियों में जन्म लेता है।

देवहूति बोली- पुत्र, आप साक्षात् परब्रह्म हैं। आप ही परमपुरुष हैं। चित्त-वृत्तियों का निरोध कर अन्त:करण में आप का ही चिन्तन किया जाता है। आप के तेज से माया का कार्य शान्त हो जाता है। आप वेदगर्भ हैं। साक्षात् विष्णु हैं। मैं आप को प्रणाम करती हूँ।

देवहूति को जीवन का जो अध्यास था, वह निवृत्त हो गया। अविद्या के सारे क्लेश क्षीण हो गये। परमानन्दकी प्राप्ति हो गयी, नित्य समाधिमें आरूढ़ रहने लगीं। गुणभ्रम परावृत्त हो गया। अब अपने शरीरका स्मरण भी नहीं रहता।

हे माताजी। मार्ग बहुत हो सकते हैं, लेकिन आपके लिये तो यही भक्तिमार्ग परमश्रेयस्कर है, कल्याणकारक है। इसी से आप उस परमपद को प्राप्त कर लोगी, प्रभु के चरणारविन्दों को प्राप्त कर लोगी। माताजी। मैंने आपको जो बताया है उसीसे आपको ज्ञान की पराकाष्ठा प्राप्त हो जायेगी, और मृत्यु का अतिक्रमण हो जायेगा। आपकी बुद्धि परब्रह्म में परमात्मा में स्थिर हो जायेगी।

मैत्रेय जी बोले- हे विदुर, भगवान कपिल माताजी के इस प्रकार के दैन्य-भरे वचनों को सुनकर बोले- माताजी, मुक्ति का जो सुगम मार्ग मैंने तुम्हें बतलाया है उससे शीघ्र ही तुम अपना कल्याण करने में समर्थ होओगी। अविलम्ब तुम्हें परम पद की प्राप्ति होगी। तुम मेरे वचन में दृढ़ श्रद्धा रक्खो। बड़े-बड़ ब्रह्मवादी लोग इस मार्ग का अवलम्बन कर परम श्रेय के भागी बने हैं। जो लोग मेरे इस मत को नहीं जानते वे जन्म-मरण के चक्र में फँसे रहते हैं।

प्रकृति क्या है? पुरुष क्या है? प्रकृति की विकृति से यह चराचर विश्व कैसे उत्पन्न हुआ? पंचभूतों की उत्पत्ति, उनकी तन्मात्रायें, गुण आदि का विस्तार के साथ विवेचन किया। तदनन्तर यह बात बताई कि प्रकृत-पुरुष में विवेक द्वारा मोक्ष की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। इस प्रकार सांख्य-ज्ञान का उपदेश देकर फिर अष्टाङ्ग-योग का विस्तार के साथ वर्णन किया। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, सम्प्रज्ञात-समाधि और निर्वीज-समाधि के लक्षण बताये। ध्यान की विधि बताई, भगवान के सगुण-साकार स्वरूप के प्रत्येक अंग-प्रत्यङ्गों का ध्यान-चिन्तन बताया। इस प्रकार योग की अन्तिम स्थिति का बड़े ही उल्लास और युक्ति के साथ भगवान ने वर्णन किया। फिर भक्ति का मर्म और काल की महिमा का विवेचन किया। भक्ति के बहुभेद बताये, भक्तों के उत्तम-से-उत्तम सर्वोत्कृष्ट लक्षण बताकर कह दिया कि चाहे भक्तियोग के द्वारा या क्रिया-योग के द्वारा मेरे में चित्त लगाने से साधक मुझे ही प्राप्त कर लेता है। फिर भगवान ने देह-गेह में आसक्त हुए पुरुषों की संसार में किस प्रकार अधोगति होती है इसका आरम्भ से लेकर अन्त तक बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कथन किया। कैसे यह जीव प्रारब्ध वश भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न होता है, कैसे-कैसे क्लेश उठाकर बढ़ता है, फिर किस प्रकार छल-कपट, प्रपंच करके पैसा पैदा करता है। मरकर कौन-कौन से नरकों में जाता है, फिर आकर कैसे माता के उदर में प्रविष्ट होता है, रज-वीर्य के संसर्ग से कैसे बुन्द-बुन्द पिण्ड, शरीर, हाथ, पैर बनते हैं, पेट में कैसे उसे पिछले सैकड़ों जन्मों की स्मृति रहती है, माता के उदर में जैसे भयंकर क्लेश होता है, कैसे झिल्ली से लिपटा नीचा सिर किये पड़ा रहता है, वहाँ से निकलने के लिये भगवान से कैसे प्रार्थना करता है, कैसे जन्म होता है। फिर कैसे बालक से युवा होता है, युवावस्था में कैसी मस्ती आती है, यौवन के उन्माद में कैसे-कैसे पाप करता है, युवक-युवती परस्पर में किस प्रकार आकृष्ट हो परमार्थ से च्युत होकर विषयों में आसक्त हो जाते हैं। काम की कितनी वीभत्स क्रीड़ायें हैं, स्त्री का पुरुष के संग से पुरुष का स्त्री के संग से किस प्रकार विवेक नष्ट हो जाता है- इन सभी बातों का भगवान कपिल ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में उपदेश दिया।

तदनन्तर भगवान कपिल ने अपनी माता से धूम मार्ग और अर्चिरादि-मार्ग से जाने वालों की गति का वर्णन किया। भगवान ने बताया जो लोग सकाम कर्मों का आचरण करते हैं, वे नाना कामनाओं के अनुसार नाना लोकों में जाते हैं। वहाँ पाप पुण्यों को भोगकर कुछ शेष रहने पर कर्मानुसार फिर पृथ्वी पर जन्म धारण करते हैं। सकाम कर्मों से जन्म मरण का चक्कर छूटता नहीं, इसीलिये सर्वश्रेष्ठ साधन भक्ति मार्ग ही है। जिन परम पुरुष परमात्मा के पाद-पद्म-परम-पूजनीय और भजनीय हैं, उन्हीं परमेश्वर का तद्गुणाश्रयी भक्ति के द्वारा भजन करें यही श्रेष्ठ मार्ग है, यही सरल साधन है, यही सर्वोपयोगी पथ है और यही प्रभु प्राप्ति का उत्तम उपाय है। वास्तव में मुख्य तत्त्व तो एक ही है। उपनिषदों में जिसे ब्रह्म कहा गया है, योग शास्त्र वाले उसे परमात्मा या ईश्वर कहते हैं, सांख्यवादी पुरुष कहकर पुकारते है, भक्ति शास्त्र में उन्हें ही भगवान कहा

है। ज्ञानी लोग उन्हें निर्गुण ब्रह्म कहते हैं, परम रसिक भक्त उन्हें भगवान कहकर वन्दना करते हैं, पूजते हैं और आराधना करते हैं। उनकी प्राप्ति के लिये कोई नाना प्रकार के शुभ कार्य करते हैं। कोई बड़े-बड़े यज्ञ-याग आदि करते हैं। दान, तप, वेदाध्यन। वेदान्तविचार, मनोनिग्रह, कर्म, संन्यास, योग, भक्ति, निवृति, प्रवृत्ति मार्गों का ग्रहण सब उन्हीं की प्राप्ति के लिये ही किये जाते हैं, इसलिये चाहे जिस साधन से हो, चित्त को सदा भगवान में लगाकर सब कर्मों के फलों को उन्हीं को अर्पण करते हुए निरन्तर भगवत् चिन्तन करते रहना चाहिये। यही जीवन का परम सार है। इसी में मनुष्य जन्म की सार्थकता है, यही जीव मात्र का चरम लक्ष्य है। यह पृथ्वी ऋषियोंकी है, क्योंकि पृथ्वी के सब जीवों की उन्नति और भलाई के लिए सब ऋषि इकट्ठे होकर समय-समय पर उपस्थित प्रश्नों का हल ढूँढते हैं। परमात्मा की गति कोई नहीं जानता। सिर्फ उनके अवतार-कार्य द्वारा गुणावतारों का विभूति चिन्तन, श्रवण करके रसास्वादन कर सकते हैं। समस्त चर-अचर जगत् परमात्मा की ही तो अभिव्यक्ति है। एक परमात्मा ही सारा विस्तार है। उन्हींसे सारे ब्रह्माण्ड पैदा होते हैं। भगवान के अवतार आवेशरूप, प्रवेशरूप, स्फूर्तिरूप और प्रादुर्भाव, चार प्रकार से होते हैं।

भक्ति योग अति सरल सरस सबके हितकारी। विप्र, शूद्र, नर-नारि सबहिं जाके अधिकारी॥
परमात्मा परब्रह्म पुरुष भगवान कहो हरि। ज्ञानी करिके ज्ञान लहैं नर भक्त भक्ति करि॥
कपिलदेवके वचन सुनि, मुदित मातृ मन अति भयो। हट्यो मोह आवरण सब, द्वन्द कटे तम नसि गयो॥

भगवान कपिल ने अपनी जननी को योग का, भक्ति का तथा ज्ञान का उपदेश दिया, जीवों की गति बताई, नाना योनियों में भ्रमण करते हुए जीवों के जन्म-मरण की बातें सुनाई। उन्होंने उपदेश देकर, शक्ति संचार करके, माता को पूर्ण आत्मज्ञान सम्पन्न बना दिया। अब उन्होंने माता से कहा- माँ, तुम परमार्थ के रहस्य को समझ गई न?

देवहूति ने कहा- हाँ, प्रभो। आपकी असीम अनुकम्पा से मेरे सभी संशयों का छेदन हो गया। प्रकृति पुरुष का भेद समझ में आ गया। आत्म-तत्त्व का गूढ़ रहस्य मैं आपकी दया से समझ गई। अब मुझे क्या करना चाहिये?

भगवान ने कहा- ज्ञान हो जाने पर माताजी। जीव का कोई कर्त्तव्य रह नहीं जाता। चतुर्थ-भूमिका में पहुँचने पर जीव, संसार से सदा के लिये मुक्त हो जाता है। यदि सप्तम-भूमिका में पहुँचने के पूर्व ही उसके शरीर का पतन हो जाता है, तो कुछ ज्ञान में कमी रह जाती है, उसकी तत्काल मुक्ति नहीं होती।

माताजी। अब मैं जा रहा हूं जीवों के कल्याणार्थ भजन जप-तप करने। भगवान कपिलदेव ने माताजी की परिक्रमा लगायी और मां से अनुमति लेकर भगवान कपिलदेवजी वहां से समुद्र के किनारे गंगा सागर संगम पर चले गये और आज तक वहां पर विराजमान हैं। गंगासागर क्षेत्र परम पावन है, पवित्र है। वहां पर कपिल मुनि का आश्रम है। मकर संक्रांति पर भगवान कपिल के दर्शन के लिये लोग जाते हैं। माया मोह से रहित, विवेक वैराग्य की साक्षात सजीव मूर्ति भगवान कपिल ने अपनी ब्रह्मवादिनी माता को प्रणाम किया।

अब कपिल भगवान के पास माता ने देखा अब मेरे जीवन का कोई भरोसा नहीं। मैं भी वानप्रस्थ लूं। अपने पुत्र कपिल को बोली- मैं आपको नमस्कार करती हूँ। मैं जानती हूं तुम सांख्य अवतार, ज्ञानावतार उसके प्रभु हो, ईश्वर हो। और मुझे आप ज्ञानोपदेश कीजिए। देवहूति बैठी है, कपिल बैठे हैं। माताको ज्ञानोपदेश कर रहे हैं। यह जो ज्ञान दिया वो ही ज्ञान ये कपिलगीता कहलाया। माता पूछती है- ये बन्धन से मुक्ति कैसे हो? बन्धन किसका है? मुक्तियां कैसी है? कितनी है? कपिल कहते है- माता, मुक्ति शरीर की नहीं होती, मन की मुक्ति होती है। मन बन्धा हुआ है। किसमें- आसक्ति में। ये आसक्ति बन्धन का कारण है। आसक्ति छूटना ही भक्ति है, वैराग्य है। यह वैराग्य क्या है? किसमें जो आसक्ति है वो छूट गई

है तो उसमें आपको वैराग्य हो गया। यह मन किसी चीज में लग गया और वो हट जावें तो इसमें आपकी मुक्ति है। बन्धन कोई वस्तु नहीं है, वह कोई रस्सी नहीं है जो आपको बांध रखें। आप मनको नियंत्रित करें, मनको शमित करें, विषयोंसे हटावे, विषयोंसे हटना ही मुक्ति है। भगवान में चित लगाना ही भक्ति है। शरीर नाशवान है। यह संसार सारहीन है। संसार की आसक्ति हुई है। इन्द्रियोंका दमन करो, दमन योग से करो, हठ से नहीं। हठ से बलात् इन्द्रियां आपको आकर्षित करेंगी, फिर वही चले जायेगी, फिर कामवासना शुरू हो जायेगी। बोले- भगवन फिर भक्ति कैसे हो? भक्ति के लक्षण क्या है? कपिल ने नवधा भक्तिके लक्षण बताये। भगवान में भजन करो, पूजा-अर्चना करो, श्रवण करो, कथा करो, कीर्तन करो और सबसे ऊंची सत्संग। जब तक सत्संग नही मिलेगा तब तक भक्ति नहीं होगी। सत्संग से ही भक्ति होगी। सत्संग हमेशा करते रहना चाहिए। इसलिये दूराचारी पुरुषोंका संग छोड़ो। यह संग ही है जो आसक्ति और मोक्ष का कारण है। संग अच्छा है आप सत्संग करोगे, संग बुरा है आप कर्म की प्रवृत्ति में जाओगे और आपसे बन्धन कर्मके बन्धन होंगे। इसलिये सत्संग करना आवश्यक है, भजन-कीर्तन करना आवश्यक है। इसतरह से माता देवहूति को तत्वज्ञान, आत्मज्ञान, नवधा भक्तिका उपदेश भगवान कपिलने दिया। माता देवहूति पानी-पानी हो गयी और पानी होकर एक नदीकी तरह सिद्धा नदी कहकर वहांसे बह गयी। देवहूतिको मुक्ति प्राप्त हुई, मोक्ष प्राप्त हुआ। कपिलमुनी सिद्धाश्रम छोड़कर गंगा सागर के किनारे चले गए। वहां उन्होंने एक आश्रम बनाया और आश्रम में रहने लगे। यही कपिलोख्यान कपिलगीता नामसे जाना गया।

मेरो गोविन्द है गोपाल मैं तो नाचूंगी, नाचूंगी मैं नाचूंगी, मेरो गोविन्द है गोपाल मैं तो नाचूंगी।
राधा नाची, मीरा नाची, नाचो है संसार मैं तो नाचूंगी। मेरो गोविन्द है....

महामुनि मैत्रेयजी विदुरजी से कहते हैं- विदुरजी। इस प्रकार भगवान कपिल, परम साध्वी माता को आत्मगति अर्थात ब्रह्मज्ञान का उपदेश करके उस ब्रह्मवादिनी-जननी से अनुमति लेकर वहाँ से चल दिये। सांख्ययोग का तत्त्व यह है कि आत्मा को अविनाशी और अपने शरीर का नाश समझकर अपना मन संसारी माया में न लगायें।

कर्दम हू ते अति सरस करत जीव अभिमान। तजत न टूटी झोपड़ी कर्दम तज्यो विमान।।

कपिल देवजी वहाँ से चलकर पूर्वोत्तर दिशा में ईशान कोण की तरफ जहाँ सागर से गंगा का संगम होता है, चले गये। समुद्र ने उनको रहने के लिये स्थान दिये। आज भी वहाँ कपिल देव जी का मन्दिर है। वहाँ वे तीनों लोकों की शान्ति के लिये निवास करते हैं। वहाँ सिद्ध-गन्धर्व उनकी स्तुति करते हैं। उनका योग द्वारा परित्यक्त शरीर मर्त्यलोक की पवित्र नदी बन गयी। जिसका सेवन सिद्ध पुरुष किया करते हैं।

इस प्रकार अपने श्रेष्ठ आत्मज्ञान का उपदेश करके श्रीकपिलदेव जी अपनी ब्रह्मवादिनी जननी की अनुमति लेकर वहाँ से चले गये। देवहूति भगवान कपिल का ध्यान करती हुई वहीं सरस्वती नदी के तट पर निवास करने लगीं। उन्होंने दूध के फेन के समान अपनी उज्ज्वल शय्या छोड़ दी। उन्होंने अपने उस भवन का भी परित्याग कर दिया जिसके लिये देवताओं की स्त्रियाँ भी ललचाती थीं। निरन्तर समाधि में स्थित रहने के कारण वे अपने पुत्र का ही ध्यान करती रहती थीं।

सांसारिक विषयों से विरक्त अब वे तप में ही लीन रहने लगीं। उनको पहले पति का वियोग हुआ था क्योंकि कर्दम जी ने संन्यास ले लिया था। अब पुत्र भी छोड़कर चला गया। देवहूति ने अपनी आत्मा को विशुद्धरूप में जान लिया। उनकी बुद्धि परं ब्रह्म परमात्मा में स्थिर हो गई। फलत: उनकी जीवापत्ति, जीवभाव निवृत्त हो गया था। उनके सारे क्लेश समाप्त हो गये थे। भगवद्भक्तिके प्रवाह, प्रबल वैराग्य और यथोचित्त कर्मानुष्ठानसे उत्पन्न हुए ब्रह्म साक्षात्कार करानेवाले ज्ञानद्वारा चित्त शुद्ध हो जानेपर वे उस सर्वव्यापक आत्माके ध्यानमें मग्न हो गये।

उन्हें देह-गेह किसी की भी सुधि न थी। इस प्रकार उनकी निरन्तर समाधि चलती रही। फलत: थोड़े ही दिनों में उन्होंने भगवान का साक्षात्कार कर लिया फिर तो तत्काल उनका पांचभौतिक शरीर भूतल पर गिर कर नदी के रूप में परिणत हो गया। जहाँ देवहूति ने सिद्धि प्राप्त की थी, उसे सिद्धपुर कहते हैं। वह पुण्य क्षेत्र आज भी विद्यमान है। वहीं सरस्वती नदी बहती है।

इस प्रकार भगवान कपिलदेवजी के चले जाने के बाद माता देवहूति जी ने सब कुछ छोड़ दिया। और सबसे नि:स्पृह होकर भगवान की सेवा पूजा कथा कीर्त्तन करते हुए भक्ति करके भगवान को प्राप्त कर गई। परमानन्द की प्राप्ति हो गई। उनके अविद्या आदि के सारे क्लेश क्षीण हो गये। नित्य समाधि में आरुढ़ रहने लगी। अब उनको शरीर की भी सुधी नहीं रही, उनका शरीर जो छूटा जैसे बर्फ की सिल्ली बनकर पानी होकर वह जीता है। उसी प्रकार माताजी का शरीर जल होकर के प्रवाहित हो गया। वे स्वयं परमात्मा में लीन हो गई और सिद्ध पद नाम से बड़े-बड़े सिद्धों के द्वारा सुसेवित वह स्थान सिद्धपुर नाम से विख्यात है। वहीं सरस्वती नदी बहती है।

लेकिन भगवान कपिलदेव के द्वारा बताये हुए उपदेश को धारण करके अपने स्वरूप में स्थित हो गई। उनकी जीवापत्ति निवृत्त हो गई। देवहूतिजी ने अपनी आत्मा को विशुद्ध रुप में जान लिया।

इस प्रकार माता देवहूति ने अपने पुत्र भगवान कपिल के उपदेश के अनुसार अभ्यास कर अल्पकाल में सिद्धि प्राप्त कर ली। आत्मस्वरूप, नित्यमुक्त, परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लिया। जहाँ पर माताजी को सिद्धि मिली, वह संसार में सिद्धिपद के नाम से प्रसिद्ध हुआ- जिसे मातृ गया भी कहते हैं। शरीर में दैहिक-मल का लेश भी न रहने से ब्रह्म प्राप्ति के अनन्तर माताजी का शरीर एक स्वच्छ सलिल वाली सरिता के रूप में परिणित हुआ।

जो इस प्रसंग को श्रवण करते हैं, गाते हैं, अनुमोदन करते हैं, स्मरण करते हैं, धारण करते हैं, वे भगवान में अपनी मति लगा के गरुड़ध्वज भगवान के चरणारविन्दों को प्राप्त कर लेते हैं। इस ज्ञानरूपी सागर में अवगाहन कर लेता है वह संसार के चक्कर से छूट जाता है, वह जन्म-मरण से छुट्टी पा जाता है, उसको फिर कहीं आने जाने की जरूरत नहीं रहती।

वह जीवन जन्म निरर्थक है, जिसमे प्रभु के प्रति प्यार न हो।
निष्फल वह विद्या बल वैभव, जिससे जग का उपकार न हो।।
पशुवत केवल खाना सोना, जीवन का लक्ष्य न हो सकता।
वह मनुज नहीं जिसके हिय में कुछ सेवा धर्म विचार न हो।।
वैसे तो नर तन दुर्लभ है, जिसके पाने को सुर तरसे।
धिक्कार किन्तु उस मानव को, जो नर तन पा भव पार न हो।।
ऐसा अनुपम अवसर पाकर, मत चूको फँस कर दुनियाँ में।
मंजिल तक कैसे पहुँच सके, यदि सन्त चरण आधार न हो।।
कहीं बनी बनाई बिगड़ न जाय, बिगड़ो के संग बनाने मे।
बन सके न बिगड़ी जनम जनम यदि, सांवलिया सा यार न हो।।
सत्संगति भी वह क्या, जिससे इन मन का दूर विकार न हो।
रख नारायण प्रभु ध्यान सदा, यह नर जीवन बेकार न हो।।

इति तृतीय स्कन्ध

चतुर्थ स्कन्ध

विषय सूची

१) दक्ष प्रजापति और शिव का मनोमालिन्य व सती का चरित्र ४३३

१) दत्तात्रेय अवतार ४३४

२) नर-नारायण का अवतार ४४१

३) अग्नि वंश ४४३

४) पितर वंश ४४६

५) सती चरित्र ४४८

२) ध्रुव चरित्र ४८८

३) महाराज पृथु का चरित्र ५२२

४) प्रचेताओं को उपदेश ५६८

५) पुरंजनोपाख्यान ५७४

६) प्रचेताओं को नारदजी का उपदेश ५८९

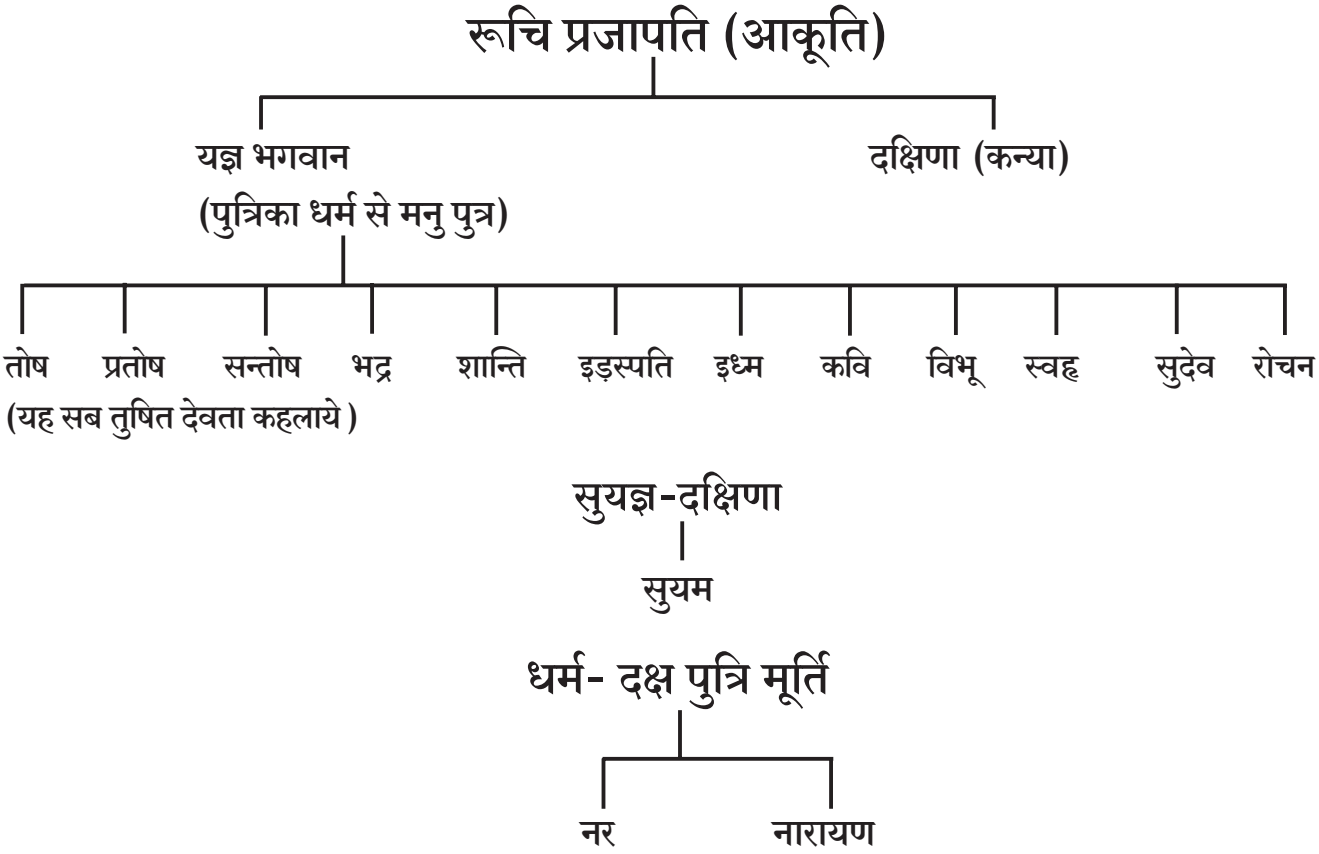

चतुर्थ स्कन्ध

१) दक्ष प्रजापति और शिव का मनोमालिन्य व सती का चरित्र

मैत्रेय मुनि ने कहा- विदुरजी, मनु महाराज ने अपनी दूसरी बेटी आकूति का विवाह प्रजापति रुचि के साथ इस शर्त पर कर दिया कि इसके जो पहला पुत्र होगा उसे हम ले लेंगे। पुत्रिकाधर्म के अनुसार किये जानेवाले विवाह में यह शर्त होती हैं कि कन्या से जो पहला पुत्र होगा, उसे कन्या के पिता ले लेंगे। यही है पुत्रिका धर्म का अभिप्राय।

रुचि से आकूति को दो सन्तानें पैदा हुईं। एक था पुत्र और दूसरी थी पुत्री। पुत्र का नाम था- यज्ञ और पुत्री का दक्षिणा। ये दोनों क्रमश: विष्णु और लक्ष्मी के अंश थे। शर्त के अनुसार पुत्र यज्ञ मनु के पास चला गया और कन्या रुचि के पास रह गई फिर दोनों यज्ञ और दक्षिणा का आपस में विवाह हो गया। यज्ञ के दक्षिणा से बारह पुत्र पैदा हुए। इनके नाम थे- तोष, प्रतोष, सन्तोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव और रोचन। ये ही स्वायम्भुव मन्वन्तर में तुषित नामक देवता हुए। सुयज्ञ ने ही यज्ञ की प्रथा शुरू की। इस अवतार में ही तीनों लोकों के संकट हर लिये गये।

पंच महायज्ञ माने जाते हैं- १) ब्रह्मयज्ञ- अध्यात्म ग्रन्थों का स्वाध्याय, २) देवयज्ञ- इष्टदेव की उपासना। ३) पितृयज्ञ- पितरों का गुण-कार्य ग्रहण कर आगे बढ़ाना, दोष त्याग करना। ४) भूतयज्ञ- प्राणियों के प्रति करुणा, ५) मनुष्य यज्ञ- मानवोचित व्यवहार करने की जागरूकता। इसीसे मनुष्य विश्वयज्ञ का हिस्सेदार बनता है। गीता भी मनुष्य को यज्ञ का आचरण करना सिखाती है। १) द्रव्ययज्ञ- प्रामाणिकता से प्राप्त किये धन का सदुपयोग। २) तपोयज्ञ- शरीर, वाणी, और मन की शुद्धि के लिए किया गया अनुष्ठान। ३) स्वाध्याययज्ञ- शास्त्र-अध्ययन, ४) ज्ञानयज्ञ- अध्ययन परिणामरूप आत्म-विचार, ५) योगयज्ञ- चित्तवृत्ति निरोध के लिए अष्टांगयोग। सृष्टि, समाज और शरीर ये तीन संस्थाएँ हमारी बनायी हुई, कृत्रिम संस्थाएँ नहीं हैं, स्वभावत: जन्म के साथ ही हमें मिली हैं। इन तीन संस्थाओं की पूर्ति यज्ञ से पूरी करना हमारा स्वभाव-प्राप्त धर्म है। १) सृष्टि-संस्था से हम प्रतिदिन काम लेते हैं, सृष्टि को दूषित करते हैं और सृष्टिको क्षीण करते हैं। इसकी पूर्ति के लिये यज्ञ किया जाता है। उसे साफ-सुथरा रखना, साथ-साथ निर्माण-कार्य करना यज्ञ के अन्तर्गत है। बरसों से खेती करते आये हम जमीन जोतते हैं, इसकी भरपाई करना, इसकी सफाई करना इत्यादि यज्ञ के स्वरूप है। २) दूसरी संस्था है समाज। उसका ऋण लेकर ही हमारा जन्म हुआ है। समाज से हमने अपार सेवा ली है। इस संसार में जब हम आये तो दुर्बल और असहाय थे। इस समाज से हम छोटे-से बड़े हुए है। समाज से हम भरपूर ले चुके है। हमारे ऋण-मुक्ति के लिये जो श्रम किया जाय, सेवा की जाय, दान दिया जाय, यह किसी परोपकार से नहीं, अन्य साधनों से समाज की सहायता करना या दान करना यज्ञ-कार्य है। ३) तीसरी संस्था है शरीर। शरीर के शुद्धि के लिये तप बताया गया है। विषयभोग करने से शरीर क्षीण होता है। इसलिये जीवन में तप करना चाहिये। यज्ञ, दान, तप, ये तीनों भी संस्थाओं के लिए त्रिविध यज्ञ सेवा और ईश्वरपरायण बुद्धि से करने से इनका ऋण नहीं रहता।

मनु ने अपनी तीसरी और सबसे छोटी बेटी प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति के साथ कर दिया। कर्दम जी की नौ कन्याओं का विवाह नौ महर्षियों से हुआ था। कर्दम जी ने अपनी बेटी कला का विवाह मरीचि ऋषि से किया था। उसके दो पुत्र पैदा हुए- कश्यप और पूर्णिमा। इनके वंश से यह सारा जगत् भरा हुआ है। पूर्णिमा के विरज और विश्वग नाम के दो पुत्र हुए तथा देवकुल्या नाम की एक कन्या हुई। यह देवकुल्या ही जन्मान्तर में गंगा हो गई।

१) दत्तात्रेय अवतार- ब्रह्मा के द्वितीय पुत्र थे अत्रि। इनका विवाह अनुसूया के साथ हुआ था। जो किसी में दोष? न देखे, जो किसी से असूया- ईर्ष्या न करे उसको कहते हैं अनुसूया। ब्रह्मा, विष्णु और शिव जिसके पुत्र बन जायें उसका नाम अनुसूया है। अनुसूया देवी को कोई नहीं जानता। अनुसूया अत्रि मुनि की पत्नी बनी। जो नारी पातिव्रत धर्म को निभाती है, उसका घर स्वर्ग है। अन्नपूर्णा उनके घर का कभी त्याग ही नहीं करती। लक्ष्मी उनके आंगन में नाचती है और मुक्ति दासी बन जाती है। पातिव्रत धर्म को निभानेवाली नारी के आंगन में यही होता है। अत्रैव अर्थात जो यहीं रहता है, वर्तमान में जीता है, जो किसी सम्प्रदाय में बँधता नहीं। यह ब्रह्मकोटि के ऋषी है।

अत्रेय ऋषि की पत्नी अनुसूया थी। इनका आश्रम मंदाकिनी नदीपर चित्रकूट पर है। उस चित्रकूट को कौमदगिरी भी कहते है। यहांपर भगवान रामने एक वर्ष तक कहीं रामायण में तेरह वर्ष दिया है, ग्यारह वर्ष तक वहां चित्रकूट पर रहे है लेकिन वाल्मिकी रामायण कहती है वहां सिर्फ एक वर्ष उन्होंने वास किया। क्योंकि छ: से आठ महिने के बाद जब भरत आये तब अयोध्याके लोग बार-बार आते-जाते मिलने लग गये थे। भगवान रामको लगने लग रहा था कि यहां मुझे अयोध्यावाले छोड़ेंगे नहीं। मेरी तपस्या नहीं हो पा रही है। मैं जिस उद्देश्य से वनगमन जा रहा हूँ, इसलिये मैं यहां शांति नहीं पा सकूंगा इसलिये रामायण से प्रसंग है कि आठ से नौ महीने में चित्रकूट छोड़ दिया और बारह वर्ष तक वो पंचवटी में रहे। अत्रे ऋषि से तीन संताने हुई- चन्द्रमा, दुर्वासा, दत्तात्रेय। लक्ष्मी भृगु ऋषिकी कन्या है। एक कन्या भृगु ऋषिको हुई। लक्ष्मीजी का प्रादुर्भाव दो बार हुआ है- एक बार समुद्रमंथन से हुआ है और एक बार एक कथा में आता है कि भृगु ऋषिकी पुत्री हुई है और भृगु ऋषिको श्राप देकर चली गयी। अब चन्द्रमा पैदा हुआ। सत्ताईस कला, नक्षत्रोंके साथ उसकी शादी हुई। दक्ष की कन्याओंके साथ। उसका सर्वाधिक मोह रोहिणी में था। इसलिये अन्य पत्नियोंने दक्षसे शिकायत की। और दक्षने उसको एक श्राप दे दिया कि जा तुझे क्षय हो जाएं। तू घटते जा, घटते जा। वो चन्द्रमा जो नित्य प्रतिदिन घटता, बढ़ता है। घटने का श्राप दे दिया। चन्द्रमा ने दक्षसे जाकर माफी मांगी है। तो उस श्राप को हलका किया गया कि तु पंद्रह दिन क्षय करेगा, पंद्रह दिन वृद्धि करेगा। यह चन्द्रमाकी उत्पत्तिके विषय में ज्ञान है। एक दुर्वासा ऋषि- यह बड़े ही क्रोधि ऋषि है।

अनसुया के पतिव्रत और व्यक्तित्व से जो परिचित नहीं है उसे तो अपने आपको भारतीय कहलाने का अधिकार ही नहीं है।

एक बार नारी ही त्रिदेव को बना के शिशु, पातिव्रत्य बल पालने में झुलाती है।
एक बार नारी ही यमराज पाछे लाग, मृतक निज पति को भी जीवित कर लाती है।
एक बार नारी ही निज पति की प्रतिज्ञा हेतु काशी के बाजार में सहर्ष बिक जाती हैं।
एक बार नारी ही प्रिय पुत्र को पठाय वन में जग का कल्याणकारि सौभाग्य निज मानती है।
है कितना गौरवशाली पद जग में भारत की नारी का।
रन में, वन में सुख में दुख में छाया पति के बन जाती है।
अपनी कोमल ऊंगली को रथ चक्के की कील बनाती है।
काली सी मतवाली बनकर अरिदल का रक्त बहाती है।
अन्यायी आततायियों की दल देती पल में छाती है।
स्वागत करती सहर्ष रण में सर बर्छी और कटारी का।
है कितना गौरवशाली पद जग में भारत की नारी का।।

इनके उज्ज्वल तप के आगे झुक जाया करता इन्द्रासन।
लखि जिनका अनुपम शौर्य, डगमगाने लगते हैं सिंहासन।
मिट जाता है पृथ्वी पर से अन्यायी क्रूर कुटिल शासन।
थक जाता दस सहस्र गज बल, पर अन्त न मिलता साड़ी का।
है कितना गौरवशाली पद जग मं भारत की नारी का।।
ये संकल्प कदाचित् कर ले तो, सूर्योदय भी रुक जाता है।
कोढ़ी भी इनकी कृपा दृष्टि से कंचन काया पाता है।
पावक भी इनके शावक हित शीतल वन हृदय जुड़ाता है।
जग पालक भी बालक बनकर गोदी में इनकी आता है।
इनके चरणों में झुकता शीश, यमपुर के भी अधिकारी का।
है कितना गौरव शाली पद जग में भारत की नारी का।

अत्रि और अनुसूया के तीन पुत्र पैदा हुए- सोम, दत्तात्रेय और दुर्वासा। ये तीनों क्रम से ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अंश से उत्पन्न हुए थे। इस पर विदुर जी ने पूछा कि ये तीनों देवता किस कारण से अत्रि के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे। मैत्रेय जी ने कहा कि ब्रह्मा ने अपने पुत्र अत्रि जी से सृष्टि करने की बात कही। पिता की बात को शिरोधार्य कर अत्रि सृष्टि-सामर्थ्य प्राप्त करने के लिये ऋक्ष पर्वत पर तप करने चले गये। उनका लक्ष्य था कि जो संसार का स्वामी है, मैं उसकी शरण में हूँ वह मुझे अपने सदृश पुत्र दे।

वहाँ उन्होंने एक पैर के बल खड़े होकर वायु पीते हुए सौ वर्ष तक घोर तप किया। उनके तप के तेज से त्रिलोकी सन्तप्त होने लगी। इस बात को देखकर ब्रह्मा, विष्णु और महादेव- तीनों जगत्पति उनके आश्रम पर आये। त्रिदेवों के तेज से मुनि की आँखें चौंधिया गईं। उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये फिर हाथ जोड़कर उन्होंने प्रणाम करते हुए उनकी दिव्य स्तुति की और पूछा- प्रभो, अपने मनोरथ की सिद्धि के लिये मैंने किसी एक सर्वेश्वर का चिन्तन किया था फिर आप तीनों ने यहाँ कैसे पधारने का कष्ट किया? कृपया इसका रहस्य बतलाइये।

अत्रि की बात सुनकर त्रिदेवों ने कहा- ब्रह्मन्, तुम सत्य-संकल्प हो। आप के चिन्तन के विपरीत कैसे हो सकता था। आप जिस सर्वोत्कृष्ट एक तत्व का ध्यान करते थे वह तत्व हम तीनों हैं। जिस जगदीश्वर को आपने स्मरण किया वही हम हैं। विष्णुने अत्रि मुनि को कहा- तुम तप करते समय कर्ता का नाम लेते तो हम तीनों ही देवता कर्ता है, एक-एक काम उत्पत्ति, पालन और संहार जगत् का करते है। हमलोगोंने आदिज्योति निराकार की महिमा से जन्म पाया है। उपयुक्त समय पाकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने अत्रि ऋषि के यहां जन्म लिया। ब्रह्माजी के अंश से चन्द्रमा, भगवान विष्णु के अंश से दत्तात्रेय और शंकर के अंश से दुर्वासा ऋषि पुत्र रूप में जन्म लिये।

प्रिय महर्षे, तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे यहाँ हमारे ही अंशस्वरूप तीन जगद्विदित पुत्र उत्पन्न होंगे और तुम्हारे यश का त्रिलोकी में विस्तार करेंगे। इस प्रकार कह कर वे तीनों देव अन्तर्धान हो गये। विदुर जी, अत्रि के घर त्रिदेवों के पुत्ररूप में आने का यही कारण है। अत्रि ऋषि प्रभु के पास नहीं गये, प्रभु अत्रि के पास आये। प्रभुने कहा- अत्रिजी, हम तीनों में कोई भेदभाव नहीं है, वही ब्रह्मा, विष्णु और वही शिव है। प्रभु का कोई स्वरूप नहीं, रस नहीं, ग्रन्थ नहीं। भक्त की जैसे रूचि होती है उसीके अनुरूप परमात्मा रूप धारण कर लेता है। जो कोई हममें फरक समझता है वह मूढ़ है।

सरस्वती, श्रीरमा, शिवा तीनों यह मानें। पतिव्रता हम श्रेष्ठ याहि सबरो जग जानें।।
नारद सबके भरे कान अनुसूया को सम? निज-निज पतितें कहैं पातिव्रत देखे बल हम।।
विधि, हरि, हर भिक्षुक बने, अनुसूया आश्रम गये। पतिव्रताकी परीक्षा, हित भिक्षा माँगत भये।।

नारायण की प्रेरणा से भगवान की लीला का विस्तार करनेवाले नारद जी एक बार कैलास पर्वत पर पधारे। शंकर समाधि में बैठे थे। पार्वती जी पूजन कर रही थीं। नारदजी ने प्रसाद खाकर सन्तोष व्यक्त किया। पार्वती जी ने पूछा नारदजी लड्डू कैसे लगे? मुनि ने उत्तर दिया, माताजी, लड्डुओं का क्या कहना? एक तो भगवान का प्रसाद, दूसरे आप के हाथ से बने हुए। किन्तु अनसूया जी के हाथ के लड्डुओं की बराबरी नहीं हो सकती। पार्वती जी ने पूछा कौन अनुसूया जी? नारद ने कहा माताजी, आप पतिव्रता हैं। किन्तु दुनियाँ अनुसूया को पतिव्रता-शिरोमणि कहती है। सतीने कहा- क्या मुझसे भी अधिक। नारदजी बोले- माताजी, अधिक या कम तो मैं जानता नहीं पर उनके सामने आपका पातिव्रत्य कुछ भी नहीं है।

इतना कहकर नारदजी चले गये। पातिव्रत्य के क्षेत्र में पार्वती को अपनी यह हेठी सह्य नहीं हुई। समाधि से शंकर उठे। वे पहुँच कर शंकर के चरणों में प्रणाम कर बोलीं- नाथ। आप तो पतिव्रताओं में मुझे ही श्रेष्ठ बताते पर नारद तो अनुसूया को श्रेठ बता रहा था और कह रहा था अनुसूया की समता नहीं कर सकती। स्त्री योनिमें पुरुष योनिसे भी इर्ष्या और डाह सर्वाधिक है, ज्यादा है।

प्रभो, आप मुझे प्राणप्रिया कहते हैं। मेरे पातिव्रत्य की प्रशंसा दुनियाँ करती है। किन्तु नाथ, अब मैं दूसरे क्रमांक पर गिनी जाती हूँ। पहले क्रमांक पर आज अनुसूया गिनी जा रही है अत: चाहे जैसे हो आप को अनुसूया का व्रत भंग करना होगा। ऐसा नहीं हो सकता जब तक परीक्षण नहीं हो तब ऐसा कहना गलत है। ऐसे अपने आप कैसे प्रमाणपत्र दे दिया नारद ने। जाकर परीक्षा करो।

शंकर जी ने समझाया- देवि, दूसरे को नीचा दिखलाने का प्रयास करनेवाला पछताता है अत: छोड़ो इस विचार को। किन्तु पार्वती अपने हट पर डटी रहीं। फलत: शंकर को अत्रि-आश्रम की ओर जाना पड़ा।

कैलास से प्रस्थान कर नारदजी वैकुण्ठ आये। लक्ष्मीजी को प्रणाम किया। आशीष देकर लक्ष्मीजी ने पूछा- नारदजी, आज इतने प्रसन्न क्यों हैं? कहाँ से पधार रहे हो महाराज? नारद बोले- हमारा क्या ठिकाना? हम तो रमतायोगी है। वैष्णव और ऊँट का जिधर मुख कर दो वही चल दिये। यह सुनकर लक्ष्मीजी बड़े जोरसे हंसकर बोली- नारदजी, आपने वैष्णवों की ऊँट के साथ तुलना खूब की। ऊँट नीम को और वैष्णव तुलसी को पत्रविहीन करने में बड़े कुशल है। अच्छा बताओ कहाँ से आ रहे हो? नारदजी बोले- माताजी क्या बताऊँ, कुछ बताते नहीं बनता। अबके मैं घूमता घामता चित्रकूट की ओर चला गया। वहाँ से पयस्विनी के किनारे-किनारे भगवान अत्रि के आश्रम पर पहुँच गया। जहाँ उनकी पतिव्रता-पत्नी भगवती-अनुसूया के दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। आज संसार में उनके समान पतिव्रता कोई भी नहीं है। उन्होंने अपने तप के ही प्रभाव से गंगाजी की एक धारा प्रकट कर दी जो सब पापों को काटनेवाली मन्दाकिनी के नाम से संसार में प्रसिद्ध है। आज संसार की सभी सती-साध्वी-पतिव्रताओं की वे शिरोमणि है। चौदहों भुवनों में मैं घूम आया, ऐसी पतिव्रता तो मुझे कहीं मिली नहीं।

नारदजी ने कहा- माताजी, वैकुण्ठ की महिमा कभी रही। इस समय पतिव्रता शिरोमणि अनुसूया के व्रत के प्रताप से अत्रि-आश्रम का महत्त्व कुछ अद्‌भुत है। वहाँ जो आनन्द मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मैं इस समय वहीं से आ रहा हूँ। लक्ष्मीजी ने पूछा- क्या अनुसूया जी मुझसे भी बड़ी पतिव्रता हैं? नारद जी ने कहा- माताजी, कमी-बेशी की बात मैं नहीं

जानता किन्तु अनुसूया की महिमा न्यारी हैं। लक्ष्मी आवेश में आकर बोली- क्या वे मुझसे भी बढ़कर है? नारद बोले- आप तो उनके पसंगे के बराबर भी नहीं है।

इतना कह कर नारद जी वहाँ से चल पड़े। लक्ष्मी विचार करती है मैं तो सर्वश्रेष्ठ हूँ, सबसे श्रेष्ठ गिनी गयी हूँ। मैं जिसको चाहूं दे सकती हूं उसके पास है क्या उसको भी मैं ही देती हूँ जो कुछ है।

विष्णु भगवान ने लक्ष्मीजी से पूछा- प्रिये आज क्या बात है खिन्न मन क्यों है? लक्ष्मी बोली- मेरी एक बात माननी पड़ेगी तो मैं कहूं। भगवान बोले- बताओ तो सही। लक्ष्मी बोली- यदि मैं खरगोश का सींग माँगू या बन्ध्या का पुत्र माँगू तो भी आपको लाकर देना पड़ेगा। भगवान ने हँसकर कहा- ठीक है। कहो तो लिखकर दे दूँ या गंगा में खड़ा होकर कह दूँ।

विष्णुसे बोली- नारद आया था। वो क्या-क्या कह गया। जिसको हम देते है वो हमसे ऊपर है। जाओ परीक्षा करो। परीक्षा करके जो प्रमाणपत्र दिया जावे तो सही है।

एक बार गुरु द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा अपने घरमें गुरुद्रोणाचार्य से पूछते है- पिताश्री, मैं देख रहा हूँ आजकल आपका स्नेह दिनोंदिन-प्रतिदिन अर्जुनपर बढ़ते जा रहा है। मैं आपका पुत्र हूँ, आप मेरे पिता है। गुरु बोले- अर्जुन बड़ा ही प्रिय शिष्य है, बड़ा ही श्रेष्ठ है, सर्वश्रेष्ठ शिष्य है मेरा इसलिये उसपर मेरा स्नेह होना अत्यधिक है। अश्वत्थामा बोला- पर मैं आपका पुत्र हूँ। गुरु बोले- पुत्र तो तुम घर में हो। विद्याध्ययन में मैं पुत्र का पक्ष नहीं कर सकता वो सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर है। अश्वत्थामा कहते है पिताश्री, बिना परिक्षण के यदि आप उसको सर्वश्रेष्ठ शिष्य कहते है तो यह आपकी भूल है। सिर्फ अपने विद्याधन कह दिया। क्यों नहीं दुर्योधन सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर है, क्यों नहीं मैं हूं। यह सिर्फ आपका स्नेह और आपका पक्षपात है। उसी समय मत्स्यभेदन का एक पक्षी भेदन का आज परिक्षण होगा। और परिक्षण किया गया, एक पक्षी बांध दिया गया और अश्वत्थामा और जितने शिष्य थे बोले इस पक्षीके आंख भेदन दो। आंख भेदने से पहले पूछा, एकने कहा पक्षी दिखता है, एकने कहा पेड़ दिखता है सबका परिक्षण हो गया। अर्जुन की जब बारी आ गयी और अर्जुन बोले गुरुवर मुझे तो सिर्फ उस पक्षीकी आंख दिख रही है। गुरु बोले- अश्वत्थामा, कुछ समझ में आया। अश्वत्थामा बोला- हां पिताश्री। बस यही कारण है। तो प्रमाण मिला।

लक्ष्मीजी ने भगवान विष्णु से विनती करते हुए कहा- नाथ, चाहे जैसे हो। आपको अनुसूया का पातिव्रत्य भंग करना ही होगा। विष्णुजी ने लक्ष्मीजी को समझाया- लक्ष्मीजी, दूसरे को नीचा दिखानेवाले को स्वयं नीचा का सामना करना पडता है। किन्तु लक्ष्मीजी नहीं मानी। फलत: विष्णु को अत्रि-आश्रम के लिये प्रस्थान करना पड़ा। धन्य है स्त्री हठ।

इसी प्रकार नारद ब्रह्मा के लोक में पहुँचे। सावित्री ने पूछा- नारद कहां से आ रहे हो? नारदजी बोले- वैष्णव और ऊँट का मुँह जिधर उठ जाय उधर ही चल देते हैं इसकी कोई दिशा नहीं होती। ब्रह्मा की पत्नी सावित्री से वैसी ही बातें की, जैसी की लक्ष्मी जी से की थी। सावित्री की जिद के सामने ब्रह्मा को झुकना पड़ा। बूढ़े पति, पत्नी की प्रसन्नता का ज्यादा ख्याल रखते हैं। शंकर विष्णु और ब्रह्मा- तीनों देवता चित्रकूट में एक साथ मिले।

नमस्कार प्रणाम के बाद उन लोगों ने एक-दूसरे के आने का कारण पूछा। सबने अपनी-अपनी बात बतलाई। विष्णु ने पूछा- आप लोगों के यहाँ भी नारद गया था? शंकर और ब्रह्मा ने उत्तर दिया- हाँ-हाँ, यह उसी की तो करतूत है फिर तीनों देवता संन्यासी के वेश में अनुसूया के आश्रम में आये। अत्रि तपस्यार्थ चले गये थे। अनुसूया आश्रम में थी। तीनों देवों ने दरवाजा खटखटाया। अनुसूया ने कहा- कौन है? देवों ने कहा, हम भिक्षा के लिये आये हैं। अत्रि-पत्नी पात्र में भिक्षा की सामग्री लेकर बाहर निकल कर बोलीं- लें महाराज भिक्षा। देवों ने कहा- हम ऐसे भिक्षा नहीं लेंगे नंगी होकर दें तभी

हम लेंगे। भगवान सबसे निरावरण मन की भिक्षा मांग करते हैं अत: माया के पर्दे को हटाकर भगवान से मिलना होता है। अनुसूया ने सोचा ये लोग देखने में तो महात्मा मालूम पड़ते हैं और बात करते हैं- मर्यादाविहीन। जिस सद्गृहस्थ के दरवाजे से अतिथि निराश होकर लौट जाते हैं, उसके पुण्य को लेकर चले जाते है।

देवी भिक्षा देहिँ- कहे- हम तब लें भिक्षा। वस्त्रहीन ह्वै देहु यही हम सबकी इच्छा।।
सती ध्यानतें जानि कही- तीनों शिशु होवे। पतिव्रता प्रन सत्य भयो, बनि बालक रोवें।।
उमा, रमा, वाणी विनय, करी देव फिरतें भये। तीनों तव सुत होहिँ हम, ह्वै प्रसन्न सब वर दिये।।

क्षणभर के लिये उन्होंने आँखें बन्द कर ध्यान लगाया। ध्यान में उन्हें त्रिदेव दिखलाई पड़े फिर तो उन्होंने हाथ में जल लिया। अपने पातिव्रत्य धर्म की दुहाई देकर छिड़क दिया उन त्रिदेवों पर उस जल को। फलत: तीनों देव छ:-छ: माह के बालक बनकर माँ के सामने किलकारी मारने लगे। अनुसूया ने तीनों को उठाया। पर्दा हटाकर अपनी छाती का दूध उन्हें पिलाकर पालने में लेटा दिया- माता अनुसूया ने डाल दिया पालना। तीन देव झूल रहे बन करके लालना। आश्रम का वातावरण अद्भुत बन गया। सायंकाल ऋषि अत्रि आश्रम में आये। बालकों को देखा और पूछा- ये बालक किसके हैं। अनुसूया ने हँसकर उत्तर दिया- ये आप ही के बालक हैं। ध्यान से सारी बातें जान कर अत्रि ने कहा- देवि, इन बालकों को सँभाल कर रखना। अनसूया बड़ी तन्मयता से उन बालकों की सेवा करने लगी।

अनुसूयाने अपने पति अत्रि को सारी घटना सुनायी। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देव सन्यासी के रूप में पातिव्रत्य की परीक्षा लेने आये और उनसे नग्न होकर भिक्षा मांग रहे थे। इसलिये अपने तप और पुण्य के प्रभाव से बालक बनाना पड़ा। अनुसूया सरीखी पतिव्रता पत्नी पाकर अत्रि ऋषि ने अपना भाग्य सराहा। जिसने अपने पातिव्रत्य धर्म से अपने शील की रक्षा की।

इधर छ: महीने बीत गये। पति जब वापस नहीं आये उन तीनो देवियों ने नारदजी से पूछा- हमारे वो कहाँ रह गए है? नारदजी बोले- जहां भेजे थे। परीक्षार्थी परीक्षक बनकर गए थे जिनकी परीक्षा लेने गये थे।

पार्वती आदि तीनों देवियाँ उन्हें ढूँढती अत्रि आश्रम के ऊपर पहुँची। तीनों ने एक-दूसरे से आने का कारण जाना। सबों ने नारद को जमकर कोसा। इतने में वीणा बजाते हुए नारदजी उधर से निकले। परिस्थिति को भाँप कर उन्होंने तीनों देवियों को दूर से ही प्रणाम किया और चल पड़े दूसरी ओर। देवियों ने कहा- अरे नारद सुनो-सुनो। नारद बोला- अभी समय नहीं है माता। मैं किसी आवश्यक कार्य से जा रहा हूँ। सावित्री ने कहा- ऐसा आवश्यक कार्य क्या है क्षणभर रुक जाओ। नारद बोला- माता मैं अनुष्ठान कर रहा हूँ अत: नारियों से बात नहीं करता हूँ। पार्वती बोली- नारद हम तुम्हारी माँ है। माँ से बातें करना किसी अनुष्ठान में निषेध नहीं है।

किन्तु नारद आज सुननेवाले नहीं थे। रुकने में उन्होंने अपनी खैर न समझी। तब देवियों ने चिल्लाकर कहा- हमारे पति कहाँ हैं? यह तो बतलाते जाओ। तीनों देवियां बोली- कहीं वो तुमड़ीया मिल जाता तो उसकी तुमड़ी फोड़ डालती। तूने यह विष की बेल कहाँ से बोयी। नारद ने कहा- तुमसे बढ़कर इससे अच्छा कौन जानता है। सामने माता अनुसूया का आश्रम है जाकर वहाँ देखिये। वहीं तीनों बच्चे बने पालने पर झूल रहे हैं। तीनों देवियाँ डरती- सहमती वहाँ पहुँची। द्वार खटखटाया। अनुसूया ने पूछा कौन? देवियों ने उत्तर दिया- हम आपकी बहुएँ हैं। द्वार खुला। देवियों ने माता जी का पैर छुआ। अनुसूया को सारा रहस्य ज्ञात होते देर न लगी। उन्होंने प्रेम से बहुओं को रक्खा। सन्ध्या की बेला में अत्रि महाराज आये। उन्होंने पूछा- ये तीन देवियाँ कौन हैं? अनुसूया ने उत्तर दिया- ये तीनों आप की बहुएँ हैं। अत्रि ने कहा- बालक बित्ता भरके और बहुएँ पाँच-पाँच हाथ की। अनुसूया ने कहा- बड़े भाग्य से बड़ी बहुएँ घर में आती हैं। अत्रि को ध्यान से

सारी बातें मालूम हो गईं। उन्होंने कहा देखना देवि, बहुओं को कष्ट न होने पाये।

एक दिन तीनों देवियाँ अनुसूया का पैर दबा रही थीं। दु:ख में उनके आँसू टपक कर अनुसूया के पैरों पर लुढ़क गये। अनुसूया ने कहा- अरे क्या बात है? क्यों रो रही हो? देवियों ने कहा माताजी हमारा अपराध क्षमा करें। अब हमारे पतियों को हमें दे दीजिये, उन्हें स्वतन्त्र कीजिये। हम बड़े कष्ट में हैं। इनका वियोग हमसे सहा नहीं जाता। यह सुनकर सती का हृदय पसीज गया। अनुसूया उन देवियों से बोली- आगे बढ़ना अच्छा है पर दूसरों को पीछे धकेल कर आगे बढ़ना अच्छा नहीं। ऊपर उठना अच्छा है, लेकिन किसी को नीचे गिराकर उपर उठना अच्छा नहीं है।

उन्होंने अंजलि में जल लिया। पतिदेव का स्मरण किया। पातिव्रत्य की दुहाई दी और छिड़क दिया जब बालकों के ऊपर। फिर क्या था? तीनों देव अपने-अपने रूप में प्रकट हो गये। सती नें तीनों का पूजन-अर्चन किया। इस पर तीनों देवों ने प्रसन्न होकर सती से कहा- देवि, तुम्हारे पातिव्रत्य से हम बहुत प्रसन्न हैं। अनुसूया ने कहा- यदि आप प्रसन्न हैं तो तीनों ही मेरे पुत्र हो जायँ। देवताअें ने तथास्तु कह कर स्वीकार किया सती की प्रार्थना को। ये ही तीनों देव अनुसूया के पुत्र हुये थे।

वरदान स्वरूप ब्रह्मा के अंश से सोम, इसीका नाम चंद्रमा है। **चंद्रमा-** पितरोंके अधिपति, सृष्टि-रचना-क्रम में लोकपितामह ब्रह्मा ने अपने मानसपुत्र अत्रि को सृष्टि-रचना के लिए आदेश दिया। इसके लिए महर्षि अत्रि ने भीषण तपस्या की, जिसके परिणामस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर उन महर्षि के मन एवं नेत्रों के भीतर स्थिर हो गए। **चंद्रशेखर-** भगवान शिव। ये सभी दक्ष प्रजापति की कन्याएं हैं। इनमें रोहिणी चंद्रमा को अत्यंत प्रिय हैं। रोहिणी में अतिशय अनुराग के कारण चंद्रमा ने अन्य पत्नियों की अवहेलना की। इससे असंतुष्ट और व्यथित होकर अन्य सभी बहनों ने पिता दक्ष से अपना दु:ख प्रकट किया। दक्ष ने क्रुद्ध होकर चंद्रमा को शाप दे दिया। उस समय भगवती उमा सहित भगवान शंकर भी महर्षि अत्रि के मन-नेत्रों में विराज रहे थे, अत: उनके अष्टमांश से शिशुरूप में चंद्रमा प्रकट हो गए। शीघ्र ही महर्षि अत्रि के नेत्रों से जलसंभूत तेज नीचे की ओर बह चला। उस तेज ने संपूर्ण चराचर जगत को अपने प्रकाश से उद्दीप्त कर दिया। दिशाओं ने उस तेज को स्त्रीरूप से धारण कर पुत्र-प्राप्ति की कामना से ग्रहण कर लिया। वह उनके उदर में गर्भरूप होकर तीन सौ वर्षों तक स्थित रहा। जब दिशाएं उस गर्भ को धारण करने में असमर्थ हो गईं। तब उन्होंने उसका परित्याग कर दिया। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने उस गर्भ को उठाकर, उसे एकत्र कर एक सर्वायुधधारी तरुण पुरुष के रूप में परिणत कर दिया तथा उसे सहस्र घोड़ों के रथ में बिठाकर ब्रह्मलोक में ले गए। उस दिव्य पुरुष (चंद्रमा) को देखकर ब्रह्मर्षियों ने कहा- ये हम लोगों के स्वामी हैं। उसी समय पितर, ब्रह्मादि देवता, गंधर्व और औषधियों ने सोमदेव की वैदिक मंत्रों से स्तुति की। इस प्रकार स्तुति किए जाने पर चंद्रमा का तेज और भी अधिक बढ़ गया।

विष्णु के अंश से दत्त और रुद्र के अंश से दुर्वासा पैदा हुए। अत्रि पुत्र होने के कारण दत्त को दत्तात्रेय दत्त-आत्रेय कहा जाता है। जिसे यश की आकांक्षा नहीं, मान-अपमान की चिन्ता नहीं, शत्रु से शत्रुवत् और मित्र से मित्रवत् भाव नहीं अर्थात् समभाव रखता है, ज्ञान-वैराग्य ही जिसका आभूषण है वही त्रिगुणातीत है। ऋषिश्रेष्ठ अत्रि में यह सारे गुण उपस्थित थे। यदि समाज में कोई भी अनुसूया और अत्रि के समान आदर्शवादी (पत्नी का धर्म है ईश्वर एवं सदाचार में निष्ठा रखते हुए पति की आज्ञा का अनुपालन करना तथा पति को पतन के गर्त से बचाने का प्रयास करते रहना; पुरुष का कर्त्तव्य है वर्णाश्रम धर्म का प्राणप्रण से निर्वाह करना) हो तो यह कहना सच होगा कि उसकी सन्तान निश्चित रूप से आदर्श होगी। भगवान भी ऐसे आदर्श परिवार की मर्यादा बनाये रखने के लिए समय-समय पर जन्म लेते हैं। मनीषियों का मत है- जो

भगवान के गुणों का वर्णन करता तो है लेकिन सम्प्रदाय भेद से असूया (भेद) रखता है उसे शान्ति-समृद्धि कभी नहीं मिलती। दूसरे शास्त्री दृष्टि से लोक-परलोक के फलों से वंचित रहता है।

दत्तात्रय ने बहुतों को उपदेश दिया है। हैहयकुलावतंस महाराज सहस्रबाहु, महाराज यदु, धर्मनिष्ठ महाराज अलर्क, महाराज आयु, परमभक्त प्रह्लाद आदि बहुत से मुमुक्षुओं को उन्होंने अपने उपदेशामृत से अजर अमर बनाकर इस लोक की सम्पत्ति भी दी और मोक्ष का अधिकारी भी बना दिया।

सती देवी। तेरे चरणों का सादर वन्दन करते हैं।
भाव भक्ति से हृदय खोलकर। प्रेमसहित जय-जयति बोलकर।।
भक्त-वृन्द परमेश्वरका जैसे अभिनन्दन करते हैं। सती देवि परमोज्ज्वल: शुचि, परमतपस्विनि।।
वीर-धीर हे परम मनस्विनि।। सुरसरि सम तेरे चरणों से रज ले चन्दन करते हैं।
सती देवि परम तेज की परम त्याग की। पतिपद में परमानुराग की।।
गा-गाकर गुण-गरिमा सज्जन, जन-मन-रंजन करते हैं। सती देवी। तेरे चरणों का सादर वन्दन करते हैं।।

ब्रह्मा के तीसरे पुत्र थे अंगिरा। उनकी पत्नी का नाम था- श्रद्धा। श्रद्धा की चार पुत्रियाँ और दो पुत्र थे। पुत्रियों में दो- सिनीवाली और कुहू अमावस्या की और दो अनुमति तथा राका पूर्णिमा की अधिष्ठात्री देवियाँ बनीं। दो पुत्र थे- उतथ्य और बृहस्पति। बृहस्पति देवताओंके गुरु कहलाये। विद्वानोंमे शिरोमणि हैं।

चतुर्थ पुत्र पुलस्त्य ने हविर्भू नाम की पत्नी से अगस्त्य को उत्पन्न किया। पुलस्त्य के दूसरे पुत्र थे- विश्रवा। इनमें अगस्त्य जी दूसरे जन्म में जठराग्नि हुए। विश्रवा की दो पत्नियाँ थीं- इडविडा और केशिनी। इडविडा से यक्षराज कुबेर का जन्म हुआ और केशिनी से रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण उत्पन्न हुए।

कुंभकर्ण- राक्षसराज रावण का अनुज। किसी समय सुमाली नामक राक्षस अपनी अविवाहिता पुत्री कैकसी के साथ रसातल से निकलकर मर्त्यलोक में घूम रहा था। उसने धनाध्यक्ष कुबेर को पुष्पक विमान पर बैठे सैर करते देखा। तब उसने कैकसी से कहा- पुत्री। तू स्वयं ही जाकर मुनिवर विश्रवा का वरण कर ले। उनसे तुम्हें भी कुबेर के समान श्रीसंपन्न पुत्र होंगे। पिता की बात मानकर कैकसी मुनिवर विश्रवा के सामने जाकर चुपचाप खड़ी हो गई। मुनिवर के प्रश्न करने पर उसने करबद्ध होकर मात्र यही कहा- भगवन्। आप ध्यान द्वारा सभी कुछ जान सकते हैं। मुनिवर ने ध्यानस्थ होकर सारी बातें जान लीं। फिर उन्होंने कैकसी से कहा- हे सुंदरी। मैं तेरा मनोरथ जान गया हूं, किंतु तू इस दारुण समय में आई हैं, अत: तेरे पुत्र भी दो भयंकर राक्षस होंगे। इस पर कैकसी ने कहा- ब्रह्मन। क्या आपके द्वारा भी ऐसे भयंकर पुत्र होने चाहिए? मुनी विश्रवा ने कहा- उन दोनों के बाद तेरा जो पुत्र होगा, वह महान भक्त और बुद्धिमान होगा। कालांतर में कैकसी ने दशग्रीव रावण को जन्म दिया। उसके पश्चात् महापर्वत के समान आकारवाला कुंभकर्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

ब्रह्मा के पंचम पुत्र पुलह की भार्या गति ने तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। तीन पुत्र- कर्मश्रेष्ठ, वरीयान और सहिष्णु। इसी प्रकार ब्रह्मा के षष्ठ पुत्र क्रतु की भार्या ने ब्रह्मतेज से देदीप्यमान बाल्यखिल्य आदि साठ हजार ऋषियों को जन्म दिया।

ये अंगूठे के पोर के समान छोटे-छोटे बड़े तेजस्वी है। सूर्यनारायण के रथ के आगे-आगे वेद मंत्रों की स्तुति करते थे।

सातवें पुत्र वसिष्ठ ने ऊर्जा (अरुन्धती) से चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्बण, वसुवद्यान और द्युमान आदि सात पुत्रों को उत्पन्न किया। वसिष्ठ की एक दूसरी पत्नी भी थी। उससे शक्ति आदि और कई पुत्र पैदा हुए। शक्ति के पराशर, पराशर के कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास और उनके पुत्र शुकदेवजी इसप्रकार वशिष्ठजी का वंश है। ब्रह्मा के अष्टम पुत्र अथर्वा

ने अपनी पत्नी चित्ति से दधीचि ऋषि को उत्पन्न किया। उनके एक पुत्र अश्वशिरा भी था।

ब्रह्मा के नवम पुत्र थे भृगु। भृगु जी की पत्नी का नाम था ख्याति। ख्याति के दो पुत्र- धाता और विधाता थे। उसकी एक पुत्री भी थी। उसका नाम था- श्री। मेरु ऋषि ने अपनी आयति और नियति नाम की कन्याएँ क्रमश: धाता और विधाता को व्याहीं। उनसे उनके मृकण्ड और प्राण (वेदशिरा) नामक पुत्र हुए। भृगु के एक कवि नामक पुत्र भी थे। उनके भगवान उशना (शुक्राचार्य) हुए। शुक्राचार्य जो दैत्योंके गुरु है। मृकण्ड से मार्कंडेय हुआ।

शुक्राचार्य- असुरों के आचार्य भृगुपुत्र उशना। किसी समय असुरगण देवताओं को कष्ट पहुंचाकर भृगुपत्नी के आश्रम में छिप जाते थे। असुरों ने माता कहकर उनकी शरण ली थी और उन्होंने पुत्र जानकर उन सबको भयमुक्त कर दिया था। देवता जब असुरों को दंड देने के लिए उनका पीछा करते हुए आते, तब भृगुपत्नी के प्रभाव से आश्रम में प्रवेश नहीं कर पाते थे। देवताओं की प्रार्थना पर देवी संपदा की रक्षा के लिए भगवान विष्णु ने चक्र द्वारा भृगुपत्नी का सिर काट दिया। उशना माता के वध से खिन्न थे, अत: उन्होंने असुरों को अभयदान दे दिया।

उसी समय की बात है, देवराज इंद्र तीनों लोकों के अधीश्वर थे और यक्षों तथा राक्षसों के अधिपति राजा कुबैर उनके कोषाध्यक्ष थे। उशना ने योगबल से कुबेर के भीतर प्रवेश करके उन्हें अपने वश में कर लिया और उनके सारे धन का अपहरण कर लिया। उद्विग्न और खिन्न कुबेर भगवान शंकर के पास गए और उनसे प्रार्थना की- प्रभो। कृपा करके मुझे उशना के प्रभाव से बचा लीजिए। कुबेर की प्रार्थना सुनकर शंकर महादेव ने अपने हाथ में त्रिशूल ले लिया और उशना को ललकारा। भय से आक्रांत उशना वहां से दूर चले गए और योगबल से भगवान शंकर के त्रिशूल के अग्रभाग में दिखाई दिए। भगवान शंकर ने त्रिशूल को झुका दिया जो शिव के पाणि-प्रहार से धनुष्य के रूप में परिवर्तित हो गया। उशना अब शंकर के हाथ में आ गए। उशना को मुख के भीतर डाल दिया। प्रभावशाली भृगुपुत्र शंकरजी के उदर में इधर-उधर विचरने लगे। इसी बीच भगवान शंकर ने जल के भीतर अनंत काल तक घोर तपस्या की। तपस्या पूरी करके जब वे जल से बाहर आए, तब उनकी तपस्या के प्रभाव से मुनि उशना की तपस्या में भी वृद्धि हो गई। उन्होंने भीतर ही भीतर भगवान शंकर की स्तुति की और उदर से बाहर निकालने की प्रार्थना की। भगवान शंकर ने उन्हें तेज-मार्ग से बाहर आने की अनुमति दी। शुक्र (तेज) के रूप में बाहर आने के कारण ही मुनि उशना का नाम शुक्र हो गया।

इस प्रकार कर्दम से देवहूति की जो नौ कन्याएँ पैदा हुई थीं, उनके वंश का वर्णन यहाँ तक किया गया। अब दक्ष के वंश का वर्णन बतलाता हूँ।

ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति ने मनु की छोटी बेटी प्रसूति से विवाह किया। उससे उन्होंने सोलह सुन्दरी कन्याएँ उत्पन्न की। दक्ष ने उनमें से तेरह धर्म को, एक अग्नि को, एक समस्त पितृगण को और एक भगवन शंकर को व्याही थी। धर्म की एक पत्नी का नाम था मूर्ति। श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री, मूर्ति यह धर्म की अन्य पत्नियां थी। इसने धर्म के एक-एक पुत्र हुए।

२) नर-नारायण का अवतार- मैत्रेय बोले- विदुरजी। सम्पूर्ण गुणों की उत्पत्ति रूपा धर्मपत्नी श्री मूर्तिजी ने ऋषि रूप भगवान नर-नारायण को उत्पन्न कया, जिनके जन्म से अत्यन्त आनन्दित होकर इस सम्पूर्ण चराचर जगत् ने प्रसन्नता प्रकट की। जीव तो अन्धा है। वह स्वत: उस प्रकाशमय मार्ग की ओर बढ़ ही नहीं सकता, इसीलिये भगवान अनेकों अवतार धारण करते हैं। नर-नारायण का अवतार भी इन्हीं अवतारों की गणना में है। उस भूमा पुरुष के स्वरूप में अवतारों के धारण करने पर भी कोई विकार नहीं आता। सब अवतारों के कार्य-क्षेत्र पृथक्-पृथक् होते हैं। ये नर-नारायण

का अवतार तपस्या का आदर्श उपस्थित करने को है। एक कल्प-पर्यन्त इनकी स्थिति बताई गई है। स्थिति तो इनकी नित्य ही है, किन्तु पृथ्वी पर ये इस रूप में इतने दिन अवस्थित रहे। संयम का आदर्श इस अवतार ने उपस्थित किया। मूर्ति देवी के गर्भ से स्वयं साक्षात् श्रीमन्नारायण ही उत्पन्न हुए जो दो रूपोंमे आये और तपस्या का महत्व बढ़ा रहे है। जो मुनियों के अग्रगण्य और आदर्श है, तपस्या की साकार मूर्ति हैं, आकल्पान्त बदरिकाश्रम में रहकर तपस्या करते है उनका नाम नर-नारायण हुआ। ये कभी पृथक नहीं होते, सदा साथ-साथ ही रहते है। जिस समय यह पैदा हुए उस समय सम्पूर्ण संसार सुखी हुआ तथा सर्वत्र प्रसन्नता छा गयी। इनके अवतार ग्रहण करने पर ऋषि-मुनियोंने प्रार्थना करी। भगवान नारायण ने स्वयं ही संकल्प द्वारा सृष्टि का सृजन किया, उसकी एक मर्यादा स्थापित कर दी। नर-नारायण का रूप अत्यन्त ही मनोहर, नयनाभिराम, बड़ा ही मादक और मोहक है। प्रकृति के दासत्व से मुक्त नरत्व है और परमात्मा नारायण। यदि किसी नर ने नारायण को पहचान लिया तो उसका जीवन सफल हो गया।

सर्व गुणानिकी खानि मूर्तिने पुरुष पुरातन। विश्वम्भर श्रीकृष्ण जने हरि नर नारायन।।
जन्म समय सुर कुसुम गगनतें बहु बरसामें। गामें गुन गन्धर्व देव वर वाद्य बजामें।।
सब जगमहँ मंगल भयो, साम गान ऋषि मुनि करहिं। प्रभु प्रकटे अब जगत् को, शोक मोह तम सब हरहिं।।

मूर्ति ने नर-नारायण को पैदा किया। इनका जन्म होने पर सारे विश्व में आनन्द छा गया। बड़े-बड़े ऋषियों ने इनकी स्तुति की, अप्सराएं नाचने लगी, गन्धर्व किन्नर गान करने लगे। सृष्टि में आनन्द ही आनन्द छा गया। यह बद्रिनारायण नाम से भी जाने जाते है। बद्रि माने बेर। वहां बेर का जंगल है जहां पर यह दोनों तप करते है। एक सहस्त्रकवची नाम का राक्षस पैदा हुआ। उसने सूर्य नारायण की आराधना करके एक हजार दुर्भेद्य कवच अपने शरीर में प्राप्त किये और वर मांग लिया जो दस हजार वर्ष तक मुझसे लड़े और यह कवच तोड़े उसकी मृत्यु हो जाए। ऐसे दुर्भेद्य कवच दस हजार तोड़नेवाला पैदा ही नहीं होगा क्योंकि एक ही कवच तोड़ने के बाद उसकी मृत्यु हो जाएगी तो वह सुरक्षित रह सकेगा मरेगा नहीं। जब उस राक्षस को ऐसा वरदान मिल गया तो वो बड़ा भारी उद्दण्ड हो गया। देवताओं, संतों, वेदों, सज्जनों को सताने लगा, सारे जगत में उसका आतंक छा गया। देवताओंने भगवान से प्रार्थना की- प्रभु हमारी रक्षा करें। भगवान ने आश्वासन दिया मैं प्रकट होऊंगा और इसको मारूँगा। इसलिये भगवान दो रूपों में प्रकट हुए एक भाई लडता था और एक भाई तप करता था। सूर्य नारायण का दिया हुआ वरदान कभी झूठा न हो इसलिये इसका कवच तोड़ते थे और शरीर छोड़ देते थे। जो भाई तप करता था वो उठता था और दूसरे मरे हुए भाई को जिला देता था। दोनों भाइयों ने उसके ९९९ कवच तोड़ डालें। जब एक कवच बच गया तो वह डर गया, डर के मारे अपने इष्टदेव भगवान सूर्यनारायण के मण्डल में भाग गया। नर-नारायण ने मिलकर उसको सूर्यमण्डल से बाहर निकाला। दुर्वासा जी को भेजकर कुन्तीको मन्त्र दिलवाया और मन्त्र की परीक्षा करने के लिये कुन्ती ने कुमारी अवस्था में सूर्यनारायण का आह्वान किया। सूर्यनारायण आये और बोले- देवी क्या चाहती हो? कुन्ती बोली- कुछ नहीं। सूर्यनारायण बोले- तो फिर बुलाया क्यों? कुन्ती बोली- मैं तो मन्त्र की परीक्षा कर रही थी। सूर्यदेव बोले- <u>देवता केवल परीक्षा देने कहीं नही जाते</u> उनका दर्शन अमोघ है। जहां जाते है वहां कुछ देकर जाते है। इसलिये मैं तुम्हे एक पुत्र प्रदान करूँगा। कुन्ती ने कहां- मैं अभी कुंवारी हूँ। सूर्यनारायण बोले- तुम्हारा कुंवारापन सुरक्षित रहेगा। तुम्हारे कौन्तेय पुत्र का जन्म होगा जो कर्ण कहलायेगा। और वो एक बचा हुआ कवच कुण्डल लेकर पैदा हुआ। जब कर्ण ही कवचकुण्डल सहित रूपांतरित हो गया तब इन दोनों भाई नर-नारायण ने निश्चय किया कि हम भी रूपांतरित होकर इसको मारेंगे। अब वे दोनों नर-नारायण अर्जुन और कृष्ण के रूप में बदल गये और नरावतार अर्जुन के हाथ से कर्ण का वध करवाया। कर्ण का कवच इन्द्र को ब्राह्मण वेष में भेजकर कवच कुण्डल भिक्षा में मांग लिया।

नर नारायण भगवान तप कर रहे थे, अभी भी तप कर रहे हैं। हिमालय में एक पर्वत शिखर पर नर और एक पर्वत शिखर पर नारायण दोनों भाई तप कर रहे हैं। इन्द्र इनकी तपस्या देखकर डर गये। इस तपस्या से ये हमारा इन्द्रासन न ले लें। उसने इनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिये स्वर्ग की अप्सराओं को और कामदेव को भेजा लेकिन उनकी दाल नहीं गली। जिनके स्मरणमात्र से लोग निष्काम हो जाते हैं, उनके हृदय में ये क्या विकार उत्पन्न कर सकेंगे। वे सब डर गये, अरे ये तो भगवान हैं। हमने इनकी तपस्या में विघ्न करके बड़ा भारी अपराध किया। क्षमा याचना करने लग गये। भगवान नर-नारायण ने कहा- तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। तुम तो इन्द्र के भेजे हुए आए हो। वह बिचारा अपनी आदत से लाचार है। क्या करे? नर नारायण स्वर्ग के अप्सराओं को बोले- तुम तो नृत्यगान करके अपनी कलाका प्रदर्शन कर रही हो इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। राजा के सामने कोई कला का प्रदर्शन करता है तो वह पुरस्कार देता है। हमारे सामने तुमने नृत्य गीत की कला का प्रदर्शन किया तो पुरस्कार में अपने संकल्प से उर्वशी नाम की अप्सरा को रचकर प्रकट किये और कहा- इसको ले जाकर इन्द्र को देना जो स्वर्ग की शोभा बढ़ानेवाली होगी। इस घटना से इन्द्र को चुनौती दी और कहा- अरे इन्द्र, तू अपने स्वर्ग की साधारण अप्सराओं को भेजकर हमें क्या डिगायेगा। उर्वशी सरीखी अप्सरा को तो हम अपने संकल्प से रच सकते हैं जैसी तुमने सपने में भी कभी देखी नहीं होगी। इन्द्र बहुत लज्जित हुए।

नारायण अपनी माँ से बोले- हम सन्यासाश्रम में प्रवेश कर मोक्ष मार्ग का अवलम्बन करेंगे। हमारा जन्म संसारी बन्धनों में फँसने के लिये नहीं हुआ है। हम तपस्या में ही मग्न रहेंगे। एक ही आश्रम में रहकर घोर तप करेंगे। हमारा तप मृदु और तीव्र होगा। हमारे नियम भी कठोर होंगे पर वह किसीको क्लेशकर न होंगे। प्राणिमात्र के कल्याण के निमित्त ही हमारा तप होगा। हम स्वधर्म का पालन करते हुए निरन्तर धर्माचरण करते रहें। तपस्या में ही सर्वथा संलग्न रहेंगे। माता का हृदय भर आया। इन साधु पुत्रों को पैदा करके मातायें कृतार्थ तो हो जाती हैं, उनका यश तो सर्वत्र व्याप्त हो जाता है किन्तु उनका हृदय सदा तड़पता रहता है। नर और नारायण दोनों गन्धमादन पर्वत पर स्थित बदरी क्षेत्र में चले गये और वहाँ रहकर घोर तपस्या करने लगे। वहीं उनकी ऊरू (जांघ) से उर्वशी अप्सरा उत्पन्न हुई। वहीं पर उन्होंने नारदजी को उपदेश दिया।

उन्होंने अपने तप का प्रभाव प्रकट किया, देवराज इन्द्र की प्रेरणा से कामदेव की सेना स्वरूपा जो अप्सरायें उनके तप भङ्ग करने की चेष्टा कर रही थी, उनका सब प्रयास विफल हुआ। भगवान के सम्मुख आते ही उनके मोहक हाव-भाव कटाक्ष सभी विफल हुए।

अग्नि की पत्नी स्वाहा से तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम थे- पावक, पवमान और शुचि। ये तीन अग्नि के नाम हैं और हवन किये गये पदार्थों का भक्षण करनेवाले हैं। इनसे ४५ अग्नियों की उत्पत्ति हुई। इन तीन, पिता और पितामह को मिलाकर उंचास अग्नियाँ कही जाती है। वैदिक यज्ञों में जिन उंचास अग्नियों के नामों से आग्नेयी इष्टियाँ करते हैं, वे ये ही हैं।

चौदहवीं जी दक्षसुता स्वाहा पितु प्यारी। अग्निदेवने वरी कमलनयनी सुकुमारी।।
पावक शुचि पवमान जने हवि मुक तीनों सुत। पौत्र पाँच चालीस अग्नि सबई तेजो युत।।
वेद विज्ञ जन यज्ञमहँ, आगनेय इष्टी करहिँ। उनञ्चास सब मिलि भये, यज्ञ यागमहँ जे जरहिँ।।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। दक्ष पुत्री स्वाहा ने अग्नि के द्वारा अग्नि के अभिमानी, हवि का भोजन करने वाले पावक, पवमान और अशुचि ये तीन पुत्र उत्पन्न किये। इन तीनों के पैंतालिस पुत्र उत्पन्न हुए। एक अग्निदेव, तीन उनके पुत्र, पैंतालिस पौत्र, इस प्रकार तीनों मिलकर उनञ्चास अग्नि के ही प्रकार है। पूरे परिवार को मिलाकर ये उनञ्चास अग्नि कहाते हैं।

३) अग्नि वंश- अग्नि दो प्रकार की हैं। परमाणु रूप से तो वे नित्य हैं और प्रकट में कार्य में आनेवाली अनित्य हैं। नित्य अग्नि सर्वव्यापक हैं, उन्हीं से सृष्टि की उत्पत्ति है, अग्नि न हो, तो सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। संहार के

लिये भी अग्नि की ही आवश्यकता रहती है और जीवन धारण करने के लिये भी अग्नि अनिवार्य है। अग्नि के अनेक प्रकार हैं, किन्तु उसके पाँच प्रधान भेद हैं। एक तो सर्वव्यापक अग्नि जो अणु-परमाणु में व्याप्त है, एक बाड़वाग्नि जो समुद्र में रहकर समुद्र के जल को सोखती रहती है, उसे बढ़ने नहीं देती। दूसरी जठराग्नि है, जो सभी प्राणियों के शरीरों में रहकर खाये हुए पदार्थों को पचाती है, एक यज्ञीय अग्नि जिनसे अनेक प्रकार के वैदिक यज्ञ याग होते हैं। एक सामान्य अग्नि जिनसे लोक में पाक आदि कर्म होते हैं। एक ही सर्वव्यापक अग्नि के ये प्रधान भेद हैं। वैसे तो अग्नि का वंश बहुत बड़ा है।

एक कल्प में अग्नि का वंश अंगिरा मुनि से आरम्भ हुआ। एक बार अंगिरा ऋषि ने घोर तप किया। तपस्या से वे अग्नि से भी बढ़कर तेजस्वी हो गये। उनके तेज के सम्मुख अग्निदेव निस्तेज हो गये। अंगिरा मुनि अपने तेज से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए आये। अग्नि तो उनके तेज को देखकर हतप्रभ ही हो चुके। अंगिरा ऋषि ने उन्हें देखकर प्रणाम किया और पूछा- आप इस तरह अनमने कैसे हुए? अग्निदेव बोले- हे मुनिवर, मेरा तेज भी कम हो गया है, अब इस अग्नि के सिंहासन को आप ग्रहण करें, मेरे कार्य भार को आप सम्भालें। अंगिरा मुनि बोले- नहीं, महाराज। आप ही प्रथमाग्नि हैं। आप ही तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले हैं, मैं आपके इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद को सम्हालने में सर्वथा असमर्थ हूँ।

अग्नि देव बोले- यदि आप मुझे रखना ही चाहते हैं तो प्रधान अग्नि का पद आप ग्रहण करें मुझे उपप्रधान बनाकर रखें। मैं प्रजापत्य के नाम से आपका सहयोगी बनकर रहूँगा। अंगिरा ऋषि बोले- यह मुझे स्वीकार नहीं, प्रथम पद पर आप ही प्रतिष्ठित रहेंगे तो मेरा वंश भी आँगिरस अग्नि के नाम से प्रसिद्ध होगा। अंगिरा ऋषि के सात पुत्र हुए। उनमें बृहस्पति अग्नि से हुए। बृहस्पति के छ: पुत्र हुए जो अग्नि स्वरूप ही थे। प्रथम शंयु अग्नि है जिसे हवन में प्रथम आहुति दी जाती है। शंयु के भरद्वाज अग्नि हुए जिन्हें पहिले आज्य भाग दिया जाता है। इसप्रकार बृहस्पति के वंश में बहुत से अग्निसमान पुत्र, पौत्र हुए। जो यज्ञीय कर्मों में भिन्न कामों में पूजे जाते है। बृहस्पति के दूसरे पुत्र जो निश्चयवन नामक अग्नि हैं वे तेज स्वरूप है। मनुष्यों में जो तेज, यश, कान्ति, श्री दिखाई देती है यह इन्हीं का रूप है। तीसरे पुत्र का नाम विश्वजित है। सम्पूर्ण विश्व की बुद्धि को वश में करके जो अग्नि एक नियन्त्रण में रखती है, जिसके कारण अनेक-अनेक आविष्कार होते हैं, उस तेज का ही नाम विश्वजित है। चौथे पुत्र का नाम विश्वभुक है। विश्व में जितने प्राणी हैं, वे जो भी कुछ आहार करते हैं, उसे पचाने का काम इस अग्नि का है। इसे जठर में रहने के कारण जठराग्नि भी कहते हैं। पाँचवें पुत्र का नाम बड़वाग्नि है। जो समुद्र के जल में रहकर उसे पीते रहते हैं, छठें पुत्र का नाम स्विष्टकृत है। जिनमें जल से शुद्ध करके जो हवि छोड़ी जाती है घृतादि हवनीय पदार्थ भली प्रकार छोड़े जाने से भी इन्हें स्विष्टकृत कहते हैं। इस प्रकार ये छ: अग्नि तो बृहस्पति, अत्रि, अग्नि ने अपनी चान्द्रमसी पत्नी से पैदा किये।

बृहस्पति की क्रोधाग्नि से एक लड़की हुई, जो मन्यन्ती कहलाई। उसके एक लड़का हुआ, जो सभी स्त्री पुरुषों के विशेषकर युवक और युवतियों के हृदयों में निवास करता है। उसका नाम कामाग्नि है। इसके तेज से तपे प्राणी लज्जा, संकोच, धैर्य, विनय, धर्म सत्य सभी को खो देते हैं। इनका ही दूसरा भाई अमोघ है, जो क्रोधाग्नि की तरह सबको मारता है। तीसरा भाई उक्थाग्नि है, जो धर्म-कर्म और मोक्ष मार्ग में सहायक होता है। इस उक्थ अग्नि के बहुत भेद हैं। कश्यप, वसिष्ठ, प्राणक, आंगिरस और त्रिवर्चा- इन नामों की एक पाञ्चजन्य अग्नि है। ये अपनी सन्तानों सहित पच्चीस प्रकार के हैं। इनके अतिरिक्त शंयु, भरत, शिव, उष्मा, आवसथ्य, ऊर्जस्कर, प्रशान्त, बृहद्, भानु, बलद, मन्युमान, धृतिमान, आग्रायण, आग्रह, अग्निषोम, वैश्वानर, विश्वपति, सन्निहित, कपिल, अग्रणी, वसुमान, सुरमति, उत्तर, पथिकृत, अग्नितम, सह, अद्भुत, गृहपति, भरत, ऋतु, नियम आदि अग्नि के और भी अनेक भेद हैं। ये सब अग्नि भिन्न-भिन्न होने पर भी दिखने में एक ही दिखाई देते हैं। वेदज्ञ ऋषि ही इनके भेदों को जानते और समझते हैं। आदि अग्नि ने अंगिरा को ही अपना

सम्पूर्ण उत्तराधिकार दे दिया था, उन्हीं से ये सब अग्नि उत्पन्न हुए। भिन्न-भिन्न मन्त्रों से वेदज्ञ ऋषि भिन्न-भिन्न अग्नियों का आह्वान करके भिन्न-भिन्न देवताओं को हवि पहुँचाते हैं। पहिले अग्निदेव सर्व भक्षी नहीं थे, वे देवताओं को हविर्भाव ही पहुँचाया करते थे, किन्तु भृगु महर्षि ने अग्नि को शाप देकर सर्वभक्षी बना दिया।

भृगु ऋषि की पुलोमा नामक स्त्री थी। उसके मातृ कुल का सम्बन्ध असुर कुल से था। उसका विवाह पुलोमा नामक दानव से होनेवाला था। पर उसके पिता ने भृगु ऋषि के साथ उसका विवाह कर दिया। पुलोमा तो दानव ही ठहरा। वह अब इस ताड़ में रहने लगा कि किसी तरह भृगु पत्नी पुलोमा का हरण कर लूँ। लेकिन वह भृगु मुनि के तेज तप से डरता था। एक दिन मुनि स्नान के लिये आश्रम से बाहर गये। सुना आश्रम देखकर अच्छा अवसर पाकर पुलोमा वहाँ आया और भृगु पत्नी पुलोमा को ओट में अकेली खड़ी देखा। वहाँ अग्निहोत्र की अग्नि कुण्ड में दीप्त हो रही थी। उसने अग्निदेव से पूछा- तुम देवताओं के मुख हो। सत्य-सत्य बताना। यह वही पुलोमा स्त्री है ना, जिसके विवाह की बातचीत मेरे साथ हुई, फिर इसके पिता ने श्रेष्ठ वर के लोभ से इसका विवाह भृगु से कर दिया। तुम सभी प्राणियों के धर्म के साक्षी हो मिथ्या भाषण मत करना।

अग्नि घबरा गये वे धर्मसंकट में पड़ गये। सत्य बोलते है तो मुनि क्रोधित होते है और झूठ बोलते है तो धर्म च्युत होते है। और जानकर उत्तर नहीं देते हैं, तो अनृत के समान पाप लगता है। अत: अन्त में अग्निदेव बोले- दानव, कुछ बातें तुम्हारे साथ विवाह होने की हुई थी परन्तु कुँवारी कन्या के विवाह की बात तो बहुतों के साथ होती है। पति तो वही होता है जो अग्निके साक्षी करके कन्या का पाणिग्रहण करता है। भृगु ऋषि ने अग्निको साक्षी करके उसका पाणिग्रहण किया है अत: वे ही इसके धर्मपूर्वक पति है और वे मुनि की धर्मपत्नी है। वे दानव यह सुनकर शूकर का रूप धरकर पुलोमा को लेकर भाग गया। वह गर्भवती थी। पुलोमा दानव के भय के कारण उसका गर्भापात हो गया। ऋषि के तेजस्वी पुत्र ने गर्भसे निकलते ही जैसे ही उस दानव को देखा वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। भृगु पत्नी रोती हुई अपने आश्रम में आयी और भृगु ऋषि को सब वृत्तान्त सुनाया। पत्नी से सब वृत्तान्त सुनकर मुनि के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और बोले- तुम्हारा परिचय इस दानव को किसने दिया। भृगु पत्नी पुलोमा ने कहा- यह अग्निदेव ने उसे बता दिया था। इतना सुनकर मुनिदेव ने क्रोध से भर अग्नि को शाप दे दिया जाओ आजसे तुम सर्वभक्षी हो जाओ। अग्निने कहा- मुनिवर, मैं निर्दोष हूँ। अगर मैं असत्य बोलता तो मेरा देवत्व नष्ट हो जाता। सच बोलनेपर भी आपने मुझे शाप दे दिया। इसलिए मैं सत्याग्रह करता हूँ यह कहकर अग्नि अग्निकुण्ड में से अन्तर्धान हो गया। सब यज्ञ याग अग्निहोत्र सब बन्द हो गये। इसे देवताओं के भाग नहीं पहुँचने लगे। देवता भूखों मरने लगे। सब दौड़े दौड़े ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी ने अग्नि से कुछ बातें पूछीं। अग्निदेव ने अपने को निर्दोष बताया। ब्रह्माजी ने समझौता कराया और कहां जो हो गया सो हो गया। भृगु ऋषि का श्राप तो होकर ही रहेगा। पर कोई चिंता की बात नहीं। आप तो सबको पवित्र करनेवाले हैं। हे अग्निदेव आपके स्पर्श से सब पवित्र होते हैं। सर्वभक्षी होने पर भी आप देवताओं को पूर्ववत् हवि पहुँचाते रहोगे। आपकी पवित्रता में अणुमात्र भी अंतर नहीं आयेगा। तुम तो देवताओं के मुख हो। सदा पवित्र हो, इस हठ को छोड़ दो। सूर्य की किरणें सभी स्थानों में पड़ने पर भी पवित्र ही बनी रहती है। यह है अग्निवंश का आख्यान।

एक अग्नि सर्वत्र रहे व्यापक सब थलमहँ। एक करहिँ पयपान रहें नित सागर जलमहँ।।
जठर माहिँ जो रहें पचावें अन्न पानकूँ। एक भाग यज्ञीय पठावें उभय यानकूँ।।
एक असंस्कृत घरेलू, अग्नि पाक जिहितें करहिँ। आदि अग्नि तो एकई, रूप विविध तेई धरहिँ।।

साधारणत: अग्नि तीन प्रकार की होती हैं- १) आहवनीय अग्नि- जो यज्ञ होम में प्रज्वलित की जाती है, जा हवनकुण्ड में, पूजा-अर्चना में उपयोग की जाती है यह शुद्ध और पवित्र है। इसीके अंतर्गत दिव्याग्नि आती है- जैसे बादलों में चमकती

विद्युत इत्यादि। इस आवहनीय अग्नि के कई भेद होते हैं जो पंचभूत निर्मित जीव में पाई जाती है जैसे- क्षुधाग्नि, मंदाग्नि, जठराग्नि, कामाग्नि, गर्भाग्नि, तृषा इत्यादि। २) दूसरी अग्नि- गार्हपस्थ्य अग्नि। जो घरोंमे चूल्हे जलाने के काम में आती हैं। ३) दाक्षिणायन अग्नि- जो अशुद्ध है, श्मशान भूमि में जलाई जाती है। यह अग्नि बाँसोंके रगड़ से उत्पन्न होनेपर अपने आप जंगल में लग जाती है इसे दावानल कहते हैं। जो अग्नि समुद्र के पानी में जलती है उसे बडवाग्नि कहते हैं।

४) पितर वंश- पितरों की पत्नी का नाम था स्वधा। स्वधा ने धारिणी और वयुना नाम की दो कन्याओं को जन्म दिया था। उनका नाम था वयुना और धारणी। ये दोनों ब्रह्म विद्या में पारंगत थी। महादेव की पत्नी सती को कोई पुत्र नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि उन्होंने अपने पति के अपमान कर्ता पिता दक्ष के यज्ञ में, अप्रौढावस्था में ही, अपने शरीर को, योगाग्नि के द्वारा, जलाकर भस्म कर दिया था।

मैत्रेय बोले- विदुरजी। पितरों के अग्निष्वात्त, मर्हिषद, सोपम, आज्यप, साग्निक और निरग्निक ये छ: गण हैं। इन सबकी पत्नी दक्षकन्या स्वधा हुई। ये सब पितृगण इनमें कोई साग्नि हैं, कोई अनाग्नि है। इन पितरों से स्वधा के धारिणी और वयुना नाम की दो कन्यायें हुईं। वे दोनों ब्रह्मवादिनी थीं और ज्ञान में पारङ्गता थी। इन कन्याओंने विवाह नहीं किया, अवधूतनी हो गईं।

सृष्टि का विषय बड़ा गहन है। यदि हम प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानें, तो हमारे पिता के पिता थे, इसमें कोई प्रमाण नहीं है; ये हमारे माता-पिता हैं इसमें क्या प्रमाण? हमारी आँखें हैं या पीठ हैं इसमें भी प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं। अनुमान से ही सिद्ध होता है कि सब लोगों के पीठ है तो हमारे भी होगी। सबके आँखें हैं तो हमारे भी होंगी। अनुमान भी सदा सत्य नहीं होता। उसमें भी कभी-कभी बड़ी गड़बड़ हो जाती है, इसलिये आस्तिक शास्त्रों ने शब्द या शास्त्र प्रमाण को ही मुख्य माना है जिसे आप्तवाक्य या आर्षवाक्य भी कहते हैं। त्रिकालज्ञ मुनियों ने जो अपने अनुभव से कहा है वही सत्य है।

सृष्टि की सब योनियों को मिलाकर चौरासी लाख योनि मानी हैं। उन चौरासी लाख योनियों का इस प्रकार की सृष्टि में समावेश हो जाता है। संसार के समस्त प्राणी दशधा सृष्टि के अन्तर्गत हैं। इन दश में छ: प्राकृत सृष्टि हैं तीन वैकृत और एक प्राकृत वैकृत में मिली हुई। वे दस प्रकार ये हैं- महतत्त्व की सृष्टि, अहंकार की, पञ्चतन्मात्राओं की, इन्द्रियों की, इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं की, पञ्चपर्वा अविद्या की, ये छ: तो प्राकृत सृष्टि कही जाती है। तीन वैकृत ये हैं। स्थावरों वृक्ष आदि की सृष्टि, तिर्यक पशु पक्षी आदि की। मनुष्यों की इनके अतिरिक्त एक देवसर्ग है। देवताओं की गणना पहिले प्राकृत सर्ग में कर चुके हैं, उन प्राकृत देवताओं के अतिरिक्त वैकृत देव भी होते हैं, जो स्थूल सृष्टि के अनन्तर ऋषियों से उत्पन्न होते हैं। उनके आठ भेद हैं। स्वर्गस्थ देवगण, पितर, असुर, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष राक्षस, सिद्ध चारण, विद्याधर। भूत, प्रेत, पिशाच। किन्नरादि ये सभी सूक्ष्म शरीर वाले होने से देव कहे गये हैं। इनमें से जो पितर हैं, वे दो प्रकार के होते हैं। एक तो नित्य पितर दूसरे ये साधारण। साधारण पितर वे कहलाते हैं जो यहाँ से मरकर पितर लोक में जाते हैं। जैसे एक तो स्वर्ग में रहनेवाले नित्य देवता होते हैं, जो देवयोनि में उत्पन्न होकर ही दिव्य सुखों का स्वर्गादि लोकों में उपभोग करते हैं। दूसरे पुण्योपार्जित देवता होते हैं। इस लोक में इष्टापूर्ति कर्म करने से पुण्य के प्रभाव से देवता बनकर स्वर्ग में जाते हैं। इन सभी देवताओं के स्वामी इन्द्र होते हैं, इसीलिये ये देवराज कहलाते हैं। इसी तरह नित्य पितर तो सदा ही पितृ-लोक में निवास करके सभी प्राणियों की वंशवृद्धि की इच्छा से वे महा-समाधि में स्थित रहते हैं। दूसरे जो गृहस्थी मरकर पितर लोक में जाते हैं, जिनके वंश के लोग उनके मरने पर उनके लिये जो श्राद्ध तर्पण करते हैं, वह काव्य बनकर उन्हें सूक्ष्म रूप से मिलता है। इन सब पितरों के स्वामी यम हैं, इसीलिये सूर्यपुत्र भगवान यम पितृ-राज कहलाते हैं।

नित्य पितरों के मुख्यतया छ: गण हैं। अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, सोमप, आज्यप, साग्निक और निरग्निक। जिन्होंने स्मार्त

कर्मों के अनुष्ठान के द्वारा पितृ-लोक प्राप्त किया है वे नित्य पितर-अग्निष्वात कहलाते हैं। जिन्होंने वैदिक विधि से अग्निहोत्र यज्ञ यागादि करके पितृ-लोक प्राप्त किया है वे नित्य पितर बर्हिषद् कहलाते हैं। यज्ञ में जिन्हें सोम का भाग मिलता है, वे पितर सोमप कहलाते हैं। यज्ञ में जो घृत का ही पान करते हैं, उन नित्य पितरों की आज्यप संज्ञा है। श्राद्ध एक अग्नि-रहित केवल पिण्डों का ही श्राद्ध। जो अग्नि द्वारा आहुतियों के भागों का भक्षण करते हैं, वे साग्निक-पितर होते हैं और जो बिना अग्नि के ही अपने भाग को ग्रहण कर लेते हैं वे निरग्निक-पितर कहलाते हैं। इन सब पितरों को धर्म के जाननेवाले गृहस्थ नित्य प्रति तिल-तर्पण के द्वारा तृप्त करते हैं। समय-समय पर श्राद्ध करके इनके निमित्त भाग देते हैं। इन सब पितरों के साथ दक्षकुमारी स्वधा का विवाह हुआ है। जैसे अग्निहोत्र में अग्नि की पत्नी स्वाहा का नाम लेकर आहुति देते हैं, तो वे उसे ग्रहण करके यथास्थान पहुँचा देते हैं। उसी प्रकार पितरों के सब कार्यों में स्वधा का उच्चारण करके जल आदि दिया जाता है।

सूतजी बोले- मुनिवर। सृष्टि के आदि में देवता, पितर, ऋषि आदि सब उत्पन्न हुए। फिर अग्निहोत्र आदि कर्मों का प्रचार हुआ। देवता, पितरों को यज्ञ में भाग मिलता था, देवता पितर तो अमर ही थे। पृथ्वी लोक में तब तक कोई मरता नहीं था। ऋषि-मुनि राजा जब तक चाहते जीते थे जब इच्छा होती तब सशरीर स्वर्ग चले जाते। मरने का प्रश्न ही नहीं था। जब कोई मरता ही नहीं, तो श्राद्ध-तर्पण किसके निमित्त किया जाय? किन्तु इस सृष्टि में तो सदा परिवर्तन होता ही रहता है आवश्यकता ही आविष्कारों की जननी है।

भगवान अत्रि के दत्त, दुर्वासा और चन्द्रमा ये तीन पुत्र तीनों देवों के अंश से जन्मे। भगवान दत्तात्रेय के एक निमि नामक पुत्र हुआ। वह बड़ा तेजस्वी ज्ञानवान और विचारशील था। उन्हीं निमि के श्रीमान् नामक एक परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। वह इतना रूपवान था कि पिता उसके सौन्दर्य को देखते-देखते अघाते ही नहीं थे। वह एक हजार वर्ष तक तपस्या करता रहा। दैवयोग से वह मर गया। निमि मुनि को उसकी मृत्यु पर बड़ा क्लेश हुआ। दु:ख के कारण उनकी इन्द्रियाँ शिथिल-सी हो गयीं। वे बार बार सोचने लगे- मैं अब अपने इस पुत्र के निमित्त क्या करूँ। भगवान की प्रेरणा से उनके अन्त:करण में एक संकल्प उठा। मर कर यह जिस लोक में भी गया हो, क्यों न मैं इसके निमित्त कुछ श्रद्धा से कार्य करूँ। इस संकल्प के उठते ही उन्होंने श्राद्ध करने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा- मेरे मृत पुत्र को कौन-कौन सा अन्न अत्यन्त प्रिय था। इस बात को सोचकर उसे जो भी अन्न प्रिय थे, सब एकत्रित किये। फिर अमावस्या के एक दिन पूर्व सदाचारी वैदिक ब्राह्मणों को उन्होंने निमन्त्रित किया। अमावस्या के दिन सबको श्रद्धा से बुलाया। दक्षिणाभिमुख करके दर्भ बिछा कर ब्राह्मणों को बिठाया, बिना नमक का ऋषि अन्न उनके सामने परोसा। श्रीमान् का नाम गोत्र उच्चारण करके उसे पिण्ड दिये। यह सब करने के अनन्तर उनके मन में सन्देह हुआ कि यह तो मैंने नये ही धर्म का निर्माण सा कर डाला। मेरे पूर्ववर्ती ऋषि-मुनियों ने तो ऐसा किया नहीं। मुझसे यह धर्म सांकर्य्य तो नहीं हो गया। मैंने किसी नूतन धर्म की पद्धति तो नहीं चला दी। इस विचार के आते ही उन्होंने अपने वंश के पूर्वज भगवान अत्रि का स्मरण किया।

उनके स्मरण करते ही उसी क्षण भगवान अत्रि उनके सम्मुख प्रकट होकर कहने लगे- वत्स। तुमने मुझे क्यों स्मरण किया है? तुम इतने चिन्तातुर क्यों हो रहे हो? अपनी चिन्ता का कारण मुझे बताओ। मैं उसके निवारण का यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा।

यह सुनकर निमि मुनि बोले- प्रभो। मैंने इस प्रकार बिना सोचे समझे अन्त:करण की प्रेरणा से देवयज्ञ से पृथक् एक पितृयज्ञ किया है। मेरे मन में करने के अनन्तर यह शंका हो गई, कि यह कर्म कहीं अशास्त्रीय तो नहीं है।

यह सुनकर अत्रि बोले, वत्स। तुम चिन्ता मत करो। तुम परम तपस्वी हो तुमसे भूल में भी धर्म विरुद्ध आचरण नहीं हो

सकता। तुमने जो यह पितृयज्ञ किया है यह शास्त्रीय है, इसकी सर्वप्रथम विधि भगवान ब्रह्माजी ने ही प्रचलित की थी, वही शुद्ध अन्त:करण होने से तुम्हारे हृदय में प्रकट हो गयी। आज से सभी लोग इसी पितृयज्ञ के द्वारा अपने समस्त पितरों को तृप्त किया करेंगे। तपोधन, तुमने यह अत्युत्तम विधि प्रचलित की। इतना कहकर भगवान अत्रि ने उन्हें श्राद्ध की सांगोपांग विधि बतायी। उसी विधि से सभी लोग पितरों का श्राद्ध तर्पण करने लगे।

देवता पितरों को बड़ा आनन्द हुआ। सभी धर्मात्मा ऋषि मुनि श्राद्ध में पितरों के निमित्त अन्न जल देते। चारों वर्ण के लोग भी श्राद्ध तर्पण करने लगे। पितर भी मनमाना भोजन करने लगे। आवश्यकता से अधिक भोजन करने से पितरों के पेट फूलने लगे, उन्हें अजीर्ण और अपच होने लगी। बिना संयम सर्वदा खाते रहने से ऐसा होना अवश्यम्भावी था, सब पितर मिलकर लोक पितामह स्वायंभू भगवान ब्रह्मा के पास गये और दण्डवत् प्रणाम करके बोले- प्रभो। आप हमारी रक्षा करें, हमें भारी संकट से छुड़ावें। पितरों ने कहा- प्रभो। सभी लोक पितृयज्ञ, श्राद्ध करने लगे हैं। श्राद्धान्न खाते-खाते हमें अजीर्ण हो गया है। मन्दाग्नि हो गई है।

यह सुनकर ब्रह्माजी हँस पड़े और बोले- देखो, जैसे-तैसे तो मैंने तुम्हारे आहार का प्रबन्ध किया है। अब तुम कहते हो, पर तुम इसे पचा नहीं सकते। अच्छा, एक काम करो। ये अग्निदेव जो मेरे समीप बैठे हैं, तुम लोगों के साडु हैं, तुम्हारी पत्नी स्वधा और इनकी पत्नी स्वाहा दोनों सगी बहिनें हैं, इसलिये आज से अग्नि भी तुम्हारे साथ भोजन किया करेंगे।

अग्नि मन्द होने से ही अजीर्ण होता है। यह सुनकर पितरों को बड़ी प्रसन्नता हुई। अब वे निश्चिन्त हो गये। उसी दिन से श्राद्ध में प्रथम पिण्ड अग्नि को दिया जाता है। पहिले यह भी डर रहता था कि ब्रह्मराक्षस आकर पितरों के हाथ से उनका आहार छीनकर कहीं भाग न जायँ। अग्नि के समीप रहने से राक्षस दूर ही रहते हैं। इस प्रकार पितरों का श्राद्ध आरम्भ हुआ।

गृहस्थियों को पितरों का पूजन अवश्य करना चाहिये। प्रसन्न हुए पितर वंश की वृद्धि करते हैं। प्रत्येक गृहस्थी से पितर यही आशा रखते हैं कि वह उनके निमित्त श्राद्ध तर्पण करें।

तीसरि पुत्रि प्रसूति दई मनु दक्ष प्रजापति। सोलह कन्या जनीं कमलनयनी सुन्दर अति।।
श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, उन्नति अरु तुष्टीद। क्रिया, तितिक्षा, बुद्धि, मूर्ति, मेधा ही पुष्टि।।
तेरह दीन्हीं धर्मकूँ, स्वाहा अगिनीकूँ दई। स्वधा विवाही पितृ गण, सती शम्भु पत्नी भई।।

५) सती चरित्र- विदुरजी ने पूछा- ब्रह्मन् प्रजापति दक्ष तो अपनी बेटियों से बहुत प्यार करते थे फिर उन्होंने अपनी कन्या सती का अनादर कर शीलवानों में श्रेष्ठ भगवान शिव से द्वेष क्यों किया? महादेव जी भी सकल जगत् के गुरु, वैर-विहीन, शान्ति की मूर्ति और जगत् के परमाराध्य देव हैं। भगवन, उन श्वसुर और दामाद में इतना वैर कैसे हो गया जिसके कारण सती को अपने प्राणों का परित्याग करना पड़ा। शिवजी तो चराचर विश्व के गुरु हैं। बैर मनुष्य उसीसे करते हैं, जो किसीसे द्वेष करता है। शिवजी तो अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले हैं।

इस पर मैत्रेय जी ने कहना प्रारम्भ किया- एक बार महर्षि दुर्वासा दक्ष के घर पधारे। दक्ष ने बड़ी तत्परता से उनका सत्कार किया। प्रसन्न हो ऋषि ने उन्हें प्रसादरूप में देवी की माला दी। इस माला को दक्ष ने अपनी शय्या पर रखकर रात्रि में पत्नी के साथ शयन किया। उसी रात्रि में सती प्रसूति की कोख में आई। देवी की माला के इस अनादर के कारण ही दक्ष के मन में शिव और अपनी बेटी सती के प्रति दुर्भावना ने जन्म लिया।

माहेश्वरी - यही सती कहलायी। महादेव (महेश्वर) के शरीर से समुदभूत शक्तिस्वरूपा भगवती है। असुरों के विनाश तथा देवताओं के अभ्युदय के लिए ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इंद्र आदि देवों कि शक्तियां, जो अत्यंत पराक्रम

और बल से संपन्न थीं, उनके शरीर से निकलकर उन्ही के रूप में चंडिका देवी के पास गईं। जिस देवता का जैसा रूप, जैसी वेशभूषा और जैसा वाहन है, ठीक वैसे ही साधनों से संपन्न होकर उनकी शक्ति असुरों से युद्ध करने के लिए आईं। भगवान महेश्वर (महादेव) की शक्ति माहेश्वरी वृषभ पर आरूढ़ होकर, हाथों में श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किए हुए, महानाग का कंकण पहने, मस्तक पर चंद्ररेखा से विभूषित होकर युद्धस्थल में प्रकट हो गईं।

मैत्रेय मुनि बोले, ब्रह्माजी ने कई लोगों को प्रजापति की पदवी दी। कर्दमजी प्रजापति, वसिष्ठजी प्रजापति, कश्यपजी प्रजापति, विश्वकर्मा प्रजापति। प्रजापति बहुत हो गये तो ब्रह्माजी ने सोचा- अब प्रजापतियों का एक नायक होना चाहिये तो इन सब प्रजापतियों का अध्यक्ष दक्ष को बना दिया। प्रजापतियों के नायक का अधिकार पाकर दक्ष को अभिमान हो गया।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी, शंकरजी की पत्नी दक्षकुमारी सती भगवान शंकरजी की सर्वथा अनुगामिनी थीं। फिर भी गुण और शील में उनके ही सदृश उनके कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने युवावस्था प्राप्त होने से पहिले ही अपने पिता के कारण क्रोधवश योगाग्नि में अपना शरीर भस्म कर दिया, क्योंकि उनका पिता बिना अपराध के ही शमरजी से द्वेष करता था।

सती शिवजी की तन-मन-प्राण से सेवा करने पर भी पुत्र को प्राप्त न कर सकी।

दक्षकुमरी लघु सती रूप गुणकी जो खानी। ब्याही शिवके सङ्ग भक्तितें मई भवानी।।
अर्ध अंग, दे भये अर्धनारीनट ईश्वर। सती सरिसको सती तज्यो तनु ततछिन नश्वर।।
हठ अघको सोधन कर्‌यो, जग कीरति अक्षय करी। पति निन्दा रूपी अनल, लगी देह छिनमहँ जरी।।

बात प्राचीन काल की है। एक बार गंगा और यमुना के पावन संगम तीर्थराज में एक विशाल यज्ञ का ब्रह्म आयोजन हुआ। उस यज्ञ में बड़े-बड़े ऋषि, देवता, मुनि और अग्नि आदि अपने-अपने अनुयायियों के साथ उपस्थित थे। सभापति के आसन पर आसीन थे ब्रह्मा। उनके साथ में भगवान शंकर विराजमान थे। **महादेव -** भगवान शंकर। भगवान वासुदेव ने भगवान शंकर का माहात्म्य बताते हुए धर्मज्ञ युधिष्ठिर से कहा- वे सभी देवताओं में महान हैं, उनका वृत्तांत भी महान है, वे महान विश्व की रक्षा करते हैं, अत: वे महादेव कहलाते हैं। शिव वैष्णवों के आचार्य है। हरेक सिद्धि शिवजी के अधीन हैं। शिवजी कोई उपासना और मंत्र से प्रकट नहीं हो सकते, अन्य देव मंत्र के अधीन है। शिव और हनुमान की उपासना नहीं हो सकती केवल उनकी आराधना होती है। उपासना यानी वश में करने का प्रयत्न, आराधना यानी प्रार्थना।

महादेव - देवद्रोह दैत्यों का वध करने के लिए जब देवताओं ने भगवान शंकर से प्रार्थना की, तो भगवान शिव ने कहा- देवताओं। मैं उन दैत्यों को अकेला नहीं मार सकता। अत: तुम सब लोक एक साथ संघ बनाकर, मेरे आधे तेज से पुष्ट होकर युद्ध में उन शत्रुओं को जीत लो। देवताओं ने कहा- महेश्वर। हम आपका आधा बल धारण करने में समर्थ नहीं हैं, अत: आप ही हम लोगों के आधे बल से युक्त होकर उन दानवों का वध कीजिए। तब भगवान शिव ने उन सभी देवताओं के तेज का आधा ले लिया। अब वे और भी अधिक तेजस्वी हो गए। उसी समय से भगवान शंकर का नाम महादेव विख्यात हो गया।

महेश्वर- भगवान श्रीकृष्ण ने महाबाहु युधिष्ठिर को भगवान रुद्र के नाम और रूप का माहात्म एवं निहितार्थ बताते हुए कहा- महादेवजी के आधे शरीर को अग्नि और आधे को सोम कहते हैं। उनकी शिवमूर्ति ब्रह्मचर्य का पालन करती है। उनकी जो उग्र, घोर मूर्ति है, वह जगत का संहार करती हैं। उनमें महत्त्व और ईश्वरत्व होने के कारण वे महेश्वर कहलाते हैं। समस्त कामनाओं के अधीश्वर होने के कारण उन्हें ईश्वर कहते हैं और महान लोकों को ईश्वर होने के कारण उनका नाम महेश्वर हुआ। शिव को वृषभध्वज भी कहते हैं।

वृषभध्वज- एक दिन भगवान शंकर पृथ्वी पर खड़े थे। उसी समय सुरभि के एक बछड़े के मुंह से फेन निकलकर

उनके मस्तक पर गिर पड़ा। इससे वे कुपित हो उठे। क्रोध में भरे हुए महादेव से उस समय दक्ष प्रजापति ने कहा- प्रभो। आपके ऊपर अमृत का छींटा पड़ा है। गौओं का दूध बछड़ों के पीने से जूठा नहीं होता। जैसे चंद्रमा अमृत का संग्रह करके उसे बरसा देता है, उसी प्रकार ये गौएं अमृत से उत्पन्न दूध देती हैं। ऐसा कहकर प्रजापति ने भगवान शंकर को बहुत सी गौएं और एक बैल भेंट किए। इससे महादेव प्रसन्न और संतुष्ट हो गए। उन्होंने वृषभ को अपना वाहन बनाया और उसी की आकृति से अपनी ध्वजा को चिन्हित किया इसीलिए वे वृषभध्वज कहलाए।

वृषभांक- महादेव के प्रसन्न होने पर समस्त देवताओं ने उन्हें पशुओं का अधिपति बना दिया। पशुओं के मध्य में पशुपति भगवान महेश्वर सुशोभित होने लगे, अत: उनका नाम वृषभांक रख दिया।

शिव- शिव शब्द कल्याण का वाचक है और कल्याण शब्द मोक्ष का। शिव शब्द के उच्चारण से मोक्ष-कल्याण की प्राप्ति होती है, इसलिए महादेव को शिव कहा गया है। शिव शब्द में शि वर्ण पापनाशक और व मुक्ति- प्रदायक है। इसलिए मनुष्यों के पापनाशक एवं मोक्षदाता होने के कारण वे शिव कहे गये हैं। भगवान शंकर का यह शिव नाम जिसकी वाणी में (सर्वदा) वर्तमान रहता है, उसका कोटि जन्मों का अर्जित पाप निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है। महादेव रुद्र सब प्रकार के कर्मों द्वारा सब लोकों की उत्पत्ति करते हैं और सबका कल्याण चाहते हैं, इसलिए उनका नाम शिव है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। पूर्वकाल में सभी प्रजापतियों ने मिलकर एक यज्ञ किया, जिसमें सम्पूर्ण महर्षि, देवता, मुनि और अग्नि आदि अपने-अपने अनुयायीयों के सहित वहां एकत्र हुए। दक्ष कथा अहंकार छेदन की कथा है। ज्ञान-भक्ति-शून्य दक्षता अभिमान की जड़ है। मनुष्य का हृदय यज्ञभूमि है। इसमें जो विध्वंस-सर्वस्व, नाम रूप का नाश होता है, तब पुनर्जीवन उद्‌भूत होता है।

उस समय सृष्टि का आरम्भ ही हुआ था। जिन्होंने सृष्टि की धर्मपूर्वक रचना में ब्रह्माजी का जितना ही अधिक सहयोग दिया वह उतना ही अधिक श्रेष्ठ समझा गया। जिन्होंने प्रजा की वृद्धि की, लोक में अपना वंश स्थापित किया वे सभी लोग प्रजापति कहलाये। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, कृतु, पुलह, भृगु, वसिष्ठ, अथर्वा, रुचि, कर्दम, मनु, दक्ष, अग्नि, धर्म आदि इन सभी की प्रजापति संज्ञा है। सब प्रजापतियों ने सोचा- अब तो पृथ्वी पर हमारी वंश-वृद्धि होने लगी। ब्रह्माजी ने यज्ञ-यागों की प्रथा आरम्भ कर ही दी है। हम सब मिलकर एक बहुत बड़ा, हजारों वर्षों में समाप्त होनेवाला वृहद् यज्ञ क्यों न करें। इससे हम सबकी प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी और धर्म का प्रचार भी होगा।

सबने बृहद् यज्ञ का अनुमोदन किया। स्थान की खोज हुई। सभी ने एक स्वर से कहा- गंगा यमुना की मध्य भूमि संसार में सबसे श्रेष्ठ, सबसे सुन्दर और सबसे पावन तथा पुण्य-प्रद है। उसमें भी जहाँ विष्णु पादाब्ज सम्भूता श्री सुरसरि तथा सूर्यतनया भगवती कालिन्दी का संगम हुआ है, वह समस्त तीर्थों का सम्राट प्रयागराज सबसे श्रेष्ठ हैं। अत: निश्चय हुआ कि यह यज्ञ गंगा यमुना के मध्य की रजत चूर्णिका के समान बालुका में किया जाय। सभी ने इसका अनुमोदन किया। सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। यज्ञ माघ मास में मकर की संक्रान्ति के अवसर पर किया गया। जिसने भी सुना वही यज्ञ देखने दौड़ा आया। एक पत्थर दो काज मकर गत रवि के माघ मास में तीर्थराज प्रयाग का संगम-स्नान और यज्ञ-दर्शन। तीनों लोकों की प्रजा उस यज्ञ में एकत्र हुई। आदि सत्ययुग का समय था, तब तक देवता, असुर, गन्धर्व प्रत्यक्ष रूप से पृथ्वी पर आते-जाते थे और मनुष्यों के साथ बैठने-उठने आदि का व्यवहार करते थे। स्वर्गीय अप्सरायें प्रत्यक्ष आकर राजाओं की सभा में नृत्य करती थीं, गन्धर्व गाते थे। प्रजापति तो देवता और पितरों के भी जनक हैं, अत: सभी उस यज्ञ में आकर सेवा-कार्य करने लगे। महान् जमघट हुआ, अपार भीड़ हुई। दर्शनीय दृश्य था। चारों ओर सुन्दर बढ़ियां वेदियां

बनी थीं। कुशायें बिछी थीं, सुवर्ण के भाँति-भाँति के यज्ञीय पात्र रखे थे। पत्र, पुष्प और फलों की भरमार थी। सभी प्रजापति आ गये थे। यज्ञ आरम्भ हुआ, सहस्रों वर्षों तक होता रहा। अन्त में पूर्णाहुति का समय आया। पूर्णाहुति के लिये विविध भाँति की तैयारियाँ होने लगीं, प्रजापति आ गये थे। लोक पितामह ने पधारकर सभापति का आसन ग्रहण कर लिया था; किन्तु अभी तक दक्ष प्रजापति नहीं आये। इस प्रथम प्रजापतियों के चुनाव में ब्रह्माजी ने उन्हें प्रजापति परिषद का प्रधान बना दिया था। प्रधान तो प्रधान ही ठहरे। प्रधान को प्रधान की ही भाँति आना चाहिये। पहिले आकर बैठ जाँय, तो किसे पता चले कौन है। जब सभा खचाखच भरी हो; तो खूब ठाट-बाट से गम्भीरता के साथ जाना चाहिये। आदमी आगे से हटो-हटो, रास्ता दो, कहते हुए चलें। सभा में खलबली मच जाय, लोग चकित होकर देखने लगें। परस्पर में पूछने लगें- ये कौन हैं, ये कौन हैं? इनका इतना आदर सभी क्यों कर रहे हैं? इस प्रकार जाने से प्रतिष्ठा होती है। सब सम्मान करते हैं। इसी समय वहाँ तेजोमण्डल से चमचमाते हुए प्रजापतियों में श्रेष्ठ दक्ष पधारे। उनके तेज से आक्षिप्त होकर सबने उठ कर उनकी अगवानी की। उन्हें प्रणाम किया। सभी सहसा उठ-उठकर उन्हें प्रणाम करने लगे। देवता, ऋषि, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, उरग, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच सब-के-सब अपने-अपने आसनों से उठकर प्रजापति के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने लगे। दक्ष उन सबकी ओर गम्भीरता से देखते और थोड़ा सिर हिलाकर उनके प्रणाम का उत्तर देते।

दक्ष प्रजापति मानयुत, आये सब ठाढ़े भये। विधि सम अपनी पीठ पै, बैठे ही हर रह गये।।

केवल ब्रह्मा और शंकर बैठे रह गये। दक्ष जगत्पिता ब्रह्माजी को प्रणाम कर उनकी आज्ञा से अपने लिये निर्धारित आसन पर बैठ गये। ब्रह्मा जी दक्ष के पिता ठहरे अत: उनकी कोई बात न थी। किन्तु शंकर के द्वारा अगवानी प्रणाम आदि कुछ भी सम्मान न पाकर दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। यह शंकर क्यों नहीं खड़ा हुआ। यह तो मेरा दामाद है। जिनको स्वागत-सत्कार लेने की बहुत आदत पड़ जाती है, वह बहुत जल्दी क्रोधित हो जाते हैं। उनका स्वभाव बिगड़ जाता है, जरा सी बात पर उन्हें दु:ख लग जाता है।

जामाता पुत्र के समान होता है, ससुर गुरु माना गया है। यह तो मेरा सरासर अपमान है। भरी सभा में मेरा घोर तिरस्कार है। मुझे अपमानित करने को ही शिव ने ऐसी अविनय प्रदर्शित की है। न ही वाणी से मेरा स्वागत-सत्कार किया।

मेरी पुत्री सती इससे ब्याही है। दामाद बेटा- शिष्य के बराबर होता है। दक्ष अभिमान वश ईश्वरवाले भाव को भूल गया और शिव को गाली देने लग गया।

उन्होंने उनकी ओर टेढ़ी नजर से इस प्रकार देखना प्रारम्भ किया मानो उन्हें जला कर भस्म कर देंगे। जब उनकी सहनशीलता समाप्त हो गई तो उन्होंने कहना प्रारम्भ किया- यहाँ उपस्थित सभी महानुभाव मेरी बात सुनें। मेरा यह कथन न तो अज्ञानतावश है और न द्वेष के ही कारण। यह निर्लज्ज महादेव समस्त लोकपालों की पवित्र कीर्ति को धूल में मिला रहा है। देखिये इस अहंकारी ने सदाचार की महिमा ही मिटा दी है। इसके नेत्र बन्दरों की तरह हैं। पिता ब्रह्माजी के कहने से मैंने अपनी मृगनयनी सुन्दरी बेटी का विवाह इससे कर दिया अत: यह एक प्रकार से मेरे बेटे के समान है, यह घोर है, मलिन है। उचित तो यह था कि यह उठकर मेरा स्वागत करता, मुझे प्रणाम करता। परन्तु इसने वचनमात्र से भी मेरा सम्मान नहीं किया। नंग-धडंग रहता है, इसके संगी साथी भूत, प्रेत, पिशाच है। उन्हें साथ में लेकर श्मशान में नाचते रहता है, नर-मुण्डों की माला पहनता है, सम्पूर्ण शरीर में चिता मल लेता है और आभूषणों के स्थान पर विषधर सर्प लपेटे रहते हैं। बैल पर बढ़े रहता है, हमेशा डर रहता कि नन्दी कहीं सींग न मार दे। जटाओं में गंगाजी बहती है। बाढ आनेकी सम्भावना है। उनके न घर न द्वार है। खप्पर में भीख मांगते रहता है।

क्रोध में भरे हुए दक्ष बोले-समस्त देवताओं, अग्नियों और महर्षियों। आप सब लोग मेरी एक बात सुनें। कुछ लोग अपना पाण्डित्य प्रदर्शन करने के लिये बोलते हैं। कुछ लोग दूसरों को परास्त करने के निमित्त नाना तर्क और युक्तियों का आश्रय लेकर बोलते हैं। कुछ पूछने पर यथार्थ बातें कहते हैं, कुछ लोगों को बोलने का व्यसन होता है, वे अपनी व्यसन की पूर्ति के लिये बोलते हैं। कुछ लोग दूसरों को प्रसन्न करने के लिये चापलूसी की या हँसी ठट्ठा की बातें बोलते हैं। कुछ लोग अज्ञान या मत्सरता के वश होकर दूसरों को नीचा दिखाने को अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करने को बोलते हैं। मैं इनमें से किसी भी कारणसे यहाँ नहीं बोल रहा हूँ। मुझे कर्त्तव्य के वशीभूत होकर शिष्ट पुरुषों का आचरण बताने के लिये बोलना पड़ता है।

शिवजी पर क्रोध करके दक्ष प्रजापति सबको सुनाते हुए कह रहे हैं- देखो, इसने मेरा शिष्यत्व स्वीकार किया है क्योंकि इसने साधु पुरुषों के समान मेरी सावित्री सदृशा कन्या का ब्राह्मणों और अग्नि के सम्मुख पाणिग्रहण किया है। मेरी कन्या तो मृगनयनी है और इसकी आँखें बन्दर के समान है। मेरी कन्या के साथ विवाह करने पर भी मेरा जामाता होने पर भी मेरे आने पर उठकर आदर करने की बात तो अलग रही, वाणी से भी सत्कार नहीं किया। इसका यह आचरण अत्यन्त ही अनुचित है।

यह निर्लज्ज वश जो मेरे सामने ब्रह्माजी की बराबर अकड़कर बैठा है, इसे भी पितामह ने लोकपाल बना दिया है। इसने समस्त लोकपालों की कीर्ति को दूषित कर दिया। लोकपालों के यश को मटियामेट कर दिया। इसने परम्परा से चले आये सदाचार को भी कलंकित कर दिया। धर्म की मर्यादा को नष्ट कर दिया, सत्पुरुषों के शिष्टाचार की अवहेलना की, मेरा ही नहीं, समस्त प्रजापतियों का अपमान किया। मुझे देखकर सभी शिष्टाचार से खड़े हो गये। यद्यपि मुझे इस बात की आकांक्षा नहीं की कोई मुझे देखकर खड़ा हो। कोई खड़ा हो ही जाय, प्रणाम ही करे तो मुझे क्या देगा। अपना ही भला करेगा। यह सनातन मर्यादा है कि बड़ों के आने पर खड़े होकर अभ्युत्थान करना चाहिये।

मैंने इच्छा के न रहने पर भी भावीवश इसको अपनी सुकुमारी कन्या ब्याह दी। इसने सत्कर्म को लोप कर दिया है। धर्म की मर्यादा भंग कर दी है। यह प्रेतों के निवास-स्थान भयंकर श्मशानों में भूत-प्रेतों के साथ घूमता रहता है। इसका नाम शिव है, किन्तु वेश अमंगल और अशिव ही है। इसे मुझे देखकर खड़ा होना चाहिये था। यह अपवित्र है, श्मशान में रहता है। चिता की भस्म लगाता है, मुण्डों की माला पहनता है। चीनी के भ्रम से सुन्दर स्वादिष्ट खीर को नमक डालकर अखाद्य बना दिया। अग्नि का पवित्र हवि कौए के मुँह में पड़ गया। भगवान के भोग के योग्य व्यंजनों को बन्दर उठा ले गया। उस समय तो यह ऐसा भोला-भाला बन गया था यह इतना ढीठ है, इतना निर्लज्ज और कदाचारी है। यह कदापि मेरी छोरी के योग्य नहीं है। यह घृणित श्मशान में रहता है। पागलों की तरह जटा बिखेरे रहता है। उन्मत्तों की तरह नङ्गा होकर नाचता है। सिड़ी पागलों की तरह बड़बड़ाता रहता है। गले में मुण्डों की माला पहने हुए, आक धतूरा खाता है, भंग पीता है, गंगा सिर पर बहाता है, नंगा रहता है, अंग में भभूत रमाता है, संग में भूत-पिशाचों को रखता है, यह अशुचि है वैसे ही इसके सब यक्ष, राक्षस, भूत, बैताल, पिशाच, डाकिनी, साकिनी, प्रेत, गुह्यक आदि साथी हैं। नाम तो इसका शिव है किन्तु काम अशिवों के से करता है। सदा प्रलय ही में तत्पर रहता है। कोई अपात्र शूद्र को वेदवाणी देता है। जैसे कोई अनाधिकारी को कोई योग विद्या प्रदान करता है,जैसे राक्षस के हाथ में कोई अपने बालक को दे देता है, उसी प्रकार मैंने इस अपवित्र क्रियाभ्रष्ट, लोकमर्यादा को उल्लंघन करने वाले, अशिव अघोरी अशुचि, आचारहीन, अभिमानी को अपनी पुत्री दे दी। मेरी तो इच्छा भी नहीं थी पर इन मेरे पिताश्री ब्रह्माजी की बुद्धि सठिया गयी। मुझसे बार-बार आग्रह करने लगे इसीके साथ सती का विवाह कर दो। मैं विवश हो गया। बड़ों की आज्ञा टाल नहीं सकता था, फँस गया, चक्कर में आ गया। सोचा विवाह हो जानेपर सब कुछ ठीक हो जायेगा। पर यह तो ज्यों-का-त्यों ही बना रहा। विवाह का इस उजड्ड पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। सत्य है बन्दर क्या

जाने अदरक का स्वाद। मेरी पुत्री का तो जीवन ही नष्ट हो गया। अब यह अपने किये का फल भोगेगा।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। इस प्रकार चराचर विश्व के स्वामी, अचिन्त्य, अप्रमेय भगवान विश्वनाथ को बहुत से अवाच्यवचन कहकर भरी सभा में उनकी भर्त्सना और निन्दा करके भी दक्ष को संतोष नहीं हुआ। वह भगवान वृषभध्वज को हाथ में जल लेकर शाप देने को उद्यत हो गया।

मैत्रेयजी कहते हैं- विदुर, सम्मुख भोले भाले सरल स्वभाव से बैठे हुए शिवजी की विविध प्रकार से निन्दा करके जल को स्पर्श करके उन्हेंशाप देने को उद्यत हुए। दक्ष बोले- यह शिव सम्पूर्ण सुरों में अधम है। अत: यह इन्द्र उपेन्द्र आदि देवताओं के साथ देवयज्ञों में यज्ञभाग का अधिकारी आज से न समझा जायगा।

इस प्रकार विविध भाँति से शिव की निन्दा कर दक्ष ने शाप दिया कि- यज्ञ में देवताओं के साथ इसे भाग न मिले, क्योंकि यह देव गणों में अधम है।

सभा में उपस्थित प्रधान-प्रधान लोगों ने उन्हें बहुत मना किया, परन्तु उन्होंने किसी की नहीं सुनी। यज्ञ, सत्संग, आदि देवोचित स्थान की बड़ी महिमा है। वहाँ शान्ति प्राप्त करने एवं पुण्य अर्जित करने जाना चाहिए। यदि दैववशात् कलह का वातावरण बन जाये तो वहाँ पर निन्दा-स्तुति को महत्त्व न देते हुए चुपचाप अपने घर लौट आना समुचित है। महादेव जी को शाप देने के बाद वे वहाँ से उठे और अपने घर चले गये।

शंकर के सिर पर ज्ञान-गंगा बहती है अत: उन्हें क्रोध नहीं आया। जहां झगड़े की तकरार की सम्भावना हो वहां से तुरंत सरक जाना चाहिए। शंकरजी उठे और चुपके से चल दिये। किन्तु शंकर के प्रधान गण हैं- नन्दी। नन्दी ने दक्ष के शाप को सुना। उनके क्रोध का पारावार न रहा अत: बदले में दक्ष एवम् उनके अनुयायियों को शाप देते हुए उन्होंने कहा- दक्ष मूर्ख है। इसे इस मरणशील शरीर में ही महान् अभिमान है। यह सभी भूतों के हितैषी भगवान शंकर से द्वेष करता है। इसलिये यह सर्वदा तत्त्व-ज्ञान से ही विमुख रहे।

यह मूर्ख शिवजी के सत्य स्वरूप को न समझकर ये मेरे जामाता हैं- ऐसी गृहस्थियों की बुद्धि उनमें रखता है। इसे अपने यज्ञ याग अग्निहोत्र का बड़ा अभिमान है। त्रिवर्ग को ही सब कुछ समझता है, अत: यह गृहस्थाश्रम में लम्पट होकर सदा कर्मकांड में ही फँसा रहे। यह अत्यन्त स्त्री-लम्पट हो और शीघ्र ही इसका मुख बकरे का-सा हो जाय और बकरे की-सी बोली बोला करे। इसका जन्म-मरण का चक्कर शान्त न हो। यह बार-बार कर्मानुसार जन्म लेता और मरता रहे। इसकी बात का जिन्होंने समर्थन किया है इसके वे साथी भी संसार चक्र में पड़े रहें। दक्ष को शाप देकर अब उन्होंने उन कर्मकांडी, शुष्क-हृदय शंकर-द्रोही ब्राह्मणों को शाप दिया, जो शिव-शाप सुनकर सुखी हुए थे- नन्दीश्वर कहने लगे। जो केवल दक्षिणा के लोभ से यज्ञ कराने वाले शुष्क हृदय, शिव-द्रोही ब्राह्मण हैं वे भक्ष्या भक्ष्य के विचार से रहित हो जायँ। ये जो भी विद्या पढ़ें, तप करें, व्रतादि ग्रहण करें, सब धन के ही लोभ से करें। इन कार्यों से ही अपनी जीविका चलावें। इन्हें सदा पेट पालने और शरीर परिवार के पालन-पोषण की ही चिन्ता लगी रहे। ये सदा भिखारी बने रहे। भीख माँगते-माँगते ही जीवन बितावें।

नन्दी बोला- हमारे स्वामी कितने धैर्यवान एवं प्रशान्त हैं इनमें नष्ट करने की क्षमता होते हुए भी वे धैर्यपूर्वक चले गये। जिन लोगोंने शंकरजी की निन्दा सुनकर मूक समर्थन किया, उनको मेरा श्राप है, वे तत्पर से विमुख हो जायेंगे।

यह महान् कामी है। कर्मकाण्ड में ही इसकी दृढ़ आसक्ति है। यह साक्षात् पशु के समान है अत: यह अत्यन्त स्त्री-लम्पट ही बना रहे और शीघ्र ही इसका मुख बकरे का हो जाय।

दक्ष को शाप देकर नन्दीश्वर अब मुड़े उसके अनुयायियों की तरफ और कहा- जिन्होंने दक्ष के द्वारा की गई शिव की निन्दा

का अनुमोदन किया है वे ब्राह्मण सर्वभक्षी हों और याचक बनकर दर-दर भटकते फिरें। ब्राह्मणकुल का शाप सुनकर महर्षि भृगु भड़क उठे। उन्होंने शिव-भक्तों को शाप देते हुए कहा- शिव व्रत धारण करनेवाले जन पाखण्डी बन जायँ। उनका आचरण सत्-शास्त्रों के विरुद्ध हो। जो रुद्र की उपासना करेंगे वे धर्मपथ का अधर्मपथ का अनुसरण करने लग जायेंगे। शिव व्रत को रखनेवाले वे भांग, धतूरा, गांजा, शुल्फा, चिलम पीनेवाले हो जायेंगे। जो लोग शौच, आचार से विहीन, मन्दबुद्धि, जटा, भस्म एवं हड्डियों को धारण करनेवाले हैं- ऐसे ही लोग शैव-सम्प्रदाय में दीक्षित हों। सुरा और आसव ही इनका मुख्य पान हो। भृगु ने देखा- अरे, यह बैल तो बड़ी बढ़-बढ़ कर बातें बना रहा है। इसने तो ब्राह्मणकुल को घोर शाप दे दिया। इसलिये वे नाममात्र के शिव अनुयायियों को शाप देने लगे। भृगु ने शिव-भक्तों का वेष बनानेवालों को ये शाप दिये। शिव भक्तों में अधिकांश पाखण्डी हों, वे वेद शास्त्रों के निन्दक हों। उनके आचरण भ्रष्ट हों, वे शिवजी की देखा-देखी चिताभस्म, जटा, हड्डियों की माला धारण करके सदाचार से पतित हों और मदिरा मांस के सेवन करनेवाला हों। जो अपने को शिव-भक्त कहते हैं और वैदिक सनातन मार्ग की निन्दा करते हैं इसलिये तुम सब वेद-विरुद्ध आचरण करनेवाले पाखण्डी बन जाओ।

फिर उन्होंने नन्दी को लक्ष्य करके कहा- तुम भी अपने आराध्य देव शंकर की भाँति पाखण्डी बन जाओ। दोनों तरफ से शापाशापी होने लगेंगी।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुर जी, भृगु ऋषि के इस प्रकार शाप देने पर भगवान शंकर कुछ खिन्न-से होकर वहाँ से अपने अनुयायियों के सहित, उठकर चले गये।

यज्ञ की समाप्ति पर सारी देव-मण्डली त्रिवेणी में यज्ञान्त स्नान कर, ब्रह्मा और श्रीहरि के साथ, अपने-अपने स्थानों को चली गई। उन प्रजापतियों के जिस यज्ञ में सर्वश्रेष्ठ उपास्य श्रीहरि थे उस हजार वर्ष में समाप्त होनेवाने यज्ञ की पूर्णाहुति करके और जहाँ गंगा तथा यमुना का संगम है, उस तीर्थराज प्रयाग में अवभृत स्नान करक शुद्धचित्त होकर सभी अपने-अपने स्थान को चले गये। जहाँ त्रैलोक्य पावनी, मुनि-मन-हारिणी, शिव-शिर-विहारिणी, त्रिपथ-गामिनी, त्रिविक्रम-पदांगुष्ठ-निसृता, सरित-प्रवरा भगवती भागीरथी अपनी अग्रजा दिवाकर-नन्दिनी, कृष्ण-प्रिया कालिन्दी से आकर मिली हैं, जहाँ सिता-सित सलिल का सुखद सुहावना संगम है। जहाँ विश्ववन्दिता वीणा-धारिणी अर्थ प्रकाशिनी भगवती सरस्वती पीछे से गुप्त रूप से आकर दोनों बहिनों के बीच में खड़ी हो गई है। इसी से जिन्हें समस्त सुखदैनी, पाप काटने की छैंनी त्रिवेणी कहते है उस श्रीमाधवजी के नित्य-निवास भूत संमग में सभी ने यज्ञान्त स्नान करके अक्षयपुण्य को प्राप्त किया।

तीर्थराज- तीर्थों के राजा प्रयाग का मंत्री सत्य है, श्रद्धा प्यारी पत्नी है और वेणीमाधव जैसे हितकारी मित्र है। चारों पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) से राजा का भंडार हुआ है। पूरा का पूरा पुण्यमय प्रदेश ही उसका राज्य है। प्रयाग-क्षेत्र ही दुर्गम, सुदृढ़ और सुंदर किला है, जिसको पापरूपी शत्रु स्वप्न में भी नहीं पा सकते हैं। संपूर्ण तीर्थ उसके श्रेष्ठ वीर सैनिक हैं जो पाप की सेना को कुचलने वाले और बड़े शूरवीर, रणधीर हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम, ही तीर्थराज प्रयाग का अत्यंत कांतिमान सिंहासन है। अक्षयवट छत्र है, जो मुनियों के मन को भी मोहित कर लेता है। यमुना और गंगा ही श्याम और श्वेत चंवर हैं, जिनको देखकर ही दुःख और दरिद्रता नष्ट हो जाते हैं। पुण्यत्मा, पवित्र साधु उसकी सेवा करते हैं और सभी मनोवांछित पदार्थ प्राप्त करते हैं। वेद और पुराणों के समूह चरण-भाट हैं, जो उसके निर्मल गुणगाणों का बखान करते हैं।

यह पुण्यप्रद वस्तु है, यह पाप्रद, यह उत्तम है, यह निकृष्ट इस विषय में शास्त्र ही प्रमाण है। यह कोई नियम नहीं कि जो कठिनता से प्राप्त हो वह श्रेष्ठ ही हो। गौ मूत्र सर्वत्र सुलभ है, पापों का नाश करनेवाला कहा गया है और उसे श्रेष्ठ माना गया है। सिंह व्याघ्र का मूत्र अत्यन्त कठिनता से प्राप्त होता है, वह अत्यन्त निन्दनीय है। शास्त्र जिसे श्रेष्ठ बतावे वही श्रेष्ठ, जिसे

निकृष्ट बतावें वही निकृष्ट हैं। कुछ तीर्थों का वर्णन वेदों में है, कुछ का वर्णन पुराणों में हैं। कुछ लौकिक तीर्थ हैं, कुछ परम्परा से प्रसिद्ध है, किन्तु इस प्रयाग राज का वर्णन तो वेद, पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र सभी में है। वंश-परम्परा से पवित्रता में यही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है कि ब्रह्माजी ने यहीं से यज्ञों का विस्तार किया। बड़े-बड़े प्रकृष्ट यज्ञ होने से ही यह प्रयागराज नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रलय का जल यहीं से समुद्र रूप से निकल कर सातों समुद्रों को एक करता है। इसीलिये यह क्षेत्र सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि यह प्रजापतियों का क्षेत्र है फिर भी विष्णु ही इसके रक्षक है। बारह रूपों से श्रीमाधव ही इस पंचयोजन विस्तीर्ण क्षेत्र का आधिपत्य करते हैं। यह विशुद्ध वैष्णव क्षेत्र है। भगवान ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड के समस्त तीर्थों का प्रयागराज को सम्राट बनाया। यमुनाजी इस क्षेत्र में पहिले से विराजती है फिर गंगा आईं।

सभी ब्राह्मणों को यथेष्ट दान-दक्षिणा देकर अपने-अपने स्थानों को चले गये।

ऐसे शिवकूँ शाप दक्षने दारुण दीन्हों। करयो न हरने कोप शाप सिर धारण कीन्हों।।
शापा-शापी निरखि विमन शिव निज गिरि धाये। सहस सालको सत्र पूर्ण करि सब मिलि न्हाये।।
सुखद सिद्धि प्रद अघ हरन, पावन पुण्य प्रयागमहँ। अवमृथ मज्जन करयो सब, गंगा यमुना मिलहिं जहँ।।

मैत्रेयजी ने कहा- विदुर जी, इस प्रकार दामाद शंकर जी और श्वसुर दक्ष में विद्वेष हो गया। यही स्थिति बहुत दिनों तक बनी रही। इसी बीच ब्रह्माजी ने दक्ष को समस्त प्रजापतियों का अधिपति बना दिया। इससे उसका गर्व बहुत बढ़ गया। उसने शंकर आदि ब्रह्मज्ञानियों को यज्ञ-भाग न देकर उनका अपमान करते हुए पहले तो वाजपेय यज्ञ किया और फिर बृहस्पतिसव नाम का महायज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ में सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर और अपनी-अपनी पत्नियों के साथ देव-गण पधारे थे।

शिव सब देवों में श्रेष्ठ हैं, वे वरदानियों में सबसे उदार, सर्वमान्य और सर्वफल दाता है। उनके गुणोंकी संख्या नहीं, चरित्रों की गणना नहीं। जैसे गंगाजी में से एक चुल्लू जल पीने से सब पाप कट जाते हैं, उसी प्रकार शिव चरित्र सुनने से महान पुण्य होता है। शिव सम्पूर्ण जगत् के जनक, पालक और संहारक है। उनसे बडा कोई देव नहीं है। वे देवाधिदेव महादेव है। अन्य सभी उनके अंश है। वे सभी को वर देनेवाले हैं।

देकें शिवकूँ शाप क्रोधमें भरि चलि दीन्हों। कछु ने अनुचित कहयो कछुक अनुमोदन कीन्हों।।
नन्दी दीन्हों शाप दक्ष अज्ञानी होवे। बकराको मुख होहि प्रतिष्ठा अपनी खोवै।।
शिव-द्रोही जो विप्रगन, ते जगमहँ याचक रहैं। भृगु बाले जो नामके, शैव अशुचि बनि दुख सहै।।

ऋषि कितने प्रकार के होते है? ऋषि, परमऋर्षि, महर्षि, राजर्षि और ब्रह्मर्षि। जितने ऋषि-मुनि देखते हो अच्छे है, कारक पुरुष होते है। उनसे महान जो होते है उनको महर्षि कहते है। उनसे भी जो श्रेष्ठ होते है परमऋषि कहते है, उनसे भी जो श्रेष्ठ है वो होते है राजर्षि। राजाके रहते हुए ऋषि बने रहना, राज करते हुए ऋषि रहना। राजर्षि भरत हुए थे, राजर्षि भृतहरि हुए थे, राजर्षि अम्बरीष हुए थे। वे परम ऋषि। वशिष्ठ हुए, विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि बनाया गया। ब्रह्मर्षि- यह ब्राह्मण कौन है- जन्म से ही जिसने जन्म ले लिया हो वह ब्राह्मण नहीं, उसका कर्म भी ब्राह्मण का नहीं हो, हो सकता है भक्ष्य-अभक्ष्य करता हो, मदिरा पान करता हो, क्या वो ब्राह्मण है? क्या वो पूजनीय है? ब्राह्मण वो जिसे ब्रह्मका ज्ञान हो, जिसने ब्रह्मको जाना हो, जिसने ब्रह्मके तत्त्वको जाना हो वह ब्राह्मण। वो ब्राह्मण चाहे शूद्र ही क्यों न हो, वह ब्राह्मण जिसने भागवत कथा का रसापान किया हो, जो वेदाध्ययन किया हो वो ब्राह्मण। ब्राह्मण सिर्फ भगवान में रत हो उसको ब्राह्मण कहते है सिर्फ जन्मना ब्राह्मण नहीं, जातिकर्म से ब्राह्मण नहीं कहलाता है।

यह वह काल था जब दण्डकारण्य में राम की परीक्षा सती ने सीता का रूप धारण कर की थी शंकर ने मन-ही-मन

संकल्प कर लिया था कि सती के इस शरीर के साथ शारीरिक सम्बन्ध की स्थापना अब कभी नहीं होगी। फलत: शंकर का अधिक समय समाधि में ही बीतता था।

दक्ष प्रजापति ने अपने घर पहुँचकर विचार किया कि मैंने देवता और ब्राह्मणों की सभा में ऐसा श्राप दिया कि मैंने कोई महादेव का भाग यज्ञ में न निकाले पर इसकी शुरूआत मुझे ही करनी चाहिए। हम अपने घर यज्ञ करके सब देवता, ऋषिवर, ब्राह्मणों को बुलाकर महादेव को यज्ञ में भाग नही देंगे तब उसका अधिक अपमान होगा और कोई भी मनुष्य यज्ञ में उनका भाग नहीं निकालेगा। ऐसा विचार कर दक्ष प्रजापति ने यज्ञ की तैयारी करके सब देवताओं, दैत्यों, ऋषीश्वरों को निमंत्रण भेज दिया पर शिव और सती को नहीं। जिन लोगों के मन में द्वेष हो जाता है वे सदा अनिष्ट की, दम्भ की बातें ही सोचते रहते हैं। वे धर्म भी करते हैं, तो दम्भ के लिये, दिखावे के लिये। यज्ञ भी करते हैं तो अपना वैभव प्रदर्शन करेंगे। अपने प्रतिपक्षियों को नीचा दिखाने के लिये। रागद्वेष के वशीभूत होकर वे धर्म की आड़ में अधर्म करते हैं। देखने में पुण्य-सा लगनेवाला वे पाप ही करते हैं। स्वार्थी चापलूस उन्हें और आकाश में चढ़ा देते हैं।

सती किसी प्रकार से अपना समय काटती थीं। इसी समय एक दिन वह कैलास की चोटी पर सखियों के साथ बैठी थीं। दक्ष ने एक यज्ञ का आयोजन किया। सभी देवता चले यज्ञ में। लेकिन तीन देवता नहीं गये। दक्ष को बड़ा भारी गर्व हो गया। गर्व, अभिमान बहुत दु:खदायी होता है जो आत्मा और परमात्मा से दूर करता है यही पदार्थ अभिमान है। जब यज्ञमहोत्सव प्रारम्भ हुआ तो सब देवता विमानों पर बैठ-बैठ कर गये लेकिन ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीनों नहीं गये।

कैसा भी सुन्दर भोजन हो, विष से यदि उसका संसर्ग हो जाता, तो वह परिश्रम से बनाया हुआ अति सुन्दर भोजन भी त्याज्य हो जाता है। इसी प्रकार शिव के संसर्ग से सती भी दक्ष के लिये मृतवत् हो गई। द्वेष के कारण दक्ष की बुद्धि भ्रष्ट हो गई। ईर्ष्या ने उसके विवेक को नष्ट कर दिया। तभी तो उसने दूसरों को अपमानित करने की बुद्धि से यज्ञ जैसे पवित्र कर्म का आश्रय लिया। कर्मों के फल तो भाव के अनुसार होते हैं। कितना भी शुभ कर्म क्यों न हो, यदि वह दूषित भाव से किया जायगा, तो उसका परिणाम दु:खप्रद ही होगा। दक्ष ने द्वेष-वश ऐसा कार्य किया। उससे जो उसे क्लेश ही हुआ।

कछुक कालमहँ बात सत्रकी भई पुरानी। किन्तु ईरषा अधिक दक्षके चित्त समानी।।
सोच्यो अब इक यज्ञ करूँ यह प्रथा चलाऊ। सती शम्भुकूँ यज्ञमाँहिं हौं नाहिं बुलाउँ।।
इहि विधि मनमहँ सोचिके, यज्ञ बृहस्पतिसव रच्यो। पशुपति-निंदा-रूप जो, पाप हृदयमहँ नहिं पच्यो।।

महामुनि मैत्रेयजी कहते हैं- विदुरजी। प्रजापति दक्ष ने अपना ऐश्वर्य प्रदर्शित करने तथा शिवजी को नीचा दिखाने की इच्छा से पहिले बाजपेय यज्ञ का निश्चय किया। तदनन्तर बृहस्पति-सव नामक यज्ञ का। इसके लिये समस्त देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, गुह्यक, प्रजापति, लोकपाल तथा अन्य सभी लोगों को निमंत्रण को शिरसा सहर्ष स्वीकार किया और वे सज-धजकर अपनी पत्नियों के सहित यज्ञ में सम्मिलित होने को जाने लगे। देवताओं तथा उपदेवों की स्त्रियों ने जब सुना कि हमें अपने पतियों के साथ गंगा किनारे कनखल में दक्ष के यज्ञ में चलना है, तब तो उनके हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने भली-भाँति अपने शरीर को सजा-बजा के सोलहों श्रृङ्गार करके चलने की तैयारियाँ कीं।

उन्होंने जब असंख्यों विमानों की पंक्तियों को एक साथ उड़ते हुए देखा, तो उनके मन में बड़ा कुतूहल हुआ। ये सब लोग कहाँ जा रहे हैं? माघ का महीना भी नहीं कि सब तीर्थराज प्रयाग को जा रहे हैं। कुम्भ का भी अवसर नहीं, कोई पर्व भी नहीं। फिर ये इतने देव, उपदेव, लोकपाल, प्रजापति कहाँ जा रहे हैं? देखो, ये अपने-अपने पतियों के साथ विमानों में बैठी देवाङ्गनायें कैसी शोभित हो रही हैं? कितने उल्लास से हँस-हँसकर अपने पतियों से बातें कर रही हैं। इनके पति भी

अपना सम्पूर्ण प्रेम इनके ऊपर उड़ेलते हुए इनके सभी प्रश्नों का कितने प्रेम से उत्तर दे रहे हैं। न कोई विमान है, न उड़न-खटोला, वही एक डूँड़ा-सा बैल है जिसकी पीली-पीली आँखें जुगनू की तरह चमकती हैं। इन देवताओं को अपनी पत्नियों के साथ घूमने-फिरने में सुख होता है। नई-नई वस्तुओं को देखने की उत्सुकता होती है। हमारे पति तो भोलेनाथ ही ठहरे, इन्हें न कोई उत्सुकता, न इच्छा। वे अपने आप में ही परिपूर्ण रहते हैं। उन्हें सुन्दर स्वादिष्ट पदार्थों के खाने की भी इच्छा नहीं। आक धतूरे को ही प्रेम से उड़ा जाते हैं, हलाहल विष को ही पी जाते हैं। यदि ये सब किसी पर्वस्नान को जा रही हैं, तो मैं भी अपने प्राणनाथ से प्रार्थना करूँगी कि महाराज, इस डूँडे बैल को तो अब आप अवकाश दे हें, अपने मित्र कुबेर के यहाँ से एक विमान मँगाकर मुझे भी पर्व स्नान करा लावें।

सतीने एक देवांगना से पूछा कि आप सब लोग कहाँ जा रहे है? देवांगना बोली- माताजी। आपको पता नहीं। आपके पिता के यहाँ से हम सबको निमन्त्रण आया है। उन्हीं के यहाँ उत्सव में हम सब अपने-अपने पतियों के साथ जा रही हैं। वही देवांगना जल्दी से बोली- लो, आपको इतना भी पता नहीं। उनके यहाँ तो बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है। आपको नहीं बुलाया क्या?

सतीजी का मुँह फक्क पड़ गया। मेरे पिता के यहाँ इतना बड़ा यज्ञ हो और मुझे उसका पता न चले। मुझसे तो पिता बड़ा स्नेह करते थे। मुझे कैसे भूल गये? आनेवाला भूलकर अलकापुरी चला गया होगा।

अपनी झेंप मिटाने को सतीजी बोली- जीजियो। मेरे पति को तुम जानती ही हो। वे हजारों वर्ष की समाधि लगा जाते हैं। उस समय मैं उनकी ही सेवा में संलग्न रहती हूँ। इनके गण तो जैसे हैं, सब तुमने देखे ही हैं। टेढ़े-मेढ़े, काने कुबड़े, लँगडे-लूले,विरूप, कुरूप, नंगे, दो हाथवाले, तीन, चार, दस सौ, हजार हाथवाले। समाधि के समय ये सब विचित्र आकृतिवाले गण पहरे पर रहते हैं। कोई आया होगा, तो इन्हें देखकर ही भाग गया होगा। मैं अभी उनसे कहती हूँ। तुम चलो, मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे ही भगवान विश्वनाथ को लेकर आ रही हूँ यह तुमने बड़ा सुखद सम्वाद सुनाया। सोई तो मैं सोच रही थी कि कल से ही ये झुण्ड-के-झुण्ड विमान कहाँ जा रहे हैं? मेरी माताओं से, मौसियों से, मौसियों की लड़कियों से, बहिनों से हमारी राजी खुशी कह देना। यह भी कह देना- सती हमें मिली थी, वह अब बस, शीघ्र-से-शीघ्र आनेवाली है।

बहुत अच्छा। हम सबसे आपका सन्देश कहेंगी। इतना कहकर देवांगनायें तो विमानों में उड़कर चली गईं और सतीजी लौटकर अपनी गुफा की ओर जाने लगीं। उन्हें पिता के यहाँ जाने की अत्यन्त उत्कण्ठा हो रही थी। क्षणभर में ही यज्ञ-मंडप का समस्त दृश्य उनकी आँखों के आगे नाचने लगा-ऐसा यज्ञ हो रहा होगा। मेरी सभी बहिनें, बहनोई मौसी, मौसा, मामा, मामी, फूफा, फूफी तथा और सभी सम्बन्धी आये होंगे। मुझ न देखे वे क्या सोचते होंगे? पिताजी मुझे कैसे भूल गये? कोई बात नहीं, पिता भले ही भूल जायँ, मैं कैसे भूल सकती हूँ?

सतीने देखा कि सजी-धजी देवस्त्रियाँ अपने-अपने पतियों के साथ गाती बजाती आकाश-मार्ग से जा रही थीं। पूछने पर पता चला कि वे सभी प्रजापति दक्ष के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये जा रही हैं। सती के हर्ष का ठिकाना न रहा। समाधि से उठने पर वे बड़ी उत्सुकता के साथ पति शंकर के पास पहुँची और कहा- वामदेव, सुना है इस समय आप के श्वसुर प्रजापति दक्ष बड़ा भारी यज्ञ कर रहे हैं। आकाश-मण्डल में, ये सभी देवता वहीं जा रहे हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो हम भी चलें।

नाहिँ द्रव्यकी कमी यज्ञके ठाट जमाये। दौरि दौरि सब ठौर ठौर धावन धरि धाये।।
देव, उरग, गंधर्व, निमन्त्रण सबनि पठाये। किन्तु यज्ञके अधिप सदाशिव नाहिँ बुलाये।।
अति उमंग ललना भरी, सत्रमाहिँ सजि बलि चली। प्रिय पति संग विमानमहँ, लागें विद्युत् सम भलीं।।

दक्ष-पुत्री सती ने अपने आश्रम के निकट देखा, सुन्दर वस्त्र पहिने तथा कानों में स्वच्छ कुण्डल और गले में सोने की हमेल आदि पहिने उपदेवों की लोलाक्षी ललनायें अपने पतियों के साथ, विमानों में बैठी दक्ष के यज्ञ में जा रही है। तब अत्यन्त उत्सुकता से उन्होंने अपने पति भगवान् भूतनाथ से कहा।

विस्मय, लज्जा, हर्ष मोद उत्सुकता सब सँग। भये महोत्सव सुनत पिता घर पुलके अँग-अँग।।
शिव समीप पुनि दौरि गई बोली सुन अघहर। श्वसुर तुम्हार उदार करहिँ इक वृहत् यज्ञ वर।।
हँसि भोले बाबा कहें- यह जग पथिक निवास है। हाय हाय होवे कहूँ, कहुँ उत्सव उल्लास है।।

सती देवी अपने पति शिवजी से बोली- हे देव तुम्हारे प्रजापति श्वसुर के यहाँ इसी समय एक बड़े भारी यज्ञ महोत्सव का आयोजन हो रहा है। देखिये, ये सब देवगण वहीं जा रहे हैं। यदि आपकी अनुमति हो, तो मैं भी आपके साथ उस महोत्सव में सम्मिलित होने चलूँ?

सती विलोके व्योम विमाना। जात चले सुन्दर विधि नाना।
पूछेउ तब सिब कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी।।

महोत्सव स्वजनों से मिलने का बड़ा अच्छा अवसर होता है। इस समय अपने भाई-बन्धुओं से मिलने के लिये मेरी बहनें भी अपने-अपने पतियों के साथ वहाँ अवश्य आयेंगी। मैं भी चाहती हूँ कि आपके साथ वहाँ चलकर माता-पिता के द्वारा प्रदत्त उपहार को स्वीकार करूँ। वहाँ अपने पतियों से सम्मानित बहनों और माता-पिता को भी देखने का अवसर सुलभ होगा। ऋषियों-मुनियों के दर्शन होंगे तथा यज्ञ देखने का भी सौभाग्य मिलेगा।

स्वजनों से मिलने के लिये मैं बहुत दिनों से उत्सुक हूँ। स्त्री-जाति का होने के कारण मैं इस समय अपनी जन्मभूमि को देखने के लिये बहुत आतुर हो रही हूँ।

सुरश्रेष्ठ, ऐसी अवस्था में अपने पिता के यहाँ उत्सव का समाचार पाकर बेटी का शरीर उसमें सम्मिलित होने के लिये क्यों नहीं छटपटायेगा?

पिता भवन उत्सव परम, जो प्रभु आयसु होइ। तो मैं जाऊँ कृपायतन, सादर देखन सोई।।

भगवान शंकर ने सती की बात को सुना। उन्होंने अभी तक दक्ष के साथ अपने वैमनस्य की बात सती को नहीं बतलाई थी। शिव बोले- यह तो संसार है। कहीं यज्ञ होता है, कहीं हा-हा-हू-हू होती रहती है। संसार का काम है यज्ञ-याग होना, उत्सव महोत्सव होते रहना। इसके लिये तुम इतनी चंचल क्यों हो रही हो? सती ने कहा- अपने पिता के घर का यज्ञ और अन्य सब यज्ञ एक से कैसे हो गये? भगवान शिव बोले- संसार में कौन किसका पिता, कौन किसकी सन्तान? यह सब भगवान की माया है, प्रभु का पसारा है, जीव कर्माधीन होकर कर्म कर रहे हैं। अब अपने इस भ्रम को छोड़ दो। सती बोली- अब आपके तो कोई माता-पिता है नहीं, पिता के घर के उत्सव में पुत्रियों को कितनी प्रसन्नता होती है, यह तभी समझा जा सकता है, जब या तो तुम किसी की पुत्री के पिता होते या तुम्हारे बहुत-सी पुत्रियाँ होतीं। आप तो ठहरे त्यागी, वैरागी, आपको इन बातों का क्या अनुभव? मेरे पिताके यहाँ कितना स्वर्गीय सुख होगा? वहाँ जानेपर ही मेरा रोम-रोम किस प्रकार खिल जायेगा, उसे इस अपूर्ण भाषा के द्वारा कैसे समझाऊँ। यह तो हृदय के अनुभव करने की बात है, और आप भभूत रमाने वाले बाबाजी हृदयहीन क्या जाने? पिता के घर उत्सव होगा। मेरी सब बहिनें अपने पतियों के साथ वहाँ आ रही है। उन सबके साथ मिलूँगी, भेटूँगी। मेरे साथ मेरे पिता आपका भी सत्कार करेंगे और हम सबको भेंट, विदाई मिलेगी।

आज धीरे-धीरे शिव इस रहस्य पर से पर्दा हटा रहे थे। उन्होंने कहा- देवि, बिना आमन्त्रण-निमन्त्रण के कहीं उत्सव में

सम्मिलित होने के लिये नहीं जाना चाहिये- अत: इस समय तुम्हारा और मेरा दक्ष के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये जाना उचित नहीं है।

सती ने कहा- देव, आपका कथन ठीक है किन्तु पति, गुरु और माता-पिता और मन्दिर आदि सुहृज्जनों के यहाँ तो बिना बुलाये भी जाना चाहिये। सती बोली- भोलेनाथ, निमंत्रण नहीं आया तो भी पति के घर में, गुरु के घर में, पिता के घर में कोई उत्सव हो तो बिना बुलाये भी जाया जाता है।

भगवान शिव बोले- हे भामिनी, तुम्हारा कथन ठीक ही हैं। भाई-बन्धुओं के यहाँ बिना बुलाये भी जाना चाहिये किन्तु यदि वे अभिमान के वशीभूत होकर ईष्या-द्वेष न करते हों तो। सभी लोग प्रकृतिवश व्यवहार करते हैं।

शिवजी हँसकर बोले- दक्षकुमारी अब तुम मुझे शास्त्र की बातें सिखाने लगीं। शास्त्रोंके मत को मैं जानता हूँ, सब शास्त्र मेरे ही बनाये हुए हैं। किन्तु जो हमें देखते ही प्रसन्न न हो, मुँह बना ले, गाल फुला लें, भयानक आकृति बना लें, हमसे बोलें भी नहीं, सामने देखकर उठकर चले जायँ और मन से सोचे कहाँ से आ गया। लोगों के यहाँ बिना बुलाये कभी भूलकर भी नहीं जाना चाहिये फिर वे कोई भी क्यों न हो।

जदपि मित्र प्रभु गुरु गेहा। जाइअ बिनु बोलेहु न संदेहा।। तदपि विरोध मान जहँ कोई। तहाँ गए कल्यानु न होई।।

शंकर जी ने आज विद्वेष की पुरानी बात को सती के सामने खोल कर रख दिया। उन्होंने सतीजी को समझाते हुए कहा यदि हम लोग वहाँ जायेंगे दक्ष या दक्ष के व्यक्ति भौहें टेढ़ी करके हमें देखेंगे और बाण की तरह कलेजे में छेद करनेवाले वचन बोलेंगे तो यह मरण से भी अधिक पीड़ादायक होगा। विद्या, तप, धन, सुदृढ़ शरीर, निर्मल मन और उच्च कुल यह छ: गुण जिस घर से पलायन कर जायें उनके यहाँ जाना अनुचित है। देवि, हम लोगों के पिता मात्र नारायण ही हैं, उन्हीं का स्मरण करो। आपके प्राकृत पिता दक्ष उक्त गुणों से हीन हो गये हैं। अभी कुछ दिन पहले आपके पिता दक्ष ने ऋषियों की भरी सभा में अपने वाणी के द्वारा मुझे घायल कर दिया। तुम तो उनकी प्रिय पुत्री हो फिर भी तुम्हें आमन्त्रित नहीं किया। इसलिये तुम्हारा वहां जाना उचित नहीं है।

बाण लगने पर तो जिस-किसी तरह निद्रा आ भी जाती है, किन्तु स्वजनों के कुवाक्यों से मर्म-स्थान विद्ध हो जाने पर तो मनुष्य हृदय की पीडा से दिन-रात बेचैन रहता है। जब पुरुष का अपने ही सम्बन्धियों द्वारा जो अपमान किया जाता है तो शीघ्र मृत्यु का कारण होता है।

देवि, मैं जानता हूँ कि तुम दक्ष को अपनी सन्तानों में सर्वाधिक प्रिय हो किन्तु इस समय पिता के घर में सम्मान नहीं प्राप्त कर पाओगी क्योंकि उन्हें मुझसे बहुत ईर्ष्या हैं।

भगवान शंकर बोले- सुन्दरी। स्वजनों के यहाँ उस स्थिति में ही बिना बुलाये जाना चाहिए जब उनकी दृष्टि में भेद न हो। लेकिन जिसे विद्या, तप, पद, ऐश्वर्य का मद हो ऐसे अव्यवस्थित चित्त वालों के यहाँ बुलाने पर भी कम जाना चाहिए- शत्रु के बाणों से इतनी वेदना नहीं होती है जितनी स्वजनों के कुटिल वचनों से होती है। दक्ष यद्यपि तुम्हारे पिता हैं किन्तु मुझसे कटुता रखते हैं अत: वहाँ जाने का विचार त्याग देना चाहिए अन्यथा वहाँ तुम्हारा मान नहीं होगा- आत्मीयजनों द्वारा अपमान तुम सहन नहीं कर पाओगी और परिणाम देह त्याग भी हो सकता है।

गुरुके द्वार, मंदिर के द्वार, बेटी के द्वार कभी भी जाओ खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। गुरुके द्वार, मंदिर के द्वार, कथाओंमे कभी भी बिना बुलाये, बिना निमंत्रण के भी चले जाना चाहिए। निमंत्रण की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए और कही और जगहों पर निमंत्रण नहीं होनेपर जानेपर अपमान ही हो सकता है। सामनेवालेको आपके निमंत्रण बिना बुलाये जानेपर

खुशी हो या ना हो उसकी कई मजबूरीयां रहती है।

विद्या, तप, धन, सुदृढ़ शरीर, युवावस्था और उच्च कुल। ये छ: सत्पुरुषोंके तो गुण हैं, परन्तु नीच पुरुषोंमें ये ही अवगुण हो जाते हैं; क्योंकि इनसे उनका अभिमान बढ़ जाता है और दृष्टि दोषयुक्त हो जाती है एवं विवेक-शक्ति नष्ट हो जाती है। इसी कारण वे महापुरुषोंका प्रभाव नहीं देख पाते। इसीसे जो अपने यहाँ आये हुए पुरुषोंको कुटिल बुद्धिसे भौं चढ़ाकर रोषभरी दृष्टिसे देखते हैं, उन अव्यवस्थितचित्त लोगों यहाँ यह सारे बान्धव है ऐसा समझकर कभी नहीं जाना चाहिये। देवि। शत्रुओंके बाणोंसे बिंध जानेपर भी ऐसी व्यथा नहीं होती, जैसर अपने कुटिलबुद्धि स्वजनोंके कुटिल वचनोंसे होती है। क्योंकि बाणोंसे शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेपर तो जैसे-तैसे निद्रा आ जाती है, किन्तु कुवाक्योंसे मर्मस्थान विद्ध हो जानेपर तो मनुष्य हृदयकी पीड़ासे दिन-रात बेचैन रहता है। जब किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिका अपने आत्मीयजनोंके द्वारा अपमान होता है, तब वह तत्काल उनकी मृत्युका कारण हो जाता है।

सती प्रेम युत कहहि प्रभो। मति ज्ञान सिखाओ। मोइ संग ले चलो नाथ। पितृ यज्ञ दिखाओ।।
दीना हूँ अति विभो। व्यर्थ अब मत बहकाओ। चला बैल पै चढ़ो मोइ हर। पकरि चढ़ाओ।।
शिव बोले- नहिँ निमन्त्रण, कस जावें भामिनि। सुनो। छोटी बेटी बापकी, व्यर्थ लड़ैती तुम बनो।।
बात सत्य है पिता मित्र गुरु घर बिनु बोले। जावे यदि वे निरखि नेहतें हियकूँ खोलें।।
दोष दृष्टितें देखि रोष वश मुँह मटकावे। तिनके घरमहँ भूलि कबहुँ नहिँ सज्जन जावें।।
सती। तुम्हारे बापने, कहनी अनकहनी कहीं। सबके सम्मुख सभामहँ, भली बुरी गारी दई।।

महामुनि मैत्रेयजी कहते हैं- विदुरजी। शिवप्रिया सती के इस प्रकार प्रार्थना करने पर, सज्जनों के प्रिय भगवान शंकर को प्रजापति दक्ष के वे वचन स्मरण हो आये, जो उन्होंने यज्ञ में प्रयागराज में सम्पूर्ण प्रजापतियों के समक्ष कहे थे जो वाक्बाण अत्यन्त ही मर्मभेदी थे। शिव बोले- मैंने तुम्हें सब ऊँच-नीच समझा दिया। इतने पर भी तुम्हारी समझ में नहीं आता, तुम्हें जो ठीक लगे वही करो। यह तुम्हारी इच्छा है रहो या जाओ।

सती कहे तुम कृपासिन्धु योगेश्वर ज्ञानी। वेद न पावें भेद पाहिँ फिर कस अभिमानी।।
थूको जो कुछ भई गईकूँ नाथ बिसारो। पिता यज्ञ ले चलो, आसरो एक तिहारो।।
शम्भु कहें- दाक्षायणी। त्यागो हठ हरि-हरि भजो। हौं कबहूँ नहिँ जाऊँगो, जिह आशा मोतें तजो।।

भगवान शंकर इतना कह ध्यान मग्न हो गये किन्तु सती की वृत्तियाँ चंचल हो गईं कभी स्वजन मोह खींचता तो कभी पति प्रेम। भीतर और बाहर चक्कर लगाती किन्तु चित्त एकदम बेचैन हो गया- क्रोधावेश आने लगा- अश्रुपात होने लगा- आवेश में पति की अवज्ञा कर अकेली ही पिता के घर जाने के लिये तैयार हो गयी।

शिवजी ने ऐसा वचन सुनकर मन में विचार किया कि सती ने आज तक कोई काम मेरी आज्ञा के बिना नहीं किया आज न जाने यह कैसा हठ कर रही है और मेरा कहना नहीं मानती। इससे मालूम पड़ता है कि इसका अपने पिता के घर जाने में कल्याण नहीं है। होनहार प्रबल है, परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध किसी का कुछ वश नहीं चलता। ऐसा विचार कर शंकरजी सतीसे बोले- जो तुम्हारी इच्छा हो वह करो।

सती बोली- महादेव, आपको क्या पता किसी नारी के हृदय पर क्या बीतती है जब उसे पता चले कि उसके पिताजी के घर में उत्सव हो रहा है, वहां उसकी बहनें आई होंगी, उनकी सन्तानें आई होंगी, सबसे मिलना जुलना हो जाता। आप तो भजनानन्दी तपोधन तपस्वी बाबाजी ठहरे। आप ने अपने श्वसुर की अगवानी नहीं की। उन्हें प्रणाम नहीं किया और न

उन्हें सम्मान ही दिया। ऐसी दशा में उनका आप पर क्रुद्ध होना स्वाभाविक ही है।

शंकर बोले- देवि, क्यों काली-पीली हो रही हो, क्योंकि जहां आदर मान नहीं है, वहां जाने में मंगल नहीं है।

तुम ठीक कह रही हो, किन्तु तत्त्वज्ञानी जन देहाभिमानी के देह को नहीं, किन्तु उनके हृदय में वर्तमान परमात्मा को हाथ जोड़ कर नहीं, मन से प्रणाम करते हैं। मैंने दक्ष शरीर को नहीं किन्तु उनके अन्त:करण में विराजमान नारायण को मन-ही-मन प्रणाम किया था। परन्तु मूर्ख दक्ष इस बात को समझ न सका और उसने मेरे साथ द्वेष कर लिया। ऐसे पिता के यहाँ तुम्हें भी नहीं जाना चाहिये। यदि तुम मेरी बात न मानकर वहाँ जाओगी तो तुम्हारे लिये अच्छा न होगा क्योंकि आत्मीयजनों के द्वारा किया गया अपना अपमान मरण का कारण बन जाता है। अगर तुम नहीं मानती हो तो जाओ मैं नहीं जानेवाला। उन्होंने हमको नहीं बुलाया है। ऐसे स्थिति में वहां जानेसे वे हमें वक्र दृष्टि से देखेंगे, दुर्भाषण करेंगे, मर्मभेदी वचन बोलेंगे, उससे तुम्हारे हृदय में इतना दु:ख होगा। यदि हृदय में बाण लग जाये उससे भी उतना दु:ख नहीं होता जितना वाणीसे होता है। साँपमें उतना जहर नहीं होता, जितना सर्पिणीमें होता है। जैसे सर्पकी पत्नी सर्पिणी, वैसे ही बाणकी पत्नी वाणी। बाण और वाणी एक ही है। लेकिन बाणसे भी ज्यादा चोट करती है वाणी। तुम्हारे पिताका मनमें तुम्हारा बहुत दु:ख है क्योंकि हम जिस आनन्द को प्राप्त है वह उनको नहीं। सती बोली, आप मत जावो, मुझे भेज दो।

मैत्रेयजी कहते हैं- विदुरजी, इतना कहकर भगवान शंकर मौन हो गये। उन्होंने देखा कि दक्ष के यज्ञ में जाने देने अथवा जाने से रोकने- दोनों ही अवस्थाओं में सती के प्राण-त्याग की सम्भावना है। इधर सती जी बन्धुजनों को देखने की इच्छा से जाने के लिये के कभी आश्रम से निकलतीं और कभी, शंकर जी रूष्ट न हो जायँ, इस शंका से फिर अन्दर चली जाती। इस प्रकार उनकी द्विविधा की स्थिति बनी रही। बाहर-भीतर, भीतर-बाहर यही उनका क्रम लगा रहा। सज्जनों का कर्तव्य है कि परिवार हो या समाज उसमें सन्तुलन बनाये रखने के लिये विवाद की परिस्थिति में सहनशील बन जाये। विवेकशून्य ममता प्राणी को पतन में ले जाती है।

लम्बी-लम्बी सांसे भरती हुई सतीने शोक और रोष से बेचैन चित्त से भगवान शंकर को छोड़कर अकेले ही यज्ञ में जाने के लिये आग्रह किया। स्त्री हठ के सामने शंकर ने भी कुछ नहीं कहा।

समुझाई शिव सती बहुत विधि तऊ न मानी। भई बुद्धि विपरीत विश्वपति हियमहँ जानी।।
पितृ-नेह इत शम्भु रुष्टताको भय भारी। फिरि फिरि आवें जाइ, हिँडौले सरिस विचारी।।
साँपिनी सम निश्वास ले, कँपे देह विह्वल भई। आँखिनिमहँ आँसु भरे, सती अनमनी ह्वै गई।।

जिन सतीजी को सत्पुरुषों की गति भगवान शिव ने प्रेमवश अपना आधा अंग ही दे दिया है, अर्थात् जो सतीस्नेह से अर्धनारी नटेश्वर बन गये हैं, उन्हें छोड़कर वे दीर्घ नि:स्वास छोड़ती हुई मना करने पर भी पिता के घर अकेली ही चल दीं। क्योंकि उनका अन्त:करण शोक और क्रोध से खिन्न हो गया था तथा स्त्री-स्वभाव वश उनकी बुद्धि भी विमूढ़ बन गई थी।

सती निश्चय नहीं कर सकी। मुझे जाना चाहिये या न जाना चाहिये। किन्तु चित्त तो परिवारजनों से मिलने को अधीर हो रहा था। अत: सोचा- चलो, शिवजी तो ऐसे ही कहते रहेंगे। यह सोचकर वे अकेली ही पिता के घर चल दीं। थोड़ी दूर गई होगी सोचने लगी सती स्त्रियों का तो यह धर्म नहीं कि पति की आज्ञा के विरुद्ध बतार्व करें। रहना तो मुझे जीवन भर इसी घर में है। पिता के यहां तो दो दिन की धूम-धाम है। इसी प्रकार पति परमेश्वर को रुष्ट करके जाना ठीक नहीं है। इस विचार के आते ही वे लौट आयी। फिर सोचने लगीं ऐसी भी क्या परतन्त्रता। पुरुषों को जब इच्छा होती है, तो स्त्रियों के लाख मना करने पर भी नहीं मानते, तब उसी प्रकार स्त्रियों को भी अधिकार है कि वे अपनी आत्मा का हनन नहीं करें। मैं कोई पाप कर्म तो कर नहीं रही

हूँ। किसी अन्य के घर पर जो ही नहीं रही हूँ, पिता के घर जा रही हूँ। स्त्रियों को दो ही आश्रय है या तो पति का घर या पिता का घर। ऐसे अवसर पर मुझे किसी भी प्रकार रुकना नहीं चाहिए, यह सोचकर वे फिर चल दी। अगर नहीं जाऊंगी तो सदा के लिये आना-जाना बन्द हो जायेगा, दोनों ओर से गहरी खायीं खुद जायगी, पत्थर की लकीर हो जायगी। फटे हुए मन और भी फट जायँगे, फटा हुआ कपड़ा किसी तरह कौशल से सीकर जोड़ा जा सकता है। टूटी हुई धातुएँ अग्नि में तपाकर किसी तरह फिर से तो मिलाई जा सकती है किन्तु अत्यन्त तीव्रता से फटा हुआ मन फिर नहीं मिल सकता।

मन मोती अरु दूधको, इनको यही स्वभाव। फाटे पीछे ना मिलें, कोटिन करो उपाय।।

इसलिये मैं बात को बढ़ने नहीं दूँगी। ये तो हठी हैं, जब इन्हें कोई सनक सवार हो जाती है, तो किसी की फिर सुनते थोड़े ही है। अगर नहीं चलते तो कोई बात नहीं, मैं भी तो घर की स्वामिनी हूँ, मेरे भी तो कुछ अधिकार है। अपने अधिकार का प्रयोग कर मैं पिता के घर जाऊँगी और दोनों के बीच का मनोमालिन्य मिटाऊँगी। पिता को समझाऊँगी। शिव की महत्ता का बखान करूँगी। अब शिवकी आज्ञाकी प्रतीक्षा न करूँगी न ही इनके विरोध को मानूँगी। ऐसे समय पर आज्ञा उल्लंघन का दोष नहीं लगता।

विदुरजी। जब हृदय में कोई प्रबल बलवती इच्छा उत्पन्न हो जाती है, तो मन उसी के पक्ष में अनेक युक्तियाँ रखकर भाँति-भाँति से उसी इच्छा का समर्थन करने लग जाता है। सतीजी ने पूर्ण निश्चय कर लिया कि अब मैं शंकर की बात न मानूँगी। अपने पिता के यज्ञ में अवश्य जाऊँगी। वे अब दृढ़ता से हृदय को कड़ा करके चल ही दी।

शंकर ने देखा सती जा रही हैं। भावी की प्रबलता देखकर शिवजी समझ गये- सती का अन्त समय निकट आ गया है, तभी तो इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। मेरे इतना समझाने पर भी यह नहीं मानती। इसका विनाश काल समीप ही आ गया है जो इसे बार-बार वहाँ चलने को प्रेरित हो गया है। विनाश काल में बुद्धि विपरीत बन ही जाती है। जब यह जा ही रही है, तो इस प्रकार अनाथों की भाँति इसे क्यों जाने दें। जाती ही है तो अपने स्वरूप से जाय।

शंकरजीने अपने उपगणों को बुलाया और साथमें जानेके लिये कहा। वो जानते थे यह सती हठ पर आ गई हैं। अब ये मेरी बात माननेवाली नहीं है। उन्होंने सोचा- यदि मैं ऐसी दशा में इसे बलपूर्वक रोकताहूँ, तो अब तो इसने चण्डी रूप धारण कर रखा है, मेरे रोकने पर अवश्य ही यहीं आत्महत्या कर लेगी और वहाँ जायगी, तो भी इसका मरना निश्चित है, क्योंकि वहाँ इसका अपमान होगा। मनस्वी पुरुष अपमान की अपेक्षा मृत्यु को श्रेष्ठ समझते हैं।

उन्होंने सती की प्रसाधनसामग्री, खेल के सामान कन्दुक आदि तथा मैना पक्षी को और उनके वस्त्रों को बाँधकर उनके साथ भेज दिया। शंकर ने सती की सारी सामग्री इसलिये भेज दी ताकि सती के न रहने पर उनकी वस्तुओं को देखकर कष्ट न हो। शंकर को यह ज्ञात था कि सती को अब लौट कर नहीं आना है। भगवान भोलेनाथ ने सोचा सती जायेगी तो वहां मरेगी और नहीं जायेंगी तो यहां मरेंगी। इससे तो अच्छा जाने दे, बाप ही के घर में मरे।

बहुरि विचारें चलूँ शम्भु नहिँ देंगे अनुमति। छिन-छिन बीते कल्प कोटिसम चित चंचल अति।।
राम करैं सौ होहि चलूँ होवे सो होवे। वह पीछे पछिताय सुअवसर जो नर खोवे।।
सती सतिनिमहँ शिरोमणि, विकल वासना-वश भई। आज्ञा उल्लंघन करी, बिनु पूछे ही चलि दई।।

सवारी के लिये उन्होंने अपना बैल दे दिया। वृषभ केवल शक्तिका वाहन ही नहीं है, स्वयं धर्म भी है। शक्तिके साथ-साथ विवेक और ज्ञानका रहना भी आवश्यक है। जहाँ शक्ति और ज्ञान अलग-अलग हो जाते हैं, वहाँ धर्म परवश हो जाता है।

समुझे शिव सर्वज्ञ सतीके सुकृत सिराये। अनुचर नन्दी आदि तुरत हर संग पठाये।।

विनती सब मिली करी भवानी वृषभ बिराजीं। चँवर छत्र सिर लगे दुन्दुभी तुरही बाजीं।।

यों सजि बजि पितृ घर चलीं, असगुन बहु मगमहँ भये। परि न ध्यान उतकूँ दयो, नन्दी खगपति सम गये।।

शंकर के सैकड़ों गण भी सती के साथ गये। सती बैल पर सवार हो शीघ्र ही कनखल में दक्ष की यज्ञशाला में पहुँची। देवमन्दिर में, श्रेष्ठ पुरुषों के सम्मुख, यज्ञशाला और तीर्थ के निकट वाहन पर चढ़कर नहीं जाना चाहिये। वहाँ ब्राह्मण लोग सस्वद वेद-पाठ कर रहे थे। चतुर्दिक् यज्ञ की सामग्री रक्खी हुई थी। दक्ष के भय के कारण वहाँ किसी ने सती का सम्मान नहीं किया। केवल माता, बहनों और मौसियों ने आदरपूर्वक सती को गले लगाकर सम्मान किया और कुशल-समाचार आदि पूछा। बैठने के लिये प्रेम-पूर्वक़ आसन एवं नाना वस्तुओं को दिया।

सतीजी को यज्ञोत्सव में आई हुई देखकर यज्ञ के यजमान उसके पिता ने उनका आदर नहीं किया। जब पिता ने ही आदर नहीं किया, तो उनके डर से किसी ने भी आदर नहीं किया, केवल उनकी माता औरबहिनों को छोड़कर। उन माता बहिनों ने प्रेम के अश्रु बहाते हुए गद्गद कण्ठ से प्रसन्नतापूर्वक इसका आलिंगन किया।

सर्वत्र शक्ति से ही काम चलता है और शक्ति का ही आदर होता है। सतीजी अपनी शक्ति शिव के समीप छोड़ गयी। अत: उनका अब कौन आदर करता? पत्नी को पति से ही शक्ति मिलती है और पति को पत्नी से। शक्तिमान् के बिना शक्ति निराधार रह नहीं सकती और शक्ति आधार में से यदि आधेय शक्ति निकल जाय, तो वह आधार शून्य हो जाता है। शिव शब्द में जो इकार है वही शक्ति है। एकाक्षरी कोष में अकार को वासुदेव कहा है और इकार को लक्ष्मी बताया है। जब तक शिव में इकार है तभी तक वे चैतन्य हैं, शक्तिमान् हैं। जब इकार पृथक् हो जाय, तो वे शिव-निर्जीव बन जाते हैं। इसी प्रकार पृथक हो जाने से फिर वह शिव के काम की नहीं रहती। उसे फिर से अग्नि में शुद्ध करके ग्रहण किया जाता है। कारण के बिना कोई कार्य होता ही नहीं।

दक्ष न कछु पूछी कुशलता, सतिहि बिलोकी जरे सब गाता। जिसकी इच्छापूर्ति नहीं होती है उसे स्वभावत: क्रोध आ जाता है।

पिता न आदर कर्‌यो देखि म्हौं अपनो फेर्‌यो। डरके मारे सती माहिँ कोई नहीं हेर्‌यो।।

जननी भगिनी मिलीं प्रेमतें हिये लगाई। किन्तु न कोई बात सतीकूँ फेरि सुहाई।।

जग जननी जगदम्बिका, अपमानित अतिशय भई। व्यापो तनमहँ कोप अति, आग बबूला ह्वै गई।।

किन्तु सतीजी ने पिताजी से अपमानित होने के कारण यह सब नहीं ग्रहण किया। यज्ञ-मण्डप में उन्होंने घूम-घूम कर देखा। उन्हें कहीं भी शंकर का भाग नहीं दिखलाई दिया। सतीजी ने दक्ष के यज्ञ में पहुँचकर देखा कि उसमें शिवजी का भाग नहीं है, देवाधिदेव विभु का पिता के द्वारा किये हुए अपमान का विचार करके तथा यज्ञ सभा में तिरस्कृत हुईं वे सम्पूर्ण लोकोंकी स्वामिनी सतीजी अत्यन्त ही कुपित हुई। ऐसा प्रतीत होता था मानो अपने कोप से सम्पूर्ण लोकों को जला डालेंगी। एक अग्नि तो यज्ञ के हवनीय पदार्थों से जल रही थी किन्तु दूसरी अग्नि सती के हृदय में समस्त विश्व ब्रह्माण्ड को जलाने के लिये पर्याप्त थी। सती किंकर्तव्य-विमूढ़ा बनी वहाँ खडी-की-खडी रह गयी।

जो शिव समस्त यज्ञों के अधीश्वर हैं, उनका जिस यज्ञ में भाग नहीं, स्वागत सम्मान नहीं, वह यज्ञ कभी निर्विघ्न नहीं हो सकता। सती का क्रोध पराकाष्ठा पर पहुँच गया। उनकी आँखों से क्रोध के अंगारे निकलने लगे और शरीर थरथर काँपने लगा। दोनों भृकुटियाँ चढ़ गयीं, मुख रक्त वर्ण का होकर तमतमाने लगा।

इत उत निरखें कहूँ शम्भुको भाग न पायो। तातें लाखां गुनों कोप देवीकूँ आयो।।

यज्ञ अनलतें प्रबल सती हिय ज्वाला व्यापी। काली चण्डी बनी पिताकूँ समुझ्यो पापी।।
पापीतें पैदा भयो, नहिँ तनु शिव उपभोग्य है। अशुचि ताहि पितु यज्ञमहँ, तजौं जिही तो जोग्य है।।

अपना और अपने पतिदेव का यह अपमान देख कर सती का शरीर क्रोध के मारे जलने लगा। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे त्रिलोकी को भस्म कर देंगी। अपमान की इस स्थिति को देखकर सती के साथ आये हुए शंकर के गण दक्ष को मारने के लिये तैयार हो गये। सती ने उन्हें अपने तेज से रोक दिया और सब लोगों को सुनाकर पिता की निन्दा करते हुए क्रोध से लड़खड़ाती वाणी में कहना शुरू किया।

पिताजी, इस संसार में शंकर से कोई बड़ा देवता नहीं है। वे सभी देह-धारियों के प्रिय आत्मा हैं। उनका न कोई प्रिय है और न अप्रिय अत: उनका किसी भी प्राणी से वैरभाव नहीं है। वे सब के कारण और सर्वस्वरूप हैं। आप के सिवा और कौन है, जो उनसे विरोध करेगा?

शिव के वेश को अशिव अमंगलमय बतलानेवाले आपके अतिरिक्त कोई और दूसरा नहीं है। श्मशानभूमिवासी, नरमुण्डमालाधारी, चिताभस्मसेवी शिव के चरण से गिरे हुए निर्माल्य को आप के पिता ब्रह्मा भी बड़ी श्रद्धा के साथ सिर पर धारण करते हैं। यदि निरंकुश लोग मर्यादा का परित्याग कर अपने पूजनीय स्वामी की निन्दा करें तो अपने में उन्हें दण्ड देने की शक्ति न होने पर, कान बन्द कर वहाँ से भाग जाना चाहिये और यदि शक्ति हो तो निन्दक की जीभ ही काट लेनी चाहिये। इस पाप को रोकने के लिये अपने प्राणों का भी परित्याग कर देना चाहिये- यही धर्म है। आप भगवान नीलकण्ठ की निन्दा करनेवाले हैं अत: आप से उत्पन्न इस शरीर को मैं नहीं रख सकती। यदि भूल या भ्रम से कोई निन्दित वस्तु खाली जाय, तो मुख में ऊंगली डालकर उसे वमन करके निकाल देने से ही मनुष्य की शुद्धि कही गई है।

जिस समय भगवान शिव आपके साथ मेरे सम्बन्ध के सूचक दाक्षायणी (दक्षपुत्री) इस शब्द से मुझे हँसी में पुकारेंगे, उस समय मुझे महान् खेद एवं लज्जा की अनुभूति होगी इसलिये ऐसा अवसर आने के पहले ही मैं आप के अंग से उत्पन्न इस शवतुल्य शरीर का योगाग्नि से परित्याग कर दूँगी और आपका मरा मुख भी नहीं देखूंगी। इसीलिये स्त्रियाँ अपने माता-पिता के देहान्त के बाद उनका मुख नहीं देखती। यदि कभी पति और पितामें मतभेद हो जाय तो पत्नीको अपने पतिका साथ देना चाहिए, पिताके पक्षमें नहीं जाना चाहिए। महात्मा लोग गुणों को लेते है किसीके अवगुणों की तरफ ध्यान नहीं देते।

बिना बुलाये सती गई अपमान हुआ भारी। योग अग्नि तन भस्म कि;या अति कोपेउ त्रिपुरारी।।
महादेव ने वीरभद्र गण भेजा बलकारी। यज्ञ हुआ विध्वंस दक्ष की जान गई मारी।।
दगा किसी का सगा नहीं अजमा के देख लें। बिना बुलाये आदर नहीं कोई जाके देख ले।।
मूरख को नहीं ज्ञान लगे समझा के देख ले। मिट्टी में मिल जाय अकड़ कोई अकड़ा दे देख ले।।

तो क्रोध के कारण लड़खड़ाती वाणी में सती पिता दक्ष से बोली- पिताश्री संसार में भगवान शंकर से श्रेष्ठ कोई नहीं है। आपने ऐसे देवता का अपमान किया है जिनमें बैर लेशमात्र भी नहीं है, जो प्राणी मात्र के परम प्रिय हैं। ऐसे सर्वेश्वर प्रभु से आप द्वेष रखते हैं आपको धिक्कार है। जिनका दो अक्षर का नाम लेकर ही प्राणी महापातकों से मुक्त हो जाता है। काल भी जिनके भय से भयभीत रहता है- ऐसे मंगलमय भगवान का अमंगल सोचने वाले आप स्वयं अमंगल स्वरूप हैं। स्वयं परम पिता ब्रह्मा भी जिनकी प्रसादी माला पहन कर अपने को धन्य मानते हैं और उनका गुणानुवाद गाते हैं। ऐसे निर्गुण, निर्लेप प्रभु में भी आपको अवगुण दिखाई देते हैं- आप स्वयं ही अवगुणों की खान हैं। धर्मरक्षक स्वामी की लोग जहाँ निन्दा करते हों, वहाँ उस मनुष्य को मार डाले। यदि मारने की सामर्थ्य न हो तो कान बन्द करके उठ जावे। यदि सामर्थ्य

हो तो निंदक की जिह्वा को काट डाले, फिर प्राणों का त्याग कर दे, यही सनातन धर्म है। भगवान शंकर आत्माराम हैं, उनकी बुद्धि वेदवाद का अनुसरण नहीं करती। जिस तरह देवता एवं मनुष्यों की गति में अनन्तर होता है, उसी प्रकार ज्ञानी एवं अज्ञानी में अन्तर होता है। भगवान शंकर लोक से ऊपर उठे हुए हैं। वे कर्म के बन्धन से रहित हैं। उनके ऐश्वर्य को आप जैसे लोग प्राप्त नहीं कर सकते।

ऐसो निश्चय कर्‌यो कोपतें बोलीं बानी। च्यौ रे मंगल रहित, शम्भु द्वेषी, अभिमानी।।
कर्म काण्डमें फँस्यो शम्भु महिमा नहिँ जाने। सबतें हौं ही बड़ो, बाप तू ऐसो माने।।
जिनके शिव जा नामकूँ, भाव कुभावहु जे रटें। तिनके सब दुख दुरित अघ, जगके छिन भरिमें कटें।।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। सबको सुनाती हुई देवी सती अपने पिता से कहने लगीं- देखो, जिनका दो अक्षरों वाला शिव ऐसा नाम किसी भी प्रकार प्रसंग-वश एक बार भी लियाजाय, तो मनुष्यों के पापों को तत्‌क्षण नष्ट कर देता है। सो हे अमंगल-रूप पिता। तू उन पवित्र-कीर्ति भगवान् शंकर से द्वेष करने का साहस करता है। जिनकी आज्ञा का कोई उल्लंघन ही नहीं कर सकता।

इस पर सतीजी सब देवताओं की ओर देखकर कहने लगीं- क्या शिवजी देवाधिदेव नहीं है? क्यों इन्द्र। तुम शिवजी को नहीं जानते? कुबेर। तुम भगवान् भूतनाथ से अपरिचित हो क्या? फिर तुम उनके बिना इस दम्भ-यज्ञ में भाग ग्रहण क्यों कर रहे हो? हे वरुण। तुम्हें वरुणत्व पद पर किसने प्रतिष्ठित किया? तुम शूलपाणि शंकर को नहीं जानते? यदि जानते हो, तो तुमने इस यज्ञ का विरोध क्यों नहीं किया? तुम दधीचि मुनि की भाँति इस यज्ञ को छोड़कर चले क्यों नहीं गये? मैं यहाँ पर बैठे सभी देवताओं को भीरु तथा डरपोक समझती हूँ। ये यज्ञ करानेवाले भी सब लोभी हैं, नहीं तो जैसे दधीचि मुनि इस शिवहीन यज्ञ का बहिष्कार करके चले ये, ऐसे ही तुम सब भी चले जाते। किन्तु तुममें इतना साहस कहाँ? तुम लोभ के वशीभूत होकर अनुचित को भी उचित कह सकते हो। न करने योग्य काम को भी कर सकते हो। इतना कहकर फिर वे अपने पिता से कहने लगीं- पिता। तुम मुझे बताओ। शिवजी से बड़े या उनके समान ही और कौन देवता है?

वह हमसे विरोध रखता है, इसलिये हमारा शत्रु है। हम अपने शत्रु को नहीं बुला सकते।

सतीजी कहने लगी- छि:, छि:, तुझे ऐसा कहने में लज्जा भी नहीं लगती। तेरी जिह्वा गिरती भी नहीं। राम-राम, तू शिवजी को अपना शत्रु समझता है। संसार में जिनका कोई शत्रु नहीं, कोई मित्र नहीं, उन चराचर के स्वामी सर्वान्तर्यामी, व्यापक विभु भगवान शंकर से तू द्रोह करता है। इससे तेरा और तेरे साथियों का कल्याण न होगा।

यह सुनकर दक्ष को भी क्रोध आ गया बोला- सती। यद्यपि तू मेरी बेटी है, किन्तु उस अशुचि अघोरी के साथ विवाह हो जाने से तू भी मेरे काम की नहीं रही। तू भी उस भभूतिया के संसर्ग से छूने योग्य नहीं रही। इसीलिये मैंने तुझे भी नहीं बुलाया था। फिर भी तू बिना बुलाये ही दौड़ी चली आई, मेरा तुझसे और तेरे पति से कोई सम्बन्ध नहीं रहा।

शिव को कौन नहीं जानता? वह नाम का ही शिव है, वास्तव में वह सर्वथा अशिव है। नर मुण्डों की माला पहिनता है, खप्पर में खाता है, श्मशान में रहता है, चिता की भभूति रमाता है। जटा खोलकर भूत-प्रेतों के साथ नाचता है, भाँग-धतूरा खाता है। उसे तो छूना भी पाप है। देवताओं की पंक्ति में हम उसे कैसे बिठा सकते हैं? उस अपवित्र के साथ हम भोजन व्यवहार कैसे कर सकते हैं?

सती अत्यंत कुपित होकर बोली- जिनके दो अक्षर वाले शिव नाम को कोई कैसे भी किसी भाव से भी, किसी अवस्था में भी किसी जाति, वर्ण अथवा आश्रम का पुरुष शुद्ध, अशुद्ध जहाँ चाहे तहाँ एक बार ही लेने से पवित्र हो जाते हैं, मुक्त हो

जाते हैं, उन शिव को तू अशुचि बता रहा है।

इसी से मरते समय हर नाम मुख पर आने से पापी भी परम पद को प्राप्त हो गये, उन्हें तू अपवित्र बता रहा है? उनकी आज्ञा को उल्लंघन करने की सामर्थ्य किसमें हैं? ऐसे सर्व-समर्थ शिव को तू अपना शत्रु समझता है। जो अर्थियों के समस्त मनोरथों को पूर्ण करते हैं, जो मुमुक्षुओं को बना प्रयास के मुक्ति प्रदान करते हैं, जो भ्रमर रूपी भक्तों को अपने चरणारविन्द मकरन्द रूपी, ब्रह्मानन्द रस का निरन्तर पान कराते रहते हैं उनसे तुझे छोड़कर और कौन द्वेष करेगा?

सतीजी ने प्राण देने का निश्चय कर लिया। वहीं यज्ञ मंडप में उन्होंने उस दक्ष से उत्पन्न अशुद्ध शरीर का अन्त कर देने का संकल्प करके कहा-पिता, तेरे सिर पर पाप सवार हो गया है, तू शिवद्रोही बन गया है। शिवद्रोही से सम्बन्ध रखना तो दूर की बात है, उससे बोलना भी पाप है। उसका मुख देखने से भी दोष लगता है। मेरे इस शरीर का सम्बन्ध तेरे शरीर से है। यह तेरी देह से उत्पन्न हुआ है, अत: यह शिवजी के काम का नहीं रहा, शिव ने सरलता वश- भोलेपन से बिना तेरी परीक्षा लिए मुझे ग्रहण कर लिया। वे तो कृपा के सागर हैं, दूसरों के दोष देखना तो वे जानते ही नहीं। जैसे कोई भूल से विष मिश्रित अन्न खा ले, तो तुरन्त वमन करके उसे पेट से पृथक् कर देना चाहिए, जैसे अपने शरीर में से उत्पन्न मल-मूत्र का कोई आदर नहीं करते। सड़े हुए अंग को काटकर शेष शरीर की बुद्धिमान् रक्षा करते हैं, इसी प्रकार मैं इस शरीर को त्यागकर दूसरा शरीर धारण करके श्रीशिव की सेवा करूँगी।

निन्दक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय। बिनु पानी बिनु साबुनै निर्मल करे सुभाय।।

प्रजापति दक्ष उन करुणा सागर भगवान की चरण रज ही जब मूर्तिमान होकर इस यज्ञ को ध्वंस कर देगी तब तुम्हें यथार्थ का ज्ञान होगा। क्रोधावेश में सती उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठ गई और प्रभु का स्मरण कर, दक्ष के अनादर के कारण प्राण त्यागने के निमित्त वायु एवं अग्नि की अवधारणा करने लगी। शीघ्र ही सती के शरीर से अग्नि ज्वाला धधकने लगी।

मैत्रेय मुनि कहते हैं-विदुरजी। सब कुछ कहने के अनन्तर अपने पति जगद्गुरु भगवान शिव के ही चरणारविन्द मकरन्द का चिन्तन करती हुई, सतीजी ने सब ओर से मन को हटा लिया। शिव ध्यान से उनके समस्त कलमष नाश हो गये थे। ऐसी निष्पाप सती का शरीर योगाग्निसे प्रज्ज्वलित हो उठा। वे वहीं योगाग्नि उत्पन्न करके भस्म हो गई।

तजिहउँ तुरत देहि तेहि हेतू। उर धीर (धरि) चन्द्रमौलि वृषकेतु।।
असकहि जोग अगिनी तनुजारा। भयउ सकल मख हाहाकारा।।

उनके शरीर से एक दिव्य ज्योति प्रस्फुटित हुई और कैलाश की ओर चली गई। सती के आत्मदाह करने पर नन्दीगण, रुद्रगणों ने दक्ष के यज्ञ मण्डप को नष्ट कर दिया- देवता और ऋषियों को मारने लगे- महर्षि भृगु ने तुरन्त अपहृत दक्ष कहकर अग्नि में आहूति दी- यज्ञ के देवता प्रकट हुए और शिव गणों को उन्होंने मार कर भगा दिया। दोनों ओरसे भयंकर शापा-शापी हुई और बड़े भारी उपद्रव की सृष्टि हुई और वहाँ उपप्लव हो गया, राग-द्वेष की वृद्धि हो गयी।

मैत्रेय जी कहते हैं- विदुर जी, उस यज्ञ-मण्डप में दक्ष से इस प्रकार कह कर देवी सती मौन होकर उत्तर दिशा की ओर मुख कर भूमि पर बैठ गईं। उन्होंने आचमन करके पीला वस्त्र ओढ़ लिया और आँखें बन्द कर शरीर छोड़ने के लिये योगमार्ग में स्थित हो गईं फिर उन्होंने अपने शरीर में वायु और अग्नि की धारणा की। उस काल में उनके शरीर से योगाग्नि की ज्वाला के साथ एक दिव्य ज्योति निकली, जो विद्युत की भाँति सबके आँखों को चकाचौंध करती हुई आकाश में अन्तर्हित हो गई और उनका शरीर भूतल पर गिर पड़ा।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। सब कुछ कहने के अनन्तर अपने पति जगद्गुरु भगवान शिव के ही चरणारविन्द

मकरन्द का चिन्तन करती हुई, सतीजी ने सब ओर से मन को हटा लिया। शिव ध्यान से उनके समस्त कलमष नाश हो गये थे। ऐसी निष्पाप सती का शरीर योगाग्नि से प्रज्ज्वलित हो उठा। वे वही योगाग्नि उत्पन्न करके भस्म हो गई।

शिव जी के द्वारा कन्धे पर रक्खे सती के शव को भगवान विष्णुने अपने चक्र से खण्ड-खण्ड किये हैं। सती के अंग जहाँ-जहाँ गिरे वहाँ-वहाँ पीठ तथा पुण्य क्षेत्र हो गये।

शरीर की स्थिति प्राण और अपान से ही है। नाभि से नीचे वस्ति प्रदेश में अपान वायु रहता है, नाभि से ऊपर हृदय देश में प्राण वायु रहता है। प्राण ऊपर को खींचता है, अपान नीचे को। इन दोनों के बीच में नाभि प्रदेश में समान वायु रहता है। वह दोनों के माप दण्ड को ठीक रखता है, उन्हीं से शरीर की स्थिति है। जहाँ समान वायु ने इनको छोड़ा प्राण अपान से पृथक हुए, वहीं जीवात्मा इस शरीर को छोड़ देता है। जो पापी पुरुष हैं जिनकी अधोगति होनेवाली है, मरते समय उनके प्राण मल-मूत्रों के अधो-द्वारों से निकलते हैं। जिनकी ऊर्ध्व गति होने वाली होती है, उनके प्राण, आँख, नाक, मुख आदि द्वारों से निकलते हैं। जिन्होंने मन, प्राण तथा वीर्य और इन्द्रियों को वश में कर रखा है, उनके प्राण ब्रह्माण्ड को भेदकर दशम द्वार से निकलते हैं। ऐसे योगी पुरुष मृत्यु को जीत लेते हैं। साधारणतया प्राण और वीर्य की गति नीचे की ही ओर है। विषयों के सम्मुख होते ही यह नीचे को जाने लगते हैं, किन्तु योगियों के प्राण वश में होते हैं, वे जब चाहें प्राणों को स्वेच्छा से निकाल सकते हैं। सती देवी ने योगाभ्यास से ही शरीर का त्याग किया।

पति की निन्दा सुनत ही तजी सती निज देह। लाखन गाली देत अब पति को त्याग स्नेह।

भगवान शंकर साक्षात ज्ञान की प्रतिमा हैं। अपने जीवन में उन्नति का सम्बन्ध योग्यता के साथ ज्ञान से भी रहे तो जीवन परम लक्ष्य रूप सद्गति को प्राप्त होगा।

समाधि की बेला में सती जी सब कुछ भूल कर एकमात्र, शंकर के चरण का ही चिन्तन कर रही थीं। इस प्रकार सती के अद्भुत प्राण-त्याग की घटना को देखकर सभी हा-हा-कार करने लगे। इस तरह दक्ष के यज्ञ में सतीजी ने अपने प्राण त्याग दिये योगाग्नि में जलकर भस्म हो गई। लोगों ने दक्ष की निन्दा करते हुए उसे कठोर हृदयवाला पिता कहा। उनका कहना था कि- दक्ष की दुष्टता को तो देखिये, अग्नि में अपने शरीर को जलाने के लिये उद्यत अपनी बेटी को इसने रोका तक नहीं। इसके लिये संसार में इसकी महान् अपकीर्ति फैलेगी। जब ऐसी चर्चाएँ चल रही थीं। मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। योगाग्नि में सती के भस्म हो जाने पर सब लोग कहने लगे- यह ब्रह्मद्रोही और कुटिल हृदय इस लोक में अवश्य ही महान् अपकीर्ति को प्राप्त करेगा, क्योंकि जिस शिव द्रोही ने इसी के अपराध से मरनेवाली सगी तनया को प्राण त्याग करने से रोका नहीं।

तब रुद्र-गण दक्ष के वध के लिये उद्यत हो गये। उस समय महर्षि भृगु ने यज्ञ में विघ्नकर्ताओं के नाश के लिये अपहतं रक्ष: इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण करते हुए दक्षिणाग्नि में आहुति डाली। तुरन्त यज्ञाग्नि से बहुत-से ऋभुनामक तेजस्वी देवता प्रकट हो गये। उन ब्रह्मतेज से सम्पन्न देवताओं ने जलती हुई लकड़ियों से आक्रमण कर शिव-गणों को मार भगाया।

ये ऋभु सोमप थे। यज्ञ में उन्हें सोमपान का अधिकार है, उनका काम ही यह है कि यज्ञ में जो भी आकर विघ्न करे, उसका नाश कर देना। यज्ञ में प्राय: भूत प्रेत, पिशाच, राक्षस आदि तमोगुण प्रधान देवता ही विघ्न करते हैं। उनके नाश के लिये ब्रह्मतेज से देदीप्यमान ये देवगण ही समर्थ है। इसीलिए ये यज्ञ भाग के अधिकारी माने गये हैं। यज्ञ कुण्ड से निकलते ही ऋभुओं ने हाथ में जलती हुई अग्नि लेकर यज्ञ विध्वंस की इच्छा से आगे बढ़नेवाले शिवजी के गणों को खदेड़ा।

दिशाओं में अन्धकार छा गया सूर्य देव ने लज्जा के कारण मुँह ढक लिया। दिशाओं ने नीहार रूपी घूँघट लगा लिया। भूत, प्रेत, पिशाच हाहाकार करने लगे। गगनचारी देवगण त्राहि-त्राहि करके बुरा हुआ, बुरा हुआ। ये शब्द चिल्लाने लगे।

बलवान अधर्म निर्बल धर्म को दबा देता है। प्रबल तमोगुण मन्द सतोगुण को ढक लेता है। संसार में दुर्बलों की गति नहीं, प्रबलता में ही सिद्धि है। जय-पराजय प्रबलता के ही ऊपर अवलम्बित है। अन्त में विजय तो धर्म की ही होती है, क्योंकि धर्म अधर्म से बड़ा है। तो भी समयानुसार कभी-कभी अधर्म का भी प्राबल्य हो जाता है।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। अब नारद से शिवजी ने प्रजापति दक्ष से अपमानित होकर सतीजी ने शरीर त्याग दिया और हमारे पार्षदों की सेना को यज्ञ में उत्पन्न हुए ऋभु नामक देवताओं ने खदेड़ दिया, यह समाचार सुना तो इसे सुनते ही उन्हें अपार क्रोध हुआ।

जब देवर्षि नारदने देखा यह तो बड़ा भारी अपमान का काम हुआ, तो नारदजी ने भगवान शंकरजी के पास जाकर सारा समाचार सुनाया। भगवान शंकर कैलास पर बैठे कथा कह रहे थे। नारद वहाँ पहुँचे, शंकर को देखा। उन्होंने सोचा भगवान शंकर को भगवती सती के शरीर-नाश की बात मालूम नहीं है। नारद ने शंकर को प्रणाम किया और आँखों में अश्रुभर कर दक्ष-यज्ञ में सती के भस्म होने की बात बतलाई। भगवान एक क्षण मौन रहकर कुछ सोच रहे थे कि पुन: नारद ने कहा- प्रभो यज्ञवेदी से उत्पन्न ऋभुओं ने आप के गणों को पीट-पीट कर वहाँ से भगा दिया है। गणों के अपमान की बात जानकर शंकर को अपार क्रोध हुआ।

उन्होंने उग्र रूप धारण कर क्रोध के मारे होठ चबाते हुए बिजली की तरह लपलपाती अपनी एक जटा उखाड़ कर हंसते हुए उसे भूतल पर पटक दिया। उससे विशालकाय वीरभद्र प्रकट हो गये। उनका शरीर इतना विशाल था कि वह स्वर्ग को छू रहा था। उनकी हजारों भुजाएँ थी। सूर्य के समान जलते हुए तीन नेत्र थे। अग्नि की ज्वाला की भाँति उनकी विकराल जटाएँ थीं। उनके गले में नरमुण्डों की माला थी। हाथ तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रों से विभूषित थे।

वीरभद्र- भगवान शिव के प्रथमगणों के अधिपति। अपने पिता प्रजापति दक्ष से पति भगवान शंकर की निंदा सुनकर भगवती सती ने देहत्याग कर दिया है- यह समाचार सुनकर भगवान त्रिलोचन महादेव अत्यंत कुपित हो गए। उनके ऊर्ध्वनेत्र में अत्यन्त तेजस्वी अग्नि प्रकट हो गई। उस अग्नि से एक परम पुरुष उत्पन्न हुआ। उसका शरीर अत्यंत विशाल था। उसके तीन भयानक नेत्र थे। उसके ललाट पर अर्धचंद्रमा का मुकुट सुशोभित था। देवाधिदेव महादेव को प्रणाम करके उसने कहा- पिताजी। मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं क्या करूँ? मैं अभी आधे क्षण में इस चराचर विश्व को नष्ट कर डालूंगा। उसकी बात सुनकर भगवान शंकर ने कहा- वत्स। तुम्हारा नाम वीरभद्र है। तुम प्रथमगणों के अधिपति हो। मेरी आज्ञा से तुम दक्ष के नगर में जाकर शीघ्र ही उनके यज्ञ को नष्ट कर डालो।

उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान शंकर से पूछा- भगवन्, मैं क्या करूं? मेरे लिये क्या आदेश है? तो भगवान भूतनाथ ने कहा- वीरभद्र, तू मेरा अंश है। तुम मेरे गणों का नायक बनकर जाओ यज्ञ को तहस-नहस कर दक्ष का विनाश कर दो। दक्ष को उसके अहंकार का परिणाम दो।

भगवान शंकर की आज्ञा पाकर वीरभद्र ने उनकी परिक्रमा की, उन्हें प्रणाम किया और फिर बड़े वेग से चल पड़े दक्ष-यज्ञ की ओर। उनके हाथ में लपलपाता हुआ त्रिशूल था। सहस्त्रों की संख्या में, अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित, गण उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। वीरभद्र की विशाल रुद्र-सेना के चलने से आकाश-मण्डल धूलि से आच्छन्न हो गया।

शिव ने नन्दी, भृङ्गी सभी को आज्ञा दी, सेना तैयार हो। काली, कराली खप्पर वाली सब तैयार हो। सभी रुद्र पार्षद अपना वेष बनाकर युद्ध के लिये सन्नद्ध हो। भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, साकिनी, प्रथम, गुह्यक्, कूष्माण्ड, कर्पट, वटुक भैरव, ब्रह्मराक्षस, क्षैत्रपाल, विनायक, यक्ष, राक्षस सभी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर कोलाहल करते हुए चलने को

उद्यत हुए। चौंसठ योगिनियाँ अपने-अपने, त्रिशूलों को घुमाती दाँतों को दिखातीं, ओठों को चाटती हुई चली। आगे-आगे काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी ये नव दुर्गायें किलकारियाँ मारतीं चलीं। भूत, प्रेत हा-हा-, हू-हू करके दिशाओं को कँपा रहे थे। सभी बड़े उत्साह में भरे थे, सती के नाश से सबके रग-रग में क्रोध व्याप्त रहा था। सभी रक्त पान के प्यासे से दिखाई देते थे। इस प्रकार सब साज-बाज अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर शिव पार्षद गण, कनखल की ओर चल पड़े। वे वायु वेग से भी अधिक द्रुतगति से जा रहे थे। सभी दक्ष का अन्त करने के लिये उतावले हो रहे थे।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। वीरभद्र बहुत से रुद्रपार्षदों से घिरे हुए तथा उन पार्षदों के भीषण नाद करने पर स्वयं भी भयंकर गर्जना करते हुए हाथ में भयंकर त्रिशूल लिये हुए, जो जगत् के अन्त करनेवाले काल का भी अन्त कर सकता था; उसे ताने हुए दक्ष के यज्ञ की ओर लपके।

भूत प्रमथ, वैताल, विनायक, बटुक, डाकिनी। गुह्यक, कर्पट, क्षेत्रपाल सँग चली साँकिनी।।
नव दुर्गाऊ चलीं कोप करि गर्जत तर्जति। वीरभद्र के संग नगनि म मर्दति फर्दति।।
बिकट वेष बाहन विविध, भीषण कोलाहल करहिँ। वीरभद्र सेना निरखि, नर-नारी सबई डरहिँ।।

यज्ञशाला में बैठे हुए यमजान एवं सदस्यों ने देखा कि उत्तर की ओर धूलि का अम्बार उठ रहा है। वे लोग तर्क करने लगे क्या यह अन्धकार है अथवा धूलि है? आँधी भी नहीं चल रही है। अभी गौओं को आने का समय भी नहीं हुआ है फिर यह धूलि कहाँ से उठ रही है? क्या इसी समय संसार का प्रलय तो नहीं होनेवाला है? तब दक्ष-पत्नी प्रसूति एवम् अन्य स्त्रियों ने व्याकुल होकर कहा- दक्ष प्रजापति ने अपनी सारी कन्याओं के समक्ष ही बेचारी सती का अपमान किया था। प्रतीत होता है यह उसी पाप का फल है। इन्होंने अपने आचरण से शंकर को कुपित किया है। असह्य तेजवाले भगवान शंकर को बार-बार कुपित करनेवाला पुरुष साक्षात् विधाता ही क्यों न हो- उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता।

यज्ञशाला में लोग इस प्रकार की चर्चा कर रहे थे कि इसी समय शंकर के अनुचरों की विशाल सेना ने आकर यज्ञ-मण्डप को चारों ओर से घेर लिया। किसी ने किनारे बँधे हुए बाँस को तोड़ डाला, किसी ने पत्नी शाला को नष्ट कर दिया, किसी ने अग्नियों को बुझा दिया। सारा यज्ञ-मण्डप तहस-नहस कर डाला गया। किसी ने खड़े होकर अग्निकुण्ड में पेशाब कर दिया तो किसी ने यजमान-पत्नियों को डराया-धमकाया। मणिमान् ने भृगु ऋषि को बाँध लिया। वीरभद्र ने दक्ष को कैद कर लिया तथा चण्डी ने पूषा को और नन्दीश्वर ने भग देवता को पकड़ लिया। भृगु जी हाथ में स्रुवा लिये हवन कर रहे थे। वीरभद्र ने उनकी दाढ़ी-मूँछ नोच ली, क्योंकि इन्होंने प्रजापतियों की सभा में मूँछें ऐंठते हुए महादेव जी का उपहास किया था। पूषा के दाँत तोड़ डाले। भग की आँखों को निकाल लिया। दक्ष के पक्षधर तमाम देवताओं के अंगों को तोड़ दिया, मसल दिया।

वीरभद्र ने दक्ष को उठाकर जमीन पर पटक दिया। वे उसकी छाती पर बैठे और निकाली तलवार। बार-बार प्रहार करने पर भी दक्ष की गर्दन जब नहीं कट सकी तो उन्होंने मरोड़ कर उसे तोड़ डाला और यज्ञकुण्ड में फेंक दिया।

सहसा सूझी युक्ति इक, बलि पशु सम सिर मोरिकें। फेक्यो जरती अगिनिमें, धड़ते सिरकूँ तोरिकें।।

वीरभद्र के इस कृत्य को शंकर के गणों ने वाह-वाह करके प्रशंसा की और दक्ष-दल में हाहाकार मच गया। यज्ञशाला की होलिका जला कर यज्ञ को विध्वस्त करके वीरभद्र कैलास को लौट गये।

आव गिन्यो नहिँ ताव जज्ञ की आगि बुझाई। ऋत्विज लीन्हें पकरि धमाधम करी कुटाई।
भृगु की दाढ़ी मूँछ सफाचट करी उखारी। भग की फोरी आँखि बतीसी पूषा झारी।।

प्रजापतिनि के यज्ञ में, जिनि जैसे शिवकूँ लख्यो। दक्ष-यज्ञ में तिनति तस, तत्छिन ताको फल चख्यो।।

मैत्रेय जी कहते हैं- रुद्र पार्षद गण यज्ञ में उपस्थत समस्त ऋत्विज् सदस्यों तथा देवताओं के ऊपर ककंड पत्थरों की भयंकर वर्षा करके भयंकर पीड़ा पहुँचाने लगे। वे सब पीडित हुए वहाँ से भागने लगे। तब भगवान वीरभद्र ने हाथ में स्रुवा लेकर हवन करते हुए भृगु महर्षि की दाढ़ी मूँछ उखाड़ ली, क्योंकि उन्होंने प्रजापतियों के यज्ञ में अपनी मूँछे मटका कर भगवान शंकर की हँसी उड़ाई थी।

विदुर जी, शंकर के गणों से पराजित छिन्न-भिन्न अंगवाले देवगण, भय से व्याकुल होकर, ब्रह्माजी की शरण में पहुँचे और उन्हें प्रणाम कर दक्ष-यज्ञ की सारी घटना को कह सुनाया। भगवान ब्रह्माजी और सर्वान्तर्यामी नारायण पहले से ही इस भावी उत्पात को जानते थे, इसी से वे दोनों दक्ष के यज्ञ में नहीं आये। शिवजी कीसेना से पराजित होकर समस्त देवतागण जिनके सभी अंग त्रिशूल, पट्टिश, शंख, गदा और परिघ तथा मुदगर आदि अस्त्रों से क्षत विक्षत हो गये थे। वे सब ऋत्विज और सदस्यों को साथ लिये हुए, भय से व्याकुल हुए, ब्रह्माजी के पास पहुँचे और उन्हें नमस्कार करके आदि से अन्त तक सब हाल सुनाया।

सुनिकें शौनक कहे- कथा अब सूत सुनाओ। पिटि कुटि देवनि कस्यो कहा सो बात बताओ।।
सूत कहें- सब देव बहुत व्याकुल घबरावत। छिन्न-भिन्न सब अंग गये विधि सन बिललवावत।।
घाव दिखावहिँ रोइ सब, अंग-भंग जो-जो भयो। देखि दशा दयनीय विधि, देवनिकूँ ढाढ़स दयो।।

देवताओं के मुख से दक्ष-यज्ञ की सारी घटनाओं को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा- देवों, आप लोगों ने महान अन्याय किया, जो परम तेजस्वी शिव के भाग को यज्ञ में नहीं दिया। तेजस्वी व्यक्ति के प्रति अपराध करनेवाले का कल्याण नहीं होता। तेजस्वी पुरुष किसी का बिगाड़ करे तो उचित है कि उससे कभी भी बदला लेने की इच्छा न करे। यदि किसी तेजस्वी पुरुष से कोई अपराध भी हो जाय तो उससे बैर करना अनर्थकारी ही होता है। परम समर्थ तेजस्वी पुरुषसे कोई दोष भी बन जाय, तो भी उसके बदलेमें अपराध करनेवाले मनुष्योंका भला नहीं हो सकता। किन्तु भगवान शंकर आशुतोष ठहरे, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं अत: आप सब उनके चरण को पकड़कर उन्हें प्रसन्न करो- उनसे क्षमा-चायना करो। यज्ञ तो क्या, शंकर के कुपित होने पर सकल ब्रह्माण्ड का विनाश हो सकता है इसलिये यदि आप लोग यज्ञ की पूर्ति चाहते हो तो भगवान शंकर को प्रसन्न करो। भगवान रुद्र परम स्वतन्त्र है। उनके तत्त्व और शक्ति-सामर्थ्य को कोई भी नहीं जानता। ऐसी अवस्था में उन्हें शान्त करने का उपाय कौन कर सकता है?

ब्रह्मा बोले- बहुत बुरो तुम सबने किन्हों। यज्ञनि के जो ईश तिनहिँ यज्ञ भाग न दीन्हों।।
किन्तु भई सो भई शम्भुकूँ जाइ मनाओ। चरननिमहँ सब परौ यज्ञ पूरो करवाओ।।
ऋषि मुनि बोले- कृपानिधि। हम सब शिवतें बहुत डरें। हम सबकूँ सँग लै चलें, दारुन दुख सबको हरें।।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। भगवान ब्रह्मा उन देवताओं को इस प्रकार समझा बुझाकर पितरों, प्रजापतियों तथा देवताओं के सहित ब्रह्मलोक से शिवजी प्रिय पर्वतराज कैलास को गये।

इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी, देवों, लोकपालों, ऋषियों और मुनियों आदि को लेकर भगवान शंकर के प्रिय धाम कैलास पर्वत पर गये। कैलास का जो श्रृंग है, उसकी परछाईं- प्रतिच्छाया मानसरोवर पर पड़ती है। इसीसे उसको कहते हैं- केलास-के= जले लास: = नृत्यं यस्य स केलास:। जो पानी में नाचता है उसका नाम है- केलास केलास एव कैलास: केलास को ही कैलास कहते हैं। कैलास की शोभा अद्भुत थी। उसके शिखरों पर मणियाँ झिलमिला रही थीं। विविध वृक्षों,

निकुंजों, निर्मल निर्झरों से उसकी शोभा निरन्तर बढ़ रही थी। कन्दराओं की विलक्षणता भी देखने योग्य थी। सिद्धों की रमणियाँ अपने पतियों के साथ विहार कर रही थीं। विविध प्रकार के पक्षी अपने सुमधुर कूजित से चित्त को आह्लादित कर रहे थे। मन्दर, पारिजात, सरल, तमाल, शाल, ताड़, कचनार, असन और अर्जुन के वृक्षों से वह पर्वत अतिशय रमणीय प्रतीत हो रहा था। सती के स्नान करने से अतिशय पावन नन्दा और अलकनन्दा आस-पास कल-कल करती हुई बह रही थीं। वे तीर्थपाद श्रीहरि के चरण-रज के संयोग से अत्यन्त महिमा-मण्डित हैं। विदुरजी, रति-रंग में श्रान्त हुई देवांगनाएँ अपने पतियों के साथ इन्हीं नदियों में स्नान करती हैं, जल-क्रीडा करती हैं और उनके ऊपर जल के छींटे डालती हैं। वहीं पास में कुबेर की पुरी अलका और सौगन्धिक वन भी है। सौगन्धिक वन अनेकों कल्पवृक्षों से सुशोभित था। वहाँ विकसित कमलों से भरी हुई अनेक बावलियाँ थी। उनकी सीढ़ियाँ वैदूर्य मणि की बनी हुई थी। इन सबको देखते हुए देवता जब आगे बढ़े तो उन्होंने एक विशाल वट वृक्ष देखा। उसके नीचे भगवान शंकर शान्तमुन्द्रा में विराजमान थे। सनकादि मुनीश्वर उनकी उपासना कर रहे थे। यक्षाधिपति कुबेर भी उनकी सेवा में संलग्न थे। सब स्तुति प्रार्थना करके भगवान भूतनाथ को प्रसन्न करने लगे।

नारद ने भगवान शंकर से कोई आध्यात्मिक प्रश्न कर दिया था। भगवान शंकर उनके प्रश्न का उत्तर बड़ी ही शान्त मुद्रा में बैठ कर दे रहे थे। अनेक जन उनके वचनामृत का पान कर रहे थे। लोकपालों के सहित समस्त मुनियों ने मननशीलों में सर्वश्रेष्ठ भगवान शंकर को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

रुद्रप्रयाग- शंकर को सती का वियोग सहन नहीं हुआ। भगवान शिवने सती का विरह हो जानेपर जिस क्षेत्र में स्तुति की तथा उनके नेत्रोंसे जहाँ अश्रुपात हुआ उस स्थल का नाम रुद्रप्रयाग हुआ। रुद्र प्रयाग से जुड़े हुए। यही पर भगवान शंकरने देवर्षि नारद को संगीत की शिक्षा दी। सौ वर्ष तक नारद शिवकी आराधना यहीं करते है। शिवने यहांपर ही उन्हें दर्शन दिये। शिवने नारद को पूरा संगीत ज्ञान प्रदान कर और खुश होकर वरदान के रूप में महति नाम की वीणा प्रदान की। आज भी संगम स्थल पर नारद सदा स्थित है। रुद्रप्रयाग अलकनंदा व मंदाकिनी के संगम पर स्थित प्राचीन रुद्रनाथ मंदिर धार्मिक दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्व रखता है। भगवान शिव की स्थली होने से यह शिवके पाँच मुख्य स्थानोंमें से एक है। पाँच मुख्य स्थान माया क्षेत्र हरिद्वार, कुब्जा क्षेत्र ऋषिकेश, देवक्षेत्र देवप्रयाग, श्री क्षेत्र श्रीनगर और नारद क्षेत्र रुद्रप्रयाग। आज भी संगम स्थल पर नारदशिला स्थित है। श्रावणमास में यहां हररोज बढ़ी संख्या में भक्त आते है और रुद्रनाथ मंदिर में जाकर भगवान शिवका जल अभिषेक करते है। यहांपर शिवभक्ति करने पर हर भक्त की मनोकामना पूर्ण होती है।

भगवान शंकर को यह सुनकर क्रोध आया और वे दक्ष की यज्ञशाला में पहुँचे। शंकर नारायण का स्तवन करके सतीके देह को लेकर चले। जहाँ-जहाँ सती के शरीर के अंग-प्रत्यंग गिरते चले गये, उसी जगह एक प्रकार योगिनी पीठ बन गयी, जो शक्ति पीठ के नाम से जानी जाती है।

वहाँ सती के मृत शरीर को देखा और उस शरीर को कन्धे पर उठाकर पृथ्वी पर तांडव नृत्य करते रहे। तभी भगवान विष्णु ने शिव के इस प्रकार रुष्ट होने पर अपने सुदर्शन चक्र से सती के विभिन्न अंगोंको काट दिया।

शिव नारायण का स्तवन करके, सती के देह को लेकर चले। जहाँ-जहाँ सती के शरीर के अंग-प्रत्यंग गिरते चले गये, उसी जगह एक एक प्रकार की योगिनी पीठ बन गयी, जो शक्ति पीठ के नाम से जाने जाती है। वे प्रत्येक अंग अलग-अलग स्थानोंपर गिरे जो शक्तिपीठ बन गये वे इस प्रकार है। वहां जाकर मनुष्य संपूर्ण कामनाओं को पूरा करता है।

जहाँ-जहाँ भगवती सती के जो-जो अंग गिरे वहीं वहाँ शक्ति पीठ हो गई, जो अब तक मानी और पूजी जाती हैं। ऐसी पीठ इक्यावन मानी जाती हैं। देवी भागवत में एक सौ आठ मानी गई हैं। तन्त्रों में बताया है कि जहाँ-जहाँ सतीजी का जो-

जो अंग गिरा वहाँ-वहाँ शिवजी भिन्न-भिन्न नाम रखकर भैरव रूप से विराजते हैं। जैसे काश्मीर में सती देवी का कण्ठ देश गिरा, वहाँ महामाया पीठ हुई और त्रिसन्ध्येश्वर भैरव। बैजनाथ में हृदय गिरा, जहाँ दुर्गा शक्ति हुई वैद्यमान भैरव, प्रयागराज में हाथों की उँगलियाँ गिरीं, ललिता शक्ति हुईं और भवनामक भैरव वहाँ देवी के समीप वास करते हैं। इसी प्रकार सभी स्थानों में शिवजी रहते हैं। सतीजी से उनका ऐसा स्नेह था कि अंगों में खंड-खंड होने पर भी वे उनका सान्निध्य न छोड़ सके, भैरव रूप से अद्यावधि विराजते हैं।

१) वाराणसीमें गौरीका मुख गिरा था, अतएव उस पीठस्थानमें रूप धारण करनेवाली देवीका नाम विशालाक्षी है। २) नैमिषारण्यक्षेत्रमें विराजमान देवी लिंगधारिणी नामसे प्रसिद्ध हुईं। ३) देवीको प्रयागमें ललिता, ४) गन्धमादन पर्वतपर कामुकी, ५) मानसमें कुमुदा, ६) दक्षिणमें विश्वकामा तथा ७) उत्तरमें भगवती विश्वकाम- प्रपूरणी कहते हैं। ८) गोमन्तपर गोमती तथा ९) मन्दराचलपर कामचारिणी नामसे विख्यात हैं। १०) चैत्ररथमें देवीको मदोत्कटा, ११) हस्तिनापुरमें जयन्ती, १२) कान्यकुब्जमें (कनौज) गौरी तथा १३) मलयाचल पर रम्भा कहा गया है। १४) एकाम्रपीठवर वे कीर्तिमती कहलाती हैं। १५) विश्वपीठमें वे विश्वेश्वरी तथा १६) पुष्करमें (अजमेर) पुरूहूता नामसे विख्यात हुईं। १७) केदारपीठमें सन्मार्गदायिनी, १८) हिमवान्पीठमें मन्दा तथा, १९) गोकर्णपीठमें भद्रकर्णिका ये नाम देवीके हुए हैं। २०) स्थानेश्वरीपीठमें भवानी, २१) बिल्वकपीठमें बिल्वपत्रिका, २२) श्रीशैलपर (श्रीशैलम्) माधवी तथा, २३) भद्रेश्वरपर भद्रा नामसे देवीकी प्रसिद्धि है। २४) वराहपीठमें जया, २५) कमलालयपीठमें कमला, २६) रुद्रकोटिमें रुद्राणी तथा, २७) कालञ्जरमें ये काली कहलाती हैं। २८) इन्हें शालग्रामपीठमें महादेवी, २९) शियवलिंगमें जलप्रिया, ३०) महालिंगमें कपिला, ३१) माकोटमें मुकुटेश्वरी, ३२) मायापुरीमें (उज्जैन) कुमारी, ३३) संतानपीठमें ललिताम्बिका, ३४) गयामें मंगला तथा ३५) पुरुषोत्तमपीठमें विमला कहा गया है। ३६) सहस्राक्षमें उत्पलाक्षी, ३७) हिरण्याक्षमें महोत्पला, ३८) विशाखामें अमोघाक्षी, ३९) पुण्ड्रवर्धनपीठमें पाडला, ४०) सुपार्श्वमें नारायणी, ४१) चित्रकूटमें रुद्रसुन्दरी, ४२) विपुलक्षेत्रमें विपुला, ४३) मलयाचलपर भगवती कल्याणी, ४४) सह्याद्रि पर्वतपर (धुलिया) एकवीरा, ४५) हरिश्चन्द्रपीठपर चन्द्रिका, ४६) रामतीर्थमें रमणा, ४७) यमुनापीठमें मृगावती। ४८) कोटितीर्थमें कोटवी, ४९) माधववनमें सुगन्धा, ५०) गोदावरीमें (नासिक) त्रिसंध्या, ५१) गंगाद्वारमें (हरिद्वार) रतिप्रिया, ५२) शिवकुण्डमें शुभानन्दा, ५३) देविकातटपीठमें नन्दिनी, ५४) द्वारिकामें रुक्मिणी, ५५) वृन्दावनमें राधा, ५६) मथुरामें देवकी, ५७) पातालमें परमेश्वरी, ५८) चित्रकूटमें सीता, ५९) विन्ध्याचल पर्वतपर विन्ध्यवासिनी/कैलादेवी, ६०) करवीरक्षेत्रमें महालक्ष्मी, ६१) विनायकक्षेत्रमें देवी उमा, ६२) वैद्यनाथधाममें आरोग्या, ६३) महाकालपीठमें माहेश्वरी, ६४) उष्णतीर्थमें अभया, ६५) विन्ध्यपर्वतपर नितम्बा, ६६) माण्डव्यपीठमें माण्डवी तथा ६७) माहेश्वरीपुरीमें ये देवी स्वाहा नामसे विख्यात हैं। ६८) छगलमण्डमें प्रचण्डा, ६९) अमरकण्टकमें (जबलपुर) चण्डिका, ७०) सोमेश्वर-पीठमें वरारोहा, ७१) प्रभासक्षेत्रमें (वेरावल-सोमनाथ) पुष्करावती, ७२) सरस्वतीतीर्थमें देवमाता तथा, ७३) तट नामक पीठमें पारावारा नामसे इनकी प्रसिद्धि हुई। ७४) महालयमें महाभागा, ७५) पयोष्णीमें पिंगलेश्वरी, ७६) कृतशौचतीर्थमें सिंहिका, ७७) कार्तिकक्षेत्रमें अतिशांकरी, ७८) वर्तकतीर्थमें उत्पला, ७९) सुभद्रा एवं शोणाके संगमपर लोला, ८०) सिद्धवनमें माता लक्ष्मी, ८१) भरताश्रमतीर्थमें अनंगा, ८२) जालन्धर पर्वतपर विश्वमुखी, ८३) किष्किन्धा पर्वतपर लोला, ८४) देवदारुवनमें पुष्टि, ८५) काश्मीर प्रदेशमें (कैकरीय प्रांत) मेधा, ८६) हिमाद्रि पर्वतपर देवी भीमा, ८७) विश्वेश्वर क्षेत्रमें त्रुष्टि, ८८) कपालमोचनतीर्थमें शुद्धि, ८९) कायावरोहणतीर्थमें माता, ९०) शफोद्भारतीर्थमें धरा तथा, ९१) पिण्डारकतीर्थमें (द्वारिका) धृति नामसे ये प्रसिद्ध हुई। ९२) चन्द्रभागानदीके

तटपर कला, ९३) अच्छोद नामक क्षेत्रमें शिवधारिणी, ९४) वेणा नदीके किनारे अमृता, ९५) बदरीवनमें उर्वशी, ९६) उत्तर कुरुप्रदेशमें औषधि, ९७) कुशद्वीपमें कुशोदका, ९८) हेमकूट पर्वतपर मन्मथा, ९९) कुमुदवनमें सत्यवादिनी, १००) अश्वत्थतीर्थमें वन्दनीया, १०१) वैश्रवणालय क्षेत्रमें निधि, १०२) वेदवदनतीर्थमें गायत्री, १०३) भगवान शिवके संनिकट पार्वती, १०४) देवलोकमें इन्द्राणी, १०५) ब्रह्मलोकमें सरस्वती, १०६) सूर्यके बिम्बमें प्रभा, १०७) मातृकाओंमें वैष्णवी, १०८) सतियोंमें अरुन्धती तथा रामा प्रभृत अप्सराओंमें तिलोत्तमा नामसे देवी विख्यात हुई। सम्पूर्ण प्राणियोंके चित्तमें सदा विराजनेवाली शक्तिको ब्रह्मकला कहते हैं।

इस प्रकार सती के देह के टुकड़े इक्यावन जगह पर गिरे। इसलिए इन्हें इक्यावन शक्तिपीठ कहा जाता है। जहाँ पर हृदय गिरा वहाँ पर वैष्णो देवी का पीठ, जहाँ पर जीभ गिरी वहाँ पर ज्वाला देवी का पीठ, जहाँ पर सिर गिरा वहाँ पर मनसा देवी पीठ, जहाँ पर नयन गिरे वहाँ पर नयना देवी पीठ, जहाँ पर केश गिरे, वहाँ पर कात्यायनी देवी पीठ, जहाँ पर योनि गिरी, वहाँ पर कामाक्षा देवी का शक्तिपीठ बना।

शिव ने भी ब्रह्मा को प्रणाम कर सादर आसन पर बैठाया। तब ब्रह्माने भगवान शंकर से कहना प्रारम्भ किया। देव, मैं जानता हूँ, आप सकल जगत् के स्वामी हैं, साक्षात् ब्रह्म हैं। भगवन्, आप मकड़ी के समान ही अपने स्वरूपभूत शिव-शक्ति के रूप में क्रीड़ा करते हुए लीला से ही संसार की रचना, पालन और संहार करते रहते हैं। आपने ही वेद की रक्षा के लिये दक्ष को निमित्त बनाकर यज्ञ को प्रकट किया है। आपने ही वर्णाश्रम की मर्यादाओं की सृष्टि की है। नियमनिष्ठ ब्राह्मण इन्हीं का श्रद्धापूर्वक पालन करते हैं। मंगलमय महेश्वर, आप ही शुभ कर्म करनेवालों को स्वर्गलोक अथवा मोक्ष प्रदान करते हैं। पापी आपकी ही प्रेरणा से नरकगामी बनते हैं।

प्रभो, आप सर्वज्ञ हैं। भगवान की दुस्तर माया की छाया भी आप की बुद्धि का स्पर्श नहीं कर पाती। कर्ममार्ग में आसक्त व्यक्तियों से यदि कोई अपराध बन जाय तो भी उनपर आप को कृपा ही करनी चाहिये। भगवन् आप सबके मूल हैं। आप ही सम्पूर्ण यज्ञों को पूर्ण करनेवाले हैं। यज्ञ-भाग के आप पूर्ण अधिकारी हैं। फिर भी दक्ष यज्ञ में बुद्धिहीनों ने आप को भाग नहीं दिया, इसी से यह आप के द्वारा विध्वस्त किया गया है। अब आप इस अपूर्ण यज्ञ को पूर्ण करवाने की कृपा करें। प्रभो, ऐसा कीजिये जिससे यजमान दक्ष जीवित हो उठे, भग देवता को नेत्र मिल जाय, भृगु जी के दाढ़ी-मूँछ आ जायँ और पूषा के लिये पहले की तरह दाँत निकल आयें। घायल जनों के छिन्न-भिन्न अंग पूर्ववत ठीक हो जाँय। यज्ञ सम्पूर्ण होने पर जो कुछ शेष रहे, वह सब आप का भाग होगा। यज्ञविध्वंसक, आज यह यज्ञ आप के ही भाग से पूर्ण हो। यज्ञ करने से जो साकल्य बच रहेगा वही आपका भोग होगा और आप अपना भाग पायेंगे। शिवजी ने स्वीकार किया बुद्धिमान मनुष्य जिद्दी नहीं होते।

यज्ञ अधूरा भयो कृपा करि दक्ष जिवाओ। भृगु की दाढ़ी लगै देव भग नेत्र बनाओ।।
कस पूषा निबु दाँत, खायँ कछु युक्ति बताओ। जस जानों तस प्रभो, जज्ञकूँ पूर्ण कराओ।।
हर हँसि बोले- यज्ञपशु, को सिर शव धड़ पै धरो। जीवित होवे दक्ष- भृगु, दाढ़ी बकरा की करो।।

मैत्रेय जी कहते है- विदुर। शिव बोले ब्रह्माजी, शिव की माया से मोहित हुए दक्ष जैसे नासमझों के अपराध की न तो मैं चर्चा करता हूँ और न याद ही।

अब जैसी आप की इच्छा हो वैसा ही हो जायेगा। दक्ष का अपना सिर तो यज्ञ की अग्नि में जलकर राख हो गया। दक्षिणाग्नि में जिस सिर का हवन होना चाहिये था वह तो रह गया और जिस का नहीं होना चाहिये था उसका हो गया। अब जो बचा हुआ बकरे का सिर है, वह दक्ष के कन्धे से जुट जाय। वह अजमुख बन जाय।

दक्ष सर्वदा मैं-मैं-मैं बोलता रहता था, कहता रहता था कि यह मेरा है, वह मेरा है, यह मैं हूं, वह मैं हूँ। इस प्रकार जो मे-मे माने मैं-मैं करनेवाला है, मेरा-मेरा कहनेवाला है, वह तो बकरे की ही बोली बोलता है इसलिये मुँह भी बकरे का होना चाहिये। बकरा परम कामी होता है। दक्ष भी कामी ठहरा अत: उसके कन्धे पर बकरे का ही सिर लगना चाहिये। बकरा बकरी की योनि का उपासक होता है। दक्ष का अज मस्तक होना- शिव से द्वेष की बेला में दक्ष अजमस्तक था। दक्ष के सिर पर माया नाच रही थी वह दक्ष। माया के प्रभाव के कारण ही उसने शिव में तुच्छ बुद्धि बना ली थी। बकरे का सिर लग जाने पर वह अज-मस्तक = बकरे का सिर वाला हो गया। दण्ड मिल जाने पर शिव में ब्रह्म-बुद्धि हो गई दक्ष की।

जो कोई बड़ों का कहना नहीं मानता वह पीछेसे दु:ख पाता है।

जब अहंकार का भूत सिर पर चढ़ा हुआ होता है तब तो वह शिव को तुच्छ मानता था और जब अहंकार का भूत सिर से उतर गया और बकरे का सिर लग गया है तो दीनता से प्रार्थना कर रहा है।

भग देव अर्थात् भग नाम के सूर्यदेव मित्रदेवता के नेत्रों से अपना यज्ञभाग देखें। पूषा यजमान के दाँतों से भोजन करें अथवा पीस कर खायँ और उन देवताओं के सारे छिन्न-भिन्न अंग पूर्ण हो जायँ जिन्होंने मुझे यज्ञ में भाग देना स्वीकार किया है। भृगु जी की ठोढ़ी में बकरे की दाढ़ी लगा दो। उसमें कोई बाल बड़ा और कोई छोटा रहेगा। ये अपनी दाढ़ी हिला-हिला कर गाली दिया करते थे अत: इनको बकरे की दाढ़ी लगनी चाहिये। यह दक्ष के बड़े हितैषी थे अत: दोनों में कुछ-न-कुछ समानता होनी चाहिये। एक में बकरे का मुख और दूसरे में बकरे की दाढ़ी।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। इस प्रकार व्यवस्था करके ब्रह्माने शिवसे कहा- महाराज, आपको भी अब यज्ञ में चलना पड़गा। आपके ही तत्त्वावधान में यह यज्ञ पूर्ण होगा।

साधु, साधु,सब कहें शम्भु की करें बड़ाई। बोले ब्रह्मा- विभो। बिगारी बात बनाई।।
अब चलिकें सब साज सत्र के शीघ्र सजाओ। फिरतें रोपो ठाट यज्ञ कूँ सफल बनाओ।।
विधि आयसु सिर धारि शिव, सब कूँ सँग लै चलि दिये। बकरा सिर धर पै धर्‌यो, तुरत दक्ष जीवित भये।।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। सब ऋषियों के सहित देवताओं ने शम्भु को दक्ष यज्ञ में पधारने को आमन्त्रित किया। तब सब लोग लोकपितामह ब्रह्माजी तथा शिवजी को साथ मिले हुए उसी यज्ञ मण्डप में गये।

इसके बाद सब देवता और ऋषि आदि शंकर जी को साथ लेकर यज्ञ-स्थान में गये। वहाँ भगवान शिव के कथनानुसार बकरे का सिर दक्ष के धड़ से जोड़ दिया गया। वे शंकर जी दृष्टि पड़ते ही सोकर जागने के समान जीवित होकर उठ बैठे। सामने उन्होंने देखा कि भगवान शंकर खड़े हैं। दक्ष का शंकरद्रोह की कालिमा से कलुशित हृदय, उनका दर्शन करने मात्र से, शरत्कालीन सरोवर की भाँति स्वच्छ हो गया। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली। अपनी प्राण-प्रिया पुत्री सती के स्मरण से उनका कण्ठ भर गया। हाथ जोड़कर गद्‌गद् वाणी से शंकर की स्तुति करते करने लगे। पारस पत्थर स्पर्शमात्र से लोहे को सोना बना देता है।

प्रभो, आपका मेरे ऊपर महान् अनुग्रह है। मैंने आप का प्रबल अपराध किया था किन्तु आपने दण्ड देकर मुझे शुद्ध कर दिया, नरक जाने से रोक लिया और दर्शन देकर कृतार्थ भी किया। ब्राह्मणों की सृष्टि आपने वेदों की रक्षा के लिये की है। आप नाममात्र के ब्राह्मणों को भी नहीं भूलते हैं- फिर हम जैसे यज्ञ-यागादि करनेवालों को क्यों भूलेंगे? मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरे अपराधों को क्षमा करें। आप को प्रसन्न करने के लिये मेरे पास कोई गुण नहीं है; बस, आप अपने ही उदारतापूर्ण बर्ताव से मुझ पर प्रसन्न हों। जिसे अपनी गलती का ज्ञान नहीं अथवा ज्ञान होने पर भी सुधरता नहीं वह

अज्ञानी है। विशुद्ध हुए दक्ष शिवजी की स्तुति करते हुए कहते हैं- हे विभो। आपने विद्या, तप और व्रतों को धारण करने वाले ब्राह्मणों को अपने मुखसे वेद और आत्मतत्वको रक्षा क लिये रचा है। आप उन्हें निर्दयता पूर्वक दण्ड नहीं देते; किन्तु जैसे ग्वाला हाथ में दण्ड लिए हुए पशुओं की रक्षा करता है; उन्हं कुपथ में जाने से बचाता है, वैसे ही आप दण्ड देकर सब विपत्तियों से सबकी रक्षा करते हैं।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुर जी, इस प्रकार भगवान शिव से बार-बार क्षमा मांग कर दक्ष ने ब्रह्मा की अनुमति से अपना यज्ञ पुन: प्रारम्भ किया। उस समय ब्राह्मणों ने, रुद्रगणों के संसर्ग से दूषित यज्ञ की विशुद्धि के लिये, तीन पात्रों में विष्णु भगवान के निमित्त तैयार किये गये पुरोडाश नामक चरु का हवन किया, यजमान ने हाथ जोड़कर यज्ञपति भगवान विष्णु का ध्यान किया। इससे साक्षात् भगवान श्रीहरि गरुड पर सवार होकर वहाँ प्रकट हुए। उनका वर्ण श्याम था, वे पीताम्बर धारण किये हुए थे, कमर में सुवर्ण की करधनी विराजमान थी, सूर्य के समान चमकता हुआ मुकुट उनके सिर पर शोभायमान था, मुखकमल भौरों के समान नीली अलकावली से मण्डित था, कान्तिमय कुण्डल उनके कानों में लटक रहे थे। भुजाएँ सुवर्णाभूषणों से मण्डित थीं। वे अष्टभुजाधारी थे। हाथों में शंख, चक्र आदि सुशोभित हो रहे थे।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। हाथ में हवि लिये हुए अध्वयु के साथ यमजान दक्ष ने ज्यों ही विशुद्धि बुद्धि से ध्यान किया, त्यों ही श्री हरि उस यज्ञ-स्थानसे प्रकट हुए। भगवान अपनी प्रभा से दसों दिशाओं को देदीप्यमान कर रहे थे। उनके महान तेज से सभा में बैठे सभी सभासदों की दृष्टि चकाचौंध हो गई। भगवान उन गरुड़जी पर स्थित थे, जिनके पंखों से वेद मन्त्र निकल रहे थे।

भगवान, विष्णु का श्रीविग्रह निरख कर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। भगवान पधारे हैं- यह देखकर इन्द्र, ब्रह्मा और महादेव आदि देवेश्वरों के साथ सभी लोग सहसा उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। दक्ष के यज्ञ को भूत-प्रेत पिशाच आदि रुद्रगणों ने विध्वंस ही नहीं किया, किन्तु उसे मलमूत्र त्याग करके भ्रष्ट भी कर दिया था, अत: सर्वप्रथम उस यज्ञ की शुद्धि आवश्यक थी। झाड़ू, बुहारू, मार्जन,उपलेप आदि करके ब्राह्मणों ने सर्वप्रथम मन्त्रों से शुद्धि की, फिर उपाध्याय, ऋत्विक, सदस्य, होता आदि सभी ने मिलकर अग्न्याधान करके यज्ञ कार्य आरम्भ किया। भूत प्रेतों की संसर्ग शुद्धि के निमित्त विष्णु सम्बन्ध त्रिकपाल पुरोडास शुद्ध चित्त से अनेक वेदज्ञ ब्राह्मणों के सहित दक्ष प्रजापति ने अर्पण किया। अग्नि में श्रीविष्णु के निमित्त हवि अर्पण करते ही यज्ञरूप जनार्दन भगवान विष्णु उसी समय वहाँ प्रकट हो गये।

सबसे पहले प्रजापति दक्ष एक उत्तम पात्र में पूजा की सामग्री लेकर नन्द-सुनन्द आदि पार्षदों से घिरे हुए, प्रजापतियों के परम गुरु, भगवान यज्ञेश्वर के पास गये और अत्यन्त आनन्द में भर कर विनीत भाव से हाथ जोड़कर प्रभु के शरणापन्न हुए।

इस्तुति प्रभु की करें दक्ष, ऋत्विक विद्याधर। लोकपाल, सुर, इन्द्र, सिद्ध, ऋषि, मुनि, योगेश्वर।।
यजमानी अरु आग्नि, यज्ञ, गन्धर्व, विप्रगन। विविध भाँति करि विनय, लगायौ हरि चरननि मन।।
सबकी सुन्दर सुनि विनय, अति प्रसन्न श्रीहरि भये। जैसी जाकी कामना, तैसे ताकूँ बर दये।।

स्तुति करते हुए दक्ष ने कहा- आप चिन्मात्र अभय ब्रह्म हैं। आप में माया का लेश भी नहीं है। आज आप ने इस श्रीविग्रह के दर्शन से मुझे कृतार्थ किया है। मैं आप को प्रणाम कर रहा हूँ। ऋत्विजों ने कहा- महाराज, हम तो बहुत दुराग्रही हैं। रुद्र के शाप से यह यज्ञ-कर्म बिगड़ गया था लेकिन आपने इसकी फिर से रक्षा कर दी हम आप को नमस्कार करते हैं। सदस्यों ने कहा- प्रभो, अज्ञानी जीव-समूह देह-गेह और विषयों में आसक्त होकर इस घोर संसाररूपी जंगल में

भटक रहा है। अनेक प्रकार के कष्ट इसे परेशान कर रहे हैं। इसका उद्धार कर आप इसे अपने चरणकमलों की शरण में ग्रहण करें। रुद्र ने कहा- स्वामिन्, मेरा मन-भ्रमर सकल मनोरथ सिद्ध करनेवाले आपके चरण कमल में नित्य लीन रहा करता है। अत: अज्ञानी जन मुझे आचार-भ्रष्ट कहते हैं, तो कहा करें। आप के अनुग्रह से मैं उनके कहने-सुनने का कोई विचार नहीं करता, उस पर ध्यान नहीं देता। भृगु जी ने कहा- आप की माया से मोहित ब्रह्मा आदि देहधारी भी आप के तत्त्व को ठीक-ठीक अभी तक नहीं समझ सके हैं। इस प्रकार मन और बुद्धि से परे होने पर भी आप अपने शरणागत भक्तों के आत्मा और सुहृद् हैं अत: आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये।

ब्रह्मा ने कहा- प्रभो, आप मायामय प्रपंच से परे हैं। आप माया के कार्य विषय और इन्द्रियों के अधिष्ठान हैं- ये सब आपमें अध्यस्त हैं। आप कार्य से परे सब के मूल कारण हैं। इन्द्र ने कहा- देव-द्रोहियों का संहार करनेवाला आप का यह श्रीविग्रह नाना आयुधों को धारण करनेवाली आठ भुजाओं से सुशोभित है। आप का रूप हमारे मन और नेत्र को परम आनन्द प्रदान करनेवाला है। याज्ञिकों की पत्नियों ने कहा- स्वामिन्, आप की आराधना के लिये ही ब्रह्माजी ने इस यज्ञ की रचना की थी किन्तु भगवान शंकर ने इसे तहस-नहस कर दिया है। अब आप अपने कमल-नयन से निहार कर इसे पवित्र कर दीजिये। हम आप को प्रणाम करती है।

भृगु ऋषि बोले- प्रभो, मैं आपकी शरण में आया हूँ, आप मेरे ऊपर कृपा करें। वैसे तो आपकी माया ऐसी गहन है, सभी का आत्मज्ञान इस माया के अधीन होने से नष्ट हो गया है और लोगों की तो बात पृथक् रही, अज्ञानरूपी माया में सोये हुए ब्रह्मादिक देवता भी आपका तत्त्व यथार्थ में नहीं जानते।

ऋषियों ने कहा- प्रभो, आप की लीला अद्भुत है। कर्म करते हुए भी आप उनसे निर्लिप्त रहते हैं। सारा संसार विभूति की कामना से जिस लक्ष्मीजी की उपासना करता है, वे आप की पूजा में निरत रहती हैं उनसे नि:स्पृह ही बने रहते हैं। सिद्धों ने कहा- भगवान्, आप की लीला-चरित्र की उज्ज्वल सुधा-सरिता में हमारा मनोमयरूप हाथी सदा डूबता- उतरता रहता है। कथा सुनने की इसकी तृष्णा समाप्त ही नहीं होती। अत: अब उसका भवाग्नि का दाह समाप्त हो गया है और वह आनन्द-सिन्धु में डूबा हुआ है। यजमान की पत्नी ने कहा- सर्वसमर्थ परमेश्वर आप का स्वागत है। मैं आपको प्रणाम करती हूँ। आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। लक्ष्मी जी के सहित आप हमारी रक्षा करें। सब प्रकार से परिपूर्ण भी यज्ञ आप के बिना वैसे ही सुशोभित नहीं होता। लोकोपालों ने कहा- वस्तुत: आप हैं तो पंचभूतों से पृथक् फिर भी पाञ्चभौतिक शरीरों के साथ जो आप का सम्बन्ध प्रतीत होता है, यह सब आपकी माया ही है। योगेश्वरों ने कहा- स्वामिन्, ज्ञानियों की भांति आप अपने भक्तों पर भी कृपा कीजिये। आप ही विभिन्न रूप धारण कर संसार की सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं। इसी से लोगों में आप भेदबुद्धि पैदा कर देते हैं। वस्तुत: भेद-ज्ञान और गुणों से आप सर्वथा दूर हैं। आप को हमारा नमस्कार है। ब्रह्मस्वरूप वेद ने कहा- निर्गुण होते हुए भी आप धर्म आदि की उत्पत्ति के लिये ही सत्व को स्वीकार करते हैं अत: आपका तत्त्व कोई नहीं जानता। हम आपको प्रणाम करते हैं।

अग्नि ने कहा- प्रभो, आप के तेज से समृद्ध होकर ही मैं द्रव्य को देवताओं के पास तक पहुँचाता हूँ। यज्ञ आप के स्वरूप हैं। यजुर्वेद के मन्त्रों से आपका ही पूजन होता है। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। देवताओं ने कहा- प्रलय काल में सारे विश्व को अपने उदर में धारण कर, प्रलयकालीन जल के भीतर शेष शय्या पर जो शयन करते हैं वही आप आज हमारे नेत्रों के विषय बनकर भक्तों की रक्षा कर रहे हैं। गन्धर्वों ने कहा- प्रभो, ऋषि तथा देव आप के अंश के अंश हैं। सम्पूर्ण विश्व आप की क्रीडास्थली है, खेल सामग्री है। ऐसे आपको हम सर्वदा प्रणाम करते हैं। विद्याधरों ने कहा- मानव

शरीर परम पुरुषार्थ का साधन है। इसे प्राप्त कर भी जीव मायावश मैं- मेरे पन का अभिमान कर बैठता है। आपका कथामृत अन्त:करण के मोह का विनाशक है। ब्राह्मणों ने कहा- यज्ञ में जितनी भी वस्तुएँ होती हैं, वह सब आप ही हैं। क्रतु आप हैं। हविष्म आप हैं। अग्नि आप हैं। मन्त्र आप हैं। समिधा आप हैं। दर्भपात्र आप हैं। सब कुछ आप ही हैं। जीवों के कल्याण के लिये रसातल से पृथ्वी का उद्धार आपने ही किया है। यज्ञेश्वर, जब लोग आप के नाम का कीर्तन करते हैं, तब यज्ञ के समस्त विघ्न विनष्ट हो जाते हैं। हमारा यह सत्कर्मरूप यज्ञ नष्ट हो गया था अत: हम आप के दर्शनों की इच्छा कर रहे थे। अब आप हम लोगों पर प्रसन्न होइये। आप को हमारा प्रणाम है।

मैत्रेय जी कहते हैं- विदुर, सबकी स्तुति करने के अनन्तर ब्राह्मणों ने सारभूत स्तुति करते हुए कहा- हे यज्ञों के अधिपति। मनुष्यों द्वारा आपके नामों का संकीर्तन किये जाने पर यज्ञ सम्बन्धी सभी विघ्न नाश हो जाते हैं। यह हमारा यज्ञ रूप सत्कर्म नाश को ही प्राप्त हो गया था, इसलिये हम आपके दर्शनों को लालायित थे। आपने दर्शन दिये अब आप हम पर प्रसन्न होइये, आपके चरणों में पुन: पुन: प्रणाम है।

विप्र कहें- हे विभो। आपई यज्ञ, सोम, घृत। मन्त्र, अग्नि, कुश, समिध देव। तुम बलि पशु अरुव्रत।।
पुरोडास, यजमान आपई हविकूँ पावें। नाम कीरतन करत यज्ञ त्रुटि सब नसि जावें।।
प्यावें प्रेम पियुष प्रभु, पुनि-पुनि पैरनिमहँ परहिं। शिवगण कृत विध्वंस मख, ताहिं विभो। पूरनि करहिं।।

जब सभी लोग यज्ञ-रक्षक भगवान विष्णु की इस प्रकार स्तुति करने लगे, तब परम चतुर दक्ष ने वीरभद्र के द्वारा ध्वंस किये गये यज्ञ को पुन: प्रारम्भ कर दिया। भगवान विष्णु ने अपना यज्ञ-भाग ग्रहणकर दक्ष से कहा- देखो दक्ष, एक बात तुम अपनी बुद्धि में धारण कर लो। मैं, ब्रह्मा और शंकर ये तीनों एक ही हैं। एक ही तत्त्व सृष्टि, स्थिति और संहार रूप से, संसार के कारण, तीन रूपों को धारण करता है। वस्तु एक है, रूप तीन हैं। इसलिये जो इन तीनों देवों में भेद-बुद्धि करता है, वह अज्ञानी है। जिस प्रकार मनुष्य अपने सिर-पाँव आदि अंगों में ये मुझसे भिन्न है ऐसी धारणा कभी नहीं करता, उसी प्रकार मेरा भक्त प्राणिमात्र को मुझसे अलग नहीं देखता। हम तीनों में अभेद बुद्धि रखनेवाला व्यक्ति परम शान्ति की अनुभूति करता है। शिव, ब्रह्मा सब मेरे ही रूप हैं। जगत् का एकमात्र कारण सबकी आत्मा, चराचर का ईश, साक्षी स्वयं प्रकाशक, कर्ता, भर्ता, हर्ता और विधाता मैं ही हूँ। मैंने ही अपनी त्रिगुणमयी माया का आश्रय करके जगत् की सृष्टि के लिये ब्रह्मा, पालन करने के लिये विष्णु और संहार करने के लिये रुद्र- ये, तीन रूप धारण करता हूँ। यह सब नाममात्र को पृथक् हैं, पर वास्तव में एक मैं ही इन तीनों रूपों में कार्य कर रहा हूँ। दक्ष बोले- भगवन् लोग कहते हैं ब्रह्मा राजस देव हैं, विष्णु सत्व प्रधान देव हैं। रुद्र तामस देव हैं। सात्विक लोगों को रुद्र की उपासना नहीं करनी चाहिये। भगवान बोले- दक्ष, ऐसा तो मूर्ख लोग ही सोचते हैं, जिन्होंने वृद्धोंकी सेवा नहीं की, सद् शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया, वे ही ऐसी बिना सिर पैर की ऊटपटाँग की बातें बोलते हैं। सर्वान्तर्यामी केवल अद्वितीय मुझ ब्रह्म में भेदभाव के लिये स्थान कहाँ है? यह कहकर भगवान विष्णु अन्तर्धान हो गये।

विष्णु भये सन्तुष्ट सबनि कूँ शिक्षा दीन्हीं। हौं, विधि, शिव सब एक भेद की व्याख्या कीन्हीं।।
सबई हर्षित भये कर्‌यो आरम्भ यज्ञ फिरि। च्यौं न होहि मख पूर्ण जहाँ तीनों विधि हर हरि।।
अति प्रसन्न ह्वै प्रजापति, शिवजी को पूजन कर्‌यो। सती यादि करि दक्ष के, नेह नीर नयननि भर्‌यो।।

दक्ष ने सभी देवों का पूजन किया। वे प्रसन्न होकर दक्ष को आशीष देते हुए अपने-अपने लोकों को चले गये।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुर, यज्ञ समाप्त हुआ। यजमान दक्ष ने एकाग्र चित्त होकर भगवान वृषभध्वज का उनके भाग से

पूजन किया, फिर उदवसान नामक कर्म से और भी जो यज्ञ में सोमपायी तथा इतर देवता थे, उनका भी पूजन किया, फिर ऋत्विजों के साथ यज्ञान्त अवभृत स्नान किया। यज्ञ कार्य समाप्त करके प्रजापति यज्ञ में बड़ी धूमधाम से अवभृत स्नान की तैयारियाँ कीं। समस्त ऋषि, मुनि, देवता, यज्ञ-गन्धर्व, ब्राह्मण, ऋत्विक, पुरोहित, पत्नी सहित दक्ष को आगे करके भगवती भागीरथी में कनखल के समीप अवभृत स्नान के लिये गये। सभी ने वेद मन्त्रों द्वारा शास्त्रीय विधि से मृतिका पंचगव्य, भस्म, अपामार्ग, आमलकी कुशा आदि पवित्र द्रव्यों से विधिवत् स्नान किया।

तदनन्तर उन प्रजापति दक्ष को जिन्होंने अपने पुरुषार्थ से ही समस्त समृद्धियों को प्राप्त किया है, उन्हें देवता यह वरदान देकर कि तुम्हारी मति सदा धर्म में बनी रहे सब अपने-अपने स्थान अर्थात् स्वर्ग को चले गये।

विदुर कहें- गुरुदेव। सती तो शक्ति सनातन। शिव तजि अनत न जाहिँ सुनी जिह प्रथा पुरातन।।
कैसे तजि के देह मिली फिरि कस शंकर कूँ। जिहि ध्यावत तनु तजहिँ फेरिपावहिँ तिहिँ वरकूँ।।
सुनि बोले मैत्रेय मुनि, विदुर। सुनो इतिहास सब। हिमगिरि मेना की सुता, सती भई जस कहूँ अब।।

विदुरजी, यही सती अगले जन्म में हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ से पार्वती के रूप में जन्मी। उन्होंने तप के प्रभाव से पुन: पति के रूप में भगवान शंकर को ही प्राप्त किया। जो व्यक्ति भक्ति-भाव से भगवान शिव के इस चरित्र को प्रतिदिन सुनता और कहता है, उसकी पापराशि विनष्ट हो जाती है एवं और वह अपने सकल मनोरथों को पा लेता है, त्रिदेवों में उसकी समबुद्धि भी हो जाती है।

यज्ञ सम्पन्न होने के बाद में जो कुछ शेष बचता है वो शिव का भाग होता है। शंकर बोले- यज्ञ तो मेरे प्रभु नारायण का स्वरूप है। यज्ञशिष्ट प्रसाद के अधिकारी तो सन्तजन होते हैं। शेष बचे हुए भाग को महादेव ने स्वीकार किया। अहंकार से युक्त होकर जो काम किया जाता है, उसको तामस धर्म कहते हैं।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुर, वही सती जो दक्षनन्दनी थी, वही आगे चलकर गिरिजानन्दनी हो गई। पार्वती के रूप में प्रगट हो गई। सतीजी ने हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ से पार्वती रूप में अवतार धारण करके अपने सर्वस्व भगवान् भूतनाथ को पुन: पति रूप से वरण किया।

दक्षनन्दनी सती देह तजी पारवती तनु पाई। दक्ष यज्ञ अपमान जानि के योग अग्नि ने तनु त्यागा।।
हृदय अनन्य भाव शंकर प्रति नारायण से वर मांगा।जनम जनम प्रभु आशुतोष के चरण कमल दृढ़ अनुराग।।
कन्या पाय उमा सी सोया भाग्य हिमाचल का जागा। पिता हिमाचल माँ मैना ने पाई विपुल बड़ाई
जगदम्बा गिरिजा गिरिवर के घर जाई।।

प्रजापति दक्ष ने अपनी एक कन्या स्वधा नाम की पितरों को दी थी। पितरों ने मानसिक संकल्प से उसमें तीन कन्यायें पैदा कीं। बड़ी का नाम मैना, मध्यमा का नाम धन्या (सुनयना) छोटी का नाम कीर्तिदा। पितरों की दिव्य मानसिक कन्या होने के कारण इनका सभी लोकों में प्रवेश था। एक दिन ये तीनों कन्यायें ब्रह्माजी की सभा में बैठी थीं। उसी समय सनकादि चारों कुमार वहाँ आये। उनको देखकर सभी ऋषि, मुनि उठकर खड़े हो गये, क्योंकि वे सबके पूर्वज होने से पूजनीय हैं, अभ्युत्थान के योग्य हैं; किन्तु ये तीनों कन्यायें उन छोटे-छोटे कुमारों के अनुपम रूप लावण्य को देखकर शिव माया में ऐसी विमोहित हो गईं कि अभ्युत्थान देना भूल गईं। भोलेपन से बैठी-की-बैठी ही रह गईं। ऋषियों। ये सब कार्य भगवान की इच्छा से ही होते हैं, वे खेल करना चाहते हैं। उनकी ऐसी अविनय समझकर सनतकुमार ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम्हारा दिव्य भाव नष्ट हो जाय, तुम तीनों पृथ्वी पर जाकर मनुष्य भाव को प्राप्त हो जाओ।

यह सुनकर तीनों ने विनय की- महाराज। हमारे मन में न तो कोई कुत्सित भाव ही था, न अहंकार के वशीभूत होकर हमने ऐसा किया। हम तो आपके तेज को देखकर विमुग्धा बन गईं। ऋषियों का क्रोध पानी की लकीर के समान होता है। तुरन्त ही प्रसन्न होकर वे बोले- जो बात मुख से निकल गई, वह तो होकर ही रहेगी। फिर भी तुम मर्त्यलोक में जाकर भी इतनी भाग्यशालिनी होओगी कि संसार में तुम विश्ववन्दिता समझी जाओगी। तुम्हारे तीनों के गर्भ से आद्यशक्ति भगवती जगदम्बिका तीन रूपों से अवतार धारण करेंगी, उनके दर्शनों से तुम तीनों मुक्त हो जाओगी।

सूतजी कहते हैं- मुनियों, कुमारों का क्रोध भी मुक्ति का कारण होता है। वे तीनों ही पृथ्वी पर प्रकट हुईं। पहली मेना का विवाह गिरिराज हिमालय के साथ हुआ, जिनके गर्भ से विश्ववन्दिता शिवपत्नी भवानी ने जन्म लिया। दुसरी धन्या राजर्षि जनक की पत्नी हुई सुनयना, जिन्हें भगवती सीता की माता कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और तीसरी कीर्तिदा व्रज में वृषभानुजी की पत्नी देवी के नाम से विख्यात हुई, जिन्हें राधिकाजी की जननी कहलाने का महा-महा सौभाग्य प्राप्त हुआ।

भोलेनाथ अब और तीव्र वैराग्यपूर्वक निश्चिन्त निर्द्वन्द्व भजन में लग गये। अब तो अखण्ड समाधि में बैठ गये। इधर देवी सती पर्वतराज हिमाचल के घर में जाकर पार्वती के रूप में माँ मैना के गर्भ से प्रगट हुईं। क्रम-क्रम से बढ़ने लग गयी। जैसे शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कला बढ़ती है वैसे पार्वती बढ़ने लगी और कुछ ही दिनों में विवाह के योग्य हो गई। माता-पिता को चिन्ता लग गई। केवल माता-पिता को ही चिन्ता नहीं समष्टि के लिये चिन्ता की बात थी, क्योंकि उन दिनों में एक राक्षस पैदा हुआ था उसका नाम तारकासुर था। तारकासुर की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने वरदान देनेके लिये पूछा। तारकासुर चाहता तो था अमरत्व का वर माँगना किन्तु ब्रह्माजी ने कहा- पुत्र, यह मर्त्यलोक है, इसमें अमर कोई नहीं होता। तो तारकासुर ने माँगा मैं शिवजी के पुत्र के अतिरिक्त किसीके भी हाथ न मरूँ। क्योंकि तारकासुर जानता था शिवजी की पत्नी सती शरीर त्याग चुकी है और शिवजी वैरागी है दूसरा विवाह करनेको राजी नहीं है। इसलिये उनके न कोई पुत्र होगा और न मैं मरूँगा। यदि शिवजी का कोई पुत्र हुआ तो वह सिर्फ छठी के दिन ही मुझे मार सके। उसके पहले भी नहीं, बाद में भी नहीं। ब्रह्माजी ने तथास्तु कह दिया। अब तारकासुर अपने आपको अमर समझने लगा और उद्दण्ड होकर अत्याचार करने लगा। देवताओं, संतो, भक्तों, वेदोंको, ब्राह्मणोंको और गायोंको सताने लगा। सब लोग उसके उत्पात से उपद्रव से त्राहि त्राहि करने लगे। अपनी रक्षा करने के लिये ब्रह्माजी से प्रार्थना करने लगे। ब्रह्माजी ने कहा- उसे तो वरदान प्राप्त है। शंकरजी का पुत्र ही उसको मार सकता है पर शंकरजी को पुत्र कहाँ से होगा? इसलिये कोई ऐसा प्रयत्न किया जाए शंकर को पाने के लिए पहले हिमालय की पुत्री पार्वती तपस्या करें और उनकी तपस्या से भगवान शिव प्रसन्न होकर उनको स्वीकार करें फिर उसके द्वारा शिवजी के पुत्र हो वो इस असुर को मार सकता है। शिवजी तो समाधि में बैठे है। उन्होंने तो निर्णय कर रखा है कि मैं अब शादी-ब्याह के झंझट में नहीं पड़ूँगा।

जब देवताओं ने सती के वियोग में शिवजी को अत्यंत ही दुखी देखा, तो ब्रह्मादिक देवों ने मिलकर महामाया की आराधना की। देवताओं के तप से संतुष्ट होकर शिवलोक निवासिनी सर्वव्यापिनी निर्गुण महामाया साकार रूप से प्रकट हुईं और देवताओं से वरदान माँगने को कहा। देवताओं ने यही वरदान माँगा कि विश्व की स्थिति के लिये आप पुन: साकार रूप में प्रकट हों। महामाया ने कहा-मैं गिरिराज हिमालय की पत्नी मैना के प्रेमपाश में बँध गई हूँ, अत: उन्हीं के घर पुत्री होकर प्रकट होऊँगी। तभी सदाशिव को पुन: पूर्ववत् वरण करूँगी। इतना कहकर महामाया अन्तर्धान हो गईं।

शिवा और शिव निर्विकार रूप से कालयापन कर रहे थे, उधर तारकासुर उत्पन्न होकर देवताओं को पीड़ा पहुँचाने लगा। वह अपने तप और तेज से इतना पराक्रमी था कि संसार में कोई उसे जीत नहीं सकता था। उसके भय से भयभीत

होकर सभी देवता ब्रह्माजी के पास गये ब्रह्माजी ने कहा- वह असुर न मुझसे मरेगा, न विष्णु भगवान से, न शिवजी से। यदि शिव के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो जाय, तो वह इसे मार सकता है। शिवजी तो विकार शून्य हैं। विश्व मोहिनी जगत की सुन्दरियों में एकमात्र शिरोमणि भगवती पार्वती उनके समीप रहकर सब प्रकार से उनकी सभी सेवायें करती हैं, तो भी उनके मन में कभी स्वप्न में भी काम की प्रेरणा नहीं उठती। ऐसे जितेन्द्रिय वासनाहीन शिव के पुत्र कैसे हो सकता है? देवताओंने सोचा हम भी कोई उद्योग करें। यह सोचकर सब देवता देवराज इन्द्र के पास गये। इन्द्र ने बसन्त, मलयानिल, रति आदि के सहित कामदेव को शिव समाधि भंग करने भेजा। उनका तप नाश करने की इच्छा से कामदेव वहाँ गया, जहाँ पार्वती द्वारा सेवित शिव समाधि मग्न थे। कामदेव ने अपना सम्पूर्ण बल लगाया, किन्तु शिवजी पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा शिवने अपनी शक्ति से अपने तीसरे नेत्र से कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया।

काम को जिस समय शिवजी ने भस्म किया, उस समय पार्वतीजी वहीं उपस्थित थीं। काम जिस समय दग्ध हुआ, उस समय शिवजी की मूर्ति भयंकर बन गयी थी। तीसरे नेत्र के खोलते ही एक बड़ा भयंकर महान शब्द हुआ, जो दसों दिशाओं में भर गया। उस शब्द को सुनकर शैलकुमारी डर गयी, वे भागकर अपने पिता के घर पहुँची, सब ने उन्हें सान्त्वना दी, किन्तु वे तो शिवजी को प्राप्त करना चाहती थीं, अत: माता-पिता की आज्ञा लेकर अरण्य में जाकर वे घोर तपस्या करने लगीं। उनके घोर तप के कारण एक ऐसी तपाग्नि-सी उत्पन्न हुई कि उससे तीनों लोक के जीव जलने से लगे। सभी मिलकर ब्रह्माजी के पास गये, ब्रह्माजी सबको लिये हुए विष्णु भगवान के पास गये, भगवान ने कहा- डरने की कोई बात नहीं। यह पार्वती की तपस्या की अग्नि है। तुम सब जाकर शिवजी से प्रार्थना करो कि पार्वतीजी के संग विवाह कर लें। गिरि राज कुमारी काली देवी शिव प्राप्ति के ही लिये तप कर रही हैं।

सबने हाथ जोड़कर भगवान से कहा- महाराज। हम और सब तो कर सकते हैं, किन्तु उन रुद्र मूर्ति शिव के समीप भूलकर भी नहीं जायँगे। उन्होंने कामदेव को भस्म कर दिया है। यदि हमें देखकर भी तीसरा नेत्र खोल दिया तो हम सबका नाश हो जायेगा। यह कहकर हम तुम्हारे साथ चलेंगे। भगवान विष्णु ब्रह्मादिक सभी देवताओं को साथ लिये हुए शिवजी के समीप चले। मार्ग में उन्होंने तपस्या करती हुईं, जगदम्बिका शिवा को देखा, सभी ने मन-ही-मन उनको प्रणाम किया और फिर शिवजी के समीप पहुँचे।

जब तक शंकरजी के पुत्र नहीं होगा तब तक तारकासुर मरेगा नहीं जगत यों ही रोता रहेगा। अब शंकरजी को कौन समझावे, किसकी बात मानेंगे लेकिन इसके पहले पार्वतीको राजी किया जाये कि वो शंकर जी को पाने के लिये तपस्या करे। सबने इस काम के लिये नारद मुनि को चुना कि वे शिव और पार्वती को समझाएं। ब्रह्मा, विष्णु आदि देव सभी शैलराज के समीप गये। उन्हें पत्नी सहित देवी की आराधना करने का उपदेश देकर लौट आये। इधर मैना देवताओं के कहने से तथा सन्तान की कामनासे निरन्तर महामाया भगवती जगदम्बिका कालिका देवी की आराधना में प्रवृत्त हुईं। उन्होने चैत्र तथा आश्विन की नव-दुर्गाओं में निराहारादि व्रत करके अत्यन्त श्रद्धा भक्तिसे देवी जगदम्बिका पूजन किया। देवी प्रसन्न होकर उनके सम्मुख साकार रूप में प्रकट हुईं और वरदान माँगने के लिये प्रेरित किया। मैना ने भी महामाया की स्तुति करी और उनसे सौ पुत्र और उन्हें ही अपनी पुत्री रूप में पैदा होने का वर माँगा। माहामाया ने तथास्तु कहकर वरदान दिया। उनके यहाँ स्वयं भी पुत्री रूप में प्रकट होने का आश्वासन दिया। कालान्तर में मैना गर्भवती हुई, उनके सौ पुत्र बड़े तेजस्वी और बलवान हुए जो सभी मैनाक नाम से विख्यात हुए। ये सभी पंखवाले थे, इन्द्र ने इन सबके क्रुद्ध होकर पंख काट दिये, उनमें से केवल एक समुद्र का मित्र होने के कारण बच गया जिसे समुद्र ने अपने भीतर छिपा लिया।

शुभ दिन शुभ मुहूर्त में स्वयं साक्षात् भगवती जगदम्बिका हिमालय के घर मैना के गर्भ से उत्पन्न हुई। उनके प्रकट होते ही, विश्व ब्रह्माण्ड आनन्द की बाढ़ सी आ गई। सभी का मन प्रसन्न हुआ, देवताओंने स्वर्ग से दुन्दुभी बजाई, गन्धर्व गायन करने लगे, अप्सरायें नृत्य करने लगीं। सभी के हृदय उल्लास से भर गये। हिमालय ने सभी संस्कार शास्त्रीय विधि से कराये। भगवती जगदम्बा के शरीर का रंग शरद्कालीन नीलकमल के समान कृष्ण वर्ण का था। अत: उनका नाम कालिका रखा गया। इसके अतिरिक्त तारा, महाविद्या, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्न-मस्ता, विद्या, धूमावती, बगुलामुखी, सिद्धविद्या, कमलान्तिका आदि और भी अनेक नाम इनके प्रसिद्ध हुए। पर्वत की पुत्री होने से सभी इन्हें पार्वती के नाम से पुकारने लगे। शुक्ल पक्ष की चन्द्रमा की कला के समान भगवती पार्वती हिमालय के घर में बड़े लाड़ चाव और स्नेह के साथ बढ़ने लगी।

रक्तदंतिका- भगवती परमेश्वरी। भगवती अंबिका द्वारा दैत्यराज शुंभ के मारे जाने पर इंद्र आदि सभी देवता अग्नि को आगे करके उन कात्यायनी देवी की बारंबार स्तुति करने लगे। देवताओं ने कहा- सर्वेश्वरि। आप इसी प्रकार तीनों लोकों की समस्त बाधाओं को शांत और हमारे शत्रुओं का नाश करती रहे।

प्रसन्न होकर देवी ने कहा- मैं अत्यंत भयंकर रूप में पृथ्वी पर अवतरित होकर वैप्रचित नामवाले दानवों का वध करूंगी। उन विकट दानवों का भक्षण करते समय मेरे दांत अनार के फूल की तरह लाल हो जाएंगे, तब स्वर्ग में देवता और मर्त्यलोक में मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए रक्तदंतिका के रूप में मेरा स्मरण करेंगे।

रक्तबीज- महाभयंकर दैत्य। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐंद्री और चामुंडा मातृगण ने जब युद्धभूमि में पराक्रमी महासुरों का विनाश कर दिया, तब भयभीत होकर दैत्य-सैनिक युद्ध-विमुख होकर भागने लगे। तभी रक्तबीज नामक महासुर अत्यंत क्रुद्ध होकर युद्ध करने के लिए पहुंच गया। इस भयंकर असुर की विशेषता यह थी कि उसके शरीर पर आघात होने से रक्त की एक बूंद भी भूमि पर गिरती थी, तो उस बूंद से उसी के शरीर के समान पराक्रमी दूसरा महासुर उत्पन्न हो जाता था।

वाराही- भगवान वराह रूपधारी असुर-सेना के साथ भगवती चंडिका ने युद्ध करना प्रारंभ कर दिया, उसी समय असुरों के विनाश तथा देवताओं के अभ्युदय के लिए ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इंद्र आदि देवों की शक्तियां, जो अत्यन्त पराक्रम और बल से संपन्न थी, उनके शरीर से निकलकर उन्हीं के रूप में चंडिका देवी के पास गईं। जिस देवता का जैसा रूप, जैसी वेशभूषा और जैसा वाहन है, ठीक वैसे ही साधनों से संपन्न होकर उनकी शक्ति असुरों से युद्ध करने के लिए आई। अनुपम यज्ञवाराह का रूप धारण करनेवाले श्रीहरि की जो शक्ति है, वह भी वाराह शरीर धारण करके वाराही रूप में युद्धस्थल में उपस्थित हुई।

मनसा देवी- महर्षि कश्यप के मन से उत्पन्न होने के कारण वह भगवती मनसा देवी कहलाती है। योग द्वारा वह परमेश्वर का ध्यान करती हैं, अत: वह मनसा देवी योग से देदीप्यमान हैं। उन वैष्णवी, सिद्धयोगिनी ने आत्माराम (आत्मा में रमण करने वाली) होकर तीन युगों तक परमात्मा श्रीकृष्ण का कठिन तप किया। ईश्वर गोपीपति ने जरत्कारु मुनि की तरह कृशकाय देखकर उनका जरत्कारु नाम रख दिया। मनसा देवी स्वर्गलोक, नागलोक तथा ब्रह्मलोक तथा समस्त पृथ्वी अर्थात् संपूर्ण जगत् में अत्यंत गौरी (गौरवर्ण), सुंदरी और मनोहर थीं, अत: जगत्गौरी नाम से वे सर्वत्र प्रख्यात एवं पूजित हुईं। भगवान विष्णु की परम भक्त होने के कारण वह वैष्णवी भी कही गई हैं। राजा जनमेजय के यज्ञानुष्ठान में मनसा देवी ने ही नागों की रक्षा की थी, इसलिए वह नागेश्वरी नाम से भी प्रसिद्ध हैं। वह नागों की भगिनी हैं और विष का संहार करने में समर्थ हैं, इसीलिए विषहारिणी कही जाती हैं। भगवान शंकर से सिद्धयोग प्राप्त करने के कारण वह सिद्धयोगिनी

कही गई हैं। वह मुनीश्वर जरत्कारु की पत्नी तथा तपस्वी मुनींद्र आस्तीक की माता हैं।

शर्वाणी- भगवती परमेश्वरी। जो देवी सभी को मोक्ष दिलाती है, समस्त विश्व के चर-अचर प्राणियों को जन्म, जरा एवं मृत्यु आदि प्रदान करती हैं,उन्हें शर्वाणी कहते हैं।

चामुंडा- जब चंड और मुंड आदि दैत्य चतुरंगिणी सेना के साथ भगवती देवी की ओर हिमालय के ऊँचे शिखर पर पहुंचे, तब उन्होंने देखा कि भगवती देवी सिंह पर बैठी हुई हैं। दैत्यों को देखकर अंबिका को क्रोध आ गया। क्रोध के कारण उनका मुख काला पड़ गया। भौहें टेढ़ी हो गईं। देखते-देखते ही वहां विकरालमुखी शस्त्रों से सुसज्जित काली प्रकट हो गईं। देवी ने क्षण-भर में ही असुरों की सेना का नाश कर दिया। यह देखकर चंड और मुंड देवी पर आक्रमण करने लगे। अमित शक्तिशालिनी काली देवी ने तलवार से चंड का मस्तक काट दिया। चंड को मारा गया देखकर मुंड देवी की ओर दौड़ा। देवी ने रोष से भरकर उसको भी संहार कर दिया और उनके मस्तकों को ले जाकर भगवती चंडिका को समर्पित कर दिया, तब भगवती ने देवी काली से मधुर वाणी में कहा- देवि। तुम चंड और मुंड को लेकर मेरे पास आई हो, इसलिए संसार में चामुंडा नाम से तुम्हारी ख्याति होगी।

भगवती शिवा ने प्रचंड दुर्गा से कहा- देवि। आपने चंड और मुंड के शिरों का शुभ आभूषण धारण किया है, अत: आप लोक में चामुंडा नाम से प्रख्यात होंगी।

वैष्णवी- भगवान विष्णु के शरीर से समुद्भूत शक्तिस्वरूपा भगवती। दैत्यराज शुंभ ने एक अत्यंत विशाल असुरसेना के साथ भगवती चंडिका के साथ युद्ध करना प्रारंभ कर दिया। असुरों के विनाश तथा देवताओं के अभ्युदय के लिए ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इंद्र आदि देवों कि शक्तियां उन देवों के शरीर से निकलकर उन्हीं के रूप में चंडिकादेवी के पास गई। भगवान विष्णु की शक्ति गरुड़ पर विराजमान होकर शंख, चक्र, गदा, शार्ंग धनुष तथा खड्ग हाथ में लिए हुए युद्ध स्थल में आई।

शाकंभरी- भगवती अंबिका द्वारा दैत्यराज शुंभ के मारे जाने पर सभी देवता-देवी की बारंबार स्तुति करने लगे। प्रसन्न होकर देवी ने कहा- दीर्घकाल तक अनावृष्टि के कारण पृथ्वी पर पानी का अभाव हो जायेगा, उस समय मैं अयोनिजा रूप में पृथ्वी पर अवतार लूंगी और अपने शरीर से उत्पन्न हुए शाकों द्वारा संपूर्ण जगत का तब तक भरण-पोषण करती रहूंगी, जब तक वर्षा नहीं हो जाती। इन्हीं शाकों से उस समय सभी के प्राणों की रक्षा होगी। इसी कारण पृथ्वी पर मेरा नाम शाकंभरी रूप में प्रसिद्ध होगा।

अन्नपूर्णा- अन्नपूर्णा यानि अन्न को पूरी करनेवाली। पारम्पारिक मान्यताओं के अनुसार जगत के सभी प्राणियों के द्वारा इन्हें मां का दर्जा दिया गया है और अन्न भंडारण के लिए विधिवत रूप से इनकी पूजा-अर्चना पूरी श्रद्धा एवं निष्ठा के साथ की जाती आ रही है। पौराणिक शास्त्रों के अनुसार अन्नपूर्णा को दुर्गा का दूसरा स्वरूप माना जाता है। इनकी पूजा अर्चना शक्तिदायिनी देवी के रूप में की जाती है।

शिवा- भगवान शिव में समाहित वे भगवती कल्याणरूपा हैं। शिवदायिनी (कल्याणकारिणी) और शिव की प्रिया हैं। पार्वती का नाम ही शिवा है।

शिवदूती- भगवती जगदंबिका, अपराजिता देवी, ब्रह्माणी आदि शक्तियों से घिरे हुए महादेव ने चंडिका से कहा- मेरी प्रसन्नता के लिए तुम शीघ्र ही इन असुरों का संहार करो। तब देवी के शरीर से अत्यंत भयानक एवं परम उग्र चंडिका शक्ति प्रकट हुई, जो सैकड़ों गीदड़ों की भांति आवाज करनेवाली थीं उस अपराजिता देवी ने महादेव से कहा- भगवन्।

आप शुंभ-निशुंभ के पपास दूत बनकर जाइए और उन दोनों तथा अन्य दानवों से मेरा यह संदेश कहिए- दैत्यों। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो पाताललोक को लौट जाओ। देवराज इंद्र को त्रिलोकी का राज्य मिल जाए और सभी देवता यज्ञ-भाग का उपयोग करें। यदि बल के अभिमान में तुम युद्ध करना ही चाहते हो, तो आओ, अपना अंत स्वयं देख लो। देवी ने स्वयं भगवान शिव को दूत के रूप में नियुक्त किया था, इसलिए वे शिवदूती के नाम से संसार में विख्यात हुई।

मेना सेवा करी सुतासम सती देह में। प्रकटीं तनया होय मातृ गिरिराज गेह में।।
चन्द्रकला सम बढ़त निरखि पितु अति हरषाये। विरही शिव तप हेतु पास गिरिके इत आये।।
सुनत शैल सेवा करन, सुता सहित शिव सन गये। कन्याकूँ कैंकर्य हित, गिरि अरपी हरषित भये।।

देवर्षि नारद हिमाचल के घर पधारे। गिरिराज ने अपना भाग्य सराहा, गृहस्थी धन्य हो गई, घर पवित्र हो गया। हिमाचल ने अपने पुत्री से कहा- आओ देवर्षि नारदजी पधारे हैं, इन्हें प्रणाम करो। पार्वतीने आकर प्रणाम किया। नारदने सोचा यह तो जगत जननी हैं इनके चरणों में हमें प्रणाम करना चाहिए। नारदजी ने मन-ही-मन प्रणाम किया। पर्वतराज हिमाचल ने नारदजी से कहा- पुत्री सयानी हो गई है, ब्याह की चिंता लगी हैं इसका हाथ देखकर भविष्य बताइये। नारदजी ने पार्वती का हाथ देखा और कहा- बहुत अच्छे लक्षण है, बहुत सुलक्षणा हैं लेकिन, इसको जो पति मिलेगा उसके कुल गोत्र खानदान इत्यादि का कुछ पता नहीं होगा। पार्वती के भाग्य में सास-ससुर का सुख नहीं है। नारदजी की बात सुनकर पिता गिरिराज और माता मैना घबरा गई। पर पार्वती तो बहुत प्रसन्न थी। वो जानती थी कि यह सब लक्षण जो नारद बता रहे है वो मेरे प्राणवल्लभ शंकर में है। परिवारवालों के सबकी आंखों में आंसू आ गये। पर पार्वती जी के हर्ष के मारे आंखें डबडबाई। देवर्षि नारद की वाणी कभी झूठी नहीं हो सकती। वो बोले- गिरिराज जो-जो दोष मैंने बताये है वे सब शंकरजी में है। वे तो विश्वनाथ, विश्वंभर है। इसलिये अपनी पुत्री को समझाओ वन में जाकर तपस्या करके शंकर जी को प्रसन्न करे। बीच ही में मैना ने कहा- मेरी पुत्री भोजन-घर-परिवार का त्याग करके वन में जाने लायक नहीं है, बहुत सुकोमल है, बड़ी सुकुमारी है वे तप कैसे करेगी? वो सर्दी, गर्मी नहीं सह पायेगी। नारदने कहा- गिरिराज। ये भगवती कालिका देवी वे ही दाक्षायणी शिवा सती देवी हैं, तुम्हारी तथा तुम्हारी पत्नी की भक्ति से ये तुम्हारे घर पुत्री रूप में प्रकट हुई हैं। शिव के अतिरिक्त इन्हें स्पर्श करने की सामर्थ्य और किसी में नहीं है, अत: तुम सभी सन्देहों को त्यागकर इनका विवाह शिव के साथ करने का प्रयत्न करो। शिवजी तप से सन्तुष्ट होते हैं, अत: अपनी पुत्री को तप करने में प्रवृत्त करो। दूसरा कोई विकल्प नहीं है। तो माताने पार्वती को तप करने की अनुमति दे दी। अब भगवती पार्वती ने वन में जाकर गौरीकुण्ड में कठोर तपस्या आरम्भ की। वे मन, वचन, कर्म से आशुतोष भगवान शिव के दिव्य स्वरूप को अपने हृदय में विराजमान कर आराधना करने लगी। पार्वती अपने पिता से बोली- पिताजी स्वप्न में मुझे किसी वृद्ध ब्राह्मण ने शिवाराधन और तप करने का आदेश दिया है। यह सुनकर गिरिराज ने कहा- पुत्री, मैंने भी आज रात्रि में ऐसा ही स्वप्न देखा है। शिव तो सर्वेश्वर हैं, वे तो महेश्वर हैं, उनकी सेवा का सुयोग तुझे प्राप्त हो जाय, तब तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।

सती ने पार्वती के रूप में हिमालय के घर जन्म लिया। भगवती परमेश्वरी, गिरिराज हिमालय-सुता। तिथिभेद, पर्वभेद, कल्पभेद एवं अन्य भेद तथा ख्याति में विख्यात होने के कारण उन्हें पार्वती कहा गया है। महोत्सव-विशेष अर्थ में पवन् शब्द प्रयुक्त होता है, उसकी अधिष्ठात्री देवी होने के कारण उन्हें पार्वती कहा गया है। वे देवी पर्वत की कन्या होकर पर्वत पर प्रकट हुईं और पर्वतों की अधिष्ठात्री देवी हैं, इसीलिए उनकी पार्वती रूप में प्रसिद्धि है। हिमालयने पार्वती से कहा- **महाकाली-** जब भगवती महेश्वरी का प्रादुर्भाव पार्वती के रूप में गिरिराज हिमालय के यहां मेनका के गर्भ से हुआ, तब

हिमालय कहने लगे- मां। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आप मेरी पुत्री के रूप में अवतरित हुई हैं। यह आपकी लीला ही हैं, क्योंकि आप ब्रह्मादि देवताओं और योगियों के लिए भी अगम्य और दुर्लभ हैं, आप स्वयं काल की भी काल हैं, अत: आपको लोग महाकाली कहेंगे। शिवने हिमालय से कहा- अपनी कन्या सर्वगुण संपन्न, सुशीला तथा साध्वी है, फिर भी मैं तो मायासे रहित तपस्वी हूँ। तप करते समय पार्वती की परीक्षा लेने सप्तर्षि आये और पार्वतीसे बोले- देवि, तुम उस भभूतिया शिव का संकल्प छोड़ो और सर्वगुण के निधान, ऐश्वर्य के स्वामी, सुख के सागर, सौन्दर्य के साकार रूप, सुरों के सर्वेश्वर उन बृहद् यशवाले विष्णु को अपना वर बना लो। शिवा बोली- महर्षियों, जो वस्तु जिसके मन में बस जाती है, उसमें उसका अपनापन हो जाता है। अपनी वस्तु सबको संसार में अत्यधिक प्यारी होती है। सप्तर्षि बोले- देवि तुम्हारी निष्ठा श्लाघनीय है, तुम्हारा शिव सम्बन्धी राग अनुकरणीय है।

जब पार्वती तप कर रही थी तब शिव परीक्षा लेने पार्वती के पास आये- पार्वती ने हँसकर कहा- जब आप शक्ति के ही आश्रय से तप करेंगे, तो शक्ति क्या है। प्रकृति का ही नाम तो शक्ति है, शक्ति का ही आश्रय लेकर ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं। शक्ति के बिना कुछ नहीं। सभी प्रकृति के अधीन हैं। प्रकृति के बिना महेश्वर क्या कर सकते हैं? सभी प्रकृति के वशीभूत हैं। आप भी तो प्रकृति के वशीभूत होकर तप करने को उद्यत हुए हैं।

यह सुनकर हँसते हुए भगवान शिव बोले- मैं तपस्या करके प्रकृति को नाश कर दूँगा। प्रकृति से परे हो जाऊँगा।

पार्वती बोली- यह जो आप कह रहे हैं प्रकृति नहीं है। सूक्ष्म प्रकृति सर्वव्यापिनी शक्ति से रहित होने पर आपको कौन पूछेगा? जितना भी बोलना-चालना, कहना, सुनाना है, सब प्रकृति के अन्तर्गत है। आप जो भी खाते-पीते हैं, उठते-बैठते है सब प्रकृति वश ही करते हैं। यदि आप कहें कि हम तो ज्ञानी हैं, प्रकृति हमारा क्या कर सकती है, हम उससे परे हैं, तब फिर आप का तप से क्या प्रयोजन? आप कहें कि हम तो सभी समभाव रखते हैं, वैसे ही क्रीड़ा के लिये करते हैं, तब आप यह स्त्री है, यह पुरुष है, ऐसा भेदभाव क्यों करते हैं, आत्मा में तो स्त्री, पुरुष का भेदभाव नहीं है। वह तो निर्विकार है, फिर आप क्यों डरते हैं? आपको तो जो जिस भाव से भजता है, वे उसी भाव में भावित हो जाते हैं। किसी कारण से रुष्ट भी होते हैं, तो क्षण में सन्तुष्ट हो जाते हैं, इसीलिये आपको सभी आशुतोष कहते हैं।

हिमालय पुत्री पार्वती को देखकर तपस्यारत भगवान शंकर ने उनसे कहा- यदि आप ही मेरी प्राणप्रिया सती हैं तो मुझे पूर्व की भांति चिकने काजल के समान कांतिवाली काली का अपना वही रूप दिखा दीजिए, जिसे आपने यज्ञ-ध्वसं के समय धारणा किया था। भगावन शंकर के ऐसा कहने पर गिरिराज-पुत्री पूर्व की भांति भयंकर रूपिणी काली के रूप में प्रकट हो गई। उन्हें देखकर भावविह्वल होकर परमयोगी भगवान शिव भूमि पर लेट गये और भगवती के चरणकमलों को अपने हृदय पर धारण कर लिया। ध्यान के आनंद में मग्न शिव चेतनाशून्य होकर शवरूप में स्थित हो गये। पुन: अपने एक अंश से पंचवक्त्र रूप में सामने स्थित होकर भगवती की स्तुति करने लगे। इसके पश्चात: उन्होंने कहा- शिवे। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं। जहां-जहां आपका यह सुंदर काली रूप स्थापित हो, वहां मेरे हृदय पर भी इस कल्याणकारी रूप की स्थापना हो। जगदंबे, आप इस संसार में शववाहना महाकाली के रूप में विख्यात होंगी।

कालिका- अंबिका कौशिकी के प्रकट होने के बाद पार्वती देवी का शरीर काले रंग का हो गया। अत: वे हिमालय पर रहनेवाली कालिका देवी के नाम से विख्यात हुईं।

गौरी शिव की आराधना करन लागी। उमा शम्भू की उपासना करन लागी।।
अति सुकुमारी पितु मातु की दुलारी प्यारी। भारी तप नेम आचरण लागी।।

चाहें विश्वनाथ पति चरण कमल रति। मति गति प्रभु पै धरन लागी।।

अब पार्वती की दृढ़ भक्ति और तपस्या से भगवान शिव भी मन से आकर्षित होने लगे। अपनी भवानी की याद आने लगी, लेकिन वे अपने व्रत से डिगे नहीं। उन्होंने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब विवाहादि के झंझट में नहीं फसूँगा। इधर तारकासुर के अत्याचार के जगत में त्राहि त्राहि मच गई। सभी ने मिलकर भगवान नारायण से प्रार्थना की- प्रभो, आप किसी प्रकार शिवजी को पार्वती के साथ विवाह के लिये राजी कर ले। शिवजी तो अपने तपस्या और समाधि में लगे हुए है। सब देवोंकी प्रार्थना पर भगवान नारायण अंजलि बांधकर याचक की मुद्रा में भगवान भोलेनाथ के सामने खड़े हुए और याचना करी। भगवान शिवके कानोंमें नारायण की अमृतमयी वाणी पड़ी और आँख खोलकर देखा। मेरे प्रभु याचक में मेरे सामने खड़े है।

आजु लगे आश्चर्य हमें, मेरे नाथ खड़े एक याचक जैसे।
मांगत भीख भिखारीहुं से, मोहे भीख कृपा कि मिली घर वैसे।।
औरन को उलटो पलटौ पर आप बने रहे जैसे को तैसे।
आज ये कौन सी लीला हृदय में बसी कहिये प्रभु खोल ये कृपा हुई कैसे।।

भगवान नारायण बोले- शिव पार्वती को अपनाओ। शंकर बोले- प्रभो, जिसका एक बार परित्याग कर दिया उसे मैं पुन: कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। नारायण बोले- तुमने प्रतिज्ञा की थी ना कि जिस तन से सती ने सीता का रूप बनाया था उस शरीर को वह त्याग चुकी है। हमारी प्रतिज्ञा निभ चुकी। वे तन दूसरा है। इस तन को स्वीकार करने में कोई दोष नहीं। भगवान शंकर बोले- प्रभो। जैसी आपकी आज्ञा। यह कहकर नारायण अंतर्ध्यान हो गये।

अब पार्वती की परीक्षा लेने के लिये भगवान शंकर ने सप्तऋषियों को भेजा। सप्तर्षि पार्वती के पास गये और बोले- तुम किस नारद के चक्कर में पड़ गई देवी। यह नारद को क्या सूझी। जहां भी जाता है घर उजाड़ने की बात करता है। तुम तो परम सुकुमारी राजकुमारी हो। क्या सिखा दिया जिसके लिये तप कर रही हो। वह तो अमंगल वेषधारी है, क्या रखा है उसके पास, न खाने का ठिकाना, न रहने का ठिकाना, न जात-पात का पता, न कुल खानदान, गोत्र का पता नहीं है। माता-पिता का ठिकाना नहीं, मुण्डों की माला पहनता है, श्मशान में रहता है, हम तुम्हें एक ऐसे सम्पन्न वर से मिला दें।

पार्वती ने अपनी अज्ञानता प्रकट की तो ऋषियों ने सदाशिव का अमंगल रूप उदासीन स्वभाव, दिगम्बर वेश, नर कपालों की माला पहननेवाले, श्मशान पर निवास करनेवाले, स्थान रहित, गुण रहित, व्यवहार रहित होने की व्याख्या की और यह भी कहा कि नारद। केवल छद्मवेशधारी हैं, हृदय कलुषित है, मन कपटी, उनकी मीठी बातों में जो फँसा है उसी की दुर्दशा हुई है। अत: उनकी बात मानकर सदाशिव से विवाह करने का संकल्प त्याग दो- यदि विवाह करना अनिवार्य ही है। तो गुणों की खान-दूषन रहित सकल गुण रासी। श्रीपति पुर वैकुण्ठ निवासी। ऐश्वर्य के भण्डार, लक्ष्मी के पति वैकुण्ठ निवासी, सुशील सुखदायक वर हम तुम्हें दिलाते हैं, उनसे विवाह करने पर जीवन सुखमय रहेगा। बस अब अधिक कष्ट न करें।

पार्वती अपने दृढ़ निश्चय पर अटल रही और कहा- हे ऋषियों। मुझे दूसरे किसी के विवाह की चर्चा सुनना भी पसन्द नहीं है। मैं तो सिर्फ भोलेनाथ को ही वरण करूंगी। पार्वती का दृढ़ अटल निश्चय देखकर सप्तऋषि गद्गद् हो गये भोलेनाथ के पास गये और बोले- भोलेनाथ। पार्वती तो परीक्षा में उत्तीर्ण हुई है वे आपके सिवा किसी दूसरे का नाम भी नहीं सुनना चाहती। पार्वती बोली- गुरु के वचन पर जो अश्रद्धा करते हैं उनका कल्याण तो कभी सम्भव ही नहीं है। देवादिदेव महादेव अवगुणों की खानहैं भगवान विष्णु सद्गुणों के धाम हैं किन्तु मेरा मन जहाँ रम गया है मुझे उन्हींसे काम है। मैं अपना

संकल्प बदलने में असमर्थ हूँ, चाहे इसकी पूर्ति में मुझे करोड़ों वर्ष लग जायें, लाखों जन्म लेने पड़ें। हे ऋषिवर। आप मेरी धृष्टता के लिए क्षमा करेंगे।

देखे दृढ़ निष्ठा अनन्य अनुराग रिषि, नयनन सनेह अंग अंग पुलकाइये।
जै जै भवानी, कहत गद्‌गद् भई वाणी, सारी प्रेम की कहानी आके शिव को सुनाइये।।
नारायण मगन महेश हूं संदेश पाय, विरचे बटु वेष स्वयम् गिरिजा पहिं जाइये।
लखिके तप छीन लीन प्रियतम के ध्यान, उमा करुणा करि शंकर के नयनन जल छाइये।।

अटल विश्वा, दृढ़ संकल्प देखकर ऋषिगण गद्‌गद् हो गये- पार्वतीजी के चरणों में प्रणाम कर भगवान शंकर को सब वृत्तान्त सुनाया।

सप्तऋषियों की बात सुनकर स्वयं भोलेनाथ ब्रह्मचारी का वेष बनाकर पार्वती की परीक्षा लेने गये और पार्वती के समीप जाकर भगवान शंकर की निन्दा करने लगे। देवी उस पागल के पीछे मत पड़ो, क्या तुम्हारे पिता तुम्हारे लिये कोई सुयोग्य पति नहीं खोज पाये। कहो तो तुम्हारा विवाह नारायण से करा दें। पार्वती बोली- ब्रह्मचारी, तुम मेरी निष्ठा को नहीं डिगा पावोगे, तुम्हें किसने बुलाया था जो यहां चले आये और आकर मेरे आराध्य की निन्दा कर रहे हो।

वर बाउर भाग्य लिख्यो विधि जो, सो मिलेगो सही न सके कोउ टारी।
मैं तो जात चली अपने पथ पै, तुम्ह हूं अपने मग जा ब्रह्मचारी।।
निष्ठा देखी अनन्य दृढ़ आशुतोष त्रिपुरारी। बोले मन भावे सो वर मांग हे गिरिराज कुमारी।।
लखि प्राणेश्वर सकुच बस लगे चरण पर नैन। हाथ जोड़ सिर नाय के गिरिजा बोली वैन।।
प्राणेश्वर मेरे पुरवले सब अपराध विसार। दासी करि निज चरण में कीजै अब अंगीकार।।

शिव बोले- पार्वती, तुम्हारे प्रेमपूर्ण तप ने मुझे बेमोल खरीद लिया।

अब जो कहहु सो करए विलम्ब न एहि घड़ी। तो सुनी महेश मृदु बचन पुलकि पायन पड़ी।।

शंकरजी ने कहा- मैं तैयार हूँ अभी पाणिग्रहण कर लूं। पार्वती बोली- नहीं नाथ, नहीं। यह सत्य है ऐश्वर्य में मैं सदा से आपकी रही हूं, आगे भी मैं आपकी ही होकर रहूंगी। भारतीय ललनायें कभी भी अपने को स्वतन्त्र नहीं समझतीं। जब चाहे, जहां चाहें, जिसको चाहें, अपना हाथ पकड़ा दें। अभी मैं माता-पिता के अधीन हूँ। अग्नि के साक्षीत्व में गुरु, पुरोहित, इष्ट, मित्रों के सान्निध्य में माता-पिता के सामने आप मेरा हाथ पकड़ सकते हैं। शंकर प्रसन्न हुए। अब शंकर और पार्वतीकी विवाह की तैयारियां शुरू हुईं। भगवान भोलेनाथ कैलास पर अपने भजन और तप में व्यस्त थे। तैंतीस करोड़ देवता एकसाथ मिलकर आये और शिव से ब्याह करने के लिये प्रार्थना करने लगे। शिवने कहा- हमारे कुटुम्बी नातेदार तो आप ही है। भगवान शंकर ने अपने भृंगी नाम के गण को बुलाया और आज्ञा दी कि अपने समाज को बुलाओ। शिवजी बारात सजाकर चले। बारात में बहुत मुखवाले, बिना मुखवाले, नाना हाथवाले, कोई बिना हाथ पैरवाले, डाकिनी, पिशाचिनी, भूत सब तरह का शिवजी का समाज था। एक तरफ देव समाज है और एक तरफ महादेव समाज है। आगे-आगे देव समाज चला पीछे-पीछे महादेव समाज। हिमाचल नगरी में बरात पहुंची तो देखने के लिए लोग दौड़े।

शिवजी बिहाने चले पालखी सजाये के, भभूती रमाई के.....

बरात में भूत-प्रेत नाच रहे हैं। बरात में शिव समाज को देखकर डरकर सब भाग गये। मनुष्यों की तो बात ही क्या, हाथी, घोड़े, ऊंट सब भागने लगे। बच्चे सब डरकर दौड़ते-पड़ते हांफते-झांपते अपने माता-पिता के पास जा छिपे। और

माँ-बाप को बताया- कैसे-कैसे भूत-प्रेत, कैसे कैसे सांप, इनको देखकर कलेजा उठा कांप। छूटा पसीना, सांस टूटा और गये सब हांफ।।

भूत प्रेत नाचते और गाते हैं, वे सब बड़े मौजी हैं। देखने में बहुत ही बेढंगे जान पड़ते हैं और बड़े ही विचित्र ढंग से बोलते है। पीछे पीछे काली कराली खप्परवाली, डाकिनी, शाकिनी, भूतनी-पिशाचनी, चामुण्डा, रेवती, पूतना आदि नाचती, गातीं, हा-हा-हू-हू करती चलीं। भूत, प्रेत, पिशाच, काने, बूचे, लँगड़े, लूले, एक पैरवाले, बहुत पैरवाले, सिर वाले, बिना सिरवाले, काले, गोरे, लाल, भयंकर मूर्तियों वाल, पेट फुलाये, जीभ लपलपाते, विविध प्रकार के वाहनों पर चढ़े चल रहे थे। पीछे-पीछे सब देवता अपने वाहनों और विमानों पर चढ़कर बराती बने चल रहे थे।

ऐ मेरी लाडो पार्वती, तेरा दूल्हा जग से न्यारा सै। ए मेरि लाड़ो पार्वति...
औरों के तो दूल्हा देखे, चड़ घोड़ी पर आवै सै। तेरा दूल्हा हमने देख्या, बैल पे चढ़के आवै सै।।
औरों के तो दूल्हा देखे, खूब मिठाइयाँ खावै सै। तेरा दूल्हा हमने देख्या, भांग के गोला खावै सै।।
औरों के तो दूल्हा देखें, कर श्रृंगार वो आवै सै। तेरा दूल्हा हमने देखा, नाग गले लिपटावै सै।।
औरों के तो दूल्हा देखे, बैण्ड बाजा ल्यावै सै। तेरा दूल्हा हमने देखा, डमरू बजाता आवै सै।।
औरों के तो दूल्हा देखे, संग बराती ल्यावै सै। तेरा दूल्हा हमने देखा, भूत प्रेत संग लावै सै।।

बारात दरवाजे पर आयी देखकर माता मैना बड़े उत्साह से परीछन करने चली। जब मां मैना ने भगवान शिव के भयानक स्वरूप को देखा तो भय के मारे आरते का थाल पटककर घर में भाग गयी और छाती पीटकर रोने लगी और बोली- नारद ने मेरे किस जन्म का बैर निकाला। शिवजी ब्रह्म होंगे तो अपने घरके होंगे। वे बड़े देवता बने रहें। उनका महादेवत्व हम छीन तो नहीं लेंगे। मैं अपनी बच्ची को जान-बूझकर कुएँ में नहीं डालूँगी।

नारद कर मैं काह बिगारा, भवन मोर जिन्ह बसत उजारा। वह ऐसा उपदेश उमाको दिया, पागल की तरह लगि तप करने।। इसी बावले पागल के लिये नारद ने इतने दिन तपस्या करने की पार्वती को सलाह दी थी। मुझे नहीं मालूम था कि नारद ऐसा धोखा देगा। ये बूढ़ा बावला वर लाकर मेरी त्रिपुरसुन्दरी बेटी के लिखे खड़ा कर दिया। बड़ी बड़ाई करी थी विश्वनाथ हैं, ये ही विश्वनाथ हैं। मैं इसके साथ अपने बेटी का ब्याह नहीं होने दूँगी। मैं मर जाऊँगी, आग में जल जाऊँगी, मेरी नाव को मझधार में डूबो दिया नारद ने। अब पार्वतीजी को माँ के मुख से अपने गुरुदेव की ऐसी भर्त्सना नहीं सही गई। तब आकर माँ की गोदी में बैठ गईं और ठोड़ी पकडकर बोली- माँ, मेरे गुरुदेव को क्यों गाली दे रही हो, उनकी क्या गलती थी। उन्होंने तो भाग्य रेखा पढ़कर सुना दिया, लिखा तो ब्रह्माजी ने तो ब्रह्मा ने ऐसी गलती क्यों की? मां अगर थोड़ी देर यह मान भी लो कि ब्रह्मा ने गलत लिख दिया, तो क्या तुम्हारी क्षमता है उस विधाता के लेख को मिटाने की। जो मेरे भाग्य में लिखा गया है, उसमें तू क्या कर सकती है। हिमालय को बड़ी चिन्ता हुई मैंना बड़ी उग्र रूप में आकर सखियोंसे बोली- ये गीत वाद्य बंद करो, कलश को फेंक दो, मण्डप को उखाड़ दो, बारात को भगा दो। यह विवाह नहीं होगा। घर को किंवाड़ कुण्डा मार दो। मैना नारद को कोसने लगी- विधाता को मूर्ख ठहराने लगी शिव के साथ पार्वती का विवाह न करने का मन बना लिया अन्यथा आत्मदाह का संकल्प ले लिया। चारों ओर व्याकुलता देख पार्वतीने स्वयं अपनी माता को समझाया और अपना दृढ़ संकल्प दुहराया। हिमालय ने नारद को बुलाया और नारद ने सबको समझाया। नारद के साथ सब ऋषि भी गये।

तब नारद सबहि समुझावा, पुर्व कथा प्रसंगु सुनावा। मैना सत्य सुनहुं मम बानी, जगदम्बा तब सुता भवानी।।

नैना शान्त होकर तुम मेरी बात सुनो। यह कोई तुम्हारी बेटी नहीं है। तुमने इसे मातृत्व का गौरव प्रदान किया है पर

वास्तव में पार्वती स्वयं जगद्जननी हैं और ये भोलेनाथ जगतपिता है, विश्वनाथ हैं। यह पहले दक्ष की पुत्री के रूप में प्रकट हुई उस समय इनका नाम सती था। नारदजी ने सती के पूर्वचरित्र का वर्णन किया। माता मैना का शोक दूर हो गया। आनन्द से हृदय भर गया और वो मुस्कुराने लगी। नारदने भोलेनाथ से प्रार्थना करी-

सुनि नारद की प्रार्थना आशुतोष त्रिपुरारी। विकट वेष तजि के तुरत लिन्ह वेष वर धारी।।

छैल छबीले रूप में मनोहर रूप में भोलेनाथ उपस्थित हुए और मैना दरवाजे पर आयी और शंकर की मनोहर छवि को देखकर मुग्ध हो गई और आनन्द उल्लास में भरकर आरती उतारी, परीछन किया। विवाह मण्डप में ब्रह्मा ने पाणिग्रहण करवाया। **ये कन्या धन है और को राखि सके नाहिं कोउ। जाकी थाती उनहीं को सौंपत ऋण किसी का हो।।**

मांगत मांगत अन्न शिव गये मांगबो सीख। मांगत अब गिरिराज सों अन्नपूर्णा की भीख।।

पाणिग्रहण ग्रन्थिबन्धन, भाँवरी आदि वैवाहिक विधियां पूर्ण हुई। इसप्रकार पार्वती और शिवजी का विवाह हुआ।

सती ने पुन: शंकर को प्राप्त कर लिया। पति अवज्ञा के कारण सती को पुन: जन्म लेना पड़ा। कालांतर में शिव और पार्वती को तारकासुर का वध करनेवाला एक पुत्र हुआ जिसका नाम कार्तिकेय स्कन्ध रखा गया।

शक्तिधर- स्वामी कार्तिकेय। देवत्रासक तारकासुर के संहार के लिए लोकपितामह ब्रह्मा ने सुर-सैनप स्वामी कार्तिकेय के लिए वायु के समान तीव्रगामी मयूर वाहन प्रदान किया। इसके साथ ही उन्हें सुवर्ण-परिष्कृत शक्ति भी प्रदान की, जिसकी कांति कोटि सूर्य की आभा के समान थी। उस शक्ति के समान महाशक्ति तीनों भुवनों में नहीं हैं। इसी कारण, भगवान शिवपुत्र-कार्तिकेय शक्तिधर नाम से प्रसिद्ध हैं।

शिव-पार्वती, उमा-महेश, गौरी-शंकर के चरित्र अनंत है। सम्पूर्ण वृक्षों को जलाकर उनकी स्याही बनाई जाय, सुमेरु की लेखनी बनाई जाय, सम्पूर्ण पृथ्वी को कागज बनाकर सरस्वती देवी सदा लिखती रहें, तो भी शिवा-शिव के सम्पूर्ण चरित्रों को लिखने में समर्थ नहीं हो सकती। शिव चरित्र महान हैं, अगाध है, अपार है, असम्भव है।

स्वामिन्। पशुपति। प्रभो। दास के पाश छुड़ाओ। जगदम्बा। माँ, उमा। वत्सकूँ हृदय लगाओ।।
भटक्यो जगमहँ जनक। शरण चरननिमहँ दीजे। माँ। अब गोद बिठाय चूमि मुख सुत को लीजे।।
यद्यपि हौं अति अधम है, तऊ पिता। अपनाई लै। मैया। साधन रहित सुत, कूँ हियतें चिपकाइ लैं।।

२) ध्रुव चरित्र- परीक्षितका प्रश्न- भगवन जीवका परमलक्ष्य क्या है? शुकदेवजीने बताया- भगवतप्राप्ति अपने जीवन में कर ले इससे बढ़कर कोई श्रेष्ठ लक्ष्य नहीं है। यही जीव का एकमात्र लक्ष्य है। जीव एक कला, दो, कला, तीन, चार, पाँच, छ: कला का जीव मनुष्य को मिला है। मनुष्यमें बुद्धि सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य ने अपनी बुद्धि, कर्म से पूरी जगत को अपने उपकरणों से भरपूर कर दिया है। करनेवाला वो है, बुद्धि उसकी प्रदत्त है आपकी अपनी कलाकौशल कुछ नहीं है। उस प्रभुने जो आपको दिया है उसका एहसान, एहसास आपको होना चाहिए। एहसान उसका अदा करना चाहिए - धन्यवाद से, कीर्तन से, भजन से, भागवत कथा सुननेसे इन नवधा भक्तियां आपको बतायी। यह नवधा भक्तियां कपिलमुनिने देवहूतिको बतायी। यह जगत्कल्याण के लिये बताई कि उस प्रभुको प्राप्त करने के लिए सबसे सर्वोच्च कष्ट जो है, साधन है वो भक्ति है और वो इस कलियुग में बड़ी आसानी से परम सुलभ उपलब्ध है। इसके लिये कुछ करना नहीं पड़ता। कुछ धन भी खर्च नहीं होता। क्योंकि भगवान की भक्ति को क्या लगता है। उसके लिये जरूरी नहीं कि पण्डाल बनाना है। आप अपने घर में बैठे। न धन की खर्च सिर्फ मन की खर्च होती है। आपका मन चाहिए। मन ही बन्धन और

आसक्ति का कारण है, मुक्ति का कारण आसक्ति से है, संसार में जो जीव की आसक्ति है वो छूटनी चाहिए। संसार नि:सार है। इस संसार मे सुख है ही नहीं। हर दिन दुख है। कहते है ना कि तन दुखी, मन दुखी कोई धन से दुखी, थोड़े-थोड़े सब दुखी, सुखी सब राम के दास। सिर्फ राम के दास भक्त है वो ही सुखी है। इसलिये भक्तजनों आप सभी भक्ति करें। ये जीव का परम लक्ष्य है। भगवतभक्ति करने से ही जीवको शान्ति प्राप्त होती है। किस-किस देवता की आप भक्ति करने से, उपासना करने से आपको क्या-क्या मिलता है? लेकिन अंत मे वो उपासना उस भगवान हरिको ही मिलती है, वो ही फल देता है। लेकिन उसकी उपासना करने से वो जो फल देता है वो हमारे अन्य देवता वो देनेमें समर्थ नहीं है। जो भक्ति, मुक्ति, वैराग्य, धन, दौलत, श्री आपको एक-एक देवता से अलग-अलग मिल जायेगी। रूप, बुद्धि, यश, कीर्ति मिल जायेगी लेकिन सब चीजें अगर मिल सकती है, अगर सुख और शान्ति, आनन्द मिल सकता है तो सिर्फ वो एक प्रभु हरि दे सकता है। पैसे मिल जाये आपको लेकिन मन की शांति नहीं हो सकती है बीमार हो जाओ आप, दो वक्त की अच्छी रोटी भी नहीं खा सको, यह बढ़िया-बढ़िया पकवान आपके यहां बनते है लेकिन डॉक्टर बोलते है आपको मधुमेह, ॲसिडिटी है यह मत खाओ। पैसा क्या चीज है। लेकिन मन की शांति नहीं है, पुत्री भाग गयी है, पुत्रने दूसरे जाति की लड़की से शादी की है। ब्याज पे पैसा ले रखा है व्यापार बहुत बढ़ा रखा है लेकिन एक दिन मालूम पड़ता है आप व्यापार में चौपट हो गये। ऐसे-ऐसे में यह चीजें अगर आपको स्थायी रूपसे चाहिये तो एक हरिकी भजन ही करने से हो सकता है। हरिकी भक्ति करने से होता है और उसकी भक्ति करने से पुन:र्जन्म न पुन:र्मरणम्, न। न बार-बार जन्मना पड़ता है न बार-बार मरना पड़ता है। उससे आपको मुक्ति प्राप्त होती है। मुक्ति जीतेजी प्राप्त होती है। मरने के बाद कोई मुक्ति प्राप्त नहीं होती। मुक्ति के बाद तो आपका कर्म बंधन है। कर्म आपको फल देते है। मुक्ति जीतेजी, कैसी मुक्ति- छ: तरह की मुक्तियों का वर्णन आया है- सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य, सामिप्य, सद्यो, सार्ष्टि ऐसे छ: मुक्तियां है। एक मरने के बाद आपके कर्मोंसे आपको भगवान का लोक मिले आपको जन्म-मरण नहीं आयेगा -सायुज्य आप उसी रूपमें जाकर मिल जायेंगे जैसे संत ज्ञानेश्वर मिले है, मीरा मिली है। मीरा ने कोई पीएच डी नहीं की। भगवान भक्ति थी। सारूप्य- उसी रूप में मिल जाना। सायुज्य- साथ में मिल जाना, उसी बिम्ब में मिल जाना। सार्ष्टि- उसी ऐश्वर्य को प्राप्त कर जाना। सालोक्य- उसी लोक को प्राप्त करना। इस तरह की छ: मुक्तियोंके बारे में भागवत में वर्णन किया है। जो आपको हरि सत्संग से, हरि भक्ति से मिलती है। यह भक्ति क्या है? नवधा भक्ति। उसमें सर्वश्रेष्ठ भक्ति सत्संग बताया गया है। आप पूजा-अर्चना करते हो, तिलक निकालते हो, पुष्प चढ़ाते हो यह उपासना है, पूजा है लेकिन अगर अत्यंतिक मन से यदि आप प्रभु की भक्ति करेंगे तो यह भक्ति कैसे मिल सकती है सत्संग से। उसके नामों का कीर्तन कीजिए। संतोंके साथ बैठिये, उनके चरित्रों, अवतारों की कथा सुनिये। उनके साथ भजन-कीर्तन करिए। आप अपने करिए संतोंके पास कभी जाकर यह प्रश्न मत कीजिये कि आपको पुत्र होगा या पुत्री होगी, आपकी फॅक्टरी कैसे चलेगी, नहीं चलेगी। क्या-क्या सांसारिक प्रश्न पूछते हो। संतों का एक-एक क्षण और भोजन का एक-एक कण इतना कीमती है उसे कभी व्यर्थ न जाने दे। ये भक्ति का एक सार है। भक्ति में कुछ लगता नहीं है। प्रभु का नाम जपने में कुछ भी नहीं लगता। बाकी आप कोई भी करके देखो कहीं न कहीं आपका पैसे का व्यय होगा ही होगा।

उदाहरण- एक सेठजी थे वो बड़े कंजूस थे। पैसा कभी खर्च नहीं करते थे। एक दिन एक संत उनके घर पधारे है। सेठजी बोले- मुझे दो बातें आपसे करनी है। एक तो है भगवान की भक्ति में मन नहीं लगता तो क्या करें? जब भी भजन करने लग जाते है ग्राहक याद आ जाता है, संसार याद आता है, बेटे, पोतें याद आ जाते हैं, मन भक्ति में नहीं लगता व्यापार में लगता है। दूसरा कोई ऐसा साधन बताओ भक्ति भी हो जाए लेकिन पैसा नहीं लगे। क्योंकि कंजूस आदमी पैसे बहुत

लेकिन खर्चा नहीं करना। संत बोले- भगवन ने तो कभी कहा नहीं है कि पैसे लगते है। पैसा तो लगता नहीं। अब राम में मन लगाओ। बोले तुम्हारा मन व्यापार में लग जाता है, उसी में जब-जब भी तुम धंदे से खाली हो, ग्राहक नहीं आवे तो तुम बैठते-बैठते राम नाम, राम नाम जपते जाओ। कोई एक दिन तो मन लग जायेगा। और बोले एक काम करो- तुम मानसिक भक्ति शुरू करो। सेठजी बोले- वो क्या होती है। संत बोले- जब भी खाली बैठे रहो ठाकुरजी मेरे पास है, मैं सुबह उठा, मैंने ठाकुरजी को स्नान करवाया, ठाकुरजी को मैंने कपड़े पहनाये। तुम्हें कुछ करना नहीं है तुम ऐसे मन से भक्ति करो। ठाकुरजी को मैंने चन्दन लगाया, साबुन लगाया, तौलिये से पोंछा आपको पोंछके फिर मैंने वस्त्र पहनायें, मैंने यहां रखा, मैं आपको प्रणाम करता हूँ, अभी मैं आपको बाल भोग लगाऊंगा, दूध गर्म किया, दूध ठंडा हो रहा है, उसमें शक्कर मिलाई है। यह आपको बाल भोग लगाया है अब आप ऐसे इसतरह से दिनभर की भक्ति करते जाओ। सेठजी बोले- यह बात तो बहुत बढ़िया है इसमें पैसा भी नहीं लगता- यों कर लिया, यों कर लिया मनसे भगवान को भी याद कर लिया। बस उस दिन से सेठजीने भक्ति करने शुरू कर दी। आज कन्हैया को उठाया है, नहलायां सब ठीक चल रहा है। तीन वर्ष बीत गये बस सेठजी समझे भक्ति हो रही है। एक दिन ऐसे नहलाये नहलाते-नहलाते दूध में चीनी डाल दी। ऐसे ही सेठजी को एकदम खयाल आया है कि अरे आज तो चीनी ज्यादा डल गयी। एक महीने की चीनी गयी। झठ् एक चम्मच लेकर चीनी निकालने की कोशिश कर रहे है। भगवान प्रकट हो गये और बोले- यह क्या कर रहा है। सेठजी बोले- आपके दूध में चीनी ज्यादा पढ़ गयी आपको मीठा बहुत लगेगा। मेरी तो एक महीने की चीनी खत्म हो जायगी। भगवान बोले तुमने चीनी डाली ही कहां थी, उसकी आँख खुल गई। उस भक्ति में भी भगवान की प्राप्ति हो गयी।

कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान की भक्ति कितनी डिग्री की आपने भक्ति की, कितनी शुद्धता, कितना अनन्य भाव उस भक्ति है तो ही इस कन्हैया की प्राप्ति होती है। पर जिस दिन से यह भाव जग गया कि मुझे भक्ति करनी है समझो आपके कर्मोंमे उदय आ गया और आपने शुरूवात की। तो उसके फल एकदम से नहीं मिलेंगे कि आज आपने भक्ति करी और कल आपके व्यापार में मालामाल हो गये ऐसा कभी नहीं समझना। निष्काम भक्ति करना जहां कोई कामना नहीं हो। यह जितनी भक्तियां, देवताओंकी उपासना करते हो यह आप सकाम भक्ति करते हो कि इससे कुछ मिले। भगवान की भक्ति है- कर्मण्येवाधिकारस्ते महाफलेषु कदाचन्। तु मेरी भक्ति कर, कैसी भक्ति कर्म कर, कर्म पर तेरा अधिकार है, उस फल पर तेरा अधिकार नहीं है। उस फल पर अधिकार मेरा है फल मैं दूँगा। तुने जैसा कर्म किया है, जैसी भक्ति है उसके फल वैसा ही मैं तुझे दूँगा। अनन्य भक्ति- जैसे आप व्यापार की पूजा करते हो, मन लगाकर करते हो वैसा मन लगाके आप मेरी भक्ति करो, हरिकी भक्ति करो, वो भक्ति होगी तो निश्चय ही, नि:संदेह आपको भगवत प्राप्ति होगी, आपके जीवन का सुधार होगा। नहीं तो इस सकाम भक्ति में ये जितनी सकाम भक्तियां है, अच्छे-से अच्छा ब्रह्मा और इन्द्र भी आपको स्वर्ग की प्राप्ति करा सकता है। इससे ऊपर की प्राप्ति, इससे भी ऊपर बहुत कुछ है वो प्राप्ति वो अन्य कोई देवता नहीं करा सकता सिर्फ हरि करा सकते है। कहते है जो इन्द्रकी सत्ता इन्द्रलोक तक करवा सकता है, ब्रह्मा ब्रह्मलोक तक करा सकता है। क्यों यह चींटी से लेकर, छोटे से छोटा क्षुद्र जीव से लेकर ब्रह्मा पर्यंत के जीव पुनरावर्ती है। सबको फिर जाकर फिर आना पड़ता है। जिस दिन आपके पुण्य क्षीण हो जायंगे फिर इस लोकमें आना पड़ेगा। पर जिस दिन विष्णुलोक की, उस लोककी प्राप्ति हो जायेगी फिर जाना भले आप उनके पार्षद बन जावें, भले आप उनके पड़ोसी बन जावें, भले उनके साथ रहें, अपने में जो रूप दे पर उस लोकमें पहुंचने के बाद आप बोलोगे कि वो लोक कितना छोटा है। विष्णुलोक कितना

छोटा होगा, अरे उस लोक की महिमा आप क्या जानो। वहां तो पूरे के पूरे लोग समाये हुए है। विराट का वर्णन देखो कितने ब्रह्मा के मुख, इन्द्र के मुख है उसमें कितने सारे लोक उसमें भरे पडे हुए है। हजारों लोक, हजारों करोड़ों सूर्य उस लोकको प्रकाशित करते है। वह लोकमें स्वयं प्रकाशित है उसे कोई प्रकाश की आवश्यकता नहीं। वो विराट है। ऐसे में आपको उस लोककी प्राप्ति के बारेमें सोचना चाहिए। यह तो बहुत क्षुद्र चीजें है जो आप माँग रह हो। मुझे धन मिल जायें, मुझे पत्नी मिले, सुन्दर हो जायं, उर्वशी मिल जायं यह सब छोटे-छोटे देवताओंको प्रार्थना करते हो। यह भी देनेमें समर्थ नहीं है यह भी आपके लिये उसीसे मांगके लाते है। क्योंकि आपने उनको खुश किया है उसको नहीं किया है। यह भी आपके लिये वकालात करते है, मांगते है कि मेरे भक्तका कल्याण करना है। हे भगवन् उसके कर्मोंका लेखाजोखा देखो अगर ठीक लगे, अगर सामर्थ्य हो उसको देना चाहिए आप अगर समझते है तो थोड़ा मुझे दे दो मैं उसको दे दूँ।

बोले- इसकी कर्मोंका लेखाजोखा ठीक नहीं है तो आपके देव भी कुछ नहीं कर सकते। आपके लिये दलील कर सकते है। आपके लिये आराधना कर सकते है कि इनको अच्छा फल दो। बचाना, मारना भी उनके हाथ में नहीं है। बचाना और मारना ब्रह्माने आपके जीवन की कथा लिखी है। वो छटके दिन बालक पैदा होता है वो दिन षष्टि आती है छ: दिन के बाद। उस दिन देवसेना नामकी कन्या जो कार्तिकेय की पत्नी है। कार्तिकेय शिव भगवान के पुत्र है। देवसेना नामकी उनकी पत्नी है। उसीको षष्टिदेवी कहते है। वो षष्टिदेवी आती है और कलम और दवा अपने बच्चेके पास रखकर जाती है। जब माता सो जाती है जब प्रसूतिगृह में कोई नहीं रहता है। उस समय विधाता अपनी करनी लिखकर जाती है। और षष्टि देकर जाती है। ऐसा भागवत में लिखा गया है। उसके कर्म तो मृत्यु, जीवन, हानि लाभ जस-अपहस विधिहाथ। यह सबकी सब चीजें उसके हाथ हैं। आपके हाथमें सिर्फ कर्म है, कर्म अच्छा कीजिए। उस कर्मसे आपको सद्बुद्धि प्राप्त होगी, आपके जीवन में शान्ति मिलेगी, आनन्द मिलेगा और आप अच्छेसे अपना जीवन व्यतीत कर जायेंगे। ऐसा कोई प्राणी नहीं है जिसने जन्म लिया हो और वो चिरकालतक रह सके। चिरकालतक अमर हो ही नहीं सकता। ब्रह्मा ही अमर नहीं है जो सब प्राणियोंको बनानेवाला हुआ है। उसकी भी आयु निर्धारित की हुई सौ दिव्य वर्ष। १ दिव्य वर्ष में मानव वर्ष कितने है गुणा करके देखिये आप कभी लिख नहीं पायेंगे इतनी बड़ी गणित। यह २८ वीं चतुर्युगी चल रही है। ५३ चतुर्युगी और होनेपर आपकी कलियुग समाप्ति होगी। सतयुग आयेगा। यह प्रश्न ऐसे ही चलेगा। यह २८ वीं चतुर्युगी है इसका प्रमाण आज जो तारिख, दिन, तिथि, आज जो आकाश मार्गका नक्षत्र है आज का तारीख और आज का दिन दोनों होयेंगे। २८ वर्षोंके बाद वही पुनरावर्ती होगी।

जब मरणासन्न व्यक्ति है। बार-बार मरनेवाला हूँ। जो जन्मा है वो मरेगा, उसकी मृत्यु निश्चित है। फिर ब्रह्मापर्यंत, इन्द्रपर्यंत के जीव मरते है। एक बार की बात है- भगवान कृष्ण और रूक्मिणी बैठे-बैठै चौपड खेल रहे थे। एक चींटा वो चौपड में से जा रहा था। तो कृष्ण भगवान हंस दिये। रुक्मिणीजी बोली मैं हार रही हूँ और आप हंस रहे है। अभी तो खेल शुरू भी नहीं हुआ। वह बोली- भगवान आप क्यों हंसे? कृष्ण बोले- नहीं। ऐसे ही हँसी आ गयी। रुक्मिणी बोली- कोई तो कारण है। भगवान बताओ ऐसे तो नहीं इसमें हसने की क्या बात थी। कृष्ण बोले- मकोड़ा जा रहा था। तो उसमें हँसने की क्या बात है। कृष्ण बोले- नहीं, रुक्मिणी मैं इसके जीवन के बारे में सोच रहा था। जो २१ बार इन्द्र बन चुका है। वो भी आज एक कीड़े-मकोड़े का जीवन पा रहा है। यह कीड़ा-मकोड़ा इतना क्षुद्र जीव उसको भी जन्म लेना पड़ता है। इन्द्रको भी जन्म लेना पड़ता है। इन्द्र क्या है? आप भी इन्द्र बन सकते हो। यह इन्द्र एक उपाधि है। भगवान के पास एक उपाधि है। ब्रह्मा के पास इन्द्र है जो सब देवताओंका राजा है। पर इन्द्र कब बनाया जाता है जिसने सौ बार अश्वमेध यज्ञ

किये हो। एक अश्वमेध यज्ञ करना पूरे विश्वको जीतना। कैसे होता है? एक यज्ञ बनाया जाता है और एक घोड़ा छोड़ा जाता है, उसमें ताम्रपत्र लिखकर भेजा जाता है कि मैं अश्वमेध यज्ञ कर रहा हूँ और मैं पूरी पृथ्वी का विजेता हूँ। यदि कोई मेरी इस चुनौती स्वीकार नहीं करता तो वो मेरी सेना के साथ युद्ध करें और नहीं तो अपने राजपाट के सहित मुझे अपना राजा स्वीकार करें और मुझे कर देना शुरू करे। इस तरह से तीन वर्ष, एक वर्ष, दो वर्ष में वो अश्व घोड़ा घूमकर वह चुनौतियों को किसीने नहीं स्वीकार किया और सही सलामत लौट आया, या जहां युद्ध हुआ उसको जीतकर, उस सेनाको लेकर अपने उस यज्ञमें आ जावें जब वो एक अश्वमेध यज्ञ पूरा होता है। और वो चक्रवर्ती राजा बन गया। ऐसा उसका अश्वमेध फल होता है, ऐसे सौ अश्वमेध यज्ञ जो करें वो इन्द्र बन सकता है। उसको इन्द्रकी उपाधि मिलती है। ऐसा जो कीड़ा-मकोड़ा २१ बार इन्द्र बन गया और फिर कीड़े-मकोड़े का जन्म लिया। इन्द्र की करतूत इन्द्र देवोंका राजा है। इन्द्र की करतूत कोई अच्छी नहीं है। हमारा जो पुरन्दर इन्द्र है बड़ा व्यभाचारी इन्द्र है। पदलोलुप हमेशा उसको यह डर रहता है कि मेरा पद कोई नहीं ले जावे, मेरा पद राजा सगर का। जब अश्वमेध यज्ञ करते है उसका भी घोड़ा चुराके ले जाता है और कपिलमुनिके आश्रम में जाकर बांध देता है। यह ऐसा है इन्द्र यह इन्द्र जिसने गौतमपत्नी अहिल्या के साथ अत्याचार किया। तो इन्द्र इसके कर्म ही ऐसे है इसको भी बार-बार जन्म लेना पड़ता है। तो हम लोग इसके सामने बडे क्षुद्र जीव है। इसलिये कहते है कि यह जन्म-मरण के बंधन से छूटे। आपको स्वर्ग बड़ा अच्छा लगता होगा। एक तो स्वर्ग या नरक है या नहीं यह हम जानते नहीं क्योंकि वेदोंमें लिखा है इसलिये मानते है, काल्पनिक भी हो, सही या प्रत्यक्ष भी हो। अगर उसकी प्राप्ति भी होती तो आप क्या देंगे? क्योंकि आपने जो कर्म किया है उसके फल जो भी अर्जित हुए है कितनी देर के लिये किया है, कितनी देर स्वर्गमें, नरक में रहोगे उतना ही आप भोग सकते है। वो वहां कर्म नहीं होते है वो आप पुण्य भोग सकते हो। वो पुण्य क्षीण होनेके बाद आपकी पुनरार्वती फिर मर्त्यलोक में होगी, अधम लोक में होगी, उच्चलोक में होगी। यह आपके कर्मोंपर निर्धारित करती है। जैसे कर्म किये है। कोई जरूरी नहीं कि आप मनुष्य बनो। आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म में जिनका विश्वास है उनको किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है जिनको विश्वास नहीं है हम चाहे जितने प्रमाण प्रस्तुत करें उन्हें विश्वास हो भी नहीं सकता। हम यदि विश्वास करते है हमारे वैदिक मन्त्रोंमें, हमारे वैदिक ज्ञानमें, कर्मोंमें। यह भी चीजें वेदोंसे ही लिखी गयी है, यहीं चीजें अपनी भागवत में लिखी गई है। इसलिये स्वर्ग और नरक की प्राप्ति सुख और दुख का भोग कारण है। यदि कर्म बुरे किये तो नरकोंकी प्राप्ति होगी, अच्छे कर्म किये तो स्वर्गकी प्राप्ति होगी। लेकिन उसकी अवधि कुछ समय के लिये है, कुछ क्षणोंके लिये है। जब यह पुण्य आपके क्षीण होंगे फिर आप नरक से, स्वर्गसे गिरा दिये जाओगे। जैसे आपके कर्म होंगे। उसके बाद पुनर्जन्म मिलेगा, दूसरी योनियां मिलेंगी। इस तरह से ८४ लाख योनियोंका चक्कर है। यह ८४ लाख योनियां कौनसी है- पशु, सर्प, पक्षी, कीट, पतंग, लता, गुल्म, तरू, पेड़ की है। यह सब तरह की ८४ लाख योनियां।

सृष्टिमें जितनी चीजें बनी है आपके सब उपयोग के लिये बनी है। उपभोग के लिये बनी है। उपयोग है, उपभोग है पर सही मात्रा में है। कही पर आप आनन्द नहीं लेते हो। सम्भोग और मैथुन मिला शीघ्रातिशीघ्र है। आनन्द नहीं। किसी भी चीज में आप आनन्द लीजिए। आनन्द क्या है। सत् चित्त आनन्द। आनन्द आपके सुख और दु:ख से अलग है। दु:ख कष्ट से अलग है। सत् उस सत्य का स्वरूप है। चित्- प्रकाश उस सत्य को जो प्रकाश करता है। आनन्द इसका कोई दूसरा नाम नहीं है। आनन्द एक रूप है जिसमें आप आनन्द ले सकते हो। आप कोई भी कर्म करते हो, व्यापार करते हो, आनन्द लीजिए। जिस चीज में आपका मन लगे उसमें भी आनन्द लेकर करो। उसमें भी भागम दौड़, इतने व्यस्त मत

बनो। न व्यापार में आनन्द, न खाने में आनन्द। खाना खाते समय भी खाना सुखसे नहीं खाते। फोन चालू है, खाना ठण्डा हो रहा है, चाय ठण्डी हो रही है। भगवान ने आपको दो समय का खाना दिया है खानेको। लेकिन आपने उस खानेको पैसेसे खरीद लिया है। पैसा पहले प्रथम यह तो बाद में है। जिसके कारण आपने जीवन पाया है, जो जिन्दगी मिली है ऐसे। छोटीसी छोटी चीज में आप आनन्द लीजिए।

आप उस आनन्द का उपभोग कीजिए, शान्ति से कीजिए। आप जो कर रहे हो आपको आनन्द नहीं मिल रहा है, शान्ति नहीं मिल रही है। घरमें आप शान्ति लाइये। पैसा आपको अपनी किस्मत से मिलेगा। बड़ा पैसा आपकी योग्यता पर मिलेगा। अगर मैं चाहूं तो धीरूभाई अम्बानी बनना है। तो मैं नहीं बन सकता, मैं प्रयत्न कर सकता हूँ उनके जितना पैसा कमाना मेरे तकदीर का है, मेरे उद्योग का है, मेरी बुद्धि का है। लेकिन मैं आज राहुल बजाज बनना चाहूं मैं उनको देखकर आदर्श सीख सकता हूँ कि वो कैसे बनें। धीरूभाई अम्बानी कैसे बने। उन्होंने क्या उद्योग किये। हम उस राह पर चल सकते है। आप उद्योग करोगे आपको दिनभर की रोजीरोटी मिलेगी। इसमें कोई संशय नहीं है। जिसने चोंच दिये है उसने चुग्गा भी बनाया है। जिसने आपको मुंह दिया है उसने आपको खानेको भी दिया है। कितना पर्याप्त दिया है पर्याप्त मिलेगा। आप अपनी किस्मत और उद्योग, व्यापार को कभी नहीं कोसियेगा। संतोष नहीं आपको। जो मिल रहा है संतोष नहीं है। प्रयत्न कीजिये, पर सही दिशा में प्रयत्न कीजिये। अपने व्यापार को, अपनी नौकरी को कभी मत कोसना। जिस प्रभुने आपको रोटी दी है अपने नसीब को नहीं कोसना। हमेशा प्रभुका स्मरण रखना यही भागवत का सार है।

बैठा है दरबार लेकर देनेको तैयार, जो चाहे तू मांग ले बन्दे करता नहीं है इनकार।

राधे तेरे चरणों की, श्यामा तेरे चरणों की। गर धूल जो मिल जावें, राधे तेरे चरणों की, श्यामा तेरे चरणों की।

मैत्रेय जी कहते हैं- विदुर जी, ब्रह्मा के पुत्र सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन, नारद, ऋभु, हंस, अरुणि और यति नैष्ठिक उर्ध्वरिता ब्रह्मचारी थे। इन्होंने गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं किया अत: उनके कोई सन्तान नहीं हुई। अब अधर्म के वंश की बात सुनो। सृष्टि के लिये सगुण, कामना, अविद्या, विषमता, माया आदि की आवश्यकता है।

अधर्म भी ब्रह्माजी के शरीर से उत्पन्न होता है अत: यह भी उनका पुत्र ही है। ब्रह्माजी के स्तन से धर्म की उत्पत्ति हुई और पीठ से अधर्म पैदा हुआ। विराट भगवान के पायुस्थान से निर्ऋति पैदा हुआ। इनकी उत्पति इस प्रकार हुई।

कुछ अनुग्रह सृष्टि के जीव होते हैं, जिनका प्रलय में भी नाश नहीं होता। वे घोर तमोगुणी, घोर सतोगुणी दोनों ही प्रकार के होते हैं। मार्कण्डेय, लोमश आदि मुनि प्रलय में भी बने रहते हैं। इसी प्रकार ये दोनों दैत्य भी प्रलय के जल में निर्भय होकर घूम रहे थे। भगवान ने जब देखा ब्रह्माजी डरे हुए हैं, तब आकाशवाणी हुई इस कमल नाल के छिद्र में घुस जाओ, वहाँ मेरे दर्शन होंगे। ब्रह्माजी ने ऐसा ही किया। ये दैत्य भी कुछ कम नहीं थे। ब्रह्माजी तो भयभीत हो गये थे, उनसे युद्ध करना इन्होंने उचित नहीं समझा। भगवान् को युद्ध के लिये ललकारा। भगवान तो सोते-सोते थक गये थे, वे युद्ध करने को उधार खाये बैठे थे, भिड़ गये दोनों से। कई हजार वर्ष तक युद्ध होता रहा, किन्तु दैत्य तो अजेय थे। भगवान उन्हें डरा नहीं सके। हाय रे लीला। जिनकी भृकुटि विलास से असंख्यों ब्रह्माण्ड बनते बिगड़ते हैं, वे दोनों भुनगों के समान दैत्यों को भी न मार सके। मार देते तो फिर उनका बना बनाया खेल बिगड़ न जाता। उन्हें तो खेल बनाना था।

ब्रह्माजी अपने कमल पर फिर जा बैठे। दैत्यों ने फिर उन्हें धमकाना आरम्भ किया। अबकी भगवान फेंट बाँधकर, पीताम्बर कसकर, ताल ठोंककर फिर युद्ध के लिये खड़े हुए। किन्तु उनकी सब तैयारियाँ धरी-की-धरी ही रह गईं। दैत्यों

का वे बाल-बाँका भी न कर सके। अब उन्होंने छल आरम्भ किया। इस विद्या में तो भगवान पूरे निपुण हैं। वे बोले- भैया। तुम लोग बड़े बली हो, मैं तुम पर बड़ा प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे कोई वरदान माँगो।

यह सुनकर दोनों दैत्य बड़े जोरों से हँस पड़े और बोले- यह अच्छी रही? हम तुमसे हारे हैं क्या जो वरदान माँगे? तुम्हीं हमसे हारे हो, इसलिये तुम्हीं जो चाहो हमसे वरदान माँगो। तुम जो चाहोगे वही हम वरदान देंगे।

भगवान को तो किसी बात में लज्जा, शील, संकोच है ही नहीं। भिखारी बन जायँ, दास, सेवक, भृत्य, सारथी जो चाहो बना लो। उनकी बात सुनकर बोले- अच्छा, भैया। तुम यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो यही वरदान दो कि तुम मेरे हाथ से मारे जाओ। इतना सुनते ही दैत्यों के होश उड़ गये और अपना-सा मुँह बनाकर कहने लगे- अरे, यह तो बड़ा छलिया निकला। इसने तो हमें ही ठग लिया, अस्तु, अब तो हम वरदान दे ही चुके; किन्तु वरदान हम भी माँगेंगे। भगवान ने कहा- बोलो, तुम क्या मांगते हो? मैं वही वर तुम्हें दूँगा। दोनों दैत्य बोले- आप हमें भले ही मार दें, किन्तु अब हम आपके पुत्र होकर उत्पन्न हों। भगवान ने कहा- अच्छी बात है, यही सही। इतना कहकर भगवान ने जंघा पर रखकर मार दिया। उनके मेद से ही यह मेदिनी (पृथ्वी) बनी।

अधर्म की पत्नी का नाम था- मृषा। मृषा माने झूठ, असत्य। जहाँ अधर्म होगा वहाँ झूठ अवश्य रहेगा। पति-पत्नी दोनों ही साथ रहते थे। इनकी दो सन्तानें थी- एक दम्भ और दूसरी माया। दम्भ और माया का परस्पर विवाह भी हो गया अत: ये दोनों भाई-बहन थे और पति पत्नी भी। इनको निऋति ने गोद ले लिया तो उनसे लोभ और कृपणा की उत्पत्ति हुई। लोभ माने लालच और निकृति माने शठता, बदमाशी, गुण्डागर्दी। उनसे क्रोध और हिंसा ने जन्म लिया। जब क्रोध और हिंसा का आपस में विवाह हुआ तो उनसे दुरक्ति और कलि जन्मे। दुरुक्ति और कलि माने कलह। इनका आपस में विवाह हुआ। उनसे भय और मृत्यु ने जन्म लिया। भय और मृत्यु से यातना और नरक की उत्पत्ति हुई यही है अधर्म की वंशावली।

स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र थे- एक प्रियव्रत और दूसरे उत्तानपाद। ये दोनों भगवान की कला से ही उत्पन्न हुए थे। उत्तानपाद का अर्थ है- जीव। माँ के गर्भ में शिशु ऊपर की ओर पैर और नीचे की ओर सिर करके रहता है। प्रत्येक मानव शिशु पैदा होने की बेला में सिर के ही बल पैदा होता है। इसका अपवाद कभी-कभी ही देखने में आता है। जीवन में अपने कर्म के द्वारा अपना पैर समाज में ऊँचा है, जिसकी प्रतिष्ठा ऊंची है, वह उत्तानपाद है। प्रियव्रत ने जो करके दिखा दिया। प्रियव्रत अर्थात् अच्छा व्रत, सुन्दर प्रतिज्ञा। वो ईश्वर के सिवा कोई नहीं कर सकता। ये ईश्वरीय विशिष्ट विभूति थे, अवतार थे। भगवान की कला से उत्पन्न हुए थे। उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थीं। बड़ी का नाम था सुनीति और छोटी का नाम था- सुरूचि। सुनीति ही प्रधान रानी थी। राजा को छोटी रानी ही अधिक प्रिय थी, सुनीति नहीं। सुनीति का ही बेटा था- ध्रुव। सुनीति का मतलब है जो हमेशा शास्त्र के नीति पर चले और सुरुचि का अर्थ है, मनमें आया जो कर लिया, मन जो माँगे वही करने की इच्छा सुरूचि में थी।

सुरुचि ने कहा- मैं सुनीति के साथ नहीं रह सकती। सुनीति भले ही सुरुचि के साथ रह ले। सज्जन भले ही दुर्जन को स्वीकार कर ले, पर दुर्जन सज्जन को कभी स्वीकार नहीं करता।

महाराज उत्तानपाद की बड़ी पत्नी सुनीति की कोई सन्तान नहीं थी इसलिए महाराजा ने दूसरा विवाह किया। सुरुचि ने आते ही महाराज से कहा कि आपकी बड़ी पत्नी सुनीति बन्ध्या है अतएव मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहती हूँ। फलत: सुनीति के अलग रहने की व्यवस्था कर दी गयी। कुछ दिनों के बाद सुरुचि ने महाराजा से कहा कि ज्योतिषियों ने बतलाया है कि, अपनी बंध्या सौत का मुख देने से तुम भी बन्ध्या हो गयी हो। अतएव एक मिट्टी के पात्र में दही जमाया जाय। उस दही को लेकर तुम्हारी सौत तीस दिन तक वन में अकेले रहकर सुरक्षा करे तो उसी दही के खाने से तुमको सन्तान होगी। ऐसा ही हुआ।

अधर्म के वंश का वर्णन

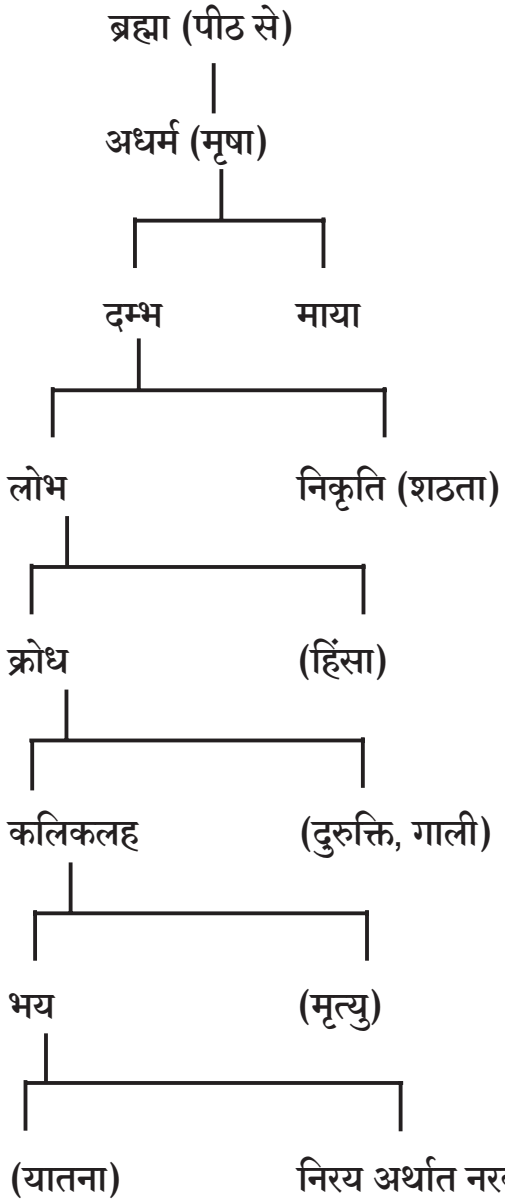

❊ आत्मबल देना हमको तू भगवान, जिसे सदा हम अपने करम पर, मैल न आये मन मे मेरे,
ध्यान से चरणों में तेरे आये ना अभिमान हमें कभी खुदपर, सीखे दु:खों को एहसास करना,
मानवता का वरदान देना, बांटे सदा गम औरों का।

❊ खुली हाथ मुसाफिर आया था और खाली हाथ ही जायेगा, जहां जो भी मिला उसे यही छोड़कर जाना है।
दुनिया एक मुसाफिर खाना है, यह घर कभी किसका हुआ, अपना नाम लिखाना चाहे, दीवाने है लोग सभी।

❊ जिन्दगानी हमारी अब इस मोड़ से, लेके जाती है किस मोड़ पर देखिए।
जब कहीं कोई रास्ता दिखाई न दे, दिल जिधर कह रहा हो उधर देखिए।
हर किसी ने यही कहके लौटा दिया, जाइए दूसरा कोई दर देखिए।।

धर्म का वंश

धर्म की १३ पत्नियाँ

१) धर्म-श्रद्धा
|
शुभ

२) धर्म- मैत्री
|
प्रसाद

३) धर्म- दया
|
अभय

४) धर्म- शान्ति
|
सुख

५) धर्म- तुष्टि
|
मोद

६) धर्म- पुष्टि
|
अहंकार

७) धर्म- क्रिया
|
योग

८) धर्म- उन्नति
|
दर्प

९) धर्म- बुद्धि
|
अर्थ

१०) धर्म- मेधा
|
स्मृति

११) धर्म- तितिक्षा
|
क्षेम

१२) धर्म- ह्री लज्जा
|
प्रश्रय (विनय)

१३) धर्म- मूर्ति
|
नर-नारायण

स्वाहा- अग्नि

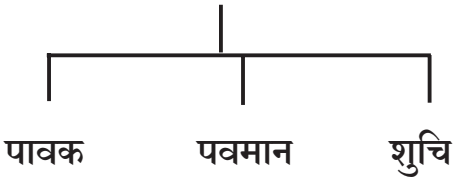

सुनीति को वन में अकेले रहकर उस दही की रक्षा करते हुए कुछ दिन बीत गए थे तो वहाँ पर कुछ महात्मा आए। सुनीति ने सन्तों का सत्कार किया तो सन्तों ने उसे भगवद् भक्त सन्तान प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। सुनीति रो पड़ी और अपनी सारी कथा सुनायी। सुनीति ने सन्तों से सुरुचि के लिये संतान की याचनाकी। आजकल द्वेषके अन्दर कौन अपनी सौत के लिये पुत्र या संतान चाहेगी। सन्तों ने कहा पुत्री। तुम्हें ही पहले संतान होगी। तुम्हारा बेटा यशस्वी राजा होगा।

एक दिन राजा उत्तानपाद मृगया से लौट रहे थे। वे थके थे। राजमहल पहुँचना उनको कठिन लग रहा था। वे उस रात्रि सुनीति के आश्रम में रुके। सुनीति गर्भवती हो गयी। यह सुनीति के दही रक्षा करने का अठाइसवाँ दिन था। तीसवें दिन दही के साथ सुनीति राजमहल में आयी। उस दही के खाने से सुरुचि गर्भवती हुई। किन्तु सुनीति का पुत्र ध्रुव बड़ा था और सुरुचि का पुत्र उत्तम छोटा था।

संसारी जीव की दो प्रकार की बुद्धि-वृत्तियाँ हैं- सुनीति और सुरुचि, सुनीति का अर्थ है- सन्मार्ग पर ले चलने वाली बुद्धि। ध्रुव सन्मार्गगामिनी, बुद्धि का फल, बेटा है। ध्रुव का अर्थ है अटल, ब्रह्म। किसी भी प्रकार के भय, प्रलोभन अपने निश्चय से विचलित न हो वे ही ध्रुव है। सुरुचि जीव को मनमानी ढंग से ले चलानेवाली बुद्धि है। मनमानी मार्ग पर चलना ही जीव को प्रिय है। सुरूचि अपने इच्छानुसार चलती थी धर्म और नीति की मर्यादाओं की चिंता न कर कार्य करती, अहंकार और ऐश्वर्य की मूर्ति थी। सुनीति के मन में था कि वह अपने बालक ध्रुव को तेजस्वी, मनस्वी और तपस्वी बनायेगी। माँ चाहे तो बालक को संत बना दे, माँ चाहे तो उसे ज्ञानी बना दे, माँ चाहे तो उसे भक्त बना दे और माँ चाहे तो उसे चोर, जेबकतरा, डाकू बना दे।

अत: सुरुचि उत्तानपाद को प्रिय थी। सुरुचि का बेटा था- उत्तम। जिसे ऊपर अन्धकार-ही-अन्धकार दिखलाई पड़ता है, वह है उत्तम। उत्तानपाद को, संसारी जीव को सुरुचि और उत्तम अधिक प्रिय होते हैं।

एक दिन की बात है। राजा उत्तानपाद राजसिंहासन पर बैठे हुए थे। सुरुचि राजा के पास में बैठी थी। राजा सुरुचि के बेटे उत्तम को गोद में लेकर दुलार कर रहा था। उसी समय महारानी सुनीति का बेटा ध्रुव वहाँ आया। उसने देखा कि उसका छोटा भाई महाराज की गोद में खेल रहा हैं अत: वह भी राजा की गोद में चढ़ने का प्रयास करने लगा। किन्तु सुरुचि के डर के मारे राजा ने उसका आदर नहीं किया। राजा की गोद में बैठने का प्रयास करते हुए अपनी सौत के पुत्र ध्रुव को सुरुचि ने देखा। वह अपने यौवन और सौन्दर्य के मद से मतवाली थी। राजा मेरे सौन्दर्य का दास है- इसका उसे महान् अभिमान था। अत: उसने राजा को सुनाकर ध्रुव से कहा- चल हट, राजा की गोद में बैठने का तेरा साहस कैसे हुआ? अभी तूने इतना पुण्य नहीं किया जो तू राजा की गोद में बैठ सके। बेटा, तुम मेरी कोख से जन्म नहीं लिये हो इसलिये राजा की गोद में बैठने का अधिकार तुम्हें नहीं है, यदि राजसिंहासन पर चढ़कर तुम राजा की गोद में बैठना चाहते हो तो तपस्या करो। तपस्या से जब भगवान प्रसन्न हों तो उनसे मेरी कोख से जन्म लेने का वरदान मांगो।

ध्रुव हियकी इच्छा लखी, सौतेली माँ हाँस परी। सुमिरि सौतिया डाहकूँ, ध्रुव माँ की निन्दा करी।।

सुरुचि के कथन का अभिप्राय यह है कि मेरे पेट में आना भगवत्कृपा से बड़ी बात है। भगवत्कृपा से राज्यासन पर तुम नहीं बैठ सकते। उसके लिये तो मेरे पेट से जन्म लेना ही पड़ेगा। तू तो प्रारब्धहीन उत्पन्न हुआ है।

उक्त बात कह कर सुरुचि ने भगवान का अपमान कर दिया। इसका फल यह हुआ कि उसे पुत्र का मरण देखना पड़ा और वह भरी जवानी में मृत्यु का ग्रास बन गई। कितने अहंकार में भरी हुई थी सुरूचि। अपने को भगवान से भी बढ़कर समझ रही थी। सुरुचि ने अपने गर्भ को इतना सुन्दर मंदिर माना कि उसके गर्भ में आने के लिये भगवान की तपस्या करना जरूरी है। सुरुचि का गर्भ भगवान से भी बढ़कर ऊँचा हो गया यह उसका अभिमान था।

शिशु भगवान का रूप होता है। उसका अपमान भगवान का अपमान है। यह दूसरी गलती थी सुरूचि की।

बालकतें यों विहँसि विमाता बोली बानी। बेटा। व्यर्थ विषाद करे तू अति अज्ञानी।।
यद्यपि राजा तनय किन्तु मम कोखि न जायो। तू सुनीति के गर्भ माहिँ किहि अघ ते आयो।।
अब तप करि मम उदरतें, लेहि जन्म सम्भव जबहिँ। उत्तम सम नृप अंम महँ, बैठि सकेगो तू तबहिँ।।

राजा जीव है। ध्रुव ब्रह्मानन्द है, भजनानन्द है। जब जीव ब्रह्म से मिलना चाहता है तब सुरुचि= इन्द्रियाँ, इन्द्रियों की लोलुपता उस में विघ्न करती है। यही कारण है कि सुरुचि ब्रह्मानन्द को जीव= राजा से मिलने में बाधा बन रही है।

ऐसा कहकर सुरुचि ने राजा के धौत-वस्त्र को पकड़े हुए ध्रुव के हाथ को झटक दिया। ध्रुव ने एक क्षण के लिये राजा के मुख को देखा। वह सोच रहे थे कदाचित् राजा सुरुचि को झिड़कें- सुरुचि यह क्या कर रही हो। बालक का अपमान मत करो। किन्तु राजा कुछ बोले नहीं, मानो उनकी जीभ को लकवा मार गया हो। वे सब कुछ सहन करते रहे फिर जिस प्रकार डंडे की चोट खाकर साँप फुफकार मारने लगता है, उसी प्रकार अपनी सौतेली माँ के दुर्वचनों से बिंधे हृदयवाले ध्रुव क्रोध के मारे लम्बी-लम्बी साँस लेते हुए पिता को छोड़ कर रोते हुए अपनी माँ सुनीति के पास चले गये। राजा उत्तानपाद को न तो सामाजिक भय है और न लज्जा, बुद्धि भी कुण्ठित है। माँ का आँचल बालक के लिये सर्वौषधि का कार्य करता है।

बैठ न पाया गोद पिता के सुनि कुबचन सौतेली मां के।
नैन भरि आये ध्रुव के नीर बचन सुनि लगे हृदय पर तीर, वेदना छाई सकल शरीर,
नैनन में नीर, अपमान जानि भरि आये। ताकत मुख तात को, न धीर हूं बंधाई है।।
रोष की प्रचण्ड आग, जाग उठी अन्तर में। गौर वर्ण आनन पर, दौड़ी अरुणाई है।।
दाँतन सो दाँत बाजे होठ फरकावें दुहुँ। कांपे तन थर थर जनु नागिन रिसाई है।।
सका न सम्हार दौड़ आया जननी के पास। सिसकत लखि लाल को लै कण्ठ ते लगाई है।।
देखि दशा निज पुत्र की जननी अति अकुलाय। पुनि पुनि पूछत अंक भरि हेतु कहो समुझाय।।
कौन कह्यो कटु बचन, किया किसने तेरा अपमान। पायो अचल लोक ध्रुवलोक भक्त ध्रुव धरिके हरि को ध्यान।।

उनके दोनों ओठ फड़क रहे थे वह सिसक-सिसक कर रो रहे थे। सुनीति ने बेटे को गोद में उठा लिया। वह पूछने लगी- बेटा, क्यों रो रहे हो? ध्रुव समझदार थे। वह देखते थे कि सुरुचि उनकी माँ महारानी को किसी-न-किसी बहाने रोज डाटा करती है।

बोला मां का लाल दुलारा। उत्तम की मैय्या ने मारा।। हृदय पर बड़े जोर से तान।
वचन का बड़ा विषैला वाण। अरी मैय्या सुन ले देकर ध्यान।।
सुनकर बातें विष भरी, रहे पिता भी मौन। कहु मैय्या अब जगत में मेरा अपना कौन।।

ध्रुव सोचने लगे कि यदि सौतेली माँ की बात बतलाऊँगा तो माँ को महान् कष्ट होगा अत: वे चुप ही रहे। दास-दासियों ने धीरे से सारी घटना सुनीति को बतला दी। उसका धैर्य टूट गया। वह अपना कष्ट तो सह सकती थी किन्तु उसे अपने कलेजे के टुकड़े का अपमान बर्दास्त न था। वह दावानल से झुलसी हुई लता की भाँति भूतल पर गिर कर विलाप करने लगी। सौत की बात याद करके उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। उस बेचारी को अपने दु:ख-सागर का पार कहीं दिखलाई न पड़ रहा था। लम्बी-लम्बी साँसे लेती हुई उसने कहा- मेरे लाल, तू दूसरों के किसी प्रकार के अमंगल की कामना मत कर। जो मनुष्य दूसरों को दु:ख देता है उसे स्वयं ही उसका फल भोगना पड़ता है। जो दूसरों के अमंगल की कामना करता है उसका ही अमंगल होता है। सुरुचि ने जो कुछ कहा है, वह ठीक ही है। मुझ मन्दभागिनी की कोख से तू पैदा हुआ है और मेरी छाती के

दूध से पला हुआ है। सुरुचि के रोकने से राज्य की ओर से तुझे स्वल्प भी दूध सुलभ न था। महाराज मुझे अपनी विवाहित पत्नी भी कहने में लजाते हैं। ध्रुव बोले- क्या आप मेरी माँ कहलाने के योग्य नहीं है। माता सुरुचि में ऐसे कौनसे सद्गुण विद्यमान है जो आपमें नहीं है? किन सद्गुणों के अभिमान की वजह से सुरूचि ने आपका अपमान किया।

बेटा, सुरुचि ने तेरी सौतेली माँ होने पर भी बात बिलकुल ठीक ही कही है अत: यदि राजकुमार उत्तम के समान राज-सिंहासन पर बैठना चाहता है तो द्वेष-भाव छोड़कर उसी का पालन कर। बस, भगवान श्रीकृष्ण के चरण-कमल की आराधना करके ही तेरे परदादा ब्रह्माजी ने वह सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त किया है, जो मन और प्राणों को वश में करनेवाले मुनियों के लिये भी वन्दनीय है। इसी प्रकार तेरे दादा स्वायम्भुव मनु ने भी बड़ी-बड़ी दक्षिणाओं वाले यज्ञों के द्वारा अनन्य भाव से उन्हीं भगवान की आराधना की थी। इसके फलस्वरूप दूसरों के लिये अति दुर्लभ लौकिक और पारलौकिक सुखों को भोग कर उन्होंने मोक्ष-पद को प्राप्त किया। पुत्र के रुदन का कारण सुनकर माता कहने लगी- बेटा। तेरी सौतेली माता ने सत्य ही बात कही है। यदि तू उत्तम के समान राजसिंहासन पर बैठना चाहता है तो ईर्ष्या द्वेष छोड़कर उसके वचनों का पालन कर- अधोक्षज भगवान के चरण कमलों की उपासना कर। उन्हीं मुमुक्षुओं के अनन्यशरण, सबके स्वामी लक्ष्मीपति भक्तवत्सल भगवान की शरण में जा। उन्हीं की शरण में जाने से तेरे सभी दु:ख दूर हो सकते हैं, उन्हीं की प्रसन्नता प्राप्त होने पर तेरी समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण हो सकती हैं।

जननी जाने तो भक्तजन के दाता के सूर। नहीं तो अच्छी बाँझ रह, क्यों व्यर्थ गंवाओं नूर।।

जन्म-मृत्यु के चक्र से छूटने की इच्छावाले मुमुक्षु-जन निरन्तर उन्हीं के चरण-कमल के मार्ग का अनुसरण करते हैं। तू अपने धर्म का पालन करते हुए उन्हीं भगवान का स्मरण कर। जिस भारत वर्ष में माताएँ अपने-अपने बालकों को ब्रह्मज्ञान, देशरक्षा, धर्मरक्षा की शिक्षा देती थी, विद्वेष की अग्नि से सुरक्षित रहने की कला सिखाती थी आज उसी भारत में उदरूपूर्ति की विद्या सिखाई जाती है।

सूत समझायो मातु कृष्ण दुख दूरि करिङ्गे। वे अनाथ के नाथ शोक सन्ताप हरिङ्गे।।
कमलनयन बिनु नाहिँ तापत्रय हरिवेबारो। दीनबन्धु बिनु वत्स। हमारो कौन सहारो।।
जो समृद्धि सुख, परम पद, चाहो तो हरिपद गहहु। रटि रसना हरि रूप दृग, सुमिरि चरित मधुबन बसहु।।

बहुत विचार करने पर भी, विशाल लोचनवाले उन भगवान को छोड़कर किसी दूसरे को तेरा दु:ख काटनेवाला नहीं देख पा रही हूँ। ब्रह्मादि बड़े-बड़े देवता जिसकी खोज किया करते हैं वह लक्ष्मी भी हाथ में पूजा का कमल लेकर निरन्तर उन्हीं भगवान का अनुसरण किया करती हैं अत: अपने कष्ट के निवारण के लिये तू उन्हीं भगवान की शरण ग्रहण कर। संसार में जो कुछ भी लोग प्राप्त करते हैं अपने प्रारब्ध से प्राप्त करते हैं।

ध्रुव की माता सुनीति अपने प्रिय पुत्र को समझाती हुई कहती हैं- पुत्र, मुझे तो उन पद्मपलाशलोचन श्रीहरि के अतिरिक्त तेरे दु:ख को दूर करनेवाला दूसरा कोई दिखाई देता नहीं। जिस लक्ष्मी को ब्रह्मादिक देवता ढूँढते रहते हैं, वह लक्ष्मीजी भी जिन्हें खोजती फिरती हैं, उनसे श्रेष्ठ और कौन होगा।

उत्तम था बैठा पिता की गोद मोद भरा। मैंने भी चाहा चलूं बैठूं सन्तोष से।।
बीच ही में रोक मुझे छीन अधिकार मेरा। बोल उठी सौत, तेरी बातें कुरोष से।।
चल रे अभागे हट बैठो नहिं नृप की गोद। खोया अधिकार तैनें एक इसी दोष से।।
पाया है जन्म तुच्छ जननी के गर्भ द्वारा। यदि बैठना यहां चाहो तो जन्मों मेरी कोख से।।

ध्रुव बोले- माता। छोटी माँ के वचन की जितनी चोट है, उससे ज्यादा चोट तो इस बात की है कि पिताजी कुछ नहीं बोले।

काठ की ओट से काठ बचे नहीं, आग लगे जब दोनों को जारे।
चूहा की ओट से चूछा बचे नहीं, बिल्ली तरे दब दोनों को मारे।।
सियार की ओट से सियारी बचे नहीं, सिंह पड़े तब दोनूँ को फाड़े।
किसी और की ओट से जीव बचे नहीं प्रभु ओट बचे यह वेद पुकारे।।

दु:खी की ओट लेकर दुखी सुखी हो जायेगा? किसी पतित की ओट लेकर क्या कोई पतित उत्थान की ओर चला जायेगा। संसार सारा दु:खी है। संसार से क्या सहारा मांगना। संसार बना ही है गुण दोष की मिलावट से। कुम्हार केवल मिट्टी से या केवल पानी से बर्तन नहीं बना सकता। मिट्टी और पानी को मिलाकर ही बर्तन बनेगा। इसीलिये संसार में अच्छा बुरा होता ही रहता है। पुत्र उस जगतपिता का आश्रय लो। ब्रह्माने गुण और दोष दोनों को मिलाकर सृष्टि की रचना की है। अपना कल्याण चाहनेवाले को दोष छोड़कर गुणों को स्वीकार करना चाहिए। माता ने ध्रुव को समझाया और कहा- **यों तो दर हैं जमाने में लाखों, लेकिन उसकी बराबरी नहीं है।** प्रभु के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। **हां शर्त यह कर लो मैं उठ जाऊंगा दर से। अपना सा दयासागर कोई और बता दो।** उसकी गोद में बैठ जिसकी गोद में बैठने के बाद संसार में प्रत्यावर्तन की सम्भावना नहीं रहती। उन्हीं के चरणों का आश्रय ले। जिसमें अपना कल्याण हो उसी मार्ग पर चल। तुझे जीवन में कभी दु:ख नहीं होगा। तू कभी विचलित नहीं होगा। माता ने कहा-

सच्चे सम्बन्धि श्री हरि है हमारे लाल, लालक प्रतिपालक पिता समस्त लोक के।
उनही की गोद एक निर्भय निष्पक्ष जामे, सबको बिठावें दृश्य करुणा बिलोकिके।
संकर विरिंचि सनकादि जिनकी आशा करें, ध्यावैं सुख पावैं निजमन की गति रोक के।
तब सुख अभिलाषों तो उपासो प्रभु पद कंज, करुणा करैया जो हरैया भय शोक के।।
तुम्हें अगर जग ने ठुकराया। समझो अब प्रभु ने अपनाया।।
कृपा जब करते हैं भगवान, तो उसकी बहुत बड़ी पहचान।
छीन लेते सब धन सम्मान। शीश पर पड़े विपत्ति महान्।।

पुत्र। वे सर्वान्तर्यामी प्रभु तेरी सर्वत्र रक्षा करें। वन के देवता और देवियाँ तेरे ऊपर वात्सल्य स्नेह प्रकट करें। भगवान भुवनभास्कर तेरे लिये शीतल किरणोंवाले हों, भगवान निशानाथ अपनी अमृतमयी किरणों से तेरा सर्वदा सिंचन करें। भूदेवी तेरे लिये सुकोमल हो जायँ, बेटा। मैं उन्हीं सर्वान्तर्यामी प्रभु की गोद में तुम्हें सौपतीं हूँ जो चींटी से लेकर हाथी तक सभी जीवों का योगक्षेम चलाते हैं। वत्स। जाओ तप में मन लगाओ। आहार निद्रा को जीत लेना। प्रमाद को कभी पास भी न फटकने देना। आलस्य को दूर से ही भगा देना। एकाग्र होकर सावधानी से सचेष्ट होकर उन सर्वान्तर्यामी के ध्यान में लीन हो जाओ। वे अवश्य ही शीघ्र-से-शीघ्र तेरे ऊपर कृपा करेंगे।

भगवान की कृपा का लक्षण है कि जिस पर कृपा करते हैं उसकी लौकिक सुख सम्पत्ति सब छीन लेते हैं। दुनिया से ठोकर दिलाते हैं, जब तक जगत से प्यार मिलता है तब तक जीव को जगदीश की याद नहीं आती, जगत् की ठोकर लगने के बाद ही जगदीश अपनी ओर खींचते हैं। विभीषण को प्रभु ने अपनाया जब रावण ने लात मारकर ठुकरा दिया। सुग्रीव ने प्रभु को अपनाया जब उसके सगे भाई बाली ने उसे ठुकरा दिया। ध्रुव को प्रभु ने अपनाया जब उसकी सौतेली मां ने ठोकर मारी। पाण्डवों को प्रभु ने अपनाया जब कौरवों ने उन्हें ठोकर मारी। कलियुग में नरसीजी को ठाकुर ने अपनाया जब

बड़े भाई और भौजाई ने कुत्ते की तरह दुत्कार कर घर से निकाल दिया। बिल्वमंगलको प्रभु ने अपनाया जब चिन्तामणि वेश्या ने फटकार दिया दुत्कार दिया। तुलसी को अपनाया जब नरहरी गुरु ने उन्हें अपनाया। सब कहने लग गये कि इसकी छाया से अमंगल होगा। जगत में मत भटको। उस जगदीश का दरवाजा खटखटाओ।

खोकर आशा जगत की होकर के अति दीन। धोकर मन प्रेमाश्रु में हो प्रभुपद में लीन।।
बनो अगर तुम दीनहीन तो मिले दीनबन्धु भगवान। पायो अचल लोक ध्रुवलोक भक्त ध्रुव धरि के हरि को ध्यान।।
व्यास दीनता के सुखहिं कहा जाने मतिमन्द। दीन भये ते मिलत हैं, दीनबन्धु सुखकन्द।।
तुलसी लघुता बड़ेन की इहै बड़प्पन बात। छोटे बछड़ा पय पिये, बड़े भये भूस खात।।
बड़े-बड़े भोगे विपत्ति, छोटे दु:ख ते दूर। तारे न्यारे होइ रहे ग्रहण चन्द्र और सूर्य।।
लघुता ते प्रभुता मिले और प्रभुता ते प्रभु दूर। चींटी को शक्कर मिले, हाथी के शिर धूर।।
ध्रुव के नेत्र सजल हो आये। बोला बालक धर्म निभाये।।
मुझे मां दी तूने सच्ची सीख। न लेनी मुझे किसी से भीख। रहा मोहिं कर्मवीर पथ दीख।।
उत्तम ही भोगे सकल पितृभक्त धनधाम। कर्मवीर ध्रुव को नहीं अब उससे कुछ काम।
बैठूं अचल गोद निर्भय हो सदा सहित सम्मान।।

मैत्रेयजी कहते हैं- विदुरजी, माता के कल्याणकारी वचन को सुनकर, अपने आप चित्त को ढाँढस बँधाकर ध्रुव पिता के नगर से तुरन्त निकल गये।

निकल चला वह बालक वन को, जगतपिता के आराधन को।।
मिल गये नारद मुनि मग में, गिरा ध्रुव मुनिवर के पग में। गुरुजी अब दीजै ज्ञान हमें।।
यदि प्रभु का नाम दयानिधि है, तो दया वे करेंगे कभी न कभी।
दु:ख हारि हरि दु:खिया जनकी, दु:ख दूर करेंगे कभी न कभी।।
बिनु गुरु भव निधि तरइ न कोई, जो विरंञ्चि शंकर सम होई।।

दुखियों का दु:खदूर करते रहना ही नारदजी का व्रत है। जीव मात्र के सुहृद हैं। सभी के अकारण बन्धु हैं। ध्रुव को दुखी देखकर ब्रह्मलोक से दौड़े आये।

मार्ग में प्रभु की कृपा से ध्रुव की नारद जी से भेंट हुई। नारदजी को बहुत लोग घर उजाड़ने वाला बाबा कहते हैं, कलह करवा देते हैं। ध्रुव के उजड़े हुए घर को यदि बसाने का श्रेय है तो नारदजीको है। आज नारदजीने देखा- कि पांच वर्ष की अवस्था वाला यह राजकुमार ध्रुव दु:खी होकर आंसू भरे नेत्रों से राजासे विमुख होकर जंगल में जा रहा है। बिना गुरु के कोई भवसागर से पार नहीं हो सकता। ब्रह्मा और शंकर के समान भी कोई ऐश्वर्यशाली है, तो भी गुरु श्रेष्ठ नहीं मिला तो परमात्मा नहीं मिल सकता। गुरु तो श्रेष्ठ होना ही चाहिए, गुरु निर्मल अन्त:करण वाला मिलना ही चाहिये। ग कहते हैं अंधकार को, रु कहते है प्रकाश को। हमारे हृदय से अज्ञान रूपी अंधकार निकालकर जो ज्ञान का प्रकाश भर दे, उसी का नाम गुरु है।

ध्रुव ने संस्कारवश मुनि को प्रणाम किया। नारद ने ध्रुव के मस्तक पर अपना पापनाशक हाथ फेरते हुए मन-ही-मन विस्मित होकर कहा- अहो, क्षत्रियों का कैसा अद्भुत तेज हैं वे स्वल्प भी अपमान सहन नहीं कर सकते। यह अभी नन्हा सा बच्चा है तो भी इसके हृदय में सौतेली माता के कटु वचन घर कर गये हैं। उन्होंने कहा- बेटा, अभी तो यह तुम्हारी खेलने-खाने की आयु है अत: तुम्हें मान-अपमान का विचार नहीं करना चाहिये। उन्होंने सिर को हिला-डुलाकर ध्रुव के

मन को टटोलते हुए कहा- बेटा, अभी तो तू बच्चा है। खेलने-कूदने में ही मस्त रहने की यह तेरी अवस्था हैं हम नहीं समझते कि इस उम्र में किसी बात से तेरा सम्मान या अपमान हो सकता है। भगवान की आराधना बड़ी कठिन है। भविष्य में समय आने पर तुम उनकी आराधना करना। भाग्यवश सुख-दु:ख जो कुछ आ पड़े उसे धैर्य के साथ सहना चाहिये, उससे विचलित होना समुचित नहीं है। क्या तपस्या की नियमावली जानते हो? अभी तो तुम्हें निर्द्वन्द्व होकर खेलना और खाना चाहिए। लौट जाओ अभी तुम्हारे लिये मानापमानकी कोई बात नहीं है। सुख-दु:ख तो अपने कर्मसे रहता है। बिना ईश्वरकी अनुकूलताके फल नहीं मिलता। मनुष्यको संतोष करना चाहिए। ईश्वरकी आराधना बहुत मुश्किल है। बड़े-बड़े ऋषियोंको भी जन्ममें ईश्वरकी प्राप्ति होती है। तुम्हारा यह दुराग्रह निष्फल है। जैसे ईश्वर रक्खे उसीमें स्थित हो जाओ।

ज्यों ही आगे बढ़े मिले मुनि नारद ज्ञानी। जग उपकारक देव बात ध्रुव मनकी जानी।।
अघहर कर सिरपै धर्‍यो, बोले बेटा। बाल तू। अरे, मान अपमान का? क्रीड़ासक्त कुमार तू।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। ध्रुवजी जो करना चाहते हैं उनकी उस इच्छा को जानकर तथा ध्रुवजी का समाचार सुनकर नारदजी रास्ते में उसके समीप आये और अघहारी करकमल उसके सिर पर फेरते हुए विस्मित होकर उससे बोले- बेटा। अभी तेरा मान अपमान क्या? हम तो ऐसा समझते हैं कि अभी तू बच्चा है खेलने खाने की तेरी अवस्था है।

ध्रुव बोला- **बार बार आती है मुझको याद बचपन तेरी। गया ले गया तू जीवन की सबसे मस्त खुशी मेरी।।**
चिन्ता रहित खेलना खाना और फिरना निर्भय स्वच्छन्द। कैसे भूला जा सकता है बचपन का अतुलित आनन्द।।

ध्रुव बोला- माँ ने कहा है जब बालक जन्म लेता है उसके दाँत नहीं होते। दूध की व्यवस्था परमात्मा करता है। बच्चा जन्म लेता है बाद में, मातृ स्तनों में दूध आ जाता है पहले। उस परमात्मा को सबकी चिन्ता है। वही अन्न की व्यवस्था करेगा। अपने से अधिक गुणशाली को देखकर प्रसन्न होना चाहिये। गुणहीन को देखकर उस पर दया करनी चाहिये। उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। अपने समान-शील व्यक्ति को पाकर उससे मित्रता करनी चाहिये, न कि स्पर्धा। ऐसा आचरण करनेवाला व्यक्ति तापों से व्यथित नहीं होता। मैं क्षत्रिय पुत्र हूँ, अब ईश्वर का दर्शन किये बिना अपने घर नहीं लौटूँगा। मुझे घोर क्षत्रियस्वभाव प्राप्त हुआ है, अतएव मुझमें विनयका प्राय: अभाव है।

भगवान के सच्चे भक्तों को पग पग पै सहारा मिलता है।
किस ओर चलो किस ओर बचो यह आप इशारा मिलता है।।
जीवन में अगर तूफान उठे लहरों में नैय्या फंस जाये,
यदि राम नाम का सम्बल हो तो तुरत किनारा मिलता है।।
ना धन जन बल ना साथी हो, चाहे दुश्मन सब संसार बने,
जब सब द्वारे हो जाय बन्द तब हरि का द्वारा खुलता है।।
प्रह्लाद सरिस जो निश्चिल हो, शबरी की तरह जो व्याकुल हो,
ध्रुव सा दृढ़ निश्चय हो जिसका उसको नन्द दुलारा मिलता है।।

ध्रुव ने नारद के वचन को सुनकर विनम्रता से कहा- आप नारद नहीं हो सकते आप कैसे नारद हैं मैंने तो सुना नारद बाबा तो लोगों को भजन का पाठ पढ़ाते हैं, वन में जाने की राय देते हैं। आप ने शान्ति की जो बातें कही हैं वे संन्यासियों के लिये हैं किन्तु मेरे जैसे लोगों की दृष्टि यहाँ तक नहीं पहुँच पाती। मैं क्षत्रिय हूँ। सुरुचि के दुर्वचनरूपी बाणों से छलनी हुए मेरे हृदय में

आप का यह उपदेश एक क्षण के लिये भी नहीं ठहरता है। ब्रह्मन, मैं उस पद पर अधिकार करना चाहता हूँ जो त्रिलोकी में सबसे श्रेष्ठ है तथा जिस पर मेरे बाप-दादे और दूसरे कोई भी आरूढ नहीं हो सके हैं। आप मुझे उसी की प्राप्ति का मार्ग बतलाइये। गुरुदेव मैंने भक्ति के मार्ग में पहला कदम ही रखा है, मुझे भक्ति का उपदेश करें कि मैं कैसे प्रभु की आराधना करूं? मेरी माँ कहती है एकबार उसे नारद मिल जाये वे उसे भगवान से मिलाकर ही मानते हैं। आप संसार के कल्याण के लिए सूर्य की भाँति वीणा बजाते हुए सतत भ्रमण किया करते हैं। आप मुझे वही उपदेश देने की कृपा करें जिससे मैं भगवान को प्राप्त कर सकूँ। ध्रुव को पूरी तरह बजाकर देख लिया कि यह तो दृढ़ निश्चयी मालूम पड़ता है, कच्चा घड़ा नहीं है।

फूटे घड़े में जल ठहरता नहीं, बह जाता है। कच्चे घडे में जल भर देने से कुछ देर जल ठहर तो जाता है, किन्तु कुछ ही देर में घड़ा भी फूट जाता है, जल भी बह जाता है। अत: चतुर पुरुष सत्पात्र की परीक्षा करके उसे भली-भाँति ठोक बजाकर देख लेते हैं, तब पानी भरते हैं। सुन्दर निश्छिद्र पके पात्र में जल भरने से वह बहुत दिन तक उसमें बना रहता है। सबकी तृषा को शान्त करता है, जीवन को धारण कराता है। इसीलिये सद्गुरु शिक्षा देने के पूर्व सत्शिष्य की भाँति-भाँति से परीक्षा करते हैं। संसारी विषयों की बड़ाई करके उसके हृदय को टटोलते हैं, इसमें कहीं इनके लिये छिद्र तो नहीं है। प्रेमपूर्वक उसे ठोक-बजाकर हिलाडुलाकर सब ओरसे देख लेते हैं। इसमें कच्चाई तो नहीं हैं। जैसे खूँटे को गाड़कर उसे बार-बार हिला-हिलाकर देख लेते हैं, दृढ़ता से गड़ा या नहीं। हिलता तो नहीं है। जब उसे भली-भाँति दृढ़ समझते हैं तब उसमें पशु को बाँधकर निरोध करते हैं।

नारदजी बोले- बेटा जमें जीव भाग्यतें दुखसुख पावे। जा घर अपने लौटि व्यर्थ च्यौं धक्का खावें।।
ध्रुव बोले- हे विभो। बात बैठे नहिँ मनमें। वाग्बाण बहु विधे विमाताके मेरे तनमें।।
घर लौटूँगो तबहिँ जब, सर्वोत्तम पद पाऊँगो। नहिँ तो मुनिवर। घोर तप, करत करत मरि जाउंगो।।

नारद ने कहा- बेटा, तेरी माता सुनीति ने तुझे जो कुछ बतलाया है, वही तेरे लिये कल्याण का सर्वोत्तम मार्ग है। भगवान वासुदेव ही कल्याण के सबसे बड़े साधक हैं अत: एकाग्र चित्त से तू उन्हीं का भजन करो।

बिना भगवान वासुदेव की शरण में गये, संसार में आज तक न किसी का कल्याण हुआ है न होगा। समस्त दुखों को दूर करने वाले दयासागर भगवान मधुसूदन की पाद परिचर्या से ही परमार्थ का पथ परिष्कृत हो सकताहै, अत: तुम अपने को प्रभु पादपद्मों में समर्पित कर दो। उन्हीं अखिलेश को आत्मसमर्पण करके तुम समस्त आधिव्याधियों से मुक्त हो जाओगे। उनके नाम का निरन्तर गान करो, उनके चारु चरित्रों का चिन्तन करो, उनके भुवन मोहन रूप का ध्यान करो। कृपालु कृष्ण तुम्हारे ऊपर कृपा की दृष्टि करेंगे। भक्त भयहारी भगवान तुम्हारे भय शोक आदि को दूर कर देंगे। चराचर में समान भाव से बसनेवाले वासुदेव तुम्हारी समस्त वासनाओं का नाश कर देंगे। जीव मात्र का एक मात्र आश्रय व्रजमण्डल ही है। समस्त जीव ब्रज की ही ओर बढ़ रहे हैं। जिसने व्रजमण्डल का वास पा लिया। उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया, उसका जीवन सफल होगा। यह भूमि इसीलिये भाग्यशाली है कि उसके ऊपर ८४ कोस का ब्रजमण्डल है। वसुन्धरा इसे ही अपना सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य समझती है कि व्रज में उसके ऊपर परात्पर प्रभु के पादपद्म पड़े थे। उसी के ऊपर व्रज, अंकुश, ध्वजा आदि चिन्हों से चिन्हित नंगे चरण ही गौओं के पीछे-पीछे पधारे थे। संसार में सभी के लिये साधन और सिद्धि का स्थान रसमयी भूमि व्रजमण्डल ही है, जिसकी धूलि के लिये ब्रह्मादिक देवता सदा तरसते रहते हैं। उद्धव जैसे परमज्ञानी भक्त जहाँ गुल्म लता बनकर वास करने में अपना सौभाग्य समझते हैं। मनु वंशावतंस कुमार। तुम भगवान की परम पुण्यमयी क्रीड़ास्थली मथुरा पुरी में जाओ। मधुवन में भगवती कालिन्दी के कमनीय कूल पर कालक्षेप करते हुए कृष्ण-कृष्ण रटते रहो। जितना घोर तप कर सकते हो करो। भगवान तो सर्वत्र ही विराजमान हैं, किन्तु ब्रज में वे साक्षात् रसरूप होकर नित्य

निवास करते हैं गोप, गोपी, गौ, ग्वालों को लिये हुए सर्वदा क्रीड़ा करते हैं।

मुनि प्रसन्न अति भये देखि दृढ़ता बालककी। बोले- बेटा बात मातुकी अति ही हितकी।।
सब रोगनिकी एक औषधी हरि-पद-सेवन। जा कालिन्दी कूल धाम जहँ मनहर मधुबन।।
गोबरघन गिरिवर जहाँ, कृष्ण करें क्रीड़ा कलित। ललित कुञ्ज झुकि झूमिकें, चूमें हरिपद-रज सतत।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। नारदजी, ध्रुवजी की दृढ़ता देखकर बोले- देखो बच्चा। तेरी माँ ने जो तुझे पन्था बताई है यथार्थ में यही तेरे लिये कल्याणकारक है। तू भगवान वासुदेव में चित्त लगाकर उन्हीं का भजन कर। जो पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप अपने कल्याण का इच्छुक हो, उसके लिये इनकी प्राप्ति का कारण एकमात्र श्रीहरि के पाद पद्मों का सेवन ही है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- ये चार पुरुषार्थ हैं। जो व्यक्ति इनमें से किसी की भी अभिलाषा करता हो तो उसे चाहिये कि वह भगवान श्रीहरि के चरण-कमल का सेवन करे। नारद ने सोचा- एक छोटे से बालक की ऐसी निष्ठा परमात्माके चरणों मे देखकर नारद प्रसन्न हुए और बोले- तो बेटा, यमुना के पवित्र तट मधुवन (वृन्दावन) में तुम चले जाओ। वहाँ भगवान श्रीहरि का नित्य निवास रहता है। वहाँ श्री यमुना जी के पावन जल में तीनों समय स्नान कर, यम-नियमादि साधनों से मन को वश में करके, भगवान की मूर्ति को हृदय में धारण कर, द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करो। भगवान मन्त्र मूर्ति है। उससे भगवान्‌की मूर्ति बनती जायेगी। उसी मन्त्रसे पूजा करो। इतिहास, पुराण, वेद-शास्त्र विधि के बिना, मनमुखी भक्ति जो हम करते हैं, उससे उत्पात खड़े होते हैं, भगवान कभी नहीं मिलते। किस देश और किस कालमें कौन वस्तु उपयोगी है- इसका विचार करके बुद्धिमान पुरुषको इस मन्त्रके द्वारा तरह-तरहकी सामग्रियोंसें भगवान्‌की द्रव्यमयी पूजा करनी चाहिये। प्रभुका पूजन विशुद्ध जल, पुष्पमाला, जंगली मूल आदि फलादि, पूजामें विहित दूर्वादि अंकुर, वनमें ही प्राप्त होनेवाले वल्कल वस्त्र और उनकी प्रेयसी तुलसीसे करना चाहिये।

तुलसी- तुलसी भगवान को बहुत प्यारी है। उसपर भगवान मुग्ध रहते हैं। एक बार भगवान्‌का तुलसी-प्रेम देखकर किसीको क्रोध आ गया कि तुम हमारा नाम नहीं लेते, तुलसीका नाम ही लेते रहते हो तो जाओ, यह तुलसी पौधा हो जाये। भगवानने कहा कि अच्छा, यह पौधा होकर हरी-हरी रहेगी और मैं पत्थर हो जाता हूँ। भगवान काले-काले शालिग्राम बन गये और उनपर तुलसी चढ़ने लगी।

आठ पहर चौंसठों घड़ी, ठाकुरपर ठकुराइन चढ़ी।

इसीलिए तुलसीकी बराबरीकी दूसरी कोई चीज नहीं है। संसारमें कोई व्यक्ति ऐसा नियम बना ले कि मैं अमुकके बिना भोजन नहीं करूँगा, जब भोजन करूँगा, उसके साथ ही करूँगा तो उसका कितना प्रेम माना जायेगा उस व्यक्तिके प्रति। इसी तरह समझो भगवान विष्णुने बिना तुलसीके भोजन नहीं करनेका नियम बना लिया है।

यदि शिला आदिकी मूर्ति मिल सके तो उसमें, नहीं तो पृथ्वी या जल आदिमें ही भगवान्‌की पूजा करे। सर्वदा संयतचित्त, मननशील, शान्त और मौन रहे तथा जंगली फल-मूलादिका परिमित आहार करे। इसके सिवा पुण्यकीर्ति श्रीहरि अपनी अनिर्वचनीया मायाके द्वारा अपनी ही इच्छासे अवतार लेकर जो-जो मनोहर चरित्र करनेवाले हैं, उनका मन-ही-मन चिन्तन करता रहे। प्रभुकी पूजाके लिये जिन-जिन उपचारोंका विधान किया गया है, उन्हें मन्त्रमूर्ति श्रीहरिको द्वादशाक्षर मन्त्रके द्वारा ही अर्पण करे। देखो वत्स। एकाग्र चित्त से भगवान की मनोहर मूर्ति का इस प्रकार ध्यान करों, मानो वे मन्द-मन्द मुस्कराते हुए मेरी ओर निहार रहे हैं। इस प्रकार वरदानियों में श्रेष्ठ श्यामसुन्दर का एकाग्र चित्त से

ध्यान करे। इस प्रकार उन मंगलमय प्रभु का ध्यान करते-करते मन अत्यंत ही शीघ्र परमानन्द में निमग्न हो जाता है और ऐसा तल्लीन हो जाता है कि फिर लौटकर नहीं आता। तन्मय हो जाता है। भगवान की पहिले एक भावमयी अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त मनोहर मनोमयी मूर्ति बनानी चाहिये, फिर एकाग्रचित्त से सभी अंगों का क्रमश: शनै:-शनै: ध्यान करना चाहिये। जब एक अंग में भली भांति मन टिक जाय तव दूसरे अंग पर मन को ले जाना चाहिये। ध्यान में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये व्यग्रता करने से ध्यान निष्फल हो जाता है। भगवान तो कल्पतरु हैं, जिस भावना से भी उन्हें भजो उसी भावना को वे पूरी करते हैं। यदि धन की इच्छा से उनका पूजन करो तो वे जितना चाहो धन देंगे। यदि धर्म की इच्छा से करो तो धार्मिक बना देंगे। यदि काम की इच्छा से पूजो तो समस्त कामनाओं को प्रदान करेंगे। स्वर्गीय भोगों को देंगे। यदि मोक्ष की इच्छा से भजो तो वे संसारी आवागमन से छुड़ाकर मुक्त कर देंगे। भगवान को प्रसन्न करके जिसने संसारी भोगों की याचना की वह तो मानों भगवान की माया के द्वारा ठगा गया।

मुनि ने भक्ति मार्ग दिखलाया। द्वादश अक्षर मन्त्र बताया।।
भजन है साधन हरि हैं साध्य। जगत के एकमात्र आराध्य। मिलेंगे प्रेम भक्ति से बाध्य।।

यह कहकर देवर्षि नारद ने ध्रुव को मन्त्र का उपदेश दिया, हरिओम भगवति वासुदेवाय नम: भगवान के मधुर मनोहर रूप का वर्णन किया और पूजा की सारी विधि बतलाई। ध्रुव ने यह सोचा कि कहीं नारद यह न कहें कि -बेटा, तुम हमारे आश्रम पर चलकर रहो। वहीं हरि की आराधना करना अत: ज्यों ही नारद नें अपनी बात समाप्त की, ध्रुव नें झटपट उनकी परिक्रमा की, प्रणाम किया और चल पड़े श्रीहरि के चरण-चिन्हों से अलंकृत वृन्दावन के लिये।

सर्वान्तर्यामी प्रभु का सर्वत्र प्रभाव होता है। सगुण साकार भगवान के चार रूप माने हैं। एक तो भगवान के नाम, भगवान के रूप, भगवान की लीलाएँ और भगवान के धाम। इन चारों में तत्त्वत: कोई भेद नहीं। चार में से किसी एक का भी निष्ठापूर्वक आश्रय ग्रहण करने से जीव संसार-सागर से पार हो सकता है। श्रीमथुरा, भगवान का प्रधान धाम हैं, इसलिये नारदजी ने उन्हें भेजा कि वहाँ नाम स्मरण, रूपचिन्तन, लीलाकथन, श्रवण न भी हो तो धाम में वास तो होगा, धाम का वास भी अनन्त जन्मों के पुण्यों से प्राप्त होता है।

शिक्षा दीक्षा पाइ गमन की आज्ञा लीन्हीं। अति प्रसन्न ध्रुव भये दण्डवत चरननि कीन्हीं।।
मुनि सिर पर कर धर्‌यो दई आज्ञा हिय हरषे। दृढ़प्रतिज्ञ ह्वै चले सुमन नभतें बहु बरषे।।
करि प्रदक्षिणा प्रेमतें, बार-बार विनती करी। ध्रुव तप हित वन चलि दये, तनु पुलकित सुमिरत हरी।।
गुरु की करी परिक्रमा चरणन में सिर नाय। करने हरि की खोज ध्रुव मधुवन पहुंचे आय।।

ध्रुवजी मधुवन में आये। मथुरा से थोड़ा पश्चिम माहौली ग्राम में धुव टीला बड़ा प्रख्यात स्थान है। ध्रुव का तपस्या के लिये चले आने से उत्तानपाद के राजमहल में शोक छा गया।

इधर राजमहलों के भीतर छाया शोक महान। पायो अचल लोक ध्रुवलोक। भक्त ध्रुव धरि के हरि को ध्यान।।
नृप उत्तानपाद अब रोते। अश्रुबिन्दुओं से मुँह धोते। हृदय में भीषण पश्चात्ताप।
सुलगता जाता अपने आप। तुझे धिक्कार अभागे बाप।।
अधम नारी के मोह बस कैसा किया कुकर्म। खोया ध्रुव सा लाल क्या यही पिता का धर्म।।

लोग तो कुत्ते बिल्ली के बच्चों को भी प्यार करते हैं। यह तो राजा का अपना बच्चा था। उस अधम नारी के मोह में

पितृत्व को कलंकित करनेवाला राजाने कैसा दुष्कर्म कर दिया। राजा अपने आपको धिक्कार रहे थे।

इतने पर भी हाय न फटता दुष्ट हृदय पाषाण।

ध्रुव के चले जाने पर नारदजी वहाँ से राजा उत्तानपाद के भवन में गये। राजा उत्तानपाद चिंतित था। किसीकी योग्यता-पात्रता अनुभव तो तब मालूम पड़ता है जब वह पुरुष अपनी दृष्टि से विलीन हो जाता है। देवर्षि नारद को आता देखकर राजा नें उनकी अगवानी की, सादर आसन पर बैठाया और उनकी विधिवत् पूजा। कुशल-प्रश्न के बाद नारद ने राजा के मुख पर फैली हुई उनकी उदासी का कारण पूछा। इस पर दु:खित राजा ने कहा- भगवन मैं बड़ा ही स्त्री-लम्पट और निर्दयी हूँ। मैंने अपने पाँच वर्ष के नन्हें से बच्चे को घर से निकाल दिया। मुनिवर, वह बड़ा ही बुद्धिमान था। उसका कमल-सा मुख भूख से कुम्हला गया होगा। वह थक कर कहीं रास्ते में पड़ गया होगा। ब्रह्मन्, उस असहाय बच्चे को वन में कहीं भेड़िया न खा जाँय। मैं कैसा स्त्री का गुलाम हूँ। मेरी कुटिलता तो देखिये- वह बालक प्रेमवश मेरी गोद में चढ़ना चाहता था, किन्तु मुझ दुष्ट ने उसका तनिक भी आदर नहीं किया। अब मैं क्या करूं? कहाँ जाऊँ, उसे कैसे पाऊं?

गांठन में पैसा नहीं मांगने में सकुचाय। ताके पीछे हरि फिरे कहिं भूखा न रह जाय।।

जो विश्वम्भर विश्व भर का पोषण करता है, वो अपने भक्तोंको कैसे ठुकरायेगा। परमात्मा उसकी व्यवस्था करेंगे। जिसे अभी संसार में रहकर प्रभु की सेवा करनी है उसे आजतक दुनिया से कोई नहीं हटा सका। अभी जिसे दुनिया में रहना है उसे कोई मार नहीं सकता और जिसे जाना है, जिसकी आयु पूरी हो गयी उसे कोई बचा नहीं सकता।

राजा के दु:ख भरे वचनों को सुनकर नारदजी ने कहा- राजन्, आप किसीको अपनी गोद से हटा सकते हो, राज्य से निर्वासित कर सकते हो लेकिन परमात्मा की गोद सबके लिये है। वे अपनी गोद से, अपने राज्य से भला किसे हटा सकते हैं? भक्तवत्सल भगवान सबकी इच्छा पूर्ण करते है। तुम अपने बालक की चिन्ता मत करो। इस समय उसकी रक्षा स्वयं भगवान कर रहे हैं। तुम्हें उसके प्रभाव का पता नहीं है। शीघ्र ही उसका यश सारे संसार में फैल जायेगा। आपका पुत्र ध्रुव उन्हीं दयासिन्धु दीनानाथ नारायण के गोद की लालसा लिये एकान्त निष्ठा के साथ तपस्या में लीन है। वह भगवान को प्रसन्न कर शीघ्र ही तुम्हारे पास लौट आयेगा और तुम्हारी कीर्ति को संसार में फैलायेगा। यह कहकर नारद जी चले गये।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुर। जगतपति महाराज उत्तानपाद देवर्षि नारदजी के मुखसे यह बात सुनकर राजलक्ष्मी काअनादर करके दिन-रात्रि अपने पुत्र ध्रुव की ही चिन्ता में निमग्न रहने लगे।

हरि की अविचल भक्ति से कुल की कीर्ति बढ़ाय? होकर पूर्णकाम ध्रुव शीघ्र मिलेगा आय।।

ध्रुव नहीं शिशु सामान्य इसे तुम पुरुष अलौकिक जान। इसे तुम जानो भक्त महान्।

पायो अचल लोक ध्रुव लोक, भक्त ध्रुव धरि के हरि को ध्यान।।

राजा उत्तानपाद राजलक्ष्मी का त्याग कर दिन-रात पुत्र का ही चिन्तन करने लगे। भगवान के भक्त का चिन्तन व्यक्ति के सारे पापों को धो डालता है।

महाराज का हृदय फटने लग गया। वे ग्लानि, लज्जा और संताप के कारण विह्वल हो रहे। उन्हें अपनी शरीर की सुधि नहीं थी। वे सुनीति के महल में गये। पुत्र शोक से व्याकुल हो सुनीति ने महाराज को देखा तो वे सहम गयीं। महाराजने अपनी पत्नी से क्षमा याचना की। जिस स्त्री का पति उसके सामने दीन हो पैरों पर पड़े उस स्त्री को धिक्कार है। रोते हुए महाराज ने कहा- देवि, तुम मानवी नहीं स्वर्गीय ललना हो। भगवती। मैंने बड़ा पाप किया है, तुम्हारे साथ ऐसा अन्याय

हुआ है जो क्षमा योग्य नहीं। किन शब्दोंमें मैं तुमसे क्षमा माँगू। सुनीति बोली- देवर्षि नारद सर्वज्ञ हैं। भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों की बात जानते हैं। उनका कथन कभी असत्य नहीं हो सकता। उनका उपदेश कभी व्यर्थ नहीं जा सकता आपका पुत्र सिद्ध होकर अवश्य आवेगा। इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं।

उधर ध्रुव जी ने वृन्दावन में पहुँच कर यमुना जी में स्नान किया और नारद जी के उपदेशानुसार भगवान की आराधना एकाग्रचित्त से प्रारम्भ कर दी। साधना से बल मिलता है और हृदय की कुत्सित भावनाएँ भी दबी रहती हैं। मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। ध्रुवने अपने मन को सब ओर से खींचकर हृदय में भूत, इन्द्रिय और अन्त:करण के आश्रय श्रीभगवान के रूप का ध्यान करते हुए भगवान के अतिरिक्त और किसी भी वस्तु को वे नहीं देखते थे अर्थात उनकी दृष्टि भगवद्मयी हो गयी।

उसने पहले महीने को, तीन-तीन दिनों के बाद, कैथ और बेर खाकर, बिताया। दूसरे महीने में उन्होंने छ:-छ: दिनों के अन्तराल पर सूखी घास और पत्ते खाकर भगवान का भजन किया। तीसरे महीने में नौ-नौ दिन पर केवल जल पीकर भगवान की आराधना की। चौथे महीने में उन्होंने बारह-बारह दिनों पर वायु पीकर श्रीहरि की उपासना की। पाँचवाँ मास लगने पर ध्रुव श्वास को जीतकर ब्रह्म का चिन्तन करते हुए एक पैर पर निश्चल भाव से खड़े रहे। धीरे-धीरे ब्रह्मरंध्र में जाकर श्वास रुक गया। प्राण अवरुद्ध हो गये। एकदम सन्नाटा छा गया। ध्रुव जी के हृदय में नारायण का प्राकट्य होने लगा।

और उधर नारद का चेला, मधुवन पहुंचा जाय अकेला।
बताया था जो गुरु ने ध्यान, ध्यान में हरि का अनुसंधान। उसी का करने लगा विधान।।

इस प्रकार ध्रुव के श्वास रोक कर समाधि में स्थित होने पर विश्वभर का प्राण रुक गया। त्रिलोकी काँप उठी। जितने भी देवता हैं, सबके प्राण अवरुद्ध हो गये। देव हा-हाकार कर भगवान श्रीहरि की शरण में गये और अपना दु:ख निवेदन कर प्राणरक्षा की प्रार्थना की। प्रभो, हम श्वाँस नहीं ले पा रहे हैं, प्राण अवरुद्ध हो गये हैं।

दीनबन्धु के द्वार गये दौरे देवादिक। हाथ जोरि सब कहें प्रभो जगके प्रतिपालक।।
भयो कहा जिह देव। चराचर च्यों दुख पावें। सबकी स्वाँस प्रस्वाँस च्यौं नहीं आवै जावै।।
शरणागत-वत्सल विभो। भवहारी सब भय हरहिँ। बेगि छुड़ावह विपतितैं, बार बार बिनती करहिँ।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। ध्रुवजी अपनी समस्त इन्द्रिय द्वारों को रोककर अनन्य बुद्धि से उन विश्वात्मा श्रीहरि का जब ध्यान करने लगते तो इससे सम्पूर्ण जीवों की श्वाँस प्रश्वाँस रुकने लगती, इसीलिये सब जीव लोकपालों को साथ लिये हुए शरणागतवत्सल भगवान वासुदेव की शरण में गये।

रोके इन्द्रिय द्वार चित्त इत उत न चलायो। विश्वम्भर हिय धारि ध्येय में ध्यान लगायो।।
रूकीं सबनिकी स्वाँस जीव सबई घबराये। डगमग डोले धरनि लोकपालहु अकुलाये।।
सोचे असमयमें प्रलय, किन्हि कारन जगमें भई। हेतु कहा सहसा अबहिँ, स्वाँस सबनिकी रुकि गई।।

देवों की प्रार्थना सुनकर भगवान ने कहा- तुम लोग डरो मत। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने अपने चित्त को मुझ विश्वात्मा में लीन कर दिया है। इस समय मेरे साथ उसकी अभेदधारणा चल रही है। इसी से उसके प्राण-निरोध से तुम लोगों का भी प्राणावरोध हो गया है। अब तुम लोग अपने-अपने लोकों में जाओ। मैं उस बालक को इस दुष्कर तप से विरत करूँगा।

मेरा नन्हां सा भक्त मेरी समाधि में है। अभी जाकर मैं उसे दर्शन दूँगा। आप लोगोंकी श्वाँस चलने लगेगी।

त्राहि त्राहि हरि। त्राहि हरि: त्राहि त्राहि भगवन्त। ध्रुव के तप से सृष्टि का होना चाहता अन्त।।

देवों ने भगवान की बात सुनीं। उन लोगों ने माया करके राक्षस, सिंह, व्याघ्र उत्पन्न कर, ध्रुव को डरा कर, तप से निवृत्त करने का प्रयास किया। किन्तु ध्रुव पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे अपने तप में अडिग बने हरे। हार कर देव भी वहाँ से चले गये। संसारी प्रपंच ध्रुव के चित्त से विलीन हो गया था।

प्रगट भये हरि ध्रुव के आगे, बालक ध्रुव समाधि से जागे।।
सामने प्रभु का दर्शन पाय, गिरे झट चरणों में अकुलाय। हर्ष से अंग अंग पुलकाय।।

मैत्रेय जी कहते हैं- विदुरजी, भगवान के इस प्रकार आश्वासन देने पर निर्भय हो देवता, स्वर्ग को चले गये। उसके बाद भगवान गरुड पर आरुढ़ होकर भक्त को देखने की इच्छा से वृन्दावन में पधारे। भगवान मधुवन में ध्रुव जी का दर्शन करने जा रहे हैं। भगवान ध्रुव के सामने खड़े थे। उनकी समाधि ही न टूटती थी। तब भगवान ने अपने उस स्वरूप को खींच लिया जो ध्रुव के हृदय में स्फुरित हो रहा था। ध्रुव ने व्याकुल होकर अपनी आँखें खोल दी। उस समय उन्होंने देखा कि जो भगवान उनके हृदय में प्रकाशित हो रहे थे वह बाहर खड़े हैं। सौन्दर्य की राशि भगवान के रूप को देखकर उन्हें महान् कुतूहल हुआ। वे भगवान के चरणों पर दण्ड की भाँति लोट गये। वे इतनी तल्लीनता से भगवान को देख रहे थे मानों पी जायेंगे, मुख से चूम लेंगे और भुजाओं में कस लेंगे। वे हाथ जोड़े प्रभु के सामने खड़े थे और उनकी स्तुति करना चाहते थे, परन्तु किस प्रकार करें यह नहीं जानते थे। जैसे ही ध्रुव को नारायण का दर्शन हुआ, उनका प्राण संचरित हुआ, समस्त देवताओं का श्वास संचरित हो गया।

प्रेम मगन ध्रुव भये सतत श्रीहरिहिँ निहारें। इस्तुति कैसे करूँ विकल ह्वै बाल विचारे।।
जानी हिय हरि बात शफ्तें वदन छुवायो। भये वेदमय वचन ज्ञान विज्ञान लखायो।।
वेद शास्त्र सम्मत वचन, शंख छुअत मनमहँ जगे। गद्गद वाणी मुदित मन, विनती ध्रुव करिवे लगे।।

बड़ी देर से देखते-देखते भगवान ध्रुव को देखकर मुस्कुराये, जब भगवान मुस्कुराये तो ध्रुव जी भी हँसने लगे। इन दोनों की हँसी को देखकर आकाश में देवता भी हँसने लगे। इन तीनों की हँसी को देखकर आचार्य शुकदेव भी हँसने लगे। इन चारों की हँसी को देखकर राजा परीक्षित भी हँसने लगे। अब इन पाँचों की हंसी को देखकर हजारों संत, जो वहाँ बैठे थे, सब हँसने लगे। ध्रुव जी इसलिए हँस रहे हैं कि बोलू क्यां? मुझे कुछ बोलना आता ही नहीं है बोलूं क्या? शुकदेवजी इसलिये हँस रहे हैं- जब गोविन्द मिल गया तो माँगोगे क्या? परीक्षित इसलिए हँस रहे हैं कितनी कृपा की आपने, कथा के माध्यम से उस झाँकी का दर्शन करा दिया मुझे।

अस्तुति चाहत करन ध्रुव किन्तु करि नहीं जाय। अन्तर्यामी शंख निज दिये कपोल छुवाय।।
वेदमयी वाणी पाकर ध्रुव लगे करन गुणगान।

भगवान अन्तर्यामी ठहरे। वे ध्रुव के मन की बात जान गये। उन्होंने कृपापूर्वक अपने वेदमय शंख को उनके कपोल (गाल) से छुआ दिया। शंख का स्पर्श होते ही ध्रुव की जिह्वा पर विराजमान सरस्वती जागृत हो गई। जैसे ही शंख को गाल से लगाया वेद-वेदान्त का सम्पूर्ण ज्ञान ध्रुव के हृदय में प्रकट हो गया।

मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिं। यत्कृपा तंऽहं वन्दे परमानन्द माधवं।।

मीरा ने कभी कालेज में अध्ययन नहीं किया। लेकिन मीराबाई की कविताएं कक्षाओंमें विद्यापीठ के स्तर पर पढ़ायी जाती है। सूरदास कभी पाठशाला नहीं गये पर उनके पदोंपर लोग पी.एच.डी. करते हैं। गोविन्द जिस पर कृपा कर दे, उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं। परमात्मा की कृपा जिसपर हो जाए, विश्वास का पात्र जितना गहरा होगा, कृपा उतनी

मिल जायेगी। ध्रुव की निष्ठा अद्भुत है। ध्रुव का अर्थ है अविनाशी, निश्चयात्मिका बुद्धि, दृढ़निश्चय।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। जिसको ध्रुव पद प्राप्त होनेवाला है, उन ध्रुवजी के कपोल से जब शंख का स्पर्श हो गया, तब उन्हें दिव्य वाणी प्राप्त हो गयी, उन्हें जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप ज्ञान का निर्णय हो गया। इसलिये उस समय वे सर्वत्र सुप्रसिद्ध पावन यशवाले उन प्रभु की भक्ति भाव से स्तुति करने लगे।

ध्रुव ने स्तुति करते हुए कहा- सम्पूर्ण शक्तियों से सम्पन्न जो भगवान मेरे अन्त:करण में प्रवेश कर अपने तेज से मेरी इस सोई हुई वाणी को सजीव करते हैं, जागृत करते हैं तथा हाथ, पैर, श्रोत्र और त्वचा आदि अन्यान्य इन्द्रियों तथा प्राणों में चेतना भरते हैं, मैं उन अन्तर्यामी भगवान को सादर प्रणाम करता हूँ।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्। हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥१॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं बलितं मधुरम्। चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥२॥
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुर: पाणिर्मधुर: पादौ मधुरम्। नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥३॥
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्। रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥४॥
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं स्मरणं मधुरम्। वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥५॥
गुंजा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा। कलिलं मधुरं कललं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥६॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम्। दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥७॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा। बलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥८॥

प्रभो, आप अकेले ही, माया के कारण, लकड़ी में आग की तरह, विभिन्न रूप धारण कर नाना प्रकार की लीलाएँ किया करते हैं। आप के दिये हुए ज्ञान से ही यह सम्पूर्ण विश्व भास रहा हैं। आप की कृपा से ही ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्मा सृष्टिकार्य करते हैं। प्रभो, इन्द्रियों और शरीर से प्राप्त होनेवाला भोग तो जीव को नरक में भी, नारकीय योनियों में भी, प्राप्त हो सकता है। अत: जो लोग इस विषय-सुख के लिये मोक्षदायक आपकी सेवा-उपासना करते हैं, सचमुच उनकी मति मारी ही गई है। ऐसे लोग सच्चे सुख से सर्वदा वंचित ही रहते हैं। नाथ आपके चरण-कमलों का ध्यान करने से और आपके भक्तों की मनोहारिणी कथा के श्रवण से जो आनन्द प्राप्त होता है, वह निजानन्दस्वरूप ब्रह्म में भी नहीं मिल सकता तो फिर कालरूपी तलवार से काट कर गिराए जानेवाले स्वर्ग के लोकों में कैसे मिल सकता है? परमात्मा कृपा करे तो पवन चले और पवन चलने से श्वांस मिलता है। परमात्मा की कृपा से सूर्य प्रकाश देकर दुनियाँ के रोगों का विनाश करता है। चन्द्रमा वनस्पतियों के अधीश्वर हैं वे ही समस्त कार्यों को करते हैं।

यद्यपि ब्रह्मानन्द सब से ऊँचा है। किन्तु यहाँ कथानन्द को ब्रह्मानन्द से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। इसका कारण यह है कि - १) ब्रह्मानन्द एक भोग्य है और कथानन्द, भजनानन्द अनेक भोग्य है। अनेक व्यक्ति एक साथ बैठकर कथानन्द के महासागर में गोते लगाया करते हैं। २) ध्यान लगानेवाला योगी ही अकेले ब्रह्म की अनुभूति कर आनन्दित होता है, किन्तु कथा के श्रवण से लाखों लाख व्यक्ति एक साथ आनन्द की अनुभूति करते हैं और ३) ब्रह्मानन्द एक ही व्यक्ति को तारता है, किन्तु कथा के श्रवण सें अनेक व्यक्ति एक साथ तर जाते हैं, भवसागर से पार हो जाते हैं। ये ही कारण हैं जिनसे कथानन्द को ब्रह्मानन्द से भी महान बतलाया गया है।

भगवन्, कल्पका अन्त होनेपर योगनिद्रामें स्थित जो परमपुरुष इस सम्पूर्ण विश्वको अपने उदरमें लीन करके शेषजीके साथ उन्हींकी गोदमें शयन करते हैं तथा जिनके नाभि-समुद्रसे प्रकट हुए सर्वलोकमय सुवर्णवर्ण कमलसे परम तेजोमय

ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, वे भगवान आप ही हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

प्रभो आप अपनी अखण्ड चिन्मयी दृष्टिसे बुद्धिकी सभी अवस्थाओंके साक्षी हैं तथा नित्यमुक्त शुद्धसत्त्वमय, सर्वज्ञ, परमात्मस्वरूप, निर्विकार, आदिपुरुष, षडैश्वर्यसम्पन्न एवं तीनों गुणोंके अधीश्वर हैं। आप जीवसे सर्वथा भिन्न हैं तथा संसारकी स्थितिके लिये यज्ञाधिष्ठता विष्णुरूपसे विराजमान है। आपसे ही विद्या-अविद्या आदि विरुद्ध गतियोंवाली अनेकों शक्तियाँ धारावाहिक रूपसे निरन्तर प्रकट होती रहती हैं। आप जगत्के कारण, अखण्ड, अनादि, अनन्त, आनन्दमय, निर्विकार ब्रह्मस्वरूप है। मैं आपकी शरण हूँ।

भगवन बोले- ध्रुव, इतनी देर से मैं तेरे सामने खड़ा हूँ तू आँख क्यों नहीं खोल रहा। ध्रुवजी बोले- मुझे आपके चरणकमलों के ध्यान में जो परमानन्द की अनुभूति हो रही है, आपके दिव्य स्वरूप के दर्शन का जो आनन्द मिल रहा है वो मेरे आँख खोलने पर कहीं तिरोहित न हो जाये।

अनन्त परमात्मन, मुझे आप उन भक्तों की संगति प्रदान कीजिये जो आप की भक्ति में आकण्ठ निमग्न रहा करते हैं। उनके द्वारा कही गई आपकी कथा-सुधा को पीकर मैं अनायास ही इस दुस्तर भवसागर को पार कर जाऊँगा। आप विकार से रहित हैं। मैं आपको प्रणाम कर रहा हूँ। इस संसार में बार-बार आने-जाने से मुक्त कर आप मेरी रक्षा करें। मैं आप की शरण में हूँ। जो लोग साधारण पुण्य करके स्वर्ग में जाते हैं, फिर वहां से पुण्य खत्म होने पर नीचे गिरते हैं, ऐसे गिरनेवालों की सुख की अनुभूति कहां से हो सकेगी। भगवन् आप परमानन्दमूर्ति है जो लोग निष्काम भाव से निरन्तर आपका भजन करते हैं। आप जगत के कारण अखण्ड अनादि अनन्त आनन्द स्वरूप हैं, सत्य स्वरूप हैं मैं आपकी शरण में हूं। भगवन् हम जैसे भक्तोंकी कामना पूर्ण करके आप उनकी संसार भय से रक्षा करते हैं।

शान्ति पुंज। आपके दर्शन कर मन में बसे काम, क्रोध और विमाता के प्रति दुर्भावनायें सभी शमन हो गई हैं अब तो आपके अहर्निश दर्शन की कामना है। भगवान ने ध्रुव से उसकी आकांक्षानुसार वरदान माँगने को कहा- ध्रुव बोले- भगवान, आपके दुर्लभ दर्शन तथा माँ की देव दुर्लभ गोद पाकर मैंने सब कुछ पा लिया- अब कोई आकांक्षा नहीं है।

भगवान ने सोचा- ये भक्ति तो माँग रहा है, संत चरणों में प्रेम तो माँग रहा है, परन्तु वन में आकर ध्रुव ने जो तपस्या की इसका मूल उद्देश्य क्या है? ध्रुव। यदि तुम नहीं भी मांगोगे तब भी मैं तुम्हारी कामना पूर्ण करूँगा।

इस प्रकार ध्रुव की स्तुति सुनकर भगवान ने कहा- राजकुमार, मैं तेरे हृदय के भाव को जानता हूँ। मैं जानता हूँ तुम्हारे मन में क्या है? तुमको दुर्लभ देह मिलेगा। जहाँ सब ग्रह, नक्षत्र और तारे मिलते हैं, सारे देवता, ऋषि जिसकी परिक्रमा करते हैं वह स्थान तुमको मिलेगा।

नाना प्रकार के संसारी भोगों को भोगकर मेरा स्मरण करता हुआ उस परम पद ध्रुवलोक में जाकर पूजित होगा, जिसकी वन्दना सभी प्राणी करते हैं जो सप्तर्षिलोक से भी ऊँचा है वहाँ पहुँचने पर फिर संसार में लौटना नहीं होता। वह अपुनरावृत्ति पद है। यद्यपि उस पद को पाना कठिन है फिर भी मैं तुम्हें वह प्रदान करता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। भद्र, जिस तेजोमय अविनाशी लोक को आज तक किसी ने नहीं प्राप्त किया है। जिसकी परिक्रमा ग्रह, नक्षत्र और तारा-मण्डल, दँवरी के बैलों की तरह, किया करते हैं। अवान्तर कल्पपर्यन्त स्थायी वह ध्रुवलोक तुझे प्राप्त होगा। अब तुम अपने घर लौट जाओ। पिता के जंगल चले जाने पर ३६ हजार वर्षो तक राज्यसुख का आस्वादन कर, यज्ञों के द्वारा मेरी आराधना कर, फिर अन्त में मेरे धाम में पधारोगे। वहाँ जाने पर व्यक्ति को फिर लौटकर इस संसार में नहीं आना पड़ता। तुम्हारे भाई उत्तम की मृत्यु होगी और माता सुरूचि की भी मृत्यु हो जायेगी। तुम यज्ञ द्वारा मेरी आराधना करोगे, अन्तमें तुमको मेरे स्मरण द्वारा

ऋषियोंसे भी ऊपर स्थान मिलेगा। तू अनेकों बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञोंके द्वारा मेरा यजन करेगा तथा यहाँ उत्तम-उत्तम भोग भोगकर अन्तमें मेरा ही स्मरण करेगा। इससे तू अन्तमें सम्पूर्ण लोकोंके वन्दनीय और सप्तर्षियोंसे ऊपर मेरे निज धामको प्राप्त होगा जहाँ पहुँच जानेपर फिर संसारमें लौटकर नहीं आना होता है। यह कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये।

यद्यपि भगवान का दर्शन होने पर ध्रुव की राज्य की लालसा समाप्त हो गई थी फिर भी भगवान ने उन्हें राज्य-सुख भोगने का आदेश दिया। ध्रुव के विनीत भाव से भक्तवत्सल भगवान का कृपास्रोत उमड़ पड़ा। भगवान ने सोचा संसाराब्धिनिमग्न प्राणी मन्दिर में आकर कहता है- मैं तुम्हारा हूँ। सगे-सम्बन्धियों से कहता है- केवल मैं आपका हूँ। सच पूछो तो वह स्वार्थ साधना की सिद्धि के लिए सबका अपना बन जाता है। यदि स्वार्थ में व्यतिरेक हो जाये तो किसी का नहीं होता लेकिन आज बालक ध्रुव ने सच करके दिखा दिया कि भगवन। यह ध्रुव केवल आपका है। इसीलिये भगवान भी मुक्त कण्ठ से बोल उठे- ध्रुव। तुम्हें सर्वोत्तम पद प्रदान करता हूँ। जीव का मन ही उसके क्रमिक विकास और ऱ्हास का कारण होता है। ध्रुव का मन परमात्मा की गोद में बैठने के लिए लगा था, अत: मुक्ति नहीं माँगी।

उत्तमपद की प्राप्ति की इच्छा थी मन माहिं। लेकिन कृपा प्रसाद प्रभु अब कुछ इच्छा नाहिं।।

ध्रुव ने कहा- **वर दीजै सत्संग बैठि नित करूं कथाऽमृत पान।**

पायो अचल लोक ध्रुव लोक भक्त ध्रुव धरिके हरि को ध्यान।।

भगवन बोले- ध्रुव, तुम पूर्वजन्म में बहुत ऊंचे स्तर के मेरे भजनान्दी भक्त थे। जंगल में रहकर, त्याग वैराग्यपूर्वक मेरा भजन करते थे। मैंने चाहा तुझे अपनी गोदी में बिठा दूँ। मैंने अपना हाथ बढ़ाया और गोदी में लेना चाहा। उसी समय एक राजा अपने राजसी ठाटबाट में आया। उसके राजसी लाव-लश्कर ऐश्वर्य वैभव को देखकर तेरे मन में इच्छा हुई तू भी कोई राजकुमार होता। उसी समय मैंने अपना हाथ नीचे पीछे खींच दिया। जब तुम्हारी इच्छा राजकुमार बनने की थी तो मैंने तुम्हें राजकुमार बनने का अवसर दिया। यह सुनकर ध्रुवजी को बड़ी ग्लानि हुई कि मैंने पूर्वजन्म में राजकुमार बनने की इच्छा क्यों की? राजकुमार बनने की एक छोटी सी वासना ने मुझे भगवान की गोदी से वंचित करके संसार में फँसा दिया। यह मेरी ही वासना का परिणाम है। ऐसी न जाने जीव के मन में कितनी ही वासनायें उठती है। इसलिए वासनाओं से दूर रहना चाहिये।

मैत्रेयजी कहते हैं- विदुर जी, वर प्रदान कर भगवन् के चले जाने पर ध्रुव को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने सोचा- निश्चय ही ईर्ष्यालु देवों ने मेरी बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। तभी तो मुक्तिदाता भगवान के चरणों का दर्शन पाकर भी मैंने उनसे नाशवान वस्तु की याचना की। मुझे धिक्कार है, धिक्कार है। इस तरह विचार करते हुए ध्रुव अपने नगर को लौटे।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। ६ महीने में ५ वर्ष के बालक ध्रुव ने सर्वान्तर्यामी प्रभु को प्रसन्न करके उन्हें प्रकटकर लिया, अपना अभीष्ट वरदान प्राप्त किया। त्रैलोक्य में श्रेष्ठ परम पद की प्राप्ति होने पर भी उन्हें प्रसन्नता न हुई। वे प्रसन्न नहीं हुए। अपने को अकृतार्थ की भाँति समझकर खिन्न मन से घर की ओर चल दिये। लौटते समय अपने संकल्प की पूर्ति होने पर भी उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई।

विदुर के पूछने पर मैत्रेय जी ने कहा- ध्रुव का हृदय सौतेली माँ के बाणरूपी वचनों से विद्ध था। अत: उनका स्मरण करते हुए मुक्तिदाता भगवान से उन्होंने मुक्ति नहीं माँगी। इसी पश्चात्ताप से उनका हृदय सन्तप्त था। ध्रुव सोचते थे कि- नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनकादि अनेक जन्मों तक समाधि लगाकर जिसके दर्शन को करने में समर्थ होते हैं, उन्हीं मुक्तिदाता श्रीहरि की पाद-छाया को मैंने छ: महीने में ही पा लिया। किन्तु फिर भी चित्त में दूसरी वासना रहने के कारण मैं उनसे दूर हो गया।

गतायु पुरुषके लिये चिकित्सा व्यर्थ होती है। ध्रुव सोचने लगे- मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ, संसार-बन्धनका नाश करनेवाले प्रभुसे

मैंने संसार ही माँगा। मैं बड़ा ही पुण्यहीन हूँ। जिस प्रकार कोई कँगला किसी चक्रवर्ती सम्राटको प्रसन्न करके उससे तुषसहित चावलोंकी कनी माँगे, उसी प्रकार मैंने भी आत्मानन्द प्रदान करनेवाले श्रीहरिसे मूर्खतावश व्यर्थका अभिमान बढ़ानेवाले उच्चपदादि ही माँगे है।

ध्रुवजी अपनी सौतेली माता के वाग्बाणों से ऐसे विद्ध हो गये थे कि उन्हें उनका स्मरण बना ही रहा। इसीलिये मुक्ति के दाता श्रीहरि के प्रसन्न होने पर भी उनसे मुक्ति नहीं माँगी। इसी कारण उन्हें मानसिक सन्ताप हुआ।

ध्रुवजी जब घर से चलकर श्री नारदजी के उपदेश से मधुवन में तपस्या करने आये तो उनके हृदय से विमाता के वे वाग्बाण निकले नहीं थे। उनके हृदय में यह इच्छा बनी ही रही कि मैं भगवत् कृपा प्राप्त करके अपनी विमाता को उसी उत्तम वाले सिंहासन पर बैठकर दिखा दूँगा कि देख तेरे पेट में बिना जन्म लिये ही मैं इस सिंहासन पर बैठ गया और अन्त में ऐसा श्रेष्ठ पद प्राप्त करूँगा, जिसे औरों की बात ही क्या मेरे पिता, प्रपितामह ने भी प्राप्त नहीं किया है। भगवान तो घट-घट की जाननेवाले हैं। ध्रुवजी की इच्छा जानकर उन्हें ये दोनों वरदान बिना माँगे ही दे दिये। सांसारिक इच्छित वस्तु के प्राप्त करने में ही उत्साह होता है, प्राप्त होने पर सामान्य-सी लगने लगती है और उससे कभी-कभी विराग भी हो जाता है। प्राप्त करने के अनन्तर पश्चात्ताप भी होता है कि इस क्षुद्र वस्तु को प्राप्त करने के लिये हमने व्यर्थ ही इतना प्रबल परिश्रम किया। यही दशा ध्रुवजी की हुई। जब तक भगवान के दर्शन नहीं हुए, तब तक तो सोचते थे- भगवान के दर्शन होने पर यह माँगूगा। ऐसा कहूँगा, वैसे कहूँगा। जब उनके दर्शन हुए तो उनके तेज और महत्व को देखकर सहम गये। कुछ माँग ही न सके, किन्तु सर्वान्तर्यामी प्रभु तो सब जानते थे। उसकी इच्छा पूरी करके उसे मनोवाञ्छित वरदान देकर अन्तर्हित हो गये। ध्रुवजी को पीछे पश्चात्ताप हुआ। भगवद्दर्शनों का यह फल हुआ कि उनके मन से विमाता की ईर्ष्या निकल गई। पश्चात्ताप शुद्ध अन्त:करण में ही होता है। उसने सोचा- अरे, मैं तो ठगा गया। देखो, साक्षात् मुक्ति के देनेवाले भगवान से मैंने यह क्या अनित्य वस्तु माँगी। मैंने यह क्या किया। देवताओंने मेरी बुद्धि विपरीत कर दी। उन्होंने मुझे मुक्ति से वंचित कर दिया। पृथ्वी लोक हो चाहे ब्रह्मलोक, सब एक-से ही हैं, किसी में कम सांसारिक सुख है किसी में अधिक सभी तो पुनरावृत्ति शील हैं। मैंने भगवान के चरणों की भक्ति, इस संसार से मुक्ति क्यों नहीं माँग ली। इन्हीं सब बातों से ध्रुवजी को उन वरदानों से कुछ प्रसन्नता नहीं हुई, उन्होंने सांसारिक ऐश्वर्य को व्यर्थ समझा। संसारी माया मोह का क्षय हो जाना ही मोक्ष है। ऐसा मोक्ष ही सर्वश्रेष्ठ पद है। जो इन संसारी कारणों से दु:खी होकर उन्हीं की प्राप्ति के लिये आराधना करते है वो तो मूढ़ है। ध्रुवजी को भगवान के दर्शन हो गये। भगवान के दर्शनों के अनन्तर तो बन्धन रहता ही नहीं। जिसके मन में कामना रहते हुए भी भगवान के दर्शन होते हैं, उनकी कामना पूर्ति के अनन्तर मुक्ति हो जाती है और वो निष्काम होते हैं। भगवान के दर्शनों का फल ही मुक्ति हैं।

हाय। पाइके लाल काँच लै ताहि गँवायो। हाय। सुरनि मति भ्रष्ट करी ध्रुवपद अपनायो।।
छै महिना में मिले मोहि माधव मदहारी। तऊ न माँगी मुक्ति गई मेरी मति मारी।।
माँग्यो सोनो एक पल, ढिँग सुमेरुके जाइकें। प्यासे गंगा तट गये, पीयो पय न अघाइकें।।

पश्चात्ताप करते हुए ध्रुवजी कहते हैं- देखो कितने दु:ख की बात है, बड़े-बड़े सनकादि ऊर्ध्वरेता महर्षि तथा सिद्धगण जिस पद को समाधि द्वारा भागवत चरणारविन्द की छाया अनेक जन्मों में प्राप्त कर सकते हैं, उसी को मैंने केवल छ: महीने में प्राप्त कर लिया, मन में भेद बुद्धि होने के कारण उसके यथार्थ फल से वंचित ही होना पड़ा।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। ध्रुवजी के पिता ने जब सुना कि मेरा पुत्र लौट आया है तो उन्हें ऐसी प्रसन्नता हुई, मानों मरा हुआ

पुत्र लौट आया हो। पहिले तो राजा ने विश्वास ही नहीं किया कि मुझ भाग्यहीन के सौभाग्य कहाँ कि गये पुत्र का फिर से मुँह देख सकूँ, किन्तु फिर देवर्षि नारद के वचनों पर विश्वास करके उन्हें विश्वास हो गया और अत्यन्त हर्ष के वेग से विह्वल होकर समाचार देनेवाले को अति प्रसन्न होकर शुभ सम्वाद सुनाने के पारितोषिक रूप में एक अत्यन्त मूल्यवान हार दिया।

ध्रुव को घर की ओर लौटता देखकर एक व्यक्ति ने दौड़कर राजा को समाचार दिया। राजा को पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ, किन्तु नारद जी के कथन पर विश्वास कर उन्होंने समाचार देनेवाले को एक बहुमूल्य हार प्रदान कर दिया। फिर गाजे-बाजे के साथ ब्राह्मणों को आगे करके राजा ध्रुव की अगवानी के लिये बड़ी उत्कण्ठा के साथ आगे बढ़े। वे अलंकृत अश्व पर आरूढ़ थे। दोनों माताएँ उत्तम को लेकर पालकी में सवार होकर चलीं।

चले ध्रुव राजमहल की ओर। मचा सारी नगरी में शोर।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। राजा ने जब उपवन के समीप ही आते हुए अपने पुत्र को देखा तो वे अत्यन्त ही शीघ्रता के साथ रथ से उतर पड़े तथा नि:श्वास छोड़ते हुए, दोनों हाथों की कोहली भरकर अपने पुत्र का प्रेम में विह्वल होकर आलिंगन किया। जिनके लिये महाराज चिरकाल से अत्यधिक उत्कण्ठित थे, वे ध्रुवजी कैसे हैं? जिनके समस्त पाप श्री हरि के चरणस्पर्श से नष्ट हो गये हैं।

जब ध्रुव राजधानी के उद्यान के पास पहुँचे तब राजा ने अपने रथ से उतरकर उन्हें बाहुओं में लपेट कर छाती से लगा लिया। उत्तानपाद ने बार बार पुत्रका सिर सूँघा और आनंद तथा प्रेमके कारण निकलनेवाले ठंडे-ठंडे आँसुओंसे उन्हे नहला दिया। आँसू उष्ण भी होते हैं, शीतल भी होते हैं। प्राय: ऐसा देखा गाय है कि क्रोध में या दु:ख में जो आँसू निकलते हैं, वे तो उष्ण हुआ करते हैं और जो प्रेम के आँसू होते हैं वे शीतल होते हैं। शोक में क्रोध में जो आँसू निकलते हैं, उनसे मुख मलीन हो जाता है, आकृति बिगड़ जाती है, किन्तु अत्यन्त स्नेह से भरे हुए हृदय से जो प्रेमाश्रु निकलते हैं, उनसे मुख चमकने लगता है। उन्हें देखकर पत्थर का हृदय भी पसीज-सा जाता है।

जा पर कृपा राम के होई, ता पर कृपा करे सब कोई।।

पुरजन परिजन सुहृदजन लेन चले अगवान, लै आये ध्रुव को महल होत सुमंगल गान।

मिला सभी से प्रेम सहित वह बालक भक्त सुजान।।

ध्रुव ने पिता को प्रणाम किया और पुन: दोनों माताओं के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। गदगद वाणी से माताओं ने आशीष दिया- चिरंजीव वत्स। उत्तम और ध्रुव भी बड़े प्रेम से परस्पर लिपट गये। सुनीति का क्या कहना। अपने प्राणाधिक प्रिय पुत्र को पाकर उसके सारे दु:ख दूर हो गये। आज सभी ध्रुव पर प्रेम की वर्षा कर रहे थे।

तदनन्तर राजा ने ध्रुव को हथिनी पर बैठाया। ध्रुव ने हाथ पकड़कर अपने लघु बन्धु उत्तम को भी अपने साथ हथिनी पर चढ़ा लिया फिर राजा पुत्र ध्रुव को अपने राजमहल में लाये। महाराज उत्तानपाद अपने पुत्र के असाधारण प्रभाव को देखकर हर्ष से भर गये। विभूतियों से भरे हुए उस राजमहल में पिता के लाड़-प्यार का सुख भोगते हुए ध्रुव उसी प्रकार सानन्द रहने लगे जैसे स्वर्ग में देवता लोग रहते हैं। ध्रुव तरुण हुए। उनके प्रभाव को देखकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने देखा कि सारी प्रजा ध्रुव में अनुरक्त है और मैं भी वृद्ध हो चला हूँ अत: ध्रुव को राजगद्दी प्रदान कर राजा उत्तानपाद आत्मस्वरूप का चिन्तन करते हुए, संसार से विरक्त होकर, वन में चले गये।

राज्य भार ध्रुवकूँ दयो, नृप तप हित वनकूँ। सुनत भूप ध्रुव अवनि पै, होवे मंगल नित नये।।

ध्रुव अपनी माता सुरुचि से मिले और बोले- मेरी आदिगुरु तो आप ही हैं। आपके ही उपदेशसे मैंने भगवानकी आराधना की

और मुझे भगवत्प्राप्ति हुई। माता सुरूचि बोली- बेटा मैंने कहा था तू परम पुरुष की तपस्या करके मेरी कोख से पैदा हो, लेकिन लगता है मुझे ही परम पुरुष की तपस्या करनी पड़ेगी कि तेरे जैसा बेटा मेरी कोख से पैदा हो जाये तो मैं धन्य हो जाऊँगी। ध्रुव ने अपनी सौतेली माँ के चरणों में प्रणाम किया और कहा- माँ आप यदि दुर्वचन नहीं कहती तो आज मुझे नारायण की प्राप्ति कैसे होती? परमात्मा से मिलने की जो प्रेरणा देता है वो शत्रु भी सबसे बड़ा मित्र है। जिसके ऊपर भगावन प्रसन्न हो जाते हैं उसको सब नमस्कार करते हैं। मैत्री आदि गुणोंके कारण जिस जीव पर भगवान प्रसन्न हो जाते है उसके आगे सभी जीव झुक जाते हैं। आनन्द या प्रेमके कारण जो आँसू आते हैं वे ठंडे हुआ करते हैं और शोकके आँसू गरम होते हैं।

माता सुनीति की चरणों मे गिरकर ध्रुव रोने लगे और कहने लगे- माँ, आप जैसी माता परमात्मा सब किसी को देवे। आप जैसी माँ भी मिलना कम सौभाग्य की बात नहीं है, यही श्रेष्ठ प्रारब्ध का स्वरूप है।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुरजी, राजगद्दी पर आरूढ होने के बाद ध्रुव ने प्रजापति शिशुमार की पुत्री भ्रमि के साथ विवाह किया। उससे उनके कल्प और वत्सर नामक दो पुत्र हुए। जब महाराज उत्तानपाद ने देखा कि ध्रुवजी तरुणावस्था को प्राप्त हो गये हैं और प्रजा भी उन पर अनुराग रखती है तो अपने मन्त्रियों की सम्मति से, उनको समस्त भू-मण्डल के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया।

महाबली ध्रुव की दूसरी स्त्री वायु की बेटी इला थी। उससे उनके उत्कल नाम के पुत्र और एक सुन्दरी कन्या का जन्म हुआ। उत्तम का अभी विवाह नहीं हुआ था। एक दिन वह शिकार खेलने के लिए हिमालय पर गया। वहाँ उसे एक बलवान यक्ष ने मार डाला। बेटे के समाचार को सुनकर रोती-कलपती सुरुचि ने भी अपने प्राणों का परित्याग कर दिया।

पुत्र भये द्वै कल्प और वत्सर सुखदाई। दूसरि जायाइला पुत्र उत्कलकूँ जाई।।
उत्तम मृगया हेतु गये अविवाहित बनमहँ। भयो यक्ष सँग युद्ध प्रान त्यागे तिन रनमहँ।।
सुरुचि पुत्र ढूँढ़न गई, दावानलमें जरि मरी। यज्ञनिपै अतिकोप करि, तुरत चढ़ाई ध्रुव करी।।

ध्रुव के उत्तानपाद की गोद में बैठने के प्रयास की बेला में सुरुचि ने यह कहकर भगवान का तिरस्कार किया था कि- तप करके भगवान को प्रसन्न करो और उनसे वरदान मांगो कि मैं सुरुचि की कोख से पैदा होऊँ। यह कहकर उसने भगवान से अपनी कोख को बड़ी बतलाकर उनका अपमान कर दिया था। उसी का फल था कि सुरुचि को पुत्र के मरण का मुख देखना पड़ा। मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। सुरुचि के पुत्र उत्तम को तो अविवाहित अवस्था में ही जब वह हिमालय पर्वत पर मृगया के लिये गया था, तभी किसी बलवान यक्ष ने मार डाला, उसकी माता भी उसके साथ ही चल बसी। ध्रुवजी ने जब अपने भाई उत्तम का यक्षों द्वारा मरण सुना तो क्रोध, अमर्ष और शोक में भरकर, विजयी रथ पर चढ़कर उन्होंने यज्ञों के रहने के स्थान अलकापुरी पर चढ़ाई कर दी।

ध्रुव ने अपने भाई के वध की बात सुनी। उन्हें महान् क्रोध और शोक हुआ। भाई के वध का बदला लेने के विचार से वे विजयप्रद रथ पर आरूढ़ होकर यक्षों के देश में जा पहुँचे। वहाँ कुबेर-नगरी अलकापुरी के पास पहुँच कर उन्होंने अपना शंख बजाया। शंख की ध्वनि सुनकर यक्षों की स्त्रियाँ भय से व्याकुल हो उठीं। यक्ष-वीरों ने भी उस शंख-ध्वनि को सुना। उन्हें वह सह्य न हुआ। वे बहुत बड़ी संख्या में अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर निकल पड़े। दोनों ओर से बाणों की वर्षा होने लगीं। ध्रुव ने सभी यक्षों को एक ही साथ तीन-तीन बाणों से बींध दिया। लोगों ने ध्रुव के इस कार्य की बड़ी प्रशंसा की फिर तो यक्षों ने मिलकर एक साथ ध्रुव पर आक्रमण कर बाणों से उन्हें ढँक दिया। एक क्षण के लिये लगा अब तो ध्रुव मारे गये। आकाश में खड़े होकर युद्ध देख रहे सिद्ध हाहाकार कर कहने लगे- मालूम पड़ता है कि आज मनुवंश का सूर्य अस्त हो जायेगा।

किन्तु इसी समय, जैसे कुहरे से सूर्य-मण्डल निकलता है वैसे ही, ध्रुव का रथ बाणों के मध्य से ऊपर उठा फिर तो बाणों की झड़ी लगाकर उन्होंने जिस प्रकार युद्ध किया वह अभूतपूर्व था। उन्होंने यक्षों के अंगों को काटकाट कर समर-भूमि को पाट दिया। चारों ओर रक्त की धाराएँ बह चलीं। घायल होकर बहुत-से यक्ष रण-भूमि को छोड़कर भाग निकले। कुछ ही क्षणों में सारी युद्ध-भूमि शत्रुओं से खाली हो गई। ध्रुव ने अलकापुरी को देखने की इच्छा की। किन्तु वे उस समय वहाँ गये नहीं, क्योंकि मायावी यक्ष क्या करना चाहते हैं- इसका पता मनुष्य को नहीं लग सकता।

उक्त बातें सारथी से कहकर ध्रुव रथ में ही बैठे रहे और शत्रुओं के भावी आक्रमण की आशंका से सावधान हो गये। इतने में ही उन्हें सागर के गर्जन के समान आँधी का भीषण शब्द सुनाई पड़ा। उन्होंने देखा कि दिशाएँ धूलि से आच्छादित हो गई हैं। आकाश मेघों से आच्छादित हो गया। बिजलियाँ कौंधने लगीं। वज्रपात होने लगा। आकाश से रक्त, कफ, पीब, विष्ठा और मूत्र आदि की वर्षा होने लगी। ध्रुव के सामने ही बहुत-से धड़ धड़ाधड़ गिरने लगे फिर आकाश में एक पर्वत दिखलायी पड़ा। उससे पत्थरों की वर्षा के साथ गदा, परिघ, तलवार, त्रिशूल, फरसा, शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डी और मूसल तथा चित्र-विचित्र पंखदार बाण आदि गिरने लगे। सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक पशु दहाड़ मारकर युद्ध-भूमि में दौड़ने लगे। सागर भी भयंकर गर्जन के साथ, चारों ओर से पृथिवी को डुबोने के लिये फैलने लगा। इस प्रकार क्रूर स्वभाववाले असुरों ने अपनी आसुरी माया से ऐसे ही बहुत-से कौतुक दिखलाये, जिनसे कायरों के मन काँप सकते थे। असुरों के द्वारा ध्रुव पर प्रयुक्त की गई दुस्तर माया को देखकर ऋषि-महर्षि- गण ध्रुव के कल्याण की कामना से भगवान से प्रार्थना करने लगे।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुरजी, ऋषियों का ऐसा कथन सुनकर महाराज ध्रुव ने नारायणास्त्र को अपने धनुष पर चढ़ाया। उस बाण के चढ़ाते ही यक्षों के द्वारा फैलाई गई विविध प्रकार की माया, तत्काल उसी प्रकार नष्ट हो गई, जिस प्रकार ज्ञान का उदय होने पर अविद्या, अस्मिता आदि क्लेश विनष्ट हो जाते हैं।

धनुष पर नारायणास्त्र के चढ़ाते ही बाणों की भीषण वर्षा होने लगी। बाणों की भीषण मार से घायल होकर यक्ष-गण इधर-उधर भागने लगे। बाकी बचे हुए यक्ष ध्रुव पर, एक साथ उसी प्रकार झपटे जैसे फण उठाकर बड़े-बड़े सर्प गरुड पर झपटते हैं। अपनी ओर झपटते हुए यक्षों को देखकर ध्रुव ने अपने बाणों से उनके अंग-प्रत्यंगों को काट कर रण-भूमि को पाट दिया। युद्ध में मारे गये वीर सत्यलोक को चले गये। ये भक्त का लक्षण तो नहीं है। महात्मा ध्रुव को भगवान का दर्शन तो मिला पर अभी तक सत्संग नहीं मिला।

निरखि पौत्रको कृत्य दुखित मनु ढिँग ध्रुव आये। प्रेम भरे अति सरस वचन कहि कह समुझाये।।
बस, बेटा। बध व्यर्थ न उपदेवनिको करि अब। बंशवृद्धिके हेतु न यक्षनितै तू लरि अब।।
सहनशीलता दया अरु, मैत्री समतातें हरी। होहिँ तुष्ट इन गुननितें, च्यौं हिंसा इनकी करी।।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। यक्ष वध से निवृत्त कराने के लिये स्वायंभुव मनु अपने पौत्र ध्रुव से कहने लगे-बेटा। बस, बहुत हो गया। जिस क्रोध के वशीभूत होकर तुम इन पुण्यजन यक्षों का वध कर रहे हो उस नरक के द्वार रूप पापी क्रोध को दूर करो। तुमने जो निरपराध यक्षों के वधरूपी कार्य को आरम्भ किया है वह हमारे कुल के अनुरूप नहीं है। बुद्धिमान लोग तुम्हारे इस कार्य की प्रशंसा नहीं करेंगे। विद्वानों द्वारा यह कार्य निन्दनीय है।

इस प्रकार निरपराध यक्षों के सामूहिक संहार को देखकर ध्रुव के पितामह मनु को बड़ी दया आई अत: बहुत-से-ऋषियों के साथ वे वहाँ आये जहाँ ध्रुव यक्षों का निर्दय संहार कर रहे थे। मनु ने उन्हें समझाते हुए कहा- पौत्र, तुम्हें ऐसा क्रोध नहीं करना चाहिये। पापी क्रोध नरक का द्वार है। इस क्रोध के वशीभूत होकर तुमने बहुत-से निरपराध यक्षों का वध कर दिया

है। वत्स, इस प्रकार के कर्म की सज्जन लोग भर्त्सना किया करते हैं अत: यह हमार कुल के अनुकूल नहीं है। पुत्र, तुम्हें अपना भाई बड़ा प्यारा था अत: उसके वध से तुम्हें महान् सन्ताप हुआ है किन्तु एक के अपराध के कारण तुमने बहुतों की हत्या कर दी। यह यक्ष तो देव जाति के है। देवताओं का मानव सम्मान करते हैं, तेरा अपना भाई तो अपने कर्मानुसार मारा गया इतने यक्षों का वध करना उचित नहीं है। अत: युद्ध बन्द कर दो। तुम तो संत हो। इन हजारों यक्षों को कष्ट देना तुम्हारे योग्य नहीं है। भगवान तितिक्षा, दया मैत्री तथा प्राणियों में समदृष्टि से ही प्रसन्न होते हैं, प्राणियों संहार से नहीं। बड़ों में सहनशीलता नीचों पर दया समानों के साथ मित्रता का व्यवहार करना चाहिये। ऐसा करने पर मनुष्य संसार बन्धन से मुक्त होकर ब्रह्मानन्द प्राप्त करता है। मनुष्य की मृत्यु और जन्म का कारण तो देव है।

तुम्हारी गणना भगवद्भक्त- श्रेष्ठ पुरुषों में है। सभी श्रेणी के पुरुष तुम्हारा सम्मान सत्कार करते हैं। तुम्हारे वचनों को लोग प्रमाण मानते हैं। तुम्हारे निर्दिष्ट पथ का असंख्यों पुरुष अनुसरण करते हैं। ऐसे होने पर भी तुमने यह हमारे कमनीय कीर्तिवान् कुल को कलंमित करनेवाला कार्य कैसे कर डाला?

इस जड़ शरीर को ही आत्मा मान कर इसके लिये पशुओं की भाँति प्राणियों की हिंसा करना भगवान की सेवा में समर्पित रहनेवाले साधुजनों का यह मार्ग नहीं है। तुमने भगवान की आराधना की अत: विष्णु के परम पदके अधिकारी बने हो। तुम्हें प्रभु भी अपना प्रिय भक्त समझते हैं। भगवद्भक्त जन भी तुम्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं। तुम साधुजनों के पथ-प्रदर्शक हो फिर भी तुमने ऐसा निन्दनीय कर्म कैसे किया।

ध्रुव बोले- आत्मा अजर अमर है, यह सत्य है फिर भी उसका आश्रय तो यह शरीर ही है। शरीर के नष्ट होने से सम्बन्ध भी नष्ट हो जाता है। सम्बन्धी का वियोग हो जाता है। संसार में सम्बन्धी से संयोग होना सर्वश्रेष्ठ सुख है और उसका वियोग होना दुस्तर दु:ख है। सम्बन्धी के शरीर को नष्ट करनेवाले के प्रति तथा उसके सम्बन्धी के प्रति स्वाभाविक ईर्ष्या होती ही है।

मनु बोले- संसार में अपने से छोटे बड़े, समान और साधारण चार ही प्रकार के लोग होते हैं। जो अपने से छोटे हों, अपने आश्रित हों, उन पर सदा दया दृष्टि रखनी चाहिये, उनके साथ सर्वदा कृपा करना चाहिये। जो अपने से बड़े हों, उनकी कड़ी-से-कड़ी बात को भी बिना विरोध के सहन कर लेना चाहिये। भूलकर भी उनके प्रति असहनशील न बने। जो अपने बराबरवाले हों उनसे मित्रता का, स्नेह का, बन्धुत्व का व्यवहार करना चाहिये। जिनसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं सामान्य पुरुष हैं, ऐसे समस्त प्राणियों के प्रति समता के भाव रखने चाहिये।

वत्स, तुम्हें तो यह विदित ही है कि सबके हृदय में निवास करनेवाले श्रीहरि सहनशीलता, करुणा, सारे प्राणियों के साथ समता का व्यवहार करने से ही प्रसन्न होते हैं। भगवान के प्रसन्न हो जाने पर व्यक्ति प्राकृतिक गुणों से छूट कर परम आनन्दरूप ब्रह्म-पद को प्राप्त कर लेता है।

पुत्र, काल भगवान का स्वरूप है। सारे जगत् में उसका न तो कोई शत्रु है और न मित्र ही। वह निष्पक्ष होकर अपना कार्य करता है जैसे वायु के बहने पर धूल उसके साथ-साथ उड़ती है, उसी प्रकार समस्त जीव, अपने-अपने कर्मों के अधीन होकर, काल की गति का अनुसरण करते हैं अर्थात् अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख-दु:खादि फल भोगते हैं। सबकी मृत्यु और जन्म का प्रधान कारण काल है। राजन्, इन परमात्मा को ही मीमांसक लोग कर्म, चार्वाक स्वभाव, वैशेषिक मत को माननेवाले काल, ज्योतिषी दैव और कामशास्त्री काम कहते हैं।

भगवान सबके आदि कारण है। वे किसी भी इन्द्रिय और प्रमाण के विषय नहीं है। ऐसे प्रभु को ठीक-ठीक जानना दुर्विभाव्य है, अति कठिन है। पुत्र, इस संसार में न कोई किसी को मारनेवाला है और न तो जिलानेवाला ही। इस प्रकार

कुबेर के अनुचर तुम्हारे भाई को मारनेवाले नहीं हैं, क्योंकि मनुष्य के जन्म-मरण का वास्तविक कारण तो ईश्वर है।

बेटा, तुम उन्हीं परमात्मा की शरण सब प्रकार से ग्रहण करो। ध्रुव, जब तुम पाँच वर्ष के थे तब अपनी सौतेली माता के वाग्बाणों से मर्माहत होकर, माँ की गोद छोड़कर, वन में चले गये थे। वहाँ तपस्या करके जिन हृषीकेश भगवान की आराधना करके तुमने त्रिलोकी से ऊपर ध्रुव-पद प्राप्त किया है, उन्हीं भगवान को तुम अपने हृदय में देखो। वे किसी इन्द्रिय या प्रमाणके विषय नहीं है। जिस प्रकार नाकमें नकेल पड़े हुए बैल अपने मालिकका बोझा ढोते रहते हैं, उसी प्रकार जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्मादि भी नामरूप डोरीसे बँधे हुए उन्हींकी आज्ञाका पालन करते हैं। वे अभक्तोंके लिये मृत्युरूप और भक्तोंके लिये अमृतरूप हैं तथा संसारके एकमात्र आश्रय हैं। तुम्हारे लिये इस प्रकार प्रतिशोध की भावना से युद्ध करना उचित नहीं है। तुम अपने क्रोध को शान्त करो। क्रोध कल्याणमार्ग का प्रबल विरोधी है। भगवान तुम्हारा मंगल करें। अभय की इच्छावाले व्यक्ति क्रोध के वशीभूत नहीं हुआ करते हैं।

तुमने जो यह समझ कर कि ये मेरे भाई के मारनेवाले हैं, इतने यक्षों का संहार किया है, इससे तुमने शंकर के सखा यक्षों के अधिपति कुबेर का बड़ा भारी अपराध किया है अत: अपने विनम्र संभाषण और विनयशील व्यवहार के द्वारा तुम उन्हें प्रसन्न करो। ऐसा करने से उनका तेज हमारे कुल को आक्रान्त नहीं करेगा।

तुम भगवान के प्रिय हो- वे भी तुम्हारे इस कर्म से सन्तुष्ट नहीं होंगे। समदृष्टिवाले क्षमाशील पुरुषों से ही प्रसन्न होते हैं।

महात्माकी शोभा इसीमें हैं कि उसके अन्दर तितिक्षा, करुणा, मैत्री, समता हो। इससे भगवान प्रसन्न होते हैं। भगवान्के प्रसन्न होनेपर मनुष्यको ब्रह्म-निर्वाणकी प्राप्ति होती है। शरीर पंचभूतसे बनता है, चाहे स्त्रीका हो, चाहे पुरुषका। उससे सृष्टि चलती है। इसमें आत्मा तो निमित्तमात्र है। आत्माके लिए न तो अपना और न कोई पराया हैं। सुख-दु:खके अनेक प्रकारके निमित्त होते हैं, कोई काल बताता है, कोई कर्म बताता है। यह तो प्रभु की लीला है। प्रभु कब क्या करना चाहते हैं, इसका पता नहीं चलता। दैव ही सबके कारण है। वही विश्वसृष्टिके सृष्टा हैं, भर्ता हैं, हन्ता हैं। मृत्यु भी वही है, अमृत भी वही है। इसलिए सर्वात्मना उनकी शरणमें जाओ। पाँच वर्षकी उम्रमें भजन करके तुमने भगवान्का दर्शन कर लिया। अब तुम अपने स्वरूपको जानो। पुत्र तुम्हें सत्संग नहीं मिला है। सत्संग मिलने से विषयभोग भी चले जाते है।

अरे, जगतमहँ कौन जिवावें को किन मारें। जगकूँ वेई रचे अन्तमहँ वे संहारें।।
जीवनिकूँ उपजाय जीवते जीव जिवावै। मारे जीवनि जीव बड़े छोटनिकूँ खावैं।।
नहिँ यक्षनि तव बन्धुबध, कीन्हों सब है देव वश। क्रोध वैरकूँ त्यागि अब, सब ईश्वर कृत समुझि अस।।
मुक्ति चाह हिय होय संग विषयिनि को त्यागे। भोगनितें मन रोहि देखि कामनिकूँ भागे।।
जैसे जल थल नीच निरखि उतकूँ ही ढरके। तैसे भोगनि देखि चित्त उतकूँ ही सरके।।
मुक्ति बन्धकी साधु खल, संगति सच्ची युक्ति है। विषयनिके सँग बन्ध है, साधुनिके सँग मुक्ति हैं।।

सौभरि ऋषि ने कहा- जो पुरुष मोक्ष की इच्छा रखनेवाला हो, उसे दाम्पत्यधर्म वाले स्त्री पुरुषों में कभी आसक्ति न करनी चाहिये, उनका संग सर्वथा छोड़ देना चाहिये तथा अपनी इन्द्रियों को कभी बाहरी विषयों की ओर न जाने देना चाहिये। सदा एकान्त में रहकर उन अनन्त ईश्वर में ही अपने चित्त को लगा देना चाहिये। यदि संग करना ही हो तो श्री भगवान ही एक मात्र जिनके आराध्य हैं उन साधु पुरुषों का ही संग करना चाहिये।

इस प्रकार स्वायम्भुव मनु ने अपने पौत्र ध्रुव को उपदेश दिया। ध्रुव ने उन्हें सादर प्रणाम किया। इसके पश्चात् मनु, महर्षियों के साथ अपने लोक को चले गये। मनु की शिक्षा का सम्मान करते हुए ध्रुव ने भी युद्ध बन्द कर दिया।

अपने परम पूज्यनीय संत बाबा स्वायम्भुव मनु के उपदेश से ध्रुव जी के जीवन में परिवर्तन आ गया।

ध्रुव, क्षत्रिय कुमार के लिये प्रतिशोध की भावना का त्याग करना बैर भाव का बड़ा दुस्त्यज है। ध्रुवने अपने बाबा की बात मानकर प्रतिशोध और क्रोध वैर की भावना का त्याग कर दिया।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी, स्वायंभुव मनु अपने पौत्र ध्रुवजी से कहते हैं- देखो पुत्र, तुमने शंकरजी के सखा भगवान धनेश्वर का अपमान किया है यही समझकर कि ये मेरे भाई उत्तम को मारनेवाले हैं, क्रोध करके जो तुमने यक्षों को मारा हे। यह ठीक नहीं किया। जब तक ये महापुरुष जो कुबेरजी हैं इनका तेज हमारे कुल का नाश न करे, तभी तक तुम अति शीघ्र नम्रता, मधुर भाषण और विनय के द्वारा भगवान कुबेर को प्रसन्न कर लो।

लोकपाल शिव सखा, धनद, यक्षनिके ईश्वर। क्षमायाचना करो देहिंगे तुमको शुभ वर।।
जब तक करे न क्रोध पैर परि विनय सुनाओ। हाथ जोरि ह्वै नम्र शरन उनकी तुम जाओ।।
विविध भाँति समुझाइकें, मनु अन्तर्हित ह्वै गये। करिकें पश्चाताप बहुत, अति विनीत ध्रुवजी भये।।

इस प्रकार अनेक युक्तियों से विश्व की अनित्यता, विषयों की क्षण भंगुरता और भगवान की भगवत्ता को सिद्ध करते हुए स्वायंभुव मनु ने अपने पौत्र ध्रुव को समझाया। जब उन्हें विश्वास हो गया कि मेरे कथन का ध्रुव पर प्रभाव पड़ा है और वे अपनी भूल मानने लगे तब उनके पूर्व कृत कर्मों का स्मरण दिलाते हुए उनकी महत्ता बताने लगे। पुत्र, अन्तर्दृष्टि होते ही उन अचिन्त्य महिमावाले प्रत्यगात्मा अखिल आनन्द के निलय अशेष, गुणगण आश्रयभूत, सर्वशक्तिसम्पन्न, सच्चिदानन्द भगवान वासुदेव में तुम्हारी दृढ़ भक्ति हो जायेगी।

भागवती कथाओं का श्रवण करो, उनका मनन करो, भागवती कथायें ही एकमात्र संसार सागर से पार ले जानेवाली दृढ़ नौकायें हैं। निरन्तर भागवती कथाओं के श्रवण मनन से ये काम, क्रोध, द्वेष आदि स्वत: ही शान्त हो जायँगे, कल्याण मार्ग में सबसे बड़ा विघ्न यही है कि भागवती कथाओं को छोड़कर हम संसारी विषयी लोगों की कथायें कहने लगते हैं, उन्हीं की निन्दा स्तुति आलोचना करने लगते हैं। यह जीव के पतन का सबसे बड़ा कारण है। अत: भगवत् गुणों का निरन्तर नियम से श्रवण करते रहना यही भगवान में प्रेम होने का सरल, सुगम, सर्वोपयोगी मार्ग है। ज्ञान वैराग्य के उपदेश के लिए यह कथाएँ कही हैं, उनमें पारमार्थिक सत्य नहीं है, सिर्फ वाणी का विलास है।

ध्रुवकूँ समुझयो शान्त धनदि ढिँग उनके आये। बोले- बेटा, बीर काज करि काहि लजाये।।
यक्ष न मारे तुमनि उननि नहिँ उत्तम मारयो। क्रूर काल सब करै कालतें सब जग हार्‌यो।।
मनु आज्ञा मानी तुमनि, अति प्रसन्न मम मन भयो। वर माँगो मन भावतो, बिहँसि धनद ध्रुवतें कह्यो।।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुरजी, ध्रुव का क्रोध शान्त हो गया है और वे यक्षों के वध से निवृत्त हो गये हैं, यह जानकर भगवान कुबेर उनके पास आये। उस समय यक्ष, चारण और किन्नर लोग उनकी स्तुति करने लगे। उन्हें देखते ही ध्रुव जी हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब कुबेर ने कहा- वत्स, तुम शुद्ध हृदयवाले क्षत्रिय-कुमार हो। तुमने अपने दादा मनु के उपदेश से दुस्त्यज वैर का परित्याग कर दिया।

राजन्, न तो आपने यक्षों का वध किया है और न यक्षों ने तुम्हारे भाई का। वस्तुत: काल ही प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश का कारण है। मानव अज्ञानता के कारण अपने को कर्ता मानकर बन्धन में पड़ता है। ध्रुव, अब तुम जाओ। भगवान तुम्हारा मंगल करें। सर्वत्र समभाव से तुम भगवान का भजन करो। उनके चरण-कमलों का भजन ही संसाररूपी बन्धन को काटनेवाला है। तुम भगवान श्रीहरि के अनन्य भक्त हो अत: मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो वह

मुझसे मांग लो।

मैत्रेय जी बोले- विदुरजी। राजराजेश्वर श्री कुबेर ने ध्रुवजी से वरदान माँगने को कहा, तब उन महामति महाभागवत श्री ध्रुवजी ने उनसे श्रीहरि का मुझे अविचल स्मरण बना रहे, यही वरदान माँगा। जिस भगवत स्मरण के प्रभाव से मनुष्य सहज में ही इस दुस्तर अज्ञान रूपी अन्धकार से पार हो जाता है।

मैत्रेय जी कहते हैं- विदुरजी, कुबेर के कथन को सुनकर ध्रुव ने यक्षाधिपति कुबेर से भगवान श्री हरि के चरणों में अविचल भक्ति माँगी। इसी भक्ति के बल पर व्यक्ति संसार-सागर को अनायास पार कर लेता है। ध्रुव बाले- कुबेरजी हमको भगवानकी अविचल भक्ति दो। हमको भगवानके दर्शन तो हो गये लेकिन उनकी अचल भक्ति अभी तक नहीं मिली। आप वही अचल भक्ति मुझे दे, जिससे मुझे फिर कभी किसीपर क्रोध न आये।

हाथ जोरि ध्रुव कहें- कृपा करुणाकर कीजे। हरि चरननि अनुराग दया करि मोकूँ दीजे।।
शम्भु सखा सुनि कहें- सदा तुम भक्त भूपवर। कृष्ण चरनमहँ भक्ति तुम्हारी बढ़े निरन्तर।।
यों कुबेर वरदान है, तत्क्षिन अन्तर्हित भये। स्वप्न सरिस घटना भई, ध्रुव देखत ही रहि गये।।

कुबेर ने बड़ी प्रसन्नता से उन्हें वरदान दिया और अन्तर्धान हो गये। ध्रुव भी अपनी राजधानी को लौट आये। तदनन्तर ध्रुव ने बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले विविध यज्ञों से यज्ञपति भगवान की आराधना की। वे बड़े ही शीलसम्पन्न, ब्राह्मण-भक्त, दीनवत्सल और धर्ममर्यादा के रक्षक थे। उनकी प्रजा उन्हें साक्षात् पिता की भाँति मानती थी।

इस प्रकार तरह-तरह के भोगों द्वारा पुण्य का और यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान से पाप का क्षय करते हुए उन्होंने छत्तीस हजार वर्ष पृथिवी का शासन किया। ध्रुवजी ने अनुभव किया कि मुझमें और सबमें प्रभु अवस्थित है, उनकी सारी प्रजा उन्हें अपने पिताके समान मानती है। उन्हें लगा यह संसार तो कुछ भी नहीं, केवल अविद्याकी मायाकी रचना है।

आये निज पुर करे यज्ञ बहुत वैभव वारे। पुण्य भोगते पाप यज्ञ तप तें सब जारे।।
सुत, दारा, धन, धान्य जानि नश्वर सब त्यागे। राज पुत्रकूँ सौंपि सतत तपमें ई लागे।।
करे सुकृत सब सुख लहे, फिरि ध्रुव वनवासी भये। तजि सबरे गृह भोग सुख, बदरीवनकूँ चलि दये।।

मैत्रेय मुनि बोली- विदुरजी। ध्रुवजी अपने शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र, सेना, सम्पत्ति सम्पन्न कोश, अन्त:पुर, रमणीय विहारभूमि तथा समुद्र ही है मेखला जिसकी ऐसी पृथ्वी के राज्य आदि सभी को कालकलवित समझकर तपस्या करने बदरीबन को चले गये।

युद्ध में तो ध्रुव को परास्त करनेवाला कोई भूमण्डल पर था ही नहीं, अत: उन्होंने उसी उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया, जिसमें जाकर धर्मात्मा ब्रह्मर्षि राजर्षि फिर लौटते नहीं। जिस दिशा में समस्त धर्मात्मा पुरुष अपने प्राण त्यागने के निमित्त अनादि काल से जाते रहते हैं।

इसके बाद ध्रुव ने अपने पुत्र उत्कृल को राजसिंहासन सौंप दिया फिर उन्होंने शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र, सेना, भरा हुआ खजाना, अन्त:पुर, विहारभूमि और सम्पूर्ण भू-मण्डल को काल का ग्रास समझकर त्याग दिया और तप करने के लिये बदरिकाश्रम को चले गये। ये जब बालक थे, तब वृन्दावन में यमुना के तट पर गये थे। अब वृद्धावस्था में गंगा के तट पर आये हैं। गंगाजी मुक्ति का सदा व्रत बाँटती रहती हैं, मृत्यु सुधारती हैं। भागवत की कथा प्रेम से सुनने से सभी यात्राओं का फल प्राप्त होता है। गंगाजी के तट पर बैठकर ध्रुव भगवान का अखण्ड ध्यान करने लगे। गंगाजी के प्रवाह के निनाद से ध्रुव जी के ध्यान में विक्षेप होने लगा फिर तो वे गंगा-तट को छोड़ने के लिये उद्यत हो गये। उन्होंने गंगाजी से कहा- माताजी,

तुम्हारा यह कल-कल निनाद मेरे मनन-ध्यान में विक्षेप करता है। गंगाजी ने कहा- ध्रुव, तू शान्ति से ध्यान करता है तो अब मैं भी शान्ति से बहूँगी, कल-कल ध्वनि नहीं करूंगी अत: तुम यहाँ से जाना नहीं। गंगाजी शान्त हो गईं। ध्रुवाश्रम के पास गंगाजी आज तक शान्त ही बहती है।

फिर तो ध्रुव जी ने गंगा के तट को ही अपना आश्रम बनाया। वहाँ वे अष्टांग योग के द्वारा मन को निश्चल कर भगवान श्रीहरि के ध्यान में तल्लीन हो गये। ध्यानोद्रेक से उनका शरीर रोमांचित हो उठा। आनन्द के अश्रु उनके नेत्रों से बहने लगे उन्हें अपने शरीर तक का भान नहीं रहा। धीरे-धीरे से सम्प्रज्ञात समाधि से असम्प्रज्ञात समाधि की स्थिति में पहुंच गये। उस समय उन्हें ध्याता, ध्यान और ध्येय में कुछ भी भेद प्रतीत नहीं होता था।

ध्रुव के ध्यान की यह प्रक्रिया चल ही रही थी कि एक दिन उन्होंने आकाश-मण्डल से एक बड़ा ही सुन्दर विमान उतरते देखा। वह अपने प्रकाश से दसों दिशाओं को आलोकित कर रहा था। उसमें भगवान विष्णु के दो सुन्दर पार्षद सुनन्द और नन्द गदा लिये खड़े थे। ध्रुव ने उन्हें भगवान का पार्षद जान कर हाथ जोड़कर सादर प्रणाम किया। मुस्कराते हुए श्रीहरि के पार्षदों ने कहा- आप का कल्याण हो। राजन्, हम दोनों भगवान श्रीहरि के सेवक हैं और आप को भगवान के धाम में ले जाने के लिये आये हैं। आपने अपने तप-बल से उस लोक को प्राप्त किया है। यह धाम विष्णु धाम से भी ऊपर है। यह पद सारे संसार के लिये वन्दनीय हैं। आप वहीं चलकर निवास कीजिये। आयुष्मन्, श्रीहरि ने यह विमान् आप के लिये भेजा है। आप इस पर आरूढ़ हों।

इक दिन लख्यो विमान उतरतो नभतें आवत। चकाचौंध-सी करत छटा चहुँ दिशि छिटकावत।।
अरुण कमलदल नेत्र निहारे पार्षद हरि के। करि प्रणाम ध्रुव उठे तुरत आये ढिंग उनिके।।
ध्रुव। जीत्यो हरिपद तुमनि, बोले नन्द सुनन्द तब। भेज्यो दिव्य विमान हरि, चढें करें नहिँ देर अब।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। एक दिन ध्रुवजी ने चन्द्रमा के समान दसों दिशाओं को आलोकित करता हुआ, एक श्रेष्ठ विमान आकाश से उतरता हुआ देखा (विष्णु पार्षदों के कहने पर) ध्रुवजी ने उस विमान श्रेष्ठ की वन्दना तथा प्रदक्षिणा करके भगवान के नन्द सुनन्द दोनों पार्षदों को प्रणाम किया और हिरण्मय स्वरूप धारण करके उस पर चढ़ने को उद्यत हुए।

उस समय काल मूर्तिमान होकर आया और बोला- मेरा नाम काल है, मैं प्रभु का बनाया हुआ हूं, मेरी मर्यादा बंधी है, प्रभु जिसकी आयु समाप्त होती है, जिसका मर्त्यलोक से जाने का समय आता है तब काल उसका स्पर्श करता है। काल उसका स्पर्श किसी को सर्प बनकर, किसी को रोग बनकर, बाढ़ बनकर, आग बनकर अनेक प्रकार से काल स्पर्श करता है तब स्थूल शरीर का त्याग होता है। स्थूल शरीर छूटते ही पापी लोग तो नरक की दिशा में जाते हैं और जो पुण्यात्मा होते है वे स्वर्ग की दिशा में जाते है। ज्ञानी होगा तो मोक्ष की दिशा में जायेगा। भक्त होगा तो भगवद्धाम को जायेगा।

महाराज, मैं सबका अन्त करनेवाला काल हूँ। मेरा नाम मृत्यु है। पृथ्वी के जो भी प्राणी परलोक जाते हैं, मुझे ग्रहण किये बिना कोई नहीं जाता। इसीलिये इस लोक का नाम मर्त्यलोक है। आपसे तो मैं कैसे कहूँ, मेरा साहस नहीं होता कि आप इस शरीर का त्याग करें, किन्तु लोक मर्यादा की रक्षा तो आपको करना ही चाहिये। मेरा उपयोग आप करें, मुझे व्यर्थ न बनावें।

पार्षदों की बात सुनकर ध्रुव प्रसन्न हो उठे। उन्होंने आज गंगाजी में अन्तिम स्नान किया, हाथ जोड़कर प्रणाम किया। सन्ध्या वन्दन से निवृत्त होकर अलंकार धारण किया। ब्राह्मणों, मुनियों को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद लिया फिर विमान की पूजा और प्रदक्षिणा की, पार्षदों को विनम्र हो प्रणाम किया। वे अब विमान पर चढ़ना ही चाहते थे कि देखा सामने मृत्यु का देवता काल मूर्तिमान होकर सिर झुकाये खड़ा है। तब वे मृत्यु के सिर पर एक पैर रखकर उस अद्भुत विमान पर चढ़े।

ध्रुव ने पूछा- आप कौन है? तो उस देव ने उत्तर दिया कि मैं मृत्यु हूँ। ये मेरा ही लोक है, इसलिये इस लोक का नाम मृत्युलोक है। यहां हर चीज मरनेवाली है, सबेरे भोजन बनाओ तो शाम को बासी हो जाता है, रात्रि को भोजन बनाओ तो सुबह खाने के योग्य नहीं रहता। जो-जो जन्म लेता है, सबको मरना पड़ता है। चींटी जन्म लेगी, वो भी मरेगी, हाथी जन्म लेगा तो उसे भी मरना पड़ता है। यहां ब्रह्मा तक के लोक पुनरावर्ती है। आया है सो जायेगा, राजा, रंक, फकीर। कोई सिंहासन चढ़ चला, कोई बंधा जंजीर।। मरना आपको निश्चित है, परंतु मरने के पहले मुझे स्वीकार करना पड़ेगा।

ध्रुव जी मृत्युके सिरपर पैर रखकर विमान में आरूढ़ हो गये और मृत्युपर विजय प्राप्त की।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। भगवान के भक्तों की ही ऐसी सामर्थ्य है कि वे मृत्यु के सिर पर पैर रखकर चले जाते हैं, उसकी कुछ भी चिन्ता नहीं करते।

उस समय आकाश में देव दुन्दुभि बजा कर फूलों की वर्षा करने लगे। गन्धर्व गाना गाने लगे। चतुर्दिक आनन्द का ही वातावरण व्याप्त हो गया। ध्रुव का विमान ऊपर उठा। इसी समय उन्हें अपनी जननी सुनीति का स्मरण आया। उन्होंने सोचा- क्या मैं बेचारी माता को छोड़कर अकेला ही दुर्लभ वैकुण्ठ लोक को जाऊँगा। यह तो बड़ी अनीति हो जायेगी फिर ध्रुव और पार्षदों में इस प्रकार बात हुई।

ध्रुव ने कहा- विमान रोका जाय। पार्षद बोले- क्यों, क्या बात है? किसलिये? ध्रुव बोला- मैं अपनी जननी सुनीति को छोड़कर अकेला नहीं जाऊँगा। पार्षद बोले- देखिये, सामने देखिये। वह आगे-आगे जानेवाले विमान पर आरूढ होकर आपकी माता सुनीति जा रही है।

माँ के अग्र गमन को जान कर ध्रुव के हर्ष का पारावार न रहा। विमान पर देव-गण निरन्तर पुष्प-वृष्टि कर रहे थे, ध्रुव की कीर्ति का गान कर रहे थे। इस प्रकार त्रिलोकी को लांघ कर मुनियों को देखत-देखते ध्रुव ध्रुवलोक को, जो वैकुण्ठ का एक भाग है, पहुँचे। इस लोक में वे ही लोग जाते हैं, जो शान्त, समदर्शी, शुद्ध और सर्वसुहृद् और भगवद्भक्तों के भक्त हैं। इस प्रकार उत्तानपाद के पुत्र, भगवत्परायण श्रीध्रुव जी तीनों लोकों के ऊपर निर्मल चूड़ामणि के समान विराजमान हुए।

धन्य धन्य ध्रुव धन्य तव, जननी मातु सुनीति है। धन्य हृदय तुव तासुमहँ, प्रभुपद पंकज प्रीति है।।
जिनके लाल भक्त चूड़ामणि कोऊ जिन सम नाहीं।। क्रोधित सुत समझायो सब विधि सच्ची सीख सिखाईं।।
शिक्षा पाइ गये ध्रुव बनकूँ, अति मनमहँ हरषाईं। जप व्रत साधे प्रभु आराधे, बन की मेवा खाईं।।
हरिपद पायो रोष गँवायो, लखि ध्रुव सुरुचि सिहाईं।।

काल के मस्तक पर पांव धरकर बिना शरीर छोड़े ध्रुव ने भगवान विष्णुका वह परम धाम, जो देव दुर्लभ है, सारे जगत का बन्दनीय हैं, उस परम पद को प्राप्त किया। कलिकाल में कबीर ने शरीर नहीं छोड़ा। राजस्थान की मीराबाई ने शरीर नहीं छोड़ा। महाराष्ट्र के गौरव श्री तुकारामने शरीर नहीं छोड़ा। बंगाल के चैतन्य महाप्रभु ने शरीर नहीं छोड़ा। काल के मस्तक पर पांव धरकर बिना शरीर छोड़े इस परमपद को प्राप्त हुए। ध्रुव की मृत्यु नहीं हुई है।

धन्य ध्रुव भक्तनि के सिर मौर। सौतेली माँ बागबाण ने बेध्यो हियो कुठौर।।
क्रोधित ह्वै वनकूँ चलि दीन्हें छोड़ी पितु की पौर। बालक ह्वै हरि हियमें धारे, तजी आश जग और।।
मधुवन गये मानि मेरी सिख, हरिजू आये दौर। दुर्लभ पद पायो जिहि जगमहँ पाइ सकै नाहिं और।।

गंभीर वेगवाला ज्योतिश्चक्र उस अविनाशी ध्रुव-लोक के आश्रय से ही निरन्तर घूमता रहता है। देवर्षि नारद ने जब अपने शिष्य की इस महिमा को देखा तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपनी वीणा बजाते हुए प्रचेताओं के यज्ञ में ध्रुव के गुणों का

इस प्रकार बखान किया- सुनीति के पुत्र ध्रुव ने अपनी तपस्या के द्वारा जिस उत्तम गति को प्राप्त किया है, उसे बड़े-बड़े वेदवादी मुनि-गण भी नहीं प्राप्त कर सकते, फिर तो राजाओं की बात ही क्या है? अहो। वे पाँच वर्ष की वय में ही सौतेली माता के वाग्बाणों से मर्माहत होकर, दु:खी होकर, वन में चले गये। वहाँ मेरे उपदेश के अनुसार आचरण करके उन्होंने प्रभु को वश में कर लिया। उनसे दिव्य-पद को भी पा लिया। शिष्य की सफलता पर गुरु को गर्व होना स्वाभाविक है।

ध्रुवजी ने अपनी अल्प कालीन तपस्या के प्रभाव से जो उत्तमोत्तम गति प्राप्त की उसे बड़े-बड़े सदाचारी, व्रतधारी ब्रह्मचारी वेदपाठी भी पाने में असमर्थ हैं, फिर निरन्तर विषयभोगों में ही फँसे रहनेवाले राजाओं की तो बात ही क्या। ध्रुवजी का चरित्र धान्य, पुत्र-पौत्र यशकीर्ति को देनेवाला तथा आयु को बढ़ानेवाला है। यह परम प्रशंसनीय पापनाशक और पावन है, सुनने से स्वर्ग तथा ध्रुवलोक की प्राप्ति कराता है, प्रभुपादपद्मों में प्रीति बढ़ाता है, यह चरित्र विद्यार्थियों की, विद्या की, धनार्थियों के धन की, पुत्रार्थियों के पुत्रों की, मनस्वियों के मान की, तपस्वियों के तप की, यशस्वियों के यश की वृद्धि करनेवाला है। इसके श्रवण मात्र से सभी सिद्धियाँ मिलती है।

जोड़ पुत्र का हरि से नाता। धन्य हो गई ध्रुव की माता॥
किया माता पद को चरितार्थ। सिद्ध भये स्वार्थ और परमार्थ॥ जीव का यही परम पुरुषार्थ॥
भोग लोक सुख मातु सहित ध्रुव चढ़कर चले विमान।
पायो अचल लोक ध्रुवलोक भक्त ध्रुव धरि के हरिको ध्यान॥

मैत्रेयजी ने कहा- विदुरजी, मैंने आपको ध्रुव चरित का गान कर दिया। यह चरित्र मानव को धन, आयु, कीर्ति तथा स्वर्ग प्रदान करनेवाला है। जो व्यक्ति पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी, श्रवण नक्षत्र, तिथिक्षय, व्यतिपात, संक्रान्ति अथवा रविवार के दिन श्रद्धालुजनों को सुनाता है, वह सन्तुष्ट होकर सिद्ध बन जाता है। उसकी सारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं।

ध्रुव जी के कर्म प्रसिद्ध एवं पवित्र हैं। वे अपनी बाल्यावस्था में ही माताजी के घर और खिलौनों का मोह छोड़कर भगवान विष्णु की शरण में चले गये थे।

३) महाराज पृथु का चरित्र- विदुर ने मैत्रेय मुनि से पूछा- भगवन्। पीछे आपने कहा था प्रचेताओं के यज्ञ में नारदजी ने ध्रुव के यश का गान किया था। तो वे प्रचेता कौन थे, किनके पुत्र थे? किस वंश में उत्पन्न हुए थे? उन्होंने कहाँ यज्ञ किया था? इन सब बातों को कृपा करके आप वर्णन करें।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी, ध्रुव के बड़े बेटे हुए उत्कल। ध्रुव ने इन्हीं को राजगद्दी प्रदान की थी। किन्तु पिताजी के वन-गमन के अनन्तर उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। वे शान्तचित्त थे, भगवत्परायण और सर्वदा अपने स्वरूप में स्थित रहनेवाल थे। उत्कल ने विचार किया कि राजमद बड़ा ही प्रसिद्ध होता है। भगवान का स्मरण करते हुए जीवन को उत्तमोत्तम होना चाहिए। ऐसा सोच-विचार कर साधु गुणों का आविर्भाव हुआ और राजोचित गुण तिरोहित हो गये। वैराग्यपूर्वक आध्यात्मिक चिंतन करने से हृदय में आध्यात्म प्रकाश प्रकाशित होने लगता है।

उत्कल जन्मसे ही शान्त था, नि:संग, समदर्शी था। उसको यह अनुभव होता था कि सबमें आत्मा है और आत्मामें सब है। आत्मा ब्रह्मरूप है, उसमें कोई भेद नहीं। अपने सिवाय कोई दूसरी वस्तु दीखती नहीं थी। कई लोग कहते हैं वो पागल था इसलिये मन्त्रियोंने इसे घरसे निकाल दिया और राज्य नहीं दिया। लेकिन ध्रुवका पुत्र उत्कल पागल नहीं था, वह तो समदर्शी अवधूत था। दुनियाके लोग उसको होशियार समझकर उसे किसी झगड़ेमें न डाल दे, इसलिये उत्कल ने अपने

ध्रुव के वंश का वर्णन

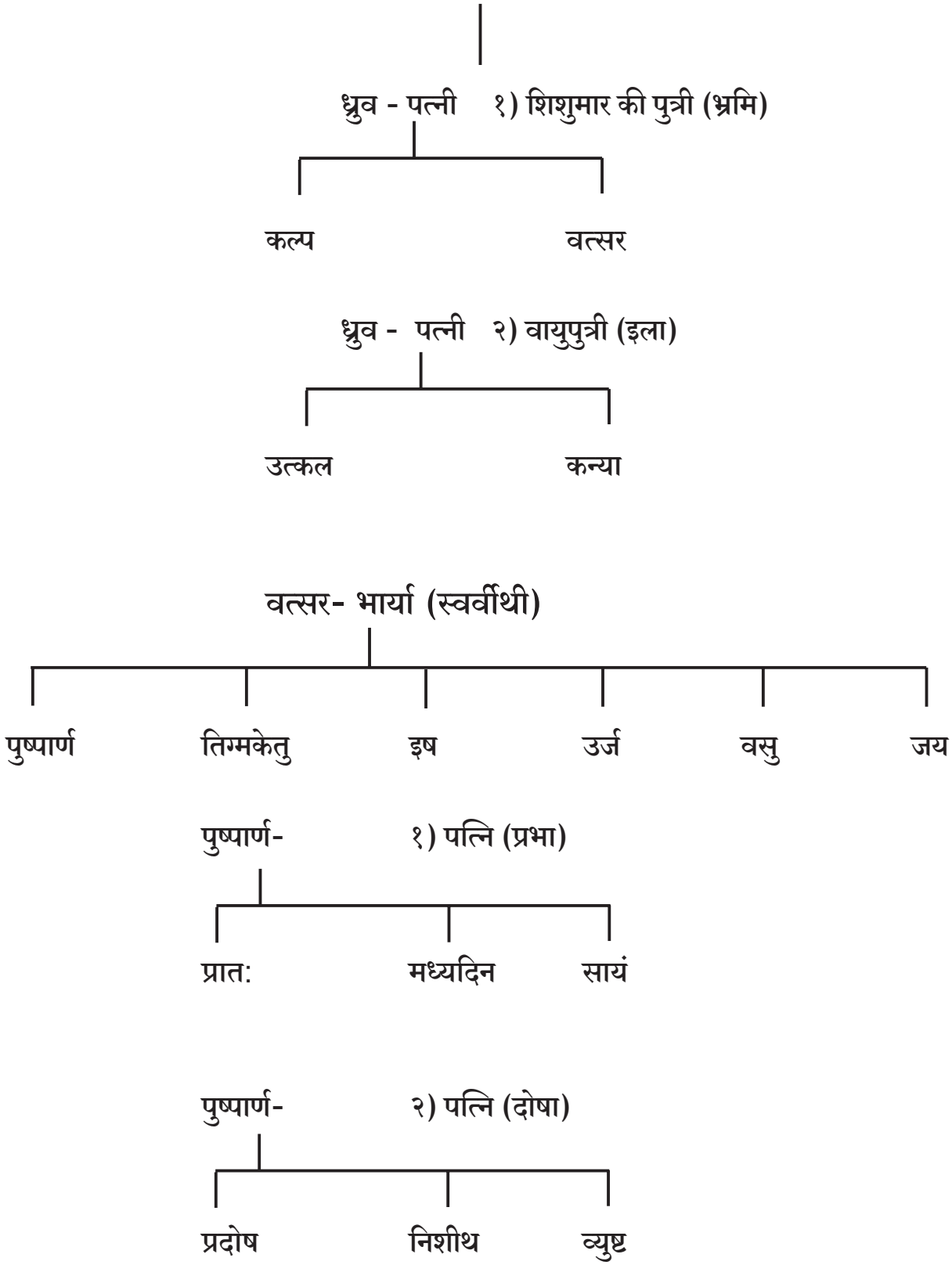

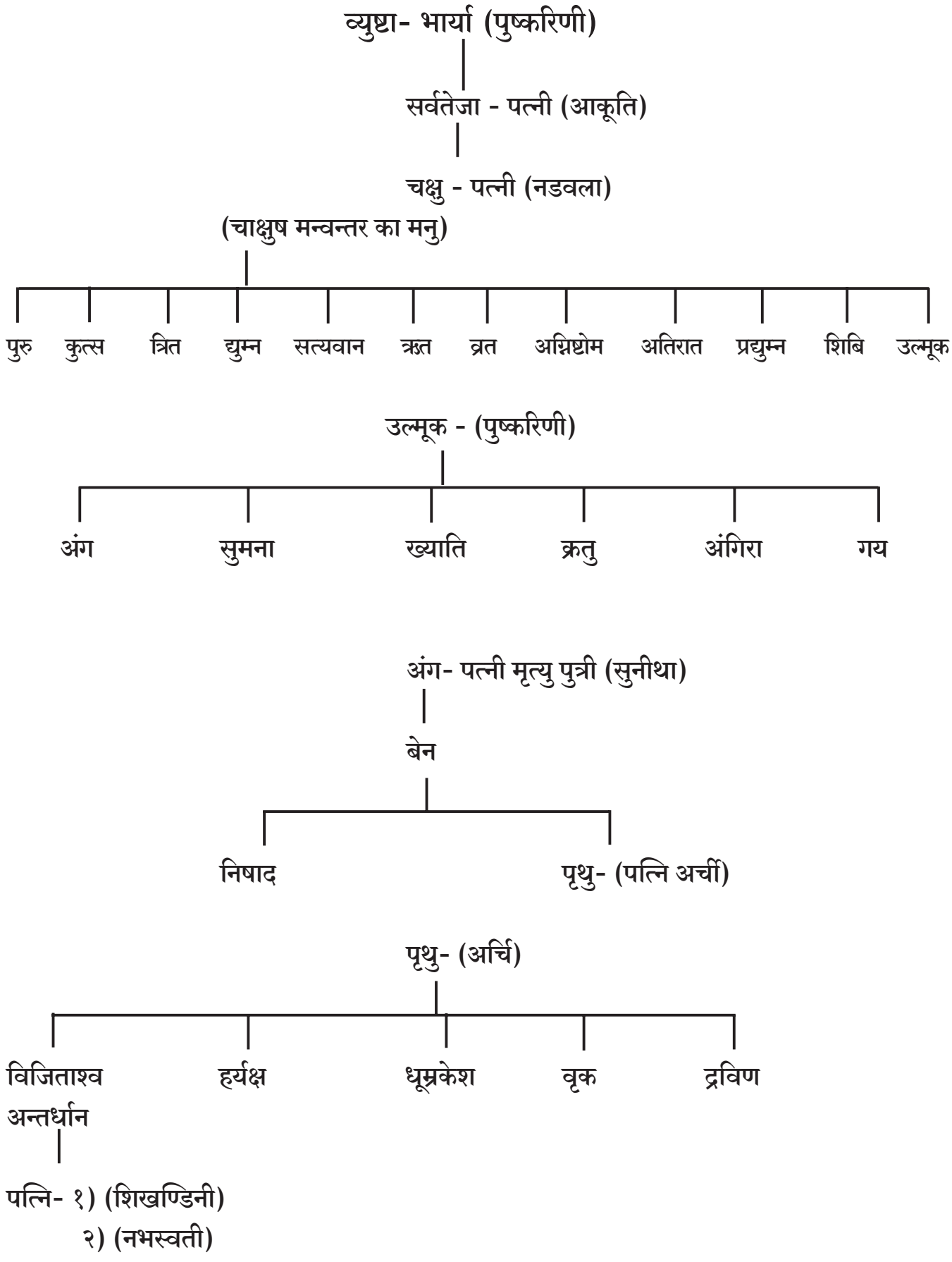
व्युष्टा- भार्या (पुष्करिणी)
सर्वतेजा - पत्नी (आकूति)
चक्षु - पत्नी (नडवला)
(चाक्षुष मन्वन्तर का मनु)
पुरु
कुत्स
त्रित
द्युम्न
सत्यवान
ऋत
व्रत
अग्निष्टोम
अतिरात
प्रद्युम्न
शिबि
उल्मूक
उल्मूक - (पुष्करिणी)
अंग
सुमना
ख्याति
क्रतु
अंगिरा
गय
अंग- पत्नी मृत्यु पुत्री (सुनीथा)
बेन
निषाद
पृथु- (पत्नि अर्ची)
पृथु- (अर्चि)
विजिताश्व
हर्यक्ष
धूम्रकेश
वृक
द्रविण
अन्तर्धान
पत्नि- १) (शिखण्डिनी)
२) (नभस्वती)

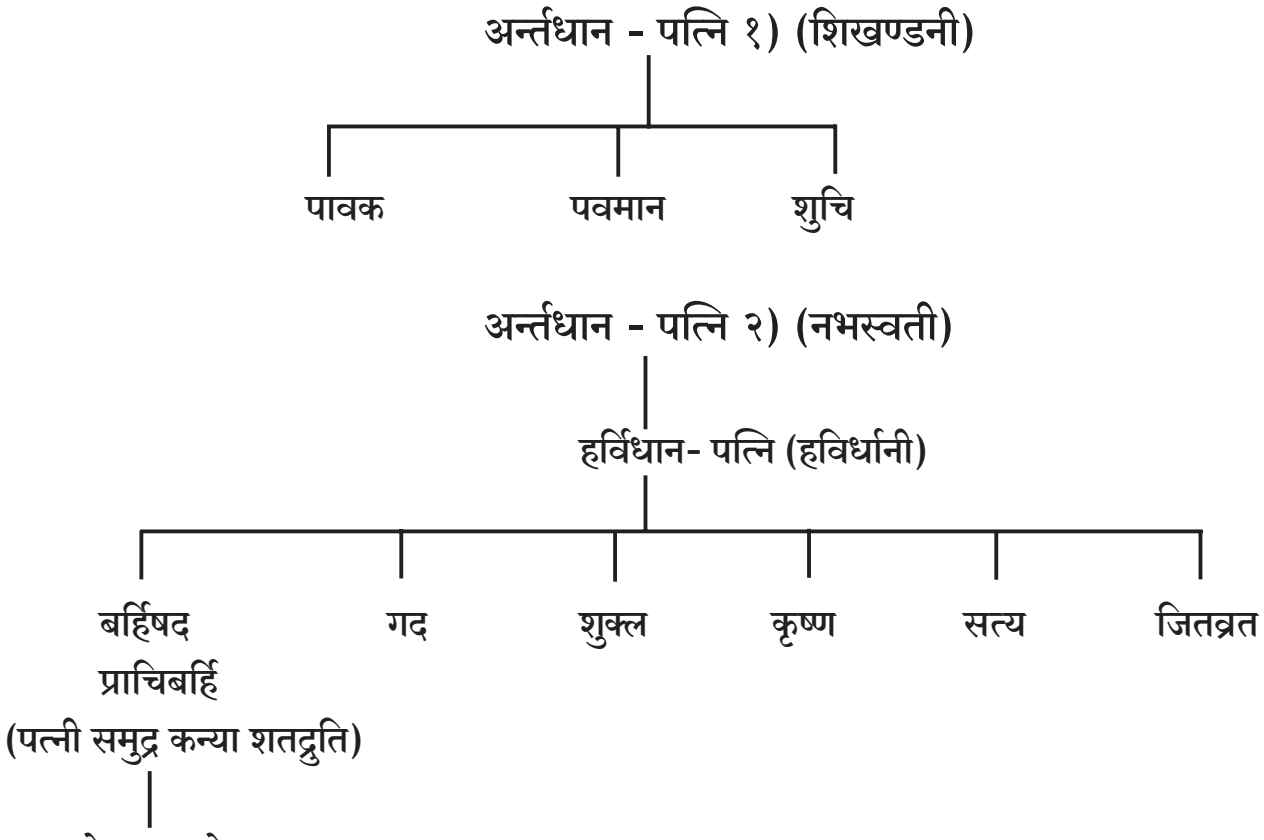

** हृदय से यदि हो नहीं, आराधना किस काम की। काम ना आये किसी के, कामना किस काम की।।*
बैठ मंदिर में भले, जब-जाप भजन किया करो। भावना में भाव न हो, भावना किस काम की।।
** छोटी सी जिन्दगी है, तकरार किसलिये, रहती है दिलों में दीवार, किसलिये।*
है साथ कुछ दिनों का, फिर सब जुदा-जुदा, राहों में हम फूल बिछाये, फिर शूल किस लिये।।
** ठोकर नसीब की जो, खाकर भी मुस्कराये। एक रोज बढ़के जो, मंजिल उसको गले लगाए।*
** हर विध्वंस में निर्माण के और हर प्रलय में सृष्टि के बीज पडते हैं।*
** जब तक स्वयं में विश्वास नहीं करते परमात्मा में विश्वास नहीं कर सकते।*
** कोई भी संस्कृति जीवित नहीं रह पायेगी अगर वह अपने को अन्य से पृथक रहने का प्रयास करे।*
** मंजिल की दूरी कितनी है, उसकी लगन बता देती है।*
मौसम के मन की बातों को, हमको हवा बताया करती।
किस बस्ती में कितनी मस्ती, हमको राह दिखाया करती।।
** जितनी मुश्किल नहीं है लोगों, इस दौलत को पाना। इससे ज्यादा कठिन तपस्या, जग में उसे बचाना। समझेगा जो इस जीवन में, सुख-दु:ख एक समान।*
** बाधाओं को चुनौती मान स्वाभिमान से जीओ, अपमान खुद छिप जायेगा।*
तुफानों से डरो नहीं, साहस से झेलो, किनारा खुद ही सरक जायेगा।।

-आपको ऐसे दिखाया कि वे किसी कामका नहीं है।

वृद्ध मन्त्रियों ने उन्हें पागल समझकर भ्रमि के छोटे बेटे वत्सर को राजगद्दी प्रदान कर दी। वत्सर की पत्नी का नाम था- स्ववीर्थी। उसके गर्भ से पुष्पाणी, तिग्मकेतु, इष, उर्ज, वसु और जय नाम के ६ पुत्र हुए। उसके छ: पुत्रों में पुष्पार्ण सब से बड़ा था। इन्हींके वंशमें शिवि, गय आदि बड़े-बड़े राजा हुए।

पुष्पार्ण के भी छ: पुत्र हुए जिन में सब से छोटे पुत्र व्युष्ट थे। व्युष्ट की पत्नी थी पुष्करिणी। उसने सर्वतेजा नामक पुत्र उत्पन्न किया। सर्वतेजा की पत्नी थी- आकूति। आकूति से चक्षु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। चाक्षुष मन्वन्तर में वही मनु हुआ। चाक्षुष मनु के बारह पुत्र थे। उनमें सबसे छोटे पुत्र का नाम था- उल्मुक। उल्मुक की पत्नी पुष्करिणी से छ: पुत्र पैदा हुए। इनमें अंग सबसे बड़े थे। अंग शीलवान सज्जन और ब्राह्मणों के भक्त थे। अंग की पत्नी का नाम था- मृत्यु की पुत्री सुनीथा।

सब प्राणियों को मारने ताड़ने वाले मृत्युदेव के एक सर्वगुणसम्पन्ना सुनीथा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। मृत्युदेव उस परम सुन्दरी कन्या को अत्यन्त स्नेह, बडे लाड़चाव के सहित पालन करने लगे। मृत्यु का काम ही है,किसी को मारना, किसीको ताड़ना, किसी को दु:खदेना। नन्दन कानन के समीप के एक उपवन में सुशंख नाम का एक बड़ा तपस्वी गन्धर्व एकान्त में रहकर घोर तप करता था। सुनीथा उसे अकारण मार-पीट करती थी और कहती थी मैं तीनों लोकों के स्वामी मृत्यु की पुत्री हूँ। सुशंख उसे बोला- क्यों रे छोरी, तू अपनी धृष्टता किये बिना नहीं मानेगी और उसने क्रोध में भरकर उसे शाप दिया- जा दुष्टे। तू मुझनिरपराधी को मारती है, इसलिऐ तेरे गर्भ से एक ऐसा क्रूरकर्मा दुष्ट पुत्र उत्पन्न होगा, जो वेदमार्ग का दूषक गौ ब्राह्मणों का निंदक, यज्ञ सत्कर्मों से रहित और पापी होगा। मृत्यु को रात दिन सुनीथा के विवाह की चिंता लगी रहती थी। किन्तु ऐसी शापित लड़की के साथ किसी देवता, गन्धर्व, किंपुरुष, गुह्यक किसी ने भी विवाह का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। इससे मृत्यु को बड़ी ग्लानि हुई और वह पिता को प्रणाम करके बड़े खिन्न मन से वन में तपस्या करने चली गई। वहां पर रम्भा उसकी सहेली विहार करने आई और बड़े स्नेह से पूछने लगी- सुनीथा तुम इतनी दु:खी क्यों हो? अत्यन्त उदास मन से सुनीथा ने बताया- दु:ख ऐसा है कि उसे कोई मिटा नहीं सकता। मैंने अपने पापकर्मोंसे स्वत: ही दु:ख मोल दिया है। मैंने निरपराध सुशंख मुनि को कष्ट दिया है। उसने मुझे क्रुद्ध होकर श्राप दिया है कि मेरे गर्भ से अत्यन्त क्रूरकर्मा, दुष्ट, वेदनिन्दक प्राणियों का हिंसक पुत्र उत्पन्न होगा। इसी कारण मुझसे विवाह करने के लिये कोई तैयार नहीं होता। सब कहते हैं यह मुनि का श्राप है कोई भी अपने कुल में कलंक लगाना नहीं चाहता। इसीसे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है, अब मैं जीवित रहना नहीं चाहती। यहां वन में रहकर बिना कुछ खायें प्राण त्याग दूँगी। रम्भा बोली- तुम चिन्ता मत करो। जीव से अपराध तो हो ही जाता है। संसार में कौन अपराध से बचा है? ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, रुद्र, सूर्य, चन्द्रमा तथा और भी ऋषि-मुनियों से भूल हुई है किसे शाप नहीं मिला। ब्रह्माजी को पूज्यत्व का शाप हुआ, शिवजी को कपाली नग्न होनेका शाप, इन्द्र को हजार नेत्र होने का श्राप, सूर्य को कुष्ट होने का, चन्द्रमा को क्षय होने का, कौन शाप से बचा है। रम्भा ने उसे एक मोहिनी विद्या सिखा दी कि जिस पुरुष की ओर भी वह आसक्ति सहित देख दे, वही उसके वश में हो जाय। एक समय महाराज अंग पुत्र की कामना से नन्दनवन में तपस्या कर रहे थे। सुनीथा का मन उनमें फँस गया उसने अपनी मोहिनी विद्या के जाल से राजा अंग को फँसा लिया। सुनीथा वीणा के स्वर मिलाकर सुमधुर गान करने लगी और तपस्वी अंग के हृदयतन्त्री के तार झनझना उठे। अंगने कहा- देवी, तुम्हारी वीणा के झंकार के सुमधुर गान ने मेरा मन हर लिया है और मैं अपने वश में नहीं हूँ। सुनीथा ने मोहिनी विद्या से महाराज अंग को अपने वश में कर

लिया और थोड़े ही दिनों में अंग और सुनीथा का आपस में गन्धर्व विवाह हुआ। सुनीथा बोली यह पुरुष बड़े स्वार्थी होते हैं जब इनका कोई प्रयोजन होता है तो स्त्रियोंसे ऐसी चिकनी-चुपड़ी बातें बनाते हैं और अपना पूरा स्नेह उंड़ेलते हैं। जहां प्रयोजन सिद्ध हुआ फिर मुँह से बात भी नहीं करते। सुनीथा ने कहा- मैं चाहे जैसा अपराध करूं जीवनभर मुझसे चाहे जितनी त्रुटि हो पर आप जीवनभर मेरा त्याग नहीं करेंगे। महाराज अंग ने उसकी यह शर्त स्वीकार की और बड़े आनन्द के सहित सुनीथा के साथ विहार करने लगे। कालान्तर में सुनीथा का गर्भ ठहर गया।

सुनीथा ने अत्यन्त क्रूर कर्म करनेवाले वेन को पैदा किया। दीर्घकाल तक राजाके कोई संतान नहीं हुई थी। राजा अंग ने कई अश्वमेध यज्ञ के आयोजन किये पर स्वर्गीय देवता अंग के अश्वमेध यज्ञ में नहीं आये। इससे राजा को बड़ा दु:ख हुआ। तब उसने ऋत्विजों से पूछा- मैंने कितनी श्रद्धा से यज्ञ किया है, कितनी पवित्र वस्तुएं जुटाई है, कितने वेद-विधि को जानने वाले विद्वान बुलाये हैं फिर भी आवाहन करने पर भी देवतागण अपना भाग लेने क्यों नहीं आते। तब ऋत्विज बोले- देवताओं के यज्ञ में न पधारने के तीन ही कारण हैं। या तो सामग्री अपवित्र, दोषयुक्त हो। अथवा यजमान के कार्य श्रद्धाहीन हों। या यज्ञ करानेवालों के यज्ञीय मन्त्र सामर्थ्यहीन, ब्रह्मचर्य व्रतों से रहित, अशुद्ध और शक्तिहीन हों। इन तीनों बातों में से यहाँ एक भी नहीं है। आपकी सामग्री बड़ी पवित्र है, शुद्ध है। द्रव्य आपका अधर्म से उपार्जित नहीं है। न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते हुए उनसे षष्ठांश लिया गया है। हमारे मन्त्र अमोघ हैं, हमने ब्रह्मचर्य व्रत पालन पूर्वक इनका सांगोपांग अध्ययन किया है। फिर भी देवता नहीं आते महान् आश्चर्य है? ऋत्विजों ने कहा- आप पुत्र प्राप्ति के लिये पुत्र कामेष्टि यज्ञ करें।

महाराजा अंग ने पुत्र कामेष्टि यज्ञ किया। जैसे ही मंत्रों से आहुति डाली गयी एक सिद्ध पायस का पात्र लिये हुए दिव्य पुरुष प्रकट हुए। उनके प्रकट होते ही, सर्वत्र आनन्द छा गया और कहा- राजन्, आप बड़ी श्रद्धा के सहित इस खीर के पात्र को ग्रहण करे और दिव्य पुरुष उसी समय अन्तर्ध्यान हो गये। गर्भवती स्त्री को कभी भी व्यर्थ की बुरी-बुरी बातें विचारनी नहीं चाहिए, न कोई पाप कर्म ही करना चाहिये।

राजा अंग ने यज्ञ करवाया और उनकी पत्नी सुनीथा के गर्भ से राजा अंग को एक पुत्र वेन हुआ। वो पुत्र पिता के संस्कार को नहीं पाकर अपनी माता के संस्कार को चला गया। पिता के दोष तथा नाना के दोष एवं गुरु के दोष इन तीनों दोषोंसे मनुष्य भगवद्द्वेषी होता है।

मैत्रेयजी की बात सुनकर विदुर जी ने पूछा- भगवन्, राजा अंग धर्मात्मा थे। उनका पुत्र वेन अधार्मिक हो गया। इसका कारण क्या है? वेन का क्या अपराध था, जिसके कुपित होकर ऋषियों ने अपने शाप से उसे मार डाला? इस पर मैत्रेय जी ने कहा- विदुरजी, एक बार महाराज अंग ने अश्वमेध महायज्ञ का अनुष्ठान किया। यज्ञ बड़े विधि-विधान से चल रहा था किन्तु आचार्यों के बार-बार आवाहन करने पर भी उसमें देवता लोग भाग नहीं ले रहे थे इस पर आचार्यों को महान् आश्चर्य हुआ। उन लोगों ने अंग से कहा- महाराज, यज्ञ के अनुष्ठान में किसी प्रकार की भी त्रुटि नहीं हो रही है। किन्तु कष्ट है कि देवता लोग इसमें अपना भाग नहीं ले रहे हैं। इसका कारण क्या है? इस पर राजा अंग बहुत उदास हुए और यज्ञ के परमाचार्य से पूछा- भगवन्, इसमें क्या कारण है? आप ही विचार कर बतलाने की कृपा करें।

परमाचार्य ने विचार कर कहा- महाराज, इस जन्म में तो आपसे स्वप्न भी अपराध नहीं हुआ है किन्तु आपका पूर्व जन्म का एक अपराध है, जिसके कारण आप पुत्रहीन हैं। पुत्रहीन होने के कारण देव-गण आपके यज्ञ में भाग नहीं ले रहे हैं अत: आप श्रीहरि को उद्देश्य कर पुत्रेष्टि यज्ञ करें तो वे आपको अवश्य पुत्र प्रदान करेंगे। जब सन्तान के लिये भगवान का आह्वान किया

जायेगा तो देवता लोग भी स्वयं ही अपना-अपना भाग ग्रहण करेंगे। भक्त जिस वस्तु की कामना से भगवान की आराधना करता है, वे उसे वही-वही पदार्थ प्रदान करते हैं। उनकी जैसी आराधना की जाती है, वैसा ही फल प्राप्त होता है।

परमाचार्य की बात सुनकर ऋत्विजों ने राजा को पुत्र-प्राप्ति के लिये, भगवान को समर्पित करने के निमित्त, पुरोडाश वपन किया, रोट तैयार किया। भगवान को रोट बहुत प्रिय हैं। आज भी भक्त-जन भगवान को रोट चढ़ाते हैं। राजा ने आचार्यों के मन्त्र के साथ यज्ञ-कुण्ड में रोट हवन किया। अग्नि में आहुति डालते ही अग्नि-कुण्ड से सुवर्णाभूषण से अलंकृत, शुभ्र वस्त्रों से वेष्टित एक दिव्य पुरुष निकला। उसके हाथों में खीर से भरा हुआ सुवर्ण का पात्र था। ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर उस पात्र को राजा ने सादर ग्रहण किया उसे सूँघा और खाने के लिये अपनी रानी को दे दिया। रानी ने सिर चढ़ाकर उस प्रसाद को लिया और खाया उसीसे वह गर्भवती हो गई। फलत: वेन नामक पुत्र पैदा हुआ। महाराज अंग की पत्नी सुनीथा मृत्यु की बेटी थी, मृत्यु असुर था। वेन बाल्यावस्था से ही अधर्म के वंश में उत्पन्न अपने नाना मृत्यु का अनुसरणकर्ता था। यही कारण है कि वेन भी महान् अधार्मिक हुआ। शोक देनेवाले पुत्र से तो कुपुत्र ही अच्छा है। बालक माता अथवा मातृ-वंश के दोष के कारण दु:शील होता है।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। सुनीथा के गर्भ का बालक अधर्म के वंश में उत्पन्न होनेवाले अपने नाना मृत्यु के ही शील स्वभाववाला बालकपने से ही हुआ। नाना के सम्बन्ध से वह अधार्मिक हुआ। कुछ बड़ा होने पर वह दुष्ट बालक हाथ में तीर कमान लिये वन में जाकर व्याध की भाँति भोले-भाले हिरनों को मारता फिरता था। उसे देखते ही सभी प्रजा के लोग चिल्ला उठते थे, वेन आ रहा है। कुछ महात्मा लोग राजा अंग के पास आये। महात्मा तो स्वभाव से दयालु होते हैं, पर पीड़ा को देखकर उनका हृदय नवनीत के समान द्रवित हो गया और अपने सदुपदेशों द्वारा राजा के ग्लानि भरे हृदय को शक्ति भर प्रसन्न करने का प्रयत्न करते रहे।

राजा बोला- मेरा यह क्रूरकर्मा कुपुत्र ऐसा दुष्ट है कि सदा सबको पीड़ा पहुँचाता रहता है। ऐसे पुत्र से तो पुत्रहीन होना हजारों गुणा श्रेष्ठ है। वे पुरुष धन्य हैं, जिनके पुत्र नहीं है। यदि हैं भी तो सुपुत्र हैं। कुपुत्र के कारण होनेवाला दु:ख अनन्त पापों का फल है। जिन्होंने पूर्वजन्मों में प्रभु की प्रेमपूर्वक पूजा न की हो उसी के यहाँ कुपुत्र का जन्म होता है। कुपुत्र के कारण अनर्थ-ही-अनर्थ होते हैं। जिस कुल में कुपुत्र उत्पन्न हुआ उस कुल की समस्त प्रतिष्ठा धूलि में मिल जाती है। कितना भी यशस्वी कुल हो उसका यश नष्ट हो जाता है। कुपुत्र अधर्म करके स्वयं ही पाप का भागी नहीं बनता, उसके पितर भी नरकों की यातनायें सहते हैं। उसके कारण परिवार भर को अधर्म का भागी होना पड़ता है। महाराज, अहर्निश हृदय जलता रहता है, सदा मानसिक चिन्ता बनी रहती है। सदा सन्ताप की ज्वाला में सन्तप्त होना पड़ता है। इन सब कारणों से सभी सुख-दु:ख रूप में परिणत हो जाते हैं, समस्त आनन्द प्रमोद नष्ट हो जाते हैं, भरा पूरा घर दु:खमय प्रतीत होता है। महात्मा बोले- राजन्, सुपुत्र हुआ तो वह अपने शील स्वभाव से, सेवा सत्कारसे, सदाचार तथा श्रेष्ठ गुणों से पिता को वश में कर लेता है। पिता सदा उसके सद्गुणों पर विमुग्ध बना रहता है, उसी के कल्याण की सोचता रहता है। उसे प्रसन्न करने को कभी घर से बाहर नहीं निकलता। दिन-दिन उसके स्नेह बन्धन में बँधता जाता है, मोह जाल में जकड़ता जाता है। उसे वैराग्य नहीं होता, घर, द्वार, कुटुम्ब, परिवार में बढ़ी हुई आसक्ति कम नहीं होती। उसका परलोक बिगड़ जाता है, मरते समय पुत्र पौत्रों का ध्यान करते हुए ही मरताहै। इसलिये मरकर उसी परिवार में उसे फिर पुत्र बनकर उत्पन्न होना पड़ता है। इसके विपरीत कुपुत्र सदा दु:ख देता है। मन से सदा वैराग्य बना रहता है, कुटुम्ब परिवार संसारी

सभी सुख फीके पड़ते हैं, ऐसे समय भी जो घर को त्यागकर नहीं जाते, उनसे बढ़कर नीच पतित और कौन होगा? राजन्, कुपुत्र इसीलिये अच्छा है कि वह संसार से वैराग्य उत्पन्न कराने का कारण होता है।

अंग राजा तो बड़े धर्मात्मा थे लेकिन उनकी पत्नी सुनीथा बड़ी ही दुष्ट विचारों की थी। सुनीथा मृत्यु की पुत्री थी, वेन बड़ा ही दुष्ट निकला वह क्रूर था, निर्दयी था। जिसकी माता धर्म-अधर्म का विचार नहीं करती उसका बेटा पापी क्यों न होगा? ऐसे अधर्मियों की संगति में नहीं रहना चाहिए। कुसंग में रहने से सुख नहीं मिलता। बेन किसी पर दयाभाव नहीं रखता था। उसके अत्याचार से प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। मैदान में खेलते हुए बालकों को पशुओं की भांति मार डालता था। किसी बच्चे को गोद में लेकर कुएं मे फेंक देता, तो किसी के घर में आग लगा देता इसप्रकार प्रजा को सताने लगा। राजा अंग के पास शिकायत आने लगी, अंग राजा अपने भाग्य को कोसने लगे कि मैंने पूर्वजन्म में ऐसा कौनसा पाप किया जिससे मुझे नालायक बेटा और दुष्टा पत्नी मिली। इसी कारण कुछ समय पश्चात् उनको घर से, परिवार से वैराग्य हो गया और वो रातोरात घर से निकलकर नगर छोड़कर वनमें चले गये।

वेन बड़े-बड़े भयंकर कर्म करता था। जिस मार्ग से वह निकल जाय, लोग चिल्लायें कि अरे वेन आया, अरे वेन आया। वह बच्चों को गला दबाकर मार डालता था। राजा अंग के लाख प्रयास के बाद भी जब वेन नहीं सुधरा तो उन्हें महान् दु:ख और वैराग्य हुआ अन्तत: एक दिन अर्धरात्रि की बेला में वह सोती पत्नी को छोड़कर घर से निकल गये। किसी को भी पता नहीं चला कि वे कहाँ गये?

सबेरा हुआ। राजा दिखलाई न पड़े। मन्त्रियों ने चारों ओर खोजबीन की। किन्तु उनका कुछ भी पता न चला, तदनन्तर मन्त्रियों ने ऋषियों के पास जाकर राजा के गायब होने की बात बतलाई।

मैत्रेयजी ने कहा- विदुरजी, सभी लोकों का मंगल चाहनेवाले भृगु आदि मुनियों ने देखा कि अंग के चले जाने पर पृथ्वी की रक्षा करनेवाला कोई रह नहीं गया है अत: सभी लोग पशुओं की भाँति उच्छृखंल होते जा रहे हैं। तब कुछ बड़े-बड़े महात्मा लोग एकत्रित हुए। विचार चला कि किस को राजा बनाया जाय? प्रजा नहीं चाहती थी कि वेन राजा बनें। वेन की माता सुनीथा को महात्माओं ने बुलाया और उससे सलाह करके वेन को राजगद्दी पर बैठा दिया, उसका अभिषेक कर दिया।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। कुपुत्र वेन के दु:ख से इस प्रकार उदासीन होकर महाराज अंग एक दिन आधी रात्रि के समय अपने समस्त ऐश्वर्यशाली घर को छोड़कर चले गये। उन्हें उस दिन नींद नहीं आई थी। वेन की माता सुनीथा गाढ़ निद्रा में सो रही थी तथा और किसी दूसरे ने भी उन्हें जाते हुए नहीं देखा।

पुत्र न होना अच्छा है; लेकिन कुपुत्र होना अच्छा नहीं। क्योंकि कुपुत्रसे बड़ी भारी बदनामी होती हैं। पापसे कीर्ति मिट जाती है, अधर्म का आचरण हो जाता है, सब लोग जब विरोध करते हैं और उसके मनमें चिंता होती है। पुत्र के रूपमें मोहका बन्धन आता ही है। इसे पण्डित लोग बहुत अच्छा नहीं समझते इसके कारण घर भी दु:खद हो जाता है। जिन गृहस्थोंके पुत्र नहीं है, उन्होंने अवश्य ही पूर्वजन्ममें श्रीहरिकी आराधना की होगी, इसीसे उन्हें कुपूतकी करतूतोंसे होनेवाले असह्य क्लेश नहीं सहने पड़ते। जिसकी करनीसे माता-पिताका सारा सुयश मिट्टीमें मिल जाय, उन्हें अधर्मका भागी होना पड़े, सबसे विरोध हो जाय, कभी न छूटनेवाली चिन्ता मोल लेनी पड़े और घर भी दु:खदायी हो जाय- ऐसी नाममात्रकी सन्तानके लिये कौन समझदार पुरुष ललचावेगा? वह तो आत्माके लिये एक प्रकारका मोहमय बन्धन ही है।

शरीर और शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी भी वस्तुएँ हैं सबके साथ इस जीवात्मा की ऐसी आसक्ति हो जाती है कि

इन्हें स्वेच्छा से कभी भी छोड़ना नहीं चाहता। घर की ईंट-ईंट में मोह हो जाता है, बेकाम की भी वस्तुएँ पड़ी हो तो उन्हें भी दूसरों को नहीं देता। पेड़ों में, पत्तों में, छोटी-छोटी चीजों में इतना अपनापन हो जाता है कि मिट्टी का घड़ा भी फूट जाय तो ऐसा लगता है मानों हमारा हृदय फूट गया। इन सब चीजों में इतना ममत्व होने पर भी अत्यन्त ज्ञानपूर्वक वैराग्य होने पर अथवा अत्यन्त शोक होने पर मनुष्य इन सबको भी तृण की तरह त्यागकर तत्काल चला जाता हे। जिनको इस संसार की अनित्यता, क्षणभंगुरता को देखकर भी वैराग्य नहीं होता, जो अपमान-पर-अपमान तिरस्कार-पर-तिरस्कार सहकर भी मोहवश, निन्दित कुत्सित जीवन बिताते हुए गृह में ही आसक्त बने रहते हैं, वे तो नर पशु हैं। नहीं तो सम्भावित मनस्वी पुरुष तो अपयश तथा अपकीर्ति की अपेक्षा मरण को ही श्रेष्ठ समझते हैं।

जन्मान्तरीय प्रबल संस्कार किसी प्रकार भी नहीं हटते। गरुड़जी भगवान के सखा हैं, सेवक हैं, भक्त हैं, वाहन हैं, फिर भी सर्पों के खाने का जो उनका स्वाभाविक संस्कार है वह नहीं छूटता। सर्पगण शिवजी के भूषण है। उनके अनुचर हैं, अमृतस्त्रव चन्द्रमा के समीप सदा रहते हैं। चन्द्रमा भगवान भोलेनाथ के मस्तक के तिलक हैं तो सर्प उनके मुकुट हैं। इतना होने पर भी सर्पों का जो विष उगलने का स्वभाव है, वह नहीं छूटता। गौ को न कोई सिखाता है और न उसके दूध में मधुरिता लाने का कोई यत्न करता है, उसका दुग्ध प्रकृति से ही मधुर है। जो बच्चे पूर्व संस्कारों से दुष्ट होते हैं, वे बिना सिखाये ही दुष्टता करने लगते हैं। पापों के प्रबल संस्कारों के कारण ज्यों ही वे बोलने चालने लगते हैं, त्यों ही दूसरों को दु:ख देने लगते हैं। मातृवंश का भी सन्तान पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, अत: सदा सत्कुलीन कन्या के साथ ही विवाह करना चाहिये।

मैं तो सपूतकी अपेक्षा कुपूतको ही अच्छा समझता हूँ; क्योंकि सपूतको छोडनेमें बडा क्लेश होता है। कुपूत घरको नरक बना देता है, इसलिये उससे सहज ही छुटकारा हो जाता है। ऐसा सोचनेपर राजा अंग के मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ।

शठता सुत की सुनि सबहिँ, दु:ख अंगकूँ अति भयो। सोचें मनुके वंशमहँ, कुलकलंक यह ह्वै गयो।।

बेन बड़ा दुस्सासह, दुष्ट, क्रोधी और असहनशील था। इसीलिये सब उसके सामने थर-थर कांपते थे।

संसार से वैराग्य हुआ, जंगल में जाकर भजन व आत्मचिन्तन करने लगे। कुछ दिनों में उन्हें भगवत् साक्षात्कार हुआ। मोह का बन्धन छूटा, भजन करने से उनके पाप दग्ध हुए और उन्हें भगवद् प्राप्ति हुई।

ध्रुवके वत्सर पुत्र भये पुष्पार्ण तासु सुत। तिनके बेटा व्युष्ट, सर्वतेजस् सुत तपयुत।।
आकूतीमहँ पुत्र, चक्षु मनु तिनके सुखकर। मनु के उल्मुक भये, तिन्हींके अंग पुत्रवर।।
मृत्यु सुताको अंगने, पाणिग्रहण विधिवत् कियो। ताहीं तें अतिक्रूरतर, वेनपुत्र पैदा भयो।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। सुनीथा महाराज अंग की पत्नी हुई, जिसने क्रूरकर्मा बेन नामक पुत्र को उत्पन्न किया। जिसकी दुष्टता से दुखित होकर राजर्षि महाराज अंग अपने नगर को त्यागकर वन को चले गये। मन्त्रीगण राजाको ढूँढने निकले पर वह राजा को नहीं पा सके। जैसे कुयोगी अपने अन्त:करण में स्थित परमात्मा को नहीं पा सकते। लोग परमात्मा को ढूँढने काशी, प्रयाग जाते हैं, रामेश्वर, द्वारिका, बदरीनाथ न जाने कहाँ-कहाँ भटकते रहते हैं पर अपने भीतर खोज नहीं करते।

सन्तजन कहते हैं, सृष्टि को तो नहीं बदल सकते सन्तजनों की कृपा से सत्संग श्रवण से दृष्टि बदल सकती है परिस्थिति नहीं बदली जा सकती, लेकिन प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करके लाभान्वित हो सकता है। जिसके हृदय में दया है उसने तो स्वर्ग को जीत लिया है पर बेन पर इन बातों का कोई असर नहीं पड़ा।

वेन के भीषण अत्याचार से कुपित मुनियों ने शाप देकर हुंकार से वेन को भी मार डाला। उस समय राजा न होने के कारण सर्वत्र लूटपाट मच गई। प्रजा में अराजकता फैलने लग गई, चोर डाकुओंका उपद्रव बढ़ गया। प्रजा को महान कष्ट

होने लगा। बिना राजा के प्रजा असुरक्षित हो गई ऋषियोंने मिलकर विचार किया कि बेन को राजगद्दी पर बिठाओ। कुछ लोग कहने लगे बेन जब राजा नहीं है तो क्या-क्या उपद्रव कर रहा हैं जब राजा बन जायेगा तो क्या कुछ नहीं करेगा। इसपर ऋषियोंका मत रहा कि जब तक बालक माता-पिता पर निर्भर रहता है वह उद्दंडता करता है पर जब अपने पर जिम्मेदारी आती है तो शायद उसमें सुधार हो जाये। राजा अंग के चले जानेसे ऋषि-मुनियोंने देखा कि सबलोग उच्छृंखल होते जा रहे हैं। बिना राजाके राज्य नहीं चल सकता। किसी-न-किसीको तो शासक बनाना ही पड़ेगा। शासक चोर, डाकू और दुष्टको दण्ड देकर प्रजाकी रक्षा करेगा। प्रजा सुरक्षित रहेगी तो अपने धर्मका पालन करेगी। धर्म-पालनके लिए सुरक्षा है और सुरक्षा के लिए राजा है। राजा धर्म-पालनका ही अंग है। यदि वह धर्म-पालनका विरोध करे तो राजा राजा होने योग्य नहीं रहता। जहाँ कोई शासक न हो, राजा न हो अराजकता फैल ही जाती है। राजा के चले जाने पर चारों ओर लूटमार होने लगी, चोर डाकुओं की बन आई, दिन-दहाड़े डाके पड़ने लगे। एक दूसरे की वस्तु लेने लगे। बेन इतना क्रूर था कि कोई भी मन्त्री उसको राजा बनाने के पक्ष में नहीं था। किन्तु राजा के बिना शासन कैसे चले, किसकी आज्ञा मानी जाय? बेन तो सर्वथा राजसिंहासन के अयोग्य ही था। जब तक धर्म रहता तब तक कोई मर्यादा, वंशपरम्परा का पालन किया जाता है। वर्णाश्रम धर्म में सभी बातों में संस्कारों की प्रधानता मानी जाती है। मुनि लोग धर्मात्मा थे। वर्णाश्रम की मर्यादा को स्थापित करनेवाले थे। उन्होंने सोचा- कैसा भी हो, कुलीन राजवंश का पुत्र ही हो। अभी बालकपन की कच्ची बुद्धि है, जब राजसिंहासन पर बैठेगा, उत्तरदायित्व कंधेपर आवेगा तो समझ जायगा। यह सब सोचकर महारानी सुनीथा की सम्मति से मन्त्रियों के विरोध करने पर भी भृगु आदि मुनीश्वरों ने बेन को ही भूमण्डल के राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया। क्योंकि बिना राजा के सब लोग पशुओं के समान हो रहे थे। सम्पूर्ण संसार का कल्याण चाहनेवाले मुनियों ने यही उचित समझा।

एक गिलोय स्वभावतें, कड़वी फिर नीमहिँ चढ़ी। तस सिंहासन पाइके, वेन दुष्टता अति बढ़ी।।

उन्होंने बेन को राजगद्दी सौंपी। पर वो सुधरता कहा वो और ज्यादा उद्दण्ड, उन्मत्त हो गया और राज्यभर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि उसके राज्य में कोई दान, हवन नहीं कर सकता, यज्ञ नहीं कर सकता, कीर्तन नहीं कर सकता। जिसके प्रति ये श्रद्धा अर्पित करते हो वह भगवान तो मैं स्वयं हूँ। राजा के अंग-अंग में परमात्मा का निवास होता है। वह ऐश्वर्य मद से मदान्ध हो गया। वह बड़ा कठोर शासक था। वह अपने को ही सबसे बड़ा मानकर महापुरुषों का अपमान करने लगा। सारे देवताओं का मैं ही भगवान हूँ और उसने राज्यभर में धर्म, कर्म बन्द करवा दिये। बहुत से लोगों ने डर के मारे यज्ञ, दान, पूजा-पाठ, तप, भजन, कीर्तन सब बंद कर दिये। लोग नास्तिक होने लग गये। नारायण का नाम सुनते ही बेन आग-बबूला हो जाता और कहने लगा तुम्हारा नारायण घुसखोर है, संग्रही है और बोला मैं तीसों दिन चौबीसों घंटे सदावर्त बाँटते रहता हूँ अत: मेरी पूजा करो।

वेन ने धर्म-कर्म पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया है। यह बात जब मुनियों ने सुनी तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। सभी ऋषि-मुनि सत्र के लिये एकत्रित हुए। उन लोगों ने विचार किया कि चोरों और डाकुओं के द्वारा प्रजा पर आये हुए संकट को देखकर तो हम लोगों ने राजा की व्यवस्था की, अयोग्य होने पर, भी वेन को राजा बनाया। किन्तु अब प्रजा वेन के ही अत्याचारों से सन्त्रस्त है। अब प्रजा का कल्याण कैसे हो?

मैत्रेय मुनि बोल- विदुरजी। बेन राजसिंहासन पर बैठते ही आठों लोकपालों की विभूति को पाकर अत्यन्त ही उन्मत्त हो गया। वह अपने आपको ही श्रेष्ठ समझकर उद्धत्तापूर्वक महाभाग ऋषियों का भी तिरस्कार करने लगा। उसने अपने राज्य में डंके की चोट यह घोषणा करा दी कि मेरे राज्य में कोई भी द्विजातीय कभी भी किसी भी प्रकार का न यज्ञ करें, न दान

दें, न हवन आदि करें। इस प्रकार उसने सब धर्मों को बन्द करा दिया।

तब वह दुष्ट उन ऋषि-मुनियों को डांटने लगा। तुम्हारी तो बुद्धि विपरीत है जैसे कुलटा स्त्रियाँ अपने धर्मपति को छोड़कर पराये पति की, जार पति की उपासना करती है। मैं राजा हूँ मेरे अलावा आप लोग और कौनसे भगवान की कल्पना करते हैं। लोगोंको बहकाते फिरते हो। मेरे अतिरिक्त और किसी भगवान की चर्चा मत करो। ऋषियोंने कहा- हम अगर आपको राजगद्दी पर बिठा सकते हैं तो हमारी एक हुंकार से तुम्हें रसातल में भेज सकते हैं। बेन बोला- हमारा यही धर्म है, हम ही देवता हैं, हम ही ईश्वर हैं, हम ही सब यज्ञों के भोक्ता हैं, हमें ही बलि दो, हमारा ही पूजन करो। जो ऐसा करेगा वह तो हमारे यहाँ रहेगा। जो ऐसा न करेगा उसे हम अपने सेवक यमराज के दरबार में भेज देंगे।

वह ऋषियोंसे बड़ी उटपटांग वाणी में बोलने लगा। राजा बेन का पुण्य क्षीण हो चुका था। बेन निरंकुश हाथी के समान मन्दोन्मत्त मृगेन्द्र की भाँति चारों ओर अपने धनुष की टंकार करता हुआ घूमने लगा। इस प्रकार उसने सर्वत्र यज्ञ, दान, जप, तप अग्निहोत्र आदि सभी वैदिक कर्मों को बन्द करा दिया। उसने घोषणा करा दी कोई दान मत करो, कोई यज्ञ अग्निहोत्र मत करो, कोई पूजा-पाठ, धर्म कर्म मत करना, ईश्वर को कोई मत मानता। जो मानेगा वो मौत के घाट उतार दिया जायेगा।

इसप्रकार जब उसने समस्त पृथ्वी-मण्डल पर से यज्ञयाग बन्द करा दिये, देवताओं के भाग बन्द हो गये, तब तो सर्वत्र अशान्ति छा गई। ऋषि मुनियों ने संगठन किया। चारों ओर इस आज्ञा के विरुद्ध सभायें होने लगीं, विरोध की तैयारियाँ करने का उपक्रम होने लगा। समस्त ऋषि-मुनियों ने मिलकर एक धर्मरक्षिणी सभा का विराट अधिवेशन किया। बड़ी देर तक विचार होता रहा। बुद्धिमान परोपकारी पुरुष अपनी बुद्धि से तो वही कार्य करते हैं, जिससे सभी लोगों का कल्याण हो। किन्तु पीछे उससे दूसरा अनर्थ हो जाय तो यह दैवेच्छा। जहाँ पाप होता हैं, वहाँ चोर-डाकू अधर्म से स्वार्थ साधनेवाले बढ़ जाते हैं। एक तेजस्वी मुनि ने कहा- धर्मशाास्त्र का यह मत कभी नहीं है कि अन्यायी राजा की सभी आज्ञाओं का बिना आपत्ति किये पालन किया जाय। इस समय इसका पालन करना इसी प्रकार होगा जैसे शरीर के कपड़ों में छिपे सर्प को दूध पिलाकर पालन करना। धर्मशास्त्र के वचनों का यथार्थ अभिप्राय समझना चाहिये। राजा वही माननीय और पूजनीय होता है, जो धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता है। किसी राज्यशासन को परिवर्तित करने के तीन ही उपाय हैं। या तो दूसरा बलवान राजा चढ़ाई करके उसे परास्त करके शासन परिवर्तित कर सकता है या सामादि उपायों से, अथवा संगठन करके शासक को इतना विवश कर दे कि वह शासन करने में समर्थ ही न हो सके। बिना प्रजा के सहयोग के कोई शासक शासन नहीं कर सकता। तीसरा एक यह भी उपाय है कि दैवी शक्ति का आश्रय लेकर उसे अपने प्रभाव से नष्ट कर दे। हम लोग क्षत्रिय नहीं जो अस्त्र-शस्त्र लेकर चढ़ाई करें। दूसराऐसा कोई राजा नहीं जिसे इसके विरुद्ध उभाड़ कर इसे नष्ट करा दें। प्रजा में इतना साहस नहीं जो इसके विरुद्ध कार्य कर सके। अत: अब तीसरा ही उपाय है। आप इतने बड़े-बड़े ऋषि, महर्षि, त्यागी तपस्वी हैं। आप चाहें तो इसे अपनी दृष्टि मात्र से भस्म कर सकते हैं। अत: मेरी तो सम्मति है कि इस दुष्ट को शाप देकर भस्मसात कर देना चाहिये।

महात्मा बोले- शाप से तप नष्ट होता है। किन्तु अभी आपके तप की कौन सी वृद्धि हो रही है? आप स्वेच्छा से यज्ञ नहीं कर सकते। दान नहीं दे सकते, शुभ कार्य नहीं कर सकते। गृहस्थी धूमधाम से विवाह यज्ञोपवीत आदि शुभ संस्कार नहीं कर सकते। ब्राह्मण भोजन नहीं करा सकते, जप तप कुछ भी तो नहीं हो सकता। यदि ऐसी ही दशा रही तो हम सबका तप, तेज नष्ट हो जायगा, वर्णाश्रम धर्म का लोप हो जायगा। लोग स्वेच्छाचारी होकर नास्तिक और पाखण्डी हो जायँगे। वैदिक धर्म कर्म लुप्त हो जायेंगे, अत: जहाँ सर्वस्व जाता हो, वहाँ बुद्धिमानों को आधा भी देकर उसकी रक्षा करनी चाहिये। थोड़ी अपनी हानि से बहुतों को लाभ होता हो तो लोक के कल्याणार्थ परोपकारी पुरुषों को अपनी हानि भी सह लेनी चाहिये। इसलिये हमारी सम्मति

तो यह है कि उस पर दया दिखाना व्यर्थ है। उस पर अपनी दैवी शक्ति का प्रयोग करना ही चाहिये।

सबकी सम्मति जिह भई, पहिले चलि समझाइँगे। जो नहिँ माने मन्द मति, तो फिर ताहि बताइँगे।।
राजन्। तुमरे राज्समहँ, होहिँ यज्ञ जो विधि सहित। तो होवें सबई सुखी, प्रजा व्याधि पीड़ा रहित।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। सब मुनियों ने राजा बेन से जाकर कहा- हे नृपवर्य। हम कुछ आपसे निवेदन करना चाहते हैं, उस पर कृपया आप ध्यान दें। हमारा कथन आपकी आयु, श्री, बल और यश की वृद्धि के ही निमित्त होगा। जो निष्काम पुरुष मन, वाणी, शरीर तथा बुद्धि के द्वारा जो आचरण करते हैं, उनका वह धर्माचरण शोक रहित लोक तथा अनन्त मोक्ष पद को प्रदान करनेवाला होता है।

हरि की निन्दा करनेवाला अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। इसप्रकार दुष्ट बेन के अत्याचारों से ऋषि-मुनियों को बड़ी चिंता हुई। सब ऋषि मुनि एक बार चलकर इकट्ठे होकर उसे समझाने को गये कि राजन् आप तो समस्त लोगोंके लोकपालक और यज्ञों के नियन्ता हैं। आपको यज्ञादि धर्मकर्म बन्द करके देवताओंका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। राजन्। मनुष्य धर्म से ही राज्य प्राप्त करता है, धर्म से ही स्वर्ग में जाता है, धर्म से आयु, कीर्ति, तपस्या एवं धर्मका उपार्जन करता है एवं धर्म से ही उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस लोक में तथा परलोक में भी धर्म ही मनुष्य का पिता, माता तथा सखा है। रक्षा करनेवाला तथा मोक्ष देनेवाला भी धर्म ही है। धर्म के सिवा अन्य कोई भी वस्तु परलोक में काम नहीं आती। अत: प्रजा का कल्याणकारी वह धर्मनष्ट नहीं होना चाहिए। धर्म के नष्ट होने पर राजा ऐश्वर्य तथा राज्य से च्युत हो जाता है। जिस राजा के राज्य में वर्ण तथा आश्रम की मर्यादा से यज्ञपुरुष भगवान्का पूजन होता है उसपर भगवान प्रसन्न होते हैं। इनके प्रसन्न होने पर राजा के लिए कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं रहता। यदि परलोक के विषय में सन्देह भी हो तो भी धर्म का उपार्जन करना चाहिए। यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिय जाय कि परलोक नहीं है तो भी धर्म का उपार्जन करनेवालों की कोई हानि नहीं है। प्रत्येक प्राणी यह चाहता है कि मुझे सुख मिले, किन्तु वह सुख धर्म के बिना मिल नहीं सकता, इसलिए, मनुष्य को सर्वदा आचरण करना चाहिए।

राजन्, आपका जन्म पवित्र मनुवंश में हुआ है, आपके ही पूर्वज उत्तानपाद, ध्रुव, उत्कल तथा आपके पिता महाराज अंग बड़े ही धर्मात्मा यशस्वी हुए हैं। संसार में सब कुछ असार है, एक मात्र धर्म ही सार है। आपके पूर्वजों ने जिस धर्म का आचरण किया है, वह धर्मलोप नहीं होना चाहिये। आपको अपने कुलागत सदाचार का सदा सर्वदा समाहित चित्त से पालन करना चाहिये। महाराज। मनुष्य, मन, वाणी, देह तथा बुद्धि द्वारा जो जिस धर्म का श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ निष्काम भाव से आचरण करते हैं वह अनासक्त बुद्धि से किया हुआ निष्काम भाव से आचरण करते हैं वह अनासक्त बुद्धि से किया हुआ निष्काम धर्म अक्षय लोकों को तथा मुक्ति को भी देने वाला होता है। जिस धर्म के द्वारा आज तक प्रजा का कल्याण हुआ है और आगे भी उसी के द्वारा होगा, वह धर्म आपके द्वारा नष्ट न हो। आप अपने पूर्वजों के पद चिन्हों का अनुसरण करें। प्राचीन पुण्य पथ से स्खलित न हों। जो पूर्वजों के पुनीत पथ से भ्रष्ट हो जाता है, वह अवश्य ही ऐश्वर्यहीन होकर दुखी होता है। अत: आप सनातन राजधर्म का अनुसरण करें। उसकी अवहेलना न करें। दुष्ट मन्त्री, दुष्ट राजकर्मचारी, अधर्म अधिकारियों तथा चोर-डाकुओं से प्रजा की रक्षा करना, न्यायानुकूल प्रजा से षष्ठांश कर लेकर उसके पुण्य कार्यों में सहयोग देना यही सनातन राजधर्म है। इस धर्म का पालन करनेवाला राजा इस लोक तथा परलोक दोनों में सुख पाता है। जिस धर्म प्रधान राजा के राज्य में वर्णाश्रम धर्म का, युगों के विशिष्ट-विशिष्ट धर्मों का तत्द्युगों के अनुरूप तत्तद् यज्ञों द्वारा यज्ञपुरुष का यजन किया जाता है, उसी धार्मिक राजा पर भूतभावन भगवान प्रसन्न होते हैं?

वे वेद-स्वरूप श्रीहरि द्रव्यमय तथा तपोमय हैं। संपूर्ण लोक और लोकपाल उन्हीं के अंशभूत हैं, वे यज्ञस्वरूप हैं, अपने-अपने उत्कर्ष के निमित्त सभी उनकी नाना यज्ञोंद्वारा उपासना करते हैं। उन भगवान की न आपको बराबरी करनी चाहिये, न उनकी आज्ञा के विरुद्ध कोई आचरण करना चाहिये। आपके राज्य में बड़े-बड़े यज्ञ हों। सर्वत्र ब्राह्मणों का सम्मान हो। श्रीहरि के उद्देश्य से अनेक उत्सव हों। भगवान के अंगभूत सभी देवताओं का पूजन हो। चारों ओर दान, धर्म, पुण्य और पावन कार्य हो। सुन्दर-सुन्दर स्वादिष्ट पदार्थों द्वारा वेदपाठी ब्राह्मण सन्तुष्ट किये जायँ, ऐसा यदि आप करेंगे तो देवता आपको प्रसन्न होकर अनेक दुर्लभ वर देंगे, यदि आप उनका तिरस्कार और अपमान करेंगे, तब फिर गोविन्दाय नमो नम: हो जायगा।

सुनीथा की कोख से उत्पन्न यह वेन स्वभावत: दुष्ट है। हमने उसे प्रजा की रक्षा के लिये नियुक्त किया था। यह आज उसी को नष्ट करने पर तुला हुआ है। इतना सब होने पर भी हमें इसे समझाना अवश्य चाहिये। ऐसा करने पर इसके किये हुए पाप हमें स्पर्श नहीं करेंगे। यह निश्चय करके सभी मुनि एकत्र हो वेन के समीप गये और समझाने की मुद्रा में उससे बोले- राजन्, आप हम लोगों की बात सुने। इससे आप की कीर्ति, आयु और लक्ष्मी की वृद्धि होगी। आपने अपने राज्य में जो यज्ञ, तप और दान आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया है, यह उचित नहीं है। आपके द्वारा धर्म का खण्डन नहीं होना चाहिये। धर्म से ही राजा और प्रजा दोनों का मंगल होता है। भगवान विष्णु की प्रसन्नता का कारण एकमात्र धर्म ही है। भगवान की प्रसन्नता से ही इस लोक में सुख और परलोक में सद्गति प्राप्त होती है अत: आप धर्म के विरुद्ध की गई अपनी घोषणा वापस ले लें, प्रजा के यज्ञ-याग आदि का समर्थन करें।

वेन कोप की अगिनिमहँ, मुनिगण-वच घृत सम भये। बोल्यो करिकें कोप अति, ये आये मम गुरु नये।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। मुनियों की बातें सुनकर बेन बोला- तुम लोग बड़े मूर्ख हो। तुम सब अधर्म को धर्म माने बैठे हो। तुम तो उसी कुलटा स्त्री की भांति हो जो अपने भरण पोषण करनेवाले पति को छोड़कर जार पति की उपासना करती हैं। जो तुम्हारे जैसे मूर्ख पुरुष राजा रूप परमेश्वर का अनादर करते हैं वे न इस लोक में सुखी होते है न परलोक में।

वेन ने मुनियों की बात सुनी। सुनते ही उसे क्रोध आ गया। उसने कहा- तुम लोग बड़े मूर्ख हो। खेद है, तुमने अधर्म में ही धर्म की बुद्धि कर रक्खी है। तभी तो जीविका दाता मुझ साक्षात् पति को छोड़कर किसी दूसरे जार पति की उपासना करते हो। राजा परमेश्वर होता है जो लोग मूर्खतावश राजा का अनादर करते हैं, उन्हें न तो इस लोक में सुख मिलता है और न परलोक में ही।

राजा के शरीर में सारे लोकपालों का निवास रहता है। यही कारण है कि राजा को सर्वदेवमय कहते हैं। इसलिये ब्राह्मणों, तुम लोग मत्सरता छोड़कर अपने सभी कर्मों द्वारा केवल मेरा ही पूजन करो, मेरी ही आराधना करो और मुझे ही बलि समर्पित्त करो। भला मेरे अतिरिक्त और कौन अग्रपूजा का अधिकारी हो सकता है।

फिरि यों बोल्यो वेन बड़े मूरख हो तुम सब। मैं ई सबको ईश मोई पूजो तुम मिलि अब।।
मोइ छोड़िकें और ईश कोई मति जानो। मूरखताकूँ तजो, महेश्वर मोकूँ मानो।।
जो अब बक बक करी तो, लुंगो जींभ निकारिकें। जीवित चाम उतारिकें, भुस दुज्ञो भरवाइकें।।

जो प्राणी अवगुणों को धारण कर अपनी उन्नति चाहता है वही दुराचारी कहलाता है। राजा बेन ने शुभ कर्मों पर प्रतिबंध लगाया। ऋषियोंने अपनी हुंकार से उसको समाप्त कर दिया। इस प्रकार की उल्टी बुद्धि देखकर महात्माओंने समझ लिया कि अब इसका मंगल नष्ट हो गया है। उन्हें क्रोध आ गया। नीति का यह कहना है कि सहसा क्रोध नहीं करना चाहिये, पहले समझा-बुझाकर काम निकालना चाहिये। जब समझाने से काम न बनें तब क्रोध करे। जब वेन पर समझाने-बुझाने

का कोई प्रभाव न पड़ा तब महात्माओं को क्रोध आ गया। उनके नेत्र लाल हो गये। शरीर काँपने लगा। उन्होंने उसे डाटते हुए कहा- अरे इसे मारो, मारो। यह स्वभाव से ही क्रूर तथा महापापी है। यदि यह जीवित रह गया तो कुछ ही दिनों में संसार को अवश्य भस्म कर डालेगा।

ऐसा कहकर ऋषियों ने क्रोधभरी दृष्टि से उसे घूसा और साथ ही एक भयंकर हुंकार भी की जिससे वह सिंहासन के साथ ही पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया। इस घटना से पूरे राज्य में हा-हाकार मच गया। धर्मध्वंशयी वेन का इस प्रकार नाश कर मुनि-जन अपने-अपने आश्रमों के लिये चले गये। सुनीथा बड़ी चालाक रानी थी। वह वेन के मृत शरीर को तेल की नैया में रखकर उसकी रक्षा करती रही। ऋषियों को क्रुद्ध जानकर उस समय उसने कुछ नहीं कहा।

पाइ परम ऐश्वर्य नीच अतिशय इतरावे। करे वेद अपमान आज वाको फल पावे॥
यों कहि भरिके क्रोध में, सब मुनि मिलि हुँकृत करी। तुरत वेन की देह तहँ, प्रानहीन ह्वैकें गिरी॥

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। ब्राह्मण चाहे शान्त स्वभाव का कैसा भी तपस्वी क्यों न हो, यदि वह अपने सम्मुख दु:खी हुए दीनों की सामर्थ्य रहने पर उपेक्षा करता है तो उसका ब्रह्मतेज उसी प्रकार बह जाता है जैसे फूटे घड़े का पानी बह जाता है।

छाड़ि ताहि निरजीव गये निज-निज आश्रम मुनि। मातु सुनीथा दुखित भई निज पुत्र मृत्यु सुनि॥
राज्यमाँहि बहुत भई अराजकता अति भारी। लूट पाट व्यभिचार कलह चोरी अरु जारी॥
मुनिनि देश देख्यो दुखी, दया हिये उमड़ी प्रबल। होहि तहाँ तप कस जहाँ, निरबलकूँ ताड़े सबल॥

बेन के मरते ही चोर डाकुओं की बन आई। राज्य-सिंहासन खाली हो जाने से चारों ओर अराजकता बढ़ गई। जिधर देखो उधर ही लूटपाट मच रही है, मारधाड़ हो रही है। राज्य के कर्मचारी मनमानी कर रहे हैं। सबसे घूस लेने लगे हैं। रक्षक चोरों से मिलकर डाका डला रहे हैं। बलवान् निर्बलों के धन को, स्त्रियों को बलात्कार हर कर ले जा रहे हैं। न किसी को किसी का भय है, न संकोच। सभी मनमानी कर रहे हैं। धर्म-कर्म से हीन तो सब पहिले ही से थे। अब तक वे धर्म बुद्धि से पापों से निवृत्त नहीं थे। भय के कारण अवसर न मिलने से वे चोरी जारी से दूर थे। अब अवसर पाते ही वे बित्तापरहण, व्यभिचार आदि करने लगे, दूसरों के धन, पशु तथा स्त्रियों को हरने लगे।

मुनियों ने निश्चय किया- वंश तो पाप के कारण नष्ट होता है। जिस वंश में पाप बढ़ जाता है, उस कुल का नाश हो जाता है अथवा उसकी कुलागत विशुद्ध परम्परा नष्ट होकर संकरता आ जाती है। महाराज मनु के पुण्य का इतना प्रभाव अभी तक है कि अंग का वंश नष्ट न होना चाहिये। राजर्षि अंग की वंशपरम्परा निर्मूल न होनी चाहिये। क्योंकि इस वंश में उत्तानपाद ध्रुव आदि बड़े-बड़े भगवत्परायण राजर्षि हो चुके हैं। जिस विषय में त्यागी, विरागी, तपस्वी उद्योग करते हैं, वह अवश्य ही सफल होता है।

बेन मरा तो उसकी माँ सुनीथा ने उसके शरीर का संस्कार करने नहीं दिया और उसके शव को तेल में रखकर उसकी रक्षा करने लगी। राजा के न रहने पर चोर लुटेरों का प्राबल्य बढ़ने लगा। बिना राजा के राज्य शक्तिहीन होने लगा। फिर ऋषियोंने वैदिक मन्त्रों से, वैदिक प्रक्रिया के द्वारा उसके निष्प्राण शरीर का मन्थन किया। महात्माओंने यह सोचा अंग राजाके वंशका नाश नहीं होना चाहिए यदि समदर्शी शान्त ब्राह्मण भी गरीबोंकी उपेक्षा करता है तो उसका वेद, ज्ञान, वैदिक अध्ययन वैसे ही स्रवित हो जाता है, जैसे फूटे बर्तनमें-से दूध निकल जाय। जिस देश में राजा न हो, या जहाँ राजा अधर्मी और मूर्ख हो, या जिस देश में स्त्री का शासन चलता हो, या जिस देश में कई राजा राज्य करते हैं वहाँ बसने में धर्म नहीं रहता। उचित राजा के बिना प्रजा सुख नहीं पावेगी। वे सब ऋषि-मुनि राजभवनमें गये और बेनका शरीर तेलसे निकालकर

उसकी जाँघका मन्थन किया। धर्म का आचरण बंद हुआ, उसे ऋषि-मुनि सह नहीं सके। तांत्रिक दृष्टि से वेन को मार दिया गया। मंथन से पहले काले रंग का पुरुष आ गया, जो उसका पाप था।

ऋषियोंने बेन के शरीर का मन्थन किया वो एक काला कलुटा पुरुष उत्पन्न हुआ जो कौएके समान काला, बौना और बड़ी हनुवाला था। उसके हाथ-पाँव छोटे थे, उसकी आँखें लाल-लाल थीं, उसके बाल तांबेके रंग के थे। वो उत्पन्न होते ही उसने पूछा, महाराज मेरे लिये क्या आज्ञा है? मैं क्या करूं? जिसे निशिथ कहते है। ऋषियोंने कहां निशिथ बैठ जाओ। उसीका नाम निषाद हो गया और उसके वंशज पर्वतोंमें और वनोंमें जाकर रहने लगे। वही आगे जाकर निषाद जाति बनी। इसके वंशज निषाद कहलाये, कोल भील इत्यादि ये हिंसा लूटपाट आदि पाप कर्मों में रत रहते हैं। वन पर्वतों में इनका निवास है। निषाद के वंशज पृथ्वी पर कोल, भील, गोड़, धीवर, कहार, मल्लाह, निषाद, केवट आदि अनेक नामों से विख्यात हुए। जिनमें बहुत से अरण्यों में ही बिना घर-द्वार बनाये रहते हैं। बहुत से नगरों का आश्रय लेकर कृषि आदि काम करने लगे। बहुत से नौका आदि के द्वारा अपनी आजीविका चला है।

एक दिन की घटना है। मुनिगण सरस्वती नदी के पावन तट पर बैठे थे। वहाँ वहन-पूजन के बाद भगवत्कथा चल रही थी। उसी समय मुनियों ने देखा कि संसार में बड़े-बड़े उत्पात हो रहे हैं, जहाँ देखो, वहीं चोरी डकैती। बड़ी अराजकता फैल रही है। चतुर्दिक हिंसा और उपद्रव हो रहे हैं।

अन्त में महात्माओं ने यह निश्चय किया कि महाराज अंग के वंश का उच्छेद नहीं होना चाहिये। वे राज-भवन गये। वहाँ सुनीथा के द्वारा सुरक्षित रक्खे हुए वेन के शरीर को तैल-द्रोणी (तेल से भरी नैया) से निकाल कर उसकी जाँघ का मन्थन किया। उससे एक वामन (छोटा-सा) पुरुष पैदा हुआ। वह कौवे के समान काला था। छोटे-छोटे हाथ थे। ठोढ़ी उसकी चौड़ी थी। देखने में वह अत्यन्त कुरुप था। छोटे पैर थे। नेत्र और केश लाल-लाल थे। उसने हाथ जोड़ कर मुनियों से पूछा- मेरे लिये क्या आज्ञा है? इस पर ऋषियों ने कहा- निषीद (बैठ जा)। इसीसे वह निषाद कहलाया। वेन के शरीर का यह पाप-अंश था। उसके निकल जाने से उसका शरीर निष्पाप हो गया। निषाद के वंशज नैषाद कहे जाते हैं। हिंसा, लूट-पाट आदि निन्दित कर्मों में वे रत रहते हैं। अत: वे गाँव और नगर में टिक कर वन और पर्वतों में ही निवास करते हैं।

यह देखकर ऋषियों ने वेन की दाहिनी भुजा का मन्थन किया। उर्ध्व भाग का मंथन किया। उससे भगवान विष्णु के अंशावतार आदि सम्राट महाराज पृथु प्रकट हुए। बायीं भुजा के मन्थन से एक नारी उत्पन्न हुई जिसका नाम था अर्चि। पुरुष का नाम पृथु हुआ जो साक्षात् भगवान का अवतार है और नारी के रूप में स्वयं लक्ष्मी प्रकट हुई जिसका नाम अर्चि महारानी हुआ। मैत्रेय बोले- विदुर, ब्राह्मणोंने वेनकी जाँघके बाद उसकी भुजाओंका मन्थन किया उसमें से एक स्त्री-पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ। महात्माओंने पहचान लिया जो पुरुष है, वे तो साक्षात् विष्णु भगवान की कला है और जो कन्या है वे साक्षात् लक्ष्मीकी कला है। पुरुष का नाम पृथुश्रवा होगा, जो राजाओंमें सबसे अधिक प्रभावशाली होगा। और यह जो इसके साथ देवी पैदा हुई है, इसका नाम अर्चि: होगा। ये लक्ष्मीजी का अवतार है।

मथीं भुजा फिरि युगल भये लक्ष्मीनारायन। पृथुल कीर्ति पृथु पुरुष, अर्चि कमला जगपावन।।
तेज, वीर्य बल, प्रभा सुलक्षण लखि मुनि हरषें। गावें गुन गन्धर्व सुमन सुर नभतें बरषे।।
दक्षिण करते पृथु भये, बायें तें लक्ष्मी भई। प्रभु प्रकटे सुनि प्रजाकी, चिन्ता सबरी नसि गई।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। वेन के बाहुओं के मथने से जो दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ उसे देखकर ऋषि मुनि बोले- यह समस्त राजाओं में प्रथम पुरुष होगा जो अपने यश का विस्तार करेगा। यह परम यशस्वी राजा पृथु के नाम से विख्यात

होगा। ऋषि बोले- हमारे समस्त क्लेश दूर हो जायेंगे। अधर्म का लोप हो जायगा, सर्वत्र धर्म की वृद्धि होगी। यज्ञयागों की धूम फिर चारों ओर हो जायेंगे, भूमण्डल पर स्वाहा स्वाहा के सुन्दर स्वर गुंजने लगेंगे। महायशस्वी आदि राजा पृथुलकीर्ति वाले पृथु के नाम से संसार में विख्यात होंगे, और वे समस्त वस्त्राभूषणों से अलंकृत भगवती लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न होने वाली देवी अर्चि नाम से विख्यात होंगी।

मैत्रेय जी कहते हैं- विदुरजी, राजा वेन पुत्रहीन था। निषाद की उत्पत्ति के बाद ब्राह्मणों ने उसकी दोनों भुजाओं का मन्थन किया। उनसे स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा उत्पन्न हुआ। उसे देखकर ब्रह्मवादी ऋषि-जन उसे भगवान का अंश जानकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले।

अपने सुयश का चतुर्दिक् विस्तार करने के कारण पुरुष का नाम होगा पृथु। राजाओं में प्रथम होने के कारण इन्हें आदिराज भी कहा जायेगा। सुन्दर दाँतोंवाली यह सुन्दरी स्त्री महाराज पृथु को ही अपना पति बनायेगी। ये दोनों क्रमश: भगवान विष्णु और लक्ष्मीजी के अंश हैं अत: इनका आपस में विवाह धर्म-मर्यादा के विपरीत नहीं है। पृथु के रुप में साक्षात् श्रीहरि के अंश ने ही संसार की रक्षा के लिये अवतार लिया है और अर्चि के रूप में निरन्तर भगवान की सेवा में रहनेवाली उनकी नित्य सहचरी श्रीलक्ष्मी जी ही प्रकट हुई हैं।

पृथु- महीपति वेन के पुत्र, आदिसम्राट। प्राचीन काल में स्वायंभुव मनु के वंश में अंग नामक एक प्रजापति हुए। उनकी पत्नी का नाम सुनीथा था, जो मृत्यु की कन्या थी। उनके वेन नामक महाबली पुत्र हुआ जो आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट बना। किंतु वेन अधर्मी शासक था। उसने महर्षियों के उपदेश पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया। अत: शीघ्र ही उसका अंत हो गया। वेन नि:संतान था। अत: महर्षियों ने अराजकता की आशंका से भयभीत होकर उसके शरीर का मंथन किया। उसके दाहिने हाथ से एक दिव्य धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके हाथों धनुष-बाण और गदा शोभा पा रहे थे। शरीर पर रत्न-जटित कवच था। महान प्रयत्न से मथे जाने पर वह वेन की पृथु (मोटी) भुजा से प्रकट हुआ था, अत: पृथु नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पृथु और अर्चि की उत्पत्ति देखकर चारों दिशाओं मे प्रसन्नता का वातावरण फैल गया। आकाश में देवता दुन्दुभियाँ बजाने लगे। गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। समस्त देवता, ऋषि और पितर अपने-अपने लोकोंसे उतरकर वहाँ पृथु का अभिनन्दन करने के लिये आये। जगद्गुरु ब्रह्माजी देवों और देवेश्वरों के साथ वहाँ पधारे। उन्होंने देखा कि वेन-पुत्र पृथु के दाहिनी हथेली में चक्र का और चरणों में कमल का चिन्ह है अत: उन्हें श्रीहरि का अंश समझा। जिसकी हथेली में चक्र का चिन्ह होता है, वह भगवान का ही अंश होता है। पृथु उत्तम प्रजा-सेवक, प्रजा-हित चिन्तक और आदर्श राज्य शासनकर्ता थे। चारों पुरुषार्थ, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की पूर्णता इनके चरित्र में दिखायी पड़ती थी।

जिस कुल में एक भगवद्भक्त हो जाता है, वह कुल-का-कुल परम पावन बन जाता है। जिस देश में परम भागवत उत्पन्न हो जाता है, वह देश पवित्र तीर्थ हो जाता। भक्त को उत्पन्न करनेवाली माता धन्य है, वह कुल धन्य है, वह वसुन्धरा प्रशंसनीय है और वे पुरुष धन्य हैं जो भक्तों के कुल में उत्पन्न होते हैं। श्रेष्ठत्व के कई कारण हैं। बहुत से विद्यासे श्रेष्ठ होते हैं, बहुत से तप से, बहुत से शुभ कर्मों से, बहुत से ऐश्वर्य से, बहुत से धनजन आदि विभव से। किन्तु इन सबसे उत्तम श्रेष्ठत्व उत्तम कुल का जन्म माना जाता है। धन आज है, कल नष्ट हो गया। ऐश्वर्य की भी यही दशा है, तप और शुभ कर्म भी बुरे कार्य करने से नष्ट हो जाते हैं। यह भी अपयश के रूप में परिणत हो जाताहै, किन्तु जिस कुल में जन्म लिया है, उसका गौरव तो शरीर के अन्त होने तक बना रहता है। स्वयं बुरे कर्म करने पर भी लोग कुल को नहीं भूलते इसलिये पूर्व युगों में कुलीनता का बड़ा आदर किया जाता था। अकुलीन गुणी भी हो तो लोग उसका उतना आदर नहीं

करते थे जितना कुलीन गुणहीन का, क्योंकि बाह्य गुण न रहने पर भी उसका जो कुलागतशील है, वह तो नष्ट नहीं होता। कलिकाल में तो कुलीनता रहती ही नहीं। लोग यश, ऐश्वर्य और धन के ही कारण श्रेष्ठ माने और जाने जाते हैं।

नर रूप नारायण राजा पृथु की गति कोई समझ नहीं पा रहा। गन्धर्वों ने उनकी स्तुति करी- आपके सभी कार्य गुप्त होंगे, आपका आदर्श रूपी धन सदा-सर्वदा सुरक्षित रहेगा। राजा पृथु अनंत गुणों के निदान होंगे।

ऋषियों के साथ उन्होंने पृथु का सविधि राज्याभिषेक करवाया। अभिषेक की बेला में सब लोग अपनी-अपनी ओर से विविध पदार्थों को भेंट करने के लिये लाये। अब तो बड़ी भारी शोभा हुई। धनाधिपति कुबेर ने सुवर्ण का सिंहासन दिया। वरुण ने छत्र समर्पित किया। श्रीहरि ने अपना चक्र दे दिया। लक्ष्मीजी ने सम्पत्ति प्रदान की। रुद्र ने खड्ग और अम्बिका ने चर्म भेंट की। इस प्रकार सभी देवी-देवों ने अपनी-अपनी वस्तुएँ पृथु और अर्चि को उपहार में दी। सिन्धु, नदी, नद और पर्वत आदि सभी ने कह दिया कि पृथु हम पर जहाँ भी जाना चाहेंगे वहाँ अपना रथ लेकर बे-रोक-टोक जा सकेंगे। ऋषियों ने उनके ऊपर अमोघ आशीष की वृष्टि की।

सिंहासन आसीन पृथु, सुर नर ऋषि मुनि मन हरत। उमड्यो आनँद दशों दिशि, हिर हरषत जय जय करत।।

ब्राह्मण अत्यंत उल्लास के साथ स्वर-सहित उच्च स्वर में वेद-मन्त्रों का पाठ करने लगे। अप्सरायें नृत्य करने लगीं। चारों ओर शंख, तुरही, मृदङ्ग, दुन्दुभी तथा भी अनेक बाजे बजने लगे। स्वर्ग से बहुत से देवता, ऋषि, सिद्ध, तथा और भी उपदेव आये। लोक-पितामह ब्रह्माजी भी इन्द्रादि लोकपालों से घिरे हुए वेन-कुमार पृथु के दर्शनों के लिए पधारे। आते ही उन्होंने महाराज पृथु के हाथ, पैरों की रेखायें देखी। उनमें कमल के दिव्य चिन्ह देखकर तथा श्रीहस्त में चक्र का चिन्ह देखकर चिल्ला उठे अवश्य ही ये श्रीमन्नारायण हैं, क्योंकि रेखा से बिना मिला हुआ चक्र का चिन्ह जिनके हाथ में होता है वे श्रीहरि का अंशावतार ही होताहै।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी, लोकपितामह, जगद्गुरु भगवान ब्रह्माजी के मुख से भी अपनी बात का समर्थन सुनकर सभी ऋषि मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके राज्याभिषेक का उपक्रम करने लगे।

स्वर्ग लोकतें सिद्ध, पितर, सुर, मुनि मिलि आये। भये चराचर सुखी चहूँ दिशि बजत बधाये।।
कमलासन विधि चरण कर, लखि लक्षण प्रभुदित भये। प्रकटे प्रभु पृथु रूपमहँ, सत्यलोक यों कहि गये।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। इसके पश्चात् वेदज्ञ ब्राह्मणों ने महाराज पृथु के राज्याभिषेक का आयोजन आरम्भ किया। सभी ओर से प्राणी उनके अभिषेक की सामग्रियाँ जुटाने लगे। नदी, समुद्र, पहाड़, पेड, पक्षी, मृग, गौ, स्वर्गलोक के, पृथ्वी लोक के जितने भी प्राणी थे सभी ने आ-आकर उन्हें उपहार अर्पण किये।

आये नदी पहाड़, पेड़, पक्षी, पशु, पयनिधि। असन, वसन, मणि, रत्न, भेंट लाये वर बहुविधि।।
कनक सिंहासन धनद शुभ, दयो छत्र वर वरुनने। वायु दये अति वर व्यजन, माला दीन्हीं धरमने।।

इस अवसर पर सूत, मागध और बन्दी जन एकत्रित होकर पृथु की स्तुति करने के लिये उद्यत हुए। यह देख कर पृथु ने उन्हें रोककर कहा- सौम्य सूत, मागध और वन्दीजन, अभी तो मैं पैदा हुआ हूँ। लोक में मेरा कोई गुण प्रकट नहीं हुआ है फिर तुम मेरे किन गुणों को लेकर मेरी प्रशंसा करोगे। प्रशंसा गुणों की ही होती है। गुणों की कल्पना कर स्तुति करना परिहास का कारण होता है। भावी गुणोंकी सम्भावना पर स्तुति परिहास जनक होती है। जो मनुष्य अपनी बड़ाई सुनकर प्रसन्न होता है उसे तो मूर्ख समझना चाहिए। अपने में जो गुण न हो और उस गुण के होने की कोई प्रशंसा करे तो निस्संदेह यही समझना चाहिए कि वह हमारी हँसी कर रहा है। मनुष्य कभी भी बड़ाई के योग्य पात्र नहीं है। मनुष्य के हाथ से जब

शुभ कर्म होते हैं तब वह स्तुति के योग्य होता है। जिस प्रकार लज्जाशील उदार पुरुष अपने किसी निन्दित पराक्रमकी चर्चा होनी बुरी समझते हैं, उसी प्रकार लोकविख्यात समर्थ पुरुष अपनी स्तुतिको भी निंदित मानते हैं। झूठी प्रशंसा करने और सुननेवाले कायर और मूर्ख होते हैं।

अपनी वस्तु किसे अच्छी नहीं लगती। ज्ञानी तथा भक्तों के लिये तो स्तुति निन्दा दोनों ही समान है। फिर भी प्रशंसा से सुख सभी को होता है। अन्तर इतना ही है, मूर्ख अज्ञानी अहंकारी अपनी प्रशंसा सुनकर आनंदित होते हैं। भले आदमी अपनी प्रशंसा सुनकर लज्जित होते हैं और सिर नीचा कर लेते हैं। मनस्वी पुरुषोंको अपनी प्रशंसा अपने सम्मुख ही सुननी पड़े तो उन्हें यह बात बहुत अखरती है। प्रशंसा करनेवाले से कर्तव्य की दिशा मिलनी चाहिए।

अत: उत्तम-जन अपनी स्तुति पसन्द नहीं करते। वे उसे निन्दित समझते हैं। पृथु बोले- मेरे अन्दर ऐसे क्या गुण है इसका कुछ पता भी नहीं कि तुम लोग मेरी स्तुति कर रहे हो।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुरजी, महाराज पृथु के अमृतमय वचनों को सुनकर सूत, मागध, वन्दीजन बड़े प्रसन्न हुए फिर मुनियों के बतलाये हुए तरीके से वे पृथुकी इस प्रकार स्तुति करने लगे- आप साक्षात् श्री नारायण ही हैं, जो अपनी माया से अवतार ग्रहण किये हैं। आपने जन्म तो राजा वेन के मृतक शरीर से लिया है। किन्तु आपके पौरुष का वर्णन बृहस्पति के वश की भी बात नहीं है फिर हम अज्ञानियों की तो बात ही क्या है? आपका अंतिम चरित्र अत्यन्त शिक्षा प्रद और लोक का आदर्श होगा।

फिर भी पूज्य मुनियों के निर्देश के अनुसार हम लोग भगवान के अवतार रूप आप के प्रशंसनीय गुण-गणों का वर्णन अपनी बुद्धि के अनुसार करेंगे। आप धर्मधारियों में धुरन्धर होंगे। संसार को धर्म के मार्ग पर चलाने के लिये धर्ममर्यादा की रक्षा करेंगे और अधार्मिकों को दण्ड देकर उन्हें धर्म-मार्ग पर चलने के लिये विवश करेंगे। आप सूर्य के समान अवलौकिक प्रतापवान् और महिमा से मण्डित होंगे। प्रभो, मुनियों ने आपके विषय में कहा है- दया इनका स्वाभाविक गुण होगा। इनकी गति को कोई जान नहीं सकेगा। इनके कार्य भी गुप्त होंगे। ये महान् गुणों के खजाना होंगे। यह मनस्विता में साक्षात् वरुण के समान होंगे। शत्रुओं के लिये यह अत्यन्त दुर्धर्ष एवं दु:सह होंगे। यह कभी शत्रुओं के द्वारा पराजित नहीं किये जा सकते। ये धर्ममार्ग में स्थित रहकर अपने शत्रु के पुत्र को भी, दण्डनीय न होने पर, कोई दण्ड न देंगे और दण्डनीय होने पर तो अपने पुत्र को भी दण्डित करेंगे, उसे छोड़ेंगे नहीं।

यह अपने कार्यों से सब लोकों को सुख प्रदान करेंगे सबका मनोरंजन करेंगे। इन्हीं मनोरंजनात्मक कार्यों के कारण प्रजा इन्हें राजा, रञ्जनाद राजा कहेगी।

यह बड़े दृढ़व्रती, सत्यप्रतिज्ञ, ब्राह्मण-भक्त, वृद्धों के सेवक, शरणागतों के रक्षक, सभी प्राणियों के संरक्षक और दीनवत्सल होंगे। यह पर-स्त्री में माता के समान भक्ति रक्खेंगे, पत्नी को अपने आधे अंग के समान समझेंगे, प्रजा पर पिता के समान प्रेम रक्खेंगे और ब्रह्मवादियों के सेवक होंगे।

तीन गुणों के अधिष्ठाता, निर्विकार नारायण ने ही अपने अंश से इनके रूप में अवतार धारण किया है। पण्डित जनों ने इनमें अविद्या के कारण प्रतीत होनेवाली नाना-बुद्धि को मिथ्या ही बतलाया है।

मानसोत्तर पर्वत से प्रारम्भ कर जहाँ तक सूर्य प्रकाशित होते हैं, वहाँ तक इनका अखण्ड साम्राज्य होगा। भूमण्डल के सारे राजा लोग इनके कर-दाता होंगे। ये प्रजापालक राजाधिराज होकर प्रजा के जीवन-निर्वाहके लिये गोरूप-धारिणी पृथिवी का दोहन करेंगे। यह अपने धनुष की कोनों से ऊभड़-खाभड़ पृथ्वी को समतल कर कृषि योग्य बनावेंगे। रणभूमि में इनका कोई सामना न कर सकेगा। यह सरस्वती के तट पर सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे। अन्तिम अश्वमेध यज्ञ की बेला में

इन्द्र इनके अश्वमेधीय यज्ञ का अश्व अपहरण करेंगे। अपने महल के उद्यान में एक बार भगवान सनत्कुमार से इनकी भेंट होगी। वहाँ ये उनसे उस ज्ञान को प्राप्त करेंगे जिससे परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

यह अपने तेज से संसार में उपद्रवियों का समूलोन्मूलन करेंगे। सर्वत्र इनकी प्रशंसा होगी। यह आदिराज कहे जायेंगे। सर्वत्र अपने चरित्र का गान आप सुनेंगे। यह सम्पूर्ण भू-मण्डल का शासन करेंगे। उस समय देवता और असुर इनके विपुल प्रभाव का वर्णन करेंगे। प्रजाजनों ने कहा- प्रजा भूखों मर रही है, आप समस्त लोकों की रक्षा करनेवाले हैं आप ही हमारी जीविका के स्वामी हैं, आप हमारे लिये अन्न का प्रबन्ध कीजिये। राजाने प्रजाका करुण क्रन्दन सुना।

जब इस प्रकार पृथु महाराज के गुणों एवं कर्मों की प्रशंसा वन्दीजनों ने की तब उन्होंने भी द्रव्य आदि देकर उनका सम्मान किया। महाराज पृथु ने राज्याभिषेक की बेला में आये हुए ब्राह्मण आदि चारों वर्णों, देशवासियों, मन्त्रियों, पुरोहितों, पुरवासियों एवं भिन्न-भिन्न व्यवसायियों का भी यथोचित सम्मान किया।

वेनकुमार पृथु को देखकर सभी लोगों ने एक स्वर से घोषणा की कि हम सभी इनमें अनुरक्त है इस प्रकार प्रजा का रंजन करने के कारण ही उनको राजा कहा जाने लगा। भगवान विष्णु, देवताओं सहित इंद्र, ऋषिसमूह, प्रजापतिगण तथा सभी विद्वानों ने पृथु का राजा के पद पर अभिषेक किया। उस समय साक्षात् पृथ्वीदेवी रत्नों की भेंट लेकर आई थीं। सुमेरु पर्वत ने उन्हें सुवर्ण की राशि भेंट की। महाराज पृथु के राज्य में सभी पूर्ण रूप से सुखी थे। उन्होंने समस्त प्रजाओं का रंजन किया था, इसलिए वे राजा कहलाते थे।

महाराज पृथु ने राज्याभिषेक के बाद एक प्रजा का विशाल सम्मेलन किया इसमें ऋषिगण, ब्राह्मण तथा नागरिक को आमंत्रित कर सम्मानित किया।

प्रजापाल पृथु भये आइ, बोले जन सब अस। पृथिवी पै नहिँ अन्न, करें निर्वाह नृपति कस।।
नृप सोचें सब बीज भूमि निज उदर छपाये। ताही तें बिनु अन्न प्रजाजन अति घबराये।।
भूख प्यास पीड़ित प्रजा, पृथु लखि चोट हिये लगी। ताँनि धनुष मारन चले, धेनु रूप धरि भू भगी।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुर, जब महाराज पृथु को ब्राह्मणों ने राज्यसिंहासन पर यह कहकर अभिविक्त कर दी कि आप जनता के प्रतिपालक हैं, तब जिनके शरीर अन्न के अभाव के कारण भूख प्यास से दुर्बल हो गये हैं, उन समस्त लोगों ने आकर महाराज से अपना दु:ख कहा।

परमर्दित राजा बेन के अधर्माचरण के कारण पृथ्वी सारहीन और सुख समृद्धिसे रहित हो चुकी थी। पृथ्वी तो वसुंधरा है, इसके गर्भ में अगणित रत्न भरे हैं, किन्तु धर्मात्मा राजा के होने पर ही रत्नों को प्रकट करती है, अधार्मिक राजा के होते ही सब छिपा लेती है।

प्रजावर्ग को भरपेट खाने को अन्न एवं पीने को जल नहीं मिलता था, बेचारे अतिशय दु:खी थे। नागरिकोंने निवेदन किया हम भूख से पीडित है। पृथ्वी अन्न पैदा नहीं करती, आप हमारे स्वामी हैं हमारे प्राणों की रक्षा करें। भूख-प्यास से पीडित प्रजा ने राजा पृथु से याचना की। हे अन्नदाता धर्मावतार, हमारा पोषण करो। बेन की दुष्टता के कारण पृथ्वी का उर्वरापन नष्ट हो गया था। उसमें जो भी अन्न डालो वह पृथ्वी का पृथ्वी में ही विलीन हो जाता था, उसमें से अंकुर निकलते ही नहीं थे, इससे प्रजा में बड़ा असंतोष फैल गया, सर्वत्र हाहाकार मच गया।

राजा पृथु सोचने लगे- कोष में धन नहीं, भण्डार में अन्न नहीं, दरबार भी खाली है; जब पृथ्वी के दोहन की बात सोच करके अपना आजगाव नामक धनुष उठाया और पृथ्वी कंपाने लगे।

विदुर जी ने पूछा- मुनिवर, मेरी कुछ आशंकाएँ हैं, कृपया आप इनका समाधान करें। पृथ्वी ने गाय का ही रूप क्यों धारण किया? दुहने का पात्र क्या था? उन्होंने पृथ्वी को किस प्रकार समतल किया? इन्द्र ने उनके अश्वमेधीय अश्व का हरण क्यों किया? सनत्कुमार से ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर पृथु किस गति को प्राप्त हुए?

महाराज पृथु श्रीकृष्ण की ही कला थे अत: उनके चरित को सुनने की बड़ी उत्कण्ठा है, हमें सुनाने की कृपा करें।

मैत्रेयजी बोले- विदुरजी, ब्राह्मणों ने महाराज पृथु का राज्याभिषेक करके उन्हें प्रजा का रक्षक उद्घोषित किया। इन दिनों पृथ्वी अन्न-विहीन हो गई थी। प्रजा जनों के शरीर सूख कर अत्यन्त दुर्बल हो गये थे अत: उन्होंने अपने स्वामी महाराज पृथु के पास आकर कहा-महाराज, हम भूख की ज्वाला से जल रहे हैं अत: आप शरणदाता की शरण में आज आये हैं। आप जीविका की व्यवस्था करनेवाले हमारे स्वामी हैं। आप सारे लोकों की रक्षा करनेवाले हैं। आप ही हमारी जीविका के भी स्वामी है अत: राजराजेश्वर आप भूख से तड़पते हुए हम लोगों को अन्न प्रदान करने का प्रबन्ध करें। कहीं ऐसा न हो कि अन्न मिलने से पहले ही हम सब समाप्त हो जायँ, काल के गाल में चले जायँ। राजा पृथु बहुत देर तक विचार करते रहे अन्त में उन्होंने अन्न के अभाव का पता लगाया। पृथ्वी ने स्वयं अन्न औषधादि को अपने भीतर छिपा लिया। समष्टि संसार में जब व्यक्ति पाप करता है, तो उन पापियों के पाप का परिणाम प्रकृति पर असर करता है और प्रकृति पर उसका असर होता है। प्रकृति एक साथ पूरे समाज को दण्ड देती है। उसके असर में सभी को दण्ड मिलता है चाहे वो सज्जन हो या दुर्जन। पृथु के पिता वेन ने जो पाप कर्म किया, उसका प्रकृति पर इतना इसर हुआ कि पृथ्वी में जितना अन्न बोये उतना भी प्राप्त नहीं होता, इसलिये पृथु के मन में थोड़ा क्रोध आया और पृथ्वी को मारने दौड़ा।

राजा पृथु ने अपना धनुष उठाया और पृथ्वी से क्रोध करके बोले- हे धरणी, तुम इस सन्तानरूपी जीवों को गोद में धारण करने के कारण धरणी कहलाती हो, धरा कहलाती हो, ये तुम्हारे बाल बच्चे हैं। बाल बच्चों का हक खाकर तुम क्यों पचा गयी। तुम तो रत्नगर्भा हो, वसुंधरा कहलाती हो। या तो इस प्रजा के लिये अन्न रत्न आदि प्रगट करो नहीं तो मैं तुम्हारा वध कर दूँगा। हे वसुधे- तेरा गर्व चूर कर डालूंगा। मेरी आज्ञा का उल्लंघन मत करो, तुम यज्ञ में देवतारूप से भाग ले लेती हो किन्तु उसके बदले में अन्न नहीं देती हो। पृथु का क्रोध देखकर पृथ्वी गौ का रूप धारण करके वहांसे भागी। देख मेदिनी, तेरे चप्पे-चप्पेको मैं अपने बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दूँगा। ऐसी व्यवस्था कर दूँगा कि लोग मिट्टी खाकर अपना जीवन व्यतीत करें। मिट्टीको मैं खाने योग्य बना दूँगा। तुम्हारा जो मेद हैं; उसे भोज्य बना दूँगा। चाहे कोई नपुंसक हो, स्त्री हो अथवा पुरुष हो, यदि वह दूसरोंको हानि पहुँचाता है तो उसको मारनेसे राजाको दोष नहीं लगता। तुमको स्त्री समझकर छोड़ देनेकी जरूरत नहीं। तुमने प्रजाके साथ अन्याय किया है। तुम्हारा रूप गाय नहीं है। अगर तुम असल गाय होती तो मैं तुमको छोड़ देता, बाण नहीं मारता। तुम तो अपनी मायासे हमारे सामने गाय बनकर आयी हो। इसलिए हमारे बाण तुमको देखकर संकोच करनेवाले नहीं। रही बात यह कि तुम्हारे नष्ट हो जानेपर प्रजाका धारण कहाँ होगा तो हम आत्मयोगबलसे प्रजाका धारण कर लेंगे। तब पृथ्वी शरणागत हो गयी।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। कुपित हुए महाराज पृथु पृथ्वी से कहते हैं- हे वसुधे। मैं तेरा वध अवश्य करूँगा, क्योंकि तू शासन को नहीं मानती है। तू यज्ञ में देवताओं के साथ अपना भाग तो लेती है किन्तु उसके बदले में हमें वसु-भोजन रूपी धन-नहीं देती।

प्रजा का करुण क्रन्दन पृथु ने सुना। लोगों का यह कष्ट कैसे दूर हो? इसके लिये वे बहुत देर तक सोचते रहे, अन्त में उन्हें अन्न के अभाव का कारण विदित हो गया। उन्होंने जान लिया कि- पृथ्वी ने स्वयं ही अन्न एवं औषधियों को अपने भीतर छिपा

लिया है। यह जानकर वे कुपित हो उठे। उन्होंने अपना धनुष उठाया और पृथ्वी को लक्ष्य करके उस पर बाण चढ़ाया। पृथ्वी ने महाराज के अभिप्राय को समझ लिया। वह गाय का रूप धारण कर, हरिणी के समान, उनके सामने से भागने लगी। किन्तु वह त्रिलोकी में भाग कर जहाँ भी कहीं गई वहीं उसे धनुष पर बाण चढ़ाये, पीछा करते हुए पृथु दिखलाई पड़े। उसे ऐसा कोई भी नहीं मिला जो उसकी रक्षा के लिये सामने आवे। हार कर वह लौट आई और विनती भरे शब्दों में महाराज पृथु से कहा- प्रभो, आप तो शरणागत-वत्सल हैं। सारे प्राणियों की रक्षा का धर्म है अत: आप मेरी भी रक्षा करें। मैं अत्यन्त दीन और निरपराध हूँ। आप मुझे क्यों मारना चाहते हैं? यदि स्त्रियाँ अपराध करें तो भी सामान्य व्यक्ति भी उन पर हाथ नहीं उठते हैं फिर आप तो दयालुता की मूर्ति हैं, दीनवत्सल हैं। आप तो धर्ममर्मज्ञ है, सिद्धपुरुष है, आपका यह आचरण शोभनीय नहीं है। स्त्री के निरादर से लक्ष्मी का ऱ्हास होता है तथा दरिद्रता आमन्त्रित होती है। नारी का अपमान करना श्रेष्ठ पुरुष का कार्य नहीं है।

ऐसी स्थिति में आप मेरे ऊपर कैसे हाथ उठायेंगे? आप यदि मेरा वध कर देंगे तो अपनी प्रजा को कहां रखेंगे। मैं बिखर कर समुद्र में डूब जाऊँगी।

बोली वसुधा विभो। व्यर्थ च्यों मोकूँ मारो। अबला सदा अबध्य ताहि फिर च्यों संहारो।।
बिना बात च्यों बान चलाओ बात बताओ। निरपराधिनी मोइ मारि के का तुम पाओ।।
पृथु बोले दुष्टे धरनि, तोपै बान चलाऊँगो। सबकूँ सुखी बनाउँगो, यमपुर तोइ पठाउँगो।।

पृथु ने कहा मेरेही चरणोंसे तेरा प्रादुर्भाव हुआ और तुम मेरी आज्ञा नहीं मान रही हो। यहा भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये भगवान के भिन्न-भिन्न अवतार होते हैं। यह पृथु अवतार पृथ्वी की व्यवस्था करने, पृथ्वी को दोहकर सबके नष्ट हुए भाग को फिर से प्राप्त कराने के लिये हुआ।

महाराज, मैं जल पर नौका के समान स्थित हूँ। सारा संसार और आप भी मेरे ऊपर विराजमान हैं। यदि आप मुझे विखण्डित कर देंगे तो सारा जहान जल में डूब जायेगा।

पृक़्वी की दीनताभरी बात महाराज पृथु ने सुनी फिर उन्होंने कहा- वसुधे, तू मेरी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाली है। तू यज्ञ में देवतारूप से भाग तो लेती हो, किन्तु उसके बदले में हमें अन्न नहीं देती अत: आज मैं तुझे मार डालूँगा। तू प्रतिदिन हरी-हरी घास खा जाती है और दूध नहीं देती है- ऐसी दुष्टता करने पर तुझे दण्ड देना अनुचित नहीं है। तूने ब्रह्माजी के द्वारा उत्पन्न किये गये बीजों को अपने में छिपा लिया है और अब मेरी भी परवाह न करके उन्हें अपने गर्भ से निकालती नहीं हो, उन्हें उगाती नहीं हो अत: भूख से पीडित सारी प्रजा में हाहाकार मचा हुआ है। इस स्थिति में प्रजा की रक्षा के लिये तेरा वध सर्वथा उचित है। अब मैं अपने बाणों से तुझे छिन्न-भिन्न करके तेरे मेदा से क्षुधातुर जनों की भूख शान्त करूँगा। जो व्यक्ति दूसरे प्राणियों के प्रति निर्दय बनकर अपना ही भरण-पोषण करता है, वह स्त्री हो, नपुंसक हो अथवा पुरुष हो- कोई भी हो- राजाओं के लिये उसका वध न करने के समान है अर्थात् ऐसे स्वार्थी व्यक्ति के वध से कोई पाप नहीं लगता है।

मेदिनी, तू बड़ी गर्वीली हो गई है। मैं तुझे बाणों से विखण्डित करके अपने योगबल से प्रजा को जल के ऊपर ही धारण कर लूँगा। मेरी प्रजा अन्न, औषधि, वनस्पति आदि के अभाव में अतिशय कष्ट पा रही हैं। आप धात्री हैं और छद्मवेश धारण कर मुझे उपदेश दे रही हैं और आपने समस्त सामग्रियोंको अन्तर्निहित कर रखा है अत: आप वध योग्य हैं। मैं आपका वध अवश्य करूँगा। जनकल्याण में जो बाधक होता है वह राजा का शत्रु होता है। शत्रु का वध करना कोई पाप नहीं है। महाराज की यह बात सुनकर गोरूपधारिणी पृथ्वी काँपते हुए बोली- प्रभो, आप क्रोध न करें। आप का स्वरूप तो राग-द्वेष आदि से रहित है। आप ही विविध रूपों को धारण कर संसार की रक्षा करते हैं। आप सम्पूर्ण जगत् के रचयिता

हैं। आप ने ही संसार को धारण करने के लिये मुझे जल के ऊपर स्थापित किया हैं। अब यदि आप ही मुझे मारने के लिये तैयार हैं, तब मैं किसकी शरण ग्रहण में जाऊँ? हे शरणागत वत्सल, आप तो सभी को शरण देनेवाले हैं। धर्मज्ञ है। आप तो धर्म का पालन करनेवाले हैं। मेरे प्रति अपने स्वभाव के प्रतिकूल आचरण क्यों कर रहे हैं? सबके पालक होते हुए मेरा भी पालन कीजिये। आप भयभीतों के भयत्राता, असहायों के शरणदाता हैं तो मुझे भी अभयदान दीजिये। आप धर्म के मर्म को भली-भाँति जानते हैं। स्त्री जाति सदा से अवध्या मानी जाती है। मैंने तो कोई आपका अपराध नहीं किया है? स्त्रियों पर शस्त्र चलाना सर्वथा निषेध है।

स्वामिन्, आप की लीला बड़ी अद्भुत है। अजितेन्द्रिय व्यक्ति उसकी महिमा को समझ ही नहीं सकता। आप वीरमूर्ति है। आप को मैं बार-बार प्रणाम करती हूँ। राजन्, आपके पिता बेन ने यज्ञ बन्द कर अत्याचार अधर्म का सहारा लिया। अत: यज्ञ की रक्षार्थ मैंने समस्त पदार्थों को निगल लिया है। व्रतहीन लोग, जिनके अन्दर न तो ब्रह्मचर्यादि है और न जो सदाचारका पालन करते हैं, अन्न आदिका दुरुपयोग करने लगे, तब मैंने उनको अपने भीतर छिपा लिया। मैंने सोचा कि जब कोई चीज नहीं रहेगी तो फिर यज्ञके लिए औषधियाँ कहाँ मिलेंगी। सबका भोजन धरती से ही निकलता है और महापुरुष तो सब जगहसे सार ग्रहण कर लेते हैं। बुद्धिमान् पुरुष भ्रमरके समान सभी जगहसे सार ग्रहण कर लेते हैं।

काश्यपी- अत्यंत प्राचीन काल में अंग नाम के एक प्रतापी राजा थे। उन्होंने पृथ्वी को ही ब्राह्मणों के लिए दान में देने का विचार किया। यह जानकर पृथ्वी को बहुत चिंता हो गई। वह विचार करने लगी- मैं संपूर्ण प्राणियों को धारण करनेवाली हूँ और ब्रह्मा की पुत्री हूँ। अंगनरेश मुझे दान में क्यों देना चाहते हैं। यदि नरेश का ऐसा ही विचार है तो भी भूमित्व (लोक-धारण का अपना धर्म) त्यागकर ब्रह्मलोक चली जाऊंगी, जिससे इस राज का राज्य ही नष्ट हो जाएगा। ऐसा विचार करके पृथ्वी ब्रह्मलोक को चली गई। जब ब्रह्मर्षि कश्यप ने पृथ्वी को ब्रह्मलोक जाते हुए देखा तो योग-शक्ति से उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया और पृथ्वी के स्थूल शरीर में प्रविष्ट हो गए। महर्षि कश्यप के पृथ्वी में प्रविष्ट हो जाने से पृथ्वी और भी अधिक समृद्धिशालिनी हो गई। ब्रह्मर्षि कश्यप पृथ्वी के रूप में तीन हजार दिव्य वर्षों तक रुके रहे। इसके पश्चात् पृथ्वी ब्रह्मलोक से लौट आई। उन्होंने मुनि कश्यप को प्रणाम किया और उनकी पुत्री बनकर रहने लगी। तभी से पृथ्वी का नाम काश्यपी हो गया।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुरजी, इस प्रकार पृथ्वी डर कर भगवान् पृथु की स्तुति करने लगी। उसने प्रार्थना की कि- महाराज, आप के मन में यह जो क्रोध है, इसको आप शान्त कर दीजिये और मेरी प्रार्थना सुनिये- आपने ही सृष्टि की रचना करके मुझे सर्व जीवों का आश्रय बनाया। आप सर्वेश्वर हैं। हे नाथ, मैं आपकी शरण में हूँ, मुझे मारना ठीक नहीं। राजा लोगोंने मेरा पालन, आदर करना छोड़ दिया। उन्होंने देवताओंका भाग बंद कर दिया। इसलिए मैंने सब अन्न और औषधियों को अपने भीतर छिपा लिया। देवताओंने वर्षा बन्द कर दी। हे राजा लोग और प्रजा कोई कर्म नहीं करती है इसलिये यह हाल हुआ।

पृथु बोले- धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है। किस काम के करने से धर्म होता है, किसके करने से अधर्म होता है, सभी इन बातों को नहीं जानते। जो अधम पुरुष अपने मुँह अपनी ही प्रशंसा करनेवाला हो, जो सभी प्राणियों को दु:ख देनेवाला हो, जिसके कारण सभी को उद्वेग होता हो, ऐसा प्राणी चाहे स्त्री हो या पुरुष उसे मार देने पर राजा को दोष नहीं लगता।

पृथ्वी बोली- जब धर्मात्मा राजा मेरे ऊपर से चले गये क्रूरकर्मा, हिंसक, नास्तिक, द्वेषी, परपीड़क, स्वार्थी, दस्युधर्मी पुरुष मेरे ऊपर शासन करने लगे, प्रजा को पीड़ा पहुँचाने लगे, तब सब औषधियों को मैंने अपने उदर में छिपा लिया। आप लोग धर्मात्मा जब मेरी रक्षा करने में उदासीन हो गये तो उन अधर्मियों को अपने अन्न से पुष्ट करती तो यज्ञ याग सभी बन्द

हो जाते है। अत: यज्ञ रक्षार्थ ही मैंने अन्नों को छिपा रक्खा है।

प्रजापालक राजन्, पूर्व पुरुषों ने इस लोक और परलोक में लोगों के कल्याण के लिये बहुत-से उपायों को बतलाया है। आप को भी प्रजा को अन्न देने के लिये उपाय का आश्रय लेना चाहिये, जो व्यक्ति पुरखों के द्वारा बतलाये गये मार्ग का श्रद्धा के साथ अवलम्बन करता है, वह अभीष्ट फल को प्राप्त कर लेता है। इसके विपरीत आचरण करनेवाले व्यक्ति दु:ख के भागी बनते हैं। वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं होते हैं। राजन्, पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने जिन धान्य आदि अन्नों को उत्पन्न किया था, उन्हें भ्रष्ट आचरणवाले लोग, बिना यज्ञ-याग आदि किये खाये जा रहे हैं। यह देखकर आगे यज्ञ के लिये औषधियों को मैंने अपने अन्दर छिपा लिया हैं। आप उन्हें पूर्व आचार्यों के द्वारा बतलाये हुए उपाय से निकाल लीजिये। यदि आप को प्राणियों के लिये अन्न की आवश्यकता है तो आप मेरे योग्य बछड़ा, दोहनपात्र (मटकी) और दुहनेवाले की व्यवस्था कीजिये, मैं उस बछड़े के स्नेह से पिन्हा कर दूध के रूप में आप को सारे पदार्थ प्रदान कर दूँगी। एक बात और है यदि आपको अन्न आदि वस्तुएँ चाहियें तो आप हमको समतल करें और वर्षा से जो जल आता है उसे एकत्रित करने की व्यवस्था करें। जब वर्षा न हो तो भी जलाशयों में पानी भरा रहे, उससे सिंचाई हो और लोगों को पीने के लिये पानी मिले। गाय जो कुछ खाती है उसका रस उसके थन में दूध के रूप में इकट्ठा हो जाता है। आप स्वयं बछड़ा बनकर मेरा दोहन करो। दूध के रूप में आपको मैं सभी वस्तुएं दूंगी। उन प्राचीन ऋषियोंके बताये हुए उपायोंका इस समय भी जो पुरुष श्रद्धापूर्वक भलीभाँति आचरण करता है, वह सुगमतासे अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है। परन्तु जो अज्ञानी पुरुष उनका अनादर करके अपने मन:कल्पित उपायोंका आश्रय लेता है, उसके सभी उपाय और प्रयत्न बार-बार निष्फल होते रहते हैं।

धरती धरि के धीर, वीर ते बोलीं बानी। मोइ न मारे नाथ। आप ज्ञानी विज्ञानी।।
गऊ तिहारी बनी सबनि तें दूध दुहाओ। दुहनी दोग्धा लाइ वीरवर वत्स बनाओ।।
युक्ति सहित यदि दुहिंगे, तो इच्छित फल देउँगी। प्रकट सबहिँ औषधि करूँ, दुहिता बनि यश लेउँगी।।

पृथु बोले- सभी तो दूध पीनेवाले नहीं है। कोई अन्न खानेवाले है, कोई घास खानेवाले हैं, कोई अमृत पीने वाले हैं, कोई विष पीनेवाले है, कोई फल-फूल खानेवाले हैं, कोई कन्दमूल खानेवाले हैं। किसी भी अनाधिकारी व्यक्ति को प्राणी को कोई चीज न दी जाये। शासीय विचार से अधिकारी-अनाधिकारी को परखना चाहिए। औषधि का अर्थ है- हो हमारे विकारों का शिकार करके गुणों को प्रदान करे उसका नाम औषधि है। राजा पृथु ने बृहस्पति के द्वारा वेदमन्त्र, इन्द्र के द्वारा शक्ति, प्रह्लाद के द्वारा आसव, विश्वावसु के द्वारा संगीत, पित्रीश्वर के द्वारा कव्य, भगवान कपिल के द्वारा अष्ट सिद्धियाँ आदि प्रजा के हित में पृथ्वी से सकल सम्पदा प्राप्त कर ली। भगवान की भक्ति से ही जीवन की अमूल्य सम्पदा पायी जा सकती है। उसके लिए स्वयं में योग्यता का होना नितान्त आवश्यक है। अपने जीवन को योग्य बनाने के लिए असूया रहित होकर शास्त्रोंका बारम्बार आडोलन एवं अनुकरण करना चाहिए।

जैसी संगत बैठिये तैसो हि फल दीन्ह। कदली सीप भुजंग मुख स्वाति एक गुण तीन।।
सीप गयो मोती भयो कदली भयो कपूर। अहि मुख गयो तो विष भयो संगत को फल सूर।।

अब अधिक समय हो जानेसे अवश्य ही वे धान्य मेरे उदरमें जीर्ण हो गये हैं; आप उन्हें पूर्वाचार्योंके बतलाये हुए उपायसे निकाल लीजिये। एक ही दूध का जमाया हुआ दही आप मिट्टी के बर्तन में, कांच के बर्तन में, पत्थर के बर्तन में, चाँदी के बर्तन रखिये दही, दही की तरह गुणकारी होगा। लेकिन उसी दही को कुछ देर पीतल तांबा के बर्तन में रखकर देख लीजिये जहरीला हो जाता है।

पृथ्वी के कहे हुए इस प्रकार के प्रिय और हितकर वचनों को सुनकर उन्हें स्वीकार करके महाराज पृथु ने स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बना अपने हाथ में ही समस्त धान्यों को दुह लिया।

तदनन्तर गो रूपी पृथ्वी से सभी ने अपनी-अपनी अभीष्ट वस्तुएँ दुहीं। ऋषियों ने बृहस्पति को बछड़ा बनाकर इन्द्रिय (वाणी, मन और श्रोत्र) रूप पात्र में पृथ्वी देवी से वेदरूप पवित्र दूध दुहा। देवों ने इन्द्र को वत्स बनाकर सुवर्ण के बर्तन में अमृत दुहा। दैत्यों ने प्रह्लाद को बछड़ा बनाकर लोहे के पात्र में मदिरा दुही। गन्धर्व और अप्सराओं ने विश्वासु को बछड़ा बनाकर कमलरूप पात्र में संगीत-माधुर्य और सौन्दर्यरूप दूध दुहा। पितरों ने अर्यमा को वत्स बनाकर मिट्टी के पात्र में कव्य दुहा। स्वधा का उच्चारण कर पितरों के उद्देश्य से दिया गया अन्न कव्य कहलाता है। फिर सिद्धों ने कपिलदेव जी को बछड़ा बनाकर आकाशरूप पात्र में अणिमादि सिद्धियाँ तथा विद्याधरों ने आकाश-गमन आदि विद्याओं को दुहा। अन्य मायावियों ने मय को वत्स बनाकर मायारूप दूध दुहा। पिशाचों ने रुद्र को वत्स बनाकर खप्पर में रक्त दुहा। सर्पों ने तक्षक को बछड़ा बनाया और मुखरूपी पात्र में विष दुहा। मांसभक्षी पशुओं ने सिंह को वत्स बनाकर अपने शरीररूपी पात्र में भक्ष्य मांस दुहे। पक्षियों ने गरुड़ को बछड़ा बनाया और कीट, पतंग और फल आदि दुहे। पशुओं ने भगवान शिव के वाहन वृष को बछड़ा बनाकर वनरूप पात्र में तृणरूप दूध दुहा। पर्वतों ने हिमालय को बछड़ा बनाकर अपने शिररूपी पात्रों में विविध प्रकार की धातुएँ दुहीं। पृथ्वी तो सभी अभीष्ट वस्तुओं को देनेवाली है और इस समय वह पृथु के अधीन थी अत: उससे सभी ने अपनी-अपनी जाति के सर्व प्रमुख व्यक्ति को बछड़ा बनाकर अलग-अलग पात्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थों को दूध के रूप में दुह लिया। इस पर महाराज पृथु पृथ्वी पर बहुत प्रसन्न हुए और उसे पुत्री के समान स्नेह प्रदान कर कन्या के रूप में स्वीकार कर लिया फिर महाराज पृथु नें अपने धनुष की नोंक से सारे पर्वतों को फोड़कर पृथ्वी को समतल बनाया। प्रजा को वे पुत्र की भाँति प्यार करते थे। प्रजा के हित के लिये उन्होंने इस भूतल पर निवासार्थ पुर, ग्राम, कस्बा और दुर्ग आदि की सुन्दर रचना की। इनमें प्रजा निर्भीक होकर निवास करने लगीं। पृथु के पूर्व ऐसी सुविधा नहीं थी।

मानव समाज के बछड़ा बने मनुजी महाराज ने अपने हाथ से समस्त धान्यों को दुह लिया। ऋषियों ने देवगुरु बृहस्पतिजी को बछड़ा बनाकर वेदरूप पवित्र दूध दुहा, दैत्य समाज के बछड़ा प्रह्लादजी को बनाया जिन्होंने लोहे के पात्र में मदिरा रूपी दूध दुहा। नागों के समाज ने श्री वासुकी जी को बछड़ा बनाया, घास चरनेवाले पशुओं के समाज के बछड़ा शिवजी के वाहन श्री नन्दी जी बने। मायावियों ने मयदानव को बछड़ा बनाकर संकल्पमयी मायाओं को दोहन किया। पक्षियों ने गरुड़जी को वत्स बनाकर तृण आदि का दोहन किया। वृक्षों ने वट को वत्स बनाकर अनेक प्रकार के रसों का दोहन किया। पृथ्वी तो सभी अभिष्ट वस्तुओं को देनेवाली हैं। अब ऋषियोंने बृहस्पतिको वत्स बनाया और उससे वेदमय छन्दका दोहन किया। देवताओंने इन्द्रको वत्स बनाया और ओज-बल पयका दोहन किया। इस प्रकार दैत्योंने प्रह्लादको वत्स बनाकर अपने अनुकूल पदार्थोंका दोहन किया। गन्धर्व अप्सराओंने विश्वावसुको वत्स बनाकर वाङ्गमाधुर्य, सौन्दर्यादिका दोहन किया। सिद्धोंने कपिलको बछड़ा बनाकर सिद्धिका दोहन किया। मायावियोंने मयासुरको बछड़ा बनाकर अन्तर्धानरूप मायाका दोहन किया। यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाचोंने भी रुद्रको वत्स बनाया और कपालपात्रमें अपना जो पेय था, उसका दोहन कर लिया। सर्प, नागादि विषैले जन्तुओंने तक्षकको वत्स बनाया और अपने मुखपात्रमें विषका दोहन किया। ईश्वरकी सृष्टिमें सब चीजोंकी आवश्यकता होती है। इसमें मच्छरकी भी जरूरत है, बिच्छूकी भी जरूरत है।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। इस प्रकार पृथ्वी के द्वारा कहे हितकारी और प्रिय वचनों को मानकर महाराज पृथु ने अपने पूर्वज स्वायम्भुवमनु को वत्स बनाकर अपने हस्त रूपी पुनीत पात्र में जितने प्रकार की औषधियाँ थीं सभी को दुह लिया।

इसीलिये पृथु के दुह लेने के अनन्तर और जितने भी जीव थे सभी ने अपनी-अपनी भावना के अनुसार पृथु के द्वारा वश में की हुई पृथ्वी को दुह लिया। महाराज के समान जितने बुधजन सब स्थानों से सार ग्रहण कर लेते हैं।

जो मनुष्य अपने पूर्वजों के पथ का अनुसरण करते हुए बाहुबल से पुरुषार्थ करते हैं उन्हें वसुधा रूपी गौ सभी सम्पत्ति देती है, उन्हें रोटी लँगोटी का कभी घाटा नहीं रहता।

श्री पृथुजी ने उनके-उनके तत्-तत् पात्रों में पृथ्वी का दोहन किया और सबको सब तरह की खुराक मिलने लग गई। शरीर की खुराक तो मिलने लग गई सबको लेकिन आत्मा की शान्ति के लिये आत्मा की खुराक भी आवश्यक है- धर्मपालन सत्संग भजन यह भी खुराक चाहिए। महाराज स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाकर गौ का दोहन कर अन्नादि पदार्थ प्राप्त किये। ऋषियों ने गुरु बृहस्पति को बछड़ा बनाकर वेद रूपी दूध निकाला इन्द्र को बछड़ा बनाकर देवताओंने अमृत का दोहन किया। इस प्रकार गन्धर्वों, पितरों, सिद्धों, पिशाचों, पक्षियों, पर्वतोंने क्रमश: गाय रूपी पृथ्वी का दोहन कर गानविद्या, काव्य सिद्धियाँ, रक्त, कीट, पतंग, औषधि, वनस्पतियाँ दुहीं। पृथ्वी पुन: सब पदार्थों से सम्पन्न हो गईं। राजा पृथु धर्मपूर्वक राज्य का संचालन करने लगे। अर्थात् पृथु राजा हुए तब उन्होंने लौकिक उपायोंसे पृथ्वीके भीतर छिपे हुए रत्नोंको प्रकट कर दिया। ईश्वरकी सृष्टिमें जितने भी पदार्थ हैं, वे सब प्रकट हो गये उनकी परम्परा बनी रहे, यह राजाका ही काम है। जो बुद्धिमान होते हैं, वे सब वस्तुओं से सार ग्रहण कर लेते हैं। अब पृथुजी महाराज पृथ्वीपर बहुत ही प्रसन्न हुए। बोले कि हम एक मर्यादाका स्थापन करते हैं। पृथ्वी किसी राजाकी पत्नी अथवा भोग्या नहीं होती। जैसे लक्ष्मी भगवान्की पत्नी हैं, वैसे ही यह लक्ष्मी भी भगवान्की ही पत्नी है। राजाका कर्त्तव्य है कि वह पृथ्वीको अपनी पुत्रीके समान समझें। इससे अपना स्वार्थ न सिद्ध करे, बल्कि इसकी सब वस्तुएँ प्रजाको मिलें, ऐसी व्यवस्था करे। राजा पृथु ऐसे पहले हुए, जिन्होंने पृथ्वीको अपनी पुत्री माना, अपनी भोग्या नहीं माना। पृथ्वी ने कहा- लालची को चाहे जितना मिल जाय, उसका कभी पेट न भरेगा। वह सदा भूखा ही बना रहेगा। सबकी तृप्ति मैं कर सकती हूँ, किन्तु लालची की तृप्ति करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। पृथु की पुत्री होने के कारण भूमि का पृथ्वी नाम पड़ा। **पृथु ने पुत्री करी, पृथ्वी नाम तबहिँ भयो।**

बिनु पानी भोजन बिना उधम मचावे क्रान्ति। बिना भजन सत्संग के मिले न मनको शान्ति।।

पृथ्वीने कहा- राजन्। कर्म करो, आपकी प्रजाको यह मैंने सब दे तो दिया है लेकिन आपकी यह प्रजा आलसी, निखट्टू यह बेन के साम्राज्य के समय के हो गये है। इनको कर्म करना सिखाओ। यह सुकर्म करे तो सुफल मिलेगा, सुकर्म के साथ-साथ इनको यज्ञ, हवन, सत्संग सिखाओ। नहीं, तो यह प्रजा आपकी नैष्ठिक हो जायेगी कुछ काम नहीं करेगी। यह पृथ्वी का भार सम्भाला नहीं जायेगा। कर्म कौनसा? कर्म किसको कहते है? क्या कर्म करना ? हर कर्म अपना फल देता है। जैसा कर्म करोगे वैसा फल मिलेगा। आपको कर्म करना चाहिये। इस आशासे करना चाहिए कि हम जो कर्म कर रहे है वो सफल हो। पहला फल देवे तो सफल हो। दूसरा सुफल हो। तीसरा सार्थक हो। कर्म करो फल देवे सफल हो। विद्यार्थी परीक्षा में पढ़ता है, क्यों पढ़ता है यह कर्म करता है पास होनेके लिये। अच्छेसे पढ़ेगा अवश्य पास होगा। पढ़ेगा ही नहीं, कर्म ही नहीं करेगा तो निश्चिती है फिर असफल। थोड़ा पढ़ेगा तो नैया डगमगायी हुई है। फल- तो सफल। कि आपने इतना प्रयत्न किया कि आपका किया हुआ काम सफल हो गया। और अच्छा फल- कि जो सबमें सबके फायदे का हो, और सबमें जिसकी प्रतिष्ठा हो। और एक ऐसा कर्म हो सकता है है वो आपको सफल नहीं दे, सुफल नहीं दे पर सार्थक हो।

जटायु- जब रावण सीताको अपहरण करके ले जा रहा था। जटायु और रावण का युद्ध हुआ है। जटायु जानता है कि

रावण बड़ा बलशाली है। मैं युद्ध करूंगा तो भी मैं इससे जीतूंगा नहीं। रावण ने चन्द्रहास तलवार से उसके पंख काट दिये है। अपनी चोंचसे जटायु लड़ते रहा आखिर तक लड़ते रहा। जब तक प्राण नहीं गवाएं। बस प्राण निकलनेवाले थे रामचंद्रजी आ गये। उसने एक भरसक प्रयत्न किया, अन्त:काल तक प्राण चले जाएं पर वैदेही को किसी भी हालत में जाने नहीं दूंगा। जब तक प्राण श्वास थे पंख उड़ रहे थे यह कर्म किया उसने कि मैं जाने नहीं दूंगा। प्राण चले जाएंगे पर वैदेही नहीं जायेंगी। तब तक अपने चोंच मार-मारके रावणको क्षति पहुंचा रहा था। रावणने समय आनेपर चंद्रहास तलवार से वार किया उसके पंख काट दिये जटायु तड़फड़ाकर नीचे गिर पड़ा। रावण सीताको लेकर चला गया। यह दो फल दिये है। रावण चला गया है लेकिन एक निशानी मरते हुए जटायु को छोड़ गया। बोले- जटायु का कर्म सार्थक हुआ। जटायुने कर्म किया, फल कैसा मिला, सुफल। क्या? कि रामचंद्र जी को खोज मिल गयी। रामचंद्रजी ढूंढते हुए पंचवटी से निकल रहे है सीते-सीते कहते। लक्ष्मण बोलता है यहां खून के दाग मिल गये है। जैसे ही आगे बढ़ते है मरा हुआ जटायु यह था अपने पिताश्री दशरथ का मित्र और बोले यह हमारे आश्रम की रक्षा करते थे हमारे तात वो आज बेहोश पड़े हुए आखिरी सांस ले रहे है। पूछते है। जटायु ने बताया- की रावण यहां से वैदेही को लेकर गया, दक्षिण दिशा में जाईये। उसने मेरा यह हाल किया है। रामचंद्र जी ने हाथ रखा और बोले कहो तो मैं आपको जीवन दे दूं। जटायु बोले- नहीं, अब आपके दर्शन हो गये। बस। रामचंद्र जी ने अपने उत्तरीय वस्त्र उठाकर अधम जाति की अन्त्येष्ठि क्रिया की है। यह जटायुको सद्गति प्राप्त हुई है। जटायुका कर्म फल- सुफल और सार्थक। सुफल- रामचंद्रजीको को अन्वेषण की दिशा मिल गई और जटायु ने जो कर्म है वो सार्थक हो गया, जीवन धन्य बन गया, जटायु परलोक को सिधारे, मृत्यु हो गई।

पृथ्वी कहती है, पृथु आपकी प्रजाको कर्म करना सिखाये। कर्म कैसा जो फल दे, सुफल दे और सार्थक हो। यह निठल्ले, निष्क्रिय हो गये हैं, हरि भक्ति, सत्संग में लगाओ। पृथु पृथ्वी का पालन करने लगे।

अब श्री पृथुजी पिता के समान अपनी प्रजा के पालन पोषण की व्यवस्था में लग गये। उन्होंने जहां तहां यथा योग्य निवास स्थानों का विभाग किया, अनेकों गांव बसाये। किसानों के गांव बसाये। धनुष की नोंक से पहाड़ों को फोड़कर इस सारे भूमण्डल को समतल बनाया। पृथु ने ऐसी व्यवस्था की जो पृथ्वीपर ऊंचे-ऊंचे टीले थे, बड़ी-बड़ी गहरी खाइयाँ थीं, उन सबको प्राय: समान कर दिया गया। इसके बाद उन्होंने सोचा कि सब लोग एक ही जगह इकट्ठे हो जायेंगे तो पीनेको पानी कहाँ मिलेगा? पृथुके यज्ञमें साक्षात् भगवान आये थे, उनके साथ गन्धर्व, मुनि, अप्सरा, विद्याधर, कपिल, नारद, दत्तात्रेय, सनकादि भी थे। पृथ्वी कामधेनु हो गयी थी। जो चीज जहाँ माँगों, वहीं वह चीज मिलती थी- क्षीर, दधि, अन्न, गोरस, सब वहाँ प्रवाहित होते थे। मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। अपने धनुष के अग्रभाग से राजराट् भगवान पृथु ने पृथ्वी पर इधर-उधर बिना नियम के पड़े हुए पर्वतों को तोड़ फोड़कर इस भूमण्डल को प्राय: समतल बना दिया।

महाराज पृथु से पूर्व यह पृथ्वी बड़ी ऊबड़-खाबड़ थी। कहीं एक-सी समतल भूमि नहीं थी। कहीं पहाड़ हैं, कहीं ऊँचा हैं, कहीं नीचा है। कहीं गड्ढा है, कहीं खाई हैं, कहीं टीले हैं, कहीं घना वन हैं, कहीं चारों ओर गहन झाड़ियाँ लगी हैं। प्रतापवान महाराज पृथु ने अपना धनुष उठाया। धनुष पर बाण चढ़ाकर पहाड़ों को तोड़फोड़ डाला। सोचा, इस पृथ्वी को सुन्दर समतल बना देना चाहिये। इसलिये जितने पहाड़ थे, सबको उठाकर उन्होंने उत्तर दिशा में रख दिया। महाराज पृथु ने शिवजी के नाम से ही एक द्वार बना दिया जिसे हरद्वार कहते हैं। हरद्वार से ऊपर पहाड़ रहे। नीचे-नीचे समतल भूमिवाला देश रहा। इस प्रकार सभी पहाड़ों को तोड़फोड़कर उन्होंने भूमि को उपजाऊ बना दिया। जहाँ-जहाँ उनका रथ

गया, वहाँ-वहाँ तो भूमि सम हो गई, किन्तु जहाँ भूल से कुछ छूट गया या जहाँ किसी मुख्य देवता का मन्दिर तीर्थ देखा उसे महाराज पृथु ने छोड़ दिया। इस प्रकार प्राय: सम्पूर्ण पृथ्वी को ही उन्होंने एक-सी कर दिया?

प्रजा वर्ग में आनन्द हो गया। अब पृथुजी जगह-जगह गांव-गांव में घूमकर प्रजाजनों को धर्म का कर्त्तव्य का ज्ञान देने लगे। सुख चाहते हो तो धर्म का पालन करो धर्म तत सुखम्।

महाराज पृथु के शासनकाल में धरती बिना जोते ही धान्य उत्पन्न करती थी। वृक्षों के पुटपुट में मधु भरा हुआ था। मनुष्य निरोग थे। उनकी सारी कामनाएं सर्वथा परिपूर्ण थीं। सब लोग इच्छानुसार निर्भय होकर घरों या खेतों में रह लेते थे। महर्षियों ने एकत्र होकर महाराज पृथु का राज्याभिषेक किया था। उन सभी ने यह विचार करके कि धर्मशील नरेश समस्त लोकों में धर्म की मर्यादा प्रथित (स्थापित) करेंगे अत: उनका नाम पृथु रख दिया।

रचे नगर अरु ग्राम भवन, गृह अटा अटारी। वापी, कूप, तड़ाग राजपथ अति सुखकारी।।
नगरनि सीमा बनी पृथक सब प्रान्त बनाये। मण्डलीक भूपाल सबनि के दुर्ग सहाये।।
करी व्यवस्था सबहिँ विधि, दु:ख सबनि के मिट गये। राज्य नियामक पति पृथु, आदि राज भू के भये।।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुरजी, पृथ्वी को सुव्यवस्थित करके प्रजा के लिये अन्न का प्रबन्ध हो जाने पर महाराज पृथु ने मनु के ब्रह्मावर्त क्षेत्र में, जहाँ सरस्वती नदी पूर्ववाहिनी होकर बहती है, सौ अश्वमेध यज्ञ करने का पवित्र संकल्प किया।

पृथु ने धर्म का आचरण करने के लिये सौ अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली। सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवाला शतक्रतु बन जाता है और उसको इन्द्रासन पर बैठने का वैधानिक अधिकार मिल जाता है।

सौ अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न पूरा करनेवाला ही स्वर्ग में इन्द्र पद का अधिकारी बनता है। यही कारण है कि इन्द्र को शतक्रतु सौ यज्ञ करनेवाला कहा जाता है।

इन्द्रने सोचा- पृथु के कर्म तो मेरी अपेक्षा भी बढ़ जायेंगे अत: पृथु के इस अश्वमेध यज्ञ में विघ्न डालने का उन्होंने निश्चय कर लिया। इस यज्ञ में श्रीहरि के साथ ही ब्रह्मा, शिव एवं समस्त लोकपाल आदि अपने-अपने अनुचरों के साथ पधारे थे। कपिल, नारद एवं सनकादि भी अपनी उपस्थिति से पृथु के यज्ञ को उज्ज्वल कर रहे थे। ऋषि, मुनि एवं योगेश्वर भी वहाँ उपस्थित थे। उस यज्ञ में यज्ञ की सारी सामग्रियों को देनेवाली भूमि कामधेनु का रूप धारण कर यजमान की सारी कामनाओं को पूर्ण कर रही थी।

वहाँ चारों ओर दूध, दही, और घी की नदियाँ बह रही थी। वृक्ष विविध प्रकार के रसीले फलों का ढेर उपस्थित कर रहे थे। सागरों ने तमाम रत्नों का उपहार दिया। पर्वत भक्ष्य, भोज्य, चोष्य तथा लेह्य- चार प्रकार के अन्न तथा लोकपालों के सहित सम्पूर्ण लोक तरह-तरह के उपहार उन्हें समर्पित करते थे।

महाराज पृथु श्रीहरि के एकनिष्ठ भक्त थे। उनकी कृपा से उनका उस यज्ञानुष्ठान में महान् उत्कर्ष हुआ। किन्तु यह बात देवराज इन्द्र को सहन न हुई। उन्होंने उसमें विघ्न डालने की चेष्टा की। वे चाहते थे कि पृथु के सौ यज्ञ पूरे नहीं होने चाहिये अत: उन्होंने ईर्ष्यावश गुप्तरूप से यज्ञ का घोड़ा चुरा लिया, हर लिया। इन्द्र ने अपनी रक्षा के लिये कवचरूप से पाखण्ड वेश धारण कर लिया था। यह पाखण्डवेश अधर्म में धर्म का भ्रम उत्पन्न करनेवाला था- जिसका आश्रय लेकर पापी पुरुष भी धर्मात्मा-सा जान पड़ता है। पाखण्डियों का अनुसरण करने पर मनुष्य का लोक और परलोक बिगड़ जाता है। इनके भ्रामक वेष तथा मीठी बातों से मनुष्य को सदा बचना चाहिए। पाखण्डी के वेश में वे घोड़े को लिये बड़ी शीघ्रता से आकाशमार्ग से जा रहे थे। इस दृश्य को महाराज अत्रि ने अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया। उनके कहने से महाराज पृथु का महारथी पुत्र क्रोध करके अरे, खड़ा रह-

यह कहकर ललकारते हुए उनके पीछे दौड़ा। इन्द्र शिर पर जटाजूट और शरीर में भस्म धारण किये हुए थे। उनका ऐसा वेश देखकर पृथुकुमार ने उन्हें मूर्तिमान धर्म समझा। यही कारण था कि उसने उन पर बाण नहीं छोड़ा और लौट आया। तब महर्षि अत्रि ने पुन: उसे आज्ञा दी इन्द्र को मारने के लिये। अत्रि ने कहा- वत्स, यह कोई धर्मात्मा नहीं, किन्तु इन्द्र है। यह तुम्हारे यज्ञ में विघ्न डालने के लिये अश्व का हरण किये जा रहा है अत: इसे मार डालो।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। महाराज पृथु सौ अश्वमेध यज्ञों द्वारा यज्ञपति भगवान श्रीहरि की आराधना कर रहे थे। जब अंतिम सौवें यज्ञ में इन्द्र गुप्त रूप रखकर आये और यज्ञ के घोड़े को चुरा ले गये।

अत्रि की प्रेरणा से पृथुकुमार ने क्रोध करके, आकाश मार्ग में बड़ी तेजी से भागते हुए इन्द्र पर उसी प्रकार आक्रमण किया। इन्द्र ने देखा पृथुकुमार उन पर झपट रहा है अत: वे उस वेष और घोड़े को छोड़कर अन्तर्धान हो गये और वह वीर अपना यज्ञीय अश्व लेकर यज्ञशाला में लौट आया। उसके वीरता भरे अद्भुत कर्म को देखकर महर्षियों ने उसका नाम विजिताश्व रख दिया। आगे वह इसी नाम से विख्यात हुआ।

चोर इन्द्रकूँ अत्रि दिखाओ पृथु कुमारकूँ। वत्स, वेगि जा पकरि पुरन्दर चोर जारकूँ।।
सुनत राजसुत शीघ्र शक्र की ओर सिधास्यो। साधु समझि के सहृद कुमर फिरि नहिं सर मास्यो।।
अश्व विजय करि इन्द्रतें, लायो सुख सबकूँ भयो। ऋषि मुनि निलि विजिताश्व वर, नाम कुँवरकूँ तब दयो।।

आदिसम्राट पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञों की दीक्षा ली। देवराज इंद्र महाराज पृथु के उत्कर्षस्वरूप इस भव्य महोत्सव को ईर्ष्यावश सहन नहीं कर पाए। उन्होंने यज्ञ में विघ्न डालने के लिए गुप्तरूप से यज्ञ का घोड़ा हर लिया। इंद्र ने अपनी रक्षा के लिए कवचरूप में पाखंडवेष धारण कर लिया था, जो अधर्म में धर्म का भ्रम उत्पन्न करनेवाला है, जिसका आश्रय लेकर पापी पुरुष भी धर्मात्मासा जान पड़ता है। महर्षि अत्रि ने आकाश-मार्ग से अश्वको ले जाते इंद्र को देख लिया। महर्षि अत्रि के निर्देशानुसार महाराज पृथु का महारथी पुत्र इंद्र के पीछे दौड़ा। पृथुकुमार को क्रोध से भरे हुए अपने पीछे आता हुआ देखकर देवराज इंद्र घोड़े को छोड़कर वहीं अंतर्धान हो गए। पृथुकुमार यज्ञ का घोड़ा लेकर यज्ञशाला में लौट आया। इस अद्भुत पराक्रम को देखकर महर्षियों ने उस महारथी का नाम विजिताश्व रख दिया।

अश्व के आ जाने पर यज्ञ-कर्म आगे बढ़ा। घोड़ा सुवर्ण की जंजीर से बाँध दिया गया फिर इन्द्र ने माया से घोर अन्धकार फैला दिया और घोड़े को सोने की जंजीर के सहित अपहरण कर लिया। अत्रि ने पुन: पृथुकुमार को दिखला कर उकसाया। उसने अश्वहर्ता को ललकारते हुए पीछा किया। इस बार भी इन्द्र ने पाखण्ड वेष धारण कर रक्खा था। उनके हाथ में कपोल और खट्वाङ्ग था अत: पृथुपुत्र ने उन्हें मार्ग में कोई बाधा न पहुँचाई फिर अत्रि ने उसे कहा यह पाखण्डी इन्द्र ही है। मारो इसे। पृथुकुमार ने उनका पीछा करके धनुष पर बाण चढ़ाया ही था कि इन्द्र वेष और घोड़े को छोड़कर अन्तर्हित हो गये। विजिताश्व पुन: अश्व लेकर यज्ञ-मण्डप में आये। इन्द्र ने अश्वहरण की इच्छा से जिन-जिन वेषों को धारण किया था, वे पाप के खण्ड होने के कारण पाखण्ड कहलाये। यज्ञ-पशु के हरण की बेला में इन्द्र ने निज रूपों को ग्रहण करके छोड़ा था उन्हें वाममार्गी, कापालिक आदि ने जीविका चलाने के लिये ग्रहण कर लिया, यही कारण है कि संसार में बहुत-सा पाखण्ड फैल गया। पाखण्डी बड़ी मनोहर युक्तियों से अपने पक्ष का समर्थन करते हैं। लोग भ्रमवश धर्म मानकर इनमें आसक्त हो जाते हैं।

किन्तु पाखण्ड के आचरण से लोगों का इहलोक और परलोक- दोनों ही विनष्ट हो जाता है अत: लोगों को चाहिये कि इनकी मीठी बातों और भ्रामक वेष से सतत सावधान रहें।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। अबके इन्द्र ने घोर अन्धकार उत्पन्न किया। फिर यज्ञस्तम्भ के सम्मुख रखे वलयाकार

चषाल में सुवर्ण की जंजीर में बँधे हुए यज्ञ के अश्व को पुन: हर ले गया।

जब महाराज पृथु को इन्द्र की कुचाल का पता लगा तो वे कुपित हो उठे। पृथु बोले- इन्द्र अपनी गद्दी की सुरक्षा के लिये औरों के धर्म में विघ्न डालता है और यज्ञ में बाधा डालता है। ऐसे इन्द्र को रख कर क्या फायदा? हे ऋषियों, आप लोग ऐसे मन्त्र आहुति का प्रयोग करें इस मन्त्र आहुति के साथ इन्द्र भी सिंहासन समेत आकर यज्ञकुण्ड में गिरकर समाप्त हो जाये। पृथु ने अपना धनुष उठाकर उस पर चढ़ाया ही था कि यज्ञ के आचार्यों ने कहा- महाराज, आप शान्त हो जायँ। आप ने यज्ञ की दीक्षा ले रक्खी है अत: आप को यज्ञीय पशु को छोड़कर किसी अन्य का वध नहीं करना चाहिये। हम अमोघ आवाहन-मन्त्रों के द्वारा इन्द्र को यहीं बुला लेते हैं और हठात उसका अग्नि में हवन कर देते हैं। इन्द्र त्राहि-त्राहि करने लगा। यज्ञानुष्ठान में दीक्षित पुरुष के लिये क्रोध करना, हिंसा करना सर्वथा वर्जित है।

समुझी शक्र कुचाल क्रोध नृप पृथकूँ आयो। इन्द्र मारिबे हेतु धनुष अरु बाण उठायो॥
ऋत्विज बोले- विभो। विहित बध अब नहिँ तुमकूँ। हम सब कुछ करि सकें देहिँ आयसु यदि हमकूँ॥
मन्त्र शक्ति ते शक्रकूँ, अबई यहाँ बुलाइँगे। स्वाहा करिकें अग्नि में, यमपुर ताहि पठाइँगे॥

आप शान्त हो जायँ। ऐसा कहकर ज्यों ही ऋत्विजों ने आवाहन का मन्त्र बोलकर हवन करने की तैयारी की, त्योही ब्रह्मा ने उन्हें रोकते हुए कहा- राजन्, आप श्रीहरि के अंश और मोक्षधर्म के जाननेवाले हैं अत: इन्द्र पर क्रोध न करें और इस यज्ञ को भी बन्द कर दें। इसकी आवश्यकता आप को नहीं है। आप का मंगल हो। आप और इन्द्र-दोनों श्रीहरि के शरीर हैं अत: इन्द्र के ऊपर आप को क्रोध नहीं करना चाहिये। वह और आप दोनों ही एक हैं। देवताओं के साथ हठ करना समीचीन नहीं है। यदि आप का एक अश्वमेध यज्ञ कम रहेगा तो उससे आप की कोई हानि नहीं है, क्योंकि आप तो मोक्षधर्म के ज्ञाता हैं। दूसरी बात यह है कि आप के यज्ञीय अश्व को चुरानेवाला आपसे लज्जित हो रहा है अत: आप उससे सन्धि कर लो। आप का अवतार धर्म की रक्षा के लिये हुआ है। इन्द्र पाखण्ड फैला रहे हैं। सामान्यजन इसका अनुकरण करेंगें अत: लोकमंगल खतरे में पड़ जायेगा। फैले हुए पाखण्ड का आप विनाश करें, उसे बढ़ने का अवसर आप न दें। जब इतना प्रसिद्ध व्यक्ति पाखण्ड करने लगेगा तो उसका अनुसरण दूसरे लोग भी करेंगे और पाखण्डी हो जायेंगे। तुमतो धर्मकी रक्षाके लिए अवतीर्ण हुए हो। विश्वसृष्टाओंका संकल्प पूर्ण करो, यह मार्ग छोड़ दो। अब उससे अधिक विरोध मत करो; नहीं तो वह और भी पाखण्ड मार्गोंका प्रचार करेगा।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। कुपित हुए पृथु के समीप ब्रह्माजी आकर उन्हें समझाते हुए कहने लगे- महाराज। आप इस बात की चिन्ता न करें कि हमारा यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त न हुआ। हम जो कहें उसे आदर के साथ श्रवण करें। जो पुरुष दैव के द्वारा विघ्न किये हुए कार्य को करने का दुराग्रह करता है उसका मन अत्यन्त क्रोध के कारण घोरतम मोह को प्राप्त होता है।

संसार में यदि वृद्ध पुरुष न हों तो न जाने क्रोध में भरकर ये युवक लोग क्या-क्या अनर्थ कर डालें। जब दो समान बलवाले किसी बात पर अड़ जाते हैं, किसी विषय पर दोनों का ही समान रूप से आग्रह होता है तो वहाँ संघर्ष हो ही जाता है। उस संघर्ष में यदि वृद्ध बीच में नहीं पड़ते तब तो रक्तपात अवश्यम्भावी है। यदि वृद्ध बीच में पड़ गये तो समझा-बुझाकर किसी को प्यार से किसी को डाँट-डपटकर शान्त कर देते हैं। उस झगड़े को मिटा देते हैं। इसीलिये सभाओं में वृद्धों का होना अत्यावश्यक है। वह सभा, सभा ही नहीं कही जा सकती जहाँ वृद्ध न हो और वे वृद्ध, वृद्ध ही नहीं माने जाते जो सबके हित की पक्षपातरहित बात न कहें।

भैया, श्रद्धासहित जिन्हें मख माहिँ बुलाओ। काहे तिनकूँ विप्र। अग्निमहँ आजु जराओ।।
राजन छोड़ो बैर व्यर्थ मति बात बढ़ाओ। अब हठ करि पाखण्ड जगतमहँ मति फैलाओ।।
सौ मख कर का करोगे, मोक्षमार्ग के पथिक तुम। इच्छा राखो इन्द्रकी, सबके हित की कहहिँ हम।।

पृथु ने कहा- हमें इन्द्रासन से क्या लेना देना। ऐसे इन्द्रासन कितने भी हमारे संकल्प से प्रगट हो जाये तो फिर सौ अश्वमेध यज्ञ करने का आग्रह क्यों? यह यज्ञ तो प्रजा को कर्त्तव्य और धर्म की शिक्षा देने के लिये होते हैं। ब्रह्मा बोले- निन्यानवें यज्ञों से प्रजा को बहुत शिक्षा मिल चुकी है, इन्द्र आपसे डर गया है। इसलिये यज्ञ को बन्द करें। पृथु आप तो साक्षात विष्णु का अंश है। आपके द्वारा दिया हुआ ही पद इन्द्र के पास एक मन्वन्तर के लिये है। नीति यह कहती है अपने हाथ से लगाये विष के वृक्ष को भी काटना उचित नहीं है। जो अच्छा कर्म करेगा अगले जन्म में उन्नति होगी। अगर नहीं करता है तो उसे कीड़ा-मकोड़ा बनना पड़ेगा। कर्म का फल तो अवश्य मिलेगा।

ब्रह्मा बोले- पृथु, ग्रहण करनेवाले से सामर्थ्य होने पर त्याग करनेवाला सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। मान पानेवाले की अपेक्षा मान देनेवाले का महत्व अधिक है, दूसरों को नीचा दिखाने की अपेक्षा शक्ति रहने पर स्वयं नत हो जाना प्रशंसनीय कार्य है। जिस कार्य में दैव प्रतिकूल हो उसके लिये अत्यधिक आग्रह करना क्रोध उत्पन्न करके सबसे लड़ना भिड़ना यह प्रशंसनीय कार्य नहीं है। इससे तमोगुण बढ़ता है, लक्ष्य से च्युत होना पड़ता है और उत्थान के स्थान में पतन होता है। अत: ऐसे अवसर पर अपने बड़े वृद्ध लोग जो कहें उसी को श्रद्धा सहित मान लेना चाहिये।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुरजी, ब्रह्मा के वचनों को सुनकर महाराज पृथु ने यज्ञ का आग्रह छोड़ दिया और इन्द्र के साथ प्रीतिपूर्वक सन्धि कर ली।

फिर यजमान महाराज पृथु ने यज्ञान्त स्नान किया। ऋषियों, मुनियों, ब्राह्मणों एवं आचार्यों को सविनय प्रणाम कर दान मान से उनका पूजन कर आशीर्वाद ग्रहण किया। अन्य लोगों को भी यथावसर धन देकर पृथु ने सम्मानित किया।

विधि आज्ञा सिर धारि यज्ञ पृथु बन्द करायौ। गुरु गौरवकूँ मानि बात आगे न बढ़ायौ।।
जो-जो मखमहँ देव विप्र ऋषि मुनिवर आये। सबको करि सत्कार, विविध विधि दान दिवाये।।
पाइ दान सम्मान बहुत, विप्र तुष्ट अतिशय भये। दै आशिष अति मुदित ह्वै, अपने-अपने घर गये।।

मैत्रेय जी कहते हैं- विदुरजी, महाराज पृथु निन्यानबे यज्ञ पूरे कर चुके थे। इससे यज्ञपति भगवान उन पर परम प्रसन्न थे वे इन्द्र को साथ लेकर पृथु के पास आये। भगवान ने कहा देखो, पृथु यह वही इन्द्र हैं, जिन्होंने तुम्हारे अन्तिम यज्ञ में बार-बार विघ्न किया है। अब यह क्षमा मांग रहे हैं, इसलिये तुम इनको क्षमा कर दो। बड़े आदमियों का बड़प्पन इसी में है कि वे छोटे के दोषों पर ध्यान नहीं देते। उनके सब अपराधों को क्षमा कर देते हैं।

पृथु यज्ञनितें तुष्ट भये श्रीमधुसूदन अति। भये यज्ञमहँ प्रकट शक्र लै संग यज्ञपति।।
पृथुतें पूजित भये फेरि बोले मृदुबानीं। राजन्। सबहिँ कुचाल शतक्रतुकी हम जानी।।
हौं प्रसन्न तुमपै भयो, सिद्ध होहिँ तव काज सब। अति लज्जित यह इन्द्र है, जाहि क्षमा करि देहु अब।।

इससे बड़ी विजय क्या होगी कि स्वयं यज्ञेश्वर भगवान इन्द्र को पकड़कर ले आये और बोले कि ये तुम से क्षमा की भीख मांग रहे हैं। यदि सौंवा यज्ञ निर्विघ्न पूरा हो भी जाता तो क्या इससे बड़ी कीर्ति मिलती? कभी नहीं। नरदेव जो श्रेष्ठ मानव हैं, साधु हैं और सद्बुद्धि से सम्पन्न हैं, वे दूसरे प्राणियों से द्रोह नहीं करते; क्योंकि यह शरीर आत्मा नहीं है।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। लोकपितामह ब्रह्माजी के समझाने के अनंतर महाराज पृथु के यज्ञों से संतुष्ट होकर यज्ञभोक्ता भगवान विष्णु इन्द्र को साथ लिये हुए पृथु-यज्ञ में प्रकट हुए और महाराज से बोले- राजन्, आपके सौवें यज्ञ को इस इन्द्र ने भंग किया है, इस समय यह अपने अपराध को आपसे क्षमा चाहता है, इसलिये आपको इसे क्षमा कर देना चाहिये।

ज्ञानी पुरुष अपने शरीर में आसक्त नहीं होते। यह शरीर तो अविद्या की वासना एवं कर्मों का पुतला है। जिसकी अपने शरीर में आसक्ति नहीं होती है वह शरीर से सम्बन्ध रखनेवाले स्त्री, पुत्र एवं गृह में क्यों आसक्ति रखेंगे? जो व्यक्ति शरीर में स्थित आत्मा को शरीर से भिन्न रूप से जानता है, वह प्रकृति मण्डल में रहकर भी प्रकृति के गुणों में लिप्त नहीं होता; क्योंकि वह निरन्तर मुझमें ही स्थित रहता है। ज्ञानवान पुरुष इस शरीरको अविद्या, वासना और कर्मोंका ही पुतला समझकर इसमें आसक्त नहीं होता। इस प्रकार जो इस शरीरमें ही आसक्त नहीं है, वह विवेकी पुरुष इससे उत्पन्न हुए घर, पुत्र और धन आदिमें भी किस प्रकार ममता रख सकता है।

समस्त कर्मों के करने का एकमात्र उद्देश्य है, प्रभु प्रीति। जो इस उद्देश्य को भूलकर कर्मों में ही आसक्त हो जाता है उनके द्वारा संसारी भोगों की इच्छा रखते हैं, वे उसी प्रकार हैं। यज्ञादि कर्म साध्य नहीं, साधन है। इनको करके कृष्णार्पण कर दे। उनक फल स्वयं न चाहे, जो ऐसा न करके उनको ही साध्य मानकर परनिन्दा, द्वेष, कलह, शत्रुता आदि करते हैं, उन्हें अन्त में पछताना पड़ता है। वे उभयभ्रष्ट हो जाते हैं। हमारे जिस कर्म से भी प्रभु प्रसन्न हो जायँ, वही श्रेष्ठ हैं। प्रभु प्रसन्न हो गये तो अधूरा काम भी पूरा है, यदि उनकी प्रसन्नता प्राप्त न हुई तो पूराकाम भी अधूरा माना गया है।

यह आत्मा एक, शुद्ध, स्वयंप्रकाश, निर्गुण, गुणोंका आश्रयस्थान, सर्वव्यापक, आवरणशून्य, सबका साक्षी एवं अन्य आत्मासे रहित है; अतएव शरीरसे भिन्न है। जो पुरुष इस देहस्थित आत्माको इस प्रकार शरीरसे भिन्न जानता है, वह प्रकृतिसे सम्बन्ध रखते हुए भी उसके गुणोंसे लिप्त नहीं होता; क्योंकि उसकी स्थिति मुझ परमात्मामें रहती है। राजन् जो पुरुष किसी प्रकारकी कामना न रखकर अपने वर्णाश्रमके धर्मोंद्वारा नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक मेरी आराधना करता है, उसका चित्त धीरे-धीरे शुद्ध हो जाता है। चित्त शुद्ध होनेपर उसका विषयोंसे सम्बन्ध नहीं रहता तथा उसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। फिर तो वह मेरी समतारूप स्थितिको प्राप्त हो जाता है। यही परम शान्ति, ब्रह्म अथवा कैवल्य है। जो पुरुष यह जानता है कि शरीर, ज्ञान, क्रिया और मनका साक्षी होनेपर भी कूटस्थ आत्मा उनसे निर्लिप्त ही रहता है, वह कल्याणमय मोक्षपद प्राप्त कर लेता है। मूर्ख लोग इस शरीर को ही आत्मा मानते हैं और मैं कहने से इस शरीर को ही मैं समझते हैं। वास्तव में दृश्यमान शरीर आत्मा तो है नहीं। आत्मा तो इससे सर्वथा पृथक् है। राग-द्वेष आदि इस शरीर के ही कारण होते हैं, अत: साधु स्वभाव के पुरुष इस शरीर सम्बन्ध से अन्य किसी प्राणी द्रोह नहीं करते। द्रोह करें भी तो किससे। सर्वत्र वही एक आत्मा तो नाना रूपों में दिखाई दे रहा है।

मुझमें दृढ़ अनुराग रखनेवाले बुद्धिमान पुरुष सम्पत्ति और विपत्ति प्राप्त होनेपर कभी हर्षशोकादि विकारोंके वशीभूत नहीं होते। राजाका कल्याण प्रजापालनमें ही है इससे उसे परलोकमें प्रजाके पुण्यका छठा भाग मिलता है। इसको विपरीत जो राजा प्रजाकी रक्षा तो नहीं करता; किंतु उससे कर वसूल करता है। उसका सारा पुण्य तो प्रजा छीन लेती है और बदलेमें उसे प्रजाके पापका भागी होना पड़ता है।

महाराज पृथु, सद्गुणों से सम्पन्न विद्वान जन अविद्या से रचित इस भौतिक शरीर में और इस शरीर से सम्बन्ध रखनेवाले घर, जन और सम्पत्ति में ममता नहीं रखते।

यह आत्मा एक, शुद्ध, बुद्ध, स्वयं प्रकाश, निर्गुण, गुणों का आश्रयस्थान, सर्वव्यापक, आवरण-रहित, सब का साक्षी एवं

अन्य आत्मा से रहित है अत: यह शरीर से भिन्न है। हृदय में वर्तमान इस आत्मा के चिन्तन से व्यक्ति शरीर में रहते हुए भी मान-अपमान तथा सुख-दु:ख का अनुभव नहीं करता है। वह द्वन्द्वों से परे हो जाता है।

राजन्। जो व्यक्ति, जो पुरुष, किसी प्रकार की कामना न रखकर अपने वर्ण एवं आश्रम के धर्मों द्वारा नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक मेरी आराधना करता है, उसका मन धीरे-धीरे शुद्ध, निर्मल, अत: प्रसन्न हो जाता है, फिर उसमें मेरा अनुभव होने लगता है। हे राजन्, आत्मा से भिन्न देहाभिमानी जीव को संसार की अनुभूति होती है, आत्मा को नहीं। इसलिये मुझ में दृढ़ अनुराग करनेवाले बुद्धिमान पुरुष सम्पत्ति और विपत्ति प्राप्त होने पर न तो कभी प्रसन्न होते हैं और न कभी उदास या दु:खी ही।

भगवान से अपना नाता जोड़नेवाले भक्त-जन सम्पत्ति और विपत्ति की एक अलग ही परिभाषा रखते हैं। उनके अनुसार संसारी लोग जिन्हें विपत्तियाँ समझते हैं, वे विपत्तियाँ नहीं और जिन्हें वे सम्पत्तियाँ समझते हैं, वे सम्पत्तियाँ नहीं है। उनके अनुसार भगवान् को भूल जाना सबसे बड़ी विपत्ति है और भगवान को याद करना ही सबसे बड़ी सम्पत्ति है।

अत: वीरवर, सभी प्राणियों में समान दृष्टि रखकर, सुख और दु:ख को भी एक-सा समझकर, इन्द्रियों को वश में रखकर प्रजा का पालन करो। इससे परलोक में प्रजा के पुण्य का छठा भाग आपको प्राप्त होगा। जो राजा प्रजा से कर तो लेता है और बदले में उसकी रक्षा नहीं करता, उसका सारा पुण्य प्रजा छीन लेती है और बदले में उसे प्रजा के पाप का भागी बनना पड़ता है।

जो श्रेष्ठ साधु होते हैं, सद्बुद्धि सम्पन्न होते है, वे दूसरे जीवों से द्रोह नहीं करते। चरित्रहीन व्यक्तियों को चरित्रवान के सामने झुकना पड़ता है। नैतिकता से जो रहित है उसे नैतिकता से युक्त महापुरुष के सामने झुकना पड़ेगा। आप इन्द्र को क्षमा कर दे। साधुजन प्राणियों से द्रोह नहीं करते हैं।

राजन्, तुम्हारे गुणों और स्वभाव ने मुझे वश में कर लिया है अत: तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर मुझसे मांग लो। उन क्षमा आदि गुणोंसे रहित यज्ञ, तप अथवा योगे द्वारा मुझको पाना सरल नहीं है, मैं तो उन्हींके हृदयमें निवास करता हूँ जिनके चित्तमें समता रहती है।

समबुद्धिवाले जनों को मैं सर्वदा सुलभ रहता हूँ। मैत्रेय जी कहते हैं- विदुरजी, सारे संसार के स्वामी श्रीहरि के ऐसा कहने पर जगद्विजयी महाराज पृथु ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली। देवराज इन्द्र अपने कर्म से लज्जित होकर उनके चरणों पर गिरना ही चाहते थे कि राजा ने उन्हें प्रेमपूर्वक उठाकर छाती से लगा लिया और उनके प्रति विद्वेष को अपने मन से निकाल दिया।

तुम्हारे अंदर जो शरीरभाव है, यह अपने स्वरूपको ब्रह्म न जाननेके कारण है। अपना शरीर तो बिल्कुल अपरोक्ष आत्मा है। आत्मा के बिना कोई व्यवहार नहीं होता, सुषुप्ति भी नहीं होती, समाधि भी नहीं होती, विक्षेप भी नहीं होता और मल भी नहीं होता। अपना स्वरूप देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न और सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेदसे रहित अद्वितीय ब्रह्म है। अद्वितीय ब्रह्मकी है और चेतनता अपने स्वरूपकी। स्वरूपगत चैतन्य अद्वितीय ब्रह्म है। हम अपने को यह समझते हैं कि है, वह है यही सम्पूर्ण दु:खोंका मूल है, यही अविद्या है। अविद्याके कारण कामना होती है और कामना के कारण कर्म होता है। कर्म के कारण संस्कार इकट्ठे होते हैं, संस्कारसे वासनाएँ होती है और वासनाओंसे जन्म होता है। इस प्रकार मनुष्य इसी जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है लेकिन जो जाग जाता है वह इस प्रकृतिमें आसक्त-अनुरक्त और मोहित नहीं होता। इसलिये हे पृथु इस शरीरको मैं-मेरा मत समझ यहाँ जो घर बनाया है, सन्तान उत्पन्न की है, धन कमाया है उसमें ममता मत करो, इसी ज्ञानका नाम तत्त्वज्ञान है, जीवन मुक्ति है, यही सभी वेदांतों का सार है। दु:ख का कारण है ममता। यह मेरा घर, यह मेरा धन, ये मेरे पुत्र-पौत्र । इन्हीं सबकी आसक्ति में फँसकर अज्ञानी

जीव किसी से राग करता है, किसी से द्वेष। किंतु बुद्धिमान पुरुष इस शरीर को अविद्या, वासना और पूर्व कर्मों से निर्मित समझकर सदा अनासक्त भाव से बर्ताव करते हैं।

यह आत्मा शुद्ध, स्वयंज्योति और निर्गुण है। हमारी यह आत्मा निरात्मा है, निर्गुण है, फिरभी गुणाश्रय है। सर्वव्यापक है, आवरणशून्य है, सबका साक्षी, अनन्यात्मा, सबसे परे है। वह सबके भीतर, बाहर है, फिर भी भौतिक पदार्थों से निर्लेप है। जो इस तत्व को यथार्थ रूप से जान लेता है वह शरीर में रहता हुआ भी सर्वथा मुझमें ही स्थित रहता है। वह विकारों से उसी प्रकार लिप्त नहीं होता जिस प्रकार जल में रहने पर भी कमलपत्र जल से लिप्त नहीं होता। अपने धर्म द्वारा निष्काम होकर श्रद्धाके साथ मेरी आराधना करो, इसीसे ब्रह्म कैवल्यकी प्राप्ति होगी। यह आत्मा बिलकुल उदासीन है, जिसको यह ज्ञान हो जाता है वह कल्याणमय मोक्षपदको प्राप्त करता है। जिन्होंने मेरे साथ सौहार्द्र जोड़ लिया है, उसके जीवनमें कभी सम्पत्ति आती है, और कभी विपत्ति आती है। वे अपनेको न सम्पन्न मानते हैं, न विपन्न मानते हैं, वे तो बिलकुल निर्विकार रहते हैं। मनुष्यको दु:ख-सुखमें समान रहना चाहिए। राजाका धर्म तो केवल प्रजापालन है। यदि वह प्रजाका पालन नहीं करता तो उसका सारा पुण्य क्षीण हो जायेगा। भगवान बोले- पृथु, तुम्हारे घरमें थोड़े ही दिनोंके बाद सनकादि ऋषि आयेंगे। पृथु, तुम्हारी जो इच्छा हो वो मुझसे वर माँग लो। मैं यश, तपस्या अथवा योगसे नहीं मिलता। जिसके चित्तमें ममता नहीं, विषमता नहीं, मैं-मेरा नहीं, भेदबुद्धि नहीं, उसमें ही मैं प्रकट होता हूँ, उन्हींके हृदयमें रहता हूँ, जिनके चित्तमें समता रहती है।

राजन् यह तनु नाशवान् क्षण भंगुर गुणमय। आत्मा निर्गुण शुद्ध सर्वगत साक्षी आश्रय।।
करहिं दान तप धर्म विविध विधि यज्ञ रचावें। करिकें अरपें मोहि परमपद ते नर पावें।।
पृथु। पृथिवी पालन करो, मेरी सेवा जानिकें। करहु प्रेम सब जननितें, सबमहँ मोकूँ मानिकें।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। जब भगवान ने महाराज पृथु से बार-बार वरदान माँगने को कहा, तब महाराज बोले- हे स्वामिन्। मैं आपसे ऐसी कोई भी सांसारिक वस्तु नहीं चाहता, न कोई ऐसा स्थान प्राप्त करना चाहता हूँ जहाँ महापुरुषों के मुख से निकला हुआ सुयश सुधारूपी मधुर मरकन्द पान करने को न मिले। यदि आप वर देना चाहते हैं तो मुझे यही वर दीजिये कि आपके गुण श्रवण के निमित्त मेरे दस हजार कान हो जायँ, यही मेरा श्रेष्ठतम वर है।

इसप्रकार इन्द्र और पृथु में मैत्री हो गई। दोनों में मित्रता करवाकर भगवान जाना ही चाहते थे, किन्तु पृथु के प्रेम में बद्ध होने से वे जा न सके। उस समय पृथु की विलक्षण दशा थी। उनकी आँखें आँसुओं से भर गईं, कण्ठ गद्‌गद हो गया अत: वे न तो भगवान को देख ही सकते थे और न कुछ बोल ही सकते थे। वे भगवान को हृदय से पकड़ कर केवल हाथ जोड़े खड़े थे। दो मन से मिले हुए हृदय जब संयोगवश शरीर से मिलते हैं तो उस मिलन में एक अपूर्व सुख का प्रादुर्भाव होता है। आदान-प्रदान से प्रेम चमक उठता है। जितना ही दोनों के बीच में संकोच होगा, उतनी ही प्रेम की न्यूनता समझनी चाहिये।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। भगवान की कृपा को स्मरण करके आदिराज महाराज पृथु के नेत्रों में जल भर आया। आँखों में प्रेमाश्रु भर आने के कारण वे भगवान के दर्शन करने में भी समर्थ न हुए। कण्ठ रुद्ध हो जाने के कारण वे कुछ कह भी न सके। वह अपने हृदय से ही इन श्रीहरि का आलिंगन करते हुए दोनों हाथों की अंजलि बाँधे खड़े-के-खड़े ही रह गये।

फिर किसी-किसी तरह उन्होंने अपने को संभाला और कहना प्रारम्भ किया- आप वर देनेवाले देवताओं को भी वर देने में समर्थ हैं। भगवन् जो चींटी से लेकर सूअर, कुत्ते से लेकर इन्द्र तक का सांसारिक विषय सुख तुच्छ नश्वर हैं, पतन की ओर ले जानेवाली है। आप सभी के आश्रयदाता है। आप सब कुछ देने में समर्थ हैं किन्तु इन विषय सुखोंको मैं नहीं चाहता हूँ यह तो नारकीय मनुष्यों को भी प्राप्त हो जाते हैं- मुझे मोक्षपद की भी अभिलाषा नहीं। मैं तो महापुरुषों के श्रीमुख

से आपके चरण कमल मकरन्द रूपी अमृत कणों को लेकर निकली वायु को ग्रहण करना चाहता हूँ। उस वायु में इतनी शक्ति हो कि वह आपके भूले हुए तत्त्व का अनुभव करा देती है। हे सर्वगुणधाम, मैं आपकी कथाका निरन्तर पान करना चाहता हूँ और वह इन दो श्रवणेन्द्रियों से सम्भव नहीं है। माँगना तो अभाव में होता है, जो वस्तु हमारे पास नहीं होती, उसकी हम दूसरों से याचना करते हैं।

मैं तो आपके से एक ही बात मांगता हूँ। संतों के शरीर से निकलकर आपकी अमृतमयी कथा दोनों कानोंसे सुनकर मुझे संतोष नहीं होता। इसलिये हे प्रभो, मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दीजिये जिससे मैं आपकी लीला गुणों को सुनता रहूँ।

भक्त बछल भगवान कहें- नृपवर वर माँगो। मोई कृतारथ करो निस्पृहा ऐसी त्यागो।।
अश्रु पौंछि पृथु कहें- प्रभो। अब यह वर दीजे। होहिँ सहस दश कान, प्रतिज्ञा पूरी कीजे।।
घर बैठे सब ठौर ते, सुयश तुम्हार सुन्यो करूँ। सुनत श्रवन गुन थकित नहिँ, होहिँ हिये तव छवि धरूँ।।

मुझे तो उस मोक्ष पद की भी इच्छा नहीं है जिसमें महापुरुषों के हृदय से, उनके मुख द्वारा निकला हुआ आपके चरण-कमलों का मकरन्द नहीं है- जहाँ आप की कीर्ति-कथा के सुनने का आनन्द नहीं मिलता है अत: मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये।

दस हजार कान मांगने का अर्थ है कि मेरे इन दो कानों में दस हजार कानों की शक्ति प्रदान कर दीजिये जिससे आपकी कीर्तिकथा को सुनकर मैं न अघाऊँ, अतृप्त ही रहूँ। जिनसे मैं आपके लीला-गुणों को निरन्तर सुनता ही रहूँ।

भगवन् बोले, हे विज्ञ सम्राट। तुम ज्ञान-विज्ञान तथा अध्यात्म विद्या के महापंडित हो। तुम जैसे ज्ञानी यदि क्रोध करेंगे तो साधना और सत्संग का क्या प्रयोजन होगा? विद्वानों में आठ गुणों का समावेश होता है- कपट न करना, पर निन्दा न करना, कठोर न बोलना, दूसरों के कटु वचनों को सहना, ज्ञान होनेपर भी अहंकार न करना, क्रोध न करना, दूसरों के दोषों को उजागर न करना, साधारण लोगों की भाँति सुख-दु:ख को प्रकट न करना। उनको विपत्ति भी सम्पत्ति लगती हैं क्योंकि विपत्ति में प्रभु स्मरण अधिक होता है।

पृथु बोले- उत्तम कीर्तिवाले प्रभो, इसके अतिरिक्त मुझे और कोई दूसरा वर नहीं चाहिये। स्वयं लक्ष्मीजी भी सब कुछ छोड़कर आपके चरण-कमल का ही आदर करती हैं। जो सज्जनों की संगति में आपके मंगलमय यश का एक बार भी श्रवण कर लेता है, उसे कभी भगवच्चरणारविन्द से वैराग्य नहीं होता, तृप्ति नहीं होती। जो मनुष्य शकल से मनुष्य होकर भी पशु है, वही आपके चरित से विरक्त हो सकता है। जैसे लक्ष्मी आपके चरणारविन्द से प्रेम करती हैं, वैसा ही मेरा भी प्रेम आप से हो। लक्ष्मी से हमारा, इसके लिये, कोई कलह न हो- और सेवा की बेला में यदि मेरा उनसे विरोध हो गया तो आप मेरा ही पक्ष ग्रहण करेंगे; क्योंकि आप जो ठहरे दीनवत्सल, दीनदयालु।

जिसके कान समुद्र के समान हो, जैसे समुद्र में दिशा-दिशा से हजारों नदियां आती हैं और आकर पानी उड़ेलती है। तब भी समुद्र विचलित नहीं होता वैसे ही आपके जो कथा रसिक है उनके कानों में कितनी भी कथा पड़े वे अघाते नहीं हैं। कथा के लिये जिनके कान समुद्र के समान हैं, दुनियादारी की बातों को सुनने के लिये नहीं है। सत्संग से भागवत धर्म के अनुष्ठान से नित्यप्रति श्री मधुसूदन भगवान की पावन कथाओं को सुनने से मानव जीवन को पूर्णता मिल जाती है। भागवत् कथा से ही भगवान के चरणों में सुदृढ़ प्रीति होती हैं। भक्तजनों के कानों को सुख देनेवाले श्री हरि के गुणों का बार-बार वर्णन करने से बढ़ते हुए भक्तिभाव से मनुष्य के अन्त:करण का वासनारूपी मल नष्ट हो जाता है। शुद्ध अन्त:करण में प्रभु

के स्वरूप का साक्षात्कार होता है जो जीव का परम पुरुषार्थ है।

रुपया कमाने वालों की कभी रुपयों से तृप्ति हुई है। वे ही सोने, चाँदी, ताँबे, कागज के सिक्के हैं, अपने पास दस रहे तो भी वैसे, सौ रहे तो भी वैसे, हजार लाखों कितने भी रहें, तृप्ति किसी को नहीं। हजारपति लखपति होना चाहता है, लखपति करोड़पति बनने को उत्सुक है। करोड़पति पद्मपति बनना चाहता है। इसी का नाम है व्यसन। विशेष रूप से निरन्तर खाते रहना और तृप्ति न होना यही व्यसन का तात्पर्य है। संसारी व्यसनों में फँसे लोग तो सर्वत्र दिखाई देते हैं, किन्तु जिन्हें भगवन्नाम कीर्तन, भगवत् कथा श्रवण का व्यसन है, जो इनके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते, ऐसे पुरुष संसार में दुर्लभ हैं। जिन्हें संसारी कथा रुचिकर प्रतीत न होकर भागवती कथाओं में ही सदा रमे रहें ऐसे पुरुष तो संसार में दुर्लभ हैं उनकी कोई आन्तरिक इच्छा रहती भी है तो यही कि सर्वत्र भागवती कथाओं का प्रचार और प्रसार हो,सर्वत्र हरिनाम-संकीर्तन की सुमधुर ध्वनि गूँजती रहे। कोई क्षण ऐसा न बीते जिसमें कृष्ण कथारूपी पुनीत पीयूष पान करने को प्राप्त न हो सके। वे सबसे इसी की याचना करते हैं, सबसे इसी के सम्बन्ध में बातें करते हैं, सभी से कथा कीर्तन के प्रसार का ही आग्रह करते हैं। ऐसे पुरुष नहीं, वे तो नर रूपधारी हरि ही हैं।

पिता वही कार्य करता है, जिसमें बालक का हित होता है। ठीक उसी प्रकार जो भी मेरे लिये हितकर हो वही वर आप मुझे प्रदान करें। वस्तु तो एक ही है, वह पात्र भेद से अच्छी और बुरी हो जाती है। वर्षा का जल वही है, गंगाजी में पड़ते ही पापों का नाश करनेवाला गंगाजल हो जाता है, वही जल मोरी में मल-मूत्र के गड्ढे में पड़े तो अस्पृश्य हो जाता है, समुद्र में पड़कर खारा हो जाता है।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। पृथु ने कहा- भगवन्, आप मायिक गुणों से रहित है; इसीलिए साधु पुरुष आपका भजन करते हैं। संसार में आपके चरण कमलों के स्मरण करने के अतिरिक्त सज्जन पुरुषों का कोई और प्रयोजन हम समझते ही नहीं।

भगवान ने कहा- राजन्, ऐसा ही होगा। तुम्हारी भक्ति मुझमें सर्वदा बनी रहेगी। जिससे मेरी प्रबल माया भी तुम्हारे ऊपर अपना प्रभाव न डाल सकेगी। अब तुम मेरी आज्ञा का पालन करते रहो। प्रजापालक नरेश, जो पुरुष मेरी आज्ञा का पालन करता है, उसका कभी अमंगल नहीं होता। आप सुख-दु:ख में समदृष्टि हो धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करो, यही आपका परम पुरुषार्थ है। सबसे बढ़िया मेरी भक्ति है, जो मनुष्य के हृदयमें रहनी चाहिए। मैं तुमको यही वरदान देता हूँ कि मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति हो। जो मेरी आज्ञाका पालन करता है, उसका सर्वत्र मंगल होता है। तथास्तु कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये। यह कह कर भगवान महाराज पृथु से पूजित होकर, पृथु और सारे सदस्यों का मन चुरा कर अपने मंगलमय धाम को चले गये। जब तक भगवान ओझल नहीं हो गये पृथु उनकी छवि निर्निमेष नयनों से निहारते रहे। इसके बाद राजा ने वहाँ समागत ऋषियों, मुनियों, देवों और सामान्य जनों को यथोचित दान-मान कर विदा किया। वे सब राजा को आशीर्वाद देकर अपने-अपने धाम को चले गये। राजा भी यज्ञशाला को प्रणाम कर अपनी राजधानी में चले गये।

पृथु सिंहासन पर बैठे और अगणित उदार कार्य करते हुए पृथ्वी का शासन करने लगे। संसार में अपने विपुल यश का विस्तार कर अन्त में उन्होने भगवान के परम पद को प्राप्त किया। एक ओर स्वयं भगवान खड़े हैं, दूसरी ओर इन्द्र हैं, तीसरी ओर सनकादि, कपिलादि है। इससे बढ़कर पृथुके यज्ञकी सफलता और क्या हो सकती है? पृथुकी बुद्धिमें यह है कि जितने भी लोग अलग-अलग शक्ल-सूरतमें आये हैं, वे दूसरे कोई नहीं, भगवान है। यज्ञों से निवृत्त होकर अभिमान शून्य शूरवीरों में श्रेष्ठ महाराज पृथु ने ब्राह्मणों के वेद-ध्वनि शंख दुन्दुभि के घोष तथा बन्दियों की स्तुतियों को सुनते-सुनते अपने राजभवन में प्रवेश किया। मार्ग में सर्वत्र पुरवासियों और देशवासियों ने उनका पूजन सत्कार

किया। महाराज ने भी प्रसन्नतापूर्वक उन्हें इच्छित वर दिये।

विदुरजी, महाराज पृथु की राजधानी गंगा और यमुना के मध्य में थी। वहाँ निवास करते हुए वे अपने पुण्य-कर्मों के क्षय की इच्छा से प्रारब्ध वश प्राप्त हुए भोगों को ही भोगते थे। ब्राह्मणों एवं वैष्णवों को छोड़कर सप्त द्वीपा वसुमती पर उनका अखण्ड और अबाध शासन था। इस समय एक बार पृथु ने महायज्ञ की दीक्षा ग्रहण की। उसमें ब्रह्मर्षियों, राजर्षियों, सिद्धों एवं गन्धर्वों आदि का विशाल समुदाय एकत्रित हुआ। राजा ने सबका यथायोग्य मान-सम्मान किया। महापुरुषों का जन्म समाज सुधार के लिए होता है उसमें धर्म जाति या वर्ग का बन्धन नहीं होता। हर धर्म का अपना उद्देश्य होता है। सनातन धर्म का लक्ष्य है जनहित। बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय ही इसका आधार है। महाराज पृथु भी समाज में फैली विषमताओं को दूर कर शान्ति पूर्ण एवं सुखद समाज की स्थापना करने के लिए अवतरित हुए थे। अब तक वे स्व-सुख के लिए यज्ञादि में विशेष रूचि लेते रहे किन्तु भगवान श्रीमन्नारायण के दर्शन एवं प्रेरणा से विशेष रूप से समाज सुख की ओर आकर्षित हुए। उन्होंने एक महासभा का आयोजन किया। इसमें सभी वर्ग के लोगों को आमंत्रित किया- देव, ऋषि तथा साधारण जनों के समक्ष उन्होंने अपने उद्‌गार प्रकट किये।

प्रविशे पुर पृथु करे, प्रजा सबको यों पालन। ज्यों माता पितु करें, नेहतें सुतको लालन।।
महासत्र इक रच्यो धर्मकी वृद्धि करनकूँ। फैले नास्तिकभाव धरातें तिन्हें हरनकूँ।।
देश देशतें सभ्यगन, आयो जुर्‌यो समाज वर। तिनके सम्मुख कहन कछु, उठे भूप ज्यों दिवाकर।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। जब महाराज पृथु अपने महासत्र में व्याख्यान देने खड़े हुए तो सबको सम्बोधन करके उन्होंने कहा- हे सभ्यगण। हे दूर-दूर से पधारे हुए महात्माओ। आप सबका कल्याण हो। आप मेरी बात को श्रवण करें, क्योंकि धर्म के जिज्ञासुओं को साधु पुरुषों की सन्निधि में अपने मनोगत भावों को निवेदन कर देना चाहिये।

सभा में भाषण देना, समाज में सबके सम्मुख अपने भाषण से प्रभावान्वित कर देना, यह किसी विरले का ही कार्य है। वक्तृत्व शक्ति भी एक कला है। वैसे तो यह शक्ति जन्म से ही किसी-किसी में होती हैं, किन्तु अभ्यास से यह बढ़ाई जा सकती है। व्याख्यान देनेवाले को सबसे पहिले तो दृढ़ता की आवश्यकता है। जो दृढ़ नहीं, बात-बात पर विचलित हो जाता है वह सम्माननीय वक्ता नहीं समझा जाता। जिस विषय पर बोलना हो, उसका पहिले विचार कर लें। पहिले उपस्थित सज्जनों को सम्बोधन करने के अनन्तर अपनी हीनता दिखाते हुए विषय की गम्भीरता का दिग्दर्शन करावे। फिर संक्षेप में अपने विषय को जनता के सम्मुख उपस्थित करे। दूसरे लोगों का इस विषय में क्या मत है, उसमें पहिले विपक्षियों की युक्तियों को बतावे कि कुछ लोग इस विषय में ये-ये दोष बताते हैं इस पर पहिले पूर्व पक्ष की स्थापना करें। जब पूर्व पक्ष को दृढ़ता के साथ बता दे, तब क्रम-क्रम से उन विपक्षियों के मत में दोष दिखावें। बड़े मधुर और सौम्य शब्दों में उनकी युक्तियों का खण्डन करे, अपने पक्ष की पुष्टि में शास्त्रों का, आप्त पुरुषों का प्रमाण देतें जाय। बहुत जोर से भी न बोले, बहुत धीरे-धीरे न बोले।

पृथु सभा के मध्य में हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए। अतिशय निरहंकार मृदुल स्वभाव एवं चारु, चित्रपद, मधुर, मनोहर नि:शंक वाणी है। उन्होंने कहा- सज्जनों, आप का कल्याण हो। आप महानुभाव, जो यहाँ पधारे हैं, मेरी प्रार्थना सुनें। जिज्ञासु पुरुषों को चाहिये कि संत-समाज में अपने निश्चय का निवेदन करें। लोगों के कल्याण, सामाजिक सुव्यवस्था एवं सब की आजीविका के प्रबन्ध के लिये मुझे राजा बनाया गया है अत: इनका भली-भाँति पालन करने से मुझे उत्तमोत्तम लोकों की प्राप्ति होगी। जो राजा प्रजा को धर्म-मार्ग की शिक्षा न देकर केवल उससे कर वसूल करने में ही लगा

रहता है, वह केवल प्रजा के पाप का ही भागी होता है और ऐश्वर्य से च्युत होकर सत्पुरुषों की निन्दा का पात्र बनता है।

सब लोग ईर्ष्या द्वेष छोड़कर, हृदय से भगवान का स्मरण करते हुए अपने कर्त्तव्य कर्म का पालन करें।

राजा का प्रथम कर्तव्य प्रजा को धन-धान्य से परिपूर्ण करना है तथा लौकिक जीवन को सम्पन्न तथा भयरहित बनाना है। मेरी प्रजा का लौकिक ही नहीं पारलौकिक जीवन भी सम्पन्न होना चाहिये। यह जीवन दिव्य और आदर्श हो और अन्त में उसे दिव्य लोक भी प्राप्त हो। ब्राह्मण नि:स्वार्थ समाजोत्थान की प्रेरणा देते हैं और राजा उसके आधार पर सुखद समाज की स्थापना करता है। सत् पुरुषों का संग ही जनकल्याण का सरल साधन है। सत्संग मोक्ष का खुला द्वार है। सत्संग जीव के लिए पारसमणि है। इससे भौतिक और आधिभौतिक लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार के साधन, सामग्री, सुख साधना सम्पन्न और अन्त में मुक्ति होती है। अत: समय निकालकर सत्संग अवश्य करना चाहिए। ज्ञान प्राप्ति और उसके वर्द्धन के लिए सत्संग से सरल और उत्तम दूसरा मार्ग नहीं है। बिन सत्संग विवेक न होई और बिना विवेक के पारलौकिक तो क्या लौकिक सुखों की प्राप्ति भी सम्भव नहीं है। कल्याण का मूल स्रोत, सुख का मूल, सिद्धि का मार्ग और मुक्ति की प्रेरणा सत्संग से ही प्राप्त होती है। सत्पुरुषोंका संग तथा भगवत् स्मरण करते रहना चाहिए। स्मरण से अनुराग दृढ़ होता है। प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता है जिससे ज्ञानाग्नि प्रबल होती हैं। समदृष्टि आ जाती है। उसमें ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, धनी, निर्धन, ब्राह्मण और शूद्र का भेद समाप्त हो जाता है। राजाका काम है अपनोंसे, परायोंसे प्रजाकी रक्षा करना। उसको जीविका देना और धर्मकी मर्यादाओंको बचाना।

सबको जीविका मिले सब सुरक्षित रहें और सब मर्यादाका पालन करें- ये तीन विभाग हमारे पास हैं। इसीसे लोक-परलोक बनता है। जो राजा कर लेता है, परन्तु प्रजाको धर्मकी शिक्षा नहीं देता, वह प्रजाके द्वारा होनेवाले पापका जिम्मेदार है, क्योंकि जब राजाने धर्मकी शिक्षा ही नहीं दी तो प्रजा बेचारी क्या करे? इसमें दोषी राजा ही है और इसलिए उसका ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है।

सज्जनों, आपलोक कृपया मेरी बात सुनिये। मेरे प्रति आपका भी कुछ कर्त्तव्य है। मैं अपना कर्त्तव्य पालन करता हूँ तो आप भी अपना कर्त्तव्य पालन कीजिये। इसीमें आपकी भलाई और स्वार्थ है। किसीका दोष मत देखिये। जैसे मैं सबमें भगवान देखकर काम करता हूँ, वैसे ही आप भी कीजिये और मेरे इस निवेदनका अनुमोदन भी कीजिये, क्योंकि कर्त्ता, शास्ता और अनुज्ञाताको पुण्य फल होता है।

हमारे संविधानकी पहली धारा यह है कि यज्ञपति ईश्वर नामकी एक शक्ति है। संसारमें कहीं थोड़ा तो कहीं अधिक ज्ञान देखनेमें आता है। ज्ञानकी जो पराकाष्ठा है, उसीका नाम ईश्वर है। कहींकहीं सहज स्वभावसे ही चमक देखनेमें आती है, वह ईश्वर विषयक स्वीकृति है। हमारे वंशमें मनु, उत्तानपाद, ध्रुव, प्रियव्रत, अंग आदि जो-जो अच्छे-अच्छे राजा हुए हैं, उन सबने ईश्वरको माना है। प्रह्लाद और बलि आदिने भी माना है। ईश्वरको यदि किसीने नहीं माना तो बेनने नहीं माना। इसलिए वे शोचनीय हैं। चाहे चतुर्वर्ग हो, चाहे स्वर्ग हो, चाहे अपवर्ग हो- सब भगवान्‌की कृपासे ही प्राप्त होता है। जब भगवान्‌के चरणोंकी सेवाकी रुचि हो जानेपर हृदय पवित्र हो जाता है तो ज्ञान हो जाता है। इसलिए आप अपने अधिकारके अनुसार कर्म कीजिये। जैसा आपका अधिकार है, उसीके अनुसार आपको सिद्धि मिलेगी। आप भगवान्‌के चरणारविन्दका भजन कीजिये। कोई भी कर्म हो, मरनेके अनन्तर उसके कर्ता, उपदेष्टा और समर्थकको उसका समान फल मिलता है।

पृथु ने सारी प्रजा को इकट्ठा करके धर्म की शिक्षा दी। इनकी शिक्षा को जानकर काफी लोग धर्मात्मा हो गये। यज्ञ हवन

दान तप पूजा पाठ कथा कीर्तन इत्यादि में लग गये। पृथु गाँव-गाँव घूमकर उपदेश करता रहा और सोचा अब मैं स्वयम् कुछ करके नहीं दिखाऊंगा तो बिना आचरण किये केवल उपदेश से प्रजा पर उतना प्रभाव नहीं पड़ेगा।

मुझे विश्वास है, मेरे इस कथन का आप सब अनुमोदन करेंगे क्योंकि कर्ता, उपदेष्टा और अनुमोदन कर्ता- ये तीनों ही परलोक में समान फल के भागीदार हुआ करते हैं। माननीय सज्जनों, कुछ लोगों का मानना है कि कर्मों का फल देनेवाले भगवान यज्ञपति ही हैं। मनु, उत्तानपाद, महीपति ध्रुव, राजर्षि प्रियव्रत, हमारे दादा अंग, ब्रह्मा, शिव, प्रह्लाद, बलि और इसी कोटि के अन्यान्य महानुभाव सभी भगवान का अस्तित्व स्वीकार कर श्रद्धा और भक्ति के साथ उनकी आराधना करते थे और वे मानते थे कि धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग और अपवर्ग के साक्षात् प्रदाता तो गदाधर ही हैं। इस सिद्धान्त के विपरीत विचार एवम् आचरणवाला एकमात्र सुनीथा का पुत्र वेन ही था। वह अपने नाना के प्रभाव के कारण नास्तिक बना था यही कारण है कि उसका इहलोक और परलोक दोनों ही बिगड़ गया। ब्राह्मणों ने उसे अपनी क्रोधाग्नि से भस्म कर दिया था।

भगवान श्रीहरि के चरण-कमलों की सेवा और सेवा की अभिलाषा संसार-ताप से सन्तप्त जीवों के पूर्वजन्मों के मनोबल को तत्काल उसी प्रकार नष्ट कर देती है जैसे उनके चरण-नख से निकली गंगा जी के सेवन करनेवाले व्यक्ति के समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं। आप लोग जीविकोपयोगी स्वधर्मों का पालन करते हुए अपनी शारीरिक, मानसिक और वाचिक क्रियाओं के द्वारा उन्हीं प्रभु का भजन करें, हृदय में किसी प्रकार का कपट न रक्खें। साथ ही यह दृढ़ विश्वास भी करें कि हमें अपने-अपने अधिकारानुसार इसका फल अवश्य प्राप्त होगा।

मेरी इच्छा है कि मेरी प्रजा उन्हीं भगवान का अनुसरण करे, यदि मेरे राज्य की जनता भगवान का निष्कपट भक्त बनेगी तो मैं इसे अपने ऊपर महान् अनुग्रह मानूँगा। इसके साथ ही हमारे राज्य में ब्राह्मणों एवं वैष्णवों का भी सम्मान आवश्यक है। ब्राह्मणों के मुख में डाली गई आहुति से भगवान को जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी प्रसन्नता उन्हें यज्ञ-कुण्ड में डाली गई आहुतियों से भी नहीं होती। मैं आयुपर्यन्त ब्राह्मणों की चरण धूलि को अपने मुकुट पर धारण करूँगा क्योंकि उसे सर्वदा सिर पर धारण करने से मनुष्य के सारे पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण गुण उसके पास स्वयं ही आ जाते हैं।

जो भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने को सदा व्यग्र बने रहते हैं, जिनके अरविन्द-समान कोमल कमनीय चरणों में बढ़ी हुई भक्ति तपस्वियों तथा भक्तों के अनेकों जन्मों के संचित मनोमल को क्षण भर में तत्काल ही नष्ट कर देती है, जो भक्तों के एकमात्र आश्रय हैं, उन चरणों की शरण कौन बुद्धिमान पुरुष न लेगा।

गुणशाली, शीलसम्पन्न, कृतज्ञ, गुरुओं की सेवा करनेवाले पुरुष के पास सारी सम्पदाएँ अपने आप स्वयं चली आती हैं अत: मेरी तो यही अभिलाषा है कि ब्राह्मणवंश, गो-वंश और भक्तों के सहित श्रीभगवान मुझ पर सदा प्रसन्न रहें।

धन्य प्रजा के पुरुष करहिँ जे पूजा प्रभु की। ते अति आदरणीय करहिँ जे अर्चा विभु की।।
धर्ममूल है धेनु यज्ञ हित धृत जे देवें। दूसर भूसुर कहे वेद जे विधिवत सेवें।।
विप्र कमल पद रेणुकूँ, नित सिरतें धारन करहुँ। कृष्णार्पण करि करहुँ सब, कर्क व्यथा सबकी हरहुँ।।

मैत्रेयजी ने कहा- विदुरजी, महाराज पृथु का ऐसा अपूर्व वक्तव्य सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग प्रसन्नता से खिल उठे, वे मुक्तकण्ठ से महाराज की प्रशंसा करते हुए बोले- महाराज, आप धन्य हैं। आप के सारसंभृत अमृतमय इस उपदेश से हम सभी कृतार्थ हो गये। आपने हमें सनाथ बना दिया। आज आपको अपने स्वामी के रूप में पाकर हम अपने को भगवान के ही राज्य में समझते हैं जैसे भगवान की निन्दा के कारण नरक में गिरते हुए हिरण्यकशिपु को उसके पुत्र प्रह्लाद ने बचा

लिया था, वैसे ही आज नास्तिक वेन का भी उद्धार आपके द्वारा हो गया। प्रजा को इसी प्रकार की शिक्षा देते हुए आप सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहें। अपने शासक की ऐसी भगवन्निष्ठा देखकर हम आनन्द के महासागर में निमग्न हो रहे हैं। आपने अपनी इस कथा के द्वारा संसार को मुक्ति का मार्ग दिखला दिया है। इससे हम लोगों का परम कल्याण होगा।

महाराज पृथु का उपदेश श्रवण करके प्रजा के पुरुष कहने लगे- हे पवित्र कीर्तिवाले महाराज, आज हम आपको अपना स्वामी पाकर यथार्थ में भगवान की प्रजा बन गये। मुकुन्द ही हमारे नाथ हो गये। क्योंकि आप हमारे सम्मुख उत्तम श्लोक भगवान् ब्रह्मण्यदेव की कथाओं को कहते हैं। माता-पिता तो थोड़े ही समय तक पालन करते हैं, किन्तु ये हमारे पृथ्वीपति पिता तो जीवन भर हमारी सभी सुविधाओं का ध्यान रखते हैं, हमें सदा भय से बचाते हैं, हमारी आजीविका का प्रबन्ध करते हैं, तिस पर भी ऐसे अनुपम उपदेश देकर हमें परमार्थ पथ की ओर प्रेरित करते हैं। ऐसे पिता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारी शक्ति के बाहर की बात है। आज हम अपने ऐसे स्वामी को पाकर साक्षात् परमेश्वर को ही प्रजापति रूप में प्राप्त करके कृतकृत्य हो गये, हमारा जीवन सफल हो गया, हम धन्य-धन्य हो गये। अपना अयोग्य पुत्र भी प्यारा होता है, अपनापन जिसमें हो जाता है, उसकी योग्यता की ओर ध्यान नहीं जाता। उसे तो निबाहना पड़ता है।

पिता पुत्र द्वारा परम, प्राप्त पुण्य लोकनि करहिँ। भई सत्य वैदिक जिह्व, पृथु पितुके पापनि हरहिँ।।

मैत्रेयजी बोले- विदुरजी, जिस समय प्रजाजन परमपराक्रमी पृथ्वीपाल पृथु की इस प्रकार प्रशंसा कर रहे थे, उसी समय वहाँ सूर्य के समान तेजस्वी सनकादि चारों भाई आकाश मार्ग से उतरकर राजा के सभा-मण्डप में पधारे।

सभामाहिँ सनकादि तबहिँ नभ मारग आये। प्रजा सहित पृथु उठे सबनि चरननि सिर नाये।।
सिंहासन बैठाइ विविध विधि पूजा कीन्हीं। राजकोष, सम्पत्ति, देह अरपन करि दीन्हीं।।
हाथ जोरि गद्गद् गिरा, कहत वचन विह्वल भये। करे कृतारथ कृपानिधि। सुर दुरलभ दरसन दये।।

राजा ने झट-पट आगे बढ़कर उनकी सादर अगवानी की। सारा सभा-मण्डप उनके तेज से भर गया। महाराज के साथ सभा के सभी सदस्य मुनियों के सम्मान में खड़े हो गये। राजा ने उनका पाँव पखारा। विधिवत् उनकी पूजा की। जब पृथु ने उनका मान-सम्मान कर लिया तब उन्होंने बड़ी श्रद्धा और संयम के साथ प्रेमपूर्वक उनसे कहा- मंगलमूर्ति मुनीश्वरों, आपके दर्शन तो बड़े-बड़े योगियों को भी दुर्लभ हैं। मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य-कर्म किया है जिससे आज आप महानुभावों के दर्शन हुए।

आत्माराम, आप्तकाम, भगवत् स्वरूप ऋषियों का दर्शन मुझे प्राप्त हुआ। ब्राह्मण की कृपा के बिना संसार का कोई भी पदार्थ सुलभ नहीं है। जिस घर में ब्राह्मण के चरण नहीं पड़ते, वेद की ध्वनि गुंजित नहीं होती, स्वाहा शब्द की गर्जना नहीं होती जब तक ब्राह्मण तृप्त नहीं होता वह घर श्मशान के समान होता है। महात्मन्, आपकी कुशलता पूछना तो परिहास मात्र होगा क्योंकि आप तो निर्बन्ध, सर्वदा प्रभुमय हैं।

आदरणीय महानुभावों, जिस प्राणी के ऊपर ब्राह्मण अथवा अनुचरों के सहित श्रीशंकर अथवा विष्णु भगवान प्रसन्न हो जाँय, उसके लिये इहलोक और परलोक में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती।

जिनके घर आप लोग कृपाकर पहुँच जाते हैं, वे गृहस्थ धनहीन होने पर भी धन्य हैं। जिन घरों में कभी भगवान के भक्तों के परमपवित्र चरणके धोवन-जल के छींटें नहीं पड़ते वे सब प्रकार की सम्पत्तियों से भरेपूरे होने पर भी उन सूखे वृक्षों के कोटर के समान हैं जिनमें सर्प रहते हैं।

मुनीश्वरों, आपका स्वागत है। आप लोग तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। सुख-दु:ख से परे हैं अत: हम आप से क्या कुशल

मंगल पूँछें? आप लोग तो आत्माराम हैं। आप में यह कुशल है और यह अकुशल है, इस प्रकार की भावना होती ही नहीं। आप संसारानल में तप रहे प्राणियों के अकारण सुहृद् हैं अत: मैं पूछ रहा हूँ कि संसार में मनुष्य का किस प्रकार सरलता से कल्याण हो सकता है? उसे भगवान की प्राप्ति कैसे हो सकती है? आप नारायण के स्वरूप हैं, आप तो साक्षात् भगवान के स्वरूप हैं। भगवान के भक्तों पर कृपा करने के लिये ही आप लोग इस भूतल पर विचरण किया करते हैं।

अब हे दीनदयाल। मोक्षको मार्ग बताओ। कस होवे कल्यान सरलतातें समझाओ।।
भटके भव मग माहिँ प्रभो। अवलम्बन देवें। भवजल डूबत नाव आप नाविक बनि खेवें।।
तीनों तापनि ते तपित, कबते जगमहँ भ्रमि रहे। दुखित देखि दरशन दये, भई शान्ति तव पद गहे।।

मैत्रेय बोले- विदुरजी, राजा पृथु के सारयुक्त, गंभीर, परिमित और मधुर वचनों को सुनकर सनत्कुमार प्रसन्न हो उठे। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा- महाराज, आप को सबकुछ ज्ञात है। यह प्रश्न आपने अपने लिये नहीं, अपितु सबकी भलाई के लिये, सब के कल्याण के लिये किया है। सच है, साधु पुरूषों की बुद्धि ऐसी ही हुआ करती है।

सत्पुरुषों का समागम श्रोता और वक्ता- दोनों को ही अभिमत होता है, दोनों का ही कल्याण करता है।

भगवान के गुणानुवाद में आप की जो रुचि है, वह बहुत ही दुर्लभ है। जब यह रुचि निष्ठा के रूप में परिणत हो जाती है तब अन्तरात्मा का सारा मल धुल जाता है। सारे शास्त्रों का सार यही है कि आत्मा देह से पृथक् है, असंग है और वही निर्गुण ब्रह्म है। यदि उस में दृढ़ रति हो जाय, आत्मरति हो जाय तो इसी में शास्त्रों की सफलता है।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। जब महाराज पृथु ने कल्याण का मार्ग पूछा तब श्री सनतकुमार कहने लगे- राजन्। विचारयुक्त सभी सुन्दर शास्त्रों में मनुष्यों के कल्याण का बस एक ही कारण बताया है, वह यह कि आत्मा के अतिरिक्त जो ममत्व के पदार्थ हैं, उनमें अनासक्त भाव से रहकर अपने अन्तरात्मा निर्गुण ब्रह्म में सुदृढ़ अनुराग होना।

बोले सनत्कुमार प्रश्न पृथुको सुनि करिकें। करहु होहि निस्संग काज सब हरि हिय धरिकें।।
शास्त्र बचन गुरु दया भक्ति भगवत् भक्तिनिकी। योग, ज्ञान, हरिकथा टेव नित हरि कीर्तनकी।।
ऐसे और अनेक हूँ, हैं उपाय, उत्तम अनघ। कहहिँ तिनहिँजे प्रेमतें, होहि शुद्ध मन कटहिँ अघ।।

शास्त्रों का यह भी कहना है कि गुरु और शास्त्र के वचनों में विश्वास रखने से, भागवत धर्मों का आचरण करने से, तत्त्वजिज्ञासा से, ज्ञान-योग की निष्ठा से, योगेश्वर श्रीहरि की उपासना से, भगवान की कथाओं के नित्य श्रवण से व्यक्ति को इस नश्वर संसार से वैराग्य हो जाता है और परब्रह्म में अनायास उसकी प्रीति भी हो जाती है। भगवान की कथा के श्रवण से बढ़कर दूसरा श्रेष्ठ उपाय कल्याण का नहीं है। संसार में सब वस्तुओं से सन्तोष भले ही हो जाय, किन्तु भगवान की कथा अमृत है। अमृत-पान से कभी तृप्ति नहीं होनी चाहिये। किसी को दु:ख न दें। भगवान को याद रखना, निष्काम भाव से यम-नियम का पालन करना, किसी की निन्दा न करना- यह स्वभाव में लाना चाहिये इससे भगवान प्रसन्न होते हैं।

भगवत् प्राप्ति का सबसे सुगम मार्ग भाव-भक्ति है। भक्ति से ही भगवान सुगमता से बन्धन में आ जाते हैं। अन्य साधन कठिन है और उसमें भी निश्चितता नहीं है भगवत् साक्षात्कार हो जाय। अत: भगवान की आज्ञा न मान अन्य साधनों में उलझना व्यर्थ है। सरलतम साधन को छोड़कर कष्ट साध्य एवं दुरूह साधनों में चित्त लगाना बुद्धिमत्ता नहीं है। भाव की चरम सीमा और पराकाष्ठा का नाम भक्ति है। जब अनन्य रूप से प्रभु के समर्पण हो जाय उस स्थिति को भक्ति कहते हैं। जब भाव अपनी परिणति पर पहुँच जाय, जब घोर अनन्यता की स्थिति बन जाय तब भक्ति का उदय होता है।

जप तप, तीरथ, दान, व्रत, जोग, यज्ञ आचार। भगवत् भक्ति अनन्य बिन जीव भ्रमत संसार।।

जो संसार-सागर से पार पाना चाहते हैं, अज्ञानान्धकार को दूर करना चाहते हैं; ऐसे लोगों को सांसारिक विषयों में आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिये। विषयों में आसक्ति ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा है।

व्यक्ति को मोक्ष के लिये सर्वदा प्रयास करना चाहिये, क्योंकि धर्म, अर्थ और काम में तो सर्वदा काल का भय बना रहता है। जो सारे संसार में व्याप्त है, वही परमात्मा (मैं हूँ)- ऐसा आप को विचार करना चाहिये। संत-महात्मा जिनके चरण-कमलों के अंगुलिदलकी छिटकती हुई छटा का निरन्तर स्मरण कर अपने हृदय की गाँठ अहंकार को काटते रहते हैं, उन्हीं सर्वाश्रय वासुदेव का आप भजन करो। जो लोग मन और इन्द्रियरूप ग्राहों से भरे हुए इस संसार-सागर को योग आदि अतिकठिन साधनों से पार करनाचाहते हैं, उनका उस पार पहुँचना कठिन ही है क्योंकि उन्हें कर्णधाररूप श्रीहरि का आश्रय नहीं प्राप्त रहता। अत: आप तो भगवान के भजनीय चरण-कमलों को नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर संसार-समुद्र को पार कर लो। भगवद्धर्मचर्या, जिससे भगवान प्रसन्न हों, ऐसा धर्म करना चाहिए। जिज्ञासा करनी चाहिए, अध्यात्म करना चाहिए, योगेश्वरकी उपासना करनी चाहिए। हृदयको पवित्र करनेवाली भगवान्‌की कथा सुननी चाहिए।

जो कुछ दु:ख-सुख आये, उसको सह लेना। भगवानकी कथा सुननेसे भक्ति आती है, उससे संसारमें अनासक्त हो जाना और परब्रह्म परमात्मा में अपनी प्रीति लगाना। यह बात उन्हीं लोगोंमें आती हैं जिन्होंने किसी सद्‌गुरुका आश्रय ग्रहण किया हो। आत्मा और परमात्मा तो भीतर ही बैठा है। उसकी उपेक्षा करके हम दूसरेसे प्रेम करने जाते हैं, अपने घरमें भरे हुए अमृतको छोड़कर, दूसरोंके घरमें शराब पीने जाते हैं। जैसे कोई अपने घरकी सती-साध्वी पत्नीको छोड़कर परायी स्त्रीके लिए पराये घरमें जाये, वैसे ही हम अपने घरमें बैठे हुए ईश्वरको छोड़कर इधर-उधर भटकते हैं।

जिसके उद्देश्यसे अन्य सब पदार्थोंमें प्रियताका बोध होता है उस आत्माका अपनेद्वारा ही नाश होनेसे जो स्वार्थहानि होती है, उससे बढ़कर लोकमें जीवकी और कोई हानि नहीं है। धन और इन्द्रियोंके विषयोंका चिंतन करना मनुष्यके सभी पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है; क्योंकि इनकी चिन्तासे वह ज्ञान और विज्ञानसे भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियोंमें जन्म पाता है। जिसे अज्ञानान्धकारसे पार होनेकी इच्छा हो, उस पुरुषको विषयोंमें आसक्ति की नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यम धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिमें बडी बाधक है। इन चार पुरुषार्थोंमें भी सबसे श्रेष्ठ मोक्ष ही माना जाता है; क्योंकि अन्य तीन पुरुषार्थोंमें सर्वदा कालका भय लगा रहता है।

सनत्कुमार बोले- राजन्, तुम तो भगवान के आराधनीय चरणकमलों को नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर समुद्र को पार कर लो उस सर्वाश्रम वासुदेव का भजन करो इसप्रकार सनकादिक मुनियोंने पृथुको उपदेश दिया। पृथु बोले- मुनि, आपने आज मुझे सब कुछ दे दिया। मैं धन्य हो गया। मेरे पास अब जो कुछ भी है वह सब कुछ महात्माओं का, सन्तोंका, उच्छिष्ट प्रसाद ही है। मेरा शरीर भी मां के गर्भ से नहीं हुआ यह भी महात्माओं ने अपने प्रताप से पैदा किया है।

जब ब्रह्म में अत्यन्त प्रीति हो जाती है तब हृदय में ज्ञान की अग्नि बढ़ती है और विज्ञानी होने से पुरुष आचारवान, वासना रहित हो स्थूल देह को भस्म कर देता है। विचारशक्ति के नाश से स्मृति नष्ट होती है। स्मृति के नाश से ज्ञान नाश होता है, ज्ञान के नाश को ही आत्मा का नाश कहा है। इससे बढ़कर मनुष्य के किसी स्वार्थ का नाश नहीं। धन और इन्द्रियों का ध्यान करना, विषय वासना का विचार रखना यही पुरुष के पुरुषार्थों का नाश करनेवाला है। जो मनुष्य इस अंधकार रूप से पार होने की इच्छा करे, वह पुरुष कभी किसी का संग नहीं करे। हे राजन्, स्थावर जंगम जगत को प्रकाशित करनेवाले

महात्मा जिनके चरणारविन्द की भक्ति से अहंकार को तोड़ देते हैं उसी प्रकार इन्द्रियोंको रोकनेवाले और मन से विषय वासना को त्यागनेवाले योगी भी उस ग्रन्थि को तोड़ नहीं सकते।

दो पदार्थ हैं- आत्म और अनात्म। आत्मा सर्वव्यापक, सर्वसाक्षी, मायिक गुणों से रहित सत् चित और आनन्द स्वरूप है। वह सबके हृदय में जीव रूप से वास करता है। इसी प्रकार सब अपने को अहं मैं कहते हैं किन्तु जीवात्मा इस यथार्थ अहं से प्रेम न करके यह मेरा देह, वह मेरा गेह, यह मेरा कुटुम्ब है, यह मेरा परिवार है। यह मेरा धन है, ये मेरे स्वजन हैं इन क्षणभंगुर नाशवान अनित्य पदार्थों में ममत्व किये बैठा है। इन्हें ही अपना मानकर नाना क्लेश सह रहा है। जीव अपने कर्मानुसार शरीर धारण करता है। कर्म समाप्त होते ही इस स्थूल शरीर को त्याग कर दूसरा शरीर धारण कर लेता है। इसमें रोने-धोनेवाली बात कौन-सी है। सो राजन्। इन देह, गेह, धन, सम्पत्ति, स्वजन, परिजन, पुरजन आदि अनात्म पदार्थों को आत्मा से भिन्न समझकर सबमें अनासक्त भाव से बर्ताव करना, तथा मेरे अन्तरात्मा निर्गुण में सुदृढ़ अनुराग करना। इसी को मैंने कल्याण का मार्ग समझा है इसी से जीव समस्त क्लेशों से रहित होकर अपने यथार्थ स्वरूप की उपलब्धि कर सकता है। स्वयं आनन्द स्वरूप हो सकता है।

शास्त्र ही जीवों के कल्याण का निश्चय करते हैं। उनमें इतना ही निश्चय किया गया है कि कल्याणकामी पुरुष को आत्मा से देह के प्रति वैराग्य तथा दिव्यगुण सम्पन्न परमात्मा में अनुराग होना चाहिए। यह आचार्य एवं शास्त्र के वचनों में विश्वास रखने से, भागवत धर्म का पालन करने से, तत्त्व की जिज्ञासा करने से, ज्ञानयाग में निष्ठा रखने से, योगेश्वर श्रीहरि की उपासना करने से, तथा प्रतिदिन पुण्य कीर्ति श्री भगवान की कथा सुनने से होता है। भोगासक्त मनुष्यों की गोष्ठी से दूर रहने से, प्रिय लगने वाले पदार्थों का परित्याग करने से, अपने आत्मा का चिन्तन करते रहने से, अहिंसा का पालन करने से, अपने आत्मा का चिन्तन करते रहने से, अहिंसा का पालन करने से, परमहंस वृत्ति को अपनाने से, आत्मकल्याण का चिन्तन करने से, परमात्मचरितामृत का पान करने से, सुख-दु:खों का सहिष्णु होने से, भगवान के नामों का संकीर्तन करने से, सदाचार्य की शरणागति से, भगवान के रक्षकत्व में सुदृढ़ विश्वास रखने से तथा परमात्मा में अनुराग रखने से होता है। जीव के अन्त:करण के निर्मल हो जाने से परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है। गुरुजन जिसे जिस मार्ग का अधिकारी समझकर उपदेश करें, उसका उसी मार्ग से चलने में कल्याण है।

शास्त्रों में विश्वास रखकर गुरु सुश्रूषा करते हुए किसी भी साधन का आश्रय ले लें। जैसे शास्त्रों में जो भागवतों के धर्म बताये हैं, उनका विधिवत् पालन करने से, अध्यात्मतत्व क्या है, इसकी उपलब्धि कैसे हो सकती है, ऐसी जिज्ञासा से, भगवान की उपासना में चित्त दृढ़ न होता हो तो भागवतों योगेश्वरों की उपासना ध्यान करने से, नित्य प्रति नियमपूर्वक श्रद्धा और संयम के सहित श्रीहरि की परम पावन कथा सुनने से भगवद् धर्मों में अनुराग होता है। कानों के द्वारा हृदय में पहुँचने पर भगवद् गुणानुवाद मन के सभी मलों को धो देते हैं। जो लोग संसारी भोग पदार्थों को ही सर्वस्व समझते हैं, ऐसे विषयी लोगों का कभी भी संग न करने से। जो पदार्थ विषयी लोगों को सुखकर प्रतीत होते हैं, उनका अधिक संग्रह करने से। निरन्तर कथा कीर्तन में ही लगे रहने से, श्रीकृष्ण की लीलाओं का निरन्तर श्रवण चिन्तन करते रहने से, निष्काम भाव से यम नियमों का पालन करने से, कभी भी किसी की निन्दा न करने से, तितिक्षा का पालन करने से, किसी सांसारिक पदार्थों की चेष्टा न करने से। ये ही सब भगवत् प्राप्ति में अनेकों उपाय हैं। यथार्थ निरन्तर आत्मा में ही रमण करने से बारम्बार भगवद्गुणानुवादों के श्रवण करने से ही यह संसार तिरोहित हो जाता है, फिर प्राणी की आत्मा में स्थिति हो जाती है।

जब तक हमारे हृदय में विषयों का मोह भरा है, तब तक भगवद् कथा कीर्तन प्रिय नहीं लगते चित्त इनसे भागता है। यदि

निरन्तर नियम से उन्हीं में चित्त को लगाये रहें तो धीरे-धीरे जैसे विषयियों को विषयों से आनन्द आता है उसी प्रकार मुमुक्षियों को मोक्ष धर्म में आनन्द आने लगेगा। विचार शक्ति नष्ट हो जाने से पूर्वा पर की स्मृति नष्ट हो जाती है और स्मृति भ्रंश हो जाना ही विनाश है। अपने स्वरूप का ज्ञान न रहना इसी को विद्वानों ने आत्मा विनाश बताया है।

मन में पहले पहल विषयों की चिन्तना होती है। चिन्तन करते-करते उन विषयों में आसक्ति होने लगती है। जिसमें हमारी आसक्ति हो जाती है, उसे प्राप्त करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है। उचित उपायों से प्राप्त नहीं कर पाते तो लालशावश अनुचित कार्य करते हैं। अनुचित कार्य करते-करते बुद्धि की जो सद्असद् विवेचनावाली शक्ति है वह तिरोहित हो जाती है। जब स्मृति नष्ट हुई तो स्वरूप ज्ञान का नष्ट हो जाना स्वाभाविक ही है। राजन्। भगवान के माया की कैसी प्रबलता है। धन, पुत्र परिवार स्वरूप तो प्रिय नहीं। आत्मा के संसर्ग से ही उनमें प्रियता है। बहुतों का धन नित्य नष्ट होता है, हमें दु:ख नहीं होता। बहुतों के पुत्र संसार में मरते हैं। जिनसे अपनेपन का सम्बन्ध नहीं हमें कुछ भी उनकी मृत्यु पर कष्ट नहीं होता किन्तु जिनमें अपनापन है। मेरा धन, मेरा पुत्र, मेरा घर, जिनमें मेरा पन है उनकी प्राप्ति में सुख और विनाश में दु:ख होता है। इससे प्रतीत होता है कि प्रियता अप्रियता वस्तुओं में नहीं किन्तु आत्मा के सम्बन्ध से है। उसी आत्मा को इन विषयों में फँसकर भूल जाते हैं। लोभ में पड़कर अपनी हानि कर लेते हैं अपने यथार्थ स्वार्थ को छोड़ देते हैं।

राजन्, यह मनुष्य देह मुक्ति का द्वार है। जो विषय भोगों में फँसकर मोक्ष के लिये प्रयत्न नहीं करता, परमार्थ साधन नहीं करता, वह अत्यन्त मूर्ख है। विषयों के प्रलोभन में वह ठगा गया। इन संसारी तुच्छ पदार्थों का, धन का, विषय भोगों का ही चिन्तन करते रहना, मनुष्य का सबसे बड़ा पतन है, वह उसके समस्त पुरुषार्थों को नष्ट कर देता है। क्योंकि रुपये पैसे और विषय के ये भाग सब जड़ हैं, इन जड़ पदार्थों का निरन्तर चिंतन करने से जीव जड़ता को ही प्राप्त होता है। वृक्ष पाषण आदि की योनि में जन्म लेताहै। मोक्ष की प्राप्ति धर्मपूर्वक अर्थ और काम के सेवन से होती है। जो धर्म से हीन होकर निरन्तर विषयों में ही फँसे रहते हैं। वे सदा घोर अज्ञानरूप अन्धकार में फँसे रहते हैं। धर्म, अर्थ, काम ये तो साधन है, धर्मादिक साध्य नहीं। साध्य तो मोक्ष ही है। क्योंकि मोक्ष के अतिरिक्त धर्म, अर्थ और काम ये भी क्षष्यिणु हैं,ये भी कृतांत्त के भय से संयुक्त हैं। सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का ही नाम प्रकृति है। इस प्रकृति में जब विषमता उत्पन्न होती है, क्षोभ होता है तब महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है उससे अहंतत्त्व फिन मन भूत, तन्मात्रायें आदि उत्पन्न होती हैं। इन सबको प्रकृति की विकृति विकार कहते हैं। गुण क्षोभ के अनन्तर जो भी उत्पन्न हुए हैं वे सब क्षयिष्णु, नाशवान और अनित्य हैं, क्योंकि ये सब काल के अधीन हैं। काल भगवान इनकी इच्छाओं को कुचलते रहते हैं। सर्वात्मभाव से भगवान का ही आश्रय रखना उन्हें ही जीवन सर्वस्व समझना यही स्वरूप ज्ञान का और मिथ्या प्रपंच की निवृति का उपाय है।

वासुदेव भगवान भक्तितें होवे वश जस। योग याग विज्ञान आदितें वश न होहिँ तस।।
तातें तजि सब अन्य एक श्रीहरि आराधें। छाड़ि क्लेश कर काज सुगम सो साधन साधें।।
शेष न साधन तुमहिँ कछु, सब तुम परहित करत हो। हास धर्म को होहि जब, तब तब तुम तनु धरत हो।।

मैत्रेय जी कहते हैं- विदुरजी, ब्रह्मज्ञानी सनत्कुमार जी के इस प्रकार के उपदेश को सुनकर महाराज पृथु को प्रबल प्रसन्नता हुई। उन्हें आत्मा और परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान हुआ। उनकी प्रशंसा करते हुए महाराज पृथु ने कहा- भगवन्, दीनदयालु भगवान् ने मुझ पर कृपा कर दर्शन दिया था किन्तु उस दर्शन का फल हमें आज आप लोगों के दर्शन के रूप में मिला। वस्तुत: भगवान के दर्शन की पूर्णता आज हुई। भगवान के दर्शन का फल यह हुआ कि सनत्कुमार जैसे सन्त मिले।

भगवान प्रसन्न होते हैं तो संसार, संसार के भोग-पदार्थ प्रदान करते हैं। यह दूसरी बात है कि वे मोक्ष भी देते हैं किन्तु

भगवान का भक्त यदि प्रसन्न हो जाय तो वह सीधे भगवान को ही लाकर गोद में बैठा देता है।

प्रभो आप लोग बड़े दयालु हैं जिस उद्देश्य से आप आये थे उसे भली-भाँति सम्पन्न कर दिया। स्वामिन्, अब मैं इसका बदला आप लोगों को क्या देकर चुकाऊँ। ब्रह्मन्, मेरे पास जो कुछ है और मेरा यह शरीर यह सब कुछ आप जैसे महापुरुषों का प्रसाद है। पूज्य दयालों, प्राण, स्त्री, पुत्र, सम्पत्तियों से भरा हुआ भवन, राज्य, सेना, पृथिवी और कोश- यह सब कुछ आप लोगों का ही है, अत: आपके ही श्रीचरणों में अर्पित है।

वस्तुत: सेनापतित्व, राज्य, दण्डविधान और संपूर्ण लोकों के शासन का अधिकार वेद-शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मणों को ही है। ब्राह्मण अपना ही खाता है, अपना ही पहनता है और अपनी ही वस्तु दान देता है। दूसरे-क्षत्रिय आदि तो उसी की कृपा से अन्न खाने को पाते हैं।

सनतकुमार के उपदेश को श्रवण करके महाराज पृथु का रोम-रोम खिल उठा। वे कुमारों की इस अहैतुकी कृपा भार से दब गये। वे उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहने लगे- ब्रह्मन, किन शब्दों में क्या कहकर मैं आपके इस उपकार के प्रति आभार प्रदर्शन करूँ वाणी में वह शक्ति नहीं कि शब्दों द्वारा हृदय के यथार्थ भावों को व्यक्त कर सकें। हृदय की भाषा तो मूक बताई गई है और उसे सहृदय ही पढ़ सकते हैं। मेरे ऐसे कोई पुण्य तो थे नहीं, जो आपके देव दुर्लभ दर्शनों को प्राप्त कर सकता, किन्तु कृपासागर भगवान यज्ञपति ने अपनी अहैतुकी कृपा वश मुझे दर्शन दिये थे उसी कृपा का मैं यह फल समझता हूँ, कि उसमें कुछ कोर-कसर रह गयी होगी तो उसे ही पूर्ण करने आप नि:सं होकर भी स्वत: मेरे यहाँ पधारे और मुझे अपने अनुपम दर्शनों से कृतकृत्य किया।

भगवन्, आप लोग वेद के पारंगत विद्वान हैं। आपने अध्यात्म-तत्त्व का प्रतिपादन करते हुए मेरा जो उपकार किया है, इसका प्रतिकार मैं क्या देकर, कैसे चुका सकता हूँ? अमूल्य वस्तु का मूल्यांकन करना उपहास की ही बात होगी। आप लोग परम कृपालु हैं अत: अपने इस दीनोद्धाररूप कार्य से ही सन्तुष्ट रहें। आप के इस उपकार का बदला कोई क्या दे सकता है? भगवन, मेरे प्राण, मेरी पत्नी, मेरा पुत्र, मेरा घर, राज्य बल, यह धरा, खजाना सब कुछ आपके चरणों में निवेदित हैं, सब आपकी कृपा है। आपकी करुणा अनन्त है। आपको सब कुछ समर्पित करने पर भी मैं आपसे उऋण होने की कल्पना नहीं कर सकता। वास्तव में सेनापतित्व राज्य दण्डविधान एवं शासन का अधिकार वेद शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मणों को ही है। प्रभो, आपके इस उपकार का बदला कोई क्या दे सकता। मेरे पास जो कुछ है सब कुछ ब्राह्मणों का ही उच्छिष्ट है। आपकी चरणरज सदैव मुझे प्राप्त होती रहे। आपके उपदेश से ही जीव का कल्याण है। आपकी चरणरज मनवांछित वस्त्र प्रदान करने में कामधेनु के समान है एवं भवसागर पार करने के लिए सेतु के समान हैं। यह सदैव मुझे प्राप्त होती रहे यही मेरी कामना है। आप सब जानते हैं। जिन्हें परात्पर ब्रह्म का ज्ञान है, उनके लिए इस लोक की परलोक की कोई वस्तु अज्ञेय नहीं है। वे सब कर सकते हैं सब विद्यायें वेद से ही उत्पन्न हुई हैं, अत: वेद को जान लेनेवाला ब्राह्मण कुशलतापूर्वक सेनापतित्व कर सकता है सम्पूर्ण वसुन्धरा का राज्य करसकता है। उत्तम से उत्तम उपयोगी से उपयोगी दण्ड विधान बना सकता है। आप इस पृथ्वी की तो बात ही क्या है, ब्रह्माण्ड भर का शासन कर सकते हैं और करते ही हैं।

नृप पुथु सनतकुमार मुखामृत पान कर्‌यो जब। सब तनु पुलकित भयो कहें ह्वैकें प्रसन्न तब॥
प्रभो। सुधारस प्याइ कर्‌यो कृत कृत्य कृपानिधि। पूजा प्रत्युपकार करहुँ हे मुनिवर किहि विधि॥
तन मन धन सब आपको, का तुमकूँ अरपन करूँ। तातैं श्रद्धा सहित तव, चरन कमलमहँ सिर धरूँ॥

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी, सनकादिकों के उपदेश को सुनकर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए महाराज पृथु कहने

लगे- भगवन्। आप वेद के पारगामी हैं। आपने आत्मतत्व का विचार करते हुए जो इस प्रकार भगवत्तत्त्व का निरूपण किया है, उसका बदला कोई क्या चुका सकता है। अत: आप अपने अनुरूप दीन दयालुता रूपी कर्म से ही सदा सन्तुष्ट हों। क्योंकि आप परम कृपालु हैं, अत: आपके प्रत्युपकार के लिये प्रयत्न करना भी हास्यास्पद है।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुरजी, सनकादि आत्मज्ञानियों के शिरोमणि हैं। राजा ने उनकी पुन: पूजा-अर्चना की। इस प्रकार राजा की सज्जनता और उनकी श्रद्धा-भक्ति देखकर चारों कुमार उनके शील-स्वभाव की प्रशंसा करते हुए आकाशमार्ग से चले गये।

इसके बाद महाराज पृथु आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त कर समय, स्थान, शक्ति, न्याय और धन के अनुसार सारे कार्यों को भगवदर्पण-बुद्धि से करते थे। गृहस्थाश्रम में रहते हुए, राज्य का संचालन करते हुए भी वे जल में कमल के पत्र की भाँति, सर्वदा निर्लिप्त भाव से रहते थे। यथार्थ में राजा नाम तो महाराज पृथु का ही सार्थक हुआ। जो प्रजा रंजन करें वही राजा है जैसे जो जगत को आह्लादित करें वही चन्द्रमा हैं।

वे अहन्ता और ममता से बिलकुल मुक्त थे। घर में अतिथि के समान उनका निवास था। उन्होंने अपनी अर्चि नामक पत्नी से पाँच पुत्र विजिताश्व, धुम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण और वृक पैदा किये। महाराज पृथु अत्यन्त तेजस्वी थे। सारे लोकपालों का तेज उन्होंने अकेले ही धारण कर रक्खा था। उनकी कीर्ति संसार में चारों दिशाओं में फैली हुई थी। सभी उनकी कीर्ति का गान करते थे। इससे वे स्त्रियों तक के कानों में वैसे प्रवेश किये हुए थे जैसे सत्पुरुषों के हृदय में श्रीराम।

यह परम्परा रही है कि भारतीय लोग शैशव-काल में विद्या का अभ्यास करते थे। युवावस्था में विषयों का सेवन करते थे, तीसरे पन में सब का परित्याग कर वानप्रस्थ आश्रम में चले जाते थे और अन्त में योग का अवलम्बन कर अपना शरीर योगाग्नि में भस्म कर देते थे।

महाराज पृथु आठों लोकपालोंके गुण धारण करते थे। संसारमें जो श्रेष्ठ-श्रेष्ठ पदार्थ है, उनकी सारी विशेषताएँ पृथुमें आ गयीं। सृष्टिमें पृथुसरीखा प्रतापी राजा अगर कोई हुआ तो केवल श्रीराम ही हुए। श्रीरामको छोड़कर पृथुके समान कीर्तिशाली पुरुष और कोई नहीं हुआ। इसीलिए त्रिलोकीमें लोग उनकी कीर्तिका गान करते थे और वे स्त्रियोंके कानोंमें वैसे ही प्रविष्ट हुए थे जैसे श्रीराम।

पृथु में तेज अग्नि के समान, महेन्द्र के समान दुर्जय, पृथ्वी की तरह क्षमावान, स्वर्ग के समान मनुष्य की कामना पूर्ण करनेवाले, मेघ के समान कामनाओं को वर्षानेवाले, समुद्र के समान अगाध, सुमेरु पर्वत के समान धैर्यधारी, धर्मराज के समान शिक्षा देनेवाले, कुबेर के समान धनवान, वरुण के समान गुप्त पदार्थ रखनेवाले, पवन के समान बल विक्रम, क्षमा में महादेव के समान, रूप में कामदेव के समान, हिम्मत में शेरसिंह, स्नेह में मनुष्य के समान, प्रभुता में ब्रह्म के समान, ज्ञान में बृहस्पति के समान, जितेन्द्रियत्व में विष्णु के तुल्य, गौ, ब्राह्मण, गुरु, तथा भगवद्भक्तों में तथा उपकार करने में पृथु अपने समान आप ही हुए। जैसे समुद्र की थाह कोई नहीं जान सकता उसी प्रकार उनका गांभीर्य भी ऐसा अथाह था कि उसकी थाह किसी को मिलनी अत्यन्त दुष्कर थी। सहनशीलता में वे वसुन्धरा के समान थे और कामना पूर्ति के कार्य में वे कल्प वृक्ष के सदृश थे। वे माता के समान दयालु थे, किन्तु जहाँ दुष्टों के दमन का कार्य आता, वहाँ दुर्दान्त यमराज के समान उग्र बन जाते। जैसे हिमालय की सभी जड़ी-बूटियों के सम्बन्ध में कोई जान नहीं सकता उसी प्रकार उनके पास कितना दिव्य रत्न है, कितनी आश्चर्यकारिणी अद्भुत वस्तुयें हैं इसे कोई जान नहीं सकता था। धन उन पर इतना था कि उनके धर को देखकर धनद भी लजा जाते थे। बल, वीर्य ओज आदि में भगवान भूतनाथ के समान वे थे। कुसुमायुध के समान

सौन्दर्य में, सिंह के समान धैर्य में, मनु के समान वात्सल्य में और पितामह ब्रह्मा के समान वे प्रभुत्व में थे। विचार करने में देव गुरु बृहस्पति के समान आत्म तत्व में साक्षात् भगवान विष्णु के समान थे। वे गो भक्ति ब्रह्मण्यता, भक्ति, लज्जा विनय, शील परोपकार में अपने ही समान थे। दिग्दिगान्त में उनका यश व्याप्त था। सम्पूर्ण भुवन मण्डल में उनकी कमनीय कीर्ति फैली हुई थी वे अवधकुल मण्डल कौशिल्यानन्द वर्धन रघुकुल कीर्ति केतुभूत भगवान श्रीराम के समान सर्वप्रिय और श्लाघनीय गुणवाले थे।

मैत्रेय जी ने कहा- विदुरजी, महाराज पृथु ने जब देखा कि मेरा बुढ़ापा प्रारम्भ हो गया है और मेरा सुयोग्य पुत्र विजिताश्व तरुण हो गया है, तब उन्होंने अपने मन्त्रियों को बुलाया। उनसे मन्त्रणा की और राजगद्दी पर विजिताश्व का अभिषेक कर राजा बना दिया। उन्होंने सोचा- जिस लिये मेरा इस संसार में जन्म हुआ था, उस प्रजा-रक्षणरूप ईश्वराज्ञा का पालन भी पूरा कर चुका हूँ। अब मुझे अन्तिम पुरुषार्थ-मोक्ष के लिये प्रयास करना चाहिये। यह सोचकर वे विरहाकुल प्रजा और पुत्री -सदृश पृथ्वी को त्यागकर अत्यन्त सुकुमारी अपनी पत्नी अर्चि के साथ तपस्यार्थ वन में चले गये। वहाँ उन्होंने बड़ी निष्ठा और दृढ़ता के साथ वान-प्रस्थ आश्रम के नियमों का पालन प्रारम्भ किया। कुछ दिन तो उन्होंने कन्द-मूल-फल खाकर बिताये। कुछ काल सूखे पत्ते चबाकर रहे फिर कुछ पल जल पीकर ही बिताया और इसके बाद वायु पीकर ही निर्वाह करने लगे। पृथु मुनि-वृत्ति से ही रहते थे। वे भूतल पर शयन करते थे। गर्मियों में पञ्चाग्नि का सेवन करते थे। वर्षा ऋतु में खुले मैदान में रहकर जल की धाराओं को सहते थे। शीत-काल आने पर वे जलाशय में खड़े रहकर तप करते थे। इस प्रकार भगवान कृष्ण की आराधना करते हुए उन्होंने घोर तप प्रारम्भ किया- उन्होंने सर्दी-गर्मी आदि सब प्रकार के द्वद्वों को सहा तथा वाणी और मन को संयमित किया।

महाराज पृथु ने उत्पन्न होकर पृथ्वी की, व्यवस्था ठीक की। नगर पुर ग्रामों की कल्पनायें की। शिल्प, वाणिज्य व्यवसाय की व्यवस्था की। कृषि करने की सुविधायें की। नियम आदि बनाये। विवाह किया, पुत्र उत्पन्न किये, राज्य के सब सुख भोगे, नाना यज्ञ याग किये, विविध भाँति के दान धर्म किये। अतुलनीय यश का सम्पादन किया। इस प्रकार धर्म, अर्थ और काम का भली भाँति सम्पादन करके अब वे मोक्ष की तैयारियाँ करने लगे। त्याग धर्म की दीक्षा लेने को तत्पर हुए।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी, आत्मवान प्रजापति महाराज पृथु जब अन्नादि तथा निवासादि सर्ग की वृद्धि कर चुके तब एक दिन अपनी वृद्धावस्था को उन्होंने आती देखकर अपनी कन्या रूपी पुत्री पृथ्वी को सौंप दिया। पिता पृथु के वियोग में पृथ्वी रो सी रही थी। सम्पूर्ण प्रजा बिलख रही थी। उन सबको उसी दशा में छोड़कर अपनी स्त्री के सहित अकेले ही महाराज तपोवन चले गये।

सनत्कुमार जी ने जिस आध्यात्मिक योग का उपदेश महाराज पृथु को दिया था, उसका वे दृढ़ता से श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पालन करते हुए भगवान की आराधना करते थे। इसका फल यह हुआ कि भगवान कृष्ण में उनकी अनन्य दृढ़ भक्ति हो गई।

इस प्रकार भगवान के परिकर्म से, सतत् चिन्तन से पृथु का अन्त:करण पूर्णत: शुद्ध हो गया। उनमें जिस ज्ञान का उदय हुआ वह निष्प्रतिबन्ध एवं वैराग्य से संवलित था। उससे उनका जीवकोश कट गया और उनकी द्वैत बुद्धि भी मिट गई। अन्त में जिस ज्ञान से उन्होंने द्वैत-भ्रम को काटा था, उस ज्ञान को भी छोड़ दिया।

इसके पश्चात् देह में आत्म-बुद्धि की निवृत्ति और परमात्म-स्वरूप श्रीकृष्ण की अनुभूति होने पर पृथु के समक्ष ब्रह्म-विद्या एवं अणिमादि सारी सिद्धियाँ मूर्तिमती हो हाथ जोड़े खड़ी हो गईं किन्तु राजा ने सबको ससम्मान वापस कर दिया। द्वैत-भ्रम को काटनेवाले तत्व-ज्ञान को भी उन्होंने छोड़ दिया, क्योंकि साधक को जब तक कृष्ण के कथारूपी अमृत में

अनुराग नहीं होता तब तक योग-साधना से उसका मोहजनित प्रमाद दूर नहीं होता। महाराज पृथु बड़े पुरुषार्थी है। उत्साही पुरुष जिस काम में लगता है उसी को बड़ी तत्परता से करता है।

यदि भाग्यवश दिव्य किशोर वेशधारी भगवान कृष्ण में दृढ़ भक्ति हो जाय तो मुक्ति स्वयं हाथ जोड़कर सेवा में खड़ी हो जाती है और धर्म, अर्थ तथा काम अपनी पारी की प्रतीक्षा में पंक्ति लगाकर खड़े रहते हैं।

अन्त में अन्तकाल आने पर तो वीरवर पृथु ने अपने चित्त को दृढ़तापूर्वक परमात्मा में स्थिर कर अपना शरीर त्याग दिया।

महारानी अर्चि उनके साथ थीं। वे अतिशय सुकुमारी थीं फिर भी पति की सेवा करती हुई उन्होंने भी उन्हींकी तरह कठोर तप किया। राजा पृथु के शरीर के चेतना आदि धर्म को शून्य देखकर रानी ने चिता बनायी। नदी में स्नान करके पति को जलांजलि देकर सती हो गई और पति लोक को प्राप्त हो गई। पृथ्वी पर बड़ी कठिनाई से मानव-शरीर मिलता है। यह मानव शरीर ही मुक्ति का साधन है, इसे पाकर जो सांसारिक विषय-भोगों में लीन होता है वह आत्मद्रोही है, आत्महत्यारा है।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुर, महारानी अर्चिदेवी ने पृथ्वीपति अपने प्रियतम प्राणनाथ के देह को चेतना के सम्पूर्ण धर्मों से रहित अर्थात् मृतक देखा तो पहिले तो उस सती ने कुछ विलाप किया। फिर पर्वत के ऊपर चिता चुनकर उसमें उस प्राण शून्य शरीर को रख दिया।

अर्चि गई पति निकट देह निष्प्राण निहारी। विलखी पति शव निरखि दुखारी भई विचारी।।
ईंधन चुनि चुनि चिता सतीने स्वयम् बनाई। विधिवत् कीन्हें कृत्य देह पति संग जराई।।
पृथु पत्नी सँग परमपद, विष्णु भक्ति ई ते लह्यो। यों समासतें पृथु चरित, विदुर। यथामति हों कह्यो।।

जिंदगी से हजारों झमेला जुड़ा, हंस जब भी उड़ा वो अकेला उड़ा।
वो अकेला उड़ा। हंस जब भी उड़ा अकेला उड़ा।
यह जीव अकेला आता है, अकेला जाता है, कोई किसीके साथ नहीं है।
न कोई पत्नी है, न पुत्र है, न कोई और सम्बन्धी है।

महाराज पृथु के चरित का बड़ा माहात्म्य है जो इसे सुनता अथवा सुनाता है, उसकी सारी अभिलाषायें पूरी हो जाती हैं। ब्राह्मण ब्रह्मतेज से सम्पन्न हो जाता है। क्षत्रिय अखण्ड भू-मण्डल का स्वामी बन जाता है, वैश्य व्यापारी, शिरोमणि बन जाता है और शूद्र साधु बन जाता है। इस चरित को श्रद्धापूर्वक तीन बार सुननेवाला पुरुष हो अथवा स्त्री, सन्तान, धन, कीर्ति और पाण्डित्य-सब कुछ प्राप्त कर लेता है। विदुर, इस आख्यान में श्रद्धा रखनेवाला व्यक्ति पृथु की ही भाँति भगवान का दृढ़ भक्त बनकर वैकुण्ठलोक का अधिकारी बनता है।

४) प्रचेताओं को उपदेश

मैत्रेयजी वर्णन कियौ, पृथु का वंश महान। शिव शंकर उपदेश किय, सभी प्रचेतन आन।।

श्रीमैत्रेयजी बोले- हे विदुरजी। धर्मात्मा पृथु के पाँच पुत्र थे। विजिताश्व, हर्यक्ष, धूम्रकेश, वृक, द्रविण। महाराज पृथु ने विजिताश्व को राजा बनाया। विजिताश्व अपने चारों छोटे भाइयों को चारों दिशाओं का राज्य देकर यज्ञ कर्म में प्रवृत हो गए। जब विजिताश्व राजा बने उन्होंने अपने राज्य में बराबर का अधिकार दिया। भाइयोंने उनका सादर सत्कार किया। जो भाई अपने भाइयों को अधिकार नहीं देता है उसका सुखी जीवन भी दु:खमय व्यतीत होता है। भाइयों के भाग को

हड़पना बड़ा पाप माना गया है।

उनकी पत्नी का नाम शिखण्डिनी था। उनके तीन पुत्र उत्पन्न हुए। पावक, पवमान तथा सुचि वे तीनों अग्नियाँ थीं जो वशिष्ठजी के श्राप से उत्पन्न हुए थे। अग्नि ही तीन रूपों से मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए और उन्हीं की कृपा से पुन: देवत्व को प्राप्त हुए। एक समय वसिष्ठजी की पत्नी अरून्धती के सौन्दर्य पर रीझकर अग्निदेव उनपर आसक्त हो गये। अग्नि-पत्नी स्वाहा ने यह जानकर अरुन्धती का रूप बनाया और अपने पतिदेव का मनोरथ पूर्ण किया किन्तु वह पूर्णरूपसे अरुन्धती का रूप धारण न कर सकी, अत: अग्निदेव उन्हीं पर मोहित रहे। वसिष्ठजी ने योगबल से अग्निदेव की यह कुचेष्टा जानकर उन्हें बुलाकर कहा- तुम मेरी पत्नी का पातिव्रत्य भंग करना चाहते हो, अत: तुम मनुष्य योनि में चले जाओ। इसी शाप के कारण अग्निदेव तीन पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए। अग्नि को अपने तेज का बड़ा गर्व था। उसके नाशार्थ भगवान शिव ने यह लीला की थी। उसीसे मोहित होकर अग्निदेव ऐसे निन्दित कर्म में प्रवृत्त हुए थे। स्वत: वे निर्दोष हैं।

एक अग्नि वह है जिसमें ब्राह्मण हवन करते हैं यज्ञ की अग्नि है। दूसरी घरका चूल्हा जलाने की अग्नि, तीसरी जो काष्ठ में व्याप्त रहती है। वशिष्ठ जी के शाप के कारण इन तीनों अग्नियोंने विश्वजित के यहाँ शिखण्डिनी नामक पत्निसे जन्म लिया।

महाराज विजिताश्व ने इन्द्र से अन्तर्ध्यान होने की विद्या प्राप्त की थी इसलिये उन्हें अन्तर्ध्यान भी कहते थे। विजिताश्व के नभस्वती नाम की दूसरी भार्या से हविर्धान नामक पुत्र हुआ। हर्विधान की पत्नी हर्विधानी के गर्भ से ६ पुत्र उत्पन्न किये। बर्हिषद, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत। उनमें से बर्हिषद् ही आगे चलकर प्राचिनबर्हि नाम से प्रख्यात हुए। विजिताश्व ने राजपाट छोड़ कर भगवान की आराधना के द्वारा दिव्यलोक प्राप्त किया।

महाराज हविर्धान के पुत्र वर्हिषद बड़े धर्मज्ञ, याज्ञक, कर्मकाण्डी और योगाभ्यासी थे। उन्होंने इतने यज्ञ किये कि पूर्व दिशाओं में पृथ्वी को कुशों से पाट दिया। उनका नाम प्राचीनवर्हि विख्यात हुआ। महाराज प्राचीनवर्हि ने समुद्र की कन्या शतद्रुति से पाणिग्रहण किया। वह शतद्रुति ऐसी सुन्दरी थी कि उसके सौन्दर्य को देखकर अग्नि प्रदक्षिणा के समय अग्निदेव मोहित हो गये थे। उस नवोढ़ा के नूपरों की झनकार से देवता, असुर, गन्धर्व मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य सभी मोहित हो गये। उस सुन्दरी के गर्भ से राजा प्राचीनवर्हि के द्वारा दस पुत्र उत्पन्न हुये जिनका नाम प्रचेता रक्खा गया। सबका समवेत नाम था- प्रचेता। वे सब एक ही से रूप, गुण और विद्या में थे। एक को बुलाओ तो दसों बोलते थे उनमें से एक जो काम करे वही दसों करते थे, एक के बीमार होने से दसों बीमार हो जावें। प्रत्यक्ष में वह दसों अलग-अलग शरीर से थे, पर बुद्धि, प्रारब्ध, कर्म, मृत्यु और जीवन सबका एक साथ था।

पिता कह्यो हे पुत्र। तपस्या हित सब जाओ। तप करि संचय शक्ति करो फिरि प्रजा पढ़ाओ।।
आयुस पितु सिर धारि चले सब मिलि जुलि भाई। मारगमहँ मनहरन परयो संगीत सुनाई।।
सुनि विस्मित सब ई भये, इत उत सब निरखन लगे। शिव सम्मुख गए सहित लखि, त्रिविध सबनिके भय भगे।।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। पिता के वाक्य से तपस्या में चित्त लगाकर साधु स्वभाव वाले दसों प्रचेता पश्चिम दिशा की ओर गये। मार्ग में तपाये हुए सुवर्ण राशि के समान नीलकण्ठ त्रिलोचन भगवान शम्भु को अपने ऊपर अनुग्रह करने को उद्यत देखकर प्रचेताओं को बड़ा कुतूहल हुआ और शिवजी को श्रद्धा सहित प्रणाम किया।

शुभ कार्य के लिये जो कमर कस के निकल पड़ते हैं, उनका सर्वत्र कल्याण ही कल्याण है। मनुष्य अपनी कमजोरी के कारण ही भयभीत होता है। जहाँ वह भगवान के सहारे मंगलानुष्ठान के निमित्त चल पड़ता है वहाँ कल्याण के निधान श्रीशिव उनके मार्ग को मंगलमय बना देते हैं। श्री शिवजी तो जगतगुरु ही ठहरे। जो तपस्या के संकल्प से चलता है उसे

वे मन्त्र दीक्षा देकर कल्याण का मार्ग दिखाते हैं।

उन्होंने समुद्र में प्रवेश करके दस सहस्र वर्ष तक तपस्या करके भगवान श्रीहरि को प्रसन्न किया मार्ग में उन्हें भगवान शंकर के दर्शन हुए थे। उन्होंने उन्हें भगवान की प्राप्ति की विधि तथा एक स्तोत्र बताया था। जिसके द्वारा उन्हें भगवान प्राप्त हुए थे।

श्री मैत्रेयजी बोले- हे विदुरजी। जब प्रचेता लोग तपस्या के लिये जा रहे थे, तब मार्ग में एक सरोवर से निकलते हुए भगवान शंकर के दर्शन हुये। ये प्रचेता जब समुद्र तट पर पहुँचे, वहाँ उन्होंने जल से भरा हुआ सरोवर देखा। वह सरोवर नील, रक्त कमल, उत्पल, अम्भोज, अल्हार, इन्दीवर की खान था और वहाँ हंस, सारव, चकवा, चकवी, जलमुर्ग आदि पक्षी शब्द कर रहे थे। वहाँ मृदंग और प्रणव आदि बाजों का स्वर भेद सहित गान सबके मन को हरनेवाला था।

उन्होंने भगवान शंकर को प्रणाम किया। तब भगवान शंकर प्रसन्न होकर बोले- हे प्रचेताओ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मन की इच्छा मैं जानता हूँ। उसकी सिद्धि के लिये मैं तुम्हें यह स्तोत्र सुनाता हूँ। इसका निरन्तर जप करने से तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। भाग्यशाली तो वह है जो इन नश्वर वस्तुओं को छोड़कर अविनाशी, शाश्वत, श्रीहरि के चरणारविन्दों में प्रेम करें, अनुराग रखे। सहस्त्रों वर्ष जो तपस्यायोग समाधि आदि साधन करते हैं, उन लोगों की श्रीकृष्ण चरणारविन्दों में भक्ति होती है।

नीलकण्ठ शंकर कहें, तुम सब सुकृत स्वरूप हो। राजकुमार ऋषि रूप हो भक्ति भवनके भूप हो।।
रुद्रगीत हौं कहूँ जपो निश्चल ह्वै ताकूँ। होहि सिद्धि अति शीघ्र, जपोगे जो तुम जाकूँ।।
प्रजा तिननिकूँ पूर्वकालमहँ जिह विधि दीन्हों। पाइ तिनति अति हरषि वसृजन परजाको कीन्हों।।
यों कहि योगादेश हर, रुद्रगीत सबकूँ दयो। पाइ शम्भु उपदेश अति, मन प्रसन्न सबको भयो।।

भगवान रुद्र इस प्रकार स्तुति करने लगे- हे परमात्मा। आपका जन्म आत्मज्ञानियों के कल्याण के लिये होता है। आप सदा अपने परमानन्द स्वरूप में लीन रहते हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। हे पद्मनाभ। आप समस्त लोकों के रचनेवाले हैं। आप तन्मात्रा तथा इन्द्रियों के स्वामी हैं। आप चित्त के स्वामी स्वयं प्रकाश वासुदेव हैं। आपकी मुखाग्नि से संसार का संहार होता है। आप ही संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध है, आपको नमस्कार है। आप ही सूर्य, अग्नि, पितर तथा देवता हैं। आप को नमस्कार है। आप ही वायु, आकाश, वैकुण्ठधाम हैं, आप ही दु:खदायक मृत्यु हैं, तथा आप ही योगयोगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं। आप ही कर्त्ता कारण और कर्म रूप से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं।

हे परमात्मा। आप अपनी माया से अनेकों रूप धारण करते हैं। आप ही आदि पुरुष तथा सृष्टि के रचयिता है। अपनी माया शक्ति से सोई हुई सृष्टि को पुन: जागृत करते हैं तथा सत्व, रज, तम तीन गुणों से महत्तत्त्व, अहंकार तथा पाँच भूतों की उत्पत्ति करके जगत की रचना करते हैं।

हे राजकुमारो। तुम सब लोग शुद्ध हृदय से अपने धर्म का पालन करते हुए भगवान के इस स्तोत्र का जप करो और स्तवन तथा चिन्तन द्वारा उनकी पूजा करो। मैंने तुम्हें यह योगोपदेश नाम का उपदेश वर्णन किया है। यह स्तोत्र प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने हम सब प्रजापतियों को सुनाया था। जिसके प्रताप से हम लोग सृष्टि रचने में समर्थ हुए। जो पुरुष नित्य प्रति अस्त काल में श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्र का जाप करेगा वह इस दुस्तर संसार सागर से पार हो जावेगा और सुगमता से भगवान को प्राप्त कर लेगा।

मैत्रेय मुनि बोले- विदुरजी। वे सब प्रचेतागण भगवान रुद्र के बताये हुए रुग्रगीत नामक स्तोत्र का जप करते हुए, दस हजार वर्ष तक जल में खड़े होकर तपस्या करते रहे।

तपस्या पूरी होने पर जब प्रचेता लोग सागर से बहर निकले तो उन लोगों ने देखा कि सारी-की-सारी पृथ्वी वृक्षों से भर

गई है अत: वृक्षों पर उन्हें महान् क्रोध आया। क्रोधवश उन्होंने अपने मुख से वायु और अग्नि को उत्पन्न कर वृक्षों को जलाना प्रारम्भ किया। यह देखकर वनस्पतियों के राजाधिराज चन्द्रमा ने उनका क्रोध शान्त करते हुए कहा- भाग्यशाली प्रचेताओं, ये वृक्ष अति दीन हैं। आपलोग इनसे द्रोह मत कीजिये। आप प्रजापति हैं, प्रजा की वृद्धि करना चाहते हैं। भगवान श्रीहरि ने सम्पूर्ण वनस्पतियों और औषधियों को प्रजा के हितार्थ उनके खान-पान के लिये बनाया है। संसार में पंखों से उड़नेवाले चर प्राणियों के भोजन फल-पुष्पादि अचर पदार्थ हैं। गौ, महिष आदि चतुष्पाद प्राणियों के लिये अपद घास आदि भोजन हैं। व्याघ्र आदि के लिये बिना हाथवाले मृग आदि भोजन बनाये गये हैं और दो पैरवाले मनुष्यों के लिये जौ, गेहूं आदि अन्नों के साधनभूत चतुष्पाद बैल आदि रचे गये हैं।

निष्पाप प्रचेताओं, आप के पिता और देवाधिदेव भगवान ने आप लोगों को यह आदेश दिया है कि प्रजा की सृष्टि करो। ऐसी स्थिति में आप वृक्षों को जला डालें, यह कैसे उचित हो सकता है? आप लोग अपना क्रोध शान्त करें और सत्पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करें। सारे प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से भगवान विराजमान हैं। यदि क्रोध को शान्त कर लेते हैं तो भगवान आपलोगों पर प्रसन्न होंगे। अब आप लोग वृक्षों को मत जलाइये और जो कुछ बच गये हैं, उनकी रक्षा कीजिये। इससे आपका भी कल्याण होगा। अब आप लोग वृक्षों के द्वारा पालित-पोषित इस वार्क्षी (मारिषा) सुन्दरी-शिरोमणि कन्या को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण करें।

परीक्षित, वनस्पतियों के राजा चन्द्रमा ने प्रचेताओं को इस प्रकार समझा-बुझाकर उन्हें प्रम्लोचा अप्सरा की कोख से उत्पन्न सुन्दरी कन्या दे दी और वे वहाँ से चले गये। प्रचेताओं ने धर्मानुसार उसका पाणिग्रहण किया। उन्हीं प्रचेताओं के द्वारा उस कन्या के गर्भ से प्राचेतस दक्ष की उत्पत्ति हुई फिर दक्ष की प्रजा-सृष्टि से त्रिलोकी भर गई। इनका अपनी पुत्रियों पर अपार स्नेह था। पहले प्रजापति दक्ष ने मन से ही जल, स्थल और आकाश में रहनेवाले देवों, असुरों और मनुष्यों की सृष्टि अपने संकल्प से ही की किन्तु जब उन्होंने देखा कि मानसी सृष्टि बढ़ नहीं रही है तो उन्होंने विन्ध्याचल के निकटवर्ती पर्वतों पर जाकर घनघोर तपस्या की। वहाँ एक अत्यन्त श्रेष्ठ तीर्थ है, उसका नाम है- अघमर्षण। यह तीर्थ अष्टभुजा पहाड़ी के पास गंगा के तट पर बसा आज का अकोढ़ी ग्राम प्रतीत होता है। अघमर्षण का ही बिगड़ा हुआ नाम अकोढ़ी है। उसी के पास ही विरोही ग्राम है जहाँ पर वीरभद्र की अतिप्राचीन मूर्ति भी हैं, जिसे बाद में स्थापित किया गया होगा। यहाँ कभी दक्ष ने एक महान् यज्ञ भी किया था। यह यज्ञ-स्थल छानबे बीघे में फैला था, जिसे आज छनवइ कहते हैं- आज भी छानबे में कहीं-कहीं गड्ढा खोदने पर अधजली लकड़ियाँ और कोयले निकलते हैं। यह सारे पापों को धो डालता है। दक्ष उस तीर्थ में त्रिकाल स्नान करते और हंसगुह्य स्तोत्र से स्तुति करते थे।

जिस हंसगुह्य स्तोत्र से भगवान दक्ष पर प्रसन्न हुए थे, उसे सुनाता हूँ। यह स्तोत्र अतिशय प्राचीन है, दक्ष-निर्मित नहीं है। दक्ष प्रजापति ने इस प्रकार स्तुति की- प्रभो, आप सबके अधिष्ठाता, प्रेरक पुरुषोत्तम है। आप ही कार्य में निमित्तभूत प्रकृति के प्रवर्तक हैं। आप सत्य संकल्प हैं। विषयों में आकण्ठ निमग्न जीव आपके स्वरूप को देख नहीं पाते। ऐसे अगम और स्वयंप्रकाश आप को मैं हृदय में धारण कर रहा हूँ, प्रणाम कर रहा हूँ।

हे नाथ, यों तो जीव और ईश्वर एक दूसरे के सखा हैं, मित्र हैं तथा इसी शरीर में एक साथ निवास भी करते हैं फिर भी जीव ईश्वर को वैसे ही नहीं जान पाता ऐसे रूप आदि विषय चक्षु आदि इन्द्रियों को नहीं जान पाते। प्रभो, आप दुर्ज्ञेय हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

हे स्वामिन्, देह, प्राण और इन्द्रिय आदि जड़ पदार्थ है। जड़ होने के कारण ये अपने को तथा अपने से अतिरिक्त किसी

अधिष्ठाता देवता आदि को नहीं जानते। किन्तु जीव इन सबको जानता हुआ भी सर्वज्ञ आपको नहीं जान पाता। ऐसे सर्व समर्थ आपका मैं स्तवन कर रहा हूँ।

गन्धर्व आदि उनके गुणों का गान कर रहे थे। भगवान के ऐसे अद्भुत दुर्लभ रूप को देखकर दक्ष आनन्द के सागर में निमग्न हो गये। भगवान के चरणों पर दण्ड की भाँति गिरकर उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया। आनन्दोद्रेक के कारण वे कुछ बोल न सके। केवल हाथ जोड़े, सिर झुकाये वे प्रभु के सामने खड़े रह गये। भगवान तो सबके मन की बात जानते हैं।

भगवान बोले- भाग्यशाली दक्ष, अब तुम्हारी तपस्या सिद्ध हो गई, क्योंकि श्रद्धा के कारण मेरी भक्ति तुम्हारे में आ गई है। प्रजापते, तुमने इस विश्व की वृद्धि के लिये तप किया है अत: मैं तुम पर प्रसन्न हूँ क्योंकि मैं भी यही चाहता हूँ कि इस विश्व की वृद्धि हो। ब्रह्मा, शंकर, तुम्हारे जैसे प्रजापति तथा मनु आदि सभी हमारी ही विभूतियाँ हैं। ये भी प्राणियों की अभिवृद्धि करनेवाले हैं। तप मेरा हृदय है, विद्या शरीर है, कर्म आकृति हैं, यज्ञ अंग है, धर्म मन और देव प्राण हैं। सर्वत्र चैतन्यमात्र मैं ही परिव्याप्त हूँ। मुझमें ही माया ब्रह्माण्ड की रचना करती है और मुझसे ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं। वे भी सृष्टि कार्य में असमर्थ थे फिर तप करके उन्होंने सृष्टि का सामर्थ्य प्राप्त किया और तुम नौ प्रजापतियों की सृष्टि की।

प्रिय दक्ष, देखो, यह पंचजन प्रजापति की कन्या असिकी है। इसे तुम अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण कर लो। इसके द्वारा तुम यथेच्छ बहुत-सी प्रजा उत्पन्न करोगे। तुम्हारे बाद आनेवाली सारी प्रजा मैथुन द्वारा ही सृष्टि करेगी।

शुकदेव कहते हैं- परीक्षित विश्व के जीवनदाता भगवान श्रीहरि यह कहकर दक्ष के सामने ही ऐसे अन्तर्धान हो गये।

राजन्, दक्ष पर भगवान की बड़ी कृपा थी। इससे उनका सामर्थ्य बहुत बढ़ गया था। उन्होंने पंचजन की पुत्री असिक्री नामक अपनी भार्या से हर्यश्व नामक दस सहस्र पुत्र उत्पन्न किये।

दक्ष के ये सभी पुत्र समान स्वभाव तथा समान आचरणवाले थे। दक्ष ने उन्हें सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दी। पुत्रों ने पिता के आदेश को शिरोधार्य किया और तप करने के लिये पश्चिम दिशा की ओर सिन्धु और सागर के संगम पर गये। वहाँ नारायण नाम का एक महान् तीर्थ हैं। बड़े-बड़े मुनि और सिद्ध वहाँ निवास करते हैं। नारायण तीर्थ में हर्यश्वों ने स्नान किया। स्नान करते ही उनका अन्त:करण शुद्ध हो गया। उनकी मति भगवान की भक्ति में लग गई। किन्तु पिता की आज्ञा से बँधे होने के कारण वे उग्र तपस्या में लग गये। नारद ने देखा भगवद्भक्ति से प्रभावित होने पर भी हर्यश्व सृष्टि के लिये ही तपस्या कर रहे हैं, तो उनके हृदय में हर्यश्वों के प्रति दया आई। उन्होंने उनके उद्धार का निश्चय किया। फिर वे पहुँच गये हर्यश्वों के पास। उन्होंने दक्ष के पुत्रों से कहा- हर्यश्वों, प्रजापति होकर भी तुम लोग अज्ञानी ही प्रतीत होते हो। बतलाओ तो जब तुम लोगों ने पृथ्वी का अन्त ही नहीं देखा तो सृष्टि कैसे करोगे? देखो एक ऐसा देश है, जिसमें एक ही पुरुष है। एक ऐसा बिल है, जिसमें बाहर निकलने का मार्ग ही नहीं है। एक ऐसी स्त्री है, जो बहुरूपिणी है। एक ऐसा पुरुष है, जो व्यभिचारिणी का पति है। एक ऐसी नदी है, जो दो विभिन्न दिशाओं में बहती हैं। एक ऐसा विचित्र घर है, जो पच्चीस पदार्थों से बना है। एक ऐसा हंस है, जिसकी कहानी बड़ी विचित्र हैं, अथात जो विचित्र कथा कहनेवाला है। एक ऐसा चक्र है, जो छुरे और वज्र की तरह है और सदा घूमता रहता है, चक्कर काटता रहता है। तुम्हारे पिता सर्वज्ञ हैं, उनका आदेश रहस्य से भरा हुआ है। जब तक पिता के आदेश के रहस्य को जान नहीं लोगे और उपर्युक्त वस्तुओं को देख नहीं लोगे तब तक सृष्टि कैसे कर सकोगे? सृष्टि प्रारम्भ करने के पूर्व इन बातों का ज्ञान होना परमावश्यक हैं।

शुकदेव बोले- परीक्षित, हर्यश्व जन्म से ही परम बुद्धिमान थे। उन्होंने नारदजी के गूढ़ वचनों को सुनकर अपनी स्वभावत: निर्मल बुद्धि से उन पर विचार कर कहा- देवर्षि नारद का कथन तो सच ही है। सूक्ष्म शरीर ही भूमि है। यही आत्मा का अनादि

बन्धन है। इसका (इस सूक्ष्म शरीर का) अन्त (विनाश) बिना जाने सृष्टि कर्मों में पड़ने से क्या लाभ है? यह सम्पूर्ण विश्व एक राष्ट्र है। इस राष्ट्र में पुरुष एकमात्र ईश्वर ही है। वह सब कुछ करने में समर्थ है। उसे बिना जाने असत्कर्मरूप सृष्टि करने से क्या लाभ? ब्रह्म अथवा वैकुण्ठ ही निकलने के मार्ग से रहित बिल है। जहाँ जाने का मार्ग तो है किन्तु निकलने का नहीं है। उसे बिना समझे सृष्टिरूप नश्वर कर्मों से क्या लाभ? व्यभिचारिणी स्त्री के समान नाना प्रकार के विषयों की कामना करनेवाली अपनी बुद्धि ही व्यभिचारिणी स्त्री है। इस जीवन में इसका अन्त जाने बिना अशान्तिरूप कर्मों के करने से क्या लाभ? यह बुद्धि ही कुलटा स्त्री के समान है। इसके संग से जीव का ज्ञान नष्ट हो गया है। इसीके पीछे-पीछे वह नाना योनियों में भटकता रहता है। इसे जाने बिना इन सृष्टिरूप अविवेकपूर्ण कर्मों से क्या लाभ? माया ही दोनों ओर बहनेवाली नदी है। यह सृष्टि भी करती है और प्रलय भी। इससे उद्धार का उपाय बिना जाने असावधान पुरुष को मायिक कर्मों से क्या लाभ?

पच्चीस तत्वों से बना हुआ यह शरीर ही अद्भुत घर है। पुरुष उनका आश्चर्यमय आश्रय है। वही समस्त जगत् का आधिष्ठाता है। इस बात को जाने बिना इन असत्कर्मों से क्या लाभ? भगवान का स्वरूप बतलानेवाला शास्त्र ही हंस है। वही नीर-क्षीर के समान बंधन-मोक्ष का विवेचन करता है। चेतन और जड़ को अलग-अलग करके बतलाता है। ऐसे शास्त्र को न जान कर बहिर्मुख कर्मों से क्या लाभ? यह काल ही एक चक्र है। यह निरन्तर घूमता रहता है। इसकी धार छूरे और वज्र के समान तीखी है। यह सारे जगत् को अपनी ओर खींच रहा है। इसको रोकनेवाला कोई नहीं है। यह परम स्वतन्त्र हैं। इस काल से बचने का उपाय बिना समझे इन सृष्टि रूप असत्कर्मों से क्या लाभ?

शास्त्र ही पिता है। लोगों का दूसरा जन्म शास्त्र के द्वारा ही होता है। शास्त्र का आदेश प्राणियों को कर्म में लगाना नहीं है। वह निवृत्ति का मार्ग दिखलाता है, प्रवृत्ति का नहीं। इन रहस्य भरी बातों को बिना जाने इन असत्कर्मों से क्या लाभ? परीक्षित्, हर्यश्वों ने एक मत से यही निश्चय किया और नारदजी की परिक्रमा करके वे उस मोक्ष के मार्ग पर चले गये, जिस पर चलकर फिर कोई लौट कर नहीं आता।

इस प्रकार देवर्षि नारद हर्यश्वों को निवृत्ति के मार्ग में भेज कर स्वरब्रह्म में- संगीतलहरी में अभिव्यक्त हुए भगवान श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में अखण्ड रूप से अपने चित्त को स्थिर करके लोक-लोकान्तरों में विचरने के लिये चले गये। राजन्, जब प्रजापति दक्ष को पता चला कि मेरे परम सुशील पुत्र नारदजी के उपदेश से सृष्टि से विमुख होकर चले गये तो वे शोक से सन्तप्त हो उठे। सचमुच अच्छी सन्तान का होना भी शोक का ही कारण है। ब्रह्माजी ने दक्ष प्रजापति को बड़ी सान्त्वना दी फिर उन्होंने शबलाश्व नामक एक सहस्र पुत्रों को, अपनी पत्नी असिक्री के गर्भ से उत्पन्न किया। पिता ने उन्हें भी सृष्टि करने की आज्ञा दी अत: वे भी तप करने के लिये नारायण सरोवर पर चले गये। वहाँ उन्होंने नारायण-मंत्र का जप करते हुए तप प्रारम्भ किया। पुन: वहाँ पहुँचे। उन्हें भी पहले की तरह कूट-वचनों को सुनाया। इसका फल यह हुआ कि वे भी अपने बड़े भाइयों के ही मार्ग पर चले गये। संसार से निवृत्त हो गये। नारदजी का उपदेश कभी व्यर्थ नहीं जाता है। वे चले गये और सर्वदा के लिये चले गये।

जब दक्ष को मालूम पड़ा कि पहले की भांति इस बार भी नारद ने मेरे पुत्रों को चौपट कर दिया तो दक्ष कुपित हो उठे। इसी समय अपनी वीणा पर नारायण नारायण झंकृत करते हुए नारदजी दक्ष के पास पहुँच गये। नारद को देखते ही दक्ष के क्रोधरूपी बारुद में आग लग गई। वे भड़क उठे। क्रोध से कांपते हुए उन्होने नारद से कहा- ओ दुष्ट। तुमने झूठमूठ साधुओं का बाना पहन रक्खा है। हमारे भोलेभाले बालकों को भिक्षुओं का मार्ग दिखलाकर तुमने हमारा बड़ा अहित किया है। अभी उन्होंने ब्रह्मचर्य से ऋषि-ऋण, यज्ञ से देव-ऋण और पुत्रोत्पत्ति से पितृऋण नहीं उतारा था, किन्तु तुम पापी ने

उन्हें चौपट कर दिया। तुम बड़े निर्दोष हो। तुमने भगवान के पार्षदों की कीर्ति में कलंक लगाया है। वस्तुत: तुम हो बड़े निर्लज्ज। एक बार पहले भी तुमने हमारा अपकार किया था, जिसे मैंने सह लिया। तुम तो हमारी वंश-परम्परा का उच्छेद करने पर ही उतारू हो गये हो। इसलिये मूढ़, जाओ, संसार में इधर-से-उधर भटकते रहो। कभी भी तुम्हें ठहरने का स्थान नहीं मिलेगा। यह तुम्हारे लिये मेरा शाप है। दक्ष ने नारद को सर्वदा भ्रमण का शाप तो दिया ही है। उसके साथ यह भी कहा कि तुम इधर-उधर की चुगली भी करते रहोगे।

शुकदेव बोले- परीक्षित, देवर्षि नारदजी ने दक्ष के शाप को सुना। उन्होंने सोचा अब तो सर्वदा भ्रमण ही करेंगे अत: बहुतों के कल्याण का अवसर सुलभ होगा। यह सोचकर वे प्रसन्न हो उठे और बहुत अच्छा कहकर दक्ष के शाप को सहर्ष स्वीकार कर लिया। आखिर, साधुता तो इसी को कहते हैं कि बदला लेने की शक्ति रहने पर भी दूसरे का किया हुआ अपकार सह लिया जाय।

इतना ही नहीं, जाते जाते उन्होंने दक्ष को आशीर्वाद दिया- दक्ष, जाओ, अब तुम्हारे साठ पुत्रियाँ पैदा होगी जिनसे तुम्हारा नाम-यश बहुत बढ़ेगा।

५) पुरंजनोपाख्यान

साधन यज्ञ अनेक से सरै न एकौ काम। बिना भक्ति भगवन्त की जीव न लह विश्राम।।

प्राचीनवर्हि नृप को दियो, नारद मुनि आख्यान। जीव पुरंजन रूप में, पावत दु:ख महान्।।

श्री मैत्रेयजी बोले- हे विदुरजी। भगवान शंकर के द्वारा उपदेश प्राप्त करके उन प्रचेताओं ने दस सहस्त्र वर्ष जल में खड़े होकर तपस्या की उधर एक दिन राजा प्राचीनवर्हि के पास नारदजी गए और उन्होंने आध्यात्म विद्या का उपदेश दिया। प्राचीनवर्हि यज्ञ के नाम पर पशुओं की बलि हिंसा किया करते थे, पशु हत्या किया करते। इनके इतना यज्ञ करने के पश्चात भी इनकी पुण्यरूपी चादर में हिंसा सत्य का दाग लग गया। इस दोष का मार्जन करने के लिये भगवान ने प्रेरणा करके देवर्षि नारद को भेजा कि आप जाकर प्राचीनवर्हि को समझाये और देवी-देवताओंके नाम पर हिंसा, बलिदानवाले दोष से निवृत्त करे। नारदजीने ऐसा ही सुन्दर सरस सरल भावपूर्ण दृष्टान्त युक्त उपदेश महाराज प्राचीनवर्हि को दिया था। इन साधुओं का चित्त इतना कोमल होता है, ये दूसरों को दुखी देख नहीं सकते। योग्य अधिकारी पुरुष को भी जब विषयों में आसक्त देखते हैं तो उनका नवनीत के समान हृदय द्रवित हो उठता है। वे चाहते हैं सभी इस त्रितापमय जगत् से सदा के लिये पार होकर शाश्वती शान्ति को प्राप्त कर सकें। कृपा वश उन पर नहीं रहा जाता।

नारदजी ने जाकर प्राचीनवर्हि से पूछा- राजन्, मैंने पापी तो जीवन में बहुत देखे हैं, पर तुम्हारे जैसा कोई नहीं देखा। यह पशुओं की कतार तुम्हारे यज्ञशाला में क्यों बांधी गयी है? राजा ने कहा- नारदजी यह यज्ञ के लिये है। नारद बोले- अरे यज्ञ से पशुओं का क्या सम्बन्ध। प्राचीनवर्हि ने कहा- यज्ञ के समय इन पशुओं का बलिदान होगा। नारद बोले- यज्ञ के नाम पर निर्दोष पशुओंकी हत्या किसलिये? क्या इससे तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी? स्वर्गादिलोक क्षयिष्णु है, नाशवान हैं, परिणाम में दु:खप्रद हैं। इन काम्यकर्मों के द्वारा परम श्रेय की प्राप्ति असंभव है तो क्या आप इस आवागमन के चक्कर में सदा फँसे रहना ही चाहते हैं? प्राचीनवर्हि यज्ञ पर यज्ञ करते जा रहे है और बोले- आज तक मेरे जैसे किसीने यज्ञ नहीं किये होंगे। अब तो मैं सर्वोत्कृष्ट हूं कि नहीं सबमें। यह तुमको किसने बहका दिया? प्राचीनवर्हि बोले- हमारे पुरोहितोंने, ऋत्विजोंने।

नारदजी ने कहा- हे राजन्। आप यह सब कर्मकांड, यज्ञ-यज्ञादि करके अपना कौनसा कल्याण करना चाहते हैं। तुम

किस कर्म से आत्मा का श्रेय प्राप्त करना चाहते हो। जो कुछ कर्म तुम कर रहे हो उससे न दु:ख की निवृत्ति हो सकती है और न सुख की प्राप्ति ही। यदि आप यह समझते है की इससे आपके सारे दु:ख मिट जायें और सुखोंकी प्राप्ति हो तो यह इससे होनेवाला नहीं। कर्ममें सीमित कर्ता होता है, सीमित कारण होते हैं और सीमित वस्तुएँ होती हैं। उनसे सीमित देशमें, सीमित कालमें, सीमित क्रिया बनती है। फिर उस सीमितमेंसे असीम फल, अनन्त ब्रह्मात्मक फल कैसे प्राप्त हो सकता है? उससे तो जब भी मिलेगा, सीमित फल ही मिलेगा। पुण्य क्षीण होनेपर स्वर्गलोकसे मृत्युलोकमें गिरना पड़ेगा।

तुम जो यह यज्ञादिक करते हो उससे कोई लाभ नहीं है। यह तो केवल स्वर्ग की प्राप्ति का साधन है, किन्तु कर्म बन्धन से मुक्ति का साधन नहीं है। तुमने जो यज्ञोंमें निर्दयतापूर्वक पशु मारे हैं वे सब आकाशमें एकत्र होकर, अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर, तुमको मारनेके लिए उद्यत है। जैसे ही तुम मृत्युलोकसे निकल कर ऊपर जाओगे, वे सब-के-सब तुम्हारी अन्तरात्माको सतायेंगे।

तुमने हजारों पशु यज्ञ में बलि दिये हैं ऊपर की तरफ देखो वे सब आकाश में तुम्हारी मृत्यु का अवसर देख रहे हैं। तुम्हारी मृत्यु होने पर वे अपने लोहे के सीगों से तुम्हें छेदेंगे। रू रू नामक के भयंकर जीव क्रूर दृष्टि से तुम्हारी ओर देख रहे हैं बड़ी-बड़ी दाढ़े निकाले बैठे है और कह रहे हैं- तुमने हमारी हत्या की इसलिये हम भी तुम्हें नोंच डालेंगे। जितने जीवों की हत्या की है तुमने, ये एक-एक जीव तुमसे बदला लेंगे, तुम इनसे बचकर नहीं जा सकते। यज्ञ में किसी घोड़े और बकरे को मारने का विधान नहीं है। नारदजी ने कहा- अहिंसा परमो धर्म: वेदका सर्वोत्तम भाव है, किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो। जीव जब तक अपने आपको समझ नहीं पाता, अपने स्वरूप की अनुभूति नहीं होती तब तक वह भटकते रहता है।

राजन्। इस कर्म मार्ग से भी श्रेष्ठ एक मार्ग है। ज्ञान के बिना मुक्ति असंभव है। ज्ञानी ही इस भवसागर को तर सकता है। ज्ञान नौका से ही संसार समुद्र पार किया जा सकता है।

प्राचीनवर्हि का कलेजा काँप उठा और झट नारदजी के चरणोंमे गिरकर ऋदन करने लगा। नारद बोले- वे नाम मात्र के ब्राह्मण हैं। ऐसे ब्राह्मण बड़े धूर्त होते हैं, हत्या कराते हैं यजमान से और स्वयं मांस का भक्षण करते हैं। दु:ख का आत्यन्तिक नाश और परमानन्द की प्राप्ति का साधन भगवान नाम में ही है। जिसे कल्याण की आकांक्षा हो वह सब तरफ से अपनी इन्द्रियों को समेट कर एकाग्र होकर प्रभु का चिन्तन करें तब उसे अत्यधिक शान्ति प्राप्त होगी और कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा। प्राचीनवर्हि बोला- महाराज जितने पंडित, पुरोहित और मंत्रीलोग मेरे यहाँ है सबने मुझको यही सलाह दी की यज्ञ करने के सिवाय कोई दूसरा उत्तम धर्म नहीं है। उस समय राजा के निकट एक पिंजरे में मैना और एक पिंजरे में तोते देखकर नारद बोले- हे राजन्। ये जो तोता देख रहे हो वह मैना से बारंबार कहता है कि तुम मुझे इस पिंजरे से निकाल दो तो मैं स्वतंत्र होकर यह बंधन से छूटकर वन में पक्षियों के साथ विहार करूँ। मैना बोली- हे तोते। चाहती तो मैं भी यही हूँ कोई मुझे इस पिंजरे से बाहर निकाल दे तो मैं अपने साथियों के साथ जाकर खुशियां मनाती। दोनों आपसमें एक-दूसरे को कहते हैं कि पहले तुम उड़ो पर उड़ने की सामर्थ्य दोनों में नहीं है। इस तरह तुम्हारे पण्डित, पुरोहित और मन्त्री लोग भी संसाररूपी मायाजाल के पिंजरे में पड़े हुए है, उनके पास क्या सामर्थ्य है जो तुम इस संसाररूपी जाल से बाहर निकाल सको। यह बात सुनकर राजा ने समझा कि आजतक ऐसा ज्ञानी मुझको कोई नहीं मिला जिसका वचन सुनने से मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ। ऐसा विचार कर राजा बोला- महाराज, आप ही कोई ऐसा उपाय बतावें जिससे इन जीवों के हाथ से बचकर मुक्ति पद पाऊँ।

नारदजी बोले- कर्म-बन्धन से छूटने के लिए उन्होंने राजा पुरंजन की कथा सुनाई जिसका तात्पर्य है कि कर्मों में

परमार्थ बुद्धिमत करो। ये सुनने में ही प्रिय है परमार्थ का स्पर्श भी नहीं करते। पुष्पों की तरह ये स्त्री, पुत्र देखने में ही सुन्दर हैं। ये काल रूपी व्याध के समान हैं जो किसी भी समय तुम्हें काल बाण से बेध देंगे। इसलिए गृहस्थाश्रम को छोड़ परमहंसों के संग रह श्रीहरि का स्मरण करो तो क्रमश: सभी विषयों से विरत हो जाओगे।

इस विषय में मैं तुम्हें एक प्राचीन पुरंजनोपाख्यान सुनाता हूँ। शिक्षाप्रद कहानियों का जितना प्रभाव पड़ता है, उतना शुष्क उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता।

प्राचीन काल में पुरंजन नाम का एक राजा था। अविज्ञात उसका मित्र था। उस पुरंजन राजा के सभी कार्य बड़े रहस्यमय होते थे। वह पृथ्वी पर घूमघूम कर अपने रहने योग्य स्थान खोजने लगा। उसको भोग भोगने की इच्छा थी। उसे अपने योग्य कोई स्थान न मिला। उसने एक दिन हिमालय पर्वत के दक्षिणी प्रान्त आर्यावर्त्त में नौ द्वारों का एक नगर देखा। वह नगर अनेक प्रकार के बगीचों, परकोटों, अट्टालिकाओं आदिसे सुशोभित था। उसमें भोग की सभी सामग्रियाँ उपस्थित थीं। उस नगर के बाहर वृक्ष, लताओं का सुन्दर उपवन था। उसके मध्य में एक सरोवर था। जिसमें अनेक प्रकार के पक्षी क्रीड़ा करते थे। वहाँ के महलों में परम रमणीय ओखा, मोखा, झारी, झरोखा थे।

राजा पुरंजन ने देव वश वहाँ एक सुन्दरी को देखा। उस सुन्दरी के साथ दस सेवक थे। प्रत्येक सेवक के नीचे सौ सौ नायिकाएँ थीं। पाँच फणवाला सर्प उस सुन्दरी का द्वारपाल था। उसकी अवस्था सोलह वर्ष की थी। उसके अंग-प्रत्यंग अति सुन्दर थे। रंग साँवला तथा पीले रंग की साड़ी पहिने हुये थी, वह पति की खोज में थी। उस सुन्दरी को देखकर पुरंजन मोहित हो गया और बोला- हे सुन्दरी। तुम किसकी कन्या हो, कहाँ रहती हो, इस नगर में क्यों आई हो? तुम्हारे यह दस सेवक कौन हैं। ये स्त्रियाँ कौन हैं और यह सर्प कौन है? तुम उमा, रमा, ब्रह्माणी तो नहीं हो? किन्तु तुम इनमें से तो मुझे कोई प्रतीत नहीं होती हो क्योंकि लक्ष्मीपति भगवान विष्णु के पास रहती हैं। यदि देवांगना होती तो तुम्हारे पैर पृथ्वी को स्पर्श न करते। मैं बड़ा वीर और पराक्रमी हूँ। तुम्हारा पति बनने योग्य हूँ। तुम मुझे अपना पति बना लो। कटाक्ष बाणों की व्यथा से व्यथित हुआ पुरंजन उस सुर सुन्दरी ललाम ललिता से ललित वाणी में सम्भाषण करने लगा।

श्री नारदजी बोले- राजा पुरंजन के ऐसे मधुर वचन सुनकर रमणी अति मोहित हुई और बोली- हे नरोत्तम। हमारे उत्पत्ति कर्ता का हमें पता नहीं है और न हमें अपने नाम तथा गोत्र का पता है। इस पुरी के अतिरिक्त हमें और कुछ पता नहीं है। यह पुरुष मेरे मित्र तथा ये स्त्रियाँ मेरी सखी हैं। यह सर्प हमारी पुरी का रक्षक है। हे नरश्रेष्ठ। आपका कल्याण हो। आपको विषय भोगों की इच्छा है तो इसकी पूर्तिके लिये मैं तथा मेरे यह सेवक प्रस्तुत हैं। आप इस पुरी में सौ वर्ष तक निवास कीजिए। मैं आपके साथ रमण करूँगी। ये सन्यासी, ब्रह्मचारी लोग विषय भोगों को जानते ही नही हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष का दाता यह गृहस्थाश्रम ही है, मेरी जैसी स्त्री आपको प्राप्त नहीं हो सकती।

जो अपने से स्नेह करता हो, हृदय से चाहता हो, उसके प्रश्नों का उत्तर देने में हृदय में एक प्रकार का अनिर्वचनीय सुख होता है। दो हृदय जब मिलकर गुह्य रहस्य की बातें करते हैं तो सरसता वहाँ आकर अपना साम्राज्य जमा लेती है। प्रेम के आदान प्रदान में, प्रेम के प्रस्ताव में और प्रेम की स्वीकृति में उत्तरोत्तर अधिकाधिक सुख होता है प्रेम हृदय की वस्तु है, प्रेम की भाषा मौन है, किन्तु पुरुष की यह अपूर्णता है कि प्रेम को मानवीय भाषा में व्यक्त करता है, शरीर संसर्ग द्वारा उसका प्रकाशन करता है। यदि मनुष्य में इतनी त्रुटि न होती तो वह देवताओं से भी बढ़कर होता। प्रेम का सम्बन्ध जहाँ शरीर और वाणी के अथवा इस हाड़ चाम की वस्तुओं के साथ हुआ वहीं वह सांसारिक विषय के रूप में परिणत हो जाता है।

हृदयस्पर्शी वस्तु दिव्य है, भौतिक शरीर से सम्बन्धित वस्तु क्षणिक है, नाशवान् है, आवागमन को बढ़ानेवाली है।

नारदजी बोले- हे राजन् वे दोनों स्त्री पुरुष उसी नगर में भोग भोगने लगे। हे राजन्। उस नगरी में सात द्वार ऊपर और दो द्वार नीचे थे, इन में पाँच पूर्व की ओर, एक दक्षिण की ओर, एक उत्तर की ओर, और दो पश्चिम की ओर थे। राजा पुरंजन अपने सेवक विषूचीन के साथ जब अन्त:पुर में जाता तो वहाँ स्त्री पुत्रादि के मोह में बड़ा आनन्द प्राप्त करता था। वह कामासक्त होकर उस रमणी के जाल में फँसा रहता था। मदिरा पान, गाना बजाना, हँसना, खेलना आदि सभी कार्यों में दोनों अति आनन्द लेते थे। जब उसकी पत्नी शोकाकुल हो जाती थी तो वह भी दुखी होकर रोने लगता था। इस प्रकार वह स्त्री के वशीभूत ही उसी की आज्ञा का पालन करता था। नारद बोले- राजन्। वह पुरंजन अपनी पत्नी के ऐसा अधीन हो गया कि जब वह किसी सोच में पड़ जाती तो वह भी दीन की भाँति शोकाकुल हो जाता। जब वह प्रमुदित होती तब वह भी आनन्द मनाने लगता। इस प्रकार वह पुरंजन स्त्री के चंगुल में फँसकर अपने समीप स्त्रियों से ठगा गया। क्योंकि वह कामी था। इसीलिये इच्छा न रहने पर भी अज्ञानी के समान अपनी स्त्री का उसी प्रकार अनुकरण करने लगा, जैसे खेल के लिये पाला हुआ बानर आदि पशु अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता है।

चोर चाहता नहीं, हमें कारावास में भेजा जाय, मछली मरने के लिये नहीं, भोजन के लोभ से काँटे में लगे मांस को निगलती है। पतंगे जान-बूझकर नही लौ के लोभ से दीपक में जल मरते हैं। हिरन फँसने के लिये नहीं, राग के वश होकर फन्दे में फँस जाता है, किन्तु यह मनुष्य प्राणी ऐसा मूर्ख है कि जानकर इस नारी रूपी सर्पिणी को अपने गले में बाँध लेता है। सर्पिणी के विष से आदमी एक ही दिन में मर जाता है, किन्तु नारी का विष तो जितना ही चढ़ता है उतना ही पागल बना देता है। मनुष्य अपने आपको भूल जाता है। वह कहती है, यहीं बैठा रह, वहीं बैठ जाता है। वह कहती है खा तो खाता है। कैसा विचित्र बन्धन है। नित्य देखता है कि इन छम्भ-छम्भ करनेवालियों के फन्दे में फँसकर किसी ने सुख नहीं पाया फिरभी कोई मानता नहीं। विवाह के लिये ऐसे प्यासे बैठे रहते हैं, जैसे बैसाख ज्येष्ठ के पथिक आशा भरी दृष्टि से प्याऊ पर दीन हुए प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। इससे बढ़कर मूर्खता और क्या होगी? पालतू हरिन की तरह उसी के संकेत पर चलता। वह जो कराती करता, जहाँ बिठाती बैठता। जहाँ सुलाती वहीं सोता। जैसे पालतू कुत्ता अपने स्वामी के साथ दौड़ता है- उसी प्रकार यह भी उसके पीछे-पीछे दौड़ता। मनुष्य जैसे विचार करता है वैसे ही वह बन जाता है। भाव ही संसार का कारण है हमारे मानसिक विचार ही हमारे भाग्य निर्माण के कारण हैं। पुरंजनी को सोचते-सोचते पुरंजन उसी के भाव में भावित हो गया।

फँस्यो प्रेमके फन्द अन्ध सम भयो पुरंजन। निरखि नारि सब करे भुलाये भव भय भंजन।।
पीवे वह तो पान करे खावे तो खावै। रोवे वह तो रुदन करे गावै तो गावै।।
नारी धनकी धर्मकी, बनी स्वामिनी गेहकी। करे मूर्ख अनुकरण यों, जैसे छाया देहकी।।

श्री नारदजी बोले- हे राजन्। एक समय पुरंजन अपने ग्यारहवें सेनापति को साथ लेकर पाँच अश्वों के द्रुतगामी रथ पर सवार होकर पंचप्रस्थ नाम के वन में शिकार खेलने गया। उस रथ में दो पहिये, दो बम्ब, एक धुरी, तीन ध्वज दण्ड, पाँच डोरियाँ, एक लगाम, एक सारथी, एक बैठने का स्थान, पाँच आयुध, दो जुये, सात पैदे जुड़े हुए थे। उसकी चाल पाँच प्रकार से थी। उसका सब सामान सुनहला था। राजा पुरंजन अपनी रानी को एक क्षण के लिये भी नहीं छोड़ता था, लेकिन उस दिन वह अकेला ही उसकी परवाह न करके बन के लिए मृगया हेतु चला गया। उसकी आसुरी वृत्ति बढ़ी हुई थी। उसका चित्त दया शून्य तथा कठोर था। उसने अपने पैने बाणों से अनेकों निर्दोष वन्य पशुओं को मार डाला। हे राजन्

शास्त्र में पशु हिंसा करना निषेध है। मनुष्यों की इस बुरी प्रवृत्ति को रोकने के लिये यह नियम बना दिया गया है कि शास्त्र निहित कर्मों के हेतु वन्य पशुओं को आवश्यकता के अनुसार मारे, व्यर्थ पशु हिंसा न करे। जो पुरुष कर्मानुष्ठान के लिए ऐसा करते हैं उन्हें पाप नहीं लगता। लेकिन जो मनमाना कर्म करते हैं और अभिमान के वश रहकर हिंसा कर्म करते हैं वे अधर्म योनियों में जन्म लेते हैं। उस पुरंजन ने अनेकों जीवों की हिंसा की। उसकी निर्दयता पूर्ण हिंसा से सभी अति दु:खी हुए। पुरंजन हिंसा करते करते बहुत थक गया, तब वह भूखा प्यासा अपने महल को लौट कर आया। इतने निर्दोष प्राणियों की हत्या का पाप लादकर लाया, पाप का भागी होकर आया।

तत्पश्चात् वह स्नान, भोजन, अंगराग, लेपन आदि से निवृत्त हुआ तब उसे अपनी प्रियतमा का स्मरण आया। वह मदोन्मत्त होकर अपनी प्रिया को ढूँढ़ने लगा, किन्तु वह कहीं दृष्टि में नहीं आई। तब उसने रनिवास की सेविकाओं से पूछने लगा। हे नारियों। वह घर की शोभा तथा लक्ष्मी मेरी प्रिय भार्या कहाँ चली गई? उसके बिना घर की यह समस्त सामग्री सुहावनी नहीं लगती है। उन स्त्रियोंने कहा- हे राजन्। आपकी प्रियतमा कुपित होकर पृथ्वीपर पड़ी हुई हैं।

श्री नारदजी बोले- हे राजन्। उस राजा पुरंजन का सम्पूर्ण ज्ञान उस स्त्री संग के कारण नष्ट हो गया था। जब उसने अपनी स्त्री को बुरी दशा में पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखा तो वह व्याकुल होकर अति दुखी हृदय से उसे समझाने लगा। उस पुरंजन ने उसके चरण छुये। उसे गोद में बिठाया। और बड़े प्रेम से इस प्रकार बोला- हे प्रिये। सेवकों को शिक्षा के हेतु अवश्य दण्ड देना चाहिये, क्योंकि स्वामी का दिया हुआ वह दण्ड शिक्षा ही है। उस पर स्वामी की कृपा ही है, अत: सेवकों के ऊपर तुम्हारा यह क्रोध उचित ही है। हे सुन्दरी। अब तुम अपना क्रोध त्याग कर मुझ सेवक पर कृपा करो और मधुर मुस्कान के साथ मेरी ओर देखो। आपका मलिन मुखारविंद अच्छा प्रतीत नहीं होता। मुझसे जो अपराध हुआ हो उसे क्षमा करो बाह्मणों को छोड़कर यदि किसी अन्य से कोई आपका अपराध हुआ है तो उन्हें मैं अवश्य दण्ड दूँगा। तुम्हारा अपराध करके त्रिलोकी में कोई भी जीवित नहीं रह सकता। मैंने अभी तक कभी भी तुम्हारा यह कान्ति मान मुख कान्तिहीन व डरावना चेहरा नहीं देखा है। मैं तुम्हारे बिना पूछे आखेट के लिये अवश्य चला गया था, यही मेरा अपराध है। मुझे अपना समझ कर क्षमा करो।

कामिनी का अनुगत बनना अपने जीवन को नष्ट करना है। स्त्री लोलुप पुरुष अपने दुर्भाग्य को भाग्य मानकर भावी जीवन के प्रति असावधान रहता है। कामी पुरुष सब कुछ सहन कर सकते हैं, किन्तु वे अपनी प्रियतमाके क्रोध को सहन करने में सर्वथा असमर्थ होते हैं। वे उसकी क्रोधमयी मूर्ति को देखकर डर जाते हैं। उस समय उनका चित्त प्रतिक्षण धक्-धक् करता रहता है। साम, दाम, दण्ड, भेद, अनुनय, विनय सभी उपायों से उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं। यह कैसी काम की कुत्सित क्रीड़ा है। जो पुरुष बाहर बड़े-बड़े क्रोधित सिंहों को हाथ से पकड़कर चीर सकता है, वही क्रोधित हुई पत्नी के सम्मुख पानी पानी हो जाता है और उसके पाद प्रहार को बड़ी प्रसन्नता से अपना अहोभाग्य समझकर सहन करता है और पालतू कुत्ते की तरह पूँछ हिलाकर पेट दिखाकर उसके अंगों को सहराकर मनाने की चेष्टा करता है।

जिस प्रेम में प्रणय कोप नहीं जिसमें अनुनय, विनय, कहा, सुनी, रूठना, मनाना नहीं वह शुष्क प्रेम है। वह मधुर भोजन नहीं पेट भरने के सूखे सत्तू हैं, जिन्हें फाँककर पानी पी लो गड्ढे को भर लो। प्रेम तो प्रणय कोप से निखरता रहता है। जैसे जंग लगे शस्त्र खटाई के मलने से, तेल के चुपड़ने से चमकने लगते हैं।

नारदजी बोले- हे राजन्। राजा पुरंजन के इस प्रकार अनुनय विनय करने पर वह सुन्दरी अति आनन्दित होकर अपने हाव भाव से पुरंजन को लुभाती हुई प्रसन्न हुई, उसने स्नानादि करके अपना श्रृंगार किया और वह भोजन आदि से निवृत्त होकर राजा के निकट आई। राजा ने प्रसन्न होकर उसका आलिंगन किया और अनेक प्रकार की रहस्यमयी बातें होने

लगीं। इसी प्रकार राजा पुरन्जन के दिन रात व्यतीत होने लगे और काल की गति का कुछ भी पता न चला। इस प्रकार विहार करते हुए उस कामी पुरन्जन की युवा अवस्था आधे क्षण के समान समाप्त सोगई। हे राजन्। उस पुरंजन से ग्यारह सौ पुत्र और एक सौ दस कन्यायें उत्पन्न हुईं। ये सब पौरंजनी नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी काल में राजा पुरंजन की आयु का आधा भाग समाप्त हो गया। उस राजा ने अपने पुत्र तथा पुत्रियों का विवाह योग्य वधुओं तथा वरों के साथ कर दिया उस पांचाल राज्य के पुत्र पौत्रों से वह पांचाल देश भर गया। जिसका जितना ही विस्तृत ममत्व होता है, उसका उतना ही अधिक लोगों से सम्बन्ध होता है, उसे उन सबके सुख-दु:ख में उतना ही सुखी-दु:खी होना पड़ता है।

फिर उस राजा ने तुम्हारी भाँति अनेकों यज्ञों की कामना से पशु हिंसा कर देवता, पितर, आदि की पूजा की। वह अपने आत्मकल्याण के लिये अनेकों हिंसामय यज्ञ करने लगा। अन्त में वृद्धावस्था आ गई। जो कामी पुरुषों को अच्छी नहीं लगती है।

हे राजन्। चण्डवेग नाम के एक गन्धर्व ने जिसके आधीन तीन सौ साठ महाबली गन्धर्व तथा कामासक्त कृष्ण और शुक्ल वर्ण की उतनी ही गन्धर्विणियाँ थीं। वे सभी समय समय पर उस पुरंजन की नगरी को लूटने लगे। उनको उस पाँच फणवाले अजगर ने रोका। वह अकेला ही अजगर सातसौ बीस गन्धर्व तथा गंधर्विणियों से संग्राम करता रहा। वह अजगर लड़ते लड़ते थक गया। पुरंजन को अब अधिक चिंता हुई वह प्रजा से कर लेकर विषय भोगों में लिप्त रहता था। उसे इन विपत्तियों का कुछ भी पता नहीं था।

नारदजी राजा प्राचीनबर्हि से कह रहे हैं- राजन्। चण्डवेग नाम का एक गन्धर्वों का राजा था। ३६० महा बलवान् गन्धर्व उसके अधीन थे। गन्धर्वों की उतनी ही गन्धर्वियाँ थी। उनमें से आधी काली थी आधी गोरी। उन सबने राजा पुरंजन की सम्पूर्ण भोग सामग्रियों से युक्त पुरी को घेरकर लूटना आरम्भ कर दिया।

गन्धर्वीं सँग साठ तीन सौ कारी गोरी। करी चढ़ाई चण्डवेग सँग सेना थोरी।।
पाँचफननि को स्याँपु सबनितें लड़िबे लाग्यो। किन्तु कहाँ तक लड़ै बली सब साहस त्याग्यो।।
घबरायो अति पुरंजन, वशीभूत नारी भयो। लूटी नगरी सबनि मिलि, अति उदास नृप ह्वै गयो।।

जग परिवर्तनशील एक-सो रहे न कोई। जनम मृत्यु सुख दु:ख धूप छाया नित होई।।

हे राजन्। उसी समय काल की कन्या जरा वर की खोज करती हुई उधर आ निकली। वह कालकन्या ऐसी हतभागिनी थी कि जिस किसीको भी वह वरण करती उसके केश पक जाते, दाँत टूट जाते, आँखों की ज्योति मन्द हो जाती, गालों में झुर्रियाँ पड़ जाती, हाथ काँपने लग जाते और अन्त में उसे मौत के घाट उतार देती। एक बार वह मुझे भी मिली, किन्तु मैंने उसे अस्वीकार कर दिया तब उसने मुझे शाप दिया कि तुम एक स्थान पर दो घड़ी से अधिक न ठहर सकोगे। भटकना तो साधु संतों के लिये अच्छा है।

नारदजी कहते हैं- हे बर्हिष्मन्। राजन्, काल की एक कन्या थी, वह अपने अनुरूप पति खोजती-खोजती सम्पूर्ण त्रिलोकों में घूम आई, किन्तु उस कुरूपा को किसी ने भी स्वीकार नहीं किया। एक बार मैं ब्रह्मलोक से पृथ्वी पर आ रहा था, मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भी उस कामातुर कालकन्या ने पति के रूप में वरण करने का प्रस्ताव किया।

जो कुमारी स्वेच्छाचारिणी होकर स्वयं पति की खोज में मारी-मारी फिरती हैं, वे निर्लज्ज हो जाती हैं। जिसे भी देखती हैं, निशंक होकर प्रस्ताव कर बैठती है। उनमें नारी सुलभ शील संकोच रहता ही नहीं। वे तो स्वैरिणी के समान चारों ओर भटकती फिरती है। स्वार्थ में मनुष्य अन्धा हो जाता है। काम से मोहित हुआ प्राणि विवेक को खो बैठता है। विषयासक्त

पुरुष लज्जा को तिलांजलि दे देता है। यह काम की वासना इतनी प्रबल होती है कि इसमें कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक रहता ही नहीं। वह कन्या खिसियाकर बोली- इतना बड़ा संसार पड़ा है। सभी तो मुझसे डरते हैं। सभी तो निर्वीर्य हैं। मैं समझती थी, तुममें कुछ साहस होगा, तुम मुझे स्वीकार करके अपनी गृहस्थी बसा लोगे। बिना घरवाली के घर बनता नहीं। इधर से उधर मारे-मारे फिरते रहते हो। घर का आकर्षक गृहिणी ही तो है। मैंने तुम्हारी भलाई सोची थी, किन्तु तुम मेरे प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर रहे हो। उलटा मेरा ही अपमान कर रहे हो। अत: मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि तुम्हारा कहीं एक जगह पैर न टिकेगा और तुम सदा कुम्हारी के चाक की भाँति चौदह भुवनों में घूमते ही रहोगे।

बहता पानी निर्मला बन्धा गन्दा होय। साधु जन रमते भले, दाग न लागे कोय।

जो जग के सुखों को चाहते हैं, विकार उन्हीं के शरीर में अपना अधिकार जमाते हैं। जो जग की आशा छोड़कर जगतपति के चरणों में लीन हो गये हैं, उनके मन में विकारों के लिये स्थान ही कहाँ? क्योंकि श्रीहरि तो शुद्ध बुद्ध तथा निर्विकार हैं। उनको हृदय में धारण करनेवाले के समीप विकार फटक ही कैसे सकते हैं। मन विकारों के वशीभूत हो जाने से विकारमय बन जाता है और ब्रह्म का चिन्तन करते-करते ब्रह्ममय हो जाता है। सुख-दु:ख का, लाभ-हानि का सम्बन्ध शरीर से है। आत्मा तो इन सबसे रहित अविनाशी एकरस अखण्ड तथा अपराजित हैं। आत्माराम पुरुष को कोई पराजित नहीं कर सकता और विषयासक्त पुरुष को पतन से कोई बचा नहीं सकता, यही शास्त्रीय सिद्धान्त है।

तब उस कन्या ने यवनराज भय को पति बनाने की चेष्टा की, तब भय ने जरा कन्या से कहा कि तू मृत्युलोक में जा और मेरी सेना ले जाकर सारे लोक को भयभीत करके भोग। तेरे साथ मेरा भाई प्रज्वर भी रहेगा, तुम दोनों की सहायता से मैं सारे लोक पर राज्य करूँगा।

नारदजी बोले- हे राजन्। यवनराज भय के सेवक और उसका भाई प्रज्वर तथा काल कन्या जरा इस लोक में विचरण करने लगे। एक दिन घूमते घूमते पुरंजन पुरी में आ धमके। काल कन्या के संग से पुरंजन भी श्रीहीन होकर निर्बल हो गया था। उसके सम्पूर्ण बल वैभव को गन्धर्वों ने पहिले ही लूट लिया था। अब उसके पुत्र, पौत्र, पुत्रवधू भी उसे अनादर की दृष्टि से देखने लगे। उसका पांचाल देश शत्रुओं ने ऊजाड़ दिया। उस पुरंजन की केवल ममता ही स्त्री पुत्रादि में रह गई थी। इसी बीच में यवनराज के भाई प्रज्वर ने उसका नगर जला दिया। नगर को जलता हुआ देखकर उसके सभी सेवक कुटुम्बी भी उसे छोड़कर भाग निकले। अब पुरंजन दुखी होकर रोने लगा। मैं, मेरे पन के भाव से उसकी बुद्धि मारी गई थी। वह सोचने लगा कि मेरे मरने के बाद मेरी स्त्री अकेली इतने बड़े कुटुम्ब का किस प्रकार पालन करेगी? वह मेरी बड़ी सेवा करती थी तथा मेरी आज्ञा का पालन करती थी। मेरे पीछे उसकी न जाने क्या दशा होगी? इसी प्रकार विचार करके वह पुरंजन व्याकुल होने लगा।

नारदजी कहते हैं- राजन्। पुरंजन पुरी को कालकन्या से व्याप्त और अपने घर को यवनों के हाथ में गया देखकर तथाप्रज्वार के उपद्रवों से अत्यन्त पीड़ित वह पुरी की रक्षा करने वाला पाँच फनों वाला सर्प भी अत्यन्त दु:खी हुआ।

वृद्धावस्था आकर प्राप्त हुई जो स्त्रियों को अत्यन्त ही अप्रिय है। इन्द्रियाँ तो शिथिल हो गई किन्तु तृष्णा और भी अधिक बढ़ गई। भोगेच्छा का अन्त नहीं हुआ। कामवासना शान्त नहीं हुई। वासनाओं से ही पुनर्जन्म होता है। वासना ही संसार को बनाती है।

इस क्षण में परिवर्तनशील संसार में श्रेष्ठ ही क्या। सभी श्रेष्ठ हैं। सम्मुख जो भी आ जाय, उसी का जो स्वागत करता है, वही सुखी है। यौवन है तो उसका स्वागत, जरा है उसका भी स्वागत। जीवन का भी स्वागत। जिसकी ऐसी बुद्धि हो जाती है, फिर उसे संसार में बन्धन नहीं। बन्धन तो विषमता में हैं द्वन्द्व में है। जिसने साम्यावस्था को प्राप्त कर लिया है, जो

निर्द्वन्द्व हैं उसे अनुकूलता में हर्ष नहीं प्रतिकूलता में विषाद नहीं। जब तक मनुष्य युवा रहता है, बलवान बना रहता है, तब तक उसे अपने बल पौरुष का अभिमान रहता है, मेरा कोई क्या बिगाड़ सकता है? मेरा सामना कौन कर सकता है? मुझे पराजित करने की सामर्थ्य किसमें है। किन्तु जहाँ निर्बलता आई कि सभी उस पर आक्रमण करने लगते हैं। बलहीन का सहायक कोई नहीं होता, दुर्बल का दैव भी घातक बन जाता है। यह संसार निर्बलों के लिये नहीं हैं। रुकने के लिये नहीं है। रुको मत ठहरने की आवश्यकता नहीं। जीना है तो बलवान् होकर जीओ, नहीं तो मरने को तैयार हो जाओ। आगे बढ़ो या मरो। इस परिवर्तनशील संसार में एक स्थान पर स्थिर कौन रह सकता है?

हे राजन्। ज्ञानी को इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिए किन्तु उसका ज्ञान नष्ट हो चुका था। उसको बलपूर्वक यवनराज के सेवकों ने बाँध लिया और उसे पशु की भाँति बाँध कर ले चले। उस सर्प ने बहुतेरा रोका किन्तु वह असमर्थ रहा तब वह भी साथ चल दिया। उस पुरंजन ने जिन जिन पशुओं को निर्दयता से मारा था वे सब उसे अपने तीक्ष्ण सींगों तथा दातों से मारने, खाने, काटने लगे। पुरंजन को अपनी पत्नी में बहुत आसक्ति थी, वह एक क्षण भी उससे दूर नहीं रहना चाहता था। इसलिये मरते समय में अन्तिम समय में अपनी पत्नी का चिंतन करते-करते शरीर छोड़ा। इसलिये पुरंजन को अगले जन्म में स्त्री बनना पड़ा। पुरंजन को अन्त समय में अपनी स्त्री का ध्यान रहा। मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही हो जाता है। अन्ते या मति: सा गति: यह लोकोक्ति सत्य ही है। अन्त में जिसकी चिन्ता करते-करते मरेंगे, दूसरे जन्म में वही प्राप्त होगा। गृह, द्वार, कुटुम्ब, परिवार, धन, स्त्री जिसमें भी अधिक ममताहोगी, अन्य जन्म में किसी-न-किसी रूप में वे ही मिलेंगे। चित्र-यन्त्र के सामने कितनी ही आकृतियाँ आती हैं सभी अंकित नहीं हो जाती। अंकित वही होती है, जो बटन दबाते समय उसके सम्मुख होती हैं। इसी प्रकार मरते समय जिसकी चिन्ता रहेगी, वही होना पड़ेगा। मरकर पुण्यात्मा स्वर्ग के सुखों को भोगने जाते हैं, पापात्मा नरकों की यातना भोगने जाते हैं। पुण्य समाप्त होने पर कुछ पुण्य शेष रहने पर उन्हें फिर पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ता है, इसी प्रकार पापों का फल भोग लेने पर नरक से भी कुछ पाप शेष रहने पर जीव पृथ्वी पर भेज दिया जाता है। जिनके पाप पुण्य प्राय: समान होते हैं, वे नरक स्वर्ग न जाकर फिर मनुष्य योनि में उसी समय जन्म धारण कर लेते हैं। जब तक भगवान में ध्यान नहीं लगता, यथार्थ ज्ञान नहीं होता, तब तक यह आवागमन का क्रम चौरासी का चक्कर लगा ही रहता है।

अत: वही स्त्री योनि में विदर्भराज की कन्या वैदर्भी के रूप में उत्पन्न हुई। नारदजी कहते हैं- राजन्, राजा पुरंजन उस अपनी स्त्री का अन्त में चिंतन करते हुए मरने से राजसिंह विदर्भ के घर में बड़ी सुन्दर कन्या के रूप में उत्पन्न हुआ।

नारीमहँ चित फँस्यो भायो नृप नरतें नारी। नृप विदर्भके महल, भई कन्या सुकुमारी।।
भई सयानी पिता स्वयम्बर साज सजाये। रूप ख्याति सुनि देश देशके नरपति आये।।
पाण्ड्य देशके छत्रपति, मलयध्वज कन्या वरी। पति पायो प्रमुदित भई, पटरानी नृपने करी।।

उसका विवाह पाण्डव नरेश मलयध्वज के साथ हो गया और सात पुत्र उत्पन्न हुए तथा प्रत्येक पुत्र के दस दस करोड़ पुत्र हुए। मलयध्वज की बड़ी पुत्री श्यामा का विवाह अगस्त्य मुनि के साथ हुआ। उसके द्रढ़च्युत तथा द्रढ़च्युत के इध्मवाह पुत्र उत्पन्न हुआ।

राजा मलयध्वज पृथ्वी को अपने पुत्रों में बाँट कर आप स्वयं तपस्या करने वन को चले गये। उनके साथ वैदर्भी भी गई, जो सदा सेवा करती थी। राजा मलयध्वज ने कठिन तपस्या करके भगवान श्रीहरि की आराधना की। भगवान सर्वव्यापक हैं। वे घट-घट में व्याप्त हैं। जहाँ भी चित्त एकाग्र हो जाय, जिसमें भी भगवत् बुद्धि हो जाय, वहीं श्रीहरि प्रकट हो जाते हैं।

अग्नि सर्वव्यापक है, जहाँ भी दो लकड़ियों का सावधानी से श्रमपर्वूक मन्थन किया जाय, वहीं अग्नि उत्पन्न हो जाती है और समस्त उपाधियों को भस्म करके फिर अपने सत् स्वरूप में विलीन हो जाती है। आवश्यकता है एकाग्रता की तन्मयता की। जहाँ चित्त शुद्ध में तल्लीन हुआ तो उसकी चंचलता मिटकर ब्रह्मरूप हो जाती है। मन ही मनुष्य के बन्धमोक्ष का कारण है, विषयासक्त मन बन्धन को बढ़ाता है, शुद्ध हुआ मन सच्चिदानंद स्वरूप को प्राप्त कराता है।

एक दिन वे भी चल बसे, तब वह वैदर्भी अकेली रह गई और पति शोक से व्याकुल होकर रोने लगी। नारदजी कहते हैं- राजन्। जब विदर्भनन्दिनी अपने पति के साथ सती होने का विचार कर रही थी तो उसी समय उसके पूर्वजन्म का कोई पुराना मित्र आत्मज्ञानी ब्राह्मण वहाँ आया और उस रोती हुई वैदर्भी को मीठी वाणी से समझाते हुए कहने लगा।

जब वह विलाप कर रही थी तब उसके पास एक ब्राह्मण आया।

ब्राह्मण बोला- हे मनस्वनि। तू कौन है, किस की बेटी है, जिसके लिए तू विलाप कर रही है, यह कौन है? तू मुझे भूल गइ है मैं तेरा पुराना मित्र हूँ। तुम्हें याद होगा कि तुम्हारा एक अविज्ञात नाम का मित्र था।

अरे सखा हौं मित्र तिहारो हंस पुरातन। विषय भोगमहँ फँस्यो भुलाओ रूप सनातन।।

नहीं पुरंजन मित्र। न रानी राजा हो तुम। मानसके हैं हंस एक ही दोनों तुम हम।।

हे सुभगे। पहिले हम तुम दोनों का निवास एक ही स्थान पर था किन्तु तुम विषय भोगों की लालसा से मुझे त्याग कर पृथ्वी पर चले आये। तुमने नवद्वार का महल देख कर उसमें निवास करना स्वीकार कर लिया। उसमें एक द्वारपाल, तीन परकोटे, छ: वेश्यकुल तथा पाँच बाजार थे। उसकी स्वामिनी एक सुन्दरी थी।

हे राजन्। इन्द्रियों के पाँच विषय, पाँच बगीचे, नव इन्द्रियाँ, छिद्रद्वार थे, अन्न, तेज, जल तीन परकोटे थे। मन सहित पाँचों इन्द्रियाँ छ: वैश्यकुल थे, कर्म करनेवाली पाँच कर्मेन्द्रियां व पाँच बाजार थे बुद्धि उस नगर की स्वामिनी थी। हे देवी। तुम न विदर्भराज की बेटी हो और न यह पड़ा हुआ मलयध्वज तुम्हारा पति है, पहिले तुम पुरंजनी के पति भी नहीं थे, पहिले तुम पुरुष रूप में थे। अब तुम स्त्री रूप में हो। यह मेरी सब कुछ माया है। वास्तव में तुम न पुरुष थे, न स्त्री थे, तुम हंस रूपी जीवात्मा थे। तुम अपने वास्तविक स्वरूप का ध्यान करो। मैं ईश्वर हूँ तुम जीवात्मा हो, तुम विचारपूर्वक देखो तुम में और मुझ में कोई भेद नहीं है। जो तुम हो वही मैं हूँ। मुझ में तुम में समानता है। तुम यह कहोगे कि तुम इन बातों को जानते हो और मैं नहीं जानता हूँ। तो इसका कारण केवल उपाधि भेद है। एकात्मा माया के अधीन है, इसलिए वह अल्पज्ञ है, दूसरा माया का अधीश्वर होने के कारण सर्वज्ञ है। हम दोनों में यही भेद है, मैं सर्वज्ञ हूँ, तुम अल्पज्ञ हो, ईश्वर और जीवात्मा में यही भेद है। नारद बोले- राजन्, सम्पूर्ण प्राणियों के सबसे श्रेष्ठ सुहृद् श्रीहरि ही हैं। उन्हें सुहृद् समझ लेने पर जीव को शाश्वती शान्ति की उपलब्धि हो जाती हैं उनको अपने पुरुषार्थ से किसी नाम, गुण या कर्मोंद्वारा कोई प्राप्त करना चाहे तो नहीं प्राप्त कर सकता। वे कृपा साध्य हैं। जिसके ऊपरभी कृपा करें। उनकी कृपा की प्रतीक्षा करना ही जीव का एकमात्र साधन है।

हे राजन्। परमात्मा रूपी ब्राह्मणों के इस प्रकार समझाने पर भटके हुए जीवात्मा को भूला हुआ ज्ञान पुन: प्राप्त हो गया। तू अपनी उड़ान को भूल गया है। यह जीवात्मा जब परमात्मा को नहीं जानकर माया के गुणों में फंस जाता है। तब यह जीव देह अभिमान से परवश होकर सात्विक, राजस, तामस कर्म किया करता है। उन कर्मों से क्लेश देनेवाले लोकों में जाता है। यह प्राणी दु:ख से कभी नहीं छूट सकता। कर्मोंकी वासना को कर्म ही मिटा दे, ऐसा नहीं हो सकता। एक स्वप्न के बाद दूसरा स्वप्न दिखने लगता है तो पहला स्वप्न दूसरे स्वप्न को दूर नहीं कर सकता। यद्यपि स्वप्न असत्य है। इसी

प्रकार यह संसार मिथ्या है, जब तक विषयों का ध्यान रहेगा तब तक वह मिट नहीं सकता।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो माया सब भयहुँ गोसाईं, बंध्यो कीट मर्कट की नाँई।।

प्राचीनवर्हि तुम ही पुरंजन हो। परमात्मा को भूलकर संसार में पड़े हो, इसलिए अपने शरीर के लिए तुम इतने बड़े अत्याचार कर रहे हो। राजा प्राचीनवर्हि बोले- हे ब्रह्मन्। मैं आपके इस तात्पर्य को भली प्रकार न समझ सका। कृपा कर इसका अर्थ समझाइये। श्रीनारदजी बोले- हे राजा। वह पुरंजन नाम का जो राजा था वह जीवात्मा है। जैसी-जैसी वासना और वासनाओं के अनुसार कर्म करता है उसके अनुसार इसके शरीर का विधान बनता है।

राजा पूछें- प्रभो। ज्ञान अति गूढ़ सुनायो। कौन पुरंजन, हंस,कौन परम समझ न आयो।।
मुनि बोले- यह जीव पुरंजन धी है नारी। सखा कर्ण हैं सबहिं वृत्ति सब सखी विचारी।।
देह पुरी हरि हंस हैं, प्राणी पंच फन स्याँप हैं। नौ दरवाजे छिद्र नौ, जीव संग मन जात है।।

जो अपने रहने के लिए अनेक शरीररूपी नगर बनाता है। इसीलिये उसका नाम पुरंजन कहा गया। वह अविज्ञात नाम का उसका मित्र परमात्मा है। जिसे पुरुष किसी प्रकार के नाम गुण अथवा कर्मों से जान नहीं सकता। नौ द्वार दो हाथ दो पैरों का यह मनुष्य शरीर है। बुद्धि तथा अविद्या पुरंजनी नाम की स्त्री समझो। दस इन्द्रियाँ उसके मित्र हैं। इन्द्रियों की प्रवृत्ति उस पुरंजनी की सहेलियाँ हैं। पाँच प्रकार की वायु पाँच फणों का सर्प है। मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ ग्यारह बलवान योद्धा है, शक इत्यादि पाँच विषय पांचाल देश नाम से कहे गये हैं। जिस देश में यह नव द्वारों का नगर स्थित है उस नगर में नौ छिद्र अर्थात् द्वार हैं, दो नेत्र गोलक, दो नासिका छिद्र, दो कर्ण छिद्र, एक मुख छिद्र, एक लिंग और एक गुदा ये नव द्वार हैं। शरीर रूपी यह रथ है। जिस पर सवार होकर यह जीवात्मा शिकार को गया। उसमें ज्ञानेन्द्रिय रूपी पाँच अश्व लगे हुए हैं। पुण्य, पाप दो प्रकार के पहिये हैं। तीनों गुण सत्व, रज, तम, तीन ध्वजा हैं, पाँच प्रकार की वायु डोरियाँ हैं। मन बाग डोर है, तथा बुद्धि उसको चलानेवाला सारथी है। बुद्धि के बहकावे में आकर चलनेवाला नर नहीं वानर है। जिधर बुद्धि गयी उधर ही दौड़ पड़े यह वानर का काम है। अव्यवस्थित बुद्धि की सलाह से प्राणी नरत्व की ओर से पशुत्व की ओर चला जाता है। शास्त्र जिधर चलने की सलाह दे, उधर चले वही नर है।

हृदय निवास स्थान है। सुख:, दु:ख जुये हैं। इन्द्रियों के विषय अस्त्र, शस्त्र हैं। सप्त धातु तथा त्वचा पर्दे हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ उस रथ की चाल हैं। इस रथ पर बैठकर जीवात्मा मिथ्या विषयों की ओर दौड़ लगाता है और उन इन्द्रियों के विषयों को भोगता है।

वह सम्वत् सर चण्डवेग नाम का गन्धर्व है। उसके आधीन तीन सौ साठ गन्धर्व रूपी दिन हैं तथा तीन सौ साठ गन्धर्विणियाँ रूपी रात्री हैं। वे क्रम से चक्कर लगाकर मनुष्य की आयु को नष्ट करते हैं।

वह काल कन्या वृद्धावस्था है जिसे कोई पसन्द नहीं करता और जो मृत्यु की बहिन है। ज्वर आदि रोग उस मृत्यु के भाई हैं। यह जीवात्मा अज्ञानवश दैविक, दैहिक तथा भौतिक तापों को भोगता है और सौ वर्ष तक शरीर में पड़ा रहता है। यह निर्गुण होते हुए भी मैं मेरे पन के अभिमान से कर्मबन्धन में बँध जाता है, यह स्वयं प्रकाश होते हुए भी अज्ञानवश परमात्मा को भूल जाता है और प्रकृति के गुणों में बँध जाता है। प्रकृति के गुणों के कारण वह अभिमान के वशीभूत हो जाता है और सात्विक, राजस, तामस कर्म करने लगता है। उसी के अनुसार योनियों में जन्म लेकर चक्कर लगाता है। सात्विक कर्मों

से उत्तम लोक प्राप्त करता है। राजस तथा तामस गुणों से अनेक प्रकार की योनियाँ भोगता है। कभी वह जीवात्मा मनुष्य तो कभी स्त्री, कभी पशु तथा पक्षी। इस प्रकार वह चौरासी लाख योनियों को भोगता है। उसकी आधि दैविक आधि भौतिक तथा आध्यात्मिक इन तीन प्रकार के कष्टों से कभी मुक्ति नहीं हो सकती। वह जो जो कार्य करता है उनका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। केवल कर्म बन्धन से मुक्त होने का उपाय निष्काम भाव से कर्म करते हुए परमात्मा में सुदृढ़ भक्ति होना है। यह भक्ति भाव भगवान की कथाओं, उनके गुणानुवाद से उत्पन्न होता है। सम्पूर्ण प्रजापति ब्रह्मा, शंकर, मनु, सनकादिक, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, ब्रह्मर्षि, महर्षि, देवर्षि कर्म कुशल होने पर भी तप उपासना तथा समाधि के द्वारा उन सर्वात्मा प्रभु को ढूँढ़ ढूँढ़ कर थक गये लेकिन उसे आज तक न प्राप्त कर सके।

अरे संसारी मनुष्यों। तुम भगवान के चरण कमल का भजन करो। यह भजन तभी सफल होगा जब ये दोनों वस्तुएं मनसे त्याग कर दोगे- परायी स्त्री को बुरी दृष्टि से देखना, दूसरे की सम्पत्ति को हड़पना। जरावस्था मनुष्य को विरूप कर देती है। शरीर सूख जाता है, चलता फिरना कठिन हो जाता है, दाँत गिर जाते हैं, दृष्टि कम हो जाती है बधिरता बढ़ने लगती है, मुख से लार टपकती है। सगे-सम्बन्धी भी कोई बात नहीं सुनते, पत्नी सेवा नहीं करती हाँ खेद है अधिक क्या कहें पुत्र भी जरा से आक्रान्त पिता को शत्रु की तरह देखता है। अंग शिथिल हो गया, बाल पक गये, मुख में एक भी दाँत नहीं रहा, बूढ़ा लाठी का सहारा लेकर चलता है, फिर भी आशा उसका पिण्ड नहीं छोड़ती। जब तक मनुष्य धनोपार्जन में समर्थ रहता है तभी तक उसका परिवार उससे अनुराग करता है। वृद्धावस्था आने पर घर में कोई भी उसकी बात नहीं पूछता। अवस्था ढलने पर कामवासना नहीं रहती, जल के सूखने पर तालाब भी तालाब नहीं कहा जाता, धन-सम्पत्ति का नाश होने पर परिवार साथ नहीं देता एवं आत्मस्वरूप का ज्ञान होने पर फिर संसार भी नहीं रहता इसलिए अरे मूढों। गोविन्द को भजो, गोविन्द को भजो पुन: गोविन्द को भजो। तभी यह संसार से निस्तार हो सकता है।

बुद्धिरूपी पत्नी के बहकावे में आकर पुरंजन उसका गुलाम हो गया और मनमाना करने लगा। स्वेच्छाचारी हो गया, अपने अविज्ञात सखा की परवाह नहीं करके जंगल में शिकार खेलने चला गया।

जीव यदि ईश्वर को समझ ले तो उसका जीवन मंगलमय हो जायेगा। ईश्वर ही एक सच्चा मित्र है जो स्मरण मात्र से सुखदु:ख में हर समय साथ रहता है। स्वार्थी जीव की संज्ञा कुटिल है। जो कुटिल है उसकी गति नहीं। कुटिल जीव ईश्वर को जानता तो है पर मानता नहीं। इस नवद्वार वाले शरीर में इन्द्ररूपी उपवन का आनन्द लेती हुई विचरण करनेवाली स्त्री रूपी ममता है। मता और जीव एक-दूसरे के इच्छुक है। इस एक-दूसरे के संयोग से विषयों की निरन्तर वृद्धि होती रहती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँच विकार है। नौ द्वारोंवाला यह मानव-काया रूपी नगर में पञ्च विकारों के निवास करने से इस सुन्दर देवोपम काया को पाञ्चाल देश कहा जाता है। इसका रक्षक ५ फणोंवाला सांप है। पंच वृत्तियोंवाला प्राण ही इस शरीर का रक्षक है। इस शरीर के अन्त:पुर में निवास करनेवाला मन है। इसी के द्वारा हर्ष-विषाद की उत्पत्ति होती है। अस्थि, मांस, रक्त, रस आदि सप्त धातुओं से बना हुआ यह शरीर रथ है। पाप-पुण्य इसके दो पहिये हैं। यही पाप-पुण्य जीवन का आधार है। सत्, रज और तम गुण इस शरीर रूपी रथ की ध्वजा है। बुद्धि इस रथ का सारथी है। इस सारथी के हाथ मनरूपी बागडोर है। यह बुद्धि शुद्ध है जो मन को अपनी इच्छा से नहीं चलने देती। मन का स्वतन्त्र होना ही दिव्य जीवन को नष्ट करना है। मन सद्बुद्धि के अधीन रहे इसके लिए नेत्रों से, अश्लील तत्व या अश्लील रूप न देखें। श्रवणपुट से अश्लील-संगीत एवं बातों को नहीं सुने। जो कुछ नेत्रोंसे देखते है, कानोंसे सुनते है उसका प्रभाव मन पर अवश्य पड़ता है।

इस स्वप्नवत् शरीर रूपी रथ पर विराजमान जीव मृगतृष्णा के समान मिथ्या विषयों की ओर दौड़ लगाता है। जीव

अभिलाषा पूर्ति के निमित्त ऊँच-नीच का विचार कर पाने में असमर्थ होकन अनीति मार्ग को स्वीकार करता है। इसी प्रकार एक-एक दिन करके वर्ष पूरा कर लेता है। पापों का गट्ठर बाँध लेता है। चण्डवेग ने अपने तीन सौ साठ सैनिकों के साथ पाञ्चाल देश पर आक्रमण किया। अर्थात् एक वर्ष में ३६० दिन होते हैं। यह पूरे वर्ष की संज्ञा है। यही वर्ष एक-एक दिन करके अपनी आयु कम करता जा रहा है। जो दिन बीत गया लाख प्रयत्न करने पर वापस नहीं आता। बीता हुआ समय ही अन्तकाल है। जरावस्था (बुढ़ापा) ही कालकन्या है। कन्या जब अपने घर से विदा होकर पहली बार ससुराल जाती है उस समय स्वयं पारिवारिक ममता में रोती है, दूसरों को रुला के जाती है।

बुढ़ापा आनेपर कुत्ते से भी ज्यादा बदतर स्थिति आ जाती है। कुत्तेको तो समय से भोजन तो मिल जाता है लेकिन घर में बेटा और बहू से बुढ़े आदमी को पानी भी नहीं मिलता। पुरंजन की पत्नी में अत्यधिक आसक्ति होने के कारण अपनी स्त्री का चिंतन करते उसने शरीर छोड़ा इसलिये अगले जन्म में वह स्त्री बना।

अंतिम समय में जिसकी स्मृति होती है, देह त्यागकर जीवात्मा उसी योनि को प्राप्त होता है। यह जीवात्मा वस्तुत: न विषय है, न इन्द्रिय है, न अन्त:करण है और न प्रकृति है। मात्र स्वयं प्रकाश निर्गुण है। स्वयं निर्विकार होते हुए भी शरीर धर्म को अपने में अध्यास करके (मिला हुआ मानकर) अपने स्वरूप को भूला हुआ है। प्राणी चाहे साधु हो या संन्यासी, गृहस्थ हो या ब्रह्मचारी अपने-अपने कर्मानुसार स्वर्ग-नरक का भोग भोगता है।

जीवन धन्य तभी होगा जब अज्ञान न रहे। परब्रह्मनिष्ठ एवं वेद के पारगामी विद्वान गुरुदेव में परम भक्ति हो तभी अज्ञान दूर होता है। अब प्रश्न है कि भक्ति कैसे प्राप्त हो? इसके उत्तर में कहते हैं कि उदार-हृदय एवं साधु स्वभाव भक्तजनों द्वारा श्री नारायण की कथा श्रवण-मनन करने से भक्ति पुष्ट होती है। नारदजी आगे कहते हैं कि भगवान की कथा जैसा सुना गया वैसा ही भगवान का ध्यान भी करना चाहिए। अन्त:करण में ध्यान करने से भगवान जीव पर दया करते हैं। इसी के परिणाम से अपने इन्द्रिय दोषजन्य भावों का त्याग होता है। त्याग और वैराग्य से भक्ति पुष्ट होती है। सच्चा कर्म और सच्ची विद्या वही है कि मृगमरीचिका से मन उपराम होकर जिससे भगवान् में मन संलग्न हो जाये।

वेदविहित जितने भी यज्ञादि कर्म हैं, वे सब भिन्न भिन्न देवताओं के रूप में परमात्मा को ही प्राप्त होते हैं, लेकिन उनके स्वरूप को वे भी नहीं जानते हैं। भगवान जिस जीव पर जिस समय कृपा करते हैं उसी समय वह कर्म बन्धन से छूट जाता है।

हे राजन्। तुम इन कर्मोंमें परमार्थबुद्धि मत करो। ये सुननेमें ही प्रिय जान पड़ते हैं, परमार्थका तो स्पर्श भी नहीं करते। ये जो परमार्थवत् दीख पड़ते हैं, इसमें केवल अज्ञान ही कारण है। जिससे श्रीहरिको प्रसन्न किया जा सके वही वास्तव में कर्म है। कर्म या उपासना का रहस्य किसीको पता नहीं है, विद्या भी वही है जिससे भगवानमें चित्त लगे। जिससे किसीको अणुमात्र भी भय नहीं होता, वही उसका प्रियतम आत्मा है ऐसा जो पुरुष जानता है वही ज्ञानी है और ज्ञानी है वही गुण एवं साक्षात् श्रीहरि है।

अब मैं तुम्हें कल्याण के लिये एक गुप्त साधन कहता हूँ उसे सुनो। एक पुष्प वाटिका में एक हिरण मस्त होकर अपनी हिरणी के साथ विहार करता फिरता है। वह नई नई दूब चबाता है। उसके सामने फाड़ खाने वाले भेड़िये उसे मारने को ताक लगा रहे हैं। उसके पीछे एक व्याध बाण चढ़ाकर मारने को प्रस्तुत है किन्तु वह हिरण अपने विषय भोगों के आनन्द में इतना मस्त है कि उसे इन बातों का पता ही नहीं है। हे राजन्। इसका तात्पर्य सुनो, वह काल ग्रसित हिरण आप ही हो। तुम पुष्पों की भाँति इन स्त्रियों के सौन्दर्य में लुब्ध रहते हो। इन स्त्रियों को भोगते रहते हो तथा अपने मन को उन स्त्रियों में लगा रक्खा है, पीछे काल बाण लेकर मारने को प्रस्तुत है। किन्तु तुम स्त्री, पुत्र आदि में इतने मस्त हो कि तुम्हें काल की कोई

परवाह नहीं हैं। अब तुम गृहस्थ को त्यागकर परमात्मा में लीन हो जाओ। राजा प्राचीनवर्हि बोले- हे ब्रह्मन्। आपने जो उपदेश मुझे दिया है वह जीव के कल्याण का मार्ग है।

ये आचार्य लोग वास्तव में कल्याण मार्ग को नहीं जानते। इसीलिए इन्होंने मुझे यह उपदेश नहीं किया, उन्होंने मुझे कर्मकाण्ड में ही अब तक रत रक्खा। अब मैं सबको त्याग कर कर्म रहित धर्म का पालन करूँगा।

हे राजन्। मन के द्वारा मनुष्य के तीनों जन्मों का पता चलता है। कभी कभी मनुष्य स्वप्न में ऐसी अनेक बातें देखता है जो उसने इस जन्म में कभी नहीं देखीं तो इसका कारण यही है कि उसने पूर्व जन्म में वे वस्तुयें अवश्य देखी हैं। जीवात्मा सदा मन के साथ रहता है बुद्धि, मन, इन्द्रियों से युक्त यह लिंग देह बना हुआ है। जब तक जीवात्मा के अन्दर से, मैं मेरे पन का अभिमान दूर नहीं हो जाता, तब तक उसे जन्म मरण के चक्कर में फँसा रहना पड़ता है।

हे राजन्। पंच तन्मात्राओं से निर्मित सोलह तत्वोंवाला यह शरीर लिंग शरीर कहलाता है, यह चेतन शक्ति से युक्त होने पर जीवात्मा कहा जाता है। यही भिन्न भिन्न शरीरों को धारण करता है तथा त्यागता है। यही जीवात्मा हर्ष, शोक, दु:ख, सुख आदि का अनुभव करता है। जिस प्रकार तृण आदि में रहनेवाली जौंक जब तक दूसरे तृण को प्राप्त कर लेती तब तक पहले तृण को नहीं छोड़ती है। इसी प्रकार जीवात्मा शरीर त्याग कर जब तक दूसरा ग्रहण नहीं करता, तब तक पहले शरीर के अभिमान को नहीं त्यागता है। अत: यह लिंग शरीर ही जन्म ग्रहण करने का कारण होता है। इसप्रकार पंचतन्मात्राओंसे बना हुआ तथा सोलह तत्वोंके रूपमें विकसित यह त्रिगुणमय संघात ही लिंगशरीर है। यही चेतनाशक्तिसे युक्त होकर जीव कहलाता है।

नारद बोले- राजन्, वास्तव में कर्म वही हैं, जिससे श्री हरि को प्रसन्न किया जाये। विद्याभी वही है जिसमें प्राणी भगवान के चरणोंके चिन्तन में लग जाये। सम्पूर्ण देहधारियोंकी आत्मा सारे विश्व के नियामक एवं स्वतन्त्र कारण एकमात्र हरि ही हैं। उन्हींसे सारे विश्व का कल्याण हो सकता है।

नारद बोले- राजन्, यह जो पुरंजन है, वह जीवात्मा है। उसीकी वासनासे यह शरीर प्रकट होता है। शरीर कई तरहके होते है- एक, दो, तीन, चार पाँवोंवाले, बहुत पाँववाले और बिना पाँववाले। ईश्वर ही अविज्ञातनामक सखा है। नव द्वारवाला गाँव शरीर है। इसमें बुद्धि प्रमदा है। इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ सखियाँ हैं। मन वृहद्बल है। पाँच विषय पाँचाल है। इसमें सात दरवाजे ऊपर हैं और दो दरवाजे नीचे हैं। चार सन्धि इस शरीरमें दो हाथ और दो पाँव। अन्त:पुर हृदय विषूचि मन है, उसीसे जीव मोह आदिको प्राप्त होता है। बुद्धि स्वप्न आदिमें जैसा रूप धारण करती है वैसा ही मनुष्यको मालूम पड़ता है। यह आत्मा न विषय है, न इन्द्रिय है, न अन्त:करण है और न प्रकृति। केवल निर्गुण है। पुरुष स्वयंप्रकाश है। आत्माकी स्वयंप्रकाश का योगमें भी और सांख्यमें भी है। यह द्रष्टा पुरुष तो सबसे विलक्षण है। अपनी आत्माको ब्रह्मके रूपमें जानना, यह वेदान्तका सिद्धान्त है। जबतक परमगुरु भगवत्स्वरूप को नहीं जानता तब तक यह जीव प्रकृतिके गुणोंमें आसक्त हो जाता है। अपनेको केवल असंख्य द्रष्टा साक्षी जान लेनेसे भी या निर्मल उज्ज्वल एक इकाई जान लेनेसे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति नहीं होती। अपने देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न, सजातीय, विजातीय, स्वागत-भेदसे रहित अद्वितीय ब्रह्म जाननेसे आत्माका कल्याण होता है। लोग आत्माको न जाननेके कारण ही प्रकृतिके गुणोंमें लग जाते हैं और जो-जो कर्म करते हैं उसीके अनुसार लोकोंकी प्राप्ति होती है। ये कहीं औरत, कहीं मर्द बनते हैं। मनुष्य स्त्री, पुरुष, नपुंसक, पशु, पक्षी कोई भी रूप धारण कर सकता है। जैसे भूखा कुत्ता दरवाजे-दरवाजे भटकता है, वैसे ही आदमी भी अपनी वासनाकी पूर्तिके लिए इधर-उधर भटकता है।

इस संसार में दु:ख ही दु:ख है। अत: दु:खसे छूटने के लिये जो उपाय किये जाते हैं वे भी दु:खरूप ही होते हैं। यह जीव

भटकते रहता है। यह मन ही अपना सारा खेल खेलाते है। अपने स्वरूप के अज्ञान से ही सारा दु:ख प्राप्त होता है और भगवान की भक्ति के बिना इस दु:ख में निवृत्ति नहीं हो सकती। भगवान वासुदेवके प्रति एकाग्र भक्ति करनी चाहिए तब सच्चे ज्ञान और वैराग्य की उत्पत्ति होगी। ज्ञान, वैराग्य हुए बिना कल्याण नहीं होता। यह ज्ञान और वैराग्य दोनों ही भक्ति के पुत्र है। भगवान का जिसपर अनुग्रह होता है वह लोकनिष्ठा और वेदनिष्ठासे ऊपर उठकर उनका भजन करता है। इसलिए प्राचीनबर्हि, तुम यज्ञ-यागादिको ही सब कुछ मानकर मत बैठो। लोग ज्यादा कर्मकाण्डमें फँस जाते हैं, उनकी छातीके भीतर उसका धुआँ भर जाता है। जब यह धुआँ हृदयमें भर जाता है तब परमेश्वरपर दृष्टि नहीं जाती। वे परमात्माको पहचानते नहीं और पशुहत्या करते है। लेकिन असलमें कर्म तो वही है जिससे भगवान प्रसन्न हो और विद्या वही है जिससे बुद्धि भगवान्में लगे। अगर तुमने यह समझ लिया तो तुमने वेदोंका तात्पर्य जान लिया। जो इस बातको जानता है कि परमात्मा हमारा प्रियतम है, आत्मा है, हमारे हृदयमें बैठा हुआ है, वही विद्वान है, वही गुरु है, वही हरि है। तुम भी स्त्री के साथ बैठे हुए हो और काल घात लगाये बैठा है। यह दशा केवल तुम्हारी नहीं सब जीवोंकी है। जीवको भोग चाहिए और मूत्रेन्द्रियोंको भोग चाहिए। गृहस्थाश्रममें ये दो भोग ही ज्यादा है- एक तो रसनेन्द्रिय और दूसरा जननेन्द्रिय। प्राचीनबर्हि ये रात और दिन भेड़ियेकी तरह आयुका हरण कर रहे हैं और यह काल तुम्हारा निशाना साधकर बैठा हुआ है। अपनी वृत्तिको बाहर न जाने दो। इसपर नियन्त्रण हो। मनुष्य जिस शरीरसे कर्म प्रारम्भ करता है, वह शरीर तो यहीं रह जाता है, किन्तु परलोकमें जानेवाला शरीर दूसरा होता है और वह ही भोग भोगता है। मनुष्य पाप-पुण्य करता है स्थूल-शरीरसे और उसका सूक्ष्म शरीर ही स्वर्ग-नरकमें जाकर उसके फलको भोगता है। नारद बोले- प्राचीनबर्हि पाप-पुण्य, हड्डी, मांस-चाम आदिसे नहीं होते, उनका तो कोई कर्ता ही होता है जो अपने अन्त:करणपूर्वक करता है। बिना संकल्पके तो न पुण्य होता है और न पाप होता है। पापमें निषिद्धताकी प्रधानता होती है। निषिद्ध कर्म चाहे संकल्पसे करें चाहे बिना संकल्पके करे, यदि जान-बूझकर निषिद्ध कर्म करता है तो उसमें उसको पाप लगेगा। वस्तुमें पाप नहीं होता, कर्म में पाप नहीं होता, मनमें पाप नहीं होता तो आत्मामें भी पाप नहीं होता। लेकिन जब मनुष्य जानबूझकर शास्त्रके विरुद्ध आचरण करेगा, मना किया हुआ कर्म भी करेगा तब उसको पाप लगता है। शास्त्रोक्त कर्म करनेपर मनुष्य को पुण्य मिलता है। भाव बढ़िया होनेपर भी निषिद्ध वस्तुके स्पर्शसे पापकी उत्पत्ति होती है। शास्त्रद्वारा ही पाप और पुण्यका निर्णय किया जाता है। अपने मन से पाप और पुण्यका निश्चय नहीं होता। यही वेद-विधि है। जिसके लिए जिस देशमें, जिस कालमें, जिस वस्तुसे जो करनेका विधान है, वह करना पुण्यजनक है और जिसका निषेध है वह पापजनक है। शास्त्रसे ही पाप-पुण्यकी सिद्धि होती है। वे वस्तुनिष्ठ नहीं, शास्त्रनिष्ठ है। असलमें पाप-पुण्य रूप विहित-निषिद्ध कर्म सूक्ष्म देहसे ही होते हैं, स्थूल शरीरसे नहीं होते। स्थूल शरीर तो यहीं रह जाता है, किन्तु लिंग-देह परलोकमें जाता है। स्थूल शरीर यहीं कहीं छूट जाता है मनुष्य परलोकमें चला जाता है। वहाँ जाकर सूक्ष्म शरीर ही कर्म करता है और सूक्ष्म शरीर ही फल भोगता है।

जिससे भगवान प्रसन्न हो वही कर्म है और जिससे भगवान में निश्चल मति हो वही विद्या है। दैहिक, दैविक और भौतिक इन तीन प्रकार से दुखों में से कोई न कोई दु:ख जीव को सदा बना ही रहता है। चाहे कितना ही प्रतिकार क्यों न करें सर्वथा दु:ख की निवृत्ति नहीं होती। लोक में जो प्रतिकार किये जाते हैं, वे भी सब दु:ख रूप ही हैं। जैसे भारवाहक भारी बोझा सिरसे वहन करता है थकने पर वह उसे कन्धे पर रख लेता है, कन्धे से पीठ पर पीठ से कमर पर किन्तु उसका भार सर्वथा निवृत्त नहीं होता। उसी प्रकार जितने भी उपाय दु:ख निवृत्ति के लिये किये जाते हैं, वे सर्वथा दु:ख निवर्त्तक नहीं होते। संसार की निवृत्ति भगवान में निश्चल भक्ति योग से ही हो सकती है। वह भक्ति योग नित्य श्रद्धापूर्वक भगवद् कथा श्रवण से

होता हे। यह कथा भक्तों के समाज में ही सुलभ होती है। भक्तों के समाज में विद्वान महात्माओं के मुख कमल से नि:सृत भगवान के मंगलमय चरित्रों की अमृतमयी नदियाँ चारों ओर बहा करती हैं जो उनका निरन्तर आदरपूर्वक सेवन करते हैं, उन्हें भूख, प्यास, भय, शोक, मोह आदि सांसारिक दु:ख पीड़ा नहीं पहुँचा सकते।

जिस कर्म से हरि प्रसन्न न हो वह तो कुकर्म है। वास्तविक विद्या वही है जिसके द्वारा श्रीहरि के पादपद्मों में चित्त लगे। श्रीहरि ही सम्पूर्ण देहधारियों के आत्मा नियामक और स्वतन्त्र कारण हैं। अत: उन कल्याण के निधान सबके साक्षी श्रीमन्नानारायण के पुनीत पादपद्म ही प्राणियों के एकमात्र आश्रय हैं। आप नित्य ही अनुभव करते हैं, हम सदा दूसरों से डरा करते हैं, अपने आप से कोई नहीं डरता, क्योंकि अपना आप सभी को प्यारे से भी प्यारा है। आत्मा से बढ़कर संसार में कोई प्यारी वस्तु नहीं। स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, गृह, कुटुम्ब में वास्तव में प्रियता नहीं, आत्मा के सम्बन्ध से ही प्रियता है।

जो करने योग्य यथार्थ कार्य है, उसे तो जीव करता नहीं, व्यर्थ के कार्यों में फँसा रहता है। स्मरणीय, चिन्तनीय, श्रवणीय, वन्दनीय एक मात्र श्रीहरि ही हैं। उन्हीं के नाम का कीर्तन करो, उन्हीं की कथाओं का श्रवण करो, उन्हीं की पूजा अर्चना करो, उनका ही ध्यान करो। सर्वदा उन्हीं में चित्त को फँसाये रखो तुम संसार के दु:खों से निश्चय ही उपरत हो जाओगे। अनादि कर्म वासना जीव के साथ लिपटी है। नित्य-प्रति यह बढ़ती ही जाती है, जैसे मूलधन से नित्य नित्य व्याज बढ़ती है। मूलधन का नाश हो जाय तो व्यास अपने आप बन्द हो जायगी। इसी प्रकार ज्ञान होने पर भगवत् कृपा से संचित कर्मों का नाश हो जाय तो प्रारब्धऔर क्रियमाण स्वयं ही नष्ट हो जायँगे।

राजन्। इन्द्रियजन्य विषयतें चित्त हटाओ। मनकूँ करि एकाग्र कृष्ण चरननिमहँ लाओ।।
काल भेड़िया खाय मृत्यु पीछे ते मारे। किंकर्तव्य विमूढ़ बन्यो नर नाहिँ विचारे।।
नित चर्चा जहँ विषयकी, बसी कामिनी चित्तमहँ। तजि ताकूँ श्रीहरि भजो, मन न रहे गृह चित्तमहँ।।

मनुष्यका मन ही बन्धन है और मन ही मोक्ष है। नारद बोले- राजन्, जब तक अविद्या है, तब तक जीव कर्मबन्धन में लगा रहता है। इसलिये यदि इस कर्मबन्धनको छोड़ना चाहो तो सर्वात्मना भगवानका भजन करो। भजन की सबसे उत्तम रीति यह है कि इस सम्पूर्ण विश्वको भगवानका स्वरूप समझो क्योंकि इसीमें उसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है। जैसे मिट्टीसे घड़ा बनता है, मिट्टीमें ही रहता है और मिट्टीमें ही मिलता है, इसीमें परम-कल्याण है कि भगवान्को समझो।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ पंच तन्मात्रायें और एक मन, इन सोलह तत्वों के रूप में विस्मित हुआ पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच भूतों से निर्मित तीन गुणों वाला लिंग शरीर जब चेतना से युक्त हो जाता है तो उसी को जीव कहते हैं। आप्त पुरुष, श्रेष्ठ पुरुषों के वाक्य भी प्रमाण माने जाते हैं, जिन्होंने प्रत्यक्ष देखा हो। पूर्वजन्म के विषय में अनुमान और आप्त प्रमाण हैं। स्वर्ग से आये हुए पुरुषों के लक्षण इसप्रकार है- स्वर्गीय पुण्यात्मा जीवों की स्वाभाविक रुचि दान में रहती हैं। जो भी अपने पास हो विद्वानों को, गरीबों को, आश्रितों को अभ्यागतों को दान देते रहे। दान देने में उन्हें आंतरिक सुख होता है। उनकी वाणी स्वाभाविक और मधुर होती है। वे सदा हँसमुख और प्रसन्न रहते हैं। क्रोध में भी जो बातें कहें वो भी कल्याण के लिये होती है। देवताओं के पूजन भगवत् परिचर्या में उनको बड़ा आनन्द होता है। अहंकार की जब तक निवृत्ति न हो राजन्, तब तक भगवत् दर्शन सम्भव नहीं। यह जीव एक शरीर को तब छोड़ता है जब पहिले अपना आश्रय दूसरा शरीर बना लेता है, तब पहिले शरीर को छोड़ देता है। प्रारब्ध समाप्त होनेपर ही दूसरा शरीर बन जाता है। उसके साथ उस शरीर की प्रारब्ध बनती है। शरीर के रहते प्रारब्ध का नाश नहीं होता। जैसा चिन्तन करते हुए शरीर का

त्याग करता है वैसा ही शरीर प्राप्त होता है। उस शरीर में भी कर्मों के बन्धन में फँसकर असत् में सत् का अनात्म में आत्म का अभिमान करके अविद्या रूप कर्मों की चक्की में पिसता रहता है। प्राचीनवर्हि जीवात्मा को परमात्मा कभी नहीं छोड़ता, जीवात्मा भले ही परमात्मा को भूल जाये। यह तुम्हें पुरंजनोपाख्यान समझाया। तुम्हें कर्म का तो रहस्य ज्ञात ही नहीं पर तुम कर्माभिमानी बन गये हो। कर्म तो वही है जिससे हरि प्रसन्न हो, विद्या वही है जिससे भगवान में चित्त लगे। जिससे अणुमात्र भी भय नहीं होता, वही उसका प्रियतम आत्मा है, ऐसा जो जानता है, वही ज्ञानी, गुरु, वही श्रीहरि है।

नारद बोले- प्राचीनवर्हि, जहाँ पर उदार हृदय परोपकारी भक्तजन भगवान के गुणों को कथन करने और श्रवण करने में सदा व्यग्र बने रहे हैं, उन महापुरुषों के साथ सत्संग कर के भगवान के चरित रूप अमृत से भरी हुई अनेकों नदियाँ बहती हैं। हे नरपति। उस भक्त मण्डली में सबके साथ बैठकर अपने कान रूप पान पात्रों में भर-भर अतृप्त होकर उस अमृत का निरन्तर छक-छककर पान करते रहते हैं, उन्हें भूख, प्यास, भय, शोक, मोह आदि कुछ भी बाधा नहीं पहुँचा सकते। इसप्रकार नारदने प्राचीनवर्हि को जीव और ईश्वरका स्वरूप बताया और स्वयंसिद्ध लोकमें चले गये।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। जो पुरुष देवर्षि नारदजी के मुख से निकले हुए, भगवान मुकुन्द के यश से त्रिलोकी को पवित्र करनेवाले इस आत्मज्ञान का कीर्तन करता है, वह पुरुष परमपद को प्राप्त हो जाता है। वह सम्पूर्ण कर्म बन्धनों से मुक्त होकर इस संसार चक्र में फिर नहीं भटकता अर्थात् उसका आवागमन समाप्त हो जाता है।

श्री मैत्रेयजी बोले- हे विदुर जी। राजा प्राचीनवर्हि ने नारदजी से जीव तथा ईश्वर के शरीर का ज्ञान प्राप्त करके अति हर्ष प्रकट किया और सम्पूर्ण राजपाट त्यागकर तपस्या के लिये बन को चले गये। हे विदुर जी। नारदजी के बताये हुए इस आत्म ज्ञान का चिन्तन जो पुरुष करेगा वह अवश्य ही इस लिंग शरीर के बन्धन से छूट जायेगा।

६) प्रचेताओं को नारदजी का उपदेश

श्री विदुरजी बोले- हे मुनिवर। राजा प्राचीनवर्हि के पुत्रों प्रचेताओं का आपने वर्णन किया था उन्होंने किस प्रकार भगवान के दर्शन प्राप्त किये?

श्री मैत्रेयजी बोले- हे विदुरजी। पिता की आज्ञा से तथा भगवान शंकर की कृपा से उनके बताये हुए मार्ग से प्रचेताओं ने दस सहस्त्र वर्ष तक समुद्र में खड़े होकर कठिन तप किया। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ने अपनी अपूर्व छटा से उन्हें दर्शन दिये। कल्याणमय कार्य करनेवाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

भगवान गरुड़ के कन्धे पर सवार थे। उनकी कान्ति से सम्पूर्ण दिशायें प्रकाशमान हो उठीं। पीताम्बर धारण किये हुए शंख, चक्र, पद्म, धारण किये हुए अंग प्रत्यंग से अपूर्व छटा छिटक रही थी।

श्री भगवान बोले- हे प्रचेताओ। मैं तुम्हारी तपस्या से अति प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर माँगो। जो पुरुष सायंकाल के समय नित्य तुम्हारा स्मरण करेगा उसका प्रेम अपने भ्राताओं में सदा रहेगा। जो सायंकाल प्रात:काल इस रुद्रस्तोत्र का जप करेगा उसे इच्छित वर प्राप्त होगा। हे प्रचेताओ। तुम्हारी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण होंगी, तुम्हारे एक विश्व विख्यात पुत्र ब्रह्मा के समान होगा। उसकी सन्तान से तीनों लोक भर जावेंगे। कण्डू ऋषिसे प्रम्लोचा अप्सरा द्वारा जो कन्या पैदा हुई है, उसको विष्णुने ग्रहण कर लिया और सोमने अपनी ऊँगली पिलायी है, वही तुम्हारी पत्नी होगी। उसके साथ हजारों वर्षोंतक दिव्य भोग भोगकर मेरी भक्ति करना। अन्त समय में मेरे धाममें आना। मेरे प्रति तुम्हारी अनपायिनी भक्ति है। जो लोग गुरुजनों की आज्ञा मानकर कार्य करते हैं, उनकी आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है। अत:

संसार में तुम्हारी बड़ी कीर्ति होगी।

हे राजकुमारो। कण्डुऋषि के वीर्य से तथा प्रम्लोचा अप्सरा के गर्भ से एक अति सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई है जो वृक्षों ने पाली है वह तुम्हारी पत्नी बनेगी। उसका नाम मारिषा (वार्क्षी) होगा। जिसका लालन-पालन वनस्पतियोंने किया। वह तुम सबको समान दृष्टि से देखती हुई प्रेम करेगी। तुम लोग दस लाख दिव्य वर्षों तक आनन्द भोगोगे। फिर मेरे दिव्य लोक को प्राप्त करोगे।

श्री मैत्रेयजी बोले- हे विदुरजी। प्रचेताओं ने भगवान के दर्शन प्राप्त करके अति प्रसन्नता से उनकी स्तुति की और उन्होंने सन्त समागम तथा नित्य हरि कथामृत पान करते रहने का वर माँगा। भगवान तथास्तु कह कर अन्तर्ध्यान हो गये।

भगवानके अन्तर्धान होनेपर प्रचेता लोग नारायण-सरोवरमें से बाहर निकले तब उन्होंने देखा कि उनके प्राचीनबर्हि राज्य छोड़कर तपस्या करने चले गये हैं। कोई धरतीकी देखभाल करनेवाला नहीं है। हर जगह पेड़-पौधे निकल आये है। यह देखकर प्रचेताओंके मनमें वृक्षोंपर बहुत क्रोध आया कि हमारे पिताकी पृथ्वी कहाँ गयी?

प्रचेताओंको घना जंगल मिला। उन्हें घर जानेका रास्ता नहीं मिला। तब उन्होने तपस्या के बल से मुख से अग्नि उगल कर वृक्षों को, जंगल को जलाना शुरू किया। ब्रह्माजी को एवं वनस्पतियोंके राजा चन्द्रमा को यह देखकर बड़ी चिंता हुई और वे दौड़कर उन प्रचेताओं को बोले- हे प्रचेताओं, तुम यह क्या कर रहे हो। यह वृक्ष-जड़ दुनिया का उपकार करने के लिये पैदा होते हैं, जीव मात्र को सुख देते हैं, अपनी पत्तियां, फल-फूल, छाल देते हैं, लकड़ी देते, कोयला देते और छाया देते हैं, आश्रय देते हैं और सब प्रकार की औषधियां देते हैं। सबका उपकार करते हैं। ऐसे परोपकारी को निरर्थक ज्यों जला रहे हो? वृक्ष लगाने का प्रयोजन यही है कि उसके फलों से उसकी छाया से लोगों को सुख मिले। वापी कूप तड़ाग बनवाने का फल यही है कि पिपासित लोगों की पिपासा शान्त हो। धर्मार्थ औषधालय, विद्यालय बनवाने का फल यही है औषधि से, विद्या से लोगों के दु:ख दूर हों। विवाह करने का- दारग्रहण करने का- एकमात्र प्रयोजन यही है कि सत्पुत्र की प्राप्ति हो। पुत्र प्राप्ति का एकमात्र प्रयोजन है, वंश विच्छेद न हो, पितरों को पिंड जल मिलता रहे। उनके निमित्त श्राद्ध तर्पण होते रहें। यदि इन कार्योंके करने से यह प्रयोजन सिद्ध न हुआ तो इन सबको व्यर्थ ही व्यसनमात्र समझना चाहिये।

तब प्रचेता बोले- यह हमारा मार्ग अवरोध कर रखे हैं। हमें घर जानेका मार्ग नहीं दे रहे हैं। हम दुनिया में वृक्षोंको नहीं रहने देंगे। चन्द्रमा बोला- नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। तुम प्रजा का विस्तार करो वे तुम्हें एक सुंदर पत्नी भी देंगे। प्रचेताओंके तपके फलस्वरूप उन्हें भगवान मिल गये और उनको वरदान प्राप्त हो गया, लेकिन फिर भी प्रचेताओंको क्रोध आ गया कारण क्योंकि उन्हें सत्संग नहीं मिला। जैसे कर्म का फल नियत होता है, वैसे भगवान्के दर्शनका फल नियत नहीं होता। इसलिए वे जैसा करते हैं वैसा ही होता है।

प्रचेता लोग जब समुद्र से बाहर निकले तब वृक्षों ने उनका मार्ग रोका उन्होंने कुपित होकर उन वृक्षों को भस्म करना आरम्भ किया किन्तु ब्रह्मा जी ने उन्हें समझा बुझाकर शान्त किया। तब वृक्षों ने लाकर उस कन्या को प्रचेताओं को दिया। उन्होंने उस कन्या से विवाह किया। उसके गर्भ से दक्ष प्रजापति ने शंकरजी के श्राप से मुक्त होने के लिए वह शरीर त्याग कर जन्म लिया। मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। मारिषा के गर्भ से वे ही दक्ष प्रचेताओं के पुत्र हुए, जिन्होंने कालक्रम से नष्ट हुई प्रजा को चाक्षुष मन्वन्तर के आने पर भगवान की प्रेरणा से पुन: नवीन रूप में उत्पन्न किया।

मैत्रेय मुनि कहते हैं- विदुरजी। प्रचेताओं ने ब्रह्माजी के आदेश से उन वृक्षों की कन्या मारिषा से विवाह कर लिया। जिसके गर्भ से शिवजी का अपमान करने के कारण ब्रह्मपुत्र दक्ष फिर से पुत्र रूप में उत्पन्न हुए।

वही चाक्षुष मन्वन्तर में प्रजापति बने। प्राणी में निपुणता तभी आ सकती है जब उसमें सहनशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं विवेक आदि सद्गुण हो। पहले यही दक्ष स्वायम्भुव दक्ष कहलाते थे अब प्राचेतस दक्ष कहलाने लगे। इनका विवाह असिवनी के साथ हुआ। पंचजन प्रजापति की बेटी जिसके गर्भ से दस हजार हर्यश्व नामक पुत्र और एक हजार शबलाश्व नाम के पुत्र, ११ हजार पुत्र हुए जो नारदजी के उपदेश से विरक्त हुए। नारदजीने उपदेश दिया- प्रचेताओं, वही जन्म, वही कर्म सार्थक, वही आयु सफल है, वही वाणी उत्तम है, वही मन वास्तव में मन है जिससे श्रीहरि की सेवा की हो, नाम स्मरण किया हो- अन्यथा सब निरर्थक है। इसी उपदेश से प्रचेताओं को वैकुण्ठ धाम की प्राप्ति हुई।

प्रचेताओं की सब कथा, सुनी विदुर चित लाय। मैत्रेयजी वर्णन करी, मन में अति हर्षाय।।

श्री मैत्रेयजी बोले- हे विदुरजी। प्रचेताओं को दस लाख वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् भगवान के वाक्यों का स्मरण हो आया। वे सम्पूर्ण राज्य पाट को अपनी पत्नी मारिषा के पुत्र को देकर पश्चिम दिशा की ओर समुद्र तट पर चले गये वहाँ पर आत्म चिंतन में ब्रह्म सूत्र का संकल्प करके मन, वाणी तथा प्राण को वश में करके एकासन पर बैठ गये और परब्रह्म का चिन्तन करने लगे। विदुर, प्रचेता राजा होकर भी अपने को भगवान का सेवक मानकर राज्य संचालन करते रहे। इससे यह लाभ रहा कि उन्हें राज्य में आसक्ति नहीं रही। समय रहते उन्हें आभास हो गया कि ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है।

इसी धराधाम पर- भगीरथ, सगर, ककुत्स्थ, रावण, श्रीराम, लक्ष्मण और युधिष्ठिर आदि सर्वगुणसम्पन्न राजा राज्य कर चुके। लेकिन यहाँ का वैभव यहीं छोड़कर गये। साथ में केवल पाप और पुण्य ही गया। पण्डितेन्द्र रावण अपने पाप से आज भी निन्दनीय है तथा राम, लक्ष्मण, युधिष्ठिर आदि राजा शुभ कर्मों से आज भी प्रात:स्मरणीय हैं। राजा प्रचेता के हृदय में यह बात बैठ गयी कि हमें निन्दनीय नहीं वन्दनीय बनना है। अत: वे राज्य त्याग करके जाजिल मुनि के आश्रम पर पहुँचे। वहाँ श्रद्धा-निष्ठापूर्वक श्री भगवन्नाम का स्मरण करने लगे।

सबई पूछें प्रभो। सार उपदेश सुनाओ। मनकी काई सीख खटाई लाइ मिटाओ।।
नारद बोले- सुनो, सफल वह जन्म कर्म मन। जातें सुमिरन होहि कृष्ण को धन्य वही तन।।
वेद पढ्यो तप करि कहा? काल बितायो योग करि। प्रेम बिना सब व्यर्थ है, जो नहिँ कीन्हीं भक्ति हरि।।

उसी समय वहाँ पर नारदजी पधारे उन्हें देखते ही प्रचेता लोग खड़े हो गये। नारदजी ने उन्हें यह उपदेश किया। हे प्रचेताओं। उसी मनुष्य का जन्म सफल है, जिसके मन, कर्म तथा वाणी से भगवान का ही चिन्तन होता रहता है। मनुष्य जितने भी यज्ञ, कर्म, सन्यास, वैराग आदि करता है वह आत्मज्ञान के लिये करता है। उस आत्म ज्ञान से ही भगवत् प्रेम होता है। जिस प्रकार जड़ के सींचने से वृक्ष के तना, शाखा आदि सभी अंगों का पोषण होता है उसी प्रकार केवल भगवान की आराधना से सभी लाभ प्राप्त होते हैं। तुम लोग भी अपने को भगवान से अभिन्न समझ कर उनकी आराधना करो। वे ही सम्पूर्ण देहधारियों के एक मात्र आत्मा हैं। जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय उन्हीं के द्वारा होती है। ब्रह्मादि समस्त लोकपालादिकों के अधीश्वर नारायण को अपने से अभिन्न मानते हुए अहर्निश भजन करो। मनुष्यका वही जन्म सफल है, वही कर्म सफल है, वही आयु, मन, वाणी सफल है जिसके द्वारा विश्वात्मा भगवान् श्रीहरिकी आराधना हो। जिससे भगवान्की आराधना न हो वह तो सबका-सब निष्फल है। मनुष्यका तीन प्रकारसे जन्म होता है- शौक्ल, सावित्र और याज्ञिक। इसी तरह शुद्धियाँ भी तीन प्रकारकी होती है- आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। परमात्मा इन तीनों विभागोंसे परे हैं। शुद्ध माता-पिताके सम्बन्धसे जो जन्म होता है, उसका नाम है शौक्ल। इसमें नानाका और दादाका वंश भी शुद्ध होना चाहिए। इसको आधिभौतिक शुद्ध कहते हैं। फिर

मनुष्य यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंसे सम्पन्न होकर सूर्यकी-सावित्रीकी आराधना करे तो उसका सावित्र जन्म होता है। उसके बाद यज्ञकी दीक्षा लेकर अपने अधिकारके अनुसार बृहस्पतिसव, बाजपेय, राजसूय आदि यज्ञ करे तो वह याज्ञिक जन्म होता है। लेकिन मनुष्य यदि भगवान्‌की भक्ति न करे, तो उसके ये तीनों जन्म बिल्कुल व्यर्थ हैं। यदि उसने वेदोंके कर्मोंका पालन किया और भजन नहीं किया तो वह व्यर्थ गया। वह वेदाध्ययन, वह तपस्या, वह वाणी, वह चित्तवृत्ति, वह बुद्धि, वह सिद्धि, किस कामकी- जिसमें भगवान्‌की आराधना नहीं । सांख्य योग, संन्यास, स्वाध्याय तथा दूसरे कल्याणकारी प्रकरण वहाँ व्यर्थ हैं, जहाँ भगवान् नहीं है। सब कल्याणोंका कल्याण आत्मा ही है और भगवान ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी आत्मा है। जैसे वृक्षकी जड़में पानी देनेसे उसके सब अवयवों- जैसे तना, डाली, पत्ता, फल आदि सबका पोषण हो जाता है, वैसे ही परमात्माकी पूजा करनेसे सारे विश्वका पोषण हो जाता है, वैसे ही परमात्माकी पूजा करनेसे सारे विश्वकी तृप्ति हो जाती हैं। यह सारी सृष्टि परमेश्वरमें से ही निकलती है और परमेश्वरमें ही जाकर लीन होती है- वैसे ही, जैसे प्रभा सूर्यमें-से निकलती है और सूर्यमें ही लीन हो जाती है। यह सम्पूर्ण विश्व परमात्माका स्वरूप है। एक बार परमात्माका साक्षात्कार हो जाये तो फिर कुछ करनेको नहीं रहता। जैसे आकाशमें बादल, अन्धेरा, प्रकाश आदि कभी आते हैं और कभी नहीं आते, ऐसे ही परमात्मामें जो आगन्तुक पदार्थ हैं वे कभी प्रतीत होते हैं और कभी प्रतीत नहीं होते। सबकी आत्माका ही नाम परमात्मा है, उससे एक होकर परमात्माकी आराधना करनी चाहिए।

वही जन्म सार्थक है, वही कर्म श्लाध्य है वही आयु सफल है, वही वाणी उत्तम है, और वही मन वास्तविक मन है, जिससे भगवान श्री हरि की सेवा की जा सके। वह तप, वह स्वाध्याय, वह तीक्ष्ण, वह योगाभ्यास वह ज्ञानचर्चा एवं अन्यान्य साधन निष्फल हैं, जो भगवान के साक्षात्कार में सहायक न हो सकें। जैसे सूर्य से ही वर्षा ऋतु में जल की वृष्टि होती है और गर्मी में वहीं जल फिर सूर्य में चला जाता है एवं जैसे पृथ्वी से स्थावर, जंगम आदि सभी प्राणी उत्पन्न होकर फिर उसी में लीन हो जाते हैं ठीक वैसे ही यह सारा प्रपंच श्री हरि से ही उत्पन्न होकर फिर श्री हरि में ही लीन हो जाता है। जो मनुष्य लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा से रहित होकर भगवान् का चिन्तन करते हैं भगवान उनके वशीभूत होकर उनके हृदय में विराजमान हो जाते हैं और फिर उनके हृदय से कभी हटते नहीं। जो विद्या और धन के मद में उन्मत्त होकर भक्तों का अनादर करते हैं, ऐसे अहंकारियों की पूजा भगवान ग्रहण नहीं करते और न ऐसों को सद्‌गति ही प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि भक्तों के लिए भगवान् लक्ष्मी तथा देवताओं का परित्याग कर देते हैं।

जो कर्म हमें अधिकाधिक चिन्ताओं में जकड़कर संसार के बन्धन में फँसाता है, वह कर्म नहीं कुकर्म है। सफल कर्म वही है जो हमें साधन की सोपानों से चढ़ाकर शान्ति के शिखर तक पहुँचाता है। जो मौन हमारे मुख को मोड़कर मोहन की ओर ले जाता है, वही वास्तविक मौन है। नहीं तो वाणी बन्द करके मौनी बाबा बनके पेट भरने की एक ठग विद्या है। व्रत वही सफल है जो हमें बनवारी के पादपद्मों तक पहुँचादे। जिस व्रत से ऐसा नहीं होता वह तो एक कमाने खाने का साधन है। वर्णाश्रम धर्मों का समाहित चित्त से पालन इसलिये किया जाता है कि उनके करने से प्रभु के पादपद्मों में दृढ़ अनुराग हो। जिन कर्मों से ऐसा नहीं होता वे तो केवल श्रम मात्र ही है।

जिन कर्मों के द्वारा सर्वान्तर्यामी श्री हरि प्रसन्न हो जायँ वास्तव में वे ही तो कर्म हैं शेष कर्म व्यर्थ हैं, संसार बन्धन को कसने वाले हैं, चौरासी के चक्कर को जकड़ने वाले हैं, पुरुष को पकड़नेवाले हैं। जिस जन्म से फिर जन्म धारण करना पड़े वह जन्म न होकर जंजाल है। वही जन्म सार्थक है जिसे लेकर फिर जन्म न लेना पड़े। आयु वही सार्थक है, जिसकी

प्रत्येक स्वाँस श्री हरि के काम में आवे। नहीं तो वह आयु निरर्थक है, समय का दुरुपयोग है। उसी मन को मन कहा जा सकता है। जो मन मोहन की माधुरी मूरति में फँसा रहे। जो मन विषयों का मनन करता रहता है। वह तो बहेलिया है। उसका काम तो निरन्तर हिंसा करके पाप की गठरी को गुरु बनाना है। वचन वे ही सार्थक हैं, जिनके द्वारा श्रीहरि के सुमधुर नामों का निरन्तर उच्चारण होता रहे। भगवान के नाम और गुणों को छोड़कर दूसरी बात बोले ही नहीं। जिन कर्मों के द्वारा उनकी प्राप्ति हो, वे कर्म तो सार्थक हैं, शेष सभी निरर्थक कर्म कहे गये हैं। परिस्थिति की ओर मत देखो, परस्थिति बनानेवाले की ओर देखो।

प्रचेता बोले- भगवानकी कथा से मनुष्यके मनसे राग-द्वेषका निवारण होता है, उद्वेग मिटता है। कथा-प्रसंगोंद्वारा भगवानका गुणगान होता है और पता चलता है कि आपतो सन्यासियोंकी परम गति है। इसलिये महात्मा लोग तीर्थोंमें, तीर्थोंको पवित्र करनेकी इच्छासे विचरण करते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों में जब तक दया के भाव न होंगे, जब तक हृदय में हम सबसे प्रेम करना नहीं सीखेंगे तब तक सभी साधन अधूरे हैं। फिर उनका समागम संसारसे भयभीत लोगोंको क्यों नहीं अच्छा लगेगा। संसार में जन्म देनेवाले पिताओं की कमी नहीं। जिसमें कुछ भी योग्यता न हो, वह भी पिता बन बैठता है। परोपकारी पुरुष यद्यपि थोड़े ही होते हैं, किन्तु वे भी खोजने से मिल जाते हैं। भूखों को अन्न देकर तृप्त करनेवाले, प्यासों की पिपासा को पौसला चलाकर, वापी, कूप, तड़ाग आदि बनवाकर जल दान करनेवाले भी मिलते हैं। अपने द्रव्य से अध्यापक रखकर विद्यार्थियों को विद्या दान करनेवाले पुण्यात्मा भी पृथ्वी पर सर्वत्र पाये जाते हैं। असमर्थ, आतुर रोगियों की चिकित्सा कराके उन्हें बिना मूल्य औषधि देकर उनके दु:ख को दूर करनेवाले या कम करनेवाले दयावान भी सुगमता से दिखाई दे जाते हैं, किन्तु ज्ञानोपदेश देकर हृदय में उठे हुए समस्त संशयों का मूलोच्छेदन करनेवाले सद्गुरुओं का मिलना अत्यन्त ही दुर्लभ हैं। ऐसा सुनकर नारद वहांसे चले गये।

सौंपि पुत्रकूँ राज प्रचेता तप हित वनकूँ। गये सिन्धुके तीर समाहित कीन्हों मनकूँ॥
रोहि, प्रानि, मन, वचन, दृष्टि थिर करी योगतें। तनु तप करिकुश कस्यो हटायो चित्त भोगतें॥
सत्संगति वांछा भई, नारदजी दरशन दियो। पुण्य प्रचतनिके जगे, मुनि कृयार्थ सबकूँ कियो॥

श्री मैत्रेयजी बोले- हे विदुरजी। नारदजी के इस प्रकार उपदेश करने तथा ध्रुव आदि भक्तों के चरित्र सुनने पर उन प्रचेताओं को और भी ज्ञान उत्पन्न हुआ। और वे भगवान के चिन्तन में लग गये। श्री शुकदेवजी बोले- हे राजा परिक्षित्। मैंने तुम्हें यहाँ तक स्वायम्भुव मनु के पुत्र उत्तानपाद के वंश का वर्णन किया है। अब तुम्हें मैं राजा प्रियव्रत के वंश का वर्णन करूंगा। हे राजन्। मैत्रेयजी के मुखसे भगवानकी यह पवित्र कथा सुनकर विदुरजी भगवान के प्रेम में लीन हो गये और मैत्रेयजी के चरणों में अपना मस्तक रख दिया। विदुरजी कहने लगे- हे महायोगिन्। आप बड़े ही करुणामय है, मुझे अज्ञानान्धकारके उस पार पहुँचा दिया जहाँ सर्वथा हरि विराजते हैं।

श्री शुकदेवजी बोले- हे राजन्। मैत्रेयजी की बारम्बार प्रशंसा करते हुए विदुरजी उन्हें प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकर अपने स्वजनों से मिलने के लिए हस्तिनापुर चले आये। जो भक्त भगवान के इस चरित्र को सुनेगा व सुनावेगा उसे दीर्घायु, धन, यश, ऐश्वर्य व सद्गति, क्षेम की प्राप्ति होगी।

भय-गुण-लोभ स्वरूपते प्रीति करे सबकोई। सत्य प्रीत मानो जभी जब इन चारनविन होइ॥

इति चतुर्थ स्कन्ध

पंचम स्कन्ध

विषय सूची

१) ऋषभ देव का चरित्र ५९५

२) जड़भरत चरित्र ६१६

३) जड भरत का राजा रहूगण को उपदेश ६३०

४) भवाटवी का उपदेश ६४२

५) राजा गय का चरित्र ६५४

६) खगोल-भूगोल ६५७

१) शिशुमार चक्र का वर्णन

(अन्य ग्रहों की स्थिति और गति) ६७४

२) अध: लोकोंका वर्णन ६७६

३) अठ्ठाइस नरकों का वर्णन ६७७

** प्यार करने वालों की तकदीर बदलती है, शीशा तो वही रहता है सिर्फ तस्वीर बदलती है।*

** खोटी नियत, लोभ मे पागल सीमाओं से बाहर निकलो।*
तुम्हे गर्व है अपने बल का, इन विचारों को अभी बदलो।।

** हर आंख का आंसू गीला है, हर देश में इन्सान बसते है,*
जो फर्क की बाते करते है वो गरज के अन्धे होते है।

** कड़वे सच को स्वीकार नहीं कर पाये हम, कुछ तो है जो केवल उसके पास ही है,*
सागर की भी सीमा तो होती है कोई, मगर जो असीम है वो केवल आकाश ही है।

** जब विकास के अवसर रुक जाते हैं, मानवीय गुण श्रम से झुक जाते है,*
जब व्यक्ति की मर्यादा घट जाती है, तब मनुजता मानव से शर्माती है।

पंचम स्कन्ध

१) ऋषभ देव का चरित्र

चढ़े गजराज चतुरंगिनी समाज संग जीति क्षितिपाल सुरपाल सों सजत हैं।
विद्या अपार पढ़ि तीरथ अनेक करि यज्ञ और दान बहुत भाँति सों करत हैं।।
तीन काल में नहाय इन्द्रियों को वश लाय करि वनवास विषय वासना तजत हैं।
योग और यज्ञ जप तप को अनेक करैं बिना भगवन्तभक्ति भव ना तरत हैं।।

राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से पूछा- मुनिवर, मनु के पुत्र प्रियव्रत। प्रियव्रत का अर्थ है- जिसे भगवान के चरण का सतत चिन्तन ही प्रिय है, उसका नाम प्रियव्रत। प्रियव्रत का यह नाम सार्थक था। उन्हें भगवान के चरणों का सतत चिन्तन ही अतिशय प्रिय था। भगवान के अनन्य भक्त और महान् ज्ञानी थे फिर उनकी गृहस्थाश्रम में कैसे रुचि हुई? इसमें फँसनेवाले व्यक्ति को अपने स्वरूप की विस्मृति हो जाती है और वह कर्मबन्धन में बँध जाता है। जो सांसारिक विषय वासनाओं में और व्यवहारों में कुशल होगा, वह पूर्णरीति से परमार्थ साधन नहीं कर सकता और जिसका चित्त परमार्थ चिन्तन में लगा हुआ है उससे ये सांसारिक प्रपंच नहीं हो सकेंगे।

महाराज प्रियव्रत ने स्त्री, गृह और पुत्र आदि में आसक्त रहकर भी कैसे सिद्धि प्राप्त कर ली और कैसे उनकी भगवान श्रीकृष्ण में अविचल भक्ति हुई?

शुकदेव बोले- जो भगवान के चरण-कमल के मधु के सतत पान करने के अभ्यासी हैं, उनके कल्याणकारी मार्ग में यदि कोई विघ्न-बाधा आ जाय तो भी वे अपने मंगलमय मार्ग से विचलित नहीं होते, वे कल्याणकारिणी पदवी का परित्याग नहीं करते। यह कल्याणकारी मार्ग भागवत परमहंसों को अतिशय प्रिय है।

प्रियव्रत की कुछ ऐसी ही स्थिति थी। उनमें ज्ञान की पिपासा जन्मजात थी अत: वे नारद की शरण में पहुँचे। नारद ने उन्हें ज्ञान प्रदान किया। फलत: प्रियव्रत का चित्त रम गया भगवान के चिन्तन में। यह देखकर उनके पिता स्वयम्भुव मनु महाराज ने उन्हें समझाया- पुत्र, तुम्हारा जन्म राज्य पर शासन के लिये हुआ है अत: महीमण्डल का शासन करो। प्रियव्रत ने सोचा- यदि मैं राज्य-शासन में लग जाऊँगा तो मेरा आत्मस्वरूप वासनाओं से आच्छादित हो जायेगा और मैं परमार्थ तत्त्व को विस्मृत कर बैठूंगा। इसलिये उन्होंने पिता के आदेश को स्वीकार नहीं किया। मनुष्य का यह सहज स्वभाव होता है कि जैसा स्वयं होता है, वैसा ही दूसरों को बनाना चाहता है। जो वस्तु अपने को प्रिय है, उसका दूसरों को भी आस्वादन कराना चाहता है।

मनु जी ब्रह्मा के पास गये, उन्होंने उनसे कहा कि- प्रियव्रत राज्यकार्य से विमुख होकर ज्ञानार्जन में ही लगा हुआ है। वह मेरी बात स्वीकार नहीं कर रहा है। मनु की बात सुनकर वे मरीचि आदि मुनियों के साथ हंस पर आरूढ होकर अपने सत्यलोक से नीचे आये। मार्ग में देव-गन्धर्व आदि उनकी स्तुति कर रहे थे। ब्रह्माजी उस गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे जिसकी कन्दरा में बैठकर नारदजी प्रियव्रत को ज्ञान का उपदेश दे रहे थे। उनको देखकर सब लोग उठ खड़े हुए। नारद और प्रियव्रत ने स्वागत करते हुए अर्घ्य-पाद्य और आसन से उनका सम्मान किया। भगवान ब्रह्माजी ने प्रियव्रत की ओर दयाभरी दृष्टि से देखते हुए मुस्कुरा कर इस प्रकार कहा- बेटा, मैं तुम से सच कहता हूँ। तुम भगवान की क्रिया में दोष मत निकालो जैसे भगवान रक्खें, वैसे रहो। देखो, मैं, महादेव जी, तुम्हारे पिता मनु और तुम्हारे गुरु नारद भी विवश होकर उन्हीं की आज्ञा का पालन करते हैं।

पुत्र तुम इस बात को निश्चय समझो कि मैं जो कुछ तुमसे कहूँगा सत्य ही सत्य कहूंगा तुम्हें अप्रेय भगवान श्रीहरि की आज्ञा की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। उनके विधान को कोई भी शरीरधारी अपने तप, विद्या, योग आदि के बल से टाल नहीं सकता, अन्यथा नहीं कर सकता। न अर्थ या धर्म की शक्ति और न स्वत: अथवा दूसरे की सहायता से। क्या तुम गृहस्थाश्रम से मुँह मोड़कर जंगल में चले जाओगे तो शत्रुओं से बच जाओगे? क्या जंगल में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्, मत्सर नहीं सतायेंगे? जो जितेन्द्रिय नहीं है, जिसकी इन्द्रिया वश में नहीं है, जिनका मन अपने नियंत्रण में नहीं है, जो स्वेच्छाचारी लाख चाहे घर छोड़कर जंगल में चला जाये, वहां भी यह सब भाव उसका पीछा करेंगे। वन में भी बड़े-बड़े भय उत्पन्न हो जाते हैं। प्रमादी के लिये तो जंगल में भी काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि शत्रुओं का भय है और जिसका मन शुद्ध हो चुका, भगवत् परायण हैं, भगवच्चरणोंका आश्रय ले लिया, ऐसे प्राणियोंको घर गृहस्थी में भी तपोवन का लाभ प्राप्त होता है। जो भगवान के शरणागत हो, राज्य शासन में सम्पूर्ण विश्वकी व्यवस्था में संलग्न रहकर भी परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं। इन्द्रियों के वशीभूत वन-वन में भटकता पुरुष जन्म-मरण के भय को नहीं तोड़ सकता। जितेन्द्रिय का गृहस्थाश्रम भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

सुख या दु:ख का जो विधान भगवान ने रच दिया है, उसे विवश होकर भोगना ही पड़ता है। भगवान जिसके लिये जैसा करते हैं, उसे वैसा भोगना ही पड़ता है। जीवन्मुक्त पुरुष को भी प्रारब्ध के अनुसार, अभिमानशून्य होकर तब तक अपना शरीर धारण करना पड़ता है, जब तक भगवान उसको रखना चाहते हैं। यदि कहो कि जंगल में जाने से इस प्रश्न का समाधान हो जायेगा और सारे-के-सारे भय निवृत्त हो जायेंगे तो ऐसी बात नहीं है क्योंकि जब तुम जंगल में जाओगे तो काम, क्रोध, लोभ और मोह आदि जो तुम्हारे सच्चे शत्रु हैं, वे वहाँ भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेंगे। जो बुद्धिमान् पुरुष इन्द्रियों को जीतकर अपनी आत्मा में ही रमण करता है, उसका गृहस्थाश्रम भी क्या बिगाड़ सकता है।

जो इन शत्रुओं को जीतना चाहता है, वह पहले घर में रहकर ही उनका निरोध करते हुए उन्हें वश में करने का प्रयत्न करे। किले में सुरक्षित रहकर लड़नेवाला राजा अपने प्रबल शत्रुओं को भी जीत लेता है फिर इनके निर्बल बन जाने पर विद्वान पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार विचरण कर सकता है।

यद्यपि यह बात सत्य है कि भगवान के चरणकमलों का सहारा लेकर, भगवान के चरणकमलरूपी दुर्ग का सहारा लेकर, तुम काम-क्रोधादि अपने छहों शत्रुओं को जीत चुके हो, तो भी भगवान के दिये हुए भोगों को भोगो। इसके बाद नि:संग होकर अपने आत्मस्वरूप में स्थित हो जाना। जब तक तुम भोगों का अनुभव नहीं करोगे तब तक अन्त:करण से तुम भोगोंसे विरक्त नहीं हो पाओगे। इसलिये विषयोंसे आसक्ति टालने के लिये पहले भोगों का अनुभव करना आवश्यक है।

ईश्वर द्वारा प्रदत्त किये इस शरीर से ही सुख-दु:ख, जन्म-मरण, मोह-भय मनुष्य भोग करता है। मनुष्य उसी तरह प्रभु के आधीन है जैसे मनुष्य द्वारा वश में किया हुआ पशु, मनुष्य की इच्छानुसार कार्य करता हैं। उनके विधान को कोई भी देहधारी तपसे, योगबलसे बुद्धि, धर्म या अर्थ से बदल नहीं सकता। अरे वत्स प्रियव्रत। मनुष्य के छ: शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर हमेशा उसे सताते हैं। चाहे वह वन या पहाड़ों की कन्दराओं में छिप कर रहे। इनका सम्बन्ध मन से है स्थान से नहीं। जितेन्द्रिय पुरुष घर में रहकर इन्द्रियों का दमन कर लेता है। जो स्वभाव से वीतरागी हो उनके लिए घर और तपोवन बराबर हैं। अत: तुम भी अपने प्रारब्ध के अनुसार उसी कमलनयन के द्वारा किये गये संसार के भौतिक सुखों का उपभोग करो और बाद में सब कुछ त्यागकर प्रभु का चिन्तन करो। किसी में भी ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो परमेश्वर की

आज्ञा में तिल भर घटा बढ़ा सकें इसलिए प्रियव्रत वेद की आज्ञानुसार सब काम करना उचित है। प्रियव्रत ने पितामह का आदेश सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया।

घर-गृहस्थी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। यदि तुम अपने भीतरी शत्रुओं को जीतना चाहते हो तो घर में रहो, भगवान का चरणारविन्द दुर्ग है, किला है। इस किले में रहकर तुम काम, क्रोधादि पर विजय प्राप्त करो, अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ। जंगल में जाने से सारे भय निवृत्त नहीं हो जायेंगे। भगवान के किले में सुरक्षित रहकर शत्रुओं से लड़नेवाले राजा अपने प्रबल शत्रुओं को भी जीत लेते हैं।

सुख-दु:ख का जो विधान ईश्वर ने बनाया है उसे विवश होकर भोगना ही पड़ेगा। जीवन्मुक्त प्राणी को भी प्रारब्ध के अनुसार अपने कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। कोई भी देहधारी यह सोचे कि हम भगवान के विधान को उग्र तपस्या से, विद्या के द्वारा, योगबल से, बुद्धि बल अथवा धर्म आदि से स्वयं अथवा दूसरों के द्वारा टाल दें तो वे कभी भी टालने में समर्थ नहीं हो सकते।

कर्मों के बन्धन तो बन्धनवाले जीवों के लिये ही हैं मुक्त पुरुष के लिये नहीं। वह तो स्वतंत्र है। ऐसे जीवों पर कर्म तथा काल का कोई अधिकार नहीं है, किन्तु वे भी प्रारब्ध के भोग भोगने के लिए शरीर धारण करते हैं, किन्तु उनमें अभिमान नहीं होता। वे वासनाशून्य होकर भगवत इच्छा से प्रारब्ध भोग भोगते है। जो पुरुष इन्द्रियों के आधीन हैं, वे तो जन्म मरण का दु:ख भोगते हैं। जो आत्मा में रमण करते हैं उनका गृहस्थ आश्रम भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अत: तुम्हें गृहस्थाश्रम भोगने में कोई आपत्ति नहीं होगी। यद्यपि तुम काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या आदि छ: शत्रुओं को जीत चुके हो किन्तु फिर भी भगवान के दिये भोगों को भोगो। समय आनेपर परमात्मा के स्वरूप में लीन हो जाना। पुत्र जिस पुरुष ने इन्द्रियों को नहीं जीता है, वह यदि वन में भी चला जाय तो वहाँ भी उसे भय होता है। क्योंकि उसके ६ शत्रु सदा साथ रहते हैं। इसके विपरीत जो पुरुष जितेन्द्रिय हैं, बुद्धिमान् हैं अपनी आत्मा में ही रमण करनेवाला है वह यदि घर में ही रहे तो उसका गृहस्थाश्रम क्या बिगाड़ सकता है?

प्रेम सहित मुसकाय कहें ब्रह्मा- सुनु प्रियव्रत। देहुँ सार उपदेश होहि जातें जगको हित।।
जीव बँधे गुण कर्मतें, करें कर्म ह्वैंकें अवश। जनम मरण दुख शोक भय, सुख पावे प्रारब्ध वश।।

हमारे गुण और कर्मों के अनुसार श्रीहरि ने हमें जिस-जिस योनि में नियुक्त कर दिया है, उन-उन योनियों को स्वीकार करके हम ईश्वर द्वारा नियत किये हुए सुख-दु:खों को भोगते हैं। सब कुछ उन्हीं की इच्छा से हो रहा है। इसलिये मनुष्य का प्रधान कर्त्तव्य यही है कि जिन्होंने भगवत् कृपा का साक्षात्कार किया है, उनके अनुग्रह की उपलब्धि की है, उनकी बात मानकर उनकी शिक्षा के अनुसार कार्य करने चाहिये।

साधना की सुविधा के लिये देश, आश्रम, वर्ण आदि का विचार किया जाता है। वास्तविक बात यह है कि बाह्य वस्तुओं में बन्धन नहीं। कोई वस्तु हमें नहीं बाँध सकती। मन से ही बन्धन है, मन से ही मुक्ति है। मन ने जिसे सुख मान लिया वह सुख है, जिसे दु:ख मान लिया वह दु:ख है। जीव प्रारब्ध कर्मों के अधीन होकर कर्म करता है, उन कर्मों में जिस प्रकार की आसक्ति हो जाती है, उसी प्रकार के सुख-दु:खों का अनुभव मन करने लगता है कर्म तीन प्रकार के हैं, जन्म जन्मान्तरों के किये हुए अनन्त कर्मों के समूह को संचित कर्म कहते हैं। उन संचित कर्मों में से एक जन्म के भोग निकलकर जो शरीर मिलता है उन एक जन्म का भोगने योग्य कर्मों का नाम प्रारब्ध कर्म है। प्रारब्ध कर्मों का भोग भोगते समय जो उनमें आसक्ति हो जाती है, उनसे जो कर्म बनते हैं उन्हें क्रियमाण कर्म कहते हैं, वे जाकर संचित कर्मों में जमा होते रहते हैं। जब

तक संचित कर्म हैं, तब तक निरन्तर वे बढ़ते रहेंगे जन्म-मरण का चक्कर लगा रहेगा। संचित कर्म ज्ञान से या भगवद्भक्ति से नष्ट हो जाय तो फिर क्रियमाण कर्म भी न बनेंगे। जितना प्रारब्ध है, उसे भोगकर जन्म-मरण के बन्धन से छूट जायेंगे, परम पद को प्राप्त हो जायँगे।

जीवन्मुक्त पुरुष के लिये कर्मबन्धन नहीं रहता। वह सुख दुख से सर्वदा परे हो जाता है। उसके सभी संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं। उसके क्रियमाण कर्म आगे के लिये बनते नहीं। इतना सब होने पर भी प्रारब्ध कर्मों का भोग तो जीवन्मुक्त पुरुषों को भी भोगना पड़ता है। यह सत्य है उनके कर्मों के द्वारा उन्हें दु:ख सुख का अनुभव नहीं होता, फिरभी प्रारब्ध कर्मत ो भोगने पर ही समाप्त होंगे। प्रारब्धानुसार कर्म तो यन्त्र की भाँति होते रहते हैं, किन्तु उससे आगे के लिये क्रियमाण कर्म नहीं बनते। ज्ञानी पुरुष भी जब तक प्रारब्ध शेष रहता है, तब तक उसे भोगने के लिये देह को धारण किये रहता है, किन्तु उसमें निजत्व का अभिमान नहीं करता और न अन्य देह की प्राप्ति करनेवाले संस्कारों को ही अपने में स्वीकार करता है।

यदि अपना मन अपने वश में है, इन्द्रियों के ऊपर विजय प्राप्त कर ली है तो फिर चाहे बन में रहो, या घर में दोनों ही स्थान एक-से हैं दोनों में ही आनन्द हैं। यदि मन चंचल है इन्द्रियाँ अपने अधीन नहीं तब आप लाख वन में चले जाओ वहाँ भी फँस जाओगे। क्योंकि विघ्न करने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ये ६ शत्रु तो सदा पुरुषों के साथ ही साथ रहते हैं। कहीं भी चले जाओ ये पिंड नहीं छोड़ते। जहाँ इन काम क्रोधादिकों पर विजय प्राप्त कर ली, फिर क्या है कहीं रहो आनन्द ही आनन्द है।

महामुनि शुकदेव बोले- राजन्, जिन लोगों ने प्रभु पादपद्मों की पराग के प्रभाव से शरीर के ६ धर्मों- क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, जरा और मृत्यु को जीत लिया है उन भगवद्भक्तों का इस प्रकार का पुरुषार्थ कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कारण कि भगवान के नाम में ही ऐसा प्रभाव है कि उसके एक बार उच्चारण करने से ही मनुष्य तत्काल संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है। फिर चाहे वह जाति का चांडाल ही क्यों न हो।

जब त्रिलोकी के गुरु श्रीब्रह्माजी ने इस प्रकार कहा तो भगवान के महान् भक्त प्रियव्रत ने छोटे होने के कारण नम्रता से सिर झुका लिया और जो आज्ञा ऐसा कहकर बड़े आदर के साथ उनका आदेश शिरोधार्य किया फिर मनु ने ब्रह्माजी की विधिवत् पूजा की। तदनन्तर सबके देखते-देखते ब्रह्माजी अपने धाम सत्यलोक को चले गये।

विषयों में आसक्त हुए ज्ञानी और अज्ञानी दोनों एक से ही दिखाई देते हैं। किन्तु ज्ञानी का विवेक लुप्त नहीं होता, वह सांसारिक कार्यों में फँसा रहने पर भी उनसे निर्लिप्त बना रहता है। दूसरे लोग समझते हैं कि यह अपने विवेक को खोकर विषयों को ही सब कुछ समझता है, यह भी जैसे अन्य विषयी लोग स्त्रियों के क्रीड़ा-मृग बने रहते हैं वैसे ही बना हुआ है, किन्तु उनके विवेक का पता तब चलता है जब वे अत्यन्त प्रिय समझे जाने वाले पदार्थों को तृण के समान त्यागकर चले जाते हैं।

इस प्रकार ब्रह्मा जी की कृपा से मनु का मनोरथ पूरा हुआ। उन्होंने नारद की आज्ञा ली फिर प्रियव्रत को ले जाकर सम्पूर्ण भू-मण्डल की रक्षा का भार समर्पित कर दिया, उन्हें चक्रवर्ती के पद पर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं सारे विषयों को विष के समान त्याग कर तप करने के लिये वन में चले गये। इस प्रकार भगवान की इच्छा का अनुवर्तन करते हुए, राज्य प्राप्त कर प्रियव्रत निरन्तर भगवान का ही मन से चिन्तन करते हुए, पृथ्वी का पालन करने लगे। प्रियव्रत राजाने मनमें संकल्प किया कि मैं संसार में अंधकार नहीं रहने दूँगा।

प्रियव्रत राजा भये, किये सप्त भू भाग। सात समुद्र निर्माण करि जीते सब नर नाग।।
नृप सोचें शूचि सूर्य प्रदक्षिण मेरु करे नित। होवे उतकूँ निशा दिवस होवे तबई इत।।

प्रियव्रत के वंश का वर्णन

प्रियव्रत- पत्नि १) विश्वकर्मा कन्या (बर्हिष्मती)

आग्निध, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर (ब्रह्मचारी), हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन (ब्रह्मचारी), मेधातिथि, वीतिहोत्र, कवि (ब्रह्मचारी), ऊर्ज्वस्ती (कन्या)

प्रियव्रत- पत्नि २)

उत्तम, तामस, रैवत

ऊर्ज्वस्ती- पति (शुक्राचार्य)

देवयानी (कन्या)- पति (राजा ययाति)

आग्नीध्र- अप्सरा (पूर्वचित्ति)

नाभि	किम्पुरुष	हरिवर्ष	इलावृत	रम्यक	हिरण्यमय	भद्राश्च	केतुमाल	अजनाभ कुरु
(मेरुदेवी)	(प्रतिरूपा)	(उग्रदंष्टि)	(लता)	(रम्या)	(श्यामा)	(भद्रा)	(देववाति)	(नारी)

नाभि- सुमेरु की कन्या (मेरुदेवी)

ऋषभदेव- इन्द्र पुत्री (जयन्ती)

उसके सौ पुत्र

१) भरत

२) नौ अन्य सब वर्षोंके नव खण्डों के राजा हुये

३) नौ नव योगेश्वर बन गये

१) कवि, २) हरि, ३) अन्तरिक्ष, ४) प्रबुद्ध, ५) पिप्पलायन, ६) आर्विर्होत्र, ७) धुमिल, ८) चमस, ९) करभाजन

४) ८१ पुत्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहकर ब्राह्मण बन गये

करूँ दिवसकूँ राति न होवे तम जम जग माहीं। ज्योतिर्मय रथ चढ़े सूर्यके पीछे जाहीं।।
सात प्रदक्षिणतें भये, सात द्वीप अरु उदधि सब। समुझाये विधि आइ जब, छोड्यो नृप संकल्प तब।।

राज्यारूढ होने के बाद प्रियव्रत ने प्रजापति विश्वकर्मा की बेटी बर्हिष्मती से विवाह किया। उससे उनके दस बेटे और एक बेटी पैदा हुई। बेटों का नाम था- आग्नीध्र, इध्वमजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि। ये सब नाम अग्नि के भी हैं। कन्या का नाम था- ऊर्जस्वती। इनमें कवि, महावीर और सवन ये तीन पुत्र परमहंस हो गये। ये जन्म से ही भगवान के ध्यान में तल्लीन रहे। इन्होंने देहाध्यास को छोड़ दिया था। फलत: इन्हें भगवान के साथ सायुज्यमुक्ति मिली। सायुज्य को ही कैवल्य मुक्ति कहते हैं।

प्रियव्रत की एक दूसरी पत्नी भी थी। उससे उन्हें उत्तम, तामस और रैवत- ये तीन पुत्र पैदा हुए। आगे चल कर ये अपने नामवाले मन्वन्तरों के अधिपति बने। अन्तिम रैवत मन्वन्तर के अधिपति रैवत की उम्र चार मन्वन्तर की होनी चाहिये, तामस की तीन मन्वन्तर की और उत्तम की दो मन्वन्तर की। इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये।

इस प्रकार पुत्रों को उत्पन्न कर प्रियव्रत नें ११ करोड़ (अर्बुदान्येकादश परिवत्सराणाम्) वर्षों तक दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए पृथ्वी का शासन किया। उन्होंने अपने भुजबल के प्रताप से धर्म के विरोधी अधर्म को अपने राज्य में टिकने ही नहीं दिया।

एक बार उनके मन में आया कि हमारे राज्य में रात्रि का अँधेरा होगा ही नहीं, मैं रात को भी दिन बना दूँगा। सूर्य आधे भू-मण्डल में जब प्रकाश बिखेरते हैं तो आधे में अँधेरा ही रहता है अत: उन्होंने इसे पसन्द नहीं किया फिर उन्होने एक दूसरे सूर्य के समान अतिशय चमकीले रथ पर आरूढ होकर उनके पीछे-पीछे पृथ्वी की सात परिक्रमाएँ कीं। प्रियव्रत ने सूर्य को परास्त करने तथा रात्रि न होने देने के प्रयास में सात बार परिक्रमा की। पितामह ब्रह्मा के समझाने पर उन्होंने यह भावना बदल दी।

भगवान की उपासना से प्रियव्रत का अलौकिक प्रभाव बहुत बढ़ गया था। उस समय इनके रथ के पहिये से जो लीकें बनीं, वे ही सात समुद्र हुए। इनके कारण पृथ्वी में सात द्वीप बन गये। उनके नाम क्रमश: इस प्रकार हैं- जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर। इनमें पहले पहले की अपेक्षा आगे-आगे के द्वीपों का परिमाण दूना है। सातों समुद्र क्रमश: खारे जल, ईख के रस, मदिरा, घृत, दुग्ध, मट्ठा और मीठे जल से भरे हुए हैं।

जिस समय प्रियव्रत पृथ्वी की परिक्रमा कर रात्रि को भी दिन में परिणत कर रहे थे उस समय उनके पास ब्रह्मा जी आये और बोले- बेटा, तुम्हारा यह अधिकार नहीं है ऐसा कहकर उन्हें रोक दिया।

प्रियव्रत ने अपने अनुगत पुत्रों- आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्र को क्रमश: सातों द्वीपों का अधिपति बना दिया। उन्होंने अपनी पुत्री ऊर्जस्वती का विवाह शुक्राचार्य से कर दिया। इन्ही की पुत्री देवयानी थी।

भगवत्कृपा बड़ी अद्भुत होती हैं। भगवान की कृपा से एक बार प्रियव्रत के मन में महान् वैराग्य उदित हुआ। उन्होंने विषयों में आने के लिये अपने आपको बहुत धिक्कारा। उन्होंने कहा- मैं तो स्त्री के हाथ के इशारे पर नाचने वाला क्रीड़ा मृग (बन्दर) बन गया था। मुझे धिक्कार है, धिक्कार है। ऐसा कहकर पुत्रों को राज्य समर्पित कर राजरानी और राज्यलक्ष्मी का शव की भाँति त्याग कर नारदजी के उपदेश का अनुसरण करते हुए पुन: वन में चले गये। वहाँ उन्होंने कठोर तप कर भगवान को प्रसन्न किया और उनके परम धाम को चले गये।

कहते हैं- राजा प्रियव्रत ने जो कर्म किये, उन्हें सर्वशक्तिमान ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं कर सकता। उन्होंने रात्रिके अन्धकार को मिटाने का प्रयास करते हुए अपने रथ के पहियों से बनी हुई लोकों से ही सात समुद्र बना डाले।

ब्रह्माने आकर कहा- बेटा तुममें क्षमता है रात्रि को दिन बनाने की ऐसा मत करो क्योंकि ईश्वरीय विधान जो है। वो जीवों के हित की दृष्टि में रखकर बनाया गया है। दिन के साथ रात्रि का विधान बहुत सोच-विचार कर बनाया गया है। तू सृष्टि का विस्तार कर रहा है या उसको बिगाड़ रहा है। ईश्वरीय विधान में अवरोध मत कर।

महाराज प्रियव्रत को सारा ऐश्वर्य, सारी सांसारिक समृद्धियाँ प्राप्त थीं। सारे भोग सुलभ थे फिर भी सबको नरक के समान समझ कर उन्होंने छोड़ दिया और भगवान की आराधना, संसाधना में लग गये। महाराज प्रियव्रत ने संसार के लिये संसार के सामने यह महान् आदर्श प्रस्तुत किया। प्रियवत-जैसा प्रभावशाली, प्रतापी, कर्म-ज्ञानसे परिपूर्ण और राग-वैराग्यमें जीवनवाला राजा पौराणिक इतिहासमें दूसरा कोई नहीं है।

भगवान की इस सृष्टि में जहाँ कहीं भी एवं किसी व्यक्ति में यदि कोई विशिष्ट वैभव, ऐश्वर्य या शक्ति दिखाई पड़ती है तो समझ लेना चाहिए कि यह भगवान की विशिष्ट विभूति अवतरित होकर आई है। प्रियव्रत तो साक्षात् ईश्वर ही है। भगवान ही इस रूप में प्रकट हुए है। प्रियव्रत ने जो करके दिखाया ऐसा बिना ईश्वर के कौन कर सकता है? सर्वशक्तिमान परमेश्वर ही यह सब कर सकता है। ये अलौकिक कर्म ईश्वर शक्तिसे ही हो सकता है।

शुकदेव बोले- राजन्। महाराज प्रियव्रत ने जो कर्म किये उन्हें ईश्वर के अतिरिक्त और कर ही कौन सकता है? देखिये जिन्होंने अपने रथ के पहिये की नेमि से सात समुद्र बना दिये।

कौन करि सके कर्म प्रियव्रत सम नृप जगमहँ। कीन्हें सात समुद्र चलत रथ नभके मगमहँ॥
सौपि सुतनिकूँ राज मोह ममता सब त्यागी। समुझे विष सम विषय बने नृपतें वैरागी॥
सप्त द्वीपकी वसुमती, तृन सम त्यागी पलकमहँ। को तिनके सम ह्वै सकें, तजि ईश्वर या जगतमहँ॥

कितने भी बली हों, शूर हों, पराक्रमी हों, यशस्वी, तपस्वी, तेजस्वी हो, इस भूमि के संसारी भोगों का त्याग सभी को करना पड़ता है। कोई चाहे हम सदा इस पृथ्वी का भोग करते रहें तो यह असम्भव है, कभी न होनेवाला मनोरथ है। जब एक दिन विवश होकर त्याग करना ही है तो बुद्धिमान पुरुष उसे स्वयं ही त्याग देते हैं। इसलिये वर्णाश्रम धर्म में प्राचीन प्रथा थी कि जब पुत्र के भी पुत्र हो जाता तब बड़े-बड़े सम्राट सब कुछ छोड़कर बनवासी बन जाते, वानप्रस्थ धर्म में दीक्षित हो जाते। वे ग्राम्य अन्न का अशन त्यागकर वन के कन्द मूल फलों पर ही निर्वाह करते। राजसी वसनों को त्यागकर चीर वल्कल पहनकर तपस्या में निरत हो जाते थे।

शुकदेवजी ने कहा- परीक्षित, जब महाराज प्रियव्रत घर छोड़कर वन में चले गये और वहाँ भगवान की आराधना करने लगे तब उनके पुत्र आग्नीध्र जम्बूद्वीप की प्रजा का पालन वैसे ही करने लगे।

आत्मा नया प्रारब्ध चाहती है। विषय वासना के जिन संस्कारों के कारण दूसरा जन्म होता है, जो पुरुष उन्हें स्वीकार नहीं करता यह स्थिति मुक्ति उसकी होती है।

दो प्रकार के परमहंस रहते हैं एक तो ज्ञानी परमहंस और दूसरे भक्त परमहंस। ज्ञानी परमहंस और भक्त में इतना ही फर्क है कि ज्ञानी जब पर स्त्री को देखते हैं तो उनके मन में यह विचार आता है कि इसमें तो कुछ नहीं है, हड्डी, मज्जा, मलमूत्र का थैला है। उसके मन में आसक्ति नहीं होती और भक्त लोग जब एक स्त्री को देखते हैं तो साक्षात् लक्ष्मी का दर्शन करते

हैं। दोनों की स्थिति और भूमिका एक ही है। दोनों निरासक्त रहते हैं। परमहंस की सिद्धि को प्राप्त करने के लिये नैष्ठिक ब्रह्मचर्य आवश्यक नहीं है। गृहस्थाश्रमी भी परमहंस की स्थिति तक पहुंच सकते हैं।

आग्नीध्र को कोई पुत्र नहीं था। वे पितृलोक में जाना चाहते थे। पितृलोक वही जा सकता है जो सत्पुत्र का पिता हो अत: उन्होंने पूजा की सारी सामग्री एकत्रित की फिर पहुँच गये सुर-सुन्दरियों के क्रीडास्थल मन्दराचल की एक घाटी में। वहाँ उन्होंने अपनी तपस्या और आराधना से ब्रह्माजी को सन्तुष्ट किया। आग्निध्र धर्मानुसार पुत्रवत प्रजा पालन करने लगे। पुत्र की इच्छा से ब्रह्मा की तपस्या करने लगे।

सृष्टि के आदि में स्त्रियों की बहुत कमी थी मर्त्यलोक में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की उत्पत्ति अधिक होती थी। दिव्यलोकों में अपने आप उत्पन्न होनेवाली परम सुन्दरी अप्सरायें होती थीं। वे देवताओं को छोड़कर मर्त्यलोक के मनुष्यों के साथ संबंध रखने में अपना अपमान समझतीं थीं। इसीलिये कुलीन पुरुष या तो इस धराधाम पर उच्च कुल में उत्पन्न दोष रहित परम सुन्दरी कन्या को चाहते थे या स्वर्गादि ऊपर के लोकों में निवास करनेवाली स्वर्ग की रमणियों को। स्वर्गीय रमणियों की प्राप्ति बिना घोर तपस्या के हो नहीं सकती। इसीलिये वे तपस्या करते थे। अपनी प्रिय इष्ट वस्तु की जितनी ही अधिक प्रतीक्षा की जायगी, उसकी प्राप्ति में उतनी ही अधिक प्रसन्नता होगी, अत: प्रतीक्षा की वृद्धि हो इसी हेतु प्रेम भाव को बढ़ाने के निमित्त करते हैं।

आग्नीध्र राजा ये, कीनों तप मन लाय। पूर्वचित्ति मोहित भई, निज पति लियो बनाय।।

ब्रह्माजी ने उनकी अभिलाषा को जान कर अपनी सभा की सर्वांगसुन्दरी अप्सरा पूर्वचित्ति को उनके पास भेज दिया। यह अप्सरा अद्भुत गायिका भी थी। वह ब्रह्माजी की सभा में गायन करनेवाली सर्वोच्च गायिका थी। आग्नीध्र के आश्रम के पास एक सर्वांग सुन्दर उपवन था। पूर्वचित्ति उसी में विचरने लगी। पक्षीगण अपने सुमधुर कलरव से उपवन और वहाँ के सरोवर की शोभा बढ़ा रहे थे।

पूर्वचित्ति का शरीर-सौन्दर्य त्रिलोकी का सार था। मदभरा यौवन उसकी शरीर-लता पर किलकारियाँ मा रहा था। उसे देखकर अपने मन के वेग को रोकनेवाला विधाता की सृष्टि में कोई न था। उसकी गति का विलास देखकर हथिनी भी लजा जाती थी। उसकी कटि पर हिल-हिल कर झन-झनानेवाली करधनी मानो कामदेव की कटार हो।

विधि नृप मनकी बात जानि वर वधू पठाई। पूर्वचित्ति आदेश पाइ भूपति ढिँग आई।।
बीड़ा क्रीड़ा सहित मधुर चितवन मुसकावत। यौवनके मद भरी रूप रस-सो बरसावत।।
भूप निहारी अप्सरा, खोयो मन मोहित भये। रूपासवको पान करि, मदमातेसे ह्वै गये।।

रूप का आकर्षण मनुष्य की स्वाभाविक चेतना को नष्ट कर देता है। कितना भी ज्ञानी ध्यानी विवेकी पुरुष क्यों न हो, जहाँ उसे रूप की गन्ध आ गई, जहाँ उसने सौन्दर्य की मादक सुधा का पान किया, वहीं वह मतवाला बन जाता है। चराचर विश्व में उसे अपनी प्रिय वस्तु का ही ध्यान होता है। भगवान न करें कि किसी की किसी पर अत्यधिक आसक्ति हो, यदि प्रारब्धवश किसी पर आसक्ति हो ही जाय तो वह उसे प्राप्त हो जानी चाहिये।

शुकदेव कहते हैं- राजन्। जब महाराज आग्नीध्र के निकट पूर्वचित्ति आई तो वे पूछने लगे- हे मुनीश्वरी तुम कौन हौ? इस शैल पर तुम्हारी क्या करने की इच्छा है? क्या तुम पर पुरुष भगवान की कोई माया तो नहीं हो? हे सुहृद्। तुमने बिना प्रत्यंचा के ये दो धनुष क्यों धारण कर रखे हैं? क्या तुम इस अरण्य में प्रमत्त मृगों को मृगया के निमित्त खोजती फिरती हो।

आग्नीध्र नें देखा सुर-सुन्दरी को। वे विस्फारित निर्निमेष नयनों से उसे निहारते ही रह गये। काम ने उन्हें मत्त नहीं, उन्मत्त बना दिया। आग्नीध्र पूजा-आराधना छोड़कर उस सुन्दरी के पास पहुँच गये और उसके पीछे पागल हो गये।

शुकदेवजी कहते हैं- राजन्, आग्नीध्र देवताओं के समान बुद्धिमान और स्त्रियों को प्रसन्न करने में बड़े कुशल थे। अपनी मधुर-मधुर बातों से उन्होंने उस अप्सरा को प्रसन्न कर लिया। वह आ गई महाराज आग्नीध्र के पास। शुकदेव बोले- राजन्। पूर्वचित्ति अप्सरा पर विमुग्ध हुए महाराज आग्नीध्र उससे कहने लगे- हे चारु श्रृंगोंवाली। ब्रह्माजी के द्वारा भेजी हुई अत्यन्त प्रियतमा दयिताको मैं अब छोड़ नहीं सकता, क्योंकि तुम में फँसे हुए मेरे नेत्र और चित्त कहीं अन्यत्र जाने में असमर्थ है। अत: अब तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ अपने इस अनुचर को ले चलो और ये तुम्हारी सुन्दरी सखियाँ भी साथ ही चलें।

यह वस्तु पवित्र है, यह अपवित्र है, इसमें शास्त्र ही प्रमाण है। द्विजों की परोपभोग्या ललना सामान्यतया धर्मपत्नी नहीं बन सकती। किन्तु यह नियम भूलोक की ललना के लिये ही लागू है। सुर-सुन्दरी तो सर्वदा पवित्र मानी गयी है। एक मुँह से लगाई वस्तु दूसरे के लिये त्याज्य है। महाराज पुरुरवा ने उर्वशी के संग विवाह किया जिससे चन्द्रवंश बढ़ा। स्वर्गीय देवलोक की अप्सरायें तो सुवर्ण और शंख के समान पवित्र होती हैं फिर पूर्वचित्ति तो सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मलोक की रमणी थी। पितामह ब्रह्माजी की आज्ञा से उनकी भेजी हुई ही आई थी, अत: उसके साथ पाणिग्रहण करना सर्वथा शास्त्रीय विधि से विवहित ही था। यदि मर्त्यलोक की परभोग्या ललना से द्विजाति विवाह करें तो उसकी सन्तानों द्वारा दिया हुआ पिंड और जल पितरों को प्राप्त नहीं होता। यह धार्मिक संतान न होकर वैषयिक सन्तान मानी जाती है।

वहाँ उसने पृथ्वी-पति के साथ सुदीर्घ काल तक दिव्य भोगों को भोगा। कुछ समय के बाद नृपवर आग्नीध्र ने उसके गर्भ से नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्यमय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल नामके नौ पुत्रों को पैदा किया। अप्सरा तो अप्सरा ही ठहरी। इन पुत्रों को पैदा कर वह पुन: ब्रह्माजी के ही पास चली गई। आग्नीध्र के ये पुत्र माता के अनुग्रह से स्वभाव से ही सुडौल और सुन्दर शरीरवाले थे। आग्नीध्र ने जम्बुद्वीप में विभाग करके उन्हीं के समान नामवाले नौ वर्ष (भूखण्ड) बनाये और उन्हें एक-एक पुत्र को सौंप दिया। तब वे सब अपने-अपने वर्ष का राज्य भोगने लगे। राजा आग्नीध्र विषयों से तृप्त नहीं हुए थे। अग्नीध्र अप्सरा को ही परम पुरुषार्थ समझते थे। इसलिये वैदिक कर्मों के अनुष्ठान से उन्होंने उसी लोक को प्राप्त किया जहाँ पितृगण अपने-अपने पुण्य के अनुसार भाँति-भाँति के भोगों में मस्त रहते हैं।

नौ पुत्रन को जन्म दे, गई अप्सरा लोक। नौ वर्षन को राज्य दे, गये नृपति सुरलोक॥

पिता के परलोक चले जाने पर नाभि आदि नौ भाइयों ने मेरु की मेरुदेवी आदि नौ पुत्रियों के साथ विवाह किया।

मेरु- सुवर्णमय दिव्य पर्वत। दिव्य पर्वत मेरु अपनी प्रभा से सदैव आभासित रहता है। उसके स्वर्णमय शिखरों की अमित प्रभा अद्भुत है, जो सूर्य के तेज को भी तिरस्कृत कर देती है। उस स्वर्णभूषित विचित्र शैल पर देवता और गंधर्व निवास करते हैं। प्राकृत मनुष्यों के लिए उस पर्वत पर मन से भी पहुंचना असंभव है। उस पर्वत पर दिव्य औषधियां हैं, असंख्य वृक्ष हैं, जिन पर मनोहर पक्षियों का कलरव सुनाई देता है। अपने उच्च महातेजस्वी देवताओं ने मेरु गिरि के एक उच्च शिखरों में वह शैलराज स्वर्गलोक को घेरकर खड़ा हुआ प्रतीत होता है। समस्त शिखर पर बैठकर अमृत-प्राप्ति के लिए विचार किया था, तभी श्रीनारायण ने उनसे कहा था- समस्त देवता और असुर मिलकर महासागर का मंथन करें। उसी से अमृत की प्राप्ति होगी।

आग्नीध्र के ज्येष्ठ पुत्र थे नाभि। नाभि को कोई सन्तान न थी अत: उन्होंने पुत्र की कामना से अपनी पत्नी मेरुदेवी के साथ भगवान का यजन किया। वस्तुत: यज्ञ के सच्चे भाजन भगवान विष्णु ही हैं, अत: उन्हें यज्ञपुरुष कहा जाता है।

हम अपनेको बहुत ऊंचा और दूसरोंको नीचा मानते है उसमें अभिमानके सिवाय और कोई कारण नहीं है। जहाँतक बुद्धिमत्ताका प्रश्न है, वह तो पशु-पक्षियोंमें भी होती है। सबको ज्ञान होता है और अपने-अपने ज्ञानमें सबकी निष्ठा होती है। शुकदेव बोले- राजन्, महाराज नाभि के समान ब्राह्मण भक्त कौन हो सकता है। जिनके द्वारा मंगल द्रव्यों से पूजित हुए ब्राह्मणों ने उन्हें यज्ञ में साक्षात् यज्ञेश श्रीविष्णु के दर्शन करा दिये।

राजा नाभि के कोई सन्तान नहीं थी। नाभि ने यज्ञ किया और यज्ञ में प्रसन्न होकर भगवान यज्ञेश्वर प्रकट हुए और ऋत्विजों ब्राह्मणों से पूछा, यजमान क्या चाहता है? पर राजा नाभि संकोच के मारे भगवान को कुछ बोल नहीं सकते। तब यज्ञ करानेवाले ऋषियों ने कहा- भगवन। यजमान आपके सदृश पुत्र चाहते हैं, आपके जैसा बेटा चाहते हैं।

यह यज्ञ श्रद्धापूर्वक विशुद्ध भाव से किया गया था। यज्ञ में किसी प्रकार की विगुणता न थी। फलत: भगवान अपनी भक्त-वत्सलता प्रदर्शित करने के लिये अत्यन्त दिव्य वेश धारण कर यज्ञ-भूमि में प्रकट हुए।

भगवान के दिव्य विग्रह का दर्शन कर यज्ञ में उपस्थित सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर सभी ने सिर झुकाकर अत्यन्त आदर के साथ प्रभु को अर्घ्य आदि प्रदान कर पूजा की।

ऋत्विजों ने भगवान की स्तुति करी- प्रभो, हम आपके अनुगत भक्त हैं। आप हमारे पुन: पुन: पूजनीय हैं। हम तो बार-बार आपको प्रणाम करते हैं। यही हमारे आचार्यों ने हमें सिखाया है। भगवन्, हमारी विनती है कि इस यज्ञ की सम्पन्नता में संलग्न ऋत्विक्, सदस्य और यजमान आदि हम सेवकों की तुच्छ पूजा-अर्चना आप कृपा कर स्वीकार करें। आपके मंगलमय गुण सम्पूर्ण जनता के दु:खों का उपशयमन करनेवाले हैं। सचमुच, आपके गुण-गणों का वर्णन नहीं किया जा सकता किन्तु प्रभो, यदि आपके भक्त प्रेम-गद्गद् वाणी से स्तुति करते हुए सामान्य जल, विशुद्ध पल्लव, तुलसी-पत्र और दूब के अंकुर आदि से ही आपकी पूजा करते हैं।

आपको किसी वस्तुकी कामना नहीं है। आप निष्काम हैं, पूर्णकाम हैं। आप हमारे मनोरथ को कृपापूर्वक पूर्ण करने आये हैं इस यज्ञ में, वस्तुत: आप का दर्शन ही इस संसार में सबसे बड़ा लाभ है, सबसे बड़ा वर है। परम वैराग्य से सम्पन्न बड़े-बड़े महापुरुष आपके गुणों की अविरल प्रशंसा करते हैं। प्रभो आपके नाम की, गुणों की अद्भुत महिमा है। यदि कोई पाँव फिसलने पर, छींक आने पर, ठोकर खाकर धरती पर गिरने पर, जँभाई आने पर, दु:ख की बेला में, विवश होकर, ज्वर दशा या मरणदशा में आपके नाम का उच्चारण कर ले तो उसका परम कल्याण हो जाता है अत: हमारी कामना है कि हमारी जिह्वा आपके नामों का सदा उच्चारण करती रहे। यह हमारी प्रार्थना है, एक वरयाचना है। हम दूसरा वर यह माँगते हैं कि हमारे यजमान को कोई सन्तान नहीं है। इन्होंने पुत्र की कामना से आपका यह यज्ञ किया है। यह आपके समान पुत्र चाहते हैं अत: आप इनके भी मनोरथ को पूर्ण करने की कृपा करें।

भगवान ने कहा- ऋषियों, आप ने यह बड़ा दुर्लभ वर मांगा। आप चाहते हैं कि नाभि को मेरे जैसा बेटा मिले। किन्तु महात्माओं, इस समग्र संसार में मेरे जैसा तो कोई दूसरा है ही नहीं; क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ। तो भी ब्राह्मणों का वचन मिथ्या नहीं होना चाहिये, क्योंकि द्विजकुल तो मेरा ही मुख है अत: मैं स्वयं ही अपनी अंश कला से, आग्नीध्रनन्दन नाभि की पत्नी मेरुदेवी की कोख से जन्म लूँगा। मैं आपकी बातको सत्य करने के लिये राजा नाभि के यहाँ स्वयं पुत्र रूप में प्रकट होऊंगा। यह कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये।

शुकदेव जी कहते हैं- राजन्, इस प्रकार नाभि को प्रिय करने के लिये भगवान शुद्ध सत्त्वमय विग्रह धारण कर महारानी

मेरुदेवी के गर्भ से प्रकट हुए। दिगंबर संन्यासी और ऊर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रकट करना भी भगवान के इस अवतार का प्रयोजन था। नाभिनन्दन के अंग जन्म से ही भगवान विष्णु के वज्र-अंकुश आदि चिन्हों से युक्त थे। वे ऋषि-मुनियों के गुणों से सम्पन्न थे अत: ब्राह्मण, देवता तथा सारा प्रजावर्ग उन्हीं को पृथ्वी के शासक के रूप में देखना चाहता था कि यही राजा बनें। उनके सुन्दर और सुडौल शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम, समता, शान्ति और शूरता-वीरता आदि गुणों के कारण महाराज नाभि ने उनका नाम ऋषभ रक्खा। ऋषभ का अर्थ होता है- श्रेष्ठ।

पुत्र की प्राप्ति पूर्व पुण्यों के महान फल के उदय से ही होती है। यदि पुत्र रूप में परमेश्वर ही पत्नी के पेट से पैदा होकर प्रेम प्रदर्शित करे तो उसे पिता के सौभाग्य की तुलना भला किससे की जा सकती है। कोटि-कोटि जन्मों का जब सुकृत उदय होता है, तब श्रीहरि के दर्शन होते हैं। दर्शन होने के अनन्तर ही पुत्र बनकर अपने भक्त से तोतली वाणी में पिताजी-पिताजी कहकर पुकारे तो उस सुख की संसार में किससे समानता की जा सकती है? ऐसे पुरुष संसार के माननीय पूजनीय अभिनन्दनीय और प्रातस्मरणीय समझे जाते हैं।

अन्तर्हित हरि भये राजरानी हुलसानी। गर्भवती पुनि भई मेरुदेवी पटरानी।।
भये अवतरित ऋषभ त्यागको मग दरसावन। संन्यासी मुनि विमल दिगम्बर अतिशय पावन।।
नाभि निरखि नय विनय युत, सुत जगपति जानत भये। प्रजा सचिव सम्मति समुझि, राजा तिलक दे वन गये।।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, उन राजर्षि महाराज नाभि के द्वारा किये हुए कर्मों का आचार कौन कर सकता है? जिनके विशुद्ध कर्मों से सन्तुष्ट होकर स्वयं साक्षात् श्रीहरि जिनके पुत्र होकर प्रकट हुए।

ऋषभदेव भगवान के आठवें अवतार हैं और जैन संस्कृति के २४ तीर्थांकर में से एक है। तीर्थांकर उसे कहते हैं जिसके चरणों के पदार्पण से घर तीर्थ बन जाएं। भगवान वही होता है- जो कर्तु अकर्तु अन्यथाकर्तु समर्थ हो, जिसमें सब कुछ करने, कु भी न करने और सब कुछ बदल देनेका सामर्थ्य हो और जिसके ऐश्वर्यमें कभी कोई बाधा न पड़े।

इन्द्र ऋषभ के प्रभाव को देखकर उनसे ईर्ष्या करने लगे, फलत: उन्होंने उनके राज्य में वर्षा बन्द कर दी। इन्द्र सोचने लगा- मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ, मेरा इतना आदर मान नहीं, जितना पृथ्वीलोक के एक राजकुमार का आदर मान है। जहाँतक देवता लोग भी ऋषभदेव का आदर करने लगे। इस स्पर्धा के कारण इन्द्रने उनके राज्य में वर्षा बन्द कर दी।

ऋषभ उनकी इस मूर्खता पर खूब हँसे और अपनी योगमाया के प्रभाव से अपने राज्य अजनाभवर्ष में पर्याप्त जल की वृष्टि करवाई। पहले भारतवर्ष का नाम अजनाभ वर्ष था। भरत के बाद यह भारतवर्ष कहलाया। नाभि ऋषभ देव को पुत्र के रूप में पाकर अतिशय प्रसन्न थे। जिसकी गोद में नारायण ही बालक बनकर खेलने लगे तो फिर उसके सौभाग्य का क्या कहना। जब वे स्नेहवश हे तात, हे वत्स, कहकर पुत्र का दुलार करने लगते थे तो उनका हृदय आनन्द-सागर से भर उठता था। मन्त्रिमण्डल, नागरिक और राष्ट्र की जनता ऋषभदेव से बहुत प्रेम करती थी।

यह देखकर नाभि ने ऋषभदेव को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त कर ब्राह्मणों की देख-रेख में छोड़ दिया और स्वयं नर-नारायण की सेवा करने के लिये पत्नी के साथ विशाला (बद्रीनाथ) चले गये। विशाल राजा ने वहाँ तपस्या की थी अत: बदरीवन-मेदिनी= बदरिकाश्रम को ही विशाला कहते हैं। वहाँ सुदीर्घकाल तक नर-नारायण की उपासना कर नाभि पत्नी के साथ मुक्ति को प्राप्त किया।

राजर्षि नाभि के उदार कर्मों का अनुकरण दूसरा कौन पुरुष कर सकता है। जिसके शुद्ध कर्मों से सन्तुष्ट होकर साक्षात् श्रीहरि उनके पुत्र बन गये थे। महाराज नाभि के समान ब्राह्मण भक्त भी कौन हो सकता है- जिनकी दक्षिणा से सन्तुष्ट हुए

ब्राह्मणों ने उन्हें यज्ञशाला में साक्षात् विष्णु भगवान के दर्शन करवा दिये थे।

ऋषभदेवने इन्द्रसे कहा- तू अपनी आदतों से लाचार है। तू किसी का वैभव सह नहीं पाता, देख नहीं सकता। ऋषभदेव ने संसार को शिक्षा देने के लिये गुरु के घर में निवास किया। इन्द्र की बेटी जयन्ती के साथ उनका विवाह हुआ। इन्द्र उनके श्वसुर बने। देवराज पुत्र को असुर कहा गया है। इसे कागासुर कहते हैं पर इन्द्रकी पुत्री जयन्ती बड़ी सुशील और सदाचारिणी थी और ऋषभदेव के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ।

जयन्ती से ऋषभदेव के सौ पुत्र पैदा हुए। उनमें सबसे बड़े महायोगी महाप्रतापी भरत थे। इन्हीं के नाम से अजनाभवर्ष का नाम भारतवर्ष पड़ा। पहले देश का नाम अजनाभ खण्ड था। भरत में ज्ञान, वैराग्य और आध्यात्मिक साधना में पराकाष्ठा पर हैं। दूसरे भरत दशरथनन्दन भरत प्रेमकी पराकाष्ठा थे। तीसरे भरत दुष्यन्तनन्दन शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न हुए जो अपने देश के गौरव हैं। दुष्यन्तपुत्र भरत के कर्म पराकाष्ठा पर है। कहते हैं-

तीन सजावत देश को सती सन्त अरु सूर। तीन लजावत देश को कुलटा कायर कूर॥

भरत से छोटे नौ पुत्र- कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलयकेतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट- नौ खण्डों के अधिपति हुए। कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, अग्निहोत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन ये नौ पुत्र योगेश्वर हुए। शेष ८१ पुत्र कर्मनिष्ठ याज्ञिक हुए जो देखने में ब्राह्मणों के समान प्रतीत होते थे। इनका उपदेश प्रत्येक साधक के लिये विचारणीय है उपादेय है। ये तीनों इतने तेजस्वी थें कि आकाश मार्ग से चलते थे तो मालूम पड़ता है कि नौ सूर्य आ रहे हैं। तात्पर्य यह है कि महात्मा ऋषभदेव ने अपने भीतर से ब्राह्मण, क्षत्रिय राजा, बड़े-बड़े तपस्वी और योगेश्वर प्रकट किये। भरत के लघु भ्राता तप से ब्राह्मण वर्ण में होकर सिद्धेश्वर बन गये।

ऋषभदेव जी महाराज गृहस्थ धर्म की शिक्षा देने के लिये स्वयं गृहस्थाश्रम के धर्मों का पालन करते थे; क्योंकि घर-परिवार और समाज का बड़ा व्यक्ति जो करता है, छोटे लोग उसी का अनुकरण करते हैं। वे ब्राह्मणों की शिक्षा के अनुसार पृथ्वी के शासन का संचालन करते थे। उन्होंने सौ यज्ञ किये। उनके राज्य में ऐसे-ऐसे आत्माराम आप्तकाम पुरुष हुए जो किसी से भी कुछ नहीं चाहते थे। सभी सन्तुष्ट थे, ज्ञानी थे, सब प्राणियों के कल्याण की कामना करनेवाले थे। एक समय की बात है। वे राज्य में भ्रमण करने के प्रसंग से गंगातट पर स्थित ब्रह्मावर्त में ऋषियों की सभा में जा पहुँचे। ब्रह्मावर्त को आजकल बिठूर के नाम से जाना जाता है। वहाँ उन्होंने प्रजा के सामने ही अपने शान्त सुयन्त्रित सुशील पुत्रों को उपदेश देना प्रारम्भ किया। जितने दिन ऋषभदेव ने गृहस्थ में रहकर शासन किया उनके सारे लोक शिक्षणार्थ थे। इनकी दिनचर्या बड़ी नियमित थी। उन्होंने हजारों यज्ञ किये, धर्म-अर्थ-काम मोक्ष का सम्यक् प्रकार से सम्पादन करके गृहस्थाश्रम की लोगों को शिक्षा देते। अपने लिये उन्हें किसी कर्तव्य कर्म करने की जरूरत नहीं थी।

ऋषभदेव ब्राह्मणकी शिक्षाके अनुसार पृथ्वीका शासन करने लगे। उन्होंने सौ यज्ञ किये। उनके राज्यमें ऐसे-ऐसे आत्माराम, आप्तकाम पुरुष होते थे, जो किसी भी दूसरेसे कुछ नहीं चाहते थे। कोई भी व्यक्ति किसीसे भी भगवान्के प्रति अनुरागके सिवा और कुछ नहीं चाहता था तथा दूसरेकी किसी वस्तुपर नजरतक नहीं डालता था- सब आत्मज्ञानी थे, सब आपका स्वरूप जानते थे।

ऋषभदेव अवधूत ने, दिये पुत्रन को उपदेश। जग माया को जाल है, त्यागो सब लवलेश॥

ऋषभदेव ने कहा- जिस शरीर से हम बहुत सी प्राप्ति कर सकते हैं। मुक्ति चाहो तो मुक्ति ले लो, सांसारिक बनना हो तो

सांसारिक बनो। जगत झूठा है, असत्य है। बंधन असत्य है। हे मेरे नन्हे मुन्ने पुत्रों तुम्हें मानव का यह सुन्दर शरीर उन विषयभोगों के लिये नहीं प्राप्त हुआ है जो विष्ठाभोजी सूकर-कूकर आदि को भी मिलते हैं। इस शरीर से दिव्य तप ही करना चाहिये। तप से अन्त:करण शुद्ध होता है। अन्त:करण की शुद्धि के अनन्तर ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है। ये शरीर केवल खाने, पीने, सोने, हँसने को नहीं मिला, बल्कि शरीर से हमें तपस्या करनी चाहिये। शरीर से महापुरुषों का संग करना चाहिए। महापुरुष वे ही हैं जो समानचित्त, परमशान्त, क्रोधहीन, सबके हितचिन्तक और सदाचार-सम्पन्न हो। प्रात: जल्दी उठकर, स्नान कर परमात्मा का भजन करना चाहिये। घर बनाते समय गृहस्थी के लिये जरूरी हैं जो सबसे सुन्दर, उत्तम स्थान हो, वहाँ मंदिर बनाना चाहिए, बिना मंदिर का घर श्मशान भूमि के समान होता है। मंदिर में मूर्ति हैं, ये भाव कभी मन में मत लाओ। उसे प्रत्यक्ष भगवान ही मानें, घरमें भोजन बनावें तो बिना भगवान के अर्पण किये किसी भी पदार्थ का सेवन न करें। भगवान के प्रसाद को कभी नहीं ठुकराए। महापुरुषों की सेवा करना, यह मुक्ति का द्वार है, संतोंकी सेवा करना, गुरुजनों के चरणों में वन्दन करना, ये मुक्ति पथ का द्वार है। शराबी, कबाबी, वेश्या गामी पुरुषों का संग करना ही नरक का द्वार है।

भगवान के प्रति अनुराग उत्पन्न करने के लिये सद्गुरु का संग्रह करना चाहिए। काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि विकारों में दुर्गुण होते हुए भी सगुण है। काम कहता है मुझसे अधिक सहनशील कोई नहीं। जब तक मेरा कार्य सम्पन्न नहीं होता तब तक दुनिया कुछ भी कहे सहन करता हूँ। क्रोध कहता हैं मैं निष्कपट हूँ। मेरा कितना ही कोई अन्तरंग क्यों न हो समय पर मैं उसकी समाज के सामने पोल खोल देता हूँ, अत: मैं निष्कपट हूँ। मोह कहता है मेरे बिना आपसे मिलना नहीं होता। लोभ कहता है मेरे पास संगठन रूपी अमूल्य गुण है। मेरे बिना किसी में किसी प्रकार का संग्रह नहीं होता। संसार के महामोहमय पाश से छुड़ानेवाला अपना सदाचार और तपस्या को उत्तरोत्तर बढ़ाते रहो।

पुत्रों, इस मर्त्यलोक में यह मनुष्य शरीर केवल विषय भोग के लिये नहीं प्राप्त हुआ है। यह मानव का शरीर खाने-पीने सोने एवं बाल-बच्चा पैदा करने के लिये नहीं मिला है। जितने भी शरीर हैं, उसमें सबसे श्रेष्ठ यह मनुष्य का शरीर है। मनुष्य शरीर के समान महत्वपूर्ण कोई शरीर नहीं है। लेकिन इस मनुष्य शरीर को केवल विषयभोगों में गुजार देते हो, तो बहुत बड़ा घाटा हो जायेगा। केवल इतने ही के लिये यह नहीं मिला है। खाना-पीना, बाल-बच्चे पैदा करना ये तो पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े भी कर लेते हैं। सूअर, कुत्ते भी कर लेते हैं। इतना ही मनुष्य शरीर में किया, तो हममें और पशुओं में सुअर, कुत्तों में क्या अन्तर है। इसलिये पुत्रों मनुष्यों को तप का ही आचरण करना चाहिये, जिससे अन्त:करण की शुद्धि हो और अनन्त सुख स्वरूप श्रीहरि की प्राप्ति हो सके।

सूकर-कूकर करत हैं खान पान सम्भोग। तुलसी वृथा न खोइये, यह तन भजिबे योग।।

यदि तुम लोग महापुरुषोंकी सेवा करोगे, तो तुम्हें मुक्तिकी प्राप्ति होगी और स्त्री-संगी कामियोंका संग करोगे तो समझ लो कि नरकका दरवाजा है। महापुरुष उन्हींको कहते हैं जो समचित्त, प्रशान्त, निष्क्रोध, सबके सुहृद् और साधु होते हैं। महापुरुष भगवान्के साथ तो प्रेम करते हैं, किन्तु देह-गेहमें फँसे हुए, नमक-लकड़ीकी चिन्तामें लगे हुए लोगोंसे उनकी प्रीति नहीं होती। मनुष्य इन्द्रियोंकी तृप्तिमें लग गया है, परमात्माकी ओर नहीं चलता। उसको देह मिला या भगवान्के भजनके लिए, लेकिन वह इससे करने लगा विषय-भोग। इसीलिए उसके देहमें दु:ख आ गया। जबतक मनुष्य अपनी आत्माको नहीं जानता तबतक उसको अज्ञान-कृत पराभवकी प्राप्ति होती रहती है। जबतक कर्म है, तबतक मन है और जबतक मनमें विषयवासना है, तबतक शरीरका बन्धन है।

कुछ लेना न देना मगन रहना, पाँच तत्त्व का बना रे पिंजरा उसमें बैठी मेरी मैना, कुछ लेना...
गहरी नदिया नाव पुरानी, केवटिया से मिले रहना। कुछ लेना...
कहत कबीर सुनो भई साधो, इतना मानो सजन कहना। कुछ लेना...

सन्त महात्माओं तथा महापुरुषों की सेवा ही मुक्ति का दरवाजा है। आदमी दरवाजे से होकर अन्दर जाता है। इसका मतलब यह है कि सन्त महात्मा तथा गुरु जी की सेवा रूपी दरवाजे से ही मुक्ति के घर में भीतर जाया जा सकता है और जो कामासक्ति मार्ग पर चल रहे हैं वे वासनाओं के दरवाजे से नरक में जा रहे हैं। महापुरुष भी उसी तरह होते है जिस तरह कोई अपने व्यक्ति को गड्ढे में गिरने से बचाते है उसी तरह ज्ञानी व्यक्ति अपने किसी भी संबंधी को उन्मार्ग पर जानेसे रोकता है।

पारस तो लोहे को सोना ही बनाता है, किन्तु भगवद् भक्त महापुरुष अपने सेवक को पारस ही बना लेते हैं अत: सन्त संग ही मोक्ष का मार्ग है। साधु पुरुष समान चित्तवाले होते हैं, उनका स्वभाव सर्वथा शान्त होता है, वे कभी किसी पर मन से क्रोध नहीं करते, सभी को स्वभाव के वशीभूत समझकर क्षमा करते रहते हैं। वे कभी सदाचारसे च्युत नहीं होते, सदा श्रेष्ठ पथ का अनुसरण करते रहते हैं। वे सबके सच्चे सुहृद् अकारण बन्धु, परोपकारी तथा सदाचार सम्पन्न होते हैं। भगवान ही उनके सर्वस्व होते हैं उन्हीं के प्रेम में निरन्तर तन्मय बने रहते हैं। स्त्री, पुत्र, धन,विषयभोग सम्बन्धी सामग्रियों से सम्पन्न घरों में इनकी आसक्ति नहीं होती, वे केवल निर्वाह के निमित्त तथा परोपकार के लिये ही लौकिक कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। ऐसे पुरुष ही महापुरुष है। उन्हें ही साधु कहा गया है, उनके संग से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

मनुष्य जबतक भगवानसे प्रीति नहीं करेगा तबतक वह देहयोगसे नहीं छूटेगा और उसको देह-पर-देह मिलते रहेंगे। जब मनुष्य प्रमत्त हो जाता है और विषय-भोगको, इन्द्रियोंको मिथ्या नहीं समझता, तब उसको अपने स्वरूपकी विस्मृति हो जाती है। उसको ऐसा लगता है कि हमारे भीतर कुछ नहीं, सब कुछ बाहर ही है, इसलिए कहता है कि मुझको यह चाहिए, वह चाहिए। अरे जो सुख मकानमें है, स्त्रीमें है, बेटोंमें है, धनमें है, वह और कहाँ हैं? इस तरह वह ठन-ठनपाल हो जाता है। उसके भीतर जो ईश्वर बैठा हुआ है, उसको छोड़कर बाहर देखता रहता है।

जो स्त्रियों का संग करनेवाले पुरुष हैं, स्त्रियों में रुचि रखनेवाले पुरुष हैं, उनका वह संग ही उन्हें नरक में ले जानेवाला दरवाजा है। अगर हम काम योषिता के संगी का संग नहीं करेंगे तो हमें तो चरित्रहीन औरतों के पास भी नहीं जाना पड़ेगा, अगर वहाँ पर नहीं जायेंगे तो नरक के द्वार पर भी नहीं जाना पड़ेगा। मुख्य उद्देश्य जीव का संसार सागर से निवृत्त होना है। सांसारिक सुख सुविधाओं को उखाड़ना उर्द्धता है। जड़ से उखाड़ना वासनाओं को निर्मूल करना ही उर्द्धता है।

ऋषभदेव बोले- सबसे अधिकसंसार में जकड़नेवाली वस्तु है चरित्रहीन पुरुषों का संग। जो स्त्री चरित्र भ्रष्ट होती है, वह दूसरी स्त्रियों को भी चरित्रहीन बना देती है, इसी प्रकार चरित्रहीन पुरुषों का संग करने से दूसरे उसके साथी भी चरित्रहीन हो जाते हैं। जैसी संगति करोगे वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। जो खाओगे वैसे ही उद्गार निकलेंगे। सफेद वस्त्र को जिस रंग के पानी में डालोगे वैसा ही रंग उस पर चढ़ जायगा। इसीलिये मोक्ष मार्ग के पथिकों को सदा स्त्रीलम्पट विषयी पुरुषों के संग से दूर ही रहना चाहिये।

संसार में दो ही आनन्द हैं एक तो ब्रह्मानन्द, दूसरा विषयानंद। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति तो त्याग वैराग्य द्वारा किसी विरले को ही होती है, विषयोंका भोग यदि धर्म को परित्याग करके न किया जाय, नित्य ही धन की प्राप्ति में, शरीर की आरोग्यता में पुत्र पौत्रों के साथ बैठकर किल्लोल करने में, सहधर्मिणी के धार्मिक कृत्य करने में, उसके साथ मीठी-मीठी बातें करने में,

परोपकार के कार्य करके यश और कीर्ति लाभ करने में जो आनन्द मिलता है, उससे शरीर के रोम-रोम विकसित हो जाते हैं, चित्त प्रसन्न हो जाता है। विषयों के सेवन से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति नहीं होती। उसकी प्राप्ति तो विशुद्ध अन्त:करणवालों को ही होती है और अन्त:करण शुद्ध होता है।

भगवान का भजन करने योग्य यह मानव देह ही है। आग लगे हुए जलते हुए संसार से बचने के लिये भाग कर भगवान की सुखद शान्तिमय गोद में पहुँचने का यही एक साधन है। इसी शरीर से जीव भगवान के चरणों में जा सकता है। हे पुत्रो। तुम्हारी ये जन्मभूमि भोगभूमि नहीं, यह धर्मभूमि है। अपने जीवन में दिव्य तप रूपी धर्म आचरण करो। धर्म का आचरण करने से थोड़ा अगर कष्ट भी हो, तो भी कष्टसाध्य धर्म का आचरण करो, उससे (येन सत्वं शुद्धये) जिससे शुद्ध सत्व का अन्त:करण में आर्विभाव होगा। तुम्हारी अन्त:करण की शुद्धि होगी, उससे अनन्त परमात्म सुख की प्राप्ति होगी, ब्रह्मानन्द का साक्षात्कार होगा। इसके लिये ये मानव शरीर मिला है। अपनी इन्द्रियोंको संयमित और विषय-भोगोंको मर्यादित करना चाहिए। जिसके जीवन में मर्यादा नहीं, संयम नहीं; वह मनुष्य कहलाने योग्य नहीं है। देखो संसार में दो रास्ते हैं- एक रास्ता अँधेरेवाला है जो पतन, बंधन और कष्ट की ओर ले जाता है, दूसरा रास्ता प्रकाश वाला है, जो बंधन से मुक्ति दिलानेवाला है, सुखसागर तक पहुँचा देनेवाला है। वे दोनों मार्ग कौन हैं।

महापुरुषों का जो संग है, वह प्रकाशवाला मार्ग है, बंधन से छुड़ाकर प्रभु के चरणों में पहुँचा देनेवाला मार्ग है, सुख शान्ति प्रदान करनेवाला मार्ग है। स्त्री संगी, कामी, संसारी, प्रपंची, विषयी, कामिनियों के लम्पट गुलाम बनकर रहनेवाले भोगियों का जो संग है, वह अंधकार का मार्ग है। खुला नरक का दरवाजा है, बंधन का, दु:ख का मार्ग है।

सन्तों का संग है, वह अपवर्ग का मार्ग है। अपवर्ग किसको कहते हैं जिसमें पवर्ग नहीं है। मृत्यु जहाँ पहुँचने के बाद न पतन हो, न किसी फल की आशा रहे, न आकांक्षा रहे, न आपस में वैर रहे, न किसी तरह का भय हो और न मृत्यु की सम्भावना हो।

सन्तों का संग विमुक्ति का मार्ग है, सन्तों का संग अपवर्ग का मार्ग है। कामी प्रपंची विषयी पुरुषों का संग नरक का मार्ग है। इसलिये मेरे प्रिय पुत्रों। सन्तों का, महात्माओं का संग करो, साधु पुरुषों का सेवन करो। उनकी सेवा करो, उनकी आज्ञा का अनुसरण करो। उनके पुत्र बोले- सन्त किसको समझे?

ऋषभदेव बोले- महानपुरुष वे होते हैं समचित्ता: प्रशान्तविमन्यव सुहृद वे महात्मा हैं, जो समचित्त हैं सुख, दु:ख, लाभ, हानि, संयोग, वियोग, सर्दी, गर्मी सब में समाचित्त रहते हैं। सदा समान भाव रहता है उनका द्वन्द्वों में।

जिन्दा रखे तू हमको या धड़ से सिर उतारे। अब तो फकीर आशिक कहता है यूँ पुकारे।।
राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है। यहाँ यूँ भी वाह वाह हैं, यूँ भी वाह वाह है।।

तेरे फूलों से भी प्यार, तेरे काँटों से भी प्यार। जो भी देना चाहे दे दे करतार दुनिया के पालनहार।।
चाहे सुख दे या दु:ख चाहे खुशी दे या गम। मालिक जैसे भी रखोगे वैसे रह लेंगे हम।।
चाहे हँसी भरा संसार या दे आँसुओं की धार। जो भी देना चाहे दे दे करतार दुनिया के पालनहार।।
हमको दोनों है पसन्द तेरी धूप और छाँव। मालिक जिस भी दिशा में ले चल जिन्दगी की नाव।।
चाहें हमें लगादे पार डूबा दे हमें मझधार।

ये है समचिता: अपने को प्रभु के चरणों में समर्पित कर चुके हैं। हर समय भगवान की कथा का श्रवण करना। भगवान

के गुणानुवाद गाना, सन्तों का संग, उनकी सेवा, विश्वात्मा की सेवा, सब कुछ परमात्मा हैं। प्राणी मात्र के प्रति सद्भावना। इस प्रकार अपनी इन्द्रियों को संयमित कर विषयभोगों को मर्यादित करना चाहिये। क्रोधरहित प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना रखना, प्रमादरहित जीवन सब में भगवद् भाव रखना है। मेरे प्यारे पुत्रों। जब तक सर्वात्मा भगवान वासुदेव जो सबके हृदय में निवास करते हैं, उनसे प्रीति नहीं होती, तब तक देह योग से छुट्टी नहीं मिलती। ऋषभदेव जी सबको सदाचार की शिक्षा दे रहे हैं। गुरुजनों का कर्त्तव्य है, अपने स्वजन संबंधियों को, पुत्रों को, अपने शिष्यों को सर्वात्मा प्रभु से जोड़ें। सबका कर्त्तव्य है अपने आश्रितों को सन्मार्ग दिखावें, अपने बालकों को सदैव सत्शिक्षा की ओर प्रेरित करें। जो मृत्यु का भय है उससे अपने प्रियजनों को छुड़ा ले। जो ऐसा नहीं करता वह अपना सच्चा हितैषी नहीं है।

जो अपने प्रिय संबंधियों को मृत्यु के भय से न छुड़ा ले। बार-बार सामने खड़ी होकर मौत भय दिखाती रहती है। जीवों को जन्मों मैं मारूँगी फिर जन्मो फिर मारूंगी। इस मृत्यु के भय से जो सदा के लिये अपने आत्मियजन को न छुड़ा ले, वह गुरु गुरु नहीं है। वे माता-पिता, माता-पिता नहीं वे स्वजन स्नेही नहीं हैं, वो पति पति नहीं हैं, जो हमें भगवद् चरणारविन्दों तक न पहुंचा दे, परम पुरुष परमात्मा की ओर न मोड़ दे।

गुरु नारद सम मिले अकिंचन पर उपकारी।

गुरु वही है, स्वजन, प्रेमी, सम्बन्धी, पिता, माता, भाई, पति वही हैं जो मृत्यु के फंदे से छुड़ाकर भगवान वासुदेव के चरणों में प्रीति करा दें। सबसे बड़ी आपकी सहानुभूति तभी मनी जायेगी, जिसको आप अपना मानते हैं। उसको चौरासी लाख योनियों में भटकने से बचा लें। चौरासी लाख बार मरने का जो भय है मृत्यु का, उस भय से आप अपने प्रेमी स्वजन स्नेही को बचा लीजिये। यह तभी सम्भव है, जब परमानन्द आनन्दकन्द प्रभु के चरणों में पहुँचायेंगे।

जो परमहंस, गुरु, परमात्मा है उसके प्रति भक्ति होनी चाहिए। उसकी सेवा होनी चाहिए। जो गर्मी-सर्दी और सुख-दु:ख आये, उसको सह लेना चाहिए। परलोकमें भी मनुष्यको दु:ख होता है, इसलिए भगवानको छोड़कर दूसरा कुछ नहीं चाहना चाहिए। अपनी इन्द्रियोंका संयम करना चाहिए। सब कुछ विश्वात्माकी सेवाके लिए करना चाहिए। भगवानकी कथा, भगवान्का गुणानुवाद, सन्तोंका संग, अपनी चेष्टाओंको अपने वशमें करना, अध्यात्मशास्त्रका अभ्यास, ब्रह्मचर्यपालन और सबमें भगवद्भावना- इन साधनोंसे अहंकारको काट देना चाहिए और जब जीवनमें प्रमाद न रहे, तब साधनसे भी उपराम हो जाना चाहिए। जैसे नाव द्वारा नदीके पार चले जानेपर नावकी आवश्यकता नहीं रहती, वैसे ही जब ज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है तब ज्ञानकी जरूरत नहीं रहती। लोगोंको संसारसे मत जोड़ो, क्योंकि दुनियाके लोग अपने कर्त्तव्य कर्मके सम्बन्धमें कुछ जानते नहीं। वे सुखके लिए तो काम करते है लेकिन उनको मिलता है दु:ख। असलमें वह गुरु नहीं, वह स्वजन नहीं, वह पिता नहीं, वह जननी नहीं, वह देव इष्टदेव नहीं और वह पति नहीं जो मौतसे छुड़ा नहीं सकता।

शरीर की संज्ञा हो सकती हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, काले, गोरे, बूढ़े, बालक, युवक; लेकिन भीतर जो आत्म तत्व है वह इन सर्व उपाधियों से ऊपर है। परम प्रकाशक आत्म चैतन्य है।

शास्त्रों ने महात्माओं की सेवा को मुक्ति का और स्त्रीसंगी कामियों के संग को नरक का द्वार बतलाया है। महापुरुषों का लक्षण बतलाते हुए वे कहते हैं- जो सुख और दु:ख में समानचित्त, परमशान्त, क्रोधरहित सबके हित चिन्तक और सदाचारी हों उन्हें महापुरुष समझना चाहिये।

ईश्वर में जिनका दृढ अनुराग हो, जो गृह, मठ आदि सांसारिक प्रपंचों से दूर हों, एकमात्र शरीर के निर्वाह के लिये ही जो

संसार से सम्पर्क साधते हों, उन्हें महात्मा समझकर उनकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। मनुष्य जबतक भगवान से प्रीति नहीं करता तबतक देह-योग से उसका वियोग नहीं होगा। उसे देह-पर-देह मिलते रहेंगे।

अत: मुक्ति के लिये भगवान में प्रेम लक्षणा भक्ति परमावश्यक है। भगवान की भक्ति से ज्ञान होता है। ज्ञान होने पर देह का भान नहीं होता फिर तो देह का बन्धन स्वत: समाप्त हो जाता है और साधक को परम शान्ति की अनुभूति होती है। स्त्री एवं पुरुष- इन दोनों का जो परस्पर दाम्पत्य-भाव है, इसी को पण्डित जन उनके हृदय की दुर्भेद्य स्थूल ग्रन्थि (गाँठ) कहते हैं। इसी के कारण जीव को देह-इन्द्रिय आदि के साथ ही घर-खेत, पुत्र, स्वजन और धन आदि में भी मैं और मेरे पन का मोह हो जाता है। जीव मोहबस यही देह में अहं बुद्धि और स्त्री-पुत्र आदि में ममता की भावना कर बैठता है, जो बन्धन का महान कारण है।

जीव हृदय-ग्रन्थि के ढीली होते ही संसार के हेतुभूत अहंकार को त्यागकर सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर परम पद प्राप्त कर लेता है। पुत्रों, अहंकार की निवृत्ति के लिये, संसार-सागर से पार पाने के लिये सत्त्वगुण से विशिष्ट पुरुष को चाहिये कि वह भगवान में भक्तिभाव रक्खे, सर्वदा मेरे आश्रित होकर रहे, तृष्णा का त्याग कर दे, सुख-दु:ख आदि द्वन्द्वों में समबुद्धि रक्खे, निष्कामभाव से कर्म करे, मुझ भगवान के नाम, रूप और गुण का कीर्तन करे, सारे प्राणियों के साथ बैर करना छोड़ दे, सब को समान दृष्टि से देखे, सर्वत्र ममता को छोड़ दे, सत् शास्त्रों का अनुशीलन करे, एकान्त का सेवन करे, प्राण, इन्द्रिय और मन का संयम करे, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे, वाणी में संयम रक्खे और सर्वत्र मेरी सत्ता को देखे। ऐसा करने से साधक अपने अहंकाररूप लिंग शरीर को छोड़ देता है। लिंग के छूटते ही व्यक्ति मुक्त हो जाता हैं।

अविद्या के कारण घर-मठ में आसक्त व्यक्ति का आश्रयण करने से व्यक्ति का उद्धार नहीं हो सकता। अन्धे का हाथ पकड़कर चलनेवाला व्यक्ति उसके साथ ही गड्ढे में गिर जाता है। जो व्यक्ति अपने प्रिय व्यक्ति को भगवद्भक्ति का उपदेश देकर मृत्यु को फाँसी से नहीं छुड़ा लेता, वह गुरु सच्चा गुरु नहीं है, स्वजन सच्चा स्वजन नहीं है, पिता यथार्थ पिता नहीं है, माता सच्ची माता नहीं है, इष्टदेव सच्चा इष्टदेव नहीं है और पति सच्चा पति नहीं है।

जाके प्रिय राम वैदेही, तजिये ताकि कोटि वैरी समय यद्यपि परम सनेही।।
तज्यो पिता प्रल्हाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी। बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रजवनितनि भये मुद मंगलकारी।।
नाते नेह रामके मनियत सुहृद् सुसेव्य जहाँ लौं। अंजन कहाँ आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं।
तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रानते प्यारो। जासो होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो।।

ऋषभदेव आगे कहते हैं- पुत्रों, इस सृष्टि में जो स्थावर जंगल प्राणी हैं, उनमें गन्धर्व आदि श्रेष्ठ हैं, उनसे देवता श्रेष्ठ हैं, देवताओं में दक्ष आदि श्रेष्ठ हैं, दक्ष से शिव श्रेष्ठ हैं, शिव से ब्रह्मा श्रेष्ठ हैं, किन्तु सारे संसार में मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। सभी मेरी आराधना करते हैं किन्तु ब्राह्मण मुझसे भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि मैं उन्हें पूज्य मानता हूँ। सभा में उपस्थित ब्राह्मणों की ओर लक्ष्य करके उन्होंने कहा- विप्रगण, दूसरे किसी भी प्राणी को मैं ब्राह्मणों के समान भी नहीं समझता, फिर उनसे बड़ा मानने की बात तो संभव ही नहीं है। लोग श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों के मुख में जो अन्न आदि की आहुति डालते हैं, उन्हें सादर भोजन कराते हैं, उसे मैं, जैसी प्रसन्नता से ग्रहण करता हूँ, वैसे अग्निहोत्र में हवन की गई सामग्रियों, आहुतियों को स्वीकार नहीं करता।

अत: ब्राह्मणों की सर्वत्र पूजा होनी चाहिये, उनका आदर सम्मान होना चाहिये। समस्त प्राणियों में भगवतदृष्टि रखकर व्यवहार करना चहिये। सर्वत्र भगवतदृष्टि ही सर्वाधिक प्रिय है। मन, वाणी आदि इन्द्रियों से भगवान का भजन-कीर्तन कर आराधना करना ही शरीर-धारण करने का प्रधान प्रयोजन है। भगवान की आराधना के बिना कोई भी व्यक्ति मुक्तिका पात्र

नहीं बन सकता। काल के मुख से बच नहीं सकता। यदि यह बात सच्ची है कि धर्मसे उन्नति होती है, यदि धर्मकी प्रमा, धर्मका ज्ञान अपौरुषेय वेदवाणीसे होता है, वेदोंका प्रकाशन यदि ब्राह्मणोंसे होता है तो मैं ब्राह्मणोंको छोड़कर और किसको प्रणाम करूँ?

ब्राह्मण लोग इतने नि:स्पृह होते हैं कि वे मुझसे भी कुछ नहीं चाहते। जो निष्काम होता है, उसकी चिन्तनशक्ति विलक्षण होती है। साधारण संसारी लोग इस बातको नहीं जानते। मन ईश्वरमें तभी प्रवेश करता है, जब उसमें संसार-विषयक कामना नहीं रहती। जो निश्चिन्त निष्काम रहकर परमात्माका चिन्तन करते हैं, वे नया-नया रहस्य निकालकर ले आते हैं। मैं तुम लोगोंको यह उपदेश करता हूँ कि सम्पूर्ण प्राणियोंमें मेरा रूप देखना और सबका सत्कार करना यही मेरी सच्ची पूजा है। सबमें सर्वत्र भगवान्‌को देखकर उनकी पूजा किये बिना मनुष्य कभी कालपाशसे मुक्त नहीं हो सकता।

जब मनुष्य मेरा है ऐसा कहता है तब उसका बन्धन और मेरा कुछ नहीं है ऐसा कहने पर वह मुक्त हो जाता है।

शुकदेव कहते हैं- राजन्। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव ने अनेक युक्तियों, दृष्टान्तों और कथाओं के द्वारा अपने पुत्रों को भाँति-भाँति के उपदेश दिये। उन्हें पहिले संसार की असारता बताई, फिर मनुष्य शरीर का महत्व बताया, जीव का परम पुरुषार्थ समझाया। कौन प्राणी किससे श्रेष्ठ है, यह तारतम्य बताकर ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया। अपने पुत्रों को आदेश दिया कि वे सब कार्य बुद्धिमान सदाचारी, धर्म प्राण ब्राह्मणों की सम्मति लेकर ही किया करें। सबसे अन्त में उन्होंने कहा- मेरे पुत्रो। तुम इस चराचर विश्व को श्रीहरि का ही स्वरूप समझकर प्राणी मात्र में मेरी भाँति पूज्य बुद्धि रखकर सभी की श्रद्धापूर्वक सर्वदा सेवा करते रहो। प्राणीमात्र की पूजा करना ही मेरी सबसे बड़ी पूजा है। मनसा वाचा कर्मणा सर्वभाव से उन भक्तवत्सल भगवान को ही सबमें समान भाव से व्याप्त समझकर प्रणाम करो नमस्कार करो, तभी तुम इस महामोह से छूट सकोगे। इस प्रकार अपने उन सदाचारी योग्य पुत्रों को भली-भाँति शिक्षा देकर सबके सन्देहों को दूर किया।

विषय भोगिके कबहुँ कोउ नर सुख नहिँ पावे। च्यौं नर जीवन रत्न काँच दे व्यर्थ गमावे।।
सुख स्वरूप सर्वेश सतत हिय माहिँ विराजें। कस्तूरी मृग यथा विषय वन खोजे भाजे।।
विषयी नर है विष सरिस, मोक्ष मूल हैं सन्त जन। चढ़े रंग जस होहि संग, स्वेत वसन सम कह्यो मन।।

पुत्रों को इस प्रकार उपदेश देकर ऋषभदेव जी ने अपने बड़े पुत्र भरत का राज्याभिषेक कर दिया और पुन: कहा- पुत्रों, अब तुम सारे भाई बड़ी ही निष्ठा के साथ, बड़े ही आदर के साथ बड़े भाई राजा भरत की सेवा-सहायता करो। इससे मुझे प्रसन्नता भी होगी और प्रजा की भलाई भी होगी।

शुकदेव जी ने कहा- राजन्, यद्यपि ऋषभदेव के पुत्र परम बुद्धिमान और व्यवहार कुशल थे, उन्हें उपदेश की आवश्यकता न थी। किन्तु सामान्य जनता को शिक्षा देने के लिये ही उन्होंने पुत्रों को उपदेश दिया है। ऋषभदेव ने देखा कि दुनियां को चमत्कार चाहिए और जो चमत्कार दिखाता है, वो संत कभी नहीं हो सकता। चमत्कार दिखाना तो बाजीगर का काम है, संत का तो दर्शन ही चमत्कार है, संत के जीवन की सरलता ही चमत्कार है। परमात्मा का जो संविधान है, उन्होंने जो तय किया है इसमें मनुष्य को हस्तक्षेप करने का अधिकार ही नहीं। मनुष्य को किसी और का भाग्य बदलने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। जो लिखा है सो होगा। भाग्य में है तो मिल जाएगा।

कर्म करो ऐसा भाई पड़े न फिर पछताना, एक दिन धर्मराज को पड़ेगा मुख दिखलाना।

ऋषभदेवके पुत्रोंमें राज्यानुशासनकी भी योग्यता थी, धर्मपालनकी भी क्षमता थी, अर्थ-व्यवस्था भी ठीक रखनेका

सामर्थ्य था और त्याग-वैराग्यकी प्रवृत्ति थी।

ऋषभ चरित अति गूढ़ मूढ़ नर मर्म न जानें। निरखिच नग्न उन्मत्त सिड़ी पागल सब मानें।।
प्रकट्यो पारमहंस्य धर्म करि शिक्षा दीन्हीं। कर्‌यो दिगम्बर वेष वेद विधि पूरी कीन्हीं।।
बालक सम भोले बने, पृथिवी पै विचरत फिरहिँ। मारें पीटें दुष्ट जन, सुख दुखमहँ इक सम रहिहिँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज प्रियव्रत का विशुद्ध यशस्वी वंश धन्य है जिसमें सबके आदि पुराण पुरुष श्रीमन्नारायण ने यह ऋषभावतार लेकर परमहंस धर्म का आचरण किया जो कि मोक्ष मार्ग का द्वार है।

भरत को राज्यसिंहासन पर बैठाकर ऋषभदेव जी स्वयं अवधूत की वृत्ति धारण कर अकेले ही ब्रह्मावर्त से बाहर निकल गये। उन्होंने पूर्ण मौनव्रत धारण कर रक्खा था। वे किसी से कुछ बोलते न थे। जड, अन्धे, बहरे, गूँगे, पिशाच और पागलों की-सी चेष्टा करते हुए वे अवधूत बने जहाँ-तहाँ विचरने लगे। वे किसी भी मार्ग से निकलते तो जिस प्रकार वन में विचरनेवाले हाथी को मक्खियाँ सताती हैं, उसी प्रकार मूर्ख और दुर्जन जन उनके पीछे लग जाते और उन्हें तंग किया करते थे। उनके हाथ-पैर आदि सारे शरीर के अवयव परम सुकुमार और अतिशय सुन्दर थे। आँखे विशाल और कान लम्बे थे। छाती चौड़ी और ग्रीवा शंख की तरह थी। अवधूत के जीवनमें संकीर्ण आचार-विचारोंका कोई स्थान नहीं होता। ऋषभदेवने अपनेको समस्त संकीर्णताओंसे सर्वथा मुक्त कर लिया।

जनता, स्त्रियाँ जब भगवान ऋषभदेव को सताने लगे, घेरने लगे तो इसे साधन में विघ्नरूप समझ कर उन्होंने अजगरवृत्ति धारण कर ली। साधु पुरुष को कष्ट देना यह दुष्टों का स्वभाव होता है। वे एक ही स्थान पर लेटे-लेटे खाते-पीते, सोते और मल-मूत्र त्याग करते थे। कभी-कभी वे उसी मल-मूत्र में लोट-पोट कर शरीर को उससे सान लेते थे। फलत: लोग ऋषभदेव से घृणा करके उनसे दूर ही रहने लगे। किन्तु उनके मल में दुर्गन्ध नहीं थी, बड़ी सुगन्ध थी। वायु उस सुगन्ध को लेकर उनके चारों ओर दस योजन तक फैला देती थी। दैवाधीन रहकर सर्वथा प्रारब्ध पर छोड़ दिया। योगक्षेम के लिये कोई उद्योग नहीं, किसी प्रकार का पुरुषार्थ नहीं, कहीं आना-जाना नहीं। यदृच्छा लाभ संतुष्ट रहकर प्रारब्ध के अन्त की प्रतीक्षा करते रहे। उन्हें न स्वत: आई वस्तु से हर्ष होता था, न स्वत: गई हुई वस्तु से शोक।

इसी प्रकार गौ, मृग और काक आदि की वृत्तियों को स्वीकार कर वे उन्हीं के समान कभी चलते हुए, कभी खड़े-खड़े, कभी बैठे हुए तथा कभी लेटे-लेटे ही खाने-पीने और मल-मूत्र आदि का त्याग करने लगते थे। उनका मन सर्वदा भगवान वासुदेव श्रीकृष्ण में ही लीन रहता था। एक बार अणिमादि सिद्धियाँ मूर्तिमती होकर उनकी सेवा में उपस्थित हुईं किन्तु उन्होंने इन्हें योग में विघ्नकारिणी समझ कर इनका अभिनन्दन नहीं किया। ऋषभदेव ही जैन धर्म के प्रवर्तक थे। उन्होंने अहिंसाधर्म अपनाया।

चाह गयी चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह, जिसको कुछ ना चाहिए वो ही शहंशाह।

वे अपने आत्म स्वरूप में स्थित हो गए। इनकी अवधूत वृत्ति हो गई, भूख लगी कि नहीं, कब भोजन किया या नहीं, कब मल मूत्र का त्याग हुआ, इसका इनको कुछ भी पता नहीं रहता था। कारण- ये अपने देह की सुधि भूल गए। अपने शरीर की विस्मृति हो गई। कब सूर्योदय हुआ, कब सूर्यास्त हुआ, कब शीतलहरी चली, कब सूर्य की प्रचण्ड किरणें पड़ीं। इन बाहरी वृत्तियों से ये बिल्कुल अलग हो गए। अपने आत्म चिन्तन में अपने आप में रमण करने लगे।

खुल गये दिशाओं के फाटक, कोई रोक थाम अब हमें नहीं।
चाहें तो बरसों पड़े रहें, चाहे तो पलभर रुके नहीं।।

हम चंचल और अचल दोनो, सब संग किन्तु संग को गहे नहीं।

हम शाहंशाह निद्वन्द्व सखे सब सहलें कुछ भी सहें नहीं।।

ये अवधूत परमहंस दशा में स्वच्छन्द विचरण करने लगे। किसी का संग नहीं, जंगल में विचरते, दस बीस हिरन आदि बैठे रहते वहीं पर ये बैठ जाते। इनके मल त्याग के बाद उससे दुर्गन्ध नहीं आती, बल्कि कई योजन तक सुगन्ध फैल जाती क्योंकि इनका शरीर प्राकृतिक नहीं था।

समय पाकर बड़ी-बड़ी ऋद्धिसिद्धि इनके समक्ष आई और कहने लगीं कि हमसे सेवा स्वीकार कीजिये। हम आपके लिये जंगल में सारी सुविधायें जुटा दें। ऋषभदेवने स्वीकार नहीं किया और वो बोले कि ये सब माया का जाल है।

गिद्ध बहुत ऊंची उड़ान भरता है। लेकिन कितना भी ऊंचाई पर पहुंचा हुआ गिद्ध हो, मुर्दा को देखते ही सारी ऊंचाई उसकी खत्म हो जाती है। तुरंत नीचे आ जाता है। इस प्रकार से कितने भी सिद्ध स्थिति को पहुंचे हुए हो, अगर संसारी वासनाओं की ओर मुड़ गया साधक, तो वह सिद्ध नहीं रह जायेगा। ऋषभदेव की रहनी बड़ी अद्भुत थी।

शुकदेव बोले- राजा परीक्षित्, इन अजन्मा भगवान ऋषभदेव की पदवी को दूसरा कोई ऐसा योगी पुरुष मन से भी किस प्रकार प्राप्त कर सकता है कि जिन सिद्धियों को असत् समझकर उन्होंने त्याग कर दिया था, उन्हीं की प्राप्ति के लिये जो निरन्तर प्रयत्नशील बना रहता था।

राजा परीक्षित ने पूछा- भगवन्, ऋषभदेवजी आत्माराम थे। उनके सारे क्लेशदायक कर्म ज्ञानाग्नि में भस्म हो चुके थे। ऐसी स्थिति में सिद्धियाँ उनका कुछ बिगाड़ न सकती थीं फिर उन्होंने क्यों उन्हें दूर से ही भगा दिया? शुकदेव बोले- चतुर व्याध पकड़े गये मृग का जैसे विश्वास नहीं करता वैसे ही बुद्धिमान् जन इस चंचल चित्त का भरोसा नहीं करते। कहा भी गया है- इस चंचल चित्त से मित्रता कर कभी इसका विश्वास नहीं करना चाहिये। इसमें विश्वास करने से ही मोहिनी के रूप में फँसकर महादेवजी का चिरकाल का संचित तप क्षीण हो गया था।

पति पत्नी पर पूर्ण विश्वास करता है। उसे यह नहीं ज्ञात है कि यह मेरी स्त्री भयंकर व्यभिचारिणी है। स्त्री के पास बहुत-से जार पुरुष अपनी काम-वासना शान्त करने के लिये आते हैं। अवसर पाकर व्यभिचारिणी स्त्री अपने पति का वध करवा देती है। ठीक इसी प्रकार यह मन अपने पर विश्वास करनेवाले योगी को, काम-क्रोध आदि शत्रुओं को आक्रमण करने का अवसर प्रदान कर नष्ट-भ्रष्ट कर देता है, पथ-भ्रष्ट कर देता है।

अत: मन का विश्वास कभी नहीं करना चाहिये। ऐसा ही विचार कर ऋषभदेवजी ने सिद्धियों को स्वीकार नहीं किया, उन्हें दूर से ही भगा दिया। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और भय आदि शत्रुओं का तथा कर्म-बन्धन का, मूल तो यह मन ही है; इस पर कोई भी बुद्धिमान कैसे विश्वास कर सकता है? चंचल मन बिजली व पारे के समान कभी एक जगह नहीं ठहरता। इसलिए मन का विश्वास कभी नहीं रखना चाहिए। मन काम को तथा उसके मित्र लोभ क्रोध को अवसर देकर मनुष्य के तप, तेज, प्रभाव और सदाचार को नष्ट करके उसे भ्रष्ट बना देता है। यह मन ही काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, मोह, तथा भय आदि का मूल कारण है। मन की इससे स्वाभाविक मित्रता है, ऐसे दुष्ट मन पर बुद्धिमान कैसे विश्वास कर सकते हैं।

ब्रह्मा विश्वामित्र, शिव, धोखो सबकूँ मनदयो। कबहुँ न माने भूलमहँ, मेरो मन वशमें भयो।।

ऋषभदेवजी ने इन्द्रियों को जीत लिया था फिर भी उन्होंने चंचल मन का विश्वास नहीं किया। जैसे सौभरि ऋषि ने केवल मत्स्य मैथुन को देखकर ही राजा मान्धाता से अपने लिये कन्या की याचना की और उनके साथ विवाह किया अत: ऋषिगण ने ऋषभदेव को ससम्मान विदा कर दिया।

शुकदेव परीक्षित से बोले- राजन्, इस अनवस्थित चित्त से कभी भी मित्रता न करें। इस चित्त पर विश्वास करने के कारण ही तो भगवान शंकर साक्षात् शिव का चिरकाल संचित तप क्षीण हो गया।

जब तक मनुष्य द्वन्द्वातीत नहीं हो जाता, शरीर के संकल्प से सर्वथा ऊपर नहीं उठ जाता, तब तक मन बना ही रहता है और संकल्प-विकल्प को करता ही रहता है। इसीलिये शरीरधारी को सदा सावधानी से रहना चाहिये। अपने मन पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। योग में आरूढ़ हुए योगी का भी अध:पतन हो जाता है। संग से, आसक्ति से योगी भी कभी-कभी विषयों में फँसे हुए देखे गये हैं। इसीलिये शास्त्रकारों ने इस बात पर स्थान-स्थान पर अत्यधिक बल दिया है कि विषयों का जहाँ तनिक भी संसर्ग हो वहाँ से परमार्थ पथ के पथिक को तुरन्त हट जाना चाहिये। विषय और इन्द्रियों के संसर्ग होने से कामना बलवती हो ही जाती है। यद्यपि ज्ञानी और भक्तों की अपनी कामना कोई रहती ही नहीं वे तो अपनी समस्त कामनायें सर्वेश्वर की कामना में मिला देते हैं फिर भी लोकसंग्रह के निमित्त उन्हें भूलकर भी विषयों में आदर बुद्धि प्रदर्शित न करनी चाहिये। शरीर का भाव ही न रहे तब तो दूसरी बात है किन्तु जब तक शरीर की सुधि है, भोजन पान की आवश्यकता प्रतीत होती है तब तक विषयों से बचे रहना उन्हें किसी भी दशा में न अपनाना, यही महापुरुषों का लक्षण है।

भगवान ऋषभदेव सकल लोकपालों के ललामभूत थे, तो भी उनका आचरण, उनकी चालढाल और बोली भाषा उन्मत्त व्यक्तियों की भाँति थी अत: उनका वास्तविक स्वरूप कोई समझ नहीं पाता था। वह पहुँचे हुए महान् योगी हैं- यह कोई समझ नहीं पाता था। अन्त में उन्होंने योगियों को देहत्याग की विधि सिखाने के लिये अपने शरीर को छोड़ने की इच्छा की। वे परमात्मा को अपने से अभिन्न समझते थे। उनकी वासनाएँ छूट चुकी थीं। वे लिंगदेह के अभिमान से विमुक्त होकर पूर्ण जीवन्मुक्त की दशा में इधर-उधर घूमते रहते थे। उस समय उनको अपने देह का अनुसन्धान भी न था। एक बार वे भ्रमण करते हुए कर्नाटक देश में पहुँचे। वहाँ वे कुटकाचल के वन में बाल बिखेरे हुए उन्मत्त की भाँति नग्न होकर विचरण करने लगे। यह जिह्वा ही अनर्थ संभाषण का कारण है- ऐसा सोचकर, पूर्ण मौन धारण करने के विचार से उन्होंने मुख में एक पत्थर का टुकड़ा डाल लिया। इससे उनका भोजन-पानी भी छूट गया। इसी अवस्था में वे इधर-उधर विचरण करने लगे।

श्री ऋषभदेव के सामने बहुत बड़ी बड़ी सिद्धियां आई पर उन्होंने उन सिद्धियों की ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं। अन्त में समय पाकर इन्होंने जंगल में अपने आप लकड़ियों के संघर्ष से दावाग्नि पैदा होने से उस जंगल में इनका अपने आप दाह संस्कार हो गया। ऋषभदेवने तृण समान अष्टसिद्धि- नवसिद्धि का त्याग कर दिया, वही तो वैराग्य है। त्याग तो सब करना पड़ता है। जब तुम्हारे पास कुछ हो, जब है ही नहीं तो त्याग क्या करोगे? भिखारी तो प्रतिदिन एकादशी का व्रत करता है। योगी लोग जिन योगसिद्धियोंके लिये लालायित होकर निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं, उन्हें अपने-आप प्राप्त होनेपर भी असत् समझकर त्याग दिया।

यह दैव का विधान था। उसी समय वहाँ के जंगल में भीषण दावाग्नि धधक उठी और उसने सारे वन को भस्म कर दिया। ऋषभदेवजी का श्रीविग्रह भी उसी वनाग्नि में भस्म हो गया। वस्तुत: ऋषभदेवजी का श्री विग्रह उनकी इच्छा से ही वनाग्नि में तिरोहित हो गया।

तुम्हारे भीतर चाहे जितनी विद्या, बुद्धि हो, पर तुम्हें चार बातें छोड़नेपर ही परमात्माका साक्षात्कार होगा। एक तो तुमको दुश्चरित्रसे अलग होना पड़ेगा, दूसरे तुम्हारे मनमें काम-क्रोधादिकी जो अशान्ति है, वह छोड़नी पड़ेगी, तीसरे मनकी चंचलताको दूर भगाना होगा और चौथे सिद्धियोंकी लालसा समाप्त करनी होगी। यदि तुम्हारे पास सिद्धियां आने लगीं और

तुम उन्हींको देखने लगे तो तुम्हारा मन परमात्माको छोड़कर सिद्धियोंकी ओर चला जायेगा। अत: सिद्धिका परित्याग किये बिना परमात्माका साक्षात्कार नहीं होता, चाहे मनुष्यमें विद्या-बुद्धि कितनी ही क्यों न हो?

मनकी स्थिति वैसी ही है जैसे कोई कपटी किरात, पहले आकर दोस्ती करले और फिर ठग ले। इसलिए इस चंचल मनके साथ सख्य नहीं करना- मैत्री मत जोड़ना। क्योंकि इस मनपर विश्वास करनेसे शंकरजी-जैसे समर्थ ईश्वर भी धोखा खा गये।

राजन्, कलियुग के आने पर कर्णाटक देश में एक राजा होगा। उसका नाम होगा अर्हन्। वह ऋषभदेव के आश्रमातीत आचरण एवं जीवनशैली को सुनकर उनका रहस्य बिना समझे बूझे स्वयं अपनायेगा और उसका प्रचार-प्रसार भी करेगा। भवितव्यतावश प्रबल पापवाले व्यक्ति उसके पाखण्डपूर्ण मत को स्वीकार कर अपने शास्त्रविहित धर्म-कर्म का परित्याग कर देंगे, शौचाचार से रहित हो जायेंगे। ऐसे लोग स्नान न करना, आचमन न करना, अशुद्ध रहना, केश नुचवाना आदि पाखण्ड को धर्म मानकर उसी का आचरण करेंगे। ईश्वर का तिरस्कार करनेवाले इस प्रकार के लोग वेद, ब्राह्मण और यज्ञपुरुष वासुदेव की निन्दा करेंगे। शौचाचार से रहित ये पाखण्डी तथा इनका अन्धानुसरण करनेवाले लोग नरकगामी होंगे। ऐसे लोग अपने अनुयायियों को भी ले डूबते है।

ऋषभदेवजी का आविर्भाव रजोगुणी प्राणियों को मोक्षमार्ग की शिक्षा देने के लिये ही हुआ था न कि प्रचण्ड पाखण्ड पन्थ का प्रवर्तन करने के लिये। अत: इनके गुणों का वर्णन इसप्रकार है- सात सागरों वाली पृथ्वी के समस्त द्वीप और वर्षों में यह भारतवर्ष ही पुण्यभूमि है क्योंकि यहाँ के लोग भगवान श्रीहरि के मंगलमय चरितों का गान किया करते हैं। भगवान दूसरे भक्तोंके भी अनेकों कार्य कर सकते है और उन्हें मुक्ति भी दे देते हैं, परन्तु मुक्तिसे भी बढ़कर जो भक्तियोग है, उसे सहजमें नहीं देते। भगवान ऋषभदेव का यह अवतार रजोगुण से भरे हुए लोगोंको मोक्ष मार्गकी शिक्षा देनेके लिये ही हुआ था।

अहो। महाराज प्रियव्रत का वंश अतिशय उज्ज्वल एवं सुयशपूर्ण है। इसी वंश में भगवान श्रीहरि ने ऋषभावतार लेकर मोक्ष दिलानेवाले, परमहंसों के धर्म का आचरण किया। इनके धर्म का मन से भी अनुसरण बड़े-बड़े योगी भी कैसे कर सकते हैं? एक बार सारी सिद्धियाँ समवेत रूप से ऋषभदेव की सेवा में पधारीं किन्तु उन्होंने इनका अभिनन्दन न करके दूर हटा दिया। बड़े-बड़े योगी इन सिद्धियों के लिये लालायित रहा करते हैं।

राजन्, मैंने आपको ऋषभदेवजी का यह पावन चरित सुनाया है। जो व्यक्ति श्रद्धा के साथ इनके चरित्र को सुनता या सुनाता है, उसकी भगवान में अविचल भक्ति हो जाती है। भगवान की भक्ति के परमानन्द से भरे हुए भक्त हाथ जोड़कर सामने स्वयं खड़ी हुई परमपुरुषार्थ रूप मुक्ति का भी आदर नहीं करते हैं।

राजन्, वस्तुत: भक्ति बहुत ऊँची चीज है। भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवों और यदुवंशियों के रक्षक, गुरु, इष्टदेव, सुहृद् और कुलपति थे। यहाँ तक कि वे कभी-कभी आज्ञाकारी सेवक भी बन जाते थे। इसी प्रकार वे अपने उपासकों के बहुत से कार्य कर देते थे। यहाँ तक कि मुक्ति भी उनकी झोली में डाल देते थे किन्तु सर्वोत्तम वस्तु भक्ति को वे आसानी से नहीं देते। ऋषभदेव ने ओसवाल व सरावगीओं का जैन धर्म मत फैलाया, जो लोग वेद व शास्त्र को नहीं मानते उन लोगों में इस मत का प्रचार हुआ।

२) जड़भरत चरित्र

ऋषभ तनय अति श्रेष्ठ ज्येष्ठ सबई पुत्रनिमहँ। भरत नाम विख्यात भये तीनिहु भुवननिमहँ।।
न्याय धर्मतें, करें सदा पृथिवीको पालन। औरस सुत सम समुझि करे सबईको लालन।।

विश्वरूप तनयासुघर, पंचजनी सँग ब्याह करि। यज्ञ याग शुभ कर्मतें, आराधें नृप सदा हरि।।

श्री शुकदेवजी कहते हैं- राजन्, महाराज भरत महान भगवद्भक्त थे। ऋषभदेवजी ने पृथ्वी की रक्षा के लिये उनकी नियुक्ति कर दी। पिता के आदेश का पालन करते हुए उन्होंने प्रजापति विश्वरूप की बेटी पंचजनी से विवाह किया।

उससे उन्हें उन्हीं के समान परम तेजस्वी पाँच पुत्र पैदा हुए, उनके नाम थे- सुमति, राष्ट्रभृत, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु। पहले इस वर्ष का नाम अजनाभ वर्ष था किन्तु महाप्रतापी भरत से शासित होने के कारण बाद में इसे भारतवर्ष कहने लगे। इस भारतभूमि में तीन भरत हुए है- कैकेयी पुत्र भरत जो प्रेम के योगी है। दुष्यन्त-शकुंतला पुत्र भरत जो कर्मयोगी है और ऋषभदेव के पुत्र भरत ज्ञानयोगी है। इन्हीं के नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

मोक्ष का महत्व वही जानते हैं, जिनकी मोक्ष हो गयी हो। जिनकी मोक्ष हो जाती है, वे लौटकर कहने नहीं आते कि मोक्ष में यह सुख हैं, किन्तु कीर्ति में कितना सुख है, इसका अनुभव करनेवाले बहुत लोग हैं। हमारी कीर्ति बनी रहे, हमारा नाम स्थाई रहे, इसकी लालसा सभी को रहती है। प्राय: देखा गया है, सार्वजनिक स्थानों में धर्मशालाओं में मार्ग के पाषाणों पर कोयले या खरिया से अपना नाम लिख देते हैं, कुछ लोग स्मृति चिन्ह बनाकर पाषाण पटल पर नाम अंकित कर देते हैं, कुछ अपने नाम से पाठशाला, गोशाला, पुस्तकालय, धर्मशाला भवन आदि बनाकर अपनी कीर्ति को स्थाई रखना चाहते हैं किन्तु वे भूल जाते हैं, जब यह इतना यत्न से बनाया हुआ शरीर नष्ट हो गया उसका नाम न रहा तो यह पाषाण पर अंकित नाम कितने दिन रहेगा। फिर भी कीर्ति के लिये सभी सतत प्रयत्नशील बने रहते हैं। कुछ लोग तो अपनी कीर्ति को स्थाई रखने को शक्ति भर प्रबल प्रयत्न करते हैं, फिर भी उनकी कीर्ति नहीं रहती, कुछ अधिक प्रयत्न न करने पर भी न चाहने पर भी नाम से अजर-अमर बने रहते हैं। यह भाग्य की बात है। भागीरथजी अपने पितरों को तारने के लिये गंगाजी लाये थे। उन्हें लाने का प्रयत्न तो अंशुमान् और दिलीप ने भी किया तपस्या करते-करते मर गये, किन्तु यश मिला भगीरथ को, आज भी भागीरथी गंगा सर्वत्र प्रसिद्ध है। जिन लोगों ने मिलकर इस सागर को खोदा है, उन सगर के साठ हजार पुत्रों में से एक का भी नाम कोई नहीं जानता, किन्तु सगर के नाम से सागर तो सृष्टि के अन्त तक प्रसिद्धि प्राप्त करता ही रहेगा। इसी प्रकार भरतजी भी इतने पुण्यश्लोक, यशस्वी और कीर्तिमान् हुए कि उनके नाम से यह खण्ड भरतखण्ड के नाम से अब तक प्रसिद्ध है।

महाराज भरत समस्त शास्त्रों के मर्म को जाननेवाले थे। वे राजाओं के कर्त्तव्यों के पूर्ण ज्ञाता थे। अपनी समस्त प्रजा का पालन वे औरस सुत के समान करते थे। उनके समस्त कर्म प्रभु प्रीत्यर्थ निष्काम होते थे। वे धर्म कार्यों में कभी भी वित्त शाठ्य नहीं करते थे। वे सदा यज्ञ यागों में लगे रहकर प्रभु की आराधना करते रहते थे।

भारतवर्ष - धराधाम पर पुण्यभूमि। स्वायंभुव मनु (जिन्हें भरत कहा जाता है) के नाम पर यह वर्ष (भूतल-खंड) भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध है। यहां स्वर्ग, मोक्ष तथा इन दोनों के अंतवर्ती (भोग) पद की प्राप्ति होती है। इस भूतल पर भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी प्राणियों के लिए कर्म का विधान नहीं सुना जाता। यहाँ बड़े-बड़े लोग जन्म लेकर, कर्मका अनुष्ठान करते हैं फिर कर्मका संन्यास करके भगवान्के अभयपदको प्राप्त कर लेते हैं। वास्तवमें जहाँ वैकुण्ठका गुणगान न हो, भगवत्कथारूपी अमृतकी नदी न बहती हो, भगावन्के आश्रयमें रहेनवाले भगवद्भक्त न हों और यज्ञेशकी प्रसन्नता के लिए यज्ञ महोत्सव न होते हों, वह फिर भले ही इन्द्रका लोक ही क्यों न हो तथापि सेवन करने योग्य नहीं है।

इसलिए भारतवर्षमें सब साधनोंसे सम्पन्न मनुष्य-जन्म धारण करनेवाले लोग यदि परमात्माकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न नहीं करते तो समझना चाहिए कि वे पशु-पक्षीके समान जीवन व्यतीत कर रहे हैं। एक ही परमात्मा नाना नाम और मन्त्र

आदिके द्वारा हवि: ग्रहण करता है। देवता लोग प्रसन्न होकर जो कुछ देते हैं, वह भगवान्‌का वास्तविक दान नहीं होता। इसलिए उससे कामनाओंकी निवृत्ति नहीं होती और बार-बार माँगना पड़ता है। किन्तु जब भगवान मिल जाते हैं, तब ऐसा उपाय कर देते हैं समस्त इच्छाओंकी समाप्ति हो जाती है और कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता।

देवता लोग यह कहते हैं कि यदि हमारा कुछ भी पुण्य बच जाये तो उसके फलस्वरूप भारतवर्षमें हमारा जन्म हो, क्योंकि यहाँ भजन करनेवालोंका कल्याण स्वयं भगवान करते हैं।

भारत में जन्म लेना ही दुष्कर है। क्योंकि भारतवर्ष में ही धर्म की सुविधा है। इसलिये भारत वर्ष की सराहना करो। अन्य भूमि को भोग भूमि कहा गया है, यही एक कर्मभूमि है। अन्य भूमि में तो कर्म करने पर समय लगता है, यहां जो भी आप करोगे, उसका तुरंत फल अवश्य मिलेगा। यहां कुछ भी किया हुआ निष्फल नहीं जाता। किसी और जगह पर, किसी और देश में पाप करो और यहां गंगा में आकर स्नान कर लो गंगा आपका पार हर लेगी। हर तीर्थ क्षेत्रों में यहां पाप से मुक्त हो जाओ।

यह आर्यावर्त तो ऋषियों की भूमि है। यहां सत्य बोलनेवाले लोग अभी भी जीते हैं। ऐसा नहीं है कि लोग झूठ बोलते है। जितना असत्य है उससे अधिक प्रमाण में सत्य अवश्य है। छोटे-छोटे गांव में जाओ, लोग अभी तक नैतिक, प्रामाणिक जीवन, सत्यका जीवन जी रहे है, यह संतों का देश है, भारत जगत का गुरु है। भौतिक चीजों की जब चाह पड़ी तो लोग पाश्चात्य की ओर गये। भारत का क्षेत्रफल आजके समय में भारत के राजनेताओं के पुरुषार्थ से दिनोंदिन कम होता जा रहा है।

जहां डाल डाल पर सोने की चिड़ियां करती हैं बसेरा, ये भारत देश है मेरा।
सत्य अहिंसा और धर्म का पग-पग लगता डेरा, ये भारत देश है मेरा।
ये देश है जहां ऋषि-मुनि जपते हरिनाम की माला
जहां हर बालक इक मोहन है और राधा इक इक बाला
जहां प्रेम की बंशी सदा बजाता आये सांझ सवेरा, ये भारत देश है मेरा।
जहां आसमान से बातें करते मंदिर और शिवाले
किसी नगर में किसी गांव में कोई ना ताला डाले,
जहां सूरज सबसे पहले आकर डाले अपना डेरा, वो भारत देश है मेरा।

महाराज ऋषभदेव और महारानी जयंती (देवराज इंद्र की पुत्री) के सौ पुत्र हुए, जिनमें महायोगी भरत सबमें बड़े और सबसे अधिक गुणवान थे। इन्हीं के नाम से लोग इस अजनाभखंड को भारतवर्ष कहते हैं। भरत ने पिता और पितामह की भाँति अपने-अपने धर्म-कर्म में निरत प्रजा का बड़े ही प्रेम से पालन किया। वे छोटे और बड़े यज्ञों के द्वारा यज्ञपति श्रीहरि की आराधना किया करते थे। यज्ञों से होनेवाले पुण्य-फल को वे यज्ञपति भगवान को ही समर्पित कर देते थे। यज्ञों में आहुति देने के समय महाराज भरत भगवान के अंगों में ही सारे देवों की कल्पना करते थे। इससे उनका हृदय काम, क्रोध आदि मलों के निकल जाने से निर्मल हो गया था। उनके निर्मल हृदय में भगवान वासुदेव चित्र की भाँति चित्रित हो जाते थे, अंकित हो जाते थे। पूजा के समय भरत को रोमांच हो जाता था, उनकी आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगती थी। इस प्रकार उनकी भगवद्भक्ति प्रतिदिन वेग से बढ़ती ही जाती थी।

इस प्रकार राजर्षि भरत ने दस हजार वर्षों तक पृथ्वी का पालन किया फिर उन्होने वंश-परम्परा से प्राप्त अपनी सारी राज्य-सम्पत्ति अपने पुत्रों में बाँट दी और सर्व-सम्पत्ति से सम्पन्न राजमहल का त्याग कर पुलहाश्रम चले गये।

भरत- भगवान ऋषभदेव के पुत्र, महायोगी राजर्षि। भगवान ऋषभदेव ने अपने देश वज्रनाभमंडल को कर्मभूमि मानकर लोकसंग्रह के लिए कुछ काल गुरुकुल में वास किया। गुरुदेव को यथोचित दक्षिणा देकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए उनकी आज्ञा ली। फिर लोगों को गृहस्थधर्म की शिक्षा देने के लिए देवराज इंद्र की कन्या जयंती से विवाह किया। देवी जयंती के गर्भ से ऋषभदेव ने सौ पुत्र प्राप्त किए। उनमें महायोगी भरत सबसे बड़े और सबसे अधिक गुणवान थे। महाराज भरत बड़े ही भगवद्भक्त थे। निरंतर भगवद्भक्ति एवं यज्ञानुष्ठान कर्म से उनका अंत:करण शुद्ध हो गया। राज्यभोग का प्रारब्ध क्षीण हो जाने पर उन्होंने अपनी भोगी हुई वंशपरंपरागत संपत्ति को यथायोग्य पुत्रों में बांट दिया और राजमहल छोड़कर हरिहर क्षेत्र में चले गए। इस आश्रम में निवास करनेवाले भक्तों को भगवान आज भी यदा-कदा दर्शन देकर कृतार्थ करते रहते हैं। उस आश्रम को चक्र के आकार से अंकित शालग्रामशिलाओंसे अलंकृत पुण्यसलिला चक्रनदी गण्डकी सब ओर से पवित्र करती है। गण्डकी को शालग्रामी नदी भी कहते हैं। ये दामोदर कुण्ड नेपाल में हैं, जहाँ से गण्डकी नदी प्रादुर्भाव होती है, वहांपर बर्फीली हवायें चलती हैं।

शुकदेवजी कहते हैं- राजन्। भरतजी हरिहर क्षेत्र में जाकर भगवान सूर्यनारायण की इस मन्त्र के द्वारा उपासना करने लगे भगवान सविता देवता का तेज कर्म फलदायक तेज रज से प्रकृति से परे हैं, इन जगत् को उन्होंने मन से ही उत्पन्न किया है। वे ही इस जगत् में प्रविष्ट होकर सुखेच्छु जीवों की रक्षा करते हैं। हम उसी बुद्धि प्रवर्तक तेज को प्राप्त हों।

उस पुलहाश्रम के उपवन में एकान्त स्थान में अकेले ही वे रहते थे। अपना सारा कार्य अपने ही हाथों करते थे। वे अनेक प्रकार के पत्र, पुष्प, तुलसीदल, जल और कन्द-मूल फलादि उपहारों से आराधना करते और उसे ही भगवत्प्रसाद के रूप में ग्रहण कर जीवन-निर्वाह करते थे। इससे उनका अन्त:करण समस्त विषयाभिलाषाओंसे निवृत्त होकर शान्त हो गया था और परमानन्द से भर गया था। पूजा के समय में वे रोमांचित हो जाते थे। आँखों से अश्रुप्रवाह निकलने लगता था। हृदय पिघल कर द्रवीभूत हो जाता था। आनन्द की एक स्थिति ऐसी भी आती थी जब वे पूजा और अपने को भी भूल जाते थे। इस प्रकार वे निरन्तर भगवत्सेवा में ही निरत रहा करते थे। सूर्य की उपासना करते थे।

जो सुख होत गोपालहि गाये। सो नहिं होत किये जप-तप के, कोटिन तीरथ न्हाये।।
दिये लेत नहीं चार पदारथ, चरण कमल चित लाये। तीन लोक तृन सभ कर लेखत, नन्दनन्दन उर लाये।।
वंशीवट वृंदावन यमुना, ताजि बैकुण्ठ को जाये। सूरदास हरि को सुमिरन कर, बहुरि न भव चल आये।।

कब से बैठा हूं तेरे दरबार में, इतनी देरी लग गइ दीदार में।
क्या भरोसा मेरी टूटी नाव का, बिन तेरे डूबेगी कब मझधार में।
आके कान्हा इस विरह को दूर कर, सह रहा हूँ जो मैं तेरे प्यार में। इतनी देरी...
मीत के सुन मीत मेरी मान ले, क्यों बढ़ाई दूरियाँ बेकार में। इतनी देरी...
कब से बैठा हूँ तेरे दरबार में, इतनी देरी लग गई दीदार में।।

श्री शुकदेवजी कहते हैं- एक दिन की बात है। भरत महाराज, प्रतिदिन की भाँति, शौचादि से निवृत्त होकर, गण्डकी नदी में स्नान, ध्यान और तर्पण आदि आवश्यक कृत्यों से निवृत्त हो रक्त आभा से मण्डित निकलते हुए सूर्य को जलांजलि देकर प्रणव का जप करते हुए तीन मुहूर्त तक नदी की धारा के पास बैठे रहे। ब्राह्म मुहूर्त में शय्या का त्यागकर उठ जाना उनका दैनंदिन कृत्य था। सूर्योदय के समय सूर्योपस्थान करना बुद्धि और ज्ञान का वर्धक है। सूर्योदय एवं सूर्यास्त की

बेला में शयन करनेवाला घोर आलसी है। आलस्य मानव की उन्नति में परम बाधक है, यह सर्वविदित तथ्य है। यदि चक्रधारी भगवान श्रीकृष्ण भी सूर्योदय और सूर्यास्त के समय में शयन करने लगें तो उन्हें भी लक्ष्मीजी छोड़ देंगे। इसलिये अपनी उन्नति की कामना करनेवाले व्यक्ति को चाहिये कि सूर्योदय और सूर्यास्त के समय निद्रा का त्याग करके सूर्य को प्रणाम करे, उनका सम्मान करे। भगवान सूर्य जगत का निष्कारण उपकार करते हैं। उनके बिना प्राणियों का जीवन-धारण कठिन है। गंगा मे, यमुना मे, सरस्वती, नर्मदा इन सब पवित्र नदियों के जल में खड़े होकर संध्या करने से गायत्री मंत्र सिद्ध हो जाता है। शास्त्र में लिखा है कि नदियों के जल में खड़े होकर संध्या करने से मंत्र की सिद्धि हो जाती है।

सूर्योपासना का अर्थ है कि हमारे भौतिक जीवनमें जो प्रकाश है, उसका आदर करना। जो भौतिक जीवनमें प्रकाशका आदर करता है वही आध्यात्मिक जीवनमें ज्ञानका भी आदर करता है। जो प्रकाश देनेवालेको नमस्कार नहीं करता, वह ज्ञानदाताको क्या नमस्कार करेगा? उसकी अपने गुरुके प्रति भी भक्ति नहीं हो सकती। सूर्योदय और सूर्यास्तके समय शयन करनेवाला घोर आलसी है और आलस्य मनुष्यकी उन्नतिमें कितना बाधक है, सब जानते हैं। कवियोंने कहा है कि यदि भगवान श्रीचक्रपाणि भी सूर्योदय और सूर्यास्तके समय शयन करने लगे तो उन्हें लक्ष्मीजी छोड़ देंगी। इसलिए मनुष्यको सूर्योदय और सूर्यास्तके समय अवश्य ही निद्राका अज्ञानान्धकारका त्याग करके सूर्यका आदर करना चाहिए। यह हमारी शास्त्रीय पद्धति, शास्त्रीय संस्कृति है।

विधि का विधान बड़ा प्रबल होता है। बहुत आराधना करने पर भी मनुष्यके मनमें विघ्न आ सकता है, इसलिए विघ्नसे सावधान रहना चाहिए।

एक दिन की घटना है। भरत प्रणव जप करते हुए बैठे थे। इसी समय गर्भ के भार से मन्थर चालवाली एक हरिणी प्यास से व्याकुल हो जल पीने के लिये अकेली ही उस नदी के तट पर आई। अभी वह जल पी ही रही थी कि पास में ही गरजते हुए किसी सिंह की लोकभयंकर दहाड़ सुनाई पड़ी। हरिणी का कलेजा काँप उठा। भयवश उसने नदी पार करने के लिये छलाँग लगा दी। हरिणी के गर्भ का समय प्राय: पूरा हो चुका था अत: उछलने की बेला में उसके पेट का बच्चा निकल कर जल में गिर पड़ा। हरिणी ने छलाँग लगाकर नदी की पतली जल-धार को पार तो कर लिया किन्तु गर्भ के गिर जाने से उसे बड़ी पीड़ा हुई। वह बेहोश होकर सामने की गुफा में गिर कर मर गई। इधर बच्चा बहता हुआ भरत के पास में आ गया।

वह मृगशावक जल की धारा में बह रहा है, उसमें प्राण का संचार है वह सांस ले रहा हैं। इस मातृहीन बच्चे का देखते-देखते डूब कर मर जाना ठीक नहीं है। उस मातृहीन मृग शावक पर उन्हे दया आ गयी।

वे सारे दृश्य को देख रहे थे। बहते हुए असहाय मृग-शिशु को देखकर भरत का हृदय दया से भर गया। उन्हें क्या मालूम कि कभी-कभी करुणा, दया भी बन्धन का कारण बन जाती है। फलत: उन्होंने दौड़कर उस बच्चे को गोद में उठा लिया। उसे झाड़ा-पोछा और अपने आश्रम में ले आये। उसके प्रति भरत जी की ममता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। वे नित्य उसके खाने-पीने का प्रबन्ध करते। अभी तक वे खोज कर हरी-हरी सुकोमल दूब को भगवान की पूजा के लिये लाया करते थे किन्तु अब भगवान छूट गये पीछे, उनके सामने आ गया हरिण का बच्चा। वे उसे ही सुकोमल दूबें खिलाने लगे। अभी तक वे चिन्तन करते थे भगवान का। किन्तु अब उन्हें चिन्ता सताने लगी हरिण की। व्याघ्र आदि कोई जानवर उसे खा न जाय एतदर्थ वे चिन्तित रहने लगे। वे उसे पुकारते थे, पुचकारते थे और चूमते थे उसके मुँह को। धीरे-धीरे उनकी भगवत्सेवा कम होती गई और एक समय ऐसा भी आया की मृग-शिशु के पीछे पड़कर उन्होंने भगवान की सेवा ही छोड़ दी। कुछ समय के बाद मृगशावक दौड़ने-कूदने लगा। अब उसकी माँ तो थी नहीं। भरतजी उसका पोषण करने लग गये

और सोच रहे थे मेरे द्वारा बचाया गया यह मातृहीन बच्चा किसके द्वारा जियेगा। मुझे ही इसका प्रबन्ध करना पड़ेगा। मैं मेरा वाला भाव आ गया। मै इसका पोषणकर्त्ता हूँ, मेरे द्वारा ही पालित मेरा मृग शावक है। भरत स्वयं का आधारभूत भूतभावन भगवान को मानते हैं और मृगशावक का आधार अपने स्वयं को। इससे यह प्रतीत होता है कि उनमें वासना अभी मिटी नहीं है। वासना ही पूर्वसंचित होती है। ये स्वाध्याय एवं तप के प्रभाव से शनै: शनै: विदा होती हैं।

शरणागत को जे तजहिं निज अनहित अनुमान। ते नर पामर पापमय तिनहिं विलोकत हानि।।

शरणस्य परित्यागे महापातक युग भवेत्।

अब भरत जिस आसनपर बैठे, उसीपर उस बच्चेको भी बैठावे और कहें कि बेटा। तू भी सन्ध्या-करना सीख। सोये तो कहें कि बेटा, तू भी हमारे साथ सो जा। टहलने जायँ तो उसको भी साथ ले जायँ। खायें तो अपनी थालीमें खिलायें। उस मृग-बच्चेके साथ भरतका ऐसा स्नेह जुड़ा कि जब पूजाके लिए कुश-पुष्प आदि लेनेके लिए जायें तो उसको भी अपने साथ ले जायँ। कभी-कभी उसपर मोहित हो जाते कि उसको कन्धेपर लेकर ढोते और कभी गोदमें लेकर खिलाते, कभी सन्ध्या वन्दन कर रहे होते और वह बीचमें आजाता तो उसको प्यार करने लगते और यह देखते रहते कि ठीक बँधा हुआ है कि नहीं? **शरण गये प्रभु ताहि न त्यागा। विश्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा।।**

लेकिन जब वह हरिणका बच्चा कुछ बड़ा हुआ तो उनको छोड़कर चला गया। उसके लिए यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि प्रेम सजातीयमें ही होता है, विजातीयमें नहीं होता। किन्तु भरतके हृदयमें हरिणके वियोगसे बड़ा भारी सन्ताप हुआ। वे मोहाविष्ट होकर कहने लगे- हाय रे, हम बड़े अभागे हैं। मुझसे क्या अपराध हुआ जो वह बच्चा मुझे छोड़कर चला गया। मैं सारा राज्य छोड़कर, पत्नी-पुत्र छोड़कर यहाँ आया, मुझे कोई दु:ख नहीं हुआ, लेकिन अब हरिणका बच्चा छूटनेपर महान दु:ख हो रहा है। वह दिन कब होगा, जब मैं उसको घास खाते हुए देखूँगा। सूर्यास्त हो गया वह अभीतक नहीं आया। कहीं उसको भेड़िये न खा गये हों? क्या वह लौटकर अपने सींगसे मेरे शरीरको खुजलायेगा, वह कब आकर कुश-हविष्यको जूठा कर देगा, हम डाँटेंगे तो वह डर जायेगा। जिस पृथ्वीपर उसके खुर पड़े होंगे धन्य है वह पृथ्वी। अरे, कहीं चन्द्रमाने मेरे बेटेको चुराकर अपनी गोदमें तो नहीं ले लिया।

इस तरह भरतके मनमें पागलों-जैसी बातें आने लगीं। भगवानकी पूजा भूल गये। उसके स्थानपर हरिणका बच्चा उनको याद आने लगा। अगर विघ्न न होता तो इतने बड़े त्यागी राजाकी एक हरिणके बच्चेमें इतनी आसक्ति कैसे होती?

भरत जी का प्रेम ममता में बदलने लगा जो बंधन का कारण है। उस हिरण के बच्चे में उनकी ममता हो गयी। उसको नहलाते, हरी-हरी घास लाकर खिलाते, सारा दिन उसकी देखभाल में लगे रहते। हिरण के बच्चे में इतना मोह हो गया कि उनका प्रभु चिंतन, ध्यान सब छुट गया। भरत जी घर छोड़कर आये थे तपस्या करने, भजन करने लेकिन यहाँ उनका मन फँस गया हिरण में।

भरतजी सोचते थे- कालचक्र की महिमा तो देखो। यह दीन, अपने झुण्ड से हीन, असहाय बच्चा मेरी शरण में आ पहुँचा। अब यह अपना माता-पिता, भाई-बन्धु सब कुछ मुझे ही मानने लगा है। मेरे सिवाय इसका कोई सहारा नहीं है। इसका मुझ में विश्वास भी बहुत अधिक है अत: मैं शरण में आये हुए इस शिशु की उपेक्षा नहीं कर सकता। मुझे ज्ञात है कि शरणागत का परित्याग महान् पाप कहा गया है। परोपकारी सज्जन शरणागत की रक्षा के लिये अपने बड़े-से-बड़े स्वार्थ को छोड़ने में नहीं हिचकते हैं।

हरिण के बच्चे में उनकी आसक्ति इतनी प्रबल हो गई थी कि वे शयन करने की बेला में उसे अपने पास सुलाते थे, टहलते समय टहलते थे और भोजन करते समय अपने पास में बैठाते थे। प्रत्येक समय उनका हृदय उसके स्नेह-पाश में बँधा रहता था। मार्ग में चलते समय जब उन्हें प्रतीत होता था कि बच्चा थक गया है तो वे उसे उठाकर अपने कन्धे पर बैठा लेते थे। कभी गोद में लेकर और कभी छाती से लगाकर उसका दुलार करने में उन्हें बड़ा सुख मिलता था। हरिण भी अपने सींग भरतजी की पीठ पर खुजलाता था। मैं और मेरा यही तो आत्मा का बंधन है। अब हिरण का बच्चा ही इनका लक्ष्य हो गया। साध्य हो गया ये कहीं चला न जाय। किसी शिकारी की नजर न पड़ जाय, इस पर कोई तीर न चला दें, कोई शेर पंजा न मार दे। इसके प्रति इतनी आसक्ति हो गई, और वह भी इनसे इतना घुलमिल गया। इसप्रकार भरतजी को हिरण शावक से प्यार हो गया। मृगशावक अपने नन्हीं नन्हीं सींग से इनकी पीठ खुजलाता। भरतजी को बड़ा आनन्द होता।

नित्य-नैमित्यिक कर्मों को करने की बेला में भी राजराजेश्वर भरत बीच-बीच में उठ-उठ कर उस मृग बालक को देखते और जब उस पर उनकी दृष्टि पड़ती तभी उनके चित्त को शान्ति मिलती थी। उस समय वे उसकी मंगलकामना करते हुए कह उठते थे- बेटा, तेरा सर्वत्र कल्याण हो। आश्चर्य है जिनके पांच पुत्र हुए, राजधानी थी, रानी एवं राजमहलों का सुख त्याग किया, उनके किसीके प्रति इतनी आसक्ति नहीं हुई, लेकिन जंगल में आकर इस हिरण के बच्चे में इतनी आसक्ति ममता हो गई। हिरण का बच्चा बड़ा हो गया, सुयोग्य हो गया। उसे जंगल में छोड़ देते तो अच्छा था पर यह भाव कर लिया कि ये पालतू है, मेरा है। ये ही आसक्ति का बंधन हो गया। आसक्ति की डोरी से बंध गए।

धीरे-धीरे मृगशिशु कुछ बड़ा हुआ। अब वह आश्रम से दूर भी चला जाता था। हरिणों के झुण्ड में भी जाकर मिल जाता। एक दिन मृगशावक इनको छोड़कर चला गया। प्रेम सजातीय में होता है, विजातीय में नहीं। वह जंगल में जाकर अपने हिरणों के झुण्ड में मिल गया। वह मृगशावक बड़ा होने पर अपनी बिरादरी में जा मिला।

उस समय भरत सोचने लगते थे- मैंने कौन-सा अपराध कर दिया जो वह मुझे छोड़कर चला गया। क्या मैं उसे फिर इस आश्रम के उपवन में भगवान की कृपा से हरी-हरी दूब चरते हुए देखूँगा? कहीं कोई हिंस्र पशु उसे मारकर खा न जाँय। सूर्य अस्ताचल को जा रहे हैं, किन्तु अभी तक वह मृगी का धरोहर लौट कर नहीं आया। भरत जी के मन में उस हिरण की याद आने लगी। वे भगवान की पूजा तो भूल गए और हिरण के बच्चे के चिंतन में व्याकुल हो गए। आप किसीके हित में अपना तन-मन-धन खर्च करें, अन्त में वही आपको धोखा दे तब आपको कैसा दु:ख होगा?

जब वह कुछ गलती करता है, तब उसे मैं डाट देता हूँ। उस अवस्था में वह एक आज्ञाकारी बालक की भाँति शान्त होकर बैठ जाता है। ओह। अब तो अँधेरा हो गया। आकाश में चन्द्रमा भी निकल आया किन्तु वह अभी तक नहीं। हे चन्द्रदेव, जहाँ भी वह शिशु हो उसे तुम अपनी शीतल किरणों से सुख पहुँचाना। इस समय उसके वियोग में मैं भी सन्तप्त हो रहा हूँ अत: मुझ पर भी अपनी अमृतभरी किरणों को बरसाना। किसीपर दया सात्विक अहंकार में से प्रकट होती है। आसक्ति रजोगुण से पैदा होती है। राजसी अहंकार में से और यदि जहां प्रीति लगाई, जहां मन लगाया, वहां मोह हुआ, जिनके प्रति मोह हुआ उनके जानेसे दु:ख तो होगा ही, यह तमोगुण में से पैदा होता है।

इस प्रकार के तमाम अपूरणीय विविध मनोरथों से भरत का चित्त व्याकुल रहने लगा। यह उनका पूर्व जन्म का कोई दुरदृष्ट ही था जो इस समय उनकी तपस्या में विघ्न बनकर आया था। वे इसी शिशु के कारण भगवदाराधनरूप कर्म और योगानुष्ठान से च्युत हो गये। नहीं तो, जिन्होंने मोक्षमार्ग का विघ्न समझकर अपने औरस पुत्रों और परिवार का परित्याग

कर दिया था वे एक हरिणी शिशु की ऐसी आसक्ति में कैसे फँसते? उन्हें अपना स्वरूप भी विस्मृत हो गया था।

भरतजी के शरीर का प्रारब्ध पूरा हुआ। शरीर छूटने का समय आया। भगवान का स्मरण करते हुए शरीर छोड़ना चाहिये था। मृत्यु टाले नहीं टलती। सभी को इसका सामना करना पड़ता है। भरत की भी मौत आ ही गई। वे अस्वस्थ होकर मरण-शय्या पर लेटे हुए थे। मृग-शावक उनकी बगल में बैठा था। दोनों ही एक दूसरे को दीन दृष्टि से देख रहे थे। भरत सोचते थे- मेरे न रहने पर इस शिशु की देखभाल कौन करेगा? पूर्व स्वभावानुसार हरिण सगे सम्बन्धी स्वजन की भाँति, औरस पुत्र की भाँति उनके सिरके पास उदास होकर बैठ गया। पशु होने पर भी वह समझ रहा था कि अब मेरे पालक पिता का अन्त समय आ गया है। उसी की चिन्ता में उनका शरीर छूट गया।

इहि विधि व्याकुल भरत फिरें बन मारे मारे। मिल्यो न मृग बहुत खोजि बिचारे भये दुखारे।।
इतने ही महँ अन्तकाल नृपको नियरायो। भूप मृत्युके समय हरिन फिर आश्रम आयो।।
दशा देखि शिशु सहमिकें, सुत समान रोवत सतत। मृग पटके सिर दुखित चित, भरत ध्यान वाको करत।।

भरत जी की मृत्यु का समय आ गया। न राम की याद, न गोविन्द की याद, न प्रभु की याद, केवल हिरण का बच्चा चिंतन में आ गया। मेरे मरने के बाद इसकी देखभाल कौन करेगा? इसे कौन घास खिलायेगा? इसकी कौन सुरक्षा करेगा? इसे कोई शेर, भेड़िया खा जायेगा, ये सोचते-सोचते प्राण त्याग दिये। मृत्यु के समय चिन्तन तो गोविन्द का करो। भूल जाओ सारी दुनियाँ को। चिंतन ऐसा करना चाहिए कि हे प्रभु तेरे चरणों में मेरा मन आज ही उलझ जाए ऐसा फँसे कि जीवन में फिर कभी निकलने न पावें। मृत्यु के समय जब संसार याद आता है लेकिन आप याद नहीं आते। अंत जिसका संवर जाये, उसका जीवन सुधर गया। अन्तिम समय में जिसका चिंतन मन में करें, मरणोपरान्त उस शरीर में जाना पड़ सकता है।

यह ध्रुव सत्य है प्राणान्त के समय यदि हरि का जप, भजन या स्मरण रहता है तो उसे निश्चित रूप से भगवान् का सान्निध्य प्राप्त होता है किन्तु उसकी माया भी ऐसी विलक्षण बलवती है कि अन्त समय भगवतोन्मुख होना असम्भव नहं तो अत्यन्त दुरूह अवश्य है।

दाम के दीवाने हो, राम को क्या पाओगे। खाली हाथ आये थे, खाली हाथ जाओगे।। दाम के...
आमदनी टके की नहीं खर्च है हजारों का। खाते में घोटाला है, क्या मुँह दिखाओगे।। दाम के...
यूँ तो जिन्दगी अपनी विषयों में गुजरी है। चोला फिर यह मानव का कैसे माँग पाओगे।। दाम के...
पाके चोला मानव का व्यर्थ ही गँवाया है। राम गुण गा पगले वरना पछताओगे।। दाम के...

अत: मरने की बेला में वे हरिण-शिशु का ध्यान कर रहे थे। अत: अगले जन्म में हरिण के रूप में वे जन्मे। किन्तु उनकी भगवदाराधना इतनी प्रबल थी कि उसके प्रताप से उनकी हरिण-योनि में भी पूर्वजन्म की स्मृति बनी रही। मृगयोनि में जन्म लेने के कारण को जानकर उन्हें महान् पश्चात्ताप होता था। जीव की विषयों में स्वाभाविक प्रवृत्ति है। विषयों में आसक्त होना यह जीव का सहज स्वभाव है।

मरण काल में भी रहा मृग शावक का ध्यान। पुनर्जन्म में मृग हुए, राजा मोह निदान।।

अपने मन का कभी भरोसा मत करना। क्या पता किस समय यह बिगड़ जाये।

मृग शावक के मोह से, भरत गए मृग योनि। अन्त समय करनी कठिन, पावै तैसी जौनि।।
दुस्सह काल कराल प्रबल बलशाली आयो। देह त्यागिके भरत फेरि पशुको तन पायो।।
जाको चिन्तन करत जीव त्यो जा तनकूँ। अपर जन्ममहँ योनि मिले सोई जीवनिकूँ।।

योगभ्रष्ट भूपति भये, मृगासक्त मन ह्वै गयो। तातें मृगकी योनिमहँ, भरत जन्म फिरतें भयो।।

भरत सोचते थे- बड़ खेद की बात है, मैं संयमशील महात्माओं के मार्ग से च्युत हो गया। भगवान की अविचल आराधना के विचार से मैंने अपने वैभव और परिवार का परित्याग किया था। भगवान के ही स्मरण, ध्यान और कीर्तन में मेरा सारा समय व्यतीत होता था किन्तु मेरा दुर्भाग्य तो देखिये कि अन्त में मैं एक नन्हें से हरिण-शिशु के चक्कर में पड़कर अपने लक्ष्य से च्युत हो गया। ऐसा सोचकर मृग बने हुए राजर्षि भरत के हृदय में वैराग्य की महान् भावना जगी।

एक मृगा के कारण, भरत धरी दो देह। भरत हरिन सो नेह करि, हरिन भये तजि देह। तुलसी उनकी कौन गति जिनके नाना नेह।।

फलत: वे अपनी माता मृगी और जन्मभूमि कालंजर पर्वत को छोड़कर गण्डकी नदी के तट पर पुलहाश्रम में चले गये। वहाँ भी वे संग से भयभीत होकर काल की प्रतीक्षा करते हुए इधर-उधर भटकते रहते थे। वे सूखे पत्ते, घास और झाड़ियों को खाकर अपना दिन काटते थे। भरत जी को मनमें इतनी ग्लानि हुई, सोचने लगे कि मेरा जैसा निकृष्ट और कौन होगा।

भरतजी को इस मृग शरीर में अपनी तपस्या और भगवद् आराधना में विघ्न की स्मृति से परम ग्लानि हुई। वे बार-बार पश्चात्ताप करते हुए सोचने लगे- देखो, प्रारब्ध ने मुझे कहाँ ले जाकर पटक दिया। मेरा दुर्दैव मृग कारूप रखकर मेरे सम्मुख आ गया, उसने मुझे ठग लिया, परमार्थ से च्युत कर दिया, मेरी साधना को भ्रष्ट बना दिया। जिस चित्त को सदा मैं भगवद् गुण श्रवण-कीर्तन और मनन निद्धियासन तथा भगवद् ध्यान में लगाये रहता था, एक पल को भी व्यर्थ नहीं जाने देता था, क्षण-क्षण का सदुपयोग करता था। वही चित्त प्रारब्धवश एक मृगशावक के मोह में फँस गया, मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया। मैं अपने लक्ष्य को भूल गया, उत्थान के स्थान में पतन हो गया।

अब हिरण बनने के बाद भी भरत जी हिरण के झुण्ड में नहीं रहते। हिरण खाते हरी घास, भरत जी खाते सूखी घास। क्योंकि हरी घास में कीटाणु होते हैं और सदा एकान्त में पड़े रहते। कभी-कभी पूर्व जन्म के संस्कार किसी पशु के भी होते हैं। वृक्षों के आपस के घर्षण से वन में आग लग गयी। आग लगते ही सारे हिरण जंगल छोड़कर भाग गये, लेकिन भरत जी नहीं भागे। उसी वन में परमात्मा का चिंतन करते हुए अपने शरीर को भस्म कर दिया। अन्त में, प्रारब्ध कर्म के समाप्त होते ही उन्होने दावाग्नि में अपना आधा शरीर गण्डकी नदी के जल में डुबाये रखकर उस मृग-शरीर को छोड़ दिये।

व्यर्थ होहि नहिँ भजन तनिक हू भूले नाहीं। पूर्व जन्मको वृत्त भरत मृग तनके माहीं।।
करि बहुत पश्चात्ताप मातु हरिनि हू त्यागी। कालिंजर गिरि त्यागि भये फरतें बैरागी।।
संग करहिँ नहिँ भूलि अब, नहिँ सजीव तृनकूँ चरहिँ। सूखे पत्ता खाइकें, ऋषि मुनि सम तप व्रत करहिँ।।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, भरतजी ने मृग के शरीर को छोड़ते हुए भी बड़े प्रेम से स्पष्ट स्वर में ये वचन कहे थे- यह योगगम्य सांख्य शास्त्र के सिद्धान्त स्वरूप प्रकृति के भी स्वामी श्रीमन्नारायण हरि को नमस्कार है।

शरीरको जान-बूझकर नहीं छोड़ना चाहिए। जैसे समयानुसार फल अपने आप ही पककर गिर पड़ते हैं, वैसे ही शरीर छूट जाये तो ठीक है।

कबीर मन तो एक है चाहे जहां लगाय। भावे हरि की भक्तिकर भावे विषय कमाय।।

भरतजी का शरीर हिरण का चिन्तन करते हुए छूटा, इसलिये अगले जन्म में हिरण बने। लेकिन हिरण बनकर भी भगवान की याद नहीं भूली। पश्चात्ताप करते हाय मैं तो भरत था, भगवान का भजन करता था भगवत् प्राप्ति के लिये

पिताजी के उपदेश से। लेकिन एक मृग-शावक में आसक्ति हो जाने के कारण अन्तिम समय में उसका चिन्तन हो गया। इसलिये मुझे हिरण बनना पड़ा। गर्म दूध से एक बार मुँह जल जाता है, तो छाछ भी फूंककर पीते हैं। हिरण के शरीर में ये सावधान रहने लगे। हरी पत्ती नहीं खाते। जो अपने आप पेड़ से गिरकर सूख जाते, उन सूखी पत्तियों को खाकर गुजारा करते। हरिण के शरीर में भी तपोमय जीवन निभाते। प्रभु को याद करते। आँखों से आँसुओं की धारा चलती रहती।

योगभ्रष्ट पुरुष पवित्र धर्मात्मा धनी पुरुषों के घर उत्पन्न होते हैं, जिन्हें शरीर निर्वाह के लिये कोई प्रयत्न न करना पड़े। साधन की सभी सामग्रियाँ बिना श्रम के सुलभता से प्राप्त हो सके, जिससे वे अपनी अधूरी साधना पूरी कर सकें। अथवा उसका जन्म शम, दम, तप, स्वाध्याय, वेदाध्ययन, त्याग, सन्तोष, तितिक्षा, विनय, विद्या, श्री, दया, मैत्री, करुणा, मुदिता आदि गुणों से सम्पन्न योगियों के कुल में होता है, जिसके कारण उन्हें साधना के संस्कार वंश परंपरा से जन्म लेते ही प्राप्त हो सकते हैं। योग में अन्तराय उपस्थित होने से पिछला योग का किया हुआ श्रम व्यर्थ नहीं होता। दूसरे जन्म में जहाँ से छोड़ते हैं वहीं से आरम्भ करते हैं।

शुकदेव महाराज ने कहा- परीक्षित्, अंगिरा गोत्र में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। वे महान विद्वान, त्यागी, परम धार्मिक, उदार और अध्यात्मज्ञान से सम्पन्न थे। आचरण की पवित्रता में वे सतत सावधान थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं। बड़ी पत्नी से उन्हीं के समान नौ पुत्र हुए और छोटी पत्नी से एक ही साथ एक पुत्र एक कन्या का जन्म हुआ। इनमें जो पुत्र था वही पूर्व जन्म में राजा भरत था। ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न राजा भरत का यह अन्तिम जन्म था। राजा भरत ने अपने जीवन में भगवान की इतनी पूजा-उपासना की थी कि उसके प्रभाव से वे मृग-शरीर छोड़कर ब्राह्मण के वंश में उत्पन्न हुए किन्तु पूर्व जन्म की स्मृति होने के कारण वे स्वजनों की आसक्ति से भयभीत रहा करते थे। उनका सारा समय भगवान के चरणारविन्द के ध्यान में ही व्यतीत होता था। उन्होंने अपना आचरण ऐसा बना रक्खा था कि लोग उन्हें पागल, मूर्ख, अन्धा और बहरा समझें क्योंकि जब तक मनुष्य अपने को दुनियाँदारों के योग्य प्रदर्शित करता है तब तक संसारीजन उसका पीछा नहीं छोड़ते। जब तक मनुष्य अपने को दुनियादारोंके योग्य दिखाता है, तबतक दुनियादार लोग उसको छोड़ते नहीं। दुनियादारोंको जबतक मालूम रहता है कि अमुक आदमीसे हमारा काम निकालेगा, तबतक वे उसके पीछे पड़े रहते हैं और उसको मारे बिना नहीं छोड़ते।

भरत को अपने दोनों पूर्व जन्मों की बात स्मरण थी। वे राम जी के उपासकऔर कृष्णके प्रेमी है। अब इस जीवन में फिर भूल न हो, इसके लिये अब किसी हिरण हिरणी की ओर तांकना झांकना नहीं है। हिरण शरीर छोड़कर इस ब्राह्मण शरीर में आये यहां किसी से हिलना-मिलना बोलना नहीं है। हम मूढ़ मुर्ख बुद्धिहीन की तरह रहें। मूर्ख समझे। संगति के दोष से फिर कहीं बन्धन न हो जाय, इस कारण भगवान का स्मरण करते हुए गृह-विरक्त रहना चाहिए।

पिताने सोचा यह बालक मेरे घर में बड़ा विद्वान बनेगा। पिता ने अपने अन्य पुत्रों की भाँति संस्कारी बनने के लिये उस पागल पुत्र का भी बड़े स्नेह से विधिपूर्वक उपनयन संस्कार किया। शौच, आचार और नियमों की विधि की शिक्षा दी किन्तु वह इन विधियों की शिक्षा लेना नहीं चाहता था, तो भी पिता का कर्त्तव्य है कि पुत्र को शिक्षा दे, इस शास्त्र-मर्यादा का पालन करते हुए उन्होंने शौच, आचमन आदि आवश्यक कर्मों की शिक्षा दी। यह एक संयोग ही था कि इस जन्म में भी इस बालक का नाम भरत रक्खा गया।

भरत जी अपने पिता के सामने ही उनके उपदेश के विरुद्ध आचरण करने लगते थे। पिताजी ने सोचा कि इस बालक को व्याहृतियों के सहित गायत्री मन्त्र कण्ठस्थ करवा दें। गायत्री मन्त्र है भी बहुत छोटा किन्तु चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़

इन चार महीनों के प्रयास के बाद भी वे भरत को सही-सही गायत्री मन्त्र कण्ठस्थ न करा सके।

माता-पिता की हार्दिक इच्छा रहती है हमारे सभी पुत्र सुखी रहें, कोई भी दु:ख न पावें। जो सयाने होते हैं, बुद्धिमान और कार्य कुशल होते हैं, उनकी माता-पिता को उतनी चिन्ता नहीं रहती। वे समझते हैं यह तो अपने बुद्धि बल से कहीं-न-कहीं से कमा खायगा। बुद्धिहीन तथा असमर्थ सन्तानों की माता-पिता को बड़ी चिन्ता रहती हैं।

ब्राह्मण देवता ने लाख प्रयास किया किन्तु उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता न मिल सकी। भरत ने एक छोटासा मन्त्र भी कण्ठस्थ नहीं किया। भरत जान-बूझकर पंडित कर्म नहीं सीखना चाहते थे नहीं तो यजमान के यहाँ पुरोहित कर्म करना पड़ेगा। भरत ने सोचा पिताजी मुझे जो गायत्री मंत्र दे रहे हैं, ये आत्म बोध या आत्मज्ञान के लिए नहीं, बल्कि यजमानी संभालने के लिए दे रहे हैं। कल कहेंगे गृहशान्ति का पाठ करो, फिर कहेंगे सत्यनारायण की कथा याद करो, फिर कहेंगे यजमानों के यहाँ शादी ब्याह कराने जाना है, नामकरण संस्कार कराने जाना है। जिन बंधनों से मैं छूटना चाहता हूँ, उसी में वापस फँस जाऊंगा। पिताने सोचा- मेरे घर में तो जड़ ही पैदा हो गया इसलिये इनका नाम जड़भरत हो गया। जो किसी से एक शब्द नहीं बोलते, अच्छा कार्य हुआ, बुरा कार्य हुआ प्रभु की इच्छा। सब परिस्थितियों में एकसा बनकर रहना।

पुत्र को शिक्षित, संस्कारी बनाने के चक्कर में ब्राह्मण भगवान का भजन करने के लिये अपना घर छोड़कर जंगल भी न जा सके। वे घर के धन्धों में ही व्यस्त थे कि काल ने आकर उन्हें धर दबोचा और वे विदा हो गये इस संसार से जिसे वे सजाने-सँवारने में लगे थे। ब्राह्मण के मर जाने पर उनकी छोटी पत्नी सौत के हाथों अपनी दोनों सन्तानों को सौंप कर स्वयं सती होकर पतिलोक को चली गई।

संसारी पुरुष तो रात्रि दिन जड़ता का कार्य करते हैं, उसपर भी लोग बुद्धिमान बताते हैं। जड़भरतजी जैसे ज्ञानी को सिड़ी पागल कहकर उनकी हँसी उड़ाते हैं। यह पृथ्वी अनादि काल से चली आई है सदा इसी प्रकार प्रवाह रूप से चली जायगी। बड़े-बड़े प्रतापी राजा इसको अपनी-अपनी कहकर इसी में विलीन हो गये। पृथु, प्रियव्रत उत्तानपाद, मनु, नहुष, गय, मान्धाता, सगर, रावण, राम, न जाने कितने शूरवीरों ने इसे अपनी बताया, किन्तु यह किसी की हुई? उसी पृथ्वी में अपनापन करके दुखी होना यह जड़ता नहीं है? उसी पृथ्वी में अपनापन करके दुखी होना यह जड़ता नहीं है? मिट्टी-से-मिट्टी को खाकर प्रसन्न होना यह मूर्खता नहीं है? चर्म-से-चर्म का संघर्ष करके आनन्द का अनुभव करना पागलपन नहीं है? लाल, काली सफेदऔर पीली मिट्टी में सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, मिट्टी का भेदभाव स्थापित करके रात्रि-दिन उसी की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते रहना यह सिड़ीपन नहीं तो क्या है? किन्तु माया मोह में फँसे प्राणी इस ओर तो ध्यान देते नहीं। उसी को बुद्धिमान समझते हैं, जो सोना चाँदी के चार ठीकरें इधर-उधर से झूठ बोलकर एकत्र कर ले। जो इन व्यर्थ के व्यापारों से उदासीन हो जाता है, वह इन मूर्खों की दृष्टि में जड़ है अज्ञ है, सिड़ी है, पागल है, निकम्मा है, व्यर्थ है। अपनी जड़ता को बुद्धिमानी समझना और जो पुरुष ब्रह्म तक पहुँचे हैं इस क्षणभंगुर संसार की भावना सदा के लिये त्याग चुके हैं उन्हें अज्ञ लोग जड़मति बताते हैं।

मृग तें ब्राह्मण वंश माहिँ प्रकटे मुनि ज्ञानी। चरम देह है जिही भरत निश्चय करि जानी।।
पिता पढ़ावें वेद मन्त्र देवें जपिबेकूँ। अण्ड सण्ड कछु बकें जतावें जड़ अपनेकूँ।।
हती बहिन इक जुड़ेली, दूसरी माँ के नौ तनय। कर्मकांड में फँसे ते, भरत लखें जग ब्रह्ममय।।

भरत जी भाई-भौजाई के पल्ले पड़ गये। भाई भौजाई ने सोचा कि इसे कुछ काम में लगावे। ऐसे काम में लगावे जिसमें दिमाग की जरूरत न पड़े। हाथ में झाड़ू पकड़ा दी। दिनभर गांव भर में झाड़ू लगाते रहते।

भरत के भाई कर्मकाण्ड की विद्या में निपुण थे। उन्हें ब्रह्मविद्या का ज्ञान न था अत: वे भरत के प्रभाव से अनभिज्ञ थे

इसीलिये उन लोगों ने भरत को लिखाना पढ़ाना बन्द कर दिया। भरत जी को अपने मान-अपमान का कुछ भी विचार न था। जब कोई दुष्ट व्यक्ति उनसे कुछ भी कार्य कराना चाहता था तब वे उसकी इच्छा के अनुसार कर देते थे। बेगार के रूप में, मजदूरी के रूप में, माँगने पर अथवा बिना माँगे जो भी थोड़ा-बहुत, अच्छा या बुरा अन्न उन्हें मिल जाता, उसी को खाकर वे अपने पेट की ज्वाला समाप्त कर लेते। स्वाद पर उनका स्वल्प भी ध्यान न था अत: वे भगवदानन्द में निमग्न रहा करते थे, अत: सुख-दु:ख आदि द्वन्द्वों का उन्हें भान भी नहीं होता था। उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट एवं गठीला था। वे पृथ्वी पर ही रहते थे। स्नान-उबटन न करने से उनका शरीर मलिन बना रहता था। उनका ब्रह्मतेज, धूलि से ढके हुए मूल्यवान मणि के समान छिप गया था। वे अपनी कमर में एक मैला-कुचैला कपड़ा लपेटे रहते थे। उनका यज्ञोपवीत भी बहुत-ही मैला हो गया था। इसलिये मूर्ख जनता यह कोई द्विज है, यह कोई अधम ब्राह्मण है ऐसा कहकर उनका तिरस्कार किया करती थी किन्तु वे इसका कोई विचार न करके स्वच्छन्द विचरा करते थे। सौतेले भाइयों ने भरतजी के साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया। रात का बासी अन्न भरतजी के सामने ऐसे डाल देते जैसे कुत्ते के सामने फेंकते। पर जड़ भरत भी उसीको भगवत् प्रसाद समझकर खा लेते। भाई लोग अनंत सामग्री सेवन करते फिर भी शरीर से दुबले-पतले। भरत जी रूखा-सूखा पाते, फिर भी हृष्ट-पुष्ट हैं। कहते हैं-

तुलसी बिरवा बाग की सींचत ही मुरझाय। राम भरोसे जो रहे पर्वत पर हरि आय।।

परमात्मा का आश्रय सर्व विघ्नों को दूर कर मुक्ति प्रदान करता है। जब भाइयों ने देखा कि यह भोजन पर दूसरों का कार्य करता है तो उन लोगों ने भरत को अपने ही खेत का मेड़ बनाने में, ऊँचा-नीचा समतल करने में लगा दिया। जड भरत का हृदय तो भगवान के चिन्तन में लगा रहता था। वे हाथ से फावड़ा चलाते जाते थे अत: सब उलटा-पुलटा हो जाता था। कहीं मेड़ टूट जाता तो कहीं गड्ढा और ऊँचा हो जाता। उनके भाई-भौजाई उन्हें चावल की कन्नी, खली, भूसी, घुने हुए उड़द अथवा बरतनों में लगी हुई जले अन्न की खुरचन- जो कुछ भी दे देते, उसी को वे अमृत के समान खा लेते थे।

भाइयों ने खेत की रखवाली का काम सौंपा। खेत बहुत गहरा है, पानी भर जाता है, तो फसल सड़ जाती है। दूसरा खेत इतना ऊंचा है कि इसमें पानी टिकता ही नहीं। खेत की मिट्टी काट-काट कर गड्ढे में फेंकी जाये तो खेत फसल के लायक हो जाये। तो इनको कहा- मिट्टी खोदो और इसमें फेंक दो। अब जड़भरत को पता नहीं कितना खोदना है, कितना खोदा है जो मिट्टी का टीला था वो गड्ढा हो गया जो गड्ढा था वो टीला हो गया।

खनन कहें तो कूप बनावें। मेंढ़ कहे तो शिखर बनावें।।
लयो फावड़े हाथ खेतकूँ लागे खोदन। गड्ढा भारी खन्यों लगे सब भाई रोकन।।
कहें परस्पर बुद्धिहीन क्यारी न बनावे। देहु मंच बैठाइ बैठिके खेत रखावे।।
जैसे भाई कहहिं वे, तैसो ई कारज करत। नये बने अब खेतके, रखवारे श्रीजड़ भरत।।

भाई बोले ज्वार बाजरे की फसल पक रही है पक्षी आते हैं, और दाना चुग जाते हैं। खेत में मंच बना दो, टीन का खाली पीपा बांध दो और कहो कि इसे बजाते रहे। पक्षी उड़ रहे है कि या नहीं उड़ रहे इससे इनको कोई मतलब नहीं। इनके तो मन में यही है कि हम पंछी क्यों उड़ाये क्या हमने पक्षी बनाये हैं? क्या अन्न के दाने हमारे है? क्या हमने अन्न के दाने बनाये है? हमने तो कुछ बनाये नहीं। रामजी ने पक्षी बनाये रामजी ने अन्न बनाया।

रामजी की चिड़िया रामजी का खेत। खाय लो चिड़िया भर भर पेट।।

जड़ भरत जी को भाइयों ने घर से निष्कासित कर दिया और भरतजी वनमें चले गये। नित्य ही ब्रह्मानन्द में निमग्न योगी पृथ्वी पर अनेक रूप रखकर विचरते रहते हैं, अत: भूलकर भी किसी को जड़ मूर्ख समझकर अपमानित न करना चाहिये। सभी को भगवत् रूप मानकर आदर की दृष्टि से देखना चाहिये। यही शास्त्रों का सार सिद्धान्त है। जड़मति पुरुष स्वयं यह विचार नहीं करते कि ऐसे घृणित कार्य के करने से हमें नरकादि अनंत दु:खों को भोगना पड़ेगा।

एक समय की घटना है। रात्रि की बेला थी, जडभरत रास्तेपर वीरासन से बैठे हुए मृग-वराह आदि जीवों से खेत की रखवाली कर रहे थे। उसी समय डाकुओं के एक सरदार के लोग भद्रकाली के सामने बलि देने के लिये एक व्यक्ति को पकड़कर ले जा रहे थे। सरदार ने देवी से मनौती मानी थी कि- देवी तुम मुझे पुत्र देना। मैं तुम्हें नर-बलि चढ़ाऊँगा। जिस मनुष्य को बलि के लिये पकड़ कर लाया गया था, वह अँधेरे का लाभ लेकर कहीं भाग गया। रात अँधेरी थी अत: खोजने पर भी उसका पता न चला। इसी समय दैवयोग से अकस्मात् सरदार के व्यक्तियों की दृष्टि जडभरत पर पड़ी। उन्होंने देखा कि यह मनुष्य तो बड़े लक्षणोंवाला है, इससे हमारे स्वामी का कार्य अवश्य सिद्ध हो जायेगा यह सोचकर वे प्रसन्न हो उठे। उन लोगों ने जडभरत को रस्सियों से बाँधा और चण्डिका के मन्दिर में ले आये।

पुत्र हीन नृप-शूद्र मनौती मनमें मानी। मानुषकी बलि देहुँ पुत्र यदि देहि भवानी।।
भयो पुत्र इक पुरुष पकरि बलिहित सब लाये। निशा माहि भगि गयो दास अति ही घबराये।।
बलि पशूकूँ खोजत फिरें, सोचें मूरख गयो कहँ। आये खोजत खेत पै, बैठे द्विजवर भरत जहँ।।

मिला एक अलमस्त एक दिन उन्हें भटकते राह कहीं। देह गेह परिवार आदि से विरक्त जिसे कुछ चाह नहीं।
शत्रु मित्र सुख दु:ख आदिक द्वन्द्वों की जिन्हें परवाह नहीं। मुख प्रसन्न तन पुष्ट हृदय आनन्दसिन्धु की थाह नहीं।।

जड़भरत ने एक बार भी नहीं पूछा कहां ले जा रहे हो? बस उनका तो यही था-

जहां ले चलोगे वही मैं चलूंगा। जहां नाथ रख दोगे वही मैं रहूंगा।।
ये जीवन निछावर चरण में तुम्हारे। तुम्हीं मेरे सर्वस तुम्हीं प्राण प्यारे।।
तुम्हें छोड़कर और किसको गहूंगा। जहां नाथ रख दोगे वहीं मैं रहूंगा।।
न कोई उलाहना ना कोई अर्जी। कर लो करा लो प्रभु जैसी तेरी मर्जी।।

मन्दिर में लाकर डाकुओं ने बलि देने की विधि के अनुसार जडभरत को स्नान कराया, खूब बढ़िया वस्त्र पहनाया, आभूषण धारण कराया और अच्छा-अच्छा भोजन कराया। उनकी जम कर पूजा की फिर गाजे-बाजे के साथ उन्हें देवी के समक्ष उपस्थित किया। यह देखकर भरत बड़े प्रसन्न हुए कि जो कार्य भाई और भौजाई ने नहीं किया उसे ये लोग आज कर रहे हैं। कितने अच्छे हैं ये लोग। डाकुओं ने जडभरत को देवी के सामने सिर झुकवा कर बैठा दिया।

बलिदान देनेवाले लुटेरे पकड़कर ले जा रहे हैं। इस बात की खुशी नहीं की मेरी पूजा हो रही है। तलवार उनकी गर्दन पर आनेवाली है। इसका कोई शोक नहीं। मृत्यु सम्मुख खड़ी है। सब समझ रहे हैं कि ये दस्यु मुझे काली के सामने बलि देंगे। अभी तीक्ष्ण खडग से मेरे सिर को धड़ से पृथक् कर देंगे, किन्तु इसकी तनिक भी चिन्ता न करते हुए बड़े आनन्द से भोजन पा रहे हैं। न मरने से भय न प्राणों का मोह। जो हो रहा है उसी में मग्न हैं उनके लिये अनुकूल प्रतिकूल में कोई भेद ही नहीं।

तदनन्तर दस्युराज के पुरोहित बने हुए लुटेरे ने, उस नर-पशु के रक्त से देवी को तृप्त करने के लिये, देवीमन्त्रों से अभिमन्त्रित एक तीक्ष्ण तलवार उठाई।

जिन्दा रखे तो हमको या धड़ से सर उतारे। अब तो फकीर आशिक कहता है यों पुकारे।।
राजी हैं हम उसमें जिसमें तेरी रजा है। यहां यूँ भी वाह वाह यहां यू भी वाह वाह।।

जड़भरतजी यह सब लीला अपनी आँखों से चुपचाप बैठे देख रहे थे, उनके मन में न हर्ष था न विषाद। उन्हें न मरने का भय था न जीने की चिन्ता। वे तो सभी में समभाव किये बैठे थे। वे तो ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त करके सर्वत्र श्रीहरि को ही देखते थे। शरीर में अहंभाव हो तब तो उसकी रक्षा का प्रयत्न भी किया जाय, वे तो अहंता ममता को घोटकर पी चुके थे। इसलिये न उन्हें खडग से भय हुआ, न पुरोहित के कार्यों से उद्वेग। वे इन कार्यों को खेल समझ रहे थे।

इस प्रकार धन और बल से उन्मत्त उन तमोगुणी दुष्टों का यह भयंकर कुकर्म देखकर भद्रकाली के शरीर में अति दु:सह ब्रह्मतेज से दाह होने लगा और वे एकाएक मूर्ति को फोड़ कर प्रकट हो गईं, क्रोध के मारे उनकी भौंहे चढ़ी हुई थीं। उनकी विकराल दाढ़ों और चढ़ी हुई लाल-लाल आँखों के कारण उनका चेहरा बड़ा भयानक जान पड़ता था। उनके उस विकराल वेश को देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वे इस संसार का संहार कर डालेंगी। उन्होंने क्रोध से तड़ककर बड़ा भीषण अट्टहास किया और उछलकर उस अभिमन्त्रित खड्ग से ही उन सारे पापियों के सिर उड़ा दिये और अपने गणों के साथ उनका गरम-गरम रक्त पीकर उन्मत्त हो ऊँचे स्वर से गाती और नाचती हुई उन सिरों को ही गेंद बनाकर खेलने लगीं। सच है, महापुरुषों के प्रति किया गया अत्याचार रूप अपराध इसी प्रकार ज्यों-का-त्यों अपने ही ऊपर आकर पड़ता है और फल स्वयं ही भोगना पड़ता है।

शुकदेव बोले- राजन्, हिंसा करनेवाला दुष्ट पापी अपने पाप से स्वयं ही मारा गया। यह लोकोक्ति अक्षरश: सत्य है कि साधु पुरुष अपनी समता के कारण सभी प्रकार के दुखों से स्वत: ही छूट जाते हैं।

उदासीन ह्वै चले महामुनि अतिशय ज्ञानी। हर्ष विषाद न हृदय दैवकी इच्छा जानी।।
जगमें जो जस करेगो, सो तैसो ई भरेगो। डूबेगो हरि विमुख ह्वै, प्रभुपदतें भव तरेगो।।

दस्युओं का काम तमाम करने के बाद भद्र काली की दृष्टि गई जडभरत के ऊपर। वे आँखें बन्द किये देवी की मूर्ति के सामने सिर झुकाये बैठे थे। उन्हें कुछ भी भान नहीं हो रहा था कि क्या हो रहा है। देवी ने उन्हें उठाया, अपनी गोद में बैठाया। दुलारा-पुचकारा और उनके सिर पर हाथ फेरा। देवी ने कहा- अरे मूर्ख, तुझे यही स्थान मिला अपने प्राण गँवाने का। जरा भी प्रयत्न नहीं किया अपनी रक्षा नहीं कर सकता। भरत करबद्ध होकर नम्रभाव से भद्रकाली माँ को प्रणाम कर बोले- जगत् की रक्षा का भार आपके ऊपर है, फिर मैं क्यों चेष्टा करूं। जिसने मेरी रक्षा का भार लिया है वह स्वयं रक्षा करेंगी मैं तो आपकी कृपा पर निर्भय निश्चिन्त हूँ।

थोड़ी देर के बाद भद्रकाली अन्तर्हित हो गईं। देवी के दुलार को पाकर जडभरत निहाल थे। वे आत्माराम थे अत: बाह्य जगत की घटनाओं का उन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

दस्यु लोग मार रहे हैं इस बात का शोक नहीं और देवी मैय्या ने बचा लिया इस बात की कोई प्रसन्नता नहीं है।

राजन्, मृत्यु के ताण्डवनृत्य को देखकर भी भरत का हृदय भयभीत नहीं हुआ। इसमें किसी प्रकार के आश्चर्य की बात नहीं है। जो अनन्य भक्त बनकर भगवान की शरण में पहुँच गये हैं, उनकी रखवाली का सारा भार भगवान् के कन्धे पर आ जाता है और भगवान इसे निभाते भी बखूबी हैं। परीक्षित, जिनका देहाभिमान समाप्त हो गया है जिसमें सम-भाव उत्पन्न हो गया हो जो अजातशत्रु हैं, जिन्होंने भगवान के चरणकमलों का आश्रय ले रखा है, ऐसे परम हंसों की रक्षा के लिये स्वयं भगवान विभिन्न रूपों में प्रकट हो जाते हैं। जो मनुष्य अपना मन ईश्वर में लगाये रखता है उसे कोई दु:ख नहीं दे सकता।

देह गेह की सुधि नहीं टूटी जग से प्रीत। नारायण गावत फिरे-प्रेम भरे हरिगीत।।

३) जड भरत का राजा रहूगण को उपदेश

महाराज भरतने हरिण-शिशु का ध्यान करते हुए शरीर छोड़ा था अत: मृगयोनि में उन्हें जन्म लेना पड़ा था। इसी प्रकार अपने मालिक महाराज भरत के मर जाने पर वह हरिण-शिशु भी उन्हीं का ध्यान करते हुए मरा था अत: वह सिन्धु सौवीर देश के राजा रहूगण के रूप में जन्मा। पूर्वजन्म में हरिण के रूप में रहूगण ज्ञानी भरत के संसर्ग में रहा अत: इस जन्म में भी उसकी ज्ञान-पिपासा और सत्संग की इच्छा बनी रही। यही है, अन्तकाल के संस्कार की बात।

गर्भमें गुण-दोषका संक्रमण होता ही है। जन्म-ग्रहण करनेवालोंपर संस्कार नाना-नानीका पड़ता है, दादा-दादीका, माता-पिता, पूर्वजन्मका और खान-पानका पड़ता है।

श्री शुकदेवजी बोले- परीक्षित्, एक दिन सिन्धु सौवीर देश के राजा रहूगण पालकी पर सवार होकर भगवान कपिलदेव के सत्संग में सांख्ययोग का ज्ञान प्राप्त करने के लिये गंगासागर जा रहे थे। सड़क के किनारे किसी पेड़ की छाया में भरत मस्ती में बैठे थे। उसी समय सिन्धु सौवीर देश का राजा रहूगण पालकी पर बैठ कर सत्संग करने के लिये गंगासागर की ओर चले जा रहा है। सिन्धु सौवीर देश भारत के पश्चिमी तट पर, और गंगासार संगम भारत के पूर्वी छोर पर। सत्संग की भूख जगी है। आत्मकल्याण की भूख लगी है जैसे प्यासा व्यक्ति जल की खोज में, धूप से तप्त व्यक्ति छाया की खोज में, पार जाने वाला व्यक्ति नौका की खोज में रहते हैं।

नारायण हरि कृपा की चितवत रहिये बाट। जानहार जिमि पार को चितवत नौका घाट।।

आत्मकल्याण की जिज्ञासा लेकर सत्संग के लिये जा रहे हैं लेकिन तरीका गलत अपना रखा।

सन्त मिलन को जाइये तजि ममता अभिमान। पद पद पर फल होते हैं कोटिन यज्ञ समान।।

जब वे इक्षुमती नदी के तट पर पहुँचे तब उनकी पालकी ढोनेवाले कहारों के जमादार को एक कहार की आवश्यकता पड़ी। कहार की खोज करते समय दैववश उसे जडभरत मिल गये। इन्हें देखकर उसने सोचा- यह मनुष्य हृष्ट-पुष्ट, युवक और गठीली शरीरवाला है अत: यह बैल या गधे के समान भली-भाँति बोझ ढो सकता है। यह सोच वह उन्हें पकड़ लाया और पालकी ढोने में लगा दिया। यद्यपि महात्मा भरत जी किसी प्रकार इस कार्य के योग्य नहीं थे, तो भी वे बिना कुछ बोले पालकी को उठाकर चल दिये।

इक दिन आये भरत फिरत तट इक्षुमतीके। लखे चौधरी तहाँ सिन्धु सौवीरपतिके।।
कपिलदेव ढिँग जायँ रहूगण भूप विचारे। शिविका धीवर नहीं खोजि सेवक सब हारे।।
मोटे ताजे जड़भरतकूँ, लखि सब प्रमुदित भये। पकरि पालकीमें दये, सब कहार सँग लगि गये।।
कोई चले हाथी-घोड़ा पालकी मंगाय के। साधु चले नंगे पैर कीड़ियां बचाय के।।

शुकदेव बोले- परीक्षित, इस झाँकी का दर्शन करो। इतना बड़ा सन्त महात्मा, ज्ञानी पुरुष एक साधारण से राजा की पालकी को कन्धे पर उठाकर चल रहा है।

मार्ग में चींटी आदि कोई जीव-जन्तु पैरसे दब न जाय इसलिये आगे की दो हाथ जमीन पर दृष्टि रखकर जडभरत चलते थे। यदि मार्ग में कहीं चींटी की कतारें दिखलाई पड़ती तो वें उन्हें बचाने के लिये उछल जाते थे। इससे पालकी ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती और राजा का सिर पालकी के बाँस से टकरा जाता था। इस पर रहूगण ने पालकी ढोनेवालों से कहा- अरे कहारों, ठीक से चलो। पालकी को इस प्रकार ऊँची-नीची करके क्यों चल रहे हो? कहारों ने कहा- महाराज,

हम तो ठीक ही पालकी ढो रहे हैं किन्तु अभी-अभी जो नया कहार पालकी ढोने में लगाया गया है, यह ठीक से कदम-से-कदम मिला कर नहीं चल रहा है। इसीके कारण यह गड़बड़ी हो रही है अत: हम इसके साथ पालकी नहीं ले जा सकते। समूह में एक दोष करता है, उसका कलंक पूरे समूह के मत्थे मढ़ा जाता है।

इस पर राजा ने सोचा कि संसर्ग-दोष का संक्रमण तो होता ही है। इसलिये यदि नये कहार का प्रतिकार नहीं किया गया तो सब कहारों की चाल बिगड़ जायेगी फिर वे क्रोध में भर कर जडभरत से व्यंग भरे वचन कहने लगे- क्यों रे, तुम चलते-चलते थक गये हो? क्या तुम बहुत दूर से अकेले ही पालकी ढो रहे हो। प्रतीत हो रहा है बूढे भी हो गये हो? तुम्हारा शरीर भी तो दुबला-पतला ही है। राजा ने एक बार एड़ी से चोटी तक देखा। और बोले बड़ा हट्टा कट्टा है। ऐसे दुबले पतले कमजोर बीमार व्यक्ति के ऊपर इतना भार क्यों डाल दिया; ये तो थोड़ा भी भार ढोने लायक नहीं है। ये अपने शरीर को लेकर चले तो बहुत है। जोर की हवा चली तो न जाने कहां जाकर गिरेगा। फिर बोले- क्यों रे, देखने में तो इतना मस्त लगता है खाने-पीने में इतनी तत्परता और काम करने में जी चुराता है। चल ठीक से पालकी ढो? राजा का वचन ही वेदवाक्य है। वे उन परमहंस की वृत्ति को बिना जाने ही उनका मोहवश तिरस्कार कर रहे थे। उन्हें भगवान के भक्तों की पूरी पहचान नहीं थी, वे स्थितप्रज्ञ पुरुषों को उनके लक्षणों से जान नहीं सकते थे।

इस प्रकार बहुत प्रकार से राजा के ताना मारने पर भी जडभरत चुपचाप पालकी ढोते ही रहे। उन्होंने इसका कुछ भी बुरा न माना क्योंकि देहाभिमान से वे ऊपर उठ चुके थे।

जब कुछ देर के बाद फिर पालकी ऊँची-नीची हुई और राजा को जोर से पालकी के बाँस का धक्का लगा तो वे क्रोध के मारे आगबबूला हो गये। डाँटते हुए जडभरत से उन्होंने कहा- अरे, तू तो जीते ही मुर्दा प्रतीत होता है। तू मेरा निरादर करके मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है। तू बड़ा प्रमादी प्रतीत हो रहा है। अरे, जैसे दण्डपाणि यमराज अपराधियों को दण्ड देते हैं वैसी ही मैं भी अभी तेरा इलाज किये देता हूँ। तब तेरे होश ठिकाने हो जायँगे। मैंने तुझे इतना समझाया, मेरे समझाने का तेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है। मेरे राज्य में रहकर खा-खाकर मोटा ताजा हो रहा है। मैं तुझे ऐसा दण्ड दूँगा कि तेरी बुद्धि ठिकाने आ जायेगी।

पद तल दबै न जीव दौरि इततें उत आवें। डगमग शिविका होहि भूप बैठे हिलि जावें।।
व्यापो तनमहँ क्रोध कहें मैं मारूँ तोकूँ। मैं हूँ सबको ईश मूर्ख मानें नहिँ मोकूँ।।
स्वामीके अपमानको, तोकूँ मजा चखाऊँगो। डन्डनतें पिटवाऊँगो, जीवित खाल खिचाउँगो।।

रहूगण को राजा होने का महान् अभिमान था, इसलिये वह इसी प्रकार बहुत-सी अनुचित बातें बोल गया। उसे क्या पता था कि यह एक ब्रह्मज्ञानी, भगवान के अनन्य भक्त का अपमान कर रहा है।

रहूगण की बात जडभरत ने सुनी। भरतजी आज तक न अपने पिता से बोले, न माता से, न भाइयों से लेकिन आज रहूगण से बोलना शुरू किया।

वे थोड़ा-सा मुस्कराये और फिर कहना शुरू किया। जडभरत के मुस्कराने के दो कारण थे एक तो यह था कि परमज्ञानी भरत को यह विदित हो गया था कि पूर्वजन्म का मेरा हरिण-शिशु ही, मरने के समय मेरे रूप का ध्यान करने के कारण, राजा रहूगण हुआ है अत: आज मुझे इसका उद्धार करना है, इसके सांसारिक बन्धन को काटना है। जडभरत के मुस्कराने का यही रहस्य था और दूसरा कारण यह था कि यदि ज्ञानोपदेश से आज मैं रहूगण का उद्धार नहीं करूँगा तो सत्संग की

महिमा ही संसार से समाप्त हो जायेगी। दुनियाँ यही कहेगी कि भगवद्भक्त जडभरत ने जिसे अपने कन्धे पर ढोया उसका भी उद्धार न हो सका। राजा की बात सुन जड़भरत की आँखों में आँसू झरने लगे और सोचने लगे- जीवन के मैंने चालीस बसंत पूरे कर दिये, पर एक शब्द आज तक किसी से बोला नहीं और आज नहीं बोलता हूँ तो लोग कहेंगे कि जड़भरत जैसे ज्ञानी ने जिसकी पालकी को कंधे पर रख लिया, फिर भी वह राजा मूर्ख का मूर्ख ही रह गया। देश के राजा रहूगण ने उनका यथार्थ रूप समझा। अधिकारी समझकर भरतजी ने उस पर कृपा की। उसे जो ज्ञान दिया, वह परमार्थ का सार है उससे बढ़कर अद्वैत का उत्कृष्ट ज्ञान हो ही नहीं सकता। मैंने तो इसे कन्धे पर चढ़ाया है। शरीर पर धारण किया है अब यह गिर गया तो सत्संग का महत्व ही मिट जायगा, यह इस असार संसार से सदा के लिये पार होना चाहता है। स्वेच्छा से या परेच्छा से जब मैंने इसे अपना लिया-सिर पर चढ़ा लिया और इतने पर भी यह डूब गया तो परमहंस वृत्तिवालों को यह बड़े कलंक की बात होगी। अत: अपने अपमान का मार्जन करने के निमित्त नहीं, क्रोध के वशीभूत होकर भी नहीं, केवल कृपावश, सरलता के साथ मन्द-मन्द मुस्कराते हुए राजा के वचनों का उत्तर देने को वे उद्यत हुए।

भरतजी ने राजा से कहने योग्य सभी बातें सार रूप में कह दी। बस, इन्हीं दो कारणों से जडभरत ने कहना प्रारम्भ किया।

जडभरत बोले- राजन्, तुमने जो कुछ कहा वह ठीक ही है। उसमें कोई मतभेद नहीं है, आक्षेप नहीं है। यदि भार नाम की कोई वस्तु है तो वह ढोनेवाले शरीर के लिये है। इसी प्रकार यदि कोई गन्तव्य मार्ग है, तो वह चलनेवाले देह के लिये है, मेरे लिये (अर्थात् आत्मा के लिये) नहीं। मोटापन, दुबलापन भी शरीर में ही होता है, आत्मा में नहीं। आत्मा में न थकान है न ग्लानि वह तो नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और दु:खों से सर्वथा पृथक हैं।

ज्ञानीजन ऐसी बातें नहीं करते। पतला होना, मोटा होना, बोझा ढोना, रास्ता चलना, पीस डालूंगा, मरम्मत करूंगा बुद्धि ठिकाने आ जायेगी। उसमें से कोई बात मुझसे लागू नहीं होती। मैं न मोटा हूँ, न पतला हूँ, न गोरा, न काला हूं। न राजा हूँ न प्रजा हूँ। न मुझे भूख है न प्यास। न मान है न अपमान, ये जो कुछ तुम कह रहे हो ये सब शरीर के धर्म है। मैं शरीर नहीं हूं, भूख-प्यास आधि-ब्याधि स्थूल शरीर के होते है। दु:ख और सुख मन का होता है। मैं इन सबसे परे हूं। जो उत्पन्न हुआ है उसका विनाश अवश्यम्भावी है। जो जनमा वो मरेगा भी। जन्म और मृत्यु ये दोनों बातें नियमित रूप से सभी संसारी पदार्थों में प्रत्यक्ष देखी जाती है। यदि मेरा-आत्मा का- जन्म हुआ होता तो मृत्यु भी अवश्य होती, किन्तु महिपाल मैं तो जीवन मरण दोनों से रहित हूँ।

मैं तो परमशुद्ध चैतन्य स्वरूप हूँ। हे राजन। तू पूछ रहा है मैं कौन हूं। तू मेरा आनन्द लूट नहीं सकता। मेरा आनन्द तो स्वतंत्र है। यह शरीर मिट्टी का बना है और लौंदा है। इसी के ऊपर तेरे मिट्टी का लौंदा, मिट्टी का भार मिट्टी के ऊपर है। मुझे तो कोई भार नहीं है।

ईश्वर अंश शुद्ध चैतन्य अनूप अमल अज अविनाशी। क्षुधा पिपासा जरा मरन दुख रहित सहज ही सुखराशी।।
बन्धन रहित असीम शक्ति सम्पन्न दिव्य गुण परकाशी। अहंकार बस मोह ग्रस्त हो आय पड़ा यम की फांसी।।

स्थूलता, कृशता, आधि, व्याधि, भूख-प्यास, भय, कलह, इच्छा, बुढ़ापा, निद्रा, प्रेम, क्रोध, अभिमान और शोक- ये सब धर्म देहाभिमान को लेकर उत्पन्न होनेवाले जीव में रहते हैं; मुझसे (अर्थात् आत्मा से) स्वल्प भी इनका सम्बन्ध नहीं है।

मैं प्राण नहीं हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ, मैं बुद्धि नहीं हूँ, मैं शरीर कैसे हो सकता हूँ? मैं हूँ चिन्मय आत्मा। जो आत्मा कभी जन्म नहीं लेती, जिसकी कभी मृत्यु नहीं होती।

राजन् तुमने कहा कि मैं तुम्हे दण्ड दूँगा, तुम्हारी चिकित्सा करूँगा। राजन् मुझे क्या दण्ड दोगे? ये पालकी पृथ्वी का एक टुकड़ा है, ये पालकी में बैठा राजा रहूगण पृथ्वी का दूसरा टुकड़ा है और ये जड़भरत नाम का शरीर पृथ्वी का तीसरा टुकड़ा है। पृथ्वी के एक टुकड़े पर एक और टुकड़े को धर कर उस पर एक और टुकड़ा धर दिया जाये, तो परिश्रम किसको होगा? राजन् जो कुछ कह रहा है, व्यवहार की बात कर रहा है। परमार्थ में इन बातों का कोई महत्व नहीं। तू कहता है कि तेरी मरम्मत करूंगा, तेरी बुद्धि ठिकाने आ जायेगी, यह कैसी धमकी है? जैसे पिसे पिसाये उसको कोई धमकी दे कि मैं तुझे पीस डालूंगा तो उसकी धमकी व्यर्थ हैं। यह शरीर ऐसा ही है इसमें से आत्मा के निकलते ही शरीर फेंकने योग्य हो जाता है। कीड़े पड़ जाते हैं। जलानेपर एक मुट्ठी भस्म हो जायेगी। जलचर जीव खाकर विष्ठा कर देंगे।

राजन्। तुमने जो जीने-मरने की बात कही- सो जितने भी विकृत होनेवाले पदार्थ हैं, वे नियमित रूप से जीने-मरनेवाले हैं। जीना मरना उन्हीं का धर्म है क्योंकि वे सभी आदि-अन्तवाले हैं। यशस्वी नरेश, तुमने जो स्वामी सेवक की बात कही, वह भी वहीं लागू होती हैं, जहाँ आज्ञापालन आदि का नियम हो।

रही राजा और प्रजा की बात, तो यह केवल व्यवहारमात्र है। व्यवहार के अतिरिक्त इसमें कुछ भी तथ्य नहीं है। परमार्थ दृष्टि से विचार करने पर न कोई स्वामी है और न कोई सेवक, फिर भी यदि तुम्हें स्वामित्व का अभिमान है, तो तू मेरी चिकित्सा क्या करेगा? और उस चिकित्सा का फल भी क्या होगा? क्या तू आटे को पीस कर गेहूँ बना सकता है? मूर्ख कहीं का, चला है ज्ञान सीखने। इस प्रकार कहकर जडभरत चुप हो गये।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, फिर जडभरत पालकी ढोने में ही लग गये। इस पर राजा रहूगण ने विचार किया कि आखिर, यह पालकी ढोनेवाला व्यक्ति कहता क्या है? ऐसी भाषा बोलनेवाला कोई सामान्य महात्मा नहीं हो सकता। यह तो कोई विशेष व्यक्ति है।

वे उसके मुखसे अनेक योगग्रन्थों के अभिप्राय से भरे हुए वचन सुनकर पालकी पर से कूद पड़े और ब्राह्मण के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया फिर राजा होने के अभिमान से रहित होकर विनयभरी वाणी में उन्होंने कहा- भगवन्, आप कौन हैं? आपने द्विजों का चिन्ह यज्ञोपवीत धारण कर रक्खा है, बतलाइये इस प्रकार छिपे रूप से विचरनेवाले आप कौन हैं? क्या आप दत्तात्रेय आदि अवधूतों में से कोई हैं? और यहाँ कैसे आपका पदार्पण हुआ है? कहीं आप हमारे कल्याण के लिये साक्षात् कपिल जी ही तो नहीं यहाँ आ गये हैं? ब्राह्मण देवता, मैं आप से सच कह रहा हूँ- मुझे इन्द्र के वज्र से, रुद्र के त्रिशूल से और यमराज के दण्ड से भी भय नहीं लगता। मुझे अग्नि, सूर्य, चन्द्र वायु और कुबेर के अस्त्र-शस्त्रों का भी डर नहीं है किन्तु मैं ब्राह्मण-कुल के अपमान से बहुत भयभीत होता हूँ।

शुकदेव बोले- राजन्। जड़भरतजी से राजा रहूगण पूछने लगे- ब्रह्मन्। आप कौन हैं? आप द्विजों जैसा यज्ञोपवीत तो पहिने हुए हैं, किन्तु अपने को छिपाये हुए हैं। क्या आप कोई किन्हीं नित्य अवधूतों में से हैं? आप किसके पुत्र हैं? आपका जन्म स्थान कहाँ हैं? यहाँ पर कहाँ से आये हैं? या आप हमारे कल्याण के लिये सत्त्वमूर्ति धारण किये हुए स्वयं भगवान कपिल ही तो नहीं है?

ब्राह्मण की परितीत में सुख न पायो कोय। बलिराज हरिश्चन्द्र ने दियो राजपट खोय।।
दियो राजपट खोय, हरी जिन जनक दुलारी। तीन लोक के नाथ लात तिनहूँ कै मारी।।
कह प्रपन्न कविराय बचो ये हैं क्रोधी भारी।।

मैं डरता हूँ तो केवल साधु-सन्त के अपमान से, नारायण के चक्र से, जो मरता है वह तो वैकुण्ठ में जाता है। लेकिन

साधु ब्राह्मणों का अपमान करके जो मरता है उसको नरकवाले भी अपने नरक में जगह नहीं देते। कहीं आप ऋषभदेव या भगवान दत्तात्रेय तो नहीं है। इस तरह सिढ़ी पागलों की तरह विचरने वाले आप कौन है? मैं आपको नहीं जान पा रहा हूँ। भगवन मैं आत्मअनात्म का भेद आत्मा और परमात्मा का स्वरूप एवं कर्त्तव्य समझने के लिये सत्संग करने के लिये संतों की शरण में जा रहा हूँ। मैं भगवान के पावकास्त्र, सूर्यास्त्र, चन्द्रास्त्र, वायव्यास्त्र तथा कुबेरास्त्र किसी से भी डरनेवाला नहीं, पर ब्राह्मणों के अपमान से अधिक डरता हूँ।

जड़भरत की बात सुनकर रहूगण राजा पालकी से नीचे कूद पड़ा और नीचे उतरकर जड़भरत के चरणों में गिर पड़ा और बोला- भगवन्। आपका परिचय क्या है? मुझसे बहुत बड़ा अपराध हो गया। पालकी ढोनेवाला कोई व्यक्ति इतना बड़ा विद्वान नहीं हो सकता। आप कोई ब्राह्मण या बहुत बड़े विद्वान है। आप व्यास हैं कि पराशर हैं या वशिष्ठ, कपिलदेव कौन है आप? आप मुझे क्षमा करें। आपको मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। साधो। आपके वचनों का मनन करने पर भी मेरा सन्देह दूर नहीं हो रहा है। मैं आपके वचनों का मर्म समझ नहीं पा रहा हूँ। मेरे जैसे मन्दबुद्धिवाले गृहासक्त प्राणी आप जैसे योगेश्वरों की गति कैसे जान सकते हैं?

जब राजा रहूगण ने ये जो आत्मअनात्म की दार्शनिक स्तर की बातें सुनी तो राजा के सामने से धरती फिसक गयी। उसको लगा कहीं धरती फट न जाये, कहीं मैं पाताल में न फंस जाऊं। मैंने इसे एक सम्यक समझकर आज कितने बड़े महापुरुष का तिरस्कार कर दिया, अपमान कर दिया। ये तो कोई आत्मज्ञानी ब्रह्मवेत्ता महापुरुष मालूम पड़ते हैं। उनके चरणों में लौटकर प्रार्थना करने लगा मुझे क्षमा कर दें मेरे से बड़ा अपमान हो गया।

जब मैं युद्ध करता हूँ तो मुझे थकान होती है, इसलिये मेरा अनुमान है कि बोझा ढोने और मार्ग में चलने से आपको भी अवश्य श्रम होता होगा। मुझे तो व्यवहार मार्ग ही सत्य प्रतीत होता है; क्योंकि मिथ्या घड़े से जल लाना संभव नहीं होता। सत्य घट से ही जल लाया जा सकता है अत: व्यवहार सत्य है, मिथ्या नहीं। देह आदि के धर्मों का आत्मा पर कोई प्रभाव ही नहीं होता, ऐसी बात भी नहीं है। चूल्हे पर चढ़ाई हुई बटलोई जब अग्नि से तपने लगती है, तब उसके सम्पर्क में आनेवाला जल खौलने लगता है। उस जल में डाले गये चावल का पहले बाहरी हिस्सा और फिर भीतरी हिस्सा पक जाता है। यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है। इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है। इसी प्रकार देह, इन्द्रिय और मन के सम्बन्ध से जीव को भी श्रम होना अनिवार्य है फिर आपने शरीर के श्रमसे जीवात्मा के श्रम न होने की जो बात कही है, उसकी संगति कैसे लग सकती है?

राजा रहूगण जड़भरतजी से बोले- मैंने काम करने से श्रम होते स्वयं देखा है, अत: अनुमान करता हूँ आपको भी भार ढोने और मार्ग चलने से अवश्य ही श्रम हुआ होगा। रही स्वामी सेवक भाव की असत्यता तथा व्यवहार मात्र की बात सो उसे भी मैं मूल में सत्य ही मानता हूँ। यद्यपि घड़ा सत्य नहीं है, मिट्टी ही है फिर भी पानी तो घड़े से ही लाया जाता है। यदि उसे भी मूलत: असत् ही मान लें तो असत् घट से जल दिलाना आदि कार्य कैसे सम्भव हो सकते हैं।

राजा प्रजा का रक्षक होता है। प्रजा की रक्षा के लिये दण्ड-प्रयोग राजा का धर्म है अत: उन्मत्त आदि को दण्ड देना पिसे हुए को पीसने के समान-पिष्ट-पेषण-नहीं कहा जा सकता। धर्म का आचरण करना भगवान की सेवा ही है। उसे करनेवाला व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण पाप-राशि को समाप्त कर देता है। प्रभो, अभिमान के वशीभूत होकर मैंने आप जैसे परम साधु की अवज्ञा की है। आप मेरे ऊपर कृपादृष्टि फेर कर मेरे इस अपराध को क्षमा कर दें।

आप भगवान श्रीहरि के भक्त हैं। मानापमान से ऊपर उठ चुके हैं। अपमान से आप में कोई विकृति भी नहीं हो सकती है फिर भी मेरे जैसा पुरुष, महादेव जी के समान प्रभावशाली होने पर भी अपने अपराध के कारण अवश्य ही स्वल्प अवधि

में ही नष्ट हो सकता है अत: मैं आपके चरणों पर बार-बार गिरता हूँ। आप मुझे क्षमा कर दें।

जड़भरत बोले- कौन किसका स्वामी है और कौन किसका दास। न जाने कितनी बार मैं तेरा स्वामी और तू मेरा स्वामी रहा होगा क्या तू जानता है कि मरने के बाद तू मेरा स्वामी होगा। प्रमत्त की चिकित्सा तू क्या करेगा? और उस चिकित्सा से मुझ पर क्या असर होगा? तुम्हें स्वयं औषधि की आवश्यकता है राजा। पहले अपनी बुद्धि का इलाज कर, मन पर शासन कर तब प्रजा पर शासन करने योग्य होगा- इस मिथ्याभिमान को त्याग दे कि तू प्रजा का रक्षक हैं। पहले अपनी तो रक्षा कर ले। तू अभी स्वयं मन-बुद्धि का दास हैं, सेवक है, अनुचर है, पहले इन पर विजय प्राप्त कर तब तुझे ज्ञान होगा- माया से ग्रसित जीव को कपिल मुनि क्या ज्ञान देंगे। आत्मा में श्रम की कल्पना करना अल्पज्ञता है।

जड़भरत बोले- मुझसे पूछ रहे हो कि मैं क्या हूँ, अरे जो मैं हूँ, वो तुम हो और जो तुम हो वो मैं हूँ। इस सूर्य के नीचे हजार घड़ों में पानी भरकर रख दिया जाये, तो सूर्य का प्रतिबिम्ब सबमें अलग अलग दिखाई देगा परन्तु सूर्य कभी हजार नहीं होते। ऐसे ही ये आत्मा परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब है। जो तुममें भी हैं, मुझमें भी है। यदि आत्मिक दृष्टि से देखें, ज्ञान की दृष्टि से देखें, जो तुम हो वो मैं हूँ और वो मैं हूँ वो तुम हो फिर मेरा क्या परिचय? शरीर का सम्बन्ध इन्द्रियों से, इन्द्रियों का सम्बन्ध बुद्धि से, बुद्धि का सम्बन्ध आत्मा से है।

किसी वृक्ष को काँट-छाँटकर शिविका बना ली। जिसमें तुम बैठे हो उसे पालकी कहते हैं। तत्वत: पदार्थ तो काष्ठ ही हैं केवल नाम और आकृति में कुछ अन्तर है। वे काष्ठ भी एक के ऊपर एक रखे हैं उनको भी श्रम होना चाहिये। अब रही जड़ चैतन्य की बात आपके शरीर में या संसार के सभी शरीरों में और शिविका के पदार्थों में क्या अन्तर है। काष्ठ की बनी शिविका भी पंचभूतों का विकार है और सभी शरीर में पंचभूतात्मक ही है। जब सबमें एक से ही पदार्थ हैं, तव यह कहना यह मोटा है, पतला है, यह बलवान है, यह निर्बल। यह जड़ है यह चैतन्य, यह बाह्य है यह वाहक, यह राजा है यह सेवक। केवल व्यवहारमात्र ही तो है। आत्मा तो इन सबसे निर्लेप है। वह दो है नहीं। वह एक अखण्ड अद्वैत है। तब यह कहना कि हम प्रत्यक्ष आपको ढोते हुए देख रहे हैं, थक गये होंगे, बली हैं यह अज्ञान से ही कथन हो सकता है। व्यवहार में इसकी सत्ता भले ही हो, परमार्थ में तो ये बातें निरर्थक, व्यर्थ ही कही जायँगी। आत्मा तो असंग नित्य, शाश्वत और अपरिवर्तनशील है। मन से जिन-जिन का अनुभव करते हैं वे सब माया जनित असत्य हैं। माया के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं। उत्तमता और अधमता ऊँचा होना, नीचा होना यह आत्मा में सम्भव नहीं। ये सब चित्त के कल्पित विकार हैं। जब तक यह चित्त सतोगुण रजोगुण और तमोगुण से व्याप्त रहता है। अशुद्ध मन ही संसार में फँसता है, वही विशुद्ध हो जाने पर ब्रह्म तक पहुँचता है। यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कराता है। इस मन को विशुद्ध बनाकर देखें, न वाह्य है, न वाहक, न श्रम है न आयास।

जड़भरत बोले- यदि शालिग्रामकी शिलामें तुमको परमेश्वर नहीं दीखता तो गली-गलीके पत्थरमें कभी दीखेगा? कभी नहीं दीखेगा। यदि गंगाजलमें परमात्मा नहीं दीखेगा तो कुएँके जलमें क्या कभी परमात्मा दीखेगा? कभी नहीं दीखेगा। महात्मामें यदि परमात्मा नहीं दीखेगा तो कभी पापीमें परमात्मा दीखेगा? अपनी दृष्टि शुद्ध रखनी चाहिए।

कहें भरत सुनु भूप। भूत निर्मित जग जानो। भेद भाव कछु नाहिँ ज्ञानतें निश्चय मानो।।
शिविका ऊ है काष्ठ काटिकें ताहि बनावें। रूपान्तर ह्वै जाय फेरि नहिँ पेड़ तावें।।
यह विभिन्नता जगतमहँ, नाम रूपके भेदतें। नहीं सत्य तो बात यह, सभी एक हैं तत्वतें।।

जडभरत ने कहा- राजन्, हो तो तुम अज्ञानी। ज्ञान तो तुम्हें कुछ है नहीं किन्तु बात करते हो ज्ञानियों की तरह, पण्डितों की

तरह। केवल ऊपर-ऊपर ही तर्क-वितर्क युक्त बात करते हो अत: श्रेष्ठ ज्ञानियों में तुम्हारी गणना नहीं हो सकती। तत्त्व का ज्ञान रखनेवाले व्यक्ति तत्त्व के विचार के समय में स्वामी-सेवक आदि व्यवहारों को सत्य रूप से स्वीकार नहीं करते हैं। उनका सिद्धान्त है- सत्य केवल ब्रह्म है और बाकी सब जगत् मिथ्या है। जगत् ही नहीं स्वर्ग भी मिथ्या है। जिसको प्राप्त करने के लिए यज्ञादि अनेक कर्म-अनुष्ठान किये जाते हैं। पंडित लोग तत्व विचार करते समय इस व्यवहार का कभी भी समर्थन नहीं करते।

स्वामी सेवक भाव कल्पना जिह सब मनकी। आत्मा तो अद्वैत उपाधी ये हैं तनकी।।
राजा होवै रंक रंक राजा बनि जावै। कल शिविका जो चढ्यो आज सो ताहि उठावै।।
जगको यह व्यवहार है, ज्ञानी जन मिथ्या कहें। मूरख समुझें सत्य सब, तातें नित नित दुख सहें।।

लौकिक व्यवहार जैसे सत्य नहीं है, वैसे ही वैदिक व्यवहार भी सत्य नहीं है। यज्ञों का फल स्वर्ग है किन्तु यह स्वर्ग भी परम सत्य, पूर्ण स्थायी नहीं है। लोक की तरह इस परलोक का भी विनाश होता है। वैदिक यज्ञ-यागादि से, राग-द्वेष आदि से शून्य, तत्त्वज्ञान की पूरी-पूरी अभिव्यक्ति नहीं होती। यज्ञ-यागादि के व्यामोह में पड़े हुए व्यक्ति को उपनिषद् भी ज्ञान प्राप्त कराने में समर्थ नहीं है। लोक की तरह इस परलोक का भी विनाश होता है। अनुमान के द्वारा यह तथ्य निर्णीत है कि स्वप्न में देखे गये दृश्य के समान यह दृश्य संसार भी मिथ्या है फिर भी प्राणी की उसमें स्वयं हेय बुद्धि नहीं होती।

संसार का मुख्य कारण मन ही है। मन ही जीव को इस संसार से मुक्त भी करा देता है। और विषयों में आसक्त कर भ्रमित भी कर देता है। मन की गति चंचल और विलक्षण है अगर ये चित्त एवं बुद्धि के नियंत्रण में रहता है तो सही मार्ग पर चलकर धर्मोचित और न्याय संगत कार्य करता है और यदि चित्त और बुद्धि पर मन का नियन्त्रण हो जाता है तो यह स्वच्छन्द होकर निरंकुश रूप से नाना प्रकार की (सौरभ) उपाधियों में जीव को फँसा देता है। जैसे महर्षि सौभरि, देवर्षि नारद और स्वयं भगवान शंकर भी मोहिनी रूप को देखकर मोहित हो गये थे। इसीलिए इस मन रूपी अश्व की लगाम बुद्धि रूपी सारथी को कसके रखनी चाहिए, ताकि पथ भ्रष्ट न हो सके, कुमार्गगामी न बन सके। सत्य तो केवल एक श्रीमन् नारायण हैं।

हमने भ्रमवश पदार्थों में व्यर्थ प्रियता-अप्रियता मानकर आसक्ति कर रखी है। यह अज्ञान तब तक दूर न होगा, जब तक ज्ञान का उदय न होगा। सबका संग त्यागकर, मिथ्या प्रपंच भूत माया का तिरस्कार करके, काम क्रोधादि छ: शत्रुओं को जीतकर मनुष्य जब विवेक की शरण में न जायगा, इस आत्मा की उपाधि रूप मन को जब तक संसार दु:ख का क्षेत्र नहीं समझेगा, तब तक राजन्। यह जीव यों ही संसार रूप में भवाटवी में भटकता रहेगा। जीव में तो कोई दोष है नहीं विषयासक्त चित्त के संसर्ग से अपने को भ्रमवश सुखी-दुखी मान बैठा है। इसीलिये शोक, मोह,राग-द्वेष, लोभ रोग आदि में बँधकर इस संसार में ममता बढ़ाता रहता है। इसलिये राजन्। सौ बात की एक बात यह है कि हत्या की जड़ यह कपटी विषयासक्त मन ही है। तुम इसे वश में करलो तो सब ठीक हो जायगा। यदि यह बस में न हुआ तो फिर जो है सो तो है ही।

कबीरा मन तो एक है, चाहे जहाँ लगाय। चाहै हरि कौ भजन कर, चाहे विषय कमाय।।

जब मनुष्य का मन सत्त्व, रज अथवा तमोगुण के वशीभूत रहता है तब वह ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से शुभ-अशुभ कर्म कराता रहता है। वासनामय, विषयासक्त और गुणों से प्रेरित यह मन ही जीव को ऊँची-नीची योनियों में भ्रमण कराता रहता है और सुख-दु:ख भोगता रहता है। मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयो: इस वचन के अनुसार। मन का ही बन्धन होता है, मनका ही मोक्ष होता है, किन्तु मन है जीव की उपाधि अत: उसका फल जीव को भोगना पड़ता है। विषयों में आसक्त होना मन का बन्धन है, विषयों से अलग हो जाना ही उसका मोक्ष है। इसीलिये पण्डितजन मन को ही त्रिगुणमय अधम संसार का तथा त्रिगुणातीत मोक्ष का कारण बतलाते हैं। विषयासक्त मन जीव को संसार-संकट में डाल देता है, विषयहीन होने पर वही उसे

शान्तिमय मोक्षपद प्राप्त करा देता है जैसे जब तक दीपक में घी और बत्ती है, तब तक उसमें से धुआँ निकलता रहता है किन्तु जब घी-बत्ती कुछ नहीं रहती, तो अग्नि बुझकर अपने स्वरूप में, तेजोमय अग्नि में, लीन हो जाती है। इसी प्रकार विषय और कर्मों में आसक्त हुआ मन तरह-तरह की वृत्तियों का आश्रय लिये रहता है, उनमें फँसा रहता है और इनसे मुक्त होने पर वह अपने तत्त्व में, कारण में, लीन हो जाता है। वृत्तियों के निरोध होने पर ही उसे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है।

शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन, इन सबको मिलाकर ग्यारह वृत्तियाँ हैं। गन्ध आदि ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं; गति-सम्भोग आदि, कर्मेन्द्रियों के विषय हैं। शरीर को यह मेरा है इस प्रकार स्वीकार करना अहंकार का विषय है। कुछ लोग अहंकार को मन की बारहवीं वृत्ति और उसके आश्रय शरीर को बारहवाँ विषय मानते हैं। ये मन की ग्यारह वृत्तियाँ ही द्रव्य, स्वभाव, आशय, कर्म और कालके द्वारा सैकड़ों, हजारों और करोड़ों भेदों में परिणित हो जाती हैं किन्तु भगवान की सत्ता से ही इन वृत्तियों की सत्ता है, स्वत: या परस्पर मिलकर नहीं। मन की वृत्तियाँ मन के विकार हैं, माया से विरचित हैं। मन के ये विकार कभी अन्तर्हित होते हैं, कभी आविभूर्त होते हैं। विचारवान पुरुष इन्हें माया का खेल ही समझते हैं।

क्षेत्रज्ञ दो प्रकार का होता है- एक त्वं पदार्थरूप जीव है और दूसरा तत्पदार्थरूप ईश्वर है। ईश्वर स्वयं ज्योति है, सम्पूर्ण जीवों का नियन्ता है। वही साक्षात् नारायण वासुदेव है। यह सबके भीतर आत्मा के रूप में प्रविष्ट है। जब जीवरूप क्षेत्रज्ञ ईश्वर की माया में न फँसकर ईश्वर को जान लेता है, तब वह मुक्त हो जाता है। उसका जन्म-मरण समाप्त हो जाता है। जब तक ईश्वर के स्वरूप को वह ठीक-ठीक नहीं समझ लेता, वह उपाधिभूत संसार में, माया के खेल में भटकता रहता हैं, तब तक उसे परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती।

जिसकी वाणी और वर्तन में अन्तर न हो। जिसकी वाणी में संसार स्वप्नवत् है और मन में संसार शाश्वत है, ऐसे कुटिल प्राणी को श्रुति-स्मृति आदि ग्रंथ अपना अर्थ नहीं देते। जगत् में सुख-दु:ख मन के विषय हैं। मन और क्षेत्रज्ञ(जीवात्मा) का इससे कोई संबंध नहीं।

निष्कर्ष यह है कि यह मन ही तुम्हारा बड़ा बलवान शत्रु है। तुम्हारे उपेक्षा करने से इसकी शक्ति और अधिक बढ़ जाती है। यह यद्यपि स्वयं तो सर्वथा मिथ्या है, तथापि इसने तुम्हारे आत्मस्वरूप को आच्छादित कर रक्खा है इसलिये तुम सावधान होकर श्रीगुरु और हरि के चरणों की उपासना के अस्त्र से इसे मारडालो तभी तुम्हें पूर्ण शान्ति प्राप्त होगी।

जड़भरत जैसा सन्त रहूगण जैसे अभिमानी राजा को आत्म उपदेश कर रहा है। राजन् आत्मा का ज्ञान कभी तपस्या से नहीं होता। घर छोड़कर वन में जाने से नहीं होता। कई-कई ग्रन्थों का अध्ययन करने के बाद भी आत्मानुभूति नहीं हो सकती। आत्मा का जो स्वरूप हैं वो वाणी का विषय नहीं है। आत्मा का रंग आँखों का विषय नहीं है, क्योंकि आत्मा तो केवल चिंतन का विषय है। यह अन्य उपाय जैसे- तप, यज्ञ, अन्नदान, वेदाभ्यास या विभिन्न प्रकार की उपासनाओं से परमात्मा को प्राप्त करना संभव नहीं। इसलिये भगवान की लीलाओं का श्रवण, मनन और चिंतन करने से ही जीव भव सागर से पार हो सकता है और विशेष रूप से कलियुग में केवल हरिनाम संकीर्तन से ही जीव का मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

जड़भरत ने कहा- रहूगण, इस परम ज्ञान की प्राप्ति के लिये तो महापुरुषों के चरणों की धूलि से अपने आप को नहलाना पड़ता है, महापुरुषों की चरण-धूलि में बारम्बार लोट-पोट करना पड़ता है। यह दशा घर छोड़ने से नहीं, तपस्या से नहीं, वेदपाठ करने से, या यज्ञयागादी करने से नहीं प्राप्त हो सकती। अतिथि सेवा, दीन सेवा, धर्मानुष्ठान आदि से भी नहीं। सूर्य, अग्नि, जल आदि की उपासना से यह परमात्म का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इसकी प्राप्ति का तो एकमात्र उपाय है

महापुरुषोंकी सेवा करो, उनकी शरण ग्रहण करने से यह प्राप्ति होगी। संसारियों के लिए, वेदान्त के मीमांसक लोग तो कुछ और बात कहेंगे। परमात्मा के किसी भी स्वरूप का चिंतन करना ही आवश्यक है। शास्त्र तुम्हें कभी धोखा नहीं दे सकते। तुम्हारे साथ बेईमानी नहीं करेगा पर संसारियों का तो कोई भरोसा नहीं। जब तक स्वार्थ है तब तक वह तुम्हारे साथ है, स्वार्थ सिद्ध हो गया तो तुम्हें छोड़ देंगे। सुसंगति मिले यह ईश्वर का फल है। ईश अनुग्रह है। लेकिन दुसंगति से कम से कम बचो। उत्तम प्रकार की संगति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण की संगति है। मध्यम प्रकार की संगति जिसमें परमात्मा प्रकट हो जाए। कुछ लोग जो इस धरती पर विचर रहे हैं उनके हृदय में प्रभु प्रकट हो जाएं। हमारे सबमें प्रभु हैं, लेकिन प्रकट रूप में नहीं है। हमारी भक्ति सोई हुई है। कुछ महात्मा जागृत अवस्था में है। उन्हीं महात्माओं की संगति करना दूसरी प्रकार की संगति है। भक्ति, भगवान, गुरु इन सबकी भूमिका एक है। जिसके जीवन में परमात्मा प्रकट हुए है, जिसके हृदय में उनकी संगति दूसरी प्रकार की है, लेकिन यह तो किसी-किसी को ही प्राप्त होती है। तीसरी प्रकार की संगति आचार्यगण की और चौथी प्रकार की संगति शास्त्र चिंतन। यदि गुरु में कोई भी दोष हो तो वह अनुकरणीय नहीं है। तीर्थयात्रा चौथे प्रकार की संगति में आती है।

जड़भरतजी राजा रहूगण से कहते हैं- हे राजन्। यह जो मैंने बताया है वह कोई चाहे कि केवल तप से प्राप्त कर सके तो नहीं कर सकता। यज्ञों से, दानों से गृहस्थ धर्मों के पालन से, वेदाध्ययन से, जल, अग्नि अथवा सूर्य आदि की उपासना से भी तब तक प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक कि महापुरुषों की चरणरज को श्रद्धासहित सिर पर धारण न करे।

रहूगण, तपस्या, यज्ञ, गृह, वेदपाठ आदिसे ईश्वरकी प्राप्ति नहीं होती। ईश्वरकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय है महापुरुषोंकी चरणधूलिमें बारम्बार लोट-पोट होना। महापुरुषोंके चरणोंकी धूलिमें अभिषिक्त हुए बिना उसकी प्राप्तिका और कोई उपाय नहीं है। मनुष्य को चाहिए कि सत्संग से ज्ञानकी जो तलवार मिलती है, उसको प्राप्त करके मोहको काट दे और भगवानकी लीला-कथाका श्रवण करता रहे जिससे संसार का मार्ग समाप्त हो जाता है।

राजा रहूगण ने पूछा- हे योगेश्वर। आप सर्वदा परमानन्द का अनुभव करते रहते हैं। परमानन्द ही आप का स्वरूप है इसीलिये आप अपने इस स्थूल शरीर से उदासीन हो गये हैं। आप अपने नित्यज्ञानमय स्वरूप को जन साधारण की दृष्टि से ओझल किये हुए हैं। अत: फिर-फिर मैं आपको नमस्कार कर रहा हूँ।

देव, मैं अपनी शंकाओं को तो आपके समक्ष बाद में उपस्थित करूँगा। पहले तो इस समय आपने जो आध्यात्मिक उपदेश दिया है, उसी को अति सरल करके समझाइये। उसे समझने की मुझे बड़ी उत्कण्ठा है। आप का कथन है कि भारवहन आदि क्रियाओं का फल (श्रम) सत्य नहीं है, यह कहने भरके लिये ही है केवल व्यवहारमात्र है। यह बात मेरी समझ में नहीं आई। आप इसकी व्याख्या अति सरलरीति से करें जिससे मैं समझ सकूँ।

रहूगण की बात जडभरत ने सुनी। फिर कहना प्रारम्भ किया- पृथ्वीपते, यह देह पृथ्वी का विकार है, मिट्टी का बना हुआ है। पाषाण आदि भी पृथ्वी के विकार हैं। शरीर जब चलने लगता है तो भारवाहक कहा जाता है फिर उनसे इस शरीर का क्या भेद है? जैसे पाषाण आदि नहीं चलते अत: जड़ हैं। उनको न भार उठाना पड़ता है और न ही श्रम ही है। बस, इतना ही तो दोनों में अन्तर है। दोनों ही पृथ्वी के विकार। यह दोनों की समानता हुई। किन्तु हैं दोनों ही जड़। जड़ होने से शरीर को न भार है और न श्रम ही। पृथ्वी के विकाररूप शरीर के दो चरण हैं; उनके ऊपर क्रमश: टखने, पिण्डली, घुटने, जाँघ, कटि, वक्ष:स्थल, ग्रीवा और कन्धे आदि है। कन्धों के ऊपर लकड़ी की पालकी रक्खी हुई है। यह सब पृथ्वी का विकार है। उसमें भी सौवीर नाम का

एक राजा बैठा हुआ है। यह भी पृथ्वी का विकार ही तो है। इस मिट्टी के शरीर में तुम आत्मा का अभिमान किये बैठे हो और इसी प्रबल मद से अन्धे हो रहे हो किन्तु इससे तुम्हारी कोई श्रेष्ठता सिद्ध नहीं होती। वास्तव में तुम बड़े क्रूर और धृष्ट ही हो। तुमने इन दीन-दुःखी, कहारों को बेकार में पकड़कर पालकी ढोने में लगा रक्खा है फिर भी निर्लज्ज के समान कहते हो कि मैं लोगों की रक्षा करता हूँ। यह तुम्हें शोभा नहीं देता। हम देखते हैं कि सारा संसार, संसार के सारे प्राणी पृथ्वी से उत्पन्न होते हैं और पृथ्वी में विलीन होकर समा जाते हैं। इस प्रकार यदि इसके अतिरिक्त कोई दूसरा विकार हो तो तुम बतलाओ।

मनुष्य क्या है? यह पृथ्वीका विकार ही तो है। हमारे शरीरके नीचे दो पाँव हैं, उनके ऊपर टखने हैं, टखनोंके ऊपर घुटने हैं, घुटनोंके ऊपर जंघे हैं। जांघोंपर कमर है, फिर क्रमशः पेट है, कन्धे हैं, कन्धोंपर लकड़ीकी एक पालकी रखी हुई है और उसमें बैठकर तुम यह सोच रहे हो कि मैं राजा हूं। यह सब क्या है? यदि इसप्रकार विचार करोगे तो पाओगे कि माटीपर एक और माटीका लौंदा बैठा है और वह अपनेको राजा मान रहा है। परन्तु है सब माटी ही। यह पालकी और तुम्हारे-हमारे शरीर सब-के-सब मिट्टीसे ही निकले हैं और मिट्टीमें ही मिल जायेंगे। केवल नाम ही इसके अलग-अलग हैं और यही व्यवहारका मूल है।

जड़भरत ने कहा- स्थूल शरीर पर जो चोट आती है, तीर, तलवार आदि किसी प्रकार भी स्थूल शरीर का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से है और सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध चेतन आत्मा से है। सीधा संबंध आत्मा से न होने के कारण सम्पर्कगत सम्बन्ध होने से भी स्थूल शरीर के सुख दुःख आदि का अनुभव सूक्ष्म शरीर करता है और सूक्ष्म शरीर का अनुभव आत्मा में भी होता है। जड़भरत बोले- राजन्, तू कुछ भी नहीं समझता। मैं परमार्थ की धरातल से बोल रहा हूँ और तू व्यवहार की धरातल से। परमार्थ एक रस रहनेवाला और व्यवहार बदलनेवाला है। देखो थोड़ी देर में कितना व्यवहार बदल गया। पहले तू अपने को स्वामी और मुझे सेवक समझ रहा था। अब कहाँ गया तेरा स्वामीपना। अब क्यों मेरे चरण में लौटकर कृपा और प्राणों की भीख मांग रहा है। मैं तो परमार्थ में जहां का तहां हूँ पर तू तो देह को ही आत्मा मान बेठा है। इसलिये शरीर पर होनेवाले सुख दुख का तुझे अनुभव पता है। मुझे शरीर के सुख-दुख का अनुभव नहीं होता क्योंकि मैं शरीर को अपने से अलग देखता हूँ। इस सब बातोंकी अनुभूति घर परिवार, घर गृहस्थी के त्याग से नहीं होगी।

यह पृथ्वी भी सत्य नहीं है क्योंकि अन्त में यह अपने कारण रूप परमाणुओं में लीन हो जाती है। कारणरूप परमाणु ही पृथ्वी तन्मात्र कहलाते हैं। परमाणु ही मिलकर पृथ्वी का रूप धारण करते हैं। परमाणुओं की समष्टि ही स्थूल पृथ्वी है। ये परमाणु भी सत्य, नहीं, कल्पित है। पृथ्वी रूप कार्य को देखकर इनकी कल्पना भरकर ली जाती है। इसी प्रकार और भी जो कुछ है, सब भगवान की माया का कार्य है, माया का विलास है। बाहर-भीतर आदि भेदों से रहित परिपूर्ण ज्ञान ही एकमात्र सत्य वस्तु है। उसी का नाम भगवान है और उसी को पण्डित लोग वासुदेव कहते हैं। ज्ञानरूप यह भगवान सबके बाहर भीतर रहनेवाले और सर्वथा निर्विकार है। इन्हें ही ब्रह्म कहते हैं और यही परम सत्यहैं, अन्तिम सत्ता हैं।

यह पृथ्वी भी मिथ्या ही है। यह सम्पूर्ण जगत् भगवान की की माया द्वारा ही निर्मित है। माया में ही कृश, स्थूल, छोटा, बड़ा, असत, अचेतन आदि की कल्पना है। द्रव्य, स्वभाव, यश, काल और कर्म आदि नामवाले भगवान के ही ये सब व्यापार है। जो इस माया के ईश हैं, उन भगवान वासुदेव को विशुद्ध विज्ञान स्वरूप, अद्वितीय, बाह्यान्तर भेद से रहित, व्यापक और अन्तर्मुख समझो। वे ही अन्यन्त शान्त हैं, वे ही काष्ठा हैं, वे ही परागति हैं, वे ही परमार्थ सत्य है। उनका ज्ञान हो जाने पर ये द्रव्य, स्वभाव, आशय, काल, कर्म सभी विलीन हो जाते हैं। यह जगत् ही नहीं रहता। भेदभाव का भूत भाग जाता है।

जो अकारण कृपा करते हैं, जिनका संसार में कोई शत्रु नहीं, जिन्हें संसारी प्रतिकूलता व्यथित नहीं कर सकतीं, उन

सर्वभूतों के सुहृद् सन्तों के प्रति हम उनके उपकारों के लिये किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट कर सकें। संसार में धन, ऐश्वर्य, स्त्री, पुत्र सभी को प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु संत संग प्राप्त होना अत्यन्त ही दुर्लभ है। सन्त संग सबको प्राप्त नहीं होता- बड़े भाग्य से पूर्वजन्मों के अनन्त पुण्यों से महात्मा मिलते हैं, उनके चरणों में रहने का सुअवसर प्राप्त होता है। जिसे सत्संग प्राप्त हो गया, उसका संसार बन्धन कट जाता है। ऐसे सन्त यदि अनायास महान् उपकार कर दें, अहैतुकी कृपा प्रदर्शित कर दें तो प्रत्युपकार में इसके अतिरिक्त कि उनके चरणारविन्दों में प्रणाम कर लें और क्या हो सकता है। हाथ जोड़ लेना यह देवता को प्रसन्न करने की सबसे श्रेष्ठ मुद्रा है।

रहूगण ने पूछा- भगवन्, महापुरुषों की पहचान क्या है? जडभरत ने कहा- महापुरुषों के समाज में नित्य निरन्तर उत्तमश्लोक भगवान का गुणानुवाद चलता रहता है। भगवान का गुणानुवाद सुनकर मानव मन सांसारिक विषयों से हटकर भगवान की ओर आकृष्ट हो जाता है।

अन्त में जडभरत से रहा नहीं गया। वे प्रकट हो गये। अपना परिचय उन्होंने दे ही दिया। कहा- देखो, रहूगण, मैं पहले भरत नाम का राजा था, सम्राट था, जिसके नाम से यह देश भारतवर्ष है। मुझे किसी भी प्रकार की आसक्ति न थी। मैं सर्वदा भगवान की ही आराधना में लगा रहता था। आराधना करते-करते मेरी आसक्ति एक हरिण में हो गई। फलत: शरीर त्यागने के बाद मुझे हरिण बनना पड़ा। किन्तु यह भगवान की ही कृपा है कि मृगयोनि की स्मृति मुझे आज तक बनी हुई हैं। अब मैं लोगों की संगति से डरता हूँ। अकेला ही विचरण करता हूँ और अपने यथार्थ स्वरूप को छिपाये रहता हूँ। महात्माओं की चरण सेवासे विषयों के संयोग का नाश होता है।

हे राजन्, आत्मा का बोध जिसे हो जाता है उसे परमात्मा की प्राप्ति होती है। इसलिए आत्मानुभूति करो। जब तक तुंम ये सोचोगे कि ये कहार है जो पालकी ढो रहे हैं, मैं राजा हूँ ये छोटे हैं और मैं बड़ा हूँ। अभी तुम्हारे मन में यह अहंकार है कि मैं सिन्धु सौवीर जैसा राजा हूं। इस प्रबल मद से अंधे हो रहे है। यह कर दूंगा, वो कर दूंगा, इस पर शासन करूंगा। इस अभिमान को लेकर तुम भवसागर से पार नहीं जा सकते। तनबल, धनबल क्षणिक होता है लेकिन तपोबल शाश्वत होता है। तपस्यादि शुभ कर्मों का फल अगले जन्मों में भी मिलता है। तपोबल से अभ्युदय नि:श्रेयस की प्राप्ति होती है।

जीव स्वभावत: वैभव में आसक्त होकर संसार के आनन्द के निमित्त यत्र-तत्र सर्वत्र भटकता है। अन्त में उसे कुछ भी लाभ नहीं मिलता। अपने उत्कृष्ट जीवन को निकृष्ट बना लेता है। उसे अन्त तक अपने परम पुरुषार्थ रूप वेदप्रतिपादित धर्म का पता भी नहीं लगता।

जब तक ये भाव तुम्हारे मन में रहेंगे तुम्हें आत्मबोध नहीं हो सकता। संसार में सबको एक दृष्टि से देखो। छोटे से छोटा प्राणी, बड़े से बड़ा महापुरुष यदि आत्मिक दृष्टि से देखे तो सब एक है। ऐसे महापुरुषों की खोज जहां भगवान का गुणगान ही गुणगान हो, दुनियादारी की कोई चर्चा नहीं हो। बस तुम्हारे तो सत्पुरुषों के संग से तुम्हारी वासुदेव के चरणों में रति होगी और फिर तुम्हारी मति सती हो जायेगी। इस समय तुम्हारी बुद्धि नश्वर में लगी है। जब सत् में लग जायेगी तो शुद्ध हो जायेगी। फिर शरीर पर आनेजानेवाले सुख दु:ख का कोई प्रभाव तेरे पर नहीं पड़ेगा।

प्रवृत्ति मार्ग में घर-गृहस्थी में रहकर निवृत्ति मार्ग का अभिनय तो किया जा सकता है लेकिन अनुकरण करना टेढ़ी खीर है। अपने धर्म पर चाहे एक कष्ट मिले या अनन्त कष्ट मिलें उसे प्रेमपूर्वक स्वीकार करने वाले प्राणी का जीवन धन्यतम है यदि कष्ट के भय से धर्ममार्ग छोड़ दिया तो उसका जीवन सोचनीय है।

राजन्, मैं तो सर्वश्रेष्ठ और प्रधान कर्त्तव्य समझता हूँ कि वह सभी कार्यों से मुख मोड़कर श्रीहरि की लीलाओं के कथन और चिन्तन से निरन्तर भगवान का ही स्मरण करता रहे। एकमात्र हरिस्मृति ही मनुष्य को समस्त आपत्ति विपत्तियों से छुड़ाकर सुखी बनाने में समर्थ है। जीवमात्र का इसी में कल्याण है कि वह भगवान वासुदेव को कभी मन से न भुलावे। उन्हीं का ध्यान, उन्हीं के नाम का कीर्तन, उन्हीं के यश का गान, उन्हीं की कमनीय कथाओं का श्रवण करता रहे। इसी में मनुष्य जन्म का साफल्य है। इसी से वह परमपद का अधिकारी हो सकता है और इन्हीं साधनों द्वारा वह संसार मार्ग को पार करके भगवान् को प्राप्त कर लेता है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सरल सुगम मार्ग है ही नहीं।

शुकदेव बोले- परीक्षित, जड़भरत के संग से हमारी इस भूमि का नाम भारत है। कैकयी कुमार भरत, जड़भरत और दुष्यन्त पुत्र भरत इन तीनों के नाम पर ही भारत वर्ष है। कैकयी कुमार भरत योगी है, जड़भरत ज्ञानयोगी है और दुष्यन्त पुत्र भरत कर्मयोगी है। भारतवर्ष भूमि कर्मप्रधान है। देवता भी मनुष्य शरीर मिलने पर भारत वर्ष में जन्म लेने के लिये तरसते हैं। जो सुख इस पवित्र भूमि पर है वो स्वर्ग में भी नहीं मिलता। स्वर्ग में तो हम सत्कर्म का पुण्य फल भोगने जाते हैं पुण्य क्षय होने के बाद फिर संसार में आना पड़ता है।

चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद मानव शरीर मिलता है। वो भी भारतवर्ष में जन्म मिला ऐसा सुनहला अवसर मत खोवो। इसको प्रभु स्मरण में लगाकर सत्संग कर भगवत सेवा से लाभ प्राप्त कर लो। ध्रुव की तरह, मीराकी तरह, प्रह्लाद की तरह, कर्माबाई की तरह इस जीवन का सदुपयोग करके प्रभु को प्राप्त कर लो। इसीलिये ये मानव शरीर मिला है। तभी इस मानव देह से चौरासी के चक्कर से बच पाओगे।

हे राजन। चौरासी लाख योनि में भटकता-भटकता जीव यहां आया है। परमात्मा ने बड़ी कृपा करके यह मनुष्य देह दी है। अब इसे कांच समझकर तोड़ मत देना, यह शीशा नहीं है, हीरा है। हीरा की कीमत तो जौहरी ही जान सकता है। मनुष्य की कीमत, मनुष्य देह की कीमत साधु-संत ही करते हैं। उनकी संगति करो। यह संसार तो असत्य है। असत्य का मतलब जिसका अस्तित्व ही नहीं है। संसार में आने के बाद माया के साथ फंसने के बाद यह जो कुछ दिख रहा है वह सत्य का ही आभास देता है। इसलिये ब्रह्म सत्य है, यह जगत मिथ्या है। इसका संक्षिप्त में यही अर्थ है ए जीव, तू जहां से आया है, विषयों में मत फंसना। ईश्वर यह जीवन बार-बार नहीं देता, यहां कोई तेरे साथ आया नहीं, और तेरे साथ कोई जानेवाला नहीं।

बार-बार जन्म लेना, बार-बार मरना, इस मां से जन्म लिया, उस मां से जन्म लिया यह संसार चल रहा है। वासना और बैर के कारण से यह जीव बार-बार आता है। इनसे मुक्ति प्राप्त करनी है, तो सज्जनों की संगति करो। उनकी सेवा करो और मुक्ति प्राप्त करो।

गुणों के वशीभूत होकर मनुष्य इन्द्रियोंद्वारा पुण्य पाप करता है। वासनावश ही मन ऊँच-नीच-देव, निर्यक आदि योनियों को प्राप्त करता है और सुख-दु:ख भोगता है। यद्यपि संसार का मुख्य कारण मन ही है तथापि जीव की उपाधि होने से उसका फल जीव को भोगना पड़ता है। जब तक मन विषयों पर आसक्त रहता है तभी तक उसका बन्धन है। निर्विषय होते ही वह मुक्त हो जाता है।

विरक्त महापुरुषों के सत्संग से ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान तीखी तलवार के समान है। मानव को चाहिये कि वह इस ज्ञानरूपी तलवार को प्राप्त कर अपने मोह-ममतारूपी बन्धन को काट डाले और भगवान की लीला-कथा का निरन्तर श्रवण करता रहे। इससे निश्चय ही वह संसार की भवाटवी को पार कर जायेगा।

४) भवाटवी का उपदेश

धन कमाने की लालसा से व्यापारियों का समूह देश- देशान्तर में, जंगल और पहाड़ में, नदी और सागर में कष्टपूर्ण यात्रा करता रहता है, वैसे ही यह जीवात्मा भोगों की लालसा से मायाद्वारा इस संसार भवाटवी में ढकेला गया है। वहाँ यह सुख की इच्छासे राजस्, तामस और सात्त्विक कर्मों को करता है। ये कर्म ही बन्धन के कारण हैं। इन्हीं कर्मों को करते-करते जीव भटकता-भटकता संसाररूप घोर जंगल में पहुँच जाता है। वहाँ इसे स्वल्प भी शान्ति नहीं मिलती।

जड़भरतजी राजा रहूगण से कहते हैं- राजन्, एक जीव नामक पथिक है, जिसे माया ने दुर्गम प्रवृत्ति पथ में प्रेषित कर दिया है। वह पथ सत्त्व, रज और तमरूप नाना प्रकार के कर्मों का विभाग करनेवाला है अर्थात् उसमें बहुत-सी पगडण्डियाँ फूटती हैं। वह पथिक जीव रूप बटोही बनिया धन में अत्यन्त आसक्त हुआ इस संसार रूप गहन वन में भटक रहा है, उसे वहाँ शान्ति नहीं सुख नहीं फिर भी फँस गया है। कैसे निकले?

संसारी मनुष्य भी कहीं की यात्रा करते हैं तो वहाँ के विषय में सब समझ लेते हैं। अन्य लोगों से परिचय प्राप्त कर लेते हैं, मानचित्र देखते हैं, यात्रा वृत्तान्त पढ़ लेते हैं, किन्तु यह माया मोहित जीव इस जगत् पथ में इस प्रकार आँख मूँदकर अन्धे के समान चल रहा है कि इसे अपने गन्तव्य स्थान का पता ही नहीं। यह जानता ही नहीं, मुझे जाना कहाँ हैं, मैं विशुद्ध मार्ग से चल रहा हूँ, या भूलकर व्यर्थ भटक रहा हूँ। बिना सोचे चलता ही जाता है और अविवेक के कारण नाना क्लेशों को उठाता है।

भव माने संसार। अटवी कहते हैं अतिघोर जंगल को। यह संसार घोर जंगल के समान है। व्यापारियों के समूह के समान यह जीव है। जंगल में भयंकर डाकू रहते हैं, जो व्यापारियों के समूह को लूट लिया करते हैं। इसी प्रकार विषय-सुखों की लालसा से भवाटवी में भटकते हुए जीव को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ममत्व आदि ये छः लुटेरे लूट लेते हैं। जीव की धर्मरूपी पूँजी को विषय-भोग में लगाकर नष्ट कर देते हैं। भेड़िया जिस प्रकार भेड़ों के झुण्ड से एक भेड़ को बलात् पकड़ कर खींच लाता है, इसी प्रकार स्त्री-पुत्र आदि कुटुम्बरुप भेड़िये जीव के धन को नोच-नोचकर छीन लेते हैं। जैसे कृषक खेत को प्रतिवर्ष जोतता है, उसमें बीज बोता है, किन्तु फसल के साथ बहुत-से घास-फूस उग आते हैं। इनके कारण खेत दुर्गम हो जाता है। उसमें तमाम किस्म के मच्छर-मक्खी उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार यह गृहस्थाश्रम भी एक प्रकार का खेत ही है। इसमें कर्मरूपी बीज डाला जाता है। कर्मों की वासनाएँ ही घास-फूस हैं। इनके कारण यह गृहस्थाश्रम अथवा संसार रूप खेत दुस्तर हो जाता है। खेत की मड़ाई, निराई करनेवाले व्यक्ति को जैसे दंश-मच्छर डंक मारकर कष्ट पहुँचाते हैं। ऐसे ही संसार की खेती करनेवाले जीव को दुर्जन जन निरन्तर कष्ट पहुँचाते रहते हैं, इसके धन को नोचते खसोटते रहते हैं। गन्धर्व नगर कहते हैं- आकाश में दिखलाई पड़कर ओझल हो जानेवाले नगर को। यह आकर्षक किन्तु क्षणिक होता है। जीव जब कभी-कभी गन्धर्वनगर के समान अपने परिवार को देखता है तब उसे सत्य और स्थायी समझकर उसमें आसक्त होकर सुधबुध खो बैठता है। वन में व्यापारियों का समूह, भोजन बनाने के लिये, अग्नि की तलाश करता है। दूर, बहुत दूर उसे आग दिखलाई पड़ती है। वह उसे लेना चाहता है। किन्तु वह उसके हाथ नहीं लगती, क्योंकि वह आग नहीं अगियाबेताल (पिशाच) के मुख से निकलनेवाली ज्वाला है। इसी प्रकार रजोगुणी यह जीव जीवन में लालसा की भूख मिटाने के लिये सुवर्ण को चाहता है। किन्तु सुवर्ण अगियाबेताल की भाँति प्राण-घातक है। सुवर्ण कभी स्थायीरूप से किसी के साथ नहीं रहा और प्राणघातक भी है। इसी के कारण बड़े-बड़े युद्ध हुआ करते हैं।

यह वणिक्-समुदायरूपी जीव इस भवाटवी में निवास आदि के चक्कर में भटकता रहता है। कभी बवण्डरी की धूलि के द्वारा इसकी आँखें आच्छादित हो जाती हैं, जिससे कुछ सुझाई नहीं पड़ता। उस समय यह विवेकविहीन बन जाता है। रजोगुण ही बवण्डर की धूल है। कभी-कभी अपने से अधिक बलशाली लोग इसका धन हर लेते हैं, छीन लेते हैं, तो यह दु:खी होकर शोक और मोह से अचेत हो जाता हैं और कभी गन्धर्वनगर में पहुँचकर घड़ी भरके लिये सब दु:ख भूल कर खुशी मनाने लगता है। कभी पर्वतों पर चढ़ना चाहता है तो कांटों और कमणों द्वारा पैर छलनी हो जाने से उदास हो जाता है। कुटुम्ब की अतिवृद्धि हो जाने पर अन्नाभाव के कारण जब भोजन की व्यवस्था नहीं बन पाती तो यह अपने ही भाई-बन्धुओं पर अप्रसन्न होने लगता है। कभी इसे विषधर डँस लेते हैं। उससे यह अन्धा होकर अँधेरे कुएँ में गिर पड़ता है और अचेतावस्था में ही पड़ा हुआ वहाँ कष्ट भोगता रहता है। कभी मधु के लिये यह मधुमक्खियों के छत्ते में हाथ डाल देता है। मधुमक्खियाँ इसे काट खाती हैं। यदि किसी प्रकार मधु मिल भी गया तो दूसरे लोग बलपूर्वक उसे छीन लेते हैं।

कभी शीत, घाम, आँधी और वर्षा से अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो जाता है। कभी आपस में थोड़ा-बहुत व्यापार करता है, तो धन के लोभ से दूसरों को धोखा देकर वैर ठान लेता है। इस संसारवन में कभी-कभी इसका धन क्षीण हो जाता है। इसके पास शय्या, सवारी, आसन और रहने के लिये मकान भी नहीं रहता है। यह दूसरों से याचना करता है। अभिलाषित वस्तु न मिलने पर दु:खी होता है और पराई वस्तुओं पर अनुचित दृष्टि रखता है और न मिलनेपर चोरी करता है, राजदण्ड का भागी बनता है। कभी धन के अभाव में पुत्र और पुत्रियों को बेचता है। कभी निद्रारूपी अजगर से ग्रस्त होकर मृतक के समान पड़ा रहता है। कभी कामसे व्याकुल हो दूसरे की स्त्री को ताकता है और उसके स्वामी अथवा राजा द्वारा दण्ड होता है। कभी अधिक मात्रा में विषयों के सेवन से गिरिकन्दरा रूप यक्ष्मा आदि भयंकर रोग जाल में फंस जाता है। यदि किसी प्रकार रोग से मुक्त हुआ तो विषयी पुरुषों का संग करता है, जिससे उसका दु:ख कभी निवृत्त नहीं होता और जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। इसका फल यह होता है कि इसे तिरस्कृत होना पड़ता है। वणिक-समूह में जो-जो साथी मरते जाते हैं, उन्हें जहाँ-का-तहाँ छोड़कर, नये आये हुओं को साथ लिये हुए, वह समूह आगे ही बढ़ता रहता है। वीरवर, उनमें से कोई भी प्राणी न तो आज तक वापस लौटा है और न किसी से संकटपूर्ण मार्ग को पार करके परमानन्द की अनुभूति ही की है। इस भवाटवी में भटकनेवाला वणिक्समूह कभी लता की डालियों का आश्रय लेता है और उन पर चहकनेवाले पक्षियों के मोह में फँस जाता है। वाणिक्समूह की भाँति ही इस जीव की भी दशा है।

जो मनुष्य माया की प्रेरणा से एकबार इस भवाटवी के मार्ग में पहुँच जाता है, उसे भटकते-भटकते अन्ततक अपने परम पुरुषार्थ का पता नहीं लगता। गृहस्थाश्रमके लिये जिस कर्मविधिका वर्णन किया गया है उसका अनुष्ठान किसी पर्वतकी कड़ी चढ़ाईके समान है।

इस जंगल में छह डाकू है। इस वणिक समाज का नायक बड़ा ही दुष्ट है। उसके नेतृत्व में जब यह वहां पहुंचता है, तब ये लुटेरे जबरन इसका सारा माल-मत्ता लूट लेते हैं। और जिस प्रकार भेड़िये, भेड़ों के झुंड में घुसकर उन्हं खींच ले जाते हैं, उसी प्रकार इसके साथ रहनेवाले गीदड़ ही इसको असावधान देखकर इसके धन को इधर-उधर खींचने लगते हैं।

इस जंगल के तमाम ढेर सारी लतायें, घास और झाड़-झंखाड़, तेज, विषैले कीड़े और मच्छर इसे चैन नहीं लेने देते। वहां इसे कभी तो गंधर्वनगर दीखने लगता तो कभी-कभी चमचमाता हुआ बगीचा।

यह व्यापारी समुदाय इस वन में निवास स्थान जल और धन आदि में फंसकर इधर-उधर भटकता रहता है। कभी बवंडर से उठी हुई धूल के कारण जब चारों ओर धूल भर जाती है, तो इसकी आंख भी धूल से भर जाती है, तो इसे दिशाओं का

ज्ञान भी नहीं रह जाता। कभी इसे दिखाई न देनेवाले झींगुरों का कर्ण कटु शब्द सुनायी देता है, तो कभी उल्लुओं की बोली से इसका चित्त व्यथित हो जाता है, कभी इसे भूख सताने लगती है तो यह निंदनीय वृक्षों का ही सहारा टटोलने लगता है। और कभी प्यास से व्याकुल होकर मृगतृष्णा की ओर दौड़ पड़ता है, तो कभी जलहीन नदियों की ओर जाता है, कभी अन्न न मिलने पर आपस में एक-दूसरे से भोजन प्राप्ति की इच्छा करता है, कभी दावानल में घुसकर अग्नि से झुलस जाता है, तो कभी यमदूत इसके प्राण खींचने लगते हैं, तो यह खिन्न होने लगता है।

कभी अपने से अधिक बलवान लोग इसका धन छीन लेते हैं, तो यह दु:खी होकर शोक और मोह से अचेत हो जाता है। तो कभी अपने सारे इस लालच को भूलकर गंधर्वनगर में पहुंचकर क्षणभर के लिए खुशी मनाने लगता है। जब वह पर्वतों पर चढ़ना चाहता है, तो मार्ग में पड़नेवाले कंकड़ों एवं कांटों द्वारा पैर के छलनी हो जाने से उदास हो जाता है। जब भी उसका परिवार बहुत बढ़ जाता है और उदर पूर्ति का साधन नहीं होता है, तो वह भूख की ज्वाला से दु:खी होकर अपने ही भाई-बंधुओं पर खीजने लगता है। कभी अजगर सर्प का ग्रास बनकर वन में फेंके हुए मुर्दे के समान पड़ा रहता है। उस समय इसे कोई सुध-बुध नहीं रहती। कभी दूसरे विषैले जन्तु इसे काटने लगते हैं तो उनके विष से अन्धा होकर किसी अंधेरे कुए में गिर पड़ता है और उस घोर दु:खमय अंधकार में बेहोश होकर पड़ा रहता है।

कभी मधु खोजने लगता है तो मक्खियां इसको अपने डंकों से परेशान कर देती हैं भई, तो इसका सारा अभिमान नष्ट हो जाता है। यदि किसी प्रकार इन कठिनाइयों का सामना करके कुछ मिल भी गया, तो दूसरे लोग जबरन उसे छीन लेते हैं।

धन के ये लोभी व्यापारी शीत, धूप, आंधी और वर्षा से अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो जाते हैं। कभी आपस में थोड़ा-बहुत व्यापार करता है, तो धन के लोभ में पड़कर एक-दूसरे को धोखा देकर उनसे वैर मोल लेता है। कभी-कभी इस संचार में इसका धन नष्ट हो जाता है, तो इसके पास सोने के लिए शय्या, आसन, रहने के लिए घर, और घूमने के लिए सवारी आदि भी नहीं रहते। तब दूसरों से याचना करता है, मांगने पर भी जब दूसरों से उसे अभिलाषित वस्तु नहीं मिलती, तो परायी वस्तुओं पर अनुचित दृष्टि रखने के कारण इसे बड़ा तिरस्कार सहना पड़ता है भाई।

इसी प्रकार व्यावहारिक संबंध के कारण एक दूसरे से द्वेषभाव बढ़ जाने के बाद भी वह व्यापारी समुदाय आपस में विवाह आदि का संबंध स्थापित करता है और फिर इस मार्ग में तरह-तरह के कष्ट और धनक्षय आदि संकटों को भोगते-भोगते मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् इस माया के संसार में मनुष्य निरन्तर कष्टों को सहते रहने के बावजूद उसके बंधनों को नहीं तोड़ पाता। साथियों में से जो-जो मरते जाते हैं, उन्हें जहां का तहां छोड़कर नये जन्म हुए को साथ लेकर वह बनजारों का समूह निरन्तर आगे ही बढ़ता रहता है। हे राजन्। उनमें से कोई भी प्राणी न तो आज तक वापस लौटा है और न तो किसी ने इस संकट पूर्ण मार्ग को पारकर योग की ही शरण ली है।

जिन्होंने बड़े-बड़े दिक्पालों को जीत लिया है, वे धीर-वीर पुरुष भी पृथ्वी पर यह मेरी है ऐसा अभिमान करके आपस में वैर ठानकर युद्धभूमि में जूझ जाते हैं, तो भी उन्हें भगवान विष्णु का वह अविनाशी पद नहीं मिलता, जो वैरहीन परमहंसों को प्राप्त होता है। उस अविनाशी का दर्शन, उस चरणार्बिंद की धूल रज तो बड़े-बड़े ऋषियों, मुनियों को भी बड़ी मुश्किल से प्राप्त होती है। ये संसार के सांसारिक अभिमानों से काफी दूर होते हैं।

आप भी इसी मार्ग में भटक रहे हो अत: अब प्रजा को दण्ड देने का कार्य छोड़कर सारे प्राणियों के सुहृद् बन जाओ और भगवत्सेवा से प्राप्त ज्ञानरूपी तीक्ष्ण तलवार लेकर इस दुर्गम मार्ग को पार कर लो।

रहूगण, यह संसार ही जंगल है। इसमें काम की पगडण्डी पर, क्रोध की पगडण्डी, लोभ की, मोह की, ईर्ष्या की, द्वेष की,

राग की, अहंकार की पगडण्डियों पर अपने मन से चले आ रहे हो और आगे क्या परिणाम होगा ये सोचते नहीं हो, काल बैठा है। डकैतों का सरदान बन के मार डालेगा, यह संसार ही भवाटवी का जंगल है। काम, क्रोध आदि पगडण्डियां हैं। जीव लोभी सौदागर है, काल ही डकैतों का सरदार है। इसलिये अपने आप मत चलो, जिधर जी चाहे उधर की पगडण्डी पर। जो मनुष्य अपने आप माया की प्रेरणा से एक बार इस मार्ग पर पहुंच जाता हैं वह उसमें भटकते-भटकते अन्त में उसे अपने पुरुषार्थ का पता नहीं चलता। रहूगण तुम भी इस मार्ग में भटक रहे हो। इसलिये अब प्रजा को दण्ड देने का कार्य छोड़कर समस्त प्राणियों के सुहृद् हो जाओ और विषयों में अनासक्त होकर भगवत् सेवा से तीक्ष्ण किया हुआ ज्ञान रूपी खड्ग लेकर इस भवाटवी को पार कर लो। कौन सा रास्ता हमारे लिये कल्याणकारक है। ये महात्मा लोग बतायेंगे। उन महात्मा पुरुषों से पूछो कि तेरा रास्ता यह है। ये भगवत् स्मृति अनवरत एवं दृढ़ हो जाय तो, उसी स्मृति के माध्यम से हम उन तक पहुंच जायेंगे। काम तो करेगी उनकी कृपा किन्तु हम लोगों को भी इस दशा में प्रयत्नशील रहना चाहिये। राजन् मैं राजा हूं इस अभिमान की पगडण्डी पर मत चल, समर्पण की मार्ग पर चलो।

शत्रुदमन। यदि किसी प्रकार इसे उस आपत्ति से छुटकारा मिल जाता है, तो यह फिर गोल में मिल जाता है। जो मनुष्य माया की प्रेरणा से एक बार इस मार्ग में पहुंच जाता है, उसे भटकते-भटकते अंत तक अपने परम पुरुषार्थ का पता नहीं लगता। रहूगण तुम भी इसी मार्ग में भटक रहे हो, इसलिए अब प्रजा को दण्ड देने का कार्य सेवा से तीक्ष्ण किया हुआ ज्ञानरूप खड्ग लेकर इस मार्ग को पार कर लो। पाप करने से नर्क मिलता है और पुण्य करने से स्वर्ग मिलता है। धर्मशास्त्र में जो लिखा गया है कि ऐसा जीवन जियो, तो यह पुण्य है और इसके विरोध में चलो तो यह पाप है। पाप नहीं करना, वही पुण्य है। मनुष्य जिन सकाम कर्मों को अनुष्ठान करता हैं, वे कर्म भी उसे सदा बन्धन में बांधे रहते हैं। संसार दु:ख का मार्ग हैं इसमें वह सदा सुख-दु:ख, ईर्ष्या द्वेष, लोभ एवं मोह में फँसा रहता है। जब वह माया रूपिणी रमणी के बाहुपाशों में जकड़ जाता है तब वह रात-दिन उसी को सुख-सुविधा प्रदान करने की चिन्तामें पड़ा रहता है। इस प्रकार वह अपनी आनेवाली मृत्यु को भूल जाता है। जिस प्रकार से मर्त्यलोक बन्धन की भूमि है, उसी प्रकार स्वर्गलोक भी।

भवाटवी माने संसारका जंगल। इसमें बड़े-बड़े दस्यु हैं जो इसके धनको लूट लेते हैं। जहाँ जो दारापत्य आदि सगे-सम्बन्धी हैं, वे तो श्रृगालाधिपतियोंके समान हैं और जैसे भेड़िया भेड़को खींचता है वैसे ही वे जीवको इधर-उधर घसीटते हैं। इसमें बड़ी-बड़ी मृगमरीचिकाएँ हैं। जो चीज है ही नहीं, वह मालूम पड़ती है। यहाँ कहीं दुश्मन तो कहीं दोस्त दिखायी पड़ता है, कहीं यह रिश्ता, तो कहीं वह नाता मालूम पड़ता है। कहीं पिशाच दिखाई पड़ते हैं और कहीं धूल उड़ती हुई मालूम पड़ती है। इसी तरह कहीं भूख, कहीं प्यास लगती है। कहीं नदीमें डूबना होता है, कहीं दावानलकी प्राप्ति होती है और कहीं मूर्च्छा आ जाती है।

जड़भरत बोले- इस संसारमें कभी काँटे गड़ते हैं, कभी पहाड़पर चढ़ना पडता है, कभी अजगरके मुँहमें जाना पड़ता है, कभी मक्खियाँ ताड़ना करती हैं और कभी परदेशमें जाना पड़ता है। ऐसे-ऐसे अनेक श्रम इसमें करने पड़ते हैं।

श्रम क्या है? बाहरी वस्तुओंको शुद्ध करनेके लिए श्रम होता है और भीतरकी वस्तुओंको शुद्ध करनेके लिए धर्म होता है। विज्ञान वह होता है, जो एकको अनेक बनाकर दिखा दे और ज्ञान वह होता है, जो बहुतोंको एकमें मिला दे। ज्ञान अनेकसे एककी ओर ले जाता है और विज्ञान एकसे अनेककी ओर ले जाता है। इसी तरह कला प्रकृतिकी अनुकृति है। अनुकरणको ही कला कहते हैं। जैसे किसीने मोर आदि बना दिया तो वह उसकी कला हो गयी।

यहाँ लोग कहते हैं कि यह हमारी धरती है, यह हमारी धरती है, लेकिन वह वास्तवमें कहाँतक ठीक है? हमने ऐसी-ऐसी

जमीनें देखी हैं, जिसपर कभी किसीका तो कभी किसीका स्वामित्व स्थापित हुआ है। एकने कहा कि हमारी, तो दूसरेने कहा कि हमारी। लोग जमीनका व्यापार करते रहते हैं और वह भिन्न-भिन्न लोगोंके हाथोंमें जाती रहती है। इसलिए जब वह बेच देनेपर हमारी नहीं रहती, दूसरेके कब्जा कर लेनेपर हमारी नहीं रहती, हमारे मर जानेपर हमारी नहीं रहती और जो हमारे बापकी नहीं रही, बाल-बच्चोंकी नहीं रही, तो उसमें हमारा क्या है? उसके लिए लोग नाहक जिद करते रहते हैं। उसमें पारलौकिक सम्बन्ध कहाँ है? उससे तो बिल्कुल लौकिक सम्बन्ध है और मूर्खतापूर्ण ममता है।

संसारमें कहीं सिंहका डर लगता है, कहीं बाघका डर लगता है, कहीं दूसरे सताते रहते हैं, फिर भी लोग भटकते रहते हैं। जब बहुत सौभाग्य उदित होता है तब यह मनुष्य-जन्म मिलता है।

सत्वादि गुणों के भेद के देहाभिमानी जीव के लिए तीन प्रकार के कर्म होतें हैं- शुभ, अशुभ, मिश्रित इन कर्मों के अनुसार ही जीव को संसार में देह प्राप्त होती ह। इन कर्मों को छह इन्द्रियों के द्वारा अनुभव किया जाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा मन। इस अनुभव में वह भ्रमित हो जाता है तथा मार्ग भ्रष्ट हो जाता है। वास्तविकता से हटकर सत्यता को छोड़कर भगवान की माया के वशीभूत होकर भटके हुए बंजारों की भाँति इस संसार रूपी बन में भटकता रहता है। अपने कर्मों के अधीन पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम् के चक्र में पड़ जाता है। मूल उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति तक नहीं पहुँच पाता है। मनुष्य शरीर विशेष रूप से ज्ञानवान् समझा जाता है इसके द्वारा ही मोक्ष प्राप्त करना सम्भव माना गया है किन्तु जिस माया का अनुभव कर उसका विच्छेदन कर अपने मोक्ष मार्ग पर अग्रसरित होना मनुष्य का प्रथम धर्म है उसी को छोड़ अन्य प्रपंचों में रम जाता है। इसीलिए भगवान् ने सर्वधर्मान् परित्यज्य की बात कही है।

वन के डाकुओं के समान इस शरीर में भी मुख्य छ: डाकू हैं जो धर्म का हरण करने में सक्षम है। देखना (दृश्य), स्पर्श, श्रव्य (सुनना), रस-स्वाद लेना, घ्राण-सुघना, संकल्प-विकल्प करना अर्थात निश्चिय करना। इन वृत्तियों के रसास्वादन में गृहस्थ सुखों में पड़कर मुख्य लक्षों से पृथक हो जाता है। भेड़िया जैसे भेड़ों के झुण्डों में से भेड़ को उठाकर ले जाता है उसी प्रकार उसका कुटुम्बी-स्त्री-पुत्र आदि रुपी डाकू बनकर उसका तन-मन-धन हरण कर लेते हैं।

स्त्री सुख तथा भोजन के व्यसन में फँसकर इनको पूर्ति के लिए मृगतृष्णा के समान छलांग लगाता मनुष्य जीवन पूर्ण कर भोगों के कारण पुन: इसी माया में ग्रसित होकर सुख दुख भोगता है। कष्ट पड़नेपर कभी विषयों के मिथ्यात्व का ज्ञान होता है किन्तु देही में आत्म बुद्धि होने के कारण शीघ्र ही विवेक बुद्धि नष्ट कर बैठता है और मरुमरीचिका के समान विषयों की ओर दौड़ने लगता है।

हे राजन्। इस मार्ग में पूर्वोक्त विघ्नों के अतिरिक्त सुख-दु:ख, राग-द्वेष, भय-अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, अपमान क्षुधा-पिपासा, आदि-व्याधि, जन्म, जरा-मृत्यु आदि और भी अनेक विघ्न है। इस विघ्नबाहुल्य मार्ग में यह जीव देवमाया रूपिणी स्त्री के बाहुपाश में पड़कर विवेकहीन हो जाता है तथा उसके साथ विहार करने, उसे प्रसन्न करने तथा इसके आश्रित पुत्र-पुत्रियां, दास-दासियां तथा अन्य स्त्रियों की मधुर वाणी तीखी चितवन और कामुक चेष्टाओं पर आसक्त हो उन्हीं में फँस जाता है और इन्द्रियों का दास बन विभिन्न नर्कों की यातनायें भोगता है।

जड़भरतने रहूगणको बताया कि तुम इस भवाटवीमें भटकनेसे कैसे मुक्त हो सकते हो? तुम तो अपने मनके विपरीत करनेवालोंको दण्ड देनेमें लगे हो। इसलिए पहली बात तो यह है कि शास्त्रार्थ, वाद-विवाद, लड़ाई-झगड़ा छोड़ दो। दूसरी बात है, सबके प्रति मैत्रीका भाव रखो, तीसरी बात यह है कि कहीं भी अपने आपको आसक्त मत करो और चौथी बात यह है कि भगवान्की सेवा करो। इससे क्या होता है? यही होता है कि भगवानकी सेवासे ज्ञानकी तलवारकी शान चढ़ जाती है

और उससे भवाटवीको काटकर मनुष्य उसके पार हो जाता है।

कर्मों के इसी माया मोह में भटकता-भटकता मनुष्य संसार रूप जंगल में पहुंच जाता है। लेकिन वहां इसे तनिक भी शांति नहीं मिलती।

इस भटकाव में भटकने वाला यह बनजारों का दल कभी किसी लता की डालियों का अश्रय लेता है, तो उस पर रहनेवाले मधुर भाषी पक्षियों के मोह में फंस जाता है। कभी सिंहों के समूह से डरकर बगुला, कंक और गिद्धों से प्रीति करता है। जब वहां उनसे उनसे धोखा मिलता है, तो वह हंसों की पंक्ति में प्रवेश करना चाहता है, किन्तु उसे उनका व्यवहार नहीं सुहाता, इसलिए वानरों में मिलकर उनके जाति स्वभाव के अनुसार दाम्पत्य सुख में लीन रहकर विषय भोगों से इन्द्रियों को तृप्त करता है और एक दूसरे की भूख देखते-देखते अपनी आयु की अवधि को भूल जाता है। वहां वृक्षों में क्रीड़ा करते हुए पुत्र और स्त्री के मोह पाश में बंध जाता है। इसमें मैथुन की वासना इतनी प्रबल जाती है कि तरह-तरह के दुर्व्यवहार से दीन होने पर भी यह विवश होकर अपने बंधन को तोड़ने की हिम्मत नहीं कर पाता। कभी असावधानी से पर्वत गुफा में गिरने लगता है तो उसमें रहनेवाले हाथी से डरकर किसी लता के सहारे लटका रहता है।

प्रवृत्तिमार्गमें रहकर किये हुए लौकिक और वैदिक दोनों ही प्रकारके कर्म जीवको संसारकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं। यह संसारके भोग एक पुरुषसे दूसरे पुरुषके पास जाते रहते हैं किसी एक स्थान पर नहीं ठहरते। कभी-कभी शीत और वायु आदि अनेकों आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दु:खकी स्थितियोंके निवारण करनेमें समर्थ न होनेसे यह अपार चिन्ताओंके कारण उदास हो जाता है। कभी परस्पर लेन-देनका व्यवहार करते समय किसी दूसरेका थोड़ा-सा दमड़ीभर अथवा इससे भी कम धन चुरा लेता है तो इस बेईमानीके कारण उससे वैर ठन जाता है। इस मार्गमें पूर्वोक्त विघ्नोंके अतिरिक्त सुख-दु:ख, राग-द्वेष, भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, अपमान, क्षुधा-पिपासा, आधि-व्याधि, जन्म, जरा और मृत्यु आदि और भी अनेकों विघ्न हैं।

परमात्मा काया से इस तरह अलग है जिस तरह वृक्ष पर पक्षी बैठा हो और उस पेड़ के काटने से उसे कुछ दु:ख नहीं होता। कदाचित् पक्षी उस वृक्ष को अपना जानकर रोवे तो उसका शोक करना वृथा है। जो मनुष्य शरीर को अपना समझकर संसारी सुख में मन लगाता है उसे दु:ख के सिवा सुख नहीं होता। जब वह विरक्त होकर परमेश्वर में ध्यान लगाता है तब उसको सुख मिलता है। परमेश्वर की भक्ति करने से हृदय में ज्ञान का दीपक प्रज्ज्वलित होता है और काम-क्रोध का अन्धकार उसके अन्त:करण से छूट जाता है।

हे राजन्। मैं एक इतिहास कहता हूँ, आप उसके सुनने से भवसागर पार उतर जायेंगे। एक धन-पात्र बनिया व्यापार की बहुत वस्तुएँ अपने साथ लेकर किसी दिशावर को चला। उसने कृपणता से माल की रक्षा करने के लिए अपने साथ कोई चाकर नहीं रखा, इसलिए, छ: चोर उसके संग हो लिये। उन चोरों के और भी सहायक उनके पीछे-पीछे चले। थोड़ी दूर नगर से बाहर जाकर वह बनिया राह भूलकर ऐसे वन में पहुँचा जहाँ कोसों तक बस्ती नहीं थी। जब वन में बाघ, भालू, कंटीले वृक्ष और नदी-नाले अधिक होने से उसका राह चलना कठिन हो गया। तब वह मारे डर के उस वन से पार होने के लिए संध्या तक बराबर चलता गया, पर बस्ती कहीं न मिली, उसी वन में रात हो गई। जब बनिया रात को एक नाले में अपने मालसमेत पहुँचा तब वही छ: चोर और उनके सहायक उसका सब माल लूटने लगे। उस समय उस बनिये ने रोकर मन में कहा कि कुछ भी माल यदि बच जाता तो उसे बेचकर फिर व्यापार करता। वह बनिया ऐसा विचारकर जिस वस्तु का बचाव करता था उसे सब चोर लूटते थे। जब उसका सब माल चोर लूट ले गये तब वह बनिया घबराकर उस वन में

अपने टिकने का स्थान ढूँढने लगा, पर कोई जगह उसके रहने के लिए नहीं मिली। वह व्याघ्र व हाथी आदि की बोली सुनकर डर से काँपता हुआ राह में चला जाता था। कहीं साँप व बिच्छू देखता तो ठोकर खाकर गिर पड़ता था। कहीं पैर में काँटे चुभते थे। वृक्ष के नीचे जब सुस्ताने लगता तो वृक्ष पर उल्लू का शब्द सुनकर वहाँ से भी भागता। कभी वन में आग लगी देखकर उसके डर से दूसरी ओर दौड़ता था। उसी विपत्ति में भागते हुए एक सूखे कुएँ में गिर पड़ा। उस कुएँ पर एक बरगद का वृक्ष था, उसकी एक डाली कुएँ में लटकती थी। जब वह बनिया आधे कुएँ में पहुँचा तब वह डाली उसके हाथ लगी, उसे पकड़कर लटक गया। उस कुएँ में एक साँप नीचे बैठा था, सो अंधियारी रात में बिजली चमकने से उसने देखा कि कुएँ में एक साँप फन काढ़े बैठा है। जिस डाली को पकड़े था उस डाली को ऊपर से दो चूहे श्याम व श्वेतवर्ण काटते हैं। तब बनिया ने विचारा कि कुएँ में कूद पड़ूँ तो साँप के काटने से मर जाऊँ, नहीं कूदता तो डाली कट जाने से गिरकर साँप के मुँह में पड़ूँगा। इसी सोचविचार में बनिया पड़ा रहा। उसी बरगद के वृक्ष में शहर का एक छत्ता लगा था। डाली हिलने से शहद का एक-एक बूँद टपककर उस बनिया के मुँह में गिरता था। ऐसी विपत्ति में वह बनिया शहद चाटकर बहुत प्रसन्न होता था। इसी तरह बनिया की आयु उस कुएँ में लटके हुए बीत गई, उसे निकालनेवाला कोई वहाँ न पहुँचा। जब एक दिन उन दोनों चूहों ने ऊपर से डाली काट दी तब वह कुएँ में गिर पड़ा और साँप के काटने से मर गया। इतनी कथा सुनकर राजा ने जड़भरत से कहा- महाराज। मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम होता है कि वह बनिया एक बूँद शहद खाकर प्रसन्न रहा और डाली पकड़कर ऊपर क्यों नहीं चढ़ आया। यह वचन सुनकर जड़भरत बोले- हे राजन्। ऐसी ही तुम्हारी और सब संसारी मनुष्यों की दशा है। सब मनुष्य अनेक तरह के उद्यम करके कुटुम्ब का पालन करते हैं, पर घरवालों को किसी तरह का सन्तोष न होकर प्रतिदिन अधिक लोभ बढ़ता जाता है। अपने उद्यम से उनको किसी प्रकार छुट्टी नहीं मिलती कि दो घड़ी अपने उत्पन्न व पालन करनेवाले परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करें। जब कोई उनसे हरिभजन करने की चर्चा करता है तब कहते हैं कि हमको अपने उद्यम व गृहकार्य से छुट्टी नहीं रहती, किस समय परमेश्वर का भजन व ध्यान करें। सो हे राजन्। इस जीव को बनिया समझो और काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद व मत्सरता यही छ: चोर आठों पहर मनुष्य के साथ रहते हैं। परिवारवालों को उन छहों का सहायक समझो। जीव को इसलिए बनिया कहना चाहिए कि उसने धर्म व ज्ञान बढ़ाने के लिए भरतखण्ड में मनुष्य का तनु पाया था। पूर्व जन्म में साधु व महात्मा का सत्संग व हरिभजन करके संसारी माया-जाल में फँस गया था, इसी कारण जो कुछ उसके पूर्व जन्म का धर्म था उसे भी परिवारवालों ने चुरा लिया। बनिया ने अपने माल की रक्षा करने के लिए नौकर नहीं रक्खा, इसलिए चोरों ने उनको लूट लिया। कदाचित् वह भरतखण्ड में जन्म लेकर साधु व महात्मा का सत्संग करके ज्ञान सीखता तो माया-जाल में फँसकर क्यों नष्ट होता। जैसे वह बनिया अपने टिकने के लिए स्थान ढूँढते समय व्याघ्रादिक के डर से भागता था वैसे ही संसारी सुख चाहनेवाले दु:ख भोगते हैं।

मनुष्य कभी अपने कुटुम्ब की बीमारी व मृत्यु देखकर, कभी अपने शरीर के रोग से और कभी धन मिलने के वास्ते आठों पहर चिन्ता में फँसा रहता है। जिस तरह उल्लू व व्याघ्रादिक बनिये को डराते थे उसी तरह जब परिवारवाले झगड़ा करके घुड़कते हैं तब मनुष्य बड़ा दु:ख पाता है। स्त्री की संगति को अन्धकार समझना चाहिए, उस जगह ज्ञान और वेदपुराण का वचन सब भूल जाता है। जब मनुष्य बूढ़ा होकर कुछ कमाई नहीं कर सकता तब परिवारवाले उसे दुर्वचन करकर भोजन व वस्त्र का दु:ख देते हैं, उसका कुछ आदर नहीं करते। जिस तरह मनुष्य महादु:ख में भी मरने का कुछ डर न रखकर दिन-रात कमाने की चिन्ता किया करता है उसी तरह बनिया कुएँ में साँप व चूहे को देखने पर भी मरने का भय नहीं रखता था। सो मनुष्य के लिये संसार व परिवार में रहना यही अँधियारा कुआँ समझो। जैसे कर्म पिछले जन्म में किये हैं उसे बरगद की

जड़ समझना चाहिए जिसे पकड़कर जीता है। दो चूहे काले व सफेद जो जड़ काटते थे वही दिन व रात हैं, जिनके बीतने से आयु घट जाती है। बनिये ने जो साँप कुएँ में देखा था उसे काल समझो। जिस तरह एक बूँद शहद चाटकर बनिया प्रसन्न होता था उसी तरह अज्ञानी मनुष्य बुढ़ापे व सब तरह के दु:ख होने पर भी अपने कुटुम्ब में बैठकर मग्न होते हैं, उसी को शहद की बूँद समझो। हे राजन्, जगत को दु:ख देनेवाला वन जानो। संसारी माया-जाल में फँसनेवाला मनुष्य उसी बनिये के समान दु:ख पाकर नष्ट होगा। जिस तरह तू जगत् की माया में लपटा है उसी तरह वह बनिया स्त्री व पुत्र के मोह में फँसकर नष्ट हुआ था। जो कोई वेद व शास्त्र के अनुसार चले वह अपना मनोरथ पा सकता है, नहीं तो सब छोटे-बड़े इसी मायारूपी वन में भूलकर नष्ट हो रहे हैं। सत्संग के बिना मोहरूपी वन से बाहर निकलना बहुत कठिन है।

राजा रहूगण ने तन्मय होकर जडभरत के उपदेश को सुना। वे बोले- अहो। समस्त योनियों में यह मानव-जन्म ही श्रेष्ठ है। इससे बढ़कर दूसरा जन्म नहीं है। इसका कारण यह है कि अन्य देवादि जन्मों में, भगवान हृषीकेश के पवित्र यश से शुद्ध अन्त:करणवाले आप जैसे महात्माओं का समागम होना कठिन है। आपके एक मुहूर्त के समागम से मेरा कुतर्क पूर्ण सारा अज्ञान नष्ट हो जायेगा। मुझे बड़ी शान्ति मिली। भगवान में मेरी भक्ति हो गयी।

रहूगण बोले- निस्सन्देह मनुष्यका जन्म सबसे सुन्दर है। दूसरे जन्मोंमें ऐसा सत्संग नहीं मिलता। मनुष्य-जन्म ही ऐसा है, जिसमें उन महापुरुषोंका समागम प्राप्त होता है, जिन्होंने हृषीकेशके यशसे अपने आत्माका निर्माण और आत्मसाक्षात्कार कर लिया है। फिर ऐसे महात्माओंका समागम प्राप्त होनेपर उनके चरणकमलोकी धूलिसे पापकी निवृत्ति हो जाती है। महात्माओंकी चरण-धूलिमें पाप निवृत्तिका बहुत बड़ा सामर्थ्य है। जो उसको अपने सिरपर लगाता है, उसका अभिमान मिट जाता है। फिर जब अभिमान मिट जाता है, तब अभिमानमें रहनेवाले जितने भी दोष हैं वे भी मिट जाते हैं। महापुरुषोंके चरणरेषु स्पर्शसे केवल सारे पाप ही नहीं निवृत्त हो जाते, भगवान्‌की भक्ति भी मिल जाती है। आपसे मेरा दो घड़ीका मेल हुआ और मेरे मनमें जो अविवेक था, वह नष्ट हो गया। बहुत तर्क-वितर्क होना विवेकका लक्षण नहीं, अविवेकका ही लक्षण है। अविवेकका मूल दुस्तर्क ही है।

रहूगण ने कहा- मेरा कुतर्कपूर्ण सारा अज्ञान नष्ट हो गया। ब्रह्मज्ञानियों में जो वयोवृद्ध हैं, उन्हें नमस्कार है, जो शिशु हैं, जो युवा हैं और जो खेल में निरत रहनेवाले छोटे-छोटे बालक हैं उन सभी को मेरा प्रणाम है। अवधूत-वेश धारण कर जो ब्राह्मण भूतल पर विचरण करते रहते हैं उनसे हम जैसे राजाओं का कभी अमंगल न हो, सर्वथा कल्याण ही हो।

राजा रहूगण भरतजी के चरणों में गिर गये और बोले- भगवन्। आपके चरणकमलों की रज से मेरे सारे पाप नष्ट हो गए। आपके सत्संग से मेरा कुतर्क मूलक अज्ञान नष्ट हो गया। आज पालकी ढोनेवाले कहार के रूप में सौभाग्य से मुझे इतने बड़े महात्मा मिले। हमारे जैसे ऐश्वर्योन्मत्त राजाओं का कल्याण करने के लिये। मैं आपको ब्रह्मज्ञानियों में वयोवृद्ध नमस्कार करता हूं। राजा रहूगण ने दीन भाव से भरत जी की चरण वन्दना की।

श्री शुकदेवजी ने कहा- राजन्, उन ब्रह्मर्षिपुत्र ने अपना अपमान करनेवाले रहूगण को भी इस प्रकार आत्मतत्त्वका उपदेश दिया। राजा रहूगण ने भी दीन भाव से उनके चरणों की वन्दना की फिर वे राजा को आशीर्वाद देकर सागर के समान शान्त चित्त होकर पृथ्वी पर विचरण करने के लिये चले गये। उनके सत्संग से ज्ञान का प्रकाश प्राप्तकर सौवीरपति रहूगण ने भी अविद्या के कारण देह में आत्मबुद्धि का परित्याग कर परम शान्ति प्राप्त की। अपना शेष जीवन उन्होंने जडभरत के उपदेश के अनुसार व्यतीत किया और प्रारब्ध कर्म की परिसमाप्ति पर शरीर का परित्याग कर भगवान के लोक को चले गये। राजन्, जो लोग भगवान के अनन्य भक्तों की शरण ग्रहण करते हैं, उसका ऐसा ही परिणाम होता है।

राजन्, देहाभिमानी जीव भगवान विष्णु की माया से मोहित होकर इस संसार-जंगल (भवाटवी) में फँसकर कभी शुभ कर्म करता है, कभी अशुभ कर्म करता है और कभी शुभ-अशुभ से मिश्रित कर्म करता है। इन कर्मों का फल यह होता है कि वह फिर भवाटवी के ही फलों को खाने में लगा रहता है, बार-बार जनमता और मरता रहता है। इस भवाटवी से निकलने का एकमात्र मार्ग है- भगवद्भक्ति। किन्तु जीव इसे नहीं ग्रहण कर पाता। उसकी स्थिति ठीक वैसी ही है, जैसी उस धन-लोभी वणिक्-समूह की होती है, जो जंगल में भटक गया हो और जिसे कोई मार्गदर्शक गुरु न मिल रहा हो। यह भवाटवी श्मशान के समान अत्यन्त अशुभ है। मन के सहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ही इस संसारजंगल की दस्यु हैं, जो जीव के संयम-नियमरूपी धन को लूटते रहते हैं। सगे-सम्बन्धी श्रृंगाल के समान हैं, जो कुटुम्बी के सर्वस्व का हरण कर लेते हैं।

संसार के लोग मक्खी-मच्छरों की तरह जीव को चूसते रहते हैं। वह कभी गन्धर्व-नगर के समान लुभावने परलोक की ओर जाता है, कभी खाने-पीने मौज-मस्ती में फँस जाता है और कभी सुवर्ण के आकर्षण को देखकर उसकी ओर भागता है। कभी स्त्री की गोद में अपना सिर रखकर विषयों में आकण्ठ डूब जाता है। उस समय उसे मर्यादा का भी ध्यान नहीं रहता और नहीं वह यही सोचता है कि देवता लोग मुझे देख रहे हैं।

यह संसार-वन नाना प्रकार के झंझटों से भरा पडा है। इसमें कभी-कभी कर्ण-कटु शब्द सुनने पड़ते हैं। कभी जीव पाखण्डियों के चक्कर में पड़कर अपना सत्य मार्ग छोड़ देता है। कभी घर का वातावरण दावानल के समान सन्तापक बन जाता है। कभी अनुचित कर्म करने पर यह जीव पकड़ कर राजा के सामने उपस्थित किया जाता है और दण्डित होता है। यह संसार वन ऐसा अद्भुत है कि इसमें जीव एक क्षण भी शान्ति के साथ नहीं बैठ सकता। कभी धन की छीना-झपटी तो कभी पद-प्रतिष्ठा के लिये मारामारी।

जिस प्रकार खेत के बीजों को यदि आग लगाकर जला न दिया गया हो तो प्रतिवर्ष खेती का समय आने पर, वे झाड़-झंखाड़ के रूप में पुन: निकल आते हैं। यह क्रम बराबर चलता रहता है। इसी प्रकार यह गृहस्थाश्रम भी कर्म-भूमि है, इसमें भी कर्मों का सर्वथा उच्छेद कभी नहीं होता क्योंकि यह घर कामनाओं की पिटारी है।

यह जीव इस संसार में कभी सुखी नहीं रह सकता। यह कभी दावानल के समान झुलसा देनेवाले, प्रिय विषयों से शून्य एवं परिणाम में ताप-ही-ताप देनेवाले घर में पहुँचता है, तो वहाँ इष्टजनों के वियोग आदि से उसके शोक की आग भड़क उठती है। उससे सन्तप्त हो यह दु:ख के सागर में गिर पड़ता है। गृहस्थाश्रम के कर्म भी पहाड़ जैसे दुरूह हैं। यह कभी पेट की असह्य ज्वाला से विह्वल हो कुटुम्बजनों से ही उलझ जाता है। कभी निद्रारूपी अजगर के चंगुल में फँसकर निर्जीव-सा हो जाता है, सुध-बुध खो बैठता है। कभी विषयसुखरूप मधुकणों को ढूँढते-ढूँढते जब यह पर-स्त्री पर, पर द्रव्य पर हाथ डालता है तो पकड़े जाने पर राजा या स्वामी के द्वारा मारा जाकर ऐसे नरक में जा गिरता है जिसका न आदि है और न अन्त ही।

भवाटवी के अर्थ को, भरत कहीं समुझाय। नृपति रहूगण भ्रम सभी, तत्क्षण गये बिलाय॥

शुकदेव बोले- परीक्षित्, यह जीवलोक विष्णु भगवान्की मायासे मोहित है और इस संसाररूपी जंगलमें फँस गया ह। इससे निकलनेके लिए केवल भगवद्भक्तिका मार्ग है जिसको जीवलोक ग्रहण नहीं कर पाता। उसकी स्थिति ठीक वैसी ही है, जैसी उस धनलोभी वणिक्-समूहकी होती है, जो जंगलमें भटक गया हो और जिसको प्राप्त करनेका मार्ग नहीं मिल रहा हो। इस संसार-वनमें छह इन्द्रिय नामके डाकू रहते हैं और मनुष्यके पास जो धन है, उसको-विषय भोगमें छीनकर ले जाते हैं। सगे-सम्बन्धी श्रृंगालके समान हैं, जो कुटुम्बीके सर्वस्वका हरण कर लेते हैं।

संसारके लोक मक्खी मच्छरोंकी तरह चूसते रहते हैं, कभी गन्धर्वनगरके समान परलोकको सच्चा समझकर उसकी

ओर जाते हैं, कभी खाने-पीनेमें फँस जाते हैं, कभी सोनेको इकट्ठा करनेमें लग जाते हैं। कभी स्त्रीकी गोदमें अपना सिर रख देते हैं और उस समय बहुत प्रेम उदित होता है, उनको इस बातका पता नहीं चलता कि मर्यादाका अतिक्रमण हो रहा है और देवता लोग देख रहे हैं। इस प्रकार मनुष्य विषयोंमें भटक जाता है।

इस संसारमें कभी ऐसी-ऐसी बात भी सुननेको मिलती है, जिसको सुनकर कानके पर्दे फट जाते हैं। कभी आदमी पाखण्डियोंके चक्करमें पड़ जाता है और तब रास्ता बिल्कुल ही भूल जाता है। कभी घर दावाग्निके समान लगने लगता है और उससे वैराग्य हो जाता है। कभी क्रोध होता है। कभी राजाके घरमें पकड़कर ले जाया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस संसारमें मनुष्य बड़ा भारी दु:ख भोग रहा है। लोग समझते हैं कि सो जानेपर बहुत आराम मिलता है, लेकिन निद्रा तो अजगर ही है, जो अपने बन्धनमें लेकर दबोच लेती है। मनुष्यको कभी सच्चा सुख नहीं प्राप्त होता है। दुनियामें लोग एक-दूसरेकी चीजका अपहरण करते रहते हैं। कभी यज्ञदत्तकी चीज विष्णुमित्र ले लेते हैं, कभी विष्णुमित्रकी चीज यज्ञदत्त ले लेते हैं और उसको कोई रोक सकता नहीं। लोग अपना बेचते हैं, दूसरोंका खरीदते हैं और छोटी-छोटी बातोंके लिए लड़ते हैं, वे अपन हृदयकी कीमत नहीं समझते, वस्तुओंकी कीमत समझते हैं।

जन्म-मरणादिके क्लेश भोगने ही पड़ते हैं। यह पत्नी है, यह अमुक स्त्री है, कभी इसकी दो बातें सुनी और कभी उसकी दो बातें सुनी। इसीमें मनुष्य फँसा रहता है। किन्तु भगवान्का कालचक्र हमेशा काम करता रहता है। मनुष्य कभी पाखण्डियोंके चक्करमें पड़कर ब्राह्मणके पास जाता है और वहाँ अपने मनका नहीं मिलता तो शूद्र-कुलके पास चला जाता है। मनुष्यका लक्ष्य बस पेट भरना और स्वच्छन्द रहना हो गया है, मानो विषयोंके लिए ही उसका जीवन हो। लेकिन केवल खाने-पीनेके लिए मनुष्यका जन्म नहीं हुआ। मनुष्यको मौतका पता नहीं चलता। कभी संकटमें फँस जाता है तो उसे बड़ा खेद होता है। कभी वह वित्तके चक्करमें पड़ जाता है और उसपर नाना प्रकारसे आपत्ति-विपत्ति आती रहती है।

संसार बनमें रहनेवाले उसके कुटुम्बी जो नाम से तो स्त्री, पुत्रादि कहलाते हैं किन्तु कर्म जिनके साक्षात् भेड़ियों ओर गीदड़ों के समान होते हैं- उस अर्थ लोलुप कुटुम्बी के धन को उसकी इच्छा न रहने पर भी उसके देखते-देखते छीन लेते हैं।

परीक्षित् ने पूछा- महर्षे। इस सृष्टि में जब सभी प्राणी, सभी आत्मायें एक परमात्मा से निकली हैं, तो वे सब-की-सब एकतरह की क्यों नहीं है? उनमें विचित्रता क्यों है? कोई मानव, दानव, कोई कीट हैं, कोई पतंग है, कोई सूकर, कुकर ऐसी अनेकरूपता क्यों?

कोई चले ना बिना सवारी के, कोई नंगे पाँव दौड़ रहा।
कोई ढेर किया जर जेवन का कोई कर्ज किसी से मांग रहा।
कोई किसी का दुश्मन बन बैठा, कोई प्रेम किसी से पा रहा।।

शुकदेव बोले- जैसे सब पदार्थोंमें दूध एक ही होता है दूध का अंश अलग-अलग है। संपर्क भेद से दूध आगपर चढ़ा तो मलाई बन गया, खोलने पर रबड़ी बन गया, और अधिक गर्म किया तो खोवा बन गया। खटाई के सम्पर्क में आने से फटकर छेना बन गया। उसके कई रूपान्तर हो गये, बरफी, पेड़ा, रसगुल्ला। दूध के सम्पर्क में जामन आया तो दूध दही बन गया, वही छाछ, लस्सी, मक्खन बन गया। आग के सम्पर्क में आकर घी बन गया। दूध तो सबका एक जैसे ही था लेकिन अलग-अलग सम्पर्क भेद से उसका रूपांतरण अनेक प्रकार से हो गया। एक बार रूपांतरण हो गया तो वह फिर से दूध नहीं बन सकता। इसप्रकार सभी जीव निकले तो एक परमात्मा से ही है, लेकिन प्रकृति के तीनों गुणों के सम्पर्क में आकर इनका रुपान्तरण अलग-अलग हो जाता है। तमोगुण के सम्पर्क में आकर जीव तमोगुणी आकृति प्रकृति वाले हो गये, वो तमोगुणी योनियों में

भटकते हैं। रजोगुण के सम्पर्क में आनेवाले माध्यमिक स्थिति में रहते हैं। सत्वगुण के सम्पर्क में आनेवाले मुक्ति के मार्ग में चले जाते हैं और गुणातीत हो जाते हैं। सत्वगुण वाले ऊपर जाते हैं, रजोगुण वाले मर्त्यलोक में रहते हैं। तमोगुणवाले नारकीय यातनाओं को सहते हुए अधोलोक में जाते है।

कराल कालचक्र साक्षात् भगवान विष्णु का आयुध है। यह निरन्तर सावधान रहकर घूमता रहता है। क्षण, घटी, पल आदि इसके अवयव हैं। यह तृण से लेकर ब्रह्म पर्यन्त सबका संहार करता रहता है। कोई भी इसके गति को रोक नहीं सकता। इसकी प्रबलता को देख जीव भी भगवान की शरण में नहीं जाता- यह बड़ा दुर्भाग्य है। माया के प्रबल प्रभाव के कारण इसका स्वभाव वानरों के समान केवल कुटुम्बपोषण और स्त्री-सेवन करना ही है।

एक दृष्टान्त है- एक बार एक जंगली शेर बिदक गया था कि मनुष्य को ही मारकर खाऊंगा। तो मनुष्य ने जब सुना तो मनुष्य भी चतुर था। उसने अपनी रक्षा के लिये एक बड़ा लोहे का पिंजरा बनाया और उसमे शेर के आकर्षण की कुछ वस्तुयें रखकर किसी तरह प्रयत्न करके शेर को पिंजरे में घुसाया, और फाटक बन्द करके सांकल लगा दी। अब शेर को निकलने का रास्ता नहीं मिला, भूख से तड़पने लगा, कई दिन से भूखा था। इतने में उधर से एक दयालु मनुष्य को गुजरते देखा- झट बोला- हे दयालुता सम्पन्न मानव, तुम दयालु हो मेरे पर दया करो, मुझे किसी तरह इस पिंजरे से बाहर निकाल दो। तो उसने कहा- हम तुमको इसमें से निकाल दें और तुम हमीको खाने के लिये तैयार हो जावो तब। शेर ने कहा- अरे नहीं- नहीं मित्र अबतक हमने बहुत पाप किए और उसका फल भी भोग लिए, अब तो हमने धर्म की राह पर चलने का संकल्प ले लिया है, किसी तरह तुम इसमें से मुझे बाहर निकाल दो। अब मेरे में धर्म बुद्धि आ गई हैं। तुम्हारे जैसे उपकारी पर मैं भला क्यों आक्रमण करूंगा।

उसकी बातों से मानव को दया आ गई इसने सिंह को पिंजरे में से बाहर निकाल दिया, बस उसी को खाने के लिये दौड़ने लगा, पंजा मारने लगा। मानव ने कहा- अरे यार, तुमने तो कहा कि अब मेरे में धर्म बुद्धि आ गई है, तुम मेरा उपकार करोगे तो मैं तुम्हें नहीं खाऊंगा? अब मेरे ऊपर ही दौड़ रहे हो। शेर ने कहा- ये सब कुछ नहीं मेरे को भूख लगी हैं, इतने में उधर से एक गीदड़ आ निकला। कहते हैं डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। उस मानव ने गीदड़ से कहा- देखो भैया। मैंने इस शेर की प्रार्थना पर इसको पिंजरे से बाहर निकाला और बाहर आते ही ये मेरे को ही खाने को दौड़ रहा है।

गीदड़ बहुत चालाक होते हैं, गीदड़ बोला- देखो तुम दोनों पक्ष अगर मुझे पंच मानो तो मैं अभी फैसला कर दूंगा। शेर ने सोचा सुना है गीदड़ बहुत चालाक होता है, आज इसकी चालाकी को देखें। अब तो यह मानव और गीदड़ दोनों ही मेरे पंजे में हैं। दोनों को ही मारकर खा जाऊंगा। पहले चालाकी देख लूं। ठीक है हम दोनों ने तुमको पंच मान लिया। तो गीदड़ ने कहा- अब बताओ झगड़ा किस बात का है? मानव ने कहा- ये इस पिंजरे में बंद था, मैं इधर से निकला तो इसने मुझे बुलाकर कहा तुम मुझे इस पिंजरे से बाहर निकाल दो तो मैंने इसकी बात मानकर इसको पिंजरे से बाहर निकाल दिया, तो गीदड़ ने शेर से पूछा?

क्योंजी तुम पिंजरे में बंद थे? शेर बोला हां। तुम कैसे पिंजरे में बन्द थे। यह एक बार बंद हो के व्यवहारिकता में दिखाओ। पहले मैं परिस्थिति अच्छी तरह समझ लूंगा तब फैसला करूंगा। जरा पिंजरे मे जाकर दिखावो? शेर गया पिंजरे में तो फिर गीदड़ ने आदमी से पूछा क्यों भाई फाटक बन्द था कि खुला, बोला बन्द था। तो फाटक बन्द करके दिखावो तो फाटक बन्द किया। फिर पूछा क्या सांकल लगी थी? बोला हां तो सांकल लगाके दिखाओ। फिर पूछा आपको किधर जाना है। बोला इधर तो- उधर जावो जहां जाना है वहां जावो।

अब शेर ने कहा जब सारी बातों को साक्षात करके देखा तो कैसे सांकल खोला फाटक खोला और मुझको बाहर निकाला। अब ये भी करके दिखाओ। गीदड़ बोला मेरे को जो चमत्कार दिखाना था वो करके दिखा दिया। अब अगर मैं तुमको निकाल दूं तो तुम मुझको भी खाओगे और उसको भी खाओगे। तुम्हारे जैसे नमकहराम कृतघ्न को इसमें बन्द रहना ही श्रेयस्कर है। तुम भूख के मारे तड़पते रहो ये दृष्टान्त है।

इसका दृष्टान्त है ये संसार ही जंगल है। इसमें चौरासी लाख योनी ही पिंजरा है और उसमें पड़ा हुआ ये शेर जीव है और इसको चौरासी लाख रूपी पिंजरे से बाहर निकालने वाला दयालु मानव ही भगवान है। उसने दया करके इसको मनुष्य का शरीर दे दिया। मानो पिंजड़े से बाहर निकाल दिया। अब बाहर आकर ये चतुर मानव भगवान के अस्तित्व को मिटाता हैं। राम कौन होता है, कृष्ण कौन? मनुष्य शरीर पाकर शेर बन जाता हैं और राम जन्म भूमि क्या है? रामजी क्या है, कृष्ण कौन, आदि आदि भगवत् विमुखता की बाते करने लग जाता है। तो न्याय करनेवाले वो गीदड़ कौन है? यमराज जी हैं फिर वो दो डण्डा मारकर फिर चौरासी लाख के चक्कर में डाल देते हैं। तू निकलने लायक नहीं हैं चतुर मानव बनकर स्वयं तो भगवान से विमुख रहते है प्रभु चरणों का आश्रय नहीं लेते वो फिर बार-बार चौरासी के चक्कर में आते है और बन्धन में पड़ते है।

संसार में परमार्थ कहाँ, केवल आत्मानन्द में प्रवेश करने के अतिरिक्त सब वणिक वृत्ति ही तो है। तू मेरा भरण कर मैं तेरी सेवा करूँ। तू मुझे प्यार कर, मैं तुझे प्यार करूँ। मैं देवता को एक फल चढ़ाऊँ, देवता मुझे इससे अनेक जन्मों में अनन्त फल दें। इस फलाशा में ही मनुष्य फल दाता सर्वेश्वर जगत्पति विश्वम्भर को भूल जाता है, अपने को ही सब कुछ समझने लगता है। माया से मोहित होकर शोक, मोह, भय के कारण विवाद, रुदन, हर्ष आदि में फँस जाता है। कभी रोता है, कभी गाता है, कभी इधर-से-उधर जाता है। इस भवाटवी का अन्त नहीं। भगवद्भक्त तो इसे भगवच्चरणारविन्दों के प्रभाव से पार कर जाते हैं, शेष सभी इसमें इधर-से-उधर भटकते हुए नाना क्लेशों को उठाते हैं।

माया मोहित जीव जाहिँ जहँ तहँ दुख पावें। लखि समीप धन धाम विविध बिधि ताहि सतावें।।
पुत्र मित्र परिवार सगे सम्बन्धी आवें। स्वारथ हित दरशाय नेह सम्बन्ध लगावे।।
जब तक जगमहँ मोह है, तब तक तृष्णा बढ़ैगी। भेड़ जहाँ जहँ जायगी, राजन्। तहँ तहँ मुड़ैगी।।

शुकदेव बोले- राजन्, जब जड़ भरतजी उपदेश दे चुके, तब राजा रहूगण उनकी स्तुति करने लगे- भगवन्। आप जैसे राजाओं का कल्याण हो। ब्रह्मज्ञानी किस रूप में रहता है, उसे कोई जान नहीं सकता। अत: बूढ़ों को नमस्कार है, बालकों को नमस्कार है। युवाओं को नमस्कार है, ब्रह्मचारी से लेकर गृहस्थी बानप्रस्थी, संन्यासी सभी को नमस्कार है।

कोई भी राजा राजर्षि महात्मा भरत के मार्ग का मन से भी अनुसरण नहीं कर सकता। उन्होंने अपनी भरी यौवन में दुस्त्यज स्त्री, पुत्र तथा अत्यन्त मनोरम राज्य सब कुछ विष्ठा के समान त्याग दिया था क्योंकि भगवान में ही एकमात्र उनकी परम अनुरक्ति हो गई थी।

भरत महाराज भगवान की सेवा-शुश्रूषा के सामने मोक्ष-पद को भी तुच्छ समझते थे। उन्होंने जिस समय मृग का शरीर छोड़ने की इच्छा की उस समय उच्च स्वर से कहा था- धर्म की रक्षा करनेवाले, धर्मानुष्ठान में निपुण, योगगम्य, सांख्य के प्रतिपाद्य, प्रकृतिके अधीश्वर, यज्ञमूर्ति और सर्वान्तर्यामी श्रीहरि को प्रणाम है।

यह मिथ्यासंसार सत्य हैं जाके स्वामी। वे है शाश्वत सत्य सर्वागत अन्तरयामी।।
मन विषयनितें मोड़िकें, जगतें नातो तोड़िकें। हरि चरननि चित जोड़िकें, राम भजो सब छोड़िकें।।

राजन्, राजर्षि भरत का जो यह पावन चरित सुनेगा और सुनायेगा, वह आयु, धन और कीर्ति बढ़ानेवाला एवं मोक्ष प्रदाता

है। जो व्यक्ति भक्ति और श्रद्धा के साथ इसको सुनता या सुनाता है, उसके सारे मनोरथ पूरे हो जाते हैं। उसे किसी से कुछ मांगने की आवश्यकता नहीं होती। अन्त में वह भगवान की निश्चल निर्मल भक्ति प्राप्त कर कृतार्थ हो जाता है।

जड़भरत की कथाका सार यही है दया करो, पर आसक्ति मत करो। भागवत-धर्म आसक्ति का समर्थन नहीं करता।

५) राजा गय का चरित्र

परमेष्ठी के प्रतीह पुत्र हुए। जो बड़े ही धर्मात्मा और आत्मविद्या विशारद थे। वे स्वयं ज्ञानी तो थे ही, ज्ञान के उपदेष्टा तथा आचार्य भी थे। उन्होंने अनेकों पुरुषों को आत्मविद्या का उपदेश किया और स्वयं शुद्धचित्त होकर साक्षात् श्रीमन्नारायण भगवान का साक्षात्कार भी किया।

उन धर्मात्मा प्रतीह के सुवर्चला नामक पत्नी में प्रतिहर्ता, प्रस्तोता और उद्गाता नामक पुत्र हुए, जो कर्मकाण्ड में निष्णात थे, यज्ञादि कार्यों में अत्यन्त निपुण समझे जाते थे। उनमें जो सबसे श्रेष्ठ प्रतिहर्ता थे, उनका विवाह स्तुति नाम की राजपुत्री से हुआ। उसके गर्भ से अज और भूमा दो पुत्र हुए। प्रतीत होता है, बड़े राजकुमार अज ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बन गये, अत: भूमा का वंश आगे चला।

महाराज भूमा की पत्नी का नाम ऋषिकुल्या था, जिसके गर्भ से उद्गीथ नामक पुत्र हुआ। उद्गीथ के देवकुल्या नामक पत्नी से प्रस्ताव हुए। प्रस्ताव के विभु, विभु के पृथुषेण, उनके नक्त, नक्त के ही द्रुति नाम की पत्नी से उदारकीर्ति परम यशस्वी राजर्षि प्रवर महाराज गय हुए।

शुकदेवजी ने कहा- राजन्। भरत के पुत्र का नाम सुमति था। उसने ऋषभ देवजी के मार्ग का अनुसरण किया था अत: कुछ पाखण्डी जन कलियुग में उसे बुद्ध का अवतार भी मानते है। देवता के रूप में उसकी पूजा करेंगे। उसकी बहुत बड़ी वंश-परम्परा चली।

आगे चलकर इसी वंश में रक्त के पुत्र महाराज गय हुए। इनकी कीर्ति की पताका चारों दिशाओंमे फैली। इनकी माता का नाम था- द्रुति। इनमें सत्त्वगुण की प्रबलता थी अत: लोगों के द्वारा इन्हें भगवान विष्णु का अंश माना जाता था। यह पिता के समान प्रजा का पालन करते थे। इनकी घोषणा थी कि जिसे जो कुछ चाहिये वह मुझसे मांग कर ले जाय। अभिमान इन्हें छू तक न गया था। इन्होंने भागवदर्पण बुद्धि से बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया था। यह भगवान यज्ञपुरुष के परमाराधक थे।

ये बड़े ही कर्मकाण्डी, दानी थे। ये अपने समस्त धन को यज्ञ-याग आदि शुभ कार्यों में लगाकर उसका सदा सदुपयोग करते रहते थे। वे अपनी प्रजा का औरस पुत्रों के समान पोषण, लालन, पालन, पीणन और मनोरंजन करते रहते थे। वे निरन्तर यज्ञ-यागों में ही लगे रहते थे, किन्तु स्वयं उन यज्ञों से कोई सांसारिक कामना नहीं रखते थे, जो कुछ किया, उसे उसी क्षण कृष्णार्पण कर दिया। मेरे इन यज्ञादि कार्यों से सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्ण प्रसन्न हों। इस प्रकार निष्काम कर्म करते-करते उनका अंत:करण विशुद्ध निर्मल आदर्श के समान स्वच्छ बन गया। वे सदा सत्पुरुष, साधु, महात्मा, ज्ञानी तथा भगवद्भक्तों की अव्यग्र भाव से चरण-सेवा करते रहते थे। जो साधु-सन्तों की श्रद्धा से सेवा करते हैं, उनकी सेवासे सन्तुष्ट होकर साधु पुरुष उन्हें सर्वश्रेष्ठ अपने पास जो वस्तु हैं, उसे दे देते हैं। साधु पुरुषों के समीप सर्वश्रेष्ठ निधि क्या है- भगवान के त्रैलोक्य पावन सुमधुर मनोहर नाम। राजर्षि गय भी सन्तों द्वारा भगवन्नाम को प्राप्त करके उनका कीर्तन करते, भगवान का ध्यान करते, जिससे उनका चित्त विशुद्ध बन गया अब उन्हें देहादि अनात्म पदार्थों में आत्मबुद्धि नहीं होती थी। उनका

अहंभाव हट गया और वे आत्मा का यथार्थ रूप समझकर उसे ब्रह्मस्वरूप से अनुभव करने लगे। इतने ज्ञानी, ध्यानी विरक्त होते हुए भी वे कर्त्तव्य के वशीभूत होकर संसारी भोगों में तनिक भी स्पृहा न करते हुए राज-काज बड़ी सावधानी से करते थे।

राजर्षि गय ने एक नहीं, असंख्यों यज्ञ किये। सत्ययुग, त्रेता आदि युगों में यज्ञ के समय देवतागण स्वयं साक्षात् अपने स्वरूपों से आते थे और यजमान के दिये हुए हविर्भाग को दिव्य शरीर से पंक्ति में बैठकर पाते थे,ऐसा सुनते हैं। एक बार महाराज गय ने बड़ा भारी सोमयज्ञ किया। उस यज्ञ में सोम नामक एक लता का रस पान किया जाता है। यह लता कलियुग में तो लुप्तप्राय हो जाती है, अन्य युगों में यह होती है इसे बेचनेवाले ब्राह्मण अधम माने जाते हैं। इस लता में यह विशेषता होती है कि अमावस्या को इसमें एक भी पत्ता नहीं रहता। प्रतिपदा को एक पत्ता निकलता है, द्वितीया को दो तथा तृतीया को तीन। इसी प्रकार एक नित्य बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमा को १५ पत्ते हो जाते हैं। फिर एक-एक गिरता जाता है। अमावस्या को सब गिर जाते हैं। सोम बिक्रेता विप्र इसे मन्त्रों द्वारा तोड़कर बेचते हैं। इसे विधिवत् कूटा जाता है, उसमें से एक रस निकलता है, जो मीठा तथा मादक होता है। उसे अधिक पीने से आदमी सुरापायी के समान उन्मत्त बन जाता है। महाराज गय के यज्ञ में बहुत-सा सोमरस निकाला गया था। उसे चसक पान पात्रों में भरकर विधिवत् मन्त्रों द्वारा देवताओं का आह्वान करके उन्हें पिलाया गया था। सुनते हैं, उस यज्ञ में देवराज इन्द्र ने प्रसन्नता के कारण इतना सोम पान कर लिया कि वे उन्मत्त हो गये।

उनके यज्ञ में यज्ञपति भगवान वासुदेव स्वयं प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होकर राजर्षि के दिये हुए हविर्भाग को ग्रहण करते थे। भगवान तो नित्य ही तृप्त हैं, फिर भी उपचार से यज्ञों में वे तृप्त हो जायँ, वे सन्तुष्ट हो जायँ तो उनके सन्तुष्ट होने पर देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग, तिर्यक, जलचर, थलचर, नभचर, तृण, वृक्ष, लता, गुल्म सभी की तृप्ति हो जाती है, सभी सन्तुष्ट हो जाते हैं।

पृथ्वी उनके राज्य में समस्त इच्छित वस्तुओं को स्वत: देती थी। इन्द्र समय-समय पर वर्षा करते थे। वायु समयानुसार शीत, उष्ण, मन्द, तीव्र तथा सुगन्धित बनकर बहती थी। प्रजा के लोग उनका पिता के समान, देवता के समान, इष्टदेव के समान सम्मान करते थे। यद्यपि वे सभी कर्म बिना फल की इच्छा से निष्काम भाव से करते थे, फिर भी उनकी समस्त कामनायें पूर्ण होती थी। वे जो भी मन से इच्छा करते, तत्काल पूरी होती। उनके शस्त्र अमोघ थे। उनके बाण विश्वविजयी थे। वे जिस रण में भी गये, विजय करके ही लौटे उनका पृथ्वीपर कोई शत्रु था ही नहीं, सभी मित्र थे। सभी राजा उनके अधीन थे, सभी अपने रत्नजटित मुकुटों से उनके चरणों की वन्दना करते थे, प्रजा के लोग प्रेम से उन्हें अपनी आय का षष्ठांश लाकर देते थे, तथा उनके राज्य में जो वेदपाठी ब्राह्मणगण धर्म करते थे, उनका षष्ठांश परलोक में जाकर देते थे। इस प्रकार महाराज गय के धर्म से यह समस्त वसुन्धरा समृद्धिशालिनी बन गई। उन धर्मात्मा राजा की सौभाग्यवती धर्मपत्नी का नाम गयन्ती था। वह पति के अनुकूल आचरण करनेवाली पतिपरायण तथा महाराज के पद चिन्हों का अनुसरण करनेवाली परम धार्मिक थी। ऐसी पत्नी को पाकर महाराज परम सन्तुष्ट थे और वे धर्मपूर्वक उसे साथ लेकर यज्ञादि कर्म करते थे।

महाराज गय की पत्नी का नाम था- गयन्ती। गयन्ती के तीन पुत्र थे चित्ररथ, सुगति और अवरोधन। चित्ररथ की पत्नी ऊर्णासे सम्राट का जन्म हुआ। सम्राटके उत्कलासे मरीचि और मरीचिके बिन्दुमतीसे बिन्दुमान पुत्र हुआ। बिन्दुमान के सरघासे मधु, और मधुके सुमनासे वीरव्रत, वीरव्रतके भोजासे मन्थु और प्रमन्थु नामके दो पुत्र हुए। मन्थुके सत्याके गर्भसे भौवन, भौवनके दूषणाके उदरसे त्वष्टा, त्वष्टाके विरोचनासे विरज और विरजके विषूची नामकी भार्यासे शत्जित आदि सौ पुत्र और एक कन्याका जन्म हुआ।

निरन्तर भगवान का चिन्तन करने के कारण इनका अन्त:करण ब्रह्मरूप बन गया था। प्राचीन विद्वानों ने गय के विषय

में यह गाथा गाई है- कोई भी व्यक्ति अपने कर्मों से महाराज गय की बराबरी नहीं कर सकता। वे साक्षात् भगवान की कला ही थे। इनके अतिरिक्त इस प्रकार यज्ञों का विधिवत् अनुष्ठानकर्ता, मनस्वी, बहुज्ञ, धर्मका रक्षक, लक्ष्मी का प्रिय-पात्र, साधु-समाज का शिरोमणि और सत्पुरुषों का सच्चा सेवक और कौन राजा हो सकता है?

श्रद्धा, मैत्री, दया आदि दक्ष की कन्याओं ने, गंगा आदि पवित्र नदियों के साथ उनका अभिषेक किया था। उनके गुणों पर रीझकर पृथ्वी, उनके शासन-काल में प्रजा के सकल मनोरथों को पूरा करती थी। राजाओं ने युद्ध में पराजित होकर उन्हें विविध प्रकार की वस्तुएँ भेंट में प्रदान की थी। उन्हें कोई कामना न थी, तब भी वेदोक्त कर्मोंने उनको सब प्रकारके भोग दिये, राजाओंने युद्धस्थलमें उनके बाणोंसे सत्कृत होकर नाना प्रकारकी भेंटें दी।

ब्राह्मणों को गय ने प्रभूत दक्षिणा वितरित की थी। फलत: ब्राह्मणों ने भी परलोक में अपने पुण्य का छठा हिस्सा उन्हें दिया था। इनके यज्ञ में देवराज इन्द्रने इतना सोमरस का पान किया था कि वे उन्मत्त हो गये थे और उनकी भक्ति से प्रभावित होकर भगवान यज्ञपुरुष ने स्वयं प्रकट होकर उनके यज्ञ में अपना यज्ञ-भाग ग्रहण किया था। जिनके तृप्त होने से सकल ब्रह्माण्ड के प्राणी तृप्त हो जाते हैं।

प्रियव्रत की वंश-परम्परा में अन्तिम राजा थे, विरज। विरज की कीर्ति से प्रियव्रत का वंश वैसे ही विभूषित हुआ, जैसे विष्णु की कीर्ति से देवों की शोभा होती है।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, महाराज प्रियव्रत के वंश में अन्तिम राजा विरज हुए। उन्होंने अपनी सत्कीर्ति से अपने प्रियव्रत वंश की शोभा इसी प्रकार बढ़ाई, जिस प्रकार भगवान विष्णु देवताओं की शोभा बढ़ाते हैं।

ब्रह्म के सम्बन्ध में तो कहा गया है कि पूर्ण में से पूर्ण निकाल लिया जाय तो पूर्ण ही शेष रह जायगा। वह कभी अपूर्ण नि:शेष होगा ही नहीं।

राजर्षि भरत का वंश

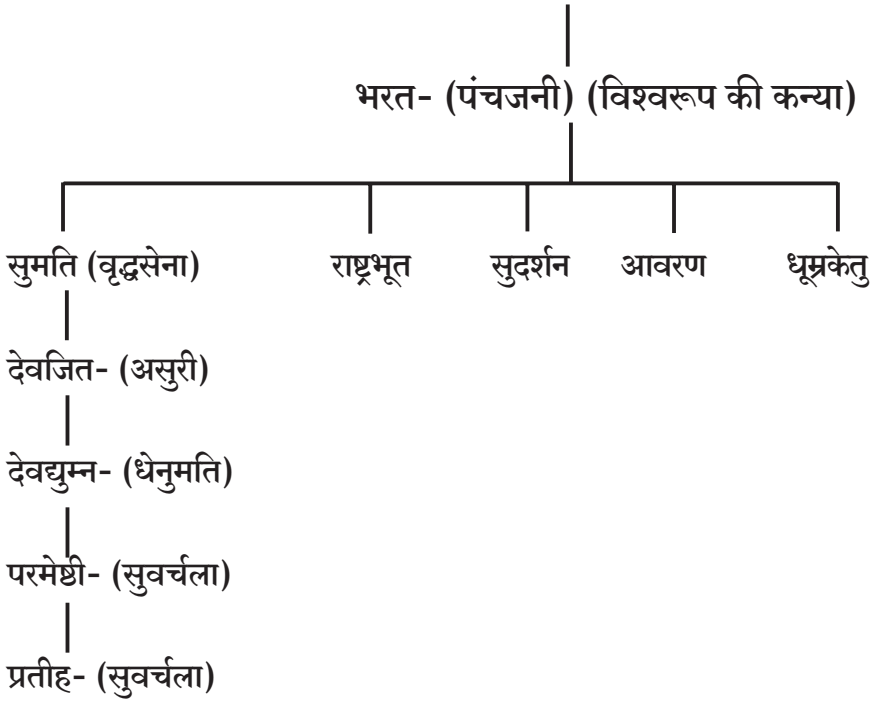

प्रतीह- (सुवर्चला)

प्रतिहर्ता (स्तुति) — प्रस्तोता — उद्गाता

अज

भूमा (ऋषिकुल्या)

उदगीथ (देवकुल्या

प्रस्ताव (नियुत्सा)

विभु (रति)

पृथुषेण (आकूति)

रक्त (द्रूति)

राजर्षि गय (गयन्ति)

चित्ररथ (उर्णा) — सुगति — अवरोधन

सम्राट (उत्कला)

मरीचि (बिन्दुमती)

बिन्दुमान (सरघा)

मधु (सुमना)

मधु (सुमना)

वीरव्रत (भोजा)

मन्थु (सत्या) — प्रमन्थु

भावन (दूषणा)

विरज (विषूचि) — त्वष्टा मुनि (रोचना)

शतजित और सौ कन्याएं

संनिवेश — विश्वरूप

प्रचिनबर्हि (समुद्रपुत्री शतद्रुती)

१० प्रचेता- पत्नी व्राक्षी की पुत्री मारिषा
जिसे वृक्षोंने पाला
कन्डु ऋषि और प्रम्लोचा
(अप्सरा से उत्पन्न)

प्रचेतस प्रजापति दक्ष- पंचजन की कन्या असिकी

१० हजार पुत्र — १ हजार पुत्र शबलाश्व — ६० पुत्रियां
हर्यश्रव

६० पुत्रियों का विवाह

२७ चन्द्रमा को
१० धर्मको
१७ महर्षि कश्यप को
२ भूत को
२ अंगिरा
२ कृशाश्व प्रजापति

शुकदेव कहते हैं- राजन्। मैंने तुम्हें राजर्षि गय का चरित्र सुनाया था। अब महाराज गय से आगे धर्मात्मा मनुपुत्र प्रियव्रत के वंश का श्रवण कीजिये। महाराज गय की धर्मपत्नी गयन्ती से चित्ररथ, सुगति और अवरोधन ये तीन पुत्र हुए। चित्ररथ की पत्नी ऊर्णा से महाराज सम्राट का जन्म हुआ और सम्राट ने अपनी उत्कला नाम्नी पत्नी में मरीचि नामक सुत को उत्पन्न किया। महाराज मरीचि की बिन्दुमती भार्या से बिन्दुमान् नामक तेजस्वी पुत्र हुआ। बिन्दुमान के सरघा नाम वाली स्त्री से मधु नामक राजर्षि हुए। मधु के सुमना नाम वाली धर्मपत्नी से वीरव्रत सुत हुआ और वीरव्रत की भोजा नाम्नी भार्या ने दो पुत्र रत्नों को प्रसव किया, जो जगत् में मन्थु प्रमन्थु नाम से विख्यात हुए मन्थु ने सत्या नाम वाली भार्या का पाणिग्रहण करके उससे धर्मपूर्वक भौवन नामक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न कया। भौवन के दूषणा से त्वष्टा और त्वष्टा की विरोचना नाम्नी भार्या से विरज नामक परमयशस्वी तेजस्वी भगवत्भक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। उन विरज के विषूची नामवाली पत्नी से शतजित् आदि सौ पुत्र और एक कन्या हुई। वैसे तो विरज के पश्चात् इस वंश में और भी बहुत से राजा हुए, किन्तु विरज अपने ढंग के अद्वितीय ही थे। राजर्षि विरज इस वंश के अन्तिम परम धार्मिक, श्रेष्ठ कीर्तिवाले प्रसिद्ध सम्राट माने जाते हैं।

६) खगोल-भूगोल

ब्रह्माण्ड के चौदह भुवनों में से पृथ्वी सहित सात ऊपर और सात नीचे हैं, ऊपर के लोकों में पृथ्वी (भूलोक) और अन्तरिक्ष लोक (भुवर्लोक) हैं- यह दोनों भौम सर्ग कहलाते हैं। इसके ऊपर पाँच लोक स्वर्ग हैं, स्वर्लोक-महिन्द्रलोक है, महर्लोक प्रजापत्य स्वर्ग हैं, तथा जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ब्राह्म स्वर्ग है। इन लोकों में क्रमश: सात्विक योग और सात्विकता का उत्कर्ष होता है।

भूलोक और भुवर्लोक के अन्तर्गत सूर्य, चन्द्रमा, ध्रुव, नक्षत्र, पृथ्वी आदि सब स्थूल लोक हैं। पृथ्वी से नीचे तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल और पाताल हैं। इन नीचे के लोकों को विलस्वर्ग कहते हैं। इनमें ऊपर के लोगों से भी अधिक विषय भोग करने का अवसर हैं। भूलोक का अर्थ केवल पृथ्वी ही नहीं है, उसके अन्तर्गत बहुत से सूक्ष्म और अदृश्य लोक बताये गये हैं। यह सब द्वीप और समुद्र सुमेरु के आधार पर स्थित है, सुमेरू पर्वत स्थूल नहीं दिव्य है। उसी की शक्ति रज्जु में बांधकर यह सबके सब सूक्ष्म लोक स्थित हैं। आजकल जितनी पृथ्वी स्थूल दृष्टि से दिखाई देती है वह जम्बूद्वीप के अन्तर्गत है। जम्बू द्वीप में नौ खण्ड हैं, उनमें एक भारतवर्ष है और शेष देवलोक के ही भेद हैं। भारतवर्ष ही कर्मक्षेत्र है, दूसरे आठ वर्ष (खण्ड) स्वर्ग से लौटे हुए लोगों के लिये शेष पुण्य का भोग-उपभोग करने के स्थान हैं। इससे सिद्ध होता है कि भारतवर्ष के अतिरिक्त पृथ्वी के दूसरे भाग स्थूल नहीं हैं।

भारत वर्ष को छोड़ शेष छ: द्वीप और आठ खण्डों में योगी को छोड़कर कोई भी मनुष्य भौतिक साधनों से नहीं जा सकता। ये भौम स्वर्ग माने गये हैं। इनमें भी वैसे लोग उपासना करते हैं, साधारणतया वर्णाश्रम की सामान्य कल्पना है, किन्तु इन द्वीपों के मनुष्य तो स्वर्ग शेष सुखों को भोगने ही आते हैं। इनकी हजारों वर्षों की आयु होती है। ये देवताओं की भाँति विषय-सुख भोगते हैं। इन द्वीपों में आजीविका की चिन्ता नहीं। नदियाँ, वृक्ष ही सब जीवनोपयोगी सामग्रियों को स्वत: प्रदान करते हैं। यहाँ वृद्धावस्था नहीं होती। बहुत सन्तानें नहीं होतीं। स्त्रियाँ जीवन में एक बार गर्भ धारण करती हैं। सारांश कि इन द्वीपों में स्वर्गीय सभी सुख हैं। वहाँ युगों की भी कल्पना नहीं। त्रेतायुग के समान सर्वदा काल रहता है।

श्रीमद् भागवत में तीन प्रकार की स्थितियों का वर्णन आता है- पृथ्वी लोक की स्थिति ऊर्ध्वलोक की स्थिति और अधोलोक की स्थिति। मनुष्य लोक में चार स्थान कहे गये हैं- मनुष्य लोक नरक लोक, प्रेत लोक और पितृलोक। मनुष्य

लोक में चार प्रकार के शरीर होते हैं- उद्भिज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज। लवण समुद्र के तट पर भारतवर्ष के आग्नेय कोण में निम्न स्तर पर नरक का स्थान है जो कि इन आँखों से देखा नही जा सकता, पापों का फल भोगने को जीव वहाँ जाते हैं। उनका शरीर यातना शरीर कहा गया है। पृथ्वी से ऊपर अन्तरिक्ष में थोड़ी दूर तक प्रेतलोक है जिसमें मृत्यु के अनन्तर वासनाओं से जकड़े हुए जीव वासना शरीर ग्रहण किये हुए हैं। अत: निवास करते हैं।

पितृलोक पुण्यात्माओं का स्थान है, इसमें कुछ नित्य पितर भी रहते हैं, इन सबकी मर्यादा निश्चित है। सूर्य की किरणों का जहाँ तक विस्तार है तथा चन्द्रमा की किरण जहाँ तक पहुँच सकती हैं, उस स्थान का नाम पृथ्वी है- वह चाहे समुद्र, नदी, पर्वत आदि किसी भी रूप में क्यों न हों। पृथ्वी-तत्व प्रधान वायुमण्डल को पृथ्वी कहते हैं और जल तत्त्व प्रधान वायु मण्डल को समुद्र कहते हैं।

राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से पूछा- मुनिवर, जहाँ तक सूर्य तपते हैं और जहाँ तक तारागणों के साथ चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं वहाँ तक भू-मण्डल का विस्तार है।

महाराज प्रियव्रत के रथ के पहियों की सात लकीरों से सात सागर बन गये थे। इन्हीं के कारण इस भू-मण्डल में सात द्वीपों का विभाग हुआ अत: भगवान अब मैं इन सबका परिमाण और लक्षण के सहित पूरा विवरण जानना चाहता हूँ। किसी वस्तु की सिद्धि लक्षण और प्रमाण से ही हुआ करती है।

भू-मण्डल के लक्षण और परिमाण आदि को जानने का कारण यह है कि भगवान के दो रूप हैं- स्थूल और सूक्ष्म। सकल भू-मण्डल भगवान का स्थूल रूप है। स्थूलरूप सगुण होता है और सूक्ष्मरूप निर्गुण। स्थूलरूप को भली-भाँति जान लेने पर सूक्ष्मरूप में मन को लगाना सरल होता है। भगवान के स्वयंप्रकाश निर्गुण स्वरूप को ही वासुदेव कहते हैं अत: गुरुदेव, आप इसका विस्तृत वर्णन करने की कृपा करें।

शुकदेवजी ने कहा- महाराज, लक्षण और प्रमाण दोनोंसे ही वस्तुकी सिद्धि होती है। लक्षण वस्तुमें रहता है और प्रमाण अपने पास रहता है। भगवान के मायागुण का अनन्त विस्तार है। मानव को यदि देव की आयु मिल जाय तो भी वह मन या वाणी से उसका अन्त नहीं पा सकता इसलिये मैं संक्षेप में ही नाम, रूप, परिमाण और लक्षणों के द्वारा मुख्य-मुख्य बातों को लेकर ही इस भू-मण्डल की विशेषताओं का वर्णन करूंगा।

सम्पूर्ण भू-मण्डल कमल-पत्र के समान गोलाकार है। सातों द्वीप भू-मण्डल के उसी प्रकार भीतरी भाग हैं, जैसे कमल के भीतर कोश रहता है। हम जिस द्वीप में रहते हैं उसका नाम जम्बूद्वीप है। जम्बूद्वीप भू-मण्डलरूप कमलकोश का सबसे भीतरी भाग है अर्थात् जम्बू द्वीप भू-मण्डल के मध्य का सबसे भीतरी भाग है। इसमें नौ खण्ड हैं। प्रत्येक खण्ड नौ-नौ हजार योजन विस्तृत हैं। ये खण्ड आठ मर्यादा-पर्वतों से विभक्त हैं। मर्यादा कहते हैं- सीमा को। मर्यादा-पर्वत प्रत्येक खण्ड की सीमा सूचित करते हैं। इन खण्डों के बीच में, मध्य में, इलावृत नामका एक दसवाँ वर्ष है। इलावृत वर्ष के मध्य में कुलपर्वतों का राजा मेरु पर्वत है। यह मानो भू-मण्डलरूप कमल की कर्णिका ही है। समग्र मेरु पर्वत सुवर्णमय है। इसकी ऊँचाई एक लाख योजन है। चार कोश छ: किलोमीटर के बराबर होता है और उसका एक योजन होता है। इस पर्वत का चौरासी हजार योजन भाग पृथ्वी के ऊपर और सोलह हजार योजन पृथ्वी के भीतर घुसा हुआ है अर्थात् भूमिके बाहर उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। यह अपने मूल भाग में सोलह हजार और उर्ध्व भाग में बत्तीस हजार योजन चौड़ा है।

इलावृत खण्ड के उत्तर भाग में नील, श्वेत और श्रृंगवान- ये तीन पर्वत हैं। ये पर्वत क्रमश: रम्यक्, हिरण्मय और कुरु

खण्डों की सीमा निर्धारित करते हैं। ये पूर्वसागर से पश्चिम सागर तक फैले हुए हैं। इनकी चौड़ाई दो-दो हजार योजन है। इलावृत के दक्षिण हिस्से में निषध, हेमकूट और हिमालय- ये तीन पर्वत हरिवर्ष, किम्पुरुष और भारत की सीमा निश्चित करते हैं। ये भी पूर्वसागर से पश्चिम सागर तक फैले हुए हैं। ये पर्वत्त दस सहस्र योजन ऊँचे हैं। इलावृत के पूर्वभाग और पश्चिम भाग में माल्यवान् और गन्धमादन पर्वत हैं। ये केतुमाल और भद्राश्व नामक दो वर्षों की सीमा निश्चित करते हैं।

इनके अतिरिक्त मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद ये चार पर्वत के चारों ओर थूनियों (स्तम्भों) के समान खड़े हैं। ये दस-दस हजार योजन ऊँचे और उतने ही चौड़े हैं। इन चारों पर्वतों पर इनकी ध्वजाओं के समान क्रमश: आम, जामुन, कदम्ब और बड़ के चार पेड़ हैं। इनमें प्रत्येक वृक्ष ग्यारह सौ योजन ऊँचा है और इतना ही इनकी शाखाओं का विस्तार है। इनकी मोटाई सौ-सौ योजन है। इन पर्वतों के ऊपर चार सरोवर भी हैं- जो क्रमश: दुग्ध, मधु, इक्षुरस और मधुरजल से भरे हुए हैं। इनका सेवन करनेवाले यक्ष-किन्नर आदि उपदेवों को अणिमा, महिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ स्वत: प्राप्त होती हैं। इन पर क्रमश: नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र नाम के चार दिव्य उपवन भी हैं। इन उपवनों में अप्सराओं के साथ देवगण विहार किया करते हैं। ग्यारह सौ योजन ऊँचे मन्दर पर्वत पर जो आम्रवृक्ष है उसके अमृतमय बड़े-बड़े फल नीचे गिरने पर फट जाते हैं। उनके सुमधुर सुगन्धित लाल-लाल रस से भरी हुई अरुणोदा नामक नदी बहती है। यह इलावृत वर्ष के पूर्व भाग को सींचती हुई बहती है।

पार्वती जी की अनुचरी यक्षपत्नियाँ इस नदी के जल का सेवन करती हैं। इससे उनके अंगों से ऐसी सुगन्ध निकलती है कि उन्हें स्पर्श करके बहनेवाली वायु उनके चारों ओर दस-दस योजन तक सारे देश को सुगन्ध से भर देती है। इसी प्रकार मेरुमन्दर पर स्थित जम्बूवृक्ष से हाथी के समान बड़े-बड़े प्राय: बिना गुठली के फल गिरते हैं। बहुत ऊँचे से गिरने के कारण वे फट जाते हैं। उनके रस से जम्बू नाम की नदी प्रकट होती है। यह नदी इलावृत वर्ष के दक्षिणी भू-भाग को सींचती है।

सुपार्श्व पर्वत पर स्थित कदम्ब वृक्ष से मधु की पाँच धाराएँ बहती हैं। ये इलावृत वर्ष के पश्चिमी भाग को अपनी सुगन्ध से सुवासित करती हैं। कुमुद पर्वत पर जो वटवृक्ष है, उसका नाम है- शतवल्श। उसकी जटाओं से दुग्ध, दधि, घृत, मधु आदि के नद निकल कर इलावृत के उत्तर भाग को, सींचते हुए प्रवाहित होते हैं। इनके सेवन से शारीरिक विकृति तथा दु:ख की अनुभूति कभी नहीं होती। जैसे कमल की कर्णिका के चारों ओर केसर होता है, वैसे ही मेरू के मूल देश में उसके चारों ओर बीस पर्वत और चारों दिशाओं में विशाल आठ पहाड़ है। इन आठ पहाड़ों से चारों ओर घिरा हुआ सुवर्णगिरि मेरु अग्नि के समान जगमगाता रहता है।

कहते हैं, मेरु के शिखर पर बीचोबीच भगवान ब्रह्मा की सुवर्णमयी पुरी है। इसके चारों कोने सम हैं। यह एक करोड़ योजन विस्तारवाली है। इसका नाम मनोवती है। उसके नीचे पूरब आदि आठ दिशा और उपदिशाओं में उनके अधिपति इन्द्र आदि आठ लोकपालों की आठ पुरियाँ हैं। इन पुरियों में प्रत्येक का परिमाण ढाई हजार योजन है।

गंगा की उत्पत्ति कही, व्यास पुत्र हरषाय। जिहि विधि आई भूमि पर, कथा कही समझाय।।

श्री शुकदेव कहते हैं- राजन्, बलि ने यज्ञमूर्ति वामन भगवान को तीन पग पृथ्वी दान कर दी। दान करते ही वामन विशाल बन गये। उन्होंने एक पग से पृथिवी को नापकर बायाँ पैर ऊपर के लोकों को नापने के लिये उठाया। उस समय उनके अँगूठें के नख के आघात से ब्रह्माण्ड का ऊपरी भाग फट गया, जिससे ब्रह्माण्ड के बाहर की जल-धारा ने भीतर आकर उनके चरण-कमल को धोया। इसीसे उसका नाम भगवत्पदी पड़ गया। इसे ही विष्णुपदी भी कहते हैं। विष्णुपदी

की निर्मल धारा का स्पर्श होते ही संसार के सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं फिर भी यह सर्वथा निर्मल ही बनी रहती है। हजारों वर्ष के बाद वह धारा स्वर्ग के शिरोभाग में स्थित ध्रुव-लोक में उतरी। यह हमारे कुल देवता का चरणोदक है- ऐसा सोचकर ध्रुव ने बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ उसे प्रणाम किया, आचमन किया, सिर पर छिड़का और रोमांचित हो गद्‌गद कण्ड से चिरकाल तक उसकी स्तुति की। स्तुति की बेला में उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी।

इसके पश्चात् सप्तर्षियों ने उसे अपने जटामण्डल में धारण किया। वे उसे अपनी तपस्या का अखण्ड फल समझते थे। उनका कहना था- यही तपस्या की आत्यन्तिक सिद्धि है। उसी निर्मल जल-धाराने सप्तर्षि लोक से उतरकर चन्द्रमण्डल को आप्लावित किया। पुन: वह वहाँ से उतर कर सुमेरू के ऊपर ब्रह्मलोक में आ गिरी। वहाँ वह सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नाम से चार धाराओं में विभक्त हो जाती है तथा अलग-अलग चारों दिशाओं में बहती हुई अन्त में सागर में मिल जाती है। इसी प्रकार चक्षु माल्यवान के शिखर पर पहुँच कर वहाँ से केतुमाल वर्ष में बहती हुई पश्चिम की ओर क्षार सागर में जा मिलती है। भद्रा मेरु पर्वत के शिखर से उत्तर की ओर गिरती है। वहाँ वह श्रृंगवान पर्वत से होकर उत्तर कुरुखण्ड से होती हुई उत्तर दिशा के समुद्र में जा मिलती है। इसी प्रकार अलकनन्दा नाम की चौथी धारा ब्रह्मपुरी से दक्षिण की ओर गिर कर अनेकों गिरि-शिखरों को लाँघती हेमकूट पर्वत पर पहुँचती है। वहाँ से वह भारतवर्ष के भीतर से बहती हुई दक्षिण दिशा के समुद्र में जा मिलती है। विष्णुपदी की सभी धाराओं में यह सर्वाधिक महिमा-मण्डित है। इसीको गंगा कहते हैं। इसमें स्नान करने के लिये आनेवाले पुरुषों को पद-पद पर अश्वमेघ और राजसूय आदि यज्ञों का फल मिलता है। इसी प्रकार विभिन्न खण्डों में मेरु पर्वत से निकली हुई बहुत-सी नदनदियाँ प्रवाहित होती हैं।

देवराज इन्द्र ने महाराज भगीरथ से कहा- राजन्। ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी दुर्लभ गंगा को आप संपूर्ण रूप से पृथ्वी पर ही क्यों ले जा रहे हैं? गंगा की एक ललित धारा स्वर्ग में भी रहे।

देवराज इन्द्र की बात सुनकर राजा भगीरथ ने भगवती गंगा से प्रार्थना की- माता गंगे। आपकी एक धारा देवताओं को पवित्र करने के लिए स्वर्ग में भी रहे। राजा भगीरथ की प्रार्थना सुनकर द्रवमयी गंगा दूसरी महाधारा के रूप में परिणत होकर उत्तर दिशा की ओर चल पड़ी। स्वर्गलोक को पवित्र करने वाली वह महापुण्यमयी धारा मंदाकिनी नाम से विख्यात है और स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित है।

भागीरथी- पुण्यसलिला गंगा। राम, लक्ष्मण तथा ऋषियों सहित मुनि विश्वामित्र ने मिथिला के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में विश्राम करते हुए विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को अनेक वृत्तांत सुनाते हुए कहा- राम। गंगा का साथ लेकर राजा भागीरथ ने समुद्र तक जाकर रसातल में, जहां उनके पूर्वज भस्म हुए थे, प्रवेश किया। वह भस्मराशि गंगा के जल में डूब गई। उस समय लोकसृष्टा ब्रह्मा ने राजा भगीरथ से कहा- राजन्। राजा सगर के साठ हजार पुत्रों का तुमने उद्धार कर दिया। अब वे देवताओं की भांति स्वर्गलोक में पहुंच गए हैं, यह गंगा तुम्हारी भी ज्येष्ठा पुत्री होकर रहेगी और तुम्हारे नाम के ही अनुरूप भागीरथी नाम से इस जगत में विख्यात होगी।

जान्हवी- राजा भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर देवनदी गंगा आकाश से भगवान शंकर के मस्तक पर और वहां इस पृथ्वी पर आईं। वे महाराज भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे चलने लगीं। जिस ओर राजा भगीरथ जाते, उसी ओर समस्त पापों का नाश करनेवाली गंगा भी जाती थीं। उसण समय मार्ग में महा तेजस्वी राजा जह्नु यज्ञ कर रहे थे। गंगा अपने जलप्रवाह से उनके यज्ञमंडप को बहाकर ले गईं। इससे राजा जह्नु कुपित हो गए और उन्होंने गंगा के समस्त जल को पी लिया। यह देखकर देवता,

गंधर्व तथा ऋषि सभी ने विस्मित होकर महाराज जह्नु की स्तुति करके गंगा को उनकी कन्या बना दिया। (अर्थात् उन्हें यह विश्वास दिलाया कि गंगा को प्रकट करके आप इनके पिता कहलाएंगे।) महातपस्वी नरेश जह्नु ने प्रसन्न होकर अपने कानों के छिद्रों द्वारा गंगा को पुन: प्रकट कर दिया। इसलिए गंगा जह्नु की पुत्री अर्थात जान्हवी कहलाती हैं।

गंगा की महता- एक समय महादेवजी पार्वती को साथ लेकर मकर महीने में गंगास्नान करने के लिए प्रयागराज को जा रहे थे। राह में पार्वतीजी ने बहुत लोगों को जाते हुए देखकर महादेवजी से गंगास्नान का माहात्म्य पूछा। शिवजी ने कहा- हे पार्वती। जो कोई अपने घर से गंगा नहाने चले, उसको एक-एक पग चलने में सौ-सौ अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है और करोड़ों जन्म के पाप छूट जाने से वह देवता के समान हो जाता है। यह वचन सुनने व यात्रियों को देखने से पार्वतीजी ने यह सन्देह किया कि लाखों नीच जाति के मनुष्य गंगाजी में नहाकर चले जाते हैं, पर इन लोगों की गंगास्नान करने से अभी तक कुरूपता भी नहीं गई, देवता का तन किस तरह पावेंगे। महादेवजी जैसा कहते हैं, इतने यात्रियों को वैसा फल किस तरह मिलेगा। ऐसी शंका करके पार्वतीजी फिर विनयपूर्वक बोली कि महाराज, आपने गंगाजी का माहात्म्य इस तरह वर्णन किया और इन यात्रा करनेवालों का रूप देखने से मुझे इस बात की प्रतीति नहीं होती। महादेवजी बोले कि इनका भेद हम तुमसे क्या कहें, चलो आँख से दिखलावें। यह कहकर जब शिवजी गंगा के निकट पहुँचे तब वहाँ कोढ़ीरूप बनकर बैठ गये और पार्वतीजी से बोले कि तुम दिव्यरूपी अतिसुन्दरी होकर मेरे शरीर की मक्खी उड़ाओ। स्नान करनेवाला जो कोई तुझसे पूछे तो उससे यह कहना कि हमारा पति कोढ़ी हो गया है, सो एक पण्डित ने कर्मविपाक की पोथी देखकर बतलाया है कि जिस किसी ने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हों वह इनको अपने हाथ से छू दे तो इनका कोढ़ छूट जावे। यहाँ लाखों मनुष्य नहाने आये हैं, इसलिए इनको यहाँ लाकर बैठी हूँ कि जिसने सौ यज्ञ किये हों वह इनको छू दे तो इनका यह तनु अच्छा हो जावे। जब पार्वतीजी देवकन्या के समान बनकर मक्खी उड़ाने और यही बात कहने लगी तब बहुत से यात्री उनका रूप देखते ही मोहित होकर उनके चारों ओर खड़े हो गये। उनमें कोई पार्वती को अपने साथ चलने के लिए कहता, कोई उनसे हँसी ठट्ठा करता और कितनों ने अनेक तरह का डर व लोभ उन्हें दिखलाया। ज्ञानी लोगों ने कहा कि इस स्त्री को धन्य है कि जो इस दशा में भी अपने पति की सेवा नहीं छोड़ती। उसी समय एक कंगाल दुर्बल ब्राह्मण उनको देखते ही निकट आकर दण्डवत् करके पार्वतीजी से बोला कि हे माता, तुम किस इच्छा से यहाँ भीड़ में बैठी हो, कहीं एकान्त में अपने पति को ले जाकर उसकी सेवा करो, जिसमें मक्खी आदि बैठने से यह दु:ख न पावे। यह वचन सुनकर पार्वती बोलीं- मेरे पति के कर्मविपाक में ऐसा निकला है कि जिसने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हों वह इनको छू दे तो इनका शरीर अच्छा हो जाय, इसी इच्छा से मैं इन्हें यहाँ लाकर बैठी हूँ कि इस पर्व में लाखों मनुष्य आवेंगे, किसी ने तो सौ अश्वमेध यज्ञ किये होंगे, जिसके छूने से हमारे स्वामी का रोग छूट जायगा। यह बात सुनकर वह ब्राह्मण बोला- यह कौन बड़ी बात है। तुम तो सौ अश्वमेध यज्ञ करने को कहती हो मैंने लाखों अश्वमेध यज्ञ किये हैं, जिनकी गिनती तुम नहीं कर सकतीं। यह वचन सुनते ही पार्वतीजी विनयपूर्वक बोलीं कि महाराज। आप दया करके इनको छू दीजिए। जैसे ही उस ब्राह्मण ने शिवजी के अंग में अपना हाथ लगाया वैसे ही महादेवजी दिव्यरूप अश्विनीकुमार के समान हो गये। यह हाल देखकर पार्वती और सब यात्रियों को इस बात का सन्देह हुआ कि इस ब्राह्मण की उम्र तीस वर्ष की होगी और यह कंगाल है, सौ अश्वमेध यज्ञ करने में सौ वर्ष और बहुत सा द्रव्य व सेना, दूसरे राजाओं को जीतने के लिए चाहिए, इसने किसी तरह सौ यज्ञ किये होंगे, शिवजी अन्तर्यामी ने उनका सन्देह छुड़ाने के लिए यात्रियों के सामने उस ब्राह्मण से पूछा कि महाराज। तुमने इतनी अवस्था में लाखों यज्ञ किस तरह किये होंगे। वह ब्राह्मण बोला- सुनिए महाराज। यज्ञ की विधि और

उसका फल शास्त्रानुसार होता है। उसी शास्त्र में गंगास्नान का माहात्म्य ऐसा लिखते हैं कि जो कोई गंगा स्नान करने को अपने घर से चले उसको एक-एक पग चलने में सौ-सौ अश्वमेध का फल मिलता है, सो मैं अपने घर से नित्य गंगास्नान करने को कोस भर हजारों पग चलकर आता हूँ। उस हिसाब से लाखों कौन चीज हैं, कई करोड़ अश्वमेध यज्ञ कर चुके होंगे। इसमें आश्चर्य किस बात का है। यह बात सुनकर महादेवजी ने पार्वती व यात्रियों से कहा- ब्राह्मण सच कहता है। शिवजी ऐसा कहकर अपने स्थान को चले। राह में पार्वती से बोले कि देखो हमारे कहने के अनुसार इस ब्राह्मण को गंगास्नान के फल मिलते हैं। सब यात्री वेद के वचन पर विश्वास नहीं रखते, इसलिए यह फल उनको नहीं प्राप्त हो सकता। इसलिए वेद व शास्त्र को सुनकर उस पर विश्वास करना चाहिए।

नाभि के नाम से जो वर्ष हैं वही उनके पुत्र भरत के नाम से भारत वर्ष कहलाया। भारत वर्ष के अतिरिक्त पृथ्वी पर दूसरे भाग स्थूल नहीं है। जितने देश अथवा द्वीप उपलब्ध होते हैं, वे सब भरतवर्ष के ही अन्तर्गत हैं। वर्तमान काल में एशिया, अमेरिका, योरोप, अफ्रिका आदि उनका नाम हो गया है, किन्तु हैं वे सब भारतवर्ष के ही प्रदेश है। भारत वर्ष के नौ भाग - इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व और वारुण तथा भारतद्वीप।

इन सब वर्षों में भारतवर्ष ही कर्म-भूमि है, शेष आठ वर्ष भोग-भूमि हैं। इन में प्राणी स्वर्ग-भोग से बचे हुए पुण्यों को भोगने के लिये आते हैं इसीलिये उन्हें भू-लोक का स्वर्ग (भौम स्वर्ग) भी कहते हैं। वहाँ के मनुष्यों की आयु दस सहस्र वर्ष की होती है। उनमें दस सहस्र हाथियों का बल होता है तथा उनके वज्र-सदृश शरीर में शक्ति, यौवन और उल्लास होते हैं। इनके कारण वे दीर्घकाल तक मैथुन आदि का सुख भोगते रहते हैं। अन्त में जब भोग समाप्त होने पर उनकी आयु का केवल एक वर्ष शेष रह जाता है, तब उनकी स्त्रियाँ गर्भ धारण करती हैं। इस प्रकार वहाँ सर्वदा त्रेतायुग के समान समय बना रहता है। वहाँ के निवासी परम सुन्दरी देवांगनाओं के हाव-भाव, कटाक्ष-पात आदि से आकृष्ट होकर विविध प्रकार की क्रीड़ाओं में निमग्न रहा करते हैं।

इन नवों वर्षों में परमपुरुष भगवान नारायण, वहाँ के पुरुषों पर अनुग्रह करने के लिये, इस समय भी अपनी विभिन्न मूर्तियों से विराजमान रहते हैं। इलावृत वर्ष में एक मात्र भगवान शंकर ही पुरुष हैं। श्री पार्वती जी के शाप को जाननेवाला कोई दूसरा पुरुष वहाँ प्रवेश नहीं करता; क्योंकि वहाँ जो जाता है, वह स्त्रीरूप हो जाता है। वहाँ भगवान शंकर अपने इष्टदेव श्री संकर्षण (बलराम) के मन्त्र का जप करते हुए उनकी इस प्रकार स्तुति करते हैं- ॐ जिनसे सभी गुणों की अभिव्यक्ति होती है, उन अनन्त और अव्यक्त मूर्ति ओंकारस्वरूप परम पुरुष श्री भगवान को नमस्कार है।

हम सम्पूर्ण ऐश्वर्य के आश्रय भगवान की आराधना करते हैं। वही संसार-सागर से मुक्त करनेवाले हैं। उनकी दृष्टि माया में कभी भी आसक्त नहीं होती। भला कौन ऐसा पुरुष है, जो उनका भजन न करे? जो असद्दर्शी हैं, उन्हें ही संकर्षण प्रभु उन्मत्त-से दिखलाई पड़ते हैं। नाग-पत्नियाँ उनका भजन करती हैं। उनमें कर्तृत्व का नाम भी नहीं हैं। यह पृथ्वी-मण्डल उनके सिर पर सरसों के दाने के बराबर है। वे विज्ञान-मूर्ति हैं। हम सब उनके अधीन हैं और उनके अनुग्रह से ही सारी सृष्टि करते हैं।

भगवान शंकर कहते हैं- सत्त्वादि गुणों की सृष्टि से मोहित हुआ यह जीव आपकी ही रची हुई तथा कर्म-बन्धन में बाँधनेवाली माया को तो कदाचित जान भी लेता है, किन्तु उससे मुक्त होने का उपाय उसे सुगमता से नहीं मालूम होता। इस जगत् की उत्पत्ति और प्रलय भी आपके ही रूप हैं। ऐसे आपको मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।

जो व्यक्ति सैकड़ों योजन की दूरी से भी गंगा-गंगा कहता है, वह सारे पापों से मुक्त होकर विष्णु-लोक में जाता है।

बात अति प्राचीन है। हरिद्वार से कुछ दूरी पर एक परम धार्मिक वैश्य रहते थे। उनकी पत्नी भी महान् आस्तिक थी। किन्तु

दैव-दुर्योग से उनका एकमात्र पुत्र नास्तिक और दुराचारी था। सत्पुरुषों की निन्दा करना, मैले-कुचैले वस्त्र धारण करना, नीचों की संगति करना तथा बात-बात में क्रोध करना उसका स्वभाव था। वह तरुण हो गया था। परन्तु उसकी दुराचारिता दूर न हुई। इससे सेठजी खिन्न रहते थे। एक बार परिवार और पुरोहित के साथ हरिद्वार हरकी पैड़ी में गंगा-स्नान का कार्यक्रम उन्होंने बनाया। तैयारी की और घर से निकल पड़े। गंगा अभी कुछ दूर थीं। सूर्यास्त हो गया। वैश्य ने वहीं डेरा डाल दिया। पुरोहित जी ने सबका भोजन तैयार किया। फिर शौच के लिये बाहर गये। उन्होंने देखा कि एक स्थान पर विवाह की तैयारी में उत्सव मनाया जा रहा है। पुरोहित जी वहाँ गये और पूछा- आप लोग कौन हैं और किस बात का उत्सव मनाया जा रहा है? उत्तर मिला- हम प्रेत हैं। कल हमारी बेटी का विवाह है अत: उत्सव मनाया जा रहा है। आपके साथ जो सेठ का लड़का है, उसी के साथ मेरी लड़की का विवाह होगा वह महान् पापी है। मरेगा तो प्रेत होगा। कल उसकी मृत्यु सुनिश्चित है।

ब्राह्मण देवता लौट आये। किसी से बिना कुछ कहे खा-पीकर सो गये। प्रात:काल हुआ। सब गंगाजी की ओर बढ़े। अभी गंगा जी आधा मील दूर थीं कि उधर से एक भयंकर साँड़ दौड़ता हुआ आया। उसने गंगाजी के तट को अपनी सींगों से कुरेंदा था अत: वहाँ की मिट्टी उसकी सींगों में लगी थी। उसने आकर क्रोध के मारे, सेठ के लड़के के पेट में अपनी सींगों को घुसेड़ दिया फलत: वह तुरन्त गिर कर मर गया। नहाने की बात तो दूर रही। अब उसका अग्नि-संस्कार कर वे सब रोते-कलपते घर के लिये लौट पड़े और रात्रि में वहीं विश्राम किया जहाँ पीछे की रात्रि में सोये थे। वहाँ पुरोहित जी ने उसी स्थान पर भूतों-प्रेतों को रोते देखा। पुरोहित जी ने पूछा- प्रेतों, क्यों रो रहे हो उत्तर मिला- महाराज, सेठ का पापी बच्चा मरने पर प्रेत होनेवाला था। तभी मेरी बेटी की उससे शादी होती किन्तु क्या कहें, मरने की बेला में उसके पेट में गंगाजी की मिट्टी चली गई। इससे वह कर्म-बन्धन से मुक्त होकर सीधे वैकुण्ठ चला गया। यह सुनकर पुरोहित जी को महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपना शेष जीवन गंगा के तट पर निवास कर व्यतीत करने का संकल्प मन-ही-मन ले लिया। यह है गंगा की महिमा जो अनन्त है।

सत्ययुग में सभी तीर्थ महत्त्वशाली थे, त्रेता में पुष्कर क्षेत्र, द्वापर में कुरुक्षेत्र, कलियुग में गंगा। गंगा के परम पुनित जल कण से युक्त वायु के स्पर्श मात्र से ही पापी परम गति को प्राप्त करते हैं। गंगा जल साक्षात बहता हुआ ब्रह्म है। गंगाजी की महिमा सभी ने गाई है। आद्य गुरु शंकराचार्य, जहनूमुनि, कालिदास, संत तुलसीदास, वेदव्यास, महर्षि बाल्मिकि, योगीराज भर्तृहरि आदि। पुण्यमयी गंगा अपना दर्शन करने तथा अपने जल का स्पर्श करने मात्र से प्राणियों के महापातकों का नाश कर देती है तथा उन्हें मोक्ष फल प्रदान करती है। गंगा समस्त कामनाओं की सिद्धि करनेवाली, सभी प्रकार के पापों का नाश करनेवाली, समग्र अमंगलों को मिटा देनेवाली तथा सभी सम्प्रदाओं को प्रदान करनेवाली है किसी भी क्रिया के आरम्भ में यदि कोई त्रैलोक्यपावनी गंगा का स्मरण करे तो अवधिपूर्वक की गयी वह क्रिया सफल हो जाती हैं। ब्रह्म हत्या करनेवाला मनुष्य भी गंगा के दर्शन मात्र से क्षण भर में घोर पापों से मुक्त हो जाता है। विशेष पर्व तिथियों में जैसे माघ मास की शुक्लपक्ष की सप्तमी, पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा, चैत्र की त्रयोदशी, गंगादशमी, संक्रांति, ग्रहण आदि में लोग इसमें स्नान करते है तथा सभी पापोंसे छूट जाते हैं। गंगा में पितरों का तर्पण करने से पितर, निर्विकार ब्रह्मलोक में जाते हैं। गंगा के सान्निध्य में किये गये दान, ध्यान, जप, होम, पूजन तथा श्राद्ध तर्पण आदि पुण्यकारक होते हैं। हरिद्वार-प्रयाग-गंगासागर-काशी आदि स्थानों पर महान फल प्रदान करती है गंगा। ज्ञानपूर्वक गंगा में देह त्याग करनेवाला, पाप से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है।

गंगाजी के प्रकट होने की तिथि ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी मानी गई इसको गंगा दशमी या गंगा दशहरा भी कहते हैं। भारतीय संस्कृति में तप को सर्वोच्च माना गया है। राजा भागीरथ ने हजारों वर्षों तक तपस्या करके ब्रह्माजी को प्रसन्न किया। ब्रह्माजी प्रसन्न हुए तब शिव की तपस्या की। शिव प्रसन्न हुये और वर माँगने के लिए कहा। भागीरथ ने

ब्रह्माजी द्वारा कमण्डल से विसर्जित विष्णु के प्रवाह को रोकने की प्रार्थना की।

भगवान शंकर ने स्वीकृति दी। कमण्डल से जल बिन्दुओं को छोड़ा उस प्रबल प्रवाह को शंकरजी ने अपनी जटाओं में रोक लिया और एक वर्ष तक चक्कर काटने पर राजा भगीरथ ने शिव से प्रार्थना की शिव ने प्रसन्न होकर अपनी एक जटा को खोला उससे निकलने वाली नदी का नाम अलकनन्दा पड़ा। जलधारा हिमालय से मंथर गतिपूर्वक पृथ्वी की ओर प्रवाहित हुई और मन्दाकिनी नाम पड़ा। राजा भगीरथ ने अपने पूर्वजों के उद्धार हेतु (सगर के साठ हजार पुत्र) गंगाजी को पृथ्वी पर लाये और भागीरथी नाम पड़ा। गंगा की उत्पत्ति हिमालय की पत्नि मैना से भी बताई गई। गंगा उमा से ज्येष्ठ थी। कपिल मुनि के आश्रम तक गंगा गई व सागर पुत्रों का उद्धार किया और वे सभी दिव्यरूपधारी होकर दिव्य लोकों में चले गये। गंगा त्रिपथगामिनी, त्रिपथगा और स्त्रिस्त्रोता नाम से भी जानी जाती है। महान कल्याण के लिये राजा भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर लाये। गंगाजी की महिमा अपरम्पार है। गंगा स्नान से जो फल मिलता है उससे ग्रहपीड़ा नहीं होती, रोगों से कष्ट नहीं होता, शत्रुओं से भय नहीं होता, मृत्यु का भय नहीं होता। गंगा की भक्ति में तत्पर रहनेवाला मनुष्य जिस देश में रहता है वह देश भी परम सौभाग्यशाली है। गंगा का नाम ही परमसुख या परम तप है। गंगा से समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है।

भगवती गंगा नदी नहीं अपितु हमारी आस्था, निष्ठा एवम् श्रद्धा का दिव्य प्रवाह है। पुण्यसलिला भगवती भागीरथी की सतत प्रवाही पीयूषधारा भारतीय संस्कृति की प्रत्यक्ष आधारशिला एवम् जीवन्त प्रेरणा रही है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारे साथ चलती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से इसका पानी गुणकारी है। इसमें कीड़े नहीं पड़ते। इसे हम माता के समान पूजते हैं। स्वर्ग के देवता भी इसमें स्नान को लालायित रहते हैं- पितर भी इच्छा रखते है कि मेरे परिवार में कोई भगीरथ की तरह हो जो हमारा गंगा स्नान से उद्धार करें। गंगा स्नान करनेवाले को स्नान आदि करने के पश्चात् मंदिर दर्शन, भेंट पूजा, तीर्थ पुरोहित को भोजन, वस्त्र, दक्षिणा दें व आशीर्वाद लेवें। गरीब असहाय व्यक्ति को भोजन-वस्त्र, गायों को चारा, पक्षियों को दाना आदि देना चाहिये। सब लोकों में ब्रह्मलोक उत्तम है। उसी प्रकार समस्त नदियों व सरोवरों से श्रेष्ठ गंगा है। गंगाजी की महिमा के विषय में जो कुछ कहा जाये, उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, क्योंकि गंगाजी भगवान के चरण कमल से निकली है।

गंगा को दूषित व प्रदूषण मुक्ति की गम्भीर समस्या है इसको हमें बचाना है सरकारी नीतियाँ, आम लोगों की गन्दी आदत और स्थानीय लोगों की उपेक्षा से आज यह गम्भीर समस्या है। उसमें अमृत की जगह विष पैदा हो रहा है कारखानों के कचरे, गलियों की गन्दगी। इसने सबके मैल धोये हैं अब इसका मैल कौन धोयेगा। गंगा प्रदूषण की बात आज पूरे देश में उठाई गई है। भारत के सन्त समाज व सहयोगी संस्थायें व राज्य सरकार भी चिन्तित है इसके लिए सभी को मिलकर प्रयत्न करना चाहिये। प्रत्येक जन-मानस में धार्मिक आस्था प्रस्थापित करना पड़ेगा। हम उस देश के वासी हैं जिस देश में गंगा बहती है।

नाम लिये कितने तरि जात, प्रणाम किये सुरलोक सिधारे।
तीर गये तो तरे तो कहाँ, कितने तरिजात तरंग निहारे।।
तरंगिनि तेरो सुभाव यह, कवि केशव तो उर में पन धारे।
भागीरथी हम दोष भरे, पर भरोस यही कि परोस तिहारे।।

वर्ष नाम वर्णन कियौ, ब्यास पुत्र सुज्ञान। विविध रूप धरि के प्रभु, पूजा लेत महान्।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- राजन्, भद्राश्व वर्ष में धर्मपुत्र भद्रश्रवा और उनके मुख्य-मुख्य सेवक भगवान की जो हयग्रीव मूर्ति है, उसकी उपासना करते हैं। हयग्रीव भगवान चतुष्पाद हैं। उनका मुखारविन्द घोड़े के मुख जैसा है। उनकी

हिनहिनाहट से भगवान वेद प्रकट होते हैं। प्रलय की बेला में जब असुर वेद को चुरा ले जाता है, तब भगवान हयग्रीव प्रकट होकर उसकी रक्षा करते हैं।

अपने सेवकों के साथ भद्रश्रवा हयग्रीव भगवान का पूजन, उनके मन्त्र का जप और उनका भजन करते हैं।

प्रभो, बड़े-बड़े विद्वान जगत् को नश्वर बतलाते हैं। अध्यात्मवेत्ता योगी-जन विश्व की क्षणभंगुरता को अपनी खुली आँखों से देखते भी हैं किन्तु फिर भी वे माया के चक्कर में पड़ जाते हैं। अजन्मा स्वामिन्, आप अनादि हैं, आप की लीला विस्मयकारिणी है।

हरिवर्ष में भगवान नृसिंहरूप में निवास करते हैं। कितनी विचित्र बात है कि सिर सिंह का और धड़ मनुष्य का है। पवित्र भावनावाले भक्त शिरोमणि प्रह्लाद जी अपने अनुयायियों के साथ उनकी उपासना करके स्तुति करते हैं- नाथ: विश्व का कल्याण हो, दुष्टों की बुद्धि शुद्ध हो, सब प्राणियों में परस्पर सद्भावना हो, सभी एक दूसरे का हितचिन्तन करें, हमारा मन शुभ मार्ग में प्रवृत्त हो और हम सब की बुद्धि बिना किसी कामना के भगवान श्रीहरि में लग जाये। संसार को एक शाश्वत सन्देश देते हुए प्रल्हाद भगवान की भक्ति की महत्ता प्रकट करते हुए कह रहे हैं- जिस व्यक्ति की भगवान में निष्काम भक्ति हैं, उसमें सारे गुणों के साथ देवता निवास करते हैं। किन्तु जो भगवान का भक्त नहीं है, उसमें महापुरुषों के गुण कहाँसे आ ही सकते हैं? वह तो नाना प्रकार की इच्छाओं के साथ नश्वर तुच्छ विषयों के ही पीछे दौड़ता रहता है।

अत: असुरगण, तुम लोग तृष्णा, राग, विषाद, क्रोध, अभिमान, इच्छा, भय, दीनता और मानसिक सन्ताप के मूल तथा जन्म-मरण के कारण गृह आदि को छोड़कर भगवान नृसिंह के निर्भय चरण कमलों का आश्रय लो। केतुमाल वर्ष में कामदेव के रूप से भगवान लक्ष्मी के साथ विहार-विलास करते हैं। लक्ष्मीजी अपनी सेविकाओं के साथ उनकी उपासना करती हैं, उनके मन्त्र का जप करती हैं और करती रहती हैं उनकी स्तुति भी।

प्रह्लाद ने नृसिंह भगवान से वरदान माँगा- आप अपने जीवों को जिस-जिस योनि में चाहें जन्म देकर उन पर ऐसी कृपा रक्खें कि जिससे उनको उसी तन में आपके चरणों का ध्यान बना रहे। यह बात सुनकर नृसिंहजी बोले कि हे प्रह्लाद। तुम अपने लिये जो चाहो सो माँग लो, पर संसारी जीवों के वास्ते जो माया मोह में फँसे हैं, ऐसा वरदान मत माँगो। तब प्रह्लाद फिर हाथ जोड़कर बोले- महाराज। संसार में जो लोग कुकर्म करते हैं उनका अधर्म अपनी दया से छुड़ा दो, अपने चरणों की भक्ति उन्हें देकर वैकुण्ठ में बुला लो। यह वचन सुनकर नृसिंहजी ने कहा- हे प्रह्लाद। सब जीवों को वैकुण्ठ की चाहना नहीं होती। जिसे सत्संग प्यारा होता है उसे ज्ञान मिलता है। कलियुग में मनुष्यों को सत्संग अच्छा नहीं लगता। वे संसारी माया में फँसे रहते हैं। जो परमेश्वर की भक्ति करता है, उसके पास सब गुण अपने आप इस तरह चले आते हैं जैसे नीची पृथ्वी पर पानी बहकर बिखर जाता है। यह बात सुनकर प्रह्लाद ने कहा- महाराज। संसार में कोई ऐसा भी मूर्ख होगा, जिसे वैकुंठ जाने की इच्छा न होगी। आप अपना वैकुण्ठ किसी को देना नहीं चाहते, लालच करते हैं। मुझे इस बात में लज्जा मालूम होती है कि संसारी लोग ऐसा कहेंगे कि प्रह्लाद के स्वामी लालची हैं। यह वचन सुनते ही नृसिंहजी हँसकर बोले- हे प्रह्लाद। तुम जगत् में जाकर जिसे अति दु:खी पाओ उससे वैकुण्ठ चलने के लिए कहो, देखो वह क्या कहता है। जब उनकी आज्ञानुसार प्रह्लाद नगर में आकर किसी दु:खी जीव को ढूँढने लगा तब उसे एक शूकर अति रोगी चोले में फँसा दिख पड़ा। उसे महा दु:खी देखकर प्रह्लाद ने कहा- तू यहाँ रहकर क्यों इतना दु:ख उठाता है, वैकुण्ठ चल, वहाँ तुझे बड़ा सुख मिलेगा। नृसिंहजी की आज्ञा से तुझे बुलाने आया हूँ। यह बात सुनकर शूकर ने पूछा कि वैकुण्ठ में क्या सुख है। जब प्रह्लाद ने वैकुण्ठ का सुख वर्णन किया तब वह शूकर बोला कि मैं अकेला वहाँ नहीं चल सकता, कुटुम्ब समेत कहो तो

चलूँ। तुम नृसिंहजी से पूछ आओ। यह वचन सुनते ही प्रह्लाद ने जाकर नृसिंहजी से पूछा। वे बोले, बहुत अच्छा सबको ले आवो। जब फिर प्रह्लाद ने आकर उस शूकर से परिवार समेत चलने के लिए कहा, तब उस शूकर की स्त्री ने प्रह्लाद से पूछा कि वैकुण्ठ में हमारे खाने के लिए विष्टा है या नहीं। प्रह्लाद ने कहा कि वहाँ नरक नहीं है और सब, अच्छे-अच्छे पदार्थ भोजन करने के हैं। तब शूकर व शूकरी आपस में सम्मत करके बोले कि हमें यहाँ बड़ा सुख है, हम लोग वैकुण्ठ में न जायँगे। यह बात सुनकर प्रह्लाद ने कहा कि तुम बड़े मूर्ख हो, जो वैकुण्ठ को नहीं चलते। जब यह बात सुनकर वह शूकर प्रह्लाद की ओर घूरने लगा तब वे दूसरा जीव वैकुण्ठ में ले जाने के लिए ढूँढते हुए एक वृद्ध मनुष्य के पास जाकर बोले कि अब तुम बूढ़े हुए, वैकुण्ठ में चलकर वहाँ का सुख भोगो। यह बात सुनकर वह बोला कि अभी मुझे संसार में जीकर अपने बेटों का मुण्डन व विवाह करके नाती-पाते देखने हैं, तुम्हारे कहने से अभी मर जावें। तुम यहाँ से चले जाओ, हमारे बेटों के सामने ऐसा वचन कहते तो वे तुम्हें दण्ड देते। जब प्रह्लाद ने उस बूढ़े की बात सुनकर हार मान ली तब नृसिंहजी के पास जाकर विनय किया कि महाराज। संसार में सब छोटे बड़े अपने अज्ञान से माया-मोह के जाल मे फँसे हैं, इसलिए कोई मनुष्य वैकुण्ठ जाने की इच्छा नहीं करता। यह वचन सुनकर नृसिंहजी बोले- हे प्रह्लाद। जगत में जिस जीव ने जो तनु पाया वह उसी योनि में मग्न रहता है। उसकी इच्छा किसी तरह पूरी नहीं होती। आँख-कान आदि सब इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, पर उसका मन संसार को छोड़ना नहीं चाहता।

रम्यकवर्ष में भगवान मत्स्य रूप से निवास करते हैं। सत्यव्रत मनु अपने सेवकों के साथ उनकी आराधना करते हैं।

हिरण्यमय वर्ष में भगवान कच्छप के रूप में निवास करते हैं। पितरों के अधिपति अर्यमा, अपने सेवकों के साथ उनकी अर्चना, वन्दना आदि करते हैं।

उत्तर कुरुवर्ष में भगवान वराहरूप से निवास करते हैं। पृथ्वी देवी वहाँ के निवासियों के साथ दृढ़भक्ति से उनका पूजन कर परमोत्कृष्ट मन्त्र का जप करती हुई स्तुति करती हैं।

श्री शुकदेवजी कहते हैं कि- राजन्, किम्पुरुषवर्ष में लक्ष्मणाग्रज, सीताहृदयाभिराम श्रीराम निवास करते हैं। वहाँ भक्तशिरोमणि हनुमानजी किन्नरों के साथ उनकी नित्य आराधना करते हैं। वे आर्ष्टिषेण के साथ गन्धर्वों द्वारा गाई हुई अपने स्वामी की परमकल्याणमयी कथा सुनते और गाते रहते हैं।

भगवान श्रीराम की ऐसी महिमा है कि- वे उत्तम कुल, सौभाग्य, सम्पत्ति, काव्यमय वाणी, बुद्धि और सुन्दर आकृति मात्र से प्रसन्न होनेवाले नहीं है। जिनके पास न तो उत्तम कुल है, न सौभाग्य है, न काव्यमयी वाणी है, न बुद्धि है और न आकृति है- ऐसे बन्दरों पर भी वे रीझ जाते हैं, प्रसन्न हो उठते हैं। उन्होंने उन वन-वासियों को अपना सखा बनाया जो दीन हैं, हीन हैं और हैं पतित भी। ऐसे लोगों के प्रति भगवान श्रीराम का सहज स्नेह है, स्वाभाविक आकर्षण है। एक बार संन्यासी ने एक कुत्ते को पत्थर से मार दिया। कुत्ता रोने-चिल्लाने लगा। पता लगने पर भगवान राम ने उस सन्यासी को हाथी पर बैठाकर नगर से बाहर कर दिया। इसी प्रकार एक धोबी ने सीता जी की निन्दा की तो उन्होंने उसे नगर से निकाला नहीं, अपितु बसाये ही रह गये।

भारतवर्ष में ही गन्धमादन पर्वत पर भगवान नर-नारायण लोक की कल्याण-कामना से तप करते हैं। बदरीनाथ में हिमालय पर्वत के दो शिखरों को नर-नारायण माना जाता है- उनमें एक नर है दूसरा नारायण है, एक जीव है, दूसरा ईश्वर है, एक अर्जुन है, दूसरा कृष्ण है। नर-नारायण के तप का दो प्रयोजन है- पहला लोक-कल्याण और दूसरा लोक-

शिक्षण। वे स्वयं परिपूर्ण भगवान हैं अत: उन्हें तप की कोई आवश्यकता नहीं किन्तु वे लोक के सामने यह उदाहरण रखना चाहते हैं कि कल्याण का एकमात्र साधन है- तप। देवर्षि नारद भारतवासी लोकों के साथ उनका पूजन उनके मन्त्र का जप और स्तवन करते हैं। वे स्तुति करते हुए कहते हैं- आप संसार की रचना करके भी उसमें बद्ध नहीं होते। देह धारण कर भी देह के विकारों से आप का कोई सम्बन्ध नहीं है। आप सब को देखते हैं, फिर भी आप की दृष्टि में देह-दोष नहीं आता। ऐसे असक्त विविक्त नारायण को हमारा प्रणाम है।

ओंकारस्वरूप, अहंकारसे रहित निर्धनोंके धन, शान्तस्वभाव ऋषिप्रवर भगवान नर-नारायणको नमस्कार। वे परमहंसोंके परम गुरु और आत्मरामोंके अधीश्वर हैं। जो विश्वकी उत्पत्ति आदिमें कर्ता होकर भी कर्तृत्वके अभिमानसे नहीं बँधते, शरीरमें रहते हुए भी उसके धर्म भूख-प्यास आदिके वशीभूत नहीं होते तथा दृष्टा होनेपर भी जिनकी दृष्टि दृश्यके गुण-दोषोंसे दूषित नहीं होती।

योगेश्वर। हिरण्यगर्भ भगवान ब्रह्माजी ने योगसाधन की सबसे बड़ी कुशलता यही बतलाई है कि मनुष्य मृत्यु की बेला में देहाभिमान को छोड़कर भक्तिपूर्वक, प्राकृत-गुणों से रहित, आप के स्वरूप में अपना मन लगावे। लौकिक और पारलौकिक भोगों के लालची मूढ पुरुष जैसे पुत्र, स्त्री और धन की चिन्ता करते हुए मौत से भयभीत होते हैं। उसी प्रकार यदि विद्वान को भी इस निन्दनीय शरीर के छूटने का भय ही बना रहा, तो उसका ज्ञान-प्राप्ति के लिये किया हुआ सारा प्रयत्न एकमात्र श्रम ही है, व्यर्थ ही है।

यह भारतवर्ष जम्बूद्वीप के सभी खण्डों में श्रेष्ठ है। इसे कर्म-भूमि कहते हैं। भारतवर्ष में मनुष्य को अपने किये हुए कर्म के अनुसार सद्गति की प्राप्ति होती है। मोक्ष भी यहीं प्राप्त होता है। इसमें बहुत सी सरिताएँ एवं शैल हैं; जो नाम लेने मात्र से मानव अन्त:करण को पवित्र कर देते हैं। उत्तर भारत में मन्दाकिनी, चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, यमुना, सरस्वती, गोमती और सरयू आदि प्रधान पुण्य नदियाँ हैं, जो नाम लेने मात्र से मानव के पापों तापों को विनष्ट कर देती हैं। इसी प्रकार दक्षिण भारत में भी कावेरी, वेणी, तुंगभद्रा, कृष्णा, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, वेण्या, भीमरथी, पयोष्णी, तापी, सुरसा, चर्मण्वती, सिन्धु, अन्ध और शोण, महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्री और विश्वा। कावेरी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, रेवा, एवं नर्मदा आदि अतिशय पवित्र नदियाँ हैं, जिनमें स्नान करने मात्र से मनुष्य मोक्ष का भाजन बन जाता है। इस देश के निवासी अतिशय भाग्यशाली हैं, जो इन पावन नदियों में स्नान-तर्पण करते हैं। ये नदियाँ गंगा के समान ही पुण्यशालिनी हैं। भारत वर्ष में मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, हिमालय, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि, त्रिकूट, गोवर्धन, वेंकटाद्रि, सह्याद्रि इत्यादि अनेक प्रख्यात पर्वत है।

देवता भी भारतवर्ष और भारतवर्ष में जन्मे मनुष्यों की महिमा का गान करते हुए कहते हैं- अहा। भारत वर्ष के निवासियों ने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है? जिससे प्रसन्न होकर भगवान ने इन्हें भारत की पवित्र भूमि पर जन्म दिया है। यहाँ भगवान मुकुन्द की सेवा का अपूर्व सौभाग्य प्राप्त है। हम लोग इसके लिये लालायित रहते हैं। हमारी यही कामना है कि यह परम सौभाग्य हमें भी प्राप्त हो।

पर्वत वो सबसे ऊंचा, हमसाया आसमां का, हिमालय सन्तरी हमारा, वो पासवां हमारा।
गोदी में खेलती है, जिसकी हजारों नदियां, गुलशन है जिसके दम से, रश्के जहां हमारा।

मजहब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना, हिन्दी है हम, वतन है हिन्दोस्तां हमारा।

स्वर्ग तो क्या जहाँके निवासियोंकी एक-एक कल्पकी आयु होती है किन्तु जहाँसे फिर संसारचक्रमें लौटना पड़ता है, उन ब्रह्मलोकादिकी अपेक्षा भी भारतभूमिमें थोड़ी आयुवाले होकर जन्म लेना अच्छा है; क्योंकि यहाँ धीर पुरुष एक क्षणमें ही अपने इस मर्त्यशरीरसे किये हुए सम्पूर्ण कर्म भगवानको अर्पण करके उनका अभयपद प्राप्त करता है। दुष्कर यज्ञ, कठोर, तप, व्रत और दानादि करके हमने जो यह तुच्छ स्वर्ग प्राप्त किया है- इससे क्या लाभ हैं? स्वर्ग में विषय-भोगों की अधिकता रहती है। इससे हम भगवान के चरण-कमलों को विस्मृत कर देते हैं।

कल्पपर्यन्त आयुवाले ब्रह्मा आदि के लोकों की अपेक्षा थोड़ी आयुवाले मनुष्यों का लोक भारतवर्ष ही श्रेष्ठ है, महान् है; क्योंकि ब्रह्मा आदि के लोकों में पुण्यभोग समाप्त हो जाने पर प्राणी नीचे गिर जाता है। किन्तु यहां धीरपुरुष एक क्षण में ही अपने सारे कर्म भगवान को अर्पित कर परमपद प्राप्त कर लेते है।

जहाँ भगवान की कथा-सुधारूपी सरिता नहीं बहती, जहाँ कथा-सरिता को बहानेवाले साधु-जन निवास नहीं करते और जहाँ समारोह पूर्वक भगवान की पूजा-अर्चना नहीं होती, वह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, उसका सेवन नहीं करना चाहिये। यहाँ पर देव, मनुष्य, तिर्यग् आदि योनियों में जीव जन्म लेते हैं। यहाँ के जीव परमात्मोपासना के द्वारा चतुर्विध पुरुषार्थ को प्राप्त करके अन्तमें मोक्ष को भी प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं। जहाँ पर भागवत् कथा की अमृतमयी सरिता नदीं प्रवाहित नहीं होती हो, जहाँ उसके उद्गम स्थान पर भगवद् भक्त साधुजन निवास नहीं करते तथा जहाँ पर नृत्य गीतादि के साथ भगवान यज्ञपुरुष की पूजा नहीं की जाती, फिर वह चाहे ब्रह्माजी का ही लोक क्यों न हो, उसका सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। भारत वर्ष में मानव जीवन को भी पाकर इस संसार चक्र से जो छुटकारा पाने का उपाय नहीं करता वह अपना जीवन व्यर्थ ही बिता रहा है। इस लोक में जो व्यक्ति निष्काम भाव से भगवान की आराधना करता है उसे तो भगवान संसार संतारक अपना चरण कमल ही प्रदान कर देते हैं। देवतालोक कहते है इन भारतवासियोंका कैसा सौभाग्य है। जब ये यज्ञमें भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देश्यसे अलग-अलग भाग रखकर विधि, मन्त्र और द्रव्यादिके योगसे श्रद्धापूर्वक उन्हें हवि प्रदान करते हैं, तब इस प्रकार इन्द्रिादि भिन्न- भिन्न नामोंसे पुकारे जानेपर सम्पूर्ण कामनाओंके पूर्ण करनेवाले स्वयं पूर्णकाम श्रीहरि ही प्रसन्न होकर उस हविको ग्रहण करते हैं। यह ठीक है कि भगवान सकाम पुरुषोंके माँगनेपर उन्हें अभीष्ट पदार्थ देते हैं, किन्तु यह भगवान्का वास्तविक दान नहीं है; क्योंकि उन वस्तुओंको पा लेनेपर भी मनुष्यके मनमें पुन: कामनाएँ होती ही रहती है। इसके विपरीत जो उनका निष्कामभावसे जन करते हैं, उन्हें तो वे साक्षात् अपने चरणकमल ही दे देते हैं- जो अन्य समस्त इच्छाओंको समाप्त कर देनेवाले है। अत: अबतक स्वर्गसुख भोग लेनेके बाद हमारे पूर्वकृत यज्ञ, प्रवचन और शुभ कर्मोंसे यदि कुछ भी पुण्य बचा हो, तो उसके प्रभावसे हमें इस भारतवर्षमें भगवान्की स्मृतिसे युक्त मनुष्य-जन्म मिले; क्योंकि श्रीहरि अपना भजन करनेवालेका सब प्रकारसे कल्याण करते हैं।

विभिन्न वर्षों में विभिन्न अवतारों की उपासना

१) भद्राश्ववर्ष- हयग्रीव अवतार,

२) हरिवर्ष- नरसिंह अवतार,

३) केतुमाल वर्ष- श्री लक्ष्मीजी

(संवत्सर नामक प्रजापति के पुत्र-पुत्रियों के कल्याण के लिये कामदेव भगवान की उपासना)

४) रम्यक वर्ष- मत्स्यावतार

५) हिरण्यमय वर्ष- कच्छप अवतार

६) उत्तर कुरुवर्ष- वराहमूर्ति

७) किम्पुरुष वर्ष- राम अवतार

८) भारतवर्ष (जम्बूद्वीप) - नर नारायण

श्री शुकदेव कहते हैं- भरतश्रेष्ठ, राजा सगर के पुत्रों ने अपने यज्ञ के घोड़े को ढूँढते हुए इस पृथ्वी को चारों ओर से खोदा था। इससे जम्बूद्वीप के अन्तर्गत ही आठ उपद्वीप और बन गये, ऐसा कुछ लोगों का कहना है। वे द्वीप हैं- स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लंका।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, जिस प्रकार मेरु पर्वत जम्बुद्वीप से घिरा हुआ है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप भी अपने ही समान परिमाण और विस्तारवाले खारे जल के समुद्र से परिवेष्टित है। क्षार समुद्र भी अपने से दूने परिणामवाले, अर्थात दो लक्ष योजनवाले, प्लक्ष द्वीप से घिरा हुआ है। जम्बू द्वीप में जितना बड़ा जामुन का पेड़ हैं, उतने ही विस्तारवाला यहाँ सुवर्णमय प्लक्ष (पाकर) का वृक्ष है। उसी के कारण इसका नाम प्लक्ष द्वीप हुआ। यहाँ सात जिव्हाओंवाले अग्निदेव विराजते हैं। इस द्वीप के अधिपति है प्रियव्रत के पुत्र महाराज इध्मजिह्व। उनके सात पुत्र हुए। उनके पुत्र शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय। उन्होंने सातों पुत्रों को समानरूप से इस द्वीप को विभक्त कर प्रदान कर दिया और स्वयं अध्यात्म योग का आश्रय लेकर उपरत हो गये। इनमें भी सात पर्वत और सात नदियाँ ही प्रसिद्ध है। वहाँ चार वर्ण के लोग निवास करते हैं जो सूर्य की उपासना करते हैं। यहाँके पर्वतोंके नाम मणिकूट, वज्रकूट और नदियोंके नाम अरुणा, नृम्णा इत्यादि।

इस द्वीप के लोग देवतुल्य हैं। इनकी आयु एक हजार वर्ष की होती है। इनके शरीरों में देवताओं की भाँति थकावट, पसीना आदि नहीं होता और सन्तानोत्पत्ति भी उन्हीं के समान होती हैं वहाँ के मनुष्यों को जन्म से ही आयु, इन्द्रिय, मनोबल आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

उससे आगे प्लक्ष द्वीप से दूना अर्थात चार लाख योजनवाला शाल्मलि द्वीप है। यह उतने ही परिणामवाले मदिरा के सागर से घिरा हुआ है। प्लक्ष द्वीप के पाकड़ वृक्ष के बराबर इसमें शाल्मलि (सेमर) के वृक्ष हैं। कहा जाता है कि यह गरुड का निवास स्थान है। इस द्वीप के अधिपति प्रियव्रत के पुत्र यज्ञबाहु हैं। उनके सात पुत्र थे अत: द्वीप को सात भागों में विभक्त किया और अपने पुत्रों को सौंप कर जंगल की राह ली। वहाँ भी स्वरस आदि सात पर्वत और अनुमति आदि सात प्रसिद्ध नदियाँ हैं। यहाँ भी चार वर्ण हैं, जो चन्द्रमा की उपासना करते हैं। शाल्मलिद्वीप के अधिपति मनुपुत्र महाराज यज्ञबाहु हुए। उनके भी सात ही पुत्र हुए जिनके नाम सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन, अविज्ञात हैं। इनके पिता ने भी इन्हीं नामों से अपने द्वीप के सात खण्ड करके इनके ही नामों से वे वर्ष विख्यात करा दिये।

इसी प्रकार मदिरा के समुद्र से आगे उससे दूने परिणाम वाला, अर्थात आठ लाख योजन विस्तारवाला, कुशद्वीप है। यह भी अपने समान परिणामवाले घृत समुद्र से घिरा हुआ है। कुशों की झाड़ियों की अधिकता से कारण ही यह कुशद्वीप कहा जाता है। इसके अधिपति प्रियव्रत के पुत्र हिरण्यरेता हैं। उनके भी सात ही पुत्र थे। द्वीप को सात भागों में विभक्त कर उन्होंने पुत्रों को सौंप दिया और स्वयं तपस्या करने चले गये। इसमें भी, विभागों को अलग करनेवाले, सात पर्वत और सात नदियाँ हैं। यहाँ भी चार वर्ण के लोग हैं। इन वर्णों के नाम हैं- कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक। यहाँ के लोग भगवान अग्निदेव की यज्ञों द्वारा उपासना करते हैं। कुशद्वीप के अधिपत मनुपुत्र हिरण्यरेता हुए। उनके भी वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेव-नामक सात ही पुत्र हुए। उन्होंने भी अपने खण्ड के सात विभाग करके सातों पुत्रों के नामों से सात वर्ष प्रसिद्ध कर दिये।

घृत समुद्र से आगे उससे द्विगुणित परिणामवाला अर्थात् सोलह लाख योजन का क्रौंञ्चद्वीप है। यह अपने ही समान विस्तारवाले दुग्ध समुद्र से वेष्टित है। यहाँ क्रौञ्च नाम का एक विशाल पर्वत है उसी के कारण इसे क्रौञ्च द्वीप कहते हैं। इस द्वीप के स्वामी प्रियव्रत पुत्र महाराज घृत पृष्ठ हैं। इनके भी सात पुत्र थे। वे इसके सातखण्डों को अपने सात पुत्रों में विभक्त कर स्वयं भगवान श्री हरि की चरण-शरण में चले गये। इसी द्वीप में भी शुक्ल आदि सात पर्वत और अभया आदि सात नदियाँ हैं। पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक- ये यहाँ के चार वर्ण हैं। ये लोग जल के अधिष्ठाता देवता वरुण की उपासना करते हैं। क्रौञ्चद्वीप के अधिपति मनुपुत्र धृतपृष्ठ हुए। संयोग की बात, उनके भी आम, मधरुह, मेरूपृष्ठ सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति नाम वाले ये सात पुत्र हुए, जिन्होंने पिता की आज्ञा से अपने द्वीप के सात विभाग करके अपने नामों से वर्ष स्थापित किये।

इसके आगे बत्तीस लाख योजनवाला शाकद्वीप है। यह अपने ही समान परिणामवाले मट्ठे के समुद्र से घिरा हुआ है। इसमें शाक नाम का एक बहुत बड़ा वृक्ष हैं इसी के कारण इसे शाकद्वीप कहते हैं। इस वृक्ष की सुगन्ध से सारा द्वीप महकता रहता है। इसके अधिपति प्रियव्रत के पुत्र महाराज मेधातिथि थे। वे इस द्वीप के सात भागों को अपने सात पुत्रों में विभक्त कर तप करने हेतु वन में चले गये। इस द्वीप में भी सात मर्यादा पर्वत, सात नदियाँ और ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत नाम के चार वर्ण हैं। ये वायुरूप श्रीहरि की उपासना करते हैं। शाकद्वीप के अधिपति मनुपुत्र मेधातिथि हुए। उनके भी पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररफ, बहुरूप और विश्वाधार ये वर्षाधिपति सात पुत्र हुए, जिनके नाम से शाकद्वीप में सात वर्ष विख्यात हैं।

इसी प्रकार मट्ठे के समुद्र से आगे उसके चारों ओर उससे दूने विस्तारवाला अर्थात् चौंसठ लाख योजन का पुष्कर द्वीप है। यह अपने ही समान विस्तारवाले मीठे जल के सागर से परिवेष्टित है। इसमें स्वर्णमय एक विशाल कमल है। यह ब्रह्मा जी का आसन माना जाता है। उस द्वीप के बीच में मानसोत्तर नाम का एक ही पर्वत है। यह दस सहस्र योजन ऊँचा और उतना ही लम्बा है। यह इस द्वीप के पूर्वीय और पश्चिमीय विभागों की मर्यादा निश्चित करता है। इसके ऊपर चारों दिशाओं में इन्द्र आदि लोकपालों की चार पुरियाँ हैं। इसके ऊपर मेरु के चारों ओर भ्रमण करनेवाले सूर्य के रथ का चक्र उत्तरायण और दक्षिणायन के क्रम से घूमता है। इसके अधिपति प्रियव्रत-पुत्र बीतिहोत्र हैं। इन्होंने अपने द्वीप के दो भाग करके रमणक और धातकि नामक दो पुत्रों को सौंप दिया और स्वयं जंगल चले गये। वहां के लोग ब्रह्मा की उपासना करते हैं। सबसे अंतिम पुष्करद्वीप के स्वामी मनुपुत्र वीतहोत्र हुए। उनके रमणक और धातकि नामक दो पुत्र हुए, उन दोनों के नाम से उस द्वीप में दो वर्ष हैं। अब तक उन द्वीपों में वे ही राजा राज्य करते हैं, या उनके पुत्र पौत्र हैं।

१) प्लक्षद्वीप- पाकर का वृक्ष (सात जिव्हा वाले अग्नि देव)
द्वीप अधिपति- प्रियव्रत पुत्र इध्वजिह्व
पुत्र- १) शिव, २) यवस, ३) सुभद्र, ४) शान्त, ५) क्षेम, ६) अमृत, ७) अभय।
द्वीप पर्वत- मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीर्व, मेघमाल।
द्वीप महानदियाँ- अरुणा, नृम्ना, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा, सत्यम्भरा।
द्वीप वर्ण - हंस, पतंग, उर्ध्वयान सत्याग
उपास्य- सूर्य भगवान।
२) शाल्मली द्वीप- सेमर का वृक्ष (गरुड का निवासस्थान)

द्वीप अधिपति- प्रियव्रत पुत्र यज्ञबाहु
पुत्र- सुलोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात
द्वीप पर्वत- स्वरस, शतश्रृंग, वामदेव, कुन्द, मुकुन्द, पुष्पवर्ष और सहस्त्रश्रृति
द्वीप महानदियाँ- अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा, राका
द्वीप वर्ण - श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर, इषूधर
उपास्य- चन्द्रमा

३) कुशद्वीप- कुशों की झाड़ी
द्वीप अधिपति- प्रियव्रत पुत्र हिरण्यरेता
पुत्र- वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेव
द्वीप पर्वत- चतुश्रृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, उर्ध्वरोमा और द्रविड़
द्वीप महानदियाँ- रसकूल्या, मधुकुल्या, मित्रवृन्दा, द्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता और मन्त्रमाला
द्वीप वर्ण - कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक
उपास्य- हरि की कर्म कौशल से आराधना पूजन

४) क्रौञ्चद्वीप- क्रौञ्च नामका पर्वत
द्वीप अधिपति- प्रियव्रत पुत्र धृतपृष्ठ
पुत्र- आम, मधुरूह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्रजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति
द्वीप पर्वत- शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपवर्हिण, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र
द्वीप महानदियाँ- अमया, अमृतौधा, आर्यका, तीर्थ वृति, वृतिरूपवती, पवित्रवती, शुक्ला
द्वीप वर्ण - पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक
उपास्य- आपो देवता (जल देवता)

५) शाकद्वीप- शाक नामक वृक्ष
द्वीप अधिपति- प्रियव्रत के पुत्र मेधातिथि
पुत्र- पुरोजव, मनोजव, पवमान, द्युम्रानीक, चित्ररेक, बहुरूप और विश्वधार
द्वीप पर्वत- ईशान, ऊरुश्रृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्त्रस्त्रोत, देवपाल और मानस
द्वीप महानदियाँ- अनघा, आयुदा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्त्रस्त्रुति और निजधृति
द्वीप वर्ण - ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत
उपास्य- वायु, रूप, हरि

६) पुष्करद्वीप- स्वर्णमय पंखुडियोंवाला पुष्कर (कमल)
द्वीप अधिपति- प्रियव्रत पुत्र वीतिहोत्र
पुत्र- रमणक और धातकि
द्वीप पर्वत- सीमाओं पर मानसोत्तर पर्वत और मेरुपर्वत
उपास्य- ब्रह्मा, हरि

७) जम्बूद्वीप- जामुन का पेड़ (भारत वर्ष उसके अन्तर्गत है)
द्वीप महानदियाँ- चक्षु, सीता, भद्रा, अलकनन्दा
उपास्य- संकर्षण भगवान।

उन नाभि के वंश का चरित्र मैंने कह ही दिया। जम्बूद्वीप में नौ खण्ड हैं। यह द्वीप सबसे मध्य में है। इसी द्वीप के चारों ओर खारा समुद्र है। फिर उसके चारों ओर गोलाकार प्लक्षद्वीप है। उस प्लक्ष के चारों ओर ऊख के रस का समुद्र है। इसी प्रकार एक समुद्र और इससे घिरा एक द्वीप ऐसे सात समुद्र हैं सात द्वीप हैं। ये सब इन चर्म चक्षुओं से दीखते नहीं।

शुद्धोदक (मीठे जल के) समुद्र के आगे एक पर्वत है। इसका नाम है- लोकालोक। यह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित तथा अप्रकाशित प्रदेशों के बीच उनका विभाग करता हुआ स्थित है। विद्वान जन सम्पूर्ण भूगोल का मान पचास करोड योजन बतलाते हैं इसका चौथाई भाग अर्थात् साढ़े बारह करोड़ योजन इस पर्वत का मान है।

इसकी चारों दिशाओं में ऋषभ, पुष्करचूड़, वामन और अपराजिता नामवाले चार दिग्गज स्थित हैं। ये लोक-स्थिति के कारण हैं। इस पर्वत पर संसार की रक्षा के लिये, अपने पार्षदों के साथ स्वयं श्रीहरि विराजते रहते हैं। इसके बाद वह भूमि है, जहाँ केवल विशुद्ध योगेश्वरों की गति है। अन्य लोगों की पहुँच वहाँ तक पहुँच नहीं होती।

हाँ तो यह जम्बूद्वीप सबसे मध्य में है। शेष छ: द्वीप क्रमश: छ: समुद्रों से घिरे एक के पश्चात् एक इस क्रम से हैं। इस जम्बूद्वीप में भी सबसे मध्य में इलावृत खण्ड है। उसी इलावृत खण्ड में दिव्य सुवर्ण का बना सुमेरु पर्वत है, जो पृथ्वी के नीचे भी है और स्वर्ग तथा ध्रुवलोक तक चला गया है। इसी सुमेरु के आठों शिखरों पर आठों लोकपालों की पुरियाँ हैं। जैसे कमल के फूल में एक तो बीच में कणिका होती है, उसके चारों ओर पंखुड़ियाँ लगी रहती है, वैसे ही इलावृत्त खण्ड मध्य में हैं शेष आठ खण्ड इसके आठों ओर अगल-बगल में हैं। भारतवर्ष को छोड़ कर आठ खण्ड भू स्वर्ग हैं।

ब्रह्माड के मध्य में सूर्य है। भगवान सूर्य के प्रकाश से ही दिशा, पृथ्वी, भोग, मोक्ष आदि सबके विभाग होते हैं। भगवान सूर्य ही स्थावर-जंगम प्राणियों की आत्मा हैं, नेत्र हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार हमने प्रमाण और लक्षणों के सहित भूगोल का वर्णन आप से बतला दिया। इसीके अनुसार विद्वान लोग खगोल का भी वर्णन करते हैं। जिस प्रकार चना-मटर आदि के एक दल (दाल) के परिमाण से दूसरे दल का परिमाण मालूम हो जाता है, इसी प्रकार भूगोल के परिमाण से खगोल का भी परिमाण विदित हो जाता है। जैसे दो दालों के बीच में एक अँकुआ होता है, ऐसे ही भूगोल और खगोल के मध्य में अन्तरिक्ष ही एक सन्धि-स्थल है। सूर्य भगवान इसी अन्तरिक्ष में स्थित होकर अपने प्रकाश से सारी त्रिलोकी को प्रकाशित करते हैं और ताप प्रदान करते हैं।

स्वर्ग और पृथ्वी के बीच में जो ब्रह्माण्ड का केन्द्र है वही सूर्य की स्थिति है। सूर्य और ब्रह्माण्ड गोलोक के बीच में सब ओर से पच्चीस करोड़ अन्तर है। सूर्य इस मृत अर्थात् अचेतन अण्ड में वैराज रूप से विराजते हैं, इसी से इनका नाम मार्तण्ड हुआ। ये हिरण्यमय (ज्योर्तिमय) ब्रह्माण्ड से प्रकट हुए हैं, इसलिये इन्हें हिरण्यगर्भ भी कहते हैं। सूर्यके द्वारा ही दिशा, आकाश, द्युलोक, भूलोक, स्वर्ग और मोक्षके प्रदेश, नरक और रसातल तथा अन्य समस्त भागोंका विभाग होता है।

वे उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् नामवाली क्रमश: मन्द, शीघ्र और समान गति से चलते हुए समयानुसार मेष आदि बारह राशियों में ऊँचे-नीचे और समान स्थानों में जाकर दिन-रात को बड़ा, छोटा अथवा समान करते हैं। जब सूर्य मेष अथवा तुला राशि पर आते हैं, तब दिन-रात बराबर हो जाते हैं। जब वृष आदि पाँच राशियों में चलते हैं, तब प्रतिमास रात्रियों में एक-एक घड़ी कम होती जाती है और उसी हिसाब से दिन बढ़ते जाते हैं। जब वृश्चिक आदि पाँच राशियों में

चलते हैं, तब प्रतिमास रात्रियों में एक-एक घड़ी कम होती जाती है और उसी हिसाब से दिन बढ़ते जाते हैं। जब वृश्चिक आदि पाँच राशियों में चलते हैं, तब रात्रियों में वृद्धि हो जाती है और दिन एक-एक घड़ी छोटे होते जाते हैं। आशय यह है कि सूर्य के उत्तरायण होने पर दिन बढ़ जाते हैं और दक्षिणायन होने पर रात्रियां बड़ी हो जाती हैं।

इस प्रकार पण्डितजन मानसोत्तर पर्वत पर सूर्य की परिक्रमा का मार्ग नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन बतलाये हैं। इस पर्वत पर मेरु के पूर्व की ओर इन्द्र की पुरी देवधानी, दक्षिण में यमराज की पुरी संयमनी, पश्चिम में वरुण की निम्लोचनी और उत्तर में चन्द्रमा की विभावरी पुरी हैं। इन पुरियों में मेरु के चारों ओर समय-समय पर सूर्योदय, मध्याह्न, सायंकाल और अर्धरात्रि होते रहते हैं; इन्हीं के कारण सम्पूर्ण जीवों की प्रवृत्ति या निवृत्ति होती है। जो सुमेरु पर्वत पर रहते हैं, उनके लिये सदा मध्याह्न ही रहता है। नक्षत्रों के अभिमुख जाते हुए सूर्य यद्यपि मेरु को बाईं ओर रखकर चलते हैं, तो भी सारे ज्योतिमण्डल को घुमानेवाली निरन्तर दायीं ओर बहती हुई प्रवह नामक वायु द्वारा घुमा दिये जाने से उसे दायीं ओर रखकर चलते हुए प्रतीत होते हैं। भगवान सूर्य इन्द्रपुरी से यमपुरी की दूरी १५ घड़ी में तय करते हैं। इन्द्रपुरी से यमपुरी की दूरी सवा दो करोड़ साढ़े बारह लाख, पच्चीस सहस्र योजन हैं। इसी प्रकार वे क्रमश: वरुण की निम्लोचनी पुरी को लांघकर चन्द्रपुरी और फिर इन्द्रपुरी में आते हैं। सूर्य का रथ वेदमय है। वह एक मुहूर्त में चौतीस लाख आठ सौ योजन के हिसाब से चलता है। वह चारों पुरियों में सर्वदा भ्रमण करता रहता है।

रथ का एक चक्का घूमने से संवत्सर बन जाता है। सूर्य के रथ का एक सिरा मेरुपूर्वत की चोटी पर है और दूसरा मानसोत्तर पर्वत पर। इस में लगा हुआ यह पहिया कोल्हू के पहिये के समान घूमता हुआ मानसोत्तर पर्वत के ऊपर चक्कर लगाता है। इस धुरी से जुड़ी हुई एक और धुरी है। उसका एक कोना ध्रुवलोक से जुड़ा है। इस रथ के रथी सूर्य के बैठनेका स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा है और नौ लाख योजन चौड़ा है। इस रथ में छन्दरूपी सात अश्व जुड़े हुए हैं। इसके सारथी हैं अरुण। साठ हजार बालखिल्य ऋषि सूर्य की ओर मुख करके स्तुति करते हुए चलते हैं।

इस प्रकार भगवान सूर्य भू-मण्डल के नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन लम्बे घेरे में से प्रत्येक क्षण में दो हजार दो योजन की दूरी पार करते हैं। सूर्य ही देवता, तिर्यक, मनुष्य, सरीसृप और लता-वृक्षादि समस्त जीवसमूहोंके आत्मा और नेत्रेन्द्रियके अधिष्ठाता है।

शुकदेव बोले- राजन्, जैसे कुम्हार के बर्तन बनानेवाले तेजी से चलते हुए चाक पर बैठी हुई चींटी की गति चाक की गति से भिन्न होती है, क्योंकि वह भिन्न-भिन्न स्थानों में देखी जाती है- उसी प्रकार नक्षत्र और राशियों से उपलक्षित कालचक्र में पड़कर, ध्रुव और मेरु को दायें रखकर घूमनेवाले ग्रहों की गति वास्तव में उससे भिन्न ही है, क्योंकि वे काल-भेद से भिन्न-भिन्न राशि और नक्षत्रों में देखे जाते हैं। उन्हीं के कारण वसन्त आदि छ: ऋतुएँ हुआ करती हैं।

सूर्यनारायण कालचक्र में स्थित होकर राशिसंज्ञक बारह महीनों का भोग करते हैं। एक महीना चन्द्रमान से दो पक्ष का, पितृमान से रात-दिन का और सौरमान से सवा दो नक्षत्र अर्थात् एक राशि का कहा गया है। सूर्य जितने समय में संवत्सर के षष्ठ अंश अर्थात् दो राशियों को भोग करते हैं उसे ऋतु कहते हैं। एक ऋतु दो मास की होती है।

जितने समय में इस प्रकार आकाश में सूर्य का जितना मार्ग है, उसका आधा वे जितने समय में पार कर लेते हैं, उसे एक अयन कहते हैं और जितने समय में वे अपने पूरे मार्ग का एक चक्कर लगा लेते हैं, उसे संवत्सर, परिवत्सर, दडावत्सर, अनुवत्सर अथवा वत्सर कहते हैं। सूर्य की गति के कारण इनमें कुछ-कुछ भेद हैं।

इसी प्रकार सूर्य से एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा है। उसकी गति बहुत तेज है इसलिये वह सब नक्षत्रों से आगे रहता है। यह सूर्य के एक वर्ष के मार्ग को एक मास में, एक मास के मार्ग को सवा दो दिनों में और एक पक्ष के मार्ग को एक

ही दिन में पूरा कर लेता है। चन्द्रमा के कारण ही शुक्ल पक्ष का विभाग होता है। यह तीस मुहूर्त में एक नक्षत्र को पार करता है। अन्नमय एवं अमृतमय होने के कारण यही समस्त प्राणियों का प्राण और जीवन है। यह सोलह कलाओं से सम्पन्न है। समस्त प्राणियों के प्राणों का पोषण करने के कारण इन्हें सर्वमय कहते हैं। ये ही देवता, पितर, मनुष्य, भूत, पशु-पक्षी, सरीसृप और वृक्षादि समस्त प्राणियोंके प्राणोंका पोषण करते हैं।

चन्द्रमा से तीन लाख योजन ऊपर अभिजित के सहित अट्ठाइस नक्षत्र हैं। ये सभी मेरु को दाईं ओर करके घूमते हैं। पृथ्वी से इनकी दूरी पाँच लाख योजन है। इनसे दो लाख और भू-मण्डल से सात लाख योजन ऊपर शुक्र है। यह कभी सूर्य के आगे, कभी पीछे और कभी साथ-साथ चलता है। यह वर्षा करानेवाला ग्रह है। यह प्राय: लोगों के अनुकूल ही रहता है। यह वर्षा के अवरोधक ग्रहों को शांत कर देता है। शुक्र से दो लाख और पृथ्वी से नौ लाख योजन ऊपर बुध है। शुक्र के ही अनुसार इसकी भी गति है। यह प्राय: मंगलकारी ग्रह है। बुध जब सूर्य की गति का उल्लंघन करके चलता है, तब बहुत अधिक आँधी, बादल और सूखे के भय की सूचना देता है। इससे दो लाख तथा पृथ्वी से ग्यारह लाख योजन ऊपर मंगल है। यह, यदि वक्र गति से न चले तो, एक-एक राशि को तीन-तीन पक्ष में भोगता हुआ बारहों राशियों को पार करता है। यह अशुभ ग्रह है और प्राय: अमंगल का सूचक है। इसके ऊपर दो लाख योजन की दूरी पर भगवान बृहस्पति जी हैं। पृथ्वी से इनकी दूरी तेहर लाख योजन है। यह यदि वक्री न हो तो प्राय: ब्राह्मणकुल के अनुकूल रहते हैं। वक्री न रहने पर यह एक-एक राशि को एक-एक वर्ष में भोगते हैं।

बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर की स्थिति है। पृथ्वी से यह पन्द्रह लाख योजन ऊपर हैं। यह तीस-तीस महीने तेरह तक एक-एक राशि पर रहते हैं अत: सब राशियों को पार करने में इन्हें तीसवर्ष लग जाते हैं। यह प्राय: सभी के लिये अशान्ति-कारक है। इनके ऊपर ग्यारह लाख योजन की दूरी पर कश्यप आदि सप्तर्षि हैं। पृथ्वी से इनकी दूरी छब्बीस लाख योजन ऊपर है। ये सब लोकों की मंगलकामना करते हुए भगवान विष्णु के परम पद ध्रुव-लोक की प्रदक्षिणा किया करते हैं।

शुकदेवने कहा- राजन्, सप्तर्षियों से तेरह लाख योजन ऊपर ध्रुवलोक है। इसे भगवान विष्णु का परम पद कहते हैं। यहाँ उत्तानपाद के पुत्र ध्रुवजी विराजमान हैं। अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप और धर्म ये सब एक साथ आदरपूर्वक इनकी प्रदक्षिणा किया करते हैं। यह एक सुदृढ़ खम्भा के समान हैं, आधार-स्तम्भ है। इनके ही आश्रित सम्पूर्ण ग्रह और नक्षत्र-मण्डल, इनके चारों ओर घूमा करते हैं।

१) शिशुमार चक्र का वर्णन (अन्य ग्रहों की स्थिति और गति)

व्यास पुत्र कहने लगे, ग्रह गति स्थित काल। कुम्हकार कौ चाक ज्यों, घूमत निज निज काल।।

कोई-कोई पुरुष भगवान की योग-माया के आधार पर स्थित इस ज्योतिश्चक्र का शिशुमार (सूँस या सूँइस) के रूप में वर्णन करते हैं। यह शिशुमार कुण्डली मारे हुए है और इसका मुख नीचे की ओर है। इसकी पूँछ के सिरे पर ध्रुव स्थित हैं। पूँछ के मध्यभाग में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म हैं। पूँछ की जड़ में धाता और विधाता हैं, इसके कटि-प्रदेश में सप्तर्षि हैं, यह शिशुमार दाहिनी ओर को सिकुड़ कर कुण्डली मारे हुए है, इसके दाहिने भाग में उत्तरायण के चौदह नक्षत्र (अभिजित से लेकर पुनर्वसु पर्यन्त) कल्पित हैं और बाँये भाग में दक्षिणायन के चौदह नक्षत्र (पुष्य से लेकर उत्तराषाढ़ा पर्यन्त) स्थित माने गये हैं। इसके पृष्ठ भाग में अजवीथी (मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नाम के तीन नक्षत्रों का समूह और उदर में आकाश-गंगा है। इसके दाहिने और बाँयें कटि-तटों में पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र हैं। पीछे के दाहिने और बाँये चरणों में आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र हैं तथा दाहिने और बाँयें नथुनों में क्रमश: अभिजित् और उत्तराषाढ़ा है। इसी प्रकार

दाहिने और बाँयें नेत्रों में श्रवण एवं पूर्वाषाढ़ा तथा दाहिने और बाँये कानों में धनिष्ठा और मूल नक्षत्र हैं। मघा आदि दक्षिणायन के आठ नक्षत्र बाईं पसलियों में और विपरीत क्रम से मृगशिरा आदि उत्तरायण के आठ नक्षत्र दाहिनी पसलियों में विन्यस्त हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा- ये दो नक्षत्र क्रमश: दक्षिण और वाम कन्धों की जगह हैं। इसकी ऊपर की थूथनी में अगस्त्य, नीचे की ठोढ़ी में नक्षत्ररूपयम, मुख में मंगल, लिंग-प्रदेश में शनि, ककुद् में बृहस्पति, छाती में सूर्य, हृदय में नारायण, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, स्तनों में अश्विनीकुमार, प्राण और अपान में बुध, कण्ठ में राहु, समस्त अंगों में केतु और रोमावलियों में समस्त तारागण स्थित हैं। राजन्, यह भगवान का सर्वदेवमय स्वरूप है। प्रात:, मध्याह्न एवं सायंकाल की बेला में जो व्यक्ति पवित्र होकर इसका ध्यान कर भगवान के मन्त्र का जप करता है, उसके सारे पाप-ताप विनष्ट हो जाते हैं।

बर्फ और वृक्ष वनस्पतिको वह देखकर तभी यह नहीं समझा जा सकता कि इनपर स्वामित्व किसका है। अहंता-ममतासे रहित हृदय ही अन्त:करणकी पवित्रताका हेतु है।

शुकदेव बोले- राजन्, सूर्य से दस हजार योजन नीचे राहु नक्षत्रों के समान घूमता है। भगवान की कृपा से ही इसने देवत्व और ग्रहत्व प्राप्त किया है। यह असुरों में अधम है। इसकी माता का नाम है- सिंहिका अत: किसी प्रकार भी यह स्वयं इस पद के योग्य नहीं है।

सूर्य का अत्यन्त तपता हुआ जो यह मण्डल दिखलाई पड़ता है, उसका विस्तार दस सहस्र योजन बतलाया गया है। इसी प्रकार चन्द्र-मण्डल का विस्तार बारह हजार और राहु का तेरह हजार योजन है। अमृतपान की बेला में राहु ने देव-वेष धारण किया और धीरे से सूर्य और चन्द्र के बीच में जाकर बैठ गया। मोहिनी रूप भगवान ने उसे भी अमृत पिला दिया। चन्द्र और सूर्य ने राहु की ओर इशारा करके गलती की सूचना दी। भगवान ने सुदर्शन चक्र से उसकी ग्रीवा काट डाली। इसी से नाराज होकर वह सूर्य और चन्द्र पर आक्रमण करता रहता है। किन्तु सूर्य और चन्द्र की रक्षा भगवान का सुदर्शन चक्र करता रहता है। उसके असह्य तेज के ताप से घबड़ा कर वह थोड़ी ही देर उनके सामने स्थित होकर लौट आता है। उसके आक्रमण को ही ग्रहण कहते हैं।

राहु से दस हजार योजन नीचे सिद्ध, चारण और विद्याधर आदि के स्थान हैं। उनके नीचे जहाँ तक वायु की गति है और बादल दिखलाई देते हैं, अन्तरिक्ष है। यह यक्ष राक्षस, पिशाच, प्रेत और भूतों का विहार स्थल है। उससे नीचे सौ योजन की दूरी पर यह पृथ्वी है। जहाँ तक हंस, गिद्ध बाज और गरुड आदि प्रधान-प्रधान पक्षी उड़ सकते हैं, वहाँ तक इसकी सीमा है।

यह जीव अपने कर्मों से नाना योनियों में भ्रमण करता हुआ सुख-दुख उठाता है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता हुआ सुख-दुख उठाता है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है। कभी स्वर्ग में जाकर सुख भोगता है, कभी नरकों में जाकर नाना यातनाओं का अनुभव करता है। नरक स्वर्ग से निकलकर फिर पृथ्वी पर जन्म लेता है। फिर प्रारब्ध कर्मानुसार नाना योनियों में भटकता फिरता है। इसी का नाम संसार चक्र है। भू: भुव: स्व: मह: जन: तप: और सत्य ये ऊपर के लोक है। अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ये सात नीचे के लोक हैं। इन चौदह भुवनों का ही एक ब्रह्माण्ड होता है। ऐसे असंख्यों ब्रह्माण्ड इस विश्व में व्याप्त हैं। पृथ्वी पर आठ खण्ड और छ: द्वीप भू स्वर्ग है। नीचे के सात भूविवरव स्वर्ग अर्थात् पाताल स्वर्ग कहाते हैं। इन नीचे के लोकों में स्वर्ग से भी अधिक सुख है। भूलोक के ऊपर के तो सब दिव्य स्वर्ग हैं ही। इनके अतिरिक्त पृथ्वी के नीचे बहुत से नरक हैं, जिनमें पापी पुरुष पचाये जाते हैं।

राजन् सात समुद्र सात हैं द्वीप अवनि पै। प्रियव्रत सुत ई करें राज इन सब द्वीपनति पै।।
भौम स्वर्ग दिवि स्वरग स्वरग पाताल कहावैं। तिनिमें करिकें पुण्य धर्म प्रेमी जन जावैं।।
पुण्यनिको फल स्वर्ग है, शास्त्र, वेद, ऋषि मुनि कहें। पाप करेतें नरकमें, नर नाना बिधि दुख सहें।।

२) अध: लोकोंका वर्णन

पृथ्वी के नीचे बसैं, अतस्त्नादिक सब लोक। सुतल लोक में रहते हैं, दैत्य वंश आलोक।।

राजन्, अब नीचे के लोकों को, जिन्हें बिल-स्वर्ग कहते हैं। इनकी संख्या सात है। ऊपर से नीचे की ओर क्रमश: इनके नाम इस प्रकार है- अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल। ये एक के नीचे एक दस-दस हजार योजन की दूरी पर स्थित हैं और इनमें से प्रत्येक की लंबाई-चौड़ाई भी दस-दस हजार योजन ही है।

इनमें स्वर्ग से भी अधिक विषयानन्द, ऐश्वर्य, सुख, सन्तान-सुख और धन-सम्पत्ति है। इनके भोगों में बाधा डालने का सामर्थ्य इन्द्र आदि में भी नहीं है। इन बिलों में मयदानव की अपूर्व कारीगरी के फलस्वरूप अद्भुत भवन और उद्यान आदि इनकी शोभा-सम्पत्ति हैं। यहाँ के उद्यान स्वर्ग के उद्यानों से भी बढ़कर हैं। जलाशयों की सौन्दर्य सम्पत्ति निराली है। इन लोकों में सूर्य का प्रकाश नहीं जाता इसलिये दिन-रात आदि काल-विभाग का भी कोई भय नहीं है। बड़े-बड़े नागों के मस्तक की मणियाँ ही वहाँ के अन्धकार को दूर करती हैं। यहाँ के निवासी दिव्य ओषधि, रस-रसायन-अन्न-पान आदि का सेवन करते हैं। इन दिव्य वस्तुओं के सेवन से उन्हें शारीरिक या मानसिक रोग नहीं होते हैं। वहाँ शरीर में झुर्रियाँ पड़ जाना, बाल पक जान, बुढ़ापा आ जाना, देह का कान्तिहीन हो जाना, शरीर से दुर्गन्ध आना, पसीना चूना, श्रान्ति अथवा शिथिलता आना तथा आयु के साथ शरीर की अवस्थाओं का परिवर्तन- ये कोई विकार नहीं होते। वे सदा सुन्दर, स्वस्थ तथा तरुण रहते हैं। उन पुण्यपुरुषों की भगवान के तेजरूप सुदर्शन चक्र के सिवा और किसी साधन से मृत्यु नहीं हो सकती।

अतल लोक में मयदानव का पुत्र असुर बल रहता है। उसने छियानबे प्रकार की माया का निर्माण किया है। एक बार असुर बल ने जँभाई ली। उस समय उसके मुख से स्वैरिणी (केवल अपने वर्ण के पुरुषों से रमण करनेवाली स्त्रियां), कामिनी (अन्यवर्णों के पुरुषों से भी समागम करनेवाली स्त्रियाँ), और पुंश्चली- (अत्यन्त चंचल स्वभाववाली स्त्रियाँ) तीन प्रकार की स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं। ये उस लोक में रहनेवाले पुरुषों को हाटक (स्वर्ण) नामक रस पिलाकर सम्भोग करने में समर्थ बना लेती हैं और फिर उनके साथ जमकर काम-क्रीडा करती हैं। हाटक रस को पीनेवाला व्यक्ति मदान्ध होकर इन्द्र को भी युद्धार्थ ललकारने लगता है।

उसके नीचे वितल लोक में भगवान हाटकेश्वर (शिव) अपनी प्रिया पार्वती और गणों के साथ निवास करते हैं। उनके वीर्य से वहाँ हाटक नामक नदी बहती हैं, जिससे सुवर्ण उत्पन्न होता है।

उससे भी नीचे सुतललोक में महाराज बलि का निवास है। जहाँ उनके आराध्यदेव भगवान विष्णु हाथ में गदा लेकर उस लोक में राजद्वार पर सदा उपस्थित रहते हैं। एक बार जब दिग्विजय करता हुआ घमण्डी रावण वहाँ पहुँचा, तब उसे भगवान ने अपने पैर के अँगूठे की ठोकर से ही लाखों योजन दूर फेंक दिया था।

सुतललोक के नीचे तलातल में मयदानव निवास करता है। त्रिपुर-दाह की बेला में भगवान शिव ने इसको अभय दान प्रदान किया था।

महातल में कद्रू से उत्पन्न हुए अनेक शिरों वाले सर्पों का क्रोधवश नामक एक समुदाय रहता है। उनमें कुहक, तक्षक और कालिय आदि प्रधान हैं। वे अपने स्त्री-पुत्र आदि के साथ सानन्द वहाँ विहार करते हैं।

महातल के नीचे रसातल है। वहाँ पणिनामक दैत्य-दानव रहते हैं। ये निवातकवच, कालेय और हिरण्यपुरवासी भी कहलाते हैं। इनका देवताओं से विरोध है। ये जन्म से ही बड़े बलवान और महान् साहसी होते हैं। भगवान के सुदर्शन चक्र से भयभीत होकर ये सर्पों की भाँति लुक-छिप कर रहते हैं। इन्द्र की दूती शरमा (देवशुनी) के शाप के कारण वे इन्द्र से भी डरते हैं।

एक समय पणि नामके असुरों ने गोको छिपा दिया। उसे ढूंढने के लिय इन्द्र ने सरमा नाम की देवदुती को भेजा। असुर उससे सन्धि करना चाहते थे, सरमाने उससे सन्धि न कर उन्हें शाप दे दिया- हे असुरों। तुम इन्द्र के द्वारा मारे जाने पर पृथ्वी पर सो जाओ इसी कारण से इन्द्र से डरते है।

रसातल के नीचे पाताल है। वहाँ शंख, कुलिक, महाशंख और देवदत्त आदि बड़े क्रोधी और महान फणोंवाले नाग निवास करते हैं। उनमें वासुकि प्रधान है। यहाँ के सर्प अनेक शिरोंवाले हैं। उनके फणों की दमकती हुई मणियाँ अपने प्रकाश से पाताललोक का सारा अन्धकार समाप्त कर देती हैं।

शुकदेव ने कहा- राजन् पाताल लोक के नीचे तीस सहस्र योजन की दूरी पर भगवान शेष का निवास है इन्हें अनन्त भी कहा जाता है। यह भगवान की तामसी नित्य कला है। इनका एक नाम संकर्षण भी है। इनके हजारों सिरों में से एक सिर पर धरती ऐसी मालूम पड़ती हैं, जैसे सरसों का दाना रक्खा हुआ हो।

जब वे विश्व का संहार करना चाहते हैं, तब उन्हीं की भौंहों के बीच से एक संकर्षण नामक रुद्र प्रकट होते हैं, जो सारे विश्व का संहार कर देते हैं।

सब से नीचे रहते हैं, संकर्षण भगवान्। रजकण सम ब्रह्माण्ड को, धारि रहे श्रीमान्।।

जब बड़े-बड़े नागराज अनन्य भक्तिभाव से प्रणाम करते हुए उनके चरणारविन्द नखमण्डल की मणि में अपना-अपना प्रतिबिम्ब देखते हैं तब उनका मन आनन्द से भर जाता है। नागराजों की कन्याएँ भी विविध कामनाओं से उनका पूजन करती हैं। उस समय उनके स्पर्श से तरुणियों के हृदय में काम-भाव अंकुरित हो उठता है फिर वे बड़े हावभाव के साथ मुस्कराकर उनके मुखमण्डल पर कटाक्षपात करती है। अनन्त गुणों के सागर भगवान अनन्त सकल लोकों के कल्याण के लिये वहाँ निवास करते हैं। देवता, असुर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधर आदि सदा उनका ध्यान किया करते हैं। वे अपने सुमधुर भाषण से अपने पार्षदों को सन्तृप्त करते रहते हैं। जो व्यक्ति श्रद्धा और भक्ति से उनके गुणों का श्रवण तथा स्वरूप का चिन्तन करता है, उसकी अनन्ताननत्जन्मों की कर्मवासनाएँ समूल नष्ट हो जाती हैं और वह सद्य: संसार-बन्धन से विमुक्त हो जाता है। नारद, तुम्बुरु आदि ने भगवान संकर्षण के प्रभाव का वर्णन ब्रह्मा की सभा में करते हुए एक बार कहा था- आर्त व्यक्ति यदि एक बार परिहास में भी, अकस्मात् हँसी में भी, उच्चारण कर लेता है तो वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है और दूसरे पुरुषों के भी सारे पापों को तत्काल नष्ट कर देता है ऐसे परम कृपालु दयालु देवता का सभी आश्रय ग्रहण करेंगे।

सारी सरिताएँ, सारे सागर और अगणित पर्वत-मालाएँ भगवान की अनन्तता में कुछ मालूम ही नहीं पड़ती हैं। यदि किसी को सहस्र-सहस्र जिह्वा उपलब्ध भी हो जाय तो भी वह भगवान अनन्त के अनन्तगुणों का बखान नहीं कर सकता। इस प्रकार के प्रभाववाले भगवान अनन्त लीलापूर्वक पृथ्वी को धारण करते हुए उसके मूल में स्वतन्त्ररूप से वर्तमान हैं।

भोगों की कामनावाले पुरुषों की, अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त होनेवाली, भगवान की रची हुई ये ही गतियाँ हैं जो शुकदेव जानते है। मनुष्य को प्रवृत्तिरूप धर्म परिणाम में प्राप्त होनेवाली जो परस्पर विलक्षण ऊँची-नीची गतियाँ हैं, वे इतनी ही हैं।

३) अठ्ठाइस नरकों का वर्णन

पाप करें तें हृदयमाहिँ अति तम भरि जावै। अन्त:करणन मलीन होह नर बहुत दुख पावै।।
सूक्ष्म देह जब जाइ यातना देह पाइकें। नरकनिमें फिरि पचे भूमि ते जीव जाइकें।।
सहै यातना नित नई, किन्तु दु:खमें मरे नहि। अनुभव वैसे ई करै, जैसे नर तनु कष्टसहि।।

शुकदेव बोले-राजन्। जो मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा किये हुए दुष्ट कर्मों का इसी जन्म में प्रायश्चित नहीं कर लेता, उसे मृत्यु के पश्चात् मैंने जिन भयंकर यातनापूर्ण नरकों का वर्णन किया है, उनमें उसे अवश्य जाना पड़ता है।

सुख दो प्रकार के होते हैं, एक दृष्ट सुख एक श्रुत सुख। दृष्ट सुख तो उसे कहते हैं, जिन्हें हम अपनी इन्द्रियों से इसी लोक में अनुभव करते हैं। जैसे अत्यन्त गुदगुदे गद्दों पर बैठने से स्पर्शेन्द्रिय को सुख होता है। अत्यन्त सुन्दर-से-सुन्दर वस्तु देखने से नेत्र को सुख होता है, स्वादिष्ट-से-स्वादिष्ट पदार्थ खाने से जिह्वा लपलप करने लगती है, ओठ चाटने लगती है, बड़ा रस आता है। ताल स्वरसहित सुन्दर गायन हो रहा हो तो चाहे समझ में कुछ भी न आवे मन प्रसन्न होता है। इसी प्रकार सब इन्द्रियों के विषय में समझना चाहिये। इन्द्रियों के अनुभूत सुख का नाम है दृष्ट सुख। श्रुत सुख उसे कहते हैं जो हमने अनुभव तो किया नहीं केवल सुना मात्र है। जैसे जो वायुयान पर चढ़कर घूमा है, वह जब आकर कहता- वायुयान पर चढ़ने में तो बड़ा ही आनन्द आता है। सर्र-सर्र वायुयान ऊपर उठता है, पेट का पानी भी नहीं हिलता। ऊपर से घरघरूआ पाती की भाँति छोटे-छोटे दीखते हैं, वृक्ष झाड़ियों के समान दिखाई देते हैं। सड़के लकीर-सी दीखती हैं। टेढ़ी-मेढ़ी बहती हुई नदी लम्बी सर्पिणी के सदृश प्रतीत होती है। ऊपर धूलि न धक्कड़ आनन्द से दृश्य देखते हुए उड़ते चलो। इस वर्णन से जो सुख होता और उसमें जो स्पृहा होती है वही श्रुत सुख है। स्वर्ग किसने देखा है। स्वर्ग देखकर कलियुग में कौन लौटा है? किन्तु शास्त्र ही, आप्त वचन ही उसके अस्तित्व में प्रमाण है। वहाँ विमान है, अप्सरायें हैं, गन्धर्व हैं, कल्पवृक्ष हैं, कामधेनु है, नन्दन वन है, अमृत है और न जाने क्या है, उन्हीं के लोभ से, उन्हें ही पाने की इच्छा से हम सत्कर्म करते हैं उन्हें पाते हैं। शरीर में असंख्यों रोग होते हैं जो दु:ख देते जहैं वे सब व्याधि कहलाते हैं। मन से जो दु:ख होता है उसे आधि कहते हैं। अपकीर्ति हो गई। युवा पुत्र मर गया। अभी लड़की का विवाह किया अभी विधवा हो गई। अभियोग में पराजय हो गई, किसी ने कटु शब्द कहकर अपमान कर दिया, किसी ने विश्वासघात ही कर दिया। इन सब दु:खों को दृष्ट दु:ख कहते हैं। नरक में जिन नाना यातनाओं का शास्त्रों में वर्णन मिलता हैं उन्हें श्रुत दु:ख कहते हैं।

राजा परीक्षित ने पूछा- ऋषिप्रवर, लोगों को जो ऊँची-नीची गतियाँ प्राप्त होती हैं, उनमें इतनी विभिन्नता क्यों है।

राजा परीक्षित के पूछने का आशय यह है कि जब सारी विश्व-सृष्टि एक ही धातु से रची जाती है, चाहे उस धातु को पंचभूत कहिये, त्रिगुणमयी प्रकृति कहिये, अभिन्ननिमित्तोपादान कारण ईश्वर कहिये, परिणामी कहिये अथवा अविकृत परिणाम कहिये, तब उसमें इतने विभिन्न प्रकार की सृष्टि कैसे होती है?

शुकदेव बोले- राजन्, धातु के एक होने पर भी कर्ता-भेद से उसमें वैचित्र्य आ जाता है जैसे सुवर्ण एक है, किन्तु स्वर्णकार उसमें नाना प्रकार के आभूषण बनाता है। मिट्टी एक ही है, किन्तु कुम्भकार उसमें भाँति-भाँति के वर्तन बनाता है। इसी प्रकार कोई कर्ता सात्त्विक होता है, कोई कर्ता राजस होता है और कोई तामस। इसी तरह सब की श्रद्धा भी समान नहीं होती- किसी की राजसी, किसी की तामसी और किसी की सात्त्विकी श्रद्धा होती हैं। इसी कारण से कर्म की गतियाँ भिन्न-भिन्न हो जाती हैं और इनमें तारतम्यभाव- न्यूनाधिकभाव हो जाता है फिर तो जैसा कर्म करता है उसे उसके अनुसार फल मिलता है। जीव जैसा इस लोक में कर्म करता है परलोक में वैसा ही उसका दु:ख भोगता है। कर्मानुसार जीवों को नाना योनियों में जाना पड़ता है।

पूर्वजन्म का कोई पाप उदय हो जाता है तो पुण्यात्मा पुरुषों को भी दु:ख भोगने पड़ते हैं। पूर्वजन्म का कोई पुण्य उदय हो जाता है तो पाप करते हुए भी पूर्वपुण्य के प्रभाव से सुखोपभोग की सामग्रियाँ प्राप्त हो जाती हैं तो भी पुण्यात्मा दु:ख भोगते हुए भी उसे धैर्य से सहते हैं। उन्हें उतना क्लेश नहीं होता, वे समझते हैं, हमारे प्रारब्ध के भोग क्षय हो रहे हैं अच्छा ही है। इसके विपरीत पापात्मा विषयों का उपभोग करते हुए अशान्त दुखी बने रहते हैं कि हाय। ये विषय भोग नष्ट हो जायँ,

ये चले न जायँ। महाराज। सत्त्व-रज और तम के अधीन होकर मनुष्य जैसे कर्म करता है, उनकी छापअन्त:करण में लग जाती है, उसी से नाना योनियों में इस पृथ्वी पर जन्म लेताहै। मरकर कर्मों के अनुसार स्वर्ग नरक में सुखोपभोग यातनाओं का अनुभव करता है।

सात्त्विक श्रद्धा से धर्म होता है। उससे प्राणियों को सुख की प्राप्ति होती है। राजसी श्रद्धा से धर्म और अधर्म दोनों होते हैं। उनसे सुख और दु:ख की प्राप्ति होती है एवं तामसी श्रद्धा से केवल अधर्म होता है। उससे दु:ख तथा मोह की प्राप्ति होत है। किसी भी पुरुष की सर्वदा एक-सी श्रद्धा नहीं रह सकती है। गुणों के परस्पर सम्मर्द से प्राणी के हृदय में यथा समय तीनों गुणोंका संचार होता है। तदनुसार समस्त जीवों को ये सभी गतियाँ क्रम से प्राप्त हुआ करती है। अत: जैसे शास्त्र विहित धर्म करने का फल स्वर्ग कहा गया है। उसी प्रकार अधर्म का फल नरक बताया गया है। दिव्य स्वर्ग, भूस्वर्ग तथा विलस्वर्ग के भेद से स्वर्ग तीन प्रकार के हैं।

जैसे शास्त्रों में बतलाये गये धर्म का फल स्वर्ग बतलाया गया है; वैसे ही अधर्म का, निषिद्ध कर्मों का फल नरक कहा गया है। नरक के हजारों भेद हैं।

शुकदेव बोले- महाराज। जैसा पृथ्वीपर भौम स्वर्ग है, वैसे ही यहाँ भी भौम नरक है, किन्तु नरक नाक के पाताल के नीचे एक अन्धकारमय देश है। पापियों को वहाँ यमराज की आज्ञा से ले जाया जाता है और उनके पापों के अनुसार दण्ड दिया जाता है। पाप पुण्य ये दोनों मन की वृत्ति हैं। जब तक मन की इन कर्मों में प्रवृत्ति न होगी तब तक शरीर न पाप कर सकता है न पुण्य। जिस गुण के अधीन होकर मन जैसे कर्म करता है, वैसे ही संस्कार उसके हो जाते हैं और फिर वैसे ही क्लेशों को वह सहता है।

इन्द्रिय मन आधीन करे जो जिह करवावै। मन लै जावै स्वरग नरकमें जिही पठावै।।
मनतें भोगे भोग जिही देखे सपनेकूँ। माया-मोहित जीव कहे कर्ता अपनेकूँ।।
यह मन चंचल चपल अति, नहिँ काऊको मीत है। मनके हारे हार है, मनके जीते जीत है।।

राजा परीक्षित ने पूछा- भगवन्, आप जिनका वर्णन करना चाहते हैं, वे नरक इसी पृथ्वी के कोई देशविशेष हैं अथवा त्रिलोकी के बाहर या इसीके भीतर किसी जगह का नाम है। शुकदेव बोले- राजन् नरक लोक में यमराज रहते हैं। वे सूर्य के पुत्र है। इन्हें पितृराज की संज्ञा दी है। इनके बहुत-से दूत एवं सेवक है। यह अपनी आज्ञा से दूतों द्वारा लाये गए मृत प्राणियों को उनके दुष्कर्मों के कारण पापके फलका दण्ड देते हैं। ऐसे तो नरक बहुत से है पर अठ्ठाइस नरक मुख्य हैं।

रौरव कुम्भीपाक, महारौरव, सूकरमुख। कृमिभोजन, सन्दंश, शाल्मली, नरक देहिँ दुख।।
तप्तभूमि, पूयोद, प्रानरोधन, बटरोधन। पर्यावर्तन, शूलप्रोत, वैतरणी, बिशसन।।
कोई कहें अनेक हैं, अष्टाविंशति कछु कहें। इन नरकनिमहँ जाइकें, पापीजन बहुत दुख सहें।।

पाप करने से नरकों की प्राप्ति अवश्य होगी, पुण्य और पापों का फल इसी लोक में भोगना होगा मरकर परलोक में भी, अत: पहिले तो पाप बनने ही न चाहिये, भूल से, असावधानीसे पाप बन भी जाय तो उनका शरीर रहते ही प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये। इसीलिये पापों का स्वरूप जान लेना आवश्यक है कि कौन पाप कैसा है और उसके करने से किस नरक में जाने पर कौन-कौन-सी यातनायें सहनी पड़ती है।

पापिनिको संसर्ग पापमय तुरत बनावै। सन्तनको सत्संग कृष्ण चरननि पहुँचावै।।

डरे पापतें सदा प्रेमतें प्रभु आराधें। जप, तप, तीरथ, बरत करें यम नियमनि साधें।।

सदा सत्य बोलें बचन, ब्रह्मचर्यतें रहे नित। जाइँ नहीं ते नरक नर, परतिय पै न चलाइँ चित।।

धर्म अधर्म में शास्त्र ही प्रमाण है। कौन कार्य कर्त्तव्य है कौन अकर्त्तव्य है, तर्क से सिद्ध नहीं हो सकता। यदि परपीड़न- दूसरों को क्लेश देना ही पाप हो तो परस्त्री गमन में तो वह नहीं, किन्तु यह महापाप है। जो धर्म की मर्यादा को भेदन करते हैं वही पापी हैं। स्वाभाविक वृत्ति को संयम में रखने का ही नाम धर्म है। वृत्तियों के पीछे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान न रखकर मनमानी करना इन्द्रियों के अधीन होकर स्वेच्छाचार करना अधर्म है। स्त्री पुरुषों की अपने उत्पत्ति स्थानों में- मैथुन में स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। धर्म उसे कहता है, इस वृत्ति को रोक सको, इससे निवृत्त हो सको तो सर्वश्रेष्ठ, यदि निवृत्त न हो सको तो शास्त्रीय विधि से धर्मपूर्वक विवाह कर लो। ऋतुकाल में अपनी भार्या में ही सन्तान की इच्छा से गमन करो। यह धर्म है। इसके अतिरिक्त परस्त्रीगमन अधर्म है। इसी प्रकार सबकी मर्यादा धर्म बाँधता है।

शुकदेव बोले- राजन्। कर्मों के द्वारा कर्मों का आत्यंतिक नाश नहीं हो सकता। क्योंकि करनेवाला अधिकारी अज्ञानी ही है। इसलिये यथार्थ प्रायश्चित्त तो विचार-भगवत् स्वरूप का ज्ञान ही है।

तनतें मनतें करे पाप जितने बचननितें। करिकें प्रायश्चित्त पृथक् हौवें नर तिनतैं।।

श्रद्धा संयम युक्त करै तप, ब्रह्मचर्य शम। सत्य, दान, तप, शौच, योगयुत करै नियम यम।।

ते निश्चय ही पापतै, छिनमहँ नर तरि जात है। ज्यों दावानलके लगत, वेणु गुल्म जरि जात है।।

पाप होता कैसे है? अज्ञान से अनित्य में नित्य बुद्धि करने से, अप्रिय में प्रिय भावना करने से, अशुचि में शुचि की कल्पना करने से। स्त्री-पुरुष के और पुरुष स्त्री के रूप में आसक्त होकर जो पाप कर्म कर डालते हैं, उसका एकमात्र कारण अज्ञान है। वे अज्ञानी आज पाप का प्रायश्चित्त करेंगे, कल फिर उसी पाप को करेंगे, क्योंकि उनका मन तो विषय में फँसा है। सबसे उत्तम प्रायश्चित तो ज्ञान है। मन इन विषयों से हटकर मनमोहन की माधुरी में मस्त हो जाय। चित्त इन अज्ञानकृत शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्शजन्य सुखों में फँसा है, इनसे हटकर जब ज्ञानरूप भगवत स्वरूप में तल्लीन हो जाय तो फिर इससे कभी पाप बन ही नहीं सकते। भगवतस्वरूप का ज्ञान भगवान की अहैतुकी भक्ति, उनके नाम, रूप, लीला, धाम इन सबमें अथवा इनमें से किसी एक में रति होना यही सबसे श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है।

प्रायश्चित यथार्थ जिह, सद्गुरुके ढिँक जायकें। करे नाश अज्ञानकूँ, नारायण गुन गाइकें।।

शुकदेव बोले- राजन्, जो नरनारायणपरांगमुख है भगवत् भक्ति से रहित है, उसके किये हुए प्रायश्चित्त उसे उसी प्रकार शुद्ध नहीं कर सकते जिस प्रकार मद्य के घड़े को सरितायें शुद्ध नहीं कर सकती। भगवान का आश्रय ग्रहण करने से, भगवद्भक्ति करने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। जो मनुष्य नियम से संयमपूर्वक नहीं रहता, उसके सब साधन व्यर्थ हैं।

पुत्र- आत्मज, सुत। शकुंतला जब कुमार भरत को लेकर दुष्यंत के पास गईं, तब प्रकृतिकन्या ने कहा- राजन्। यह आपका पुत्र है, इसे आप युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिए। फिर पुत्र के महत्त्व को रेखांकित करते हुए शकुंतला ने आगे कहा- पुत्र पुत नामक नरक से पिता का त्राण करता है, इसलिए स्वयं ब्रह्मा ने उसे पुत्र कहा है।

१) तामिस्र- जो पुरुष दूसरों के धन, सन्तान अथवा स्त्रियों का हरण करते हैं, उन्हें भयंकर यमदूत कालपाश में बाँधकर जबर्दस्ती तामिस्र नरक में गिरा देते हैं। वहाँ उन्हें अन्न-जल नहीं मिलता, उल्टे वे डण्डों से पीटे जाते हैं और अन्ध:कार में इधर-उधर दौड़ता है।

२) अन्धतामिस्र- जो मनुष्य यह कहता है कि तू मेरी धर्म की बहन है, शिष्या है इस प्रकार वंचना कर उसका उपभोग करता है। वह प्राणी अन्धतामिस्र नरक में गिराया जाता है। वहाँ कड़ी यातनाएँ भोगता है। जड़ से कटे वृक्ष के समान उसका शरीर सूख जाता है। वहाँ वह त्राहि-त्राहि करता हुआ घोर अन्धकार में भटकता हुआ अपने पाप का फल भोगता है। इसी प्रकार जो पुरुष किसी को धोखा देखकर उसकी स्त्री आदि को भोगता है, वह अन्धतामिस्र नरक में पड़ता है। यह तामिस्र से भी भयंकर है।

३) रौरव- जो मनुष्य दूसरे प्राणियों से द्रोहकर अहंकार अथवा ममतावश अपने ही परिवार के भरण-पोषण में लगा रहता है, वह मरने पर रौरव नरक में जाता है। जहाँ भयंकर सींगोंवाले रुर नामक जीव पापी के मांस को नोच-नोचकर खाते हैं, वह रौरवनरक है।

४) कुम्भीपाक- जो पशु-पक्षियों को तेल में पकाता है, उसको यमदूत, कुम्भीपाक नामक नरक में डालकर तेल में वैसे ही पकाते हैं जैसे घड़े में कोई चीज पकाई जाती है। सुन्दर पशु-पक्षी परमात्मा की दृष्टि का ये सौन्दर्य है, उसे हम जीवन नहीं दे सकते तो उसे मारने का हमारा क्या अधिकार है?

५) महारौरव - वहाँ विषमुख वाले मृग प्राणी के टुकड़े-टुकड़े खा जाते हैं।

६) कालसूत्र- जो मनुष्य इस लोक में माता-पिता, ब्राह्मण और वेद से विरोध करता है, उसे यमदूत कालसूत्र नामक नरक में ले जाते हैं। इसका घेरा दस सहस्र योजन है। इसकी भूमि ताँबे की है। यहाँ का मैदान ऊपर के सूर्य और नीचे की आग से दहकता रहता है। इसी पर पापी को इधर से उधर दौड़ाया जाता है। भूख-प्यास से विकल छटपटाता हुआ वह मूर्च्छित होकर इधर-उधर गिरता रहता है। शरीर में जितने रोम हैं उतने वर्षों तक उसे यह गति भोगनी पड़ती हैं।

७) असिपत्रवन- जो पुरुष किसी प्रकार की आपत्ति न आने पर भी अपने वैदिक मार्ग को छोड़कर अन्य पाखण्डपूर्ण धर्मों का आश्रय लेता है, उसे असिपत्रवन में ले जाकर कोड़ों से पीटा जाता है, जिससे वह इधर-उधर भागता है। दौड़ने में वह वृक्षों से टकराता है। इससे उसके अंग तीक्ष्ण धारवाले पत्तों से कट-कट कर गिरते हैं। इस प्रकार उसे पाखण्ड धर्म के आश्रय का फल भोगना पड़ता है।

८) शूकरमुख- जो राजा निरपराध प्राणी को दण्ड देता है। ब्राह्मण को प्राणदण्ड देता है। उस पापी राजा को शूकरमुख कोल्हू में डालकर यमदूत गन्ने की तरह पेरते हैं।

९) अन्धकूप- मच्छर, खटमल आदि की जीविका है- प्राणी का रक्त चूसना। इसमें उन्हें पाप नहीं लगता अत: जो व्यक्ति इनकी हत्या करता है, उसे उस नरक में डाला जाता है। वहाँ उस व्यक्ति के द्वारा मारे गये जीव ही उसका खून चूस-चूसकर पीते हैं। वह अन्धकार में इधर-उधर भटकता फिरता है। उसे शयन करने का भी अवसर नहीं उपलब्ध होता।

१०) कृमिभोजन- जो व्यक्ति बिना पंच महायज्ञ किये, बिना किसी दूसरे को दिये स्वयं भोजन कर लेता है, वह भोजन के समय गोग्रास भी नहीं निकालता, वह कृमिकुण्ड नरक में गिरता है। वहाँ वह सुदीर्घकाल तक कृमि बन कर रहता है और कृमि ही भोजन करता है।

११) संदंश- जो लोग चोरी से अथवा जबर्दस्ती ब्राह्मण के अथवा किसी दूसरे के धन का अपहरण करते हैं, उन्हें यमदूत इस नरक में डाल कर उनके खाल की खिंचाई सँड़ासी से करते हैं।

१२) तप्तसूर्मि- जो व्यक्ति अगम्या स्त्री के साथ सम्भोग करता है अथवा कोई स्त्री अगम्य पुरुष से व्यभिचार करती है, तो

यमदूत उसे इस नरक में ले जाकर कोड़ों से पीटते हैं तथा पुरुष को तप्त लौह स्त्री-मूर्ति से और स्त्री को तपाई हुई पुरुष-प्रतिमा से आलिंगन करवाते हैं।

१३) बज्रकण्टक शाल्मलि-निरय- जो व्यक्ति पशु आदि सभी के साथ व्यभिचार करता है, उसे मृत्यु के बाद यमदूत वज्र के समान तीक्ष्ण काँटोंवाले सेमर के वृक्ष पर चढ़ाकर नीचे की ओर खींचते हैं।

१४) वैतरणी- जो राजा अथवा राजपुरुष इस लोक में श्रेष्ठ कुल में जन्म लेकर भी धर्म की मर्यादा का उच्छेदन करते हैं, वे वैतरणी नदी में ढकेले जाते हैं। यह नदी मल-मूत्र, पीब, रक्त, मांस और मज्जा आदि दुर्गन्धभरी वस्तुओं से भरी रहती है। पापी उसी में डूबता उतरता स्वकृत कर्म का फल भोगता है। यमराज के द्वार पर स्थित प्रसिद्ध नदी। दंडकारण्य में गोदावरी के किनारे पर्णकुटी बनाकर सीता तथा लक्ष्मण के साथ राम निवास कर रहे थे। एक दिन राक्षसराज रावण ने छल-कपट से सीता का अपहरण कर लिया। सीता के वियोग में राम अत्यंत दुखी हुए। वे सीता की खोज में वन में इधर-उधर घूमने लगे। उनका विषाद इतना गहरा था कि उनके नेत्रों से अश्रुपात रुकता ही नहीं था। उनके नेत्रों के अश्रु-जल से वैतरिणी नदी उत्पन्न हुई। वह अश्रु का वितरण करती है, इसलिए वैतरिणी कहलाई। इस नदी में स्नान-तर्पण करने से पितरों का तरण (निस्तार) होता है, इस कारण भी उसे वैतरिणी नदी कहा गया।

१५) पूयोद- जो लोग शौच और आचरण के नियमों का परित्याग कर तथा लज्जा को छोड़कर इस लोक में शूद्राओं के साथ सम्बन्ध जोड़कर पशुओं के समान आचरण करते हैं, वे भी मरने पर पीब, विष्ठा, मूत्र, कफ और मल से भरे हुए, पूयोद नामक समुद्र में गिरकर उन अत्यन्त घृणित वस्तुओं को ही खाते हैं।

१६) प्राणरोध- जो ब्राह्मणादि उच्च वर्ण के लोग कुत्ते या गधे पालते हैं और शिकार आदि करते हैं, वे इस नरक में गिराये जाते हैं। यहाँ यमदूत उन्हें बाणों से बींधते हैं। इसमें प्राणरोध के तुल्य व्यथा होती है। इसी से इस नरक का नाम प्राणरोध है।

१७) विशसन- जो पाखण्डी लोग पाखण्डपूर्ण यज्ञों में पशुओं का वध करते हैं, उन्हें मरने पर वैशस (विशसन) नरक में डालकर वहाँ के अधिकारी उनके अंगों को तीखे शस्त्र से खण्ड-खण्ड करते हैं।

१८) लालाभक्ष- जो द्विज कामातुर अत: विवेकशून्य होकर अपनी सवर्णा भार्या के मुख में वीर्यपात करते हैं। मरने पर उन्हें इस नरक में वीर्यपान कराया जाता है।

१९) सारमेयादन- सारमेय कहते हैं कुत्ते को। इस नरक में ७२० तीक्ष्ण दाँतोंवाले कुत्ते रहते हैं। जो चोर अथवा राजा या राजपुरुष इस लोक में किसी के घर में आग लगा देते हैं, किसी को विष दे देते हैं अथवा लोगों को लूटते हैं, उन्हें यमदूत इस नरक में डाल कर वज्र के सदृश तीखे दाँतवाले इन कुत्तों से कटवाते हैं।

२०) अवीचिमान्- जो व्यक्ति झूठी गवाही देता है, व्यापार अथवा दान की बेला में मिथ्या बोलता है उसे १०० योजन ऊँचे पर्वत के ऊपर से सिर के बल नीचे गिराया जाता है। वहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि नीचे जल है किन्तु रहती है पत्थर सदृश अतिकठोर भूमि, जिस पर गिर कर पापी का शरीर सौ-सौ टुकड़े हो जाता है।

२१) अय:पान- जो ब्राह्मण या ब्राह्मणी अथवा और कोई भी व्रत के समय मदिरा पान करते हैं, मरने पर उन्हें यहाँ गलाया हुआ गरम लोहा पिलाया जाता है।

२२) क्षारकर्दम- जो स्वयं है तो अधम किन्तु उच्च होने का स्वांग रचता है और बड़े लोगों का सम्मान नहीं करता उसे

लवणात्मक कर्दम-कुण्ड में नीचे सिर के बल डुबाया जाता हैं इससे उसे असह्य वेदना होती है।

२३) रक्षोगणभोजन- जो पुरुष अथवा स्त्री काली, भैरव आदि को नरबलि देते हैं और प्रसादरूप में उस मांस को खाते हैं, वे इस नरक में गिराये जाते हैं। बलि चढ़ाये गये नर वहाँ राक्षस बनकर उनके मांस को खाते और रक्त को पीते हैं तथा आनन्दित होकर नाचते-गाते हैं।

२४) शूलप्रोत- जो क्रूर-हृदय बाणों से बींधकर पशुओं की हत्या करते हैं, आखेट करते हैं, मरने पर उन्हें ही इस नरक में डालकर शूल में पिरो दिया जाता है। तीक्ष्ण चोंचवाले पक्षी जैसे कंक, बटेर आदि उनके मांस को नोच-नोचकर खाते हैं। इस प्रकार उन्हें असह्य वेदना की अनुभूति होती हैं।

२५) दन्दशूक- जो सर्पों के समान उग्र स्वभाववाले पुरुष बात-बात में क्रुद्ध होकर दूसरों को उद्विग्न करते हैं, वे ही इस नरक में गिराये जाते हैं। यहां पाँच-सात मुखवाले भयंकर सर्प उन्हें रह-रहकर डँसते रहते हैं और चूहों के समान निगलते रहते हैं।

२६) अवटनिरोधन- जो व्यक्ति यहाँ दूसरों को कालकोठरियों में बन्द कर देते हैं; उन्हें यमदूत वैसे ही स्थानों में बन्दकर विषैली गैस भर कर उनका दम घोटते हैं।

२७) अक्षिपर्यावर्तन- जो गृहस्थ अपने यहाँ आगत अतिथि अभ्यागतों को वक्र दृष्टि से देखते हैं उन्हें इस नरक में गिराया जाता है। वहाँ कंक, गीध और कौएं आदि इनकी आँखों को नोच-नोचकर निकालते हैं।

२८) सूचीमुख- जो अपने को धनी मानकर दूसरों को वक्र दृष्टि से देखता है और बात-बात पर सन्देह करता है। यक्ष के समान धन-संग्रह कर किसी को कानी कौड़ी भी नहीं देता उस धनपिशाच को इस नरक में डाला जाता है। वहाँ इसके अंगों को फाड़-फाड़कर सुई से सिला जाता है।

हे राजन्, यमलोक में इस प्रकार के सहस्रश: नरक हैं। उनमें कुकर्म-निरत प्राणियों को बारी-बारी से जाना पड़ता है। इसी तरह जो व्यक्ति शुभ कर्मों में लगे हैं वे पुण्यात्मा जन स्वर्ग की यात्रा करते हैं। पाप और पुण्यों को भोगकर प्राणी भोग से शेष बचे हुए पाप और पुण्यों के साथ पुन: इस भू-मण्डल में जन्म लेता है। धर्म और अधर्म दोनों से विलक्षण निवृत्तिमार्ग है।

राजन्। पतित से दान लेने पर ब्राह्मण गदहे की योनि प्राप्त करता है। पतित का यज्ञ करानेवाला द्विज नरक से लौटने पर कीड़ा होता है। गुरु से छल करनेवाला कुत्ता होता है। माता-पिता का अपमान करनेवाला तथा कटुवचन कहनेवाला मैना होता है। भाई की स्त्री का अपमान करनेवाला कबूतर होता है तथा पीड़ा देनेवाला कछुआ होता है। जो मालिक का अन्न खाता है किन्तु उसका काम नहीं करता वह बानर होता है। धरोहर हड़पने वाला रिंगनेवाला कीड़ा होता है। गुणों में दोष दृष्टि रखनेवाला राक्षस होता है। विश्वासघाती पुरुष मछली होता है। जो अज्ञानवश गेहूँ, जौ, धान, मटर आदि अन्न की चोरी करता है वह नेवले के समान बड़े मुँह का चूहा होता है। परस्त्री के साथ समागम करनेवाला भेड़िया होता है। उसके बाद क्रमश: कुत्ता, सियार बगुला, गिद्ध सर्प तथा कौआ होता है। जो भाई की पत्नी के साथ बलात्कार करता है वह कोयल होता ह। जो कामान्ध होकर राजा की पत्नी के साथ बलात्कार सहवास करता है वह सुअर होता है। यज्ञ, दान और विवाह में विघ्न डालनेवाला तथा कन्या का दुबारा दान करनेवाला कीड़ा होता है। जो देवता, पितर और ब्राह्मणों को दिये बिना अन्न भोजन करता है वह कौआ होता है। पिता के समान पूजनीय बड़े भाई का अपमान करता है वह क्रौंच नामकपक्षी होता है। ब्राह्मण की स्त्री के साथ सहवासकर यदि

उसके गर्भ से सन्तान उत्पन्न करें तो वह नरक यातना भोगकर चाण्डाल होता है जो किसी के उपकार को नहीं मानता वह कृतघ्न क्रम से कीट, पतंग, बिच्छू, मछली, कौआ, कछुआ और अन्त में चाण्डाल होता है। शस्त्र से पुरुष की हत्या करनेवाला गदहा होता है। स्त्री और बालकों की हत्या करनेवाला काठ का कीड़ा होता है। भोजन की चोरी करनेवाला मक्खी होता है। उससे भी जो भोजन का विशेष भेद हैं उन्हें चुरानेवाले के पृथक्-पृथक् फल सुनिये।

साधारण अन्न चुरानेवाला बिल्ली होता है। तिलके लड्डू चुरानेवाला चूहा होता है। घी चुरानेवाला नेवला होता है। नमक की चोरी करनेवाला जलमुर्गा, दही चुरानेवाला कीड़ा और दूध की चोरी करनेवाला बगुला होता है। जो तेल चुराता है वह तेल पीनेवाला कीड़ा हेाता है। मधु चुरानेवाला डांस और पुआ चुरानेवाला चींटी होता है। हविष्यान्न चुरानेवाला विसतुइया (गिरगिट) होता है। लोहा चुरानेवाला कौवा होता है। चाँदी का बर्तन चुरानेवाला कबूतर होता है। सुवर्ण का पात्र चुरानेवाला कीड़ा होता है। रेशमी वस्त्र की चोरी करने पर चकवे की योनि तथा रेशम का कीड़ा होता है। सुगन्धित पदार्थों की चोरी करनेवाला छछुन्दर, वस्त्र का अपहरण करनेवाला खरगोश होता है। भूमि का अपहरण करनेवाला रौरव नरक से लौटकर बाँस का वृक्ष होता है। जो बैल के अण्डकोश का छेदन करता है वह नपुंसक होता है और फिर चाण्डाल आदि घृणित योनियों में जाकर लूला, लँगड़ा, अन्धा, बहिरा होकर यक्ष्मा तथा गुदा के रोग से पीड़ित रहता है।

जो आधुनिक सुधारवादी लोक-परलोक में आस्था न रखकर ईश्वर को नहीं मानते उन्हें भी अगत्या मृत्यु को तो मानना ही पड़ेगा। कितनी ही उछल-कूद क्यों न करें वे उससे किसी तरह बच नहीं सकते। मृत्यु भगवान का ही स्वरूप है। वह जब चाहे तुम्हें मारकर तुम्हारी दुर्गति बना सकता है। क्योंकि तुम उसके अधीन हो, उस समय तुम्हारा अभिमान तथा कुतर्क चल नहीं सकेगा। तुम्हारे घनिष्ठ सगे-सम्बन्धी भी काम न आयेंगे। यमदूत दण्डों की मार से तुम्हें जर्जर बना देंगे। तुम भूख-प्यास से तड़पते रह जाओगे। कोई सुनेगा नहीं, इसलिए तुम अब भी चेत जाओ। अहंकार त्यागकर भगवान की शरण लो। जीवों के परम हितैषी त्रिकाल दर्शी महर्षि श्री व्यास जी ने जो यहाँ भयानक नरकों का वर्णन किया है वह अक्षरश: सत्य है उसमें कुछ भी मिथ्या नहीं। पापी किसी प्रकार भगवान के सम्मुख हो जायँ, पाप करना छोड़ दें, इस दृष्टि से उन्होंने यह सच्ची विभीषिका दशायी है। इन पाँच सूत्रों का सबको ध्यान रखना चाहिए- धर्म का आचरण करना, परायी स्त्री को बुरी दृष्टि से न देखना, नित्य यथा समय नाम-कीर्तन तथा भगवत्कथा का श्रवण करना, किसी को न सताना और भूखे को रोटी का टुकड़ा देना।

यह भगवान का अत्यन्त स्थूलरूप है। स्थूलरूप के वर्णन, श्रवण और चिन्तन से व्यक्ति, उपनिषदों के द्वारा प्रतिपादित, भगवान के सूक्ष्म रूप का भी अनुभव कर सकता है।

परीक्षित, मैंने आप से पृथ्वी, उसके अन्तर्गत द्वीप, वर्ष, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल, दिशा, नरक, ज्योतिर्गण और लोकों की स्थिति का वर्णन कर दिया। यही भगवान का अति अद्भुत स्थूल रूप है जो समस्त जीवसमुदाय का आश्रय है। जो मनुष्य श्रद्धा और भक्ति से इस रूप में सर्वत्र भगवद्बुद्धि रखकर मन को स्थिर कर लेता है वह भगवत्कृपा से सूक्ष्म रूप को भी जान लेता है।

स्वर्ग और नर्क और कहीं नहीं हैं, यही हैं, तुम्हारी नजरों में हैं; तुम्हारी दृष्टि सृष्टि है, देखने की कला सीखो, पीने की कला सीखो। स्वर्ग और नर्क कोई भौगोलिक स्थितियां नहीं हैं कि कहीं भूगोल में खोजने से नर्क और स्वर्ग मिल जायेंगे। स्वर्ग और नर्क मनुष्य की मानसिक स्थितियां हैं जो मनुष्य जीवन को ठीक से देखने में समर्थ हो जाता है और जो गलत ढंग से

देखता है वह यहीं नर्क में प्रविष्ट हो जाता है।

अगर आपने किसी संत सद्गुरु का आश्रय किया है, आपने भगवद् चरणों का आश्रय लिया, तो आपकी दृष्टि परिमार्जित होगी। अवश्य आपकी सूक्ष्म दृष्टि से नरक में भी परमात्मा दिखाई पड़ेगा।

पाप-पुण्य करनेवालोंको सुख-दु:खकी अनुभूति करानेके लिए ही नरक तथा स्वर्ग बन जाते हैं। ये सब कर्मके फल हैं। इसका नाम देशान्तर नहीं, फलान्तर ही कहना चाहिए। परन्तु जो पाप करेगा, उसको नरकका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। इसलिए मनुष्यको नरकसे बचनेके लिए पापमुक्त होना चाहिए।

स्वर्ग और नरक प्राय: अंतरात्माकी बल्कि प्राणकी वे काल्पनिक स्थितियां हैं जिनका निर्माण गुजर जानेके बाद वह अपने चारों ओर कर लेता है। नरक का मतलब है प्राणमय लोकमेंसे गुजरनेका कष्टदायक रास्ता या वहां कुछ देर रहना, जैसा कि बहुतसी आत्मघातकी वारदातोंमें होता है जहां व्यक्ति ऐसे अस्वाभाविक घिरा रहता है। मानसिक और प्राणिक लोकमें ऐसे जगत् भी हैं जिनमें आह्लादमय या अन्धकारमय अनुभूतियोंके साथ प्रवेश होता है। मनुष्य अपनी प्रकृतिमें बनी हुई रचनाओंके परिणाम स्वरूप जो आवश्यक सम्बन्ध पैदा कर देते हैं- ऐसे मार्गोंसे गुजर सकता है। लेकिन पुरस्कार और दण्डका विचार एक अनगढ़ और भद्दी धारणा है, लोक-मानसकी सामान्य भूल है। नारकीय योनियों का कष्ट है गलत कर्म से, पाप कर्म से होता है इसलिये नारकीय यातना भोगनी पड़ती है। इसके प्रायश्चित के लिये अपने पापों को उगलना चाहिए। प्राणी पुण्य तो करते हैं तो उसको उगलते फिरते हैं, हम तो चारों धाम कर आये, डेढ़ लाख नाम रोज जपते हैं, पूरी रामायण और गीता कण्ठस्थ है, पुण्यों को तो कहते फिरते हैं और अपने पाप को छिपाते हैं।

पुण्य करे सो ना कहे, पाप करे परकाश। कहबे ते दोनों घटे वरणे गिरधर दास।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्। जानबूझकर पाप तो नहीं करना चाहिए अगर अनजान में हो गया तो उसके लिये प्रायश्चित करके उसकी शुद्धि का उपाय करना चाहिये। प्रायश्चित तीन प्रकार के है- कर्मकाण्डगत प्रायश्चित, ज्ञानकाण्ड का प्रायश्चित, उपासनाकाण्डगत प्रायश्चित कर्मकाण्ड प्रायश्चित सही शुद्धि नहीं दे पाता है।

शुकदेव बोले- राजन्। भगवत नाम से बढ़कर कोई सरल और उत्तम मार्ग नहीं है। क्योंकि लोग भगवदीय नाम पर सहज विश्वास नहीं करते। भगवान तो कहते हैं- मैंने तो जीव को हर तरह की सुविधा दी है खाने के लिए अच्छे-अच्छे मिष्ठान्न दिये हैं फिर भी वे जीवों की हिंसा करता है, नरक भोगता है।

मैंने मानुष जीवन तुमको हीरा दिया। जो तू व्यर्थ गँवाए तो मैं क्या करूँ।।
भेद वेदों का सब कुछ बता ही दिया। तेरी समझ में न आये तो मैं क्या करूँ।।
अन्न, फल-दूध आदि भी तुमको दिया। मेवा, मिष्ठान भी मैंने पैदा किया।।
फिर भी हत्यारा हो जीभ के स्वाद को। तू अगर माँस खाये तो मैं क्या करूँ।।
दीन दुखियों के मन को सताने लगा। रात-दिन पाप में मन लगाने लगा।।
तूने जैसा किया वैसा पाने लगा। आज आँसू बहाए तो मैं क्या करूँ।।
नाम मेरा तेरे पाप भी काट दे। तू बुरा कर्म करने से मन डाँट ले।।
आजा छोड़ सभी पहुँच मेरी शरण। जो शरण में न आये तो मैं क्या करूँ।। मैंने मानुष जीवन...

इति पंचम स्कन्ध

षष्ठम स्कन्ध

विषय सूची

१) अजामिल उपाख्यान	६८८
२) दक्ष प्रजापति की ६० कन्याओंके वंश का वर्णन	७१३
३) इन्द्र का बृहस्पति का त्याग और विश्वरूप का वरण	७२८
४) नारायण कवच का उपदेश	७३२
५) इन्द्रको ब्रह्महत्या का पाप	७३४
६) देवताओंका दधीचि ऋषि की हड्डियोंसे वज्र तैयार करना	७३५
७) वृत्रासुर का देवताओं से युद्ध और वृत्रासुर का वध	७४२
८) वृत्रासुर के पूर्वजन्म का वृत्तान्त	७५१
९) मरूद्गणों की उत्पत्ति	७६७

** न जीवन जीने का सलीका है न मरना अपने हाथ है, हकीकत में इन्ही मजबूरी का नाम इन्सान है।*

** जिन्दगी रेत की दीवार है, वक्त की हर से बीमार है।*

लाख इलाज करने पर भी जिन्दगी मौत की शिकार है।

उन्हे क्या सतायेगी गर्दिशे जमाने की, जिनकी आदत है गमों में मुस्कुराने की।

** व्यक्ति में परिवर्तन तो, युग परिवर्तित हो सकता है।*

मानव यदि जग जाये तो वह पाप की कालिमा धो सकता है।

** आदमी क्या-क्या न करता इक खुशी के वास्ते, इक पल की एक छोटी सी जिन्दगी के वास्ते।*

अपने घर के अन्धेरे को दूर करने से दूसरों के घर जलाता है रौशनी के वास्ते ।।

** सुबह है तो कभी शाम है जिन्दगी, बस खुशी और गम का नाम है जिन्दगी।*

षष्ठम स्कन्ध

उस परमात्मा को मेरा कोटि कोटि नमस्कार है जो संसारी की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय करने के हेतु सत्व, रज, तम तीन गुणोंवाली शक्तियों को स्वीकार कर के ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का रूप धारण करते हैं। जो अन्तर्यामी रूप से सब जीवों के हृदय में विराजमान हैं, जिनकी प्राप्ति का मार्ग बुद्धि से परे है, जो स्वयं अनन्त हैं।

लिखौं बड़ाई नाम की जाको वार न पार। जिहि सुमिरेसे होत हैं कोटिन जीव निस्तार॥

१) अजामिल उपाख्यान

दुष्ट अजामिल अघ भंडारा। करत पाप नित बेशुम्बारा।
अन्त समय नारायण लीन्हा। भक्त जानि प्रभु निजपद दीन्हा॥

राजा परीक्षित ने पूछा- मुनिवर, आपने निवृत्ति-प्रवृत्ति मार्ग, सृष्टि, स्थिति, प्रलय, धर्म और अधर्म के कारण प्राप्त होनेवाले नरकों का वर्णन किया। उत्तानपाद, प्रियव्रत आदि के अति प्रशस्त पावन चरित को सुनाया। उनके मंगलमय प्रस्थान आदि का वर्णन किया। किन्तु आपने जिन नरकों का वर्णन किया है, उनमें तो भयंकर तीव्र यातनाएँ प्रदान की जाती हैं अत: अब आप कृपा करके कुछ ऐसा उपाय बताएँ जिससे मनुष्य इन भयंकर यातनावाले नरकों में न जाय।

कुशल वैद्य रोगों को उभड़ने के पहले ही रोगों का निदान कर झटपट उनकी चिकित्सा कर डालता है। अनुभवी वैद्य रोगों का निदान कर दोषों के अनुसार ही उसका इलाज करता है। अज्ञान रहते पापवासनाएँ सर्वथा नहीं मिट सकतीं। इसलिये सच्चा प्रायश्चित्त तो तत्त्वज्ञान ही है।

मनुष्य, पाप करना अनुचित है, यह जानते हुए भी पाप करता है। ऐसा करने में उसकी विवशता ज्ञात होती है। ऐसी अवस्था में उसके पापों का प्रायश्चित्त कैसे हो सकता है? वह कभी तो प्रायश्चित्त करके पूर्वकृत पापों से छुट्टी पा लेता है, परन्तु फिर पाप करने में प्रवृत्त हो जाता है। फिर उसके पापों का अन्त कैसे होगा? प्रायश्चित्त करने के बाद यदि मनुष्य पुन: पाप-कर्म में प्रवृत्त होता है, तो उसका प्रायश्चित्त वैसे ही व्यर्थ हो जाता है जैसे हाथी का स्नान व्यर्थ है; क्योंकि वह स्नान के बाद पुन: अपने ऊपर धूलि डाल लेता है। ऐसी स्थिति में प्रायश्चित से क्या लाभ? प्रायश्चित्त का अर्थ है- पापों का विशोधन। मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे पाप करता है यदि इसी जीवनमें उसका प्रायश्चित्त न कर ले तो उसको नरकमें जाना ही पड़ेगा। नरकमें जानेके लिये काम, क्रोध जैसे पाप दरवाजे खोलकर बैठे हैं। बड़ा पाप हो तो बड़ा प्रायश्चित्त और छोटा पाप हो तो छोटे प्रायश्चित्तका विधान है, जैसे बड़े रोगकी दवा बड़ी और छोटे रोगकी दवा बड़ी।

प्रायश्चित करने से पाप क्षय अवश्य होते हैं किन्तु अज्ञानता होने के कारण जीव पाप करते ही रहता है। पाप समूल नष्ट नहीं हो पाते। जो दीन-हीन है, पतित हैं, पिछड़े हुए हैं, उनको उठानेवाला कोई चाहिए और वह उठानेवाला ऐसा चाहिए, जो कठोर न हो, क्रूर न हो, बल्कि बड़ा दयालु हो और बड़े-बड़े पापी-तापी भी जिसका आश्रय लेकर ऊपर उठ सकें।

शुकदेव बोले- प्रायश्चित्त कर्म का कर्ता अधिकारी पुरुष अज्ञानी है। अज्ञान के रहते पाप की वासनाएँ पूरी तरह मिट नहीं सकती अत: पाप का सच्चा प्रायश्चित्त तो तत्त्वज्ञान ही है। मनुष्य मन, वाणी तथा कर्म से अनेकों पाप करता है। यदि उन पापों का प्रायश्चित वह इस जन्म में नहीं कर लेता है तो उसे अवश्य नरक भोगना पड़ेगा। अत: मनुष्य की बड़ी बुद्धिमानी यही है कि इस प्रकार के पापोंका प्रायश्चित कर ले। कर्म के द्वारा कर्मफल का पूरा नाश नहीं होता, कुछ न कुछ अवश्य शेष रह जाते हैं। वह शेष बीजरूपी कर्म फिर पाप में लगा देते हैं। इसलिये सच्चा प्रायश्चित तो तभी होता है जब वह

मनुष्य भगवत् स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। भगवत ज्ञान से ही सम्पूर्ण वासना तथा कर्म फल जड़ से नष्ट हो जाते हैं। कर्मों के द्वारा तो कर्मों को निर्बीज नहीं किया जा सकता है अतएव सर्वोत्तम उपाय तो तत्वज्ञान ही है। नियमों का पालन करते-करते कुछ काल के अन्तराल पर मनुष्य को तत्त्वज्ञान हो ही जाता है। भक्ति का मार्ग निर्भय एवं कल्याण स्वरूप है।

जो व्यक्ति सावधान रहकर सर्वदा पथ्य भोजन ही करता है, उसे कभी रोग अपने वश में नहीं कर सकते।

नरक से मुक्ति पाने के लिये हम प्रायश्चित करें। कोई व्यक्ति तपस्या से प्रायश्चित करता है, कोई ब्रह्मचर्य पालन करके प्रायश्चित करता है। कोई व्यक्ति यम, नियम, आसन के द्वारा प्रायश्चित करता है। सबसे बड़ा प्रायश्चित तो गोविंद का कीर्तन ही हैं। हमेशा यह प्रयास करना चाहिए कि परमात्मा से कुछ माँगना न पड़े। माँगना तो किसी से भी कभी कुछ नहीं चाहिए। माँगने से आत्मबल कमजोर हो जाता है। परमात्मा से प्रार्थना करो, वो जो कुछ दे सकता है और दूसरा कोई नहीं देगा। ईश्वर से माँगो मुझे देना पड़े, लेना किसी से नहीं पड़े। मुझे जीवन में कुछ नहीं चाहिए। मैं किसीसे जीवन में कुछ माँगू नहीं, यदि मांगना ही पड़े तो दुनियाँवालों से क्या मांगोगे। प्रभु के आगे झोली फैलाओ।

राजन्। जो पुरुष यम-नियम आदि का पालन करता है, वह धीरे-धीरे पाप-वासनाओं से मुक्त होकर कल्याणप्रद तत्त्वज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होता है। जैसे बाँस के जंगल में लगी आग सारे जंगल को जला कर भस्म कर देती है- वैसे ही धर्म को जाननेवाला श्रद्धावान धीर पुरुष तपस्या, ब्रह्मचर्य, इन्द्रियदमन, मन की स्थिरता, दान, सत्य, बाह्याभ्यन्तर की पवित्रता तथा यम और निमय- इन नौ साधनों से मन, वाणी और शरीर द्वारा किये गये बड़े-से-बड़े पापों को भी नष्ट कर देता है। परीक्षित् भगवान की शरण में गये हुए कुछ लोग केवल भक्ति के द्वारा ही अपने सम्पूर्ण पापों को वैसे ही समाप्त कर देते हैं, जैसे सूर्य कुहरे को नष्ट कर देता है। मनुष्यकी वास्तविक शुद्धि तो भगवानकी भक्ति से ही होती है।

राजन्, पापी पुरुष की जैसी शुद्धि भगवान को आत्मसमर्पण करने से और उनके भक्तों का सेवन करने से होती है, वैसी शुद्धि तपस्या आदि के द्वारा नहीं होती। यह भक्ति-मार्ग संसार में सबसे सरल, सबसे उत्तम, भयरहित और कल्याणकारी है। इस मार्ग पर भगवत्परायण सुशील साधुजन चला करते हैं। बड़े से बड़े प्रायश्चित्त, बार-बार किये जाने पर भी भगवान से विमुख व्यक्ति को पवित्र करने में समर्थ नहीं हैं।

जिन लोगों ने एक बार भी भगवान के चरण कमलों में अपना मन लगा दिया, जिनका भगवान के गुणों से प्रेम हो गया, जिन्होंने सारे पापों का प्रायश्चित कर डाला, उन्हें यमदूत के दूतों का मुख नहीं देखना पड़ता। बड़े-बड़े विद्वान भी भगवन्नाम की महिमा को नहीं समझते। उनका बड़े-बड़े यज्ञ-याादि कर्मोंपर तो विश्वास है, लेकिन भगवानके छोटे-से नामपर विश्वास नहीं होता। वे यह नहीं जानते कि हीरेकी तरह अत्यन्त प्रोज्ज्वल जो छोटा-सा नाम है, इसमें भगवानका स्वभाव भरा हुआ है। जैसे प्रभु हैं, वैसे ही प्रभुका नाम है। यह मनुष्यका कल्याण कर देता है।

अपने इष्टदेव परमात्मा वाचक नामों का स्मरण वाचा द्वारा करना, फिर श्वासों के साथ ध्यान द्वारा नाम जप करना जिसके परिणाम में यह भौतिक नाम रूपात्मक प्रपंच मिटकर भगवन्नाम का प्रभाव रोम रोम में समा जाता है। प्रभु प्राप्ति रूप मानव जीवन की सार्थकता के लिये यह प्रधान साधन है।

पुरान को पार नहीं वेदन को अंत नहीं, वाणी तो अपार कहाँ कहाँ चित्त दीजिये।
लाखन की एक कहूँ कहूँ एक करोडन की, सब ही को सार एक राम नाम लीजिये।।
पढ़ने की हद समझ है समझन की हद ज्ञान। ज्ञान की हद हरि नाम हे यह सिद्धान्त उर आन।।

शास्त्र अनन्त है, विद्याएँ अनेक हैं, काल अल्प है और बाधाएँ बहुत सी हैं। इस परिस्थिति में जो सार तत्त्व है उसी की

उपासना करनी चाहिये जिस प्रकार जल में से हंस केवल दुग्ध को ही ग्रहण करता है।

विविध व्यवसाय, विद्या, कला तथा विज्ञानादि भौतिक ज्ञानोपार्जन एवं तत्सिद्धयर्थ भले ही मानव अपने जीवन में पूर्णत: प्रयत्नवान बना रहे फिर भी वह कभी अन्त नहीं पा सकता। यही क्या केवल एक ही विद्या को पूर्ण रूपेण आत्मसात कर तदनुसार आचरित करने के लिये भी यह मानव-जीवन अत्यल्प प्रतीत होता है। वास्तव में ही इस नाशवान अपूर्ण संसार में मनुष्य प्राणी कितना क्षुद्र और कैसा परतंत्र है। सब शास्त्रों को उलटा कर बार बार विचार करने पर यही सारभूत तत्व पाया कि नारायण-हरि ही एक मात्र ध्येय उपासनीय है।

पाप नाश और सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिये ही नहीं, जिन लोगों को संसार से वैराग्य हो गया है और जो निर्भय मोक्ष पद की प्राप्ति करना चाहते हैं, उन साधकों को तथा भगवत्प्राप्त सिद्ध योगियों को भी भगवान श्री हरि के नामों का कीर्तन ही करना चाहिये। यही शास्त्रों का सार है। जिसकी जिह्वा पर भगवान का नाम विराजता है, वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। जो भाग्यवान पुरुष भगवान के नाम उच्चारण करते हैं उन्होंने तप, यज्ञ, तीर्थ स्नान, सदाचार का पालन और वेदों का अध्ययन-सब कुछ कर लिया। क्योंकि इन सब का परम फल नाम जो उन्हें प्राप्त हो गया।

कलियुग यों तो दोषों का खजाना है, परन्तु उसमें एक बहुत बड़ा गुण यह है कि इसमें श्रीकृष्ण के नाम संकीर्तन मात्र से सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। सत्युग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञों से, और द्वापर में पूजा-अर्चना से जो फल मिलता है वही कलियुग में केवल भगवन्नाम के कीर्तन से ही मिल जाता है।

आदमी दिनमें कितनी बार राम-राम कहता है, पर उसके जीवनमें कोई परिवर्तन नहीं देखा जाता। क्योंकि बात-बात पर झूठ बोलता है, पैसे-पैसेपर बेईमानी करता है। आचरण भी उसका विशुद्ध नहीं है। नामका तो शास्त्रोंमें इतना अधिक माहात्म्य बताया गया है। कर्म बिना पापमय अन्त:करणके हो नहीं सकते। फिर राम नामका उसके ऊपर असर क्यों नहीं होता? यह प्रश्न बहुत विचारणीय है। नाम यद्यपि अनन्त पापोंको नाश करनेमें समर्थ है, फिर भी पाप-नाश होते-होते ही होंगे। नाम भी एक पुण्यकर्म है, यदि वह मृत्युके समीप भी आ जाय तो कर्म-बन्धनोंको मेटकर वही नाम मोक्षका भी हेतु हो जाता है। इसीलिये नाम साधन भी है और साध्य भी। जो लोग नाम लेते हुए भी पापकर्ममें लगे हुए हैं, उनका पुण्य तो बढ़ रहा है, किंतु साथ ही पाप भी बढ़ता जाता है। नाम लेनेमें भी लोगोंको भ्रम हो जाता है। नामका माहात्म्य सुनकर लोग समझते हैं कि जब नाममें इतनी शक्ति है, नाम लेनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं, तब हम खूब पाप क्यों न करें, नाम लेनेसे वे नष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार वे सदाचारको छोड़कर नाम लेते हैं और नामका आश्रय लेकर पाप करते हैं। यह बड़ा भारी अपराध है। नामकी आड़ लेकर पाप करना इतना घोर अपराध है कि उसकी किसी भी प्रायश्चित्तसे निष्कृति नहीं हो सकती। नाम तो कल्पतरु है, जो जिस वासनासे नाम लेता है, सबसे पहले नाम उसकी उसी वासनाको पूरा करता है। नाम तो कैसे भी लिया जाय, लाभदायक तो है ही, पापोंको तो नष्ट करेगा ही, किंतु पूर्ण लाभ तभी होगा, जब सदाचारपूर्वक नामापराधोंको बचाते हुए नाम-जप-कीर्तन किया जाय। भगवान्का पापहारी नाम लेनेपर भी पापकर्मोंमें प्रवृत्ति हो, भगवानसे अधिक पाप-कर्म अच्छे लगें तो समझना चाहिये कि हमारे अनन्त जन्मोंके घोर पाप हैं और वे पाप तभी नष्ट होंगे जब हम सतत नाम-स्मरण करते रहेंगे। नाम-स्मरणमें नामापराधोंको बचानेकी शक्तिभर चेष्टा करनी चाहिये। भगवान के नामोच्चारण में इतनी शक्ति है कि बड़े-से-बड़ा पाप भी इसके सामने ठहर नहीं सकता। भगवान के नाम-गुण संकीर्तन, जिसके हृदय में भक्ति नहीं आती, वह एक बार वासना छोड़ दे, तो फिर भी वह आ जाती है।

कानपुर नगर जिसका पुराना नाम कान्यकुब्ज में एक ब्राह्मण परिवार रहता था। इस परिवार में अजामिल नाम का ब्राह्मण

युवक था जिसने धोखे से प्रभु का नाम लेकर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

कान्यकुब्ज को ही आजकल कन्नौज कहते हैं। वहां का इत्र बड़ा प्रख्यात है। अजामिल वहीं का रहनेवाला था। अजामिल बड़ा विद्वान, शिष्टाचार एवं सदाचारी सम्पूर्ण गुणों से युक्त था पर भगवद् शरणागति से रहित वह अपने लौकिक धर्मोंका एवं गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों का पालन करता था। माता-पिता का आज्ञाकारी और धर्मात्मा था। वह शास्त्रोंमें पारंगत था। बड़ा सुशील, बड़ा सदाचारी, व्रतों का पालन करता था, इन्द्रियों को वश में रखता था, सदा सत्यभाषण करता था, स्वभाव उसका अत्यन्त ही मृदुल था। नित्य ही गुरु, अग्नि, अतिथि तथा माता-पिता की सेवा करता था। नियम से रहता पवित्र आचरण करता, कभी अपने सद्गुणी जाति, कुल, वय तथा सौन्दर्य पर मिथ्याभिमान नहीं करता, जीवमात्र पर दया के भाव प्रदर्शित करता, सबसे हँसकर मीठे वचन बोलता, दूसरों के गुणों में कभी भूलकर भी दोष दृष्टि नहीं करता, सभी सद्गुणों का आधार था। अजामिल अग्निहोत्री था, नित्य नियम से गृहस्थ धर्म के अनुसार, अग्निहोत्र बलिवैश्वदेव करता और माता-पिता की प्रेमपूर्वक परिचर्या करता। अजामिल की धर्मपत्नी भी अपने पति में भगवत् बुद्धि रखकर उसकी सेवा करती। लेकिन एक बार कुसंग में पड़कर पतित हो गया। अजामिल अपने धर्म से विमुख हो गया।

एक बार वह भगवान की पूजा के लिये तुलसी, कुश, समिधा लाने गया। वहीं पर उसने एक चाण्डाल को देखा जो मदिरा पीकर उन्मत्त हो रहा था और एक वेश्या को भी मदिरा पिलाकर उन्मत्त कर रहा था। दोनों आपस में नग्न होकर अंग-संग कर रहे थे और बेपर्दा होकर जानवरों की तरह जंगल में रमण कर रहे थे। इस दृश्य को देखकर वह विद्वान ब्राह्मण अजामिल पतित हो गया और उसका मन बेबस होकर उसी वेश्या में लिप्त हो गया। वह संसार में पूर्ण निमग्न रहनेवाला निकला। उनके मन में काम प्रवेश कर गया। आँखों और कानोंपर जिसने काबू पा लिया वो तो गृहस्थ जीवन में रहकर भी परम संत है। जिसकी इन्द्रियां अपने काबू में नहीं वह कैसा सन्त। जिसके सिर पर काम भूत सवार हो जाता है, उसे सम्पूर्ण संसार सूना-सूना दिखाई देता है, चित्त चंचल हो जाता है जिसके निमित्त यह सब हुआ है, उसीकी मूर्ति नेत्रों में नाचती रहती है, हृदय पटल पर उसीकी मूर्ति अंकित हो जाती है। अजामिल के हृदय में भी उस वेश्या की मूर्ति गड़ गई। मन उसे छोड़कर दूसरी चिन्ता ही नहीं करता था। इस प्रकार वह रात्रि भर जागकर करवट बदलता रहता और आहें भरता रहता।

कान्य कुब्ज शुभ देश अजामिल रहे विप्र इक। मित भाषी अनसूय तपस्वी परम धारमिक।।
पितु आज्ञातें गयो, लैन समिधा इक बनमहँ। तहँ लखि वेश्या सुधर काम सर लाग्यो मनमहँ।।
उस वेश्याको रूप लखि, बिना दाम ही वह बिक्यो। रोक्यो चंचल चित्तकूँ, राजन्। परि खल नहिँ रुक्यो।।

सर्प डंसे केहरि ग्रसे ताहि भलौ करि मान। ताहि भलो करि मान दुष्ट को संग न कीजै।।
खल की मीठी बात जहर ज्यों जान न पीजै। घात करे मन लिये ज्ञान और ध्यान न भावै।।
योगानन्द कुसंग साधु को व्याध बनावै। दुर्जन की संगति तजो दुष्ट संग अति हानि।।

दुर्जन के संग से सर्प का संग अच्छा है। क्योंकि सर्प तो काल आने पर डसेगा। अगर काल नहीं आया है, तो सर्प आपके ऊपर से निकल जायेगा पर डसेगा नहीं। लेकिन दुष्ट पुरुष तो पद-पद पर दुर्विचारों का विष उड़ेलेंगे। सर्प डसेगा तो एक बार मौत होगी लेकिन दुर्जनों के संग से तो चौरासी लाख बार जन्म-मरण के चक्कर में जाना पड़ेगा। सर्प के दाँत में विष होता है। बिच्छू की पूँछ में विष होता है। लेकिन दुर्जनों के नस-नस में, रोम-रोम में, स्वांस-स्वांस में विष प्राप्त है इसलिये दुर्जन के संग से बचना चाहिये।

पत्नी माता पिता तजे वेश्या अपनाई। जाति पाँति निज लाज तजी कुल शील बड़ाई।।
कैसे हूँ धन मिलै घातमहँ घूमें इत उत। अपने घरकूँ छाड़ि रहै वेश्याके घर नित।।
वेश्या संग व्यभिचारतें, बहु बालक वाके भये। हिंसा चोरी करत ई, बहुत दिवस क्षण सम गये।।

शुकदेव बोले- राजन्। उस वेश्या के कटाक्ष बाणों से विद्ध हो गई है बुद्धि जिसकी ऐसे उस पापी अजामिल ने अपनी सत्कुलोत्पन्ना विवाहिता तरुणी भार्या को कुछ ही काल में त्याग दिया अब तो यह मन्दमति न्याय से अथवा अन्याय से, जहाँ से भी मिले वहीं से द्रव्य एकत्रित करके लाता और बढ़े हुए कुटुम्ब वाली वेश्या के कुटुम्ब का पालन करता।

कामासक्त पुरुष पात्रापात्र का विचार नहीं करता, काम अन्धा बना देता है, विवेक भ्रष्ट कर देता है, कर्त्तव्य से च्युत कर देता है। मनुष्य अपने धर्म, कर्म, शील, संकोच, मर्यादा, शास्त्रज्ञान, सदाचार सभी खो देता है। तृष्णा ही इस वृद्धावस्था में तरुणी हो जाती है अपेक्षाकृत अन्य लोगों से बूढ़ों में अधिक तृष्णा होती है।

अजामिल नाम मात्र का ब्राह्मण था। उसके सारे सदाचार नष्ट हो चुके थे। उसने माता-पिता को ठुकरा दिया और उस वेश्या के साथ रहने लगा। उसने गणिका को जाकर बोला- देवि, मेरे घर चलो, मेरे घर में बहुत सम्पत्ति है। गणिका को और क्या चाहिये। वो अजामिल के घर आ गयी। अजामिल उसके सौन्दर्य पर इतना मोहित हो गया कि अपनी पत्नी तक का त्याग कर दिया। उसने पत्नी का परित्याग कर घर में एक दासी को रख लिया था। वह पतित कभी यात्रियों को बाँध कर उन्हें लूट लेता था। कभी लोगों को जुए (द्यूत) में छल करके हरा देता, धोखा देकर किसी का धन हड़प लेता और किसी का चुरा लेता। शराब पीना, चोरी, डकैती करना, धन लूटना, जुआ खेलना इत्यादि सारे दुर्गुण उसमें आ गये। व्यक्ति का व्यक्तित्व कभी चमड़े से नहीं निकलता। उसकी आचरण से पूजा होती है। उस वेश्या से उसके दस पुत्र हुए। दसवाँ पुत्र उस वेश्या के गर्भ में था। अजामिल की चोरी की प्रवृत्ति बढ़ती गई। चोरी करते-करते डाका डालने लग गया और डाकू अजामिल के नाम से प्रसिद्ध हो गया। प्रकृति के संसर्ग होने से जो पुरुष की विपरीत भावना हो जाती है। यह भगवान के भजन से भगवान और उनके नाम में आसक्ति होने से अतिशीघ्र विलीन भी हो जाती है।

कहाँ वेदको पाठ कहाँ चोरी जूआ नित। कहाँ धरम अनुराग पापमें फँस्यो कहाँ चित।।
कहाँ कुलवती सती कहाँ वेश्या परनारी। किन्तु अजामिल बुद्धि भाग्यने तुरत बिगारी।।
व्रत पालन आचार सद्, बेश्या सँगतैं नसि गयो। व्याधिनि वेश्या बन गई, द्विज फन्दामहँ फँसि गयो।।

शुकदेव कहते हैं- राजन्। प्रारब्ध रूप निमित्त को पाकर प्रबल वासना रूप स्वभाव द्वारा योनि और बीज के अनुरूप व्यक्त (स्थूल) और अव्यक्त (सूक्ष्म) शरीर उत्पन्न होते हैं।

पूर्वजन्मको पाप शाप मनमहँ रह जावै। अपर जन्ममहँ आइ पाप फल निज दरशावै।।
काऊको धन हर्‌यो सग्यो बनिकें सो लेगो। ह्वैके परवश पिता बन्यो वाकूँ वो देगो।।
विधवा बनि पर पुरुषकूँ, पाप दृष्टितें लखें जे। ब्याह होत ही मरे पति, पुनि पुनि बिधवा बनें ते।।

इस प्रकार पापपूर्ण तरीके से वह अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करता था और दूसरे प्राणियों को महान् कष्ट देता था। वह अत्यन्त अपवित्र और प्राणहिंसक था। ब्राह्मण की वृत्ति से विपरीत उसका आचरण था। वह महान् कामी था अत: उसके कई बच्चे हुए। इस प्रकार अनुचित साधनों से पुत्रों का लालन-पालन करते हुए उसके अट्ठासी वर्ष बीत गये।

अजामिल के दस बेटे थे। सबसे छोटे-बेटे का नाम था -नारायण।

एक बार यात्रा करते हुए कुछ महात्मा लोग अजामिल के गाँव पहुँचे। दोपहर की बेला थी। महात्मा भूखे थे अत: पास

में खेलते हुए बालकों से उन लोगों ने किसी ब्राह्मण का घर पूछा। यहाँ ठहरने लायक कोई संत का आश्रम हो, मठ हो, मंदिर हो या किसी भक्त का घर हो जहां रात्रि भर विश्राम कर लूं। बच्चों ने व्यंग्य करते हुए कहा- यह सामने ही तो बड़े भारी ब्राह्मण अजामिल का घर है। घर पूछते-पूछते चले जाओ। जो अजामिल घोर पतित हो चुका था, उसको उन्होंने भक्त बता दिया। संत निर्मल और भोले थे बसती में पूछते जा रहे थे। भक्त अजामिल का घर किधर है। दूसरी ओर लोग वस्त्रसे मुँह छिपाकर हँस रहे थे कि इस महात्मा को किसने बहका दिया। महात्माओं ने बच्चों की बात सच्ची मानी और पहुँच गये अजामिल के द्वार पर और द्वार खटखटाया। अजामिल जंगल में शिकार के लिये गया था तथा पत्नी दरवाजे पर खड़ी थी।

करि परिहास काउ दुष्ट ने पठाये साधु। आये घर देखि बुद्धि आ गई सात्विकी।।

उस वेश्या ने किंवाड़ खोलकर देखा, दरवाजे पर बड़े ही निर्मल सन्त खड़े हैं। उस वेश्या की सात्त्विकी बुद्धि जागृत हुई, तमोगुण धुल गया पातक टरई पातक चला गया। रो पड़ी हाय, जीवन भर पाप प्रपंच किया है, कुकर्म में बीता। आज मेरे किस पुरातन पुण्य का उदय हुआ है, जो आज मेरे दरवाजे पर सन्त पधारे है, ऐसे निर्मल सन्त पूछ रहे हैं। अजामिल भक्त का घर, किसी ने धोखा दिया है। जिसने धोखा दिया वो इसका फल भुगतेगा। मुझे इनको धोखे में नहीं रखना है खुलकर बता देना चाहिए। बोली- महाराज, अजामिल का घर तो यही है, लेकिन भक्त का नहीं, पतित अजामिल का है। फिरभी यदि आप कृपा करके पधारे हैं, और हमारी सेवा स्वीकार करके आपको प्रसन्नता हो, तो हम अपने को भाग्यशाली मानेंगे। सन्त ने उसकी आंखों से आंसू देखे। वाणी में विनम्रता देखी, अंग-अंग में दीनता देखी, रीझ गये सन्त। सन्त बोले- बेटी जिसने प्रेरणा करके भेजा है, उनके हृदय में भी हमारे प्रभु विराजमान है मैं उनकी प्रेरणा को भी अन्तर्गर्भित प्रभु की प्रेरणा मानता हूँ। तेरा आतिथ्य स्वीकार अवश्य करूँगा। भक्त अपने को भक्त कहते हैं थोड़े। महात्मा ठहर गए। कदाचित् ये पतित हैं तो महात्मा पतितों को पावन करने के लिये ही तो घूमते हैं। महात्माओं का जीवन पतितों को उठाने के लिये ही होता है। संतोंका चित बड़ा सरल होता है। संत के सत्संग में ताकत होती है। सत्संग जीवन को परिवर्तित करता है। संत उस गणिका से बोले- यहां रात्रि में हमारा विश्राम होगा, यहां भगवान का भोग बनेगा, भण्डारा होगा, सत्संग होगा। संत सोचने लगे- हम तो गलत जगह चले आये लेकिन गलत को सुधारना ही संत का काम है। अजामिल को सुधारे कैसे। इसे कहे रोज संध्या गायत्री पाठ करो तो करनेवाला नहीं, धार्मिक काम करनेवाला नहीं। प्रभु अगर किसी के जीवन में परिवर्तन करना चाहता है तो उसका संतों से मेल करवा देते हैं।

अगर है बात सच ऐसी, फिर तो महात्मा अवश्य जाते।
सुधारते सिरफिरों को तब, सुफल होता है उनका वैष्णवी बाना।।

यह सन्त मण्डली कोई ऐसी-वैसी सन्त मण्डली नहीं है। इसके नायक हैं पूर्वजन्म के ऋषि पराशर। पूर्वजन्म में अजामिल एक ऋषि था। पराशर मुनि वेदव्यास के पिता थे। इस अजामिल ऋषि ने उस समय पराशर मुनि का उपहास किया और बोले- इतने बड़े ऋषि होकर वशिष्ठ जैसे वंश को कलंक लगाया कि एक मल्लाह की कन्या सत्यवती से गर्भाधान करते आपको संकोच नहीं हुआ। पराशर ऋषि बोले- मूर्ख अपने ऋषित्व के गुमान में पड़कर वशिष्ठ वंश का अपमान मत कर। तू वसिष्ठ वंश का अपमान, उपहास कर रहा है। मैंने क्या विषय बुद्धिसे सत्यवती के गर्भाधान किया है? उस समय का मुहूर्त ही ऐसा था कि उस समय यदि गर्भाधान हो तो भगवान का अवतार होगा। इस जगत के कल्याणकारक व्यास जैसे पुत्र को देने के लिये मुहूर्त विचार करके पराशर ऋषि ने सत्यवती के क्षेत्र में प्रतिष्ठा की। पराशर मुनि बोले- ऋषिकुमार, मैं तो पतित नहीं हुआ लेकिन मेरा उपहास करने के कारण तू अगले जन्म में अवश्य पतित होगा। गुरुजनों में

किसी प्रकार का दोष देखने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। उसकी कौनसी क्रिया किस भाव से और किस समय हो रही है उसको तुम नहीं जानते। उसी समय ऋषिकुमार अजामिल पराशर मुनि के चरणों में गिर पड़ा और क्षमा याचना करने लगा। बोला- भगवन्, मैं आपके भाव को नहीं समझ सका। आपने तो जगत् को कृष्ण-द्वैपायन जैसा पुत्र दिया, लोगों का कल्याण करने के लिये। मैं क्षमा-याचना करता हूँ आप दयालु हैं कृपा करके यह बतलाइये प्रभु मेरा उद्धार कैसे हो। पराशर बोले- मेरा वचन निकल चुका है वो तो होगा ही। तुम पतित तो अवश्य होगे लेकिन चिंता मत करना मैं स्वयं ही पतितपने में आकर तुम्हारा उद्धार करूँगा। इसलिये आज पराशरजी सिद्ध संत के रूप में अजामिल के घर आये। वेश्या ने इनका स्वागत-सत्कार किया। घरमें ठहरने का आग्रह किया। सन्त तो जीवों का कल्याण करने के लिये घूमते हैं।

महात्माओं ने भोजन की कामना व्यक्त की। वेश्या खुश हो गई क्योंकि प्रार्थना करने पर भी कोई ब्राह्मण उसके घर भोजन नहीं करता था। उसने झट से सबका पैर धोया। आसन पर बैठाया और बड़े प्रेम से भोजन बनाकर खिलाया। इसी समय अजामिल आया लड़खड़ाते कदमों से डगमगाता, मुँह से मदिरा की दुर्गंध। अजामिल आग बबूला हो गया और उस गणिका से बोला- मेरे घरमें प्रवेश की अनुमति किसने दी? अजामिल अपनी पत्नी से बहुत डरता था। अजामिल बुरी तरह बौखला गया। वेश्या ने सोचा कहीं नशे में महात्मा लोगों को अनाप-शनाप न बोलने लग जाय। वेश्या अजामिल को बोली- परम सिद्ध संत घरमें पधारे हैं, इनके चरणों में पड़कर प्रार्थना करो। वैश्या के कहने पर अजामिल ने साधुओं का वन्दन किया और बोला- बाबा मैं पतित हो गया हूँ मेरा उद्धार करो।

संत बोले- रात्रि का भोजन तुम्हारे यहां पाया, विश्राम किया। संत जहां भोजन करते हैं बादमें उनको दक्षिणा दी जाती है। अजामिल बोला- दक्षिणा, वो भी हमसे लोगे। महात्मा, मेरी तो सबसे बड़ी दक्षिणा यह है कि मैंने आपका सोटा, लोटा छुड़ाया नहीं, ये चिमटा तुम्बा यहाँ रख जाइये, भूतों से ही पूत लेना चाहते हो। महात्मा बोले- हमें रुपये पैसे दक्षिणा में नहीं चाहिए। हमारी दक्षिणा तो यही होगी कि तुम हमारी बात मानकर हमारा आदर करो।

साधु भूखा भाव का अन्न-धन का भूखा नाहि। धन का भूखा जो फिर वो तो साधु नाहि।।

न चाहते हुए भी पत्नी की प्रेरणा से उसने दक्षिणा देकर महात्माओं का पैर छुआ। महात्मा लक्षण देखकर समझ गये कि यह तो सचमुच पतित है। प्राणी तभी तक पतित होता है जब तक वह अपनी भूल कबूल नहीं करता है कि मेरे द्वारा गलत आचरण हुआ है। जब भूल कबूल कर लेता है तब उसका पतन रूक जाता है और बोला- मुनिवर अब आगे ऐसी भूल नहीं करूँगा। तो उसका एक सीढ़ी उत्थान हो गया। कल्याण कैसे हो ऐसी जिज्ञासा की। संतोंने आश्वासन दिया- पुत्र तेरा कल्याण होगा। भगवद् संकीर्तन किया कर। महापुरुषों का संग दुर्लभ, अगम्य है। महात्माओं के संपर्क में आने से उनका सत्संग व्यर्थ नहीं जाता और वो कल्याण ही करता है। महात्मा ने अजामिल को पूछा- तुम्हारे कितने बाल-बच्चे हैं? अजामिल बोला- नौं तो बाहर खेल रहे हैं और दसवां बच्चा माँ के पेट में है।

शाप भये सब सत्य अजामिल दुष्ट भयो अति। निरदय डाकू क्रूर करे पथिकनिकी दुरगति।।
भ्रमत भाग्यवश सन्त एक दिन घरपै आये। कीयो अति सतकार आपने पाप सुनाये।।
सन्त हृदय करुणा उठी, बोले- करिवे काम तू। धरियो अबकें पुत्र को, नारायण शुभ नाम तू।।

जाते-जाते महात्माओं ने अजामिल की गर्भवती पत्नी से कहा- देवि, शीघ्र ही तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा। तुम उसका नाम नारायण रखना। अजामिल ने कहा- मैं कुछ भी नाम रक्खु आप लोगों से क्या मतलब। महात्माओं ने उत्तर दिया- नारायण हमारे भगवान का नाम है। जब कभी इधर आऊँगा तो यह नाम सुनकर हमलोगों को प्रसन्नता होगी। पत्नी ने कहा ठीक है

महाराज, यही नाम रक्खूंगी। इसीलिये इसका नाम नारायण था। महात्मा तो चले गये, अब अजामिल जिसको मिले उसी को बोलता अब तो मेरे घर नारायण आनेवाला है। बच्चे का जन्म हुआ और खुशी में भर गया सबको कहता था मेरे घर में नारायण आये। सारे दिन नारायण-नारायण करके पुकारता था। यह भगवान का नाम और दूसरा महात्माओं का प्रसाद।

माँ-बाप उसे बहुत प्यार करते थे। वृद्ध अजामिल ने मोह के कारण अपना सम्पूर्ण हृदय अपने बच्चे नारायण को सौंप दिया था। अजामिल के पुत्र नारायण को माता-पिता दोनोंका स्नेह प्राप्त है। वह उसकी मीठी तोतली बोली सुनकर और बाल-सुलभ चपलताओंको देखकर आनंदित होता था। अजामिल बालक के स्नेह-बन्धन में बँध गया था। जब वह खाता तो उसे भी खिलाता, जब पानी पीता तो उसे भी पिलाता। इस प्रकार वह अतिशय मूढ हो गया था। उसे इस बात का भी ध्यान न रहा कि मृत्यु उसके सिर पर आ पहुँची है। दिन भर नारायण इधर आ, नारायण खा ले, नारायण नहा ले, इसप्रकार दिनभर नारायण के नाम का भजन होने लगा। अजामिल ने अपने जीवन में अनेक पाप किये थे।

शुकदेव बोले- राजन्। अजामिल का हृदय मधुर तुतली बोली बोलनेवाले बालक के प्रेम में ऐसा आबद्ध हो गया कि उसकी लीलाओं को देख-देखकर निरन्तर प्रमुदित हुआ करता था। खाते पीते भोजन करते वह उस बालक के स्नेह में ऐसा यन्त्रित हो गया कि खाते समय उसे भी खिलाता, पीते समय उसे भी पिलाता। इस प्रकार मोहासक्त होने से वह अपनी सन्निकट आई हुई मृत्यु भी भूल गया।

लै नारायण नाम प्रेमतें मुखकूँ चूमें। गोदीमें बैठाय, नारायण कहि कहि घूमें।।
अपने पीछे खाय नरायन प्रथम खवावै। पीवे जो कछु पेय नरायन संग पिवावै।।
नारायणकूँ संग लै, यों खावत पीवत चलत। नारायण भूलै नहीं, जागत हूं सोवत उठत।।

शुकदेव बोले- राजन्, उस बूढ़े अजामिल के दस पुत्र थे, उनमें जो सबसे छोटा था उसका नाम नारायण था। पिता का अत्यन्त ही प्यारा था। दोनों का अत्यधिक अनुराग था।

पापी से पापी आदमी में भी उतने पाप करने की क्षमता नहीं है; जितना कि भगवद् नाम में उसको काटने की शक्ति है। नाम समस्त पापों को काटता है। संतों के पास नाम की प्रक्रिया होती है। नाम की जो शक्ति है वह संतों के आसपास मंडराती है। भगवान के नाम में ऐसी शक्ति है कि उसे जान में अनजान में बहाने से, किसी के कहने से, अपने उद्देश्य से, दूसरे के उद्देश्य से, दुलार से, कैसे भी लें वह कल्याण ही करेगा। शास्त्रकारों का वचन है, भगवान के नाम में भगवान से भी अधिक शक्ति है। नाम स्वयं चैतन्यघन है, वह जड़ नहीं। पूर्वजन्म के पापों के कारण जिनका भगवन्नाम में अनुराग नहीं होता, अच्छा नहीं लगता। उन्हें बलपूर्वक नाम संकीर्तन में नियुक्त करना चाहिये। अनिच्छा से नाम संकीर्तन करते-करते उसके पाप कटेंगे। पाप कटने से अन्त:करण शुद्ध होगा। शुद्ध अन्त:करण होने से भगवान के नामें में अनुराग बढ़ेगा। <u>नामी को नाम ही प्रकाशित करता है</u>।

अजामिल की मृत्यु का समय आ उपस्थित हुआ। जीवन भपर पाप किये थे, न जाने कितनी हिंसायें की थीं, माता-पिता, निरपराध सती साध्वी कुलीन वंशप्रसूता पत्नी का पापमति होकर परित्याग किया था। इन सब पापों के कारण हाथ में कारे-कारे भुसुण्ड पास और गदा लिये हुए यमदूत अजामिल को बाँधने के लिये आ गये। उनके लाल-लाल कड़े, ऊँचे उठे भयानक बाल, काला-काला डरावना मुख था, उसमें बड़ी-बड़ी तीक्ष्ण दाढ़ें थीं। श्यामवर्ण के मोटे ओठ थे। पर्वत की कन्दरा के समान भयंकर मुख था। गोल-गोल डरावनी चमकीली आँखें थीं। वे इतने बड़े-बड़े थे कि कोयले के चलते फिरते पर्वत-शिखर से दिखाई देते थे। संख्या में वे तीन थे उनका सूक्ष्म शरीर था, आकाश में प्रत्यक्ष दाँत पीसते और

क्रोध करते हुए दिखाई दे रहे थे। मोटे ओठों को बार-बार जीभ से चाटते हुए वे वक्र दृष्टि से अजामिल को देख रहे थे। ज्यों ही वे पास में अजामिल के अंगुष्ठमात्र सूक्ष्मशरीर को बाँधकर चलने लगे, त्यों ही डरकर सम्मुख खेलते हुए अपने पुत्र का नाम लेकर अजामिल ने अति दीन भाव से उसे पुकारा- नारायण नारायण। आओ आओ।

मृत्यु के समय उसने हाथों में पाश लिये पास में खड़े तीन यमदूतों को देखा। ये दूत उसे लेने के लिये आये थे। उनका स्वरूप भयंकर था। उनके मुख टेढ़ेमेढ़े थे। शरीर के रोएँ खड़े थे। मृत्यु के समय उसको लेनेके लिये यमराज के दूत आये उनकी लाल आंखे, बड़ी-बड़ी दाँढें, हाथ में फांसी का फंदा लिये हुए, काले दाँत, भयावने शरीरवाले।

उस समय बालक नारायण वहाँ से कुछ दूरी पर खेल रहा था। यमदूतों को देखकर अजामिल अत्यन्त व्याकुल हो गया। घबड़ाहट में चिल्लाकर उसने पुकारा- नारायण, नारायण, नारायण। उसने अपने पुत्र नारायण को अपनी रक्षा के लिये पुकारा। इसप्रकार पुकारता रहा। पुकार तो वह रहा था अपने पुत्र को पर उसका नाम संतप्रदत्त नारायण नाम था। यह आवाज जाकर भगवान के कानों से टकराई और भगवान से संकेत मिला पार्षदों को। भगवान के पार्षद दौड़े-दौड़े आये। पार्षदों ने उसकी आर्त स्वर अन्तिम समय की करुण पुकार सुनी।

मरन कालमहँ अजामिल, यमदूतनि लखि डरि गयो। नारायण सुत हित कह्यो, नाम लेत भव नसि गयो।।

शुकदेव बोले- राजन्, मनुष्यों के पापों को जड़ मूल सहित नाश करने के लिये भगवान के गुण सम्बन्धी (दीनदयाल, पतित पावन) कर्म सम्बन्धी (दामोदर, मुरारी, मधुसूदन) आदि नामों का संकीर्तन ही प्रर्याप्त है। महापापी अजामिल ने मरते समय पुत्र के लिये नारायण ऐसा करुणा के स्वरूप में शब्द उच्चारण किया था इसी से वह मुक्त हो गया।

यह संसार बन्धन तभी तक है जब तक साधुओं के चरणों में प्रीति उत्पन्न नहीं होती। जहाँ सन्तों से प्रीति अनुराग हुआ कि यह संसार विलीन हो जाता है।

सुनि नारायण नाम विष्णु पार्षद तहँ आये। यमदूतनिकूँ पकरि गदातें मारि गिराये।।
डरिके पूछें दूत- कौन तुम हमें भगाओ। मोल भाव बिनु किये तड़ातड़ मार लगाओ।।
धर्मराजके दूत हम, पापीकूँ लै जात है। कर्‌यो न हम अपराध कछु, काहे आपु खिस्यात है।।

शुकदेव बोले- राजन्। विष्णुदुतों ने यमदूतों से पूछा तुम लोग यदि यथार्थ में धर्मराज के निर्देश के अनुसार कार्य करनेवाले हो, तो तुम बताओ धर्म किसे कहते हैं? धर्म का तत्त्व क्या है? इस पर यमदूत बोले- अजी, वेद में जो कर्त्तव्य बताया है वही धर्म है, जिसका वेद में निषेध किया गया है वह अधर्म है। हमने ऐसा सुना है कि वेद नारायण का स्वरूप है और नारायण स्वयंभू हैं, वे किसी अन्य से उत्पन्न नहीं हुए।

भगवान के पार्षदों ने देखा कि यह मरते समय हमारे स्वामी भगवान नारायण का नाम ले रहा है, उनके नाम का कीर्तन कर रहा है अत: वे बड़े वेग से झटपट वहाँ आ पहुँचे। अभय शब्द बोलते हुए डरो मत, डरो मत। तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं होगा। उस समय यमराज के दूत दासीपति अजामिल के शरीर से उसके सूक्ष्म शरीर को खींच रहे थे। विष्णु के दूतों ने उन्हें बलपूर्वक रोक दिया। यमदूतों ने पूछा- आप महानुभाव इतने तेजस्वी कान्तिवान् कौन है? आज तक तो हमने यह देखा नहीं कि किसी ने धर्मराज की आज्ञा टाली हो। आज हम यह नई बात देख रहे हैं? आप किसके दूत हैं? आप तो इस अंध:कार पूर्ण गृह को अपने प्रकाश से प्रकाशित कर रहे हैं। आपके पधारने से तो दसों दिशायें देदीप्यमान हो उठी हैं। आप हमें अपना परिचय दीजिये और किस अधिकार किस कारण से आप धर्मराज के कार्य में हस्तक्षेप कर रहे है?

यमदूतों ने विष्णु के दूतों से कहा- अरे, धर्मराज की आज्ञा का निषेध करनेवाले आप लोग हैं कौन? कहाँ से आये हैं?

इस पापी को ले जाने से हमें क्यों रोक रहे हैं? हम धर्मराज के सेवक हैं। उनकी आज्ञा का पालन कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमें आप लोग क्यों रोक रहे हैं? धर्मराज के शासन का निषेध करनेवाले, विरोध करनेवाले तुम कौन हो? हमारे हाथ से इस पापी को छुड़ानेवाले आप कौन हैं? वे यमराज के दूतों से बोले- छोड़ दो, छोड़ दो तुम उसको नहीं ले जा सकते। हम भगवान के पार्षद है। व्यर्थ में तुम इसके प्राणों कों क्यों खींच रहे हो? आत्मा को घसीट रहे हो? यमदूत बोले- हम धर्मराज के आज्ञाकारी दूत हैं। यह पापी हैं? इसको नरक में ले जायेंगे, वहां दण्ड के विधान से इसको पाप-पुण्य की गति दी जाएगी।

इसपर भगवान के पार्षदों ने मुस्कराकर कहा- तुम लोग धर्मराज के दूत हो तो यह बतलाओ कि धर्म किसे कहते है? धर्म का लक्षण क्या है? तुम पाप पुण्य की कुछ परिभाषा भी जानते हो? जिसको मन में आया, पापी साबित कर दिया। जिसको मन में आया पुण्यात्मा साबित कर दिया। धर्म का तत्त्व क्या है? इसके साथ यह भी बतलाओ कि दण्ड किस-किस को दिया जाता है? क्या तुम सबको दण्ड देते हो अथवा किसी-किसी को ही दण्ड देते हो? इस पर यमराज के दूतों ने उत्तर देना प्रारम्भ किया। वेदविहित कर्म ही धर्म है और वेदनिषिद्ध कर्म ही अधर्म है। वेद स्वयं ही भगवान के स्वरूप हैं। मानव-कर्म के साक्षी सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, गाएँ, भूमि, जल, इन्द्रियाँ, सन्ध्या, रात-दिन, दिशाएँ काल और धर्म हैं। मनुष्य के शरीर में सूर्य, अग्नि, आकाश,वायु, गाय, सोम,सन्ध्या, दिन-रात, दिशा, जल, पृथिवी, काल और धर्म साक्षके रूपमें रहते हैं। उनसे धर्म-अधर्मका ज्ञान होता है फिर कर्मानुरोधके अनुसार उनको दण्ड दिया जाता है। अधर्मसे दु:ख मिलता है और धर्मसे सुख मिलता है।

वेदों ने जिस कर्म को मना किया है- चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, गुरुजनों का निरादर करना, किसी को कष्ट देना, शराब पीना, वेश्या गमन इत्यादि पाप है। इसने वेदों के विरुद्ध पाप किया है इसलिये हम इसे नरक ले जा रहे है।

इनके द्वारा अधर्म का पता चल जाता है और तब दण्ड का निर्धारण होता है। सभी पापी अपने-अपने कर्मों के अनुसार दण्डनीय होते हैं। कोई भी प्राणी कर्म के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता, क्योंकि प्रकृति के गुणों से उसका सीधा सम्बन्ध है अत: उसके द्वारा पुण्यों एवं पापों का होना स्वाभाविक है। वेदोंने जिन कर्मों को उत्तम कहा है वह धर्म है तथा जिनका निषेध किया है वह अधर्म है। वेद स्वयं ब्रह्मा के मुख हैं उन्हीं के अनुसार कर्म करना चाहिये। मनुष्य सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से प्रभावित होकर पुण्य, पाप तथा मिश्रित कर्म करता है। भगवान के स्वरूप में स्थित हुए इन सत्व, रज और तमोमय प्राणियों को प्रभु अपने वेद रूप ज्ञान से उनके गुण, कर्म तथा नाम रूपादि के अनुसार जैसा जिसका कर्म है उसी के अनुरूप यथायोग्य विभाग कर दिया करते हैं। इसमें भगवान का न कोई पश्चात्ताप है न किसी के प्रति अन्याय है। प्राणी अपने गुणों से शुभ-अशुभ, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य कर्म बनते हैं उसे परलोक में वैसा ही सुख-दु:ख भोगना पड़ता है।

यह ब्राह्मण अपने जीवन के प्रथम चरण में बड़ा शास्त्रज्ञ था। शील, सदाचार और सद्गुणों का तो यह खजाना ही था। ब्रह्मचारी, विनयी, जितेन्द्रिय, सत्यनिष्ठ, मन्त्रवेत्ता और पवित्र भी था। इसने अपने से बड़ों की सेवा भी की थी। अहंकार तो इसे छू भी न गया था। यदि स्वल्प शब्दों में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि यह मानवोचित और ब्राह्मणोचित सकल सद्गुणों से भरपूर अलंकृत था।

एक दिन की घटना है। पिता के आदेश के अनुसार यह जंगल में गया। फल-फूल लिया। समिधा की लकड़ी ली और फिर लौट पड़ा घर की ओर। होनी अद्भुत होती हैं। मार्ग में इसने देखा एक कामी स्वस्थ शूद्र-तरुण एक वेश्या के साथ समागम कर रहा है। दोनों मदिरा से मतवाले थे। वेश्या क्या थी, वह तो साक्षात् काम की पिटारी थी। उस पर वन का

एकान्त प्रान्त। रमण की सारी सामग्री विधाता ने एकत्रित कर दी थी। कामासक्त तरुण ने वेश्या को अपनी भुजाओं में भर रक्खा था। कामी शूद्र ने शुरू कर दी निर्बाध रति-क्रीड़ा। दोनों आनन्द-विभोर हो गये। न तन की सुध और न वातावरण का ध्यान। इस दृश्य को अजामिल कुछ दूर खड़ा-खड़ा ललचाई आँखों से निर्निमेष ताकता रहा। काम का भूत उस पर सवार हो गया। विवेक भाग खड़ा हुआ। कुछ देर तक तो वह मन को वश में करने का प्रयास करता रहा किन्तु अन्त में उसे पराजित होना पड़ा। काम उसके सिर पर चढ़कर नाच रहा था। अब वह दिन-रात वेश्या का ही ध्यान करने लगा। माता को छोड़ा। पिता को छोड़ा और परित्याग कर दिया अपनी सुन्दरी सुकुलोद्भवा तरुणी स्त्री का। पिता का सारा धन ले जाकर रख दिया उसने वेश्या के चरणों पर और बोला कि आज से मैं तुम्हारा खरीदा गया दास हूँ। तुम्हारे ही पास अब रहूँगा। अब वह न्याय से, अन्याय से जैसे-तैसे धन मिले सब वेश्या को समर्पित कर देता था। उसी के कुटुम्ब के भरण-पोषण में निमग्न रहता था। ऐसा कोई पाप-कर्म नहीं जिसे इसने न किया हो। जीवनभर यह पापकर्म में ही आकण्ठ डूबा रहा अत: अब हम इसे यमराज के पास ले जायेंगे। वहाँ दण्ड द्वारा इसकी शुद्धि होगी। इसने अपने जीवन में कभी भी किसी भी पाप का प्रायश्चित्त नहीं किया है।

जब दो राजाओं के कर्मचारी मिलते हैं, तो जो बड़े राजा के बली और प्रभावशाली कर्मचारी होते हैं, वे छोटे मण्डलीक राजा के कर्मचारियों को उसी प्रकार डाँटते हैं, जिस प्रकार स्वामी अपने सेवकों को डाँटता डपटता है। वास्तव में सेवक वही है, जो असमर्थ हो और स्वामी वही है, जो समर्थ हो। जो प्रभावशाली नहीं उसे अपने प्रभावशाली पुरुषों के सम्मुख नवना ही पड़ता है।

शुकदेव बोले- परीक्षित, यमदूतों की बात को सुनकर धर्म के मर्म को जाननेवाले विष्णु के दूतों ने उनसे कहा- यमदूतों, यह बड़े खेद की बात है कि धर्मज्ञों की सभा में भी अधर्म का प्रवेश हो रहा है क्योंकि वहाँ भी निरपराध और अदण्डनीय व्यक्तियों को व्यर्थ ही दण्ड दिया जाता है। जो प्रजा के रक्षक हैं, शासक हैं, समदर्शी और परोपकारी हैं-यदि वे ही प्रजा के प्रति विषमता का व्यवहार करने लगे तो फिर प्रजा किसकी शरण में जायेगी? सत्पुरुष जैसा आचरण करते हैं, साधारण लोग भी वैसा ही करते हैं। बड़े लोग अपने आचरण के द्वारा जिस कर्म को धर्म के अनुकूल प्रमाणित कर देते हैं, लोग उसी का अनुकरण करते हैं। पशु तो कर्म करते ही नहीं फिर उनका क्या? भूत और भविष्य तो अदृश्य है। उसके कर्म अदृश्य हैं सिर्फ वर्तमान ही प्रत्यक्ष दिखता है।

यमदूत बोले- भगवान यम केवल अनुमान के ही आधार पर दण्ड नहीं देते। वे तो सबके अन्त:करणमें विराजमान रहकर सबके कर्मों को प्रत्यक्ष देखते रहते हैं। वे अजन्मा भगवान धर्मराज मन से ही सब प्राणियों के पूर्व तथा अपूर्व रूप का विचार कर लेते हैं। पूर्वजन्मों की स्मृति नष्ट हो जाने से जीव को वर्तमान शरीर के अतिरिक्त अन्य पहले पिछले शरीरों के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। विष्णु पार्षदों ने पूछा- फिर यह जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में किस प्रकार जाता है? यमदूत बोले- भगवन्, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच उनके विषय ये पन्द्रह हुए, सोलहवाँ मन और सत्रहवाँ स्वयं जीव। इनसे मिलकर तद्-तद् विषयों का उपभोग करता है। इस प्रकार तीन गुणों के साथ यह सोलह कलाओं वाला लिंग शरीर एक देह से निकलकर दूसरी देहों में प्रवेश करता है, बार-बार शरीर छोड़ता है, फिर नया शरीर धारण करता है। देह में अभिमान करके काम क्रोधादि के वशीभूत होता है। यह अज्ञानी जीव इच्छा न रहने पर भी लिंग शरीर द्वारा कर्मों में प्रारब्ध कर्मानुसार प्रवृत्त कराया जाता है। यह जीव अपने आप अशुभ कर्म करके बार-बार जन्मता और मरता रहता है। संसार-चक्र को स्वयं बनाता है। यह जीव प्रारब्ध कर्मानुसार प्रकृति के वशीभूत होकर अवश हुआ कर्मों को करता रहता है।

साधारण लोग पशुओं के समान धर्म और अधर्म का स्वरूप नहीं जानते। वे इस विषय में किसी सत्पुरुष पर विश्वास कर लेते हैं और फिर उसी की गोद में सिर रखकर निर्भय और नि:शंक हो सो जाते हैं। फिर विश्वास का पात्र वह व्यक्ति विश्वास करनेवाले व्यक्तियों के साथ कैसे विश्वासघात कर सकता है? साधु स्वभाव के पुरुष तो अपनी शरण में आये हुए अपकारी का भी अनिष्ट नहीं करते। जिसने अपने ऊपर विश्वास किया है, उसके साथ न्याय ही करते हैं। जो जड़मति हैं, व्याधा हैं, पशुबुद्धि हैं वे ही ऐसा विपरीत व्यवहार करते हैं। यहाँ तक कि हिंसक पशु भी शरणागत के साथ विश्वासघात नहीं करते।

यमदूतों, इसने कोटि-कोटि जन्मों की पाप-राशि का पूरा-पूरा प्रायश्चित्त कर लिया है क्योंकि इसने विवश होकर ही सही, भगवान के परम मंगलमय (मोक्षदायक) नाम का उच्चारण तो किया है। जिस समय इसने नारायण इन चार अक्षरोंवाले भगवान के नाम का उच्चारण किया उसी समय केवल नाम के उच्चारणमात्र से ही, इस पापी के समस्त पापों का प्रायश्चित्त हो गया। अभी तो यह नारायण-नारायण भगवान के नाम का उच्चारण कर रहा था। नाम के उच्चारण का कुछ पुण्य होता है। यमदूत बोले- नारायण-नारायण तो पुकार रहा था। भगवान को थोडे ही पुकार रहा था। यह तो अपने बेटे नारायण को पुकार रहा था। भगवद् पार्षदों ने कहा- नारायण का नाम तो शाश्वत है। पहले उस नारायण का नाम नारायण है या इस बालक का नाम पहले नारायण है। जिसका पहला नाम है जो आदि नारायण है, वास्तव में नाम तो असली उसका ही है। अजामिल ने नारायण शब्द से चाहे अपने पुत्र को पुकारा हो, किन्तु उसके बहाने से भी भगवान के नाम का उच्चारण कर लिया। प्रभु का कोई भी नाम राम, कृष्ण, गोपाल, गोविन्द, अच्युत इत्यादि नाम ले चाहे जानबूझ कर चाहे अनजान में, चाहे प्रेम में, चाहे भय से, चाहे राग-द्वेष से, चाहे भाव से चाहे कुभाव से किसी भी प्रकार प्रभु का नाम लिया जाए उस नाम में शक्ति है, वो पापों का हरण करता है। बेटे के नाम के बहाने ही यह प्रभु का ही नाम ले रहा था इसलिये ये परम निष्पाप है। कोई भी पाप अब इसके शरीर में नहीं रह गया यमदूतों। इसने कोटि-कोटि जन्मों की पाप राशि का पूरा-पूरा प्रायश्चित कर लिया। जिस समय इसने नारायण शब्द का उच्चारण किया उसी समय उसके सारे पाप नष्ट हो गये।

विष्णु पार्षद कहे-धर्मको मर्म बताओ। दण्ड जोग जिहि नाहिँ जाइ च्यौं व्यर्थ सताओ।।
बोले जमके दूत- धर्म जो वेद बखान्यो। है अधर्म विपरीत वेद हरि रूपहिँ मान्यो।।
हिंसक पापी सुरापी, कूँ यमपुर ले जायँगे। नरक अग्निमें डारिकें, जाकूँ विमल बनायँगे।।

चोर, शराबी, मित्रद्रोही, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नीगामी इन पापियों के संसर्ग में रहनेवाला, स्त्री, राजा, पिता और गाय को मारनेवाला- चाहे जैसा और जितना बड़ा भी पापी क्यों न हो वह भगवान के नाम के उच्चारण से पूर्ण पवित्र हो जाता है। भगवान के नाम का उच्चारण पापों का सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है। नाम के लेने से बुद्धि नामी की ओर लग जाती है और फिर तो कल्याण होना सुनिश्चित है। चान्द्रायण, कृच्छ्र आदि बड़े-बड़े प्रायश्चित्त भी पापी की वैसी शुद्धि नहीं करते जैसी कि भगवान के नामों का उच्चारण करने से होती है। भगवान के नाम और गुणों का गान पापकर्मों और वासनाओं की जड़ ही उखाड़कर फेंक देता है फिर तो उससे चित्त सर्वदा के लिये शुद्ध हो जाता है। वास्तव में भगवान की ओर चलनेसे रोकनेवाले, गिरानेवाले वे ही लोग है जो उनके जीवनमें नाम, जप, पाठ-पूजा आदि छुड़वा देते हैं और कहते हैं कि आँख बन्द करनेसे ही भगवान मिल जायेंगे। नासमझ लोग ऐसे लोगोंके चक्कर में आ जाते हैं। पाप का प्रायश्चित जैसा भगवान्के नामोच्चारणसे होता है, वैसा बड़े-बड़े ब्रह्मवेत्ताओं द्वारा बताये व्रत आदिसे नहीं होता। अन्त:करणकी प्रत्यक्ष शुद्धि करनेवाला तो भगवान का नाम ही है।

जिसने मरते समय एक बार भी अवश होकर भगवान के परमपावन नाम का उच्चारण कर लिया, वह समस्त चोरी के पापों से छूट गया, सुरापान का महापाप उसके समीप से भाग गया, मातृ-पितृ तथा गौ आदि की जो हत्यायें की हों वे भी नाम की ध्वनि सुनते ही उसके देह का आश्रय छोड़ गई। उसने गुरुस्त्री गमन जैसा महापाप का भी प्रायश्चित्त कर डाला। उसने समस्त पापों का अन्त में नाम लेते ही प्रायश्चित्त कर लिया। वह पापी से विशुद्ध बन गया।

जो मनुष्य गिरने की बेला में, पैर फिसलने के समय, अंग-भंग के काल में, सर्प के डँसने पर, अग्नि से जलने पर तथा चोट लगने के समय भी विवशता से हरि हरि कह कर भगवान के नाम का उच्चारण करता है, उसे यम की यातना नहीं भोगनी पड़ती। हास-परिहास में हरि हरि का उच्चारण करता है तो वह यम की सम्पूर्ण यातनाओंसे मुक्त हो जाता है। जो पाप जप, तप, दान आदि से नष्ट नहीं होते वे केवल भगवत् नाम के उच्चारण से ही नष्ट हो जाते हैं। अनजाने में किया गया अग्नि का स्पर्श हाथ जला देता है। उसी प्रकार अनजान में अनिच्छा से भी पापियों द्वारा उच्चारण किया गया भगवन्नाम उनकी पापराशि को भस्म कर देता है।

विष्णु पार्षद यमदूतों से बोले- जो पुरुष ऊँचे से गिरते समय, फिसलते समय, अंग-भंग हो जाने के समय, किसी सर्पादि ने काट लिया हो उसकी पीड़ा के समय, ज्वर आदि के संताप के समय तथा पीटे जाते समय, विवश होकर भी हरि नाम का उच्चारण करता है वह फिर यातना के योग्य नहीं रह जाता। उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

कैसे हूँ नर विवश ह्वै, हरि उच्चारन करिङ्गे। नाम प्रतिष्ठाके निमित्त, अघ तिनके हरि हरिङ्गे॥

तो किसी भी अवस्थामें भगवानका नाम लेनेसे मनुष्यके सारे पापोंका नाश हो जाता है। चाहे कोई पतित हो रहा हो, स्खलित हो रहा हो, भग्न हो रहा हो, संतप्त हो रहा हो अथवा आहत हो रहा हो, कैसी भी विवशताकी स्थितिमें हो, भगवान्के नामका उच्चारण करे तो मनुष्यका कल्याण हो जाता है। किसीको धिक्कारना हो तो राम-राम बोले, किसीसे घृणा करनी हो तो राम-राम बाले, मच्छर काटता हो तो राम-राम बोले, कोई अशुद्ध छींटा पड़ गया तो राम-राम बोले, इस प्रकार इतनेसे भी नाम लेनेवालेका मंगल हो जाता है, क्योंकि नाममें बहुत बड़ी शक्ति है। वेदोंमें भी नामकी महिमा गायी गयी है। कोई तीर्थ, व्रत, नियम, तप, जप, यज्ञ, होम, दान और धर्म भगवान का नाम लेने के तुल्य नहीं हो सकता।

जिसका अस्तित्व है वह अपना नाम चाहता है, जो नाम न चाहे उसका अस्तित्व नहीं। ज्ञानी की दृष्टि में नाम रूप मिथ्या है, इसलिये वह कुछ चाहता ही नहीं। मोक्ष को भी ज्ञानी नहीं चाहता। बन्ध हो तो वह मोक्ष चाहे। ज्ञानी की दृष्टि में ब्रह्म के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु है ही नहीं। किन्तु भक्त की दृष्टि में दो ही वस्तु सत् हैं। भगवान का नाम और रूप। मुख से भगवान का नाम उच्चारण होता रहे, हृदय में उनकी अनुपम सौन्दर्य माधुर्य युक्त मनमोहिनी रूप माधुरी छाई रहे और ये मन इन्द्रियाँ उनके नाम रूप चिन्तन में निमग्न रहें इसके अतिरिक्त भक्त न मोक्ष चाहता है न वैकुण्ठ। उसे पुनर्जन्म से भी भय नहीं। जन्म मृत्यु से भी डर नहीं। हमारा लाख बार जन्म हो, देवयोनि, मनुष्य योनि में हो, पशु-पक्षी, कीट, पतंग, सूकर, कूकर, किसी भी योनि में चाहे क्यों न हो। कृष्ण नाम रसपान करने को मिले। बस यही पर्याप्त है। मन ही वश में हो जाय, तो फिर साधनों की ही क्या आवश्यकता रहती है, तब तो सब खेल ही समाप्त हो जाता है। भगवान की ओर तो मन जाता ही नहीं, विषयों की ओर ही दौड़ता है। बेमन से ही सही नाम का उच्चारण हो जाय। स्वेच्छा से न हो परेच्छा से ही हो जाय, ज्ञान से न हो अज्ञान से ही हो जाय। अन्धेरे में सर्प पड़ा है, अज्ञान से भी उस पर पैर पड़ जाय तो काट ही लेगा। क्योंकि उसका स्वभाव है। इसी प्रकार हरि नाम का स्वभाव है पापों को हरना। तो फिर कैसे भी उसका सेवन क्यों न करो, वह अपने स्वभाव को छोड़ नहीं सकता। क्योंकि स्वभाव को दुस्त्यज बताया है। अवश होकर भी जिसके मुख से

भगवान का नाम निकल जाय, उसे बड़ा भाग्यशाली समझना चाहिये। पूरा नाम उच्चारण न भी हो अधूरा ही हो जाय, शुद्ध उच्चारण न हो अशुद्ध ही हो जाय, उसी में कल्याण है।

इसलिये यमदूतों, तुम लोग अजामिल को मत ले जाओ। इसने सारे पापों का प्रायश्चित्त कर लिया है, क्योंकि इसने मरने के समय भगवान के नाम का उच्चारण किया है। भगवान ने कलियुगवासियों को केवल भय दिखलाने के लिये यज्ञ व तप आदि कठिन-कठिन प्रायश्चित बना दिये हैं; जिससे संसारी जीव उस डर से अधर्म न करें। नाम तो भाव से, कुभाव से, सावधानी से, आलस्य से, ज्ञान से, अज्ञान से, कैसे भी लिया जाय, ज्ञानी, अज्ञानी, पंडित, मूर्ख, ब्राह्मण, चाण्डाल, शुचि, अशुचि, धर्मात्मा, परमात्मा, कोई भी क्यों न ले, ब्रह्मावर्त ऋषि सेवित देश में कीकट मगधादि निषिद्ध देशों में कहीं भी क्यों न लिया जाय निरर्थक-व्यर्थ-कभी होने का ही नहीं। भगवान के नाम में नियम नहीं, देश, काल पात्र किसी की भी अपेक्षा नहीं। केवल जिह्वा से नाम उच्चारण हो जाना चाहिये।

नारायण यह कह्यो अन्तमहँ मुखतें जानें। तौ हम ताकूँ फेरि परम पावन नर मानें।।

चोर, जार, हिंसक कुटिल, पापी चाहें होय अति। नाम उचारनतें तुरत, होहि सिद्ध पावै सुगति।।

हीरा भी पाषाण है और साधारण पाषाण भी पाषाण है। मूर्खों की दृष्टि में दोनों में कोई विशेष भेद नहीं। वे समझते हैं यह अधिक चमकीला पत्थर है, यह कम चमकीला है, पत्थर-पत्थर दोनों एक से हैं। किन्तु उनका महत्व तो जौहरी ही जानता है। इसी प्रकार साधारण लोग समझते है, जैसे और नाम हैं, वैसा ही भगवन्नाम हैं, असुरों में तो कोई भेद नहीं, किन्तु जो भगवान् के अत्यंत प्रिय हैं, समीपवर्ती हैं, उनके पार्षद हैं, वे नाम के महत्व को जानते हैं कि वास्तव में नाम क्या है, भगवन्नाम में कितनी शक्ति है।

विष्णुपार्षद यमदूतों से कह रहे हैं- दूतों, देखो, ब्रह्मवादी ऋषियों ने जो पापों के प्रायश्चित्त स्मृतियों में बताये हैं, उनसे पापी पुरुष शुद्ध नहीं होता जैसा कि भगवान् के नाम रूप पदों के उच्चारण से शुद्ध होता है।

कृष्ण नाम भव रोगकी, है अव्यर्थ ओषध सुगम। चाहे जस सेवन करो, निश्चय देगी पद परम।।

विष्णुपार्षद यमदूतों से कह रहे हैं- अज्ञान से किया गया हो अथवा ज्ञान से उत्तम श्लोक भगवान के नाम का कीर्तन पुरुष के पापों को उसी प्रकार भस्म कर डालता है, जैसे अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है। जिस प्रकार बलवती औषध को उसका गुण बिना जाने भी स्वेच्छा से सेवन कर लेने पर लाभ करती है उसी प्रकार हरि नाम महामन्त्र उच्चारण करने पर अपना फल देगा ही।

भूल से बीज उर्वरा भूमि में पड़ जायगा तो जम ही जावेगी। भूल से भी कोई विष खा लेगा तो मर ही जावेगा। भूल से भी पैर में काँटा गड़ जाय, तो पीड़ा देगा ही। भूल से भी बच्चा अग्नि को छू ले तो जल ही जायगा। क्योंकि जो जिसका गुण है, उसका प्रभाव उस पर पड़ेगा ही। इसी प्रकार भूलकर जिसकी जिह्वा से अन्त समय भगवान के नाम का उच्चारण हो जायगा, वह परमपद का अधिकारी बन ही जायगा। मुख से कैसे भी नाम का उच्चारण हो जाय, एक ही भगवान के नाम में ऐसी शक्ति है, कि वह बड़े-से-बड़े पापों का तत्क्षण नाश कर देता है। भगवान के नाम में, कितनी शक्ति है, उसके उच्चारण का क्या फल है, इसे शेषजी भी अपने श्रीमुख से उच्चारण करने में समर्थ नहीं।

बड़े-बड़े महात्मा पुरुष यह बात जानते हैं कि संकेत में (पुत्र आदि का नाम रखकर), हंसी-मजाक में, गान की बेला में, तान अलापने में अथवा किसी की निन्दा से अथवा किसी भी प्रकार से यदि मनुष्य भगवान के नाम का उच्चारण करता है तो उसके सारे-के-सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं। उसे नरक में यम-यातना नहीं भोगनी पड़ती। बड़ों को जो कार्य करते

देखते हैं, सर्वसाधारण लोग उसी का अनुकरण करने लगते हैं। जिस बात को बड़े लोग सुन्दर समझकर स्वीकार कर लेते हैं, अन्य जन उसे ही प्रमाण मान लेते हैं।

जानबूझ कर अथवा अनजाने में लिया गया भगवान का नाम वैसे ही पाप-राशि को भस्म कर देता है, जैसे अग्नि काष्ठसमूह या रुई के ढेर को भस्म कर देती है। वस्तु की स्वाभाविक शक्ति इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि यह मुझ पर श्रद्धा रखता है कि नहीं, जैसे अग्नि या अमृत। इसी प्रकार अनजान में अनिच्छा से भी पापियों के द्वारा लिया गया भगवान का नाम उनकी पापराशि को जला डालता है। अनजान में की गई औषधि जैसे अपना प्रभाव प्रदर्शित करती है, वैसे ही अनजान में भी उच्चारण किया गया भगवान का नाम जन्म-जन्म के पापों को जला डालता है।

नाममें ज्ञान-अज्ञानका कोई प्रश्न नहीं है। कोई भी जगह हो- चाहे चाण्डालका घर हो, नरक हो, वैतरणी हो; कोई भी समय हो- चाहे कलियुग हो, सत्ययुग हो, त्रेता हो, द्वापर हो, दिन हो, रात हो, सायं हो और कोई भी अधिकारी हो- चाहे चाण्डल हो, पुल्कस हो, यवन हो और चाहे उसको नामका परिचय हो या न हो, परन्तु यदि भगवन्नाम वाणीमें आ गया तो सब मंगल ही मंगल है।

प्रायश्चित्त मनु आदि पापके विविध बतावें। तिनतें छूटें पाप किन्तु जड़तें नहिँ जावें॥
रहै वासना बनी फेरिहू पाप करिङ्गे। पुनि पुनि करिकें पाप नरकमहँ मनुज परिङ्गे॥
प्रायश्चित्त सब पापको, पुरुषोत्तम को नाम है। तुम उच्चारन भर करो, फेरि नामको काम है॥

भगवान के पार्षदों ने यमदूतों को पकड़कर मार पीटकर भगा दिया और अजामिल के प्राणों की रक्षा की। अजामिल की आत्मा को न तो यमदूत ले जा सके और न ही विष्णु दूत ले गये।

शुकदेव बोले- राजन्। इस प्रकार जब भगवान के प्रिय पार्षदों ने विशुद्ध भागवत धर्म का निर्णय किया, नारायण नाम की महिमा बतायी तो यम के दूतों ने डरकर उस अजामिल को पाश से छोड़ दिया। उसे प्रणाम किया और अपना सा मुँह लेकर जैसे आये थे वैसे ही रिक्तहस्त यमलोक को लौट गये।

किसी भी संकेत से भगवान का नाम लिया जाय तो मुक्ति है। उदाहरण के लिये एक गांव में चार चोर लुटेरे थे जो हर आने-जानेवाले को लूट लेते थे। जिस दिन बजार का दिन भरता उस दिन वे गाँव के बाहर जाकर खड़े हो जाते। चारों भी एक-एक किलोमीटर के अंतराल पर खड़े रहते और देखते कौन आ रहा है। जब कोई गाँव की ओर आनेवाला दिखता तो पहला व्यक्ति चिल्लाता था- नारायण, नारायण। अर्थात् नर आ रहा है, नर आ रहा है इसके पास नकद नारायण है। दूसरा कहता- दामोदर, दामोदर। अर्थात् दाम इसके पेट पर बाँधे हुए है। तीसरा कहता- केशव-केशव। अर्थात् कैसे देवे, कैसे देवे। चौथा कहता- वासुदेव, वासुदेव अर्थात् बांस मारकर, लाठी मारकर इसको लूट लो और हर लो। इस तरह से प्रतिदिन नित्य ही लूटपाट की दिनचर्या बन गई और अत्यधिक पाप करने लग गये। एक दिन वे चारों किसी दुर्घटना के शिकार होकर मर गये और यमलोक पहुँच गये। यमराज ने पूछा और कहा कि तुम्हें नरक की यातनाएं भोगनी पड़ेगी। वो चारोंने कहा- हमने तो कोई अपराध नहीं किया है। हम तो सदैव ही भगवान का नामस्मरण करते रहे है। चारों को भगवान नारायण के पास ले जाया गया और बोले भगवन्, आपका नाम लेनेपर भी हमारी मुक्ति नहीं होगी तो हम सबको बता देंगे कि आपका नाम लेना भी सार्थक नहीं है। आपकी यह उक्ति असत्य होगी कि प्रभु का नाम लेनेपर जीव के करोड़ों पाप होनेपर भी मुक्ति नहीं होगी। उसी समय नारायण ने कहा- उन्होंने मेरे नाम का कीर्तन किया है इन्हें मोक्ष प्रदान करो। उसी समय नामसंकीर्तन के प्रभाव से उनकी मुक्ति हुई।

इसी प्रकार एक गांव में एक सेठजी रहते थे। उनके चार पुत्र थे। सबसे छोटा बड़ा ही उद्दण्ड था, कभी किसीकी सुनता

नहीं था। गांववालों को हमेशा सताता था, गाँव के बच्चोंको मारता-कूटता था। सेठजी उससे दु:खी हो गये। उस गांव में एक दिन एक संत पधारे। संत ने सेठजी का हालचाल पूछा। सेठ बोले- और तो सब ठीक है बच्चे भी अच्छे है पर मेरा सबसे छोटा पुत्र बड़ा ही उद्दण्ड है। न तो वह कोई पूजा-पाठ करता है, न भगवान का नाम लेता है और गांववालों को परेशान करता है। उसके विरुद्ध बहुत सी शिकायतें आती है। ऐसी परिस्थिति में मैं क्या करूँ? महात्मा बोले- सेठजी, उसको एकबार मेरे पास ले आओ मैं सब ठीक कर दूँगा। सेठ बालक को बोले- आज महात्मा जी का प्रवचन है, महात्माजीने तुझे बुलाया है। बालक बोला- मैं कोई महात्मा के पास नहीं चलता। पर कैसे भी जबरन सेठजी इच्छा-अनिच्छा से उसको साथ में ले लिये। वहां जाकर बालक से बोले- महात्मा को प्रणाम करो। बालक ने अनिच्छा से महात्मा को प्रणाम किया। महात्मा ने पूछा- पुत्र, क्या करते हो? बालक बोला- काम करता हूँ। महात्मा बोले- कभी भगवान का नाम लेते हो। बालक बोला- इसकी तो आवश्यकता नहीं पड़ती। तो महात्मा बोले- बेटा बोलो राम-राम। पर बालक कुछ भी नहीं बोला। महात्मा ने फिर से कहा- बेटा कहो राम-राम। बालक ने देखा यह महात्मा तो जबरन पीछे पड़ गये है चलो एक बार राम-राम बोल देते हैं। एक बार राम-राम बोलकर पीछे जाकर वह बालक सो गया। थोड़े ही दिनों बाद दैवयोग से कोई एक वाहन की दुर्घटना में उस बालक की मृत्यु हो गई। बालक यमलोक में पहुँचा। वहाँपर यमराज ने चित्रगुप्त से पूछा कि इसका लेखा-जोखा देखो। चित्रगुप्त ने बताया- इसके पुण्य तो कोई है नहीं पाप ही पाप बने हुए है। एक बार जबरन इसने रामका नाम लिया। इसके बदले में इसको क्या और कितना दण्ड दिया जाय। यमराज ने बालक से पूछा- तुमने कोई पुण्यकर्म तो किया ही नहीं। सिर्फ एकबार भगवान का नाम लिया उसके बदले में कुछ क्षण के लिये स्वर्ग मिल सकता है अन्यथा तो नरक की यातना भोगनी पड़ेगी। बोलो तुम क्या चाहते हो? बालक बोला- जो कुछ रामके नामका मिलता हो वो पहले दे दीजिये पहले भोग लूंगा और बाकी बाद में। यमराज ने चित्रगुप्त से पूछा- कि एकबार रामका नाम लेनेपर क्या मिल सकता है? दोनों भी निर्णय नहीं कर पा रहे थे इसको क्या देना चाहिये। बोले- चलो चलकर ब्रह्मा से पूछते है। बालक को बोले तुम ब्रह्मलोक चलो, ब्रह्मासे पूछेंगे कि राम का नाम लेनेके बदलेमें तुम्हें क्या मिलेगा। बालक बोला- मैं तो मेरा वही पृथ्वीलोक पर ठीक था मैं यहाँ-वहाँ नहीं चलूँगा। जो कुछ देना है मेरे राम के नाम के बदले यहीं दे दो। यमराज ने बालक को फुसलाया और कहा- तुझे ब्रह्मा से ही कुछ दिलवायेंगे और तुझे चलना नहीं पड़ेगा हम तुझे उठाकर ले जायेंगे। अब यमराज, चित्रगुप्त और बालक ब्रह्मा के पास पहुँचे। ब्रह्माजी से पूछे- इस बालक के कर्म तो सब पापकर्म हैं। नरक की यातनाएं ही भोगनी पड़ेगी। इसने जीवन में सिर्फ एक बार राम का नाम लिया। इस रामके नामके बदले इसको क्या दे। ब्रह्मा भी कुछ निश्चित नहीं कर पायें और बोले चलो कैलास पर शिवजी के पास जाकर पूछते है कि राम के नाम का इसको क्या दे। इसको ले चलते है। बालक बोला- मैं कैलास पर नहीं जाऊँगा, मुझसे चला नहीं जाता। जो कुछ देना है वो यही दे दो। ब्रह्मा बोले- तुझे हम पालखी में ढोकर ले चलेंगे। बालक बोला- मैं ब्रह्मा के साथ नहीं जाऊँगा, यह ब्रह्मा तो बूढ़ा है और सारे दिन खैं-खैं करते रहता है। मैं कहीं गिर पड़ जाऊँगा। ब्रह्मा बोले- नहीं, नहीं, तुझे हम सुरक्षित शिव के पास ले जायेंगे। अब तीनों उस बालकको पालखी में बिठाकर शिव के पास ले गये और बताया कि इस बालक के सारे जीवन में तो पाप ही पाप ही सिर्फ एकबार इसने राम का नाम लिया। इसके बदले में इसको क्या दे? शिव भी बोले- एकबार के नाम लेनेमें क्या मिल सकता है? वो भी इस बात का निर्णय नहीं कर पाये बोले चलकर क्षीरसागर में नारायण को ही पूछते हैं। बालक उद्दण्ड तो था ही और बोला- मैं आप लोगोंके साथ नहीं चलूँगा। क्योंकि एक तो यह बूढ़ा-खोड़ा, दूसरा यह सन्यासी-मोढ़ा, गलेमें साँप लपेटे हुए, मुण्डमाला पहने हुए मुझे तो इससे डर लगता है।

मैं इसके साथ नहीं जाऊँगा। ब्रह्मा और शिव ने बालक को फुसलाकर जैसे तैसे पालखी में बिठाया और ले चले क्षीरसागर की ओर जहांपर भगवान नारायण क्षीरसागर में शयन कर रहे थे और लक्ष्मी चरण पलोट रही थी। लक्ष्मीने सामने से ब्रह्मा, शंकर और यमराज, चित्रकेतु को एक पालखी ढोते हुए देखा उसमें एक बालक बैठा हुआ देखा। लक्ष्मीजी को लगा कोई बहुत ही बड़े जीवात्मा को ये चारों महापुरुष ढोकर ला रहे है। उन्होंने तुरंत विष्णुको जगाया और कहा- भगवन्, कोई महापुरुष ही आपसे मिलने आ रहा है। जिसकी पालकी को ब्रह्मा, महेश, यमराज और चित्रकेतु ढोकर ला रहे हैं। जैसे ही बालक नजदीक आया और विष्णुको क्षीरसागर में देखा बालक समझ गया कि ये तो मेरा अंतिम पड़ाव है और यहां कोई उद्दण्डता नहीं चलेगी। झठ् पालखी से कूदा और झठ् भगवान नारायण के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। यमराज ने प्रभुको बताया कि इस बालक ने जीवनभर पाप ही पाप किया है पुण्य तो है ही नहीं। इसने जीवन में एक बार ही राम का नाम ले लिया है। इसके बदले में इसको क्या दिया जाएं। नारायण बोले- ये मेरा नाम लेनेसे मेरे लोकमें आ गया। इसको इसके बदले में अब कुछ देनेकी जरूरत ही नहीं। तुरंत उस बालक की रामनाम लेनेसे मुक्ति हो गयी।

जिस पाप के प्रायश्चित करने के अनन्तर भी मन असत्पथ की ओर दौड़े वह मन की आत्यन्तिक शुद्धि करनेवाला पूर्ण प्रायश्चित्त नहीं है। इसलिये जिसे पाप कर्मों की आत्यन्तिक निवृत्ति करने की इच्छा हो उसे भगवान के गुणों का अनुवाद ही करना चाहिए, क्योंकि वह निश्चय ही चित्त की शुद्धि करनेवाला है। मनुष्य पाप वासना के वशीभूत होकर करता है। मन में विषयों की वासना रहना ही बीज है, पाप उसके फल हैं। वासना जायगी भगवान के गुणानुवादों का आश्रय ग्रहण करने से, भगवान की कथा और उनके सुमधुर नामों का प्रेमपूर्वक कीर्तन करने से। भगवान के नाम को मन से लो, बेमन से लो, संकेत से लो, हँसे में लो, गाने के अलाप को पूरा करने में लो, अवहेलना के साथ लो वह पापों के नाश करने में सभी प्रकार से समर्थ हैं।

कैसे हू हरिनाम लेत फल निश्चय देवै। चाहें मनते लेइ, भले बेमनके लेवै।।
हरिको लैकें नाम मार्गमें आवै जावै। कृष्ण कृष्ण संकेत करे सब वस्तु मँगावै।।
मोदक घी बूरी सन्यो, दिनमें खाओ रातिमें। सब थल मीठो लगैगो, घर खाओ या पाँतिमें।।

शुकदेव बोले - राजन्, भगवान के पार्षदों ने भगवान के नाम की महिमा का वर्णन करके अजामिल को यमदूतों के फन्दे से छुड़ा लिया। यमदूत वापस लौट गये। उन्होंने यमपुरी में पहुँचकर सारा समाचार अपने स्वामी को ज्यों-का-त्यों सुना दिया। इधर यमदूतों के चले जाने से अजामिल कुछ स्वस्थ हुआ। उसका भय जाता रहा। उसने भगवान के पार्षदों को सिर झुका कर प्रणाम किया। पार्षदों ने देखा कि अजामिल कुछ कहना चाहता है, तब वे सहसा उसके सामने ही अन्तर्धान हो गये। भगवान के पार्षदों से नाम की महिमा सुनकर और सच्ची बात तो यह है कि पार्षदों के पावन दर्शन से, अजामिल के हृदय में भक्ति का संचार हुआ। अब उसे अपने पापों का स्मरण कर महान् पश्चात्ताप हुआ।

इधर यमदूतों के पाश से मुक्त हो जाने पर अजामिल को चेतना हुई। सम्मुख उसने दिव्यरूप धारी भगवान के प्रिय पार्षदों के दर्शन किये। उनके दर्शनों से निर्भय और सावधान होकर अजामिल मारे प्रेम के फूला नहीं समाता था। उसने बड़ी श्रद्धा-भक्ति के सहित उठकर भगवान के पार्षदों को प्रणाम किया और कृतज्ञता प्रकट करते हुए ज्यों ही उसने कुछ कहने का विचार किया, त्यों ही वे सबके सब पार्षद उसी प्रकार अन्तर्धान हो गये, जैसे स्वप्न की सब वस्तुएँ निद्रा खुल जाने पर विलीन हो जाती है। विष्णुपार्षदों को सम्मुख न देखकर अजामिल को बड़ा दु:ख हुआ। वह अपने पापों को स्मरण करते अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगा। राजन्। यथार्थ पश्चात्ताप से बढ़कर दूसरा कोई भी प्रायश्चित नहीं। उसने मन-ही-

मन सोचा- अरे, मैं कैसा इन्द्रियों का दास हूँ, पापात्मा हूँ। मैंने एक दासी के गर्भ से पुत्र पैदा करके अपना ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया। यह बड़े दु:ख की बात है। मुझे बार-बार धिक्कार है। हाय-हाय मैंने अपनी सती साध्वी कुलांगना स्त्री का परित्याग कर शराबी कुलटा का संसर्ग किया। मैंनें वृद्ध असहाय माता-पिता का भी परित्याग कर महान् अनर्थ कर डाला। इसके लिये निश्चय ही मुझे नरक की यातना भोगनी पड़ेगी। हाय। ये तो मेरे पापों का परिणाम था। जीवन में चोरी, हिंसा, डकैती, वेश्या गमन, शराब इत्यादि जो पाप किये थे उनका परिणाम था कि यमराज के भयंकर आकृति वाले दूत आये और मुझे मारते-पीटते घसीट कर ले जाने का उपक्रम कर रहे थे और दूसरी ओर नारायण नाम का चमत्कार है कि भगवान के चतुर्भुज पार्षदों ने आकर मुझे बचा लिया।

इत सुनि शुभ सम्वाद नामकी महिमा जानी। निज पापनिकूँ सुमिरि अजामिल मन अति ग्लानी।।
करि पापनिकूँ यदि जो, पछितावें दुख अति करें। तिनके अघ सन्ताप प्रभु, जानि हृदय भल-सब हरें।।

शुकदेव बोले- राजन्। अचेतनावस्था में पड़ा-पड़ा अजामिल विष्णुदूत और यमदुतों के सम्वाद को श्रवण कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता है, भगवान का अनुग्रह ही पार्षदों का रूप रखकर उसे यमदूतों की पाश से छुड़ाने को तथा उसे सदुपदेश देने को प्रादुर्भूत हुआ था। अनजान में लिये भगवन्नाम का ऐसा माहात्म्य हैं, इस बात को सुनकर अजामिल के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। वह बड़ी सावधानी से विष्णुपार्षदों के मुखसे निकले हुए नारायण के माहात्म्य को सुनता रहा। जब भगवद् दूतों की आज्ञा से यम के दूत उसे पाश से विमुक्त करके यमलोक चले गये, तब अजामिल कृतज्ञता के भार से अवनत हुआ, पार्षदों के पादपद्मों में प्रणत होने को ज्यों ही प्रस्तुत हुआ त्यों ही प्रभुपार्षद भी अन्तर्धान हो गये। उनके अन्तर्धान हो जाने के अनन्तर अजामिल को अपने पूर्वकृत पापों पर महान अनुताप हुआ। वह अत्यन्त पश्चात्ताप प्रकट करता हुआ अपने आपको धिक्कारने लगा- हाय मैं बड़ा नीच हूँ, मैं वेदपाठी ब्राह्मण होकर भी अपनी इन्द्रिय को वश में नहीं कर सका। मेरे लिये यह कितनी लज्जा की बात है। मेरे वेदाध्ययन, यम, नियम, व्रत, अग्नि, सुश्रूषा, गुरु सेवा आदि सभी शुभ कर्म व्यर्थ ही हुए, अपने मन को न रोक सका। कहाँ मैं कुलीन ब्राह्मण और कहाँ यह व्यभिचारिणी वेश्या? अमृत के घड़े को छोड़कर मैंने विष के घड़े को अपनाया। अल्पवयस्का पतिव्रता पत्नी का परित्याग करके सुरापी कुलटा वेश्या का सहवास किया। पृथ्वी सबके भार को सह सकती है। अपने ऊपर धारण कर सकती है किंतु कृतघ्न को धारण करनेकी क्षमता पृथ्वी में नहीं है। मुझसे बड़ा कृतघ्नी इस संसार में और कौन होगा।

वे चारों सिद्ध कहाँ चले गये, जिन्होंने मुझे यम के फन्दें से छुड़ाया था। जिन्होंने मुझे कसकर पाश में बाँध लिया था, वे कौन थे। वे तो भयंकर थे, वे तो भयंकर बलवान थे। मुझे कितना कष्ट दे रहे हैं। मेरे पूर्वजन्मों में किन्हीं महान पुण्यों का फल उदय हो गया है, जिससे मरणकाल में इनके मुझे दर्शन हो सके। नहीं तो इस जन्म में तो मैंने पाप-ही-पाप कमाया है, अपने ब्राह्मणत्व को गँवाया है, व्यभिचार में मन लगाया है, परधन पर चित्त चलाया है, निरपराध प्राणियों को सताया है। यदि मेरे पूर्वजन्म के महान पुण्य उदय न हुए होते तो मरण समय मेरी जिह्वा से भगवन्नाम निकल ही नहीं सकता। कार्य को देखकर ही कारण का अनुमान लगाया जाता है। अवश होकर भी जब मेरे मुख से अन्त में भगवन्नाम निकल आया तो अवश्य ही मेरा अब कल्याण हो जायगा। अब मुझे नरक में जाकर यम यातनायें सहन न करनी पड़ेगी। अवश्य ही अब मेरा मंगल होनेवाला है। यदि यह बात न होती तो मेरे जैसे महान् पापी के मुख से भगवान का नाम कैसे निकलता? इसलिये अब मैं कुछ ऐसा प्रयास करूँगा जिससे मुझे नरक की यात्रा न करनी पड़े। कितने आश्चर्य की बात हैं, कहाँ महाकपटी, पापी, निर्लज्ज तथा ब्रह्मतेज को नष्ट करनेवाला नीच द्विजाधम और कहाँ परम पावन, जगत्मंगल, सर्व अशुभघ्न

श्रीभगवान का नारायण नाम? इसमें भगवत् कृपा के अतिरिक्त दूसरा कोई कारण ही नहीं है। मैं अपने पुरुषार्थ से अन्त समय अचेतनावस्था में भगवान के मंगलमय नामों का उच्चारण कभी कर ही नहीं सकता था। अच्छी बात है, जब भगवान ने मेरे ऊपर कृपा ही की है, तब आगे से ऐसा प्रमाद कभी भूलकर भी नहीं करूँगा। अब मैं भगवत् कृपा से अपने को पाप पम से पृथक् करूँगा। इस निरयगर्त से अपने आपको निकालूँगा और श्रेय मार्ग के लिये प्रयत्नशील रहूँगा।

शुकदेव बोले राजन्। इस प्रकार भाँति-भाँति से अपने आपको धिक्कारता हुआ वह अजामिल अपने पापों के लिये हृदय से पश्चात्ताप करने लगा।

बार बार धिक्कार अजामिल देवै मनकूँ। हाय। पापमहँ फँस्यो भुलायो ब्राह्मनपनकूँ।।
तजे पिता अरु मातु दु:ख जिन सहि सुख दीन्हों। तजी सती निज नारि मोह वैश्यातें कीन्हों।।
करे पाप अति भयानक, करूँ न ऐसे काम अब। बिगरी मेरी बात तो, किन्तु बनाई नाम सब।।

अजामिल की आयु अठ्ठासी (८८) वर्ष की हो गई। यह सब सोचकर अजामिल के हृदय में प्रबल वैराग्य उत्पन्न हुआ। भगवान नारायण का नाम यदि मैं प्रेम से भजन करूँगा, तो मेरा कल्याण होगा। उसने घर-परिवार सब कुछ छोड़कर हरिद्वार में गंगा तट पर जाकर निवास किया। अब उसके सारे सांसारिक बन्धन समाप्त हो चुके थे। वहाँ उसने इन्द्रियों का संयम किया। प्राण का अवरोध किया और मन को लगा दिया सीधे भगवान के चरणों में। इससे उसकी समाधि लग गई तथा देहाध्यास की भावना जाती रही।

हाथ में आये हुए समय को गंवाना मत। जैसे घट में छिद्र हो और पानी टपक-टपक बहता जाए उसी प्रकार से आपकी और हमारी आयु बहती जाती है और गया हुआ समय वापिस नहीं मिलता। स्वर्ण से भी अधिक कीमत समय की है। स्वर्ण तो आप खरीद सकते हो पर समय कोई खरीद नहीं सकता।

यों करि पश्चाताप् मोह ममता सब त्यागी। वेश्या अरु सुत त्यागि राग तजि भये विरागी।।
हरिद्वारमहँ जाइ योगको आश्रय लीन्हों। विषयनितें मुँह मोरि युक्तितें आश्रय लीन्हों।।
दृश्यवर्गतें पृथक् करि, आत्मा ज्ञान स्वरूपमहँ। फेरि अजामिल भक्तियुत, भये पारषद रूपमहँ।।

जीव तभी तक कर्म बन्धनों में बँधकर इस संसार रूप बीहड़ वन में भटकता रहता है, जब तक उसे पूर्वकृत पापों का पश्चात्ताप नहीं होता। जब उसे अपने किये कुकृत्यों के लिये पश्चात्ताप हो जाता है, तो उसकी जगत् संसृति नष्ट हो जाती है। वह भगवान का कृपा प्रसाद प्राप्त कर उनका प्रिय पार्षद बन जाता है संसार में इन अनित्य नाम रूपों में फँसकर जीव विषयों का पार्षद बना हुआ है, जब इन अनित्य पदार्थों का मोह छोड़कर भगवान के नित्य नाम रूप में फँस जायेगा उनसे, अनुराग करने लगेगा, तो वह प्रभु पार्षद हो जायगा। अपने क्षुद्रपने को त्यागकर वह महान् बन जायगा।

पैदल ही गंगा किनारे-किनारे वह पांचाल देश संसप्तक देश आदि में होता हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ से भगवती भागीरथी ने अपने पिता हिमालय की गोद से उतरकर पृथ्वी पर पदार्पण किया है। जिसे गंगाद्वार, हरिद्वार अथवा कुशावर्त क्षेत्र कहते हैं। वहाँ आकर उसने हरि की पौढ़ियों पर स्नान किया। स्नान करते ही उसका अन्त:करण निर्मल हो गया। एक शान्त एकान्त स्थान में गंगा किनारे उसने अपनी एक घास-फूँस की झोंपड़ी बनाई और उसमें आसन लगाकर उसने योगाभ्यास करना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकृति में विकृति हो जाने पर ही इन इन्द्रिय, मन, विषय तथा भूतों में आमूल परिवर्तन हो जाता है। यहीं सब पदार्थों को योग द्वारा परब्रह्म में लीन करा दिया जाय, तो पुरुष माया से रहित, विशुद्ध आनन्दघन, चैतन्य स्वरूप हो जाता है।

अजामिल ने उसी प्राचीन परिपाटी का अनुसरण किया। भगवन्नाम का सहारा लेकर नाम संकीर्तन करते हुए, उसने इस पांचभौतिक शरीर का अब विधिपूर्वक अन्त कर देना चाहा।

अजामिल की साधना दिन प्रतिदिन घनी होती गई। प्राणी की अपमृत्यु, अकाल मौत तो टल भी जाती है, किन्तु महामृत्यु नहीं टलती। हरिद्वार में पन्द्रह वर्ष तक साधना कर उसने शतायु व्यतीत की। एक दिन की घटना है। उसने उन्हीं चार सिद्ध पुरुषों को अपनी ओर आते हुए देखा, जिन्होंने उसे पन्द्रह वर्ष पूर्व यमदूतों के पाश से छुड़ाया था। वह झट-पट आसन से उठ खड़ा हुआ। हाथ जोड़ा और सिर झुका कर प्रणाम किया। प्रणाम की बेला में उसका शरीर निष्प्राण होकर गंगा के पावन प्रवाह में गिर पड़ा। शरीर गिरते ही तत्काल उसे पार्षद का स्वरूप प्राप्त हो गया। फिर वह उन्हीं पार्षदों के साथ सोने के विमान पर आरूढ होकर भगवान लक्ष्मीपति के निवास-स्थान वैकुण्ठ को चला गया। अजामिल के जीवन में दोनों बातें देखने में आयी बिना भाव के बेटे के बहाने नारायण का नाम लिया तो मंगल हो गया, नरकों से बच गया, और गंगा किनारे भजन करते-करते प्रेम का उद्रेक हुआ और प्रभु को रिझाया तब अजामिल भगवद्धाम को गया और प्रभु पार्षद बन गया। जन्म-जन्म की बिगड़ी जिंदगी सुधर गई।

तत्क्षण उसका दिव्य चतुर्भुज रूप हो गया। जैसे वे विष्णुपार्षद थे, सर्वथा वैसा ही उसका रूप हो गया। उसने विष्णुपार्षदत्व प्राप्त कर लिया। भगवन्नाम के प्रभाव से वह भगवान का परम प्रिय पार्षद बनकर निरन्तर उस लोक में रहने लगा।

इस प्रकार अजामिल ने दासी का सहवास करके अपना सारा धर्म-कर्म चौपट कर दिया था। वह महान् पापी था। नियमच्युत होने के कारण नरक में गिरने जा रहा था। परन्तु भगवान के एक नाम का उच्चारण करने मात्र से वह तत्काल मुक्त हो वैकुण्ठ चला गया। जो लोग भव-बन्धन से छूट कर मुक्त होना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि वे भगवान के नाम का आश्रय लें और भगवान की शरण में चले जाँय। अजामिल का यह इतिहास समस्त पापों का नाश करनेवाला है। जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इसे पढ़ता है, सुनता या सुनाता है, वह कभी नरक में नहीं गिरता। यमराज के दूत तो कभी भी उसकी ओर आँख उठाकर देखने का साहस भी नहीं कर पाते। वैकुण्ठ तो उसका सार्वकालिक स्थान बन जाता है।

शुकदेव बोले- परीक्षित। अजामिल जैसे पापी ने मरने की बेला में पुत्र के बहाने भगवान के नाम का उच्चारण किया था। फलस्वरूप उसे भी वैकुण्ठ की प्राप्ति हो गई फिर जो लोग श्रद्धा के साथ भगवान के नाम का उच्चारण करते हैं, उनकी तो बात ही निराली है।

भगवान के नाम सरल हैं, सुगम हैं, सभी जानते हैं। फिर नाम एक हो सो भी नहीं, उनके अनन्त नाम हैं। कोई गुणों के अनुसार है, कोई कर्मों के अनुसार।

साँवरियाँ तेरे नाम हजार....

आयो दिव्य विमान निहारे पार्षद् तेई। पहिचाने तत्काल नाम दाता गुरु येई।।

पंचभूतकी देह त्यागि पार्षद वपु धार्‌यो। तब फिर चढ्‌यो विमान दिव्य वैकुण्ठ सिधार्‌यो।।

अधम अजामिल हू तर्‌यो, नारायण कहि पुत्र हित। ते फिर च्यौं नहिँ नर तरें, लेहि नाम जे शुद्ध चित।।

राजा परीक्षित ने पूछा- भगवन्, सारे जीव देवाधिदेव यमराज के वश में हैं। भगवान् के पार्षदों ने उन्हीं की आज्ञा भंग कर दी तथा उनके दूतों को अपमानित कर दिया। जब यमराज के दूतों ने यमपुरी में जाकर उनसे अजामिल का सारा वृत्तान्त कह सुनाया तो उन्होंने अपने दूतों से क्या कहा।

सुनिकें यमके दूत नाम महिमा हुलसाये। पाश मुक्त सो करयो दौरि संयमनी आये।।
संयमनी पति निकट गये यमदूत खिस्याने। बिना भावके मार पड़ी सब अंग पिराने।।
हाथ जोरि सब कहें प्रभो। तुमई जग स्वामी। या तुमतेंऊ अपर ईश बड़ अन्तरयामी।।
लावत ए हम नरकमहँ, जा पापीकूँ पकरिकें। चारि पुरुष आये तहाँ, छुड़वायो अति झिरकिकें।।

शुकदेव बोले- राजन्। यमदूतों ने जाकर धर्मराज से निवेदन किया- महाराज। हम लोग आपकी आज्ञा से एक पातकी को नरकों की ओर लिये जा रहे थे, कि इतने ही में चार दिव्य पुरुषों ने हमारे पाशों को तोड़कर उसे मुक्त कर दिया। सो, हम जानना चाहते हैं, वे लोग कौन थे? यदि आप उचित समझें तो इस रहस्य को बतावें, उस पापी ने नारायण इतना ही कहा था। तभी आकर मत डरो ऐसा कहते हुए तत्काल वे वहाँ आकर उपस्थित हो गये।

यमराज के दण्डविधान के भंग की बात तो इससे पहले सुनने में कभी नहीं आई। मुझे इस पर बड़ा कौतूहल है।

शुकदेव ने कहा- राजन्, विष्णु के पार्षदों से पराजित यमदूतों ने अपने स्वामी के पास जाकर कहा- प्रभो, संसार के जीव तीन प्रकार के कर्म करते हैं- पाप, पुण्य अथवा दोनों से मिश्रित। इन जीवों को कर्म के अनुसार फल देनेवाले शासक कितने हैं?

यदि संसार में दण्ड देनेवाले बहुत-से शासक हों तो किसे दण्ड दिया जाय और किसे दण्ड न दिया जाय, इसकी ठीक-ठीक व्यवस्था कैसे होगी? हम लोग तो आज तक यही जानते थे कि समस्त जीवों के स्वामी और दण्डदाता एकमात्र आप ही हैं। किन्तु हमारी इस धारणा का खण्डन हो गया। आज की बात है। आपके आदेश के अनुसार हम एक पापी को बाँधकर ले आने का प्रयास कर रहे थे। उसने अपने बेटे को पुकारा संयोग से बेटे का नाम नारायण था। ओ नारायण। ओ नारायण। चार बार पुकारा तो उस समय भगवान के सिद्ध पुरुष पार्षद आ गए, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये हम लोगोंको डाँटने लगे और उसको अभयदान देने लगे। अंत में हमसे कुछ तर्क-वितर्क कर हमको मारपीट कर वहांसे भगा दिया और उस जीव को हमसे छुड़ा लिया। जिस पाश (रस्सी) से हमने उसे बाँधा था उसे बलपूर्वक उन लोगों ने काट दिया। उस पापी के मुख से नारायण यह नाम निकलते ही तुम डरो मत, यह कहते हुए वे बड़े वेग से वहाँ आ धमके और हमें डाट कर भगा दिया। हम आपसे उनके रहस्य को जानना चाहते हैं। यदि आप हमें सुनने का अधिकारी समझते हों तो बतलाने की कृपा करें। इस संसार में कितने यमराज हैं और लोगोंको दण्ड देनेवाले कितने हैं? यदि बहुत अधिक है तो किसको सुख मिले और किसको दु:ख मिले इसकी व्यवस्था एक-जैसी नहीं होगी। लोकमें देखा गया है कि मनुष्यों की बड़े-बड़े यज्ञ-यागादि अनुष्ठानों में जैसी श्रद्धा होती है वैसे नाम जपनेमें इतनी श्रद्धा नहीं है। अत: प्रायश्चित्तों में भगवन्नाम की कोई गणना नहीं की गई है। यदि सबको नाम-माहात्म्यका ठीक तरह से परिज्ञान हो जाय तो सभी जीवों की मुक्ति हो जाने से सृष्टि का लोप हो जायेगा।

शंख चक्र वनमाल गदाभृत सेवक किनके। काके हैं वे दूत कौन स्वामी है तिनके।।
सबके शासक आप जीव प्राननि के हर्त्ता। शासन सबको करें, शुभाशुभ निर्णय कर्त्ता।।
इतने पै ऊ आपकी, आज्ञा उल्लंघन भई। बिना बात के बीच में, हमरी दुर्गति ह्वै गई।।

यमराज ने अपने दूतों की बात सुनी। उन्हें यह ज्ञात कर परम प्रसन्नता हुई कि उनके दूतों को भगवान के पार्षदों का दर्शन हुआ है। श्रीहरि के चरण-कमलों का स्मरण करते हुए उन्होंने कहा- मूर्खों, जो जीव नारायण का नाम ले रहा हो तो तुम लोग वहां गये ही क्यों। यमदूत बोले- वो नारायण भगवान का नाम नहीं ले रहा था वो तो अपने पुत्र नारायण को बुला रहा था। यमराज बोले- नारायण का चाहे, बच्चे के बहाने चाहे और किसी बहाने, जीभ पर आ जाये तो वह जीव के जन्मजन्मान्तर के पापों को भस्म कर देता है।

जबहिं नाम हृदय धरयो भयो पाप को नाश। मानो चिनगी अग्नि की परी पुरानी घास।।

प्रभु का नाम किसी बहाने लिया जाय यह पापों को दग्ध करके शुद्ध करेगा। यह सब तो भागवत धर्म के अन्तर्गत है। भागवत धर्म को जाननेवाले विश्व ब्रह्माण्ड में बारह व्यक्ति हैं।

विधि, नारद, शंकर, सनकादिक कपिलदेव मनु भूप। नरहरिदास जनक भीषम बलि शुकमुनि धर्म स्वरूप।।
अंतरंग अनुचर हरिजू के जो इनको यश गावैं। आदि अन्त लौं मंगल तिनको श्रोता वक्ता पावैं।।
अजामिल परसंग यह निर्णय परम धर्म के जान। इनकी कृपा और पुनि समझे द्वादस भक्त प्रधान।।

मेरे प्यारे दूतों, इस सारे संसार के प्रधान शासक स्वामी नारायण ही है। उन्हीं में यह सम्पूर्ण जगत्, वस्त्र में सूत के समान, ओत-प्रोत है। उन्हीं के अंश ब्रह्मा, विष्णु और शंकर इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करते हैं। उन्होंने ही इस सारे जगत् को, नथे हुए बैल के समान अपने अधीन कर रक्खा है। कोई भी व्यक्ति न तो मन से उन्हें ठीक-ठीक जान सकता है और न वाणी से उनका यथार्थ रूप से वर्णन ही कर सकता है। वह मन और वाणी की पहुँच से परे हैं। दूतों, जिस प्रकार घट, पट आदि रूपवान पदार्थ अपने प्रकाशक नेत्र को नहीं देख सकते- वैसे ही सबके अन्त:करण में साक्षी रूप से वर्तमान परमात्मा को कोई भी प्राणी मन, वाणी आदि किसी भी साधन द्वारा नहीं जान सकता। वे प्रभु सबके स्वामी और स्वयं परम स्वतंत्र हैं, वे अकारण कृपालु एवं भक्त-वत्सल हैं। उन्हीं के पार्षद उन्हीं के समान रूप तथा गुणों को धारण कर विचरण किया करते हैं। वे भगवान के भक्तजनों की सर्वदा रक्षा किया करते हैं। रही बात धर्म की, वह तो साक्षात् भगवान के द्वारा ही प्रणीत है।

शुकदेव बोले- राजन्। अपने दूतों के प्रश्नों को सुनकरके यमराज कहने लगे- दूतो। मेरे अतिरिक्त इस स्थावर जंगम जगत् के एक और भी अधीश्वर हैं, जिनमें यह विश्व उसी प्रकार ओतप्रोत है, जिस प्रकार वस्त्र में ताने-कबाने का सूत ओत-प्रोत है, जिनके अंशों से ही जगत् के जीवों के जन्म, उनकी स्थिति और विनाश होते रहते हैं। यह सम्पूर्ण लोक उनके इसी प्रकार अधीन है जैसे बैल नाथ के अधीन होता है।

मैं इस चराचर जगत् का स्वामी नहीं हूँ। इस जगत् की सृष्टि लोकपितामह ब्रह्माजी करते हैं, अत: स्रजन के स्वामी वे ही हैं। समस्त चराचर विश्व का पालन श्रीविष्णु भगवान् करते हैं, अत: वे पालन के पति हैं। अन्त में सबका संहार त्रिनेत्र रुद्र करते हैं, अत: वे संहार के ईश हैं। ये तीनों भी जिनके अंशों से उत्पन्न हुए हैं, वे अंशी ही श्री नारायण हैं, वे ही सबके स्वामी हैं, सबकी गति हैं। वे ही गुरुओं के गुरु हैं, वे ही सब शासकों के सम्राट हैं। उन्हीं का आदेश पालन करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य गणों के पति हैं। वे विश्व में उसी प्रकार ओत-प्रोत हैं जैसे घट में मिट्टी, कुण्डल में सुवर्ण, वस्त्र में सूत तथा शक्कर के खिलौनों में शक्कर ओत-प्रोत है। वे सर्वेश्वर ही सम्पूर्ण प्राणियों को घुमा रहे हैं। सभी प्राणी विवश होकर उसी के संकेत पर नाच रहे हैं। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई तिलभर भी इधर-उधर नहीं चल सकता। उनका कोई एक स्थान थोड़े ही है, वे तो सर्वव्यापक हैं सर्वज्ञ हैं। वे प्राणिमात्र के अन्त:करण में साक्षी रूप से स्थित हैं। जीव उन्हें इन्द्रिय, मन, प्राण, हृदय अथवा वाणी आदि किसी के द्वारा भी जानने में समर्थ नहीं हो सकते। वे यही देखते रहते हैं कि विष्णु भक्त को कोई सता तो नहीं रहा है, वैष्णव को कोई क्लेश तो नहीं दे रहा है। वे देववन्दित दुर्दर्श स्वरूप परम अद्भुत विष्णुदूत भगवद्भक्त मनुष्यों को पशु पक्षियों से, मुझसे, अग्नि आदि मारक वस्तुओं से सर्वत्र सुरक्षित रखते हैं। यह विश्व ब्रह्माण्ड उन्हीं श्रीमन्नारायण का लीला विलास है। भगवान् अपने भक्त को जहाँ रखना चाहें भक्त वहीं प्रसन्नता से रहता है। उनकी आज्ञा का पालन करना अपना परमधर्म मानता है। इस लोक में भगवान के नामोच्चारण आदि के सहित किया हुआ भक्ति योग ही मनुष्य का सबसे प्रधान धर्म माना गया है।

नारायण है मन्त्र जन्त्र वा जादू टौंना। काहू नर ने मृत्यु समय जिह नाम कह्यो ना।।
सुनि नारायण नाम भयो तन पुलकित यम को। प्रेम मग्न ह्वै कर्‍यो ध्यान भगवत् चरननि को।।
जलद सरिस अति विमलवर, जो हरि नित्य नवीन है। शिव विरंचि इन्द्रादि हम, तिनके नित्य अधीन हैं।।

दूतों, धर्म की गति अतिसूक्ष्म है उसे जानना सरल नहीं है। ब्रह्मा, देवर्षि नारद, भगवान शंकर, सनत्कुमार, कपिल, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म पितामह, बलि, शुकदेवजी और मैं (धर्मराज)- ये बारह व्यक्ति ही धर्म का रहस्य ठीक-ठीक जानते हैं। इस संसार में जीवों के लिये सबसे बड़ा धर्म यही है कि वे नामकीर्तन आदि उपायों से भगवान के चरणों में भक्ति-भाव प्राप्त करें। मुनि बोले- उन्होंने मुझे इन्द्र, निर्ऋति, वरुण, अग्नि, शंकर, चंद्रमा, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, बारहों आदित्य, विश्वेदेवा, आठोंवसु, उनच्चास मरुदगण, सिद्धि, साध्य ग्यारहों रुद्र, भृगु आदि प्रजापति तथा बड़े-बड़े देवताओं को उत्पन्न किया है उन्होंने ही सम्पूर्ण प्राणियों को बनाया है। उन्हीं की प्रेरणा से मैं सबको दण्ड देता हूँ।

यमदूत बोले- अगर भगवान नाम की ऐसी महिमा है और भागवत धर्म की ऐसी महिमा है तो सब अपने-अपने बेटों का नाम नारायण, गोविंद, गिरधारी, अच्युत, वासुदेव रखेंगे। इतना सुलभ और इतनी महिमा वाले नाम को बोलते रहेंगे फिर आपके नरक में कौन आयेगा सब वैकुण्ठ में चले जाएंगे। यमराज बोले- प्रिय दूतों, प्रभुका नाम ही सुलभ है उसकी महिमा भी शाश्वत है। भगवान के नाम के उच्चारण की महिमा तो तुम लोगों ने देख ही ली। अजामिल जैसा महान् पातकी भी एक बार भगवान का नाम लेने मात्र से यम के फन्दे से मुक्त हो गया इसलिये मनुष्य के पाप का नाश करने के लिये बस इतना ही पर्याप्त है कि भगवान के गुण का, कर्म का और नाम का संकीर्तन किया जाय। भगवान के गुण-कर्म का और नाम का संकीर्तन संसारी जीवों के पाप को समाप्त करने के लिये, अघ-निर्हरण के लिये सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है। इसके बाद फिर किसी प्रायश्चित्त को करने की अपेक्षा नहीं रह जाती किन्तु उसका सबसे बड़ा फल है मुक्ति। देखो, अजामिल ने नारायण यह चार अक्षरोंवाला नाम मरने की बेला में भगवान के लिये नहीं अपने पुत्र के लिये कहा था। पर फल हुआ कि उसके सारे पाप तो भस्म ही हो गये और उसे मुक्ति भी मिली। मनुष्यको पापका नाश करनेके लिए बस इतना ही काफी है कि भगवानके गुणका, कर्मका, नामका संकीर्तन करें। पापनाश के लिए और कोई प्रायश्चित करने की जरूरत नहीं। इससे भगवान की भक्ति आती हैं, मायाके गुणोंमें मन नहीं रमता। जिसके हृदय में भक्ति नहीं आती वह चाहकर भी वासना को नहीं छोड़ सकता।

पापों का समूल नाश करने के निमित्त भगवान के गुण कर्म सम्बन्धी नामों का कीर्तन करना ही पर्याप्त साधन है। इससे बढ़कर न कोई धर्म है, न पापों का सर्वोत्कृष्ट अमोघ दूसरा कोई इसके अतिरिक्त प्रायश्चित्त है। इसलिये जिसे भगवत् धर्म में दीक्षित होना हो, उसे सब प्रयत्नों से भगवान का नाम कीर्तन करना चाहिये। नाम कीर्तन में जो विघ्न करे, वह कितना भी प्यारा क्यों न हो, उसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जिस स्थान में भगवन्नाम संकीर्तन में बाधा हो वह स्थान कितना भी सुविधापूर्ण क्यों न हो उसे छोड़ देना चाहिये। जो नाम संकीर्तन में सहायक न हो उन सम्बन्धियों से कोई सम्बन्ध न रखना चाहिये। नाम ही कर्त्तव्य हो, नाम ही जीवन का आधार हो, कृष्ण कीर्तन ही अपना प्रधान आहार हो, नाम संकीर्तन ही अपना सर्वस्व हो। भगवान को छोड़कर अन्य शब्दों का उच्चारण करना ही उचित नहीं। यही भागवत धर्म है। भगवान के नामों का कीर्तन करना उनकी सरस मधुमय कथाओं का नित्य नियमसे श्रवण करना। उन्हीं को अपना सब सौंप देना यही परम धर्म है। यही प्राणिमात्र का प्रधान कर्त्तव्य है। वैसे तो भगवनाम का सभी युगों में समान माहात्म्य है, किन्तु कलियुग में तो ऐसा कोई सर्वोपयोगी साधन और है ही नहीं। इसलिये जो भगवान के नाम का कीर्तन करता है, वह मेरे शासन से बाहर का पुरुष है। वह मेरे स्वामी का सम्बन्धी है। उसके पास तुम लोग कभी भूलकर भी मत जाना।

भगवान के भक्तों के पास मत जाया करो। मेरे नरक में उन लोगों को लाओ जिसकी जिह्वा एक बार भी प्रभु का नाम नहीं लेती, जिनका चित्त एक बार भी प्रभु के गुणों का लीला का स्मरण नहीं करता। जिसका मस्तक एकबार भी प्रभु के चरणों में नहीं झुकता। भगवत्सेवा विमुख पापियों को मेरे नरक में लाओ। मेरे नरकोंको आबाद करनेवाले बहुत से अनेक पापी हैं।

बड़े-बड़े विद्वानों की मति भी कभी-कभी भगवान की माया से मोहित हो जाती है। वे बड़े-बड़े यज्ञ-यागादि के फल स्वर्गादि के वर्णन में ही फँसे रह जाते हैं। शास्त्र में अत्यन्त गोप्य इस नाम-माहात्म्य को वे नहीं जान पाते यद्यपि यह है सर्वसरल उपाय प्रायश्चित्त करने का। यही कारण है कि वे पाप का प्रायश्चित्त कृच्छ्रचान्द्रायण आदि अति कठिन एवं दु:खपूर्ण उपाय निर्धारित करते हैं। मनु आदि धर्मशास्त्रियों ने सारे पापों का बड़ा और छोटा प्रायश्चित्त तो बतलाया, किन्तु नामोच्चारण से पापों के विनाश की बात नहीं कहीं। इसका कारण यह भी हो सकता है कि यदि सभी लोग नाम-माहात्म्य को ठीक-ठीक जान जायेंगे तो सभी प्राणियों की मुक्ति हो जायगी। इस प्रकार सृष्टि का ही लोप हो जायेगा। दूसरी बात यह है कि यदि साधारण जन नाम-महिमा को जान जायेगा तो वह पाप करना नहीं छोड़ेगा। वह सोचेगा पाप करो, कोई चिन्ता नहीं। अन्त में भगवान का नाम लेकर मुक्त हो जायेंगे। किन्तु यह है नामापराध। भगवान् के नाम के बल पर पाप करना नाम एवं नामी के प्रति महान् अपराध है।

भक्ति-शास्त्रों का तो यहाँ तक डिण्डिम घोष है कि- श्रीहरि के नामों में जितने पापों के विनाश की शक्ति है, उतना पाप कोई पातकी कर ही नहीं सकता। जो व्यक्ति श्रद्धापूर्ण भगवान का नामोच्चारण कर लेता है उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

मेरे दूतों, भक्तों की रक्षा भगवान की गदा किया करती है। उनके पास तुम लोग कभी भूल कर भी मत जाना। उन्हें दण्ड देने का सामर्थ्य न हममें है और न साक्षात् काल में ही।

गुह्य भागवत धर्म देवता सिद्ध न जानें। फिर नर दानव दैत्य ताहि कैसे पहिचानें।।
अज शिव नारद कपिल जनक मनु बलि शुकज्ञानी। भीष्महु सनत् कुमार, धर्म प्रह्लाद अमानी।।
जानि भागवत धर्मकूँ, परम भागवत ये भये। अन्य भक्त हू भक्तितें, नाम लिये हरिपुर गये।।

अपने स्वामी यमराज की बात को सुनकर दूतों को महान आश्चर्य हुआ फिर उनलोगों ने हाथ जोड़कर पूछा- तो प्रभो, आप यह बतलायें कि कैसे लोगों के पास हम लोग जाँय और उन्हें पकड़कर लावें? इस पर यमराज ने कहा- बड़े-बड़े परमहंस दिव्य रसके आस्वादन के लोभ से, संपूर्ण जगत् और शरीर आदि से अपनी अहंता और ममता त्याग कर, अकिंचन होकर निरन्तर भगवान मुकुन्द के चरण-कमल का पान करते रहते हैं जो दुष्ट जन इस अद्भुत रस से विमुख हैं और नरक के द्वार घर-गृहस्थी का बोझ ढो रहे हैं, ऐसे ही लोगों को मेरे पास बार-बार लाया करो अर्थात् भगवान से विमुख तथा घर-गृहस्थी में ही आकण्ठ निमग्न लोगों को ही तुम लोग मेरे पास लाया करो।

दूत कहें अब नाथ। नियम हमकूँ बतलावें। जाइँ न किनके पास, पकरि किनकूँ हम लावें।।
धर्मराज तब कहें, नाम हरि जे न उचारें। चितमें कबहूँ चरन कमल हरिके नहिँ धारे।।
नहीं नबें सिर कृष्णकूँ, हरिचर्यातें जे विमुख। लाओ तिनकूँ पकरिकें, आइ उठावें नरक दुख।।

अन्धकार वहीं रहेगा जहाँ प्रकाश नहीं पहुँचता। कितनी भी अँधेरी रात्रि हो, कितना भी भीतर भवन हो, जहाँ विद्युत का प्रकाश पहुँचा कि जगमगाने लगा। हाथ में दीपक लेकर घर के कोने-कोने को खोज आइये आपको कहीं भी अन्धकार न मिलेगा। मनुष्य के शरीर में पाप तभी तक रहते हैं, जब तक उसमें भगवन्नाम की गूँज भली प्रकार बैठती नहीं। जहाँ भगवन्नाम

कानों द्वारा हृदय में पहुँचा या जिह्वा द्वारा उसका उच्चारण हुआ नहीं, कि पाप तुरन्त वहाँ से भागने लगते हैं। नारायण नाम के निरन्तर कीर्तन के सम्मुख पाप टिके रहें, यह महान् आश्चर्य की बात है। नाम का आश्रय जिन्होंने भली भाँति ले लिया है, पहिले तो उनके द्वारा पाप होते ही नहीं, यदि कभी भूल से हो भी जायँ तो वे तत्काल नामोच्चारण से नष्ट हो जाते हैं।

यमराज अपने दूतों से कहते हैं- जिनकी जिह्वा भगवन्नाम और गुणों का कीर्तन नहीं करती, जिनका चित्त चित्तचोर चैतन्य के चरणारविन्दों का चिन्तन नहीं करता। जिनका सिर एक बार भी श्रीकृष्ण के लिये नहीं नवता ऐसे भगवत् परिचर्या से विमुख असत् पुरुषों को तुम पकड़कर यहाँ मेरे समीप लाना।

नाम गान सम जगत माँहिं साधन नहिँ दूजो। करो यज्ञ व्रत दान भले प्रेतनिकूँ पूजो।।
नाम उचारत तुरत मलिनता मन की जावे। माया मोह नसाय प्रेम प्रभु को हिय आवे।।
नाम कीरतन जे करें, जाउ न तिनके ढिँग कबहुँ। पहिले पापी रहे वे, आवें मम गृह नहिँ तबहुँ।।

यमराज इस प्रकार अपने दूतों को समझाकर भगवान का ध्यान करते हुए बोले- प्रभो, आज मेरे दूतों ने आपके पार्षदों के प्रति अपराध करके स्वयं आपका ही तिरस्कार किया है। यह मेरा ही अपराध है। सेवकों के द्वारा किया गया अपराध स्वामी का अपराध माना जाता है। पुराण पुरुष भगवान नारायण आप हमलोगों का यह अपराध क्षमा करें। महापुरुषों का तो यह स्वभाव ही है कि वे बड़ा-से-बड़ा अपराध भी क्षमा कर देते हैं। हम अज्ञानी हैं, पर हैं तो आप के ही आज्ञाकारी सेवक। मैं आप अनन्त प्रभु को प्रणाम कर रहा हूं।

यम आज्ञा दूतनि सुनी, शिरोधार्य सबने करी। हरि कीर्तन करिके चले, सब मिलि बोलो जयहरी।।

शुकदेव बोले- राजन्, बड़े-से-बड़े पापों का सर्वोत्तम और अन्तिम प्रायश्चित्त यही है कि केवल भगवान के गुणों, लीलाओं तथा नामों का कीर्तन किया जाय इसी से सारे संसार का कल्याण हो सकता है।

जब जीव की माया के गुणों में गौरव बुद्धि हो जाती है, अनित्य को नित्य और असत् को सत् समझने लगता है, तभी पाप बनते हैं। जहाँ श्रीकृष्ण चरणारविन्दों के रस का चसका एक बार रसना को लग गया, तहाँ ये पापोत्पादक मायिक गुण तुच्छातितुच्छ प्रतीत होने लगते हैं। नाम प्रेमी भगवत् भक्त के समीप फिर पाप फटकने ही नहीं पाते, पिछले पाप नाम के प्रभाव से भस्म हो जाते है। भगवन्नाम में प्रेम नहीं है, ऐसे विषयलोलुप पुरुष अपने दोषों का मार्जन करने के निमित्त प्रायश्चित्त सम्बन्धी कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत रूप कर्मों में ही प्रवृत्त होते हैं। उस समय तो उस पाप का नाश हो जाता है, किन्तु वासना बनी रहने से उनके द्वारा फिर पाप होते हैं, फिरदोषों की उत्पत्ति होती है। अत: ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि मरते समय मुख से भगवन्नाम निकल जाय।

नामों के संकीर्तन से भगवान की भक्ति होती है। मन में भगवद्भक्ति के आ जाने से माया के गुणों में मन नहीं रमता। जिसके हृदय में भक्ति नहीं आती, वे एक बार यदि वासनाओं को छोड़ भी दें तो फिर उनके मन में वासनाएँ वापस आ जाती हैं। जब यमदूतों ने भगवद्भक्ति की ऐसी महिमा सुनी तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। तभी से वे भक्तों को दूर से ही देखकर भयभीत हो जाते हैं और फिर उनके पास जाने का दुस्साहस नहीं करते हैं। उनकी ओर आँख उठाकर देखने में भी डरते हैं। राजन्, यह इतिहास परम गोपनीय एवं रहस्यमय है। मलयपर्वत पर विराजमान् भगवान अगस्त्यजी ने श्रीहरि की पूजा करते समय मुझे यह सुनाया था।

शुकदेव बोले- राजन्। जिस प्रकार श्रीहरि के उदार चरित्रों के श्रवण तथा कीर्तन करनेवाले पुरुषों का अन्त:करण सहसा उत्पन्न हुई भगवद्भक्ति से शुद्ध होता है उस प्रकार कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत आदि उपायों से कभी शुद्ध नहीं हो सकता।

२) दक्ष प्रजापति की ६० कन्याओंके वंश का वर्णन

दक्ष कीन तप घोर अपारा। भये प्रकट तब जग आधारा। मन वांछित बर दीन्हां तबही। भये मनोरथ पूरन सब ही॥

शुकदेव बोले- परीक्षित, दो बार पुत्रों के हाथ से निकल जाने पर दक्ष को महान् कष्ट हुआ। उन्होंने सोचा कि अब आगे सृष्टि का प्रयास नहीं करूँगा किन्तु ब्रह्माजी के बार-बार समझाने पर वे पुन: सृष्टि के लिये तैयार हो गये। अब की बार उन्होंने अपनी पत्नी असिक्री से एक मुस्त साठ कन्याएँ पैदा की। ये सारी बेटियाँ अपने पिता दक्ष से बहुत प्रेम करती थी।

ध्रुवजी के वंश में उत्पन्न प्राचीनबर्हि राजा के दस पुत्र प्रचेता, जब समुद्र से तपस्या करके लौटने लगे तो चारों तरफ वृक्षावली इतनी गहरी बढ़ गयी थी कि उन्हें रास्ता नहीं मिला। तो इन्होंने अपने तपोबल से आग उगलकर वृक्षों को जलाना प्रारम्भ किया। तो वनस्पतियों के राजा चन्द्रमा ने एवं ब्रह्मा ने आकर इनको समझाया- ये वृक्ष जीवों का कल्याण करने के लिये सेवा उपकार के लिये पैदा हुए हैं। इन्हें क्यों व्यर्थ जला रहे हो। वृक्ष भी सजीव हैं। इनके भीतर भी परमात्मा आत्मा का निवास है। बोले- ये हमें रास्ता नहीं दे रहे हैं। नहीं ये तुम्हें रास्ता भी देंगे और सुयोग्य पत्नी भी देंगे। उन वृक्षों ने कण्डु ऋषि की पुत्री मारिषा का पालन कर रखा था जो प्रम्लोचा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। वही मारिषा उन प्रचेताओं को पत्नी रूप में प्राप्त हुई और उस पत्नी से प्रचेताओं ने एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम हुआ दक्ष प्रजापति। ये पहले ब्रह्मा के पुत्र थे। स्वयम्भु दक्ष कहलाते थे लेकिन शंकरजी के साथ द्रोह करने के कारण इनके बकरे का सिर हो गया था उससे इनको बड़ी ग्लानि रहती थी। जहां जाते वहां चर्चा का विषय बन जाते। एक दिन इन्होंने ब्रह्माजी से अपना दुख सुनाया तो ब्रह्माजी ने कहा- तुम ये शरीर छोड़ दो, मैं तुम्हें दूसरा सुन्दर शरीर दे दूँगा। पुन: तुम्हारा नाम दक्ष होगा, पुन: तुम प्रजापति की पदवी प्राप्त करोगे और पुन: प्रजा का विस्तार करोगे। तो उसी पुराने दक्ष प्रजापति ने अपना वह शरीर त्याग कर पुन: सुन्दर शरीर प्राप्त किया। पहले स्वायम्भू दक्ष कहलाते थे अब प्रचेताओं के पुत्र हुए तो प्राचेतस दक्ष कहलाने लग गए।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, प्रचेताओं के पुत्र प्रजापति दक्ष ने जब प्रजासर्ग की बुद्धि न देखी, तब वे विन्ध्याचल की तलैटी में जाकर दुष्कर तप करने लगे।

जब सृष्टि नहिँ बढ़ी दक्ष अतिशय घबराये। विन्ध्याचलके निकट तपस्या हित तब आये॥
अघमर्षण इक विमल वर, तीर्थ ताहि तट जाइकें। कीन्हों तप अति उग्र तहँ, कन्दमूल फल खाइकें॥

इन दक्ष ने तपस्या करके पुन: प्रजापति की पदवी प्राप्त की प्रभु की कृपा से और प्रजापति पंचजन की पुत्री असिक्री के साथ विवाह हुआ। शुकदेव बोले- राजन्। तब विष्णुमाया से उपबृंहित उन विभु प्रजापति दक्ष ने उस पंचजन प्रजापति की पुत्री अक्सिनी से हर्यश्व संज्ञावाले दस हजार पुत्र उत्पन्न किये।

व्याह दक्ष ने कस्यो विष्णु आज्ञा सिर धारी। अति प्रसन्न मन भयो बहू लखि अति सुकुमारी॥
सुधी प्रजापति दक्ष तपस्वी दृढ़व्रतधारी। दश सहस्र सुत जने पिता के आज्ञाकारी॥
सब समान गुण रूप रंग, शील एक-सी वय नई। तातें सबकी एकई, हर्यश्वहि संज्ञा भई॥

जिससे प्रथम बार इन्होंने दस हजार पुत्र उत्पन्न किये। उनका नाम था हर्यश्व वे सभी एक स्वभाव और आचरण के थे। इन दस हजार हर्यश्व पुत्रों को पिता दक्ष ने आज्ञा दी- पुत्रों। सुयोग्य प्रजा का विस्तार होना है। इसलिये तुम लोग जाओ तपस्या करके, दिव्य शक्ति प्राप्त कर उससे सुयोग्य प्रजा का विस्तार करना। गृहस्थ में फँसने का अर्थ ही यह है चिन्ताओं की गठरी को स्वेच्छा से सिर पर लाद लेना।

अपने पिता की आज्ञा पाकर वे दस हजार राजकुमार जा रहे थे तपस्या करने। बीच रास्ते में नारद बाबा मिल गए। पूछ बैठे

उस बिल को जानते हो जिसमें प्रवेश करने के बाद निकलना नहीं होता। उस राष्ट्र को जानते हो जिसका एक ही स्वामी है, उस नदी को जानते हो जिसकी धारा दोनों तरफ चलती हैं, क्या उस चक्र को जानते हो जिसकी धार छूरे के समान तेज है, और वज्र के समान कठोर है। जिसका अतिक्रमण करना सबके वश की बात नहीं है। उस नारी को जानते हो जो पुंश्चली है। बहुरूपिणी है। जो उसको नहीं जानता है उसको वह नारी बहुत सताती है और जो जान लेता है उसका पल्ला छोड़कर भाग जाती है। उस हंस को जानते हो जो दूध और पानी दोनों को अलग-अलग करके दे देता है। अगर इनको नहीं जानते हो तो केवल तपस्या करके तुम्हें क्या हाथ लगेगा। तपस्या क्या केवल सन्तान के लिये की जाती है। तपस्या ही करनी है, तो भगवत्प्राप्ति के लिये करो। इन दृष्टिकूट प्रश्नों का उत्तर भी देकर उन सबको विरक्त बाबाजी बना दिया। वो बिल जिसमें प्रवेश करने के बाद निकलना नहीं होता। वह भगवद्धाम है। सन्त उसे कहते हैं- जो दूसरों से बदला नहीं लेते और उनकी बुराई को सह लेते हैं।

पिता कह्यो हर्यश्व। करो तप बंश बढ़ाओ। पुत्र पौत्र करि अधिक जगत्महँ कीर्ति कमाओ।।
पितु आयसु सिर धारि चले तपकूँ सब भैया। नारायण सर बसे मिले मुनि बीन बजैया।।
श्रद्धा संयमके सहित, जाय तीर्थ जे न्हात हैं। होत हृदय तिनिको विमल, फिरि सत्गुरु मिलि जात हैं।।

नारद ने दक्ष पुत्रोंसे दस प्रश्न किये। १) क्या तुमने भूमि का अन्त देखा है? २) क्या तुमने एक पुरुषवाला राष्ट्र देखा है? ३) क्या तुमने ऐसा बिल देखा है जिसमें बाहर निकलने का मार्ग न हो। ४) क्या तुमने बहुरूपिणी स्त्री देखी है? ५) क्या तुमने इस पुंश्चली स्त्री का पति देखा है? ६) क्या तुमने दोनों और बहने वाली नदी देखी हैं? ७) क्या तुमने २५ पदार्थों के द्वारा निर्मत अद्भुद गृह देखा है? ८) क्या तुमने विचित्र कथा कहनेवाला हंस देखा है? ९) क्या तुमने वह चक्र जो वज्र और छुरे के समान तीक्ष्ण है घुमता देखा है? १०) क्या अपने पिता के आदेश का रहस्य जाने बिना सृष्टि करने में तुम लोग समर्थ हो जाओगे? सृष्टि करने से पूर्व इन प्रश्नों का हल खोजना तुम्हारे लिए श्रेयकर है।

संसार में जो जैसी प्रकृति का होता है, वह वैसी प्रकृति के पुरुषों से प्रेम करता है। सभी चाहते हैं, संसार में सभी लोग हमारे जैसे विचारों के हो। हमारे मत की अभिवृद्धि हो। त्यागी चाहता है, सभी त्यागी हों। रागी चाहते हैं, सभी रागी हों। बच्चा चलते गिर पड़े, रपट पड़े, कीचड़ में फँस जाय तो दयालु पुरुष उसे गिरने से उठाते हैं, विपत्ति से बचाते हैं और अच्छे मार्ग पर लगाते हैं। वे किसी स्वार्थ के वशीभूत होकर नहीं, किसी पारितोषिक की इच्छा से नहीं। उनका स्वभाव होता है कि वे भूले भटकों को सीधा सच्चा मार्ग दिखावें।

जिस राष्ट्र का एक ही स्वामी वह भगवान है वह उभय वाहिनी नदी कौन है? जन्म के बाद मरण की और मरण के बाद जन्म की ओर (पुनरपि जननं पुनरपि मरणं) दोनों तरफ इसकी धार चलती है। वो चक्र जिसकी धार छुरे के समान तेज और व्रज के समान कठोर, जिसका अतिक्रमण करना सबके वश की बात नहीं है- इसका नाम है काल चक्र, सब उसका अतिक्रमण नहीं कर सकते हैं और वह हंस जो दूध और पानी को अलग-अलग कर के दे देता है, उसका नाम है शास्त्र।

और वह बहुरूपिणी पुंश्चली कौन है? जो नहीं पहचाने उसको सतावे और जो उसको पहचान ले उसका पल्ला छोड़कर भाग जाये। उसका नाम माया है, माया को जब तक नहीं पहचानो, तब तक बहुत परेशान करती है, और जब पहचान लो माया को तो फिर वो नहीं सताती है। इसलिये तुम लोग उस बिल में प्रवेश करो जिसमे प्रवेश करने के बाद चोरासी लाख योनियों में लौटने की जरूरत नहीं पड़े। भगवद् धाम के लिये भगवत्प्राप्ति के लिये भजन तप किया जाता है बेटे।

दक्ष के पुत्रोंने उत्तर दिया- हर्यश्व स्वभाव से बड़े मृदु और बुद्धिमान थे। नारद की पहेली पर विचार करने लगे और उसका हल उन्होंने निम्न प्रकार से निकाला।

१) यह शरीर ही जिसे जीव भी कहते हैं, यही पृथ्वी है और इसका अन्त समझे बिना मोक्ष के कर्मों में लगने से कोई लाभ नहीं है। २) एक पुरुषवाला राष्ट्र वही परम पिता परमात्मा है। अत: उस अतीत नित्य मुक्त ईश्वर को देखे बिना असमर्पित कर्मों को करने से कोई लाभ नहीं है। ३) स्वयं प्रकाशमान ब्रह्म ही बिना मार्ग वाला बिल है जिसे प्राप्त करने के पश्चात कोई लौटता नहीं है। अत: इस परमात्मा को बिना जाने विनाशवान स्वर्ग आदि का फल देनेवाले कर्मों से क्या प्रयोजन है। ४) अपनी बुद्धि ही बहुरूपिणी, सत्व-रज-तम गुणोंवाली व्यभिचारिणी स्त्री के समान है। अत: विवेक प्राप्त किए बिना अशांति बढ़ानेवाले कर्मों के करने से क्यालाभ? ५) इस पुंश्चली स्त्री का पति जीव है। इसका ज्ञान भी इस स्त्री के संसर्ग से नष्ट हो गया है। अत: इसको जाने बिना अविवेक पूर्ण कर्म से कोई लाभ नहीं है। ६) ये माया ही सृष्टि और प्रलय (सृजन और संहार) करनेवाली नदी है जब तक इसके वेग से न बचा जाय तब तक मायिक कर्मों के करने से क्या लाभ है? ७) ये शरीर ही पच्चीस तत्वों का अद्‌भुत घर है इससे मुक्त होने का उपाय जाने बिना झूठे कर्म करने से क्या लाभ होगा? ८) सत्-असत् का ज्ञान करानेवाला, बन्धन और मोक्ष का विवेचन करनेवाला, सृष्टि एवं संहार की सतह तक पहुँचनेवाला, प्रकृति तथा पुरुष का प्रतिपादन करनेवाला, माया और निवृति का निरीक्षण कराने वाला, ईश्वर और जीव की जानकारी देनेवाला शास्त्र ही हंस है। अत: ऐसे हंस स्वरूप शास्त्र को छोड़कर जो नीर-क्षीर का पृथकीकरण कर जीव और ईश्वर को माया और ब्रह्म को प्रकृति और पुरुष को विकेन्द्रित करके प्रत्यक्ष कर दें, उसका आश्रय न लेकर अन्य को ग्रहण करना जड़ता के अलावा कुछ नहीं है। ९) यह काल ही घूमता चक्र है जो आयु का हरण करता है। इस काल से बचने का उपाय जाने बिना अन्य कर्मों को करने से क्या लाभ? १०) शास्त्र ही हमारा वास्तविक पिता है इसकी आज्ञा निवृत्ति परक है, प्रवृत्तिपरक नहीं। इन सभी रहस्यमय बातों को जाने बिना सृष्टि वृद्धि करने का कोई औचित्य नहीं है। अत: वे मुनि नारद की परिक्रमा लगाकर मोक्ष प्राप्ति के हेतु वन में चले गये।

पृथ्वी का अन्त और उस स्थान को, जहाँ गया हुआ कोई नहीं फिरता, तुमने नहीं देखा। भूरवन्ती स्त्री को, जो नित्य नये पुरुष की इच्छा करती है, तुम नहीं जानते, व्यभिचारिणी स्त्री के पति को भी नहीं पहिचानते। एक नदी में दोनों तरफ धाराएँ बहती हैं, उसे भी तुम नहीं जानते। पच्चीस मन्त्र में दोनों तरफ धाराएँ बहती हैं, उसे भी तुम नहीं जानते। पच्चीस मन्त्र का जो गृह बना है और एक हंसी जो है, उसे भी तुमने नहीं देखा। चोखी धार के चक्र को भी तुम नहीं जानते, इसलिए इन सब बातों को विचारकर संसार को उत्पन्न करना और अपने पिता की आज्ञा भी रखना। जब नारदजी पहेली के समान यह ज्ञान बतलाकर चले गये तब बालकों ने आपस में बैठकर अपने ज्ञान से उन सब बातों का यह अर्थ विचारा कि पृथ्वी जीव है और उसका अन्त, मोक्ष है, जब तक उसको हम न जान लें तब तक सृष्टि की वृद्धि क्या करेंगे। वह पुरुष नारायणजी हैं, उनकी कृपा व दर्शन हुए बिना हम क्या कर सकते हैं। वह स्थान वैकुण्ठ हैं, जहाँ गया हुआ फिर संसार में जन्म नहीं लेता। उसको देखे बिना हमसे क्या हो सकेगा। भूरवन्ती स्त्री को बुद्धि समझो, उसको एकचित्त किये बिना हम संसारी जीव कैसे उत्पन्न करेंगे। व्यभिचारिणी स्त्री का पुरुष जीव है सो वह संसारी माया में फँस गया है, उसको अलग किये बिना संसार हमसे नहीं उत्पन्न होता है। दोनों तरफ बहनेवाली नदी माया को समझना चाहिए। जगत् में एक मरता है दूसरा जन्म लेता है। एक घर में ढोल बजाकर हर्ष से लोग गाते हैं और दूसरे के यहाँ शोक व विलाप होता है। जब तक उस माया का भेद हमें न मालूम हो तब तक संसार हमसे नहीं उत्पन्न हो सकता। पच्चीस तत्त्वों का बना हुआ यह शरीर है, इसमें परमेश्वर का प्रकाश है। उस ईश्वर को जाने बिना हमारा किया कुछ न होगा। हंस वेद-शास्त्र को समझो जिसका वचन बंध व मोक्ष का बनानेवाला है। उसको जाने बिना हम जगत्की उत्पत्ति नहीं कर सकते। चोखी धार का चक्र मृत्यु को जानना चाहिए, जो सब जगत् का नाश करती है। उसको जाने बिना हमें सृष्टि बढ़ाने की सामर्थ्य न होगी। इन सब बातों को विचारकर उन्होंने संसार का उत्पन्न करना उचित नहीं

जाना। जब ज्ञान प्राप्त होने से उनका अन्त:करण शुद्ध हो गया तब वे लोग फिरकर अपने घर नहीं आये।

आश्रय पुरुष पचीस तत्वके क्षेत्र गेह भल। हरि प्रतिपादक शास्त्र हंस है अति ई निर्मल।।
काल चक्र अति तीक्ष्ण शास्त्रई पिता सरिस है। निवृत्ति मार्ग ई मुख्य कही ताकी आयुस है।।
यों मनतें सब सोचिकें, नारदके चेला भये। मोक्ष धर्मकी राह गहि, बाबाजी सब बनि गये।।

अनाधिकारी को उपदेश करना व्यर्थ है, वह उसे कभी भी ग्रहण नहीं कर सकता।

नारदके सुनि कूट प्रश्न मिलि ध्यान लगायो। लिंग देह ई भूमि अन्त कब जाको पायो।।
नित्य मुक्त हरि लखे बिना फल कर्मनिको नहिँ। ब्रह्मरूप बिल प्रविशि लौटि फिर आयो को कहि।।
बुद्धि स्वैरिणी नारि है, पति अज्ञानी जीव है। उभयवाहिनी नदी जिह, माया जिहि पति शीव है।।

नारदजी ने ऐसी पट्टी पढ़ायी कि वे लोग वहीं से सदा के लिये परिव्राजक होकर सम्यक् जीवन लेकर भगवद् भजन कर भगवत्प्राप्ति कर गए। जब दक्ष ने सुना कि मेरे दस हजार पुत्रों को जो तपस्या करने गए थे उनको नारद ने- उपदेश देकर विरक्त बाबाजी बना दिया, तो उसने द्वितीय प्रयास में फिर एक हजार पुत्र उत्पन्न किये। उनको भी दक्ष प्रजापति ने आज्ञा की कि तपस्या करके दिव्य शक्ति प्राप्त कर उससे प्रजा का विस्तार कराये। लाभ से लोभ अधिक बढता है। बेचारे दक्ष को मालूम नहीं था कि रास्ते में नारद फिर मिल जायेंगे। तो इन एक हजार सवलाश्व नाम के दक्ष पुत्रों को भी नारदजी रास्ते में मिल गए और बोले- बेटा, तुम्हारे भाइयों ने जो मार्ग पकड़ा है, वह बहुत कल्याणकारी सुखप्रद परमशान्तिदायक मार्ग है। उसी मार्ग को तुम लोग भी अपनाओ, तो वो भी एक हजार सबलाश्व नारदजी की बात मानकर विरक्त बाबाजी बन गए और घर लौटे ही नहीं। नारद उनको बोले- शास्त्र की जो वास्तविक आज्ञा है वही समीचीन पथ है। उस पर से जाने से कल्याण हो सकता है। सब तो कण्टकाकीर्ण मार्ग हैं। उनमें क्षेम नहीं, प्रेम नहीं, सुख नहीं, शाश्वती शान्ति नहीं और इससे संसार चक्र की निवृत्ति भी नहीं। जन्ममरण रूप चौरासी के चक्कर में घूमते रहना है। तुम अपने बड़े भाइयों के मार्ग का अनुसरण करो। वही निष्कंटक श्रेयस्कर कल्याणप्रद, सर्वोत्तम, वास्तविक मार्ग है। उस मार्ग पर चलने से न श्रम होगा, न ग्लानि, अपने गन्तव्य स्थान में सरलता के साथ पहुँच जाओगे। क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषों का मार्ग श्रेष्ठ ही होता है। तुम्हारे सभी ज्येष्ठ भ्राता श्रेष्ठ और विचारवान् थे। जो भाई अपने भाइयों के श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण करता है, वह पुण्यप्रद पुरुष लोक के मरूद्गणों के साथ आनन्द करता है। तुम्हारे भाइयों का मार्ग तो पुनरावृत्ति से रहित मार्ग है।

ज्येष्ठ बन्धु जिहि गैल गये तुम सबहू जाओ। श्रेष्ठ मार्गमहँ जाय नित्य सुख तुम सब पाओ।।
सृष्टि वृद्धि विपरीत यों, पट्टी तुरत पढ़ाईकें। नारद मुनि चम्पत भये, बीना मधुर बजाइकें।।

नारायण सरोवर माहिँ भई नारदतें भेंटा। सुनी दक्ष जिह बात बने बाबाजी बेटा।।
भयो हृदय अति दु:ख बहुत मनमहँ पछितायो। जैसे तैसे धरयो धीर जब बिधि समुझायो।।
पांचजनीने फिर सहस, जने पुत्र शबलाश्व वर। पितृ आयसुतें गये वे, तप हित नारायण सरोवर।।

ऐसा नारदजी ने उपदेश दिया कि दक्ष के ११ हजार पुत्र लौटकर अपने घर आये ही नहीं। जब दुबारा खबर मिली दक्ष को इन सबलाश्व नाम के पुत्रों को भी पट्टी पढ़ाकर विरक्त बाबाजी बना दिया। तब दक्ष बड़े नाराज हुए अरे राम राम देखो नारद वेष तो साधु का बना रखा है पर काम असाधु का करता है, मेरे बच्चों को इसने बाबाजी बना दिया।

आशा का भंग होना ही महान् दु:ख है। अपनी आशा बेलि को पल्लवित पुष्पित तथा फलित हुआ देखना ही सबसे बड़ा सुख है। जिस सुयोग्य पुत्र से हम भाँति-भाँति की आशायें रखते हैं, उसके भविष्य की उन्नति को ध्यान में रखकर विविध

भाँति के मनसूबे बाँधते हैं, यदि वह पुत्र मर जाय या कहीं घर बार छोड़ कर चला जाय तो सभी मनोरथ विफल हो जाते हैं। उस समय चित्त में बड़ा क्लेश होता है, सम्पूर्ण संसार सूना-सूना दिखायी देता है। किसी काम धाम में चित्त नहीं लगता। मन में उदासी छा जाती है।

अभी इन बच्चों को देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण कुछ भ नहीं उतरा था। और इनको बाबाजी बना दिया। लगता है, मेरे बच्चों के रास्ते में बैठा रहता है नारद बहकाने के लिये। दक्ष बोला- बिना ज्ञानोदय हुए केवल तेरे बहकाने से वैराग्य नहीं आ सकता। जब वैराग्य नहीं तो उपशम कैसे होगा। उपशम के बिना स्नेह बन्धन का उच्छेद होना सम्भव नहीं। नारद बोले- संसार की वासना मन में न उठे, यही वैराग्य है। विषयों को ग्रहण न करके उनका उपभोग न करना यही तो त्याग कहलाता है। दक्ष बोले- अरे तूमड़िया। तेरी तो बुद्धि ही भ्रष्ट हो गयी। मनुष्य जब तक विषयों का अनुभव नहीं करेगा, तब तक उनकी कटुता नहीं जान सकता। इसलिये उनकी दु:ख रूपता का स्वयं अनुभव करने पर उसे जैसा वैराग्य आयेगा वैसा दूसरों से सुनकर अनुभव नहीं हो सकता। क्योंकि स्वयं अनुभव करने से विषयों का रहस्य समझमें आता है। तू तो जन्म का वैरागी है। तुमने कभी स्त्री सुख का अनुभव नहीं किया फिर तू क्या जानें।

अब मैं तुझे शाप देता हूँ, कि तेरे ठहरने का कोई निश्चित स्थान नहीं होगा। तुमने तो मेरा घर उजाड़ दिया इसलिये तेरा कहीं घर द्वार भी न होगा। चक्र की तरह सदा चौदह भुवनों में घूमता ही रहेगा। तेरे एक स्थान पर पैर टिकेंगे नहीं। आज से तू एक जगह जम कर नहीं बैठ सकेगा।

दक्ष को अपने पुत्रों की कर्त्तव्यहीनता से बड़ा कष्ट हुआ और नारद से कहा कि तुम झूठ मूठ साधु बने फिरते हो। भोले-भाले बच्चों को पथभ्रष्ट करके उनका अपकार करते हो। बिना समाज ऋण, पितृ ऋण, ऋषि, देव ऋण चुकाये तो परमार्थ मार्ग में जाना कहाँ तक उचित होगा। तुमने भगवान के पार्षदों को भी कलंकित किया है। वे दया और प्रेम की मूर्ति होते हैं। किन्तु तुम प्रेमभाव का विनाश करनेवाले हो। नारद तुम्हारा यह वैराग्य स्वाँग मात्र है और स्वाँग से वैराग्य नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य विषयों का अनुभव नहीं करता, तब तक उसकी कटुता, अनुपयोगिता का अनुभव नहीं कर सकता। अरे मूढ़। विषयों का अनुभव किये बिना मनुष्य को उनकी दु:ख रूपता ज्ञात नहीं होती। विषयों का अनुभव होने पर स्वयं जैसा वैराग्य होता है वैसा बहकाने से नहीं होता। तुमने हमारी वंश परम्परा को अवरोधित किया है इसीलिए मैं तुमको शाप देता हूँ कि तुम लोक-लोकान्तरों में भटकते ही रहोगे तुम्हें कहीं ठहरने का स्थान नहीं मिलेगा। महामुनि नारद ने मुस्कराकर प्रसन्नतापूर्वक दक्ष का यह शाप स्वीकार कर लिया। यदि वे चाहते तो इसका प्रतिवाद भी कर सकते थे किन्तु साधुता इसी का नाम है कि बदला लेने की शक्ति होते हुए भी उसका उपयोग न करे। भगवान के भक्त वृक्षों से भी अधिक सहनशील और अपने को तृण से भी अधिक नीचा मानते हैं। इसलिये समर्थ होनेपर भी नारदने प्रजापति दक्ष को शाप नहीं दिया।

सुनिकें बल शबलाश्व भये भिक्षुक गृह त्यागी। दक्ष सुन्यो सब वृत्त हृदय क्रोधानल जागी।।
आग बबूला भयो क्रोध व्यापो नस-नसमहँ। तुरत दयो तिन शाप रह्यो नहिँ मन निज बशमहँ।।
कहें दक्ष- तू जगतमहँ, कबहुँ न कुटी बनाइकें। थिर न रहै घूम्यो करे, तुमड़ी तान बजाइकें।।

दक्ष ने ब्रह्मा से जाकर कहा कि नारद मुनि हमारे बेटों को ज्ञान सिखलाकर विरक्त कर देता है, फिर संसारी सृष्टि किस तरह बढ़ेगी। यह सुनकर ब्रह्माजी बोले तुम धैर्य धारण करो, कन्या उत्पन्न करो, उन्हें घर में रहने से नारद ज्ञान उपदेश नहीं कर सकेंगे। स्त्रियों को जल्दी ज्ञान नहीं प्राप्त होता, वे अपने अर्थ को अच्छा जानती है, उनसे संसारी जीव अधिक होंगे।

दक्ष बोले- धैर्य की भी तो कोई सीमा होती है, कहाँ तक धैर्य धारण करें। बार-बार अपने कार्य में विघ्न होने से उत्साह

भंग हो जाता है, फिर चित्त उस कार्य को करना ही नहीं चाहता, उससे वैराग्य हो जाना स्वाभाविक ही है।

पुत्र और पुत्री में कोई अन्तर नहीं। दोनों ही हृदय से उत्पन्न होते हैं। अपनी आत्मा ही हैं। अंतर केवल इतना ही है कि पुत्री पर घर में जाकर वंश वृद्धि करती है और पुत्र अपने ही घर में रहकर वंश परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखता है। जिनके पुत्र नहीं होते अथवा होकर बाबाजी बन जाते हैं, या मर जाते हैं, तो वे पुत्रियों से ही अपने को पुत्रवान् समझते हैं। जिनके पुत्री भी नहीं होते वे अन्य के पुत्र को गोद ले लेते हैं। इस प्रकार वंश को लुप्त नहीं होने देते। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में मोह, ममता, संतति वृद्धि की कामना अधिक होती है। पुरुष तो प्राय: नीरस प्रकृति के होते हैं, उनमें सरसता का संचार तो वामेक्षणाओं द्वारा ही होती है। संतति के प्रति अत्यधिक अनुराग मातृ-हृदय में ही होता है। राक्षसियों में कामभावना अधिक होने से उनमें संतान के प्रति अनुराग न्यून होता है, वे कामवासना के वशीभूत होकर संतान का परित्याग तथा उसकी हत्या भी कर देती हैं, किन्तु साधारण मातृ-हृदय बच्चे के लिये सब कुछ कर सकती है। इसलिये सृष्टि कार्य में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिक हाथ है। ये ही प्रकृति का प्रतिनिधित्व करती हुईं इस प्राकृत जगत् को बढ़ा रही हैं, चला रही हैं, नचा रही हैं, हँसा रही हैं और फँसा रही हैं। ये महामाया हैं, जगज्जननी हैं, लोक माता हैं।

तीसरे प्रयास में दक्ष प्रजापति ने साठ कन्यायें पैदा की इन साठ कन्याओं में से १० कन्या धर्म को दी उनके नाम भानु, लम्बा, ककुभ, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वति, वसु, मूहर्ता, संकल्पा। भानु का पुत्र देवऋषभ और उसके इन्द्रसेन। लम्बा का पुत्र विद्योत ओर उसके मेघगण, ककुभ के संकट उसके कीकट। जामी के स्वर्ग उसके नन्दी। विश्वा के गर्भ से विश्वदेव और साध्या के साध्यगण हुए उसके पुत्र अर्थ सिद्धि। मरुत्वति के दो पुत्र हुए मरुत्वान और जयन्त। जयन्त को उपेन्द्र भी कहते हैं। मूहर्त्ता के मुहर्त अभिमानी देवता हुए समल्पा के संमल्प हुए, संकल्प का पुत्र काम था। वसु के पुत्र आठ वसु थे- उनके नाम द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोण, वसु, विभावसु, उन वसुओं के भी पुत्र उत्पन्न हुए। द्रोणवसु की स्त्री अभिमति के गर्भ से हर्ष, शोक, भय आदि उत्पन्न हुए। प्राण की भार्या ऊर्जस्वती के गर्भ से सह, आयु, पुरोजव तीन पुत्र हुए। ध्रुववसु के नागों के अभिमानी देवता उत्पन्न हुए। अर्कवसु की पत्नी धारा से द्रविणिक नाम के पुत्र हुए। अग्नि के कृत्तिका, कृत्तिका के पुत्र स्कन्द हुये। दोष की स्त्री से शिशुमार उत्पन्न हुए। वसु की स्त्री से विश्वकर्मा भी उत्पन्न हुए। विश्वकर्मा के पुत्र चाक्षुष मनु हुए। चाक्षुष के विश्वदेव तथा साध्यगण पुत्र थे। विभावसु के व्युष्ट रोचिष तथा आतप तीन पुत्र उत्पन्न हुए। आतप के दिवस पुत्र था जो सब जगत को कार्य में लगाता रहता है। हे राजन्। भृत की भार्या दक्ष पुत्री सरूपा के गर्भ से करोड़ों रुद्रगण उत्पन्न हुए जिनमें ग्यारह रुद्रगण मुख्य हैं। अंगिरा की पत्नी स्वधा से पितृगण उत्पन्न हुए तथा दूसरी पत्नी सती के अथर्वांङि -रस वेद ही पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। कृशाश्व की पत्नी अर्मि के गर्भ से धूम्रकेश तथा धिषणा से वेदशिरा, देवल, वयुन तथा मनु उत्पन्न हुए। द्रोण नाम के वसु हैं और उनके धरा नामकी पत्नी ने तपस्या करके नन्द यशोदा का स्वरूप प्राप्त किया तब कृष्ण ने अपनी बाल लीला का बड़ा सुख प्रदान किया।

कन्या साठ दक्ष प्रगटाईं, जिनकी सन्तति है जग माँही। देवन के संग कीन्ह विवाहू, फैला जग में अमित उछाहूं।।

दक्ष प्रजापति ने अपनी चार कन्या तार्क्ष्यनामधारी कश्यपजी को दी जिनके नाम हैं कद्रु, विनता, पतंगी और यामिनी। कद्रु नाम की पत्नी से अनेकों नागों की उत्पत्ति हुई सबसे बड़े शेष जी ये तो भगवान सेवा में है। और छोटे वासुकीजी जो नागों के राजा है। विनता के दो पुत्र अरुण और गरूड़, गरूड़जी ब्रह्मचर्यपूर्वक भगवान विष्णु की सेवा में रहते हैं, इन्होंने सन्तान उत्पन्न नहीं की। अरुणजी के दो पुत्र हुए सम्पाति और जटायु। इन्होंने रामावतार में सीताजी का पता बताने की लीला में सहयोग किया। पतंगी से पक्षियों का जन्म हुआ, और यामिनी से पतिंगों का जन्म हुआ। साठ कन्याओं में से

धर्म - १० पत्नियां

१) भानु, २) लम्बा, ३) ककुभ, ४) जामि, ५) विश्वा,
६) साध्या, ७) मरुवती, ८) वसु, ९) मुहूर्ता, १०) संकल्पा

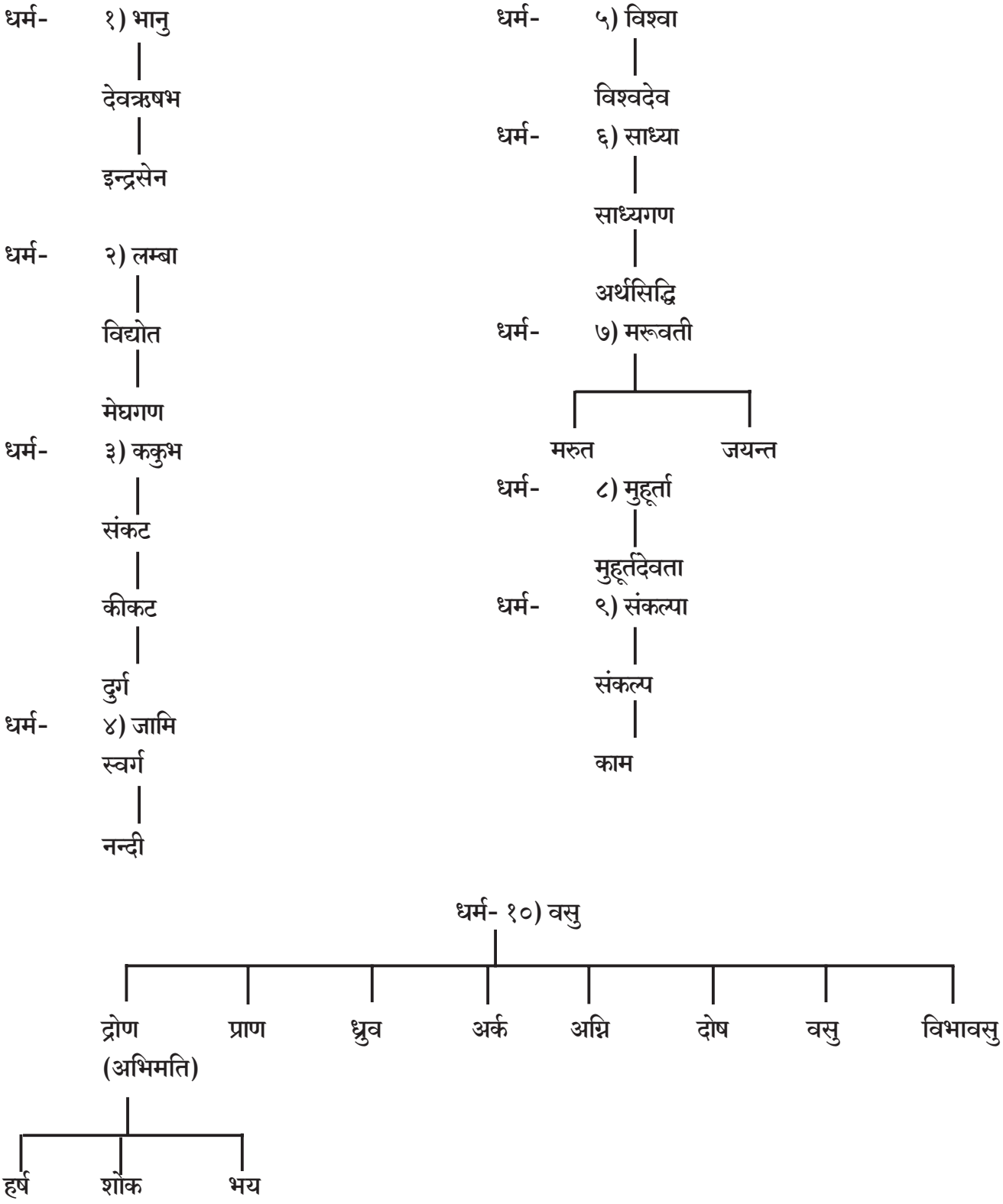

प्राण - पत्नि (उर्जस्वती)
सह
आयु
पुरोजव
ध्रुव - पत्नि (धरणी)
ग्राम देवता
नगर देवता
अर्क - पत्नि (वासना)
तर्षतृष्णा
अग्नि- पत्नि १) धारा
द्रविणक
पत्नि २) कृतिका
स्कन्द
विशाख
दोष- पत्नि (शर्वरी)
शिशुमार
वसु- पत्नि (आंरिसी)
देवशिल्पी
विश्वकर्मा (कृति)
चाक्षुष मनु
विश्वदेव
साध्यगण
विभावसु- पत्नि (उषा)
व्युष्ट
रोचिष
आतप
पंचयाम (दिवस)

HHH (७२०) HHH

भूत: पत्नि

१) स्वरूपा

कोटि रुद्रगण

१) रैवत
२) अज
३) भव
४) भीम
५) वाम
६) उग्र
७) वृषाकपि
८) अजैकपाद
९) बहिर्बुहन्य
१०) बहुरूप
११) महान

२) भूता

भूत, विनायाका

अंगिरा - पत्नि १) स्वधा — पितृगण

२) सती — अर्थवांगिरस

कुशाश्व- पत्नि १) अर्चि — धूम्रकेश

२) घृष्णा — वेदशिरा, देवल, वयुन, मनु

चन्द्रमा की २७ पत्नियां है जो २७ नक्षत्र है उसमें रोहिणी नक्षत्र विशेष है।

दानवों की सृष्टि

द्विमूर्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शंकुशिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, पुलोमा, वृषपर्वा, एकचक्र, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति, दुर्जय इत्यादि।

स्वर्भानु की पुत्री सुप्रभा- नमुचि

वृषपर्वा की पुत्रि शमिष्ठा- नहुष पुत्र ययाति

वैश्वानर दैत्य- दनु

- उपदानवी (पती- हिरण्याक्ष)
- हयशिरा (क्रतु)
- पुलोमा (कश्यप) — पौलम
- कालका (कश्यप) — ६० हजार कालकेय, निवातकवच

विप्रचिति- सिंहिका

सौ पुत्र सबसे बड़ा राहु, शेष पुत्र केतु

महर्षि कश्यप की पत्नियों की सन्तानों से सारा चराचर जगत व्याप्त हो गया

१) अदिति से देव

२) दिति से दैत्य

३) दनु से ६१ दानव

४) सरमा से बाघ और शेर- हिंसक जीव

५) काष्ठा से ऊँट, घोडे, हाथी

६) अरिष्टा से गन्धर्व

७) इला से वृक्ष, लता, वनस्पतियाँ

८) मुनि से अप्सरा

९) क्रोधवशा से सांप, बिच्छु और विषैले जन्तु

१०) ताम्रा से बाज, गीध

११) सुरभि से गाय, भैंस, बकरी

१२) तिमि से जलचर जन्तु

१३) सुरसा से यातुधान, राक्षस

तार्क्ष्य कश्यप को चार कन्याएं दी।

१) विनिता से गरुड और अरुण

२) कद्रू से नाग

३) पतंगी से पक्षी इत्यादि

४) यामिनी से शलभ (पतिंगे)

उपपत्नी कालका से ६० हजार महाबली कालकेय और पुलोमा से पौलम

कश्यप- अदिति

१) विवस्वान	७) धाता
२) अर्यमा	८) विधाता
३) पूषा	९) वरुण
४) त्वष्टा	१०) मित्र
५) सविता	११) इंद्र
६) भग	१२) वामन

१) विवस्वान - पत्नि- १) संज्ञा

विवस्वान- पत्नि २) बड़वा घोड़ी (संज्ञा)

विवस्वान- पत्नि ३) छाया

२) अर्यमा- (मातृका)

३) त्वष्टा- दैत्य कन्या रोचना

४) सविता- पृश्नि

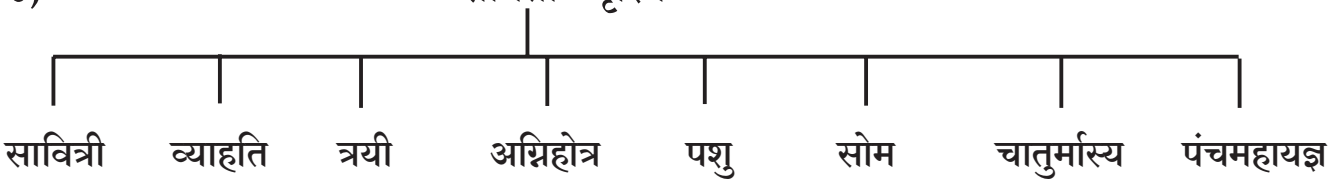

५) भग- सिद्धि

६) पषा के कोई सन्तान नहीं हुई

७) धाता- पत्नि १) कुहू २) सिनीवाली ३) राका ४) अनुमति

सांय	दर्श	प्रात:	पूर्णमास

८) विधाता- क्रिया

पुरूष्य नामक ५ अग्नियाँ

९) वरुण- चर्षणी

भृगु वाल्मीकि

१०) मित्र - रेवती

उत्सर्ग अरिष्ट पिप्पल

११) इन्द्र- पुलोमा पुत्री शचि

जयन्त ऋषभ मीढ़वान जयन्ती (कन्या)

१२) वामन- कीर्ति

बृहच्छलोक

सौभग

HHH (७२४) HHH

सत्ताइस कन्या चन्द्रमा को ब्याही। इनका नाम अश्विका कृतिका भरणि रोहिणी इत्यादि। ये सत्ताइस नक्षत्र भी कहे जाते हैं। सत्ताइस पत्नियों में चन्द्रमा की प्रीति एक पत्नी के प्रति एकांगी बहुत हो गई। रोहिणी के प्रति तो २६ पत्नियों ने जाकर अपने पिता से शिकायत की। पिताजी आपने हमारा व्यर्थ में उनके साथ ब्याह कर दिया वे तो केवल रोहिणी से ही प्रेम करते हैं। तो इस बात से नाराज होकर दक्ष ने चन्द्रमा को शाप दे दिया- तुझे यक्ष्मा का रोग ग्रस लेगा। चन्द्रमा की कला क्षीण हो गई। अत्यन्त क्षीणतम जब हो गई तो चन्द्रमा ने शंकर भगवान का आश्रय लिया तो शंकर भगवान ने अत्यन्त क्षीण कायावाले चन्द्रमा को अपने ललाट पर धारण कर लिया। इसलिये दूज के चन्द्रमा को सब प्रणाम करते हैं। दर्शन करते हैं। अब शेष १३ कन्या दक्ष प्रजापति ने कश्यप जी को ब्याह दी। अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोध, वसा, ताम्रा, सुरभि,सरमा और तिमि, इसमें तिमि को पुत्र जलचर जन्तु, सरमा के व्याघ्र आदि हिंसक जीव, सुरभि के हुए गाय भैंस दो खुर वाले पशु, ताम्रा की सन्तान बाज गीध आदि शिकारी पक्षी, मुनि नामकी पत्नी से अप्सराएं उत्पन्न हुए। क्रोधवसा नामकी पत्नी से साँप बिच्छू आदि विषैले जन्तु। इला नाम की पत्नी से वृक्ष लता आदि वनस्पतियां और सुरक्षा से राक्षस एवं अरिष्टा नाम की पत्नी से गन्धर्व और काष्ठा से घोड़े एक खुर वाले पशु। दनु नाम की पत्नी से इकसठ पुत्र हुए ये सब दानव कहलाए। इनमें कुछ प्रमुख के नाम दिए है। द्विमुर्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, अयोमुख, शक्र, शिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, पुलोप, एकचक्र अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति दुर्जय इत्यादि वृषपर्वा इन दानवों के राजा कहे जाते हैं। नमुचि दैत्य ने स्वर्भानु दानव की सुप्रभा नामक पुत्री से विवाह किया। वैश्वानर की उपदानवी, हर्यशिरा, पुलोमा और कालका ये चार परम सुन्दरी कन्यायें थीं। उनमें से उपदानवी का हिरण्याक्ष के साथ, हयशिरा का क्रतु के साथ तथा पुलोमा और कालकेय का विवाह कश्यपजी के साथ हुआ, जिनसे पौलोम और कालकेय नामक साठ हजार दानव हुए। इन्हीं वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा को राजा ययाति ने पत्नी रूप में स्वीकार किया था। इस प्रकार से कश्यपजी की सन्तानों का वर्णन हुआ। दिति नाम की पत्नी से दैत्य हुए। अदिति नाम की पत्नी से बारह पुत्र उत्पन्न हुए वे द्वादश आदित्य कहलाये। सूर्यनारायण है ये १२ है विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, इन्द्र और त्रिविक्रम, वामन ये सब कश्यप जी की संतानें है। इंद्र भी दिति से ही उत्पन्न हुआ। तथा अदिति से वामन भगवान का अवतार हुआ जिन्हें उपेन्द्र भी कहते हैं। कश्यपजी के द्वारा सृष्टि का बहुत विस्तार हुआ।

भानु, मुहुर्ता, ककुप्, जामि, वसु, लम्बा, साध्या। मरुत्वती, संकल्प, धर्मकी ये सब भार्या।।
स्वधा सती ये नारि अंगिरा मुनिकी प्यारी। विनता, कद्रू और पतंगी यामिनि नारी।।
ताक्ष्र्य बहू ये चारि हैं, घिषणा, अर्ची गुणवती। पत्नी कहीं कृशाश्वकी, सबई सुन्दरि सब सतीं।।
अब कश्यपकी नारि त्रयोदशकी संतति सुनि। अदिती, दिति, दनु, इला अरिष्टा, सुरसा अरु मुनि।।
काष्ठा, सरमा, सुरभि, कही तिमि, क्रोधवशा पुनि। ताम्रा पत्नी पाइ भये अति आनन्दित मुनि।।
लोक मातु ये जगत् की, सब इनकी सन्तान हैं। देव, असुर पशु पक्षी नर, लघु बड़, क्षुद्र महान है।।
काष्ठाके सुत अश्व सुरभिके गौ पशुगन हैं। तिमिके जलचर जीव दनूके सब दानव हैं।।
शरमाके व्याघ्रादि बाज ताम्राकी सन्तति। सुरललना मुनि जनीं दैत्य दितिके हिंसक अति।।
क्रोधवशाके सर्पगन, करें क्रोध जो नित्य हैं। सुरसाके राक्षस भये, अदितीके आदित्य हैं।।
इला जने सब वृक्ष जगत्के जे सुखदायक। जने पुत्र गन्धर्व अरिष्टा सुन्दर गायक।।
जो बारह आदित्य बड़े तिनि विवस्वान् रवि। है अर्यमा द्वीतीय भये तिनतें मानुष कवि।।

दक्ष यज्ञ में पिष्टभुक् दन्तहीन पूषा भये। विश्व रूप त्वष्टा तनय, सुरगुरु कछु दिन बनि गये।।

हम सबके पूर्व पुरुष एक हैं, मनुष्य यदि नीचे की ओर न देखे ऊपर की ही ओर ध्यान दें, शाखाओं को महत्व न देकर मूल पर ही दृष्टि रखे तो किसी से घृणा ही न हो। जिनके मन में किसी के प्रति घृणा नहीं, वही समदर्शी है और समदर्शी ही सदा सुखी है। प्राचीन प्रथा ऐसी थी, कि सभी अपने-अपने पूर्वजों की कीर्ति नामावली सुना करते थे। सूत, मागध, बन्दी तथा गायक लोग वंशों का, पूर्व पुरुषों की कीर्ति का गायन करते थे। अपने पूर्वजों की बातें सुनकर हमें उत्साह बढ़ता है, अपने वंश वालों के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। यदि हम सब समझ लें कि पशु पक्षी, सर्प, व्याघ्र, दैत्य, दानव, देवता तथा मनुष्य आदि हम सब एक ही पिता कश्यप की सन्तान हैं, भाई-भाई हैं, तो फिर लड़ाई झगड़ा, राग द्वेष बहुत कम हो। हम अन्य समझकर ही लड़ते हैं, घृणा करते हैं। अपनों से तो प्यार किया जाता है।

शतक्रतु- देवराज इंद्र। महर्षि कश्यप एवं देवमाता अदिति के पुत्र देवराज इंद्र ने एक बार पावन इंद्रतीर्थ में सौ यज्ञों का अनुष्ठान किया था और उन्हें पूर्ण विधि-विधान से निर्विघ्न संपन्न कर लिया था। इसलिए देवराज इंद्र सर्वज्ञ शतक्रतु नाम से विख्यात हो गए और उन्हीं के नाम से वह सर्वपापहारी, कल्याणकारी एवं सनातन पुण्यतीर्थ इंद्रतीर्थ कहलाने लगा। इन्द्रका एक नाम सद्यमन्यु है।

पाकशासन- देवराज इंद्र। दैत्यराज अंधकासुरके अनुचर मय, मार आदि दैत्य संग्राम में देवताओं से पराजित होकर पाताल में जाने के लिए उद्यत होने लगे। इसी बीच उन्होंने भगवान शंकर के सुंदर मलयगिरि को देख लिया। युद्ध से परिभ्रांत दैत्यों को वह स्थान अत्यंत रुचिकर लगा, अत: वे सभी दैत्य वहीं रहने लगे, उन दैत्यों के मलयागिरि पर ठहर जाने पर भगवान शंकर ने देवराज इंद्र को उन दैत्यों को वहां से दूर भगाने के लिए भेजा। देवराज इंद्र ने तुरंत जाकर उन दैत्यों को ललकारा। उन असुरों ने इंद्र के साथ युद्ध करना प्रारंभ कर दिया। इंद्र ने इन दानवों को अपने प्रखर तीक्ष्ण बाणों से ढक दिया। इसी क्रम में उन्होंने पाक नाम के दैत्य का वध कर दिया। तीक्ष्ण बाणों से पाक दैत्य को शासित (दंडित) करने के कारण देवराज इंद्र पाकशासन नाम से प्रसिद्ध हुए।

विवस्वान की पत्नी संज्ञा के गर्भ से श्राद्धदेव (वैवस्वत) मनु एवं यम तथा यमुना का जोड़ा पैदा हुआ। संज्ञा ने ही घोड़ी का रूप धारण करके भगवान सूर्य के द्वारा भू-लोक में अश्विनीकुमारों को जन्म दिया। विवस्वान की एक दूसरी पत्नी थी- छाया। छाया से शनैश्चर और सावर्णि मनु नाम के दो पुत्र और तपती नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। तपती ने संवरण को पतिरूप में वरण किया।

अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति- संज्ञा विश्वकर्मा की पुत्री थी और सूर्य के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। सूर्य का तेज नहीं सह सकने के कारण सूर्य से वह छिपकर घोड़ी का रूप धारण कर वन में तपस्या करने के लिये चली गई और अपनी जगह अपनी जुड़वा बहन छाया (अपने ही रूप की) को नियुक्त कर दिया। संज्ञा से श्राद्धदेव मनु तथा यम-यमुना पैदा हुए। सूर्य और छाया से शनिचर और सावर्णि मनु नाम के दो पुत्र हुए। छाया का व्यवहार संज्ञा के पुत्रोंके साथ बहुत अच्छा नहीं था। मनुष्य का स्वभाव है, वह कितना भी प्रयत्न करे अपने पराये का भेदभाव हो ही जाता है। विशेषकर स्त्रियों में सप्तनी के बच्चों के प्रति विरक्ति सनातन से चली आई है। इसके अपवाद स्वरूप भी कुछ मातायें होती हैं। किन्तु अपवाद तो अपवाद ही हैं। वह नियम तो हो नहीं सकता।

सूर्य को भी शंका होने लगी कि यह संज्ञा नहीं है इसका प्रेम कृत्रिम दिखता है। इसीलिये एक दिन नाराज होकर सूर्य विश्वकर्मा के पास गये और बोले- सच-सच बता, संज्ञा कहाँ है? विश्वकर्मा ने कहा- वह तुमसे डरकर जंगल में तपस्या करने

चली गयी और उसीकी छोटी बहन छाया तुम्हारी बनकर रह रही है। सूर्य छाया का परित्याग कर अश्व का रूप धारण कर वनमें चले गये जहाँ संज्ञा तपस्या कर रही थी। सूर्यने देखा संज्ञा बड़वा बनकर बैठी है। सूर्य भी वहां अश्वरूप में बड़वा के साथ विहार करने लगे और उनके समागम से दो यमज पुत्रोंकी उत्पत्ति की वो ही दोनों पुत्र अश्विनीकुमार कहलायें।

दोनों पती-पति लौटकर फिर विश्वकर्मा के समीप आये। सूर्यदेव ने विश्वकर्मा से कहा- तुम संसार में सर्वश्रेष्ठ शिल्पी हो, मेरे तेज को कम कर दो। यह सुनकर विश्वकर्मा ने सूर्य को खराद पर चढ़ाकर उनका तेज कर कर दिया। इतने पर भी कम न हुआ तो उनके १२ भाग कर दिये। तभी से द्वादश सूर्य हो गये। खरादने से जो तेज बचा, उससे भगवान का सुदर्शन चक्र, शिवजी का त्रिशूल उनका आजगव धनुष तथा इन्द्र का वज्र बना।

शनै:श्चर- यह छाया से उत्पन्न सूर्य का पुत्र शनै:शनै: अपने कक्ष में परिक्रमा करनेवाला इसलिए इसका नाम शनै:श्चर पड़ा। इसकी परिक्रमा का मार्ग २.५ साल, ५ साल, ७.५ और तीस साल है। यह बड़ा ही न्यायकारी ग्रह है, कठोर है। शनि की दशा उसीको लगती है जिसने अपने माता-पिता का आदर नहीं किया या सत्कर्म नहीं किया। ये जिसकी ओर देख लेते हैं उसका सर्वनाश हो जाता है। इनकी बहिन तपती का विवाह राजा सवर्ण के साथ हुआ। ये तपती पीछे नदी होकर बहने लगीं। ये सब-के-सब भाई शासक और कर्मानुसार फल देनेवाले हुए। इन सबमें यमुना ही एक ऐसी दयावती हुई, जो पापियों को भी मुक्ति देनेवाली हैं। इनका कार्य ही है पतितों का उद्धार करना। इन्होंने यम से भी बहिन होने के नाते कुछ सुविधायें करा लीं।

एक बार की घटना है हनुमान जी सप्तश्रृंगी पर्वत पर (नाशिक के पास) बैठे थे। उसी समय शनि आकर उनके कंधों पर बैठ गया। हनुमान बोले शनिको उतर जा। शनि बोले- मैं तो बैठ गया तो बैठ गया। अब तो साडेसात बरस के बाद ही उतरूंगा क्योंकि मेरी साड़ेसाती तुम्हें लग गई। हनुमान ने कहा- मैं तो ब्रह्मचारी हूँ और अवस्था में भी छोटा हूँ इसलिये तेरा शाप मुझे नहीं लग सकता और तू उतर जा। पर शनिने उसकी एक नहीं सुनी। उसी समय हनुमान ने पूरा सप्तश्रृंगी पर्वत उठाकर शनि के ऊपर रख दिया। शनि उसके बोझ से दबने लगा और हनुमान से बोला- उतार, जल्दी से उतार। हनुमान बोले- यह तो तभी उतरेगा जब मेरी साड़ेसाती समाप्त होगी। शनि बोला- तेरी साड़ेसाती अभी समाप्त कर देता हूँ मैं आजसे तुझे कभी नहीं लगूँगा और तुझे वरदान देता हूँ सोलह वर्ष के कम उम्र के बालकोंको मेरी दशा नहीं लगेगी और मंगलवार तो तेरा वार ही है मैं अपना वार शनै:श्चर भी तुझे देता हूँ। तब से हनुमान जी के मंगलवार और शनिवार वार कहलाते है।

अर्यमा की स्त्री मातृका के गर्भ से चर्षणी उत्पन्न हुए जिन्होंने वर्ण व्यवस्था चलाई। पृषा के कोई संतान न थी। दैत्यों की छोटी बहन थी- कुमारी रोचना। रोचना का विवाह त्वष्टा (सूर्य) से हुआ था। रचना के गर्भ से दो पुत्र हुए- संनिवेश और पराक्रमी विश्वरूप।

विधि आज्ञातें साठि दक्ष कन्या उपजाई। तेरह कश्यप लई चन्द्र सत्ताइस ब्याई।।
अंगिरा भूत कृशाश्व दई द्वै द्वै सुकुमारी। शेष ताक्ष्र्य सँग चारि विवाहीं पुत्री प्यारी।।
पुत्र पौत्र सबके बहुत, भये जगत सब भरि गयो। बहु संतति लखि दक्षको, हृदय सरोरुह खिलि गयो।।

ऋषि वंशों का कीर्तन क्षुद्रता को मिटाता है और हमें बताता है मनुष्य, पशु, पक्षी, सिंह, व्याघ्र, सर्प, देवता, असुर सभी एक ही कश्यप मुनि की संतान हैं। हम सबके पूर्व पिता एक ही थे, माताओं की विभिन्नता से ये जातियाँ हो गईं, पृथक्-पृथक् वर्ग बन गये। इसीलिये ऋषियों के वंश के नित्य श्रवण को परम माहात्म्य बताया है।

३) इन्द्र का बृहस्पति का त्याग और विश्वरूप का वरण

एक बार देवराज इन्द्र समस्त ऋषि सिद्धि सहित अपने दरबार में अपनी पत्नी शची के साथ विराजमान थे। एक तरफ ब्रह्मर्षि, देवर्षि और दूसरी ओर मरूतगण, वसुगण, रुद्रगण, आदित्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, नागगण आदि बैठे थे। अप्सरायें अद्भुत रूप से देवराज इन्द्र का यशोगान कर रही थी। उसी समय उसी आमोदमय वातावरण में गुरु बृहस्पति इन्द्रसभा में पधारे। इन्द्र ने उठकर अभ्युत्थान नहीं किया, न उनकी ओर देखा। अपने पद के मद में आकर अपने देवगुरु बृहस्पतिजी का अपमान कर दिया। बृहस्पतिजी के आने पर उठकर खड़े नहीं हुए। गुरु को नमस्कार करना धर्म होता है।

कबीर जी कहते हैं-

कोई लठधारी कोई मठधारी, कोई जटाधारी कोई तपधारी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो सबकी खोपड़ी मति न्यारी न्यारी।।

कोई निंदा स्तुति में समान रहते हैं, कोई मनस्वी विचार के होते हैं। गुरु बृहस्पतिने देखा इन्द्र को अपने पद का मद हो गया। बृहस्पति इन्द्र सभा छोड़कर चले गये। ईर्ष्या द्वेष वश मनुष्य अनुचित कार्य करके भी गर्व का अनुभव करता है।

इन्द्र आवत ही हरषे नहीं नयनन नहीं सनेह। तहां न जाइये कंचन बरषे मेह।।
मान सहित विष खायके, शम्भू भये जगदीश। बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो शीश।।
तुरत इन्द्रकूँ चेत भयो मनकूँ धिक्कारें। कैसो कीयो काम दुखित अति होहिँ विचारें।।
हाय। बुद्धि, मम नसौ अनादर गुरुको कीन्हों। सम्मुख आये देव नहीं उठि आसन दीन्हों।।
श्री चरननिमहँ शीश धरि, रोउङ्गो पछिताउङ्गो। बार-बार बहु विनय करि, गुरुकूँ जाइ मनाउङ्गो।।

मद चार प्रकार के होते है- यौवन मद, पद मद, अर्थ मद, ज्ञान मद। ज्ञान मद आयु के बढ़ते वेग के साथ दिन प्रतिदिन बढ़ना चाहिए। देवराज इन्द्रमें चारों ही मद विद्यमान थे।

गुरु गृह गमने इन्द्र बृहस्पति तहाँ न पाये। अन्तर्हित गुरु भये देव अतिशय घबराये।।
सुर गुरु त्यागे असुर प्रीत हियमहँ अति छाई। स्वर्ग विजयके हेतु, सुरनि पै करी चढ़ाई।।
शुक्राचार्य सहायतें गुरुप्रिय सुररिपु बढ़ि गये। गुरुद्रोही सुर संघ पै, अस्त्र शस्त्र ले चढ़ि गये।।

गुरु के नाराज होने पर देवता लोग श्रीहीन हो गए। जब दैत्यों को मालूम पड़ा की उनके गुरु उनसे नाराज होकर उनको छोड़कर चले गये है। तब तो दैत्यों ने देवताओं को मार-मार कर खदेड़ना शुरू कर दिया। जब असुरों ने यह बात सुनी कि बृहस्पतिजी ने देवताओं को त्याग दिया है, तो उन मदोन्मत्त और आततायी असुरों ने शुक्राचार्य की सम्मति से देवताओं के ऊपर लड़ाई के निमित्त चढ़ाई कर दी। देवता त्राहि त्राहि कर ब्रह्मा की शरण में गए। ब्रह्मा बोले- गुरु का अपमान और अपने आप में अभिमान करना इन्द्रने इतना बड़ा दुष्कर्म किया। देवता बोले- पितामह। हमसे अपराध हो गया। ब्रह्मा बोले- तो फिर गुरु से ही क्षमा याचना करो। दैत्यों में एक बड़ा सद्गुण है वे गुरुबल से बड़े हुए है। एक सद्गुण सभी छोटे दुर्गुणों को दबा लेता है। गुरु भक्ति, गुरु सेवा ऐसा महान गुण हैं, कि उसके सम्मुख उनके सब दुर्गुण दब गये।

हरि रूठें तो चरन शरन गुरुकी नर आवें। गुरु रूठें तो कहहु जीव किसके पास जावें।।
गुरु प्रसादतें कौन वस्तु है दुर्लभ जगमहँ। गुरु-प्रसाद पाथेय चलो ले निर्भय महमहँ।।
गुरु चाहें तो रुष्ट देवकूँ तुरत मनावें। गुरु चाहें तो तुरत क्रूरकूँ साधु बनावें।।

गुरु चरननिकी शरनमहँ, होहि न भव भयकी व्यथा। है प्रसिद्ध संसारमें, काकभुशुण्डीकी कथा।।

जब तक तुम्हारे गुरु तुम्हें नहीं प्राप्त होते तब तक त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप हैं। उनको गुरु रूप में वरण कर लो। विश्वरूप के पास में इतनी क्षमता है कि वे चाहें तो आचार्यत्व निभा सकते हैं। देवगण गुरु के बिना विपत्ति से निस्तार नहीं, अत: तुम सब शीघ्र ही त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के पास जाकर उन्हें अपना गुरु बना लो। वह ब्राह्मण आत्मज्ञानी और तपस्वी है। यदि तुम लोग उसके उचित अनुचित कार्यों को सह सकोगे तो वह तुम्हारे द्वारा सत्कृत होकर तुम्हारे समस्त मनोरथों को पूर्ण कर सकेगा।

सुनिकें सबरी बात कहें विधि भलो न कीन्हों। मूरखता अति करी नहीं गुरु आदर दीन्हों।।
जाईतें तुम बली अबल असुरनितें हारे। ह्वै घरबार विहीन फिरो सब मारे मारे।।
सुखी कृपा गुरुतें दुखी, जिहि पर गुरु प्रतिकुल हैं। होहिँ अमंगल तासु कस, जाके गुरु अनुकूल हैं।।

शुकदेव बोले- राजन्। जब पराजित देवता ब्रह्माजी के समीप गये तो उनसे ब्रह्माजी कहने लगे- देवगण। यह तो बड़े दु:ख की बात है। ऐश्वर्य के मद में अन्धे होकर जो तुमने उन ब्रह्मानिष्ट ब्राह्मण बृहस्पतिजी का अभिनन्दन नहीं किया, यह तो बहुत ही बुरा काम किया। यही कारण है, कि तुम इतने समृद्धिशाली होकर भी अपने शक्तिहीन शत्रुओं से पराजित हो गये। जैसा तुमने किया वैसा उसका फल पाया, यह उसी अन्याय का परिणाम है।

बोले ब्रह्मा विश्वरूप ढिँग सुर सब जाओ। करिकें अनुनय विनय उन्हें गुरुदेव बनाओ।।
विधि सम्मति सिर धारि चले सब आयसु पाई। त्वष्टा सुत ढिँग जाइ बिपतिकी बात बताई।।
सब सुनि बोले त्वष्ट्र मुनि, कैसे अब नाहीं करूँ। उपरोहित निन्दित करम, तिहि करि कस अघ सिर धरूँ।।

विश्वरूप के पास में देवतालोग गए। विश्वरूप ने साफ मना कर दिया और बोले- तुमने अपने गुरु की दुर्दशा की है तुम्हारी स्वार्थ बुद्धि है। इसलिये मैं तुम्हारा आचार्यत्व स्वीकार नहीं कर सकता और पुरोहिताई का काम भी अच्छा नहीं है।

उपरोहित्य कर्म अति मंदा, बेद पुरान सुमृति कर निंदा।।

हे देवगण, मैं आपसे आयु, विद्या और ऐश्वर्य में बहुत ही छोटा हूँ। इन्द्र बोला- आवश्यकता पड़ने पर यदि अपने से छोटे के पैर छूने निंदनीय नहीं है क्योंकि वेदज्ञान को छोड़कर केवल अवस्था श्रेष्ठता का कारण नहीं है।

यज्ञ तप तो पुरोहित करेगा और यजमान दक्षिणा देकर, ऐश्वर्य भोगेगा। मुझे ऐसी पुरोहिताई नहीं करनी। यजमान का सब पाप पुण्य अपने सिर लेना पड़ता है। पौरोहित्य का कार्य ब्रह्मतेज को क्षीण करनेवाला है। अतएव धर्मशील महात्माओंने उसकी निंदा की है।

देखो, पौराहित्य कर्म अतिई निन्दित है। लोक वेद सर्वत्र देवगण। बात विदित है।।

देवता गिड़गिड़ाकर बोले दान-दक्षिणा के लोभ से भले ये काम आप न करें, लेकिन हम आपकी शरण आये हैं, हमारे ऊपर उपकार करें तो देवताओं के कहने पर विश्वरूप ने उनका पुरोहित बनना स्वीकार किया।

कहें देव- प्रिय विश्वरूप। तुम पुत्र हमारे। आये ह्वैके दुखित वत्स। हम पास तुम्हारे।।
अनुचित उचित बिसारि पुरोहित पद स्वीकारो। विपति उदधिमहँ मग्न पकरिकें हमें उबारो।।
करो न मन संकोच कछु, छोटे कस गुरु पद गहें। ज्ञान वृद्धिकूँ वेद विदु, बन्दनीय सब कोउ कहें।।

विश्वरूप यद्यपि शत्रुओं के भानजे थे- फिर भी जब देवगुरु बृहस्पति जी ने इन्द्र से अपमानित होकर देवताओं का परित्याग कर दिया, तब देवताओं ने विश्वरूप को ही अपना पुरोहित बनाया था। विश्वरूप के पास एक विद्या थी, जिसका नाम है नारायण कवच। बड़ी प्रभावशाली विद्या है। नारायण कवच जाननेवाले को आदर करनेवाले के जीवन काल में तो

प्रभाव तो होता ही है। मृत्यु के बाद भी उसका प्रभाव होता है। यह विद्या वैष्णवी विद्या के नाम से जानी जाती है।

विनय सहित पुनि विश्वरूप बोले मृदु बानी। आप देवगण परम पूज्य ज्ञानी विज्ञानी।।
लोकेश्वर है आप पुत्रकूँ देहिँ बड़ाई। गुरु आज्ञामहँ होहि शिष्यकी सदा भलाई।।
होवें अब निश्चिन्त हौं, पुरोहिताई करुङ्गो। तुम सबकी आज्ञा बिहँसि, प्रेम सहित सिर धरुङ्गो।।
विश्वरूपको वरण कर्‍यो गुरु पद बैठाये। धर्म कर्म, व्रत नियम सुरनि सब बिप्र सिखाये।।
विश्वरुप गुरु पाइके, देवनिकी चिन्ता गई। अवसि मिलें पुनि स्वर्ग सुख, यह प्रतीति सबकूँ भई।।

बीते हुए कल्प के आरम्भ में अंगिरा के पुत्र बृहस्पति उत्पन्न हुए और देवताओं के पुरोहित बन गए, तब समस्त देवता संतुष्ट हो गए। बृहत, ब्रह्म और महत् ये तीनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं। इन तीनों शब्दों के गुण देव पुरोहित में वर्तमान थे, इसलिए वे विद्वान देवगुरू बृहस्पति कहलाते हैं।

शुकदेव बोले- राजन्, इन्द्र को त्रिलोकी का ऐश्वर्य पाकर घमण्ड हो गया था। इस घमण्ड के कारण वे धर्म-मर्यादा का, सदाचार का उल्लंघन करने लगे थे। जिसको संसारका विषय प्राप्त करके बड़ा हर्ष होता है, उसको घमण्ड, अभिमान हो ही जाता है तब वह धर्मका उल्लंघन करने लगता है।

एक दिन की घटना है। इन्द्र स्वर्ग के सिंहासन पर तन कर बैठे थे। सारी देव-मण्डली, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, ऋषि, मुनि, विद्याधर और अप्सराएँ उन्हें घेरे हुई थीं। इन्द्राणी शची उनके साथ सिंहासन पर विराजमान थीं। चँवर चल रहा था। महाराज के अनुरूप सारी सामग्रियाँ सजी हुई थीं। बड़ा ही दिव्य दरबार लगा था। इसी समय समस्त देव मण्डली के पूज्य आचार्य बृहस्पति जी वहां पधारे। उन्हें सुर-असुर सभी सादर प्रणाम करते हैं। इन्द्र ने देखा कि गुरुजी आ रहे हैं किन्तु वे सम्मान में न तो खड़े ही हुए और न आसन आदि देकर उनका सत्कार ही किया। यहाँ तक कि वे अपने आसन से हिले-डुले तक नहीं फिर प्रणाम करने की तो बात ही दूर रही। लोगोंके जीवनमें जों बुराइयां आयी हैं, वे महापुरुषोंके अपमान करनेसे ही आयी है।

मान को ही धन समझनेवाले विद्वानों, तपस्वियों के लिये सम्मान से बढ़कर इस दुनियाँ में दूसरी वस्तु नहीं है। बृहस्पति ने देखा कि इस समय देवराज ऐश्वर्य-मद से मतवाले हो रहे हैं। बस, वे झटपट वहाँ से निकलकर चुपचाप अपने घर चले गये। बिकते सब इन्सान नहीं है। बिक जाती हैं चीजे सारी, पर बिकता विद्वान नहीं है।

परीक्षित्, गुरुदेव बृहस्पति के चले जाने पर देवराज इन्द्र को होश आया। वे समझ गये कि मैंने गुरुजी की अवहेलना कर दी है। उन्हें अब महान् पश्चात्ताप हुआ। वे भरी सभा में सबके सामने स्वयं ही अपने कुकृत्य पर शर्मिन्दा होकर अपनी निन्दा करने लगे। वे कहने लगे- हाय-हाय। बड़े खेद की बात है कि भरी सभा में मूर्खतावश मैंने ऐश्वर्य के नशे में चूर होकर अपने गुरुदेव का तिरस्कार कर दिया। सचमुच मेरा यह कर्म अत्यन्त निन्दनीय है।

कौन विवेकी पुरुष इस स्वर्ग की राजलक्ष्मी को प्राप्त करने की इच्छा करेगा? आज इसी लक्ष्मीमद के कारण मैं असुरों के समान रजोगुणी बन गया हूँ। जो लोग यह कहते हैं कि सार्वभौम राजसिंहासन पर बैठे हुए सम्राट को किसी के आने पर राजसिंहासन से नहीं उठना चाहिये, वे वस्तुत: धर्म के यथार्थ मर्म को ठीक-ठीक नहीं समझते। इस प्रकार का उपदेश देनेवाले लोग लोगों को कुमार्ग की ओर ले जानेवाले हैं वे स्वयं नरक में गिरते हैं। उनकी बात पर जो लोग विश्वास करते हैं, वे पत्थर की नाव की तरह डूब जाते हैं।

मेरे गुरुदेव बृहस्पति जी ज्ञान के अथाह सागर हैं। मैंने बड़ी शठता की। अब मैं उनके चरणों पर अपना सिर रखकर

उनकी क्षमा याचना करूँगा। परीक्षित् जी, बृहस्पति जी महान योगी हैं। वे अपनी योग-विद्या के बल से सब कुछ जान लेते हैं। जिस समय देवराज इन्द्र इस प्रकार सोच रहे थे कि भगवान बृहस्पति जी अपने घर से निकलकर योगबल से अन्तर्धान हो गये। देवराज इन्द्र ने उन्हें बहुत ढूँढ़ा-ढुँढ़वाया; परन्तु उनका कहीं भी पता न चल सका। गुरु के बिना वे अपने को असहाय, असुरक्षित अनुभव करने लगे। उनके पश्चात्ताप की सीमा न थी। वे अशान्त हो बेचैन हो उठे।

इस बीच हुआ यह कि दैत्यों को भी देवगुरु बृहस्पति और इन्द्र की अनबन का पता चल गया। वे झटपट पहुँचे अपने गुरु शुक्राचार्य के पास। उनसे मन्त्रणा की। दैत्यगुरु ने कहा- यह सबसे समीचीन अवसर है देवताओं पर आक्रमण करने का। दैत्यों ने अपने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की और सद्य: चढ़ाई कर दी देवताओं पर। देवता लोग दैत्यों का सामना न कर सके। वे युद्ध-भूमि छोड़कर भागे और रोते बिलखते गये ब्रह्माजी की शरण में। ब्रह्मा जी उनकी दशा देखकर दयार्द्र हो उठे और कहा- देवगणों, तुम लोगों ने महान् ब्रह्मज्ञानी गुरु बृहस्पति का अपमान कर अक्षम्य अपराध किया है। तुम्हारे इस कुकृत्य का ही फल है कि आज तुम लोग अपने से निर्बल शत्रुओं से पराजित होकर दुर्दशाग्रस्त हो रहे हो। सचमुच तुम लोगों ने बहुत अनुचित कर्म किया। हरे, हरे। तुम लोगों ने ऐश्वर्य के मद से अन्धे होकर ब्रह्मज्ञानी वेदज्ञ एवं संयमी ब्राह्मण का सत्कार नहीं किया। तुम्हारी उसी अनीति का यह फल है जिसे तुम भोग रहे हो। देवराज, तुम्हारे शत्रु भी पहले अपने गुरु शुक्राचार्य का तिरस्कार करने के कारण अत्यन्त निर्बल हो गये थे। परन्तु अब भक्ति-भाव से उनकी आराधना करके वे फिर धन-जन से सम्पन्न हो गये हैं। अत: गुरु, गौ, ब्राह्मण का अपमान कभी नहीं करना चाहिए। इससे अपनी शक्ति क्षीण होती है, आत्मबल गिरता है।

ऐसी स्थिति में वे स्वर्ग को क्या समझते हैं। भृगु-वंशी शुक्राचार्य ने अपने शिष्यों को सब प्रकार की आवश्यक शिक्षा दे रक्खी है। उनकी गुप्त मन्त्रणाएँ भी अभेद्य हुआ करती हैं। उन्हें तुम लोग जान भी नहीं सकते। शास्त्रकारों ने सत्य ही कहा है कि जिन राजाओं के ऊपर गौ, ब्राह्मण एवं भगवान की कृपा रहती है, उनका कभी अमंगल नहीं हो सकता।

अत: अब तुम लोग शीघ्र ही त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के पास जाओ। अनुनय-विनय कर उन्हें अपना पुरोहित वरण कर लो। वे सच्चे ब्राह्मण, तपस्वी और संयमी हैं। यदि तुम लोग उनके असुरों के प्रति प्रेम क्षमा कर उनकी आराधना करोगे तो वे तुम लोगों के मनोरथ को पूरा कर देंगे।

शुकदेव बोले- परीक्षित। देवों ने ब्रह्मा के आदेश को अपने सिर-माथे पर लिया। उसके अनुसार वे लोग निश्चिन्त होकर विश्वरूप के पास गये और उन्हें छाती से लगाकर कहा- तात, हम आपके आश्रय में आये हैं। अत: आप के अतिथि हैं। सम्प्रति हम दुर्दशाग्रस्त हैं। इसलिये हमारी अभिलाषा है कि आप हम लोगों के पुरोहित बन जाँय जिससे हम आपके तेज से शत्रुओं को जीत लें। आवश्यकता पड़ने पर अपने से छोटों का पैर छूना भी निन्दनीय नहीं है। वेदज्ञान को छोड़कर अवस्था बड़प्पन का कारण भी नहीं है।

परीक्षित, जब देवताओं ने इस प्रकार विश्वरूप से पुरोहिती करने की प्रार्थना की, तब तपस्वी विश्वरूप ने प्रसन्न होकर उनसे अत्यन्त प्रिय एवं मधुर वाणी में कहा- देवों, यद्यपि पौरोहित्य अतिशय निन्दित कर्म है। फिर भी आप जैसे लोग जब याचना करने आये हैं और मैं आप से छोटा आपका आज्ञाकारी हूँ तो कैसे अस्वीकार कर सकता हूँ। हम तो अकिंचन हैं। खेत कटने पर अनाज चले जाने के अनन्तर अथवा अनाज की मण्डी के उठ जाने पर वहाँ गिरे हुए दानों को हम चुन कर लाते हैं। उसी से अपना कार्य चल जाता है। ऐसी स्थिति में पुरोहिती करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उससे तो वे लोग ही प्रसन्न होते हैं जिनकी बुद्धि गड़बड़ हो गई है। फिर भी मैं आपके कार्य से मुँह नहीं मोड़ सकता। इसलिये आप लोगों का

मनोरथ मैं तन-मन-धन से अवश्य पूरा करूँगा।

शुकदेव कहते हैं- परीक्षित्, विश्वरूप बड़े तपस्वी थे। देवताओं से ऐसी प्रतिज्ञा करके, उनके वरण करने पर, बड़ी तत्परता के साथ उनकी पुरोहिती करने लगे। यद्यपि शुक्राचार्य ने अपने नीति बल से असुरों की सम्पत्ति सुरक्षित कर दी थी, फिर भी समर्थ विश्वरूप ने वैष्णवी विद्या के प्रभाव से वह सम्पत्ति छीन कर देवराज इन्द्र को दिला दी। वैष्णवी विद्या ही नारायण कवच है। नारायण कवच के प्रभाव से इन्द्र ने असुरों पर विजय प्राप्त की थी। इस कवच का उपदेश भी विश्वरूप ने इन्द्र को दिया था।

३) नारायण कवच का उपदेश

शुकदेव बोले- राजन्, इन्द्र के पूछने पर विश्वरूप ने उन्हें नारायण कवच का उपदेश किया। तुम एकाग्र मन से उसका श्रवण करो। विश्वरूप ने कहा- देवराज इन्द्र, भय का अवसर उपस्थित होने पर नारायण कवच धारण करके अपने शरीर की रक्षा करनी चाहिये। उसकी विधि यह है कि पहले हाथ-पैर धोकर आचमन करे, पवित्री धारण कर उत्तर की ओर मुख करके आसन पर बैठ जाय। कवच धारण पर्यन्त किसी से कुछ बोलना नहीं चाहिये फिर पवित्रता से ॐ नमो नारायणाय और ॐ नमो भगवते वासुदेवाय- इन मन्त्रों को पढ़कर हृदय आदि में अंगन्यास तथा अंगुष्ठ आदि में करन्यास कर ले। तब भगवान नारायण का ध्यान करे कवच को ग्रहण करे। यह कहकर उन्होंने इन्द्र को कवच का उपदेश दिया। कवच को धारण करने की बेला में भगवान का ध्यान करे और अपने को भी भगवद्रूप ही चिन्तन करें। भगवान श्रीहरि गरुड की पीठ पर अपने चरण-कमल रक्खे हुए हें। अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ उनकी सेवा कर रही हैं। उनके आठ हाथों में शंख, चक्र, ढाल, तलवार, गदा, बाण, धनुष और पाश (फन्दा) विराजमान है। वे ही ओंकार स्वरूप प्रभु सब प्रकार से, सब ओर से मेरी रक्षा करें।

मत्स्यमूर्ति भगवान जल के भीतर जल-जन्तुओं से और वरुण के पाश से मेरी रक्षा करें। माया से ब्रह्मचारी का रूप धारण करनेवाले वामन् भगवान स्थल पर और विश्वरूप श्री त्रिविक्रम भगवान आकाश में मेरी रक्षा करें।

इसी प्रकार नृसिंह भगवान संकटपूर्ण परिस्थितियों एवं स्थानों में हमारी रक्षा करें। वाराह भगवान मार्ग में, परशुरामजी पर्वतों के शिखरों पर, भगवान राम प्रवास की बेला में, नर-नारायण मारण-मोहन आदि अभिमाचारों और प्रमादों से, दत्तात्रेय योग के विघ्नों से और कपिल भगवान कर्मबन्धनों से मेरी रक्षा करें। सनत्कुमार कामदेव से, हयग्रीव भगवान मार्ग में पड़नेवाले देवों को नमस्कार न करने के अपराध से, नारदजी सेवापराधोंसे, भगवान कच्छप सारे नरकों से, भगवान धन्वन्तरि कुपथ्य से, भगवान ऋषभदेव सुख-दु:ख आदि कष्टकारक द्वन्द्वों से, यज्ञभगवान लोकापवाद से, बलरामजी मनुष्यों से होनेवाले कष्टों से और श्रीशेषजी सर्पों से हमारी रक्षा करें।

३२ प्रकार के सेवा अपराध माने गये हैं। १) सवारीपर चढ़कर अथवा पैरोंमें खड़ाऊँ पहनकर श्रीभगवानके मन्दिरमें जाना। २) रथयात्रा, जन्माष्टमी आदि उत्सवोंका न करना या उनके दर्शन न करना। ३) श्रीमूर्तिके दर्शन करके प्रणाम न करना। ४) अशुचि अवस्थामें दर्शन करना। ५) एक हाथसे प्रणाम करना। ६) परिक्रमा करते समय भगवान्के सामने आकर कुछ न रूककर फिर परिक्रमा करना अथवा केवल सामने ही परिक्रमा करते रहना। ७) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने पैर पसारकर बैठना। ८) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने दोनों घुटनोंको ऊँचा करके उनको हाथोंसे लपेटकर बैठ जाना। ९) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने सोना। १०) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने भोजन करना। ११) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने झूठ बोलना। १२) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने जोरसे बोलना। १३) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने आपसमें बातचीत करना। १४) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने चिल्लाना। १५) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने कलह करना। १६) श्रीभगवानके

श्रीविग्रहके सामने किसीको पीड़ा देना। १७) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने किसीपर अनुग्रह करना। १८) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने किसीको निष्ठुर वचन बोलना। १९) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने कम्बलसे सारा शरीर ढक लेना। २०) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने दूसरेकी निन्दा करना। २१) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने दूसरेकी स्तुति करना। २२) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने अश्लील शब्द बोलना। २३) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने अधोवायुका त्याग करना। २४) शक्ति रहते हुए भी गौण अर्थात सामान्य उपचारोंसे भगवान्‌की सेवा-पूजा करना। २५) श्रीभगवानको निवेदित किये बिना किसी भी वस्तुका खाना-पीना। २६) जिस ऋतुमें जो फल हो, उसे सबसे पहले श्रीभगवानको न चढ़ाना। २७) किसी शाक या फलादिके अगले भागको तोड़कर भगवानके व्यंजनादिके लिये देना। २८) श्रीभगवानके श्रीविग्रहको पीठ देकर बैठना। २९) श्रीभगवानके श्रीविग्रहके सामने दूसरे किसीको भी प्रणाम करना। ३०) गुरुदेवकी अभ्यर्थना, कुशल-प्रश्न और उनका स्तवन न करना। ३१) अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना। ३२) किसी भी देवताकी निन्दा करना।

व्यास भगवान अज्ञान से, बुद्धदेव पाखण्डियों से और प्रमाद से तथा धर्म-रक्षा के लिये महान् अवतार धारण करनेवाले कल्कि भगवान कलिकाल के दोषों से हमारी रक्षा करें।

प्रात:काल भगवान केशव गदा से, कुछ दिन चढ़ आने पर गोविन्द अपनी वंशी से, दोपहर के पहले भगवान नारायण अपनी शक्ति से और दोपहर में भगवान विष्णु सुदर्शन चक्र से, तीसरे पहर में भगवान मधुसूदन अपने प्रचण्ड धनुष से मेरी रक्षा करें। सायंकाल में माधव, सूर्यास्त के बाद हृषीकेश, अर्धरात्रि के पूर्व तथा अर्धरात्रि की बेला में भगवान पद्मनाभ मेरी रक्षा करें। रात्रि के पिछले पहर में श्रीवस्तलाञ्छन श्रीहरि, उषाकाल में भगवान जनार्दन, सूर्योदय से पूर्व श्रीदामोदर और सम्पूर्ण सन्ध्याओं में कालमूर्ति भगवान विश्वेश्वर मेरी रक्षा करें।

हे सुदर्शन चक्र, आप हमारी शत्रु-सेना को शीघ्रातिशीघ्र जला दीजिये। हे कौमोदकी गदे, आप कुष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस, भूत-प्रेतादि को भगा दीजिये। हे नन्दक (खड्ग) आप हमारे शत्रुओं को काट डालें। हे ढाल, आप हमारी पापी शत्रुओं की आँखें बन्द कर उन्हें अन्धा कर दें। हे भगवन्। सूर्य आदि ग्रहों से, धूमकेतु आदि पुच्छल ताराओं से तथा विषधर सर्प आदि जीव-जन्तुओं से होनेवाले हमारे सारे भयसे आप के नाम-रूप आदि के कीर्तन से विनष्ट हो जायँ। आप की सवारी श्रीगरुडजी अविद्या आदि क्लेशों से तथा नाम, रूप एवम् आयुध भूत-भौतिक समस्त आपत्तियों से हमारी रक्षा करें। ब्रह्माण्ड का सब कुछ भगवान ही है- इस सत्य के प्रभाव से हमारे सारे उपद्रव नष्ट हो जाएं भगवान नृसिंह दिशाओं-विदिशाओं में नीचे ऊपर, बाहर-भीतर-सब ओर से हमारी रक्षा करें।

देवराज इन्द्र, मैंने तुम्हें यह नारायण-कवच सुना दिया। इस कवच से तुम अपने को सुरक्षित कर लो। इससे तुम बिना प्रयास के ही असुर-शिरोमणियों को जीत लोगे। इस नारायण कवच का ध्यान जलसेना, स्थल-सेना और वायु-सेना को, युद्ध स्थल के लिये प्रस्थान की बेला में, अवश्य करना चाहिये। इससे आस्तिक-जगत् का महान् कल्याण होगा।

एक बार एक कुशिक गोत्रीय ब्राह्मण मारवाड़ की मरुभूमि में यात्रा कर रहे थे। वहाँ उन्होंने योगधारणा से अपने पापों का परित्याग कर दिया। उनका मृत शरीर भूमि पर पड़ा था। उसी समय चित्ररथ गन्धर्व अपनी सुन्दरी तरुणी स्त्रियों के साथ विमान से आकाश-विहार कर रहे थे। ब्राह्मण के शव के ऊपर पहुँचने पर उनका विमान गिरकर भूतल पर आ गया। इस घटना से उनके आश्चर्य की सीमा न रही। उन्हें जब बालखिल्य मुनियों ने बतलाया कि यह नारायण-कवच धारण करने का प्रभाव है, तब उन्होंने ब्राह्मण की हड्डियों को ले जाकर पूर्व वाहिनी सरस्वती नदी में डाल दिया और फिर स्नान करके अपने लोक को चले गये।

पाई विद्या वैष्णवी, अति प्रसन्न सुरपति भये। करी चढ़ाई सुरनिने, असुर पराजित करि दये।।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, जो व्यक्ति भय का अवसर उपस्थित होने पर इसका श्रवण अथवा श्रद्धा-भक्ति के साठ पाठ करता है, उसके समस्त शत्रु पराजित हो जाते हैं। सभी लोग उसका आदर-सम्मान करते हैं। परीक्षित्, इन्द्र ने आचार्य विश्वरूप जी से यह वैष्णवी विद्या प्राप्त करके रणभूमि में असुरों को जीत लिया और गई हुई त्रैलोक्य की राज्यलक्ष्मी को पुन: प्राप्त कर सानन्द उसका उपभोग किया। इस कवच को धारण करनेवाला पुरुष जिस किसीको भी अपने नेत्रों से देख लेता है अथवा पैर से स्पर्श करता है वह भी तत्काल भय से मुक्त हो जाता है।

४) इन्द्रको ब्रह्महत्या का पाप

शुकदेव ने कहा- राजन्, विश्वरूप के तीन सिर थे। वे एक मुख से सोमरस तथा दूसरे से सुरा पीते और तीसरे से अन्न खाते थे। उनके पिता त्वष्टा आदित्य, देवता थे। इसलिये वे यज्ञ के समय प्रत्यक्ष रूप से ऊँचे स्वर से बोल कर, विनम्रता के साथ, देवताओं को आहुति देते थे- इसके साथ ही वे छिप-छिप कर असुरों को भी आहुति दिया करते थे। उनकी माता रोचना असुर-कुल की बेटी थी, इसलिये वे माता के स्नेह के वशीभूत होकर यज्ञ करते समय असुरों को भाग पहुँचाया करते थे। क्योंकि असुर उनके मामा थे। इससे असुरों का भी बल बढ़ता था।

त्वष्टा सुत गुरु पाइ भये स्वर्गेश इन्द्र पुनि। करवावें नित यज्ञ पुरोहित विश्वरूप मुनि।।
उच्चस्वरतें बोलि सुरनिको आहुति देवें। चुपकेतें कछु यज्ञ भाग दे असुरनि सेवें।।
मातृ पक्ष अनुराग लखि, देवनि संशय ह्वै गयो। उपरोहित अविनय निरखि, क्षोभ इन्द्र मन अति भयो।।

इन्द्र को अशंका हुई। वे सावधान हुए। फिर उन्होंने देखा कि विश्वरूप यज्ञ करके समय असुरों को भी भाग दे रहे हैं। वे भयभीत हो उठे। उन्होंने उठाई अपनी तलवार और एक झटके में काट कर गिरा दिया विश्वरूप के तीनों शिरों को। विश्वरूप का सोमरस पीनेवाले शिर-पपीहा, सुरापान करनेवाला गौरैया और अन्न खानेवाला तीतर हो गया।

विश्वरूप वध मधवा कीन्हा। पुत्रशोक त्वष्टा को दीन्हा। क्रोधवन्त त्वष्टा रिषि आया। वृत्रासुर दानव प्रगटाया।।

विश्वरूप ब्राह्मण थे अत: इन्द्र को लगी ब्रह्महत्या। इन्द्र समर्थ थे। वे ब्रह्महत्या को दूर कर सकते थे किन्तु उन्होंने ऐसा किया नहीं। सादर स्वीकार किया ब्रह्महत्या को इन्द्र ने।

द्विज हत्या सुरपति निकट, आई अंजलिमहँ लई। हत्यारे देवेन्द्र हैं, यह प्रसिद्धि जगमहँ भई।।

उन्होंने एक वर्ष तक उससे छूटने का कोई उपाय नहीं किया। उसे भोगा। तदनन्तर उन्होंने अपनी शुद्धि के लिये ब्रह्महत्या को चार भागों में बाँट कर पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियों को दे दिया। खोदने पर गड्ढा धीरे-धीरे स्वयं भर जायेगा यह वरदान प्राप्त कर पृथ्वी ने ब्रह्महत्या का एक चौथाई भाग ग्रहण कर लिया। वही ब्रह्महत्या पृथ्वी में ऊषर के रूप में देखी जाती है अत: ऊषर में यज्ञ-यागादि कोई पवित्र कार्य नहीं किया जाता। वहाँ पूजा पाठ नहीं करना चाहिए। दूसरा चतुर्थांश वृक्षों ने लिया। उन्हें यह वर मिला कि उनका कोई हिस्सा कट जाने पर फिर जम जायेगा, पुन: निकल आयेगा। वृक्षों में जो गोंद निकलता है, वह ब्रह्महत्या का रूप है अत: पुरुषों को गोंद नहीं खाना चाहिये। गोंद का सेवन धर्मशास्त्रों ने वर्जित किया है। सर्वदा सम्भोग की क्षमता बनी रहेगी- यह वरदान पाकर स्त्रियों ने ब्रह्म हत्या का एक चतुर्थांश ग्रहण किया। मासिक के रूप में यह ब्रह्महत्या स्त्रियों में देखी जा सकती है। इसके फलस्वरूप वे प्रत्येक मास में तीन दिन अशुद्ध रहती हैं। चौथे दिन स्नान के बाद उनकी शुद्धि बतलाई गई है किन्तु इस दिन भी वे देवार्चन आदि कार्य नहीं कर सकती। मासिक की बेला में प्रथम दिन स्त्री चाण्डाली के

बराबर अस्पृश्य मानी जाती है। दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन धोबिन कही जाती है अत: तीन-दिनों तक स्त्री को किसी के सामने नहीं आना चाहिये अन्यथा वह विकृत सन्तान की जन्मदात्री बनती है और कालान्तर में उसे पति-वियोग भी सहना पड़ता है। दुग्ध आदि मिलाने पर तुम्हारी वृद्धि हो जायेगी- यह वर प्राप्त कर जल ने ब्रह्महत्या के एक चतुर्थांश को ग्रहण किया। फेन बुद्‌बुद् आदि के रूप में वही ब्रह्महत्या जल में दिखलाई पड़ती है अत: मनुष्यों को चाहिये कि वे उन्हें हटाकर ही जल ग्रहण करें। जल को सदा खर्च करने पर भी वह बढ़ता ही रहेगा। ब्रह्महत्या का वही भाग जल में फेन के रूप में दिखाई पड़ता है। ब्रह्महत्या का इस प्रकार बँटवारा कर इन्द्र पूर्ण शुद्ध एवं स्वस्थ हो गये।

बनि हत्यारे फिरें वर्ष भरि सुरपति जहँ तहँ। बाँटी हत्या इन्द्र धरा, नग, नारि, बारिमहँ।।
गड्ढा पुनि भरि जायँ लह्यौ वर धरा प्रेमतें। कटिकें पनपें वृक्ष इन्द्र वर दयो नेमतें।।
व्यय करिके हू नित बढ़े, बदलेमहँ वर जल लह्यो। रति सुख शक्ति सदा बनी, रहे कामिनिनि वर दयो।।
ऊसर पृथिवी होय ब्रह्महत्याके लक्षण। यज्ञादिक शुभ कर्म नष्ट होवें तहँ तत्क्षण।।
गोंद तरुनिमहँ होय करें जो वाकूँ भक्षण। रागसहित तिहि खायँ पापमय होवे तनमन।।
दीखें मैले फैन जे, जल प्रवाहमहँ जाइकें। द्विज हत्या लखि पियो जल, बुदबुद फैन बचाइकँ।।
चौथे दीन्हों भाग इन्द्रने नारिनिकूँ जब। मास मासमहँ प्रकट होहि अस्पर्श होहिँ तब।।
रजो धर्ममहँ निरत नारिकूँ नर जो जोहैं। धर्म कर्म ते हीन पापमय खलजन सोहैं।।
भूलि समागम अज्ञ नर, रजस्वलातें करिगे। हत्यारे सम पातकी, अवसि नरकमहँ परिगे।।
नारि, वृक्ष, जल, भूमि पाइ वरदान सिहाये। इन्द्र भये निष्पाप मुदित ह्वै स्वर्ग सिधाये।।
द्विज हत्या तो गई शत्रुता सिर पै आई। विश्वरूप पितु कुपित भये सुन इन्द्र ढिठाई।।
त्वष्टा मन निश्चय कर्‌यो, इन्द्र नीचता हरूङ्गो। जो मारे जा इन्द्रकूँ, अस नर पैदा करूङ्गो।।

५) देवताओंका दधीचि ऋषि की हड्डियोंसे वज्र तैयार करना

त्वष्टा का पुत्र विश्वरूप अतिशय योग्य था। इन्द्र ने उसकी हत्या कर दी। यह सुनकर त्वष्टा को महान् शोक और क्रोध हुआ। उन्होंने इन्द्र को विनष्ट कर देने का संकल्प लेकर यज्ञ प्रारम्भ किया। इन्द्रशत्रो विवर्धस्व यह मन्त्र बोलकर वे यज्ञकुण्ड में आहुति डालते थे। शोक एवं क्रोध के कारण मन्त्रोच्चारण की बेला में उनका स्वर विकृत हो गया। वे मन्त्र इस अभिप्राय से बोलते थे कि- इन्द्रस्य शत्रु शातयिता विवर्धस्व उत्पन्नो भव अर्थात् इन्द्र को मारनेवाला बेटा पैदा हो। किन्तु स्वर बिगड़े जाने के कारण इस मन्त्र का अर्थ हो जाता है कि- इन्द्र जिसका वध कर देंगे, ऐसा बेटा पैदा हो। इन्द्र के हाथों मारा जानेवाला पुत्र पैदा हो। फल में भेद हो गया।

ऐसो मनमहँ सोचि हवन मुनिवरने कीन्हों। इन्द्र शत्र बढ़ि जाउ, मंत्र पढ़िकें हवि दीन्हों।।
मंत्र शक्ति अति अमित तुरत इक उपज्यो प्रानी। महा भयंकर वृत्र बली अतिशय अभिमानी।।
लाल मूँछ दाढ़ी अरुन, बरन नयन प्रलयाग्नि सम। अंजन परबतके सरिस, सुररिपु तेजस्वी परम।।

शुकदेव बोले- राजन्, महामुनि त्वष्टा ने जब अपने पुत्र विश्वरूप के मारे जाने का समाचार सुना, तब इन्द्र शत्रु को उत्पन्न करने के निमित्त हे इन्द्र शत्रुओ। तुम वृद्धि को प्राप्त होकर शीघ्र ही अपने शत्रु का संहार करो, इस संकल्प से अग्नि में हवन किया। हवन करते ही उसी क्षण अन्वाहार्य पचन नामक अग्नि से एक घोर दर्शन विकराल काल के समान प्रलय काल में लोकों का संहार करने वाले काल के समान विकराल-पुरुष उत्पन्न हुआ। मंत्रों का प्रभाव अमोघ होता है,

उपासना के प्रभाव से मुनियों के संकल्प, वचन और कार्य अव्यर्थ होते हैं। विधिविधान पूर्वक वे जो कुछ भी करना चाहते हैं वह तत्क्षण हो जाता है।

त्वष्टा के हवन-कुण्ड से एक अतिशय भयानक असुर उत्पन्न हुआ। वह दिन-दिन बढ़ने लगा। प्रतिदिन उसका शरीर सब ओरसे बाण के बराबर बढ़ता था। लाल-लाल उसकी दाढ़ी-मूँछे थीं। जब वह शूल लेकर चलता तब भू-मण्डल कांपने लगता था। मुख खोलने पर ऐसा प्रतीत होता मानों नक्षत्रों को चाट लेगा, तीनों लोकों को निगल जायेगा। उसने सारे लोकों को घेर लिया। उसकी तामसी मूर्ति से सर्वत्र अन्धकार व्याप्त हो गया। आवरण करने के कारण ही लोग उसे वृत्र कहने लगे। वह तो सर्वलोक संहारक प्रलय-कालिक विकराल काल के समान दुर्धर्ष भयंकर और अप्रतिम था।

सुरन दीख वृत्रासुर कैसे। सहित प्राण कज्जल गिरि जैसे।
भुजा विटप सिर श्रृंग सगाना। रोमावलि लता जनु नाना।।
मुख नासिका, नयन अरु काना। गिरि कन्दरा खोह अनुमाना।।

वह दैत्य विकराल काल के समान जान पड़ता था। वह जब चलता था तो पृथ्वी डगमगाने लग जाती थी। काँप उठती थी। वह बड़े डील-डौल का था, उसके सिर के बाल दाढ़ी मूँछ तांबे के समान लाल रंग के थे। वह विकराल मुंह से मानों तीनों लोकों को निगल जायेगा। उस वृत्रासुर ने प्रगट होकर असुरों की सेना इकट्ठी की और देवताओं के ऊपर आक्रमण किया देवता लोग घबड़ा गये और भागकर ब्रह्माजी की शरण में गये। पितामह बचाओ, ब्रह्माजी ने बहुत डाँटा बार-बार गलती करते हो, और जब परिणाम आता है तो बचाओ-बचाओ करते हो। पहली बार गुरु बृहस्पति का ही अपमान कर दिया। दूसरी बार विश्वरूप की हत्या ही करडाली, अब हमारे बस की बात नहीं है। जावो, भगवान की शरण में उनसे प्रार्थना करो।

वृत्रासुर- प्रजापति त्वष्टा का दैत्य पुत्र। त्वष्टा प्रजापति ने जब यह सुना कि इंद्र ने उसके पुत्र विश्वरूप को मार डाला है, तब उन्होंने इंद्र का शत्रु उत्पन्न करने के लिए विशेष हवन-अनुष्ठान किया। यज्ञ समाप्त होने पर एक अत्यंत भयावना दैत्य प्रकट हुआ। त्वष्टा ने यज्ञ किया उसमें अन्वाहार्य-पचन नामक अग्नि (दक्षिणाग्नि) से एक बड़ा भयावना दैत्य प्रकट हुआ। प्रजापति त्वष्टा की तपस्या के प्रभाव से उसने विशाल काया धारण कर ली। वह तीनों लोकों को कंपित कर देता था। उससे सभी भयभीत थे। प्रजापति के तमोगुणी उस पुत्र ने सारे लोकों को घेर लिया था। उसके भयावने रूप को देखकर सब लोग इधर-उधर भागने लगे। इसी से उस पापी और अत्यंत क्रूर पुरुष का नाम वृत्रासुर पड़ा।

छिन-छिनमहँ वह बढ़े लोक तीनों ढकि लीन्हें। देव मारतें बिकल असुर सब निर्भय कीन्हें।।
पूछें पितुतें वृत्र तात। हौं करूँ कहा अब। मोकूँ कछु न अशक्य, काज हौं प्रभो करूँ सब।।
त्वष्टा मुनि सुनि इन्द्रको, कह्यो वृत्र सब वृत्रतें। इन्द्र मारि देवनि करो, रहित चमर अरु छत्रतें।।
वृत्रासुर सुनि पिता बवचन सब असुर बुलाये। शुक्र पुरोहित आइ विजयके कृत्य कराये।।
मदमाते सब असुर चले रण शस्त्र घुमावें। गर्जन तर्जन करत वृत्र बल समुझि सिहावें।।
आवत देख्यो असुर दल, सब शस्त्रनि लै भिर गये। वृत्र पराक्रम निरखिकें, विस्मित सब सुरगन भये।।

शुकदेव बोले- राजन्। जब वृत्र देवताओं से युद्ध करने गया तब सम्पूर्ण देवगण उस पर मिलकर एक साथ आक्रमण करते हुए अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रों से उस पर प्रहार करने लगे। किन्तु वह उन सबको निगल जाता था। इस बात को देखकर सभी देवता बड़े चकित हुए। वे तेजहीन और उदास होकर एकाग्रचित्त से अन्त:करण में स्थित आदि पुरुष श्रीहरि की स्तुति करने लगे।

सुर सुनि सब मिलि जीभ पै, अस्त्र शस्त्र मारन लगे। निगले सबके अस्त्र जब, ह्वै निशस्त्र डरि सुर भगे।।
भागत देखे देव असुर जय पाइ सिहाये। नहीं शरण लखि अन्य विष्णु ढिँग सुर सब धाये।।
हाथ जोरि सब विनय करे हरि हमें बचाओ। बहुत अवज्ञा सही जगतपति अब अपनाओ।।
गुरु अपमान स्वरूपमहँ, वृत्र विपति सिर पर परी। गो द्विज देवनिकी तुमनि, युग युगमहँ रक्षा करी।।

सभी देवों ने मिलकर वृत्र पर आक्रमण किया। किन्तु वह अविचल भाव से सबके अस्त्र-शस्त्रों को पकड़कर निगल गया। ऐसी स्थिति में देव-गण घबड़ा कर भगवान विष्णु की शरण में गये। वहाँ उन्होंने उनकी दिव्यस्तुति करते हुए कहा- जो प्रभु सबके आत्मा हैं परम देव हैं, प्रधान और प्रकृति तथा विश्वरूप हैं और इन सबसे अन्य भी हैं। उन्हीं शरणागत वत्सल श्रीहरि की हम सब शरण में हैं। वे ही महात्मा हम सब अपने आश्रितों का अवश्य ही कल्याण करें। प्रलय-काल की बेला में मत्स्यरूप धारण कर जिन्होंने सत्यव्रत मनु की रक्षा की थी। कमल के ऊपर से जल में गिरे हुए ब्रह्मा को जिन्होंने बचाया था, जो युग-युग से हम लोगों की रक्षा करते आ रहे हैं, वही भगवान आज भी वृत्रासुर रूपी इस भारी विपत्ति से हमारी रक्षा करें। हम उन्हीं की शरण में हैं। देवों की दीनता भरी स्तुति भगवान ने सुनी। वे दयार्द्र हो उठे। उनका हृदय करुणा से भर उठा उन्होंने प्रकट होकर देवों को दर्शन दिया और कहा- श्रेष्ठ देवों, तुम लोगों ने भक्ति-भरी स्तुति से मेरी उपासना की है। इस स्तुति के द्वारा जीवों को अपने वास्तविक स्वरूप की स्मृति और मेरी भक्ति प्राप्त होती है। देवों। मेरे प्रसन्न हो जाने पर संसार में कुछ दुर्लभ नहीं रह जाता फिर भी पूर्ण रूप से समर्पित मेरे भक्त मुझसे मेरे अतिरिक्त और कुछ भी कामना नहीं करते हैं।

विपति उदधिमहँ मग्न भये हरि आइ उबारो। अन्य शरण नहिँ नाथ गहो अब हाथ हमारो।।
सुनि देवनकी विनय तुरत तहँ प्रकटे श्रीहरि। अति प्रसन्न सब भये देव दुर्लभ दर्शन करि।।
देखि दुखी देवन दया, करी विष्णु बोले बचन। शुभ सम्मति सबकूँ दऊँ, ताहि सुनो एकाग्र मन।।

देवराज इन्द्र, तुम लोगों का कल्याण हो। अब देर मत करो। ऋषि शिरोमणि दधीचि के पास जाओ और उनसे उनका शरीर मांग लो। वह तप आदि के कारण अत्यन्त सुदृढ़ हो गया है।

मुनि दधीचिके निकट देव सब मिलिके जाओ। निज विपत्तिके वृत्त जाइ मुनिवरहिँ सुनाओ।।
विद्या व्रततें पूत तपस्याके प्रभावतें। उनकी हड्डी विमल सरल सच्चे स्वभावतें।।
बजे वज्र मुनि अस्थितें, वृत्रासुर मरि जाइगो। सबरो दुख कटि जायगो, गयो राज्य फिरि आइगो।।

ऋषि दधीचि शुद्धब्रह्म के ज्ञाता हैं। उन्होंने अश्विनीकुमारों को अश्वशिर से ही ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया था। इसी से अश्विनीकुमार जीवन्मुक्त हो गये। दधीचि ऋषि ब्रह्म-विद्या के पूर्ण ज्ञाता हैं, यह जानकर अश्विनीकुमारों ने उनसे प्रार्थना की- कृपया हमें भी ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्रदान करें। दधीचि ऋषि ने कहा- अश्विनीकुमारों सम्प्रति मैं किसी कार्य में व्यस्त हूं। बाद में कभी आना तब तुम्हें इस विद्या का उपदेश करूँगा। इस बात का पता इन्द्र को लग गया। उन्होंने ऋषि से कहा- अश्विनीकुमार वैद्य हैं। वैद्य ब्रह्म-विद्या का अधिकारी नहीं होता अत: उन्हें इसका ज्ञान मत दीजियेगा अन्यथा आप का सिर काट डालूँगा। इन्द्र के ऐसा कह कर चले जाने पर अश्विनीकुमारों ने आकर फिर वही प्रार्थना की। मुनि ने इन्द्र की सारी बातें बतलाई। इस पर अश्विनीकुमारों ने कहा- हम पहले ही आप का यह सिर काटकर अश्व का शिर जोड़ देंगे। उसी से आप हमें उपदेश दें। इन्द्र जब आपका अश्व-सिर (घोड़े का सिर) काट देंगे, तब हम पुन: आपका असली सिर जोड़ देंगे। मुनि ने मेरा वचन मिथ्या न हो- यह विचार कर उनकी बात मान ली और उन्हें ब्रह्म-विद्या का उपदेश कर दिया। इस प्रकार अश्वमुख से उपदेश करने के कारण इस विद्या को अश्वसिरा भी कहा जाने लगा।

अश्वशिर विद्या- इस विषय में एक छोटी-सी कथा है- दधीचि ब्रह्मविद्या के पूर्व ज्ञाता हैं यह जानकर एक समय अश्विनीकुमार उनके समीप गये और उनसे कहा ब्रह्मन्। आप हमें ब्रह्मविद्या का उपदेश करें। दधीचि ने कहा- इस समय मैं कुछ कार्य में व्यस्त हूँ, फिर किसी समय आना। यह सुनकर अश्विनीकुमार चले गये। उनके चले जाने पर इन्द्र ने आकर दधीचि से कहा- मुने अश्विनीकुमार वैद्य हैं, उन्हें आप ब्रह्मविद्या का उपदेश न करें। यदि आप मेरे कथन की अवहलेना कर उन्हें उपदेश करेंगे तो मैं आपका सिर काट डालूँगा। यह कहकर इन्द्र चले गये। थोड़ी देर बाद अश्विनीकुमारों ने आकर मुनि से फिर वही प्रार्थना की। मुनिद्वारा इन्द्र का वृत्तान्त सुनाने पर अश्विनीकुमारों ने कहा- हे मुनिवर। यदि ऐसी बात है तो हम पहले ही आपका यह सिर काटकर घोड़े का सिर लगा देते हैं। आप इसीसे हमें ब्रह्म विद्या का उपदेश दें। जब इन्द्र आप के घोड़े का सिर काट देंगे तो हम आपके धड़ से गुरु दक्षिणा के रूप में पुन: असली सिर जोड़ देंगे। मुनि ने मेरा वचन मिथ्या न हो यह विचार कर उनकी बात मान ली और उन्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश दे दिया। इस प्रकार अश्व मुख से उपदेश करने के कारण इस विद्या का नाम अश्वशिर पड़ा था।

देवताओं, देखो उन दधीचि मुनि को अश्वशिरा नामक विशुद्ध ब्रह्मविद्या का ज्ञान है। उस विद्याको उन्होंने अश्विनीकुमारों को पढ़ाया था। जिसके प्रभाव से उन दोनों अश्विनीकुमारों को अमरता प्राप्त हो गई है। इन्द्र बोले- महाराज, अश्विनीकुमार तो वैद्य है। वैद्य का दर्शन अशुभ माना जाता है, वैद्य का अन्न पापमय होता है। वैद्य को श्राद्ध आदि में बुलाना निषेध है। जो वैद्य हैं वह ब्रह्मविद्या का अधिकारी नहीं है। वैद्य को द्रव्य वही देगा, जो रोगी होगा, जिसके प्राण कंठगत होंगे। रोग सदा पापों से होता है, स्वेच्छा से कोई द्रव्य देना नहीं चाहता। वैद्य को विवश होकर द्रव्य देना पड़ता है। अत: वह पापमय द्रव्य निन्दनीय है। इसीलिये वैद्यों का अन्न पूय शोणित के समान अपवित्र और निन्दनीय बताया है।

कही ब्रह्मविद्या सकल, हयसिरतें मुन ऋषभ जो। अश्वशिराके नामतें, है प्रसिद्ध अबतलक जो॥

अथर्ववेदी दधीचि ऋषि ने ही सर्वप्रथम इस अभेद्य नारायण-कवच का उपदेश त्वष्टा मुनि को दिया था। त्वष्टा ने वही अपने पुत्र विश्वरूप को दिया और विश्वरूप से तुम्हें मिला।

विश्वरूपने तुम्हें कवच नारायण दीन्हों। पितु त्वष्टातें विश्वरूप द्विजवरने लीन्हों॥
मुनि दधीचिने दयो तपस्वी त्वष्टाकूँ पुनि। अस्थिनिमहँ बिँधि गयो भये अतिई पावन मुनि॥
परोपकारीकूँ कहो, कौन कठिन जग काज है। पर कारजके हेतु तो, तुच्छ देह, धन राज है॥

दधीचि धर्म के परम मर्मज्ञ हैं। अश्विनीकुमार उनके प्रिय शिष्य हैं। उनके मांगने पर वे अपना शरीर आप लोगों को अवश्य प्रदान कर देंगे फिर तुम लोग उनकी हड्डियों से विश्वकर्मा के द्वारा एक श्रेष्ठ आयुध बनवा लेना। इन्द्र मेरी शक्ति तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट है अत: तुम पराजित नहीं होओगे। आयुध में भी मेरी शक्ति समाहित रहेगी। उससे तुम वृत्रासुर का सिर काट लोगे फिर तो तुम्हें तेज, अस्त्र-शस्त्र और सारी सम्पत्तियाँ अनायास ही प्राप्त हो जायेंगी। तुम्हारा कल्याण अवश्यम्भावी है क्योंकि मेरे शरणागतों का कभी अमंगल नहीं हो सकता। वे दधीचि ऋषि नैमिषारण्य क्षेत्र में रहते हैं। जो नैमिषारण्य की परिक्रमा कर लेते हैं उन्हें समस्त तीर्थों की परिक्रमा करने का फल प्राप्त हो जाता है।

मिलि सब जाओ करो वन्दना ऋषि चरननिकी। माँगो ह्वैके दीन अस्थि अति पावन मुनिकी॥
अवसि देइँगे कबहुँ मनैं मुनिवर न करिङ्गे। तुम सबके हित विहँसि नेहतें देह तजिङ्गे॥
उनकी तपमय अस्थितें, सुधर वज्र बनि जायगो। वाईतें जा वृत्तको, सिर धड़तें कटि जायगो॥

देवताओं से भगवान विष्णु कह रहे हैं- देवताओ। देखो धर्मज्ञ महामुनि दधीचि ऋषि से यदि उनके शिष्य अश्विनी

कुमार अथवा तुम लोग यदि उनके अंङ्गों को माँगोगे, तो वे अवश्य दे देंगे। उनकी हड्डियों से विश्वकर्मा एक श्रेष्ठ अस्त्र तैयार कर देंगे, उससे इन्द्र मेरे तेज से वृद्धि को प्राप्त होकर वृत्रासुर के सिर को काट डालेंगे।

भगवान ने कहा है- संसार में इस समय दधीचि मुनि की भाँति ज्ञान, विज्ञान में पारंगत, तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी, परोपकारी, सर्वहितकारी, त्यागी, विरागी दूसरा मुनि कोई है ही नहीं। वे सभी मुनियों के मुकुट मणि हैं। साधु समाज के चूड़ामणि हैं, उन्होंने इतनी घोर तपस्या की है कि उनकी समस्त अस्थियाँ तपोमय बन गई हैं। तप से पूत होने के साथ-ही-साथ उनमें समस्त अस्त्र-शस्त्र का तेज भी व्याप्त हो गया है, यदि इन अस्थियों से विश्वकर्मा एक वज्र बना दें तो उससे वृत्रासुर का संहार हो सकता है, इसके अतिरिक्त वृत्र के वध का विपत्तियों से छूटने का दूसरा उपाय है ही नहीं।

शुकदेव ने कहा- परीक्षित्, विश्व के जीवन-दाता भगवान विष्णु इन्द्र को इस प्रकार का आदेश देकर देवताओं के सामने ही वहीं-के-वहीं अन्तर्धान हो गये।

भगवान के आदेश के अनुसार देवता लोग पहुँचे ऋषि दधीचि के आश्रम पर। दधीचि ऋषि तपस्या कर रहे थे और पत्नी गभस्तिनी (अगस्त्य ऋषि की पत्नी लोपमुद्रा की बहन) पास ही नदी में पानी भरने गयी थी। पुत्र पिप्लाद कहीं बाहर वन में गये थे। आश्रम में अकेलापन देखकर देवता लोग अपने स्वार्थ के लिये दधीचि ऋषि के आश्रम में गये और बड़ी विनम्रता के साथ उन्हें प्रणाम किया। ऋषि ने उनसे उनके आगमन का कारण पूछा। देवताओंने कहा- ऋषिवर, हम आपका शरीर मांगने आये हैं। यह सुनकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने हँस कर देवताओं से कहा- देवों, आप लोगों को सम्भवत: यह बात नहीं मालूम है कि मरने के समय प्राणी को कितना कष्ट होता है। असह्य पीड़ा के साथ उसके प्राण निकलते हैं। अन्त में व्यक्ति मूर्च्छित हो जाता है। अत: कोई मरना नहीं चाहता। सभी लोग चिरकाल तक जीने की लालसा पाले हुए हैं। जीवों को अपना शरीर इतना प्रिय है कि यदि साक्षात् नारायण भी याचक बनकर उसकी याचना करें तो कोई भी उसे देने के लिये तैयार न होगा।

देह तो चाहे सूकर कूकर ही क्यों न हो, वृद्धावस्था से जर्जरित तथा रोगों से ग्रस्त ही क्यों न हो, कोई भी जीवित रहने की इच्छावाला पुरुष स्वेच्छा से अचेतन करनेवाली, शरीर से प्राणों को पृथक् बना देनेवाली मृत्यु को स्वीकार नहीं कर सकता। देवता लोग सोचने लगे- स्वार्थी का हृदय बहुत ही शंकित होता है। याचक का अंत:करण सदा डांवाडोल होता है। जिस समय यह माँगने को चलताहै, उसी समय वह मृत्यु को आलिंगन कर लेता है। प्राणहीन शव होकर मानापमान की कुछ भी चिंता न करके तब किसी के सम्मुख हाथ फैलाना पड़ता है। याचक मृतक से भी अधिक घृणास्पद, तृण से भी अधिक हलका और वेदनिंदक से भी अधिक नीच तथा क्रोध से भी अधिक अनादरणीय माना जाता है। जब अपना स्वार्थ सिद्ध करना होता है और अपने में पुरुषार्थ तथा शक्ति नहीं होती, तो स्वार्थी पुरुष धर्म का आश्रय लेते हैं।

दधीचि की बात सुनकर उन लोगों ने बड़ी विनम्र वाणी में कहा- ब्रह्मन्, आपका कथन सत्य है। किन्तु प्राणियों पर दया करनेवाले आप जैसे महान् व्यक्ति के लिये इस संसार में कौन-सी वस्तु अदेय है? भगवन्, नि:सन्देह मांगनेवाले स्वार्थी होते हैं। वे दाता की कठिनाई का विचार नहीं करते। यदि उनमें इतनी समझ होती तो मांगते ही क्यों? इसी प्रकार देनेवाला भी याचकों की विपत्ति नहीं जानता। अगर जानता तो उसके मुख से नहीं न निकलती। अर्थी तो दोषों को देखता नहीं। उसका लक्ष्य तो होता है अपने स्वार्थ की सिद्धि करना। यह सत्य है, अपनी-अपनी देह सभी को प्यारी होती है। प्राणों की रक्षा करनी चाहिये, किन्तु आप जैसे परोपकारी महापुरुष इसके अपवाद हैं। आपके मुख से ये बातें शोभा नहीं देती। परोपकारी पुरुषों के लिये तो संसार में कुछ अदेय वस्तु है ही नहीं। धर्म की, देवताओं की रक्षा करना तो महापुण्य का कार्य

है, परोपकारी पुरुष तो पशु पक्षियों के लिये प्राण दे देते हैं।

दधीचि ने कहा- देवताओं, मैंने आप लोगों के मुख से धर्म की बात सुनने के लिये ही आप की याचना की उपेक्षा की है। मैं अपने प्रिय शरीर को आप लोगों के लिये अभी छोड़े देता हूँ। क्योंकि एक दिन यह शरीर स्वयं ही मुझे छोड़नेवाला है। यह नश्वर है। देवशिरोमणियों, इस नाशवान् शरीर से यदि धर्म का संचय कर लिया जाय तो वह सबसे बढ़िया है।जो प्राणियों पर दया नहीं करता वह पेड़-पौधों से भी गया बीता है। अविनाशी धर्म इतना ही है और महापुरुषों ने इसी की उपासना की है। इस धर्म का सार यह है कि प्राणी दूसरे के सुख में सुख और दूसरे के दु:ख में दु:ख माने।

मोह उस वस्तु से करना चाहिये तो उचित है, जो नित्य हो शाश्वत हो। यह देह अनित्य है, क्षणभंगुर है, नाशवान है, एक न एक दिन अवश्य ही नाश हो जायगी। जब इसे अपने आप नाश होना ही है तो इसे परोपकार में क्यों न लगा दें। यदि इसी अनित्य देह से नित्य वस्तु की प्राप्ति हो जाय, तो ऐसे लाभप्रद व्यापार को कौन नहीं करना चाहेगा?

आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि व्यापार तो पशु पक्षी मनुष्य सभी में समान रूप से होते हैं। मनुष्यों में यही एक विशेषता है, वह इस अनित्य शरीर से जीवों पर दया करते हुए धर्म और यश का उपार्जन कर सकता है। जिसने यह सब नहीं किया, अपनी कीर्ति को चिरस्थायी नहीं बनाया वह तो पशुओं के समान है। सब प्राणियों से अधिक निन्दनीय और शोचनीय है। मनुष्य में धर्म ही पशुओं से विशेष है। धर्महीन पुरुष पुच्छ विषाणहीन पशु ही है। दूसरों के दु:ख में दु:खी होना और दूसरों के सुख में सुखी होना। धन आज तक किसी का हुआ है? आज जिस रूपये को आप अपना कह रहे हैं वही दूसरे के पास चला जाता है। इसप्रकार कितने लोग धन को मेरा-मेरा कहकर मर गये, किन्तु धन किसी के साथ नहीं गया। वह किसीका भी नहीं हुआ फिर धन में सुख होने की बात ही नहीं। जो पुरुष इन दूसरों के ही भोग्य तथा क्षणभंगुर जन धन और शरीरादि से दूसरों का उपकार नहीं करता, वह जीता हुआ मृतक तुल्य है।

परम धर्म है जिही दुखी परदुखमहँ होनों। दया धर्मते हीन व्यर्थ जीवनकूँ खोनों।।
क्षणभंगुर नित नासयुत, व्यर्थ मोह धन गेहमहँ। च्यौं न बितावैं समयकूँ, परकारजे नेंहमहँ।।
स्वेच्छातें नहिँ जीव देह अपनीकूँ त्यागे। पापी, रोगी मूढ़, देह सबकूँ प्रिय लागे।।
सहें दुसह दुख किन्तु मृत्यु तोऊ भयकारी। च्यों तुम माँगो देव। देहकी अस्थि हमारी।।
बोले सुर स्वारथ सहित, साधु सदा परहित निरत। दुखिचत देव सब आप प्रभु, दुखियनि दुख मेटत सतत।।

देवतागण महामुनि दधीचि से कह रहे हैं- ब्रह्मन्। जिनके शुभ कर्मों की पुण्यश्लोक पुरुष भी प्रशंसा करते है तथा जो सम्पूर्ण प्राणियों पर सदा अनुकम्पा किया करते हैं, ऐसे आप जैसे महापुरुष किस वस्तु का त्याग नहीं कर सकते हैं। परोपकारियों के लिये कौनसी वस्तु अदेय हैं? यह संसार तो स्वार्थी है, यह दूसरों के संकट को नहीं पहिचानता कि अपनी प्रिय वस्तु देने में कितना कष्ट होगा और यदि दूसरे के कष्ट को लोग पहिचानते, तो माँगनेवाला दूसरों से माँगता ही क्यों? और समर्थ होने पर माँगने वाले से कोई निषेध ही क्यों करता?

जिनको व्रत है सतत दया जीवनि पै करिबो। उनकूँ एक समान जगतमहँ जीवो मरिबो।।
परकारज हित हर्षि साधु प्राननिकूँ देवें। दाता देहिँ अनित्य नित्य बदलमेहँ लेवें।।
कहें सन्तजन जगतमहँ, एक त्याग श्रेय है। पर उपकारीके लिये, नहिँ कछु वस्तु अदेय है।।
हाड़ मांसके बने देहमें ममता सबकूँ। चाहे सब हों दुखी सदा सुख होवे हमकूँ।।
परउपकारी त्यागि देहिँ सरबसुकी ममता। देहिँ देहको दान रखें सबईमहँ समता।।

हँसि दधीचि मुनि कहें धर्मको मर्म जताये। ताहीतें अस व्यंग देवगन वचन सुनायो।।
विषयनितें नहिँ मोह नहीं है ममता तनकी। लगी रहे निव वृत्ति ब्रह्ममहँ मेरे मनकी।।
इक दिन छूटे अवसि, नाशवान् यह है अनित। च्यौं न तजूँ फिरि स्वत:, तन तुम्हरे हितके निमित।।

महामुनि दधीचि देवताओं से बोले- हे देवताओं, आप लोगों के प्रति यह बात मैंने धर्म सुनने की इच्छा से कह दी थी। यह मेरा शरीर एक दिन तो अवश्य छूटेगा, अत: इसे परोपकार के निमित्त आज ही छोड़ देता हूँ।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, महर्षि दधीचि ने ऐसा निश्चय करके अपने को परब्रह्म परमात्मा में लीन कर अपना स्थूल शरीर छोड़ दिया। जिस जीवन में शरीर का मोह है वह जीवन मरण के तुल्य है। जो मरण परोपकार के निमित्त है, वह जीवन से भी बढ़कर महान जीवन है।

सुनि मुनिको उपदेश देवता अति हरषें। बजें दुदुंभी गगन पुष्प सुर-तरुके बरषें।।
मुनि पुनि इच्छा करी तीर्थ मैंने नहिँ कीन्हें। तुरत तीर्थ तहँ सुरनि बुलाये सब मुनि चीन्हें।।
न्हाइ धोय निश्चिन्त ह्वै, सर्व तीर्थ करि भक्तितें। बैठे तनु त्यागन निमित, तप संयमकी शक्तितें।।

विश्वकर्मा ने उनकी हड्डियों से वज्र का निर्माण कर इन्द्र को दे दिया। उस वज्र में भगवान का तेज भी समाहित था। उसे पाकर इन्द्र परम तेजस्वी हो गये।

हरिको प्रविश्यो तेज सुरनि सँग मुदित भये अति। ऐरावत पै चढ़े सुशोभित होयँ स्वर्गपति।।
पर उपकारीकूँ नहीं, तनिकहुँ तनमहँ राग है। धनि दधीचि मुनि धन्य, धन्य उनको त्याग है।।

हाथ में वज्र धारण कर इन्द्र ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हुए। उनके मन में युद्ध का उत्साह भरा हुआ था। वे वृत्रासुर पर आक्रमण के लिये चल पड़े। उनके पीछे-पीछे देवसेना भी हर्षोल्लास करती हुई चल रही थी। वृत्रासुर ने जब इन्द्र के आक्रमण की बात सुनी तो वह भी नमुचि, शम्बर आदि प्रधान-प्रधान सेनापतियों के साथ युद्ध के लिये आगे बढ़ा। वैवस्वत मन्वन्तर के प्रथम चतुर्युगीन त्रेतायुग के प्रारम्भ में नदी के तट पर भीषण देवासुर-संग्राम हुआ।

दूसरों की धरोहर अपने समीप में रखना, बैठे ठाले की विपत्ति सिर पर ले लेना है। यदि कोई विश्वास करके हमारे पास रख गया तो, रात्रि दिन उसकी चिन्ता बनी रहती है। यदि वह नष्ट हो गई, मन में लोभ आ गया, तो मरकर नरक में जाना पड़ता है और बिना दिये मर गये तो उसे व्यक्ति के सम्बन्धी बनकर दूसरे जन्म में ऋण चुकाना पड़ता है। इस प्रकार किसी वस्तु को अपने समीप रखना बड़ी विपत्ति का कार्य है। एक बार देवासुर संग्राम हुआ, देवताओं की विजय हुई। उनके पास दिव्य अस्त्र-शस्त्र थे। विजय के बाद वे सोचने लगे यदि इन्हें स्वर्ग में रखते हैं तो उनका पता लगाकर दैत्य दानव उन्हें चुरा ले जायँगे या तो नष्ट कर देंगे या उन्हींसे हमें पराजित कर देंगे। अत: इनको कहीं सुरक्षित स्थान में रखें ऐसे पुरुष के पास जो धर्मात्मा, सत्यवादी, तपस्वी, तेजस्वी हो। एकाएक उन्हें महामुनि दधीचि का स्मरण आया दधीचि ही ऐसे व्यक्ति हैं जो भूल में स्वप्न में भी असत्य नहीं बोलते, सदा तप साधन में निरत रहते हैं। यह निर्णय कर सभी देवता अपने अस्त्रोंको लेकर दधीचि मुनि के आश्रम पर पहुँचे। इन्द्र के साथ वे रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, यम, इन्द्र, वरुण, कुबेर, वायु अग्नि आदि देवता सभी पहुँचे और दधीचि मुनि की स्तुति की और कहा- हे ब्रह्मन, हमने अपने शत्रु असुरों को अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के प्रभाव से पराजित कर दिया है पर हमें चिन्ता हैं इन शस्त्रोंकी सुरक्षा के लिये। दधीचि बोले- अपने अस्त्रोंको स्वर्गमें गुप्त स्थान में रखकर उनकी सावधानी से रक्षा करो। देवता बोले- ब्रह्मन, हमारे शत्रु असुर बड़े मायावी हैं, जब उन्हें मालूम पड़ जाएगा तो वे चुरा लेंगे नष्ट करके तेजहीन कर देंगे। हम यह चाहते हैं कि यह अस्त्र-शस्त्र कुछ काल के लिये

आप आपके आश्रम में सुरक्षित रखे। आपकी तपस्या के प्रभाव से कोई दैत्य दानव, यक्ष, राक्षस, असुर यहाँ नहीं आयेंगे अत: हमारे यह अस्त्र आपके पास धरोहर के रूप मे रहेंगे। दधीचि मुनिने स्वीकृति दी और उनकी पत्नी गभस्तिनी बोली- स्वामी आप यहाँ बैठे ठाले बिना सिर पर विपत्ति क्यों मोल ले रहे है? मुनिने कहा- मैं असुरों से बैर थोड़े ही कर रहा हूँ, दु:खमें देवताओं की सहायता कर रहा हूँ। हमें किसीसे क्या लेना-देना जब देवता आकर अपने अस्त्र माँगेंगे तो उन्हें दे देंगे। गभस्तिनी बोली- दूसरों की वस्तुओं में ममत्व करना उचित नहीं। परोपकार तो सज्जनों का भूषण है किन्तु किसीका धरोहर रखना यह परोपकार नहीं है। मेरी सम्मति नहीं है कि आप इन अस्त्रों को यहाँ रखे। दधीचि मुनि बोले- मैंने इन देवताओंको वचन दे दिया है अब यदि नहीं रखूँगा तो झूठा बनूँगा। साधु पुरुष जिसे जो वचन देते हैं उसका पालन प्राण देकर भी करते हैं। देवता अपने अस्त्र-शस्त्र रखकर प्रसन्न हो स्वर्गको चले गये। इस प्रकार अस्त्रोंको रखे-रखे देवताओं के हजारों वर्ष बीत गये पर देवता अस्त्र लेने नहीं आये।

तब अंत में मुनि ने उन दिव्य अस्त्रों को मन्त्रों द्वारा जल में धोया। जितनी भी दैविक शक्ति थी, उसे खींच कर मुनि ने जल में स्थापित किया और वे उस जल को पी गये। उस परम पवित्र तेजयुक्त जल को पीकर मुनि पचा गये। वह तेज उनकी अस्थियों में व्याप्त हो गया। उन अस्त्रोंका तेज निकल जानेसे शक्तिहीन होकर कालान्तर में नष्ट हो गये।

मुनि की पत्नी गभस्तिनी आश्रम में लौटकर आयी तो आश्रम श्रीहीन प्रतीत हुआ। वहाँ के पशु-पक्षी उदास थे हरिण आदि रो रहे थे, अग्निदेव तेजहीन से प्रतीत हो रहे थे, यह सब देखकर गभस्तिनी को बड़ा आश्चर्य हुआ उसने अपने पति को वहां नहीं पाकर अग्निसे पूछा- हे अग्निदेव, तुम सबके शुभाशुभ के साक्षी हो, सब बातें जानते हो, मेरे पति कहाँ चले गये? तुम मुझे सत्य-सत्य सब समाचार सुना दो। पतिव्रता के प्रभाव से अग्निदेव चुप न रह सके, वे मूर्तिमान् होकर बोले- देवि। तुम्हारे पति ने अक्षयलोक को प्राप्त किया है, उन्होंने परोपकार के लिये देवताओं के हितार्थ हँसते-हँसते प्राणों का उत्सर्ग किया है। संसार में उनका यह परोपकारमय त्याग सर्वश्रेष्ठ समझा जायगा। तुम्हारे पति शरीर विहीन होने पर भी अमर हो गये हैं। गभस्तिनी बोली- संसार में वे लोग धन्य-धन्य हैं जो गो, ब्राह्मण तथा देवताओं के लिये अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर देते हैं। गभस्तिनी अपने पति की चिता के साथ सती हो गयी। गभस्तिनी के पीछे अपना सद्य जात प्रसूत शिशु को छोड़ गयी और कहने लगी- यह बालक अनाथ है, मातृहीन है, इसके कोई कुटुम्बी-सगे सम्बन्धी नहीं है। अत: वृक्षोंके अधिष्ठातृ देवताओं। तुम्हीं इस अनाथ बालक की रक्षा करना। मैं इस अबोध बालक को तुम्हारे भाग्य पर छोड़कर अपने पति का अनुगमन कर रही हूँ। गभस्तिनी ने उस सद्य:प्रसूत शिशुको एक अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के कोटर में रख दिया और वह अपने पति के साथ सती हो गयी। चन्द्रमा ने अपनी अमृतमयी किरणों से उस शिशु को जिलाया। कुछ दिनों में बालक बड़ा हो गया, वह पीपल के ही नीचे बैठता रहता और पीपल के ही फलों को खाकर निर्वाह करता। अत: संसार में वह तेजस्वी पिप्लाद नाम का महर्षि हुआ। पिप्पलाद की कृपा से ही वहाँ पिप्पलेश्वर शिव की स्थापना हुई और तभी से वह गंगातट पर परम पावन तीर्थ बन गया।

६) वृत्रासुर का देवताओं से युद्ध और वृत्रासुर का वध

अस्थि दधीचि बज्र बनवाया। ब्रज लेइ मधवा तब धाया। वृत्रासुर पर तुरत चलाया। मारि दैत्य तब धरनि गिराया।।

देवताओं और दैत्योंके संग्राम के बीच दोनों पक्ष के योद्धाओं का मन बढ़ा हुआ था, उत्साह समृद्ध था अत: वे परस्पर एक-दूसरे पर विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार करने लगे। दोनों का यह देवासुर संग्राम प्रथम चतुर्युगी के त्रेता युग के मध्य में नर्मदा नदी के तट पर हुआ। भगवान की शक्ति पाकर देवताओं का बल बढ़ गया था अत: उन लोगों ने अपने

युद्धकौशल से असुरों के सारे अस्त्र-शस्त्रों को काट गिराया, निष्फल कर दिया। आयुधों के क्षीण होने पर दैत्य-सेना ने पत्थरों, बड़ी-बड़ी चट्टानों और वृक्षों से प्रहार प्रारम्भ किया किन्तु देव-सेना ने उन्हें भी चूर-चूर कर धूल में मिला दिया।

देवासुर संग्राम अति, भयो भूमि पर भयंकर। सुरसेना विजयी भई, भगे असुर तजिकें समर।।

ऐसी स्थिति में दैत्य-सेना, अपने सेनापतियों के साथ युद्ध-भूमि से भाग खड़ी हुई। भागती हुई दैत्य-सेना को ललकारते हुए वृत्रासुर ने कहा- अरे दैत्यों, कायरों की भाँति क्यों भाग रहे हो? सुनो-सुनो, संसार में जो पैदा होता है, वह मरता भी है। मृत्यु से बचने का कोई उपाय सृष्टि में नहीं है। जब मौत दुर्निवार है तब ऐसे ढंग से मरो कि उससे यश भी मिले। इस संसार में दो प्रकार की मृत्यु प्रशंसनीय मानी गई है- या तो योग द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से प्राण निकाल कर शरीर का परित्याग करने से अथवा युद्ध-भूमि में सन्मुख होकर लड़ते हुए मरने से। अत: इस शुभ अवसर को छोड़ो मत। युद्ध में डटे रहो। जिस मृत्यु से इस लोक में यश तथा परलोक में भी सद्गति प्राप्त हो तो ऐसी सुन्दर मृत्यु को कौन वरण नहीं करेगा।

असुरनि भागत देखि वृत्र बोल्यो वर बानी। अरे, असुरगन समर त्यागि का मनमहँ ठानी।।
जाओगे भगि कहाँ मृत्यु तौ सङ्ग इ आवै। बिना कालके मृत्यु कहूँ ढिँग नहिँ आवे।।
जो जगमहँ पैदा भयो, सो निश्चय मरेंगो। तो फिर मरिके वीरवर, च्यों न अमर यश करेंगो।।

ब्रह्माजी चाहें कि पैदा होनेवाले की मृत्यु न हो तो वे भी इसे रोक नहीं सकते। इन चौदह भुवनों के रचयिता ब्रह्माजी भी अपनी आयु के सौ वर्ष पूरे करके बदल जाते हैं जब मृत्यु निश्चित ही है, अवश्यंभावी है, किसी प्रकार उसका प्रतीकार है ही नहीं, तब फिर उससे डरने से लाभ क्या? तब तो ऐसा अवसर खोजते रहना चाहिए कि एक पन्थ दो काज हो जायँ। ऐसी मृत्यु वाँछा रखनी चाहिए कि जिससे इस लोक में सुयश और परलोक में सद्गति प्राप्त हो। शूरवीर के लिये, युद्ध में बढ़कर सम्मुख लड़कर मरने के अतिरिक्त दूसरी कोई श्रेष्ठ मृत्यु है ही नहीं। नीच पुरुष ही घर में रहकर खाट पर पड़े-पड़े सड़कर मरते हैं। संसार में दो ही मृत्युएँ श्रेष्ठ बताई गई हैं या तो योग के द्वारा ब्रह्म चिन्तन करते हुए दशमद्वार में शरीर त्याग किया जाय अथवा सम्मुख समर में सेना का अग्रणी बनकर वक्षस्थल में शत्रु प्रहार से प्राणों का उत्क्रमण हो। रोग शैया पर पड़े-पड़े खों-खों करते हुए, घरवालों को दु:ख देते हुए, मल-मूत्र से लिपटे हुए परिवार वालों से घिरकर कष्ट से मरना यह सबसे निकृष्ट मृत्यु है। समर में शस्त्रों की प्रधानता नहीं होती। साहस ही प्रधान समझा जाता है। प्राणों के मोह से कायरों की भाँति रण छोड़कर भागना उचित नहीं। काल ही जय पराजय, बली अबली होने में प्रधान कारण है। आज का काल देवताओं के अनुकूल था, असुरों के प्रतिकूल था, इसीलिये असुर पराजित होकर भाग खड़े हुए। भागती हुई असुर सेना को देवतागण खदेड़ने लगे। इन्द्र अपने वज्र से भयभीत हुए असुरों का संहार करने लगे। वे रण से भागनेवाले दैत्यों के पीछे प्रहार करने लगे।

शुकदेव बोले- राजन्, दैत्य सेना भय से त्रस्त होकर भाग रही थी। उस पर वृत्रासुर के धर्म-वचनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ठीक भी है, जब प्राणों पर संकट आ गया हो तो कौन किसका धर्मोपदेश सुनेगा।

वृत्रासुर ने देखा दैत्य-सेना भाग रही है। देव-सेना उसे खदेड़ कर मार रही है। यह देखकर उसे क्रोध आ गया। उसने देवसेना को बलपूर्वक आगे बढ़ने से रोक दिया और बड़े जोर से डाँट कर ललकारते हुए कहा- अरे क्षुद्र देवताओं, भयभीत होकर भागती हुई असुरसेना पर पीछे से प्रहार करने से क्या लाभ? भागते हुए लोगों पर प्रहार करने से तुम्हें न तो यश मिलेगा और न स्वर्ग ही। यदि तुम लोगों में हिम्मत हो तो मेरे सामने आ जाओ। सोये हुओं पर, प्रमत्तों पर, उन्मत्तों पर, स्त्रियों पर, युद्ध से अनभिज्ञों पर, भागते हुओं पर, शरण में आये हुओं पर और वाहन शस्त्र से रहित सैनिकों पर प्रहार करना पाप बताया गया है।

असुरनिकूँ यों वृत्र धर्मयुत वचन सुनाये। किन्तु समरतें भगे एकहू नहिँ मन भाये।।
असुर प्राण लै भगे देवता तिन्हें खदेरें। लडे भिड़े नहिँ तऊ जाइ सुर पुनि पुनि घेरें।।
वृत्रासुर अन्याय लखि, कहे इन्द्रतें कटु वचन। अरे अधरमी धर्म तजि, करे काहि यह कपट रन।।

सम्मुख आये हुये देवराज इंद्र से वृत्रासुर कह रहा है- बड़े सौभाग्य की बात है जो आज तुम मेरे सम्मुख उपस्थित तो हुए? तू मेरे भाई को मारनेवाला ब्रह्महत्यारा और गुरु द्रोही है। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आज मैं तुझ अपने शत्रु के पाषाण सदृश हृदय को अपने त्रिशूल से विदीर्ण करके भ्रातृऋण से उऋण हो जाऊँगा। हे महानीच। अब तू अधिक जीवित नहीं रह सकेगा।

इन्द्र ने देखा कि यह असुर तो प्रलयानल के समान मेरी सेना का संहार कर रहा है, यदि वह इसी प्रकार युद्ध करता रहा, तब तो मेरी सेना में एक भी सैनिक शेष न रहेगा। अत: उस असुर को मारने के लिये ऐरावत पर बैठे ही बैठे इन्द्र ने एक अत्यन्त बलवती कभी व्यर्थ न होनेवाली प्रचंड गदा दूर से ही फेंकी। इन्द्र समझते थे, इस अमोघ गदा के लगते ही वृत्रासुर मर जायेगा, किंतु उस दुर्मद असुर ने उस गदा को बायें हाथ से खेल-खेल में उसी प्रकार पकड़ लिया जैसे बच्चे गेहूँ जौ के फूँस को पकड़ लेते हैं।

है पुरुषारथ तेज ओज बल तोमें सुरपति। तो करि मोतें युद्ध करूँ तेरी अब दुर्गति।।
मेरे सम्मुख आउ समरको मजा चखाऊँ। अबई तोकूँ मारि मृत्युके सदन पठाऊँ।।
यों कहिके गर्जन करी, सुनि रव सबरे सुर डरे। वज्राहतके सरिस ह्वै, देव अवनि पर गिर परे।।
असुर पराक्रम निरखि इन्द्रने गदा चलाई। तुरत वृत्रने छीनि इन्द्र गजमाहिँ घुमाई।।
ऐरावत सिर लगी फट्यो मुँह अति घबरायो। तिलमिलायके हट्यो बहुत सो रुधिर बहायो।।
सम्हरि सुरपतिकूँ लख्यो, पुनि प्रहार कीयो नहीं। सम्हरि समर सम्मुख भयो, वृत्र बात कड़वी कहीं।।

परीक्षित्, वृत्रासुर बड़े विशाल शरीर का था। वह अपने शरीर से ही देवताओं को भय-त्रस्त करने लगा फिर उसने बड़े जोर से सिंह-गर्जना की, जिसे सुनकर हजारों देवता मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। मानो उन पर आकाश से बिजली गिर पड़ी हो। जैसे मदोन्मत्त गजराज नरकट का वन रौंद डालता है, वैसे ही रणबाँकुरा वृत्रासुर हाथ में त्रिशूल लेकर भय के मारे नेत्र बन्द कर गिरी हुई देव-सेना को पैरों से कुचलने लगा। उसके वेग से धरती डगमगाने लगी।

यह भीषण दृश्य देखकर देवराज इन्द्र क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने एक विशाल गदा फेंककर वृत्रासुर पर प्रहार किया। वृत्रासुर ने वेग से सनसनाती आती हुई गदा को देखा। उसने खेल-ही-खेल में उसे बाँये हाथ से पकड़ लिया। राजन्, महान पराक्रमी वृत्रासुर ने क्रुद्ध होकर उसी गदा से इन्द्र के वाहन ऐरावत हाथी के गण्डस्थल पर गरजते हुए प्रहार किया। गदा के भीषण प्रहार से ऐरावत को चक्कर आ गया। वह मुख से खून वमन करता हुआ, चिल्लाता हुआ सात धनुष (अर्थात् २८ हाथ) पीछे हट गया। किन्तु इन्द्र ने अपने हाथ में अमृत लेकर ऐरावत के सिर पर मल दिया। इससे उसकी सारी व्यथा समाप्त हो गई और वह पुन: युद्ध भूमि में आ डटा। इन्द्र की इस अवसाद की दशा में वृत्रासुर ने प्रहार रोक कर थोड़ी देर के लिये युद्ध बन्द कर दिया। असुर होकर भी वह धर्म के अनुसार युद्ध करनेवाला था फिर जब देखा कि इन्द्र वज्र लेकर युद्ध करने के लिये सामने आ गये हैं, तब उसने उन्हें ललकारते हुए कहा- अरे इन्द्र, तू ब्रह्मघाती और गुरुद्रोही है। तुझे लज्जा नहीं लगती, तेरे इस कर्म की राक्षस तक निन्दा करते हैं, फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या? बड़ी प्रसन्नता की बात है कि तुम्हारे जैसा शत्रु आज मेरे सामने आ गया है। तुम ब्रह्मघाती हो, गुरुघाती हो और हो भ्रातृघाती भी तूँ ने मेरे भाई का वध किया है। अब मैं तेरी छाती को त्रिशूल से विदीर्ण कर अपने भाई के वध का बदला चुकाऊँगा। तुम्हारे अनुगामी देवगण

भी जो मुझ पर प्रहार कर रहे हैं, उनके सिरों को भी काट कर भैरव को बलि चढ़ा दूँगा। अरे इन्द्र, तू खड़ा-खड़ा क्या देख रहा है? मैं तेरे सामने खड़ा हूँ, तेर शत्रु हूँ। अब तू अपने अमोघ वज्र से मुझ पर प्रहार क्यों नहीं कर रह है? तू यह मत सोच कि गदा की भाँति तेरा यह वज्र भी निष्फल हो जायेगा। इन्द्र, तेरा यह वज्र श्रीहरि के तेज और दधीचि ऋषि की तपस्या से सर्वथा अकाट्य बन गया है। भगवान विष्णु ने मुझे मारने के लिये तुझे आज्ञा भी दी है अत: अब तुम उसी वज्र से मुझे मार डाल। मैं यह जानता और मानता हूँ कि जिधर भगवान श्रीहरि रहते हैं उधर ही विजय, लक्ष्मी और सारे गुण निवास करते हैं।

देवराज, तू मेरे ऊपर वज्र से प्रहार कर। मैं भगवान संकर्षण के चरणकमलों में चित्त एकाग्र कर अपने प्राणों का परित्याग करता हूँ, जिससे मुझे मुनिजनों की भाँति दिव्य गति की प्राप्ति हो। करो, मुझ पर प्रहार करो।

हे शतक्रतु। तुम भय मत करो, सन्देह को स्थान मत दो, मेरे ऊपर वज्र का प्रहार करो, मैं तो भगवान का भक्त हूँ, जीत तुम्हारी ही होगी, विजय वधू भी तुम्हारे ही कण्ठ में जयमाल पहिनावेगी, विजय श्री तुम्हारा ही वरण करेगी।

वृत्र कहें रे इन्द्र ब्रह्म हत्यारे पापी। अब ई मारूँ तोइ असुर कुलके सन्तापी।।
अथवा मैं दिव्य अस्त्रतें यदि मर जाऊँ। तो हरि सुमिरन करत मोक्ष पदवीकूँ पाऊँ।।
भक्त शिरोमणि असुरवर, ध्यान मग्न यों कहि भये। श्रीहरिने तब वृत्रकूँ, समरमाहिँ दर्शन दये।।

वृत्रासुर ने इंद्र को कहा- यह जय पराजय तो दैव वश है। हम तुम दोनों तो जुआ खेल रहे हैं। यह युद्ध भूमि चौपड़ है अस्त्र पासे है न जाने किसकी विजय हो। जो मनुष्य जय, पराजय को अपनी मानता है, वह मूर्ख है। जिस प्रकार कठपुतली नट के नचाने से नाचती है। उसी प्रकार यह विश्व उस परमात्मा रूपी नट के नचाने से नाचता है। यह सब कुछ परमात्माधीन समझो। जो परमात्मा के इस तत्व को नहीं जानता है वही अपने को कर्त्ता भोक्ता मानता है। हे हरे। मैं मरकर भी आपके चरणारविन्दों के आश्रय में रहनेवाले दासों का भी अनुदास होऊँ। मेरा मन आप प्राणनाथ का ही चिन्तन करे, मेरी वाणी आपके ही गुणों का गान करे और मेरी काया आपके ही कैकर्य सम्बन्धी कार्यों को करे।

हे प्रभो, मेरी प्रार्थना है कि मैं अगले जन्म में भी आप के चरणतलों के आश्रित सेवकों का सेवक बनूँ। मेरा मन प्राण-पति आपके गुणों का स्मरण करता रहे। मेरी वाणी आपके गुणों का गान करे और मेरा शरीर सर्वदा आपकी सेवा करता रहे। हे मेरे समग्र प्रेम के आश्रय प्रभो, मैं आप को छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमण्डल का साम्राज्य, रसातल का एकच्छत्र राज्य, योग की अणिमा आदि सिद्धियाँ, यहाँ तक कि मोक्ष भी नहीं चाहता हूँ। संसार की सम्पत्ति भगवान अपने भक्तको नहीं देते। त्रिलोकीकी सम्पत्ति भी मांगने पर दे देते हैं क्योंकि जहाँ सम्पत्ति आती हैं वहीं उसके साथ विवेक, उद्वेग, चिंता, मद, कलह, दु:ख और संप्रयास अपने आप ही आ जाते हैं। वृत्रासुर ने कहा- मुझे स्वर्ग भी नहीं चाहिये, ब्रह्मका पद भी नहीं चाहिये, न ही सार्वभौम राज्य चाहिए, न ही रसाधिपत्य चाहिये, न कोई सिद्धि और न कोई मोक्ष। मैं आपको छोड़कर कुछ नहीं चाहता।

जो धन सम्पत्ति हमें विषयों की ओर ले जाकर प्रभु से हटाती है, उसमें एक नहीं अनेक दोष हैं। कहना चाहिये दोष ही दोष उसमें भरे हैं। धन सम्पत्ति से सदा चित्त में उद्‌वेग बना रहता है। धनी सदा उद्‌विग्न रहते हैं उन्हें मानसिक शान्ति नहीं रहती। मानसिक पीड़ा और उद्वेग का कारण ये सांसारिक सम्पत्तियाँ ही हैं।

भोगों की प्राप्ति में एक सबसे बड़ा दोष यह है, कि भोग सामग्रियों की प्रचुरता में अभिमान बहुत बढ़ जाता है। ज्ञान ढक जाता है, अज्ञान आकर अन्त:करण में अड्डा जमा लेता है। धन के मद में उन्मत्त हुआ ऐश्वर्यशाली पुरुष समझता हैं मैं सब कुछ कर सकता हूँ, मैं ईश्वर हूँ, मैं भोगी हूँ, मैं धनी हूँ। मेरे समान कौन है, मैंने अमुक शत्रु को मारा, उसे ललकारा, इसे पछाड़ा, इतने बड़े-बड़े यज्ञ किये, इतने भारी-भारी दान दिये। मैं इतनों का पालन करता हूँ, इतने व्यक्ति मेरे आश्रय में

रहकर आजीविका प्राप्त कर रहे हैं। इस प्रकार वह अनेक मिथ्याभिमान करके भगवान् से दूर हटता जाता है।

जितने भी बुरे व्यसन होते हैं, इस धन के ही कारण होते हैं। धनी लोग ही धन के मद में भरकर बड़े-बड़े पाप करते हैं। जुआ खेलते हैं, व्यभिचार करते हैं, सुरापान के व्यसनी बन जाते हैं, मादक वस्तुओं का सेवन करते हैं। धन के लिये नित्य मानसिक श्रम करते रहते हैं, उसीकी रात-दिन चिंता करते रहते है।

जैसे पक्षियों के पंखविहीन बच्चे अपनी माँ की बाट को जोहते रहते हैं; जैसे भूख से व्याकुल छोटे बछड़े अपनी माँ का दूध पीने के लिये व्याकुल रहते हैं; जैसे विरहिणी प्रियतमा पत्नी परदेस गये हुए प्रिय से मिलने के लिये उत्कण्ठित रहती है- वैसे ही कमलनयन। मेरा मन आपके दर्शन के लिये छटपटा रहा है।

प्रभो, मैं मुक्ति नहीं चाहता। मेरे कर्मों के फलस्वरूप मुझे बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्कर में भटकना पड़े, इसकी परवाह भी मुझे नहीं है। परन्तु मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ, जिस-जिस योनि में जन्मू, वहाँ-वहाँ भगवान के प्रिय भक्तों से मेरी मैत्री बनी रहे। स्वामिन्, मैं केवल यहीं चाहता हूँ कि जो लोग आपकी माया से देह-गेह और स्त्री-पुत्र आदि में आसक्तचित्तवाले हैं, उनके साथ मेरा कभी किसी प्रकार का सम्बन्ध न हो।

नहों चाह है स्वर्ग ब्रह्मदहू नहिँ चाहूँ। भूमि रसातल राज न चाहूँ ऋषि बनि जाऊँ।।
नहीं सिद्धि सब पाइ सिद्ध बनि जगत लुभाऊँ। वांच्छा चितमहँ नहीं मुक्तिकी पदवी पाऊँ।।
है मेरे मन लालसा, चरन कमल चितमहँ धरूँ। सेवक बनिके सदाईं, नित सेवा तुम्हरी करूँ।।

हे प्रभो, मैं तो केवल आपको चाहता हूँ। आपको छोड़कर मुझे स्वर्ग, ब्रह्मपद सार्वभौम साम्राज्य (रसातल का आधिपत्य) योगसिद्धि अथवा मोक्ष आदि किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं है।

न किया जिसने भजन राम का वो नर कैसा। न बसा जिसमें सुन्दर श्याम तो वो घर कैसा।।
हरितें हेतु हटाइ विषय जग माहिँ फँसावें। हरि बिनु जगके भोग मोइ तनिकहुँ नहिँ भावें।।
मूरति मनमहँ मधुर मचलि माधवकी जावे। रसना निसि दिन सुखद गीत गोविँदको गावे।।
दया सिन्धु द्वारे खड़ो, दरस दासकूँ दीजियो। कलपूँ कबतें कृपानिधि, कृष्ण कृपा अब कीजिये।।
सुत कलत्र धन धाममहँ, जिनको मन आसक्त अति। कबहूँ मोकूँ भूमि प्रभु, तिनको दैयो संग मति।।

भगवान की स्तुति करते हुए वृत्रासुर बोले- हे नाथ। प्रारब्ध वश यदि संसार चक्र में मुझे घूमना पड़े तो जन्म जन्मों में आप उत्तम श्लोक प्रभु में प्रीति करनेवाले भगवद् भक्तों से ही मेरी प्रीति हुआ करे, किन्तु जो पुत्र कलत्र और गृह आदि में आपकी मोहिनी माया से मोहित होकर, अत्यन्त आसक्त चित्तवाले बने हुए हैं, ऐसे संसारी मनुष्यों में मेरी प्रीति न हो।

सदा साधुको संग होहि मन अनत न जावे। कान कृष्णकी कथा सुनें रसना हरिं गावे।।
साधुनिमें ही रहूँ सीथ परसादी पाऊँ। पादोदक सिर धारि प्रेमतें चरन दबऊँ।।
प्रभु पूजामहँ निरत जे, कथा कीरतन करहिँ नित। तिनि हरि भक्तनिके चरन, महँ मेरो अति रमे चित।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार युद्ध से विरत होकर किंकर्तव्यविमूढ़ इन्द्र यह समझ ही नहीं पा रहे थे कि अब क्या करना चाहिये। उधर वृत्रासुर भगवान में अपने मन को लगाकर वरदान पर वरदान मांगे जा रहा था। उसका मन-मधुकर भगवान की रूपमाधुरी का छककर पान कर रहा था। उस समय उसे शरीर और संसार सब कुछ भूल गया था।

संसार के इतिहास में कहीं भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा कि इन्द्र जैसा प्रबल शत्रु हाथ में वज्र लेकर प्रहार करने के लिये खड़ा हो और प्रतियोद्धा भगवान के ध्यान में लीन होकर अपना अस्तित्व ही खोदे।

शुकदेव बोले- राजन्, वृत्रासुर रणभूमि में लड़ते-लड़ते अपना शरीर छोड़ना चाहता था क्योंकि उसके विचार से इन्द्र को जीतकर स्वर्ग प्राप्त करने की अपेक्षा मरकर भगवान को प्राप्त करना श्रेष्ठ था इसलिये जैसे प्रलय कालीन जल में कैटभासुर भगवान विष्णु पर चोट करने के लिये दौड़ा था, वैसे ही वह भी त्रिशूल उठा कर इन्द्र पर टूट पड़ा।

वीर वृत्रासुर ने प्रलयकाल की अग्नि की लपटों के समान अत्यन्त तीक्ष्ण त्रिशूल को घुमा कर बड़े वेग से इन्द्र पर चलाया और अत्यन्त क्रोध से गरजते हुए बोला- पापी इन्द्र, अब तूँ बच नहीं सकता। बड़े वेग से सनसनाते हुए अपनी ओर आते हुए त्रिशूल को देखकर भी इन्द्र अविचलित ही रहे, वे भयभीत नहीं हुए। उन्होंने अपने वज्र से त्रिशूल को काट दिया और साथ ही वासुकि नाग के समान वृत्र की विशाल दाहिनी भुजा को भी उड़ा दिया। वृत्रासुर कुपित हो उठा। उसने बाएँ हाथसे एक विशाल लौह दण्ड (परिघ) उठाया और उसे पटक दिया इन्द्र की ठोड़ी पर। साथ-ही-साथ उसी से उसने ऐरावत के मस्तक पर भी प्रहार किया, इन्द्र व्यथित हो उठे। उनके हाथ से वज्र भूमि पर गिर पड़ा। सब लोग वृत्रासुर की वीरता की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि इसने बाँए हाथ से ही इन्द्र को पराजित कर दिया, किन्तु इन्द्र पर आये हुए संकट को देखकर देवता, सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधर आदि हाहाकार करते हुए चिल्लाने लगे। वज्र इन्द्र के हाथ से छूट कर वृत्रासुर के पास ही जा गिरा था अत: लज्जित होकर इन्द्र ने उसे फिर नहीं उठाया। इस पर वृत्रासुर ने इन्द्र को ललकारते हुए कहा- इन्द्र, यह विषाद करने का समय नहीं है। उठाओ वज्र और करो शत्रु पर प्रहार।

संग्राम एक द्यूत की तरह है। इसमें जय या पराजय पहले से निश्चित नहीं हुआ करती। लड़नेवाले कभी जीतते और कभी हारते भी हैं। जीत तो एकमात्र भगवान की ही हुआ करती है। प्राणियों की जीत और हार का कारण एकमात्र काल है। जो इस बात से अनभिज्ञ हैं, वे ही प्राणियों को जीत और हार का कारण मानते हैं अत: यश-अपयश, जय-पराजय, सुख-दु:ख, जीवन-मरण- इनमें से किसी एक की इच्छा अथवा अनिच्छा न रखकर, सभी परिस्थितियों में समान भाव से रहना चाहिये। हर्ष-शोक के वशीभूत नहीं होना चाहिये। तुमने मेरा हाथ और अस्त्र काट कर एक प्रकार से मुझे परास्त कर दिया है फिर भी मैं तुम्हारे प्राण लेने के लिये यथाशक्ति प्रयास कर ही रहा हूँ। हे इन्द्र। जो आदि पुरुष प्रभु सर्वज्ञ हैं, सनातन हैं और इस जगत् की उत्पति स्थिति तथा लय करने में समर्थ हैं, उन श्रीहरि को छोड़कर अन्य देहाभिमानी युद्धोत्सुक आततायियों को सदा जय ही प्राप्त नहीं होती। कभी जीत जाते हैं कभी हार जाते हैं।

यदि पुरुषार्थ से ये अन्यथा किये जा सकते, तो संसार में कोई रोगी न होता, किसी का अपयश न होता, कोई मरता नहीं। स्वेच्छा से रोगों को, अपयश को, मृत्यु को, कौन चाहता है? किन्तु बिना चाहे भी प्राणियों को नाना रोग होते हैं। न चाहने पर भी ज्वर आ जाता है, सिर में पीड़ा होने लगती है। कोई भी अपना अपयश नहीं चाहता, सभी चाहते हैं, सर्वत्र हमारी प्रशंसा हो, सभी हमारा सत्कार करें, सबसे हम श्रेष्ठ समझे जायँ, किन्तु यश कितनों को मिलता है? बड़े-बड़े लोगों की अपकीर्ति फैल जाती है। जब काल विपरीत होता है तो तब रोग, शोक, जरा मृत्यु, अपयश आदि इच्छा के प्रतिकूल वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, जब वही काल अनुकूल होता है, तो इच्छानुसार यश, ऐश्वर्य, भोग, वैभव, आयु, लक्ष्मी और कीर्ति की प्राप्ति होती है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुष को प्रतिकूल वस्तुओं की प्राप्ति में न तो विषाद करना चाहिये न अनुकूल पदार्थों की प्राप्ति में फूलकर कुप्पा ही हो जाना चाहिये। सुख-दु:ख, यश अपयश, जय-पराजय, जीवन-मरण आदि में सर्वदा समान भाव से रहना चाहिये। युद्ध तो एक प्रकार का जुआ है, इसमें कभी किसी का दाव लग जाता है, कभी किसी का। कभी कोई हार जाता है, कभी कोई जीत जाता है।

इस्तुति करिके वृत्र उठ्यो सुरपति पै धायो। गर्जन तर्जन करी फेंकि तिरशूल चलायो।।

इन्द्र न विचलित भये बाहु निज रिपुकी काटौ। मार्‌यो अरिने परिघ इन्द्रकी ठोड़ी फाटी।।
वज्र हाथतें गिरि पर्‌यो, सुरपति लज्जित ह्वै रहें नहीं उठायो अस्त्र जब, वृत्र वचन तब प्रिय कहे।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, वृत्रासुर के इस प्रकार सत्य एवं निष्कपट वचनों को सुनकर इन्द्र ने वज्र उठा लिया और मुस्कराकर कहा- अहो दानवराज, सचमुच तुम सिद्ध पुरुष हो। तभी तो तुम्हारा धैर्य, निश्चय और भगवद्भाव इतना विलक्षण है। तुमने समस्त प्राणियों के सुहृद् आत्मस्वरूप जगदीश्वर की अनन्य भाव से भक्ति की है। वस्तुत: तुमने सबको मोह में डालनेवाली भगवान की माया को जीत लिया है। तुम माया से पार हो गये हो। तभी तो तुम असुरभाव का परित्याग कर महापुरुष बन गये हो। वृत्रासुर, असुर होने के नाते तुम रजोगुणी हो फिर भी विशुद्ध सत्त्वस्वरूप भगवान में तुम्हारी दृढ़ मति हो गई है अत: संसार के सारे भाव तुम्हें तुच्छ प्रतीत हो रहे हैं। शत्रु में कोई बढ़िया गुणहो तो उसकी बड़ाई करनी चाहिए।

गुण पर न रिझे मनुज है, तो भला पशु कौन है। निज शत्रु के गुणगान में भी, योग्य किसको मौन है।।

इन्द्र बोला- हे वृत्रासुर युद्ध में जहां प्राणों के लाले पड़े हैं वहाँ तुम इस प्रकार से भगवान से बातें कर रहे हो इतनी दृढ़ता से तुम्हारी मति प्रभु में लगी है। इसीसे लगता है कि तुम कोई महापुरुष, सिद्धपुरुष हो जो दुनियाँ के प्रपंच से ऊपर उठे हुए हो।

इन्द्र करो मत सोच वज्रकूँ फेरि उठाओ। सदा कौनकी भई विजय यह मोइ बताओ।।
यश अपयश जय अजय दु:ख सुख रहे सङ्गमहँ। रोग शोक भय हर्ष होहि नहिँ कवन अङ्गमहँ।।
युद्ध द्यूत क्रीड़ा सरिस, दोउनमहँ को कब थके। जय होवे या पराजय, निश्चय कोउ न कहि सके।।

वृत्रासुर के ज्ञानमय उपदेश को सुनकर देवराज इन्द्र कहने लगे- हे दानव, अवश्य ही तुम कोई सिद्ध हो, निश्चय ही तुमने सम्पूर्ण जीवों के आत्मा और सुहृद् स्वरूप जगदीश्वर श्रीहरि की आराधना की है। इसीलिये तुम्हारी ऐसी शुभ मति है।

अग्नि, अतिथि और गुरुजनों की तुमने निष्कपट भाव से आराधना की है। तुमने अपने शील सदाचार से पूर्वजन्मों में अवश्य ही प्रभु को प्रसन्न कर लिया होगा, तभी तो नीच तामस असुर योनि में आकर भी तुम्हारी ऐसी विशुद्ध बुद्धि बनी हुई है। भगवान इन चराचर प्राणियों के भीतर समान भाव से रम रहे हैं, वे ही सब की आत्मा है। प्राणिमात्र के सुहृद हैं, सखा हैं, हितैषी हैं, उन जगदात्मा श्रीहरि की ही उपासना का यह फल है कि रणांगन में भी आपकी बुद्धि कुंठित नहीं। हम अब तक यही सुना करते थे कि भगवान् की दैवी माया बड़ी दुस्तर है। बड़े-बड़े ज्ञानी भी इसके चक्कर में फँस जाते हैं। इस तीक्ष्ण धारावाली सरिता को हाथों द्वारा तैरकर किनारे पर पहुँचते-पहुँचते डूब जाते हैं, किन्तु मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ, कि आप इस विश्वमोहिनी माया को तर गये। आप इसे उपासना द्वारा पार कर गये। इन्द्र दृढ़ता के स्वर में बोले- बन्धुवर। देखिये, हम सत्वप्रधान देवता कहलाते हैं। किन्तु फिर भी माया के चक्कर में फँसे हुए हैं। भोग की वासनाओं में अन्धे होकर प्रकृति का अनुसरण कर रहे हैं, किन्तु तुम आसुरी योनि में जन्म लेकर भी आसुरी प्रकृति से निर्मुक्त बने हुए हो। तुम्हें संसार की माया ने स्पर्श तक नहीं किया। अवश्य ही तुम महापुरुष हो। तुम्हारी उपासना बड़ी ऊँची है। प्राय: देखा गया है, कि विशुद्ध सत्व धाम श्री हरि में उन्हीं पुरुषों का चित्त स्थिर होता है जो सात्विकी प्रकृतिवाले होते हैं, सतोगुणी कार्य करते हैं। किन्तु तुम्हारे सब कार्य रजोगुणी हैं। रज और तम प्रधान असुर योनि में तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम्हारे साथी भी सब रजोगुणी असुर हैं, फिर भी तुम सर्वात्म भाव से भगवान के भक्त हो। भगवान वासुदेव में तुम्हारी बुद्धि इतनी दृढ़ता के साथ लगी हुई है, कि इसे देखकर मैं तो विस्मित तथा लज्जित हो रहा हूँ। अब मैं समझ गया कि आप स्वर्ग पर राज्य करने की इच्छा से युद्ध नहीं कर रहे है।

सुनी भक्तिमय मधुर वृत्रकी सुरपति बानी। बोले आदर सहित अहो, दानव। तुम ज्ञानी।।

सब जीवनकूँ विश्व मोहिनी मोहे माया। असुर होई अस कृष्ण करी कस तुम पर दाया।।
तुम विजयी हौं पराजित, तोऊ सम्मुख लरूङ्गो। क्षुद्र स्वर्ग सुखके निमित, समर असुरवर करूङ्गो।।

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप कर इन्द्र और वृत्रासुर पुन: परस्पर युद्ध करने लगे। असुरराज वृत्र ने लोहे का बना हुआ एक विशाल परिघ उठाया और पूरी शक्ति से उसे घुमा कर इन्द्र पर प्रहार किया किन्तु इन्द्र ने अपने वज्र से उस परिघ और वृत्रासुर की बची हुई बाईं भुजा को भी काट गिराया। उस समय वह असुर पंख कटे हुए पर्वत की भाँति प्रतीत हो रहा था। दोनों भुजाओं के कट जाने से रक्त की विशाल धारा उसके शरीर से बह रही थी। उस समय वह असुर क्रोध के मारे तिलमिला उठा फिर देवसेना को पैरों से रौंदता हुआ वह इन्द्र के पास पहुँचा। अपना मुँह फाड़कर वृत्रासुर ऐरावत हाथी के सहित इन्द्र को इस प्रकार लील गया, जैसे विशाल बलवान् अजगर हाथी को निगल जाय। इस दृश्य को देखकर देवता लोग हाय-हाय। बड़ा अनर्थ हो गया। यह कहकर हाहाकार करने लगे। उस समय उन्हें कुछ सुझाई ही न पड़ रहा था। इन्द्र नारायण कवच से सुरक्षित थे अत: पेट में पहुँच कर भी वे मरे नहीं। उन्होंने अपने वज्र से उसकी कोख फाड़ डाली। और उसके पेट से निकल कर बड़े वेग से उसका, पर्वत शिखर के समान, ऊँचा सिर काट डाला।

ऐरावतके सहित लीलि लीन्हें सुरपति जब। असुर उदरमहँ गये इन्द्र सुर दुखित भये सब।।
नारायण शुभ कवच अमरपति कीयो धारन। बाल न बाँको भयो नाम श्रीहरिके कारन।।
वृत्रासुरके पेटकूँ, फारि इन्द्र बाहर भये। नारायण महिमां लखी, सुर मुनि विस्मित ह्वै गये।।

जिसे कर्तृत्व का अभिमान नहीं, जिसकी बुद्धि शुभाशुभ कर्मों को करते हुए उनमें तृप्ति नहीं होती, वह यदि लोगों को मार भी दे, युद्धादि क्रूर कर्मों को करे भी तो न वह मारने के दोष का भागी होता है न कर्म बन्धनों से लिप्त ही होता है।

जांभिका- जंभाई। देवराज इंद्र और प्रचंड वृत्रासुर में घोर संग्राम होने लगा। कुपित हुए वृत्रासुर ने इंद्र को पकड़ लिया और अपना मुंह फैलाकर उन्हें अपने मुंह में डाल लिया। वृत्रासुर द्वारा इंद्र को ग्रस लिए जाने पर सभी देवता भयभीत होकर चिंतित हो गए। उन्होंने उस समय जांभिका (जंभाई) की सृष्टि की, जो वृत्रासुर का नाश करनेवाली थी। जंभाई लेते समय वृत्रासुर ने जब अपना मुंह फैलाया, तब अपने अंगों को समेटकर देवेन्द्र बाहर निकल आए। तभी से सभी लोगों के प्राणों में जंभाशक्ति का निवास हो गया।

वज्र को वृत्रासुर का सिर काटने में पूरा एक वर्ष लग गया। वृत्र का सिर कटकर गिरते ही आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं। चारों ओर से इन्द्र पर फूलों की वर्षा होने लगीं सब उनके पौरुष की प्रशंसा करने लगे। चारों दिशाओंमें आनन्द की बहार छा गई। उस समय वृत्रासुर के शरीर से उसकी आत्मज्योति बाहर निकली और सबके देखते-देखते भगवान के स्वरूप में विलीन हो गई। मुक्त हो गया वृत्रासुर इस संसार से।

शुकदेव बोले- राजन्। जब वृत्रासुर के वध का योग उपस्थित हुआ तब इन्द्र ने अपने वेगशाली तीव्र-वज्र को सब ओर घुमाते हुए उसके मस्तक को भूमि पर गिरा दिया। उसका सिर काटने में इन्द्र को उतना ही समय लगा जितना सूर्यादि-ग्रहों को उत्तरायण और दक्षिणायण-रूप गति में लगता है अर्थात् हम लोगों का पूरा एक वर्ष।

आके बाहिर इन्द्र असुरके सिरकूँ काटें। बज्र, वेगतें घुसै असुरकी अस्थि न फाटें।।
सबरी-शक्ति लगाय कस्यो धड़ सिरतें न्यारों। एक वर्ष यों लग्यो मस्यो पुनि वृत्र बिचारो।।
मुनि दधीचिकी अस्थित, वज्र बन्यो सुर-रिपु मस्यो।

शुकदेव बोले- महादानी परीक्षित्, वृत्रासुर के मारे जाने पर, इन्द्र को छोड़कर, तीनों लोक और लोकपाल तत्काल

प्रसन्न हो उठे। उनका भय, उनकी चिन्ता समाप्त हो गईं।

राजा परीक्षित् ने पूछा- भगवन्, मैं यह जानना चाहता हूँ कि जब त्रिलोकी के सभी लोग प्रसन्न हो गये तो इन्द्र के न प्रसन्न होने का कारण क्या था? शुकदेव ने कहा- त्रिलोकी वृत्रासुर से संत्रस्त थी। सभी देवता, ऋषि और मुनि आदि इन्द्र के पास पहुँचे। उसने वृत्र के वध की प्रार्थना की। इन्द्र ने कहा- विश्वरूप के वध से लगी ब्रह्महत्या को तो स्त्री, वृक्ष आदि चार स्थानों में बाँटकर किसी तरह मैं पापमुक्त हुआ था किन्तु वृत्र के वध से लगनेवाली ब्रह्महत्या से मेरा कैसे पिण्ड छूटेगा? इस पर ऋषियों ने कहा- इन्द्र आप इसके लिये भयभीत न हों। हम लोग आप से अश्वमेध यज्ञ के द्वारा नारायण की आराधना करवायेंगे। उससे आप त्रिलोकी के पाप से मुक्त हो सकते हो, वृत्रासुर के वध की तो बात ही क्या है? देवराज इन्द्र, नारायण के नाम में शक्ति का सागर भरा हुआ है। उसके कीर्तनमात्र से महान् से महान् पापी भी शुद्ध हो जाते हैं फिर इस दुष्ट को दण्ड देने के पाप से छूटने की तो बात ही क्या है?

शुकदेव बोले- राजन्, वृत्रासुर के मर जाने पर इन्द्र ने देखा चाण्डालिनी के समान रूप बनाये हुए प्रत्यक्ष ब्रह्महत्या उनकी ओर चिपटने के लिये दौड़ी चली आ रही है। वृद्धावस्था के कारण उसका शरीर काँप रहा है, उसे क्षय रोग हुआ है, उसके वस्त्र माधिकधर्म के रक्त में सने हुए हैं।

त्वष्टा दूसर-तनय वृत्र यों मार्‌यो सुरपति। वृत्रासुरके मरत भये मुनि देव सुखी अति॥
मार्‌यो ब्राह्मण-पुत्र ब्रह्महत्या पुनि आई। चाण्डालिनि अति मलिनि इन्द्रके ऊपर घाई॥
डरे इन्द्र तहँ तें भगे, अति व्याकुल मनमहँ भये। मिली सरन जब कहूँ नहिँ, मानस-सरमहँ घुसि गये॥
हत्या धाय इन्द्र पर आई। भय से व्याकुल इन्द्र लुकाई। कमलतन्तु में इन्द्र दुराया। तप बल नहुष इन्द्र पद पाया॥

शुकदेव बोले- परीक्षित्, इस प्रकार ब्राह्मणों से प्रेरित होकर इन्द्र ने वृत्त की हत्या कर दी। उसके मारे जाने पर ब्रह्महत्या ने इन्द्र का पीछा किया। उसकी आकृति दिल को दहलानेवाली थी। वह यक्ष्मा रोग से आक्रान्त बूढ़ी चाण्डालिन की तरह प्रतीत होती थी। उसका शरीर जर्जर था। वह काँप रही थी। उसने इन्द्र को ललकार कर कहा- अरे ब्राह्मण के हत्यारे, कहाँ जा रहा है। खड़ा रह, खड़ा रह। यह कहकर वह इन्द्र के पीछे बड़े वेग से दौड़ी। देवराज इन्द्र उसे देख कर काँप उठे। वे उसके भय से दिशाओं और आकाश में भागते फिरे उन्हें कहीं भी शरण न मिली। अन्तत: थक हार कर वे उत्तर-पूर्व के कोने में स्थित मानसरोवर में जाकर छिप गये। वहाँ वे एक कमल के नाल के छिद्र में प्रवेश कर गये। वहाँ वे एक वर्ष तक निराहार रहकर भगवान् श्रीहरि का ध्यान करते रहे। उन्हें सतत यही चिन्ता सताती रहती थी कि ब्रह्महत्या के पाप से मेरा कैसे छुटकारा होगा। देवों को अग्निमुख कहा गया है। देवता अग्निरूपी मुख से ही भोजन करते हैं। किन्तु जल के भीतर अग्नि प्रवेश नहीं कर सकते थे। अत: इन्द्र को वहाँ निराहार रहना पड़ा। इन्द्र जब तक मानसरोवर में छिपे रहे तब तक अपनी विद्या तपस्या और योगबल के प्रभाव से राजा नहुष स्वर्ग पर शासन करते रहे। परन्तु जब उन्होंने सम्पत्ति और ऐश्वर्य के मद से अन्धे होकर इन्द्र की पत्नी शची के साथ अनाचार करना चाहा, तब शची ने उनसे ऋषियों का अपराध करवाकर उन्हें शाप दिया दिया- जिससे वे साँप हो गये। यदि किसीको अनायास ही राजपद मिल जाता है तो उनमें लोकेषणा अवश्य ही बढ़ जाती है। इन्द्रपद पाते ही नहुष में लोकेषणा बढ़ी और इन्द्र की धर्मपत्नी शची को भी अपनाने का प्रयास करने लगे।

नये-इन्द्रकी बात शची सुनि अति घबराई। चिंतित, व्याकुल, दुखी, डरी, सुरगुरु ढिँग आई॥
गुरु प्रसन्न ह्वै युक्ति अनौखी ताहि बताई। कामी-विषयासक्त-नृपति पै बात पठाई॥
ऋषि-कंधनि शिविका धरें, चढ़ि मम ढिँग आवें अवसि। तो निज पति केई सरिस, वरन करूँ नितकूँ हरषि॥

नहुष शची के यौवन एवं सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। उसने कहा- शची, अब स्वर्ग का इन्द्र मैं हूँ। तुम इन्द्र की पत्नी हो अत: मेरे साथ रमण करो। संकट को देखकर शची गुरु बृहस्पति की शरण में गई। उनसे अपनी विपत्ति कही। गुरुदेव ने कहा- शची, घबड़ाओ नहीं। तुम नहुष से कहो कि जब आप ब्राह्मणों के द्वारा ढोई जाती हुई पालकी पर चढ़कर मेरे पास आयेंगे तब मैं आप का मनोरथ पूरा करूँगी। कामी अन्धा होता है। नहुष ने सप्तर्षियों की पालकी में जाकर उसमें बैठकर शची के पास जाने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में सर्प (जल्दी चलो, जल्दी चलो) ऐसा कहकर उसने पैर से ऋषि अगस्त्य को लात मारी। अगस्त्य कुपित हो उठे। उन्होंने उसे शाप दिया- अरे दुष्ट, तू सर्प-सर्प कहता है अत: जा तू अजगर सर्प बन जा। इस प्रकार शची ने गुरु की सलाह से नहुष को निर्यक् योनि में पहुँचा दिया और अपनी इज्जत बचा ली।

चढ्यो पालकी नहुष सहस मुनि ताहि उठावें। सर्प-सर्प नृप कहे अनसुनी ऋषि करि जावें।।
अति जब करिबे लग्यो कोप कुंभज मुनि कीन्हो। दुष्ट होइ तू सर्प शाप मुनिवरने दीन्हों।।
चट्ट-पट्ट अजगर भयो, औंधे मुहँते गिरि पर्‌यो। तुरत पापको फल चख्यो, इन्द्राणी प्रति जस कर्‌यो।।

जब तक इंद्र छिपे रहे, तब तक महाराज-नहुष अपने विद्या, तप, योग और बल से सम्पन्न होकर स्वर्ग का पालन करते रहे। किन्तु उनकी बुद्धि सम्पदा और ऐश्वर्य के कारण मदान्ध हो गयी। इसीलिये इन्द्राणी के तिरस्कार के कारण वे तिर्यक (सर्पयोनि) को प्राप्त हुए।

तदनन्तर जब सत्यस्वरूप भगवान का ध्यान करके इन्द्र ने अपने पापों को नष्टप्राय कर दिया, तब ब्राह्मणों के बुलाने पर वे स्वर्गलोक में गये। वहाँ उन लोगों ने इन्द्र से अश्वमेध यज्ञ करवाकर भगवान की आराधना करवाई जिससे उनका पाप समूल समाप्त हो गया। महर्षि लोमश ने महाराज युधिष्ठिर से कहा- राजन्। मधुविला नदी का ही दूसरा नाम समंगा है। जिस क्षेत्र में यह पुण्यसलिला है, उसका नाम कर्दमिल है। यहां राजा भरत का अभिषेक किया गया था। महान असुर वृत्रासुर का वध करके जब शचीपति इंद्र श्रीहीन हो गए उस समय समंगा नदी में गोता लगाकर ही वे भी अपने पापों से छुटकारा पा सके थे।

बुद्धिमानों को चाहिये कि वे इस आख्यान को सदा-सर्वदा पढ़ें और सुनें। विशेषकर पर्वों के अवसर पर तो अवश्य ही इसका सेवन करें। यह धन और यश की वृद्धि करता है। सारे पापों को नष्ट करता है, शत्रु पर विजय प्राप्त कराता है तथा आयु और मंगल की अभिवृद्धि करता है।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार शास्त्रोक्त विधि से मरीचादि महर्षियों ने देवराज इन्द्र को अश्वमेध यज्ञ कराया। उस यज्ञ के द्वारा पुराण पुरुष यज्ञरूप श्रीहरि का भजन करके, इन्द्र निष्पाप होकर पूर्ववत् महान् हो गये।

भयो पापको अन्त गये सब मिलिके ऋषि मुनि। देवराजकूँ लाय करायो अश्वमेध पुनि।।
ज्यों कुहरा नसि जाइ उदित दिनके ह्वैंवेतें। पाप पुंज त्यों नसे नाम हरिको लेवेतें।।
इन्द्र, नाकपति पुनि भये, त्रिभुवन अति हर्षित भयो। यों दधीचिको त्याग अरु, वृत्रासुरको वध कह्यो।।

७) वृत्रासुर के पूर्वजन्म का वृत्तान्त

शूरसेन देश में चित्रकेतु नाम का एक सार्वभौम राजा रहता था। उसके राज्य में पृथ्वी, कामधेनु के समान सभी इच्छित पदार्थों को देनेवाली थी। यद्यपि वे, निर्वीर्य नहीं थे- संतान उत्पन्न करने में समर्थ थे और उनके हजारों रानियाँ थीं, फिर भी उनके कोई सन्तान नहीं थी।

कहे परीक्षित् प्रभो। वृत्रको पूर्व जनममहँ। कस अस हरिपद भक्ति रह्यो कस अटल धरममहँ।।

शुक बोले- सुनु, भूप। नृपति इक चित्रकेतु वर। शूरसेनको ईश साधुसेवी सुठि सुन्दर।।
विद्यारूप उदारता, सम्पति सब अगनित भरी। नृपकी रानी दस-अयुत, हती कुलवती सुन्दरी।।

शुकदेव बोले, प्राचीन काल की बात है। शूरसेन (आगरा मथुरा मण्डल को शूरसेन कहा जाता था) देश में एक बड़े प्रतापी चक्रवर्ती नरेश थे। उनका नाम था- चित्रकेतु। वे परम धार्मिक शासक थे। उनके राज्य-काल में पृथ्वी कामधेनु बन गई थी। प्रजा इच्छानुसार उससे अन्न-रस ग्रहण करती थी। उनकी बहुत सी रानियाँ थी। उनमें भी पौरुष की कमी न थी फिर भी दुर्भाग्य यह कि उन्हें कोई पुत्र न था। सारा राजमहल वैभव-सुख से भरा हुआ था फिर भी राजा का मन चिन्तित रहता था। उनके मन को शान्ति नहीं मिलती थी। सकल भू-मण्डल का एकच्छत्र साम्राज्य भी उनकी प्रीति कारण न बन सका। संसार में असंख्य जीव हैं। पृथ्वी के समस्त-कणों की संख्या तो सम्भव है गणना की भी जा सके, किन्तु संसार के समस्त जीवों की गणना करना असम्भव है। उद्भिज, स्वेदज, अंडज और जरायुज (इस प्रकार जीवों के ४ भेद बताये हैं, इन चारों की ८४ लाख) योनियाँ बताई हैं। एक योनि में असंख्यों जीव इस ब्रह्माण्ड में है। यह चौदह भुवनों वाला एक ही ब्रह्माण्ड हो सो भी बात नहीं, ऐसे असंख्यों ब्रह्माण्ड हैं।

गृहस्थी की शोभा बाल-बच्चों से ही है। वे बड़े भाग्यशाली-गृहस्थ हैं, जिनके घर में छोटे-छोटे फूल से हँसते हुए बाल-गोपाल इधर-से-उधर किलकारियाँ मारते हुए घूमते हैं। जैसे कमल के बिना सरोवर की शोभा नहीं, जैसे पति के बिना स्त्री की शोभा नहीं, जैसे सिन्दूर के बिना सुहागिन की शोभा नहीं, जैसे छत्र-चँवर के बिना राजा की शोभा नहीं, जैसे विद्या बिना ब्राह्मण की शोभा नहीं, जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि की शोभा नहीं, जैसे दीपक के बिना अँधेरे-घर की शोभा नहीं- इसी प्रकार बिना बालक के गृहस्थी की शोभा नहीं होती। जिनके धन-सम्पत्ति अटूट है और घर में उसे आगे भोगनेवाला कोई पुत्र नहीं तो उन्हें या तो भगवान को अपना पुत्र मानकर रात्रि-दिन उसी के लाड़चाव में लगे रहना चाहिये या धन को धर्म के काम में व्यय करके बन में चले जाना चाहिये जो दो में से एक भी नहीं करता- धन को संग्रह करके, जोड़कर रखता जाता है- न स्वयं खाता है न दूसरों को खाने को देता है, तो वह जीतेजी नरक भोगता है तथा मरकर भी प्रेत बनकर उसी धन पर मँडराता है और अन्त में नरकों की अग्नि में पचता है। पुत्र बिना गति नहीं, शान्ति नहीं, सुख नहीं।

किन्तु न तिनके पुत्र हतीं सब बन्ध्या-रानी। यातें नृपके चित्त माहिँ नित रहें गलानी।।
सब सुख विषवत् लगैं, भार सम शासन लागत। निसि दिन चिन्ता हरे, भूपकूँ सोवत-जागत।।
दान, धर्म, व्रत, नियम, जप, करें पुत्र हित बहु नृपति। किन्तु न संतति मुख लख्यो, तातें चिन्तित भये अति।।

एक समय की घटना है। महर्षि अंगिरा गुरु बृहस्पतिजी के पिताश्री अपनी इच्छानुसार लोकों में भ्रमण करते हुए चित्रकेतु के महल में पधारे। राजा ने उठ कर उनकी अगवानी की। उन्हें सादर आसन पर बैठाया। अर्घ्य आदि से उनकी विधिपूर्वक पूजा की। आदर-सत्कार हो जाने के बाद जब अंगिरा ऋषि सुखपूर्वक आसन पर विराजमान हो गये तब राजा भी हाथ जोड़कर उनके सामने पृथ्वी पर बैठ गये। ऋषि ने राज्य, मन्त्री, कोश, सेना तथा प्रजा आदि का कुशल-क्षेम पूछ कर राजा से पूछा- राजन्, आज मैं आप कुछ चिन्तित दिखायी दे रहे है। आप का मुख-मण्डल उतरा हुआ है। लगता है कि आप की कोई इच्छा पूरी नही हुई है। आपके इस असन्तोष का कारण क्या है? यद्यपि महर्षि को राजा की चिन्ता का ज्ञान था फिर भी उन्होंने उनसे पूछा। चित्रकेतु को पुत्र की कामना थी अत: महर्षि के पूछने पर विनय से झुककर उन्होंने निवेदन किया।

चित्रकेतु बोले- समाधि के द्वारा अपने सारे पापों को नष्ट करनेवाले आप जैसे योगी को प्राणियों के बाहर-भीतर की ऐसी कौन-सी बात है, जो ज्ञात न हो फिर भी यदि आप पूछ रहे हैं तो मैं अपनी चिन्ता आपके चरणों में निवेदित कर रहा हूँ।

एक दिना नृप भवन अंगिरा मुनिवर आये। करि सेवा सत्कार कनक-आसन बैठाये।।
पूछी मुनि कुशलता नृपतिकी नीति बताई। पुनि पूछे- नृप रह्यो कमलमुख च्यौं मुरझाई।।
चित्रकेतु बोले विभो। कहूँ कहा प्रभु विज्ञ है। तप समाधि अरु योगतें, आप नाथ सर्वज्ञ हैं।।

मुनिवर, पृथ्वी का साम्राज्य, ऐश्वर्य और सम्पत्तियाँ, जिनके लिये सकल लोकपाल भी लालायित रहते हैं, मुझे प्राप्त हैं किन्तु एक पुत्र के न होने से ये सब मुझे वैसे ही शान्ति नहीं प्रदान कर रहे हैं, जैसे भूख-प्यास से व्याकुल व्यक्ति को अन्नजल के अतिरिक्त दूसरे भोगों से शान्ति नहीं मिलती। भविष्य में पिण्डदान न मिलने की आशंका से परलोक में मेरे पितर भी दु:खी हो रहे होंगे अत: प्रभो, आप कृपा कर एक पुत्र प्रदान कर मुझे नरक में गिरने से बचा लें। घरमें सब कुछ हैं लेकिन एक पुत्र नहीं है। उसके बिना घर सूना-सूना लगता है।

तोऊ आज्ञा मानि दु:खको हेतु बतलाऊँ। प्रजानाथ सम्राट जनेश्वर हौं कहलाऊँ।।
सब सुख मेरे यहाँ किन्तु सुत एक न स्वामी। ताइतें अति दुखी रहूँ सुनि अन्तर्यामी।।
प्रभु सर्वज्ञ समर्थ हो, कृपा कृपानिधि करो तुम। देउ एक सुत मनोहर, बने लोक परलोक मम।।

राजा का मन तो पुत्र में लगा हुआ था, उस समय उसके मन में तो पुत्र की ही कामना थी, अत: वह हाथ जोड़कर मुनि से बोले- प्रभो। इस समय मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। बिना पुत्र उत्पन्न हुए मुझे कभी भी शान्ति न होगी, न मेरा भगवान में चित्त ही लगेगा। मुझे तो जैसे भी हो पुत्र दीजिये। रही भाग्य की बात, तो सन्त तो विधि के लेख पर भी मेख मार सकते हैं। भाग्य को भी उलटा सकते हैं। प्रारब्ध को भी अन्यथा करते हैं, सन्तों में बड़ी सामर्थ्य होती है।

चित्रकेतु की विनती को सुनकर ब्रह्मा के पुत्र अंगिरा का हृदय करुणा से भर गया। उन्होंने त्वष्टा देवता के योग्य चरु निर्माण कर उससे उनका यजन किया। चित्रकेतु की रानियों में कृतद्युति सबसे बड़ी और सद्गुणी थी अत: महर्षि ने उसी को यज्ञ का अवशिष्ट प्रसाद खाने के लिये दिया और राजा से कहा- राजन्, तुम्हारी पत्नी के गर्भ से एक पुत्र होगा जो आपको हर्ष और शोक- दोनों ही प्रदान करेगा। ऐसा कहकर अंगिरा ऋषि चले गये।

चित्रकेतु सुनि विनय दया मुनिवरकूँ आई। त्वष्टाके हित खीर ब्रह्मसुत सविधि बनाई।।
यजन कर्‌यो जो बची बड़ी महिषीकूँ दीन्हीं। जाते होवे पुत्र अंगिरा आयसु कीन्हीं।।
रानी कृतद्युति मुदित अति, राजा हू हर्षित भयो। खाइ खीर मुनि कृपातें, गर्भ नृपति पत्नी रहयो।।

रानी कृतद्युति ने चरु खाने के फलस्वरूप गर्भ धारण किया। तदनन्तर समय आने पर महारानी कृतद्युति के गर्भ से एक अतिशय सुन्दर पुत्र ने जन्म लिया। पुत्र-जन्म की बात सुनकर सम्राट चित्रकेतु के आनन्द की सीमा न रही। उन्होंने ब्राह्मणों को सादर बुलाकर स्वस्तिवाचनपूर्वक बालक का जातकर्म संस्कार करवाया और दक्षिणा में प्रभूत सम्पत्ति प्रदान की। इस अवसर पर राजा का मन अतिशय उदार हो गया था। फलस्वरूप सबको मुँहमाँगी वस्तुएँ प्राप्त हुईं।

सुनत पुत्रके जन्मकूँ, अति आनन्दित नृप भये। गौ, धन, वर-भूषन, वसन, पुर पत्तन विप्रति दये।।

राजा को बहुत दिनों के बाद बड़ी कठिनाई से एक पुत्र प्राप्त हुआ था अत: उस पर उनका स्नेह, शुक्ल पक्ष की चन्द्रमा की भाँति, दिनानुदिन बढ़ने लगा। रानी कृतद्युति का तो अपने बेटे पर सब कुछ न्योछावर ही था। राजा भी कृतद्युति को विशिष्ट दृष्टि से देखने लगे। यह सब देखकर सारी रानियाँ जल-भुन उठीं। उन्हें कृतद्युति के सौभाग्य से महान् ईर्ष्या हुई। वे भी पुत्र की कामना करने लगीं। इस प्रकार एक तो वे रानियाँ सन्तान न होने के कारण ही दु:खी थी, दूसरे राजा चित्रकेतु ने उनकी उपेक्षा कर दी अत: वे स्त्रियोचित डाह से अपने को धिक्कारने और मन-ही-मन जलने लगीं।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार महारानी कृतद्युत की सौतों का उसकी पुत्ररूप-सम्पत्ति से सन्तप्त होने से और राजा के द्वारा ही अपमानित होने के कारण उनका महारानी के प्रति अत्यन्त द्वेष हो गया। उन कठोर हृदयवाली क्रूरचित्त स्त्रियों की विद्वेष के कारण बुद्धि नष्ट हो गई, अत: वे राजा के इस सुख को सहन न कर सकी। उन्होंने उस बालक को विष दे दिया।

दिन-दिन बाढ़्यो नेह गेह सुत तनिक न त्यागें। नहिँ औरनि घर जाहँ कृतद्यति महल विराजें।।
सौतिनि मन अति डाह पुत्र नहिँ शत्रु भयो है। जब तें जनम्यो दुष्ट छीनि पतिप्रेम लयो है।।
जा कंटककूँ काटिकें, निष्कंटक हम होहिँ कस। विष दे मारो शत्रुकूँ, सब मिलि निश्चय कियो अस।।

उन लोगों ने आपस में सलाह कर राजकुमार को जहर खिला दिया, वह मर गया। स्त्रियाँ अपने पति व कुल काभला न चाहकर केवल अपने ही तन का सुख चाहती हैं, इसलिए ज्ञानी मनुष्य को स्त्री की बात पर विश्वास करना और उसके वश में होना उचित नहीं है। कृतद्युति समझती रही कि बेटा सो रहा है, अत: वह राजभवन में इधर-उधर डोलती रही।

भई सबनिकी बुद्धि भ्रष्ट ईर्ष्या मन आई। सोवत शिशुकूँ एक दिवस विष दयो खवाई।।
मर्‌यो सौतिके पुत्र सबनि मन सुख अति होवे। इत कृतद्युति निश्चिन्त कुमर मम सुखतें सोवें।।
धाई पठाई तुरन्त ललाकूँ ले आ प्यारी। धाई जाइ लखि मृतक सुतहिँ किलकारी।।
हाय अभिागिनि लुटि गई, हाय दई जिहि का भई। हा। मन छौना। लाल। सुत। यों कहि दासी गिर गई।।

शुकदेव बोले- राजन्, महारानी कृतद्युति अपने इकलौते पुत्र को प्राणहीन देखकर तथा पति को अत्यन्त शोकाकुल देखकर सम्पूर्ण प्रजा तथा मन्त्री आदि के हृदयों में शोक उत्पन्न करती हुई विविध प्रकार से करुण विलाप करने लगी।

धाय ने सोते हुए बालक के पास जाकर देखा कि उसकी आँखों की पुतलियाँ उलट गई हैं, उसके प्राण निकल चुके हैं। यह देखते ही वह रोती-चिल्लाती हुई पछाड़ खाकर भूमि पर गिर गई। धाय के रोने-चिल्लाने को सुनकर कृतद्युति दौड़कर बालक के शयन-गृह में पहुँची। वहाँ उसने देखा कि मेरा छोटा-सा बच्चा मर गया है। वे ढाह मारकर भूमि पर गिर पड़ीं। उनके सिर के बाल बिखर गये और शरीर के वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये। राजा को भी जब बालक के अकारण मरने का समाचार मिला तो वे भी गिरते-पड़ते वहाँ पहुँचे और बालक पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। सारे रनिवास में कुहराम मच गया। शोक से सभी स्तब्ध थे। जहर देनवोली रानियाँ भी वहाँ आकर झूठ-मूठ रोने का ढोंग करने लगी। कृतद्युति को जब होश आया तो वह पागल की भाँति विलाप करती हुई कहने लगी- बेटा, तुम मुझे अकेली छोड़कर कहाँ चले गये?

परीक्षित, जब सम्राट चित्रकेतु ने देखा कि मेरी रानी अपने मरे बेटे के लिये इस प्रकार भाँति-भाँति विलाप कर रही है, तब वे शोक से अत्यन्त सन्तप्त हो फूट-फूट कर रोने लगे। राजा-रानी के इस प्रकार विलाप करने पर उनके अनुगामी स्त्री-पुरुष भी दु:खित होकर रोने लगे। इस प्रकार सारा नगर ही शोक से अचेत-सा हो गया। राजा अपने पुत्र का दाह-संस्कार करने नहीं दे रहा और शव के पास बैठकर रो रहा है।

शुकदेव बोले- राजन्, मृतक-पुत्र के सम्मुख विलाप करती हुई महारानी-कृतद्युति कह रही है- हे पुत्र। मैं बड़ी हतभागिनी हूँ जो तेरे मधुर मुस्कान-युक्त मुख कमल को प्रसन्न चितवन के सहित नहीं देखती। बेटा। क्या यथार्थ में तुम्हें दयाहीन-यमराज उस लोक में ले गया जहाँ से लौटकर कोई फिर आता नहीं? क्योंकि मैं तुम्हारी सुमधुर तोतली-वाणी नहीं सुन रही हूँ।

अहो विधाता निर्दयी, तोहि दया नहिँ नेक हूँ। कहूँ मिलावे प्रेमतें, बिछुरावे दुखतें कहूँ।।

राजन्, महर्षि अंगिरा और देवर्षि नारद ने देखा कि राजा चित्रकेतु पुत्र-शोक के कारण चेतनहीन हो रहे हैं। उन्हें समझानेवाला भी कोई नहीं है तब वे दोनों ही वहाँ आये।

शुकदेव बोले- राजन्, राजा चित्रकेतु शोकग्रस्त होकर मुर्दे के समान अपने मृत पुत्र के पास ही पड़े हुए थे। यह देखकर अंगिरा और नारद जी विभिन्न उक्तियों से उन्हें समझाने लगे। उन्होंने कहा- राजन्, जिसके लिये तुम इतना शोक कर रहे हो, वह बालक इस जन्म में और पहले के जन्मों में तुम्हारा कौन था? उसके तुम कौन थे और आगे के जन्मों में भी उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध रहेगा? अंगिरा बोले- राजन्, जैसे एक बीज दूसरे बीज से उत्पन्न होता है, वैसे ही प्रभु की माया से एक प्राणी से दूसरा प्राणी उत्पन्न होता है। संसार में न कोई किसी का पुत्र है, न कोई किसी का पिता। यह सब कर्म बन्धनों के अनुसार जन्म-जन्मान्तरों तक चलता रहता है।

शुकदेव बोले- राजन्, जिसका प्राणों से भी प्यारा, आँखों का तारा, जीवन का सहारा इकलौता-पुत्र मर गया है वह रानी, कृतद्युति विधाता को धिक्कारती हुई अत्यन्त करुण के स्वर में रोती हुई असम्बद्ध-प्रलाप करने लगी। उसने रोते-रोते हाथों को फटफटाते हुए कहा- अरे ओ निर्दयी विधाता। तुझे तनिक भी दया नहीं है। किसने तुझे सृष्टि का कर्ता बना दिया? किसने तुझे इतने प्रतिष्ठित-पद पर बिठा दिया। तुझे इतनी भी बुद्धि नहीं, वृद्ध माता-पिता के सामने अबोध-बालकों को बधिकों की तरह-हत्यारों की तरह पकड़ ले जाता है। यदि तुझे मारना ही था तो पैदा क्यों किया? इस बच्चे को इतना सौन्दर्य-इतना लावण्य क्यों प्रदान किया। तुझे मारना था, तो मुझे मारता-मुझे अपने लोक ले जाता। बूढ़ों के रहते बच्चे को मार देना, तेरी मूर्खता नहीं तो और क्या है? राजन्, रानी बारम्बार करुणस्वर में विलाप कर रही थी। वह उठती और पुन: पछाड़ खाकर गिर पड़ती। असम्बद्ध बातें बकने लगती। उसे इस प्रकार विलाप करते देखकर राजा ढाह मारकर मुक्त कण्ठ से रुदन करने लगे। राजा के रोने पर सभी मन्त्री, पुरोहित, पुरवासी, नगरवासी और वे क्रूर हृदया रानियाँ भी रोने लगीं। सबके रुदन से वह अन्त:पुर भर गया। वहाँ का वायुमण्डल क्षुब्ध हो गया। दसों दिशाओं में शोक छा गया।

रानी राजा शोक सिन्धुमहँ डूबें पुनि-पुनि। आये देवै धीर अंगिरा अरु नारद मुनि।।
देखे बेसुधि भूप उठें नहिँ विप्र उठावें। कहि-कहि सुन्दर युक्ति उभय मुनि यों समुझावें।।
जीव काल क्रमतें मिलैं, समय पाइ बिछुरें तुरत। रचि माया मायेश पुनि, बालकवत् क्रीड़ा करत।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार राजा को शोक सन्तप तथा संज्ञा शून्य हुआ देखकर और यह जानकर कि इसका कोई त्रायक शिक्षादाता नही हैं, नारदजी को साथ लिये अंगिरा मुनि वहाँ आ पहुँचे।

जैसे पानी के प्रवाह से बालू के कण एकत्रित होते हैं और फिर इधर-उधर बह जाते हैं, वैसे ही प्राणी काल के वेग से एक स्थान पर मिल जाते हैं और मिल कर बिछुड़ भी जाते हैं। जो आया है उसका जाना निश्चित है। नश्वरधारियों के लिये आनेकी खुशी और जाने का शोक मनाना दोनों व्यर्थ हैं।

राजन्, जैसे बीजों से दूसरे बीज उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही भगवान की माया से प्रेरित होकर प्राणियों से अन्य प्राणी उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं।

भगवान ही सारे प्राणियों के अधिपति हैं। वे जन्म-मृत्यु आदि विकारों से परे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। बच्चे जैसे मिट्टी का घर-घरौंदा बनाकर खेलते और उसे बिगाड़ते हैं, वैसे ही यह परमात्मा प्राणियों की रचना, पालन और संहार करता रहता है। परीक्षित्, जैसे एक बीज से दूसरा बीज उत्पन्न होता है, पिता के देह द्वारा माता की देह से पुत्र की देह उत्पन्न होती है। उत्पन्न होनेवाला विनष्ट भी होता है। उनमें केवल आत्मा ही नित्य है, शाश्वत है। अत: किसी के लिये भी शोक करना व्यर्थ है। राजन्, जन्म के साथ क्या लेकर आये थे? अन्त में क्या लेकर जाओगे? जिस पुत्र-कलत्र (परिवार) के निमित्त आजीवन पाप की गठरी बाँधते हो- सोचो उससे जन्म से पहले एवं मृत्यु के बाद क्या सम्बन्ध है? हे राजन्, तू किस वास्ते इतना विलाप करता है, वह बालक

तुझसे क्या प्रयोजन रखता था? ये सब संसारी जीव अपने पूर्वजन्मों का बदला लेने के लिये जगत में आकर इकट्ठे होते हैं। जब उस कर्म का बदला मिल जाता है तो अन्त में लोग फिर अलग हो जाते हैं। इसलिए सब बातों को पिछले जन्म के संस्कार से जानकर मरने का शोक न करना चाहिए। संसार स्वप्नवत है। बिना संस्कार के संयोग वियोग होता नहीं। जिनसे अपना संस्कारवश सम्बन्ध हो गया है उनके मिलने पर हर्ष और बिछुड़ने पर शोक होता ही है।

राजन्, आप जिस जीव के लिये इतना शोक कर रहे हैं, वह बालक आपका इस जन्म में या पहिले किसी जन्म में कौन था और आगामी जन्मों में कौन होगा? तुम्हारा वह कौन है और तुम उसके क्या लगते हो?

राजन्, जब अंगिरा और देवर्षि नारद ने इस प्रकार चित्रकेतु को समझाया-बुझाया, तब उन्होंने कुछ धैर्य धारण करके शोक से मुर्झाये हुए अपने मुख को हाथ से पोंछा और उनसे कहा- आप दोनों अतिशय ज्ञानी और महान् से भी महान् प्रतीत होते हैं। आप अपने को अवधूत वेष में छिपा कर यहाँ आये हैं, कृपा करके बतलायें, आप कौन हैं? संसार की माया में फंसे हुए अज्ञानी जीवों के कल्याण के लिये सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन, नारद, अंगिरा, भृगु, देवल, असित, व्यास, मार्कण्डेय, गौतम, वशिष्ठ, परशुराम और कपिल, शुक, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, आरुणि, लोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, अत्रिमुनि, पतंजलि, वेदशिरा, बोधायन मुनि, पच्चशिरा, हिरण्यनाभ, कौसल्या, श्रुतदेव और ऋतध्वज आदि बहुत-से ज्ञानी महात्मा भूतल पर विचरण करते रहते हैं। स्वामियों, मैं घोर विषयासक्त व्यक्ति हूँ। आप लोग ज्ञान के प्रकाश से मेरा उद्धार कीजिये। सम्प्रति मैं दु:ख के अगाध सागर में डूब रहा हूँ।

राजा की दीनता भरी बात सुनकर महर्षि अंगिरा बोले- राजन्, मैं वही अंगिरा ऋषि हूँ, जिसने आपको पुत्र प्रदान किया था और यह ब्रह्मा जी के पुत्र देवर्षि नारद हैं। जब आपको पुत्र के शोक में आकण्ठ मग्न देखा तो आप पर अनुग्रह करने के लिये ही हम यहाँ आये हैं। आप भगवान के भक्त हैं अत: आप शोक करने के योग्य नहीं है। भगवान और ब्राह्मणों के भक्त को किसी भी परिस्थिति में शोक नहीं करना चाहिये। जब मैं पहले-पहल आप के पास आया था, उसी समय आप को परम ज्ञान का उपदेश देता किन्तु उस समय आप का हृदय पुत्र की लालसा से छटपटा रहा था अत: ज्ञान न देकर पुत्र ही प्रदान किया। उस समय मैंने देखा आपकी सम्पूर्ण चित्त की वृत्ति पुत्र प्राप्ति के निमित्त लगी हुई है। उस समय सुत की ही तुम्हारी उत्कट अभिलाषा समझकर मैंने तुम्हें पुत्र दिया। उस समय मैं ज्ञानोपदेश देता तो वह व्यर्थ होता, आप उसे ग्रहण करने में असमर्थ होते। इसलिये मैं बिना ज्ञानोपदेश के लिये चला गया। अब आप स्वयं अनुभव कर रहे हो कि पुत्रवानों को कितना दु:ख होता है। राजन्, इसी प्रकार संसार के जितने भी व्यक्ति हैं, वे सब-के-सब अनित्य हैं। उनका सम्बन्ध गन्धर्व-नगर, माया और जादू के समान क्षण-भंगुर है, लुभावना तथा अनित्य हैं। संसार के सभी प्राणी दु:ख ही-दु:ख देनेवाले हैं अत: अनित्य एवं दु:खदायी व्यक्तियों एवं वस्तुओं में आसक्ति त्यागकर आप भगवान में मन लगाओ, उन्हीं की भक्ति करो। इससे आप का द्वैत भाव समाप्त हो जायेगा और परम शान्ति मिलेगी।

पुत्र के जन्म से मृत्यु पर्यंत कष्ट-ही-कष्ट है। पैदा होते समय माता को महान कष्ट। पालन करने में प्रतिपल कष्ट, बड़ा हुआ तो पढ़ाने-लिखाने में, विवाह करने में कष्ट अयोग्य निकल गया तो उसकी बुरी बातों से सदा हृदय जलता रहता है, सुयोग्य हुआ तो सदा उसके शरीर की चिन्ता बनी रहती है। निरन्तर उससे कष्ट-ही-कष्ट है। यदि अकाल में मृत्यु हो गई तब तो कष्ट होता है, उसका अनुभव तो आप ही कर रहे हैं। जो बातें पुत्र के सम्बन्ध में हैं, वे ही अपने शरीर तथा शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली स्त्री, धन, सम्पत्ति, शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्शवाले भोग्य पदार्थों के विषय में तथा राज्यवैभव, पृथ्वी, राज्य, सेना, कोष, नौकर-चाकर, मन्त्री आमात्य तथा बन्धु बान्धव, सुहृदगण और स्नेहियों के सम्बन्ध में भी समझ लेनी चाहिये। ये सभी चलायमान हैं, अशाश्वत और नाशवान हैं।

महामुनि अंगिरा, महाराज चित्रकेतु को उपदेश करते हुए कह रहे हैं- हे राजन्, जितनी भी ये राज्यादि सम्पतियाँ हैं, स्वप्न के द्वारा, माया के द्वारा और मन के द्वारा कल्पित पदार्थों के समान असत्य हैं एवं ये सभी शोक, मोह और भय को देनेवाले हैं। गन्धर्व नगरी के समान ही ये मिथ्या हैं। न होने पर भी दीखते हैं। दृश्य जगत् के सभी पदार्थों की इस मन ने ही कल्पना कर ली है, क्योंकि जैसे ये दीखते हैं- यह इनका वास्तविक रूप नहीं है। इसलिये कभी दीखते हैं और कभी नहीं दीखते। जो लोग कर्मवासना के द्वारा विषयों का चिन्तन करते हैं, उन्हीं के मन से नाना प्रकार के कर्म उत्पन्न होते हैं।

सुनि सचेत नृप भये मुनिनि सन बोले बानी। को हैं दोनों आप परम तेजस्वी ज्ञानी॥
कहै अंगिरा भूप, अंगिरा मोकूँ जानों। ब्रह्माजीके पुत्र इन्हें नारद मुनि मानों॥
ज्ञान देन आये उभय, आपशोक सन्तप्त हैं। शोभे नाहीं मोह भ्रम, जे नर भगवद्भक्त है॥

नारद ने कहा- राजन्, मैं आपको एक अत्यन्त गुप्त मन्त्र बतला रहा हूँ, इसे एकाग्रचित्त से सुनो। इसके अनुष्ठान से सात दिनों में ही संकर्षण (शेष) भगवान का आपको दर्शन होगा।

शुकदेव बोले- परीक्षित, इसी बीच देवर्षि नारद ने उस राजकुमार की जीवात्मा को, अपने योगबल से बुलाकर सबके सामने उपस्थित कर दिया और कहा कि- जीवात्मन्, तुम्हारा कल्याण हो। देखो तुम्हारे माता-पिता और सगे-सम्बन्धी तुम्हारे वियोग से अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं। इसलिये तुम अपने शरीर में आ जाओ और शेष आयु अपने लोगों के साथ ही रहकर व्यतीत करो। अपने पिता के दिये हुए भोगों को भोगो और राज्यसिंहासन पर बैठो। राजकुमार अकालमृत्यु से मरा था अत: उसकी आयु अभी शेष थी।

देवर्षि नारद की बात को सुनकर जीवात्मा ने कहा- देवर्षि जी, अपने कर्मों के कारण मैं अनन्तकाल से विभिन्न योनियों और जातियों में भ्रमण कर रहा हूँ। उनमें से किस योनि में ये लोग मेरे माता-पिता हुए? प्राणी कर्म के वशीभूत होकर ऊँच-नीच योनियों में जन्म लेता रहता है और फिर मरता रहता है। कभी मैं इनका पुत्र था तो कभी ये ही मेरे बेटे थे। इस प्रकार का सम्बन्ध सर्वदा परिवर्तित होता रहता है जैसे सुवर्ण आदि क्रय-विक्रय की वस्तुएँ एक व्यापारी से दूसरे व्यापारी के पास आती-जाती रहती हैं, वैसे ही जीव भी भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न होता रहता है। इसलिये इस दु:खमय संसार में कोई किसी का माता-पिता, पुत्र तथा भाई-बन्धु कुछ भी नहीं है। जिस तरह मनुष्य रूपया व मोहर (मुद्रा) हाथ में रहने से उसको अपना जानते हैं, पर वह किसी का नहीं होता उसी तरह जीवात्मा भी चौरासी लाख योनि में भटकता है पर वह किसी के अधीन नहीं होता। इसलिए मेरा व इनका कुछ नाता नहीं है।

जीवात्मा ने कहा- जीवात्मा क्या किसी जीवात्मा का पिता या पुत्र हो सकता है। सबका पिता तो एक ही है परमपिता परमात्मा जगतपिता सब जीव उन्हीं से प्रगट होते, उन्हीं के पुत्र कहला सकते हैं। रही शरीर संबंधी और व्यवहार जगत की बात? तो कितने जन्मों में ये मेरे माता-पिता हुए होंगे। और कितने जन्म में मैं इनका माता-पिता बना हूँ। जीवात्मा अपने नीचे ऊँचे कर्मों के अनुसार चौरासी लाख योनियों में जन्मता मरता रहता है। और जिस जिस शरीर में जाता है, वहां वहां उसे माता-पिता मिलते हैं। कुत्ते के शरीर में गया तो कुत्ता-कुतिया माँ-बाप ने। सुअर के शरीर में गया तो सुअर बाप बना सुअरिया माँ बनी, गधे के शरीर में गया तो गधा बाप बना गधी माँ बनी, मानव के शरीर में गया तो मानव बाप बना मानवी माँ बनी, तो इनसे पूछिये इस शरीर के माता-पिता के अतिरिक्त पहले के ये जितने-जितने शरीर छोड़-छोड़कर आये हैं यहाँ तो इनको अपने पूर्व के कितने-कितने माता-पिता की याद आ रही है। जिस शरीर में कर्मानुसार जाता है वही माँ-बाप मिलते हैं चौरासी लाख योनियों में चौरासी लाख मां बाप मिले तो इस जन्म के पहले कितने कितने जन्मों में जो मां-

बाप मिले उनकी कितनी याद आ रही है। प्रत्येक जन्म में मिले माँ-बापको स्मरण रखना और उसके प्रति ममता प्रेम निभाना ये संभव नहीं है। इसी सिलसिले में उस जीवात्मा ने अपने पूर्व जन्म की कथा बताई। मैं पूर्वजन्म में एक बहुत उच्चकोटि का भजनानन्दी भक्त था। भिक्षावृत्ति से गुजारा करता था। एक दिन भिक्षा लेने एक बुढ़िया माई के यहां पहुंच गया तो उस बुढ़िया माई ने मुझे बहुत सारा आटा दे दिया लो बाबा, कई दिन तक भगवान के भोग लगेगा। मैंने कहा- माई तुम बड़ी उदार हो। जब इतनी उदारता से तुमने आटा दिया है, तो थोड़े कण्डे और दे दो। तो बुढ़िया ने सुखे कण्डे भी दे दिया। मैंने उन कण्डों को बिना झाड़े ढोके ही जला दिया। बरसात के दिनों में चिंटिया अपने बिलों से निकल कर ऐसे ही जगहों पर अपने अण्डों के साथ डेरा डालती है। उन कण्डों में हजारों लाखों चिटिंयां थी मैंने बिना देखे उन कण्डों को जला दिया। यही मेरे से भूल हो गई। इसके कारण मुझे जन्म लेना पड़ा नहीं तो मैं उसी जन्म में भगवान को प्राप्त कर गया होता। अब कोई कहे एक विषयी प्रपंची को अपने कर्मानुसार जन्म लेकर अपने कर्मों का भुगतान करना पड़ता है और एक भजनानन्दी को भी वैसे ही जन्म लेकर अपने कर्मों का भुगतान करना पड़े तो विषयी प्रपंची में और भजनानन्दी में अन्तर क्या रहा? उसने अन्तर भी बताया कि गनीमत थी कि मैं प्रभु का भजन करनेवाला था नहीं तो मुझे जितनी वो चिटिंया मरीं उतनी बार जन्म लेकर बारी बारी से बदला चुकाना पड़ता हजारों बार जन्मना मरना पड़ता। लेकिन भगवान के भजन के प्रभाव से प्रभु कृपा के कारण ये सुविधा मुझे मिल गयी कि वे सारी की सारी चीटिंया एक साथ आकर राजा चित्रकेतु के यहाँ रानी बन गई और जिस बुढ़िया ने कण्डा दिया था वो आके मेरी माँ बनी रानी कृतद्युति। जैसे वो हजारों चिंटियाँ एक साथ मरी थीं, वैसे ही एक साथ हजारों लाखों ने मिलकर मुझे विष देकर बदला ले लिया। तो मुनिनाथ। भजन के प्रभाव से मुझे हजारों जन्म नहीं लेना पड़ा। एक जन्म में ही इन हजारों लाखों ने संयुक्त मोर्चा बनाकर मेरे को विष देकर बदला ले लिया। अब मेरा कोई शुभ-अशुभ कर्म का, लेन-देन का हिसाब बाकी नहीं रहा। अब मैं सब प्रकार से काल, कर्म, गुण स्वभाव इत्यादि के बंधन से मुक्त होकर भगवान के धाम को जा रहा था। आपने बीच में ही मुझे बुला लिया। मैं आपके बुलावे पर आ गया। आप जैसा कहें, वैसे मैं करने को तैयार हूँ। आप साक्षात् भगवत् स्वरूप हैं। द्वादश भागवताचार्यों में से एक हैं। आपकी बात टालने की मेरी हिम्मत नहीं है। अगर आप कहें तो मैं अभी शरीर में प्रवेश कर जाऊँ।

जो पहले जन्ममें पिता होताहै, दादा होता है, वही इस जन्ममें पुत्र-पौता हो जाता है। अब बताओ, कौन किसकासम्बन्धी है? जैसे नदीके वेगमें बालू बहती है, वैसे ही इस सृष्टिमें जीव रहते हैं। इसमें न तो कोई किसका बेटा है और न कोई किसीका बाप। यह जीव बिल्कुल असम्बद्ध है। इसके लिए शोक नहीं करना चाहिए। जन्मसे पहले और मृत्युके बाद कौन किसका रहता है? यह सब तो भगवान का खेल है। देहसे देह होता है, बीज से बीज होता है और जीव तो शाश्वत है। आप शोक मत करो। जीवात्मा ने कहा- महाराज, जैसे कुछ बीजोंसे दूसरे बीज उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही भगवानकी मायासे प्रेरित होकर प्राणियोंसे अन्य प्राणी उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते है। राजन्, हम तुम और हमलोगोंके साथ इस जगत्में जितने भी चराचर प्राणी वर्तमान है वे सब अपने जन्मके पहले नहीं थे और मृत्युके पश्चात् नहीं रहेंगे। इससे सिद्ध है कि इस समय भी उनका अस्तित्व नहीं है। क्योंकिसत्य वस्तु तो सब समय एक-सी रहती है। भगवान ही समस्त प्राणियोंके अधिपति हैं। उनमें जन्म-मृत्यु आदि विकार बिल्कुल नहीं है। उन्हें न किसीकी इच्छा है और न अपेक्षा। वे अपने-आप परतन्त्र प्राणियोंकी रचना, पालन तथा संहार करते हैं।

जीवात्मा ने कहा महाराज, मैं तो इनको पहचानता भी नहीं कि ये हमारे किस जन्मके माता-पिता है। मैं तो कर्मवश न जाने कहां-कहां गया। कभी पशु हुआ, तो कोई गाय मेरी माता हुई, तो कोई साँड़ मेरा पिता हुआ; कोई घोड़ी मेरी माता हुई, कोई घोड़ा

मेरा पिता हुआ। कभी कोई चिड़िया मेरी माँ बनी तो कोई पक्षी मेरा पिता बना। न जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहा। कितने-कितने मित्र-शत्रु बने। जैसे कोई चीज बाजारमें इस दुकानपर-से उस दुकानपर चली जाती हैं, वैसे ही जीवात्मा अपने कर्मानुसार इस घरसे उस घरमें, इस योनिसे उस योनिमें घूमता रहता है। जबतक शरीरका सम्बन्ध रहता है, तभीतक ममता रहती है। बाप-बेटेका सम्बन्ध बिल्कुल अनित्य है। जीवात्मा अव्यय और सर्वेन्द्रिय-साक्षी हैं। इसका न कोई प्रिय है, न अप्रिय है। इस प्रकारकी जो बुद्धियाँ हैं, हित-अहित हैं, मित्र-शत्रु हैं, उन सबका यह साक्षी है। मेरा तुम लोगोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, तुम लोग मेरे लिए शोक मत करो। इतना कहकर जीवात्मा किसीसे कुछ पूछे बिना ही चला गया।

पूर्वजन्म में मैं और चित्रकेतु दोनों मनुष्य राजा होकर आपस में लड़ते थे। जब मैं अपनी सेना कट जाने से भरभण्ड के वन में जाकर छिपा तब उसने वहाँ आकर मेरा सिर काट लिया था। उसी कारण इस जन्म में मैंने पुत्र होकर इसे दु:ख दिया। ये सब रानियाँ पिछले जन्म में एक करोड़ चिंटियाँ होकर एक माँद में रहती थीं, हमने दँतौन करते समय उनके बिल में पानी गिरा दिया, सो वे सब मर गई। इसी कारण उन्होंने इस जन्म में मुझे विष देकर अपना बदला लिया। इसी तरह सब जीव संसार में जन्म लेकर एक दूसरे से अपना बदला लेते हैं।

यदि उत्पन्न करने से ही माता-पिता हैं, तो मुझे इस समय सहस्रों जन्मों की स्मृति हो रही हैं। सहस्रों योनियों में मैंने अनेकों बार जन्म ग्रहण किये है। उन सब योनियों में मेरे माता-पिता हुए हैं। किस-किस जन्म के किस-किस योनिवालों से मैं माता-पिता कहूँ। फिर मैंने भी अनेक योनियों में अनेकों सन्तानें उत्पन्न की हैं। ये भी अनेकों बार मेरे पुत्र-पुत्री बने हैं। तब तो मैं भी इनका पिता हुआ। सब योनियों में जीव के एक ही माता, पिता, बन्धु, भृत्यश होते हों सो बात नहीं। कभी पिता पुत्र बन जाता है, भ्राता साला बन जाता है, माता पत्नी हो जाती है। जातिवाले विजाति में जन्म लेते हैं। शत्रु मित्र बन जाते हैं। सारांश यह कि ज्ञाति, शत्रु, मित्र, उदासीन, बन्धु-बान्धव ये सब बदलते रहते हैं, उलटते-पलटते रहते हैं।

जब तक जिसका सम्बन्ध रहता है, तभी तक उसका उनमें ममत्व भी रहता है। ये सभी सम्बन्ध तो शरीर के साथ हैं। जहाँ शरीर से सम्बन्ध विच्छेद हुआ तहाँ ममत्व भी छूट जाता है। जैसे रुपया, पैसा, मोहर, निष्क आदि सुवर्ण चाँदी के सिक्के हैं। जब तक हमारे पास हैं हम कहते हैं हमारे हैं, उन्हें प्राणों से भी अधिक वसम्हाल कर रखते हैं। शक्ति भर खर्च नहीं करते। जहाँ हमारे पास से चले गये, हमारा उनमें से ममत्व भी चला गया। अब दूसरे के पास जाकर वे खो जायँ, टूट जायँ, नष्ट हो जायँ हमें कोई चिन्ता नहीं। हमारा एक घर है जब तक हमारे नाम हैं, हमारा उसमें ममत्व है, तभी तक उसके टूटने फूटने जीर्ण होने की चिन्ता है। जहाँ वह दूसरों के अधिकार में चला गया हमारे जाने वह टूट जाय, हम उसे अपना कहते ही नहीं। इसी प्रकार जहाँ शरीर का अन्त हुआ पुराने सम्बन्धों का भी अन्त हो जाता है। अब मेरा इनसे कोई सम्बन्ध नहीं। वास्तव में देखा जाय तो जीव तो नित्य, शुद्ध-बुद्ध जन्म मरण आदि से रहित है। स्वयं प्रकाश होने के कारण सबका अधिष्ठान है। यह सर्वसमर्थ है, मायिक गुणों से स्वयं ही इस दृश्य प्रपंच की रचना करके उसमें स्वयं ही प्रविष्ट हो जाता है। ऐसा कहकर वह जीवात्मा चला गया।

तब नारदजी ने चित्रकेतु राजा से कहा- बोलो राजन्। जिसे तुम पुत्र कहते थे उसकी बात सुनी। हां महाराज, सुनी अभी भी यह राजी है कहता है कि आप कहें तो मैं अभी शरीर में प्रवेश करूँ। राजन्, अब मैं तुमसे कहलाना चाहता हूँ। बोलो इसको शरीर में प्रवेश कराऊँ या भगवत धाम जाने की अनुमति दूँ। तुम कहो तो अभी उसे लाकर शरीर में गिरफ्तार करूँ अर्थात् पुनर्जीवित कर दूँ अब उस जीवात्मा की बात सुनकर चित्रकेतु राजा की बुद्धि पर जो मोह का पर्दा पड़ा था वह हट गया। उनकी आँखों में आँसू आ गये। वे बोले- नहीं भगवन्, मैं तो त्रिताप की ज्वाला में जल ही रहा हूँ। मैं तो भवसागर में डूब ही रहा हूँ। मैं तो कन्टकाकीर्ण पथ पर घिसट ही रहा हूँ, मैं तो बन्धन में पड़ा हूँ, मैं तो वासना के दलदल में फंसा ही,

इसे भी क्यों फँसाऊँ। अपने स्वार्थ के लिये इस साधन सम्पन्न विमुक्त प्राणी को क्यों शरीर के बन्धन में लाकर डालूं। इसको बन्धन में डालकर मैं बन्धन से मुक्त कैसे होऊँगा। इसे तो जाने दीजिये भगवद् धाम को और मुझे वही भगवद् भक्ति का मार्ग बताइये। जिससे मैं भी इस जन्म-मरण के चक्कर से छूटकर आवागमन से छूटकर भगवान की सुखद परमानन्द गोद में बैठूं। मैं भी अब इस बन्धन से मुक्त होऊँ अब आये सही रास्ते पर। चित्रकेतु बोले- आप दोनों परम ज्ञानवान और महान व्यक्ति जान पड़ते हैं। अपनेको अवधूत वेषमें छिपा रखा है। ब्रह्मवेत्ता मेरे जैसे विषयासक्त प्राणियोंको उपदेश करनेके लिये उन्मत्तका सा वेष बनाकर पृथ्वीपर स्वच्छन्द विचरण करते हैं। सनतकुमार, नारद, ऋभु, अंगिरा, देवल, असित,व्यास, मार्कण्डेय, गौतम, वसिष्ठ, भगवान परशुराम, कपिलदेव, शुकदेव, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, आरुणि, रोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरि, पतञ्जलि, वेदशिरा, बोध्यमुनि, पंचशिरा, हिरण्यनाभ, कौसल्य, श्रुतदेव और ऋतध्वज ये सब तथा दूसरे सिद्धेश्वर ऋषि-मुनि ज्ञानदान करनेके लिये पृथ्वीपर विचरते रहते हैं। मैं विषयाभोगोंमें फँसा हुआ, मूढ़बुद्धि ग्राम्य पशु हूँ और अज्ञानके घोर अन्धकारमें डूब रहा हूँ।

जो कर्म-वासना में प्रेरित होकर विषयों का चिंतन करते हैं उन्हीं के मन से नाना प्रकार के कर्म उत्पन्न होते हैं, अत: इन असद्-पदार्थों में से सद्बुद्धि का त्याग कर देना चाहिये। इन अनित्य पदार्थों को भूलकर भी नित्य न समझना चाहिये, परिणाम में दुखद सिद्ध होनेवाले विषयों से कभी सुख बुद्धि न करनी चाहिये।

को कलत्र, को मित्र, पुत्र, को का को भाई। जगके सब सम्बन्ध अन्तमहँ अति दुखदाई॥
सम्पति सब ऐश्वर्य, विषय-सुख, राज, कोष, धन। पृथ्वी, सेना, भृत्य, सुहृद् आमात्य बन्धुगन॥
स्वप्न समान अनित्य ये, शोक मोह भय देहिँ दुख। तजो द्वैत भ्रम-जालकूँ, तब पाओ नृप नित्य-सुख॥

नारदजी ने राजा को संकर्षण भगवान की पूजा आराधना पद्धति बताई और कहा कि तुम भजन करो। भगवान की दीक्षा दी और राजा ने नारदजी की बतायी विधि से भगवान की भक्ति की। और उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर संकर्षण भगवान ने उसको दर्शन दिया और इनको एक दिव्य सिद्ध अव्याहत गतिवाला विमान दिया और कहा इस विमान पर बैठकर तुम जहाँ चाहोगे वहाँ जा सकोगे।

कह्यो अंगिरा ज्ञान, फेरि बोले नारद मुनि। देहुँ मन्त्र उपनिषद, ताहि नृप सावधान सुनि॥
जगके सब सम्बन्ध संग तनके ही जावें। माता पत्नी बने पिता पुनि पुत्र कहावें॥
यों कहि मृतक कुमारकूँ, मुनि जीवित-सो करि दयो। दुखित भूपतें जीवने, आत्मज्ञान अति प्रिय कह्यो॥

जीव नित्य और अहंकार-रहित है। वह जब तक जिस शरीर में रहता है, तभी तक उसे अपना समझता है। यह जीव नित्य, अविनाशी, सूक्ष्म, सबका आश्रय और स्वयंप्रकाश है फिर भी यह ईश्वर रूप होने के कारण अपनी माया के गुणों से ही अपने आपको विश्व के रूप में प्रकट कर देता है। जब तक जिसका जिससे सम्बन्ध हैं, तभी तक उसका उसके साथ ममत्व है। स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु आदि सारा जगत् माया का खेल है। जीवात्मा का न तो कोई प्रिय है और न अप्रिय, न अपना और न पराया। संसारी प्राणी इस अविनाशी आत्मा को पहचानता ही नहीं। आत्मा को इसने पहले भी कभी नहीं देखा था। जिस शरीर को देखा था, वह तो अब भी इसके सामने ही पड़ा है। ऐसी स्थिति में शोक करने का कारण क्या है?

शुकदेव बोले- राजन्, वह जीवात्मा इस प्रकार कह कर चला गया। माता-पिता, भाई-बन्धु सभी उसकी बातें सुनकर आश्चर्यचकित हुए। उनका स्नेह-बन्धन कट गया और बालक के मरने का शोक भी समाप्त हो गया। इसके बाद शास्त्र के अनुसार बालक का पारलौकिक संस्कार किया गया। राजकुमार को जहर देकर मारनेवाली स्त्रियों ने

ब्राह्मणों के कथनानुसार यमुना में स्नान कर प्रायश्चित्त किया और फिर शुद्ध हुईं। रानियोंने देखा कि देहके मरनेके बाद ही जीवात्मा रहता है। उनका धर्मपर विश्वास हो गया। उन्होंने अनुभव किया कि हमने हत्या करके बड़ा भारी पाप किया और इस पापका प्रायश्चित भी किया।

जिन रानिनि विष दयो तिननिहू अति दुख कीन्हों। पूर्वजन्मको वैर विमाता बनिके लीन्हों।।
मुनिके पकरे पाँइ पाप निज सत्य सुनायो। सब सुनि प्रायश्चित्त सबनितें सविधि करायो।।
हतप्रभ लज्जित नारि सब, यमुनाजीमें न्हाइके। पछिताई कल्मष रहित, भई कृष्ण गुण गाइके।।

शुकदेव बोले- राजन्, ये जो विष देनेवाली रानियाँ थीं, वे बालहत्या के कारण हतप्रभ और लज्जित हो रही थीं। उन्होंने महामुनि अंगिराजी के भाषण को स्मरण करके, ब्राह्मणों ने जैसे बताया वैसे ही यमुना के किनारे बालहत्या का प्रायश्चित किया।

जीव नित्य अति सूक्ष्म प्रकाशक स्वयं निरंजन। मायाके गुण रोपि करे योगिनि मन रंजन।।
मायिक गुण सम्बनध भयो दीखे मदमातो। जब तक रहे शरीर माहिँ तब तक है नातो।।
अगनित योनिनमहँ भ्रमे, काकूँ निज पर कहि गने। कबहूँ नर, पशु देव बनि, पिता, पुत्र, भ्राता बने।।

अंगिरा और नारद के उपदेश से राजा चित्रकेतु की विवेक-बुद्धि जाग्रत हुई। उन्होंने यमुना में स्नान किया। मृत बालक को जलांजलि दी और मुनियों को प्रणाम कर उनके पास विनम्र होकर बैठ गये। अब मोह के कारण होनेवाला उनका अज्ञान समाप्त हो चुका था। देवर्षि नारद ने देखा कि चित्रकेतु जितेन्द्रिय, भगवद्भक्त और शरणागत हैं अत: उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर उन्हें शेष-**तोषिणी**-विद्या का इस प्रकार उपदेश दिया- ॐ कारस्वरूप भगवन्, आप वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण के रूप में क्रमश: चित्त, बुद्धि, मन और अहंकार के अधिष्ठाता हैं। मैं आपके इस चतुर्व्यूह रूप का बार-बार नमस्कारपूर्वक ध्यान करता हूँ।

देवर्षि नारद अपने शरणागत भक्त को इस विद्या का उपदेश देकर अंगिरा के साथ ब्रह्मलोक को चले गये। राजा चित्रकेतु ने केवल जल पीकर एकाग्रचित्त से सात दिनों तक इस विद्या का सविधि अनुष्ठान किया। तदनन्तर इस विद्या के अनुष्ठान से सात रात के पश्चात् राजा चित्रकेतु को विद्याधरों का अखण्ड आधिपत्य प्राप्त हो गया। विद्या की सिद्धि हो गई। उसके फलस्वरूप वे शेष भगवान् के चरणों के पास पहुँच गये। उन्होंने देखा कि- भगवान् शेषजी सिद्धेश्वरों के मध्य में विराजमान हैं। उनका शरीर कमल-नाल के समान गौरवर्ण है। उस पर नीले रंग का वस्त्र फहरा रहा है। सिर पर किरीट, बाँहों में बाजूबन्द कमर में करधनी और कलाई में कंगन आदि आभूषण चमक रहे हैं।

शेषजी का दर्शन कर चित्रकेतु के सारे पाप विनष्ट हो गये। उनका अन्त:करण स्वच्छ और निर्मल हो गया। हृदय में भक्ति का सागर हिलोरें लेने लगा। नेत्रों में प्रेम के आँसू छलछला आये। शरीर के सारे रोम खिल उठे। उन्होंने ऐसी स्थिति में शेष भगवान को विनम्र होकर प्रणाम किया। आँखों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी अत: कुछ क्षणों तक वे मौन खड़े रहे। प्रेमविह्वल हो उन्होंने कहा- भगवन्, आप के दर्शनमात्र से ही मनुष्यों के सारे पाप क्षीण हो जाते हैं। यह कोई असम्भव बात नहीं है, क्योंकि आपका नाम एक बार सुनने से ही नीच चाण्डाल भी संसार से मुक्त हो जाता है। भगवान शेष ने कहा- वासनाओंकी पूर्तिमें बड़ा दु:ख है। लोग इसीके लिए नाना प्रकारके कर्म करते हैं और विपर्ययमें फँस जाते हैं। अपने आपको पहचानो। आत्माका स्वरूप बहुत सूक्ष्म है। जाग्रतमें स्वप्न नहीं, स्वप्नमें जाग्रत नहीं, जाग्रत-स्वप्न सुषुप्तिमें नहीं, और अपना आत्मदेव सर्वत्र है। देश, काल, वस्तु तो तीनों अवस्थाओंमें चले जाते हैं। यह तो माया है, जो आत्माको ढक देती है, देखनेवालेको ढक देती है। अपनेको विरक्त करके दृश्य पदार्थोंसे निकालो और ज्ञान-विज्ञानसे सन्तुष्ट होकर

परमात्माकी भक्तिमें लग जाओ। जितने ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न विशुद्ध महात्मा हुए हैं। जो अपने साधन-भजनमें, योग-सांख्यमें निपुण-बुद्धि मनुष्य हैं, उनको चाहिए कि वे सबको अपना ही स्वरूप समझें। हमारा इतना ही सर्वात्मना स्वार्थ-परमार्थ है कि परमात्माऔर आत्मा दोनों एक हैं। अनुभव ही दर्शन है और यही असलमें मूल तत्त्व है। सारे योग का सार यही है कि साधक आत्मा और परमात्मा की एकता का अनुभव करे। शेष ने कहा- राजन्, एक तो मेरी मूर्ति है शब्द ब्रह्म दूसरी मूर्ति है परब्रह्म ये दोनों मेरी सनातन मूर्तियाँ है।

दुर्लभ है नरदेह भाग्यतें कोई पावें। पाइ करें नहीं भक्ति अन्तमहँ ते पछितावें।।

ज्ञान दयो श्री शेषने, भक्त प्रवर भूपति भये। पुनि करि सेवक श्रम सफल, अन्तर्हित हरि ह्वै गये।।

शुकदेव कहते हैं कि- राजन्, जगद्गुरु विश्वात्मा भगवान शेषजी चित्रकेतु को इस प्रकार समझा-बुझा कर उनके सामने ही वहाँ से अन्तर्धान हो गये। भगवान शेष जिस दिशा में अन्तर्धान हुए थे, उस दिशा की ओर प्रणाम कर विद्याधर चित्रकेतु आकाश मार्ग से स्वच्छन्द विचरण करने लगे।

जगदम्बा की हँसी उड़ाई। दीन्ह शाप जगदम्बा माई। चित्रकेतु की कथा सुनाई। असुर योनि जिहि कारण पाई।।

महायोगी चित्रकेतु चिरकाल तक सुमेरु पर्वत की कन्दराओं में विद्याधरियों के साथ भगवान की लीला का गान करते रहे। बड़े-बड़े मुनि, सिद्ध और चारण उनकी स्तुति करते थे। भगवान ने उनकी भक्ति से प्रसन्न हो उन्हें एक विमान दिया था जिस पर चढ़कर वे अविरत गति से विचरण करते थे। एक बार वे भगवान के दिये हुए विमान पर बैठ कर वहाँ चले गये जहाँ बहुत बड़ी सभा में शंकर जी उपदेश कर रहे थे। उनकी बाँईं जांघ पर जगदम्बा पार्वती बैठी हुई थीं। शंकर जी ने उन्हें एक हाथ से पकड़ रक्खा था। उनके चारों ओर बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, सिद्ध और चारण बैठे थे। यह देखकर चित्रकेतु विमान पर चढ़े हुए ही उनके पास चले गये। उन्होंने इस दृश्य को देखकर जोर से हँसते हुए पार्वती को सुना-सुना कर कहना प्रारम्भ किया- अहो। ये सारे जगत् के धर्मोपदेशक और गुरु हैं। ये समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ हैं। इनकी यह दशा है कि भरी सभा में अपनी पत्नी को शरीर से चिपका कर बैठे हुए हैं, नीति है, छोटे लोग बड़े लोगोंकी देखादेखी करते है। ये लम्बी-लम्बी जटाएँ बढ़ाये हुए हैं, बहुत महान् तपस्वी हैं, ब्रह्मवादियों के शिरोमणि हैं फिर भी ये साधारण पुरुष के समान निर्लज्जतापूर्वक गोद में स्त्री लेकर बैठे हैं। प्राय: साधारण पुरुष भी एकान्त में ही स्त्रियों के साथ उठते-बैठते हैं। परन्तु ये इतने बड़े व्रतधारी होकर भी उसे भरी सभा में पकड़े बैठे हैं। जब ये जगद्गुरु कहला कर सभा में पत्नी की गोद में लेकर बैठे हैं, तो जगत की रीतिनीति क्यों नहीं बिगड़ेगी, गृहस्थ भी पत्नी को गोद में लेते हैं। लेकिन एकान्त कक्ष में। और ये सभा में बैठे हैं पत्नी को गोद में लेकर इससे औरों का अनुशासन बिगड़ेगा। कहीं इनकी देखादेखी और लोग भी अपनी-अपनी पत्नी को लेकर सभा में बैठने लग जायेंगे तो शास्त्र की मर्यादा कैसे रहेगी। ऐसा बोल गये राजा चित्रकेतु अपनी समझ के अनुसार।

अष्टसिद्धि नवनिद्धि नृपतिके निकट विराजें। विद्याधरपति भये तेजमहँ रवि सम भ्राजें।।

एक दिना कैलाश गये शिव शिवा सङ्गमहँ। बैठे लैके अंक मिलायें अंग-अंगमहँ।।

हँस्यो देखि शिव सन कहे, वचन कठिन अति व्यङ्गते। तजि लज्जा लिपटे रहें, शम्भु शिवाके अङ्गते।।

शुकदेव बोले- राजन्, एक बार चित्रकेतु भगवान के दिये दिव्य विमान पर चढ़कर आकाश से जा रहा था। तब उसने सिद्ध चारणों से घिरे हुये भगवान भोलेनाथ को देखा। वे मुनि मण्डली में अपनी प्रिया भगवती पार्वती का बाहु से आलिंगन किये हुए थे, देवी उनकी गोदी में बैठी हुई थीं। यह देखकर चित्रकेतु उनके समीप गया और बड़े जोरों से हँसकर पार्वतीजी को सुनाते हुए,न कहने योग्य वचन कहने लगा।

शंकरजी तो कुछ नहीं बोले लेकिन पार्वतीजी बहुत नाराज हुई और कहने लगी- अब तक तो शंकर जी जगद्गुरु कहलाते थे। लेकिन लगता है जगद्गुरु का भी गुरु हो गया। हमको निर्लज्ज बताकर के शंकरजी में दोष बता रहा है। इसको क्या पता शंकरजी पार्वतीजी को किस भाव से अंक में विराजमान किये हुए हैं। यहां बड़े-बड़े ऋषि महर्षि वसिष्ठ सनकादिक इत्यादि बैठे हैं उन किसी की हिम्मत नहीं पड़ी शंकरजी में दोष बताने की। संकर्षण भगवान ने इसे विमान क्या दे दिया ये तो शंकरजी के सिर पर ही सवार होने को तैयार हो गया। ये तो जगद्गुरु का भी गुरु पैदा हो गया।

ये विमान पर बैठकर वैकुण्ठ जाने की तैयारी में है। ये वैकुण्ठनाथ जो भगवान है उनके चरणों में पहुँचने लायक भी नहीं है। ये अधिकारी नहीं है।

पार्वती को गोद में लेकर बैठने का रहस्य यह है- एक बार कामदेव ने शंकर को युद्ध के लिये ललकारा। शंकर ने कहा- एक बार तुम मुझसे लड़ने के लिये आये थे। मैंने तुम्हें जलाकर भस्म कर दिया था फिर भी तुम्हारी लड़ने की इच्छा बनी ही है। कामदेव ने कहा- वह मेरी गलती थी। सती मर चुकी थी। आप समाधि लगाये बैठे थे। उस समय मैं लड़ने के लिये आप के पास चला गया था अत: आपने मुझे हरा दिया, जला दिया। किन्तु अब आपका विवाह हो गया है। पार्वती आपके साथ है। अब युद्ध में मुझे हराइये तब आपकी वस्तुत: विजय मानी जायेगी। शंकर ने कहा- आमने-सामने का युद्ध नहीं होगा। मैं पार्वती को गोद में लेकर बैठूंगा। उस समय तुम मेरे ऊपर बाण चलाना। यदि मेरा मन तनिक भी विचलित हो जायेगा तो तेरी विजय होगी और विचलित नहीं होता तो तेरी पराजय होगी। पार्वती गोद में बैठी थी। काम बाण पर बाण चला रहा था और अविचलित शंकर प्रवचन कर रहे थे। यह रहस्य चित्रकेतु को विदित नहीं था अत: वह अनाप-शनाप बकने लगा। शंकर तो मुस्कराकर रह गये। पर चित्रकेतु के लिये जिनको सत्यका ज्ञान नहीं होता, वो ही असत्यमें भटकते रहते हैं।

खिलखिलाय हर हँसे नृपतिके व्यङ्ग वचन सुनि। निरखि शम्भु रुख मौन रहे सुर असुर देव मुनि।।
किन्तु सहन नहिँ भये कुपित अति भई भवानी। जान्यो हैं यह धृष्ट नीच अतिशय अभिमानी।।
रोष सहित बोली शिवा, हमरे गुरु आये नये। ब्रह्मा, हरि, नारद, कपिल, ये सब तो बूढ़े भये।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, भगवान शंकर बुद्धि के अगाध सागर हैं। चित्रकेतु का यह कटाक्ष सुनकर वे हँसने लगे। कुछ भी बोले नहीं। उनके हँसने का कारण यही था कि चित्रकेतु रहस्य से अनभिज्ञ है अत: अनाप-शनाप बकवास कर रहा है।

शंकर के क्रोध न आने का कारण यह है कि उनके सिर पर गंगाजी की शीतलधारा, ज्ञान की धारा सतत बहती रहती है। जिसका सिर शीतल रहता है, ज्ञान से भरा रहता है, उसे क्रोध नहीं आता। क्रोध तो उसे आता है, जिसका सिर गरम होता है, ज्ञान से खाली रहता है अत: किसी कारण क्रोध आने पर सिर को शीतल जल से धोना चाहिये, ठण्डा पानी पीना चाहिये।

उस सभा में बैठे हुए शंकर के अनुयायी भी चुप ही रहे, कुछ बोले नहीं। चित्रकेतु भगवान शंकर के प्रभाव से अनभिज्ञ थे। इसीसे वे उनके लिये बहुत कुछ बुरा-भला बक रहे थे। उन्हें इस बात का घमण्ड हो गया था कि मैं जितेन्द्रिय हूँ। पार्वती जी को चित्रकेतु की यह धृष्टता बर्दाश्त नहीं हुई अत: वे उसको शिक्षा देने के लिये क्रोधभरी मुद्रा में बोली- अहो। हम जैसे दुष्टों निर्लज्जों को दण्ड देनेवाला, शासन एवं तिरस्कार करनेवाला स्वामी इस संसार में यही पैदा हुआ है क्या? जान पड़ता है कि ब्रह्माजी, भृगुजी, नारदजी, सनकादि, कपिल तथा मनु आदि बड़े-बड़े महापुरुष धर्म के रहस्य को नहीं जानते। तभी तो वे धर्ममर्यादा का उल्लंघन करनेवाले भगवान शिव को इस काम से नहीं रोकते हैं। क्या यही मूर्ख धर्म का ठेका लेकर अकेले जन्मा है?

ब्रह्मादिक नित लखें नहीं बरजे श्रीशिवकूँ। आये ये आचार्य धर्म समुझावन हमकूँ।।

ऋषि-मुनि साधक सिद्ध आइ हर पद सिर नावें। विद्याधर ये तिन्हें नियम आचार सिखावें।।
अपराधी बाचाल अति, मानी परम अशिष्ट है। जाते जिह क्षत्रिय अधम, दण्डनीय अति दुष्ट है।।

चित्रकेतु की धृष्टता से कुपित हुई भगवती पार्वतीजी कह रही है- जिनके युगल चरणकमल इन सभी देवता ऋषि-मुनि आदि के भी ध्येय हैं, साक्षात् उन्हीं मंगलों के भी मंगल जगद्गुरु भगवान सदाशिव का यह नीच क्षत्रिय निरादर पूर्वक़ शासन करता है, उन्हें खरी खोटी सुनाता है। इसलिये यह धृष्ट दण्ड देने योग्य है।

जिन भगवान शंकर के चरण-कमलों का ध्यान ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता करते रहते हैं, उन्हीं मंगलों के मंगल भगवान का और उनके अनुयायी महात्माओं का इस अधम क्षत्रिय ने तिरस्कार किया है अत: यह ढीठ शासन करने का पात्र है। यह सर्वथा दण्ड के योग्य है। यह दुष्ट भगवान् श्रीहरि के चरणों में रहने योग्य नहीं है। जो समस्त लोक के वन्दनीय और पूजनीय मानते जाते हैं, जो परम यशस्वी और तपस्या की मूर्ति ही माने जाते हैं। उनके अतिरिक्त वसिष्ठ, पुलह, कृतु, अंगिरा, अत्रि और मरीचादि ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं, प्रजापति हैं, वे इस अविनय को नहीं समझ सकते? ये जो सम्मुख बालरूप में सनक, सनन्दन, सनातन और सनतकुमार बैठे हुए हैं, ये तो शिवजी के भी अग्रज हैं, सबके पूजनीय और वन्दनीय हैं, इनके पूर्वजों के भी पूर्वजों के अर्चनीय हैं। ये तो बाल ब्रह्मचारी हैं इन्होंने तो कभी स्त्री का स्पर्श तक नहीं किया, यदि शिवजी की यह क्रीड़ा इन्हें अनुचित और सदाचार के विरुद्ध लगती, तो यहाँ ये इस प्रकार हाथ जोड़े हुएसभा में विनीत भाव से क्यों बैठे रहते। इनकी बगल में ही ये वीणा दबाये त्रैलोक्य वन्दित बाल ब्रह्मचारी तपोधन नारदजी बैठे हैं, जो समस्त विद्याओं के आचार्य हैं सदाचार के प्रवर्तक हैं। भक्ति के संस्थापक हैं, भगवान के अवता हैं, यदि भगवान सदाशिव के आचरण को ये निसिद्ध समझते, मर्यादा के विरुद्ध अनुभव करते, तो ये इस प्रकार आकर शिवजी से प्रश्न क्यों किया करते? क्यों उनकी आकर उपासना करते?

ये योगीश्वरों के भी ईश्वर भगवान कपिल ज्ञानावतार और सतयुग के युगावतार माने जाते हैं। संसार में इनसे बढ़कर ज्ञानी कहाँ मिलेगा? कौन इनके ज्ञान की थाह पा सकता है? कामेच्छा और विषय-भोग की अभिलाषा तो इन्हें स्पर्श भी नहीं कर सकती। ये स्वयं आकर शिवजी के चरणों में अपना मस्तक रगड़ते हैं, ये स्वयं आकर भगवान से शिक्षा ग्रहण करते हैं, धर्म के मर्म को समझते हैं, यदि शिवजी को ये सदाचार च्युत समझते तो यहाँ आकर शिव वन्दना क्यों करते? क्यों इन योगेश्वर की आकर श्रद्धा-भक्ति के साथ उपासना करते? राजवंशों के प्रवर्तक ये भगवान स्वायंभुव मनु बैठे हैं और भी अनेकों मन्वन्तरों का शासन करनेवाले और कर चुकनेवाले बहुत से मनु यहाँ समुपस्थित हैं। जो इसके बाप के बाप के भी पूजनीय और माननीय हैं, इन्होंने शिवजी के व्यवहार को कभी धर्म विरुद्ध नहीं बताया, यही एक परम सदाचारी धर्मात्मा क्षत्रियाधर्म प्रकट हुआ है, कि शिवजी की चर्या को दोषपूर्ण बताता है।

भगवती ने रोष के स्वर में कहा- क्षमा करने योग्य अपराध किया होता तो मैं इसे अवश्यक्षमा कर देती, किन्तु इसने तो अक्षम्य अपराध किया है। जो समस्त मंगलों के भी मंगल स्वरूप है। स्वयं साक्षात् मंगल की सजीव मूर्ति ही माने जाते हैं, जो समस्त लोकों के गुरु माने जाते हैं, उन शंकर का इसने निश्शम होकर भरी सभा में सबके सम्मुख अपमान किया है उन्हें डाँटा है, अपना शासन चलाया है। सब पापियों की निष्कृति हो सकती है, किन्तु गुरुद्रोही की निष्कृति नहीं। आज यदि मैं इसे क्षमा कर दूँगी, तो इसकी देखी-देखी और भी लोग अपराध करेंगे, ऐसा अपराध करने से उन्हें कोटि कल्पों तक नरक की अग्नियों में पचना पड़ेगा। अत: इस समय क्षमा करना इसके लिये भी हितकर नहीं है और संसार के लिये भी अहितकर है। यदि अब इसे अपने किये का दण्ड तत्क्षण मिल जायगा तो यह भी इस घोर पाप से निवृत्त हो जायगा और

संसारी लोग भी सावधान हो जायँगे, कि शिव निन्दा करनेवाले का किसी भी प्रकार कल्याण नहीं हो सकता। अरे, देखो तो सही इसे अपनी श्रेष्ठता का कैसा अभिमान है। जिनक युगल अरुण चरण-कमलों का ध्यान करके ब्रह्मादिक देवता अपने को कृतार्थ समझते हैं, उन्हीं के प्रति यह द्वेषभाव रखता है। ऐसा अभिमानी पुरुष भक्त-भयहारी अकिञ्चनों के धन, अमानियों के सर्वस्व भगवान् विष्णु के चरणों के निकट रहने योग्य नहीं है। इसलिये मैं शाप अवश्य दूँगी। बातें तुमने आसुरी भाव में भरकर कही हैं। उस भाव से तेरी बुद्धि विपरीत बन गई है। अत: कुछ दिन के लिये तू असुर हो जा। तुझे आसुरी योनि में फिर से जन्म लेना पड़े। वहाँ तू भर पेट देवताओं की निन्दा करना, मनमाना द्वेष करना। आसुरी योनि भोग लेने पर तेरी शुद्धि हो जायेगी।

शोक मोह कछु नहिँ भयो, शम्भु प्रियाको शाप सुनि। बवचन सतीसन यह कह्यो, चित्रकेतु पद बन्दि पुनि।।
मातु तुम्हारो शाप हर्षयुत ग्रहणकरूँ मैं। परम अनुग्रह मानि शीश निज जननि धरूँ मैं।।
शाप अनुग्रह देव नहीं स्वेच्छातें देवे। करे पूर्व जस कर्म उन्हें ई सब जनि लेवें।।
चक्र सरिस संसारमहँ, सुख-दु:ख आवत भाग्यवश। शाप अनुग्रहके निमित, कर्म करे नर ह्वै अवश।।

इतना कहकर उन्होंने चित्रकेतु को शाप देते हुए कहा- दुष्ट, तुम पापमय असुर योनि में जन्म ग्रहण करो। जिससे तुम पुन: महात्माओं का ऐसा अपराध नहीं करोगे। मैं इसको शाप देती हूँ कि आसुरी योनि में जा। जिससे फिर किसी महापुरुष की आलोचना अवहेलना करने की हिम्मत न पड़े।

शुकदेव बोले- राजन्, पार्वती के शाप को सुनकर चित्रकेतु विमान से नीचे उतरा और सीधे जाकर पार्वती जी के चरणों पर गिर पड़ा और कहा- माता पार्वती जी, मैं बड़ी प्रसन्नता से अपने दोनों हाथ जोड़कर आपका शाप स्वीकार कर रहा हूँ।

क्योंकि देवता लोग मनुष्य के लिये जो कुछ कह देते हैं वह उनके प्रारब्धानुसार मिलनेवाले फल की पूर्व सूचना मात्र है। जगदम्बे, मेरी वाणी से आपको कष्ट हुआ उसके लिये क्षमा करना। मैं क्षमा इसलिये नहीं मांग रहा हूं कि मुझे आसुरी शरीर में आसुरी योनि में जाना पड़े। मैं तो प्रभु के चरणों में समर्पित प्राणी हूँ। प्रभु चाहे जहां भेज दे मैं आसुरी योनि में जाने से भी नहीं घबड़ाता। आसुरी योनि में जाने से मुझे कोई घबड़ाहट नहीं है। देवता लोग किसीको शाप नहीं देते। वे तो जो होनेवाला होता है उसीको समयसे पहले बता देते हैं। न तो कोई किसीको सुख देता है और न दु:ख देता है। यह जो अपनेको या किसी दूसरेको सुख-दु:खका हेतु मानता है, वह तो सरासर गलत हैं। कोई भी प्राणी न किसी का अनिष्ट कर सकता है और न ही कोई सुख पहुँचा सकता है। न कोई किसी को स्वेच्छा से वरदान ही देने में समर्थ है न शाप ही दे सकता है। पूर्वजन्म के जिसके जैसे कर्म होंगे प्रारब्धानुसार वैसा ही उन्हें सुख-दु:ख प्राप्त हो जायगा। शाप और वरदान देनेवाले तो केवल निमित्त मात्र होते हैं, जो कुछ मिलता है, वह तो प्रारब्धानुसार ही मिलता है। सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणकी धारा बह रही है। इसमें ताप क्या, स्वर्ग क्या, क्या नरक, क्या सुख और क्या दु:ख। भगवान अकेले ही अपनेको सर्वरूपमें दिखाते हैं। वही बन्धन हैं और वही मोक्ष है, वही सुख है, वही दु:ख। न उनका कोई अपना है, न पराया है, न उनको राग है, न द्वेष।

यह तो प्रारब्धानुसार प्राप्त होनेवाले आगामी भोग की सूचना है। यह तो संसार चक्र है। मनुष्य अपने कर्मानुसार सुख-दु:ख भोगता है और न कोई अन्य है। अज्ञानी तथा अविवेकी ही सुख दु:ख देने का कारण दूसरों को मानते हैं। ये श्राप, वरदान, नरक, स्वर्ग, सुख, दु:ख सब केवल कल्पना मात्र हैं। इन सबका कारण मात्र केवल वह परमात्मा ही है जो अपनी माया से समस्त प्राणियों को बन्धन में तथा मोक्ष आदि में डालता है। किन्तु उसका इनसे सम्बन्ध कुछ भी नहीं होता। भगवान समदर्शी है, उनका न कोई मित्र तथा न कोई शत्रु है। न उनका अपना पराया कोई नहीं है। केवल भगवान की माया से उत्पन्न

पाप तथा पुण्य कर्म ही जीव के सुख दु:ख का हेतु बनते हैं। वही बन्धन मोक्ष तथा जन्ममरण के आवागमन का हेतु है।

यह जीव अज्ञान से मोहित होकर ही संसार चक्र में नाना योनियों में स्वकृत कर्मानुसार सुख-दु:ख दे सकता है। विवेकहीन पुरुष ही ऐसी बातें कहा करते हैं,उसने हमें बड़ा दुख दिया। उसने हमें अभूतपूर्ण आनन्द पहुँचाया। सब स्वकर्म सूत्र में बँधकर विवश होकर कर्म करते रहते हैं।

राम का नाम लेकर जो मर जायेंगे। वे अमर नाम दुनिया में कर जायेंगे।।
ये न पूछो कि मरकर किधर जायेंगे। वो जिधर भेज देंगे उधर जायेंगे।।
बात मानो या न मानो खुशी आपकी। हम मुसाफिर कल अपने घर जायेंगे।
प्रभु जिधर भेज देंगे उधर जायेंगे।।

इससे मेरे पापों का प्रायश्चित्त हो जायेगा। यह जीव माया से मोहित होकर संसार में घूमता रहता है और अपने कर्मों का फल भोगता रहता है। माँ, सुख और दु:ख को देनेवाला न तो अपना आत्मा है और न कोई दूसरा ही, जो दूसरों को सुख या दु:ख देनेवाला समझता है, वह कुबुद्धि है।

यह सारा संसार ही कर्मसूत्र में आबद्ध है। इसी से मनुष्य को सुख-दु:ख की प्राप्ति होती है। भगवान् अपनी माया के द्वारा समस्त प्राणियों की तथा उनके बन्धन, मोक्ष और सुख-दु:ख की रचना किया करते हैं। यह जगत् सत्त्व आदि गुणों का स्वाभाविक प्रवाह है। इसमें शाप, अनुग्रह, स्वर्ग और नरक क्या है? कुछ नहीं। सब कुछ माया का खेल है। पतिप्राणा देवि, क्षमा करें। मैं शाप से मुक्त होने के लिये आप को प्रसन्न नहीं कर रहा हूँ। मैं तो यह चाहता हूँ कि आप को मेरी जो बात अनुचित प्रतीत हुई हो, उसके लिये आप मुझे क्षमा कर दें।

शाप अन्यथा करहु विनय यहि हेतु करौं नहि। होहि भोगको नाश भाग्यवश दु:ख आदि सहि।।
अविनय मेरी समुझि मातृ तुम कुपित भई अति। तातें विनती करी और कछु तुम समझो मति।।
सती शम्भु पद वन्दिकें, चित्रकेतु पुनि चलि दये। सती सभासी सभाके, समता लखि विस्मित भये।।

इस प्रकार चित्रकेतु भगवान शंकर और पार्वती जी को प्रसन्न कर वहाँ से चला गया। उसके चले जाने पर शंकर जी ने पार्वती से कहा- देखा देवि, अपने भगवान के भक्तों की महिमा। जो लोग भगवान श्रीहरि की शरण में चले जाते हैं, वे किसी से भी नहीं डरते। क्योंकि उन्हें स्वर्ग-नरक आदि में सर्वत्र समभाव से भगवान के ही दर्शन हुआ करते हैं। इसलिये भगवद्भक्त के किसी भी व्यवहार पर तुम्हें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। परमात्मा के भक्त सुख-दु:खादि तथा श्राप अनुग्रह को प्रारब्ध का भोग मानकर सहते हैं। उनके लिये सब समान है। न वे दु:ख में दु:ख और सुख में सुख का अनुभव करते हैं। उनकी ज्ञान शक्ति का ऱ्हास नहीं होता। ये किसी भी योनि में रहे, कहीं भी रहें, उन्हें भगवान के दर्शन प्राप्त होते हैं।

दूसरा उसका धीरज देखो, पार्वती जैसे तुमने रोष में, आक्रोश में आकर उसको श्राप दे दिया इसी तरह वह भी कोई ऐसा वैसा ऐरा-गैरा नहीं है। वह भी मेरा गुरु भाई है, जिस इलावृत खण्ड में संकर्षण भगवान की सतत मैं आराधना करता हूँ उसी संकर्षण भगवान का पुजारी है वो। उन्हीं का भक्त और उन्हीं की कृपा से उसे वह विमान प्राप्त हुआ है। वो उच्चदशा को प्राप्त है, अगर वो तुमसे बदला लेना चाहता तो श्राप देकर तोता, मैना, भेड़, बकरिया कुछ भी बना देता। वो भी श्राप दे सकता था, समर्थ था, सक्षम था, लेकिन उसने श्राप नहीं दिया। बल्कि मां जगदम्बे, जगत् जननी इत्यादि कहकर तुम्हारा आदर किया और तुम्हारे श्राप को शिरोधार्य कर लिया।

हरि हँसि बोले- शिवा। लखि महिमा भक्तनिकी। सदा एक मति रहे स्वर्ग नरकनमहँ इनकी।।
जो हैं भगवद्भक्त कहो तिनकूँ काको भय। तीनि कालमहँ सदा निहारें जगकू प्रभुमय।।

देइ न सुख दुख दूसरो, भ्रमवश नरपशु कहत हैं। मायाके वश जीवने, करे करम सो सहत है।।

चित्रकेतु की निस्पृहता देखकर पार्वती जी को सुनाते हुए शिवजी कह रहे हैं- सुश्रोणि, तुमने अद्भुत कर्मा श्रीहरि के दासानुदासों का माहात्म्य देख लिया न? देखो, ये महात्मा कितने निस्पृह होते हैं। बात यह है कि जो नारायण परायण हैं वे सब-के-सब निर्भय होते हैं, उन्हें किसी बात का भय नहीं। क्योंकि वे स्वर्ग, नरक, मोक्ष सभी को समान भाव से देखते हैं।

देहके संयोगसे सुख-दु:ख, मृत्यु-जन्म आदि होते रहते हैं। अविवेकके कारण ही अर्थ-भेद दिखाई पड़ता है। यह वैसा ही है, जैसे गुण, दोष, विकल्प आदि हैं और साँपको कोई रस्सी समझ ले या मालाको साँप समझ लें। जिसके हृदयमें भगवान्‌की भक्ति आजाती है और ज्ञान-वैराग्यका वीर्य उदय हो जाता है, उसके लिए किसी दूसरे सहारेकी जरूरत नहीं पड़ती। ईश्वर क्या करना चाहता है, हम नहीं जानते। उनका कोई प्रिय-अप्रिय नहीं है। वे तो सबसे प्यार ही करते हैं; क्योंकि वे सबके आत्मा हैं। जैसा मैं भगवान्‌का प्यारा हूँ, वैसा ही चित्रकेतु भी भगवान्‌का प्यारा है। इसलिए भगवद्भक्तके किसी बर्तावपर तुम्हें कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए। वह देवयोनि भी निन्दनीय और हेय है, यदि शूकर कूकर योनि से भी हरिस्मरण हो सके तो वही श्रेष्ठ है। यदि सूकर योनि में भी भक्ति प्राप्य है, तो वह श्रेष्ठ है। देवयोनि में यदि वह नहीं है, तो वह निकृष्ट है। मनुष्य योनि से अधिक साधन, भजन,भगवत् चिन्तन तथा परमार्थ साधन हो सकते हैं। इसीलिये मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ कहा है। यदि यह सुदुर्लभ देह, सुलभता से प्राप्त हो जाय और इसे प्राप्त करके भी इस संसार रूप समुद्र को पार करके प्रभु के पादपद्मों के पास न पहुँचे तो मुनियों ने उसे आत्महा-आत्मा का हनन करनेवाला बताया है। भक्त तो भगवत् प्रेम चाहते हैं वह यदि पशु बनने पर भी प्राप्त हो जाय, तो उन्हें बनना सहर्ष स्वीकार है।

शुकदेव बोले- परीक्षित। भगवान शंकर का यह वचन सुनकर भगवती पार्वती की चित्तवृत्ति शान्त हो गई और उनका विस्मय समाप्त हो गया। चित्रकेतु चाहते तो वे भी पार्वती को शाप दे सकते थे, परन्तु उन्होंने शाप नहीं दिया, क्योंकि साधु का लक्षण यही है कि वे शाप को सिर से स्वीकार कर लेते हैं, उसका बदला नहीं चुकाते। महात्मा लोग किसी के अपशब्द पर, गाली गलौज करने पर भी उसे बुरा नहीं मानते और चुप रहकर उसे सुन लेते हैं, सह लेते हैं।

पार्वती जी के इसी शाप के कारण चित्रकेतु, जो भगवान श्रीहरि का महान् भक्त था, वृत्रासुर के रूप में प्रकट हुआ था। इसीलिये वृत्रासुर के जीवन में इतनी भक्ति आ गई। राजन्, आपने जो पूछा था कि वृत्रासुर की भगवान में इतनी दृढ़ भक्ति कैसे हुई? उसका कारण मैंने आपको कह सुनाया। वृत्रासुर का यह इतिहास केवल उन्हीं का ही इतिहास नहीं है, अपितु यह सारे विष्णु-भक्तों का इतिहास है। जो व्यक्ति प्रात:काल उठकर श्रद्धापूर्वक इस कथानक का स्मरण करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है। शुकदेव जी कहते हैं राजन्। महात्मा चित्रकेतु का यह पवित्र इतिहास समस्त विष्णुभक्तों का यह माहात्म्य जो सुनता है, वह सारे बंधनों से मुक्त हो जाता है।

८) मरूद्गणों की उत्पत्ति

शुकदेव बोले- परीक्षित्, अदिति के बारह पुत्र थे- विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, इन्द्र और त्रिविक्रम (वामन्)। अदिति के पुत्र होने के कारण यह आदित्य कहे जाते हैं। त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप और वृत्रासुर थे। इनका वध इन्द्रने किया। अदिति के पाँचवे पुत्र सविता की पत्नी पृश्नि के गर्भ से आठ सन्तानें हुई -सावित्री, व्याहृति, त्रयी, अग्निहोत्र, पशु, सोम, चातुर्मास्य, और पंचमहायज्ञ। भग की पत्नी सिद्धि से तीन पुत्र और एक कन्या हुई।

भग आदित्य के शिष्य महिमा और विभु दो पुत्र उत्पन्न हुए। आशिष नाम की कन्या हुई। धाता की चार पत्नियां कुहू, विनीवाली, राका और अनुमति से क्रमश: सायं, दर्श, प्रात: तथा पूर्णमास चार पुत्र उत्पन्न हुए। विधाता की पत्नी क्रिया के गर्भ

से पुरीष्य नामक पाँच अग्नियाँ पैदा हुई। वरुण की पत्नी चर्षणी से भृगु जो प्रथम ब्रह्मा के पुत्र थे। बाल्मीकिजी जो कि सर्पों की बांबी से उत्पन्न हुए, अगस्त्य वशिष्ठजी दोनों ऋषि वरुण और मित्र के साधारण पुत्र हुए क्योंकि वरुण और मित्र ने उर्वशी को देख कामनावश हो अपना स्खलित हुआ वीर्य एक घड़े में डाला, जिससे दोनों ऋषियों की उत्पत्ति हुई। अदिति के दसवें पुत्र मित्र के रेवती से उत्सर्ग, अरिष्ट और पिप्पल हुए। अदिति के ग्यारहवें पुत्र इन्द्र के पौलोमी से जयन्त, ऋषभ और मोढुष यह तीन पुत्र हुए। वामन भगवान के कीर्तिमान् से बृहतश्लोक (सुभग) पुत्र हुआ, उसके सौभव आदि हुए।

वरुण चर्षणी माहिँ भये भृगु मुनि पुनि तिनतें। सुत वसिष्ठ वाल्मीकि अगस्तहु जनमें इतनें।।
मित्र रेवती नारि माहिँ सुत तीनि भये वर। इन्द्र शचीतें ऋषभ जने मीढुस जयनत सुर।।
वामन पत्नी कीर्तिने, बृहच्छोक शुभ सुत जने। श्रीउपेन्द्र बलि जज्ञमें, छोटे से बौना बने।।

दिति के पुत्र दैत्य कहलायें। दिति के हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दो पुत्र हुए। हिरण्यकशिपु की पत्नी का नाम था- कयाधु, जो जम्भ राक्षस की पुत्री थी। कयाधु के चार पुत्र हुए- संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद। इन पुत्रों के अतिरिक्त सिंहिका नाम की एक पुत्री भी हुई। उसका विवाह विप्रचित्ति से हुआ। उसी से राहु की उत्पत्ति हुई। ह्लाद की पत्नी धमनि हुई उससे दो पुत्र हुए वातापि और इल्बल। सह्लाद की कृति स्त्री से पंचजन दैत्य पैदा हुआ। इल्वल के अतिथि सत्कार में अगस्त्यमुनि ने इस वातापी को पचाया था। अनुह्लाद की पत्नी सूर्म्या से वाष्कल, महिष पैदा हुए। प्रह्लाद की पत्नी श्वसन्ती से पुत्र विरोचन हुए। विरोचन की पत्नी अशना से बलि तथा बलि की पत्नी विन्ध्यावली से बाणासुर हुआ। जिसने भगवान शंकर को प्रसन्न किया था। दिति के ये अतिशय तेजस्वी सन्तानें थीं। बाणासुर भगवान शंकर की आराधना करके उनके गणों का मुखिया बन गया। आज भी भगवान शंकर की आराधना करके उनके गणों का मुखिया बन गया। आज भी भगवान शंकर उसके नगर की रक्षा करने के लिये उसके पास ही रहते हैं।

हिरण्याक्ष का विवाह रुषाभानु के साथ हुआ। उसके गर्भ से ९ पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम शकुनि, शम्बरासुर, धृष्ट, भूतसंतापन, वृक, कालनाभ, महानाभ हरिश्मश्रु और उत्कच थे।

दिति के हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के अतिरिक्त उन्चास पुत्र और थे। उन्हें मरुद्गण कहते हैं। वे सब नि:सन्तान थे। देवराज इन्द्र ने उन्हें अपने ही समान देवता बना लिया था। हे परीक्षित्, वैसे तो दिति से उत्पन्न होनेवाली सन्तानें दैत्य कहलायी और अदिति के गर्भ से होनेवाले देवता कहलाये आदित्य कहलाये। लेकिन कुछ सन्तानें ऐसी भी हुईं कि जो पैदा हुई दिति के गर्भ से उन्हें दैत्य कहलाना चाहिये था। लेकिन दैत्य नहीं कहला के वे देवता कहला गए। पचास पवन देव मरुद्गण दिति के गर्भ से हिरण्यकशिपु हिरण्याक्ष जैसे दैत्य हुआ उसी दिति के गर्भ से ये पैदा हुआ।

हिरनकशिपु लघु पुत्र भये दैत्यनि कुल भूषन। भक्त मुकुट प्रह्लाद भये तिनि पुत्र विरोचन।।
तिनि सुत दानी परम भये बलि जग विख्याता। जिनने कीये विष्णु द्वार रक्षक पुरत्राता।।
बलि असनामहँ जने सुत, शत सबके सब श्रेष्ठ हैं। तिन सबमहुँ शिव भक्त अति, बाणासुर ही ज्येष्ठ हैं।।

राजा परीक्षित ने पूछा- भगवन् ये असुर भाव छोड़कर देवयोनि में कैसे मिले? सभी इस अद्भुत वृत्तान्त को सुनने के लिये उत्कण्ठित हैं। अत: आप कृपा करके विस्तार से यह प्रसंग सुनाइये। इस पर शुकदेव ने कहा- राजन्, भगवान विष्णु ने इन्द्र का पक्ष लेकर दिति के दोनों पुत्रों- हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष को मार डाला था। अत: दिति का हृदय सन्तप्त था। वह बदला लेने की भावना से जल रही थी। उसने सोचा- सचमुच इन्द्र बड़ा विषयी, क्रूर और निर्दयी है। उसने अपने भाइयों का वध करवा डाला। वह दिन कब आयेगा, जब मैं भी उस पापी को मरवाकर आराम से सोऊँगी। ऐसा सोचकर

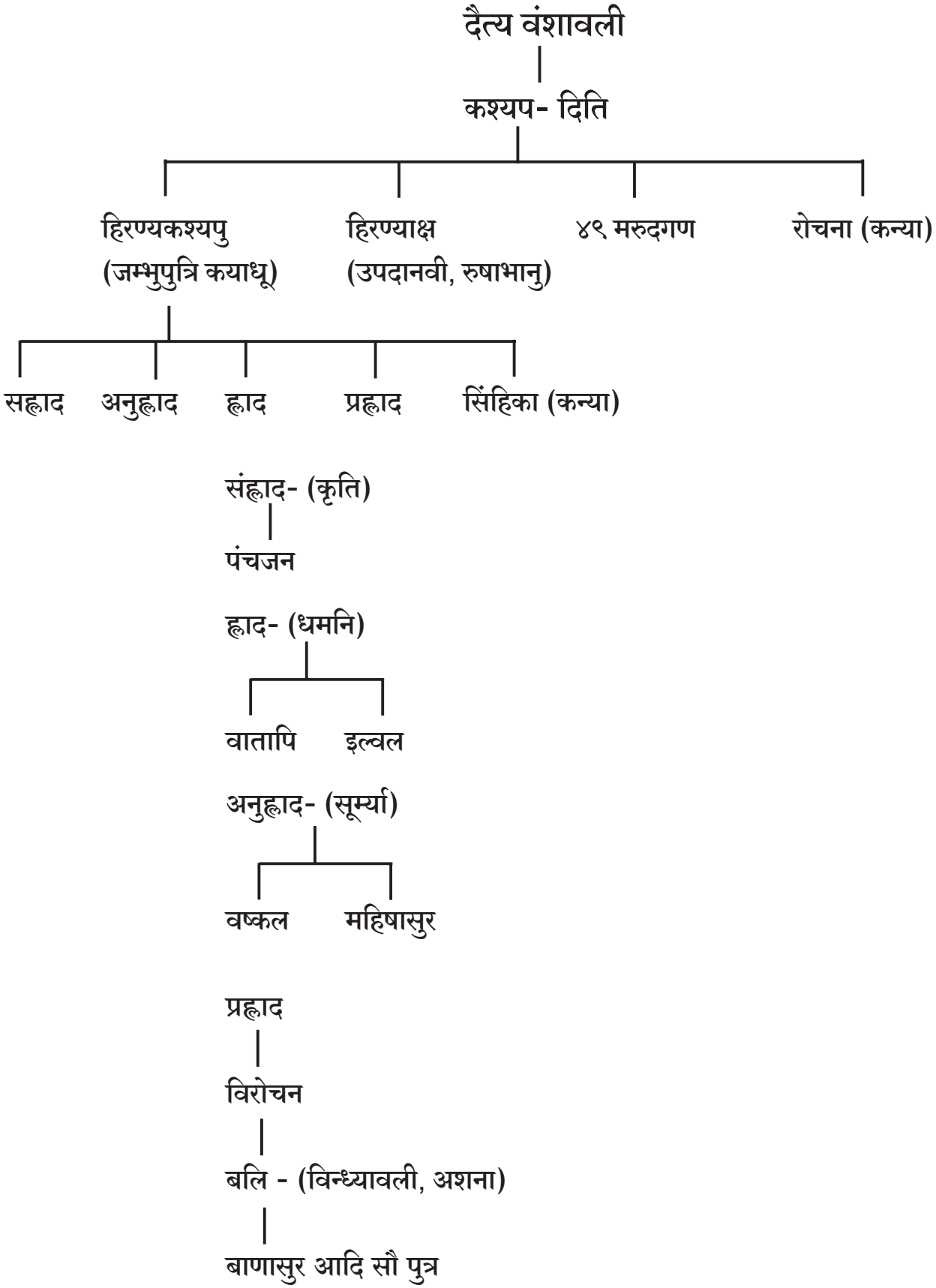
दैत्य वंशावली
कश्यप- दिति
हिरण्यकश्यपु
(जम्भुपुत्रि कयाधू)
हिरण्याक्ष
(उपदानवी, रुषाभानु)
४९ मरुदगण
रोचना (कन्या)
सह्लाद
अनुह्लाद
ह्लाद
प्रह्लाद
सिंहिका (कन्या)
संह्लाद- (कृति)
पंचजन
ह्लाद- (धमनि)
वातापि
इल्वल
अनुह्लाद- (सूर्म्या)
वष्कल
महिषासुर
प्रह्लाद
विरोचन
बलि - (विन्ध्यावली, अशना)
बाणासुर आदि सौ पुत्र

उसने अपने पति कश्यप जी की बड़ी सावधानी से सेवा की। वह उनके मनोभावों को ताड़कर उनकी शुश्रूषा किया करती थी। वह परम प्रेमभाव, मनोहर एवं मधुर भाषण, मदभरी मुसकान तथा विह्वल बना देनेवाली तिरछी चितवनों से उनका मन अपनी ओर आकृष्ट करने का निरन्तर प्रयास करती रहती थी।

व्रत पुंसवन अति सुख दाता। चाहे पुत्र करहि जो माता।।

कश्यप जी ज्ञानी थे। तपस्वी थे। फिर भी स्त्री के हाव-भाव और लीला-विलास के वशीभूत हो गये। एक दिन उन्होंने मुस्कराते हुए दिति से कहा- सर्वांगसुन्दरी, मैं तुम्हारी सेवा से परम प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो वह मुझसे मांग लो। पति के प्रसन्न हो जाने पर पत्नी के लिये कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं हो सकती। शास्त्रों ने भी यह कहा है कि पति ही स्त्रियों का परमाराध्य इष्टदेव है। दिति ने पतिदेव की बात सुनी। वह मन ही मन प्रसन्न हो उठी। उसने बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़कर कहा- इन्द्र ने विष्णु के हाथों मेरे दोनों पुत्रों को मरवाकर मुझे पुत्रहीन बना दिया है। अत: यदि आप मुझे अभीप्सित वर देना चाहते हैं तो कृपा करके मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये जो अमर रहे और इन्द्र को मार डाले।

त्रिया चरित समुझ्यो नहीं, मुनि मोहित से ह्वै गये। सुठि स्वभाव सेवा निरखि अति प्रसन्न दिति पै भये।।

शुकदेव बोले- राजन्, भगवान कश्यप के प्रसन्न होने पर उनसे वरदान माँगती हुई दिति कहती हैं- हे ब्रह्मन, यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं, तो ऐसा वर दीजिये कि मेरे एक ऐसा पुत्र हो, जो स्वयं तो अमर हो किन्तु उस इन्द्र को मार सके, जिसने मेरे हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दोनों पुत्रों को मरवाकर मुझे पुत्रहीन बना दिया है।

माँगे बर हिय व्रज करि, दिति लखि पति अति प्रीति युत। जो मारे देवेन्द्रकूँ, अमर एक अस देहिँ सुत।।

दिति की बात सुनकर कश्यप सन्न रह गये। उन्होंने सोचा आज मेरे जीवन में बहुत बड़े अधर्म का अवसर उपस्थित हो गया है। उन्होंने स्त्री के वशीभूत होने के लिये अपने आप को भरपूर कोसा। कश्यपने सोचा- इस समय अधर्मका प्रसंग उपस्थित हो गया, मायाने मुझे ग्रस लिया तो मुझे नरक में गिरना पड़ेगा। मैं अपने स्वार्थ और परमार्थको ही समझनेमें असमर्थ हो गया। संसार में लोग अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये पति-पुत्रादिका भी वध कर देते हैं।

बात भी न मिथ्या हो और योग्य पुत्र इन्द्र भी न मारा जाय- ऐसा सोचकर उन्होंने एक युक्ति निकाली और कहा- भद्रे, यदि तुम पूरे एक वर्ष तक पुंसवन व्रत का पूरी निष्ठा के साथ पालन करोगी तो इन्द्र को मारनेवाला पुत्र तुम्हें अवश्य मिलेगा। यदि कोई गड़बड़ी हुई तो वह देवों का मित्र बन जायेगा। पतिकी बात दिति ने स्वीकार की और बोली ब्रह्मन् मैं उस व्रतका पालन अवश्य करूँगी। कश्यपने कहा इस व्रतको इसप्रकार करो।

१) वर्जित आचरण- जब तक व्रत चलता रहे तब तक व्रती किसी भी प्राणी को मन, वाणी अथवा क्रिया के द्वारा किसी प्रकार का दु:ख न पहुँचाये, किसी को शाप या गाली न दे, झूठ न बोले, शरीर के नख और रोंएँ न काटे, किसी अशुभ वस्तु का स्पर्श न करे, जल में घुसकर स्नान न करे, क्रोध न करे, दुर्जनों से बातचीत न करे, बिना धुला वस्त्र न धारण कर।

२) भोजन में निषेध- किसी का जूठा न खाय, भद्रकाली का प्रसाद या मांसयुक्त अन्न का भोजन न करे, चींटियों का खाया व शूद्र का लाया हुआ और रजस्वला के द्वारा देखा गया अन्न न खाय और अंजलि से जल न पिये।

३) बाहर जाने में निषेध- जूठे मुख, बिना आचमन किये, सन्ध्या की बेला में बाल खोले हुए, बिना श्रृंगार के, वाणी का संमय किये बिना और बिना ओढ़नी ओढ़े घर से बाहर न निकले।

४) शयन के समय निषेध- बिना पैर धोये, अपवित्र अवस्था में, गीले पैर, उत्तर या पश्चिम सिर करके, दूसरे के साथ, नंगा होकर तथा प्रात: सन्ध्या एवं सायं सन्ध्या में शयन निषिद्ध है।

५) प्रतिदिन करणीय कार्य- सर्वदा पवित्र रहे, धुला वस्त्र धारण करे, सभी सौभाग्य के चिन्हों से सुसज्जित रहे, प्रात:काल गौ, ब्राह्मण तथा लक्ष्मीनारायण का पूजन करे। इस व्रत का नाम पुंसवन है। यदि एक वर्ष तक तुम इसे बिना किसी त्रुटि के पालन कर सकोगी तो तुम्हारी कोख से इन्द्रघाती पुत्र उत्पन्न होगा।

कश्यपजी ने पुंसवन व्रत की विधि बताई। अगहन मास के शुक्ल पक्ष के प्रतिपदा से इस व्रत का प्रारम्भ होता है। पति से अनुमति लेकर संकल्पपूर्वक रोज सवेरे विधिवत् शौच-स्नान करके स्नान जल में प्रवेश करके मत करना। जब तक सालभर तक व्रत पूरा न हो तबतक नाखून-केश मत कटवाना और सवेरे-सवेरे उठकर लक्ष्मीनारायण भगवान की स्तुति प्रार्थना करनी होगी। अपना जूठा किसी को मत खिलाना और स्वयं किसी का जूठा मत खाना। चण्डिका का अन्न मत खाना, किसी को श्राप मत देना। किसी से झगड़ा मत करना, संध्या समय सोना नहीं, मतलब जूठे मुँह सेना नहीं। इस प्रकार बहुत सारे नियम बता दिये।

यह भगवान विष्णु का व्रत है विधिपूर्वक इसका अनुष्ठान करें अगर इस व्रत को कुमारी कन्या करे तो उसे सुयोग्य वर की प्राप्ति होगी, सुहागिन करें तो उसे पुत्र की प्राप्ति होगी। जिसके पुत्र होने के बाद मर जाते हैं, वह यह व्रत करें तो पुत्र जीवित रहेगा, सुयोग्य होगा। इस व्रत के करने से सबसे बड़ा लाभ भगवान लक्ष्मी नारायण प्रसन्न रहते हैं।

जय जय राधा रमण हरि बोल- जय जय राधा रमण हरि बोल।
यह नाम प्रभु का प्यारा हैं जीवन प्राण हमारा, भक्तों का परमसहारा लाखों पतितों को तारा।
तुम भी इनको सत्कारो अब हरि का नाम उचारो। जय जय राधा रमण हरि बोल- जय जय राधा रमण हरि बोल।
हरि नाम रटत मर जाऊं, भव सागर से तर जाऊं। मरते दम तक भी कह लूं नारायण प्रभु पद गह लूं।
सदाचार पालन करे, कदाचारकूँ त्यागीकें। व्रत वैष्णव यदि वर्ष भर, करे समय पर जागिकें।।

तदनन्तर दिति यथासमय कश्यप से गर्भधारण कर व्रत के नियमों का पूरी निष्ठा के साथ पालन करने लगी। इन्द्र को अपनी मौसी के अभिप्राय का पता लगा। उन्होंने अपना वेष बदला और पहुँच गये दिति के आश्रम पर। बड़ी विनम्रता से उन्होंने उसे प्रणाम किया और डट गये उसकी सेवा में। इंद्र कोई साधारण राजनीतिज्ञ नहीं है। उसको मालूम पड़ गया है कि उसकी सौतेली माँ क्या करना चाहती है? वह व्यक्ति चतुर राजनीतिज्ञ नहीं जिसको शत्रुके घरकी एक-एक बातका पता न हो। यह राजनीति है। इन्द्र एक सेवकका वेश धारण करके अपनी सौतेली माँ की सेवा करने लग गये।

मौसीको संकल्प जानि सुरपति घबराये। परे सोचमें अधिक तुरत तिहि आश्रम आये।।
छिद्रान्वेषनके निमित्त, वेष बदलि बालक बने। करें टहल नित कपटातैं, सदा रहें चित अनमने।।

शुकदेव बोले- राजन्, जब बुद्धिमान इन्द्र ने अपनी मौसी दिति के मन के अभिप्राय को समझ लिया तो वे आश्रम में रहनेवाली दिति की सेवा सुश्रूषा करने लगे। उसके लिये वे नित्य ही वर से दोनों समय फल, फूल, दूब, समिधा, कुशा, हाथ पैर धोने की मृत्तिका तथा फल आदि आवश्यक वस्तुयें ला-लाकर देते रहे।

गोत्रभित्- पूर्वकाल में देवराज इंद्र ने दैत्यमाता दिति के गर्भस्थ शिशुओं (मरुद्गण) पर वज्र से प्रहार करके उनका भेदन किया था। इस प्रकार उन्होंने अपने ही गोत्र का (भाइयों का) भेदन किया था, जिससे वे गोत्रभित् नाम से प्रसिद्ध हुए।

किन्तु उनकी दृष्टि लगी रहती थी व्रत की त्रुटियों को खोजने में। वे उनके व्रतपालन की त्रुटि पकड़ना चाहते थे। आखिर एक दिन इन्द्र को अपने उद्देश्य में सफलता मिल ही गई। एक दिन दिति बिना हाथ-पैर धोये, जूठे मुख, सन्ध्या की बेला

में सो गई। गर्भवती भी थी। आलस्यवश नींद आ गई। इन्द्र को अवसर मिला। योगशक्ति के सहारे वे वज्र लिये दिति की कोख में प्रविष्ट हो गये। उन्होंने वहाँ देखा कि गर्भ सुवर्ण के समान देदीप्यमान हैं। मन की मुराद पुरी करने का इन्द्र के सामने यह उपयुक्त अवसर था। उन्होंने वज्र के प्रहार से गर्भ के सात टुकड़े कर डाले। किन्तु पुंसवन व्रत के प्रभाव और भगवान की कृपा से जब वे नहीं मरे तब इन्द्र ने एक-एक टुकड़े के सात-सात टुकड़े कर दिये।

करे वज्रतैं गर्भके, सात खण्ड पुनि रुदन सुनि। मा-रुद्र कहि मारुत् भये, एक एकके सात पुनि।।

राजन्, जब इन्द्र उनके टुकड़े-टुकड़े करने लगे, तब उन सबों ने हाथ जोड़कर इन्द्र से कहा- देवराज, तुम हमें क्यों मार रहे हो? हम तो तुम्हारे भाई मरुद्गण हैं। इस पर इन्द्र ने अभयदान देकर छोड़ दिया और अपना पार्षद बना कर गर्भस्थान से बाहर निकल आये।

उनचास सुत भये इन्द्र प्रकटे सुर पालक। दिति पूछे व्रत कस्यो एक हित च्यौं बहु बालक।।
इन्द्र आदितें अन्त सत्य सब वृत्त बतायो। छद्मवेष च्यौं धस्यो बिना छल कहि समुझायो।।
सुनि दिति अति सन्तुष्ट ह्वै, बोली काट्यो गर्भकूँ। होहि बन्धु तब मरुद्गन, सब जाओ मिलि स्वर्गकूँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, जब इन्द्र ने सब सच बातें बता दीं तो उसके शुद्ध भाव से दिति परम सन्तुष्ट हुईं। तदनन्तर देवराज इन्द्र उन्हें प्रणाम करके तथा उनकी आज्ञा लेकर मरुद्गणों को साथ लेकर स्वर्ग को चले गये।

शुकदेव कहते हैं- परीक्षित्, जैसे अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ, वैसे ही भगवान श्रीहरि की कृपा से दिति का वह गर्भ वज्र के द्वारा टुकड़े-टुकड़े होने पर भी मरा नहीं। और उससे अग्नि के समान तेजस्वी उनचास बालक उत्पन्न होकर इन्द्र के साथ खड़े हो गये। इससे दिति को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने इन्द्र से पूछा- तुम्हें मारने के लिये एक पुत्र के संकल्प से मैंने यह व्रत किया था। फिर ये ४९ कैसे उत्पन्न हुए। अपनी मौसी के इस प्रकार प्रेम से पूछने पर इन्द्र ने सारी घटना का अक्षरश: वर्णन कर दिया। ये कैसे ४९ रूपों में पैदा हुए यह बतला दिया। परीक्षित्, दिति देवराज इन्द्र के शुद्धभाव से सन्तुष्ट हो गई। उससे आज्ञा लेकर इन्द्र मरुद्गणों के साथ स्वर्ग चले गये। ये ही ४९ वायु कहलाते हैं। ये ही ४९ मरुत हुए-

१) एकज्योति, २) द्विज्योति, ३) त्रिज्योति, ४) चतुर्ज्योति, ५) ज्योति, ६) एक शक्र, ७) द्विशक्र, ८) त्रिशक्र, ९) इन्द्रगति, १०) प्रतिसकृत, ११) मित, १२) सम्मित, १३) अमित, १४) ऋत-जित्, १५) सत्यजित, १६) सुषेण, १७) सत्यजित (द्वितीय), १८) अतिमित्र, १९) नमित्रे, २०) पुरुमित्र, २१) पुराजित्, २२) ऋत, २३) ऋतधाता, २४) विधाता, २५) धारण, २६) ध्रुव, २७) विधारण, २८) महातेजा, २९) ईदृक्ष, ३०) अदृक्ष, ३१) एतादृक, ३२) अमिताशन, ३३) क्रीतिन, ३४) प्रसदृक्ष, ३५) सरभ, ३६) धातु, ३७) उग्र, ३८) ध्वनि, ३९) भीम, ४०) अतिभुक्त, ४१) क्षिप, ४२) सत, ४३) द्युति, ४४) वपु, ४५) अताधृष्य, ४६) वास, ४७) काम, ४८) जय, ४९) विराट्।

दिति आयसु सिर धारि मरुद्गन स्वर्ग सिधाये। इन्द्र भये अति मुदित प्रान फिरितें जनु पाये।।
यों दितिके ये पुत्र इन्द्र पार्षद कहलाये। मातृदोषकूँ त्याग असुर कुलतें बिलगायें।।

मरुत - देवता और दैत्यों में विरोध होने पर दिति के पुत्र दैत्य नष्ट हो गए। इसे देखकर दिति ने पति महर्षि कश्यप को अपनी साधना से प्रसन्न करके उनसे यह वरदान मांगा- नाथ। मुझे इंद्र का वध करने के लिए अमित पराक्रमी पुत्र चाहिए। वांछित वर प्रदान करते हुए महर्षि कश्यप ने दिति से कहा- तुम्हें पवित्रतापूर्वक आचरण करते हुए सौ वर्षों तक इस गर्भ को धारण करना होगा। यदि तुम ऐसा कर सकोगी तो तुम्हारा यह पुत्र इंद्र को मारने में सक्षम होगा।

दिति के ऐसा कहने पर- अच्छा मैं आपके कथनानुसार ही आचरण करूंगी- महर्षि कश्यप तप करने के लिए पर्वत पर चले गए। इधर इंद्र ने सूक्ष्मरूपेण अंत:प्रवेश कर गर्भ के सात टुकड़े कर दिए। वज्राघात से गर्भ जोर-जोर से रोने लगा। इंद्र ने गर्भ से कहा- मा रोदी (मत रो)। ऐसा कहकर इंद्रने पुन: अपने व्रज से प्रत्येक टुकड़े के सात-सात टुकड़ उक्र दिए। वे सभी मरुत नामक उनचास देवता हुए। चूंकि इंद्र ने मा रोदी कहा था, इसलिए वे मरुत नामक देवता हो गए। वे सभी इंद्र के सहायक हैं।

शुकदेव ने उतर में कहा- परीक्षित यह पुंसवन व्रत व्यक्ति की सारी कामनाओं को पूरी करनेवाला है। स्त्री को चाहिये कि वह अपने पतिदेव की आज्ञा लेकर मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से इसका प्रारम्भ करे। पहले मरुद्गण के जन्म की कथा सुनकर ब्राह्मणों से व्रत के लिये आज्ञा लेनी चाहिये। प्रात:काल नित्य कृत्य से निवृत्त होकर स्नान करके लक्ष्मी-नारायण से व्रत की सफलता हेतु प्रार्थऩा करे और फिर षोडशोपचार से उनकी पूजा करनी चाहिये क्योंकि सम्पत्ति एवम् ऐश्वर्य के दाता ये ही हैं। पूजन के बाद स्तुति करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये- प्रभो, आपकी कीर्ति पवित्र है। आप दोनों ही त्रिलोकी के वरदानी परमेश्वर है अत: मेरी बड़ी-बड़ी आशाएँ-अभिलाषाएँ आप की कृपा से पूर्ण हों।

भगवान की पूजा कर अपने पति को साक्षात् भगवान समझकर प्रेम से उनकी भी पूजा करे। पति का भी कर्त्तव्य है कि वह प्रेम से अपनी पत्नी के प्रिय पदार्थ ला-लाकर उसे प्रदान करे। परीक्षित्, पति-पत्नी में से एक व्यक्ति भी कोई कार्य करता है, तो उसका फल दोनों को मिलता है। इसलिये यदि पत्नी यह व्रत करने के अयोग्य हो जाय तो बड़ी एकाग्रता और सावधानी से पति को ही इसका अनुष्ठान करना चाहिये।

यह भगवान विष्णु का व्रत है। इसका नियम लेकर इसे बीच में कभी नहीं छोड़ना चाहिये। जो भी इस नियम को ग्रहण करे उसे प्रतिदिन विष्णु की पूजा के बाद ब्राह्मणों और सुहागिन स्त्रियों का भी पूजन-सम्मान करना चाहिये। पूजन के बाद भगवान को समर्पित प्रसाद ग्रहण करे। पूरे साल भर इस व्रत का आचरण करके मार्गशीर्ष की अमावस्या को उद्यापन करे। गाय के दूध की खीर बनाकर उससे अग्नि में १२ आहुतियाँ दे। बाद में १२ ब्राह्मणों को खीर आदि का यथेष्ट भोजन कराकर तिल-गुड़ सहित सजल घटों का दान करे। ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा भी देनी चाहिये। आचार्य को चाहिये कि वे ब्राह्मणों के साथ आहुतियों से बची हुई खीर यजमान की पत्नी को खाने के लिये देकर सत्पुत्र होने का आशीर्वाद दें।

शुकदेवजी कहते हैं- राजन्, भगवान के इस पुंसवन व्रत का जो मनुष्य विधिपूर्वक अनुष्ठान करता है, उसे यहीं सारी मनचाही वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं। स्त्री इस व्रत का पालन करके सौभाग्य, सम्पत्ति, सन्तान, यश और गृह प्राप्त करती है तथा उसका पति चिरायु होता है। विधवा वैकुण्ठधाम को जाती है, रोगी का रोग दूर हो जाता है। जो जिस कामना से व्रत करता है उसकी वही कामना पूरी होती है।

इस व्रत के आचरण से प्रत्येक व्यक्ति के सकल मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। कन्या सुन्दर पति, विधवा सद्गति, कुरूपा मनोहर रूप तथा अभागिनी सौभाग्य प्राप्त करती है। दुर्भावसे व्रत करनेपर उसको व्रतका फल तो मिलता है, परन्तु बहुत दिनोंक बाद मिलता है कभी उलटा भी हो जाता है। इसलिये दुर्भाव लेकरमारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदिके लिये कोई व्रत नहीं करना चाहिए। व्रत करना हो तो भगवद्भावसे करना चाहिए।

जो मनुष्य मांगलिक श्राद्ध आदि कर्मों में इसका पाठ करता है उसके पितर और देवता अनन्त तृप्ति लाभ करते हैं। वे सन्तुष्ट होकर हवन की समाप्ति पर व्रती की समस्त इच्छाएँ पूरी कर देते हैं। इनके साथ ही यज्ञों के एकमात्र भोक्ता भगवान लक्ष्मी-नारायण भी सन्तुष्ट होकर व्रती की समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण कर देते हैं।

इति षष्ठम स्कन्ध

HHH (७७३) HHH

सप्तम स्कन्ध

विषय सूची

१) नारद-युधिष्ठिर सम्वाद ७७५

२) हिरण्यकशिपु का वृत्तान्त और भक्त प्रह्लाद का चरित्र ७७८

३) त्रिपुर दहन की कथा ८३३

४) नारद जी का युधिष्ठिर को सनातन धर्म की व्याख्या ८३५

१) मानव धर्म ८३५

२) वर्णाश्रम धर्म ८३६

३) नारी धर्म ८३८

४) ब्रह्मचर्याश्रम ८३९

५) वानप्रस्थाश्रम ८४०

६) सन्यासाश्रम (यतिधर्म का निरूपण) ८४१

७) अवधूत-दत्तात्रेय मुनि और
भक्तशिरोमणि प्रह्लाद का संवाद ८४१

८) गृहस्थाश्रम ८४३

** ये दुनिया भी अजब सराय फानी देखी, यहां की हर चीज आनी जानी देखी।*
जो आके न जाये वो बुढापा देखा, और जो जा के ना आये वो जवानी देखी।।
** चिंगारी के ज्वाला बनने पर ही क्या तुम कुआं खोदने जाओगे,*
वक्त के साथ यदि नही चले तो एक दिन अवश्य पछताओगे,
त्याग को जीवन में अपनाया तो निश्चय ही महावीर कहलाओगे।
** वो पथ क्या पथिक कुशलता क्या, जिस पथ पर बिखरे शूल ना हो।*
नाविक की धैर्य की परीक्षा क्या यदि धारायें प्रतिकूल ना हो।

सप्तम स्कन्ध

महातपस्वी, दानी, यशस्वी, सदाचारी बड़े-बड़े मंत्रवेत्ता अपनी साधनासहित अपने मन को जब तक भगवान के अर्पण नहीं कर देते तब तक उन्हें कल्याण नहीं प्राप्त होता है। हम उन कल्याण मूर्ति भगवान श्रीकृष्ण को नमस्कार करते हैं।

लिखौं कथा प्रह्लाद की जाकी भक्ति अपार। वाकी रक्षा के लिए हुए नरहरि अवतार।।

१) नारद-युधिष्ठिर सम्वाद

जय विजय के शाप को, नारद रहे सुनाय। धर्मराज सुनने लगे, मन से ध्यान लगाय।।

अन्य सब योनियाँ तो भोग-योनियाँ हैं, परन्तु मनुष्य-योनि कर्मयोनि है। मनुष्य अपने संस्कारके द्वारा विकारको बदल सकता है और शास्त्रीय संस्कारके अनुसार कर्म करके अपनेको मुक्तितक ले जाता सकता है। ऐसा पूर्ण जीवन मनुष्यके सिवाय दूसरी किसी योनिमें नहीं है।

राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से पूछा- मुनिवर, आपने पीछे यह बतलाया है कि भगवान विष्णु ने इन्द्र का पक्ष लेकर दैत्य हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का संहार किया था किन्तु भगवान तो सारे प्राणियों के लिये भेदभाव से रहित एक समान हैं, सम हैं, सबके सुहृद् हैं फिर भेद-भाव करनेवाले साधारण प्राणी की भाँति इन्द्र के लिये दैत्यों का वध क्यों किया?

वे स्वयं परिपूर्ण आप्तकाम और नित्य तृप्त हैं अत: देवताओं से उन्हें कुछ लेना-देना नहीं है। निर्गुण होने के कारण दैत्यों से कुछ वैर-विरोध और उद्वेग भी नहीं है। इन्द्र का पक्ष लेकर दैत्यों को मारते हैं।

अब पूछें पुनि नृपति प्रभो शंका इक भारी। समदरशयी भगवान सुहृद सबके सुखकारी।।
तब क्यों देवनि हेतु फेरि दैत्यनिकूँ मारें। क्यों अमरनिको पक्ष लेहिँ असुरनि संहारे।।

शुकदेव बोले- राजन्। तुम्हें ऐसा लगता है पर भगवान ने ऐसा कोई व्रत नहीं ले रखा है कि केवल दैत्यों को मारूंगा और देवताओं की रक्षा करूंगा। प्रह्लाद भी दैत्य वंश में उत्पन्न हुआ फिर भी उसकी रक्षा की है। असुरों में भी जो भक्त होते हैं, उनके प्रति प्रभु का प्यार होता है। किसी सन्त के घर में भी कोई पैदा होकर आसुरी वृत्ति से भावित होकर अत्याचार करने लग जाय, तो उसे मारना ही पड़ेगा। वास्तव में भगवान निर्गुण, अजन्मा, अव्यक्त और प्रकृति से परे हैं, दूर हैं। तथापि लीलार्थ प्रकृति के गुणों का आश्रय लेकर देवों तथा असुरों की जय-पराजय के कारण बन जाते हैं अर्थात् कभी देवों से असुर बाधक तथा देवता बाध्य (पीडित) हो जाते हैं। इसी प्रकार असुरों की पराजय की बेला में देवता बाधक और असुर बाध्य (पीडित) हो जाते हैं। विभीषण का जन्म तो दैत्यकुल में हुआ परन्तु भगवान ने उन्हें अपनी भक्ति और सेवा प्रदान की। करेले को कड़वाहट और अंगूर को मिठास भूमि से मिलती है। ईश्वर इन सबको शक्ति देते हैं, ईश्वर के विषय में मनुष्य की दृष्टि से मत सोचो, जिसका जैसा बीज होता है, पंचभूत उसे वैसी ही शक्ति देते हैं।

सत्त्व, रज और तम- ये तीनों गुण प्रकृति के हैं, परमात्मा के नहीं। गुणों की ऱ्हास-वृद्धि, घटती-बढ़ती एक साथ नहीं हुआ करती। कभी सत्त्व प्रबल होता है तो रज और तम दब जाते हैं। कभी रजोगुण प्रबल होता है तो सत्त्व और तम दब जाते हैं। इसी प्रकार तमोगुण की वृद्धि की अवस्था में सत्त्व तथा तम कमजोर पड़ जाते हैं। जब परमेश्वर अपने लिये शरीरोंका निर्माण करना चाहते हैं, तब अपनी मायासे रजोगुणकी अलग सृष्टि करते हैं। जब वे विचित्र योनियोंमें रमण करना चाहते हैं, तब सत्त्वगुणकी सृष्टि करते हैं और जब वे शयन करना चाहते हैं, तब तमोगुणको बढ़ा देते हैं।

सत्त्वगुण की वृद्धि के समय देवता और ऋषियों को रजोगुण की वृद्धि के समय दैत्यों को और तमोगुण की वृद्धि के

समय वे यक्ष-राक्षसों को अपनाते और उनका अभ्युदय करते हैं। ऐसी स्थिति में दैत्यों के द्वारा देवता और ऋषि कष्ट का अनुभव करते हैं। वस्तुत: भगवान सम-दृष्टि हैं। सबको समभाव से देखते हैं। ऐसी स्थिति में उनमें विषम भाव का होना कैसे संभव हैं। समान रूप से काष्ठ में अग्नि के व्याप्त रहने पर भी उसकी प्राप्ति मन्थन करनेवाले को ही होती है। इसी प्रकार सभी प्राणियों में, सभी वस्तुओं में, समान रूप से विद्यमान रहने पर उनकी प्राप्ति मन्थन करनेवाले को ही, चिन्तन-ध्यान करनेवाले को ही होती है। अत: उनकी दृष्टि के विषम होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यही बात एक बार देवर्षि नारद ने युधिष्ठिर को सुनाई थी। यदि जिज्ञासु कोई गम्भीर बात, रहस्यकी बात पूछे तो उसे बतानेमें एक हार्दिक उल्लास होता है। नारद को भी एक बहुत बड़ी सभामें भगवान्‌की महिमा सुनानेका अवसर मिल गया।

तीनों गुण प्रकृतिके गुण हैं, आत्माके गुण नहीं है। इनमें एक साथ हास-उल्लास नहीं होते। समयानुसार कभी सत्त्वकी, कभी रजकी तथा कभी तमकी वृद्धि होती है। भगवान सर्वथा स्वयंप्रकाश, आत्मज्योति हैं। जब बड़े-बड़े विद्वान अपने भीतर ढूँढते हैं, तब इन्हें पाते हैं। भगवान् का मन जब सृष्टि करनेका होता है तब रजका संवर्द्धन करते हैं, जब विचित्र योनियोंमें रमण करनेका होता है तब सत्त्वका संवर्द्धन करते हैं और जब संहार करनेका होता है तब तमसका संवर्द्धन करते हैं। इसीके अनुसार वे कालकी भी सृष्टि करते हैं। काल परमात्मा के अधीन रहता है। कालानुसार किये कर्म भी उन्हीं के द्वारा है। लोभ तो उसे होता है, जो अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करना चाहता है। ये आत्मा तो निर्गुण है। ये जो सत्य, रज और तम तीन गुण हैं ये आत्मा के नहीं प्रकृति के गुण हैं। साम्य में सृष्टि नहीं। जब ये तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं तो प्रकृति सोई रहती है, वह कुछ भी नहीं कर सकती। जहाँ गुणों में विषमता हुई कि संसार चक्र चलने लगता है। कोई गुण कम हो जाता है, कोई अधिक।

युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ उपक्रम में था, प्रारम्भ होने जा रहा था। किसकी अग्रपूजा की जाय? यह प्रश्न उपस्थित हुआ। इसके लिये सहदेव ने कृष्ण का नाम प्रस्तावित किया। यह सुनकर शिशुपाल का तेज निकल कर कृष्ण में समा गया। इस दृश्य को युधिष्ठिर ने देखा। वे आश्चर्य-चकित हो उठे। उन्होंने नारद जी से प्रश्न किया- मुनिवर, बड़े-बड़े दिग्गज भक्त भी भगवान में मुश्किल से प्रवेश कर पाते हैं फिर भगवान के परम द्वेषी शिशुपाल का तेज, शिशुपाल की आत्मा कैसे श्रीकृष्ण भगवान में जाकर विलीन हो गई? शिशुपाल और दुर्बुद्धि दन्तवक्त्र तो बचपन से ही भगवान श्रीकृष्ण से द्वेष करते थे। वे उन्हें पानी पी-पीकर गाली देते रहे हैं। परन्तु इसके फलस्वरूप न तो इनकी जीभ में कोढ़ ही हुआ और न भयंकर नरक की प्राप्ति इन्हें हुई। इसके विपरीत ये दोनों उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण में समा गये जिनकी प्राप्ति बड़े-बड़े योगियों के लिये भी दुर्लभ है।

नारद बोले- युधिष्ठिर, निन्दा-स्तुति, सत्कार-धिक्कार केवल शरीर के लिये होता है। इसका प्रभाव उन लोगों पर पड़ता है, जो अभिमानवश आत्मा और देह को एक मान बैठे हैं, अभिन्न मान बैठे हैं। जब देह में अभिमान होता है, तभी गाली लगती है। परमात्मा और आत्मा- दोनों ही देह से बिल्कुल परे हैं, उनकी हिंसा कौन कर सकता है? हिंसा तो शरीर की होती है। भगवान तो सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद से शून्य आत्माराम अद्वितीय परम तत्त्व हैं। उनके चिन्मय शरीर को शरीर नहीं वपु कहा जाता हैं। वहाँ इस प्रकार के भौतिक धर्मों की कल्पना भी संभव नहीं है। इसलिये अपना मन भगवान् में चाहे वैर से लगाओ, निर्वैर से लगाओ, भय से लगाओ, स्नेह से लगाओ, काम से लगाओ, भगवान की दृष्टि में इन भावों में कोई भेद नहीं है। अतएव सुदृढ़ वैरभाव से या भक्तिभाव से, भय से, स्नेह से अथवा कामना से, आत्मा स्वभाव से रहित हैं, आत्मा कर्मों से रहित है, चाहे जैसे हो अपना मन भगवान में पूर्णरूप से लगा देना चाहिए। भगवान की दृष्टि में सभी प्रकार के भाव समान है।

जैसे कोई अबोध शिशु क्रोध में आकर अपने बाप को मारने के लिये दौड़ता है, उसकी ओर बढ़ता है, किन्तु पिता हँसकर उसे अपनी गोद में उठा लेता है, छाती से लगा लेता है। वह यह नहीं सोचता की बच्चा क्रोध में आया है तो उसे

मार कर भगा दें। इसी प्रकार मनुष्य भगवान् के पास कैसे भी पहुंचे, किसी भी भाव से जाये, परमात्मा उसे फिर अपने से अलग नहीं होने देते।

कैसेहू सम्बन्ध कृष्णतें जो जुरि जावे। काम, द्वेष भय भक्ति प्रेम वश चितफँसि जावे।।

देवर्षि नारदजी, धर्मराज युधिष्ठिर से कह रहे हैं- राजन्,भगवान से कैसा भी सम्बन्ध हो जाय कल्याणप्रद ही है। किसी प्रकार से भी मन को श्रीकृष्ण में लगाना चाहिये। ये जो तुम्हारे मौसेरे भाई शिशुपाल और दन्तवक्त्र हैं, पहिले ये भगवान् विष्णु के प्रधान पार्षद हैं। सनकादि ब्राह्मणों के शाप से ये अपने पद से च्युत हो गये।

युधिष्ठिर, मेरा मत है कि मनुष्य वैरभाव से भगवान में जैसा तन्मय हो जाता है, उतना भक्तियोग से नहीं होता। वैर की दशा में मन अपने से दौड़-दौड़ कर भगवान में, शत्रु में, लगता है, किन्तु भक्ति के समय में मन को हठात् भगवान की ओर लगाना पड़ता है अत: भक्ति की अपेक्षा वैरभाव में तन्मयता अधिक होती है। युधिष्ठिर वैरसे जितनी एकता होती है, उतनी एकता भक्तियोगसे नहीं होती। मच्छर हाथीसे क्या वैर करेगा? हाथीसे वैर करनेवाले हाथी या शेर होते हैं। इसीप्रकार जिनकी दुश्मनी भगवानसे हो जाती है, जो भगवान से शत्रुता ठान कर उनका निरन्तर चिन्तन करते हैं, वे भगवद्रूप ही हो जाते हैं। काम से, द्वेष से, स्नेह से, भक्ति से अथवा कैसे भी भगवान में मन लग जाये तो भगवत्प्राप्ति हो जाती है। भगवान में गोपियों ने काम से, कंस ने भय से, शिशुपाल आदि ने द्वेष से, यदुवंशियों ने सम्बन्ध से, तुम लोगों ने स्नेह से और हम लोगों ने भक्ति से मन लगाया है। हम लोगों में वेन की कहीं स्थिति नहीं है। वह तो ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं मानता था। किन्तु जो भगवान् से शत्रुता करते हैं, वे तो ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करते हैं, आस्तिक होते हैं। इसलिये किसी भी उपाय से अपने मन को भगवान में लगाना चाहिये फिर ये जो शिशुपाल और दन्तवक्त्र हैं, तुम्हारे मौसेरे भाई हैं, ये दोनों पहले भगवान विष्णु के पार्षद थे और शाप के कारण अपने पद से च्युत हुये थे। भगवान आनन्द के स्वरूप हैं, मुक्ति के धाम हैं, सौंदर्य माधुर्य की राशि है। उनमें द्वेष नहीं, अपने पराये का भाव नहीं। उनसे कोई कैसे भी सम्बन्ध रखे मुक्त तो हो ही जायगा।

नारदजी ने कहा- युधिष्ठिर, एक दिन की घटना है। ब्रह्मा के मानस-पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार भ्रमण करते हुए वैकुण्ठ लोक में पहुँचे। वे देखने में पाँच-छ: वर्ष के बालक प्रतीत होते थे। किन्तु थे सबसे प्राचीन, बहुत बूढ़े, नंगे-धड़ंगे रहते थे। उनको साधारण बालक समझकर द्वारपाल जय और विजय ने उन्हें भीतर जाने से रोक दिया। इस पर सनक आदि क्रुद्ध हो गये। उनलोगों ने शाप देते हुए कहा- तुम लोग भगवान के पार्षद होने के योग्य नहीं हो इसलिये शीघ्र ही यहाँ से पापमयी असुर योनि में चले जाओ। इसके बाद जब वे दोनों नीचे गिरने लगे तब उन कृपालु महात्माओं ने उन पर अनुग्रह करते हुए कहा कि अच्छा तीन जन्मों में शाप भोग कर तुम लोग फिर इसी वैकुण्ठ में लौट आना। वही दोनों सर्वप्रथम दिति के पुत्र हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु हुए। भगवान ने हिरण्याक्ष का उद्धार वाराह का रूप धारण करके और हिरण्यकशिपु का उद्धार नृसिंह-रूप धारण करके किया था। हिरण्यकशिपु अपने पुत्र भगवद्भक्त प्रह्लाद से द्वेष करता था। उसने प्रह्लाद को मारने के लिये विविध प्रकार की यातनाएँ दीं परन्तु भगवान ने प्रह्लाद की रक्षा की। प्रह्लाद सबको अपनी आत्मा के रूप में ही देखते थे। सबमें आत्म-स्वरूप देखने से भगवान उन पर परम प्रसन्न थे, इसलिये बार-बार प्रयास करने पर भी हिरण्यकशिपु उन्हें मार डालने में समर्थ न हुआ।

युधिष्ठिर, पुन: वे ही दोनों विश्रवा मुनि के द्वारा केशिनी (कैकसी) के गर्भ से राक्षसों के रूप में पैदा हुए। उनका नाम था रावण और कुम्भकर्ण। उस समय भगवान ने राम के रूप में अवतार लेकर उनका उद्धार किया था। वे ही दोनों जय-विजय इस जन्म में तुम्हारी मौसी के लड़के शिशुपाल और दन्तवक्त्र के रूप में उत्पन्न हुए थे। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने चक्र से

उनका उद्धार कर सनकादि के शाप से उन्हें मुक्त कर वैकुण्ठ भेज दिया।

युधिष्ठिर ने पूछा- भगवन्, हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र से द्वेष क्यों किया? तथा प्रह्लाद की भगवन्निष्ठा कैसे हुई।

२) हिरण्यकशिपु का वृत्तान्त और भक्त प्रह्लाद का चरित्र

नारदजी ने कहा- युधिष्ठिर भगवान वराह के द्वारा हिरण्याक्ष का वध कर देने पर हिरण्यकशिपु का शरीर क्रोध और शोक से सन्तप्त हो उठा। वह क्रोध से काँपता हुआ अपने दाँतों से बार-बोर होठ चबाने लगा। क्रोध के मारे उसकी लाल आँखों से मानों अंगारों की वर्षा होने लगी। उस समय क्रोध से विकराल उसके मुँह को देखना अति कठिन था। उसने हाथ में त्रिशूल उठा कर दैत्यों से कहा- दैत्यों और दानवों, तुम्हें यह बात विदित ही है कि क्षुद्र स्वार्थी देवों ने विष्णु के द्वारा मेरे प्रिय बन्धु का वध करवा दिया है। यद्यपि विष्णु देवों एवं दैत्यों- दोनों के लिये समान हैं, तथापि दौड़-धूप कर, अनुनय-विनय कर देवों ने इसे अपने पक्ष में कर लिया है। पहले यह शुद्ध एवं निष्पक्ष था। परन्तु अब माया से वराह आदि का रूप धारण करने लगा है और अपने स्वभाव से च्युत हो गया। बच्चे की तरह जो उसकी सेवा करे उसी की ओर हो जाता है। मैं अपने इस शूल से उसका गला काट कर उसके रुधिर से अपने भाई का तर्पण करूँगा। उस मायावी शत्रु के नष्ट होने पर सारे देवता उसी प्रकार नष्ट हो जायेंगे जैसे पेड़ की जड़ के कट जाने पर सारी डालियाँ सूख जाती हैं अत: तुम लोग शीघ्र ही भूतल पर जाकर जप, तप, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत, दान एवं पुण्य कर्म करनेवालों को मार डालो। विष्णु की जड़ है द्विजातियों का धर्म-कर्म, क्योंकि यज्ञ और धर्म ही उसके स्वरूप हैं। देवता, ऋषि, पितर, समस्त प्राणी और धर्म का एकमात्र परम आश्रय वही है। जहाँ-जहाँ ब्राह्मण, गाय, वेद, वर्णाश्रम और धर्म-कर्म हो, उन-उन देशों में तुम लोग जाओ, उन्हें जला दो, उजाड़ लो।

हे शम्बर। हे नमुचि, शकुनि सब मिलिकें जाओ। वेद विप्र गौ यज्ञ अवनितें जाइ मिटाओ।।
यज्ञ रूप है विष्णु, देवता यज्ञ सहारे। विष्णु यज्ञ मिटि जाँइ देव का करें विचारे।।
दुर्बल देवनि पक्ष लै, विष्णु कपट सूअर बन्यो। समदर्शीने छल सहित, सुहृद सहोदर मम हन्यो।।

स्वामी का आदेश मिलते ही दैत्यों एवं दानवों ने सर्वत्र तबाही मचानी शुरू कर दी। उन्होंने नगर, गाँव, गोशाला, बगीचे, खेत, भ्रमण के स्थान, ऋषि-मुनियों के आश्रम, रत्न आदि की खानें, किसानों की बस्तियाँ, तराई के गाँव, अहीरों के निवास-स्थान और व्यापार के केन्द्र बड़े-बड़े नगर आग लगाकर जला डाले। चारों ओर विनाश का दृश्य उपस्थित हो गया। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई। देव-गण भी स्वर्ग से भाग खड़े हुए। चारों ओर बड़ा ही दारुण और करुण दृश्य उपस्थित हो गया।

युधिष्ठिर, भाई की मृत्यु से हिरण्यकशिपु को बड़ा दु:ख हुआ। कलेजे पर पत्थर रखकर उसने भाई की और्ध्वदेहिक क्रिया की अत्येष्टि क्रिया की फिर उसने शकुनि, शम्बर और उत्कच आदि अपने भतीजों को सान्त्वना दी। हिरण्याक्ष की पत्नी **रुषाभानु** और पुत्र **शकुन, शम्बर, धृष्ट, भूतसन्तापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु और उत्कच** तथा अपनी माता दिति को देश-काल के अनुसार मधुर वाणी से समझाते हुए उसने कहा- माता, बहू और पुत्रों, हिरण्याक्ष वीर था। वीर के लिये शोक करना उचित नहीं है। संग्राम में लड़ते हुए प्राण त्यागना वीरों के लिये श्लांघनीय मृत्यु है। देवि, जैसे प्याऊ (पौसला) पर बहुत-से लोग एकत्रित हो जाते हैं, परतु उनका मिलना-जुलना थोड़ी देर के लिये होता है- वैसे ही अपने कर्मों के फलस्वरूप, इस संसार में आये हुए प्राणियों की स्थिति है। संसार का मतलब ही है- आने जाने का स्थान, क्षणिक मिलन का स्थान। हिरण्यकशिपु बोला- तुम सब लोग रो क्यों रहे हो? कोई अजर अमर होकर तो आया नहीं। मरना तो सबको है किसी न किसी दिन? आत्मा तो अमर है शरीर नश्वर है। मेरा भाई युद्ध में शत्रु के साथ लड़ते हुए

मरा है और वीरगति को प्राप्त हुआ है। मैं अपने भाई की मृत्यु का बदला लूंगा। मेरा भाई विष्णु के खून का प्यासा था। इसलिये मैं भी विष्णु को मारूंगा और उसके खूनसे मेरे भाई का तर्पण करूंगा। दौड़-धूप और अनुनय-विनय करके देवताओंने विष्णुको अपने पक्षमें कर लिया। यह विष्णु पहले तो बड़ा शुद्ध और निष्पक्ष था। परन्तु अब मायासे वराह आदि रूप धारण करने लगा और अपने स्वभावसे च्युत हो गया।

भये देव अति दुखित यज्ञ आहुति बिनु पाये। हिरण्यकशिपु इत मातु बन्धुसुत पास बिठाये।।
दई सान्त्वना सबनिकूँ, शोक मग्न जे अति भये। यह झूठो संसार सब, उदाहरन बहुतक दये।।

वास्तव में आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, सर्वगत, सर्वज्ञ और देश-इन्द्रिय आदि से पृथक है। वह न जन्मता है और न मरता ही। जन्मता मरता यह शरीर ही है अत: आत्मा का किसी से संयोग-वियोग होना सम्भव नहीं। इसलिये शोक करना व्यर्थ है। जैसे पानी के हिलने पर वृक्ष हिलते हुए प्रतीत होते हैं, गाड़ी के दौड़ने पर पृथ्वी भागती हुई प्रतीत होती है। वस्तुत: न वृक्ष हिलते हैं और न पृथ्वी भागती ही है। इसी प्रकार लोग अन्त:करण रूप, अहंकार रूप उपाधि के भ्रमण से ही अपने को, आत्मा को घूमता हुआ मानते हैं। उसी से संयोग, वियोग और संसार की प्राप्ति होती है। इससे आत्मा का कुछ लेना-देना नहीं है। सबकी मृत्यु तथा जन्म पूर्व जन्म के कर्मानुसार होते हैं। यह मृत्यु तथा जन्म शरीर के ही होते हैं उस आत्मा की मृत्यु तथा जन्म नहीं होता है। वह तो उस शरीर को ही इस प्रकार त्याग देता है जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र को त्याग देता है तथा नया जन्म इस प्रकार धारण कर लेता है जैसे मनुष्य नवीन वस्त्र धारण करता है। उसका सम्बन्ध शरीर से तभी तक रहता है जब तक वह उस शरीर में रहता है। वैसे वह शरीर से ऐसे ही अलग है जैसे काष्ट में रहनेवाली अग्नि काष्ट से अलग होती है।

हिरण्यकशिपु सबको औपनिषदिक ज्ञान प्रदान कर रहा था। ज्ञान सुलभ है किन्तु जब तक अहं और ममता नष्ट न हों तब तक ज्ञान देना न शोभा देता है और न प्रभावकारी ही होता है। हिरण्यकशिपु ज्ञानी तो था किन्तु उसका ज्ञान अहंभाव और ममता से भरा हुआ था। अत: वह शाब्दिक ही था, यथार्थ नहीं। जो औरों को उपदेश तो दे और स्वयं उसका आचरण न करे वह असुर है।

देखो माता कौन बन्धु का को सम्बन्धी। करें मृतक हितशोक प्रथा जगकी यह अंधी।।
नदी धार तृन बन्धु परस्परमहँ मिलि जावें। संग-संग कछु चलें फेरि इत उत बिलगावें।।
आत्मा अविनाशी अमर, सदा एक रस सर्वगत। मायिक गुण सम्बन्धतें, भ्रमवश दीखें भ्रान्तवत।।

हिरण्यकशिपु ने कहा- बात प्राचीन समय की है। उशीनर देश में एक बड़ा यशस्वी राजा था। उसका नाम था- सुयज्ञ। लड़ाई में शत्रुओं ने उसे मार डाला। उस समय उसके भाई-बन्धु सभी उसे घेर कर शोक करने लगे। उसकी स्त्रियाँ विलाप करती हुई छाती पीट रही थीं। वे कभी मूर्च्छित होकर भूमि पर गिरती तो कभी पति के मृत शरीर से लिपट जातीं। बड़ा कारुणिक दृश्य उपस्थित था। सूर्य भगवान अस्ताचलगामी हो चुके थे, फिर भी वे दाह-संस्कार के लिये उसे छोड़ती न थीं। इस दृश्य को देखकर स्वयं यमराज एक अनाथ बालक का रूप धारण कर वहाँ आये और बोले- अरे। बड़े आश्चर्य की बात है। ये सभी अवस्था में मुझसे बड़े हैं, सयाने हैं। ये यह भी देखते हैं कि लोग बराबर जीते-मरते रहते हैं। अरे यह मनुष्य जहाँ से आया था वहीं चला गया। इन लोगों को भी किसी-न-किसी दिन जाना है फिर भी ये लोग व्यर्थ में शोक क्यों करते हैं।

राज-परिवार की ओर लक्ष्य करके उस बालक ने कहा- हम तो आप लोगों से लाख गुना अच्छे हैं, परम धन्य हैं। माता-पिता ने हमें बचपन में ही छोड़ दिया है। शरीर में पर्याप्त बल भी नहीं है फिर भी हमें कोई चिन्ता नहीं है। भेड़िया आदि हिंसक जानवर हमारा बाल भी बाँका नहीं कर पाते; क्योंकि जिसने माता के गर्भ में रक्षा की थी, वही इस जीवन में भी

हमारी रक्षा करता है।

शिशुपनतें ही हमें पिता माताने त्याग्यो। कोई ढिँग नहिँ रखे कहें सब बड़ो अभागो।।
ह्वै अनाथ वनमाहिँ फिरें तरुवर सो जावें। भोजन हू मिलि जाइ भेड़िया सिंह न खावें।।
मृत्यु समय यदि निकट नहिँ, रहे चाहिँ वनमहँ पस्यो। करें सदा पालन जिननि, गर्भ माहिँ पालन कस्यो।।

उसी प्रभु की इच्छा से संसार का सृष्टि-स्थिति-प्रलय होता है। वही दण्ड दे सकता है। वही अनुग्रह कर सकता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मार्ग में कोई वस्तु गिर जाती है और भगवान अदृष्ट होकर उसकी रक्षा करते हैं, वह वस्तु सुरक्षित रहती है। किन्तु भगवान जिसकी रक्षा नहीं करते वह घर में अति सुरक्षित होते हुए भी नष्ट हो जाती है। जंगल में परित्यक्त अनाथ प्राणी भी, प्रभु की कृपा होने पर, सकुशल बचा रह जाता है; किन्तु जब वही प्रभु प्रतिकूल हो जाते हैं तो घर में सुरक्षित रहने पर भी मर जाता है।

बालक सिद्धान्त की बात कह रहा है- देखो, यदि देव द्वारा कोई वस्तु रक्षित है तो उसे मार्ग में डाल दो ज्यों-की-त्यों पड़ी रहेगी और यदि उसके नाश का समय आ गया है तो घर में भी कितनी भी सुरक्षा से रखो वहाँ भी वह नष्ट हो जायगी। भगवान की जिन पर दया दृष्टि है अर्थात् जिनका काल नहीं आया है उसे चाहे वन में अनाथ करके छोड़ दो, वहाँ भी जीवित रहेगा। यदि उसका काल आ गया है तो घर में कितनी भी सावधानी से रखो, वहाँ भी मर जायेगा।

पुरुष बली नहिँ होहिँ दैव ही बली कहावे। जैसे होनो होइ दैव तस बुद्धि बनावे।।
नष्ट होनेको समय जासुको अबई नाई। अति करके पुरुषार्थ सकें नहिँ लोग नसाई।।
गिरि गैलमें वस्तु हू, ज्यों की त्यों रहि जायगी। नष्ट होन को यदि समय, तो घरमहँ नसि जायगी।।

जैसे मनुष्य अपने मकान को अपने से अलग और मिट्टी का बना हुआ समझता है, वैसे ही यह शरीर भी आत्मा से पृथक और मिट्टी का है। मोहवश वह इसे अपना समझ बैठता है। जैसे बुलबुले आदि पानी के विकार, घड़े आदि मिट्टी के विकार और गहने आदि स्वर्ण के विकार समय पर बनते हैं, रूपान्तरित होते हैं तथा नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही सत्त्व, रज एवं तम के विकार से बना हुआ यह शरीर भी समय पर बन-बिगड़ जाता है। जैसे काष्ठ में रहनेवाली व्यापक अग्नि स्पष्ट ही उससे अलग है, जैसे देह में रहने पर भी वायु का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसे आकाश सब जगह एक-सा रहने पर भी किसी के गुण-दोष से लिप्त नहीं होता-वैसे ही समस्त इन्द्रियों में रहनेवाला और उनका आश्रय आत्मा भी उनसे अलग और निर्लिप्त है। मूर्खो, जिसके लिये तुम सब शोक कर रहे हो वह सुयश नाम का शरीर तो तुम्हारे सामने ही पड़ा है। आत्मा को तो तुम लोगों ने कभी देखा नहीं था। तो शोक क्यों कर रहे हो? विवेकशील व्यक्ति नश्वर शरीर के लिये कभी शोक नहीं करते। वे नित्य आत्मा के लिये भी चिन्तित नहीं होते।

पानी केरा बुदबुदा अस मानुष की जात, देखत ही छिप जायेगा जौं तारा प्रभात।
आत्मा है निर्लेप रहे नित पृथक् देहतें। जैसे गेही रहे भिन्नही सदा गेहतें।।
जलमहँ बुद्बुद् होहिँ नहीं ते जल कहलावें। कनक एक रस रहे हार कंकण मिटि जावें।।
अनल काठतें अलग है, वायु देहतें पृथक् ज्यों। है असंग नभ सर्वगत, आत्मा हू निर्लेप त्यों।।

जो आत्मा नित्य तथा अजर-अमर है वह प्रयत्न करने पर भी अनित्य तथा नाशवान हो नहीं सकता।

मायावश ही कर्मबन्धमहँ फँस्यो जीव है। माया बन्धन कटे जीव नहिँ फेरि शीव है।।
मनतें मोदक खायँ मुदित होवें हरषावें। सपनेमहँ धनहीन चक्रवर्ती बनि जावें।।

स्वप्न मनोरथ ज्यों सबहिँ, जैसे सत्यातीत है। तैसे ही जगको विषय, भ्रमवश होत प्रतीत है।।

किसी जंगल में पक्षियों के लिये काल-स्वरूप एक व्याध (बहेलिया) रहता था। जाल फैलाकर, लालच देकर, चिड़ियों को फँसाना उसका नित्य का कार्य था। एक दिन उसने कुलिंग पक्षी के एक जोड़े को चारा चुगते देखा। उनमें से उस बहेलिये ने मादा पक्षी को तो शीघ्र ही जाल में फँसा लिया। वह फड़फड़ाने लगी। वेवश थी, चिल्लाने लगी। नर पक्षी ने इस दृश्य को देखा। वह शोक के सागर में डूब गया। वह कभी पत्नी के लिये चिन्तित होता तो कभी अपने अनाथ छोटे बच्चों की याद कर विलाप करता। वह कभी अपने दुर्भाग्य पर रोता तो कभी निर्दयी विधाता को कोसता। उसकी विह्वलता को देखकर पेड़ की आड़ में छिपे हुए बहेलिये ने एक बाण से मार कर उसका भी जीवन समाप्त कर दिया। मूर्ख रानियों, तुम्हारी भी नर-पक्षी की तरह ही दशा होनेवाली है। तुम्हें अपनी मृत्यु तो दीखती नहीं और इसके लिये रो-पीट रही हो। यदि तुम लोग सौ बरस तक इसी तरह शोकवश छाती पीटती रहो, तो भी अब तुम इसे नहीं पा सकोगी।

देई दैवको दोष पुनि, कहे विधाता का कर्‌यो। व्याधा मार्‌यो बान ताकि, लगत बान मरि गिरि पर्‌यो।।

हिरण्यकशिपु ने कहा- उस छोटे से बालक की ऐसी ज्ञानपूर्ण बातें सुनकर सब-के-सब दंग रह गये। बालक के उपदेश को सुनकर कुशीनर नरेश के भाई-बन्धु स्त्रियों ने यह बात समझ ली कि समस्त संसार और इसके सुख-दु:ख अनित्य और मिथ्या हैं। यमराज यह उपाख्यान सुना कर वहीं अन्तर्धान हो गये। भाई-बन्धुओं ने भी सुयज्ञ की अन्त्येष्टि क्रिया की।

बोले अपने आप अहो अद्‌भुत हरि माया। पति है काको कौन कौन काकी है जाया।।
नितई देखें मरत न सोचें तोऊ प्रानी। काल न देखे दीन दुखी राजा अरु रानी।।
आयो जहँतें जीव जिह, करे तहाँई गमन है। स्वयं तहाँ सब जायँगे, व्यर्थ शोक दुख रुदन है।।

नारदजी ने युधिष्ठिर से कहा- युधिष्ठिर, अपनी पुत्रवधू के साथ दिति ने हिरण्यकशिपु की यह बात सुनकर तत्काल पुत्र-शोक का परित्याग कर दिया और अपना चित्त परमतत्त्वरूप परमात्मा में लगा दिया।

नारद ने कहा- युधिष्ठिर, मुझे कोई जीत न सके, मैं अजर-अमर हो जाऊँ, मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी न हो और मैं संसार का एकछत्र सम्राट बन जाऊँ- ऐसा संकल्प करके हिरण्यकशिपु मन्दराचल पर तप करने के लिये पहुँचा। स्वयं हिरण्यकशिपु के मन में अपने शरीर को अजर-अमर बनानेका विचार हुआ, कोई मेरे मुकाबलेमें खड़ा न हो न कोई मेरी बराबरी कर सके।

यों सबकूँ समुझाइ चल्यो तपकूँ असुराधिप। अजर अमर रनजयी बनन हित करे घोर तप।।
मन्दर गिरिकी गुहा माहिँ एकाकी रहिकें। करे तितिक्षा असुर शीत उष्णादिक सहिकें।।

दोनों महर्षि नारद एवं पर्वत ने देवताओं को सान्त्वना प्रदान करने के लिये दो पक्षी का रूप धारण करके उसी कन्दरा में प्रवेश किए जिसमें हिरण्यकशिपु तपस्या करने के लिए बैठा था। उन दोनों महर्षियों ने दो कोटरों में बैठकर भगवान नारायण का नामोच्चारण जोर-जोर से करना शुरू किया। भगवान के इस पावन नाम की ध्वनि को सुनकर हिरण्यकशिपु उद्विग्न हो गया।

देवों को इसकी सूचना मिली। उन लोगों ने गुरु बृहस्पति से कहा- गुरुदेव, आप हिरण्यकशिपु की तपस्या में विघ्न कीजिये। यह सुनकर उन्होंने तोते का रूप धारण किया और पहुँचे मन्दराचल पर। जहाँ हिरण्यकशिपु तपस्या प्रारम्भ करने जा रहा था, वहीं वे वृक्ष पर बैठ कर नारायण, नारायण की रट लगाने लगे। जैसे ही हिरण्यकशिपु ध्यान लगाने का प्रयास करता, तोते की नारायण-नारायण रट शुरू हो जाती। हिरण्यकशिपु ने सोचा- विष्णु की हत्या करने के लिये तो मैं तपश्चर्या शुरू कर रहा हूँ, और यह तोता उसी का कीर्तन कर रहा है अत: आज तपस्या करने के लिये शुभ दिन नहीं है। यह सोचकर वह सायंकाल घर वापस आ गया। उसकी पत्नी का नाम था- कयाधु। उसे आश्चर्य हुआ कि मेरा पति आज

ही क्यों वापस आ गया? किन्तु वह यह बात पति से कैसे पूछे, क्योंकि वह क्रोधी जो था। कदाचित् वह नाराज होकर कह दे कि तुझे इससे क्या लेना-देना? अत: कयाधु ने सोचा कि मैं इस बात को किसी-न-किसी तरह पूछ ही लूँगी। फलत: उसने रसोई घर के सेवकों से कहा कि- आज मैं स्वयं ही महाराज के लिये भोजन बनाऊँगी। पति की गुप्त बातें जाननी हों तो कयाधु के रास्ते पर स्त्रियों को चलना चाहिये। भोजन में बड़ा वशीकरण होता है। लोभी द्रव्य से और अभिमानी प्रशंसा से वश में होता है। हिरण्यकशिपु अभिमानी था अत: उसकी पत्नी सेवा करते हुए उसकी प्रशंसा करने लगी। उसने कहा- इन्द्र, चन्द्र आदि देव तो आप से थर-थर काँपते हैं। आप जितेन्द्रिय हैं, ज्ञानी हैं। आप जैसा वीर न तो कभी हुआ है और न आगे होने की संभावना है। मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ कि आप जैसा पति मुझे मिला है और मैं यह भी जानती हूँ कि निर्धारित काम को पूरा किये बिना आप लौट नहीं सकते। क्या आज वन में कोई ऐसा प्रसंग आ गया जिसके कारण आपको वापस लौटना पड़ा? कयाधु ने कुछ चट-पटी चीजे खिला दी होगी, राक्षस को तो ऐसा ही भोजन पसन्द आता है जिसे सात्त्विक भोजन पसन्द न आये वही तो राक्षस है। हिरण्यकशिपु अपनी प्रशंसा सुनकर खिल उठा और कहने लगा- वैसे तो मैं अपने निश्चित काम को पूरा किये बिना नहीं लौटता, किन्तु आज एक बाधा आ गई और अपशकुन भी हो गया अत: वापस आ गया।

कयाधु ने पूछा- पतिदेव, कौन-सी बाधा आ गई थी? कौन-सा अपशकुन उपस्थित हो गया?

हिरण्यकशिपु ने कहा- मैंने जहाँ तपस्या प्रारम्भ करनी चाही, उसी के पास में एक वृक्ष पर बैठकर एक तोता नारायण-नारायण की रट लगाने लगा।

यह सुनकर कयाधु को बड़ा आनन्द आया। उसने सोचा कि चाहे जैसे भी सही, आज इन्होंने नारायण का नाम तो लिया। नारायण का नाम यह कभी भूल कर भी नहीं लेते अत: आज मैं युक्तिपूर्वक इनसे सौ-दो सौ बार नारायण का नाम अवश्य कहलवाऊँगी।

जो अपने पति को पाप-प्रवृत्ति से युक्तिपूर्वक बचा ले, उसे पाप करने से रोके, वही सच्ची पत्नी है। पति को धर्म के मार्ग पर जो ले जाये, परमात्मा की ओर बढ़ाये, वही पत्नी धर्मपत्नी है। पति को पत्नी ही धर्म के मार्ग पर ले जा सकती है। कयाधु ने सोचा कि यह बड़ा अच्छा अवसर है। इसी बहाने मैं अपने पति से बार-बार भगवान के नाम का उच्चारण अवश्य करवाऊँगी। अत: भोजन के समय बात को उलटफेर कर उसने हिरण्यकशिपु से पचास सौ बार नारायण के नाम का उच्चारण करवाया भोजन करवाया, हाथ-मुँह धुलवाया और स्वयं चरण धोकर वस्त्र से उसे पोछा। शयन की बेला में पति के पैर कारे दबाती हुई उसने कहा- भोजन बनाने की बेला में मेरा ध्यान बटा हुआ था अत: आप की बात पूरी-पूरी समझ में नहीं आई। तो वन में क्या हुआ था?

हिरण्यकशिपु ने कहा- देवि, वहाँ एक तोता आकर नारायण-नारायण की रट लगाने लगा। कयाधु बोला- तोता क्या बोलता था? हिरण्यकशिपु बोला- नारायण, नारायण। कयाधु बोला- भला, यह कैसे हो सकता है? क्या वह सचमुच नारायण, नारायण बोलता था? हिरण्यकशिपु बोला- हाँ, वह नारायण-नारायण बोलता था।

बेचारा कामातुर पति। पत्नी ने युक्तिपूर्वक उससे बार-बार यही बात कहलवाई। साधारणत: पुरुष कामान्ध होता है, स्त्री के वशीभूत होता है। अत: पत्नी चाहे तो अपने पति को सुधार सकती है। पत्नी यदि सुपात्र होगी तो पति को भगवान् के भजन में लीन कर सकती है। माता-पिता (हिरण्यकशिपु और कयाधु) नारायण का नामोच्चारण कर रहे थे कि उसी समय माता के गर्भ में प्रह्लाद की स्थापना हुई अत: पिता के राक्षस होने पर भी उसका पुत्र प्रह्लाद भगवान का भक्त हुआ- भगतशिरोमणि भे प्रह्लादू। कयाधु सगर्भा हुई और हिरण्यकशिपु तपश्चर्या करने वन में चला गया। वहाँ वह मन्दराचल की

द्रोणी में भीषण तपस्या में लीन हो गया। उसके दोनों हाथ ऊपर उठे हुए थे। दृष्टि आकाश में लगी हुई थी। एक ही अँगूठे के बल वह पृथ्वी पर खड़ा था।

तप के प्रभाव से उसकी जटाएँ सूर्य की किरणों की भाँति चमकने लगीं। देवों को जब पता चला कि हिरण्यकशिपु तपस्या करने के लिये चला गया है तब वे पुन: अपने-अपने स्थानों पर लौट आये। बहुत दिनों तक तपस्या करने के बाद उसके सिर से धुएँ के साथ आग की लपटे निकलने लगीं। उससे त्रिलोकी संतप्त हो उठी। नदियों और सागर का जल खौलने लगा। पृथ्वी डगमगाने लगी। तारे टूट-टूट कर गिरने लगे। ऐसा प्रतीत होता था मानों सभी दिशाओं में आग लग गई हो। देवता लोग भी जलने लगे। वे घबड़ाकर ब्रह्मा की शरण में पहुँचे। उन्होंने अपनी विपद्‌गाथा उनसे कही और निवेदन किया उस ज्वाला को शान्त करने के लिये। उन लोगों ने यह भी कहा- प्रभो, यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानते हैं फिर भी हम अपनी ओर से आप से यह निवेदन कर देते हैं कि उसकी तपस्या का रहस्य क्या है। उसका विचार है कि- मैं तप के प्रभाव से ब्रह्मा के समान ही पद प्राप्त करूँ क्योंकि समय असीम है और आत्मा नित्य है। एक जन्म में न सही अनेक जन्मों में, एक युग में न सही अनेक युगों में, अपने अभीष्ट की सिद्धि करके ही छोड़ूँगा। अपनी तपस्या की शक्ति से मैं पाप-पुण्य के नियमों को पलट कर इस संसार में ऐसा उलट-फेर कर दूँगा, जैसा कभी हुआ ही नहीं। मैं असुरों को यज्ञभाग दिलाऊँगा और देवताओं को अमृत के स्थान पर मद्य पिलाऊँगा। मेरे शासनकाल में पापी स्वर्ग सिधारेंगे और पुण्यात्मा नरक में जायेंगे। हमने सुना है कि ऐसा हठ करके ही वह घोर तपस्या में जुटा हुआ है। आप तीनों लोकों के स्वामी हैं। अब आप जैसा उचित समझें वैसा करें।

देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्माजी भृगु और दक्ष आदि को साथ लेकर वहाँ पहुँचे जहाँ हिरण्यकशिपु तप में रत था। किन्तु उन्हें वहाँ कुछ दिखलाई न पड़ा क्योंकि दीमक की मिट्टी, घास और बाँसों से उसका शरीर ढक गया था। दीमक जहां चढ़ती हैं वहां लकड़ी को खाती है और मिट्टी का ढेर लगाती है। उसके शरीर पर इतनी मिट्टी जमी की टीला जैसा हो गया। उसमें घास उग गई।

चीटियाँ उसकी मेदा, त्वचा, मांस और खून चाट गई थीं। बादलों से ढके हुए सूर्य के समान वह अपनी तपस्या के तेज से लोगों को तपा रहा था। इस दृश्य को देखकर ब्रह्माजी विस्मित हो गये। उन्होंने हँसते हुए कहा- हे कश्यपनन्दन हिरण्यकशिपु, उठो। मैं तुम्हारी तपस्या से परम सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारी तपस्या पूर्ण हुई। जो तुम्हारी इच्छा हो वह वर मांग लो। मैंने तुम्हारे हृदय के अद्भुत बल को देख लिया। अरे मच्छरों ने तुम्हारी देह खा डाली है फिर भी तुम्हारे प्राण हड्डियों के सहारे टिके हुए हैं।

मांस दीमकनि भखि लयो, अस्थि मात्र ही बचि गई। असुर उग्र तपतें जगत, महँ अशान्ति अति मचि गई॥

ब्रह्मा बोले- तपस्या के प्रभाव से दुर्लभ वस्तु भी सुलभ हो जाती है। असम्भव भी सम्भव बन जाती है, इसीलिये मन्दराचल पर्वत पर जाकर तपस्या करनी चाहिये।

ऐसी कठिन तपस्या न तो पहले किसी ने की थी और न भविष्य में कोई करेगा। भला ऐसा कौन है जो देवताओं के सौ वर्षों तक बिना पानी के जीवित रहे। वत्स, तुमने अपने तप से मुझे अपने वश में कर लिया है। अत: मांग लो मुझसे जो कुछ मांगना चाहते हो। मेरा दर्शन कभी निष्फल होनेवाला नहीं है। मैं मर्त्यलोक में अमरता का वरदान तो दे नहीं सकता, इसके अलावा जो इच्छा हो मांग ले, बोल क्या चाहता है।

यह कहकर ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु से दिव्य एवम् अमोघ जल निकाल कर उसके शरीर पर छिड़क दिया। जैसे लकड़ियों की ढेर से आग जल उठे, वैसे ही वह जल छिड़कते ही बाँबी के बीच से दमकता हुआ बाहर निकला। उस समय उसका शरीर सर्वांगपूर्ण एवं पूर्ण बलिष्ठ हो गया था। उसने आकाश में हंस पर आरूढ़ ब्रह्माजी को देखा। उन्हें दण्डवत्

प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनकी दिव्य भव्य स्तुति की और बड़ी विनम्रता से कहा- प्रभो, आप समस्त वरदाताओं में श्रेष्ठ हैं। यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो ऐसा कर दीजिये कि आप की सृष्टि के किसी भी प्राणी से मेरी मृत्यु न हो- चाहे वह मानव हो, दानव हो, देव हो, नाग हो, मृग हो, सुर हो चाहे असुर हो, पशु हो या पक्षी हो। आपके रचे हुए किसी प्राणी से न मरूँ। फिर उसने स्थान, काल और समस्त अस्त्र-शस्त्रों का निषेध करते हुए कहा कि मेरी मृत्यु घर में न हो, न तो बाहर हो, न भीतर हो, न पृथ्वी पर हो, न आकाश में हो, न ऊपर हो, न नीचे हो, न दिन में हो, न रात में हो और न किसी अस्त्र-शस्त्र से हो। युद्ध में मेरा कोई मुकाबला न कर सके। मैं समस्त प्राणियों का एकच्छत्र सम्राट होऊँ। सारे लोकपालों में आप जैसी मेरी महिमा हो। तपस्वियों और योगियों को जो अक्षय्य सुख एवम् ऐश्वर्य प्राप्त है, वही मुझे भी प्राप्त हो। मुझसे कोई युद्ध नहीं कर सके सारे प्राणियोंका मैं ही एकमात्र स्वामी बन जाऊँ। मुझे सब लोकपालोंकी महिमा मिल जाये और वह कभी घटे ही नहीं। त्रिलोक में मेरा राज्य हो, सारी ऋद्धि-सिद्धि मेरे अधीन हो।

भीतर बाहर नहीं मरूँ निशि तथा दिवसमहँ। अस्त्र-शस्त्रतैं नहीं कटूँ सब हों मम वशमहँ।।
होहि न मेरी मृत्यु मनुज, मृग, नाग, असुरतें। नहिँ नभ थलमहँ मरूँ होहि भय नहिँ सुर नरतें।।
प्रभु जस जगमहँ मान्य हैं, तस मेरीहू वृद्धि हो। बलमहँ तपमहँ तेजमहँ, योगिनि सम सब सिद्धि हो।।

नारद ने कहा- युधिष्ठिर, हिरण्यकशिपु के इस प्रकार वर मांगने पर ब्रह्माजी ने कहा- बेटा, तुम जिन वरों को मांग रहे हो, वे प्राणियों के लिये अतिदुर्लभ हैं फिर भी मैं इन सारे वरों को तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ।

वर पा गया जी पा गया, ब्रह्मा भी चक्कर खा गया। दिन में मरूं न रात में, न रोग प्रविशे गात मे।
धरती पर नहीं आकाश में, न मरूं बारह मास में।।
ब्रह्मा बोले- वत्स, बहुत वर दुरलभ माँगे। तोऊ दुँगो अवसि कस्यो प्रन तेरे आगे।।
वरदे अन्तर्धान भये सुररिपु घरआयो। विधि वर महमहँ मत्त उपद्रव आइ मचायो।।
सुरपुर यमपुर वरुनपुर, धनपतिपुर निज करे वंश। सबको स्वामी बनि गयो, फीको सबको कस्यो यश।।

नारदजी धर्मराज से कह रहे हैं- राजन्, हिरण्यकशिपु ने सम्पूर्ण जीवों के स्वामियों को जीतकर अपने वश में कर लिया। अपने तेज से सभी लोकपालों के स्थानों और तेज को छीनकर वह असुर विश्वको जीतने वाला हो गया।

वर पाकर असुरराज परम प्रसन्न हुआ। उसने ब्रह्मा की पूजा की और उन्हें सादर सविनय प्रणाम किया। वर देकर ब्रह्मा अपने लोक चले गये। हिरण्यकशिपु भी कृतार्थ होकर अपनी राजधानी मुल्तान लौट आया जो आज के पाकिस्तान में है। वहीं हिरण्यकशिपु की राजधानी थी। तप के तेज के कारण उसका शरीर सुवर्ण की भाँति दमक रहा था। विष्णु ने उसके भाई का वध किया है। इसका स्मरण कर वह उनसे द्वेष करता था, शत्रुता ठान ली थी।

उस महादैत्य ने समस्त दिशाओं, तीनों लोकों तथा देवता, असुर, नरपति, गन्धर्व, गरुड, सर्प, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितरों के अधिपति, मनु, यक्ष, राक्षस, पिशाचराज, प्रेत, भूतपति एवं समस्त प्राणियों के राजाओं को जीत कर अपने वश में कर लिया। यहाँ तक कि उस विश्व-विजयी दैत्य ने लोकपालों की शक्ति और स्थान भी छीन लिये। अब वह सदा स्वर्ग में ही रहता और इन्द्र का भवन ही उसका निवास स्थान था। नन्दन वन उसकी क्रीडा-स्थली थी। कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि पर उसका अधिकार था। देव-दानव सभी उसका चरण-वन्दन करते थे। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को छोड़कर बाकी सभी देवता अपने हाथों में भेंट लेकर उसकी सेवा में लगे रहते थे।

युधिष्ठिर, वह महान् तेजस्वी था। देवताओं के यज्ञ का सर्वस्व वह स्वयं भोगता था। विष्णु के नाम पर जो भक्त लोग है,

चाहे ऋषि-मुनि हो, चाहे देवता हो, सभी कुछ न कुछ अर्पण करते हैं। अर्घ्य, पाद्य, आचमनीयम्, नैवेद्यं, दूग्धम् यह सब अर्पण करते हैं। इसीसे विष्णु को ताकत मिलती है। इसलिये उसने निश्चय किया कि एक भी गाय धरती पर मत रहने दो। क्योंकि गाय नहीं रहेगी तो दूध, दही, घृत कुछ भी नहीं मिलेगा। माखन मिसरी का उसको भोग नहीं मिलेगा। उसकी उपासना करनेवाले जहां कहीं दीख जायें, उसे मार डालो ये स्थिति हो गई और कहने लगा-

जो भी जप, यज्ञ करें तो उसके लिये हथकड़ी तैयार थी। सत्संग में जाने के बदले जेल की दीवार थी।।

भूतल के सातों द्वीपों पर उसका अखण्ड अधिकार था। सभी जगह बिना जोते-बोये धरती से अन्न उत्पन्न होता था। वह जहाँ जो कुछ चाहता, वह वहीं उसे मिल जाता था। सारे सागर अपनी तरंगों से उसके पास रत्न-राशि पहुँचाया करते थे। सभी ऋतुओं में वृक्ष फलों-फूलों से लदे रहते थे। इस प्रकार दिग्विजयी और एकछत्र सम्राट होकर वह सारे प्रिय विषयों का उपभोग करने लगा। परन्तु सारे विषयों का छककर उपभोग करने पर भी उसकी तृप्ति न हो सकी क्योंकि अनन्त: वह इन्द्रियों का दास ही तो था। कोई भी प्राणी जब देवता, वेद, गाय, ब्राह्मण, साधु, धर्म और ईश्वर इन सातोंके प्रति द्वेष करने लगता है तब समझना चाहिए कि अब इसके विनाशका काल समीप ही है।

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु। धर्मे मयि च विद्वेष: स वा आशु विनश्यति।।

उसके भीषण अत्याचारों से त्रिलोकी में सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई। देवताओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। वे वायु पी-पीकर जीवन-यापन करते थे। शान्ति से शयन भी उनके लिये कठिन था। ऐश्वर्य से मदमत्त हिरण्यकशिपु शास्त्र की मर्यादा का थोड़ा भी ध्यान नहीं रखता था। इस प्रकार महान् काल बीत गया। हिरण्यकश्यपु ने घोषणा करा दी कि दूसरा कोई भगवान नहीं है मैं ही भगवान हूँ। मेरे राज्य में, मेरे शासनकाल में कोई दूसरे भगवान की चर्चा नहीं कर सकता। जो भी विष्णु के समर्थक हैं, उन्हें मार डालो और धर्म से विरोध करने लगा। क्योंकि धर्म के समर्थक देवता लोग हैं। धर्म के समर्थक ब्राह्मण हैं, ब्राह्मणोंके समर्थक वेद हैं। मैं नारायण का नामोनिशान मिटा दूंगा इस दुनिया से। सनकादिक महर्षियों के द्वारा अभिशप्त भगवान का पार्षद हिरण्यकशिपु ऐश्वर्य मदमत्त बन गया तथा शास्त्रीय मर्यादाओं का उल्लंघन करने लग गया।

उसके कठोर शासन से सब लोक और लोकपाल घबरा गये। जब उन्हें किसी और का आश्रय नहीं मिला तो घबड़ा कर वे अशरण-शरण भगवान विष्णु की शरण में गये। वहाँ अत्यन्त एकाग्र चित्त से ध्यान लगाकर भगवान की स्तुति की, उन्हें प्रणाम किया और रो-रोकर अपना दु:ख निवेदन किया। आर्तचित्त से की गई देवों की प्रार्थना भगवान के कानों तक पहुँची। भगवान ने उसे सुना और आकाशवाणी के माध्यम से कहा- देवों, डरो मत। तुम सबका कल्याण होगा। मेरे दर्शन मात्र से प्राणियों का सर्वविध कल्याण हो जाया करता है। मुझे हिरण्यकशिपु के अत्याचार भली-भाँति विदित हैं। मैं समय आने पर शीघ्र ही उसका प्रतिकार करूँगा। कोई भी प्राणी जब देवता, वेद, गाय, ब्राह्मण, साधु, धर्म और मुझसे द्वेष करने लगता है, तब शीघ्र ही उसका विनाश हो जाता है। जब यह अपने वैर-विहीन, शान्त और महात्मा पुत्र प्रह्लाद से द्रोह करेगा- उसका अनिष्ट करना चाहेगा, तब वर के कारण शक्ति-सम्पन्न होने पर भी इसे मैं अवश्य मार डालूँगा।

जब कोई प्राणी अकारण ही देवताओं से द्वेष करने लगे, देवताओं की पूजा बन्द कर दे, देव की निन्दा करने लगे, गौओं को दु:ख दे, उन्हें पीड़ा पहुँचावे, ब्राह्मणों को हृदय से शत्रु समझे, उनका प्रभाव घटाने को सतत प्रयत्न करता रहे, उनसे हृदय से द्वेष करने लगे, साधुओं में अश्रद्धा करे, अवाच्य बचन बोले, धर्म को अवनति का कारण मानने लगे, धर्म से च्युत हो जाय तथा मुझ जगदीश्वर से विद्वेष करने लगे, तब समझना चाहिये वह शीघ्र ही नष्ट होने वाला है।

विष्णु बोले- वो कैसे मेरानाम मिटा पायेगा। उसके पुत्र प्रह्लाद के हृदय में ऐसी नाम निष्ठा भरी होगी कि किसी भी प्रकार

हिरण्यकशिपु इसकी जड़ काट नहीं सकता।

नारद जी ने कहा- युधिष्ठिर्, इतना कहकर आकाशवाणी बन्द हो गई। देवता लोग कृतज्ञतापूर्वक भगवान को प्रणाम कर अपने-अपने लोकों में चले गये। उन लोगों ने हिरण्यकशिपु को अब मरा हुआ ही मान लिया।

सुर नर वाके उग्र दण्डतें दुखित भये जब। अन्य शरन नहिँ लखी गये हरिकी शरनहिँ सब॥
क्षीर सिन्धु ढिँग जाइ करें मिलिके सुर तप अति। जहाँ लगावे लेट शेष शैय्या पै श्रीपति॥
अन्न खाँय नहिँ पिये जल, तजि निद्रा निशि दिन जगे। वायु पान करि विष्णुको, आराधन करिबे लगे॥
नभवानी सुनि देव लौटि निज-निज घर आये। हिरनकशिपुने देव भक्त इत अधिक सताये॥
चौथे ताको पुत्र अवस्थामहँ छोटो अति। किन्तु भक्तिमहँ श्रेष्ठ आसुरी नहिँ जाकी मति॥
विद्या, कुल धन रूपको, जाके नाहिँ अभिमान चित। सुहृद् सदाचारी सरल, सब सद्गुन जामें निहित॥

दैत्यराज हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे। उनमें प्रह्लाद वय में सबसे छोटा होने पर भी गुणों में सब से महान् थे। वे बड़े सन्तोषी थे। ब्राह्मण भक्त, सौम्यस्वभाव, सत्यप्रतिज्ञ एवं जितेन्द्रिय थे। समस्त प्राणियों को अपने ही समान समझते थे और सब के प्रिय सुहृद् थे। बड़े लोगों के चरणों में सेवक की भाँति झुक कर रहते थे। गरीबों पर पिता के समान स्नेह करते थे। बराबरी वालों से भाई के समान प्रेम करते और गुरुजनों में भगवद्भाव रखते थे। सब कुछ होने पर भी अभिमान उन्हें छू तक न गया था। बड़े-बड़े दु:खों में भी वे घबड़ाते नहीं थे। लोक-परलोक के भोगों को वे नि:सार और असत्य समझते थे। अत: उनके मन में किसी भी वस्तु की लालसा न थी। मन और इन्द्रियाँ उनके वश में थी। उनका मन कामना-विहीन था। असुर होने पर भी असुरभाव का लेश भी उनमें न था।

प्रह्लादके रोएँ-रोएँ में ब्राह्मण की भक्ति भरी हुई थी और वे इतने शीलसम्पन्न थे कि उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया पर शील नहीं छोड़ा। प्रह्लाद महान भगवद्भक्त थे। उनमें भगवान कृष्ण के प्रति स्वाभाविक प्रीति थी। वे बचपन में ही खेल-कूद छोड़कर भगवान के ध्यान में जडवत् तन्मय हो जाया करते थे। भगवान कृष्ण के अनुग्रहरूप ग्रह ने उनके हृदय को अपने वश में कर लिया था अत: उन्हें संसार की कुछ भी सुध-बुध न थी। उन्हें ऐसा प्रतीत होता था मानों भगवान सर्वदा उन्हें अपनी गोद में लेकर छाती से लगाये रहते हैं अत: चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते सब समय बड़ी तन्मयता से भगवान का ही चिन्तन किया करते थे। वे भगवान के आवेश में कभी रोते, कभी हँसते, कभी नाचते-गाते तो कभी ध्यानस्थ हो जाते थे। उनकी आँखों से, चिन्तन की बेला में, अविरल अक्षुधारा बहा करती थी। उस समय उन्हें अपने शरीर का भी ध्यान न रहता था। उनके पास विद्या थी, अर्थ था, रूप था, कुलीनता थी, परन्तु अभिमान नहीं था, उद्दण्डता नहीं थी, वे मान-स्तम्भसे रहित थे। उनका चित्त कभी उद्विग्न नहीं होता। संसारके जितने भी श्रुत और दृष्ट विषय है, उनसे वे नि:स्पृह रहते थे। क्योंकि विषयोंको उन्होंने कभी सच्ची वस्तु नहीं समझी। वे असुर होनेपर भी आसुरी भावसे रहित और शान्तकाम थे। भक्त हो तो सद्गुणी प्रह्लाद भक्त। उनके मनमें भगवानके प्रति नैसर्गिक प्रीति थी। जैसे जलमें स्वाभाविक द्रवता है, सूर्यमें स्वाभाविक प्रकाश हैं, अग्निमें स्वाभाविक दाहकता है, वैसे ही प्रह्लादकी भगवानमें भक्ति थी। उनके हृदय में आनन्द की, परमात्मा की अनुभूति होती थी। प्रह्लाद की सी भक्ति भक्तोंके सत्संगसे मिलती है। परमानन्द में मग्न महात्माओंके सम्पर्कमें जो भी आता है, उसको वे आनन्दमय बना देते हैं।

गावें नाचें प्रेमतें, हृदय सदा श्रीहरि बसें। कृष्ण भूत सिर पै चढ्यो, कबहूँ रोवें पुनि हँसें॥

संसारके लोग दु:संगके कारण ही दु:खी है। लोग यह नहीं देखते है कि भगवान्ने उनको क्या-क्या दिया है, वे तो यह

देखते रहते हैं कि उनके पास क्या नहीं है। हमें यह चाहिए, वह चाहिए इससे क्या कभी इच्छा पूरी होती है। भगवानने मनुष्य को आँख दी, नाक दिया, हाथ दिया, पाँव दिया, दिल दिया, दिमाग दिया पर यह वस्तु अमूल्य हैं किसी भी कीमत पर इनको बेचनेके लिये तैयार नहीं। पर जो चीज नहीं मिली उसके लिये रोते रहता है। यह उसकी कभी न पूरी होनेवाली वासना का फल है और कुसंगके कारण और भी वृद्धि हो जाती है। प्रह्लादजी जहाँ रहते हैं, वही वासना शान्त हो जाती थी ऐसे पुत्र के प्रति भी हिरण्यकशिपु ने द्वेष किया। अपना पुत्र यदि दुश्मन भी हो जाय तो भी लोग उससे प्रेम करते हैं। कभी उसको डाँटते भी हैं तो शिक्षा देने के लिये पर उससे द्वेष नहीं करते।

प्रह्लाद की जीवनगाथा बड़ी रोचक, विचित्र एवं भक्तिमिश्रित है। वे पूर्वजन्मके सोमशर्मा नामक ब्राह्मण थे। हरिहरक्षेत्रमें जप करते समय राक्षसोंकी टोलीके विघ्नद्वारा इनका भयसे प्राणान्त हो गया। अन्त:काल में राक्षसका दर्शन-ध्यान होनेसे इनका राक्षसकुलमें जन्म हुआ। सर्वथा विपरीत परिस्थितियों का भयानक उत्पीड़नोंमें भी इन्होंने कथा-कीर्तन-भजन नहीं छोड़ा। उनकी विशेषता थी कि वे निष्काम थे। उन्होंने इतिहास में एक नयी कड़ी जोड़ी, एक नयी दिशा दिखलायी। उनके सामने अग्नि, शीतल, विष, अमृत, छिछला समुद्र तथा शत्रु भी मित्र एवं व्याघ्र, सर्प, हाथी आदि हिंस्र जन्तु भी परम शान्त हो गये। वे भक्ति के प्रवर्तकाचार्य और भक्तशिरोमणि कहलाये। उनके नामस्मरणसे ही चितको परमशान्ति, उत्साह एवं साहस मिलता है।

होइ न बाँको बार भगत को, जो कोटि कोटि उपाय करे।
जगत बिदित प्रह्लाद कथा सुनि को न भगति पथ पाँव धरे।।
प्रेम बदों प्रह्लादहि को, जिन्ह पाहन तें परमेसुर काढ़े।।

राग, रोग, लोभ-क्षोभ-मोहादिसे सर्वथा शून्य होकर निरन्तर भगवन्नाम-गुणका संकीर्तन करते रहते थे। भगवानके स्मरण-कीर्तन में कोई प्रयास तो होता नहीं प्रत्युत आनन्द ही आता है। फलमें तो वह सर्वविध कल्याण प्रदान करता है। प्रह्लाद का जीवन चरित्र भजन मार्गमें साधकोंके लिये सर्वथा आनंदकारी है।

हिरण्यकशिपु ने जब देखा कि प्रह्लाद हमारे शत्रु भगवान के ध्यान में ही लीन रहता है तो वह उनसे द्वेष करने लगा, सर्वदा उनके अनिष्ट की चिन्ता करने लगा। जो भगवद्भक्त होते हैं उन्हीं में सद्गुण आकर निवास करते हैं, प्रह्लादजी शिक्षा के लिये हिरण्यकशिपु महाविद्यालय में भेजे गये।

प्रह्लादको पढ़ानेके लिए हिरण्यकशिपु के महलमें पुरोहित नहीं आते थे। क्योंकि घरपर पढ़ानेवाले अध्यापकोंसे बालक कुछ विशेष नहीं सीख सकता, सदाचार-शिष्टाचार नहीं सीख सकता। इसलिए हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको पाठशालामें भेद दिया, जिससे कि वह सब बच्चोंके साथ मिलकर रहे, गुरुजीकी सेवा करे और पढ़े-लिखे। वह समझता था कि इससे बालकके जीवनका निर्माण होता है।

नारदजी ने कहा- युधिष्ठिर, दैत्यों ने शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाया था। उनके दो पुत्र थे- शण्ड और अमर्क। वे राजभवन के पास में ही रहते थे। वहाँ उनकी एक पाठशाला थी। उसका नाम हिरण्यकशिपु महाविद्यालय था। वहाँ वे दैत्यबालकों को राजनीति, अर्थ-नीति आदि की शिक्षा दिया करते थे। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को उसी पाठशाला में पढ़ने के लिये डाल दिया था। वहाँ जो कुछ गुरुजन पढ़ाते थे प्रह्लाद उसे पढ़कर पूछने पर ज्यों-का-त्यों सुना भी दिया करते थे। किन्तु वे मन से उसे अच्छा नहीं समझते थे क्योंकि उस शिक्षा में अपने-पराये का भेद रहता था, संसार का ज्ञान सिखाया जाता था। भेद का पाठ पढ़ानेवाली शिक्षा और संसार का ज्ञान उन्हें अच्छा नहीं लगता था।

भक्तवर प्रह्लाद ने झंडा लिया हरि नाम का। दैत्यकुल में कीर्त्तन करा दिया हरिनाम का।।
विश्व को प्याला पिलाया खुद पिया हरि नाम का। आफतों से कुछ नहीं डरते थे कीर्तन के लिये।।
अपनी कुर्बानी का दम भरते थे कीर्त्तन के लिये। बाप से प्रह्लाद हठ करते थे कीर्तन के लिये।।
सर हथेली पर लिये फिरते थे कीर्तन के लिये।।

प्रह्लादजी बड़े दयालु हृदय के थे। किसी का दु:ख नहीं देख सकते थे। इनके जीवन में एक घटना घटी। एक कुम्हार-कुम्हारिन के आंवा में जब कुम्हार ने आग लगा दी तब उसको याद आई, अरे एक हंडिया में बिल्ली ने बच्चे दिये थे। वो हंडिया उसी आंवा में रह गयी। आग प्रज्वलित हो चुकी,अब क्या होगा वो तो जल जायेंगे बिल्ली के बच्चे। हम इस पाप के भागी बनेंगे, तो कुम्हार और कुम्हारिन दोनों आंवा के चारों ओर घूम-घमकर प्रार्थना कर रहे थे। हे नाथ, हे प्रभो, हे दीनानाथ, हमें इस पाप से बचाओ। उन दिनों में हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को यह समझाना चाहा था कि भगवान कोई दूसरा नहीं है, मैं ही भगवान हूं। तो उसी समय प्रह्लाद खेलते हुए पहुंच गए कुम्हार कुम्हारिन के आंवा के पास में जहां वे घूम घूमकर प्रभु से प्रार्थना कर रहे थे। हे भगवान, हे राम, हे नारायण, इन बिल्ली के बच्चों को बचाओ। भोलेपन में बालक प्रह्लाद ने कहा कि भगवान से कुछ कहना है, तो भगवान के दरवाजे पर जाकर कहो? भगवान तो कुम्हार-कुम्हारिन के घट में बैठे हैं। कुम्हार ने कहा- जिनके दरवाजे पर जाकर तुम कहने की बात कह रहे हो वो तो बनावटी भगवान हैं। हम तो उस भगवान से कह रहे हैं जो सर्वव्यापक हैं, और सबकी सुनता है। तो बालक बोला- ये राम कृष्ण गोविन्द और कोई भगवान है? ये सारे विश्व के मालिक हैं। तुम्हारे पिता के पैदा होने से पहले से है। तुम्हारे पिता के पिता के पिता के भी पहले से हैं। इन्हीं को कोई राम, कोई कृष्ण, कोई नारायण, हरि इत्यादि नामों से कहते हैं। तो प्रह्लाद ने पूछा- क्या तुम्हारे इन नामों के लेने से ये जलते हुए आंवा में से बिल्ली के बच्चे बच जायेंगे? तो बोला- अगर वो चाहेंगे तो अवश्य बच जायेंगे। उनके संकल्प से सब कुछ होता है। वे प्रभु हैं। वे कर्तुम् अकर्तुम समर्थ हैं। अन्यथा कर्तुम् भी समर्थ हैं। तो प्रह्लादजी ने कहा ठीक है, जब आंवा खोलना तो मुझे बुला लेना मैं देखूंगा। अगर तुम्हारे राम नाम के प्रभाव से इस प्रज्वलित आंवा में से वो बिल्ली के बच्चे जीवित निकल आयेंगे तो हम भी तुम्हारे उन्हीं रामजी का भजन करेंगे। जब आंवा खोला गया, खोलने के पहले तक कुम्हार-कुम्हारिन भगवान से प्रार्थना करते रहे थे। हे प्रभो, हे राम, हे नाथ। हमें इन बिल्ली के बच्चों के जलाने वाले पाप से बचाओ या न बचावो लेकिन अब इस राजकुमार के हृदय में अपने नाम के प्रति आस्था की नींव देने लिये जरूर बचाओ। भगवान ने कृपा करी और भगवान ने उन बिल्ली के बच्चों को बचाया। प्रह्लाद ने देखा जलते आंवा के ऊपर कुम्हार के बिल्ली के बच्चे घूम रहे हैं जैसे दियासलाई में बारुद पहले से रहती है। जरूरत केवल खांचा लगाने की रहती है। नारद बाबा ने प्रेम भक्ति की बारुद इस बालक के हृदय में उसी समय से भर रखाथा। जब बालक अपनी माँ के पेट में था। खांचा लगा कुम्हार-कुम्हारिन की घटना घट गई। ऐसी नाम निष्ठा जमी बालक के अन्त:करण में कि हिरण्यकशिपु जैसी सत्ता उस चिनगारी को नहीं बुझा सकी। उस लौ को नहीं बुझा सकी। जब बालक पढ़ने लायक हुआतो विद्यालय भेजा गया, विद्यालय कैसा है? आसुरी विद्यालय जिसमें त्रिवर्ग की पढ़ाई हो सकती है। धर्म, अर्थ, काम की। मोक्ष की नहीं। मोक्ष का तो नाम नहीं सुनना चाहता है हिरण्यकशिपु। भगवान का नाम भी नहीं लेने देता किसी को कहता है भगवान कौन होता है? पढ़ानेवाले अध्यापक कौन हैं? शुक्राचार्य के बेटे शण्डामर्क। हिदायत दी गई कि नारायण का नाम कहीं सुनने को नहीं मिले। प्रह्लादजी विद्यालय गये, शिक्षक पढ़ा रहे हैं पर प्रह्लादजी को वो पढ़ाई अच्छी नहीं लगती क्यों- **शिक्षक ने जो पाठ पढ़ाया, सबमें अपना और पराया।**

करे मन में प्रह्लाद विचार, ऐसी शिक्षा में क्या सार। अविद्या का ही हो जहां प्रचार।।

गुरु कहते हैं हम तुम्हें विद्या दे रहे हैं लेकिन विद्या के नाम पर ये अविद्या का संचार कर रहे हैं। विद्या और अविद्या में अन्तर है। मैं मेरा, तू तेरा, अपना पराया ये भेद भाव लड़ाई-झगड़ा राजनीति-कूटनीति ये सब तो अविद्या के विकार हैं और गुरुजी ये ही सब पढ़ाया करते हैं। विद्या में अविद्या में अन्तर होता है।

विद्या पढ़ करता फिरे औरन को अपमान। नारायण विद्या नहीं ता ही अविद्या जान।।

काम क्रोध मद लोभ को जब लग घट में स्थान। क्या पण्डित क्या मूरखा दोनों एक समान।।

विद्या तोसांची वही, जो प्रभु को दे परिचय। तेरी मेरी भूल के, प्रभुमय जगत लखाय।।

गुरु जो पढ़ाना चाहते हैं वो प्रह्लाद को पसंद नहीं, और प्रह्लाद जो पढ़ना चाहते हैं वो गुरु को पढ़ाने की हिम्मत नहीं। प्रल्हाद बोला- गुरुजी, ये गलत पढ़ाई संसार की मैं नहीं करूंगा, उसको पढ़कर क्या मिलनेवाला है। गुरु बोले- तो क्या पढ़ना चाहते हो? प्रह्लाद बोले- नारदबाबा के भागवत विद्यालय में बहुत बढ़िया बातें सीखने को मिली। नारदबाबा ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पढ़ाई पढ़ाई। राम नाम की पढ़ाई पढ़ी। गुरु बोले- खबरदार तेरा बाप राम का विरोधी है। राम नाम की पढ़ाई तुझे नहीं पढ़ने दी जायेगी। तुझे राम नाम पढ़ाई छोड़नी होगी। गुरुने देखा इसका तो कुछ बिगड़े या न बिगड़े हिरण्यकशिपु से हमारा विनाश हो जायेगा।

सुनि बोले प्रह्लाद- पिताजी, बुरो न मानें। हम तो जगमहँ भली बात जाईकूँ जानें।।

रहे सदा उदविग्न चित्त घर दारा धनमहँ। तातें तजिके मोह सबनिको जावे वनमहँ।।

यह अपनो यह परायो, अभिनिवेश मिथ्या तजे। जगकी आशा छोड़िके, प्रेम सहित प्रभुकूँ भजे।।

गुरु हिरण्यकशिपु से जाकर बोले- महाराज हमें दोष मत देना, हम जो पढ़ाते हैं वो पढ़ना नहीं चाहता और आपके शत्रु के पक्ष की पढ़ाई करता है। हिरण्यकशिपु बोला- प्रह्लाद को मेरे पास बुलाओ।

एक दिन की घटना है। हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को बड़े प्रेम से गोद में उठा कर पूछा- बेटा, बताओ तो सही, तुमने पाठशाला में क्या सीखा? तुम्हारी दृष्टि में कौन-सी बात उत्तम है? प्रल्हाद ने कहा- पिताजी, गुरुने जो पढ़ाया वो बताओ या जो कुछ मैंने सिखा वो बताऊ। पिता बोले- जो तुमने सिखा है वो बताओ।

प्रह्लाद बोला- **हिरण्यकशिपु हर्षित एक बारा। लै गोदी निज लाल दुलारा।।**

प्यार से पूछा सिर सहलाय। पढ़ा जो विद्यालय में जाय। वही सर्वोत्तम बात बताय।।

अति आल्हाद कहे भक्त प्रह्लाद सुनो तात सत्य बातद- सुनो तात सत्य बात मोहिं अति जो सुहाइये।।

दु:ख को स्वरूप गृह महाअन्ध कूप। जामे तेरी मेरी करि व्यर्थ जीवन बिताइये।।

पाके नर तन नहिं करे जो जतन। होवे आतम पतन जासों पाछें पछताइये।।

ऐसे गृह त्यागि जावे जंगल को भागि। प्रभु पद अनुरागि जन्म सफल बनाइये।।

अपने पिता के पूछने पर प्रह्लादजी कह रहे हैं- असुरवर्य, जिन लोगों की बुद्धि अहंता ममता रूप अभिनिवेश से सदा उद्विग्न बनी रहती है, उनके लिये मैं यही सर्वश्रेष्ठ बात समझता हूँ कि आत्मा को पतन की ओर ले जानेवाले इस गृहस्थी रूप अन्धकूप को त्यागकर वन में चला जाय और वहाँ श्रीहरि का ही आश्रय लेले। उन्हीं की शरण हो जाय।

पिताजी वह अपना घर अन्धकूप के समान है, जिस घर के लोग मैं मेरी, तू तेरी, अपना-पराया, लड़ाई-झगड़ा इत्यादि में समय बिताते हैं वह घर अन्धकूप के समान हैं। आत्मा का पतन करनेवाला है। ऐसे घर का परित्याग करके जंगल में

जाकर सत् पुरुषों का आश्रय लेकर सच्चिदानन्दघन भगवान में अपने मन को लगावे। भगवान का भजन करके नारायण परायण होकर अपना मानव जीवन सफल बना लेना चाहिये। यही उत्तम पढ़ाई है। संसारी प्राणी सदा मैं और मेरे इस झूठे आग्रह में फँसे रहते हैं। इससे उनका चित्त सदा उद्विग्न रहा करता है। ऐसे प्राणियों के लिये मैं यही ठीक समझता हूँ कि वे घर गृहस्थी छोड़कर वन में चले जाँय और भगवान श्रीहरि की शरण ग्रहण करें। घर तो अध:पतन का मूल कारण और घास से ढके हुए अँधेरे कुँए के समान है, जिसमें गिरे हुए प्राणी का निकलना कठिन होता है।

प्रह्लादजी ने बहुत सुन्दर उपदेश किया- पिताजी, मैंने यह अनुभव किया है कि संसार में हम जहाँ भी जायें, सुख की कामना करते हैं, लेकिन सुख है कहाँ? सुख कहीं भी नहीं मिलता। सुख तो केवल गोविन्द के नाम में है। आत्मा के कल्याण की कामना जिस व्यक्ति के मन में है, उसे घर छोड़कर वन में चले जाना चाहिये। वहाँ जाकर प्रभु के चरणों में प्रेम करना चाहिये। नारायण की आराधना करनी चाहिये। अहंता ममता रूप असद् अभिनिवेश से जिनकी बुद्धि सदा उद्विग्न बनी रहती है, उन्हें इस बिना पानी के अँधे कूआँ रूप गृहस्थाश्रम का तुरन्त परित्याग कर देना चाहिये। इस गृहस्थाश्रम में दु:ख के अतिरिक्त सुख क्या है। क्षणभर का जिह्वा तथा उपस्थ का सुख है जो परिणाम में दु:खद ही है। इनके सेवन से आत्मोन्नति न होकर आत्मपात होता है, अत: मेरे मत में संसारी विषयों से विरक्त होकर निरन्तर प्रभु पादपद्मों का ध्यान करते रहना और श्रीहरि की शरण में जाना, यही सर्वश्रेष्ठ कार्य है। यही सबसे सुन्दर बात है। जैसे सांप को छेड़ देने से वह फुफकारने लगता है, जैसे प्रज्वलित अग्नि में आहुति डालने से वह और भी अधिक जलने लगती है। वैसे ही भगवान का नाम सुनते ही हिरण्यकशिपु का हृदय द्वेष से जलने लगा।

प्रह्लाद के मुख से शत्रु की प्रशंसा सुन कर हिरण्यकशिपु जोरसे हँसने लगा। उसने कहा- दूसरों के सिखा देने से बालकों की बुद्धि इसी प्रकार बिगड़ जाया करती है। प्रतीत होता है- गुरुजी के घर पर विष्णु के पक्षपाती कुछ ब्राह्मण वेश बदल कर रहते हैं अत: बालक की भलीभाँति देख-रेख की जाय, जिससे इसकी बुद्धि अब बहकने न पाये। हिरण्यकशिपु यह सुनकर बहुत नाराज हुआ और कहने लगा- ये शत्रु पक्ष की बातें इसको किसने सीखा दी। ये तो अभी अबोध बालक हैं इसको किसने बहका दिया। पता लगाओ कौन हमारे शत्रु पक्ष के लोग यहां आते हैं। ऐसा लगता है कि पाठशाला में मेरे दुश्मनों के आदमी प्रह्लाद के पीछे लगे हैं और इसकी बुद्धि फोड़ने की कोशिश कर रहे हैं। प्रह्लादजी की बातों को सुनकर हिरण्यकशिपु ने उन्हें अपनी गोद से उठाकर भूमि पर पटक दिया और अपने अनुचरों से कहा कि लगता है कि विष्णु ही मेरे पुत्र के रूप में मेरे घर में आ गया है अतएवं इसको मार डालना आवश्यक है।

कौन सिखाय गयो ऐसी बातें बेकाम की। सांची करी भक्त प्रह्लाद राम नाम की साँची करी।।
जान पड़े वैष्णव जन आवे, छिपे छिपे बालक बहकावें।।

क्यों रे प्रह्लाद, तेरे गुरुजी यही सब पढ़ाते हैं। नहीं पिताजी, गुरुजी को ये सब पढ़ाई कहां से आवेगी। वो तो आपकी दी हुई रोटी खाते हैं। साधु समाज में कहावत है जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन। जैसा करें संग वैसा चढ़े रंग। जैसा पीवे पानी वैसी बोले वाणी। गुरुजी आपकी कही पढ़ाई पढ़ाते हैं। क्या पढ़ाते हैं, वो तो मैं मेरा तू तेरा लड़ाई-झगड़ा राजनीति-कूटनीति इत्यादि यही सब पढ़ाते हैं। तो बेटा, जो गुरुजी पढ़ावें, वही पढ़ा कर। फिर विद्यालय भेजे गये।

विद्यालय प्रह्लाद गये, गुरु सिखावन देत। मोह मूल सब जानिके तनिक न मन में लेत।।
राम विमुख सब बात व्यर्थ धर्मार्थ काम की। सांची करी...

हिरण्यकशिपु ने शंडामर्क को उलाहना देकर कहा- मेरा बेटा नारायण का नाम लेता है। यह क्या शिक्षा दे रहे हो। मेरा

पुत्र मुझे नारायण के भजन की प्रेरणा दे रहा है। गुरुजी को फटकार लगाई।

जब दैत्यों ने प्रल्हाद को गुरु-गृह पहुँचा दिया तो उन्होंने उन्हें दुलारा, पुचकारा और प्रेमभरी वाणी में पूछा- बेटा प्रह्लाद, तुम्हारा कल्याण हो। सच-सच बतलाना। झूठ मत बोलना। यह तुम्हारी बुद्धि उल्टी कैसे हो गई? तुमने पिताजी से जो बात कही, वह बालकों की पहुँच के बाहर है। बेटा, बतलाओ, तुम्हारी बुद्धि स्वयं ऐसी हो गई अथवा किसी ने तुम्हें सिखा-पढ़ा दिया है। तुम तो अपने कुल के दीपक हो। प्रल्हाद ने कहा- गुरुदेव, उल्टी बुद्धि तो उनकी होती है जो मायाके चक्कर में पड़ जाते हैं। अपने-पराये का भेद तो माया ही करवाती है। जो उससे मोहित होते हैं, उन्हींकी बुद्धि ठीक-ठीक काम नहीं करती। सबकी बुद्धि के प्रेरक एकमात्र भगवान ही हैं। उन्हीं की माया से मोहग्रस्त प्राणियों को अपने-पराये की झूठी प्रतीति होती है। उन माया-पति भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ। उन भगवान की कृपा से ही प्राणी की पशु-बुद्धि विनष्ट होती है। यह मैं हूँ और यह मुझसे भिन्न है- इस प्रकार का झूठा भेदभाव ही तो पशु-बुद्धि है। गुरुजी, जैसे चुम्बक के पास लोहा स्वयं खिंच जाता है, वैसे ही सुदर्शनचक्रधारी भगवान की कृपा से मेरा भी मन संसार से अलग होकर उनकी ओर बरबस खिंच जाता है। इसमें मेरा कोई सायास प्रयास नहीं। इतना कहकर प्रह्लाद मौन हो गये।

आज्ञा सुनि प्रह्लाद तुरत गुरुगृह पहुँचाये। असुर कहे जे वचन सेवकनि जाइ सुनाये॥
पूछें सण्डामर्ग कुमरतें नेह सहित अस। किनके वश तू भयो विपरीत बुद्धि कस॥
हँसि बोले प्रह्लाद गुरु, कौन काहिको वश करें। हरि ही सबकी बुद्धिकूँ, जब चाहें तब तस करें॥

गुरु-पुत्र राजसेवक थे। राजसेवक की मति मारी गई होती अत: उन्होंने प्रह्लाद को डाटा-फटकारा और झिड़क कर कहा- अरे, कोई मेरा बेंत तो लाओ। यह हमारी कीर्ति का कलंक है, यह दुर्बुद्धि है, कुलांगार है, इसको ठीक करने के लिये चौथा उपाय दण्ड ही उपयुक्त है। दैत्य-वंशरूपी चन्दन-वन में यह प्रल्हाद बबूल का काँटेदार वृक्ष है। दैत्यों के वन में काँटेदार बबूलका पेड़ हो गया है।

पता नहीं, यह इस वंश में कहाँ से पैदा हो गया? विष्णु दैत्य-वन को काटने की कुल्हाड़ी हैं। प्रल्हाद उस कुल्हाड़ी का बेंट (पकड़ने की लकड़ी) बन रहा है। इस प्रकार गुरु-पुत्रों ने प्रह्लाद को डाट-फटकार कर भयभीत किया। अब वे बड़ी सावधानी से प्रल्हाद को धर्म, अर्थ तथा काम सम्बन्धी शिक्षा देने लगे।

प्रह्लाद शण्डामर्क से बोले- संसार में यही पशु बुद्धि है, यही अज्ञान है कि यह मेरा है, यह पराया है। जब सर्वान्तर्यामी हरि की जीवों पर कृपा होती है या जब जीव उनकी कृपा की अनुभूति का अधिकारी बन जाता है तो यह भेदभाव नष्ट हो जाता है। भगवान की कृपा अनुग्रह साध्य है, अत: सदा सर्वदा भगवद् अनुग्रह की प्रतीक्षा करते-करते कभी-न-कभी करुणेश कृपा करते ही हैं।

एक दिन उनके मन में आया कि प्रह्लाद ने तो सब-कुछ सीख लिया है इसलिये अब इसको इसके माँ-बाप के पास ले चलना चाहिये। महाराज इसकी शिक्षा सुनकर हम लोगों को पुरस्कृत करेंगे अत: वे उसे पहले उसकी माता के पास ले गये। वहाँ प्रह्लाद अपने पिता के चरणों पर लोट गये। दैत्यराज ने उन्हें आशीर्वाद दिया। दोनों हाथों से उठाया और छाती से लगा लिया। उस समय उसका हृदय आनन्द से भर उठा। आँखों से प्रेम की अश्रुधारा बह चली। वह स्वयं प्रेम से विह्वल हो गया। आखिर भगवान के भक्त के स्पर्श की यही तो महिमा है फिर हिरण्यकशिपु ने पूछा- बेटा प्रह्लाद, इतने दिनों तक तुमने गुरुजी से जो शिक्षा प्राप्त की है, उसमें से कोई अच्छी-सी बात हमें सुनाओ।

यों डराइ धमकाइ पढ़ावें राजनीति पुनि। लख्यो लालकूँ चतुर गये लै ढिँग भूपति पुनि॥

परयो पैरमहँ पुत्र असुरपति तुरत उठायो। सिर सूँघ्यो करि प्यार प्रेमतें गोद बिठायो।।
कहा श्रेष्ठ समझ्यो तुमनि, पुनि-पुनि पूछे पुत्र अब। निज स्वभावतें विवश ह्वै, बोले श्री प्रह्लाद तब।।

प्रह्लाद जी ने कहा- पिताजी, भगवान विष्णु की भक्ति के नौ भेद हैं- भगवान के गुण-लीला-नाम आदि का श्रवण, उन्हीं का कीर्तन, उनके रूप-नाम आदि का स्मरण, उनके चरणों की सेवा, पूजा-अर्चना, वन्दन, दास्य-भाव की धारणा, सख्य और आत्म-समर्पण। भगवान विष्णु की श्रवण-भक्ति के आचार्य महाराज परीक्षित हैं, कीर्तन के श्री शुकदेवजी, स्मरण के प्रह्लाद जी, पाद-सेवन की लक्ष्मीजी, पूजन-अर्चन के पृथुजी, वन्दन के अक्रूर जी, दास्य के हनुमान्‌जी, संख्य के अर्जुन जी और आत्म-निवेदन के महाराज बलि। इस नवधा भक्ति का फल है श्रीकृष्ण की प्राप्ति। यदि इनमें से भगवान की एक भी भक्ति हो जाय, तो मैं उसी को उत्तम अध्ययन मानता हूँ। एक बार जिसका मन कन्हैया से जुड़ जाय फिर टूटता थोड़े ही है। ये तो कृष्ण का वैशिष्ट्य है, ये पकड़ता है। ऐसा पकड़ता है कि फिर छोड़ता कभी नहीं। एक बार इसकी शरण में जो आ जाय, उसे छोड़ना जानता ही नहीं। परमात्मा से सम्बन्ध जुड़ गया प्रह्लाद का। संसारी लोग जो स्वयं भूखे हैं वो दूसरों को क्या देंगे और अधिकाधिक माया जाल मे फँसावेंगे। प्राय: लोग विषयों का ही चिन्तन करते रहते हैं। जो जिसका चिन्तन करेगा, अंत में उसे उसी वस्तु की प्राप्ति होगी, विषयों की चिन्तना करनेवाले पुरुष विषय रूप विष को पीकर मरते और जन्म लेते हैं। विषयों को छोड़कर जो विष्णु का स्मरण करते हैं, वे अमर हो जाते हैं, अत: मेरे मत में तो विष्णु स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ हैं। विषयी लोगों का वन्दन विषय प्राप्ति के लिये करें तो समझना चाहिये यह अमृत देकर विष ग्रहण करना चाहता है। विश्व में वन्दनीय तो भगवान वासुदेव ही हैं। वासुदेव बुद्धि से चाहें जिसका वन्दन किया जाय वही उत्तम वन्दन है, शेष सभी संसार बन्धन को कसनेवाले हैं। संसारी मैत्री शुद्ध तो होती नहीं, वह तो स्वार्थ की शाठ्य मिश्रित होती है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
राम सिया राम सिया राम जय जय राम। गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन करइ कपटतजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतन सज्जन धरमा।।
सातवँ मोहिमय सब जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।।
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना।।
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।

पुत्र के इस प्रकार वचन सुनते ही हिरण्यकशिपु की आकृति क्रोध के मारे लाल हो गई। उसके ओठ फड़कने लगे। उसने गुरुपुत्र को फटकारते हुए कहा- रे अधम ब्राह्मणों, यह तूने क्या किया? दुर्बुद्धि, तूने मेरी कुछ भी परवाह न करके इस बच्चे को कैसी निस्सार शिक्षा दे डाली। अवश्य ही तू हमारे शत्रुओं से जा मिला है। संसार में ऐसे दुष्टों की कमी नहीं है, जो मित्र का बाना धारण कर छिपे-छिपे शत्रु का काम करते हैं। परन्तु उनकी कलई समय पर वैसे ही खुल जाती है जैसे छिपकर पाप करनेवालों का पाप अवसर पर रोग की तरह प्रकट होकर उनकी पोल खोल देता है।

सुनि खिसियानो असुर अति, गुरु पुत्रनि पै क्रोध करि। डाँटि कहे अधमद्विज, गयो पुत्र कैसे बिगड़।।

नारद युधिष्ठिर से बोले- राजन्, दासता से बढ़कर कोई पाप नहीं। आश्रितों को सदा अपने आश्रयदाता का रुख देखकर बातें करनी पड़ती हैं। उसे प्रसन्न करने के लिये भाँति-भाँति की चेष्टायें करनी पड़ती हैं।

हिरण्यकशिपु की बात सुनकर गुरुपुत्र ने कहा- इन्द्रशत्रो, आपका पुत्र जो कुछ कह रहा है, वह मेरे या किसी दूसरे के बहकाने से नहीं कर रहा है, न ही इसमें कोई हमारी सम्मति है। राजन्, यह तो इसकी जन्मजात स्वाभाविक बुद्धि है। आप अपना क्रोध शान्त करें। व्यर्थ में हमें दोष न दें।

बोले गुरुके पुत्र असुरपति कोप न कीजि। देवें लखि दंड बात सबरी सुनि लीजे।।
नहिँ हम कबहूँ जाइ कृष्णको नाम सिखायो। नहीं बदलिके वेष गुप्तचर कोई आयो।।
यह मति जाकी सहज है, बिना पढ़ाये कहै सब। हिरनकशिपु अति क्रोध करि, बोल्यो सुतकूँ झिरकि तब।।

गुरुपुत्र शंडा मर्क की बात सुनकर प्रह्लाद को घुड़कते हुए हिरण्यकशिपु ने कहा- क्यों रे। तुझे यह दुर्बुद्धि यदि गुरु से नहीं मिली तो बता कहाँ से मिली? किसने ऐसी गन्दी शिक्षा तुझे दी? प्रह्लाद ने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया। पिताजी संसार के लोग पिसे हुए को पीस रहे हैं, चबाये हुए को चबा रहे हैं, चर्बितचर्बण कर रहे हैं। उनकी इन्द्रियाँ उनके वश में नहीं हैं। यही कारण है कि वे भोगे हुए भोग को ही बार-बार भोग रहे हैं। ऐसे लोगों की मति किसी के सिखाने से अथवा अपने आप भगवान् श्रीकृष्ण में नहीं लगती, जब तक कि अकिंचन भगवत्परायण महात्माओं की चरणधूलि सिर पर न धारण की जाय। हे पिताजी। संसार के मनुष्य इन्द्रियों के वश में होने के कारण विषयासक्त हो रहे हैं। उनके भोग के लिये संसार रूपी नर्क में पड़े हुए हैं। यह विषय भोग किसी के सिखाने से थोड़े ही आते हैं। अपने आप स्वयं प्राप्त होते हैं। गधे घोड़ों को यौन शिक्षा कौन देता है? उम्र के विकास के साथ यह ज्ञान स्वत: आ जाता है। इसी प्रकार भगवत् प्रेम भी स्वयं ही पूर्व कर्मानुसार प्रकट होता है। यह किसी के सिखाने से नहीं आता है। जब उसके पापों के मल धुल जाते हैं तब हृदय में स्वयं प्रकाश हो जाता है। जिसका मन एक बार भगवान के चरणों में लग जाता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। किन्तु जिन्होंने तनिक भी भगवान के चरणों की धूल का स्पर्श नहीं किया है, उन्हें अनेक कर्म करने पर भी भगवत प्राप्ति नहीं होती है।

क्यों रे छोरा बात सिखाई कौंने तोकूँ। सुनि बोले प्रह्लाद पिता सिखावे को मोकूँ।।
विष्णु भक्ति तो नहीं सिखायेतें हीआवे। सोई होवे भक्त कृश्ण जाकूँ अपनावे।।
तजे न जब तक छल कपट, सत्संगति नहिँ नित करे। पावे कस प्रभु भक्ति रज, संत चरण सिर नहिँ धरे।।

मेरी तो गर्भावस्था में ही मुनिवर नारद की कृपा से भगवान के श्रीचरणों में दृढ़ भक्ति हो गई थी। ऐसा कह कर प्रह्लाद चुप हो गये। उस समय हिरण्यकशिपु क्रोध के मारे अन्धा हो रहा था। उसने अपनी गोद से प्रह्लाद को उठाकर जमीन पर फेंक कर कहा- दैत्यों इस दुष्ट को यहाँ से बाहर ले जाकर तुरन्त मार डालो। सचमुच यह मार डालने के ही योग्य है। देखो तो सही- जिसने इसके चाचा को मार डाला, अपने भाई-बन्धुओं को छोड़कर यह नीच दास बनकर उसी विष्णु के चरणों की उपासना करता है। अब यह विश्वास के योग्य नहीं है। पाँच वर्ष की इस छोटी अवस्था में जिसने अपने माता-पिता के दुस्त्यज वात्सल्य स्नेह को भुला दिया वह कृतघ्न विष्णु का क्या भला करेगा? कोई दूसरा यदि औषध के समान भलाई करे तो वह एक प्रकार से पुत्र ही है। पर यदि अपना पुत्र भी अहित करने लगे तो रोग के समान शत्रु है। यदि एक अंग से सारी शरीर की क्षति हो तो उसे काटकर फेंक देना चाहिये। इससे सारे शरीर की रक्षा हो जाती है, व्यक्ति जीवन भर सुखपूर्वक रह सकता है। प्रेम और द्वेष तो घर से ही आदमी सीखता है। जो अपने पिता, कुल, परिवार का हितैषी नहीं, पक्षपाती नहीं,वह देश का, धर्म का पक्षपाती क्या होगा। सनत्कुमार ही प्रह्लाद बनकर आया। रामचरित्र में सनत्कुमार ही विभीषण बनकर

आये। महात्माओं के साथ ही विरोध करना श्रेष्ठ है। अगर दुनिया में कहीं शत्रुता करनी हो तो महात्माओं के साथ ही करना चाहिए लेकिन महात्मा लोग भी शत्रुता करनेपर बुरा नहीं करते, वे सदा भला ही करते है।

दैत्य तो मार-काट की प्रवृत्ति के होते ही हैं। अपने महाराज का आदेश मिलते ही वे सब मिलकर प्रह्लाद पर शूल से, तलवार से, भाले से, गड़ासे से तथा अन्य विविध-विध अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार करने लगे किन्तु प्रह्लाद के शरीर पर स्वप्न खरोंच भी न लग सकी। इसका कारण यह था कि भगवान् प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर बैठे थे। प्रह्लाद इस बात को देख रहे थे किन्तु मूढ दैत्य योगमाया से समावृत कृष्ण को नहीं देख पा रहे थे।

कुपित भयो अति असुर पुत्र पृथ्वी पै पटक्यो। गर्जन करिकें उठ्यों चर्र सिंहासन चटक्यो।।
दैत्यनितें यों कहे दुष्टकूँ मारो मारो। जीवित खाल खिँचाय चील गीधनिकूँ डारो।।
सुनत असुर झपटे तुरत, बज्र हृदय विकराल मुख। छेदें अङ्गनि शूलतें, विविधि भाँतितें देह दुख।।

नारदजी कहते हैं- राजन्, जब असुर प्रह्लादजी पर प्रहार कर रहे थे तब उनका मन अनिर्वाच्य अखिचलात्मक भगवान परब्रह्म में लवलीन था। इसलिये उन सबके प्रहार उसी प्रकार व्यर्थ हो गये जैसे पापी पुरुषों की सत्क्रियामें व्यर्थ हो जाती है।

जब दैत्य प्रह्लाद को मारने में असफल रहे तब हिरण्यकशिपु को बड़ी आशंका हुई। सशंक होकर उसने प्रह्लाद का वध करने के लिये अन्य विविध उपायों का सहारा लिया। दैत्यराज ने उन्हें मारने के लिये हाथियों को भेजा। उस समय प्रह्लाद नेत्र बन्द कर भगवान का कीर्तन कर रहे थे। हाथियों ने अपने तीक्ष्ण दाँतों से प्रह्लाद के वक्ष:स्थल पर प्रहार किया किन्तु प्रह्लाद का स्पर्श पाते ही दाँत टूट कर भूतल पर गिर पड़े। वस्तुत: दाँत प्रह्लाद को छू ही न सके थे। वे भगवान के श्रीविग्रह से टकराये थे अत: टूट गये। हाथी चिंघाड़ मारते हुए भाग खड़े हुए। प्रह्लाद को कालकोठरी में बन्द कर भयंकर काले नाग डँसने के लिये उसमें छोड़े गये किन्तु वे वहाँ एक कोने में दबके पड़े रहे। सत्य तो यह है कि प्रह्लाद के देह की हवा लगते ही वे निर्विष हो गये। तब प्रह्लाद को पर्वत की चोटी से फेंका गया किन्तु धरती-माता प्रह्लाद के लिये मखमली गद्दा बन गई।

रूँदवाये पैरनि तरे, गज बकरी सम बनि गयो। सूँघि सूँड़ितें सिर धरे, अति सूधो हाथी भयो।।
पुनि विषधर बुलवाइ कटावें सुतकूँ खलमति। सरल स्याँप सब भये करें क्रीड़ा सुन्दर अति।।
करवायो अभिचार मूँठ जादू टौंना सब। भये विफल सब जतन भयो संकित सुररिपु तब।।
गिरवाये गिरि शिखरतें, बहुतक माया हू करी। काल कोठरीमहँ दये, पैरनि हू बेड़ा भरी।।

नारद युधिष्ठिर से बोले- राजन्, हिरण्यकशिपु ने प्रह्लादजी के वध के लिये उन्हें दिग्गजों से रौंदवाया, विषधरों से कटवाया, अनेक अभिचार कराये, पर्वतों से गिराया, अनेक मायाओं का प्रयोग किया, कालकोठरियों में बन्द करा दिया, विष दिलाया तथा भोजन भी बन्द कर दिया।

पुरोहितों ने कृत्या राक्षसी उत्पन्नकर प्रह्लाद को मारने के लिये भेजी। वह हाथ में त्रिशूल लेकर प्रह्लाद की ओर दौड़ी और उनकी छाती पर प्रहार की? किन्तु उस बालक के वक्ष:स्थल से टकराते ही त्रिशूल चूर-चूर होकर भूतल पर गिर पड़ा। निष्फल कृत्या ने लौटकर अपने प्रयोक्ता पुरोहितों को ही जला डाला और फिर स्वयं जलकर विनष्ट हो गई। प्रह्लाद ने अपने गुरुओं के, पुरोहितों के, मृत शरीर पर यह कह कर हाथ फेरा कि- प्रभो, रक्षा करो, बचाओ इन पुरोहितों को। यदि भगवान सर्वव्यापक हैं, यदि मैं भगवान को विपक्षियों में भी देखता होऊँ और मुझमें विविध उपायों से मारने का प्रयास करनेवालों के प्रति भी किसी प्रकार का विद्वेष न रहा हो तो- इन सबके प्रभाव से ये गुरुपुत्र जीवित हो जायँ। प्रह्लाद के इतना कहते ही गुरुपुत्र जीवित होकर उठ बैठे। उन लोगों ने प्रह्लाद को आशीष देते हुए कहा- वत्स, तू बड़ा श्रेष्ठ है। तू

दीर्घायु, निर्द्वन्द्व, बल-वीर्य-सम्पन्न तथा पुत्र, पौत्र एवं धन-धाम-ऐश्वर्यादि से सम्पन्न बनो। पुरोहितों ने इस घटना का वर्णन ज्यों का त्यों दैत्यराज से किया। उसने प्रह्लाद को मारने के लिये कुछ शेष उपायों का सहारा लिया। जो विष्णुभक्त है, जिनके हृदय में सदा सर्वेश्वर का निवास है, उनके ऊपर अभिचार नहीं चलता। कृत्या उनके समीप आने से ही डरती है। उस पर किये हुए मारण, मोहन, मन्त्रादि सब व्यर्थ हो जाते हैं।

उसने प्रह्लाद को एक भीषण काल-कोठरी में बन्द करवा दिया। जहाँ न वायु का प्रवेश था और न प्रकाश का। किन्तु वहाँ भी प्रह्लाद निरन्तर हरि-चिन्तनामृत का पान कर रहे थे अत: कुछ नहीं हुआ। प्रह्लाद को शम्बरासुरसे माया द्वारा मारना चाहा, बन्दीगृह में डाल दिया गया, भोजन बन्द कर दिया गया, विष पिलाया गया, बर्फ की शिला पर बिठा दिया, समुद्र में डुबोया गया, ऊँचे पर्वतपर-से लुढ़का दिया गया; पर हिरण्यकशिपु प्रह्लादको मरवा नहीं सका। शान्तिप्रिय धर्मात्मा पुरुष के शरीर पर दैहिक, दैविक तथा भौतिक किसी प्रकार का आघात असर नहीं करता।

हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद की माता कयाधु से कहा- तूने इस कुलांगार को पैदा किया है अत: तू ही अपने हाथ से ले यह विष पिला कर उसे मार दे। माँ तो माँ ठहरी। हाथ में विष का प्याला लेकर रो रही थी, काँप रही थी। प्रह्लाद ने कहा- माँ पिला दो मुझे यह विष, इससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा क्योंकि मैं इसमें भगवान की मूर्ति देख रहा हूँ। ऐसा करने से पति की आज्ञा के पालन का फल भी तुम्हें मिलेगा। ऐसा कहकर प्रह्लाद ने माँ के हाथ को पकड़कर विष पी लिया। किन्तु धन्य है भगवात्कृपा, विष-पान से प्रह्लाद का बाल भी बाँका नहीं हुआ।

प्रह्लाद को काल-कोठरी में बन्द किया गया। वहाँ उनका भोजन-पानी सब कुछ बन्द कर दिया गया। हिरण्यकशिपु ने सोचा, प्रह्लाद बिना खाये मर जायेगा। किन्तु प्रह्लाद निश्चिन्त होकर वहाँ भगवान का अखण्ड चिन्तन करने लगे। रात्रि के आठ बजे थे। भगवान ने लक्ष्मी जी से पूछा- आज कोई जीव भूखा तो नहीं रह गया है? लक्ष्मी जी ने उत्तर दिया आपका भक्त प्रह्लाद बिना खाये-पिये जेल में भूखा प्यासा पड़ा हुआ है। भगवान ने कहा- तो देवि, शीघ्र उसके लिये प्रसाद भेजो। लक्ष्मीजी ने अपने सेवक से स्वादिष्ट भोजन और शीतल जल भेजा। प्रह्लाद प्रभु की कृपा देखकर अतिशय श्रद्धावनत हो गये। उनकी आँखों से प्रेम के आँसू टपक पड़े। उन्होंने प्रसाद को माथे से लगाया और खाना शुरू कर दिया।

हिरण्यकशिपु के सेवकों को आहट मिली। उन्होंने खिड़की से झाँककर देखा कि प्रह्लाद भोजन कर रहे हैं। उन लोगों ने सोचा- गजब का जादूगर है यह बालक। इस कोठरी में वायु भी प्रवेश नहीं कर सकता तो फिर इसके पास भोजन कैसे पहुँच गया? उन लोगों ने दौड़कर हिरण्यकशिपु को इसकी सूचना दी। भागा-भागा हिरण्यकशिपु कोठरी के द्वार पर पहुँचा। ताली निकाली। ताला खोला और फिर पहुँच गया प्रह्लाद के पास। प्रह्लाद भोजन कर रहा था। दैत्यराज ने थाली को पैर से मारकर दूर फेंक दिया। डाटकर बोला- किसने तुझे भोजन दिया? प्रह्लाद ने कहा- माताजी ने दिया है फिर कयाधु की ओर देखकर हिरण्यकशिपु ने पूछा- मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर तुमने इसे भोजन क्यों दिया? कयाधु ने कहा- मैंने नहीं दिया है। हिरण्यकशिपु ने कहा यह तो कह रहा है कि- माताजी ने दिया है। इस पर प्रह्लाद ने कहा- नहीं, इस माता ने नहीं, जगत् की जननी ने मुझे भोजन दिया है। यह सुनकर सब अवाक् हो गये।

इसके बाद प्रह्लाद को मारने के लिये हिरण्यकशिपु ने कोई उपाय शेष नहीं रक्खा। बर्फ की विशाल चट्टान के नीचे उसे दबवा दिया, दहकती हुई आग में बैठा दिया, समुद्र में फेंकवा दिया, आँधी में बाहर छोड़ दिया और पर्वत के नीचे दबवा दिया। परन्तु इनमें से किसी भी उपाय से वह अपने निष्पाप पुत्र प्रल्हाद का कुछ भी बिगाड़ न सका। इस पर हिरण्यकशिपु को बड़ी चिन्ता हुई। उसे प्रह्लाद को मारने के लिये कोई उपाय न सूझा। इधर प्रह्लाद इतना सब होने पर भी अपने पिता के प्रति

पूर्ण भक्ति रखते थे। वे उनके दुर्व्यवहार में भी भगवान की लीला का विलास ही देखते थे अत: दैत्यों के दुर्व्यवहार में भी उन्हें महान आनन्द आता था किन्तु पुत्र की निर्भीकता और दृढ़ता को देखकर हिरण्यकशिपु चिन्ता के सागर में डूब गया।

हलाहल विष दयो नहीं कछु भोजन दीयो। शीत वाततें त्रास दयो, जल भीतर कीयो।।
होरी लेके अग्निमाहिँ बैठी मारन हित। भये नहीं प्रह्लाद तनिक हु प्रनते विचलित।।
सागरमें बैठाइकें, पर्वत ऊपर चुनि दये। मरे नहीं निकसे तुरत, सबरे पर्वत गिरि गये।।
कीन्हें विविध उपाय सफलता नहिँ कछु पाई। मनमहँ चिन्ता करे करूँ का अब हौं भाई।।
कहे कठिन कटु वचन बहुत विधितें मरवायो। बार न बाँको भयो तनिकहु नहिँ घबरायो।।
अवसि शत्रुता मानिकें, विष्णु पक्ष लै लरेगो। मैं चाहे मरि जाऊँ परि, जिह बालक नहिँ मरेगो।।

नारदजी युधिष्ठिर से बोले- राजन्, जब उन निष्पाप प्रह्लादजी को हिरण्यकशिपु शीत, वायु, अग्नि, जल तथा पर्वतों के आक्रमणों द्वारा भी मारने में समर्थ न हुआ, तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। अब कैसे यह मारा जाय इसका उसे कोई अन्य उपाय सूझता ही नहीं था।

उसने सोचा- इसकी शक्ति की थाह नहीं है। अवश्य ही इसके विरोध से मेरी मृत्यु होगी। सम्भव है, न भी हो। हिरण्यकशिपु को द्वेष, ईर्ष्या और भय के कारण रात्रि में नींद नहीं आती थी वह न जाने क्यों प्रह्लाद से अत्यधिक भयभीत हो गया। पापी का हृदय सदा भय से भरा रहता है।

चिन्ता बहुविधि करे बुद्धिमहँ कछु नहिँ आवे। पुनि-पुनि सम्मति हेतु पुरोहित मित्र बुलावे।।
ठकुरसुहाती कहें असुरकूँ देंइ बढ़ावो। च्यौं अबोध शिशु हेतु नाथ, ऐसे घबरावो।।
तब सम्मुख जिहि नेंकसो, छोरा कैसे लरैगो। गुरु पितृको अपमान करि, बिना मौतके मरैगो।।

हिरण्यकशिपु को चिंता हुई ये मेरे शत्रु को भूलेगा नहीं और मुझे बहुत दु:ख देगा। मुखमलिन हो गया। महाराज को चिन्तामग्न देखकर गुरुपुत्रों ने समझाते हुए कहा- राजन्, आप चिन्ता न करें। आपने अकेले ही त्रिलोकी को अपने वश में कर लिया है फिर इसकी क्या चिन्ता? बालकों के गुण-दोष पर इतना नहीं सोचना चाहिये। मेरे पिता शुक्राचार्य के आने तक इसे वरुण-पाश से बाँध रखिये। जिससे यह कहीं भाग न जाय। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि अवस्था की वृद्धि के साथ-साथ तथा गुरु-जनों की सेवा से बुद्धि सुधर जाया करती है। हिरण्यकशिपु ने गुरुपुत्रों की बात मान ली और बोला- यह मरता ही नहीं तो और उपाय भी क्या है? इसको ले जाओ और गृहस्थ नरपतियोंके योग्य धर्म, अर्थ, कामकी शिक्षा दो। लोग धन कमानेका उपाय तो सीखते हैं परन्तु उसको खर्च करके कैसे सुखी होना चाहिए यह नहीं सीखते। भोग तो सीखते हैं परन्तु उससे असंग कैसे हुआ जाय यह नहीं सीखते, धर्म तो सीखते हैं परन्तु उसको भगवदर्पण कैसे किया जाय यह नहीं सीखते। प्रह्लाद को उसने उनके पास गृहस्थ-राजधर्म सीखने के लिये भेज दिया। पहले की भाँति प्रह्लाद की शिक्षा चलने लगी किन्तु उसमें उनका मन नहीं लगता था।

बोले गुरुके पुत्र नाथ, मति जाकूँ मारो। भयवश भागि न जाइ बाँधि पाशनितें डारो।।
आवें श्रीगुरुदेव लौटिकें जब तक पुरमहँ। तब तक जाकूँ रखें प्रभो, हम अपने घरमहँ।।
सेवा गुरुजनकी करे, कछु वय हू बढ़ि जाय जब। बालकपनकी बुद्धि जिह, बिना यत्न हठि जाय तब।।

गुरुपुत्रों ने कहा- हे दैत्यराज, इस प्रह्लाद को जब तक गुरुदेव श्रीशुक्राचार्य न आवें तब तक वरुण के पाशों से बाँधकर रखना चाहिये, जिससे कि यह डरकर भाग न जाय। सम्भव है तब तक स्वयं ही ठीक हो जाय, क्योंकि प्राय: आयु बढ़जाने

से, सत्पुरुषों की सेवा करने से मनुष्यों की बुद्धि स्वयं ही ठीक ठिकाने आ जाती है।

भगवान से विमुख होकर त्रिवर्ग की धर्म अर्थ काम की पढ़ाई पढ़ने से क्या मिलनेवाला हैं। मैं नहीं पढ़ता। एक दिन की बात गुरुजी को विद्यालय में आने में देर हुई। गुरुपुत्रों ने प्रह्लाद को असुर बालकों का मॉनिटर बना दिया और उसको कह गये कि इन बालकों की देखरेख करना जब तक हम नहीं आते।

विवश भयो सुर शत्रु बात तिनकी स्वीकारी। कह्यो जाइ लै जाउ देउ शिक्षा हितकारी।।
सं लियो प्रह्लाद गये गुरुपुत्र भवनमहँ। सुधरे कैसे बाल जिही सोचें ते मनमहँ।।
अर्थ काम अरु नीति की, शिक्षा दैवें जाइकें। सहपाठिनि प्रह्लादजी, सिखवें अवसर पाइकें।।

तब तक विद्यार्थियों ने कहा- अरे आज गुरुजी नहीं आये चलो छुट्टी खेलें। प्रह्लाद बोले- नहीं। यह मानव जीवन खेल में गँवाने के लिये नहीं मिला है।

एक दिन की घटना है। गुरुजी गृहस्थी के काम से कहीं बाहर चले गये। बालकों को खेलने का अवसर मिल गया। वे प्रह्लाद को भी अपने खेल में सम्मिलित करना चाहते थे। बालकों ने कहा- तुम हमारे मित्र हो। दंड तुम्हें मिलता है, कष्ट हमें होता है। अग्नि में तुम्हे जलाया जाता है, किन्तु जलन ताप हमें होता है। भूखा तुम्हें रखा जाता है, तड़पन हमें होती है।

प्रह्लाद असुर बालकों से बोले- पंडित पुरुष को इस संसार में भागवत धर्मों का पालन कुमारावस्था में ही करना चाहिये। यह मनुष्य शरीर यद्यपि नाशवान् है, फिर भी इसके द्वारा आत्मा की प्राप्ति रूप प्रयोजन सिद्ध होता है, इसीलिये यह बड़ा दुर्लभ है। इस मनुष्य जन्म में जीव का एक मात्र कर्त्तव्य भगवान के चरणों की शरण लेना ही है। कारण कि वे श्रीहरि ही समस्त प्राणियों के आत्मा, प्रिय ईश्वर और सुहृद् है।

बालकों के प्रेम को देखकर प्रह्लाद ने मुस्कराकर उन्हें अपने पास बुलाया। बालक खेलना छोड़कर बड़े आदर के साथ प्रह्लाद को चारों ओर से घेर कर बैठ गये। प्रह्लाद ने उनके बीच ज्ञान-चर्चा छेड़ दी। वे परम दयालु और कृपालु थे अत: उन बालकों का कल्याण करनाचाहते थे फिर उन्होंने कहना प्रारम्भ किया। प्रह्लाद के हृदय में उनके प्रति बड़ी करुणा और मैत्री पैदा हुई और प्रह्लाद चाहता था कि भगवान की भक्ति मैं भी करता हूँ, उसकी भक्ति इनके हृदय में भी हो।

समय का ये बालक कितना दुरुपयोग कर, किस प्रकार इसे व्यर्थ बिता रहे हैं। यदि इस समय में ये कृष्ण कीर्तन करें, हरिचर्चा में लगें, तो इनका जीवन धन्य हो जाय, ये संसार के आवागमन से सदा के लिये छूट जायँ। जन्म-मरण के असंख्यों दु:ख इन्हें सहन न करने पड़े।

एक दिन गुरु गये करन घरके काजनिकूँ। ढिँग बिठाइ प्रह्लाद देहिँ शिक्षा छात्रनिकूँ।।
है दुरलभ नरदेह नाश होवैगो जाको। होवै प्रभु पद प्रेम सारथक जीवन ताको।।
सुख तो होवै दैव वश, च्यों जाकूँ पच-पच मरो। प्रभु पद पदुमनि प्रेम हित, होवै जि चिन्ता करो।।

प्रह्लाद उन सहपाठियों को बोले- मित्रों, इस संसार में मानव-जन्म बड़ा दुर्लभ है। इसके द्वारा अविनाशी परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। परन्तु पता नहीं यह कब नष्ट हो जाय। इसलिये बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिये कि वह जवानी या बुढ़ापे के भरोसे न रहकर बचपन से ही भगवान की प्राप्ति करानेवाले धर्मों का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दे। कुमार अवस्था से जिसने कृष्ण कीर्तन नहीं किया, बचपन में जिसने भागवत धर्म का अनुशीलन नहीं किया, बुढ़ापे में वो कभी नहीं कर सकता। जिस धन को तुम सब कुछ मानते हो, वो धन साथ में नहीं जाता। पत्नी साथ नहीं जातीं। परिवार के लोग सब द्वार पर खड़े रह जाते हैं। मित्र श्मशान भूमि सब जाते हैं। संसार के कितने लोग खेलते-खेलते मर गये। वे दु:ख में ही जनमे दु:ख में

ही पले और दु:ख को ही साथ लेकर इस संसार से विदा हो गये। इसलिये इन धन रत्नों में, संसारी भोगों की प्राप्ति में कुछ नहीं रखा है। आत्मोन्नति के लिये कुछ प्रयत्न करना चाहिये। अनर्थ को छोड़कर परमार्थ का चिन्तन करना चाहिये। जिससे अनर्थ की प्राप्ति प्रत्यक्ष दीखती हो, ऐसे वचन गुरु के भी न मानने चाहिये। जो युक्तियाँ अज्ञान रूप गहरी निद्रा में सोये हुए को जागने में समर्थ न हों, उन्हें मानना उचित नहीं। स्वयं जो सोया हुआ है, वह दूसरों को क्या जगावेगा। स्वयं जो अन्धा है, वह दूसरों का पथ-प्रदर्शन कैसे करेगा। आत्मा का न कोई शत्रु है, न मित्र और न उदासीन। ये संसारी सुख-दुख तो प्रारब्ध के अधीन हैं। इसलिये इन बाहरी विषयों में फँसकर आत्मा का अध:पात न करना चाहिये। परम पुरुषार्थ रूप जो प्रेमास्पद प्रभु हैं उन्हीं की प्राप्ति के लिये सतत प्रयत्न करना चाहिये।

यदि तुम अच्छा बुरा, सुख-दु:ख समझने लग गये हो, होश आ गया है, तो तुम अभी से ही, कुमार अवस्था से ही परमात्मा का भजन करना प्रारम्भ कर दो। इसके लिये ही ये मानव जीवन मिला है। यह मानव शरीर अध्रुव है, ज्यादा दिन टिकनेवाला नहीं है। अगर इसका सही दिशा में उपयोग किया जाय, भक्ति के लिये तो भगवान जैसे अमूल्य पदार्थ की प्राप्ति करा देता है। बच्चों ने कहा- क्यूं नहीं ऐसा कहोगे तुम राजा के बेटे हो ना? घर में किसी बात की कमी नहीं है। कुछ भी करोगे या ना करोगे, बढ़िया खाने-पीने को एवं पहिनने को तो मिलेगा। हम तो गरीब मजदूर हैं। हम भजन करने लगेंगे, तो हमारी रोजी-रोटी कैसे चलेगी। जितनी सुख की सामग्रियाँ हैं वे सब तो प्रयत्न से पुरुषार्थ से प्राप्त होगी। भोग्य पदार्थों की प्राप्ति के लिये प्रयत्न आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

प्रह्लाद ने पूछा- सच बताओ, इन दु:खों को प्राप्त करने के लिये तुम लोगों ने कौन-कौन कोशिश की थी। अरे दु:ख आवे, कष्ट आवे, उनके लिये कोई कोशिश करता है थोड़े। बच्चे बोले- ये तो बिना कोशिश किये ही मिलता है। तो प्रह्लादजी ने कहा, तो फिर ये दु:ख क्यूं मिले तुम्हें। तो बालकों ने कहा- हमें नहीं मालूम। तो भैया, तुमने पूर्वजन्म में किसी का सिर तोड़ा, कष्ट दिया वही अशुभ कर्म तुम्हारा प्रारब्ध बनकर आया और तुम्हारा सिर तोड़ गया। अपने अपने पूर्वकृत कर्मों के अनुसार जीव का प्रारब्ध निर्धारित होता है। अच्छा किया तो सुख, बुरा किया तो दु:ख।

चार वेद छ: शास्त्र में बात लिखी हैं दोय। दु:ख दिन्हें दु:ख होत है, सुख दीन्हें सुख होय।।

जैसे दु:ख बिना कोशिश किये अपने आप मिलता है प्रारब्धानुसार। तो ऐसे ही किसी को सुख दिया होगा, कुछ अच्छा कर्म किया होगा, उसके अनुसार सुख भी प्रारब्ध में निर्धारित होकर अपने आप मिलेगा। ये सुख-दु:ख तो बिना कोशिश किये प्रारब्धानुसार सर्वत्र हमें अपने आप ही मिलता रहता है। सूर्य की किरणें हमें मिलें सूर्य का उदय हो, उसके लिये क्या हमें कोई कोशिश करनी पड़ती है क्या? अभी कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, अब अपने आप बसन्त आ गया, सर्दी कम पड़ गई। सर्दी गई, ग्रीष्म आया क्या इसके लिये कोई हमनें कोशिश की? क्या वर्षा को बुलाने के लिये कुछ प्रयत्न किया? रात्रि को हटाने के लिये, दिन को बुलाने के लिये क्या किसी को कोशिश करनी पड़ती है क्या? जैसे गर्मी, जाड़ा, सर्दी, दिन रात ये सब समय के अनुसार अपने आप आते जाते हैं, उसी प्रकार हमारी कोशिश किये बिना ही ये सुख-दु:ख आते हैं। तो जो अपने आप मिलनेवाली वस्तु है, उसके लिये कोशिश करना चिन्ताग्रस्त होना कौन सी समझदारी है। समझदारी की बात तो यह है कि जिस काम के लिये मानव शरीर मिला है वो काम करो। बच्चे बोले- कौन से काम के लिये मिला है। प्रह्लाद बोले, भगवान के भजन के लिये। राजा हो या रंक धनी हो या निर्धन सभी को सुख सामग्रियाँ भाग्य के ही अनुसार मिलती है। पदार्थों के समीप रहने पर भाग्य न हो तो उन्हें भोग नहीं सकते। बहुत से लोग सुख के लिये सर्वदा सतत प्रयत्न करते रहते हैं पर उन्हें सुख नहीं मिलता। इसके विपरीत कौन चाहता हैं हमें ज्वर आवे, घाव हो, फोड़ा

हो, पुत्र शोक हो, कन्या विधवा हो जाय, पुत्र अयोग्य हो जाय, मित्र विश्वासघात करे, अन्न के बिना उपवास करने पड़ें, किन्तु न चाहने पर भी ये दु:ख प्रारब्धवश आ ही जाते हैं। जैसे बिना चाहे दुख आ जाते हैं, वैसे ही प्रारब्ध में होंगे तो सुख भी स्वत: आ जायँगे, प्रारब्ध में न होंगे तो प्रयत्न करने पर भी सुखों की प्राप्ति न होगी। मुझे तो इन्द्रजनित सुखों के लिये प्रयास करना अनुचित जान पड़ता है। सुख-दुख का दाता कोई दूसरा नहीं है। स्वकृत पुण्य-पाप को ही मनुष्य भोगता है। अमुक हमें सुख देता है, अमुक सताता है, ये भाव राग, द्वेष, ईष्या, डाह, मत्सर से पैदा होते हैं। दूसरों के वैभव को देखकर हृदय में जो एक प्रकार की ईर्ष्या उत्पन्न होती है उसी के वशीभूत होकर मनुष्य ऐसी बातें करता है समाज में तो सदा से विषमता रही है और सदा ही रहेगी। सब पर समान सम्पत्ति रहे यह एक तो सम्भव नहीं। सांसारिक सम्पत्ति समान हो भी जाय तो आयु, बुद्धि-बल, विद्या, कला-कौशल, सौन्दर्य, आकृति-प्रकृति में तो विभिन्नता रहेगी। आज धन कृत विभिन्नता है, कल जातिकृत, बुद्धिकृत, बलकृत विभिन्नता होगी। अधिक बुद्धिमान कम बुद्धिवालों को दबाकर मन माना कार्य करा लेंगे। सृष्टि की रचना ही विभिन्नता से हुई है। साम्य में सृष्टि नहीं, गुणों की विषमता में ही सृष्टि सम्भव है। अत: सांसारिक सुख-दु:ख सदा प्रारब्धानुसार ही होंगे। समाज की रचना चाहे जिस सिद्धान्त पर की जाय विषमता नहीं मिट सकती। विषमता मिट जायगी तो प्रलय हो जायगा। तीनों गुणों की साम्यावस्था का ही नाम प्रकृति है। विषमता में ही विकृति होती है। प्रारब्ध पृथक-पृथक है। प्रारब्धानुसार सुख-दु:ख अवश्य होता है। जैसे इच्छा न करने पर दु:ख हो जाता है, वैसे ही इच्छा न होने पर भी भाग्यवश सुखोपभोग प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये अनायास प्राप्त होनेवाले इन्द्रिय जनित सुखों के लिये चिन्ता? चिन्ता तो प्रभु प्रेम के लिये करनी चाहिये।

असुर बालकों ने कहा- इन पशु, पक्षी, वृक्ष आदि को हम देखते हैं, ये तो निरन्तर आहार, निद्रा, मैथुनादि में ही संलग्न रहते हैं। इन्हें तो हमने आत्मा-परमात्मा के चक्कर में फँसते नहीं देखा हैं। इस पर प्रह्लादजी बोले- पशुओं में और मनुष्यों में यही तो अन्तर है। देह सम्बन्धी सुख के लिये, विषयों की प्राप्ति के लिये तो सभी प्राणी प्रयत्नशील हैं। मानव जन्म में यही विशेषता है, कि इसके द्वारा मुक्ति, भगवत प्राप्ति तक हो सकती है। चौरासी लाख योनियों में मनुष्य देह को इसीलिये तो सर्वश्रेष्ठ बताया गया है, कि इसके द्वारा परमार्थ साधन हो सकता है। वैसे तो यह शरीर अनित्य तथा नाशवान है, किन्तु इसके द्वारा नित्य और शाश्वत वस्तु की प्राप्ति हो सकती है। अध्रुव देह से ध्रुव स्वरूप श्रीहरि की उपलब्धि हो सकती है। कौन बुद्धिमान इस सस्ते सौदे को करना न चाहेगा। मूर्ख और अबोध को छोड़कर कौन इस लाभ से अपने को वंचित रखेगा। इस मनुष्य में भगवान वासुदेव के चरणों की सर्वतोभावेन शरण लेना ही जीव का एकमात्र और सर्वश्रेष्ठ मुख्य कर्त्तव्य है। क्योंकि भगवान विष्णु को छोड़कर दूसरा कोई न प्रिय पदार्थ है, न उनसे बढ़कर कोई श्रेष्ठ है। वे सबके आत्मा, प्रियतम, सुहृद् और सबके स्वामी हैं। कथा कीर्तन का प्रचार-प्रसार हो, जीवन में प्रेम का संचार हो, हृदय में भगवद्भक्ति का अंकुर उत्पन्न हो, इसके लिये साधन करना श्रेष्ठ है। यही मनुष्य जीवन का मुख्य कर्त्तव्य है।

यह मनुष्य जन्म इस संसार में बड़े उत्तम कार्यों से मिलता है। इसी मनुष्य योनि में भगवान की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु इस मनुष्य शरीर का कोई ठिकाना नहीं है। कब यह काल का ग्रास हो जावे। इसलिये बुद्धिमानों को भजन पूजन के लिये वृद्धावस्था का इन्तजार नहीं करना चाहिये। जब समय मिले तभी इस भगवत् प्राप्ति के साधन को करना चाहिये। बालकपन के बीस वर्ष खेल कूद में निकल जाते हैं। बुढ़ापे के अन्तिम बीस वर्ष दुर्बलता के कारण व्यर्थ हो जाते हैं। केवल युवावस्था के कुछ वर्ष शेष रहते हैं। इन वर्षों में मनुष्य आधा काल सोने में निकाल देता है तथा आधा काल स्त्री बच्चों के पालन-पोषण उद्योग धन्धों तथा विषय भोगों में समाप्त कर देता है। भगवत् चिन्तन का उसे कोई भी समय नहीं मिला और

उसने यह अमूल्य मनुष्य जीवन फिर जिसका पाना अति दुर्लभ है व्यर्थ ही नष्ट कर दिया। यह सांसारिक सुख तो जीव को प्रारब्ध वश प्रत्येक योनि में मिलते रहते हैं। किन्तु भगवत् प्राप्ति इसी मनुष्य योनि में होती है। इसलिये बुद्धिमान मनुष्य को अपने कल्याण का उपाय इसी मनुष्य योनि में करना चाहिये।

शरीर अनित्य है। आत्मा नित्य है। शरीर विनाशी आत्मा अविनाशी है। शरीर मलिन है आत्मा शुद्ध है। शरीर अनेक हैं आत्मा एक है। शरीर जड़ है आत्मा चेतन है। शरीर आश्रित है आत्मा आश्रय है। शरीर विकारी है आत्मा निर्विकार। शरीर दूसरे से प्रकाशित होता है आत्मा स्वयं प्रकाश। शरीर कार्य है आत्मा कारण। शरीर व्याप्य है आत्मा व्यापक है। शरीर संसक्त है आत्मा असंग है। शरीर आवरण रूप है तो आत्मा निवरण रूप। शरीर तथा आत्मा में यही भेद है।

को है हिरण्यकशिपु अभिमानी तुमहि सके जो मारि।
राखनहार अहै कोउ और स्याम धरे भुज चारि। सूरदास प्रभु सबमें व्यापक ज्यों धरनी में बारि।।

तुम लोग आदिदेव नारायण की शरण ग्रहण करो। आदि नारायण अनन्त भगवान के प्रसन्न होने पर कौन सी वस्तु है, जो नहीं मिल जाती है, उन प्रभु के चरणों का आश्रय लो। यह विशुद्ध भागवत धर्म है। सम्पूर्ण धर्म, अर्थ और वेद-शास्त्रका सार यही है कि भगवान्के चरणोंमें अपनी आत्माका अर्पण करो।

इस संसार में भगवान विष्णु के चरण-कमल की उपासना करना ही मानव-जीवन की सबसे बड़ी सफलता है क्योंकि भगवान समस्त प्राणियों के स्वामी, सुहृद्, प्रियतम और आत्मा हैं। विषय-सुख की प्राप्ति तो सभी योनियों में समान रूप से होती रहती है अत: इसके लिये प्रयास नहीं करना चाहिये। जैसे बिना प्रयत्न के, निवारण करने पर भी व्यक्ति को दु:ख मिलता रहता है, वैसे भाग्यानुसार सांसारिक सुख की भी उपलब्धि अपने आप हो जाती है। इसलिये सांसारिक सुख के उद्देश्य से प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं। इसमें जिन्दगी को खपाना सब से बड़ी मूर्खता है। संसार के विषयों में लीन व्यक्ति भगवान के कल्याणकारी चरण-कमल का आश्रय नहीं लेता। व्यक्ति की बुद्धिमानी इसी में है कि इस शरीर के विनष्ट होने के पूर्व ही अपने कल्याण की कामना से भगवान का आश्रय ग्रहण कर ले। मनुष्य की आयु सौ वर्ष की मान लें तो जो सदा इन्द्रियों के दुलार-प्यार में लगे रहते हैं, उनकी आयु का रातवाला आधा हिस्सा तो यों ही बीत जाता है क्योंकि वे रात में तमोगुणी-अज्ञान से ग्रस्त होकर सोते रहते हैं। बीस वर्ष वृद्धावस्था की अशक्तता के कारण व्यर्थ चले जाते हैं शेष आयु काम-वासना और मोहवश गृहस्थाश्रम में फँस कर विनष्ट हो जाती है। इस प्रकार बची-खुची आयु भी हाथ से निकल जाती है।

जो इन्द्रियों का दास है, उसके लिये घर-गृहस्थी, मोह, माया और ममता की मजबूत फाँसी है। उससे अपने आपको छुड़ा लेना उसके वश की बात नहीं है। प्राणों की बाजी लगाकर व्यक्ति जिस धन का संग्रह करता है उस धन की तृष्णा भला कौन त्याग सकता है। जो अपनी प्राणप्यारी पत्नी के एकान्त सहवास की बेला में उसकी सुकोमल बाहु-लताओं में जकड़ा जा चुहा है, जो उसकी तिरछी चितवन और लुभावनी वाणी पर न्योछावर हो चुका है, जो भाई-बन्धुओं के स्नेह-पाश में बँध चुका हैं और जो नन्हें-मुन्ने शिशुओं की तोतली बोली पर लुभा चुका है- भला, वह उन्हें कैसे छोड़ सकता हैं?

संसारी भोगी व्यक्ति परिवार के भरण-पोषण में ही अपनी सारी अमूल्य आयु गवाँ देता है। उसे यह भी भान नहीं होता है कि मेरे जीवन का असली उद्देश्य नष्ट हो रहा है। यह भी कितनी बड़ी विडम्बना है कि व्यक्ति जिस घर-परिवार के कारण दु:खपर दु:ख भोगता रहता है, अशान्त और व्यग्र बना रहता है, उससे कभी विरक्त नहीं होता। उसका कभी परित्याग नहीं करता। यह स्थिति अज्ञानियों भर की ही नहीं है, अपितु जो शास्त्र-ज्ञाता हैं, बड़े-बड़े विद्वान हैं उनकी भी यही दशा है। जो कामिनियों का क्रीड़ा-मृग है, मनोरंजन का साधन है, जिसका पैर सन्तानरूपी वेणी से जकड़ा हुआ है, वह बेचारा है, गरीब

है, वह कोई भी हो, कहीं भी हो- किसी प्रकार से अपना उद्धार नहीं कर सकता। इसलिये भाइयों, तुम लोग विषयों में आसक्त दैत्यों का संग दूर से ही छोड़ दो और आदि देव भगवान नारायण की शरण ग्रहण करो। वे ही महात्माओं के जीवन्मुक्तों के परम प्रियतम और परम गति हैं।

यह मेरा कुटुम्ब है, इस भाव से वह उसमें इतना लीन हो जाता है कि उसी के पालन-पोषण के लिए अपना सारा जीवन गंवा देता है। उसे इस बात का भी ध्यान नहीं रहता कि उसके जीवन का वास्तविक उद्देश्य नष्ट हो रहा है। भलाइस प्रमाद की भी कोई सीमा है। यदि इन कामों में कुछ सुख मिले तो भी एक बात है, परन्तु यहां तो जहां-जहां वह जाता है, वहां-वहां दैहिक, दैविक और भौतिक ताप उसके हृदय को जलाते ही रहते हैं। फिर भी उसके मन में वैराग्य उदय नहीं होता। कितनी विडम्बना है?

इस श्रुति के अनुसार धन मनुष्य का बाहर विचरनेवाला प्राण कहा गया है। इस धन की तृष्णा का त्याग भला कौन कर सकता है, जिसका संग्रह चोर, सैनिक तथा व्यापारी प्राणों की बाजी लगाकर करते हैं। कामी कभी वह कामवासना से स्त्रियों के मोह में फँसकर एकान्त में उनके साथ बैठकर हास-परिहास के मधुर वार्तालापों में रमा रहता है। कभी पुत्र-पुत्रियों के हो जाने पर उनके स्नेह में बँधकर उनकी मधुर तोतली वाणी में सदा उसका मन लुभाया रहता है। हर समय उसका ध्यान स्त्री और बालबच्चों में ही लगा रहता है। विषयवासना और जिह्वासुख की लालसा ही सदा बनी रहती है। उसके मोह का कभी भी अन्त नहीं होता, तब वह कैसे उनसे विरक्त होकर उनका त्याग कर सकेगा।

कुटुम्ब पोषण में ही उसकी सारी आयु बीत जाती है। दु:ख पर दु:ख सदा ही आते रहते हैं। उसे सुख-शान्ति का लेश भी कभी नहीं मिलता। फिर भी उसे वैराग्य नहीं होता। इस मार्ग में मूर्खों की तो बात ही क्या जो विद्वान कहे जाते हैं उनकी भी यही दशा है।

कुटुम्ब-पोषण के चक्र में फँसे हुए उनको भी आत्मज्ञान नहीं होता। क्योंकि उनका स्वकीय और परकीय भाव बना रहता है और वे मूर्खों के समान ही जन्म-जन्मान्तर में दु:ख ही भोगते रहते हैं मुक्त नहीं होते। यह निश्चित है कि कुटुम्बासक्त कोई भी प्राणी कहीं भी किसी समय अपने आत्मा का इस विषय वासना रूपी दल-दल से उद्धार नहीं कर सकता, क्योंकि वह स्त्री का क्रीड़ा मृग बन जाता है और उसके पैर पुत्र-पौत्र आदि बेड़ियों से जकड़े रहते हैं। इसलिए हे बन्धुओं, इन विषयी दैत्यों का संग दूर से छोड़कर तुम सब आनन्द कन्द भगवान की शरण में जाओ, जहाँ तुम्हें पूर्ण शान्ति एवं परम आनन्द की प्राप्ति होगी। क्योंकि दु:खमय संसार से मोक्ष देनेवाले एक मात्र नारायण ही हैं। भगवान को प्रसन्न करने में अधिक परिश्रम की भी आवश्यकता नहीं है। वे सर्वत्र सदा वर्तमान होते हुए भी भक्तों की पुकार सुनने के लिए उनकी अन्तरात्मा में सदा विराजमान हैं। अभागा मनुष्य बाहर उनके बगीचे को देखता है, उनको नहीं देखता।

नहीं कठिन वैराग्य होहि नहिँ यदि द्वै जगमहँ। कनक कामिनी पाश न लिपटें यदि-नर पगमहँ।।
अति प्यारी प्रियतमा की, बनी सरस धुसा सनी। कैसे छोड़े शिशुनिकी, तोतरि बानी सोहनी।।

प्रह्लादजी असुर बालकों से बोले- जिसका चित्त अपने स्नेह करनेवाली प्रियतमा पत्नी के एकान्त सहवास में, मीठी-मीठी प्रेम की बतोड़ियों में आसक्त है, तथा बन्धु-बान्धवों के प्रेम, बालकों की तोतली प्यारी वाणी में फँसा हैं, उसे वैराग्य कैसे हो सकता है?

मन में विषयों के प्रति स्वाभाविक अनुराग है और विषयों में मन को आकर्षित करने की शक्ति है। ऐसी दशा में संसार के सभी पदार्थ हमें अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। किन्तु जो इन्द्रिय सुखों के लिये अधिक उपयोगी है, अधिक आकर्षक है, वे अत्यधिक खींचते हैं। इनमें कांचन और कामिनी है। ये दो तो सर्वतोभाव से विमुग्ध बना लेते हैं और चाहे सबको मनुष्य छोड़

दे, किन्तु ये दो घाटी ऐसी कठिन हैं, कि कोई विरला ही इन्हें पार कर सकता है, नहीं तो बड़े-बड़े इन्हीं में रह जाते हैं। पुरुष को स्त्री का, स्त्री को पुरुष का- जहाँ संग मिल गया, तहाँ मनुष्य परलोक को भूलकर यहीं स्वर्ग तथा वैकुण्ठ का अनुभव करने लगता है। एकान्त अरण्य में कोई कवि अपनी प्रियतमा के साथ बैठे थे। दोनों भूखे थे, कवि से पत्नी ने पूछा- तुम्हारी अंतिम अभिलाषा क्या है, तुम किस स्वर्गीय सुख की आकांक्षा करते हो? इस पर अत्यन्त गम्भीर होकर घाघ कवि ने कहा-

इस तरु तले कहीं खाने को रोटी का टुकड़ा हो एक। पीने को मधु पूर्ण पात्र हो करने को हो काव्य विवेक।।
तिस पर तुम भी मेरे ढिंगही बैठि बगल में गाती हो। तो मेरे लिये इस वन में स्वर्ग राज्य का हो अभिषेक।।

जीवनोपयोगी वस्तुएँ (धन से) मिल जायँ और प्रियतमा पास में हो, तो फिर अन्य स्वर्ग की अपेक्षा नहीं। यहीं स्वर्ग बन जायगा।

षटरसखण्ड दही जो खाये। बाँके नैन परोसें सोय।। कहें घाघ फिर सब कछु झूँठा। वहैं छोड़ि यह ही बैकूँठा।।

जीवनोपयोगी सामग्रियां हो, और सुख-दुख में हाथ बँटानेवाली सहधर्मिणी हो तो मनुष्य को न स्वर्ग चाहिये न वैकुण्ठ।

बाल्यावस्था में विद्या का अभ्यास, युवावस्था में गार्हस्थ्य-सेवन तथा वृद्धावस्था में मोक्ष का उपाय करें, किन्तु धर्म का आचरण सर्वदा ही करना चाहिए।

मेरी कभी वृद्धावस्था न होगी, मैं कभी मरूँगा ही नहीं ऐसा विचार कर मनुष्य को विद्या तथा धन का उपार्जन करना चाहिए। किन्तु मृत्यु हर समय हमारी चोटी पकड़े खड़ी है वह छोड़ेगी नहीं इस भय से मनुष्य को सदा धर्म का आचरण करना चाहिए। शरीर नश्वर है, धन तथा आयु भी स्थिर नहीं है और मृत्यु सिरपर सवार है ऐसा समझकर मनुष्य को धर्म का संग्रह करना चाहिए। इसलिए अब तुम असुर भाव का त्याग कर सबके प्रति दया एवं मैत्री की भावना करो। इससे तुम लोगों पर भगवान की सहज ही अनुकम्पा एवं प्रसन्नता हो जायेगी। उनके प्रसन्न होनेपर फिर संसार में कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं रहेगा।

जिन्होंने घोर साधनों द्वारा अपने चंचल चित्त की बिखरी हुई वृत्तियों को एकत्र करके प्रभु पादपद्मों में उन्हें नहीं लगा दिया है, जिन्होंने विषयों की ओर बहती हुई इन्द्रियों की वृत्तियों का भली भाँति निरोध नहीं कर लिया है, ऐसे अजितेन्द्रिय पुरुषों के लिये संसार से वैराग्य होना महान दुर्लभ है। लोग कहते तो हैं, कि प्राण सबसे प्यारे हैं, किन्तु इन प्राणों की भी बाजी लगाकर मनुष्य धन का उपार्जन करता है। धन से भी कठिन त्याग है प्रियतमा पत्नी का त्याग, कामिनी का परित्याग। बालकों, प्राय: संसार में पति पत्नियों में नित्य अनबन बनी रहती है। बात- बात में कलह लड़ाई झगड़ा हो जाता है। किसी भाग्यशाली की तो बात पृथक है, नहीं तो घरवाली किसी-न-किसी बात को लेकर सदा पति को कुछ-न-कुछ उलटी सीधी सुनाती ही रहती है। फिर भी मनुष्य को वैराग्य नहीं होता। सब सुनकर भी उसी का दास बना रहता है। उसे छोड़ने में उसका रोम-रोम काँपता है। फिर साथ ही स्वजनों का स्नेह भी अपनी ओर खींचता है। सबसे बड़ा आकर्षण तो हैं बच्चों का। इस सुख का जिसने अनुभव कर लिया है वह यदि ब्रह्मा भी कहें, तो भी घर को नहीं छोड़ सकते। बच्चा माता-पिता दोनों का प्रतीक है, दोनों की सजीव क्रीड़ा करती हुई आत्मा है, दोनों के बाह्य प्राण है। प्राण भले चले जायँ, पुत्रवियोग न हो। प्रह्लाद बोले- जीव को ये ही सब आकर्षण संसार में बाँधे हुए हैं। ये ही सब चौरासी के चक्कर में घुमा रहे हैं। यद्यपि प्रधान बंधन ये ही है, इनके अनुगत और भी बहुत से प्रलोभन हैं, जिनसे मनुष्य छूटने में अपने को असमर्थ पाता है।

कन्या रोवति जाइ दुखित पति गृह सुकुमारी। भोली भाली बहिन भला कस छाड़ें प्यारी।।
आज्ञाकारी बन्धु पुत्र सुकुमार दुलारे। छोड़े कैसे जाइँ मातु पितु वृद्ध दुखारे।।
कुलगत अपनी वृत्ति छोड़ि जावें कस बनमहँ। हाथी, घोड़ा, गाय बसें सुठि सेवक मनमहँ।।

प्रह्लादजी असुर बालकों से कह रहे हैं- गृहस्थी को पुत्रों की, विवाहिता पुत्रियों की, भाइयों की, बहिनों की, वृद्धावस्था के कारण दीन हुए माता-पिता की, घरों की, सुन्दर मनोहर शैया बिछौना आदि प्रचुर परिच्छदों की, वंशपरम्परागत वृत्तियों की, घर के पशु तथा सेवकादिकों की स्मृति बनी ही रहती है। उनको मनुष्य कैसे त्याग सकता है? संसार से वैराग्य होना अत्यन्त ही कठिन है। वैसे तो संसार की प्रत्येक वस्तु हमें किसी-न-किसी भाव से अपनी ओर खींच रही है, किन्तु सुन्दर वस्तुओं में आकर्षण अधिक होता है। निरन्तर के संग से ईंट पत्थर मिट्टी की बनी भीतों में, चित्रों में, वृक्षों में आसक्ति हो जाती है। परिवार में जिनसे अपना सम्बन्ध है, जो साथ ही रहते हैं वे शरीर की ही भाँति प्यारे हो जाते हैं। एक-एक वस्तु में मन फँसा रहता है। घर की एक-एक वस्तु में चित्त आसक्त रहता है। लेन देन है, ग्राम हैं, पद है, प्रतिष्ठा है। आज्ञाकारी भृत्य सेवक हैं, संगी साथी, पुरजन परिजन, प्रजा परिवार वाले हैं। सरांश सभी में मन फँसा रहता है। इन सबसे चित्त को हटाकर एकमात्र भगवान की ही ओर लगाना बड़ा कठिन प्रतीत होता है। उपस्थेन्द्रिय का सुख ऐसा है, कि इससे कभी तृप्ति नहीं होती। कितनी भी अवस्था हो जाय, मन भरता ही नहीं। इन्द्रियाँ भले ही शिथिल हो जायँ, किन्तु इच्छा शिथिल नहीं होती। आँखों के सामने से जानेवाला काल दिखाई नहीं देता। कुटुम्ब के पालन-पोषण में ऐसे प्रमत्त हो जाते हैं, अपने हिताहित को सर्वथा भूल जाते हैं। धर्म से धन न मिलने पर पाप बुद्धि होती है, चोरी करने की वृत्ति जागृत होती है।

कुटुम्ब के भारसे दबे रहने के कारण चित्त निरन्तर धन से आसक्त रहता है। आवश्यकतानुसार धन मिलता नहीं क्योंकि तृष्णा बढ़ी है। यह भी जानता है कि अन्यास से, चोरी से धन उपार्जन करेंगे, पकड़े जायेंगे, कारावास में जायेंगे, मरकर नरकों की यातनायें सहनी पड़ेंगी, किन्तु यह सब जानते हुए भी दूसरों का धन चुराता है। परदाराभिगमन करता है, क्योंकि इन्द्रियों को अपने वश में नहीं कर सका है, स्वयं इन्द्रियों का दास बना हुआ है। इसीलिये सदा अशान्त काम बना रहता है। जिस गृहस्थी में इतने बन्धन हैं, उन सब बन्धनों को तोड़ना हँसी खेल नहीं। मूर्खों की बात तो जाने दो, जो विद्वान हैं जिन्होंने विधिवत् अध्ययन किया है, वे लोग भी अज्ञानियों के समान तमोग्रस्त हो जाते हैं। वे भी अपने पराये का भेदभाव करके कुटुम्ब पोषण के लिये तथा इन्द्रियों की तृप्ति के लिये पाप करते देखे गये हैं। ऐसे लोगों को परमार्थ की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

भोगै ज्यों-ज्यों भोग बढ़ै त्यों-त्यों तृष्णा नित। पर धन अरु परनारि माहिँ, नित फँस्यों रहे चित।।
करै पाप नित नये झूठतें द्रव्य बटोरै। धनहित तनकूँ बेचि हाथ नीचनिके जोरै।।
पोथी पत्रा पढ़ि भये, पंडित हू विख्यात हैं। मोह ग्रस्त ह्वै मोक्षतें, वंचित ते रहि जात है।।

प्रह्लादजी दैत्य बालकों से बोले- तुम विषयों में आसक्त हुए दैत्यों के संग को दूर से ही त्यागकर दो। आदि देव जो श्रीमन्नारायण हैं उनकी शरण में जाओ। वे ही श्रीहरि संग रहित साधुओं के इच्छित मुक्तिपद को देनेवाले हैं।

भगवान को प्रसन्न करने के लिये बहुत परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ता क्योंकि वे समस्त प्राणियों के भीतर आत्मरूप से विराजमान हैं और सर्वत्र सबकी सत्ता रूप में स्वयंसिद्ध वस्तु हैं, उनके बिना एक पत्ता की भी सत्ता नहीं रह सकती।

ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सर्वत्र एक ही अविनाशी परमात्मा विराजमान हैं। वे ही अन्तर्यामी द्रष्टा के रूप में हें और वे ही दृश्य जगत् के रूप में भी हैं। सर्वथा अनिर्वचनीय और विकल्परहित होने पर भी द्रष्टा और दृश्य, व्याप्त और व्यापक के रूप में उनका कथन किया जाता है, निर्वचन किया जाता है। वस्तुत: उनमें एक भी विकल्प नहीं है। इसलिये तुमलोग दैत्यभाव का, आसुरीभाव का परित्याग करके समस्त प्राणियों पर दया करो, प्रेम से उनकी भलाई करो। इसीसे भगवान प्रसन्न होते हैं। प्राणियों पर दया करना भगवान की प्रसन्नता का सबसे बड़ा कारण हैं। कर्म करने का उद्देश्य है सर्वात्म भाव से अपने सर्वस्व को सर्वात्मा श्रीहरि के पादपद्मों में समर्पित कर देना। जो कर्म अपने परम सुहृद श्रीहरि भगवान

पुरुषोत्तम के आत्मसमर्पण करने में सहायक न हों, वे सब कर्म व्यर्थ हैं।

धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष हरि भक्त न चाहें। प्रभु पादोदक पान करहिँ नित हरिगुन गाये।।
तेई करम यथार्थ कृष्णकी भक्ति दृढ़ावें। अन्य जगतके कर्म अधिक भव बन्ध बढ़ावें।।
शुद्ध भागवत धर्म जिह, श्रीनारद मुखतें सुन्यो। दैत्य पुत्र सुनि हँसि परे, हँसत उदर सबको फुल्यो।।

यह निर्मल ज्ञान जो मैंने तुम लोगों को बतलाया है बड़ा ही दुर्लभ है। इसे नर-नारायण ने सर्वप्रथम नारद को प्रदान किया था। इस ज्ञान के वे ही लोग पात्र हैं, जिनके भाल अकिंचन भगवद्भक्तों की चरण-धूलि से मण्डित हैं। इसे मैंने देवर्षि नारदजी के मुख से पहले-पहले सुना था।

प्रह्लाद जी की बात सुनकर उनके साथियोंने पूछा- प्रह्लाद जी इन दोनों गुरु-पुत्रों को छोड़कर और किसी गुरु को न तो तुम जानते हो और न हम। तुम्हारी अभी छोटी अवस्था है। दूसरे तुम अपनी माँ के साथ अन्त:पुर में निवास करते हो, ऐसी स्थिति में तुम्हारा नारद जी से मिलना कुछ असंगत-सा प्रतीत होता है अत: विश्वास के योग्य बात बतलाकर हमारे संशय को समाप्त करो। तुमने यह ज्ञान कहां से प्राप्त किया। नारदने कहा- युधिष्ठिर, दैत्यबालकों की शंका सुनकर प्रह्लाद मुस्कराकर बोले- मेरे गुरु शंडामर्क थोड़े ही है जो एक को दिखायी नहीं देता, एक को सुनायी नहीं देता।

गुरु सीखे अन्ध बधिर करि लेखा। एक न सुनहि एक न देखा।।

मेरे गुरुदेव तो नारद है। जब मेरे पिताजी तपस्या करने मन्दराचल पर्वत पर चले गये तब वहाँ कठोर तप में निरत उनके शरीर को दीमक चाट गये, यह देखकर देवताओं ने दानवों पर आक्रमण कर दिया। उस समय वे कह रहे थे- जैसें चीटियाँ साँप को चाट जाती हैं, वैसे ही लोकों को सतानेवाले पापी हिरण्यकशिपु को उसका पाप ही खा गया। युद्ध स्थल में देवताओं के अतिशय उत्साह को देखकर दैत्य-गण भाग खड़े हुए। अनुकूल अवसर देखकर देवताओं ने राजप्रासाद पर भी आक्रमण कर दिया। यहाँ तक कि इन्द्र ने राजरानी मेरी माता कयाधु को भी बन्दी बना लिया। उस समय मेरी माता भय से घबड़ा कर कुररी पक्षी की भाँति विलाप कर रही थी। इस पर भी इन्द्र को दया नहीं आई, वे उसे जबर्दस्ती पकड़कर लिये जा रहे थे, दैववश उसी समय नारद उधर से निकले उन्होंने रोती हुई मेरी माता को देखकर इन्द्र से पूछा- देवराज कहलाते हो शर्म नहीं आती, पराई स्त्री का अपहरण कर रहे हो। तुम यह क्या कर रहे हों? इस निरपराध पराई स्त्री को कहाँ ले जा रहे हो? इन्द्र ने कहा- देवर्षे, यह हिरण्यकशिपु की पत्नी कयाधु है। इसकी कोख में उसके वीर्य से उत्पन्न गर्भ पल रहा है। साँप का बेटा साँप होता है अत: यह भी बाप की भाँति महाभयंकर होगा। कयाधु को बन्दिनी बना कर रक्खूँगा। प्रसव हो जाने पर शिशु का वध कर इसे मुक्त कर दूँगा। इस नारी के प्रति मेरे मन में कोई दुर्भाव नहीं है।

इन्द्र की बात सुनकर नारदजी ने कहा- देवराज, तुम्हारा यह विचार प्रशंसा योग्य नहीं है कि असुर का बेटा असुर होगा ऐसा भी कोई नियम नहीं है। सर्प के मणि से सर्प का विषय उतारा जाता है। तुम समझते हो हिरण्यकशिपु मर गया तो अभी वह मरा नहीं है तप कर रहा है। इस गर्भस्थ बालक के द्वारा तुम्हारी रक्षा का विधान होगा। यह बालक भगवान का बहुत बड़ा भक्त होगा।

यह निरपराध है। इसे ले जाना उचित नहीं। महाभाग, इस सती-साध्वी परनारी का तिरस्कार मत करो। इसे छोड़ दो, तुरन्त छोड़ दो। इसके गर्भ में भगवान का महान् भक्त और सेवक, अत्यन्त बली एवं निष्पाप महात्मा है। तुम इसे मार नहीं सकते। देवर्षि की बात सुनकर इन्द्र ने मेरी माता को ससम्मान छोड़ दिया और फिर इसके गर्भ में भगवद्भक्त है, इस भाव से उन्होंने मेरी माता की प्रदक्षिणा की तथा अपने लोक में चले गये।

इन्द्र के चले जाने पर नारद जी मेरी माता को अपने आश्रम पर ले गये। उसे सान्त्वना दी और कहा- पुत्री, जब तक

तुम्हारे पति तपस्या पूरी कर वापस नहीं आ जाते तब तक निर्भय होकर यहीं मेरे आश्रम पर रहो। मेरी माता उनके आश्रम में निर्भय होकर निवास करने लगी। उसने वहाँ तब तक निवास किया जब तक मेरे पिताजी तपस्या पूरी कर वापस नहीं लौट आये। मेरी गर्भवती माता मुझ गर्भस्थ शिशु की मंगल-कामना से और इच्छित समय पर (अर्थात् मेरे पिता के लौटने के बाद) सन्तान उत्पन्न करने की कामना से प्रेम और भक्ति के साथ नारदजी की सेवा-शुश्रूषा करती रही। नारदजी ने उसे इच्छा-प्रसव का आशीर्वाद दिया। नारदमुनि ने मुझे ही लक्ष्य करके मेरी माता को ज्ञान और भक्ति का उपदेश दिया। वह काल की अधिकता तथा स्त्री-स्वभाव के कारण मेरी माता को तो विस्मृत हो गया; किन्तु ऋषि की कृपा से मुझे आज भी सब याद है। यदि मेरी बात पर श्रद्धा करो तो वह ज्ञान तुम लोगों को भी प्राप्त हो सकता है। काल ईश्वर की मूर्ति है। जैसे काल की प्रेरणा से वृक्षों में फल लगते, ठहरते, बढ़ते, पकते, क्षीण होते और नष्ट हो जाते हैं- वैसे ही जन्म, अस्तित्व की अनुभूति, वृद्धि, परिणाम, क्षय और विनाश- ये छ: भाव-विकार शरीर में ही देखे जाते हैं। आत्मा से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा तत्त्व को जाननेवाले पुरुष को चाहिये कि अज्ञान के कारण शरीर में होनेवाले अहन्ता एवं ममता का परित्याग कर दे। इससे बड़ी शान्ति की अनुभूति होती है। आत्मा नित्य है, देह अनित्य। आत्मा अव्यय है, देह नाशवान्। आत्मा शुद्ध है, देह अशुद्ध। आत्मा एक है, देह अनेक। आत्मा क्षेत्रज्ञ है, देह क्षेत्र। आत्मा आश्रय है, देह आश्रित। अज्ञानसे ही मोह पैदा हुआ है। आठ प्रकृति हैं, तीन गुण हैं, सोलह विकार हैं और आत्मा एक है। शरीर इन सबका संघात है। इसीमें परमात्माको पाना है। जहाँ ईश्वर नहीं है वहाँ यह आत्मा भी नहीं है। इन गुण-कर्मोंमें फँस जानेके कारण ही संसार है और इसका कारण अज्ञान है। इसको जानने के लिये उपाय है भगवद्भक्ति। जिससे भगवानमें भक्ति हो, वही सबसे श्रेष्ठ उपाय है। गुरुकी सेवा, साधु-संतोंका संग करना, ईश्वरकी आराधना, भगवानकी कथामें श्रद्धा रखना, उनके गुण-कर्मका कीर्तन और चरणारविन्दका ध्यान करना, उनकी मूर्तिका दर्शन और पूजन करना और भगवान सबमें है ऐसा समझकर यथासम्भव सबकी कामना पूरी करना। इसीतरह से भगवान भगवद्भक्ति की जाती है। संसार की सब वस्तुएँ नाशवान हैं, क्षणभंगुर हैं। ये तुमको प्रसन्न नहीं कर सकती। स्वर्ग भी नाशवान है केवल भगवान ही निर्दोष है इसलिए भगवान की भक्ति करनी चाहिए। मनुष्य संसारमें पाने के लिए जो प्रयास करता है, उससे सच्ची वस्तु नहीं मिलती विपरीत ही प्राप्त होती है। कर्मीको तो दु:ख ही मिलता है। यह देह भी अपने हाथमें नहीं, मरने मिटनेवाला है। जितने भी पुत्र, पुत्री, धन, राज्य, कोष आदि विनाशकारी हैं, संसारकी सभी वस्तुएँ अनर्थ हैं, असत्य है। इसलिए सब जिसके अधीन है उस परम स्वतन्त्र भगवान की आराधना करो, वे ही सबकी आत्मा हैं और वे ही इस शरीर में बैठे हुए हैं। भगवान की भक्ति के लिये ब्राह्मण, देवता या ऋषि होना आवश्यक नहीं, भगवान को प्रसन्न करनेके लिये श्रेष्ठ आचरण, ऊँचा कुल, बहुत ज्ञान, या विद्वान होनेकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ तक की भगवान प्राप्ति के लिये दान, तपस्या, यज्ञ किसी की भी आवश्यकता नहीं। भगवान केवल निर्मल भक्तिसे प्राप्त होते हैं अन्य साधन सब विडंबना है ये ही भक्ति का स्वरूप है, परमात्मा का स्वरूप है। इस लोक में मनुष्य का इतना ही परम स्वार्थ और परमार्थ है कि गोविंद के प्रति भक्ति हो। मन की डोर एक बार गोविन्द के चरणों में लग गई तो सब व्यथा मिट जाती है। बुद्धि की शुद्धि में श्रद्धा की भूमिका महान होती है। अस्तित्व, जन्म की अनुभूति, वृद्धि, परिणाम, क्षय तथा विनाश ये छह प्रकार के विकार शरीर में होते है। ईश्वरमूर्ति कालकी प्रेरणा से वृक्षों में फल लगते हैं, ठहरते, बढ़ते, पकते, क्षीण होते और नष्ट हो जाते हैं- वैसे ही जन्म, अस्तित्व की अनुभूति, वृद्धि, परिणाम, क्षय और विनाश ये छ: भाव विकार शरीर में भी देखे जाते हैं। आत्मा से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, आश्रय, निर्विकार, स्वयं प्रकाश, सबका-कारण, व्यापक, असंग तथा आवरण रहित

है। यह बारह आत्मा के उत्कृष्ट लक्षण हैं। इनके द्वारा आत्मतत्व को जाननेवाले पुरूषको चाहिए कि शरीर आदि में अज्ञान के कारण जो मैं और मेरे का झूँठा भाव हो रहा है, उसे छोड़ दे। अध्यात्मतत्व को जाननेवाला पुरुष आत्म प्राप्ति के उपायों द्वारा अपने शरीर रूपी क्षेत्र में ही ब्रह्मपद का साक्षात्कार कर लेता है।

नारदजी मग मिले इन्द्रकूँ बहु धिक्कार्‍यो। जानि उदरमहँ मोइ मातु तजि स्वर्ग सिधार्‍यो।।
मम माताकूँ लाइ रख्यो निज आश्रम मुनिवर। मोकूँ करि उद्देश सुनावें कथा मनोहर।।
माँ मुनिकी सेवा करे, पायो इच्छा प्रसव वर। सुन्यो भागवत धर्म तहँ, उदरमाहिँ मैंने सुधर।।

कुसुम सरोवर के सामने नारद कुण्ड नाम का एक स्थान है वहीं पर नारदजी की कुटिया है। वहीं मेरी माता कयाधु को आश्रम में रखकर बेटी की तरह पोषण किया। उन्होंने मेरी माता को भागवत धर्म का रहस्य और विशुद्ध ज्ञान का उपदेश किया। आँखों के मार्ग से कानों के मार्ग से, रसना के मार्ग से जो भी संस्कार अंत:करण में जाता है इसका प्रभाव गर्भस्थ बालक पर अवश्य पड़ता है। अभिमन्यु ने अपनी माता सुभद्रा के उदर में ही अपने पिता अर्जुन के द्वारा चक्रव्यूह भेदन की प्रक्रिया सीखी थी।

जननी जने तो भक्त जन के दाता के सूर। नहीं तो जननी बांझ रह मति गंवावे नूर।।

गुरु की प्रेमपूर्वक सेवा, जो कुछ प्राप्त हो जाय उसे भगवान को समर्पित करना, भगवान के प्रेमी महात्माओं का सत्संग, भगवान की आराधना, उनकी कथा-वार्ता में श्रद्धा, उनके गुण एवं लीलाओं का कीर्तन, उनके चरण-कमलों का ध्यान और उनकी मूर्ति आदि का दर्शन-पूजन आदि साधनों से भगवान में स्वाभाविक प्रेम हो जाता है। स्वाभाविक प्रेम की इस अवस्था में भक्त के अन्त:करण के सारे मल धुल जाते हैं, भगवान के नाम, गुण और लीला के श्रवण से उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है और आवेश में आकर वह कभी गाता है, कभी नाचता है और कभी रोता है। इस स्थिति में पहुँचे हुए भक्त का बन्धनभूत अज्ञान और अहंकार समूल समाप्त हो जाता है और वह अतिशीघ्र भगवान को प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। भगवान की प्राप्ति से जीव का संसार-चक्र मिट जाता है। वह (पुनरपि जननं पुनरपि मरणं) के चक्कर से छूट जाता है अत: मित्रों, तुम लोग अपने-अपने हृदय में हृदयेश्वर भगवान का भजन करो। असुरकुमारों, हृदय में आकाश के समान विराजमान भगवान की उपासना में भला कौन-सा प्रयास लगता है? वे समानरूप से सारे प्राणियों की अपनी आत्मा हैं, सबके अत्यन्त प्रेमी मित्र हैं। उनको छोड़कर भोग-सामग्री के लिये संसार में भटकना कितनी बड़ी अज्ञानता है।

भाइयों, धन, स्त्री, पशु, पुत्र, पुत्री, महल, पृथ्वी, हाथी, खजाना और भाँति-भाँति की विभूतियाँ और तो क्या, संसार का सारा धन तथा भोग-सामग्रियाँ इस क्षण-भंगुर मानव को भला क्या सुख पहुँचा सकती हैं? वे जबकि स्वयं भी क्षणभंगुर हैं।

यह संसार असार स्वप्नवत सत्य लखाबे। आत्मज्ञान गुरु कृपा बिना नर कबहुँ न पाबे।।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति वृत्तिको साक्षी जो है। सत् चित् आनंद रूप ब्रह्म पद आत्मा सो है।।
जनम मरन चक्कर छुटे, कर्म बीज जाते नसे। करे योग साधन सतत, दिव्य ज्ञान हियमहँ बसे।।
आत्मा अनुभव हेतु उपाय असंख्य जगतमहँ। गुरु शुश्रूषा भक्ति निरन्तर सन्त चरनमहँ।।
हरि उपासना कथा कीरतनमहँ रति नित-नित। प्रभु प्रतिमामहँ प्रेम कृष्ण चरननि चिंतन चित।।
काम, क्रोध, मद मोह अरु, मत्सर लोभ विहाय सब। निरखे सबमहँ श्यामकूँ, पावे प्रभु पद प्रेम तब।।

नारदजी ने कहा- दैत्य बालकों ने प्रह्लाद की बात सुनी। उन्हें वह बहुत अच्छी और निर्दोष लगी अत: उन लोगों ने उसे

सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा गुरुजी की दूषित शिक्षा की ओर ध्यान ही नहीं दिया। प्रह्लादजी के कहने पर वे दैत्य बालक कीर्तन करने लगे और नृत्य करने लगे। वे डर रहे थे कहीं हिरण्यकशिपु के गुप्तचर सुन न ले। सभी बालक कीर्तन करने लगे। हजारों राक्षसों के बालकों की बुद्धि को प्रह्लाद ने परिवर्तित कर दिया।

चला है नाम पर तेरे कन्हैया तेरा दीवाना। बचाकर हर मुसीबत से हमें मंजिल तक पहुंचाना।।
हमें चिंता नहीं उसकी उसे चिन्ता हमारी है। हमारी नाव का मालिक, सुदर्शन चक्रधारी है।।

प्रह्लाद बोले- सहपाठियों, मित्रों डरो मत भगवान रक्षा का विधान करेगा। हमने अपनी आंखों से देखा है। कुम्हार-कुम्हारिन के प्रज्ज्वलित आंवा में से सारे बर्तन पक गए, और उसीमें बैठे बिल्ली के बच्चे वे राम नाम के प्रभाव से सच्चे हृदय की प्रार्थना के द्वारा प्रभु की कृपा से सुरक्षित निकले। जिसको भगवान बचाना चाहें, उसको कोई मार नहीं सकता। बड़े-बड़े जहाज तूफान में डूब सकते हैं लेकिन एक छोटी सी डोंगी नैय्याको भगवान बचाना चाहें, उस परमात्मा का बचाने का संकल्प हो, तो वह किनारे लग जायेगी। जिस तूफानों ने बड़े-बड़े जहाजों का बेड़ा गर्क किया। वही तूफान भक्त की छोटी सी नैय्या को किनारे पहुंचाता है। समस्त प्राणियों को अपने समान समझकर सर्वत्र विराजमान सर्वात्मा सर्वशक्तिमान भगवान की भक्ति करो। भगवान श्रीहरि के गुण लीला नाम का कीर्तन और उनके चरणों का ध्यान यही भगवान की भक्ति प्राप्ति का साधन है। इसलिये डरो मत, भजन करो, उनके नामों का कीर्तन करो। प्रह्लादजी के बचनों से बच्चों का हौसला बढ़ा और छूट पट्टी के साथ कीर्तन शुरू हुआ। सभी बालक कीर्तन में मग्न हो गये।

सुख शान्ति चाहनेवालों को भगवान भुलाना ठीक नहीं।
सत्पथ के प्रेमी पुजारी को, उल्टे पथ जाना ठीक नहीं।।
दो हाथ मिला दो पैर मिला औरसुन्दर स्वस्थ शरीर मिला।
प्राणी सद्बुद्धि को पा करके, पीछे हट जाना ठीक नहीं।।
है तेरे इच्छा पर निर्भर, शुभ कर्म करो या पाप करो।
पर फल पाने में बँधा हुआ, यह न्याय भुलाना ठीक नहीं।।
तू पेड़ बबूल का बो करके, आमों को कैसे खायेगा।
जो बोया था सो पाना है, आक्षेप लगाना ठीक नहीं।।
दुनिया में रहने वाले को, यदि हँसना नहीं सिखासकते।
तो हँसकर जीनेवालों को, दुख देकर रुलाना ठीक नहीं।।
यदि तुम चाहो हित अपना, तो बात खरी एक सुन लेना।
दुनिया में रोता आया है, रोता हुए जाना ठीक नहीं।।

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण। लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण।
रामनारायण नारायण नारायण। श्रीमन्नारायण नारायण नारायण।।

हिफाजत जिस सफीना की उन्हें मंजूर होती है। किनारे तक उन्हें तूफान लाकर छोड़ जाते हैं।

प्रह्लाद ने कहा- भाइयो। जो प्राणी मात्र पुत्र-कलत्रादि, परिजनों-स्वजनों की अभिलाषा को पूर्ण करने में तीसों दिन चौबीसों घण्टे संलग्न रहता है, यदि वह विद्वान ही क्यों न हो तो भी उसे परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। विद्वान पुरुष भगवत्प्राप्ति को ही मोक्ष सुख कहते हैं। जिससे बद्ध जीवका आवागमन मिट जाता है। इसलिए तुम लोग हृदय से उस

अन्तर्यामी भगवान का भजन करो। किसी को भी शरीर, मन और वाणी से कष्ट न पहुँचाओ। प्रेम में दोष नहीं दीखते। जहाँ दोष बुद्धि है वहाँ प्रेम नहीं। हमारे स्वभाव से संसार में सभी दोष-ही-दोष दिखायी देंगे। जो लोग षड्रिपुओं को जीत लेते हैं, वे ईश्वर में ऐसी भक्ति करते हैं जिससे भगवान वासुदेव में उनकी रति हो जाती है और उनके लक्षण इसप्रकार हो जाते हैं- **कभी अधीर हो रोवे कबहुँ, गद्गद् गिरा गँभीर स्वर। हँसे कबहुँ पुनि-पुनि कहे, गिरधर नटवर ब्रजेश्वर।।**

कबहूँ करे विलाप ध्यानमहँ मग्न होहि पुनि। गावे कबहूँ गान होहि हर्षित हरि गुन सुनि।।

सम्मुख देखे जाइ पैर परि परिके रोवे। कबहूँ नाचे ठुमुकि कबहुँ पृथिवी पै सोवे।।

लोक लाज संकोच तजि, यों तन्मय ह्वैकें रहे। नारायण हरि जगतपति, राम, कृष्ण वामन कहे।।

लड़खड़त मग चलैं परैं पग इत उत अनिमित। चलत-चलत पुनि गिरैं फिरें उत्कण्ठित जित तित।।

रहै प्रेमकी ज्योति प्रज्ज्वलित हिये निरन्तर। जरै वासना बीज दिखें जब श्री राधावर।।

फँस्यों चित्त चितचोरकी, रूप माधुरीमें सतत। जग बन्धन कटि जात सब, होहिँ फेरि जगतें विरत।।

जब तक हमारे मलिन अन्त:करण में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये छ: शत्रु विद्यमान हैं तब तक हृदय में भगवत् साक्षात्कार हो यह असम्भव है।

प्रह्लादजी बालकों से बोले- जब मनुष्य अवतारों के लीला विग्रहों द्वारा किये हुए कर्मों को उनके अनुपम गुण और पराक्रम को श्रवण करके अत्यन्त हर्ष के उद्रेक से रोमांचित और गद्गद कण्ठ होकर उत्कण्ठित होकर उच्च स्वर से गाने रोने और नृत्य करने लगता है, तो उसकी प्रेम की दशा समझनी चाहिये। जिसके बिना पलभर में न रहा जाय, नैन उसके दर्शन के प्यासे बने रहें, वहीं प्रेम की रति का उदय हो गया। दूसरी अवस्था में मन में संग बना रहे। मन सदा उसीका चिंतन करता रहे। ऐसी दशा मीरा की थी। मीरा ने कहा-

पिया, तैं कहाँ गयौ नेहरा लगाय। छाँड़ि गयौ अब कहाँ बिसासी, प्रेम की बाती बराय।।

विरह समँद में छाँड़ि गयो, पिव नेह की नाव चलाय। मीरा के प्रभु गिरधर नागर, तुम बिन रह्यो न जाय।।

नित्य निरंतर अपने प्रियतम का स्मरण होता रहे, उसीका चिंतन, उसीका नाम, रूप स्मरण आवे। मीरा की स्थिति यही थी।

म्हारी सुधि ज्यूँ जानों ज्यूँ लीजो जी। पल-पल ऊभी पन्थ निहारँ दर्शन म्हाँ ने दीजो जी।

मैं तो हूँ बहु अवगुण वारी, औगण चित मत दीजो जी।।

मैं तो दासी थाँरे चरण कमल की मिल बिछुरन मन कीजो जी।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ चित दीजो जी।।

अपने प्रियतम के निरन्तर स्मरण में कैसा सुख अथवा दुख होता है, इसे भुक्त भोगी के अतिरिक्त दूसरा कोई जान ही नहीं सकता। विरह की चौथी अवस्था का नाम है निद्राभेद प्यारे की स्मृति इतनी अधिक रहने लगती है, कि नेत्रों में प्रयत्न करने पर भी नींद नहीं आती। निद्रा प्रियतम के पास चली जाती है और फिर बुलाने पर भी नहीं आती। जैसे-

अंग-अंग व्याकुल भई मुख, पिय-पिय बानी हो। अन्तर वेदन विरह की, कोई पीर न जानी हो।।

ज्यों चातक धन कूँ रटै, मछली जिमि पानी हो। मीरा व्याकुल विरहिणी, सुध बुध बिसरानी हो।।

पाँचवी अवस्था का नाम है तनुता अथवा कृशता। निद्रा नाश के अनन्तर भोजन की भी इच्छा न रहे। खान-पान की न सुधि रहे न आवश्यकता ही प्रतीत हो। शरीर तो पंचभूतों का बना हुआ है। अन्न से ही प्राण प्रबल होते हैं। यदि शरीर को आहार न मिलेगा तो वह दुर्बल, कृश होगा ही। इसीलिये विरही का जहाँ वर्णन किया जाता है, वहाँ उसे अत्यन्त कृश बताया जाता है।

श्रीकृष्ण के विरह में गोपी ही कृश नहीं है, अपितु गोधन, गौवत्स, शुक, पिक, काक भी कुछ नहीं खाते वे भी तनुता को प्राप्त हो गये हैं। छठी विरह की अवस्था का नाम है विषयों से विरक्ति। विरह की सप्तम अवस्था का नाम है लजा प्रणाश प्रेम में लोक लाज, कुल परिवार बड़े-बूढ़ों की कानि नहीं रह जाती। विरह की अष्टम अवस्था का नाम है- उन्माद। उन्माद एक वीर्य सम्बन्धी रोग होता है। जिसे वह हो जाता है उसे चैन नहीं। प्रतिक्षण व्याकुल बना रहता है। जो मन में आता है अंड बंड बकता है। शरीर की सुधि नहीं, लोक लाज शील सदाचार किसी का भी ध्यान नहीं। मीरा की दशा इसी प्रकार थी-

हे री मैं तो प्रेम दिवाणी मेरो दरद न जाणे कोय। सूली ऊपर सेज हमारी, सोणो किस विधि होय।।
गगन मंडलपै सेज पिया की किस विधि मिलणो हाये। घायल की गति घायल जानै जो कोई घायल होय।।
जौहरि की गति जौहरि की जिन जौहरि हाये। दरद की मारी बन-बन डोलूँ, वैद मिल्या नहिं कोय।।
मीरा की प्रभु पीर मिटै जद, वेद साँवलिया होय।।

यह प्रेमोन्माद तभी शान्त होता है जब साँवरिया आकर नाड़ी पकड़ते हैं। वैद्य बन के उपचार करते हैं। विरह की नवीं अवस्था का नाम है मूर्छा। क्षण-क्षण में अचेत हो जाना, शरीर की स्मृति न रहना। मूर्छा नाम का वैद्यक में रोग होता है। उसमें रोगी धड़ाम से पृथ्वी पर गिर जाता है। तन की सुधि-बुधि भी नहीं रहती। दसवीं अवस्था मण है। अर्थात साक्षात् मरण नहीं मृत्यु के समान की अवस्था समझनी चाहिये। कभी-कभी तो वह रो-रोकर विलाप करने लगता है। हे शरणागत वत्सल, मुझे छोड़कर कहाँ गये? हे हरे, मैं तुम्हारे बिना कैसे जीऊँगा। हे करुणा के सागर, दया करके दर्शन दीजिये। हे अशरण-शरण। सागर में डूबते हुए मुझ अधम अकिंचन का उद्धार कीजिये। हे गोपी जन वल्लभ, मुझे अभय प्रदान कीजिये। विलाप करते-करते जब थक जाता है, तो एकान्त में नेत्र बन्द करके ध्यान करने लगता है। ध्यान में तन्मय हो जाता है फिर ध्यान में उसे बड़ी दीनता उत्पन्न होती है। अपने को अत्यन्त हेय अनुभव करने लगता है। उसे अनुभव होता है, सब मेरे ऊपर कृपा करें तो सम्भव है मेरे प्राणधन इष्ट मुझे मिल जायँ, इसलिये जिसे भी सम्मुख देखता है उसको देखकर रोने लगता है। उसके चरण पकड़कर गद्गद कण्ठ से कहता है- मेरे ऊपर कृपा करो। मुझे वर दो मेरे प्राणेश्वर मुझे मिल जायँ। दीन जानकर उसे कृपालु लोग समझाते हैं, कहते हैं- इस प्रकार अधीर होने की आवश्यकता नहीं, कृपालु कृष्ण अवश्य कृपा करेंगे।

मलिन हृदय जे मनुज फँसे जग चक्कर माँहिं। काटन बन्ध उपाय कृष्ण चरननि तजि नाहीं।।
तातें तजि व्यवहार जगतके हरि चित धारौ। ज्ञान खड्गकूँ धारि काम क्रोधादिक मारौ।।
जिही मुक्ति निर्वान है, जाहि परमपद हू कहैं। हृदयेश्वर हरि सर्वदा, हृदय माहि दीखत रहैं।।

प्रह्लाद असुर बालकों से बोले- सांसारिक लाभ तो तुच्छ लाभ है, इससे तो संसार बन्धन बढ़ता है, संसृति स्थाई होती है। वास्तविक लाभ तो यह है कि भगवान के पादपद्मों में प्रीति हो। यह संसार बन्धन सदा के लिये विलीन हो जाय। जब तक मन में वासना रूप बीज विद्यमान है, तब तक उसमें से अंकुर उत्पन्न होते रहेंगे और पुन-पुन: जन्मना, पुन: पुन: मरना रूप चक्कर चलता ही रहेगा। जब भक्ति रूपी अग्नि की उष्णता से वासना रूप बीज निदग्ध हो जायेगा, तब उसमें चाहें कितनी भी खाद दो, कितना भी जल दो, अंकुरित न होगा, उसमें से जब वह जायेगा ही नहीं तो फिर आगे और वृक्षों को उत्पन्न नहीं कर सकता। इसी प्रकार जब शरीर के सहित चित्त भगवद्भाग में भावित हो जायगा। काम क्रोधादि शत्रु नष्ट हो जायँ, वासना का बीज दग्ध हो जाय, अन्त:करण पवित्र हो जाय, पवित्र अन्त:करण में भगवद्भक्ति का संचार हो जाय, अन्त:करण भगवद् भाव में रँग जाय, बस यही ब्रह्मनिर्वाण है। यही परम सुख है, यही मुख्य उद्देश्य है, यही परम पुरुषार्थ है। निर्दोष तो एकमात्र ब्रह्म ही है परमेश्वर को छोड़कर सभी में कुछ-न-कुछ दोष है। सभी कभी-न-कभी काल के अधीन

होनेवाले हैं। अत: जो काल के भी काल हैं उन प्रभु को ही एकनिष्ठ होकर भक्तिभाव से भजना चाहिये। उन्हीं की अनन्य भाव से उपासना करनी चाहिये। उन्हीं की सर्वात्म भाव से आराधना करनी चाहिये। इन संसारी कर्मों में क्या रखा है। कर्म सुख के लिये किये जाते हैं, किन्तु किसके सुख के लिये। आत्मा सुख के लिये या शरीर के सुख के लिये?

शरीर का सुख, सुख नहीं है। जितने ही कामना सहित कर्म करोगे, उतने ही दुखी होगे। इसलिये कामना को त्यागकर निष्काम भाव से भगवद् अर्पण बुद्धि से किये हुये, कर्म ही श्रेष्ठ हैं। सकाम कर्मों का फल प्राय: विपरीत ही होता है। मनुष्य जिस शरीर के लिये लोक में काम्यकर्मों के द्वारा भाँति-भाँति के भव्य भोगों को प्राप्त करता है। वह शरीर भी तो सदा रहनेवाला नहीं है, अस्थायी है न जाने कब निर्जीव होकर नष्ट हो जाय। फिर दूसरा शरीर प्राप्त हो। शरीर तो मिलते-रहते हैं छूटते रहते हैं। जिस शरीर के लिये यह सब पाप करते हैं, जो संसार में सबसे प्यारा है। इसलिये इन अनर्थकारी अनित्य भोग पदार्थों में ममत्व बुद्धि न करके आत्मचिन्तन में सदा लगे रहना चाहिये। इसलिये शरीर सुखों की ओर ध्यान न देकर सदासर्वदा श्रीहरि का ही चिन्तन करते रहना चाहिये।

भैया सोचो नेक जगतमें कितने सुख हैं। गवासतें मरन काल तक दुखई दुख हैं।।
करिकें नाना कर्म जीव फँसि जाइ जगतमहँ। करै कामना सहित कर्म चित देइ न हितमहँ।।
देह कर्म अविवेकतें, होहिं तिन्हें तातें तजौ। आश्रय जिनके विश्व हैं, तिनि सर्वेश्वरकूँ भजौ।।

प्रह्लाद बोले- भगवान को प्रसन्न करने के लिये ब्राह्मणपना, देवता होना, ऋषि होना, शील सदाचार बहुज्ञता पर्याप्त नहीं और न वे दान, तप, यज्ञ, शौच एवं व्रतादि से ही प्रसन्न होनेवाले हैं। वे तो केवल विशुद्ध भक्ति से प्रसन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त और सब विडम्बना ही है।

नहीं नियम है जिही तिन्हें आराधैं द्विजई। होहिं असुर, विट, शूद्र नारि चाहैं अन्त्यजई।।
करिकैं भक्ति अनेक तरे नरा पशु गीधादिक। नहीं रिझावैं तिन्हैं दान, तप, व्रत, शौचादिक।।
आवश्यक नहिं विप्रपन, ऋषिपन हू अरू अमरपन। प्रभु प्रसन्नताके निमित, आवश्यक हरि अपनपन।।

श्रीहरि यदि किसी गुण से, किसी काल से, किसी व्यवहार से, किसी दान धर्म से ही प्रसन्न होनेवाले होते तो वे दीनों को भी न मिलते, सदा बड़े आदमी ही उन्हें प्राप्त कर सकते। यद्यपि द्विज होना यह बड़े पुण्य का फल है। ब्राह्मण भगवान की विभूति ही है, किन्तु द्विज होने से ही कोई भगवान का कृपा पात्र बन जाय सो बात नहीं। यदि ब्राह्मण है, विधिवत् चारों वेदों का अध्ययन किया है, किन्तु वह भगवान का भक्त नहीं, तो वह भगवान का प्यारा नहीं। इसके विपरीत जो चांडाल है, किन्तु भगवान का अनन्य भक्त है, तो वह उस वेदज्ञ ब्राह्मण से श्रेष्ठ है, भगवान का अत्यन्त प्यारा है। अत: भगवद् भक्ति में बड़ाई छोटाई जातिकृत तथा वय आदि नहीं है। वहाँ तो जिसकी जितनी ही अधिक अनन्यता है, वह उतना ही भगवान का प्रिय है। देवता होने से कुलीन होने से क्या हुआ। देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, ब्राह्मण, चांडाल कोई भी क्यों न हो, जो भी भगवान के चरणों का चिन्तन करेगा वही सुखी होगा। यदि ब्राह्मण होने से ही प्रभु प्रसन्न हो जाते, तो सभी ब्राह्मण भक्त बन जाते। बहुत से ब्राह्मण अपनी करनी के कारण राक्षस हो जाते हैं। बहुत से अधम योनियों में प्राप्त होते हैं। देवता होने से ही कोई भगवान की कृपा का पात्र हो सो बात नहीं। इन्द्र का भी पतन होता है, उसे भी कर्मवश सूकर-कूकर आदि योनियों में जन्म लेना पड़ता है। ऋषि ही हो गये, यह भी पर्याप्त नहीं। ऋषियों का योगारूढ़ होने पर भी भगवद् भक्ति के बिना पतन होते देखा गया है। कोई शील, सदाचार, बहुज्ञता, दान, तप, यज्ञ, शौच तथा व्रतादि से ही भगवान को

प्रसन्न कर ले सो भी बात नहीं। इनके द्वारा भी कभी-कभी पतन होता है।

यदि भगवान केवल सदाचार से ही सन्तुष्ट होनेवाले हों तो बड़े सदाचारियों को मोक्ष प्राप्ति क्यों न हों, वे केवल स्वर्ग में ही क्यों न जायँ। इसके विपरीत गीध का क्या आचार-विचार सदाचार था, मृतक जीवों का मांस खाता था। अजामिल किस द्विजत्व के सदाचार का पालन करता था। उससे कौन-सा कदाचार बचा था? फिर भी भगवान की इन पर कृपा हुई। गज ने कौन से शास्त्र पढ़े थे, भीलनी ने कौन से व्रत की दीक्षा ली थी, केवल भक्ति के सहारे ही वह भगवान को प्राप्त कर सकी। नृग ने तो नित्य ही असंख्यों गौओं का दान किया था। किन्तु अन्त में उसे गिरगिट होना पड़ा। सुदामा के पास तो स्वयं ही खाने को नहीं था, दान क्या देता? फिर भी भगवान ने उसके चरण पखारे, उसे अपना ऐश्वर्य प्रदान किया। कितने-कितने ऋषि तपस्या करके मर गये, जीवन में उन्होंने शाप देकर अपने तप को नष्ट ही किया। ब्रज के ग्वाल बालों ने पंचाग्नि नहीं तापी थी, जल में डूबकर समाधि नहीं लगाई थी। घर-घर से माखन चुराया था, गोपियों को चिढ़ाया, इसी पर भगवान उनसे प्रसन्न हो गये। व्याध ने तो न कोई यज्ञ किये न व्रत, निरन्तर पक्षियों को मारा करता था, भगवान के चरण-कमल को भी मृग के भ्रम से वेध दिया। इसी पर उसे परम पद की प्राप्ति हुई। इसके विपरीत दक्ष प्रजापति ने तो सम्पूर्ण वैभव-पूर्ण महायज्ञ किया था। समस्त देवताओं को बुलाया था, पानी की भाँति द्रव्य व्यर्थ किया था, किन्तु भक्तिहीन होने के कारण, विश्वनाथ से द्वेष रखने के कारण उसके यज्ञ का विध्वंस हुआ। उसका वीरभद्र के द्वारा सिर काटा गया। भगवान की प्रसन्नता के लिये यज्ञ, तप, शौच तथा व्रतादि शुभ कर्म ही पर्याप्त नहीं। भगवान भक्ति से प्रसन्न होते हैं और सब विडम्बना है, मिथ्याचार है, जीवन को व्यर्थ खोना है। जो बात तुम्हें अच्छी न लगती हो तो उसका आचरण अन्यों के साथ भी मत करो। सम्पूर्ण जगत को हरिमय समझकर सब को मन से प्रणाम करो, सबका आदर करो। भक्ति से ही अनेक जीवों को सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं।

सूतजी बोले- मुनियों, भगवान में भक्ति हो जाय, तो सब ज्ञान वैराग्य स्वत: ही बिना बुलाये आ जाते हैं। भक्ति जाति-कुल, गोत्र, ऊँच-नीच की अपेक्षा नहीं करती। भक्ति श्वपच तक को पवित्र कर देती है। प्रह्लाद, बलि, व्याध, बाणासुर ये सब असुर ही तो थे। भगवत् भक्ति के कारण पुण्यश्लोक हो गये। विभीषण राक्षस ही तो थे, भक्ति के प्रभाव से आज जगद्वन्द्य हो गये हैं। व्रजाङ्गनायें तो सभी अनपढ़ थीं, वे तो शौच, सदाचार, शिष्टाचार सभी से अनभिज्ञ थी, सीधी-सादी सरल ग्रामीण थीं। भगवान उनके शुद्ध भाव से- अनन्य प्रेम से ही रीझ गये। हनुमान्‌जी जाति के कौन श्रेष्ठ थे, किंपुरुष होने पर भी आज वे देवताओं के पूजनीय और वन्दनीय बन गये। गरुड़, गीध आदि तो पक्षी ही थे। प्रभु का प्रसाद पाकर ये अजर अमर त्रैलोक्य वन्दित भागवत हो गये। भगवान में भक्ति रखने के ही कारण अवध के कीट पतंग तक भगवद् धाम के अधिकारी हो गये। अत: संसार में भक्ति ही सार है। किसी भी प्रकार से काम से, क्रोध से, लोभ से, द्वेष से, वैर से अथवा प्रेम से भगवान में ही भक्ति रखनी चाहिये। उन्हीं से येन केन प्रकारेण सम्बन्ध जोड़ लेना चाहिये। उन्हीं में चित्त को लगाना चाहिये। असुर बालकों ने पूछा- सबका सार सिद्धान्त बताओ, जीव का एक प्रधान कर्त्तव्य क्या है।

प्रह्लाद बोले- जीव का सबसे बड़ा स्वार्थ है, यही परम पुरुषार्थ है, यही उत्तमोत्तम कर्त्तव्य है कि समस्त प्राणियों में सर्वत्र अपने इष्ट श्यामसुन्दर का दर्शन करे। भेद-भाव को भुलाकर सब में भगवान को देखे। यही अनन्य प्रेम है, यही उत्तम अद्वैत भाव है, यही ऐकान्तिक भक्ति है यही परमेश्वर में परानुरक्ति है। इसी को करना चाहिये।

सुखद सारको सार शास्त्र सिद्धान्त सुनाऊँ। मुख्य जीवको धर्म कह्यो जो ताहि बताऊँ॥
हरिमय सबकूँ जानि करो सम्मान सबनि को। विषय चिन्तना त्यागि रहे नित चिन्तन उनि को॥

खग, मृग, नर, सुर असुर अघ, नाम लेत तरि जाइँ सब। तातों तजि मद मोह तुम, गहौ कृष्णकी शरन अब।।

गुरु-पुत्र जब गृहस्थी का कार्य समाप्त कर पाठशाला में वापस आये तो उन्होंने देखा कि सभी असुर-बालक आँख बन्द कर भगवान का ध्यान कर रहे हैं और नृत्य कर रहे हैं।

दैत्य बालक एक स्वर से गा रहे थे- **हे कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव।।**

बालकों की यह अद्भुत भगवन्निष्ठा देखकर वे घबड़ाये। उन्होंने देखा विद्यालय विद्यालय नहीं रहा ये तो संकीर्तन भवन बन गया। डाँटकर बोले सबको खबरदार, चुप हो जाओ यह संकीर्तन भवन नहीं हैं। राजकीय आसुरी विद्यालय है और भागे-भागे हिरण्यकशिपु के पास गये। गुरुपुत्रों ने सोचा- मैं यहाँ खड़ा हूँ, किसी ने अभी जाकर हिरण्यकशिपु से कह दिया, कि वे तो खड़े-खड़े सबसे कीर्तन कराते हैं, तब तो हमारे ऊपर विपत्ति के पहाड़ ही टूट पड़ेंगे। अत: किसी के सम्वाद देने के पूर्व हम ही क्यों न जाकर राजा को सूचना दे दें कि प्रह्लाद सब बालकों को बिगाड़ रहा है, उलटी पट्टी पढ़ा रहा है। हमारे पहिले जाकर कहने से दोष हमारे सिर न रहेगा। यह सोचकर दोनों गुरुपुत्र दौड़े दैत्यराज के समीप गये और हाँपते हुए बोले- प्रभो, प्रह्लादजी ने तो सबको अपना-सा बना लिया है। उसने तो पाठशाला को कीर्तन भवन बना लिया है।

देइ सीख प्रह्लाद असुर सुत अति हरषावैं। मानैं श्रद्धा सहित प्रेमतें हरि गुन गावैं।।
आये इत गुरु पुत्र निरखिकैं अति घबराये। ह्वैकें अति भयभीत दैत्यपतिके ढिँग आये।।
कहै दीन ह्वै प्रभो, अब, कुमर बिगारै सबनिकूँ। कृष्ण नाम कीर्तन करो, यों सिखवे सब शिशुनकूँ।।

धर्मराज युधिष्ठिर से नारदजी बोले- राजन्, जब गुरुपुत्रों ने देखा कि इसकी बुद्धि तो एकान्त भाव से श्रीहरि में ही लगी है, तो डर के कारण अति शीघ्र जाकर हिरण्यकशिपु को सब समाचार निवेदन कर दिया। पुत्र के द्वारा किये इस अप्रिय सम्वाद को सुनकर दैत्यराज का शरीर कोप के आवेश के कारण काँपने लगा। उसने मन में निश्चय कर लिया कि मैं इस पुत्र को मार डालूँगा।

वहाँ उन्होंने उनसे सारी बातें साफ-साफ बतला दी। बोले- महाराज, हमे दोष मत देना, आपका बच्चा बिगडा सो बिगड़ा और सारे विद्यार्थियों को अपने सांचे में कर लिया। आचार्य की बात सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोध के मारे लाल हो गया। उसका सारा शरीर काँपने लगा। उसने मन-ही-मन प्रह्लाद के वध का निश्चय कर लिया। वह दौड़कर पाठशाला पहुँचा। पिताजी को आया देखकर प्रह्लाद उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। हिरण्यकशिपु क्रोधभरी, लाल-लाल तिरछी नजर से प्रह्लाद को इस प्रकार देख रहा था, मानो वह उन्हें भस्म कर देगा। उसने प्रह्लाद से कहा- अरे नीच, मन्दबुद्धि, तूने मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर सारे कुल को ही दूषित कर दिया है। तू अधम है। तूने मेरी आज्ञा की धज्जी उड़ाई है, उसका उल्लंघन किया है अत: अब मैं तुझे मारकर यमराज के घर भेज दूँगा। हिरण्यकशिपु ने पूछा- अब तक तुमने जो कुछ पढ़ा है सभी शिक्षाओं का सार बताओ। प्रह्लाद बोले- पिताजी जिन प्रभु ने हमको मानव शरीर दिया। विशाल धरती दी, आकाश दिया, पीने के लिये पानी, खाने के लिये अन्न, रोशनी के लिये सूर्य, चन्द्रमा की किरणें दी। स्वांस लेने के लिये प्राण संजीवनी वायु मुफ्त में संचार करती रहती है। उन सर्वेश्वर प्रभु के नाम गुणों का सतत श्रवण स्मरण कीर्तन मनन और प्राप्त उपकरणों से पुष्प, तुलसी, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य इत्यादि से उनका अर्चन उनके चरणों में वन्दन उनके प्रति दास्य सख्य आत्म-निवेदन, आदि ये नवधा भक्ति कहलाती है पिताजी। ये क्रियात्मिका और भावात्मिका, दोनों तरह की भक्ति करनी चाहिये।

हरि की नवधा भक्ति में लगे वही विद्वान। भक्ति रहित विद्वान भी लागे मृतक समान।।

कृष्ण कथामहँ चित्त प्रेमतें सुने सुनावें। नित नव-नव अनुराग बढ़े कबहूँ न अघावें।।

कथा कीरतन गुन श्रवन, करि करि हरि हियमहँ धरे। इत उत कबहुँ न जाइ चित, चरन कमल चिंतन करे।।

भगवान की कथाओं में श्रद्धा करने से, भगवान के गुणों का और कर्मों का कीर्तन करने से, उनके चरण कमलों का चिन्तन करने से, भगवत् प्रतिमाओं का पूजन करने से तथा उनके दर्शन आदि करने से भगवान में स्वाभाविक प्रेम हो जाता है। जिनके हृदय में केशव नहीं। जिन्होंने भगवान की भक्ति को हृदय में स्थान नहीं दिया वे भले अपने को जीवित समझें, ये लेकिन मेरी समझ से वे जीवित नहीं मुर्दे के समान हैं।

हुई जलन सुतमुख सुनि चर्चा हरि गुनग्राम की। सांची करी भक्त प्रह्लाद पढ़ाई राम नाम की।।

अब तो बड़ाभारी क्रोध में भर गया। लेकिन बेटे पर नहीं गुरुजी पर कृतघ्नों, वेतन हमसे लेते हो और भीतर-भीतर हमारे शत्रु से मिले हुए हो, विष्णु के पक्ष की पढ़ाई पढ़ाया करते हो, गुरुजी कांपे- नहीं, हमने ऐसा नहीं पढ़ाया। ठीक तुमने नहीं पढ़ाया लेकिन दूसरे से इसको कैसे पढ़ने दिया, जिससे किसी को इस बालक को बहकाने का मौका मिले।

हे इन्द्रशत्रों, आपका बेटा जो बोल रहा है वह न हमारा सिखाया हुआ है न किसी दूसरे का सिखाया हुआ है। तो हिरण्यकशिपु बोला, तो इसको ऐसी बुद्धि कैसे मिली कहां से मिली। निरर्थक हमको दोष न दें, इसकी ऐसी मति बुद्धि नैसर्गिक है, माने जन्मजात है, मछली को किसी विद्यालय में जा के पढ़ना पड़ता है कि पानी से निकलो तो छटपटाने लगना। कमल पुष्प को कोई सिखाता है कि सूर्य का उदय हो तो खिल जाना और सूर्य का अस्त हो तो बंद हो जाना। मोर के पंख में क्या कोई बाहर निकलने के बाद तुलिका से रंग भरती है। रंगारंगाया पंख पैदा होता है। मछली का जन्मजात होता है जल के प्रति प्रेम। इसी तरह आपका बेटा आपके शत्रु नारायण के प्रेम भक्ति में रंगा-रंगाया पैदा हुआ है।

जोरोंसे कीर्तन चल रहा है। गुरुदेव ने पाँच सैनिकों को भेजा, कीर्तन को तुरन्त बंद कराओ। सैनिक आये हाथ में छड़ी लेकर। देखा प्रह्लाद नाच रहा है, साथ में हजारों असुरों के बालक नाच रहे हैं। प्रह्लाद उन्मत्त होकर कीर्तन कर रहे थे। सैनिकों ने प्रह्लाद को छुआ, उसका स्पर्श होते ही पाँचों सैनिक भी नाचने-गाने लगे।

भजमन नारायण नारायण नारायण। मुक्ति नारायण नारायण नारायण।।

बद्री नारायण नारायण नारायण। श्रीमन्नारायण नारायण नारायण नारायण।।

कनककशिपु कह रोष भरि रे सठ निलज निशंक। गुरुशिक्षा तजि क्यों भई तेरी मति गति बंक।।

सैनिक आते हैं कीर्तन बन्द कराने और नाचने लग जाते हैं। शंडामर्क ने देखा अभी तक सैनिक नहीं आये बोले- हम ही चलकर देखते हैं कि क्या हो रहा है? गुरुजी वहांपर गये उन्हें देखकर बच्चे डर गये। बच्चों ने गुरुजी को अपने हाथोंमे उठा लिया और उछालकर गाने लगे।

भजमन नारायण नारायण नारायण। सत्यनारायण नारायण नारायण।।

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण नारायण।।

गुरुजी को इतना आनंद आया और स्वयं भी दोनों गुरु नाचने लगे। प्रह्लाद गद्गद् हो गया। ऐसा कीर्तन हुआ कि हिरण्यकशिपु भी आकर देखने लगा। गुरु नाच रहे है, सैनिक नाच रहे हैं और कड़कर बोला- यह सब क्या हो रहा है गुरुजी? गुरुदेव बोले- महाराज, हम सत्य कहते हैं हम तो प्रह्लाद को मना करने आये थे लेकिन हम भी इसका स्पर्श करते

ही हम भी नाच रहे हैं हमें बड़ा आनन्द आया। हिरण्यकशिपु बोला- एक तो बच्चों की बुद्धि बिगाड़ रहे हो फिर कहते हो आनन्द आया। ऐसा कहकर प्रह्लाद की ओर मुड़कर बोला- क्यों रे। अरे नीच, तू स्वयं तो बिगड़ता ही जा रहा है किन्तु हमारे कुल के सभी बालकों को भी बिगाड़ रहा है। तू बड़ा ही उद्दण्ड तथा ढीठ हो गया है। अरे दुर्विनीत, अरे मंदात्मन्। मैंने तुझे समझाने का बार-बार प्रयास किया लेकिन तुमने मेरी एक भी बात नहीं सुनी। तुमको किसने बड़बोला बनाया? इतना उद्दण्ड तुमको किसने बनाया? तूने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया। मेरे तनिक से क्रोध से तो तीनों लोक काँप उठते हैं। तू किस बल भरोसे निडरतापूर्वक मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है। मेरी परवाह किये बिना मेरे विद्यालय में तुम कीर्तन कर रहे हो, सबको नचा रहे हो? मेरे शत्रु के नाम का कीर्तन करते हो।

गुरुजी जो पढ़ाते हैं वो क्यों नहीं पढ़ता है। ऐसी भ्रष्टमति तुझे कहांसे प्राप्त हुई? कई प्रश्न लगातार करता गया। प्रह्लाद बोले- गुरुजी तो नाममात्र गुरुजी हैं, इन्हें परमार्थ का ज्ञान नहीं है। ये तो केवल उदरपूर्ति इन्द्रियों के पोषण वाली पढ़ाई पढ़ाते हैं, जो मुझे पढ़ना अभिष्ट नहीं है। हे पिताजी। ब्रह्म से लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म कीड़े तक की जो रक्षा करता है उसी परमात्माके बल भरोसे पर मैं रहता हूँ। उसी ने सम्पूर्ण चराचर जगत को अपने वश में कर रक्खा है। वही समस्त बलों का बल है वह सर्व शक्तिमान काल है। वही प्राण है। वही विश्वको रचनेवाला तथा संहार करनेवाला है। आप अपने इस आसुरी भाव को छोड़कर उन्हीं भगवान की शरण में जाओ। इस संसार में सब से बड़ा शत्रु मन है। वही मनुष्य को कुमार्ग में ले जाता है। यदि मारना है तो उस शत्रु को मारो सबके प्रति समत्व भाव रक्खो। जो मनुष्य मद, मत्सर, ईर्ष्या आदि इन छ: शत्रुओं को जीतकर अपने को विजयी मान बैठते हैं, वे मूर्ख हैं।

गुरु कहलावे जग जाल में फंसावे। तुच्छ भक्ति को बतावें कहे साधु मति बंक है।।
विषय कमावें छिन भोगि सुख पावें। पुनि चबे को चबावें जैसे पशु जड़ रंक है।।
साधुमति गूढ़ कैसे पावें जड़ मूढ, भव पंथ पै आरूढ़ लिये माथे पर कलंक है।।
ऐसे मतिमन्द यमदूतन के फंद परै। सांचे एक हरि शरणागत नि:शंक है।।

मैं कहता हूं किसी को सताओ मत तो मेरी मति उलटी हो गई अभद्र हो गई, असति हो गई और आप लोग कहते हैं कि उसको मार दो, उसको लूट लो, उसको नोच-खसोट दो क्या यही पढ़ाई है। पिताजी क्रोध को शान्त कीजिये। चित्त को स्थिर कीजिये, संसार में न कोई शत्रु है न मित्र। अपना मन ही शत्रु है, मन ही मित्र। इस संसार में असंयत और कुमार्ग का आश्रय लेनेवाले चित्त के अतिरिक्त और कोई द्वेष पात्र नहीं है। अत: इस चित्त को समदर्शी बनाइये। मैं मेरा तू तेरा के भाव को भूल जाइये। सबको समान भाव से आत्मरूप में देखिये। जीवों में द्वैधी भाव न देखना सबको आत्मस्वरूप ही समझना यही सर्वेश्वर की सर्वश्रेष्ठ सेवा है। वही शूर है, वही विजयी है। बाहर की विजय, विजय नहीं कहलाती। बाहर के शत्रु जीत लिये, किन्तु अत्यन्त प्रबल जो भीतर के काम, क्रोध, लोभ, मोह शत्रु हैं उन्हें न जीता तो उसका सब जीवन व्यर्थ है। जो सम्पूर्ण प्राणियों में प्रभु को देखते हैं, जो सबको हरिमय समझकर सभी का सम्मान करते हैं। ऐसे ज्ञानी-विज्ञानी परमहंस मुनि इन अज्ञान के बन्धु काम क्रोधादिक रिपुओं को जीतने में समर्थ होते हैं। जब वे भीतर के शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, तो फिर न उनके भीतरी शत्रु रहते हैं न बाहरी। वे अजातशत्रु बन जाते हैं। सो, पिताजी, आप पहिले अपने भीतरी शत्रुओं पर ही धावा बोलें। फिर आपको मुझसे भय न होगा। न फिर मुझे मारने की विविध प्रकार की चेष्टायें ही करेंगे।

हिरण्यकशिपु बड़े जोर से गरजा-बंद कर, यह बकवास बेलगाम बकवास करता जा रहा है। बड़े ऊंचे सिंहासन पर बैठा

था प्रह्लाद को गोदी में लेकर वहीं से पटका।

उठा गोद से महि पर पटका। पुत्रहानि का किया न खटका।।

वहीं से पटक दिया जमीन पर लेकिन प्रह्लादजी तनिक घबड़ाये नहीं जो जलते आंवा में से बिल्ली के बच्चों को बचा सकता है, वही प्रभु मेरी भी रक्षा करेंगे यह विश्वास है। ये भक्ति की आधारशिला है।

कवनिऊ सिद्धि कि बिनु विश्वासा, बिनु हरि भजन न भव भय नासा।।

सुनाई आज्ञा बधिक हंकार। दुष्ट को यथाशीघ्र दो मार। चले सब अस्त्र कर धार।।

इसे काटकर फेंक दो, कौन समझावे कि आपके शरीर से उत्पन्न आपका पुत्र है। इसको नहीं मारना चाहिये। अगर कोई कहे कि आपके शरीर से उत्पन्न पुत्र है, तो कहता है, शरीर से उत्पन्न फोड़ा को पाला जायेगा, भले मेरे शरीर से उत्पन्न हुआ है, तो क्या मेरे शरीर से उत्पन्न पुत्र सुखदायी नहीं है, यह तो दुखदायी फोड़ा है। इसे काटो चीर कर बहा दो। क्या करते हत्यारे बधिक जल्लाद तो आज्ञा के अधीन हैं। बड़े भारी-भारी हथियार ले लेकर चले।

मर्म स्थल प्रह्लाद के जहँ तँह करहिं प्रहार। पड़ी न तन पर रेख भी, टूटे सब हथियार।।

जल्लादों के कठोर अस्त्र शस्त्र सब टूट गए प्रह्लाद के शरीर पर एक खरोंच तक नहीं आई। क्यों?

कहा करैं जन दुष्ट कृपा जब सुन्दर श्याम की। हुआ दैत्य मन अचरज भारी।।

सोचने लगा ऐं न रोग से मरूं न हथियार से मरूं वरदान पाया, मैंने और अमरत्व आ गया इसमें।

छोड़े नाग उग्र विषधारी।

बड़े-बड़े नागों को लाकर छोड़ा गया उन नागों में तक्षक का भी नाम है। ये नाग आये और प्रह्लादजी के शरीर का दंशन करने लगे। **करहिं सब दंशन बारम्बार। किन्तु सब यत्न हुआ बेकार।।**

उन नागों के दांत टूट गये। मणियां छिटक गई, विष की थैली सब खत्म हो गई, लेकिन प्रह्लाद का बाल बांका नहीं हुआ। बड़े-बड़े प्रयास किये गये प्रह्लादजी को मारने का। भोजन में विष मिलाकर दिया गया। हाथियों के पावों तले कुचलवानें की कोशिश की गयी, बड़े-बड़े पत्थर बाँधकर समुद्र में डुबाने का प्रयास किया गया लेकिन सारे प्रयास निष्फल हुए।

पुनि प्रेरउ प्रह्लाद पर दिग्गज परम प्रचण्ड। टूटे उनके दांत भी ज्यों मूली के खण्ड।।

दिग्गज पृथ्वी को चारों ओर से दबाये रहनेवाले जो पृथ्वी शेषजी के मस्तक से लुढ़क न जाये उन दिग्गजों को आज्ञा दी कि इसको कुचल डालो अपने पैरों से, अपने दांतों से मार-मार कर इसकी छाती में छेद कर दो।

हिरण्यकशिपु बोला- अरे दुष्ट। मैं जब क्रुद्ध हो जाता हूँ तो लोकपालों के सहित त्रिलोकी कांप उठती है फिर भी मूर्ख, तू किसके बल पर निर्भय होकर मेरी आज्ञा के विरुद्ध कार्य कर रहा है?

प्रह्लाद ने पिता की बात सुनी फिर बड़ी विनम्रता से कहा- राजन्, ब्रह्मा से लेकर तिनके तक छोटे-बड़े, चर-अचर सब प्राणी भगवान् के ही वश में हैं न केवल मेरे और आप के, बल्कि संसार के सारे बलवानों के बल भी एकमात्र वही हैं।

वे ही महान् पराक्रमी सर्वशक्तिमान् प्रभु काल हैं तथा समस्त प्राणियों के इन्द्रियबल, मनोबल, देहबल, धैर्य, एवं इन्द्रिय भी वही हैं। वे ही अपनी शक्तियों से इस संसार की रचना, रक्षा और संहार करते हैं। वे ही तीनों गुणों के स्वामी हैं। आप अपनी इन असुर भावनाओं का परित्याग कर सब पर समान दृष्टि, समान भाव रखिये फिर देखियेगा कि आपका कोई शत्रु नहीं है। वस्तुत: इस संसार में सबसे बड़ा शत्रु है- वश में न रहनेवाला, कुमार्गगामी, अपना यह मन। मनमें सबके साथ

समानता का व्यवहार करना ही भगवान की सबसे बड़ी पूजा है।

मूर्ख लोग ही काम, क्रोध आदि डाकुओं को बिना जीते, बिना वश में किये यह मानने लगते हैं कि हमने दसों दिशाओं को जीतकर अपने वश में कर लिया है। ज्ञानी समबुद्धि व्यक्ति ही काम-क्रोधादि भीतरी शत्रुओं को जीतकर बाहरी व्यक्तियों को भी व्यवहार से वश में कर लेते हैं। जो सारे जगत् के स्वामी हैं, सर्वशक्तिमान हैं और सर्वत्र विद्यमान हैं, उन्हीं का मुझे बल है।

हिरण्यकशिपु सिर पर हाथ धर कर सोचने लगा। इतने में गुरु पुत्र शण्डामर्क ने कहा- राजन, आप चिंता न करें एक बार हमें और मौका दें, हम इसे अपने विद्यालय ले जायेंगे साम नीति, दाम नीति, दण्ड नीति और भेद नीति से कई तरह से समझायेंगे, अगर उस पर भी नहीं मानेगा तो हमारे पिताजी के पास बड़े-बड़े यन्त्र मन्त्र मारण मोहन उच्चाटन प्रयोग हैं, उनका प्रयोग किया जायेगा, बालक अपनी बाल्यावस्था में चाहे जैसा भी हठ करो, परन्तु बड़ा होनेपर वह उसे बिना प्रयास किये ही भूल जाता है। हिरण्यकशिपु ने कहा- ले जाओ।

गुरुजी विद्यालय ले जाकर सिखाने लग गये। बेटा प्रह्लाद। देख, तेरे पिताजी विश्व के सर्वोपरि शासक हैं। इनकी आज्ञा ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, वरुण, कुबेर इत्यादि सब पालन करते हैं। तू तो इनका पुत्र हैं, पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का धर्म होता है। बेटा, हमारी बात मान ले, पिताजी की आज्ञा का पालनकर, नारायण का नाम लेना छोड़ दे। प्रह्लादजी ने कहा- इनके कोई पिता हैं कि नहीं, इनके पिता तो प्रजापति कश्यपजी हैं, उन्होंने तो नारायण का कभी विरोध नहीं किया। तो जब ये अपने पिताजी की आज्ञा का पालन नहीं करते तो हमसे अपनी आज्ञा पालन की आशा कैसे रखते हैं। और अगर भगवान का भजना छोड़ दो, ये भगवान भी स्वयम् कहें, तो भी नहीं छोडूंगा है।

गुरुजी बोले- देख बेटा, तू अपने पिताजी का चौथा पुत्र है, सबसे छोटा है। तो सबसे छोटे पुत्र का राजपरम्परा में राज्यगद्दी पर अधिकार नहीं होता है। लेकिन तू हमारी बात मानकर नारायण का नाम लेना छोड़ देगा, तो हम तुम्हें राजगद्दी दिला देंगे। प्रह्लादजी बोले- भगवान से विमुख होकर मिलनेवाली राजगद्दी पर धूल। तो गुरुजी बोले- ऐसे नहीं मानेगा तो तेरी जान जायगी, तेरा प्राण लिया जायेगा। प्रह्लादजी बोले-

आत्मा अविनाशी यह तो सत चित्त आनन्द रूप। नश्वर यह देह हाड़ मांस और चाम की।।
मिथ्या अभिमान देह गेह और पराक्रम की। मिथ्या है ममता सुत दारा धन धाम की।।
राम नामरहित जो हो सम्पत्ति त्रयलोकहूं ही। एक बार लग गई तो लग गई सदा के लिये।।

गुरुजी ने देखा जब यह किसी तरह नहीं मान रहा है, तो गुरुजी ने अभिचार प्रयोग कर दिया। दक्षिणाग्नि में हवन करके काल कृत्या प्रकट की। भूरे-भूरे तांबे के से बाल, आंखे लाल-लाल, जीभ-लपलपाती, दांत खटाखट कर रहे हैं। शण्डामर्क ने कहा- इस बालक को मार डालो।

कृत्या प्रगटि कुमार पर कियो प्रहार त्रिशूल। भक्त खड़ा मुसकाय उर लग्यो आप जनु फूल।।

कृत्या ने त्रिशूल चलाया बालक की छाती पर लेकिन वह त्रिशूल छाती से टकरा कर ऐसे गिरा जैसे फूल गिरा हो। कृत्या समझ गई कि बालक निर्दोष है। ये ही पापी हैं।

मायापति सेवक सन माया, करइत उलटि परइ सुरराया।।

निर्दोष किसी भगवान के भक्त पर कोई जादू-टोना, यन्त्र-मन्त्र, षडयन्त्र अगर कोई करे, तो जिसका षडयंत्र हो उसी को

मारता है।

लम्बी लम्बी सांस लेती हुई, बहुत क्रोध में भरी हुई वह कृत्या-

लै त्रिशूल सोइ फेरि चलायो। शण्डामर्कहिं मारि गिरायो।।

गुरू पर ही उसी त्रिशूल का प्रयोग किया तो उसी समय गुरुजी समाप्त हो गये।

और आप भी नष्ट भई तत्काल। दुखित प्रह्लाद देखि यह हाल। जोरी कर विनवत दीनदयाल।।

हाय, शिष्य के नाम पर गुरुजी मारे जायें, शिष्य तो कलंकित हो जायेगा। उसी समय भगवान से प्रार्थना करने लग गए। हे नाथ, यदि आजतक भक्ति के बदले में मैंने आपसे कुछ मांगा नहीं हो, हे प्रभो आजतक मैंने किसी के प्रति द्वेष भावना नहीं रखी हो, हे नाथ, मारनेवाले में भी उनके हथियारों में भी आपका ही मैंने दर्शन किया हो तो, ये दोनो पुन: जीवित होकर उठकर बैठ जायें। सच्चे हृदय की प्रार्थना थी दोनों उठके बैठ गए। दुर्बुद्धि मरी अब-

बैर भाव बिसराय गुरु लगे देन आशीष। जल थल नभ पाताल में तेरे रक्षक हों जगदीश।।

प्रभु की कृपा दृष्टि का परिणाम है अब हिरण्यकशिपु की चिन्ता का पारावार नहीं। घोर चिन्ता के समुद्र में निमग्न था। उसी समय उसकी एक बहिन जिसको लोग होलिका कहते हैं कहीं-कहीं ढूण्डिका भी कहते हैं, वो होलिका चटकती मटकती आई और बोली- एक छोटे से बच्चे को मारने के लिये इतनी चिन्ता करने की क्या जरूरत है? मैं उसे गोदी में लेकर बैठ जाऊंगी, लकड़ी का ढेर लगाकर उसमें आग लगा दो, उसकी हड्डी तक जल जायेगी। तो हिरण्यकशिपु बोला जीजी तूं भी तो जल जायेगी। नहीं मैं नहीं जलूंगी क्यूं होलिका बोली- मुझे तो अग्नि से बचने का वरदान प्राप्त है। मुझे अग्नि नहीं जलायेगी- तो बोला जीजी फिर जल्दी कर, तो वह होलिका प्रह्लाद को गोदी में लेकर बैठी, लकड़ियों का ढेर लगाकर आग लगा दी।

जली ढुण्ढिका की पुनि होली। सुदृढ़ भक्त की मति नहीं डोली।।

हाड़ जले जैसे लाकड़ी केश जले जैसे घास। सोने जैसी बुआजी जरि गई, कोई न आयो पास।।

बुआजी की हड्डी तक जल गई, भतीजे का एक रोआं भी नहीं जला, हिरण्यकशिपु ने पूछा- क्या रे प्रह्लाद, आग से बचने का कोई मन्त्र जानता है क्या? बोले- पिताजी, बहुत प्रभावशाली मन्त्र जानता हूं। कितने अक्षर का है बोले दो अक्षर का, मात्र दो अक्षर का और प्रभाव इतना कैसा मन्त्र है?

पिताजी राम नाम जपनेवाले को भय कहां। राम नाम तो दैविक, दैहिक, भौतिक सब प्रकार के तापों का प्रकर्षेण शमन करनेवाला एकमात्र भेषज है। आपको विश्वास न हो तो आइये, मेरे पास देख लीजिये। यह आग तो मेरे को ठण्डी लग रही हैं। जल की तरह शीतल लग रही है। हिरण्यकशिपु ने कहा- मैं यहीं से देख रहा हूं, मेरी बहन की हड्डी तक जल गई और मुझे न्यौता दे रहा है।

हिरण्यकशिपु बहुत चिन्तित हुआ। ये फाल्गुन पूर्णिमा की बात थी इसके बाद लगभग दो महीने और बीते चैत्र और वैशाख, वैशाख पूरा होने में दो दिन की देरी थी। वैशाख शुक्ल चतुर्दशी जिसको नृसिंह चतुर्दशी कहते हैं उस दिन हिरण्यकशिपु स्वयं तैयार हुआ, आज तुझे कोई नहीं बचा सकता। मैं अवश्य तुझे मारूंगा। प्रह्लाद बोले- मैं कभी नहीं हिम्मत हारूंगा। तुझे कौन बचानेवाला है जो सब जग का रखवाला है। हिरण्यकशिपु बोला आज तुझे मारूं हथियारन से।

आज यमराज के पास जाने से तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। प्रह्लाद जी बोले- प्रभु रक्षक हाथ हजारन से।

जिसका रक्षक श्रीराम उसे कोई मार नहीं सकता। प्रभु जगन्नाथ का दास जगत से हार नहीं सकता।।

पुत्र के इस वचन को सुनते ही हिरण्यकशिपु आग बबूला हो उठा। उसने कहा- नीच, लगता हैं, काल अब तेरे सिर पर नाच रहा है, ताण्डव कर रहा है, क्योंकि अब तुम्हारी बक-झक अधिक बढ़ गई है। अरे मूर्ख, मरणासन्न व्यक्तियों की वाणी इसी प्रकार बेसिर-पैर की, अर्थात् असम्बद्ध, हुआ करती है।

सारा जग हो एक ओर सारी ताकत अजमा ले। चाहे जल में देय डूबा चाहे अग्नि माहिं जला ले।।
जिसको राम बनाये उसको कोई बिगाड़ नहीं सकता। प्रभु जगन्नाथ का दास जगत से हार नहीं सकता।।

हिरण्यकशपु ने बड़े जोर से डांटा चुप, इतना निर्भीक होकर किसके बल पर जुबान चलाता जा रहा है। प्रह्लाद बोले- तीन के बल पर।

हृदय राम का अटल भरोसा रामनाम मुख वाणी। सद्गुरु कृपा सतत सिर पर कर कमल अभय वर दानी।।

पिताजी, जिसके हृदय में प्रभु का अटल भरोसा हो, विश्वास हो, जिह्वा पर प्रभु का पवित्र नाम और सिर पर नारदजी जैसे गुरु का वरद हस्त हो।

वह और किसी के आगे, हाथ पसार नहीं सकता। जिसका रक्षक श्रीराम उसे कोई मार नहीं सकता।।

हिरण्यकशिपु बोला- मेरा एक तलवार का वार तेरे सारे राम नाम का नशा उतार देगा। प्रह्लादजी ने कहा- पिताजी, ये भांग धतूरे का नशा नहीं है।

हरि नाम प्रेम का दिव्य नशा जो एक बार चढ़ जाये। अन्तर वैभव आनन्द ब्रह्मा से भी बढ़ जाये।।
कोई भय या जगत प्रलोभन सा उतार नहीं सकता। जिसका रक्षक श्री राम उसे कोई मार नहीं सकता।।

हिरण्यकशिपु ने कहा- आज मैं तुझे मार डालूंगा। प्रह्लादजी बोले-

पिता अधिकार है तुमको मुझे गिरि से गिराने का। जलाशय में डूबाने का ओ पावक में जलाने का।।
हमें भी सोलहीं आना दिया अधिकार ईश्वर ने। प्रतिज्ञा पालने में शान्ति से सब दुख उठाने का।।
तुम्हें अधिकार है राजन् मुझे शूली दिलाने का। मुझे अधिकार है फिर भी न पग पीछे हटाने का।।
आपकी दमशनशाली स्वयम् एक दिन दमन होगी। समय भी अब उपस्थित है दमनकारी के आने की।।

हिरण्यकशिपु बोला- तुम बड़े अभागे हो। सारी दुनियाँ मुझे ईश्वर मानती है और तू मुझसे अतिरिक्त किसी और को ईश्वर बतलाता है। बोल, कहाँ है तेरा वह ईश्वर? हे मन्द भाग्य, तू जिस जगदीश्वर को कह रहा है, यदि वह मुझसे कोई भिन्न दूसरा है तो उसे बता। वह कहाँ रहता है। तू कहता है वह सर्वत्र है, तो इस खम्भे में दिखाई क्यों नहीं देता?

मुखतें मधुमय मधुर नाम माधवके गावत। शीलवान अति सरल लख्यो सुत सम्मुख आवत।।
किटकिटायकें दाँत दैत्य गर्जन करि बोल्यो। मानों विषतें भर्त्यो स्याँपने निज मुख खोल्यो।।
दुर्निवीत कुलरिपु। अधम, बोल्यो विषय उगिलत वचन। बोलि विष्णु तेरो कहाँ? पठऊँ तोकूँ यमसदन।।

प्रह्लाद बोला- पिताजी, वह तो सर्वत्र व्याप्त है। संसार की ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ वह न हो। सर्वत्र अर्थात सब स्थानों में मुझमें, तुममें, खड्ग में, वृक्ष में, लता में, गुल्म में। हिरण्यकशिपु बोले- क्या वह इस पत्थर के खम्भे में भी है? प्रह्लाद बोला- हाँ, वह इस खम्भे में भी है। हिरण्यकशिपु ने कहा- यदि खम्भे में है, तो दिखलाई क्यों नहीं पड़ता? प्रह्लाद बोला- पिताजी, खम्भे में परमात्मा दिखलाई पड़ रहे हैं। मैं तो उन्हें देख रहा हूँ। अब यदि आपको नहीं दिखलाई पड़ें तो मैं क्या करूँ? जिसकी आंखोंमें दोष हो उसको सामने की स्थूल वस्तु भी दिखाई नहीं देती। नारदबाबा चष्मा चढ़ा देंगे। वो तो

समान रूप से सबमें व्याप्त है।

भगवान साधारण स्थिति में प्रकट नहीं होते। जिन्हें खाने पीने में संसारी सुखों में ही सुख मिलता है, जिन्हें अपनी साधारण स्थिति पर सन्तोष हैं, वहाँ भगवान शीघ्र ही प्रकट नहीं होते। जहाँ अत्यन्त काम भाव से, अत्यन्त क्रोध भाव से, अत्यन्त द्वेष भाव से, अत्यन्त भय से, अत्यन्त स्नेह से मनुष्य सीमा का उल्लंघन कर जाता है। इन भावों को पराकाष्ठा पर पहुँचा देता हैं, वहाँ तुरन्त श्रीहरि प्रकट हो जाते हैं। सम्पूर्ण चित्त की वृत्तियों को बटोरकर मन को उन्हीं में तल्लीन करके भगवान की कृपा का, उनकी सर्व व्यापकता का अनुभव किया। भगवान तो भक्त के वश में हैं। सच्ची पुकार के पीछे दौड़नेवाले हैं। प्रह्लादजी ने अनुभव किया कि खम्भ में से भगवान झाँक रहे हैं और अपनी विकराल मूर्ति से अट्टहासकर रहे हैं। प्रह्लादजी के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने चौंककर चिल्लाकर दृढ़ता के स्वर में दैत्यराज से कहा- पिताजी। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, भगवान वासुदेव इस खम्भ में अवश्य हैं। साकार स्वरूप से विराजमान हैं।

हममें तुममें खड़ग खम्भ में, घट घट व्यापक राम। प्रेम भक्ति से लखि परे सो समस्त सुखधाम।।

यदि वह सर्वत्र तो कस्मान् स्तम्भे न दृश्यते।

हिरण्यकशिपु बोले- बस, बस, तू बहुत बकवास कर चुका। सम्प्रति मैं तेरा सिर धड़ से अलग किये देता हूँ। अब वह हरि आकर तुम्हारी रक्षा करे, जिस पर तुम्हारा इतना भरोसा है। पहिले मैं तेरे विष्णु को देख लेता। इस प्रकार कहते हुए हिरण्यकशिपु खड्ग लेकर सिंहासन से कूद पड़ा और खम्भे के पास जाकर उस पर जोर से एक घूँसा मारा।

दैत्यराज के जिस मुक्के से पृथ्वी फट जाती थी, उस मुक्के का खम्भा पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। यही नहीं उसमें से एक अत्यन्त भयानक शब्द हुआ। जिसकी प्रतिध्वनि तीनों लोकों में भर गई। लोकपाल घबड़ा गये। ब्रह्माजी डरकर वेद पढ़ने लगे, ऋषिगण स्वस्ति-स्वस्ति कहने लगे। सबको ऐसा प्रतीत हुआ मानों ब्रह्माण्ड कटाह फट गया हो।

विष्णु कहाँ रे, दुष्ट ताहि यम सदन पठाऊँ। यत्र तत्र सरवत्र कहाँ हौं तिन्हें बताऊँ।।

मों में, हाँ, का सभामाहिँ? है अवसि तहाँऊँ। खम्भ माहिँ? कहि दई पिताजी, रहे वहाँऊँ।।

सुनि सिंहासनतें उठ्यो, खम्भमाहिँ घूँसा दयो। तुरत तहाँतें भयंकर, सिंहनाद भीषण भयो।।

भक्तराज प्रह्लाद ने प्रभु का स्मरण किया- अगर पुरुषोत्तम भगवान सर्वेश्वर में हमारी भक्ति है और वेद-शास्त्रों का अखण्ड अव्याहत प्रामाण्य है तो इस स्तम्भ के भीतर के भगवान शीघ्र प्रकट हों।

अपने सेवक प्रह्लादजी के कथन को सत्य बनाने के निमित्त तथा सम्पूर्ण भूतों में अपनी व्यापकता दिखाने के निमित्त उसी सभा में, उसी खम्भे के बीच से भगवान अत्यद्भुत रूप को धारण किये प्रकट हुए। वे न तो पूरे सिंह थे न मनुष्य ही।

सुनि सुत मुख व्यापक परमेश्वर। पूरित खड्ग खम्भ सचराचर। खम्भ पर मुष्टिक किये प्रहार।

जाको राखैं साइयां, मार सकै ना कोइ। बाल न बांका कर सके जो जग बैरी होय।।

उसी समय उस खम्भे से बड़ा भयंकर शब्द हुआ ऐसा जान पड़ा मानो ब्रह्माण्ड ही फट पड़ा हो। वह ध्वनि जब लोकपालों के लोक में पहुँची, तब उसे सुनकर ब्रह्मा आदि को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनके लोकों का ही प्रलय हो रहा हो। समस्त असुर-समूह उस गड़गड़ाहट को सुनकर भयसन्त्रस्त हो उठा। हिरण्यकशिपु उस समय प्रह्लाद को मार डालने के लिये झपट रहा था। जब उसने उस महाध्वनि को सुना तो घबराया हुआ-सा चारों ओर देखने लगा। परन्तु उसे सभा के मध्य कुछ भी दिखलाई न पड़ा।

इसी समय अपने सेवक प्रह्लाद की वाणी सत्य सिद्ध करने के लिये तथा अपनी सार्वत्रिक व्यापकता प्रदर्शित करने के लिये भगवान अद्भुत रूप धारण कर उस खम्भे से प्रकट हुए। वह रूप न तो पूरा-पूरा सिंह का ही था और न मनुष्य का ही।

दैत्य दानव तथा समस्त प्राणी जान लें कि श्रीहरि सर्वत्र सम्पूर्ण प्राणियों में समान रूप से व्याप्त है। उनके लिये जड़, चेतन, पत्थर, काष्ठ, देह, सभी समान हैं।

हिरण्यकशिपु सुत बधन को, लीन्हों खड्ग उठाय। रक्षा की निज भक्त की, प्रगटे नरसिंह आय।।
नख सों पेट फारि प्रभु दीन्हों, गोद उठाय भक्त र लीन्हों। देवन ने तब स्तुति कीन्ही, अभयदान निज भक्तन दीन्हीं।।
खम्भ पर मुष्टिक कियो प्रहार। प्रगट भये नरहरि खम्भा फार। गर्जना करते बारम्बार।।

क्रोध के मारे उनकी भ्रुकुटि चढ़ी हुई थी। तपाये हुए सोने के समान लाल-लाल उनकी आँखें आग उगल रही थीं। जीभ तलवार की तरह लपलपा रही थी। कान खड़े थे। मुख पहाड़ की गुफा की भाँति भयानक था। विशाल शरीर स्वर्ग का स्पर्श कर रहा था। गर्दन मोटी, छाती चौड़ी और कमर पतली थी। चारों ओर सैकड़ों भुजाएँ फैली हुई थीं। उनमें बड़े-बड़े नख आयुध की तरह प्रतीत हो रहे थे। हिरण्यकशिपु ने इस विकराल आकृति को देखा। देखते ही उसकी घबराहट बढ़ गई। उसने सोचा यह न तो सिंह है और न मनुष्य ही। बड़ा अद्भुत रूप है। हो-न-हो महामायावी विष्णु ने मेरा वध करने के लिये यह रूप धारण किया हो किन्तु यह मेरा बिगाड़ ही क्या सकता है? मुझे तो ब्रह्मा से सब प्रकार के वर प्राप्त है। अब हिरण्यकशिपु का बचना मुश्किल हो गया। उसने मांगा था न मनुष्य से मरूं न पशु से ये मनुष्य है कि पशु न मनुष्य लगता है न पशु लगता है। दोनों का मिश्रित स्वरूप हैं।

इस प्रकार कहता और सिंहनाद करता हुआ दैत्यराज हिरण्यकशिपु गदा उठाकर नृसिंह पर झपटा। मरने के समय में फतिंगा को दीपक की लौ पर कूदना ही पड़ता है। उसने अपनी अतिविशाल गदा घुमाई और उसे भगवान् पर दे मारा। प्रहार करते ही लपककर भगवान ने गदा-सहित दैत्यराज को पकड़ लिया। वे उसके साथ खिलवाड़ करने लगे। मौका पाकर हिरण्यकशिपु उनके हाथ से उसी प्रकार निकल भागा जैसे गरुड के चंगुल से साँप छूट जाय।

बन गये नारायण नरसिंह भक्त प्रह्लाद बचावन हेत।।

वैशाख का महीना था। शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तिथि थी। इसी दिन की यह घटना है जब तक सूर्य दिखाई पड़ते रहे तब तक तो प्रभु उसके साथ पैंतरेबाजी करते रहे।

मायावी तू विष्णु मारिवे मोकूँ आयो। बहुरूपी सुर अधम आजु अस वेष बनायो।।
तकिकें मारूँ गदा धरनिपै तोइ गिराऊँ। मिल्यो बहुत दिन माहिँ बन्धुऋण आजु चुकाऊँ।।
यौं कहि दौरयो गदा लै, अट्टहास नरहरि करयो। प्रभुके बलयुत तेजमहँ, खल पतंग सम गिरि गयो।।
ज्यौं ई दौरयो दैत्य पकरि नरहरिने लीन्हौं। छटपटाइकें यत्न निकसिवेको बहु कीन्हों।।
श्रीहरि लीला करी ढीलि दीयो छुटि भाग्यो। जानि असुरकूँ बली सुरन अति विस्मय लाग्यो।।
हरि हाथनितें निकसिकें, वेग सहित इत उत फिरै। नीचे ऊपर उछरिकैं, रन कौतुक बहु विधि करै।।

नारदजी धर्मराज युधिष्ठिर से कह रहे हैं- राजन्, जिस प्रकार बाज पक्षी वेग के साथ ऊपर नीचे आता जाता है उसी प्रकार ढ़ाल तलवार के पैतरे बदलते हुए, निरन्तर ऊपर नीचे उछलते-कूदते महादैत्य हिरण्यकशिपु को महान् पराक्रमी नृसिंह भगवान ने उच्चस्वर से प्रचंड अट्टहास करते हुए पकड़ लिया। भगवान के सहसा प्रहार तथा सिंहनाद से उसकी आँखे मिच गईं। देवता इसे देखकर भयभीत हो उठे पुन: उसने ढाल-तलवार लेकर पैतरा बदलते हुए भगवान पर आक्रमण किया।

उसे सामने आया देखकर भयंकर गर्जना करते हुए नृसिंह ने उसे धर दबोचा और अपनी जाँघों पर लिटा कर नखों से उसका वक्ष:स्थल फाड़ डाला और हिरण्यकशिपु की मृत्यु हो गई। इसकी भी मन मुराद पूरी कर लेने दो। और ज्यों सूर्य अस्ताचल को गये पकड़ कर के प्रभु ने अपनी जंघा पर लिटाया उसको।

परयो असुर पुनि फंदमें, भूल्यो सब फरफंद अब। सिंहनाद हरिने करयौ, नेत्र ह्वै गये बन्द तब।।
कृपासिंधु ने भक्त उबारा। खेल खिलाकर असुर संहारा।
उदर रिपु का नख से फार, आंत का पहिर गले में हार, क्रोध का रहा न पारावार।।
अति विकराल कराल नयन नरहरिके चमकैं। गर्जन तर्जन करैं केश कंधाके दमकैं।।
लपलपाइ हरि जीभ ओठकूँ चाटै पुनि पुनि। कापैं सबरे असुर भयंकर सिंहनाद सुनि।।
सभा द्वार सन्ध्या समय, जंघा पै धरि नखनितें। फास्यौ नरहरिने उदर, बच्यौ नहीं विधि वरनितें।।

उसी दैत्यराज को सभा की देहली पर बैठकर अपनी जाँघों पर रखकर भगवान ने उसे नखों से लीलापूर्वक उसी प्रकार चीर डाला जैसे गरुड़ महाविषधर को चीर डालता है।

देहरी अर्थात् चौखट पर बैठ गये, बीच में बैठ गये और अपनी जंघा पर लिटा कर अपने नाखून से उसके उदर को विदीर्ण किया। और उसकी अन्तड़ियों को निकाल कर अपने गले में हार की तरह पहन लिया। उदर विदीर्ण करते समय ठहराया कि नीच वरदान मांगकर के ब्रह्मा से अपने को अमर मान रखा था। न मनुष्य से मरूं न पशु से बोल मैं मनुष्य हूं कि पशु। हिरण्यकशिपु बोला कि न पूरे मनुष्य मालूम पड़ते हो न पूरे पशु मालूम होते हो। तुम क्या हो तुम ही जानो। तुझे ब्रह्मा की सृष्टि से बने जीव से अभय प्राप्त है पर मुझको तो ब्रह्मा ने नहीं बनाया। ब्रह्मा को तो मैंने स्वयं बनाया है।

सूर सुयश करि कहा वखाने। गोविन्द की गति गोविन्द जाने।।

ब्रह्मा का ये वरदान सत्य हुआ कि नहीं, बोला हो गया। तूने मांगा था कि न दिन में मरूं न रात मे, बोल अभी दिन हैं, कि रात, सूर्य अस्त हो गया इसलिये दिन नहीं है और तारे अभी दिखाई नहीं पड़ रहे हैं इसलिये रात भी नहीं है। दिन का समापन रात्रि के आगमन के पहले का बीच का संधि काल है। जिसको संध्याकाल बेला बोलते हैं। तू न दिन में मर रहा है न रात में मर रहा है, तो ब्रह्मा का यह भी वरदान सत्य हुआ बोला सत्य हुआ। तेनें मांगा था कि मैं न घर के भीतर मरूं न बाहर मरूं, अब बता घर के भीतर मर रहा है कि बाहर मर रहा है, बोला मैं न घर के भीतर मर रहा हूं न घर के बाहर मर रहा हूं बीच चौखट पर देहरी पर हूं, क्या यह भी वरदान सत्य हुआ? सत्य हुआ। इसलिये आज भी कोई बहू बेटी चौखट पर बैठती है तो बूढ़ी दादी कहती हैं बेटी या तो भीतर आ जा नहीं तो बाहर चली जा बीच चौखट पर बैठेगी तो नृसिंह भगवान खबर ले लेंगे देहरी पर चौखट पर बैठने का अधिकार दो ही को है या तो नारायण नृसिंह रूप में बैठें या दीपक रूप में लक्ष्मी जी।

तेने मांगा था कि न धरती पर मरूं न आकाश में तो बोल धरती पर है कि आकाश में। बोला न मैं धरती पर हूं न आकाश में तुम्हारी गोद में हूं तो क्या यह भी वरदान सत्य हुआ- बोला सत्य हुआ। तेने मांगा था कि न मैं रोग से मरूं न हथियार से से बोला नाखून से फाड़ रहे हो, नाखून की गिनती रोग में भी नहीं है और हथियार में भी नहीं है। यह भी वरदान सत्य हुआ। कोई कोई कहते हैं उसने यह भी मांगा था कि बारह महीने में नहीं मरूं। तो भगवान ने तेरहवां महीना पुरुषोत्तम मास निकाल लिया था। उस साल इस प्रकार ब्रह्मा के सारे वरदानों को सत्य करते हुए उस दुष्ट के उदर को नाखूनों से विदीर्ण करते हुए उसके अंतड़ियों की माला पहन ली अंतड़ी की माल क्यों पहनी सिंह का स्वभाव होता है। नारदने इन्द्र से कहा था कि कयाधु के गर्भ से भक्त बालक होगा और उसको किसीसे भय नहीं है। इसको सत्य करने तथा अपने भक्तोंकी रक्षा करने,

भक्तोंकी वाणी परमात्मा जगत में परिपूर्ण है, इसको सत्य दर्शाने भगवानने नृसिंह रूप धारण किया।

सूर अनेक फिरे कण मांगत, पै पद सूर सो स्वाद कहां।
बहुत ताल मंजिरा बजाती फिरे मीरा मतवाली सी याद कहां।।
सियाराम कथा कितनों ने लिखी, तुलसी जैसी मर्यादा कहां।
नरसिंह बसे प्रति खम्भन में, पर काढ़न को प्रह्लाद कहां।।
जिसने हांका रथ पारथ का, वह त्यागमयी अनुरक्ति कहां।

कर दे मन प्राण निछावर जो, वह पावन प्रेमासक्ति कहां।।
जिसमें प्रह्लाद सा हो विश्वास, ध्रुव सी ध्रुवता वह शक्ति कहां।
भगवान खड़े मिलने के लिये, पर मन में वह भक्ति कहां।।
माया के घोर जलाशय से तुम बाहर तनिक कढ़ो तो जरा।
किस कारण दूर खड़े डरते, तब प्रेम खजूर चढ़ो तो जरा।
वह सुन्दर श्याम मिलेगा तुम्हें, तुम प्रेम का पाठ पढ़ो तो जरा।।
कांपत त्रिलोक अवलोकि के अपूर्व क्रोध। बोध नहिं आवे उर यतन हजार से।।
भृकुटि कुटिल उर आंतन को हार धरे। नेत्र भये लाल मानो वरषे अंगार से।।
शंकर विरञ्चि इन्द्र वरुण कुबेर आदि। लक्ष्मीसमेत खड़े सोचत लाचार से।।
असुर संहार पुनि प्रभु मन आई कहा। क्रोध प्रगट्यो मानो प्रलय के विचार से।।
विनय किया बहुत भांति से किया कोटि उपचार। किन्तु नहीं उतरा तनिक प्रभु का क्रोध अपार।।
अब तो भय से कांपे थरथर सबके मुखड़े पड़ गये श्वेत। बन ये नारायण नरसिंह भक्त प्रह्लाद बचावन हेत।।

हिरण्यकशिपु ने मृत्यु से बचने का बहुत इन्तजाम कर रक्खा था- भीतर न मरूँ, बाहर न मरूँ, आकाश में न मरूँ, धरती पर न मरूँ, अस्त्र से न मरूँ, शस्त्र से न मरूँ, दिन में न मरूँ, रात में न मरूँ। ये सायंकाल गोधूलि की बेला थी।

भगवान ने उसे मारने का भी सब इन्तजाम कर रक्खा था। न भीतर न बाहर, चौकट पर, न आकाश में, न पृथ्वी पर, जंघा पर, न दिन में, न रात में, सन्ध्या में, न अस्त्र से न शस्त्र से, नाखूनों से विदीर्ण कर डाला। हिरण्यकशिपु बोला- आप मुझे नहीं मार सकते। मैंने ब्रह्मा से वरदान माँगा हैं कि हे विधाता, तेरी सृष्टि में आपके द्वारा बनायी हुई किसी भी चीज से मैं नहीं मरूँ। नृसिंह बोले- हमें ब्रह्मा थोड़े ही बनाता है, हम ब्रह्मा को बनाते हैं।

उसकी अँतड़ियों को निकाल कर गले में माला की तरह पहन लिया और उसे जमीन पर फेंक दिया। जिस हिरण्यकशिपु से संसार थरथर काँपता था, वह निर्जीव होकर भूतल पर पड़ा हुआ था। यही है जगत् का खेल। हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर जो जो दैत्य लड़ने के लिये सामने आये भगवान् ने उन सबका वध कर डाला। शेष दैत्य युद्ध-भूमि से भाग खड़े हुए। अब कोई लड़नेवाला ही न था। हिरण्यकशिपु को मार डालने पर भी भगवान का कोप इतना उग्र था कि वह शान्त ही नहीं हो रहा था।

ढलता सूरज ढलते ही जायेगा...
मुठ्ठी बाँध के आया था, हाथ पसारे जायेगा, क्या लेके आया था क्या लेके जायेगा
गया सिकन्दर हार के हाथ उसका खाली था।

परमात्मा का कोप यदि शांत नहीं होता तो पृथ्वी पर प्रलय हो सकता है। उस समय की ज्योति से सम्पूर्ण ग्रहों की ज्योति फीकी पड़ गई। उनकी स्वाँस से समुद्र में ज्वार भाटा आने लगा। उनके अट्टहास से आकाश पाताल तथा सारा ब्रह्माण्ड डगमगाने लगा। उनके सामने जाने की किसी की हिम्मत ही न होती थी। वे उस समय हिरण्यकशिपु के सिंहासन पर विराजे।

सिंहासन खाली लख्यो, जाइ बिराजे धम्मतें। यों सेवक हित सर्वत, प्रकटे नरहरि खम्भतें।।

धर्मराज युधिष्ठिर से नारदजी कह रहे हैं- राजन्, अब नृसिंह भगवान उस सभा में उत्तम सिंहासन पर जाकर विराजमान हो गये। उनका बदन विकराल था, तेज से वे जाज्वल्यमान थे यद्यपि अब उनकी भयंकर मूर्ति को देखकर कोई उनके समीप नहीं गया।

भगवान के हिरण्यकशिपु के सिंहासन पर विराजमान होने का रहस्य यह है- अब तक उस सिंहासन पर भगवान से द्वेष करनेवाला हिरण्यकशिपु बैठता था। उसके संस्कारों से वह दूषित हो चुका था, वासित हो चुका था। सिंहासन का उत्तराधिकारी प्रह्लाद था। वह उस पर बैठेगा तो उसके दूषित संस्कार प्रह्लाद पर भी प्रभाव डाल सकते हैं अत: भगवान उस पर बैठे। उसे अपनी उपस्थिति से, शुभ संस्कारों से, संस्कृत किया फिर उसे प्रसाद बनाकर प्रह्लाद को प्रदान कर दिया, उस पर बैठा दिया। उस समय देवगण आकाश से पुष्प-वृष्टि करने लगे, दुन्दुभियाँ बजने लगीं। ब्रह्मादि देवों ने सुन्दर-सुन्दर पद्यों से क्रमश: भगवान की स्तुति की फिर भी भगवान का न तो क्रोध ही शान्त हुआ और न रूप ही सौम्य हुआ।

धरती कांप रही है, लगता है प्रलय हो जायेगा। जरा सी भौंह टेढ़ी कर दे तो प्रलय हो जाय। इतना अपार क्रोध देखकर सब कांप रहे हैं। देवताओं ने कहा- लक्ष्मीजी से माताजी, आप सम्भालो आपके प्राणनाथ हैं? नहीं तो प्रलय हो जायेगा। लक्ष्मीजी बोली- अभी जाती हूं। अभी सम्भालती हूं अपने प्राणनाथ को। और ज्यों ही लक्ष्मीजी पास में गई, प्रभु ने घूर के देखा तो भागी लक्ष्मी जान ले के। वहाँ से ऐसी दौड़ लगायी लक्ष्मीजी ने कि बैकुण्ठ में जाकर ही दूसरी सांस ली।

देवताओं ने कहा- माताजी आपके प्राणनाथ हैं, आप क्यों भाग रही है। हां है तो प्राणनाथ, पर आज तो प्राणों के ग्राहक बन बैठे हैं। मेरी हिम्मत नहीं इनके पास जाने की मैंने कभी इनका ऐसा क्रोध नहीं देखा। सृष्टि बचे या प्रलय हो, मेरी हिम्मत नहीं इनके सामने जाने की। लक्ष्मीजी को घुर्रा के क्यों देखा। इसलिये कि तुम्हारे चलते सारा झगड़ा खड़ा हुआ है।

अब शंकरजी ने, ब्रह्माजी ने, नारदजी ने आपस में सलाह करके कि तुरंत की ब्यायी हुई गैया के पास बिना उसके बछड़े के कोई जाय तो लगता है पेट फाड़ देगी, अब उसके बच्चों को थन में लगा के देख लो, सारा क्रोध खत्म हो जाता है। इस समय प्रभु गैया हैं तो प्रह्लाद ही इनके बछड़ा है इसलिये प्रह्लाद को ही इनके पास भेजो, अब प्रह्लाद को सबने एकान्त में बुलाकर पूछा- प्रह्लाद तुमको डर लगता है कि नहीं इनको देख कर प्रह्लादजी बोले- सिंह का बच्चा भी कहीं सिंह से डरता है। मुझको बिल्कुल डर नहीं लगता। कहिये तो अभी इनकी गोदी में जाकर बैठ जाऊं। ब्रह्मा बोले- तू तो केवल सामने से जाकर दण्डवत प्रणाम कर देख कोई परिवर्तन आता हैं क्या?

सबने मिलकर यत्न बनाया, हरि समीप प्रह्लाद पठाया।
करत दण्डवत देखि प्रिय लाल, लपकि उन लाये दीनदयाल।। भक्त भगवत दोऊ भये निहाल।।
कमलयोनि प्रह्लाद बुलाये बोले बानी। बेटा विभु अति कुपित डरीं कमला पटरानी।।
तुम प्रभुके हो भक्त चरन ढिँग उनके जाओ। करि विनती परि पैर कुपित नर हरिहिँ मनाओ।।
तब बोले प्रह्लाद विधि, नरहरि ढिँग हौं जाऊँगो। विनय करौं अति दीन ह्वै, सब विधि प्रभुहिँ मनाउँगो।।

नारदजी ने कहा- युधिष्ठिर, ब्रह्मा एवं शंकर आदि सभी देवों ने भगवान नृसिंह की प्रशंसा एवं दैन्यभरी स्तुति की किन्तु

उनका अपार क्रोध शान्त नहीं हुआ। उनकी भयानक आकृति को देखकर किसी की हिम्मत उनके पास जाने की नहीं हुई। देवों ने लक्ष्मी जी से प्रार्थना की- माताजी, आप भगवान की अर्द्धांगिनी हैं। वे इस समय भयंकर क्रोध में हैं। आप ही उन्हें मना सकती हैं, शान्त कर सकती हैं। देवों की प्रार्थना पर लक्ष्मीजी भगवान की ओर बढ़ी तो अवश्य किन्तु उनके अद्भुत रूप को देखकर आशंकावश वे भी उनके पास न जा सकीं। उन्होंने भगवान का ऐसा रूप न तो कभी देखा था और न सुना ही था। एक क्षण के लिये मान लीजिये, यदि लक्ष्मीजी को देखकर भगवान् के मन में प्रेम उमड़ आया और उन्होंने उन्हें छाती से लगाकर प्यार करना शुरू कर दिया तो लक्ष्मी जी का शरीर रक्तरंजित हो उठेगा अत: डरके मारे वे अपने पति के पास नही गईं फिर ब्रह्माजी ने प्रह्लाद से कहा- बेटा, तुम जाओ। भगवान् के क्रोध को शान्त करो।

ज्यों नन्हें से प्रह्लाद ने सामने से प्रणाम किया झट प्रभु ने लपक करके गोदी में उठा लिया, छाती से चिपका लिया। मेरे प्रह्लाद उनके सिर पर अपना करकमल रख दिया। भगवान के करकमलों का स्पर्श पाते ही प्रह्लादजी के सारे अशुभ नष्ट हो गये। वे परमानन्द में मग्न हो गए।

सिंह से दुनियाँ डरती है पर उसका बच्चा नहीं डरता है? निर्भय होता है। बड़ी निर्भीकता के साथ भक्तराज प्रह्लाद गये। भगवान के चरणों पर मस्तक रख दिया। भगवान ने उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया और बड़ा प्यार किया।

हैं जो जगके ईश प्रनतके प्रन प्रतिपालक। हौलें हौलें गये जोरि कर प्रभु ढिँग बालक।।
परे दण्डवत भूमि माहिँ चरननि लिपटाये। देखि दयावश दौरि देवने तुरत उठाये।।
शिशु कपोल करतें गह्यो, पुनि पुनि मुख चुम्बन कस्यो। सिर सूँघ्यों पुनि लाइ उर, अभय करन कर सिर धस्यो।।

अर्थात कहाँ यह तुम्हारा कोमल-कान्त-कमनीय सुन्दर पाँचवर्षीय मंगलमय शरीर और कहाँ प्रमत्त दैत्य के द्वारा दी गई (भीषण) यातनाएँ। यह अभूतपूर्व विषमता इसके पहले कभी भी देखने में नहीं आई। भगवान बोले-वत्स, तुम्हारे बुलाने पर मैंने जल्दी-से-जल्दी आने का प्रयत्न किया पर यदि कुछ विलम्ब हुआ हो तो क्षमा कर देना मेरे लाल। तुम्हारे बुलाने में तो देर नहीं हुई पर मेरे आने में देर हो गई।

भगवान के करकमलों का स्पर्श होते ही उनके बचे-खुचे अशुभ संस्कार भी समाप्त हो गये। उस समय उनका सारा शरीर रोमांचित हो उठा, हृदय में प्रेम की धारा उमड़ पड़ी और नेत्रों से आनन्दाश्रु झरने लगे। किसी तरह अपने को संभाल कर प्रह्लाद ने स्तुति की। प्रह्लाद ने जो स्तुति की उसका एक-एक शब्द अमूल्य है, सर्वशास्त्रों का सार हैं, ज्ञानरूपी समुद्र को मथकर वह स्तुति रूपी अमृत निकाला गया है। वह भक्ति रूप दुग्ध की मधुर मनहर मलाई है। उसमें प्रह्लादजी की वाणी ही नहीं है हृदय की आह है।

प्रह्लाद के नेत्रों से आनन्दाश्रु झरने लगे, भावपूर्ण हृदय से निर्निमेष नेत्रों से उन्होने भगवान की दिव्य अलौकिक झांकी का दर्शन करते हुए प्रेम और गद्गद् वाणी से स्तुति की- हे भगवान, ब्रह्मा रुद्र आदि देवता ऋषिमुनि सिद्ध गण आपकी धारा प्रवाह स्तुति करके भी आपको सन्तुष्ट नहीं कर सके, तो मैं दैत्य कुल में उत्पन्न एक छोटा बालक भला आपको क्या सन्तुष्ट कर सकता हूं। हे सर्वशक्तिमान्, प्रभो, इस जगत का कल्याण करने के लिये आप अनेकों प्रकार की लीलाएं करते हैं। प्रभो। जिस असुर को मारने के लिये आपने क्रोध किया था, वह मारा जा चुका है, अब आप अपना क्रोध शान्त कीजिये। हे अनन्त। आपका यह स्वरूप बड़ा भयावना लग रहा है। आपकी आँखे सूर्य के समान लाल हैं, भौंहे चढ़ी हुई हैं, बड़ी पैनी दाढ़ें हैं, आंतों की माला आपने गले में डाल रखी हैं, बड़े-बड़े शत्रु के उदर को विदीर्ण करनेवाले नख हैं। फिर भी मुझे आपके इस रूप से भय नहीं लग रहा है। मैं भयभीत नहीं हो रहा हूं। भगवन, अब सब आपके शान्त स्वरूप के

दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप प्रसन्न होइये। हे पुरुषोत्तम प्रभो, मैं आपकी शरण में हूं। प्रभो, प्रसन्न होइये। आज आपने अपना सर्वसन्तापहारी करकमल मेरे सिर पर रखा। प्रभो, मैं तो इसी से निहाल हो गया इस प्रकार जब प्रह्लादजी ने प्रभु की स्तुति की तो नृसिंह भगवान का क्रोध शान्त हो गया एकदम पर्दा बदल गया। प्रह्लाद बोले-मुझे ऐसा आशीर्वाद दें कि प्रत्येक इंद्रिय आप में लगाऊँ। जिसे देखूँ उसमें मुझे मेरे गोविन्द ही दिखायी दें।

छिन पहिले जिन नयन से बरस रहे अंगार। तिन नयनन अब देखिए प्रकट प्रेम रसधार।।

चूमत मुख चाटत तनु पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेत। बनि गये नारायण नरसिंह भक्त प्रह्लाद बचावन हेत।।

परम सात्त्विक ब्रह्मा आदि देवता, मुनि-गण और बड़े-बड़े सिद्ध अनेक प्रकार के स्तोत्रों तथा विविध-विध गुणों से जिनको प्रसन्न न कर सके, उन भगवान हरि को भला असुरजाति में उत्पन्न मैं कैसे सन्तुष्ट कर सकता हूँ?

मैं समझता हूँ कि धन, उत्तम कुल, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभा, बल, पौरुष, बुद्धि और योग ये सारे गुण परम पुरुष आपको सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं हैं। वस्तुत: आप तो एकमात्र भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। इसका उदाहरण है- गजेन्द्र। व्याध, ध्रुव और कुब्जा आदि भी इसके उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

आप प्रभो, उपर्युक्त इन बारह गुणों से अलंकृत ब्राह्मण भी यदि कमलनाभ के चरण-कमलों की भक्ति से विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, उत्तम है, जिसने अपना मन, धन, प्राण, वचन और कर्म सब कुछ भगवान् के चरणों में समर्पित कर रक्खा है। भगवान का प्यारा भक्त चाण्डाल तो अपने सारे कुल को, कुल के सारे प्राणियों को पवित्र कर देता है, तार देता है किन्तु अपने बड़प्पन का अभिमान रखनेवाला ब्राह्मण अपने को भी पवित्र नहीं कर सकता, कुल की बात तो बहुत दूर रही।

सर्वशक्तिमान् प्रभु अपने स्वरूप के साक्षात्कार से ही परिपूर्ण हैं। उन्हें अपने लिये क्षुद्र पुरुषों से पूजा ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। वे करुणावश ही भोले-भाले भक्तों के हित के लिये उनके द्वारा की गई पूजा स्वीकार कर लेते हैं जैसे अपने मुख का सौन्दर्य दर्पण में दिखनेवाले प्रतिबिम्ब को भी सुन्दर बना देता है, बिम्ब की सजावट प्रतिबिम्ब को सजा देती है, वैसे ही भक्त भगवान के प्रति जो-जो सम्मान प्रकट करता है, वह उसे ही प्राप्त होता है।

इसलिये सर्वथा अयोग्य और अनधिकारी होने पर भी मैं बिना किसी शंका के अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान की महिमा का वर्णन कर रहा हूँ। इस महिमा के गान का फल यह है कि अविद्या के कारण संसार-चक्र में पड़ा हुआ जीव तत्काल पवित्र हो जाता है। अच्युत, मैं अपनी दशा का क्या वर्णन करूँ? यह कभी तृप्त न होनेवाली जीभ मुझे स्वादिष्ट रसों की ओर खींचती रहती है। जननेन्द्रिय स्त्री-सम्भोग की ओर, त्वचा सुकोमल स्पर्श की ओर, पेट स्वादिष्ट भोजन की ओर, कान मधुर संगीत की ओर, नासिका भीनी-भीनी सुगन्ध की ओर और ये चंचल नेत्र सौन्दर्य की ओर मुझे खींचते रहते हैं। इसके अतिरिक्त कर्मेन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषयों की ओर ले जाने को जोर लगाती ही रहती हैं। नाथ, क्या कहूँ? मेरी तो वह दशा हो रही है, जैसे किसी पुरुष की बहुत-सी पत्नियाँ उसे अपने-अपने शयन-कक्ष में ले जाने के लिये चारों ओर से पकड़कर खींच रही हों, घसीट रही हों। यह सब जानते हुए भी मनुष्य को वैराग्य नहीं होता और वह धधकती हुई कामाग्नि को घृतबिन्दु तुल्य सुखलेशों से शान्त करना चाहता है।

परम पूज्य, आपकी सेवा के छ: अंग हैं- नमस्कार, स्तुति, समस्त कर्मों का समर्पण, सेवा-पूजा, चरणकमलों का चिन्तन और लीला-कथा का श्रवण। इस षडङ्ग-सेवा के बिना आपके चरण-कमलों की भक्ति नहीं प्राप्त होती और भक्ति के बिना आप की प्राप्ति भी नहीं होती। प्रभो, प्राणियों को आप अपनी दास्य-भक्ति प्रदान करें- यही मेरी प्रार्थना है। मैं सबके उद्धार के बाद ही अपना उद्धार चाहता हूँ। स्वामिन् आपके चरणों में मेरा बार-बार विनम्र प्रणाम है।

इस प्रकार भगवान की भावभरी स्तुति कर प्रह्लाद शान्त हो गये। स्तुति से भगवान प्रसन्न हो उठे। उनका क्रोध समाप्त हो गया। उन्होंने कहा- वत्स प्रह्लाद, तुम्हारा कल्याण हो। दैत्यशिरोमणे, मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम्हारी जो अभिलाषा हो वह मुझसे मांग लो। मैं भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला हूँ। बेटा, मेरी प्रसन्नता के बिना मेरा दर्शन नहीं होता और मेरा दर्शन हो जाने पर प्राणी के सारे सन्ताप विनष्ट हो जाते हैं इसीलिये कल्याणकामी साधु-जन मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं।

बोले श्री प्रह्लाद कृतारथ भयो नाथ अब। परसे पावन पाद पदुम दुख दूरि भये सब।।
किहि विधि विनती करूँ आप हरि अन्तरजामी। भटकै जगमहँ जीव उबारौ तिनकूँ स्वामी।।
विनती सुनि प्रह्लादकी, भये मुदित श्रीरमापति। मधुर वचन बोले विहँसि, बार बार करि प्यार अति।।
अति प्रसन्न हौं वत्स माँगु तूँ वर मन चाह्यो। सकल मनोरथ सफल करन हित ही हौं आयो।।
सुनि बोले प्रह्लाद न हरि, वरतें ललचावैं। विषयनितें करि दूरि अखिलपति अब अपनावैं।।
नहिँ माँगहुँ वर विषय सुख, सदा नाथ, हियमहँ बसहिँ। करुनामय करुना करहु, कबहुँ कामना उठहिँ नहिँ।।

प्रह्लादजी भगवान से कह रहे हैं हे वरदानियों में श्रेष्ठ, हे ईश, यदि आप मुझे इच्छित वर देना ही चाहते हैं तो मैं आपसे यही वर मांगता हूँ कि मेरे मन में किसी प्रकार की कामनाओं का अंकुर ही उत्पन्न न हो यही मेरा वर है।

असुरकुल-भूषण प्रह्लाद जी भगवान के अनन्य प्रेमी भक्त थे इसलिये बड़े-बड़े लोगों को लुभानेवाले प्रलोभनों का प्रस्ताव भगवान के द्वारा उनके सामने रखने पर भी उन्होंने उनकी इच्छा नहीं की।

बेटा, तुमको दैत्य ने दिया बड़ा ही क्लेश। फिर भी तुम निज धर्म से डिगे नहीं लवलेश।।

धन्य है बेटा, बेटा प्रह्लाद मुझे क्षमा कर दे, आने में थोड़ी देर हो गई। मुझे तो बहुत पहले आ जाना चाहिए था। प्रह्लादजी बोले- नहीं प्रभु आपने मेरा साथ छोड़ा कब आप तो बराबर मेरी रक्षा करते रहे, भगवान बोले- तूने इतना कष्ट सहकर मेरी भक्ति को निभाया।

बोले प्रभु प्यारे अंग कोमल तुम्हारे। हाय असुरन शस्त्र मारे मम नाम गुण गाने में।।
गिरि से गिराये और जल में डुबाये पुनि। अग्नि में जलाये रखी कसर ना सताने में।।
उर से लगाय लिपटाय प्रभु बार बार, करुणा स्वरूप भये करुणा दिखाने में।।
मंजुल मुखार बिन्द चूम चूम कहे प्रभे। क्षमा करो लाल मुझे देर भई आने में।।

प्रभु आपकी कृपा है, नहीं तो ब्रह्माजी आपको नहीं रिझा सके। शंकर जी नहीं रिझा सके। लक्ष्मी माता आपको देखते ही भाग गईं तो दैत्यवंश में उत्पन्न मुझ एक बालक की क्या बिसात जो आपको रिझा सकूं। यह तो आपकी कृपा है। बेटा प्रह्लाद। मैं तुमसे प्रसन्न हूं कुछ वर मांग।

योग चाहे तो योग दे डारूँ, भोग चाहे तो भोग दे डारूँ।
मुक्ति चाहे तो मुक्ति दे डारूँ, भक्त जो लेन न देन करे, वाकुं टार्यो न जाय।।

जो व्यक्ति कुछ नहीं मांगता उसे तो मैं अपने आपको दे देता हूँ।

प्रह्लाद बोला- मैं कोई बनिया हूं थोड़े जो वर मांगू। क्या केवल बनियां ही मांगता है? कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि और योग मनुष्यके बड़प्पनके परिचायक तो हैं परन्तु भगवान इन गुणोंसे रिझा नहीं सकते। गजेन्द्र के पास क्या विद्या, बुद्धि थी? लेकिन उसकी भक्तिके कारण भगवान प्रसन्न हो गये। यदि सर्वगुण संपन्न ब्राह्मण भी

आपसे विमुख हो तो चाण्डाल ही श्रेष्ठ है, परन्तु वह आपका भक्त हो। अभिमानीपर भगवान प्रसन्न नहीं होते, दीनपर भगवान्‌की कृपा होती है। भला भगवान भी कोई गरीब है, उन्हें किसी चीज की जरूरत है? जिस तरह मुखका सौन्दर्य दर्पणमें दीखनेवाले प्रतिबिम्बको सुन्दर बना देता है, उसी तरह जो मनुष्य भगवान्‌की पूजा और उनका सत्कार करता है।

प्रभो, संयोग-वियोगकी आग ऐसी हैं, जिसमें मैं जन्म-जन्म जलता रहा हूँ। जो इसकी दवा है, वह भी दु:ख है। इसलिए मुझे आप अपनी सेवा दें। मुझे आपके भक्तोंका संग मिलता रहे और मैं इस संसार सागरसे पार हो जाऊँ। माता-पिता भी सब जगह अपने बालककी रक्षा नहीं कर सकते। रक्षा तो आपकी कृपा से ही होती है। हे प्रभो। आपसे कुछ मांगने की इच्छा रखकर जो भक्ति करता है वो भक्त नहीं हैं वो तो बनिया है। वो तो लेन देन का धंधा कर रहा हैं, गनीमत है वो आपके साथ कर रहा हैं। मैंने आपकी भक्ति की, तो आप बदले में मुझे ऐसा वर दे दीजिए, ये कोई भक्ति है।

भूलोक से लेकर ब्रह्मलोक तक का पार्थिव या दिव्य सभी सुख नाशवान हैं, किसी का न्यून समय में किसी का अधिक समय में नाश अवश्य होगा, ये सभी अन्तवन्त हैं। ये सभी क्षयिष्णु हैं। पुन: पुन: जन्म मरण के चक्कर में डालनेवाले हैं। अशाश्वत हैं बन्धन के कारण हैं। मैं तो इन बन्धनों से छूटने के निमित्त आपकी शरण आया हूँ।

आपने मेरे जैसे बालक को सेवक के रूप में स्वीकार किया, ये आपकी कृपा है। जैसे आप मेरे निरपेक्ष स्वामी है, मैं आपका निष्काम सेवक हूं। मुझे कोई इच्छा नहीं है। तो भगवान ने कहा- वाह रे निष्काम सेवक। एक तरफ भक्त बन रहा है और दूसरी तरफ मेरी आज्ञा का उल्लंघन भी कर रहा है। मैं कहता हूं कुछ मांग और तू कहता है, नहीं मांगूंगा तो यह आज्ञा का उल्लंघन हुआ की नहीं।

प्रह्लाद बोले- महत्व तो है प्रेम का। निरपेक्ष और निष्काम भाव से की हुई सेवा ही सच्ची सेवा है। प्रभो, मैंने आपकी भक्ति विषय भोगों की इच्छा से नहीं की है। आपको भी इसके बदले विषयों का वर देकर मेरी भक्ति के महत्व को घटाना न चाहिये। मैं आपका निष्काम भक्त हूँ, आप मेरे सच्चे स्वामी हैं। अत: आप मुझे अपना लें। इन संसारी वरों के लोभ में न फँसावे।

आप आज्ञा कर रहे हैं तो यही मांग रहा हूं कि अब तक तो मांगने की इच्छा है ही नहीं, यही वरदान दीजिये अब आगे भी कभी कुछ मांगने की इच्छा कभी न हो। ये वर मांगा यदि भीतर में कोई कामना छिपी हो तो उसको भी उखाड़ कर फेंक दीजिये। इस पर प्रह्लादजी ने कहा- प्रभो, आप देना ही चाहते हैं तो मुझे यह वर दें कि मेरे मन में किसी प्रकार की कामना ही न उठे। विषयों के उपभोग का अन्त:करण में अंकुर ही उत्पन्न न हो। प्रभो, हत्या की जड़ तो ये कामनायें ही हैं। जिस समय मनुष्य के हृदय में किसी वस्तु की कामना उत्पन्न हो जाती है तो उसकी समस्त इन्द्रियाँ चंचल हो जाती है। मन विक्षिप्त-सा होकर उसी का निरन्तर चिन्तन करता रहता है, बुद्धि की सद् असद् निर्णय करने की शक्ति कुण्ठित हो जाती है। प्राणों की गति द्रूत हो जाती है, देह के रोम-रोम में वही वासना भर जाती है। धर्म का विचार नहीं रहता। धैर्य नष्ट हो जाता है। लोकलाज को तिलाञ्जलि देकर भी अपनी कामना की पूर्ति के लिये सतत प्रयत्न करता है। उसकी श्री, समृद्धि, प्रभा, न्यून हो जाती है। तेज क्षीण हो जाता है। स्मृति में विभ्रम उत्पन्न हो जाता है और सत्य असत्य के विचार को छोड़कर जैसे हो तैसे कामना पूर्ति की धुन सवार हो जाती है। अत: प्रभो, कामना से बढ़कर आत्मा का पतन करनेवाली दूसरी वस्तु संसार में नहीं है। जीव का यही जीवत्व है, कि उसके मन में विषयों के भोगने की कामना है। जिस समय जीव के मन की कामनायें नष्ट हो जाती हैं, तो वह शिव स्वरूप हो जाता है। अत: हे अशरणशरण, हे जगद्‌गुरु, हे परब्रह्म, हे परमात्मन्, हे नरहरि विष्णो। मुझे यही वर दीजिये कि कभी मेरे मन में विषयों की कामना उठे ही नहीं।

चतुराई लखि भक्त की विहंसे दीनदयाल। यह मांगन मांगन नहीं पुनि कुछ मांगहु लाल।।

प्रह्लादजी बोले- तो प्रभु यही दीजिये कि मेरे पिताजी की दुर्गति न हो। उनको सद्गति मिले क्योंकि मैंने सुना है, आपका कोई अपराध करे तो आप क्षमा कर देते हैं। आप क्षमासिन्धु हैं, लेकिन आपके भक्त का कोई अपराध करे, तो आप उसे क्षमा नहीं करते। मेरे पिताजी तो ऐसे थे कि उन्होंने आपका भी अपराध किया और आपके भक्तों का भी अपराध किया है। हे प्रभो। देना है तो यही दीजिये कि मेरे पिताजी के अपराधों को क्षमा कर दे। उनकी दुर्गति न हो उनको सद्गति दे दीजिये। आंसू आ गये प्रभु के आँखों में इसको सन्त कहते हैं।

बाप हमारा प्राण लेने को तैयार वैसे बाप के लिये भी यह सद्गति की याचना कर रहा है। भगवान बोले- बेटा, यह मांगना भी तेरे नहीं मांगने के बराबर है। कैसे प्रभो?

तेरे मांगने से पहले ही तेरे पिता को सद्गति मिल चुकी हो तो। चौंक गये प्रह्लादजी हैं क्या मेरे मांगने से पहले ही मेरे पिता को सद्गति मिल चुकी। प्रभु बोले- बेटा, तेरे पिता को ही नहीं तेरी २१ पीढ़ी के साथ तेरे पिता पुनीत हो चुके। कोई कोई कहते हैं अभी २१ पीढ़ी तो हुई नहीं क्योंकि नारायण से ब्रह्मा, ब्रह्मा से मरीचि, मरीचि से कश्यप, कश्यपजी से हिरण्यकशिपु फिर प्रह्लाद। ये तो तीन चार पीढ़ी हुई, २१ पीढ़ी कहां।

सात पीढ़ी पहले की सात बाद की पुत्र पौत्र इत्यादि और सात मातृ कुल की नाना मामा आदि। क्यों प्रभो मेरे पिताजी के ऐसे अच्छे कर्म तो थे नहीं जो उनकी सद्गति होती। सद्गति मिली कैसे उनको? तो बोले- तेरे जैसा कुल को पवित्र करनेवाला भक्त पुत्र इनके घर में पैदा हुआ है। तेरे जैसा एक भी भक्त पुत्र घर में पैदा हो जाये तो-

प्रभु ने कहा- बेटा, तेरे मांगने से पहले तेरे पिता को सद्गति मिल चुकी है क्योंकि तेरे जैसा भक्त पुत्र इनके यहां उत्पन्न हुआ है। इनकी २१ पीढ़ी का उद्धार हो चुका है और कुछ मांग। प्रह्लादजी ने कहा- आप भी विचित्र भगवान हैं जो मांगना चाहते हैं सूची बनाकर बैठे हैं कि भगवान आयेंगे तो ये मांगेंगे ये मांगेंगे, उनके यहां तो आप जाते नहीं हो और जो नहीं चाहता है उसके पीछे पड़े हो और मांग ले और मांग ले। अपने लिये कुछ नहीं मांगता। देना हो तो ये दीजिये कि इन सब प्राणियों को अपने धाम ले चलिये जन्ममरण के बंधन से छुड़ा दीजिये। भगवान बोले ऐसी सृष्टि की मर्यादा नहीं है।

भक्तवर तुझसा नरपति पाय। प्रजा में भक्ति रहेगी छाय। जीव को धाम सहज मिल जाय।।

जब तू राजा भक्त बनेगा तो प्रजा में भी भक्ति हो जायेगी और जब प्रजा भक्त बन जायेगी तो तुझे धाम मांगना नहीं पड़ेगा इनको अपने आप धाम की प्राप्ति होती रहेगी। इसी समय नहीं आनेवाले युगों में भी जो तेरा स्मरण करेंगे तेरे इस चरित्र को गायेंगे तेरा अनुसरण करेंगे। उनको मेरा धाम मिलता रहेगा। इसलिये तुझे राजगद्दी पर बिठा रहा हूं। इतना सुनते ही प्रह्लाद की आंखें भर आई। क्यों बेटा प्रह्लाद? बोले, प्रभो, प्रजा का तो कल्याण हो जायेगा लेकिन मेरा क्या हाल होगा। प्रभु बोले कैसे- बोले- भगवन् जिस राजगद्दी पर बैठ कर मेरे पिता इतने मदान्ध हो चुकेथे कि न आपको पहचानते थे न आपके भक्तों को न आपके अनुगतों को तो उसी राजगद्दी पर बैठकर कहीं मेरी बुद्धि में विकार आ गया तो फिर मेरा क्या हाल होगा। बेटा मैं समझता था कि उस दूषित राजगद्दी को हिरण्यकशिपु की राजगद्दी को तू स्वीकार करना नहीं पसन्द करेगा। इसलिये देख मारा था तेरे बापको मैंने चौखट पर और वरदान दे रहा हूं राजगद्दी पर बैठकर। तो मैं इस राजगद्दी पर बैठ गया तो इसके सारे विकार दूर हो गए। अब यह मेरी प्रसादी राजगद्दी हो चुकी। मैं प्रसादी राजगद्दी तुम्हें दे रहा हूं और वहभी प्रजा की भलाई के लिये और वह भी तेरा बचन पूरा करने के लिये बोल स्वीकार करता है कि इनकार करता है। कैसे इनकार कर देते। जो कोई परमेश्व वेद, शास्त्र, सन्त व महात्मा की निंदा करता है, वह इस महापाप से अति दुःख पाकर जल्दी कृतार्थ नहीं होता।

राज देय प्रह्लाद को प्रभु हो गए अन्तर्धान। भक्ति भक्त भगवन्त की महिमा बड़ी महान्।।

शिव विरंचि इन्द्रादि सुर गावत चरित उदार। भक्त सहित भगवान की होवे जय जयकार।।

नारद ने कहा- युधिष्ठिर, प्रह्लाद जी ने बालक होनेपर यही समझा कि वर माँगना प्रेम-भक्ति में विघ्न है इसलिये कुछ मुस्कराते हुए उन्होंने भगवान से कहा- नाथ, विश्व का कल्याण हो, दुष्टों की बुद्धि शुद्ध हो, सब प्राणियों में परस्पर सद्भावना हो, सभी एक दूसरे का हित चिन्तन करें, हमारा मन शुभ मार्ग में प्रवृत्त हो और हम सब की बुद्धि निष्काम भाव से भगवान श्रीहरि में प्रवेश करें।

हे नाथ, दुर्जन प्राणी सज्जन बन जाँय। दुर्जन की दुर्जनता समाप्त हो जाय। सज्जन प्राणी शान्ति लाभ करें। शान्त प्राणी बन्धनों से मुक्त हो जाँय। विमुक्त प्राणी दूसरों की मुक्ति के काम में लग जाँय।

भगवान ने कहा- बेटा प्रह्लाद, यह तो तुम संसार के कल्याण की बात कर रहे हो। तुम्हारे जैसा भक्त सब के कल्याण की कामना करे- यह तो उचित ही है किन्तु तुम मुझसे कुछ अपने लिये तो मांग लो। बोलो, तुम्हें क्या-क्या दे दूँ? इस पर प्रह्लाद ने कहा- प्रभो, आप मुझे वरों के प्रलोभन में न डालें।

नाथ, मैं आपका निष्काम सेवक हूँ। आप मेरे निरपेक्ष स्वामी हैं। जैसे राजा और उसके सेवकों में प्रयोजनवश स्वामी-सेवक सम्बन्ध होता है, वैसा तो मेरा और आपका सम्बन्ध है नहीं।

फिर भी मेरे वरदान शिरोमणि स्वामी, यदि आप मुझे मुँह माँगा वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे हृदय में कभी किसी कामना का बीज अंकुरित न हो, कोई कामना पैदा ही न हो।

मेरे स्वामी कमलनयन, जिस समय मनुष्य अपने मन में रहनेवाली कामनाओं का परित्याग कर देता है, उसी समय वह भगवत्स्वरूप हो जाता है अत: प्रभो, मैं आप को बार-बार प्रणाम कर रहा हूँ।

प्रह्लाद की बात को सुनकर नृसिंह भगवान ने कहा- प्रह्लाद, तुम्हारे जैसे मेरे एकान्तप्रेमी भक्त इस लोक अथवा परलोक की किसी भी वस्तु के लिये कभी कोई कामना नहीं करते फिर भी अधिक नहीं, केवल एक मन्वन्तर तक मेरी प्रसन्नता के लिये तुम इस लोक में दैत्याधिपतियों के समस्त भोग स्वीकार कर लो। तुम अपने हृदय में मेरा ध्यान करते रहना तथा मेरी लीलाकथाओं का श्रवण करते हुए अपने समस्त कर्मों से मेरी आराधना करना। इस प्रकार तुम्हारे सारे प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जायेंगे। भोग के द्वारा पुण्य-कर्मों के फल और निष्काम पुण्य-कर्मों के द्वारा पाप का नाश करते हुए समय पर शरीर त्याग करके समस्त बन्धनों से मुक्त होकर तुम मेरे पास आ जाओगे। देवता लोग भी तुम्हारी विशुद्ध कीर्ति का गान करेंगे। तुम्हारे चरित का श्रवण-कर्ता भी कर्म के बन्धनों से मुक्त हो जायेगा।

प्रह्लादजी नृसिंह भगवान से कह रहे हैं- हे महेश्वर, आप वर देनेवालों के ईश हैं, अत: आपसे मैं वर माँगता हूँ। आपके ईश्वर सम्बन्धी तेज को बिना जाने जो मेरे पिता ने आपकी निन्दा की है इस दुरन्त और दुस्तर पाप से मेरे पिता पवित्र हो जायँ। वैसे तो हे कृपणवत्सल, आपके दृष्टिपात से ही वे पवित्र हो गये हैं।

प्रह्लाद ने कहा- प्रभो, मैं आप से एक और वर मांगता हूँ। मेरे पिताजी ने आपकी बड़ी निन्दा की है, आपके प्रति बहुत दुर्वचन कहा है तथा मेरे ऊपर भी जो नाना प्रकार के अत्याचार किये हैं इन सब पापों से वे मुक्त हो जाँय। यद्यपि आप की दृष्टि पड़ते ही वे पवित्र हो चुके हैं फिर भी मैं आप से यह प्रार्थना कर रहा हूँ। मेरे पिताने तो बड़े-बड़े पाप किये हैं। सदा सर्वदा आपसे द्वेष रखा है। कहने-न-कहने योग्य बातें इन्होंने आपसे कही हैं। आपके ईश्वरीय तेज को न जानने के कारण विष्णु मेरे भाई को मारनेवाले हैं, अत: मेरे शत्रु हैं ऐसी मिथ्या दृष्टि सदा रखते थे। आपको अपना प्रतिपक्षी शत्रु समझकर आपसे भी द्रोह करते थे और आपके भक्त मुझसे भी द्रोह करते थे। आप अपने द्रोही को क्षमा कर भी देते हैं किन्तु अपने

भक्त के द्रोही को कभी क्षमा कर भी देते हैं किन्तु अपने भक्त के द्रोही को कभी क्षमा नहीं करते। इस दोष को आप अत्यन्त ही दुरन्त और दुस्तर समझते हैं। हे दीनबन्धो। हे भक्तवत्सल। मेरी आपके पादपद्मों में यही विनय है कि आप इन्हें इस दोष से निर्मुक्त कर दें। इन्हें अब पापी होकर नरक की अग्नियों में न पचना पड़े। वैसे तो मरते समय जिसे आपके दर्शन हो जायँ, जिसके ऊपर आपकी दृष्टि पड़ जाय, उसके पाप रह ही नहीं सकते। फिर भी मैं दीनतावश आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप इन पर कृपा करें इन्हें आप पावन बना दें।

नृसिंह भगवान ने कहा- निष्पाप प्रह्लाद, तुम्हारे पिता स्वयं पवित्र होकर तर गये। इसकी तो बात ही क्या है, यदि उनकी इक्कीस पीढ़ियों के पितर होते तो उन सबके साथ भी वे तर जाते; क्योंकि तुम्हारे जैसा कुल को पवित्र करनेवाला पुत्र उनको प्राप्त हुआ है।

यह तुम्हारी ही महिमा है कि मैंने तुम्हारे पिता के साथ बहुत देर तक युद्धक्रीड़ा की। उन्हें अपनी गोद में लिटाया, आँखें मिलाई और बिदा कर दिया इस घोर संसार से अत: तुम उनकी सद्गति के विषय में चिन्ता मत करो। जहाँ-जहाँ मेरे समदर्शी भक्त निवास करते हैं, वे चाहे कीकट जैसे निकृष्ट देश ही क्यों न हों, पवित्र हो जाते हैं। यद्यपि मेरे अंगों के स्पर्श से तुम्हारे पिता पूर्णरूप से पवित्र हो गये हैं, तथापि तुम उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करो। तुम्हारे जैसे सन्तान के कारण उन्हें उत्तम लोकों की प्राप्ति होगी। वत्स, तुम सम्प्रति अपने पिता के पद पर प्रतिष्ठित हो जाओ और वेद-मार्ग में स्थित होकर प्रजा की रक्षा करो।

पिता की तो बात ही क्या तेरे समान पुत्र जिस कुल में उत्पन्न हो गया वह ७ पहिली पीढ़ी, ७ आनेवाली पीढ़ी और ७ मातृ पक्ष की पीढ़ी इस प्रकार इक्कीस पीढ़ियों को अपनी भक्ति के प्रभाव से ही तार सकता है। इसलिये तुम्हारा पिता ही पावन नहीं हो गये तुम्हारी २१ पीढ़ियों के पुरुष पावन हो गये। मेरा भक्त पावन क्षेत्रों में न रहे अंग-बंग, कलिंग आदि कीकट देशों में ही चाहे उत्पन्न हो, नीच कुल में ही उसका जन्म हुआ हो। भक्त जिस देश में जन्म लेता है, वह देश पवित्र हो जाता है, जिस कुल में वह प्रकट होता है वह कुल पूजनीय बन जाता है। मेरे भक्त समदर्शी होते हैं, वे मुझसे तुम्हारी भाँति किसी वस्तु की कामना नहीं करते। वे मन से भी किसी प्राणी का अनिष्ट नहीं चाहते, न किसी को किसी प्रकार की पीड़ा ही देते हैं।

संसारी कार्यों को करते हुए एक बात को मत भूलना। समस्त भूतों में समान भाव से विराजमान मुझ योगेश्वर को सर्वदा अपने हृदय में धारण करके, सदा अव्यग्र भाव से मेरी सुमधुर कथाओं को अवश्य सुनते रहना। मुझे मन में रखकर मेरी कथाओं को जो बिना व्यवधान के नित्य सुनता रहता है, उसे यह संसार बाधा नहीं देता। अत: मेरी कथा सुनना मत भूलना। जिस दिन तुम कृष्ण कथा से वंचित रह जाओ उस दिन को व्यर्थ समझना। यदि तुम नित्य नियम से मेरी कथा सुना करोगे और सर्व कर्मों को मुझे ही अर्पण करते हुए भक्ति योग द्वारा मेरी आराधना करते रहोगे तो गृहस्थ में रहकर भी तुम्हें बन्धन न होगा। मेरी प्रीति के निमित्त किये हुए कर्म बन्धन के कारण नहीं होते। अभी पुण्य पाप युक्त तुम्हारा प्रारब्ध तो शेष है ही। बिना प्रारब्ध शेष रहे, यह शरीर टिक ही नहीं सकता। अत: जो पुण्य शेष हैं, उन्हें सुख भोग से क्षय करो। जो पाप शेष हैं, उन्हें बड़े-बड़े यज्ञयागों द्वारा क्षय करो। यज्ञादि करने से पाप क्षय हो जाते हैं। जब तुम्हारे पाप और पुण्य दोनों क्षय हो जायँगे। तो अन्त में तुम मुझे ही प्राप्त हो जाओगे। तुम्हारी अनन्य भक्ति की गाथायें तीनों लोकों में व्याप्त हो जायगी। तुम तो मुक्त हो ही जाओगे जो हमारी तुम्हारी इस कथा को कहेंगे सुनेंगे तुम्हारे कथित स्तोत्रों का पाठ करेंगे वे भी कर्मबन्धन से मुक्त हो जायँगे। तुमने कुछ मुझसे वर नहीं माँगा। यदि तुम वर माँग लेते तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती।

हँसि बोले भगवान विषय चाहें नहिँ हरिजन। करहिँ निरन्तर भक्ति सदा राखें मोमें मन॥
मन्वन्तर तक तऊ भोग सब भोगो जगमहँ। कथा निरन्तर सुनौ चित्तौ बाँधौ मम पगमहँ॥

सुखतें पुण्यनि नाश करि, दुख हू मख करिके नसौ। पुण्य पापतें मुक्त ह्वै, मम समीपमहँ फिरि बसौ।।

मेरे तीन और भी बड़े भाई हैं, उनमें से जिसे आप उचित समझें उसे ही राजा बना दें। मैं तो अब सर्वात्मभाव से आपकी सेवा ही करना चाहता हूँ।

भगवान बोले- मेरी आज्ञा मानकर तुम अपने पिता के पद पर स्थित होओ। तुम जो भी काम करो, वेदवादी मुनियों से पूँछकर करना। वेदज्ञ ब्राह्मणों की आज्ञा का कभी भूलकर भी उल्लंघन मत करना। इस प्रकार तुम करोगे, तो यह राजपाट तुम्हें बन्धन कारक न होगा। भगवान की आज्ञा पाकर प्रह्लादजी ने शास्त्रीय विधि से अपने पिता की समस्त और्ध्व दैहिक क्रियायें की।

नरहरि बोले वत्स, तरे कुल पितु महतारी। पीढ़ी पावन भई पुत्र। इक्कीस तुम्हारी।।
तुम सम जाके तनय नरक कैसे वह जावे। पुत्र पुण्य परमभाव परम पद पितु तब पावे।।
मृतक करम पितुके करो, अब बेटा, तुम जाइकें। नित मम परिचरिया करो, मो मैं चित्त लगाइकें।।

धर्मराज युधिष्ठिर से नारदजी कह रहे हैं- राजन्, भगवान नृसिंह ब्रह्माजी से ऐसा कहकर और उनके द्वारा पूजित होकर वहीं अन्तर्धान हो गये। अन्तर्धान क्या हो गये सभी प्राणियों में अदृश्य हो गये। तब ब्रह्मा ने शुक्राचार्य आदि मुनियों के सहित प्रह्लादजी को दैत्यों का स्वामी बना दिया।

नारदजी ने कहा- राजन्, प्रह्लाद ने भगवान की आज्ञा को शिरोधार्य कर अपने पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया की। इसके बाद श्रेष्ठ ब्राह्मणों के आचार्यत्व में उनका राज्याभिषेक हुआ।

किसी व्यक्ति के मरने पर जो हर्ष या शोक प्रकट करते हैं, वह प्राय: अपने स्वार्थ को सम्मुख रख कर करते है। पत्नी कहती है अब मेरा भरण पोषण कौन करेगा, पुत्र कहता है, अब हमारी देख-रेख कौन करेगा? पुत्री कहती है, अब हमें दान दहेज कौन देगा, कौन प्यार करेगा? इसका कारण यही है, कि दु:ख सुख का अनुभव अपने से ही होता है। अपने दु:ख से ही दु:ख और अपने ही सुख-से-सुख अनुभव होता है। हिरण्यकशिपु के शासन से सभी देव उपदेव दुखी थे। जब वह मर गया तो सभी आकर अपने-अपने दु:खों को बताकर भगवान के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने लगे।

इसी समय ब्रह्मा आदि देवों ने भगवान नृसिंह को प्रसन्न जानकर उनकी स्तुति की। हे हमारे आराध्यदेव। आप जीवों के जीवनदाता हैं। यह पापी दैत्य लोगों को बहुत सता रहा था। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आपने इसको मार डाला। भगवान ब्रह्मा से बोले- ब्रह्माजी, आप ऐसे वरदान मत दिया करो। यह दैत्य लोग स्वभाव से क्रूर होते हैं ऐसा वर मिल जानेपर अति उग्र तथा उद्दण्ड हो जाते हैं। इनको वर देना तो साँप को दूध पिलाने के बराबर है।

इन्द्र कहै हरि हमें असुर मख भाग न दीये। करवाये लघु काज सदा अपमानित कीये।।
करुणासिन्धु कृपालु कृपा करि सुर रिपु मार्‌यो। सुरगन अति ई दुखित दुष्ट हनि दुख सब टार्‌यो।।
ऋषि बोले तब तपहि तनु, करै सदा परि भय भयो। मैंटे सब तप असुर ने, तिहि हनि तप अवसर दयो।।

भगवान नृसिंह की स्तुति करते हुए देवेन्द्र कह रहे हैं- हे परमात्मन, आपने हमारी रक्षा करके जो हमें यज्ञ भाग दिया था उसे लौटाकर हमें दे दिया।

ऋषियों ने कहा महाराज, आपने तो हमको तप करनेकी आज्ञा दी थी; लेकिन इसने उसका लोप कर दिया। आपने हमें बचा लिया। पितरोंने कहा कि हमारे नामसे कोई पिण्ड देता था तो यह दुष्ट खा जाता था। आपने इसका वध करके अच्छा किया। सिद्धोंने कहा कि इसने तो हमारी सिद्धि ही हर ली थी। विद्याधरोंने कहा कि इसने हमारी विद्या ही छीन ली थी। नागोंने कहा कि इस पापीने तो हमारी मणियों और श्रेष्ठ-सुन्दर स्त्रियोंका अपहरण कर लिया था। मनुओंने कहा कि इस

दुष्टने हमारी सारी मर्यादा ही तोड़ दी थी। आपने इसको मारकर बहुत अच्छा किया। प्रजापतियोंने नृसिंह भगवान का अभिनन्दन करते हुए कहा कि इसने तो प्रजाकी सृष्टि ही बन्द कर दी थी। गन्धर्वोंने कहा कि यह तो अपने मनोरंजनके लिए हमसे नाचता-गवाता था। अच्छा किया आपने इसका वध करके। क्या कोई कुमार्गसे चलेगा तो सुरक्षित निकल जायेगा? कभी-न-कभी उसके पाँवमें काँटा तो गड़ेगा ही। चारणोंने कहा कि महाराज, यह दुष्ट साधुओंके हृदयके लिए बड़ा भारी उपद्रव था, इसलिए आपने इसको मारकर बड़ा मंगल किया। यक्षोंने कहा कि हम आपके अनुचर हैं, लेकिन यह हमसे बेगारमें पालकी ढुलवाया करता था। इसलिए आपने अपने सेवकोंका कष्ट दूर करनेके लिए ही इसी उपद्रवीको मारा है। किम्पुरुषोंने कहा कि आपने इसको मारा, यह अच्छा किया। वैतालिकोंने कहा कि हम तो आपके यशका गान करते हैं, लेकिन यह हमसे अपना यश गवाता था। किन्नरोंने कहा कि हम तो आपके अनुयायी हैं, लेकिन यह हमको बिना कुछ खाना-पीना दिये ही हमसे दिन भर बेगार लिया करता था। प्रभो, आपने इसको मारकर बहुत अच्छा किया।

अन्तमें विष्णु पार्षदोंने कहा कि महाराज, हम लोगोंने आपका ऐसा रूप तो कभी देखा नहीं। आपका जो सेवक होता है, उसका आप कल्याण करते हैं। जय-विजय आपके सेवक थे और वे ही सनकादिके शापसे हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु होकर दैत्य-योनिमें आ गये। इसलिए आपने उनको मारकर उनके लिए फिरसे अपना सेवक बननेका द्वार खोल दिया है। आप बड़े कृपालु हैं, आप अपने सेवकोंको, उनके द्वारा अपराध होनेपर भी कभी छोड़ते नहीं।

अब तो क्रमतें करहिं विनय नरहरिकी सवई। ब्रह्मा, शिव, देवेन्द्र हटे आये सुर तबई॥
पुनि मुनि, ऋषि, मनु, पितर, सिद्ध, चारन, विद्याधर। नाग, प्रजापति, यक्ष, भूत, वैतालहु किन्नर॥
आई मृदु तनु अपसरा, देव और उपदेव गन। हरि पार्षद नन्दादि हू, विनय करहिं भयभीत मन॥

प्रसन्न हुए भगवान ने ब्रह्माजी से कहा- ब्रह्माजी, आप दैत्यों को ऐसा वर न दिया करें। क्रूर स्वभाववाले प्राणियों को वर देना साँपों को दूध पिलाने के समान हैं। इससे स्वयं संकट का सामना करना पड़ता है।

अब कबहूँ नहिं देइ दुष्ट दैत्यनिकूँ अस वर। करैं सुधाको पान सदा विष उगलैं विषधर॥
यों सबकूँ समुझाइ भये अन्तर्हित नरहरि। विदा करे प्रह्लाद देव ऋषि अति आदर करि॥
हिरनकशिपु उद्धार अरु, चरित असुर सुतको कह्यो। यौं द्वेषी शिशुपाल हरि, हाथनि मरि तन्मय भयो॥

इस प्रकार सबको आश्वासन देकर भगवान अन्तर्धान हो गये। समस्त ऋषि-मुनियों के साथ ब्रह्माजी ने प्रह्लाद जी को समस्त दानवों और दैत्यों का अधिपति बना दिया। प्रह्लाद ने सबका यथायोग्य सम्मान किया, फिर सभी देवता अपने-अपने लोकों को चले गये।

भगवान के पराक्रम से पूर्ण इस पवित्र आख्यान का जो कोई पुरुष श्रद्धा से कीर्तन करता है और सुनता है, वह कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाता है। नारदजी ने कहा- युधिष्ठिर, इस मनुष्य लोक में तुमलोग बड़े भाग्यशाली हो; क्योंकि तुम्हारे घर में साक्षात् परब्रह्म परमात्मा मानव का रूप धारण करके गुप्तरूप से निवास करते हैं। यही कारण है कि सारे संसार को पवित्र बना देनेवाले ऋषि-मुनि बार-बार उनका दर्शन करने के लिये चारों ओर से तुम्हारे पास आया करते हैं।

युधिष्ठिर तुम भाग्यशाली हो जो वही प्रभु जिन्होने प्रह्लाद पर इतनी कृपा बरसायी, वही प्रभु तुम्हारे मामा के बेटा कहला करके श्री कृष्ण के रूप में तुम्हारे यहां विद्यमान हैं। हर तरह से सब प्रकार से तुम सबकी सार सम्भाल करते रहते हैं। इस तरह नारदजी ने युधिष्ठिर जी की शंका का समाधान किया।

जामें भगवत भक्त चरित अति मधुर मनोहर। ज्ञान भक्ति वैराग्य ललित लीला अति सुन्दर॥

नारद बोले धर्मराज, तुम अति बड़भागी। सेवैं जिनकूँ सदा भक्त ज्ञानी वैरागी।।
रहै सदा सेवक सरिस, ते हरि तुम्हरे पास नित। सम्बन्धी प्रिय सुहृद बनि, रहैं नित्य हितमहँ निरत।।

नारदजी धर्मराज युधिष्ठिर से बोले- राजन, जो मनुष्य आदि पुरुष पुरुषोत्तम श्री नरहरि की लीलाओं को तथा हिरण्यकशिपु और उसके यूथपों के वध की वार्ता को और हिरण्यकशिपु के पुत्र साधु श्रेष्ठ प्रह्लादजी के पवित्र चरित्र को सुनता है और पढ़ता है, वह उनके प्रभाव को सुनने से निर्भय वैकुण्ठ धाम को प्राप्त होता है।

नारदजी ने कहा- हे युधिष्ठिर। प्रह्लाद चरित्र के माध्यम से मैंने समस्त आध्यात्मिक साधन साध्य की दिशा में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, आत्मा, परमात्मा के स्वरूप सम्बन्ध की पूरी जानकारी भर दी है। इस प्रसंग को सुनने समझने जानने के बाद फिर आध्यात्मिक रहस्य जानना कुछ शेष नहीं रह जाता हैं।

३) त्रिपुर दहन की कथा

युधिष्ठिर ने पूछा- मुनिवर, हमारे यहाँ कहाँ है वह परब्रह्म?

नारदजी ने कृष्ण की ओर इशारा करके कहा- वह परब्रह्म यह हैं। बड़े-बड़े महापुरुष निरन्तर इनको ढूँढते रहते हैं। माया इनके पास फटकती नहीं। यह परमशान्त तथा परमानन्दस्वरूप के अनुभव से परिपूर्ण हैं। इन्हीं परमात्मा को आप लोग अपना प्रिय, हितैषी, ममेरा भाई, आज्ञाकारी, गुरु और स्वयं आत्मा समझते हैं।

यह सत्य है, ब्रह्म निर्गुण, निराकार, निर्लेप तथा निरीह है, फिर भी भक्तों पर कृपा करके वह निर्गुण से सगुण हो जाता है, निराकार से साकार स्वरूप धारण कर लेता है। निर्लेप से भक्तों के कार्यों में लिप्त-सा दिखाई देता है। निरीह से नाना प्रकार की चेष्टा करता हुआ-सा प्रतीत होता है। हे पृथ्वीपते, ये जो आपके समीप सजे बजे बैठे हैं ये ही तो साकार ब्रह्म हैं। लाखों वर्ष की समाधि लगाकर योगीजन इन्हीं की तो खोज करते रहते हैं। ये परमानन्द स्वरूप हैं, उपाधि से रहित है, स्वयं साक्षात् परब्रह्म रूप हैं, आप इन्हें अपने मामा वसुदेव का पुत्र समझते हैं, आप जिनका सबसे अधिक आदर करते हैं, अभी आपने सर्वश्रेष्ठ मानकर इनकी सर्वप्रथम पूजा की है ये ही जगद्गुरु श्रीकृष्ण सबकी आत्म साकार ब्रह्म हैं।

अज, शिव, ऋषि, मुनि, इन्द्र भेद तिनिको नहिँ पावैं। नेति नेति कहि जिन्हें वेद चारों डरि गावैं।।
जप तप जोग विराग करैं, जिन हित मुनि सब तजि। होवैं खल अति विमल नाम जसतस जिनको भजि।।
निज कैमर्य कराइकें, कृपा करैं करुनायतन। दूरि करैं दुख दरस दै, सफल करें निज जन नयन।।

पूर्वकाल में महामायावी असुर मय ने जब भगवान शंकर की पवित्र कीर्ति को धूमिल करना चाहा था, तब इन्हीं भगवान श्रीकृष्ण ने फिर से उनके यश की रक्षा की थी और उसका विस्तार किया था। युधिष्ठिर ने नारद जी से कहा- भगवन् आप कृपा कर यह प्रसंग भी मुझे सुनावें।

नारदजी ने कहा- राजन्, बात अतिप्राचीन है। कभी देवता प्रबल होते हैं तो विजयी होते हैं। कभी दैत्य प्रबल होते हैं तो दैत्य विजयी होते हैं।

एक समय देवताओं ने असुरों को पराजित कर दिया। पराजित दैत्य मायावियों के परमाचार्य मय की शरण में गये। मय ने सुवर्ण, चाँदी और लोहे का तीन पुर (विमान) बनाकर उन्हें प्रदान किया। तीनों पुर युद्ध की सामग्री से भरे हुए थे। ये इतने विलक्षण थे कि इनका आना-जाना जान नहीं पड़ता था। वे असुर देवताओं पर ब्राह्मणों पर, गायों पर, सज्जनों एवं साधु सन्तों पर आक्रमण करके उत्पीड़न करते उन्हें सताने लगे। असुरोंको जबतक रहनेकी जगह न मिले, तब तक कोई काम नहीं कर सकता। अगर आप अपने शरीरमें असुरोंको रहनेके लिए जगह न दें तो वे आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

स्थान मिलनेपर ही वे दु:खी करते हैं।

असुरों के सेनापति उन्हीं में बैठकर त्रिलोकी के संहार में संलग्न हो गये। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई। देवता अशरण-शरण शंकर की शरण में गये। त्रिपुर के अत्याचार की बात भगवान शंकर से कहकर अपनी रक्षा की गुहार की। शंकरजी तो ठहरे करुणा के सागर। उन्होंने कहा देवों, डरो मत। फिर उन्होंने अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर तीनों पुरो पर छोड़ दिया। उस एक बाण से असंख्य अग्नि-बाण निकले। जिनकी लपटों के चपेट में आकर असुर निष्प्राण होकर भूतल पर गिर पड़े। मय तमाम माया के विधानों में माहिर था। उसने मरे हुए दैत्यों को अपने द्वारा निर्मित अमृत के कुण्ड में डाल दिया। फलत: सभी असुर जीवित हो उठे और उनमें बल का संचार भी द्विगुणित हो गया।

राजन्, जिन करि त्रिपुर नाश शिव यश विस्तार्‌यो। त्रिपुरारी शिव भये असुर मायासुर हार्‌यो॥
कनक रजत पुर लोह मयासुर तीनि बनाये। नभमहँ घूमैं गुप्त दैत्य लखि अति हरषाये॥
डरे देव शिव ढिँग गये, पशुपति तान्यो निज धनुष। हर सरतें मरि मरि असुर, गिरत तुरत पुरतें निकस॥

भगवान श्रीकृष्ण ने जब देखा कि शंकर का पुरुषार्थ निष्फल हो गया और इसी कारण वे उदास हो गये हैं, तब उन्होंने एक युक्ति निकाली। ब्रह्मा को बछड़ा बनाया और स्वयं बन गये एक परम मनोहर गाय। गाय ने बछड़े के साथ जाकर सारा वापी का अमृत पी लिया, असुर देखते ही रह गये। वे गाय के सौन्दर्य पर इतने मोहित हो गये थे कि उसे रोक नहीं सके। अमृत समाप्त हो जाने पर असुरों ने इसकी सूचना मय को दी। मय ने इसे विधि का विधान बतलाकर असुरों को शोक न करने की सलाह दी।

भगवान के विधान को अन्यथा करने की सामर्थ्य किसमें हैं? वे प्रभु जो करना चाहते हैं वही होता है। जीव अपने बचाव के अनेकों उपाय करता है, विविध भाँति से सुरक्षित और अजर होना चाहता है। किन्तु जीव का विधान सफल नहीं होता। भगवान जो करना चाहते हैं, वही होता है। उनके विधान को अन्यथा करने की सामर्थ्य किसमें हैं?

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी शक्तियों के द्वारा भगवान शंकर के युद्ध की सामग्री तैयार की फिर धनुष बाण आदि लेकर युद्ध के लिये शंकर रथारूढ हुए। उस समय मध्याह्न की बेला थी। अभिजित् मुहूर्त चल रहा था। भगवान शंकर ने अनुकूल समय जानकर बाण छोड़ दिया। पल भर में उन्होंने उन दुर्भेद्यविमानों को भस्म कर दिया यह देखकर त्रिलोकी प्रसन्नता से भर उठी। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। देवता दुन्दुभियाँ बजाने लगे। सर्वत्र प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। शंकर को सभी त्रिपुरारि कहकर उनकी स्तुति करने लगे। राजन्, भगवान विष्णु के ऐसे असंख्य मंगलमय चरित्र हैं। असुरोंका नाश करने से भगवान शंकर असुरारी कहलाते हैं।

मरै असुर जे तिन्हें वेगि मायासुर लावे। अमृत कुण्डमहँ डारि सबनिकूँ तुरत जिवावे॥
त्रिपुरारी मय सिद्धि निरखि अतिशय घबराये। मायापतिकी शरन शम्भु मन ही मन आये॥
कामधेनु श्री हरि बने, विधि बनाइ बछरा लये। अमृत कुण्डके जाइ ढिँग, पान अमृत सब करि गये॥
फिरि हरि हर ढिँग आइ धरम रथ दिव्य बनायो। ज्ञान सारथी कर्‌यो धनुष तप तीव्र सुहायो॥
अस रथ पर चढ़ि सदाशिव, प्रभु सुमिरत आगे बढ़े। बाण धनुष पै धारिकें, त्रिपुर निवासिनितें भिड़े॥

नारद युधिष्ठिरसे बोले- राजन, भगवान ने शिवजी के निमित्त धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, विद्या और क्रिया आदि शक्तियों से रथ, सारथी, ध्वजा, अश्व, कवच और बाण आदि की रचना की। उस दिव्य रथ में बैठकर तत्पर होकर हाथ में धनुष बाण लेकर तथा उस धनुष पर बाण चढ़ाकर अभिजित मुहूर्त में उन तीनों दुर्भेद पुरों को जला दिया।

कीन्हौं त्रिपुर विनाश भये त्रिपुरारी शंकर। ऋषि, मुनि, सुर, गन्धर्व कहै जय शंकर शिवहर॥

युधिष्ठिर को महान् आनन्द की प्रतीति हुई। उन्होंने नारद जी से और भी पूछा- भगवन् अब मैं वर्ण और आश्रमों के सदाचार के साथ मनुष्यों के सनातन धर्म का श्रवण करना चाहता हूँ, क्योंकि धर्म से ही मनुष्य का ज्ञान, भगवान की भक्ति और साक्षात् परम पुरुष नारायण की प्राप्ति होती है।

भगवन्, आप प्रजापति ब्रह्मा के साक्षात् पुत्र हैं। आप तप, योग और समाधि के कारण उनके सभी पुत्रों में आदरणीय हैं। आप के समान नारायण-परायण, दयालु, सदाचारी और शान्त रहनेवाले ब्राह्मण ही धर्म के परम मर्म को यथार्थरूप से जानते हैं। सामन्य लोगों के लिये यह सम्भव नहीं है।

४) नारद जी का युधिष्ठिर को सनातन धर्म की व्याख्या

नारदजीके वचन सुनि, धर्मराज प्रभुदित भये। पुनि वर्णाश्रम धर्मकूँ, मुनिवरतें पूछत भये॥
चारि बरनके धर्म देव ऋषि पृथक बताये। कौन कौन कस कर्म करे कहि सब समुझाये॥
पुनि नारिनिके धर्म कहे सुनि सहमी शारद। ब्रह्मचर्त व्रत गृही धर्म भाखै सब नारद॥
वानप्रस्थ संन्यासके, पृथक पृथक लक्षण कहे। धर्मराज नारद निकट, यदुनन्दन बैठे रहे॥

१) मानव धर्म-

वर्ण धर्म नारद समझाये, मानव धर्म सभी बतलाये। स्त्री धर्म निरूपण कीन्हा, बहु उपदेश नृपहिं मुनि दीन्हा॥

युधिष्ठिर सब भाइयों में सबसे अधिक शासन करता था। भगवान के दर्शन करना, धर्म की जिज्ञासा करना। नारदजी युधिष्ठिर के यहाँ आते-जाते रहते थे। वे या तो द्वारिका में जाते थे या युधिष्ठिर के पास इन्द्रप्रस्थ में आते थे। उन्हें पता था योगेश्वर श्रीकृष्ण या तो द्वारका में होंगे या उनकी बुवा के लड़के युधिष्ठिर के पास होंगे। कृष्णको बहुत लोगोंने नहीं पहचान कि यह कोई दिव्य शक्ति है या ईश्वरीय शक्ति है। गोप बालकों ने उसे अपना सखा माना, गोपियों ने अपना प्रेमी, नन्द-यशोदा ने उनको अपना पुत्र माना, कंस श्रीकृष्ण के भय से बचता था, शिशुपाल राग-द्वेष से बचता था। ऋषियों और देवताओं ने कृष्णको श्रेष्ठ पुरुष योगेश्वर, दिव्यशक्ति समझा। युधिष्ठिर धर्म का अवतार था, आदर सत्कार करना जानता था, धर्म का जिज्ञासु था इसलिये नारदजी से बार-बार धर्म की जिज्ञासा करता था। गृहस्थ धर्म क्या है, वर्णाश्रम धर्म क्या है, नारी धर्म क्या है इत्यादि।

नारदजी ने कहा- युधिष्ठिर जी, भगवान् का जन्म मनुष्यों की तरह नहीं हुआ करता। अजन्मा भगवान ही समस्त धर्मों के मूल कारण हैं। वही प्रभु धर्म की पत्नी मूर्ति की कोख से जन्म लेकर नर-नारायण के रूप में जगत् के कल्याणार्थ बदरिकाश्रम में तपस्या करते हैं, वे मेरे गुरु हैं। जो नरके हृदयमें निवास करे, उसका नाम नारायण। जो नरमात्रके लिए धर्मका उपदेश करे, उसका नाम नारायण। मैंने धर्म के रहस्य को उन्हीं के मुख से सुना है अत: मैं उन्हें प्रणाम करके आप से सनातन धर्म का वर्णन कर रहा हूँ। राजन्, धर्म के तीन मूल हैं- सर्ववेदस्वरूप भगवान् श्रीहरि, भगवान के तत्त्ववेत्ता ऋषियों की स्मृतियाँ और निर्मल मन की तुष्टि। जो धर्म सदा से था और जो सदा से रहेगा वही सनातन धर्म कहलाता है। सनातन माने अविनाशी ये सनातन धर्म मनुष्य मात्र का धर्म है चाहे वह किसी जाति या सम्प्रदाय का हो। जीविकार्थ कर्म ऐच्छिक है, किन्तु धर्मार्थ कर्म उसके जीवनमें रहने ही चाहिए। ब्राह्मण सर्ववेदमय है और क्षत्रिय सर्वदेवमय है। वेदको जाननेवालों में स्मृतियाँ भी वेद की प्रमाण रूप मानी गई हैं, जिससे अन्त:करण शुद्ध हो जाय वही धर्म है। देवता, गुरु और ईश्वरमें भक्ति करना।

युधिष्ठिर, शास्त्रों में धर्म के तीस लक्षण बतलाये गये हैं- १) सत्य, २) दया, ३) तपस्या, ४) शौच, ५) तितिक्षा, ६)

उचित-अनुचित का विचार, ७) मन का संयम, ८) इन्द्रियों का संयम, ९) अहिंसा, १०) ब्रह्मचर्य, ११) दान, १२) स्वाध्याय, १३) सरलता, १४) सन्तोष, १५) सज्जन-सेवा, १६) सकाम कर्म से निवृत्ति, १७) निषिद्ध कर्मों का परित्याग, १८) मौन, १९) आत्मविचार, २०) प्राणियों को अन्नदान तथा २१) उनमें भगवान के स्वरूप की भावना। इसके अतिरिक्त नवधा भक्ति को सम्मिलित कर ये तीस लक्षण धर्म के हैं। मनुष्यमात्र को इनका पालन करना चाहिये। इनके पालन से परमात्मा प्रसन्न होते हैं।

जो कुछ आपने कमाया जीवन में, खेती से अन्न कमाया चाहे नौकरी व्यापार से पैसा कमाया। उस सारी कमाई पर अपना ही अधिकार मत समझो। पांच सौ मन अगर गल्ला पैदा किया आपने तो उसमें बैल ने भी अपना कंधा लगाया था। उसका सत्व भी पूरा पूरा दो, देवताओं ने वर्षा करके फसल को पकाने में सहयोग किया। चन्द्रमा ने अपनी शीतल अमृतमयी किरणों के द्वारा अन्न में वनस्पतियों में रस संचरित होने का अवसर दिया है। सूर्य ने तत् तत् वनस्पतियों के रस को अपनी तप्त किरणों से परितप्त करके हमें प्राप्त होने का अवसर दिया है। इसलिये देवताओं को भी अपनी कमाई में से उनको हक का हिस्सा दो और राजा ने भी अपने सुरक्षा कर्मियों के द्वारा सहयोग दिया इसलिये उसे कर के रूप में उनका हिस्सा दो आपकी माता ने आपको गर्भ में रखा अपना दूध पिलाया आपका मल मूत्र साफ किया, पिता ने आपको सुयोग्य बनाया शिक्षा देकर। इसलिये आपका कर्त्तव्य हैं कि वृद्धावस्था में तन मन धन से उनकी सेवा करो, उनको किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे इसका ध्यान रखो ये आपका कर्त्तव्य है। तआप कहीं बाहर गये भूखे प्यासे और वहां किसी ने अतिथि समझ कर आपको खिलाया पिलाया तो आपके यहां भी कोई अतिथि आ जाय तो गृहस्थधर्म के अनुसार उसको अपनी सेवा से सन्तुष्ट करो, और जिसको आप कुछ दे रहो हो खिलापिला रहे हो उसे भार मत समझो उसमें आत्मबुद्धि परमात्मा बुद्धि और आत्मीय बुद्धि से मेरे प्रभु ही आये हैं, मेरी सेवा स्वीकार करने के लिये। ये प्रभु के नाते अपने ही तो हैं। इस भाव से सेवा करो, ऐसे भाव से सेवा करने से परमात्मा की सेवा का पुण्य लाभ होगा। यही अतिथि सत्कार है।

२) वर्णाश्रम धर्म - वर्णाश्रम धर्म अन्त:करण शुद्ध करनेके लिए है, मोक्ष प्राप्त करनेके लिए नहीं है। जब अन्त:करण शुद्ध हो जाता है तब मालूम पड़ता है कि अपनी जो आत्मा है वही परब्रह्म परमात्मा है। केवल विकारके निवारणके लिए ही संस्कार है। वर्णाश्रम-धर्म अपवर्गमें, मोक्षमें उपयोगी है। महापुरुषोंका प्रसंग अथवा यों कहो कि भगवानके भक्तोंका संग सबसे श्रेष्ठ है। इस संसार का मालिक वो हैं जिसने हमारे लिये सूर्य बनाया, चन्द्र बनाया, पृथ्वी बनाई, पीने के लिये पानी दिया, श्वास लेने के लिये वायु दी, ये शरीर दिया तो हमारा भी उसके लिये कर्त्तव्य है कि हम उसके लिये धन्यवाद अदा करें, उसके चरणों में प्रणाम करके उसके गुणनामों का कीर्तन करें। उसकी स्तुति, प्रार्थना करें, अपने आपको प्रभु को समर्पित करना, अर्पण करना हमारा कर्त्तव्य है। ये मानव मात्र का धर्म है। सनातन धर्म के अंतर्गत समाज को चार भागों में बांटा गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये जन्म कर्म गुण का विचार करके विभाजन किया गया है। भगवान का किया हुआ विधान कोई निरर्थक नहीं होता। स्त्रियों के लिये रसोई बनाना, पुरुषों के लिये अर्थोपार्जन, कृषि, व्यापार अथवा नौकरी करके धन अर्जित करना इत्यादि इत्यादि। अकेला आदमी सब कुछ नहीं कर सकता इसलिये समाज का वर्गीकरण करके अलग-अलग सेवा बांट दी। वर्ण विभाग के लिए जो लक्षण बताये गये हैं, वे यदि कहीं अन्यत्र दूसरे वर्णमें दिखायी पड़ें तो उसको भी उसी वर्णका समझना चाहिए। अर्थात् ब्राह्मण का लक्षण यदि ब्राह्मणेतरमें दिखायी पड़े तो उसे भी ब्राह्मण ही कहना चाहिए।

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्। तदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत्॥

संसारी भोग यदि सुख बुद्धि से आसक्त होकर भोगे जायँ तो वे बन्धन के हेतु हैं उनसे संसार का आवागमन और दृढ़तर होता जाता है, किन्तु यदि वे ही पुण्य क्षय करने के निमित्त अनासक्त भाव से भगवत् प्रीत्यर्थ धर्मपूर्वक भोगे जाँय तो उनसे पुरावर्तन नहीं होता। वे क्षेत्र में बोने पर भी उसी प्रकार का अंकुरित नहीं होते, जैसे भुने हुए दाने उर्वरा भूमि में यत्नपूर्वक बोने पर भी उत्पन्न नहीं होते, उनमें अंकुर नहीं फूटते। वर्णाश्रम धर्म त्यागमय है, इसमें पग-पग पर त्याग की महत्ता है। बाल्यकाल में गृह को त्यागकर गुरुकुल में निवास करो। वहाँ भोगों को त्यागो, सुख को त्यागो, मान-अपमान को त्यागो, रात्रि-दिन गुरु की सेवा करते हुए अपने मनोबल को त्यागते हुए महात्याग की तैयारी करने के लिये ज्ञानार्जन करो। फिर आकर दाराग्रहण-स्त्री का संग्रह करो। यह संग्रह भी भोग के लिये नहीं, त्याग के लिये। पंच-महायज्ञ नित्य प्रति करके सम्पूर्ण भूतों के निमित्त कुछ-न-कुछ त्याग करो। देवता, पितर, तथा ऋषियों के ऋण से उऋण हो यज्ञादिक करके देवऋण से श्राद्धतर्पण और पुत्रोत्पादन करके पितृऋण से और वेदाध्ययन ज्ञानार्जन करके ऋषिऋण से उऋण होना पड़ता है। जब उऋण हो गये, पुत्र के भी पुत्र हो गया तो घर, स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, सम्पत्ति, नगर, परिवार सभी को त्यागकर वनवासी बन जाओ। ग्राम्य अन्न को भी न खाओ। वन के फल-मूलों पर ही निर्वाह करो। किन्तु वहाँ भी यज्ञादि कर्म तथा काया को शोधन करनेवाले तप का तो अनुष्ठान करते ही रहो। अन्त में उन सबको त्यागकर महात्याग की दीक्षा ले लो। परिव्राजक बन जाओ। अलिंग संन्यास, वीर संन्यास, दण्ड संन्यास जो जिसके भी अधिकारी हों उसी को ग्रहण करके इस लोक को ही नहीं आवागमन के चक्कर को ही त्याग दो। अर्थात् त्याग की भावना को भी त्याग कर निर्मुक्त बन जाओ।

वर्णाश्रम धर्म में चार प्रकार के आश्रमों के बारे में वर्णन आता है- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। धर्मराज, जिनमें गर्भाधान आदि संस्कार अविच्छिन्न परम्परा से होते चले गये हैं, उनको द्विज और जो इनसे रहित हैं; उन्हें शूद्र कहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन्हीं तीन को द्विज कहा जाता है। जन्म और यज्ञोपवीतसंस्कार से जिनका दो बार जन्म होता है वे द्विज हैं। वर्ण चार होते हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

हमारे शास्त्रोंने गीतामें भी चार वर्णाश्रम किये है- एक है ब्राह्मण वर्ण उसकी जन्मसे ही सन्तानें ब्राह्मण बन गई। दूसरा क्षत्रिय, तीसरा वैश्य, चौथा शूद्र। ब्राह्मण का काम क्या है- दान देना- दान लेना, यज्ञ करना, कराना, अध्ययन-अध्यापन यह ब्राह्मण के कर्म है। शास्त्रोंको पढ़ना, शास्त्रोंका विवेचन करना, क्षत्रिय ब्राह्मण का कर्म भी कर सकते है इसके अलावा आपतकालीन स्थिति में कोई भी वर्णका का काम कर सकता है इसके अलावा सबसे बड़ा महत्त्व का काम प्रजा की रक्षा करना, हर तरह से प्रजा की रक्षा करना- भयसे, चोरसे, डाकूसे, आक्रमण से जिसतरह के भी हो भय से रक्षा करना। वैश्य का काम गो-पालन, कृषि-खेती, व्याज का लेना-देना, रूपयोंका विनिमय, धंधा, व्यापार, और शूद्र- इन सब वर्णों की सेवा करना यह सब शूद्र का काम है। संस्कार न होने के कारण ही वह द्विज नहीं कहा जा सकता। ब्राह्मण, क्षत्रिय तो द्विज कहे गये। इसमें चार अलग-अलग वर्णोंकी व्याख्या की गई है।

ब्राह्मण के कर्म-यज्ञ करना, यज्ञ कराना, अध्ययन, अध्यापन, दान देना और दान लेना- ये छः कर्म ब्राह्मण के हैं। अध्यापन, याजन (यज्ञ कराना) और प्रतिग्रह (दान लेना) ये तीन कर्म ब्राह्मण की जीविका के साधन हैं। ब्राह्मण पिता, ब्राह्मणी माता, वैदिक संस्कार और ब्राह्मणों का आचारजिसका हो तथा जो ब्रह्मविद्या का ज्ञाता हो वही ब्राह्मण है।

क्षत्रिय के कर्म- उक्त छः कर्मों से प्रतिग्रह को छोड़कर बाकी पाँच कर्म क्षत्रिय के कहे गये हैं। अध्यापन और याजन- ये दो क्षत्रिय के आपत्कालीन कर्म माने गये हैं। प्रजा की रक्षा करनेवाले क्षत्रिय का जीवन-निर्वाह ब्राह्मण के अतिरिक्त और सबसे यथा योग्य कर तथा दण्ड (जुर्माना) आदि के द्वारा होता है। क्षत्रिय तेज ओज वीर्य पराक्रम शौर्य के द्वारा प्रजा

की रक्षा करें। प्रजा से कर लेकर प्रजा की ही भलाई में व्यय करें। शौर्य, उत्साह, वीर्य, धैर्य, तेज, दान, आत्मजय, ब्रह्मण्यता, क्षमा, अनुग्रह और रक्षा ये क्षत्रियके लक्षण हैं। वीरता, उत्साह, धीरता, तेजस्वी का त्याग, ब्राह्मणों के प्रति भक्तिभाव यह क्षत्रिय लक्षण है। क्षत्रियादि वर्ण ज्ञानवान, गुणवान् कर्मनिष्ठ तथा बहुश्रुत भी हों तो भी वे ब्राह्मण के द्वारा प्रणाम के योग्य नहीं है। कोई क्षत्रिय अपने को ब्राह्मण कहलाने कादावा रखता हो तो भी उसकी क्षत्रियत्व जाति नष्ट नहीं हो सकती। जाति जन्म से होती है कर्म से नहीं।

वैश्य के कर्म- वैश्य को ब्राह्मण वंश का अनुयायी होना चाहिये। गोरक्षा, कृषि एवं व्यापार के द्वारा वैश्य को अपनी जीविका चलानी चाहिये। व्यापार से उचित रीति से अधिकाधिक धन संग्रह करें। उपार्जन करें और अपनी जरूरत से ज्यादा कहीं प्रभु दें तो कहीं धर्मशाला, स्कूल, विद्यालय, चिकित्सालय आदि बनवा दें। किसी गरीब की कन्या का विवाह करें, कोई गरीब का चरित्रवान बालक अगर धन के अभाव में पढ़ नहीं सके तो उसे पढ़ाने में मदद करें। देवादिकी भक्ति, त्रिवर्गका परिपालन, नित्य उद्योगमें लगे रहना वैश्यके लक्षण हैं। त्रिवर्ग धन विषय सुख की वृद्धि करना, आस्तिक्य बुद्धि करना, उद्यम करना, निपुणता ये वैश्य के लक्षण हैं।

शूद्र के कर्म- तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्र का धर्म है। उसकी जीविका का निर्वाह उसका स्वामी करता है। निम्नवर्ण का पुरुष बिना आपत्तिकाल के उत्तम वर्ण की वृत्तियों का आश्रय न ले। आपत्ति-काल में सभी सब वृत्तियों को स्वीकार कर सकते हैं। पवित्रतासे रहना, निष्कपट भाव से स्वामीकी सेवा करना, नमस्कार आदिसे विद्या पढ़ना, अचौर्य, सत्य भाषण ये सब शूद्रकी वृत्ति है। अपने से उत्तम वर्ण को प्रणाम करना, नमस्कार मात्र से पंचयज्ञ करना, चोरी न करना, सत्य बोलना, गौ-ब्राह्मणोंकी सेवा करना यह शूद्र के लक्षण है।

चारों वर्णों के लक्षण- शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, दया, भगवत्परायणता और सत्य- ये ब्राह्मण के लक्षण हैं। युद्ध में उत्साह, वीरता, धीरता, तेजस्विता, त्याग, मनोजय, क्षमा, ब्राह्मण-भक्ति, अनुग्रह और प्रजा की रक्षा करना- ये क्षत्रियों के लक्षण हैं। देवता, गुरु और भगवान के प्रति भक्ति, अर्थ, धर्म और काम- इन तीनों पुरुषार्थों की रक्षा करना; आस्तिकता, उद्योगशीलता और व्यावहारिक निपुणता- ये वैश्य के लक्षण हैं। उच्च वर्णों के सामने विनम्र रहना, पवित्रता, स्वामी की निष्कपट सेवा, वैदिकमन्त्रों से रहित यज्ञ, चोरी न करना, सत्य तथा गौ ब्राह्मणों की रक्षा करना- ये शूद्र के लक्षण हैं।

जो चोरी आदि पाप-कर्म नहीं करते- उन अन्त्यज तथा चाण्डाल आदि, वर्णों के अन्त में गिनाई जानेवाली वर्णसंकर जातियों की वृत्तियाँ वे ही हैं, जो कुल-परम्परा से उनके यहाँ चली आई हैं। जिस पुरुष के वर्ण को बतलानेवाला जो लक्षण कहा गया है, वह यदि दूसरे वर्णवाले में भी मिले तो उसे भी उसी वर्ण का समझना चाहिये।

अनेक जन्मों के संस्कारों के कारण जीवों का विषयों के प्रति आकर्षण होता है, प्रारब्ध-कर्म बलात् उधर ले जाते हैं, इसलिये मनीषियों ने कर्मत्याग के मार्ग से वर्णाश्रम धर्म को श्रेष्ठ बताया है। ब्रह्मचर्याश्रम में त्याग की शिक्षा प्राप्त करो। गृहस्थाश्रम में प्रारब्ध-कर्मों को भोगते हुए धर्मपूर्वक काम तथा विषय का सेवन करो। वानप्रस्थाश्रम में ज्ञान-अज्ञान में किये हुए पापों का प्रायश्चित करते हुए पूर्ण त्याग के लिये तैयारियाँ करो। संन्यासाश्रम में सब कुछ त्याग कर, समस्त प्राणियों को अपने से अभय-दान देकर परिव्राजक बन जाओ। यही वर्णाश्रम धर्म का रहस्य है। दाराग्रहण त्याग के ही निमित्त है। त्याग ही चरम लक्ष्य है।

३) नारी धर्म - स्त्री-धर्म पति की सेवा करना, पति के अनुकूल रहना, पति के सम्बन्धियों को प्रसन्न रखना और

सर्वदा पति के नियमों का पालन करना- ये चार, पति को ही ईश्वर माननेवाली, पतिव्रता स्त्रियों के लक्षण एवं धर्म हैं। नारियां घरकी लक्ष्मी कहलाती हैं। अपने प्रेमपूर्वक व्यवहार से घर की सुन्दर व्यवस्था करें और अपनी सद्भावना से घर को वैकुण्ठ बनाकर रखें। जो स्त्रियाँ अपने पति की भगवत् भावना से सेवा करती हैं वे बैकुण्ठ में भगवत्स्वरूप पति के साथ लक्ष्मी के समान आनंदित होती है। नारी को अपने पति के सिवाय किसी अन्य को गुरु नहीं बनाना चाहिए, न ही किसी गुरु से एकांत में मिलना चाहिए। नारी के लिये तो उसका पति ही गुरु है। जो पति का गुरु है वही नारी का गुरु है।

साध्वी स्त्री को चाहिये कि वह झाड़-बुहार कर, लीप-पोत कर तथा चौक पूर कर घर को स्वच्छ रक्खे तथा वस्त्राभूषणों से अपने को अलंकृत रक्खे, गृहस्थी की सामग्रियों को भी साफ-सुथरी रखना उसका कर्त्तव्य है। सास-ससुर की सेवा, अन्य पुरुषों से हँस-हँस कर बात न करना, पति की आज्ञा से ही धार्मिक कृत्य एवं तीर्थ-यात्रा आदि करना और किसी साधु-संन्यासी के समीप न जाना आदि नियम उसके लिये आवश्यकता हैं।

पतिव्रता स्त्री को चाहिये कि वह यथालाभ सन्तोष रक्खे, लालच से दूर रहे, सत्य प्रिय और मधुर भाषण करे, पातिव्रत्य रक्खे और प्रेम पूर्वक पतिदेव के साथ सहवास करे, सम्भोग की बेला में उन्हें पूर्ण-सन्तुष्ट रक्खे। जो लक्ष्मी के समान पतिपरायण होकर अपने पति को भगवान् समझकर सेवा करती है वह वैकुण्ठ में पति के साथ लक्ष्मी के समान आनन्दपूर्वक निवास करती है।

घर ही को मन्दिर बनाइबे, अनत कहुं भटके न जायें। सासु को गौरी ससुर को शंकर, पतिजी को विष्णु बनाइयें।।

४) ब्रह्मचर्याश्रम - नारदजी ने कहा- धर्मराज, गुरुकुल में निवाास करनेवाला ब्रह्मचारी, अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर, दास के समान अपने को छोटा माने, गुरुदेव के चरणों में सुदृढ़ अनुराग रक्खे और उनके हित के कार्य करता रहे। सायंकाल और प्रात:काल गुरु, अग्नि, सूर्य और श्रेष्ठ देवताओं की उपासना करे और मौन होकर एकाग्रता से गायत्री का जप करता हुआ दोनों समय की सन्ध्या करे। गुरुकी अनुशासन में रहकर रूखासूखा खाकर जीवन निर्वाह करना, सेवा परायण होकर शील शिष्टाचार पूर्वक विद्या की प्राप्ति करना और जब तक ब्रह्मचर्यपूर्वक तब तक स्त्री संग से दूर रहे, नाखून केश आदि न काटें विषय भोग पदार्थों का उपयोग नहीं करना चाहिए ब्रह्मचारी को। अगर वहीं से संसार से वैराग्य हो गया तो वहीं से सन्यास भी ले सकते हैं। जो शास्त्र के अनुसार मेखला, मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड, कमण्डल आदि धारण करता है वही ब्रह्मचारी कहलाता है।

गुरुजी जब बुलावें तो पूर्णतया अनुशासन में रहकर उनसे वेदों का अध्ययन करे। ब्रह्मचारी को चाहिये कि वह शास्त्र की आज्ञा के अनुसार मेखला, मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड, कमण्डलु, यज्ञोपवीत तथा हाथ में कुश धारण करे। वे आज्ञा दें तब भोजन करें और यदि कभी आज्ञा न दें तो उपवास कर लें। शीलवान बनें, स्वल्प भोजन करें, कुशलता से अपने कार्यों को निपटावें, श्रद्धालु बनें और अपनी इन्द्रियों को वश में रक्खे। स्त्री और स्त्रियों के वश में रहनेवाले के साथ अत्यल्प आवश्यकतानुसार ही व्यवहार करे। ब्रह्मचारी को स्त्रियों की चर्चा से भी दूर रहना चाहिये क्योंकि स्त्रियाँ यत्नपूर्वक साधन करनेवाले व्यक्ति के मन को भी हठात् खींच लेती हैं। युवक ब्रह्मचारी युवती गुरुपत्नियों से दूर रहे। स्त्रियाँ आग के समान हैं और पुरुष घी के घड़े के समान। एकान्त में तो अपनी युवती कन्या के साथ भी नहीं रहना चाहिये। एकान्त के अलावा भी अत्यन्त आवश्यकता के अनुसार ही उसके पास निवास करे।

ब्रह्मचारी के दो भेद होते हैं- उपकुर्वाण और नैष्ठिक। उपकुर्वाण ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति पर गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर विवाह करते हैं और नैष्ठिक आजीवन ब्रह्मचारी बने रहते हैं। यह उनकी इच्छा पर निर्भर रहता है कि वे गुरुकुल में ही निवास

करेंगे अथवा संन्यास लेकर संसार-भ्रमण करेंगे। ब्रह्मचारी को चाहिये कि वह अपने शरीर का श्रृंगार कभी न करे। शरीर के श्रृंगार से काम की वासना जागृत होती है।

इस प्रकार ब्रह्मचारी गुरु के आश्रम में निवास कर वेद-वेदांगों का अध्ययन पूरा करने के बाद आश्रम की अवधि पूरी होने पर यदि सामर्थ्य हो तो गुरु को मुँहमांगी दक्षिणा दे। इसके बाद उनकी आज्ञा से गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यास आश्रम में प्रवेश करे। गृहस्थाश्रम में और संन्यासाश्रम में भी ब्रह्मचर्यावस्था के शील-रक्षा आदि गुण विहित हैं। यद्यपि भगवान सर्वत्र समानरूप से विराजमान हैं- फिरभी अग्नि, गुरु, आत्मा और समस्त प्राणियों में विशेषरूप से विराजमान हैं इसलिये उन पर सदा विशेष ध्यान रखना चाहिये। नारदजी कहते हैं कि युधिष्ठिर, ब्रह्मचारी गुरु-दक्षिणा देनेके बाद चाहे तो गृहस्थ हो जाये, चाहे वानप्रस्थ हो जाये और चाहे संन्यासी हो जाये, लेकिन वह सबमें ईश्वरको देखे और अनुभव करे कि गुरुमें, आत्मामें, प्राणियोंमें सबमें ईश्वर बैठा हुआ है। अंतमें ब्रह्मज्ञान होता है, परमात्माकी प्राप्ति होती है।

५) वानप्रस्थाश्रम- वानप्रस्थ आश्रम के नियम- वानप्रस्थ आश्रम के नियमों का ठीक-ठीक पालन करने से व्यक्ति को ऋषियों के लोक महर्लोक की प्राप्ति हो जाती है। वानप्रस्थ आश्रम में रहनेवाले को जोती हुई भूमि में उत्पन्न होनेवाले चावल, गेहूँ आदि अन्न नहीं खाने चाहिये। आगसे पकाया हुआ या कच्चा अन्न भी न खाय, केवल सूर्य के ताप से पके हुए कन्द, मूल, फल आदि का ही सेवन करे। जब नये-नये अन्न, फल, फूल आदि मिलने लगें तब पहले के इकट्ठे किये हुए अन्न का परित्याग कर दे। अग्निहोत्र के अग्नि की रक्षा के लिये ही घर, पर्णकुटी अथवा पहाड़ की गुफा का आश्रय लें। स्वयं शीत, वायु, अग्नि, वर्षा और घाम का सहन करे। कमण्डलु, मृगचर्म, दण्ड, वल्कल-वस्त्र और अग्निहोत्र की सामग्रियों को अपने पास रक्खे। विचारवान् पुरुष को चाहिये कि वह बारह, आठ, चार, दो या एक वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम में रहकर उसके नियमों का पालन करें। कहीं अधिक तपस्या का क्लेश सहन करने से बुद्धि बिगड़ न जाय।

वानप्रस्थ आश्रम में निवास करनेवाला व्यक्ति जब वृद्धावस्था के कारण अथवा रोग से आक्रान्त होने के कारण अपना कर्म पूरा न कर सके और वेदान्त-विचार करने का भी सामर्थ्य न रहे, तब उसे अनशन आदि व्रत करना चाहिये। अनशन, प्रारम्भ करने के पूर्व ही वह बाह्य अग्नियों को अपने भीतर लीन कर ले और यह अनुभव करे कि जो वह खाता-पीता है, उसका होम हो गया। मैं, और मेरेपन का परित्याग कर दे फिर इन्द्रियों को अपने वश में करके कार्यों का कारण में लय करे। अपने शरीर के छिद्राकाशों को आकाश में, प्राणों को वायु में, गरमी को अग्नि में, रक्त, कफ, पीव आदि जलीय तत्त्वों को जल में और हड्डी आदि ठोस वस्तुओं को पृथ्वी में लीन करले। इसी प्रकार वाणी और वाणी के कर्म भाषण को उसके अधिष्ठातृ-देवता अग्नि में, हाथ और हाथ के कर्म को इन्द्र में, चरण और उसकी गति को विष्णु में, रति और उपस्थ को प्रजापति में एवं पायु और मलोत्सर्ग को उनके आश्रय मृत्यु में लीन कर दे। स्थूल-सूक्ष्म शरीर का अपने कारणों में लय कर देने के बाद अध्यात्म का भी लय कर दे। चित्त का सत्त्व में, गुण का वैकारिक अहंकार में और जीव का ब्रह्म में। फिर मिट्टी जल में, जल वायु में, वायु अग्नि में- इस प्रकार क्रम-क्रम से आगे बढ़ते हुए प्रधान को जीव में लीन कर दे। जीवात्मा को परमात्मा में विलीन कर दे जैसे अपने आश्रयकाष्ठ आदि के दग्ध हो जाने पर अग्नि शान्त होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, वैसे ही वह भी उपरत हो जाय।

कुछ लोग वृद्धावस्था में शरीर के असमर्थ हो जाने पर अथवा सांसारिक कष्टों को न झेल पाने के कारण जीवित अवस्था में जल समाधि के बहाने जल में डूब कर शरीर छोड़ते हैं। यह प्रशस्त विधि नहीं है। यह तो आत्म-हत्या है। ऐसे व्यक्ति को आत्म-हत्या-जनित पाप लगता है। जल-समाधि की प्रक्रिया यह है- योगी को चाहिये कि वह नाभि-पर्यन्त जल में

बैठकर वायु को नीचे से ऊपर की ओर चढ़ावे और अन्त में ब्रह्मरन्ध्र स्फोटन कर प्राण-त्याग करे। जल में कूद कर, चाहे वह जल कितना ही पवित्र क्यों न हो, प्राण-त्यागना आत्म-हत्या है। ऐसे व्यक्ति को आत्म-हत्या-जनित पाप लगता है और फलस्वरूप वह नरकगामी होता है।

वानप्रस्थ का अर्थ है, जो भली प्रकार वन में स्थित रहे, ग्राम्य धर्मों को त्याग दे, सहधर्मिणी के साथ रहने पर भी सदा ब्रह्मचर्य व्रत से रहे। हल से जोते बोये ग्राम्य अन्न को न खाय, सभी विषयों का त्याग कर दे। कन्द, मूल आदि का आहार करें। जीवन निर्वाह जितनी भी कम हिंसा किये हुए व्यतीत हो उतना ही श्रेष्ठ हैं। जीव तो सबमें समान रूप से व्याप्त है, किन्तु उसका प्रकाश पात्र भेद में कम अधिक होता है। मनुष्यों की अपेक्षा बुद्धिजीवी पशुओं में कम, उनसे भी कम कीट पतंग आदि उनसे भी कम वृक्षों में, उनसे भी कम वृक्षों की अन्न आदि जौ गेहूँ आदि औषधियों में, उनसे भी कम पाषाण आदि में। वृक्ष से अपने आप गिरे सूखे पतों में कम से कम हिंसा है।

६) सन्यासाश्रम (यतिधर्म का निरूपण)- नारदजी ने कहा- युधिष्ठिर, वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट व्यक्ति यदि आत्म-विद्या के अभ्यास में समर्थ हो और शारीरिक दृष्टि से अशक्त न हुआ हो तो वानप्रस्थ के नियमों का भली-भाँति पालन करते हुए उसे पचहत्तर वर्ष तक वन में निवास करना चाहिये। तदनन्तर उसे संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिये। इस अवस्था में उसे किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान और समय की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये। संन्यासी को चाहिये कि वह सकल भू-मण्डल में भ्रमण करते हुए एक गाँव में एक रात्रि निवास करे।

यदि वह वस्त्र धारण करे तो उसे केवल लँगोटी-मात्र धारण करनी चाहिये, जिससे उसके गुप्ताङ्ग आच्छादित हो जाँय। जब तक कोई आपत्ति न आवे तब तक उसे अपने दण्ड और आश्रम के चिन्हों का परित्याग नहीं करना चाहिये और त्यागी हुई वस्तु ग्रहण भी नहीं करनी चाहिये। संन्यासी को चाहिये कि वह समस्त प्राणियों का हितैषी हो, शान्त रहे, भगवत्परायण रहे और किसी का आश्रय न लेकर अपने आप में ही रमे एवं एकाकी ही विचरण करे। संसार में ब्रह्म का और ब्रह्म में संसार का दर्शन करे। अपने जीवन-निर्वाह के लिये कोई जीविका न करे, केवल वाद-विवाद के लिये कोई तर्क न करे और संसार में किसी का पक्ष न ले। शिष्यमण्डली न जुटावे, बहुत-से ग्रन्थों का अभ्यास न करे, व्याख्यान न दे और बड़े-बड़े कार्यों का आरम्भ न करे। शान्त, समदर्शी एवं महात्मा संन्यासी के लिये आश्रम का बन्धन धर्म का कारण नहीं है। वह अपने आश्रम के चिन्हों को धारण करे चाहे छोड़ दे। संन्यासी पागल और बालक की भाँति नित्य भगवच्चिन्तन में निमग्न रहे। स्वल्प भाषण संन्यासी का आवश्यक गुण है। संन्यास लेने के बाद वृक्षों के बीच और जंगल में रहें आश्रम बनाने की बेचैनी नहीं है।

मृत्यु तो अपनेआप आनेवाली है, उसका अभिनन्दन करने की आवश्यकता नहीं। उसको बुलाने या भगानेकी भी जरूरत नहीं। जब हो जाये सो हो जाय। असत् शास्त्रमें आसक्ति नहीं होनी चाहिए। अपनी जीविका के लिये कोई काम नहीं करना चाहिए। शास्त्रार्थमें कभी कोई पक्ष नहीं लेना चाहिए। दोनों पक्ष अपने-अपने स्थानपर ठीक है ऐसा सोचना चाहिए। व्याख्यान देकर अपनी जीविका नहीं चलानी चाहिए। चन्दा करके बड़े-बड़े उत्सव नहीं करने चाहिए।

७) अवधूत-दत्तात्रेय मुनि और भक्तशिरोमणि प्रह्लाद का संवाद- दत्तात्रेय जी को आजगर मुनि भी कहते हैं। एक बार महाराज प्रह्लाद प्रजा का समाचार जानने के लिये अपने मन्त्रियों के साथ अपने राज्य में विचरण कर रहे थे। घूमते-घामते वे सह्य पर्वत की तलहटी में स्थित कावेरी नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि हृष्ट-पुष्ट तथा तेज से सम्पन्न एक मुनि भूतल पर पड़े हैं। उनके आकार-प्रकार से यह नहीं प्रतीत होता था कि यह कोई सिद्ध पुरुष हैं। प्रह्लाद जी ने उनके चरणों पर अपना मस्तक रखकर हाथ जोड़कर विनम्रता के साथ पूछा- महाराज, आपका शरीर उद्योगी और

धनी व्यक्तियों के समान हृष्ट-पुष्ट है, मोटा-तगड़ा है। आप न उद्योगी हैं और न ही धनी ही फिर भी मोटे-तगड़े तथा प्रसन्न हैं। इसका रहस्य क्या है?

अवधूत दत्तात्रेय ने प्रह्लाद की प्रेमभरी बातें सुनी। सुनकर मुस्कराये और फिर बोले- प्रह्लाद जी, तृष्णा एक ऐसी वस्तु है, जो इच्छानुसार भोगों को भोगने के बाद भी पूरी नहीं होती। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई। तृष्णा संसार रूप नदीको बहाती रहती है। चाहे कितना भोग करो, उससे यह तृप्त नहीं होती। जीव को वह अनेक योनियोंमें ले जाती है उनमें भटकनेके बाद ही मनुष्य योनि मिलती है। तृष्णाके कारण ही जन्म-मृत्युके चक्कर में भटकना पडता है। तृष्णाने मुझसे न जाने कितने कर्म करवाये और उनके कारण न जाने कितनी योनियों में मुझे डाला। कर्मोंके कारण अनेकों योनियोंमें भटकते-भटकते दैववश मुझे यह मनुष्ययोनि मिली है, जो स्वर्ग, मोक्ष, तिर्यग्योनि तथा इस मानवदेहकी भी प्राप्तिका द्वार है। इसमें पुण्य करें तो स्वर्ग, पाप करें तो पशु-पक्षी आदिकी योनि, निवृत्त हो जायँ तो मोक्ष और दोनों प्रकारके कर्म किये जायँ तो फिर मनुष्य की योनिकी ही प्राप्ति हो सकती हैं। परन्तु मैं देखता हूँ कि संसारके स्त्री-पुरुष कर्म तो करते हैं सुखकी प्राप्ति और दु:खकी निवृत्तिके लिये, किन्तु उसका फल उलटा होता ही है- वे और भी दु:खमें पड़ जाते हैं।

संसारी मनुष्योंकी तो यही दशा है। वे इधर-उधर भटकते रहते हैं। इनके सब काम व्यर्थ होते हैं। उनको बारम्बार दु:ख मिलता है। यह जो धनी लोग हैं उनके बहुत क्लेश हैं। वे स्वयं नहीं जानते। लोभ उनके हृदयमें है और इन्द्रियाँ उनके वशमें नहीं। भयके कारण उन्हें निद्रा नहीं आती। धन के लोभी को राजाका, चोरका, शत्रुका, स्वजनका भय यहाँ तक कि अपने आपका डर लगा रहता है। बापको बेटेसे डर लगता है, बेटेको बापसे डर लगता है, बहूसे ससुर डरता है, ससुरसे बहू डरती है, भाई से भाई डरता है। चारों तरफ एक दूसरे के प्रति संदेह अविश्वासका वातावरण है। इसतरह शोक, मोह, भय, क्रोध आदि धनके कारण आते रहते हैं। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य का काम यह है कि वह मस्त रहे, अपने सुख, अपनी प्रशंसा को सबसे बड़ी चीज समझे और धनकी स्पृहा छोड़ दे।

तृष्णा प्राणियों को सर्वदा बन्दर-नाच नचाती रहती है। इसी के कारण मुझे न जाने कितने कर्म करने पड़े, न जाने कितनी योनियों में भटकना पड़ा। तब कहीं जाकर यह मनुष्य योनि मिली हुई है। यह मानव-योनि स्वर्ग, मोक्ष, तिर्यग्योनि तथा इस मानव देह की भी प्राप्ति का द्वार है। इससे पुण्य करें तो स्वर्ग, पाप करें तो पशु-पक्षी आदि योनि प्राप्त होती है। यह मोक्ष का भी महान् साधन है। **बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहि गावा।। साधन धाम मोक्षकर द्वारा। पाइ न जेंहि परलोक सँवारा।।** यहाँ व्यक्ति कर्म करता है सुख की प्राप्ति के लिये, किन्तु फल दु:ख होता है। इसलिये मैं कर्मों से उपरत हो गया हूँ। वस्तुत: सुख आत्मा का स्वरूप है। उसे बाह्य वस्तुओं में ढूँढ़ना अज्ञान है। निवृत्ति आत्मा का शरीर है। इसलिये विषय और मन के संस्पर्श से जो सुख-दु:ख होता है, उसे छोड़कर मैं मौज से शयन करता हूँ। प्रारब्ध के कारण इच्छित भोग तो आते ही रहते हैं। लोग इस बात को नहीं समझते और द्वैत बुद्धि के कारण संसार में फँसते हैं जैसे अज्ञानी प्राणी सेवार से आच्छन्न जल को जल न समझ कर, उसे छोड़कर, मृगतृष्णा के पीछे दौड़ता है, वैसे अपनी आत्मा से भिन्न वस्तु में सुख समझनेवाला पुरुष आत्मा को छोड़कर विषयों की ओर दौड़ता है।

धन में तो सुख है ही नहीं। लोभी और इन्द्रियों के वशीभूत रहनेवाले धनिकों का दु:ख तो मैं देखता ही रहता हूँ। भय के मारे उन्हें नींद नहीं आती। उन्हें राजा, चोर, शत्रु, पशु-पक्षी आदि सभी से भय बना रहता है। इतना ही नहीं, धनी व्यक्ति अपने से भी आशंकित रहते हैं कि कहीं मैं अधिक न खर्च कर दूँ, कहीं भूल न कर बैठूं। अत: बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह धन और जीवन की स्पृहा का परित्याग कर दे। मैं स्पृहा से रहित हूँ। मेरी कोई इच्छा नहीं है अत: प्रारब्ध के भरोसे

मस्त पड़ा रहता हूँ। इस लोक में मेरे सब से बड़े गुरु हैं- अजगर और मधुमक्खी। उनकी शिक्षा से मुझे वैराग्य और सन्तोष की प्राप्ति हुई है यही कारण है कि मुझे खाने-पीने की कोई चिन्ता नहीं। मैं सब प्रकार से निश्चिन्त हूँ। प्राणी चिन्ता के कारण ही दुर्बल होता है। मैं अजगर के समान निश्चेष्ट पड़ा रहता हूँ। दैववश जो कुछ मिल जाता है, उसे ही खाकर सन्तुष्ट रहता हूँ और यदि नहीं मिलता तो भी धैर्य धारण कर यों ही पड़ा रहता हूँ। कभी थोड़ा अन्न खा लेता हूँ तो कभी अधिक, कभी स्वादिष्ट खाता हूँ, तो कभी बेस्वाद- जो भी मिल जाता है, उसे बड़े प्रेम से खा लेता हूँ। कभी श्रद्धा से मिला हुआ अन्न खाता हूँ, तो कभी अपमान के साथ, कभी दिन में, कभी रात्रि में, कभी एक बार, कभी दो बार जो कुछ मिल जाता है उसी से सन्तुष्ट रहता हूँ। मैं अपने प्रारब्ध के भोग से ही सन्तृप्त तथा प्रसन्न रहता हूँ इसलिये मुझे रेशमी या सूती, मृगचर्म या चीर, बल्कल या और कुछ- जैसा भी वस्त्र मिल जाता है, पहन लेता हूँ। कभी मैं पृथ्वी, घास, पत्ते, पत्थर या राख की ढेर पर पड़ा रहता हूँ, तो कभी दूसरों की इच्छा से महलों में पलंगों और गद्दों पर सो लेता हूँ। दैत्यराज, कभी नहा-धोकर, शरीर में चन्दन लगाकर सुन्दर वस्त्र, फूलों के हार और आभूषण धारण कर रथ, हाथी और घोड़े पर चढ़कर चलता हूँ, तो कभी पिशाच के समान बिल्कुल नंग-धड़ंग विचरता हूँ। लोग विषम स्वभाव के होते हैं अत: मैं लोगों की निन्दा-स्तुति से भी बहुत दूर रहता हूँ। सब के कल्याण की कामना करता हूँ और सब में परमात्मा से एकता चाहता हूँ।

कर्मों के कारण अनेकों योनियों में भटकते भटकते दैववश यह मनुष्य योनि प्राप्त हुई जो स्वर्ग, मोक्ष, तिर्यग्योनि तथा इस मानव देह की भी प्राप्ति का द्वार है। पुण्य करे तो स्वर्ग, निवृत्त हो जाये तो मोक्ष, पाप करे तो तिर्यग्योनि और दोनों प्रकार के कर्म किये जाँय तो मनुष्य योनि की प्राप्ति हो सकती है। परन्तु मैं देखता हूँ कि संसार के स्त्री-पुरुष कर्म तो करते हैं सुख की प्राप्ति और दु:ख की निवृत्ति के लिये, परन्तु उसका फल उलटा ही होता है। वे और भी दु:ख में पड़ जाते हैं।

संसार और संसार के व्यवहार सब के सब माया के खेल हैं। सुख-दु:ख तो मन की अनुभूति है इसलिये उस मन को ही अहंकार में, अहंकार को माया में, माया को आत्मा में और आत्मा को परमात्मा में डालकर, परमात्मा से एक होकर निवृत्त हो जाना चाहिये। हे राजन्, मेरी यह आत्म-कथा अत्यन्त गुप्त एवं लोक और शास्त्र से परे की वस्तु है। तुम भगवान के अत्यन्त प्रेमी भक्त हो, इसलिये तुम्हें बताया है।

नारदजी ने कहा- राजन्, प्रह्लाद जी ने दत्तात्रेय मुनि से परमहंसों के धर्म का श्रवण करके उनकी पूजा की और फिर उनसे विदा लेकर बड़ी प्रसन्नता से अपनी राजधानी के लिये प्रस्थान किया।

कहीं ऐसा कि आप परमात्माको पाना चाहते हैं, लेकिन छोड़ने को कुछ भी तैयार नहीं। परमात्मा कोई बेवकूफ नहीं है जहां भगवान को घरमें पाना चाहते हैं वहां उनका सारा जीवन भगवान को समर्पित हो।

८) गृहस्थाश्रम - युधिष्ठिर ने पूछा- मुनिवर, आपने तीन आश्रमों के धर्मों की विस्तार से चर्चा की है। गृहस्थाश्रम के धर्मों का वर्णन उस रूप में नहीं किया। मैं एक गृहासक्त व्यक्ति हूँ अत: मुझे चिन्ता हो रही है कि संन्यासियों की भाँति क्या गृहस्थाश्रमियों की मुक्ति नहीं हो सकती?

नारद ने कहा- गृहस्थ आश्रम में निवास करनेवाले व्यक्ति को चाहिये कि वह गृहस्थ-धर्म के अनुसार आचरण करे। अपने सभी कर्मों को भगवदर्पण-बुद्धि से सम्पन्न करे। बड़े-बड़े महात्माओं की सेवा और संगति भी करता रहे। अवकाश के अवसर पर विरक्त पुरुषों के साथ निवास करे और बार-बार श्रद्धापूर्वक भगवान के अवतारों की लीला-सुधा का पान करता रहे। **जेहिं घर साधु न सेवे, हरि की पूजा नाय। ते घर मरघट सरीखे, भूत बसे तिन्ह माय॥**

मनुष्य के अंदर से विरक्त और बाहर से रागी जैसा व्यवहार करे माता-पिता-भाई-बन्धु की आज्ञा पालन करे, उनका

अनुमोदन करे किन्तु उसमें आसक्त न हो। सब वस्तु भगवान् की समझकर उसका उपयोग करें उसमें अपनापन या मोह उत्पन्न न होने दे। युधिष्ठिर, तीर्थ का पानी कोई साधारण जल नहीं है, मूर्तियाँ केवल पत्थर नहीं है, ऋषि-मुनियों को साधारण आदमी मत समझो। इन सबमें प्रभु का वास है। अणु-अणु, कण-कण में ईश्वर व्याप्त है। ईश्वर में सोलह कलायें है। छ: कला तक मनुष्य का अस्तित्व रह सकता है, सात और आठ कलामें ऋषि-मुनि का अस्तित्व रहता है। प्राणी सदा ही चतुष्ट्य विधि आहार करता है। वह भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय, चोष्य इत्यादि साधनों द्वारा आहार ग्रहण करता है।

स्वप्न समाप्त हो जाने पर मनुष्य स्वप्न के सम्बन्धियों से आसक्त नहीं रहता- वैसे ही ज्यों-ज्यों सत्संग के द्वारा बुद्धि शुद्ध हो, त्यों-ही-त्यों शरीर, स्त्री-पुत्र, धन आदि की आसक्ति स्वयं छोड़ता चले क्योंकि एक-न-एक दिन ये सब छूटने ही वाले हैं। छोड़ने का अभ्यास व्यक्ति को धीरे-धीरे करते ही रहना चाहिये। गृहस्थ को भीतर से विरक्त और ऊपर से अनुरक्त रहना चाहिये। ऊपर से रागी के समान व्यवहार करना चाहिये। ममता-रहित होकर ही लोगों की बातों का अनुमोदन कर दे। बुद्धिमान् पुरुष वर्षा से होनेवाले अन्नादि, भूतल से उत्पन्न होनेवाले सुवर्ण आदि, अकस्मात् प्राप्त द्रव्य आदि तथा और सब प्रकार के धन भगवान के द्वारा प्रदत्त हैं- ऐसा समझ कर प्रारब्ध के अनुसार उनका उपभोग करता हुआ संचय न करे, उन्हें साधु-सेवा आदि सत्कर्मों में लगा दे। मनुष्यों का अधिकार केवल उतने ही धन पर है, जितने से उनकी भूख मिट जाय। इससे अधिक सम्पत्ति को जो अपनी मानता है, मानकर संचय करता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये।

तुम संसार की वस्तुओं के केवल संरक्षक हो सकते हो, सेवक हो सकते हो, किन्तु उनके तुम स्वामी नहीं हो सकते। संसार के सारे जीव- मृग, ऊँट, गधा, बन्दर, चूहा, सरीसृप (सरक कर चलनेवाले प्राणी), पक्षी और मक्खी आदि को अपने पुत्रों के समान ही समझना चाहिये। गृहस्थ मनुष्यों को भी धर्म, अर्थ और काम के लिये बहुत कष्ट नहीं उठाना चाहिये; बल्कि देश, काल और प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाय उसीसे सन्तोष कर लेना चाहिए।

व्यक्ति स्त्री को अपनी निजी सम्पत्ति मानता है। उसके कारण वह अपने माता-पिता और गुरु की भी हत्या कर देता है। उस स्त्री पर से जिसने अपनी ममता हटा ली, उसने नित्य विजयी भगवान को भी मानो जीत लिया। यह शरीर अन्त में कीड़े, विष्ठा या राख की ढेर होनेवाला है अत: इस पर और इससे सम्बन्ध रखनेवालों पर ममता रखना कभी भी बुद्धिमानी नहीं है। गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचर्य होता है। पतिको पत्नीका संग उतना ही करनाचाहिए, जितना शास्त्रोंमें वर्णित है। उसमें एक तो कालका नियम है कि एकादशी-ग्रहणादिका परित्याग कर देना चाहिए। स्थानका नियम हैं कि मन्दिर, गंगातट आदि नहीं होना चाहिए और क्रियाका नियम है कि महीनेमें केवल ऋतुके अवसरपर संग करना चाहिए। इस प्रकार कालके अनुसार देशके अनुसार, क्रियाके अनुसार पत्नी-संग प्राप्त करना चाहिए। उसमें भी सन्तान उत्पन्न करना या नहीं करना, सन्तान पुरुष हो, स्त्री हो या बिल्कुल न हो- इसके लिए भी क्रियाका और ओषधिका वर्णन उपनिषदोमें है। संतान गौरवर्ण हो, हृष्ट-पुष्ट हो, बलिष्ट हो इसके लिए भी विधिका वर्णन है। यहाँतक कि गृहस्थाश्रममें पति-पत्नीके समागमको भी यज्ञ बतानेवाले शास्त्र हमारे पास हैं और वे शास्त्र तांत्रिक नहीं, साक्षात् वेद-उपनिषद हैं।

गृहस्थ को चाहिये कि प्रारब्ध से प्राप्त और पञ्चयज्ञ आदि से बचे हुए अन्न से ही अपना जीवन-निर्वाह करे। जो बुद्धिमान व्यक्ति इसके अतिरिक्त और किसी वस्तु में स्वत्व नहीं रखते, उन्हें सन्तों का पद प्राप्त होता है।

गृहस्थ को चाहिये कि वह प्रतिदिन नियम से बलिवैश्वदेव अर्थात् देवता-ऋषि-पितरों की पूजा करे। अतिथियों का सम्मान करे। यथाशक्ति उन्हें कुछ-न-कुछ दान करे। अतिथियों का तिरस्कार करनेवाला पाप का भागी बनता है। यथासमय अग्निहोत्र करे। ब्राह्मणों को समय-समय पर क्षीरान्न (खीर) का भोजन अवश्य करावे। उनके मुख में क्षीरान्न

की आहुति देने से भगवान को जैसी तृप्ति होती है, वैसी तृप्ति अग्नि में आहुति डालने से भी नहीं होती। ब्राह्मण, देवता, मनुष्य आदि सभी प्राणियों में अन्तर्यामी भगवान् की पूजा करनी चाहिये। गऊ ग्रास रोज निकाले, अग्निभोजन अवश्य खिलाये यानि के रोटी बनाकर उसके टुकड़े का उसमें घी-चीनी मिलाकर अग्नि को भोग लगावें चींटी को दस-पाँच ग्राम आटा रोज वृक्षों की जड़ों के पास डालें, पक्षियोंको दाना-चुगा, अन्न डालें। आटे की गोली बनाकर जलाशय में मछलियों को डालें। घरके द्वारपर भिखारी आये तो उसे झूठा अन्न भिक्षा में कभी नहीं देवें।

धनी द्विज को अपने धन के अनुसार आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में अपने माता-पिता तथा अपने बन्धुओं का महालय श्राद्ध करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अयन (कर्क और मकर-संक्रान्ति), व्यतीपात, दिनक्षय, चन्द्र-सूर्य-ग्रहण के समय, द्वादशी के दिन, श्रवण, धनिष्ठा और अनुराधा नक्षत्रों में, वैशाख शुक्ला तृतीया (अक्षय तृतीया), कार्तिक शुक्ला नवमी (अक्षय नवमी), आदि-आदि तिथियों में जो दान, तप किया जाता है, उसका फल अक्षय होता है। दान में न तो देश की प्रधानता है और न काल की, इसमें प्रधानता है पात्र की। जहाँ सत्पात्र, सदाचारी, त्यागी और देने योग्य व्यक्ति मिल जाँय- वही दान का देश है, वही दान का काल है। जहाँ गंगा आदि नदियाँ बहती हैं जहाँ-जहाँ पुष्कर, कुरुक्षेत्र, मथुरा, बदरिकाश्रम, अलकनन्दा आदि पावन सरोवर हैं, जहाँ नैमिषारण्य, वाराणसी, प्रयाग आदि क्षेत्र हैं, पवित्र पर्वत हैं, वहाँ-वहाँ भगवान की पूजा होती है। परन्तु सत्पात्र की प्रशंसा सर्वोपरि है। सत्पात्र के मान-सम्मान से ही भगवान की पूजा सम्पन्न होती है। सत्य युग में यही स्थिति थी। त्रेता आदि युगों में जब मनुष्य परस्पर, एक-दूसरे का अपमान आदि करते हैं, तब उन लोगों ने उपासना की सिद्धि के लिये विद्वानों ने भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। तभी से प्रतिमा में भगवान की पूजा का प्रचलन हुआ।

किन्तु प्राणियों से द्वेष करनेवाले को प्रतिमा में अर्चा करने पर भी सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती। ब्राह्मण भगवान के श्रीविग्रह हैं। भगवान कृष्ण के भी इष्टदेव ब्राह्मण ही हैं। ब्राह्मणों के चरण-रज से त्रिलोकी पवित्र होती है। अत: उनकी पूजा से भगवान को बड़ी प्रसन्नता होती है। गृहस्थ धर्म के आचरण से मनुष्य अवश्य ही महात्माओं की पदवी, मोक्ष का भागी बनता है।

गृहस्थ शब्द आया है गृह से। गृह की स्वामिनी को गृहिणी कहा जाता है। गृहिणी बिना गृह नहीं होता। अग्नि को, माता-पिता को, बड़े-बूढ़ों को साक्षी मान कर जीव गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है, अर्थात विवाह करता है। गृहस्थाश्रम में व्यक्ति चारों पुरुषार्थ का भोग करता है। चार पुरुषार्थ अर्थात धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। गृहस्थ होकर भी भगवान को प्राप्त किया जा सकता है। इस कार्य में गृहिणी का बहुत योगदान होता है। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने पर हर एक व्यक्ति पर एक उत्तरदायित्व आ जाता है कि उसे अपने परिवार को पालना होता है। आज के आधुनिक युग में परिवार पालने के लिए धन की आवश्यकता है। धन के उपार्जन और उसके प्रबंधन में पुरुष की सबसे विश्वसनीय सलाहकार पत्नी ही होती है। गृहिणी को सह-धर्मिणी भी कहा जाता है अर्थात् धर्म में प्रवृत्त करनेवाली। पत्नी हमेशा वहीं रहती है जहां पति रहता है। गृहस्थी का भक्ति से कोई विरोध नहीं पर विरोध होता है आसक्ति से।

नारदजीने कहा- युधिष्ठिर, कुछ ब्राह्मणों की निष्ठा कर्म में, कुछ की तपस्या में, कुछ की वेदों के स्वाध्याय और प्रवचन में, कुछ की आत्म-ज्ञान के सम्पादन में तथा कुछ की योग में होती है। किन्तु ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ हैं अत: श्राद्ध और देवपूजा के अवसर पर ज्ञानी पुरुषों को भोजन कराना चाहिये। उनको भोजन कराने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है। यदि वे न मिलें तो आचारवान् कर्मनिष्ठ अन्य ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।

देवकार्य में दो और पितृकार्य में तीन अथवा दोनों में एक-एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। अत्यन्त धनी होने पर भी श्राद्ध-कर्म में अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये। विस्तार करने से देश-काल के अनुसार श्रद्धा, पदार्थ, पात्र और

पूजन आदि ठीक-ठीक नहीं हो पाते। ऐसे कार्यों में श्रद्धा का ठीक-ठीक निर्वाह परमावश्यक है।

विश्वेदेवता दो हैं, इसलिये देवकार्य में दो-दो के हिसाब से चार ब्राह्मण हों। पितर छः हैं, इसलिये तीन-तीन के हिसाब से अठारह ब्राह्मण हों अर्थात् पार्वण श्राद्ध में कुल बाईस ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। यदि इतना सामर्थ्य न हो तो एकैकमुभयत्र वा इस वचन के अनुसार दोनों कार्यों में एक-एक के हिसाब से कुल आठ ब्राह्मणों को भोजन करावे। शक्ति रहने पर इससे कम संख्या न करे।

श्राद्ध करना परमावश्यक है। इसका त्याग किसी भी अवस्था में समीचीन नहीं है। यहाँ तक कि मुक्त प्राणी के भी श्राद्ध का विधान है। देश और काल के प्राप्त होने पर गोदुग्ध से क्षीर तैयार करके भगवान को भोग लगावे और फिर श्रद्धा से विधिपूर्वक योग्यपात्र को खिलावे। यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला और अक्षय होता है।

देवता, ऋषि, पितर, अन्य प्राणी, स्वजन और अपने-आपको भी अन्नका विभाजन करने के समय सबको परमात्मस्वरूप ही देखना चाहिये। उस समय यही विचार करे कि इस प्राणी के हृदय में बैठे परमात्मा को ही मैं खिला रहा हूँ।

धर्म के मर्म को जाननेवाला पुरुष यदि स्वयं मांसभोजी हो तो भी श्राद्ध में मांस न खिलावे और न स्वयं ही खाय। इसका कारण यह है कि दुग्ध-पक्व और घृत-पक्व से जैसी तृप्ति खानेवाले को हो ती है वैसी पशु-हिंसा से नहीं होती। अक्षयतृतीया, अक्षयनवमी, भाद्रकृष्णत्रयोदशी, मौनी अमावस्या, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण, तीन अष्टका और दोनों अयनसंक्रान्तियों में जो मनुष्य केवल तिलमिश्रित जल पितरों के निमित्त दे देता है। उससे उसके पितरों का एक हजार वर्ष तक श्राद्ध हो जाता है। एकादशी पर श्राद्ध न करें उस दिन श्राद्ध करने से दाता, भोक्ता और अनुमोदन करनेवाला ये तीनों नरकगामी होते हैं। इसलिये यह श्राद्ध द्वादशी के दिन करें अथवा ऐसी खंडित एकादशी को करें जो उपवास योग्य न हो। यदि उसी दिन करने का आग्रह हो तो सिद्धा अन्न निकालकर या श्राद्ध करके पितृशेष अन्न का प्रक्षालन कर उसे गौ को खिला दें और स्वयं व्रत करें। उस दिन भोजन करने का विधान नहीं है, नहीं तो फिर द्वादशी को करें। पितरवसु, पितामह रुद्र तथा प्रपितामह आदित्य कहे गये हैं। वैसे ही ठीक से हव्य-कव्य को पहुँचानेवाला पितरोंका नाम और गोत्र ले। श्रद्धा तथा श्राद्धमन्त्र इस कार्य में सहायता देते हैं, श्राद्धकर्ता का पिता अपने पुण्य कर्मों के अनुसार यदि देवयोनि को प्राप्त है तो उसे श्राद्धान्न अमृतरूप से प्राप्त होता है, गन्धर्व योनि में सम्भोगरूप से, पशु योनि में घास-भूसा रूप से, सर्पयोनि में वायुरूप से, यक्ष योनि में सम्भोगरूप से, पशु योनि में घास-भूसा रूप से, सर्पयोनि में वायुरूप से, यक्ष योनि में पेय रूप से, गृध्रयोनि में मांसरूप से,दानवयोनि में मायारूप से, प्रेतयोनि में रुधिर रूप से तथा मनुष्य योनि में श्राद्धान्न विविध भक्ष्य भोज्य रूप से प्राप्त होता है।

गया आदि तीर्थों में श्राद्ध करने से यद्यपि प्राणी मुक्त हो जाते हैं फिर भी उनके निमित्त श्राद्ध करने की शास्त्रीय विधि हैं। किसी भी अवस्था में श्राद्ध का त्याग करना उचित नहीं है। श्राद्ध का तात्पर्य यह है कि पितरों को श्रद्धाभक्ति से जो भी वस्तुयें अर्पित की जाती हैं। वे अविकल रूप से पहले दिव्य पितरोंको प्राप्त होती है। वे अपनी दिव्य दृष्टिसे उस प्राणी को देखकर वह जिस योनि में गया हो वहीं श्राद्धीय वस्तुओं को कई गुनाअधिक कर उसके समीप पहुँचा देते हैं। कहीं वह प्राणी मुक्त हो गया हो तो वे श्राद्धीय वस्तुयें शतगुणित कर उसीके परिवार वालों को प्रसाद रूप से लौटा दी जाती है, जससे उसके परिवार में पुत्र, पौत्र आदि सन्तानें धार्मिक होती हैं तथा नाना प्रकार की सम्पत्तियों से परिपूर्ण समृद्धशाली होकर ऐहिक-पारलौकिक सभी सुखों का उपभोग करती हैं, इसलिए श्राद्ध का त्याग किसी भी अवस्था में नहीं करना चाहिए। श्राद्ध में जौ, गेहूँ, चावल तिल, मूँग, सरसों, कंगनी, मटर ये अन्न उत्तम कहे गये हैं। मकई, काले उड़द, मसूर ये वर्जित हैं। श्राद्ध में केवल चने का निषेध है। घृत और शर्करा मिश्रण से बने चने के मोदकों का निषेध नहीं है। श्राद्ध में गोदुग्ध तथा उसमें बनी खीर पितरों को अत्यन्त प्रिय है। भैंस

तथा बकरी का दूध श्राद्ध में वर्जित है। लहसुन, गृञ्जन, प्याज, मूली, सत्तू, लौकी, खारा नामक, गोंद, भोजन के साथ पत्तलपर पृथक् नामक तथा वाणी से अप्रशंसित वस्तुयें श्राद्ध में वर्जित है। श्राद्धकर्ता तथा श्राद्धभोजी के लिए आठ वस्तुएँ त्याज्य कही गयी हैं- दुबारा भोजन, यात्रा, सवारी, अधिक श्रम, मैथुन, स्वाध्याय, कलह तथा दिन में शयन। जो मनुष्य श्राद्धकाल में पवित्र होकर श्रद्धा-भक्ति से भगवान विष्णु का नैवेद्य पितर तथा देवताओं को अर्पण करता है तथा उसी तुलसी मिश्रित नैवेद्य के बने पिण्डों से पितरों का श्राद्ध करता है उसके पितर अनन्त काल तक तृप्त हो जाते हैं।

देवकार्य में विशेष रूप से ब्राह्मणों की परीक्षा न करें। किन्तु पितृकर्म में विशेष रूपसे परीक्षा कर आचारसम्पन्न, वैदिक तथा कर्मनिष्ठ सत्पात्र ब्राह्मणों को ही विशेषरूप से भोजन करावें। हे राजन्। हमने संक्षेप में गृहस्थ धर्म का वर्णन किया, जिसका आचरण करने से मनुष्य निश्चय ही महात्माओं की पदवी मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

आमिषभोजी भी श्राद्ध में आमिषका प्रयोग न करें, न स्वयं खायें ही। कारण खीर, पूड़ी, हलुआ, मालपुआ आदि से जो तृप्ति होती है और जैसा सात्त्विक मन बनता है, वैसा पशुहिंसा करने से नहीं। आमिष भोजियों की तामसी वृत्ति हो जाती है, जिससे देश में अशान्ति और उपद्रव होते हैं। मनुष्य को सदा सात्त्विक बनने की चेष्टा करनी चाहिए।

जो लोग उत्तम धर्म के पालन की इच्छा रखते हैं, उन्हें यह जानना चाहिये कि किसी भी प्राणी को मन, वचन और शरीर से किसी प्रकार का कष्ट न दिया जाय। कठोर वचन आदि के द्वारा किसी के मन को दु:खाना भी अधर्म है। किसी भी प्रकार से किसी को पीडित न करना सबसे बड़ा धर्म है। इसके बराबर कोई दूसरा धर्म नहीं है।

इसीलिये ज्ञानी, आत्मसंयमरूप अग्नि में कर्ममय यज्ञों का हवन कर देते हैं। कर्म-मय यज्ञों में पशु आदि प्राणी भयभीत हो जाते हैं। वे सोचते हैं अपने प्राणों का पोषण करनेवाला यज्ञ का यह ढोंगी निर्दयी मूर्ख मुझे अवश्य मार डालेगा अत: हविष्यान्न से ही नित्य-नैमित्तिक करके उसीसे सन्तुष्ट रहना चाहिये।

अधर्म की पाँच शाखायें हैं- विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा और छल। धर्मज्ञ पुरुष को चाहिये कि वह अधर्म के समान इनका भी त्याग कर दे।

१) विधर्म- जिस कार्य को धर्म समझ कर करने पर भी अपने धर्म में बाधा पड़े वह विधर्म है जैसे ज्वर की अवस्था में गंगास्नान। विधर्म धर्म का नहीं, अधर्म का कारण बन जाता है।

२) परधर्म- एक वर्ण के लिये विहित धर्म दूसरे वर्ण के लिये परधर्म है, जैसे क्षत्रिय के लिये विहित युद्ध ब्राह्मण के लिये परधर्म है; ब्राह्मण के लिये निर्धारित भिक्षाटन के लिये परधर्म है।

३) आभास- मनुष्य अपने आश्रम के विपरीत, स्वेच्छा से, जिसे धर्म मान लेता है, वह आभास है। जैसे ग्रामीणों के द्वारा ब्रह्म, भवानी, डीह आदि की पूजा।

४) उपमा- पाखण्ड अथवा दम्भ का नाम उपमा है जैसे अपना महत्त्व बढ़ाने के लिये जटाजूट बढ़ा लेना, पीला वस्त्र धारण कर लेना आदि। त्यागी न होते हुए भी त्यागी जैसा दीखना उपमा है।

५) छल- शास्त्र के वचनों की मनमानी अर्थात् दूसरे प्रकार की व्याख्या कर देना छल है।

अत: शास्त्रों के द्वारा निर्धारित वर्णाश्रमोचित धर्म का पालन करना ही सबके लिये शान्ति-प्रद है, शान्तिकारक है। धर्मात्मा पुरुष धर्म के लिये अथवा शरीर-निर्वाह के लिये भी धन प्राप्त करने की इच्छा न करे। जैसे बिना किसी चेष्टा के ही अजगर की जीविका चलती रहती है, वैसे ही निवृत्ति-परायण पुरुष की निवृत्ति ही उसकी जीविका का निर्वाह कर देती है।

सन्तोष सुख का परम कारण है। अपनी आत्मा में ही रमण करनेवाले सन्तोषी को जिस सुख की प्राप्ति होती है, वह धन के

पीछे दौड़नेवाले लोभी के लिये दु:स्वप्न है, दुर्लभ है। जैसे पैरों में जूता पहन कर चलनेवाले को कंकण और कांटों से कोई भय नहीं होता है, वैसे ही जिसके मन में सन्तोष का सागर लहरा रहा है, उसके लिये सर्वदा और सर्वत्र सुख-ही-सुख है। सन्तोष सबके लिये आवश्यक है। सन्तुष्ट पुरुष को सर्वत्र सुख प्राप्त होता है। लोलुप ब्राह्मण की तपस्या एवं विद्या क्षीण हो जाती है। ज्ञानी धर्मज्ञ पुरुष काम एवं क्रोध पर तो विजय प्राप्त कर सकता है किन्तु लोभ पर विजय प्राप्त करना बड़ा ही कठिन है। किन्तु गृहस्थ ब्राह्मण का तो यह कण्ठाभरण ही ठहरा। असन्तोषी ब्राह्मण का तेज, विद्या, तपस्या और यश- सब कुछ क्षीण हो जाते हैं। वह विवेक भी खो बैठता है। इन्द्रियों का दास व्यक्ति कुत्ता बन जाता है। अनेक विषयों के ज्ञाता, शास्त्रों के बड़े-बड़े व्याख्याकार, विद्वत्सभाओं के सभापति बड़े-बड़े विद्वान भी असन्तोष के कारण नीचे गिर जाते हैं।

धर्मराज, संकल्पों के परित्याग से काम को, कामनाओं के त्याग से क्रोध को, अर्थ को अनर्थ समझ कर लोभ को, और तत्त्व के विचार से भय को जीत लेना चाहिये। अध्यात्म-विद्या से शोक और मोह पर, सन्तों की सेवा से दम्भ पर, मौन से योग के विघ्नों पर और शरीर-प्राण आदि को निश्चेष्ट करके हिंसा पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। सबके ऊपर दया की भावना करनी चाहिये। समाधि लगाकर देव-दु:ख को जीतना चाहिये। कभी वर्षा हो रही हो; ओला पड़ रहा हो, किन्तु उससे बचने का यदि कोई उपाय न हो तो समाधि लगाकर बैठ जाना चाहिये।

श्रीगुरु की भक्ति के द्वारा साधक इन सभी दोषों पर सुगमता से विजय प्राप्त कर सकता है। हृदय में ज्ञान का दीपक जला देनेवाले गुरुदेव साक्षात् भगवान ही हैं। जो अल्पज्ञ व्यक्ति उन्हें कोरा मानव ही समझता है, उसके समस्त शास्त्र-श्रवण, हाथी के स्नान के समान व्यर्थ हैं। वस्तुत: साक्षात् भगवान ही गुरुदेव के रूप में प्रकट होते हैं।

सब साधनों का फल यह है कि इन्द्रियाँ वश में हों। जो वस्तु योग के द्वारा सिद्ध होती है, वही सबसे बड़ी है और उसी के लिये मनुष्य को सर्वदा प्रयत्न करना चाहिये। पवित्र देश में बैठकर ॐकार का जप करना चाहिये। जब तक मन की चंचलता दूर न हो जाय तब तक नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। जप, तप, तीरथ, दान, व्रत इत्यादि भिन्न-भिन्न रूप से प्रभु की आराधना होती है। यह ईश्वर की विभिन्न रूपों से पूजा करना है। यज्ञ या अग्निहोत्र भी भगवान की आराधना है। समस्त यज्ञों के भोक्ता स्वयं भगवान ही हैं किन्तु ब्राह्मण के मुख से पाकर उन्हें जैसी तृप्ति होती है वैसी अग्नि मुख में वहन से नहीं होती। अत: गृहस्थ को यथाशक्ति ब्राह्मण सेवा अवश्य करनी चाहिए। ब्राह्मण तपस्या, विद्या एवं सन्तोष के कारण वेद स्वरूप माना गया है।

जो संन्यासी पहले तो धर्म, अर्थ और काम के मूल कारण गृहस्थाश्रम का परित्याग कर देता है और फिर गृहस्थ बन कर उन्हीं का सेवन करता है, वह उस कुत्ते के समान है, जो उगलकर फिर उसी को खाता है।

कर्म-धर्म का त्यागी गृहस्थ, व्रतत्यागी ब्रह्मचारी, गाँव में रहनेवाला तपस्वी (वानप्रस्थ) और इन्द्रियलोलुप संन्यासी- ये चारों आश्रम के कलंक हैं और व्यर्थ ही आश्रम का ढोंग करते हैं। ये दयनीय प्राणी हैं। इन्द्रियाँ घोड़े हैं, इन्द्रियों का स्वामी मन लगाम है, शब्द आदि विषय मार्ग हैं, बुद्धि सारथी है, चित्त ही भगवान के द्वारा निर्मित बाँधने की विशाल रस्सी है, दश प्राण धुरी हैं, धर्म और अधर्म पहिये हैं और इनका अभिमानी जीव रथी कहा गया है। ॐकार ही उस रथी का धनुष है। शुद्ध जीव शर है, परब्रह्म लक्ष्य है। कहने का भाव यह है कि ॐकार के द्वारा अन्तरात्मा को परमात्मा में लीन कर देना चाहिये।

गृहस्थ को चाहिये कि वह जगत् की नश्वरता पर भी विचार करता रहे। उसे सोचना चाहिये कि- उत्पन्न होनेवाले शरीर के पहले जो कारणरूप से विद्यमान था और जो सब के समाप्त हो जाने पर बचा रहता है, वही परम सत्य है, यथार्थ है, तत्त्व है। बीच में देह आदि के रूप में जो प्रपंच भासित हो रहा है, वह सब मिथ्या है। पृथ्वी आदि भूत जब मिथ्या है, तो उनसे बननेवाला शरीर आदि भी मिथ्या ही है। जब कारण ही नहीं है, तब कार्य कहाँ से रहेगा? जैसे स्वप्न में सृष्टि मालूम पड़ती है, जागना-सोना मालूम

पड़ता है- इसी प्रकार शास्त्र के विधि-निषेध भी स्वप्न जैसे विधि-निषेध ही हैं। मोह के निवृत्त होते ही एकात्म-तत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है और जब तक यह स्थिति नहीं आती तब तक विभिन्नताएँ बनी ही रहती हैं, प्रतीत ही होती रहती है।

जो विचारवान् व्यक्ति स्वानुभूति से आत्मा के त्रिविध अद्वैत का साक्षात्कार करते हैं- वे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्य के भेदरूप स्वप्न को मिटा देते हैं। ये अद्वैत तीन प्रकार के हैं- भावाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्याद्वैत।

१) भावाद्वैत- जैसे पट की सत्ता तन्तुओं से अलग नहीं है किन्तु सम्मिलित तन्तु ही पट है। वैसे ही कार्य भी कारणमात्र ही है क्योंकि भेद तो वास्तव में है नहीं। इस प्रकार कार्य-कारणरूप जगत् की ईश्वर से ऐक्य-भावना करना भावाद्वैत कहा जाता है। २) क्रियाद्वैत- युधिष्ठिर, मन वाणी और शरीर से होनेवाले सब कर्मों को परब्रह्म परमात्मा को समर्पित कर देना ही क्रियाद्वैत है। ३) द्रव्याद्वैत- जैसे धन-सम्पत्ति और योग अपने को अच्छे लगते हैं, वैसे ही स्त्री-पुत्र आदि सम्बन्धियों को और सामान्य लोगों को भी अच्छे लगते हैं। इस प्रकार सबके स्वार्थ और भोग एक ही हैं, उनमें अपने और पराये का भेद नहीं है- इस प्रकार का विचार द्रव्याद्वैत है।

इस प्रकार के विचार से भेद-बुद्धि के समाप्त हो जाने पर प्राणी को अद्वैत तत्त्व का ज्ञान बड़ी सरलता से हो जाता है और वह गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी परम धाम मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। युधिष्ठिर, शास्त्रों ने जिस पुरुष के लिये जैसा विधान किया है उसे उसी के अनुसार आचरण करना चाहिये। आपत्ति काल में व्यक्ति यदि शास्त्राज्ञा का उल्लंघन करता है तो वह क्षम्य है, अन्यथा नहीं। महाराज, भगवद्भक्त मनुष्य वेद-शास्त्र में कहे गये इन कर्मों के तथा अन्यान्य स्वकर्मों के अनुष्ठान से घर में रहते हुए भी श्रीकृष्ण की गति को प्राप्त कर लेता है। युधिष्ठिर, जैसे तुम अपने स्वामी भगवान श्रीकृष्ण की कृपा और सहायता से सागर-सदृश विशाल विपत्तियों से पार हो गये हो और उन्हीं के चरण-कमलों की सेवा से समस्त भूमण्डल को जीत कर बड़े-बड़े राजसूय आदि यज्ञ किये हो। इसी प्रकार कृष्ण आश्रय लेकर कोई भी व्यक्ति दुस्तर विपत्तियों से पार होकर मोक्ष का भागीदार बन जाता है। मोक्ष के दस साधन प्रसिद्ध हैं- मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्रश्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्म-पालन, युक्तियों से शास्त्र की व्याख्या, एकान्त सेवन, जप और समाधि। परन्तु जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, उनके लिये ये सब जीविका के साधन अर्थात् व्यवसाय मात्र रह जाते हैं।

मोक्ष धर्म के रूप बताये, धर्मराज सुनि अति हरषाये। बार बार मुनि कीन्ह प्रणामा, तब नारद गमन कियो निज धामा।।

मोक्ष मार्ग के पथिक एकाकी विचरण करने वाले इन सब सुखों से सदा वंचित ही रहते हैं। गृहस्थाश्रम सबसे बढ़कर क्यों हैं? इसलिये कि इसी से देवताओं को हक मिलता है, गृहस्थ यज्ञ न करें तो विचारे देवता भूखों ही मर जायँ,पितरों को कव्य मिलता है। गृहस्थ श्राद्धतर्पण न करे तो पितरों का उद्धार कैसे हो। ऋषियों के ज्ञान का प्रसार गृहस्थियोंद्वारा ही होता है और फिर ये मूँड़ मुड़ाये जटाये बढ़ाये हाथ में खप्पर लिये अकेले इधर-से-उधर स्त्रियों की बुराई करते हुए घूमते रहते हैं, यदि गृहस्थ न हों तो इनका पेट कैसे भरे। अतिथि हैं, अभ्यागत हैं, पशु-पक्षी हैं, सभी तो गृहस्थाश्रम का आश्रय लेते हैं।

नारदजी बोले- युधिष्ठिर, घरमें भगवत्प्राप्ति चाहनेवाला अपने सारे कर्त्तव्य कर्म करे और भगवानको अर्पण करे। सत्संग कभी नहीं छोड़े। हमेशा भगवानकी लीला-कथाका श्रवण करे। उसे अमृत समझकर श्रवण करना चाहिए। सत्संग द्वारा संसारकी आसक्ति छोड़ दे। घरमें विरक्त रहनेपर भी अनुरक्त ही रहे। जितना प्रयोजन हो, उतना ही स्वीकार करे। संसारके सम्बन्धी तो अपने-आप छूटते जा रहे हैं। इनको छोड़नेकी क्या जरूरत है? जो मार्गमें चल रहा है अथवा नदीमें बह रहा होता है, उसके सब विश्रामस्थल, सब घाट अपने आप ही छूटते जाते है, वैसे ही कालके प्रवाहमें पड़े हुए मनुष्यके सब सम्बन्ध अपने-आप ही छूटते जा रहे हैं। मनुष्यको जितना प्रयोजन देह-गेहमें हो उसे उतना ही बर्ताव करना चाहिए। जो लोग अपनेको मनुष्य मानते हैं, भीतरसे विरक्त रहना चाहिए, बाहरसे रागीकी तरह व्यवहार करना चाहिए। अपनी ओरसे

कोई जिद्द नहीं करनी चाहिए। जिद्द वासना का लक्षण है। प्रबल वासनावान् व्यक्ति ही अपनी जिदके आगे दूसरेकी सुनना पसन्द नहीं करता और सदा मेरी-मेरीकी रट लगाये रहता है वही संसारी है। रास्ते चलते हुए रिश्तेदार मिल जाए तो उनकी बात माननी चाहिए। घर में बेटा, बहू या दूसरे कोई हो उनमें कोई आसक्ति नहीं रखें, ममता न करें और वे जैसा कहें वैसा करें। क्योंकि उनकी अपनी तो कोई वासना ही नहीं, जैसा घरवाले कहें वही सहीं। मनुष्य का सम्पत्तिपर उतना ही अधिकार है जितने-से उसका भरण-पोषण हो जाये। जो इससे अधिक को अपना मानता है और कहता है कि यह भी मेरा, वह भी मेरा वह स्तेन है, चोर है और दण्डका पात्र है। तुम संसारकी वस्तुओंके केवल संरक्षक हो, सेवक हो, परन्तु तुम्हारा स्वामित्व नहीं हो सकता। क्योंकि सारी प्रजा भगवानकी है, सब वस्तुएँ भगवानकी है। भगवानकी गंगामें अगर कोई पानी पीता है तो तुम उसको रोक कैसे सकते हो? इस संसारमें जितने भी जीव है, पशु-पक्षी हैं, जैसे मृग, ऊँट, खर, बन्दर, चूहा, केंचुआ, चिड़िया, मक्खी आदि इनके साथ देशकालके अनुसार बर्ताव करना चाहिए। जो श्वपच है, चण्डाल है, उनकी कामना भी पूर्ण होनी चाहिए। यह शरीर एक दिन कीड़ा होनेवाला है, विष्ठा होनेवाला है, भस्म होनेवाला है। यह शरीर अत्यन्त तुच्छ है। फिर तो वहाँ ऐसे तुच्छ शरीरमें रमना, पत्नीको अपना मानना, यह आत्मा कितना बड़ा है जो पूरे आकाश को लेकर बैठा है। युधिष्ठिर, गृहस्थको चाहिए कि पहले यज्ञ करे, लोगोंको खिलाये और फिर खुद खाये। गृहस्थको देवता-ऋषि पितरोंकी पूजा करनी चाहिए। अपने-अपने अधिकारके अनुसार यज्ञ करना चाहिए। भगवान, अग्नि और ब्राह्मण के द्वारा भोजन करते हैं। हर मास-मासमें, तिथि-तिथिमें श्राद्धके जो विधान हैं, वह सब करने चाहिए। स्नान, जप, होम, व्रत, देव द्विजार्चन यह मनुष्यका धर्म है। संस्कार सब करने चाहिए।दानमें न तो देशकी प्रधानता है, न कालकी, इसमें प्रधानता है पात्र की। जहां सत्पात्र, सदाचारी, त्यागी और देनेयोग्य व्यक्ति मिल जाय वही दानका काल है। जहाँ भगवानकी मूर्ति है ब्राह्मण वंश है, जहाँ भगवानकी पूजा होती है, जहाँ पुष्करादि सरोवर है, नैमिषारण्य वारणासी तीर्थ है, मधुपुर आदि क्षेत्र है, पर्वत है ऐसे देश सब उत्तम है। सत्पात्रकी प्राप्ति सर्वोपरि है। असलमें सत्पात्र मनुष्य नहीं होता वह तो स्वयं भगवान होता है और उसे ही भगवानकी वस्तु दी जाती है। आजकल दान देनेके पीछे स्वार्थभावना काम करती है। लोग उन्हीं ब्राह्मणोंको दान देते हैं जिनसे उनका स्वार्थ होता है। कई जाति के तो लोग अपने रसोइयोंको ही दान देते हैं और श्राद्ध में खाना खिलाते हैं लेकिन यह शास्त्र सम्मत नहीं है। दान देते समय यह देखें कि जो वस्तु दे रहे हैं यह भगवान की है। उसे अपनी मान लेना बहुत बड़ा अपराध है इसीका नाम दान है। इस संसार-वृक्षके मूल भगवान है। इसलिए भगवान की पूजा करना सर्वजीवात्माकी तृप्ति है। अनेक प्रकारकी सृष्टियाँ हैं। इनमें भगवान्के छोटे-बड़े अनेक शरीर हैं और उन सबमें भगवान ही रहते हैं। यदि कोई मनुष्य दूसरे मनुष्य से द्वेष करें और मूर्तिमें भगवान की पूजा करें तो उसकी वह मूर्तिपूजा सफल नहीं होती। जो मनुष्य में विद्वान, विद्यमान भगवानके साथ द्वेष करता है, और मूर्तिमें पूजा करता है वह तो व्यर्थ है। पुरुषों में ब्राह्मण सुपात्र हैं, क्योंकि वे तपस्या, विद्या, संतोषके द्वारा भगवानके शरीर वेदको धारण करते हैं। ये ब्राह्मण लोग तो अपनी चरण-धूलिसे सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करते हैं। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण भी इनको अपना देवता मानते हैं। ब्राह्मण तो बहुत होते हैं कोई कर्मनिष्ठ, कोई तपोनिष्ठ, कोई स्वाध्यायनिष्ठ, कोई प्रवचननिष्ठ। लेकिन ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है। वह तत्त्वचिंतन करता है, खाने-पीने की चिंता नहींहै। ऐसे ब्राह्मण को खिलाना ही परमधर्म है। यदि देवताओंका कार्य हो तो सर्वप्रथम ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिए। पितरोंका या श्राद्धका कार्य हो तो तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिए। श्राद्धमें या दूसरे किसी उत्सव में काम को बढ़ा दिया जाय तो धर्मका स्वरूप बिगड़ जाता है। उसमें सब अपने-अपने रिश्तेदारों-नातेदारोंका ख्याल ज्यादा रखते है तब भी काम बिगड़ जाता है। देशकाल के अनुसार जो कुछ पवित्र अन्न प्राप्त हो उसीके द्वारा श्राद्धादि कर्म सम्पन्न करना चाहिए।

मांसादिका प्रयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिए। सृष्टिमें अहिंसासे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। किसी भी प्राणीको मन, वाणी अथवा शरीरसे दण्ड नहीं देना चाहिए। सद्धर्म चाहनेवालोंके लिए सबसे बड़ा धर्म यही है। इसीलिए कई लोग कर्म-यज्ञ न करके आत्मसंयम-यज्ञ करते हैं और ज्ञानदीप्त आत्मसंयमनमें सबका हवन कर देते हैं। हमेशा सन्तुष्ट रहकर अपने धर्मका पालन करना चाहिए। धर्म-पालनमें बाधा नहीं डालनी चाहिए। किसीके धर्मबाध भी अधर्म ही है। जो धर्म दूसरेके लिए उपदिष्ट है, उसका पालन नहीं करना चाहिए। जो मन्त्र अथवा कर्म अपने लिए हो, उसीका अनुष्ठान करना चाहिए। सच्चे धर्मका पालन करनेवालेको सब कुछ मिल जाता है। यदि आपके पास धन न हो और आप यह सोचते हों कि हमें धर्म करनेके लिए धन चाहिए तो यह ठीक नहीं। क्योंकि आप बिना धनके भी धर्म कर सकते हैं, व्रत कर सकते हैं, तप कर सकते हैं और जप कर सकते हैं। इसलिए आप धन इकट्ठा करके ही धर्म करेंगे। धर्मात्मा लोग निर्धन होनेपर भी धर्मके लिए अथवा जीवन-यात्राके लिए धनका चंदा नहीं करते। क्योंकि जैसे निश्चेष्ट अजगरकी जीविका चलती रहती है, वैसे ही निर्वासन पुरुषकी अनीहा ही उसके पास भोजन ला देती है। जिसका मन संतुष्ट है, उसके लिए सब जगह सुख है। जिसके पाँवमें जूताहै, उसको काँटा गड़नेका कोई डर नहीं। जब जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रियकी वासना प्रबल हो जाती है तब मनुष्य कुत्ता बन जाता है। जो असन्तुष्ट होता है, उसकी सारी पढ़ाई-लिखाई व्यर्थ समझो, क्योंकि उसके इन्द्रियकी लोलतासे उसका सब कुछ, यहाँतक कि उसका ज्ञान भी बिखर जाता है।

लोभ एक ऐसा रोग है कि वह जितना-जितना पूरा होता है, उतना उतना बढ़ता जाता है। असंतोष के कारण बड़े-बड़े विद्वानोंकी भी अधोगति होती है। कामपर विजय प्राप्त करनेका उपाय यह है कि संकल्प मत करो। क्रोधपर विजय प्राप्त करनेका उपाय है कि कामना ही मत करो। धनसे क्या-क्या अनर्थ होते हैं इसपर विचार करनेसे लोभपर विजय प्राप्त हो सकती है। तत्त्वविद्या से शोक-मोह दूर हो जाता है। महापुरुषोंकी उपासनासे दम्भ दूर हो जाता है। मौनसे, योगसे विघ्न दूर होते हैं।

यदि आपको कभी किसी देवताका दर्शन हो जाए, कोई सिद्धि आए, चमत्कार दिखाई पड़े तो उसे किसीको बताना नहीं चाहिए। यदि आप बता देंगे तो आपके साधनमें विघ्न पड़ जायेगा। मुँह खुल जानेपर सिद्धि चली जाती है। शरीर को निश्चेष्ट रखकर हिंसा पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, सबके ऊपर कृपा करनी चाहिए। समाधि लगाकर दैव-दु:खको जीतना चाहिए। कभी वर्षा हो रही हो, बिजली कड़क रही हो और उससे बचनेका दूसरा कोई उपाय न हो तो समाधि लगाकर बैठ जाना चाहिए। जीवनमें चाहे जितने भी विघ्न हों, किन्तु उन सबपर गुरु-भक्तिके द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है। गुरुको कभी मनुष्य नहीं समझना। ये ज्ञानका दीपक हाथमें लेकर तुम्हें मार्ग दिखानेके लिए आये हैं। जो लोग उनको मनुष्य समझते हैं, उनका पढ़ना-लिखना वैसा ही व्यर्थ है, जैसे हाथीका स्नान। गुरुदेव तो साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वर हैं। बड़े योगेश्वर इनके चरणारविन्दको ढूँढ़ते रहते हैं। जो वस्तु योगसे सिद्ध होती है, वही सबसे बड़ी है और उसके लिए मनुष्यको हमेशा प्रयत्नशील रहना चाहिए। पवित्र देशमें बैठकर भगवन्नामका उच्चारण करे, प्राणायाम करे, जब तक मनसे वासनायें न निकल जाए तब तक उसका अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास करनेपर धीरे-धीरे चित परब्रह्म में लीन हो जाता है और चंचल नहीं होता। जो त्रिवर्ग अर्थात् अर्थ, धर्म और कामको छोड़कर घरसे निकल जाते हैं, संन्यासी हो जाते हैं और फिर लौटकर अर्थ, धर्म, कामके सेवनमें ही लग जाते हैं, वे तो वान्ताशी है। वान्ताशीका अर्थ होता है उगले हुएको खानेवाला। संन्यासी होनेके बाद छोड़े हुए पदार्थोंका सेवन करनेकी कोई जरूरत नहीं। संन्यासीको तो परमात्माका चिंतन करना चाहिए। जिन्होंने अपने शरीरको अनात्मा, मृत्युग्रस्त, विष्ठा, कृमि एवं राख सलझ लिया था- वे ही फिर उसे आत्मा मानकर उसकी प्रशंसा करने लगते हैं तो समझो कि वे महामूढ़ है। जो गृहस्थ होकर कर्मका त्याग करे, ब्रह्मचारी

होकर व्रतका पालन न करे, वानप्रस्थ होकर गाँवकी सेवा करे और संन्यासी होकर इन्द्रियलोलुप हो तो उनसे चारों आश्रमोंका सत्यानाश हो जाता है। उनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए और समझना चाहिए कि वे मायाके चक्करमें पड़ गये हैं। जिसने अपने आत्माको परमात्माके रूपमें जान लिया, उसके अज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है।

ऐसा कौन-सा विषय है, जिसकी तुमको इच्छा हो रही है और तुम किस भोक्ताको तृप्ति देना चाहते हो। अपनेको परमात्मा अनुभव कर लेनेके बाद न तो कोई विषय सच्चा रहा और न कोई भोक्ता सच्चा रहा। भोक्ता और भोग्य दोनों मारे गये। फिर तुम क्यों अभी देहके कोशमें लगे हुए हो?

प्रवृत्तिमार्गसे संसार और निवृत्तिमार्गसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। वापी-कूपादि, वैश्वदेव, बलिहरण, पशुत्याग ये सब मनुष्यको प्रवृत्त करनेवाले कर्म हैं। उनके द्वारा लोक-परलोकका भोग करनेके लिए मनुष्य फिर संसारमें गिरता है और संस्कार आदि बन जाते हैं।

जो घड़ा है, वही माटी है और जो माटी है वही घड़ा है। यदि तुम्हें पानी पीना है तो घड़ेसे लाकर पीओ। लेकिन यदि तत्त्वका निरूपण करना हो तो कार्य और कारणमें एक ही वस्तु है। जो कपड़ा वही सूत, जो सूत वही कपड़ा। दोनों ही एक-दूसरेसे अलग नहीं है। व्यावहारिक तो है, परन्तु अवस्तु है। इस दृष्टिमें स्थित होनेका नाम भावाद्वैत है, मन-वाणी शरीरसे जितने भी कर्म होते हैं, उनको परब्रह्ममें अर्पित कर देनेका नाम क्रियाद्वैत है और देह, पत्नी, पुत्रादि सम्पूर्ण प्राणियोंका स्वार्थ एवं भोगमें जो ऐक्य-दर्शन है, उसका नाम द्रव्याद्वैत है।

गृहस्थ जीवन सबसे ऊँचा होता है। गृहस्थ में ही ब्रह्मचारी प्रकट होते हैं। गृहस्थ में ही संन्यासी प्रगट होते हैं। गृहस्थ जीवन आदर्श है, श्रेष्ठ है। गृहस्थ जीवन मानव जीवन काल का वह कालखण्ड है, जहां पहुंचकर वह अपने बाकी बचे जीवन को परमात्मा में लगाने के लिए तैयार करता है। यही वह अवस्था होती है जब मनुष्य मानव बनने की कोशिश करता है। अगर इस समय नहीं सोचेगे तो फिर अंत समय तक पछताना पड़ेगा। अगर तुम्हें अपना परलोक बनाना है, इस माया-मोह के सागर से निकलना है तो गृहस्थ जीवन में ही उसकी तैयारी कर लो, पता नहीं आनेवाला काल कैसा होगा।

हाथ से कर्म करों विविध नाना। मन राखचहुं जहां कृपानिधाना।।

राजन्, सन्तों की सेवा और अवहेलना का मेरा यह प्रत्यक्ष अनुभव है। मैंने तुम्हें गृहस्थों का पापनाशक धर्म बतला दिया। इस धर्म के आचरण से गृहस्थ भी अनायास ही संन्यासियों को मिलनेवाला परमपद मोक्ष प्राप्त कर लेता है। युधिष्ठिर, इस मनुष्य लोक में तुम लोगों के भाग्य अत्यन्त प्रशंसनीय हैं, क्योंकि तुम्हारे घर में परब्रह्म परमात्मा गुप्तरूप में निवास करते हैं, इसीलिये बड़े-बड़े पुण्यशाली महात्मा लोग चारों ओर से बार-बार उनका दर्शन करने के लिये तुम्हारे पास आया करते हैं।

युधिष्ठिर बोले- मुनिवर, कहाँ हैं परब्रह्म हमारे घर में? नारद बोले- बड़े-बड़े महापुरुष जिनका निरन्तर अन्वेषण करते रहते हैं, जो माया की छाया से भी परे हैं, शान्त परमानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा हैं, जिन्हें तुम अपना प्रिय, हितैषी, ममेरा भाई, पूज्य, आज्ञाकारी और गुरु समझते हो, जिन्हें श्रीकृष्ण कहते हो, वही यह परब्रह्म परमात्मा हैं। शंकर, ब्रह्मा आदि देव भी उनका सही-सही वर्णन नहीं कर सकते, फिर मेरी तो बिसात ही क्या है? श्रद्धा-भक्ति से पूजित वह भगवान हम लोगों पर प्रसन्न हों।

तुम्हारे घरमें साक्षात् गूढ़ परब्रह्म छिपकर मनुष्यके रूपमें रहता है। यह वही ब्रह्म है, जिसको महात्मा लोग ढूँढ़ा करते हैं। वह तुम्हारा सम्बन्धी, प्रिय, सुहृद्, मातुलेय, आत्मा, अर्हणीय विधिकृत बनकर तुम्हारे घर बैठा हुआ है। जब तुम लोग कहते हो कि श्रीकृष्ण, तुम हमारा यह काम कर दो तो वह झटसे बच्चोंकी तरह तैयार होकर दौड़ा आता है और तुम्हारा काम कर देता है। जैसे वह तुम्हारा कोई नौकर हो तुम्हारे हुक्ममें तो देरी होती है, लेकिन उसकी ओरसे तुम्हारा हुक्म बजानेमें देरी नहीं होती। वह

तुम्हारा सब कुछ बननेके लिए तैयार है- सम्बन्धी भी, गुरु भी, सेवक भी। अन्तमें नारदजी कहते हैं कि शंकर और ब्रह्मादि जिनके स्वरूपका वर्णन नहीं कर सकते, वे भगवान हमपर प्रसन्न हों। हम भी यथाशक्ति उनकी पूजा करें।

शुकदेव ने परीक्षित से कहा- राजन्, देवर्षि नारद के इस प्रवचन को सुनकर महाराज युधिष्ठिर परमप्रसन्न हो उठे। उन्होंने बड़ी उत्कण्ठा के साथ भगवान श्रीकृष्ण की और परमादर के साथ नारद की पूजा की।

देवर्षि नारद भगवान श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर से विदा लेकर और उनके द्वारा पूजा-सत्कार प्राप्त कर चले गये। भगवान श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, यह सुनकर युधिष्ठिर के आश्चर्य की सीमा न रही।

शुकदेव बोले- परीक्षित, भरतवंश में श्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर ने नारदजी के द्वारा कहे गये इस सम्वाद को सुनकर प्रेम में अत्यन्त विह्वल होकर श्रीकृष्ण भगवान की तथा नारदजी की पूजा की। फिर धर्मराज से तथा कृष्ण भगवान से अनुमति लेकर तथा उनके द्वारा पूजित होकर नारदजी इच्छानुसार चले गये। धर्मराज श्रीकृष्ण भगवान को साक्षात् परब्रह्म हैं ऐसा सुनकर परम विस्मित हुए।

मेरे रोम रोम में रमे हुए, हे राम रमण श्री राम,
मन सतत् आपमें रमा रहे, अरु रहे सतत् निष्काम प्रभो।
विचलित हो कभी नहीं पल भर, इन बाह्य विघ्न बाधाओं से,
रसना से नित प्रति गान करूँ, रसमय तुम्हारे गुणगान प्रभो।
मन सतत् आपमें रमा रहे, अरु रहे सतत् निष्काम प्रभो।
हे प्रभु। तुम्हारे प्रिय पंथ पर, पुलकित तनु पग पड़े सदा,
मकरन्द-मत्तमन मधुप लहै पद, पदमों में विश्राम प्रभो।
मुनि नारद का स्नेह भाजन लघु शिष्य नेह निधि नारायण,
आल्हद सहित प्रह्लाद करत चरणों में सतत प्रणाम प्रभो।

देखो जहाँ भी यह दीखता है सोचो जहाँ भी यह सूझता है।
सर्वत्र ये ही स्वर गूँजता है गोविन्द दामोदर माधवेति।।
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।।
राकेश तारागण भानु विद्युत श्याम छटायें जन बिन्दु सारे।
आकाश में ये ध्वनि हैं लगाते गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
पक्षी अनेकों न भूमध्य जाते कैसी सुधा की झड़ियाँ लगाते।
मीठे स्वरों में हरि गीत गाते गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
स्रोतस्विनी के कलनाद आते गोविन्द दामोदर माधवेति।
है शब्द ये ही श्रुतिमध्य आते गोविन्द दामोदर माधवेति।
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।

इति सप्तम स्कन्ध

अष्टम स्कन्ध

विषय सूची

१)	अन्य मन्वन्तरों का वर्णन	८५९
२)	गजेन्द्र मोक्ष की कथा	८६०
३)	देवताओं और असुरोंके बीच सन्धि	८७१
४)	समुद्र मन्थन	८७५
	१) समुद्र मन्थन का उद्योग ८७५	
	२) कच्छप (कूर्म) अवतार ८७६	
	३) धन्वन्तरी अवतार ८८१	
	४) मोहिनी अवतार ८८९	
५)	देवासुर संग्राम	८९३
६)	शिव को भगवान के मोहिनी रूप का दर्शन उसपर शिव का मोहित होना	८९७
७)	अन्य मन्वन्तरों का वर्णन व मनु आदि के पृथक्-पृथक् कर्मों का निरूपण	९०१
८)	दैत्यराज बलि की स्वर्ग पर विजय	९०५
९)	देवमाता अदिति का पयोव्रत और भगवान का प्रकट होकर अदिति को वर देना	९०८
१०)	वामन भगवान का अवतार	९१४
११)	मत्स्यावतार	९४०

**यदि धन गया गया नहीं कुछ भी, स्वास्थ्य गया कुछ जाता है।*
सदाचार यदि गया मनुज का, तो सब कुछ लुट जाता है॥
** बरसात नहीं बतला सकती बादल में कितना पानी है,*
उसी तरह बुजुर्गों की नसीहत को जानना, हर किसी के बूते की बात नहीं।

चौदह मन्वतरों का विवरण

मन्वतर १) भगवान - कपिल
(देवहूति- कर्दम)
भगवान के कार्य- संसार को सांख्यज्ञान का उपदेश
मनु - स्वायंभुव (शतरूपा)
मनुपुत्र- प्रियव्रत, उत्तानपाद
इन्द्र- यज्ञ भगवान
प्रधान देवतागण
सप्तर्षि- मरीचि आदि

मन्वतर २) भगवान - विभू नैष्ठिक ब्रह्मचारी
(वेदशिरा ऋषि- पत्नि तुषिता)
भगवान के कार्य- उन्हीं के आचरण से ८८ हजार ऋषियों ने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया।
मनु - स्वरोचिषमनु (अग्निपुत्र)
मनुपुत्र- द्युमान, सुषेण और रोचिष्मान आदि
इन्द्र- रोचन
प्रधान देवतागण- तुषित आदि
सप्तर्षि- ऊर्जस्तम्भ आदि

मन्वतर ३) भगवान - सत्यसेन
(धर्म- पत्नि सुनृता)
भगवान के कार्य- असत्य परायण, दुशील दुष्ट यक्षों, राक्षसों,
जीवद्रोही हिंसात्मक भूतगणों का शमन
मनु - उत्तम (प्रियव्रत पुत्र)
मनुपुत्र- पवन, सृंजय, यज्ञहोत्र
इन्द्र- सत्यजित
प्रधान देवतागण सत्यव्रद, वेदश्रुत और भद्र
सप्तर्षि- वशिष्ठ के पुत्र प्रमद आदि

मन्वतर ४) भगवान - हरि
(हरिमेधा ऋषि- पत्नि हरिणी)
भगवान के कार्य- नष्ट होते हुये वेदों की रक्षा, ग्राह और गजेन्द्र की रक्षा।
मनु - तामस (तीसरे मनु उत्तम के सग्गे भाई)
मनुपुत्र- १० पुत्र- ख्याति, नर, केतु आदि
इन्द्र- त्रिशिख
प्रधान देवतागण- सत्यक, हरि, वीर वैद्यृति इत्यादि
सप्तर्षि- ज्योतिर्धाम आदि

मन्वतर ५) भगवान - वैकुण्ठ
(शुभ्र ऋषि- पत्नि विकुण्ठा)
भगवान के कार्य- लक्ष्मीदेवी के लिये वैकुण्ठधाम की रचना किया
मनु - रैवत (तामस के सग्गे भाई)
मनुपुत्र- बलि, विन्ध्य, अर्जुन
इन्द्र- विभु
प्रधान देवतागण- भूतरथ आदि
सप्तर्षि- हिरण्यरोमा, वेदशिरा, उर्ध्वबाहु

मन्वतर ६) भगवान - अजित
(वैराज- पत्नि सम्भूति)
भगवान के कार्य- समुद्र मंथन
मनु - चाक्षुष (चक्षु के पुत्र)
मनुपुत्र- पूरु, पूरुष, सुद्युम्न आदि
इन्द्र- मन्त्रद्रुम
प्रधान देवतागण- अप्य आदि
सप्तर्षि- हृविष्यमान, वीरक आदि

वर्तमान मन्वतर ७) भगवान - वामन
(कश्यप- पत्नि अदिति)
भगवान के कार्य- याचक बनकर बलि से तीन पैर भूमि का दान लेना और सुतल लोक की रक्षा करना
मनु - श्राद्धदेव (वैवस्वत) (विवस्वान के पुत्र)
मनुपुत्र- इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, करुष, पृषध्र और वसुमान
इन्द्र- पुरन्दर
प्रधान देवतागण आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वदेव, मरुदगण, अश्विनीकुमार और ऋभु
सप्तर्षि- कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदाग्नि, भरद्वाज

मन्वतर ८) भगवान - सार्वभौम
(देवगुह्य- पत्नि सरस्वती)
भगवान के कार्य- पुरन्दर इन्द्र से स्वर्ग का राज्य छीन कर बलि को देना
मनु - सावर्णि
मनुपुत्र- निर्मोक, विरजस्क आदि
इन्द्र- सुतपा, विरजा और अमृतप्रभ
प्रधान देवतागण- विरोचन पुत्र बलि
सप्तर्षि- गालव, दीप्तिमान, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यश्रृंग और वेदव्यास

मन्वतर ९) भगवान - ऋषभ
(आयुष्मान- पत्नि अम्बुधरा)
भगवान के कार्य- भगवान का कला अवतार होगा और इन्द्र को त्रिलोकी प्रदान करना।
मनु - दक्षसावर्णि (वरुण पुत्र)
मनुपुत्र- भूतकेतू, दीप्तकेतु और धूमकेतु आदि
इन्द्र- अदभूत
प्रधान देवतागण- पार, मरीचि गर्भ आदि
सप्तर्षि- द्युतिमान

मन्वतर १०) भगवान - विष्वकसेन
(विश्वसृज- पत्नि विषूचि)
भगवान के कार्य- अंशावतार, इन्द्र से मित्रता करना।
मनु - ब्रह्मसावर्णि (उपश्लोक के पुत्र) समस्त सद्गुणोंसहित
मनुपुत्र- भूरिदेष्ण आदि
इन्द्र- शम्भू
प्रधान देवतागण- सुवासन, विरुद्ध आदि
सप्तर्षि- हविष्मान, सुकृति, सत्य, जय, मूर्ति आदि।

मन्वतर ११) भगवान - धर्मसेतु
(आर्यक- पत्नि वैद्यृता)
भगवान के कार्य- अंशावतार, त्रिलोकी की रक्षा करना।
मनु - धर्मसावर्णि (गुणों में अत्यन्त संयमी)
मनुपुत्र- सत्य, धर्म आदि दस पुत्र
इन्द्र- वैद्यृत
प्रधान देवतागण विहंगम, कामगम, निर्वाण, रुचि आदि
सप्तर्षि- अरुणादि

मन्वतर १२) भगवान - स्वधामा
(सत्यसह- पत्नि सूनृता)
भगवान के कार्य- मन्वतर भर प्रजापालन
मनु - रुद्रासावर्णि
मनुपुत्र- देववान, उपदेव, देवश्रेष्ठ
इन्द्र- ऋतधामा
प्रधान देवतागण- हरित आदि
सप्तर्षि- तपोमूर्ति, तपस्वी, आग्नीधक आदि

मन्वतर १३) भगवान - योगेश्वर
(देवहोत्र- पत्नि बृहती)
भगवान के कार्य- अंशावतार
मनु - देवसावर्णि (जितेन्द्रिय)
मनुपुत्र- चित्रसेन, विचित्र आदि
इन्द्र- दिवस्पति
प्रधान देवतागण- सुकर्म और सुत्राम आदि
सप्तर्षि- निर्मोक और तत्वदर्श आदि

मन्वतर १४) भगवान - बृहद्भानु
(सत्रायण- पत्नि विताना)
भगवान के कार्य- कर्मकाण्ड का विस्तार
मनु - इन्द्रसावर्णि
मनुपुत्र- उरू, गम्भीरबुद्धि आदि
इन्द्र- शुचि
प्रधान देवतागण- पवित्र, चाक्षुष आदि
सप्तर्षि- अग्नि, बाहु, शुद्ध, मागध आदि

** पैसा बना सब पापों का मूल, रिश्ते-नाते गया सब भूल।*
कानून न्याय से मिली है छूट, गरिबों को जी भरकर लूटा।
शासक सत्ता को सबकी जेब में धरे, जनता कातर हो विकल मरे।
क्या अंत कहीं अन्यायों का, धरा से अनगिनत पापों का।
** क्यों बदलती नहीं रेखा उस हाथ की, जिसकी आदत में मेहनत हैं दिन रात की।*
कैसे कोई वहां मुझको पहचानता, है जहां पैसा पहचान औकात की।
आदमी-आदमी को मिटाने लगा, आंधियां चल पड़ी जब फसादात की।।
** कृतज्ञता की अपेक्षा करना, दुखों को न्यौता देना है।*
** इस पृथ्वी पर अवसरों के सिवाय कुछ भी निश्चित नहीं है।*
** निकल जाये हवा हमसे आगे यह गंवारा नही, हम सिर्फ भंवर ढुंढते है किनारा नही।*
बनाये कोई लाख दीवार हम गिरा देंगे, अपनी सांसो से हवा को भी घुमा देंगे।।
** जिन्दगी का क्या भरोसा आज है कल नही, हर कोई है अपना सा, अगर भेदभाव झगडा करे ना कोई,*
आना जाना यही है जीवन का खेल, हर किसी इज्जत करना यही है जीवन का मेल।
** फूलों से भी क्या दोस्ती करनी, कुछ पल बाद मुरझा जाते हैं।*
दोस्ती करो तो कांटों से करो, चुभने के बाद भी याद आते है।

अष्टम स्कन्ध

१) अन्य मन्वन्तरों का वर्णन

मन्वन्तर वर्णन किये, योगीश्वर शुकराय। पाण्डु पौत्र सुनने लगे, मन में अति हरषाय।।

शुकदेव बोले- सुनो राजा परीक्षित, एक बार की घटना है। स्वायम्भुव मनु ने समस्त कामनाओं और भोगों से विरक्त होकर राज्य का परित्याग कर दिया। स्वायम्भुव ब्रह्मा को कहते हैं। जिस मनु की उत्पत्ति सीधे मनु से होती है उन्हें स्वायम्भुव मनु कहते हैं। वे अपनी पत्नी शतरूपा के साथ तपस्या करने के लिये वन में चले गये। उन्होंने सुनन्दा नदी के पावन तट पर एक पैर के बल खड़े होकर सौ वर्ष तक घोर तप किया। तप की बेला में वे इस उपनिषद् का जप करते थे। उनका मन्त्र था जिनकी चेतना के स्पर्शमात्र से यह विश्व चेतनायुक्त हो जाता है, किन्तु यह विश्व जिन्हें चेतना का दान नहीं कर सकता; जो इसके सो जाने पर प्रलय में भी जागते रहते हैं, जिनको यह नहीं जान सकता, परन्तु जो इसे जानते हैं- वही परमात्मा हैं। यह समस्त विश्व और विश्व के सारे चराचर प्राणी- सब उस परमात्मा से ही ओत-प्रोत हैं। इसलिये संसार के किसी भी पदार्थ में मोह न करके, उसका त्याग करते हुए ही जीवन-निर्वाह मात्र के लिये उपभोग करना चाहिये। तृष्णा का पूर्णत: त्याग कर देना चाहिये। भला, ये संसार की सम्पत्तियाँ किसकी हुई हैं?

धीरे-धीरे मनु की तपस्या इतनी प्रगाढ हो गई कि उन्हें बाह्य जगत् का कुछ भी ज्ञान न रहा यह देखकर भूखे असुर और राक्षस खा जाने के लिये उन पर टूट पड़े यह देखकर अन्तर्यामी यज्ञपुरुष अपने पुत्र याम नामक देवताओं के साथ वहाँ आये और असुरों का संहार कर स्वर्ग का शासन करने लगे। मन्वन्तर का अभिप्राय सद्धर्म भी होता है। आप्त पुरुषों ने जो धर्म स्थापित किया है वही सद्धर्म है। मन्वन्तर में छ: बाते हुआ करती हैं- मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, ऋषि और भगवान के अंशावतार इसलिये मन्वन्तर षड्विध कहा गया है।

जब सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर, कलियुग ये चारों युग इकट्ठे होते हैं, तब एक चतुर्युगी बनती है और जब ये चतुर्युगी ७१ बार बीतती है तो एक मनु तथा एक इन्द्र का राज्य समाप्त होता है। उसको मन्वन्तर बोलते हैं। जब १४ मनुओं का राज्य समाप्त होता है तो ब्रह्माजी का एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी ब्रह्माजी की रात। इस रात-दिन के हिसाब से ब्रह्माजी की आयु १०० वर्ष की है। वर्तमान ब्रह्माजी की आयु के ५० वर्ष बीत चुके हैं। जब ब्रह्माजी बैठे थे, पहला जो इनका दिन था, पहला जो इनका कल्प था वह था ब्राह्म कल्प और जब ये ५० वर्ष बीत चुके हैं जो इनका अन्तिम पचासवाँ दिन था, उसका नाम था पाद्म कल्प और अब ५० वर्ष बीतने के पश्चात् ५१ वें वर्ष का पहला दिन चल रहा है जिसका नाम है श्वेत वाराह कल्प ब्राह्मण लोग इसी का नाम लेकर संकल्प करवाते हैं कि हम जो शुभ कर्म कर रहे हैं वह ब्रह्माजी के श्वेत वाराह कल्प के अंतर्गत कर रहे हैं।

१) स्वायम्भुव मनु, २) उनके दो पुत्र- प्रियव्रत और उत्तानपाद, ३) याम आदि बारह देवता, ४) मरीचि आदि सप्तर्षि और हरि के अंशावतार यज्ञ भगवान इस मन्वन्तर के रक्षक रहे। यज्ञ भगवान ने हरि के अंशावतार और इन्द्र-दोनों का कार्य सम्पन्न किये।

दूसरे मनु का नाम स्वारोचिष था। वे अग्नि के पुत्र थे। द्युमान्, सुषेण और रोचिष्मान आदि उनके पुत्र थे। उस मन्वन्तर में इन्द्र का नाम था- रोचन। प्रधान देवगण थे तुषित आदि। ऊर्जस्तम्भ आदि वेदवादिगण सप्तर्षि थे। उस मन्वन्तर में वेदशिरा की पत्नी तुषिता से भगवान का विभु नामक अवतार हुआ था। वे आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे। उन्हीं से प्रेरणा ग्रहण कर अट्ठासी हजार ऋषियों ने भी ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया था।

तीसरे मनु थे उत्तम। वे प्रियव्रत के पुत्र थे- पवन, श्रृञ्जय, अग्निहोत्र आदि। उस मन्वन्तर में वसिष्ठ जी के पुत्र प्रमद आदि सात पुत्र सप्तर्षि थे। सत्य आदि देवता थे। इन्द्र का नाम सत्यजित था और भगवान का सत्यसेन अवतार हुआ जिन्होंने इन्द्र से मित्रता कर के दुष्ट यक्षों राक्षसों का संहार किया था।

चौथे मनु का नाम था तामस। वे तीसरे मनु उत्तम के सगे भाई थे। पृथु, ख्याति, केतु, नर, आदि उनके दस पुत्र थे। सत्यक, हरि और वीर आदि देव-गण थे। इन्द्र का नाम था त्रिशिख। उस मन्वन्तर में ज्योतिर्धाम आदि सप्तर्षि थे और हरिमेधा ऋषि की पत्नी हरिणी के गर्भ से भगवान का हरि अवतार हुआ था। इसी अवतार में उन्होंने ग्राह से गजेन्द्र की रक्षा की थी।

ये जो वर्तमान काल चल रहा है यह सातवां मन्वन्तर है। सभी मन्वन्तर के अलग-अलग मनु होते हैं, अलग-अलग इन्द्र होते हैं और अलग-अलग सप्तऋषि मण्डल होते हैं। ये मनु, इन्द्र, सप्तर्षि मंडल ये अपने-अपने समय के सर्वोच्च संविधायक लोग हैं। प्रजा का हित विचार करके नियम-कानून बनाया करते हैं- देश भेद से, काल भेद से, पात्र भेद से, अलग-अलग नियम-कानून बनते हैं। एक ही सरोवर में दो तरह के फूल खिलते हैं। एक कमल एक कुमुदनी, कमल सूर्य उदय होने पर खिलता है और कुमुदनी सूर्य अस्त होने पर। दोनों को एक सांचे में नहीं ढाला जा सकता। प्रकृति भेद से तमोगुणी व्यक्ति से सत्त्वगुणी साधन नहीं होगा। अगर हो तो उसमें उसकी प्रवृत्ति नहीं होगी। अगर किसी तरह उसे प्रवृत्त कर दिया जाय, तो सफलता नहीं मिलेगी। मछली पानी में डूबकर ही जानेवाली साधना कर सकती है। कबूतर पेड़ पर बैठकर करनेवाला साधन कर सकता है। इस प्रकार से ये मनु, इन्द्र और सप्तर्षि मण्डल अपने-अपने समय के नियम-कानून बनानेवाले संविधायक हैं। पहले मन्वन्तर का नाम होता है स्वायम्भूव मन्वन्तर, दूसरे का नाम स्वारोचिष मन्वन्तर,ख स्वारोचिष मनु थे।

चौथे मनु जग माहिँ भये तामस प्रियव्रत सुत। मन्वन्तर अवतार भये हरि अति शोभा युत।।
पितु हरिमेधा भये मातृ हरिनी कहलाई। कीन्हों गज उद्धार ग्राहतें तुरत गुसाईं।।

यह सुनकर राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से पूछा- भगवान ने गजेन्द्र को ग्राह के फन्दे से कैसे छुड़ाया था। लोग संसार से सहायता की याचना लेकर इस तमोगुणी योनि में पड़े हुए प्राणी को संकट के समय अन्त समय भगवान कैसे याद आ गए। बड़े-बड़े ऋषि मुनियों वेद मन्त्रों की पुकार पर भी भगवान जल्दी आने को तैयार नहीं होते और ये तमोगुणी योनि में पड़े हुए एक हाथी की पुकार पर भगवान गरुड़ छोड़कर आने को कैसे तैयार हो गए? मुनिवर, वही कथा मंगलकारिणी, प्रशंसनीय और शुभ है जिसमें भगवान श्रीहरि का पावन यश वर्णित रहता है।

२) गजेन्द्र मोक्ष की कथा -

बोले शुक सुनु नृपति, क्षीरसागर ढिँग गिरिवर। हतो त्रिकूट प्रसिद्ध सहसदश योजन सुन्दर।।

शुकदेवजी बोले- राजन्, क्षीर-सागर से घिरा हुआ एक त्रिकूट नाम का पर्वत था वह देखने में अत्यन्त सुन्दर था। पर्वत की तराई में बड़ा सुन्दर एक जंगल था। वो सभी वन्य प्राणियों से भरा हुआ था। लोहे, चाँदी और सोने की उसकी तीन चोटियाँ थीं। वह दस हजार योजन ऊँचा था। उसकी लम्बाई और चौड़ाई भी चारों ओर इतनी ही थी। उसकी चोटियों की छटा से समुद्र, दिशाएँ और आकाश सभी जगमगा रहे थे। उसकी अन्य छोटी-मोटी चोटियाँ भी नाना रत्नों की आभा से सभी ओर प्रकाश-पुञ्ज बिखेर रही थीं। उस पर्वत पर विविध जाति के वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ थीं। झरनों की झर्झर ध्वनि से वह सदा गुञ्जायमान होता रहता था।

चारों ओर से सागर की लहरियाँ आ-आकर उसके निचले भाग से टकराती थी। इससे ऐसा प्रतीत होता था मानो सागर सादर उसका पैर पखार रहा हो। पर्वत पर विराजमान हरे-हरे पन्नों की आभा से उसका सारा भाग हरित तृण से आच्छन्न-

सा प्रतीत होता था। उसकी कन्दराएँ गन्धर्व, नाग और किन्नर आदि की विलास-क्रीडा-स्थली थीं। वह पर्वत सिंह-व्याघ्र आदि विविध जानवरों की ध्वनियों से निनादित था।

पर्वतराज त्रिकूट की तराई में वरुण का एक उद्यान था। उसका नाम था- ऋतुमान्। देवों के साथ देवसुन्दरियाँ उसमें क्रीडा करती रहती थीं। छहों ऋतुओं के पुष्प एक साथ उस उद्यान की शोभा बढ़ाते रहते थे। अभूतपूर्व था उसका सौन्दर्य। उद्यान के बीचोबीच विशाल, निर्मल जल से भरा एक सरोवर भी था। उसमें सुनहले रंग-बिरंगे कमल विकसित थे। विविध प्रकार के पक्षी और भ्रमर अपने कलरव से उसके आकर्षण को द्विगुणित करते रहते थे। मन्दार, परिजात, चम्पा, अशोक, चन्दन, पाटल आदि वृक्षों की सघन छाया से उसके तटों की भूमियाँ शीतल थीं। उन पर विविध-विध पक्षी विहार किया करते थे। पनस, खजूर, बिजौरा, महुआ, आम, पयाल, कटहल, आमड़ा, सुपारी, खजूर, बिजौरा, महुआ, साखू, ताड़, तमाल, रीठा, गूलर, बरगद, पलास, कचनार, सार, ईख, जामुन, बेर, रुद्राक्ष, हर्रे, बेल, कैथ, भिलावे, असन, अर्जुन, अरिष्ट, पीपर, पाकर, पिचुमन्द, प्रियाल, बहेड़ा, वट, वेर, बेल, किंदक, कोविदार, कदली, कपूर, केला, कपित्थ, चन्दन, मंदार, पारिजात, गुलाब, अशोक, चम्पा, चिरौंजी, चिरचिटा, सरल, शीशम, सैंमर, देवदारु, दाख, अखरोट, अनार, अशोक, नारङ्गी, नीबू, नीम, नारियल और भी असंख्यों प्रकार के वृक्ष उस देवोद्यान को शोभायमान किये हुए थे और भी विविध जातिके कुमुद, उत्पल, कह्लार, शतदल आदि कमलोंकी अनूठी छटा छिटक रही थी। मतवाले भौंरे गूँज रहे थे। मनोहर पक्षी कलरव कर रहे थे। हंस, कारण्डव, चक्रवाक और सारस दल-के-दल भरे हुए थे। पनडुब्बी, बतख और पपीहे कूज रहे थे।

तिहि बनमहँ गजराज बसे जनु जीवित गिरवर। सिंह व्याघ्र भगि जायँ गन्धतें मृग अहि सूकर॥
छोटे बड़े अनेक पुत्र पौत्रादिक तिहि सँग। क्रीड़ा करें अनेक सूँड़तें सूँघे पितु अँग॥

उसी जंगल में हाथी और हथिनियों के झुण्डों से घिरा हुआ अत्यन्त मतवाला विशालकाय एक गजराज रहता था। उसमें हजार हाथियों का बल था। उसकी गन्ध पाकर सिंह-व्याघ्र आदि भयंकर जानवर भी भाग कर अपने प्राणों की रक्षा करते थे। हरिण, भेड़िये, सूअर, भैंसे, रीछ, शल्य, लंगूर, कुत्ते, बंदर, खरगोश आदि दुर्बल उसकी कृपा से निर्भय होकर जंगल में विचरते रहते थे।

एक बार की घटना है। शरद ऋतु थी। कार्तिक का महीना था। पूर्णिमा तिथि थी। सूर्य की किरणें प्राणियों पर कहर ढाह रही थीं। लोग गर्मी से बेचैन थे। गजराज भी प्रचण्डधूप से परेशान था। प्यास भी उसे व्याकुल बना रही थी। पूरे परिवार के गज-झुण्ड के साथ अपनी हथिनियों और बच्चों के साथ झूमता-घामता, वृक्षों को रौंदता हुआ गजराज उस सरोवर के समीप आया। उस सरोवर का जल अत्यन्त निर्मल एवं अमृत के समान मधुर था। सुनहले और अरुण कमलों की केशर से वह सुगन्धित हो रहा था। हाथी को स्नान करने का बहुत शौक होता है। गजेन्द्र ने पहले तो उसमें घुसकर अपनी सूँड़ से उठा-उठाकर जी भर जल पिया, फिर उस जल में स्नान करके अपनी श्रान्ति-क्लान्ति दूर की। जैसे मोह-ग्रस्त गृहस्थ अपने परिवार की सेवा करते हैं, वैसे ही अज्ञानग्रस्त गजेन्द्र अपनी सूंड़ से जल की फुहारें छोड़-छोड़ कर अपनी हथिनियों और बच्चों को नहलाने लगा तथा उनके मुँह में सूंड़ डालकर जल पिलाने लगा। गजराज जलकेलि करने लगा। जल क्रीड़ा उसे अपार आनन्द दे रही थी। भगवान की माया से मोहित होकर गजेन्द्र उन्मत्त हो रहा था। उस बेचारे को इस बात का पता ही न था कि उसके सिर पर काल मँडरा रहा है। अपने परिवार के साथ वो जल किलोल कर रहा था। हँसने का परिणाम रोना है, सुख का पर्यवसान दु:ख में हैं। उत्थान का अन्त पतन में है। सरोवर के किनारे चारों ओर खड़े जीव जन्तु जय-जयकार लगा रहे थे। मेरे मन को और है कर्ता के कुछ और इसके अनुसार उसे यह भी ज्ञान न रहा कि उस पर कोई

विपत्ति भी आ सकती है। उसी सरोवर में रहता था, कोई देव प्रेरित विशाल ग्राह। उसने उन्मत्त गज का पैर पकड़ लिया।

कबहूँ जल भरि सूँड़ बहुनिके अंग उड़ेलै। कबहूँ मारै हुड्डु पकरिकैं दूरि ढकेलै।।
यों ह्वैकैं मदमत्त ज्ञान विज्ञान बिसार्‌यो। कंजर करत कलोल काल नहिँ निकट निहार्‌यो।।
चट आयो तहँ ग्राह इक, पट्टु पैर पकर्‌यो जकड़ि। कछु न गिन्यो बल दर्पतें, खींचे तिहि पुनि पुनि अकड़ि।।

परीक्षित्, गजेन्द्र जिस समय इतना उन्मत्त हो रहा था उसी समय प्रारब्ध की प्रबल प्रेरणा से एक बलशाली ग्राह (घड़ियाल) ने क्रोध में भरकर उसका पैर पकड़ लिया। इस प्रकार अकस्मात् विपत्ति में पड़कर उस बलवान गजेन्द्र ने अपनी ताकतभर अपने को छुड़ाने का प्रयास किया परन्तु छुड़ा न सका।

अपनी अपनी ठौर पै सबको लागे दांव। जल में गाड़ी नाव पर थल में गाड़ी नाव।।
गज और ग्राह लड़े जग माहीं। थकित भयौ गज अति मन माहीं।।

शुकदेव बोले- परीक्षित, उस सरोवर में भाग्य के वशीभूत होकर किसी बलवान ग्राह ने उस गज का रोष में भरकर चरण पकड़ लिया। देखो, अकस्मात् ही वह हाथी विपत्ति में फँस गया। उस अत्यन्त बली गज ने यथाशक्ति उससे छूटने को बहुत बल लगाया।

यदि जमीन पर लड़ाई होती तो गजराज मजबूत था, अपनी सूंड से लपेट कर एक पटकी लगाता तो ग्राह चूर-चूर हो जाता। पर जल की लड़ाई में ग्राह ज्यादा बलवान था। गजराज ने उसे छुड़ाने का खूब प्रयास किया, लेकिन अपने को उस ग्राह से किंचित् भी नहीं छुड़ा सका तो उसने अपने परिवारवालों को पुकारा। उसे अपने बल का, परिवार का, प्रेम का, प्रभाव का, पुरुषार्थ का, प्रतिभा का तथा अन्यान्य गुणों का बड़ा भरोसा था। यह ग्राह क्या था विधाता की फाँसी का फंदा ही था। गजराज इसमें फंसकर आतुर हो रहा था।

हाथियों, हथिनियों और उनके बच्चों ने देखा कि उनके स्वामी को बलवान ग्राह वेग से खींचकर जल में लिये चला जा रहा है और वे बहुत घबड़ा रहे हैं तो उन्हें महान कष्ट हुआ। वे विकल होकर चिंघाडने लगे। बहुतों ने उसकी मदद कर उसे जल से बाहर निकाल लेना चाहा आपसमें सूंड से सूंड मिलाकर बाहर खिंचा किन्तु उन्हें अपने प्रयास में सफलता न मिली। यूथ के साथी हाथियों ने सूँड़ मिलाकर उसे बाहर निकालनें का भरपूर प्रयास किया किन्तु उसे जल से बाहर न निकाल सके। लेकिन वो भी उसको उस ग्राह से किंचित भी नहीं छुड़ा सके। वे सभी असफल हो गये। जब गजेन्द्र ग्राह से युद्ध करते-करते थकने लगा तो उसके साथी हाथी हथिनियों और बच्चों ने अपनी-अपनी सूंड से गजेन्द्र के पाँव, पूंछ और सूंड़ पकड़ लिये। फिर उन पकड़नेवालों को दस-दस ने पकड़ा फिर उन दस-दस को बीस-बीस ने पकड़ा और सभी एक दूसरे को खींचने में लग गये। परन्तु उस सरोवर से गजेन्द्र को खींचा नहीं जा सका- उसे टस-से मस नहीं किया जा सका। संघर्ष में बहुत समय बीत गया।

गजेन्द्र और ग्राह अपनी पूरी-पूरी शक्ति लगाकर भिड़े हुए थे। कभी गजेन्द्र ग्राह को बाहर खींच लाता, तो कभी ग्राह गजेन्द्र को भीतर खींच ले जाता। इस प्रकार उन्हें लड़ते-लड़ते एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये और दोनों ही जीवित रहे। इस दृश्य को देखकर देवता भी आश्चर्यचकित हो गये अन्त में बहुत दिनों तक संघर्ष करने के कारण गजराज का शरीर शिथिल पड़ गया न तो उसके शरीर में बल रह गया और न मन में उत्साह। शक्ति भी समाप्त हो गई। युद्ध जल में हो रहा था। हाथी तो बलवान प्राणी है पर उसका बल जल में काम नहीं करता। हाथी का बल तो सिर्फ धरती पर चलता है। ग्राह जलचर प्राणी है अत: उसका बल बढ़ा हुआ था। वह बड़े उत्साह से गजेन्द्र को भीतर की ओर खींचने लगा। इस प्रकार गजेन्द्र के ऊपर प्राणों का महान् संकट आ पड़ा। वह उस संकट से अपने को मुक्त कराने में समर्थ न हो सका। पूर्ण

नि:सहाय हो जाने पर उसके मन में यह विचार आया- यह ग्राह नहीं, विधाता की फाँसी ही है। इसमें फँस कर मैं आतुर हो रहा हूँ। जब मुझे मेरे बराबर के हाथी भी इस विपत्ति से न उबार सके, तब वे बेचारी हथिनियाँ छुड़ा ही कैसे सकती हैं? धीरे-धीरे सब उसका साथ छोड़कर चले गये।

स्वारथ रत संसार की यही पुरानी रीत। सुख में सब अपने बने, दु:ख में लागे मीत।।
कस्य माता-पिता कस्य, कस्य भार्या सहोदरा। अर्थ कालेन सम्बन्ध का कस्य परिवेदन: ।।
सुख के सब साथी, दु:ख में संग न कोय।

अत: उसने सब देवोंको पुकारा कभी उसने गणेशजी, कभी दुर्गाजी को, कभी शिव, कभी हनुमान जी को इत्यादि। तब किसीने भी उसकी पुकार नहीं सुनी। सुनकर भी अनसुनी कर दी। क्योंकि सब सोचने लगे मैं क्यों जाऊं उसने तो गणेशजी को पुकारा है गणेशजी सोचने लगे उसने तो दुर्गाजी को पुकारा है, दुर्गा सोचने लगी उसने तो शिवजी को पुकारा है, हनुमान सोचने लगे उसने पितरोंको, अग्निदेव को पुकारा है इसप्रकार कोई भी उसकी मदद को नहीं गये। आकाश मंडल में बसे देवता देख रहे हैं। बड़े-बड़े देवता सब सज-धज कर बैठे हैं। दुर्गाजी बोलीं, गजेन्द्र के जीवन में संकट आ गया, लेकिन मेरा नाम लेकर तो पुकारा नहीं, मैं बचाने क्यों जाऊँ? मेरे किसी भी नाम से पुकारता। इन्द्र ने कहा- भाई, उसने एक बार भी वृत्रहन्ता, वज्रधारी, शचीपति, नाकपति तथा शतक्रतु आदि मेरा एक भी नाम तो लिया नहीं मैं उसकी रक्षा करने कैसे जा सकता हूँ।

पूरी कस्यो प्रयत्न यथामति शक्ति लगाई। करी अनेकों युक्ति एक हू काम न आई।।
ग्राह सलिलको जन्तु बढ़ै नित नित वह बलमहँ। भगे सङ्गके छोड़ि होहि गज निर्बल जलमहँ।।
अन्य शरन जब नहिँ लखी, शरण गही घनश्यामकी। करे शिथिल साधन सबहिँ, टेर करी हरि नामकी।।

शंकरजी बोले, पूरा नाम याद नहीं था तो भोलेबाबा ही कह देता, बम, बम भोले कह देता, पार्वती पति कह देता। मेरा नाम नहीं लिया, मैं बचाने कैसे जाऊँ? यद्यपि मैं महादेव हूँ। किन्तु पता नहीं वह कौनसे देव को बुला रहा है। मैं गया और कोई दूसरा देव भी आ गया तो हममें ही कहा सुनी हो जायगी। ब्रह्माजी बोले- जाता तो मैं भी नहीं हूँ, नाम मेरा भी नहीं पुकारा। उसने न कमलासन कहा, न चतुर्मुख, न ब्रह्मा और न विधि फिर मैं उसकी रक्षा के लिये कैसे जा सकता हूँ। सब देवता प्रतीक्षा में हैं कि हमारा नाम ले और हम रक्षा करने जायें। लेकिन मेरे गोविन्द ने सोचा, जो किसी का नाम नहीं, वो मेरा ही नाम है। गजराज संकट में पड़ा है। बचाने नहीं गया तो डूब जायेगा, मर जायेगा। गजराज तो निर्विशेष देव की स्तुति कर रहा है।

गजराज ने कहा- तमाशा मत देखो, मैं तुम्हारी शरण में हूँ। मेरी रक्षा करो। देवता लोग तो केवल शरण में कहने से सुनवाई करनेवाले नहीं है, उनको तो विधिवत कुछ पूजा, उपासना करके भेंट निछावर करनी पड़ती है तब जाकर कुछ सुनते है।

सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि कोउ न देत बिनु पाये। एक कौसलपाल कृपाल कल्पतुर द्रवित सुकृत सिरु दिये।।

गजराज भगवान की स्तुति करते हुए कह रहे है- मैं उसका नाम रूप नहीं जानता जो भी कोई ईश्वर है, जो प्रचण्ड वेग से काल रूप बली सर्प के भय से भयभीत होकर भागते हुए शरणागत व्यक्तियों का परिपालन करता है। मृत्यु भी जिसके भय से भाग जाता है, उसी प्रभु की शरण मैं ग्रहण करता हूँ। जब कोई किसीने मदद नहीं कि तब गजराज ने विश्वके एकमात्र शरणदाता भगवान की ही शरण ग्रहण की।

सरोवर में गज-ग्राह की थी लड़ाई। न गजराज की शक्ति कुछ काम आई।।
कहीं से मदद उसने जब कुछ न पाई। तो दु:खी हो के आवाज हरि को लगाई।।
गरुड़ छोड़ नंगे ही पावों पधारे। हरे कृष्ण गोविन्द मोहन मुरारे।।

यही नाम हरदम हो मुख में हमारे। हरे कृष्ण गोविन्द, मोहन मुरारे।।

जब उसके प्राण संकट में पड़ गये अपने को छुड़ाने में सर्वथा सब ओर से असमर्थ हो गया। सारे सहारे टूट चुके, तब उसने निश्चय किया कि सम्पूर्ण विश्व के एकमात्र आश्रय श्रीहरि है, अब उनकी शरण ग्रहण करूंगा।

सुने री मैने निर्बल के बलराम। जब लगि गजबल अपनो वरत्यो नेक सर्‌यो नहीं काम।
निर्बल होय बलराम पुकारयो आये आधे नाम।।

जब कोई हाथी हथिनी मदद करने को तैयार नहीं हुए, देवी-देवता मदद करने को तैयार नहीं हुए। अपना भी जब सारा बल थक गया। सारे बल व्यक्ति के जब क्षीण हो जाते हैं, कोई बल उसका काम नहीं करता, कोई बल उसके सामने नहीं आता, तो हारकर गोविन्द को पुकारता है। गजेन्द्र ने जब कन्हैया के नाम को गाया, प्रभु ने आकर बचा लिया। यदि पहले ही पुकारता, तो ये संकट आता ही क्यों?

हे हरि, अशरन शरन दीन दुख मेटन हारे। हे करुनाके अयन, प्रनत प्रन पालन वारे।।
आइ ग्रस्यो तम ग्राह सच्चिदानन्द उबारो। कैसे हू करि कृपा कष्ट हरि हरो हमारो।।
निर्विशेष विनती सुनी, नहिँ आये सुर अन्य जब। गरुड़ध्वज चढ़ि गरुड़पै, आये गज ढिँग तुरत तब।।
अप बल तप बल और बाहू बल चौथे है बलदाम।
सूर किशोर कृपा ते सब बल हारे को हरिनाम। सुने री मैंने निर्बल के बलराम।।

इस संसार का जो भी कोई ईश्वर है, शासक है, अब मैं उसी सर्वेश्वर की शरण ग्रहण करता हूँ। वह काल-सर्प से भी प्राणियों की रक्षा करता है। उसके भय से मृत्यु भी भागती है। प्रभो, मेरी बुद्धि किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गई है। उसकी सोचने-विचारने की शक्ति समाप्त हो गई है। मेरी सारी युक्तियाँ भी लुप्त हो चुकी हैं। अब तो आप ही मेरे शरण हैं। आप के अतिरिक्त अब मेरा कोई और सहारा नहीं है।

हे गोविन्द, हे गोपाल, अब तो जीवन हारे। हे गोविन्दं राखो चरण अब तो जीवन हारे।।
नीर पीवन हेतु गयो सिंधु के किनारे। सिंधु बीच बरसत ग्राह, चरण लेई पछारे।।
चार पहर युद्ध भयो, ले गयो मंझधारे। नाक-कान डूबन लागे, कृष्ण को पुकारे।।

भगवान ने कहा- हम ही चलते हैं, क्योंकि सब नाम-रूप हमारे हैं और सब नाम-रूपोंसे परे हम हैं।

शुकदेव ने कहा- परीक्षित्, अपनी बुद्धि से ऐसा निश्चय करके गजेन्द्र ने अपने मन को हृदय में एकाग्र किया और फिर वह पूर्व जन्म में अभ्यास किये गये श्रेष्ठ स्तोत्र के द्वारा भगवान की स्तुति करने लगा और उसने भगवान हरि को पुकारा।

ओ दुनिया के रखवाले, सुन दर्द भरे मेरे नाले।

जगत् के मूल कारण, सब के हृदय में विराजमान पुरुष, समस्त संसार के एकमात्र स्वामी, सर्वत्र चेतना का विस्तार करनेवाले भगवान को मैं प्रणाम कर रहा हूँ, प्रेम से उनका ध्यान कर रहा हूँ।

कीन्ही स्तुति गज ने भारी, धाये प्रभु तज निज असवारी। मारयौ ग्राह तुरत भगवाना, लिये राखि गज के तब प्राना।।

जिनकी दृष्टि सर्वदा ज्यों-की-त्यों एक-सी बनी रहती है, जो सबके मूल हैं, जिनका मूल कोई दूसरा नहीं हैं, वे ही समस्त कार्य और कारणों से परे प्रभु मेरी रक्षा करें। जो महाप्रलय की बेला में सबके विलीन हो जाने पर भी विराजमान रहते हैं, जिनको ठीक-ठीक कोई जानता नहीं, जिनके दर्शन के लिये बड़े-बड़े महात्मा महान् त्याग करते हैं, जिनमें जन्म-कर्म आदि बिल्कुल नहीं है, जो अरूप होते हुए भी सर्वरूप हैं, उन आश्चर्यकर्मा भगवान की हम वन्दना करते हैं। धर्म, अर्थ,

काम और मोक्ष की कामना से जो भगवान् का भजन करते हैं, उन्हें सारे-के-सारे अभीप्सित पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। इतना ही नहीं, भगवान उन्हें और भी विविधविध सुख प्रदान करते हैं तथा उन्हें अपना पार्षद भी बना लेते हैं। कृपा के सागर वे ही भगवान इस ग्राह से मेरा उद्धार करें।

जो लोग संसार के स्त्री-पुत्र आदि में फँस गये हैं, उन्हें तो आप की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है; किन्तु मुक्तात्मा जन अपने हृदय में आपका ध्यान करते हैं। आप का भजन सारे मनोरथों को सिद्ध करनेवाला है किन्तु जो सच्चे भक्त होते हैं, वे आपसे न कुछ मांगते हैं और न कुछ चाहते ही हैं। आप का चरित्र अत्यन्त मंगलमय है। भक्तजन उसका गान करते हुए आनन्द के सागर में निमग्न हो जाते हैं।

जो न देव हैं न असुर; न मर्त्य हैं न पक्षी; न स्त्री हैं, न पुरुष और न नपुंसक; न गुण हैं न कर्म और न सत् हैं न असत् तथा जो सर्वस्वरूप हैं, उनकी जय हो। प्रभो, मुझे ग्राह से शरीर छुड़ाकर जीने की इच्छा नहीं है, क्योंकि गज शरीर बाहर और भीतर- सब ओर से अज्ञान से आवृत है। इसको रखकर करना ही क्या है? मैं तो चाहता यह हूँ कि मेरे आत्म-प्रकाश का आवरण अज्ञान मिट जाय। बस, मैं इसी का मोक्ष चाहता हूँ। मैं ऐसा मोक्ष चाहता हूँ, जिसका फिर किसी भी काल में नाश न हो।

योगीलोग योग के द्वारा कर्म, कर्म-वासना और कर्म-फल को भस्म करके अपने योग-शुद्ध हृदय में जिस योगेश्वर भगवान का साक्षात्कार करते हैं, उन अजन्मा परमपद-स्वरूप ब्रह्म को मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार भगवान की स्तुति करके गजराज इस प्रकार तल्लीन हो गया कि उसे अपने शरीर की कुछ भी सुधबुध न रही। उसने अपना पुरुषार्थ भी करना छोड़ दिया। उसे अपने शरीर का भी भान न रहा। जब तक मनुष्य में अपना, अपनी बुद्धि और अपने लोगों का भरोसा रहता है, तब तक भगवान उसकी सहायता के लिये आगे नहीं बढते। जब तक द्रौपदी को अपना और अपने पतियों का भरोसा रहा तब तक उसने निर्बल तथा असहाय होकर भगवान को नहीं पुकारा था। यही कारण था कि भगवान ने उसकी सहायता नहीं की थी किन्तु ज्यों ही उसने होकर रो-रोकर पुकारा त्यों ही भगवान का शाटिकावतार हो गया। द्रौपदी की साड़ी अनन्त हो गई। हारकर बैठ गया दस सहस्त्र हाथियों के बलवाला दु:शासन। लाज बच गई द्रौपदी की। असहाय गजेन्द्र की वाणी भी बन्द हो गई। उसके मन में अब केवल भगवान का ही भान था। सहस्त्र वर्ष के युद्ध से गजेन्द्र के अंग-अंग शिथिल पड़ गये थे। अब एक झटका लगने पर उसकी मृत्यु सुनिश्चित थी।

इस प्रकार गजेन्द्र द्वारा निर्विशेष तत्त्व का उपवर्णन किये जाने पर अपने में मूर्तिभेद का अभिमान रखनेवाले, अपने को ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि के रूप में माननेवाले, देवता जब नहीं आये तब सर्वात्मा, सब देवमय श्रीहरि प्रकट हो गये। गजेन्द्र को उस प्रकार पीडित देखकर और उसके स्तोत्र को सुनकर, वेदमय अपने स्वच्छन्द शीघ्रगामी गरुड पर विराजमान होकर भगवान दौड़ पड़े गजेन्द्र को बचाने के लिये। उस समय उनके उद्यत हाथ में चमचमाता चक्र विराजमान था। भगवान पूरी तैयारी से दौड़े थे आर्त गजराज को बचाने के लिये।

निज बल छल करि हारि गज, लियो राम को नाम। रा कहते हरि दुख हरयो म कहि छूटो पाँव।।
हाथी कह धाये हरी-गज को देख निराशा। हा उचरयो निज धाम में थी हाथी के पास।।

उस समय गरुड को गर्व हो गया था कि भगवान का काम मेरे बिना नहीं चलता। मैं ही भगवान को वहन करके ले जाऊँगा। हरि को उसका इस तरह का अभिमान अच्छा नहीं लगा और अपना एक पैर गरुड के ऊपर रखकर गरुड से कहा चलो उडो पर भगवान के भार से गरुड अपने पंखों से उड़ने में असमर्थ हो गया। उसी समय गरुडने क्षमा याचना करी भगवन मुझे क्षमा करें मुझे गर्व हो गया था। भगवान ने उसकी विनती सुनकर अपना पैर हटा लिया। कहते हैं कि उस

हड़बड़ी की बेला में भगवान को गरुड की चाल बैलगाड़ी जैसी धीमी प्रतीत हुई अत: वे उसे छोड़कर पैदल ही, मन की गति से दौड़ पड़े। यद्यपि शब्द की गति से, ध्वनि की गति से गरुड़ भाग रहा था। किन्तु वह गति भगवान को पसन्द नहीं आई अत: मन की गति से पैदल ही, चक्र उठाए दौड़ पड़े। भक्त विपत्ति में था। पीताम्बर की छोर में गरुड का पंख फँसा हुआ था अत: वह वह भी खिंचता हुआ, घसीटता हुआ भगवान के साथ चला गया। नारायण भगवान ने कहा- गरुड़, गजेन्द्र के जीवन में संकट आ गया है। जल्दी चलना है। गजेन्द्र को बचाना जरूरी है, लेकिन उसी समय गरुड़ के मन में अभिमान आ गया। गरुड़ ने कहा, बिना मेरे नारायण भगवान का भी काम नहीं चलता। जहाँ शीघ्र पहुँचना होता है, तो मेरी पीठ पर विराजकर ही चलते हैं। त्रिलोकीनाथ को उड़ाना कोई हँसी खेल है क्या? तीनों लोकों के स्वामी को उड़ाकर ले जाता हूँ, इतनी शक्ति मुझमें है तभी तो। ऐसा अभिमान हो गया गरुड़ जी। भगवान ने सोचा- गजेन्द्र को बाद में बचायेंगे, पहले गरुड़ को ही बचाना है। जो अभिमान में फँस गये। अभिमान रूपी ग्राह ने गरुड़ को पकड़ लिया।

भगवान ने कहा- गरुड़ जल्दी चलो, गजेन्द्र को बचाना है। गरुड़ ने कहा, आ रहा हूँ भगवन्, आने में थोड़ा समय लग ही जाता है। भगवान बोले- अभिमान हो गया इसे। भगवान ने गरुड़ जी को पास बुलाया, जब गरुड़ जी पास आ गये, तो भगवान ने अपनी कन्नी अंगुली को गरुड़ की पीठ पर रख दिया और बोले उड़ो। गरुड़जी बोले- आप मजाक मत करिये, पूरे बैठ जाइये, तब ही उड़ूँगा। भगवान बोले, आज मेरी अंगुली को उड़ा के देखो। महाराज गरुड़ जी ने पंख फड़फड़ाना शुरू किया। आदरणीय शुकदेव जी कहते हैं- गरुड़ पसीने-पसीने हो गया, लेकिन भगवान की अंगुली को तिल भर भी उड़ा नहीं सका।

भगवान बोले, अभिमान करता है कि मैं त्रिलोकीनाथ को लेकर उड़ता हूँ। क्या शक्ति है तुम्हारी? स्वयं अपने पंजों में तुम्हें दबाकर मैं ही उड़ाता हूँ, तुम मुझे क्या उड़ाओगे? अभिमान चूर-चूर हो गया गरुड़ का।

भगवान की यह कृपापरवशता देखकर आकाश में स्थित देवता लोग हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करते थे।

जिस समय भगवान गजेन्द्र के पास पहुँचे उस समय वह सरोवर में डूबने ही वाला था। प्रबल बलशाली ग्राह ने उसे जकड़ कर पकड़ रक्खा था। वह बड़ा पीड़ित था। ऊपर दृष्टि किये भगवान् की राह निहार रहा था। इतने में गरुड़ पर सवार सुदर्शन चक्रधारी श्रीहरि उसे अपने ऊपर आकाश में दिखलाई पड़े। बड़ी मुश्किल से अपनी सूँड़ में कमल का एक फूल उसने उठाया और उसे भगवान् की ओर उछालकर बोला- हे अखिलगुरो, भगवान नारायण, आपको प्रणाम है।

पूर्व जन्म का सीखा हुआ यह स्तोत्र उसे याद आ गया और स्तुति की। जिस तरह पूर्व जन्म में कमाया हुआ धन महल, अटारी, जमीन, जायदाद वहीं छूट जाता है, लेकिन अर्जित की हुई विद्या कभी नष्ट नहीं होती। इससे संस्कार बनते हैं, जो जन्म-जन्म तक साथ देते हैं। हाथी ने पुकारकर कहा-

हे गोविन्द राखौ शरण अब तो जीवन हारे। नीर पीवन हेतु गयो सिन्धु के किनारे।।
सिन्धु बीच बसत ग्राह चरण धरि पछारे। बहुत काल युद्ध भयो लै गयो मझधारे।।
नाक कान डूबन लागे कृष्ण को पुकारे। द्वारिका में शब्द भयो गरुड़ तजि पधारे।।
ग्राह को मारे प्रभु गजराज को उबारे। सूर कहे श्याम सुनो शरण हैं तिहारे।।
अबकी बेर तार देउ नन्द के दुलारे। हे गोविन्द राखौ शरण अब तो जीवन हारे।।

हे सर्वशक्तिमान प्रभु, मैं आपकी शरण में हूं। हे विश्वात्मा भगवान, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। प्रभो, जैसे कोई दयालु पुरुष फंदे में पड़े हुए पशु का बंधन काट दे, वैसे ही आप मेरे जैसे शरणागतों की फांसी काट दें। आप नित्यमुक्त हैं, परम करुणामय हैं, भक्तों का कल्याण करने में आप तनिक भी आलस्य नहीं करते। आपकी महिमा अपार है, आप

सर्वशक्तिमान है, एवं माधुर्य निधि हैं, ऐसे भगवान की मैं शरण में हूँ। हे नारायण। हे जगद्गुरो। आपको मेरा नमस्कार है। गजराज बड़े कष्ट से बोल रहा था। प्रभु को वस्तु नहीं चाहिये, बहुत बड़ी मात्रा में नहीं चाहिये।

भाव का भूखा हूं मैं भाव ही बस सार है। भाव से मुझको भजे तो, भव से बेड़ा पार है।।
अन्न धन और वस्त्र भूषण कुछ न मुझको चाहिये। आप हो जायें मेरा बस पूर्ण यह सत्कार है।।
भाव बिन सब कुछ भी दे डाले तो मैं लेता नहीं। भाव से बस एक पुष्प भी दें तो मुझे स्वीकार है।।
जो मुझ में भाव रख लेते, मेरी ही शरण। उनके ओर मेरे हृदय का एक रहता तार है।।
भाव जिस जन में नहीं उनकी मुझे चिन्ता नहीं। भाव वाले भक्त का पूर्ण मुझ पर भार है।।
बांध लेते जन मुझे भाव की जँजीर में। इसलिये इस भूमि पर होता मेरा अवतार है।।

गजराज को भीषण पीडित देखकर श्रीहरि सहसा गरुड से कूद पड़े और कृपापूर्वक शीघ्रता से ग्राह-सहित गजेन्द्र को सरोवर से बाहर निकाला और देवताओं के देखते ही देखते चक्र से नक्र (ग्राह) का मुख विदीर्ण करके ग्राह को मुक्त कर दिया। जिस समय भगवान ने गज को ग्राह के मुख से छुड़ाया उस समय उसका वह पैर, जिसे ग्राह ने पकड़ा था, जमीन पर पड़ता ही न था, लड़खड़ा रहा था। शरीर शीत के मारे काँप रहा था अत: भगवान ने एक हाथ से उसका पैर पकड़ रक्खा था तथा दूसरे हाथ में अपना पीताम्बर लेकर उसका सारा शरीर पोंछ रहे थे और कह रहे थे- गजराज, मुझे माफ कर देना, मैंने पुकार सुनने में, सुनकर आने में जो देरी कर दी।

विनती गद्गद् कण्ठ करें नयननिकूँ मूँदे। गजकूँ निरख्यो विकल गरुड़तें श्रीहरि कूदे।।
एक हाथतें पकरि ग्राह सँग गजहिं उबार्‌यो। जलतें बाहर कर्‌यो चक्रतें मुहड़ौ फार्‌यो।।
नयनानन्द निहारि हरि, शान्ति हृदय गजके भई। भवभयहारी विष्णुने, मुक्ति ग्राह हूकूँ दई।।
दक्षिणकरस्थ चक्र की कठोर ठोकर से, जलशूरग्राह की समस्त शक्ति सो गई।
वाम करकञ्ज से सँभाला है करीश पग, देखते ही विधि शम्भु की भी मति खो गई।।
पीतपटकोने ये अँगोछे से हैं पोछतें हैं बिन्दु, शोभा यह अनुराग बीज बो गई।
मानो व्रजराज कहते हैं, प्यारे गजराज, क्षमा करो टेर सुनने में देर हो गई।।

गजराज ने कहा- **जाऊं कहां तजि चरण तुम्हारे। काको नाम पतित पावन जग, केहि अति दीन पियारे।।**
हे नाथ दयावानों के सिरमौर बता दो। छोड़ू मैं तुमको अब किस तौर बता दो।।
शर्त ये कर लो, तो मैं उठ जाऊँगा दर से। अपना सा दया सागर कोई और बता दो।।

हरि तब तक प्रकट नहीं होते, जब तक जीव को अपने पराये या और भी किसी के बल पौरुष की आशा रह जाती है। भगवान तब प्रकट होते हैं जब मनुष्य अनन्य हो जाता है।

गजेन्द्र हरि इन दो अक्षरों का नाम भी उच्चारण नहीं कर पाया था कि भगवान् आ गये। जिस समय भगवान ने गजेन्द्र की आर्त पुकार सुनी उस समय भगवान वैकुण्ठ लोक में कलेवा करने की तैयारी में थे। जैसे ही सत्यभामा ने सुना कि प्रभु जाने के लिये तैयार है तो सत्यभामा ने प्रभु से पूछा कि अरे, इतनी जल्दी में कहाँ भाग रहे हैं, आपने कलेवा नहीं किया। तब भगवान ने **हाथी** कहा। परन्तु **हा** शब्द सत्यभामा के पास और **थी** वहाँ ग्राह के मुखसे गजेन्द्र को उबार कर।

गजेन्द्र ने जिस समय गोविन्द कहकर पुकारा, उस समय भगवान भोजन कर रहे थे। नाम सुनते ही उन्होंने भोजन की थाली अलग ठेली और हाँथ-मुँह बिना धोये ही दौड़ पड़े। लक्ष्मीजी ने कहा- नाथ, हाथ तो धो लीजिये, किन्तु भगवान ने

उनकी बात अनसुनी कर दी। विष्वक्सेन ने भगवान के सामने खड़ाऊँ रक्खी परन्तु भगवान के पैर की ठोकर से खड़ाऊँ फुटबाल की तरह दूर जा गिरी। भगवान के मन में गजेन्द्र के लिये इतनी करुणा उमड़ी कि उन्होंने घर पर केवल गो सुना और गरुड पर आरुढ होकर दौड़ पड़े फिर रास्ते में विन्द सुनाई पड़ा। भक्त के करुण क्रन्दन पर विकल होकर दौड़नेवाले भगवान की हड़बड़ी का यह एक उदाहरण है।

गजेन्द्र स्तोत्र का पाठ बड़ी-से-बड़ी विपत्तियों से छुटकारा दिलानेवाला है। यह भयंकर दु:स्वप्नों का विनाशक भी है।

लोगों का यह भी मानना है कि गज-ग्राह की लड़ाई गंगा और गण्डकी नदी के संगम पर हुई थी। वहीं ग्राह ने गज को पकड़ा था। वहाँ विष्णु का एक भव्य मन्दिर भी है। इसे हरि-हर-क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ का मेला विश्व-प्रसिद्ध है।

गजेन्द्र-मोक्ष की कथा रूपक-प्रधान है। संसार ही सरोवर है। जीव ही मतवाला गजेन्द्र है और काल ही मगर है, ग्राह है। जीवात्मारूपी गजेन्द्र त्रिकूट पर्वत पर रहता है। सत्त्व, रज और तम इन तीनों के मेल से बना हुआ यह शरीर ही त्रिकूट पर्वत है। धवल वर्ण का सत्त्व, पीतवर्ण का रज और कृष्णवर्ण का तम ही उसकी चाँदी, सोने और लौह की तीन चोटियाँ हैं, तीन श्रृंग हैं। जब जीव संसाररूपी सरोवर में काम-क्रीड़ा में संसक्त हो मतवाला बन जाता है, तभी कालरूपी ग्राह उसके पैर को पकड़ लेता है। काल जब आता है तो सब से पहले पैर ही पकड़ता है। प्राणी जब लंगड़ा कर चलने लगे तो जान जाइये कि काल ने अब पकड़ लिया। काल जब आकर पकड़ लेता है तब पत्नी-पुत्र आदि कोई भी नहीं छुड़ा सकता। उस समय कोई युक्ति-उपाय भी नहीं काम करता। काल के मुख से एकमात्र वही छूट सकता है जिसे भगवान् का दर्शन होता है। भगवान् ही काल के भी काल महाकाल हैं। सुदर्शन चक्र से काल ग्राह का मुख भगवान् ने फोड़ा था। सुदर्शन ज्ञान का प्रतीक है। ज्ञान होने पर काल सर्वदा के लिये समाप्त हो जाता है, मर जाता है। उस समय व्यक्ति शरीर का परित्याग कर काल के प्रभाव से रहित, माया की छाया से विहीन विष्णु-लोक वैकुण्ठ चले जाता है।

शुकदेव बोले- परीक्षित, अजन्मा श्रीहरि गज को अत्यन्त पीड़ित देखकर सहसा गरुड़ से उतर पड़े और अत्यन्त ही कृपापूर्वक उसे ग्राह सहित तुरन्त सरोवर से बाहर निकाल लिया। फिर समस्त देवताओं के देखते-देखते भगवान ने अपने सुदर्शन चक्र से नक्र का मुख फाड़कर गज का उद्धार किया।

गजेन्द्र-मोक्ष की कथा कलेवर से छोटी होने पर भी मार्मिकता से भरी हुई है अत: इस पर नित्य मनन करने की आवश्यकता है। काल के भी काल भगवान ही मुक्तिदाता है।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, आर्त गजेन्द्र के उद्धार को देखकर ब्रह्मा, शंकर आदि देवता भगवान के इस कार्य की प्रशंसा करते हुए आकाश से फूलों की वर्षा करने लगे, देवता दुन्दुभि बजाने लगे, गन्धर्व नाचने लगे, अप्सराएं गाने लगीं, ऋषि, चारण और सिद्ध पुरुषोत्तम की स्तुति करने लगे।

लोगों ने पूछा- प्रभो। गज की पुकार पर आए थे, कि ग्राह की पुकार पर? गज के उद्धारार्थ आये थे कि ग्राह के उद्धारार्थ? तो कहा कि आया तो था भक्त गजराज की पुकार पर। तो लोगों ने कहा- गजराज तो अभी ज्यों का त्यों खड़ा है। उसके पाँव पकड़नेवाले विपक्षी ग्राह का उद्धार कैसे हो गया। तो कहा कि गजराज ने भगवान के चरणों का सहारा पकड़ा था। और ग्राह ने भक्त गजराज का पाँव पकड़ा था। उद्धार तो दोनों का ही होना था। तो पहले किसका होना चाहिये। राम ते अधिक राम कर दासा। भगवान का सीधे-सीधे चरण पकड़े तो उसका उद्धार बाद में होगा और भगवान को पकड़नेवाले किसी भक्त का सहारा पकड़ लो, चरण का, तो पहले उद्धार होगा। असल में परमात्माके स्वरूपमें ग्रहण-अग्रहणका,

गृहीत-अगृहीतका कोई भेद नहीं होता। **ग्राह को संहारा और गज को उवारा।**

ग्राह ने भी शरीर छोड़कर दिव्यरूप को धारण कर लिया। भगवान् को प्रणाम कर उनकी स्तुति की और फिर अपने गन्धर्व लोक को चला गया। पूर्व जन्म में वह हूहू नाम का एक श्रेष्ठ गन्धर्व था। महर्षि देवल के शाप से ग्राह हो गया था। कहते हैं कि एक बार हूहू मदमस्त अप्सराओं के साथ सरोवर में विहार कर रहा था। उसी समय जटाजूट धारी देवल ऋषि स्नान करने के लिये उस सरोवर के जल में उतरे। वे एक किनारे स्नान करने लगे। हूहू को हंसी-मजाक सूझा। उसने जल में डुबकी लगाई और जाकर पकड़ लिया मुनि के पैर को। वे डर कर दूर भागे। हूहू हा-हा कर हँसने लगा। मुनि ने फिर स्नान शुरू किया। गन्धर्व ने पुन: वही चपलता की। बार-बार परेशान करने पर मुनि को क्रोध आ गया। उन्होंने शाप देते हुए कहा- मूर्ख। बड़ों के सामने आपस में हास-परिहास करना भी अनुचित है। तू एक ऋषि से मखौल उड़ा रहा है। तुम ग्राह की तरह पैर पकड़ रहे हो अत: जाओ ग्राह बन जाओ। संतों के साथ हँसी मजाक अच्छा नहीं होता इससे बहुत नुकसान होता है। अब तो गन्धर्व कांप उठा। उसने पैर पकड़कर मुनि को मनाया। प्रसन्न हुए मुनि ने कहा- जाओ गजेन्द्र मोक्ष की बेला में शाप से मुक्त हो जाओगे। इसी सरोवर में भगवान भक्त गजराज आयेंगे तो उनका पांव कसकर पकड़ लेना तेरी पुकार पर तो भगवान नहीं आयेंगे, क्योंकि तू भक्त नहीं हैं लेकिन गजराज भक्त है, उसकी पुकार पर भगवान आयेंगे और तेरा उद्धार कर देंगे। महात्मा लोग जीवोंका सुधार कर देते हैं।

ग्राह योनि तजि भयो तुरत गन्धर्व मनोहर। पूर्व जन्ममहँ करत रह्यो क्रीड़ा जल अन्दर।।
देवल मुनिको चरन हँसीमहँ हूहू पकर्‍यो। चौंके मुनि ह्वै भीत तबहिँ हँसि बाहर निकर्‍यो।।
समुझि अवज्ञा शाप तब, ग्राह बननको दै दयो। सुरगायक गन्धर्व सो, नक शाप बश ह्वै गयो।।

इधर गजेन्द्र भी भगवान के स्पर्श को प्राप्त कर अज्ञान के बन्धन से मुक्त हो गया। उसे भगवान के स्वरूप की प्राप्ति हो गई- वह पीताम्बरधारी और चतुर्भुज बन गया।

गजराज पूर्व जन्म में पाण्ड्यदेश का राजा था। उसका नाम था- इन्द्रद्युम्न। इन्द्रद्युम्न भगवान विष्णु का प्रबल भक्त था। एक समय की घटना है। वह मलयपर्वत पर अपने आश्रम में मौन बैठकर भगवान हरि का पूजन कर रहा था। उसकी जटाएँ बढ़ी हुई थीं। उसका वेश तपस्वी का-सा था। यह भगवान की इच्छा थी कि उसी समय परमयशस्वी अगस्त्यमुनि अपनी शिष्ण-मण्डली के साथ वहाँ आ पहुँचे। राजा ने मुनि को आया हुआ देखकर भी न तो उनकी अगवानी की, न चरण धोकर उनका पूजन किया और न बैठने के लिये आसन ही दिया। अपनी जगह बैठकर अधखुली आँखों से वह देखभर रहा था। उसके इस व्यवहार को देखकर मुनि कुपित हो उठे। उन्होंने शाप देते हुए कहा-दुरात्मा है, ढोंगी है और है ब्राह्मणों का अपमान करनेवाला भी। यह नीच गज के समान अधखुली आँखों से देखता हुआ बैठा है अत: इसे शीघ्र ही गज-योनि की प्राप्ति हो जाय। राजा होकर ये ऋषियों, मुनियों, गुरुजनों का आदर नहीं करता, तो इसकी प्रजा क्या करेगी? इसका कल्याण कैसे होगा?

यह कहकर मुनि अगस्त्य अपनी शिष्य-मण्डली के साथ वहाँ से चले गये। इन्द्रद्युम्न ने इसे दैव का विधान मानकर शिरोधार्य किया फिर गजरूप में उसका जन्म हुआ किन्तु पूर्वजन्म में की गई भगवान की आराधना के फलस्वरूप उसकी स्मृति विलुप्त नहीं हुई थी।

बोले मुनिवर अधम, करे तू अतिथि निरादर। ह्वैकें क्षत्रिय नहीं करै विप्रनिको आदर।।
गज सम बैठ्यो रह्यो होइ तू जड़ मति गजई। दैकें दारुन शाप गये तत् क्षण मुनि तबई।।

हर्ष न विस्मय नृपतिकूँ, समुझि दैव गति रहि गये। ते ई दूसर जन्ममहँ, वारणेन्द्र भूपति भये।।

भगवान श्रीहरि ने इस प्रकार गजेन्द्र का उद्धार करके उसे अपना पार्षद बना लिया। गन्धर्व, सिद्ध, देवता उनकी इस लीला का गान करने लगे। पार्षद बने गजराज को साथ ले गरुड पर सवार होकर भगवान अपने धाम को चले गये।

पूर्वजन्म गज चरित सुनौं श्रद्धातें अब तुम। इन्द्रद्युम्न द्रविडे हतो राजा सुरपति सम।।
ध्यान मग्न इक दिवस रह्यो मलयाचल माहीं। शिष्यनि सहित अगस्त्य गये नृप निरखे नाहीं।।
करै तपस्या मौन ह्वै, बाल बढ़े व्रतमहँ निरत। अतिथि धर्मतें च्युत निरखि, मुनि अगस्त्य कोपे तुरत।।

शुकदेव बोले- परीक्षित, भगवान का स्पर्श होते ही गजराज अज्ञान बन्धन से विमुक्त हो गया। वह चतुर्भुजी और पीताम्बरधारी होकर भगवत् रूप को प्राप्त हो गया। महाराज, यह पूर्वजन्म में द्रविड़ सत्तम पांड्यदेश का प्रख्यात इन्द्रद्युम्न नाम का राजा था और सदा भगवान विष्णु सम्बन्धी व्रत उपासना में तत्पर रहता था।

कुरुवंश के शिरोमणि परीक्षित्, मैंने गजेन्द्र के उद्धार की कथा आपको सुना दी। यह प्रसंग कलिमल का हर्ता दु:स्वप्न-विनाशक, यश, उन्नति और स्वर्ग देनेवाला है। भगवान का कथन है कि दु:स्वप्न दिखलाई पड़ने पर जो व्यक्ति प्रात:काल उठकर इसका पाठ करता है उसे दु:स्वप्नों का अनिष्ठ फल नहीं प्राप्त होता। जो व्यक्ति ब्राह्ममुहूर्त में इसका पाठ करते हैं उन्हें मृत्यु की बेला में निर्मल बुद्धि मैं प्रदान करता हूँ। तामसी वृत्तिवाला जीव भी भगवान का आश्रय लेकर भव बन्धन से छूट सकता है, संकट से मुक्त हो सकता है। मनुष्येतर योनि में भी भगवत्कृपा का आविष्कार होता है।

करि गजको उद्धार भये आनन्दित श्रीहरि। बोले करुनासिन्धु सबनिकूँ सम्बोधित करि।।
ये मेरे है रूप कन्दरा वन गज सरवर। विधि हरि हरके धाम वाँस पर्वत गिरि गह्वर।।
शेष शारदा सप्त ऋषि, सूर्य चन्द्र ध्रुव धर्म हैं। गंगा यमुना सरसुती, यज्ञ आदि शुभ कर्म हैं।।

शुकदेव का कथन है कि भगवान ने बिदा होने की बेला में सबके सामने यह कह दिया कि जो लोग मेरा, गजेन्द्र का, इस सरोवर का, यहाँ के गिरि-कन्दर, कानन एवं वृक्ष-लतादि का स्मरण करेंगे, उनको मेरी प्राप्ति होगी और वे सब पापों से छूट जायेंगे, उन्हें सारे कल्याण भी अपने आप प्राप्त हो जायेंगे।

संसार के प्राण आधार हो तुम श्री कृष्ण तुम्हारी जय होवे।
महि भार उतारन हार हो तुम श्रीकृष्ण तुम्हारी जय होवे।
प्रभु दीन हूँ में बलहीन हूँ मैं धनहीन हूँ मैं आधीन हूँ मैं।
इस जीवन के आधार हो तुम श्रीकृष्ण तुम्हारी जय होवे।।
गज के हित नंगे पाँव भजे द्रौपदी हित वस्त्र तमाम तजे।
जन लाज बचावन हार हो तुम श्रीकृष्ण तुम्हारी जय होवे।।
करते हैं अरज यही शैदा मन व्याधि विकार न हो पैदा।
करते सबका उद्धार हो तुम श्रीकृष्ण तुम्हारी जय होवे।।

गजेन्द्र कथा का नित्य पाठ करने से अंत समय में मन पवित्र होता है। तब जीव कहता है- हे भगवान, मेरी आत्मा और मेने मन का हरण कर लेना। मैं अपवित्र हूँ, दु:खी हूं, दरिद्र हूं। कहता है-

इतना तो करना स्वामी, जब प्राण तन से निकले। तेरा नाम मन से निकले।।

३) देवताओं और असुरोंके बीच सन्धि -

गये देव ब्रह्मा के पासा। ब्रह्मा गये निज प्रभुहि निवासा।। देवन स्तुति कीन्ही भारी। प्रगट भये तब श्री असुरारी।।

शुकदेव बोले- राजन्, पाँचवें मनु का नाम था- रैवत। वे चौथे मनु तामस के सगे भाई थे। उनके अर्जुन, बलि, विन्ध्य आदि कई पुत्र थे। उस मन्वन्तर में इन्द्र का नाम था- विभु। भूतरथ आदि देवता थे। उस समय हिरण्यरोमा, वेदशिरा, ऊर्ध्वबाहु आदि सप्तर्षि थे। उनमें शुभ्र ऋषि की पत्नी का नाम था विकुण्ठा। उसी के गर्भ से भगवान का अवतार हुआ- वैकुण्ठ। उन्होंने लक्ष्मी की प्रार्थना से, उनको प्रसन्न करने के लिये, वैकुण्ठ धाम की संरचना की थी। वह समस्त लोकों में श्रेष्ठ है।

भये पाँचवे रैवत मनु मन्वन्तर अधिपति। लियो विष्णु अवतार नाम बैकुण्ठ रमापति।।
कमला हित वैकुण्ठ रच्यो सब लोक नमस्कृत। मन्वतरपति भये छटे चाक्षुस मनु श्रीयुत।।
सम्भूतीके गर्भतें, भये विष्णु वैराजसुत। अजित नाम अच्युत रख्यो, मथ्यो सिंधु श्री अमृत हित।।

भगवान की लीलायें इतनी दिव्य और आश्चर्यजनक होती है कि साधारण लोग उनका रहस्य समझ ही नहीं सकते। जब तक भगवान स्वयं कृपा न करें तब तक उनके अवतार का भेद कोई समझ नहीं सकता।

छठे मनु का नाम चाक्षुष था। चह यक्षु के पुत्र थे अत: चाक्षुष कहलाये। उनके पुरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि कई पुत्र थे। इन्द्र का नाम था मन्त्रद्रुम और प्रधान देवगण थे- आप्य आदि। उस मन्वन्तर में हविष्यमान् और वीरक आदि सप्तर्षि थे। उस समय वैराज की पत्नी सम्भूति के गर्भ से भगवान का अंशावतार हुआ था। उनका नाम था- अजित। अजित ने ही सागर का मन्थन कर देवताओं को अमृत पिलाया था और वे ही कच्छपरूप धारण कर मन्दराचल को अपनी पीठ पर भी धारण किये थे।

राजा परीक्षित ने पूछा- मुनिवर, समुद्र का मन्थन क्यों किया गया और अमृत की प्राप्ति कैसे हुई?

सूतजी नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों से कह रहे हैं- ऋषिगण, राजा परीक्षित् के इस प्रकार प्रश्न करने पर शुकदेवने कहा- राजन्, एक बार महर्षि दुर्वासा वैकुण्ठ लोक से कहीं जा रहे थे। उनकी ग्रीवा में पारिजात पुष्प की लक्ष्मीद्वारा प्रदत्त माला लटक रही थी। अम्लान माला लटक रही थी। उसी समय सामने से आए ऐरावत पर चढ़कर इन्द्र। इन्द्रने पूछा- ऋषिवर, कहां से आ रहे हो। दुर्वासा ने उत्तर दिया- वैकुण्ठ लोक से लक्ष्मी का दर्शन कर आ रहा हूँ पर यह रही लक्ष्मीकी प्रसादी माला।

ऋषि ने प्रसन्न हो वह माला इन्द्र के गले में डाल दी। लक्ष्मीमद से उन्मत्त इन्द्र ने उसे ऐरावत गज के मस्तक पर रख दिया। ऐरावत ने अपनी सूँड़ से उसे खींचकर पैरों से कुचल दिया। यह दृश्य देखकर दुर्वासा कुपित हो उठे। उन्होंने इन्द्र को शाप दिया- तूँ तीनों लोकों के सहित शीघ्र ही श्रीहीन हो जायेगा। राज्यलक्ष्मी से भ्रष्ट हो जायेगा। ऋषि के शाप के प्रभाव से देवता श्रीविहीन हो गये। कभी भी भगवान के प्रसाद का अपमान करना नहीं चाहिए। सन्त के दिये प्रसाद का अनादर नहीं करना चाहिए।

कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय। इक खाए बौरात है, इक पाए बौराय।।

कनक नाम धतूरे का है और कनक नाम सोने का भी है। धतूरे को खाने से नशा होता है लेकिन दस बीस किलो सोना घर पर पड़ा हो तो पैर जमीन पर नहीं टिकते, आँखें ऊँची-ऊँची रहती हैं, गरीब से बात करना वह पसन्द नहीं करता। धतूरे के नशे की चिकित्सा है, परन्तु स्वर्ण धन के नशे की दवा नहीं है।

शुक बोले इक दिवस गये वन दुर्वासा मुनि। श्यामा विद्याधरी खड़ी चौकी पग धुनि सुनि।।
सर समीप स्रग लिये सुगन्धित सुन्दरता जनु। मुनि मन चंचल भयो निरखि माला वाला तनु।।

ऐरावत मस्तक धरी, कुचली पैरनि तासु जब। दुर्वासा क्रोधित भये, शाप इन्द्रकूँ दयो तब।।
जा तेरी श्री नष्ट होहि तीनों लोकनिकी। शाप होत ही कान्ति परी फीकी देवनिकी।।
असुरनि घेरयो स्वर्ग देवता मारि भगाये। राज्यहीन श्री भ्रष्ट दुखित सुर विधि ढिँग आये।।

शुकदेव बोले- परीक्षित, जिस समय महर्षि दुर्वासा के शाप से इन्द्र के सहित तीनों लोक श्रीहीन हो गये तथा उनमें होनेवाले समस्त यज्ञादि कर्मों का लोप हो गया, तो सभी देवता मिलकर सुमेरु के शिखर पर जो ब्रह्माजी की सभा है, उसमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने विनयपूर्वक ब्रह्माजी से सभी समाचार निवेदन कर दिये।

जब श्री ही नहीं, तब मंगल कहाँ? जब मंगल ही नहीं, तब उत्सव कहाँ, जब उत्सव ही नहीं, तब धार्मिक यज्ञ यागों में उत्साह कहाँ? जब यज्ञ यागादि ही नहीं, तब संसार का क्षेम कहाँ? सर्वत्र यज्ञ बन्द हो गये। देवताओं का यही तो आहार है। अग्नि में जो देवताओं के उद्देश्य से हवनीय द्रव्यों का वेद मन्त्रों के सहित तद्तद् देवताओं के निमित्त जो विधिपूर्वक हवन किया जाता है, उस द्रव्य को अग्नि उन-उन देवताओं के समीप पहुँचा देते हैं उसी से देवता तृप्त होते हैं। अब जब हवन ही बन्द हो गये, तो अग्नि क्या पहुँचावे? इन्द्रादि देवता भूखों मरने लगे। सभी प्राणी श्रीहीन तो हो गये, यज्ञादि कर्मों का सर्वथा उच्छेदन हो गया।

श्रीहीन पुरुष तभी होता है, जब वह दर्प से सिर ऊँचा करके अपने सम्मुख किसी को कुछ समझता नहीं। वही जब विनीत हो जाता है, तो समस्त सद्गुण उसे आकर वरण कर लेते हैं। जो सिर देवता, ब्राह्मण, श्रेष्ठ तथा उत्तम पुरुषों के लिये नत नहीं होता, उसकी दुर्दशा होना ही उसके पापों का प्रायश्चित्त है।

अब देवराज श्रीहीन हो गये। जब यह वृत्तान्त असुरों को विदित हुआ तो उन लोगों ने देवताओं पर आक्रमण कर दिया। दोनों दलों में भीषण मार-काट मच गई। देवता पराजित हुए। उनकी समझ में ही न आ रहा था कि- अब क्या किया जाय? अन्ततः वे ब्रह्मा जी की शरण में गये। अपना सारा दुःख-दर्द ब्रह्मा जी को सुनाया। ब्रह्मा ने कहा- इन्द्र तने सन्त के हाथ से मिली हुई प्रसादी माला का अपमान किया। इन्द्र बोला- पितामह भूल हो गई। ब्रह्मा बोले- जब धरती पर पाँव फिसलता है तो क्या चन्द्रलोक का सहारा लिया जाता है। इसका तो सहारा धरती माता लेती है। तुमने भगवान का अपमान किया इसलिये भगवान से तुम क्षमा प्रार्थना करो।

ब्रह्मा ने कहा- देवों, तुम लोग घबड़ाओ नहीं। हम सभी अशरण-शरण भगवान श्री हरि की शरण में चलें। वे ही हम लोगों की पीड़ा का निवारण करेंगे। ऐसा कहकर ब्रह्माजी देवताओं को लेकर भगवान अजित के निज धाम वैकुण्ठ लोक में गये। वह धाम तमोमयी प्रकृति से परे हैं? वहां जाने पर उन्हें कुछ दिखाई न पड़ा। वहाँ ध्यान-मग्न हो ब्रह्मा ने भगवान की इस प्रकार स्तुति प्रारम्भ की- भगवन्, आप निर्विकार, सत्य, अनन्त, आदिपुरुष, सर्वान्तर्यामी, अखण्ड एवं अप्रतर्क्य हैं। मन और वाणी की सीमा से आप ऊपर हैं। आप सभी देवों के आराध्य और स्वयं प्रकाश हैं। हम सभी आप के चरणों में प्रणाम करते हैं। हम आप की शरण में आये हैं। आप हम लोगों की रक्षा करें, रक्षा करें। इस प्रकार भगवान् की भावभरी स्तुति की।

भगवान समय-समय पर आप स्वयँ अपनी इच्छा से अनेकों रूप धारण करते हैं, और जो काम हमारे लिये अत्यन्त कठिन होता है, उसे आप सहज ही में कर देते हैं। आप सर्वशक्तिमान हैं। प्रभो, आप कृपा करके हमें दर्शन दीजिये। आप समस्त देवताओं के आराधनीय एवं स्वयं प्रकाश हैं। हम सब आपके चरणों में नमस्कार करते हैं। प्रभो यह विश्व पहले आप में ही लीन था। मध्य में यह आप में स्थित है और अन्त में आप में ही लीन हो जायेगा। आप ही इस जगत के आदि मध्य और

अन्त हैं। आप अपनी ही माया से इस संसार की रचना करते हैं आप ही इसमें प्रवेश करके अर्न्तयामी रूप से विराजमान होते हैं और अन्त में लीन कर लेते हैं। जीव के परमहितैषी परमप्रियतम आत्मा आप ही हैं। आप हम पर प्रसन्न होइये। हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं। आपको समर्पित किया हुआ छोटे-से-छोटा कर्माभास भी विफल नहीं होता।

आपसे ही सारी सृष्टि होती है। यह समग्र विराट् आपका स्वरूप है। श्री, पितर, धर्म, अधर्म, स्वर्ग, अप्सरा, विप्र, वेद, क्षत्रिय-बल, वैश्यवार्ता, शूद्रसेवा ये सब कुछ आपमें हैं। लोभ, प्रीति, कान्ति, काम, काल, कर्म, गुण, भौतिक प्रपंच ये सब भी आपके स्वरूप में है। आप दयालु होकर देवताओं का दु:ख निवारण कीजिए। आपके सिवा कोई दूसरा स्वामी बड़ा नहीं है, जिससे जाकर अपना दु:ख कहें। संसार में आपका नाम दीनदयालु प्रकट है, सो इन्हें दीन जानकर इन पर दया कीजिए और शरण आये की लाज रखकर सहायता कीजिये।

शुकदेवने कहा- राजन्, जब देवताओं ने सर्वशक्तिमान् भगवान की इस प्रकार स्तुति की, तब वे उनके बीच में ही आविर्भूत हो गये। उनके शरीर से कान्ति का पुञ्ज इस प्रकार निकल रहा था मानों हजारो-हजारों सूर्य एक साथ आकाश-मण्डल में उदित हो गये हों।

भगवान के तेजोमय श्रीविग्रह को देखकर शिव और ब्रह्मा प्रसन्न हो उठे। उन्होंने देवताओं के साथ पुन: आठ श्लोकों से स्तुति करते हुए कहा- जो जन्म, स्थिति और प्रलय से परे हैं, जो प्राकृत गुणों से रहित हैं, जो मोक्षस्वरूप हैं, जो परमानन्द के महासागर हैं, जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं, जो अनन्त हैं- उन महान् ऐश्वर्यशाली भगवान को हम बार-बार प्रणाम करते हैं।

यद्यपि भगवान अकेले ही सब कुछ करने में समर्थ हैं फिर भी समुद्र-मन्थन आदि के द्वारा लीला-विहार करने की इच्छा से देवताओं को सम्बोधित करते हुए उन्होंने इस प्रकार कहा- ब्रह्मा, शंकर और देवताओं सावधान होकर मेरी बात सुनो। तुम्हारे कल्याण का यही उपाय है। इस समय बलि धर्ममें स्थित है। जो ठीक-ठीक रास्तेसे चल रहा हो, उसको ईश्वर भी विचलित नहीं कर सकता। इसलिए तुम लोग निहत्थे होकर बलिके पास जाओ और उनसे सन्धि प्रस्ताव कर लो। इस समय असुरों पर काल की कृपा है। उनकी गौ, गुरु की सेवा करने से प्राणी का बल बढ़ता है इसलिये जब तक तुम्हारे अभ्युदय और उन्नति का उचित समय नहीं आता, तब तक तुम्हें दैत्यों और दानवों के साथ जाकर सन्धि कर लेनी चाहिये। यही राजनीति है कि- कठिन परिस्थिति के आजाने पर कार्य साधने को दृष्टि में रखकर शत्रुओं से भी सन्धि कर लेनी चाहिये। यह बात दूसरी है कि स्वार्थ के सिद्ध हो जाने पर उनके साथ साँप और चूहेवाला बर्ताव कर सकते हैं। देवताओं तुम सुखी होना चाहते हो तो लक्ष्मी को प्रकट करो और लक्ष्मी प्रकट होगी समुद्र मंथन से। बड़े कार्य को सिद्ध करने के लिए शत्रुओं से भी सन्धि कर ली जाती है। शांति से सब काम बन सकते हैं क्रोध करनेसे कुछ नहीं होता।

इस समय बलि का गुरु तेज है, पाँचवे स्थान पर है। उसने गुरु सेवा करके अपने गुरु को प्रसन्न कर लिया है।

जब समय अपने विपरीत हो तो मान अपमान का ध्यान नहीं करना चाहिये। जैसे भी हो सके अपने स्वार्थ को साध लेना चाहिये। बुद्धिमान वही है जो समय देखकर कार्य करता है। मूर्ख वही है जो समय नहीं देखता। काल के विरुद्ध कार्य करता है। अपमान को आगे करके और मान को पीछे डालकर बुद्धिमान पुरुष अपना कार्य निकाल लेते हैं। अपने स्वार्थ के लिये तो गधे को बाप बनाना पड़ता है।

हरि बोले तब सुरनितें, स्वार्थ जगतमहँ श्रेष्ठ है। सधे स्वार्थ जब जाहि सों, सोई जगमहँ ज्येष्ठ है॥
देवनितें श्रीहरि कहें, ऐसे ही तुम जाइकें। दैत्यनि सों मैत्री करौ, साधो स्वार्थ फँसाइकें॥

अत: अमृत उत्पन्न करने का शीघ्र प्रयास कीजिये। अमृत पीने से मरणधर्मा प्राणी भी अमर हो जाता है। अमृत प्राप्त करने का उपाय यह है- पहले सागर में घास, लताएँ और सब प्रकार की औषधियाँ डाल दो फिर तुम लोग मन्दराचल की मथानी और वासुकि नाग की डोरी (नेती) बनाकर मेरी सहायता से समुद्र-मन्थन करो। अब आलस्य और असावधानी का समय नहीं है। देवताओं, विश्वास रक्खो- दैत्यों को तो मिलेगा केवल श्रम और क्लेश, किन्तु अमृत मिलेगा केवल तुम लोगों को ही। असुरों की जो-जो शर्त हो, उसे स्वीकार कर लेना। शान्ति से सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं, क्रोध से कुछ नहीं होता। पहले सागर से कालकूट विष निकलेगा, उससे डरना नहीं। किसी भी वस्तु के लिये कभी भी लोभ न करना। कामना और क्रोध से दूर रहना। पहले तो किसी वस्तुकी कामना ही नहीं करनी चाहिये, परन्तु यदि कामना हो और वह पूरी न हो, तो क्रोध तो करना ही नहीं चाहिये। बाकी सब काम मैं सिद्ध कर दूँगा।

प्रगट होय प्रभु किय आदेशा। समुद्र मथौ सङ्ग लै असुरीशा॥ नेती बासुकि नाग बनाऔ। मदराचल की रई चलाऔ॥

संसार ही सागर है। उसका मन्थन करके ज्ञान और भक्तिरूपी अमृत प्राप्त करना चाहिये। ज्ञान और भक्तिरूपी अमृत पीनेवाला अमर हो जाता है। मन को मन्दराचल और प्रेम की डोर बनाकर संसार-सागर का मन्थन करो।

इस प्रकार देवताओं को शिक्षा देकर भगवान उनके देखते-ही-देखते अन्तर्हित हो गये। ब्रह्मा, शिव आदि देवता भी अपने-अपने लोकों को चले गये। हमेशा इन्द्र बलि को अपने पास बुलाता था पर आज इन्द्र बलिके पास स्वयम् गया। भगवान के आदेश का पालन करते हुए इन्द्र आदि देवता राजा बलि के पास गये। अस्त्र-शस्त्र-विहीन देवताओं को देखकर दैत्यों ने उन्हें पकड़ लेना चाहा। शुक्राचार्य ने कहा- राजन् बलि इन्द्र देवताओं के साथ समझौता करने आया है। मुझे तो इसकी कोई चाल लगती है किन्तु नीति-निपुण बलि ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। इन्द्र ने बड़ी मधुर वाणी से सन्धि की कामना की और मिलकर समुद्र-मन्थन का प्रस्ताव रक्खा। बलि ने पूछा- इन्द्र कैसे आये हो? देवताओं ने बताया- भगवान नारायण की आज्ञा हुई है। समुद्र मंथन करना है। समुद्र मंथन से लक्ष्मी निकलेगी, अमृत निकलेगा और बहुत से रत्न निकलेंगे। हम लोग आपस में बँटवारा कर लेंगे। देवता अकेले चाहें तो मन्थन नहीं कर सकते, दैत्य अकेले चाहें तो भी मन्थन नहीं कर सकते। इसलिये देवता-दैत्य एक साथ काम करें तो मन्थन हो सकता है। दोनों एक बाप की सन्तान हैं। दोनोंने समझौता किया और मित्रता कर ली।

हरि सम्मति सिर धारि गये असुरनि ढिँग सुरगन। शत्रुनि आवत निरखि दैत्य सोचें मनहीं मन॥
किहि कारन सुर शस्त्र त्यागि हमरे ढिँग आये। करि स्वागत सत्कार असुरपति बलि बैठाये॥
बोले सुरपति सबनितें, भाई हम हैं सुर असुर। पिता एक माता पृथक, च्यौं फिरि झगरै परस्पर॥

बलि ने सागर-मन्थन की बात स्वीकार कर ली। उनके सेनापतियों ने भी उनका समर्थन कर दिया। देवों और दैत्यों में सन्धि हो गई। शुकदेव बोले- परीक्षित्, इसके अनन्तर देवता और दैत्यों ने परस्पर में मित्रभाव से सन्धि कर ली। अब वे दोनों मिलकर अमृत प्राप्ति के लिये परम उद्योग करने लगे।

असुरनि सुर सम्मति सुनी, साधु-साधु सबने कही। अमृत निकारें मिलि उभय, बात जिही पक्की रही॥

दोनोंने मिलकर समुद्र मंथन करने का उद्योग किया। सब ने जाकर मथानी बनाने के लिये मन्दराचल को उखाड़ा और उसे लेकर चले समुद्र की ओर। किन्तु सुवर्ण का वह पर्वत इतना भारी था कि सभी शीघ्र ही श्रान्त हो गये और उसे पटक दिया भूतल पर, जिससे बहुत से देव और दैत्य दबकर चूर्ण हो गये।

सबतें पहिले चले उभय लैवे गिरि मन्दर। लीयो तुरत उखारि चले लैकें देवासुर।।
भार सह्यो नहिँ जाइ सबनिकूँ चक्कर आवै। सब अकुलाये कहैं, भाड़महँ अम्मृत जावै।।
अड़ड़ड़धम करि गिरि गिस्यिो, पिचे देव दानव सबहिँ। हतोत्साह जब सब भये, प्रकटे गरुड़ध्वज तबहिँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार देवता और असुर सलाह करके परिघ के समान भुजाओं वाले परम शक्तिशाली तथा अपने बल के अभिमान में चूर हुए सुर और असुरों ने अत्यन्त उत्साह के साथ मन्दराचल को उखाड़ लिया और क्षीरसागर की ओर उसे लेकर जाने लगे।

देवताओं को हतोत्साह देखकर गरुड पर आरूढ भगवान सहसा वहीं प्रकट हो गये। उन्होंने अमृत-वर्षिणी दृष्टि से देखकर सबको जीवित कर दिया, उस समय उन्हें ऐसा प्रतीत होता था मानों खरोंच भी न लगी हो। भगवान ने पूछा- तुम लोग निराश क्यों हो गये हो? देवता बोले- हमने तो बहुत प्रयास किया पर मंदराचल उठता ही नहीं। भगवान बोले- जो काम तुमसे नहीं होता वो हमसे कहना चाहिये।

तुझसे न सुलझे तेरे उलझे हुए धन्धे। तो भगवान के इन्साफ पर सब सौंप दे बन्दे।।
तो प्रभु हर तुम्हारी मुश्किलें आसान करेगा, और तुम जो न कर सका उसे भगवान करेगा।।
प्रभु के दर पर तेरा शीश झुकाना ही बहुत है, मिलता है जहां न्याय वो दरबार यही है।
संसार की सबसे बड़ी सरकार यही है। खुदा मंजूर करता है दुआ जब दिल से होती है।

इसके बाद भगवान ने पर्वत को बाँए हाथ पर उठाया और गरुड पर आरूढ़ हो गये फिर तो उन्होंने देवताओं और असुरों के साथ समुद्र-तट की यात्रा की। वहाँ पहुँचकर भगवान ने पर्वत को उतारकर गरुड को बिदा कर दिया; क्योंकि गरुड के डर के मारे वासुकि नाग वहाँ आता नहीं। सब लोग कहने लगे-

कुल जहां में तेरा जलवा है, तुझसा जलवागर कोई नहीं। हर अफसर का तूं अफसर है, पर तेरा अफसर कोई नहीं।।
करुणानिधान तुझसा महान धरती के ऊपर कोई नहीं। मनमोहन तेरी सानी का दुनिया में दिलावर कोई नहीं।।
जिसने ली शरण तेरी स्वामी उसको खोव खतर डर कोई नहीं। तूं सबके अन्दर बाहर है, तुझसे बाहर कोई नहीं।।

४) समुद्र मन्थन-

१) समुद्र मन्थन का उद्योग- शुकदेव बोले- महाराज परीक्षित्, देव और असुर वासुकि नाग के पास गये। उनसे मन्दर पर्वत की डोरी (नेती) बनने का प्रस्ताव रक्खा। उन्होंने कहा आप लोगों को तो अमृत मिलेगा। मुझे क्या मिलेगा कि मन्दर-मथानी की नेती बनकर मैं अपना शरीर खिंचवाऊँ? इस पर देवों और असुरों ने कहा- अमृत में आप का भी हिस्सा लगेगा। इस पर वासुकी डोरी बनने के लिये सहमत हो गये फिर वे आकर मन्दराचल के बीचोबीच लिपट गये।

गये वासुकी निकट सब, अमृतको लालच दयो। लाइ लपेटे दाम करि, मथो विहँसि हरिने कह्यो।।
पीताम्बरकी फेंट बाँधि हरि पकस्यो मुख जब। सुरहू पीछे लगे क्रोध करि कहैं असुर सब।।
हम कुलीन विद्वान अमंगल पूँछ न पकरैं। रूँगसी यदि तुम करो यहाँतें हम सब निकरैं।।
हरि हँसि बोले व्यर्थ च्यौं, बाद बढ़ाओ बन्धुवर। सब सुर पकरो पूँछकूँ, मुखकूँ पकरैं ये असुर।।

शुकदेव बोले- राजन्, अब देवता और असुरों ने भली-भाँति सावधान होकर अमृत के लिये समुद्र को मथना आरम्भ किया। सबसे पहिले भगवान ने वासुकि का मुख पकड़ा, देवताओं ने भी भगवान का अनुकरण किया। अब असुरों के लिये

पूँछ रह गयी। उन्होंने पूँछ पकड़ना स्वीकार नहीं किया, भगवान की इस चेष्टा का विरोध करते हुए वे बोले- हम लोग सर्प की अपवित्र पूँछ को कभी भी नहीं पकड़ेंगे।

सारी तैयारी पूरी हो गई। बड़ी सावधानी के साथ सागर का मन्थन प्रारम्भ करने की बेला उपस्थित हुई। श्रीहरि ने जाकर वासुकिनाग के मुखभाग को पकड़ लिया। सारे देवताओंने उनके पीछे खड़े होकर वासुकी को पकड़ लिया। देवताओं को सर्वदा आशंका की दृष्टि से देखनेवाले दैत्यों को यह बात पसन्द नहीं आई। उन लोगों ने कहा- क्या हम मूर्ख है जो हम सांप की पूंछ पकड़ेंगे। सर्प की पूँछ अशुभ मानी गई है, अमंगलकारिणी है अत: हम लोग उसे नहीं पकड़ेंगे। हमने वेद-शास्त्रों का सविधि अध्ययन किया है। प्रशस्त वंश में हमारा जन्म हुआ है। वीरता भी हमारी जगद्विदित है अत: सर्प की पुच्छा का स्पर्श हम लोग नहीं करेंगे जैसा भगवान का आदेश था। हम किस बात में तुमसे कम हैं, साँप की पूँछ पकड़ना तो अशुभ है। हम उत्तम कुल में उत्पन्न हुए है। असुरों की बात सुनकर देवता मौन खड़े रहे। भगवान असुरों की अज्ञता पर मुस्करा उठे। भगवान इन्द्र से बोले- इन्द्र, सब देवता लोग पुच्छ की तरफ आ जाओ और दैत्यों को मुख की तरफ।

संसार में जिससे जिस ढंग से काम निकले उससे उसी ढंग से काम लेना चाहिये। किसी को अपनी वस्तु प्रिय है, तो उसकी स्तुति करके काम निकाल लेते हैं। कोई गीत प्रिय है, तो उसे संगीत सुनाकर स्वार्थ साध लेते हैं कोई हास्य प्रिय हैं तो उसे हँसाकर अपना मनोरथ सिद्ध करते हैं। सारांश अपना काम जिससे निकलता हो, उसे यथाशक्ति अपने अनुकूल बनाना पड़ता है। कोई उलटी खोपड़ी के होते हैं, उनसे उलटा ही व्यवहार करना पड़ता है।

भगवानने वासुकि के मुख-भाग को छोड़कर पुच्छ-भाग को पकड़ लिया। देवता उनके पीछे लग गये। इस प्रकार अपना-अपना स्थान निश्चित् करके देवता और असुर अमृत प्राप्ति के लिये पूरी तैयारी के साथ समुद्रमन्थन करने लगे किन्तु विघ्न यह उपस्थित हुआ कि मन्दर पर्वत बहुत भारी था। उसके नीचे कोई आधार नहीं था अत: वह नीचे की ओर धँसता जा रहा था। प्रयत्नपूर्वक कस कर पकड़ने पर भी मन्थनकर्ता उसे रोक न पा रहे थे। उन्हें अपना सारा प्रयास निष्फल होता दिखलाई पड़ा। उनकी मुखाकृति विकृत हो गई, मुख पर उदासी छा गई। उन लोगों ने सोचा कि भाग्य में अमृत पान लिखा ही नहीं है।

२) कच्छप (कूर्म) अवतार- देवों ने समुद्र-मन्थन के पूर्व विघ्न-विनाशक गणेश की पूजा नहीं की थी, इसलिये विघ्नराज उनके कार्य में विघ्न कर रहे थे। भगवान की शक्ति अनन्त है और वे सत्य संकल्प है। भगवान को इस बात का पता चल गया अत: उन्होंने गणेश की पूजा करवाई और फिर अतिविशाल और विचित्र कच्छप का रूप धारण कर जा बैठे मन्दराचल के नीचे, उसे उठा लिया अपनी पीठ पर। मनरूपी मन्दराचल निराधार रहने पर संसार-सागर में डूब जाता है। मन-मन्दर आधार के बिना स्थिर नहीं रह पाता। उसे भगवत्स्वरूप, भगवन्नाम की आवश्यकता है। उसे वह आधार मिलेगा, तो वह संसार-सागर में कभी नहीं डूबेगा। भगवान की शक्ति अनन्त है। वे सत्यसंकल्प हैं। उनके लिये यह कौन-सी बड़ी बात थी। जीव के हर प्रयास में भगवान की कृपा और बल ही काम करते है।

देवों और असुरों ने देखा कि अब मन्दर तो अन्दर नहीं धँस रहा है, वह ऊपर उठ आया है। उन बेचारों को क्या मालूम कि यह तो भगवान की कृपा का फल है। फिर वे फिर से समुद्र-मन्थन के लिये उठ खड़े हुए। उस समय भगवान ने जम्बूद्वीप के समान एक लाख योजन विशाल अपनी पीठ पर मन्दर को अनायास धारण कर रक्खा था। अब मथने की बेला में मन्दर, भगवान की पीठ पर रगड़कर घूमने लगा। उन्हें ऐसा मालूम पड़ता था मानो कोई उनकी पीठ खुजला रहा हो। देवों और असुरों में भगवान ने

अपनी शक्ति प्रविष्ट करा कर उनके उत्साह का संवर्धन किया। अब पर्वत ऊपर की ओर फेंकाने लगा अत: पर्वत के ऊपर, दूसरे पर्वत के समान बनकर, सहस्रबाहु भगवान उसे अपने हाथों से दबाकर स्थित हो गये। भगवान के इस अद्भुत कृत्य को देखकर ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र आदि उनकी स्तुति करके उनके ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे।

हरि निरखें भयभीत सुर, तुरत कूर्म तनु धारिकें। धार्‌यो मंदर पीठिपै, उछरे बुड़की मारिकें॥

शुकदेव कहते हैं- विघ्नेश्वर के किये हुए महान विघ्न को देखकर भगवान ने बड़ा भारी अद्भुत कच्छप का रूप धारण कर लिया, क्योंकि वे अनन्त पराक्रमी और अमोघ संकल्प हैं। समुद्र के जल में घुसकर डूबते हुए पर्वत को ऊँचा उठा दिया।

सागर-मन्थन की बेला में चारों ओर भगवान ही भगवान थे। पर्वत के नीचे, पर्वत के ऊपर, देवों, असुरों और वासुकि के भीतर तथा डोर पकड़े हुए चारों ओर भगवान ही भगवान थे। धन्य है भगवान की कृपा। सागर का मन्थन तेजी से चल रहा था। वासुकि की जम कर खिंचाई हो रही थी अत: उनके श्वासों से विष की आग निकल रही थी। उससे झुलस कर देव और असुर निस्तेज हो गये। भगवान् ने वर्षा करा कर एवं शीतल सुगन्धित पवन बहा कर देवों की जलन को शान्त किया। इससे देवताओं को उतना कष्ट नहीं हुआ जितना कि असुरों को। मथते-मथते जब सब श्रान्त हो गये थक गये, किन्तु अमृत नहीं निकला तब स्वयं अजित भगवान कमर कसकर, दोनों हाथों से दोनों ओर की डोर पकड़कर अकेले ही समुद्र को मथने लगे।

उस समय मन्थन करते हुए भगवान की कैसी शोभा हुई, इसका वर्णन करते हुए शुकदेव महाराज कहते हैं कि- भगवान मेघ के समान श्याम हैं, उनके श्रीविग्रह पर पीताम्बर शोभा पा रहा है, कानों में बिजली की भाँति सुवर्ण का कुण्डल विराजमान है, सिर पर लहराते हुए घुँघराले बाल हैं, नेत्रों में लाल-लाल रेखाएँ उभरी हुई हैं और गले में वनमाला लहरा रही है। सम्पूर्ण जगत् को अभय प्रदान करनेवाले अपने भुजदण्डों से वासुकि नाग को पकड़कर तथा कूर्मरूप से पर्वत को धारण कर जब मन्दराचल की मथानी से समुद्र-मन्थन करने लगे, उस समय वे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो दूसरा मन्दराचल हो।

वायु विषैली लगी दैत्य झुलसे रिसियाने। अमृत निकसै नहीं सुरासुर सब खिसियाने॥
सबकूँ निरख्यो विकल अजित हँसि बोले बानी। हो कश्यप सन्तान थाह तुम सबकी जानी॥
लाओ मारूँ हाथ द्वै, अमृत देऊँ निकारिकें। मोऊकूँ मिलि जाय कछु, खेचूँ रई रिस्याइकें॥

शुकदेव बोले- राजन्, जिस समय देवताओं की ओर से भगवान समुद्र को मथने लगे उस समय उनकी कैसी अद्भुत शोभा थी। वे स्वयं मेघ के समान श्याम थे। कानों में कुण्डल बिजली के सदृश चमक रहे थे। सिर पर की अलकावली हिलती हुई शोभा दे रही थीं, गले में वनमाला पहिने थे, उनके नेत्र अरुण थे। जगत् को अभय प्रदान करनेवाली अपनी विश्वविजयिनी बाहुओं से साँप को पकड़कर मन्दराचल की मथानी से क्षीरसागर को मथने लगे, तो ऐसे प्रतीत होते थे, मानो गिरिराज को या गोवर्धन को उखाड़कर धारण करनेवाले श्रीकृष्ण हो।

भगवान के समुद्र मथते ही सर्वप्रथम भयंकर हलाहल विष निकला। विष- चित्त में ग्लानि उत्पन्न करने वाला पदार्थ। पूर्वकाल में विरोचनकुमार बलि तीनों लोकों के अधिपति थे। एक बार भृगुकुलभूषण शुक्राचार्य उनके पास गये। अर्ध्यादि के पश्चात् दैत्यराज बलि ने शुक्राचार्य से फूल, धूप, दीप, दान आदि के माहात्म्य के संबंध में प्रश्न किया। शुक्राचार्य ने उत्तर देते हुए कहा- राजन्। पहले तपस्या की उत्पत्ति हुई, तत्पश्चात् धर्म की। इसी बीच में लता और औषधियों का प्रादुर्भाव हुआ। इस पृथ्वी पर अनेक प्रकार की लताओं, अमृत, विष आदि की उत्पत्ति हुई। विष वह है जो अपनी गंध से चित्त में तीव्र ग्लानि उत्पन्न करता है। ब्राह्मण बगले झाँकने लगे। उन लोगों ने सोचा कि कहीं ऐसा न कह दें कि पहला

फल ब्राह्मणों को देने की प्रथा है अत: विष ब्राह्मणों को पिला दिया जाय। विष की ज्वाला चारों ओर फैल रही थी। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची हुई थी। देव-दानव चिल्ला कर भाग रहे थे। कोई शरणदाता न था, कोई बचानेवाला न था।

हालाहाल सबतें प्रथम, निकस्यौं विष अति उग्रतर। दशहु दिशनिमहँ व्याप्त वह, भयौ भगे सब सुर असुर।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार भगवान के समुद्र मथने पर इस क्षीरसागर से सर्वप्रथम हालाहल नाम का उग्र विष उत्पन्न हुआ, समुद्र का जल मथने से मछलियाँ तिलमिला उठीं थीं। मगर सर्प और कच्छप तैरने लगे थे तथा तिमि जलहस्ति, ग्राह और तिमिङ्गिल आदि जलजन्तु व्याकुल हो गये थे।

हरि बोले हर निकट प्रजापति सँग सब जाओ। करिकें अनुनय विनय हलाहल उनहि पियाओ।।

सभी भागकर भगवान शंकर की शरण में गये। वे सती के साथ कैलास पर विराजमान थे। ऋषि-मुनि उन्हें घेर कर बैठे हुए थे। इन्द्र आदि देवों ने उन्हें प्रणाम किया। दीनता के साथ उनकी स्तुति की और कहा- प्रभो, इस भयंकर विष से आप हमारी रक्षा करें, हम आपके चरणों की शरण में आये हैं। आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं। आप ही साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। आप ही शब्दयोनि हैं, वेदों के मूल हैं, जगत् के आदि और उसकी आत्मा है। अग्नि आप का मुख है, पृथ्वी आप का पाद है, काल आप की गति है, दिशाएँ आप का कान हैं, जल रसना और नभ नाभि है। हे भूतभावन भोलेनाथ, आप सम्पूर्ण प्राणियों के आत्माहै, उनके जीवनदाता हैं। हमलोग आपकी शरण में आये हैं, त्रिलोकी को भस्म करनेवाले इस कालकूट विष से हमारी रक्षा कीजिये। आप शरणागत की पीड़ा को नष्ट करनेवाले हैं, आप ईश्वर हैं, सर्वसमर्थ हैं।

इस प्रकार उन लोगों ने विराट् रूप में भगवान शंकर की स्तुति करते हुए कहा- ब्रह्मा आदि भी आप को ठीक-ठीक नहीं जानते। आप में त्रिगुण तो बिल्कुल हैं ही नहीं। आप की महिमा सर्वाधिक है, सर्वोपरि है। आप से परे कोई नहीं है। आप कृपा करके हम लोगों को आनन्दित करें, हमारा दु:ख दूर करें। आपको बारम्बार नमस्कार है।

शरन तिहारी लई जगतके तुम हो स्वामी। अज अच्युत अखिलेश अनामय अन्तरयामी।।
पालन अरु संहार करौ तुमहीं जग रचिकैं। तीनिहु कारज करो विष्णु हर बिधि बपु धरिकैं।।
रुंडमाल गलगंग सिर, मस्तक शशि शिव नाम है। उमा सहित सर्वेश पद, पदुमनि माहिँ प्रनाम है।।

प्रजापति गण श्रीशिवजी की स्तुति कर रहे हैं- हे देवाधिदेव, हे महादेव, हे सर्वभूतात्मन, हे भूतनाथ। यह जो कालकूट विष है तीनों लोकों को भस्म कर रहा है, इससे हमें बचाइये। हम आपके शरणागत हैं। आपही एकमात्र सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर हैं तथा बन्धन और मोक्ष के भी ईश्वर हैं इसीलिये कुशल पुरुष शरणागतों के दु:खों को हरनेवाले आप जगत् गुरु को ही सदा पूजते हैं। सद्योजातादि पाँच उपनिषद ही आपके तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान नामक पाँच मुख हैं। उन्हींके पदच्छेदसे अड़तीस कलात्मक मन्त्र निकले हैं। आप जब समस्त प्रपंचसे उपरत होकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं, तब उसी स्थितिका नाम होता है शिव। वास्तवमें वही स्वयंप्रकाश परमार्थतत्त्व है।

देव देव महादेव, सर्व जगत् रक्षक। प्रणतपाल प्रभु कृपालु, अन्त विश्व भक्षक।।
कालकूट विष महान हलाहल ज्वालाकुल। त्रस्त जलजीव कच्छ, सर्प गज तिमिङ्गल।।
वामदेव सद्यो जात, त्राहि त्राहि विश्वनाथ। तत् पुरुष हर अघोर चरण कमल नवत माथ।।
पृथ्वी, जल, नभ, प्रकाशवायु आदि तव अधीन। मायापति रक्ष रक्ष, उमानाथ हर प्रवीन।।

भगवान तो भोलेनाथ ही ठहरे जो जैसा वर माँगता है, दे देते हैं। जो जिस वस्तु की याचना करता है, उसे बिना बिचारे

प्रदान कर देते हैं।

प्रगट्यो सार मथन से, काला गरल महान। भक्तन को दुख देखकर, शंकर कीन्हों पान।।

शुकदेव बोले- राजन्, प्रजा के ऊपर आई हुई विपत्ति को देखकर, समस्त प्राणियों के अकारण बन्धु देवाधिदेव भगवान शंकर के हृदय में कृपावश, बड़ी व्यथा हुई। वे संसार के दु:ख से व्यथित हो उठे। उन्होंने अपनी प्राणवल्लभा सती से यह बात कही।

हे शम्भो, सुख शान्ति शक्ति सरबसुके दाता। आशुतोष अखिलेश भवानीपति भयत्राता।।
कालकूटतें दुखी बिपतितें नाथ बचाओ। पान हलाहल करी दुखिनिके दु:ख मिटाओ।।
उमा बिचारें स्वारथी, हैं सबरे ये प्रजापति। कालकूट विष पान हौं, करन न दुङ्गी तीक्ष्ण अति।।

देवि, बड़े कष्ट की बात। देखो तो सही, समुद्र-मंथन से उद्भूत कालकूट विष के कारण प्रजा पर महान् संकट आ पड़ा है, सारे लोग भाग कर मेरी शरण में है कि वे दीन-दु:खियों की रक्षा करें। शक्ति सामर्थ्य से सम्पन्न व्यक्ति के जीवन की सफलता इसी में है कि वे दीन-दु:खियों की रक्षा करें। सज्जन पुरुष अपने क्षणभंगुर प्राणों की बलि देकर भी दीन-दु:खियों की रक्षा किया करते है। शंकर पार्वती से बोले- देवी, समस्त प्रजा को बचाने के लिये तो विष पीना ही पड़ेगा।

देवि, भवानि, अरे देखो, क्षीरसागर के मन्थन करने से जो कालकूट विष उत्पन्न हुआ है उसके कारण प्रजाओं के ऊपर कैसी विपत्ति आ पड़ी है। इन सब प्राणों की रक्षा चाहनेवाले जीवों को मुझे अभयदान देना चाहिये। दीनों का परिपालन करना यही तो प्रभुओं की प्रभुता है।

अन्तर्यामी शम्भु उमाके मनकी जानी। सती करन सन्तोष मधुर बर बोले बानी।।
प्रिये, प्रजा अति दुखित परी संकटमहँ भारी। शरणात प्रतिपाल करनकी बानि हमारी।।
जीवनिपै किरपा करै, हरि प्रसन्न तिनपै रहैं। पान हलाहल विष करूँ, दुखित होहिं ये सब कहैं।।

पार्वती बोली- तो पी लीजिये। धन्य है वो पतिव्रता जो पति को विष पीने की सलाह दे रही है। बच्चों की रक्षा के लिये पति को जहर पीने के लिये कह रही है। सती बोली- आपका क्या बिगड़ेगा। भोलेनाथ बोले- जानती हो, उसका नाम कालकूट है, काल है, काल। तब भगवती बोली- वो काल है तो आप महाकाल है। इसको पीनेसे प्रजा की रक्षा हो जायेगी। अगर लोककल्याण की बात है तो इसे आपको ग्रहण करना चाहिए। अन्य को सुखी करे जो स्वयं दु:ख सह लें वही शिव है।

देवी, सबमें न तो सब प्रकार के दु:खों को सहन करने की सामर्थ्य ही होती है और न सभी स्वयं आई हुई विपत्ति का प्रतीकार ही कर सकते हैं। संसार में सभी एक दूसरे की सहायता की अपेक्षा रखते हैं। जो श्रेष्ठ हैं सामर्थ्यवान हैं उनसे दीन दुखी इस बात की आशा रखते हैं, कि वे हमारे दु:ख को दूर करें संकट में सहायक हो। इस समय ये सब अपनी प्राण रक्षा के लिये आतुर हैं। भयभीत होकर मेरी शरण में आये हैं। शरणागत की रक्षा करना श्रेष्ठ पुरुषों का परम कर्त्तव्य है और शरणागत का त्याग करना महान् पाप है। अत: इन सबको मुझे अभय दान देना ही चाहिये। जिसे अपने ही प्राणों की चिन्ता है, वह परोपकार क्या करेगा। अपने आप दु:ख उठाकर दूसरों को सुखी बनाया जाता है। प्राणों की बाजी लगाकर भी अन्य जीवों की रक्षा की जाय तो उनका प्राणोत्सर्ग प्राणरक्षा से करोड़ों गुना श्रेष्ठ है। परोपकार का जीवन ही जीवन है। केवल शरीर को पुष्ट करते रहे, इसी क्षणभंगुरनाशवान देह को ही पालते पोषते रहे तो पशु पक्षियों में और मनुष्यों में अन्तर ही क्या रहा? जो समर्थ होकर उसके शरीर धारण को धिक्कार है। साधुजन परोपकार के लिये प्राणों का मोह नहीं करते। जो जीवन भर प्राणों को ही पोषता रहता है, उसे कौन जानता है। असंख्यों जीव सहस्रों वर्षों तक शरीर को मोटा बना-

बनाकर मर गये उनका कोई नाम भी नहीं जानता। महाराज शिवि का नाम अमर क्यों है। उन्होंने शरण में आये कबूतर की अपने प्राणों की बाजी लगाकर बाज से रक्षा की। दधीचि मुनि का शरीर चाहे न रहा हो किन्तु उनकी कीर्ति तो सर्वत्र व्याप्त है। देवताओं के उपकार के लिये उन्होंने जीवित ही अपनी अस्थियाँ प्रदान कर दी थीं। महाराज दिलीप ने गौ को बचाने के लिये सिंह को अपना शरीर अर्पित कर दिया। यदि इस नश्वर, अनित्य शरीर से किसी प्राणी का उपकार हो जाय, नाशवान शरीर किसी काम में आ जाय, इससे बढ़कर इसका और क्या उपयोग हो सकता है। प्राणियों का जिसमें कल्याण हो उसी कार्य को करना समर्थ पुरुषों का कर्त्तव्य है। जिनके पास शक्ति-सामर्थ्य है, उनके जीवनकी सफलता इसीमें है कि वे दीन-दुखियोंकी रक्षा करें। परोपकारी सज्जन प्राय: प्रजाका दु:ख टालनेके लिये स्वयं दु:ख झेला ही करते हैं। परन्तु यह दु:ख नहीं है, यह तो सबके हृदयमें विराजमान भगवान्‌की परम आराधना है।

बड़ों को दु:ख बहुत है, छोटन से दु:ख दूर। ग्रहण लगे सरिसूर को, तारे ज्यों भरपूर।।

सूरज और चाँद जो बड़ी-बड़ी दण्डौते करवाते हैं तो ग्रहण भी उनको ही लगता है। दु:ख भी बड़ों को ही ज्यादा होते हैं। तारे तो मौज मारते हैं, छोटों को दु:ख कहाँ? इसलिए जो संत ऊँची स्थिति में पहुँचते हैं उन्होंने जीवन में बड़े-बड़े कष्ट सहे हैं कष्ट समाज ने दिये हैं। समाज ने श्री गुरुनानक देव जी को कष्ट दिये। कबीरदास जी को बहुत कष्ट दिये। ये संत कष्टों को सहन करते आये हैं। इससे इनके जीवन का निखार होता है। परमात्मा की सन्निधि प्राप्त होती है।

जगत् के कल्याण के लिये, सब की भलाई के लिये शंकर ने विष-पान किया। साधु पुरुषों का बर्ताव ऐसा ही होता है। सज्जन पुरुष अपने प्राणों की बलि देकर भी दूसरे के प्राणों की रक्षा किया करते हैं। परोपकारी सज्जन प्रजा का दु:ख दूर करने के लिये स्वयं दु:ख सह लेते हैं। साधु पुरुष अन्य लोगों के दु:ख से दु:खी होते हैं। किन्तु यह दु:ख नहीं है। यह तो सभी के हृदय में विराजमान परमात्मा की आराधना है। ऐसे ही अकारण उपकारी प्राणियों पर भगवान कृपा करते हैं, प्रसन्न होते हैं। भगवान् के प्रसन्न होनेपर चराचर जगत् के साथ मैं भी प्रसन्न हो जाता हूँ अत: शंकर ने इस विष को पी लिया। जिन्होंने अमृतपान किया वे देव कहलाये और जिसने विषपान किया वे महादेव कहलाये।

दया धरमको मूल मरम मूरख नहिँ जानैं। छिन भंगुर यह देह अज्ञ अजरामर मानैं।।
शिवको सद् उपदेश सती सुनि दीन्हीं सम्मति। पान करन विष चले शम्भु मनमहँ हर्षित अति।।
व्यापि रह्यो विष जगतमहं, जीव दुखी सबई रहैं। पान कस्यो विष शम्भुने, सज्जन परहित सब सहैं।।

भवानी ने भव की बात सुनी। एक क्षण के लिये वे संशय में पड़ गई। उन्होंने सोचा विष पीने से यदि भगवान शिव को कुछ हो गया तो अनर्थ हो जायेगा किन्तु दूसरे ही क्षण उन्होंने शंकर की बात का समर्थन कर दिया फिर क्या था, चारों ओर फैलानेवाले विष को उन्होंने अपने चुल्लू में भरा और उठाकर पी गये श्रीहरि का नाम लेकर। विष ने अपना प्रभाव शंकर पर भी प्रकट किया, उनका कण्ठ नीला पड़ गया अत: वे नीलकण्ठ कहलाये। विष उनके कंठ में अटक गया।

शुकदेव बोले- राजन्, भूतभावन भगवान शिव ने सर्वत्र व्याप्त उस हलाहल विष को समेट कर अपनी हथेली पर रखकर भक्षण कर लिया।

लीयो तुरत समेंटि बनायो विषको गोला। पान करन हर लगे उमापति शंकर भोला।।
राम नाम सँग लीलि गरेतें नाहिँ उतार्‌यो। निगल्यो उगल्यो नहीं कण्ठमें ही विष धार्‌यो।।
जलमल हलाहल हरषि, पान सतीपति करि गये। कण्ठ नील विषतें भयो, नीलकण्ठ तबतें भये।।

उनकी सुन्दरता में चार चाँद लग गया। इस अकारण करुण उपकारी को उसी दिन से दुनियाँवाले महादेव कहने लगे। शंकर ने विष तो पिया किन्तु उसे पेट में नहीं उतारा क्योंकि उनके भीतर सकल ब्रह्माण्ड के प्राणी निवास करते हैं। विष वहाँ उन्हें परेशान करेगा। जीभ पर भी नहीं धारण किया; क्योंकि फिर तो जीभ जलानेवाली ही बात निरन्तर बोलेगी अत: उसे कण्ठ में ही रोक रक्खा। न जीभ पर रक्खा न पेट में ही- भगवान शंकर का यह अद्भुत सामर्थ्य देखकर सम्पूर्ण प्रजा, दक्षकन्या सती, ब्रह्माजी और स्वयं भगवान विष्णु भी उनकी प्रशंसा करने लगे। विष पीने की बेला में जो कुछ बूँदें छिटक कर नीचे गिर गईं थीं। उन्हें जिन प्राणियों और औषधियों ने ग्रहण कर लिया वे विषैले हो गये। साँप-बिच्छू इसी प्रकार के प्राणी हैं। **मृत्युंजय-** भगवान शंकर ने भयानक विष का पान करके भी मृत्यु को जीत लिया, जिसके कारण जगत में उनकी प्रसिद्धी मृत्युंजय के रूप में हो गई।

मान सहित विष खाय कै शम्भु भयै जगदीश। बिना मान अमृत पिये राहु कटायो शीश।।

अपने दु:ख से तो संसार में सभी दुखी होते हैं। अपने सगे सम्बन्धियों के लिये तो सभी रोते हैं। जो सबके दु:ख को समझते हैं संसार में उनकी सर्वश्रेष्ठ आराधना सर्वोपरि है। जो सबमें ईश्वर को देखकर प्राणिमात्र की सेवा करते हैं सबके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं वे समाधि न लगाने पर भी निरन्तर समाधि में मग्न रहते हैं। अर्चाविग्रह की पूजा न करने पर भी निरन्तर जनता रूप जनार्दन की सेवा करते हैं।

हृदय माहिँ हरि बसैं विश्वपति बिष नहिँ निगल्यौं। अध अङ्गीकृत त्याग सोचि बाहर नहिँ उगिल्यौ।।
दोषनि लेहि पचाय दौष अपनेमहँ आवैं। प्रकट दोष यदि करै तुरत निज अँग लपटावैं।।
तातें कण्ठहिमहँ धर्‌यौ, हर शोभा अतिशय बढ़ी। सुनिकें शोभा सुरनितें, सुरसरि शिव सिरपै चढ़ी।।

असम्मानित पदार्थ कभी स्वीकार नहीं करना चाहिये। इन्द्रियों का मंथन होते समय यदि किसी सद्गुरु का अनुग्रह न हो, किसी संत की संगति न हो, शास्त्र की संगति न हो, तो जीवन में विषयों का विष ही उत्पन्न होता है।

समुझै सबमहँ श्यामकूँ, ते ही भक्त अनन्य है। परकारज हित सहहिँ दुख, जगमहँ ते नर धन्य हैं।।

समाधि सुख को त्यागकर शम्भु ने हलाहल पान किया। शुकदेव बोले- यह जगत भूल जाय। संसार के जितने सुख-दु:ख, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म आदि द्वन्द्व हैं ये सब परिणाम में दु:ख ही देनेवाले हैं समाधि में द्वन्द्व रहते नहीं। निर्द्वन्द्व होकर निजानन्द में मग्न रहते हैं। आत्मसुख का अनुभव करते हैं।

फैली जगमहँ बात शम्भु हलाहल पीयो। दुखी प्रजाको कष्ट वृषभध्वज सब हरि लीयो।।
साधु साधु सब कहैं विष्णु, विधि शिव यश गावैं। दुंदुभि नभतें बजैं सुमन सुरगन बरसावैं।।
हर भोलाकी भूलतें, गोलातें कछु विष गिर्‌यो। सो अहि, बिच्छू, औषधिनि, थावर जंगल विष कर्‌यो।।

३) धन्वन्तरी अवतार- भगवान शंकर ने विष पी लिया। उनका कुछ भी नहीं बिगड़ा। शुकदेव कहते हैं- राजन्, शंकर जी के द्वारा विष-पान कर लेने पर देवों और दानवों को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे फिर नये उत्साह के साथ समुद्र मथने लगे। तब समुद्र से कामधेनु प्रकट हुई। उसे अग्निहोत्र करनेवाले वेदपाठी ऋषियों ने ग्रहण किया। वेदशास्त्र में लिखा है जब मनुष्य कोई काम अपने लिए करे तो पहले उस लाभ में से ब्राह्मण को अवश्य कुछ देना चाहिए, जिसमें उसका मनोरथ सिद्ध हो।

श्रीरम्भा विष वारुणी, अमीय शंख गजराज। धन्वतरि सुरधेन तरु, चन्द कल्प मणि बाज।।

कामधेनु सन्तोष का प्रतीक है। सन्तोष कामधेनु का स्वरूप है। जिसके आँगन में सन्तोषरूपी गाय है, वह ब्राह्मण ही ब्रह्मनिष्ठ है। असन्तोषी मानव पाप में प्रवृत्त होता है। ब्राह्मण का जीवन अति सात्त्विक होना चाहिये। कामधेनु गाय ऋषियों

को दी गयी। उसके बाद चन्द्र के समान धवल उच्चैश्रवा नामक अश्व निकला। उसके स्वरूप पर बलि मोहित हो गये, उन्होंने कहा- यह मुझे मिलना चाहिये। भगवान ने इन्द्र की ओर इशारा किया कि तुम चुप रहो। ये बड़े भाई हैं अत: इसपर इनका हक है। फलत: उच्चै:श्रवा बलि को दिया गया। श्रव का अर्थ है- कीर्ति। उच्चै: का अर्थ है- विशाल, महान्। जो महान् कीर्ति के चक्कर में पड़ जाता है, उसे अमृत नहीं मिलता, भक्ति नहीं मिलती। उसके बाद चार दाँतोंवाला श्वेतवर्ण का ऐरावत हाथी निकला। अब पारी थी इन्द्र की अत: ऐरावत इन्द्र को मिला। दैत्य लोग खिसिया कर रह गये। वे अपने मन में सोचने लगे हाय-हाय चार दाँतोंवाला सफेद हाथी हाथ से निकल गया। तत्पश्चात् लालवर्ण का कौस्तुभनामक मणि सागर से निकला, भगवान ने उसे अपने वक्ष:स्थल पर धारण कर लिया। उनका कथन था कि मन्थन में मैं भी श्रम कर रहा हूँ अत: मुझे भी कुछ मिलना चाहिये। कौस्तुभमणि अनुरागी जीव का प्रतीक है, जिसे भगवान अपनी छाती पर धारण करते हैं। इसके बाद कल्पवृक्ष निकला। उससे जो कुछ माँगो वह मिलता है। वह अपने-आप ही स्वर्ग में चला गया फिर अप्सराएँ निकलीं और वे भी स्वर्गलोक की रमणियाँ हो गईं।

शिव पीयो विष सिन्धु सुरासरु मथिवे लागे। कामधेनु पुनि प्रकट भई रत्ननितें आगे।।
अग्निहोत्रके हेतु सुरभि मुनिगन स्वीकारी। उच्चै:श्रवा महान अश्व फिरि प्रकट्यो भारी।।
घोड़ा राजा बलि लयो, पुनि ऐरावत गज भयो। सो वाहन देवेन्द्रको, हरि अनुमतितें ह्वै गयो।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, जब शंकरजी ने विष का पान कर लिया तो देवता दैत्य अत्यन्त प्रसन्न होकर बड़े वेग से पुन: समुद्र मथने लगे, तब उससे फिर कामधेनु गौ उत्पन्न हुई। उसे ब्रह्मवादी अग्निहोत्री ऋषियों ने ले लिया। क्योंकि वह घृतादि अग्निहोत्र की वस्तुओं को उत्पन्न करनेवाली थी। ब्रह्मलोक के मार्ग स्वरूप यज्ञादि में उपयोगी हवि के लिये ग्रहण किया।

आगे महालक्ष्मी का प्रादुर्भाव हुआ। उनके सौन्दर्य के विषय में क्या कहना। सकल त्रिलोकी का सौन्दर्य जिनकी नख-मणि-चन्द्रिका के एक कण से निर्गत है, उनके सौन्दर्य का वर्णन भला कौन कर सकता है? उनकी रूप-माधुरी से मोहित सभी उनके स्वागत के लिये दौड़ पड़े। ब्राह्मणों ने व्यग्रता के साथ कहा- अरे, तुम लोग देख क्या रहे हो। ये तीनों लोकों की स्वामिनी उत्पन्न हुई हैं इनका विधि विधान पूर्वक अभिषेक तो करो। अभिषेक करने पर ये जिसे वरण कर लें वही इनका पति होगा। यह सुनकर सभी को कुछ-कुछ आशा हुई। किसी ने सोचा हमारा अपार ऐश्वर्य है, हमें लक्ष्मी जी अवश्य वरण कर लेंगी।

देवता और दानवों ने लक्ष्मी का वरण करने के लिये धक्का-मुक्की होने लगी। संसार लक्ष्मी और लक्ष्मीवानों का सम्मान सर्वदा से करता चला आ रहा है। इन्द्र ने अत्यन्त अद्भुत आसन पर उन्हें सादर बैठाया। गंगा आदि नदियों ने रूप धारण कर उनका अभिषेक किया। देवों ने उन्हें अत्याकर्षक वस्त्राभूषण भेंट की। उनके स्वागत में विविधविध बाजे बजने लगे। अप्सराएँ नाचने लगी। चारों ओर आनन्द की लहर दौड़ गई। लक्ष्मी को देखकर देव और असुर दोनों ललचाये किन्तु सब ने एक मत से कहा कि हम सभी पंक्ति-बद्ध हो बैठ जाते हैं। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक इतनी लंबी पंक्ती हो गयी। देवी चाहे जिसका वरण करें, यह उनकी इच्छा पर निर्भर है फिर स्वयंवर की व्यवस्था हुई। सभी लोग अपने-अपने आसनों पर विराजमान हो गये। ब्राह्मणों ने स्वस्त्ययनपाठ किया फिर वे अपने हाथों में कमल की माला लेकर सर्वगुण-सम्पन्न पुरुष के गले में डालने चलीं। माला की सुगन्ध से भ्रमण-मण्डली चतुर्दिक मंडराते हुए गुंजार कर रही थी। उस समय उनका मुखचन्द्र अद्भुत रूप से दमक रहा था। उसकी शोभा अवर्णनीय थी। सुन्दर लाल-लाल गालों पर झुमके झमक रहे थे। वे कुछ-कुछ लजाती, शर्माती, बलखाती चल रही थी। उनकी मुट्ठी भरी पतली कमर थी। वे चाहती

थीं कि मुझे कोई निर्दोष और समस्त उत्तम गुणों से नित्ययुक्त अविनाशी पुरुष मिले तो मैं उसे अपना आश्रय बनाऊँ, वरण करूँ। उन्हें मण्डप में लाया गया। उसने देवताओं को तो यह कहकर छाँट दिया कि जो मन्दारचल तक को हिला तक नहीं सके वो भला लक्ष्मी की जयमाला क्या धारण करेंगे। इनमें से कोई लोभी है, कोई मोही है, कोई कमी है, कोई क्रोधी है। लक्ष्मीजी को विष्णु के सिवा सुर, असुर, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि में कोई भी निर्दोष वर नहीं दिखायी दिया।

रमादेवी ने देखा सम्मुख सजे-बजे सुर, असुर, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, ऋषि, मुनि, सिद्ध, चारण तथा अन्य भी विविध देव उपदेव बैठे हैं। उन सबमें से उन्हें अपने लिये एक वर चुनना था। सभी के हृदय में द्वन्द्व हो रहा था, कोई भी अपने को छोटा मानने को उद्यत नहीं थे, कोई तप के कारण, कोई ज्ञान के कारण, कोई महत्व के कारण, कोई ऐश्वर्य के कारण, कोई धर्म के कारण, कोई शुभ कर्मों के कारण, कोई त्याग के कारण, कोई बल के कारण, कोई विरक्त के कारण तथा कोई दीर्घायु के कारण अपने को सर्वश्रेष्ठ समझते थे।

उनके सामने पड़े, दुर्वासा। उन्हें देखकर लक्ष्मी जी ने सोचा यह तपस्वी तो हैं, परन्तु महान् क्रोधी हैं। क्रोधी के पास लक्ष्मी नहीं रहती अत: वे आगे बढ़ी। लक्ष्मीने सोचा- क्रोधी पतियों से मेरी न पटेगी। क्रोधी पति से पत्नी प्रति क्षण शंकित बनी रहती है।

बृहस्पति और शुक्र को देखकर उन्होंने सोचा ये महान् ज्ञानी है, नीति, शास्त्र, धर्मशास्त्र तथा अन्यान्य शास्त्रों के ज्ञाता ब्रह्मवादी ज्ञानी मुनि बैठे हैं। सबको अभिमान था हम ज्ञानी हैं संसार में ज्ञानी ही सबसे श्रेष्ठ हैं, अत: लक्ष्मीजी हमें अवश्य वरण कर लेंगी। किन्तु इनमें आसक्ति बहुत है। आसक्तिवाले व्यक्ति के पास भी लक्ष्मी नहीं टिकती। उनमें शिष्योंकी लालसा भरी हुई थी। इन ज्ञानियों में नि:संगता नहीं, दान-दक्षिणा के लिये उनके उचित-अनुचित कार्यों में इन्हें साथ देना पड़ता है। इन हाँ-में-हाँ मिलानेवालों से मेरा क्या काम चलेगा। शुक्राचार्य वैभव सम्पन्न है, समस्त दैत्य इनके आदेश में है पर यह उसके अनुकूल नहीं है।

आगे उन्होंने ब्रह्मा और चन्द्रमा को देखा। सोचा ये महान् अवश्य हैं, ये काम के वशीभूत है। किन्तु यह पराश्रयी हैं। जब दैत्य-दानव इन पर आक्रमण करते हैं तब ये भाग कर विष्णु की शरण में जाते हैं अत: यह वरण के योग्य नहीं हैं। पराश्रयी का भी वरण लक्ष्मी नहीं करती। आगे बड़े-बड़े महत्वशाली प्रजापति बैठे हैं, विश्वामित्र, पराशर, सौभरि आदि। संसार में सर्वत्र महत्व का ही आदर है। महत्व की आकांक्षा प्राणी मात्र को रहती है। महत्वशाली से सम्बन्ध स्थापित करने में सभी अपना गौरव समझते हैं। लक्ष्मीने सोचा ये सब बड़े महत्वशाली हैं, संसार में इन सबकी ख्याति है, फिर भी इन्होंने काम को नहीं जीता। ब्रह्माका मन सन्ध्या को देखकर चंचल हो गया। चन्द्रमा ने अपने महत्व के अभिमान में न करने योग्य कार्य कर डाला, विश्वामित्रने अपने प्रभाव से नई सृष्टि बना दी और अपने तप के महत्व से वसिष्ठजी को वश में कर लिया, किन्तु काम पर विजय नहीं पा सके, कोई भी पतिव्रता सती-साध्वी कामी पति से प्रसन्न रह सकती। स्त्रियों के लिये इससे बढ़कर संसार में कोई दूसरा दुख है ही नहीं कि उनके पति का आचरण विशुद्ध न हो। कैसी भी स्त्री क्यों न हो वह सदा सदाचारी पति की इच्छा करेगी।

आगे बढ़ी तो इन्द्र को देखा। इन्द्र थोड़ी-सी आपत्ति आनेपर घबरा जाते हैं और इन्द्र आचरणहीन है, इन्द्रकी आँखें स्थिर नहीं थी इधर-उधर देख रहे थे। जिसकी आँखें स्थिर नहीं होती उसका मन भी स्थिर नहीं। ऐसे कामी व्यक्ति से मैं विवाह नहीं करूंगी। कुबेर, वरुण और नागलोक के ईश्वर, पाताल के, पृथ्वी के तथा अन्तरिक्ष के बहुत से अधिपति स्वामी बैठे हैं। वे अपने को देवेन्द्र, असुरेन्द्र, नरेन्द्र, राक्षसेन्द्र समझते हैं। स्त्री की इच्छा होती है, मेरे पति मेरे स्वामी तो हो हीं और

सभी उनकी आज्ञा मानें पर जो स्वयं दूसरों के आश्रय में रहनेवाला हो, ऐसे पति से पत्नी को क्या प्रसन्नता हो सकती है। पत्नी घर की ही स्वामिनी नहीं है अपने पति के हृदय की स्वामिनी है, यदि उसका पति परमुखापेक्षी है, दूसरों के अधीन उसकी जीविका है, दूसरों का दास है तो उस दास की स्वेच्छा से कौन स्वाभिमानी स्त्री पत्नी बनेगी।

आगे परशुराम दीखे, परशुराम में धर्म था किन्तु उनका प्राणियों के प्रति सौहार्द्र नहीं था। परशुरामने धर्म के नाम पर कितने क्षत्रियों का संहार कर डाला। धर्म की आड़ लेकर बहुत से प्राणियों का वध किया जाता है। प्राय: देखा गया है, धर्म के नाम पर सौहार्द्र को तिलांजलि दे दी जाती है, अत: सौहार्द्रहीन धर्मात्माओं से विवाह करके स्त्री को क्या सुख मिल सकता है। जो पति पत्नी को प्यार न कर केवल सूखे धर्म में ही लगा रहे, ऐसे पति को स्वयं, वरवर्णिनी कन्या कैसे वरण करेगी?

शिवि आदि में त्याग था किन्तु मुक्ति का कारण नहीं। कार्तवीर्य आदि में बल था, किन्तु कालचक्र पर विजयी नहीं, सनकादि विषयाशक्ति से रहित थे अत: वे भी वर होने योग्य नहीं। मार्कण्डेय चिरंजीवी थे, किन्तु जितेन्द्रिय होने के कारण उनका शीलस्वभाव स्त्रियोंकी सुखप्रद नहीं। हिरण्यकशिपु में शीलस्वभाव था किन्तु उसकी आयु का ठिकाना नहीं, न जाने कब मर जायेगा इसप्रकार सभी में कुछ-न-कुछ दोष थे। आगे बढ़ गई तो दैत्यैन्द्र बलि ने दिव्य रूप से विराजमान लक्ष्मीजी के रूप को देखा, लक्ष्मीने विचार किया दैत्यों के राजा हैं पूर्ण ऐश्वर्य, पराक्रम, पुरुषार्थ हैं कुलीन भी हैं किन्तु आयु क्षीण है।

आगे उन्होंने देखा सनक, सनन्दन, सनतकुमार, सनातन, नारद तथा अन्य भी बहुत से ऊर्ध्वरेता महात्मा विराजमान है। पर वे सबके सब विषयासक्ति से रहित हैं, सदाचारी हैं, क्रोध नहीं करते। स्त्रियाँ तो सरस पुरुषों से सन्तुष्ट होती हैं। उन्हें तो वही अत्यन्त प्रिय होता है जो उनसे हँसे, बोले, मीठी-मीठी प्रेम की बातें करें। जो सदा ध्यान धारणा में ही निमग्न रहे, ऐसे पति को लेकर स्त्री क्यों अपने भाग्य को विपत्ति में डालेगी। क्यों ऐसे नीरस समाधिनिष्ठ को स्वेच्छा से वरण करेगी। आगे मार्कण्डेय मुनि मिले। मार्कण्डेय मुनि कल्पजीवी है, लोमश ऋषि की आयु की थाह ही नहीं। किन्तु ऐसे दीर्घ जीवन से क्या लाभ? इन बूढ़े लोगों में स्त्रियों को प्रसन्न करने की शक्ति नहीं, इनमें शील सरल और सानुराग नहीं। स्त्रियों का चित्त चंचल होता है, उन्हें गुम्भ-सुम्भ पाषाण के पुतले के समान बिना हँसने-खेलनेवाला पुरुष प्रिय नहीं। दीर्घजीवी जीवों के साथ निस्तार नहीं हो सका यह सोचकर वे आगे बढ़ी। आगे उन्होंने देखा दत्तात्रेय, भगवान भोलेनाथ तथा अनेक योगेश्वर विराजमान हैं। उनका रहन-सहन विचित्र है। कोई श्मशान में रहते हैं, कोई मुण्डमाला पहिनते हैं, कोई कुत्तों को साथ लिये घूमते हैं, कोई भूतों के साथ नाचते हैं, कोई खप्पर में खाते हैं, कोई भांग, सुरा को चढ़ाते है, कोई चिता की भस्म लगाते हैं, सदा अशुचि वस्तुओं से अपना शरीर सुशोभित करते है। स्त्री को तो पवित्रता शुचिता तथा स्वच्छता चाहिये। जिसमें तप भी हो, तेज भी हो, ओज भी हो, ज्ञान भी हो, वैराग्य भी हो। जो महत्वशाली भी हो, जितेन्द्रिय भी हो, अजर भी हो, अमर भी हो, बली भी हो, योगी भी हो, सुन्दर भी हो, सरस भी हो, हँसमुख भी हो, मधुरभाषी, विश्वविजयी, पवित्र हो और अलंकार प्रिय हो। सारांश यह कि सर्वगुण सम्पन्न हो जो सदा सुन्दर बना रहे।

सब सद्गुन सम्पन्न करै अन्वेषन निजवर। तज ओज तप युक्त होहि सुरवर अजरामर।।
लखि सबके गुन दोष फिरै पति हित गजगामिनि। नहिँ निरखे निरदोष चकित ह्वै चितवति भामिनि।।
आभा अतसी कुसुम सम, निरखे नयनानन्द हरि। गुणसागर निरवद्य लखि, ठिठकी नीचे नयन करि।।

किन्हीं में धर्माचरण तो था; किन्तु प्राणियों के प्रति सौहार्द्र न था। किसी में त्याग था, किन्तु सिर्फ त्याग ही मुक्ति का कारण नहीं बनता। किसी-किसी में पराक्रम तो था, किन्तु वे भी काल के गाल में समा जानेवाले थे। कोई मार्कण्डेय आदि

ऋषि चिरायु तो थे, किन्तु उनकी आयु का ही पता न था अत: लक्ष्मी जी हाथ में जयमाल लिये आगे बढ़ीं। उनकी दृष्टि भगवान शंकर पर पड़ी। उन्हें देखकर उन्होंने सोचा- इनमें सब कुछ है। किन्तु ये अमंगलवेषधारी हैं। अमंगलवेश धारण करनेवाले के पास न तो लक्ष्मी जी रहती हैं और न कोई तरुणी उन्हें अपने पति के रूप में ही वरण करना पसन्द करती है अत: वे उनसे भी आगे बढ़ीं। लक्ष्मी ने ब्रह्मा को देखा और सोचा- ये तो सृष्टि के सृजनहार हैं। यह तो बूढ़े है और रजोगुणी हैं, इनके सामने मैं तो जवान हूँ। लक्ष्मीजी इनको अस्वीकार कर आगे बढ़ी। लक्ष्मी-स्वयंवर की बेला में भगवान विष्णु अपना पीताम्बर ओढ़ कर लेट गये थे। वे लक्ष्मी जी के लिये उत्सुक न थे। उन पर लक्ष्मीजी की दृष्टि पड़ी। उन्होंने उनके गले में जय-माल डाल दी- सभी लोग प्रसन्नता के प्रवाह में बोल उठे लक्ष्मी नारायण भगवान की जय। लक्ष्मी बोली- नारायण में संसारी वस्तु की कोई इच्छा व किसी का मोह नहीं है। इनकी कृपा व दया कुछ जप व स्मरण के अधीन नहीं है। उद्धव भक्त जो जन्मभर इनकी सेवा में रहा उसको तो इन्होंने आज्ञा दी कि तुम बदरिकाश्रम में जाकर तप करो तब तुम्हारी मुक्ति होगी और वह जरा, व्याध जिसने इनके पैर में बाण मारा था। उसको विमान पर बैठाकर उसी समय वैकुण्ठ में भेज दिया। यह सब दोष होने पर भी इनसे उत्तम त्रैलोक्य में दूसरा कोई नहीं है। इसप्रकार लक्ष्मीने सबका परित्याग कर सर्वगुण सम्पन्न भगवान विष्णुका वरण किया। लक्ष्मीजी की दृष्टि विष्णु के आचरण पर थी। आचरण से व्यक्ति महान बनता है, कर्म प्रधान बनता है। लक्ष्मीने विचार किया कि विष्णु है भी सुन्दर और पद्म को चाहनेवाले और मैं पद्मा हूँ। लक्ष्मी उन्हीं के पास जाती हैं जो निष्काम होते हैं इसलिए लक्ष्मी के पीछे दौड़ना नहीं चाहिए। लक्ष्मी के पति को पकड़ लिया तो लक्ष्मी स्वयं उसके पीछे-पीछे आ जायेगी। जिनका हृदय कोमल और सरल है उन्हीं के पास लक्ष्मी जाती है। लक्ष्मी को अपनी पुत्री की तरह समझे, पत्नी की तरह नहीं। लक्ष्मी जब बढ़े तो किसी सत्कार्य में लगाओ।

तुम मुझे देखो न देखो हम तुम्हें देखा करें। यों ही निशदिन श्याम सुन्दर हम तुम्हें देखा करें।।

जो लक्ष्मी जी के पीछे भागता है, उसे वे नहीं मिलतीं और जो उनसे निरपेक्ष रहता है, उसका वे अनुगमन करती हैं। भगवान समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न थे। सौन्दर्य के सागर नित्य सद्गुण सम्पन्न थे। उनका तप, क्रोध से रहित था बदरीवन में जब इन्द्र के कहने से काम, वसन्त, मलयानिल तथा अप्सरायें उनके तप को भंग करने सब मिलकर उनके आश्रम पर आये तो उन्होंने क्रोध नहीं किया। हँसकर मुस्कराकर उनका स्वागत किया। वे तपस्या, तपस्या के निमित्त करते हैं। क्रोध करके तप का नाश करना वे जानते नहीं। वे ज्ञान के साकार स्वरूप हैं प्राणी मात्र से नि:सङ्ग हैं। सब कुछ करते हुए भी सबसे पृथक हैं। काम को उन्होंने विजित ही नहीं किया अपना पुत्र बना लिया। जो सगा पुत्र बन गया, उसे तो जीतने का प्रश्न ही नहीं उठता। उन्हें किसी की अपेक्षा नहीं वे किसी का आश्रय नहीं चाहते। विश्व उनके आश्रय में पल रहा है। प्राणिमात्र के एकमात्र आश्रय वे अखिलेश अच्युत ही हैं। वे सर्वभूतों के सच्चे सनातन सुहृद हैं। सबको सगे सम्बन्धी से भी बढ़कर स्नेह करते हैं। मुक्ति उनकी दासी हैं, काल के भी काल हैं। वे इतने सरस हैं कि सरसता उन्हीं से शिक्षा पाती है, उन्हीं की चेली बनकर संसार में श्रृङ्गार रस का प्रचार करती है। वे मंगल स्वरूप हैं। सत्त्व, रज तथा तम इन गुणों से सर्वथा निर्लिप्त होते हुए भी दिव्य गुणों के आकार हैं। अणिमादि सम्पूर्ण सिद्धियाँ तथा धर्म, ज्ञान, वैराग्य आदि सम्पूर्ण दिव्य सद्गुण उनके किंकर हैं। ऐसे सर्व गुणाश्रम मुकुन्द को निहारकर रमा वहीं ठिठक गयी।

वास्तव में लक्ष्मीजी के एकमात्र आश्रय भगवान ही हैं। इसी से उन्होंने उनका वरण किया। भगवान के पास में खड़ी लक्ष्मी अपने चिरकालिक निवास-स्थान श्रीहरि के वक्ष:स्थल को इस प्रकार देख रही थीं, मानो वे प्रार्थना कर रही हों कि

प्रभो, मुझे मेरा पुराना वास-स्थान प्रदान कर दीजिये। भगवान ने कृपा कर श्रीलक्ष्मी जी को अपने वक्ष:स्थल पर ही सर्वदा निवास करने का स्थान दिया।

हरिको वक्ष विशाल निरखि श्री अति हरषाई। रमाभाव पहिचान विष्णु उर-माल बनाई॥
हरि हिय आसन मिल्यो जगन्माता पद पायो। लखे जीव श्रीहीन कृपा करि तेज बढ़ायो॥
विधि, हर, सुर, मुनि, ऋषिसबहिँ, मंत्रपढ़हिँ बिनतीकरहिँ। नाचें मिलि सुरसुन्दरी, विविध वाद्य बिधिवत बजहिँ॥

लक्ष्मीजी प्रसन्न हो उठीं। उन्होंने अपनी कृपाभरी चितवन से निहारकर सबको निहाल कर दिया। लक्ष्मी देवी के पुन: प्राकट्य और श्री मुकुन्द के वरण करने से पुन: श्री सम्पन्न हो गये। उस समय गन्धर्व शंख, मृदङ्ग, पणव, वीणा आदि बाजे बजाकर जय रमारमण गोविन्द आदि जय घोष करने लगे। अप्सरायें नाचने लगीं, ऋषि, मुनि स्तुति करने लगे। सर्वत्र आनन्द छा गया, सुख की सरिता-सी प्रवाहित होने लगी। आनन्द का समुद्र-सा उमड़ने लगा। जय-जयकारों के महान् शब्द से तीनों लोक भर गये। ब्रह्माण्ड के बाहर भी ध्वनि छा गयी। ब्रह्मा, महादेव, अंगिरा आदि महर्षि पुष्पांजलियों को समर्पित करते हुए वेद के मन्त्रों से लक्ष्मी सहित नारायण की स्तुति करने लगे।

निरगुन सबगुन युक्त सरस सुन्दर सुखसागर। सरल सलौंने श्याम सनातन शोभा आकर॥
मम अभीष्ट वर जिही विष्णु निश्चय करिजाने। रमा मुदित अति भई पुरातन पति पहिचाने॥
नव कमलनिकी माल पै, गूँजें बहु मधुकर निकर। नर कमलनितें कण्ठमें, डारि वरे श्री अजित बर॥

शुकदेव जी ने कहा- परीक्षित्, ऐसा विचार कर लक्ष्मीजी ने नित्य निर्दोष, सद्गुणों से सम्पन्न, समस्त प्राकृत गुणों से अतीत सम्पूर्ण दिव्य गुणों से अलंकृत अपने योग्य वर श्री मुकुन्द भगवान को वरण कर लिया। यद्यपि श्रीहरि उनकी ओर से निरपेक्ष से दिखाई दिये, फिर भी सर्वगुण समझकर स्वीकार लिया। इधर जब लक्ष्मीजी ने दैत्यों एवं दानवों की उपेक्षा कर दी, तब वे लोग निर्बल, उद्योगरहित, निर्लज्ज और लोभी हो गये।

पुनि प्रकटी प्रभुप्रिया रमा निज शोभा बिकसित। वधुवत् शुभ्र प्रकाश करत जगकूँ अनुरंजित॥
यौवन रूप सुवर्ण भाव गुण महिमा अनुपम। सुर, नर, किन्नर, असुर भये लखि सबई जड़ सम॥
करै भेंट बहुमूल्य मिलि, रमा-प्रेममहँ सब पगे। लैवेकी इच्छा भई, सेवा सब करिबे लगे॥

शुकदेव बोले- राजन्, इसके अनन्तर भगवत् परायणा साक्षात् श्री लक्ष्मी देवी क्षीरसागर से उत्पन्न हुई वे अपनी कान्ति से दसों दिशाओं को उसी प्रकार अनुरंजित कर रही थीं, जिस प्रकार सुदामा गिरि पर दमकने वाली दामिनी दिशाओं को प्रकाशित करती है।

संसार में ऐसा कौन है, जो ऐश्वर्य, तेज, यश, शोभा ज्ञान और वैराग्य रूप सम्पत्ति को न चाहता हो। श्री के सभी इच्छुक हैं। श्रीहीन व्यक्ति संसार में कुछ कर नहीं सकता। श्री के अनेक रूप हैं ब्राह्मणों के यहाँ वह ब्राह्मीश्री के रूप में रहती है। क्षत्रियों के यहाँ वह राज्यश्री के रूप में निवास करती है। वैश्यों के यहाँ व्यापारादि में वह लक्ष्मी रूप से विराजती है। शूद्रों के यहाँ वह सेवा रूप से दर्शन देती है। कहीं कान्ति, कहीं शोभा, कहीं समृद्धि, कहीं उन्नति आदि अनेकों रूपों में उसके दर्शन होते हैं। जो भगवान को छोड़कर केवल लक्ष्मी को ही चाहते हैं उनकी ही आराधना करते हैं, वहाँ वे जाती तो हैं, किन्तु बेमन से जाती है। पानेवाले को शान्ति न होकर उनसे अशान्ति ही होती है। वहाँ वे अपने प्रियतम का तिरस्कार देखकर अधिक टिकती भी नहीं। अत: जो अकेली लक्ष्मी पर मन चलावेंगे, उनकी ही अनुनय-विनय करेंगे लक्ष्मी उनकी ओर देख तो देंगी किन्तु उनका वरण

न करेंगी। वे स्वर्गीय सुरवधुओं की भाँति तो हैं नहीं, वे तो श्री हरि की अनन्या हैं। भगवान को छोड़कर वे कहीं अन्यत्र रह नहीं सकती। यद्यपि वे एक रूप से चंचला बनकर संसार में घूमती रहती हैं, किन्तु एक रूप से श्रीनिवास के चरणों में नित्य निवास करती हैं। जो उनके पति से प्यार करते हैं, उनके उन्हें अधीन रहना पड़ता है।

लक्ष्मीजी की एक बड़ी बहन है जिसका नाम दरिद्रादेवी है। लक्ष्मीजी को सब चाहते थे लेकिन दरिद्रादेवी को कोई नहीं चाहता। लक्ष्मीजी ने भगवान से प्रार्थना की दरिद्रादेवी मेरी बड़ी बहन है इसका किसी योग्य पुरुष के साथ विवाह कर दे पर इसे कोई भी नहीं चाहता। भगवान बोले- मेरी सृष्टि में उद्दालक मुनि है जो खूब कथा-कीर्तन उत्सव पूजा पाठ भजन करते हैं वो हैं बिल्कुल फक्कड़। भगवान नारायण उद्दालक मुनि के पास पहुँचे और बोले आप ब्याह कर लो। उद्दालक मुनि बोले आप जिसे चाहे उसके साथ करवा दो। दरिद्रा देवी का विवाह उद्दालक मुनि के साथ हुआ। दरिद्रा बोले यह तो मेरे लायक नहीं है। मैं तो वहां राजी रहती हूँ जहां शराब, जुआ, चोरी, झूठ, कपट का व्यवहार, गाली-गलौज, लठ्ठम-लठ्ठा हो। इस घर में आप पूजा-पाठ, जप, तप, हवन यह सब बन्द कराओ। उद्दालक मुनिने ऐसा नहीं किया। दरिद्रादेवी वहां से उद्दालक मुनि का घर छोड़कर निकल गयी। भगवान ने उसे पीपल का पेड़ आश्रय रहने के लिये दिया। एक बार लक्ष्मीजी एवं दरिद्रादेवी दोनों ने नारदजीसे पूछा नारद, हम दोनों बहनों में से कौन अच्छी है? नारदने कहा- तुम दोनों वृंदावन विहारी के मंदिर तक जाकर आओ तब मालूम पड़ेगा। जब वह लौटकर आयी तो बोले दोनों भी अच्छी है। लक्ष्मीजी बोली- अब बताओ दोनोंमें क्या फर्क है? नारद बोले- फरक तो जमीन-आसमान का है। दरिद्रा जाते हुए अच्छी लगती है और लक्ष्मी आते हुए अच्छी लगती है। बस यही फर्क है। एक अन्य कथा में आता है। एक सेठजी को सपना आया उस सपने में उन्होंने एक देवीका दर्शन किया। सेठजी बोले- देवी आप कौन है। उस देवी ने कहा- मैं तेरे घर की लक्ष्मी हूँ। मेरा तेरे घरसे जानेका समय आ गया। कल मैं तेरे घर से चली जाऊँगी। परिवार के लोगों ने लक्ष्मी से कारखाना माँगा, किसीने मकान माँगा, किसीने गाड़ियां, किसीने हीरा माँग लिया पर सबसे छोटी बहूने लक्ष्मीसे माँगा कि हमारे परिवार में सुमति बनी रहें सुमति का वरदान दीजिये। यह माँगने पर परिवार के सब लोग बौखला गये और बोलने लगे सुमति का क्या करेंगे सुमति खायेंगे, पीयेंगे कि व्यापार करेंगे। छोटी बहू बोली- **जहाँ सुमति तहँ सम्पत्ति नाना, जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना।।**

जहाँ सुमति होती है वहाँ सब प्रकारकी सम्पत्ति होती है। लक्ष्मी जानेके लिये आयी और पूछा- सेठजी क्या निर्णय किया। सेठजी बोले- निर्णय तो यही है कि आप यही वरदान देकर जाओ कि हमारे परिवार में सुमति बनी रहे। लक्ष्मी बोली- छोटी बहूने तुम्हारे पूरे परिवार को बचा लिया। तुम्हारे परिवार में सुमति बनी रहेगी तो लक्ष्मी भी वहीं रहेगी घर छोड़कर नहीं जायेगी।

लक्ष्मी-स्वयंवर हो जाने के बाद पुन: सोत्साह मन्थन प्रारम्भ हुआ। अब की बार सागर से वारुणी (मदिरा) देवी प्रकट हुईं। भगवान के कहने पर उन्हें दैत्यों ने ग्रहण किया। लक्ष्मी के पीछे वारुणी चलती है अत: श्रीमानों को सावधान रहना चाहिये। मदिरा पीकर उन्मत्त दैत्यों के साथ लक्ष्मी के कृपा-कटाक्ष से सबल बने देवों नें पुन: बड़े जोर से मन्थन प्रारम्भ किया, जिससे एक अद्भुत पुरुष निकले, उनके नेत्र कमल के समान थे, शरीर का वर्ण श्याम था गले में वनमाला लटक रही थी, शरीर पर पीताम्बर लहरा रहा था, वे सर्वाभरण-भूषित थे।

तब पुनि मथ्यो समुद्र बारुनी कन्या निकसी। हरि असुरनिकूँ दई पाइ तिनिकूँ सो हरसी।।
घमर घमर सब मथैं भये पुनि पुरुष पुरातन। अमृत कलशकूँ लिये विष्णुके अंश सनातन।।

शुकदेव बोले- राजन्, समुद्र से करों में कंकणादि से विभूषित साक्षात् विष्णु भगवान के अंश से अवतीर्ण हाथ में अमृत का कलश लिये एक पुरुष प्रकट हुए। वे आयुर्वेद के प्रवर्तक हुए। यज्ञ भाग के अधिकारी हुए, उनका धन्वन्तरि ऐसा नाम संसार में प्रसिद्ध हुआ।

समुद्र-मन्थन से निकला अमृत अक्षय अमृत नहीं है। अक्षय अमृत तो भगवान् ने शुकदेवजी जैसे सन्तों को दिया है, जिससे उन्होंने अमृतत्त्व प्राप्त किया है, इनके मुख से जब वह कथा रूप से निकलता है तो उसका समाहित चित्त होकर जो पान करता है वह छक जाता है। अक्षय अमृत वास्तविक अमृतत्त्व प्राप्त कर लेना है।

धन्वंतरि सोमवंशी राजा दीर्घतपा के पुत्र, काशिराज के पौत्र थे। धन्वंतरी के शरीर और इंद्रिया जरा (वृद्धावस्था) आदि विकारों से रहित थे। वे अपने समस्त जन्मों में संपूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता थे। पूर्वजन्म में भगवान नारायण ने उन्हें वरदान दिया था। काशिराज के वंश में जन्म लेकर तुम संपूर्ण आयुर्वेद को आठ भागों में विभक्त करोगे और यज्ञ के भोक्ता होंगे। उनके हाथों में अमृत का कलश था। यह और कोई नहीं, भगवान के अंशावतार आयुर्वेद विद्या के प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि थे।

आर्य शास्त्र में भाव को प्रधान माना गया है, जो आजीविका निकृष्ट हैं, उससे निर्वाह करनेवाले निकृष्ट माने गये हैं, यद्यपि शव हस्त से दान लेनेवाले महापात्र आचार्य ब्राह्मण हैं, किन्तु उनकी आजीविका अधम होने से वे अस्पर्श माने गये हैं। इसी प्रकार दुखी लोगों के दुख को दूर करना, रोग से व्याकुल जीवों को औषधि द्वारा निरोग करना यह महान् पुण्य का कार्य है किन्तु उससे धन लेकर आजीविका चलाना यह निकृष्ट कार्य है। अधम वृत्ति है। इसीलिये वैद्य विद्या को वेद वादियों ने अधमाधम कहा है। वैद्यों को यज्ञ में भाग नहीं मिलता था भगवान तो भक्तवत्सल हैं अत: अब उन्होंने वैद्यावतार ही धारण किया, जिससे अमृत देखकर देवता स्वार्थवश वैद्यों को भी यज्ञ भाग देने लगे। संसार में चमत्कार को नमस्कार होती है। जिस पर कुछ है, उससे सम्बन्ध रखने में हम अपना गौरव समझते हैं, जिस पर कुछ है ही नहीं उससे बातें करना व्यर्थ समझते हैं।

दैत्यों ने उनके हाथों में अमृत का कलश देखते ही झपट कर उसे छीन लिया। वे सागर से निकले सारे रत्नों को हड़प लेना चाहते थे।

धन्वंतरि- आयुर्वेद के प्रवर्तक, आरोग्य-देवता। देव और असुरों ने मिलकर अमृत-प्राप्ति के लिए जब क्षीरसागर का मंथन किया, तब उसमें वारुणी के पश्चात एक अत्यंत अलौकिक पुरुष प्रकट हुआ। उसकी भुजाएं लंबी एवं मोटी थीं। उसका गला शंख के समान उतार-चढ़ाव वाला था और आंखों में लालिमा थी। शरीर का रंग बड़ा सुंदर सांवला-सा था। गले में माला, अंग-अंग सब प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित, शरीर पर पीतांबर, कानों में चमकीले मणियों के कुंडल, चौड़ी छाती, तरुण अवस्था, सिंह के समान पराक्रम, अनुपम सौंदर्य, लहराते हुए चिकने और घुंघराले बाल। उस पुरुष की अनुपम छवि मन को मोहती थी। उसके हाथों में कंगन और अमृत से भरा हुआ कलश था। वह साक्षात विष्णु भगवान के अंशांश अवतार थे। वे ही आयुर्वेद के प्रवर्तक, यज्ञभोक्ता धन्वंतरि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

शुकदेव बोले- राजन्, जब असुर अमृत कलश को छीन ले गये। तो फिर उन अमृत लोलुप दैत्यों में ही परस्पर कलह होने लगी। कोई कहता मैं पहिले पीऊँगा? दूसरा कहता? नहीं मैं पीऊँगा। इस प्रकार से उनमें कलह होने लगी।

देवनिके मुख फक्क परे अतिशय घबराये। कहि कहि सुन्दर वचन अजित सब विधि समझाये।।
ठगिके छीनूँ अमृत अन्तमहँ सींग दिखाऊँ। चिन्ता कछु मति करो पेट भर तुम्हें पिलाऊँ।।
सुरनि सान्त्वना दई पुनि, अन्तरहित श्रीहरि भये। मैं पीऊँ तू पिये कस, असुर अमृत हित लड़ि गये।।

अमृत-कलश के हाथ से निकल जाने पर देवता उदास होकर मुँह लटकाये भगवान की शरण में पहुँचे। भगवान ने देवों से कहा- देवताओं, घबड़ाओ नहीं। मैं अपनी माया के द्वारा दैत्यों-दानवों में फूट डालकर तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध कर देता हूँ।

भगवान ने अपनी माया को प्रेरित किया। फलत: दैत्यों में अमृत के लिये छीना-झपटी मच गई। उनमें हर कोई पहले और पूरा अमृत पी जाना चाहता था। उनमें जो दुर्बल थे वे देवताओं को भी अमृत देने की वकालत करने लगे। उनका कहना था कि देवताओं ने भी हम लोगों के बराबर श्रम किया है अत: उनका भी हिस्सा मिलना चाहिये।

४) मोहिनी अवतार -

धरि मूरति प्रभु मोहिनी, बाट्यौ अमृत लेय। असुरन को झाँकी दई, देवन अमृत देय॥

इसी समय भगवान अत्यन्त अद्भुत, अवर्णनीय मोहिनी का रूप धारण कर प्रकट हो गये। मोहिनी के एक-एक अंग की आभा-प्रभा का वर्णन शेष और शारदा के लिये भी संभव न था। मोहिनी का सौन्दर्य ब्रह्माण्ड का अमूल्य रत्न था। उसके चरणों के नूपुर मधुर ध्वनि से रुनझुन-रुनझुन कर रहे थे। अपनी लाजभरी-मुस्कान, नाचती हुईं तिरछी भौंहों और विलास भरी चितवन से मोहिनी ने दैत्य-सेनापतियों के चित्त में कामोद्दीपन का महासागर भर दिया।

बड़े-बड़े देवता भी सौन्दर्य में फंस गये। सौन्दर्य केवल मन की कल्पना मात्र ही है। सौन्दर्य केवल नेत्र में हैं। जो व्यक्ति सिर्फ शरीर के चमड़े को ही देखता हैं, बहिर्मुख का ही विचार करता है, वहीं से पाप का प्रारम्भ होता है। यह कितना सुंदर हैं, यह नहीं सोचना चाहिए, बल्कि इसप्रकार सृजन करनेवाला कितना सुंदर है, इस बात पर विचार करना चाहिए। संसार की मोहिनी का मोह, सौन्दर्य का मोह, विषयों का मोह, यह मोह जब तक नहीं छोड़ेंगे तब तक परमात्मा के समीप नहीं पहुंच सकते। जैसे-जैसे परमात्मा से प्रेम बढ़ेगा, वैसे-वैसे विषयों से घृणा होने लगेगी। यह स्वरूप तो आंख से आता है। यदि आंखसे काम प्रवेश करता है तो आंखों में काम को नहीं, राम को रखो तो विषयों का विष भी नष्ट होगा और मोहिनी रूपी मोह भी नष्ट होगा। जिस घर में, जिस समाज में, छीना-झपटी होती है, परस्पर कलह होता है, वहाँ किसी को भी अमृत नहीं मिलता। असुर अमृत से वंचित रह गये।

असुरनि मोहन हेतु मोहिनी बने मुरारी। पँचरंग चूनरि ओढ़ि नासिकामहँ नथ धारी॥
लहँगा धारीदार हरी-सी पहिनी चोली। करि सोलह सिगार नारि सम बोलैं बोली॥
नील कमल सम श्याम रँग, अँग अँगमहँ यौवन उठनि। हंसगमनि अनुपम हँसनि, लीलायुत चितवनि चलनि॥

नारायण ने अपना मोहिनी रूप बनाया। सारे दैत्य उन्हीं की ओर ताकने लग गये। एक बड़ी सुन्दर स्त्री दैत्य की ओर जा रही है कैसा अनुपम सौन्दर्य। कैसा लावण्य।

एक मूर्ति में सिमट गयीं किस भाँति सिद्धियाँ सारी? कब था ज्ञात मुझे, इतनी सुन्दर होती है नारी?
जग भर की माधुरी अरुण अधरों में भरी हुई सी। आँखों में वारुणी-रंग निद्रा कुछ भरी हुई सी॥
नहीं मोहिनी नारि नहीं आभा है निखिल भुवन की। रूप नहीं निष्कलुष कल्पना है सृष्टा के मन की॥

शुकदेव बोले- राजन्, उसी समय सभी उपायों के जाननेवाले विष्णु भगवान ने एक परम अद्भुत अनिर्वचनीय स्त्री का रूप धारण किया। वह नील कमल के समान सर्वाङ्ग सुन्दर स्वरूप था। सभी इन्द्रियाँ समान थीं और तत् तत् स्थानों के आभरण भी समान थे। सुन्दर कपोल और उन्नत नासिका से युक्त आनन था।

सुन्दरता साकार ह्वै, शोभा भई सजीव मनु। असुर मृगनिकूँ फाँसिबे, व्याधिनि बिहँसति चली जनु॥

शुकदेव बोले- राजन्, असुर उस मोहिनी रूप पर मोहित हो गये और उसे पूछा- कमलनयनी, तुम कौन हो? सुन्दरी, कहाँ से आ रही हो? क्या करना चाहती हो? तुम्हें देखते ही हमारा मन तुम पर आ गया। दैत्य वो है जो राह में जाती हुई किसी भी स्त्री में जिसका मन फँस जाय। जो पर स्त्री का चिन्तन करे वह राक्षस है।

असुर बोले- तुम्हारे शरीर की मृदुता इस बात की साक्षी है कि आज तक उसे किसी ने छुआ तक नहीं है। निश्चित ही सहृदय विधाता ने तुम्हें हमारी इन्द्रियों और मन को तृप्त करने के लिये हमारे पास भेजा है। हे मनोहर कमरवाली देवी, हम सब कश्यप जी की सन्तान हैं। हम लोगों का एक वस्तु पर विवाद चल रहा है। कृपा कर तुम इसका ठीक-ठीक बँटवारा कर दो। इसकी प्राप्ति में हम सब ने समान श्रम किया है। दैत्यों ने सोचा- अमृत की मालकिन बना देने पर यह सुन्दरी हम पर प्रसन्न हो जायेगी, गले से लिपट जायेगी फिर तो मजा ही मजा है। अभी तक अमृत के लिये छीना-झपटी चल रही थी। अब मोहिनी के सामने पहुँचकर निवेदन करने में धक्का-मुक्की होने लगी। असुर बोलने लगे- हे कमलनयनी तुम कौन हो, कहाँ से आ रही हो, तुम हमारा झगड़ा मिटा दो। तुम इस कलश को लेकर अपने हाथों से हमें अमृत पिला दो। तुम्हारे हाथ से अमृत पीकर हमें बड़ा आनन्द आयेगा। असुरों की इस प्रकार प्रार्थना सुनकर लीला से मोहिनीरूप धारण करनेवाले भगवान ने हँसकर तिरछी चितवन की कटारी उन पर चलाते हुए कहा।

आप लोग पवित्र कश्यप के पुत्र हैं और मैं हूँ कुलटा। कुलटा जो प्रत्येक कुल में प्रत्येक पुरुष के साथ घूमे। आप लोग मुझपर न्याय का भार क्यों डाल रहे हैं? कहाँ तो पुंश्चली स्त्री और कहाँ आपलोग कश्यप ऋषिके बेटे। विवेकी पुरुष स्वेच्छाचारिणी स्त्रियों का कभी विश्वास नहीं करते। कुत्ते और व्यभिचारिणी स्त्रियों की मित्रता कभी स्थायी नहीं होती। वे दोनों ही सदा नये-नये शिकार ढूँढ़ा करते हैं। किसी की सती साध्वी पतिव्रता स्त्री हो, किसी की कुलीन कन्या हो, वीर प्रसविनी माता हो, इनका विश्वास किया जा सकता है। जो पण्यस्त्री है, वाराङ्गना है, चंचल चित्त की है, व्यभिचारिणी है, उसका अनुसरण करना तो जान-बूझकर अग्नि में प्रवेश करना है। पतंगे की भाँति उसको रूप की ज्योति में जलकर मर जाना है।

आये सब मिलि असुर कहें को तुम का नामा। को पति काकी नारि फिरहु अस कस बन श्यामा।।
अमृत हेतु हम लरहिं हमारी रार मिटाओ। बटवारों करि देउ यथामति अमृत पियाओ।।
सुनि हँसि बोली मोहिनी, कश्यपसुत सिर्री भये। मम वेश्याके रूपपै, क्यों मदमाते ह्वै गये।।

शुकदेवजी कहते हैं- परीक्षित् जी, मोहिनी के हाव-भाव और मदहोश बनानेवाली परिहासभरी वाणी से दैत्यों के मन में काम का प्रवाह और विश्वास- दोनों ही और बढ़ गये। अति मधुर वाणी में दैत्य लोक फँस गये। **अति भक्ति, अति मीठी वाणी चोरे लक्षण।** उन लोगों ने सोचा कि अब तो यह हम लोगों को गले से चिपका ही लेगी, लिपटा ही लेगी अत: हँसकर अमृत का कलश मोहिनी के हाथ में पकड़ा दिया। अमृतकलश हाथ में आ जाने पर जरा और इठलाकर मोहिनी ने कहा- देखो दैत्य तुम लोगों को मेरी व्यवस्था मंजूर है? मैं जिसको चाहे अमृत पिला दूँगी लेकिन मेरे हाथ में अमृत का कलश आनेके बाद आपस में तू-तू-मैं का झगड़ा नहीं होना चाहिए। अच्छी बात है। जब तुम लोग चाहते हो तो मैं अमृत बाँट दूँगी किन्तु मेरी एक शर्त है- मैं उचित या अनुचित जो कुछ करूँगी वह सब तुम लोगों को सहन करना पड़ेगा। यदि मेरी यह बात स्वीकार्य हो तो मैं अमृत बाँटूगी अन्यथा ले जाओ अपना यह कलश।

बालाकी सुनि बात बढ़्यौ विश्वास सबनिकूँ। अमृत कलशकूँ लाइ तुरत दे दिओ तिनकूँ।।
तिरछी चितवनि निरखि बिहँसि बोली बर बानी। कहियो फिरि मति कछू, करौंगी हौं मनमानी।।

सब बोले- परमेश्वरी, हमकूँ सब स्वीकार है। तुम जो चाहैं सो करो, मार तुम्हारी प्यार है।।

असुरों ने कहा- नहीं, नहीं। तुम्हारी सारी बातें हमे स्वीकार्य हैं फिर तो मोहिनी से आदेश लेकर देवों और असुरों ने स्नान किया, तर्पण और देवार्चन किया तथा नवीन वस्त्राभूषण धारण कर यज्ञशाला में कुशासन पर पूर्वाभिमुख बैठ गये। दोनों की पंक्तियाँ अलग-अलग थीं। इसके बाद मोहिनी ने हाथ में अमृत का कलश लेकर सभा मण्डप में प्रवेश किया। उसकी आँखों में मादकता का सागर लहरा रहा था।

जिस समय मोहिनी के अंग प्रदर्शन ने असुरों के हृदय में तूफान मचा दिया था, उस समय मुस्करा कर उसने दैत्यों से कहा- ऊपर का अमृत पतला है अत: यदि आप लोगों की राय हो तो इसे देवताओं को पिला दूँ और फिर नीचे का गाढ़ा अमृत आप लोगों में बाँटू? आखिर यह कलश तो आप लोगों ने ही मुझे दिया है। मोहिनी की रहस्यभरी बातों के फन्दे में फँस गये दैत्य लोग। उन लोगों ने एक स्वर से कहा- बहुत ठीक है देवीजी। आप बढ़ियाँ सोच रही हैं।

भगवान ने सोचा कि दैत्यों को अमृत पिलाना साँप को दूध पिलाने जैसा है। अमर होकर ये संसार को अधिक संत्रस्त करेंगे इसलिये उन्होंने दैत्यों को अमृत न पिलाने का निर्णय किया। वे दैत्यों से मुस्कराते थे, मीठी-मीठी बातें करते थे, आँखों की तिरछी चितवन से उन्हें मदहोश बनाते और अंग के प्रदर्शन से विह्वल करते थे, किन्तु अमृत पिलाते जाते थे देवताओं को। अमृत-पान से जरा-मरण का निवारण हो जाता है। स्नेह में सन्देह को स्थान नहीं।

असुरों को अमृत पिलाना मानों संसार का अनिष्ट करना था। पुरुषार्थ भी वही सफल होता है, जो भगवान का भरोसा रखकर किया जाता है। जो श्रीहरि के चरण कमलों का आश्रय ग्रहण करते हैं, उनका पुरुषार्थ तो सफल होता ही है, किन्तु जो अभिमान में भरकर अपने को ही कर्ता, धर्ता, हर्ता, विधाता समझते हैं उनके पुरुषार्थ का फल तो निकलता है, किन्तु वे उसका उपयोग नहीं कर सकते। फल भोगनेवाला दूसरा ही होता है।

जीव जब जिस पर मोहित हो जाता है, तब फिर उसे सर्वस्व सौंप देता है। काम का वेग ऐसा प्रबल होता है, कि फिर उसमें विवेक नहीं रहता। मनुष्य जिस पर लट्टू हो जाता है, फिर उसकी सभी बातें अच्छी लगती हैं। उसकी प्रत्येक चेष्टा सुखकर प्रतीत होती है, उसके दोष भी गुण के समान दिखायी देते हैं। जब वह मद उतर जाता है, तब ज्ञान होता है। तब उसे अपनी भूल प्रतीत होती हैं।

असुर मोहिनीने ठगे, अमृत पिआयो सुरनिकूँ। समुझि सकै को जगतमहँ, तिरियनिके चरित्रकूँ।।

दैत्य लोग मोहिनी के द्वारा निर्धारित मर्यादा का पालन करने के लिये बैठे रहे। कुछ देर के बाद दैत्य घबड़ा उठे। उन्होंने सोचा इस बात में छलकपट प्रतीत हो रहा है। हमने इस नारी का विश्वास करके बड़ी भूल की है। ऐसा सोच कर दैत्यों में से एक दैत्य राहु देवों का रूप धारण कर उनकी पंक्ति में जा बैठा। वह चन्द्र और सूर्य के मध्य में बैठा था। अमृत बाँटने के क्रम में मोहिनी ने उसे भी अमृत पिला दिया। परन्तु तत्क्षण चन्द्रमा और सूर्य ने इशारा कर उसकी पोल खोल दी। भगवान ने अपने तीक्ष्ण धारवाले सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट डाला किन्तु मुख में अमृत जा चुका था अत: राहु मरा नहीं वह अमर हो गया। धड़ वहीं पृथ्वी पर गिर पड़ा। राहु को ब्रह्माजी ने ग्रह बना दिया। इसी वैर के कारण अमावस्या के दिन सूर्य पर पूर्णिमा के दिन चन्द्र पर आक्रमण करता है। इसीसे ग्रहण लगता है। राहु दैत्य का सिर राहु ग्रह बन गया और धड़ केतु बन गया। राहू दैत्य का सिर देवोंका ग्रह बन गया और धड़ केतू दैत्यो का ग्रह बन गया। स्त्रीविवाद के साथ, बालकों के साथ मैत्री, अकारण हँसना, दुर्जन की सेवा, गदहे की सवारी और गालीगलौज करना इन बातों से मनुष्य को नीचा देखना पड़ता है।

सुदर्शन चक्र के चलाते ही सारी की सारी पोल खुल गई। अब सभी को समझने में यह देर नहीं लगी कि अमृतपान करानेवाली मोहिनी साधारण स्त्री नहीं, साक्षात् भगवान विष्णु हैं। अब तक प्राय: अमृत बांटा जा चुका था। झींना झपटी में गरुड़जी अमृत कलश लेकर भागे, दैत्यों ने झपट्टा मारा, चार जगह अमृत छलक कर गिर गया। उन्हीं चार जगहों पर अमृत कुम्भ का पर्व लगता है। प्रयाग, हरिद्वार, नासिक, उज्जैन। अब तो भगवान ने झट-पट मोहिनी का वेश बदल डाला। उनका वही शंख-चक्र-गदा-पद्मरूपधारी चतुर्भुज स्वरूप प्रकट हो गया। देव और दैत्य आश्चर्य-चकित हो देखते ही रह गये। साक्षात् नारायण प्रकट हो गये। मोहिनी ने सारा अमृत देवों को पिला दिया और खाली घड़ा दैत्यों के सामने उलट दिया। दैत्यों ने चिल्लाना शुरू कर दिया- कपट, कपट विष्णु तुम साड़ी पहन कर आये। तुम्हें लाज भी नहीं आई?

राहु समुझि हरि कपट देव बनि रवि शशि ढिँगई। बैठ्यो पीयो अमृत जानि मार्‌यो प्रभु तबई।।
राहु केतु द्वै अमर भये ग्रह संग विराजैं। नवग्रह तबतें भये असुर सुरवत् बनि भ्राजैं।।

शुकदेव बोले- राजन्, जब सब देवता अमृत पी चुके, तब लोक भावन मोहिनी भगवान् समस्त दैत्याधिपतियों के देखते-ही-देखते स्त्री से पुरुष हो गये। उन्होंने अपना यथार्थ रूप धारण कर लिया।

देवों और दैत्यों ने एक ही काल और स्थान में एक ही वस्तु के लिये समान श्रम किया था। किन्तु भगवान के चरण का आश्रय लेने के कारण देवों को अमृत मिला और उनसे विमुख होने के कारण दैत्यों-दानवों को श्रम और अपमान मिला। वे अमृत से वंचित ही रह गये।

ठगिया है यह विष्णु समुझि पुनि दैत्य रिसाने। खिसियाये करि कोप अस्त्र देवनिपै ताने।।
अमृत हेतु इक काल कर्म सबने सम कीयो। कोरे दानव रहे अमृत देवनिने पीयो।।
हरि हिय धरि श्रद्धा सहित, कर्म करैं जे भक्तितें। उत्तम फल पावैं अवसि, मनमोहनकी शक्तितें।।

यह शास्त्रों का सुदृढ़ सिद्धान्त है, कि भाग्य के बिना न विद्या फलवती होती है और न पौरुष। भाग्य में हो तो छप्पर फाड़कर धन आ जाता है। भाग्य में न हो, तो घर में रखा सुवर्ण मिट्टी हो जाता है।

जिसे न दे हरि, उसे क्या देगा भूपति, जिसे न दे भूपति उसे क्या देगा जगतपति।

मोहिनी के मोह में फँसनेवाले कामी और कलही व्यक्ति को अमृत की प्राप्ति नहीं होती अत: मनोरथ की सिद्धि के लिये भगवान की शरण ग्रहण करनी चाहिये। स्त्रीके आकर्षणसे कभी किसीको आश्वस्त नहीं होना चाहिए। जब शंकरजीके मनमें भी कामका उदय हो सकता है, तब साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है?

समुद्र मन्थन के १४ रत्नों की उपमा को सार्थक करते हुए आस्तिकता, धार्मिकता, आध्यात्मिकता, प्रगतिशीलता, संयमशीलता, समस्वरता, पारिवारिकता, सामाजिकता, शालीनता, नियमितता, प्रामाणिकता, विवेकशीलता, परमार्थपरायणता और प्रखरता इत्यादि का प्रतिपादन किया गया। यही सूत्र जीवन विद्या का सार है। इसी सम्बल को लेकर हर प्राणी चारों ओर का विकास कर सकता है। यद्यपि अमृतके लिए देवता और दानव दोनोंकी ओरसे एक-जैसा प्रयास किया गया, तथापि भगवानकी प्रेरणा, अनुकूलता एवं सहायतासे काम करनेवाले देवताओंको तो अमृत मिल गया और भगवान्‌से प्रतिकूल रहनेवाले दैत्यलोग उससे वंचित रह गये। असलमें भगवान जिसके पक्षमें होते हैं, वही सत् है और जिसके पक्षमें नहीं होते, वह असत् है।

जग रक्षाके हेतु विष्णु अवतारनि धारैं। भक्तनिको करि त्राण दुष्ट दैत्यनिकूँ मारैं।।

ऊँच नीच लघु ज्येष्ठ भेद उनमहँ कछु नाहीं। कच्छ मच्छ नर नारि, कबहुँ सूकर बन जाहीं।।
शिव स्वरूप मंगलभवन, जीव मात्रके सुहृद हरि। करैं विश्व कल्याण नित, विविध भाँतिके वेष धरि।।
करे कर्म हरिभावतें, जीव मात्रकूँ होहिं सुख। स्वार्थ हेतु श्रम जे करैं, ताको ध्रुव परिणाम दुख।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार देश, काल, हेतु, अर्थ, कर्म और मति के समान होने पर भी सुर और असुरों के कर्म फल में भिन्नता हो गई। देवताओं को उन श्रीहरि के पाद पंकजों की परिचर्या के प्रभाव से सुगमतापूर्वक अमृत मिल गया, किन्तु असुरगण उस अमृत से वंचित ही रह गये।

भजन-तेरी बन जायेगी गोविन्द गुण गाये ते।
धरि कछुआको रूप मंदराचलकूँ धास्यो। सुरनि संग इक अजित रूप धरि अमृत निकास्यो।।
अमृत कलश लै प्रकट भये हरि धन्वन्तरि बनि। दैत्य छले ह्वै नारि अमृत दै दीयो देवनि।।
कहें परीक्षित कथा सब, सिन्धुमथनकी कहहु प्रभु। श्री अन्तर्हित भई कस, चार रूप च्यौं धरे विभु।।

५) देवासुर संग्राम- शुकदेव कहते हैं- परीक्षित्, देवताओं के समान ही दैत्य और दानवों ने भी समुद्र-मन्थन बड़ी सावधानी के साथ किया था किन्तु भगवान से विमुख होने के कारण उन्हें पीने के लिये अमृत नहीं मिला।

शुकदेव बोले- राजन्, अपने शत्रुओं की श्री वृद्धिको वे दिति पुत्र असुर सहन नहीं कर सके। वे अस्त्र शस्त्र लेकरसुरों से संग्राम करने को उद्यत हो गये तब देवता भी अपने आयुधों को लेकर असुरों से युद्ध करने लगे। उन्होंने श्रीहरि के चरणों का आश्रय ले रखा था और अमृत पीकर सवल हो गये थे।

अमृत पान सुर कर्‌यो असुर मिलि लरिबे आये। अमर सबल सुर भये न पीछे पैर हटाये।।
दोनों ही रनसूर परस्पर शस्त्र चलावें। नाना बाहन चढ़े युद्ध कौशल दिखलावें।।
गुत्थम गुत्था ह्वै गई, मारो काटो मचि गई। कटि कटि सिर वसुधा भरी, सरिता शोणितकी भई।।

भगवान की कृपा होने पर फल की प्राप्ति होती है। केवल अभिमानवश बाहुबल के सहारे अर्थ की सिद्धि सम्भव नहीं है। राजन्, भगवान ने समुद्र मथ कर अमृत निकाला और अपने निजजन देवताओं को पिला दिया। फिर सबके देखते-ही-देखते वे गरुड पर सवार हुए और वहाँ से चले गये। दानव और दैत्य अपने शत्रुओं की सफलता से तिलमिला उठे अत: अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर उन्होंने देवताओं पर आक्रमण बोल दिया। बड़ा भारी घमासान युद्ध हुआ देवताओं में और असुरोंमें। सागर के तट पर ही देव-दानव-युद्ध छिड़ गया। युद्ध के वाद्य यंत्रोंसे जमीन और आसमान गूंज उठे। दोनों दल के योद्धा अपने-अपने वाहनों पर आरूढ हो अपने-अपने समकक्ष से जा भिड़े। रथारूढ रथारूढों से, पदाति पदातियों से, अश्वारोही अश्वारोहियों से और गजारोही गजारोहियों से लड़ रहे थे। यहाँ तक कि कोई भी वाहन युद्ध में नहीं छोड़ा गया। ऊँट, वानर, सिंह, रीछ, कंक, बक, मूसक, गिरगिट और नाना प्रकार के पशु-पक्षी तथा जानवर युद्ध में प्रयुक्त किये गये। हाथियों की चिंघाड़, रथों की गड़गड़ाहट, घोड़ों की हिनहिनाहट, तथा पैदलों की मारो-मारो काटो काटो के चीत्कार से आकाश भर गया। विरोचन का बेटा बलि असुरों का सेनापति था। वह इच्छागामी रथ पर आरूढ होकर समर-भूमि में आ डटा। उसके रथ का निर्माण असुर-शिल्पी मयदानव ने किया था। इस विमान को ठीक-ठीक देख पाना भी संभव नहीं था। यह अदृश्य रूप से चलता था। सभी बड़े-बड़े सेनापति बलि को चारों ओर से घेरे हुए थे। उस समय बलि ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे उदयाचल पर चन्द्रमा। दानव-दैत्यों ने कई बार देवताओं को पराजित किया था अत: उनका उत्साह बढ़ा हुआ था। बलि का यह विमान **वैतापस** नामक था।

बलि को समर-भूमि में आया देखकर देव-सेनापति इन्द्र अपने ऐरावत हाथी पर आरूढ होकर युद्ध-भूमि में आ डटे। उनके चारों ओर बड़े-बड़े देव-सेना पति अपनी सैन्य टुकड़ियों के साथ उन्हें घेरे हुए थे। उस समय उनके तेज और उत्साह को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो भगवान सूर्य उदयाचल पर आरूढ हों। गुरुसेवा के कारण दैत्यराज बलि का बल बढ़ा हुआ था। उनके चारों ओर अपने-अपने विमानोंपर सेनाकी छोटी-छोटी टुकड़ियोंके स्वामी नमुचि, शम्बर, बाण, विप्रचित्ति, अयोमुख, द्विमूर्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसन्ताप, वज्रदंष्ट्र, विरोचन, हयग्रीव, शमुशिरा, कपिल, मेघदुन्दुभि, तारक, चक्राक्ष, शुम्भ, निशुम्भ, जम्भ, उत्कल, अरिष्ट, अरिष्टनेमि, त्रिपुराधिपति, मय, पौलोम, कालेय और निवातकवच आदि स्थित थे।

युद्ध इन्द्र बलिको लख्यो, सब जोड़ी खोजन लगे। वीर हृदय उमगन लगे, कायर रन तजिके भगे॥

दोनों दलों की सेनाएँ आमने-सामने खड़ी हो गई। दो-दो की जोड़ियाँ बनाकर योद्धा युद्ध करने लगे। कोई आगे बढ़ रहा था, तो कोई नाम ले-लेकर ललकार रहा था। कोई-कोई मर्म-भेदी वचनों को बोलकर अपने प्रतिद्वन्द्वी को ललकार रहा था। बलि इन्द्र से, वृषपर्वा अश्विनीकुमार से, शाम्बर त्वष्टा से, बाणासुर सूर्य से, शुक्राचार्य बृहस्पति से और नरकासुर शयनि से संग्राम कर रहे थे। ये लोग अपने प्रतिद्वन्द्वियों पर बाण, तलवार, भाला, गदा आदि भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार कर रहे थे। एक-दूसरे का सिर काटकर मारने का प्रयास चल रहा था। भुशुण्डि, चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टिश, शक्ति, उल्मुक, प्रास, फरसा, तलवार, भाले, मुद्गर, परिघ और भिन्दिपालसे एक-दूसरेका सिर काटने लगे। उनके चरणों की धमक और रथ के पहियों की रगड़ से पृथ्वी खुद गई। उसके धूलिकणों से आकाश आच्छादित हो उठा। रक्त की नदियाँ चारों ओर प्रवाहित होने लगीं। कटे हुए अंगों से युद्ध भूमि पट गई।

तारक सङ्ग कुमार मयासुर सँग शिल्पी सुर। वरुण होतितें लड़ै त्रिपुररिपु सँग जम्भासुर॥
त्वष्ट्रा शम्बर संग सूर्यतें लड़ें विरोचन। अपराजित सङ्ग नमुचि बृहस्पतितें इकलोचन॥
वृषपर्वा सुर वैद्य सँग, राहु चन्द्रमातें लड़ैं। महिषसुर सुर वदन सँग, सौ बलिसुत रवितें भिड़ैं॥
नरकासुर शनि सङ्ग कामके सँग दुरमरषन। क्रोध बशनितें करै युद्ध निर्भय ह्वै शिव गन॥
अष्ट बसुनितें कालकेय मुनि सँग वातापी। देवी काली सङ्ग लड़ै खल शुम्भ प्रतापी॥
एक दूसरेतें लड़ें, छोड़ि प्रानके मोहकूँ। छोड़ि सकै नहिं देवहू, सहज रिपुनिके द्रोहकूँ॥

बलि ने कोपकर इन्द्र, ऐरावत, महावत और उनके रक्षकों पर लक्ष्य करके दो-दो बाणों से प्रहार किया किन्तु इन्द्र ने मध्य में ही काटकर बलि के बाणों को विफल कर दिया। इसी प्रकार बलि ने जिन जिन आयुधों का प्रयोग किया इन्द्र ने सबको काट कर नष्ट कर दिया। उस समय इन्द्र का हस्तलाघव और ऐश्वर्य देखने लायक था। इन्द्र के इस पराक्रम को देखकर बलि चिढ़ गया। उसने माया-युद्ध का विचार किया और फिर आकाश में अदृश्य हो गया। वहाँ उसने देवसेना के ऊपर एक पर्वत प्रकट किया। उससे देव-सैनिकों पर बड़े-बड़े पत्थर, वृक्ष और शस्त्रास्त्र बरसने लगे। देव सेना चूर-चूर होने लगी। तत्पश्चात् बड़े-बड़े साँप, बिच्छू, डंस आदि गिर कर देव-सैनिकों को काटने लगे, बींधने लगे। ऊपर से गिरे सिंह, व्याघ्र आदि देव-सेना के बड़े-बड़े हाथियों को फाड़ने लगे। आग की वर्षा से देवता लोग झुलसने लगे। सागर की चारों ओर उमड़ती उत्ताल तरंगों को देखकर देवता घबड़ा उठे। बलि की माया का प्रतिकार करने के लिये उन्हें कोई उपाय सुझाई न पड़ा।

माया निर्मित अंधकार सब जगमहँ छायो। विद्युत चमकै तीक्ष्ण बिना ऋतु घन घिरि आयो॥

नभतें वरषै सर्प व्याघ्र सिंहादिक तरजै। राक्षस प्रेत पिशाच भूतगन घूमै गरजैं।।
चंडी मुन्डी कालिका, लै त्रिशूल घूमत फिरत। मारौ काटौ सुरनिकूँ, डाइन करकस रव करत।।
माया निरमित जन्तु जगतमहँ चहुँ दिशि छाये। निरखी माया प्रबल आसुरी सुर घबराये।।

शुकदेव बोले- राजन्, जिनकी गति अत्यन्त भीषण थी और जो दिखायी नहीं देती थी ऐसे महामायावी दैत्यों के अनेकों मायाओं के उत्पन्न करने पर देवता अत्यन्त ही विषाद को प्राप्त हुए।

बलि सुरपतितें लड़ै। करैं बाननिकी वृष्टी। छूटत अस्त्र अमोघ प्रलय होगी जनु सृष्टी।।
शतक्रतु मारन हेतु विविध विधि अस्त्र चलाये। बाल न बाँको भयो विपतितें विष्णु बचाये।।
अन्य शरन नहिँ लखी, शरन श्री हरिकी लीन्हीं। ह्वैके परम अधीन विनय देवनि मिलि कीन्हीं।।
प्रभु प्रकटे माया नसीं, करी कृपा करुनायतन। मनमोहनकी माधुरी, निरखि भये सुगरन मगन।।

तब उन्होंने विश्व के जीवनदाता का ध्यान और स्मरण किया। अशरण-शरण प्रभु ध्यान करते ही वहाँ प्रकट हो गये। बलि बोला- इन्द्र, जय-पराजय तो संसारके नियम हैं। जीवनमें आते ही रहते हैं। कोई कितनी भी ऊँचाईपर जाय, वहाँसे उनको नीचे गिरना पड़ेगा। कैसा भी संयोग हो, उससे वियोग होगा और कैसा भी जीवन हो, उसको मृत्युकी प्राप्ति होगी। यह संसारका नियम है कि यहाँ कुछ भी इकट्ठा करो, एक दिन वह बिखर जायेगा। जो लोग कालशक्तिकी प्रेरणासे अपने कर्मके अनुसार युद्ध करते हैं उन्हें जीत या हार, यश या अपयश अथवा मृत्यु मिलती ही है।

भगवान हरि के प्रकट होते ही सारी-की-सारी आसुरी माया उसी प्रकार समाप्त हो गई, जैसे जागने पर स्वप्न विलीन हो जाते हैं, विगलित हो जाते हैं। राजन्, वस्तुत: भगवान की स्मृति सारी विपत्तियों को विनष्ट करनेवाली है।

शुकदेव बोले- राजन्, श्रीहरि के सुरसेना में प्रवेश करते ही असुरों की कूट कर्म से उत्पन्न माया उन महान्से भी महान् प्रभु के तेज से उसी प्रकार नष्ट हो गई जैसे जिस प्रकार जाग जाने पर स्वप्न का नाश हो जाता है। इसीलिये तो कहा है भगवान की स्मृति सम्पूर्ण विपत्तियों से मुक्त कर देनेवाली है।

कालनेमि दैत्य ने देखा कि भगवान गरुड पर चढ़कर आ गये हैं, अत: उसने उन पर बड़े वेग से त्रिशूल चलाया। वह त्रिशूल गरुड पर लगता कि उसके पहले ही भगवान ने उसे पकड़ लिया और उसी से कालनेमि और उसके वाहन सिंह की गर्दन काट कर गिरा दी। माल्यवान अपनी गदा भगवान पर चलाने ही वाला था कि उन्होंने चलाने के पहले ही उसकी गर्दन काट कर गिरा दी। इस प्रकार भगवान के आ जाने से विजय भी देवताओं के पक्ष में आ गई। बलि यह बात समझते थे कि संसारमें जीवन-मृत्यु, जय-पराजय आदि उलट-फेर होते ही रहते हैं। इसलिये पराजित होनेपर भी उन्हें किसी प्रकारका खेद नहीं।

कहते हैं अमृत पीने के बाद भी देवता विजयी नही हो रहे थे। इसका कारण यह था कि अमृत का अधिष्ठाता देवता यह सोच रहा था कि देवताओं ने अकेले अमृत पीकर अन्याय किया है। असुरों ने भी बराबर श्रम किया था अत: उनका भी हिस्सा बनता है। इसलिये अमृत अपना प्रभाव नहीं प्रदर्शित कर रहा था। किन्तु जब अमृत के अधिष्ठाता देवता ने देखा कि स्वयं भगवान ही देवों के पक्ष में आ गये हैं, तब यह सोचकर उसने अपना प्रभाव दिखलाना प्रारम्भ किया कि- देवताओं को अब कृतघ्नता का दोष नहीं लगेगा। क्योंकि भगवान उनके सहायक बनकर आ गये हैं। औचित्य उसी पक्ष में होता है, जिधर भगवान होते हैं। धर्म वहीं होता है, जहाँ भगवान होते हैं। देवताओंने असुरों के साथ छल किया। वे अमर होकर भी दैत्यों से हार गये, क्योंकि सत्य का बल अमृत बल से कई गुना श्रेष्ठ है।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, परम पुरुष भगवान की अहैतुकी कृपा से देवताओं की घबराहट जाती रही। वे नवीन उत्साह से भर गये। इन्द्र, वायु आदि देवता, रणभूमि में पहले जिनके अस्त्र-शस्त्रों से आहत हुए थे उन्हीं दैत्यों पर, अब पूरी शक्ति से प्रहार करने लगे।

अब इन्द्र और बलि आमने-सामने थे। एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। लड़ते-लड़ते इन्द्र क्रुद्ध हो उठें। उन्होंने बलि का वध करने के लिये हाथ में वज्र उठाया। उस समय चारों दिशाओं में हा-हाकार मच गया। युद्ध-भूमि में बलि निर्भय विचरण कर रहे थे। इन्द्र ने तिरस्कार पूर्वक उनसे कहा- मूर्ख, तू माया से हम लोगों को जीतना चाहता है? हम माया के मालिक हैं। क्या तुझे नहीं मालूम कि वह हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। अब तक माया करके तूँने खूब उछल-कूद की है। अब मैं अपने वज्र से तेरा सिर काट कर भूतल पर फेंक देता हूँ। तूँ अपने भाईबन्धुओं के साथ जो कुछ कर सकता हो, करके देख ले।

बलि ने इन्द्र की बात सुनी। उसने बड़ी गंभीरता से कहा- इन्द्र, युद्ध में जय-पराजय, यश-अपयश और मृत्यु सब कुछ काल के अधीन हुआ करता है। इस बात को जाननेवाले ज्ञानी जन जीतने पर न प्रसन्नता से फूल उठते हैं और न पराजय से उदास ही होते हैं। उनकी दृष्टि में जय-पराजय, यश-अपयश समान है। अत: किसी भी स्थिति में वे विचलित नहीं होते। तुम लोग अपने को जय-पराजय का कर्ता मानते हो; इसलिये महात्माओं की दृष्टि से शोचनीय हो।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, बलि की फटकार सुनकर इन्द्र कुछ झेंप गये फिर बलि ने बाणों की झड़ी लगा दी इन्द्र पर। एक तो इन्द्र पहले से ही चिढ़े हुए थे, दूसरे बाणों से घायल होकर वे, अंकुश से आहत हाथी की तरह क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपना अमोघ वज्र उठाया और बलि को लक्ष्य करके छोड़ दिया। वज्र के प्रहार से बलि अपने विमान से लुढ़क कर भूतल पर आ गिरे। यह देखकर बलि का हितैषी औरपरम मित्र जम्भासुर मारे क्रोध के सिंह पर सवार होकर इन्द्रके सामने आ डटा। उसने इन्द्र और इन्द्र के वाहन ऐरावत पर गदा से प्रहार किया। गदा की चोट से ऐरावत को बड़ी पीड़ा हुई। उसने व्याकुलता से घुटने टेक दिये और फिर मूर्च्छित हो गया। ऐरावत को मूर्च्छित देखकर इन्द्र का सारथी (मातलि) रथ लेकर उपस्थित हो गया। इन्द्र सद्य: रथ पर सवार हुए और वज्र के प्रहार से जम्भ का सिर काट कर गिरा दिया। जम्भ के मरते ही उसके भाई-बन्धु नमुचि, बल और पाक झटपट युद्ध भूमि में आ डटे। भीषण युद्ध करते हुए उन लोगों ने बाणों की वर्षा से इन्द्र के रथ को आच्छादित कर दिया। देवता इन्द्रको न देखकर हाहाकार कर उठे। एक तो शत्रुओं ने उन्हें हरा दिया था और दूसरे अब उनका कोई सेनापति भी न रह गया था। उस समय देवताओं की ठीक वैसी ही अवस्था हो रही थी, जैसी बीच समुद्र में नाव टूट जाने पर व्यापारियों की होती है। थोड़ी ही देर में शत्रुओं के बाण-जाल को काटकर इन्द्र, उसी प्रकार बाहर निकल आये, जैसे बादलों की घिरी घटा को छाँट कर सूर्य निकल आते हैं।

हरि संहारे देवरिपु, सद्गति शत्रुनिकूँ दई। अति प्रसन्नता सुरनिकूँ, असुरनिके क्षयतें भई॥
जन्म मारि सुरपति दयो, नमुचि सुनत आयो तुरत। अस्त्र शस्त्र लै युद्धमें, रण दुर्मद इत उत फिरत॥

शुकदेव बोले- राजन्, जब नारदजी के मुख से अपने भाई जम्भ का मारा जाना सुना, तो अत्यन्त शीघ्रता से बल पाक और नमुचि वहाँ आ गये।

इन्द्र के प्रकट होते ही युद्ध की विभीषिका बढ़ गई। उन्होंने क्रुद्ध होकर बल, पाक आदि को मार-मार कर भूतल पर सुला दिया फिर तो नमुचि के साथ इन्द्र का भयंकर युद्ध हुआ। नमुचि की गर्दन काटने में इन्द्र का वज्र भी निष्फल हो गया। यह देखकर इन्द्र चिन्ता में पड़ गये कि यह क्या हो गया? वृत्र को भी मारनेवाला वज्र भी तो यहाँ निष्फल है। इन्द्र की चिन्ता को देखकर आकाशवाणी हुई- यह दानव न तो सूखी वस्तु से मर सकता है, न गीली से। इसे वरदान दिया जा चुका है कि-

सूखी या गीली वस्तु से तुम्हारी मृत्यु न होगी। मुनिवर नारद ने यह वृत्तांत देवराज इंद्र के सारथी मातलि को रसातल का भ्रमण करते हुए बताया- मातले। क्षीरसागर से जो फेन (झाग) उत्पन्न होता है, वह पुष्प के समान प्रतीत होता है। वह फेन क्षीरसागर के तट पर फैला रहता है, जिसे पीते हुए फेनम नामवाले बहुत- से मुनिश्रेष्ठ रसातल में निवास करते हैं। फेन का पान और आहार करने के कारण वे महर्षिगण फेनप नाम से विख्यात हैं वे तपस्वी साधक बड़ी कठोर तपस्या में संलग्न रहते हैं। उनकी तपस्या के प्रभाव से उनसे देवता लोग भी डरते हैं।

तब इन्द्र ने सोच-विचार कर युक्ति से वज्र में समुद्र का फेन लगाया और उसके बाद नमुचि का सिर काट कर अलग कर दिया। फेन न तो गीला होता है और न सूखा ही। नमुचि के गिरते ही देवों ने भयंकर मार-काट मचा दी। दानव-दैत्यों का महासंहार देखकर ब्रह्माजी को दया आई। उन्होंने नारदजी को भेजकर देवासुर संग्राम बन्द करा दिया। नारदजी किसीका बुरा नहीं चाहते। सन्त वही है जो किसीका बुरा नहीं चाहता है, सबका हित चाहता है। नारद ने दैत्यों को कहा- तुम्हारे गुरु शुक्राचार्य के पास जाओ उनके पास एक मृत संजीवनी विद्या है, उससे वे सब मरे हुए को जिंदा कर देंगे।

जीते देवनि शत्रु दैत्य दानव घबराये। ब्रह्मा डरे तुरत नारद बुलवाये।।
कह्यो जाइकें सुरनि करो उपरत तुम रनतै। बिधि आज्ञा सिर धारि आइ बोले देवनितै।।
अमृत पियो जाय श्री लही, करी कृपा श्री अजित अति। आयसु विधि मानो करो, दैत्यनिको संहार मति।।

नारद का सम्मान करते हुए देवों ने युद्ध समाप्त कर दिया और स्वर्ग को चले गये। सृष्टि में किसी भी बीज का नाश नही होना चाहिये। उस समय देव-गण इन्द्र के यश का गान कर रहे थे। युद्धमें बचे हुए दैत्यों ने देवर्षि नारद की प्रेरणा से वज्र की चोट से मरे हुए बलि को लेकर अस्ताचल की यात्रा की। वहाँ शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या के प्रभाव से बलि को जीवित कर दिया। जिन दैत्यों के गर्दन आदि अंग नहीं कटे थे, उन्हें भी शुक्राचार्य ने जीवन प्रदान कर दिया। बलि यह बात समझते थे कि संसार में जीवन-मृत्यु, जय-पराजय आदि उलट-फेर होते ही रहते हैं अत: पराजित होने पर भी उन्हें किसी प्रकार का खेद नहीं हुआ।

मुनि बचननिकूँ मानि युद्धतें विरत भये सुर। जयको शफबजाय इन्द्र हर्षित पहुँचे पुर।।
बलि सँग मृत सब असुर लाइ इत शुक्र जिवाये। यदपि पराजित भये तदपि नहिँ बलि सकुचाये।।

बलि पुनर्जीवित हुए और एक विश्वजीत नामका यज्ञ किया। उस यज्ञमें से बलि को एक दिव्यशक्तिवाला रथ, दिव्य धनुष, दिव्य शंख, दिव्य कवच और ब्राह्मणोंका आशीर्वाद प्राप्त हुआ। दिव्य आयुधों की प्राप्ति हुई। इन सभी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर राजा बलिने स्वर्ग पर फिर आक्रमण किया, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से परिपूर्ण इन्द्रपुरी अमरावती पर चढ़ाई की। राजा बलि ने अपनी बड़ी भारी असुरों की सेना लेकर इन्द्र की अमरावती को घेर लिया। सब देवता दैत्योंके भय से स्वर्ग छोड़कर भाग गये। राजा बलि ने भुवर्लोक, भूर्लोक और स्वर्गलोक पर अधिकार स्थापित कर दिया। सभी देवता लोग कोल, भील, पशु-पक्षी पर्वतों की गुफाओं में जाकर छिप गये।

६) शिव को भगवान के मोहिनी रूप का दर्शन उसपर शिव का मोहित होना -

देखि मोहिनी रूप प्रभु, मोहे मनमथ नाथ। आगे दौड़े मोहिनी, पीछे गौरीनाथ।।

विषपायी भगवान शंकर, लक्ष्मी-स्वयंवर के बाद वहाँ से चले गये थे। उन्होंने विष-पान कर प्राणियों का कल्याण कर दिया था। अमृत की उन्हें कामना न थी अत: वे सागर-तट से अपने आश्रम को चले गये थे।

श्रीपशुपति जब सुनी बने हरि नरतें नारी। रूप मोहिनी लखन भई उत्कंठा भारी।।
चढ़े बैलपै लई संग गिरिराजकुमारी। पहुँचे हरिपुर हरषि कामरिपु हर त्रिपुरारी।।
करि विनती हँसि हरि कहैं, नाथ, बात अद्‌भुत सुनी। मोहन रूप दुराइकें, आप बने प्रभु मोहिनी।।

भगवान ने मोहिनी का अवतार धारण कर देवों को अमृत पिलाया था- यह दृश्य शंकरजी ने नहीं देखा था। भगवान गौरीशंकर भगवान नारायण के पास गये और बोले- हे लीलाधारी प्रभो, आपने दैत्यों को मोहित करके मोहिनी रूपके द्वारा देवताओं को अमृत पिलाया। मैं आपके उस रूप का दर्शन करना चाहता हूँ। उस मोहिनी स्वरूप के दर्शन की। मेरे मन में बड़ी अभिलाषा है।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, जब भगवान शंकर ने यह सुना कि श्रीहरि ने मोहिनी का रूप धारण करके असुरों को मोहित कर देवों को अमृत पिलाया था तो उन्हें भगवान् के इस रूप को देखने की उत्कट इच्छा हुई। उस समय वे सती देवी के साथ बैल पर आरूढ होकर गणों से घिरे हुए भगवान के वैकुण्ठ धाम में जा पहुँचे।

भगवान श्रीहरि ने उमा सहित शंकर की खूब आवभगत की। सुन्दर ऊँचे आसन पर उन दोनों को बैठाया। भगवान का अभिनन्दन करके शंकरजी ने मुस्कराते हुए कहा- समस्त देवों के आराध्यदेव, आप विश्वव्यापी, जगदीश्वर एवं जगत्स्वरूप हैं। संसार के समस्त पदार्थों के मूल कारण भी आप ही हैं। आपही ईश्वर हैं और आप ही आत्मा हैं। आप के स्वाभाविक स्वरूप को कोई नहीं जान सकता। इस जगत् के आदि, मध्य और अन्त भी आप ही हैं किन्तु आपका न आदि है, न अन्त है और न मध्य है। वस्तुत: आप सत्य चिन्मात्र ब्रह्म ही हैं। कल्याणकामी महात्मा लोग इस लोक और परलोक दोनों की आसक्ति एवं समस्त कामनाओं का परित्याग करके आपके चरण-कमलों की आराधना किया करते हैं।

कोई आपको प्रकृति और पुरुषसे परे परमेश्वर मानते हैं तो कोई विमना, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा इन नौ शक्तियोंसे युक्त परम पुरुष तथा दूसरे क्लेश कर्म आदिके बन्धनसे रहित, पूर्वजोंके भी पूर्वज, अविनाशी पुरुषविशेषके रूपमें मानते हैं।

प्रभो, लीला के निमित्त धारण किये गये आपके समस्त अवतारों का दर्शन मैंने किया है। किन्तु मैंने आपके उस मोहिनी अवतार का दर्शन नहीं किया है, जिससे आपने दैत्यों को मोह में डालकर देवताओं को सुधा का पान कराया था। स्वामिन्, उसी को देखने के लिये हम सब आये हैं। हमारे मन में उस रूपको देखने की प्रबल उत्कण्ठा है। कृपा करके आप मुझे उस रूप का दर्शन करायें। हे विभो, गुणों के द्वारा रमण करते हुए, आपने जो-जो अवतार धारण किये हैं, वे सब तो मैंने देखे हैं। सुना है आपने स्त्री का भी रूप धारण किया था उसे मेरी देखने की इच्छा और है।

कहते हैं- जब देवताओं की विजय और दैत्यों की पराजय हो गई तो सारे देवता मिलकर भगवान विष्णु के पास गये, उन्होंने उनसे प्रार्थना की- प्रभो, यद्यपि आप की कृपा से दैत्य पराजित हो गये हैं। किन्तु यदि वे शंकर की शरण में जाकर सहायता की याचना करेंगे तो शरणागतवत्सल शंकर उनके पक्ष में अपना त्रिशूल लेकर कदाचित् खड़े हो गये तो जय-पराजय में बदल जायेगी फिर हम दुर्दशाग्रस्त हो जायेंगे।

भगवान ने देवों की व्यग्रता देखी, उनकी प्रार्थना सुनी तो कहा- देवों, घबड़ाओ नहीं। मैं इसकी पूरी व्यवस्था कर देता हूँ। दैत्य शंकर से युद्ध में सहायता की याचना करेंगे ही नहीं। इस प्रकार देवों को आश्वस्त कर विष्णु ने शंकर के मन से अपना मन मिलाकर कहा- देवाधिदेव महादेव, देवता लोग बहुत घबड़ा रहे हैं कि कहीं युद्ध में आप असुरों की सहायता न करें। शंकर जी

ने कहा- भगवन्, बात तो सत्य है। यदि दैत्य-दानव मेरी शरण में आ गये तो मैं उनकी सहायता अवश्य करूँगा।

जिसका विवाह होता है गीत उसीका गाया जाता है। भागवत विष्णु की लीला का प्रतिपादक ग्रन्थ है अत: उनको सबसे महान् के रूप में उपस्थित किया गया है। स्त्री के प्रति कभी भी विश्वस्त नहीं होना चाहिये। सुन्दरी को देखकर कामारि शंकर के मन में भी यदि काम का अंकुर उत्पन्न हो सकता है तो साधारण लोगों की क्या बात है, क्या बिसात है। वह भी पत्नी और सेवकों की उपस्थिति में। जब कामदेव फिर से जीवित हो गया तो उसने बड़ी भारी तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न शंकर ने कहा- कामदेव, तेरे तपसे सन्तुष्ट हूँ। तूँ माँग ले जो वर माँगना चाहते हो। कामदेव ने हाथ जोड़कर कहा- प्रभो, आपने मुझे हरा दिया था, जला दिया था। कृपाकर एकबार मुझे जीता दीजिये जिससे संसार में मेरा झण्डा ऊँचा हो जाय। शंकर ने कहा ठीक है। समय आने पर मैं तुझे जीता दूँगा। इसीलिये श्रीशंकर भगवान ने मोहिनी को देखने की इच्छा प्रकट की।

जब भगवान शंकर ने मोहिनी के रूप को देखने की जिज्ञासा व्यक्त की तो भगवान विष्णु ने हँसकर कहा- शंकरजी, उस समय अमृत का कलश दैत्यों ने छीन लिया था अत: देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये और दैत्यों का मन दूसरी ओर खींचने के लिये मैंने वह मोहिनी रूप धारण किया था। वह कामियों के मन को मोहित करनेवाला, कामी पुरुषोंका ही आदरणीय है फिर भी यदि आप देखना चाहते हैं, तो मैं वह रूप आपको दिखलाऊँगा। वह अवतार तो काम प्रधान है, कामिनियों को सुख देनेवाला है।

हरि हँसि बोले देव, भये क्यों ऐसे उत्सुक। असुर अमृत लै भगे कस्यों तब मैंने कौतुक।।
रूप मोहिनी धस्यो आँधरे दैत्य बनाये। सुर सन्तोषित करे प्याइकें अमृत छकाये।।
इच्छा उत्कट उमापति, तो पुनि तुम्हें दिखाऊँगो। सरस मोहिनी रूपकी, झाँकी अबहिँ कराउँगो।।

इतना कहकर भगवान विष्णु अन्तर्धान हो गये। उमा सहित शंकर उन्हें चारों ओर देखने लगे, थोड़ी देर में उन्होंने देखा कि सामने एक सुन्दर उपवन है, उसमें रंग-बिरंगे फूल सर्वत्र अपनी आभा बिखेर रहे थे, उस उपवन में एक सुन्दरी तरुणी गेंद उछाल-उछाल कर खेल रही थी। उसका सौन्दर्य अनुपम था। वह त्रिलोकी के सौन्दर्य का निदर्शन था। गेंद से खेलते-खेलते उसने तनिक सलज्ज भाव से मुस्करा कर तिरछी नजर से शंकर जी पर कटाक्षपात किया। कटाक्ष-बाण मारते ही मदनारि मदन से मोहित हो उठे। उन्हें न तन की सुधि रही और न बगल में बैठी पार्वती की। गणों का भी उन्हें ध्यान न रहा। भगवान शंकरकी इन्द्रियाँ अपने वशमें नहीं रहीं, वे कामवश हो गये थे। उसी समय गेंद के पीछे दौड़ रही मोहिनी की साड़ी कमर पर से खिसक गई। शंकर ने उस दृश्य को देखा। उनकी आँखें एकटक उसकी कटि पर डट गईं। काम का आवेग ऐसा बढ़ा कि भगवान शंकर मान-मर्यादा और लज्जा सब कुछ छोड़कर अपनी अधोवस्त्र की लांग ऊपर उठाकर उस सुन्दरी के पीछे दौड़ पड़े। लजाती-शरमाती वह सुन्दरी पेड़ों की आड़ में छिपती-भागती रही। लुका-छिपी का खेल चलता रहा। शंकर उसके पीछे भागते रहे। उनका मन और तन उनके वश में न था। आकर्षण में मोह हो जाता है मोह से ज्ञान-विवेक भ्रमित हो जाता है।

अन्तर्हित हरि भये तुरत निरखै हर इत उत। उत्सुकता अति प्रबल प्रेमतें चहुँ दिशि चितवत।।
इतनेमें लखी नारि उपवनतें आवत। कंदुक क्रीड़ा करत कपरदी चित्त चुरावत।।

शुकदेव बोले- राजन्, इतने ही में शिवजी ने समीप के उपवन के अरुण वर्ण के नूतन पल्लवों से युक्त वृक्षों से जिनमें चित्र विचित्र पुष्प लिख रहे हैं, ऐसे वृक्षों से गेंद उछाल-उछालकर क्रीड़ा करती हुई एक सुन्दरी स्त्री को देखा।

कंदर्प- भगवान शंकर ने भगवती पार्वती को कामदेव के जन्म का वृत्तांत सुनाते हुए बताया था- कामदेव का जन्म

सर्वप्रथम जगत्-सृष्टा ब्रह्मा के मानस में हुआ। कामदेव ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं। जन्म लेते ही कामदेव ने ब्रह्मा से प्रश्न किया- भगवन्। बताइए मैं किसके अहंकार का नाश करूं। उसी समय ब्रह्मा ने उसका नाम कंदर्प रख दिया।

उसे ज्ञान की शिक्षा देते हुए ब्रह्मा ने कहा- वत्स। तुम कभी भी शंकरजी के मन को विचलित करने की चेष्टा नहीं करना। किंतु कंदर्प ने ब्रह्मा की यह सीख नहीं मानी और देवताओं के कार्य के लिए उसने भगवान शंकर के मन को क्षुब्ध करने की चेष्टा की। परिणामत: भगवान शंकर ने उसे भस्म कर दिया। कंदर्प हर्ष का पुत्र है। इसे ही काम कहा जाता है। शंकर की नेत्राग्नि द्वारा भस्म होकर वह अनंग हो गया।

चली मोहिनी भागि उमापति दौरे पकरन। नदी सरोवर शैल फिरैं दोनों वन उपवन।।
ऋषि मुनि आश्रम जाइ दरश दै करै कृतारथ। हरि हर दरशन होहिं यही जग साँचो स्वारथ।।
तेज पतित पृथिवी भयी, स्वर्ण रूप आलय भये। समुझी माया मोहिनी, निवृत्त तुरत हर ह्वै गये।।

काम ने उन्हें इस कदर वश में कर लिया था मानो वह आज शंकर से अपनी हार का बदला ब्याज सहित चुकता कर रहा हो। जैसे मतवाले हाथी कामान्ध हो हथिनी के पीछे दौड़े, वैसे ही वे उस सुन्दरी के पीछे-पीछे भाग रहे थे फिर उन्होंने अत्यन्त वेग से दौड़कर पकड़ ली और उसको भुजाओं में भर लिया, कसकर आलिंगन किया, तरुणी छटपटाती रही, छुड़ाने का प्रयास करती रही। जब भगवान शंकर सुन्दरी के आलिंगन का आनन्द ले रहे थे, उस समय उन्होंने यह सोचकर अपना आलिंगन जरा ढीला कर दिया कि कहीं इस सुन्दरी के सुन्दर सुकुमार अंग रगड़कर मसल न जाँय। बस, अवसर मिला सुन्दरी खिसक कर भाग खड़ी हुई। भगवान शंकर पुन: पकड़ने के लिये उसके पीछे दौड़ें। उसी समय उनका वीर्य स्खलित होकर भूतल पर गिर पड़ा जहाँ-जहाँ भूतल पर उनका अमोघ वीर्य गिरा वहाँ-वहाँ सोने,चाँदी और लोहा, हीरा, जवाहरात, पन्ना आदि की खाने बन गईं। शिव ने जैसे ही मोहिनी भगवान् का स्पर्श किया। एक संतान पैदा हो गई। दक्षिण भारत में उनका मन्दिर है, अय्यप्पा स्वामी उनका नाम है, लोग काले कपड़े पहनकर उनका दर्शन करते हैं। ऐसी महापुरुषों की खोज है। अय्यप्पा स्वामी के दर्शन से शनि दशा का प्रभाव नहीं होता है, ऐसी मान्यता है।

परीक्षित, वीर्यपात हो जाने के बाद उन्हें अपनी स्मृति हुई। उन्होंने देखा कि अरे। भगवान की माया ने तो हमें खूब नचाया फिर वे तुरन्त उस दु:खदायी प्रसंग से अलग हो गये। उसी समय भगवान विष्णु हँसते हुए चतुर्भुज रूप में उनके सामने प्रकट हो गये और बोले- शंकरजी, आपके अद्वैत बोध में किसी प्रकार की कमी नहीं है। मेरी स्त्रीरूपिणी माया से मोहित होकर भी आप स्वयं ही अपने स्वरूप में स्थित हो गये। यह बड़े ही आनन्द की बात है।

देवाधिदेव, मेरी माया अपार है। आपके अतिरिक्त दूसरा कौन है, जो उससे पार पा सके। सृष्टि के प्रारम्भ में मेरी प्रेरणा से ही यह माया रजोगुण आदि की सृष्टि में प्रवृत्त होती है। सच तो यह है कि आज आपने अपनी इच्छा से ही मोहिनी के रूप से मोहित होकर मेरा महत्त्व बढ़ा दिया है अन्यथा कामारि का काम से मोहित होना आश्चर्य नहीं तो और क्या है?

भगवान बोले- स्त्री रूपी माया को अति प्रबल समझना चाहिये। संसार में जो लोग अपने ज्ञान का गर्व करते हैं, उनको मूर्ख समझना चाहिए। ये मेरी गुणमयी माया आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ेगी, यह आपको कभी नहीं लगेगी।

यह मेरी स्त्री रूपिणी माया ऐसी अगाध अँधेरी खाई है कि इसमें प्राणी एक बार गिरा तो फिर उसका जीवन भर निकलना अत्यन्त ही दुष्वार है। यह प्राणी जान-बूझकर माया के चक्कर में फँसता है। हँसते-हँसते गाकर ढोल बजाकर, सबको सुझाकर, बरात सजाकर इस माया को गले लगाता है। जीवनभर इसे छोड़ने की इच्छा नहीं करता। यह ऐसी प्यास है कि

मरते समय में भी नहीं मिटती। इस पिपासा का स्मरण करके प्राणों का परित्याग करता है, पुन: जन्म धारण करता है फिर उसको प्राप्त करता है। सृष्टि के कारण भूत तथा काल रूप मुझ परमेश्वर के तो एक अंश में ही यह स्थित है। जो मेरी माया में ही फँस जाते हैं वे मुझ परिपूर्ण को सहज में ही प्राप्त नहीं कर सकते। जब मेरे एक अंश से युक्त इस गुणमयी माया में ही इतना आकर्षण है, तो मुझमें कितना आकर्षण होगा, इसे मायाबद्ध प्राणी अनुभव नहीं कर सकते।

मोहिनी रूप दिखाकर भगवान ने यह सिद्ध किया कि भगवान की मोहिनी माया ऐसी प्रबल है कि इसके चक्कर में बड़े-से-बड़े देवाधिदेव भी आ सकते हैं, किन्तु जिनके हृदय में श्रीहरि का निरन्तर निवास है, उनकी रक्षा श्रीहरि सर्वत्र करते हैं। भगवान के तो सभी रूप हैं, किन्तु किसी रूप को तो दूर से ही दण्डवत करनी चाहिये और किसी रूप को हृदय से लगाना चाहिये। मन से सबमें अपने इष्ट को ही देखे तो मोह नहीं होता, फिर बन्धन का कोई काम ही नहीं, फिर तो सर्वत्र वे ही सर्वेश्वर दिखाई देंगे।

शिवजी ने पार्वती से कहा- वे साक्षात पुराण पुरुष ये ही हैं, जिनमें न काल की गति है न वेद की। जो काल के भी महाकाल हैं। वेद जिनका वर्णन नहीं कर सकते, इनका वास्तविक स्वरूप अनन्त और अनिर्वचनीय है। नेति-नेति कहकर चुप हो जाते हैं। जिनकी माया का इतना प्रभाव है, तो उनके अमित प्रभाव के विषय में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, इस प्रकार भगवान विष्णु ने भगवान शंकर का बड़ा सत्कार किया फिर शंकर ने विष्णु से आज्ञा ली। उन्हें प्रणाम किया और उमा तथा गणों के साथ अपने निवास-स्थान कैलास चले गये।

७) अन्य मन्वन्तरों का वर्णन व मनु आदि के पृथक्-पृथक् कर्मों का निरूपण-

विवस्वान सुत भये सातवें मनु सुखदाई। वामन बनि भगवान ठगे बलि देह बढ़ाई।।
संज्ञा छाया सङ्ग व्याह दिनकरने कीन्हों। श्राद्धदेव, यम, यमी भये संज्ञाके तीनों।।
छायाकी तपती सुता, सुत सावर्णि शनैश्चर। कस्यो सौतिया डाह जब, समुझे तब सब दिवाकर।।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, इस समय श्राद्धदेव वैवस्वत मनु हैं। विवस्वान कहते हैं सूर्य को। विवस्वान् के बेटे को वैवस्वत कहते हैं। इनके इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट आदि दस पुत्र हैं। इस मन्वन्तर में आदित्य, वसु, रुद्र आदि देवताओं का प्रधान गण हैं और पुरन्दर नाम का इन्द्र है। कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ आदि सप्तर्षि हैं। इसमें कश्यप का अदिति से भगवान का वामन अवतार होता है। वामन नें बलि से तीन पग भूमि की याचना की थी।

वंशावली बताने और सुनने से स्वर्ग मिलता है पुण्य बढ़ता है, यदि वंशावली न बतायी जाय, तो कथा प्रसंग शुरू ही नहीं हो सकता, बीज होता है तभी उसका विस्तार होता है अत: वंशादि का प्रकरण नीरस भी हो तो भी उसे श्रद्धा से सुनना चाहिए। वर्तमान मन्वन्तर में ब्रह्मा का ५६ वाँ वर्ष चल रहा है, ७ वाँ वैवस्वत मन्वन्तर है।

इस वर्तमान सप्तम मन्वन्तर के अधिपति विवस्वान् के पुत्र श्राद्धदेव हैं। इनके इक्ष्वाकु, नभग, धृट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, करूष, पृषध्र और वसुमान् ये १० मनुपुत्र हैं, जिनके वंशज अब तक पृथ्वी पर शासन कर रहे हैं। तुम इन्हीं के वंशज हो आदित, वसु, रुद्र, विश्वेदेवा, मरुद्गण, अश्विनीकुमार विभुगण ये देवताओं के गण हैं। इस मन्वन्तर के इन्द्र का नाम पुरन्दर है तथा कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम जमदग्नि और भरद्वाज ये इस मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं इस मन्वन्तर में भगवान का कश्यपजी के द्वारा अदिति में वामन नाम से मन्वन्तरावतार हुआ। इन्द्र के छोटे भाई होने से ये उपेन्द्र भी कहलाये। इस प्रकार ये सात मन्वन्तर तो हो गये अब मैं होनेवाले ७ मन्वन्तरों का वर्णन और करूँगा, जिन्हें दिव्य दृष्टि से देखकर मेरे ७ पूज्य पिता सर्वसमर्थ भगवान व्यास ने अभी से लिख दिया है। आगामी अष्टम मन्वन्तर के अधिपति भी विवस्वान् के ही पुत्र

सावर्णि होंगे। ये श्राद्धदेव मनु के भाई हैं। इनके पिता तो एक हैं। माता दोनों की पृथक थी।

विवस्वान् (भगवान सूर्य) की दो पत्नियाँ थीं- संज्ञा और छाया। ये दोनों ही विश्वकर्मा की पुत्रियाँ थीं। कुछ लोगों का कहना है कि उनकी एक तीसरी पत्नी भी थी। उसका नाम था- वडवा। किन्तु संज्ञा का ही नाम वडवा प्रतीत होता है। उन सूर्य पत्नियों में संज्ञा से तीन सन्तानें हुई- यम, यमी और श्राद्धदेव। छाया के भी तीन सन्तानें हुईं- सावर्णि, शनैश्चर और तपती नाम की कन्या। तपती का विवाह संवरण से हुआ था। जब संज्ञा ने वडवा (घोड़ी) का रूप धारण कर लिया था, तब उससे दोनों अश्विनीकुमार पैदा हुए। विवस्वान के सबसे बड़े पुत्र श्राद्धदेव तो इस मन्वन्तर के मनु ही बन गये। दूसरे पुत्र यम ने घोर तपस्या करके लोकपाल की पदवी प्राप्त की। वे प्राणियों के पुण्य पाप का फल देते हैं और यम रूप से पापियों का शासन भी करते हैं। इनकी बहिन यमुना नदी रूप से पापियों को तारती हैं, वे भगवान की पटरानी हुई। छाया के प्रथम पुत्र सावर्णि अब तक सुमेरु पर तप करते हैं। आगामी मन्वन्तर में वे भी मनुपद को प्रतिष्ठित करेंगे।

संज्ञा छाया छोड़ि गई बन बड़वा बनिकैं। दुखित दिवाकर भये ससुरतें सब कछु सुनिकैं।।
बडवा बनिकें वैद्य अश्विनी कुमर जनाये। संज्ञाकूँ लै सङ्ग ससुर ढिँग सूरज आये।।
ससुर कर्‍यो कुछ तेज कम, रवि द्वादश ह्वै गये तब। विवस्वान्‌को वंश यह, राजन्, तुमतें कह्यो सब।।

दिवाली के अनन्तर कार्तिक शुक्ला द्वितीय का दिवस भैयादूज माना गया है। उस दिन से उस द्वितीय का नाम भ्रातृद्वितीया पड़ गया। तभी से सभी स्नेहमयी बहिनें अपने भाइयों को उस दिन स्नेहपूर्वक भोजन कराती हैं और उनसे जो दक्षिणा पाती हैं सो तो पाती ही हैं, यमराज की यातना से भी यमुनाजी की कृपा से बचाती हैं इसलिये उस दिन यमुना का स्नान अवश्य करना चाहिये और यमुना किनारे ही हो सके तो भाई को जिमाना चाहिये। यमुना किनारा न मिल सके तो घर पर ही सही।

आठवें मन्वन्तर में सावर्णि मनु होंगे। उनके निर्मोक, विरजस्क आदि दस पुत्र होंगे। उसमें बलि इन्द्र बनेंगे और सार्वभौम नाम से भगवान का अवतार होगा। वही इन्द्र से स्वर्ग छीन कर बलि को प्रदान करेंगे। इस मन्वन्तर में गालव, दीप्तिमान्, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यश्रृंग और वेदव्यास सप्तर्षि होंगे। इस समय ये लोग अपने-अपने आश्रममण्डल में स्थित हैं। इस मन्वन्तर में देवगुह्य की पत्नी सरस्वती के गर्भ से सार्वभौम नाम से भगवान का अवतार होगा।

नवें मनु का नाम दक्षसावर्णि होगा। ये वरुण के पुत्र हैं। इनके पुत्र भूतकेतु व धूमकेतु होंगे। इसमें अद्भुत नाम के इन्द्र होंगे। द्युतिमान आदि सप्तर्षि होंगें। आयुष्मान् की पत्नी अम्बुधारा के गर्भ से ऋषभ के रूप में भगवान का कलावतार होगा।

दसवें मनु होंगे उपश्लोक के पुत्र ब्रह्मसावर्णि। उस समय इन्द्र होंगे शम्भु। विश्वसृजकी पत्नी विषूचि के गर्भ से भगवान विष्वक्सेन के रूप में अंशावतार ग्रहण करके शम्भु नामक इन्द्र से मित्रता करेंगे। भूरिषेण आदि उनके पुत्र होंगे, हविष्मान, सुकृति, सत्य,जय, मूर्ति आदि सप्तर्षि होंगे।

ग्यारहवें मनु होंगे अत्यन्त संयमी धर्मसावर्णि। इस मन्वन्तर में इन्द्र का नाम होगा- वैधृत। आर्यक की पत्नी वैधृता के गर्भ से धर्मसेतु के नाम से भगवान का अंशावतार होगा। वे ही त्रिलोकी की रक्षा करेंगे। सत्य, धर्म आदि उनके पुत्र होंगे। अरुण आदि सप्तर्षि होंगे।

परीक्षित्, बारहवें मनु का नाम होगा- रुद्रसावर्णि। इस मन्वन्तर में ऋतधामा नामक इन्द्र होंगे। सत्यसहा की पत्नी सुनृता के गर्भ से स्वधामा नाम से भगवान का अंशावतार होगा। उसी रूप में मन्वन्तर का पालन भी करेंगे। देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ इत्यादि उनके पुत्र होंगे। तपोभूति, तपस्वी, आग्नीधक आदि सप्तर्षि होंगे।

तेरहवें मनु होंगे परम जितेन्द्रिय देवसावर्णि। इसमें इन्द्र का नाम होगा दिवस्पति। देवहोत्र की पत्नी बृहती के गर्भ से

योगेश्वर के रूप में भगवान का अंशावतार होगा। उनके पुत्र चित्रसेन, विचित्र इत्यादि होंगे। निर्मोक एवं तत्त्वदर्श आदि सप्तर्षि होंगे।

महाराज, चौदहवें मनु होंगे इन्द्रसावर्णि। इस मन्वन्तर के इन्द्र का नाम होगा- शुचि। उस समय सत्रायण की पत्नी वितला के गर्भ से बृहद्भानु के रूप में भगवान अवतार ग्रहण कर जगत् की रक्षा और कर्मकाण्ड का विस्तार करेंगे। ऊरू, गम्भीर बुद्धि आदि उनके पुत्र होंगे।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, ये चौदह मन्वन्तर भूत, वर्तमान और भविष्य में चलते रहते हैं। इन्हीं के द्वारा एक सहस्र चतुर्युगीवाले कल्प के समय की गणना की जाती है। चतुर्युगीके अन्तमें समयके उलट-फेरसे जब श्रुतियाँ नष्टप्राय हो जाती हैं, तब सप्तर्षिगण अपनी तपस्यासे पुन: उनका साक्षात्कार करते हैं। उन श्रुतियोंसे ही सनातन धर्मकी रक्षा होती है। राजन्, उत्तम के भाई तामस चौथे मनु थे। पृथु, ख्याति, नर, केतु आदि उनके दस पुत्र थे। उस मन्वन्तर में भगवान ने हरिमेधा नामक त्रषि की हरिणी नाम्नी भार्या में अवतार धारण किया, जो हरि इस नाम से जगत् में विख्यात हुए जिन्होंने गज को ग्राह से छुड़ाया।

राजा परीक्षित् ने पूछा- भगवन्, आपके द्वारा वर्णित ये मनु, मनुपुत्र, सप्तर्षि आदि अपने-अपने मन्वन्तर में किसके द्वारा नियुक्त होकर कौन-कौन सा कार्य किया करते हैं- यह आप कृपा करके मुझे बतलाइये।

यम सम्पूर्ण जगत एक नियम में अवस्थित है। सबके कार्य निश्चित हैं, सब कार्यों का कार्यकाल निश्चित है। सबकी आयु, सुख, दुख आदि पहिले से ही लिखे हुए हैं। यदि ऐसा न हो, तो ज्योतिष आदि भविष्य को बतानेवाले सब शास्त्र व्यर्थ हो जायँ। हम अज्ञता के कारण भविष्य की बातों को नहीं जानते इसीलिये अँधेरे में भटकते रहते हैं। जब हमें तीनों कालों का ज्ञान हो जाय तब आश्चर्य करने की कोई बात ही न रह जाय। इन्द्र का कार्य निश्चित है। उनका कार्यकाल निश्चित है। इसी प्रकार सबका पहिले से ही सब निश्चित है। जीव भ्रमवश भटकता है, अज्ञानवश दुखी होता है, इस सृष्टि के रहस्य को भली-भाँति समझ लें हृदय पटल पर इसे अंकित कर लें, तो फिर कुछ चिन्ता की कोई बात नहीं रह जाती। इसीलिये शास्त्रों में बार-बार सृष्टि का उसके नियमों का वर्णन किया जाता है। जिसे जानकर जीव शोक मोह तथा विस्मय आदि से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

शुकदेव बोले- परीक्षित् १) भगवान के अंशावतार अपने-अपने कार्यों को करते हुए जगत् की रक्षा करते हैं। दुष्ट और अधर्मियों को मारकर गौ, ब्राह्मण आदि उत्तम रक्षा करते हैं, भगवान स्वयं महात्मा का रूप धारण करके गूढ़ विद्या का विकास करते हैं, सम्राट रूप से दुष्टों का उद्धार करते हैं। काल रूप से सबको प्रलय की ओर ले जाते हैं। भगवान युग-युगमें सनक आदि सिद्धोंका रूप धारण करके ज्ञानका, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियोंका रूप धारण करके कर्मका और दत्तात्रेय आदि योगेश्वरोंके रूपमें योगका उपदेश करते हैं। २) सप्तर्षिगण प्रलय की बेला में विनष्ट हुए वेदों को अपने तप के द्वारा पुन: प्राप्त करते हैं। ३) मनुगण वेद प्रतिपादित धर्म का पालन करते हुए पृथ्वी की रक्षा करते हैं। ४) मनुपुत्र मन्वन्तरभर प्रजा की रक्षा और धर्म का पालन करते हैं। ५) देवता यज्ञ-भाग ग्रहण करते हैं और ६) इन्द्र त्रैलोक्य-लक्ष्मी का पालन करते हुए वर्षा के द्वारा सब का कल्याण करते हैं। इसीतरह सृष्टिक्रम अनवरत चलता रहता है।

इन्द्र स्वर्ग के राजा होते हैं। वे सभी सुरों के शासक तथा अधिपति होते हैं भगवान की दी हुई त्रिभुवन की लक्ष्मी का वे उपभोग करते हैं। स्वर्ग के अति उत्कृष्ट सुखों को भोगते हुए तीनों लोकों का पालन करते हैं। उसके साथ नित्य देवताओं के पृथक-पृथक गण भी होते हैं। वे भी मन्वन्तर पर्यन्त पंच महा यज्ञादि कर्मों में जिन ऋषि, पितृ, भूत और मनुष्य आदि का भोक्ता रूप से सम्बन्ध है उन सबके साथ यज्ञ का भाग ग्रहण करते हैं। मनुष्य यज्ञ के द्वारा देवताओं का भजन करते

हैं। इससे प्रसन्न हुए देवता गण उनकेसमस्त मनोरथों को पूर्ण करते हैं यों परस्पर के भाव से भावित होकर परम श्रेय के अधिकारी होते हैं। उस मन्वन्तर में होनेवाले सप्तर्षि गण वेदोंका उद्धार करते हैं, शास्त्रों का प्रचार करते हैं, भिन्न-भिन्न रूप रखकर धर्म की संस्थापना करते हैं। जैसे ज्ञान का प्रचार करने के लिये सनकादि सिद्धों का रूप रख लेते हैं और प्रजा को ज्ञानोपदेश करते हैं। कुछ मुनि स्मृतिकार बनकर कर्मकाण्ड का उपदेश करते हैं। याज्ञवल्क्यादि रूपों में स्वयं कर्मकाण्ड का आचरण करते हैं अन्य गृही आदिकों को प्रेरित करते हैं। दत्तात्रेय, कपिल आदि योगेश्वरों का रूप रखकर योगमार्ग का प्रचार करते हैं। नारादि रूप से भक्ति के पांचरात्र आदि शास्त्रों का प्रचार प्रसार करते हैं।

श्रीहरि के ही सब स्वरूप हैं। वे ही स्वयं प्रजापति रूप रखकर अंडज, जरायुज, स्वेदज और उद्भिज रूप में समस्त सृष्टि को उत्पन्न करते हैं। सम्राट बनकर दस्युओं से प्रजा रक्षा करते हैं उन्हें लूट पाट से बचाते हैं। वे ही वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर रूप रखकर सरदी, गर्मी करते हैं प्राणियों की आयु का नाश करके काल रूप रखकर उनका संहार करते हैं। सम्पूर्ण जीव भगवान की नाम रूपात्मिका माया से मोहित होकर कोई कहता है भगवान नहीं है, कोई कहता है अद्वैत हैं, कोई विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि कहकर उनका निरूपण करते हैं। भिन्न-भिन्न शास्त्रों द्वारा भिन्न-भिन्न रूपों में निरन्तर निरूपण किये जाने पर भी वास्तविक रूप से किसी से भी नहीं जाने जाते।

सिद्ध रूप धर करै ज्ञान उपदेश निरन्तर। कर्मकाण्ड विस्तार करैं जगमहँ ह्वै ऋषिवर।।
योगेश्वरको रूप बनावैं ज्ञान सिखावैं। यों सबकूँ दै ज्ञान जगततें अभय बनावैं।।
मन्वन्तर पर्यन्त करैं पालन मनु जगकूँ। सब सप्तर्षि समूह बतावै श्रुतिके मगकूँ।।
पृथ्वी पालन करैं होहिँ जे मनुके वंशज। लेकें हरि अवतार करैं पालन सुरपति अज।।
पावैं सब ही देवगन, भाग यज्ञ अरु हवनमहँ। सुरपति बनि देवेन्द्र हू, पूजित होवे सुरनिमहँ।।

ब्रह्मा के एकदिन में चौदह मन्वन्तर समाप्त हो जाते हैं अर्थात् चौदह मन्वन्तरों का ब्रह्मा का एक दिन होता है। ब्रह्मा का एक दिन कल्प कहलाता है। एक कल्प चार हजार युग का होता है।

बहुत से नास्तिक लोग कहते हैं, कि इस जगत् का कर्ता कोई नहीं है। स्वभाव से ही गुण गुणों में वर्त रहे हैं। जैसे जल के स्वभाव से शीतलता है, रजवीर्य के संयोग से सन्तानोत्पत्ति स्वभाव से ही हो जाती है। प्रकृति नियमों से ही यह संसार चल रहा है। यदि प्रकृति जड़ है तो उसमें संयमित करने की शक्ति नहीं। कोई जड़ यन्त्र चैतन्य के नियन्त्रण के बिना चिरकाल तक मर्यादानुसार चल नहीं सकता। परन्तु हम देखते हैं, संसार किसी एक नियम में आबद्ध यथावत् चल रहा है। ऋतुएँ क्रम से आती हैं, समय पर फल-फूल लगते हैं, सूर्य, चन्द्र अन्य ग्रह, नक्षत्र आदि एक नियम से चलते हैं। इन्हीं सब कारणों से प्रकृति से पुरुषोत्तम की सत्ता सिद्ध होती है। जैसे दिन के पश्चात् जाड़ा। वैसे ही एक मन्वन्तर के अनन्तर दूसरे, दूसरे के अनन्तर तीसरे ऐसे ही कल्प के १४ मन्वन्तर बीते हैं। उनमें वैसे ही एक मनु वैसे ही मनुपुत्र, इन्द्र, देवता, सप्तर्षि आदि स्वर्गलोक तथा महर्लोक में जाकर अधिकार हीन होकर आनन्द करते रहते हैं। दूसरे कल्प में फिर चुनाव में आ गये, तो कोई मनु इन्द्र बन गया कोई इन्द्र मनु हो गया। कोई सप्तर्षि हो गये ऐसे पद बदलते हैं। ब्रह्माजी का पद तक अस्थाई है नाशवान क्षयिष्णु है एक विष्णु पद ही अक्षय है।

परीक्षित्, इस प्रकार कल्प-विकल्प का प्रमाण शास्त्रों में वर्णित है। यह मन्वन्तर जीव के वैराग्य का हेतु है और ईश्वर की नित्यता का ज्ञापक है। महाप्रलय में वही परमेश्वर कालरूप होकर सब जीवों का नाश कर देते हैं। संसारी मनुष्य अपने

बड़े व छोटे का मरना देखने पर भी ईश्वर की माया में लपटकर अपनी मृत्यु का विचार नहीं करते। जिस तरह तालाब का पानी प्रतिदिन सूखता जाता है और मालूम नहीं होता उसी तरह मनुष्य की आयु घटती जाती है, पर वे अपने मरने से निडर रहकर परलोक का सोच नहीं करते। इसलिए मनुष्य को उचित है कि दिन-रात अपना मरना विचारकर कुकर्म न करे और परमेश्वर का ध्यान व स्मरण करता रहे, जिससे परलोक बने। हे राजन् जो लोग इन चौदहों मन्वन्तर की कथा सुनकर प्रात:समय उनका ध्यान करते हैं उनको धर्म व ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रलय- प्रलय का अर्थ है पूरी प्रकृति की रात। इसलिए हमने इस देश में जैसा गणित फैलाया था, अब पश्चिम के वैज्ञानिक और गणितज्ञ भी उसको सम्मान से देखने लगे हैं। क्योंकि पश्चिम में ईसाइयत की धारणा थी कि दुनिया का निर्माण परमात्मा ने किया है। लेकिन वैज्ञानिकों ने खोजा है कि इस जमीन को बने तो कोई चार अरब वर्ष हो चुके हैं। इस जमीन में ऐसे अवशेष मौजूद हैं, जो लाखों साल पहले के प्रमाण देते हैं।

हिंदुओं ने जो गणित का फैलाव किया वह अरबों वर्षों का है और इन अरबों वर्षों को उन्होंने ब्रह्मा का एक दिन कहा है। प्रकृति की शुरूआत सृष्टि और प्रलय इसको उन्होंने ब्रह्मा का दिवस कहा है। एक दिवस परमात्मा का। हमारे लिए अरबों वर्ष परमात्मा के लिए एक दिन। फिर होती है रात, प्रलय में सब खो जाता है, पूरी प्रकृति। आखिर प्रकृति भी थक जाएगी। आप ही नहीं थक जाते दिन भर में ये सब वृक्ष, ये पौधे, ये पहाड़, ये पृथ्वी, ये चाँद-तारे, ये सब भी थक जाएँगे। थकान की ये दृष्टि भारत की बड़ी साफ है। जिस दिन सब चीजें थककर विश्राम में पड़ जाएँगी, उस दिन प्रलय हो जाएगा। सब सो गया, ब्रह्मा की रात शुरू हो गयी। उस दिन भी जो जागता रहता है, वही है वह परमात्मा।

नित्य प्रलय- रोज रात को हम सो जाते हैं तब इसका अनुभव करते हैं। सभी वस्तुएँ क्षण-क्षण में उत्पन्न होती हैं एवं प्रलीन होती हैं। इसका यह परिवर्तन दिखायी नहीं पड़ता। ग्रह, तारे, नक्षत्र और हमारे शरीर से लेकर ब्रह्मादि के शरीर की यही दशा है। हर क्षण जो बदलाव होता है इसे ही क्षणभंगुर कहते हैं।

नैमित्तिक प्रलय- ब्रह्मा का एक दिन पूरा होने पर होता है। प्राणियों का प्रलय होता है, पंचभूतों का नहीं।

महाप्रलय- ब्रह्मा के १०० साल, आयुष्य पूरा होने पर होता है। यह प्राकृत-प्रलय है। सृष्टि में बड़े-बड़े उपद्रव होते हैं। पञ्चभूत का प्रलय होता है। ब्रह्मज्ञान होने पर यह काल की धारा में नहीं है। (अनन्त काल) की इस झलक में मनुष्य जीवन क्षुद्रातिक्षुद्र है। फिरभी यही मनुष्य जीवन में परम पद तक पहुँचने की शक्ति है। यह बात मन्वन्तरों के वर्णन से ध्यान में आती है। बाकी के इस कल्प के आनेवाले मन्वन्तर: सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्म सावर्णि, धर्मसावर्णि, देवसावर्णि, इन्द्रसावर्णि।

८) दैत्यराज बलि की स्वर्ग पर विजय-

दैत्यराज बलि कोपि करि, जीते सगरे देव। तीन लोक का राज्य करि, सेवा उनसे ले।।

शुकदेव बोले - राजन्, देवासुर-संग्राम में इन्द्र ने बलि को मारकर उसकी सारी सम्पत्ति छीन ली। त्रिलोकी पर इन्द्र का साम्राज्य स्थापित हो गया। उस समय भृगुनन्दन शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या के बल से बलि को पुन: जीवित कर दिया। बलि स्वभाव से उत्तम था, कृतज्ञ था। उसने सोचा कि यह जीवन भृगुवंशी ब्राह्मणों की कृपा का फल है अत: उसने अपना तन, मन, धन- सब कुछ उनके चरणों में समर्पित कर दिया। उस समय वह एक सच्चे शिष्य की भूमिका में था।

बलि की भक्तिभरी सेवा से शुक्राचार्य प्रसन्न हो उठे। उन्होंने सोचा बलि को इन्द्र के पद पर स्थायी रूप से प्रतिष्ठित कर

दूँ अत: उन्होंने बलि से **विश्वजित्** नामक एक महान् यज्ञ प्रारम्भ करवा दिया। यज्ञ की समाप्ति पर अग्निकुण्ड से सोने की चद्दर से मढ़ा हुआ एक बड़ा सुन्दर रथ निकला फिर इन्द्र के घोड़ों जैसे हरे रंग के घोड़े और सिंह के चिह्न से युक्त रथ पर लगाने की ध्वजा निकली साथ ही सोने के पत्र से मढ़ा हुआ दिव्य धनुष, कभी भी न खाली होनेवाले दो अक्षय तरकस और दिव्य कवच भी प्रकट हुए। प्रह्लाद जी ने बलि को एक ऐसी पुष्पमाला प्रदान की जो कभी भी कुंभलाती न थी। शुक्राचार्य ने अपने शिष्य को एक शंख दी जिसकी ध्वनि शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण करने में समर्थ थी।

सेवातें सन्तुष्ट शुक्र इक यज्ञ रचायो। नाम विश्वजित विदित वेदविद विप्र करायो।।
पूजित ह्वैके अग्नि दिव्य सुन्दर रथ दीन्हों। द्वै अक्षय तूणीर कवच धनु अर्पण कीन्हों।।

इस प्रकार ब्राह्मणों की कृपा से बलि को युद्ध की सारी सर्वोत्तम सामग्री प्राप्त हो गई। आचार्य-पुत्रों ने उनका स्वस्ति-वाचन किया। बलि ने गुरु शुक्राचार्य के साथ ही सारे ब्राह्मणों के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा की। इसके बाद उन्होंने प्रह्लाद जी से आज्ञा लेकर उनके चरणों में प्रणाम किया। जब अतिरथी बलि ने अस्त्र-शस्त्र से सज्ज होकर दादा की दी हुई माला धारण की तो उनका तेज देखते ही बनता था।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, देवासुर संग्राम में जब देवेन्द्र द्वारा श्रीहीन हुए महाराज बलि प्राणहीन हो गये और शुक्राचार्य ने फिर उन्हें जिला दिया, तो महात्मा बलि, अपने गुरु शुक्राचार्य को सवात्म भाव से अपना सर्वस्व समर्पित करके सब प्रकार से उन्हीं की सेवा सुश्रुषा करने लगे।

गुरु सेवाई अभ्युदय, को कारन बलि जानिकैं। शुक्रहिँ सौंप्यो राज्य तनु, इष्ट देव सम मानिकैं।।

जो गुरु का पूजन करते हैं, वे संसार में सर्वत्र पूजित होते हैं। जो गुरु को सर्वस्व समर्पण कर देते हैं, उन्हें सर्वस्व की प्राप्ति होती है।

आचार्य जी के द्वारा प्रदत्त शुभ मुहूर्त में बलि ने रथ पर आरूढ होकर इन्द्रपुरी अमरावती पर आक्रमण के लिये प्रस्थान किया। उस समय असुर-वीरों की एक विशाल वाहिनी उनका अनुगमन कर रही थी। आसुरी-सेना के प्रस्थान से आकाश और अन्तरिक्ष कांप-सा रहा था।

स्वयं विश्वकर्मा ने विशद योजना के अनुसार उस पूरी का निर्माण किया था। उसका विवरण है कि किस तरह की इन्द्रपुरी है। देवताओंकी राजधानी अमरावतीमें बड़े सुन्दर-सुन्दर नन्दन वन आदि उद्यान और उपवन हैं। उन उद्यानों और उपवनोंमें पक्षियोंके जोड़े चहकते रहते हैं। मधुलोभी भौंरे मतवाले होकर गुनगुनाते रहते हैं। लाल-लाल नये-नये पत्तों, फलों और पुष्पोंसे कल्पवृक्षोंकी शाखाएँ लदी रहती हैं। वहाँके सरोवरोंमें हंस, सारस, चकवे और बतखोंकी भीड़ लगी रहती है। उन्हींमें देवताओंके द्वारा सम्मानित देवाङ्गनाएँ जलक्रीड़ा करती रहती हैं। ज्योतिर्मय आकाशगंगाने खाईकी भाँति अमरावतीको चारों ओरसे घेर रक्खा है। उसके चारों ओर बहुत ऊँचा सोनेका परकोटा बना हुआ है, जिसमें स्थान-स्थानपर बड़ी-बड़ी अटारियाँ बनी हुई हैं। सोनेके किवाड़ द्वार-द्वारपर लगे हुए हैं और स्फटिकमणिके गोपुर (नगरके बाहर फाटक) हैं। उसमें अलग-अलग बड़े-बड़े राजमार्ग हैं। स्वयं विश्वकर्माने ही उस पुरीका निर्माण किया है। सभाके स्थान, खेलके चबूतरे और रथ चलनेके बड़े-बड़े मार्गोंसे वह शोभायमान है। दस करोड़ विमान उसमें सर्वदा विद्यमान रहते हैं और मणियोंके बड़े-बड़े चौराहे एवं हीरे और मूँगेकी वेदियाँ बनी हुई हैं। वहाँकी स्त्रियाँ सर्वदा सोलह वर्षकी-सी रहती हैं, उनका यौवन और सौन्दर्य स्थिर रहता है। वे निर्मल वस्त्र पहनकर अपने रूपकी छटासे इस प्रकार देदीप्यमान होती हैं, जैसे अपनी ज्वालाओंसे अग्नि।

देवाङ्गनाएँ जाती-आती हैं। स्थान-स्थानपर मोतियोंकी झालरोंसे सजाये हुए चँदोवे तने रहते हैं। सोनेकी मणिमय पताकाएँ फहराती रहती हैं। छज्जोंपर अनेकों झंडियाँ लहराती रहती हैं। मोर, कबूतर और भौंरे कलगान करते रहते हैं। देवाङ्गनाओंके मधुर संगीतसे वहाँ सदा ही मंगल छाया रहता है। मृदङ्ग, शंख, नगारे, ढोल, वीणा, वंशी, मँजीरे और ऋष्टियाँ बजती रहती हैं। गन्धर्व बाजोंके साथ गाया करते हैं और अप्सराएँ नाचा करती हैं। इनसे अमरावती इतनी मनोहर जान पड़ती है, मानो उसने अपनी छटासे छटाकी अधिष्ठात्री देवीको भी जीत लिया है। उस पुरीमें अधर्मी, दुष्ट, जीवद्रोही, ठग, मानी, कामी और लोभी नहीं जा सकते। जो इन दोषोंसे रहित हैं,वे ही वहाँ जाते हैं। आसुरोंकी सेनाके स्वामी राज बलिने अपनी बहुत बड़ी सेनासे बाहरकी ओर सब ओरसे अमरावतीको घेर लिया और इन्द्रपत्नियोंके हृदयमें भयका संचार करते हुए उन्होंने शुक्राचार्यजीके दिये हुए महान् शंखको बजाया। उस शंखकी ध्वनि सर्वत्र फैल गयी।

ऐसी इन्द्रपुरी को बलि की सेना ने चारों ओर से घेर लिया। आसुरी सेना का प्रत्येक योद्धा आज इन्द्र को उनके कपट का मजा चखा देने के लिये आतुर था। उस समय बलि ने शुक्राचार्य के द्वारा दी हुई शंख बजाई। शंखध्वनि देवताओं को युद्ध के लिये खुला आमन्त्रण था। उसे सुनकर इन्द्राणी आदि देवांगनाये भयभीत हो उठीं।

यह देखकर कि बलि ने विशाल सेना लेकर अमरावती को चारों ओर से घेर लिया है, इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति से जाकर पूछा- गुरुवर, मेरे पुराने शत्रु बलि ने विशाल तैयारी के साथ स्वर्ग पर आक्रमण किया है। उसके तेज को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोग उसका सामना नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार उनके उत्कर्षशाली होने का कारण क्या है? कैसे यह इस बार इतना शक्तिशाली बन बैठा है? प्रतीत हो रहा है कि वह अपने तेज से संसार को भस्म कर डालेगा?

साजि सेना सुर विजय हेतु नृपवर चलि दीन्हें। सुरपुर घेरयो हृदय रिपुनिके कम्पित कीन्हें।।
सुर समृद्धि अति रम्य हृदय इन्द्रिनि सुखदाई। बन उपवन वर वृक्ष चहूँ दिशि शोभा छाई।।

शुकदेव बोले- राजन्, उस इन्द्र की अमरावती पुरी को असुर सेनानायक महाराज बलि ने बाहर चारों ओर से सेना से घेर लिया। शुक्राचार्यजी ने जो महान शब्द करनेवाला शंख दिया था उसे इन्द्र की स्त्रियों को भयभीत करते हुए बजाया।

इन्द्र की बात सुनकर देवगुरु बृहस्पति ने कहा- इन्द्र मैं बलि के तेजस्वी होने का कारण जानता हूँ। संसार में किसी की सदा एक सी स्थिति नहीं रहती। जैसे रथ का पहिया ऊपर नीचे होता रहता है, उसी प्रकार यह उन्नति अवनति का चक्र निरन्तर घूमता रहता है। आज इनके अभ्युदय का समय है, कभी तुम्हारा भी समय आवेगा तब इनका अध:पतन होगा। जब यह लोग ऐश्वर्य के मद में मदोन्मत्त होकर फिर अपने इन्हीं गुरु का अपमान करेंगे, इन्हें तुच्छ समझकर अपने आपको ही कर्ता-धर्ता मानने लगेंगे, तब ये अपने परिवार और कुटुम्ब के सहित पुन: पाताल के विवर में घुस जायँगे। इस समय इनसे छेड़-छाड़ उचित नहीं।

ब्रह्मवादी भृंगुवंशियों ने अपने शिष्य बलि को महान् तेज से सम्पन्न कर उसे शक्तियों का सागर बना दिया है। उसने अपने गुरु की सब प्रकार से सेवा की है। सर्वशक्तिशाली भगवान को छोड़कर तुम अथवा तुम्हारे जैसा और कोई भी बलि के सामने क्षण भर के लिये भी नहीं ठहर सकता अत: तुम लोग स्वर्ग को छोड़कर कहीं छिप जाओ और उस समय की प्रतीक्षा करो, जब तुम्हारे शत्रु का भाग्यचक्र पलटे। सम्प्रति ब्राह्मणों के तेज से बलि की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई है। जब यह फिर उन्हीं ब्राह्मणों का तिरस्कार करेगा, तब अपने परिजन-परिवार के साथ पतन को प्राप्त करेगा। गुरुदेव की बात सुनकर, उनकी सलाह शिरोधार्य कर देवों के साथ इन्द्र, स्वर्ग को खाली कर इधर-उधर जाकर

छिप गये। वहाँ भोजन को अन्न नहीं, पीने को जल नहीं, दिन को चैन नहीं, रात में नींद नहीं आती थी। बिना रक्त बहाये, बिना अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग किये बलि को स्वर्ग का आधिपत्य प्राप्त हो गया फिर तो वे अपने गुरु की कृपा से त्रिलोकी के शासक बन बैठे। इसके बाद भृगुवंशियों ने अपने प्रिय शिष्य बलि की, इन्द्र-पद पर स्थिरता के लिये सौ अश्वमेध यज्ञ करवाये। निन्यानबे अश्वमेध-यज्ञ तो निर्विघ्न पूरे हो गये किन्तु जब बलि सौवाँ अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे तभी भगवान विष्णु ने वामन अवतार लेकर बलि से तीन पग पृथ्वी मांग कर त्रिलोकी नाप ली थी और स्वर्ग इन्द्र को प्रदान कर दिया था। बलि अपने गुरुदेव से बोले- जिन पर गुरुदेव का अनुग्रह है, उनके लिये संसार में असम्भव कुछ भी नहीं है। गुरुदेव आप सब कुछ करने में समर्थ है।

देवताओंके छिप जानेपर विरोचननन्दन बलिने अमरावतीपुरीपर अपना अधिकार कर लिया और फिर तीनों लोकोंको जीत लिया। जब बलि विश्वविजयी हो गये, तब शिष्यप्रेमी भृगुवंशियोंने अपने अनुगत शिष्यसे सौ अश्वमेध यज्ञ करवाये। शुक्राचार्य की आज्ञा से १०० अश्वमेध यज्ञों की दीक्षा ली। शिष्य वत्सल शुक्राचार्य अपने परिवारवाले ब्राह्मणों के साथ महाराज बलि को यज्ञ कराने लगे। बलि भी बड़े उदाराशय और दानी थे। वे भी यथेष्ट द्रव्य व्यय करके बड़े ठाट-बाट से यज्ञ करने ले। चारों ओर उनके यज्ञों की ख्याति हो गयी। इच्छानुसार दान पाकर ब्राह्मण भिक्षुक उन्हें भाँति-भाँति के आशीर्वाद देने लगे। तीनों लोकों में वे चन्द्रमा के समान सुशोभित हुए। दसों दिशाओं में उनकी कीर्ति फैल गई। त्रैलोक्य का ऐश्वर्य पाकर वे अपने को कृत-कृत्य मानने लगे।

गुरु आयसु सिर धारि अमर सब छाँड़ि स्वर्ग सुख। कामरूप धरि फिरै अवनि पै सहैं विविध दुख॥
सुरपुर सूनों समुझि असुर अधिकार जमायो। बलिकूँ शुक्राचार्य इन्द्र पद पै बैठायो॥
अश्वमेध शत बलि करै, इन्द्रासन ध्रुव होइ तब। भृगुवंशी द्विज सोचि जिह, करवावैं मिलि यज्ञ सब॥

अश्वमेध यज्ञों के सम्पादन से बलि की कीर्तिपताका चारों ओर फहराने लगी। वे चन्द्रमा की तरह शोभायमान हो उठे। बलि ब्राह्मणों की कृपा से प्राप्त स्वर्ग की लक्ष्मी का बड़ी उदारता से उपभोग करते थे।

सौ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण करनेवाला व्यक्ति स्वर्ग का अधिपति इन्द्र बनता है। किन्तु भृगुवंशी ब्राह्मणों की कृपा से बलि पहले स्वर्ग के इन्द्र बने और फिर सौ अश्वमेध यज्ञ किये।

नहिँ प्रवेश पापी करहिँ, पुण्य प्राप्त जहँ भोग सब। गुरु आशिषतें सुरपुरी, घेरी असुरनि आइ अब॥

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार जब स्वार्थ के मर्म को भली-भाँति जाननेवाले देवगुरु बृहस्पति ने उन्हें सम्मति दी तो उसे मानकर देवतागण स्वर्ग को छोड़कर चले गये। वे सब इच्छानुसार रूप बनानेवाले थे।

सुरपति गुरु ढिँग जाइ कहैं गुरु असुर बढ़ै कस। ओज तेज उत्साह बढ़्यौ च्यौं असुरन बल अस॥
बोले सुरगुरु करी कृपा गुरुने असुरनि पै। हारै हरि बिनु नहीं अबहिँ ये स्वर्ग अवनि पै॥
तातें तजिके स्वर्गकूँ, करो प्रतिक्षा कालकी। मेटि सकै नहिँ कबहुँ नर, लिखी रेख जो भालकी॥

९) देवमाता अदिति का पयोव्रत और भगवान का प्रकट होकर अदिति को वर देना -

शुकदेव बोले- राजन्, दैत्यों ने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। देवता अपना प्राण बचाने के लिये भाग कर जहाँ-तहाँ छिप गये। देवता लोग पर्वत की गुफाओं में, जंगलों में, नदियों के कछार खादर में पशु-पक्षी बनकर गुजारा करने लगे। उस समय देव-माता अदिति सन्तप्त हो उठीं। उनकी स्थिति अनाथ जैसी हो गई थी। पुत्र के जीवन में संकट आता है, तो

सबसे ज्यादा कष्ट होता है माँ को, माँ से बढ़कर और किसी को कष्ट नहीं होता। माँ का पुत्र के प्रति जो स्नेह होता है, वो किसी का किसी के प्रति नहीं हो सकता।

अम्ब अदिति देवन की माता, कश्यप पत्नी जगत विख्याता,
सुनाया पति से दु:खड़ा रोय, नाथ अब धीरज कैसे होय, गया क्या भाग्य हमारा सोय।।
दैत्यों ने देवेन्द्र से राज्य लिया सब छीन, पुत्र सहित प्रभु आपकी अदिति भई श्रीहीन।
ऐसी करिये कृपा बने सब मेरी बिगड़ी बात।।

उसी समय एक दिन कश्यपजी उनके आश्रम में आये। कश्यप जी बराबर विचरण करते रहते थे। वे किसी एक आश्रम में बँध कर नहीं रहते थे। उन्होंने देखा कि देव-माता अदिति का आश्रम उत्सव और आनन्द से रहित है। वह उन्हें उदास और सूना-सा लगा। अदिति ने पतिदेव को अपने आश्रम में आया हुआ देखा। वे उनके स्वागत में उठ खड़ी हुईं। आसन देकर सादर बैठाया। उनका चरण धोकर आचमन कराया। पीने के लिये पानी दिया। आराम से बैठ जाने के बाद कश्यप जी ने पत्नी को चिन्तामग्न देखकर पूछा- प्रिये, संभव है, मेरी अनुपस्थिति में तुम्हारा चित्त उद्विग्न रहा होगा। उस समय कोई अतिथि आया हो और गृह-कार्य में व्यग्र रहने के कारण तुमने उसका सत्कार न किया हो। जिस घर में आगत अतिथि जल से भी सत्कृत नहीं किये जाते, वह घर अवश्य ही गीदड़ के घर के समान है।

अमर अवनि पै फिरै कपट तनु धरिकैं इत उत। अदिति सुतनि दुरदशा समुझि अतिदु:ख भयोचित।।
आये कश्यप जबहिँ लखी घर अधिक उदासी। पत्नी तनु अति छीन मलिन जनु भूखी प्यासी।।
मुनि पूछी कुशलता जब, अदिति दुखित बोली बचन। इन दैत्यनि तव अमर सुत, करे पदच्युत तपोधन।।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार जब अदिति के पुत्र स्वर्ग के ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो गये और वे स्वर्ग से अदृश्य होकर कही छिप गये, तो इससे देवताओं की माता अदिति अनाथों की भाँति अत्यन्त दु:ख करने लगी।

जिसके घर से अतिथि निराश होकर लौटता है, वह उसे अपना पाप प्रदान कर बदले में उसका पुण्य लेकर चला जाता है। कहीं तुम्हारे अतिथि-सत्कार आदि धार्मिक कृत्यों में कमी तो नहीं पड़ी? क्या अग्निहोत्र की क्रिया में कोई त्रुटि हो गई? कहीं तुमने ब्राह्मण के आदर-सत्कार में कोई कमी तो नहीं की? जब अदिति ने इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दिया तो कश्यप जी ने फिर पूछा- तुम्हारे पुत्र तो कुशल से हैं न? देवि, तुम्हारा मन क्यों अस्वस्थ दिखलाई पड़ रहा है?

सभी किसी-न-किसी की संतानें हैं, किन्तु मेरी सन्तान सुखी रहें। माता की हार्दिक इच्छा यही रहती हैं। अपने आपको दुखी करके भी माँ सन्तान को सुखी करना चाहती है।

पतिदेव के प्रश्नों को सुनकर अदिति ने बड़ी विनम्रता से कहा- स्वामिन्, सब कुछ ठीक-ठाक हैं, सही ढंग से सम्पादित है। जब आप जैसे धर्मात्मा हम को धर्म का उपदेश देते रहते हैं, तब भला हमारे धर्म-पालन में बाधा कैसे आ सकती है? प्रभो, आप की कृपा से मैंने अग्निहोत्र में कोई गड़बड़ी नहीं की। अतिथि, सेवक, भिक्षुक और अन्य याचकों का भी तिरस्कार नहीं किया है। यह सारी-की-सारी प्रजा आपकी है फिर भी ईश्वर का नियम है कि जो उसका भजन करता है, उसके प्रति वह पक्षपात करता है। मैं आप की दासी हूँ। हमें कष्ट केवल इस बात का है कि दैत्यों ने हमारे पुत्रों का अधिकार और स्थान छीन लिया है इसलिये मैं इस समय दु:ख के अपार सागर में निमग्न हो रही हूँ। आप मुझे कष्ट के अपार सागर से उबार लें। हमारे पुत्रों को पुन: उनका स्थान मिल जाय, ऐसी कृपा आप कर दीजिये।

शुकदेव बोले- राजन्, पत्नी की प्रार्थना सुनकर मुस्कराते हुए कश्यपजी ने कहा- भगवान की माया अतिशय प्रबल है। उसने सारे जगत् को स्नेहरूपी रस्सी से बाँधा रक्खा है। कहाँ यह पाञ्चभौतिक जगत् और कहाँ प्रकृति से परे आत्मा। इस नश्वर संसार में कौन किसका पति, पुत्र, भाई और बन्धु है? वस्तुत: मोह ही प्राणी को नचा रहा है, वही आसक्ति का कारण है। यह भगवान की कैसी विचित्र माया है क्षण भर के संग होने से जीव कहने लगता है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा भाई है। यह मेरी पत्नी है। यह मेरा सगा है, यह मेरा सम्बन्धी है, यह शत्रु है, यह मित्र है। वास्तव में कौन किसका शत्रु, कौन किसका मित्र। पथिकों का प्याऊ पर एकत्रित हो जाना है। धूप में कुछ देर चले साथ ही वृक्ष की छाया में बैठ गये। न जाने अनन्त जन्मों में कितनी बार पत्नी माता बनी होगी माता बहिन, पुत्र पिता, पिता भाई यह प्रवाह तो अनादि हैं। फिर भी जीव ममत्व करता है। सभी किसी-न-किसी सम्बन्ध में आबद्ध हैं। सर्व भूतात्मा प्रभु जो इन नाना रूपों में दिखाई दे रहे हैं उनका इन पदार्थों के साथ सम्बन्ध ही क्या?

मम सुत यश ऐश्वर्यहीन असुरनिने कीये। दुष्ट दैत्य मिलि दुसह दु:ख देवनिकूँ दीये।।
सुरपुरकूँ सुर त्यागि फिरें सब मारे मारे। साधारन जन सरिस भूमि पै रहें बिचारे।।
सब समर्थ सर्वज्ञ प्रभु, आप प्रजापति महामुनि। नाथ कृपा ऐसी करैं, पावैं सुत ऐश्वर्य पुनि।।

फिर भी प्रिये, तुम डरो मत। तुम भगवान जनार्दन की उपासना करो। वे सब के हृदय में विराजमान हैं और सारे संसार के स्वामी हैं। वे दीनों-दुखियों पर अनुकम्पा करनेवाले हैं अत: तुम्हारा कल्याण अवश्य करेंगे। मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि भगवान की भक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती। इसके सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुम इतनी विदुषी होकर ऐसी भूली भूली बातें क्यों कर रही हो? हरि तो वांछा कल्पतरु हैं, वे तो समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं, उनके चरणों की छाया में रहने से कोई भी कामना शेष नहीं रह जाती। सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है और किसी की भक्ति करें तो सम्भव है उसका फल विपरीत भी हो जाय, किन्तु भगवान की भक्ति तो अमोघ है। वह कभी व्यर्थ हो ही नहीं सकती।

प्रिया बचन सुनि भये चकित कश्यप मुनि ज्ञानी। पुत्र शोकतें दुखित अदितिकी पीड़ा जानी।।
सोचें माया प्रबल विष्णुकी विश्व नचावत। मिथ्या मति चित धारि नारि पति पुत्र बतावत।।
सोच समुझि बोले वचन, कृष्ण कृपा सब करिगे। सेवातें सन्तुष्ट ह्वै, हरि हिय गत दुख हरिंगे।।

अपनी पत्नी अदिति को उपदेश देते हुए भगवान कश्यप कह रहे हैं- प्रिये, तुम उन भगवान वासुदेव जगद्गुरु जनार्दन की उपासना करो जो सब भूतों के अन्त:करण में विराजमान है, वे तुम्हारी कामना को अवश्य पूर्ण करेंगे क्योंकि वे दीनवत्सल हैं। एकमात्र भगवान की भक्ति ही अमोघ कही जाती है किसी दूसरे की नहीं ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है।

कह कश्यप सुनु दक्ष कुमारी, काल चक्र दुरतिक्रम भारी।
धरो मन धीरज ऐसा जान, सभी दिन होत न एक समान, भजन कर हरि का हो कल्याण।।

भगवान को भूलना, भगवत् विस्मृति ही पाप है। पाप तभी होता है जब प्राणी भगवान को भूल जाता है। अगर प्रभु याद रहेंगे तो कभी पाप होगा ही नहीं। भगवान को भूलना ही दु:ख का मूल कारण है। अदिति तुम और तुम्हारे बच्चे भगवान को भूल गये होंगे इसलिये तुम दु:खी हुई हो। तो मेरे स्वामी ये दु:ख अब दूर कैसे होगा? बोले प्रिये अब समस्त प्राणियों के हृदय में विराजमान भक्तों के दु:ख को मिटानेवाले भक्तभयहारी जगद्गुरु भगवानवासुदेव की आराधना करो, वे बड़े दीनदयालु हैं, शीघ्र ही तुम्हारा दु:ख दूर करेंगे। इसके सिवा दूसरा कोई चारा नहीं हैं, उपाय नहीं है।

कश्यपजी अदिति को वरदान दे रहे हैं कि तेरे पुत्र का पुत्र विषयों से अलम्पट होगा। वह सुन्दर स्वभाववाला, सम्पूर्ण गुणों का सागर, दूसरों के सुख में सुखी तथा दुख में दुखी होनेवाला और अजात शत्रु होगा। वह ग्रीष्मऋतु के ताप को हरनेवाले चन्द्रमा के समान जगत् के शोक को हरनेवाला होगा।

अदिति कहे हे देव। कृपा करि कष्ट मिटाओ। व्रत मन इच्छा पूर्ण करन हित तुरत बताओ।।
कश्यप बोले- करो पयोव्रत प्रभु आराधौ। हरिकूँ हियमहँ धारि नियम ब्रतके सब साधौ।।
अति उत्कण्ठित अदिति ह्वै, बोली-नाथ, बताइ दैं। कहा करूँ त्यागू कहा, विधि विधान समुझाइ दें।।

कश्यपजी अपनी पत्नी अदिति को बोले- प्रिये, फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा से बारह दिन पर्यंत परम भक्ति भाव से समन्वित होकर कमल नयन भगवान की पूजन करना यही पयोव्रत कहलाता है।

पति के आश्वासन को सुनकर अदिति ने कहा- भगवन्, मैं जगदीश्वर भगवान की आराधना किस प्रकार करूँ, जिससे वे सत्यसंकल्प प्रभु मेरा मनोरथ पूर्ण कर दें। इस पर कश्यप ने कहा- देवि, ब्रह्माजी ने मुझे भगवान को प्रसन्न करने के लिये जिस व्रत का उपदेश किया था, वही मैं तुम्हें बतला रहा हूँ। इस व्रत का नाम है- पयोव्रत। फाल्गुन के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से बारह दिन तक केवल दूध पीकर भगवान कमलनयन की पूजा करे। आराधक अमावस्या के दिन यदि संभव हो तो सूअरों के द्वारा खोदी गई मिट्टी शरीर पर मल कर नदी में मन्त्र बोलकर स्नान करे। प्रतिपद के दिन संभव हो तो सूअरों के द्वारा खोदी गई मिट्टी शरीर पर मलकर नदी में मन्त्र बोलकर स्नान करे। प्रतिपद् के दिन नदी आदि में स्नान कर भगवान का शोडषोपचार पूजन करे। द्वादशाक्षर मन्त्र ॐ नमो भगवते वासुदेवाय से भी भगवान के पूजन का विधान है। यदि सामर्थ्य हो तो दूध में पकाये हुए तथा घृत और शर्करा मिश्रित शालि के चावल की खीर का भोग लगावे तथा यथाशक्ति उसी से अग्नि में हवन करे और मन्त्र का १०८ बार जप करे। भोग लगाये गये नैवेद्य को लोगों में वितरित कर दे या स्वयं पा ले। आचमन और पूजा के बाद ताम्बूल निवेदन कर प्रदक्षिणा और दण्डवत प्रणाम करे। इसके बाद निर्माल्य को सिर से लगाकर देवता का विसर्जन करे। कम-से-कम दो ब्राह्मणों को खीर का भोजन कराकर दक्षिणा दे फिर उनकी आज्ञा लेकर अपने इष्टमित्रों के साथ बचे हुए पायसान्न को प्रसन्न हो ग्रहण करे। प्रतिदिन इसी नियम से पूजन करते हुए ब्रह्मचर्य से रहे, भूतल पर शयन और त्रिकाल स्नान करे।

बोले कश्यप है जीवन जा जगमहँ छिनको। हरि आराधन करो पयोव्रत बारह दिनको।।
केवल पीके दूध करो पूजन आराधन। इच्छा पूरन हेतु यही सर्वोत्तम साधन।।
वित्त शाठ्यकूँ त्यागिके, ब्रत श्रद्धातें जे करहिँ। सिद्ध करै हरि काज सब, अवसि दुःख दारिद हरहिँ।।

अन्त में त्रयोदशी के दिन व्रत समाप्त कर उद्यापन करे। उस दिन पहले भगवान् को पंचामृत से स्नान आदि कराकर उनका षोडशोपचार पूजन करे फिर प्रतिदिन की भाँति ब्राह्मणों को भोजन करा कर यथायोग्य दक्षिणा देनी चाहिये। अपने आप आये हुए चाण्डाल तथा लूले, लंगड़े, अन्धे लोगों को भी भोजन कराना चाहिये। देवि, तुम श्रद्धा और भक्ति के साथ इस व्रत का अनुष्ठान करो। इस व्रत के प्रभाव से प्रसन्न होकर भगवान् तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे। यथार्थ में तो वही सच्चा व्रत है जिसके करने से भगवान वासुदेव प्रसन्न हो जायँ। भगवतप्रीत्यर्थ किया हुआ दान ही सच्चा दान है। प्रभु प्रसन्नतीर्थ किया हुआ नियम ही यथार्थ नियम है। जिससे तपोमूर्ति प्रभु प्रसन्न हो वही वास्तविक तप है। यह व्रत भगवानको सन्तुष्ट करनेवाला है इसलिये इसका नाम सर्वयज्ञ और सर्वव्रत है। यह समस्त तपस्याओंका सार और मुख दान है।

हरि पूजन अरु हवन विप्र भोजन बारह दिन। कथा कीर्तन करैं नृत्य वादन अरु गायन।।
जा विधितें जे भक्ति सहित श्रीहरिकूँ सेवैं। प्रभु प्रसन्न ह्वै इष्ट वस्तु निश्चय करि देवैं।।
अदिति सुने व्रतके नियम, अति प्रसन्न मनमहँ भई। सर्वयज्ञमय पयोव्रत, विधितें करिबे लगि गई।।

शुकदेवजी कहते हैं- राजन्, अपने पति महर्षि कश्यप का उपदेश प्राप्त करके अदिति ने बड़ी सावधानी से बारह दिन तक पयोव्रत का अनुष्ठान किया।

हरि सुमिरन जग जीवहित सकल सुमंगल मूल, भूले प्रभु के पदकमल सकल विश्व प्रतिकूल।
पय व्रत सहित करो हरि सेवा मिटे सकल उत्पात। हरि ने बलि छालिबे के काज बनाय लियो वामन अंगुल गात।।
किया वह पयव्रत सहित विधान प्रीति वात्सल्य भाव युत जान। प्रगट भये चक्रपाणि भगवान।।

अनुष्ठान की बेला में अदिति ने अपनी इन्द्रियों को वश में करके मन को निश्चलरूप से भगवान में संलग्न कर दिया। व्रत पूर्ण हो जाने पर भगवान उसके सामने प्रकट हो गये। हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म विराजमान थे। भगवान को देखते ही अदिति हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई।

शुकदेव बोले- राजन्, पयोव्रत के प्रभाव से अदिति के सम्मुख भगवान आदि पुरुष श्रीहरि प्रादुर्भूत हुए। वे पीताम्बर पहिन चतुर्भुज थे। उनमें शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये थे। उन्हें अपने नेत्रों के सम्मुख प्रत्यक्ष निहारकर आदर के साथ माता सहसा खड़ी हो गई। फिर प्रेम में विह्वल होकर पृथ्वी पर पड़कर भगवान को दण्ड प्रणाम किया।

निरखि अदिति व्रत नियम भये अति तुष्ट गदाधर। भये प्रकट अखिलेश चतुर्भुज विष्णु मनोहर।।
सम्मुख श्रीपति लखे प्रेममहँ विह्वल माता। परी दण्डवत भूमि निरखि हरि भवभय त्राता।।
अति उत्कण्ठित भरित हिय, लज्जातैं पुनि झकि गई। विनय करन इच्छा भई, गद्गद् वानी रुकि गई।।

उस समय उसके मन में श्रद्धा की गंगा उमड़ रही थी। प्रेम विह्वल हो उसने भूतल पर लोटकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया फिर उठकर, हाथ जोड़ भगवान की स्तुति करने की चेष्टा की किन्तु उसकी आँखों में प्रेम के अश्रु उमड़ रहे थे। वाणी गद्गद् हो उठी थी। सारा शरीर रोमांच से भर गया था। निष्ठा में ताकत है। विश्वास में प्रभु का वास है। आनन्दोल्लास के कारण उसका शरीर कम्पित हो रहा था अत: थोड़ी देर तक वह भगवान को निर्निमेष दृष्टि से निहारती रही फिर किसी-किसी तरह स्तुति प्रारम्भ की- भगवन्, आप यज्ञ के स्वामी हैं। यज्ञ के भोक्ता भी आप ही हैं। अच्युत, आप के चरणकमलों का आश्रय लेकर प्राणी भव-सागर को पार कर जाते हैं। आप के यश-कीर्तन का श्रवण भी संसार से तारनेवाला है। आप के नामों के श्रवणमात्र से ही कल्याण हो जाता है। आदिदेव, जो आप की शरण में जाता है, उसकी सारी विपत्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं वह उन्नति का भागी बनता है। भगवन्, आप दीनों के स्वामी हैं। आप हमारा कल्याण करने की कृपा करें।

प्रभो, आप के प्रसन्न होते ही प्राणी सुख और ज्ञान का सागर बन जाता है। शत्रुओं पर विजय दिला देना तो आपके लिये मामूली बात है। सम्प्रति मेरे ऊपर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा है। मैं बड़े कष्ट में हूँ आप मेरी रक्षा करें।

पुनि सुरमातु सम्हारि, अपनपो बोली बानी। हे अनादि, अखिले, अखिलपति, इच्छादानी।।
हे सुररक्षक देव, विष्णु अज भंजन खलदल। हे यज्ञेश्वर, यज्ञरूप, शरणागतवत्सल।।
निरखैं कृपा कटाक्षतें, नासैं तिनकी सब व्यथा। सिद्ध मनोरथ करैं पुनि, शत्रु विजयकी कथा।।

भगवान ने अदिति की प्रार्थना सुनी। वे उसके पयोव्रत से प्रसन्न थे। उसकी भक्ति-भावना से सन्तुष्ट थे अत: भगवान बोले-

देवि, मैं तुम्हारे अभिप्राय को जानता हूँ। तुम्हारी इच्छा है- असुर संग्राम में मारे जाँय। उनकी स्त्रियाँ विधवा बने और जैसे तुम्हारी बहुएँ रो रही हैं, वैसे ही दानवों-दैत्यों की बहुएँ रोयें। दैत्य-दानव स्वर्ग से निकाले जाँय और तुम्हारे पुत्र-पौत्रादि स्वर्ग पर पुन: प्रतिष्ठित हो जायें लेकिन इस समय यह बात असम्भव है। राजा बलि बड़ा प्रतापी है, ब्राह्मणों का परम भक्त है। ब्राह्मणों का उस पर विशेष अनुग्रह है। जो कोई गौ, ब्राह्मण और गुरु की सेवा करता है उसका बल बढ़ जाता है। भृगुवंशियों ने उसे सबल बना रक्खा है, अनन्त तेज से सम्पन्न बना रक्खा है अत: उसपर आक्रमण करना कल्याणकारी न होगा।

प्रभु कह मैं जानेऊ तेरे मन की चाहो सर्वनाश दैत्यन की।
देवता करे अकंटक राज किन्तु नहीं बल से सुधरे काज।। अजय बन बैठा देवे समाज।।

भगवान की बात सुनकर एक क्षण के लिये सन्न हो गई अदिति। वह कहने ही जा रही थी कि- नाथ, तब क्या मेरा यह पयोव्रत निरर्थक सिद्ध हो गया? किन्तु अभी वह कुछ कह न पाई थी कि भगवान ने कहा- देवि, यद्यपि ऐसी बात है फिर भी कुछ-न-कुछ उपाय सोचूँगा, क्योंकि मैं तुम्हारी आराधना से पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। मेरा अर्चन-पूजन कभी निष्फल नहीं होगा, आराधक को उसकी श्रद्धा के अनुसार फल अवश्य प्राप्त होता है।

तुमने अपने पुत्रों की रक्षा के लिये ही विधिपूर्वक पयोव्रत के विधान से मेरी आराधना की है अत: मैं अंशरूप से कश्यप के वीर्य में प्रवेश करूँगा और तुम्हारा पुत्र बनकर तुम्हारी सन्तति की रक्षा करूंगा। तुम मेरे इस रूप का ध्यान करती हुई अपने निष्पाप पति की आराधना-सेवा करना। देवताओं का रहस्य जितना ही गुप्त रक्खा जाता है, उतना ही सफल होता है। पुण्य कार्यों को भी अपने मुखों से स्वयं नहीं कहना चाहिये। अपने कर्मों की प्रशंसा स्वयं नहीं करनी चाहिये। जो अपनी प्रशंसा अपने मुख से करता है, वह जीवित ही मृतक के समान है।

भगवान ने युक्ति बनाई की सीधे-सीधे बलि से राज्य नहीं छीना जा सकता फिर छल से, याचना से ही स्वर्ग का राज्य प्राप्त होगा और अदिति पुत्रों को दूँगा। सामर्थ्यवान को भी कभी-कभी याचना करनी पड़ती है। कृष्ण इतना सामर्थ्य होते हुए भी पाण्डवोंका राज्य अपनी कृपा से नहीं दिला सके। पाण्डवोंको अपना अधिकार दुर्योधन से महाभारत करले लेना पड़ा। इस प्रकार मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा। इतना कहकर अदिति के देखते-ही-देखते भगवान् अन्तर्धान हो गये।

इस समय ऐसा असम्भव है बल वीर्य से असुर इस समय जीते नहीं जा सकते, क्योंकि ईश्वर और ब्राह्मण उनके अनुकूल हैं। दैत्यों का समय अनुकूल है, इस समय बल से काम नहीं होगा। दैत्यों के राजा बड़े धर्मात्मा है। जब दैत्यों को सम्पत्ति मिली है तीन लोक का उनके यहां यज्ञ हो रहा है, धर्म-कर्म हो रहा है, धर्म भी कितना बड़ा, बलि ने सौ अश्वमेघ यज्ञ का संकल्प किया है, दैत्य राज बलि का निन्यानवे यज्ञ हो चुके हैं, सौवाँ यज्ञ चल रहा है।

हँसि हरि बोले मातृ बात तव हियकी जानी। कीन्हें सुर श्रीहीन बढ़े दिति सुत अभिमानी।।
स्वर्ग हीन सुत भये विजय चाहो तुम तिनकी। मिलै स्वर्ग ऐश्वर्य वृद्धि होवे देवनिकी।।
यद्यपि असुर अजेय है, गुरु सेवामहँ निरत सब। होहि न निष्फल मम भजन, तदपि करहु कछु यत्न अब।।
वामन रूप पुत्र बनि तेरो, साजूँ काज सकल सुर केरो।।

वामन अंगुल का छोटा सा तेरा पुत्र बनूँगा और तेरा काम बना दूँगा। अदिति, तुमने पयोव्रत के द्वारा अपने पुत्रों की रक्षा के निमित्त मेरी पूजा की है। अत: मैं मरीचिनन्दन कश्यपजी के वीर्य में स्थित होकर अपने अंश रूप से तुम्हारा पुत्र बनकर तुम्हारे पुत्रों का रक्षक होऊँगा। संसार में सबसे हलका भिक्षुक है। लोग तो कहते हैं तृण सबसे हलका है। किन्तु तृण से भी

हलका भिक्षुक है, जिसे वायु भी इस भय से नहीं उड़ाती कि यह कहीं मुझसे भी न माँग बैठे। मेरे भी सम्मुख हाथ न पसार दे। देवि, जिसने किसी के सम्मुख हाथ पसारा उसे तुम जीवित मत समझो वह तो मृत तुल्य है। सबसे छोटा है।

भगवान मेरी कोख से पैदा होंगे- यह बात जानकर अदिति की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। भगवान के आदेशानुसार वह अपने पति की निष्ठा के साथ सेवा-शुश्रूषा करने लगी। यद्यपि उसने इस बात की चर्चा कश्यप से भी नहीं की थी किन्तु अपने समाधि-बल से उन्होंने सारी बात जान ली। जब उन्हें यह पता चल गया कि भगवान का अंश मेरे अन्दर प्रविष्ट हो गया है तब उन्होंने समाहित चित्त से अपनी तपस्या के द्वारा चिर-सञ्चित वीर्य का अदिति के गर्भ में आधान किया।

समय पाय प्रभु आय के कियो गर्भ में वास। तेज दुराये ना दूरे बाहर प्रगट प्रकाश।।
मानो दुःख की रात बीत गई सुखमय हुआ प्रभात।। भाद्र शुक्ल तिथि द्वादशी अभिजित नखत अनूप।
सबके देखत हरि धरे वामन वटुक स्वरूप। श्यामल गात कमल लोचन अरुण चरण जलजात।।

जब ब्रह्माजी को अदिति के गर्भ में भगवान के आने की बात विदित हुई तो उन्होंने अदिति के पास आकर गर्भस्थ भगवान की स्तुति करते हुए कहा- प्रभो, आप ही संसार के आदि, मध्य और अन्त हैं। आप ही इस सृष्टि के परमाश्रय हैं। आप में जन्मादि नहीं है, फिर भी प्रयोजनवश आप जन्मादि धारण करते हैं। आप स्वर्ग से च्युत देवों को पुनः उनके स्थान में स्थापित करने की कृपा करें।

कश्यप तपमय वीर्य माहिँ हौं होहुँ अवस्थित। पति परमेश्वर समुझि करो सेवा सब समुचित।।
काहूतें कहियो न जिह, यों मोतें प्रभु कहि गये। यों दैकें वरदान सिख, श्रीहरि अन्तरहित भये।।

१०) वामन भगवान का अवतार -

अदिति गर्भ में कछुक दिवसमहँ हरि अज आये। दम्पति उर आनन्द भयो सुर सिद्ध सिहाये।।
जानि गर्भगत विष्णु आइ विधि विनती कीन्हीं। शुभ मुहूर्त शुभ लग्न, स्वतः सब शिव करि दीन्हीं।।
भादौ शुक्ला द्वादशी, अभिजित युत अति दिन परम। अज अविनाशी अदिति घर, लीयो वामन बनि जनम।।

शुकदेव बोले- सुनो परीक्षित, जब ब्रह्माजी गर्भगत वामन भगवान के कर्म और वीर्य की स्तुति कर चुके, तो जन्म मृत्यु से रहित वे कमल नयन भगवान अपने चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए तथा पीताम्बर को धारण किये हुए अदिति के गर्भ में प्रादुर्भूत हुए।

छोटे बनि याचक भये, तीन लोक के नाथ। बलि के सम्मुख जाय कर, फैलाये निज हाथ।।

परीक्षित, जिस समय भगवान ने जन्म ग्रहण किया उस समय चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र पर थे। भाद्रपद मास का शुक्ल पक्ष था। श्रवण-नक्षत्र से युक्त द्वादशी तिथि थी। अभिजित मुहूर्त था। सभी नक्षत्र और ग्रह-गण अनुकूल थे। राजन्, भगवान के जन्मवाली द्वादशी तिथि को विजया (वामन) द्वादशी कहते हैं। जन्म की बेला में सूर्य आकाश-मण्डल के मध्यभाग में स्थित थे। उस समय सारी दिशाएँ प्रसन्न हो उठीं। जल निर्मल हो गये। सारे प्राणियों के मन में प्रसन्नता का संचार हो गया। सभी ऋतुओं के पुष्प एक साथ विकसित हो गये। चारों ओर उल्लास का वातावरण था। आकाश में नगाड़े बज रहे थे, अप्सराएँ नाच रही थीं। गन्धर्व गा रहे थे। गगन-मण्डल से फूलों की वर्षा हो रही थी। उससे अदिति का आश्रय सुरभित हो उठा। स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, देवता, गौ, द्विज और पर्वत इन सबके हृदयमें हर्षका संचार हो गया।

जब अदिति ने अपने गर्भ से प्रकट हुए परम पुरुष परमात्मा को देखा तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह

आश्चर्य से भर गई। बरबस उसके मुँह से निकल पड़ा- जय हो, जय हो। कश्यप और अदिति के देखते-ही-देखते भगवान ने चतुर्भुजरूप छोड़कर वामन रूप धारण कर लिया। वे सात वर्ष के ब्राह्मण ब्रह्मचारी बन गये। भगवान को वामन ब्रह्मचारी के रूप में देखकर महर्षियों को महान् आनन्द हुआ। उन लोगों ने कश्यप प्रजापति को आगे करके उनके जातकर्म और उपनयन संस्कार करवाये। संस्कार से दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन एवं सत्प्रवृत्तियों का संवर्धन होता है तथा पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) की सिद्धि होती है। जबसे संस्कार विधान लुप्त कर दिया गया तभी से लोग दु:खी है। यदि पति-पत्नी को सभी के प्रति ईश्वरीय भाव हो, संस्कार का क्रम बना हो, तो उनके यहां पुत्र सपुत्र उत्पन्न होता है।

दर्शन करि कश्यप अदिति, सहसा भौचक्के भये। लीलामहँ व्याधा लखी, पुनि वामन बटु बनि गये।।
जाति कर्म संस्कार भये पुनि वामन बाढ़े। घुंटुअनके बल चलैं लगे पुनि ह्वैबे ठाढ़े।।
पाँच बरसके भये पिता उपनयन करायो। रवि सावित्री दई जनेऊ गुरु पहिनायो।।
कश्यप दीन्ही मेखला, अजिन अवनि उत्तम दयो। मातातें कोपीन पट, दण्ड चन्द्रमातें लयो।।
धन कुबेरने दयो पात्र भिक्षाको भारी। माँ जगदम्बा उमा विहँसिके भिक्षा डारी।।
लोभी वामन बने लाभतें लोभ बढ़ायो। जग ठगिबेके हेतु कपटको वेष बनायो।।
अश्वमेध नृप बलि करैं, चले ब्रह्मचारी सुनत। विश्व भार लादैं अखिल, पृथ्वी पग पै नमत।।

शुकदेव बोले- राजन्, उस वामन वटु को देखकर सभी ऋषि महर्षि अति आनन्दित हुए और उन सबने कश्यपजी को आगे करके सब संस्कार कराये।

देवताओं और ऋषियों ने उन्हें छत्र, दण्ड, कमण्डलु और नाना वस्तुएँ प्रदान कीं। साक्षात् भगवती उमाने प्रकट होकर उन्हें भिक्षा प्रदान की। भगवती उमा ही अन्नपूर्णा देवी कहलाती है। सभीने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार भिक्षा दी। परन्तु लोभी की कभी तृप्ति नहीं होती। उसका तो लाभ से अधिकाधिक लोभ ही बढ़ता जाता है। लोभी की कभी कोई इच्छा पूरी नहीं कर सकता। वह तो थोड़ा माँगकर पैर फैला देता है। साधुपाद प्रसारण न्याय से जहाँ लोभी को कुछ लाभ हुआ, उसकी तृष्णा और भी बढ़ती जाती है।

सुमन बरसि सुर नाचहिं गावहिं, जयध्वनि करि दुन्दुभी बजावहिं।।
ऋषिन ने लोक वेद अनुसार, भेंट कर यथा योग्य उपहार, किया यज्ञोपवीत संस्कार।।
बृहस्पति ब्रह्मसूत्र मेखला कश्यप दियो, चन्द्रमा पलाश दण्ड बटु भगवान को।।
अदिति कौपिन भूमि कृष्ण मृग चर्म दियो, छत्र दियो देव अभिमानी आसमान को।।
कमण्डलु ब्रह्मा और कुशा ऋषि सप्त दिये, सरस्वती अक्षमाला जप के विधान को।।
पात्रिका कुबेर और भिक्षा भगवती उमा, भई जैसी शोभा वाको सकई बखान को।।
शीश जटा तनु श्याम सुहावन, कटि कौपीन मेखला पावन, ब्रह्मचारी की जैसी रीति, लसै काँधे सुयज्ञ उपवीत।।
कमण्डलु जलयुत परम पुनीत, छत्र दण्ड कर में धरे बगल कृष्णमृग चर्म।
जन्म कर्म सब दिव्य है जान न कोऊ मर्म, लखि नारायण तेज अलौकिक चन्द्र सूर्य सकुचात।।

उपनयन संस्कार की सारी क्रियाएँ उन्होंने शास्त्र के अनुसार सम्पन्न की। यज्ञोपवीत धारण करने एवं नियमों के पालन करने से आयु, धन एवं ज्ञान की वृद्धि होती है अन्त में ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

दण्ड कमण्डलु लिये ओढ़ तनपै मृगछाला। पहिन मेखला मूंज चले बलिकी मखशाला।।

तेज पुञ्ज सम लखे विप्र वामन व्रतधारी। सहसा सबई भये खड़े लखि वटु लट धारी।।

भये प्रभावित विप्र गन, अधिक मोद मन बलि भयो। पद पखारि पुनि अर्घ्य दे, बैठनकूँ आसन दयो।।

शुकदेव बोले- राजन्, वामन भगवान इस बात को सुनकर कि तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त करके महाराज बलि भृगुवंशी ब्राह्मणों द्वारा अश्वमेध यज्ञ करा रहे हैं और उसके द्वारा भगवान का पूजन कर रहे हैं, तो वे वटु वहाँ सर्वशक्ति समन्वित होकर अपने भार से पग-पग पर पृथ्वी को नमाते हुए उसके यज्ञ में चले।

उसी समय उन्होंने सुना कि महाराज बलि भृगुवंशियों के आचार्यत्वमें नर्मदा नदी के उत्तर तट पर भृगुकच्छ (आधुनिक भड़ौच) नामक स्थान में अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। यह सुनते ही वे वहाँ के लिये चल पड़े। उनके चलने के समय भार से भूतल पग-पग पर झुक रहा था। बलि और यज्ञ के आचार्यों ने दूर से ही वामन भगवान को आते हुए देखा। उस समय उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो सूर्यनारायण उदित होकर उधर ही चले आ रहे हों।

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते। ब्रह्मर्षीणां तप: साक्षान्मन्ये त्वाऽऽर्यवपुर्धरम।।

रहिमन याचकता गहे बड़े हूं छोट होई जात। नारायण को हूं भयो बावन अंगुल गात।।

रहिमन बिगड़ी आदि की फिर बने न खरिचे दाम। हरि बाढ़े आकाश लौं तऊ वावनो नाम।।

बलि ने वामन का चरण धोया। उससे आचमन किया और उसे अपने तथा पत्नी-पुत्रों के सिर पर छिड़का। भगवान का चरण धोवन प्राणियों के पाप को विनष्ट करनेवाला है। इसी जल को भगवान शंकर बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ अपने सिर पर धारण करते हैं।

ब्राह्मण बनि के भिक्षा लेन चले सब जग के पालन हार, छलयुत वामन वेष बनाये, तनिक नहीं मन में सकुचाय।।

यज्ञशाला में पहुँचे जाय, मुदित बलि अतिथि अपूरब पाय, सुआसन दीन्ह चरण सिर नाय।।

बहुप्रकार करि पूजन विनय सहित अनुराग। प्रभुपद जल धरि शीश निज लागे सराहन भाग।।

राजा बलि ने अपने भाग्य को सराहा और कहा कि आपके शुभागमनसे हमारा यज्ञ सफल हो गया। हे ब्राह्मण कुमार, आप अच्छे पधारे, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आज्ञा कीजिये मैं आपकी क्या सेवा करूं। चरण धोकर सविधि पूजन कर लेने के बाद बलि ने हाथ जोड़ कर कहना प्रारम्भ किया- महाराज, आपके पधारने से आज हमारा वंश तृप्त हो गया। हमारा कुल पवित्र हो गया। हमें यज्ञ का फल प्राप्त हो गया। ब्राह्मणकुमार, आप के पाँव पखारने से मेरे सारे पाप धुल गये और विधिपूर्वक यज्ञ करने से, अग्नि में आहुति डालने से जो फल मिलता, वह आज अनायास ही मिल गया। आपके इन नन्हें-नन्हें चरणों के पड़ने से और इनके धोवन से सारी धरती ही पवित्र हो गई।

विधिवत पूजा करी हृदय फूले न समाये। पादोदक सिर धारि पान कर अति हरषाये।।

रानी पुनि पुनि लखैं रूप पै बलि बलि जाई। चरनामृत करि पान कहैं गंगा घर आईं।।

तनु पुलकित मन मोदयुत, पात्र निरखि अतिशय मगन। बहु स्वागत सतकार करि, दानी बलि बोले वचन।।

ब्राह्मणकुमार, ऐसा प्रतीत होता है आप कुछ चाहते हैं। परम पूज्य ब्रह्मचारी जी, आप जो चाहते हों वह मुझसे माँग लीजिये। आप को गाय चाहिये तो गाय लीजिये, सोना चाहिये तो सोना लीजिये, यान चाहिये तो यान लीजिये, सामग्रियों से सुसज्जित घर चाहिये तो घर लीजिये। गाँव, घोड़े, हाथी आदि जो कुछ चाहिये वह सब मुझसे मांग लीजिये।

कहो विप्रसुत कृपा दास पै कीन्हीं कैसे। है अति दुर्लभ दरस बिना कारण बटु ऐसे।।

मेरे मन अनुमान आप कछु माँगन आये। किन्तु निरखि द्विज भीर बाल मनमहँ सकुचाये।।

मम ढिँग कछु न अदेय है, शंका तजि द्विजवर, कहहु। अन्न पान धन धान्य पट, जो इच्छा सोई गहहु।।

महाराज बलि वामन भगवान से कह रहे हैं- हे विप्र, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम कुछ मांगने की इच्छा से मेरे यहाँ आये हों। ब्राह्मणकुमार ही ठहरे। सो, तुम्हें जिस वस्तु की भी इच्छा हो वह मुझसे माँग लो। गौ चाहिये, सुवर्ण चाहिये, सुन्दर सामग्री सहित घर द्वार, मधुर पवित्र सुस्वादु अन्न जल अथवा विवाह के लिये ब्राह्मण कन्या जो भी चाहिये मुझसे कहो।

वामन भगवान की अन्तर कथा- वामन पुराण के अनुसार वामन भगवान अदिति माता के सात पुत्रों में सबसे छोटे थे। माता अदिति इनसे अधिक स्नेह रखती थी। इसीलिए इनके दूसरे भाई इनसे जलते थे। वामन भगवान ने जब अपना हिस्सा माँगा तो अन्य भाइयों ने कहा किवामन को दाय भाग नहीं मिलता है। अतएव तुमको धन का हिस्सा नहीं मिल सकता है, किन्तु इनके वाक्पाटव से इनके अन्य भाई अभिभूत हो जाते थे। उस समय माता अदिति का आश्रम व्याघ्रसर सिद्धाश्रम (वर्तमान कालिक बक्सर) में गंगा के तट पर विद्यमान था। अन्य भाइयों ने इनको गंगा में स्नान करने के लिए चलने को कहा। अपने सभी भाइयों के साथ ये गंगा स्नान करने के लिये गये। जब ये स्नान कर रहे थे उस समय अन्य भाइयों ने अपने में सलाह करके इन्हें गंगा की धारा में ढकेल दिया और भगवान वामन गंगा की धारा में बहने लगे। जब गंगा की धारा में बहते हुए भगवान वामन जा रहे थे, उस समय राजा बलि भृगुक्षेत्र (वर्तमान कालिक बलिया) में अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे। बलि के लोग इनको धारा से छान कर राजा बलि की यज्ञशाला में लाए। उनके सौन्दर्य तथा तेज से प्रभावित होकर राजा बलि ने इनसे वरदान माँगने को कहा। वामन भगवान ने राजा बलि से तीन डग भूमि माँगा। संकल्प के पश्चात् भगवान ने विश्वरूप धारण करके राजा बलि का संपूर्ण राज्य ले लिया।

बलि की एक तरुणी बेटी थी- काञ्चनमाला। काञ्चनमाला निर्निमेष नयनों से ब्रह्मचारी वामन को निहार रही थी। वामन वटु को देखकर कांचनमाला उस समय यही सोच रही थी कि- धन्य है वह माँ जिसने अपने छाती का दूध इस बालक को पिलाया है। यदि यह मेरा बेटा होता तो मैं बड़े प्रेम से इसे दूध पिलाती और बाद में जब दान लेकर वामन ने अपने दो पग से त्रिलोकी को नाप लिया तथा तीसरे पग की भूमि की याचना करते हुए बलि को वरुण पाश से बँधवा लिया, तब कुपित होकर वह सोचने लगी कि यदि मेरा वश चले तो मैं इसे जहर पिलाकर मार डालूँ। इसी संस्कार को लेकर कांचनमाला कृष्णावतार में पूतना बनी है, जो छाती में जहर पोत कर कृष्ण को पिलाती है।

अत: बलि ने कांचनमाला की ओर संकेत करके कहा- ब्रह्मचारी जी, यदि आप विवाह करना चाहते हों तो मैं सहर्ष अपनी इस कन्या का हाथ आपको पकड़ा सकता हूँ। बोलिये क्या सेवा मैं अर्पित करूँ?

अन्न द्रव्य गउ बाजि गज रथ गृह सुन्दर ग्राम। अथवा निज अनुरूप द्विज कन्या लेहु ललाम।।

करुणानिधि मन दीखा बिचारी, उर अंकुरेउ गरब तरू भारी। बेगी सो मैं डारिहमँ मखारी, पन हमार सेवक हितकारी।।

वामन बोले- महाराज, सुवर्ण को कहाँ रखूँगा। सुवर्ण के आते ही व्यवहार में असत्यता आ जाती है, धन से मद बढ़ जाता है, उसमें अत्यन्त आसक्ति हो जाती है,धनी लोगों को दया नहीं रहती रजोगुण बढ़ जाता है और सबसे वैर हो जाता है। सभी उसे मारकर उससे धन छीनने की घात में रहते है।

जो कुछ आपकी इच्छा हो, इस समय तीनों लोकों का अधीश्वर हूँ। बलि में सब अच्छाई है, बस थोड़ा यही अभिमान हो गया है कि मैं तीनों लोकोंका स्वामी हूँ। कृपण पुरुषों से माँगने में लज्जा आती है। जो स्वयं सब कुछ श्रद्धा सहित देने को समुत्सुक है, उससे माँगने में लज्जा करना व्यर्थ है।

बहु सम्पति युत ग्राम अरू, जो चाहो सोई कहहु। अथवा मेरे महलमहँ, भूपति बनि द्विजवर रहहु।।

वामनजी ने बलि को थोड़ा और दृढ़ करने के उद्देश्य से कहा- महाराज, आप जिस कुल के विभूषण हैं, उस कुल में आज तक कोई धैर्यहीन कृपण पुरुष उत्पन्न ही न हुआ। इस प्रशस्त वंश में ऐसा कोई जन्मा ही नहीं जिसने ब्राह्मण को कभी दान न प्रदान किया हो अथवा देने की प्रतिज्ञा करके उससे पीछे हट गया हो, मुकर गया हो। **धन्य धन्य कहि कर बड़ाई, राजन् तोरे कुल रीति सुहाई।।** जिससे कुछ काम लेना हो तो उसकी बड़ाई करनी पड़ती है और लोग झूठी बड़ाई करते रहते है।

सुनि नृप बलिकी बात विप्र कपटी सुख पायो। असुर फँसावन हेतु कपटको जाल बिछायो।।
बूढ़े बाबा सरिस कहें- बलि, तुम बड़भागी। क्यौं न होहि अस शील जहाँ भार्गव गुरु त्यागी।।
पिता विरोचन विप्र हित, प्रान दये प्रन तज्यो नहिँ। भये भक्त प्रह्लाद नर- हरि प्रकटाये कष्ट सहि।।

वामन बलि से बोले- हे नरदेव, तुम्हारे पूर्वजोंने तो हद कर दी। आप के ऐसे मधुर धर्मयुक्त तथा यश को बढ़ानेवाले वचन आपके कुल के अनुरूप ही हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि भृगुपुत्र शुक्राचार्य आप के पारलौकिक कार्य करनेवाले हैं आपके पितामह प्रह्लादजी का शान्ति मय व्यक्तित्व विश्वविदित है।

वीरता में हिरण्यकशिपु हिरण्याक्ष भये। जिनके डर ठौर ठौर भागे भगवान भी।।
भक्ति में पितामह तुम्हारे प्रह्लाद भये। जाको यश गावें सन्त वेद और पुरान भी।।
इन्द्र कियो छद्म वेष विप्र बनि माँग्यो आय। पिता तेरे दानी ऐसे दियो निज प्रान भी।।
हिरनकशिपु हिरनाक्ष ह्व, प्रतितामह तुम्हरे भये। लड़े विष्णुतें समरमहँ, नाभ अमर जग करि गये।।

वामन भगवान बलि से कह रहे हैं- राजन्, आपके ही कुल में हिरण्याक्ष का जन्म हुआ। जो वीर गदा लेकर सम्पूर्ण भूमण्डल पर बिना सेना लिये अकेले ही दिग्विजय के लिये घूमता फिरा किन्तु उसे अपना कोई प्रतिपक्षी वीर ही नहीं मिला।

जब तक माँगनेवाला खुशामद न करें, चापलूसी न करें तब तक देनेवाला देता भी नहीं। माँगनेवालेको देनेवालेकी कितनी तारीफ करनी पड़ती है। वामन बोले- दैत्यराज, आज तक मेरे जैसा कोई लेनेवाला तुझको कभी मिला नहीं होगा और न ही तेरेजैसा देनेवाला दानी मुझको कभी मिला होगा।

आजहूं बिचार लेनहार नहीं दूजो ऐसा, देनहार नहीं बलि जैसो यजमान भी।।
निज पूर्वज सम आपकी बुद्धि धर्म में लीन। राजन् मेरे पगन से देहु भूमि पग तीन।।

इस खानदान में ऐसा कोई नहीं हुआ जिसने दान और युद्ध से कभी मुँह मोड़ा हो, परांगमुख हुआ हो। क्यों न हो ऐसा। जो आपकी कुल-परम्परा में प्रह्लाद जी चन्द्र की भाँति सुशोभित हो रहे है। उनके पितृव्य महाबली हिरण्याक्ष को विष्णु भगवान् ने जीत तो लिया था, परन्तु उसके बहुत बाद भी उन्हें बार-बार उसकी शक्ति और बल का स्मरण हो आया करता था। उसे जीत लेने पर भी वे अपने को विजयी नहीं मानते थे। यह था उसका महान् पराक्रम। जब प्रह्लाद जी के पिता हिरण्यकशिपु ने सुना कि हमारे भाई का वध विष्णु ने कर दिया है, तो वह उन्हें मारने के लिये, हाथ में त्रिशूल लेकर, उनके निवास-स्थान वैकुण्ठ धाम में पहुँच गया। वे अपना धाम छोड़कर भाग खड़े हुए। उस समय उनके सामने यह समस्या खड़ी हो गई कि मैं कहाँ जाकर छिपूँ? हिरण्यकशिपु के हाथ से कैसे बचूँ? जहाँ-जहाँ भी जायें, हिरण्यकशिपु वहाँ-वहाँ त्रिशूल उठाये पहुँच ही जाता था अत: भगवान ने सोचा- जैसे संसार में प्राणियों के पीछे मृत्यु लगी रहती है- वैसे ही मैं जहाँ-जहाँ जाऊँगा, वहाँ-वहाँ यह मेरा पीछा करेगा अत: मैं श्वासों के सहारे इसके हृदय में बैठ जाऊँ तो यह मुझे नहीं देख पायेगा क्योंकि यह बहिर्मुखी है (बाहर की ही वस्तुओं को देखनेवाला है। अन्तर्मुखी नहीं है। अन्त:करण में स्थित वस्तु को नहीं देख सकता) ऐसा सोचकर घबड़ाये हुए भगवान पीछा करनेवाले हिरण्यकशिपु के भीतर प्राण के रास्ते प्रवेश कर गये। आपकी वंश

परम्परा में कोई धैर्यहीन अथवा कृपण पुरुष हुआ ही नहीं।

हिरण्यकशिपु ने वैकुण्ठ का कोना-कोना छान मारा। उसे विष्णु कहीं नहीं मिले। उसने कुपित होकर बड़े जोरों की गर्जना की और पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, दिशा, विदिशा- सर्वत्र विष्णु को खोजा। किन्तु वे उसे कहीं न दीख पड़े। जब उसे विष्णु नहीं दिखलाई पड़े तब उसने कहा- मैंने सारा जगत् छान डाला। किन्तु मेरेभाई का वह वधकर्ता कहीं मिला नहीं। अवश्य ही वह मेरे डर के मारे मर गया होगा। यहाँ तक कि आप के पिता विरोचन भी मरनेवाले नहीं थे। वे महान् ब्राह्मण भक्त थे। उनके शत्रु देवताओं ने ब्राह्मणों का वेश बनाकर उनसे उनकी आयु ही मांग ली। ब्राह्मण-वेशधारी देवताओं के छल को जानते हुए भी उन्होंने सहर्ष अपनी आयु प्रदान कर दी। उसी प्रशंसनीय कुल में आपका जन्म हुआ है। सारा संसार आप के गृहस्थ-धर्म की प्रशंसा करता है। ब्राह्मण के कुल की गायत्री कामधेनु है। ब्राह्मण ब्रह्मचारी के आने पर यह नहीं समझना चाहिए कि भिक्षा माँगने आया है। माँगने से इच्छा की तृप्ति नहीं होती। इस प्रकार जब वामन वटु ने बलि की प्रशंसाओं के पुल बाँध दिये, तब राजा बलि प्रसन्न होकर बोला- महाराज सब ठीक है। आप जो कुछ कह रहे हैं, सब ठीक है। अब आप आज्ञा तो दें कि आप चाहते क्या हैं? भगवान वामन ने कहा- वरदानियों के शिरोमणि, मैं और कुछ नहीं चाहता; मुझे संध्या करने को स्थान नहीं है, अत: राजन्, मुझे केवल मेरे पैर से नापी हुई तीन पग पृथ्वी चाहिये।

राजन्, तुम तै तनिक भूमि हौ आयो याचन। केवल जपके हेतु लगै जामें सुख आसन॥
दान ग्रहन अति अधम तऊ निर्वाह करन हित। लैवे महँ नहिँ दोष अधिक तृष्णा है निन्दित॥
केवल अपने पाँइतें, तीन पैर पृथ्वी चहूँ। अधिक लेहुँ नहिँ एक डग, सत्य सत्य भूपति कहूँ॥

वामन बलिसे बोले- राजन्, आप समस्त वरदानियों में श्रेष्ठ हैं, इसीलिये मैं आपसे थोड़ीसी पृथ्वी की याचना करता हूँ। हे दैत्येन्द्र, केवल तीन पग पृथ्वी चाहता हूँ, सो भी अपने पैरों से ही नापकर।

तीन पग पृथ्वी मांगने का रहस्य यह है- भगवान् वामन बलि से कह रहे हैं कि (क) मुझे तीन पग पृथ्वी दे दो अर्थात तुम मुझे अपनी जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं का दान देकर चौथी तूर्यगा अवस्था में पहुँच जाओ, ब्रह्म-भाव को प्राप्त हो जाओ। (ख) तुम मुझे अपना सत्त्व, रज और तम देकर त्रिगुणातीत बन जाओ। (ग) तुम मुझे अपना काम, क्रोध और लोभ प्रदान कर नरक में जाने से बच जाओ। नरक में जाने के तीन मार्ग हैं- काम, क्रोध और लोभ। ये तीनों ही प्राणी के विनाश के कारण हैं अत: प्रयत्नपूर्वक इनका परित्याग कर देना चाहिये- त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मन:। काम: क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत। (घ) तुम मुझे अपना भूत, वर्तमान और भावी तीनों काल समर्पित करके कालातीत बन जाओ।

बलि महाराज यद्यपि मैं जानता हूँ कि- आप सकल संसार के स्वामी हैं। बड़े उदार और दानियों के शिरोमणि हैं फिर भी मैं आप से इससे अधिक कुछ नहीं चाहता। विद्वान पुरुष को केवल अपनी आवश्यकता के अनुसार ही दान स्वीकार करना चाहिये। इससे दान लेने का पाप उसे नहीं लगता। आवश्यकता के अनुसार दान लेने से मनुष्य परिग्रह जन्य पाप से बच जाता है। बलि बोले- मुझ जैसे दानी को आप भी क्या मांग रहे हैं। तीन पग भूमि वो भी आपके पाँव के नाप से। इस तीन पग भूमि में तो एक झोपड़ी भी नहीं बनेगी। ब्रह्मचारी जो एक बार मांगने के लिये मेरे पास आ जाता है उसे फिर कभी किसी के पास मांगने की जरूरत नहीं पड़ती। अपनी जीविका चलाने भर पूरी पृथ्वी माँग लो तीन पग भूमि से क्या होगा?

आप रहे वामन के वामन। माँगना भी नहीं आता। केवल तीन पैर धरती। मेरे जैसे त्रिलोकीनाथ के पास आकर।

अग्रिम बुद्धि बांणिया, मध्यम बुद्धि जाट, तर्क बुद्धि तुर्कड़ा, वामन चौपट पाट।

तीन पग भूमि निज पग लेके करो कहा, परै नहीं पूरी मृगछाला प्रभु आपकी ।।
कहाँ धरौ दण्ड कमण्डलु पोथी पाठ वाली, ठाकुरको सिंहासन कहां माला झोली जाप की ।।
सको नहीं ठाढे होय बैठने को ठौर कहां, पौढ़ना तो दूर रहे बात अनुताप की ।।
लेहु पग तीन ही तो नापे मेरो दैत्य कोऊ, जाके पग एक एक योजन के माप के ।।

बलि ने वामन की त्यागभरी बात सुनी। बालक की चतुराई से भरी हुई बात सुनकर उसे मन-ही-मन हँसी आ गई। उसने कहा- ब्राह्मणकुमार, तुम बात तो बूढ़ों जैसी कर रहे हो, किन्तु तुम्हारी बुद्धि अभी बच्चों की-सी ही है। अभी तुम हो बालक ही न, इसी से अपना हानि-लाभ नहीं समझ रहे हो? ब्रह्मचारी जी, सम्प्रति मैं तीनों लोकों का एकमात्र अधिपति हूँ, एकछत्र सम्राट हूँ। द्वीप-का-द्वीप दे सकता हूँ। जो मुझे वाणी से प्रसन्न करके और मुझसे केवल तीन पग भूमि माँगे- वह भी क्या बुद्धिमान् कहा जा सकता है? मेरे पास ऐसे-ऐसे दैत्य है जो एक-एक कदम नापें तो दस बीस कोस नाप दें। सौ पचास कोस जमीन मिल जायेगी। वटुमहाराज - जो एक बार कुछ मांगने के लिये मेरे पास आ जाता है, उसे फिर कभी किसी से कुछ मांगने के लिये नहीं जाना पड़ता। उसके पुश्त-दर-पुश्त राजा बन जाते हैं अत: अपनी जीविका चलाने के लिये तुम्हें जितनी भूमि आवश्यक हो, उतनी मुझसे मांग लो। चाहिये तो इसके साथ कुछ धन भी ले लो। मुझसे इतना माँग लो कि तुम्हारी सब इच्छायें पूर्ण हो जायें।

वामन बोले- एक पैसा मैंने जीवन में कभी दान में नहीं लिया, तो तुमसे कैसे लूँ? मेरा नियम बिगड़ जायेगा। राजन, आशा सबकी कहाँ पूरी होती है। क्या आपकी इच्छायें पूर्ण हो गई? फिर यह यज्ञ क्यों कर रहे हो? निन्यानवे यज्ञ कर चुके हो। सौ वाँ यज्ञ कर रहे हो, इसकी क्या जरूरत है? जब सभी इच्छायें पूर्ण हो गई हैं। जिसकी खुद की इच्छा पूरी नहीं हुई वह दूसरों की इच्छा क्या पूरी करेगा? इसलिए मैं आपसे केवल तीन पग भूमि माँगता हूँ।

बलि ने कहा- आपको कुछ तो लेना होगा। मेरे यहाँ यज्ञ हो रहा है आप जैसा विद्वान संत यहाँ आकर बिना कुछ लिये चला जाये, मेरे लिये कितने संकोच की बात है। भगवान ने मन में कहा- तुम तीन पैर ही पूरे कर देना, बड़े त्रिलोकीनाथ बनते हो। बलि ने कहा- अब क्या बताऊँ? मेरी तो बहुत कुछ इच्छा है, आपको देने की। लेकिन आप तीन पैर ही लेना चाहते हैं।

भगवान वामन ने महादानी बलि की ललकारभरी बातें सुनकर कहा- महाराज, आप जो कुछ कह रहे हो, वह सब ठीक है। किन्तु राजन्, संसार के सब-के-सब प्रिय विषय एकत्रित करके यदि एक इन्द्रिय-लोलुप व्यक्ति को प्रदान कर दिये जाँय तो भी वे उसे सन्तुष्ट नहीं कर सकते। जो व्यक्ति तीन पग से सन्तुष्ट नहीं होगा उसे यदि नौ वर्षों से युक्त एक द्वीप भी दे दिया तो भी उसे सन्तोष नहीं होगा, क्योंकि उसके मन में सातों द्वीप पाने की इच्छा बनी रहेगी। संसार के जितने भी प्रिय विषय है, वे सब मिलकर किसी एक मनुष्य की कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ नहीं है। यदि वह अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखनेवाला न हो। उसे पूरी पृथ्वी भी मिल जाय तो भी वह सन्तुष्ट नहीं होगा। इतिहास इस बात का साक्षी है कि पृथु, गय आदि सातों द्वीपों के अधिपति थे किन्तु फिर भी वे सन्तुष्ट नहीं थे। लोभ की यह वृति है कि जैसे-जैसे वस्तुएँ मिलती जाती है, वैसे-वैसे वह बढ़ता जाता है। महाराज बलिजी- जिस ब्राह्मण में सन्तोष नहीं होंगे तो अनन्त धन-धान्य से भी, त्रैलोक्य पाने से भी सन्तुष्ट नहीं होंगे। और सन्तुष्ट होंगे तो इसी से सन्तुष्ट होंगे। असन्तोष ही मानव के जन्म-मृत्यु का कारण है तथा जो कुछ मिल जाय उसी से सन्तोष कर लेना मुक्ति का कारण है। महाराज, नि:सन्देह आप दान-दाताओं के मुकुट-मणि हैं इसलिये मैं आपसे अपने अग्निहोत्र के लिये केवल तीन पग भूमि ही मांगता हूं। इतने से ही मेरा काम चल जायेगा। धन उतना ही संग्रह करना चाहिये, जितने की आवश्यकता हो। लोभ बहुत निषिद्ध होता है, अधिक

तृष्णा रखने से ब्राह्मण का तेज व धर्म नष्ट हो जाता है। बिना सन्तोष किये संसार में सुख नहीं होता। अधिक तृष्णा रखना दु:ख की जड़ समझना चाहिए। ब्राह्मण का तेज तब बढ़ता है जब उसके जीवन में संतोष आ जाये। अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाला तीनों लोकोंका राज्य पानेपर भी दुखी ही रहता है। क्योंकि उसके हृदयमें असन्तोषकी आग धधकती रहती है। धन और भोगोंसे सन्तोष न होना ही जीवके जन्म-मृत्युके चक्करमें गिरनेका कारण है। तथा जो कुछ प्राप्त हो जाय उसीमें सन्तोष कर लेना मुक्तिका कारण है।

अर्ब खर्ब द्रव्य हैं, उदय अस्त होते है राज। तुलसी जो निज मरण है तो आवे केहि काज।।

वामन बोले- जिसको तुमने प्रिय माना है, वो एक दिन तुम्हें रुलायेगा। मेरे पग से तीन पग भूमि देना चाहते हैं तो मैं यहाँ ठहरूं नहीं तो आगे बढ़ूँ। बलि बोले- नहीं महाराज, हम तो आपके सेवक है।

तस्मात् त्वत्तो महीमीषद् वृणेऽहं वरदर्षभात्। पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र सम्मितानि पदा मम।।

एक बार करि याचना बलि राजा के पास। पुनि कोऊ द्विज याचक नहीं करे और की आश।।

तजि संकोच लेहु वटु ऐसो समय न बारम्बार।।

वामन बोले- राजन्, तुम अपनी उदारता गुण से लाचार हो तो मैं अपने ब्राह्मणोचित सन्तोष गुण से लाचार हूँ। मैं सन्तोषी ब्राह्मण हूँ। राजन्, अधिक लेकर क्या करूँगा।

अधिकाधिक संग्रह करै उपजै मन में क्षोम। नष्टप्राय वह विप्र है जाके मन में लोभ।।

बलि बोले- राजन् मैं तीन पग ही लूँगा और वो भी अपने पग से नापकर लूँगा संकल्प करना हो तो करो। वामन भगवान के वचन को सुनकर बलि को हँसी आ गई। उन्होंने कहा- जितनी तुम्हारी इच्छा हो, उतनी ही ले लो। यह कहकर वामन को तीन पग पृथ्वी का संकल्प करने के लिये उन्होंने जलपात्र उठाया। संकल्प का अर्थ है पक्का पंजीकरण। बलि ने पूछा- आप कौन है, आपका निवास स्थान? वामन ने उत्तर दिया- पूरी सृष्टि मेरा निवासस्थान है। बलि ने अर्थ लगाया कि यह उत्कट वैराग्य के कारण अपना घर छोड़ चुके है अभी कोई कुटिया, आश्रम नहीं बनी है। आज यहाँ, कल वहाँ। बलिने कहा- आपके लिये कुटिया बना दे। वामन बोले- हमको कुटिया से क्या काम। हम तो जोगी राम जहां सांझ हुई वही बिहान। राजन्, मैं अनाथ हूँ, झूठ नहीं बोलता। अनाथ कहने का अर्थ- जिसका कोई नाथ नहीं होता, अर्थात सारे सृष्टि का नाथ हूँ। बलि ने समझा- अनाथालय वाले अनाथ है।

जाके घर में मां नहीं बाप करें ना प्यार। ऐसे दीन अनाथों का एक राम नाम आधार।।

ये तो स्वयं सारे जगके माता-पिता हैं। वामन ने सोचा- जब नापने लगूंगा तो सारा त्रिलोकी पने का स्वामी भूल जायेगा। शुक्राचार्य कूटनीति के आचार्य है वे समझ गये।

अब तक शुक्राचार्य यह सारा प्रसंग तटस्थ दृष्टि से देख-सुन रहे थे। उन्हें सब कुछ विदित था। उनसे भगवान की यह लीला भी छिपी नहीं थी। वे ज्ञान-विज्ञान के निधान हैं। सर्वदर्शी हैं, ब्रह्मविद्वरिष्ठ हैं। संजीवनी विद्या के महान् आचार्य हैं किन्तु जब देखा कि बलि अब संकल्प का जल लेने जा रहा है तो उनसे रहा न गया। उन्होंने कहा- विरोचनकुमार, ये स्वयं अविनाशी साक्षात् विष्णु हैं। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से अवतीर्ण हुए हैं। तुम नहीं जानते हो कि यह तुम्हारा सब कुछ छीन लेंगे अत: तुमने इन्हें दान देने की प्रतिज्ञा कर ली। किन्तु यह दैत्यों के साथ बहुत बड़ा अन्याय होने जा रहा है। इसे मैं ठीक नहीं समझता। तुम्हारा सर्वस्व हरण करनेवाले स्वयं हरि ही अपनी योगमाया से यह ब्रह्मचारी बनकर यहाँ आये हुए हैं। वे तुम्हें छल रहे है। ये तुम्हारा राज्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज और

विश्वविख्यात कीर्ति- सब कुछ तुमसे छीन कर इन्द्र को दे देंगे।

एष वैरोचने साक्षाद् भगवान् विष्णुरव्यय:। कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधक:॥
स्त्रीष नर्म विवाहे च वृत्त्यर्थे प्राण संकटे। गो ब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥
राजन् इसमें कपट है बोले शुक्राचार्य। ये तो विष्णु भेष वामन धरयो करन हेतु सुरकार्य॥

हे वैरोचने- ये तो तुम्हारे विपक्ष के देवताओं के पक्षधर विष्णु हैं। भेष बदलकर आये हैं बहुत बोल रहे हो, तीन पग से क्या होगा, तुम तीन पग पूरा नहीं कर सकोगे जब ये अपना पग बढ़ायेंगे तब। इन्हें साधारण ब्राह्मण मत समझो ये तुम्हारे स्थान ऐश्वर्य लक्ष्मी और विश्व विख्यात यश को छीनकर इन्द्र को दे देंगे। ये माया से वामन बने हैं। वास्तव में ये हैं साक्षात् श्रीहरि ही। **दोही पद में छीन सबै तोहि करे बिना घरबार॥**

ये विश्वरूप हैं, तीन पग में तो ये सारे लोकों को नाप लेंगे। मूर्ख, जब तुम अपना सर्वस्व ही विष्णु को दे डालोगे, तो तुम्हारा जीवन-निर्वाह कैसे होगा? ये विश्वव्यापक भगवान एक पग में सारी पृथ्वी और दूसरे पग में स्वर्ग को नाप लेंगे। इनके विशाल शरीर से आकाश भर जायेगा। तब इनका तीसरा पग कहाँ जायेगा ? तुम उसे पूरा न कर सकोगे। फिर प्रतिज्ञा करके न देने के कारण तुम्हें नरक की यात्रा करनी पड़ेगी। संसार में वही दान प्रशंसनीय होता है, जिससे जीवननिर्वाह में किसी प्रकार की बाधा न पडे। जिसके पास धन रहता है वही ठीक ढंग से दान, पुण्य और यज्ञ आदि कर सकता है। इसलिये अपनी सम्पत्ति को पाँच भागों में विभक्त कर देना चाहिये। एक भाग धर्म के लिये, दूसरा भाग यश के लिये, तीसरा भाग व्यापार के लिये, चौथा भाग अपने भोग-विलास के लिये और पाँचवा भाग स्वजनों के लिये- इस प्रकार पाँच भागों में बाँट कर जो कार्य करता है, उसका लोक-परलोक में कल्याण होता है। असुरशिरोमणि, यदि तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा टूट जाने का भय हो तो मैं इस विषय में तुम्हें कुछ ऋग्वेद की श्रुतियों का आशय सुनाता हूँ, तुम सुनो। श्रुति कहती है- किसी को कुछ देने की बात स्वीकार कर लेना सत्य है और नकार जाना, अस्वीकार कर देना असत्य है। यह शरीर एक वृक्ष है और सत्य इसका फल-फूल है। परन्तु यदि वृक्ष ही न रहे तो फल-फूल कैसे रह सकते हैं? क्योंकि नकार जाना, अपनी वस्तु दूसरे को न देना, दूसरे शब्दों में अपना धन-माल बचाये रखना- यही शरीररूप वृक्ष का मूल है जैसे जड़ न रहने पर वृक्ष सूखकर थोड़े ही दिनों में गिर जाता है, वैसे ही यदि धन देने से अस्वीकार किया जाय तो यह जीवन सूख जाता है- इसमें सन्देह नहीं। हाँ, मैं दूँगा- यह वाक्य ही धन को दूर हटा देता है अत: इसका उच्चारण ही अपूर्ण अर्थात् धन से रिक्त-खाली कर देनेवाला है। यही कारण है कि जो पुरुष हाँ, मैं दूँगा- ऐसा कहता है, वह धन से खाली हो जाता है। जो याचक को सब कुछ देना स्वीकार कर लेता है, वह अपने लिये भोग की कोई सामग्री नहीं रख सकता। इसलिये अनृत ही आत्मा (शरीर) का मूल है। सत्य कहते रहोगे तो सर्वनाश हो जायेगा, कौड़ी कीमत के भी नहीं रह जाओगे। किन्तु शास्त्रों में अनृत का निषेध किया गया है।

शुक्राचार्य बलि को बोले- राजन्, ओम अर्थात् हाँ देंगे। यह शब्द अपूर्ण है दूर का द्योतक है और खाली करनेवाला है। जो कुछ है वह दे देंगे ऐसा कहने वाला पुरुष सर्वत्र रिक्त हो जाता है। जो भिक्षुक के आते ही कह देता है सब देंगे, वह अपने भोगों को भी सुरक्षित नहीं रख सकता।

सुनिकें शुक्राचार्य कहैं तू धर्म न जानें। धर्म तत्व अति गूढ़ विज्ञ नर ही पहिचानें॥
हाँ देंगे, ये वचन, अर्थ व्यापकके द्योतक। सदा कहै नहिँ देहँ धर्म यशके ये शोषक॥
बिनु विचार दै देहिँ जे, ते पीछे माँगत फिरहिँ। ऐसे दाताकूँ सदा, भिक्षुक नित पीड़ित करहिँ॥

ऐसी स्थिति में फिर क्या किया जाय? शुक्राचार्य जी बोले- स्त्रियों को प्रसन्न करने के लिये, हास-परिहास में, विवाह में कन्या आदि की प्रशंसा करते समय, अपनी जीविका की रक्षा के लिये, प्राण संकट उपस्थित होने पर, गौ और ब्राह्मण के हित के लिये तथा किसी को मृत्यु से बचाने के लिये असत्य भाषण किया जा सकता है। शुक्राचार्य उपदेश कर रहे हैं- आठ जगह पर झूठ बोलने से पाप नहीं लगता। स्त्रियों में किसी बात को छुपाना हो, तो झूठ बोलने से पाप नहीं लगता। क्यों? क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा माताओं का हृदय ज्यादा कोमल होता है। किसी बात को हृदय में छुपा नहीं पातीं। हँसी मजाक में यदि मुँह से झूठ निकल जाये, तो उसमें दोष नहीं है। शादी विवाह में किसी बेटी की हमें प्रशंसा करनी पड़े, तो उसका दोष नहीं लगता। यदि किसी का सम्पूर्ण धन नष्ट होनेवाला है, तो झूठ बोलकर उसके धन को बचाने में एक बार पाप नहीं लता। किसी के प्राण संकट में पड़े हों, उसके प्राणों को बचाने के लिए भी झूठ बोलना पड़े, तो उसका दोष नहीं लगता। गऊ हत्या रोकने के लिए, अपने धर्म की सुरक्षा के लिए, अपन संस्कृति के रक्षण के लिए यदि एक बार झूठ बोलना पड़े उसका दोष नहीं है। शुक्राचार्य बलिसे बोले- स्त्रियों के विषय में, हँसी में, विवाह में, जीविका रक्षा में, प्राण संकट के समय, गौ ब्राह्मण की रक्षा में, किसी का वध हो रहा हो उस समय इन अवसरों पर झूठ बोलना निन्दित नहीं कहा जाता।

हँसी खेलमहँ और कामिनी क्रीड़ा माँही। होहि जीविका नाश प्रान काहूके जाही।।
निज प्राननिके हेतु विप्र गौ रक्षा होवे। तो विशेष नहिँ दोष सत्यकूँ यदि नर खोवे।।
मातु पिता अति वृद्ध है, बालक अति अज्ञान हैं। जस तस प्राननिकूँ रखे, मुख्य देहमहँ प्रान है।।

शुक्राचार्यने बताया है कि सब-का-सब धन दान नहीं कर देना चाहिए। आयका कुछ भाग रखना चाहिए धर्मके लिए, कुछ भाग रखना चाहिए यशके लिए, कुछ भाग रखना चाहिए अपने लिए, कुछ भाग रखना चाहिए स्वजनोंके लिए और कुछ भाग रखना चाहिए पूँजी बढ़ानेके लिए। इस प्रकार अपनी आयका विनियोग भिन्न-भिन्न विभागोंमें करना चाहिए।

विद्वान पुरुष उस दान की प्रशंसा नहीं करते, जिसके बाद जीवन निर्वाह के लिये कुछ नहीं बचे। जिसका जीवन निर्वाह ठीक-ठाक चलता है, वही संसार में दान, यज्ञ, तप और परोपकार के कर्म करता है।

शुकदेव बोले- परीक्षित्, शुक्राचार्य की बात सुनकर बलि क्षणभर के लिये चुप हो गये और बाद में बोले- भगवन्, गृहस्थ आश्रम में रहनेवालों के लिये वही धर्म हैं जिससे अर्थ, काम, यश और आजीविका में कभी किसी प्रकार की बाधा न पड़े। किन्तु गुरुदेव, मैं आप का शिष्य और प्रह्लाद जी का पौत्र होकर असत्य भाषण करूं, दान देने से नकार कर दूँ? एक बार देने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ अत: अब मैं धन के लोभ से, ठग की भाँति, इस ब्राह्मण से कैसे कहूँ कि मैं तुम्हें नहीं दूँगा। गुरुदेव इस पृथ्वी ने कहा है कि असत्य से बढ़कर कोई अधर्म नहीं है। मैं सब कुछ सहन करने में समर्थ हूँ, परन्तु झूठे मनुष्य का भार मुझसे नहीं सहा जाता। इस पृथ्वीपर सबसे बड़ा भार अपनी प्रतिज्ञा असत्य करनेवालोंका होता है।

असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है। सबको धारण करनेवाली पृथ्वी कहती है कि इतने बड़े पर्वत, नद, नदी, वन, उपवन, समुद्र तथा समस्त जीवों के धारण करने में मुझे कोई कष्ट नहीं किन्तु एक असत्यवादी को धारण करना मेरे लिये कठिन हो जाता है, उसके बोझ से मैं दब जाती हूँ।

स्वर्ग नरक अपवर्ग को न सोच मेरे। सब तजि यदि सत्य धर्म को निभाऊँ मैं।।

गुरु शुक्राचार्य की बातों का उत्तर देते हुए बलि बोले- भगवन्, आपने जो यह बात कही कि गृहस्थियों का यही धर्म है जिससे धन में, काम में, युद्ध में तथा आजीविका में बाधा न पड़े। इस बात को मैं सत्य मानता हूँ, किन्तु मैं प्रह्लादजी का पौत्र होकर धन के लोभ से ब्राह्मण को कोई वस्तु देकर धूर्त ठगिया की भाँति यह कैसे कह सकता हूँ कि अब नहीं दूँगा।

सुनि बलि बोले वीर बचन गुरुतें सकुचाई। भगवन, सुन्दर स्वार्थ सिद्ध हित नीति बताई।।
किन्तु लोभ वश देव सत्यकूँ कैसे त्यागूँ। कैसे रिपु ललकारि युद्धतें डरिकें भागूँ।।
हाँ कहि न करिवो नहीं, दितिकुलके अनुरूप जिह। पिता प्रान द्विज हित दये, प्रन नहिँ छाँड्यो पितामह।।

शुक्राचार्य बोले- मूर्ख, तुम सब कुछ दान कर दोगे तो तुम्हारा जीवन निर्वाह कैसे होगा। मैं तुझे शाप दूँगा कि तू श्रीहीन हो जा। बलिने गुरु का शाप सहज स्वीकार किया।

बलि बोले- मैं नरक से, दरिद्रता से, दु:ख के सागर से, अपने राज्य के विनाश से और मरण से भी उतना नहीं डरता, जितना ब्राह्मण से प्रतिज्ञा करके उसे धोखा देने से डरता हूँ। अपनी कीर्ति पर कलंक लगने से डरता हूँ। धन और बल नष्ट हो जाने पर पुन: प्राप्त किया जा सकता है किन्तु चरित्र नष्ट होनेसे सर्वस्व नष्ट होता है। आपको विदित ही है कि यह शरीर नश्वर है और लक्ष्मी चलायमान है। एक-न-एक दिन इनका नाश होना ही है। यदि इनके द्वारा दान आदि से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट न किया जाय, तो उनके त्याग का लाभ ही क्या रहा? शिवि, दधीचि आदि महापुरुषों ने अपने परम प्रिय प्राणों का परित्याग कर प्राणियों की भलाई की है। फिर पृथ्वी आदि वस्तुओं को दान देने में सोच-विचार की क्या आवश्यकता नहीं है? जैसा आप कह रहे हैं अगर यह विष्णु हैं तब तो हमें जीतकर भी सब कुछ ले लेगा। हिरण्याक्ष का वध इसीने किया। यह तो हमारा सौभाग्य है, मांगने आया है। इसका हाथ नीचे होगा। हमारा हाथ ऊपर होगा। मैं इसे दान से मुकर कर अपने प्रशस्त वंश को कलंकित नही करूँगा। गुरुदेव, आप की सारी बातें मुझे शिरोधार्य हैं। किन्तु इस समय झूठ नहीं बोल सकता। मैंने जो निश्चय कर लिया है, उसे होने दीजिये। गुरुचरण, संसार में बहुत-से लोग ऐसे हैं जो युद्ध में पीठ न दिखा कर अपने प्राणों की बलि चढ़ा देते हैं; किन्तु ऐसे लोग बहुत दुर्लभ हैं जो सत्पात्र के प्राप्त होने पर श्रद्धा के साथ मुँह माँगा दान कर दें। फिर सामर्थ्य व्यक्ति को भी कभी-कभी याचक बनकर मांगने के लिये विवश होना पड़ता है। इसलिये यह विष्णु हो अथवा और कोई, मैं इन्हें दान अवश्य दूँगा।

बलि शुक्राचार्य से बोले- मुनिवर, वे ये ही वरद विष्णु हैं, जिनके निमित्त की विधि को जाननेवाले आप जैसे ज्ञानी पुरुष यज्ञों में आदरपूर्वक हवन करते हैं। अथवा चाहे कोई दूसरे ही हों, मैं इन्हें अवश्य ही इनकी माँगी हुई पृथ्वी इच्छानुसार दूँगा।

नाशवान धन, धरा, विश्वके सबहिँ पदारथ। अविनाशी यश एक यही जग जीवन स्वारथ।।
यदि ये हैं भगवान विष्णु इस जगके पालक। वेष बदलि विश्वेश बने वटु बौने बालक।।
तो चिन्ताकी कौन बात ये यज्ञके स्वामी। जे जो चाहैं करैं अखिलपति अन्तर्यामी।।
सब साधनको यही फल, होहि कृष्ण पद सुदृढ़ मति। यह मेरो सौभाग्य अति, याचन आये विश्वपति।।

दान उतना ही करना चाहिये जिससे दाताकी जीविकाका नाश न हो। जिससे जीविका बिगड़ जाये, वह दान उचित नहीं है। जब जीविका बनी रहेगी तो उससे यज्ञ होगा, तप होगा और कर्म होगा। अपनी आजीविका की रक्षा करके जो बचे उससे दान-पुण्य करना चाहिये। घर में लोग भूखों मर रहे हैं, हम दान पुण्य कर रहे हैं, तो वह दान नहीं, पुण्य नहीं। पाप है, अधर्म है। जो हमारे आश्रित है, पहिले उनकी रक्षा करना कर्त्तव्य है। पंडितजन उस दान की प्रशंसा नहीं करते, जिससे अपनी आजीविका नष्ट हो जाये।

बलि बोले- गुरु तो वही है जो अनुगत शिष्यों को संसार से हटा कर ब्रह्मनिष्ठ बना दे। आचार्य आप तो मुझसे असत्य बुलवाकर संसार में फँसा रहे हैं। यदि उदार एवं करुणाशील पुरुष अयोग्य याचक की कामना पूर्ण करके दुर्गति भोगता है तो वह दुर्गति से भी सुशोभित होता है यदि आप जैसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषों को दान करने से दु:ख होता हो तो उसके लिए क्या

कहना है। मैं इस ब्रह्मचारी को अभिलषित भूमि अवश्य प्रदान करूँगा। लोग यज्ञों के द्वारा जिस विष्णु की आराधना करते हैं वे ही विष्णु यदि याचक बनकर आये है तो मैं उनको अवश्य दान दूँगा। आज यदि ये मुझे बाँध भी लें तो भी मैं कुछ नहीं करूँगा। ये यदि विष्णु हैं तो ये अपनी माँगी हुई वस्तु मुझसे लेकर ही रहेंगे। यदि कोई दूसरे होंगे तो रणभूमि में मेरे बाणों की मार खाकर सदा के लिए सो जायेंगे।

धर्मभीरु बलि कहै- गुरो, क्यों पाप कमावैं। दानधर्ममहँ व्यर्थ आप रोड़ा अटकावैं।।
वैसे ही बटु सकुचि बहुत धन दान न चायें। उलटी पट्टी तऊ आप पुनि मोइ पढ़ायें।।
धरमहँ बालक नारि मातु पितु तजिके भाई। बिनु पूछे जो दान करै सो पाप कमाई।।
बोले बलि गुरुदेव, दान दै दीन्हों मनतें। अब कस झूठो बनूँ ब्रह्मचारी वामनतें।।
कहि कै देऊँ दान नहिँ, तो पीछे पछिताउँगो। दोषी हौं ह्वै जाउँगो, अन्त नरकमहँ जाउँगो।।

शुक्राचार्य बलि को बोले- राजन्, जो आजीविका युक्त पुरुष हैं वही दान, यज्ञ, तप और सत्कर्मों का अनुष्ठान कर सकता है। जो आदमी अपने धन का ५ भाग करके उसे धर्म में, यश कार्यों में, धन की वृद्धि में, कामोपभोग में और स्वजनों की उन्नति में व्यय करता है, वह इस लोक और परलोक में सुख पाता है।

बोले शुक्राचार्य व्यर्थ तू बात बनावै। धर्म मर्म बिनु लखे मोइ उपदेश सिखावै।।
अर्थ वृद्धि, यश, भोग, धर्म अरु स्वजन हेतु नर। करें द्रव्य व्यय सदा गृहीको यह मग सुखकर।।
अन्न वस्त्र बिनु नारि अरु, बच्चे भूखचे घर मरैं। करैं दान यश हेतु जे, बुध तिनकी निन्दा करैं।।

शुक्राचार्य ने देखा कि बलि उनका शिष्य उनकी बात नहीं मानेगा। बलि बोला- आपने ही तो शिक्षा दी है दान की जड़ हरी होती है। नौका में पानी बढ़ जाय और घर में धन बढ़ जाय तो उसे लोभ के कारण रखना नहीं चाहिये। उलीच देना चाहिये। दान से धन की वृद्धि होती है। इसमें कीर्ति और परलोक में सुख मिलता है।

शुक्राचार्य बोले- मूर्ख, स्वयं अज्ञानी होकर भी अपने को बहुत बड़ा ज्ञानी मानते हो मेरी उपेक्षा करते हो, अतएव तुम शीघ्र ही अपनी श्रीलक्ष्मी को खो दोगे। जो गुरु वचनों पर अविश्वास करता है, उसका अध:पतन होना अनिवार्य है।

विप्र वैषतें दंड देहिँ वा मोकूँ मारैं। अथवा धन गृह राज्य छीनिके देश निकारैं।।
दीयो जो कछु दान करौं नहिँ फिर हौं नाहीं। धन तो आवत जात रहै कीरति जग माही।।
चाहै वामन विप्र हों, शत्रु होहि अथवा सुहृद। देहुँ तीनि डग भूमि अब, पग लघु हौं अथवा वृहद।।

देवता भी बलि की बढ़ाई करने लगे- धन्य है बलि धन्य है। हम देवता होकर भी ऐसा नहीं कर सके, जो आज उदारशिरोमणि बलिने दैत्य होकर किया। वामन बोले- हे दाता, पिछले जन्म मैंने दान नहीं किया इसी कारण भिक्षुक बनना पड़ा। यदि तुम भिक्षा नहीं दोगे तो अगले जन्म में तुम्हारी भी यही गति होगी। भिक्षुक को भिक्षा अवश्य देना चाहिये। हो न हो भिक्षुक के रूप में नारायण ही आये हों। भिक्षुक वही है जो पाँच घरों में जाकर भिक्षा माँगता है।

शुक्राचार्य ने बलि की बातें सुनीं। उन्होंने सोचा कि जिसे मैंने युद्ध में जीवित किया था, वही बलि आज मेरा तिरस्कार कर रहा है, मेरी बात नहीं मान रहा है अत: उन्हें क्रोध आ गया।

लखि बालिकी हठ शुक्र क्रोध करि बोले बानी। अरे मन्दमति, मूर्ख, अज्ञ, शठ, पंडितमानी।।
साधारण द्विज भिक्षु मोइ निज आश्रित जानैं। करैं उपेक्षा अधम बात मेरी नहिँ मानैं।।
जा तेरो ऐश्वर्य धन, छिनमहँ सब नसि जाइगो। गुरु आज्ञा अवहेलना, को फल अब तू पाइगो।।

उन्होंने शाप देते हुए कहा- जा, अरे तू अज्ञ और मूढ़ होकर भी अपने को पंडित मानता है। तूने मेरी उपेक्षा करके मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है अत: जा तू शीघ्र ही ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जा, राज्यलक्ष्मी से भ्रष्ट हो जा। बलि ने गुरुदेव के इस शाप को भी स्वीकार किया और दान देने के अपने निश्चय से डिगे नहीं। उसी समय उनकी पत्नी विन्ध्यावली जल से भरे सुवर्ण की झारी लेकर आई। जो विपत्ति में अपने साथ रहे वही बन्धु है, वही स्वजन और आत्मीय है। प्राय: परिवार वाले तभी तक साथ देते हैं, जब तक ऐश्वर्य हो। ऐश्वर्यहीन होने पर सभी परित्याग कर देते हैं।

बलि ने सविधि चरण धोकर ब्राह्मण-बटु का पूजन किया, इस सौभाग्य को देखकर आकाश से पुष्प-वर्षा होने लगी। दुन्दुभियाँ बज उठीं। नाच गाने होने लगे। सभी उस समय बलि के भाग्य की प्रशंसा करते हुए कह रहे थे कि इसने गजब कर दिया क्योंकि जानबूझकर शत्रु को त्रिलोकी दान कर दी। फिर बलि ने आचार्य जी से संकल्प बोलने की प्रार्थना की। शुक्राचार्य ने कहा- मैं संकल्प नहीं बोलूँगा। वे सोचते थे कि बिना संकल्प बोले बलि दान कैसे करेगा? जो दूसरेके दान, औदार्य और धर्ममें बाधा पहुँचाता है, उसकी दृष्टि सम नहीं रहती, वह विषम दृष्टि हो जाता है।

कपटी वटु बोले विभो, हौं लोभी वामन नहीं। तुरत देहु सन्देह मन, फिर नाही कर दै कहीं।।

वामन भगवान बोले- राजन्, यदि आपके गुरुदेव संकल्प नहीं बोलना चाहते तो कोई बात नहीं। मैं ब्राह्मण का बेटा हूँ। मैं संकल्प करा सकता हूँ। आप हाथ में जल लीजिये। मैं संकल्प बोल रहा हूँ। वामन ने संकल्प बोलना प्रारम्भ किया।

जो कर्म संकल्पपूर्वक किया जाता है वही फलप्रद होता है। जहाँ संकल्प ही नहीं, कर्तृत्व ही नहीं वहाँ फल कहाँसे उत्पन्न करेगा। फल कर्ममें नहीं रहता, कर्तृत्व और संकल्पमें निवास रहता है।

लौ सुवर्ण जल पात्र कहैं बलि- अच्छा, लीजै। शुक्र बीचमहँ रोकि कहें- नृप भूमि न दीजै।।
यह वटु वामन नहीं बदलिकें वैष बनायो। कमलापति यह विष्णु कपटतें ठगिबे आयो।।
जब फैलावे पैर जिह, वटु विराट बनि जायगो। राज्य भ्रष्ट असुरनि करै, अमरनि अधिप बनायगो।।

शुक्राचार्य ने सोचा मेरा यह दाँव भी खाली गया अत: अब उन्होंने दूसरा उपाय किया। वे शिष्य की सम्पत्ति की रक्षा करना चाहते। इसलिये योग के द्वारा सूक्ष्म शरीर धारण कर उन्होंने झारी की टोटी में घुस कर जल के निकास का मार्ग ही अवरुद्ध कर दिया। इससे जल न निकल सका। वामन भगवान शुक्राचार्य की यह सब चाल समझ गये। उन्होंने मन-ही-मन कहा- ठीक है, गुरुदेव। मायापति से ही माया करने चले हैं आप। उन्होंने कहा बलि प्रतीत होता है कमण्डलु की टोटी में कुछ अवरोध है जिससे जल नहीं निकल रहा है अत: कुश की नुकीली जड़ से उसमें जरा जोर से खोद दीजिये। बलि ने वैसा ही किया। कुश की जड़ सीधे जाकर शुक्राचार्य की आँख में घुस गई जिससे उनकी एक आँख ही फूट गई। वे छटपटा कर बाहर निकल भागे। वे अब एक आँखवाले बन गये; समदर्शी हो गये। भगवान् ने उनकी भी कीर्ति अमर बना दी। भगवान स्वयं ब्राह्मण की आँख नहीं फोड़ना चाहते थे अत: बलि को उकसा कर यह कार्य करवा दिया। शुक्राचार्य सूक्ष्म रूप लेकर कमण्डलु की नली में जाकर बैठ गये। न पानी गिरेगा, न संकल्प होगा और न चेला लुटेगा। शुक्राचार्य जब नली में आकर बैठे तो भगवान ने अपने कुशा के आसन से एक कुशा निकाली और जैसे ही कमण्डलु की नली में कुशा दी, गुरुदेव की आँख पधार गयी। शुक्राचार्य बोले- **देता है कोई लेता है कोई। हमने आँख अकारण खोई।।**

बलि ने संकल्प का जल वामन वटु के हाथ पर डाल दिया। वामन भगवान बोले- यजमान अब नापें। बलि बोले हां भगवन् नाप लो, बोले कहाँ से नापें। बोले जहाँ से आपकी इच्छा हो। दान देते समय दीन भाव होना चाहिए, क्योंकि अहंकार आ जाने से सत्कार्य के माध्यम से ही मनुष्य का कर्म बिगड़ जाता है।

बढ़न लगे तत्काल प्रभु, भये त्रिविक्रम रूप। प्रगटे आयुध पार्षद अरु ऐश्वर्य अनूप।।

जल डालते ही एक अद्भुत घटना घटी। सबके देखते-ही-देखते वामन का रूप बढ़ने लगा। बढ़ते-बढ़ते वह विराट् स्वरुप में परिणत हो गया। देखनेवालों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सभी सोच रहे थे कि यह क्या हो गया। वामन के उस विराट् रूप में पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पशु-पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषि- सब-के-सब समा गये। यज्ञ के सभी सदस्यों ने भगवान के उस श्रीविग्रह में सकल ब्रह्माण्ड का दर्शन किया।

जल कुश लै संकल्प पढ़्यो भू वामन दीन्हीं। नन्हें नन्हें हाथ बढ़ाये वटु लै लीन्हीं।।
अब पुनि वामन बढ़े लोभ वश पग फैलाये। उनके तनमहँ भूमि दिशा नम सबहिँ समाये।।
भुवन चतुर्दश भूत सब, काल कर्म मनु इन्द्र सुर। वटु वामनके देहमहँ, चकित होहिँ निरखहिँ असुर।।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, दान लेते ही उन वटु वामन भगवान का रूप त्रिगुणात्मक अनन्त रूप विविध भाँति से बढ़ने लगा। उस रूप के अन्तर्गत पृथ्वी, आकाश, दिशा, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पक्षी, मनुष्य, देवता, ऋषिगण सबके सब आ गये।

भगवान इतने बढ़े-इतने बढ़े सब भगवान के उस अलौकिक विराट् स्वरूप को देखकर चकित हो गये। प्रभु ने कहा- अब नाप रहा हूँ। बलि ने कहा- प्रभो, इसी पैर से नापने को कहा था? मांगते समय तो आपने इतने छोटे-दोटे पांव दिखाये और नापते समय इतने विशाल, भगवान बोले हमने तो पहले ही कह दिया था कि तीन पग हमारा छोटा नहीं हैं, तुम्हें देखने में छोटा लग रहा है।

शुक्र वचन प्रत्यक्ष भये वटु वामन बाढ़े। अद्भुत अनुपम रूप असुर सब निरखैं ठाढ़े।।
दण्ड कमण्डलु त्यागि अस्त्र आयुध निज धारे। लखि विराटकूँ कँपैं असुर सब भयके मारे।।
चक्र सुदर्शन, धनुष, सर, गदा, खड्ग धारन किये। ढाल, शंख, क्रीड़ा कमल, आठों हाथनिमहँ लिये।।
लम्ब तड़ंगे विश्वमय, बने विष्णु वामन छली। जब नापै पगतें मही, सो शोभा अतिई भली।।

बलि का राज्य तीन लोक में है भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक तक की सीमा थी इनके राज्य की लेकिन भुवर्लोक स्वर्गलोक तक की कौन कहे इनका चरण सत्यलोक तक चला गया। सातवें लोक तक चला गया।

वामन भगवान बोले- बलि, तेरे राज्य की सीमा तो तीन लोक तक ही है, लेकिन मेरा पैर सातवें तक पहुंच रहा हैं। पूरा तो नहीं पड़ रहा है पर चल मैंने मान लिया।

तेरे द्वार खड़ा भगवान, भक्त भर दे रे झोली। तेरा होगा बड़ा एहसान। रहेगी जग में तेरी शान।।
भक्त भर दे रे झोली। तेरे द्वार खड़ा भगवान, भक्त भर दे रे झोली।।

भगवान के इसी विराट रूप का दर्शन महाभारत की समर भूमि में अर्जुन ने किया था। यह देखकर सारी-की-सारी असुर-मण्डली थर्रा उठी।

उसी समय असह्य तेज से सम्पन्न सुदर्शन चक्र, शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शंख और अत्यन्त वेगवती कौमोदकी गदा आदि अस्त्र-शस्त्र और सेवक-गण नन्द-सुनन्द आदि भगवान की सेवा में उपस्थित हो गये। उस समय भगवान के विराट स्वरूप की शोभा अवर्णनीय थी। उनके वस्त्राभूषण अकथनीय थे। गले में लटकती उनकी वनमाला अद्भुत थी। उन्होंने अब भूमि नापने के लिये अपना पग उठाया। एक पग से सारी भूमि नाप ली, शरीर से आकाश और भुजाओं से दिशाएँ घेर लीं। दूसरे पग से उन्होंने ऊपर के स्वर्ग आदि सारे लोकों को नाप लिया। तीसरा पैर रखने के लिये बलि की तनिक-भी कोई वस्तु नही बची। भगवान का वह दूसरा पग ही ऊपर की ओर जाता हुआ महर्लोक, जनलोक और तपलोक से भी

ऊपर ब्रह्मा के सत्यलोक में पहुँच गया।

शुकदेव बोले- राजन्, उन बिराट बने वामन ने अपने एक पग से सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ली। शरीर से आकाश को और भुजाओं से दिशाओं को घेर लिया, फिर दूसरे पैर से स्वर्ग को भी नाप लिया अब उनके तीसरे पद के लिये तो अणुमात्र भी स्थान न बचा।

सागर कानन शैल, नदी नद सर निर्झरिनी। सात भूमि पाताल सहित सबरी यह धरनी।।
बलिकी जहँ लगि भूमि नापि वामनने लीन्हीं। फैलावे पग विशद पाद अन्तर्गत कीन्हीं।।
कायातें आकाशकूँ अष्ट करनितें अष्ट दिशि। गयो द्वितिय पद स्वर्गमहँ, जन, तप, सत्यहुमें प्रविशि।।

भगवान जब त्रिलोकी को नाप रहे थे, उस समय बलि हाथ जोड़े हुए निर्निमेष दृष्टि से उनकी ओर देख रहे थे।

शुकदेव बोले- राजन्, जब भगवान का चरण-कमल सत्यलोक में पहुँचा तब बड़े-बड़े योगियों और महर्षियों के साथ ब्रह्माजी ने उसकी अगवानी की, पूजा और वन्दना की। ब्रह्माजी ने भगवान के चरण को धोकर अपने कमण्डलु में रख लिया। भगवान के चरण-कमल के धोवन का वही जल गंगा है। यही गंगा आकाश-मार्ग से पृथ्वी पर गिर कर तीनों लोकों को पवित्र करती है।

शुकदेव कहते हैं- हे राजन्, जब भगवान का चरण सत्यलोक में पहुंचा तो उसके नखचन्द्र की छटा से सत्यलोक की आभा फीकी पड़ गई। स्वयं ब्रह्मा भी उसके प्रकाश में डूब गये। ब्रह्मा आश्चर्यचकित होकर उठे और चरण का अर्घ्य पाद्य आदि से पूजन किया, प्रक्षालन किया। ब्रह्मा के कमण्डलु का वही जल विश्वरूप भगवान के पांव पखारने से पवित्र होने के कारण गंगाजी के रूप में परिणत हो गया। ये गंगाजी क्या हैं, ठाकुर के चरणों की धोवन हैं। ब्रह्माण्ड का जो बाहर का आवरण था वह फट गया। विरजा ब्रह्माण्ड नदी का पावन जल वामन भगवान के अँगूठे से ऊपर होकर नीचे बहने लगा। नीचे ब्रह्माजी थे। उन्होंने अपने कमण्डल में जल रख लिया वही जल गंगाजी के रूप में बदल गया। आज तक वे ही गंगा जी के रूप में हमें दर्शन दे रही है।

फोर्‌यो अंड कटाह चरन नख पार गयो जब। बही सलिलकी धार कमंडलु विधि धारी तब।।
विष्णुपदी पुनि भईं पखारे पद श्रीहरिके। श्री गंगाजी चलीं भूमि पै वहीं उतरिके।।
शत योजन पै बैठिकें, जे गंगा गंगा कहहिँ। ते नर पावैं परम पद, भूखे नंगे नहिँ रहहिँ।।

शुकदेव बोले- राजन्, ब्रह्माजी के कमण्डलु का वह जल जो उरुक्रम भगवान के पाद प्रक्षालन से परम पवित्र बन गया था, उसी से विष्णुपदी गंगाजी हुई जो आकाश से गिरती हुई तीनों लोकों को पावन करती हैं और जो भगवान की मानों बढ़ी हुई कीर्ति ही है।

दूजे पग नापत चरण गयो ब्रह्मलोक। पूजे विधि ब्रह्मलोकवासी लिये संग हैं।
धोय पादपद्म जल राख्यो कमण्डलु मध्य। सोई तो त्रिलोक तारिबे को मातु गंग है।।

ब्रह्मा के कमण्डलु से निकली हुई गंगा की तीन धाराएँ हो गई। स्वर्ग में स्थित धारा मन्दाकिनी कहलाई। भूतल पर आई धारा गंगा (भागीरथी) के नाम से विख्यात है और जो धारा पाताल तल को गई उसे भोगवती कहते हैं। दो पग से त्रिलोकी को नाप लेने के बाद भगवान पुन: अपने को छोटा कर लिये। विभूतियों को समेट कर वामन बन गये। उसी समय ब्रह्मा के साथ देव-मण्डली ने यज्ञ-भूमि में आकर उनका सविधि पूजन किया।

यह विश्व ब्रह्माण्ड व्यापक विभुति एक पाद में हैं और शेष तीन पग तो विशुद्ध त्रिपाद विभूति बताये गये हैं। जब वे अवतार

धारण करते हैं, धराधाम पर अवतरित होते हैं, तो द्विपादवाले बन जाते हैं। दो पैरों में ही ब्रह्माण्ड कटाह को आवृत कर लेते हैं और लोक कल्याण के लिये अपनी विशिष्ट विभूति से श्रीगंगा को अवतरित करते हैं। गंगाजी और कुछ नहीं हैं वह द्रवित हुआ ब्रह्म ही है। ब्रह्म ने ही निराकार धारण कर लिया है। घनीभूति परब्रह्म ही पिघलकर जल रूप में परिणित हो गये हैं। जैसे अन्य अवतारों में अवतरित होते हैं, वैसे ही सत्यलोक से जल रूप से समस्त लोकों को पावन बनाते हुए अवतरित हुए हैं। उसी ब्रह्मद्रव का नाम गंगा है। विष्णुपद प्रक्षालन के कारण उसे ब्रह्मपदी कहते हैं, सुरलोक से आने के कारण सुरसरि कहाती हैं। वे त्रिभुवनतारिणी तरल तरंगोंवाली स्वर्धुनी गंगा पापियों के पापों का प्रक्षालन करती हुई अद्यावधि अवनि पर अवस्थित हैं। वे मानो वामन और बलि की विमल कीर्ति ही जल का रूप रखकर अविच्छिन्न गति से बह रही हैं।

जग जननी माँ अंग अंग अँग सुख सरसावै। मन पुलकित पयपान लहर लखि हिय हरसावै।।
पाप पहाड़ ढहाय पुण्यको पोत पठावैं। तापै चढ़ि माँ, भक्त सहज भवनिधि तरि जावैं।।
प्रभुपद रज तुलसी सहित, ब्रह्म कमण्डलुतें निकसि। सब स्वर्गनि पावन करति, गिरि भू, पुनि जलनिधि प्रविसि।।

उस समय ऋक्षराज जाम्बवान् मन के समान वेग से दौड़ कर सब दिशाओं में भेरी बजा-बजा कर भगवान की मंगलमय विजय की घोषणा कर आये।

दैत्यों ने देखा कि वामन ने तीन पग पृथ्वी मांगने के बहाने सारी पृथ्वी ही छीन ली। वे कहने लगे हमारे स्वामी इस समय यज्ञ में दीक्षित हैं अत: वे कुछ कहेंगे नहीं। वे ब्राह्मणों के भक्त और सत्यनिष्ठ भी हैं अत: उन्होंने हमारे साथ छल किया है। अत: हम लोग मिलकर इस कपटी विष्णु को मार डालें ऐसा कहकर विविध अस्त्र-शस्त्र से लैस होकर वे वामन पर टूट पड़े किन्तु विष्णु के महान् पार्षदों ने सबको मार कर भगा दिया। नंद, सुन्दन, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विहन, गरुड़, जयन्त, श्रतदेव, पुष्पदन्त, तथा सात्वत यह सभी पार्षद इस दो हजार हाथियों के बल वाले थे। वे सभी असुरों की सेना पर टूट पड़े। बलि ने समझाया- भाई, इस समय युद्ध का काल नहीं है। काल भगवान हमारे प्रतिकूल हैं। इस समय युद्ध मत करो। जो लोग कभी सामने खड़े नहीं होते थे वे ही आज हमारे सामने गरज रहे हैं, जोरों से निनाद कर रहे हैं। कोई बात नहीं। समय अनुकूल होने पर कभी हम भी विजय प्राप्त करेंगे। तुम लोग समय की प्रतीक्षा करो। काल तथा पुरुषार्थ का उल्लंघन करने में मनुष्य समर्थ नहीं है, जो काल पहले हमें सुख प्रदान करता था तथा शत्रुओं को दु:ख देता था, वही अब उल्टी रीति से चलने लगा हैं। अत: अब अनुकूल समय की राह देखते हुए तुम चुप रहो। समय ही कभी किसीको दुर्बल तो कभी प्रबल कर देता है। जब समय अनुकूल होता है, तो बिना प्रयत्न किये अनायास कार्य सिद्ध हो जाता है, किन्तु जब समय प्रतिकूल होता है, तो प्रयत्न करने पर भी परास्त होना पड़ता है। यह समय हमारे अनुकूल नहीं है। अत: युद्ध करने से कोई लाभ नही? पुरुषार्थ सब स्थानों में सब समय काम नहीं आता। उसका भी समय होता है। काल ही प्राणियों को सुख-दु:खादि पहुँचाने में समर्थ है उसपर कोई भी पुरुष पुरुषार्थ से विजय प्राप्त नहीं कर सकता। अपने स्वामी बलि की इस प्रकार बात सुनकर उनकी आज्ञा को स्वीकार करते हुए दैत्यसेना ने पाताल में प्रवेश किया।

अरे, असुरगन, बात सुनो, मति शस्त्र चलाओ। असमय लखि तुम तुरत लौटि रनतें सब आओ।।
समय सबल ही करै करै दुर्बल वह भाई। काल जनित यह विपति, असुर कुलपै अब आई।।
मन्त्र बुद्धि अरु दुर्ग बल, अब न काम कछु करिंगे। बनि विराट वटु विप्रवर, सरबसु हमरो हरिंगे।।

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज बलि के अनुचर असुर आपस में कहने लगे- याचना करनेवाले इस शत्रुरूप वटुवामन ने

हमारे स्वामी के सर्वस्व का अपहरण कर लिया है। यज्ञ में दीक्षित होने के कारण उन्होंने अस्त्र-शस्त्रों को भी छोड़ दिया है। इसलिये हमारा बटु का वध करना ही उचित धर्म है। इसमें हम अपने स्वामी की सेवा कर सकेंगे। ऐसा कहकर उन्होंने शस्त्रों को उठा लिया।

द्वै डगतें पुनि नापि बने पुनि- हरि बटु बालक। लखि छल सबई दैत्य भये क्रोधित पुरपालक।।
मारौ, यह द्विज नाहिँ विष्णु छलिया असुरारी। स्वामीकूँ छलि ठगी सबहिँ सम्पत्ति हमारी।।
जीवित जान न पाइ जिह, अब यमपुरको गहै। क्रोधित असुरनितें बिहँसि, महा मनस्वी बलि कहै।।

उसी समय भगवान का संकेत पाकर गरुड़ ने वरुण-पाश से बलि को बाँध लिया। यह देखकर चारों ओर हाहाकार मच गया। अब समर्पणमें कोई कोर-कसर तो नहीं है, यह जानने और जनानेके लिए भगवान्ने गरुड़से कहा कि बलिको बाँध दो। गरुड़ने आज्ञाका पालन किया और बलि बाँध दिये गये।

शुकदेव बोले- राजन्, इसके पश्चात विराट प्रभु की इच्छा जानकर गरुड़जी ने महाराज बलि को वरुणपाश से बाँध लिया। उस दिन सोमाभिषव का दिन था। प्रभुविष्णु भगवान विष्णु द्वारा असु पति महाराज बलि के बाँधे जाने पर पृथ्वी और आकाश में सर्वत्र महान् हाहाकार मच गया।

सुनिकें बलिकी बात लौटि सुररिपु सब आये। बाद विवाद न बढ़ै असुर पाताल पठाये।।
अच्युत आशय समुझि गरुड़ बलि बाँधे बरवस। जगमहँ हाहाकार मच्यौ हरि छीन्यो सरबस।।
चलित चित्त बलि नहिँ भये, हस्यो विष्णुने भुवन धन। लखि लज्जित बलितें विहँसि, बटु वामन बोले वचन।।
बलि बाँध्यौ सब धन हस्यो, ऐसी प्रभु की टेक। बामन बनि याचक भये, नहीं निभायो भेक।।
प्रभु रुख लखि बाँध्यो गरुड़ बलिहिं वरण के पास। बहु प्रकार करि भर्त्सना बोले रमानिवास।।
दे अभिमानी शेष दान तु खुला नरक का द्वार।।
दैत्य कहि कपट हरी को चले मारिबे को। वार्‌यो बलि कही प्रभु निश्चय अभंग है।
करत प्रदक्षिणा जयघोष जामवन्त। कर भेरी मुख नाम हिये प्रेम की तरंग है।।

यद्यपि बलि वरुण के पाशों से बँधे हुए थे। उनकी सम्पत्ति भी उनके हाथों से निकल गई थी फिर भी उनकी बुद्धि अविचलित थी और लोग उनके उदार यश का गान कर रहे थे। परीक्षित्, उस समय भगवान ने बलि से कहा- बलि, तुमने तीन पग का दान दिया था न? दो पग में मैंने तेरा सब कुछ नाप लिया एक पग तो बाकी ही रहा। अब अपनेआपको त्रिलोकी का नाथ बतानेवाले अब बता तीसरा पग कहा रखूं अन्यथा संकल्प करके दान पूरा न करने के कारण तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा। जो याचक को देने की प्रतिज्ञा करके उसे पूरी नहीं करता उसे नरक में गिरना पडता है। क्यों त्रिलोकीनाथ जी? बड़ा अभिमान करते थे कि जो चाहे सो माँगो, तुमने तीन पैर धरती देने का संकल्प किया। मैंने दो पैरों से त्रिलोकी को नाप लिया, बताओ तीसरा पैर कहाँ रखूँ? जो प्रतिज्ञा करके याचक को नहीं देता उसका अध:पतन होता है। **पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम्।**

तुम्हें इस बात का बड़ा घमण्ड था कि मैं बड़ा धनी हूँ। तुमने मुझसे दूँगा ऐसी प्रतिज्ञा करके फिर धोखा दे दिया। अब तुम कुछ वर्षों तक इस झूठ का फल नरक भोगो। जो पुरुष याचक से प्रतिज्ञा करके भी उसे उतनी वस्तु प्रदान नहीं करता, उसके साथ विश्वासघात करता है, तो मिथ्या भाषण के दोष के कारण उसे नरक में जाना पड़ता है।

महाराज बलि भगवान वामन से कह रहे हैं- हे उत्तम श्लोक, आप मेरे कहे हुए वचनों को मिथ्या मानते हैं तो मैं उसे सत्य

करूँगा। मैं आपको ठगना नहीं चाहता। हे सुरश्रेष्ठ, आप अपने तृतीय पैर को मेरे सिर पर रखिये।

हे दानिनिमें श्रेष्ठ, तीनि पग पृथिवी दीन्हीं। प्रथम पादतें स्वर्ग द्वितियतें भू सब लीन्हीं।।
तीसरे पगके हेतु अवनि कहु अनत बताओ। करो प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं नरकनिमहँ जाओ।।
दान प्रतिज्ञा प्रथम करि, पुनि पूरी जे नहिँ करहिँ। ते पापी पामर पुरुष, सब नरकनिके दुख सहहिँ।।
बलि बोले- हे विश्वेश, सत्यतें नहिँ मुख मोरूँ। तीनि पैरकी करी प्रतिज्ञा ताहि न तोरूँ।।
तीसर पग मम सिर धरो, बिना बात बटु च्यौं लड़ौ। दान वस्तुकी अपेक्षा, दाता तो सब विधि बड़ौ।।

बलि ने कहा- प्रभो, जिस रूप में आपने दान लिया, उसी रूप से नापते। कमी पड़ती तो आप हमसे लेते। आप ने तो दान लिया छोटे-से रूप से और नापना प्रारम्भ किया विराट रूप से। धन बड़ा होता है कि धनवान बड़ा होता है? मकान बड़ा कि मकान का मालिक बड़ा? पलंग बड़ा कि पलंग पर सोने वाला बड़ा?

बलि के प्रश्न को सुनकर भगवान को कहना पड़ा- राजन् धन बड़ा नहीं होता धनवान बड़ा होता है। बलि बोला- भगवन्, धन से धनवान् बड़ा होता है, आपको यह मान्य हैं न? भगवान अब विवश थे। क्या कहते? कहा- हाँ हाँ, मान्य है।

बलि बोला- तो मैं धनवान हूँ न? मैं अपने आपको ही समर्पित कर रहा हूँ तीसरा पग पूरा करने के लिये। तीसरा चरण मेरे सिर पर रक्खें फिर तो मेरा दान पूरा हो गया। जब धनवान धन से बड़ा है- यह मान्य ही है तो संगता सिद्धि के लिये जो कुछ चाहिये, उसके सहित मेरा दान पूरा हो गया। दान की पूर्ति और संगता-सिद्धि के लिये मुझ धनवान के सिर पर ही आपके श्रीचरण प्रतिष्ठित हों। भगवान के पास कोई उत्तर न था। वे मान गये।

भाव का भूखा हूं मैं भाव ही बस सार है, भाव से मुझको भजे तो भव से बेड़ा पार है।
धन और वस्त्र भूषण कुछ न मुझको चाहिये। बस आप हो जाय मेरा, पूर्ण यह सत्कार है।।

देवताओं के आराध्य देव, देवशिरोमणि प्रभो, यद्यपि मेरी बात मिथ्या नहीं है फिर भी यदि आप उसे मिथ्या मानते हैं, तो मैं उसे सत्य कर रहा हूँ, जिससे मुझे संसार में अपयश न मिले। मेरे स्वामी, आप अपना तीसरा चरण मेरे सिर पर रखकर यह शरीर ही नाप लें।

बलि बोले- भगवन्, मेरा तो जो था वो सब आपने ले लिया अब मैं बचा हूँ, मुझको तीसरे चरण में स्वीकार करें। अपना तीसरा चरण मेरे सिर पर रखिये। इसलिये भगवान ने स्वयं अपना पाँव बलिके सिरपर रखकर उसको स्वीकार कर लिया कहा कि बलि, तुम्हारा धर्म-कर्म, सुख-दु:ख, शरीर, अन्त:करण, बुद्धि, अहंकार तुम जो कुछ कभी थे, आज हो और आगे होओगे, वह सब मेरा। बलिका समर्पण पूर्ण हुआ। बहुत प्रसन्न हुए भगवान और बोले- बलि, आज तुमने अपना नाम सार्थक कर दिया।

प्रभो, अपने स्थान से भ्रष्ट होकर मैं नरक में जाने से नहीं डरता। न इस पाश-बन्धन से ही भयभीत हो रहा हूँ। आगे आनेवाले अपार दु:ख से भी मैं चिन्तित नहीं हूँ। मेरे पास फूटी कौड़ी भी न रहे अथवा आप मुझे घोर दण्ड दें। यह भी मेरे भय का कारण नहीं है। मुझे भय है तो केवल अपनी अपकीर्ति से। लोग कहेंगे कि बलि ने संकल्प कर के भी दान नहीं दिया। मुझे न तो आपके द्वारा बांधे जाने पर कोई लज्जा ही है और न सर्वस्व अपहरण कर लेने पर दु:ख ही है।

प्रभो, आपकी महिमा और लीलाएँ अपार तथा अनन्त हैं। ऐसे मेरे स्वामी, आप मुझे दण्ड दे रहे हैं और वरुण-पाश में बाँध रक्खे हैं। इसकी न तो मुझे कोई लज्जा है और न किसी प्रकार की व्यथा ही। प्रभो, आपके लीला-विलास के बारे में क्या कहूँ? कुछ कहा नहीं जाता। आप जिसे अपनाते हैं उसे कभी दण्डित करते हैं, कभी दुलारते हैं और फिर उसे छाती

से लगाकर ऊपर उठा देते हैं। मेरे पितामह प्रह्लाद जी की कीर्ति सारे जगत् में फैला दी। आज दुनियाँ उन्हें आपके भक्तों में शिरोमणि मानती है। उनके पिता हिरण्यकशिपु ने आप से वैर-विरोध करने के कारण उन्हें विविधविध यातनाएँ दीं। किन्तु उन्होंने कभी आपका साथ नहीं छोड़ा। उन्होंने अपने आपको चरणों में पूर्णरूप से निछावर कर दिया था। वे सोचते थे कि शरीर को लेकर क्या करना है? क्योंकि यही एक-न-एक दिन स्वयं छोड़ देनेवाला है। स्वजन कहे जानेवाले भाई-बन्धुओं से भी कोई स्वार्थ सिद्ध होनेवाला नहीं है, क्योंकि ये तो धनका अपहरण करनेवाले डकैत ही ठहरे। पत्नी से भी किसी प्रयोजन की सिद्धि होनेवाली नहीं है, क्योंकि इसी के कारण बार-बार जन्मना और मरना पड़ता है। मरणधर्मा मानव के लिये घर को सजाने-सवाँरने की भी क्या आवश्यकता है? जब एक-न-एक दिन मरना ही है तो घर को लेकर क्या करना है? ऐसे अटल विश्वास के साथ उन्होंने आपके अभयप्रद चरणों को कसकर पकड़ रक्खा था।

स्वजन क्या करते हैं, हमारा इह लौकिक धन हरते हैं मोह बढ़ाकर परलोक का नाश करते हैं। संसार में पुन: पुन: फँसाते हैं। जिसका स्मरण करके प्राण छोड़ेंगे, उसी के यहाँ जन्म लेना पड़ेगा। ये स्वजन परिवारवाले तो परमार्थ के शत्रु हैं। जिस भार्या को प्राणों से भी अधिक प्रियतमा मानते हैं वह जन्म मरण रूप संसार चक्र की हेतुभूता है। जिसकी मृत्यु निरन्तर सिर पर नृत्य करती रहती है। उस पुरुष का ये सांसारिक सम्बन्धी क्या कल्याण कर सकते हैं? इन सांसारिक धन वैभव में रखा ही क्या है, इन्हें पाकर तो जीव मदोन्मत्त हो जाता है, अन्त में इन सबको यहीं त्यागकर मृत्यु के मुख में चला जाता है।

प्रभो, मैं असुर हूँ और आप असुरों के परमशत्रु हैं फिर भी आपकी मेरे ऊपर अवर्णनीय कृपा है। बड़ा अच्छा हुआ। विधाता नें मुझे बलात् ऐश्वर्यलक्ष्मी से अलग करके आपके पास पहुँचा दिया है। जीव इसी ऐश्वर्य-लक्ष्मी के कारण यह समझ नहीं पाता कि यह जीवन यमराज के हाथ का खिलौना है। मैं तो धन्य हो गया आपके चरण मेरे सिर पर पड़े। मुझे तो इससे सब कुछ प्राप्त हो गया। ऐश्वर्य-लक्ष्मीके कारण जीवकी बुद्धि जड हो जाती है और वह यह नहीं समझ पाता कि मेरा यह जीवन मृत्युके पंजेमें पड़ा हुआ और अनित्य है। अपने कर्तापन का अहंकार भगवान की महती कृपा बिना नहीं जा सकता।

हे हरि माता पिता सुहृद सर्वस्व हमारे। पकरि पितामह तरे, पोत पद पद्म तिहारे॥
बन्धेनतें नहिँ डरौं नरकतें भय नहिँ प्रभुवर। स्वामी देवै दण्ड होहि सेवककूँ सुखकर॥
बैर भावतें भक्ति करि, तरे असंख्यों असुरगन। जग सुख भोग्यो अन्तमहँ, लह्यो परम पद त्यागि तन॥

बलि अभी यह कह ही रहे थे कि उसी समय प्रह्लाद जी वहाँ आ पहुँचे। उनका विग्रह, उनके वस्त्राभूषण सब दिव्य थे, आकर्षक थे।

बलि वामन बतराइ भये प्रह्लाद उदित रवि। अरुन नयन पटपीत कृष्ण तनु अति मनहर छवि॥
निरखि पितामह नेह नीर बलि नयननि छायो। पूजा कैसे करहिँ बँधे ही शीश नवायो॥
बलि सिकुर्‍यो संकोचवश, वामन हरि सम्मुख खरे। पुलकित तनु प्रह्लादजी, ह्वै प्रसन्न प्रभु पग परे॥

शुकदेव बोले- राजन्, महाराज बलि इस प्रकार कह ही रहे थे कि इतने में परम भागवत प्रह्लादजी वहाँ आ गये सहसा वे चन्द्रमा के समान उदित हो गये।

बलि ने उन्हे देखा। पृथ्वी पर मस्तक रखकर प्रणाम किया। बलि को यह कष्ट हो रहा था कि वह आज पहले की भाँति पितामह की पूजा-अर्चना नही कर पा रहा है, क्योंकि उसके हाथ वरुणपाश से बँधे थे। उस समय उनकी आँखों में दु:ख के आँसू छलछला आये थे। दान पूरा न करने के कारण वह लज्जित थे। उनका सिर नीचे की और झुका हुआ था। प्रल्हाद जी सीधे पहुँचे भगवान के पास। उनके नेत्रों में आनन्द के अश्रु छलक रहे थे। वे भगवान के चरणों के पास, दण्ड की

भाँति, भूतल पर लेट गये फिर प्रकृतिस्थ होने पर उन्होंने कहा- मेरे स्वामी, आपने ही बलि को यह ऐश्वर्यपूर्ण इन्द्र-पद दिया था, अब आज आपने ही उसे छीन लिया। आपका देना जैसा सुन्दर है, वैसा ही सुन्दर लेना भी। मैं समझता हूँ कि आपने इस पर बड़ी कृपा की है, जो व्यक्ति की बुद्धि को भ्रष्ट कर देनेवाली राज्यलक्ष्मी से अलग कर दिया है। मैं आपको बार-बार प्रणाम कर रहा हूँ। प्रभो, इस अभिमान रूपी ज्वर में अगर तीन लोक की सम्पत्ति बरकरार रहती तो कुपथ्य करके अभिमान को बढ़ाती, आपने यह सम्पत्ति रूपी कुपथ्य छीनकर इसको अपना लिया यह आपकी महती कृपा है। परिवार का कोई सदस्य जब ईश्वरपरायण होता है तो पितृदेव भी प्रसन्न होते हैं।

शुकदेव बोले - राजन्, प्रह्लाद जी हाथ जोड़े खड़े थे। उनके सामने ही ब्रह्माजी ने वामन भगवान से कुछ कहना चाहा किन्तु उसी समय वहाँ पहुँच गई बलि की पत्नी विन्ध्यावली। उसने हाथ जोड़कर भगवान को प्रणाम किया। ऐसा लग रहा था कि वह कुछ कहना चाह रही थी अत: भगवान ने विन्ध्यावली को बोलने कि अनुमति दी।

पुनि बोले प्रह्लाद प्रभो यह अति भल कीन्हों। दयो इन्द्रपद आपु आपु ही पुनि हरि लीन्हों।।
धन वैभवमें कहाँ होहि तव चरननिमहँ रति। धन मदमहँ मदमत्त करें नर अघ अति नित प्रति।।
विनती करि प्रह्लादजी, पुनि कीयो चरननि नमन। तब विन्ध्यावलि बलिप्रिया, विनय सहित बोली बचन।।

विन्ध्यावली बोली- भगवन्, आपने इस सकल जगत्-प्रपंच को अपनी क्रीडा के लिये बनाया है- खेल खेलने के लिये खिलौना बनाया है। दुर्बुद्धि लोग ही आपके बनाये खिलौने को अपना मान लेते हैं। यह स्वर्गलोक हमारा, यह धरती हमारी, यह नन्दन वन हमारा ऐसा मान कर मुश्किल करते हैं। ऐसे लोगों की बुद्धि पर तरस आता है। प्रभो, कर्तृत्व भी आप के अनुग्रह से होता है। अधिष्ठान के बिना कर्ता कहाँ से आया? कर्तृत्वका आरोप किसी अधिष्ठान में होगा। संसार की कोई भी वस्तु का जो मालिक बनता है वह निर्लज्ज और झूठा है।

कर्ता भर्ता और जगतके हर्ता तुम हरि। अज्ञ सहैं दुख व्यर्थ राज धनमहँ ममता करि।।
का हम दीयो देव आप अपनो स्वीकारयो। यों कहि बैठी सती फेरि विधि बचन उचारयो।।
श्रीपति भूपति आप हैं लीलापति हैं आप। बीच आय स्वामी बने क्यों न सहे सन्ताप।।
आपतो रिझि तुरत देते उसे अति उत्तम स्थान। फिर बलि क्यों बन्धन में रहे देकर सरबस दान।।
सुर सुयस करि कहा बखाने, गोविन्द की गति गोविन्द जाने।।

यही प्रभु पहले वामन कहलाये फिर त्रिविक्रम हो गये और फिर बाद में इन्द्र के छोटे भाई के रूप में उपेन्द्र कहलाये।

रहिमन बिगड़ी आदि की, फिर बने न खरचे दाम। हरि बढ़े आकाश लौं तऊ वामनो नाम।।

विन्ध्यावली को जो कुछ कहना था, कह दिया। अब ब्रह्माजी ने कहना प्रारंभ किया- प्रभो, जो मनुष्य सच्चे हृदय से कृपणता को छोड़कर आपके चरणों में जल का अर्घ्य देता है और केवल दूर्बादलों से भी आपकी सच्ची पूजा करता है, उसे भी आप उत्तम लोक प्रदान करते हैं, मुक्त कर देते हैं फिर बलि ने तो बड़ी प्रसन्नता से धैर्य और स्थिरतापूर्वक आपको त्रिलोकी का दान कर दिया है, फिर यह दु:ख का भागी क्यों हो?

विधि बोले- विश्वेश विभु, बलि सरबसु अरपन कियो। फिर उदार यश असुरकूँ, बन्धन करि च्यौं दुख दियो।।

वामन बोले- बलि, आज तेरा नाम सार्थक हो गया। तूने आज अपने आपको न्यौछावर कर दिया। मैं तुझे आसके नवधा भक्ति प्रदान करता हूँ और बलिको आत्मनिवेदन भक्ति का अध्यक्ष बनाया। आज जब कोई बड़ा त्याग करता है तब उसे बलिदान की संज्ञा दी जाती है।

वामन बोले- ब्रह्मा, मैं जिस पर अनुग्रह करता हूँ, उसकी धन-सम्पत्ति छीन लेता हूँ। इसका कारण यह है कि धन के मद से मतवाला व्यक्ति मेरे भक्तों की और यहाँ तक कि मेरी भी अवमानना कर बैठता है। मानव का जन्म पाकर यदि व्यक्ति को कुलीनता, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन आदि के कारण घमण्ड न हो तो समझाना चाहिये कि उस पर भगवान की बड़ी ही कृपा है। इस संसार में अनेक प्रकारके मद होते हैं, कुलीनताका मद, कर्मका मद, उम्रका मद, रूपका मद, विद्याका मद, ऐश्वर्यका मद। यदि इनके कारण मनुष्य अभिमानी न हो जाये, तो समझो कि उसपर मेरा बड़ा अनुग्रह है। अभिमान सम्पूर्ण कल्याणका विरोधी है। ईश्वर का अनुग्रह नहीं हो तो व्यक्ति अहंकारी बन जाता है और अहंकार ही जीव के पतन का कारण होता है। जब-जब भगवान जीव पर कृपा करते हैं तो उसको रिक्त कर देते हैं। यह परमात्मा की कठोर कृपा है। भगवान ने कहा कि ब्रह्माजी, जिसके ऊपर मैं अनुग्रह करता हूँ, उसका सब-कुछ अपना लेता हूँ, कुछ भी नहीं छोड़ता, जिससे कि मनुष्य धनमदके द्वारा मतवाला न हो और मेरा अथवा अन्य किसीका तिरस्कार न करे।

वामन भगवान श्री ब्रह्माजी से कह रहे हैं- ब्रह्मन, जिसे मैं अपनाता हूँ उसका धन हरण कर लेता हूँ। क्योंकि धन के मद में उन्मत्त हुआ, पुरुष सब लोगों का तथा मेरा भी अपमान करने लगता है। धनी पुरुष कभी किसी से प्रेम नहीं कर सकता। इन सोने चाँदी तथा कागज के जड़ टुकड़ों से मोह हैं, चैतन्य से कैसे प्रेम कर सकता है। वह धन को सर्वस्व समझता है, इसी लिये निर्धनों का सदा अपमान करता है।

माया मोहित जीव जगतमहँ सुख दुख देखें। किन्तु भक्त सब माहिँ निरन्तर मोकूँ पेखें।।
हरि जस राखैं रहें खवावें जो सो खावें। राखैं जहँ रहि जायँ विष्णु बाँधे बँध जावें।।
ऐसी जिनकी मति सदा, कृपा प्रतीक्षा नित करहिँ। परम अनुग्रह पात्र मम, ते भवसागरतें तरहिँ।।

श्री भगवान ब्रह्माजी से कह रहे हैं- ब्रह्मन्, जन्म कर्म आयु, रूप, विद्या, ऐश्वर्य तथा अन्य धन आदि अभिमान जनक वस्तु होने पर जिसे अभिमान न हो, तो यह मेरा उस प्राणी पर परम अनुग्रह है।

विधिके सुनिकें बचन कहैं हरि हँसिके बानी। ब्रह्मन, तुम सर्वज्ञ वेदविद् पण्डित ज्ञानी।।
जन्म कर्म ऐश्वर्य अवस्था अरु सुन्दर तन। विद्या धन ये सबहिँ प्रशंसित जगमें हैं गुन।।
इन सब महँ मद रहतु है, धन मद अति ही प्रबल तम। धन मदमहँ उनमत्त नर, नेत्र सहित हू अन्ध सम।।

श्री भगवान धर्मराज युधिष्ठिर से कह रहे हैं- राजन, जिसे मैं अपनाता हूँ उसका शनै: शनै: सब धन हरण कर लेता हूँ। जब वह निर्धन हो जाता है, तो उसके स्वजन कुटुम्बी उसके दुखों से दुखी होकर उसका परित्याग कर देते हैं।

अपने आगे धनी गनहिँ नहिँ काहू जनकूँ। बढ़ैं लाभतें लोभ पाप करि जोरें धनकूँ।।
तातें जापै कृपा करहुँ हौं सब मदहारी। नासूँ धन ऐश्वर्य बनाऊँ ताहि भिखारी।।
धन, पशु, पुत्र कलत्र जे, करैं विघ्न हरि भजनमहँ। देखि सकहुँ नहिँ तिनहिँ हौं, नासि लेहुँ निज शरनमहँ।।

भगवान के समस्त विधानों में मंगल ही निहित है। शिव के कार्य अशिव नहीं हो सकते।

भगवान आगे कहते हैं कि मैंने अपने हाथपर कुश, अक्षत, जल लेकर संकल्प लिया है। इसलिए जब मैंने बलिका सब-कुछ ले लिया तब मेरा भी सब कुछ बलिका हो गया। अब ये थोड़े दिनोंके लिए सुतल लोकमें जायेंगे; वहाँ सारा वैभव है, नित्य सत्संग मिलेगा, प्रह्लादजी भी चलेंगे और मैं इनके पास पहरेदार बनकर रहूँगा।

मेरी शरण में आया हुआ व्यक्ति सांसारिक बातों से मोहित नहीं होता।

जो जन सब कुछ त्यागि शरन मेरीमहँ आवैं। ते तजि सब अभिमान निरन्तर मम गुन गावैं।।

जाति बरन अभिमान करै नहिँ धनमहँ ममता। परहितमहँ नित निरत तजैं सब मद उद्धतता।।
त्यागि मान मद सबनिमहँ निरखे श्री भगवान है। सब अनर्थके मूल ये, मिथ्या ही अभिमान है।।

यह दैत्यों और दानवों के वंश का मुकुटमणि है, शिरोभूषण है। इसने मेरी दुर्जेय माया को जीत लिया है। यह धन एवं स्थान से च्युत हो गया, शत्रुओं के द्वारा बाँधा गया, भाई-बन्धुओं ने इसका परित्याग कर दिया। गुरु ने इसे डाँटा-फटकारा और शाप भी दिया। परन्तु इस दृढ़वती ने अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी। मैंने इससे छल किया, छलभरी बातें की, मन में छल रखकर धर्म का उपदेश किया; परन्तु इस सत्यवादी ने अपना धर्म न छोड़ा। अत: मैंने इसे वह स्थान देने का संकल्प किया है, जो बड़े-बड़े देवताधिपतियों को भी दुष्प्राप्य है।

ब्रह्मन बलिने जाति लई दुर्जय मेरी माया। अजर अमर ह्वै गई कीर्ति अरु इनकी काया।।
धन सम्पतितें हीन बँधे बन्धनमहँ भूपति। करे तिरस्कृत सुरनि, यातनाहू दीन्हीं अति।।
दयो भयंकर शाप गुरु, जाति बन्धु सब तजि गये। छल करिकें सरबसु हर्‌यो, तोऊ विचलित नहिँ भये।।

अगले सावर्णि मन्वन्तर में यह मेरा परम भक्त इन्द्र बनेगा। तब तक यह विश्वकर्मा के द्वारा विनिर्मित सुतललोक में निवास करेगा। मेरी कृपा से वहाँ इसे किसी भी प्रकार कष्ट नहीं होगा। अब मैं इसके शरीर को नाप कर तीन पग पृथ्वी देने के इसके संकल्प को पूरा कर रहा हूँ। यह कहकर भगवान ने अपना पैर बलि के मस्तक पर रख दिया। सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक, बलि के अतिरिक्त, किसी और ने ऐसी सुदुर्लभ कृपा नहीं प्राप्त की थी। भगवान ने एक पैर से ही बलि के शरीर को नाप लिया। यद्यपि भगवान की ऐश्वर्य शक्ति उनका पैर बढ़ाने का प्रयास कर रही थी किन्तु उनकी कृपाशक्ति ने पैर को एक इंच भी आगे बढ़ने नहीं दिया। बलि निहाल हो गया। वह यही तो चाहता था कि भगवान अपना तीसरा पैर मेरे सिर पर रख दें। स्थापित कर दें। यह देखकर देवता आकाश से पुष्ट-वृष्टि करने लगे। भक्त और भगवान के इस धर्म-युद्ध में भक्त की विजय हुई। भगवान कहते हैं- मैं भक्त के पराधीन रहता हूँ। भक्त और भगवान की जय-जयकार से सारा आकाश-मण्डल व्याप्त हो गया। बलि भगवान के चरणों पर लोट गया। वामन ने उसे उठाया और छाती से लगाकर कहा- बेटा तुम जीते, मैं हारा। तुम्हारे समान मेरा कोई दूसरा भक्त न हुआ और न होनेवाला है। बलि तुम सुतल लोक में चले जाओ। वहाँ मेरा सुदर्शन चक्र तुम्हारे दैत्य-शत्रुओं के भी टुकड़े-टुकड़े कर देगा। मैं तुम्हारी, तुम्हारे अनुचरों की और तुम्हारे भोगसाधनों की रक्षा करूँगा। वीर बलि, तुम मुझे वहाँ सदा-सर्वदा अपने पास ही देखोगे।

बलि तो दानव एवं दैत्य दोनों वंशों में अग्रणी है, उनका यश बढ़नेवाला है जिसको कोई जीत नहीं सकता उस माया को भी इसने जीत लिया है। देखो इतना कष्ट पाने पर भी इसने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। मैंने इसको छलपूर्वक उपदेश दिया किन्तु इसने अपनी सत्यवादिता को नहीं छोड़ा। मैंने इसको वह स्थान प्रदान किया है; जिसे बड़े-बड़े देवता भी नहीं प्राप्त कर पाते हैं यह सावर्णि मन्वन्तर में मेरा भक्त इन्द्र होगा। तब तक यह सुतल लोक में रहकर हर प्रकार के सुखभोगों का अनुभव करे। उन्होंने बलि का सपरिवार सुतल लोक में जाने का आदेश देते हुए कहा कि वहाँ पर जो कोई तुम्हारा विरोध करेगा मेरा चक्र उसे विनष्ट कर देगा। अब तुममें विद्यमान आसुर भाव विनष्ट हो जायेगा।

यों विधिकूँ समझाइ कहैं बलितें वामन हरि। इन्द्रसेन नृपवर्य करो मम आयसु सिर धरि।।
सुतल लोकमहँ बसौ दिव्य होवे तब सब अँग। द्वारपाल बनि रहूँ द्वार पै हौं तुमरे सँग।।
भक्तानुग्रह निरखि बलि, बोले ह्वै गद्‌गद बचन। अनुकम्पा अनुपम करी, हे अच्युत अशरनशरन।।

वामन भगवान महाराज बलि से बोले- हे महाराज इन्द्रसेन, आप अपने बन्धु बन्धुवों तथा जाति के लोगों के सहित उस

सुतललोक को जाइये। जिस लोक की देवता भी इच्छा करते हैं। आपका कल्याण हो।

जेहि बन्धन में बलि बँध्यो सो तो छूटे हाल। हूँ जेहि बंधन में बँध्यो खुले न कौनहूं काल।
भक्त संग यदि होड़ लगी तो सदा हमारी हार।।
चले बाँने बलिहिं प्रभु बँधे आप तेहि हेत। गदापाणि बलि द्वार पर अजहूं दर्शन देत।।
नारायण ह्वै रहे द्वार पर बलि के पहरेदार। ब्राह्मण बनि के भिक्षा लेने चले सब जग के पालन हार।।

बलि तुम पृथ्वी दान कर चुके हो, इसलिये अपनी दान की हुई वस्तु फिर काम में लेना ठीक नहीं, भूर्लोक में रहना तुम्हारे लिये उचित नहीं।

भगवान बोले- बोलो बलि, मैं तुम्हें क्या दूँ? बलि ने कहा महाराज, यदि आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो यह दीजिये कि हमारी जिधर भी दृष्टि जाय उधर आप का ही दर्शन हो। बलि ने कहा- हे जगन्नियन्ता जगदीश्वर, ऐसी कृपा करो कि हमारे अन्दर लेश मात्र अभिमान न रहे। आपके नामों का तीसों दिन चौबीसों घण्टे संकीर्तन करता रहूँ।

नर की चेती ना चले और हरि की चेती तत्काल। बलि ने चाहा स्वर्ग को और प्रभु पठयो पाताल।।

कहते हैं, सुतल लोक में राजा बलि की बैठक के बावन दरवाजे हैं। भगवान ने सोचा, न जाने किस दरवाजे पर बलि की दृष्टि चली जाय? तो बावनों दरवाजे पर गदा धारण कर भगवान पहरेदार के रूप में विराजमान हुए। अब बलि का दान-युद्ध आदि कार्य यह पहरेदार ही करते थे।

एक बार रावण बलि से लड़ने सुतल लोक पहुँचा। भगवान ने उससे कहा- रावण, पहले बलि के इस पहरेदार से लड़ लो तो फिर उनसे लड़ना। ऐसा कहकर उन्होंने रावण की छाती में अपने चरण के अंगुष्ठ से ऐसा प्रहार किया कि वह लंका के पास सागर के तट पर जाकर गिरा। धन्य-धन्य है भगवान की भक्तवत्सलता, भक्त पराधीनता।

भगवान के आश्रित हो जाने पर सब कुछ मिल जाता है। पद, प्रतिष्ठा, वैभव, सुरक्षा, सत्संग, स्वयं भगवान भी मिल जाते हैं। **तीन लोक के नाथ ने, छल्यौ बली को आय। लेकर के सब राज धन, इन्द्रहि दीन्हों जाय।।**

ऐसा पुरुष न कभी हुआ न कभी होगा, जो भगवान की महिमा को पार पा सके।

शुकदेव बोले- परीक्षित, भगवान के वचन को सुनकर बलि की आँखों में आँसू छलछला आये। उनका कण्ठ अवरोध हो उठा। हाथ जोड़कर उन्होंने भगवान से कहा- प्रभो, आप की कृपा का पारावार नहीं है। मैंने तो आप को पूरा प्रणाम भी नहीं किया था, केवल प्रणाम करने का प्रयत्न किया। उसीसे मुझे वह फल मिला जो शरणागत भक्तों को प्राप्त होता है। बड़े-बड़े लोकपालों और देवताओं पर आपने जो कृपा कभी नहीं की, वह मुझ जैसे नीच असुर को सहज ही प्राप्त हो गई।

शुकदेव बोले- राजन्, यह कहते ही बलि वरुण-पाश से मुक्त हो गये। उन्होंने भगवान वामन को, शंकर और ब्रह्मा को प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक असुरों के साथ सुतल लोक के लिये प्रस्थान किया। इस प्रकार भगवान ने बलि से स्वर्ग का राज्य लेकर इन्द्र को समर्पित कर दिया और अदिति को उसके पयोव्रत का फल प्रदान किया फिर उपेन्द्र बनकर सकल जगत पर शासन करने लगे।

जब प्रह्लाद ने देखा कि मेरे वंशधर पौत्र पर भगवान के महान् अनुग्रह की वृष्टि हुई है तो उनके हृदय में भक्ति की भागीरथी प्रवाहित होने लगी। उन्होंने गद्गद् वाणी में भगवान से कहा- प्रभो, विश्ववन्द्य ब्रह्मा आदि जिसके चरणों की वन्दना किया करते हैं, वही आप हम असुरों के द्वारपाल बन गये हैं। मेरे स्वामी, ऐसा कृपाप्रसाद तो आपके पुत्र ब्रह्माजी, अर्धांगिनी

लक्ष्मीजी और आराध्य शंकर जी को भी कभी नहीं प्राप्त हुआ।

प्रभो, जन्म से ही खल और कुमार्गगामी हम लोगों पर आपकी ऐसी वात्सल्यभरी दृष्टि हो, यह महान् आश्चर्य की बात है। आप कल्पवृक्ष के समान हैं, जो पास में आये हुए व्यक्ति की सारी मनोकामनाएँ पूरी करता है। पक्षपात का तो लेश भी आप में नहीं है।

भक्तशिरोमणि प्रह्लाद की बात सुनकर भगवान ने कहा- वत्स प्रह्लाद, तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम भी सुतल लोक में चले जाओ। वहाँ अपने पौत्र बलि के साथ आनन्दपूर्वक रहते हुए भाई-बन्धुओं को सुखी करो। सत्संग के बिना व्यक्ति के सम्भावना च्युत होने की संभावना बनी रहती है। वहाँ तुम मुझे नित्य ही गदा हाथ में लिये खड़ा देखोगे। मेरे दर्शन से तुम्हें परम आनन्द की अनुभूति होगी। उससे तुम्हारे सारे कर्म-बन्धन ध्वस्त हो जायेंगे।

शुकदेवजी कहते हैं- राजन्, भगवान की आज्ञा को प्रल्हाद ने सादर स्वीकार किया। उन्होंने भगवान की परिक्रमा कर प्रणाम किया और बलि के साथ सुतललोक में चले गये। तदनन्तर भगवान ने शुक्राचार्य से कहा- ब्रह्मन, इस यज्ञ में जो कुछ कमी रह गई है, उसे आप पूर्ण कर दें। शुक्राचार्य ने कहा- भगवन्, बलि ने अपना सर्वस्व आपके चरणों में समर्पित्त कर यज्ञपुरुष आपकी पूजा की है फिर उसके यज्ञ में त्रुटि कैसे रह सकती है, कमी कैसे हो सकती है? क्योंकि मन्त्रों की, अनुष्ठान-पद्धति की, देश, काल, पात्र और वस्तु की सारी न्यूनताएँ आपके नामोच्चारणमात्र से ही पूरी हो जाती है। परिपूर्ण के सम्मुख अपूर्णता का अस्तित्व रह नहीं सकता। फिर भी मैं आपके आदेश का पालन करता हूँ। भगवान से इस प्रकार कहकर यज्ञाचार्य शुक्र ने अवशिष्ट कर्म को पूर्ण किया।

बलिने जो सम्पूर्ण आहुति तो दे दी प्रभु चरणों में। औरों की आहुति भगवान अग्निदेव द्वारा मंगवाते हैं परन्तु यहाँ तो उन्होंने स्वयम् आकर ग्रहण किया।

पुनि हरि आयसु पाइ शुक्र मख पूर्ण करायो। बलि वामनको सुयश बिहँसि बलिगुरुने गायो।।
यों करि सरवसु दान दैत्यपति अति हरषाये। जग बन्धनकूँ तोरि विष्णु आधीन बनाये।।
आगे कर प्रह्लादकूँ, जाति बन्धु सब सङ्ग लये। रक्षक प्रभु बामन बने, सुतल लोककूँ चलि दये।।

बलि के सुतल लोक में चले जाने पर श्रीभगवान भी बलि का पहरेदार बनकर सुतल लोक में चले गये। द्वादश द्वार वाले बलि के दरवाजे पर वे सदा बलि को गदाधारण किए हुए दिखायी देते थे। श्रीभगवान के अभाव में वैकुण्ठ लोक सूना हो गया श्रीलक्ष्मीजी उदास रहने लगीं। उन्हें श्रीभगवान के बिना चैन नहीं था। नारदजी ने जगन्माता लक्ष्मीजी के चरणों में प्रणाम करके बतलाया कि श्रीभगवान तो सुतल लोक में जाकर राजा बलि के पहरेदार का काम कर रहे हैं। इसके पश्चात् लक्ष्मीजी सुतल लोक में चली गयी। राजा बलि ने उनका अपनी छोटी बहन के रूप में सम्मान किया। श्रावण पूर्णिमा के दिन लक्ष्मीजी ने अपने बड़े भाई राजा बलि के हाथों में रक्षा बाँधी। राजा बलि ने लक्ष्मीजी से अपने मनोऽनुकूल वस्तु माँगने के लिए कहा। श्रीलक्ष्मीजी ने कहा कि भैया यदि देना ही चाहते हो तो तुम अपने इस गदाधारी नौकर को मुझे प्रदान कर दो। श्रीलक्ष्मीजी को इस उपहार को प्रदान करने में राजा बलि को पहले तो बड़ा ही कष्ट हुआ, किन्तु उन्होंने अन्त में श्रीभगवान् को श्रीलक्ष्मीजी को प्रदान कर ही दिया। सुतल लोक से आते हुए श्रीभगवान ने राजा बलि को आश्वासन दिया कि मैं प्रतिवर्ष चौमासे में सुतललोक में ही निवास करूँगा। इसके पश्चात् श्रीभगवान जगन्माता लक्ष्मीजी के साथ वैकुण्ठ लोक चले आये।

राजन्, इस प्रकार भगवान वामन ने बलि से त्रिलोकी का आधिपत्य लेकर इन्द्र को प्रदान कर दिया। इसके बाद ब्रह्मा

आदि देवों ने, कश्यप और अदिति की प्रसन्नता के लिये, वामन को उपेन्द्र के पद पर अभिषिक्त कर दिया जिससे भविष्य में इन्द्र पर किसी प्रकार की आपत्ति-विपत्ति न आये।

इसके बाद ब्रह्माजी की अनुमति से इन्द्र वामन भगवान को विमान पर बैठा कर स्वर्ग ले गये। देवता लोग उनका अनुगमन कर रहे थे। उपेन्द्र को पाकर इन्द्र की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्हें दो लाभ की प्राप्ति हुई थी। एक तो त्रिलोकी की लक्ष्मी मिल गई और दूसरे भगवान के चरणों का सतत सान्निध्य भी उन्हें प्राप्त हो गया अब इन्द्र उपेन्द्र की भुजाओं से संरक्षित त्रिभुवन वैभव का सानन्द उपभोग करने लगे। इसके अनन्तर ब्रह्मा के सहित सारे देवता, ऋषि, मुनि आदि सभी भगवान के अद्भुत कर्म की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने लोकों को चले गये।

राजन्, भक्तवत्सल अद्भुतकर्मा भगवान वामन के इस अवतार चरित को जो सुनता है, उसके सारे पाप-ताप विनष्ट हो जाते हैं और वह परमगति को प्राप्त करता है।

बलि वामनको विजय चरित यह नृपवर, गायो। अब तक बलिको सुयश चतुर्दश भुवननि छायो॥
सुतल लोक बलि गये विष्णु नित वहाँ विराजें। बलि वैभवकूँ निरखि अमर सुरपति हू लाजें॥
यों बलि छलिके विष्णुने, स्वर्ग राज्य देवनि दयो। अदिति कामना पूर्ण करि, पुनि उपेन्द्र पदहू लह्यो॥
विविध वेष वपु धारि विष्णु विश्वेश्वर बिहरें। रहें सदा रवि किन्तु कहें नर सूरज निकरें॥
कच्छ, मत्स्य, वाराह, कबहुँ नरहरि तनु धारें। साधुनि रक्षा करें दैत्य दानव खल मारें॥
लोक विनिन्दित मत्स्य तनु, लीलातें श्रीहरि धर्‌यो। प्रलय सलिल घूमत फिरे, गो, द्विज, सुर कारज कर्‌यो॥

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार वामन हरि ने महाराज बलि से भूमि की भिक्षा माँगकर स्वधर्म का राज्य अपने भाई इन्द्रको पुन: दिया, जिसे उनसे शत्रुओं ने छीन लिया था। इन्द्र भी त्रिभुवन का ऐश्वर्य पाकर तथा उपेन्द्र वामन भगवान के बाहुबल से सुरक्षित होकर परम श्री से सम्पन्न और निर्भय होकर अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हुए।

भगवानका भजन करनेवालोंके जीवनमें चाहे जो उतार-चढ़ाव आये, लेकिन अन्ततोगत्वा उन्हें सब कुछ मिल जाता है। बलिको भगवान्‌की कृपासे वैभव मिला, सुरक्षा मिली, सत्संग मिला, जो पद छिन गया था, वह मिला और स्वयं भगवान भी मिल गये। यही बलि अगले मन्वन्तरमें इन्द्र होंगे। इस समय जो इन्द्र हैं, उनका मन्वन्तर पूरा होते ही बलि इन्द्र हो जायेंगे। अज्ञानकी निवृत्तिका उपाय वैदिक ज्ञान है। उसका आश्रय लिए बिना धर्म, भक्ति, लोक, परलोक किसीका भी रहस्य ठीक-ठीक समझमें नहीं आता। उस ज्ञानका निर्माण न ईश्वर करता है, न जीव करता है। वह न जड़में से निकलता है और न शून्यमें-से निकलता है। वह तो अनुभव स्वरूप अखण्ड ज्ञान है।

बलि पूर्व जन्म का एक जुआरी था। ब्राह्मणों और देवताओं का निन्दक था। जुआ खेलना उसकी दिनचर्या थी। वह सदा पराई स्त्रियों में आसक्त रहता था। एक दिन उसने कपटपूर्ण जुए में बहुत-सा धन जीता। उन पैसों से उसने पान, गन्ध तथा बहुमूल्य खूबसूरत माला खरीदी, भगवान के लिये नहीं, अपनी किसी प्रियतमा वेश्या के लिये। उभरते यौवनवाली मतवाली उस वेश्या पर वह अपना सब कुछ न्योछावर किये हुए था। वेश्या ही उसके लिये सब कुछ थी। माला आदि हाथ में लिये कामान्ध जुआरी वेश्या के घर की ओर दौड़ा जा रहा था। वह सोच रहा था- खूबसूरत माला, पान और इत्र पाकर वेश्या प्रसन्न होकर मुझे छाती से सटा लेगी। मेरा जीवन धन्य-धन्य हो उठेगा। इसी उधेड़बुन में मग्न होने के कारण वह किसी पाषाण से ठोकर खाकर गिर पड़ा। मूर्छित हो गया। हाथ की सामग्री भूमि पर गिर पड़ी। कुछ देर में होश हुआ तो उसने अनुभव किया- अब मैं मर जाऊंगा। उसी समय पूर्वजन्म के किसी पुण्य के प्रभाव से उसके मन में सद्बुद्धि उत्पन्न

हुई। जुआरी दु:खी होकर खेद और वैराग्य को प्राप्त हुआ। मूर्ख और जुआरी होने पर भी उसने पृथ्वी पर पड़ी हुई गन्ध, माला आदि श्रेष्ठ सामग्री को वहीं पास में स्थित शिवलिंग के ऊपर समर्पित कर दिया। सोचा- मैंने महात्माओं से सुन रक्खा है, वस्तु शिवार्पण कर देने से बहुत लाभ होता है। शिवार्पण कर देने से कुछ होता होगा तो हो जायेगा। नहीं होता होगा तो मर तो रहा ही हूँ, माला आदि तो बेकार जा ही रही है। इस दृष्टि से जुआरी ने माला शिव को अर्पण कर दी।

जुआरी माला आदि शिवार्पण करके मर गया। यमदूत उसे पकड़कर ले गये। यमराज के सामने खड़ा किया। उन्होंने चित्रगुप्त से कहा- देखो इसका बही खाता।

चित्रगुप्त ने कहा- यह तो जन्म-जन्मान्तर का महापापी है। यमराज ने कहा- इसके पुण्य को भी तो देखो। चित्रगुप्त ने देखा। पुण्य तो कोई था नहीं। यमराज ने कहा- फिर देखो। चित्रगुप्त ने बही-खाते के अन्तिम पन्ने को पलटते हुए कहा- बस, अभी-अभी थोड़ी देर पहले द्यूत में पैसा पाकर इसने माला, इत्र आदि खरीदा था वेश्या के लिये, ठोकर खाकर रास्ते में गिर पड़ा। इसने देखा कि माला अब निरर्थक हो रही है तो शिवार्पण कर दिया। बस, यही एकमात्र इसका पुण्य है।

यमराज ने कहा- भाई, इसका है तो कुछ पुण्य। फिर जुआरी की ओर उन्मुख होकर कहा- जुआरी, तुम पहले पुण्य का फल भोगोगे या पाप का। जुआरी ने कहा- सुन तो रहा हूँ कि मेरे पाप का सागर अपार है। उसे भोगने लगूँगा तो पता नहीं कितने कल्प-महाकल्प बीत जाँय। इसलिये पहले पुण्य का फल भोगूँगा।

यमराज ने कहा- तुमने मरने की बेला में शिव को माल्यार्पण किया है, उस सत्कर्म के फल से तुम्हें तीन घड़ी के लिये इन्द्र का प्रसिद्ध पद प्राप्त होगा। तीन घड़ी तक तुम स्वर्ग के शासक रहोगे।

जुआरी ने कहा- मैं सबसे पहले अपना शुभ कर्म भोगूँगा। जुआरी तीन घड़ी के लिये इन्द्रलोक का मालिक बना। इन्द्रासन पर विराजमान हुआ। इन्द्र ने इन्द्रासन गुरु बृहस्पति के कहने से खाली कर दिया। इन्द्रासन पर बैठते ही उस शिवभक्त जुआरी ने दान देना प्रारम्भ किया। ऐरावत हाथी अगस्त्य को, उच्चै:श्रवा घोड़ा विश्वामित्र को, कामधेनु वशिष्ठ को, चिन्तामणि रत्न गालव को, कल्पवृक्ष कौण्डिन्य को और अन्यान्य रत्न बहुत-से ऋषियों मुनियों को सहर्ष प्रदान कर दिया। तीन घड़ी तक वह अविराम दान देता ही रहा। तीन घड़ी पूरी हो जाने पर वह इन्द्रासन से उतरा और बृहस्पति जी से कहा- गुरुदेव, हम सारे इन्द्रासन पर तुलसीदल रखकर भगवद्पूर्ण कर देते हैं फिर वह वहाँ से चला गया।

तीन घड़ी बीतने पर इन्द्र आये अपने आसन पर बैठने के लिये। किन्तु यह क्या? वहाँ तो कुछ है ही नहीं। उन्होंने पूछा मेरा ऐरावत हाथी कहाँ गया और सारी वस्तुएँ कहाँ हैं?

बृहस्पति ने कहाँ सारी वस्तुओं को जुआरी ने दान कर दिया है। इन्द्र बहुत बिगड़े। यमराज के पास आये। यमराज ने उन्हें सलाह दी कि ऋषियों-मुनियों को प्रभूत धन देकर अपनी वस्तु वापस ले सकते हो। इन्द्र ने कहा ठीक है, ऐसा ही करूँगा फिर इन्द्र वहाँ से चले गये।

यमराज ने देखा कि जुआरी के महान् अर्जित पुण्य से उसके सारे पाप भस्म हो गये। वह अब नरक नहीं भोगेगा। उन्होंने उसे पुन: जन्म दिया। वह अपने किसी कर्मविपाक से विरोचन का पुत्र हुआ। उसकी माता थी महारानी सुरुचि बलि के गर्भ में आते ही माता-पिता महामनस्वी बन गये थे।

भगवान वामन गये थे बलि को बाँधने किन्तु बन्ध गये स्वयं। देवता प्रसन्न थे। उन्हें उनका निष्कण्टक स्वर्ग मिल गया। बलि प्रसन्न था कि नित्य भगवान के दर्शन होंगे। चारों ओर प्रसन्नता की लहर थी। दु:ख था तो केवल लक्ष्मीजी को। घर सारे ऐश्वर्य से भरा था किन्तु नारायण की अनुपस्थिति से वे बेचैन थीं, अशान्त थीं। वे सर्वदा उनके आने की

प्रतीक्षा कर रही थीं। कब आयेंगे? कहाँ होंगे? यही उनकी चिन्ता थी। नारद प्राय: वैकुण्ठ की यात्रा किया करते थे। एक दिन व्याकुल होकर लक्ष्मीजी ने नारद से पूछा- कहाँ हैं मेरे स्वामी? आप उनके विषय में कुछ जानते हैं क्या? नारदजी ने उत्तर दिया- सुना है कि नारायण सुतललोक में बलि राजा के द्वार पर चौकीदारी कर रहे हैं। बलि के पास दान लेने गये थे। फलत: बन्धन में पड़ गये। सर्वस्व दान लेकर बलि के ऋणी हो गये। लक्ष्मीजी ने कहा- मुनिवर, अब उनके छूटने का कोई उपाय बतलाइये। नारद जी ने उन्हें नारायण के छूटने का उपाय बतलाया।

नारद जी की शिक्षा को शिरोधार्य कर लक्ष्मीजी ने ब्राह्मणपत्नी का रूप धारण किया और फिर वे पहुँच गईं सुतल लोक में बलि के पास। लक्ष्मीजी ने बलि से कहा- बलि भैया, मैं तुम्हारी धर्मबहन हूँ। जगत में न तो मेरा कोई भाई है और न तुम्हारी कोई बहन। आज से मैं तुम्हारी धर्मबहन और तुम हमारे धर्मभाई हो। लक्ष्मीजी की बात सुनकर बलि आनन्द में निमग्न हो उठा। उसने लक्ष्मीजी का सादर वन्दन किया। उसे दु:ख था कि आज तक उसे कोई बहन न थी। लक्ष्मीजी के आगमन से सभी को आनन्द हुआ। सुतललोक की कान्ति बढ़ गई। किन्तु स्वयं लक्ष्मीजी को कोई आनन्द नही था। उन्हें दु:ख था कि उनके प्राणप्रिय पति हाथ में गदा लिये हुए एक सामान्य चौकीदार की भाँति नित्य पहरेदारी कर रहे थे। बातें आँखों-आँखों से ही होती थीं पर कोई किसी से कुछ कहता न था।

सावन का सुहावना महीना आया। आ पहुँचा शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा का रक्षा-बन्धन। लक्ष्मीजी ने राजा बलि से कहा- भैया बलि, हमारे यहाँ का रिवाज है कि आज के दिन बहन अपने प्यारे भाई की कलाई पर राखी बांधती है। बलि ने प्रसन्न होकर कहा- हाँ, हाँ, बहन बाँध दो राखी मेरे हाथ में। लक्ष्मी जी ने मुस्कराते हुए बलि भाई की कलाई पर बाँध दिया (रक्षासूत्र)। बलि ने पूछा- बहन, राखी बँधवा कर भाई क्या करता है? लक्ष्मीजी ने कहा- भैया, भाई बहन को कुछ देता है। बलि ने कहा- बहन, तुम्हारी जो इच्छा हो वह मांग लो। बलि ऐसा भाई है जो मुँह-माँगा दान देता है। माँग लो जो कुछ तुम चाहो।

लक्ष्मीजी बोली- भैया, मांगते हुए मुझे संकोच हो रहा है।

बलि बोला- बहन, भाई से मांगने में बहन को संकोच कैसा? मांग लो इच्छा के अनुसार जो तुम्हारे घर में न हो वही आज तुम मुझसे ले लो। लक्ष्मीजी बोली- भैया, भगवान की कृपा से मेरे घर में सब कुछ है किन्तु एक वह नहीं है जिनके बिना मैं बेचैन हूँ। मुझे और कोई वस्तु नहीं चाहिये। यदि देना चाहते हो तो यह अपना द्वारपाल ही हमें दे दो। तुम उन्हें मुक्त कर दो।

धन्य है प्रभो तेरी माया। जो सकल ब्रह्माण्ड को एक साथ मुक्त करने का सामर्थ्य रखता है, आज उसी की मुक्ति की याचना की जा रही है। बलि- ठीक है, बहन, मैंने इन्हें मुक्त कर तुम्हें प्रदान कर दिया।

उसी दिन माता महालक्ष्मी भगवान नारायण के साथ श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन वैकुण्ठ लोक में पधारीं। इसी की स्मृति में रामानुजाचार्य के पंथ के मंदिरों में पाटोत्सव मनाने की प्रणाली चली आ रही है। इस प्रकार लक्ष्मीजी ने दान से बद्ध नारायण को मुक्त किया।

११) मत्स्यावतार-

प्रलयकाल के बीच में, जल की राशि अपार। सत्सव्रत के हेतु प्रभु, लियो मच्छ अवतार।।

राजा परीक्षित ने पूछा- भगवान के कर्म बड़े अद्भुत हैं। उन्होंने अपनी योगमाया से मत्स्य का अवतार धारण कर बड़ी सुन्दर लीला की थी। मत्स्यावतार भगवान का आदि अवतार है। पर मत्स्ययोनि कोई प्रशंसनीय योनि नहीं है। यह तमोगुणी और असह्य परतन्त्रता से युक्त है फिर भगवान् नें ऐसा रूप क्यों धारण किया?

शुकदेव बोले- परीक्षित्, श्री भगवान गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु तथा वेदों की रक्षा के करने के निमित्त तथा धर्म और अर्थ की रक्षा के लिये नाना तनु धारण करते हैं।

धेनु, विप्र, सुर, सन्त, अरु, वेदनिकी रक्षा निमित। धर्म अर्थ रक्षित रहै, धारैं तनु जग हित अजित॥

भगवान इस जगत् की ब्रह्मा बनकर रचना करते हैं, इसीलिये मरीचि, अत्रि, अंगिरा आदि प्रजापति भगवान ब्रह्माजी के अवतार माने जाते हैं। ये ब्रह्मपुत्र प्रजापति सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करते हैं। उत्पन्न की हुई सृष्टि का भगवान विष्णु बनकर पालन करते हैं, अत: अंशावतार, युगावतार, मन्वन्तरावतार, ज्ञानावतार, आवेशावतार, कलावतार तथा पूर्णावतार आदि अनेक अवतार रखकर श्रीहरि इस जगत् में क्रीड़ा करते हुए विश्व का पालन करते हैं।

देवता दिव्य गुणों को धारण करते हैं। पुष्पों का उपभोग करके प्राणियों को सुख प्रदान करते हैं। पुष्पों का उपभोग करते हैं, दैवी सम्पत्ति का प्रसार करते हैं। चराचर विश्व में अधिष्ठातृ देव निवास करते हैं। अत: देवताओं से धर्मद्वारा जगत् की रक्षा होती है। देवता नहीं तो धर्म नहीं। धर्म नहीं तो जगत् नहीं। भगवान निर्गुण से सगुण हो जाते हैं। निराकार से साकार रूप रख लेते हैं। नाना योनियों में अवतार रखकर क्रीड़ा करते हैं और जीवों को अपने देव दुर्लभ दर्शन से कृतार्थ करते हैं। भगवान के मुख्य हेतु हैं, भक्तों के ऊपर अनुग्रह करना, उन्हें अपने दुर्लभ दर्शन देकर संसार सागर से मुक्त करना। वे अवतार धारण करके दो ही कार्य करते हैं, जब धर्म निर्बल क्षीण हो जाता है, तो उसे सबल बनाने के निमित्त दुष्टों का संहार करते हैं, साधुओं की रक्षा करते हैं।

शुकदेव कहते हैं- राजन्, इस संसार में जब-जब धर्म का क्षय हो जाता है और पाप की वृद्धि हो जाती है, तब-तब सबके स्वामी श्रीहरि भगवान अवनि पर अवतरित होते हैं।

सूतजी ने शौनक आदि ऋषियों से कहा- हे ऋषिवृन्द, राजा परीक्षित का प्रश्न सुनकर शुकदेवजी ने उत्तर दिया- सबके परम पिता और पालक होने पर भी भगवान गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, धर्म और अर्थ की रक्षा के लिये नाना प्रकार की ऊँच-नीच योनियों में अवतार ग्रहण करते रहते हैं। नीची योनि में जन्म ग्रहण करने पर भी भगवान की महत्ता में कोई कमी नहीं आती। भगवान सब छोटे-बड़े प्राणियोंमें विराजमान रहते हैं, परन्तु उससे वे छोटे-बड़े नहीं हो जाते। वे प्रकृति और प्राकृत गुणों से एकदम परे हैं। परीक्षित्, पिछले कल्प के अन्त में ब्रह्माजी के सो जाने के कारण ब्राह्म नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ था। यह महाप्रलय नहीं था, अवान्तर प्रलय था। उस समय सारी पृथ्वी जल में मग्न हो गई थी। ऐसा ही प्रलय भगवान ने मार्कण्डेय के लिये भी प्रकट किया था। प्रलय काल आ जाने के कारण ब्रह्माजी को नींद आ रही थी, वे शयन करना चाहते थे। उसी समय वेद उनके मुख से निकल पड़े। उन्हें दानवराज हयग्रीव ने चुरा लिया। हयग्रीव की चेष्टा को जानकर ही भगवान ने वेदों के उद्धार के लिये शफरी (छोटी मछली) का रूप ग्रहण किया था।

मत्स्यरूपधारी भगवान ने हयग्रीव को मार कर वेदों की रक्षा की थी। राजन मत्स्यावतार की कथा इसप्रकार है- एक समय राजर्षि सत्यव्रत, जो वर्तमान कल्प के वैवस्वत मनु हुए हैं, केवल जल पीकर तप कर रहे थे। वे भगवान नारायण के परम भक्त थे। द्रविण देश के राजा यही सत्यव्रत विवस्वान (सूर्य) के पुत्र श्राद्धदेव के नाम से विख्यात हैं। सत्य का व्रत करनेवाला जीव ही सत्यव्रत हैं। वैवस्तवत मनु को ही श्राद्धदेव मनु कहा जाता है। एक दिन वे राजर्षि भारत के दक्षिण भाग में कृतमाला नदी में तर्पण कर रहे थे। उसी समय उनकी अंजलि में अचानक मछली का एक बच्चा आ गिरा। सत्यव्रत ने अंजलि के जल के साथ उसे नदी के जल में डाल दिया। इस पर उस मछली ने बड़ी करुणा के साथ परम दयालु राजा

सत्यव्रत से कहा- राजन्, आप करुणा के सागर हैं। आप जानते ही हैं कि जल में रहनेवाले जन्तु अपने जातिवालों को भी खा लेते हैं। मैं उनके भय से व्याकुल हो रही हूँ। आप मुझे पुन: इसी नदी के जी में क्यों डाल रहे हैं?

नैमित्तिक लय जब भयो, ब्रह्माजी निद्रित भये। सत्यव्रत राजर्षि हित, श्रीहरि मछली बनि गये।।
कृतमालामहँ करहिँ द्रविड़पति जलतें तरपन। अंजलिमहँ लघु मत्स्य निरखि कीयो जल अरपन।।
मछली ह्वैके दीन कहे- नृप रक्षा कीजै। आई तुमरी शरन सत्यव्रत आश्रय दीजै।।
दीन बचन सुनि लाइ नृप, कलश रखी सो बढ़ि गई। नाद, सरोवर, तालमहँ, धरी तहाँ लम्बी भई।।

शुकदेव बोले- राजन, द्रविड़ देश के महाराज सत्यव्रत एक बार कृतमाला नदी में जल तर्पण कर रहे थे, उसी समय उनकी अंजलि में एक मछली आ गई। राजा ने उस अंजलि में आई हुई मछली को जल सहित नदी के जल में छोड़ दिया।

राजा मनु को इस बात का पता नहीं था कि स्वयं भगवान ही मछली के रूप में उनपर अनुग्रह करने के लिये पधारे हैं अत: उन्होनें उस मत्स्य-शिशु की रक्षा का संकल्प मन-ही-मन किया। उन्होंने उसे उठाकर अपने कमण्डलु में डाल लिया और आश्रम पर ले आये। किन्तु वह मत्स्य-शिशु रात्रि भर में इतना बड़ा हो गया कि कमण्डलु का अवकाश उसे छोटा पड़ने लगा। तब उसने राजा से कहा- मैं इस लघुकाय कमण्डलु में नहीं रह पा रहा हूँ, यह मेरे लिये छोटा पड़ रहा है अत: मुझे कोई बड़ा स्थान दें, जहाँ मैं आराम से रह सकूँ। राजा ने उसे वहाँ से निकाल कर एक विशाल पानी के मटके में रख दिया। वहाँ यह मत्स्य-शिशु दो ही घड़ी में तीन हाथ बढ़ गया पुन: उसने राजा से निवेदन किया- राजन्, मैं आपकी शरण में आया हूँ। यह स्थान भी मेरे लिये छोटा पड़ रहा है अत: किसी बड़े जलाशय में मुझे स्थापित कीजिये। इस पर राजा ने उसे विशाल सरोवर में डाल दिया। वहाँ भी वह थोड़ी देर में इतना विशाल हो गया कि सरोवर भी उसे छोटा पड़ने लगा। फिर राजा ने उसे सागर के जल में डाल दिया। इस पर उस मत्स्य ने पुन: राजा से सविनय निवेदन किया- राजन्, यहाँ तो मुझे मगर घड़ियाल आदि प्रबल जल-जन्तु खा लेंगे इसलिये मुझे यहाँ मत छोड़िये।

एक दिवसमहँ मत्स्य बढ़्यौ नृप चकित भये अति। बाढ़ै क्षण क्षण माँहि वृद्धिकी अति अद्भुत गति।।
शतयोजन सर घेर लियो नहिँ वृद्धि रुकी जब। ह्वैके अति ही दीन मीन नृपतें बोलीं तब।।
नृप, निर्वाह न होहि मम, सर छोटो हौं बड़ी बहु। कैसे जीवित रह सकूँ, सोचि समुझि भूपति कहहु।।

मत्स्य का यह कथन सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ आज तक उन्होंने मछली को मानवी भाषा में बोलते हुए नहीं सुना था और पूछा - महाराज, आप कौन हैं? जो इस तरह मुझे विमोहित कर रहे हैं? आज तक मैंने ऐसी कोई मछली न सुनी जो बोलती हो। आपने एक ही दिन में चार सौ कोस के विस्तार का जलाशय घेर लिया। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप अवश्य ही साक्षात् श्रीहरि हैं। हम लोगों पर कृपा करने के लिये ही आपने यह रूप धारण किया है।

महाराज सत्यव्रत मत्स्य भगवान से बोले- जल के रहनेवाले जीव में ऐसा वीर्य पराक्रम तो हमने न कभी पहिले देखा है न सुना है। आपने जो इस सौ योजन वाले इस तालाब को एक दिन में ही अपने शरीर से घेर लिया। अवश्य ही आप साक्षात् अव्यय श्री नारायण हरि हैं। प्राणियों पर अनुग्रह करने के निमित्त आपने मत्स्य रूप धारण किया है।

प्रभु आपने रूप तो मत्स्य का धारण कर रखा है। कार्य आप अलौकिक कर रहे हैं। आप कौन हैं, मत्स्य शरीर से मुझे मोह में डाल रहे हैं। ऐसा बल, पराक्रम, अपार ऐश्वर्य तो मैंने आज तक किसी भी जलचर जीव में नहीं देखा। एक दिन में ही आपने अपने शरीर को सौ योजन बढ़ा लिया है। अवश्य ही आप जीव नहीं है। साक्षात् श्रीमन्नारायण हैं। आप अज

अच्युत अविनाशी भूमा पुरुष है।

वह मछली बोली- राजन् आपने मुझे समुद्र में छोड़ दिया। समुद्र में मुझसे भी बड़ा कोई जलजन्तु निकले और मुझे खा जायेगा। सत्यव्रत बोले- निश्चित ही आप शक्तिमान, सर्वान्तर्यामी अव्यय श्रीहरि नारायण है इतनी तेजीसे बढ़ना यह जीव का धर्म नहीं है।

प्रभो, मैं बार-बार आपको प्रणाम कर रहा हूँ। स्वामिन्, आपके सारे अवतार प्राणियों के अभ्युदय के लिये ही हुआ करते हैं, तथापि मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपने किस प्रयोजन से यह मत्स्यावतार धारण किया है?

बिस्मित् नृपवर भये विहँसिके बोले बानी। नहीं मत्स्य हैं आप विष्णु अव्यय हौं जानी।।
काहे कारन धर्‍यों रूप मछलीको प्रभुवर। नित नव लीला करौ भक्त भयहारी सुखकर।।
हरि हँसि बोले सातदिन, महँ होवे त्रेलोक्यलय। एक होहिँ सातों उदधि, जगत् होहि सब सलिलमय।।

सत्यव्रत की जिज्ञासा को सुनकर मत्स्य भगवान बोले- राजन्, आज से सातवें दिन प्रलयकालीन सागर के जल में त्रिलोकी डूब जायेगी। तीनों लोक भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक जल में डूब जायेंगे। चराचर जीवों को ब्रह्माजी अपने उदर में रखकर योगनिद्रा में सो जायँगे। मैं तुम्हें प्रलयकालीन दृश्य दिखाना चाहता हूँ। अगले कल्प में मैं तुम्हें मनु बनाऊँगा। इसलिये तुम पृथ्वी के समस्त छोटे-बड़े बीजों की अभी से रक्षा करो। सप्तर्षियों के सहित अपनी भी रक्षा करो। मेरे साथ प्रलय पर्यन्त जल विहार करो। उस समय मेरी प्रेरणा से एक विशाल नैया आपके पास आयेगी। आप सारी औषधियों और बीजों को संकलित कर सप्तर्षियों के साथ उसमें बैठ जाना। ऋषियों के तेज:प्रताप से आप उस समय प्रलयकालीन सागर के जल में सुखपूर्वक विहार कीजियेगा। जब प्रलयकालीन वायु के झोकों से नैया डगमगाने लगेगी तब मैं मत्स्य का रूप धारण कर वहाँ आ जाऊँगा। मेरी एक सींग होगी। वासुकि नाग के द्वारा अपनी नैया को आप मेरी सींग में बाँध देना। मैं उस नैया को खींचता हुआ जल में तब तक विचरण करूँगा जबतक की ब्रह्मा की वह रात्रि नहीं बीत जाती। उसी समय मैं आपको ब्रह्मतत्व का उपदेश भी दूँगा। इतना कहकर मत्स्यरूपधारी भगवान् अन्तर्हित हो गये। जो उपदेश, तत्व मत्स्यभगवान ने राजर्षि सत्यव्रत को दिया वही मत्स्यपुराण कहलाया।

मम इच्छातें तरणि निकट इक तुमरे आवै। सप्तर्षिनिके सङ्ग चढ़ावै तुमहिँ बचावै।।
वासुकि वरत बनाइ सींग मेरेमहँ बाँधौ। जल बिहार मम संग करौ परमारथ साधौ।।
कहि हरि अन्तर्हित भये, करैं प्रतीक्षा भूप अब। अति उत्कण्ठा हिय बढ़ी, आवै नौका दिव्य कब।।

राजर्षि सत्यव्रत पूर्वाभिमुख विस्तीर्ण कुशासन पर बैठकर मत्स्यरूपधारी भगवान के चरणों का चिन्तन करते हुए प्रलय काल की बेला की प्रतीक्षा करने लगे। ठीक सातवें दिन जब त्रिलोकी सागर के सलिल में डूबने लगी तब एक विशाल नैया आकर सत्यव्रत के पास ठहर गई। सप्तर्षियों के साथ राजा आकर उसमें बैठ गये। उन्होंने उसमें सारी औषधियों और बीजों को संकलित कर रक्खा था। नैया जब प्रलयकालीन वायु के वेग से डगमग-डगमग करने लगी तब एक लाख योजन विशाल शरीरवाले मत्स्यरूपी भगवान वहाँ प्रकट हो गये। उनके एक सींग भी थी। भगवान महामत्स्य के रूप में प्रकट हो गये। उनके विशाल श्रीविग्रह में मस्तक पर एक सींग था। वासुकी नाद का एक छोर उनके सींग में बांधा गया एक छोर नौका में बांधा गया। जब तक प्रलय का जल अन्धड़ तूफान झंझावात विद्यमान रहा तब तक भगवान उस नैय्या को डूबने से बचाते रहे।

शुकदेव बोले- राजन्, इस प्रकार राजर्षि सत्यव्रत के ध्यान करते ही सुवर्ण वर्ण के एक सींग वाले महामत्स्य उस प्रलयार्णव में प्रकट हो गये। वे एक लाख योजन विस्तार वाले थे। तब भगवान ने जैसा कहा था उसी के अनुसार सर्प की

रस्सी से नौका को उनकी सींग में बाँधकर महाराज सत्यव्रत उन मत्स्य रूप में मधुसूदन की स्तुति करने लगे।

सात दिवस जब भये भई पृथ्वी जलमय सब। आई नौका एक ऋषिनि सँग चढ़ै भूप तब।।
बाँधी शफरी सींग प्रलय जलमहँ बिचरैं हरि। पूछे पावन प्रश्न नृपतिने अति बिनती करि।।
जो जगमय जगतें पृथक्, देहिँ ज्ञान गुरु रूप धरि। गुरुके गुरु हरि हो तुमहिँ, नाम सुमिरि बहु गये तरि।।

शुकदेव बोले- राजन्, प्रलय की बेला पूरी होने पर, जब ब्रह्मा की निद्रा समाप्त हुई, तब भगवान मत्स्य ने असुर हयग्रीव का वधकर वेद ब्रह्मा को समर्पित किया।

यही राजर्षि सत्यव्रत भगवान की कृपा से इस कल्प में वैवस्वत मनु बने हैं। जो व्यक्ति भगवान मत्स्य और सत्यव्रत के इस संवाद को पढ़ता है, सुनता और कहता है, वह इस लोक में कल्याण और परलोक में मुक्ति का भागी बनता है।

कृतमाला नदी और कुछ नहीं यह संसार ही है। सत्यव्रत सत्यावलम्बी जीव हैं। सत्यावलम्बी को ही सत्यनारायण भगवान के दर्शन होते हैं। शरीर ही नैया है। मानवरूपी इस शरीर-नैया से ही संसार-सागर को पार किया जा सकता है। मत्स्य का सींग ही भगवान का चरण है। सत्य को व्रत बना लेनेवाला जीव जब अपनी शरीर-नैया को भगवान के चरण में प्रेम की डोर से बाँध देता है तो अनायास ही वह तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर संसार सागर को पार कर जाता है। ऐसा व्यक्ति इस संसार में कल्याण का भागी और परलोक में मुक्ति का पात्र होता है। इस कथा का तात्पर्य यही है कि मन को संतोष अंत में ब्रह्म में ही होता है। जब तक विषयों में पड़ा हुआ है, तब तक उसकी वृत्तियां बढ़ती रहेंगी, उनको शांत करना है तो ब्रह्माकार का स्वरूप दो।

शुकदेव मत्स्य चरित्र का उपसंहार करते हुए अन्त में मत्स्य भगवान को नमस्कार करते हैं- हयग्रीव नामक दैत्य प्रलय कालीन जल में सोये ब्रह्माजी के मुख से वेदों को चुरा ले गया था। उस दैत्य का वध करके जिन्होंने वेदों का उद्धार किया तथा सप्तर्षियों के सहित सत्यव्रत राजा को जिन्होंने ब्रह्म का उपदेश दिया उन अखिल जगत् के हेतु कपट से मछली बने प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ।

जगमहँ मत्स्य पुराण कहै पण्डित जन जाकूँ। ते नर प्रभुपद पाहिँ पढ़े श्रद्धातें वाकूँ।।
यों विश्वम्भर विष्णु रूप मछलीको धार्‍यो। हयग्रीव खल दैत्य पकरि पाताल पछार्‍यो।।
भक्त भूप रक्षा करी, ज्ञान ऋषिनिके सँग दयो। सुनत मोह तम नसि गयो, तत्क्षण भवभय भगि गयो।।
परम पुण्यप्रद मत्स्य चरित जे सुनें सुनावैं। प्रभुपद प्रकटैं प्रेम परमपद ते नर पावैं।।

इति अष्टम स्कन्ध

हरि कथा का चमत्कार अद्‌भुत सखे। हरि के तरणों में धरि के व्यथा सब हरे।
होवे कैसे भी पामर पतित पातकी। शरण आवें तो उनको भी पावन करें।।
नाग दंशित भी होके प्रशंसित रहे, नृप परीक्षित प्रभु से परम पद लहे।
धुन्धकारी पतित की भी प्रेतात्मा, हरि कथा की कृपा से भवार्णव तरे।।

*** चित्तचोर ने चित्त चुराया मेरा हरे कृष्ण गया फिर भाग कहाँ।**
व्रजमण्डल के युवराज बिना, सुख का सब साज समाज कहाँ।।
अब और सुहाता कुछ भी नहीं, जब लाग गई तो अब लाज कहाँ।
दु:खिया पर हाय दया करिके बतला दे कोई व्रजराज कहाँ।।